आदर्श पुस्तकों का नामोल्लेख

⊙○

[प्रस्तुत सस्करण की पाद-टिप्पणी मे जिन महाशयो की पुस्तको से 'क' 'ख' आदि सकेतो मे पाठभेद दिये गये है उनके नाम तथा सकेत इस प्रकार हैं—]

क मकेत वाली पुस्तक जनस्थाननिवासी वे० शा० स० साठे नारायण शास्त्री की है और पूर्ण है।

ख सकेत वाली पुस्तक आष्टे ग्रामनिवासी लिमये महोदय की है जो गौतमी माहात्म्य से रहित पूर्ण है।

ग सकेतवाली पुस्तक दक्षिणापथवर्ती विद्यालय के पुस्तकालय की है। यह भी गौतमी माहात्म्य से रहित पूर्ण है।

घ. सकेत वाली पुस्तक रा० रा० भाऊसाहेब नगरकर की है। इसमें केवल गौतमी माहात्म्य है।

ङ. सकेत वाली पुस्तक श्री 'पतसचिव सस्थान भोर' की है। इसमे भी केवल गौतमी माहात्म्य है।

च सकेत वाली पुस्तक चोपडे ग्रामनिवासी वे० रा० रा० 'वामनबुआ अयाचित' की है। इसमे भी केवल गौतमी-माहात्म्य है।

भूमिका

००

यो विद्याच्चतुरो वेदान् सांगोपनिषदो द्विजः ।
न चेत्पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः ॥
(ब्रह्माण्डपुराण अ० १)

अर्थात् जो व्यक्ति सांगोपांग चारों वेदों और उपनिषदों को जानता है पर पुराणों को नहीं जानता वह विद्वान् नहीं हो सकता।

उपर्युक्त कथन सत्य प्रतीत होता है कारण पुराण सब के ऐहलौकिक और पारलौकिक कल्याण-सम्पदा के अक्षय भाण्डार है। ज्ञान वैराग्य भक्ति प्रेम श्रद्धा विश्वास धन दान तप संयम यम नियम सेवा भक्ति दया वर्णधर्म आश्रमधर्म राजधर्म मानवधर्म व्यक्तिधर्म स्त्री धर्म सदाचार और नाना श्रेणियों के पुरुषों के विभिन्न कल्याणकारी उपदेश सुन्दर सरल और उपादेय भाषा में इनमें लिखे गये हैं। एतदतिरिक्त पुरुष प्रकृति महत्तत्त्व प्रकृति विकृति भूगोल खगोल ऋषिवंश तथा राजवंशों का वर्णन और स्थावर-जंगम सृष्टि का बहुत सुन्दर रीति से सूक्ष्म विवेचन किया गया है। कोश दर्शन व्याकरण छन्द ज्योतिष निरुक्त शिक्षा कल्प आयुर्वेद गान्धर्ववेद स्थापत्यवेद राजनीति समाजनीति योग तन्त्र आदि शास्त्रों का भी परिज्ञान हमें इनसे प्राप्त होता है। आध्यात्मिक एवं आधिदैविक विषयों के अतिरिक्त आधिभौतिकवाद की भी प्रचुर सामग्री पुराणों में पायी जाती है।

हरिदत्त शास्त्री के शब्दों में पुराणों से ही अणुशक्ति का ज्ञान प्राप्त करके वैशेषिक दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कणाद ने आकाश में निश्चेष्ट परमाणु के परस्पर सम्मिश्रण से सात पदार्थों की उत्पत्ति का सिद्धान्त स्वीकारा है इस समय अणुगवेषणा पर भौतिक अनुसंधान के विशेषज्ञों ने संहारक अणुशक्ति का पता लगाया है किन्तु अभी प्रजनन और पालन अणुशक्ति का पता उनको नहीं है यह विज्ञान पुराणादि में उल्लिखित है। इस पर ध्यान देकर यन्त्रों द्वारा अनुसंधान करके प्रत्यक्षीकरण किया जाये तो संसार का महान उपकार हो सकता है। देखिए शंकराचार्यरचित सौन्दर्यलहरी में महाशक्ति से अणु की उत्पत्ति का रूपक किस प्रकार दिया गया है—

तनीयांसं पांसुं तव चरणपंकेरुहभवं
विरिञ्चिः सञ्चिन्वन् विरचयति लोकानविकलम्।
वहत्येनं शौरिः कथमपि सहस्रेण शिरसां
हरः संक्षुभ्यैनं भजति भसितोद्धूलनविधिम्॥

अर्थात आद्यारूपिणी अव्यक्त महाशक्ति से अणुओं की वृष्टि हुई। उन अणुओं में से सृजनात्मक अणुओं को संचित करके संसार की रचना की गई। इसे ब्राह्मी अणुशक्ति कहते हैं। दूसरे प्रकार के अणुओं को संचित

करके वैष्णव अणु से संसार की पालनात्मक सामर्थ्य बनी है। फिर संहारात्मक अणु (विस्फोटक पदार्थ) एकत्र करके रौद्र अणुओं के पिण्डीकरण से संसार के विनाश की शक्ति बनी है। इस प्रकार ब्राह्मी, वैष्णवी और रौद्री अणुशक्ति—ये तीन प्रकार के अणु बताये गये हैं। यदि वर्तमान अणुपरीक्षण समिति नवीनतम वैज्ञानिक उपलब्ध साधनों से इनका गंभीर परीक्षण करे तो वर्तमान काल भी पुराण-काल के समान वैज्ञानिक महत्त्व को प्राप्त कर सकता है।

पुराणों में सिद्धपीठस्थली, भूमण्डल के विभाग, पुण्यसरितायें, महानद, सरोवर, मरुस्थल और शस्य-श्यामल भूभाग—इत्यादि का वर्णन आया है। इनसे प्रचुर मात्रा में ब्राह्मी, वैष्णवी और रौद्री अणुशक्ति के विषय में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

स्कन्दपुराण में एक कथा आती है कि बर्कर नाम का एक राजकुमार था, जिसका मुख बकरे के मुख के समान था। वह शारीरिक निर्माण के कारणों का ज्ञान प्राप्त करके अपने मुखमण्डल को वैज्ञानिक प्रक्रियाओं के द्वारा उसी शरीर में बकरी के मुख से सुन्दर मानवमुख के रूप में बदलकर चन्द्रमुखी हो गई। उस राजकुमारी के आठ भाई और एक बहन थी। उसके पिता ने सम्पूर्ण देश को नौ भागों में विभक्त करके प्रत्येक को एक एक खण्ड दे दिया। तब से भारतवर्ष नवखण्ड नाम से कहा जाने लगा। उन पृथक् पृथक् खण्डों में अनेक प्रकार के भूगर्भगत धातुओं का वर्णन है। इसके अतिरिक्त पुराणों में आकाशचारी ग्रहनक्षत्रों की दूरी और उनकी गति, शिशुमारचक्र, ध्रुवस्थान, उत्तरायण, दक्षिणायण, ऋतु, मास आदि का विज्ञान भी निहित है।

पुराणों का प्रमुख उद्देश्य वेद के तत्त्वों को जन साधारण तक पहुँचाना है। वेद में सूत्ररूप में जो बातें कही गई हैं उन्हीं की व्याख्या पुराणों में भाष्यरूप से की गई है। यह बात पुराण-रचयिता व्यास जी ने स्वयं कही है—**'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्'** अर्थात् इतिहास (रामायण महाभारत) और पुराणों की सहायता से वेदों का अर्थ समझना चाहिए। यही कारण है कि वेदों में जिन बातों की सूचना मात्र है पुराणों में उपाख्यानों के द्वारा उन्हीं का विस्तार है। जैसे ऋग्वेद के **'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्'** विष्णु के अवतार की सूचना मात्र है पर वामनपुराण में त्रिविक्रम नामक वामनावतार के प्रसंग में तथा अन्य पुराणों में भी विष्णु के वामनावतार का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसी तरह अथर्ववेद (कां० ८० सू० प्र० ३।४।५) में राजा पृथु का पृथ्वी-दोहन संक्षेप में वर्णित है पर श्रीमद्भागवत में उसी का विस्तृत रूप से वर्णन है।

पुराणों में जितनी सरलता से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चतुर्वर्ग की सिद्धि का साधन मिलेगा उतना अन्यत्र नहीं है। १८ पुराणों में परोपकार को सब धर्मों का सारभूत पुण्य बताया गया है और परपीडा को महापाप। यह पाप-पुण्य की परिभाषा मानवता का कितना सुन्दर और मौलिक आचरण बता रही है।

पुराणों में सत्य के अन्वेषण करने की दृष्टि से, सत्यवादी हरिश्चन्द्र आदि के उपाख्यान से ज्ञात होता है कि उन्होंने सत्य की मूल्यवत्ता का कितना आकलन किया था। सती अनसूया, सीता, सावित्री, सुकन्या आदि देवियों ने अपनी निष्ठा और सत्य से अलौकिक चमत्कार की सिद्धि प्राप्त की थी। भगवान् राम की जीवनचर्या से उनके चरित्र की विशेषता और मर्यादापालन की मर्यादापूर्ण एवं हृदयग्राही शिक्षा मिलती है। राम ने जनमत का सम्मान कर अपनी धर्मपत्नी सती सीता का त्याग दिया था। पैतृक अनुशासन और आज्ञा का आदर्श स्थिर करने के लिए राज्य का भी त्याग किया एवं अत्याचार का दमन करने के लिए एवं स्वेच्छाचारी अधिनायक का विध्वंस किया। श्रीराम के चरित्र में जो आदर्श है तथा जिस उच्च भूमिका पर समाज के जीवन को नैतिक, सामाजिक, चारित्रिक, धार्मिक, व्यावहारिक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक स्तर प्रतिष्ठित करने का अद्वितीय रूप है उसका दर्शन

अन्यत्र दुर्लभ है। रामराज्य के सम्बन्ध मे व्यास जी ने लिखा है—'न पुत्रमरणं केचिद्रामे राज्य प्रशासति।' इसी बात को महर्षि वाल्मीकि ने इस प्रकार लिखा है—

न पुत्रमरणं केचिद्द्रक्ष्यन्ति पुरुषा क्वचित्।
नार्यश्चाविधवा नित्य भविष्यन्ति पतिव्रता॥

अर्थात् राम के राज्य मे कोई पुरुष पुत्र की मृत्यु नही देखता था, कोई स्त्री विधवा नही होती थी और सभी पतिव्रता होती थी।

पुण्यशासन का यही आदर्श है। क्या राम के शासन के अतिरिक्त ससार के किसी भी शासन का यह आदर्श मिलता है?

इसी प्रकार मार्कण्डेय मुनि के जीवन से दीर्घायु तथा दधीचि, शिवि आदि के चरित्र से त्याग आदि का आदर्श पुराणो के द्वारा ही मिलता है। इसलिए पुराण ग्रन्थ भारतवर्ष की बहुत बडी निधि है।

पुराणों का अविर्भाव

महर्षि वात्स्यायन ने अपने न्यायदर्शनभाष्य मे लिखा है कि वेदो और पुराणो का आविर्भावकाल समान ही है। जैसे वेद अपौरुषेय हैं, गौतम, वसिष्ठ अत्रि कश्यप, भारद्वाज, वामदेव आदि ऋषि वेद-मन्त्रो के द्रष्टा मात्र हैं कर्ता नही, वैसे ही पुराणो की मौलिक सामग्री का कर्ता कोई भी नही है, किन्तु वेद-प्रतिपादित पुराणो के स्मर्ता ब्रह्मदेव हैं और वक्ता अनेक ऋषि हैं। तात्पर्य यह है कि जो वेद के द्रष्टा हैं वे ही पुराणो के स्मर्ता एव वक्ता हैं। जिस प्रकार वेद का आरम्भ ब्रह्मा से है उसी प्रकार पुराणो का आरम्भ भी ब्रह्मा से ही हुआ है। विशेषता इतनी है कि मन्त्रोपदेश से पूर्व विनियोग आवश्यक है तथा विनियोग की पूर्णता के लिए ऋषि, देवता, छन्द तथा चरित्र का ज्ञान भी अत्यावश्यक है। अत पहले पुराणों को जान लेने पर ही मन्त्रोपदेश सफल हो सकता है, अन्यथा नही। इसी अभिप्राय से पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड के अध्याय १०४ मे सिद्ध किया गया है कि सर्वप्रथम ब्रह्मा के मुख से पुराणो का ही स्मरण हुआ, पश्चात् उनके मुख से वेदमन्त्र निकले—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गता॥

इस सम्बन्ध मे अपने समय के अद्वितीय विद्वान् विद्यावाचस्पति मधुसूदन ओझा का अभिमत है कि मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेद-ग्रन्थो के आविर्भाव से पहले या उसके समकाल ही ब्रह्माण्डपुराण नामक वेद-विशेष था, जिसमे सृष्टि और प्रलय का निरूपण था। इसीलिए शतपथब्राह्मण के 'ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहास पुराणं विद्या उपनिषद इत्यादि सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीति' वाक्य मे 'पुराण' शब्द का उल्लेख मिलता है। मत्स्यपुराण के निम्नलिखित श्लोक भी इस बात को पुष्ट करते हैं —

पुराणमेकमेवासीत्तदा कल्पान्तरेऽनघ।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥१॥
कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप।
तदष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रकाश्यते॥२॥

पद्मपुराण एवं बृहन्नारदीयपुराण में भी इस तरह के संकेत पाये जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि पहले के प्रसिद्ध पुराण ग्रन्थ के आधार पर ही अठारह पुराणों की उत्पत्ति हुई है। उसी आदिम ब्रह्माण्डपुराण से मन्त्रार्थोपयोगी आधिभौतिक आधिदैविक और आध्यात्मिक उपाख्यानों को लेकर महर्षियों ने ब्राह्मणग्रन्थों में संनिविष्ट कर दिया। इस लिए ऐतरेय ब्राह्मण के निम्नलिखित मन्त्र में सिद्ध आख्यानों के वक्ताओं का ही प्रतिपादन किया गया है—

सोमो वै राजाऽमुष्मिन् लोके आसीत्तं देवाश्च ऋषयश्चाभ्यध्यायन्—कथमयमस्मान् सोमो राजा गच्छेदिति ते ऽब्रुवन् छन्दांसि यूयं न इमं सोमं राजानमाहरतेति तथेति ते सुपर्णा भूत्वोदपतन् ते यत् सुपर्णा भूत्वोदपतंस्तदेतत् सौपर्णमित्याख्यानविद आचक्षते।

यद्यपि ब्राह्मण ग्रन्थों में महर्षियों ने ही आख्यानों को कहा है किन्तु वे आख्यान ब्राह्मणग्रन्थवक्ता महर्षियों द्वारा प्रणीत नहीं हैं क्योंकि मन्त्रार्थ के उपपादन में उन आख्यानों का उपादान होने से उन्हें मन्त्र रचना के बाद की कल्पना का विषय नहीं माना जा सकता। इसलिए ब्रह्मा द्वारा प्रस्तुत चिरन्तन ब्रह्माण्डपुराण से ही ये आख्यान संकलित किये गये हैं ऐसा मानना चाहिए। ब्राह्मणग्रन्थों में उल्लिखित पुराणार्थ—आख्यानों को ब्रह्मकृत मानकर ही पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड में कहा गया है—

सूतेनानुक्रमेणेदं पुराणं सम्प्रकाशितम्।
ब्राह्मणेषु पुरा यच्च ब्रह्मणोक्तं सविस्तरम्॥

इन ब्राह्मणग्रन्थों में प्रायः सभी विद्याओं का उल्लेख है किन्तु वे क्रमबद्धता से रहित सूत्ररूप में अस्पष्ट हैं। अतएव उन्हें बुद्धिग्राह्य बनाने के लिए विशिष्टबुद्धिशाली महर्षियों ने अपनी प्रतिभा के बल पर उन ब्राह्मण ग्रन्थों से उन विद्याओं को अलग करके युक्ति प्रयुक्ति और सिद्धि के द्वारा विशद करके लोककल्याणार्थ प्रसारित किया। जैसे कपिल और पतञ्जलि आदि ने सांख्य और योग का वात्स्यायन आदि ने कामसूत्र का मनु आदि ने धर्मसूत्र को धन्वन्तरि आदि ने आयुर्वेद को यास्क आदि ने निरुक्त का और इन्द्र पाणिनि आदि ने व्याकरण का प्रवर्तन किया। इसी प्रकार वसिष्ठ के प्रपौत्र शक्ति के पौत्र और पराशर के पुत्र सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न भगवान् कृष्णद्वैपायन ने लोकोपकार के लिए समस्त ब्राह्मण-ग्रन्थों से सभी उपाख्यानों एवं गाथाओं का संकलन करके यथाप्रसंग में आयी हुई कल्पशुद्धियों को भी ठीक-ठीक जोड़कर लौकिक आख्यानों से मिश्रित तथा सम्मिलित करके पूर्वोक्त अखण्ड ब्रह्माण्डपुराण में कहे गये जगत्सृष्टि-प्रलयरूप पदार्थों का आख्यान[1] उपाख्यान[2] गाथा[3] और कल्पशुद्धि[4] में गुम्फित करके अठारह खण्डों में विभक्त एवं पुराण-संहिता का निर्माण किया। उसे पुराण संहिता इसलिए कहते हैं कि उसमें पुराण पद से अभिहित तथा ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में उल्लिखित विश्व सृष्टि विद्याओं का एक जगह संग्रह करके समाहार किया गया है। फिर कृष्णद्वैपायन ने अपने शिष्य सूतजातीय लोमहर्षण को वह संहिता पढ़ायी। लोमहर्षण ने भी सम्पूर्ण संहिता को पढ़कर १ सर्ग (सृष्टि) २ प्रतिसर्ग (प्रलय) ३ वंश (देवताओं एवं पितरों के वंशावली) ४ मन्वन्तर (किस मनु का कब तक अधिकार रहता है) तथा ५ वंशानुचरित (सूर्य चन्द्र प्रभृति राजवंशों में उत्पन्न होने वाले राजाओं के संक्षिप्त वर्णन)—इन पाँच विषयों में विभक्त करके एक लोमहर्षण नाम की संहिता बनायी। उन्होंने अपने छह शिष्यों—१ सुमति २ अग्निवर्चस ३ मित्रयु ४

---

१ स्वयं देखे गये विषयों का वर्णन। २ कर्ण-परम्परा द्वारा सुने गये विषयों का वर्णन। ३ पितरगण परलोक अथवा अन्यान्य विभिन्न विषयों के गीत या अनुश्रुतियाँ। ४ श्राद्धकल्प आदि के निर्णय।

सुमति ५ अकृतव्रण और ६ सोमदत्ति को पढ़ा दिया। ये ही छह व्यक्ति गोत्र-नाम के क्रम से १ आत्रेय २ भारद्वाज ३ वसिष्ठ ४ शांशपायन ५ काश्यप और ६ सावर्णि कहे जाते हैं। इन छहों ने भी पूर्वोक्त संहिताद्वय के आधार पर स्वेच्छानुसार क्रम रखकर छह संहिताओं का निर्माण किया। उन छहों संहिताओं में जिज्ञासा आख्यान संवाद एवं प्रवृत्ति के अनुरोध से प्रसंगतः संक्षिप्त और विस्तृत अनेक कथानक जोड़ दिये गये। जिससे उनके आकारों में भिन्नता आ गयी, परन्तु सर्ग प्रतिसर्ग आदि सामान्य धर्म उनमें बराबर ही बने रहे। इस प्रकार पुराणों की आठ संहितायें बन गईं यह किन्हीं आचार्यों का मत है। वैसे वायुपुराण और विष्णुपुराण के मत से चार ही संहितायें हैं—१ लोमहर्षणिका काश्यपिका सावर्णिका और शांशपायनिका। इन चार संहिताओं के आधार पर ही वेदव्यास ने ब्रह्मपुराण आदि प्रसिद्ध अठारह पुराणों की रचना की और उनमें उग्रश्रवा प्रभृति सूतों ने संवृद्धि की।

आगे चलकर उन चारों संहिताओं में उल्लिखित कथाओं में भिन्नता आ गई। इसका कारण यह है कि समय-समय पर मुनियों की गोष्ठियों में उन पर चर्चा होती रही जिसमें सात्त्विक राजस और तामस उपासना के भेद से उनको भिन्न भिन्न प्रकार से निरूपित किया गया फलतः मुख्य उद्देश्य में भिन्नता आ जाने से इतिहास और प्रबन्ध में भी भेद हो गया। बाद में उन उन पुराणों में आये हुए पुलस्त्य एवं भीष्म और पराशर एवं मैत्रेय आदि के संवादों का प्रचार करने के लिए कभी लोमहर्षणसूत नैमिषारण्य में जाकर वेदव्यास ही के द्वारा विभक्त किये गये अठारह पुराणों को शौनक आदि जिज्ञासु मुनियों को सुनाने लगे। यद्यपि वेदव्यास द्वारा व्यक्त किये गये पुराणों का पूर्वापर क्रम दूसरे प्रकार से निर्धारित था किन्तु लोमहर्षण सूत ने जिज्ञासुओं के अनुरोध से निर्धारित क्रम की उपेक्षा करके क्रमशः ब्रह्मपुराण पद्मपुराण विष्णुपुराण कूर्मपुराण मत्स्यपुराण वामनपुराण वाराहपुराण ब्रह्मवैवर्तपुराण नारदीयपुराण तथा भविष्यपुराण—इन दस पुराणों को पूर्ण रूप से सुनाकर अग्निपुराण को आधा ही सुनाया। इसी बीच मथुरा से नैमिषारण्य में आये हुए बलभद्र ने अवशिष्ट अग्निपुराण को सुनाते हुए ही सूत को यह बिना मेरा अभिवादन किये शूद्र होकर पुराण सुना रहा है—ऐसा सोचकर क्रोधावेश में मार डाला। तब लोमहर्षण के दिवंगत हो जाने पर शोकाकुलित शौनक आदि मुनियों ने लोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा नामक सूत को बुलाकर व्यास गद्दी पर बैठाकर उससे अग्निपुराण के अवशिष्ट आधे भाग के साथ और भी सात पुराण सुन लिये। यह बात पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में आयी है। लोमहर्षण की जीवितावस्था में भी नित्य वे ही मुनियों को पुराण नहीं सुनाते थे अपितु उनकी आज्ञा से उग्रश्रवा भी नैमिषारण्य में जाकर मुनियों को पुराण सुनाया करते थे। यह बात भी पद्मपुराण से ही विदित होती है।

पहला पुराण

पूर्वोक्त चार संहिताओं पर आधारित अठारह पुराणों में प्रथम पुराण ब्रह्मपुराण ही है। इस बात को भगवान् पराशर ने मैत्रेय से कहा है—

> चतुर्ष्वप्येतेषु संहितानामिदं मुने।
> आद्यं सर्वपुराणानां पुराणं ब्राह्ममुच्यते॥
>
> (विष्णुपुराण)

इस श्लोक में ब्रह्मपुराण को आद्य मानकर इतर पुराणों को तदुत्तरवर्ती एवं संहिताचतुष्टयमूलक प्रतिपादित

किया गया है। केवल देवीभागवत को छोड़कर अन्य पुराणों में भी इस बात की पुष्टि की गई है। इसका स्पष्टीकरण आगे किया गया है।

पुराणों का क्रम

विष्णुपुराण के अनुसार पुराणों की रचना (सृष्टि) का क्रम इस प्रकार है —

१ ब्रह्म	७ मार्कण्डेय	१३ स्कन्द
२ पद्म	८ अग्नि	१४ वामन
३ विष्णु	९ भविष्य	१५ कूर्म
४ वायु (शिव)	१० ब्रह्मवैवर्त	१६ मत्स्य
५ भागवत	११ लिंग	१७ गरुड़
६ नारदीय	१२ वाराह	१८ ब्रह्माण्ड

इन्हीं अठारह पुराणों के आद्य अक्षर लेकर निम्नलिखित श्लोक में मात्र सूची प्रस्तुत की गई है—

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम् ।
अनापकूस्कलिंगानि पुराणानि प्रचक्षते ।।

दो म	दो भ	तीन ब्र	चार व	अ०	ना०	प०	कू०	स्क०	लि०	ग०
७	५	१	३	८	६	२	१५	१३	११	१७
१६	९	१०	१२							
		१८	१४							
			४ (मतभेद से)							

पुराणों का क्रम रहस्य

श्री कृष्णमणि त्रिपाठी के शब्दों में पुराणों की सृष्टि प्रक्रिया को वैज्ञानिक दृष्टि से देखना हो तो क्षीरसमुद्र में शेषशायी भगवान् विष्णु का ध्यान कीजिए। क्षीरसागर में शेषनाग की शय्या बनाकर भगवान् विष्णु लेटे हुए हैं। जगज्जननी लक्ष्मी उनका पैर दबा रही हैं और महर्षि नारद पास में खड़े होकर स्तुति कर रहे हैं। जब विष्णु की सृष्टि रचने की इच्छा होती है तब उनकी नाभि से एक कमल निकलता है। उससे ब्रह्मा का प्रादुर्भाव होता है। उस पर बैठकर चतुर्मुख ब्रह्मा वेदपाठ करते हैं। यही सृष्टि के रचयिता हैं। इस चित्र को ध्यान में रखकर पुराणों के क्रम पर विचार करना चाहिए। सबसे पहले यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि इस दृश्यमान ब्रह्माण्ड के रचयिता कौन हैं? इसका उत्तर प्रथम ब्रह्मपुराण देता है। इससे यह सूचित होता है कि ब्रह्मा ब्रह्माभवत्स्वयम् इस तैत्तिरीय श्रुति के अनुसार ब्रह्म ही ब्रह्मा के रूप में सृष्टि के रचयिता हैं। अर्थात् स्थावर-जंगमात्मक दृश्यजगत् के निर्माता ब्रह्मा का तत्त्व प्रथम ब्रह्मपुराण बतलाता है। पश्चात् दूसरा प्रश्न उपस्थित होता है कि ब्रह्मा कहाँ से पैदा हुए? इसका उत्तर पद्मपुराण देता है कि ब्रह्मा ब्रह्म के नाभिकमल से उत्पन्न हुए। अब तीसरा प्रश्न उपस्थित होता है कि पद्म कहाँ से निकला? इस शंका का समाधान करने के लिए तीसरा विष्णुपुराण आता है। इसके बाद शंका होती है

की सृष्टि, प्रलय आदि का निरूपण करते हैं। इसलिए १८ भाव विकारों को व्यक्त करने के लिए पुराण भी १८ माने गये हैं। फिर कल्प भी १८ माने जाते हैं। एक एक कल्प में एक एक पुराण की प्रधानता रहती है। इस दृष्टि से विचार करने पर भी पुराणों की अष्टादश संख्या के रहस्य का उद्घाटन होता है।

उपपुराण और औपपुराण

पुराणों की तरह उपपुराण और औपपुराण भी संख्या में अष्टादश ही हैं। यथा—**उपपुराण**—(१) सनत्कुमारकृत आदिपुराण (२) नरसिंहपुराण (३) कुमारकृत स्कन्दपुराण (४) शिवधर्मपुराण (५) दुर्वासा-पुराण (६) नारदपुराण (७) कपिलपुराण (८) वामनपुराण (९) औशनसपुराण (१०) ब्रह्माण्डपुराण (११) कालिकापुराण (१२) वरुणपुराण (१३) माहेश्वरपुराण (१४) साम्बपुराण (१५) सौरपुराण (१६) पाराशर पुराण, (१७) मारीचपुराण और (१८) भास्करपुराण हैं।

औपपुराण—(१) सनत्कुमारपुराण (२) बृहन्नारदीयपुराण (३) आदित्यपुराण (४) सूर्यपुराण (५) नन्दिकेश्वरपुराण (६) कौर्मपुराण (७) भागवतपुराण (८) वसिष्ठपुराण (९) भार्गवपुराण (१०) मुद्गल पुराण (११) कल्किपुराण (१२) देवीपुराण (१३) महाभागवतपुराण (१४) बृहद्धर्मपुराण (१५) परानन्द पुराण (१६) वह्निपुराण (१७) पशुपतिपुराण और (१८) हरिवंशपुराण हैं।

इन उपपुराणों और औपपुराणों की रचना पुराणों के आधार पर ही हुई है। प्राचीन काल के विभिन्न विद्वानों ने १८ महापुराणों की छाया लेकर ही इनकी रचना की है। विस्तार के भय से इनमें कहीं-कहीं तो कथायें सूक्ष्म कर दी गई हैं कहीं-कहीं पर विलक्षण कथाओं का भी समावेश कर दिया गया है और कहीं-कहीं कथाओं में नावीन्य लाने के लिए परिवर्तन भी कर दिया गया है। इतना अन्तर होने पर भी इनका मूल अष्टादश पुराण ही है। श्रीमद्भागवत के यशस्वी टीकाकार श्रीधर स्वामी के प्रधान शिष्य नीलकण्ठ ने देवीभागवत की टीका में इस विषय का स्पष्ट संकेत भी किया है—

अष्टादशभ्यस्तु पृथक् पुराणं यत्प्रदृश्यते।
विजानीध्वं द्विजश्रेष्ठास्तथा तेभ्यो विनिर्गतम्॥

पुराण शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थ

ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है—

यस्मात्पुरा ह्यनक्तीदं पुराणं तेन तत्स्मृतम्।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

अर्थात् सर्वप्रथम ज्ञान का प्रकाश करने के कारण इसकी 'पुराण' संज्ञा हुई। इसकी निरुक्ति या व्युत्पत्ति जो जानते हैं वे सब पापों से छूट जाते हैं।

पुराण शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है—'पुरा नीयते इति पुराणम्' पुरा√नी+ड(अ) ईकार का लोप णत्व। अथवा पुरा भवम् इति पुराणम् पुरा+ट्यु (यु) सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च' इस सूत्र से। अनन्तर यु के स्थान में 'युवोरनाकौ' सूत्र से अन आदेश नकार को 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' सूत्र से णत्व। यहाँ 'सायंचिर—इत्यादि सूत्र से ट्यु प्रत्यय तो होता है पर तुट् का आगम नहीं हो पाता है कारण, 'पूर्व

कार्यमवज्ञरत्पुराणनवकवला समानाधिकरणन इस सूत्र म पाणिनि न पुराण शब्द का निर्देश किया है। यदि त्रुट हो जाएगा तो उक्त सूत्र म पठित पुराण शब्द कैसे बनेगा? अथवा पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु इस सूत्र निर्देश म निपातन करके पुराण शब्द बन सकता है।

निरुक्त म पुराण शब्द का निर्वचन इस प्रकार आया है—पुरा नव भवति जिसके नव यानि सबसे प्रथम प्रकट हुई वह पुराण है। इसलिए भगवान को भी पुराणपुरुष कहते हैं। पुराण का अर्थ जीर्ण नहीं है अपितु आदि विकास है। गीता म भगवान की प्रार्थना म आया है—कवि पुराणमनुशासितारं अर्थात भगवान् क्रान्तदर्शी तथा पुराण होने से सबके अनुशासक हैं। अतः पुराण शब्द से आदि साहित्य का तात्पर्य है। आदि साहित्य वह है जिसमे आदित्व आत्मा का प्रबोध हो। इस आदि विद्या को वेदव्यास जी ने जगत्कल्याण के लिए सर्गादि पाँच लक्षणों म ग्रथित कर दिया। इसी को पुराण कहते हैं। पुराण शब्द को सुनते ही व्यासकृत अष्टादश पुराणों की स्मृति हो जाती है।

पुराण-लक्षण

स्वयं पुराणों म ही पुराण के कई लक्षण दिये गये हैं। कोशकारों के अनुसार उसका सर्वाधिक प्रचलित लक्षण यह है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

अर्थात जिसमे सर्ग ईश्वरकृत सृष्टि (कारणसृष्टि) प्रतिसर्ग पुनः (कार्य) सृष्टि और लय देवताओं एवं पितरों की वंशावली समस्त मन्वन्तर (किस मनु का कब तक अधिकार रहता है) तथा वंशानुचरित (सूर्य चन्द्र प्रभृति राजवंशों म उत्पन्न होने वाले राजाओं के संक्षिप्त वर्णन) पुराण के यही पाँच लक्षण हैं। इस लक्षण से सर्वांश घटित होने वाले प्रायः अधिकांश महापुराण हैं पर कुछ ऐसे भी हैं जिनमें सब लक्षण घटित नहीं होते। पुराण शब्द का व्यवहार अथर्ववेद शतपथब्राह्मण छान्दोग्य बृहदारण्यक तैत्तिरीयारण्यक आश्वलायनगृह्यसूत्र आपस्तम्ब धर्मसूत्र मनुसंहिता रामायण महाभारत प्रभृति हिन्दू जाति के प्राचीनतम एवं सम्मान्य ग्रन्थों म किया गया है। पर यह विवादास्पद है कि उस समय भी पुराण का यह लक्षण था। अथर्वसंहिता के **ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह** (अथर्व ११ ७ २४) इस मन्त्र को ऋक साम छन्द और पुराण ये साथ उत्पन्न हुए यह स्पष्ट अर्थ है। बृहदारण्यक और शतपथब्राह्मण म एक स्थान पर यह वर्णन किया गया है कि जिस प्रकार गीले काष्ठ से उत्पन्न अग्नि से पृथक्-पृथक् धुआँ निकलता है उसी प्रकार इस महान् भूत के निःश्वास से ऋग्वेद यजुर्वेद साम वेद अथर्ववेद इतिहास पुराण विद्या उपनिषत् श्लोक सूत्र व्याख्यान और अनुव्याख्यान निकले है। ये सभी इसी निःश्वास हैं। इसमे भी पुराण का इतिहासादि से पृथक कथन किया गया है। छान्दोग्योपनिषत् के **स होवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहास पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्।** (छान्दोग्य उ० ७ १ १) इस वचन द्वारा पुराण भी वेद-समूह म पाँचवाँ वेद माना गया है। इसी प्रकार महाभारत और रामायण म भी पुराण शब्द का अनेक स्थलों पर प्रयोग हुआ है। भगवान् शंकराचार्य ने बृहदारण्यक के भाष्य म पुराण शब्द की व्याख्या की है। उनका कहना है कि वेदों म उर्वशी और पुरूरवा के कथोपकथन आदि ब्राह्मणभाग का नाम इतिहास और मतसे पहले एकमात्र असत् था इत्यादि सृष्टि प्रक्रिया के घटित वृत्तान्त का नाम पुराण है। इस प्रकार आचार्य

सायण ने भी वेदो म आये हुए पुराण शब्द क निरुक्ति करते हुए सष्टिप्रक्रिया घटित वृत्तान्त को पुरा माना है। शङ्कराचार्य एव सायण का परिभाषा के अतिरिक्त म०भारत एव रामायण म पुराणा का जो परिचय दिया गया है उसम सष्टि प्रक्रिया घटित वृत्तान्ता के अतिरिक्त अन्य विषया का भी उल्लेख किया गया है। महाभारत के आदि पर्व मे महर्षि शौनक ने कहा है—

पुराण हि कथा दिव्या आदिवशाश्च धीमताम।
कथ्यन्ते य पुराऽस्माभि श्रुतपूर्व पितुस्तव॥
(महाभारत आदिपर्व ५ २)

अर्थात् पुराणा म दिव्य कथाओ एव परम बुद्धिमान् व्यक्तियो के आदिवशा के वणन है। यही नही महा भारत क आदिपर्व म उन समस्त राजाओ की नामावली है जिनके वश वणन पुराणा म है। इसी प्रकार रामायण के बालकाण्ड के नवम सर्ग से लेकर ग्यारहवे सर्ग तक वर्णित कथाओ को भी पुराण सज्ञा दी गई है। इन बातों पर विचार करने से पता लगता है कि वद काल से लेकर रामायण एव महाभारत काल तक जो पुराण प्रचलित थे उनम सष्टि प्रक्रिया घटित वृत्तान्ता दिव्य कथाओ एव परम बुद्धिमान व्यक्तियो के आदिवशो का वणन था। पुराण क अनुना प्रचलित सर्गश्च प्रतिसर्गश्च इस उपयुक्त लक्षण से इसका समानता है। अस्तु

उपयुक्त सवमान्य सर्गश्च प्रतिसर्गश्च इत्यादि लक्षण क अतिरिक्त ब्रह्मवैवर्तपुराण म महापुराण के दूसरे लक्षण भी बताये गये और उस सवमान्य लक्षण को उपपुराणा का लक्षण बतलाया गया—

सृष्टिश्चापि विसृष्टिश्च स्थितिस्तेषाञ्च पालनम।
कर्मणा वासनावातामनूनाञ्च क्रमण च॥
वणन प्रलयानाञ्च मोक्षस्य च निरूपणम।
उत्कीर्तन हरेरेव देवानाञ्च पृथक पृथक।
दशाधिक लक्षणञ्च महतां परिकीर्तितम॥
(१३२ ३५ ३७)

इस प्रकार यदि ब्रह्मवैवर्तपुराण का मत माना जाय तो महापुराण म उपयुक्त दस लक्षण होने चाहिये और उपपुराणा म पाँच। किन्तु इसमे भी अमरकोश म वर्णित उक्त सवसम्मत लक्षण की ही मान्यता सिद्ध होती है। क्योंकि उपपुराणा म उक्त पाँच लक्षण भी नही मिलते।

क्या पुराण इतिहास है ?

यस्मिन् पुराणमतिह्य पुराणं तेन तत् स्मृतम् अर्थात् पुराण म इतिवृत्त होत हैं इसलिए इस पुराण कहते है। इसस स्पष्ट है कि पुराण इतिहास स भिन्न नही हैं। फिर ससार परिवर्तनशील है। समयानुसार मनुष्य क विचार तथा अभिरुचियाँ परिवर्तित होती रहती हैं। जो बात आज हम जिस रूप म देखते हैं वह प्राचीन काल म भी वैसी ही थी या नहा और आज भी वसी हो होगी या नहा यह कोई नहा कह सकता। अतएव इतिहास क जो परिभाषा आज है वही प्राचीन काल म भी थी यह निश्चयपूवक नहा कहा जा सकता पर ऐतिहासिक पुस्तको का जो उपयोग आज है वही प्राचीन काल म पुराणा का था। इतिहास क जो लक्षण उस समय बनाये गए हैं वे सब पुराणों में पाये जाते हैं। यथा देवीभागवत म लिखा है—

अर्थात् जो धर्म अर्थ काम और मोक्ष के उपदेशों से युक्त तथा पुरावृत्त कथाओं से सवलित हो, उसे इतिहास कहते हैं।

जैसे आजकल इतिहास मे सन् सवत् सहित घटनायें रहती है अर्थात् सन् सवत् युक्त घटना-समूह या सूची को इतिहास कहते हैं, वैसे ही प्राचीन काल मे भी था। किन्तु अतीत काल का इतिहास आधुनिक काल के इतिहास से पूर्णतया भिन्न था अर्थात् अतीत काल में इतिहास की वह परिभाषा न थी जो आज है। पूर्वकालीन इतिहास की व्युत्पत्यात्मक व्याख्या से यह विषय स्पष्ट हो जाएगा। देखिए विष्णुपुराण मे इतिहास की व्याख्या—

'इतिहेत्यव्ययम् पारम्पर्योपदेशाख्यायी, तस्यासनम् आस. अवस्थितिरेतेष्विति।' अर्थात् 'इतिह' अव्यय है, जिसका अर्थ है परम्परागत उपदेशयुक्त कथायें और 'आस' का अर्थ है—अवस्थिति। अर्थात् जिसमें परम्परागत उपदेशपूर्ण कथायें हो, वह 'इतिहास' है। अमरकोश मे भी 'इतिहास' का यही लक्षण किया गया है। यथा, **'पारम्पर्योपदेशे स्यादैतिह्यमितिहाव्ययम्। इतिहास पुरावृत्त** ' अर्थात् परम्परागत प्राचीन घटनाओं का विवरण ही इतिहास है।

इस प्रकार हम देखते है कि अर्वाचीन तथा प्राचीन इतिहास में भेद केवल काल या समय का है। आजकल के इतिहास का तात्पर्य सन्, सवत्, तिथि सहित बहुत-सी घटनाओं के वृत्तान्त से है, परन्तु प्राचीन काल में सन्, सवत् आदि की उतनी आवश्यकता नही थी केवल मनु के समय से व्यक्ति तथा घटना-काल का अनुमान लगा लिया जाता था। अत पुराण निरे धार्मिक ग्रन्थ ही नही हैं अपितु उनमे भारत के अतीत का इतिहास भरा पड़ा है। वे प्रागैतिहासिक काल के महत्त्वपूर्ण इतिहास हैं।

पुराणो का वर्गों में विभाजन

उक्त अष्टादश पुराणों को वर्गों में भी विभक्त किया गया है। स्कन्दपुराण के केदारखण्ड में यह चर्चा आयी है कि अठारहो महापुराणों में दस शैव चार ब्राह्म दो शाक्त और दो वैष्णव हैं। फिर उसी पुराण के शिवरहस्य-खण्डान्तर्गत सम्भवकाण्ड से लिखा है कि शिव, भविष्य, मार्कण्डेय लिंग वाराह स्कन्द मत्स्य कूर्म वामन और ब्रह्माण्ड—ये दस पुराण शैव हैं। इन सब की श्लोक सख्या ३ लाख है। विष्णु भागवत नारदीय और गरुड—ये चार वैष्णव हैं इनमें भगवान् विष्णु की महिमा वर्णित है। ब्रह्म और पद्म—ये दो पुराण ब्रह्मा से सम्बन्धित हैं। अग्निपुराण अग्नि की और ब्रह्मवैवर्त पुराण सूर्य की महिमा से पूर्ण हैं। चारो वैष्णव पुराणों में अधिकतर शिव और विष्णु का माहात्म्य वर्णित किया गया हैं। ब्रह्मपुराण में ब्रह्मा विष्णु और महेश का साम्य प्रतिपादित करते हुए भी ब्रह्मा का श्रेष्ठ और सूर्य का त्रिदेवात्मक सिद्ध किया गया है। इसी प्रकार शैव पुराणों में शिव को सभी देवताओं से अधिक शक्तिशाली माना गया है। मत्स्यपुराण में यद्यपि विष्णु के मत्स्यावतार का ही वर्णन किया गया है, पर शिव के विविध अवतारों एव कार्यों का भी इसमें वर्णन मिलता है। इसी प्रकार वाराह, वामन और ब्रह्माण्ड में भी शिव की अनन्त शक्ति का वर्णन किया गया है जिसके सम्मुख विष्णु, ब्रह्मा प्रभृति सभी देवों एव शक्तियों को कई बार प्रभावहीन होते दिखाया गया है। शैव मत की प्राचीनता एव उसके उदात्त विचारों का ही यह परिणाम है कि अधिकांश पुराणों में उसकी चर्चा की गई है। ऋक् यजु साम और अथर्व चारों वैदिक सहिताओं में रुद्र की स्तुति मिलती है। इनमें यजुर्वेदान्तर्गत रुद्राष्टाध्यायी का आज भी बहुत प्रचार है। यद्यपि इस बात में विवाद उठाया गया

है कि वैदिक रुद्र ही पौराणिक शिव अथवा रुद्र है पर यह परम्परा इतनी प्रचलित हो गई है कि १८ तक नहीं स्वीकार करता। वाजसनेयी संहिता में शतरुद्री के बीच बीच में शिव गिरीश पशुपति नीललोहित शितिकण्ठ भव शर्व महादेव इत्यादि नामों को देखने से रुद्र और शिव के एकत्व में अविश्वास नहीं रह जाता। अथर्वसंहिता में भी महादेव भव पशुपति आदि नामों का उल्लेख हुआ है। अस्तु शैव पुराणों में प्रायः इन्हीं उपर्युक्त नामों के चरितायता मनोहर कथाओं के रूप में की गई है। इनके अतिरिक्त सात्त्विक राजस एवं तामस—इन तीन गुणों के आधार पर भी पुराणों का वर्ग विभाग किया गया है।

पुराणों की श्लोक संख्या और अध्यायों का विवरण

उपर्युक्त अठारह पुराणों में आए हुए श्लोकों एवं अध्यायों की संख्या नारदीय पुराण एवं मत्स्यपुराण में उल्लिखित संख्या के अनुसार प्रस्तुत की जा रही है—

		नारदीय पुराण के अनुसार (श्लोक संख्या)	मत्स्यपुराण के अनुसार (श्लोक संख्या)	(अध्याय संख्या)
१	ब्रह्मपुराण	१००००	१३०००	२४५
२	पद्मपुराण	५५०००	५५०००	६४१
३	विष्णुपुराण	२^०००	२३०००	१२७
४	शिवपुराण	२४०००	२४०००	४६४
५	भागवत	१८०००	१८०००	३३२
६	नारदीयपुराण	२५०००	२५०००	२०७
७	मार्कण्डेयपुराण	९०००	९०००	१३४
८	अग्निपुराण	१५०००	१६०००	३८३
९	भविष्यपुराण	१४०००	१४५००	६०५
१०	ब्रह्मवैवर्तपुराण	१८०००	१८०००	२६६
११	लिंगपुराण	११०००	११०००	१६०
१२	वाराहपुराण	२४०००	२४०००	२१८
१३	स्कन्दपुराण	८११००	८१०००	१६७१
१४	वामनपुराण	१००००	१००००	९५
१५	कूर्मपुराण	१७०००	१८०००	९९
१६	मत्स्यपुराण	१५०००	१४०००	२९०
१७	गरुडपुराण	१९०००	१८०००	३१८
१८	ब्रह्माण्डपुराण	१२०००	१२२००	१६१

इन पुराणों के जो संस्करण आजकल मिल रहे हैं उनमें केवल भागवत लिंगपुराण मत्स्यपुराण और ब्रह्माण्ड पुराण में उपर्युक्त श्लोक-संख्या ठीक है पर शेष पुराणों की श्लोक संख्या में पर्याप्त अन्तर है।

ब्रह्मपुराण

प्रस्तुत ब्रह्मपुराण विष्णुपुराण के अनुसार अठारह पुराणों में सबसे पहला पुराण है—

आद्यं सर्वपुराणानां पुराणं ब्राह्ममुच्यते।
अष्टादश पुराणानि पुराणज्ञाः प्रचक्षते॥

विष्णु, देवी भागवत के अनुसार ब्रह्मपुराण पाँचवाँ पुराण है। नारदपुराण के अनुसार ब्रह्मपुराण में दस हजार श्लोक होने चाहिए किन्तु मत्स्यपुराण में ब्रह्मपुराण के तेरह हजार श्लोकों की संख्या उल्लिखित है। यही संख्या लिङ्गपुराण वाराहपुराण कूर्मपुराण और पद्मपुराण में भी उल्लिखित है। किन्तु प्रस्तुत संस्करण में तेरह हजार मान मा निगमा श्लोक उपलब्ध हैं। यह संस्करण आनन्दाश्रम पूना में प्रकाशित प्रति के आधार पर तैयार किया गया है।

ब्रह्मपुराण के दो भाग हैं—पूर्वभाग और उत्तरभाग। दोनों भागों में मिलाकर कुल २४६ अध्याय हैं। जिनमें पूर्वभाग में देवों और असुरों प्रजापतियों तथा दक्ष आदि की उत्पत्ति का वर्णन है। फिर भगवान् सूर्य के वंश का वर्णन तथा भगवान राम के मनुष्यहावतार का उल्लेख है। तदनन्तर चन्द्रवंश का वर्णन एवं जगदीश्वर कृष्ण का चरित्र चित्रित है। तत्पश्चात् द्वीपों नदियों वर्षों पाताल स्वर्ग और नरक का वर्णन मिलता है। फिर सूर्य की स्तुति एवं पार्वती का जन्म और विवाह वर्णित हैं। इसके बाद दक्ष का आख्यान और एकाम्रक्षेत्र का वर्णन मिलता है। संक्षेप में पूर्वभाग में इतना ही विषय आया है।

उत्तरभाग में पुरुषोत्तमक्षेत्र का विस्तार से वर्णन तथा तीर्थयात्रा का विधान निरूपित है। पुनः यहाँ भी कृष्ण चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। अनन्तर यमलोक का वर्णन पितृश्राद्ध का विधान वर्णाश्रमधर्म का निरूपण युगों का आख्यान तथा प्रलय का वर्णन किया गया है। तदुपरान्त योग तथा सांख्य की व्याख्या ब्रह्मवाद का निरूपण और ब्रह्मपुराण के फलश्रुति का कथन किया गया है।

वैसे तो सर्ग प्रतिसर्ग वंश मन्वन्तर और वंशानुचरित—ये सभी पुराणों में प्राय समान ही हैं। किन्तु ब्रह्मपुराण के आदि पुराण होने से इसके श्लोक भी कुछ पुराणों में ज्यों-के-त्यों रख लिए गए हैं। जैसे ब्रह्मपुराण के निम्नलिखित श्लोक विष्णुपुराण एवं नारदपुराण में अविकल रूप में आ गए हैं—

गोपीपरिवृतो रात्रिं शरच्चन्द्रमनोरमाम्।
मानयामास गोविन्दो रासारम्भरसोत्सुकः॥
गोप्यश्च वृन्दशः कृष्णचेष्टास्वायत्तमूर्तयः।
अन्यदेशं गते कृष्णे चेरुर्वृन्दावनान्तरम्॥
बभ्रमुस्तास्ततो गोप्यो निराशाः कृष्णदर्शने।
कृष्णस्य चरणं रात्रौ दृष्ट्वा वृन्दावनं द्विजाः॥
एवं नानाप्रकारासु कृष्णचेष्टासु तासु च। (ब्रह्मपुराण अध्याय [illegible])

गोपीपरिवृतो रात्रिं शरच्चन्द्रमनोरमाम्।
मानयामास गोविन्दो रासारम्भरसोत्सुकः॥
गोप्यश्च वृन्दशः कृष्णचेष्टास्वायत्तमूर्तयः।
अन्यदेशं गते कृष्णे चेरुर्वृन्दावनान्तरम्॥

एवं नानाप्रकारासु कृष्णचेष्टासु तास्वथ। (विष्णुपुराण अध्याय ५ १३)
भुजगाङ्कशयनं तस्य विग्रहस्य शुभप्रदम्।
सम्पाश्कोत्योपाण प्रतिमा शुभलक्षणा।

प्रथमं शुक्लवर्णाभं शारदेन्दुसमप्रभम्।
आरक्ताक्षं महाकायं जटाविकटमस्तकम्॥
नीलाम्बरधरं चोग्रं बलं बलमदोद्धतम्।
कुण्डलैकधरं दिव्यं गदामुशलधारिणम्॥
द्वितीयं पुण्डरीकाक्षं नीलजीमूतसन्निभम्।
अतसीपुष्पसंकाशं पद्मपत्रायतेक्षणम्॥
पीतवाससमत्युग्रं शुभ्रं श्रीवत्सलक्षणम्।
चक्रपूर्णकरं दिव्यं सर्वपापहरं हरिम्॥
तृतीयां स्वर्णवर्णाभां पद्मपत्रायतेक्षणाम्।
विचित्रवस्त्रसंछन्नां हारकेयूरभूषिताम्॥
विचित्राभरणोपेतां रत्नहारविलम्बिताम्।
पीनोन्नतकुचां रम्यां विश्वकर्मा विनिर्ममे॥ (ब्रह्मपुराण, ५०, ४८-५६)

श्रुत्वैतद्वचनं तस्य विश्वकर्मा सुकर्मकृत्।
तत्क्षणात् कारयामास प्रतिमाः शुभलक्षणाः॥
कुण्डलाभ्यां विशिष्टाभ्यां कर्णाभ्यां सुविराजिताः।
चकलाङ्गलविन्यासहस्ताभ्यां साधुसम्मताः॥
प्रथमं शुक्लवर्णाभं शारदेन्दुसमप्रभम्।
सुरकाक्षं महाकायं जटाविकटमस्तकम्॥
नीलाम्बरधरं चोग्रं बलं बलमदोद्धतम्।
कुण्डलैकधरं दिव्यं महामुसलधारिणम्॥
द्वितीयं पुण्डरीकाक्षं नीलजीमूतसन्निभम्।
अतसीपुष्पसंकाशं पद्मपत्रायतेक्षणम्॥
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्पीतवाससमच्युतम्।
चक्रपूर्णकरं दिव्यं सर्वपापहरं हरिम्॥
तृतीयां स्वर्णवर्णाभां पद्मपत्रायतेक्षणाम्।
विचित्रवस्त्रसंछन्नां हारकेयूरभूषिताम्॥
विचित्राभरणोपेतां रत्नमालाविलम्बिताम्।
पीनोन्नतकुचां रम्यां विश्वकर्मा विनिर्ममे॥ (नारदीयपुराणपूर्वार्ध अध्याय ५४)

यह भूमिका लिखने में मुझे जिन विद्वानों की कृतियों से सहायता मिली है, उनके प्रति तथा विशेष रूप में पं० श्रीश्रीकृष्णमणि त्रिपाठी के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

संवत् २०३३ वि०
रामनवमी

—तारणीश झा

विषय सूची

○○

[ब्रह्मपुराण के अन्तर्गत अध्यायों के क्रम से विषयों की अनुक्रमणिका]

अध्याय २९

सूर्य-पूजा का प्रकरण

अध्याय ३०

आदित्य का माहात्म्य-वर्णन

अध्याय ३१

आदित्य का नाम-माहात्म्य

अध्याय ३२

सूर्य के जन्म का माहात्म्य

अध्याय ४४

इन्द्रद्युम्न का दक्षिण-समुद्र के तट पर जाना

अध्याय ४५

पुरुषोत्तमक्षेत्र का वर्णन

अध्याय ४६

पुरुषोत्तमक्षेत्र का वर्णन

अध्याय ४७

मन्दिर बनवाने के लिए राजाओं का आह्वान

अध्याय ४८

इन्द्रद्युम्न द्वारा प्रतिमा का निर्माण

विषय-सूची

अध्याय ७९

वराहतीर्थ का वर्णन

अध्याय ८०

कपोततीर्थ का वर्णन

अध्याय ८१

कुमारतीर्थ का वर्णन

अध्याय ८२

कृत्तिकातीर्थ का वर्णन

अध्याय ८३

दशाश्वमेधतीर्थ का वर्णन

अध्याय ८४

पैशाचतीर्थ का वर्णन

अध्याय ८५

क्षुधातीर्थ का वर्णन

अध्याय ८६

चक्रतीर्थ और गणिका के संगम का वर्णन

का इन्द्र के पास जाना । पृथ्वी और इन्द्र का सवाद । इन्द्र की आज्ञा से सिद्धकिन्नरो का वैवस्वतपुर से यमराज को लाने के लिए जाना। यम कहा है?—इस प्रकार इन्द्र का सूर्य के प्रति प्रश्न। सूर्य से यह पता चलने पर कि यम गौतमी-तट पर तप करने के लिए गया है इन्द्र द्वारा अप्सराओ से पूछना कि यमराज के तप को नष्ट करने के लिए उन (अप्सराओ) म से कौन समर्थ है। चक्रतीर्थ का कारण-वर्णन। तप भग करने के लिए इन्द्र की प्रेरणा से गणिका का यमराज के पास गमन। प्रजाओ का नाश करने वाला कम करने लिए यमराज से सूर्य का कथन। यमराज द्वारा अस्वीकार। अनन्तर दोना का अपन-अपन स्थाना पर गमन। ४७६-४८१

अध्याय ८७
अहल्या-सगम या इन्द्रतीर्थ का वर्णन

अहल्या को यौवन प्राप्ति पयन्त रक्षा करने के लिए गौतम को ब्रह्मा का आदेश। जो पुरुष पृथिवी की परिक्रमा करके सबसे पहले ब्रह्मा के पास पहुँच जाएगा उसी को अहल्या दी जाएगी—एसी ब्रह्मा की प्रतिज्ञा। अनन्तर अहल्या की प्राप्ति के लिए देवताओ का पृथ्वी की परिक्रमा करना। फिर ब्रह्मा द्वारा समस्त देवा का छोडकर गौतम को अहल्या-प्राप्ति का उपाय-कथन। विवाह के पश्चात् ब्रह्मा के पास देवताओ का आगमन। विप्र वेश मे इन्द्र का अहल्या के लिए गौतम के आश्रम मे जाना। तत्पश्चात् गौतम का इन्द्र को शाप पुन इन्द्र की गौतम से शापोद्धार के लिए प्रार्थना। गौतमी-स्नान से पापो को दूर करने का गौतम द्वारा उपाय-कथन। इन्द्रतीर्थ के आख्यान का वर्णन। ४८२-४८८

अध्याय ८८
जनस्थानतीर्थ का वर्णन

राजा जनक द्वारा याज्ञवल्क्य से सुख से मुक्ति कैसे होगी यह प्रश्न पूछना। वरुण से पूछने के लिए याज्ञवल्क्य के कहने पर जनक और याज्ञवल्क्य का वरुण के पास जाकर वही प्रश्न दुहराना। गृहस्थ धर्म पालन से ही भुक्ति और मुक्ति मिलती है—एसा वरुण का मत-दर्शन। जनक और याज्ञवल्क्य के यह पूछने पर कि भुक्ति मुक्ति-दाता कौन देश और कौन तीर्थ है वरुण द्वारा गौतमी को ही सब से श्रेष्ठ तीर्थ घोषित करना। अनन्तर जनक और याज्ञवल्क्य का अपने अपने स्थानो पर जाना। जनस्थानतीर्थ का प्रयोजन। ४८९-४९१

अध्याय ८९
अरुणा-वरुणा-सगम और अश्वभानु तीर्थ का वर्णन

छाया से यह कह कर कि मैं पिता के घर जाती हूँ मेरे लौटने तक बच्चो की देख रेख करो सूर्य-पत्नी उषा का पिता के घर जाना। त्वष्टा का पुन पति के घर जाने का आदेश। उषा का उत्तर कुरुक्षेत्र देश म तप करने के लिए जाना। छाया की सन्ताना का जन्म-कथन। छाया द्वारा यमराज को शाप। यमराज का पिता से यह कहना कि यह मुझे पाप की दृष्टि से देखती है अत मेरी माता नहीं है। उत्तरकुरु म घोडी का रूप धारण कर उषा रहती है—ऐसा जानकर घोडे का रूप बनाकर सूर्य का वहाँ जाना। आत्मरक्षा के लिए गौतमी पर वडवा का जाना और उसके पीछे सूर्य का भी वहाँ जाना। ऋषियो के प्रति सूर्य का शाप-कथन। पुन अश्विनाकुमारो की उत्पत्ति। उषा के निमित्त तेज का शमन करने के लिए सूर्य से त्वष्टा का कहना। ४९२-४९६

अध्याय ९०
गरुडतीर्थ का वर्णन

गरुड से अभयदान प्राप्ति के लिए मणिनाग नामक शेष-पुत्र द्वारा शिव की स्तुति। शकर से वरदान प्राप्त

पर बुध के आश्रम में जाना। इला का बुध के साथ सवाद और दोनों का विवाह। बुध से इला में पुत्रोत्पत्ति तथा देवताओं का वहाँ आना। बालक का पुरूरवा नामकरण। इला के साथ उसका सवाद। पुरूरवा से इक्ष्वाकु-कुल का वर्णन और अपना पहले का वृत्तान्त-कथन। बुध और ऐल का सवाद। इला को पुंस्त्व की प्राप्ति के लिए पुरूरवा का प्रयत्न। ऐल और इला का हिमालय पर जाना और वहाँ पर शकर की स्तुति। देवी से पुंस्त्व की याचना। शंकर और पार्वती के अनुग्रह से पुंस्त्व की प्राप्ति। ऐल का अभिषेक। ५६५–५७८

अध्याय १०९
चक्रतीर्थ का वर्णन

पार्वती का दक्ष के यज्ञ मे जाना। वहाँ पर शिव-निन्दा सुनकर पार्वती का देहत्याग। महेश्वर का दक्ष के यज्ञ मे आना। यज्ञ का वर्णन। वीरभद्र द्वारा यज्ञ-विध्वस। देवताओ द्वारा शिव स्तुति। दक्षकृत शिव-स्तुति। देवताओं द्वारा विष्णु की स्तुति। दैत्यो से उत्पन्न भय को जानकर देवताओं के साथ विष्णु का परामर्श। विष्णु के द्वारा चक्र-प्राप्ति के लिए शिव की आराधना। विष्णु को शकर का वरदान और चक्र का होना। ५७९–५८४

अध्याय ११०
पिप्पलतीर्थ का वर्णन

पिप्पलतीर्थ का वर्णन। दधीचि ऋषि एव लोपामुद्रा का वर्णन। दधीचि ऋषि के आश्रम मे सब देवताओं का आगमन। अस्त्रों को रखने के लिए देवताओं का दधीचि से प्रश्न। लोपामुद्रा का दधीचि के साथ वार्तालाप। देवताओं का दधीचि के पास अस्त्र रखना। दैत्यों के डर से दधीचि द्वारा अस्त्रों के तेज का पाना। दैत्यों से देवताओं को भय-प्राप्ति। देवताओ का दधीचि के पास अस्त्रों के लिए जाना। देवो के लिए दधीचि का अस्थि-दान। देवताओ का अस्त्र निर्माण। दधीचि ऋषि की पत्नी का आगमन और उसका अग्नि के साथ सवाद। तदनन्तर अग्निकृत समाधान। प्रातिथेयी के द्वारा कुक्षिस्थ पुत्र का निकालना। प्रातिथेयी का अग्नि प्रवेश, आश्रम मे स्थित वृक्षों का विलाप। दधीचि के पुत्र को अमृत-प्राप्ति तथा पिप्पलाद नाम की प्राप्ति। पिप्पलाद के साथ वृक्षों का सवाद और अपने माता-पिता का पूर्ववृत्तान्त-श्रवण। सोम से पिप्पलाद को विद्या की प्राप्ति और सोम की आज्ञा से शकर की स्तुति मे प्रवृत्त होना। प्रसन्न हुए शकर से देवताओ का नाश करने के लिए वर माँगना। पिप्पलाद के तप का वर्णन और शकर के तृतीय नेत्र का दर्शन। तृतीय नेत्र से उत्पन्न कन्या को देवताओ के सहार के लिए आदेश। कृत्या से अग्नि की उत्पत्ति तथा अग्नि के डर से देवताओं का शकर के पास जाना। देवताओ द्वारा शकर की स्तुति। शकर एव देवताओं का सवाद। देवताओं का पिप्पलाद के साथ सवाद। अपने माता-पिता को दिखलाने के लिए पिप्पलाद का देवताओं से अनुरोध। पिप्पलाद का स्वर्गलोक मे जाना। वहाँ पर माता-पिता का दर्शन। विवाह करने के लिए दधीचि और पिप्पलाद का सवाद। देवताओं के सहार के लिए उत्पन्न कृत्या का समाधान। कृत्या को नदीरूप की प्राप्ति। शकर के साथ देवताओं का सवाद। दधीचि की अस्थियां, देवताओं तथा गायों का पवित्र होना। देवताओं का अपने अपने स्थानों पर जाना एव सूर्य का वहीं रहना। पिप्पलाद का गौतम की पुत्री के साथ विवाह। पिप्पलादतीर्थ पर पिप्पलेश्वर नाम की प्राप्ति। ५८४–६१२

अध्याय १११
नागतीर्थ का वर्णन

नागतीर्थ का वर्णन। सोमवंशोत्पन्न शूरसेन के चरित्र का वर्णन। शूरसेन से सर्प की उत्पत्ति। सर्प एव शूरसेन

अध्याय १५९

वञ्जरा-संगम नामक तीर्थ का वर्णन

अध्याय १६०

देवागम नामक तीर्थ का वर्णन

अध्याय १६१

कुशतर्पणतीर्थ का वर्णन

अध्याय १६२

मन्युतीर्थ का वर्णन

अध्याय १६३

सारस्वततीर्थ का वर्णन

अध्याय १६४

चिच्चिकतीर्थ का वर्णन

●

○

ब्रह्मपुराणम्

(हिन्दी-अनुवाद सहितम्)

○

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ब्रह्मपुराणम्

प्रथमोऽध्यायः

तत्रादौ नैमिषारण्य-वर्णनम्

यस्मात् सर्वमिदं [1]प्रपञ्चरचितं मायाजगज्जायते, यस्मिंस्तिष्ठति[2] याति चान्तसमये कल्पानुकल्पे पुनः।
यं ध्यात्वा मुनयः प्रपञ्चरहितं विन्दन्ति मोक्षं ध्रुवं, तं वन्दे पुरुषोत्तमाख्यममलं नित्यं विभुं[3] निश्चलम्॥१॥
यं ध्यायन्ति बुधाः समाधिसमये शुद्धं वियत्सन्निभं, नित्यानन्दमयं प्रसन्नममलं सर्वेश्वरं निर्गुणम्।
व्यक्ताव्यक्तपरं प्रपञ्चरहितं [4]ध्यानैकगम्यं [5]विभुं, तं संसारविनाशहेतुमजरं वन्दे हरिं मुक्तिदम्[6]॥२॥
सुपुण्ये नैमिषारण्ये पवित्रे सुमनोहरे। नानामुनिजनाकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते॥३॥
सरलैः कर्णिकारैश्च पनसैर्धवखादिरैः। आम्रजम्बूकपित्थैश्च न्यग्रोधैर्देवदारुभिः॥४॥
अश्वत्थैः पारिजातैश्च चन्दनागुरुपाटलैः[7]। बकुलैः सप्तपर्णैश्च [8]पुन्नागैर्नागकेशरैः॥५॥
शालैस्तालैस्तमालैश्च [9]नारिकेलैस्तथार्जुनैः। अन्यैश्च बहुभिर्वृक्षैश्चम्पकाद्यैश्च शोभिते॥६॥
नानापक्षिगणाकीर्णे नानामृगगणैर्युते। नानाजलाशयैः [10]पुण्यैर्दीर्घिकाद्यैरलङ्कृते॥७॥

अध्याय 1

जिससे यह विस्तार के साथ रचा हुआ मायामय सम्पूर्ण संसार उत्पन्न होता है, जिसमे स्थित रहता है तथा प्रत्येक कल्प के अन्त मे लीन हो जाता है और जिसका ध्यान करके मुनिगण प्रपञ्चरहित मोक्ष को प्राप्त करते हैं उस निर्मल, नित्य, व्यापक, अचल, पुरुषोत्तमसंज्ञक ब्रह्म को प्रणाम करता हूँ॥१॥ समाधि की अवस्था मे विद्वान् (साधक) जिसका ध्यान करते हैं, उस आकाश के समान स्वच्छ, आनन्दमय, सदा प्रसन्न, निर्मल, सर्वेश्वर, निर्गुण, स्पष्ट और अस्पष्ट रूप से परे, सृष्टि से रहित, केवल ध्यानयोग से प्राप्त करने योग्य, व्यापक, संसार के प्रलय के कारण, अजर और मोक्षदायक हरि को प्रणाम करता हूँ॥२॥ मुनिगणो से व्याप्त, अनेक प्रकार के पुष्पो से सुशोभित, पुण्यरूप, पवित्र और मनोहर नैमिषारण्य की वनस्थली सरल (चीड़), आमानक (अमलतास), कटहल, धव, खदिर (खैर), आम, जामुन, कटबेल, बरगद, देवदारु, पीपल, पारिजात, चन्दन, अगर, पाटला, मौलसिरी, सातला, पुन्नाग, नागकेसर, शाल (साखू), ताल, तमाल, नारियल, अर्जुन और चम्पा आदि नानाविध वृक्षो से भी सुशोभित थी॥३-६॥ वह अनेक प्रकार के पशु-पक्षियो, पवित्र बावली आदि अनेक जलाशयो से

१ख ०ञ्चचरित मा। २क ०नि लीयते तु स०। ख. ०ति लीयते च स०। ३ निष्क०। ४. ध्यानैकगम्य। ५ग प्रभु। ६क ०म्॥२॥ ये पु०। ७ग. ०लैः। स०। ८ग. ०नागै पन्नागैर्ना०। ९. क. ङ. नालिकेरैस्त०। १०क. पुण्यै वेदिका०।

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च जातिभिः। वानप्रस्थैर्गृहस्थैश्च यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः[1] ॥८॥
सम्पन्नैर्गोकुलैश्चैव सर्वत्र समलङ्कृते। यवगोधूमचणकैर्माषमुद्गतिलेक्षुभिः[2] ॥९॥
चीनकाद्यैस्तथा मेध्यैः शस्यैश्चान्यैश्च शोभिते। तत्र दीप्ते हुतवहे हूयमाने महामखे ॥१०॥
यजतां नैमिषेयाणां सत्रे द्वादशवार्षिके। आजग्मुस्तत्र मुनयस्तथाऽन्ये[3]ऽपि द्विजातयः ॥११॥
तानागतान् द्विजांस्ते तु पूजां चक्रुर्यथोचिताम्[4]। तेषु तत्रोपविष्टेषु ऋत्विग्भिः सहितेषु च ॥१२॥
तत्राजगाम सूतस्तु मतिमाँल्लोमहर्षणः[5]। तं दृष्ट्वा ते मुनिवराः पूजां चक्रुर्मुदान्विताः ॥१३॥
सोऽपि[6] तान् प्रतिपूज्यैव सविवेश वरासने। कथा चक्रुस्तदान्योन्यं[7] सूतेन [8]सहिता द्विजाः ॥१४॥
कथान्ते[9] व्यासशिष्यं ते[10] पप्रच्छु.[11] संशयं मुदा। ऋत्विग्भिः सहिताः सर्व्वे सदस्यैः सह दीक्षिताः ॥१५॥

मुनय ऊचुः ।

पुराणागमशास्त्राणि सेतिहासानि सत्तम। जानासि देवदैत्यानां चरितं जन्म कर्म्म च ॥१६॥
न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिद्वेदे[12] शास्त्रे च भारते। पुराणे मोक्षशास्त्रे च सर्व्वज्ञोऽसि महामते ॥१७॥

अलकृत था ॥७॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तथा ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी—चारो वर्ण और आश्रम के लोग वहाँ निवास करते थे ॥८॥ पर्याप्त पशुधन एव जौ, गेहूँ, चना, उडद, मूंग, तिल ईख और चीन आदि पवित्र अन्नो से वह क्षेत्र सपन्न था ॥९३॥ उस क्षेत्र मे नैमिषारण्यवासी बारह वर्षों मे समाप्त होने वाले यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे थे। महायज्ञ की प्रज्वलित अग्नि मे आहुतियाँ पड रही थी। उस यज्ञ मे बहुत से मुनि और दूसरे ब्राह्मण लोग भी आए हुए थे ॥१०-११॥ उन आगन्तुको का नैमिषारण्यवासियो ने यथोचित आतिथ्य-सत्कार किया। ऋत्विजो के सहित आए हुए ब्राह्मणो, मुनियो के बैठ जाने पर सुप्रसिद्ध मेधावी सूत लोमहर्षण वहाँ उपस्थित हुए ॥१२३॥ उन्हें देखते ही आनन्दित मुनिगण ने यथोचित सत्कार किया। तदनतर लोमहर्षण सूतजी भी उनके प्रति यथोचित सम्मान प्रकट करते हुए व्यासपीठ पर आसीन हो गये। फिर सूतजी सहित उपस्थित विप्रवृन्द परस्पर कथा वार्ता करने लगे ॥१३-१४॥ कथा के समाप्त होने पर सदस्यो सहित दीक्षित हुए ऋत्विद् और मुनिवृन्द अपनी शकाओ के समाधान हेतु सूतजी से नम्रतापूर्वक प्रश्न करने लगे ॥१५॥

मुनियों ने कहा—भगवन्! पुराण, आगम, शास्त्र और इतिहास एव देवता राक्षसो के जन्म, कर्म और चरित्र के आप विज्ञाता हैं ॥१६॥ वेद, शास्त्र, महाभारत, पुराण, मोक्षशास्त्र—इनमे से कोई भी ऐसा विषय नहीं है, जिसे आप न जानते हो। महाधीमन्! आप सर्वज्ञ हैं ॥१७॥ हे सूतजी! प्रारभ मे देवता, राक्षस, गन्धर्व,

---

१क ०भि। समर्दैर्गो०। ख. ०भिः। समृद्धैर्गो०। २ग ०भि। शालिभिश्च तथा। ३क ०न्ये च द्वि। ४क ख ०थोदिता०। ५क. ०मान्रोम०। ६ग ०पि ता प्रतिगृह्यैव। ७क ०स्तथाऽन्यो। ८ग सह ते द्वि०। ९ख। ०न्ते च व्या०। १०क. तु। ११क. ०प्रच्छुस्तेऽव्यय मु०। १२क. ०द्वेदशास्त्रेषु मा०।

यथापूर्व्वमिदं सर्व्वमुत्पन्नं सचराचरम्। ससुरासुरगन्धर्व्वं सयक्षोरगराक्षसम्॥१८॥
श्रोतुमिच्छामहे सूत ब्रूहि सर्व्वं यथा[१] जगत्। बभूव भूयश्च यथा महाभाग भविष्यति॥१९॥
यतश्चैव जगत्[२] सूत यतश्चैव [३]चराचरम्। लीनमासीत्तथा यत्र लयमेष्यति यत्र च[४]॥२०॥

लोमहर्षण उवाच

अविकाराय [५]शुद्धाय नित्याय परमात्मने। सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्व्वजिष्णवे॥२१॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शङ्कराय च। वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकर्म्मणे॥२२॥
एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने[६] नमः। अव्यक्ताव्यक्तभूताय विष्णवे [७]मुक्तिहेतवे॥२३॥
सर्गस्थितिविनाशाय[८] जगतो [९]योऽजरामरः। मूलभूतो[१०] नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने॥२४॥
आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयासमणीयसाम्। प्रणम्य [११]सर्व्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम्॥२५॥
ज्ञानस्वरूपमत्यन्तं निर्म्मलं परमार्थतः। [१२]तमेवार्थस्वरूपेण[१२] भ्रान्तिदर्शनतः स्थितम्॥२६॥
विष्णुं ग्रसिष्णुं विश्वस्य स्थितौ[१३] सर्गे तथा प्रभुम्। सर्व्वज्ञं जगतामीशमजमक्षयमव्ययम्॥२७॥
आद्यं[१४] सुसूक्ष्मं[१५] विश्वेशं ब्रह्मादीन् प्रणिपत्य च[१६]। इतिहासपुराणज्ञं वेदवेदाङ्गपारगम्॥२८॥
सर्व्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं पराशरसुतं प्रभुम्। गुरुं प्रणम्य वक्ष्यामि पुराणं वेदसम्मितम्॥२९॥

यक्ष, सर्प, दैत्य आदि योनियों सहित यह चराचर जगत् जिस प्रकार उत्पन्न हुआ उस प्रक्रिया को हमलोग सुनना चाहते हैं कृपया सुनाइए॥१८॥ महाभाग सूतजी! जिस प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति हुई है और प्रलय के बाद जिस प्रकार फिर उत्पन्न होगी तथा चराचर सहित जगत जिसमें लीन रहकर उत्पन्न हुआ और फिर जिसमें लीन होगा उसका समस्त उत्पत्ति एवं लयक्रम हमें बतलाइये॥१९-२०॥

लोमहर्षण बोले—निर्विकार शुद्ध बुद्ध, नित्य सर्वात्मा, शाश्वत, सर्वव्यापक सर्वजयी हिरण्यगर्भ, हरि, शङ्कर, वासुदेव—नामधारी अखिल उद्धारक सृष्टि स्थिति प्रलय के कारणभूत एक और अनेक स्वरूप धारण करने वाले, स्थूल और सूक्ष्म आत्मा वाले, व्यक्त और अव्यक्त तथा मोक्ष के कारण भगवान् विष्णु को नमस्कार है। ॥२१-२३॥ सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारणभूत अजर, अमर, नित्य परब्रह्म विष्णु को नमस्कार है। ॥२४॥ विश्व के आधार सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं सभी प्राणियों में स्थित पुरुषोत्तम भगवान अच्युत को प्रणाम है। ॥२५॥ तत्त्वतः ज्ञानस्वरूप और अत्यन्त निर्मल होते हुए भी भ्रम से पदार्थरूप से भासित सबको ग्रसनेवाले विश्व की उत्पत्ति स्थिति करने में समर्थ सर्वज्ञ संसार के स्वामी जन्म मरण ह्रास से रहित सब के आदि और अत्यन्त सूक्ष्म ब्रह्माण्डनायक विष्णु को तथा ब्रह्मा आदि देवों को प्रणाम है। ॥२६-२७½॥ वेद और वेदाङ्ग में निष्णात इतिहास, पुराण तथा सभी शास्त्रों के तत्त्वज्ञ पराशर मुनि के पुत्र परमगुरु व्यासजी को प्रणाम है। मैं जो कुछ

१क ०पाग्तम्। ध० २क ०मत्स्वर्वं य०। ३ङ भविष्यति। ४क मा। ५क ग गुह्याय। ६क ०क्षमाय त न०। ७क व्यक्तहेतवे। ८क ग ०शाना ज०। ९क ग मा जगन्मय। मू०। १०क ०तोऽव्ययस्तस्मै। ११ग ०भूतानाम०। १२क तमेव स्वस्व०। १३ग. ०वाऽऽत्मस्व०। १४क स्थितिसर्गे। ग स्थितिसर्गे। १५क ०थ सू०। १६ख ०दम च वि०। १७क वै।

कथयामि यथापूर्वं दक्षाद्यैर्मुनिसत्तमे। पृष्ट॰ प्रोवाच भगवानब्जयोनि॰ पितामह॰ ॥३०॥
श्रृणुध्व सम्प्रवक्ष्यामि कथां॰पापप्रणाशिनीम। कथ्यमानां मया चित्रा बह्वर्थां॰ श्रुतिविस्तराम॥३१॥
यस्त्विमा धारयेन्नित्य श्रृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णश॰। स्ववशधारण कृत्वा स्वर्गलोके महीयते॥३२॥
अव्यक्त कारण यत्तन्नित्य सदसदात्मकम। प्रधान पुरुषस्तस्मान्निर्ममे विश्वमीश्वर॰॥३३॥
त बुध्यध्व मुनिश्रेष्ठा ब्रह्माणममितौजसम। स्रष्टार सर्वभूतानां नारायणपरायणम॥३४॥
अहङ्कारस्तु महतस्तस्मादभूतानि जज्ञिरे। भूतभदाश्च भूतेभ्य इति सर्ग सनातन॥३५॥
विस्तरावयव चैव यथाप्रज्ञ यथाश्रुति। कीर्त्यमान श्रृणुध्व व॰ सर्वेषां कीर्तिवर्द्धनम॥३६॥
कीर्तित स्थिरकीर्त्तीना सर्वेषा॰पुण्यवर्द्धनम। तत स्वयम्भूभगवान सिसृक्षुर्विविधा प्रजा॥३७॥
अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमथासृजत॰। आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनव॥३८॥
अयन तस्य ता पूर्व तेन नारायण स्मृत। हिरण्यवणमभवत्तदण्डमुदकेशयम॥३९॥
तत्र जज्ञे स्वय ब्रह्मा स्वयम्भूरिति॰ न श्रुतम। हिरण्यवर्णो भगवानुषित्वा परिवत्सरम॥४०॥

करूँगा वेदो के अनुकूल कहूँगा। ॥२८ २९॥ पूर्वकाल मे दक्ष आदि मुनियो द्वारा पूछे जाने पर उन्हें पितामह ब्रह्मा ने जिस प्रकार बताया था वैसे ही मैं वणन करता हूँ सुनिये। मैं पापनाशिनी कथा कहूँगा॥३०॥ वदिक रहस्यवाद एव श्लेष-गर्भित कथा को जो व्यक्ति बार-बार सुनेगा या धारण करेगा वह अपने वश का वशधर बनकर स्वर्गलोक में पूजित होगा॥३१ ३२॥ जो अव्यक्त कारण है वह सत-असत नित्य प्रकृति और पुरुष है। उसी से ईश्वर ने विश्व की रचना की है॥३३॥ मुनिश्रेष्ठ! उस ईश्वर को आप सब प्राणियो का स्रष्टा तथा नारायण का आश्रित अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्मा समझिये। ॥३४॥ महत्-तत्त्व मे अहकार उत्पन्न हुआ अहकार से पचमहाभूत और उनसे उनके भद उत्पन्न हुए। यही सनातन सष्टि है॥३५॥ अब जसा मैंने सुना है और जसी मेरी मति है तदनुसार इसका विस्तत वणन करता हूँ आप लोग सुनें। यश शरीर से अमर व्यक्तियो का स्मरण पुण्यप्रद होता है यह सष्टि कथा आप लोगो की प्रतिष्ठा को बढाने वाली है॥३६॥ स्वयम्भू भगवान् ने अनेक प्रकार की प्रजाओ को उत्पन्न करने की इच्छा रखकर पहले जल की ही सष्टि की। उसमे बीज डाला। नार' शब्द जल राशि और नर-पुत्र इन दो अर्थों मे प्रयुक्त होता है॥३७ ३८॥ उस परम पुरुष का आश्रय पहले जल राशि ही थी। इसलिए उसको नारायण कहा गया। जल मे सोये हुए परम पुरुष की नाभि से एक सुवणमय अडा उत्पन्न हुआ॥३९॥ उससे स्वयम ब्रह्मा उत्पन्न हुए —ऐसा हमने सुना है।

१क ०नजो नित्य पि०। २क ०प्रमोचिनी०। ३ग तिसमिताम। ४ग ०मीदशम। त। ५क व। ६ख ग ०व्यकमणाम। ७ख ०मवास०। ८क ०ति विश्र०।

---

१ नार ज्ञान तस्य अयन स्थान नारायण —इस व्युत्पत्ति के अनुसार ज्ञान के धाम को नारायण कहा जाता है। नार का तात्पर्य ज्ञान से है अर्थात् भौतिक सष्टि से पूर्व ब्रह्मा ने ज्ञान-सष्टि की। २ ब्रह्म मे अन्तर्निहित ज्ञानकोश का बहिर्भूत होना सुवर्णमय अडा है। इस प्रकार इस कथा के श्लेष का भी ध्यान रखना चाहिए।

तदण्डमकरोद्द्वैधं दिवं भुवमथापि च। तयोः शकलयोर्म्मध्य आकाशमकरोत्प्रभुः ॥४१॥
अप्सु पारिप्लवां पृथ्वीं दिशश्च दशधा दधे[१]। तत्र कालं मनो वाचं कामं क्रोधमथो रतिम् ॥४२॥
ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां स्रष्टुमिच्छन् प्रजापतीन्[२]। मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ[३] पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ॥४३॥
वसिष्ठंच महातेजाः सोऽसृजत्सप्त मानसान्। सप्त ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ॥४४॥
नारायणात्मकानां तु[४] सप्तानां ब्रह्मजन्मनाम्। ततोऽसृजत् पुरा[५]ब्रह्मा रुद्रं रोषात्मसम्भवम् ॥४५॥
सनत्कुमारं च विभुं पूर्व्वेषामपि पूर्व्वजम्[६]। सप्तस्वेता[७] अजायन्त प्रजा [८]रुद्राश्च भो द्विजा ॥४६॥
स्कन्दः सनत्कुमारश्च तेजः संक्षिप्य तिष्ठतः[९]। तेषां सप्त महावंशा दिव्या [१०]देवगणान्विताः ॥४७॥
क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलङ्कृताः। विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ॥४८॥
वयांसि च ससर्जादौ पर्जन्यञ्च ससर्ज ह। ऋचो यजूंषि सामानि निर्म्ममे यज्ञसिद्धये ॥४९॥
साध्यानजनयद्[११]देवानित्येवमनुसञ्जगुः[१२]। उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥५०॥
आपवस्य[१३] प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापतेः। सृज्यमानाः प्रजा नैव विवर्द्धन्ते यदा तदा ॥५१॥
द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्। अर्द्धेन नारी तस्यां तु सोऽसृजद्विविधाः प्रजाः ॥५२॥
दिवञ्च पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्य[१४]तिष्ठति। विराजमसृजद्विष्णुः सोऽसृजत् पुरुषं विराट् ॥५३॥

हिरण्यगर्भ भगवान् ने वर्षों तक वास करके उस अंडे को स्वर्ग और पृथ्वी इन दो टुकड़ों में विभक्त कर दिया ॥४०½॥ परमात्मा ने उन दोनों टुकड़ों के मध्य भाग में आकाश बनाया और जल में डूबी हुई पृथिवी तथा दसों दिशाओं को धारण किया ॥४१½॥ तदनन्तर काल, मन, वाणी, काम, क्रोध और रति की रचना की और फिर प्रजापतियों की सृष्टि की इच्छा रखकर मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह क्रतु, और वसिष्ठ—इन सात ऋषियों की मानसी सृष्टि की ॥४१-४३½॥ पुराणों में ये सात ब्रह्मा निश्चित हैं। नारायण के अंश से उत्पन्न हुए इन सात प्रजापतियों से पहले ब्रह्मा ने क्रोध से रुद्र को उत्पन्न किया ॥४४-४५½॥ फिर पूर्वजों के भी पूर्वज तथा सर्वत्र व्यापक सनत्कुमार को भी उत्पन्न किया। इन सप्तर्षियों से, ब्राह्मणो ! प्रजाओं और रुद्रों की उत्पत्ति हुई ॥४६॥ स्कन्द और सनत्कुमार अपने अपने तेज को समेट कर स्थित हैं। उनके दिव्य और देवगणों से युक्त सात महावंश क्रियावान् प्रजावान् और महर्षियों से अलंकृत हैं ॥४७½॥ आदि में बिजली, वज्र, लाल इन्द्रधनुष जल और मेघ को रचकर यज्ञ-सिद्धि के लिये ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का निर्माण ब्रह्मा ने किया ॥४८ ४९॥ पश्चात् उन्होंने साध्यों और देवताओं को भी उत्पन्न किया। फिर छोटे-बड़े सब प्राणी ब्रह्माजी के अंग से उत्पन्न हुए ॥५०॥ 'आपव' नामक प्रजापति जब सृष्टि करते हैं, तब सर्जन की जाने वाली प्रजा जब-तब नहीं बढ़ती है ॥५१॥ ब्रह्मा ने अपनी देह के दो भाग किए। आधे भाग से पुरुष बना और आधे भाग से स्त्री बनी। उस स्त्री से उन्होंने अनेक प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि की ॥५२॥ अपनी महिमा से स्वर्ग और पृथिवी को व्याप्त करके वे स्थित हैं। विष्णु ने विराट् की सृष्टि की। विराट् ने पुरुष को उत्पन्न किया ॥५३॥ उस पुरुष को मनु समझिये। इसी का

१क. दधौ। २ख ०पति। म०। ३ग ग ०रस पु०। ४ख च। ५ग ०स्तुनसंख्या। ६ख ०मु। तात्पर्यता। ७ग. ०प्त स्वेता अ०। ८ग रुद्रस्य। ९ख स्थिति। १० ०र्चिता। ११ग ०ध्यानन्यांस्तथा देवा०। १२ ख ०नुशुश्रुम। उ०। ग ०नुशुश्रुम। उ०। १३ग आपस्य च प्र०। १४ख न स्थितः।

पुरुष त मनु विद्यात्तस्य मन्वन्तर स्मृतम् । द्वितीय मानसस्यैतन्मनोरन्तरमुच्यते ॥५४॥
स वैराज प्रजासर्गं ससर्ज पुरुष प्रभु । नारायणविसर्गस्य प्रजास्तस्याप्ययोनिजा ॥५५॥
आयुष्मान् कीर्तिमान् पुण्यप्रजावाश्च भवेन्नर । आदिसर्गं [1]विदित्वेम यथेष्टा चाप्नुयाद् गतिम् ॥५६॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे आदिसर्गवर्णन नाम प्रथमोऽध्याय ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

तत्रादौ स्वायम्भुवमनुवशवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

स [3]सृष्ट्वा तु प्रजास्त्वेवमापवो वै प्रजापति । लेभे वै पुरुष. पत्नीं शतरूपामयोनिजाम् ॥१॥
आपवस्य महिम्ना तु दिवमावृत्य तिष्ठत । धर्मेणैव मुनिश्रेष्ठा शतरूपा व्यजायत ॥२॥
सा तु वर्षायुत तप्त्वा तप परमदुश्चरम् । भर्तार दीप्ततपस पुरुष प्रत्यपद्यत ॥३॥
स वै स्वायम्भुवो विप्रा पुरुषो मनुरुच्यते । तस्यैकसप्ततियुग मन्वन्तरमिहोच्यते ॥४॥

मन्वतर (कल्प) होता है और मानस मनु का वह दूसरा अन्तर कहा जाता है ॥५४॥ विराट् से उत्पन्न शक्तिशाली पुरुष ने प्रजा की सृष्टि की। नारायण के अश से उत्पन्न हुए उस पुरुष की भी प्रजाएँ अयोनिज हुईं ॥५५॥ जो व्यक्ति इस प्रकार आदि सृष्टि की रचना को समझेगा, वह आयुष्मान् कीर्तिमान् तथा पवित्रप्रजावान होगा और यथाभिलषित गति को प्राप्त करेगा ॥५६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे आदिसर्गवर्णन नामक पहला अध्याय समाप्त ॥१॥

अध्याय २

स्वायभुव मनु का वश-वर्णन

लोमहर्षण बोले—इस प्रकार आपव नामक प्रजापति ने प्रजा की रचना कर अयोनिज कन्या शतरूपा को अपनी पत्नी बनाया ॥१॥ मुनिवर्यवृन्द ! अपनी महिमा से स्वर्ग को ढककर स्थित हुए आपव के धर्म से ही शतरूपा उत्पन्न हुई थी ॥२॥ उसने दस हजार वर्षों तक अत्यन्त उग्र तपस्या करके अतितेजस्वी पुरुष को पति के रूप मे प्राप्त किया था ॥३॥ ब्राह्मणो ! वही पुरुष स्वायभुव मनु कहलाता है। इकहत्तर युग का उसका एक मन्वन्तर कहा जाता है ॥४॥ उस पुरुष से शतरूपा ने वीर नामक पुत्र को उत्पन्न किया। वीर की स्त्री काम्या से प्रियव्रत

१क ख ०माधय प्र०। २ग ०दित्वैन य०। ३ख सृष्टासु प्र०।

वैराजात् पुरुषाद्वीरं शतरूपा व्यजायत। प्रियव्रतोत्तानपादौ वीरात् काम्या व्यजायत॥५॥
काम्या नाम[1] सुता श्रेष्ठा कर्दमस्य प्रजापतेः। काम्यापुत्रास्तु चत्वारः सम्राट् कुक्षिर्विराट्प्रभुः॥६॥
उत्तानपादं जग्राह पुत्रमत्रिः प्रजापतिः। उत्तानपादाच्चतुरः सूनृता सुषुवे सुतान्॥७॥
धर्मस्य कन्या सुश्रोणी सूनृता नाम विश्रुता। उत्पन्ना वाजिमेधेन ध्रुवस्य जननी शुभा॥८॥
ध्रुवञ्च कीर्त्तिमन्तञ्च आयुष्मन्तं वसुं तथा। उत्तानपादोऽजनयत् सूनृतायां प्रजापतिः॥९॥
ध्रुवो वर्षसहस्राणि[2] त्रीणि[3] दिव्यानि भो द्विजाः। तपस्तेपे महाभागः प्रार्थयन् सुमहद्यशः॥१०॥
तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतः स्थानमात्मसमं प्रभुः। अचलञ्चैव पुरतः सप्तर्षीणां प्रजापतिः॥११॥
तस्याभिमानमृद्धिञ्च[4] महिमानं निरीक्ष्य च[5]। देवासुराणामाचार्य्यः श्लोकं प्रागुशना जगौ॥१२॥
अहोऽस्य तपसो वीर्य्यमहो श्रुतमहोऽद्भुतम्। यमद्य पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः॥१३॥
तस्माच्छ्लिष्टिं[6]च भव्यं च ध्रुवाच्छम्भुर्व्यजायत[7]। श्लिष्टेराधत्त सुच्छाया[8]पञ्च पुत्रानकल्मषान्॥१४॥
रिपुं[9] रिपुञ्जयं [9]वीरं वृकलं वृकतेजसम्। रिपोराधत्त बृहती [10]चक्षुषं सर्व्वतेजसम्॥१५॥
अजीजनत् पुष्करिण्यां वैरिण्यां चाक्षुषं मनुम्। प्रजापतेरात्मजायां[11] वीरणस्य महात्मनः॥१६॥
मनोरजायन्त दश नड्वलायां[11] महौजसः। कन्यायां मुनिशार्दूल वैराजस्य प्रजापतेः॥१७॥

और उत्तानपाद उत्पन्न हुए॥५॥ काम्या कर्दम नामक प्रजापति की ज्येष्ठ कन्या थी। काम्या के चार पुत्र हुए—सम्राट्, कुक्षि, विराट् और प्रभु॥६॥ पुत्र उत्तानपाद को अत्रि प्रजापति ने ग्रहण किया। उत्तानपाद से सूनृता ने चार पुत्रों को प्रसव किया॥७॥ अश्वमेध यज्ञ से उत्पन्न और सूनृता नाम से विख्यात सुन्दर कटि वाली धर्म की कन्या ध्रुव की कल्याणी माता हुई॥८॥ प्रजापति उत्तानपाद ने ध्रुव, कीर्तिमान्, आयुष्मान् और वसु नामक पुत्रों को सूनृता से उत्पन्न किया॥९॥ विप्रवृन्द! ध्रुव ने महान् यश की इच्छा से तीन हजार देववर्ष पर्यन्त तपस्या की॥१०॥ ब्रह्मा ने संतुष्ट होकर सप्तर्षियों के आगे उसे अपने समान अचल स्थान दिया॥११॥ ध्रुव में अभिमान, ऐश्वर्य और माहात्म्य को देखकर देवता और दैत्यों के आचार्य शुक्र उसकी प्रशंसा करने लगे—॥१२॥ अहो! ध्रुव की तपस्या शक्ति आश्चर्य है! इसका श्रुत (शास्त्र-ज्ञान या कीर्ति) आश्चर्य है! आज इसी ध्रुव को आगे करके सप्तर्षि अवस्थित हैं॥१३॥ ध्रुव से श्लिष्टि और भव्य को शम्भु ने उत्पन्न किया। श्लिष्टि से सुच्छाया ने पाँच निष्पाप पुत्रों को जन्म दिया—॥१४॥ रिपु, रिपुञ्जय, वीर, वृकल और वृकलतेजा। रिपु से बृहती ने बड़े तेजस्वी चक्षुष् को उत्पन्न किया॥१५॥ चक्षुष् से वैरिणी पुष्करिणी ने चाक्षुष मनु को जन्म दिया। पुष्करिणी महात्मा प्रजापति वीरण की कन्या थी॥१६॥ नड्वला से चाक्षुष मनु के बड़े तेजस्वी दस पुत्र हुए। मुनिश्रेष्ठ! नड्वला वैराज प्रजापति की पुत्री थी॥१७॥ उसके

---

[1] १क. ख ०म मुनिश्रेष्ठा क०। २ग ०मान्ते वा०। ३ ०णि वर्षाणि मो०। ४ग ०नर्द्धिं। ५ख. यै। ६क. ग ०रमात्सृष्टिं। ७ग. ०त। सृष्टे०। ८क ०या मत्रपुत्रान०। ९ग. ०पुञ्जय पुरजय पुत्र च वृ०। १०ग. विप्र। ११क. ख. चाक्षुष। १२क. ग. ०जायामरण्यस्य। १३ग. नड्डला०।

कुरु[1] पुरु[2] शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक्कवि । अग्निष्टुदतिरात्रश्च[3] सुद्युम्नश्चेति[4] ते नव ॥१८॥
अभिमन्युश्च[5] दशमो नड्वलाया[6] महौजस[7]। पुरोरजनयत् पुत्रान् षडाग्नेयी महाप्रभान् ॥१९॥
अङ्ग सुमनस[8] स्वाति ऋतुमङ्गिरस[9] मयम् । अङ्गात् सुनीथापत्य व वेनमेक व्यजायत ॥२०॥
अपचारेण वेनस्य प्रकोप सुमहानभूत् । प्रजार्थमृषयो यस्य ममन्थुर्दक्षिण करम् ॥२१॥
वेनस्य मथिते पाणौ सबभूव[10] महान्नृप । त दृष्ट्वा मुनय प्राहुरेष वै मुदिता प्रजा ॥२२॥
करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्स्यते महत् । स धन्वी कवची जातो[11] ज्वलज्ज्वलनसन्निभ ॥२३॥
पृथुर्वैन्यस्तथा[12] चेमां ररक्ष[13] क्षत्रपूर्वज । राजसूयाभिषिक्तानामाद्य स वसुधाधिप ॥२४॥
तस्माच्चैव समुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ । [14]तेनेय गौर्म्मुनिश्रेष्ठा दुग्धा शस्यानि भूभृता ॥२५॥
प्रजाना वृत्तिकामेन [15]देवै सर्षिगणै सह । पितृभिर्दानवैश्चैव [16]गन्धर्वैरप्सरोगणै[17] ॥२६॥
सर्पै पुण्यजनैश्चैव वीरुद्भि पर्वतैस्तथा । तेषु तेषु च पात्रेषु दुह्यमाना वसुन्धरा ॥२७॥
प्रादाद्यथेप्सित क्षीर तेन प्राणानधारयन् । पृथोस्तु पुत्रौ धर्म्मज्ञौ जज्ञातेऽन्तर्धिपातिनौ ॥२८॥
शिखण्डिनी हविर्धानमन्तर्धानाद्व्यजायत । हविर्धानात् षडाग्नेयी[18] धिषणाजनयत् सुतान् ॥२९॥
प्राचीनबर्हिष शुक्र गय कृष्ण व्रजाजिनौ । प्राचीनबर्हिर्भगवान्महानासीत्प्रजापति ॥३०॥

पुत्रों के नाम कुरु पुरु शतद्युम्न तपस्वी सत्यवाक कवि अग्निष्टुत् अतिरात्र सुद्युम्न और अभिमन्यु थे ॥१८३॥ पुरु से आग्नेयी ने छह महातेजस्वी पुत्रों को उत्पन्न किया। वे अग सुमनस् स्वाति ऋत अगिरस और मय नाम से ख्यात हुए ॥१९३॥ अग स सुनीथ न वन नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥२०॥ वेन के अनाचार से मुनिगण अत्यन्त कुपित हुए और उन्होंने सन्तान के लिए उसके दाहिने हाथ का मथन किया ।२१॥ उसमें एक महान् राजा उत्पन्न हुआ। उसे देखकर मुनियो ने कहा— यह प्रजा को आनन्दित करेगा महान् तजस्वी होगा और बडी प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा ॥ २२३॥ उसने धनुष और कवच धारण किये थे। वह अग्नि के समान कान्तिमान् था ॥२३॥ उसका नाम पृथु था। उस राजा न पृथ्वी की रक्षा की। वह राजसूय यज्ञ करन वाले राजाओ म पहला राजा हुआ ॥२४॥ उसी से प्रवीण सूत और मागध उत्पन्न हुए। मुनिश्रेष्ठ! राजा पृथु ने प्रजाओ को जीविका देन की इच्छा से इस पृथिवी से अन्नो का दोहन किया ॥२५॥ उसके साथ देवता ऋषिगण पितर राक्षस गधर्व अप्सराएँ, सर्पगण पुण्यजन, लता और पर्वत भी (दूहन म लगे हुए) थे ॥२६॥ उन उन पात्रो म दुही गई पृथिवी ने यथेच्छ दूध दिया। उससे प्रजाओ न प्राण धारण किये। पृथु के अन्त म पृथु के अन्तर्धि और पातिन् नामक दो धर्मज्ञाता पुत्र हुए ॥२७-२८३॥ शिखण्डिनी म अन्तर्धान स हविर्धान को उत्पन्न किया। अग्नि की पुत्री धिषणा ने हविर्धान से छह पुत्र पैदा किये ॥२९॥ प्राचीनबर्हिस् शुक्र गय कृष्ण व्रज और अजिन। उनमे भगवान् प्राचीनबर्हिस् महान् प्रजापति

१ख रु। ग ऊरु। २ग पूरु। ३ख ०ष्टुबनि०। ४ख ०म्नश्चापि ते। ५क अनिम०। ६ख नड्वला०। ७ग ०मा। ऊरो०। ८ख स्याति। ९ख ग गयम्। १०ग हानृप। ११ख राजा। १२क वेमां। १३ख दशपूर्वज। १४ख तन पृथ्वी मुनि०। १५क देवैऋषिग०। १६ख ०गर्वाप्स०। १७ख ०प्सरसा ग०। १८क० ०यी पुण्यानज०।

हविर्धानान्मुनिश्रेष्ठा येन संवर्द्धिताः प्रजाः। प्राचीनबर्हिर्भगवान् पृथिवीतलचारिणीः[1] ॥३१॥
समुद्रतनयायां तु[2] कृतदारोऽभवत् प्रभुः। महतस्तपसः पारे सवर्णायां प्रजापतिः ॥३२॥
सवर्णाधत्त सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः। सर्व्वान् प्राचेतसो नाम धनुर्व्वेदस्य पारगान् ॥३३॥
अपृथग्धर्म्माचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः। दश वर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ॥३४॥
तपश्चरत्सु पृथिवीं प्रचेतासु महीरुहाः। अरक्ष्यमाणामावव्रुर्बभूवाथ प्रजाक्षयः ॥३५॥
नाशकन्मारुतो वातुं [3]वृतं खमभवद्द्रुमैः। दश वर्षसहस्राणि न [4]शेकुश्चेष्टितुं प्रजाः ॥३६॥
तदुपश्रुत्य तपसा युक्ता सर्व्वे प्रचेतसः। मुखेभ्यो वायुमग्निं च ससृजुर्जातमन्यवः ॥३७॥
[5]उन्मूलानथ[6] वृक्षांस्तु कृत्वा वायुरशोषयत्[7]। तानग्निरदहद्घोर[8] एवमासीद्द्रुमक्षयः ॥३८॥
द्रुमक्षयमथो बुद्ध्वा[9] किञ्चिच्छिष्टेषु[10] शाखिषु। उपगम्याब्रवीदेतांस्तदा[11] सोमः प्रजापतीन् ॥३९॥
कोपं यच्छत राजानः सर्व्वे प्राचीनबर्हिषः। वृक्षशून्या कृता पृथ्वी शाम्येतामग्निमारुतौ ॥४०॥
रत्नभूता च कन्येयं वृक्षाणां वरवर्णिनी। भविष्यं जानता[12] तात धृता गर्भेण वै मया ॥४१॥
मारिषा नाम नाम्नैषा वृक्षाणामिति निर्म्मिता। भार्य्या वोऽस्तु महाभागाः[13] सोमवंशविवर्द्धिनी ॥४२॥
युष्माकं तेजसोऽर्द्धेन मम चार्द्धेन तेजसः। अस्यामुत्पत्स्यते विद्वान् दक्षो नाम प्रजापतिः ॥४३॥
स इमां दग्धभूयिष्ठां युष्मत्तेजोमयेन वै। अग्निनाग्निसमो भूयः प्रजाः संवर्द्धयिष्यति ॥४४॥

हुए ॥३०॥ मुनिश्रेष्ठो! हविर्धान से प्रजाओं की वृद्धि हुई। भगवान् प्राचीनबर्हिस् पृथिवी के नीचे गये ॥३१॥ बहुत तपस्या करने के बाद सवर्णा नाम की समुद्र-कन्या से प्रभु प्रजापति ने विवाह किया ॥३२॥ समुद्र-पुत्री सवर्णा ने प्राचीनबर्हिस् से दस पुत्र उत्पन्न किये। धनुर्वेद में पारगत वे सब पुत्र प्रचेता नाम से विख्यात हुए ॥३३॥ एक ही धर्म के अनुष्ठान करने वाले प्रचेताओं ने दस हजार वर्षों तक समुद्र के जल में शयन करते हुए कठिन तपस्या की ॥३४॥ प्रचेतागण की तपस्या के समय वृक्षों ने असुरक्षित पृथ्वी को आच्छादित कर दिया। तब प्रजा का नाश होने लगा ॥३५॥ वृक्षों से दबे हुए आकाश में वायु नहीं बह सका। दस सहस्र वर्षों तक प्रजा निश्चेष्ट पड़ी रह गई ॥३६॥ यह सुनकर तपस्वी प्रचेताओं को क्रोध हुआ। उन्होंने मुख से वायु और अग्नि की सृष्टि की ॥३७॥ वायु ने वृक्षों को उखाड़ कर सुखा दिया। उनको अग्नि ने जला दिया। इस प्रकार वृक्षों का महान् वन नष्ट हो गया ॥३८॥ जब कुछ ही वृक्ष बच गये, तब वृक्षों का विनाश जानकर सोम उन प्रचेतागण प्रजापतियों के पास जाकर बोले—॥३९॥ 'हे प्राचीनबर्हिस् राजाओ! आप क्रोध का त्याग करें। पृथिवी वृक्षों से शून्य हो गई है। अग्नि और वायु को आप शान्त करें ॥४०॥ हे तात! वृक्षों की इस सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी कन्या को भविष्य जानते हुए मैंने गर्भ में धारण किया था ॥४१॥ मारिषा नाम की यह कन्या वृक्षों द्वारा रची गई है। महानुभावगण! सोमवंश को बढ़ाने वाली यह मारिषा आपकी पत्नी हो ॥४२॥ आपके और मेरे आधे-आधे तेज से दक्ष नाम का विद्वान् प्रजापति इससे उत्पन्न होगा ॥४३॥ अग्नि के समान

१क. ग ०रिण। ख०। २क. घ। ३ख. ०तं समं०। ४क ०श्चचेष्टितु। ५क ०लान्य ततो वृक्षान्कृत्वा। ६ख ०थ तान्वृक्षान्कृत्वा। ७क. ०त्। दिग्धाग्नि०। ८ग ०रमेव०। ९क दृष्ट्वा। १०क ०षु मो द्विजाः। ख०। ११ग. ०देतान्राजा सो०। १२क. ख. ०ता तात मु०। १३ग. ०भागा सो०।

ततः सोमस्य वचनाज्जगृहुस्ते प्रचेतसः[1]। संहृत्य कोपं वृक्षेभ्यः[2] पत्नीं धर्म्मेण मारिषाम् ॥४५॥
दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषाया प्रजापतिः। दक्षो जज्ञे महातेजाः [3]सोमस्यांशेन भो द्विजाः ॥४६॥
अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदः। स सृष्ट्वा[4] मनसा[5] दक्षः [6]पश्चादसृजत स्त्रियः ॥४७॥
ददौ[7] दश स धर्म्माय कश्यपाय त्रयोदश। शिष्टाः सोमाय राज्ञे च[8] नक्षत्राख्या ददौ प्रभुः ॥४८॥
तासु देवाः खगा गावो नागा दितिजदानवाः। गन्धर्व्वाप्सरसश्चैव जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः ॥४९॥
ततः प्रभृति विप्रेन्द्राः प्रजा मैथुनसंभवाः। सङ्कल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्व्वेषां प्रोच्यते प्रजा ॥५०॥

[9]मुनय ऊचुः

देवानां दानवानाञ्च गन्धर्व्वोरगरक्षसाम्। सम्भवस्तु श्रुतोऽस्माभिर्दक्षस्य च महात्मनः ॥५१॥
[10]अङ्गुष्ठाद्ब्रह्मणो[11] जज्ञे दक्षः किल शुभव्रत.। वामाङ्गुष्ठात्तथा चैवं तस्य पत्नी व्यजायत ॥५२॥
कथं प्राचेतसत्वं स[12] पुनर्लेभे महातपाः। [13]एतन्नः संशयं सूत व्याख्यातुं[14] त्वमिहार्हसि ॥
दौहित्रश्चैव सोमस्य कथं श्वशुरतां गतः ॥५३॥

लोमहर्षण उवाच

उत्पत्तिश्च निरोधश्च[15] नित्यं भूतेषु भो द्विजाः। ऋषयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्यावन्तश्च ये जनाः ॥५४॥

तेजस्वी दक्ष आपके तेजरूप अग्नि से दग्ध हुई इस पृथिवी पर फिर प्रजा को बढ़ाएगा' ॥४४॥ तब सोम के वचन से प्रचेतागण ने क्रोध त्यागकर वृक्षों से मारिषा को धर्मपूर्वक पत्नी रूप में ग्रहण किया। ॥४५॥ विप्रवृन्द ! दसों प्रचेताओं से मारिषा ने महान् तेजस्वी प्रजापति दक्ष को सोम के अंश से उत्पन्न किया ॥४६॥ उस दक्ष ने स्थावरों और दो पैर वाले तथा चार पैर वाले जंगमों की मानसी सृष्टि कर पीछे स्त्रियों की रचना की ॥४७॥ उस प्रभु ने दश कन्यायें धर्म को और तेरह कश्यप को दीं। अवशिष्ट नक्षत्ररूपी कन्यायें सोम राजा को दी ॥४८॥ उन कन्याओं से देव, पक्षी, गौ, नाग, दैत्य, दानव, गन्धर्व, अप्सरा और दूसरी जातियाँ उत्पन्न हुईं ॥४९॥ विप्रवर्यवृन्द ! तभी से मैथुनी सृष्टि का प्रारंभ हुआ। पहले संकल्प, दर्शन और स्पर्श से प्रजा उत्पन्न हुआ करती थी ॥५०॥

मुनिगण बोले—देवता, दानव, गन्धर्व, नाग, राक्षस योनियों और महात्मा दक्ष की भी उत्पत्ति हम ने सुनी ॥५१॥ ब्रह्मा के अंगूठे से शुभोदय दक्ष का जन्म हुआ। उसी प्रकार बायें अंगूठे से उसकी पत्नी की उत्पत्ति हुई ॥५२॥ फिर उस महान् तपस्वी ने प्रचेताओं का पुत्रत्व कैसे प्राप्त किया? सूतजी ! आप हमारी इस शंका का समाधान करें कि चन्द्रमा का दौहित्र (दक्ष) चन्द्रमा का ससुर कैसे बना? ॥५३॥

लोमहर्षण बोले—विप्रवृन्द ! प्राणियों में उत्पत्ति और निरोध (मरण) नित्य होते रहते हैं। मुनि और विद्वान् लोग इसमें मोहित नहीं हुआ करते ॥५४॥ ये दक्ष आदि राजा लोग हर युग में उत्पन्न होते हैं और फिर नष्ट

१ख तरोयना। २क. वृक्षेषु। ३क ०मत्स्याऽऽत्मसमो द्वि०। ४क ०ष्ट्वा मानसान्दक्ष.। ५क. ०सा मुख प०। ६ख ०श्चात्पुत्रान्स्त्रियः। ७ग. स ०दौ स दश ध०। ८क स. तु। ९क. ऋषयः। १०ग. ०ष्ठाद्दक्षिणाज्जाता द०। ११क. ०णो जाता द०। १२ग. च.। १३क. एव। स. एन तु स०। १४ख ०तु वै त्वमर्हं०। १५क. विपत्तिश्च।

युगे युगे भवन्त्येते[1] पुनर्दक्षादयो नृपा । पुनश्चैव निरुध्यन्ते[2] विद्वांस्तत्र न मुह्यति[3] ॥५५॥
ज्येष्ठ्य कानिष्ठ्यमप्येषां पूर्व्वं नासीद्द्विजोत्तमा । तप एव गरीयोऽभूत्प्रभावश्चैव कारणम् ॥५६॥
इमां[4] विसृष्टिं दक्षस्य यो विद्यात् सचराचराम्[5]। प्रजावानायुरुत्तीर्णं स्वर्गलोके महीयते ॥५७॥
इति ब्राह्ममहापुराणे सृष्टिकथन नाम द्वितीयोऽध्याय ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः

देवदानवोत्पत्ति-वर्णनम्

मुनय ऊचु

देवाना दानवाना च गन्धर्व्वोरगरक्षसाम्। उत्पत्ति विस्तरेणैव लोमहर्षण कीर्त्तय ॥१॥

लोमहर्षण[6] उवाच

प्रजा सृजति व्यादिष्ट [7]पूर्व्वं दक्ष स्वयम्भुवा। यथा ससर्ज भूतानि तथा शृणुत भो द्विजा ॥२॥

हो जाते हैं। विद्वान् इसमे मोहित नही होता ॥५५॥ द्विजगण! पहले इनमे ज्येष्ठता तथा कनिष्ठता का भेद नही था प्रत्युत तप और तप का प्रभाव ही मुख्य कारण माना जाता था ॥५६॥ दक्ष की इस चराचर सृष्टि को जो जानता है वह प्रजावान् और आयुष्मान् होकर स्वर्ग मे पूजित होता है ॥५७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे सृष्टि कथन नामक दूसरा अध्याय समाप्त ॥२॥

अध्याय ३

देवो और दानवो की उत्पत्ति का वर्णन

मुनिगण बोले—*आप लोमहर्षण! देवता दानव गन्धर्व नाग और राक्षसो की उत्पत्ति कथा विस्तारपूर्वक सुनाने की कृपा करें ॥१॥*

लोमहर्षण बोले—*विप्रगण! ब्रह्मा द्वारा प्रजा की सृष्टि रचना का आदेश प्राप्त कर दक्ष ने जिस प्रकार प्राणियो की सृष्टि की वह (रचना विधान पहले) सुनिये ॥२॥ आरम्भ मे प्रभु ने मानसी सृष्टि की रचना की,*

१क ग ०त सर्वे दक्षा०। २क विपद्यन्ते। ३क ०ति। जन्म चैव विपत्तिश्च पू०। ४क ०मां तु सृ०॥ ५क ग ०चरम्। ६क सूत। ७कग पूर्वद०।

मानसान्येव भूतानि[१] पूर्व्वमेवासृजत् प्रभुः। ऋषीन्देवान् [२]सगन्धर्व्वानसुरान्यक्षराक्षसान् ॥३॥
यदास्य मानसी [३]विप्रा न व्यवर्द्धत वै प्रजा। तदा सञ्चिन्त्य धर्म्मात्मा प्रजाहेतोः प्रजापतिः॥४॥
स मैथुनेन धर्म्मेण सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः। असिक्नीमावहत् पत्नीं वीरणस्य प्रजापतेः॥५॥
सुतां सुतपसा [४]युक्ता महतीं लोकधारिणीम्। अथ पुत्रसहस्राणि वैरण्यां[५] पञ्च वीर्य्यवान्॥६॥
असिक्न्यां जनयामास दक्ष एव प्रजापतिः। तांस्तु दृष्ट्वा महाभागान्संविवर्द्धयिषून् प्रजाः॥७॥
देवर्षिः प्रियसंवादो नारदः प्राब्रवीदिदम्। नाशाय वचनं तेषां शापायैवात्मनस्तथा॥८॥
यं कश्यपः सुतवरं परमेष्ठी व्यजीजनत्। दक्षस्य वै दुहितरि दक्षशापभयान्मुनिः॥९॥
पूर्व्वं स हि समुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिनः। असिक्न्यामथ वैरण्यां[६] भूयो देवर्षिसत्तमः॥१०॥
तं भूयो जनयामास [७]पितेव [८]मुनिपुङ्गवम्। तेन दक्षस्य वै पुत्रा हर्यश्वा इति विश्रुता[९]॥११॥
निर्म्मथ्य नाशिताः सर्व्वे विधिना च न संशयः। तस्योद्यतस्तदा दक्षो नाशायामितविक्रमः॥१२॥
ब्रह्मर्षीन् पुरतः कृत्वा याचितः परमेष्ठिना। ततोऽभिसन्धिश्चक्रे वै दक्षस्य परमेष्ठिना॥१३॥
कन्यायां नारदो[१०] मह्यं तव पुत्रो भवेदिति। ततो दक्षः सुतां प्रादात् प्रियां वै परमेष्ठिने॥
स तस्यां नारदो जज्ञे भूयः शापभयादृषिः ॥१४॥

फिर मुनि, देवता, गन्धर्व, दैत्य, यक्ष और राक्षस योनियों की रचना की ॥३॥ किन्तु जब मानसी सृष्टि से प्रजा नहीं बढ़ी, तब धर्मात्मा प्रजापति ने प्रजा की वृद्धि के कारण पर अच्छी तरह विचार किया और मैथुन धर्म से अनेक प्रकार की प्रजाओं के रचने की इच्छा की ॥४½॥ फिर वीरण प्रजापति की अत्यन्त तपस्विनी और लोकधारिणी कन्या असिक्नी को पत्नी बनाया। ॥५½॥ शक्तिशाली दक्ष प्रजापति ने वीरण-पुत्री असिक्नी से पाँच हजार पुत्र उत्पन्न किये ॥६½॥ प्रजाओं को बढ़ाने की इच्छा करने वाले उन महाभागों को देखकर प्रियभाषी देवर्षि नारद ने उनके नाश के लिये और अपने शाप के लिये यह बात कही ॥७-८॥ पितामह कश्यप ने जिस पुत्र-श्रेष्ठ को उत्पन्न किया, वह मुनि नारद दक्ष शाप के भय से कश्यप से दक्ष की कन्या में पहले उत्पन्न हो गया था ॥९½॥ फिर देवर्षियों में श्रेष्ठ कश्यप ने उस मुनिश्रेष्ठ नारद को वीरण प्रजापति की कन्या असिक्नी में पिता की तरह उत्पन्न किया ॥१०½॥ नारद ने हर्यश्व नाम से विख्यात दक्ष के पुत्रों को मथकर निःसन्देह विनष्ट किया था। तब अत्यन्त पराक्रमी दक्ष नारद का नाश करने के लिये तैयार हो गया ॥११-१२॥ कश्यप ने ब्रह्मर्षियों को आगे करके दक्ष से याचना की। इसके बाद कश्यप ने दक्ष से प्रतिज्ञा की—॥१३॥ 'आपकी कन्या से मेरा पुत्र नारद उत्पन्न होगा।' तब दक्ष ने अपनी प्रिय कन्या कश्यप को दे दी। वह मुनि नारद शाप के भय से फिर उसमें उत्पन्न हुआ ॥१४॥

१ग ०नि प्रजापतिरथासृजत्। ऋ०। २ङ. ०र्वासुरान्यक्षांश्च रा०। ३ग. तात। ४ग युक्तां। ५क. वीरण्यां ख वीरिण्यां। ६ङ ख वीरिण्यां। ७ग. पीवर्यां। ८ङ. मुनिपुङ्गवः। ९ग सर्वे चक्रे। १०ग. ०दोऽस्य तु०।

मुनय ऊचुः[1]

कथं प्रणाशिताः पुत्रा नारदेन महर्षिणा। प्रजापतेः[2] सूतवर्य्य श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥१५॥

लोमहर्षण उवाच

दक्षस्य पुत्रा[3] हर्य्यश्वा विवर्द्धयिषवः प्रजाः। समागता महावीर्या नारदस्तानुवाच ह॥१६॥

नारद उवाच

बालिशा बत [4]यूयं वै नास्या जानीत वै भुवः। प्रमाणं स्रष्टुकामा वै प्रजाः प्राचेतसात्मजाः॥१७॥
अन्तरूर्ध्वमधश्चैव कथं सृजथ[5] वै प्रजाः। ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्व्वतो दिशः[6]॥१८॥
अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः। हर्यश्वेष्वथ नष्टेषु दक्षः प्राचेतसः पुनः[7]॥१९॥
वैरण्यामथ पुत्राणां सहस्रमसृजत्प्रभुः। विवर्द्धयिषवस्ते तु शवलाश्वास्तथा प्रजाः॥२०॥
पूर्व्वोक्तं वचनं[8] ते तु नारदेन[9] प्रचोदिताः। अन्योन्यमूचुस्ते सर्व्वे सम्यगाह [10]महानृषिः॥२१॥
भ्रातृणां पदवीं ज्ञातुं गन्तव्यं नात्र संशयः। ज्ञात्वा प्रमाणं पृथ्व्याश्च सुखं स्रक्ष्यामहे प्रजाः॥२२॥
तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाताः सर्व्वतो दिशम्। अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगा॥२३॥

मुनिगण बोले—आर्य सूतजी! महर्षि नारद ने प्रजापति के पुत्रों का कैसे नाश किया—यह बात हम लोग यथार्थ रूप से सुनना चाहते हैं॥१५॥

लोमहर्षण बोले—प्रजाओं को बढ़ाने की इच्छा रखने वाले दक्ष के पुत्र महाबली हर्यश्व नारद के पास आये। नारद ने उनसे कहा—॥१६॥

नारद बोले—दक्ष-पुत्रो! तुम लोग मूर्ख हो। प्रजा की सृष्टि करना चाहते हो, किन्तु इस पृथिवी के प्रमाण—ऊपर, नीचे और मध्य—को नहीं जानते। कैसे प्रजाओं की सृष्टि-रचना कर सकोगे? ॥१७½॥ मुनि की ऐसी बात सुनकर वे सब विभिन्न दिशाओं की ओर चले गये और जिस प्रकार नदियाँ समुद्र में मिल जाने के बाद फिर नहीं लौटती उसी प्रकार वे आज तक अपने-अपने स्थानों से नहीं लौटे॥१८½॥ हर्यश्वों के नष्ट हो जाने पर प्रचेता के पुत्र समर्थ दक्ष ने फिर वैरणी से हजार पुत्रों को उत्पन्न किया। उनकी शबलाश्व संज्ञा पड़ी। उन्होंने प्रजाओं को बढ़ाना चाहा॥१९-२०॥ उनसे भी नारद ने वही बात कही। वे परस्पर कहने लगे—'मुनि ने ठीक कहा॥२१॥ भाइयों का मार्ग जानने के लिये जाना चाहिये। इसमें कोई संदेह नहीं कि पृथिवी का प्रमाण जानकर हम लोग सुख से प्रजाओं की सृष्टि करेंगे॥२२॥ वे भी उसी मार्ग से विभिन्न दिशाओं की ओर प्रस्थित हुए और समुद्र से नदियों की तरह आज तक नहीं लौटे हैं॥२३॥ तब से भाई की खोज में गया हुआ भाई शीघ्र नष्ट हो जाता

१क. ऋषय। २क ख ०पतेस्तु भगवञ्श्रोतु०। ३. ०श्वास्ते सर्वे वि०। ४क भूयो। ५क रक्षथ। ६ख. दिशम्। ७क. ०न। वीरिण्या०। ८ग ०चनात्ते तु। ९क ख ०देनैव बो०। १०क ०हामुनिं। भ्रा०।

तदा प्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणे द्विजाः[1]। प्रयातो नश्यति क्षिप्रं तन्न कार्य्यं विपश्चिता ॥२४॥
ताश्चैव नष्टान् विज्ञाय पुत्रान् दक्षः प्रजापतिः। षष्टिं ततोऽसृजत् कन्या[2] वैरण्यामिति नः श्रुतम् ॥२५॥
तास्तदा प्रतिजग्राह [3]भार्य्यार्थं कश्यपः प्रभुः। सोमो धर्म्मश्च भो विप्रास्तथैवान्ये महर्षयः ॥२६॥
ददौ स दश धर्म्माय कश्यपाय त्रयोदश। सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने[4] ॥२७॥
द्वे चैव बहुपुत्राय चैवाङ्गिरसे तथा। द्वे कृशाश्वाय विदुषे तासां नामानि[5] मे शृणु ॥२८॥
अरुन्धती वसुर्यामी[6] लम्बा[7] भानुर्मरुत्वती। सङ्कल्पा च मुहूर्त्ता च साध्या विश्वा च भो द्विजाः ॥२९॥
धर्म्मपत्न्यो दश त्वेतास्तास्वपत्यानि[8] बोधत। विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यान् व्यजयात ॥३०॥
मरुत्वत्या मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवः[9] सुता[10]। भानोस्तु भानवः पुत्रा मुहूर्त्तास्तु मुहूर्त्तजाः ॥३१॥
लम्बायाश्चैव [11]घोषोऽथ नागवीथी च [12]यामिजा। [13]पृथिवीविषयं सर्व्वमरुन्धत्यां व्यजायत ॥३२॥
[14]सङ्कल्पायास्तु [15]विश्वात्मा जज्ञे सङ्कल्प एव हि। [16]नागवीथ्याञ्च[17] यामिन्या वृषलश्च व्यजायत ॥३३॥
परा याः सोमपत्नीश्च दक्षः प्राचेतसो ददौ। सर्व्वा नक्षत्रनाम्न्यस्ता ज्योतिषे परिकीर्त्तिता ॥३४॥
ये त्वन्ये ख्यातिमन्तो वै देवा ज्योतिष्पुरोगमा[18]। वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम् ॥३५॥
आपो ध्रुवश्च [19]सोमश्च [20]धवश्चैवानिलोऽनलः। प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभिः स्मृताः ॥३६॥
आपस्य पुत्रो वैतण्ड्य. [21]श्रमः [22]श्रान्तो मुनिस्तथा। ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालो [23]लोकप्रकालनः ॥३७॥

है। विद्वान् को ऐसा नहीं करना चाहिए ॥२४॥ दक्ष प्रजापति ने उन पुत्रों को नष्ट जानकर वैरणी से साठ कन्यायें उत्पन्न की—ऐसा हमने सुना है ॥२५॥ उन कन्याओं को प्रभु कश्यप, सोम, धर्म तथा दूसरे महर्षियों ने पत्नी बनाने के निमित्त ग्रहण किया ॥२६॥ दक्ष ने दश कन्यायें धर्म को, तेरह कश्यप को, सत्ताईस सोम को, चार अरिष्टनेमि को, दो बहुपुत्र को, दो अंगिरा को और दो विद्वान् कृशाश्व को दी। अब उनके नाम मुझसे सुनिये—॥२७-२८॥ विप्रवृन्द! अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती, सकल्पा, मुहूर्ता, साध्या और विश्वा—ये दश कन्याएँ धर्म की पत्नी हुईं, उनकी सन्तानों के नाम सुनें—॥२९३॥ विश्वा से विश्वेदेव, साध्या से साध्य, मरुत्वती से मरुत्वान्, वसु से वसु भानु से भानु, मुहूर्ता से मुहूर्त और लम्बा से घोष उत्पन्न हुए। यामि से नागवीथी उत्पन्न हुई ॥३०-३१३॥ पृथिवी के सब विषय अरुन्धती से उत्पन्न हुए। संसार के सब संकल्प संकल्पा से उत्पन्न हुए। नागवीथी यामिनी से वृषल उत्पन्न हुआ ॥३२-३३॥ प्रचेता-पुत्र दक्ष ने बाद में जो कन्यायें सोम को दीं, वे सब नक्षत्र नाम से ज्योतिष में कही गयी हैं ॥३४॥ जो दूसरे ख्यातिप्राप्त तथा ज्योति के आगे चलने वाले देव हैं, वे आठ वसु कहलाये। उनका मैं यहाँ पर विस्तृत-वर्णन करूँगा ॥३५॥ वे वसु आप, ध्रुव, सोम, धव, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—इन नामों से ख्यात हुए ॥३६॥ आपके वैतण्ड्य, श्रम, श्रान्त और मुनि नामक पुत्र हुए।

१ख-ग रा। २ख ०न्या वीरिण्या०। ख ०न्या वैरिण्या०। ३क भार्यार्थे। ग भार्यास्वे। ४ ०रिषन०। ५ख ०नि बोधत। अ०। ६ग ०सुर्जामी। ७ग नवा। ८ग नि यानि च। वि०। ९क ०सवस्तथा। मा०। १०ग स्मृता। ११ख घोषस्य। १२ग. जामिजा। १३ ०. ०विष्या विषये स०। १४क ०ल्पायां तु सर्वात्मा। १५ख सर्वात्मा। १६ख ०वीथी च जामि०। १७ग. ०न्यां विरता-ग्न्यजा०। १८क ०रच बलश्चै०। १९ग. धरश्चै०। २०क. वैतुण्ड। २१ग. शान्तो। २२ग. ०काशनः।

सोमस्य भगवान् वर्च्चा वर्च्चस्वी येन जायते। [1]धवस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा ॥३८॥
मनोहराया शिशिरः प्राणोऽथ रमणस्तथा। अनिलस्य शिवा भार्य्या तस्या पुत्रो मनोजव ।
अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य [2]च ॥३९॥
अग्निपुत्र कुमारस्तु शरस्तम्बे[3]श्रिया वृत । तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठज ॥४०॥
अपत्य कृत्तिकाना तु कार्त्तिकेय इति स्मृत । प्रत्यूषस्य विदु पुत्रमृषि नाम्नाथ देवलम् ॥४१॥
द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ मनीषिणौ। बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री [4]ब्रह्मवादिनी ॥४२॥
[5]योगसिद्धा जगत्[6] कृतस्नमसक्ता[7] विचचार ह। प्रभासस्य तु सा भार्य्या वसूनामष्टमस्य तु[8] ॥४३॥
विश्वकर्म्मा महाभागो [9]यस्या[9] जज्ञे [10]प्रजापति । कर्त्ता शिल्पसहस्राणा त्रिदशानाञ्च वार्द्धकि ॥४४॥
भूषणानाञ्च सर्व्वेषा कर्त्ता शिल्पवतां वर । य सर्व्वेषा विमानानि देवताना चकार ह ॥४५॥
मानुषाश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्प महात्मन । सुरभी[11] कश्यपाद्रुद्रानेकादश विनिर्म्ममे ॥४६॥
महादेवप्रसादेन तपसा भाविता सती। अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा[12] रुद्रश्च वीर्य्यवान ॥४७॥
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजित । वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा ॥४८॥
मृगव्याधश्च शर्व्वश्च कपाली च द्विजोत्तमा । [13]एकादशैते विख्याता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वरा ॥४९॥
शत त्वेव समाख्यात रुद्राणाममितौजसाम्। पुराणे मुनिशार्दूला यैर्व्याप्त सचराचरम् ॥५०॥

ध्रुव का पुत्र लोक-सहारक तथा शक्ति सम्पन्न काल हुआ ॥३७॥ सोम का (पुत्र) भगवान् वचस् हुआ जिससे लोग तेजस्वी बनते हैं। धव के पुत्र द्रविण और हुतहव्यवह हुए। मनोहरा से शिशिर, प्राण और रमण हुए। अनिल की स्त्री शिवा थी। उसके पुत्र मनोजव और अविज्ञातगति हुए। सरपत के गुच्छों में सुषमा सम्पन्न अग्नि का पुत्र कुमार उत्पन्न हुआ। उसके शाख विशाख (नामक) पुत्रों के अलावा पीठ से उत्पन्न नैगमेय (नामक पुत्र) हुआ ॥३८–४०॥ कृत्तिका से उत्पन्न होनेवाली सतान कार्तिकेय कहलायी। प्रत्यूष का पुत्र देवल ऋषि हुआ ॥४१॥ देवल के भी क्षमावान् और मनीषी दो पुत्र हुए। स्त्रियों मे श्रेष्ठ ब्रह्मवादिनी योग से सिद्ध और आसक्ति से रहित बृहस्पति की बहन सपूर्ण ससार मे विचरने लगी ॥४२½॥ वह प्रभास नामक आठवें वसु की स्त्री हुई जिससे महाभाग प्रजापति विश्वकर्मा की उत्पत्ति हुई जो हजारों शिल्पों का निर्माता देवताओं का शिल्पी सब आभरणों का निर्माता और सर्वश्रेष्ठ शिल्पी हुआ ॥४३ ४४½॥ उसने देवताओं के सारे विमान बनाये और उस महात्मा की शिल्पविद्या से मनुष्य जीविका उपार्जन करते हैं ॥४५½॥ महादेव जी की प्रसन्नता से तप सिद्धा सती सुरभी ने कश्यप से ग्यारह रुद्रों की रचना की ॥४६½॥ ब्राह्मणश्रेष्ठो ! अजकपाद अहिर्बुध्न्य त्वष्टा शक्तिशाली रुद्र हर, बहुरूप त्र्यम्बक अपराजित वृषाकपि शम्भु कपर्दी रैवत मृगव्याध शर्व और कपाली—ये ग्यारह रुद्र तीनों लोक के ईश्वर कहलाये ॥४७ ४९॥ मुनिवयवृन्द ! इस तरह पुराण में अत्यन्त तेजस्वी एक सौ रुद्र प्रसिद्ध हुए, जिन्होंने चराचर सहित ससार को व्याप्त किया ॥५०॥

१क बलस्य। ख धरस्य। २ख तु। ३ख ०म्बेषु यो धृत । ४ग ०ह्मचारिणी। यो०। ५ कतप सिद्धा। ६क ०मथान्ता वि०। ७ख ०सक्त वि०। ८ख हि। ९क यस्या। १०ख जात। ११ख सुवर्धि। १२ सुरभि। १३ ०बुघ्नस्त्व०। १४ख ०दशेति वि०।

दारान् शृणुध्वं विप्रेन्द्राः कश्यपस्य प्रजापतेः। अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टा सुरसा खसा ॥५१॥
सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा। कद्रुर्मुनिश्च भो विप्रास्तास्वपत्यानि बोधत ॥५२॥
पूर्व्वमन्वन्तरे श्रेष्ठा द्वादशासन् सुरोत्तमाः। तुषिता नाम तेऽन्योन्यमूचुर्वैवस्वतेऽन्तरे ॥५३॥
उपस्थितेऽतियशसश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः। हितार्थं सर्व्वलोकाना समागम्य परस्परम् ॥५४॥
आगच्छत द्रुत देवा अदितिं सम्प्रविश्य वै। मन्वन्तरे प्रसूयामस्तन्नः श्रेयो भविष्यति ॥५५॥

लोमहर्षण उवाच

एवमुक्ता तु ते सर्व्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः। मारीचात् कश्यपाज्जातास्त्वदित्या दक्षकन्यया ॥५६॥
तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेव हि। अर्य्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा तथैव च ॥५७॥
विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च। अंशो भगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥५८॥
सप्तविंशति याः प्रोक्ताः सोमपत्न्यो महाव्रताः। तासामपत्यान्यभवन् [1]दीप्तान्यमिततेजसः ॥५९॥
अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश। बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो [2]विद्युतः स्मृता.[3] ॥६०॥
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्व्वं ऋचो [4]ब्रह्मर्षिसत्कृताः। कृशाश्वस्य च देवर्षेर्देवप्रहरणाः स्मृताः ॥६१॥
एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि। सर्व्वे देवगणाश्चात्र त्रयस्त्रिंशत्तु कामजाः ॥६२॥
तेषामपि च भो विप्रा निरोधोत्पत्तिरुच्यते। यथा सूर्य्यस्य गगन उदयास्तमयाविह[5] ॥६३॥
एवं देवनिकायास्ते सम्भवन्ति युगे युगे। [6]दित्याः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम् ॥६४॥

द्विजश्रेष्ठो! प्रजापति कश्यप की पत्नियों के नाम सुनिये—अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, खसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रु और मुनि। विप्रगण! उनकी सन्तानों के सम्बन्ध मे सुन लीजिये ॥५१-५२॥ पूर्व मन्वन्तर मे तुषित नामक बारह उत्तम देवता हुए। वे वैवस्वत मन्वन्तर में एक-दूसरे से कहने लगे—॥५३॥ 'देवताओ! चाक्षुष मन्वन्तर आने पर सब लोगों के कल्याण के लिये परस्पर एकत्रित होकर शीघ्र आओ। अदिति में प्रवेश कर मन्वन्तर मे हम लोग जन्म लें। इससे हमारा कल्याण होगा ॥५४-५५॥

लोमहर्षण बोले—वे सब इस तरह कहकर चाक्षुष मन्वन्तर में मरीचि-पुत्र कश्यप से दक्ष की कन्या अदिति मे उत्पन्न हुए ॥५६॥ कश्यप से फिर विष्णु और इन्द्र की उत्पत्ति हुई। अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, अंश और महातेजस्वी भग—ये बारह आदित्य कहलाये ॥५७-५८॥ सोम की सत्ताईस महाव्रती पत्नियों की सतानें अत्यन्त तेजस्वी हुईं ॥५९॥ अरिष्टनेमि की स्त्रियों के सोलह सन्तानें हुईं। विद्वान् बहुपुत्र के चार विद्युत् सन्तान हुईं ॥६०॥ पहले चाक्षुष मन्वन्तर मे ब्रह्मर्षियों से सम्मानित ऋचायें प्रकाशित हुईं। देवर्षि कृशाश्व से देवप्रहरण नामक गण उत्पन्न हुए ॥६१॥ ये देवगण हजार युगों के अन्त मे फिर जन्म ग्रहण करते हैं। इनमें तैंतीस काम से उत्पन्न होते हैं ॥६२॥ ब्राह्मणो! उनकी भी उत्पत्ति और लय होता है। जैसे आकाश में सूर्य का उदय और अस्त होना है, उसी तरह देव-समूह युग-युग मे होते हैं ॥६३॥ हमने सुना है कि

---

[1]ग. ०प्तानामितत०। [2]क. वैद्युता। [3]ग. ०ता। प्रत्यङ्गिरसवाः श्रेष्ठा ऋ०। [4]ङ. पूर्वमृमवा कीर्तित०। [5]क. ०मने त्विह। ग. ०मने इह। [6]ख. दित्या।

हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्य्यवान्। सिंहिका चाभवत् कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः ॥६५॥
सैंहिकेया इति ख्याता यस्याः पुत्रा महाबलाः। हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः ॥६६॥
ह्लादश्च अनुह्लादश्च प्रह्लादश्चैव वीर्य्यवान्। संह्लादश्च चतुर्थोऽभूद्ह्लादपुत्रो ह्रदस्तथा ॥६७॥
ह्रदस्य पुत्रौ[1] द्वौ वीरौ शिवः कालस्तथैव च। विरोचनस्तु प्राह्लादिर्बलिर्जज्ञे विरोचनात् ॥६८॥
बलेः पुत्रशतं त्वासीद्बाणज्येष्ठं तपोधनाः। धृतराष्ट्रश्च सूर्यश्च चन्द्रमाश्चन्द्रतापनः ॥६९॥
कुम्भनाभो [2]गर्द्दभाक्षः कुक्षिरित्येवमादयः। बाणस्तेषामतिबलो ज्येष्ठः पशुपतेः प्रियः ॥७०॥
पुरा कल्पे तु बाणेन प्रसाद्योमापतिं प्रभुम्। पार्श्वतो विहरिष्यामि इत्येवं याचितो वरः ॥७१॥
[3]हिरण्याक्षसुताश्चैव विद्वांसश्च महाबलाः। [4]भर्भरः शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा ॥७२॥
[5]महानाभश्च विक्रान्तः कालनाभस्तथैव च। अभवन् दनुपुत्राश्च शतं तीव्रपराक्रमाः ॥७३॥
तपस्विनो महावीर्य्याः प्राधान्येन ब्रवीमि तान्। द्विमूर्द्धा शंकुकर्णश्च तथा [6]हयशिरा विभुः[7] ॥७४॥
अयोमुखः शम्बरश्च कपिलो वामनस्तथा। मारीचिर्मघवांश्चैव इल्वलः स्वसृमस्तथा ॥७५॥
विक्षोभणश्च केतुश्च केतुवीर्य्यशतह्रदौ। इन्द्रजित्सर्व्वजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च ॥७६॥
[8]एकचक्रो [9]महाबाहुस्तारकश्च महाबलः। वैश्वानरः पुलोमा च विद्रावणमहाशिराः ॥७७॥
स्वर्भानुर्वृषपर्व्वा च विप्रचित्तिश्च वीर्य्यवान्। सर्व्वे एते दनोः पुत्राः कश्यपादभिजज्ञिरे ॥७८॥

कश्यप से दिति के दो शक्तिशाली पुत्र हुए—हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष। तथा सिंहिका नाम की कन्या उत्पन्न हुई, जो विप्रचित्ति को ब्याही गई, और जिसके महाबली पुत्र सैंहिकेय (राहु) गण के नाम से प्रसिद्ध हुए ॥६४-६५½॥ हिरण्यकशिपु के महातेजस्वी चार पुत्र—ह्लाद, अनुह्लाद, पराक्रमी प्रह्लाद और चौथा संह्लाद हुए। उसी तरह ह्लाद का पुत्र ह्रद हुआ ॥६६-६७॥ ह्रद के दो वीर पुत्र हुए—शिव और काल। प्रह्लाद का पुत्र विरोचन हुआ। विरोचन से बलि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥६८॥ मुनिवृन्द! बलि के धृतराष्ट्र, सूर्य, चन्द्रमा, चन्द्रतापन, कुम्भनाभ, गर्दभाक्ष, कुक्षि इत्यादि नाम से विख्यात सौ पुत्र हुए ॥६९½॥ उन सब में ज्येष्ठ बाण अत्यन्त बलवान् और शिव का प्रिय पात्र था ॥७०॥ पहले कल्प में बाण ने उमापति भगवान् शिव को प्रसन्न कर मैं 'आपके पास ही विहार करूँ' ऐसा वरदान उनसे माँगा ॥७१॥ हिरण्याक्ष के पुत्र भर्भर, शकुनि, भूतसंतापन, महानाभ, विक्रान्त और कालनाभ बड़े बलवान् और विद्वान् हुए ॥७२½॥ दनु के अत्यन्त पराक्रमी, तपस्वी और महाशक्तिशाली सौ पुत्र हुए। उनमें से प्रमुखों के नाम बताता हूँ—॥७३½॥ द्विमूर्धा, शंकुकर्ण, शक्तिशाली हयशिरा, अयोमुख, शम्बर, कपिल, वामन, मारीचि, मघवान्, इल्वल, स्वसृम, विक्षोभण, केतु, केतुवीर्य, शतह्रद, इन्द्रजित्, सर्वजित्, वज्रनाभ, एकचक्र, महाबाहु, महाबलवान् तारक, वैश्वानर, पुलोमा, विद्रावण, महाशिरा, स्वर्भानु वृषपर्वा, शक्तिशाली विप्रचित्ति। ये सब दनु के पुत्र कश्यप से उत्पन्न हुए ॥७४-७८॥ इन सब महाबली दानवों में विप्रचित्ति प्रधान था।

१ख पुत्रोऽप्यायुर्वै शि०। २ क गर्दभश्च। ३ ख सुता पञ्च वि०। ४ ख ऊर्जरा। ग. ह्यर्कवि। ५ ख ०हाभागश्च। ६ क ख शङ्कुशिरा। ७ क द्विजा। ८ ख एकवक्रो। ९ ग ०हुस्याबरश्च।

विप्रचित्तिप्रधानास्ते दानवा:[1] सुमहाबलाः। एतेषां[2] पुत्रपौत्रन्तु न तच्छक्यं द्विजोत्तमाः ॥७९॥
प्रसंख्यातुं बहुत्वाच्च पुत्रपौत्रमनन्तकम्। स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोम्नस्तु शची सुता॥८०॥
[3]उपदीप्तिर्हयशिराः शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी। पुलोमा कालिका चैव वैश्वानरसुते उभे ॥८१॥
बह्वपत्ये [4]महापत्ये[5] मरीचेस्तु परिग्रहः। तयोः पुत्रसहस्राणि [6]षष्टिर्दानवनन्दनाः ॥८२॥
चतुर्दशशतानन्यान् हिरण्यपुरवासिनः[7]। मारीचिर्जनयामास महता तपसान्वितः ॥८३॥
पौलोमा. कालकेयाश्च दानवास्ते महाबलाः। अवध्या देवतानां हि हिरण्यपुरवासिनः ॥८४॥
पितामहप्रसादेन ये हताः सव्यसाचिना। ततोऽपरे महावीर्या दानवास्त्वतिदारुणाः ॥८५॥
सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्तेः सुतास्तथा। दैत्यदानवसंयोगाज्जातास्तीव्रपराक्रमाः ॥८६॥
[8]सैंहिकेया इति ख्यातास्त्रयोदश महाबलाः[9]। वंशः शल्यश्च[10] बलिनो नलश्चैव तथाबलः ॥८७॥
[11]वातापिर्नमुचिश्चैव [12]इल्वलः स्वसृमस्तथा। [13]अञ्जिको नरकश्चैव कालनाभस्तथैव च ॥८८॥
[14]सरमानस्तथा चैव स्वरकल्पश्च वीर्य्यवान्। एते वै[15] दानवा:[16] श्रेष्ठा दनोर्वंशविवर्धनाः ॥८९॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः। संह्रादस्य तु दैत्यस्य निवातकवचाः कुले ॥९०॥
समुत्पन्नाः सुमहता तपसा भावितात्मनः। तिस्रः कोट्यः सुतास्तेषां मणिवर्त्यां निवासिनः ॥९१॥
अवध्यास्तेऽपि देवानामर्ज्जुनेन निपातिताः। षट्सुताः सुमहाभागास्ताम्रायाः परिकीर्त्तिता. ॥९२॥

द्विजवर्य ! बहुत और अनन्त होने के कारण इनके पुत्र-पौत्रों को नहीं गिना सकता हूँ॥७९॥ स्वर्भानु की कन्या प्रभा हुई। पुलोमा की शची हुई। उपदानवी हयशिरा की और शर्मिष्ठा वृषपर्वा की (कन्या) हुई॥८०½॥ वैश्वानर की पुलोमा और कालिका—ये दो कन्यायें बहुत-सी संतान वाली हुईं। उनका विवाह मरीचि से हुआ। साठ हजार दानव पुत्र इनसे उत्पन्न हुए॥८१-८२॥ महान् तपस्वी मरीचि ने दूसरे चौदह सौ हिरण्यपुर वासियों को उत्पन्न किया॥८३॥ वे हिरण्यपुरवासी महाबलवान् दानव पौलोम और कालकेय नाम से ख्यात हुए, जो ब्रह्माजी की कृपा से देवताओं से अवध्य (न मारने योग्य) होते हुए भी अर्जुन के द्वारा मारे गये थे॥८४½॥ उनके अतिरिक्त बहुत से महाशक्तिशाली भयंकर दानव विप्रचित्ति से सिंहिका में उत्पन्न हुए। विप्रचित्ति के तेरह पुत्र दैत्य और दानव के संयोग से बड़े पराक्रमी और सैंहिकेय नाम से प्रसिद्ध हुए॥८५-८६½॥ उनके नाम ये हैं—बली वंश और शल्य, नल, बल, वातापि, नमुचि, इल्वल, स्वसृम, अंजिक, नरक, कालनाभ, सरमान और शक्तिशाली स्वरकल्प। ये श्रेष्ठ दानव दनु के वंश को बढ़ाने वाले हुए॥८७-८९॥ उनके सैकड़ों और हजारों पुत्र और पौत्र हुए। संह्लाद नामक दैत्य के कुल में निवातकवच नामक बड़े तपस्वी पुत्रगण उत्पन्न हुए॥९०॥ उनके मणिवती में निवास करने वाले तीन करोड़ पुत्र उत्पन्न हुए। ये भी देवताओं से न मारने योग्य हुए और अर्जुन के द्वारा मारे गये।

---

१ क ०नवा वै म०। २ग ०षां प्रसरस्य तु। ३ ग ग ०पदानवी हय०। ४ क ग महापुत्ये। ५ ग ०त्ये मारी०। ६ ०ष्टिरष दिनिन०। ७ ग ०न। मारी०। ८ कालेयाः। ९ क ०ता। सिंस स्वनाख। ग ०ता। शल शल्यस्वव०। १० ग कल्पो। ११ क ग. ०तापी नमु०। १२ ग ०ल्वकेष स्मृ०। १३ क अंजिको। १४ क ०मानामनदचैव। १५ क तु। १६ क ०नवर्ध०।

[1]क्रौञ्ची श्येनी च भासी च सुग्रीवी शुचिगृध्रिका। [2]क्रौञ्ची [3]तु जनयामास उलूकप्रत्यलूककान् ॥९३॥
श्येनी श्येनांस्तथा भासी भासान्गृधाश्च गृध्य्रपि। शुचिरौदकान्पक्षिगणान्सुग्रीवी तु द्विजोत्तमाः ॥९४॥
अश्वानुष्ट्रान् गर्द्दभांश्च ताम्रावंशः[4] प्रकीर्त्तित.[5]। [6]विनतायास्तु द्वौ पुत्रौ विख्यातौ गरुडारुणौ ॥९५॥
[7]गरुडः पततां श्रेष्ठो दारुणः स्वेन कर्म्मणा। सुरसायाः सहस्रन्तु सर्पाणाममितौजसाम् ॥९६॥
अनेकशिरसां विप्राः खचराणां महात्मनाम्। काद्रवेयास्तु बलिनः[8] सहस्रममितौजसः ॥९७॥
सुपर्णवशगा नागा जज्ञिरे नैकमस्तकाः। येषां प्रधानाः सततं शेषवासुकितक्षका. ॥९८॥
ऐरावतो महापद्मः कम्बलाश्वतरावुभौ। एलापत्रश्च शङ्खश्च कर्कोटकधनञ्जयौ ॥९९॥
महानीलमहाकर्णौ धृतराष्ट्रबलाहकौ। कुहरः पुष्पदंष्ट्रश्च दुर्म्मुखः सुमुखस्तथा ॥१००॥
शङ्खश्च शङ्खपालश्च कपिलो[9] वामनस्तथा। नहुषः शङ्खरोमा च मणिरित्येवमादयः ॥१०१॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः। चतुर्दशसहस्राणि[10] क्रूराणामनिलाशिनाम् ॥१०२॥
गणं क्रोधवशं विप्रास्तस्य सर्व्वे च दंष्ट्रिणः। स्थलजाः पक्षिणोऽब्जाश्च धरायाः प्रसवा. स्मृताः ॥१०३॥
गास्तु वै जनयामास [11]सुरभिर्महिषीस्तथा। इरा वृक्षलता वल्लीस्तृणजातीश्च सर्व्वश[12] ॥१०४॥
खसा तु यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा। अरिष्टा तु[13] महासिद्धा गंधर्व्वानमितौजसः ॥१०५॥

ताम्रा के छह भाग्यशालिनी कन्याए हुई ॥९१-९२॥ क्रौञ्ची, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि और गृध्रिका। ब्राह्मण-शिरोमणि! क्रौञ्ची ने उलूको (उल्लू पक्षी) और प्रत्यलूकका को, श्येनी ने श्येनो (बाजो) को, भासी ने भासो को, गृध्री ने गिद्धो को, शुचि ने जल पक्षियो को और सुग्रीवी ने घोडो, ऊँटो और गधो को उत्पन्न किया। यह ताम्रा-वश कहलाया ॥९३-९४½॥ विनता के दो प्रसिद्ध पुत्र हुए—गरुड और अरुण ॥९५॥ पक्षियो मे श्रेष्ठ गरुड अपने कर्म से भयकर हुआ। द्विजवृन्द! सुरसा से अत्यन्त तेजस्वी, आकाशचारी, मनस्वी और अनेक फन वाले हजार साँप हुए। कद्रू के महान् शक्तिशाली किन्तु गरुड के अधीनस्थ और अनेक शिरवाले नाग हुए, जिनमे सदा शेष, वासुकि और तक्षक प्रधान रहे ॥९६-९८॥ ऐरावत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, एलापत्र, शख, कर्कोटक, धनजय, महानील, महाकर्ण, धृतराष्ट्र, बलाहक, कुहर, पुष्पदष्ट्र, दुर्मुख, सुमुख, शख, शखपाल, कपिल, वामन, नहुष, शखरोमा, मणि इत्यादि नागो के नाम है ॥९९-१०१॥ उनके सैकडो हजारो पुत्र-पौत्र हुए। द्विजगण! उन क्रूर साँपो की सख्या चौदह हजार थी ॥१०२॥ वे सब क्रोधी और बडे बडे दाँतो वाले थे। जल और स्थल मे उत्पन्न पक्षी पृथिवी की सतान माने गये हैं ॥१०३॥ सुरभि ने गायो और भैसो को उत्पन्न किया। इरा ने वृक्षो, लताओ और सपूर्ण तृण जाति को उत्पन्न किया ॥१०४॥ खसा से यक्ष और राक्षसो की एवम् मुनि से अप्सरा की उत्पत्ति हुई। महासिद्ध अरिष्टा ने अत्यन्त तेजस्वी गन्धर्वों को उत्पन्न किया ॥१०५॥ ये स्थावर और जगम कश्यपजी के वशज कहलाते है, जिनके

---

१ ख क्रौ॰ची। २ ख क्रौ॰ची। ३ ग ॰ञ्ची क्रौञ्चानजनयदुलू॰। ४ ख ग ॰वशा प्र॰। ५ ख ग ॰र्तिता। वि॰। ६ क ख ॰याश्च पुत्रौ द्वावरुणो गरुडस्तथा। ७ ख ग सुपर्ण। ८ क ॰ष्ट्रमहाबलौ। कु॰। ९ ख ॰लो मानसस्त॰। १० क ॰णि सर्पाणा॰। ११ ग ॰हिषास्त॰। १२ क ॰शः। शरमा य॰। १३ क.ख महासत्वा।

एते कश्यपदायादाः कीर्त्तिताः स्थाणुजङ्गमाः। येषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥१०६॥
एष[1] मन्वन्तरे विप्राः सर्गः[2] स्वारोचिषे स्मृतः[3]। वैवस्वतेऽतिमहति वारुणे वितते क्रतौ ॥१०७॥
जुह्वानस्य ब्रह्मणो वै प्रजासर्ग इहोच्यते। पूर्व्वं यत्र समुत्पन्नान्ब्रह्मर्षीन्सप्त मानसान् ॥१०८॥
पुत्रत्वे कल्पयामास स्वयमेव पितामहः। ततो विरोधे[4] देवानां दानवानां च भो द्विजाः ॥१०९॥
दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम्। कश्यपस्तु प्रसन्नात्मा सम्यगाराधितस्तया ॥११०॥
वरेण च्छन्दयामास सा च वव्रे वरं तदा। पुत्रमिन्द्रवधार्थाय समर्थममितौजसम् ॥१११॥
स च तस्मै वरं प्रादात् प्रार्थितं सुमहातपा। दत्त्वा च [5]वरमत्युग्रो [6]मारीच समभाषत ॥११२॥
इन्द्रं पुत्रो निहन्ता ते गर्भं वै शरदां शतम्। यदि धारयसे शौचतत्परा व्रतमास्थिता ॥११३॥
तथेत्यभिहितो भर्त्ता तया देव्या महातपाः। धारयामास गर्भं तु शुचिः सा मुनिसत्तमाः ॥११४॥
ततोऽभ्युपागमद्दित्यां गर्भमाधाय कश्यपः। रोधयन् वै गणं श्रेष्ठं देवानाममितौजसम् ॥११५॥
तेजः संहृत्य दुर्धर्षमवध्यममरैरपि। जगाम पर्वतायैव तपसे [7]संशितव्रता ॥११६॥
तस्याश्चैवान्तरप्रेप्सुरभवत् पाकशासनः। [8]जाते वर्षशते चास्या ददर्शान्तरमच्युतः ॥११७॥
अकृत्वा पादयोः शौचं दितिः शयनमाविशत्। निद्रां चाहारयामास तस्यां कुक्षिं प्रविश्य सः[11] ॥११८॥
वज्रपाणिस्ततो गर्भं सप्तधा तं न्यकृन्तयत्। स पाट्यमानो गर्भोऽथ वज्रेण प्ररुरोद ह ॥११९॥

सैकड़ों-हज़ारों पुत्र-पौत्र हैं ॥१०६॥ द्विजगण! स्वारोचिष नामक मन्वन्तर में यह सृष्टि हुई। अब वैवस्वत नामक अत्यन्त महान् मन्वन्तर में वरुण के विस्तृत यज्ञ में आहुति देते हुए ब्रह्माजी की प्रजा-सृष्टि के बारे में मैं कहूँगा ॥१०७॥ ब्रह्मा ने पहले सात महर्षियों की मानसी सृष्टि की थी ॥१०८॥ द्विजवृन्द! देव-दानव-युद्ध में अपने दैत्य-पुत्रों के मर जाने पर दिति ने कश्यप को सन्तुष्ट किया ॥१०९॥ दिति द्वारा सम्पूजित प्रसन्न ऋषि कश्यप ने उससे वर माँगने के लिए कहा। जब उसने इन्द्र के वध के लिये अत्यन्त तेजस्वी समर्थ पुत्र को वरदान रूप में माँगा तो उस महान् तपस्वी ने उसे अभीष्ट वरदान दे दिया। वर देने के बाद अति उग्र होकर कश्यप ने दिति से कहा—॥११०—११२॥ 'तुम्हारा पुत्र इन्द्र हन्ता होगा, यदि तुम पवित्रतापूर्वक व्रत करते हुए सौ वर्षों तक गर्भ धारण करो ॥११३॥ मुनिश्रेष्ठ! उस देवी ने महान् तपस्वी स्वामी से 'ऐसा ही करूँगी' कहकर पवित्रतापूर्वक गर्भ धारण किया ॥११४॥ तब कश्यप अत्यन्त तेजस्वी और श्रेष्ठ देवसमूह को रोकते हुए देवताओं से भी अवध्य अपने उत्कृष्ट तेज को दिति के गर्भ में स्थापित करके तपस्या के लिये पर्वत पर चले गये ॥११५-११६॥ इन्द्र दिति के गर्भ में प्रवेश करने का अवसर ताकने लगा। सौ वर्ष बीत जाने पर इन्द्र को अवसर मिला ॥११७॥ (एक दिन) दिति बिना पैर धोये शय्या पर जाकर सो गई। हाथ में वज्र लिए हुए इन्द्र ने उसके पेट में पैठ कर (वज्र से) उस गर्भ के सात टुकड़े कर दिए ॥११८॥ वज्र से खण्डित किए जाते समय गर्भ (स्थित

---

१ क. सता। २ क एवं। ३ ग सर्गे। ४ ग स्मृता। ५ ख ग विरोधा। ६ ख ०मत्युग्रो। ७ ग ०रीचस्तामः। ८ ग ०पायमापाद गर्भनाशाय वासवः। ते०। ९ क ०व्रत। त०। १० ग उन। ११ ग ह।

मा रोदीरिति तं शक्र[1] पुनः[2]पुनरथाब्रवीत्। सोऽभवत् सप्तधा गर्भस्तमिन्द्रो रुषितः पुनः॥१२०॥
एकैकं सप्तधा चक्रे वज्रेणैवारिकर्षणः। मरुतो नाम ते देवा[3] बभूवुर्द्विजसत्तमाः॥१२१॥
यथोक्तं वै मघवता तथैव मरुतोऽभवन्। देवाश्चैकोनपञ्चाशत्सहाया वज्रपाणिनः॥१२२॥
तेषामेवं प्रवृत्तानां भूतानां द्विजसत्तमाः। रोचयन् वै गणश्रेष्ठान् देवानाममितौजसाम्॥१२३॥
निकायेषु निकायेषु[5]हरिः प्रादात् प्रजापतीन्[4]। क्रमशस्तानि राज्यानि पृथुपूर्वाणि भो,द्विजा॥१२४॥
स हरिः पुरुषो वीरः कृष्णो जिष्णुः प्रजापतिः। [6]पर्जन्यस्तपनोऽ[7]नन्तस्तस्य सर्वमिदं जगत्॥१२५॥
भूतसर्गमिमं सम्यग्जानतो द्विजसत्तमाः। नावृत्तिभयमस्तीह परलोकभयं कुतः[8]॥१२६।

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे देवसुराणामुत्पत्तिकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

पृथुमारभ्य सर्वदेवदानवादीनां राज्याभिषेक-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

[9]अभिषिच्याधिराजेन्द्रं[9] पृथुं वैन्यं पितामहः। ततः क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे॥१॥

शिशु) रोने लगा॥११९॥ इन्द्र ने उससे कहा—'मत रोओ।' उस गर्भ के सात भाग हो गये। शत्रु को दमन करने वाले इन्द्र ने क्रोध करके वज्र ही से एक एक के सात सात टुकड़े कर दिये॥१२०॥ विप्रवर्य वे मरुत् (वायु) नामक देवता हुए॥१२१॥ जैसे इन्द्र ने कहा, वैसे ही वे उनचासों वायु देवता इन्द्र के सहायक बन गये॥१२२॥ द्विजवर्य! इस प्रकार उत्पन्न हुए प्राणियों तथा अत्यन्त तेजस्वी देवताओं के समूह को प्रसन्न करने वाले हरि ने राजा पृथु के बाद के राज्यों को प्रत्येक समूह में प्रजापतियों को दे दिया॥१२३-१२४॥ द्विजवर! वही हरि पुरुष, वीर, कृष्ण, जिष्णु, प्रजापति मघ, सूर्य और अनन्त (शेष) कहलाता है। उससे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है।॥१२५॥ जो व्यक्ति इस प्राणि-सृष्टि को जानता है, उसका फिर जन्म नहीं होता, परलोक का तो उसे भय ही क्या है?॥१२६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में देवता और राक्षस की उत्पत्ति कथन नामक तीसरा अध्याय समाप्त॥३॥

अध्याय ४

पृथु से लेकर सभी देव-दानवों के राज्याभिषेक का वर्णन

लोमहर्षण बोले—वेन के पुत्र पृथु का राज्याभिषेक कर ब्रह्मा क्रम से राज्यों का वितरण करने लगे॥१॥

---

१ ख ०नरथाच ह। २ ख वाला। ३ क हरि। ग हवि। ४ क ०पतिम्। क०। ग ०पति। क०। ५ ख ०पश्चा व्यक्त कृष्ण रा०। ६ ग ०नो व्यक्तरत०। ७ क न च। ८ क अध्यापयच्च रा०। ९ ग ०च्याऽऽदिरा०।

द्विजानां वीरुधां चैव नक्षत्रग्रहयोस्तथा। यज्ञानां तपसां चैव सोमं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥२॥
[1]अपां तु वरुणं राज्ये राज्ञां वैश्रवणं पतिम्। आदित्यानां तथा विष्णुं वसूनामथ पावकम् ॥३॥
प्रजापतीनां दक्षं तु मरुतामथ वासवम्। दैत्यानां दानवानां वै प्रह्लादममितौजसम् ॥४॥
वैवस्वतं पितृणाञ्च यमं राज्येऽभ्यषेचयत्। यक्षाणां राक्षसानाञ्च पार्थिवानां तथैव च॥५॥
सर्व्वभूतपिशाचानां गिरीशं शूलपाणिनम्। शैलानां हिमवन्तञ्च नदीनामथ सागरम् ॥६॥
गंधर्व्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथं प्रभुम्। नागानां वासुकिं चक्रे सर्पाणामथ तक्षकम् ॥७॥
वारणानां तु राजानमैरावतमथादिशत्। उच्चैःश्रवसमश्वानां गरुडञ्चैव पक्षिणाम् ॥८॥
मृगाणामथ शार्दूलं गोवृषन्तु गवां पतिम्। वनस्पतीनां राजानं [2]प्लक्षमेवाभ्यषेचयत् ॥९॥
एवं विभज्य राज्यानि [3]क्रमेणैव पितामहः। दिशां पालानथ ततः स्थापयामास स प्रभुः॥१०॥
पूर्व्वस्यां दिशि पुत्रं तु वैराजस्य प्रजापतेः। दिशः पालं सुधन्वानं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥११॥
दक्षिणस्यां[4] दिशि तथा कर्द्दमस्य प्रजापतेः। पुत्रं [5]शङ्खपदं नाम राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥१२॥
पश्चिमस्यां दिशि तथा रजसः पुत्रमच्युतम्। केतुमन्तं महात्मानं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥१३॥
तथा हिरण्यरोमाणं पर्ज्जन्यस्य प्रजापतेः। उदीच्यां दिशि दुर्द्धर्षं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥१४॥
तैरियं पृथिवी सर्व्वा सप्तद्वीपा सपत्तना। यथाप्रदेशमद्यापि धर्म्मेण प्रतिपाल्यते ॥१५॥
[6]राजसूयाभिषिक्तस्तु पृथुरेतैर्नराधिपैः। वेददृष्टेन विधिना [7]राजा राज्ये नराधिपः ॥१६॥

ब्राह्मण, लता, नक्षत्र, ग्रह यज्ञ और तपस्या के राज्य में उन्होंने सोम को अभिषिक्त किया ॥२॥ जल का राज्य वरुण को दिया और कुबेर को राजाओं का स्वामी बनाया। विष्णु को आदित्यों का राजा, अग्नि को वसुओं का, दक्ष को प्रजापतियों का, इन्द्र को मरुतों का और अत्यन्त तेजस्वी प्रह्लाद को दैत्यों और दानवों का, सूर्यपुत्र यम को पितरों का तथा यक्ष, राक्षस राजा, सम्पूर्ण भूत और पिशाचों का स्वामी शूलपाणि महादेव जी को बनाया ॥३-५½॥ हिमालय को पहाड़ों का राजा, समुद्र को नदियों का, चित्ररथ को गन्धर्वों का, वासुकि को नागों का, तक्षक को सांपों का, ऐरावत हाथियों का, उच्चैःश्रवा को घोड़ों का, गरुड़ को पक्षियों का, बाघ को मृगों का, बैल को गौओं का और बरगद को वनस्पतियों का राजा बनाया ॥६-९॥ इस प्रकार क्रमशः राज्यों को बांटकर प्रभु ब्रह्मा ने दिशाओं की स्थापना की ॥१०॥ पूर्व दिशा का राजा वैराज प्रजापति के पुत्र सुधन्वा को बनाया ॥११॥ दक्षिण दिशा में कर्दम प्रजापतिके पुत्र शङ्खपद को राजा बनाया ॥१२॥ पश्चिम दिशा का राजा रजस् के पुत्र महात्मा केतुमान् को बनाया ॥१३॥ और उत्तर दिशा में पर्जन्य प्रजापति के पुत्र प्रचण्ड तेजस्वी हिरण्यरोमा को राजा बनाया ॥१४॥ उन राजाओं द्वारा अब तक सातों द्वीप, नगर और प्रदेश सहित इस पृथिवी का धर्मपूर्वक पालन हो रहा है ॥१५॥ इन राजाओं ने राजसूय याग में अभिषिक्त पृथु को वेद में बतलाये हुए विधान के अनुसार राजा बनाया ॥१६॥

---

१ ग आपे। २ क प्रभुम्। ३ क ग ०मेण प्रपि०। ४ क ख ०स्यां महात्मानं क०। ५ क शस्त्रप्रद। ६ ०सूयेऽभि०। ७ क. ख राजरा०।

ततो मन्वन्तरेऽतीते चाक्षुषेऽमिततेजसि। वैवस्वताय मनवे पृथिव्यां[1] राज्यमादिशत् ॥१७॥
तस्य विस्तरमाख्यास्ये मनोर्वैवस्वतस्य ह। [2]भवतां चानुकूल्याय यदि श्रोतुमिहेच्छथ।
महदेतदधिष्ठानं पुराणे तदधिष्ठितम्। ॥१८॥

मुनय ऊचुः

विस्तरेण पृथोर्जन्म लोमहर्षण कीर्त्तय। यथा महात्मना तेन दुग्धा[3] वेयं वसुन्धरा ॥१९॥
यथा[4] चापि नृभिर्दुग्धा यथा [5]देवैर्महर्षिभि[5]। यथा दैत्यैश्च नागैश्च यथा यक्षैर्यथा द्रुमैः ॥२०॥
यथा शैलैः पिशाचैश्च गंधर्वैश्च द्विजोत्तमैः[5]। राक्षसैश्च महासत्त्वैर्यथा दुग्धा वसुन्धरा ॥२१॥
तेषा पात्रविशेषांश्च वक्तुमर्हसि सुव्रत। [6]वत्सक्षीरविशेषाश्च दोग्धारं चानुपूर्व्वशः[7] ॥२२॥
यस्माच्च कारणात् पाणिर्वेणस्य मथितः पुरा। क्रुद्धैर्महर्षिभिस्तात कारणं [8]तच्च कीर्त्तय ॥२३॥

[8]लोमहर्षण उवाच

शृणुध्व कीर्त्तयिष्यामि पृथोर्वैण्यस्य विस्तरम्। एकाग्रा[9] [9]प्रयताश्चैव पुण्यार्थं वै [10]द्विजर्षभा[10] ॥२४॥
नाशुचे[11] क्षुद्रमनसो नाशिष्यस्याव्रतस्य च[11]। कीर्त्तयेयमिदं विप्राः कृतघ्नायाहिताय च ॥२५॥
स्वर्ग्यं[12] यशस्यमायुष्य धन्य वेदैश्च सम्मितम्। रहस्यमृषिभिः[13] प्रोक्तं शृणुध्व वै यथातयम् ॥२६॥
यश्चेमं[13] कीर्त्तयेन्नित्यं पृथोर्वैण्यस्य विस्तरम्। ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य न स शोचेत्कृताकृतम् ॥२७॥

इसके अनतर अत्यत तेजस्वी चाक्षुष मन्वन्तर बीत जाने पर वैवस्वत मनु को पृथिवी का राज्य चलाने के लिए ब्रह्मा ने आदेश दिया ॥१७॥ यदि आप सुनना चाहेंगे तो उस वैवस्वत मनु का विस्तृत वर्णन मैं आप लोगों के कल्याण के लिये करूँगा। यह महान् चरित्र पुराण म चित्रित किया गया है ॥१८॥

मुनियो ने कहा—आर्य लोमहर्षण! पृथु की जन्म कथा का विस्तृत वर्णन कीजिये। जिस प्रकार उस महात्मा ने इस पृथिवी का दोहन किया, या जैसे राजाओ ने देवताओ ने महर्षियो ने दैत्यो ने, नागो ने यक्षो ने, वृक्षो ने, पहाडो ने, पिशाचो ने गन्धर्वो ने, द्विजवरो ने और महापराक्रमी राक्षसो ने पृथिवी का दुहा उनको भिन्न भिन्न पात्रो को, बछडो तथा दूध को और दुहने वालो को क्रमश बतलाइये ॥१९ २०॥ भगवन! पहले जिस कारण क्रुद्ध होकर महर्षियो ने वेण के हाथ का मथन किया था वह कारण भी बतलाइये ॥२३॥

लोमहर्षण बोले—ब्राह्मणश्रेष्ठो! वेण के पुत्र पृथु का वर्णन मैं विस्तार से करूँगा। धर्म के लिये आप लोग एकाग्र और सावधान होकर सुनिये ॥२४॥ ब्राह्मणो! अपवित्र हृदयहीन, अशिष्य अव्रती, कृतघ्न और शत्रु को यह नहीं सुनाऊँगा ॥२५॥ ऋषियो ने इस रहस्य को स्वर्गप्रद यश, धन और आयु देने वाला तथा वेद-सम्मत कहा है। इसे यथार्थ रूप से सुनिये ॥२६॥ जो व्यक्ति ब्राह्मणो को नमस्कार करके वेण के पुत्र पृथु की कथा का विस्तृत वर्णन प्रतिदिन करेगा, वह विहित और अविहित कर्मों से दुःखी नहीं होगा ॥२७॥

---

१ ग ०थिवीरा०। २ क ०वतामानु०। ३ ख मृना। ४ ख ०था च पितृभि०। ५ क ख ०र्वैर्यर्षि०। ६ ख, वत्सान्क्षीर०। ७ क तत्प्रशी०। ८ क सूत। ९ ख प्रणता०। १० क ख द्विजोत्तमा। ११ ख वा। १२ ख ०र्ग्यं परममा०। १३ ख ०म कथये०।

आसीद्धर्म्मस्य संगोप्ता पूर्व्वमत्रिसमः प्रभुः। अत्रिवंशे समुत्पन्नस्त्वङ्गो नाम प्रजापतिः ॥२८॥
तस्य पुत्रोऽभवद्वेणो नात्यर्थं धर्म्मकोविदः। जातो मृत्युसुतायां वै सुनीथायां प्रजापतिः ॥२९॥
[1]स मातामहदोषेण तेन कालात्मजात्मजः। स्वधर्मं पृष्ठतः कृत्वा [2]कामलोभेष्ववर्त्तत ॥३०॥
मर्य्यादां [3]भेदयामास [4]धर्म्मोपेतां स पार्थिवः। वेदधर्म्मानतिक्रम्य सोऽधर्म्मनिरतोऽभवत् ॥३१॥
निःस्वाध्यायवषट्काराः प्रजास्तस्मिन् प्रजापतौ। प्रवृत्तं न पपुः सोमं हुतं यज्ञेषु देवताः ॥३२॥
न यष्टव्यं न होतव्यमिति तस्य प्रजापतेः। आसीत् प्रतिज्ञा क्रूरेयं विनाशे प्रत्युपस्थिते ॥३३॥
अहमिज्यश्च यष्टा च यज्ञश्चेति भृगूद्वह[5]। मयि[6]यज्ञो [7]विधातव्यो मयि होतव्यमित्यपि ॥३४॥
तमतिक्रान्तमर्य्यादमाददानमसाम्प्रतम् । ऊचुर्महर्षय[8] सर्व्वे मरीचिप्रमुखास्तदा ॥३५॥
वयं दीक्षां प्रवेक्ष्यामः संवत्सरगणान् बहून्। अधर्म्मं कुरु मा वेण एष[9] धर्म्मः सनातनः ॥३६॥
निधनेऽत्रेः प्रसूतस्त्वं प्रजापतिरसंशयम्। प्रजाश्च पालयिष्येऽहमिति[10] समयः कृतः ॥३७॥
तांस्तथा ब्रुवतः सर्व्वान्महर्षीनब्रवीत्तदा। वेणः प्रहस्य दुर्बुद्धिरिममर्थमनर्थवित् ॥३८॥

वेण उवाच

[11]स्रष्टा धर्म्मस्य कश्चान्यः श्रोतव्यं कस्य वा मया। श्रुतवीर्य्यतपःसत्यैर्मया वा कः समो भुवि ॥३९॥

पूर्वकाल में धर्म-संरक्षक और अत्रि-सदृश ऐश्वर्यशाली अंग नामक प्रजापति अत्रिवंश में उत्पन्न हुआ। ॥२८॥ उसका पुत्र वेण नामक धर्मज्ञ प्रजापति, मृत्यु की पुत्री सुनीथा से उत्पन्न हुआ ॥२९॥ वह मृत्युकन्यापुत्र अपने मातामह के दोष से स्वधर्म को छोड़कर काम और लोभ में प्रवृत्त हुआ ॥३०॥ और धार्मिक सीमाओं को तोड़-ताड़कर, वेद धर्मों का उल्लंघन कर पापाचरण में अनुरक्त हो गया ॥३१॥ उस प्रजापति के काल में प्रजा वेदाध्ययन और मन्त्र-जप से वंचित हो गई थी। यज्ञों में आहुति दिए हुए सोम का पान देवगण नहीं करते थे ॥३२॥ सर्वनाश उपस्थित होने पर उस प्रजापति की यह क्रूर आज्ञा थी—"कोई याग न करे, कोई हवन न करे" ॥३३॥ भृगुश्रेष्ठ! उसकी घोषणा थी कि—'मैं ही यज्ञ हूँ, यज्ञ करने योग्य और याज्ञिक हूँ। मुझे ही लक्ष्यकर यज्ञ और हवन करे" ॥३४॥ मर्यादा का उल्लंघन करने वाले और यज्ञों में अनुचित भाग लेने वाले उस प्रजापति से मरीचि-आदि मुनियों ने उसे समझाते हुए कहा—॥३५॥ वेण! हम लोग अभी बहुत वर्षों तक यज्ञ दीक्षा प्राप्त करेंगे। तुम अधर्म मत करो। यह सनातन धर्म है ॥३६॥ निःसंदेह तुम अत्रि से उत्पन्न प्रजापति हो। अत्रि के देहान्त होने पर तुमने प्रतिज्ञा की थी कि मैं प्रजा का पालन करूँगा ॥३७॥ महर्षियों द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर अर्थ से अनभिज्ञ दुर्बुद्धि वेण ने हँसकर कहा ॥३८॥

वेण ने कहा—मुझे छोड़ धर्म का निर्माता दूसरा कौन है? मैं किसका उपदेश सुनूँ? श्रुति, शक्ति, तपस्या और सत्य में मेरे बराबर संसार में कौन है? ॥३९॥ सब प्राणियों का विशेषकर धर्मों का उत्पत्ति-स्थान

---

१ ग. स्थिता०। २ ख ग. कामात्मासे०। ३ क ग. ०दास्थापयत्०। ४ क ग. धर्म्मे०। ५ ग. भृगूद्वह। ६ ग. यज्ञा। ७ ग. विधातव्या। ८ ग. मेन। ९ क. ०मिति हि स०। ग. ०मिति मे स०। १० क ख. वर्त्मा।

प्रभव सर्व्वभूताना धर्म्माणा च विशेषत । सम्मूढा न विदुर्नूनं भवन्तो[1] मा विचेतस ॥४०॥
इच्छन् दहेय पृथिवीं प्लावयेय जलैस्तथा। द्या वै भुव च रुन्धेय नात्र कार्य्या विचारणा ॥४१॥
यदा न शक्यते मोहादवलेपाच्च पार्थिव । अपनेतु तदा वेणस्तत क्रुद्धा महर्षय ॥४२॥
त निगृह्य महात्मानो विस्फुरन्त महाबलम्। [2]ततोऽस्य सव्यमूरु ते ममन्थुर्जातमन्यव ॥४३॥
[3]तस्मिन्निर्मथ्यमाने वै राज्ञ ऊरौ तु जज्ञिवान्। ह्रस्वोऽतिमात्र पुरुष कृष्णश्चेति बभूव ह ॥४४॥
स भीत प्राञ्जलिर्भूत्वा तस्थिवान् द्विजसत्तमा । तमत्रिर्विह्वल दृष्ट्वा निषीदेत्यब्रवीत्तदा ॥४५॥
निषादवशकर्त्तासौ बभूव वदता वरा[4]। धीवरानसृजच्चापि वेणकल्मषसम्भवान् ॥४६॥
ये चान्ये विन्ध्यनिलयास्तथा[5] पर्व्वतसश्रया । अधर्म्मरुचयो विप्रास्ते तु वै वेणकल्मषा ॥४७॥
तत पुनर्महात्मान पाणि वेणस्य दक्षिणम्। अरणीमिव [6]सरब्धा ममन्थुर्जातमन्यव ॥४८॥
पृथुस्तस्मात समुत्पन्न कराज्ज्वलनसन्निभ । दीप्यमान स्ववपुषा साक्षादग्निरिव[7] ज्वलन[8]॥४९॥
अथ सोऽजगव नाम धनुर्गृह्य महारवम्। शराश्च दिव्यान् रक्षार्थं कवच च महाप्रभम ॥५०॥
तस्मिन् जातेऽथ भूतानि सम्प्रहृष्टानि[9] सर्व्वश । समापेतुर्महाभागा वेणस्तु त्रिदिव ययौ ॥५१॥
समुत्पन्नेन भो विप्रा सत्पुत्रेण महात्मना। त्रात स पुरुषव्याघ्र पुन्नाम्नो नरकात्तदा ॥५२॥
त समुद्राश्च नद्यश्च रत्नान्यादाय सर्व्वश । तोयानि चाभिषेकार्थ सर्व्व एवोपतस्थिरे ॥५३॥

मैं हूँ। आप लोग मूढ और हृदयहीन है निश्चय ही मुझे नहीं पहचानते है॥४०॥ मैं चाहूँ तो पृथिवी को जला दूँ, जल से बहा दूँ, पृथिवी और आकाश को रोक दूँ इसमें सन्देह न कीजिये ॥४१॥ जब मुनि लोग राजा वेण को अज्ञान और अहकार से अलग नहीं कर सके तब उनको क्रोध आ गया॥४२॥ और उस तेजस्वी महाबली को छटपटाते से पकड कर क्रोध से उसकी बायी जाघ का मथन किया॥४३॥ मथन पर उसकी जघा से एक बहुत छोटा और कृष्णवर्ण पुरुष उत्पन्न हुआ॥४४॥ द्विजवर! वह नवजात पुरुष डरा हुआ सा हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। उसे व्याकुल देखकर अत्रि ने बैठ जाने को कहा॥४५॥ मुनिवर! वह निषादवश का कर्ता हुआ तथा वेण के पाप से उत्पन्न धीवरों (मल्लाहो) का भी स्रष्टा हुआ॥४६॥ विप्रवृन्द वेण के पाप से उत्पन्न अधर्मपरायण वे धीवर विन्ध्यपर्वत एव अन्य पहाड़ों के आश्रय मे रहने लगे॥४७॥ उसके बाद क्रुद्ध मुनिगण वेण के दाहिने हाथ को अरणी (यज्ञीय अग्नि मथन काष्ठ) की तरह मथने लगे॥४८॥ उस हाथ से साक्षात अग्नि के समान दीप्तिमान पृथु उत्पन्न हुआ॥४९॥ प्रजा की रक्षा के लिये उसने भयकर ध्वनि कारक अजगव नामक धनुष तथा दिव्य बाणों और द्युतिमान कवच को धारण किया॥५०॥ महानुभावगण! पृथु के उत्पन्न होने पर सभी प्राणी हर्षित होकर उसके पास पहुँचे। वेण तो स्वर्ग चला गया था॥५१॥ द्विजवर! महात्मा सत्पुत्र के जन्म लेने से वह पुरुषश्रेष्ठ वेण पुन्नामक नरक से बच गया॥५२॥ सब ओर से समुद्र और नदियाँ पृथु के अभिषेक के लिये रत्न और जल लेकर उपस्थित हुई॥५३॥ देवताओं और अगिरा-पुत्रों के साथ

---

1 ख ०न्तो मामच०। 2 क ०तोऽपस०। 3 क ख तस्मिंस्तु म०। 4 ख वर.। 5 ख ०यास्तुपारास्तुम्बुरस्तथा। अ०। ग यास्तुपारास्तुम्बुरास्तथा। अ०। 6 क ग सक्रुद्धा। 7 क ०रिवापर। अ०। 8 क ग ०न्। आवभाज०। 9 ग ०प्रकृष्टा०।

पितामहश्च भगवान् देवैराङ्गिरसैः सह। स्थावराणि च भूतानि जङ्गमानि च सर्व्वशः ॥५४॥
समागम्य[1] तदा वैण्यमभ्यषिञ्चन्नराधिपम्। महता राजराजेन प्रजास्तेनानुरञ्जिताः ॥५५॥
सोऽभिषिक्तो महातेजा विधिवद्धर्म्मकोविदैः। आधिराज्ये तदा राज्ञां पृथुर्वैण्यः प्रतापवान् ॥५६॥
पित्रापरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः। अनुरागात्ततस्तस्य नाम राजाभ्यजायत ॥५७॥
आपस्तस्तम्भिरे तस्य समुद्रमभियास्यतः। पर्व्वताश्च ददुर्म्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥५८॥
अकृष्टपच्या पृथिवी सिध्यन्त्यन्नानि[2] चिन्तनात्[3]। सर्व्वकामदुधा गावः पुटके पुटके मधु ॥५९॥
एतस्मिन्नेव काले तु यज्ञे पैतामहे शुभे। सूतः सूत्यां समुत्पन्नः सौत्येऽहनि महामतिः ॥६०॥
तस्मिन्नेव महायज्ञे यज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः। पृथोः स्तवार्थं तौ तत्र समाहूतौ महर्षिभिः ॥६१॥
तावूचुर्ऋषयः सर्व्वे स्तूयतामेष पार्थिवः। कर्म्मैतदनुरूपं वां पात्रं चायं नराधिपः ॥६२॥
तावूचतुस्तदा सर्व्वांस्तानृषीन् सूतमागधौ। आवां देवानृषींश्चैव प्रीणयावः स्वकर्म्मभिः ॥६३॥
न चास्य विद्मो वै कर्म्म[4] नाम[5] वा लक्षणं[6] यशः। स्तोत्रं येनास्य कुर्म्याव[7] राज्ञस्तेजस्विनो द्विजाः ॥६४॥
ऋषिभिस्तौ नियुक्तौ तु भविष्यैः स्तूयतामिति। यानि कर्म्माणि कृतवान् पृथुः पश्चान्महाबलः ॥६५॥
ततः प्रभृति[8] वै लोके स्तवेषु मुनिसत्तमाः। आशीर्वादाः प्रयुज्यन्ते सूतमागधवन्दिभिः ॥६६॥
तयोः स्तवान्ते सुप्रीतः पृथुः प्रादात्प्रजेश्वरः। अनूपदेशं सूताय मगधं मागधाय च ॥६७॥

ब्रह्मा, स्थावर और जंगम प्राणी सब तरफ से आकर वेणु-पुत्र (पृथु) का राज्याभिषेक करने लगे॥५४॥ महाराज पृथु ने प्रजावर्ग को हर भाँति से प्रसन्न किया॥५५॥ तब धर्मज्ञों ने महान् तेजस्वी पृथु का सविधि राज्याभिषेक किया॥५६॥ (आचरण से) जो प्रजा उनके पिता से विरक्त थी, उसे उन्होंने पुनः अनुरक्त बना लिया। प्रजा द्वारा अनुराग किये जाने के कारण पृथु का नाम राजा पड़ गया। ॥५७॥ महाप्रतापी राजा पृथु जब समुद्र की तरफ गमन करता था तो समुद्र का जल स्तम्भित हो जाता था और पर्वत उसे रास्ता दे देते थे। उसकी पताका कभी नहीं झुकी ॥५८॥ बिना बीज बोये ही केवल चिन्तन से ही पृथिवी अन्न उत्पन्न करती थी। गायें इच्छानुसार दूध देती थीं। दोना भर भर शहद मिलती थी॥५९॥ इसी समय ब्रह्मा के मंगलमय यज्ञ में सूती से महामति सूत सौत्य नामक दिन में उत्पन्न हुआ॥६०॥ और उसी महायज्ञ में विद्वान् मागध भी उत्पन्न हुआ। महर्षियों ने सूत और मागध को पृथु की स्तुति करने के लिये वहाँ आमन्त्रित किया॥६१॥ ऋषियों ने सूत और मागध से पृथु की स्तुति करने के लिए प्रार्थना करते हुए कहा—'यह कार्य आपके योग्य है और यह राजा भी सुपात्र है'॥६२॥ तब सूत और मागध ने ऋषियों से कहा—'द्विजगण! हम दोनों अपने कर्मों से देवताओं और ऋषियों को संतुष्ट करेंगे॥६३॥ किन्तु तेजस्वी राजा के कर्म, नाम, लक्षण, और यश से अपरिचित होने के कारण हम कैसे स्तुति करें'॥६४॥ ऋषियों ने उनसे कहा—'भविष्यत् कर्मों से आप स्तुति कीजिये।' मुनिश्रेष्ठ! तब से लेकर महाबलवान् पृथु ने जितने जो कर्म किये, उन सब का प्रयोग सूत, मागध और बंदी जन आशीर्वाद के रूप में करने लगे॥६५-६६॥ उनकी स्तुति के अन्त में प्रजा के स्वामी पृथु ने प्रसन्न

---

१ क ०म्य दुर्वैण्य०। २ ०भ्यन्यन्न। स०। ३ ग. चिन्तया। ४ख ०र्मं न तथा ल०। ५ क. नास्य ल०। ६ क ०क्षणमञ्जसा। स्तो०। ७ क ख. कुर्वो वै रा०। ८ घ. ख. ०ति वै लो०।

तं दृष्ट्वा परमप्रीताः प्रजाः[1] प्रोचुर्मनीषिणः। 'वृत्तीनामेष वो दाता भविष्यति नराधिप' ॥६८॥
ततो वैण्यं महात्मानं प्रजा. समभिदुद्रुवुः। त्वं नो वृत्तिं विधत्स्वेति महर्षिवचनात्तदा ॥६९॥
सोऽभिद्रुत[2] प्रजाभिस्तु प्रजाहितचिकीर्षया। धनुर्गृह्य पृषत्कांश्च [3]पृथिवीमाद्रवद्बली ॥७०॥
ततो [4]वैण्यभयत्रस्ता गौर्भूत्वा प्राद्रवन्मही। तां पृथुर्धनुरादाय द्रवन्तीमन्वधावत ॥७१॥
सा लोकान् ब्रह्मलोकादीन् गत्वा वैण्यभयात्तदा[5]। [6]प्रददर्शाग्रतो वैण्यं प्रगृहीतशरासनम् ॥७२॥
ज्वलद्भिर्निशितैर्बाणैर्दीप्ततेजसमन्ततः[7]। महायोगं महात्मानं दुर्द्धर्षममरैरपि ॥७३॥
अलभन्ती तु सा त्राणं वैण्यमेवान्वपद्यत। कृताञ्जलिपुटा भूत्वा पूज्या लोकैस्त्रिभिस्तदा ॥७४॥
[8]उवाच वैण्यं[9] नाधर्म्मं स्त्रीवधे परिपश्यसि। कथं धारयिता चासि प्रजा राजन् विना मया ॥७५॥
मयि लोकाः स्थिता[10] राजन्मयेदं धार्य्यते जगत्। मद्विनाशे विनश्येयुः प्रजा पार्थिव विद्धि तत् ॥७६॥
न मामर्हसि हन्तुं वै [11] श्रेयश्चेत्त्वं चिकीर्षसि। प्रजानां पृथिवीपाल श्रृणु चेदं वचो मम ॥७७॥
उपायत[12] समारब्धाः सर्व्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः। उपायं पश्य येन त्वं धारयेथा प्रजामिमाम् ॥७८॥
हत्वापि[13] मां न शक्तस्त्वं प्रजानां पोषणं नृप। अनुकूला भविष्यामि यच्छ कोपं [14]महामते ॥७९॥
अवध्यां च स्त्रियं [15]प्राहुस्तिर्य्यग्योनिगतेष्वपि[16]। [17]यद्येवं पृथिवीपाल[18] न धर्म्मं त्यक्तुमर्हसि ॥८०॥

होकर अनूप देश सूत को दिया और मगध देश मागध को॥६७॥ पृथु को देखकर अत्यन्त प्रसन्न विद्वानो ने प्रजाओ से कहा—'यह राजा तुम्हें जीविका प्रदान करेगा' ॥६८॥ तब महात्मा पृथु के पास जाकर प्रजा कहने लगी—'आप हमे जीविका दें।' तब महर्षियो के वचन से प्रजाओ से घिरे हुए बली पृथु ने प्रजा के कल्याण की इच्छा से धनुष और बाण लेकर पृथिवी को खदेडा ॥६९-७०॥ पृथु के भय से कांपती हुई पृथ्वी गाय का रूप धारण कर भागने लगी। भागती हुई पृथ्वी के पीछे धनुष लेकर पृथु भी दौडने लगा ॥७१॥ भयभीत पृथिवी ब्रह्म-लोक आदि सभी लोको मे गई, किन्तु उसने अन्त तक चमकते हुए तीक्ष्ण बाणो से कान्तिमान्, महायोगी, महात्मा और देवताओ से भी अजेय पृथु को अपने सामने धनुष लिए हुए देखा ॥७२-७३॥ कही त्राण न पाकर (अन्तत) पृथु की ही शरण मे जाकर वह त्रिभुवन-पूज्या पृथवी हाथ जोडकर उससे कहने लगी—॥७४॥ 'स्त्री के मारने मे अधर्म को आप नही देखते? राजन्! मेरे बिना प्रजाओ का धारण आप कैसे करेंगे? ॥७५॥ सब लोक मुझमे स्थित है। मैं ससार को धारण करती हूँ। राजन्! मेरा नाश हो जाने पर प्रजाओ का भी नाश ही समझिये ॥७६॥ यदि आप प्रजाओ का कल्याण करना चाहते हैं, तो मुझे न मारें। पृथ्वीपति! मेरी बात सुनिये ॥७७॥ उपाय करने से सब काम सिद्ध हो जाते हैं। इसलिये आप उपाय कीजिए, जिससे प्रजाओ का धारण कर सकें ॥७८॥ राजन्! मुझे मारकर भी प्रजाओ के पालन मे आप समर्थ नही हो सकते। महामतिमान्! क्रोध त्यागिये! मैं आपका कहना मानूंगी ॥७९॥ पक्षी-योनि मे जाने पर भी स्त्रियां अवध्य कही गई हैं। राजन्! यदि ऐसा है, तो आपके लिए धर्म का परित्याग करना

---

१ क ख ०जा प्राहुर्मं। २ग वृत्ति तामे०। ३ ख ०मार्दद्व०। ४ क वैण्यादपत्र ०। ५ क ०दा। द०। ६ क ०र्शाग्रे ततो वै०। ७ क ख ०मच्युतम्। म ०। ८ क चैन। ९ ग. ०ण्य माज्य०। १० ख स्थिरा। ११ क श्रेया यत्व। १२क. ०यसहिता रम्या स। १३ क ०पि मामश०। १४ ख. महीपते। ग. महायुत। १५ क. ०गता अपि। १६ ख पि। सपत्नम्पृथि०। १७ क. सपत्य। १८ क ०ल अप।

एव बहुविध वाक्य श्रुत्वा राजा महामना। कोप निगृह्य धर्म्मात्मा वसुधामिदमब्रवीत्[1] ॥८१॥

पृथुरुवाच

एकस्यार्थे[2] तु यो हन्यादात्मनो वा परस्य वा। बहून् वा [3]प्राणिनोऽनन्त भवेत्तस्येह पातकम् ॥८२॥
सुखमेधन्ति बहवो यस्मिस्तु निहतेऽशुभे। तस्मिन् हते नास्ति भद्रे[4] पातक चोपपातकम् ॥८३॥
सोऽह प्रजानिमित्त[5] त्वा हनिष्यामि वसुन्धरे। यदि मे [6]वचनान्नाद्य करिष्यसि जगद्धितम् ॥८४॥
त्वा निहत्याद्य बाणेन मच्छासनपराङ् मुखीम्। आत्मान प्रथयित्वाह प्रजा धारयिता स्वयम् ॥८५॥
सा त्व शासनमास्थाय मम धर्म्मभृता वरे। सञ्जीवय प्रजा सर्व्वा समर्था ह्यसि धारणे ॥८६॥
दुहितृत्व च मे गच्छ तत एनमह शरम्। नियच्छेय त्वद्वधार्थमुद्यन्त घोरदर्शनम् ॥८७॥

वसुधोवाच

सर्व्वमेतदह वीर विधास्यामि न सशय।[7] वत्स तु मम[8] सम्पश्य क्षरेय येन वत्सला ॥८८॥
समाञ्च कुरु सर्व्वत्र मा त्व धर्मभृता वर। यथा[9] विस्यन्दमान मे क्षीर सर्व्वत्र भावयेत् ॥८९॥

लोमहर्षण उवाच

तत उत्सारयामास शैलाञ्शतसहस्रश। धनुष्कोट्या तदा वैण्यस्तेन शैला विवर्द्धिता ॥९०॥
न हि पूर्व्वविसर्गे वै विषमे पृथिवीतले[10]। सविभाग पुराणा वा ग्रामाणा वाभवत्तदा ॥९१॥

उचित नही है' ॥८०॥ इस तरह की बहुत सी बात सुनकर महामना धर्मात्मा राजा शान्त हो पृथ्वी से कहने लगा ॥८१॥

पृथु ने कहा—भद्रे! एक अपने लिए अथवा दूसरे के लिए बहुत प्राणियो को अथवा एक को जो मारता है, उसको अनन्त पाप लगता है ॥८२॥ जिस पापी के मरने से बहुतेरे सुखी हो उसके मारने मे पाप और उपपाप नही लगता ॥८३॥ पृथ्वी! मेरी आज्ञा से यदि तुम ससार का कल्याण नही करती हो तो प्रजा के कारण मैं तुम्हे मार डालूगा ॥८४॥ शासन को न मानने वाली तुमको आज मार कर मैं प्रजा को धारण करने के लिए अपना विस्तार करूँगा ॥८५॥ अत हे धर्मधरणि तुम मेरा शासन स्वीकार कर प्रजा का पालन पोषण करो। प्रजा को धारण करने मे तुम पूर्ण समर्थ हो ॥८६॥ यदि तुम्हे मेरी पुत्री बनना स्वीकार हो तो तुम्हारे वध के लिये तैयार इस भयकर बाण को मैं रोक लू ॥८७॥

पृथिवी ने कहा—वीर! निःसन्देह मैं सब स्वीकार है। पर आप मेरे बछडे को देखिये जिससे मैं वात्सल्ययुक्त होकर दूध दू ॥८८॥ धर्मधरीण! आप मुझे सब ओर से समतल बना दें जिससे मेरा झरा हुआ दूध सब जगह पहुँच सके ॥८९॥

लोमहर्षण ने कहा—तब पृथु ने धनुष के सिरे से सैकडो हजारो पर्वतो को उखाड दिया। इससे पहाड बढ़ गये ॥९०॥ पहली सृष्टि मे जब पृथ्वी ऊची नीची ऊबड़-खाबड थी तब गाँवो या नगरो का विभाग नही

१ख ०त्। ए०। २ग० स्वार्थाय यो। ग० स्यार्थेन यो। ३ ङ ०नो भद्रे म०। ४ख शुभे। ५क ०मित्त त्वा। ६ख ०चनान्नाद्य। ७ख ० तस्यममृत प०। ८ग ०म त प०। ९ क यस्या। १० म ०ले। प्रवि०।

न शस्यानि न गोरक्ष्यं[1] न कृषिर्न वणिक्पथः। नैव सत्यानृतं चासीन्न लोभो न च मत्सरः॥९२॥
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन् साम्प्रतं समुपस्थिते। वैण्यात्प्रभृति वै विप्राः सर्व्वस्यैतस्य सम्भवः॥९३॥
यत्र यत्र समं त्वस्या भूमेरासीत्तदा द्विजाः। तत्र तत्र प्रजाः सर्व्वा निवासं समरोचयन्॥९४॥
आहारः फलमूलानि प्रजानामभवत्तदा। कृच्छ्रेण महता[2] युक्त इत्येवमनुशुश्रुम[3]॥९५॥
सा कल्पयित्वा वत्सं तु मनुं स्वायम्भुवं प्रभुम्। स्वपाणौ पुरुषव्याघ्रो दुदोह पृथिवीं[4] ततः॥९६॥
शस्यजातानि सर्व्वाणि पृथुर्वैण्यः प्रतापवान्। तेनान्नेन प्रजाः सर्व्वा वर्त्तन्तेऽद्यापि सर्व्वशः[5]॥९७॥
ऋषयश्च तदा देवाः [6]पितरोऽथ सरीसृपाः। दैत्या यक्षाः पुण्यजना गन्धर्व्वाः पर्व्वता नगाः॥९८॥
एते पुरा द्विजश्रेष्ठा दुदुहुर्धरणीं किल। क्षीरं वत्सश्च पात्रं च तेषां दोग्धा पृथक्पृथक्॥९९॥
ऋषीणामभवत्सोमो वत्सो दोग्धा बृहस्पतिः। क्षीरं तेषां तपो ब्रह्म पात्रं छन्दांसि भो द्विजाः॥१००॥
देवानां काञ्चनं पात्रं वत्सस्तेषां शतक्रतुः। [7]क्षीरमोजस्करं चैव दोग्धा च [8]भगवान्रविः॥१०१॥
पितॄणां राजतं पात्रं यमो वत्सः प्रतापवान्। अन्तकश्चाभवद्दोग्धा क्षीरं तेषां [9]सुधा स्मृता॥१०२॥
नागानां तक्षको वत्सः पात्रं चालाबुसञ्ज्ञकम्। दोग्धा त्वैरावतो नागस्तेषां क्षीरं विषं स्मृतम्॥१०३॥
असुराणां मधुर्दोग्धा क्षीरं मायामयं स्मृतम्। विरोचनस्तु वत्सोऽभूदायसं पात्रमेव च॥१०४॥
यक्षाणामामपात्रं तु वत्सो वैश्रवणः प्रभुः। दोग्धा रजतनाभस्तु क्षीरान्तर्धानमेव च॥१०५॥
[10]सुमाली राक्षसेन्द्राणां वत्सं क्षीरं च शोणितम्। दोग्धा रजतनाभस्तु कपालं पात्रमेव च॥१०६॥

हुआ था॥९१॥ अन्न गो-रक्षा, खेती वाणिज्य सत्य मिथ्या, लोभ, डाह—ये सब नहीं थे॥९२॥ द्विजवर्यं! वैवस्वत मन्वन्तर होने पर पृथु-काल में ही इनकी उत्पत्ति हुई॥९३॥ विप्रवृन्द! जहाँ-जहाँ पृथ्वी बराबर थी, वहाँ सर्वत्र प्रजा बसने लगी॥९४॥ उस समय की जनता परिश्रम और कष्ट से फल-मूल भोजन प्राप्त करती थी—ऐसा हमने सुना है॥९५॥ पुरुष-पुंगव पृथु ने समर्थ स्वायम्भुव मनु को बछड़ा बनाकर अपने हाथ से पृथ्वी को जब दुहा तो सभी प्रकार के अन्न पैदा हुए। उन्हीं भाज्यपदार्थों से जनता का पोषण अब भी हो रहा है॥९६-९७॥ द्विजवर! ऋषि, देवता, पितर, नाग, दैत्य यक्ष राक्षस गन्धर्व पहाड़, वृक्ष—इन्होंने पहले पृथिवी को दुहा॥९८॥ विप्रवृन्द! उनके दूध, बछड़ा, पात्र, दुहने वाला—ये सब अलग अलग व्यक्ति हुए॥९९॥ ऋषियों ने सोम को बछड़ा बृहस्पति को दुहनेवाला, और वेदों को दोहनी बनाकर तपस्या रूप दूध को दुहा॥१००॥ देवताओं ने स्वर्ण की दोहनी में इन्द्र को बछड़ा और भगवान् सूर्य को दुहने वाला बनाकर तेजस्कर दूध को दुहा॥१०१॥ पितरों ने चाँदी को पात्र, प्रतापी यम को बछड़ा, अन्तक (काल) को दुहने वाला बनाकर अमृत रूप दूध का दोहन किया॥१०२॥ नागों ने तक्षक को बछड़ा, तूंबी को पात्र, ऐरावत नाग को दुहनेवाला बनाकर विष रूप दूध को दुहा॥१०३॥ दैत्यों ने मधु (दैत्य) को दुहनेवाला, विरोचन (प्रह्लाद-पुत्र) को बछड़ा और लोहा को पात्र बनाकर माया रूप दूध को दुहा॥१०४॥ यक्षों ने काँच को पात्र, कुबेर को बछड़ा, रजतनाभ को दुहनेवाला बनाकर अन्तर्धान (छिप जाने की विद्या) रूप दूध को दुहा॥१०५॥ राक्षसों ने सुमाली को बछड़ा, रजतनाभ को दुहनेवाला और कपाल को पात्र बनाकर शोणित रूप

---

१ ग गोरक्ष। २ ख कृच्छ्र। ३ घ ०म। सक०। ४ क ०थिवीतलम्। ख ०। ५ ख सर्वतः। ६ क ०तर. ससं०। ख ०तरोऽपि स०। ७ ख. ०रमूर्जस्क०। ८ क ०वान्कवि। ९ ग स्वधा। १० ग सुमना।

गन्धर्व्वाणां चित्ररथो वत्सः पात्रं च पङ्कजम्। दोग्धा च सुरुचिः क्षीरं तेषां गन्धः शुचिः स्मृतः ॥१०७॥
शैलं पात्रं पर्व्वतानां क्षीरं रत्नौषधीस्तथा। वत्सस्तु हिमवानासीद्दोग्धा मेरुर्महागिरिः ॥१०८॥
प्लक्षो वत्सस्तु वृक्षाणां दोग्धा शालस्तु पुष्पितः। पालाशपात्रं क्षीरञ्च छिन्नदग्धप्ररोहणम् ॥१०९॥
सेयं धात्री विधात्री च पावनी च वसुन्धरा। चराचरस्य [1]सर्व्वस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च ॥११०॥
सर्व्वकामदुघा दोग्ध्री सर्व्वशस्यप्ररोहणी। आसीदियं समुद्रान्ता मेदिनी परिविश्रुता ॥१११॥
मधुकैटभयोः कृत्स्ना मेदसा[2] समभिप्लुता। तेनेयं मेदिनी देवी उच्यते ब्रह्मवादिभिः ॥११२॥
ततोऽभ्युपगमाद्राज्ञः पृथोर्वैण्यस्य भो द्विजाः। दुहितृत्वमनुप्राप्ता देवी पृथ्वीति चोच्यते ॥११३॥
पृथुना प्रविभक्ता च शोधिता च वसुन्धरा। शस्याकरवती स्फीता[3] पुरपत्तनशालिनी ॥११४॥
एवम्प्रभावो वैण्यः स राजासीद्राजसत्तमः। नमस्यश्चैव पूज्यश्च भूतग्रामैर्न संशयः ॥११५॥
ब्राह्मणैश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारगैः। पृथुरेव नमस्कार्य्यो ब्रह्मयोनिः सनातनः ॥११६॥
पार्थिवैश्च[4] महाभागैः[5] पार्थिवत्वमिहेच्छुभिः। आदिराजो नमस्कार्य्यः पृथुर्वैण्यः प्रतापवान् ॥११७॥
योधैरपि च विक्रान्तैः[6] प्राप्तुकामैर्जयं युधि। आदिराजो[7] नमस्कार्य्यो योधानां प्रथमो नृपः ॥११८॥
यो हि योद्धा रणं याति कीर्त्तयित्वा पृथुं नृपम्। स घोररूपात्संग्रामात् [8]क्षेमी भवति कीर्त्तिमान् ॥११९॥
वैश्यैरपि च [9]वित्ताढ्यैर्वैश्यवृत्तिविधायिभिः। पृथुरेव नमस्कार्य्यो वृत्तिदाता महायशाः ॥१२०॥

दूध को दुहा ॥१०६॥ गन्धर्वों ने चित्ररथ को बछड़ा कमल को पात्र, सुरुचि को दुहनेवाला बनाकर पवित्र गन्ध रूप दूध को दुहा ॥१०७॥ पहाड़ों ने शिला को पात्र, हिमालय को बछड़ा और सुमेरु को दुहनेवाला बनाकर रत्न और ओषधि रूप दूध दुहा ॥१०८॥ वृक्षों ने पाकर को बछड़ा, पुष्पित साखू को दुहनेवाला पलास को पात्र बनाकर कटे-जले हुए वृक्षों से निकला कोंपलरूप दूध दुहा ॥१०९॥ वही पृथ्वी विधात्री, पावनी वसुंधरा, जननी, सर्वकामदोग्ध्री, सर्वसस्यप्ररोहणी और मेदिनी नाम से विख्यात है और समुद्र तक फैली हुई है ॥११० १११॥ मधु-कैटभ के मेद से व्याप्त होने के कारण ब्रह्मवादी इसे मेदिनी कहते हैं ॥११२॥ विप्रगण! राजा पृथु द्वारा पुत्रीरूप में स्वीकार की जाने से यह पृथ्वी कहलाई ॥११३॥ पृथु ने पृथ्वी को विभक्त कर उसका संस्कार किया, जिससे यह धन, धान्य, गाँव, नगर आदि से समृद्ध हुई ॥११४॥ इस तरह प्रतापी और नृपश्रेष्ठ राजा पृथु प्राणियों में पूज्य और प्रणम्य बने, इसमें संशय नहीं ॥११५॥ वेद-वेदांगों में पारगत महाभाग ब्राह्मणों को चाहिए कि सनातन और ब्रह्मयोनि पृथु को ही नमस्कार करें ॥११६॥ राजत्व चाहने वाले महाभाग राजाओं को भी परम प्रतापी आदिराजा पृथु को नमस्कार करना चाहिये। ॥११७॥ युद्ध में जय की इच्छा रखने वाले पराक्रमी योद्धाओं को भी आदि राजा पृथु को नमस्कार करना चाहिये ॥११८॥ जो सैनिक राजा पृथु का स्मरण करके युद्ध में जाता है, वह घोर संग्राम में भी विजयी होता है। ॥११९॥ महाधनवान् वैश्य भी जीविका देनेवाले महायशस्वी पृथु को ही नमस्कार करें ॥१२०॥ उसी तरह

---

१ क. विश्वस्य। २ क ०सा च परिप्लु० ।३ क ०रग्रामवती च सा। ए० ।४ ग ०श्च नमस्कार्यो म ०।५ ग ०श्चै फलेप्सुभि। ६ ०क्रान्तैराप्तु ० ।७ ग ०र्यो वृत्तिदाता महायशा । या। ८ ख ०मात्तरति वद्धनी ० ।९ ग. ०सार्थे वैश्य० ।

तथैव शूद्रैः[1] शुचिभिस्त्रिवर्णपरिचारिभिः। पृथुरेव नमस्कार्य्यः श्रेयः परमिहेप्सुभिः॥१२१॥
एते वत्सविशेषाश्च दोग्धारः क्षीरमेव च। पात्राणि च मयोक्तानि किं भूयो वर्णयामि वः॥१२२॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे पृथोर्जन्ममाहात्म्यकथनं
नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः

मन्वन्तर-वर्णनम्

ऋषय ऊचुः

मन्वन्तराणि सर्व्वाणि विस्तरेण महामते। तेषां पूर्व्वविसृष्टिं च लोमहर्षण कीर्त्तय॥१॥
यावन्तो मनवश्चैव यावन्तं कालमेव च। मन्वन्तराणि भो सूत श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः॥२॥

लोमहर्षण उवाच

न शक्यो विस्तरो विप्रा वक्तुं वर्षशतैरपि। मन्वन्तराणां सर्व्वेषां सक्षेपाच्छृणुत द्विजाः॥३॥
स्वायम्भुवो मनुः पूर्व्वं मनुः स्वारोचिषस्तथा[2]। उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा॥४॥

तीनों वर्णों की सेवा करने वाले पवित्र शूद्र भी परम कल्याण के लिए पृथु को ही नमस्कार करें॥१२१॥ ये विशेष बछड़े, दुहने वाले, दूध और पात्र मैंने बतला दिये। अब और क्या वर्णन करूँ, कहिये॥१२२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में पृथु का जन्म माहात्म्य-कथन नामक चौथा अध्याय समाप्त॥४॥

अध्याय ५

मन्वन्तरों का वर्णन

मुनियों ने कहा—महाप्राज्ञ लोमहर्षण, सभी मन्वन्तरों और उनकी पूर्वसृष्टि का वर्णन विस्तार से कीजिये॥१॥ महाभाग सूत! जितने मनु, जितने काल और जितने मन्वन्तर हुए हैं, उनको तत्त्वतः हम सुनना चाहते हैं॥२॥

लोमहर्षण बोले—विप्रवृन्द! सभी मन्वन्तरों का विस्तार पूर्वक वर्णन मैं सौ वर्षों में भी नहीं कर सकता। इसलिये सक्षेपतः श्रवण कीजिए॥३॥

सर्वप्रथम स्वायम्भुव मनु हुआ। उसके बाद क्रमशः स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष—ये मनु हुए॥४॥

---

१ ग शूद्रै॰। २ ग ॰था। अंत ०।

वैवस्वतश्च भो विप्रा साम्प्रत मनुरुच्यते। सावर्णिश्च मनुस्तद्वद्रैम्यो[१] रौच्यस्तथैव च॥५॥
तथैव मेरसावर्ण्यश्चत्वारो मनव स्मृता। अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानागता द्विजा॥६॥
कीर्तिता मनवस्तुभ्य मयैवते यथाश्रुता। ऋषींस्त्वेषा प्रवक्ष्यामि पुत्रान्देवगणास्तथा॥७॥
मरीचिरत्रिर्भगवानङ्गिरा पुलह क्रतु। पुलस्त्यश्च वशिष्ठश्च सप्तैते ब्रह्मण सुता॥८॥
उत्तरस्या दिशि तथा द्विजा सप्तर्षयस्तथा। आग्निध्रश्चाग्निबाहुश्च मेध्यो[२] मेधातिथिर्वसु[३]॥९॥
ज्योतिष्मान्द्युतिमान्हव्य[४] सबल पुत्रसञ्ज्ञक। मनो स्वायभुवस्यैते दश पुत्रा महौजस॥१०॥
एतद्वै प्रथम विप्रा मन्वन्तरमुदाहृतम्। और्वो वसिष्ठपुत्रश्च स्तम्ब[५] काश्यप एव च॥११॥
प्राणो बृहस्पतिश्चैव दत्तोऽत्रिश्च्यवनस्तथा। एते महर्षयो विप्रा वायुप्रोक्ता[६] महाव्रता॥१२॥
देवाश्च तुषिता नाम स्मृता स्वारोचिषेऽन्तरे। हविघ्र[७] सुकृतिर्ज्योतिरापोमूर्त्तिरपि स्मृत॥१३॥
प्रतीतश्च नभस्यश्च नभ[८] ऊर्जस्तथैव च। स्वारोचिषस्य पुत्रास्ते मनोर्विप्रा महात्मन॥१४॥
कीर्तिता पृथिवीपाला महावीर्य्यपराक्रमा। द्वितीयमेतत्कथित विप्रा मन्वन्तर मया॥१५॥
इद तृतीय वक्ष्यामि तद्बुध्यध्व द्विजोत्तमा। वसिष्ठपुत्रा सप्तासन् वासिष्ठा इति विश्रुता॥१६॥
हिरण्यगर्भस्य सुता ऊर्जा जाता[९] सुतेजस। ऋषयोऽत्र मया प्रोक्ता कीर्त्यमानान्निबोधत॥१७॥
औत्तमेया मुनिश्रेष्ठा दश पुत्रान्मनोरिमान्। इष ऊर्जस्तनूर्जस्तु मधुर्माधव एव च॥१८॥
शुचि शुक्र सहश्चैव नभस्यो नभ एव च। भानवस्तत्र देवाश्च मन्वन्तरमुदाहृतम्॥१९॥

द्विजवृन्द! इस समय वैवस्वत मनु हैं। सावर्णि रैम्य रौच्य और मेरुसावर्ण्य—ये चारों भी मनु कहलाते हैं॥५॥
द्विजवृन्द! अतीत वर्तमान और भविष्य में होने वाले मनुओं को मैंने अनुश्रुति के अनुसार आप लोगों से बतला दिया, अब इनके ऋषि पुत्र और देवताओं का वर्णन करूँगा॥६ ७॥ मरीचि अत्रि भगवान् अंगिरा पुलह क्रतु पुलस्त्य और वशिष्ठ—ये सातों ब्रह्मा के पुत्र कहलाये॥८॥ ब्राह्मणवृन्द! उत्तर दिशा में ये सातों सप्तर्षि कहलाते हैं। आग्नीध्र अग्निबाहु मध्य मेधातिथि वसु ज्योतिष्मान द्युतिमान् हव्य सबल और पुत्र—ये महापराक्रमी दसों पुत्र स्वायंभुव मनु के हुए॥९ १०॥ ब्राह्मणगण! यह पहले मन्वन्तर का वर्णन मैंने किया है। वसिष्ठ का पुत्र और्व, स्तम्ब कश्यप प्राण बृहस्पति दत्त अत्रि और च्यवन—ये वायु से कहे गए महाव्रती महर्षि और तुषित नामक देवता स्वारोचिष मन्वन्तर में हुए॥११ १२॥ हविघ्न सुकृति ज्योति आप मूर्ति प्रतीत नभस्य नभ और ऊर्ज—ये महात्मा स्वारोचिष मनु के पुत्र महापराक्रमी राजा हुए॥१३ १४॥ यह दूसरे मन्वन्तर का वर्णन मैंने किया॥१५॥
विप्रवर! अब तीसरे मन्वन्तर का वर्णन मैं करता हूँ, सुनिये। वसिष्ठ के सातों पुत्र वासिष्ठ नाम से प्रसिद्ध हुए॥१६॥ हिरण्यगर्भ के तेजस्वी पुत्र ऊर्ज नाम से ख्यात हुए। मुनिवृन्द! ऋषियों के बारे में मैंने बतला दिया॥१७॥ अब औत्तमि के दस पुत्रों के नाम सुनिये—इष ऊर्ज तनूर्ज मधु माधव शुचि शुक्र सह नभस्य और नभ। उस (मन्वन्तर) में भानु देवता हुए। यह मन्वन्तर मैंने कह दिया॥१८ १९॥ अब चौथे मन्वन्तर के विषय में मैं आपसे कहूँगा।

---

१ ग० ०द्रुग्स्यार०। २ ग० मनवः। ३ ग० ०र्गिर्विभु। ज्या०। ४ ग० ०स्या मनुस्तन्यैव च। ग०। ५ ग० ०न्ना। ६ ग० विरजिया। ७ ग० महाबल। ७ ग० हविष्य। ग० हविघ्र। ८ ग० सप्तयस्त। ९ ग० नाम।

मन्वन्तरं चतुर्थं वः[1] कथयिष्यामि साम्प्रतम्। काव्यः पृथुस्तथैवाग्निर्जह्नुर्धाता द्विजोत्तमाः ॥२०॥
[2]कपीवानकपीवांश्च तत्र सप्तर्षयो द्विजाः। पुराणे कीर्तिता विप्राः पुत्राः पौत्राश्च भो द्विजाः ॥२१॥
[3]तथा देवगणाश्चैव तामसस्यान्तरे मनोः[4]। द्युतिस्तपस्यः सुतपास्तपोभूतः[5] सनातनः ॥२२॥
तपोरतिरकल्माषस्तन्वी[6] धन्वी[7] परन्तपः[8]। तामसस्य मनोरेते दश पुत्राः प्रकीर्तिताः ॥२३॥
वायुप्रोक्ता[9] मुनिश्रेष्ठाश्चतुर्थं चैतदन्तरम्। देवबाहुर्यदुध्रश्च मुनिर्वेदशिरास्तथा ॥२४॥
हिरण्यरोमा पर्जन्यः ऊर्ध्वबाहुश्च सोमजः[10]। सत्यनेत्रस्तथात्रेय एते सप्तर्षयोऽपरे ॥२५॥
[11]देवाश्चाभूतरजसस्तथा प्रकृतयः स्मृताः[12]। वारिप्लवश्च रैभ्यश्च[13] मनोरन्तरमुच्यते ॥२६॥
[14]अथ पुत्रानिमांस्तस्य बुध्यध्वं गदतो मम। घृतिमानव्ययो युक्तस्तत्त्वदर्शी निरुत्सुकः ॥२७॥
आरण्यश्च प्रकाशश्च [15]निर्मोहः सत्यवाक्कृती। रैवतस्य मनोः पुत्राः पञ्चमं चैतदन्तरम् ॥२८॥
षष्ठं तु सम्प्रवक्ष्यामि तद्बुध्यध्वं द्विजोत्तमाः। भृगुर्नभो विवस्वांश्च सुधामा विरजास्तथा ॥२९॥
[16]अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तैते[17] च महर्षयः। चाक्षुषस्यान्तरे विप्रा[18] मनोर्देवानिमान् स्मृताः[19] ॥३०॥
आबालप्रथितास्ते वै पृथक्त्वेन दिवौकसः। लेखाश्च नामतो विप्राः पञ्च देवगणाः स्मृताः ॥३१॥
ऋषेरङ्गिरसः पुत्रा महात्मानो महौजसः। नाडवलेया[20] मुनिश्रेष्ठा दश पुत्रास्तु विश्रुताः[21] ॥३२॥
रुरुप्रभृतयो विप्राश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः। षष्ठं मन्वन्तरं प्रोक्तं सप्तमं तु निबोधत ॥३३॥

ब्राह्मणश्रेष्ठो! काव्य पृथु अग्नि जह्नु धाता कपीवान और अकपीवान—ये सातों ऋषि चतुर्थ मन्वन्तर में हुए। तामस मन्वन्तर में मनु के पुत्र पौत्र तथा देवसमूह का भी वर्णन पुराण में किया गया है ॥२० २१॥ द्युति तपस्य सुतपस तपोमूल सनातन तप अतिकल्माष तन्वी धन्वी और परंतप—ये दश पुत्र तामस मनु के कहलाये—ऐसा वायु का कहना है। यह चौथा मन्वन्तर मैंने बतला दिया ॥२२ २३॥ (पाँचवें मन्वन्तर में) देवबाहु यदुध्र मुनि वेदशिरा हिरण्यरोमा पर्जन्य सोम से उत्पन्न ऊर्ध्वबाहु और अत्रि-पुत्र सत्यनेत्र—ये सातों ऋषि हुए ॥२४ २५॥ रजोविहीन प्रकृतियाँ देवता हुईं। वारिप्लव और रैभ्य भी मनु के अन्तर कहलाते हैं ॥२६॥ अब मनु के पुत्रों के नाम सुनिये। धृतिमान अव्यय युक्त तत्त्वदर्शी निरुत्सुक आरण्य प्रकाश निर्मोह सत्यवाक और कृती—ये रैवत मनु के पुत्र हुए। यह पाँचवाँ मन्वन्तर मैंने वर्णन किया ॥२७ २८॥ ब्राह्मणश्रेष्ठो! अब छठे के बारे में कहूँगा सुनिये। भृगु नभ विवस्वान् सुधामा विरजा अतिनामा और सहिष्णु—ये सातों महर्षि चाक्षुष मन्वन्तर में हुए ॥२९ ३०॥ लेखा नाम से प्रसिद्ध पाँच देवता हुए जिनके नाम पृथक्‌रूप से बालक तक भी जानते हैं ॥३१॥ मुनिवर! अंगिरा मुनि के महापराक्रमी रुरुप्रभृति दश पुत्र नाड्वलेय नाम से प्रसिद्ध हुए ॥३२॥ चाक्षुष मन्वन्तर नामक छठा मन्वन्तर मैंने वर्णन

---

१ क तु। ग चा। २ क वक्ष्ये कपिवांश्चैव त०। ३ ख सत्या। ४ क ०नो। घृतिस्तपः सुतपस्तपोमूलः स०। ५ ख ।०पोमूल स०। ६ क ०स्तन्विधः०। ७ क ०धन्विप०। ८ क ०तपा। ता०। ९ ख ०क्ताश्च भो विप्राश्च०। १० क सोमप। ११ क वाश्च मू०। १२ ख ०ता। पारि०। १३ ग वैद्यश्च। १४ ख ग अरण्यश्च। १५ क निर्मो०। १६ क ०तिच मा। १७ ग ०प्ततऽतिम०। १८ ख चते। १९ क ०ता। अप्रमृताश्च ऋषय पयुशाज्या न्विाकस। २० ख नाड्ले०। २१ क ०ता। गुरु०।

अत्रिर्वसिष्ठो भगवान् कश्यपश्च महानृषिः। गौतमोऽथ भरद्वाजो विश्वामित्रस्तथैव च॥३४॥
तथैव पुत्रो भगवानृचीकस्य महात्मनः। सप्तमो जमदग्निश्च [1]ऋषयः साम्प्रतं दिवि॥३५॥
साध्या रुद्राश्च विश्वे च वसवो मरुतस्तथा। आदित्याश्चाश्विनौ चापि देवौ वैवस्वतौ स्मृतौ॥३६॥
मनोर्व्वैवस्वतस्यैते वर्त्तन्ते साम्प्रतेऽन्तरे। इक्ष्वाकुप्रमुखाश्चैव दश पुत्रा महात्मनः॥३७॥
एतेषां कीर्त्तितानान्तु महर्षीणा महौजसाम्। तेषा पुत्राश्च पौत्राश्च दिक्षु सर्व्वासु भो द्विजाः॥३८॥
मन्वन्तरेषु सर्व्वेषु[2] प्रागासन् सप्त सप्तकाः। लोके धर्म्मव्यवस्थार्थं लोकसंरक्षणाय च॥३९॥
मन्वन्तरे व्यतिक्रान्ते चत्वारः सप्तका गणाः। कृत्वा कर्म्म दिवं यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम्॥४०॥
ततोऽन्ये तपसा युक्ताः स्थानं तत्पूरयन्त्युत। अतीता वर्तमानाश्च[3] क्रमेणैतेन भो द्विजा॥४१॥
अनागताश्च सप्तैते स्मृता दिवि महर्षयः। मनोरन्तरमासाद्य सावर्णस्येह[4] भो द्विजाः॥४२॥
रामो व्यासस्तथात्रेयो दीप्तिमन्तो बहुश्रुता.[5] भारद्वाजस्तथा द्रौणिरश्वत्थामा महाद्युतिः॥४३॥
[6]गौतमश्चाजरश्चैव[7] शरद्वान्नाम गौतमः। कौशिको गालवश्चैव और्व्व.[8] काश्यप एव च॥४४॥
एते सप्त महात्मानो भविष्या मुनिसत्तमा[9]। वैरी चैवाध्वरीवांश्च शमनो[9] धृतिमान् वसुः॥४५॥
अरिष्टश्चाप्यधृष्टश्च वाजी सुमतिरेव च। सावर्णस्य मनोः पुत्रा भविष्या मुनिसत्तमा॥४६॥
एतेषां कल्यमुत्थाय कीर्त्तनात् सुखमेधते। यशश्चाप्नोति सुमहदायुष्मांश्च[10] भवेन्नरः॥४७॥

कर दिया। अब सातवें के विषय मे सुनिये। ॥३३॥ अत्रि, वसिष्ठ, भगवान् कश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र और ऋचीक महात्मा का सातवाँ पुत्र जमदग्नि—ये सब ऋषि इस समय स्वर्ग मे हैं॥३४-३५॥ साध्य, रुद्र, विश्वेदेव, वसु, मरुत् आदित्य और अश्विनीकुमार—ये सब देवता वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर के है ॥३६॥ इस मनु के इक्ष्वाकु आदि दश पुत्र हैं॥३७॥ ब्राह्मणवृन्द! पहले सभी मन्वन्तरो मे लोक मे धर्म व्यवस्था तथा लोक-सरक्षण के लिए इन कथित महान् तेजस्वी महर्षियो के तथा इनके पुत्र-पौत्रो के सब दिशाओ मे सात सप्तक अर्थात् विभिन्न सात सात दल थे॥३८ ३९॥ मन्वन्तर बीत जाने पर चार सप्तक-गण कार्य समाप्त करके रोगादि से रहित ब्रह्मलोक को चले जाते थे॥४०॥ तब दूसरे तपस्वी उस स्थान की पूर्ति करते थे। विप्रवृन्द! अतीत, वर्तमान और भविष्यत् इस क्रम से ये सात महर्षि स्वर्ग म कहे गय हैं॥४१॥ विप्रवृन्द! सावर्ण मन्वन्तर म राम, व्यास, अत्रि-पुत्र, भारद्वाज, द्रोणाचार्य के पुत्र महातेजस्वी अश्वत्थामा, गौतम, अजर, शरद्वान् नामक गौतम, कौशिक, गालव, और्व, काश्यप—य सात महात्मा होग॥४२-४४॥ मुनिश्रेष्ठो! वैरी, अध्वरीवान्, शमन, धृतिमान्, वसु, अरिष्ट, अधृष्ट, वाजी, सुमति—ये सात महर्षि सावर्ण मनु के पुत्र होंगे॥४५-४६॥ प्रातःकाल उठकर इनके नाम लेने से मनुष्य सुख, यश और पूर्ण आयु प्राप्त करता है॥४७॥ विप्रवृन्द! ये सप्तक गण मैंने तत्त्वतः बतला दिये। अब आने वाले मन्वन्तरो

---

१ क ऋषियस्माच्च जज्ञिरे। ग्रा०। २ ख. ०पु प्रथिता सप्त। ३ क. ०श्च ऋषयार्णि च मो। ४ क ०र्णस्याऽदितो द्वि०। ख र्णस्यादिना द्वि०। ५ क ०ता। भर०। ६ ग. ०मस्याऽऽदयजश्चै०। ७ क ०व भरद्वाजोऽथ गौ०। ८ ख प्रांव्य। ९ क सुमन्तो। १० ख. ०वैत्सदा। ए०।

एतान्युक्तानि भो विप्राः सप्तसप्त च तत्त्वतः। मन्वन्तराणि संक्षेपाच्छृणुतानागतान्यपि॥४८॥
सावर्णा मनवो[1] विप्राः पञ्च तांश्च निबोधत। एको वैवस्वतस्तेषां चत्वारस्तु प्रजापतेः॥४९॥
परमेष्ठिसुता[2] विप्रा मेरुसावर्ण्यतां गताः। दक्षस्यैते हि दौहित्राः प्रियायास्तनया नृपाः[3]॥५०॥
महता तपसा युक्ता मेरुपृष्ठे महौजसः। रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नाम मनुः[4]स्मृतः॥५१॥
भूत्यां चोत्पादितो देव्यां भौत्यो नाम[4] रुचेः सुतः। अनागताश्च सप्तैते कल्पेऽस्मिन्मनवः स्मृताः॥५२॥
तैरियं पृथिवी सर्वा [5]सप्तद्वीपा सपत्तना। [6]पूर्णं युगसहस्रन्तु परिपाल्या द्विजोत्तमाः॥५३॥
प्रजापति (ते) श्च तपसा संहारं तेषु नित्यशः। युगानि सप्ततिस्तानि साग्राणि कथितानि च॥५४॥
कृतत्रेतादियुक्तानि मनोरन्तरमुच्यते। चतुर्दशैते मनवः कथिताः कीर्त्तिवर्द्धनाः॥५५॥
वेदेषु सपुराणेषु सर्वेषु प्रभविष्णवः। प्रजानां पतयो विप्रा धन्यमेषां प्रकीर्त्तनम्॥५६॥
मन्वन्तरेषु संहाराः संहारान्तेषु सम्भवाः। न [7]शक्यतेऽन्तस्तेषां वै वक्तुं वर्षशतैरपि॥५७॥
विसर्गस्य प्रजानां वै संहारस्य च भो द्विजाः। मन्वन्तरेषु संहाराः श्रूयन्ते [8]द्विजसत्तमाः॥५८॥
सशेषास्तत्र तिष्ठन्ति देवाः सप्तर्षिभिः सह। तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रुतेन च समन्विताः॥५९॥
पूर्णे[9] युगसहस्रे तु कल्पो निःशेष उच्यते। तत्र भूतानि सर्वाणि दग्धान्यादित्यरश्मिभिः॥६०॥
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा सहादित्यगणैर्द्विजाः। प्रविशन्ति सुरश्रेष्ठं हरिनारायणं प्रभुम्॥६१॥
स्रष्टारं सर्व्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः। अव्यक्तं शाश्वतो देवस्तस्य सर्व्वमिदं जगत्॥६२॥

के बारे में भी संक्षेप से सुन लीजिये ॥४८॥ ब्राह्मणवृन्द! सावर्ण मनु पाँच हैं, उन्हें सुनिये। उनमें से एक तो वैवस्वत मनु है और चार प्रजापति परमेष्ठी के पुत्र कहलाते हैं, जो मेरुसावर्ण्यभाव को प्राप्त हो गये हैं॥४९½॥ ये महातेजस्वी राजा, जिन्होंने सुमेरु पर्वत पर बड़ी तपस्या की है, प्रजापति दक्ष के दौहित्र हैं और प्रिया से इनकी उत्पत्ति हुई है॥५०½॥ प्रजापति रुचि का पुत्र रौच्य नामक मनु कहलाया॥५१॥ रुचि का वह पुत्र, जो भूति नामक देवी से उत्पन्न हुआ था, भौत्य नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस कल्प में ये सातों मनु होने वाले हैं॥५२॥ ब्राह्मणवर! इनसे सातों द्वीप और नगरों सहित यह सम्पूर्ण पृथिवी पूरे हजार युग तक पाली जाती है। प्रजापति की तपस्या से इनका नाश भी नित्य होता रहता है॥५३½॥ सत्ययुग, त्रेता आदि सत्तर युग मन्वन्तर कहलाते हैं। वेदों और पुराणों में कीर्ति-वर्धक ये चौदहों मनु प्रजा के स्वामी माने गये हैं। ब्राह्मणवृन्द! इनका वर्णन कल्याण-दायक है॥५४-५६॥ मन्वन्तरों का संहार हुआ करता है और संहार के बाद फिर मन्वन्तर होते हैं। इनके अन्त का वर्णन सैकड़ों वर्षों में भी नहीं किया जा सकता ॥५७॥ विप्रवर! मन्वन्तरों में प्रजा की सृष्टि तथा संहार सुने जाते हैं॥५८॥ वहाँ सप्तर्षियों के साथ देवता लोग तपस्या, ब्रह्मचर्य और वेदों के प्रभाव से बच जाते हैं॥५९॥ हजार युग पूर्ण हो जाने पर निःशेष नामक कल्प होता है, जिसमें सूर्य की किरणों से सब प्राणी दग्ध हो जाते हैं॥६०॥ ब्राह्मणवृन्द! तब समस्त प्राणी आदित्य-गणों के साथ ब्रह्मा को आगे करके कल्प के अन्त में पुनः पुनः प्राणियों के सृष्टि-कर्ता, देव-श्रेष्ठ तथा व्यापक हरि-नारायण में प्रविष्ट हो जाते हैं॥६१॥ हरि भगवान् अव्यक्त और सनातन हैं। उन्हीं के अधीन यह सम्पूर्ण संसार

---

१ क. ०नवस्तावत्पञ्च। ख. नवस्तात प०। २ क. ०प्रा मनुसा०। ३ ग. द्विजा। ४ क. ०म मनु स्मृत। अ०। ५ ग. ससमुद्रा। ६ ग. पूर्णवर्षस०। ७ क. ग. ०क्यमन्तर तेषां व०। ८ भरतर्षभ। ९ ग० र्णेवर्षस०।

अत्र व.[1] कीर्त्तयिष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य वै। विसर्गं मुनिशार्दूलाः साम्प्रतस्य महाद्युतेः ॥६३॥
अत्र वंशप्रसङ्गेन कथ्यमानं पुरातनम्। यत्रोत्पन्नो महात्मा स हरिर्वृष्णिकुले[2] प्रभुः ॥६४॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे मन्वन्तरकीर्त्तनं नाम
पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

षष्ठोऽध्यायः

आदित्योत्पत्ति-कथनम्

लोमहर्षण उवाच

विवस्वान् कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यां द्विजोत्तमाः। तस्य भार्य्याभवत्संज्ञा त्वाष्ट्री देवी विवस्वतः ॥१॥
सुरेश्वरीति[3] विख्याता त्रिषु लोकेषु भाविनी[4]। सा वै भार्य्या भगवतो मार्त्तण्डस्य महात्मनः ॥२॥
भर्त्तृरूपेण नातुष्यद्रूपयौवनशालिनी। संज्ञा नाम[5] सुतपसा सुदीप्तेन समन्विता ॥३॥
आदित्यस्य हि तद्रूपं मण्डलस्य सुतेजसा[6]। गात्रेषु परिदग्धं वै नातिकान्तमिवाभवत् ॥४॥
न खल्वयं मृतोऽण्डस्थ इति स्नेहादभाषत। अजानन् काश्यपस्तस्मान्मार्त्तण्ड इति चोच्यते ॥५॥
तेजस्त्वभ्यधिकं तस्य नित्यमेव विवस्वत.। येनातितापयामास त्रींल्लोकान् कश्यपात्मजः ॥६॥

है ॥६२॥ मुनिवर्य! अब मैं वर्तमान महातेजस्वी वैवस्वत मनु की सृष्टि का वर्णन आपसे करूँगा ॥६३॥ वंश के प्रसंग से मैं उस प्राचीन वृष्णि-कुल का वर्णन करूँगा, जिसमे वे सर्वशक्तिमान भगवान् हरि उत्पन्न हुए थे ॥६४॥

श्री ब्रह्म महापुराण मे मन्वन्तर-कीर्तन नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥५॥

अध्याय ६

सूर्य की उत्पत्ति का वर्णन

लोमहर्षण ने कहा—विप्रवर! कश्यप और दक्ष की पुत्री के संयोग से विवस्वान् (सूर्य) उत्पन्न हुआ। उस विवस्वान् की पत्नी त्वष्टा की पुत्री संज्ञा हुई ॥१॥ भगवान् सूर्य की स्त्री (संज्ञा) तीनों लोक मे सुरेश्वरी नाम से विख्यात है ॥२॥ तपस्या और कान्ति से युक्त संज्ञा सौन्दर्य और यौवन से परिपूर्ण थी। स्वामी का रूप उसे पसन्द न था ॥३॥ अंगों मे जलन पैदा करने वाला सूर्यमण्डल का वह तेजस्वी रूप उसे नहीं भाता था ॥४॥ उसने स्नेह से कहा कि यह अण्डस्थ मरा नहीं है। इसलिए कश्यप पुत्र (सूर्य) का नाम मार्तण्ड पड़ा ॥५॥ उस विवस्वान् में अत्यन्त तेज होने के कारण वह तीनों लोकों को तपाने लगा ॥६॥ विप्रवृन्द! अतितेजस्वी सूर्य ने

---

१ क ते। २ क ख ०कुलोद्भव । इ०। ३ क उरेणुरिति। ख. सुरेणुरिति। ४ क, भामिनी। ५ ख, ०म स्वत०। ६ क ख सुतेजस।

त्रीण्यपत्यानि[1] भो विप्राः[2] संज्ञायां तपतां वरः। आदित्यो जनयामास कन्यां द्वौ च प्रजापती॥७॥
मनुर्वैवस्वतः पूर्वं श्राद्धदेवः प्रजापतिः। यमश्च यमुना चैव यमजौ सम्बभूवतुः॥८॥
श्यामवर्णन्तु तद्रूपं संज्ञा दृष्ट्वा विवस्वतः। असहन्ती तु स्वां छायां सवर्णां निर्ममे ततः॥९॥
मायामयी तु सा संज्ञा तस्यां छायासमुत्थिताम्। प्राञ्जलिः प्रणता भूत्वा छाया संज्ञां[3] द्विजोत्तमाः॥१०॥
उवाच किं मया कार्य्यं कथयस्व शुचिस्मिते। स्थितास्मि तव निर्देशे शाधि मां वरवर्णिनि॥११॥

संज्ञोवाच

अहं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव भवनं पितुः। त्वयैव[4] भवने मह्यं[5] वस्तव्यं निर्विशङ्कया॥१२॥
इमौ च बालकौ मह्यं कन्या चेयं सुमध्यमा। सम्भाव्यास्ते न चाख्येयमिदं भगवते क्वचित्[6]॥१३॥

सवर्णोवाच

आ कचग्रहणाद्देवि आ शापान्नैव कर्हिचित्। आख्यास्यामि[7] नमस्तुभ्यं गच्छ देवि यथासुखम्॥१४॥

लोमहर्षण उवाच

समादिश्य सवर्णान्तु तथेत्युक्ता तया[8] च सा। त्वष्टुः[9] [10]समीपमगमद्व्रीडितेव तपस्विनी॥१५॥
पितुः समीपगा सा तु पित्रा निर्भर्त्सिता शुभा[11]। भर्त्तुः[12] समीपं गच्छेति नियुक्ता च पुनः पुनः॥१६॥
आगच्छद्वडवा भूत्वाच्छाद्य रूपमनिन्दिता। कुरूनथोत्तरान् गत्वा तृणान्यथ चचार ह॥१७॥

संज्ञा से एक कन्या और दो प्रजापतियों को उत्पन्न किया। ॥७॥ पहले प्रजापति श्राद्धदेव मनु विवस्वान् से उत्पन्न हुए। फिर यम और यमुना दोनों यमज (जुड़वाँ) उत्पन्न हुए। ॥८॥ विवस्वान् के श्यामवर्ण रूप को न सहती हुई संज्ञा ने अपनी छाया सवर्णा को रचा॥९॥ ब्राह्मणवर्य! माया से रची हुई वह छाया अंजलि बाँधकर संज्ञा के सामने खड़ी हो गई और बोली—हे सुंदरी! मैं आपके अधीन हूँ आपके लिए मुझे क्या करना है? आज्ञा दीजिए॥१०-११॥

संज्ञा बोली—तेरा कल्याण हो। मैं अपने पिता के घर जाऊँगी। तू मेरे घर में निःशंक होकर रह॥१२॥ इन दोनों बालकों तथा इस सुन्दरी कन्या का पालन-पोषण करना। किन्तु यह रहस्य कभी भगवान् सूर्य से नहीं कहना॥१३॥

सवर्णा बोली—जब तक मेरी चोटी नहीं पकड़ी जायगी और शाप नहीं पड़ेगा, तब तक मैं इस रहस्य को प्रकट नहीं करूँगी। देवि, सादर प्रणाम। आप आनन्द से जाइये॥१४॥

लोमहर्षण ने कहा— इस तरह सवर्णा के कहने पर उसको आज्ञा देकर तपस्विनी संज्ञा लज्जित-सी होती हुई त्वष्टा के पास गई॥१५॥ पिता के समीप जाने पर पिता ने झिड़कते हुए, उस साध्वी से कहा—'तू अपने पति के पास जा।' और बार-बार इसके लिए प्रेरित किया॥१६॥ तब वह अपने रूप को छिपा कर घोड़ी का स्वरूप धारण कर उत्तर दिशा में कुरुदेश में जाकर घास चरने लगी॥१७॥ 'यह संज्ञा है' ऐसा समझते हुए सूर्य ने दूसरी संज्ञा में

---

१ ख ०नि कौरव्य स०। २ क ०या भगवास्तत। आ०। ३ ख ०ज्ञा ततो द्विजा। उ०। ४ ख त्वयेह म०। ५ ख मन्ये। ६ क ख शुभे। ७ क ग ०मि मत तुभ्य। ८ ख तथैव सा। ९ क पितु। १० क. ०मद्व्रीतेव च त०। ११ क ख पुरा। १२ ग. रवे।

द्वितीयायां तु सञ्ज्ञायां सञ्ज्ञेयमिति चिन्तयन्। आदित्यो जनयामास पुत्रमात्मसमं तदा ॥१८॥
पूर्व्वजस्य मनोर्विप्रा सदृशोऽयमिति प्रभु । मनुरेवाभवन्नाम्ना सावर्ण¹ इति चोच्यते ॥१९॥
द्वितीयो य सुतस्तस्या² स विज्ञेय शनैश्चर । सञ्ज्ञा तु पार्थिवी विप्रा स्वस्य पुत्रस्य वै तदा ॥२०॥
चकाराभ्यधिक स्नेह न तथा पूर्व्वजेषु वै। मनुस्तस्या क्षमत्तत्तु यमस्तस्या³ न चक्षमे ॥२१॥
स वै रोषाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वानघ। पदा⁴ सन्तर्जयामास सञ्ज्ञा वैवस्वतो यम ॥२२॥
त⁵ शशाप तत क्रोधात् ⁵सावर्णजननी तदा। चरण पततामेष तवेति भृशदुखिता ॥२३॥
यमस्तु ⁶ततपितु सर्व्वं प्राञ्जलि⁶ प्रत्यवेदयत। भृश शापभयोद्विग्न सञ्ज्ञावाक्यैर्विशङ्कित ॥२४॥
शापोऽय विनिवर्त्तेत⁷ प्रोवाच पितर द्विजा⁸। मात्रा स्नेहेन सर्व्वेषु वर्त्तितव्य सुतेषु व ॥२५॥
⁹सेयमस्मानपास्येह⁹ विवस्वन सम्ब्रुभूपति। तस्या मयोद्यत¹⁰ पादो न तु देहे निपातित¹⁰ ॥२६॥
बाल्याद्वा यदि वा¹¹ लौल्या मोहात्तत्क्षन्तुमर्हसि¹¹। शप्तोऽहमस्मि लोकेश जनन्या तपता वर।
तव प्रसादाच्चरणो न पतेन्मम गोपते ॥२७॥

विवस्वानुवाच

असशय पुत्र महद्भविष्यत्यत्र कारणम। येन त्वामाविशत क्रोधो धर्म्मज्ञ सत्यवादिनम ॥२८॥
न शक्यमेतन्मिथ्या तु कर्त्तु मातृवचस्तव। कृमयो मासमादाय यास्यन्त्यवनिमेव च ॥२९॥

अपने समान पुत्र उत्पन्न किया ॥१८॥ ब्राह्मणो यह (बालक) अपने पूर्वज मनु के समान था। इसलिए मनु ही इसका नाम पडा। यह सावर्ण भी कहलाता है ॥१९॥ उस (सवर्णा) के दूसरे पुत्र को शनैश्चर समझिये। विप्रवर! सवर्णा सञ्ज्ञा के पुत्रो की अपेक्षा अपने पुत्रो से अधिक स्नेह करती थी ।२०-२१॥ मनु ने तो छाया का यह व्यवहार सह लिया पर यम नही सह सका ॥२१॥ उस सूर्य-पुत्र यम ने क्रोध के कारण या बचपन के कारण या होनहार के बल से सवर्णा को पैर से ताडन किया ॥२२॥ तब अत्यन्त दुखी होकर क्रोध से सवर्णा ने उसको शाप दिया—तेरा यह पैर गिर जाए ॥२३॥ ब्राह्मणो! शाप के भय से अत्यन्त चचल होकर छाया के वचनो से शकित होते हुए यम ने हाथ जोडकर अपने पिता से निवेदन किया— । २४॥ मेरा शाप दूर कीजिये। माता को सब पुत्रो मे समान भाव से बतना चाहिये। पर यह हमको छोडकर छोटो पर अत्यधिक स्नेह करती है। इसलिए बालभाव से या मूखता से मैंने उसपर पैर तो उठाया पर देह पर गिराया नही ॥२५ २६॥ यह मेरा अपराध क्षमा कीजिये। लोक-पति महातेजस्विन माता ने मुझ शाप दिया है आप कृपा कर जिससे कि मेरा पैर न गिरने पाये ॥२७॥

सूर्य ने कहा—पुत्र! निसन्देह इसमे कोई महान कारण होगा जिससे कि तुम जैसे धर्मात्मा और सत्यवादी को क्रोध उत्पन्न हो गया ॥२८॥ तुम्हारी माता के वचन को मैं मिथ्या नही कर सकता। कृमि (छोटे कीड) तुम्हारे पैर से मास ले लेकर पृथ्वी पर जायगे ॥२९॥ इस तरह तुम्हारी माता का वचन सत्य होगा। शाप का

---

१ क ग सावर्ण्य। २ ख ०स्तस्या स। ३ ख सताडयामास। ४ ख सा। ५ क ग ०वर्ण्यज०। ६ ख स्वपितु ७ ग ०त्तति प्रो०। ८ क ख तदा। ९ ख ०त्यपहाय यवीयास। १० ग ०हं यवीयास। ११ ख वा मोहात्तद भवान् क्ष्तु०। १२ ख ०हति। श०।

कृतमेवं वचस्तथ्यं मातुस्तव भविष्यति। शापस्य परिहारेण त्वं च त्रातो भविष्यसि॥३०॥
आदित्यश्चाब्रवीत् संज्ञां किमर्थं तनयेषु वै। तुल्येष्वभ्यधिकः स्नेह एकस्मिन् क्रियते त्वया॥३१॥
सा तत् परिहरन्ती तु नाचचक्षे विवस्वते। स चात्मानं समाधाय योगात्तथ्यमपश्यत॥३२॥
तां शप्तुकामो भगवान्नाशपन्मुनिसत्तमाः। मूर्द्धजेषु निजग्राह स तु तां मुनिसत्तमाः॥३३॥
ततः सर्वं यथावृत्तमाचचक्षे विवस्वते। विवस्वानथ तच्छ्रुत्वा क्रुद्धस्त्वष्टारमभ्यगात्[1]॥३४॥
दृष्ट्वा तु तं यथान्यायमर्च्चयित्वा विभावसुम्। निर्दग्धुकाम रोषेण सान्त्वयामास वै तदा॥३५॥

त्वष्टोवाच

तवातितेजसाविष्टमिदं रूपं न शोभते। असहन्ती च संज्ञा सा वने चरति शाद्वले[2]॥३६॥
द्रष्टा हि तां भवानद्य स्वां भार्यां शुभचारिणीम्। श्लाघ्यां योगबलोपेतां योगमास्थाय गोपते॥३७॥
अनुकूलं तु ते देव यदि स्यान्मम[3] सम्मतम्। रूपं निर्वर्त्तयाम्यद्य तव कान्तमरिन्दम॥३८॥
ततोऽभ्युपागमत्त्वष्टा मार्त्तण्डस्य विवस्वत । भ्रमिमारोप्य तत्तेजः[4] शातयामास भो द्विजाः॥३९॥
ततो निर्भासितं रूपं तेजसा संहतेन वै। कान्तात् कान्ततरं[5] द्रष्टुमधिकं शुशुभे तदा॥४०॥
ददर्श योगमास्थाय स्वां[6] भार्यां वडवां ततः। अधृष्यां सर्व्वभूतानां तेजसा नियमेन च॥४१॥
वडवावपुषा विप्राश्चरन्तीमकुतोभयाम्।[सोऽश्वरूपेण भगवांस्तां मुखे समभावयत्॥४२॥

निवारण करके तुम भी सुरक्षित हो जाओगे'॥३०॥ सूर्य ने छाया से कहा—'क्यों तुम समान पुत्रों में से एक पर अधिक स्नेह करती हो?'॥३१॥ उसने उस रहस्य को गुप्त करती हुई सूर्य को उत्तर नहीं दिया। सूर्य ने भी योग से समाधि लगाकर सत्य का पता लगा लिया।॥३२॥ मुनिश्रेष्ठो! भगवान् सूर्य ने उसको शाप देने की इच्छा रखते हुए भी शाप नहीं दिया, बल्कि उसका केश पकड लिया॥३३॥ तब छाया ने सूर्य से सब वृतान्त कह दिया। सूर्य यह सुनकर क्रोध से त्वष्टा के पास गया॥३४॥ जलाने की इच्छा रखने वाले कुपित सूर्य को देखकर त्वष्टा ने समयोचित सत्कार करके उसको शान्त किया॥३५॥

त्वष्टा ने कहा—'आपके इस अत्यन्त तेजस्वी रूप को न सहती हुई संज्ञा घोडी बनकर वन की हरियाली में चरती है॥३६॥ हे सूर्य! आज आप कल्याणमयी, प्रशंसा के योग्य और योगबल से युक्त अपनी पत्नी को देखेंगे॥३७॥ हे शत्रु-नाशन! हे देव! यदि मेरी सलाह को आप अनुकूल समझें तो आज मैं आपके रूप को सुन्दर बना दूँ'॥३८॥ ब्राह्मणो! तब सूर्य की स्वीकृति पाकर त्वष्टा ने भ्रामण-यन्त्र के द्वारा सूर्य के तेज को छिन्न भिन्न अर्थात् सूक्ष्म कर दिया॥३९॥ इससे (अर्थात् तेज के संक्षिप्त हो जाने से) अत्यन्त भव्य रूप हो गया। तब वह सुन्दर से सुन्दर रूप पहले से अधिक सुशोभित होने लगा॥४०॥ ब्राह्मणो! तत्पश्चात् सूर्य ने समाधि लगाकर अपनी पत्नी घोडी को देखा। वह तेज और नियमों में सब प्राणियों से बढ़कर थी॥४१॥ घोडी का शरीर धारण कर निर्भय होकर वह चर रही थी। भगवान् सूर्य ने अश्व का स्वरूप बनाकर मैथुन के लिए चेष्टा करती हुई अपनी पत्नी के मुँह में

---

१ ख ०त्। मत्रोध तव चाख्यातम०। २ क शोभने। ३ ग ०म तन्मत०। ४ ग ०ज पात०। ५ ग. ०र रूपम०। ६ क. स्वा प्रिया स दिवाकरः। अ०।

मैथुनाय विचेष्टन्तीं परपुंसोऽवशङ्कया। सा तन्निरवमच्छुक्रं नासिकाभ्यां विवस्वत ॥४३॥
देवौ तस्यामजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ। नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनाविति ॥४४॥
मार्त्तण्डस्यात्मजावेतावष्टमस्य प्रजापते। तां तु रूपेण कान्तेन दर्शयामास भास्कर ॥४५॥
सा तु दृष्ट्वैव भर्त्तारं तुतोष मुनिसत्तमा। यमस्तु कर्म्मणा तेन भृशं पीडितमानस ॥४६॥
धर्मेण रञ्जयामास धर्म्मराज इमा प्रजा। स लेभे कर्म्मणा तेन शुभेन परमद्युति ॥४७॥
पितॄणामाधिपत्यं च लोकपालत्वमेव च। मनु प्रजापतिस्त्वासीत्सावर्णि स तपोधना ॥४८॥
भाव्य[1] समागते तस्मिन्मनु सावर्णिकेऽन्तरे। मेरुपृष्ठे तपो नित्यमद्यापि स चरत्युत ॥४९॥
भ्राता शनैश्चरस्तस्य ग्रहत्वं[2] स तु लब्धवान्। त्वष्टा तु तेजसा तेन विष्णोश्चक्रमकल्पयत् ॥५०॥
तदप्रतिहतं युद्धे दानवान्तचिकीर्षया। यवीयसी तु साप्यासीद्यामी कन्या यशस्विनी ॥५१॥
अभवच्च सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकपावनी[3]। मनुरित्युच्यते लोके सावर्ण इति[4] चोच्यते ॥५२॥
द्वितीयो[5] य सुतस्तस्य मनोर्भ्राता शनैश्चर। ग्रहत्वं स च लेभे वै सर्व्वलोकाभिपूजित ॥५३॥
य इदं जन्म देवानां शृणुयान्नरसत्तम। आपद प्राप्य मुच्येत प्राप्नुयाच्च महद्यश ॥५४॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे आदित्योत्पत्तिकथनं
नाम षष्ठोऽध्याय ॥६॥

मैथुन किया ॥४२॥ उसने दूसरे पुरुष की शंका से सूर्य के वीर्य को अपनी नाक के द्वारा बाहर निकाल दिया ॥४३॥ उससे वैद्यो मे श्रेष्ठ और दिव्यरूप वाले अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए। दोनो अश्विनीकुमार नासत्य और दस्र नाम से विख्यात हुए ॥४४॥ ये दोनो आठवे प्रजापति मार्तण्ड के पुत्र हुए। पश्चात् सूर्य ने दिव्य रूप से अपनी भार्या को देखा ॥४५॥ ब्राह्मणश्रेष्ठो! वह अपने स्वामी को देखते ही सन्तुष्ट हो गई। यम उस कर्म से अत्यन्त दुखी हुआ और धर्मराज नाम से ख्यात होते हुए धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करने लगा ॥४६½॥ प्रजापालनरूप शुभ कर्म के द्वारा अत्यन्त कान्तिमान् यम ने पितरो का स्वामित्व तथा लोकपाल का पद प्राप्त किया। वह तपस्वी सवर्णा पुत्र सावर्णिक मन्वन्तर मे प्रजापति मनु होगा ॥४७ ४८½॥ वह आज भी मेरुपर्वत के पृष्ठभाग मे तप कर रहा है ॥४९॥ उसका भाई शनैश्चर ग्रह हुआ। त्वष्टा ने दैत्यो के नाश करने की इच्छा से सूर्य के उस तेज से युद्ध मे नष्ट न होने वाला विष्णु का चक्र बनाया ॥५०॥ वह भी प्रशस्त यशवाली यम की छोटी बहन नदियो मे श्रेष्ठ और लोगो को पवित्र करने वाली यमुना नाम से ख्यात हुई ॥५१½॥ लोग मनु और सावर्ण दोनो नाम कहते हैं ॥५२॥ सूर्य का दूसरा पुत्र जो मनु का भाई शनैश्चर कहलाता है सब लोगो के पूजन योग्य ग्रहभाव को प्राप्त हुआ ॥५३॥ जो मनुष्य देवताओ के इस जन्म को सुनेगा वह सब विपत्तियो से बचकर महान् यश प्राप्त करेगा ॥५४॥

श्री ब्रह्म महापुराण मे सूर्य-जन्म कथन नामक छठा अध्याय समाप्त ॥६॥

---

१ ख ०न्नस्य सुतावि०। २ ख ०व्य साऽभ्याग०। ग ०व्य साऽभ्याग०। ३ क ०ह्त्वमुपल०। ४ ग ०कमाविनी। ५ ख विश्रुत। ६ ख ०तीयस्तु सु०।

सप्तमोऽध्यायः।

सूर्यवंश वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

मनोर्वैवस्वतस्यासन पुत्रा वै नव तत्समा [1]। इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्ट शर्यातिरेव च॥१॥
नरिष्यन्तश्च[2] पष्ठो[3] वै प्राशू रिष्टश्च सप्तम। करूपश्च [4]पृषध्रश्च नवैते मुनिसत्तमा॥२॥
अकरोत् पुत्रकामस्तु[5] मनुरिष्टिं प्रजापति। मित्रावरुणयोर्विप्रा पूर्वमेव महामति॥३॥
अनुत्पन्नेषु बहुषु पुत्रेष्वेतेषु भो द्विजा। तस्या च वर्त्तमानायामिष्टया च द्विजसत्तमा॥४॥
मित्रावरुणयोरंशे [6]मनुराहुतिमावहत्[7]। तत्र दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता॥५॥
दिव्यसहनना चैव इला जज्ञ इति श्रुति। तामिलेत्येव[8] होवाच मनुर्दण्डधरस्तदा॥६॥
अनुगच्छस्व मा भद्रे तमिला प्रत्युवाच ह। धर्म्मयुक्तमिद वाक्य पुत्रकाम प्रजापतिम्॥७॥

इलोवाच

मित्रावरुणयोरंशे जातास्मि वदता वर। तयो सकाश यास्यामि न मा धर्म्महता कुरु॥८॥
सैवमुक्त्वा मनु देव मित्रावरुणयोरिला। गत्वान्तिक वरारोहा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत॥९॥

अध्याय ७

सूर्यवंश का वर्णन

लोमहर्षण ने कहा—वैवस्वत मनु के अपने ही समान इक्ष्वाकु नाभाग धृष्ट शर्याति नरिष्यन्त प्राशु, रिष्ट करूप और पृषध्र—ये नौ पुत्र थे॥१ २॥ विप्रवृन्द! इन पुत्रो की उत्पत्ति से पहले बुद्धिमान् प्रजापति मनु ने पुत्र की इच्छा से मित्रा वरुण का यज्ञ किया॥३½॥ द्विजवर्य! उस वर्तमान यज्ञ में मनु ने मित्र वरुण के अश से अग्नि मे बहुत-सी आहुतियाँ दी॥४½॥ उस यज्ञ मे दिव्य वस्त्राभरण से अलकृत तथा दिव्यरूपवती कन्या उत्पन्न हुई॥५½॥ दण्डधारी मनु ने उसका नाम इला रखकर कहा—पुत्रि! तुम मेरे साथ चलो।' तब पुत्रार्थी प्रजापति से इला ने यह धर्म-युक्त वाक्य कहा॥६ ७॥

इला बोली—हे श्रेष्ठ वक्ता! मैं मित्रावरुण के अंश से जनमी हूँ। इसलिये उन्ही के पास जाऊँगी। आप मुझे धर्म से च्युत न करें॥८॥ ऐसा कहकर वह सुन्दरी इला मित्रावरुण के पास चली गई और अजलि बाँधकर कहने लगी॥९॥

---

१ क ख सत्तमा। २ ख ०तस्तु प०। ३ ख ०ष्ठो नाम गोऽरिष्टश्च सत्तमा। क०। ४ ग पुरुषश्च
५ क ०स्तु मुनिरि०। ६ क ०माजुहोत्। ७ ख ०वपत्। ८ क ख ०लेतीति हो०।

इलोवाच

अंशोऽस्मि[1] युवयोर्जाता देवौ किं करवाणि वाम्। मनुना चाहमुक्ता वा अनुगच्छस्व मामिति ॥१०॥
तौ तथावादिनीं साध्वीमिलां धर्मपरायणाम्। मित्रश्च वरुणश्चोभावूचतुस्तां द्विजोत्तमाः ॥११॥

मित्रावरुणावूचतुः

अनेन तव धर्म्मेण प्रश्रयेण दमेन च। सत्येन चैव सुश्रोणि प्रीतौ स्वो वरवर्णिनि ॥१२॥
आवयोस्त्वं महाभागे ख्यातिं कन्येति यास्यसि। मनोर्व्वंशकरः पुत्रस्त्वमेव च भविष्यसि ॥१३॥
सुद्युम्न इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु शोभने। जगत्प्रियो धर्म्मशीलो मनोर्व्वंशविवर्द्धनः[2] ॥१४॥
निवृत्ता सा तु तच्छ्रुत्वा गच्छन्ती पितुरन्तिकात् ॥१५॥
बुधेनान्तरमासाद्य मैथुनायोपमन्त्रिता[3]। [4]सोमपुत्राद्बुधाद्विप्रास्तस्यां जज्ञे पुरूरवा ॥१६॥
जनयित्वा ततः सा तमिला सुद्युम्नतां गता। सुद्युम्नस्य तु दायादास्त्रयः परमधार्म्मिकाः ॥१७॥
उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वश्च[5] भो द्विजाः। उत्कलस्योत्कला विप्रा विनताश्वस्य[6] पश्चिमा ॥१८॥
दिक्पूर्व्वा मुनिशार्दूला गयस्य तु गया स्मृता। प्रविष्टे तु मनौ विप्रा दिवाकरमरिन्दमम् ॥१९॥
दशधा[7] तत्पुनः क्षत्रमकरोत् पृथिवीमिमाम्। [8]इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान् ॥२०॥
कन्याभावात्तु सुद्युम्नो[9]नैतद्राज्यमवाप्तवान्। वसिष्ठवचनात्वासीत्[10] प्रतिष्ठाने महात्मनः ॥२१॥

इला ने कहा—हे देवताओ! आप दोनों के अंश से मैं उत्पन्न हुई हूँ। किन्तु मनु ने मुझे अपने साथ चलने के लिए कहा था ॥१०॥ अब आप मुझे आदेश दें, क्या करूँ? द्विजवर्य! उस धर्म-परायण साध्वी इला के ऐसा कहने पर मित्रा-वरुण ने उससे कहा ॥११॥

मित्रावरुण बोले—'हे सुन्दर कटि वाली! हे महाभागे! तुम्हारे इस धर्म, विनय, शान्ति और सत्य से हम प्रसन्न हैं ॥१२॥ तुम हमारी पुत्री रूप में संसार में ख्यात होगी। हे शोभने! मनु का वंश-वर्धक पुत्र तुम्हीं होगी ॥१३॥ जगत् प्रिय, धर्मात्मा और मनु-वंश-वर्धक सुद्युम्न—इस नाम से तीनों लोक में विख्यात होगी'। यह सुनकर वह पिता के यहाँ से लौट पड़ी ॥१४—१५॥ तो अवसर पाकर चन्द्रमा के पुत्र बुध ने उससे रति की प्रार्थना की। और बुध से इला में पुरूरवा नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१६॥ उसको उत्पन्न कर इला सुद्युम्न बन गई। विप्रवृन्द! सुद्युम्न के परम धार्मिक तीन पुत्र हुए—उत्कल, गय और विनताश्व ॥१७½॥ मुनिश्रेष्ठो! उत्कल की उत्कला, विनताश्व की दिक्पश्चिमा और गय की गया नामक नगरी बनी ॥१८½॥ द्विजवृन्द! जब मनु ने शत्रुसूदन सूर्य में प्रवेश किया, तब उसके पुत्रों ने इस पृथिवी को फिर दस भागों में बाँट दिया ॥१९½॥ ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु को मध्यदेश मिला ॥२०॥ कन्याभाव होने के कारण सुद्युम्न को यह राज्य नहीं मिला। ब्राह्मणवर! वसिष्ठ के वचन से धर्मराज सुद्युम्न की प्रतिष्ठा महात्मा पुरुषों के समान होने लगी ॥२१½॥

---

१ ख ०स्मि युव०। २ क मनुवंश०। ३ क ०पशासिता। ४ ख ०घाद्राजा तस्माज्जज्ञे। ५ क. विजिता०। ६ क विजिता०। ७ क ०धा तदमूत्क्षत्र०। ग ०धा तु कुरुक्षेत्रम०। ८ ख ०कुर्ज्येष्टदा०। ९ ग ०तद्गुण म०। १० ख० नाच्चाऽऽसी०।

प्रतिष्ठा धर्म्मराजस्य सुद्युम्नस्य द्विजोत्तमाः। तत्पुरूरवसे प्रादाद्राज्यं प्राप्य महायशाः॥२२॥
मानवेयो मुनिश्रेष्ठाः स्त्रीपुंसोर्लक्षणैर्युतः। धृतवांस्तामिलेत्येवं[१] सुद्युम्नेति च [२]विश्रुतः॥२३॥
नारिष्यन्ताः शकाः पुत्रा नाभागस्य तु भो द्विजाः। अम्बरीषोऽभवत् पुत्रः [३]पार्थिवर्षभसत्तमः॥२४॥
धृष्टस्य धार्ष्टिकं क्षत्रं रणदृप्तं बभूव ह। करूषस्य च कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्म्मदाः॥२५॥
नाभागधृष्टपुत्राश्च क्षत्रिया वैश्यतां गताः। प्रांशोरेकोऽभवत्पुत्रः प्रजापतिरिति स्मृतः॥२६॥
नरिष्यन्तस्य दायादो राजा दण्डधरो यमः। शर्यातेर्मिथुनं त्वासीदानर्तो नाम विश्रुतः॥२७॥
पुत्रः कन्या सुकन्या च या पत्नी च्यवनस्य ह। आनर्त्तस्य तु दायादो [४]रैवो नाम महाद्युतिः॥२८॥
आनर्त्तविषयश्चैव पुरी चास्य कुशस्थली। रैवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नाम धार्म्मिकः॥२९॥
ज्येष्ठः पुत्रः[५] स तस्यासीद्राज्यं प्राप्य कुशस्थलीम्। स कन्यासहितः श्रुत्वा गान्धर्व्वं ब्रह्मणोऽन्तिके॥३०॥
मुहूर्त्तभूतं देवस्य तस्थौ बहुयुगं द्विजाः। आजगाम स चैवाथ स्वां पुरीं[६] यादवैर्वृताम्॥३१॥
कृतां[७] द्वारवतीं नाम बहुद्वारां मनोरमाम्। भोजवृष्ण्यन्धकैर्गुप्तां वसुदेवपुरोगमैः॥३२॥
तत्रैव[८] रैवतो ज्ञात्वा यथातत्त्वं[९] द्विजोत्तमाः। कन्यां तां बलदेवाय सुभद्रां नाम रेवतीम्॥३३॥
दत्त्वा जगाम शिखरं मेरोस्तपसि संस्थितः[१०]। रेमे रामोऽपि धर्म्मात्मा रेवत्या सहितः सुखी॥३४॥

महान् यशस्वी सुद्युम्न ने राज्य प्राप्त कर पुरूरवा को दे दिया॥२२॥ मुनिवर! स्त्री-पुरुष उभय लक्षणों से युक्त सुद्युम्न को देखकर लोग उसे इला और सुद्युम्न दोनों नाम से पुकारने लगे॥२३॥ विप्रवृन्द! नरिष्यन्त के शक जाति वाले पुत्र हुए। नाभाग के राजाओं में श्रेष्ठ अम्बरीष पुत्र हुआ॥२४॥ धृष्ट के युद्ध-गर्वी धार्ष्टक नामक क्षत्रिय-पुत्र हुआ। करुष के युद्धाभिमानी कारूष नामक क्षत्रिय-पुत्र थे॥२५॥ नाभाग और धृष्ट के क्षत्रिय-पुत्र वैश्य बन गये। प्रांशु के एक पुत्र हुआ जो प्रजापति कहलाया॥२६॥ नरिष्यन्त का पुत्र यम दण्ड धारी राजा हुआ। शर्याति के आनर्त नामक पुत्र और सुकन्या नामक पुत्री हुई। सुकन्या च्यवन मुनि की पत्नी बनी। आनर्त का पुत्र महातेजस्वी रैव हुआ॥२७-२८॥ आनर्त देश में इसका राज्य था और कुशस्थली (द्वारका) राजधानी थी। रैव का धर्मात्मा पुत्र रैवत और ककुद्मी दोनों नाम से प्रसिद्ध हुआ॥२९॥ वह ज्येष्ठ पुत्र था और उसी को द्वारका का राज्य मिला। गान्धर्व वेद को सुनकर वह अपनी कन्या सहित ब्रह्मा के पास चला गया॥३०॥ वहाँ वह देवताओं की दो घड़ी के बराबर बहुत युगों तक उनके पास ठहर गया। फिर यादवों से व्याप्त अपनी नगरी द्वारका पुरी नामक लौट आया॥३१॥ नगरी बहुत द्वारों वाली और मनोहर थी। भोज, वृष्णि और अन्धक वंशवाले, जिनमें वसुदेव प्रधान थे, उसकी रक्षा करते थे॥३२॥ विप्रवर! उसी नगर में श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम के यथार्थ तत्त्व को जानकर रैवत रेवती नामक अपनी सुन्दरी कन्या बलदेव को समर्पित कर तपस्या करने के लिए सुमेरु पर्वत पर चला गया। धर्मात्मा बलराम भी रेवती के साथ सुखपूर्वक रमण करने लगे॥३३-३४॥

---

१ ख ०त्येव सु०। २ ग विश्रुति। ३ ख. ०वस्त्वृषिसत्तमा। घृ०। ४ ग रेवो। ५ ख ग. पुत्रमत०। ६ ख ०रीं यादवैर्वृ०। ७ ख ०तां द्वारवतीं नाम्ना च०। ८ ख ततस्तद्दैव०। ९ क याथातथ्य। १० ग. संश्रित।

मुनय उचुः

कथं बहुयुगे काले समतीते महामते। न जरा रेवतीं प्राप्ता रवतं च ककुद्मिनम् ॥३५॥
मेरुं गतस्य वा तस्य शर्यातेः सन्ततिः कथम्। स्थिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥३६॥

लोमहर्षण उवाच

न जरा क्षुत्पिपासा वा न मृत्युर्मुनिसत्तमाः। ऋतुचक्रं प्रभवति[1] ब्रह्मलोके सदानघाः।
ककुद्मिनः[2] स्वर्लोकं तु रैवतस्य गतस्य ह ॥३७॥
हृता[3] पुण्यजनैर्विप्रा राक्षसैः सा कुशस्थली। तस्य भ्रातृशतं[4] त्वासीद्धार्मिकस्य महात्मनः ॥३८॥
तद्वध्यमानं रक्षोभिर्दिशः प्राद्रवदच्युताः[5]। विद्रुतस्य च विप्रेन्द्रास्तस्य भ्रातृशतस्य वै ॥३९॥
अन्ववायस्तु सुमहांस्तत्र तत्र द्विजोत्तमाः[6]। [7]तेषां ह्येते मुनिश्रेष्ठाः शर्याता इति विश्रुताः ॥४०॥
क्षत्रिया गुणसम्पन्ना दिक्षु सर्व्वासु विश्रुताः। सर्व्वशः सर्व्वगहनं [8]प्रविष्टास्ते महौजसः ॥४१॥
नाभागरिष्टपुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ। करूषस्य तु कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्म्मदाः ॥४२॥
पृषध्रो हिंसयित्वा तु गुरोर्गां द्विजसत्तमाः। शापाच्छूद्रत्वमापन्नो नवैते परिकीर्त्तिताः ॥४३॥
वैवस्वतस्य तनया मुनेर्व्वै मुनिसत्तमाः। क्षुवतस्तु मनोर्विप्रा इक्ष्वाकुरभवत् सुतः ॥४४॥
तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोर्भूरिदक्षिणम्[9]। तेषां [10]विकुक्षिर्ज्येष्ठस्तु [11]विकुक्षित्वादयोधताम् ॥४५॥

मुनियों ने पूछा—महाप्राज्ञ! बहुत युग बीत जाने पर रेवती और ककुद्मी रैवत को वृद्धता क्यों नहीं प्राप्त हुई? ॥३५॥ या मेरु पर्वत पर उनके चले जाने पर शर्याति राजा की सन्तान आज भी पृथ्वी पर कैसे अवस्थित है? यह बात हम लोग तत्त्वतः सुनना चाहते हैं ॥३६॥

लोमहर्षण बोले—निष्पाप मुनिवृन्द! बुढ़ापा, भूख, प्यास, मृत्यु और ऋतु-परिवर्तन आदि ब्रह्मलोक में नहीं हुआ करते हैं। ककुद्मी रैवत के देव-लोक चले जाने पर राक्षसों ने द्वारका पर अधिकार कर लिया ॥३७½॥ उस धार्मिक राजा के सौ भाई थे, जो राक्षसों से पीड़ित होकर विभिन्न दिशाओं में भाग गये ॥३८½॥ ब्राह्मणश्रेष्ठो! उन भागे हुए भाइयों का वंश बहुत बड़ा था। उसी वंश के लोग सब दिशाओं में शर्यात नाम से विख्यात सर्वगुण सपन्न क्षत्रिय थे। वे महान् तेजस्वी सब ओर से सब वनों में प्रविष्ट हुए ॥३९-४१॥ नाभागारिष्ट के वैश्य जाति वाले दो पुत्र ब्राह्मण बन गये। करूष के कारूष नाम से प्रसिद्ध युद्धाभिमानी क्षत्रिय उत्पन्न हुए ॥४२॥ विप्रवर! पृषध्र गुरु की गाय को मारने के कारण शाप से शूद्र हो गया। मुनिश्रेष्ठो! ये नौ पुत्र वैवस्वत मनु के कहलाये ॥४३½॥ ब्राह्मणो! मनु की छींक से इक्ष्वाकु उत्पन्न हुआ ॥४४॥ इक्ष्वाकु के बहुत-सी दक्षिणा देने वाले सौ पुत्र हुए। उनमें विकुक्षि सबसे ज्येष्ठ था। वह पेट की गड़बड़ी के कारण युद्ध करने में असमर्थ रहा ॥४५॥ परम धर्मज्ञ

---

१ क ०ति तत्र लो०। २ ख ०द्मिनश्च स्व०। ३ क ग हृता। ४ ख ०त चाऽऽसी०। ५ ख. ०दच्युत। वि०। ६ क ०मा। एव ते तु मु०। ७ क तथमेते। ८ क ०ष्टाश्च म०। ९ ग ०क्षिण'। ते०। १० क. ०कुक्षि श्रेष्ठ०। ११ क विक्रमे रुद्रमनिभ। ख विक्रमेण समन्वित। प्रा०।

प्राप्तः परमधर्म्मज्ञ.[1] सोऽयोध्याधिपतिः प्रभुः। शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्राः पञ्चशतं स्मृताः॥४६॥
उत्तरापथदेशस्य रक्षितारो महाबलाः। चत्वारिंशद्दशाष्टौ च दक्षिणस्यां तथा [2]दिशि॥४७॥
वशातिप्रमुखाश्चान्ये रक्षितारो द्विजोत्तमा.। इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षिं वा अष्टकायामयादिशत्॥४८॥
मांसमानय श्राद्धार्थं मृगान् हत्वा महाबल। श्राद्धकर्म्मणि चोद्दिष्टो अकृते श्राद्धकर्म्मणि॥४९॥
भक्षयित्वा शशं विप्रा शशादो मृगयां गतः। इक्ष्वाकुणा परित्यक्तो वसिष्ठवचनात् प्रभुः॥५०॥
इक्ष्वाकौ संस्थिते विप्राः शशादस्तु नृपोऽभवत्। शशादस्य तु दायादः ककुत्स्थो नाम वीर्य्यवान्॥५१॥
अनेनास्तु[3] ककुत्स्थस्य पृथुश्चानेनसः स्मृत[4]। विष्टराश्वः[5] पृथोः पुत्रस्तस्मादार्द्रस्त्वजायत॥५२॥
आर्द्रस्य युवनाश्वस्तु श्रावस्तस्तत्सुतो द्विजाः। जज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावस्ती येन निर्मिता॥५३॥
श्रावस्तस्य तु दायादो बृहदश्वो महीपतिः। कुवलाश्व[6] सुतस्तस्य राजा परमधार्म्मिकः॥५४॥
यः[6] स धुन्धुवधाद्राजा धुन्धुमारत्वमागतः ॥५५॥

मुनय उचुः

धुन्धोर्वधं[7] महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छाम तत्त्वत[7]। यद्वधात्कुवलाश्वोऽसौ धुन्धुमारत्वमागतः॥५६॥

लोमहर्षण उवाच

कुवलाश्वस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम्। सर्व्वे विद्यासु निष्णाता बलवन्तो दुरासदाः॥५७॥

विकुक्ष अयोध्या का शासक था। उसके शकुनि आदि पाँच सौ पुत्र हुए॥४६॥ जिनमे से चालीस उत्तरापथ के और अठारह दक्षिणापथ के महाबली रक्षक थे॥४७॥ ब्राह्मणश्रेष्ठो! वशाति आदि दूसरे भी रक्षक थे। एक समय अष्टका (पितर और देवताओं के कर्म के दिन) में इक्ष्वाकु ने विकुक्षि से कहा—'महाबली! श्राद्ध के लिए मृगों को मारकर मांस ले आओ'॥४८॥ ब्राह्मणो! श्राद्ध-कर्म मे नियुक्त विकुक्षि श्राद्ध-कर्म के सम्पन्न हुए बिना ही खरगोश को खाकर शिकार खेलने के लिए चला गया। तब वसिष्ठ के आदेश से राजा इक्ष्वाकु ने (खरगोश खाने वाले) शशाद विकुक्षि का परित्याग कर दिया॥४९-५०॥ इक्ष्वाकु के बाद शशाद राजा हुआ। शशाद का पुत्र अतिशक्तिशाली ककुत्स्थ हुआ। ॥५१॥ ककुत्स्थ से अनेनस् और अनेनस् से पृथु उत्पन्न हुआ। पृथु से विष्टराश्व और उससे आर्द्र हुआ। ॥५२॥ विप्रवृन्द! आर्द्र का पुत्र युवनाश्व और उसका पुत्र श्राव हुआ। श्राव के पुत्र श्रावस्तक ने श्रावस्ती नाम की नगरी बसायी। ॥५३॥ श्रावस्तक का पुत्र राजा बृहदश्व हुआ। उसका पुत्र परम धर्मात्मा राजा कुवलाश्व हुआ, जिसका नाम धुंधु नामक दैत्य को मारने से धुंधुमार पड गया॥५४-५५॥

मुनियों ने कहा—हे महाविद्वन्! हम धुंधु के मारने का आख्यान तत्त्वपूर्वक सुनना चाहते हैं, जिसके मारने से कुवलाश्व धुंधुमार कहलाया॥५६॥

लोमहर्षण बोले—कुवलाश्व के उत्तम धनुर्धर, सब विद्या-विशारद, बलवान्, सुन्दर, धर्मात्मा, यज्ञ-कर्ता और

---

१ क ०र्मज्ञ पृथिव्याधि०। २ ख ०शि। इणदप्र०। ३ ख ०नेनस क०। ४ ख ०त। वाराश्वस्तु पु०। ५ क विष्णारश्च पु०। ६ क. ख. यस्तु धु०। ७ क. ०धं वय ब्रह्मञ्छ्रोतु०।

बभूवुर्धार्म्मिकाः सर्व्वे यज्वानो भूरिदक्षिणाः। कुवलाश्वं पिता[1] राज्ये बृहदश्वो[2] न्ययोजयत् ॥५८॥
पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु वनं राजा विवेश ह। तमुत्तङ्कोऽथ विप्रर्षिः [3]प्रयान्तं प्रत्यवारयत् ॥५९॥

उत्तङ्क उवाच

भवता रक्षणं कार्य्यं तच्च कर्त्तुं[4] त्वमर्हसि। निरुद्विग्नस्तपश्चर्त्तुं नहि शक्नोमि पार्थिव ॥६०॥
ममाश्रमसमीपे वै समेषु मरुधन्वसु। [5]समुद्रो बालुकापूर्ण [6]उद्दालक इति [7]स्मृतः ॥६१॥
दैवतानामवध्यश्च महाकायो महाबल। [8]अन्तर्भूमिगतस्तत्र बालुकान्तर्हितो महान् ॥६२॥
राक्षसस्य[9] मधोः पुत्रो धुन्धुर्नाम महासुर[10]। शेते लोकविनाशाय तप आस्थाय दारुणम् ॥६३॥
संवत्सरस्य पर्य्यन्ते स निश्वासं विमुञ्चति। यदा तदा मही तत्र चलति स्म नराधिप ॥६४॥
तस्य निश्वासवातेन रज उद्धूयते महत्। आदित्यपथमावृत्य सप्ताहं भूमिकम्पनम् ॥६५॥
सविस्फुलिङ्गं साङ्गारं सधूममतिदारुणम्। तेन तात न शक्नोमि तस्मिन् स्थातुं स्व आश्रमे ॥६६॥
तं मारय महाकायं लोकाना हितकाम्यया। लोका[11] स्वस्था भवन्त्यद्य तस्मिन् विनिहते त्वया ॥६७॥
त्वं हि तस्य वधायैकः समर्थः पृथिवीपते। विष्णुना च वरो दत्तो मह्यं पूर्व्वयुगे नृप ॥६८॥
यस्तं महासुरं रौद्रं हनिष्यति महाबलम्। तस्य त्वं वरदानेन तेजश्चाप्याप्यायिष्यसि ॥६९॥
न हि धुन्धुर्महातेजास्तेजसाल्पेन शक्यते। निर्दग्धु पृथिवीपाल चिरं युगशतैरपि ॥७०॥

बहु-दक्षिणा-दाता सौ पुत्र हुए ॥५७½॥ पिता बृहदश्व ने कुवलाश्व को राज्य प्रदान किया। इस प्रकार राज्य-लक्ष्मी पुत्र के अधीन कर राजा ने वन मे प्रवेश किया। पर उत्तक नामक ब्रह्मर्षि ने उसको जाने से रोक दिया ॥५८-५९॥

उत्तक ने कहा—राजन्! तुम्हे रक्षा करनी चाहिये तुम उसके योग्य हो, मैं निश्चिन्ततापूर्वक तपस्या नही कर पाता ॥६०॥ क्योकि मेरे आश्रम के समीप मरुधन्वा नामक देश मे बालू से भरा हुआ समुद्र उद्दालक नाम से ख्यात है ॥६१॥ वहाँ पृथ्वी के भीतर प्रवेश कर रेत से आच्छादित, देवताओ से भी अवध्य, महाकाय और महाबली मधु नामक राक्षस का पुत्र धुधु नामक महाराक्षस कठिन तपस्या करके लोक विनाश के लिए शयन करता है ॥६२-६३॥ पृथिवी-पाल! वर्ष के अन्त मे जब वह साँस छोडता है तब वहाँ भू-कम्प हो जाता है ॥६४॥ उसकी साँस के वायु से उड-कर धूल सूर्य के मार्ग को आच्छादित कर देती है। सात दिन तक पृथ्वी काँपती रहती है ॥६५॥ धुएँ से युक्त अग्नि से भयानक चिनगारियाँ निकलने लगती हैं। तात! इसी कारण मैं अपने आश्रम म नही ठहर पाता हूँ ॥६६॥ जन-कल्याण की कामना से तुम उस महाकाय राक्षस को मारो। तुम्हारे द्वारा उसका वध हो जाने पर जनता स्वस्थ, सन्तुष्ट हो जायगी। ॥६७॥ राजन्! उसका वध करने मे तुम्ही समर्थ हो। पूर्व युग मे विष्णु ने मुझे वरदान दिया था कि जो उस भयकर महाराक्षस को मारेगा, उसके तेज को वरदान से तुम बढाओगे ॥६५-६९॥ पृथिवीपते! महातेजस्वी धुधु अल्प तेज से सैकडो युगो तक दग्ध नही किया जा सकता ॥७०॥ उसका महापराक्रम

---

१ क ख सुत। २ क. ख ०श्वोऽभ्यषेचय०। ३ ग प्रयात। ४ क. ख कर्तुमिहार्ह०। ५ ख ०मुद्रवा०। ६ ख उज्जानक०। ७ ख ०त। दैव०। ८ ख अनुर्भूमि०। ९ क ०सस्तु म०। १० ख ०र। स तु लो०। ११ क. लोकाश्च सुखमेधन्ते त०।

वीर्यञ्च सुमहत्तस्य देवैरपि दुरासदम्। स एवमुक्तो राजर्षिरुत्तङ्केन महात्मना।
कुवलाश्व सुत प्रादात्तस्मै धुन्धुनिबर्हणे ॥७१॥

बृहदश्व उवाच

भगवन्न्यस्तशस्त्रोऽहमयं तु तनयो मम। भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुन्धुमारो न संशयः ॥७२॥
स तं व्यादिश्य तनयं राजर्षिर्धुन्धुमारणे। जगाम पर्वतायैव नृपतिः संशितव्रतः ॥७३॥

लोमहर्षण उवाच

कुवलाश्वस्तु पुत्राणां शतेन सह भो द्विजाः। प्रायादुत्तङ्कसहितो धुन्धोस्तस्य निबर्हणे ॥७४॥
तमाविशत्तदा विष्णुस्तेजसा भगवान् प्रभुः। उत्तङ्कस्य नियोगाद्वै लोकानां हितकाम्यया ॥७५॥
तस्मिन् प्रयाते दुर्द्धर्षे दिवि शब्दो महानभूत्। एष श्रीमानवध्योऽद्य धुन्धुमारो भविष्यति ॥७६॥
दिव्यैर्गन्धैश्च माल्यैश्च[1] तं देवाः समवाकिरन्। देवदुन्दुभयश्चैव [2]प्रणेदुर्द्विजसत्तमाः ॥७७॥
स गत्वा जयतां [3]श्रेष्ठस्तनयैः सह वीर्यवान्। समुद्रं खानयामास बालुकान्तरमव्ययम् ॥७८॥
तस्य पुत्रैः खनद्भिश्च बालुकान्तर्हितस्तदा। धुन्धुरासादितो विप्रा दिशमावृत्य पश्चिमाम् ॥७९॥
मुखजेनाग्निना क्रोधाल्लोकानुद्वर्त्तयन्निव। वारि सुस्राव वेगेन महोदधिरिवोदये ॥८०॥
सोमस्य मुनिशार्दूला वरोर्म्मिकलिलो महान्। तस्य पुत्रशतं दग्धं त्रिभिरूनं तु रक्षसा ॥८१॥

देवताओं से भी अजेय है। महात्मा उत्तंक के ऐसा कहने पर राजर्षि ने अपने पुत्र कुवलाश्व को धुंधु-वध के निमित्त उस मुनि को दे दिया ॥७१॥

बृहदश्व ने कहा—भगवन्! मैंने तो शस्त्र का त्याग कर दिया है। किन्तु मेरा यह पुत्र निःसन्देह धुंधु को मारेगा ॥७२॥ इसके बाद अपने पुत्र को धुंधु-वध का आदेश देकर वह राजर्षि तपस्या करने के लिए पर्वत पर चला गया ॥७३॥

लोमहर्षण बोले—ब्राह्मणो! सौ पुत्रों को संग ले कुवलाश्व ने उत्तंक के साथ धुंधु को मारने के लिए प्रस्थान किया तो लोकहित के लिए उत्तंक की आज्ञा से भगवान् विष्णु उस कुवलाश्व के शरीर में प्रविष्ट हुए ॥७४-७५॥ राजा के प्रस्थान करते ही आकाशवाणी का महानाद हुआ कि यह राजा अवध्य है और धुंधु को मारेगा ॥७६॥ देवताओं ने उसके ऊपर दिव्य सुगंधित पुष्पों की वृष्टि की। दुंदुभी बजने लगी ॥७७॥ जय शीलों में श्रेष्ठ वह पराक्रमी राजा अपने पुत्रों के साथ जाकर बालू से परिपूर्ण समुद्र को खुदवाने लगा ॥७८॥ ब्राह्मणो! राजा-पुत्रों के खोदने के समय बालू के भीतर छिपा धुंधु पश्चिम दिशा को ढक कर खड़ा हो गया ॥७९॥ और क्रोध से विश्व का संहार करने के लिए मुख से अग्नि निकालते हुए चन्द्रोदय में अत्यन्त तरंगित महासागर की तरह वेग से जल बढ़ाने लगा ॥८०॥ मुनिवृन्द! राक्षस ने तीन को छोड़ कर सब पुत्रों को जला दिया ॥८१॥

---

[1] क ख ०श्च समन्ततस्तम०। [2] ख ०र्द्विजसत्तमा भृशम्। ग। [3] क श्रेष्ठैस्त०।

ततः स राजा द्युतिमान् राक्षसं तं महाबलम्। आससाद महातेजा धुन्धुं धुन्धुविनाशनः॥८२॥
तस्य वारिमयं वेगमापीय स नराधिपः। योगी योगेन वह्निञ्च शमयामास वारिणा॥८३॥
निहत्य[1] तं महाकायं बलेनोदकराक्षसम्। उत्तङ्कं दर्शयामास कृतकर्म्मा नराधिपः॥८४॥
उत्तङ्कस्तु वरं प्रादात्तस्मै राज्ञे महात्मने। ददौ तस्याक्षयं वित्तं शत्रुभिश्चापराजितम्॥८५॥
धर्म्मे रतिञ्च सततं स्वर्गे वासं तथाक्षयम्। पुत्राणां चाक्षयाँल्लोकान् स्वर्गे ये रक्षसा हताः॥८६॥
तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टा[2] दृढाश्वो ज्येष्ठ उच्यते। चन्द्राश्वकपिलाश्वौ तु कनीयांसौ कुमारकौ॥८७॥
धौन्धुमारेर्दृढाश्वस्य हर्य्यश्वस्त्वात्मजः स्मृतः। हर्य्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत् क्षत्रधर्म्मरतः सदा॥८८॥
संहताश्वो निकुम्भस्य सुतो रणविशारदः। अकृशाश्वकृशाश्वौ तु संहताश्वसुतौ द्विजाः॥८९॥
तस्य हैमवती कन्या सतां मता दृषद्वती। विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रश्चास्याः प्रसेनजित्॥९०॥
लेभे प्रसेनजिद्भार्य्यां गौरीं नाम पतिव्रताम्। अभिशस्ता तु सा भर्त्रा नदी वै बाहुदाभवत्॥९१॥
तस्य[3] पुत्रो महानासीद्युवनाश्वो नराधिपः। मान्धाता युवनाश्वस्य त्रिलोकविजयी सुतः॥९२॥
तस्य चैत्ररथी भार्य्या शशबिन्दोः सुताभवत्। साध्वी[4] बिन्दुमती नाम रूपेणासदृशी भुवि॥९३॥
पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातॄणामयुतस्य वै। तस्यामुत्पादयामास मान्धाता द्वौ सुतौ द्विजाः॥९४॥
पुरुकुत्सं च धर्म्मज्ञं मुचुकुन्दं च पार्थिवम्। पुरुकुत्ससुतस्त्वासीत्त्रसदस्युर्महीपतिः॥९५॥

तब कान्तिमान् एवं महातेजस्वी वह धुन्धुनाशक राजा उस महाबली धुन्धु के पास पहुँचा॥८२॥ उस योगी राजा ने योगविद्या के बल से उसके जलमय वेग को पीकर जल से अग्नि को शान्त किया॥८३॥ उस महाकाय जल-राक्षस को बल से मारकर कृतकृत्य राजा ने उत्तङ्क को दिखलाया॥८४॥ उत्तङ्क ने उस राजर्षि को यह वरदान दिया—'अक्षय धन तुम्हारे पास होगा, शत्रुओं से पराजय नहीं होगा, धर्म में सदा अनुराग रहेगा, अक्षय रूप से स्वर्ग में वास होगा और जिन पुत्रों को राक्षस ने मारा, उन्हें स्वर्ग में अक्षय लोक मिलेंगे'॥८५-८६॥ उस राजा के अवशिष्ट तीन पुत्रों में दृढाश्व ज्येष्ठ था। कुमार चन्द्राश्व और कपिलाश्व छोटे थे॥८७॥ धुन्धुमार-पुत्र दृढाश्व के हर्यश्व नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। हर्यश्व के सदा क्षत्रिय-धर्म में तत्पर निकुम्भ नामक पुत्र हुआ॥८८॥ निकुम्भ के युद्ध-कुशल संहताश्व पुत्र हुआ। विप्रवृन्द! संहताश्व के दो पुत्र हुए—अकृशाश्व और कृशाश्व॥८९॥ संहताश्व के सत्पुरुषों की आदरणीया और तीनों लोकों में दृषद्वती नाम से विख्यात हैमवती नामक कन्या हुई। इसके प्रसेनजित् नामक पुत्र हुआ॥९०॥ प्रसेनजित् की पतिव्रता पत्नी का नाम गौरी था। पति के शाप से वही गौरी बाहुदा नामक नदी बनी॥९१॥ प्रसेनजित् का पुत्र युवनाश्व महान् राजा हुआ। युवनाश्व के त्रैलोक्य विजयी मांधाता पुत्र हुआ॥९२॥ शशबिन्दु की कन्या चैत्ररथी उसकी भार्या हुई। वह अनुपम सुन्दरी, बिन्दुमती नाम से प्रख्यात, पतिव्रता और दस हजार भाइयों में सबसे बड़ी थी॥९३½॥ द्विजगण! मांधाता ने उससे दो पुत्र उत्पन्न किये—धर्मज्ञ पुरुकुत्स और राजा मुचुकुन्द। पुरुकुत्स का पुत्र त्रसदस्यु नामक राजा था॥९४-९५॥ उसके नर्मदा से उत्पन्न

---

१ ग दर्शयित्वा। २ क विहत्य। ग निहत्य। ३ ग शिष्टा सुताना का०। ४ क ग सहाय। ५ क ग भार्या। ६ ग मान्या। ७ क ज्येष्ठा चैव०।

नर्म्मदायामथोत्पन्नः 'सम्भूतस्तस्य चात्मजः। 'सम्भूतस्य तु दायादस्त्रिधन्वा रिपुमर्दनः॥९६॥
राज्ञस्त्रिधन्वनस्त्वासीद्विद्वांस्त्रय्यारुणः' प्रभुः। तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः॥९७॥
परिग्रहणमन्त्राणां विघ्नं चक्रे सुदुर्म्मतिः। येन भार्य्या कृतोद्वाहा हृता' चैव परस्य ह॥९८॥
बाल्यात् कामाच्च मोहाच्च साहसाच्चापलेन च। जहार कन्यां कामार्त्तः कस्यचित् पुरवासिनः॥९९॥
अधर्म्मशङ्कुना तेन तं स त्रय्यारुणोऽत्यजत्। अपध्वंसेति बहुशो वदन् क्रोधसमन्वितः॥१००॥
सोऽब्रवीत् पितरं त्यक्तः क्व' गच्छामीति वै मुहुः। पिता च तमथोवाच' श्वपाकैः सह वर्त्तय॥१०१॥
नाहं पुत्रेण' पुत्रार्थी त्वयाद्य कुलपांसन। इत्युक्तः स निराक्रामन्नगराद्वचनात् पितुः॥१०२॥
न च तं वारयामास वसिष्ठो भगवानृषिः। स तु सत्यव्रतो विप्राः' श्वपाकावसथान्तिके॥१०३॥
पित्रा त्यक्तोऽवसद्वीरः पिताप्यस्य वनं ययौ। ततस्तस्मिंस्तु विषये नावर्षत् पाकशासनः॥१०४॥
समा द्वादश भो विप्रास्तेनाधर्म्मेण वै तदा। दारास्तु तस्य विषये विश्वामित्रो महातपाः॥१०५॥
संन्यस्य सागरान्ते तु चकार विपुलं तपः। तस्य पत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम्॥१०६॥
शेषस्य भरणार्थाय 'व्यक्रीणाद्गोशतेन वै। तं च बद्धं गले दृष्ट्वा विक्रयार्थं नृपात्मजः॥१०७॥
महर्षिपुत्रं धर्म्मात्मा मोक्षयामास भो द्विजाः। सत्यव्रतो महाबाहुर्भरणं तस्य चाकरोत्॥१०८॥
विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकम्पार्थमेव च। सोऽभवद्गालवो नाम गले बन्धान्महातपाः।

सम्भूत नामक पुत्र हुआ। सम्भूत का पुत्र त्रिधन्वा शत्रु का मर्दन करनेवाला था॥९६॥ राजा त्रिधन्वा के त्रय्यारुण नामक विद्वान् पुत्र हुआ। उसके सत्यव्रत नामक महाबली कुमार हुआ॥९७॥ वह बड़ा दुष्टबुद्धि था, लोगों के विवाहों में विघ्न करता था, दूसरे की विवाहिता पत्नी का अपहरण कर लेता था॥९८॥ उसने बचपन, काम, मोह, साहस तथा चपलता के कारण काम से पीड़ित हो किसी नगरवासी की कन्या चुरा ली। ॥९९॥ उसके अधर्माचरण के कारण त्रय्यारुण ने क्रोध से बहुत गालियाँ बकते हुए उसका परित्याग कर दिया। परित्यक्त पुत्र पिता से बारम्बार कहने लगा—'मैं कहाँ जाऊँगा?' तब पिता ने कहा—"चाण्डालों के साथ रहो। रे कुलांगार! आज तुम जैसे पुत्र से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है।" ॥१००-१०१॥ इस प्रकार पिता के वचन से वह नगर से निकल गया॥१०२॥ भगवान् वसिष्ठ ने भी उसे जाने से नहीं रोका। विप्रगण! वह वीर सत्यव्रत पिता से त्यक्त होकर चाण्डाल के घर रहने लगा। उसका पिता भी वन चला गया॥१०३॥ ब्राह्मणो! तब इन्द्र ने बारह वर्षों तक उसके राज्य में वृष्टि नहीं की। महातपस्वी विश्वामित्र अपनी पत्नी को उसके राज्य में छोड़कर समुद्र-तट पर घोर तपस्या करने लगे॥१०४-१०५॥ उनकी स्त्री अपने मझले पुत्र के गले को बाँध कर शेष कुटुम्ब के पालन के लिए उसे सौ गायों के मूल्य में बेचने को चली॥१०६॥ विप्रवृन्द! इस प्रकार बँधे हुए महर्षि-पुत्र को देखकर धर्मात्मा सत्यव्रत ने उसे छुड़ा दिया और विश्वामित्र की प्रसन्नता तथा अनुकम्पा के निमित्त उसका भरण-पोषण भी किया॥१०७-

---

१क ०भूतिस्त०। २ख ०भूतश्चैव दा०। ३ख ०द्विद्वान्त्वस्त्राह०। ४ग हृता। ५ख त्यक्त्वा। ६ख. पातकं। ७ख दुष्टेन। ८ख. ०प्रा पुरस्य स्वस्य चान्ति०। ९ख ०णादास०।

महर्षिः कौशिको धीमांस्तेन] वीरेण मोक्षितः। ॥१०९॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सूर्य्यवंशनिरूपणं नाम
सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अष्टमोऽध्यायः

सूर्यवंश वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

सत्यव्रतस्तु [1]भक्त्या च कृपया च प्रतिज्ञया। विश्वामित्रकलत्रं तु बभार विनये स्थित[2] ॥१॥
हत्वा मृगान् वराहांश्च महिषांश्च वनेचरान्। विश्वामित्राश्रमाभ्यासे मांसं वृक्षे बबन्ध च ॥२॥
उपांशुव्रतमास्थाय दीक्षां द्वादशवार्षिकीम्। पितुर्नियोगादवसत्तस्मिन् वनगते नृपे ॥३॥
अयोध्यां चैव राज्यं च तथैवान्तःपुरं मुनिः। याज्योपाध्यायसंयोगाद्वसिष्ठः पर्य्यरक्षत ॥४॥
सत्यव्रतस्तु बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात्। वसिष्ठेऽभ्यधिकं मन्युं धारयामास नित्यशः[3] ॥५॥
पित्रा हि स तदा राष्ट्रात्त्यज्यमानं प्रियं सुतम्। निवारयामास मुनिर्बहुना कारणेन च ॥६॥

१०८॥ गले में बन्धन पड़ने के कारण वह मुनि-पुत्र गालव नाम से विख्यात महातपस्वी हुआ। विद्वान् महर्षि कौशिक
वीर सत्यव्रत के द्वारा उन्मुक्त किये गये ॥१०९॥

श्री ब्रह्म-महापुराण में सूर्यवंश निरूपण नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ॥७॥

अध्याय ८

सूर्यवंश का वर्णन

लोमहर्षण ने कहा—सत्यव्रत भक्ति, कृपा, विनय तथा प्रतिज्ञा से विश्वामित्र की पत्नी का पालन करने लगा ॥१॥ वह मृग, सूअर, भैंस और जंगली जानवरों को मारकर मांस को विश्वामित्र के आश्रम में वृक्ष पर बाँध देता था ॥२॥ राजा के वन चले जाने के बाद वह उपांशुव्रत (अन्य कोई नहीं जान सके ऐसा नियम) स्वीकार कर बारह वर्षों की दीक्षा लेकर पिता की आज्ञा के अनुसार रहने लगा ॥३॥ यजमान-पुरोहित के सम्बन्ध से वसिष्ठ जी अयोध्यापुरी, राज्य तथा अन्तःपुर (रनिवास) की देख भाल करने लगे ॥४॥ सत्यव्रत बचपन तथा भावी के कारण वसिष्ठ जी के प्रति अधिकाधिक मन्यु धारण करने लगा ॥५॥ जब पिता ने प्रिय पुत्र को राज्य से निकाल दिया था तब वसिष्ठ जी ने अनेक कारणों से उसका निवारण नहीं किया था ॥६॥ विवाह-मन्त्रों की निष्ठा (अर्थात् विवाह का

---

१ ख भक्त्या च॰। २ क स्थितम्। ३ ग घ निःस्पृहा।

पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात् सप्तमे पदे। न च सत्यव्रतस्तस्माद्धृतवान् सप्तमे पदे ॥७॥
जानन् धर्म्मं वसिष्ठस्तु न मा त्रातीति भो द्विजाः। सत्यव्रतस्तदा रोषं वसिष्ठे मनसाकरोत् ॥८॥
गुणबुद्ध्या तु भगवान् वसिष्ठः कृतवांस्तथा। न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपांशुमबुध्यत ॥९॥
तस्मिन्नपरितोषश्च पितुरासीन्महात्मनः। तेन द्वादश वर्षाणि नावर्षत् पाकशासनः ॥१०॥
तेन त्विदानीं विहितां दीक्षां तां दुर्वहां भुवि। कुलस्य निष्कृतिर्विप्राः कृता सा वै भवेदिति ॥११॥
न तं वसिष्ठो भगवान् पित्रा त्यक्तं न्यवारयत्। अभिषेक्ष्याम्यहं पुत्रमस्येत्येवंमतिर्मुनिः ॥१२॥
स तु द्वादश वर्षाणि तां दीक्षामवहद्‌बली। अविद्यमाने मांसे तु वसिष्ठस्य महात्मनः ॥१३॥
सर्व्वकामदुघा दोग्ध्रीं स ददर्श नृपात्मजः। तां वै क्रोधाच्च मोहाच्च श्रमाच्चैव क्षुधान्वितः[१] ॥१४॥
देशधर्म्मगतो राजा जघान[२] मुनिसत्तमाः। तन्मांसं स[३] स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चात्मजान् ॥१५॥
भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठोऽप्यस्य चुक्रुधे ॥१६॥

वसिष्ठ उवाच

पातयेयमहं क्रूर तव शङ्कुमसंशयम्। यदि ते द्वाविमौ शङ्कू न स्यातां वै कृतौ पुनः ॥१७॥
पितुश्चापरितोषेण गुरुदोग्ध्रीवधेन च। अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः ॥१८॥
एवं त्रीण्यस्य शङ्कूनि तानि दृष्ट्वा महातपाः। त्रिशङ्कुरिति होवाच त्रिशङ्कुस्तेन स स्मृतः ॥१९॥
विश्वामित्रस्य[६] [७]दाराणामनेन भरणं कृतम्। तेन तस्मै वरं प्रादान्मुनिः प्रीतस्त्रिशङ्कवे ॥२०॥

पर्यवसान) सप्तपदी में जाकर होती है। इसलिए सत्यव्रत ने सप्तपदी में कन्या का अपहरण नहीं किया ॥७॥ विप्रवृन्द! 'वसिष्ठ धर्म को जानते हुए भी मेरी रक्षा नहीं कर रहे हैं' ऐसा सोचकर सत्यव्रत ने वसिष्ठ के प्रति मन में क्रोध किया ॥८॥ भगवान् वसिष्ठ ने तो उसका हित समझ करके ऐसा किया था। पर सत्यव्रत ने उनका आशय नहीं समझा ॥९॥ उसके ऊपर महात्मा पिता का पूर्ण असंतोष था। इसलिए बारह वर्षों तक इन्द्र ने वर्षा नहीं की ॥१०॥ द्विजगण! बारह वर्ष की कठिन दीक्षा से इसके कुल का परिशोध (अर्थात् प्रायश्चित्त) हो जायगा। तब इसके पुत्र का अभिषेक मैं कर दूंगा।' ऐसा सोचकर भगवान् वसिष्ठ न उसे नहीं रोका था, जब पिता ने उसका परित्याग कर दिया था ॥११ १२॥ वह बारह वर्ष तक दीक्षा धारण किए रहा। (एक दिन) मांस मिलने पर महात्मा वसिष्ठ की कामधेनु गाय को राजपुत्र (सत्यव्रत) ने देखा ॥१३½॥ मुनिश्रेष्ठो! भूखे राजा ने क्रोध, मोह, और श्रम के कारण देशधर्म के अनुसार उस गाय को मार डाला ॥१४½॥ उसके मांस को स्वयं भी खाया और विश्वामित्र के पुत्रों को भी खिलाया। यह सुनकर वसिष्ठ जी आग बबूला हो गये ॥१५-१६॥

वसिष्ठ ने कहा—'दुष्ट! मैं तेरे शंकु (पाप या अपराध) को दूर कर देता, यदि तूने ये दो शंकु नहीं किये होते ॥१७॥ पिता का असंतोष, गुरु की गाय का वध और असंस्कृत मांस का भक्षण—ये तीन प्रतिकूल कार्य तूने किये हैं' ॥१८॥ इस प्रकार उसके तीन शंकुओं को देखकर मुनि ने उसे 'त्रिशंकु' कहा। इसी से उसका नाम त्रिशंकु पड़ा ॥१९॥ विश्वामित्र के स्त्री-बच्चों का पालन उसने किया था। इससे मुनि (विश्वामित्र) ने प्रसन्न होकर त्रिशंकु को

---

१ ख ०त। हत्वा धेनुं ततो रा०। २ ख जगाम। ३ ख तु। ४ ख शङ्कुं न सशय। य०। ५ क ख गुरोर्दोग्ध्री०। ६ क ख ०त्रस्तु दा०। ७ क ख ०णामागतो मरणे कृते। ततस्तस्मै।

छन्द्यमानो वरेणाय वर वव्रे नृपात्मज । सशरीरो व्रजे स्वर्गमित्येव याचितो वर ॥२१॥
अनावृष्टिभये तस्मिन गते द्वादशवार्षिके। पित्र्ये राज्येऽभिषिच्याथ याजयामास पार्थिवम ॥२२॥
मिपता देवताना च वसिष्ठस्य च कौशिक। दिवमारोपयामास सशरीर महातपा ॥२३॥
तस्य सत्यरथा नाम पत्नी कैकेयवंशजा। कुमार जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम ॥२४॥
स वै राजा हरिश्चन्द्रस्त्रैशङ्कुव इति स्मृत । आहर्त्ता राजसूयस्य सम्राडिति ह विश्रुत ॥२५॥
हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद्रोहितो नाम पार्थिव । हरितो रोहितस्याथ चञ्चुर्हारित उच्यते ॥२६॥
विजयश्च मुनिश्रेष्ठाश्चञ्चुपुत्रो बभूव ह। जेता स सर्व्वपृथिवीं विजयस्तेन स स्मृत ॥२७॥
रुरुकस्तनयस्तस्य राजा धर्म्मार्थकोविद । रुरुकस्य वृक पुत्रो वृकाद्बाहुस्तु जज्ञिवान ॥२८॥
हैहयास्तालजङ्घाश्च निरस्यन्ति स्म त नृपम। तत्पत्नी गर्भमादाय और्व्वस्याश्रममाविशत ॥२९॥
नासयो धार्म्मिकश्चैव स हि धर्म्मयुगेऽभवत। सगरस्तु सुतो बाहोर्यज्ञे सह गरेण वै ॥३०॥
और्व्वस्याश्रममासाद्य भार्गवेणाभिरक्षित । आग्नेयमस्त्र लब्ध्वा च भार्गवात सगरो नृप ॥३१॥
जिगाय पृथिवीं हत्वा तालजङ्घान सहैहयान। शकाना पह्लवाना च धर्मं निरसदच्युत ॥
क्षत्रियाणां मुनिश्रेष्ठा पारदानां च धर्म्मवित ॥३२॥

मुनय ऊचु

कथ स सगरो जातो गरेणैव सहाच्युत । किमर्थं च शकादीनां क्षत्रियाणां महौजसाम ॥३३॥

धर्म्मान्कुलोचिताल राजा क्रुद्धो निरसदच्युत । एतन्न सर्व्वमाचक्ष्व विस्तरेण महामते ॥३४॥

लोमहर्षण उवाच

बाहोर्व्यसनिन पूर्व्वं हृत राज्यमभूत किल। हैहयैस्तालजङ्घैश्च शकै सार्द्धं द्विजोत्तमा ॥३५॥
यवना पारदाश्चैव काम्बोजा पह्लवास्तथा। एते ह्यपि गणा पञ्च हैहयार्थे पराक्रमम ॥३६॥
हृतराज्यस्तदा राजा स वै धार्वा ययौ। पत्न्या चानुगतो दु खी तत्र प्राणानवासृजत ॥३७॥
पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽन्वगात। सपत्न्या च गरस्तस्यै दत्त पूर्व्वं किलाघा ॥३८॥
सा तु भर्तुश्चिता कृत्वा वने तामभ्यरोहत। और्व्वस्तां भार्गवो विप्रा कारुण्यात समवारयत ॥३९॥
तस्याश्रमे च गर्भ स गरेणैव सहाच्युत । व्यजायत महाबाहु सगरो नाम पार्थिव ॥४०॥
और्व्वस्तु जातकर्म्मादींस्तस्य कृत्वा महात्मन । अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्र प्रत्यपादयत ॥४१॥
आग्नेय तु महाभागा अमरैरपि दु सहम। स तेनास्त्रबलेनाजौ बलेन च समन्वित ॥४२॥
हैहयान विजघानाशु क्रुद्धो रुद्र पशूनिव। आजहार च लोकेषु कीर्त्ति कीर्त्तिमता वर ॥४३॥
तत शकाश्च यवनान काम्बोजान पारदास्तथा। पहलवाश्चैव नि शेषान् कर्त्तं व्यवसितो नृप ॥४४॥
ते वध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना। वसिष्ठ शरण गत्वा प्रणिपेतुर्मनीषिणम ॥४५॥
वसिष्ठस्त्वथ तान दृष्ट्वा समयेन महाद्युति । सगर वारयामास तेषा दत्त्वाभय तदा ॥४६॥
सगर स्वा प्रतिज्ञा तु गुरोर्वाक्य निशम्य च। धर्म्मं जघान तेषा वै वेशान्यांश्चकार ह ॥४७॥

राजाओ को उनके कुल धर्मों से च्युत किया ? हे महाविद्वन ! यह सब विस्तार से हमलोगो का बताइये ॥३३-३४॥

लोमहर्षण बोले—ब्राह्मणश्रेष्ठो ! पहिले हैहय तालजघ आर यवन व्यसनी बाहु के राज्य का अपहरण कर लिया था ॥३५॥ शक यवन पारद काम्बोज आर पह लव—ये भी पाच गण हैहय के सहायक थे ॥३६॥ तब राज्य से वचित बाहु वन चला गया। पत्नी भी पीछे से गई। दुखी होकर बाहु ने वहीं पर प्राणत्याग कर दिया ॥३७॥ राजा की गर्भिणी पत्नी यादवी (यदुवश मे उत्पन्न) को सौत ने विष दे दिया ॥३८॥ वह वन मे पति की चिता पर जलने लगी। पर भृगुवशी और्व ने दयावश उसको जलने नही दिया ॥३९॥ मुनि के आश्रम मे विष के साथ ही उसके गर्भ से राजा सगर उत्पन्न हुआ ॥४०॥ और्व ने बालक का जातकर्म आदि संस्कार करके उसे वेद शास्त्र पढ़ाया। महाभाग ! तब मुनि ने देवताओ से भी सहन न करने योग्य आग्नेयास्त्र उसको दिया ॥४१॥ सेना से युक्त हो सगर मुनि प्रदत्त अस्त्र से हैहयो को उसी तरह मारने लगा जिस तरह क्रुद्ध हुए रुद्र ने पशुओ को मारा था। यशस्वियो मे श्रेष्ठ वह राजा ससार म अपनी कीर्ति फैलाने लगा ॥४२ ४३॥ पश्चात शको यवनो काम्बोजो पारदो और पह्लवो को नि शेष करने मे राजा प्रवृत्त हुआ ॥४४॥ महात्मा वीर सगर के द्वारा विनष्ट होते हुए वे सब विद्वान वसिष्ठ की शरण म गये और उनको दण्डवत् प्रणाम करने लगे ॥४५॥ तब महातेजस्वी वसिष्ठ ने उनसे प्रतिज्ञा कराकर सगर को रोक दिया और उन्हे अभयदान दिया ॥४६॥ सगर ने अपनी प्रतिज्ञा याद कर और गुरु के वाक्य सुनकर उनके धर्मों का नाश किया और उनके वेशो को बदल दिया ॥४७॥ शको का आधा सिर को और

---

१ ख ०मध्यरो०। २ ख ०व। नेम सदा स लो०। ३ ख यश०। ४ ख तदा स य०। ५ ख ०नाम्रजा काम्बो०। ६ ख ०गरस्ता प्र०।

अर्द्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत्। यवनानां शिरः सर्व्वं काम्बोजानां तथैव च॥४८॥
पारदा मुक्तकेशाश्च पह्लवाः श्मश्रुधारिणः। निःस्वाध्यायवषट्काराः कृतास्तेन महात्मना॥४९॥
शका यवनकाम्बोजाः पारदाश्च द्विजोत्तमाः[१]। कोणिसर्पा माहिषका दर्व्वाश्चोलाः सकेरलाः॥५०॥
सर्व्वे ते क्षत्रिया विप्रा धर्म्मस्तेषां निराकृतः। वसिष्ठवचनाद्राज्ञा [२]सगरेण महात्मना॥५१॥
स धर्म्मविजयी राजा विजित्येमां वसुन्धराम्। अश्वं प्रचारयामास वाजिमेधाय दीक्षितः॥५२॥
तस्य चारयतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्व्वदक्षिणे। वेलासमीपेऽपहृतो भूमिं चैव प्रवेशितः॥५३॥
स तं देशं तदा पुत्रैः खानयामास पार्थिवः। आसेदुस्ते तदा तत्र खन्यमाने महार्णवे॥५४॥
तमादिपुरुषं देवं हरिं कृष्णं प्रजापतिम्। विष्णुं कपिलरूपेण [३]स्वपन्तं पुरुषं तदा॥५५॥
तस्य चक्षुःसमुत्थेन तेजसा प्रतिबुध्यतः। दग्धाः सर्व्वे मुनिश्रेष्ठाश्चत्वारस्त्ववशेषिताः॥५६॥
[४]बर्हिकेतुः सुकेतुश्च तथा [५]धर्म्मरथो नृपः। [६]शूरः पञ्चनदश्चैव[७] तस्य वंशकरा[८] नृपाः॥५७॥
प्रादाच्च तस्मै भगवान् हरिर्नारायणो वरम्। अक्षयं वंशमिक्ष्वाकोः कीर्त्तिं चाप्यनिवर्त्तिनीम्॥५८॥
पुत्रं समुद्रं च विभुः स्वर्गे वासं तथाक्षयम्। समुद्रश्चार्घ्यमादाय ववन्दे तं महीपतिम्॥५९॥
सागरत्वं च लेभे स कर्म्मणा तेन तस्य ह। तं चाश्वमेधिकं सोऽश्वं समुद्रादुपलब्धवान्॥६०॥
आजहाराश्वमेधानां शतं स सुमहातपाः[९]। पुत्राणां च सहस्राणि षष्टिस्तस्येति नः श्रुतम्॥६१॥

यवनों तथा काम्बोजो के सम्पूर्ण शिर को मुंडवा कर छोड दिया। ॥४८॥ पारदो को मुक्तकेश (बिखरे बालों वाले) और पह्लवो को दाढी-मूंछ-युक्त बनाकर छोड दिया। विप्रवर! शक, यवन, काम्बोज, पारद, कोणिसर्प, माहिषक, दर्व, चोल, केरल—ये सब क्षत्रिय वेदाध्ययन, जप आदि से वंचित कर दिये गये। वसिष्ठ के वचन से राजा सगर ने इनके धर्मों का नाश कर दिया॥४९-५१॥ धर्म-विजयी राजा ने सम्पूर्ण पृथिवी को जीतकर अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा लेकर अश्व को छोड दिया॥५२॥ वह अश्व पूर्व-दक्षिण समुद्र के समीप अपहृत होकर पृथिवी मे प्रविष्ट हुआ तो राजा ने अपने पुत्रो के द्वारा उस प्रदेश को खुदवाया॥५३३॥ महासमुद्र को खोदते हुए वे राजपुत्र वहाँ पहुँचे, जहाँ *आदि पुरुष, देव, हरि, कृष्ण, प्रजापति—सजक विष्णु भगवान कपिल मुनि के रूप मे शयन कर रहे थे॥५४-५५॥* मुनिवर! भगवान् के जगने पर उनकी आँखो के तेज से सगर के सब पुत्र दग्ध हो गये। केवल बर्हिकेतु, सुकेतु, राजा धर्मरथ, वीर पचनद—ये चार राजपुत्र वंश बढाने के लिए बच गये॥५६-५७॥ पश्चात् भगवान् नारायण ने सगर को वरदान दिया—'इक्ष्वाकु का अक्षय वंश रहेगा, तुम्हारी कीर्ति बढेगी, तुम्हें समुद्र पुत्र होगा और तुम अक्षय स्वर्गवास प्राप्त करोगे'॥५८३॥ समुद्र भी अर्घ्य लेकर राजा की वन्दना करने लगा॥५९॥ उसी कर्म से समुद्र सागर कहलाया। उस अश्व को राजा ने समुद्र से प्राप्त किया और सौ अश्वमेध यज्ञो को सम्पन्न किया। उसके साठ हजार पुत्र हुए—ऐसा हमने सुना है॥६०-६१॥

---

१ क ०मा। केलिसर्पा महाषीका और्वाश्चांडा ख०। ख ०मा। केल्सर्पा माहिषदा द्वार्श्चोलाश्च स०। २ क ग कृतास्तेन। ३ क ग स्वयमू। ४ ख ग बर्हके०। ५ क वहिरथो। ख वार्हद्रथो। ६ ख ग. खट। ७ क ञ्चजनश्चै०। ८ ख ०करोऽभवन्। प्रा०। ९ क ख ०हायशा। पु०।

मुनय ऊचुः

सगरास्यात्मजा धीराः कथं जाता महाबलाः। विक्रान्ताःषष्टिसाहस्रा. विधिना केन सत्तम¹ ॥६२॥

लोमहर्षण उवाच

द्वे भार्ये सगरस्यास्तां तपसा दग्धकिल्विषे। ज्येष्ठा विदर्भदुहिता केशिनी नाम नामतः ॥६३॥
कनीयसी तु महती पत्नी परमधर्म्मिणी। अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥६४॥
और्व्वस्ताभ्यां वरं प्रादात्तद्बुध्यध्वं द्विजोत्तमाः। षष्टिं पुत्रसहस्राणि गृह्णात्वेका नितम्बिनी² ॥६५॥
एकं वंशधरं त्वेका यथेष्टं वरयत्विति। तत्रैका जगृहे ³पुत्रान् षष्टिसाहस्रसम्मितान् ॥६६॥
एकं वंशधरं त्वेका तथेत्याह ततो मुनि.। राजा पञ्चजनो नाम बभूव स महाद्युति. ॥६७॥
इतरा सुषुवे तुम्बीं बीजपूर्णामिति श्रुति·। तत्र षष्टिसहस्राणि गर्भास्ते तिलसम्मिता. ॥६८॥
संबभूवुर्यथाकाल ववृधुश्च यथासुखम्। घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान् गर्भान्निदधे तत· ॥६९॥
धात्रीश्चैकैकश. प्रादात्तावती. पोषणे नृपः। ⁴ततो दशसु मासेषु समुत्तस्थुर्यथाक्रमम् ॥७०॥
कुमारास्ते यथाकाल सगरप्रीतिवर्द्धना.। षष्टिपुत्रसहस्राणि तस्यैवमभवन् द्विजाः ॥७१॥
गर्भादलाबुमध्याद्वै जातानि पृथिवीपतेः। तेषां नारायण तेज. प्रविष्टाना महात्मनाम् ॥७२॥
एकः पञ्चजनो नाम पुत्रो राजा बभूव ह। ⁵शूरः पञ्चजनस्यासीदंशुमान्नाम⁶ वीर्य्यवान् ॥७३॥

मुनियो ने पूछा—हे सूतजी! सगर के बीर, महाबली तथा पराक्रमी साठ हजार पुत्र कैसे हुए? ॥६२॥

लोमहर्षण बोले—तपस्या से निष्पाप हुई दो भार्यायें सगर की थी। केशिनी नामक विदर्भ-राजकुमारी उनमे ज्येष्ठ थी ॥६३॥ छोटी पत्नी अरिष्टनेमि की कन्या थी। जो अनुपम सुन्दरी और परम धर्मात्मा थी ॥६४॥ विप्रवृन्द! और्व मुनि ने उन्हे जो वरदान दिया था, उसे सुनिये।

मुनि ने कहा—'एक स्त्री साठ हजार पुत्रो को उत्पन्न करेगी और दूसरी वश का धारण करने वाले एक ही पुत्र को। जिसको जो पसन्द हो, वह माँग ले' ॥६५॥ तब मुनि की स्वीकृति के अनुसार एक स्त्री ने साठ हजार पुत्रो को और दूसरी ने एक ही वशधर पुत्र की याचना की। वशधर पुत्र पचजन नामक महातेजस्वी राजा हुआ ॥६६-६७॥ ऐसी प्रसिद्धि है कि दूसरी स्त्री ने बीज से भरी हुई एक तुम्बी (तुमडी) का प्रसव किया। उसमे से एक तिल के बराबर साठ हजार गर्भ (पुत्र) उत्पन्न हुए ॥६८॥ समय और सुख के अनुसार वे सब बढने लगे। उनको घी से भरे हुए घडो मे रख दिया गया ॥६९॥ राजा ने प्रत्येक बच्चे के लिए एक एक धाई नियुक्त की। दस महीने बीत जाने पर वे कुमार क्रमश खडे होने लगे ॥७०॥ यथासमय वे सभी राजकुमार सगर के लिए प्रीतिवर्धक हुए। द्विजगण! इस प्रकार उस राजा के साठ हजार पुत्र हुए ॥७१॥ उन बच्चो की उत्पत्ति तुम्बी के भीतर से हुई थी। उन मनस्वी बालको मे नारायण का तेज निहित था ॥७२॥ पचजन नामक पुत्र राजा हुआ। पचजन का पुत्र अत्यन्त वीर अशुमान् था ॥७३॥ उसका पुत्र दिलीप था, जिसका नाम खट्वाग भी था,

१ क ख. सूतज। २ ख तपस्विनी। ग तरस्विनी। ३ ग ०थाल्लंब्धाञ्शूरान्बहूस्तया। ए०। ४ क ततोऽथ दशमे मासे स०। ५ ख सुत। ६ क ०सीद्दंशुमा०।

दिलीपस्तस्य तनय? खट्वाङ्ग इति विश्रुत । येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्तं प्राप्य 'जीवितम् ॥७४॥
त्रयोऽभिसन्धिता 'लोका बुद्ध्या सत्येन चानघा । दिलीपस्य तु दायादो 'महाराजो भगीरथ" ॥७५॥
य स गङ्गा सरिच्छ्रेष्ठामवातारयत प्रभु । समुद्रमानयच्चैना दुहितृत्वेऽप्यकल्पयत् ॥७६॥
तस्माद्भागीरथी गङ्गा कथ्यते 'वंशचिन्तकं । भगीरथसुतो राजा श्रुत इत्यभिविश्रुत ॥७७॥
नाभागस्तु श्रुतस्यासीत् पुत्र परमधार्म्मिक । अम्बरीषस्तु नाभागि सिन्धुद्वीपपिताभवत् ॥७८॥
अयुताजित्तु दायाद सिन्धुद्वीपस्य वीर्य्यवान् । अयुताजित्सुतस्त्वासीदृतुपर्णो महायशा ॥७९॥
दिव्याक्षहृदयज्ञो वै राजा नलसखो बली । 'ऋतुपर्णसुतस्त्वासीदात्तपर्णिर्महायशा ॥८०॥
सुदासस्तस्य तनयो राजा इन्द्रसखोऽभवत् । सुदासस्य सुत' प्रोक्त' सौदासो नाम पार्थिव' ॥८१॥
ख्यात कल्माषपादो" वै राजा मित्रसहोऽभवत् । कल्माषपादस्य सुत सर्व्वकर्म्मेति विश्रुत ॥८२॥
अनरण्यस्तु पुत्रोऽभूद्विश्रुत सर्व्वकर्म्मण । अनरण्यसुतो निघ्नो निघ्नतो द्वौ बभूवतु ॥८३॥
अनमित्रो रघुश्चैव पार्थिवर्षभसत्तमौ । अनमित्रसुतो राजा विद्वान् 'दुलिदुहोऽभवत् ॥८४॥
दिलीपस्तनयस्तस्य रामस्य प्रपितामह । दीर्घबाहुर्दिलीपस्य रघुर्नाम्ना सुतोऽभवत् ॥८५॥
अयोध्याया महाराजो' य पुरासीन्महाबल' । अजस्तु राघवो जज्ञे ''तथा दशरथोऽप्यजात् ॥८६॥
रामो दशरथाज्जज्ञे धर्म्मात्मा सुमहायशा । रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिसञ्ज्ञित ॥८७॥

और जिसने स्वर्ग से पृथ्वी पर आकर दो घडी भर जीवित रहकर बुद्धि और सत्य से तीनो लोक को जोड दिया ॥७४॥ दिलीप के महाराज भगीरथ पुत्र हुआ, जिसने नदियो मे श्रेष्ठ गगाजी को इस लोक मे अवतरित किया और पुत्री-भाव से उसे मानते हुए समुद्र मे मिला दिया ॥७५ ७६॥ इसलिये वश को समझने वाले लोग गगा को भागीरथी कहते हैं। भगीरथ के श्रुत नामक परम विख्यात पुत्र हुआ ॥७७॥ श्रुत का पुत्र नाभाग परम धर्मात्मा था। नाभाग का पुत्र अम्बरीष सिन्धुद्वीप का पिता हुआ ॥७८॥ सिन्धुद्वीप का पुत्र अयुताजित् शक्तिशाली हुआ। अयुताजित् का पुत्र महायशस्वी ऋतुपर्ण था ॥७९॥ वह राजा पासो के खेल्न मे अतिचतुर (या दूरदर्शी तथा हृदयज्ञ) और नल नामक राजा का मित्र था। ऋतुपर्ण का पुत्र आत्तपर्णि महायशस्वी था ॥८०॥ उसका सुदास नामक पुत्र इन्द्र का मित्र था। सुदास का पुत्र सौदास नामक राजा था ॥८१॥ यही कल्माषपाद और मित्रसह नामो से भी प्रसिद्ध हुआ। कल्माषपाद के पुत्र का नाम सर्वकर्मा था ॥८२॥ सर्वकर्मा के अनरण्य नामक पुत्र हुआ। अनरण्य के निघ्न नामक पुत्र हुआ। निघ्न के दो नृपश्रेष्ठ पुत्र हुए—॥८३॥ अनमित्र और रघु। अनमित्र के पुत्र दुलिदुह हुआ, जो राजा और विद्वान् दोनो था ॥८४॥ उसके पुत्र दिलीप हुआ, जो राम का प्रपितामह (परदादा) था। दिलीप के लम्बी बाहुओ वाला रघु नामक पुत्र हुआ ॥८५॥ जो पूर्वकाल मे अयोध्या का महाराज था। रघु से अज उत्पन्न हुआ और अज से दशरथ। ॥८६॥ दशरथ से अत्यन्त यशस्वी और धर्मात्मा राम की उत्पत्ति हुई। राम के कुश नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥८७॥ कुश से अति यशस्वी और धर्मात्मा अतिथि उत्पन्न हुआ। अतिथि के निषध

---

१ क ०म्। ततो मि०। २ ख ०मित्रदिना। ३ ग महारथो। ४ क ०थ। स्वर्गात्सुतस०। ५ क धर्मचिन्तकं। ६ ख ०णस्य तस्याऽत्मा०। ७ ग ०दाऽमूनाम्ना मि०। ८ क ०र्दुहितृहो०। ९ ख ०जो रघुरासी०। १० ख तस्माद्दशरथोऽभवत्।

अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे धर्म्मात्मा सुमहायशाः। अतिथेस्त्वभवत्पुत्रो निषधो नाम वीर्य्यवान् ॥८८॥
निषधस्य नलः पुत्रो नभः पुत्रो नलस्य तु। [१]नभस्य पुण्डरीकस्तु क्षेमधन्वा ततः स्मृतः ॥८९॥
क्षेमधन्वसुतस्त्वासीद्देवानीकः प्रतापवान्। आसीदहीनगुर्नाम देवानीकात्मजः प्रभुः ॥९०॥
अहीनगोस्तु दायादः सुधन्वा नाम पार्थिवः। सुधन्वनः सुतश्चापि ततो जज्ञे शलो नृपः ॥९१॥
उक्थो नाम स धर्म्मात्मा शलपुत्रो बभूव ह। वज्रनाभः सुतस्तस्य नलस्तस्य महात्मनः ॥९२॥
नलौ द्वावेव विख्यातौ पुराणे मुनिसत्तमाः। वीरसेनात्मजश्चैव यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्वहः ॥९३॥
इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येन प्रकीर्तिताः। एते विवस्वतो वंशे राजानो भूरितेजसः ॥९४॥
पठन् सम्यगिमां सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः। श्राद्धदेवस्य [२]देवस्य प्रजानां पुष्टिदस्य च।
प्रजावानेति सायुज्यमादित्यस्य विवस्वतः ॥९५॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे आदित्यवंशानुकीर्त्तनं
नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमोऽध्यायः

तत्रादौ सोमोत्पत्ति-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

पिता सोमस्य भो विप्रा जज्ञेऽत्रिर्भगवानृषिः। ब्रह्मणो मानसात्पूर्वं प्रजासर्गं विधित्सतः ॥१॥

नामक पराक्रमी पुत्र हुआ। ॥८८॥ निषध के पुत्र नल और नल के पुत्र नभ हुआ। नभ से पुण्डरीक और उससे क्षेमधन्वा उत्पन्न हुआ ॥८९॥ क्षेमधन्वा का पुत्र प्रतापी देवानीक था। देवानीक के पुत्र का नाम अहीनगु था ॥९०॥ अहीनगु का पुत्र सुधन्वा नामक राजा हुआ। सुधन्वा से राजा शल की उत्पत्ति हुई ॥९१॥ शल के उक्थ नामक धर्मात्मा पुत्र हुआ। वज्रनाभ उसके पुत्र हुआ। उस महात्मा के नल नामक पुत्र हुआ ॥९२॥ मुनिवर! पुराणों में दो ही नल प्रसिद्ध हैं—एक वीरसेन का पुत्र और दूसरा इक्ष्वाकु-वंश में समुद्भूत ॥९३॥ इक्ष्वाकु-वंश में उत्पन्न प्रमुख राजाओं का वर्णन कर दिया गया। ये सभी परम तेजस्वी राजा सूर्यवंशी हैं ॥९४॥ प्रजा के पोषक और श्राद्ध के देव भगवान् सूर्य की इस सृष्टि का पढ़ने वाला मनुष्य सूर्य की समानता प्राप्त करता है ॥९५॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में आदित्य-वंश-कीर्तन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ॥८॥

अध्याय ९

चन्द्रवंश-वर्णन

लोमहर्षण बोले—विप्रवृन्द! पूर्वकाल में प्रजा-सृष्टि के इच्छुक ब्रह्मा के मन से चन्द्रमा के पिता

---

१ ख. नभसः। २ ख वीरस्य।

अनुत्तर नाम तपो येन तप्त हि तत्पुरा। त्रीणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति हि न श्रुतम् ॥२॥
ऊर्ध्वमाचक्रमे तस्य रेत सोमत्वमीयिवान्। नेत्राभ्या वारि सुस्राव दशधा द्योतयन् दिश ॥३॥
त गर्भं विधिनादिष्टा दश देव्यो दधुस्तत। समेत्य धारयामासुर्न च ता समशक्नुवन ॥४॥
यदा न धारणे शक्तास्तस्य गर्भस्य ता दिश। ततस्ताभि स च्यवतस्तु निपपात वसुन्धराम् ॥५॥
पतित सोममालोक्य ब्रह्मा लोकपितामह। रथमारोपयामास लोकाना हितकाम्यया ॥६॥
तस्मिन्निपतिते देवा पुत्रेऽत्रे परमात्मनि। तुष्टुवुर्ब्रह्मण पुत्रास्तथान्ये मुनिसत्तमा ॥७॥
तस्य सस्तूयमानस्य तेज सोमस्य भास्वत। आप्यायनाय लोकाना भावयामास सर्व्वत ॥८॥
स तेन रथमुख्येन सागरान्ता वसुन्धराम्। त्रि सप्तकृत्वोऽतियशाश्चकाराभिप्रदक्षिणाम् ॥९॥
तस्य यच्चरित तेज पृथिवीमन्वपद्यत। ओषध्यस्ता समुद्भूता याभि सन्धार्यते जगत् ॥१०॥
स लब्धतेजा भगवान् सस्तवैश्च स्वकर्म्मभि। तपस्तेपे महाभाग पद्माना दर्शनाय स ॥११॥
ततस्तस्मै ददौ राज्य ब्रह्मा ब्रह्मविदावर। बीजौषधीना विप्राणामपा च मुनिसत्तमा ॥१२॥
स तत्प्राप्य महाराज्य सोम सौम्यवतावर। समाजह्रे राजसूय सहस्रशतदक्षिणम ॥१३॥
दक्षिणामददात् सोमस्त्रीँल्लोकानिति न श्रुतम्। तेभ्यो ब्रह्मर्षिमुख्येभ्य सदस्येभ्यश्च भो द्विजा ॥१४॥
हिरण्यगर्भो ब्रह्मात्रिभृगुश्च ऋत्विजोऽभवत। सदस्योऽभूद्धरिस्तत्र मुनिभिर्बहुभिर्वृत ॥१५॥

भगवान् अत्रि मुनि उत्पन्न हुए ॥१॥ मुनि ने हजार देव वर्ष तक उग्र तपस्या की—ऐसा हमने सुना है ॥२॥ उनका वीर्य शरीर के ऊर्ध्वभाग मे जाकर अमृत बन गया। दशो दिशाओ को प्रकाशित करते हुए जल दोनो आखो से बहने लगा ॥३॥ ब्रह्मा की आज्ञा से उस तेज सयुक्त जल रूप गर्भ को दशो दिशाओ ने मिलकर धारण किया। पर वे धारण करने मे समर्थ नही हुई ॥४॥ तब उन्होने गर्भ को त्याग दिया। गर्भ पृथ्वी पर गिर पडा ॥५॥ गिरे हुए अमृत रूपी गर्भ को देखकर लोक पितामह ब्रह्मा ने लोको के कल्याण के लिये गर्भ को रथ पर स्थापित कर दिया ॥६॥ मुनिवर[1] अत्रि के उस परमात्मा पुत्र के गिर जाने पर देवता और ब्रह्मा के दूसरे पुत्र उसकी स्तुति करने लगे ॥७॥ स्तुति किये जाने वाले उस प्रकाशमान सोम (चन्द्रमा) का तेज लोको की वृद्धि के लिए सब तरफ फैल गया ॥८॥ चन्द्रमा उस रथ से समुद्र पर्यन्त पृथिवी की इक्कीस बार परिक्रमा की ॥९॥ चन्द्रमा का जो तेज पृथ्वी मे व्याप्त हुआ उससे सब औषधियाँ उत्पन्न हुई। जिनसे ससार का पोषण होता है ॥१०॥ अपने कर्मों से तेज प्राप्त कर भगवान् चन्द्रमा ने पद्मो के दर्शन के लिए (पद्म सख्या वाले वर्षों तक?) तपस्या की ॥११॥ तब ब्रह्मवेत्ताओ मे श्रेष्ठ ब्रह्मा ने चन्द्रमा को बीज औषध ब्राह्मण और जल का राज्य दिया ॥१२॥ उस महाराज्य को प्राप्त कर चन्द्रमा ने एक लाख दक्षिणा वाले राजसूय यज्ञ को सम्पन्न किया ॥१३॥ द्विजगण[1] ब्रह्मर्षि आदि सदस्यो को सोम ने दक्षिणा मे तीनो लोक दिये ऐसा हमने सुना है ॥१४॥ *यज्ञ मे साक्षात् ब्रह्मा ब्रह्मा हुए। अत्रि और भृगु ऋत्विक हुए। बहुत मुनियो से युक्त साक्षात्*

---

१ ख ०प्त महत्पु०। २ ख ०क।स्ता गर्भस्य दिशो दश। त०। ३ ग सहसवा ऽनु नि०। ४ ख देवे। ५ ख ०त्र च सुमहा म०। ६ ख ०थात मु०। ७ क यत्स्रावित। ख मन्व्याधित। ८ ख ०थिवी समग०। ९ ग दाता दश। त०। १० ०ना राजान निममे मु०।

तं सिनीश्च कुहूश्चैव द्युतिः पुष्टिः प्रभा वसुः। कीर्त्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीश्च नव देव्यः सिषेविरे॥१६॥
प्राप्यावभृथमप्यग्र्यं सर्व्वदेवर्षिपूजितः। विरराजाधिराजेन्द्रो दशधा भासयन् दिशः॥१७॥
तस्य तत्प्राप्य दुष्प्राप्यमैश्वर्य्यमृषिसत्कृतम्। विबभ्राम मतिस्ताताविनयादनयाहृता॥१८॥
बृहस्पतेः स वै भार्य्यामैश्वर्य्यमदमोहितः। जहार तरसा सोमो विमत्याङ्गिरसः सुतम्॥१९॥
स याच्यमानो देवैश्च [1]तथा [2]देवर्षिभिर्मुहुः। नैव व्यसर्ज्जयत्तारां [3]तस्मा अङ्गिरसे तदा॥२०॥
उशना तस्य जग्राह पार्ष्णिमङ्गिरसस्तथा। रुद्रश्च पार्ष्णि जग्राह गृहीत्वाजगवं धनुः॥२१॥
तेन ब्रह्मशिरो नाम परमास्त्रं महात्मना। उद्दिश्य देवानुत्सृष्टं[4] येनैषां नाशितं यशः॥२२॥
तत्र तद्युद्धमभवत् प्रख्यातं तारकामयम्। देवानां दानवानाञ्च लोकक्षयकरं महत्॥२३॥
तत्र शिष्टाश्च ये देवास्तुषिताश्चैव ये द्विजाः। ब्रह्माणं शरणं जग्मुरादिदेवं सनातनम्॥२४॥
तदा निवार्य्योशनसं तं वै रुद्रञ्च शङ्करम्। ददावाङ्गिरसे तारां स्वयमेव पितामहः॥२५॥
तामन्तःप्रसवां दृष्ट्वा क्रुद्धः प्राह बृहस्पतिः। मदीयायां न ते योनौ गर्भो धार्य्यः कथञ्चन॥२६॥
इषीकास्तम्बमासाद्य गर्भं सा चोत्ससर्ज्ज ह। जातमात्रः स भगवान् देवानामाक्षिपद्वपुः॥२७॥
ततः संशयमापन्नास्तारामूचुः सुरोत्तमाः। सत्यं ब्रूहि सुतः कस्य सोमस्याथ बृहस्पतेः॥२८॥
पृच्छ्यमाना यदा देवैर्नाह सा विबुधान् किल। तदा तां शप्तुमारब्धः कुमारो [5]दस्युहन्तमः॥२९॥

हरि सदस्य हुए॥१५॥ सिनीवाली (पूर्व अमावास्या), कुहू (उत्तर अमावास्या) द्युति, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्ति, धृति, लक्ष्मी—ये नौ देवियाँ चन्द्रमा की सेवा करती थीं॥१६॥ यज्ञ को समाप्त कर देवता और ऋषियों से पूजित हो राजाओं में प्रधान चन्द्रमा दशों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए सुशोभित होने लगा॥१७॥ ऋषियों से सत्कृत उस अलभ्य ऐश्वर्य को प्राप्त कर चन्द्रमा की बुद्धि अनीति से उच्छृंखल हो उठी॥१८॥ ऐश्वर्य के मद से मत्त चन्द्रमा ने बृहस्पति की पत्नी का अपहरण कर लिया॥१९॥ देवताओं और मुनियों द्वारा बारबार समझाया जाने पर भी उसने बृहस्पति को तारा नहीं लौटायी॥२०॥ तब चन्द्रमा का पक्ष शुक्राचार्य ने लिया और बृहस्पति का पक्ष अजगव नामक धनुष धारण कर महादेवजी ने लिया॥२१॥ महात्मा शिव ने ब्रह्मशिर नामक एक महास्त्र दैत्यों के ऊपर फेंका, जिससे दैत्यों का यश नष्ट हो गया॥२२॥ वहाँ पर लोक-क्षय करने के लिए तारकामय नाम से विख्यात देव-दानव युद्ध हुआ॥२३॥ द्विजगण! उस युद्ध में जो तुषित नामक देवता बच गये, वे सब आदिदेव और सनातन ब्रह्मा की शरण में गये॥२४॥ तब शुक्राचार्य और महादेव जी को हटाकर स्वयं ब्रह्मा ने बृहस्पति को तारा लौटा दी॥२५॥ गर्भवती तारा को देखकर बृहस्पति ने क्रोध से कहा—'मुझसे सबन्धित योनि में तुम कभी गर्भ धारण नहीं कर सकती॥२६॥ तब मूंज के गुच्छों पर तारा ने गर्भ का त्याग कर दिया। जन्म लेते ही वह बालक दिव्यरूपधारी हो गया॥२७॥ देवताओं ने सदेह करके तारा से पूछा—'सत्य बोलो कि यह पुत्र चन्द्रमा का है या बृहस्पति का।' ॥२८॥ देवताओं से पूछी जाने पर जब वह नहीं बोली, तब चोरों का नाश करने वाला बालक उसको

---

१ ग तदा। २ क ग ०र्षिभि सह। नै०। ३ ख तस्यैवाङ्गिरसस्तदा। ४ ख ०ष्टं तेषां नाशाय शम्भुना। त०। ५ क ख मुनिसत्तमाः।

तं निवार्य्य ततो ब्रह्मा तारां प्रपच्छ संशयम्। यदत्र तथ्यं तद्ब्रूहि तारे कस्य सुतस्त्वयम् ॥३०॥
उवाच प्राञ्जलिः सा तं सोमस्येति पितामहम्। तदा तं मूर्ध्नि चाघ्राय सोमो [1]राजा सुतं प्रति ॥३१॥
बुध इत्यकरोन्नाम तस्य बालस्य धीमतः। प्रतिकूलञ्च गगने समभ्युत्तिष्ठते बुधः ॥३२॥
उत्पादयामास तदा पुत्रं वै राजपुत्रिकम्[2]। तस्यापत्यं महातेजा. बभूवैल. पुरूरवाः ॥३३॥
उर्व्वश्यां जज्ञिरे यस्य पुत्राः सप्त महात्मनः। एतत् सोमस्य वो जन्म कीर्त्तितं कीर्त्तिवर्द्धनम् ॥३४॥
वंशमस्य मुनिश्रेष्ठा. कीर्त्यमानं निबोधत। धन्यमायुष्यमारोग्यं पुण्यं सङ्कल्पसाधनम् ॥३५॥
सोमस्य जन्म श्रुत्वैव पापेभ्यो विप्रमुच्यते ॥३६॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमोत्पत्तिकथनं नाम
नवमोऽध्यायः ॥९॥

दशमोऽध्यायः

तत्रादौ सोमोत्पत्ति-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

बुधस्य तु मुनिश्रेष्ठा विद्वान् पुत्रः पुरूरवा। तेजस्वी दानशीलश्च यज्वा विपुलदक्षिणः ॥१॥

शाप देने के लिए तैयार हो गया ॥२९॥ उसको निवृत्त कर ब्रह्मा ने तारा से संदेह पूछा—'तारे! सत्य बतलाना। यह किसका पुत्र है?' ॥३०॥ उसने हाथ जोड़कर ब्रह्माजी से कहा—'चन्द्रमा का।' तब राजा सोम ने बालक के मस्तक को सूंघ कर उस बुद्धिमान् बालक का नाम 'बुध' रखा। अतएव बुध का आकाश में प्रतिकूल उदय होता है ॥३१-३२॥ वैराज मनु की कन्या से बुध ने पुत्र उत्पन्न किया। उसका इला से उत्पन्न पुरूरवा नामक पुत्र महातजस्वी हुआ ॥३३॥ पुरूरवा से उर्वशी में सात पुत्र उत्पन्न हुए। मुनिश्रेष्ठो! चन्द्रमा की यह कीर्ति बढ़ाने वाली उत्पत्ति मैंने आपसे कही ॥३४॥ अब इसके वंश का वर्णन सुनिये। धन्यवाद के पात्र, आयु और आरोग्य के दायक तथा अभिलाषा को पूर्ण करने वाले चन्द्रमा के जन्म को सुनने से मनुष्य के सब पाप दूर हो जाते हैं ॥३५-३६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में सोमोत्पत्तिकथन नामक नवाँ अध्याय समाप्त ॥९॥

अध्याय १०

लोमहर्षण बोले—मुनिवर! बुध के विद्वान्, तेजस्वी दानी, यज्ञ करनेवाला, बहुत दक्षिणा देन वाला,

---

१ क ग ०जा प्रजापति। बु०। २ स ०त्रिक। त०।

ब्रह्मवादी पराक्रान्तः [1]शत्रुभिर्युधि दुर्दमः। आहर्त्ता चाग्निहोत्रस्य [2]यज्ञानाञ्च महीपतिः॥२॥
सत्यवादी पुण्यमतिः [3]सम्यक् संवृत्तमैथुनः। अतीव त्रिषु लोकेषु यशसाप्रतिम.[4] सदा[5]॥३॥
तं ब्रह्मवादिनं शान्तं धर्म्मज्ञं सत्यवादिनम्। उर्व्वशी वरयामास हित्वा मानं [6]यशस्विनी॥४॥
तया सहावसद्राजा दश वर्षाणि पञ्च च। षट्पञ्च सप्त चाष्टौ च दश [7]चाष्टौ च भो द्विजाः॥५॥
वने चैत्ररथे रम्ये [8]तथा मन्दाकिनीतटे। अलकायां विशालायां नन्दने च वनोत्तमे॥६॥
उत्तरान् स कुरून् प्राप्य [10]मनोरमफलद्रुमान्। गन्धमादनपादेषु [11]मेरुशृङ्गे तथोत्तरे॥७॥
एतेषु वनमुख्येषु सुरैराचरितेषु च। उर्व्वश्या सहितो राजा रेमे परमया मुदा॥८॥
देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते। राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः॥९॥
एवम्प्रभावो राजासीदैलस्तु नरसत्तमः ॥१०॥

लोमहर्षण उवाच

ऐलपुत्रा बभूवुस्ते[12] सप्त[13] देवसुतोत्तमाः[14]। गन्धर्व्वलोके विदिता आयुर्धीमानमावसुः[15]॥११॥
विश्वायुश्चैव धर्म्मात्मा श्रुतायुश्च तथापरः। दृढायुश्च वनायुश्च बह्वायुश्चोर्व्वशीसुताः॥१२॥
अमावसोस्तु दायादो भीमो राजाथ राजराट्। श्रीमान् भीमस्य दायादो राजासीत्काञ्चनप्रभः॥१३॥

ब्रह्म-वेत्ता, युद्ध मे शत्रुओ से अजेय, अग्निहोत्री, राजा, सत्यवक्ता, पवित्र विचार वाला मैथुन मे सयमी और तीनो लोको मे सदा अनुपमेय यशस्वी पुरुरवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥१-३॥ उस ब्रह्मवादी, सत्यवादी, शान्त और धर्मज्ञ पुरूरवा को यशस्विनी उर्वशी ने मान त्याग कर वरण किया॥४॥ विप्रवृन्द! राजा ने उर्वशी के साथ चैत्ररथ नामक सुन्दर वन मे दस वर्ष, मदाकिनी नदी के तट पर पाँच वर्ष, अलकापुरी मे छह वर्ष, बदरी पुरी मे पाँच वर्ष नन्दन वन मे सात वर्ष, मनोरम फल-वृक्षो से युक्त उत्तर कुरुओ के देश मे आठ वर्ष, गधमादन पर्वत पर दस वर्ष और सुमेरु पर्वत के उत्तर भाग मे आठ वर्ष तक वास किया॥५-७॥ इन प्रधान वनो मे और देवताओ के क्रीडा-स्थानो मे उर्वशी के सग राजा परम हर्ष से रमण करता रहा॥८॥ राजा ने पवित्रतम और महर्षियो से स्तुत प्रयाग-क्षेत्र मे अपनी राजधानी बनायी॥९॥ इस प्रकार प्रभावशाली, महामानव और महायशस्वी पुरूरवा गगाजी के उत्तर तट पर रहता था॥१०॥

लोमहर्षण ने कहा—देव-पुत्रो के समान पुरूरवा के सात पुत्र हुए। आयु विद्वान अमावसु विश्वायु धर्मात्मा श्रुतायु, दृढायु, वनायु और बह्वायु—ये उर्वशी के पुत्र थे॥१२ १२॥ अमावसु के, राजाओ का भी राजा भीम नामक पुत्र हुआ। भीम के श्रीमान् काचनप्रभ पुत्र हुआ॥१३॥ काचनप्रभ के महाबली सुहोत्र पुत्र हुआ। सुहोत्र का पुत्र जह्नु,

---

१ ख शत्रूणा युधि दुर्जय। २ ख सुभक्तया। ३ क ०म्यग्निभृत०। ४ क ०तिमो युधि। त। ५ ख ०दा। जिरव हि ब्रह्मस्ततस्य कर्माणि विलय गतम्। उर्वशी च०। ६ ख. ०नीम्। त०। ७ ख वा ऽष्टौ। ८ ख वा ऽष्टौ। ९ क देशे। ख तद०। १० ग ०रथफ०। ११ ख ०स्पृष्ठान्तरेषु च। ए०। १२ ख ०स्ते स्मरदे०। १३ क सर्वे। १४ ख ०मा०। दिवि जाता महात्मान आ०। १५ ख ०मान्विभाव०।

विद्वांस्तु काञ्चनस्यापि सुहोत्रोऽभू महाबल । सहोत्रस्याभवज्जह्नु केशिन्या गर्भसम्भव ॥१४॥
आजह्ने यो महत सत्र सर्पमेध महामखम । पतिलोभेन य गङ्गा पतित्वेन ससार ह ॥१५॥
नेच्छत प्लावयामास तस्य गङ्गा[1] तदा सद । स तया प्लावित दृष्ट्वा यज्ञवाट समन्तत ॥१६॥
सौहोत्रिरशपदगङ्गा[2] क्रुद्धो राजा द्विजोत्तमा । एष ते[3] विफल यत्न[4] पिबशम्भ करोम्यहम ॥१७॥
अस्य गङ्गेऽवलेपस्य[5] सद्य फलमवाप्नुहि । जह्नुराजर्षिणा पीता गङ्गा दृष्ट्वा महर्षय ॥१८॥
उपनिन्युमहाभागा[6] दुहितृत्वेन जाह्नवीम । युवनाश्वस्य पुत्रीं तु कावेरीं जह्नुरावहत[7] ॥१९॥
युवनाश्वस्य शापेन गङ्गार्द्धेन विनिर्गता[8] । कावेरीं सरिता श्रेष्ठा जह्नोर्भार्यामनिन्दिताम ॥२०॥
जह्नुस्तु दयित पुत्र सनद्य[9] नाम धार्म्मिकम । कावेर्यां जनयामास[10] अजकस्तस्य चात्मज ॥२१॥
[11]अजकस्य तु दायादो बलाकाश्वो महीपति । बभूव मृगयाशील कुशस्तस्यात्मजोऽभवत ॥२२॥
कुशपुत्रा बभूवुर्हि चत्वारो देववर्चस । कुशिक कुशनाभश्च कुशाम्बो[12] मूर्त्तिमास्तथा[13] ॥२३॥
पल्हवै सह सवृद्धो राजा वनचर सदा । कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्रमिन्द्रसम प्रभु[14] ॥२४॥
लभेयमिति त शक्रस्त्रासादभ्येत्य जज्ञिवान् । पूर्णे वर्षसहस्रे वै तत शक्रो ह्यपश्यत ॥२५॥
अत्युग्रतपस दृष्ट्वा सहस्राक्ष पुरन्दर । समथ पुत्रजनने स्वयमेवास्य शाश्वत ॥२६॥

कशिनी के गर्भ से उत्पन्न हुआ जिसने सर्पमेध और महामख सत्र सम्पन्न किये और जिसके पास पति बनाने के लोभ से गगाजी गई थी ॥१४ १५॥ गगा जी से विरक्त जह्नु के यज्ञ-स्थल को गगा डुबो दिया। चारों तरफ यज्ञ-स्थल को जलमग्न देखकर राजा जह्नु ने क्रोध मे आकर गगा को शाप दिया कि गग! मैं जल पीकर तुम्हारे यत्न को विफल करता हूँ। तुम अपने इस अभिमान का फल तत्काल प्राप्त करो। ॥१६ १७ ॥ राजर्षि जह्नु के द्वारा पियी गई गगा को देखकर महर्षियो ने उनको जह्नु की पुत्री बना लिया ॥१८॥ पश्चात् जह्नु ने युवनाश्व की पुत्री कावेरी से विवाह किया ॥१९॥ युवनाश्व के शाप से गगा आधे भाग से नदियो मे श्रेष्ठ तथा अनिन्द्य जह्नु की पत्नी कावेरी मे मिल गई ॥२०॥ जह्नु ने सुनद्य नामक धर्मात्मा पुत्र को कावेरी से उत्पन्न किया। २१॥ उससे अजक नामक पुत्र हुआ। अजक का पुत्र राजा बलाकाश्व शिकार खेलने मे कुशल था। उससे कुश नामक पुत्र हुआ। २२ ॥ कुश के देवता के समान तेजस्वी चार पुत्र हुए—कुशिक कुशनाभ कुशाम्ब और मूर्तिमान् ॥२३॥ राजा कुशिक पल्हव वन ही मे अहीरो के साथ पाला गया। मैं इन्द्र के समान पुत्र प्राप्त करू इस इच्छा से उसने तप करना आरम्भ किया। यह जानकर भयवश इन्द्र उसके पास गये। हजार वर्ष बीत जाने पर इन्द्र ने उसे देखा। उस अत्यन्त उग्र तपस्वी को देखकर पुत्रोत्पादन मे समर्थ सुरश्रेष्ठ इन्द्र स्वय उसके पुत्र बने। कुशिक

१ग ०गङ्गा च तत्रत्या। २ख ०रयत्‌ स्म०। ३क ? त्रिप गोवप गमिष्याम पिब स्म०। ४ग जाम। ५ग ०त्नमवाप्यासि ग०। ६क ग ०भागा स्म०। ७क ०त्‌। ग शापेन स्नाप नदी पश्चादिनिमग्न‌ का०। ८ग निमि। का०। ९क मनाद। १०क अजकर०। ११क अजकर०। १२ग गाम्बामूर्ति०। ग दाम्बा मू०। १३ग ०था। पल्हव मनिरात्रामन्त्रा। १४ग प्रभुम्।

पुत्रार्थं कल्पयामास देवेन्द्र सुरसत्तम । स गाधिरभवद्राजा मघवान् कौशिकः स्वयम् ॥२७॥
पौरा यस्याभवद्भार्य्या गाधिस्तस्यामजायत । गाधे कन्या महाभागा नाम्ना सत्यवती शुभा ॥२८॥
तां गाधिः काव्यपुत्राय ऋचीकाय ददौ प्रभुः । तस्याः प्रीतः स वै भर्त्ता भार्गवो भृगुनन्दनः ॥२९॥
पुत्रार्थं साधयामास चरुं गाधेस्तथैव च । उवाचाहूय तां भार्य्यामृचीको भार्गवस्तदा ॥३०॥
उपयोज्यश्चरुरयं त्वया मात्रा त्वयं शुभे । तस्यां जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान्क्षत्रियर्षभः ॥३१॥
अजेयः क्षत्रियैर्लोके क्षत्रियर्षभसूदनः । तवापि पुत्रं कल्याणि धृतिमन्तं तपोधनम् ॥३२॥
शमात्मकं द्विजश्रेष्ठं चरुरेष विधास्यति । एवमुक्त्वा तु तां भार्य्यामृचीको भृगुनन्दनः ॥३३॥
तपस्यभिरतो नित्यमरण्यं प्रविवेश ह । गाधिः सदारस्तु तदा ऋचीकाश्रममभ्यगात्[1] ॥३४॥
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सुतां द्रष्टुं नरेश्वरः । [2]चरुद्वयं गृहीत्वा सा ऋषेः सत्यवती तदा[3] ॥३५॥
चरुमादाय यत्नेन सा तु मात्रे न्यवेदयत् । माता तु [4]तस्या दैवेन दुहित्रे स्वं चरुं ददौ ॥३६॥
तस्याश्चरुमथाज्ञानादात्मसंस्थं[5] चकार ह । अथ सत्यवती सर्वं क्षत्रियान्तकरं तदा ॥३७॥
धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शना । तामृचीकस्ततो दृष्ट्वा योगेनाभ्युपसृत्य च ॥३८॥
ततोऽब्रवीद्द्विजश्रेष्ठः स्वां भार्य्यां वरवर्णिनीम् । मात्रासि वञ्चिता भद्रे चरुव्यत्यासहेतुना ॥३९॥
जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्म्मातिदारुणः । भ्राता जनिष्यते चापि ब्रह्मभूतस्तपोधनः ॥४०॥

पुत्र इन्द्र गाधि नामक राजा हुए॥२४ २७॥ कुशिक की पत्नी पौरा से गाधि की उत्पत्ति हुई थी। गाधि के महाभाग्यशालिनी सत्यवती नामक कन्या हुई। ॥२८॥ गाधि ने उस पुत्री को भृगु-पुत्र ऋचीक को समर्पित किया। ऋचीक ने गाधि की कन्या से प्रसन्न होकर अपने और गाधि के पुत्र होने के लिए चरु बनाया और अपनी पत्नी को बुलाकर कहा—॥२९ ३०॥ प्रिये ! यह चरु तुम अपनी माता को देना। इसके खाने से तुम्हारी माता अत्यन्त तेजस्वी क्षत्रिय-श्रेष्ठ पुत्र को उत्पन्न करेगी जो इस लोक में राजाओं से अजेय तथा नृप-श्रेष्ठों का संतापक होगा॥३१½॥ कल्याणि ! तुम्हें भी इस दूसरे चरु के खाने से धीर, तपस्वी, शान्त और द्विजवर पुत्र उत्पन्न होगा। ॥३२½॥ इस प्रकार पत्नी से कहकर भृगु-पुत्र ऋचीक तपस्या में निरत हो वन में प्रविष्ट हुआ। तदुपरान्त तीर्थयात्रा के प्रसंग से पुत्री को देखने के लिए राजा गाधि अपनी भार्या सहित ऋचीक के आश्रम में गया॥३३ ३४½॥ सत्यवती ने ऋषि के दोनों चरुओं को लाकर माता को समर्पित किया॥३५½॥ परन्तु दैवयोग से माता ने पुत्री को अपना चरु दे दिया और अज्ञानता से उसका चरु स्वयं खा लिया॥३६½॥ इसके बाद सत्यवती ने सब क्षत्रियों का नाश करने वाला गर्भ धारण किया। शरीर में तेज रहते हुए भी वह देखने में भयंकर लगती थी॥३७½॥ ऋचीक उसे देखते ही योग-बल से सब कुछ समझ गया और बोला—भद्रे ! माता ने तुम्हें ठग लिया। चरु बदल जाने के कारण तुम्हें अत्यन्त भयंकर और क्रूर कर्म करने वाला पुत्र उत्पन्न होगा पर तुम्हारा भाई ब्रह्मवेत्ता तपस्वी होगा॥३८ ४०॥

---

१ ख ०भ्ययात्। २ क चरुं द्विजा गृहीत तमृप। ३ क ०दा। विपर्ययात्तदा तं वै सा। ४ क ख तन्भदेन। ५ क ०थात्वा आत्म०।

विश्व[1] हि ब्रह्म तपसा मया तस्मिन् समर्पितम्। एवमुक्ता महाभागा भर्त्रा सत्यवती तदा ॥४१॥
प्रसादयामास पतिं पुत्रो मे नेदृशो भवेत्। ब्राह्मणापसदस्त्वत्त इत्युक्तो मुनिरब्रवीत्[2] ॥४२॥

ऋचीक उवाच

नैष संकल्पतः कामो मया भद्रे तथास्त्विति। उग्रकर्म्मा भवेत् पुत्र पितुर्मातुश्च कारणात् ॥४३॥
पुनः सत्यवती वाक्यमेवमुक्त्वाब्रवीदिदम्। इच्छँल्लोकानपि मुने सृजेथाः किं पुनः सुतम् ॥४४॥
शमात्मकमृजुं त्वं मे पुत्रं दातुमिहार्हसि। काममेवंविधः पौत्रो[3] मम स्यात्तव च प्रभो ॥४५॥
यद्यन्यथा न शक्यं वै कर्त्तुमेतद् द्विजोत्तम। ततः प्रसादमकरोत् स तस्यास्तपसो बलात् ॥४६॥
पुत्रे[4] नास्ति विशेषो मे पौत्रे वा वरवर्णिनि। त्वया यथोक्तं वचनं तथा भद्रे भविष्यति ॥४७॥
ततः सत्यवती पुत्रं जनयामास भार्गवम्। तपस्यभिरतं दान्तं जमदग्निं शमात्मकम् ॥४८॥
[5]भृगोर्जगत्या वंशेऽस्मिञ्जमदग्निरजायत। सा हि सत्यवती पुण्या सत्यधर्मपरायणा ॥४९॥
कौशिकीति समाख्याता प्रवृत्तेयं महानदी। इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रेणुर्नाम नराधिपः ॥५०॥
तस्य कन्या महाभागा कामली नाम रेणुका। रेणुकायां तु कामल्यां तपोविद्यासमन्वितः ॥५१॥
आर्चीको जनयामास जामदग्न्यं सुदारुणम्। [6]सर्वविद्यान्तगं श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पारगम् ॥५२॥

क्योंकि उस चरु में मैंने तपस्या के बल से विश्वरूपी ब्रह्म को निहित कर दिया था।' पति से यह बात सुनकर सौभाग्यवती सत्यवती ने उनसे यह प्रार्थना की कि आप जैसे ब्राह्मण-श्रेष्ठ से मुझे इस तरह का पुत्र न हो ऐसी कृपा करें। तब मुनि ने कहा ॥४१-४२॥

ऋचीक बोला—भद्रे! तुम्हें इस तरह का पुत्र हो—ऐसा संकल्प मैंने नहीं किया था। पिता माता के कारण उग्रकर्म करनेवाला पुत्र होगा ॥४३॥ फिर सत्यवती बोली—'मुने! आप चाहें, तो तीनों लोक की सृष्टि कर सकते हैं, फिर एक पुत्र की तो बात ही क्या ॥४४॥ प्रभो! शान्त तथा कोमल स्वभाव वाला पुत्र मुझे दीजिये। द्विजवर्य! यदि आप ऐसा नहीं कर सकते, तो कम से कम इतना कीजिये कि मेरा पौत्र ऐसा (प्रार्थित पुत्र की तरह) हो। ॥४५½॥ तब मुनि ने तपस्या के बल से उसके ऊपर कृपा की और कहा—'सुन्दरि! मैं पुत्र और पौत्र में कोई भेद नहीं मानता। भद्रे! तुमने जैसा कहा वैसा ही होगा ॥४६-४७॥ तब सत्यवती ने तपस्या में निरत, इन्द्रियों को दमन करने वाले जमदग्नि नामक भृगुवंशी पुत्र को उत्पन्न किया ॥४८॥ संसार में भृगु के इस वंश में जमदग्नि मुनि उत्पन्न हुए। सत्य तथा धर्म में परायण और पवित्र वह सत्यवती कौशिकी नाम से विख्यात महानदी हुई ॥४९½॥ इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न रेणु नामक राजा की कन्या, कामली और रेणुका नाम से प्रसिद्ध थी ॥५०½॥ उस रेणुका में तपस्वी और विद्वान् जमदग्नि ने अतिभयानक सब विद्याओं में निष्णात, धनुर्वेद में पारगत, क्षत्रियों के विनाशक और अग्नि के समान तेजस्वी राम (परशुराम) नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥५१-५२½॥ इस

---

१ ख हि तपसा ब्रह्म म०। २ क ०त्। न स स०। ३ ग सुतो। ४ क ख भद्रे। ५ क ०गोरचरुविपर्यासे जम०। ग ०गान्चरुविपर्यासे रौद्रवैष्णवयोः पुरा। यजनाद्वैष्णवे चाथ जम०। ६ क ख ०द्यानुगश्रे०।

रामं क्षत्रियहन्तारं प्रदीप्तमिव पावकम्। ओर्वस्यैवमृचीकस्य[1] सत्यवत्यां महायशाः ॥५३॥
जमदग्निस्तपोवीर्य्याज्जज्ञे ब्रह्मविदांवरः। मध्यमश्च शुनःशेपः शुनःपुच्छः कनिष्ठकः ॥५४॥
विश्वामित्रं तु दायादं गाधिः कुशिकनन्दनः। जनयामास पुत्रं तु [2]तपोविद्याशमात्मकम् ॥५५॥
प्राप्य ब्रह्मर्षिसमतां योऽयं ब्रह्मर्षितां गतः। विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथः स्मृतः ॥५६॥
जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकाद्वंशवर्द्धनः। विश्वामित्रस्य च सुता देवरातादयः स्मृताः ॥५७॥
प्रख्यातास्त्रिषु लोकेषु तेषां नामान्यतः परम्। देवरातः कतिश्चैव यस्मात् कात्यायनाः स्मृताः ॥५८॥
शालावत्यां हिरण्याक्षो रेणुर्जज्ञेऽथ रेणुकः। सांकृतिर्गालवश्चैव[3] मुद्गलश्चैव विश्रुतः ॥५९॥
मधुच्छन्दो जयश्चैव देवलश्च तथाष्टमः। कच्छपो हारितश्चैव विश्वामित्रस्य ते सुताः ॥६०॥
तेषां[4] ख्यातानि गोत्राणि कौशिकानां महात्मनाम्। पाणिनो बभ्रवश्चैव ध्यानजप्यास्तथैव च ॥६१॥
पार्थिवा देवराताश्च शालङ्कायनबाष्कलाः। [5]लोहिता यमदूताश्च तथा [6]कारूषकाः स्मृताः ॥६२॥
पौरवस्य मुनिश्रेष्ठा ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य च। सम्बन्धोऽप्यस्य वंशेऽस्मिन् ब्रह्मक्षत्रस्य विश्रुतः ॥६३॥
विश्वामित्रात्मजानां तु शुनःशेपोऽग्रजः स्मृतः। भार्गवः कौशिकत्वं हि प्राप्तः स मुनिसत्तमः ॥६४॥
विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुनःशेपोऽभवत् किल। हरिदश्वस्य यज्ञे तु पशुत्वे विनियोजितः ॥६५॥
देवैर्दत्तः शुनःशेपो विश्वामित्राय वै पुनः। देवैर्दत्तः स वै यस्माद्देवरातस्ततोऽभवत् ॥६६॥

प्रकार तप शक्ति से ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ और महायशस्वी जमदग्नि मुनि सत्यवती से उत्पन्न हुए। मझले पुत्र का नाम शुनःशेप और छोटे पुत्र का नाम शुनःपुच्छ हुआ ॥५३-५४॥ कुशिक के पुत्र गाधि ने तपस्वी, विद्वान् और शान्त विश्वामित्र नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥५५॥ धर्मात्मा विश्वामित्र, जिसका नाम विश्वरथ भी था, ब्रह्मर्षियों की समानता को प्राप्त करके ब्रह्मर्षि बन गया ॥५६॥ भृगु की कृपा से कौशिक के वंश को बढ़ाने वाला पुत्र हुआ। विश्वामित्र के पुत्र देवरात आदि नाम से विख्यात हुए ॥५७॥ तीनों लोकों में प्रख्यात उन पुत्रों के नाम सुनिये—देवरात और कति, जिसमें कति के कात्यायन नाम से प्रसिद्ध पुत्र हुए ॥५८॥ शालावती नामक स्त्री से हिरण्याक्ष उत्पन्न हुआ। रेणु, रेणुक, साकृति, गालव, मुद्गल, मधुच्छन्द, जय, देवल, अष्टक, कच्छप, हारित—ये विश्वामित्र के पुत्र कहलाये। ५९-६०॥ उन महात्मा कौशिकों के गोत्र प्रसिद्ध हैं। मुनिश्रेष्ठो! पाणिन, बभ्रव, ध्यान, जप्य, पार्थिव, देवरात, शालङ्कायन, बाष्कल, लोहित, यमदूत, कारूषक—ये सब ब्रह्मर्षि कौशिक के वंशज कहलाते हैं ॥६१-६२½॥ इस वंश में ब्राह्मण और क्षत्रिय का सम्बन्ध प्रसिद्ध है। विश्वामित्र के पुत्रों में शुनःशेप ज्येष्ठ था। मुनि-श्रेष्ठ भार्गव कौशिकत्व को प्राप्त हुआ ॥६३-६४॥ विश्वामित्र का पुत्र शुनःशेप हुआ। हरिदश्व (हरिश्चन्द्र) के यज्ञ में शुनःशेप पशु की जगह नियुक्त किया गया था ॥६५॥ देवताओं ने फिर शुनःशेप को विश्वामित्र को दे दिया। देवताओं के द्वारा दिया जाने के कारण उसका नाम 'देवरात' पड़ा ॥६६॥ विश्वामित्र के

---

१ ख ०वऋची०। २ ख. ०द्यासमन्वितम्। ३ क ख ०व दे०। ४ क तेषामाख्यामि गो०। ५ क ०तायन-हारीताष्टकाद्याजना स्मृ०। ६ ग याम-भूताश्च। ७ ग. कारीरय।

देवरातादयः सप्त विश्वामित्रस्य वै सुताः। दृषद्वतीसुतश्चापि[1] वैश्वामित्रस्तथाष्टकः ॥६७॥
अष्टकस्य सुतो लौहिः[2] प्रोक्तो जह्नुगणो मया। अत उर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वंशमायोर्महात्मनः ॥६८॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवंशेऽमावसुवंशानुकीर्त्तनं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः

तत्रादौ सोमवंशवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

आयोः पुत्राश्च ते पञ्च सर्व्वे वीरा[3] महारथाः। स्वर्भानुतनयायां च प्रभायां जज्ञिरे नृपाः ॥१॥
नहुषः प्रथमं जज्ञे वृद्धशर्म्मा ततः परम्। रम्भो रजिरनेनाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥२॥
रजिः पुत्रशतानीह जनयामास पञ्च वै। राजेयमिति विख्यातं क्षत्रमिन्द्रभयावहम् ॥३॥
यत्र देवासुरे युद्धे समुत्पन्ने सुदारुणे। देवाश्चैवासुराश्चैव पितामहमथाब्रुवन् ॥४॥

देवासुरा ऊचुः

आवयोर्भगवन् युद्धे को विजेता भविष्यति। ब्रूहि नः सर्व्वभूतेश श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥५॥

देवरात आदि सात पुत्र थे। विश्वामित्र के दृषद्वती से अष्टक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥६७॥ अष्टक के लौहि नामक पुत्र हुआ। मैंने जह्नु-परिवार को बतला दिया। अब इसके बाद महात्मा आयु नामक राजा के वंश का वर्णन करूँगा ॥६८॥

श्री ब्रह्ममहापुराण के सोमवंश के वर्णन-प्रसंग में अमावसु-वंशानुकीर्तन नामक दसवाँ अध्याय समाप्त ॥१०॥

अध्याय ११

लोमहर्षण बोले—आयु के वीर और महारथी पाँच पुत्र स्वर्भानु की प्रभा नामक कन्या से उत्पन्न हुए ॥१॥ पहले नहुष उत्पन्न हुआ। इसके पश्चात् तीनों लोकों में विख्यात वृद्धशर्मा, रम्भ, रजि और अनेना उत्पन्न हुए ॥२॥ रजि ने पाँचसौ पुत्र उत्पन्न किये, जो इन्द्र को डराने वाले राजेय नामसे प्रसिद्ध क्षत्रिय हुए ॥३॥ एक बार भयंकर देवासुर-संग्राम छिड़ जाने पर देवताओं और राक्षसों ने ब्रह्मा के पास जाकर यह निवेदन किया ॥४॥

देवासुरों ने कहा—भगवन्! आप सभी प्राणियों के स्वामी हैं, हम तत्त्वतः यह जानना चाहते हैं कि हम दोनों में से कौन पक्ष विजयी होगा? कृपया बताइए? ॥५॥

---

१ क ॰रि विश्वामित्रादष्टक॰। २ क ख लौहि। ३ क क्रिया।

ब्रह्मोवाच

येषामर्थाय संग्रामे रजिरात्तायुधः प्रभुः। योत्स्यते ते विजेष्यन्ति त्रींल्लोकान्नात्र संशयः॥६॥
यतो रजिर्धृतिस्तत्र श्रीश्च तत्र यतो धृतिः। यतो धृतिश्च श्रीश्चैव धर्मस्तत्र जयस्तथा॥७॥
ते देवा दानवाः प्रीता देवेनोक्ता रजिं तदा। अभ्ययुर्जयमिच्छन्तो वृण्वानास्तं नरर्षभम्॥८॥
स हि स्वर्भानुदौहित्रः प्रभायां समपद्यत। राजा परमतेजस्वी सोमवंशविवर्द्धनः॥९॥
ते हृष्टमनसः सर्व्वे रजिं वै देवदानवाः। ऊचुरस्मज्जयाय त्वं गृहाण वरकार्म्मुकम्॥१०॥
अथोवाच रजिस्तत्र तयोर्वै देवदैत्ययोः। अर्थज्ञः स्वार्थमुद्दिश्य यशः स्वं च प्रकाशयन्॥११॥

रजिरुवाच

यदि दैत्यगणान् सर्व्वान्[1] जित्वा वीर्य्येण वासवः। इन्द्रो भवामि धर्म्मेण ततो योत्स्यामि संयुगे॥१२॥
देवाः प्रथमतो विप्राः प्रतीयुर्हृष्टमानसाः। एवं यथेष्टं नृपते कामः सम्पद्यतां तव॥१३॥
श्रुत्वा सुरगणानान्तु वाक्यं राजा रजिस्तदा। पप्रच्छासुरमुख्यांस्तु यथा देवानपृच्छत॥१४॥
दानवा दर्पसम्पूर्णाः स्वार्थमेवावगम्य ह। प्रत्यूचुस्तं नृपवरं साभिमानमिदं वचः॥१५॥

दानवा ऊचुः

अस्माकमिन्द्रः प्रह्लादो यस्यार्थे विजयामहे। अस्मिंस्तु समरे राजंस्तिष्ठ त्वं राजसत्तम॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—युद्ध मे जिसके पक्ष से शस्त्र धारण कर रजि युद्ध करेगा निःसंदेह वही त्रैलोक्य विजयी होगा ॥६॥ क्योंकि जहाँ रजि होगा वहाँ धैर्य, जहाँ धैर्य वहाँ लक्ष्मी, जहाँ लक्ष्मी वहाँ धर्म और जहाँ धर्म होगा वहाँ विजय निश्चित होगी॥७॥ ब्रह्मा के वचन को सुनकर देवता और दानव प्रसन्न हो विजय की अभिलाषा करते हुए रजि को वरण करने के लिए उसके पास गये॥८॥ स्वर्भानु का नाती रजि, जो सोमवंश को बढ़ाने वाला परम तेजस्वी राजा था, प्रभा से उत्पन्न हुआ था॥९॥ प्रसन्नचित्त देवता और राक्षस रजि से कहने लगे कि आप हमारी जय के लिये धनुष धारण कीजिये॥१०॥ तब अभिप्राय को जाननेवाले रजि ने स्वार्थ का उद्देश्य सम्मुख रखकर अपनी कीर्ति को प्रकाशित करते हुए देव-दानवों से कहा॥११॥

रजि ने कहा—'यदि मैं शक्ति से दैत्यगणों को जीत कर धर्म से इन्द्र हो जाऊँ तो मैं संग्राम में युद्ध करूँगा' ॥१२॥ देवताओं ने प्रथमतः प्रसन्न होकर कहा—'राजन्! आपकी इच्छा पूरी होगी॥१३॥ देवताओं की बात सुनकर राजा रजि ने प्रमुख राक्षसों से भी वही बात पूछी जो देवताओं से पूछी थी॥१४॥ तब दर्प से पूर्ण दानवों ने केवल अपने ही स्वार्थ को जानकर राजा से अभिमानपूर्वक यह कहा॥१५॥

दानवों ने कहा—'हमारे इन्द्र तो प्रह्लाद हैं, जिनके लिए हम विजय चाहते हैं। राजन्! यदि आप हमारे इन्द्र होने की इच्छा रखते हैं तो आप इस युद्ध में हमारे विपक्षी बनिये'॥१६॥ राजा ने कहा—

---

[1] स० ०र्वान्निरस्त्वा वी०।

स तथेति ब्रुवन्नेव देवैरप्यतिचोदितः। भविष्यसीन्द्रो जित्वैनं देवैरुक्तस्तु पार्थिवः ॥१७॥
जघान दानवान् सर्व्वान् येऽवध्या वज्रपाणिनः। स विप्रनष्टां देवानां परमश्रीः श्रियं वशी ॥१८॥
निहत्य दानवान् सर्व्वानाजहार रजिः प्रभुः। ततो रजिं महावीर्य्यं देवैः सह शतक्रतुः ॥१९॥
रजिपुत्रोऽहमित्युक्त्वा पुनरेवाब्रवीद्वचः। इन्द्रोऽसि तात[1] देवानां सर्व्वेषां नात्र संशयः ॥२०॥
यस्याहमिन्द्रः पुत्रस्ते ख्यातिं यास्यामि कर्म्मभिः। स तु शत्रुवचः श्रुत्वा वञ्चितस्तेन मायया ॥२१॥
तथैवेत्यब्रवीद्राजा प्रीयमाणः शतक्रतुम्। तस्मिंस्तु देवैः सदृशे दिवं प्राप्ते महीपतौ ॥२२॥
दायाद्यमिन्द्रादाजह्रुः राज्यं तत्तनया रजेः। पञ्च पुत्रशतान्यस्य तद्वै स्थानं शतक्रतोः ॥२३॥
समाक्रामन्त बहुधा स्वर्गलोकं त्रिविष्टपम्। ते यदा तु [2]स्वसम्मूढा रागोन्मत्ता विधर्म्मिणः ॥२४॥
ब्रह्मद्विषश्च संवृत्ता हतवीर्य्यपराक्रमाः। ततो लेभे स्वमैश्वर्य्यमिन्द्रः स्थानं तथोत्तमम् ॥२५॥
हत्वा रजिसुतान् सर्व्वान् कामक्रोधपरायणान्। य इदं च्यावनं स्थानात्प्रतिष्ठानं शतक्रतोः।
श्रृणुयाद्धारयेद्वापि न स दौर्गत्यमाप्नुयात् ॥२६॥

लोमहर्षण उवाच

रम्भोऽनपत्यस्त्वासीच्च वंशं वक्ष्याम्यनेनसः। अनेनसः सुतो राजा प्रतिक्षत्रो[3] महायशाः ॥२७॥
[4]प्रतिक्षत्रसुतश्चासीत्[5] सञ्जयो नाम विश्रुतः[6]। सञ्जयस्य जयः पुत्रो विजयस्तस्य चात्मजः ॥२८॥

'एवमस्तु'। तब देवताओ ने राजा से कहा—'आप इनको मार कर इन्द्र हो जायेंगे'॥१७॥ राजा ने उन सब दैत्यो को, जो इन्द्र से अवध्य थे, मार कर चिरकाल से नष्ट देवताओं की श्री को राक्षसों से ग्रहण किया॥१८॥ तदुपरान्त इन्द्र ने देवताओ के साथ आकर रजि से कहा—'मैं रजि का पुत्र हूँ। तात! नि:सदेह आप सब देवताओ के इन्द्र हैं। जिन आप का पुत्र मैं इन्द्र हूँ—इस ख्याति को मैं कर्मों से प्राप्त करूँगा'॥१९-२०½॥ वह राजा इन्द्र की बात सुनकर माया से मोहित हो सतुष्ट हो गया और इन्द्र से बोला—"ऐसा ही सही।' ॥२१½॥ तब देवताओं के समान उस राजा के स्वर्ग चले जाने पर उसके पुत्रो ने इन्द्र से राज्य छीन लिया। उसके पाँचसौ पुत्रो ने अनेक बार स्वर्गलोक पर आक्रमण किया॥२२-२३½॥ जब उन मूर्ख, रागोन्मत्त, विधर्मी और ब्रह्म-द्रोही रजि-पुत्रो का पराक्रम नष्ट हो गया, तब इन्द्र ने काम क्रोध मे रत इन सब रजिपुत्रो को मारकर अपने ऐश्वर्य और उत्तम स्थान को प्राप्त किया॥२४-२५॥ जो आदमी इन्द्र के इस उत्थान-पतन को सुनेगा या धारण करेगा, उसकी अधोगति कभी नही होगी॥२६॥

लोमहर्षण बोले—रम्भ तो सन्तानहीन था, इसलिये अनेना के वंश का वर्णन मैं करूँगा। अनेना का पुत्र प्रतिक्षत्र महान् यशस्वी राजा हुआ॥२७॥ प्रतिक्षत्र का सजय नामक पुत्र बडा प्रसिद्ध था। सजय का पुत्र

---

१ क तावद्देवा०। २ ख सुमपुष्टा। ३ ग. प्रतिक्षेत्रो। ४ ग ०तिक्षेत्रसु०। ५ क ख ०सीत्सृञ्जयो०। ६ क ख ०त। सृञ्जय०।

विजयस्य कृतिः पुत्रस्तस्य हर्य्यत्वतः[1] सुतः। [2]हर्य्यत्वतसुतो राजा सहदेवः प्रतापवान् ॥२९॥
सहदेवस्य धर्म्मात्मा नदीन[3] इति विश्रुतः। नदीनस्य[4] जयत्सेनो जयत्सेनस्य [5]सङ्कृतिः ॥३०॥
सङ्कृतेरपि[6] धर्म्मात्मा [7]क्षत्रवृद्धो महायशाः। अनेनसः समाख्याताः क्षत्रवृद्धस्य चापरः ॥३१॥
क्षत्रवृद्धात्मजस्तत्र सुनहोत्रो महायशाः। सुनहोत्रस्य दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः ॥३२॥
काशः शलश्च द्वावेतौ तथा गृत्समदः प्रभुः। पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकः ॥३३॥
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च। शलात्मज[8] आर्ष्टिसेनस्तनयस्तस्य काश्यपः ॥३४॥
काशस्य काशिपो राजा पुत्रो [9]दीर्घतपास्तथा। [10]धनुस्तु [11]दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिस्ततः ॥३५॥
तपसोऽन्ते सुमहतो जातो वृद्धस्य धीमतः। पुनर्धन्वन्तरिर्देवो मानुषेष्विह जन्मनि ॥३६॥
तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा। [12]काशिराजो महाराजः सर्व्वरोगप्रणाशनः ॥३७॥
आयुर्व्वेदं भरद्वाजात् प्राप्येह स भिषक्क्रियः। तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् ॥३८॥
[13]धन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः। अथ केतुमतः पुत्रो वीरो भीमरथः स्मृतः ॥३९॥
पुत्रो भीमरथस्यापि दिवोदासः प्रजेश्वरः। दिवोदासस्तु धर्म्मात्मा वाराणस्यधिपोऽभवत् ॥४०॥
एतस्मिन्नेव काले तु पुरीं वाराणसीं द्विजाः। शून्यां निवेशयामास क्षेमको नाम राक्षसः ॥४१॥

जय और उसका पुत्र विजय हुआ ॥२८॥ विजय के कृति नामक पुत्र और उसके हर्यत्वत नामक पुत्र हुआ। हर्यत्वत का पुत्र सहदेव प्रतापी राजा हुआ ॥२९॥ सहदेव का धर्मात्मा पुत्र नदीन नाम से विख्यात हुआ। नदीन के जयत्सेन नामक पुत्र और जयत्सेन के संकृति नामक पुत्र हुआ ॥३०॥ सकृति के भी महायशस्वी और धर्मात्मा क्षत्रवृद्ध नामक पुत्र हुआ। अनेना का वंश बतला दिया, अब क्षत्रवृद्ध का सुनिये ॥३१॥ क्षत्रवृद्ध के सुनहोत्र नामक महायशस्वी पुत्र हुआ। सुनहोत्र के काश, शल और गृत्समद नामक तीन धर्मात्मा पुत्र थे ॥३२३॥ गृत्समद का पुत्र शुनक और उसका शौनक था। उसी से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण उत्पन्न हुए। आर्ष्टिसेन शल का पुत्र था। उसका पुत्र काश्यप था ॥३३-३४॥ काश के पुत्र राजा काशिप और दीर्घतपा थे। दीर्घतपा के धनु नामक पुत्र हुआ और उससे विद्वान् धन्वन्तरि उत्पन्न हुए ॥३५॥ वृद्ध और धीमान् धनु के कठिन तप के अन्त मे देवता धन्वन्तरि मनुष्य योनि मे उत्पन्न हुए ॥३६॥ इस जन्म मे उसके घर मे उत्पन्न देव धन्वन्तरि ने, जो सर्वरोग-विनाशक तथा महाराज काशिराज कहलाते थे भरद्वाज मुनि से आयुर्वेद को प्राप्त कर उसके आठ भाग करके शिष्यो को पढा दिया ॥३७-३८॥ धन्वन्तरि का पुत्र केतुमान् नाम से प्रसिद्ध था। केतुमान् का पुत्र भीमरथ बडा वीर हुआ ॥३९॥ भीमरथ का पुत्र दिवोदास प्रजाओ का स्वामी हुआ। धर्मात्मा दिवोदास काशी-नरेश हुआ। ॥४०॥ विप्रवृन्द ! इसी समय क्षेमक नामक राक्षस ने शून्य काशीपुरी मे प्रवेश किया ॥४१॥ क्योंकि महात्मा

---

१ क हर्यश्वत। ख हर्यश्वन। २ क ०र्यश्वतसु०। ख ०र्यश्वनसु०। ३ क नदीज। ४ क ० दीजस्य। ५ ग. सहृति। ६ ग सहृते०। ७ ख कृतवर्मा। ८ ग ०त्मज पार्ष्णिसे०। ९ ग ०तमास्त०। १० ख धन्वस्तु। ११ ग ०तमसो। १२ ग मणिराजो। १३ क ०न्तरे सुतो नाम के०।

शप्ता हि सा मतिमता निकुम्भेन महात्मना। शून्या वर्षसहस्रं वै भवित्री तु न संशयः ॥४२॥
तस्यां हि शप्तमात्रायां दिवोदासः प्रजेश्वरः। विषयान्ते पुरीं रम्यां गोमत्या संन्यवेशयत् ॥४३॥
भद्रश्रेण्यस्य पूर्वं तु पुरी वाराणसी ह्यभूत्। भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ॥४४॥
हत्वा निवेशयामास दिवोदासो नराधिपः। भद्रश्रेण्यस्य तद्राज्यं हृतं येन बलीयसा ॥४५॥
भद्रश्रेण्यस्य पुत्रस्तु दुर्दमो नाम विश्रुत.। दिवोदासेन बालेति घृणया स विसर्जितः ॥४६॥
हैहयस्य तु दायाद्यं हृतवान् वै महीपतिः। आजह्रे पितृदायाद्यं[1] दिवोदासहृतं बलात् ॥४७॥
भद्रश्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना। वैरस्यान्तो महाभागा. कृतश्चात्मीयतेजसा ॥४८॥
दिवोदासाद्दृषद्वत्यां वीरो जज्ञे प्रतर्दनः। तेन बालेन पुत्रेण प्रहृतं तु पुनर्बलम् ॥४९॥
प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सभर्गौ[2] सुविश्रुतौ[3]। वत्सपुत्रो ह्यलर्कस्तु सन्नतिस्तस्य चात्मजः ॥५०॥
अलर्कस्तस्य पुत्रस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः। अलर्कं प्रति राजर्षिं श्लोको गीतः पुरातनैः ॥५१॥
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च। युवा रूपेण सम्पन्नः प्रागासीच्च कुलोद्वहः ॥५२॥
लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप्तवान्। तस्यासीत् सुमहद्राज्यं रूपयौवनशालिनः ॥५३॥
शापस्यान्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम्। रम्यां निवेशयामास पुरीं वाराणसीं पुनः ॥५४॥
सन्नतेरपि दायादः सुनीथो नाम धार्मिकः। सुनीथस्य तु दायादः क्षेमो नाम महायशाः ॥५५॥
क्षेमस्य केतुमान् पुत्रः सुकेतुस्तस्य चात्मजः। सुकेतोस्तनयश्चापि धर्मकेतुरिति स्मृतः ॥५६॥

निकुम्भ ने काशी पुरी को शाप दिया था कि तुम हजार वर्ष तक निःसंदेह शून्य रहोगी। ॥४२॥ जब काशीपुरी शापग्रस्त हो गयी तब राजा दिवोदास ने गोमती नदी के तट पर सुन्दर नगर रचकर प्रजा को बसाया ॥४३॥ पहले भद्रश्रेण्य की काशीपुरी हो गई थी। भद्रश्रेण्य के सौ उत्तम धनुर्धारी पुत्रों को मारकर राजा दिवोदास ने बलपूर्वक भद्रश्रेण्य का राज्य-हरण कर अपना बना लिया ॥४४-४५॥ भद्रश्रेण्य के दुर्दम नाम से विख्यात पुत्र को दिवोदास ने बालक समझ कर दयावश छोड़ दिया ॥४६॥ राजा ने हैहय की पैतृक-सम्पत्ति छीन ली। महाभाग! भद्रश्रेण्य के पुत्र महात्मा दुर्दम ने दिवोदास से बलपूर्वक हरण किये गये पितृ-धन पर अपना प्रभुत्व फिर स्थापित कर लिया और अपने पराक्रम से शत्रु का अन्त कर दिया ॥४७-४८॥ दिवोदास की दृषद्वती से वीर प्रतर्दन उत्पन्न हुआ। प्रतर्दन ने फिर उस राज्य को अपने अधीन कर लिया ॥४९॥ प्रतर्दन से वत्स और भर्ग नामक दो पुत्रों की उत्पत्ति हुई। वत्स के पुत्र का नाम अलर्क और उसके पुत्र का नाम सनति था ॥५०॥ अलर्क ब्रह्मवादी तथा सत्यवादी था। राजर्षि अलर्क के विषय में ऐसा सुना जाता है कि छाछठ हजार वर्षों तक वह युवक ही बना रहा ॥५१-५२॥ लोपामुद्रा की कृपा से उसने परमायु प्राप्त की थी। रूपयौवनशाली प्रतर्दन का राज्य बहुत विस्तृत था ॥५३॥ शाप के अन्त में प्रतर्दन ने क्षेमक राक्षस को मारकर रमणीय काशी पुरी को फिर से बसाया ॥५४॥ सनति का भी सुनीथ नामक पुत्र धर्मात्मा था। सुनीथ के क्षेम नामक महायशस्वी पुत्र हुआ ॥५५॥ क्षेम के पुत्र केतुमान् से सुकेतु उत्पन्न हुआ। सुकेतु का पुत्र धर्मकेतु कहलाया ॥५६॥ धर्मकेतु का पुत्र महारथी सत्यकेतु हुआ। सत्यकेतु के विभु

---

१ ग ०यादान्वृत०। २ क ०रसगौरौ सु०। ३ ख ०तौ। शत्रुजिद्वत्सपुत्रोऽभ्य तस्य पुत्र ऋतध्वज। अ०।

धर्म्मकेतोस्तु दायादः सत्यकेतुर्महारयः। सत्यकेतुसुतश्चापि विभुर्नाम प्रजेश्वरः[1] ॥५७॥
आनर्त्तस्तु विभोः पुत्रः सुकुमारश्च तत्सुतः। सुकुमारस्य पुत्रस्तु धृष्टकेतुः सुधार्मिकः ॥५८॥
धृष्टकेतोस्तु दायादो वेणुहोत्रः प्रजेश्वरः। वेणुहोत्रसुतश्चापि भार्गो[2] नाम प्रजेश्वरः ॥५९॥
वत्सस्य वत्सभूमिस्तु[3] भार्गभूमिस्तु[4] भार्गजः[5]। एते त्वङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथ भार्गवे ॥६०॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया [6]वैश्यास्त्रयः पुत्राः सहस्रशः। इत्येते काश्यपाः प्रोक्ता नहुषस्य निबोधत ॥६१॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवंशे वृद्धक्षत्रप्रसूतिनिरूपणं नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

सोमवंशवर्णन आयुवंश-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महौजसः। नहुषस्य तु दायादाः [7]षडिन्द्रोपमतेजसः ॥१॥
यतिर्ययातिः संयातिरायातिर्यातिरेव च। सुयातिः षष्ठस्तेषां वै ययातिः पार्थिवोऽभवत् ॥२॥

नामक प्रजेश्वर पुत्र हुआ ॥५७॥ विभु के पुत्र का नाम आनर्त और उसके पुत्र का नाम सुकुमार था। सुकुमार का पुत्र धृष्टकेतु बड़ा धार्मिक था ॥५८॥ धृष्टकेतु का पुत्र वेणुहोत्र प्रजाओं का स्वामी हुआ। वेणुहोत्र का पुत्र भार्ग नामक प्रजेश्वर हुआ ॥५९॥ वत्स के वत्सभूमि नामक पुत्र हुआ। भार्ग के पुत्र का नाम भर्गभूमि था। ये अंगिरा के पुत्र भृगु वंश में उत्पन्न हुए ॥६०॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीन पुत्र हजारों की संख्या में कश्यप-वंश में उद्भूत हुए। अब नहुष के वंश को सुनिए ॥६१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण के सोम-वंश के वर्णन-प्रसंग में वृद्धक्षत्र-प्रसूति-निरूपण नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥११॥

अध्याय १२

ययाति का चरित्र-वर्णन

लोमहर्षण ने कहा—महातेजस्वी नहुष के इन्द्र के समान तेजस्वी छह पुत्र विरजा नामक पितृकन्या से उत्पन्न हुए—यति, ययाति, संयाति, आयाति याति और छठा सुयाति। उनमें से ययाति राजा हुआ ॥१-२॥ परम धार्मिक ययाति ने ककुत्स्थ की गो नामक कन्या को प्राप्त किया। यति मोक्ष में चित्त लगाकर ब्रह्मनिष्ठ मुनि बन

---

१ ग ०रः। स्वविभुस्तु २ ख भर्गो। ३ ख ०स्तु भर्ग०। ४ क भूतिस्तु। ५ ग भार्गवात्। ६ क ०श्या आयो पुत्रा। ७ ख. ०न्द्रोपेन्द्रते०।

ककुत्स्थकन्यां गां नाम लभ परमधार्मिकः। यतिस्तु मोक्षमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवन् मुनिः॥३॥
तेषां ययातिः पञ्चाना विजित्य वसुधामिमाम्। देवयानीमुशनसः सुतां भार्यामवाप सः॥४॥
शर्म्मिष्ठामासुरीं चैव तनयां वृषपर्व्वणः। यदुञ्च तुर्व्वसुञ्चैव देवयानी व्यजायत॥५॥
द्रुह्यं चानुं च [1]पुरुं च शर्म्मिष्ठा वार्षपर्व्वणी। तस्मै शक्रो ददौ प्रीतो रथं परमभास्वरम्[2]॥६॥
असङ्गं काञ्चनं[3] दिव्यं दिव्यैः परमवाजिभिः। युक्तं [4]मनोजवैः शुभ्रैर्येन कार्यं समुद्वहन्॥७॥
स तेन रथमुख्येन[5] षड्रात्रेणाजयन्महीम्। [6]ययातिर्युधि दुर्द्धर्षस्तथा देवान् सदानवान्॥८॥
स रथः [7]कौरवाणां तु सर्व्वेषामभवत्तदा। संवर्त्तवसुनामस्तु कौरवाज्जनमेजयात्॥९॥
कुरोः पुत्रस्य[8] राजेन्द्रराजः पारिक्षितस्य ह। जगाम स रथो नाशं शापाद्गर्गस्य धीमतः॥१०॥
गर्गस्य हि सुतं बालं स राजा जनमेजयः। कालेन[9] हिंसयामास ब्रह्महत्यामवाप सः[10]॥११॥
स लोहगन्धो राजर्षिः परिधावन्नितस्ततः। पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे शर्म्म कर्हिचित्॥१२॥
ततः स दुःखसन्तप्तो नालभत्संविदं क्वचित्। [11]विप्रेन्द्रं शौनकं राजा शरणं प्रत्यपद्यत॥१३॥
याजयामास[12] च ज्ञानी शौनको जनमेजयम्। अश्वमेधेन राजानं पावनार्थं द्विजोत्तमः॥१४॥
स लोहगन्धो व्यनशत्तस्यावभृथमेत्य ह। स च दिव्यरथो राज्ञो वशश्चेदिपतेस्तदा॥१५॥
दत्तः शक्रेण तुष्टेन लेभे तस्माद्बृहद्रथः। बृहद्रथात्क्रमेणैव गतो बार्हद्रथं नृपम्॥१६॥

गया। ययाति ने पाँचों भाइयों की पृथ्वी को जीतकर शुक्राचार्य की देवयानी नामक कन्या से विवाह किया॥३-४॥ पश्चात् उसने वृषपर्वा नामक राक्षस की शर्मिष्ठा नामक पुत्री को पत्नी बनाया। यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्र देवयानी से उत्पन्न हुए॥५॥ शर्मिष्ठा ने द्रुह्य, अनु और पुरु नामक पुत्रों को उत्पन्न किया। ययाति को इन्द्र ने प्रसन्न होकर मन के वेग के समान वेग वाले तथा सफेद रंग वाले दिव्य घोड़ों से युक्त और परम प्रकाश से सुशोभित सुवर्ण-निर्मित रथ दिया॥६-७॥ उस रथ से युद्ध में अजेय ययाति ने छह रात्रि में देवता और राक्षस सहित सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत लिया॥८॥ संवर्तवसु नामक वह रथ कुरुवंशियों के पास रहा। परन्तु महाराज परीक्षित के पुत्र—जनमेजय के समय वह रथ महात्मा गर्ग के शाप से नष्ट हो गया॥९-१०॥ कदाचित् राजा जनमेजय द्वारा गर्ग के पुत्र की हत्या हो जाने से उसे ब्रह्महत्या का दोष लग गया॥११॥ तब लोह-गन्ध से युक्त राजा जनमेजय इधर-उधर भागने लगा। जनता ने उसका परित्याग कर दिया। उसे कहीं भी शान्ति नहीं मिल रही थी॥१२॥ अतएव अशान्त, सन्तप्त राजा विप्रवर्य शौनक के पास गया॥१३॥ ब्राह्मण-श्रेष्ठ ज्ञानी शौनक ने राजा जनमेजय को पवित्र करने के लिए उससे अश्वमेध यज्ञ कराया॥१४॥ यज्ञान्त में राजा का लोह-गन्ध नष्ट हो गया। उस समय इन्द्र ने सन्तुष्ट होकर यही दिव्यरथ राजा चेदिपति (शिशुपाल) को दे दिया। उससे बृहद्रथ ने प्राप्त किया॥१५॥ क्रमशः यह रथ बृहद्रथ के हाथ से बार्हद्रथ (जरासन्ध) नामक राजा के हाथ में पड़ा॥१६॥ तब कुरुवंशी भीम ने जरासन्ध को मारकर यही उत्तम रथ

---

१ क ग पूरू। २ ग ०म्। मनस्यास्त्र का०। ३ ग ०न च दिव्यं। ४ ग मनोरमैः। ५ ग ०न दिव्यवेन च०। ६ ग ०र्सर्वैर्महस्रारर०। ७ क ग पौरवाणां। ८ ग ०स्य विप्रेन्द्र०। ९ ग चाक्रूर। ग बालक्रूरे। १० क. ग। दुर्गन्धयुक्तो रा०। ११ क होतार। ग इन्द्रात्। १२ क ०श पेन्द्रेण पौ०। १३ क. यशस्ये०।

ततो हत्वा जरासन्धं भीमस्तं रथमुत्तमम्। प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दनः ॥१७॥
सप्तद्वीपां ययातिस्तु जित्वा पृथ्वीं ससागराम्। [1]विभज्य पञ्चधा राज्यं पुत्राणां नाहुषस्तदा ॥१८॥
ययातिर्दिशि पूर्वस्यां यदुं ज्येष्ठं न्ययोजयत्। मध्ये [2]पुरुं च राजानमभ्यषिञ्चत् स नाहुषः ॥१९॥
दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं मतिमान्नृपः। तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ॥२०॥
यथाप्रदेशमद्यापि धर्म्मेण प्रतिपाल्यते। प्रजास्तेषां पुरस्तात्तु वक्ष्यामि मुनिसत्तमाः ॥२१॥
धनुर्न्यस्य पृषत्कांश्च पञ्चभिः पुरुषर्षभैः। जरावानभवद्राजा भारमावेश्य बन्धुषु ॥२२॥
विक्षिप्तशस्त्रः पृथिवीं चचार पृथिवीपतिः। प्रीतिमानभवद्राजा ययातिरपराजितः ॥२३॥
एवं विभज्य पृथिवीं ययातिर्यदुमब्रवीत्। जरां मे प्रतिगृह्णीष्व पुत्र कृत्यान्तरेण वै ॥२४॥
तरुणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम्। जरां त्वयि समाधाय तं यदुः प्रत्युवाच ह ॥२५॥

यदुरुवाच

अनिर्दिष्टा मया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुता। अनपाकृत्य तां राजन्न ग्रहीष्यामि ते जराम् ॥२६॥
जरायां बहवो दोषाः पानभोजनकारिताः। तस्माज्जरां न ते राजन् ग्रहीतुमहमुत्सहे ॥२७॥
सन्ति ते बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप। प्रतिग्रहीतुं धर्मज्ञ पुत्रमन्यं वृणीष्व वै ॥२८॥
स एवमुक्तो यदुना राजा कोपसमन्वितः। उवाच वदतां श्रेष्ठो ययातिर्गर्हयन् सुतम् ॥२९॥

प्रीतिपूर्वक वासुदेव (कृष्ण) को दिया ॥१६-१७॥ ययाति ने समुद्र सहित सात द्वीप वाली इस पृथिवी को जीतकर इसके पाँच भाग करके पुत्रों में बाँट दिया ॥१८॥ नहुष-पुत्र ययाति ने पूर्व दिशा में ज्येष्ठ पुत्र यदु को नियुक्त किया, मध्य देश में राजा पुरु का अभिषेक किया और दक्षिण-पूर्व दिशा का राज्य तुर्वसु को दिया ॥१९॥ वे आज भी नगर सहित इस सप्तद्वीपा पृथ्वी का अपने-अपने प्रदेश में धर्मपूर्वक प्रतिपालन कर रहे हैं। मुनिवर! उनकी प्रजाओं का वर्णन आगे चलकर करूँगा ॥२०-२१॥ धनुष और बाणों का त्याग कर पाँचों पुरुष-श्रेष्ठ पुत्रों को सब भार सौंप कर राजा ययाति वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ ॥२२॥ शस्त्रों का त्याग कर अजेय राजा ययाति प्रसन्नता से पृथ्वी का परिभ्रमण करने लगा ॥२३॥ इस प्रकार पृथिवी का विभाग करके ययाति ने अपने पुत्र यदु से कहा—'पुत्र! मेरी वृद्धावस्था को ग्रहण करो। मैं अपना बुढ़ापा तुम्हें देकर तुम्हारी युवावस्था को स्वयं लेकर कार्यान्तर से इस पृथिवी पर विचरण करूँगा।' पिता की बात सुनकर यदु ने उत्तर दिया ॥२४-२५॥

यदु बोला—मैंने अप्रकाश्य भिक्षा देने के लिए एक ब्राह्मण से प्रतिज्ञा की थी। राजन्! उसकी पूर्ति किए बिना मैं आपका बुढ़ापा ग्रहण नहीं कर सकता ॥२६॥ राजन्! खान-पान से उत्पन्न अनेक प्रकार के रोग वृद्धावस्था में होते हैं। इसलिए मैं उसे ग्रहण करने का उत्साह नहीं दिखा सकता ॥२७॥ मुझसे बढ़कर प्रिय आपके अनेक पुत्र हैं। हे धर्मज्ञ! उनमें से किसी को आप उसकी जवानी लेने के लिए चुन लें ॥२८॥ यदु के इस प्रकार कहने पर राजा कुपित हुआ। वक्ताओं में श्रेष्ठ ययाति ने पुत्र की भर्त्सना करते हुए कहा ॥२९॥

---

१ स ०ज्य स्व तदा रा०। २ग पूरू।

ययातिरुवाच

क आश्रमस्तवान्योऽस्ति को वा धर्मो विधीयते। मामनादृत्य दुर्बुद्धे यदहं तव देशिकः॥३०॥
एवमुक्त्वा यदुं विप्राः शशापैनं स मन्युमान्। अराज्या ते प्रजा मूढ भवित्रीति न[१] संशयः॥३१॥
द्रुह्युं च तुर्वसुं चैवाप्यनुं च द्विजसत्तमाः। एवमेवाब्रवीद्राजा प्रत्याख्यातश्च तैरपि॥३२॥
शशाप तानतिक्रुद्धो ययातिरपराजितः। यथावत् कथितं सर्व्वं मयास्य द्विजसत्तमाः॥३३॥
एवं शप्त्वा सुतान् सर्व्वांश्चतुरः [२]पुरुपूर्व्वजान्। तदेव वचनं राजा पुरुमप्याह भो द्विजाः॥३४॥
तरुणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम्। जरां त्वयि समाधाय त्वं पुरो यदि मन्यसे॥३५॥
स जरां प्रतिजग्राह[३] पितुः पुरुः प्रतापवान्। ययातिरपि रूपेण पुरोः पर्य्यचरन् महीम्॥३६॥
स मार्गमाणः[४] कामानामन्तं नृपतिसत्तमः। विश्वाच्या सहितो रेमे वने चैत्ररथे प्रभुः॥३७॥
यदा स तृप्तः कामेषु भोगेषु च नराधिपः। तदा पुरोः[५] सकाशाद्वै स्वां जरां प्रत्यपद्यत॥३८॥
यत्र गाथा मुनिश्रेष्ठा गीताः किल ययातिना। याभिः प्रत्याहरेत्कामान् सर्वशोऽङ्गानि कूर्म्मवत्॥३९॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥४०॥
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः। नालमेकस्य तत्सर्व्वमिति कृत्वा न मुह्यति॥४१॥

ययाति बोला—दुर्बुद्धे! मेरा अनादर करके कौन ऐसा आश्रम या धर्म है, जिसका तुम आचरण करोगे? क्योंकि मैं तुम्हारा गुरु हूँ॥३०॥ विप्रवृन्द! ऐसा कहकर क्रोधी राजा ने यदु को शाप दिया—"मूर्ख! तेरी प्रजा राज्यरहित होगी, इसमें कोई संदेह नहीं॥३१॥ द्विजवर! राजा ने इसी प्रकार द्रुह्यु, तुर्वसु और अनु से भी कहा और उन लोगों ने भी स्पष्ट अस्वीकार कर दिया॥३२॥ द्विजश्रेष्ठ! अजेय ययाति ने अत्यन्त क्रोध में आकर उनको भी वही शाप दिया। इसके बारे में मैंने सब कुछ यथार्थ कहा॥३३॥ पुरु से ज्येष्ठ चार पुत्रों को इस तरह शाप देकर राजा ने पुरु से भी कहा—'पुरु! यदि तुम स्वीकार करो तो मैं अपनी बुढ़ाई तुम्हें देकर और तुम्हारी युवावस्था को ग्रहण कर पृथिवी-मंडल का चक्कर लगाऊँ॥३४-३५॥ प्रतापी पुरु ने पिता की बुढ़ाई ले ली। ययाति भी पुरु का रूप लेकर पृथ्वी पर विचरने लगा॥३६॥ कामों का अन्त करने के विचार से राजा ययाति विश्वाची के संग चैत्ररथ नामक वन में रमण करने लगा॥३७॥ परन्तु जब कामों के भोग से वह तृप्त नहीं हुआ, तब उसने पुरु से अपनी वृद्धावस्था को लेकर उसकी जवानी लौटा दी॥३८॥ मुनिश्रेष्ठो! उस समय राजा ययाति ने गाथाएँ गाईं, जिनको सुनकर मनुष्य कामों को उसी प्रकार संकुचित कर ले जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को सब ओर से समेट लेता है॥३९॥ "कामों का उपभोग करते रहने से काम नहीं मिटता, बल्कि घी डालने से आग की तरह वह और भी बढ़ जाता है॥४०॥ पृथ्वी पर जितने अन्न, सोना, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब एक आदमी के लिए भी पर्याप्त नहीं है। इसलिए मनुष्य को मोह में नहीं पड़ना चाहिए॥४१॥ जिस व्यक्ति का मनसा वाचा-कर्मणा प्राणिमात्र में

---

१ ग घ नराधिप। २ ग पूरूपूर्वजान्। ३ ख ०हं पुरु पुरुः०। ४ ग ०माणस्तरुणी सुमतो नृपस०। ५ क ख पूरो।

यदा भावं न कुरुते सर्व्वभूतेषु पापकम्। कर्म्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥४२॥
यदा तेभ्यो न बिभेति यदा चास्मान्न बिभ्यति। यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥४३॥
या दुस्त्यजा दुर्म्मतिभिर्या न जीर्य्यति जीर्य्यतः। योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥४४॥
जीर्य्यन्ति जीर्य्यतः केशा दन्ता जीर्य्यन्ति जीर्य्यतः। धनाशा जीविताशा च जीर्य्यतोऽपि न जीर्य्यति ॥४५॥
यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्। तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हन्ति षोडशीं कलाम् ॥४६॥
एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्राविशद्वनम्। कालेन महता चायं[1] चचार विपुलं तपः ॥४७॥
भृगुतुङ्गे[2] गतिं प्राप तपसोऽन्ते महायशाः। [3]अनश्नन् देहमुत्सृज्य सदारः स्वर्गमाप्तवान् ॥४८॥
तस्य वंशे मुनिश्रेष्ठाः पञ्च राजर्षिसत्तमाः। यैर्व्याप्ता पृथिवी सर्व्वा सूर्य्यस्येव गभस्तिभिः ॥४९॥
यदोस्तु वंशं वक्ष्यामि शृणुध्वं राजसत्कृतम्। यत्र नारायणो जज्ञे हरिर्वृष्णिकुलोद्वहः ॥५०॥
सुस्थः प्रजावानायुष्मान् कीर्त्तिमाश्च भवेन्नरः। ययातिचरितं नित्यमिदं शृण्वन् द्विजोत्तमाः ॥५१॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवंशे ययातिचरितनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

पाप-भावना नहीं होती, वही ब्रह्म को प्राप्त करता है। ॥४२॥ जो न किसी से डरता है, न उसी से कोई डरता है, न कुछ चाहता है और न किसी से द्रोह करता है, वही ब्रह्म में लीन होता है ॥४३॥ जो तृष्णा कुबुद्धिवालों से दुस्त्याज्य है, वृद्धावस्था के साथ वृद्ध नहीं होती और प्राणों का नाश करने वाला रोग है, उस तृष्णा को त्यागने में सुख मिलता है ॥४४॥ शरीर के जीर्ण होने पर केश और दाँत जीर्ण हो जाते हैं, पर धन और प्राणों की आशा (शरीर के जीर्ण हो जाने पर भी) जीर्ण नहीं होती। ॥४५॥ लोक में जो काम-सुख है और जो स्वर्गीय महान् सुख है, वे सब सुख तृष्णाक्षयरूप सुख के सोलहवें हिस्से के बराबर भी नहीं हैं ॥४६॥" इस प्रकार कहकर राजर्षि ययाति वन में प्रविष्ट हुआ। दीर्घकाल तक उसने महान् तपस्या की ॥४७॥ तप के अन्त में पर्वत के शिखर पर निराहार रहकर उसने शरीर को त्याग दिया। उस महायशस्वी राजा ने पत्नी सहित स्वर्ग को प्राप्त किया ॥४८॥ मुनिवर! उसके वंश में पाँच राजर्षि-श्रेष्ठ हुए, जिनसे यह सम्पूर्ण पृथ्वी वैसे ही व्याप्त हुई जैसे सूर्य की किरणों से वह व्याप्त रहती है ॥४९॥ राजाओं से सत्कृत यदु का वंश मैं कहूँगा, जहाँ वृष्णि-कुल में भगवान् नारायण अवतीर्ण हुए थे ॥५०॥ आप लोग सुनें। द्विजवर! जो व्यक्ति इस ययाति-चरित्र का नित्य श्रवण करेगा, वह स्वस्थ, प्रजावान्, आयुष्मान् और कीर्तिमान् होगा ॥५१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण के चन्द्रवंशवर्णन प्रसंग में ययाति चरित्र निरूपण नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१२॥

---

१ ग घार्षि। ग चार्षि। २ ख ग ०गो तपश्चीर्त्वा त०। ३ क अनाहार परित्यज्य सु म०।

त्रयोदशोऽध्यायः

पुरुवंश-वर्णनम्

ब्राह्मणा ऊचुः

पुरोर्वंशं वयं सूत श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः। द्रुह्यस्यानोर्यदोश्चैव तुर्वसोश्च पृथक् पृथक्॥१॥

लोमहर्षण उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः पुरोर्वंशं महात्मनः। विस्तरेणानुपूर्व्या च प्रथमं वदतो मम॥२॥
पुरोः पुत्रः सुवीरोऽभून्मनस्युस्तस्य[1] चात्मजः। राजा चाभयदो नाम [2]मनस्योरभवत् सुतः॥३॥
तथैवाभयदस्यासीत् सुधन्वा[3] नाम पार्थिवः। सुधन्वनः सुबाहुश्च रौद्राश्वस्तस्य चात्मजः॥४॥
रौद्राश्वस्य [4]दशार्णेयुः [5]कृकणेयुस्तथैव च। कक्षेयुस्थण्डिलेयुश्च [6]सन्नतेयुस्तथैव च॥५॥
ऋचेयुश्च जलेयुश्च स्थलेयुश्च [7]महाबलः। [8]धनेयुश्च [9]वनेयुश्च पुत्रकाश्च दश स्त्रियः॥६॥
भद्रा[10] शूद्रा च मद्रा च शलदा मलदा तथा[11]। [12]खलदा च ततो विप्रा [13]नलदा सुरसापि च॥७॥
तथा गोचपला च स्त्रीरत्नकूटा च ता दश। ऋषिर्जातोऽत्रिवंशे च तासां भर्त्ता प्रभाकरः॥८॥
भद्रायां[14] जनयामास सुतं सोमं यशस्विनम्। स्वर्भानुना हते सूर्य्ये पतमाने दिवो महीम्॥९॥

अध्याय १३

पुरु के वंश का वर्णन

ब्राह्मणों ने कहा—सूतजी! पुरु, द्रुह्य, अनु, यदु और तुर्वसु के वंशों को हमलोग तत्त्वपूर्वक पृथक्-पृथक् सुनना चाहते हैं॥१॥

लोमहर्षण बोले—मुनिश्रेष्ठो! पहले आप पुरुवंश का क्रमशः विस्तृत वर्णन सुनिए, मैं कह रहा हूँ॥२॥ पुरु के सुवीर नामक पुत्र हुआ। उसका पुत्र मनस्यु और मनस्यु का पुत्र अभयद नामक राजा हुआ॥३॥ इसी तरह अभयद का पुत्र सुधन्वा नाम का राजा हुआ। सुधन्वा का पुत्र सुबाहु और उसका पुत्र रौद्राश्व था॥४॥ रौद्राश्व के दशार्णेयु, कृकणेयु, कक्षेयु, स्थण्डिलेयु, सन्नतेयु, ऋचेयु, जलेयु, महाबली स्थलेयु, धनेयु वनेयु—ये दस पुत्र थे। उनकी कन्याएँ भी दस थीं—॥५-६॥ भद्रा, शूद्रा, मद्रा, शलदा, मलदा, खलदा, नलदा, सुरसा, गोचपला और स्त्रीरत्नकूटा॥७½॥ अत्रि-वंश में उत्पन्न प्रभाकर नामक ऋषि इनका पति था॥८॥ भद्रा से यशस्वी सोम की उत्पत्ति हुई। राहु ने जब सूर्य को ग्रस लिया और सूर्य आकाश से पृथ्वी पर गिरने लगे तब प्रभाकर ने ही अँधेरे से युक्त लोक में प्रकाश डाला और

---

१ ख ०नस्यस्त०। २ ख ०नस्यस्याम०। ३ ग ०न्वा च महीपति। सु०। ४ ख दशार्णायु। ग. दशार्नेयु। ५ क ०कणायु०। ६ ख सनुने०। ७ ख महायशा। ८ क ग वननित्यो। ९ क घनेयुश्च। १० ग रुद्रा। ११ ख ० था। मन्वावला त०। १२ क रालदा। १३ क ख वरदा। १४ ग रुद्रायां।

तमोऽभिभूते लोके च प्रभा येन प्रवर्त्तिता। स्वस्ति तेऽस्त्विति चोक्त्वा वै पतमानो दिवाकरः ॥१०॥
वचनात्तस्य विप्रर्षेर्न पपात दिवो महीम्। अत्रिश्रेष्ठानि गोत्राणि यश्चकार महातपाः ॥११॥
[1]यज्ञेष्वत्रेर्बलञ्चैव देवैर्यस्य प्रतिष्ठितम्। स तासु जनयामास पुत्रिकास्वात्मकामजान्[2] ॥१२॥
दश पुत्रान् महासत्त्वांस्तपस्युग्रे रतांस्तथा[3]। ते तु गोत्रकरा विप्रा ऋषयो वेदपारगाः ॥१३॥
स्वस्त्यात्रेया इति ख्याता किञ्च त्रिधनवर्जिताः। कक्षेयोस्तनयास्त्वासंस्त्रय[4] एव महारथाः ॥१४॥
सभानरश्चाक्षुषश्च [5]परमन्युस्तथैव च। सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान् कालानलो नृपः ॥१५॥
कालानलस्य धर्म्मज्ञः सृञ्जयो नाम वै सुतः। सृञ्जयस्याभवत् पुत्रो वीरो राजा पुरञ्जयः ॥१६॥
[6]जनमेजयो मुनिश्रेष्ठा पुरञ्जयसुतोऽभवत्। जनमेजयस्य राजर्षेर्महाशालोऽभवत् सुतः ॥१७॥
देवेषु स परिज्ञातः प्रतिष्ठितयशा भुवि। महामना[7] नाम सुतो महाशालस्य विश्रुतः[8] ॥१८॥
जज्ञे वीरः सुरगणैः पूजितः सुमहामनाः। महामनास्तु पुत्रौ द्वौ जनयामास भो द्विजाः ॥१९॥
उशीनरञ्च धर्म्मज्ञं तितिक्षुञ्च महाबलम्। उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजर्षिवंशजाः ॥२०॥
नृगा कृमिर्नवा दर्व्वा[9] पञ्चमी च दृषद्वती। उशीनरस्य पुत्रास्तु पञ्च तासु कुलोद्वहाः ॥२१॥
तपसा चैव महता जाता वृद्धस्य चात्मजाः। नृगायास्तु नृगः पुत्रः कृम्यां[10] कृमिरजायत ॥२२॥
नवायास्तु नवः पुत्रो दर्व्वाया[11] सुव्रतोऽभवत्। दृषद्वत्यास्तु सञ्जज्ञे शिविरौशीनरो नृपः ॥२३॥

सूर्य से कहा—"तुम्हारा कल्याण हो" ॥९-१०॥ उस विप्रर्षि के वचन से सूर्य पृथ्वी पर नहीं गिरे। उसी तपस्वी ने अत्रि के आत्रेय नाम से विख्यात गोत्रों को बढ़ाया और यज्ञों में देवताओं के साथ अग्नि को भाग दिलवाया ॥११½॥ उसने उन कन्याओं से महासत्त्वशाली और तपस्या में निरत दस पुत्रों को उत्पन्न किया। वे पुत्र वेदपारगत, स्वस्त्यात्रेय नाम से विख्यात, तीन प्रकार के धनों से वर्जित और गोत्रवर्धक हुए ॥१२-१३½॥ कक्षेयु के तीन ही महारथी पुत्र थे—सभानर चाक्षुष और परमन्यु। सभानर का पुत्र कालानल विद्वान् तथा राजा था ॥१४-१५॥ कालानल का सृञ्जय नामक पुत्र धर्मज्ञ था। सृञ्जय का पुत्र पुरंजय वीर राजा हुआ ॥१६॥ मुनिवर! पुरंजय के जनमेजय नामक पुत्र हुआ। राजर्षि जनमेजय के महाशाल नामक पुत्र हुआ ॥१७॥ वह देवताओं में विख्यात और संसार में महायशस्वी हुआ। महाशाल के महामना नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो देवताओं से पूजित तथा महावीर था ॥१८½॥ विप्रवृन्द! महामना ने दो पुत्र उत्पन्न किये—धर्मज्ञ उशीनर और महाबली तितिक्षु। उशीनर की राजर्षि-वंश में समुत्पन्न पाँच पत्नियाँ थीं— ॥१९-२०॥ नृगा कृमि, नवा, दर्वा और दृषद्वती। उशीनर ने उनसे वंश को धारण करने वाले पाँच पुत्र उत्पन्न किये ॥२१॥ बड़ी तपस्या करने के बाद वृद्ध उशीनर के ये पाँचों पुत्र उत्पन्न हुए थे। नृगा से नृग कृमि से कृमि, नवा से नव और दर्वा से सुव्रत उत्पन्न हुए ॥२२½॥ दृषद्वती से शिवि नामक औशीनर राजा की उत्पत्ति हुई। शिवि के शिवि नामक और नृग के पाँचेय

---

१ ख. यज्ञे ह्यत्रेर्धनं चै०। २ क ०त्मजान्स्वकान्। ३ क ०था। पृथुगो०। ४ ख ०यास्चामस्ते चयश्च म०। ५ ग ०मनुस्त०। ६ ख जन्मेज०। ७ ०मना सुतो जज्ञे म०। ८ क स धार्मिकः। ९ ग दर्षा। १० ख कृम्या। ११ ग दर्षाया

शिबेस्तु शिबयो विप्रा योधेयास्तु नृगस्य ह। नवस्य [1]नवराष्ट्रन्तु कृमेस्तु [2]कृमिला पुरी ॥२४॥
सुव्रतस्य [3]तथाम्बष्ठा शिबिपुत्रान्निबोधत। शिबेस्तु शिबयः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः ॥२५॥
वृषदर्भ[4] सुवीरश्च केकयो मद्रकस्तथा। तेषां जनपदा स्फीता केकया मद्रकास्तथा ॥२६॥
वृषदर्भा[5] सुवीराश्च तितिक्षोस्तु प्रजास्त्विमा[6]। तितिक्षुरभवद्राजा पूर्वस्यां दिशि भो द्विजा. ॥२७॥
उषद्रथो महावीर्य्यः[7] फेनस्तस्य सुतोऽभवत्। फेनस्य[8] सुतपा जज्ञे ततः सुतपसो बलिः ॥२८॥
जातो मानुषयोनौ तु स राजा काञ्चनेषुधिः। महायोगी स तु बलिर्बभूव नृपतिः पुरा ॥२९॥
पुत्रानुत्पादयामास पञ्च वंशकरान् भुवि। अङ्ग प्रथमतो जज्ञे बङ्गः सुह्मस्तथैव च ॥३०॥
पुण्ड्र. कलिङ्गश्च तथा बालेयं[9] क्षत्रमुच्यते। बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकरा[10] भुवि ॥३१॥
बलेश्च ब्रह्मणा दत्तो वरः प्रीतेन भो द्विजा। महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणत ॥३२॥
[11]बले चाप्रतिमत्वं वै धर्म्मतत्त्वार्थदर्शनम्। संग्रामे चाप्यजेयत्वं धर्म्मे चैव प्रधानताम् ॥३३॥
त्रैलोक्यदर्शनञ्चापि प्राधान्यं[12] प्रसवे तथा। चतुरो नियतान् वर्णांस्त्वञ्च स्थापयितेति च ॥३४॥
इत्युक्तो विभुना राजा बलिः शान्तिं परां ययौ। कालेन महता विप्राः[13] स्वञ्च स्थानमुपागमत् ॥३५॥

नामक पुत्र उत्पन्न हुए। नव का राष्ट्र नव नामक था और कृमि की राजधानी कृमिला पुरी नाम से विख्यात थी ॥२३-२४॥ सुव्रत के अम्बष्ठ नाम से ख्यात पुत्र हुए। अब शिबि के पुत्रो के नाम सुनिये। शिबि के शिबि सज्ञा वाले चार पुत्र लोक मे प्रसिद्ध हैं ॥२५॥ जिनका नाम वृषदर्भ, सुवीर, केकय और मद्रक है। उनके धन धान्य-सपन्न देश केकय, मद्रक, वृषदर्भ और सुवीर नाम से प्रसिद्ध हैं। ये प्रजायें तितिक्षु की हैं ॥२६३॥ विप्रवृन्द ! तितिक्षु पूर्व दिशा का राजा हुआ। उसका पुत्र महाशक्तिशाली उषद्रथ हुआ। उषद्रथ के फेन नामक पुत्र हुआ। फेन के सुतपा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और सुतपा से बलि की उत्पत्ति हुई ॥२७-२८॥ सुवर्ण का तरकश धारण करने वाला राजा बलि मनुष्य-योनि मे उत्पन्न हुआ। वह राजा बलि महायोगी था ॥२९॥ उसने अग, वग सुह्म, पुण्ड्र और कलिंग नामक वश को बढाने वाले पाँच पुत्रो को उत्पन्न किया। यह प्रसिद्ध क्षत्रिय-वश बालेय नाम से कहा जाता है। बलि के वश मे बालेय नाम से ख्यात ब्राह्मण भी पुत्र हुए ॥३०-३१॥ द्विजगण ! ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर बलि को वरदान दिया—'राजन् ! तुम महायोगी होगे, एक कल्प की तुम्हारी आयु होगी ॥३२॥ बल मे तुम्हारे समान कोई नही होगा, तुम धर्म के तत्त्व को जानने वाले होगे, युद्ध मे तुम्हें कोई नही जीत सकेगा धर्म मे तुम्हारी प्रधानता रहेगी ॥३३॥ तुम तीनो लोक के दर्शन करोगे। तुम्हारे पुत्रो की ख्याति बढ़ेगी और तुम चारो वर्णों की स्थापना करोगे ॥३४॥ इस प्रकार ब्रह्मा के कहने पर राजा बलि परम शान्ति को प्राप्त हुआ। विप्रवृन्द ! चिरकाल के बाद राजा अपने स्थान पर आया ॥३५॥ उसके पुत्रो के देश अग, वग, सुह्म, कलिंग और

१ क ०राष्ट्रास्तु कृ०। २ ख कृमिभा। ३ ख ०था त्वंष्टा शि०। ४ क वृषदर्भं। ५ क वृषदर्भा। ६ ग ०मा। तैति०। ग ०मा। तैतिक्षवोऽभ०। ७ क ०र्य्यं फाम्स्त०। ८ क फाल्स्य। ९ ग बली। १० ग वालेय। ११ क ०ागतुद्भवा। ब०। १२ क बल चाप्रतिम तस्य तथा धर्मार्थचिन्तनम्। १३ क ०न्यं सर्वतस्तथा। १४ ख विप्रा वर्जयथा०।

तेषां जनपदाः पञ्च अङ्गा बङ्गा.[1] ससुह्मकाः। कालिङ्गा. पुण्ड्रकाश्चैव प्रजास्त्वङ्गस्य साम्प्रतम् ॥३६॥
अङ्गपुत्रो महानासीद्राजेन्द्रो दधिवाहनः। दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरथोऽभवत् ॥३७॥
पुत्रो दिविरथस्यासीच्छक्रतुल्यपराक्रमः। विद्वान् धर्म्मरथो[2] नाम तस्य [3]चित्ररथ. सुतः ॥३८॥
तेन धर्म्मरथेनाथ तदा कालञ्जरे गिरौ। यजता सह शक्रेण सोमः पीतो महात्मना ॥३९॥
अथ[4] चित्ररथस्यापि पुत्रो दशरथोऽभवत्। लोमपादः इति ख्यातो यस्य शान्ता सुताभवत् ॥४०॥
तस्य दाशरथिर्वीरश्चतुरङ्गो महायशा.। ऋष्यशृङ्गप्रसादेन जज्ञे वंशविवर्द्धन ॥४१॥
चतुरङ्गस्य पुत्रस्तु पृथुलाक्ष इति स्मृतः। पृथुलाक्षसुतो राजा चम्पो नाम महायशाः ॥४२॥
चम्पस्य तु पुरी चम्पा या मालिन्यभवत् पुरा। पूर्णभद्रप्रसादेन [5]हर्य्यङ्गोऽस्य सुतोऽभवत् ॥४३॥
ततो वैभाण्डकिस्तस्य वारण शक्रवारणम्। अवतारयामास महीं मन्त्रैर्वाहनमुत्तमम् ॥४४॥
[6]हर्य्यङ्गस्य[7] सुतस्तत्र राजा भद्ररथ. स्मृत। पुत्रो भद्ररथस्यासीद्बृहत्कर्म्मा प्रजेश्वरः ॥४५॥
बृहद्दर्भः सुतस्तस्य यस्माज्जज्ञे बृहन्मना। बृहन्मनास्तु राजेन्द्रो जनयामास वै सुतम् ॥४६॥
नाम्ना जयद्रथं नाम यस्माद्दृढरथो नृपः। आसीद्दृढरथस्यापि विश्वजिज्जनमेजयी ॥४७॥
दायादस्तस्य वैकर्णो विकर्णस्तस्य चात्मज.। तस्य पुत्रशत त्वासीदङ्गाना कुलवर्द्धनम् ॥४८॥
एतेऽङ्गवशजा सर्व्वे राजान. कीर्त्तिता मया। सत्यव्रता महात्मान. प्रजावन्तो महारथा ॥४९॥

पुण्ड्र नाम से विख्यात हैं। अब अग की सतान का वर्णन सुनिये ॥३६॥ अग का पुत्र महान् राजा दधिवाहन था। दधिवाहन का पुत्र राजा दिविरथ हुआ ॥३७॥ दिविरथ का पुत्र इन्द्र के तुल्य पराक्रमी था। उसका पुत्र विद्वान् धर्मरथ था। धर्मरथ का पुत्र चित्ररथ था ॥३८॥ कालजर नामक पहाड़ पर इन्द्र के साथ यज्ञ करते हुए धर्मरथ ने सोम (अमृत) का पान किया ॥३९॥ चित्ररथ का पुत्र दशरथ हुआ, जिसकी ख्याति लोमपाद नाम से थी, और जिसके शान्ता नामक कन्या हुई ॥४०॥ ऋष्यशृग मुनि की कृपा से दशरथ के चतुरग नामक महायशस्वी और वश-वर्धक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥४१॥ चतुरग के पृथुलाक्ष नामक पुत्र हुआ। पृथुलाक्ष का पुत्र महायशस्वी चम्प हुआ ॥४२॥ चम्प ने मालिनी पुरी का नाम चम्पा रख दिया। पूर्णभद्र मुनि की कृपा से चम्प के हर्यंग नामक पुत्र हुआ ॥४३॥ उसी के समय वैभाण्डकि (ऋष्यशृग मुनि) ने मन्त्रों के बल से इन्द्र के ऐरावत नामक हाथी को पृथ्वी पर उतारा था ॥४४॥ हर्यंग का पुत्र राजा भद्ररथ हुआ। भद्ररथ का पुत्र प्रजाओं का स्वामी बृहत्कर्मा था ॥४५॥ बृहत्कर्मा का पुत्र बृहद्दर्भ और उसका पुत्र बृहन्मना था। राजेन्द्र बृहन्मना ने जयद्रथ नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जिससे दृढ़रथ नामक राजा उत्पन्न हुआ ॥४६॥ दृढ़रथ के पुत्र विश्वजित् का नाम सुनकर लोग काँपते थे। उसका पुत्र वैकर्ण और वैकर्ण का पुत्र विकर्ण था। उसके सौ पुत्र थे, जो अग-वश को बढ़ाने वाले हुए ॥४७-४८॥ अग-वश में उत्पन्न सत्यव्रती, महात्मा, प्रजावान्

---

१ ग बगास्च सु०। २ क ०रतो ना०। ३ क धर्मरथ। ४ क ०थ धर्मर०। ५ क ०र्यंस्वोऽस्य। ६ ० र्यंगस्य। ७ क ग ०स्य सुत कर्णो।

ऋचेयोस्तु मुनिश्रेष्ठा रौद्राश्वतनयस्य वै। शृणुध्वं सम्प्रवक्ष्यामि वंशं राज्ञस्तु भो, द्विजाः ॥५०॥
ऋचेयोस्तनयो राजा मतिनारो महीपतिः। मतिनारसुतास्त्वासंस्त्रयः परमधार्मिकाः ॥५१॥
वसुरोध.[1] प्रतिरथ.[2] सुबाहुश्चैव धार्म्मिकः। सर्वे[3] वेदविदश्चैव ब्रह्मण्या.[4] सत्यवादिनः ॥५२॥
इला नाम तु यस्यासीत् कन्या वै मुनिसत्तमाः। ब्रह्मवादिन्यधिस्त्री सा तंसुरतामभ्यगच्छत ॥५३॥
तंसोः सुतोऽथ राजर्षिर्धर्म्मनेत्रः प्रतापवान्। ब्रह्मवादी पराक्रान्तस्तस्य भार्य्योपदानवी ॥५४॥
उपदानवी ततः पुत्रांश्चतुरोऽजनयच्छुभान्। दुष्यन्तमथ सुष्मन्तं प्रवीरमनघं तथा ॥५५॥
दुष्यन्तस्य[5] तु दायादो भरतो नाम वीर्य्यवान्। स सर्व्वदमनो नाम नागायुतबलो महान् ॥५६॥
चक्रवर्त्ती सुतो जज्ञे दुष्यन्तस्य[6] महात्मनः। शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना तु भारताः[7] ॥५७॥
भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु महीपतेः। मातॄणां तु प्रकोपेण मया[8] तत्कथितं पुरा ॥५८॥
बृहस्पतेरङ्गिरसः पुत्रो विप्रो महामुनिः। अयाजयद्भरद्वाजो महद्भिः क्रतुभिर्विभुः[9] ॥५९॥
पूर्व्वं तु वितथे तस्य कृते वै पुत्रजन्मनि। ततोऽथ वितथो नाम [10]भरद्वाजात्सुतोऽभवत् ॥६०॥
तयोऽथ वितथे जाते भरतस्तु दिवं ययौ। वितथं चाभिषिच्याथ भरद्वाजो वनं ययौ ॥६१॥
स चापि वितथः पुत्रान् जनयामास पञ्च वै। सुहोत्रञ्च सुहोतारं गयं [11]गर्गं तथैव च ॥६२॥

कपिलञ्च महात्मानं सुहोत्रस्य सुतद्वयम्। [1]काशिकञ्च महासत्यं तथा [2]गृत्समतिं नृपम् ॥६३॥
तथा गृत्समते.[3] पुत्रा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः। [4]काशिकस्य तु काशेयः पुत्रो दीर्घतपास्तथा ॥६४॥
बभूव दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिः सुतः। धन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः ॥६५॥
[5]तया केतुमतः पुत्रो विद्वान् भीमरथः स्मृतः। पुत्रो भीमरथस्यापि वाराणस्यधिपोऽभवत् ॥६६॥
दिवोदास इति ख्यातः[6] [7]सर्व्वंशत्रुप्रणाशनः। दिवोदासस्य [8]पुत्रस्तु[9] वीरो राजा प्रतर्दन. ॥६७॥
प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सो[10] भार्गव एव च। अलर्को राजपुत्रस्तु राजा सन्मतिमान्[11] भुवि ॥६८॥
हैहयस्य तु [12]दायाद्यं[13] हृतवान् वै महीपतिः। आजह्रे पितृदायाद्यं दिवोदासहृतं बलात् ॥६९॥
भद्रश्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना। दिवोदासेन बालेति घृणयासौ विसर्जितः ॥७०॥
अष्टारथो नाम नृपः सुतो भीमरथस्य वै। तेन पुत्रेण बालस्य प्रहृतं तस्य भो द्विजाः ॥७१॥
वैरस्यान्तं मुनिश्रेष्ठाः क्षत्रियेण विधित्सता। अलर्कः काशिराजस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ॥७२॥
षष्टिं वर्षसहस्राणि षष्टिं वर्षशतानि च। युवा रूपेण सम्पन्न आसीत्काशिकुलोद्वहः ॥७३॥
लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप[14] सः। वयसोऽन्ते मुनिश्रेष्ठा हत्वा क्षेमकराक्षसम् ॥७४॥
रम्यां निवेशयामास पुरीं वाराणसीं नृपः[15]। अलर्कस्य तु दायाद' क्षेमको नाम पार्थिवः ॥७५॥
क्षेमकस्य तु[16] पुत्रो वै [17]वर्षकेतुस्ततोऽभवत्। वर्षकेतोश्च दायादो विभुर्नाम प्रजेश्वरः ॥७६॥

के दो पुत्र हुए—सत्यवादी काशिक और राजा गृत्समति ॥६१-६३॥ गृत्समति के पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हुए। काशिक के दीर्घतपा नामक पुत्र हुआ ॥६४॥ दीर्घतपा के विद्वान् धन्वन्तरि पुत्र हुआ। धन्वन्तरि का पुत्र केतुमान् नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥६५॥ केतुमान् का पुत्र भीमरथ हुआ। भीमरथ का पुत्र काशीपुरी का स्वामी हुआ, जो दिवोदास नाम से प्रख्यात और सब शत्रुओं का विनाशक था ॥६६½॥ दिवोदास का पुत्र राजा प्रतर्दन था। प्रतर्दन के दो पुत्र थे—वत्स और भार्गव ॥६७½॥ वत्स का पुत्र अलर्क बहुत बुद्धिमान् राजा हुआ। राजा (दिवोदास) ने हैहय की पैतृक-संपत्ति छीन ली ॥६८½॥ भद्रश्रेण्य के दुर्दम नाम से ख्यात पुत्र ने, जिसको दिवोदास ने बालक जानकर दयावश छोड दिया था, दिवोदास से बलपूर्वक हरण किये गये अपने पितृ धन पर फिर अधिकार कर लिया ॥६९-७०॥ भीमरथ के पुत्र का नाम अष्टारथ भी था। उसके पुत्र प्रतर्दन ने शत्रु का नाश करते हुए फिर अपना पैतृक-धन प्राप्त कर लिया ॥७१½॥ काशिराज अलर्क, जो ब्रह्मवादी तथा सत्यवादी था, छाछठ हजार वर्ष तक युवक ही बना रहा ॥७२-७३॥ लोपामुद्रा की कृपा से उसने परमायु प्राप्त की थी। मुनिवर! आयु के अन्तिम भाग में प्रतर्दन ने क्षेमक नामक राक्षस को मारकर रमणीय काशीपुरी को फिर से बसाया ॥७४½॥ अलर्क का पुत्र क्षेमक नामक राजा हुआ। क्षेमक का पुत्र वर्षकेतु हुआ। वर्षकेतु का पुत्र विभु नामक प्रजापति

---

१ क कौशिक। २ क मृगमति। ३ क मृगमते। ४ क कौशिकस्य। ५ अथ क ख। ६ ख्यातो रोगदुष्टनिबर्हण। दि०। ७ ख ०र्वंशात्र०। ८ ख पुत्रोऽभूद्वीरो। ९ क. ०स्तु सत्यवादी प्र०। १० ख वसो। ११ ख ०मानपि। है०। १२ क ख दायादो। १३ ग ०घ भृत०। १४ क ०वाप्तवान्। व०। १५ क पुन। १६ क. तु दायादो व०। १७ क. ०तुर्महीपतिः व०।

आनत्तस्तु विभो पुत्र सुकुमारस्ततोऽभवत। सुकुमारस्य पुत्रस्तु सत्यकेतुर्महारथ ॥७७॥
सुतोऽभव महातेजा राजा परमधार्म्मिक । वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भर्गभूमिस्तु[१] भार्गवात ॥७८॥
एते त्वङ्गिरस पुत्रा जाता वशेऽथ भार्गवे। ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्च मुनिसत्तमा ॥७९॥
आजमीढोऽपरो वश श्रूयता द्विजसत्तमा । सुहोत्रस्य बृहत्पुत्रो बृहतस्तनयास्त्रय[२] ॥८०॥
अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च वीर्य्यवान। अजमीढस्य पत्न्यस्तु तिस्रो[३] वै यशसान्विता ॥८१॥
नीली[४] च केशिनी चैव धूमिनी च वराङ्गना । अजमीढस्य[५] केशिया जज्ञे जह्नु प्रतापवान ॥८२॥
आजह्रे यो महासत्र सर्व्वमेधमख विभुम। पतिलोभेन य गङ्गा विनीतेव ससार ह ॥८३॥
नेच्छत प्लावयामास तस्य गङ्गा च तत्सद । तत्तया प्लावित दृष्ट्वा यज्ञवाट समन्तत ॥८४॥
जह्नुरप्यब्रवीद्गङ्गा क्रुद्धो विप्रास्तदा नृप । एष ते त्रिषु लोकेषु सक्षिप्याप पिबाम्यहम ॥८५॥
[६]अस्य गङ्गेऽवलेपस्य सद्य फलमवाप्नुहि। तत पीता महात्मानो दृष्ट्वा गङ्गा महर्षय ॥८६॥
उपनिन्युर्महाभागा दुहितृत्वेन जाह्नवीम। युवनाश्वस्य पुत्री तु कावेरीं जह्नुरावहत ॥८७॥
गङ्गाशापेन देहार्द्धं[८] यस्या पश्चान्नदीकृतम[९]। जह्नोस्तु दयित पुत्रो अजको नाम वीर्य्यवान ॥
अजकस्य तु दायादो बलाकाश्वो महीपति ॥८८॥
बभूव मृगयाशील[१०] कुशिकस्तस्य चात्मज । पह्लवै सह सवृद्धो राजा वनचरै सह ॥८९॥

हुआ ॥७५ ७६॥ विभु का पुत्र आनत और उसका पुत्र सुकुमार हुआ। सुकुमार का पुत्र महारथी महातेजस्वी और परमधर्मात्मा राजा सत्यकेतु हुआ ॥७७॥ वत्सभूमि से वत्स और भार्गव से भर्गभूमि उत्पन्न हुआ ॥७८॥ मुनिश्रेष्ठो! भार्गव-वश मे ये सब अगिरा के पुत्र ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र हुए ॥७९। द्विजश्रेष्ठो! अब आजमीढ नामक दूसरे वश के विषय मे आप लोग सुनिये। सुहोत्र के बृहत नामक पुत्र हुआ। बृहत् के तीन पुत्र थे—अजमीढ द्विमीढ और शक्तिसम्पन्न पुरुमीढ ॥८०३॥ अजमीढ की तीन यशस्विनी एव सुदरी पत्नियाँ थी—नीला केशिनी और धूमिनी ॥८१३॥ केशिनी से प्रतापी जह्नु उत्पन्न हुआ जिसने सर्वमेध नामक महायज्ञ किया और जिसके पास पति के लोभ से (अर्थात् स्वामी बनाने के लिए) गगा मानो विनीत होकर गई थ ॥८२ ८३॥ गगा का पत्नी रूप मे न स्वीकार करने पर गगा ने जह्नु के यज्ञ-स्थल को डुबो दिया। विप्रवृन्द! चारो तरफ से यज्ञ-स्थल को जलमग्न देखकर जह्नु ने गगा से कहा—अभी मैं तीनो लोको मे तेरे जल को कम करके पी जाता हूँ। गगे! तू अपने इस कर्म का तत्काल फल पा ले। तदुपरान्त महात्मा महर्षियो ने पियी हुई गगा को देखकर उसको जह्नु की पुत्री बना लिया। जह्नु ने युवनाश्व की पुत्री कावेरी से विवाह किया जिसका आधा शरीर गगा के शाप से नदी बन गया था। जह्नु के अजक नामक शक्तिसम्पन्न पुत्र हुआ। अजक का पुत्र राजा बलाकाश्व शिकार खेलने मे आसक्त था। उसका पुत्र राजा कुशिक हुआ जो पह्लव नामक वनचरो के साथ पाला-पोसा गया था ॥८८ ८९॥ कुशिक ने इन्द्र के समान पराक्रमी पुत्र को प्राप्त करने के

---

१ क ०स्तु च्यवनो नाम भार्गव । ए०। २ क ०यास्तत। अ०। ३ क ०स्रो रूपगुणान्वि०। ४ क नीलिनी कै०। ५ क ०स्य पत्रस्तु जह्नुजन प्र०। ६ ग ०मेव महारथ। प०। ७ घ तस्य। ८ क ०हार्धस्य प०। ९ क ०कृता। ज०। १० क शिया०।

कुशिकस्तु तपस्तेपे¹ पुत्रमिन्द्रसमं विभुम्। लभेयमिति तं शक्रस्त्रासादभ्यत्य जज्ञिवान् ॥९०॥
स गाधिरभवद्राजा मघवा कौशिकः स्वयम्। विश्वामित्रस्तु गाधेयो² विश्वामित्रात्तथाष्टकः ॥९१॥
अष्टकस्य³ सुतो लौहिः प्रोक्तो ज गणो मया⁴। आजमीढोऽपरो वंशः श्रूयतां मुनिसत्तमाः ॥९२॥
अजमीढात्तु नील्यां⁵ वै सुशान्तिरुदपद्यत। पुरुजातिः⁶ सुशान्तश्च ⁷बाह्याश्वः⁸ पुरुजातितः ॥९३॥
⁸बाह्याश्वतनयाः ⁹"पञ्च स्फीता जनपदावृताः। मुद्गलः सृञ्जयश्चैव राजा बृहदिषुस्तथा ॥९४॥
यवीनरश्च विक्रान्तः कृमिलाश्वश्च पञ्चमः। पञ्चैते रक्षणायालं देशानामिति विश्रुताः ॥९५॥
पञ्चानां ते तु पञ्चालाः स्फीता जनपदावृताः। अलं संरक्षणे तेषां पञ्चाला इति विश्रुताः ॥९६॥
मुद्गलस्य तु दायादो मौद्गल्यः सुमहायशाः। इन्द्रसेना यतो गर्भं वध्र्यश्वं प्रत्यपद्यत ॥९७॥
आसीत् पञ्चजनः पुत्रः सृञ्जयस्य महात्मनः। सुतः पञ्चजनस्यापि सोमदत्तो महीपतिः ॥९८॥
सोमदत्तस्य दायादः सहदेवो महायशाः। सहदेवसुतश्चापि सोमको नाम विश्रुतः ॥९९॥
अजमीढसुतो जातः क्षीणे वंशे तु सोमकः। सोमकस्य सुतो जन्तुर्यस्य पुत्रशतं बभौ ॥१००॥
तेषां यवीयान् पृषतो द्रुपदस्य पिता प्रभुः। आजमीढाः स्मृताश्चैते महात्मानस्तु सोमकाः ॥१०१॥
महिषी त्वजमीढस्य धूमिनी पुत्रगृद्धिनी। पतिव्रता महाभागा कुलजा मुनिसत्तमाः ॥१०२॥
सा च पुत्रार्थिनी देवी व्रतचर्यसमन्विता। ततो वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥१०३॥

लिए तपस्या की। इन्द्र डर कर स्वयं उसका पुत्र बन गये और गाधि नाम से प्रख्यात हुए। गाधि के पुत्र विश्वामित्र हुए। विश्वामित्र के अष्टक नामक पुत्र हुआ ॥९०-९१॥ अष्टक का पुत्र लौहि नाम से ख्यात हुआ। मुनिश्रेष्ठो! मैंने जह्नु-गण को बतला दिया। अब अजमीढ का वंश-वर्णन सुनिये ॥९२॥ अजमीढ से नीली में सुशान्ति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सुशान्ति से पुरुजाति और पुरुजाति से बाह्याश्व की उत्पत्ति हुई ॥९३॥ बाह्याश्व के पाँच पुत्र हुए—मुद्गल, सृञ्जय राजा बृहदिषु, पराक्रमी यवीनर और पाँचवाँ कृमिलाश्व ॥९४½॥ ये पाँचों देशों की रक्षा करने में समर्थ थे। उन पाँचों के पञ्चाल देश जनपदों से आवृत तथा समृद्ध थे। उनकी रक्षा करने में समर्थ होने के कारण वे देश पञ्चाल नाम से प्रसिद्ध हुए ॥९५-९६॥ मुद्गल का पुत्र महायशस्वी मौद्गल्य हुआ, जिससे इन्द्रसेना ने वध्र्यश्व नामक पुत्र को उत्पन्न किया (?) ॥९७॥ महात्मा सृञ्जय का पुत्र पञ्चजन हुआ। पञ्चजन का पुत्र राजा सोमदत्त और उसका पुत्र महायशस्वी सहदेव हुआ ॥९८½॥ सहदेव का पुत्र सोमक नाम से प्रख्यात हुआ। वंश के क्षीण होने पर अजमीढ के सोमक नामक पुत्र हुआ ॥९९॥ सोमक के जन्तु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसके सौ पुत्र थे ॥९९-१००॥ उनमें युवक पृषत के द्रुपद नामक पुत्र हुआ। ये सब महात्मा सोमक के पुत्र अजमीढ-वंश के कहलाये ॥१०१॥ मुनिवर! अजमीढ की धूमिनी नामक पत्नी पतिव्रता, कुलीना और महाभाग्यशालिनी थी ॥१०२॥ पुत्र की आकांक्षा से धूमिनी ने व्रत-नियमादि से समन्वित होकर दस हजार वर्षों तक उग्र तपस्या की ॥१०३॥ वह

१ क ०पे रम्यमिन्द्रपद प्रभु। ख० १। २ क यो राजा विश्वरथस्तथा। ३ ख अलर्कस्य। ४ ख ग ०या। अज०। ५ क ख नील्यिा मु०। ६ क ०जानिमु०। ख ०जातिमुशान्ते च बा०। ७ क बाह्यश्व। ८ ख ०ह्याश्व पुरुजातिजा। बाह्याश्च तनया पञ्च बभूवुरमरोपमा। म०। ९ क. बाह्यस्य त०। १० क ०ञ्च बभूवुरमरोपमाः। म०।

हुत्वाग्निं [1]विधिवत्सा तु [2]पवित्रामितभोजना। अग्निहोत्रकुशेष्वेव सुष्वाप मुनिसत्तमाः॥१०४॥
धूमिन्या स तया देव्या त्वजमीढः समीयिवान्। ऋक्षं सञ्जनयामास धूम्रवर्णं [3]सुदर्शनम्॥१०५॥
ऋक्षात् संवरणो जज्ञे कुरुः संवरणात्तथा[4]। यः प्रयागादतिक्रम्य कुरुक्षेत्रं चकार ह॥१०६॥
पुण्यं च रमणीयं च पुण्यकृद्भिर्निषेवितम्। तस्यान्ववायः सुमहान् यस्य नाम्नाथ कौरवाः॥१०७॥
कुरोश्च पुत्राश्चत्वारः सुधन्वा सुधनुस्तथा। [5]परीक्षिच्च महाबाहुः प्रवरश्चारिमेजयः॥१०८॥
परीक्षितस्तु दायादो धार्मिको जनमेजयः। श्रुतसेनोऽग्रसेनश्च भीमसेनश्च नामतः॥१०९॥
एते सर्वे महाभागा विक्रान्ता बलशालिनः। [6]जनमेजयस्य पुत्रस्तु[7] सुरथो मतिमांस्तथा॥११०॥
सुरथस्य तु विक्रान्तः पुत्रो जज्ञे विदूरथः। विदूरथस्य दायाद ऋक्ष[8] एव महारथः[9]॥१११॥
द्वितीयस्तु[10] भरद्वाजान्नाम्ना तेनैव विश्रुतः। द्वावृक्षौ सोमवंशेऽस्मिन्[11] द्वावेव च परीक्षितौ॥११२॥
भीमसेनास्त्रयो विप्रा द्वौ चापि जनमेजयौ। ऋक्षस्य तु द्वितीयस्य भीमसेनोऽभवत्सुतः॥११३॥
प्रतीपो भीमसेनात्तु प्रतीपस्य तु [12]शान्तनुः। देवापिर्बाह्लिकश्चैव त्रय एव महारथाः॥११४॥
शान्तनोरभवद्भीष्मस्तस्मिन् वंशे द्विजोत्तमाः। बाह्लिकस्य तु राजर्षेर्वंशं शृणुत भो द्विजाः॥११५॥
बाह्लिकस्य [13]सुतश्चैव सोमदत्तो महायशाः। जज्ञिरे सोमदत्तात्तु[14] भूरिर्भूरिश्रवाः शलः॥११६॥
उपाध्यायस्तु देवानां देवापिरभवन्मुनिः। [15]च्यवनपुत्र कृतक इष्ट[16] आसीन्महात्मनः॥११७॥

अग्नि में हवन करती, पवित्रता से रहती परिमित भोजन करती और अग्निहोत्र के कुशों पर ही सोती थी। एक समय राजा ने धूमिनी से संगम किया, जिससे सुन्दर धूम्रवर्ण वाला ऋक्ष नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥१०४-१०५॥ ऋक्ष के संवरण नामक पुत्र हुआ और संवरण से कुरु की उत्पत्ति हुई। कुरु ने प्रयाग से जाकर पवित्र, सुन्दर तथा धर्मात्मा व्यक्तियों से सुसेवित कुरुक्षेत्र का निर्माण किया॥१०६½॥ उसके महान् वंश में उत्पन्न लोग कौरव नाम से विख्यात हुए॥१०७॥ कुरु के चार पुत्र थे—सुधन्वा, सुधनु, परीक्षित् और अरिमेजय॥१०८॥ परीक्षित् का धर्मात्मा पुत्र जनमेजय था, किन्तु श्रुतसेन अग्रसेन और भीमसेन भी (उनके) पुत्र थे॥१०९॥ ये सब बड़े भाग्यवान्, बलवान् तथा पराक्रमी थे। जनमेजय का पुत्र बुद्धिमान् सुरथ था॥११०॥ सुरथ के विदूरथ नामक पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ। विदूरथ के महारथी पुत्र का नाम ऋक्ष था॥१११॥ ऋक्ष नाम से ही प्रसिद्ध दूसरा व्यक्ति भरद्वाज से उत्पन्न हुआ था। सोमवंश में दो ऋक्ष और दो परीक्षित् उत्पन्न हुए थे॥११२॥ तीन भीमसेन और दो जनमेजय भी हुए थे। द्वितीय ऋक्ष से भीमसेन नामक पुत्र हुआ॥११३॥ भीमसेन से प्रतीप और प्रतीप से शान्तनु, देवापि और बाह्लिक—ये तीन ही महारथी पुत्र उत्पन्न हुए॥११४॥ विप्रवर[1] उस वंश में शान्तनु से भीष्म उत्पन्न हुआ। द्विजगण[1] अब राजर्षि बाह्लिक का वंश-वर्णन सुनिये॥११५॥ बाह्लिक का पुत्र महायशस्वी सोमदत्त हुआ। सोमदत्त से भूरि भूरिश्रवा और शल की उत्पत्ति हुई॥११६॥ मुनि देवापि देवताओं का उपाध्याय हुआ।

---

१ क ०र्वद्विप्रा प०। २ क ०वित्रमि०। ३ ग सुदर्शनं। ४ क ग ०त्तन। य। ५ क परीक्षितो। ग मरीचिस्त्व। ६ ग जन्मत्र०। ७ ग पुत्रो ममुमुर०। ग पुत्रो तु मु०। ८ ग ऋत्र। ९ क ग महाबल। १० क ग ०यस्त्व रत्नद्वाजा नाम्ना। ११ क ०म्मिर्न्विख्याती द्विजसत्तमा। मी०। १२ क ग शान्त। १३ क ०नरवाग्निनाम०। १४ ग ०स्तु हविर्मूरि। १५ ग ०वन पुत्रइ०। १६ ग इन्दुरत्न.र्मा महामनि। शा०।

शान्तनुस्त्वभवद्राजा कौरवाणां धुरन्धरः। शान्तनोः सम्प्रवक्ष्यामि वंशं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥११८॥
गाङ्गं देवव्रतं नाम पुत्रं सोऽजनयत् प्रभुः। स तु भीष्म इति ख्यातः पाण्डवाना पितामहः ॥११९॥
काली विचित्रवीर्य्यं तु जनयामास भो द्विजाः। शान्तनोर्दयितं पुत्रं धर्म्मात्मानमकल्मषम् ॥१२०॥
कृष्णद्वैपायनाच्चैव क्षेत्रे वैचित्रवीर्य्यके। धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत् ॥१२१॥
धृतराष्ट्रस्तु गान्धार्य्यां पुत्रानुत्पादयच्छतम्। तेषां दुर्य्योधनः श्रेष्ठः [1]सर्व्वेषामपि स प्रभुः ॥१२२॥
पाण्डोर्धनञ्जय. पुत्रः सौभद्रस्तस्य चात्मज.। अभिमन्योः परीक्षित्तु पिता पारीक्षितस्य ह ॥१२३॥
पारिक्षितस्य काश्याया द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतु.। चन्द्रापीडस्तु नृपतिः सूर्य्यापीडश्च [2]मोक्षवित् ॥१२४॥
चन्द्रापीडस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम्। [3]जानमेजयमित्येवं क्षात्र[3] भुवि परिश्रुतम् ॥१२५॥
तेषां ज्येष्ठस्तु तत्रासीत् पुरे वाराणसाह्वये। सत्यकर्णो महाबाहुर्यज्वा विपुलदक्षिण. ॥१२६॥
सत्यकर्णस्य दायाद श्वेतकर्ण. प्रतापवान्। अपुत्र. स तु धर्म्मात्मा प्रविवेश तपोवनम् ॥१२७॥
तस्माद्वनगता गर्भं यादवी प्रत्यपद्यत। सुचारोर्दुहिता सुभ्रूर्मालिनी ग्राहमालिनी ॥१२८॥
सम्भृते स च गर्भे च श्वेतकर्ण. प्रजेश्वरः। अन्वगच्छत् धृत पूर्व्वं महाप्रस्थानमच्युतम् ॥१२९॥
सा तु दृष्ट्वा प्रियं तं च मालिनी पृष्ठतोऽन्वगात्। सुचारोर्दुहिता साध्वी वने राजीवलोचना ॥१३०॥
पथि सा सुषुवे बाला सुकुमार कुमारकम्। तमपास्याथ तत्रैव राजानं सान्वगच्छत ॥१३१॥

च्यवन मुनि के कृतक नामक पुत्र के साथ इसकी मित्रता थी ॥११७॥ कौरवो मे राजा शान्तनु बडा प्रतापी हुआ। उसके त्रैलोक्य मे प्रख्यात वंश का वर्णन मैं करूँगा ॥११८॥ उसने देवव्रत नामक पुत्र को गंगा मे उत्पन्न किया। देवव्रत पाण्डवो का पितामह भीष्म नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥११९॥ द्विजगण ! काली न धर्मात्मा, निष्पाप तथा प्रियपुत्र विचित्रवीर्य को शान्तनु से उत्पन्न किया ॥१२०॥ वेदव्यास ने विचित्रवीर्य की पत्नी मे धृतराष्ट्र पाण्डु और विदुर को उत्पन्न किया ॥१२१॥ धृतराष्ट्र ने गान्धारी मे सौ पुत्र उत्पन्न किये। उनमे दुर्योधन सबमे बडा था ॥१२२॥ पाण्डु का पुत्र धनजय (अर्जन) हुआ और उसका पुत्र सौभद्र (अभिमन्यु)। अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित और परीक्षित का पुत्र पारिक्षित (जनमेजय) हुआ ॥१२३॥ पारीक्षित ने काश्या से दो पुत्र उत्पन्न किये—राजा चन्द्रापीड और मोक्षज्ञ सूर्यापीड ॥१२४॥ चन्द्रापीड के उत्तम धनुर्धारी सौ पुत्र हुए जिनका जनमेजय नाम से प्रसिद्ध क्षत्रियवश ससार मे प्रचलित हुआ ॥१२५॥ उनमे सबसे ज्येष्ठ सत्यकर्ण, जो बहुत दक्षिणा देने वाला, यज्ञ करने वाला और पराक्रमी था वाराणसी पुरी मे वास करता था ॥१२६॥ सत्यकर्ण के श्वेतकर्ण नामक प्रतापी पुत्र हुआ। धर्मात्मा सत्यकर्ण पुत्र की अभिलाषा से तपोवन मे पत्नी सहित प्रविष्ट हुआ ॥१२७॥ वन मे यदुवंशी सुचारु की मालिनी नामक सुन्दरी कन्या ने उससे गर्भ धारण किया ॥१२८॥ गर्भ प्रकाशित होने पर राजा श्वेतकर्ण स्वर्ग की यात्रा करने लगा ॥१२९॥ मालिनी ने भी पति का अनुगमन किया। वन मे (जाती हुई) कमलनयना पतिव्रता मालिनी ने मार्ग मे सुकोमल बालक को प्रसव किया ॥१३०½॥ बालक को वहीं पर छोडकर वह महाभागा मालिनी राजा के पीछे-पीछे उसी प्रकार चलने लगी जिस प्रकार पतिव्रता द्रौपदी ने अपने पतियों के

---

१ क ख ०पामेव स। २ क मोक्षजित्। ३ क ख जान्मेजय व इत्ये०। ४ क ख ०त्व तु वि०।

पतिव्रता महाभागा [1]द्रौपदीव[2] पुरा सती। कुमारः[3] सुकुमारोऽसौ [4]गिरिपृष्ठे रुरोद ह[5]॥१३२॥
दयार्थं तस्य मेघास्तु प्रादुरासन्महात्मनः। श्रविष्ठायास्तु पुत्रौ द्वौ [6]पैप्पलादिश्च कौशिकः॥१३३॥
दृष्ट्वा कृपान्वितौ[7]गृह्य तौ प्राक्षालयतां जले। निघृष्टौ तस्य पार्श्वौ तु शिलायां रुधिरप्लुतौ[8]॥१३४॥
अजश्यामः[9] स पार्श्वाभ्यां[10] घृष्टाभ्यां सुसमाहितः। अजश्यामौ तु तत्पार्श्वौ दैवेन सम्बभूवतुः॥१३५॥
अथाजपार्श्व इति वै चक्राते नाम तस्य तौ। स तु रेमकशालायां द्विजाभ्यामभिवर्द्धितः॥१३६॥
रेमकस्य तु भार्य्या तमुद्वहत् पुत्रकारणात्। रेमत्याः स तु पुत्रोऽभूद्ब्राह्मणौ सचिवौ तु तौ॥१३७॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च युगपत्तुल्यजीविनः। स एष पौरवो वंशः पाण्डवानां महात्मनाम्॥१३८॥
श्लोकोऽपि चात्र गीतोऽयं नाहुषेण ययातिना। जरासंक्रमणे पूर्व्वं तदा प्रीतेन धीमता॥१३९॥
अचन्द्रार्कग्रहा भूमिर्भवेदियमसंशयम्। अपौरवा मही नैव भविष्यति कदाचन॥१४०॥
एष वः पौरवो वंशो विख्यातः कथितो मया। तुर्व्वसोस्तु प्रवक्ष्यामि द्रुह्योश्चानोर्यदोस्तथा॥१४१॥
तुर्व्वसोस्तु सुतो वह्निर्गोभानुस्तस्य चात्मजः। गोभानोस्तु सुतो राजा ऐशानुरपराजितः॥१४२॥
करन्धमस्तु ऐशानोर्मरुत्तस्तस्य चात्मजः। अन्यस्त्वाविक्षितो राजा मरुत्तः कथितो मया॥१४३॥
अनपत्योऽभवद्राजा यज्वा विपुलदक्षिणः। दुहिता संयता नाम तस्यासीत् पार्थिवीपते॥१४४॥

पीछे-पीछे स्वर्ग का प्रस्थान किया था॥१३१½॥ वह सुकोमल बालक पर्वत-पृष्ठ पर रोने लगा। उसके ऊपर दया करने के लिये मेघ वहाँ प्रादुर्भूत हुए॥१३२½॥ श्रविष्ठा के दो पुत्र थे—पैप्पलादि और कौशिक॥१३३॥ दोनों व्यक्तियों ने सद्य प्रसूत बालक को देखकर दया से द्रवित हो उसे जल से धो डाला। बालक के दोनों पार्श्व शिला पर घिस जाने के कारण शोणित से लथ-पथ हो गये॥१३४॥ पार्श्व के घिस जाने पर दैव संयोग से पार्श्वसहित उसका शरीर बकरे के समान काला पड गया॥१३५॥ इसलिए उन दोनों व्यक्तियों ने उसका नाम 'अजपार्श्व' रख दिया। रैमक मुनि के आश्रम में उन दोनों ब्राह्मणों ने उसका पालन-पोषण किया॥१३६॥ रैमक की पत्नी ने अपना पुत्र बनाने के लिए उसे पाला। अत रेमती का वह पुत्र कहलाया और दोनों ब्राह्मण उसके मंत्री बने॥१३७॥ उनके पुत्र और पौत्र भी एक जैसे जीवन धारण करने वाले हुए। यही महात्मा पाण्डव का पौरव वंश है॥१३८॥ इस वंश के बारे में वृद्धावस्था से पूर्व नहुष-पुत्र ययाति ने एक गाथा कही थी कि "कदाचित् पृथ्वी सूर्य-चन्द्रमा से रहित हो भी सकती है, पर पौरव वंश से रहित नहीं हो सकती"॥१३९-१४०॥ यह प्रसिद्ध पौरव वंश मैंने कहा, अब तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु और यदु का वंश-वर्णन करूँगा॥१४१॥ तुर्वसु का पुत्र वह्नि और उसका पुत्र गोभानु हुआ। गोभानु का पुत्र ऐशानु नामक अजेय राजा हुआ॥१४२॥ ऐशानु का पुत्र करंधम और उसका पुत्र मरुत्त हुआ। दूसरे अविक्षित के पुत्र राजा मरुत्त का वर्णन पहले ही किया जा चुका है॥१४३॥ मरुत्त के सन्तान न थी। उसने बड़े-बड़े यज्ञ किये, बहुत सी दक्षिणा दी। पश्चात् उसके संयता नामक कन्या उत्पन्न हुई जिसे उसने संवर्त नामक महात्मा

---

१ ग ०पती च पु०। २ ख ०दी च पुरातनी। कु० ३ ख कुमार। ४ ख गिरिकुम्भे। ५ घ ह। पार्श्वे-तस्तस्य। ६ ख ०प्पल्यादि। ७ क ख स। ८ क रुधिरोक्षितौ। ९ ग ०श्यामस्य पा०। १० ख ०र्वाभ्या-भुमाभ्या।

दक्षिणार्थं तु सा दत्ता सवर्त्ताय महात्मने। दुष्यन्त पौरव चापि लेभे पुत्रमकल्मषम् ॥१४५॥
एव ययातिशापेन जरासक्रमणे तदा। पौरव तुर्व्वसोर्वंश प्रविवेश द्विजोत्तमा ॥१४६॥
दुष्यन्तस्य तु दायाद करूरोम प्रजेश्वर । [1]करूरोमादथाह्लीदश्चत्वारस्तस्य चात्मजा ॥१४७॥
पाण्ड्यश्च केरलश्चैव कालश्चोलश्च पार्थिव । द्रुह्योश्च तनयो राजन बभ्रुसेतुश्च पार्थिव ॥१४८॥
अङ्गारसेतुस्तत्पुत्रो मरुता पतिरुच्यते। यौवनाश्वेन समरे कृच्छ्रेण निहतो बली ॥१४९॥
युद्ध सुमहदप्यासीन्मासान [2]परिचतुर्दश। अङ्गारसेतोर्दायादो गान्धारो नाम पार्थिव ॥१५०॥
ख्यायते[3] यस्य नाम्ना वै गान्धारविषयो महान्। गान्धारदेशजाश्चैव तुरगा वाजिना वरा ॥१५१॥
अनोस्तु पुत्रो [4]धर्म्मोऽभूदद्युतस्तस्यात्मजोऽभवत्[5]। द्युताद्वनद्रुहो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मज ॥१५२॥
प्रचेतस सुचेतास्तु कीर्त्तितास्तुर्वसोर्मया। बभूवुस्ते यदो पुत्रा पञ्च देवसुतोपमा ॥१५३॥
सहस्राद पयोदश्च क्रोष्टा[6] नीलोऽञ्जिकस्तथा। सहस्रादस्य दायादास्त्रय परमधार्म्मिका ॥१५४॥
हैहयश्च[7] हयश्चैव राजा वेणुहयस्तथा। हैहयस्याभवत् पुत्रो धर्म्मनेत्र इति श्रुत ॥१५५॥
धर्म्मनेत्रस्य कार्त्तस्तु[8] साहञ्जस्तस्य चात्मज । साहञ्जनी नाम पुरी तेन राज्ञा निवेशिता ॥१५६॥
आसीन्महिष्मत पुत्रो भद्रश्रेण्य प्रतापवान्। भद्रश्रेण्यस्य दायादो दुर्दमो नाम विश्रुत ॥१५७॥
दुर्दमस्य सुतो धीमान्कनको नाम नामत । कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुता ॥१५८॥
कृतवीर्य्य[9] कृतौजाश्च कृतधन्वा तथैव च। कृताग्निस्तु[10] चतुर्थोऽभूत कृतवीर्य्यादथार्ज्जुन ॥१५९॥

को दक्षिणा मे दे दिया ॥१९४½॥ सयता से दुष्यन्त नामक पौरव वशी निष्पाप पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१४५॥ द्विजवर! इस प्रकार वृद्धावस्था मे राजा ययाति के शाप से तुर्वसु का वश पौरव वश मे मिल गया ॥१४६॥ दुष्यन्त का पुत्र करूरोम प्रजाओ का स्वामी हुआ। करूरोम का पुत्र अथाह्लाद और उसके चार पुत्र हुए—पाण्ड्य करल काल और चोल ॥१४७½॥ द्रुह्यु का पुत्र राजा बभ्रुसेतु हुआ ॥१४८॥ बभ्रुसेतु के अगारसेत नामक पुत्र हुआ जो मरुतो का स्वामी कहा गया है और जिसे युद्ध मे यौवनाश्व ने बडी कठिनाई से मारा था ॥१४९॥ चौदह मास तक उन दोनो मे घमासान युद्ध हुआ था। अगारसेतु का पुत्र गान्धार नामक राजा हुआ जिसके नाम से गान्धार देश प्रसिद्ध है ॥१५०½॥ गान्धार देश के घोडे अद्भुत अच्छे होते हैं। अनु का पुत्र धर्म और उसका पुत्र द्युत हुआ। द्युत से वनद्रुह उत्पन्न हुआ और उससे प्रचेता ॥१५१ १५२॥ प्रचेता के सुचेता नामक पुत्र हुआ। तुर्वसु का वश वर्णन मैंने कर दिया। यदु के देव-पुत्र के समान पाँच पुत्र उत्पन्न हुए—॥१५३॥ सहस्राद पयोद क्रोष्टा नील तथा अञ्जिक। सहस्राद के तीन परम धर्मात्मा पुत्र हुए—हैहय हय और वेणुहय ॥१५४½॥ हैहय का पुत्र धर्मनेत्र हुआ ॥१५५॥ धर्मनेत्र का कार्त और उसका साहञ्ज। उस राजा ने साहञ्जनी नामक नगर बसाया ॥१५६॥ महिष्मान् का पुत्र भद्रश्रेण्य प्रतापी था। भद्रश्रेण्य का पुत्र दुर्दम नाम से विख्यात था ॥१५७॥ दुर्दम का विद्वान पुत्र कनक नाम से प्रसिद्ध था। कनक के लोक प्रसिद्ध चार पुत्र थे—॥१५८॥ कृतवीर्य कृतौजा कृतधन्वा और चौथा कृताग्नि ॥१५९॥

---

१ ग ०ह्लयामा०। २ क ०परिचरद्दश। ३ ख ख्यातस्तु। ४ ख ०भूदघृत०। ५ ख ०त्। घृताच्चतद्रुहो। ६ ख ०ष्टा ऽनिलो ऽ०। ७ ख ०हृश्च हैहयश्चै०। ८ ग ०स्तु कार्तपुत्रास्तया ऽ भवन्। कृ०। ९ ख कृतकर्मा। १० क कृताविनश्चतु०।

योऽसौ बाहुसहस्रेण [1]सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत। जिगाय पृथिवीमेको रथेनादित्यवर्च्चसा ॥१६०॥
स हि वर्षायुत तप्त्वा तप परमदुश्चरम। दत्तमाराधयामास कार्त्तवीर्य्योऽत्रिसम्भवम ॥१६१॥
तस्मै दत्तो वरान प्रादाच्चतुरो भूरितेजस। पूर्व्वं बाहुसहस्र तु प्रार्थित सुमहद्वरम ॥१६२॥
अधर्म्मेऽधीयमानस्य सद्भिस्तत्र निवारणम। उग्रेण पृथिवीं [2]जित्वा धर्म्मेणैवानुरञ्जनम ॥१६३॥
संग्रामान सुबहून जित्वा हत्वा चारीन [3]सहस्रश। संग्रामे वर्त्तमानस्य वध चाभ्यधिकाद्रणे ॥१६४॥
तस्य बाहुसहस्र तु युध्यत किल भो द्विजा । योगाद्योगीश्वरस्येव प्रादुर्भवति मायया ॥१६५॥
तनेय पृथिवी सर्व्वा सप्तद्वीपा सपत्तना। ससमुद्रा सनगरा उग्रेण विधिना जिता ॥१६६॥
तेन सप्तसु द्वीपेषु सप्त यज्ञशतानि वै। प्राप्तानि विधिना राज्ञा श्रूयन्ते मुनिसत्तमा ॥१६७॥
सर्व्वे यज्ञा मुनिश्रेष्ठा सहस्रशतदक्षिणा । सर्व्वे काञ्चनयूपाश्च सर्व्वे काञ्चनवेदय ॥१६८॥
सर्व्वे देवैर्म्मुनिश्रेष्ठा विमानस्थैरलङ्कृते । गन्धर्व्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिता ॥१६९॥
यस्य यज्ञे जगौ गाथां गन्धर्व्वो नारदस्तथा। [4]वरीदासात्मजो विद्वा महिम्ना तस्य विस्मित[5] ॥१७०॥

नारद उवाच

न नून कार्तवीर्य्यस्य गति यास्यन्ति पार्थिवा । यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च विक्रमेण श्रुतेन च ॥१७१॥
स हि सप्तसु द्वीपेषु चर्म्मी खड्गी शरासनी। रथी द्वीपाननुचरन योगी सदृश्यते नृभि ॥१७२॥

कृतवीर्य से अर्जुन की उत्पत्ति हुई जो हजार भुजाओं के प्रताप से सातों द्वीपों का अधीश्वर बन गया था। उसने सूर्य के समान तेजस्वी रथ से अकेले सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत लिया ॥१६०॥ और उसने दश हजार वर्षों तक कठिन तपस्या करके अत्रि मुनि के पुत्र दत्त को प्रसन्न किया ॥१६१॥ दत्त ने उसे चार अत्यन्त तेजस्वी वरदान दिये। अर्जुन ने प्रार्थना की— मेरे हजार भुजाएँ हो जाएँ सत्पुरुष मुझे अधर्म से बचाएँ अपने उग्र कर्त्तव्य से पृथ्वी को जीत कर पश्चात धर्म से मैं प्रजाओं का अनुरञ्जन करूँ ॥१६२ १६३॥ और बहुत से संग्रामों को जीतकर हजारों शत्रुओं को मार कर युद्ध में अपने से अधिक बलशाली पुरुष के हाथ से मरूँ ॥१६४॥ द्विजवृन्द! जिस प्रकार योग माया के बल से योगीश्वर को चमत्कृत गति हो जाती है उस प्रकार युद्ध करते समय उसके हजार भुजाएँ प्रकट हो जाती थी ॥१६५॥ ऐसा सुना जाता है कि उसने अपने उग्र कर्त्तव्य से सातों द्वीप पत्तन समुद्र और नगर सहित इस पृथ्वी को जीत लिया और सातों द्वीपों में सात सौ यज्ञ किये ॥१६६ १६७॥ उसने एक-एक लाख दक्षिणा दी थी। सब यज्ञों में सुवर्ण के यज्ञस्तम्भ और सुवर्ण की ही वेदी बनाई गई थी ॥१६८॥ अलङ्कृत विमानों पर स्थित सभी देवता गन्धर्व और अप्सराएं यज्ञस्थल को सुशोभित करते थी ॥१६९॥ अर्जुन के यज्ञ में गन्धर्व और वरदास के पुत्र विद्वान् नारद ने उसकी महिमा से विस्मित होकर गाथा गाई ॥१७०॥

नारद ने कहा— यज्ञ दान तप पराक्रम और शास्त्र ज्ञान में कृतवीर्य के पुत्र (अर्जुन) की गति को कोई राजा नहीं प्राप्त कर सकता है ॥१७१॥ ढाल तलवार धनुष बाण को धारण कर और रथ में स्थित हो द्वीपद्वीपान्तर में

---

१ ग ०द्वीपाधिपो . म०। २ ग ०त्वा स्वधर्मेणानु०। ३ ग ०ऽन भारत। यो०। ४ ग वरदा०।
५ ग मिर्वा वि०।

अनष्टद्रव्यता चैव न शोको न च विभ्रमः। प्रभावेण मया राज. प्रजा धर्म्मेण [1]रक्षत ॥१७३॥
[2]स सर्व्वरत्नभाक्[3] सम्राट् चक्रवर्ती बभूव ह। स एव पशुपालोऽभूत् क्षेत्रपाल स एव च॥१७४॥
स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादर्ज्जुनोऽभवत्। स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनत्वचा॥१७५॥
भाति रश्मिसहस्रेण शरदीव च भास्कर.। स हि नागान्मनुष्येषु माहिष्मत्या महाद्युति ॥१७६॥
[4]कर्कोटकसुतान् जित्वा पुर्य्यां तस्यां न्यवेशयत्। स वै वेग समुद्रस्य प्रावृट्कालेऽम्बुजेक्षण ॥१७७॥
क्रीडन्निव भुजोद्भिन्न प्रतिस्रोतश्चकार ह। लुण्ठिता क्रीडता तेन[5] नदी तद्ग्राममालिनी[6]॥१७८॥
चलदूर्म्मिसहस्रेण [7]शङ्किताभ्येति नर्म्मदा। तस्य बाहुसहस्रेण क्षिप्यमाणे महोदधौ॥१७९॥
भयान्निलीना निश्चेष्टा पातालस्था महासुरा। चूर्णीकृतमहावीचि[8] चलन्मीनमहातिमिम्॥१८०॥
[9]मारुताविद्धफेनौघमावर्त्तक्षोभसङ्कुलम्[10]। प्रावर्त्तयत्तदा राजा सहस्रेण[11] च बाहुना॥१८१॥
देवासुरसमाक्षिप्त क्षीरोदमिव मन्दर[12]। मन्दरक्षोभचकिता[13] अमृतोत्पादशङ्किता ॥१८२॥
सहसोत्पतिता भीता भीम दृष्ट्वा नृपोत्तमम्। नता निश्चलमूर्द्धानो बभूवुस्ते महोरगा ॥१८३॥
सायाह्ने कदलीखण्डा कम्पिता इव वायुना। स वै बद्ध्वा धनुर्ज्याभिरुत्सिक्त पञ्चभि शरै ॥१८४॥

विचरण करता हुआ वह योगी अर्जुन साता द्वीपो म मनुष्यो से देखा जाता है॥१७२॥ प्रजाआ का धमपूवक पालन करत हुए महाराज अर्जुन का द्रव्य-क्षय कभी नही होता शाक अ र भ्रम भी नही हात ॥१७३॥ उसक पास सब प्रकार के रत्न थ। वह चक्रवर्ती राजा था। वह पशुपाल अ र क्षेत्रपाल भी था॥१७४॥ योग के प्रताप से वही मेघ रूप होकर वर्षा भी करता था। वही शरद् ऋतु म सूय की सहस्र किरणो के समान धनुष क आघात से कठिन त्वचा वाली हजार भुजाओ स सुशोभित था॥१७५½॥ उसी न कर्कोटक के पुत्रो को जीतकर माहिष्मती पुरी मे मनुष्यो क बीच नागो को बसाया और वर्षाकाल मे समुद्र के वेग म क्रीडा करत हुए अपनी भुजाओ से समुद्र के बहुत-से स्रोत बना दिये॥१७६ १७७½॥ उसी की क्रीडा के समय नमदा नदी जिसमे हजारो तरग उठ रही थी शकित होकर सम्मुख आई॥१७८½॥जब उसन हजार बाहुआ से समुद्र को क्षोभित किया तब पातालवासी महाराक्षस भय से निश्चेष्ट होकर छिप गये॥१७९½॥ पूव काल मे जैसे देवता अ र असुरा न मदराचल स समुद्र का मथन किया था उसी प्रकार उस राजा न हजार भुजाओ स समुद्र मथन किया। समुद्र की महातरग चूर-चूर कर दी गई मच्छ और महामच्छ कांपन लगे, पवन के वेग से फेना का समूह उत्पन्न हो गया, आवत (भँवर) फैलन लगे॥१८०-१८१½॥ मदराचल के सचालन से चकित और अमृत की उत्पत्ति से शकित वे समुद्रवासी महासर्प हठात् उठकर चारा ओर निहारने लगे। उस भयानक राज-श्रेष्ठ को देखकर डर से उनके सिर निश्चल हो गये और सायकाल मे वायु से कपित केले के पत्त की तरह वे थरथरान लगे॥१८२ १८३½॥ उसी राजा न धनुष की डोरी से मुक्त पाँच बाणो से सेनासहित लकापति रावण को मोहित कर अपने वश म करके माहिष्मती

---

१ क सत्कृत। ग रक्षिता। २ क स तु सर्वत्र भोगाढ्यश्चक्र०। ३ ख ०रत्नभोगाढ्यश्चक्र०। ४ ख ०कयुतान्क्षिप्त्वा पु०। ५ ग ०न फेनश्चोद्दाम०। ६ ग ०नी। वल०। ७ ग ०ङ्किता ह्ये०। ८ ग ०चि वल०। ९ क ०रुतोद्भिन्नफे०। १० ग ०मदु सहम्। ११ क ०स्रेणैव बा०। १२ ०र। तत्संक्षोभेणाऽऽचकितास्ताक्ष्यागमनश०। १३ क तास्ताक्ष्यागमनश०।

लङ्केशं मोहयित्वा तु सबलं[1] रावणं बलात्। निर्जित्य वशमानीय माहिष्मत्यां बबन्ध तम्॥१८५॥
श्रुत्वा तु बद्धं पौलस्त्यं रावणं त्वर्ज्जुनेन च। ततो गत्वा पुलस्त्यस्तमर्ज्जुनं ददृशे स्वयम्॥१८६॥
मुमोच रक्षः पौलस्त्यं पुलस्त्येनाभियाचितः। यस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वनः॥१८७॥
युगान्ते तोयदस्येव स्फुटतो ह्यशनेरिव। अहो बत मृधे वीर्यं भार्गवस्य यदच्छिनत्॥१८८॥
राज्ञो बाहुसहस्रस्य हैमं तालवनं यथा। तृषितेन कदाचित् स भिक्षितश्चित्रभानुना॥१८९॥
स भिक्षामददाद्वीरः सप्त द्वीपान् विभावसोः। पुराणि ग्रामघोषांश्च विषयांश्चैव सर्व्वशः॥१९०॥
जज्वाल तस्य सर्व्वाणि चित्रभानुर्दिधक्षया। स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभावेण महात्मनः॥१९१॥
ददाह कार्त्तवीर्य्यस्तु शलांश्चैव वनानि च। सशून्यमाश्रमं रम्यं वरुणस्यात्मजस्य वै॥१९२॥
ददाह बलवद्भीतश्चित्रभानुः सहैहयः। यं लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भास्वन्तमुत्तमम्॥१९३॥
वशिष्ठं नाम स मुनिः ख्यात आपव इत्युत। तत्रापवस्तु तं क्रोधाच्छप्तवानर्ज्जुनं विभुः॥१९४॥
यस्मान्न वर्ज्जितमिदं वनं ते मम हैहय। तस्मात्ते दुष्करं कर्म्म कृतमन्यो हनिष्यति॥१९५॥
रामो नाम महाबाहुर्जामदग्न्यः प्रतापवान्। छित्त्वा बाहुसहस्रन्ते प्रमथ्य तरसा बली॥१९६॥
तपस्वी[2] ब्राह्मणस्त्वां तु हनिष्यति[3] स भार्गव। अनष्टद्रव्यता यस्य[4] बभूवामित्रकर्षिणः॥१९७॥
प्रतापेन[5] नरेन्द्रस्य प्रजा धर्म्मेण रक्षत[6]। प्राप्तस्ततोऽस्य मृत्युर्वै तस्य शापान्महामुने॥१९८॥

पुरी में बाँधा था॥१८४-१८५॥ परन्तु अर्जुन के द्वारा बाँधे गये पुलस्त्य-पुत्र रावण की बात सुनकर पुलस्त्य-मुनि स्वयम् अर्जुन के पास गये॥१८६॥ पुलस्त्य की याचना करने पर अर्जुन ने, जिसके हजार भुजाओं के धनुष की टंकार प्रलयकालीन मेघों के गर्जन के समान तथा बिजली की कड़क के समान होती थी, रावण को मुक्त कर दिया॥१८७½॥ पर आश्चर्य तो यह है कि परशुराम ने संग्राम में उसी राजा की हजार भुजाओं को तालवन के समान काट दिया। ॥१८८½॥ किसी समय अग्नि ने तृष्णा से युक्त हो अर्जुन से भिक्षा माँगी। उस वीर ने अग्नि को सातों द्वीप भिक्षा में दे दिये॥१८९½॥ तब अग्नि उसके नगर, ग्राम और देशों को सब ओर से जलाने लगे॥१९०½॥ उस महात्मा पुरुषेन्द्र अर्जुन के प्रभाव से अग्नि ने पर्वतों और वनों को जला डाला। उसी हैहय (अर्जुन) के साथ होकर अत्यन्त भयभीत अग्नि ने वरुण के पुत्र के शून्य तथा रमणीय आश्रम को भी जला डाला॥१९१-९२½॥ पहले जिस तेजस्वी तथा उत्तम पुत्र को वरुण ने प्राप्त किया था, वह वशिष्ठ नामक मुनि आपव नाम से भी प्रख्यात था॥१९३½॥ उस शक्तिसम्पन्न आपव ने क्रोध से अर्जुन को शाप दिया—हैहय! जिस उद्देश्य से तुमने मेरे आश्रम की रक्षा नहीं की उसे और तुम्हारे दुष्कर्म को कोई दूसरा नष्ट करेगा॥१९४-१९५॥ प्रतापी तथा शक्तिशाली जमदग्नि-पुत्र परशुराम तुम्हारी हजार भुजाओं को काटकर वेग से मथ कर तुमको मारेगा॥१९६½॥ जिस राजा के द्रव्य का क्षय नहीं होता था, जो शत्रुओं का संहार और धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करता था, उसकी मृत्यु महामुनि

---

१ ग सगण। २ ग तेजस्वी। ३ ख ग वधिष्यति। ४ क तस्य। ५ क ग प्रभावेण। ६ क ग. ०त.। रामास्ततो 50।

वरस्तथैव भो विप्राः स्वयमेव वृतः पुरा। तस्य पुत्रशतं[1] त्वासीत् पञ्च शेषा महात्मनः॥१९९॥
कृतास्त्रा बलिनः[2] शूरा धर्मात्मानो यशस्विनः। शूरसेनश्च शूरश्च[3] वृषणो मधुपध्वजः॥२००॥
जयध्वजश्च नाम्नासीदावन्त्यो नृपतिर्महान्। कार्त्तवीर्य्यस्य तनया वीर्य्यवन्तो महाबलाः॥२०१॥
जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः। तस्य पुत्रशतं ख्यातास्तालजङ्घा इति स्मृताः॥२०२॥
तेषां कुले मुनिश्रेष्ठा[4] हैहयानां महात्मनाम्। वीतिहोत्राः सुजाताश्च[5] भोजाश्चावन्तयः स्मृताः॥२०३॥
तौण्डिकेराश्च[6] विख्यातास्तालजङ्घास्तथैव च[7]। भरताश्च सुजाताश्च बहुत्वान्नानुकीर्तिताः॥२०४॥
वृषप्रभृतयो विप्रा यादवाः पुण्यकर्म्मिणः। वृषो वंशधरस्तत्र तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः॥२०५॥
मधो: पुत्रशतं त्वासीद्वृषणस्तस्य वंशकृत्। वृषणाद्वृष्णयः सर्व्वे मधोस्तु माधवाः स्मृताः॥२०६॥
यादवा यदुनाम्ना ते निरुच्यन्ते च हैहयाः। न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं प्रतिलभेच्च सः॥२०७॥
कार्त्तवीर्य्यस्य यो जन्म कथयेदिह नित्यशः। एते ययातिपुत्राणां पञ्च वंशा द्विजोत्तमाः॥२०८॥
कीर्त्तिता[8] लोकवीराणां ये लोकान्[9] धारयन्ति वै। भूतानीव मुनिश्रेष्ठाः पञ्च स्थावरजङ्गमान्॥२०९॥
श्रुत्वा पञ्च विसर्गास्तु राजा धर्म्मार्थकोविदः। वशीभवति पञ्चानामात्मजानां तथेश्वरः॥२१०॥
लभेत् पञ्च वरांश्चैव दुर्लभानिह लौकिकान्। आयु[10] कीर्त्तिं तथा पुत्रानैश्वर्य्यं भूतिमेव च[11]॥२११॥

के शाप से हो गई॥१९७-१९८॥ विप्रवृन्द! उसने स्वयं ही ऐसा वरदान पहले मांगा था। उसके सौ पुत्रों में से पाँच ही बली, अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित, धर्मात्मा, वीर, यशस्वी और महात्मा पुत्र बच गये थे, जिनका नाम था—शूरसेन, शूर, वृषण, मधुपध्वज और जयध्वज। जयध्वज अवन्तिपुरी का राजा हुआ॥१९९-२००½॥ कार्तवीर्य (अर्जुन) के सब पुत्र महाबलवान् तथा शक्तिसम्पन्न थे॥२०१॥ जयध्वज के तालजंघ नामक महाबली पुत्र हुआ। उसके सौ पुत्र हुए, जो तालजंघ नाम से प्रसिद्ध थे॥२०२॥ मुनिवर! उन महात्मा हैहयों के वंश में वीतिहोत्र, सुजात, भोज, अवन्ति, तौण्डिकेर, तालजंघ और भरत—इन नामों से विख्यात पुत्र उत्पन्न हुए, जो विस्तार-भय से यहाँ नहीं गिनाये जा सकते हैं॥२०३-२०४॥ विप्रवृन्द! वृष नामक राजा से लेकर यदुवंशी धर्मात्मा हुए। वह वंशधर हुआ। उसके मधु नामक पुत्र हुआ॥२०५॥ मधु के सौ पुत्र थे। उसका वंशधर वृषण हुआ। वृषण के वंशज वृष्णि कहलाये और मधु के माधव॥२०६॥ यदु के वंश में उत्पन्न वे हैहय यादव नाम से प्रख्यात हैं। जो व्यक्ति कृतवीर्य के पुत्र अर्जुन की जन्म-कथा नित्यप्रति पढ़ेगा, सुनेगा, करेगा, उसका वित्तनाश नहीं होगा और नष्ट हुआ भी द्रव्य पुनः मिल जायगा॥२०७½॥ द्विजवर! ये पाँचों वंश उन महावीर ययाति-पुत्रों के हैं, जो पंचमहाभूतों की तरह स्थावर-जंगम सहित त्रैलोक्य को धारण करते हैं॥२०८-२०९॥ इन पाँचों वंशों को सुनकर धर्म-अर्थ को जानने वाला राजा पाँचों वंशों के अधीन अर्थात् प्रियपात्र तथा विभूतिमान् हो जाता है॥२१०॥ द्विजगण! इन पाँच वंशों के धारण और श्रवण से मनुष्य संसार में दुर्लभ आयु, कीर्ति, पुत्र, ऐश्वर्य और विभूतिरूप पाँच वरों को प्राप्त करता है॥२११½॥ मुनिश्रेष्ठो! अब

---

१ क ख ०शतान्यासन्पञ्च। २ क धन्विन। ३ ग ०श्च धृष्टोक्त छ्प एव च। ज०। ४ ख ०षमष्टतपो वि०। ५ ग ०जात्याश्च। ६ क तौडिके०। ख तोण्डिके०। ७ क. च। मार०। ८ ख महावीर्या। ९ क ०णा लोकधारणहेतव। मू०। १० ख लोकास्तार०। ११ ख वा।

लङ्केशं मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात्। निर्जित्य वशमानीय माहिष्मत्यां बबन्ध तम्॥१८५॥
श्रुत्वा तु बद्धं पौलस्त्यं रावणं त्वर्ज्जुनेन च। ततो गत्वा पुलस्त्यस्तमर्ज्जुनं ददृशे स्वयम्॥१८६॥
मुमोच रक्षः पौलस्त्यं पुलस्त्येनाभियाचितः। यस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वनः॥१८७॥
युगान्ते तोयदस्येव स्फुटतो ह्यशनेरिव। अहो बत मृधे वीर्य्यं भार्गवस्य यदच्छिनत्॥१८८॥
राज्ञो बाहुसहस्रस्य हैमं तालवनं यथा। तृषितेन कदाचित् स भिक्षितश्चित्रभानुना॥१८९॥
स भिक्षामददाद्वीरः सप्त द्वीपान् विभावसोः। पुराणि ग्रामघोषांश्च विषयांश्चैव सर्व्वशः॥१९०॥
जज्वाल तस्य सर्व्वाणि चित्रभानुर्दिदृक्षया। स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभावेण महात्मनः॥१९१॥
ददाह कार्त्तवीर्य्यस्तु शैलांश्चैव वनानि च। सशून्यमाश्रमं रम्यं वरुणस्यात्मजस्य वै॥१९२॥
ददाह बलवद्भीतश्चित्रभानुः सहैहयः। यं लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भास्वन्तमुत्तमम्॥१९३॥
वशिष्ठं नाम स मुनिः ख्यात आपव इत्युत। तत्रापवस्तु तं क्रोधाच्छप्तवानर्ज्जुनं विभुः॥१९४॥
यस्मान्न वर्ज्जितमिदं वनं ते मम हैहय। तस्मात्ते दुष्करं कर्म्म कृतमन्यो हनिष्यति॥१९५॥
रामो नाम महाबाहुर्जामदग्न्यः प्रतापवान्। छित्वा बाहुसहस्रन्ते प्रमथ्य तरसा बली॥१९६॥
तपस्वी[1] ब्राह्मणस्त्वां तु हनिष्यति[2] स भार्गव[3]। अनष्टद्रव्यता यस्य[4] बभूवामित्रकर्षिणः॥१९७॥
प्रतापेन[5] नरेन्द्रस्य प्रजा धर्म्मेण रक्षत[6]। प्राप्तस्ततोऽस्य मृत्युर्वै तस्य शापान्महामुनेः॥१९८॥

पुरी में बांधा था॥१८४-१८५॥ परन्तु अर्जुन के द्वारा बांधे गये पुलस्त्य-पुत्र रावण की बात सुनकर पुलस्त्य-मुनि स्वयम् अर्जुन के पास गये॥१८६॥ पुलस्त्य की याचना करने पर अर्जुन ने, जिसके हजार भुजाओं के धनुष की टंकार प्रलयकालीन मेघों के गर्जन के समान तथा बिजली की कड़क के समान होती थी, रावण को मुक्त कर दिया॥१८७½॥ पर आश्चर्य तो यह है कि परशुराम ने संग्राम में उसी राजा की हजार भुजाओं को तालवन के समान काट दिया। ॥१८८½॥ किसी समय अग्नि ने तृष्णा से युक्त हो अर्जुन से भिक्षा मांगी। उस वीर ने अग्नि को सातों द्वीप भिक्षा में दे दिये॥१८९½॥ तब अग्नि उसके नगर, ग्राम और देशों को सब ओर से जलाने लगे॥१९०½॥ उस महात्मा पुरुषेन्द्र अर्जुन के प्रभाव से अग्नि ने पर्वतों और वनों को जला डाला। उसी हैहय (अर्जुन) के साथ होकर अत्यन्त भयभीत अग्नि ने वरुण के पुत्र के शून्य तथा रमणीय आश्रम को भी जला डाला॥१९१-९२½॥ पहले जिस तेजस्वी तथा उत्तम पुत्र को वरुण ने प्राप्त किया था वह वशिष्ठ नामक मुनि आपव नाम से भी प्रख्यात था॥१९३½॥ उस शक्तिशाली आपव ने क्रोध से अर्जुन को शाप दिया—'हैहय! जिस उद्देश्य से तुमने मेरे आश्रम की रक्षा नहीं की उसे और तुम्हारे दुष्कर्म को कोई दूसरा नष्ट करेगा॥१९४-१९५॥ प्रतापी तथा शक्तिशाली जमदग्नि-पुत्र परशुराम तुम्हारी हजार भुजाओं को काटकर वेग से मथ कर तुमको मारेगा'॥१९६½॥ जिस राजा के द्रव्य का नाश नहीं होता था, जो शत्रुओं का संहार और धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करता था, उसकी मृत्यु महामुनि

---

१ ग सगण। २ ग तेजस्वी। ३ ख ग वधिष्यति। ४ क तस्य। ५ क ग प्रभावेण। ६ क ग. ०त। रामास्तो ३०।

वरस्तथैव भो विप्रा स्वयमेव वृतः पुरा। तस्य पुत्रशतं[1] त्वासीत् पञ्च शापा महात्मनः ॥१९९॥
कृतास्त्रा बलिनः[2] शूरा धर्म्मात्मानो यशस्विनः। शूरसेनश्च शूरश्च[3] वृषणो मधुपध्वजः ॥२००॥
जयध्वजश्च नाम्नासीदावन्त्यो नृपतिर्महान्। कार्त्तवीर्य्यस्य तनया वीर्य्यवन्तो महाबलाः ॥२०१॥
जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः। तस्य पुत्रशतं ख्यातास्तालजङ्घा इति स्मृताः ॥२०२॥
तेषां कुले मुनिश्रेष्ठा[4] हैहयानां महात्मनाम्। वीतिहोत्राः सुजाताश्च[5] भोजाश्चावन्तयः स्मृताः ॥२०३॥
[6]तौण्डिकेराश्च विख्यातास्तालजङ्घास्तथैव च[7]। भरताश्च सुजाताश्च बहुत्वान्नानुकीर्त्तिताः ॥२०४॥
[8]वृषप्रभृतयो विप्रा यादवा पुण्यकर्म्मिणः। वृषो वंशधरस्तत्र तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः ॥२०५॥
मधोः पुत्रशतं त्वासीद्वृषणस्तस्य वंशकृत्। वृषणाद्वृष्णयः सर्व्वे मधोस्तु माधवाः स्मृताः ॥२०६॥
यादवा यदुनाम्ना ते निरुच्यन्ते च हैहयाः। न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं प्रतिलभेच्च सः ॥२०७॥
कार्त्तवीर्य्यस्य यो जन्म कथयेदिह नित्यशः। एते ययातिपुत्राणां पञ्च वंशा द्विजोत्तमाः ॥२०८॥
कीर्त्तिता[9] लोकवीराणां ये लोकान्[10] धारयन्ति वै। भूतानीव मुनिश्रेष्ठाः पञ्च स्थावरजङ्गमान् ॥२०९॥
श्रुत्वा पञ्च विसर्गांस्तु राजा धर्म्मार्थकोविदः। वशीभवति पञ्चानामात्मजानां तथेश्वरः ॥२१०॥
लभेत् पञ्च वरांश्चैव दुर्लभानिह लौकिकान्। आयुः कीर्त्तिं तथा पुत्रानैश्वर्य्यं भूतिमेव च[11] ॥२११॥

के शाप से हो गई ॥१९७-१९८॥ विप्रवृन्द! उसने स्वयं ही ऐसा वरदान पहले मांगा था। उसके सौ पुत्रों में से पाँच ही बचे, अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित, धर्मात्मा, वीर, यशस्वी और महात्मा पुत्र बच गये थे, जिनका नाम था—शूरसेन, शूर, वृषण, मधुपध्वज और जयध्वज। जयध्वज अवन्तीपुरी का राजा हुआ ॥१९९-२००½॥ कार्तवीर्य (अर्जुन) के सब पुत्र महाबलवान् तथा शक्तिसम्पन्न थे ॥२०१॥ जयध्वज के तालजंघ नामक महाबली पुत्र हुआ। उसके सौ पुत्र हुए, जो तालजंघ नाम से प्रसिद्ध थे ॥२०२॥ मुनिवर! उन महात्मा हैहयों के वंश में वीतिहोत्र, सुजात भोज, अवन्ति, तौण्डिकेर, तालजंघ और भरत—इन नामों से विख्यात पुत्र उत्पन्न हुए, जो विस्तार-भय से यहाँ नहीं गिनाये जा सकते हैं ॥२०३-२०४॥ विप्रवृन्द! वृष नामक राजा से लेकर यदुवंशी धर्मात्मा हुए। वह वंशधर हुआ। उसके मधु नामक पुत्र हुआ ॥२०५॥ मधु के सौ पुत्र थे। उसका वंशधर वृषण हुआ। वृषण के वंशज वृष्णि कहलाये और मधु के माधव ॥२०६॥ यदु के वंश में उत्पन्न वे हैहय यादव नाम से प्रख्यात हैं। जो व्यक्ति कृतवीर्य के पुत्र अर्जुन की जन्म-कथा नित्यप्रति पढ़ेगा, सुनेगा, कहेगा, उसका वित्तनाश नहीं होगा और नष्ट हुआ भी द्रव्य पुनः मिल जायगा ॥२०७½॥ द्विजवर! ये पाँचों वंश उन महावीर ययाति-पुत्रों के हैं, जो पंचमहाभूतों की तरह स्थावर-जंगम सहित त्रैलोक्य को धारण करते हैं ॥२०८-२०९॥ इन पाँचों वंशों को सुनकर धर्म-अर्थ को जानने वाला राजा पाँचों वंशों के अधीन अर्थात् प्रियपात्र तथा विभूतिमान् हो जाता है ॥२१०॥ द्विजगण! इन पाँच वंशों के धारण और श्रवण से मनुष्य संसार में दुर्लभ आयु, कीर्ति, पुत्र, ऐश्वर्य और विभूतिरूप पाँच वरों को प्राप्त करता है ॥२११½॥ मुनिश्रेष्ठो! अब

---

१ क ख ०धाता यासन्पञ्च। २ क धन्विन। ३ ग ०श्च धृष्टोक्त शूर एव च। ज०। ४ ख महावीर्या। ५ ग ०जात्यादश्च। ६ क तौडिके०। ग तौण्डिके०। ७ क. च.। भार०। ८ ख ०पमप्टतपो थि०। ९ क ०ना लोपारणहृतय। मू०। १० ख लोकास्तार०। ११ ख या।

धारणाच्छ्रवणाच्चैव पञ्चवर्गस्य भो द्विजाः। क्रोष्टोर्व्वंशं मुनिश्रेष्ठा श्रृणुध्वं गदतो मम॥२१२॥
यदोर्व्वंशधरस्याथ यज्विनः पुण्यकर्म्मिणः।[1] क्रोष्टोर्व्वंशं हि श्रुत्वैव[1] सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥२१३॥
यस्यान्ववायजो विष्णुर्हरिर्वृष्णिकुलोद्वहः।

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे ययातिवंशानुकीर्त्तनं नाम त्रयोदशोऽध्याय.॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

तत्रादौ यदुपुत्र-क्रोष्टुवंश-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टोर्भार्य्ये बभूवतुः। गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम्॥१॥
माद्री युधाजितं पुत्रं ततोऽन्यं देवमीढुषम्। तेषां वंशस्त्रिधा भूतो वृष्णीनां कुलवर्द्धनः॥२॥
माद्र्याः पुत्रौ तु जज्ञाते [3]श्रुतौवृष्ण्यन्धकावुभौ। जज्ञाते तनयौ वृष्णे श्वफल्कश्चित्रकस्तथा॥३॥
[4]श्वफल्कस्तु मुनिश्रेष्ठा धर्म्मात्मा[5] यत्र वर्तते। नास्ति व्याधिभयं तत्र[6] नावर्षस्तपमेव च॥४॥

क्रोष्टु का वंश-वर्णन मुझसे सुनिये, जिस वंश में वृष्णि-वंश-उद्धारक साक्षात् विष्णु भगवान् अवतीर्ण हुए। यज्ञकर्ता, धर्मात्मा तथा वंशधारक यदु और क्रोष्टु के वंश-श्रवण से ही मनुष्य सब पापों से दूर हो जाते हैं॥२१२-२१३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ययाति-वंशानुकीर्तन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त॥१३॥

अध्याय १४

यदु-पुत्र क्रोष्टु के वंश का वर्णन

लोमहर्षण बोले—क्रोष्टु की दो पत्नियाँ थी—गान्धारी और माद्री। गान्धारी ने अनमित्र नामक महाबली पुत्र उत्पन्न किया॥१॥ माद्री के युधाजित् और देवमीढुष नामक दो पुत्र हुए। उनके तीन प्रकार के वंश चले, जो वृष्णियों के वंश को बढ़ाने वाले हुए॥२॥ माद्री ने वृष्णि और अन्धक नामक और दो पुत्रों को उत्पन्न किया। वृष्णि के श्वफल्क और चित्रक नामक पुत्र उत्पन्न हुए॥३॥ मुनिवर! धर्मात्मा श्वफल्क जहाँ रहता है, वहाँ व्याधि तथा अनावृष्टि का भय नहीं होता॥४॥ मुनिगण! ऐसा सुना है कि किसी समय काशिराज के राज्य में

---

१ क्रोष्टवंश। २ख ग श्रुत्वैव। ३ क ख पुत्रौ। ४ ग ०फल्कात्तु मु०।५ धर्मो नैवात्यवर्तत। ना०। ६ क ०त्र न चावृष्टिभयं तथा। क०।

कदाचित् काशिराजस्य विषये मुनिसत्तमाः[1]। त्रीणि वर्षाणि[2] पूर्णानि नावर्षत् पाकशासनः॥५॥
स तत्र चानयामास श्वफल्कं परमार्चितम्[3]। श्वफल्कपरिवर्तेन[4] ववर्ष हरिवाहनः॥६॥
श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्य्यामविन्दत[5]। गान्दिनीं नाम गां सा च ददौ विप्राय नित्यशः[6]॥७॥
दाता यज्वा च वीरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः। अक्रूरः सुषुवे तस्माच्छ्वफल्काद्भूरिदक्षिण[7]॥८॥
[8]उपमद्गुस्तथा मद्गुर्मेदुरश्चारिमेजय.[9]। [10]अविक्षितस्तथाक्षेपः शत्रुघ्नश्चारिमर्दन॥९॥
धर्म्मधृग् यतिधर्म्मा च[11] धर्मोक्षान्धकरुस्तथा। आवाहप्रतिवाहौ च सुन्दरी च वराङ्गना[12]॥१०॥
अक्रूरेणोग्रसेनायां सुगात्र्यां द्विजसत्तमा[13]। प्रसेनश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्च्चसौ[14]॥११॥
चित्रकस्याभवन् पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च। अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्च स्वपार्श्वकगवेषणौ॥१२॥
[15]अरिष्टनेमिरश्वश्च सुधर्मा धर्म्मभृत्तथा। [16]सुबाहुर्बहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ॥१३॥
असिक्न्यां जनयामास शूरं वै देवमीढुषम्। महिष्यां जज्ञिरे शूरा भोज्यायां पुरुषा दश॥१४॥
वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुन्दुभिः। जज्ञे यस्य प्रसूतस्य दुन्दुभ्य. प्राणदन् दिवि॥१५॥
आनकानां च संह्रादः सुमहानभवद्दिवि। पपात पुष्पवर्षश्च शूरस्य जनने महान्॥१६॥
मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि। यस्यासीत्पुरुषाग्र्यस्य कान्तिश्चन्द्रमसो यथा॥१७॥

लगातार तीन वर्ष तक अनावृष्टि रही॥५॥ तो काशिराज श्वफल्क को सम्मानपूर्वक अपने साथ ले आए। उनके आते ही वृष्टि प्रारम्भ हो गई॥६॥ प्रसन्न काशिराज ने अपनी कन्या गान्दिनी का विवाह श्वफल्क के साथ कर दिया। गान्दिनी नित्यप्रति ब्राह्मणों को गोदान दिया करती थी॥७॥ श्वफल्क से अक्रूर नामक दाता, यज्ञकर्ता, वीर, विद्वान्, अतिथि-पूजक तथा भूरि-दक्षिणा देने वाला पुत्र उत्पन्न हुआ॥८॥ उपमद्गु मद्गु, मेदुर, अरिमेजय, अविक्षित, अक्षेप, शत्रुघ्न, अरिमर्दन, धर्मधृक्, यतिधर्मा, धर्मोक्ष अन्धकरु, आवाह, प्रतिवाह—ये पुत्र तथा सुन्दरी नाम की एक कन्या भी श्वफल्क से उत्पन्न हुई॥९-१०॥ विप्रवर! अक्रूर की सुगात्मना पत्नी उग्रसेना से प्रसेन और उपदेव नाम के दो देव-समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए॥११॥ चित्रक के पृथु विपृथु, अश्वग्रीव अश्वबाहु, स्वपार्श्वक, गवेषण, अरिष्टनेमि, अश्व, सुधर्मा, धर्मभृत्, सुबाहु और बहुबाहु नामक पुत्र तथा श्रविष्ठा और श्रवणा नामक दो कन्यायें उत्पन्न हुईं॥१२ १३॥ देवमीढुष ने असिक्नी में शूर नामक पुत्र उत्पन्न किया। शूर की भोज्या नामक रानी में शूर नाम वाले दस पुरुष उत्पन्न हुए, जिनमें पहले वसुदेव की उत्पत्ति हुई॥१४॥ वसुदेव के जन्म-समय आकाश में दुदुभियाँ बजी थीं, इसलिए उन्हें 'आनकदुन्दुभि' भी कहा जाता है। शूर के घर में पुष्प-वर्षा के साथ अन्तरिक्ष में बजते हुए ढोल की ध्वनि सुनाई पड़ी॥१५-१६॥ मनुष्य लोक में वसुदेव अप्रतिम सौन्दर्यशाली थे। चाँदनी-सी चमकती हुई उनमें प्रभा थी॥१७॥

---

१ क ०मा। पुरा द्वादशवर्षाणि ना०। २ ग वर्षसहस्राणि ना०। ३ ख ०त्र वासया०। ग ०त्र याजया०। ४ ग परमार्चित। ५ क ०रिचारेण व०। ६ ख ०मवाप ह। गा०। ७ क ०दा। जाता यज्ञप्रिया दक्षा श्रुतज्ञा चातिथिप्रिया। अ०। ८ क ०मन्युस्तथा मन्युर्मे०। ९ ख ०द्रुमुंदर०। ग ०द्रुमुंदवरश्चा०। ९ ग ०य। परिक्षिपस्तथा ऽत्यश्च श०। १० ख अरिक्षिपस्तथोपेक्ष श०। ११ ग च गुध्रमो जान्तवस्त०। १२ क वरानना। १३ ख कुरुनन्दनौ। १४ क. ख मुनिवर्चसौ। १५ ग ०रभ्यश्च। १६ख ०हुश्चाश्वा०।

[1]देवभागस्ततो जज्ञे तथा देवश्रवाः पुनः। अनाधृष्टिः[2] कनवको[3] वत्सवानथ[4] गृञ्जमः ॥१८॥
श्यामः शमीको गण्डूषः पञ्च चास्य वराङ्गनाः। पृथुकीर्त्तिः पृथा चैव श्रुतदेवा श्रुतश्रवा ॥१९॥
राजाधिदेवी च तथा पञ्चैता वीरमातरः। श्रुतश्रवायां चैद्यस्तु[5] शिशुपालोऽभवन्नृपः ॥२०॥
हिरण्यकशिपुर्योऽसौ[6] दैत्यराजोऽभवत्पुरा। पृथुकीर्त्यां तु सञ्जज्ञे तनयो वृद्धशर्म्मणः[7] ॥२१॥
करूषाधिपतिर्वीरो दन्तवक्रो महाबलः। पृथां दुहितरं चक्रे कुन्तिस्तां पाण्डुरावहत् ॥२२॥
यस्यां[8] स धर्म्मविद्राजा धर्म्मो जज्ञे युधिष्ठिरः। भीमसेनस्तथा वातादिन्द्राच्चैव धनञ्जयः ॥२३॥
लोकेऽप्रतिरथो वीरः शक्रतुल्यपराक्रमः। [9]अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे [10]कनिष्ठाद्वृष्णिनन्दनात् ॥२४॥
शैनेयः सत्यकस्तस्माद्युयुधानश्च सात्यकिः। उद्धवो देवभागस्य महाभागः सुतोऽभवत् ॥२५॥
पण्डितानां परं प्राहुर्देवश्रवसमुत्तमम्[11]। अश्मक्यं[12] प्राप्तवान् [13]पुत्रमनाधृष्टिर्यशस्विनम् ॥२६॥
[14]निवृत्तशत्रुं शत्रुघ्नं[15] श्रुतदेवा त्वजायत[16]। श्रुतदेवात्मजास्ते तु नैषादिर्यः परिश्रुतः ॥२७॥
एकलव्यो मुनिश्रेष्ठा निषादैः परिवर्द्धितः। वत्सवते[17] त्वपुत्राय वसुदेवः प्रतापवान् ।
अद्भिर्ददौ सुतं वीरं शौरिः कौशिकमौरसम्[18] ॥२८॥
गण्डूषाय ह्यपुत्राय विष्वक्सेनो ददौ सुतान्। चारुदेष्णं सुदेष्णञ्च[19] पञ्चालं कृतलक्षणम् ॥२९॥
असंग्रामेण यो वीरो नावर्त्तत[20] कदाचन। रौक्मिणेयो महाबाहुः कनीयान् द्विजसत्तमाः ॥३०॥

वसुदेव के पश्चात् देवभाग, देवश्रवा, अनाधृष्टि, कनवक, वत्सवान्, गृञ्जम, श्याम, शमीक और गण्डूष नामक पुत्र तथा पृथुकीर्ति, पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी नामक पाँच पुत्रियाँ भी उत्पन्न हुईं। ये पाँचों कन्यायें वीर-माताएँ थी ॥१८-१९½॥ पूर्व जन्म में दैत्यराज हिरण्यकशिपु नाम से विख्यात चेदिराज शिशुपाल की उत्पत्ति श्रुतश्रवा से हुई ॥२०½॥ पृथुकीर्ति में वृद्धशर्मा के महाबली, वीर तथा करूषदेश का स्वामी दन्तवक्त्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२१½॥ कुन्ति नामक राजा ने पृथा को अपनी पुत्री बनाया। पृथा का विवाह पाण्डु से हुआ, जिसने धर्म से धर्मराज युधिष्ठिर, वायु से भीमसेन तथा इन्द्र से इन्द्र तुल्य पराक्रमी अद्वितीय योद्धा अर्जुन को पैदा किया। सबसे छोटे वृष्णि-पुत्र अनमित्र से शिनि उत्पन्न हुआ ॥२२-२३½॥ शिनि से सत्यक और सत्यक से महारथी सात्यकि की उत्पत्ति हुई। देवभाग का पुत्र महाभाग्यशाली उद्धव हुआ ॥२४-२५॥ देवश्रवा महापण्डित था। उसने अश्मक्य नामक पुत्र को प्राप्त किया। अनाधृष्टि ने निवृत्तशत्रु नामक पुत्र को उत्पन्न किया। और श्रुतदेवा से शत्रुघ्न पैदा हुआ ॥२६½॥ मुनिश्रेष्ठ श्रुतदेवा के एकलव्य नाम का पुत्र हुआ, जो निषादों द्वारा पाले-पोसे जाने के कारण नैषादि नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥२७½॥ वत्सवान् के कोई पुत्र न था अतः प्रतापी शूर-पुत्र वसुदेव ने अपने वीर पुत्र कौशिक को जल से उत्सर्ग करके उसे दे दिया ॥२८॥ पुत्ररहित गण्डूष को विष्वक्सेन ने चारुदेष्ण, सुदेष्ण, पञ्चाल और कृतलक्षण नामक पुत्रों को दे दिया ॥२९॥ विप्रवर! चारुदेष्ण रुक्मिणी का छोटा पुत्र था, जो निरन्तर युद्ध-रत रहता

---

१ क ०वनाग०। २ क ०नावृष्टि। ३ क ०को वशे तस्य बभूव ह। श्या०। ४ ग ०नमसुञ्जय। श्या०। ५ ग ०चस्य शि०। ६ ग ०सौ चैद्यरा०। ७ क विश्वकर्मणा। ८ क यस्या। ९ ख ०नाच्छिणिर्जं०। १० ग ०ष्ठादृषिन०। ११ ख ग ०मुद्धवम्। १२ ग अश्मवयां। १३ क ग ०नावृष्टियशः०। १४ क विमिस-शत्रु। ख निनर्नशत्रु। १५ ख ०घ्न नै०। ग ०घ्न शतदेव व्यजा०। १६ ग ०त। श्रुतदेवात्मजातस्तु नै०। १७ क वत्सामस्तस्य पौत्राय शौ०। १८ क मौरव०। १९ क सुचक। २० ख ०वर्तत।

वायसानां सहस्राणि यं यान्तं पृष्ठतोऽन्वयुः। चारून्नद्योपभोक्ष्यामश्चारुदेष्णहतानिति ॥३१॥
तन्निजस्तन्त्रिपालश्च सुतौ कनकस्य तौ। वीरश्चाश्वहनुश्चैव वीरौ तावथ गृञ्जिमौ[1] ॥३२॥
श्यामपुत्र. शमीकस्तु शमीको राज्यमावहत्। जुगुप्समानो भोजत्वाद्राजसूयमवाप सः ॥३३॥
अजातशत्रु· शत्रूणां जज्ञे तस्य विनाशनः। वसुदेवसुतान् वीरान् कीर्तयिष्याम्यत.परम् ॥३४॥
वृष्णेस्त्रिविधमेवन्तु बहुशाखं महौजसम्[2]। धारयन् विपुलं वंशं नानर्थैरिह युज्यते ॥३५॥
याः पत्न्यो वसुदेवस्य चतुर्द्दश वराङ्गना। पौरवी रोहिणी नाम मदिरादिस्तथापरा ॥३६॥
वैशाखी च तथा भद्रा सुनाम्नी चैव पञ्चमी। सहदेवा शान्तिदेवा श्रीदेवी देवरक्षिता ॥३७॥
वृकदेव्युपदेवी च देवकी चैव सप्तमी। सुतनुर्वडवा चैव द्वे एते परिचारिके ॥३८॥
पौरवी रोहिणी नाम वाह्लिकस्यात्मजाभवत्। ज्येष्ठा पत्नी मुनिश्रेष्ठा दयितानकदुन्दुभेः ॥३९॥
लेभे ज्येष्ठं सुतं रामं शरण्य[3] शठमेव[4] च। दुर्द्दम दमनं[5] शुभ्रं पिण्डारकमुशीनरम् ॥४०॥
चित्रा नाम कुमारी च [6]रोहिणीतनया नव[7]। चित्रा[8] सुभद्रेति पुनर्विख्याता मुनिसत्तमाः ॥४१॥
वसुदेवाच्च देवक्यां जज्ञे शौरिर्महायशा·। रामाच्च निशठो[9] जज्ञे रेवत्यां[10] दयित. सुत.[11] ॥४२॥
सुभद्रायां रथो पार्थादभिमन्युरजायत। [12]अक्रूरात्काशिकन्यायां सत्यकेतुरजायत ॥४३॥
वसुदेवस्य भार्य्यासु[13] महाभागासु सप्तसु। ये पुत्रा जज्ञिरे शूरा·[14] समस्तांस्तान्निबोधत ॥४४॥

था और जिसके पीछे-पीछे 'आज चारुदेष्ण के द्वारा मारे गए वीरों के मांस का स्वादिष्ठ भोजन करेंगे, ऐसा सोचते हुए हजारों कौए चला करते थे ॥३०-३१॥ कनक के दो पुत्र थे—तन्निज और तन्त्रिपाल। गृञ्जिम के वीरु और अश्वहनु नामक दो पुत्र थे ॥३२॥ श्याम का पुत्र शमीक था। शमीक ने राज्य-प्राप्ति की और भोज-राजा से अपने को निंदित मानते हुए राजसूय यज्ञ किया ॥३३॥ उसके अजातशत्रु नामक शत्रु विनाशक पुत्र उत्पन्न हुआ। अब वसुदेव के वीर पुत्रों का वर्णन करूँगा ॥३४॥ इस प्रकार अनेक शाखाओं में विस्तृत एवं वृष्णि अंधक भोज—इन तीन वर्गों में विभक्त महापराक्रमी वंश को धारण करते हुए वसुदेव किसी प्रकार के अनर्थ के भागी नहीं हुए ॥३५॥ पुरु वंशी रोहिणी, मदिरा, वैशाखी, भद्रा, सुनाम्नी, सहदेवा, शान्तिदेवा, श्रीदेवी देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी और देवकी ये चौदह पत्नियां थीं और सुतनु और वडवा—उनकी दो सेविकाएँ थीं ॥३६-३८॥ पुरुवंशी रोहिणी वाह्लिक की पुत्री थी। मुनिवर! वसुदेव की प्रिय ज्येष्ठा पत्नी से राम तथा शरण्य, शठ दुर्दम, दमन, शुभ्र, पिण्डारक और उशीनर नामके पुत्र उत्पन्न हुए ॥३९-४०॥ और रोहिणी में चित्रा सुभद्रा आदि प्रख्यात नौ कन्यायें पैदा हुईं ॥४१॥ मुनिवर! वसुदेव की छोटी पत्नी देवकी से महायशस्वी शौरि (कृष्ण) उत्पन्न हुए। राम की पत्नी रेवती से निशठ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥४२॥ अर्जुन की पत्नी सुभद्रा से रथी अभिमन्यु की उत्पत्ति हुई। अक्रूर की पत्नी काशिकन्या से सत्यकेतु हुआ ॥४३॥ वसुदेव की महाभाग्यवती सात पत्नियों से शूर नाम वाले जो पुत्र पैदा हुए, उन सबके नाम

---

१ क ०ञ्जिनौ। धर्मात्मानौ तपोविप्रा अमीको राजसत्तम। जुगुप्समानो भोजस्तु राज०। २ ग महौजसः। ३ ख शारण। ग सारण। ४ ख शवमे०। ५ ग दमान।६ क. ०णीदयिता दश। चि०। ७ ग दश। ८ क रित्रा। ९ क धिषणो। ग निषधो। १० क ख रोहिण्या। ११ क समुत। ग पुन। १२ क. ०राद्राजक०। १३ क ०सु तासु सप्तसु मो द्विजा। ये। १४ ख धूरा नामतस्ता०।

भोजश्च विजयश्चैव शान्तिदेवासुतावुभौ। वृकदेवः सुनामायां गदश्चास्तां सुतावुभौ॥४५॥
अगावहं महात्मानं वृकदेवो व्यजायत। कन्या त्रिगर्त्तराजस्य भार्य्या[1] वै[2] शिशिरायणे[3]॥४६॥
जिज्ञासां पौरुषे[4] चक्रे न चस्कन्दे[5] च पौरुषम्[6]। कृष्णायससमप्रख्यो[7] वर्षे द्वादशमे तथा[8]॥४७॥
मिथ्याभिशस्तो गार्ग्यस्तु 'मन्युनातिसमीरितः[9]'। घोषकन्यामुपादाय मैथुनायोपचक्रमे॥४८॥
गोपाली[11] चाप्सरास्तस्य गोपस्त्रीवेशधारिणी। धारयामास गार्ग्यस्य[12] गर्भं दुर्द्धरमच्युतम्॥४९॥
मानुष्यां [13]गर्गभार्य्यायां नियोगाच्छूलपाणिनः। स कालयवनो नाम यज्ञे राजा महाबलः॥५०॥
[14]वृत्तपूर्वार्द्धकायस्तु[15] सिंहसंहननो युवा। अपुत्रस्य स राज्ञस्तु ववृधेऽन्तःपुरे शिशुः॥५१॥
यवनस्य मुनिश्रेष्ठाः स कालयवनोऽभवत्। [16]आयुध्यमानो नृपतिः पर्य्यपृच्छद्द्विजोत्तमम्[17]॥५२॥
वृष्ण्यन्धककुलं[18] तस्य [19]नारदोऽकथयद्विभुः। अक्षौहिण्या तु सैन्यस्य मथुरामभ्ययात्तदा॥५३॥
दूतं सम्प्रेषयामास वृष्ण्यन्धकनिवेशनम्। ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्णं पुरस्कृत्य महामतिम्॥५४॥
समेता मन्त्रयामासुर्यवनस्य भयात्तदा। कृत्वा विनिश्चयं सर्व्वे पलायनमरोचयन्॥५५॥
विहाय मथुरां रम्यां मानयन्तः[20] पिनाकिनम्। कुशस्थलीं द्वारवतीं निवेशयितुमीप्सवः॥५६॥

सुनिये॥४४॥ शान्तिदेवा के दो पुत्र हुए—भोज और विजय। सुनामा से वृकदेव और गद पैदा हुए। वृकदेव ने महात्मा अगावह को उत्पन्न किया॥४५½॥ किसी समय त्रिगर्तराज की कन्या ने, जो शिशिरायणि की भार्या थी, गार्ग्य मुनि के वीर्य की परीक्षा की। पर मुनि का वीर्य-स्खलन नहीं हुआ। तो यादवों ने नपुंसक कह कर उनकी हँसी उड़ाई। जिससे क्रुद्ध हुए मुनि का शरीर लोहे के तवे के समान काला पड़ गया। बारह वर्ष बीत जाने पर मुनि ने किसी गोप-कन्या के साथ मैथुन करने का निश्चय किया॥४६-४८॥ गोपी-वेष धारण किए हुए गोपाली नाम की अप्सरा ने, गार्ग्य से समागम किया और नष्ट न होने वाले प्रचण्ड गर्भ को धारण कर लिया॥४९॥ शंकर की प्रेरणा से गर्गमुनि की मानुषी भार्या ने कालयवन नामक महाबलवान् राजा को उत्पन्न किया, जिसका शरीर सिंह का जैसा था और देह का पूर्वार्ध वृत्ताकार था॥५०½॥ पुत्र-विहीन यवनराज के अन्तःपुर में पालन-पोषण होने के कारण उसका नाम कालयवन पड़ गया॥५१½॥ युद्ध की कामना रखते हुए कालयवन ने मुनिश्रेष्ठ नारद से पूछा कि किससे युद्ध करूँ? नारद ने उसे वृष्णि और अन्धक कुल के योद्धाओं से लड़ने का सुझाव दिया॥५२½॥ तदनुसार कालयवन एक अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरा की ओर चल पड़ा॥५३॥पहले उसने वृष्णि और अन्धक कुल के योद्धाओं के पास अपना दूत भेजा। उसका युद्ध-सन्देश पाकर वृष्णि-अन्धक-वंशियों ने नीति निपुण कृष्ण को अगुवा बना कर परामर्श किया। और फिर कालयवन के भय से मथुरा छोड़ देने का निश्चय किया॥५४-५५॥ शंकर को मानने वाले उन सब लोगों ने सुरम्य मथुरा पुरी को

---

१ ग भर्ता। २ क वैरपरायणा। जि०। ३ ग ०यणा। जि०। ४ ग पौरवे। ५ क ०स्कन्दास्य पौ०। ६ ख ०म्। स्कन्दाय०। ७ क ०प्रख्येव०। ग ०प्रख्यैर्वर्षे। ८ क तदा। मिशस्तो गार्ग्यं बालेन म०। ९ क ०ना समुदीरि०। ख ०नाभिस०। १० ग ०त। गोपक०। ११ ०ली तस्य भद्रा तु गो०। १२ क गर्गस्य। १३ ग गर्दभा०। १४ ख ग वृषपू०। १५ ग ०स्तुमवत्त्वाजिनो रणे। अ०। १६ क सुयुध्यमानो। ग अयुध्यमानो। १७ ख ग ०त्तमान्। पृ०। १८ क ०कुले त०। १९ ग ०यद्द्विजा। अ०। २० ख भावयन्त।

इति कृष्णस्य जन्मेदं य शुचिर्नियतेन्द्रियः। पर्वसु श्रावयेद्विद्वाननृण स सुखी भवेत् ॥५७॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे कृष्णजन्मानुकीर्त्तनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

वृष्णिवंश-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

क्रोष्टोरथाभवत् पुत्रो वृजिनीवान्महायशाः। वाजिनीवतमिच्छन्ति स्वाहिं स्वाहाकृतां वरम् ॥१॥
स्वाहिपुत्रोऽभवद्राजा उषद्गुर्वदतां वरः। महाक्रतुभिरीजे यो विविधैर्भूरिदक्षिणैः ॥२॥
ततः प्रसूतिमिच्छन् वै उषद्गुः सोऽग्र्यमात्मजम्। जज्ञे चित्ररथस्तस्य पुत्रः कर्म्मभिरन्वितः ॥३॥
आसीच्चैत्ररथिर्वीरो यज्वा विपुलदक्षिणः। शशविन्दुः परं वृत्तं राजर्षीणामनुष्ठितः ॥४॥
पृथुश्रवाः पृथुयशा राजासीच्छाशविन्दवः। शसन्ति च पुराणज्ञाः पार्थश्रवसमन्तरम् ॥५॥
अन्तरस्य सुयज्ञस्तु सुयज्ञतनयोऽभवत्। उषतो यज्ञमखिलं स्वधर्मे च कृतादरः ॥६॥
शिनेयुरभवत् पुत्र उषतः शत्रुतापनः। मरुतस्तस्य तनयो राजर्षिरभवन्नृप ॥७॥

छोड़ कर द्वारका पुरी में ही रहने का निश्चय कर लिया ॥५६॥ जो पवित्र और जितेन्द्रिय होकर कृष्ण के इस जन्म चरित्र को पर्व के दिन सुनाएगा वह सब प्रकार के ऋणों से मुक्त होकर सुखी होगा ॥५७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में कृष्ण जन्मानुकीर्तन नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥१४॥

अध्याय १५

वृष्णि-वंश का वर्णन

लोमहर्षण बोले—क्रोष्टु का पुत्र वृजिनीवान परम यशस्वी हुआ। वृजिनीवान् का पुत्र स्वाहि सर्वोच्च यज्ञकर्ता प्रसिद्ध हुआ ॥१॥ स्वाहि का पुत्र वक्ताओं में श्रेष्ठ राजा उषद्गु था, जिसने भूरि दक्षिणा सम्पन्न अनेक महायज्ञ किये ॥२॥ पुत्रोत्पत्ति की कामना से उषद्गु ने चित्ररथ नामक अपने प्रथम पुत्र को उत्पन्न किया, जो कर्मशील था ॥३॥ चित्ररथ का पुत्र शशबिन्दु यज्ञकर्ता विपुलदक्षिणादाता, वरिष्ठ तथा राजर्षि श्रेष्ठ था ॥४॥ शशबिन्दु का पुत्र महायशस्वी पृथुश्रवा था। पुराणज्ञों का कहना है कि पृथुश्रवा का पुत्र अन्तर और अन्तर का पुत्र सुयज्ञ और सुयज्ञ का पुत्र उषत् हुआ जो निखिल-यज्ञ-कर्ता तथा निष्ठावान् धार्मिक था ॥५-६॥ उषत् से परंतप शिनेयु उत्पन्न हुआ। और शिनेयु का

---

१ क ०म्भेदं य। २ क जा पर्वा वद०- ३ ख पर्गुर्व०। ४ क न्वै पर्वा आप चाऽऽत्म०। ५ ख उषगु। ६ ख ०रन्वित। ७ क कृत्य। ८ ख ०सीच्छश०। ९ ख ०विन्दुज। श०। १० क उषितो। ११ ख धर्ममुक्तता वर। ०ग धर्ममुक्तता वर। १२ क ०र। सिनयुर०। १३ उषित।

मरुत्तोऽलभत ज्येष्ठ सुत कम्बलबर्हिषम। चकार विपुल धर्म्मममर्षात[1] प्रत्ययभागपि[2] ॥८॥
स सत्प्रसूतिमिच्छन[3] वै सुत कम्बलबर्हिष । बभूव रुक्मकवच शतप्रसवत[4] सुत ॥९॥
निहत्य रुक्मकवच शत कवचिना रणे। धन्विना निशितैर्बाणैरवाप श्रियमुत्तमाम् ॥१०॥
जज्ञे च रुक्मकवचात[5] परजितपरवीरहा। जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महावीर्य्या[6] पराजिता ॥११॥
रुक्मेषु पृथुरुक्मश्च [7]ज्यामघ पालितो हरि । पालित च हरि चैव विदेहेभ्य[8] पिता ददौ ॥१२॥
रुक्मेषुरभवद्राजा[9] पृथुरुक्मस्य सश्रयात। ताभ्या प्रव्राजितो राजा ज्यामघोऽवसदाश्रमे ॥१३॥
प्रशान्तश्च[10] तदा राजा ब्राह्मणैश्चावबोधित । जगाम धनुरादाय देशमन्य ध्वजी रथी ॥१४॥
नर्म्मदाकूलमेकाकी मेकला[11] मृत्तिकावतीम[12]। ऋक्षवन्त[13] गिरि जित्वा[14] शुक्तिमत्यामुवास स[15] ॥१५॥
ज्यामघस्याभवद्भार्य्या शैब्या बलवती सती। अपुत्रोऽपि स राजा वै नान्या भार्य्यामविन्दत॥१६॥
तस्यासीद्विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप स । भार्य्यामुवाच सन्त्रस्त स्नुषेति[17] स जनेश्वर ॥१७॥
एतच्छ्रुत्वाब्रवीद्देवी कस्य देव स्नुषेति वै[18]। अब्रवीत्तदुपश्रुत्य ज्यामघो राजसत्तम ॥१८॥

राजोवाच

यस्ते जनिष्यते [19]पुत्रस्तस्य भार्य्योपपादिता ॥१९॥

पुत्र महान राजर्षि हुआ ॥७॥ जिसका ज्येष्ठ पुत्र कम्बलबर्हिष था। पापी होते हुए भी कम्बलबर्हिष ईर्ष्या से महान धार्मिक बना ॥८॥ उसके पुत्र शतप्रसव से रुक्मकवच नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ ॥९॥ रुक्मकवच ने युद्ध मे सौ कवचधारियो तथा धनुर्धारियो को अपने तीक्ष्ण बाणो से मारकर श्री र ति प्राप्त की। १०॥ रुक्मकवच के शत्रु सहारक पुत्र परजित् से रुक्मेषु पृथुरुक्म ज्यामघ पालित और हरि ये पाँच महाशक्तिशाली पुत्र उत्पन्न हुए ॥११॥ पालित और हरि को पिता ने विदेहो को दिया ॥१२॥ रुक्मेषु पृथुरुक्म का आश्रय लेकर राजा बना। उन दोनो ने मिलकर राजा ज्यामघ को निर्वासित कर दिया। ज्यामघ शान्तचित्त होकर आश्रम मे रहने लगा ॥१३॥ वहाँ उसे ब्राह्मणो ने जब बोध कराया तब उसने रथ-पताका से युक्त हो धनुष लेकर दूसरे देश के लिए प्रस्थान किया ॥१४॥ नर्मदा नदी के किनारे एकाकी विचरण करता हुआ ज्यामघ मेकला मृत्तिकावती और ऋक्षवान् नामक पर्वत को जीतकर शुक्तिमती नामक नगरी मे बस गया ॥१५॥ ज्यामघ की शैब्या नामक बली पतिव्रता पत्नी थी। नि सन्तान होते हुए भी राजा ने दूसरा विवाह नहीं किया ॥१६॥ वह राजा एक युद्ध मे विजयी हुआ। विजयश्री के साथ वहाँ उसे एक कन्या प्राप्त हुई। उस कन्या को अपनी पत्नी के पास ले जाकर राजा ने कहा— यह तुम्हारी पुत्रवधू है। यह सुनकर रानी ने कहा— राजन्! यह पुत्रवधू कैसे है? नृपश्रेष्ठ ज्यामघ ने कहा— ॥१७ १८॥

राजा बोला—तुम्हारा जो पुत्र उत्पन्न होगा उसी की यह पत्नी बनेगी ॥१९॥

---

१ ग ०रुत्तनयश्रेष्ठ। २ ख ०पाप्रय०। ग ०र्पात्प्रिय जाग०। ३ ख ग ०नि०। सत्प्रसू०। ४ ख ग ०त्कान्ति सु०। ५ ख ०वना सु०। ६ ग ०त्ताराजि०। ७ ग ०वायपराक्रमा। क०। ८ क समय। ग यामघ। ९ क वन्दिभ्य। १० ग दत्त हाम०। ११ ख ०नान्त सवरक्षव वा०। १२ ख ०रुक्म०। १३ क वर्ताम्। १४ क ऋक्षवन्त। १५ ग ०स्त्रा श्रनिम०। १६ क स। स्याभक्ष्या०। ग ग। हाम०। १७ ख ०पय ते ज०। १८ ख ग व। य०। १९ ग पुत्रो मामय तस्य जानकी। उ०।

लोमहर्षण उवाच

उग्रेण तपसा तस्याः कन्यायाः सा व्यजायत। पुत्रं विदर्भं सुभगा शैब्या परिणता सती ॥२०॥
[1]राजपुत्र्यां तु विद्वांसौ स्नुषायां [2]क्रथकैशिकौ। पश्चाद्विदर्भोऽजनयच्छूरौ रणविशारदौ ॥२१॥
भीमो विदर्भस्य सुतः कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत्। [3]कुन्तेर्धृष्टः सुतो जज्ञे रणधृष्टः प्रतापवान् ॥२२॥
धृष्टस्य जज्ञिरे शूरास्त्रयः परमधार्मिकाः। [4]आवन्तश्च दशार्हश्च बली विषहरश्च[5] सः[6] ॥२३॥
दशार्हस्य सुतो व्योमा व्योम्नो जीमूत उच्यते। जीमूतपुत्रो[7] विकृतिस्तस्य भीमरथः स्मृतः[8] ॥२४॥
अथ भीमरथस्यासीत् पुत्रो[9] नवरथस्तथा। तस्य[10] चासीद्दशरथः [11]शकुनिस्तस्य चात्मजः ॥२५॥
[12]तस्मात्करम्भः कारम्भिर्देवरातोऽभवन्नृपः। देवक्षत्रोऽभवत्तस्य[13] वृद्धक्षत्रो महायशाः[14] ॥२६॥
देवगर्भसमो जज्ञे देवक्षत्रस्य नन्दनः। मधूनां वंशकृद्राजा मधुर्मधुरवागपि ॥२७॥
मधोर्जज्ञेऽथ वैदर्भ्यां[15] पुरुद्वान्पुरुषोत्तमः। ऐक्ष्वाकी चाभवद्भार्य्या[16] मधोस्तस्यां व्यजायत ॥२८॥
[17]सत्वान् सर्वगुणोपेतः सात्वतां कीर्त्तिवर्द्धनः। इमां[18] विसृष्टिं विज्ञाय [19]ज्यामघस्य महात्मनः ॥
युज्यते [20]परमप्रीत्या प्रजावांश्च भवेत्[21] सदा ॥२९॥

लोमहर्षण उवाच[22]

सत्वतः सत्त्वसम्पन्नान् कौशल्या[23] सुषुवे सुतान्। भगिनं[24] भजमानं च दिव्यं [25]देवावृधं नृपम् ॥३०॥

लोमहर्षण बोले—उस कन्या की उग्र तपस्या से सौभाग्यवती पतिव्रता शैब्या ने विदर्भ नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥२०॥ पश्चात् विदर्भ ने उसी राजपुत्री में विद्वान्, वीर तथा युद्धविशारद क्रथ और कैशिक नामक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥२१॥ विदर्भ का पुत्र भीम और उसका पुत्र कुन्ति हुआ। कुन्ति के धृष्ट नामक प्रतापी तथा युद्ध-कुशल पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२२॥ धृष्ट के तीन वीर तथा परम धर्मात्मा पुत्र हुए—आवन्त, दशार्ह और बली विषहर ॥२३॥ दशार्ह का पुत्र व्योमा और व्योमा का जीमूत कहा जाता है। जीमूत का पुत्र विकृति और उसका पुत्र भीमरथ कहा जाता है ॥२४॥ भीमरथ का पुत्र नवरथ था। नवरथ का दशरथ और उसका पुत्र शकुनि था ॥२५॥ शकुनि से करम्भ और करम्भ से राजा देवरात की उत्पत्ति हुई। देवरात का पुत्र देवक्षत्र और उसका पुत्र महायशस्वी तथा देवपुत्र के समान तेजस्वी वृद्धक्षत्र था ॥२६॥ वृद्धक्षत्र के देवपुत्र के समान मधु नामक मधुरवक्ता तथा मधुवंश कर्त्ता पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२७॥ मधु से वैदर्भी में पुरुषोत्तम पुरुद्वान् की उत्पत्ति हुई। पुरुद्वान् की ऐक्ष्वाकी नामक भार्या में सब गुणों से युक्त सात्वतों का यशोवर्धक सत्वान् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२८॥ महात्मा ज्यामघ की इस सृष्टि को जानकर मनुष्य अत्यन्त प्रसन्न तथा सदा प्रजावान् होता है ॥२९॥

लोमहर्षण बोले—सत्वान् से कौशल्या ने सत्त्वसम्पन्न भागी, भजमान, दिव्य, राजा देवावृध, महाशक्तिशाली

---

१ क राजपुत्रौ। २ ग ०थकौशिकाम्। प०। ३ ग ०न्तेर्वृष्णिसु०। ४ क अचरश्च। ५ क ०पधर०। ६ क स य। ७ क ख ०त्रो बृहतिस्त०। ८ ख सुत। ९ ग भरर०। १० ग तथा। ११ क शक्रतुल्योऽस्य। १२ क ततवरम्भिस्तस्माच्च देव०। १३ ख ग ०स्य देवक्षत्रिर्महा०। १४ क. शा। हेमग०। १५ क ०र्दभिस्तस्य च प्रियपूर्वह। ऐक्ष्वाक्रिरभवद्राराजासत्वस्तस्य व्य०। १६ ख ०र्या सावस्त०। १७ ख ०त्वात्सत्त्वगु०। १८ क ०मा च सृ०। १९ ग ह्यामघस्य। २० ख रम प्रि०। २१ क मवेद्द्विज। २२ ख ०च। सात्वतान्सत्त्व०। २३ क ०न्कौशिको सु०। २४ क. भामिन। ख. भजिन। २५ ग देववृध।

अन्धकं च [1]महाबाहुं वृष्णिं[2] च यदुनन्दनम्। तेषां विसर्गाश्चत्वारो विस्तरेणेह कीर्त्तिताः[3]॥३१॥
भजमानस्य सृञ्जय्यौ बाह्यकायोपबाह्यका। आस्तां भार्ये तयोस्तस्माज्जज्ञिरे बहवः सुताः॥३२॥
[4]क्रिमिश्च [5]क्रमणश्चैव [6]धृष्टः शूरः पुरञ्जयः। एते बाह्यकसृञ्जय्यां भजमानाद्विजज्ञिरे॥३३॥
[7]अयुताजित् [8]सहस्राजिच्छताजिच्चाथ दासकः। उपबाह्यकसृञ्जय्यां भजमानाद्विजज्ञिरे॥३४॥
यज्वा देवावृधो राजा चचार विपुलं तपः। पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम स्यादिति निश्चितः॥३५॥
[9]संयुज्यमानस्तपसा पर्णाशाया जलं स्पृशन्। [10]सदोपस्पृशतस्तस्य चकार प्रियमापगा॥३६॥
[11]चिन्तयाभिपरीता[12] सा न जगामैव[13] निश्चयम्। कल्याणत्वान्नरपतेस्तस्य सा निम्नगोत्तमा॥३७॥
नाध्यगच्छत् तां नारीं यस्यामेवंविधः सुतः। भवेत्तस्मात् स्वयं गत्वा भवाम्यस्य सहानुगा[14]॥३८॥
अथ भूत्वा कुमारी सा बिभ्रती परमं वपुः। वरयामास नृपतिं तामियेष च स प्रभुः॥३९॥
[15]तस्यामाधत्त गर्भं स तेजस्विनमुदारधीः। अथ सा दशमे मासि सुषुवे सरितां वरा॥४०॥
पुत्रं सर्वगुणोपेतं बभ्रुं देवावृधं द्विजाः। अत्र वंशे पुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम्॥४१॥
गुणान् देवावृधस्यापि कीर्त्तयन्तो महात्मनः। यथैवाग्रे तथा दूरात्पश्यामस्तावदन्तिकात्॥४२॥
बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः। षष्टिश्च [16]षट् च पुरुषाः सहस्राणि च सप्त च[17]॥४३॥
एतेऽमृतत्वं प्राप्ता वै बभ्रोर्देवावृधादपि। यज्वा [18]दानपतिर्धीमान् ब्रह्मण्यः सुदृढायुध॥४४॥

अन्धक और यदुनन्दन वृष्णि को उत्पन्न किया॥३०½॥ उनके चार वंशों का विस्तृत-वर्णन मैंने कर दिया॥३१॥ भजमान की सृञ्जय-पुत्री बाह्यका और उपबाह्यका नामक दो भार्यायें थीं। उन्होंने अनेक पुत्र उत्पन्न किये॥३२॥ भजमान से बाह्यका में क्रिमि, क्रमण, धृष्ट, शूर और पुरञ्जय नामक पुत्र उत्पन्न हुए। उपबाह्यका ने भजमान से अयुताजित् सहस्राजित्, शताजित् और दासक नामक पुत्रों को उत्पन्न किया॥३३-३४॥ 'सब गुणों से युक्त पुत्र मुझे हो' ऐसा निश्चय कर यज्ञकर्ता राजा देवावृध उग्र तप करने लगा॥३५॥ तपस्या से संयमी होकर वह पर्णाशा नदी का जल का स्पर्श करता था। सदा स्पर्श करने से नदी उससे प्रेम करने लगी॥३६॥ पर राजा के विषय में सोचती हुई वह कोई निश्चय नहीं कर पाती। तब उस राजा का कल्याण चाहने वाली उस उत्तम नदी ने सोचा—'राजा की जो स्त्री है उसमें इस तरह का पुत्र हो नहीं सकता। इसलिए मैं स्वयं जाकर उसकी पत्नी बन जाती हूँ'॥३७-३८॥ तदनन्तर उसने परम सुन्दरी कुमारी का रूप धारण कर राजा का वरण किया। राजा ने भी स्वीकृति दे दी॥३९॥ उदार राजा से उस नदी श्रेष्ठ ने तेजस्वी गर्भ को धारण किया और दसवें मास में बभ्रुदेवावृध नामक प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न किया॥४०½॥ विप्रवृन्द! इस वंश के बारे में पुराणज्ञों का कहना है कि—'महात्मा देवावृध के गुणों का गान करते हुए हम लोग जैसे उसको सामने देखते हैं वैसे दूर से भी बिलकुल पास ही में देखते हैं॥४१-४२॥ मनुष्य-श्रेष्ठ बभ्रुदेवावृध देवता के समान है। सात हजार छाछठ पुरुषों ने बभ्रुदेवावृध से अमृत प्राप्त किया॥४३½॥ बभ्रु का विशाल वंश यज्ञ कर्ता महादानी, ब्रह्मवादी और महायोद्धा हुआ, जिसमें सात्तिवावत आदि भोज हुए।

---

१ क ०हुप्रथित य०। २ ख वृजि। ३ क ०ता। कृमि०। ४ ग क्रमिण। ५ ख वृष। ६ क ०ष्ट सुरसुतोपम। ए०। ७ ख ०युतजि०। ८ ख ०हस्रजि०। ९ क सजुष्टकायस्त०। १० क ०दोप्रतपसस्त०। ११ क चितेन परिताप सा। १२ ख ०ताऽत्मा ज०। १३ क ०मैका विनि०। ख ० मैक विनि०। १४ ख सहव्रता ० अ। १५ क तस्मादागत्य सा गर्भं दधार परया मुदा। अ०। १६ क षष्टि पु०। ख षड्द्वे पु०। १ ख च। १८ क ख ०तिविद्वान्ब्र०।

तस्यान्ववायः सुमहान्भोजा[1] ये मार्त्तिकावताः। [2]अन्धकात्काश्यदुहिता चतुरोऽलभतात्मजान् ॥४५॥
कुकुरं भजमानं च [3]ससकं बलबर्हिषम्। कुकुरस्य सुतो [4]वृष्टिर्वृष्टेस्तु तनयस्तथा ॥४६॥
कपोतरोमा तस्याथ[5] तित्तिरिस्तनयोऽभवत्। जज्ञे पुनर्व्वसुस्तस्मादभिजिच्च[6] पुनर्व्वसोः ॥४७॥
तथा वै पुत्रमिथुनं बभूवाभिजितः किल। आहुकः[7] श्राहुकश्चैव ख्यातौ [8]ख्यातिमतां वरौ ॥४८॥
इमां चोदाहरन्त्यत्र गाथां प्रति तमाहुकम्[9]। श्वेतेन परिवारेण किशोरप्रतिमो महान् ॥४९॥
[10]अशीतिवर्म्मणा युक्त आहुकः प्रथमं व्रजेत्। नापुत्रवान्नाशतदो नासहस्रशतायुषः ॥५०॥
नाशुद्धकर्म्मा नायज्वा यो भोजमभितो व्रजेत्[11]। पूर्व्वस्यां दिशि नागानां भोजस्य प्रययुः किल ॥५१॥
सोमात्सङ्गानुकर्षाणां ध्वजिनां सवरूथिनाम्। रथानां मेघघोषाणां सहस्राणि दशैव तु ॥५२॥
रौप्यकाञ्चनरक्षाणां[12] सहस्राण्येकविंशतिः। तावत्येव सहस्राणि उत्तरस्यां तथा दिशि ॥५३॥
आभूमिपाला भोजास्तु[13] सन्ति ज्याकिङ्किणीकिनः। आहु.[14]कि चाप्यवन्तिभ्यः स्वसारं ददुरन्धका.[15] ॥५४॥
आहुकस्य तु काश्यायां[16] द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतु। देवकश्चोग्रसेनश्च[17] देवगर्भसमावुभौ ॥५५॥
देवकस्याभवन् पुत्राश्चत्वारस्त्रिदशोपमाः। देववानुपदेवश्च[18] संदेवो देवरक्षितः ॥५६॥
कुमार्य्यः सप्त[19] चास्याथ वसुदेवाय ता ददौ। देवकी शान्तिदेवा च सुदेवा[20] देवरक्षिता ॥५७॥
वृकदेव्युपदेवी च [21]सुनाम्नी चैव सप्तमी। नवोग्रसेनस्य सुतास्तेषां कंसस्तु पूर्व्वजः ॥५८॥

काश्य की कन्या ने अन्धक से कुकुर, भजमान, ससक और बल्बर्हिष् नामक चार पुत्र उत्पन्न किए॥४४-४५½॥ कुकुर का पुत्र वृष्टि और वृष्टि का पुत्र कपोतरोमा था। कपोतरोमा का पुत्र तित्तिरि हुआ। उससे पुनर्वसु की उत्पत्ति हुई। पुनर्वसु से अभिजित् उत्पन्न हुआ॥४६-४७॥ अभिजित् के आहुक और श्राहुक नामक महाप्रसिद्ध दो पुत्र हुए॥४८॥ आहुक के विषय में यह गाथा प्रसिद्ध है कि 'वह श्वेत परिवार से युक्त किशोर के समान था॥४९॥ अस्सी कवचों से युक्त वह अग्रणी बनकर चलता था और उसके चारों तरफ पुत्रवान् यज्ञकर्ता, सैकड़ों दानदाता, सैकड़ों-हजारों वर्ष जीने वाले और शुद्ध कर्म करने वाले लोग गमन करते थे॥५०½॥ भोज के साथ पूर्व दिशा में दस हजार हाथी, दस हजार सेना, मेघ के समान शब्द करने वाले दस हजार रथ और इक्कीस हजार सोने-चाँदी के कक्ष रहते थे। उत्तर दिशा में भी उसके साथ उतनी ही संख्या में उक्त चीजें रहती थीं॥५१-५३॥ भोजवंश के सभी राजा प्रत्यंचा के शब्द से युक्त रहते थे। और भी कहा जाता है कि अन्धकों ने अवन्तियों को अपनी बहन दी॥५४॥ आहुक की पत्नी काश्या से देवक और उग्रसेन नामक देवसदृश तेजस्वी दो पुत्र उत्पन्न हुए॥५५॥ देवक के देवता के समान चार पुत्र—देववान्, उपदेव, सदेव और देवरक्षित उत्पन्न हुए॥५६॥ इसकी सात कन्यायें देवकी, शान्तिदेवा, सुदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी और सुनाम्नी वसुदेव के साथ ब्याही गईं॥५७½॥ उग्रसेन के कंस, न्यग्रोध,

---

१ क जानामार्तिकावताम्। अ०। ग ०जाजेमार्तिकारता। अ०। २ क ०काङ्कस्य दु०। ख ०काश्वस्य दु०। ३ ख समक दल०। ४ क वृष्णिर्वृष्णेस्तु। ५ क ०थतत्तिरि०। ६ क. ०दभिमिच्च। ७ क ०हुक आहुको चैव। ८ ख मतिमता। ९ ख ०हुवम्। १० क ०निकर्म०। ख. ०तिचर्म०। ११ ख. ०जन्। १२ ग ०कल्पाना स०। १३ क ०जास्वा स। ख ०आस्ते सा तिष्ठन्किङ्किणी किल। आ०। १४ क. ग आहुकी चा०। १५ ख ०रञ्चका। १६ ग काश्याया। १७ ख ०र्भसुतावु०। १८ ग ०वरानु०। १९ ०रुच सदे०। २० ख. ०प्तधाऽस्या०। २१ क. सदेवी।

न्यग्रोधश्च सुनामा च तथा कङ्कः सुभूषणः। राष्ट्रपालोऽथ सुतनुरनावृष्टिस्तु पुष्टिमान ॥५९॥
तेषां स्वसारः पञ्चासन् कंसा कंसवती तथा। सुतनू राष्ट्रपाली च कङ्का चैव वराङ्गना ॥६०॥
उग्रसेनः सहापत्यो व्याख्यातः कुकुरोद्भवः। कुकुराणामिमं वंशं धारयन्नमितौजसाम् ॥६१॥
आत्मनो विपुलं वंशं प्रजावानाप्नुयान्नरः ॥६२॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे वृष्णिवंशनिरूपणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः

तत्रादौ सत्राजिदुपाख्यानवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

भजमानस्य पुत्रोऽथ रथमुख्यो विदूरथः। राजाधिदेवः शूरस्तु विदूरथसुतोऽभवत ॥१॥
राजाधिदेवस्य सुता जज्ञिरे वीर्यवत्तराः। दत्तातिदत्तौ बलिनौ शोणाश्वः श्वेतवाहनः ॥२॥
शमी च दण्डशर्मा च दन्तशत्रुश्च शत्रुजित्। श्रवणा च श्रविष्ठा च स्वसारौ सम्बभूवतुः ॥३॥
शमिपुत्रः प्रतिक्षत्रः प्रतिक्षत्रस्य चात्मजः। स्वयम्भोजः स्वयम्भोजाद्भदिकः सम्बभूव ह ॥४॥

सुनामा कङ्क सुभूषण राष्ट्रपाल सुतनु अनावृष्टि और पुष्टिमान् नामक नौ पुत्र हुए जिनमे कंस सबसे ज्येष्ठ था ॥५८ ५९॥ उनकी कंसा कंसवती सुतनु राष्ट्रपाली और कंका नामक पांच रूपवती बहन थी ॥६०॥ इन संतानो के सहित उग्रसेन कुकुर का वंश कहलाया। कुकुरों के अत्यन्त तेजस्वी वंश को सुनने से मनुष्य महान प्रजावान होता है ॥६१ ६२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में वृष्णि वंश निरूपण नामक पंद्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१५॥

अध्याय १६

सत्राजित् का उपाख्यान

लोमहर्षण ने कहा—भजमान के विदूरथ नामक महारथी पुत्र हुआ और विदूरथ के राजाधिदेव नामक शूर पुत्र हुआ ॥१॥ राजाधिदेव के दत्त अतिदत्त शोणाश्व श्वेतवाहन शमी दण्डशर्मा दन्तशत्रु और शत्रुजित् नामक अत्यन्त शक्तिशाली पुत्र एवं श्रवणा और श्रविष्ठा नाम की दो कन्याएं उत्पन्न हुई ॥२ ३॥ शमी का पुत्र प्रतिक्षत्र और प्रतिक्षत्र का स्वयभोज था। स्वयभोज से भदिक उत्पन्न हुआ ॥४॥ भदिक के महापराक्रमी पुत्र मे

---

१ क काङ्क। २ क ०वाप्राप्नु०। ३ क जम्ममानो। ४ क ०त्तामिद०। ५ क ०न्तचक्रश्च। ६ क वीरा। ७ क ख नामी पु०। ८ क ०जाद्वदीकः। ख जाद्वदि०।

तस्य पुत्रा बभूवुर्हि सर्व्वे भीमपराक्रमाः। कृतवर्म्माग्रजस्तेषां शतधन्वा तु मध्यमः॥५॥
देवान्तश्च नरान्तश्च भिषग्वैतरणश्च यः। सुदान्तश्चातिदान्तश्च निकाश्यः कामदम्भकः॥६॥
देवान्तस्याभवत् पुत्रो विद्वान् कम्बलबर्हिषः। असमौजाः सुतस्तस्य नासमौजाश्च तावुभौ॥७॥
अजातपुत्राय सुतान् प्रददावसमौजसे। सुदंष्ट्रश्च सुचारश्च कृष्ण इत्यन्धकाः स्मृताः॥८॥
गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टुभार्य्ये बभूवतुः। गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम्॥९॥
माद्री युधाजितं पुत्रं ततो वै देवमीढुषम्। अनमित्रममित्राणां जेतारमपराजितम्॥१०॥
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नतो द्वौ बभूवतुः। प्रसेनश्चाथ सत्राजिच्छत्रुसेनाजितावुभौ॥११॥
प्रसेनो द्वारवत्यां तु निवसन् यो महामणिम्। दिव्यं स्यमन्तकं नाम स सूर्य्यादुपलब्धवान्॥१२॥
तस्य सत्राजितः सूर्य्यः सखा प्राणसमोऽभवत्। स कदाचिन्निशापाये रथेन रथिनां वरः॥१३॥
तोयकूलमपः स्प्रष्टुमुपस्थातुं ययौ रविम्। तस्योपतिष्ठतः सूर्य्यो विवस्वानग्रतः स्थित.॥१४॥
विस्पष्टमूर्तिर्भगवांस्तेजोमण्डलवान् विभुः। अथ राजा विवस्वन्तमुवाच स्थितमग्रतः॥१५॥
यथैव व्योम्नि पश्यामि सदा त्वां ज्योतिषां पते। तेजोमण्डलिनं देवं तथैव पुरतः स्थितम्॥१६॥
को विशेषोऽस्ति मे त्वत्तः सख्येनोपगतस्य वै। एतच्छ्रुत्वा तु भगवान्मणिरत्नं स्यमन्तकम्॥१७॥

सबसे ज्येष्ठ कृतवर्मा और मझला शतधन्वा था॥५॥ इनसे छोटे देवान्त, नरान्त, सुदान्त, अतिदान्त, भिषग्वैतरण, निकाश्य तथा कामदम्भक थे॥६॥ देवान्त का पुत्र विद्वान् कम्बलबर्हिष था। उसके असमौजा और नासमौजा नामक दो पुत्र थे॥७॥ पुत्र-विहीन असमौजा को अन्धक ने सुदंष्ट्र, सुचारु और कृष्ण नामक पुत्र दिये, जो अन्धक नाम से ही प्रख्यात हुए॥८॥ क्रोष्टु की गान्धारी और माद्री नामक दो स्त्रियाँ थीं। गान्धारी ने अनमित्र नामक महाबली पुत्र को उत्पन्न किया॥९॥ माद्री से युधाजित् और देवमीढुष नामक पुत्रों की उत्पत्ति हुई। देवमीढुष शत्रुओं का भी मित्र तथा सर्वदा विजयशील था॥१०॥ अनमित्र का पुत्र निघ्न था। निघ्न के दो पुत्र थे—प्रसेन और सत्राजित्। दोनों शत्रु विजयी थे॥११॥ प्रसेन द्वारकापुरी में वास करता था। सत्राजित ने सूर्य से स्यमन्तक नामक दिव्य महामणि को प्राप्त किया था॥१२॥ उस सत्राजित् का प्राणप्रिय आराध्य सूर्य था। किसी समय रात्रि के अवसान में सूर्योपस्थान करने के लिए महारथी सत्राजित् रथ पर आरूढ होकर नदी के किनारे गया॥१३॥ जब वह सूर्योपस्थान कर रहा था तब स्पष्ट मूर्तिमान् तेजोमण्डल से युक्त तथा शक्ति-सम्पन्न भगवान सूर्य उसके सामने स्थित हो गए। राजा ने सूर्य से निवेदन किया॥१४ १५॥ हे ज्योतिष्पते! जैसे आकाश में मैं आपको सदा तेजोमण्डल से युक्त देखता हूँ वैसे ही अपने सामने भी देख रहा हूँ॥१६॥ इसलिए आपके साथ मेरी घनिष्ठता में कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ?' यह सुनकर भगवान् सूर्य ने अपने गले से स्यमन्तक मणि को उतार कर एकान्त

---

१ क य। युवानश्चापि निष्कोश्यो निष्कोश्यात्काम०। २ क तामसौजाश्च। ख नाममौजाश्च। ३ ख ०त्यन्धकाः। ४ क ख क्रोष्टोर्मार्ये। ५ क महाद्युती। ६ क तथा। ७ ख ०मित्र च शत्रूणां। ८ क ०श्चापि स०। ९ ख ०वसश्च म०। १० क ग समुद्रादु०। ११ ख ०त्मुपस्थातु स राजा च य०। १२ ग ०त। अस्य०। १३ क देव। १४ ख. सहायत्व य०।

स्वकण्ठादवमुच्याय[1] एकान्ते न्यस्तवान् विभुः। ततो विग्रहवन्तं तं ददर्श नृपतिस्तदा॥१८॥
प्रीतिमानथ तं दृष्ट्वा मुहूर्तं कृतवान् कथाम्। तमभिप्रस्थितं भूयो विवस्वन्त स सत्राजित्॥१९॥
लोकान्[2] भासयसे सर्व्वान् येन त्वं सततं प्रभो। तदेतन्मणिरत्न मे भगवन् दातुमर्हसि॥२०॥
ततः स्यमन्तकमणिं दत्तवान् भास्करस्तदा। स तमाबध्य[3] नगरीं प्रविवेश महीपतिः॥२१॥
तं जनाः पर्य्यधावन्तः सूर्य्योऽयं गच्छतीति ह[4]। स्वां पुरीं स विस्मिमाय राजा त्वन्त पुरं तथा॥२२॥
तं प्रसेनजितं दिव्यं मणिरत्नं स्यमन्तकम्। ददौ भ्रात्रे[5] नरपतिः प्रेम्णा सत्राजिदुत्तमम्॥२३॥
स मणिः स्यन्दते रुक्मं वृष्ण्यन्धकनिवेशने। कालवर्षी च पर्जन्यो न च व्याधिभयं ह्यभूत्॥२४॥
लिप्सां चक्रे प्रसेनस्य[6] मणिरत्ने स्यमन्तके। गोविन्दो न च त लेभे भक्तोऽपि न जहार सः॥२५॥
कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः। स्यमन्तकृते सिंहाद्वधं[7] प्राप वनेचरात्॥२६॥
अथ सिंहं प्रधावन्तमृक्षराजो महाबलः। निहत्य मणिरत्नं[8] तदादाय [9]प्राविशद्गुहाम्॥२७॥
ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्णं प्रसेनवधकारणात्। प्रार्थनां[10] ता मणेर्बुद्ध्वा सर्व्व एव शशङ्किरे॥२८॥
स [11]शङ्क्यमानो धर्म्मात्मा अकारी तस्य कर्म्मणः। आहरिष्ये मणिमिति प्रतिज्ञाय वनं ययौ॥२९॥
यत्र प्रसेनो मृगयां व्याचरत्तत्र चाप्यथ। प्रसेनस्य पद गृह्य पुरुषैराप्तकारिभिः[12]॥३०॥

स्थान मे रख दिया॥१७½॥ तब राजा ने शरीरधारी सूर्य को देखा और प्रसन्नता से दो घडी तक उनसे वार्तालाप किया॥१८½॥ जब सूर्य चलने लगे तब सत्राजित् ने फिर कहा—'भगवन्! जिस मणिश्रेष्ठ से आप सब लोको को सदा प्रकाशित करते है, वह मुझे दे दीजिये॥१९ २०॥ तब सूर्य ने स्यमन्तकमणि उसे दे दी। उसने भी मणिको बाँधकर अपने नगर मे प्रवेश किया॥२१॥ नगर के लोग 'यह सूर्य आ रहा है' ऐसा समझ कर भागने लगे। इस प्रकार नगरवासियो को विस्मित करते हुए राजा अन्तपुर मे चला गया॥२२॥ राजा सत्राजित् ने अपने भाई प्रसेन को वह दिव्य मणिरत्न स्यमन्तक प्रेम से दे दिया॥२३॥ वृष्णि-अन्धक कुल वालो के घर मे वह मणि सोना झरती थी। मणि के रहते द्वारिकापुरी मे कभी अवृष्टि या अत्यावृष्टि नही होती थी, व्याधि का भय तो कतई नही था॥२४॥ कृष्ण को स्यमन्तक मणि की लालसा थी, पर उन्हे नही मिली। सामर्थ्यवान् होते हुए भी वे हरण नही कर सकते थे॥२५॥ किसी समय मणि से विभूषित होकर प्रसेन शिकार खेलने गया। वन मे विचरते हुए एक सिंह प्रसेन को मारकर स्यमन्तक मणि लेकर भाग गया॥२६॥ दौडते हुए उस सिंह को महाबलवान् ऋक्षराज (जाम्बवान्) ने मार डाला और मणि लेकर वह अपनी गुहा मे प्रविष्ट हो गया॥२७॥ पश्चात् कृष्ण स्यमन्तक लेना चाहते थे, ऐसी आशका कर वृष्णि-अन्धकवंशियो ने श्रीकृष्ण पर प्रसेन के वध का आरोप लगाया॥२८॥ धर्मात्मा कृष्ण दोषरहित होते हुए भी मिथ्यारोप से बचने के लिए 'मैं मणि लाऊँगा' ऐसी प्रतिज्ञा कर वन मे गये॥२९॥ जहाँ प्रसेन शिकार खेलने गया था उस (स्थान) को आप्त व्यक्तियो के द्वारा निश्चित कराकर उसके पद-चिह्नो के ऊपर

---

१ ख ०मुत्त्यैवमेका०। ग मुत्त्यैनमेका०। २ क ग कानुद्भासयस्येतान्ये०। ३ ख ०मामुच्य न०। ४ ख ह। पुरी विस्मापयित्वा तु स राजाऽन्त०। ५ क ख ततो। ६ ग ०सेनात्तुम०। ७ क ०द्वधमाप। ८ ग ०त्नं तु आदाय वनमाविशत्। त। ९ क ०शद्बिलम्। १० क प्रार्थित त मणि बुद्ध्वा। ११ क शङ्कमा०। १२ ख, ०रात्मका०।

स ददर्श महामनाः ॥३१॥
ऋक्षवन्तं[1] गिरिवरं विन्ध्यं च गिरिमुत्तमम्। अन्वेषयन्[2] परिश्रान्तः शरीरस्याविदूरतः ॥३२॥
साश्वं हतं प्रसेनं तु नाविन्दत च तन्मणिम्। अथ सिंहः प्रसेनस्य गुहामृक्षस्य माधवः ॥३३॥
ऋक्षेण निहतो दृष्टः[3] पदैर्ऋक्षस्तु[4] सूचितः। पदैस्तैरन्वियायाथ जाम्बवतो द्विजाः ॥३४॥
स हि ऋक्षबिले वाणीं शुश्राव प्रमदेरिताम्। धात्र्या कुमारमादाय सुतं ॥३५॥
क्रीडयन्त्या च मणिना मा रोदीरित्यथेरिताम्

धात्र्युवाच

सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः। सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ॥३६॥
व्यक्तितस्तस्य शब्दस्य[6] तूर्णमेव बिलं ययौ। प्रविश्य[7] तत्र भगवांस्तदृक्षबिलमञ्जसा ॥३७॥
स्थापयित्वा बिलद्वारे यदूंल्लाङ्गलिना सह। शार्ङ्गधन्वा बिलस्थं तु जाम्बवन्त ददर्श सः ॥३८॥
युयुधे वासुदेवस्तु बिले जाम्बवता सह। बाहुभ्यामेव[8] गोविन्दो दिवसानेकविंशतिम् ॥३९॥
प्रविष्टेऽथ बिले कृष्णे बलदेवपुरःसराः। पुरीं द्वारवतीमेत्य हतं कृष्णं न्यवेदयन् ॥४०॥
वासुदेवोऽपि निर्जित्य जाम्बवन्तं महाबलम्[9]। लेभे जाम्बवतीं कन्यामृक्षराजस्य सम्मताम्[10] ॥४१॥
मणिं स्यमन्तकं चैव [11]जग्राहात्मविशुद्धये। अनुनीयर्क्षराजं तु निर्ययौ च ततो बिलात् ॥४२॥
उपायाद्द्वारकां कृष्णः सविनीतैः पुरःसरैः। एवं स मणिराहृत्य विशोध्यात्मानमच्युतः ॥४३॥

मणि को ढूंढते हुए जब वे थक गये तो अश्व
कृष्ण चलने लगे। पर्वत-श्रेष्ठ ऋक्षवान् और पर्वतोत्तम विन्ध्य पर्वत मे सहित निहत प्रसेन दिखायी पडा किन्तु मणि वहाँ भी नहीं थी। ॥३०-३१½॥ इधर-उधर देखने पर प्रसेन के शव के
सहित निहत प्रसेन दिखायी पडा किन्तु मणि वहाँ भी नहीं थी। ॥३०-३१½॥ इधर-उधर देखने पर प्रसेन के शव के
पास ही रीछ द्वारा निहत सिंह दिखाई पडा ॥३२½॥ रीछ के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए श्रीकृष्ण उसकी
गुहा तक पहुँच गए। रीछ की खोह मे श्रीकृष्ण को जाम्बवान् के बालक को मणि से खेलाती हुई धात्री के मुख से
निकली हुई 'मत रोओ' यह वाणी सुनाई पडी ॥३३ ३५॥

धात्री ने कहा—सिंह ने प्रसेन को मारा और सिंह को जाम्बवान ने। हे सुपुत्र! मत रोओ, यह तुम्हारी
ही स्यमन्तक मणि है ॥३६॥ उसके शब्द स्पष्ट सुनते ही कृष्ण ने उस खोह मे प्रविष्ट होने से पूर्व बिल-द्वार पर
बलभद्र सहित यदुवंशियो को खडा कर दिया। शार्ङ्ग नामक धनुष को धारण करने वाले कृष्ण ने खोह मे स्थित जाम्ब
वान् को देखा ॥३७-३८॥ बिल मे वासुदेव जाम्बवान् के साथ मल्लयुद्ध करने लगे। इक्कीस दिनो तक दोनो बाहु-युद्ध
करते रहे ॥३९॥ कृष्ण के खोह मे प्रविष्ट हो जाने पर बलदेव सहित यदुवंशियो ने द्वारका आकर लोगो से कह दिया
कि कृष्ण मारे गये ॥४०॥ कृष्ण ने महाबलशाली जाम्बवान् को जीतकर ऋक्षराज की इच्छानुसार उसकी कन्या जाम्ब-
वती से विवाह कर आत्मशुद्धि के लिए (दहेज मे) उसी स्यमन्तक मणि को प्राप्त किया। फिर वे जाम्बवान् को सान्त्व
ना देकर बिल से बाहर निकले ॥४१-४२॥ तब अपने विनयी अनुयायियो के साथ कृष्ण द्वारका पहुंचे। इस प्रकार मणि

---

१ ग अक्षवन्त। २ क. ग अन्विषेप परि०। ३ ख ०ष्ट पादै०। ४ ०क्षस्य मादित। ख ०क्षस्य सू०। ५ ख व्यक्तीकृतस्च श०। ग व्यक्तीकृतस्य श०। ६ ख शब्दश्च। ७ क ०विष्टस्तत्र। ८ क ०भ्यामथ गो०। ९ क. महाबल।
१० ख समतम्। ११ ख जहाराऽऽत्म०।

ददौ सत्राजिते[1] तं वै सर्वसात्वतसंसदि[2]। एवं मिथ्याभिशस्तेन कृष्णेनामित्रघातिना॥४४॥
आत्मा विशोधितः पापाद्विनिर्जित्य स्यमन्तकम्। सत्राजितो दश त्वासन् भार्य्यास्तासां शतं सुताः॥४५॥
ख्यातिमन्तस्त्रयस्तेषां[3] भङ्गकारस्तु पूर्व्वज[4]। वीरो[5] व्रातपतिश्चैव वसुमेधस्तथैव च॥४६॥
कुमार्य्यश्चापि तिस्रो वै दिक्षु ख्याता द्विजोत्तमाः। सत्यभामोत्तमा[6] तासां व्रतिनी च दृढव्रता॥४७॥
तथा प्रस्वापिनी चैव भार्य्याः कृष्णाय ता ददौ। [7]सभाक्षो भङ्गकारिस्तु [8]नावेयश्च नरोत्तमौ॥४८॥
जज्ञाते गुणसम्पन्नौ विश्रुतौ [9]रूपसम्पदा। माद्र्याः पुत्रोऽथ जज्ञेऽथ वृष्णिपुत्रो युधाजितः॥४९॥
जज्ञाते तनयौ वृष्णे. श्वफल्कश्चित्रकस्तथा। श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्य्यामविन्दत॥५०॥
गान्दिनीं नाम तस्याश्च गाः सदा प्रददौ पिता। तस्यां जज्ञे महाबाहुः श्रुतवानतिथिप्रियः॥५१॥
अक्रूरोऽथ महाभागो जज्ञे विपुलदक्षिणः। उपमद्गुस्तथा मद्गुर्म्मुदरश्चारिमर्दनः[10]॥५२॥
अरिक्षेपस्तथोपेक्ष[11] शत्रुहा चारिमेजयः। धर्म्मभृच्चापि [12]धर्म्मा च [13]गृध्रभोजान्धकस्तथा॥५३॥
[14]आवाहप्रतिवाहौ च सुन्दरी च वराङ्गना[15]। विश्रुताश्वस्य[16]महिषी कन्या चास्य [17]वसुन्धरा॥५४॥
रूपयौवनसम्पन्ना सर्व्वसत्त्वमनोहरा। अक्रूरेणोग्रसेनायां[18] सुतौ वै कुलनन्दनौ[19]॥५५॥
वसुदेवश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्च्चसौ। चित्रकस्याभवन् पुत्रा. पृथुर्व्विपृथुरेव च॥५६॥

लेकर आत्म-शुद्धि के लिए वासुदेव ने यादवो से भरी हुई सभा मे वह मणि सत्राजित् को दे दी॥४३½॥ इस प्रकार मिथ्यापवाद को प्राप्त शत्रु-नाशन कृष्ण ने स्यमन्तक मणि को जीत कर पाप से अपनी शुद्धि की॥४४½॥ सत्राजित् के दस पत्नियाँ और सौ पुत्र थे। उन पुत्रो मे तीन ही प्रशस्त हुए। भङ्गकार ज्येष्ठ था और वीर वातपति तथा वसुमेघ छोटे थे॥४५-४६॥ विप्रवर! सर्वत्र विख्यात सत्यभामा, दृढव्रता तथा प्रस्वापिनी नामक तीन कन्यायें भी उसकी थी। सत्राजित् ने उन कन्याओ का विवाह कृष्ण के साथ कर दिया॥४७½॥ भगकार के सभाक्ष और नावेय नामक रूप-गुण-सपन्न नरोत्तम पुत्र उत्पन्न हुए॥४८½॥ माद्री का पुत्र युधाजित हुआ। वृष्णि के श्वफल्क और चित्रक नामक दो पुत्र हुए। श्वफल्क ने काशिराज की गान्दिनी नामक पुत्री से विवाह किया॥४९ ५०॥ पिता गान्दिनी को सदा गायें दिया करता था। गान्दिनी से अक्रूर नामक वीर, विद्वान्, अतिथि पूजक, महाभाग्यशाली तथा बहुत दक्षिणा देने वाला पुत्र उत्पन्न हुआ॥५१½॥ अक्रूर के उपमद्गु, मद्गु, मुदर, अरिमर्दन, अरिक्षेप, उपेक्ष, शत्रुहा, अरिमेजय, धर्मभृत्, धर्मा, गृध्रभोजान्धक, आवाह और प्रतिवाह—ये पुत्र थे। उसकी वसुधरा नामक कन्या, जो रूप-यौवन आदि सर्वगुणो से सपन्न थी, राजा अश्व की रानी बनी॥५२-५४½॥ अक्रूर की पत्नी उग्रसेना से वसुदेव तथा उपदेव नामक दो देवसदृश तेजस्वी कुल-वर्धक पुत्र उत्पन्न हुए॥५५½॥ चित्रक के पृथु, विपृथु अश्वग्रीव,

---

१ख ०ते चैव स०। २क ०र्वयादवस०। ३ग ०पां नगका०। ४क ०ज। विरोधाधिप०। ५क ०व उपश्चावस्त०। ६क ग स्त्रीणा। ७ख ०क्षोमाङ्ग०। ८ख सारयेश्च। ९ख रूपसवृतौ। १०क ग ०न। गिरि०। ११क. ग ०स्तयाक्षेप धा०। १२ग धर्मी। १३ क ०ध्रसो जाम्बवस्त०। ग ०ध्रमो जातुकस्त०। १४क थावाहु प्रतिबाहुश्च सु०। १५ ०ता सा च महिषक०। ग ता० स्वस्य म०। १६ख वराङ्गना। १७ग ०सेन्या तु सु०। १८क ०नौ। वृपदे०।

अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ। अरिष्टनेमिश्च सुता धर्मो धर्मभृदेव च॥५७॥
सुबाहुर्बहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ। इमा मिथ्याभिशस्ति य कृष्णस्य समुदाहृताम्॥५८॥
वेद मिथ्याभिशापास्त न स्पृशन्ति कदाचन ॥५९॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्यमन्तकप्रत्यानयननिरूपण नाम षोडशोऽध्याय ॥१६॥

सप्तदशोऽध्यायः

स्यमन्तकोपाख्यानवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

यत्तु सत्राजिते कृष्णो मणिरत्न स्यमन्तकम्। ददावहारयद्बभ्रुर्भोजेन शतधन्वना॥१॥
सदा हि प्रार्थयामास सत्यभामामनिन्दिताम्। अक्रूरोऽन्तरमन्विष्य मणि चैव स्यमन्तकम्॥२॥
सत्राजित ततो हत्वा शतधन्वा महाबल[1]। रात्रौ त मणिमादाय ततोऽक्रूराय दत्तवान्॥३॥
अक्रूरस्तु तदा विप्रा[2] रत्नमादाय चोत्तमम। समय कारयाञ्चक्रे नावेद्योऽह त्वयेत्युत॥४॥
'वयमभ्युत्प्रपत्स्याम कृष्णेन[3] त्वा 'प्रधर्षितम्। ममाद्य द्वारका सर्व्वा वशे तिष्ठत्यसशयम्॥५॥
हते पितरि दु:खार्त्ता सत्यभामा[4] मनस्विनी। प्रययौ रथमारुह्य नगर वारणावतम्॥६॥

अश्वबाहु सुपार्श्वक, गवेषण धम धमभृत् सुबाहु और बहुबाहु पुत्र उत्पन्न हुए। उसके श्रविष्ठा और श्रवणा नामक दो कन्यायें भी थी॥५६ ५७½॥ कृष्ण क इस मिथ्यापवाद की कथा को जो जानता है, उसे मिथ्यापवाद कभी नही लगता॥५८ ५९॥

श्री ब्रह्मपुराण मे स्यमन्तक प्रत्यानयन निरूपण नामक सोल्हवा अध्याय समाप्त॥१६॥

अध्याय १७

स्यमन्तक मणि की कथा

लोमहर्षण बोले—जिस स्यमन्तक मणि को कृष्ण न सत्राजित् को दिया, उसे भोजवश्य शतधन्वा ने चुरा लिया॥१॥ अवसर ढूढता हुआ अक्रूर सन्दैव अनिन्द्य सुन्दरी सत्यभामा से स्यमन्तक मणि क लिए प्रार्थना किया करता था॥२॥ एक रात महाबली शतधन्वा न सत्राजित् को मारकर स्यमन्तक मणि लाकर अक्रूर को दे दिया॥३॥ विप्रवृन्द! उस उत्तम मणि को प्राप्त कर अक्रूर न शतधन्वा से यह प्रतिज्ञा कराया कि अक्रूर क पास मणि है—यह रहस्य तुम किसीसे नही बतलाना॥४॥ यदि कृष्ण तुम्हारा कोई अनिष्ट करेंगे तो हम तुम्हारी सहायता करेंगे। आज सारी द्वारका मेरे अधीन है इसमे कोई सशय नहीं॥५॥ निदान सत्राजित् क वध से दुखी मनस्विनी सत्यभामा रथ पर

[1] ख ०श्वसेनोऽश्व०। [2] क ०प्रा मणि मा०। [3] ख वय कृष्ण प्रप०। [4] क ०ष्ण च त्वा। [5] क प्रधर्षति। [6] ग ०मा यशस्वि०।

सत्यभामा तु तद्वृत्तं भोजस्य शतधन्वन.। भर्तुर्निवेद्य दुःखार्त्ता पार्श्वस्थाश्रुण्यवर्तयत् ॥७॥
पाण्डवाना च दग्धाना हरिः कृत्वोदकक्रियाम् । कुल्यार्थे चापि पाण्डूनां न्ययोज्यत सात्यकिम् ॥८॥
ततस्त्वरितमागम्य द्वारकां मधुसूदन.। पूर्वजं हलिनं श्रीमानिद वचनमब्रवीत् ॥९॥

श्रीकृष्ण उवाच

हत. प्रसेनः सिंहेन सत्राजिच्छतधन्वना। स्यमन्तवस्तु मद्गामी तस्य प्रभुरहं विभो ॥१०॥
तदारोह रथं शीघ्रं भोजं हत्वा महारथम्। स्यमन्तको महाबाहो अस्माकं स भविष्यति[1] ॥११॥

लोमहर्षण उवाच

तत. प्रववृते युद्धं तुमुलं भोजकृष्णयोः। शतधन्वा ततोऽक्रूरं सर्वतोदिशमैक्षत ॥१२॥
संरब्धौ तावुभौ तत्र दृष्ट्वा भोजजनार्दनौ। शक्तोऽपि[2] शापाद्धार्दिक्यमक्रूरो नान्वपद्यत ॥१३॥
अपयाने ततो बुद्धि भोजश्चक्रे भयार्दित.। योजनाना शत साग्रं हृदया प्रत्यपद्यत ॥१४॥
विख्याता हृदया नाम शतयोजनगामिनी। भोजस्य वडवा विप्रा यया कृष्णमयोधयत्[3] ॥१५॥
क्षीणा जवेन हृदयामध्वन. शतयोजने। दृष्ट्वा रथस्य स्वां वृद्धिं शतधन्वानमर्दयत् ॥१६॥
ततस्तस्या हतायास्तु श्रमात् खेदाच्च भो द्विजा.। खमुत्पेतुरथ प्राणा. कृष्णो राममथाब्रवीत् ॥१७॥

चढकर वारणावत नामक नगर को चली गई॥६॥ सत्यभामा शतधन्वा का सपूर्ण वृत्तान्त अपने स्वामी से निवेदन कर उन्ही के पास खडी होकर रोने लगी॥७॥ श्री कृष्ण ने दग्ध पाण्डवो को जलाजलि देकर उनके अस्थि-सस्कार के लिए सात्यकि को नियुक्त कर दिया और फिर द्वारका पहुँच कर अपने ज्येष्ठ भाई बलभद्र से कहा॥८-९॥

श्रीकृष्ण बोले—प्रभो! सिंह ने प्रसेन को मार डाला और शतधन्वा ने सत्राजित् को। अब स्यमन्तक मणि का स्वामी मैं हूँ॥१०॥ इसलिए हम लोग शीघ्र रथारूढ होकर शतधन्वा को मारकर स्यमन्तक मणि ग्रहण करें॥११॥

लोमहर्षण बोले—ऋषिवृन्द, इसके बाद कृष्ण और शतधन्वा मे घोर युद्ध प्रारभ हो गया। शतधन्वा चारो तरफ अक्रूर को ताकने लगा॥१२॥ परन्तु जब युद्ध मे प्रवृत्त शतधन्वा और कृष्ण को देखकर सामर्थ्यवान् होते हुए भी अक्रूर शाप के कारण शतधन्वा की सहायता करने के लिए न आया तब भय से पीडित शतधन्वा ने भागने का विचार किया॥१३॥ विप्रगण! तब हृदया चार सौ कोस दूर चली गई॥१४॥ भोज की हृदया नाम से विख्यात घोडी सौ योजन तक चलने वाली थी जिस पर सवार होकर शतधन्वा कृष्ण से युद्ध कर रहा था॥१५॥ परन्तु चार सौ कोस पहुँचने पर हृदया का वेग क्षीण हो गया। तब अपने रथ को आगे बढाकर श्रीकृष्ण शतधन्वा को पीडित करने लगे॥१६॥ पश्चात् श्रम और खेद के कारण हृदया के प्राणपखेरू उड गये। तब कृष्ण ने राम से कहा ॥१७॥

---

१ क ०ति। प्रावर्तत ततो यु०। २ ग ०पि साध्याद्धार्दिक्य०। ३ ख ०ष्णमयोद्गत। क्षी०।

श्रीकृष्ण उवाच

तिष्ठेह त्वं महाबाहो दृष्टदोषा हया मया। पद्‍भ्यां गत्वा हरिष्यामि मणिरत्नं स्यमन्तकम् ॥१८॥
पद्‍भ्यामेव ततो गत्वा शतधन्वानमच्युतः। मिथिलामभितो विप्रा जघान[1] परमास्त्रवित् ॥१९॥
स्यमन्तकं च नापश्यद्धत्वा भोजं महाबलम्। निवृत्तं चाब्रवीत् कृष्णं मणिं देहीति लाङ्गली ॥२०॥
नास्तीति कृष्णश्चोवाच ततो रामो रुषान्वितः। धिक्शब्दपूर्व्वमसकृत् प्रत्युवाच जनार्द्दनम् ॥२१॥

बलराम उवाच

भ्रातृत्वान्मर्षयाम्येष स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम्। कृत्यं न मे द्वारकया[3] न त्वया न च वृष्णिभिः ॥२२॥
प्रविवेश ततो रामो मिथिलामरिमर्द्दनः। सर्व्वकामैरुपहृतैर्मिथिलेनाभिपूजितः ॥२३॥
एतस्मिन्नेव काले तु बभ्रुर्मतिमतां वरः। नानारूपान् क्रतून्[4] सर्व्वानाजहार निरर्गलान् ॥२४॥
दीक्षामयं स कवचं रक्षार्थं प्रविवेश ह। स्यमन्तककृते प्राज्ञो गान्दीपुत्रो महायशाः ॥२५॥
अथ रत्नानि चान्यानि धनानि विविधानि च। षष्टिं वर्षाणि धर्म्मात्मा यज्ञेष्वेव न्ययोजयत् ॥२६॥
अक्रूरयज्ञा इति ते ख्यातास्तस्य महात्मनः। बह्वन्नदक्षिणाः सर्व्वे सर्व्वकामप्रदायिनः ॥२७॥
अथ दुर्य्योधनो राजा गत्वा स मिथिला प्रभुः। गदाशिक्षां ततो दिव्यां बलदेवादवाप्तवान् ॥२८॥
सम्प्रसाद्य ततो रामो वृष्ण्यन्धकमहारथैः। आनीतो द्वारकामेव कृष्णेन च महात्मना ॥२९॥
अक्रूरश्चान्धकैः सार्द्धमायातः पुरुषर्षभः। हत्वा सत्राजितं सुप्तं[5] सहबन्धु महाबलः ॥३०॥

श्रीकृष्ण बोले—महाशक्तिशालिन्! आप यहीं रहिये, घोड़ी नष्ट हो चुकी है, अब मैं पैदल ही जाकर मणिरत्न स्यमन्तक को ले आऊँगा ॥१८॥ तब परमअस्त्रज्ञ कृष्ण ने पैदल जाकर मिथिलापुरी के पास शतधन्वा को मार डाला ॥१९॥ ॥२०॥ पर महाबली भोज के मारने पर भी स्यमन्तक मणि नहीं मिली। कृष्ण के लौटने पर बलराम ने उनसे मणि मांगी उन्होंने जवाब दिया कि मिली ही नहीं। यह सुन बलराम क्रुद्ध होकर कृष्ण को बार-बार धिक्कारने लगे ॥२१॥

बलराम ने कहा—भातृ-स्नेह के कारण मैं तुम्हारा यह अपराध क्षमा कर रहा हूँ। अच्छा, तुम्हारा कल्याण हो, मैं जाता हूँ। मुझे न तो द्वारका से, न तुमसे, न वृष्णियों से ही कोई कार्य है ॥२२॥ तब शत्रु-नाशन राम ने मिथिलापुरी में प्रवेश किया। मिथिलापति ने अनेक उपहारों से राम की पूजा की ॥२३॥ इसी समय बुद्धिमानों में श्रेष्ठ अक्रूर ने नाना प्रकार के यज्ञ किये और स्यमन्तक की रक्षा के निमित्त दीक्षामय कवच भी धारण किया ॥२४½॥ स्यमन्तक के लिए उस महायशस्वी तथा बुद्धिमान् गान्दी-पुत्र अक्रूर ने साठ वर्षों तक अनेक प्रकार के रत्न तथा धन उन यज्ञों में लगाये ॥२५-२६॥ उस महात्मा के बहुत अन्न और दक्षिणा वाले तथा सब कामनाओं को देने वाले वे यज्ञ 'अक्रूर-यज्ञ' नाम से विख्यात हुए ॥२७॥ इसके बाद राजा दुर्योधन मिथिलापुरी जाकर बलदेव जी से दिव्य गदा-शिक्षा प्राप्त करने लगा ॥२८॥ कुछ दिनों बाद महारथी वृष्णि-अन्धक वंशियों के साथ कृष्ण बलराम को द्वारका लिवा लाये ॥२९॥ बन्धु सहित सोये सत्राजित् को मारकर

---

१ क. जग्राह। २ ग रत्न। ३ ख. द्वारकाया। ४ ख. ०नुन्मुख्याना०। ५ ख. ग युद्धे।

ज्ञातिभेदभयात्कृष्णस्तमुपेक्षितवांस्तदा। अपयाते तदाक्रूरे नावर्षत्पाकशासन ॥३१॥
अनावृष्ट्या तदा राष्ट्रमभवद्बहुधा कृशम्। तत प्रसादयामासुरक्रूरं कुकुरान्धकाः ॥३२॥
पुनर्द्वारवतीं प्राप्ते तस्मिन् दानपतौ ततः। प्रववर्ष सहस्राक्ष. कक्षे जलनिधेस्तदा ॥३३॥
कन्यां च वासुदेवाय स्वसारं शीलसम्मताम्। अक्रूरः प्रददौ[१] धीमान् प्रीत्यर्थं मुनिसत्तमा. ॥३४॥
अथ विज्ञाय[२] योगेन कृष्णो [३]बभ्रुगतं मणिम्। सभामध्यगतः[४] प्राह तमक्रूर जनार्दनः ॥३५॥

श्रीकृष्ण उवाच

यत्तद्रत्नं [५]मणिवरं तव हस्तगतं विभो। तत्प्रयच्छ[६] च मानार्हं मयि मानार्यकं कृथा[७] ॥३६॥
षष्टिवर्षगते काले[८] यो[९] रोषोऽभून्ममानघ। स [१०]सरुढोऽसकृत् प्राप्तस्तत[११] कालात्ययो महान् ॥ ३७॥
स तत[१२] कृष्णवचनात् सर्वसात्वतसंसदि। प्रददौ त मणिं बभ्रुरक्लेशेन [१३]महामति ॥३८॥
ततस्तमार्जवात् प्राप्त बभ्रोर्हस्तादरिन्दम। ददौ हृष्टमना कृष्णस्तं मणिं बभ्रवे पुन. ॥३९॥
स कृष्णहस्तात् सम्प्राप्तं[१४] मणिरत्नं स्यमन्तकम्। आबध्य गान्दिनीपुत्रो विरराजांशुमानिव ॥४०॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवंशकथन नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

महाबली अक्रूर भी अन्धक वंशियो के साथ आया ॥३०॥ उस समय बन्धु-भेद के भय से कृष्ण ने उसका परित्याग कर दिया। अक्रूर के चले जाने पर इन्द्र ने वर्षा नही की ॥३१॥ अनावृष्टि के कारण राष्ट्र विप्लव हो गया। तब कुकुर और अन्धक वंशवालों न अक्रूर को प्रसन्न किया ॥३२॥ फिर उस दानपति के आने पर इन्द्र ने द्वारका मे वृष्टि की ॥३३॥ मुनिवर! बुद्धिमान् अक्रूर न कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए स्वसा नामक अपनी सुशील कन्या उन्हे समर्पित कर दी ॥३४॥ पर योगबल से कृष्ण अक्रूर के पास मणि का जानकर सभा मध्य मे स्थित अक्रूर से कहने लगे ॥३५॥

श्री कृष्ण ने कहा—हे शक्ति-सपन्न! आपके पास जो मणि रत्न है, उसे आप समर्पित कर दीजिये, मेरे साथ अनार्य क-सा व्यवहार न कीजिये ॥३६॥ हे निष्पाप! मणि सबंधी जो मेरा क्रोध था, वह अब शान्त हो गया है, क्योकि इस बीच महान् काल व्यतीत हो गया अर्थात् तब से आज तक साठ वर्ष बीत गये ॥३७॥ तब कृष्ण के वचन सुनकर महाबुद्धिमान् अक्रूर ने यादवो की सभा मे प्रसन्नतापूर्वक मणि कृष्ण को लौटा दी ॥३८॥ अक्रूर के हाथ से मणि प्राप्त कर कृष्ण ने पुन बडी प्रसन्नता से मणि उसी को लौटा दी ॥३९॥ वह गान्दिनी-पुत्र (अक्रूर) स्यमन्तक मणि को अपने गले मे बाँध कर सूर्य की तरह सुशोभित होने लगा ॥४०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे चन्द्र-वंश-कथन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१७॥

---

१ ग ०दौ श्रीमा०। २ क ०य चातियो०। ३ क बन्धुग०। ४ क ०गत प्रा०। ५ ख मणिमय। ६ ख ग ०च्छस्व मा०। ७ ग ०ले यद्रोषो०। ८ क यो यज्ञोऽभूत्तवान०। ९ क सतुष्टोऽस्यत प्राप्त०। १० ग ०स्तदाका०। ११ क तत्र। १२ क ग महाद्युति। १३ ख ग ०प्राप्यम०।

अष्टादशोऽध्यायः

तत्रादौ भुवनकोशद्वीपवर्णनम्

मुनय ऊचुः

अहो सुमहदाख्यानं भवता परिकीर्त्तितम्। भारतानां च सर्व्वेषां पार्थिवानां तथैव च॥१॥
देवानां दानवानां च गन्धर्व्वोरगरक्षसाम्। दैत्यानामथ सिद्धानां गुह्यकाना तथैव च॥२॥
अत्यद्भुतानि कर्म्माणि विक्रमा धर्म्मनिश्चयाः। विविधाश्च कथा दिव्या जन्म[1] चाग्र्यमनुत्तमम्॥३॥
सृष्टिः प्रजापतेः सम्यक्त्वया प्रोक्ता महामते[2]। प्रजापतीनां सर्व्वेषा गुह्यकाप्सरसां तथा॥४॥
स्थावरं जङ्गमं सर्व्वमुत्पन्नं विविधं जगत्। त्वया प्रोक्तं महाभाग श्रुतं चैतन्मनोहरम्॥५॥
कथितं पुण्यफलद पुराण श्लक्ष्णया गिरा। मन.कर्णसुखं सम्यक् प्रीणात्यमृतसम्मितम्॥६॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामः सकल मण्डलं भुवः। वक्तुमर्हसि सर्व्वज्ञ[3] पर कौतूहलं हि नः॥७॥
यावन्तः सागरा द्वीपास्तथा वर्षाणि पर्व्वताः। वनानि सरितः पुण्यदेवादीनां महामते॥८॥
यत्प्रमाणमिदं सर्व्वं यदाधारं[4] यदात्मकम्। संस्थानमस्य जगतो यथावद्वक्तुमर्हसि॥९॥

अध्याय १८

भुवन-कोश-द्वीप का वर्णन

मुनियो ने कहा—आपने भारतो (भरत-वंशोत्पन्न) तथा सब राजाओं का महान् आख्यान एवम् देवता, दानव, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, दैत्य, गुह्य और सिद्ध के अद्भुत कर्म, पराक्रम, धर्म निश्चय, अनेक प्रकार की दिव्य-कथा और उत्तम जन्म वर्णन किये॥१-३॥ हे महाबुद्धिमन्! प्रजापति का सृष्टि-वर्णन भी आपने अच्छी तरह किया। सब प्रजापतियो, गुह्यको, अप्सराओ, स्थावर, जगम और विविध प्रकार के जगत् का चित्रण भी आपने खूब किया। हमने मन और कर्ण को सुख देने वाला, मनोहर तथा पुण्यफल प्रद अमृत तुल्य पुराण आपके मुख से श्रवण किया॥४-६॥ अब पृथ्वी के सम्पूर्ण मण्डल का वर्णन श्रवण करने की हमारी इच्छा है। हे सर्वज्ञ! हमे बडी उत्कण्ठा है। अत आप सुनाने की कृपा करें॥७॥ हे महामते! जितने समुद्र, द्वीप, वर्ष, पर्वत, वन, नदियाँ और पवित्र देवस्थल हैं एवम् जितने प्रमाण वाला, जिस आधार वाला और जिस स्वरूपवाला इस जगत् का सस्थान है, उन सबका यथोचित वर्णन करें॥८-९॥

---

१ क. ०न्म चैवाम०। २ क ०ते। नृपतीना च रा०। ३ ग. धर्मज्ञ। ४ क यदर्शन।

लोमहर्षण उवाच

मुनयः श्रूयतामेतत् 'संक्षेपाद्वदतो मम। नास्य वर्षशतेनापि वक्तुं 'शक्योऽतिविस्तरः ॥१०॥
'जम्बूप्लक्षाह्वयौ द्वीपौ 'शाल्मलश्चापरो द्विजाः। कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः ॥११॥
एते द्वीपाः 'समुद्रैस्तु सप्तसप्तभिरावृताः। लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलैः 'समम् ॥१२॥
जम्बूद्वीपः 'समस्तानामेतेषां 'मध्यसंस्थितः। तस्यापि मध्ये विप्रेन्द्राः मेरुः कनकपर्वतः ॥१३॥
चतुरशीतिसाहस्रैर्योजनैस्तस्य चोच्छ्रयः। प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि'' विस्तृतः ॥१४॥
मूले षोडशसाहस्रैर्विस्तारस्तस्य सर्वतः। ''भूपद्मस्यास्य शैलोऽसौ कर्णिकाकारसंस्थितः ॥१५॥
हिमवान् हेमकूटश्च निषधस्तस्य दक्षिणे। नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः ॥१६॥
लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये'' दशहीनास्तथापरे। सहस्रद्वितयोच्छ्रायास्तावद्विस्तारिणश्च ते'' ॥१७॥
भारतं प्रथमं वर्षं ततः किंपुरुषं स्मृतम्''। हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विजा ॥१८॥
रम्यकं चोत्तरं वर्षं तस्यैव'' तु हिरण्मयम्। उत्तराः कुरवश्चैव यथा वै भारतं'' तथा ॥१९॥
नवसाहस्रमेकैकमेतेषां द्विजसत्तमाः। ''इलावृतं च तन्मध्ये'' सौवर्णो मेरुरुच्छ्रितः ॥२०॥
मेरोश्चतुर्दिशं तत्र'' नवसाहस्रविस्तृतम्। इलावृतं ''महाभागाश्चत्वारश्चात्र पर्वताः ॥२१॥

लोमहर्षण बोले—मुनिवृन्द! इसका विस्तृत वर्णन सौ वर्ष मे भी नहीं हो सकता, इसलिये सक्षेपतः सुन ॥१०॥ द्विजगण! *जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक तथा पुष्कर नामक सात द्वीप हैं ॥११॥ सातों द्वीप लवण, ईख, मदिरा, घृत, दही, दूध और जल के साथ सात समुद्रो से वेष्टित हैं ॥१२॥* इन सब द्वीपों के मध्य मे जम्बूद्वीप स्थित है। द्विजवर! उसके भी बीच मे सुवर्ण का मेरुपर्वत है ॥१३॥ मेरुपर्वत चौरासी हजार योजन ऊँचा सोलह हजार योजन पृथ्वी के भीतर प्रविष्ट बत्तीस हजार योजन मस्तक (चोटी) मे और सोलह हजार योजन मूल मे विस्तृत है ॥१४½॥ पृथ्वी रूपी कमल के लिये मेरु कर्णिका (कमल का छत्ता या पँखुरी) है। दक्षिण भाग मे हिमवान्, हेमकूट और निषध नामक पर्वत स्थित हैं। उत्तर मे नील, श्वेत, और शृङ्गवान्‌नामक वर्ष पर्वत स्थित है ॥१५-१६॥ बीच मे एक-एक लाख योजन विस्तृत दो पर्वत है तथा नब्बे हजार विस्तृत अन्य पर्वत भी हैं। उन पर्वतों की ऊंचाई तथा चौडाई दो हजार योजन की है ॥१७॥ द्विजगण! मेरु से दक्षिण पहले भारतवर्ष तब किंपुरुष वर्ष, हरिवर्ष तथा अन्य वर्ष भी स्थित हैं ॥१८॥ उत्तर की ओर रम्यक वर्ष, हिरण्मयवर्ष और उत्तरकुरुवर्ष भारत ही की तरह स्थित है ॥१९॥ द्विजवर! इलावृतवर्ष समेत ये सब नौ-नौ हजार योजन विस्तृत हैं। उनके बीच सुवर्ण का ऊँचा मेरु पर्वत स्थित है ॥२०॥ महाभाग ऋषिवृन्द! मेरु के चारो तरफ नौ हजार योजन विस्तृत इलावृत वर्ष है। इलावृत वर्ष मे मेरु तक फैले हुए दश हजार योजन विस्तृत चार पर्वत भी है ॥२१½॥ मेरु से पूर्व मन्दरा-

---

१ ख ग ॰पाद्वद॰। २ क शक्येत विस्तरम्। ज॰। ३ ग जम्बुप्ल॰। ४ क ख शाल्मलिश्चा॰। ५ क ख. ॰द्रैश्च सप्तभिः परिवारिताः। ६ क समा। ७ ग जम्बुद्वी॰। ८ क फ समुद्राणाम॰। ९ क ॰ध्यत स्थि॰। १० ख ॰द्वात्रिंशमूर्ध्नि। ११ ख भूमिपद्मस्य। १२ ग मध्यौ। १३ क ये। १४ क द्विजा। १५ ख ग ॰स्यैवातु हि॰। १६ क. ॰रतास्तथा। १७ क ॰वृतश्चतमू। १८ क ॰ध्ये योजनायुतविस्तृत। १९ क तच्च। २० क महद्द्वीप चत्वा॰।

विष्कम्भा[1] वितता मेरोर्योजनायुतविस्तृताः। पूर्व्वेण मन्दरो[2] नाम दक्षिणे गन्धमादनः॥२२॥
विपुलः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्थितः। कदम्बस्तेषु जम्बूश्च[3] पिप्पलो वट एव च॥२३॥
एकादशशतायामाः पादपा गिरिकेतवः। जम्बूद्वीपस्य सा जम्बूर्नामहेतुर्द्विजोत्तमाः॥२४॥
महागजप्रमाणानि जम्ब्वास्तस्याः फलानि वै। पतन्ति भूभृतः पृष्ठे शीर्यमाणानि सर्व्वतः[4]॥२५॥
रसेन तेषां विख्याता तत्र जम्बूनदीति वै। सरित्प्रवर्त्तते सा च पीयते तन्निवासिभि.॥२६॥
न खेदो[5] न च दौर्गन्ध्यं न जरा नेन्द्रियक्षयः। तत्पानस्वस्थमनसां जनाना[6] तत्र जायते॥२७॥
तीरमृत्तद्रसं प्राप्य सुखवायुविशोषिता[7]। जाम्बूनदाख्यं भवति सुवर्णं सिद्धभूषणम्॥२८॥
भद्राश्वं[8] पूर्व्वतो मेरोः केतुमालञ्च[9] पश्चिमे। वर्षे द्वे तु मुनिश्रेष्ठास्तयोर्मध्ये[10] त्विलावृतम्॥२९॥
वनं चैत्ररथं पूर्व्वे[11] दक्षिणे गन्धमादनम्। वैभ्राजं पश्चिमे तद्वदुत्तरे नन्दनं स्मृतम्॥३०॥
अरुणोदं [12]महाभद्रमसितोदं समानसम्। सरांस्येतानि चत्वारि देवभोग्यानि [13]सर्व्वदा॥३१॥
शान्तवांश्चक्रकुञ्जश्च कुररी माल्यवांस्तथा[14]। वैकङ्कप्रमुखा मेरोः पूर्व्वतः [15]केसराचला॥३२॥
त्रिकूटः [16]शिशिरश्चैव पतङ्गो रुचकस्तथा। निषधादयो दक्षिणतस्तस्य केसरपर्व्वताः॥३३॥
शिखिवास.[17] सवैदूर्य्यः कपिलो गन्धमादनः। [18]जानुधिप्रमुखास्तद्वत्[19] पश्चिमे केसराचलाः॥३४॥
[20]मेरोरनन्तरास्ते च [21]जठरादिष्ववस्थिताः। [22]शङ्खकूटोऽथ ऋषभो हंसो नागस्तथापरा.॥३५॥

चल, दक्षिण गन्धमादन, पश्चिम विपुल और उत्तर सुपार्श्व स्थित हैं॥२२½॥ इन चारो पर्वतो पर कदम्ब, जामुन, पीपल और वट ग्यारह सौ योजन लम्बी पताका के रूप मे स्थित है॥२३½॥ द्विजवर! यहीं जामुन 'जम्बूद्वीप' नाम होने का कारण है। उस जामुन के विशाल हाथी के बराबर-बराबर फल पककर पर्वत के पृष्ठ भाग मे गिरते रहते हैं॥२४-२५॥ उन फलो के रस से जम्बूनदी नाम से विख्यात नदी बह रही है, जिसका रस वहाँ के निवासी पीते हैं॥२६॥ उस रस के पान करने वालो को खेद, दुर्गन्ध, बुढापा, और इन्द्रिय-क्षय नहीं होता॥२७॥ वहाँ के उत्तम वायु मे तट की मृत्तिका सूखकर जाम्बूनद नाम से ख्यात सुवर्ण बनकर सिद्धो का आभूषण होती है॥२८॥ मुनिगण! मेरु से पूर्व भद्राश्ववर्ष, पश्चिम केतुमालवर्ष और इन दोनो के मध्य मे इलावृतवर्ष है॥२९॥ पूरब मे चैत्ररथ, दक्षिण मे गन्धमादन, पश्चिम मे वैभ्राज और उत्तर मे नन्दन नामक वन हैं॥३०॥ अरुणोद, महाभद्र, असितोद और मानस नामक सदा देव-भोग्य चार सरोवर हैं॥३१॥ शान्तवान्, चक्रकुञ्ज, कुररी, माल्यवान् और वैकङ्क नामक केसर पर्वत मेरु के पूर्व मे स्थित हैं॥३२॥ त्रिकूट, शिशिर, पतग, च और निषध नामक केसर-पर्वत दक्षिण मे स्थित हैं॥३३॥ शिखिवास, सवैदूर्य, कपिल, गन्धमादन और जानुधि नामक केसर पर्वत पश्चिम मे स्थित है। शङ्खकूट, ऋषभ, हंस, नाग और कालञ्जर नामक केसर-पर्वत उत्तर मे स्थित हैं॥३४-

१क ०म्भारविता। २ख ०रो मेरोर्दक्षि०। ३क जम्बुश्च। ४क सर्वश। ५क ख स्वेदो। ६क नराणा। ७ख ०पितम्। जा०। ८क ख ०द्राश्व पू०। ९क ख ०मालश्च प०। १०क ०मंध्य इला०। ११क पूर्वं। १२क ०भद्र शुचितोय स०। ग ०भद्र सशीतो०। १३क ०दा। शीतानक कुरग च कुरगी मा०। ग ०दा। शीताम्भश्च कुमुजश्च कुवरी। १४क ०था। पावेन्दुप्र०। १५ख केदाराचला। १६ग शिखर०। १७ग वासा स०। १८ग जारधि०। १९क ०नविप्र०। २०क ०रभान्तरे श्रेष्ठाज०। २१क. ०रादौ ध्यवस्थि०। २२क ०ङ्खवण्ठोऽथ।

कालञ्जराद्याश्च तथा उत्तरे केसराचलाः। चतुर्द्दश सहस्राणि योजनानां महापुरी॥३६॥
मेरोरुपरि विप्रेन्द्रा ब्रह्मणः कथिता[1] दिवि। तस्यां समन्ततश्चाष्टौ दिशासु विदिशासु च॥३७॥
इन्द्रादिलोकपालानां प्रख्याता. प्रवराः पुरः। विष्णुपादविनिष्क्रान्ता प्लावयन्तीन्दुमण्डलम्॥३८॥
समन्ताद्ब्रह्मणः पुर्य्यां गङ्गा पतति वै दिवि[2]। सा तत्र पतिता दिक्षु चतुर्धा प्रत्यपद्यत॥३९॥
सीता चालकनन्दा च चक्षुर्भद्रा च वै क्रमात्। पूर्व्वेण[3] सीता शैलाच्च शैलं यान्त्यन्तरिक्षगाः॥४०॥
ततश्च पूर्व्ववर्षेण भद्राश्वेनेति सार्णवम्। तथैवालकनन्दा[4] च दक्षिणेनैत्य भारतम्॥४१॥
प्रयाति सागरं भूत्वा सप्तभेदा द्विजोत्तमाः। चक्षुश्च पश्चिमगिरीनतीत्य सकलांस्ततः॥४२॥
पश्चिमं केतुमालाख्यं वर्षमन्वेति सार्णवम्। भद्रा तथोत्तरगिरीनुत्तरांश्च तथा कुरून्॥४३॥
अतीत्योत्तरमम्भोधिं समम्येति द्विजोत्तमा[5]। आनीलनिषधायामौ माल्यवद्गन्धमादनौ॥४४॥
तयोर्मध्यगतो मेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः। भारताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः कुरवस्तथा॥४५॥
पत्राणि लोकशैलस्य मर्य्यादाशैलबाह्यतः। जठरो देवकूटश्च मर्य्यादापर्व्वतावुभौ॥४६॥
तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतौ। गन्धमादनकैलासौ [6]पूर्व्वपश्चात्तु तावुभौ॥४७॥
अशीतियोजनायामावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ[7]। निषधः पारियात्रश्च मर्य्यादापर्व्वतावुभौ॥४८॥
तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतौ। मेरोः पश्चिमदिग्भागे यथा पूर्व्वौ तथा स्थितौ॥४९॥

३५½॥ विप्रवर! मेरु पर ब्रह्मा की चौदह हजार योजन विस्तृत महापुरी स्थित है॥३६॥ उसके चारो ओर दिशाओं और कोणों में इन्द्र आदि लोकपालों की आठ नगरियाँ प्रख्यात हैं॥३७½॥ विष्णु के पैर से समुद्भूत आकाश-गंगा चन्द्र-मंडल को प्लावित करती हुई ब्रह्मा की नगरी के चारो तरफ गिरती है॥३८½॥ वहाँ से गंगा चार दिशाओं में क्रमश सीता, अलकनन्दा, चक्षु, और भद्रा नाम से निकलती हैं॥३९½॥ सीता नामक आकाश-गंगा पर्वत से पूर्व की ओर जाकर पर्वत में ही मिलती है। फिर वही गंगा भद्राश्व नामक वर्ष-पर्वत से मिलकर समुद्र में मिल जाती है॥४०½॥ द्विजगणश्रेष्ठ! उसी तरह अलकनन्दा सात भागों में बँटकर दक्षिण की ओर भारतखण्ड होते हुए समुद्र में मिल जाती है॥४१½॥ चक्षु नामक गंगा पश्चिम दिशा के सब पर्वतों का अतिक्रमण कर केतुमाल नामक वर्षपर्वत होते हुए समुद्र में मिल जाती है॥४२½॥ भद्रा नामक आकाशगंगा उत्तर के पर्वतों तथा कुरु देशों का अतिक्रमण कर उत्तर समुद्र में मिल जाती है॥४३½॥ द्विजवर! नील से निषध तक एवम् माल्यवान से गन्धमादन तक मेरुपर्वत कर्णिका के आकार में स्थित है॥४४½॥ मर्यादापर्वत के बाहर लोकपर्वत के भारत, केतुमाल, भद्राश्व और कुरु पत्र हैं। जठर और देवकूट मर्यादा-पर्वत हैं॥४५-४६॥ ये दोनों दक्षिण-उत्तर में नील और निषध तक विस्तृत हैं। पूर्व-पश्चिम की ओर गन्ध-मादन और कैलाश अस्सी योजन लम्बे तथा समुद्र तक विस्तृत हैं॥४७½॥ निषध और पारियात्र दोनों मर्यादा-पर्वत कहलाते हैं। ये दोनों भी दक्षिण-उत्तर में नील-निषध तक विस्तृत हैं तथा मेरु के पश्चिमदिग्भाग में वे दोनों पूर्व की तरह ही अवस्थित हैं॥४८-४९॥ त्रिशृंग और

१ग प्रथिता। २ग दिव। ३ग ०णहशैलाच्छीताल शै०। ४ग ०न्दाऽपि द०। ५ग. महामने। ६ग ०वपश्चस्य। ७ख तवरो। ८ग ०श्चायता०। ९ग ०न्तर्व्यव०।

त्रिशृङ्गो जारुधिश्चैव उत्तरौ [वर्षपर्व्वतौ। पूर्व्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ॥५०॥
इत्येते हि मया प्रोक्ता मर्य्यादापर्व्वता द्विजाः। जठरावस्थिता मेरोर्य्येषां द्वौद्वौ चतुर्द्दिशम्॥५१॥
मेरोश्चतुर्द्दिशं ये तु प्रोक्ताः केसरपर्व्वताः। सीतान्ताद्या द्विजास्तेषामतीव हि मनोहराः॥५२॥
शैलानामन्तरद्रोण्यः सिद्धचारणसेविताः। सुरम्याणि तथा तासु काननानि पुराणि च॥५३॥
लक्ष्मीविष्ण्वग्निसूर्य्येन्द्रदेवानां मुनिसत्तमाः। तास्वायतनवर्य्याणि जुष्टानि नरकिन्नरैः॥५४॥
गन्धर्व्वयक्षरक्षांसि तथा दैतेयदानवाः। क्रीडन्ति तासु रम्यासु शैलद्रोणीष्वहर्निशम्॥५५॥
भौमा ह्येते स्मृताः सर्गा धर्म्मिणामालया द्विजाः। नैतेषु पापकर्त्तारो यान्ति जन्मशतैरपि॥५६॥
भद्राश्वे भगवान् विष्णुरास्ते हयशिरा द्विजाः। वाराहः केतुमाले तु भारते कूर्म्मरूपधृक्॥५७॥
मत्स्यरूपश्च गोविन्दः कुरुष्वास्ते सनातनः। विश्वरूपेण सर्व्वत्र सर्व्वः सर्व्वेश्वरो हरिः॥५८॥
सर्व्वस्याधारभूतोऽसौ द्विजा आस्तेऽखिलात्मकः। यानि किम्पुरुषाद्यानि वर्ण्याण्यष्टौ द्विजोत्तमाः॥५९॥
न तेषु शोको नायासो नोद्वेगः क्षुद्भयादिकम्। सुस्थाः प्रजा निरातङ्काः सर्व्वदुःखविवर्जिताः॥६०॥
दशद्वादशवर्षाणां सहस्राणि स्थिरायुषः। नैतेषु भौमान्यन्यानि क्षुत्पिपासादि नो द्विजाः॥६१॥

जारुधि नामक वर्षपर्वत पूर्व-पश्चिम की ओर विस्तृत होकर समुद्र तक चला गया है॥५०॥ द्विजगण! उन मर्यादा-पर्वतों के बारे में मैंने बतला दिया, जो दो-दो करके मेरु पर्वत की चारों दिशाओं में स्थित हैं॥५१॥ मेरु के चारों तरफ स्थित केसर पर्वत के विषय में भी मैंने बतला दिया, जिनके आदि-अन्त शीतल एवं मनोहर हैं॥५२॥ विप्रवृन्द! उन पर्वतों के मध्य में सिद्ध-चारणों से सेवित अन्तर द्रोणियाँ (पर्वतों के बीच की भूमि) है। जहाँ लक्ष्मी, विष्णु, अग्नि, सूर्य, इन्द्र आदि देवताओं के रमणीय वन तथा नगर हैं॥५३½॥ मुनिवर! नर किन्नरों से सुसेवित उन उत्तम स्थानों में गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य और दानव निवास करते हुए उन रमणीय पर्वत-श्रेणियों में दिनरात क्रीडा किया करते हैं॥५४-५५॥ द्विजगण! धर्मात्माओं के लिए उस भूमि के गृह स्वर्गीय गृह हैं। पापात्मा लोग सैकडों जन्म के बाद भी वहाँ नहीं जा सकते॥५६॥ विप्रवर! भद्राश्ववर्ष में हयशिरा तथा केतुमाल में वाराह नाम से प्रसिद्ध विष्णु रहते हैं। भारत में कूर्म तथा मत्स्यरूपधारी विष्णु रहते हैं। कुरु देशों में सनातन गोविन्द वास करते हैं॥५७½॥ सर्वेश्वर हरि विश्वरूप से सब जगह रहते हैं॥५८॥ विप्रवर्य! *अखिलात्मा विष्णु सब के आधार हैं। किंपुरुष आदि आठ वर्ष जो पहले कहे गये हैं, उनमें शोक, परिश्रम,* उद्वेग और क्षुधा-भय का लेश भी नहीं है॥५९½॥ वहाँ की प्रजा स्वस्थ, आतंक-रहित और सब प्रकार के दुःखों से विवर्जित रहती है॥६०॥ वहाँ मनुष्यों की आयु दस हजार अथवा बारह हजार वर्षों की होती है। विप्रवृन्द! यहाँ के लोगों की तरह उन्हें भूख-प्यास नहीं सताती॥६१॥ उन स्थानों में कृतयुग, त्रेता आदि

१ख च। २ख ०ठराद्यास्थि०। ३क व्यवस्थितौ। ४ख केदार०। ५क ०ता। सीता०। ग. ०ता। पीता०। ६ख ०नामुत्तरद्रो०। ७क ०नि च सर्वत। ल०। ८क तान्याय०। ९ख ०नमुस्यानि मु०। १०क ०रै। अप्सरोय०। ११क ०था गन्धर्वकिंनरा। क्री०। १२ग वराह। १३ख. ०ष। न तेषु वर्षते देवो भौमान्यम्मांसि तेषु वै। कृ०।

कृतत्रेतादिका नैव तेषु स्थानेषु कल्पना। सर्व्वेष्वेतेषु वर्षेषु सप्त सप्त कुलाचला
नद्यश्च शतशस्तेभ्य प्रसूता या द्विजोत्तमा । ॥६२॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे भुवनकोशद्वीपवर्णन नामाष्टादशोऽध्याय ॥१८॥

एकोनविंशोऽध्याय·

जम्बूद्वीपवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

उत्तरेण समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणे। वर्षं तद्भारत नाम भारती यत्र सन्तति ॥१॥
नवयोजनसाहस्रो विस्तारश्च द्विजोत्तमा । कर्म्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गञ्च इच्छताम् ॥२॥
महेन्द्रो मलय सह्य शुक्तिमानृक्षपर्व्वत । विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्व्वता ॥३॥
अत सम्प्राप्यते स्वर्गो मुक्तिमस्मात प्रयाति वै । तिर्य्यक्त्व नरक चापि यान्त्यत पुरुषा द्विजा ॥४॥
इत स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्य चान्ते च गच्छति। न खल्वन्यत्र मर्त्यानां कर्म्मभूमौ विधीयते ॥५॥
भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान्निशामय। इन्द्रद्वीप कसेतुमास्ताम्रपर्णो गभस्तिमान ॥६॥

युगो की कल्पना नही होती। विप्रवर ! इन सब वर्षों म भी सात सात पवत स्थित हैं और उन पवतो से सैकडों नदियाँ निकलती हैं॥६२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे भुवन कोशद्वीप वणन नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त॥१८॥

अध्याय १९

जम्बूद्वीप का वर्णन

समुद्र से उत्तर और हिमालय से दक्षिण भारतवर्ष है जहाँ की सन्तति भारती नाम से पुकारी जाती है॥१॥ विप्रवर ! भारतवर्ष नौ हजार योजन विस्तृत है । स्वर्ग और मोक्ष के इच्छुक के लिए यह कर्म भूमि है॥२॥ यहाँ पर महेन्द्र मलय सह्य शुक्तिमान् ऋक्ष विन्ध्य और पारियात्र—ये सात कुलपर्वत हैं ॥३॥ यहाँ के मनुष्य स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करते हैं । यहाँ से पुरुष पशुयोनि में और नरक में भी जाते हैं॥४॥ यहाँ से मध्यकाल में स्वर्ग और अन्तकाल में मोक्ष को भी प्राप्त करते हैं। मनुष्यों के लिए इसके अतिरिक्त कर्मभूमि कहीं नहीं

१स प्रमता।

नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः। अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः॥७॥
योजनानां सहस्रं च द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात्। पूर्व्वे किरातास्तिष्ठन्ति पश्चिमे यवनाः स्थिताः॥८॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः। इज्यायुद्धवणिज्याद्यवृत्तिमन्तो व्यवस्थिता॥९॥
शतद्रुचन्द्रभागाद्या हिमवत्पादनिःसृताः। वेदस्मृतिमुखाश्चान्याः पारियात्रोद्भवा मुने॥१०॥
नर्म्मदासुरमाद्याश्च नद्यो विन्ध्यविनिःसृताः। तापीपयोष्णीनिर्व्विन्ध्याकावेरीप्रमुखा नदीः॥११॥
ऋक्षपादोद्भवा ह्येताः श्रुताः पापं हरन्ति याः। गोदावरीभीमरथीकृष्णावेण्यादिकास्तथा॥१२॥
सह्यपादोद्भवा नद्यः स्मृताः पापभयापहाः। कृतमालाताम्रपर्णीप्रमुखा मलयोद्भवाः॥१३॥
त्रिसान्ध्यऋषिकुल्याद्याः महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः। ऋषिकुल्याकुमाराद्याः शुक्तिमत्पादसम्भवाः॥१४॥
आसां नद्युपनद्यश्च सन्त्यन्यास्तु सहस्रशः। तास्विमे कुरुपञ्चालमध्यदेशादयो जनाः॥१५॥
पूर्व्वदेशादिकाश्चैव कामरूपनिवासिनः। प्रोण्ड्राः कलिङ्गा मगधा दाक्षिणात्याश्च सर्व्वशः॥१६॥
तथापरान्त्याः सौराष्ट्राः शूद्राभीरास्तथाऽर्व्वुदाः। मारुका मालवाश्चैव पारियात्रनिवासिनः॥१७॥
सौवीराः सैन्धवाहूणाः शाल्वाः शाकलवासिनः। मद्रारामास्तथाम्बष्ठाः पारसीकादयस्तथा॥१८॥
आसां पिबन्ति सलिलं वसन्ति सरितां सदा। समोपेता महाभागा हृष्टपुष्टजनाकुलाः॥१९॥
वसन्ति भारते वर्षे युगान्यत्र महामुने। कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चान्यत्र न क्वचित्॥२०॥
तपस्तप्यन्ति यतयो जुह्वते चात्र यज्विनः। दानानि चात्र दीयन्ते परलोकार्थमादरात्॥२१॥

है। इस भारतवर्ष के नौ भेद हैं—इन्द्रद्वीप, कसेरुमान्, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान् नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वारुण और स्वयं नवाँ द्वीप भारत है, जो समुद्रों से घिरा हुआ है॥५-७॥ दक्षिण उत्तर की तरफ यह एक हजार योजन विस्तृत है। इसके पूर्व में किरात, पश्चिम में यवन और मध्य में यज्ञ, युद्ध, व्यापार और सेवा वृत्ति वाले क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं॥८-९॥ शतद्रु (सतलज), चन्द्रभागा आदि नदियाँ हिमालय से निकली हैं। तथा मुने! वेद, स्मृतिप्रधान अन्य नदियाँ पारियात्र से उत्पन्न हुई है॥१०॥ नर्मदा, सुरमा आदि नदियाँ विन्ध्य से उद्भूत हुई हैं। तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, कावेरी आदि नदियाँ ऋक्षपर्वत से निकली हैं जो पापों का हरण करती हैं॥११½॥ पाप भय को मिटाने वाली गोदावरी, भीमरथी कृष्णा, वेणी आदि नदियाँ सह्य पर्वत में उत्पन्न हुई हैं॥१२½॥ कृतमाला, ताम्रपर्णी आदि नदियाँ मलयाचल से निकली हैं॥१३॥ त्रिसाध्य, ऋषिकुल्या आदि नदियाँ महेन्द्र पर्वत से उत्पन्न हैं। ऋषिकुल्या-कुमारा आदि नदियाँ शुक्तिमान् पर्वत से सभूत हैं। इन नदियों की हजारों उपनदियाँ हैं॥१४½॥ कुरु, पञ्चाल, मध्यदेश, पूर्वदेश कामरूप, पौण्ड्र, कलिंग, मगध, दक्षिणदेश, परान्त्य, सौराष्ट्र, शूद्र, आभीर अर्बुद, मारुक, मालव, पारियात्र, सौवीर, सैन्धव शाल्व, शाकल, मद्र, राम, अम्बष्ठ, पारसीक (फारस) आदि देश निवासी जन इन नदियों के जल पीते हैं॥१५-१८½॥ महामुने! इस भारतवर्ष में महाभाग्यवान् हृष्ट-पुष्ट मनुष्य युगों से बस रहे हैं। सत्ययुग, त्रेता द्वापर और कलियुग भारतवर्ष के अतिरिक्त कहीं नहीं होते॥१९-२०॥ यहाँ मुनि लोग तपस्या करते हैं, यज्ञकर्ता लोग याग करते हैं और परलोक के लिए सम्मानपूर्वक दान दिया करते हैं॥२१॥ जम्बूद्वीप में मनुष्य सदा विष्णु-यज्ञ करते हैं। यहाँ यज्ञों द्वारा यज्ञमय

पुरुषैर्यज्ञपुरुषो जम्बूद्वीपे सदेज्यते। यज्ञैर्यज्ञमयो विष्णुरन्यद्वीपेषु चान्यथा ॥२२॥
अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने। यतो हि कर्म्मभूरेषा यतोऽन्या भोगभूमयः ॥२३॥
अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम। कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसंचयात् ॥२४॥

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते,
भवन्ति भूयः पुरुषा मनुष्याः ॥२५॥
कर्म्माण्यसंकल्पिततत्फलानि,
संन्यस्य विष्णौ परमात्मरूपे।
अवाप्य तां कर्म्ममहीमनन्ते,
तस्मिंल्लयं ये त्वमलाः प्रयान्ति ॥२६॥
जानीम नो तत्तु वयं विलीने,
स्वर्गप्रदे कर्म्मणि देहबन्धम्।
प्राप्स्यन्ति धन्याः खलु ते मनुष्या,
ये भारते नेन्द्रियविप्रहीनाः ॥२७॥

नववर्षञ्च भो विप्रा जम्बूद्वीपमिदं मया। लक्षयोजनविस्तारं संक्षेपात् कथितं द्विजाः ॥२८॥
जम्बूद्वीपं समावृत्य लक्षयोजनविस्तरः। भो द्विजा वलयाकारः स्थितः क्षीरोदधिर्बहिः ॥२९॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे जम्बूद्वीपनिरूपणं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

विष्णु की आराधना की जाती है और अन्य द्वीपों में अन्य प्रकार से यजन होता है ॥२२॥ महामुनि! इस जम्बू-द्वीप में भारतवर्ष सर्वश्रेष्ठ है, यह (भारतभूमि) कर्मभूमि है और दूसरे (वर्ष या द्वीप) भोग-भूमि हैं ॥२३॥ यहाँ पर हजारों जन्मों के बाद कदाचित जीव पुण्य-संचय के बल से मनुष्य शरीर प्राप्त करता है ॥२४॥ भारत की महिमा गाते हुए देवगण कहते हैं—'वे मनुष्य धन्य हैं जो स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति के कारणभूत भारत-भूमि पर जन्म लेते हैं और उस कर्म-भूमि को प्राप्त कर निखिल कर्मों तथा उनके असंकल्पित फलों को परमात्मरूप विष्णु को समर्पित करके निर्मल बन जाते हैं और फिर अनन्त में लीन हो जाते हैं ॥२५-२६॥ हम यह नहीं जानते कि स्वर्गप्रद कर्मों के (विष्णु में) विलीन हो जाने पर जीव शरीर का बंधन प्राप्त करते हैं, किन्तु वे मनुष्य धन्य हैं जो भारत में इन्द्रियों से अत्यन्त हीन (अर्थात् अपंग) नहीं हैं ॥२७॥ विप्रवृन्द! नौ खण्डों सहित जम्बू द्वीप तथा उसके लक्षयोजन परिमित विस्तार का भी वर्णन मैंने संक्षेप में कर दिया। इस जम्बू-द्वीप को लक्ष योजन विस्तृत क्षीर समुद्र घेर कर वलयाकार में स्थित है ॥२८-२९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में जम्बूद्वीप-निरूपण नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१९॥

विंशोऽध्यायः

जम्बूद्वीपवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

[1]क्षीरोदेन यथा द्वीपो [2]जम्बूसंज्ञोऽभिवेष्टितः। संवेष्ट्य क्षारमुदधिं प्लक्षद्वीपस्तथा स्थितः॥१॥
[4]जम्बूद्वीपस्य विस्तारः शतसाहस्रसम्मितः। स एव द्विगुणो विप्राः प्लक्षद्वीपेऽप्युदाहृतः॥२॥
सप्त [5]मेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरस्य वै। श्रेष्ठः शान्तमयो नाम शिशिरस्तदनन्तरम्॥३॥
सुखोदयस्तथानन्दः शिवः क्षेमक एव च। ध्रुवश्च सप्तमस्तेषां प्लक्षद्वीपेश्वरा हि ते॥४॥
पूर्वं शान्तमयं वर्षं शिशिरं सुखदं तथा। आनन्दञ्च शिवञ्चैव क्षेमकं ध्रुवमेव च॥५॥
मर्यादाकारकास्तेषां तथान्ये वर्षपर्वताः। सप्तैव तेषां नामानि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः॥६॥
गोमेदश्चैव चन्द्रश्च नारदो दुन्दुभिस्तथा। सोमकः सुमनाः शैलो वैभ्राजश्चैव सप्तमः॥७॥
वर्षाचलेषु रम्येषु वर्षेष्वेतेषु चानघाः। वसन्ति देवगन्धर्वसहिताः [6]सहितं प्रजाः॥८॥
तेषु पुण्या जनपदा[7] वीरा न म्रियते जनः। नाधयो व्याधयो वापि [8]सर्वकालसुखं हि तत्॥९॥
तेषां नद्यश्च सप्तैव वर्षाणान्तु समुद्रगाः। नामतस्ताः प्रवक्ष्यामि श्रुताः पापं हरन्ति याः॥१०॥
अनुतप्ता शिखा चैव विप्राशा त्रिदिवा क्रमुः। [9]अमृता सुकृता चैव सप्तैतास्तत्र निम्नगाः॥११॥

अध्याय २०

जम्बू-द्वीप का वर्णन

लोमहर्षण बोले—जैसे क्षीर समुद्र से जम्बूद्वीप वेष्टित है वैसे ही प्लक्ष-द्वीप क्षार-समुद्र से वेष्टित है॥१॥ विप्रवृन्द! जम्बूद्वीप लक्ष-योजन-विस्तृत है और प्लक्ष-द्वीप उससे द्विगुण विस्तृत है॥२॥ प्लक्षद्वीप के स्वामी मेधातिथि के सात पुत्र हैं। उनमे सबसे ज्येष्ठ शान्तमय है और उससे छोटे शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेमक और ध्रुव हैं। ये सब प्लक्ष-द्वीप के अधिपति हैं तथा मर्यादापर्वत कहलाते हैं। मुनिवर! इनके अतिरिक्त दूसरे वर्षपर्वत भी सात ही हैं। उनके नाम सुनिए॥३-६॥ गोमेद, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, सुमना, और वैभ्राज॥७॥ पुण्यश्लोक मुनिवृन्द! इन रमणीय वर्षपर्वतो पर प्रजासहित देव-गन्धर्व वास करते हैं॥८॥ वहाँ स्थित देश पवित्र तथा वीर हैं, वहाँ के निवासी अमर हैं। उन्हे आधि-व्याधि का बिल्कुल डर नही है। वहाँ सदा सुख ही सुख का साम्राज्य रहता है॥९॥ उन पर्वतो से निसृत तथा समुद्र मे मिलने वाली अनुतप्ता, शिखा, विप्राशा, त्रिदिवा, अमृता, सुकृता और क्रमु—ये पापनाशिनी सात नदियाँ हैं॥१०-११॥

---

१ ख क्षीरोदेन। २ क जम्बुस०। ३ ख ०शा निवे०। ४ क ग जम्बुद्वी०। ५ ख ०मे धाति०। ६ ख सन्त। ७ क ०दा चिरादुद्भियते। ख ० दाश्चिरावधियि०। ८ ख ०काल सु०। ९ ग प्रसृता।

एते शैलास्तथा नद्यः प्रधानाः कथिता द्विजाः। क्षुद्रनद्यस्तथा शैलास्तत्र सन्ति सहस्रशः ॥१२॥
ताः पिबन्ति सदा हृष्टा नदीर्जनपदास्तु ते[1]। अवसर्पिणी[2] नदी तेषा न चैवोत्सर्पिणी द्विजा ॥१३॥
न तेष्वस्ति[3] युगावस्था तेषु स्थानेषु सप्तसु। त्रेतायुगसमः काल. सर्व्वदेव द्विजोत्तमाः ॥१४॥
प्लक्षद्वीपादिके विप्राः शाकद्वीपान्तिकेषु वै। पञ्चवर्षसहस्राणि जना जीवन्त्यनामया ॥१५॥
धर्म्मश्चतुर्व्विधस्तेषु वर्णाश्रमविभागजः। वर्णाश्च तत्र चत्वारस्तान् बुधा प्रवदामि वः ॥१६॥
आर्य्यका[4] कुरवश्चैव[5] विविश्वा[6] भाविनश्च ये। विप्रक्षत्रियवैश्यास्ते शूद्राश्च मुनिसत्तमाः ॥१७॥
जम्बूवृक्षप्रमाणन्तु तन्मध्ये सुमहातरुः। प्लक्षस्तन्नामसंज्ञोऽयं प्लक्षद्वीपो द्विजोत्तमाः ॥१८॥
इज्यते तत्र [7]भगवांस्तैर्व्वर्णैरार्य्यकादिभिः। सोमरूपी [8]जगत्स्रष्टा सर्व्वः सर्व्वेश्वरो हरिः ॥१९॥
प्लक्षद्वीपप्रमाणेन प्लक्षद्वीपः[9] समावृतः। तथैवेक्षुरसोदेन [10]परिवेषानुकारिणा ॥२०॥
इत्येतद् वो मुनिश्रेष्ठाः प्लक्षद्वीप उदाहृत। सक्षेपेण मया भूयः शाल्मलं तं निबोधत ॥२१॥
शाल्मलस्येश्वरो वीरो [11]वपुष्मांस्तत्सुता[12] द्विजाः। तेषान्तु नाम संज्ञानि[12] सप्त वर्षाणि तानि वै ॥२२॥
श्वेतोऽथ [13]हरितश्चैव [14]जीमूतो[13] रोहितस्तथा। वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभश्च द्विजोत्तमाः ॥२३॥
शाल्मलश्च समुद्रोऽसौ द्वीपेनेक्षुरसोदकः। [14]विस्ताराद्द्विगुणेनाथ सर्व्वतः संवृतः स्थितः ॥२४॥

द्विजगण! प्रधान पर्वतों तथा नदियों के नाम तो मैंने गिना दिये हैं। इनके अतिरिक्त हजारों क्षुद्र नदियाँ तथा पर्वत हैं॥१२॥ वहाँ के निवासी सदैव उन्हीं नदियों का जल सहर्ष पीते हैं। विप्रगण! उनकी नदियाँ घटती-बढ़ती नहीं हैं॥१३॥ उन सात स्थानों में युगों की कल्पना भी नहीं है, बल्कि त्रेतायुग के समान काल वहाँ सदैव बीतता है॥१४॥ विप्रवृन्द! प्लक्षद्वीप से लेकर शाकद्वीप तक में मनुष्य पाँच हजार वर्ष रोगरहित होकर जीते हैं॥१५॥ वहाँ वर्णाश्रम विभाग के अनुसार चार प्रकार के धर्म प्रचलित हैं। वहाँ के चार वर्णों के बारे में मैं आपसे बतलाता हूँ॥१६॥ मुनिवर! वहाँ जो आर्यक, कुरु, विविश्व और भावी हैं, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र हैं॥१७॥ जम्बूद्वीप में जामुन का वृक्ष जितना बड़ा है उतना ही बड़ा पाकर का वृक्ष प्लक्षद्वीप में है। इसी से इसका नाम प्लक्षद्वीप पड़ा॥१८॥ द्विजश्रेष्ठो! वहाँ आर्यक आदि जाति के लोग जगत्स्रष्टा सर्वेश्वर सोमरूपी हरि के लिए याग करते हैं॥१९॥ प्लक्षद्वीप के बराबर विस्तृत मण्डलाकार में इक्षु-समुद्र से प्लक्षद्वीप वेष्टित है॥२०॥ महामुने! प्लक्षद्वीप का वर्णन करने के बाद अब मैं शाल्मलद्वीप का संक्षिप्त वर्णन करता हूँ कृपया सुनें॥२२॥ शाल्मलद्वीप का स्वामी शरीरधारी वीर है। उसके पुत्रों के नाम से श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ ये सात वर्षपर्वत प्रसिद्ध हैं॥२३॥ शाल्मलद्वीप भी इक्षु-समुद्र से वेष्टित है और विस्तार में पहले द्वीप से द्विगुण है॥२४॥ वहाँ भी सात नदियाँ और सात रत्नगर्भित

---

१ ग ०ते।आग०। २ ग, न तेषां यैन। ३ क ख. तिष्ठति। ४ क ०रदाश्चै०। ५ क विशाभोजवि०। ६ ग विशामा०। ७ ग ०वास्तैवर्ण्णैरा०। ८ ग जगत्स्रष्ट। ९ ख ०प्मास्तु तता द्वि०। १० ख ग ०स्मुता द्वि०। ११ ग ०नामस०। १२ ख ०प लोहित०। १३ ख. ०तो हरित०। १४ ग ०स्ताराद्द्विगु०।

तत्रापि पर्व्वताः सप्त विज्ञेया रत्नयोनयः। वर्षाभिव्यञ्जकास्ते तु तथा सप्तैव निम्नगाः ॥२५॥
कुमुदश्चोन्नतश्चैव तृतीयस्तु बलाहकः। द्रोणो यत्र महौषध्यः स चतुर्थो महीधरः ॥२६॥
कङ्कस्तु पञ्चमः षष्ठो महिषः सप्तमस्तथा। ककुद्मान् पर्व्वतवरः सरिन्नामान्यतो द्विजाः ॥२७॥
श्रोणी तोया वितृष्णा च चन्द्रा शुक्रा विमोचनी। निवृत्तिः सप्तमी तासां स्मृतास्ताः पापशान्तिदाः ॥२८॥
श्वेतञ्च लोहितञ्चैव जीमूतं हरितं तथा। वैद्युतं मानसञ्चैव सुप्रभं नाम सप्तमम् ॥२९॥
सप्तैतानि तु वर्षाणि चातुर्व्वर्ण्ययुतानि च। वर्णाश्च शाल्मले ये च वसन्त्येषु द्विजोत्तमाः ॥३०॥
कपिलाश्चारुणाः पीताः कृष्णाश्चैव पृथक् पृथक्। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव यजन्ति तम् ॥३१॥
भगवन्तं समस्तस्य विष्णुमात्मानमव्ययम्। वायुभूतं मखश्रेष्ठैर्यज्वानो यज्ञसंस्थितम् ॥३२॥
देवानामत्र सान्निध्यमतीव सुमनोहरे। शाल्मलिश्च महावृक्षो नामनिर्वृत्तिकारकः ॥३३॥
एष द्वीपः समुद्रेण सुरोदेन समावृतः। विस्ताराच्छाल्मलेश्चैव समेन तु समन्ततः ॥३४॥
सुरोदकः परिवृतः कुशद्वीपेन सर्व्वतः। शाल्मलस्य तु विस्ताराद्द्विगुणेन समन्ततः ॥३५॥
ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे शृणुध्वं तस्य पुत्रकान्। उद्भिदो वेणुमांश्चैव स्वैरथो रन्धनो धृतिः ॥३६॥
प्रभाकरोऽथ कपिलस्तन्नाम्ना वर्षपद्धतिः। तस्यां वसन्ति मनुजैः सह दैतेयदानवाः ॥३७॥
तथैव देवगन्धर्व्वा यक्षकिम्पुरुषादयः। वर्णास्तत्रापि चत्वारो निजानुष्ठानतत्पराः ॥३८॥

पर्वत हैं। उन पर्वतों से वहाँ स्थित द्वीपों का बोध होता है॥२५॥ पहला पर्वत कुमुद, दूसरा उन्नत, तीसरा बलाहक, चौथा महौषधियों से युक्त द्रोण, पाँचवाँ कङ्क, छठा महिष और सातवाँ पर्वतश्रेष्ठ ककुद्मान् है। द्विजवर! अब नदियों के नाम सुनिये—॥२६-२७॥ श्रोणी, तोया, वितृष्णा, चन्द्रा, शुक्रा, विमोचनी और निवृत्ति। ये सब नदियाँ पापनाशिनी हैं॥२८॥ श्वेत, लोहित, जीमूत, हरित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ ये सात वर्ष (द्वीप) चार वर्णों से युक्त हैं॥२९½॥ शाल्मलद्वीप के क्रमशः कपिल (भूरा) अरुण (लाल) पीत और कृष्ण वर्ण वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, सर्वात्मा, अव्यय, वायुभूत एवं यज्ञ स्थित भगवान् विष्णु की आराधना बड़े बड़े यज्ञों से करते हैं॥३०-३२॥ इस सुन्दर द्वीप में देवताओं का सान्निध्य बना रहता है। महावृक्ष शाल्मलि (सेमर) के होने से इस द्वीप का नाम शाल्मलद्वीप पड़ा॥३३॥ यह द्वीप सुरा-समुद्र से वेष्टित है और शाल्मलि वृक्ष यहाँ चारों ओर फैला हुआ है॥३४॥ सुरा समुद्र से ही वेष्टित शाल्मल द्वीप से द्विगुण विस्तृत कुशद्वीप है। कुशद्वीप का स्वामी ज्योतिष्मान् है। उद्भिद, वेणुमान्, स्वैरथ, रन्धन, धृति, प्रभाकर और कपिल नाम के द्वीप उसके पुत्र रूप में विख्यात हैं॥३५-३६½॥ उन वर्षों में मनुष्य, दैत्य दानव, देव, गन्धर्व, यक्ष, किम्पुरुष आदि वास करते हैं॥३७½॥ यहाँ भी चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था है। श्रेष्ठ द्विज! वर्णों के निवासी, दमी, शुष्मी,

---

१ क ग ०कास्तस्तत०। २ ग कुमुदो नाम यश्चैव। ३ ग कन्यो। ४ ग ०मानि मा द्वि०। ५ क ग ०आ। पनिता०। ६ ख वितृष्णा चन्द्रा। ग निरता। ७ ख चन्द्रा। ८ ग प्रयान्ति। ९ ख ग ०र्यज्ञिनो। १० क ०र्मिथ०। ११ क नानावृत्ति०। १२ ख ०मवृत्तिका०। १३ क पुरोदेन। १४ ग ०ते महापुराणशिवत्पेन। ज०। ग वैतन्द्वीपाद्गुणस्तथा। १५ ग सुरया। १६ क रमनो। ग नन्दनो। १७ ग कपिल०।

दमिनः[1] शुष्मिणः[2] स्नेहा मान्दहाश्च द्विजोत्तमाः। ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चानुक्रमोदिताः ॥३९॥
यथोक्तकर्म्मकर्त्तृत्वात् [3]स्वाधिकारक्षयाय ते। तत्र ते तु कुशद्वीपे ब्रह्मरूप जनार्द्दनम् ॥४०॥
यजन्त क्षपयन्त्युग्रमधिकारफलप्रदम्[4]। [5]विद्रुमो हेमशैलश्च द्युतिमान् पुष्टिमांस्तथा ॥४१॥
कुशेशयो हरिश्चैव सप्तमो मन्दराचलः। वर्षाचलास्तु सप्तैते द्वीपे तत्र द्विजोत्तमाः ॥४२॥
नद्यश्च सप्त तासां तु वक्ष्ये[7] नामान्यनुक्रमात्। धूतपापा शिवा चैव पवित्रा[8] सम्मतिस्तथा ॥४३॥
[9]विद्युदम्भो मही[10] चान्या सर्व्वपापहरास्त्विमा। अन्या सहस्रशस्तत्र क्षुद्रनद्यस्तथाचलाः ॥४४॥
कुशद्वीपे कुशस्तम्बः संज्ञया तस्य तत्स्मृतम्। तत्प्रमाणेन स द्वीपो घृतोदेन समावृतः ॥४५॥
घृतोदश्च समुद्रो वै क्रौञ्चद्वीपेन संवृतः। क्रौञ्चद्वीपो मुनिश्रेष्ठा श्रूयता चापरो महान् ॥४६॥
कुशद्वीपस्य विस्ताराद्द्विगुणो यस्य विस्तरः। क्रौञ्चद्वीपे द्युतिमतः [11]पुत्राः सप्त महात्मनः ॥४७॥
तन्नामानि च वर्षाणि तेषा[12] चक्रे महामनाः[13]। [14]कुशगो[15] मन्दगश्चोष्णः पीवरोऽथान्धकारकः ॥४८॥
मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सप्तैते तत्सुता [16]द्विजा। तत्रापि देवगन्धर्व्वसेविताः[17] सुमनोरमाः ॥४९॥
वर्षाचला मुनिश्रेष्ठास्तेषां नामानि भो द्विजा। क्रौञ्चश्च वामनश्चैव तृतीयश्चान्धकारकः ॥५०॥
देवव्रतो[18] धमश्चैव तथान्यः पुण्डरीकवान्। दुन्दुभिश्च महाशैलो द्विगुणास्ते परस्परम् ॥५१॥
[19]द्वीपाद्द्वीपेषु[20] ये[21] शैलास्तथा[22] द्वीपानि ते तथा। वर्षेष्वेतेषु रम्येषु[23] वर्षशैलवरेषु[24] च ॥५२॥

स्नेह और मान्दह क्रमश ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं ॥३८-३९॥ अपने-अपने अधिकार की रक्षा के लिए ये चारो वर्ण स्वविहित कर्मों मे लगे रहते हैं। कुशद्वीप मे लोग अधिकार-फल प्रद ब्रह्मरूप जनार्दन के लिए यज्ञ करते है ॥४०½॥ विप्रवर! वहाँ विद्रुम, हेमशैल, द्युतिमान्, पुष्टिमान्, कुशेशय, हरि, मन्दराचल—ये सात वर्ष-पर्वत हैं ॥४१-४२॥ और धूतपापा, शिवा, पवित्रा सम्मति, विद्युदम्भ, मही और कन्या—ये सात पापनाशिनी नदियाँ है ॥४३½॥ इनके अतिरिक्त वहाँ और भी हजारो क्षुद्र नदियाँ तथा पर्वत है। कुशद्वीप म कुशो का समूह होने से उसका नाम कुशद्वीप पडा है ॥४४½॥ यह द्वीप अपनी ही परिधि के परिमाण के घृतसमुद्र मे वेष्टित है और घृत-समुद्र क्रौञ्चद्वीप से आवृत है ॥४५½॥ महामुने! अब महान् क्रौञ्चद्वीप का वर्णन सुनिये—क्रौञ्चद्वीप कुशद्वीप की अपेक्षा द्विगुण विस्तृत है ॥४६½॥ उसमें द्युतिमान् के सात महात्मा पुत्र हैं। महामना द्युतिमान् ने उन्ही के नामो पर यहाँ के वर्षो (द्वीपो) के भी नाम कुशग, मन्दग, उष्ण, पीवर, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि रखे है। द्विजगण! वहाँ के मनोहर पर्वतीय द्वीपो पर देव, गन्धर्व आदि रहते है। क्रौञ्च, वामन, अन्धकारक, देवव्रत, धम, पुण्डरीकवान और महापर्वत दुन्दुभि—ये वहाँ के पर्वतीय द्वीप है, जो एक दूसरे से दूने है ॥४७-५१॥ उन रमणीय वर्षो म तथा पर्वतो पर देवगण के साथ आतंकरहित जनता वास करती है। विप्रवर!

---

१ क दमिन। ग दमिन। २ ग ०ण गदा महेहाश्च महामुने। घ०। ३ ख ०स्वामिपार्थिया हि ते। ४ग पर्वत। ५ग। ०पवित्रा०। ६ख विरमा। ७ग शुभ। ८ख ०रा पवित्रा तथा। ९ख ०दम्भा म०। ०ग दम्भा म०। १० ग मरा। ११ ख ग पुत्रास्तस्य म०। १२ ख तेषु। १३ ख ग महीपतिः। १४ ख कुशकुद्वा वामन गाश्चां गन्धर्वा०। १५ ग ०न्गौमनुष्यश्चोष्ण पी०। १६ ग मुने। १७ ग ०र्वा सर्वे ते शु०। १८ ख देवपूर्वा महानेवाग्नि०। १९ ख द्वीपद्वि०। २० ग ०पार्द्वि०। २१ ग वै। २२ ख ०स्त यथा द्वीपने ते। २३ ख ०तु शैलान्तरेषु मो द्विजा। घि०। २४ ग ०षेषु।

निवसन्ति निरातङ्काः सह देवगणैः प्रजा.। पुष्कला पुष्करा धन्यास्ते[1] ख्याताश्च द्विजोत्तमा.॥५३॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चानुक्रमोदिताः। तत्र नद्यो मुनिश्रेष्ठा याः पिबन्ति तु ते सदा॥५४॥
सप्त प्रधानाः शतशस्तथान्याः क्षुद्रनिम्नगाः। गौरी कुमुद्वती चैव सन्ध्या रात्रिर्मनोजवा॥५५॥
ख्यातिश्च पुण्डरीका च सप्तैता वर्षनिम्नगाः। तत्रापि [2]वर्णैर्भगवान् पुष्कराद्यैर्जनार्दनः॥५६॥
ध्यानयोगै रुद्ररूप इज्यते यज्ञसन्निधौ। क्रौञ्चद्वीपः समुद्रेण दधिमण्डोदकेन तु॥५७॥
आवृतः सर्व्वतः क्रौञ्चद्वीपतुल्येन[3] मानतः। दधिमण्डोदकश्चापि शाकद्वीपेन संवृतः॥५८॥
क्रौञ्चद्वीपस्य [4]विस्तारद्द्विगुणेन द्विजोत्तमाः। शाकद्वीपेश्वरस्यापि [5]भव्यस्य सुमहात्मनः॥५९॥
सप्तैव तनयास्तेषां ददौ वर्षाणि सप्त सः। जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो [6]मनीरक.[7]॥६०॥
[8]कुसुमोदश्च मोदाकिः सप्तमश्च महाद्रुमः। तत्संज्ञान्येव तत्रापि सप्त वर्षाण्यनुक्रमात्॥६१॥
तत्रापि पर्व्वताः सप्त वर्षविच्छेदकारका। पूर्व्वस्तत्रोदयगिरिर्जलधारस्तथापरः॥६२॥
तथा रैवतकः श्यामस्तथैवाम्भोगिरिर्द्विजाः। आस्तिकेयस्तथा रम्यः केसरी पर्व्वतोत्तमः॥६३॥
शाकश्चात्र महावृक्षः सिद्धगन्धर्व्वसेवितः। [9]यत्पत्रवातसंस्पर्शाद्धाह्लादो जायते परः॥६४॥
तत्र पुण्या जनपदाश्चातुर्वर्ण्यसमन्विताः। निवसन्ति महात्मानो निरातङ्का निरामयाः॥६५॥
नद्यश्चात्र महापुण्याः सर्व्वपापभयापहाः। सुकुमारी कुमारी च नलिनी [10]रेणुका च या॥६६॥
इक्षुश्च[11] धेनुका[12] चैव गभस्ती सप्तमी तथा। [13]अन्यास्त्वयुतशस्तत्र क्षुद्रनद्यो द्विजोत्तमा॥६७॥

वहाँ के निवासी पुष्कल, पुष्कर धन्य और ख्यात हैं जो ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, और शूद्र वर्णों के समान है॥५२-५३½॥ उस द्वीप मे गौरी, कुमुद्वती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा, ख्याति और पुण्डरीका ये सात प्रधान नदियाँ हैं। इनके अतिरिक्त वहाँ सैकड़ों क्षुद्र नदियाँ हैं। वहाँ के निवासी सदा उन्हीं नदियों का जल पान करते हैं॥५४-५५½॥ वहाँ भी पुष्कर आदि वर्ण रुद्ररूप जनार्दन के लिए यज्ञ करते है। क्रौञ्चद्वीप अपने बराबर विस्तृत दधि समुद्र से वेष्टित है।॥५६-५७½॥ द्विजगण! दधि समुद्र भी शाकद्वीप से आवृत है, जिसका विस्तार क्रौञ्चद्वीप की अपेक्षा द्विगुण है॥५८½॥ शाकद्वीप के स्वामी महात्मा भव्य के सात ही पुत्र हैं जिनके नाम से जलद कुमार सुकुमार, मनीरक, कुसुमोद, मोदाकि और महाद्रुम ये सात वर्ष प्रसिद्ध हैं॥५९-६१॥ द्विजगण! शाकद्वीप में भी उदयगिरि, जलधार, रैवतक, श्याम, अम्भोगिरि, रमणीय आस्तिकेय और पर्वतोत्तम केसरी ये सात वर्षपर्वत हैं॥६२-६३॥ उस द्वीप में शाक का महावृक्ष सिद्ध-गन्धर्वों से सुसेवित है, जिसके पत्रों के वायु के स्पर्श से मनुष्य आनन्दित हो जाता है॥६४॥ उस द्वीप में चारों वर्णों से समन्वित पवित्र देश स्थित हैं। उन देशों में नीरोग निरापद महात्मा लोग वास करते हैं॥६५॥ वहाँ सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, रेणुका, इक्षु, धेनुका और गभस्ती नाम की पापनाशिनी पवित्र नदियाँ हैं॥६६½॥ महामुने! इनके अतिरिक्त दस हजार और क्षुद्र नदियाँ हैं॥६७॥

---

१ ख ०न्यामिष्याख्याश्च। २ ख वर्णैर्मग०। ३ ग ०पत्र्मेन। ४ क ग ०स्ताराद्द्विगु०। ५ क ग भविष्यस्य म०। ६ क मरीभिर। ग मणीवक। ७ क ०क। कुसोदर ममोदा०। ८ ग कुसुमाद मर्मो०। ९ क यत्र तद्वात०। १० क वेणुका। ग धनुका। ११ ख ०श्च मधुकश्चैव। १२ क विदुधा। १३ ख ०न्यास्तु शतश०।

महीधरास्तया सन्ति शतशोऽथ सहस्रश । ता पिबन्ति मुदा युक्ता जलदादिषु ये स्थिता ॥६८॥
वर्षेषु ये 'जनपदाश्चतुर्वर्णसमन्विता । नद्यश्चात्र महापुण्या स्वर्गादभ्येत्य मेदिनीम ॥६९॥
धर्म्महानिर्न' तेष्वस्ति न 'सहर्षो न शुक् तथा। मर्यादाव्युत्क्रमश्चापि तेषु देशेषु सप्तसु ॥७०॥
मगाश्च मागधाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा। मगा ब्राह्मणभूयिष्ठा मागधा क्षत्रियास्तु ते ॥७१॥
वैश्यास्तु मानसास्तेषा शूद्रा ज्ञेयास्तु मन्दगा । 'शाकद्वीपे स्थितैर्विष्णु सूर्य्यरूपधरो हरि ॥७२॥
यथोक्तैरिज्यते' सम्यक्कर्म्मभिर्नियतात्मभि । शाकद्वीपस्ततो विप्रा क्षीरोदेन समन्तत ॥७३॥
शाकद्वीपप्रमाणेन बलयेनेव वेष्टित । 'क्षीराब्धि सर्वतो विप्रा पुष्कराख्येन वेष्टित ॥७४॥
द्वीपेन शाकद्वीपात्तु द्विगुणेन समन्तत । पुष्करे सवनस्यापि 'महावीतोऽभवत सुत ॥७५॥
धातकिश्च तयोस्तद्वद्द्वे वर्षे नामसज्ञिते। 'महावीत तथैवान्यद्धातकीखण्डसज्ञितम ॥७६॥
एकश्चात्र महाभागा प्रख्यातो वर्षपर्व्वत । मानसोत्तरसज्ञो वै मध्यतो वलयाकृति ॥७७॥
योजनानां सहस्राणि ऊर्ध्वं पञ्चाशदुच्छ्रित'। तावदेव च विस्तीर्ण सर्वत परिमण्डल ॥७८॥
पुष्करद्वीपवलय मध्येन विभजन्निव। स्थितोऽसौ तेन विच्छिन्न जात' वर्षद्वय हि तत ॥७९॥
वलयाकारमेकैक तयोर्म्मध्ये महागिरि । दशवर्षसहस्राणि तत्र जीवन्ति मानवा ॥८०॥
निरामया विशोकाश्च रागद्वेषविवर्जिता । अधमोत्तमो न तेष्वास्तां न वध्यवधको द्विजा ॥८१॥
' नेर्ष्यासूया भय रोषो दोषो लोभादिक न च। महावीत बहिर्वर्षं धातकीखण्डमन्तत ॥८२॥

मानसोत्तरशैलस्य देवदैत्यादिसेवितम्। सत्यानृते न तत्रास्तां द्वीपे पुष्करसंज्ञिते ॥८३॥
न तत्र[1] नद्य[2] शैला वा द्वीपे वर्षद्वयान्विते। तुल्यवेषास्तु मनुजा देवैस्तत्रैकरूपिणः ॥८४॥
वर्णाश्रमाचारहीनं धर्म्माहरणवर्जितम्[3]। त्रयीवार्त्तादण्डनीतिशुश्रूषारहितं[4] च तत् ॥८५॥
वर्षद्वयं ततो विप्रा भौमस्वर्गोऽयमुत्तमः। सर्व्वस्य सुखदः कालो जरारोगविवर्जितः ॥८६॥
पुष्करे धातकीखण्डे महावीते च वै द्विजा.। न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम् ॥८७॥
तस्मिन्निवसति ब्रह्मा पूज्यमानः सुरासुरैः। [5]स्वादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवेष्टित ॥८८॥
समेन पुष्करस्यैव विस्तारान्मण्डलात्तथा[6]। एवं द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृता ॥८९॥
द्वीपश्चैव समुद्रश्च समानौ द्विगुणौ परौ। पयासि सर्व्वदा सर्व्वसमद्रेषु समानि वै ॥९०॥
न्यूनातिरिक्तता तेषा कदाचिन्नैव जायते। स्थालीस्थमग्निसंयोगादुद्रेकि सलिल यथा ॥९१॥
तथेन्दुवृद्धौ सलिलमम्भोधो मुनिसत्तमाः। अन्यूनानतिरिक्ताश्च वर्द्धन्त्यापो ह्रसन्ति च ॥९२॥
उदयास्तमने त्विन्दोः पक्षयो. शुक्लकृष्णयोः। दशोत्तराणि पञ्चैव अङगुलाना शतानि च ॥९३॥
अपां वृद्धिक्षयौ दृष्टौ [7]सामुद्राणा द्विजोत्तमाः। भोजनं पुष्करद्वीपे तत्र स्वयमुपस्थितम् ॥९४॥
भुञ्जन्ति षड्रसं विप्रा. प्रजाः सर्व्वाः सदैव हि। स्वादूदकस्य परितो[8] दृश्यते लोकसंस्थितिः ॥९५॥
द्विगुणा [9]काञ्चनी भूमि[10] सर्व्वजन्तुविवर्जिता। लोकालोकस्ततः शैलो योजनायुतविस्तृत ॥९६॥
उच्छ्रयेणापि तावन्ति [11]सहस्राण्यचलो हि सः। ततस्तम. समावृत्य त शैल सर्व्वत. स्थितम् ॥९७॥

हैं॥८२½॥ वर्षद्वययुक्त पुष्करद्वीप मे सत्य, मिथ्या, नदी और पर्वत नही हैं। वहाँ देवतुल्य मनुष्य एक ही स्वरूप के हैं॥८३-८४॥ दोनो वर्षो मे वर्णाश्रम-धर्म, पाप, वाणिज्य, दण्डनीति, शुश्रूषा आदि कुछ नही है॥८५॥ विप्रवृन्द! वे दोनो उत्तम भू-स्वर्ग है। वहाँ सदा सबके लिए सुखद समय रहता है, बुढापा और रोग का भय नही है॥८६½॥ पुष्कर द्वीप मे एक वट वृक्ष ब्रह्मा का उत्तम स्थान माना जाता है। उस स्थान मे ब्रह्मा सुर असुरो से पूजित होते हैं॥८७½॥ यह द्वीप अपने बराबर विस्तृत तथा मण्डलाकार स्वादिष्ठ जल वाले समुद्र से वेष्टित है। इस प्रकार सातो द्वीप सातो समुद्रो से आवृत है॥८८-८९॥ द्वीप और समुद समान हैं। सब समय सब समुद्रो,मे जल समान ही रहता है। ॥९०॥ उसमे कमी-बेशी कमी नही होती। पर जैसे पात्र मे स्थित जल अग्नि-सयोग से उफनने लगता है उसी तरह चन्द्रमा की वृद्धि होने पर समुद्र मे जल उफनता है। महामुने! शुक्ल-कृष्ण पक्ष मे क्रमश चन्द्रमा के उदय-अस्त होने पर समुद्रो का जल पाँच से दस अगुलि प्रमाण बढता घटता है॥९१-९३॥ विप्रवर! समुद्र जल का बढाव-घटाव तो ऐसा ही है। पुष्करद्वीप के निवासियो को सदा आप से आप छहा प्रकार के रस। से युक्त भोजन प्राप्त हो जाते हैं॥९४½॥ स्वादिष्ठ जल वाले समुद्र के चारो तरफ लोको की अवस्थिति है॥९५॥ फिर उससे द्विगुण सुवर्णमय भूमि है, जो जन्तुमात्र से रहित है। उसके बाद लोकालोक पर्वत दस हजार योजन विस्तृत और उतना ही ऊँचा भी है॥९६½॥ फिर अधकार उस पर्वत को सब ओर से ढक कर स्थित है॥९७॥ वह अधकार चारो तरफ अण्डकटाह

---

१ क ०त्र धर्म शैल वा द्वी०। २ ख ग धर्म्याह०। ३ क ०र्माहारविव०। ४ क तिशुत्तुपार०। ५ क ०केन द०। ६ क ०ण्डलस्य च। द्वी०। ७ क ख समुद्राणा। ८ ख ग पुरतो। ९ क तावर्त.। १० ख ०र्वदानुवि०। ११ क ०साण्यद०। ग ०सानाव०।

[1]तमश्चाण्डकटाहेन समन्तात् परिवेष्टितम्। पञ्चाशत्कोटिविस्तारा सेयमुर्वी द्विजोत्तमाः ॥९८॥
सहैवाण्डकटाहेन सद्वीपा समहीधरा। सेयं [2]धात्री विधात्री च सर्वभूतगुणाधिका।
आधारभूता जगतां सर्वेषां सा द्विजोत्तमाः ॥९९॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे समुद्रद्वीपपरिमाणवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

एकविंशोऽध्यायः

तत्रादौ पातालप्रमाणवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

विस्तार एष कथितः पृथिव्या मुनिसत्तमाः। सप्ततिस्तु सहस्राणि [3]तदुच्छ्रायोऽपि कथ्यते॥१॥
दशसाहस्रमेकैकं पातालं मुनिसत्तमाः। अतलं वितलं चैव[4] नितलं[5] सुतलं तथा॥२॥
तलातलं रसातलं पातालं चापि सप्तमम्। कृष्णा शुक्लारुणा पीता शर्करा[6] शैलकाञ्चनी॥३॥
भूमयो यत्र विप्रेन्द्रा वरप्रासादशोभिताः। तेषु [7]दानवदैतेयजातयः[8] शतशः[9] स्थिताः[10] ॥४॥

(ब्रह्मांड ?) से परिवेष्टित है। महामुने! पचास करोड योजन विस्तृत यह पृथ्वी अण्डकटाहो द्वीपो और पर्वतो से युक्त है। यही धात्री, विधात्री, प्राणिमात्र के गुणो से अधिक गुणवाली तथा संसार का आधार बनी हुई है॥९८ ९९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में समुद्र द्वीप परिमाण-वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त॥२०॥

अध्याय २१

पाताल के प्रमाण का वर्णन

लोमहर्षण बोले—मुनिवर! पृथिवी के विस्तार का वर्णन मैंने किया। उसकी सत्तर हजार योजन परिमित ऊँचाई के बारे में भी कहा जा रहा है॥१॥ मुनिवर! एक एक पाताल दस दस हजार योजनप्रमाण विस्तृत है। अतल वितल, नितल, सुतल, तलातल, रसातल, और पाताल—ये सात पाताल हैं जहाँ कृष्णा शुक्ला, अरुणा, पीता, शर्करा और शैलकाञ्चनी नामक पृथिवी उत्तम भवनो से सुशोभित है॥२-३½॥ उन स्थानो में अनेक

---

१ क तम राण्ड। २ ख ०त्री च सर्वेषां रा०। ३ क ० दुच्छ्रयोऽपि। ४ ख ०च तलातलं गभस्तिमत्। महातलाख्य सुतलं पा०। ५ ग ०लं च गभस्तिमत्। महाख्य सुतलं चाप्यथ पा०। ६ क ख ०रा पीत का०। ७ क ०दैत्यानां शत०। ग ०दैत्याना जात०। ८ ख ०तयस्तु महमा ।ना०। ९ ग दानगण ।ना०। १० ख ०ता।। निवसन्ति महाभागा पन०। ग ०ता। निवसन्ति महाभागा जात०।

नागानाञ्च महाङ्गानां ज्ञातयश्च द्विजोत्तमाः। स्वर्लोकादपि रम्याणि [1]पातालानीति नारद ॥५॥
प्राह स्वर्गसदोमध्ये पातालेभ्यो गतो दिवम्[2]। आह्लादकारिणः[3] शुभ्रा मणयो यत्र सुप्रभाः ॥६॥
नागाभरणभूषाश्च पातालं केन तत्समम्। दैत्यदानवकन्याभिरितश्चेतश्च[4] शोभिते ॥७॥
पाताले कस्य न प्रीतिर्विमुक्तस्यापि जायते। दिवार्करश्मयो यत्र प्रभास्तन्वन्ति नातपम् ॥८॥
शशिनश्च न शीताय निशि द्योताय केवलम्। भक्ष्यभोज्यमहापानमदमत्तैश्च भोगिभिः ॥९॥
यत्र न ज्ञायते कालो गतोऽपि दनुजादिभिः। वनानि नद्यो रम्याणि सरांसि कमलाकराः ॥१०॥
[5]पुंस्कोकिलादिलापाश्च मनोज्ञान्यम्बराणि च। भूषणान्यतिरम्याणि [6]गन्धाढ्यञ्चानुलेपनम् ॥११॥
वीणावेणुमृदङ्गानां निःस्वनाश्च सदा द्विजाः। एतान्यन्यानि रम्याणि भाग्यभोग्यानि दानवैः ॥१२॥
दैत्योरगैश्च भुज्यन्ते पातालान्तरगोचरैः। पातालानामधश्चास्ते विष्णोर्या तामसी तनुः ॥१३॥
शेषाख्या यद्गुणान् वक्तुं न शक्ता दैत्यदानवाः। योऽनन्तः पठ्यते [7]सिद्धैर्देवदेवर्षिपूजितः ॥१४॥
सहस्रशिरसा व्यक्तः स्वस्तिकामलभूषणः। फणामणिसहस्रेण यः स विद्योतयन् दिशः ॥१५॥
सर्वान् करोति निर्वीर्यान् हिताय जगतोऽसुरान्। मदाघूर्णितनेत्रोऽसौ यः सदैवैककुण्डलः ॥१६॥
किरीटी स्रग्धरो भाति साग्निश्वेत इवाचलः। नीलवासा मदोत्सिक्तः श्वेतहारोपशोभितः ॥१७॥

दैत्य-दानव रहते हैं ॥४॥ महासर्पों की बहुत-सी जातियाँ निवास करती है। पाताल स्वर्ग से भी रमणीय है ॥५॥ एक बार पाताल से स्वर्ग जाकर नारद ने देवसभा मे कहा—'सुखदायक अच्छी कान्तिवाली स्वच्छ मणियो से परिपूर्ण एवम् मणि-भूषणा से भूपित पाताल की उपमा किससे दी जा सकती है ? ॥६½॥ इतस्तत दैत्य-दानवो की कन्याओ से सुशोभित पाताल मे पहुँचकर किस मुक्त पुरुष को भी प्रीति उत्पन्न नहीं हो जाती ? ॥७½॥ वहाँ दिन म सूर्य की किरणें प्रकाश फैलाती हैं न कि धूप। रात्रि मे चन्द्रमा भी केवल प्रकाश देता है, ठड नहीं ॥८½॥ भक्ष्य भोज्य, मधु मदिरा से मत्त सर्प और दानव आदि कालगति का भी नहीं जानते ॥९½॥ पातालवासी दानव, दैत्य और सर्प वन, नदियाँ, रमणीय सरोवर कमलो से युक्त तालाब पुरुष कोकिला का आलाप, मनोहर वस्त्र, अतिरमणीय भूषण, पुष्प-चन्दन गन्ध, वीणा, बाँसुरी और मृदगो के शब्द आदि रमणीय पदार्थों का भाग करते हैं ॥१०-१२½॥ पातालो के नीचे विष्णु का शेष नामक शरीर है, जिसके गुण-गान करने म दैत्य-दानव भी समर्थ नहीं हैं ॥१३½॥ उसी शेष का नाम अनन्त है। वह सिद्ध, देवता और देवर्षियो से पूजित तथा व्यक्तरूप है। उसके हजार शिर तथा दिव्य आभूषण हैं। वह अपने फण की हजार मणियो से दिशाओ को प्रकाशित करता है ॥१४-१५॥ जगत्कल्याण के लिए वह सब असुरो को शक्ति-रहित बनाकर छोडता है। उसकी आँखें सदा मद से चञ्चल रहती हैं। मुकुट-कुण्डल-माला को धारण किये हुए शेष अग्नियुक्त श्वेतपर्वत के समान सुशोभित होता है ॥१६½॥ वह नीलवस्त्रधारी, मद से उन्मत्त, श्वेत हार से सुशोभित है ॥१७॥ आका-

---

१ ग ०लादीनि ना०। २ क ख दिवि। ३ क ०ण सर्वा भूमयात्र मनोहरा। नानाम०। ४ ख ०तश्च शतशो०। ५ व ०किलविरावैश्च म०। ६ ग गन्धाढ्य। ७ ग दैवैर्देवर्षि०। ८ ग ०जितै। स०।

साभ्रगङ्गाप्रपातोऽसौ कैलासाद्रिरिवोत्तमः[1]। लांगलासक्तहस्ताग्रो बिभ्रन्मुशलमुत्तमम् ॥१८॥
उपास्यते स्वयं कान्त्या यो वारुण्या च मूर्त्तया। कल्पान्ते यस्य वक्त्रेभ्यो विषानलशिखोज्ज्वलः ॥१९॥
संकर्षणात्मको रुद्रो निष्क्रम्यात्ति जगत्त्रयम्। स बिभ्रच्छिखरीभूतमशेषं क्षितिमण्डलम् ॥२०॥
आस्ते पातालमूलस्थः शेषोऽशेषसुरार्च्चितः। तस्य वीर्यं प्रभावश्च स्वरूपं रूपमेव च ॥२१॥
न हि वर्णयितुं शक्यं ज्ञातुं वा त्रिदशैरपि। यस्यैषा सकला पृथ्वी फणामणिशिखारुणा ॥२२॥
आस्ते कुसुममालेव कस्तद्वीर्यं वदिष्यति। यदा विजृम्भतेऽनन्तो मदाघूर्णितलोचनः ॥२३॥
तदा चलति भूरेषा साद्रितोयाधिकानना। गन्धर्वाप्सरसः सिद्धाः 'किन्नरोरगवारणाः ॥२४॥
नान्तं गुणानां गच्छन्ति ततोऽनन्तोऽयमव्ययः"। यस्य नागवधूहस्तैर्लापितं' हरिचन्दनम् ॥२५॥
मुहुः श्वासानिलायस्तं याति दिक्पटवासताम्। यमाराध्य पुराणर्षिर्गर्गो ज्योतींषि तत्त्वतः ॥२६॥
ज्ञातवान् सकलं चैव 'निमित्तपठितं फलम्'। तेनेयं 'नागवर्य्येण शिरसा विधृता मही।
बिभर्त्ति सकलाल्लोकान् स देवासुरमानुषान् ॥२७॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे पातालप्रमाणकीर्त्तनं नामैकविंशोऽध्याय ॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

तत्रादौ नरकवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

ततश्चानन्तरं विप्रा नरका रौरवादयः। पापिनो येषु [1]पात्यन्ते ताञ्छृणुध्वं द्विजोत्तमाः ॥१॥
रौरवः [2]शौकरो [3]रोधस्तानो[4] [5]विशसनस्तथा। महाज्वालस्तप्तकुड्यो[6] महालोभो विमोहनः ॥२॥
रुधिरान्धो[7] वसातप्तः [8]कृमीशः कृमिभोजनः। असिपत्रवनं कृष्णो [9]लालाभक्षश्च दारुणः ॥३॥
तथा पूयवहः पापो वह्निज्वालो[10] ह्यधःशिराः। सदंशः कृष्णसूत्रश्च [11]तमश्चावीचिरेव च ॥४॥
श्वभोजनोऽथाप्रतिष्ठोमावीचिश्च तथापरः। इत्येवमादयश्चान्ये नरका भृशदारुणाः ॥५॥
यमस्य विषये घोराः शस्त्राग्निविषदर्शिनः। पतन्ति येषु पुरुषाः पापकर्मरताश्च ये ॥६॥
कूटसाक्षी तथा सम्यक् पक्षपातेन यो वदेत्। [12]यश्चान्यदनृतं वक्ति स नरो याति रौरवम् ॥७॥
भ्रूणहा [13]पुरहन्ता च गोघ्नश्च मुनिसत्तमाः। यान्ति ते [14]रौरवं घोरं [15]यश्चोच्छ्वासनिरोधकः ॥८॥
सुरापो [16]ब्रह्महा हर्ता सुवर्णस्य च शूकरे[17]। प्रयाति [18]नरके यश्च तैः संसर्गमुपैति वै ॥९॥
राजन्यवैश्यहा चैव तथैव [19]गुरुतल्पगः। तप्तकुम्भे [20]स्वसृगामी हन्ति राजभटञ्च यः ॥१०॥

अध्याय २२

नरकों का वर्णन

लोमहर्षण बोले—विप्रवृन्द ! अब इसके बाद रौरव आदि नरकों के बारेमें सुनिये, जिनमें पापी लोग गिराये जाते हैं ॥१॥ द्विजश्रेष्ठो ! रौरव, शौकर, रोधस्तान, विशसन, महाज्वाल, तप्तकुड्य, महालोभ, विमोहन ॥२॥ रुधिरान्ध, वसातप्त, कृमीश, कृमिभोजन असिपत्रवन, कृष्ण, लालाभक्ष, दारुण ॥३॥ पूयवह, पाप, वह्निज्वाल अधःशिरा, सदंश, कृष्णसूत्र, तम, आवीचि ॥४॥ श्वभोजन, अप्रतिष्ठ मावीचि आदि और दूसरे भी अत्यन्त भयंकर नरक हैं ॥५॥ यम के राज्य में पाप-कर्म में निरत शस्त्र अग्नि तथा विष का प्रयोग करने वाले भयानक पुरुष नरकों में गिरते हैं ॥६॥ जो मनुष्य झूठी गवाही देता, पक्षपात करता है, मिथ्या बोलता है, वह रौरव नरक जाता है ॥६॥ मुनिवर ! गर्भपात, नगर-ध्वंस तथा गोहत्या करने वाले और गला घोटकर हत्या करने वाले मनुष्य भयंकर रौरव नरक में जाते हैं ॥८॥ मद्यपान करने वाले, ब्रह्महत्या करने वाले, सुवर्ण चुराने वाले तथा उनके संसर्ग करने वाले मनुष्य शौकर नरक में जाते हैं ॥९॥ क्षत्रिय, वैश्य तथा राजदूत के हत्यारे, गुरुपत्नीगामी, और

---

१ क पच्यन्ते। २ क ख शूकरो। ३ ख रोध शीलो विश्वस०। ४ क ०स्तालो वि०। ५ ग ०शानसस्त०। ६ ख ०प्तकुम्भो म०। ७ ख ग ०न्धो वैतरणी कृ०। ८ क कृमिश। ख कृमिश। ९ क ०क्ष सुदा०। १० क वह्निन्तोऽप्यध। ११ क ०श्चाशूचि०। १२ क यस्तावद०। १३ ख गुरुहन्ता। १४ क निरय। १५ ख यश्च श्वास०। १६ क ०ह्महत्यावान्सुव०। १७ क मूषक। १८ क नरक। १९ क ०ग। ये कुञ्जेषु मृगानन्यान्घ्नन्ति राजभटाश्च ये। सर्वविक्रयकर्ता वै पाप के। २० ख स्वसागा०।

•मधुहा¹ ग्रामहन्ता च याति ²वैतरणीं नरः। रेतःपानादिकर्त्तारो ³मर्यादाभेदिनश्च ये⁴॥२३॥
ते कृच्छ्रे यान्त्यशौचाश्च कुहकाजीविनश्च ये। असिपत्रवनं ⁵याति वनच्छेदी वृथैव यः॥२४॥
औरभ्रिका मृगव्याधा वह्निज्वाले पतन्ति वै। यान्ति तत्रैव ते विप्रा⁶ यश्चापाकेषु वह्निदः॥२५॥
व्रतोपलोपको यश्च स्वाश्रमाद्विच्युतश्च यः⁷। संदंशयातनामध्ये पततस्तावुभावपि॥२६॥
दिवा स्वप्नेषु ⁸स्यन्दन्ते ये नरा ब्रह्मचारिणः। पुत्रैरध्यापिता ये तु ते पतन्ति श्वभोजने॥२७॥
एते चान्ये च नरकाः शतशोऽथ सहस्रशः। येषु दुष्कृतकर्माणः पच्यन्ते यातनागताः॥२८॥
तथैव पापान्येतानि तथान्यानि सहस्रशः। भुज्यन्ते जातिपुरुषैर्नरकान्तरगोचरैः⁹॥२९॥
वर्णाश्रमविरुद्धञ्च कर्म कुर्वन्ति ये नराः। कर्मणा मनसा वाचा निरयेषु पतन्ति ते॥३०॥
अधःशिरोभिर्दृश्यन्ते नारकैर्दिवि देवताः। देवाश्चाधोमुखान् सर्वानधः पश्यन्ति नारकान्॥३१॥
स्थावराः ¹⁰कृमयोऽब्जाश्च पक्षिणः पशवो नराः। धार्मिकास्त्रिदशास्तद्वन्मोक्षिणश्च यथाक्रमम्॥३२॥
सहस्रभागः¹¹ प्रथमाद्द्वितीयोऽनुक्रमास्तथा। सर्वे ह्येते महाभागा यावन्मुक्तिसमाश्रयाः॥३३॥
यावन्तो जन्तवः स्वर्गे तावन्तो नरकौकसः। पापकृद्याति नरकं प्रायश्चित्तपराङ्मुखः॥३४॥
पापानामनुरूपाणि प्रायश्चित्तानि यद्यथा। तथा तथैव संस्मृत्य प्रोक्तानि परमर्षिभिः॥३५॥

जाते हैं। वीर्य आदि का पान करने वाले मर्यादा का भेदन करने वाले अपवित्रता से रहनेवाले और छल से आजीविका करने वाले कृच्छ नरक में जाते हैं। ॥२३॥ व्यर्थ ही वृक्षों का छेदन करने वाले असिपत्रवन नरक में जाते हैं॥२४॥ भेड से जीविका कमाने वाले मृगों का शिकार करने वाले वह्निज्वाल नरक में जाते हैं। पाकरहित भोजन में भी अग्नि का प्रयोग करने वाले मनुष्य भी उसी नरक में जाते हैं (?) ॥२५॥ व्रत का लोप करने वाले और अपने आश्रम से च्युत होने वाले संदंशयातना नरक में जाते हैं॥२६॥ जिन ब्रह्मचारियों को दिन में स्वप्नदोष होता है व तथा पुत्रों से पढ़ने वाले मनुष्य श्वभोजन नरक में जाते है॥२७॥ इनके अतिरिक्त और दूसरे भी सैंकड़ों-हजारों नरक हैं जिनमें दुष्कर्म करने वाले लोग पकाये जाते है॥२८॥ इस तरह नरकगामी जीव हजारों पापों का फल भोगते हैं। कर्म मन और वाणी से वर्णाश्रम विरुद्ध कर्म करने वाले मनुष्य नरक में पड़ते हैं॥२९ ३०॥ नीचे सिर वाले नरकवासी जीव स्वर्गगत देवताओं को देखते हैं और देवता भी उन अधोमुख नारकियों को नीचे देखते हैं॥३१॥ महाभाग ऋषिगण स्थावर कृमि जलजन्तु पक्षी पशु मनुष्य धर्मात्मा तथा मुक्त पुरुष—ये सब क्रमशः उत्तरोत्तर योनियों को प्राप्त करते हुए मोक्ष पाने तक ही रहते हैं॥३२ ३३॥ जितने जन्तु स्वर्ग में हैं उतने ही नरक में भी हैं। प्रायश्चित्त न करने वाले पापी मनुष्य नरक में जाते हैं ॥३४॥ पापों के अनुरूप प्रायश्चित्तों के बारे में मुनियों ने चिंतन करके बतलाया है॥३५॥ विप्रवर! स्वायंभुव आदि मनुओं ने भारी

---

१ क. मधुहा। २ क. ०णीं द्विजा। मूल्यन सध्याक०। ३ क. ०दानिदिताश्च। ४ ग. ये। य कृष्ण या०। ५ ख. यति। ६ क. ०प्रा य श्वपा०। ७ क. य। स दश पापाद्भिश्च व्रतलता०। ८ क. स्पन्दन्ते। ग. स्कन्दन्ते।
९ क. ख. ०कागतगो०। १० क. ०मय स्थाता प०। ११ क. ०समागतिप्रथमादद्वित यात्क्रमास्तथा। ख. ०सभागात्प्रथमा द्वितीया तु क्रमास्तया।

माध्वीविक्रयकृद्वध्यपाल[1] केसरविक्रयी[2]। तप्तलोहे पतन्त्येते यश्च भक्तं परित्यजेत् ॥११॥
सुता स्नुषाञ्चापि[3] गत्वा महाज्वाले निपात्यते। अवमन्ता गुरूणां यो यश्चाक्रोष्टा नराधमः[4] ॥१२॥
वेददूषयिता यश्च वेदविक्रयकश्च यः। अगम्यगामी यश्च स्यात् ते यान्ति शबलं द्विजा ॥१३॥
चौरो विमोहे पतति मर्य्यादादूषकस्तथा। देवद्विजपितृद्वेष्टा रत्नदूषयिता च यः ॥१४॥
स याति कृमिभक्ष्ये वै कृमीशे[5] तु दुरिष्टिकृत्। पितृदेवातिथीन् यस्तु पर्य्यश्नाति नराधमः ॥१५॥
लालाभक्ष्ये स यात्युग्रे शरकर्त्ता च वेधके। करोति कर्णिनो[6] यश्च यश्च खड्गादिकृन्नरः ॥१६॥
प्रयान्त्येते विशसने नरके भृशदारुणे। असत्प्रतिग्रहीता च नरके यात्यधोमुखे ॥१७॥
अयाज्ययाजकस्तत्र तथा नक्षत्रसूचकः[7]। कृमिपूये नरश्चैको याति मिष्टान्नभुक्[8] सदा ॥१८॥
लाक्षामांसरसानाञ्च तिलानां लवणस्य च। विक्रेता ब्राह्मणो याति तमेव नरकं द्विजाः ॥१९॥
मार्जारकुक्कुटच्छागश्वराहविहङ्गमान्[9]। पोषयन्नरकं याति तमेव द्विजसत्तमा ॥२०॥
रङ्गोपजीवी कैवर्त्तः कुण्डाशी गरदस्तथा। सूची माहिषिकश्चैव पर्व्वगामी च यो द्विजः ॥२१॥
अगारदाही[10] मित्रघ्न[11] शकुनिग्रामयाजकः। रुधिरान्धे पतन्त्येते सोमं विक्रीणते च ये ॥२२॥

भगिनीगामी मनुष्य तप्तकुम्भ नरक में जाते हैं ॥१०॥ मद्य तथा केसर-विक्रेता, वध करने योग्य व्यक्ति का रक्षक एवम् भक्त-त्यागी मनुष्य तप्तलोह नरक में जाते हैं ॥११॥ पुत्री तथा पुत्रवधू गामी एवम् गुरु निन्दक तथा गुरु का अपमान करने वाले नीच मनुष्य महाज्वाल नरक में गिराये जाते हैं ॥१२॥ वेद विक्रेता, वेद निन्दक तथा अगम्यागमन करने वाले मनुष्य शबल नरक में जाते हैं ॥१३॥ चोर, मर्यादानाशक, रत्ननाशक, देवता, ब्राह्मण तथा पिता के द्रोही मनुष्य विमोह नरक में जाते हैं ॥१४॥ दूषित यज्ञ करने वाले तथा पिता, देवता और अतिथि का निरादर करने वाले नीच मनुष्य कृमिभक्ष्य या कृमीश नरक में जाते हैं ॥१५॥ विषाक्त बाणों के निर्माता मनुष्य लालाभक्ष्य या वेधक नरक में जाते हैं। पिशुन (चुगलखोर) तथा तलवार आदि के निर्माता मनुष्य अत्यन्त भयानक विशसन नरक में जाते हैं ॥१६॥ अनुचित दान लेने वाले, अनधिकारी व्यक्तियों से यज्ञ कराने वाले तथा नक्षत्रों की सूचना देने वाले (ज्योतिष के व्यवसायी) मनुष्य अधोमुख नरक में जाते हैं ॥१७॥ सदा मिष्टान्न खाने वाले मनुष्य कृमिपूय नरक में जाते हैं ॥१८॥ लाख, मांस, रस, तिल तथा लवण विक्रेता ब्राह्मण भी उसी नरक में जाते हैं ॥१९॥ द्विजवर्य ! बिलाव, मुर्गे, बकरे, अश्व, सूकर और पक्षी को पालने वाले मनुष्य भी उसी नरक में जाते हैं ॥२०॥ रंग के द्वारा जीविकोपार्जन करने वाले, कैवर्त (दास या धीवर), कुण्ड (जार-पुत्र) के अन्न खानेवाले, विष देने वाले, सिलाई से जीविका अर्जित करने वाले, भैंस से जीवन निर्वाह करने वाले और पर्वकाल में स्त्री-प्रसंग करने वाले ब्राह्मण, गृह जलाने वाले, मित्र को मारने वाले, शकुन विद्या को जानने वाले, ग्रामयाजक, और सोम-विक्रेता रुधिरान्ध नरक में जाते हैं ॥२१-२२॥ मधु हरण करने वाले तथा ग्राम जलाने वाले मनुष्य वैतरणी नरक में

---

१ ग [illegible]। २ ग [illegible]। ३ क [illegible]। ४ ग [illegible] भगिनी [illegible]। ५ क [illegible]। ६ क ग [illegible]। ७ क [illegible]। ८ क [illegible]। ९ क [illegible]। १० क ग [illegible]। ११ क ग [illegible]। १२ क [illegible]। १३ क ग [illegible]

मधुहा' ग्रामहन्ता च याति वैतरणीं नरः। रेतःपानादिकर्त्तारो मर्य्यादाभेदिनश्च ये॥२३॥
ते कृच्छ्रे यान्त्यशौचाश्च कुहकाजीविनश्च ये। असिपत्रवनं याति वनच्छेदी वृथैव यः॥२४॥
औरभ्रिका मृगव्याधा वह्निज्वाले पतन्ति वै। यान्ति तत्रैव ते विप्रा यश्चापाकेषु वह्निदः॥२५॥
व्रतोपलोपको यश्च स्वाश्रमाद्विच्युतश्च यः। सन्दंशयातनामध्ये पततस्तावुभावपि॥२६॥
दिवा स्वप्नेषु स्यन्दन्ते ये नरा ब्रह्मचारिणः। पुत्रैरध्यापिता ये तु ते पतन्ति श्वभोजने॥२७॥
एते चान्ये च नरकाः शतशोऽथ सहस्रशः। येषु दुष्कृतकर्म्माणः पच्यन्ते यातनागताः॥२८॥
तथैव पापान्येतानि तथान्यानि सहस्रशः। भुज्यन्ते जातिपुरुषैर्नरकान्तरगोचरैः॥२९॥
वर्णाश्रमविरुद्धञ्च कर्म्म कुर्व्वन्ति ये नराः। कर्म्मणा मनसा वाचा निरयेषु पतन्ति ते॥३०॥
अधःशिरोभिर्दृश्यन्ते नारकैर्दिवि देवताः। देवाश्चाधोमुखान् सर्व्वानधः पश्यन्ति नारकान्॥३१॥
स्थावराः क्रमयोऽब्जाश्च पक्षिणः पशवो नरा। धार्म्मिकास्त्रिदशास्तद्वन्मोक्षिणश्च यथाक्रमम्॥३२॥
सहस्रभागः प्रथमाद्द्वितीयोऽनुक्रमात्तथा। सर्व्वे ह्येते महाभागा यावन्मुक्तिसमाश्रयाः॥३३॥
यावन्तो जन्तवः स्वर्गे तावन्तो नरकौकसः। पापकृद्याति नरकं प्रायश्चित्तपराङमुखः॥३४॥
पापानामनुरूपाणि प्रायश्चित्तानि यद्यथा। तथा तथैव संस्मृत्य प्रोक्तानि परमर्षिभिः॥३५॥

जाते हैं। वीर्य आदि का पान करने वाले, मर्यादा का भेदन करने वाले, अपवित्रता से रहनेवाले और छल से आजीविका करने वाले कृच्छ्र नरक मे जाते हैं। ॥२३½॥ व्यर्थ ही वृक्षा का छेदन करने वाले असिपत्रवन नरक म जाते हैं॥२४॥ भेड़ से जीविका कमाने वाले, मृगों का शिकार करने वाले वह्निज्वाल नरक मे जाते है। पाकरहित भाजन मे भी अग्नि का प्रयोग करने वाले मनुष्य भी उसी नरक मे जाते है (?) ॥२५॥ व्रत का लोप करने वाले और अपने आश्रम से च्युत होने वाले सदंशयातना नरक म जाते है॥२६॥ जिन ब्रह्मचारियों को दिन मे स्वप्नदोष होता है वे तथा पुत्रो से पढने वाले मनुष्य श्वभोजन नरक म जाते है॥२७॥ इनके अतिरिक्त और दूसरे भी सैंकडों-हजारों नरक हैं, जिनमे दुष्कर्म करने वाले लोग पकाये जाते है॥२८॥ इसी तरह नरकगामी जीव हजारों पापों का फल भोगते हैं। कर्म, मन और वाणी से वर्णाश्रम-विरुद्ध कर्म करने वाले मनुष्य नरक म पडते हैं॥२९-३०॥ नीचे सिर वाले नरकवासी जीव स्वर्गगत देवताओं को देखते है और देवता भी उन अधोमुख नारकीयों को नीचे देखते हैं॥३१॥ महाभाग ऋषिगण, स्थावर कृमि, जलजन्तु पक्षी, पशु मनुष्य धर्मात्मा तथा मुक्त पुरुष—ये सब क्रमश उत्तरोत्तर योनियों को प्राप्त करते हुए मोक्ष पाने तक ही रहते हैं॥३२-३३॥ जितने जन्तु स्वर्ग मे हैं, उतने ही नरक मे भी है। प्रायश्चित्त न करने वाले पापी मनुष्य नरक म जाते हैं ॥३४॥ पापों के अनुरूप प्रायश्चित्तों के बारे मे मुनियो ने चिन्तन करके बतलाया है॥३५॥ विप्रवर! स्वायंभुव आदि मनुओं ने भारी

---

१ क बन्धुहा। २ क ०णी द्विजा। मूल्यन सध्याव०। ३ क ०दानिन्दिताश्च। ४ ग ये। ये कृष्णे या०। ५ख। यान्ति। ६ क ०प्रा य श्वपा०। ७ क य। सदृश पापमाश्रिय व्रतस्ता०। ८क स्पन्दन्त। ग स्वन्दन्ते। ९ क ख ०कार्णवगो०। १० क ०मय -स्याता प०। ११ क ०समार्गात्प्रथमाद्द्वितं यात्क्रमशस्तथा। ख ०भ्रभागात्प्रथमा द्वितीया तु क्रमात्तया।

पापे गुरूणि गुरुणि स्वल्पान्यल्पे च तद्विदः। प्रायश्चित्तानि[1] विप्रेन्द्रा जगुः स्वायम्भुवादयः॥३६॥
प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्म्मात्मकानि वै। यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम्॥३७॥
कृते पापेऽनुतापो वै यस्य पुंसः प्रजायते। प्रायश्चित्तन्तु तस्यैकं हरिसंस्मरणं परम्॥३८॥
प्रातर्निशि तथा सन्ध्यामध्याह्नादिषु संस्मरन्। नारायणमवाप्नोति सद्यः पापक्षयान्नरः॥३९॥
विष्णुसंस्मरणात् क्षीणसमस्तक्लेशसञ्चयः। मुक्तिं प्रयाति भो विप्रा विष्णोस्तस्यानुकीर्त्तनात्॥४०॥
वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु। तस्यान्तरायो विप्रेन्द्रा देवेन्द्रत्वादिकं फलम्॥४१॥
क्व नाकपृष्ठगमनं पुनरावृत्तिलक्षणम्। क्व जपो वासुदेवेति मुक्तिबीजमनुत्तमम्॥४२॥
तस्मादहर्निशं विष्णुं संस्मरन् पुरुषो द्विज। न याति नरकं शुद्धः संक्षीणाखिलपातकः॥४३॥
मनःप्रीतिकरः स्वर्गो नरकस्तद्विपर्य्ययः। नरकस्वर्गसंज्ञे वै पापपुण्ये द्विजोत्तमाः॥४४॥
वस्त्वेकमेव दुःखाय सुखायेर्ष्योदयाय च। कोपाय च यतस्तस्माद्वस्तु दुःखात्मकं कुतः॥४५॥
तदेव प्रीतये भूत्वा पुनर्दुःखाय जायते। तदेव कोपाय यतः प्रसादाय च जायते॥४६॥
तस्माद्दुःखात्मकं नास्ति न च किञ्चित्सुखात्मकम्। मनसः परिणामोऽयं सुखदुःखादिलक्षणः॥४७॥
ज्ञानमेव परं ब्रह्माज्ञानं बन्धाय चेष्यते। ज्ञानात्मकमिदं विश्वं न ज्ञानाद्विद्यते परम्॥४८॥

पाप के भारी प्रायश्चित्त तथा अल्प पाप के अल्प प्रायश्चित्त बताए हैं॥३६॥ तपस्या, सुकर्म, आदि प्रायश्चित्त हैं। पर समस्त प्रायश्चित्तो के बाद श्रीकृष्ण का स्मरण करना उत्कृष्ट है॥३७॥ जिस पुरुष को पाप करने पर अनुताप होता है, उसका एकमात्र प्रायश्चित्त है—श्रीहरि का स्मरण॥३८॥ प्रातःकाल, सन्ध्याकाल, रात तथा दिन मे नारायण का स्मरण करने वाले मनुष्य का सद्य पाप-क्षय हो जाता है॥३९॥ विप्रवृन्द! विष्णु के सम्यक् स्मरण से समस्त क्लेशो को नष्ट कर मनुष्य हरि-कीर्तन के बल मे मुक्त हो जाता है॥४०॥ जिस मनुष्य का मन, जप होम-पूजा के द्वारा वासुदेव म लगता है उसे विघ्न बाधा नही सताती, तथा इन्द्र-पद भी उसके लिए तुच्छ है॥४१॥ कहाँ पुनर्जन्म-दायक स्वर्गगमन और कहाँ सर्वोत्तम मोक्षदायक वासुदेव का जप!॥४२॥ इसलिए दिनरात विष्णु का स्मरण करने वाला शुद्ध ब्राह्मण, जिसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, नरक नही जाता है॥४३॥ स्वर्ग मन मे प्रीति उत्पन्न करने वाला है और नरक उसका प्रतिकूल (अर्थात् दुःखदायक है)। द्विजवर्य! पाप-पुण्य नरक-स्वर्ग संज्ञा वाले हैं॥४४॥ एक ही वस्तु दुःख, सुख, ईर्ष्या और क्रोध उत्पन्न करती है। इसलिए कोई पदार्थ दुःखसंज्ञक नही है॥४५॥ जो पदार्थ सुख देकर दुःख देता है, वही फिर क्रोध और प्रसन्नता उत्पन्न करता है। इसलिए दुःख सुख नामक कोई चीज नही है॥४६½॥ सुख दुःख होना—यह तो मन का परिणाम है। ज्ञान ही परब्रह्म है और अज्ञान बन्धन मे डालता है॥४७½॥ यह संसार ज्ञान रूप है और ज्ञान से बढ़कर कुछ नही है॥४८॥ विप्रवृन्द! विद्याओ से जानने योग्य पदार्थों मे ज्ञान ही को धारण करना चाहिये।

---

१ ख ०नि मो विप्रा ज०। २ ख ०पे च ता०। ३ क कृष्णानुस्मरण। ४ ख ग ०क्षय नर। ५ ख ग ०तिस्वर्गाप्तिस्तस्य विघ्नोऽनुमीयते। वा०। ६ क ०म्। नाकपृष्ठादिग०। ग ०म्। आना०। ७ क ०णादेपपा०। ८ ख ग ०क्षणम्। ज्ञा०। ९ क ख ब्रह्माज्ञा०। १० ख ०य नेष्य०। ११ ख ज्ञानमेव पर वि०। ख ज्ञान च कामद वि०।

...विद्धि हि भो विप्रा ज्ञानमेवावधार्यताम्। एवमेतन्मयाख्यातं भवता मण्डलं भुवः ॥४९॥
...नि च सर्वाणि तथैव नरका द्विजाः। समुद्राः पर्वताश्चैव द्वीपा वर्षाणि निम्नगाः
...त् सर्वमाख्यातं किं भूयः श्रोतुमिच्छथ॥　　॥५०॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे पातालनरककीर्त्तनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

तत्रादौ भूर्भुवःस्वरादिवर्णनम्

मुनय ऊचुः

...ितं भवता सर्वमस्माकं सकलं तथा। भुवर्लोकादिकाँल्लोकान् श्रोतुमिच्छामहे वयम्॥१॥
...व ग्रहसंस्थानं प्रमाणानि यथा तथा। समाचक्ष्व महाभाग यथावल्लोमहर्षण॥२॥

लोमहर्षण उवाच

...विचन्द्रमसोर्यावन्मयूखैरवभास्यते। ससमुद्रसरिच्छैला तावती पृथिवी स्मृता॥३॥
...वत्प्रमाणा पृथिवी विस्तारपरिमण्डला। नभस्तावत्प्रमाणं हि विस्तारपरिमण्डलम्॥४॥

इस प्रकार मैंने आपसे पृथ्वी मण्डल अखिल पाताल तथा नरकों का वर्णन किया॥४९॥ द्विजगण! ...पर्वत द्वीप वर्ष तथा नदियों के बारे में भी संक्षेप से सब कुछ कह दिया। अब आप फिर क्या सुनना ...ते हैं? ॥५०॥

श्री ब्रह्म महापुराण में पाताल-नरक-कीर्तन नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त॥२२॥

अध्याय २३

भूर्, भुवर् और स्वर् आदि लोकों का वर्णन

मुनियों ने कहा—आपने सब कुछ हमसे कहा। अब हम भुवः स्वः आदि लोकों के बारे में सुनना ...ते हैं॥१॥ हे महाभाग ग्रहों के स्थिति तथा प्रमाण के सम्बन्ध में भी यथावत् वर्णन कराइए? ॥२॥

लोमहर्षण बोले—सूर्य चन्द्रमा के किरणों से जहाँ तक समुद्र नदी और पर्वत सहित पृथिवी प्रकाशित ...ती है वहाँ तक उसका प्रमाण है॥३॥ विस्तार और मण्डल सहित पृथ्वी का जितना परिमाण है उतना ही...

---

१ ख. हि य विप्रा ज्ञानं तथा परं मतम्। २ क. म ०च्युत। इ०। ३ ख. ०दिवर्गान्सप्ता०। ४ ख. नव ग्रहाणां सं०। ५ क. ०वत्किरणैर०।

भूमेर्योजनलक्षे तु सौरं विप्रास्तु मण्डलम्। लक्षे दिवाकराच्चापि मण्डलं शशिनः स्थितम्॥
पूर्णे शतसहस्रे तु योजनानां निशाकरात्। नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्टात् प्रकाशते॥
द्विलक्षे चोत्तरे विप्रा बुधो नक्षत्रमण्डलात्। तावत् प्रमाणभागे तु बुधस्याप्युशना स्थित॥
अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तत्प्रमाणे व्यवस्थित। लक्षद्वयेन भौमस्य स्थितो देवपुरोहित॥
सौरिर्बृहस्पतेरूर्ध्वं द्विलक्षे समवस्थित। सप्तर्षिमण्डलं तस्मात्लक्षमेकं द्विजोत्तमा॥
ऋषिभ्यस्तु सहस्राणां शतादूर्ध्वं व्यवस्थित। मेढीभूत समस्तस्य ज्योतिश्चक्रस्य वै ध्रुव॥
त्रैलोक्यमेतत् कथितं सक्षेपेण द्विजोत्तमा। 'इज्याफलस्य 'भरेषा 'इज्या चात्र प्रतिष्ठिता'॥
ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोको यत्र ते कल्पवासिन। एकयोजनकोटी' तु' महर्लोको विधीयते॥
द्वे कोट्यौ तु जनो लोको यत्र ते ब्रह्मण सुता। सनन्दनाद्या 'कथिता'' विप्राश्चामलचेतस ''॥
चतुर्गुणोत्तर''चोदूर्ध्वं जनलोकात्तप स्मृतम्''। वैराजा यत्र ते देवा स्थिता देहविवर्जिता॥
षड्गुणेन तपोलोकात् सत्यलोको विराजते। ''अपुनर्मारक'' यत्र सिद्धादिमुनिसेवितम्॥
पादगम्यं तु यत् किञ्चिद्वस्त्वस्ति पृथिवीमयम्। स भूर्लोक समाख्यातो विस्तारोऽस्य मयोदित॥
भूमिसूर्यान्तरं यत्तु सिद्धादिमुनिसेवितम्। भुवर्लोकस्तु सोऽप्युक्तो द्वितीयो मुनिसत्तमा॥

परिमाण विस्तार और परिमण्डल सहित आकाश का म है॥४॥ विप्रवृन्द ! पृथिवी से एक लाख योजन पर सूर्य मण्डल स्थित है और सूर्य से उतना ही दूर पर चन्द्र मण्डल स्थित है॥५॥ चन्द्रमा से एक लाख ऊपर सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल प्रकाशित होता है॥६॥ नक्षत्र मण्डल से दो लाख योजन उत्तर बुध मण्डल है बुध से उतना ही दूर उत्तर शुक्र स्थित है॥७॥ शुक्र से उतनी ही दूरी पर मंगल म स्थित है। मंगल से दो योजन दूरी पर बृहस्पति स्थित है॥८॥ बृहस्पति से दो लाख योजन ऊपर शनि स्थित है। द्विजश्रेष्ठो ! न एक लाख योजन ऊपर सप्तर्षि मण्डल है॥९॥ सप्तर्षि मण्डल से एक लाख योजन ऊपर समस्त ज्योतिश्चक्र का बना हुआ ध्रुव स्थित है॥१०॥ विप्रवर ! संक्षेप से तीनों लोकों का वर्णन मैंने कर दिया। यज्ञफल का यह भूमि यज्ञ यहीं प्रतिष्ठित हुआ है। ध्रुव से ऊपर महर्लोक है जहाँ कल्पवासी जन रहते हैं॥११॥ महर्लोक करोड़ एक करोड़ योजन है। दो करोड़ योजन प्रमाण जनलोक है जहाँ ब्रह्मा के निर्मल चित्त वाले सनन्दन आदि पुत्र हैं॥१२ १३॥ जनलोक से चौगुना ऊपर तपोलोक है जहाँ वैराज नामक देवता शरीर रहित होकर स्थित हैं॥ तपोलोक से छह गुना ऊपर सत्यलोक विराजमान है जहाँ सिद्ध आदि मुनियों से सेवित कहलाता है॥ पैरों से गमन करने योग्य जो कुछ भी पार्थिव वस्तु है वह भूर्लोक कहलाता है। इसका विस्तार मैं बता चु ॥१६॥ मुनिश्रेष्ठो ! सिद्ध आदि मुनियों से सेवित पृथ्वी और सूर्य के अन्तर तथा भुवर्लोक के बारे में भी मैं कह चु

र्यंतर यत्तु नियुतानि चतुर्दश। स्वर्लोक सोऽपि कथितो 'लोकसंस्थानचि तके '॥१८॥
मतत कृतक विप्रैश्च परिपठ्यते। जनस्तपस्तथा सत्यमिति चाकृतक त्रयम॥१९॥
तयो' मध्ये महर्लोक इति स्मृत। शून्यो भवति कल्पान्ते योऽत' न च विनश्यति॥२०॥
र महालोका मया व कथिता द्विजा। पातालानि च सप्तैव ब्रह्माण्डस्यैव विस्तर॥२१॥
कटाहेन तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा। कपित्थस्य यथा बीज सर्वतो वै समावृतम॥२२॥
णे पयसा द्विजाश्चाण्डञ्च तदावृतम'। स चाम्बुपरिवारोऽसौ वह्निना वेष्टितो बहि॥२३॥
तु वायुना वायुर्विप्रास्तु नभसावृत'। आकाशोऽपि मुनिश्रेष्ठा महता परिवेष्टित॥२४॥
राण्यनेतानि विप्राश्चैतानि सप्त वै। महान्तञ्च समावृत्य प्रधान समवस्थितम॥२५॥
स्य न तस्यान्त सख्यान चापि विद्यते। तदनन्तमसख्यात प्रमाणेनापि वै यत॥२६॥
मन्येयस्य प्रकृति सा परा' द्विज। अण्डाना तु सहस्राणा सहस्राण्ययुतानि च॥२७॥
ना तथा तत्र कोटिकोटिशतानि च। दारुण्यग्निर्यथा तैल तिले तद्वत पुमानिह॥२८॥
निऽवस्थितो व्यापी चेतनात्मनिवेदन। प्रधानञ्च पुमाश्चैव ''सर्वभूतानुभूतया॥२९॥

। न्ध्र स्थिति जिसका वा कहना है कि ध्रुव और सूर्य के बीच एक करोड़ चौदह लाख योजन प्रमाण र है। विप्रो ने इसका नाम कृतकत्रिलोकी रखा है॥१८-१९॥ जन तप तथा सत्य—यह अकृतक त्रिलोकी में ख्यात है॥१९॥ कृतक और अकृतक के मध्य महर्लोक माना गया है जो कल्पान्त में शून्य हो जाता है ष्ट नहीं होता॥२०॥ द्विजगण! मैंने सातो महालोक तथा सातो पाताल से युक्त ब्रह्माण्ड के विस्तार का वर्णन किया॥२१॥ जैसे कपित्थ (कठहल) का बीज सब ओर से ढका रहता है उसी तरह यह ब्रह्माण्ड कटाह से ऊपर-नीचे और तिरछे ढका हुआ है॥२२॥ द्विजगण! दस गुने जल से यह ब्रह्माण्ड आवृत है। पानी में बाहर अग्नि से वेष्टित है॥२३॥ अग्नि तो वायु से और वायु आकाश से आवृत है। मुनिश्रेष्ठो! काश महत्तत्त्व से परिवेष्टित है॥२४॥ विप्रवृन्द! ये सम्पूर्ण सातों दशाधिक (अर्थात् सबसे) हैं। महत्तत्त्व को आवृत कर प्रधान (प्रकृति) अवस्थित है॥२५॥ उस अनन्तरूप देव का अन्त और सख्या नहीं है अत एव अनन्त का प्रमाण भी नहीं बताया जा सकता है॥२६॥ द्विजगण! अशेष ब्रह्माण्ड का कारण परा प्रकृति है। हैं। हजार के हजार और करोड़ के करोड़ असंख्य ब्रह्माण्ड हैं। जैसे काष्ठ में अग्नि और तिल में तेल रहता है उसी तरह व्यापक चेतन आत्मा प्रधान में अवस्थित है। द्विजश्रेष्ठो! सब प्राणियों में अनु विष्णु शक्ति प्रकृति और पुरुष आश्रय धर्म का धारण करते हैं। प्रकृति-पुरुष वे पोषक तथा आश्रय का

---

१ ग ०ध्रुवांतर। २ क ०ना द्विजास्तत्वविचि०। ३ ग ०कस्यानविचि०। ४ क ०क। ५ ग ०त्रय च कृतक। क ०सत्यानमध्ये। ६ ग यो ह्यन्ते न। ७ ग तस्मात। ८ ग ०न। मुनाग्निना समं मान्ति म०। ९ ग ०रावेिना। १० ग ०मानरि। प्र०। ११ क ०नैव स्थि०। १२ क ग ०नामभू०।

विष्णुशक्त्या द्विजश्रेष्ठा[1] धृतौ संश्रयधर्म्मिणौ। तयोः सैव पृथग्भावे कारणं संश्रयस्य च॥३०॥
क्षोभकारणभूता च सर्गकाले द्विजोत्तमाः। यथा शैत्यं जले वातो बिभर्त्ति कणिकागतम्॥३१॥
जगच्छक्तिस्तथा विष्णोः प्रधानपुरुषात्मकम्। यथा च पादपो मूलस्कन्धशाखादिसंयुतः॥३२॥
[2]आद्यबीजात् प्रभवति बीजान्यन्यानि वै ततः। प्रभवन्ति ततस्तेभ्यो भवन्त्यन्ये परे द्रुमाः॥३३॥
तेऽपि तल्लक्षणद्रव्यकारणानुगता द्विजा। एवमव्याकृतात् पूर्वं जायन्ते महदादयः॥३४॥
[3]विशेषान्तास्ततस्तेभ्यः सम्भवन्ति सुरादयः। तेभ्यश्च पुत्रास्तेषां तु पुत्राणां परमे सुताः॥३५॥
बीजाद्वृक्षप्ररोहेण यथा नापचयस्तरोः। भूतानां भूतसर्गेण नैवास्त्यपचयस्तथा॥३६॥
सन्निधानाद्यथाकाशकालाद्याः कारणं तरोः। तथैवापरिणामेन[4] विश्वस्य भगवान् हरिः॥३७॥
व्रीहिबीजे यथा [5]मूलं नालं पत्राङ्कुरौ तथा। काण्डकोषास्तथा पुष्पं क्षीरं तद्वच्च तण्डुलः॥३८॥
तुषाः कणाश्च सन्तो वै यान्त्याविर्भावमात्मनः। प्ररोहहेतुसामग्र्यमासाद्य मुनिसत्तमा॥३९॥
तथा [6]कर्म्मस्वनेकेषु देवाद्यास्तनवः स्थिताः। विष्णुशक्तिं समासाद्य प्ररोहमुपयान्ति वै॥४०॥
स च विष्णुः परं ब्रह्म यतः सर्व्वमिदं जगत्। जगच्च यो यत्र चेदं [7]यस्मिन्विलयमेष्यति॥४१॥
तद्ब्रह्म परमं धाम सदसत् परमं पदम्। यस्य सर्व्वमभेदेन जगदेतच्चराचरम्॥४२॥
स एव मूलप्रकृतिर्व्यक्तरूपी जगच्च सः। तस्मिन्नेव लयं सर्वं याति तत्र च तिष्ठति॥४३॥

कारण भी शक्ति ही है, जो सृष्टिकाल में क्षोभ का कारण बन जाती है॥२७-३०½॥ द्विजवर! जैसे वायु जल-कण से प्राप्त शैत्यको धारण करता है वैसे सृष्टि-काल में सञ्चालन-कारण भूत विष्णु-शक्ति प्रकृति-पुरुष रूप जगत् का धारण करती है॥३१½॥ जैसे मूल-स्कन्ध-शाखा आदि से संयुक्त वृक्ष प्रथम बीज से उत्पन्न होता है दूसरे बीज उस वृक्ष से और अन्य वृक्ष उन बीजों से उत्पन्न होते हैं तथा हे द्विजो! वे भी उसी लक्षण वाले द्रव्य के कारण के अनुगत होते हैं, उसी तरह अव्याकृत (मूल प्रकृति) से पूर्व महदादि उत्पन्न होते हैं॥३२-३४॥ ये सब विशेष के अन्त वाले हैं अर्थात् विशेष उनमें अन्तिम होता है उनसे ही सब सुर आदि समुत्पन्न हुआ करते हैं, फिर उनके पुत्र उत्पन्न होते हैं और उन पुत्रों के भी परम पुत्र-पौत्रादि हुआ करते हैं॥३५॥ जैसे बीजों के रहते हुए वृक्ष का अभाव नहीं होता उसी प्रकार प्राणि-सृष्टि से प्राणियों का अभाव नहीं हो सकता॥३६॥ जैसे सन्निधान से वृक्ष के आकाश, काल आदि कारण होते हैं उसी तरह विश्व के अपरिणाम के होने से भगवान् श्री हरि कारण होते हैं॥३७॥ जैसे धान के बीज में मूल, नाल, पत्र, अङ्कुर, काण्ड (पोर) कोष (आवरण) पुष्प, दूध, चावल, तुष (भूसी) और कण अङ्कुर की कारण-सामग्री को प्राप्त कर उत्पन्न हो जाते हैं उसी प्रकार अनेक प्रकार के कर्मों में स्थित देव आदि के शरीर विष्णु शक्ति को प्राप्त कर अङ्कुरित हो जाते हैं॥३८-४०॥ वह विष्णु परब्रह्म है जिससे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है और जिसमें यह लीन हो जायगा॥४१॥ वह ब्रह्म परम धाम, सत् असत् रूप और परम पद है, जिससे यह चराचर सहित सम्पूर्ण जगत् अभिन्न है॥४२॥ वही मूल प्रकृति और व्यक्तरूप संसार है। उसी में यह जगत् स्थित रहता है तथा लीन होता है॥४३॥ वही कर्मों किया,

---

१ क ०ष्ठा। प्रवृत्त्याय०।। २ ग आदिबी०। ३ क ०ऽपिनव तत०। ४ क ०मेनु वि०। ५ ग ०न्य पत्रा-ङ्कुरस्तथापरे। का०। ६ ग ०मंसु गेहे०। ७ ग यस्मिन्च लय०।

कर्त्ता क्रियाणा[1] स च इज्यते क्रतु, स एव तत् कर्म्मफलञ्च तस्य यत्।
युगादि[2] यस्माच्च भवेदशेषतोहरेर्न किञ्चिदव्यतिरिक्तमस्ति तत ॥४४॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे भूर्भुव स्वरादिको र्त्तन नाम त्रयोविंशोऽध्याय ॥२३॥

चतुर्व्विंशोऽध्यायः

ध्रुवसस्थितिनिरूपणम्

लोमहर्षण उवाच

तारामय भगवत शिशुमाराकृति प्रभो। दिवि रूप हरेर्यत्तु[3] तस्य पुच्छे स्थितो ध्रुव ॥१॥
सैष भ्रमन् भ्रामयति चन्द्रादित्यादिकान ग्रहान्। भ्रमन्तमनु त यान्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ॥२॥
सूर्य्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहै सह। वातानीकमयैर्बन्धैर्ध्रुवे बद्धानि तानि वै ॥३॥
शिशुमाराकृति प्रोक्त यद्रूप ज्योतिषा दिवि। नारायण पर धाम तस्याधार स्वय हृदि ॥४॥
उत्तानपादतनयस्तमाराध्य प्रजापतिम्। स ताराशिशुमारस्य ध्रुव पुच्छे व्यवस्थित ॥५॥

यज्ञरूप से पूजित और कर्म फल भी है। उसी हरि से समस्त युग होते हैं और उससे अतिरिक्त कोई पदार्थ ही नही है ॥४४॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म भूभुव स्व आदि लोको के वर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३॥

अध्याय २४

ध्रुव की स्थिति का वर्णन

लोमहर्षण बोले—तारो से व्याप्त तथा शिशुमार तारे (ताराचक्र का भेद) की आकृति जैसे भगवान् हरि के दिव्य रूप के पुच्छ पर ध्रुव स्थित है ॥१॥ स्वय घूमता हुआ वह ध्रुव सूर्य-चन्द्र आदि ग्रहो को भी घुमाता है। घूमते हुए ध्रुव के पीछे नक्षत्र समूह चक्र की तरह घूमता है ॥२॥ सूर्य चन्द्रमा तारे नक्षत्र ग्रह—ये सब वायु समूहरूपी बधन से ध्रुव म बधे हुए हैं ॥३॥ आकाश म शिशुमार की आकृति की तरह जो ज्योतिषा का रूप कहा गया है उसका आधार स्वय परमधाम नारायण है ॥४॥ ध्रुव उस प्रजापति की उपासना कर शिशुमार की पूँछ

---

१ ग ०या वै स। २ ख ०दि यसाधनमप्यत०। ग ०दि तत्साधनमप्यरे। ३ क ०यच्च त०। ४ क ०मयैर्पाशैर्ध्रु०।

आधारः शिशुमारस्य सर्व्वाध्यक्षो जनार्द्दनः। ध्रुवस्य शिशुमारश्च ध्रुवे[1] भानुर्व्यवस्थितः॥६॥
तदाधारं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम्। येन विप्रा विधानेन तन्मे शृणुत साम्प्रतम्॥७॥
विवस्वानष्टभिर्मासैर्ग्रसत्यापो[2] 'रसात्मिकाः।[3] 'वर्षत्यम्बु 'ततश्चान्नमन्नादमखिलं जगत्॥८॥
विवस्वानंशुभिस्तीक्ष्णैरादाय जगतो जलम्। सोमं[4] 'पुष्यत्यथेन्दुश्च वायुनाड़ीमयैर्दिवि[5]॥९॥
[6]जलैर्विक्षिप्यतेऽभ्रेषु धूमाग्न्यनिलमूर्त्तिषु। न भ्रश्यन्ति यतस्तेभ्यो जलान्यभ्राणि तान् ततः॥१०॥
अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः। संस्कारं कालजनितं विप्राश्चासाद्य निर्मलाः॥११॥
"सरित्समुद्रा" भौमास्तु तथापः प्राणिसम्भवाः। चतुष्प्रकारा भगवानादत्ते सविता द्विजाः॥१२॥
आकाशगङ्गासलिलं तथाहृत्य गभस्तिमान्। अनभ्रगतमेवोर्व्यां सद्यः क्षिपति रश्मिभिः॥१३॥
तस्य संस्पर्शनिर्धूतपापपङ्को द्विजोत्तमा.[11]। न याति नरकं मर्त्यो दिव्यं स्नानं हि तत्स्मृतम्॥१४॥
"दृष्टसूर्यं हि तद्वारि पतत्यभ्रैर्विना दिवः। आकाशगङ्गासलिलं तद्गोभिः क्षिप्यते रवेः॥१५॥
कृत्तिकादिषु "ऋक्षेषु विषमेष्वम्बु यद्दिवः। दृष्ट्वार्कं पतितं ज्ञेयं तद्गाङ्गं दिग्गजोद्धृतम्॥१६॥
युग्मर्क्षेषु तु यत्तोयं पतत्यर्कोद्धृतं दिवः। तत्सूर्यरश्मिभिः सद्यः समादाय निरस्यते॥१७॥
उभयं पुण्यमत्यर्थं नृणां पापहरं" द्विजाः। आकाशगङ्गासलिलं दिव्यं स्नानं " द्विजोत्तमाः॥१८॥

पर व्यवस्थित हुआ॥५॥ शिशुमार का आधार सर्वाध्यक्ष जनार्दन हैं। ध्रुव का आधार शिशुमार है और ध्रुव म सूर्य अवस्थित है॥६॥ विप्रवृन्द ! वह सूर्य देवता, राक्षस और मनुष्य सहित इस जगत् का जिस विधान से आधार है वह अब आप सुनिये॥७॥ आठ मासो मे सूर्य रसरूप जल को खीचता है। तब जलवृष्टि होती है, उससे अन्न उपजता है और अन्न को खाने वाला निखिल जगत् है॥८॥ सूर्य अपनी तीक्ष्ण किरणो से जगत् के जल को ग्रहण कर सोम का पोषण करता है और वह इन्दु वायुमय नाडियो के द्वारा आकाश मे स्थित होकर जल को धूम, अग्नि और वायु रूप मेघ मे बिखेर देता है। वहाँ से जल के न गिरने के कारण उसका नाम अभ्र (बादल) पडा है॥९-१०॥ विप्रवृन्द ! वायु से प्रेरित बादल का निर्मल जल कालजन्य सस्कार को प्राप्त कर गिरता है॥११॥ द्विजगण ! भगवान् सूर्य नदी, समुद्र, पृथिवी और प्राणी से उत्पन्न चार प्रकार के जल को ग्रहण करते हैं॥१२॥ सूर्य आकाशगगा के जल को भी ग्रहण कर विना बादल के ही अपनी किरणा से पृथ्वी पर (उसे) बरसाते हैं॥१३॥ द्विजवर्य, उस जल के स्पर्श से मनुष्य का पाप-पक धुल जाता है और इस दिव्य स्नान के बाद उसे नरक मे नही जाना पडता है॥१४॥ सूर्य के न दिखाई पडनेपर भी विना बादल मे जो वर्षा होती है, वह आकाश-गगा का जल सूर्य-किरणो के द्वारा प्रक्षिप्त होता है॥१५॥ कृत्तिका आदि विषम नक्षत्रो म जो सूर्य-दर्शन के साथ वर्षा होती है, उसे दिग्गजो के द्वारा उद्धृत-आकाश गगा का जल समझना चाहिये॥१६॥ युग्म नक्षत्रों मे जो आकाश से जल बरसता है, उस जल को सूर्य-रश्मियाँ तत्काल ग्रहण कर प्रक्षिप्त करती हैं॥१७॥ द्विजगण ! वह जल अत्यन्त पवित्र और पापहारी है। आकाश-गगा का जल दिव्य स्नान है॥१८॥ द्विजगण ! मेघो से बरसा हुआ जल ओषधियों को पुष्ट करता है और वह जल प्राणियो के जीवन के लिए

१ग ध्रुवपुच्छेऽप्यव०। २क ०सत्येको र०। ३क रसात्मकम्। ४क ०पंतऽम्बुरग तस्मादन्नादाप्याये ज०। ५ग ०म्बुरग तस्मादन्नादप्यागि०। ६क सोमेऽमु पुष्यते चेन्दुर्वायु०। ७ग ०प्यत्यथ इन्दव। ८ग ०वि। नार्लेविक्षिप्तमेघेषु। ९क ०प्य मेघेषु। १०क ० रित समु०। ११क ०मुद्र भूमि च त०। १२ग ०नम। न०। १३ग दृष्ट्वा मू०। १४क ०पु निरस्यम्बु। १५क पापाग्ह। १६क स्नान।

यत्तु मेघैः समुत्सृष्टं वारि तत् प्राणिनां द्विजाः। पुष्णात्योषधयः सर्व्वा जीवनायामृतं हि तत्॥१९॥
तेन वृद्धिं परा नीतः सकलश्चौषधीगणः। साधकः फलपाकान्तः प्रजानान्तु प्रजायते॥२०॥
तेन यज्ञान् यथाप्रोक्तान्मानवाः शास्त्रचक्षुषः। कुर्व्वतेऽहरहश्चैव देवानाप्याययन्ति ते॥२१॥
एवं यज्ञाश्च वेदाश्च वर्णाश्च द्विजपूर्व्वकाः। सर्व्वदेवनिकायाश्च पशुभूतगणाश्च ये॥२२॥
वृष्ट्या धृतमिदं सर्व्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्। सापि निष्पाद्यते वृष्टिः सवित्रा मुनिसत्तमाः॥२३॥
आधारभूतः सवितुर्ध्रुवो मुनिवरोत्तमाः। ध्रुवस्य शिशुमारोऽसौ सोऽपि नारायणाश्रयः॥२४॥
हृदि नारायणस्तस्य शिशुमारस्य संस्थितः। विभर्त्ता सर्व्वभूतानामादिभूतः सनातनः॥२५॥
एवं मया मुनिश्रेष्ठा ब्रह्माण्डं समुदाहृतम्। भूसमुद्रादिभिर्युक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ॥२६॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे ध्रुवसंस्थितिनिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

तत्रादौ सर्वतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

पृथिव्या यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च। वक्तुमर्हसि धर्म्मज्ञ श्रोतुं नो वर्त्तते मनः॥१॥

अमृत रूप है॥१९॥ उस जल से सब ओषधियाँ सर्वाधित होती हैं। ओषधि समूह फलने-फूलने और पकने तक प्रजाओं के उपयोग में आता है॥२०॥ इसलिए शास्त्ररूप चक्षु वाले मनुष्य देवताओं की पुष्टि के लिए प्रतिदिन यज्ञ करते हैं॥२१॥ इस प्रकार यज्ञ, वेद, ब्राह्मण आदि वर्ण, देव समूह, पशु-प्राणी-गण, स्थावर, जगम—एतद्रूप यह संपूर्ण जगत् वृष्टि के द्वारा धारण किया जाता है। मुनिवर्य! वह वृष्टि भी सूर्य से निष्पन्न होती है॥२२-२३॥ मुनिवर! सूर्य का आधार ध्रुव है, ध्रुव का शिशुमार और वह भी नारायण का आश्रित है॥२४॥ शिशुमार के हृदय में सब प्राणियों का धारण करने वाले आदिकारण सनातन नारायण स्थित हैं॥२५॥ मुनिवर्य! इस तरह पृथ्वी, समुद्र आदि से युक्त ब्रह्माण्ड का वर्णन मैंने कर दिया। अब आप क्या सुनना चाहते हैं? ॥२६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ध्रुव-सस्थिति-निरूपण नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त॥२४॥

अध्याय २५

सकल तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन

मुनियों ने कहा—हे धर्मज्ञ! पृथिवी पर जितने पवित्र तीर्थ तथा आश्रम हैं, उन सबके बारे में हम सुनना चाहते हैं॥१॥

१ख सफल०। २क ०कान्तस्तस्मादेनत्प्रजाय०। ३क येन। ४क ख वन्त्यह०। ५ख ०हस्तैश्च दे०। ६ग ऋषयो। ७क ०श्च सर्वमू०। ८ग सर्वमस्य निष्पाद्यते यया। सा ऽ०। ९क ०म्। एव निष्पाद्यते वृष्ट्या सा विश्रामु०। १०क ध्रवोऽपि सि०। ११ख. ०नि धान्यान्या०।

पञ्चविंशोऽध्यायः

लोमहर्षण उवाच

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्[1]। विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥१॥
मनो विशुद्धं पुरुषस्य तीर्थं, वाचा[2] तथा चेन्द्रियनिग्रहश्च[3]।
एतानि तीर्थानि शरीरजानि, स्वर्गस्य मार्गं प्रतिबोधयन्ति॥३॥
चित्तमन्तर्गतं दुष्टं [4]तीर्थस्नानैर्न शुध्यति। शतशोऽपि जलैर्धौतं [5]सुराभाण्डमिवाशुचि॥४॥
न तीर्थानि न दानानि न व्रतानि न चाश्रमा। दुष्टाशय[6] दम्भरुचि[7] पुनन्ति[8] व्युत्थितेन्द्रियम्॥५॥
इन्द्रियाणि वशे कृत्वा यत्र[9] यत्र वसेन्नर। तत्र तत्र[10] कुरुक्षेत्रं प्रयागं पुष्करं तथा॥६॥
[11]तस्माच्छृणुध्व वक्ष्यामि तीर्थान्यायतनानि च। सक्षेपेण मुनिश्रेष्ठा पृथिव्या यानि कानि वै॥७॥
विस्तरेण न शक्यन्ते वक्तुं वर्षशतैरपि। प्रथम पुष्कर तीर्थं नैमिषारण्यमेव च॥८॥
प्रयागञ्च प्रवक्ष्यामि धर्म्मारण्यं द्विजोत्तमा। धेनुक[12] चम्पकारण्य सैन्धवारण्यमेव च॥९॥
पुण्यञ्च मगधारण्यं दण्डकारण्यमेव च। गया [13]प्रभासं श्रीतीर्थं दिव्य कनखलं तथा॥१०॥
भृगुतुङ्गं हिरण्याक्षं भीमारण्य[14] कुशस्थलीम्। लोहाकुल[15] सकेदार मन्दरारण्यमेव च॥११॥
महाबलं[16] कोटितीर्थं सर्व्वपापहर तथा। [17]रूपतीर्थं शूकरव[18] चक्रतीर्थं महाफलम्॥१२॥
योगतीर्थं[19] सोमतीर्थं तीर्थं साहोटक[20] तथा। तीर्थं कोकामुख पुण्यं बदरीशैलमेव च॥१३॥
सोमतीर्थं तुङ्गकूटं तीर्थं[21] [22]स्कन्दाश्रमं तथा। कोटितीर्थञ्चाग्निपदं तीर्थं पञ्चशिख [23]तथा॥१४॥

धर्म्मोद्भवं कोटितीर्थं[1] तीर्थं बाधप्रमोचनम्। गङ्गाद्वारं[2] पञ्चकूटं मध्यकेसरमेव च॥१५॥
चक्रप्रभं मतङ्गञ्च कुशदण्डञ्च[3] विश्रुतम्। [4]दंष्ट्राकुण्डं [5]विष्णुतीर्थं सार्व्वकामिकमेव च॥१६॥
तीर्थं मत्स्यतिलञ्चैव बदरी सुप्रभं तथा। ब्रह्मकुण्डं वह्निकुण्डं तीर्थं सत्यपद तथा॥१७॥
चतुःस्रोतश्चतुःशृङ्गं शैलं द्वादशधारकम्[6]। मानसं [7]स्थूलशृङ्गञ्च स्थूलदण्डं[8] तथोर्व्वशी॥१८॥
लोकपालं मनुवरं[9] सोमाह्वं शैलमेव[10] च[11]। सदाप्रभं मेरुकुण्डं तीर्थं सोमाभिषेचनम्॥१९॥
महास्रोतं[12] कोटरकं पञ्चधारं त्रिधारकम्। सप्तधारैकधारञ्च[13] तीर्थं चामरकण्टकम्॥२०॥
शालग्रामं[14] [15]चक्रतीर्थं[16] [17]कोटिद्रुममनुत्तमम्। विल्वप्रभं देवह्लदं तीर्थं विष्णुह्लदं[18] तथा॥२१॥
शङ्खप्रभं देवकुण्डं तीर्थं वज्रायुधं तथा। अग्निप्रभञ्च पुन्नागं देवप्रभमनुत्तमम्॥२२॥
विद्याधरं सगान्धर्व्वं श्रीतीर्थं ब्रह्मणो ह्लदम्। सातीर्थं लोकपालाख्य मणिपूरगिरि तथा॥२३॥
तीर्थं पञ्चह्लदञ्चैव पुण्यं पिण्डारकं तथा। मलव्यं गोप्रभावञ्च गोवरं वटमूलकम्॥२४॥
स्नानदण्डं प्रयागञ्च गुह्यं विष्णुपदं तथा। कन्याश्रमं वायुकुण्डं जम्बूमार्गं तथोत्तमम्॥२५॥
गभस्तितीर्थञ्च तथा ययातिपतनं शुचि। कोटितीर्थं भद्रवट महाकालवनं तथा॥२६॥
नर्म्मदातीर्थमपरं तीर्थवज्रं तथार्व्वुदम्। पिङ्गतीर्थं सवासिष्ठं तीर्थञ्च पृथुसङ्गमम्॥२७॥
तीर्थं दौर्व्वासिकं नाम तथा पिञ्जरकं शुभम्। ऋषितीर्थं ब्रह्मतुङ्गं वसुतीर्थं कुमारिकम्॥२८॥
शक्रतीर्थं पञ्चनदं रेणुकातीर्थमेव च। पैतामहञ्च विमलं रुद्रपाद तथोत्तमम्॥२९॥

कोटितीर्थ, अग्निपद तीर्थ, पञ्चशिख॥१४॥ धर्मोद्भव कोटितीर्थ, बाधप्रमोचन तीर्थ, गगाद्वार, पञ्चकूट, मध्य-केसर॥१५॥ चक्रप्रभ, मतग, प्रसिद्ध कुशदण्ड दंष्ट्राकुण्ड, विष्णुतीर्थ, सार्वकामिकतीर्थ॥१६॥ मत्स्यतिल बदरी, सुप्रभ, ब्रह्मकुण्ड, वह्निकुण्ड, सत्यपदतीर्थ॥१७॥ चतुःस्रोत, चतुः शृंग, शैल, द्वादशधारक, मानस स्थूलशृंग, उर्वशी- तीर्थ॥१८॥ लोकपाल, मनुवर, सोमाह्वशैल, सदाप्रभ, मेरुकुण्ड, सोमाभिषेचन तीर्थ॥१९॥ महास्रोत, कोटरक, पञ्चधार त्रिधार, सप्तधार, एकधार, चामरकण्टक तीर्थ॥२०॥ शालग्राम, चक्रतीर्थ, कोटिद्रुम, विल्वप्रभ, देवह्लद विष्णुह्लद॥२१॥ शङ्खप्रभ, देवकुण्ड, वज्रायुध, अग्निप्रभ, पुनाग, देवप्रभ॥२२॥ विद्याधर गान्धर्व, श्रीतीर्थ ब्रह्मह्लद सातीर्थ, लोकपाल, मणिपूरगिरि॥२३॥ पञ्चह्लद, पिण्डारक, मलव्य, गोप्रभाव गोवर, वटमूलक॥२४॥ स्नानदण्ड, गुह्य विष्णुपद, प्रयाग, कन्याश्रम, वायुकुण्ड, जम्बूमार्ग॥२५॥ गभस्तितीर्थ, ययातिपतन, कोटितीर्थ भद्रवट, महाकालवन॥२६॥ नर्मदातीर्थ, तीर्थवज्र, अर्बुद, पिंगुतीर्थ, वासिष्ठ, पृथसगम॥२७॥ दौर्वासिक पिञ्जरक, ऋषितीर्थ, ब्रह्म-तुग, वसुतीर्थ, कुमारिक॥२८॥ शक्रतीर्थ, पञ्चनद, रेणुकातीर्थ, पैतामह, विमल, रुद्रपाद॥२९॥ मणिमत्त, कामाख्य,

---

१क ०र्थं सर्वपापप्र०। ख ०र्थं सार्वकामिकमेव च। सूर्यप्रभ महाकुण्ड तीर्थं सो०। २क गगाधर। ३ग मधुकुण्ड। ४क दृष्टकुण्ड। ५ग विष्णुकुण्ड। ६ग ०शवार०। ७क स्थन्मृग। ८क स्थूलकूट। ९ग मेसघर। १०ग ०मात्रि शै०। ११क. च। सूर्यप्रभ मधुकु०। १२क ०हाश्रोत्र कोकनद प०। १३ग ०प्तर्वारै०। १४क शाल्मिग्रा०। १५क वज्रतीर्थं। १६क ०र्थं वदरीह्लदमेव च। वि०। ख ०र्थं वदरीह्लदमुत्त०। १७ग ०म्। विम्बप्र०। १८क ख विष्णुप्रभ।

लोमहर्षण उवाच

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्[1]। विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥२॥
मनो विशुद्धं पुरुषस्य तीर्थं, वाचां[2] तथा चेन्द्रियनिग्रहश्च[3]।
एतानि तीर्थानि शरीरजानि, स्वर्गस्य मार्गं प्रतिबोधयन्ति॥३॥
चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुध्यति। शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचि॥४॥
न तीर्थानि न दानानि न व्रतानि न चाश्रमाः। दुष्टाशयं[6] दम्भरुचिं[7] पुनन्ति[8] व्युत्थितेन्द्रियम्॥५॥
इन्द्रियाणि वशे कृत्वा यत्र[9] यत्र वसेन्नरः। तत्र तत्र[10] कुरुक्षेत्रं प्रयागं पुष्करं तथा॥६॥
[11]तस्माच्छृणुध्वं वक्ष्यामि तीर्थान्यायतनानि च। संक्षेपेण मुनिश्रेष्ठा[12] पृथिव्यां यानि तानि वै॥७॥
विस्तरेण न शक्यन्ते वक्तुं वर्षशतैरपि। प्रथमं पुष्करं तीर्थं नैमिषारण्यमेव च॥८॥
प्रयागञ्च प्रवक्ष्यामि धर्मारण्यं द्विजोत्तमाः। धेनुकं[13] चम्पकारण्य सैन्धवारण्यमेव च॥९॥
पुण्यञ्च मगधारण्यं दण्डकारण्यमेव च। गया [14]प्रभासं श्रीतीर्थं दिव्यं कनखलं तथा॥१०॥
भृगुतुङ्गं हिरण्याक्षं भीमारण्यं[15] कुशस्थलीम्। लोहाकुलं[16] सकेदारं मन्दरारण्यमेव च॥११॥
महाबलं[17] कोटितीर्थं सर्व्वपापहरं तथा। [18]रूपतीर्थं शूकरवं[19] चक्रतीर्थं महाफलम्॥१२॥
योगतीर्थं[20] सोमतीर्थं तीर्थं साहोटकं[21] तथा। तीर्थं कोकामुखं पुण्यं बदरीशैलमेव च॥१३॥
सोमतीर्थं तुङ्गकूटं तीर्थं[22] [23]स्कन्दाश्रमं तथा। कोटितीर्थञ्चाग्निपदं तीर्थं पञ्चशिखं [24]तथा॥१४॥

लोमहर्षण बोले—जिसके हाथ, पैर और मन म संयम है तथा विद्या, तप और कीर्ति है, वह तीर्थ फल को प्राप्त करता है॥२॥ पुरुष के शुद्ध मन और वाणी तथा इन्द्रियो का निग्रह तीर्थरूप हैं। ये शरीरजात तीर्थ स्वर्ग के मार्ग का बोध कराते हैं॥३॥ सौ बार जल से धोया जाने पर भी मद्य-पात्र जैसे पवित्र नही होता उसी तरह दुष्ट मन तीर्थस्नान से शुद्ध नही होता है॥४॥ तीर्थ, दान, व्रत और आश्रम दुष्ट चित्त वाले दम्भी तथा अजितेन्द्रिय मनुष्य को पवित्र नही कर सकते॥५॥ इन्द्रिया को वश म करके मनुष्य जहाँ निवास करेगा, वही उसको कुरुक्षेत्र, प्रयाग तथा पुष्कर आदि तीर्थ प्राप्त हो जायेंगे॥६॥ मुनिश्रेष्ठ! इसलिए पृथिवी पर जितने तीर्थ तथा आश्रम हैं, उनके सम्बन्ध म आप संक्षेप से सुन लीजिये। विस्तार से तो सौ वर्षों म भी नही कहा जा सकता है॥७½॥ द्विजवर्य! प्रथम तीर्थ पुष्कर है। तब नैमिषारण्य, प्रयाग, धर्मारण्य, धेनुक, चम्पकारण्य, सैन्धवारण्य॥८-९॥ पवित्र मगधारण्य, दण्डकारण्य, गया प्रभास, श्रीतीर्थ दिव्य कनखल॥१०॥ भृगुतुङ्ग, हिरण्याक्ष, भीमारण्य, द्वारकापुरी, लोहाकुल, केदार, मन्दरारण्य॥११॥ महाबल कोटितीर्थ, सर्वपापहर, रूपतीर्थ, शूकरव, महाफलदायक चक्रतीर्थ॥१२॥ योगतीर्थ, सोमतीर्थ, साहोटक तीर्थ, कोकामुख पवित्र बदरीशैल॥१३॥ सोमतीर्थ, तुङ्गकूट, स्कन्दाश्रम,

---

१ ख ०संयुत०। २ख वाचो मनस्त्विन्द्रि०। ग वाच्य मनस्त्विन्द्रि०। ३ख ग ०ग्रहृतत्। ए०। ४ग ०स्नानाग्न शु०। ५क ०ण्डमयाशु०। ६क दुष्टबुद्धि। ७ख ०चि न पु०। ८क ०नन्तीह द्विजोत्तमा। द०। स ०नन्त्यजिते०। ९क ग तत्र। १०ग ग तस्य। ११ग तस्य शृणु०। १२ख वेणर। १३क ०मासर्तीर्थं च दि०। १४ क हिमारण्य। १५क ०हार्गलं च के०। १६क हिमालय। स महालय। १७ग शूर्यतीर्थं। १८क शुद्धिवर। स शूकर च च०। १९क घोरतीर्थं। ग व्यामतीर्थं। २०क साकोट०। स सागोट०। २१क धमतीर्थं। २२ग स्कन्धाश्र०। २३क स ०था। सर्यप्रभ धेनसर, सप्तमायपिच तथा।

धर्म्मोद्भवं कोटितीर्थं तीर्थं बाधप्रमोचनम्। गङ्गाद्वारं पञ्चकूटं मध्यकेसरमेव च॥१५॥
चक्रप्रभं मतङ्गञ्च कुशदण्डञ्च विश्रुतम्। दंष्ट्राकुण्ड विष्णुतीर्थं सार्व्वकामिकमेव च॥१६॥
तीर्थं मत्स्यतिलञ्चैव वदरी सुप्रभ तथा। ब्रह्मकुण्डं वह्निकुण्ड तीर्थं सत्यपद तथा॥१७॥
चतुःस्रोतश्चतुःशृङ्गं शैलं द्वादशधारकम्। मानसं स्थूलशृङ्गञ्च स्थूलदण्ड तथोर्व्वशी॥१८॥
लोकपालं मनुवरं सोमाह्वं शैलमेव च। सदाप्रभं मेरुकुण्ड तीर्थं सोमाभिषेचनम्॥१९॥
महास्रोत कोटरक पञ्चधारं त्रिधारकम्। सप्तधारैकधारञ्च तीर्थं चामरकण्टकम्॥२०॥
शालग्रामं चक्रतीर्थं कोटिद्रुममनुत्तमम्। बिल्वप्रभं देवह्रदं तीर्थं विष्णुह्रद तथा॥२१॥
शङ्खप्रभ देवकुण्डं तीर्थं वज्रायुधं तथा। अग्निप्रभञ्च पुन्नाग देवप्रभमनुत्तमम्॥२२॥
विद्याधरं सगान्धर्व्वं श्रीतीर्थं ब्रह्मणो ह्रदम्। सातीर्थं लोकपालाख्य मणिपूरगिरि तथा॥२३॥
तीर्थं पञ्चह्रदञ्चैव पुण्य पिण्डारकं तथा। मलव्यं गोप्रभावञ्च गोवरं वटमूलकम्॥२४॥
स्नानदण्डं प्रयागञ्च गुह्यं विष्णुपद तथा। कन्याश्रमं वायुकुण्डं जम्बूमार्गं तथोत्तमम्॥२५॥
गभस्तितीर्थञ्च तथा ययातिपतनं शुचि। कोटितीर्थं भद्रवट महाकालवन तथा॥२६॥
नर्म्मदातीर्थमपरं तीर्थवज्रं तथार्व्बुदम्। पिङ्गतीर्थं सवासिष्ठ तीर्थञ्च पृथुसङ्गमम्॥२७॥
तीर्थं दौर्व्वासिकं नाम तथा पिञ्जरकं शुभम्। ऋषितीर्थं ब्रह्मतुङ्ग वसुतीर्थं कुमारिकम्॥२८॥
शक्रतीर्थं पञ्चनदं रेणुकातीर्थमेव च। पैतामहञ्च विमल रुद्रपाद तथोत्तमम्॥२९॥

कोटितीर्थ, अग्निपद तीर्थ पञ्चशिख॥१४॥ धर्मोद्भव कोटितीर्थ, बाधप्रमोचन तीर्थ, गंगाद्वार, पञ्चकूट, मध्यकेसर॥१५॥ चक्रप्रभ मतंग प्रसिद्ध कुशदण्ड दंष्ट्राकुण्ड विष्णुतीर्थ, सार्वकामिकतीर्थ॥१६॥ मत्स्यतिल, वदरी, सुप्रभ ब्रह्मकुण्ड, वह्निकुण्ड, सत्यपदतीर्थ॥१७॥ चतुःस्रोत, चतुःशृंग शैल, द्वादशधारक मानस स्थूलशृंग उर्वशी तीर्थ॥१८॥ लोकपाल, मनुवर, सोमाह्वशैल सदाप्रभ मेरुकुण्ड सोमाभिषेचन तीर्थ॥१९॥ महास्रोत कोटरक पञ्चधार, त्रिधार, सप्तधार, एकधार, चामरकण्टक तीर्थ॥२०॥ शालग्राम, चक्रतीर्थ, कोटिद्रुम बिल्वप्रभ देवह्रद, विष्णुह्रद॥२१॥ शंखप्रभ, देवकुण्ड, वज्रायुध, अग्निप्रभ, पुनाग, देवप्रभ॥२२॥ विद्याधर गान्धर्व श्रीतीर्थ ब्रह्मह्रद, सातीर्थ, लोकपाल, मणिपूरगिरि॥२३॥ पञ्चह्रद, पिण्डारक, मलव्य गोप्रभाव गोवर वटमूलक॥२४॥ स्नानदण्ड, गुह्य, विष्णुपद, प्रयाग, कन्याश्रम, वायुकुण्ड, जम्बूमार्ग॥२५॥ गभस्तितीर्थ ययातिपतन कोटितीर्थ भद्रवट, महाकालवन॥२६॥ नर्मदातीर्थ, तीर्थवज्र, अर्बुद, पिंगुतीर्थ, वासिष्ठ, पृथुसंगम॥२७॥ दौर्वासिक पिञ्जरक ऋषितीर्थ, ब्रह्मतुंग, वसुतीर्थ, कुमारिक॥२८॥ शक्रतीर्थ पञ्चनद, रेणुकातीर्थ, पैतामह विमल रुद्रपाद॥२९॥ मणिमत, कामाख्य,

---

१क ०र्थं सर्वपापप्र०। ख ०र्थं सार्वकामिकमेव च। सूर्यप्रभ महाकुण्ड तीर्थं सो०। २क गंगाधर। ३ग गङ्गाकुण्ड। ४क दुष्टकुण्ड। ५ग विष्णुकुण्ड। ६ग ०नवार०। ७क स्थलशृग। ८क स्थूलकूट। ९ग ममधर। १०ग ०मात्रिशं०। ११क च। सूर्यप्रभ मधुक०। १२क ०हास्रोत कानन्द ग०। १३ग ०प्तर्वार०। १४क शान्तिपा०। १५क वज्रतीर्थं। १६क ०र्थं वदरीह्रदमेव च। वि०। ख ०थ वदरीह्रदमुन०। १७ग ०म्। बिम्बक०। १८क ख विष्णुप्रभ।

मणिमत्तञ्च कामाख्य कृष्णतीर्थं कुशाविलम्। यजनं याजनञ्चैव तथैव ब्रह्मवालुकम्॥३०॥
पुष्पन्यासं पुण्डरीकं मणिपूरं तथोत्तरम्। दीर्घसत्रं हयपदं तीर्थं ह्यनशनं तथा॥३१॥
गङ्गोद्भेदं शिवोद्भेदं नर्म्मदोद्भेदमेव च। वस्त्रापदं दारुवलं छायारोहणमेव च॥३२॥
सिद्धेश्वरं मित्रबलं कालिकाश्रममेव च। वटावटं भद्रवटं कौशाम्बी च दिवाकरम्॥३३॥
द्वीपं सारस्वतञ्चैव विजयं कामदं तथा। रुद्रकोटिं सुमनसं तीर्थं सद्रावनामितम्॥३४॥
स्यमन्तपञ्चकं तीर्थं ब्रह्मतीर्थं सुदर्शनम्। सततं पृथिवीसर्व्वं पारिप्लवपृथूदकौ॥३५॥
दशाश्वमेधिकं तीर्थं सर्पिजं विषयान्तिकम्। कोटितीर्थं पञ्चनदं वाराहं यक्षिणीह्रदम्॥३६॥
पुण्डरीकं सोमतीर्थं मुञ्जवटं तथोत्तमम्। बदरीवनमासीनं रत्नमूलकमेव च॥३७॥
लोकद्वारं पञ्चतीर्थं कपिलातीर्थमेव च। सूर्य्यतीर्थं शङ्खिनी च गवां भवनमेव च॥३८॥
तीर्थञ्च यक्षराजस्य ब्रह्मावर्त्तं सुतीर्थकम्। कामेश्वरं मातृतीर्थं तीर्थं शीतवनं तथा॥३९॥
स्नानलोमापहञ्चैव मासंसंसरकं तथा। दशाश्वमेधं केदारं ब्रह्मोदुम्बरमेव च॥४०॥
सप्तर्षिकुण्डञ्च तथा तीर्थं देवाः सुजम्बुकम्। ईहास्पदं कोटिकूटं किन्दानं किञ्जपं तथा॥४१॥
कारण्डवं चावेध्यञ्च त्रिविष्टपमथापरम्। पाणिखातं मिश्रकञ्च मधुवटमनोजवौ॥४२॥
कौशिकी देवतीर्थञ्च तीर्थञ्च ऋणमोचनम्। दिव्यञ्च नृगधूमाख्यं तीर्थं विष्णुपदं तथा॥४३॥
अमराणा ह्रदं पुण्यं कोटितीर्थं तथापरम्। श्रीकुञ्जं शालितीर्थञ्च नैमिशेयञ्च विश्रुतम्॥४४॥
ब्रह्मस्थानं सोमतीर्थं कन्यातीर्थं तथैव च। ब्रह्मतीर्थं मनस्तीर्थं तीर्थं वै कारुपावनम्॥४५॥
सौगन्धिकवनञ्चैव मणितीर्थं सरस्वती। ईशानतीर्थं प्रवरं पावनं पाञ्चयज्ञिकम्॥४६॥
त्रिशूलधारं माहेन्द्रं देवस्थानं कृतालयम्। शाकम्भरी देवतीर्थं सुवर्णाक्षं कलिं ह्रदम्॥४७॥
क्षीरस्रवं विरूपाक्षं भृगुतीर्थं कुशोद्भवम्। ब्रह्मतीर्थं ब्रह्मयोनिं नीलपर्व्वतमेव च॥४८॥

कृष्णतीर्थ कुशाविल, यजन, याजन, ब्रह्मवालुक॥३०॥ पुष्पन्यास, पुण्डरीक, मणिपूर, दीर्घसत्र, हयपद, अनशन॥३१॥ गंगोद्भेद शिवोद्भेद नर्मदोद्भेद, वस्त्रापद, दारुवल, छायारोहण॥३२॥ सिद्धेश्वर, मित्रबल, कालिकाश्रम, वटावट, भद्रवट, कौशाम्बी दिवाकर॥३३॥ द्वीप, सारस्वत, विजय, कामद, रुद्रकोटि, सुमनस, सद्रावनामित॥३४॥ स्यमन्तपञ्चक, ब्रह्मतीर्थ, सुदर्शन सतत, पृथिवीसर्व, पारिप्लव, पृथूदक॥३५॥ दशाश्वमेधिक, सर्पिज, विषयान्तिक, कोटितीर्थ, पञ्चनद वाराह यक्षिणीह्रद, ॥३६॥ पुण्डरीक, सोमतीर्थ, मुञ्जवाट, बदरीवन, रत्नमूलक, ॥३६॥ लोकद्वार, पञ्चतीर्थ, कपिलातीर्थ सूर्यतीर्थ शंखिनी, गवा भवन॥३८॥ यक्षराजतीर्थ, ब्रह्मावर्त, सुतीर्थक, कामेश्वर, मातृतीर्थ शीतवन॥३९॥ स्नानलोमापह मासंसंसरक, दशाश्वमेध केदार, ब्रह्मोदुम्बर॥४०॥ सप्तर्षिकुण्ड, सुजम्बुक, ईहास्पद, कोटिकूट किंदान किंजप॥४१॥ कारण्डव, अवेध्य, त्रिविष्टप, पाणिखात, मिश्रक, मधुवट, मनोजव, ॥४२॥ कौशिकी, देवतीर्थ ऋणमोचन, नृगधूम, विष्णुपद॥४३॥ देवताओं का पवित्र ह्रद कोटितीर्थ, श्रीकुञ्ज शालितीर्थ प्रसिद्ध नैमिषेय॥४४॥ ब्रह्मस्थान, सोमतीर्थ, कन्यातीर्थ ब्रह्मतीर्थ, मनस्तीर्थ, कारुपावन॥४५॥ सौगन्धिकवन, मणितीर्थ, सरस्वती, ईशानतीर्थ, प्रवर, पावन, पाञ्चयज्ञिक॥४६॥ त्रिशूलधार, माहेन्द्र, देवस्थान, कृतालय, शाकंभरी, देवतीर्थ, सुवर्णा, कलि, ह्रद॥४७॥ क्षीरस्रव, विरूपाक्ष, भृगुतीर्थ, कुशोद्भव, ब्रह्मतीर्थ, ब्रह्मयोनि, नीलपर्वत, ॥४८॥

कुब्जाम्बकं भद्रवटं वसिष्ठपदमेव च। स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं कालिकाश्रममेव च॥४९॥
रुद्रावर्त्तं सुगन्धाश्वं कपिलावनमेव च। भद्रकर्णह्रदञ्चैव शङ्कुकर्णह्रदं तथा॥५०॥
सप्तसारस्वतञ्चैव तीर्थमौशनसं तथा। कपालमोचनञ्चैव अवकीर्णञ्च काम्यकम्॥५१॥
चतुःसामुद्रिकञ्चैव शतिकञ्च सहस्रिकम्। रेणुकं पञ्चवटकं विमोचनमथौजसम॥५२॥
स्थाणुतीर्थं कुरोस्तीर्थं स्वर्गद्वारं कुशध्वजम्। विश्वेश्वरं मानवकं कूपं नारायणाश्रयम्॥५३॥
गङ्गाह्रदं वटञ्चैव बदरीपाटनं तथा। इन्द्रमार्गमेकरात्रं क्षीरकावासमेव च॥५४॥
सोमतीर्थं दधीचञ्च श्रुततीर्थञ्च भो द्विजा। कोटितीर्थस्थलीञ्चैव भद्रकालीह्रदं तथा॥५५॥
अरुन्धतीवनञ्चैव ब्रह्मावर्त्तं तथोत्तमम्। अश्ववेदी कुब्जावनं यमुनाप्रभवं तथा॥५६॥
वीरं प्रमोक्षं सिन्धूत्थमृषिकुल्या सकृत्तिकम्। उर्वीसंक्रमणञ्चैव मायाविद्योद्भवं तथा॥५७॥
महाश्रमो वैतसिकारूपं सुन्दरिकाश्रमम्। बाहुतीर्थं चारुनदीं विमलाशोकमेव च॥५८॥
तीर्थं पञ्चनदञ्चैव मार्कण्डेयस्य धीमतः। सोमतीर्थं सितोदञ्च तीर्थं मत्स्योदरी तथा॥५९॥
सूर्यप्रभं सूर्यतीर्थमशोकवनमेव च। अरुणास्पदं कामदञ्च शुक्रतीर्थं सवालुकम्॥६०॥
पिशाचमोचनञ्चैव सुभद्राह्रदमेव च। कुण्डं विमलदण्डस्य तीर्थं चण्डेश्वरस्य च॥६१॥
ज्येष्ठस्थानह्रदञ्चैव पुण्यं ब्रह्मसरं तथा। जैगीषव्यगुहा चैव हरिकेशवनं तथा॥६२॥
अजामुखसरञ्चैव घण्टाकर्णह्रदं तथा। पुण्डरीकह्रदञ्चैव वापी कर्कोटकस्य च॥६३॥
सुवर्णास्योदपानञ्च श्वेततीर्थह्रदं तथा। कुण्डं घर्घरिकायाश्च श्यामाकूपञ्च चन्द्रिका॥६४॥
श्मशानस्तम्भकूपञ्च विनायकह्रदं तथा। कूपं सिन्धूद्भवञ्चैव पुण्यं ब्रह्मसरं तथा॥६५॥
रुद्रावासं तथा तीर्थं नागतीर्थं पुलोमकम्। भवतह्रदं क्षीरसरं प्रेताधारं कुमारकम॥६६॥
ब्रह्मावर्त्तं कुशावर्त्तं दधिकर्णोदपानकम। शृङ्गतीर्थं महातीर्थं तीर्थश्रेष्ठा महानदी॥६७॥

कुब्जाम्बक भद्रवट वसिष्ठपद स्वर्गद्वार प्रजाद्वार कालिकाश्रम॥४९॥ रुद्रावत सुगन्धाश्व कपिलावन भद्रकर्णह्रद शङ्कुकर्णह्रद॥५०॥ सप्तसारस्वत औशनस कपालमोचन अवकाण काम्यक॥५१॥ चतुःसामद्रिक शतिक सहस्रिक रेणुक पञ्चवट विमोचन ओजस॥५२॥ स्थाणुतीर्थ कुरुतीर्थ स्वर्गद्वार कुशध्वज विश्वेश्वर मानवक कूप नारायणाश्रय॥५३॥ गंगाह्रद वट बदरीपाटन इन्द्रमार्ग एकरात्र क्षीरकावास॥५४॥ सोमतीर्थ दधीच श्रुततीर्थ कोटितीर्थस्थली भद्रकालीह्रद॥५५॥ अरुन्धतीवन ब्रह्मावर्त अश्ववेदी कुब्जावन यमुनाप्रभव॥५६॥ वीर प्रमोक्ष सिन्धूत्थ ऋषिकुल्या सकृत्तिक उर्वीसंक्रमण मायाविद्योद्भव॥५७॥ महाश्रम वैतसिकारूप सुन्दरिकाश्रम बाहुतीर्थ चारुनदी विमलाशोक॥५८॥ विद्वान मार्कण्डेय का पञ्चनदतीर्थ सोमतीर्थ सितोद मत्स्योदरी॥५९॥ सूर्यप्रभ सूर्यतीर्थ अशोकवन अरुणास्पद कामद शुक्रतीर्थ सवालक॥६०॥ पिशाचमोचन सुभद्राह्रद विमलदण्ड कुण्ड चण्डेश्वर-तीर्थ॥६१॥ ज्येष्ठस्थानह्रद पवित्र ब्रह्मसर जैगीषव्यगुहा हरिकेशवन॥६२॥ अजामुखसर घण्टाकर्णह्रद पुण्डरीकह्रद कर्कोटक-वापी॥६३॥ सुवर्णास्योदपान श्वेततीर्थह्रद घर्घरिकाकुण्ड श्यामाकूप चन्द्रिका॥६४॥ श्मशानस्तम्भकूप विनायकह्रद सिन्धूद्भवकूप पवित्र ब्रह्मसर॥६५॥ रुद्रावास नागतीर्थ पुलोमक भवतह्रद क्षीरसर प्रेताधार कुमारक॥६६॥ ब्रह्मावर्त कुशावर्त दधिकर्णोदपान शृङ्गतीर्थ महातीर्थ, तीर्थश्रेष्ठा,

दिव्यं ब्रह्मसरं पुण्यं गयाशीर्षाक्षयं वटम्। दक्षिणं चोत्तरञ्चैव गोमयं रूपशीतिकम्॥६८॥
कपिलाह्रदं गृध्रवटं सावित्रीह्रदमेव च। प्रभासनं सीतवनं योनिद्वारञ्च धेनुकम्॥६९॥
धन्यकं कोकिलाख्यञ्च मतङ्गह्रदमेव च। पितृकूपं रुद्रतीर्थं शक्रतीर्थं सुमालिनम्॥७०॥
ब्रह्मस्थानं सप्तकुण्डं मणिरत्नह्रदं तथा। कौशिक्यं भरतञ्चैव तीर्थं ज्येष्ठालिका तथा॥७१॥
विश्वेश्वरं कल्पसरः कन्यासवेद्यमेव च। निश्चीवाप्रभवश्चैव वसिष्ठाश्रममेव च॥७२॥
देवकूटञ्च कूपञ्च वसिष्ठाश्रममेव च। वीराश्रमं ब्रह्मसरो ब्रह्मवीरावकापिली॥७३॥
कुमारधारा श्रीधारा गौरीशिखरमेव च। शुनः कुण्डोऽथ तीर्थञ्च नन्दितीर्थं तथैव च॥७४॥
कुमारवासं श्रीवासमौर्वीशीतीर्थमेव च। कुम्भकर्णह्रदञ्चैव कौशिकीह्रदमेव च॥७५॥
धर्म्मतीर्थं कामतीर्थं तीर्थमुद्दालक तथा। सन्ध्यातीर्थं कारतोय कपिलं लोहितार्णवम्॥७६॥
शोणोद्भवं वंशगुल्ममृषभं कल्पतीर्थकम्। पुण्यावतीह्रदं तीर्थं तीर्थं बदरिकाश्रमम्॥७७॥
रामतीर्थं पितृवनं विरजातीर्थमेव च। मार्कण्डेयवनञ्चैव कृष्णतीर्थं तथा वटम्॥७८॥
रोहिणीकूपप्रवरमिन्द्रद्युम्नसरञ्च यत्। सानुगर्त्तं समाहेन्द्रं श्रीतीर्थं श्रीनदं तथा॥७९॥
इषुतीर्थं वार्षभञ्च कावेरीह्रदमेव च। कन्यातीर्थञ्च गोकर्णं गायत्रीस्थानमेव च॥८०॥
बदरीह्रदमन्यच्च मध्यस्थानं विकर्णकम्। जातीह्रदं देवकूपं कुशप्रवणमेव च॥८१॥
सर्वदेवव्रतञ्चैव कन्याश्रमहृदं तथा। तथान्यद्वालखिल्यानां सपूर्व्वाणां तथापरम्॥८२॥
तथान्यच्च महर्षीणामखण्डितह्रदं तथा। तीर्थेष्वेतेषु विधिवत् सम्यक् श्रद्धासमन्वितः॥८३॥
स्नानं करोति यो मर्त्यः सोपवासो जितेन्द्रियः। देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन् सन्तर्प्य च क्रमात्॥८४॥
अभ्यर्च्य देवतास्तत्र स्थित्वा च रजनीत्रयम्। पृथक् पृथक् फलं तेषु प्रतितीर्थेषु भो द्विजाः॥८५॥

महानदी॥६७॥ गयाशीर्षाक्षयवट, दक्षिण, उत्तर, गोमय, रूपशीतिक॥६८॥ कपिला ह्रद, गृध्रवट, सावित्री ह्रद, प्रभासन, सीतवन, योनिद्वार, धेनुक॥६९॥ धन्यक, कोकिलाख्य, मतग ह्रद, पितृकूप, रुद्रतीर्थ, शक्रतीर्थ, सुमाली॥७०॥ ब्रह्मस्थान, सप्तकुण्ड, मणिरत्न ह्रद, कौशिक्य भरत, ज्येष्ठालिका॥७१॥ विश्वेश्वर, कल्पसर, कन्यासवेद्य, निश्चीवाप्रभव ?, वसिष्ठाश्रम॥७२॥ देवकूट, कूप, वीराश्रम, ब्रह्मवीरावकापिली॥७३॥ कुमारधारा, श्रीधारा, गौरीशिखर, शुनःकुण्ड, शुनस्तीर्थ नन्दितीर्थ॥७४॥ कुमारवास, श्रीवास, और्वीशीतीर्थ ?, कुम्भकर्ण ह्रद, कौशिकी ह्रद॥७५॥ धर्मतीर्थ, कामतीर्थ, उद्दालकतीर्थ सन्ध्यातीर्थ, कारतोय, कपिल लोहितार्णव॥७६॥ शोणोद्भव, वंशगुल्म, ऋषभ, कल्पतीर्थक, पुण्यावती ह्रद बदरिकाश्रम॥७७॥ रामतीर्थ, पितृवन, विरजातीर्थ, मार्कण्डेयवन, कृष्णतीर्थ, वटतीर्थ॥७८॥ रोहिणीकूपप्रवर, इन्द्रद्युम्नसर सानुगर्त, समाहेन्द्र, श्रीतीर्थ, श्रीनद॥७९॥ इषुतीर्थ, ऋषभतीर्थ, कावेरी ह्रद, कन्यातीर्थ, गोकर्ण, गायत्रीस्थान॥८०॥ बदरी ह्रद, मध्यस्थान, विकर्णक, जाती ह्रद, देवकूप, कुशप्रवण॥८१॥ सर्वदेवव्रत, कन्याश्रम ह्रद—ये तीर्थ और आश्रम हैं। इसी प्रकार बालखिल्यों और दूसरे महर्षियों के भी अखण्डित ह्रद अर्थात् तीर्थस्थान हैं॥८२½॥ द्विजगण ! जो मनुष्य जितेन्द्रिय, उपवासी तथा पूर्ण श्रद्धालु होकर इन तीर्थों में स्नान करता है और क्रमशः देव, ऋषि, मनुष्य, तथा पितरों का तर्पण कर देव-पूजन करते हुए तीन रात वहाँ वास करता है, वह

प्राप्नोति हयमेधस्य नरो नास्त्यत्र संशयः। यस्त्विदं शृणुयान्नित्यं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्॥
पठेच्च श्रावयेद्वापि सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥८६॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे तीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥२५॥

षड्विंशोऽध्यायः

तत्रादौ स्वयम्भूब्रह्मर्षिसंवादवर्णनम्

मुनय ऊचुः

पृथिव्यामुत्तमा[1] भूमिं धर्म्मकामार्थमोक्षदाम्[2]। तीर्थानामुत्तमं तीर्थं ब्रूहि नो वदतावर॥१॥

लोमहर्षण उवाच

इमं प्रश्नं मम गुरुं पप्रच्छुर्म्मुनयः पुरा। तमहं सम्प्रवक्ष्यामि यत्पृच्छध्वं द्विजोत्तमाः॥२॥
स्वाश्रमे सुमहापुण्ये [3]नानापुष्पोपशोभिते। नानाद्रुमलताकीर्णे नानामृगगणैर्युते॥३॥
पुन्नागैः कर्णिकारैश्च [4]सरलैर्देवदारुभिः। शालैस्तालैस्तमालैश्च पनसैर्धवखादिरैः॥४॥
पाटलाशोकबकुलैः करवीरैः सचम्पकैः। अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैर्नानापुष्पोपशोभितैः॥५॥

प्रत्येक तीर्थ में पृथक्-पृथक् अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त करता है। जो इस उत्तम तीर्थ-माहात्म्य का श्रवण-पठन करेगा या करायेगा, वह सब पापों से मुक्त हो जायगा। ॥८३-८६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में तीर्थमाहात्म्य-वर्णन नामक पचीसवाँ अध्याय समाप्त॥२५॥

अध्याय २६

ब्रह्मा और ब्रह्मर्षियों का संवाद-वर्णन

मुनियों ने कहा—हे वक्ताओं में श्रेष्ठ! पृथिवी में धर्म अर्थ-काम-मोक्षदायक उत्तम भूमि तथा तीर्थों में उत्तम तीर्थ को हमें बतलाइये॥१॥

लोमहर्षण बोले—मुनिवृन्द! पहले मुनियों ने यही प्रश्न मेरे गुरु से पूछा था। इसे मैं बतलाऊँगा, आप लोग सुनिये॥२॥ महापवित्र, नाना प्रकार के पुष्पों से सुशोभित, अनेक वृक्ष-लताओं से व्याप्त, पशु-पक्षीगणों से युक्त, पुन्नाग, कर्णिकार (कनैल या वनचम्पा), सरल (सडर) देवदारु, शाल (साखू), ताल तमाल, पनस (कटहल), धव, खादिर (खैर), पाटला, अशोक, बकुल (मौलसिरी) करवीर, चम्पा और विविध प्रकार के दूसरे

१क ०त्तम भूरि ध०। २क ०क्षदम्। ३ख. ०नामुनिग०। ४क ०रसँर्दे०।

कुरुक्षेत्रे समासीनं व्यास मतिमतां वरम्। महाभारतकर्त्तारं सर्व्वशास्त्रविशारदम् ॥६॥
अध्यात्मनिष्ठं सर्व्वज्ञं सर्व्वभूतहिते रतम्। पुराणागमवक्तारं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥७॥
पराशरसुतं शान्तं पद्मपत्रायतेक्षणम्। द्रष्टुमभ्याययुः प्रीत्या मुनयः संशितव्रताः ॥८॥
कश्यपो जमदग्निश्च भरद्वाजोऽथ गौतमः। वसिष्ठो जैमिनिर्धौम्यो मार्कण्डेयोऽथ वाल्मिकिः ॥९॥
विश्वामित्रः शतानन्दो वात्स्यो गार्ग्योऽथ आसुरिः। सुमन्तुर्भार्गवो नाम कण्वो मेधातिथिर्गुरुः ॥१०॥
माण्डव्यश्च्यवनो धूम्रो ह्यसितो देवलस्तथा। मौद्गल्यस्तृणयज्ञश्च पिप्पलादोऽकृतव्रणः ॥११॥
संवर्तः कौशिको रैभ्यो मैत्रेयो हरितस्तथा। शाण्डिल्यश्च विभाण्डश्च दुर्व्वासा लोमशस्तथा ॥१२॥
नारदः पर्व्वतश्चैव वैशम्पायनगालवौ। भास्करिः पूरणः सूत पुलस्त्यः कपिलस्तथा ॥१३॥
उलूकः पुलहो "वायुर्देवस्थानश्चतुर्भुजः"। सनत्कुमारः पैलश्च कृष्णः कृष्णानुभौतिकः ॥१४॥
एतैर्म्मुनिवरैश्चान्यैर्वृतः सत्यवतीसुतः। रराज स मुनि." श्रीमान् नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥१५॥
तानागतान्मुनीन् सर्व्वान् पूजयामास वेदवित्। तेऽपि तं प्रतिपूज्यैव कथां चक्रुः परस्परम् ॥१६॥
कथान्ते ते मुनिश्रेष्ठाः कृष्णं सत्यवतीसुतम्। पप्रच्छुः सशयं सर्व्वे तपोवननिवासिनः ॥१७॥

मुनय ऊचुः"

मुने वेदांश्च शास्त्राणि पुराणागमभारतम्। भूतं भव्य भविष्यञ्च सर्व्वं जानासि वाङ्मयम् ॥१८॥

कृषों तथा पुण्यों से भी सुशोभित कुरुक्षेत्र में अपने आश्रम में बैठे हुए शान्त, विद्वच्छ्रेष्ठ, महाभारत-रचयिता, सर्वशास्त्र निष्णात, अध्यात्मनिष्ठ, सर्वज्ञ, सब प्राणियों के कल्याण में निरत, पुराण-शास्त्र-वक्ता, वेद-वेदाग-पारगत और कमल के समान दीर्घ नेत्र वाले पराशर-पुत्र व्यास के दर्शन करने के लिये महाव्रती मुनिगण प्रसन्नतापूर्वक आये ॥६-८॥ कश्यप, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, वसिष्ठ, जैमिनि, धौम्य, मार्कण्डेय, वाल्मीकि, विश्वामित्र, शतानन्द, वात्स्य, गार्ग्य आसुरि सुमन्तु भार्गव, कण्व, मेधातिथि, माण्डव्य, च्यवन, धूम्र, असित देवल, मौद्गल्य, तृणयज्ञ, पिप्पलाद, अकृतव्रण संवर्त, कौशिक रैभ्य, मैत्रेय, हरित शाण्डिल्य, विभाण्ड, दुर्वासा, लोमश, नारद, पर्वत, वैशंपायन, गालव, भास्करि पूरण, सूत पुलस्त्य, कपिल, उलूक, पुलह, वायु, देवस्थान, चतुर्भुज, सनत्कुमार, पैल, कृष्ण, कृष्णानुभौतिक—इन मुनिश्रेष्ठों तथा दूसरे भी ऋषियों के मध्य व्यास उसी प्रकार शोभित हो रहे थे जिस प्रकार नक्षत्रों के बीच चन्द्रमा ॥९-१५॥ वेदवेत्ता व्यास ने आगन्तुक मुनियों का सम्मान किया। उन्होंने भी व्यास की पूजा कर आपस में कथा-वार्तालाप छेड़ दिया ॥१६॥ मुनिवर! कथा के अन्त में तपोवन-निवासियों ने व्यास से सदेह पूछा ॥१७॥

मुनियों ने कहा—हे मुने! आप वेद, शास्त्र पुराण आगम महाभारत भूत, भविष्य, वर्तमान—सब कुछ

कष्टेऽस्मिन् दुःखबहुले निःसारे भवसागरे¹। रागग्राहाकुले रौद्रे विषयोदकसंप्लवे ॥१९॥
इन्द्रियावर्त्तकलिले दृष्टोर्मिशतसङ्कुले। ²मोहपङ्काविले दुर्गे ³लोभगम्भीरदुस्तरे ॥२०॥
निमज्जज्जगदालोक्य निरालम्बमचेतनम्। पृच्छामस्त्वां महाभागं ब्रूहि नो ⁴मुनिसत्तम ? ॥२१॥
श्रेयः किमत्र संसारे ⁵भैरवे लोमहर्षणे। उपदेशप्रदानेन लोकानुद्धर्त्तुमर्हसि ॥२२॥
दुर्लभं परमं क्षेत्रं वक्तुमर्हसि मोक्षदम्। पृथिव्यां ⁶कर्म्मभूमिञ्च श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥२३॥
कृत्वा किल नरः सम्यक् कर्म्मभूमौ ⁷यथोदितम्। प्राप्नोति परमां सिद्धिं नरकञ्च⁸ विकर्म्मतः ॥२४॥
मोक्षक्षेत्रे तथा मोक्षं प्राप्नोति ⁹पुरुषः सुधीः¹⁰। तस्माद् ब्रूहि महाप्राज्ञ यत्पृष्टोऽसि द्विजोत्तम ?॥२५॥
श्रुत्वा तु वचनं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम्। व्यासः ¹¹प्रोवाच भगवान्भूतभव्यभविष्यवित् ॥२६॥

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्व्वे वक्ष्यामि यदि पृच्छथ¹²। यः संवादोऽभवत् पूर्व्वमृषीणां ब्रह्मणा सह ॥२७॥
मेरुपृष्ठे¹³ तु विस्तीर्णे नानारत्नविभूषिते। नानाद्रुमलताकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते ॥२८॥
नानापक्षिरुते रम्ये ¹⁴नानाप्रस्रवणाकुले। नानासत्त्वसमाकीर्णे नानाश्चर्य्यसमन्विते ॥२९॥
नानावर्णशिलाकीर्णे नानाधातुविभूषिते। नानामुनिजनाकीर्णे नानाश्रमसमन्विते ॥३०॥

जानते हैं ॥१८॥ अनुराग रूपी ग्राहा से व्याप्त, भयकर, विषयरूपी जल से परिपूर्ण, इन्द्रिय रूपी आवर्तों (भँवर) से युक्त, सैकडो तरगो से सकुल, मोहरूपी कीचड से समन्वित, कठिन, लोभरूपी गम्भीरता से दुस्तर तथा कष्टमय इस सारहीन भवसागर मे चेतनाहीन और नि सहाय होकर डूबते हुए विश्व को देखकर हम आपसे पूछते हैं कि इसे भयानक तथा रोमाञ्चोत्पादक ससार म कल्याण क्या है ? ॥१९-२१½॥ हे महाभाग ! हे मुनिश्रेष्ठ ! आप उपदेश देकर लोगो का उद्धार कर सकते हैं। परम दुर्लभ तथा मोक्ष-दायक क्षेत्र को हमे बतलाइये। पृथिवी पर कर्मभूमि के बारे मे भी हम सुनना चाहते हैं ॥२२-२३॥ भूमि पर शास्त्रविहित कर्मों को करके मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त करता है तथा कुकर्म करने से नरक भी जाता है ॥२४॥ उसी प्रकार विद्वान् पुरुष मोक्ष-क्षेत्र म मोक्ष प्राप्त करता है। इसलिए, हे महाविद्वन् ! हे द्विजवर्य ! जो हमने पूछा है, उसे बतलाइये ॥२५॥ वश्यात्मा मुनियों के वचन सुनकर भूत-भविष्य-वर्तमान-वेत्ता भगवान् व्यास बोले ॥२६॥

व्यास ने कहा—मुनिवृन्द ! यदि आप पूछते हैं तो सुनिये। पहले ब्रह्मा के साथ ऋषियो का जो सवाद हुआ था, वही मैं बतलाऊँगा ॥२७॥ नाना प्रकार के रत्नो से विभूषित, अनेक वृक्ष-लताओ से व्याप्त, विविध पुष्पों से सुशोभित, विभिन्न पक्षियो से शब्दायमान, अनेक जीव-जन्तुओ से परिव्याप्त, अनेक आश्चर्यकारी वस्तुओ से समन्वित विभिन्न वर्णों की शिलाओ तथा धातुओ से विभूषित, अनेक मुनिजनो तथा आश्रमो से युक्त एवम् विस्तृत सुमेरु पर्वत के पीठ पर बैठे हुए विश्वनाथ, जगत् के उत्पत्तिस्थान, विश्ववन्द्य, ससार के आधार तथा शाश्वत ब्रह्मा को

१क. ०रे रोग०। २क ०द्दशोवाचले। ३ग लोहग०। ४ क ख द्विजसत्तम। ५क प्राणिना। ६ख ०र्मभिरजैव श्रो०। ७क. यदीरित०। ८ख वा। ९क ख परम। १०क मुचि। ११ख ०च मतिमान्भू०। १२क. ०थ। यत्सवा०। १३क ग ०ष्ठे सुवि०। १४क ०प्रश्रवणान्विते। ना०।

तत्रासीनं जगन्नाथं जगद्योनिं चतुर्मुखम्। जगत्पतिं जगद्वन्द्यं जगदाधारमीश्वरम् ॥३१॥
देवदानवगन्धर्व्वैर्यक्षविद्याधरोरगैः। मुनिसिद्धाप्सरोभिश्च वृतमन्यैर्दिवालयैः ॥३२॥
(केचित्¹ स्तुवन्ति तं देवं केचिद्गायन्ति चाग्रतः²। केचिद्वाद्यानि वाद्यन्ते केचिन्नृत्यन्ति चापरे ॥३३॥)
एवं प्रमुदिते काले³ सर्व्वभूतसमागमे। नानाकुसुमगन्धाढ्ये दक्षिणानिलसेविते ॥३४॥
भृग्वाद्यास्तं⁴ तदा देवं प्रणिपत्य पितामहम्। ⁵इममर्थमृषिवरा⁶ प्रपच्छुः पितरं द्विजाः⁷ ॥३५॥

ऋषय ऊचुः

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामः कर्म्मभूमिं महीतले। वक्तुमर्हसि देवेश मोक्षक्षेत्रञ्च दुर्लभम् ॥३६॥

व्यास उवाच

तेषां वचनमाकर्ण्य प्राह ब्रह्मा सुरेश्वरः। पप्रच्छुस्ते यथा प्रश्नं तत्सर्व्वं मुनिसत्तमाः ॥३७॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भूब्रह्मर्षिसंवादे प्रश्ननिरूपणं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

सप्तविंशोऽध्यायः

तत्रादौ भारतवर्षवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्व्वे यद्वो⁸ वक्ष्यामि साम्प्रतम्। पुराणं वेदसम्बद्धं भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥१॥

देव दानव, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर, सर्प, मुनि सिद्ध, अप्सरा तथा और भी दूसरे देवता घेरकर बैठे हुए थे। ॥२८-३२॥ कोई ब्रह्मा की स्तुति करते थे तो कोई उनके आगे गाते थ।(कोई बाजे बजाते थे तो कोई नाचते थे ॥३३॥) मुनि-वृन्द! इस प्रकार आनन्दित, नाना प्रकार के पुष्पो से सुगन्धित तथा मलयानिल से सुसेवित प्राणियो के समागम-काल म भृगु आदि मुनि ब्रह्मा को प्रणाम कर यही प्रश्न पूछने लगे ॥३४-३५॥

मुनियों ने कहा—भगवन्! पृथ्वी-तल पर कर्मभूमि के बारे म हम सुनना चाहते हैं। हे देवता के स्वामी! दुर्लभ मोक्षक्षेत्र को भी बतला दीजिये ॥३६॥

व्यास बोले—मुनिवर! उनके वचन सुनकर देवेश ब्रह्मा उनके सारे प्रश्नो का उत्तर देने लगे ॥३७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म ब्रह्मा और ब्रह्मर्षियो के सवाद प्रसग म प्रश्न निरूपण नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२६॥

अध्याय २७

भारतवर्ष का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मुनिगण! इस समय मैं वेदो से सम्बन्ध रखने वाले तथा भोग-मोक्ष को देनेवाले पवित्र

१क ०निमिरचाप्स०। २क ०चित्तु नर्त्तनैर्देव। ३क तत्पत। ४ग लोरे। ५ ०था मुनयो देवा प्र०। ६क ०मर्थं नदा देवा प०। ७क ग ०जा। म०। ८ख यद्वै।

पृथिव्यां भारतं वर्षं कर्म्मभूमिरुदाहृता[1]। कर्म्मणः [2]फलभूमिश्च स्वर्गञ्च नरकं तथा॥२॥
तस्मिन् वर्षे नरः पापं कृत्वा [3]धर्म्मञ्च भो द्विजाः। [4]अवश्यं फलमाप्नोति अशुभस्य शुभस्य च॥३॥
ब्राह्मणाद्या[5] स्वकं कर्म्म कृत्वा सम्यक्सुसंयताः। प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं तस्मिन्वर्षे न संशयः॥४॥
धर्म्मञ्चार्थञ्च कामञ्च मोक्षञ्च द्विजसत्तमाः। प्राप्नोति पुरुषः सर्व्वं तस्मिन् वर्षे सुसंयतः॥५॥
इन्द्राद्याश्च सुरा सर्व्वे तस्मिन् वर्षे द्विजोत्तमाः। कृत्वा[6] सुशोभनं कर्म्म देवत्वं प्रतिपेदिरे॥६॥
अन्येऽपि लेभिरे मोक्षं पुरुषाः[7] संयतेन्द्रियाः[8]। तस्मिन् वर्षे बुधाः शान्ता वीतरागा विमत्सराः[9]॥७॥
ये चापि स्वर्गे तिष्ठन्ति विमानेन[10] गतज्वराः। [11]तेऽपि कृत्वा शुभं[12] कर्म्म तस्मिन् वर्षे दिवं गताः॥८॥
निवासं भारते वर्षे आकाङ्क्षन्ति सदा सुराः। स्वर्गापवर्गफलदे तत्पश्यामः[13] कदा वयम्॥९॥

मुनय ऊचुः

यदेतद्भवता प्रोक्तं कर्म्म[14] नान्यत्र पुण्यदम्। पापाय[15] वा सुरश्रेष्ठ वर्ज्जयित्वा[16] च भारतम्॥१०॥
ततः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यमं[17] तच्च गम्यते[18]। न[19] खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म्म विधीयते॥११॥
तस्माद्विस्तरतो ब्रह्मन्नस्माकं भारतं वद। यदि तेऽस्ति[20] दयास्मासु यथावस्थितिरेव च॥१२॥
तस्माद्वर्षमिदं[21] नाथ ये चास्मिन् वर्षपर्व्वताः। भेदाश्च तस्य वर्षस्य ब्रूहि सर्व्वानशेषतः॥१३॥

पुराण के बारे मे कहूँगा आप लोग सुनें॥१॥ पृथिवी पर कर्मभूमि के रूप मे भारतवर्ष बतलाया गया है। कर्म-फल की भूमि तथा स्वर्ग-नरक भी यहीं है॥२॥ विप्रवृन्द! भारतवर्ष म मनुष्य पाप-पुण्य करके उनके शुभ अशुभ फल अवश्य पाते हैं॥३॥ इस वर्ष मे ब्राह्मण आदि वर्ण सयमपूर्वक अपने-अपने कर्मो को करके निःसन्देह परा सिद्धि प्राप्त करते हैं॥४॥ द्विजश्रेष्ठो! इस वर्ष मे पुरुष सयमी होकर धर्म-अर्थ-काम मोक्ष—सब कुछ प्राप्त कर सकता है॥५॥ विप्रवर! इस वर्ष मे इन्द्र आदि देवगण उत्तम कर्म करके देवत्व को प्राप्त हुए॥६॥ दूसरे भी जितेन्द्रिय, विद्वान् शान्त, वीतराग तथा ईर्ष्यारहित पुरुषो ने इस वर्ष मे मोक्ष को प्राप्त किया॥७॥ जो भी तापरहित होकर विमान के द्वारा स्वर्ग मे विराज रहे हैं वे भी इसी वर्ष मे शुभ कर्म करके स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं॥८॥ स्वर्ग-मोक्ष-दायक भारतवर्ष मे वास करने के लिये देवतालोग सदा लालायित रहते हैं॥९॥

मुनियो ने कहा—हे देवश्रेष्ठ! आपने जिसलिए यह कहा है कि पाप-पुण्य-दायक कर्म भारतवर्ष को छोड़कर कहीं नहीं होता एवम् मनुष्यो के लिए भारतवर्ष ही स्वर्ग-मोक्ष-दायक कर्म भूमि है इसलिए भारतवर्ष के विषय मे हमे विस्तारपूर्वक बतलाइये। ब्रह्मन्! यदि हमारे ऊपर आपकी कृपा है तो भारतवर्ष, इसके वर्षपर्वत तथा वर्ष के भेदो को निःशेष करके बतला दीजिए॥१०-१३॥

१क ०हृतम्। क०। २ख ०र्मिहि स्व०। ३ख कर्म। ४ख [०णाद्यास्तु यत्कर्म०। ५क ०त्वा] तु शो०। ६क ख सयता। ७क सजिते०। ८ ०क ०रा। देवा स्व०। ९ख ०ने विग०। १०ख ते कृ०। ११ख सुशुभ। १२क उत्पस्याम। १३क ०र्मं चान्य०। १४ख पापद। १५ख वर्णयित्वा। १६ख ०ध्यदचान्तरच ग०। १७क ०ते। ततश्चान्यत्र। १८ख न चास्ति चात्र। १९क ते स्निग्धताऽस्मा। २०क० ०द यावद्येऽप्यस्मि०।

ब्रह्मोवाच

शृणुध्व भारत वर्षं नवभेदेन भो द्विजा । समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते समाश्च परस्परम ॥१४॥
इन्द्रद्वीप कशेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान् । नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वो वारुणस्तथा ॥१५॥
अयन्तु नवमस्तेषा द्वीप सागरसवृत । योजनाना सहस्र वै द्वीपोऽय दक्षिणोत्तर ॥१६॥
पूर्वे किराता यस्यासन पश्चिमे यवनास्तथा । ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चान्त स्थिता द्विजा ॥१७॥
इज्यायुद्धवणिज्याद्यै कर्मभि कृतपावना । तेषा सव्यवहारश्च एभि कर्मभिरिष्यते ॥१८॥
स्वर्गापवर्गहेतुश्च पुण्य पापञ्च वै तथा । महेन्द्रो मलय सह्य शुक्तिमानृक्षपर्वत ॥१९॥
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैवात्र कुलाचला । तेषा सहस्रशश्चान्ये भूधरा ये समीपगा ॥२०॥
विस्तारोच्छ्रयिणो रम्या विपुलाश्चित्रसानव । कोलाहल स वैभ्राजो मन्दरो दर्दुराचल ॥२१॥
वातन्धयो वैद्युतश्च मैनाक सुरसस्तथा । तुङ्गप्रस्थो नागगिरिर्गोधन पाण्डराचल ॥२२॥
पुष्पगिरिर्वैजयन्तो रैवतोऽर्बुद एव च । ऋष्यमूक स गोमन्थ कृतशैल श्रृताचल ॥२३॥
श्रीपार्वतश्चकोरश्च शतशोऽन्ये च पर्वता । तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छाद्याश्चैव भागश ॥२४॥
तै पीयन्ते सरिच्छ्रेष्ठास्ता बुध्यध्व द्विजोत्तमा । गङ्गा सरस्वती सिन्धुश्चन्द्रभागा तथापरा ॥२५॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण ! भारतवर्ष के नौ भेदों को सुनिये जो परस्पर समुद्रों से व्यवहित हैं ॥१४॥ जैसे—इन्द्रद्वीप कशेरु ताम्रवर्ण गभस्तिमान् नागद्वीप सौम्य गान्धर्व वारुण और नवाँ यह द्वीप (भारतवर्ष) है जो समुद्र से आवृत है ॥१५॥ दक्षिण उत्तर में यह द्वीप एक हजार योजन विस्तृत है। इसके पूरब भाग में किरात पश्चिम में यवन और अन्त में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र रहते हैं ॥१६ १७॥ द्विजवृन्द ! ब्राह्मण आदि वर्ण क्रमश यज्ञ युद्ध व्यापार और सेवा रूप कर्मों से पवित्र होते हैं। इन्हीं कर्मों से उनका परस्पर व्यवहार चलता है ॥१८॥ स्वर्ग मोक्ष और पुण्य-पाप का उत्पत्ति-स्थान यही द्वीप है। यहाँ महेन्द्र मलय सह्य शुक्तिमान ऋक्ष विन्ध्य और पारियात्र नामक सात पर्वत हैं ॥१९॥ उनके पास दूसरे भी हजारों पर्वत हैं जो विस्तृत उच्च रमणीय तथा चित्र विचित्र शिखर वाले हैं। जैसे—कोलाहल वैभ्राज मन्दर दर्दुराचल वातन्धय वैद्युत मैनाक सुरस तुङ्गप्रस्थ नागगिरि गोधन पाण्डराचल पुष्पगिरि वैजयन्त रैवत अर्बुद ऋष्यमूक गोमन्थ कृतशैल श्रृताचल श्रीपार्वत चकोर तथा दूसरे भी सैकड़ों पर्वत हैं ॥२०-२३॥ इन पर्वतों से मिश्रित म्लेच्छ आदि अनेक देश हैं जिनके निवासी उत्तम नदियों का जल पीते हैं ॥२४॥ द्विजश्रेष्ठो ! उन नदियों के नाम सुनिये। जैसे—

यमुना शतद्रुर्विपाशा वितस्तैरावती कूहुः[1]। गोमती धूतपापा[2] च बाहुदा च दृषद्वती ॥२६॥
विपाशा देविका चक्षुर्निष्ठीवा गण्डकी तथा। कौशिकी चापगा चैव हिमवत्पादनिःसृताः ॥२७॥
देवस्मृतिर्देववती वातघ्नी सिन्धुरेव च। वेण्या तु चन्दना[3] चैव सदानीरा[4] मही तथा[5] ॥२८॥
चर्मण्वती वृषी[6] चैव विदिशा वेदवत्यपि[7]। सिप्रा[8] ह्यवन्ती च तथा पारियात्रानुगाः स्मृताः ॥२९॥
शोणा[9] महानदी चैव नर्मदा सुरथा क्रिया[10]। मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा[11] तथापरा ॥३०॥
चित्रोत्पला वेत्रवती[12] करमोदा पिशाचिका। तयान्यातिलघुश्रोणी विपाप्मा[13] शैवला[14] नदी ॥३१॥
सधेरजा[15] शक्तिमती[16] शकुनी त्रिदिवा क्रमुः[17]। ऋक्षपादप्रसूता वै तथान्या[18] वेगवाहिनी ॥३२॥
सिप्रा[19] पयोष्णी निर्विन्ध्या[20] तापी चैव सरिद्वरा। वेणा वैतरणी चैव सिनीवाली[21] कुमुद्वती ॥३३॥
तोया[22] चैव महागौरी दुर्गा चान्तःशिला तथा। विन्ध्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ॥३४॥
गोदावरी भीमरथी कृष्णवेणा तथापगा। तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा तथान्या पापनाशिनी ॥३५॥
सह्यपादविनिष्क्रान्ता इत्येताः सरिता वराः। कृतमाला[23] ताम्रपर्णी पुष्पजा[24] प्रत्यलावती ॥३६॥
मलयाद्रिसमुद्भूताः पुण्याः शीतजलास्त्विमाः। पितृसोमर्षिकुल्या च[25] वञ्जुला[26] त्रिदिवा च या ॥३७॥

गंगा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा, यमुना, शतद्रु, विपाशा, वितस्ता, एरावती कुहू गोमती धूतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, देविका, चक्षु, निष्ठीवा, गण्डकी, कौशिकी—ये नदियाँ हिमालय से निकली हैं ॥२५-२७॥ देवस्मृति, देववती, वातघ्नी, सिन्धु, वेण्या, चन्दना, सदानीरा, मही, चर्मण्वती वृषी, विदिशा वेदवती सिप्रा अवन्ती—ये नदियाँ पारियात्र से निःसृत हैं। ॥२८-२९॥ शोणा, महानदी, नर्मदा, सुरथा क्रिया मन्दाकिनी, दशार्णा चित्रकूटा, चित्रोत्पला, वेत्रवती, करमोदा, पिशाचिका, अतिलघुश्रोणी, विपाप्मा,शैवला सधेरजा शक्तिमती, शकुनी, त्रिदिवा और क्रमु ऋक्षपर्वत से बहिर्भूत हैं ॥३०-३२॥ सिप्रा, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, नदीश्रेष्ठ तापी, वेणा, वैतरणी, सिनीवाली, कुमुद्वती, तोया, महागौरी, दुर्गा, अन्तःशिला—ये पवित्र जलवाली नदियाँ विन्ध्य पर्वत से निकली हैं ॥३३-३४॥ गोदावरी, भीमरथी, कृष्णवेणा, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा तथा और भी पापनाशिनी श्रेष्ठ नदियां सह्य पर्वत से निकली हैं ॥३५½॥ कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पजा, प्रत्यलावती—ये शीततोया पवित्र नदियाँ मलयपर्वत से निकली हैं ॥३६½॥ पितृसोमर्षिकुल्या, वञ्जुला, त्रिदिवा लाङ्गुलिनी और वंशकरा महेन्द्रपर्वत से निकली हैं ॥३७½॥ सुविकाला, कुमारी, मनूगा मन्दगामिनी और क्षयापलासिनी शुक्तिमान्

१ख. कुरु। २ख हृतपापा। ३क ग वदना। ४ख ०दापारामकी त०। ५ग ०था। परा चर्मण्वती चै०। ६ख नृपी। ग मृपा। ७ख वेत्रव०। ८क ०क्षिप्रा। ख शीघ्रा। ९ख ग शोणो। १०क कृपा। ११ख वेत्रकृपा। १२क चैत्रवती। १३क ख विपाशा। १४ग चैवला। १५क समरजा। ख समेरजा। १६ख शुक्तिमती। १७क ऋतु। ख कुरु। १८क ०था भद्रावादिनी। १९क चित्रा। २०क विन्ध्यान्ता। २१ख ०वालाकुमुद्वता। तो०। ग ०वाला कु०। २२क वापी। २३क शतमाला। २४क ०जात्युत्पला०। २५क. च चन्द्रमाला दि०। २६ग. इक्षुला।

लाङ्गलिनी[1] वंशकरा[2] महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः। सुविकाला कुमारी च मनूगा मन्दगामिनी ॥३८॥
क्षयापलासिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः। सर्व्वाः पुण्याः सरस्वत्यः सर्व्वा गङ्गाः समुद्रगाः ॥३९॥
विश्वस्य मातरः सर्व्वाः सर्व्वाः[3] पापहराः स्मृताः। अन्याः सहस्रशः प्रोक्ताः क्षुद्रनद्यो द्विजोत्तमाः ॥४०॥
प्रावृट्कालवहाः सन्ति सदाकालवहाश्च[4] याः। मत्स्या मुकुटकुल्याश्च कुन्तलाः[5] काशिकोशलाः ॥४१॥
अन्ध्रकाश्च[6] कलिङ्गाश्च शमकाश्च वृकैः[7] सह। मध्यदेशा जनपदाः प्रायशोऽमी प्रकीर्त्तिताः ॥४२॥
सह्यस्य[8] चोत्तरे यस्तु यत्र गोदावरी नदी। पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ॥४३॥
गोवर्द्धनपुरं रम्यं भार्गवस्य महात्मनः। वाहीका[9] वाटधानाश्च सुतीराः कालतोयदाः ॥४४॥
अपरान्ताश्च शूद्राश्च[9] वाह्लिकाश्च सकेरलाः। गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः ॥४५॥
शतद्रुहाः[10] कलिङ्गाश्च पारदा हारभूषिकाः[11]। माठराश्चैव कनकाः[12] कैकेया दम्भमालिकाः ॥४६॥
क्षत्रियोपमदेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च। काम्बोजाश्चैव विप्रेन्द्रा बर्ब्बराश्च सलौकिकाः[13] ॥४७॥
वीराश्चैव तुषाराश्च[14] पह्लवाधायता[15] नराः। आत्रेयाश्च भरद्वाजाः पुष्कलाश्च[16] दशेरकाः ॥४८॥
लम्पकाः शुनशोकाश्च कुलिकाः जाङ्गलैः सह। औषध्यश्चलचन्द्रा च किरातानाञ्च जातयः ॥४९॥
तोमरा हंसमार्गाश्च काश्मीराः करुणास्तथा। शूलिकाः कुहकाश्चैव मागधाश्च तथैव च ॥५०॥
एते[17] देशा उदीच्यास्तु[18] प्राच्यान् देशान्निबोधत। अन्ध्रा[19] वामङ्कुराकाश्च वल्लकाश्च मखान्तकाः ॥५१॥

पर्वत से निकली हैं ॥३८½॥ द्विजवर! ये सभी नदियाँ पवित्र हैं और सभी गंगा में गिरती हैं। ये सब नदियाँ पापहारिणी तथा विश्वमाताएँ हैं ॥३९½॥ इनके अतिरिक्त अन्यान्य छोटी मोटी नदियाँ और भी हैं। इनमेंसे कुछ तो केवल बरसाती हैं और कुछ सदा बहती रहती हैं ॥४०½॥ मत्स्य, मुकुटकुल्य, कुन्तल, काशिकोशल, अन्ध्रक, कलिङ्ग, शमक और वृक ये जनपद मध्यदेश कहलाते हैं ॥४१–४२॥ सह्यपर्वत के उत्तर भाग में जहाँ गोदावरी नदी है, वह प्रदेश सम्पूर्ण पृथ्वी में (सर्वाधिक) मनोरम है ॥४३॥ वहाँ महात्मा भार्गव का गोवर्धनपुर रमणीय है। वाहीक, वाटधान, सुतीर, कालतोयद, अपरान्त, शूद्र, वाह्लिक, केरल, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, मद्र, शतद्रुह, कलिङ्ग पारद, हारभूषिक, माठर, कनक, कैकेय, दम्भमालिक—ये क्षत्रियोपम देश हैं तथा वैश्य एवं शूद्रकुल हैं ॥४४–४६½॥ द्विजेन्द्रो! काम्बोज, बर्बर, लौकिक, वीर, तुषार, पह्लव, आधायत, नर, आत्रेय, भरद्वाज, पुष्कल, दशेरक, लम्पक, शुनशोक, कुलिक, जाङ्गल, औषधि, चलचन्द्र, किरात-जाति, तोमर, हंसमार्ग, काश्मीर, करुण, शूलिक कुहक और मागध—ये उत्तर दिशा के देश हैं। अब जो पूर्व दिशा के देश हैं उन्हें भी समझ लीजिए ॥४७–५०½॥ अन्ध, वामकुराक, वल्लक, मखान्तक, अङ्ग, वङ्ग, मलद, मालवर्तिक, भद्रतुङ्ग, प्रतिजय, भार्याङ्ग, अपमर्दक, प्राग-

---

१क लांगली चैव श०। २क ख सर्वपा०। ३ख ०या। मान्या कुमुदमान्याश्च चक्रगा वा०। ४क मतुगा। ५क अथर्वाश्च। ६क वृषैः। ७ग ०ह्यश्चैवात्त०। ८क वाधिकाश्चावधान्यश्च मुनिराकाल्तो०। ९ख ०श्च पादपाश्चर्मखण्डिका। गा०। १०क शतदुर्गा। ख शतद्रुका। ११ग ०रमूषि। १२क करका-श्चैकपादा सुनासिका। १३क ०का। चीनाश्चै०। १४ क ०श्च ऊर्णा दार्वास्तथैव च। ए०। १५ग पञ्चवा-लायतीन०। १६क ०प्कराश्च। १७क एव। १८क प्राच्या दिशि निबो०। १९ ग अन्यत्रा मुद्गाराश्च कश्मीरा करणास्तथा। शूलिका कुहकाश्चैव समग्निरवहिर्गिरा। त०।

[1]तथापरेऽङ्गा वङ्गाश्च[2] मलदा मालवर्त्तिकाः। भद्रतुङ्गाः[3] प्रतिजया भार्य्याङ्गाश्चापमर्द्दकाः ॥५२॥
प्राग्ज्योतिषाश्च मद्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः। मल्ला मगधका नन्दाः प्राच्या जनपदास्तथा ॥५३॥
तथापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः। पूर्णाश्च[4] केवलाश्चैव गोलाङ्गूलास्तथैव च ॥५४॥
ऋषिका[5] मुषिकाश्चैव कुमारा[6] रामठाः शकाः। महाराष्ट्रा माहिषका[7] कलिङ्गाश्चैव सर्व्वशः[8] ॥५५॥
आभीराः सह वैशिक्या[9] अटव्याः[10] [11]सरवाश्च ये। पुलिन्दाश्चैव मौलेया वैदर्भा दण्डकैः सह ॥५६॥
पौलिका[12] मौलिकाश्चैव अश्मका भोजवर्द्धनाः। कौलिकाः[13] कुन्तलाश्चैव दम्भका[14] नीलकालका ॥५७॥
दाक्षिणात्यास्त्वमी देशा अपरान्तान्निबोधत। शूर्पारकाः [15]कालिधना[16] लोलास्तालकटैः सह ॥५८॥
इत्येते ह्यपरान्ताश्च शृणुध्वं विन्ध्यवासिनः। मलजाः[17] कर्कशाश्चैव मेलकाश्चोलकैः[18] सह ॥५९॥
उत्तमार्णा दशार्णाश्च भोजाः किष्किन्ध्यकैः सह। तोषलाः[19] कोशलाश्चैव त्रैपुरा वैदिशास्तथा ॥६०॥
तुम्बुरास्तु चराश्चैव यवनाः पवनैः सह। अभया[20] रुण्डिकेराश्च चर्च्चरा होत्रधर्त्तयः ॥६१॥
एते जनपदाः सर्व्वे तत्र विन्ध्यनिवासिनः। अतो देशान् प्रवक्ष्यामि [21]पर्व्वताश्रयिणश्च[22] ये ॥६२॥
नीहारास्तुषमार्गाश्च कुरवस्तङ्गणा.[23] खसाः। कर्णप्रावरणाश्चैव[24] ऊर्णा दर्घाः सकुन्तकाः ॥६३॥
चित्रमार्गा मालवाश्च किरातास्तोमरैः सह। कृतत्रेतादिकश्चात्र चतुर्युगकृतो विधिः ॥६४॥

ज्योतिप, मद्र, विदेह ताम्रलिप्तक, मल्ल, मगधक और नन्द—प्राच्य देश कहलाते हैं।।५१–५३।। तथा दूसरे जनपद दक्षिणापथगामी है—एव पूर्ण केवल, गोलाङ्गूल ऋषिक, मुषिक कुमार, रामठ, शक, महाराष्ट्र, माहिषक, कलिङ्ग, आमीर, वैशिक्य, अटव्य, सरव, पुलिन्द मौलेय, वैदर्भ, दण्डक, पौलिक, मौलिक, अश्मक, भोजवर्धन, कौलिक, कुन्तल, दम्भक, नीलक, अलक—ये दक्षिण के देश हैं। अव पश्चिम दिशा के देशो को समझिए—।।५४–५७½।। शूर्पारक, कालिधन, लोल, तालकट—ये प्रतीच्य देश कहलाते है। अब विन्ध्यपर्वत स्थित देशो के नाम सुनिये।।५८½।। मलज कर्कश, मेलक, चोलक, उत्तमार्ण, दशार्ण, भोज, किष्किन्धक, तोषल,कोशल, त्रैपुर, वैदिश, तुम्बुर चर यवन पवन, अभय, रुण्डिकेर, चर्चर, होत्रधर्ति—ये सब विन्ध्य-स्थित देश हैं। अब मैं पर्वतो के आश्रयी देशो के नाम बतलाता हूँ—।।५९–६२।। नीहार, तुषमार्ग, कुरु, तङ्गण, खस, वर्णप्रावरण, ऊर्ण, दर्घ,कुन्तक, चित्रमार्ग, मालव, किरात और तोमर ये पार्वत्य प्रदेश है।।६३½।। इस प्रकार भारतवर्ष मे नौ खण्ड हैं इस द्वीप के पूर्व और इस वर्ष (द्वीप) म सत्ययुग ,त्रेता आदि चार युग होते है।

१ ख ०था प्रचरगा वं०। २ ख ०ङ्गा म०। ३ क ब्रह्मतुङ्गा। ४ क पूरणा केरला०। ५ ख रुप्टिका। ग तूषिका। ६ ग ०रानाम वासका। ७ क माहिषिका। ८ क ०श। स०। ९ क ०शिका अपाख्याश्च शवराश्च सहगश। पुण्ड्रका विन्ध्यलेन्वाश्च वं०। १० स आपाश्च। ११ ख श्ववराश्च। १२ ग पालिका। १३ क वालिका। १४ ख ०म्भवानलका०। १५ क ०लिधना०। १६ ग ०नादूर्णास्थालटिकं स०। १७ ख ०लश्वना सकेशाश्च मे०। १८ ख ग ०श्चोत्कले स०। १९ क उल्लापा। ख अपला। २० क ०यास्तुङ्गरा सर्वे सर्वरा होनवर्नका। ए०। २१ क ०तानाश्रिताश्च०। २२ ख ०श्रमिण०। २३ ख ०णास्तथा। कुण्डप्रा०। २४ ख ०व उल्लाटच्यः सकुन्चका।

एवं तु भारतं वर्षं नवसंस्थानसंस्थितम्। दक्षिणे[1] परतो यस्य पूर्व्वे चैव महोदधिः॥६५॥
हिमवानुत्तरेणास्य कार्मुकस्य यथा गुणः। तदेतद्भारतं वर्षं सर्व्वबीजं द्विजोत्तमाः॥६६॥
ब्रह्मत्वममरेशत्वं देवत्वं मरुतां तथा। मृगयक्षाप्सरोयोनिं तद्वत् सर्पसरीसृपाः॥६७॥
स्थावराणाञ्च सर्व्वेषामितो विप्राः शुभाशुभैः। प्रयान्ति कर्म्मभूर्विप्रा नान्या लोकेषु विद्यते॥६८॥
देवानामपि भो विप्राः सदैवैष मनोरथः। अपि मानुष्यमाप्स्यामो देवत्वात् प्रच्युताः क्षितौ॥६९॥
मनुष्यः कुरुते यत्तु तन्न शक्यं सुरासुरैः। तत्कर्म्मनिगडग्रस्तैस्तत्कर्म्मक्षपणोन्मुखैः॥७०॥
न भारतसमं वर्षं पृथिव्यामस्ति भो द्विजाः। यत्र विप्रादयो वर्णाः प्राप्नुवन्त्यभिवाञ्छितम्॥७१॥
धन्यास्ते भारते वर्षे जायन्ते ये नरोत्तमाः। धर्म्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्नुवन्ति महाफलम्॥७२॥
प्राप्यते यत्र तपसः फलं परमदुर्लभम्। सर्व्वदानफलञ्चैव सर्व्वयज्ञफलं तथा॥७३॥
तीर्थयात्राफलञ्चैव गुरुसेवाफलं तथा। देवताराधनफलं स्वाध्यायस्य फलं द्विजाः[2]॥७४॥
यत्र देवाः सदा हृष्टा जन्म वाञ्छन्ति शोभनम्। नानाव्रतफलञ्चैव नानाशास्त्रफलं तथा॥७५॥
अहिंसादिफलं सम्यक्फलं सर्व्वाभिवाञ्छितम्। ब्रह्मचर्य्यफलञ्चैव गार्हस्थ्येन च यत्फलम्॥७६॥
यत्फलं वनवासेन सन्न्यासेन च यत्फलम्। इष्टापूर्त्तफलञ्चैव तथान्यच्छुभकर्म्मणाम्॥७७॥
प्राप्यते भारते वर्षे न चान्यत्र द्विजोत्तमाः[3]। कः शक्नोति गुणान् वक्तुं भारतस्याखिलान्द्विजाः॥७८॥
एवं सम्यङ्मया प्रोक्तं भारतं वर्षमुत्तमम्। सर्व्वपापहरं पुण्यं धन्यं[4] बुद्धिविवर्द्धनम्॥७९॥

दक्षिण में समुद्र और उत्तर में धनुष की डोरी की तरह हिमालय स्थित है। द्विजवर ! यह भारतवर्ष सभी वस्तुओं की उत्पत्ति का केन्द्र है॥६४–६६॥ यहाँ से जीव अपने-अपने शुभ अशुभ कर्मों के द्वारा ब्रह्मत्व, देवत्व, देवेशत्व और वायुत्व को तथा मृग, यक्ष, अप्सरा, सर्प और स्थावर की योनि को प्राप्त करते हैं। विप्रवृन्द ! संसार में केवल भारतवर्ष ही कर्मभूमि है ॥६७–६८॥ द्विजगण ! देवताओं की सदा यही लालसा रहती है कि हम देवत्व से च्युत होकर पृथ्वी पर मनुष्य-योनि को प्राप्त करें॥६९॥ मनुष्य जो कर्म कर सकता है, वह कर्मरूपी *शृंखला में बद्ध तथा कर्म-क्षय करने के लिए उद्यत देवता और राक्षस नहीं कर सकते॥७०॥* द्विजगण ! पृथिवी पर भारत के समान कोई वर्ष नहीं है, जहाँ ब्राह्मण आदि वर्ण अभिलषित फल प्राप्त करते हैं॥७१॥ वे उत्तम मनुष्य धन्यवाद के पात्र हैं जो भारतवर्ष में जन्म लेकर धर्म अर्थ-काम-मोक्ष प्राप्त करते हैं॥७२॥ भारतवर्ष में तपस्या, सर्वदान, सर्वयज्ञ, तीर्थयात्रा, गुरुसेवा, देवता-आराधन और स्वाध्याय का परम दुर्लभ फल प्राप्त होता है॥७३–७४॥ इस वर्ष में सुन्दर जन्म पाने के लिए देवतागण उत्कण्ठित रहते हैं। द्विजवर्य ! नानाव्रत, नानाशास्त्र, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वनवास, सन्यास, इष्टापूर्त (यज्ञ विशेष) तथा दूसरे शुभकर्मों का फल भारतवर्ष से अन्यत्र कहीं नहीं मिलता॥७५–७७½॥ द्विजगण ! भारत के अशेष गुणों का वर्णन कौन कर सकता ? ॥७८॥ इस प्रकार सब

---

१ क ०णे वै पुरामाक्षा पू०। ख ०णे च पुरी चास्य पू०। २ ख ०गपक्षा०। ३ क ०त्ता। नानाविदवर्ष०। ४ क धनधान्यवि०। ख धनवृ०।

य इदं शृणुयान्नित्यं पठेद्वा' नियतेन्द्रियः। 'सर्व्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥८०॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे भारतवर्षानुकीर्त्तनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

तत्रादौ कोणादित्यमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तत्रास्ते भारते वर्षे दक्षिणोदधिसंस्थितः'। ओण्ड्रदेश इति ख्यातः स्वर्गमोक्षप्रदायकः ॥१॥
समुद्रादुत्तरं' तावद्यावद्विरजमण्डलम्। देशोऽसौ' पुण्यशीलानां गुणैः सर्व्वैरलङ्कृतः ॥२॥
तत्र देशप्रसूता ये ब्राह्मणाः संयतेन्द्रियाः। तपःस्वाध्यायनिरता वन्द्याः पूज्याश्च ते सदा ॥३॥
श्राद्धे' दाने विवाहे च' यज्ञे वाचार्य्यकर्म्मणि। प्रशस्ताः सर्व्वकार्य्येषु' तत्रदेशोद्भवा द्विजाः ॥४॥
षट्कर्म्मनिरतास्तत्र ब्राह्मणा वेदपारगाः। इतिहासविदश्चैव पुराणार्थविशारदाः ॥५॥

पापो को हरने वाले, बुद्धि को बढ़ाने वाले, स्तुत्य, पवित्र, तथा उत्तम भारतवर्ष का वर्णन मैंने कर दिया ॥७९॥ जो व्यक्ति इन्द्रियो को वश म करके इस आख्यान का नित्य श्रवण या पठन करेगा, वह सब पापो से रहित होकर विष्णु-लोक को प्राप्त करेगा ॥८०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे ब्रह्मा तथा ऋषियो के सवाद प्रकरण मे भारतवर्षानुकीर्तन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२७॥

अध्याय २८

कोणादित्य का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा'—भारतवर्ष मे दक्षिण समुद्र के समीप स्वर्ग-मोक्षदायक ओण्ड्रदेश विख्यात है ॥१॥ समुद्र से उत्तर विरजमण्डल तक सब गुणो से विभूषित पुण्यात्मा मनुष्यो का निवास ओण्ड्र देश है ॥२॥ उस देश के ब्राह्मण जितेन्द्रिय, तप और स्वाध्याय मे निरत, वन्दनीय एवम् पूजनीय होते हैं ॥३॥ वे ब्राह्मण श्राद्ध, दान, विवाह, यज्ञ या आचार्यकर्म तथा सब कार्यों मे प्रशस्त माने जाते हैं ॥४॥ वे षट्शास्त्री, वेदपारगत, इतिहास-वेत्ता, पुराण विशारद, सर्वशास्त्र-कुशल, यज्ञ-कर्ता, ईर्ष्यारहित, स्त्री-पुत्र धन से युक्त, दाता तथा सत्यवादी हैं। उनमे से कोई अग्निहोत्री

---

१ क. ख जपेद्वा। २ क ०पापविनि। ३ क ०त। ४ क. ०र यावद्व्रतेति जयम०। ख ०रयावद्रम्य विर०। ५ ख ०सौ गुणशी०। ६ क श्राद्धकाले वि०। ७ क. च ये ज्ञेया पुण्यक०। ८ क ०र्वयज्ञेषु।

सर्व्वशास्त्रार्थकुशला यज्वानो[1] वीतमत्सराः। अग्निहोत्ररताः केचित् केचित् स्मार्त्ताग्नितत्पराः॥६॥
पुत्रदारधनैर्युक्ता दातारः[2] सत्यवादिनः। निवसन्त्युत्तले पुण्ये यज्ञोत्सवविभूषिते॥७॥
इतरेऽपि त्रयो वर्णाः क्षत्रियाद्याः सुसंयताः। [3]स्वकर्म्मनिरताः शान्तास्तत्र तिष्ठन्ति धार्म्मिकाः[4]॥८॥
कोणादित्य इति ख्यातस्तस्मिन् देशे[5] व्यवस्थितः[6]। यं दृष्ट्वा भास्करं मर्त्त्यः सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥९॥

मुनय ऊचुः

श्रोतुमिच्छाम तद्ब्रूहि क्षेत्रं सूर्य्यस्य साम्प्रतम्। तस्मिन् देशे सुरश्रेष्ठ यत्रास्ते स दिवाकरः॥१०॥

ब्रह्मोवाच

लवणस्योदधेस्तीरे पवित्रे सुमनोहरे। सर्व्वत्र वालुकाकीर्णे देशे सर्व्वगुणान्विते॥११॥
चम्पकाशोकबकुलैः करवीरैः सपाटलैः। पुन्नागैः कर्णिकारैश्च बकुलैर्नागकेसरैः॥१२॥
तगरैर्धवबाणैश्च अतिमुक्तैः सकुब्जकैः। मालतीकुन्दपुष्पैश्च तथान्यैर्मल्लिकादिभिः॥१३॥
[7]केतकीवनखण्डैश्च[8] सर्व्वर्त्तुकुसुमोज्ज्वलैः। [9]कदम्बैर्लकुचैः शालैः पनसैर्देवदारुभिः॥१४॥
सरलैर्मुचुकुन्दैश्च[10] चन्दनैश्च सितेतरैः। अश्वत्थैः सप्तपर्णैश्च आम्रैराम्रातकैस्तथा॥१५॥
तालैः पूगफलैश्चैव नारिकेलैः कपित्थकैः। अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः सर्व्वतः समलङ्कृतम्[11]॥१६॥
क्षेत्रं तत्र रवेः पुण्यमास्ते जगति विश्रुतम्। समन्ताद्योजनं साग्रं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥१७॥

(वैदिक कर्म करनेवाले) है तो कोई स्मार्त-अग्नि-निरत (स्मृति विहित कर्म करनेवाले) है। उस पवित्र देश में नित्य यज्ञ उत्सव होता रहता है॥५–७॥ वहाँ ब्राह्मण के अतिरिक्त क्षत्रिय आदि तीनों वर्ण भी अपने अपने कर्म में निरत, सयमी, शान्त तथा धर्मात्मा होकर वास करते हैं॥८॥ उस देश में व्यवस्थित 'कोणादित्य' नाम से प्रसिद्ध सूर्य को देखने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है॥९॥

मुनियों ने कहा—सम्प्रति हम लोग उस सूर्य के क्षेत्र का वर्णन सुनना चाहते हैं। हे सुर श्रेष्ठ! उस स्थान के बारे में कहिये, जहाँ वे सूर्य रहते हैं॥१०॥

ब्रह्मा बोले—लवण समुद्र के पवित्र, मनोहर, सर्वगुणसम्पन्न तथा बालू से परिपूर्ण तट पर चम्पा, अशोक, मौलसिरी अशोक करवीर पाटला, पुनाग, वनकचम्पा, नागकसर, तगर, धव, अतिमुक्त, कुब्जक, मालती, कुन्द, मल्लिका केवडा, कदम्ब, बडहर, साखू, कटहल देवदारु, सरल मुचुकुन्द, चन्दन, अश्वत्थ, सप्तपर्ण, आम्र, इमली, ताल, सुपारी, नारियल, कैथा और अनेक प्रकार के दूसरे वृक्षों से विभूषित, पवित्र तथा जगत्प्रसिद्ध सूर्य का क्षेत्र है॥११–१६½॥ जो चारों तरफ एक-एक योजन विस्तृत एवम् भोग-मोक्ष के फल को देनेवाला है। वहाँ साक्षात्

---

१ क शानिना। २ ख हातार। ३ क ख स्वधर्म०। ४ क ०का। वर्णादि०। ५ ख ०न्देवादित्याकर। क०। ६ क मुनीश्वरा। ७ ख ०र्विाणरव०। ८ ख ०श्च वकुलैर्नागकसरैः। क०। ९ ख ०वंत कु०। १० क कदम्ब-बकुलाशाः प०। ११ क ०श्च मुक्तरंरमितैं परैः। अ०। १२ क ०कृते। क्षे०।

आस्ते तत्र स्वयं देवः सहस्रांशुर्दिवाकरः। कोणादित्य इति ख्यातो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः[1]॥१८॥
माघे मासि सिते पक्षे सप्तम्यां संयतेन्द्रियः। कृतोपवासो यत्रैत्य स्नात्वा तु मकरालये॥१९॥
कृतशौचो विशुद्धात्मा स्मरन् देवं दिवाकरम्। सागरे विधिवत् स्नात्वा[2] शर्वर्य्यन्ते समाहितः॥२०॥
देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितृन् सन्तर्प्य च द्विजाः। उत्तीर्य्य वाससी धौते परिधाय [3]सुनिर्म्मले॥२१॥
आचम्य प्रयतो भूत्वा तीरे तस्य महोदधेः। उपविश्योदये काले प्राङ्मुखः सवितुस्तदा॥२२॥
विलिख्य पद्मं मेधावी रक्तचन्दनवारिणा। अष्टपत्रं केसराढ्यं [4]वर्त्तुलं[5] चोर्ध्वकर्णिकम्॥२३॥
तिलतण्डुलतोयञ्च रक्तचन्दनसंयुतम्। रक्तपुष्पं[6] सदर्भञ्च प्रक्षिपेत्ताम्रभाजने॥२४॥
ताम्राभावेऽर्कपत्रस्य पुटे कृत्वा तिलादिकम्। पिधाय तन्मुनिश्रेष्ठाः पात्रं पात्रेण विन्यसेत्[7]॥२५॥
करन्यासाङ्गविन्यासं कृत्वाङ्गैर्हृदयादिभिः। आत्मानं भास्करं[8] ध्यात्वा सम्यक् [9]श्रद्धासमन्वितः[10]॥२६॥
मध्ये चाग्निदले धीमान्नैर्ऋते श्वसने दले। ऐशानगोचरे चैव पुनर्मध्ये च पूजयेत्॥२७॥
प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम्[11]। सम्पूज्य पद्ममावाह्य गगनात्तत्र भास्करम्॥२८॥
कर्णिकोपरि संस्थाप्य ततो [12]मुद्रां [13]प्रदर्शयेत्। कृत्वा स्नानादिकं सर्वं ध्यात्वा तं सुसमाहितः॥२९॥
सितपद्मोपरि [14]रविं [15]तेजोबिम्बे व्यवस्थितम्। पिङ्गाक्षं द्विभुजं रक्तं [16]पद्मपत्रारुणाम्बरम्[17]॥३०॥

सहस्र किरणधारी सूर्य रहते हैं जो कोणादित्य नाम से प्रसिद्ध तथा भोग मोक्ष-दायक हैं ॥१७-१८॥ माघमास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि में वहाँ जाकर जितेन्द्रिय होकर मनुष्य उपवासपूर्वक समुद्र में स्नान करे। स्नान के बाद शुद्ध चित्त से सूर्य का ध्यान करे। रात के अन्त में सावधान होकर विधिपूर्वक समुद्र में स्नान करे॥१९-२०॥ देवता, ऋषि और मनुष्यों का तर्पण कर दो स्वच्छ वस्त्रों को धारण करे ॥२१॥ उसी समुद्र के तट पर आचमन से पवित्र होकर सूर्योदय काल में पूर्व की ओर मुख करके बैठ जाये॥ २२ ॥ फिर विद्वान् व्यक्ति लाल चन्दन मिश्रित जल से आठ पत्तों वाले, केसर (फूलों के बीच के पतले २ सींके) से परिपूर्ण गोलाकार और ऊपर की ओर कर्णिका (कमल फूल) के समान कमल को लिखकर तिल, चावल, जल, रक्तचन्दन, रक्तपुष्प और कुश को ताँबे के पात्र में रखे ॥२३-२४॥

मुनिवर्य! ताँबे के अभाव में आक के पत्ते के दोने में तिल आदि रखे और हे मुनीन्द्रो! उस पात्र को दूसरे पात्र से ढककर न्यास करे ॥२५॥ *फिर हृदय आदि अंगों में अङ्गन्यास तथा करन्यास अच्छी तरह करके श्रद्धा-*पूर्वक सूर्य का ध्यान करे ॥२६॥ विद्वान् मनुष्य मध्यदल में अग्नि नैर्ऋत, ईशान तथा वायु कोण के दल में और फिर मध्य दल में पूजा करे॥२७॥ पश्चात् प्रभूत, विमल, सार आराध्य और परम सुख कमल को पूजकर आकाश में सूर्य का आवाहन करे ॥२८॥ कर्णिका (कमल का छत्ता) के ऊपर स्थापित कर मुद्रा प्रदर्शन करे। स्नान के अनन्तर सावधान मन से स्वच्छ कमल के ऊपर तेजोमण्डल में स्थित, पीत नेत्रवाले, दो भुजाओं वाले,

---

१ क ख. ०क्तिप्रदायक'। मा०। २ क ख ०त्वा गर्वेन्द्रियग०। ३ क विनिर्मले। ४ ग वर्तुल। ५ क ०ल कैंकर०। ६ ग ०ष्पं च द०। ७ ख. ०न्। अगन्यासकरन्यास। ८ क ख ०र रा०। ९ क ख ०द्धाभावग०। १० क. ०तः। सर्वंदेवनिधानिध्ये प्रहारश्चैव समास्तरान्। ईशानकोणग त च पु०। ११ क विभुम्। १२ क मुद्रा। १३ ख प्रदापयन्। १४ ख ०वि तोये तत्र स्थ०। १५ क. ०जामूर्ति गजाननम्। १६ ख ग ०पद्महस्तार०। १७ ख ०रुण रश्मिम्।

सर्व्वलक्षणसयुक्तं सर्व्वाभरणभूषितम्। सुरूपं वरदं शान्तं प्रभामण्डलमण्डितम् ॥३१॥
उद्यन्तं[1] भास्करं दृष्ट्वा सान्द्रसिन्दूरसन्निभम्। [2]ततस्तत्पात्रमादाय जानुभ्यां धरणीं गतः ॥३२॥
कृत्वा शिरसि तत्पात्रमेकचित्तस्तु [3]वाग्यतः। त्र्यक्षरेण तु मन्त्रेण सूर्य्यायार्घ्यं निवेदयेत् ॥३३॥
अदीक्षितस्तु तस्यैव नाम्नैवार्घ्यं[4] प्रयच्छति। श्रद्धया भावयुक्तेन भक्तिग्राह्यो रविर्यतः ॥३४॥
अग्निनिर्ऋतिवाय्वीशमध्यपूर्व्वादिदिक्षु च। हृच्छिरश्च शिखावर्मनेत्राण्यस्त्रञ्च पूजयेत् ॥३५॥
दत्त्वार्घ्यं गन्धधूपञ्च दीपं नैवेद्यमेव च। जप्त्वा स्तुत्वा[5] नमस्कृत्वा मुद्रां बद्ध्वा विसर्ज्जयेत् ॥३६॥
ये चार्घ्यं सम्प्रयच्छन्ति सूर्य्याय नियतेन्द्रियाः[6]। ब्राह्मणाः[7] क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्राश्च[8] संयताः ॥३७॥
भक्तिभावेन सततं विशुद्धेनान्तरात्मना। ते भुक्त्वाभिमतान् कामान् प्राप्नुवन्ति परां गतिम् ॥३८॥
त्रैलोक्यदीपकं देवं भास्करं गगनेचरम्। [9]ये संश्रयन्ति मनुजास्ते[10] स्युः [11]सुखस्य[11] भाजनम् ॥३९॥
यावन्न [12]दीयते चार्घ्यं [13]भास्कराय] यथोदितम्[14]। तावन्न पूजयेद्विष्णुं शङ्करं वा सुरेश्वरम् ॥४०॥
तस्मात्[1] प्रयत्नमास्थाय दद्यादर्घ्यं दिने दिने। आदित्याय [15]शुचिर्भूत्वा पुष्पैर्गन्धैर्मनोरमैः ॥४१॥
एवं ददाति यश्चार्घ्यं सप्तम्यां सुसमाहितः आदित्याय शुचिः स्नातः स लभेदीप्सितं फलम् ॥४२॥

लाल कमल के समान अरुण वस्त्र धारी, सर्वलक्षण-सपन्न, सब आभूषणो से विभूषित, सुन्दर रूपवाले, वर देनेवाले, शान्त और प्रभा मडल से मडित सूर्य का ध्यान और पूजन करे ॥२९–३१॥ फिर सघन सिन्दूर के समान उदित होते हुए सूर्य को देखकर पूर्वोक्त पात्र को ग्रहण करें और घुटने टेककर उस पात्र को मस्तक पर रखकर वाक्‌सयमी तथा सावधान हो तीन अक्षर वाले मत्र से सूर्य को अर्घ दे ॥३२–३३॥ अदीक्षित मनुष्य केवल सूर्य का नाम लेकर अर्घ दे, क्योकि सूर्य श्रद्धा, भाव और भक्ति से ही प्रसन्न होते है ॥३४॥ अग्नि, निर्ऋति, वायु, ईशान, मध्य और पूर्व आदि दिशाओ म हृदय शिर, शिखा, नेत्र, कवच और अस्त्र की भी पूजा करे ॥३५॥ अर्घ, गन्ध, धूप, दीप और नैवेद्य देकर जप, स्तुति और नमस्कार करके मुद्रा बाधकर विसर्जन करे ॥३६॥ जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सयमी होकर भक्ति भाव तथा विशुद्ध मन से सतत सूर्य को अर्घ प्रदान करते है, वे अभिलषित भोगो को भोगकर उत्कृष्ट गति को प्राप्त करते हैं ॥३७–३८॥ जो मनुष्य तीनो लोक को प्रकाशित करनेवाले आकाश-विहारी सूर्यदेव की उपासना करते हैं, वे सुखो के भोक्ता होते हैं ॥३९॥ जबतक सूर्य को यथा विहित अर्घ न दिया जाय तबतक विष्णु, शकर या इन्द्र की पूजा नही की जा सकती ॥४०॥ इसलिए प्रतिदिन पवित्र होकर सुन्दर पुष्प-गन्ध आदि से यत्नपूर्वक सूर्य को अर्घ देना चाहिए ॥४१॥ इस प्रकार सप्तमी तिथि को स्नान करके पवित्र तथा सावधान होकर जो सूर्य को अर्घ देता है, वह मनोवाछित फल प्राप्त करता है ॥४२॥ सूर्यार्घ्य देने से रोगी

१ख उद्यंग। २ ख ०स्तत्पात्रमा०। ३ क ०तः। षडक्षरेण म०। ४ क नाम्नाऽग्राह्य प्रपूजयेत्। श्र०। ५ख जपित्वा। ६ क ०द्रा सुस०। ७ख ये चस्मरन्ति। ८ग पूजयन्ति। ९ग ०स्ते सर्वे सु०। १० क सुखमागिनः। ११ ग ०खमागिन। या०। १२ क ०ते भक्त्या मा०। १३ क ०रायार्घ उत्तम। ता०। १४ ख निवदितम्। १५ क स शुचि स्ना०।

रोगाद्विमुच्यते रोगी वित्तार्थी लभते धनम् विद्या प्राप्नोति विद्यार्थी सुतार्थी पुत्रवान् भवेत ॥४३॥
य य काममभिध्यायन सूर्य्यायार्घ्यं प्रयच्छति तस्य तस्य फल सम्यक् प्राप्नोति पुरुष 'सुधी ॥४४॥
स्नात्वा' वै सागरे दत्वा सूर्य्यायार्घ्य प्रणम्य च। नरो वा यदि वा नारी सर्व्वकामफल लभेत' ॥४५॥
तत सूर्य्यालय गच्छेत पुष्पमादाय वागयत '। प्रविश्य पूजयेदभानु कृत्वा तु' त्रि प्रदक्षिणम ॥४६॥
पूजयेत् परया भक्त्या कोणार्कं मुनिसत्तमा । गन्धै पुष्पैस्तथा' 'दीपैर्धूपै नवेद्यके' रपि ॥४७॥
दण्डवत प्रणिपातैश्च जयशब्दैस्तथा स्तवै ''। एव सम्पूज्य त देव सहस्रांशु 'जगतपतिम ॥४८॥
दशानामश्वमेधाना फल प्राप्नोति मानव । सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तो युवा 'दिव्यवपुर्नर ॥४९॥
''सप्तावरान सप्त'' परान् वशानुद्धृत्य भो द्विजा । विमानेनार्कवर्णेन कामगेन सुवर्च्चसा ॥५०॥
उपगीयमानो गन्धर्व्व सूर्य्यलोक स गच्छति। भुक्त्वा तत्र वरान भोगान यावदाभूतसम्प्लवम ॥५१॥
पुण्यक्षयादिहायात प्रवरे योगिना कुले। चतुर्व्वेदो 'भवेद्विप्र ' स्वधर्म्मनिरत 'शुचि ॥५२॥
योग विवस्वत ''प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात। चैत्रे मासि सिते पक्षे यात्रा मदनभञ्जिकाम ॥५३॥
य करोति नरस्तत्र पूर्व्वोक्त स फल लभेत। शयनोत्थापने भानो सक्रान्त्या विषुवायने ॥५४॥

राग से मुक्त हो जाता है धन र्थी धन विद्यार्थी विद्या एवम पुत्रार्थी पुत्र प्राप्त करता ह ॥४३॥ जो विद्वान पुरुष मन म जिस इच्छा को रखकर सूय को अघ देता है उसका वह इच्छा भली भाति पूण होती है॥४४॥ पुरुष या स्त्री—जो कोई समद्र म स्नान कर सूय को प्रणाम करके अघ देता है उसकी सब कामनाए पूरा होत हैं ॥४५॥ तदुपरान्त सूय मन्दिर म मौन होकर हाथ म पुष्प लेकर सूय का तीन बार प्रदक्षिणा कर पूजा करे ॥४६॥ मुनिवय ! गन्ध-पुष्प धूप दीप-नवद्य स श्रद्धा भक्ति पूवक कोणाक सूय का पूजा करना चाहिए ॥४७॥ द्विजगण ! दण्डवत प्रणाम जय शब्द क उच्चारण एवम स्तुति स पूव कथित विधि के अनुसार सहस्रांशु जगत्पति सूय का पूजाकर मनुष्य दस अश्वमध यज्ञो का फल प्राप्त करता है और सब पापा स मुक्त होकर दिव्य देहधारी युवक बन जाता है। ॥४८–४९॥ उसकी आग का सात पीढी तथा बाद का सात पीढी का उद्धार हो जाता है। और अन्त म वह सूय क समान तेजस्वी तथा इच्छागामी विमान म स्थित होकर गन्धर्वों स प्रशसित होता हुआ सूयलोक को प्राप्त करता है॥५०½॥ वहाँ बहुत दिनो तक उत्तम भोगो का भोगकर पुण्य-क्षय होन पर मर्त्यलोक म योगिया क उत्तम कुल म जन्म लेकर चारो वेदो का ज्ञाता स्वधमपरायण तथा पवित्र ब्राह्मण होकर सूय से योग को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करता है॥५१–५२½॥ चत्रमास क शुक्ल पक्ष म जो मनुष्य काम को नष्ट करनेवाली कोणार्क की यात्रा करता है वह पूर्वोक्त फल को प्राप्त करता है॥५३½॥ विप्रवृन्द ! सूय क शयन उत्थापन

१ख परम्। २क स्नात्वव सा०। ख स्नात्वव सा०। ३ क ख ०याघ प्र०। ४क ख ०त्। पूव गगाम्भसा स्नात्वा कुर्वाऽऽभिच्य मूधनि। सवपापविनिमुक्ता नरा याति त्रिविष्टपम्। त०। ५क सवर। ६क त। ७घ ०था धू०। ८क ०र्नै०। ९ख ०र्नैपनैवद्यकद्विजा। द०। १०क ०वद्यविविधैस्तया। द०। ११क ख पर्ग। १२क त्रिविक्रमम्। १३घ ०व्यदचिन०। १४ग ०प्तापरा०। १५क ०प्तपूर्वान्व०। १६ख ग ०वन्म०। १७क ख ०प्र मथप०। १८क मवह द्रु०। १९ख देवापत।

वारे रवेस्तिथौ[1] चैव पर्व्वकालेऽथवा द्विजाः। ये तत्र यात्रां कुर्व्वन्ति श्रद्धया संयतेन्द्रियाः ॥५५॥
विमानेनार्कवर्णेन सूर्य्यलोकं व्रजन्ति ते। आस्ते तत्र महादेवस्तीरे[2] नदनदीपतेः ॥५६॥
रामेश्वर इति ख्यातः सर्व्वकामफलप्रदः। ये[3] तं पश्यन्ति कामारिं स्नात्वा सम्यङ्महोदधौ ॥५७॥
गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यकैर्वरैः। प्रणिपातैस्तथा स्तोत्रैर्गीतैर्वाद्यैर्मनोहरैः[4] ॥५८॥
राजसूयफलं सम्यग्वाजिमेधफलं तथा। प्राप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां तथा ॥५९॥
कामगेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना। उपगीयमाना गन्धर्व्वैः शिवलोकं व्रजन्ति ते ॥६०॥
आभूतसंप्लवं यावद्भुक्त्वा भोगान्मनोरमान्। पुण्यक्षयादिहागत्य[5] चातुर्वेद्या भवन्ति ते ॥६१॥
शाङ्करं योगमास्थाय ततो मोक्षं व्रजन्ति ते। यस्तत्र[6] सवितुः क्षेत्रे प्राणांस्त्यजति मानवः ॥६२॥
स सूर्य्यलोकमास्थाय[7] देववन्मोदते दिवि[8]। पुनर्मानुषतां[9] प्राप्य राजा भवति धार्म्मिकः ॥६३॥
योगं रवेः समासाद्य ततो मोक्षमवाप्नुयात्। एवं मया मुनिश्रेष्ठाः[10] प्रोक्तं क्षेत्रं सुदुर्लभम् ॥६४॥
कोणार्कस्योदधेस्तीरे[11] भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥६५॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भुऋषिसंवादे कोणादित्यमाहात्म्यकीर्त्तनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

संक्रान्ति, उत्तरायण, रविवार तथा सप्तमी तिथि में, अथवा पर्वकाल में जो मनुष्य इन्द्रियों का संयमन कर श्रद्धापूर्वक वहाँ की यात्रा करते हैं, वे सूर्य सदृश वर्णवाले विमान में बैठकर सूर्यलोक को जाते हैं ॥५४–५५½॥ उसी के निकट समुद्र तट पर सब कामनाओं का फल देनेवाले रामेश्वर नाम से प्रख्यात महादेव हैं ॥५६ ॥ जो मनुष्य समुद्र में अच्छी तरह स्नान कर उन महादेव के दर्शन करते हैं एवम् गन्ध, पुष्प धूप दीप, नैवेद्य, प्रणाम, स्तोत्र और सुन्दर गीत-वाद्यों से उनकी पूजा करते हैं वे महात्मा राजसूय और अश्वमेध यज्ञों के फल तथा परम सिद्धि को प्राप्त करते हैं और इच्छानुकूल गमन करनेवाले किंकिणी-जाल से विभूषित विमान पर चढ़कर गन्धर्वों द्वारा प्रशंसित होते हुए शिवलोक को जाते हैं ॥५७–६०॥ वहाँ बहुत दिनों तक उत्तम भोगों को भोगकर पुण्य-क्षय होने पर फिर इस लोक में आते हैं और चारों वेदों के ज्ञाता होकर शांकर योग में आस्था रखते हुए मुक्ति प्राप्त करते हैं ॥६१½॥ जो मनुष्य उस सूर्य-क्षेत्र में प्राणत्याग करता है वह सूर्यलोक में जाकर स्वर्ग में देवता के समान आनन्द प्राप्त करता है ॥६२½॥ *और फिर वह मनुष्य योनि में आकर धर्मात्मा राजा होता है और सूर्य-योग* को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करता है ॥६३½॥ मुनिवर्य! इस प्रकार मैंने परम दुर्लभ, भोग मोक्ष के फलदायक तथा समुद्र तट पर स्थित कोणार्क-क्षेत्र का वर्णन कह सुनाया ॥६४–६५॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषियों के संवाद प्रकरण में कोणादित्य-माहात्म्य-वर्णन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२८॥

---

१ क. ख. ग. तिथिवर्ज्जेषु च। २ ग. ०र तथा सुप्तेन वै०ग०। ३ ग. धूपप्रदीपैर्दत्वा स्ना०। ४ ख. ०र्गीतैर्वा०। ५ ख. ०नारम्भे। ग०। ६ ग. ०न किङ्किणि नियम स्तथा। ७ ग. ०हायनो शिवलोके व्रजन्ति। ८ क. यस्तत्र। ९ क. ख. ०मासाद्य द०। १० ग. च चिरम्। ११ ग. ०नुष्यत्वे प्रा०। १२ ग. ०श्रेष्ठा यथावत्कथितं हितम्। १३ क. ०रे माहात्म्यं मुक्तिदं नृणाम्।

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

तत्रादौ सूर्यपूजाप्रकरणम्

मुनय ऊचुः

श्रुतोऽस्माभिः सुरश्रेष्ठ भवता यदुदाहृतम्। भास्करस्य परं क्षेत्रं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१॥
न तृप्तिमधिगच्छाम शृण्वन्तः सुखदां कथाम्। तव वक्त्रोद्भवां पुण्यामादित्यस्याघनाशिनीम् ॥२॥
अतः परं सुरश्रेष्ठ ब्रूहि नो वदतांवर। देवपूजाफलं यच्च यच्च दानफलं प्रभो ॥३॥
प्रणिपाते नमस्कारे तथा चैव प्रदक्षिणे। दीपधूपप्रदाने च सम्मार्जनविधौ च यत् ॥४॥
उपवासे च यत् पुण्यं यत् पुण्यं [1]नक्तभोजने। अर्घ्यश्च कीदृशः प्रोक्तः[2] कुत्र वा संप्रदीयते ॥५॥
कथञ्च क्रियते भक्तिः कथं देवः प्रसीदति। एतत् सर्वं सुरश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥६॥

ब्रह्मोवाच

अर्घं पूजादिकं सर्वं भास्करस्य द्विजोत्तमाः। भक्तिं श्रद्धा[3] समाधिञ्च कथ्यमानं निबोधत ॥७॥
मनसा भावना [4]भक्तिरिष्टा श्रद्धा च कीर्त्यते। ध्यानं समाधिरित्युक्तं शृणुध्वं सुसमाहिताः ॥८॥
तत्कथां श्रावयेद् यस्तु तद्भक्तान्[5] पूजयीत वा। अग्निशुश्रूषकश्चैव स वै भक्तः सनातनः ॥९॥
तच्चित्तस्तन्मनाश्चैव देवपूजारतः सदा। तत्कर्मकृद्भवेद् यस्तु स वै भक्तः सनातनः ॥१०॥

अध्याय २९

सूर्य-पूजा का प्रकरण

मुनियों ने कहा—हे देवश्रेष्ठ! आपसे वर्णित भोग-मोक्ष-फल-दायक सूर्य-क्षेत्र के बारे में हमने सब कुछ सुना ॥१॥ पर आपके मुख से निःसृत सूर्य की पापनाशिनी, पवित्र तथा सुख-दायक कथा को सुनने से तृप्ति नहीं होती ॥२॥ अतः वाग्विदावर, प्रभो! उस देव की पूजा का फल, दान का फल और प्रणाम, नमस्कार, प्रदक्षिणा, दीप धूप-दान, मार्जन, उपवास तथा रात्रि-भोजन में जो पुण्य होता है, वह भी हम बतलाइये ॥३–४½॥ हे सुरश्रेष्ठ! अर्घ कैसा होना चाहिये या कहाँ देना चाहिये, भक्ति कैसे की जाती है और वह देव कैसे प्रसन्न होते हैं—यह सब हम लोग सुनना चाहते हैं ॥५–६॥

ब्रह्मा बोले—द्विजवर्य! सूर्य के अर्घ, पूजा, भक्ति, श्रद्धा, समाधि की पद्धति बतला रहा हूँ, आपलोग सुनें ॥७॥ मन से की जाने वाली भावना ही इष्ट भक्ति और श्रद्धा कही गयी है। और ध्यान योग ही समाधि है। आपलोग सावधान होकर सुनें ॥८॥ जो मनुष्य सूर्य की कथा को सुनाएगा या उनके भक्तों की पूजा करेगा तथा अग्निहोत्री होगा, वही सनातन भक्त कहा जाएगा ॥९॥ जो सदा सूर्य ही में अपने चित्त-मन को लगाता है, उन्हीं

१ख ०ने। देवस्नान क्व प्रोक्त वि च वास प्र०। २ क. ०क्त वीदृग्वास प्र०। ३ क स्तव। ४ क भक्ति: सदा। ५ ख ०क्ताञ्छ्रूयतस्तदा। अ०।

देवार्थे[1] क्रियमाणानि य कर्म्माण्यनुमन्यते। कीर्त्तनाद्वा परो विप्राः स वै भक्ततरो नरः॥११॥
नाभ्यसूयेत तद्भक्तान् न निन्द्याच्चान्यदेवताम्[2]। आदित्यव्रतचारी च स वै भक्ततरो[3] नरः॥१२॥
गच्छंस्तिष्ठन् स्वपञ्जिघ्रन्निमिषन्निमिषन्नपि। यः स्मरेद्भास्करं नित्यं स वै भक्ततरो नरः॥१३॥
एवं विधा त्वियं भक्तिः सदा कार्य्या विजानता। भक्त्या समाधिना चैव स्तवेन मनसा तथा[4]॥१४॥
क्रियते नियमो यस्तु दानं विप्राय दीयते। प्रतिगृह्णन्ति तं देवा मनुष्याः पितरस्तथा॥१५॥
पत्रं पुष्पं फलं तोयं[5] यद्भक्त्या समुपाहृतम्। प्रतिगृह्णन्ति तद्देवा नास्तिकान् वर्ज्जयन्ति च॥१६॥
भावशुद्धिः[6] प्रयोक्तव्या नियमाचारसंयुता। भावशुद्ध्या क्रियते यत्तत् सर्व्वं सफलं भवेत्[7]॥१७॥
स्तुतिजप्योपहारेण पूजयापि विवस्वत.। उपवासेन भक्त्या[8] वै सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥१८॥
प्रणिधाय शिरो भूम्यां नमस्कारं करोति यः। तत्क्षणात् सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥१९॥
भक्तियुक्तो नरो योऽसौ रवेः कुर्यात् प्रदक्षिणाम्। प्रदक्षणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥२०॥
सूर्य्यं मनसि यः कृत्वा कुर्य्याद्व्योमप्रदक्षिणाम्। प्रदक्षिणीकृतास्तेन सर्व्वे देवा भवन्ति हि॥२१॥
एकाहारो नरो भूत्वा षष्ठ्यां[9] योऽर्च्चयते रविम्। नियमव्रतचारी च[10] भवेद्भक्तिसमन्वितः[11]॥२२॥
सप्तम्यां वा महाभागाः सोऽश्वमेधफलं लभेत्। अहोरात्रोपवासेन पूजयेद् यस्तु भस्करम्॥२३॥

की पूजा म निरत रहता है और उनके लिए कर्म करता है वह सनातन भक्त है॥१०॥ विप्रवृन्द! देवता के निमित्त क्रियमाण कर्मों का जो अनुमोदन या कीर्तन करता है, वह मनुष्य महाभक्त है॥११॥ जो मनुष्य देव-भक्तो से ईर्ष्या नही रखता, अन्य देवता की निन्दा नहीं करता और सूर्य-व्रत का धारण करता है, वह महाभक्त है॥१२॥ जो मनुष्य जाते स्थित होते, सोते, सूंघते और नत्रा को खोलते तथा मीचते सूर्य का नित्य स्मरण करता है, वह महाभक्त है॥१३॥ *विज्ञ पुरुष का इस प्रकार की भक्ति सदा करनी चाहिये। जो मनुष्य भक्ति, समाधि, स्तुति तथा मन से* नियम करता है तथा ब्राह्मण को दान देता है, उस दान को देवता, मनुष्य और पितर स्वीकार करते है॥१४–१५॥ पत्र, पुष्प, फल जल—जो कुछ भी भक्तिपूर्वक समर्पित किया जाता है, उसे देवता स्वीकार करते हैं। पर देवता नास्तिको का दान स्वीकार नही करते॥१६॥ *नियम और आचार पूर्वक भाव-शुद्धि होनी चाहिये। भाव शुद्धि से* जो कुछ भी किया जाता है वह सब सफल होता है॥१७॥ सूर्य की पूजा स्तुति, जप, उपहार और उपवास से मनुष्य सर्व-पाप-रहित हो जाता है॥१८॥ जो भूमि पर सिर रखकर सूर्य को नमस्कार करता है, उसके तत्काल सब पाप नष्ट हो जाते हैं इसमें कोई सशय नही॥१९॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्य की प्रदक्षिणा करता है, वह सातो द्वीप सहित पृथ्वी की प्रदक्षिणा का फल प्राप्त करता है॥२०॥ जो मन म सूर्य का ध्यान करके आकाश मे प्रदक्षिणा करता है वह सब देवताओ की प्रदक्षिणा करता है॥२१॥ जो मनुष्य एकाहार करके षष्ठी या सप्तमी तिथि म नियम, व्रत और भक्ति पूर्वक सूर्य की अर्चना करता है वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है॥२२३॥ अहोरात्र

१ ग वेदार्थे। २ ख ०न्याद्वान्य०। ३ ख ०वता। आ०। ४ ख ०क्ततरो जन। ग०। ५ ख शुद्धेन। ६ ख ०या। देवमुद्दिश्य मा१५ त दा०। ७ ख ०य तत्सव। ८ क भावेन हि कृत यच्च तत्स०। ९ क ०त्। तनुनाप्युपचारे०। १० ग षष्ठ्या। ११ क ख च रवेर्भक्ति०। १२ क ०त। कृष्ण०।

सप्तम्यामथवा षष्ठ्यां स याति परमां गतिम्। कृष्णपक्षस्य सप्तम्यां[1] सोपवासो जितेन्द्रियः ॥२४॥
सर्व्वरत्नोपहारेण पूजयेद् यस्तु भास्करम्। पद्मप्रभेण यानेन सूर्य्यलोकं स गच्छति ॥२५॥
शुक्लपक्षस्य सप्तम्यामुपवासपरो नरः। सर्व्वंशुक्लोपहारेण पूजयेद्[2] यस्तु भास्करम् ॥२६॥
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तः सूर्य्यलोकं स गच्छति। अर्कसम्पुटसंयुक्तमुदकं प्रसृतं[3] पिबेत्[4] ॥२७॥
क्रमवृद्ध्या चतुर्व्विंशमेकैकं क्षपयेत् पुनः। द्वाभ्यां संवत्सराभ्यान्तु समाप्तनियमो भवेत् ॥२८॥
सर्व्वकामप्रदा ह्येषा प्रशस्ता[5] ह्यर्कसप्तमी। शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां यदादित्यदिनं भवेत् ॥२९॥
सप्तमी[6] विजया नाम तत्र दत्तं महत् फलम्[7]। स्नानं दानं तपो होम उपवासस्तथैव च ॥३०॥
सर्व्वं विजयसप्तम्यां[8] महापातकनाशनम्। ये चादित्यदिने प्राप्ते श्राद्धं कुर्व्वन्ति मानवाः ॥३१॥
यजन्ति[10] च महाश्वेतं ते लभन्ते यथेप्सितम्। येषां धर्म्याः[11] क्रियाः सर्व्वाः सदैवोद्दिश्य भास्करम् ॥३२॥
न कुले जायते तेषां दरिद्रो व्याधितोऽपि वा। श्वेतया रक्तया वापि पीतमृत्तिकयापि वा ॥३३॥
उपलेपनकर्त्ता तु चिन्तितं लभते फलम्। चित्रभानुं विचित्रैस्तु कुसुमैश्च सुगन्धिभिः ॥३४॥
पूजयेत् सोपवासो यः स कामानीप्सितांल्लभेत्। घृतेन दीपं प्रज्वाल्य तिलतैलेन वा पुनः ॥३५॥

उपवास करके जो सप्तमी या अष्टमी तिथि मे सूर्य की पूजा करता है, वह परम गति को प्राप्त करता है ॥२३½॥ कृष्ण पक्ष की सप्तमी मे जो इन्द्रिय-सयमपूर्वक उपवास करके सब रत्नो के उपहार से सूर्य की पूजा करता है, वह कमल की-सी कान्ति वाले विमान से सूर्यलोक को जाता है ॥२४–२५॥ जो मनुष्य शुक्ल पक्षकी सप्तमी मे उपवास करके सर्वथा स्वच्छ उपहार से सूर्य की पूजा करता है, वह सब पापो से मुक्त होकर सूर्य लोक को प्राप्त करता है ॥२६½॥ यदि चौबीस दिनो तक क्रमश एक एक की वृद्धि कर आक के दोने से प्रसृत जल पिये और फिर क्रमश एक एक का ह्रास करे तो दो वर्ष तक इस प्रकार करते रहने से नियम की समाप्ति हो जाने पर यह अर्क सप्तमी सब कामनाओ को देनेवाली होती है ॥२७–२९½॥ जब शुक्ल पक्ष की सप्तमी मे रविवार पड जाता है तब वह विजया सप्तमी कहलाती है, उसमे दान देने से महाफल होता है। विजया सप्तमी मे स्नान, दान, तप, होम और उपवास—ये सब भयकर पापो का नाश करने वाले होते हैं ॥२८–३०½॥ जो मनुष्य रवि के दिन श्राद्ध तथा सूर्य की पूजा करते हैं। उन्हे मनोवाछित फल मिलता है ॥३१½॥ जिनकी सब क्रियायें धार्मिक तथा सूर्य को उद्देश्य करके होती है उनके कुल मे कोई दरिद्र या रोगी नही होता ॥३२½॥ श्वेत, रक्त या पीत मृत्तिका से जो सूर्यालय को लीपता है, वह अभिलषित फल प्राप्त करता है ॥३३½॥ चित्र-विचित्र प्रकार के फूलो तथा गन्धो से जो उपवास पूर्वक सूर्य की पूजा करता है, वह ईप्सित फल की प्राप्ति करता है ॥३४½॥ घृत या तिल के तेल से दीप जलाकर जो सूर्य की पूजा करता है, उसे कोई

---

१ क ०म्या पूजयेद्योजि०। २ क ०रक्तोप०। ३ क ०येद्यो दिवाकर०। ४ ग ०त्। हरासवृ०। ५ ख ग ०यदेवं०। ६ क प्रसिद्धा। ७ क शर्वरी। ८ क ०म्। प्रदाम जपहोमौ च उ०। ९ क ०प्तम्यामनन्तफलद स्मृतम्। १० ग जपन्ति। ११ ग धर्मा।

आदित्यं पूजयेद्यस्तु चक्षुषा न स हीयते। दीपदाता नरो नित्यं ज्ञानदीपेन दीप्यते ॥३६॥
'तिलाः पवित्रं' तैलं वा तिलगोदानमुत्तमम्। अग्निकार्य्ये च दीपे च महापातकनाशनम् ॥३७॥
दीपं ददाति यो नित्यं देवतायतनेषु च। चतुष्पथेषु रथ्यासु रूपवान् सुभगो भवेत् ॥३८॥
हविर्भिः प्रथमः कल्पो द्वितीयश्चोषधीरसैः। वसामेदोऽस्थिनिर्यासैर्न तु देयः कथञ्चन ॥३९॥
भवेदूर्ध्वगतिर्दीपो न कदाचिदधोगतिः। दाता दीप्यति चाप्येवं न तिर्यग्गतिमाप्नुयात् ॥४०॥
ज्वलमानं सदा दीपं न हरेन्नापि नाशयेत्। दीपहर्त्ता नरो बन्धं नाशं क्रोधं तमो व्रजेत् ॥४१॥
दीपदाता स्वर्गलोके दीपमालेव राजते। यः समालभते नित्यं कुङ्कुमागुरुचन्दनैः ॥४२॥
सम्पद्यते नरः प्रेत्य धनेन यशसा श्रिया। रक्तचन्दनसंमिश्रै रक्तपुष्पैः शुचिर्नरः ॥४३॥
उदयेऽर्घ्यं सदा दत्त्वा सिद्धिं संवत्सराल्लभेत्। उदयात् परिवर्त्तेत यावदस्तमने स्थितः ॥४४॥
जपन्नभिमुखः किञ्चिन्मन्त्रं स्तोत्रमथापि वा। आदित्यव्रतमेतत्तु महापातकनाशनम् ॥४५॥
अर्घ्येण सहितञ्चैव सर्वं साङ्गं प्रदापयेत्। उदये श्रद्धया युक्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४६॥
सुवर्णधेन्वनडुहवसुधावस्त्रसंयुतम्। अर्घ्यप्रदाता लभते सप्तजन्मानुगं फलम् ॥४७॥

नेत्र विकार नहीं होता ॥३५½॥ सूर्य को दीप दान देने से मनुष्य ज्ञान रूपी दीप प्राप्त करता है ॥३६॥ तिल या तिल का तेल पवित्र होता है। (अतएव) तिल की गाय बनाकर दान करना उत्तम है। यह दान हवन तथा दीपदान के समय करने से महापातकों का विनाश करने वाला होता है ॥३७॥ जो व्यक्ति नित्य देवालय में, चौराहे पर तथा गलियों में दीप देता है, वह रूपवान् तथा भाग्यवान् होता है ॥३८॥ पहला पक्ष तो यह है कि घी से दीप जलाना चाहिये, दूसरा पक्ष-ओषधीरस अर्थात् तिल आदि के तेल से जलाये, लेकिन वसा, मेद और अस्थि के तेल से कदापि नहीं जलाना चाहिये ॥३९॥ जिस प्रकार दीप की सदा ऊर्ध्वगति होती है, अधोगति कभी नहीं होती। इसी तरह दीप-दाता तिर्यग् गति न प्राप्त कर ऊर्ध्वगति प्राप्त करता है ॥४०॥ जलते हुए दीपक का हरण तथा नाश कभी नहीं करना चाहिये। ऐसा करने पर मनुष्य बंधन, नाश, क्रोध और अन्धकार को प्राप्त होता है ॥४१॥ जो व्यक्ति सूर्य को दीपदान देता है वह स्वर्ग में दीपमाला की तरह सुशोभित होता है। और जो मनुष्य नित्यप्रति कुङ्कुम, अगर तथा चन्दन से सूर्य की पूजा करता है, वह दूसरे जन्म में धीर्ति-वैभव सम्पन्न होता है ॥४२½॥ एक वर्ष तक पवित्र होकर रक्त चन्दन मिश्रित रक्त पुष्प से उदयकाल में सूर्य को अर्घ देने से सिद्धि प्राप्त होती है ॥४३½॥ सूर्य के उदय से अस्त होने तक सूर्य के सम्मुख सूर्य मन्त्र या स्तोत्र का जो जप या पाठ किया जाता है वह महापातकनाशन आदित्यव्रत कहलाता है ॥४४-४५॥ सूर्योदय काल में जो मनुष्य श्रद्धा से सूर्य को अर्घ सहित धूप-दीप-नैवेद्य अर्पित करता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥४६॥ सुवर्ण निर्मित गाय, बैल एवं पृथिवी और वस्त्र सहित अर्घ देने वाला मनुष्य सात जन्मों तक फल प्राप्त करता रहता है ॥४७॥ अग्नि, जल, आकाश,

---

१ ख ग तिलप०। २ ग ०त्र परम ति० ग ०त्र परम तिलाना दा०। ३ ग ०ति। दद्याद्देवकुले दीप न। ४ क वैरेन चाप्यल्प न। ५ क ०र्यग्योनिमा०। ६ क दीपदाता। ७ क ख ०नैः। स पूज्यते। ८ क ०त्र कपरथि०। ९ क. ०मिश्र वि०। १० क ०क्तिमाचहृम्यो नर शुचि। आ०। ११ ग सहिता। १२ ग सर्वेषा गां प्र०। ग सर्वगागां प्र०।

अग्नौ तोयेऽन्तरिक्षे च शुचौ भूम्यां तथैव च। प्रतिमायां तथा 'पिण्ड्यां 'देयमर्घ्यं प्रयत्नतः॥४८॥
नापसव्यं न सव्यञ्च दद्यादभिमुखः सदा। सघृतं गुग्गुलं वापि रवेर्भक्तिसमन्वितः॥४९॥
तत्क्षणात् सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः। श्रीवासं चतुरस्रञ्च देवदारुं तथैव च॥५०॥
कर्पूरागरुधूपानि दत्त्वा वै स्वर्गगामिनः। अयने तूत्तरे सूर्य्यमथवा दक्षिणायने॥५१॥
पूजयित्वा विशेषेण सर्व्वपापैः प्रमुच्यते। विषुवेषूपरागेषु षडशीतिमुखेषु च॥५२॥
पूजयित्वा विशेषेण सर्व्वपापैः प्रमुच्यते। एवं वेलासु 'सर्व्वासु 'सर्व्वकालञ्च मानवः॥५३॥
भक्त्या' पूजयते योऽर्कं सोऽर्कलोके महीयते। कृसरैः पायसैः पूपैः 'फलमूलघृतौदनैः॥५४॥
बलिं 'कृत्वा तु सूर्य्याय सर्व्वान् कामानवाप्नुयात्। घृतेन तर्पणं कृत्वा' सर्व्वसिद्धो भवेन्नरः॥५५॥
क्षीरेण तर्पणं कृत्वा मनस्तापैर्न युज्यते। दध्ना तु तर्पणं कृत्वा कार्य्यसिद्धिं लभेन्नरः॥५६॥
स्नानार्थमाहरेद् यस्तु जलं भानोः समाहितः। तीर्थेभ्यः' शुचितापन्नः'' स याति परमां गतिम्॥५७॥
छत्रं ध्वजं वितानं वा पताकां चामराणि च। श्रद्धया 'भानवे दत्त्वा गतिमिष्टामवाप्नुयात्॥५८॥
यद्यद्द्रव्यं नरो भक्त्या आदित्याय प्रयच्छति। तत्तस्य शतसाहस्रमुत्पादयति भास्करः॥५९॥
मानसं वाचिकं वापि'' कायजं यच्च दुष्कृतम्। सर्व्वं सूर्य्यप्रसादेन'' तदशेषं व्यपोहति॥६०॥

पवित्र भूमि, प्रतिमा और पीठ (चौकी या आसन) पर यत्नपूर्वक अर्घ देना चाहिए॥४८॥ अर्घ कभी भी दाहिनी तथा बायीं ओर न दे, बल्कि सदा ही अभिमुख होकर अर्घ देना चाहिए। गुग्गुल या घृत के साथ भक्तिपूर्वक सूर्यार्घ्य देने से मनुष्य निःसंदेह तत्काल सब पापों से मुक्त हो जाता है॥४९½॥ श्रीवास, देवदारु, कर्पूर, अगर और धूप चढ़ाने से मनुष्य स्वर्गगामी होता है॥५०½॥ उत्तरायण या दक्षिणायन में सूर्य की विशेष पूजा करने से मनुष्य के सब पाप दूर हो जाते हैं॥५१½॥ विषुव में (अर्थात् उस समय जब दिन-रात का मान बराबर होता है) ग्रहण काल में और षडशीतिमुख (तुला राशि से छियासी दिनों के समय) में सूर्य की विशेष पूजा करने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है॥५२½॥ इस प्रकार सब दिन सब समय भक्तिपूर्वक सूर्य की पूजा करके मनुष्य सूर्यलोक में पूजित होता है॥५३½॥ खीर, मालपुआ, फल, मूल, घृत और चावल से सूर्य को बलि देने से सब कामनाएँ पूरी होती हैं॥५४½॥ सूर्य को घृत का तर्पण करने से मनुष्य पूर्ण सिद्ध हो जाता है॥५५॥ दूध का तर्पण करने से मनस्ताप दूर होता है। दही से तर्पण करे तो कार्य-सिद्धि होती है॥५६॥ जो सावधान होकर सूर्य को स्नान कराने के लिए तीर्थ से पवित्रता पूर्वक जल लाता है, वह परम गति को प्राप्त करता है॥५७॥ सूर्य को छत्र, ध्वज, चँदोवा, पताका, और चामर श्रद्धापूर्वक समर्पित कर मनुष्य वाञ्छित गति को प्राप्त करता है॥५८॥ मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्य को जो द्रव्य दान करता है, उसे भगवान् सूर्य उसके दान से लाख गुना अधिक करके लौटा देते हैं। ॥५९॥ सूर्य की कृपा से कायिक, वाचिक और मानसिक त्रयताप और पाप, सभी नष्ट हो जाते हैं॥६०॥

१ख पृष्य। २ क देयोऽर्घं प्र०। ३ ख ०षु भक्तिमान्मानवोत्तम। म०। ४ ग सुवेलासु। ५ क ०क्त्या स्तूयते तरणिं सूर्यलो०। ६ क ख फलमूलैर्घृतौदनैः। ७ ख ०त्वा तर्पयेच्च स०। ८ क त्वा म०। ९ क तीर्थादाशु०। १० क. ०चिः स्थानार्थमा०। ११ ख. ०पि कर्मणाऽप्य च यत्कृतं०। १२ क ख ०प्रणामेन।

एकाहेनापि यद्भानोः पूजायाः प्राप्यते फलम्। यथोक्तदक्षिणैर्विप्रैर्न तत् क्रतुशतैरपि॥६१॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सूर्यपूजादि नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥

त्रिंशोऽध्यायः

आदित्यमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

अहो देवस्य माहात्म्यं श्रुतमेवं[1] जगत्पते। भास्करस्य सुरश्रेष्ठ वदतस्तेषु दुर्लभम्॥१॥
भूयः प्रब्रूहि देवेश यत्[2] पृच्छामो जगत्पते। श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन् परं कौतूहलं हि नः॥२॥
गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः। य इच्छेन्मोक्षमास्थातुं देवतां कां यजेत सः॥३॥
कुतो ह्यस्याक्षयः स्वर्गः कुतो निःश्रेयसं परम्। स्वर्गतश्चैव किं कुर्याद्येन न च्यवते पुनः॥४॥
देवानां चात्र को देवः पितृणाञ्चैव कः पिता। यस्मात् परतरं नास्ति तन्मे ब्रूहि सुरेश्वर॥५॥
कुतः सृष्टमिदं विश्वं[3] सर्वं स्थावरजङ्गमम्। प्रलये च कमभ्येति तद्भवान् वक्तुमर्हति॥६॥

सूर्य की एक दिन की पूजा से जो फल प्राप्त होता है, वह विधिविधान सहित किए गए दक्षिणा पुरस्सर सौ यज्ञों से भी नहीं मिलता है॥६१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषियों के संवाद प्रकरण में सूर्य-पूजा-नियम-भक्ति-माहात्म्यवर्णन नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥२९॥

अध्याय ३०

आदित्य का माहात्म्य-वर्णन

मुनियों ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ! हे जगत्पते! आपने सूर्यदेव का दुर्लभ माहात्म्य सुनाया, अब हमारी एक जिज्ञासा और है। हमें यह जानने की बड़ी उत्कण्ठा है कि गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और सन्यासी जो भी मोक्षार्थी हो वह किस देवता की उपासना करे॥१-३॥ वह कौन सा ऐसा कर्म है जिसे करने से मनुष्य स्वर्ग प्राप्त कर फिर वहाँ से च्युत नहीं होता है॥४॥ हे ब्रह्मन्, देवाधि-देव कौन है? पितरों का पिता कौन है? जिससे बढ़कर कुछ भी नहीं है, वह कौन है?॥५॥ स्थावर-जंगम सहित संपूर्ण विश्व की सृष्टि किससे हुई? प्रलयकाल में यह जगत् किसमें लीन होता है?—यह सब हमें बतलाइये?॥६॥

---

१ ख ०तमस्य ज०। २ ग सपृच्छामो। ३ ख. ०श्व ब्रह्मस्याव०।

ब्रह्मोवाच

उद्यन्नेवैष[1] कुरुते जगद्वितिमिरं करैः। नातः परतरो देवः[2] कश्चिदन्यो द्विजोत्तमाः ॥७॥
अनादिनिधनो ह्येष पुरुषः शाश्वतोऽव्ययः। तापयत्येष[3] त्रीँल्लोकान् भवन्रश्मिभिरुल्बणः ॥८॥
सर्वदेवमयो ह्येष तपतां[4] तपनो वरः। सर्वस्य जगतो नाथः सर्वसाक्षी जगत्पतिः[5] ॥९॥
संक्षिपत्येष भूतानि तथा विसृजते पुनः। एष भाति तपत्येष[6] वर्षत्येष गभस्तिभिः ॥१०॥
एष धाता विधाता च भूतादिर्भूतभावनः। न ह्येष क्षयमायाति नित्यमक्षयमण्डलः ॥११॥
पितॄणां च पिता ह्येष देवतानां हि देवता। ध्रुवं स्थानं[7] स्मृतं[8] ह्येतद्यस्मान्न च्यवते पुनः ॥१२॥
सर्गकाले जगत् कृत्स्नमादित्यात् सम्प्रसूयते[9]। प्रलये च तमभ्येति भास्करं दीप्ततेजसम् ॥१३॥
योगिनश्चाप्यसंख्यातास्त्यक्त्वा[11] गृहकलेवरम्[12]। वायुभूत्वा[13] विशन्त्यस्मिंस्तेजोराशौ दिवाकरे ॥१४॥
अस्य रश्मिसहस्राणि शाखा इव विहङ्गमाः। वसन्त्याश्रित्य मुनयः संसिद्धा दैवतैः सह ॥१५॥
गृहस्था जनकाद्याश्च राजानो[14] योगधर्मिणः। बालखिल्यादयश्चैव ऋषयो ब्रह्मवादिनः[15] ॥१६॥
वानप्रस्थाश्च ये चान्ये व्यासाद्या[16] भिक्षवस्तथा। योगमास्थाय सर्वे ते प्रविष्टाः सूर्यमण्डलम् ॥१७॥
शुको व्याससुतः श्रीमान्योगधर्ममवाप्य सः। आदित्यकिरणान् गत्वा ह्यपुनर्भावमास्थितः ॥१८॥

ब्रह्माने कहा—द्विजवर! जो उदित होते हुए अपनी किरणों से संसार को अन्धकार-रहित कर देता है, उससे बढ़कर कोई देव नहीं है ॥७॥ यही अनादि और अनन्त है, पुरुष, शाश्वत (नित्य) और अव्यय (नाशरहित) भी यही है, यही अपनी तीक्ष्ण रश्मियों से तीनों लोक को तपाता है ॥८॥ यह सर्वदेवमय, तपनेवालों में श्रेष्ठ, संपूर्ण जगत् का स्वामी, सब का साक्षी, जगत्पति, प्राणियों का संहारक तथा सृष्टिकर्ता, किरणों के द्वारा प्रकाश तथा वर्षा करने वाला, धाता, विधाता, भूतादि, भूतपालक, क्षयरहित और नित्य अक्षयमण्डल वाला है ॥९-११॥ यही पितरों का पिता, देवताओं का देवता और ध्रुव का अक्षय स्थान है क्योंकि यहाँ से फिर पतन नहीं होता ॥१२॥ सृष्टिकाल में संपूर्ण जगत् सूर्य से उत्पन्न होता है और प्रलय काल में उसी अत्यन्त तेजस्वी आदित्य में लीन हो जाता है ॥१३॥ असंख्य योगी भी शरीर रूपी गृह को छोड़कर वायु का रूप धारण कर उसी तेजोराशि सूर्य में प्रवेश करते हैं ॥१४॥ सूर्य की हजार किरणों का आश्रय पाकर देवताओं के साथ सिद्ध-मुनि उसी तरह वास करते हैं, जिस तरह पक्षीगण वृक्षों की शाखाओं पर रहते हैं ॥१५॥ गृहस्थ होते हुए भी योगी राजा जनक आदि, ब्रह्मवादी मुनि बालखिल्य आदि, वानप्रस्थ और संन्यासी व्यास आदि जो कोई भी थे, वे सब योग को प्राप्त कर सूर्य मण्डल में प्रविष्ट हुए हैं ॥१६-१७॥ व्यास-पुत्र श्रीमान् शुक ने योग को प्राप्त कर सूर्य-किरणों में जाकर पुनः उत्पन्न न होने की स्थिति को प्राप्त किया ॥१८॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता शब्दमात्र से गम्य हैं, पर तिमिर-नाशन सूर्य तो प्रत्यक्ष-

---

१ ग उदयन्नेव कु०। २ क देव। ३. क ०प लोकान्त्रीन्गभस्तिभिरनुत्तमैः। स०। ४ ग ०तां वा शुभाशुभ। स०। ५ ग शुभाशुभे। ६ क ०प भ्रंशत्यस्वग०। ७ ख स्थानं। ८ ख ०त ह्यस्य यस्मा०। ९ ख ०प्रजाय०। १० क ग ०स्यन्त स०। ११ क ग ०स्याश्च त्यक्त्वा। १२ ख ०म्। एकीभूता वि०। १३ क ०शन्त्येन तेजोमूर्ति दिवाकरम्। अ०। १४ क ०नो ये च धार्मिकाः। वा०। १५ क. ब्रह्मचारिणः। १६ ख ०द्या यसव०।

शब्दमात्रश्रुतिमुखा ब्रह्मविष्णुशिवादयः। प्रत्यक्षोऽयं परो देवः सूर्यस्तिमिरनाशनः ॥१९॥
तस्मादन्यत्र भक्तिर्हि न कार्या शुभमिच्छता[1]। यस्माद्दृष्टेरगम्यास्ते देवा विष्णुपुरोगमाः ॥२०॥
अतो भवद्भिः संततमभ्यर्च्यो भगवान् रविः। स हि माता पिता चैव कृत्स्नस्य जगतो गुरुः ॥२१॥
अनाद्यो लोकनाथोऽसौ रश्मिमाली जगत्पतिः। मित्रत्वे च स्थितो यस्मात्तपस्तेपे द्विजोत्तमाः ॥२२॥
अनादिनिधनो ब्रह्मा[2] नित्यश्चाक्षय एव च। सृष्ट्वा ससागरान् द्वीपान् भुवनानि चतुर्दश ॥२३॥
लोकानां स हितार्थाय स्थितश्चन्द्रसरित्तटे[3]। सृष्ट्वा प्रजापतीन् सर्वान्सृष्ट्वा च विविधा[4] प्रजाः ॥२४॥
ततः शतसहस्रांशुरव्यक्तश्च पुनः स्वयम्। कृत्वा द्वादशधात्मानमादित्यमुपपद्यते ॥२५॥
इन्द्रो धाताथ पर्जन्यस्त्वष्टा पूषार्यमा भगः। विवस्वान् विष्णुरंशश्च वरुणो मित्र एव च ॥२६॥
आभिर्द्वादशभिस्तेन सूर्येण परमात्मना। कृत्स्नं जगदिदं व्याप्तं मूर्त्तिभिश्च द्विजोत्तमाः ॥२७॥
तस्य या प्रथमा मूर्त्तिरादित्यस्येन्द्रसंज्ञिता। स्थिता सा देवराजत्वे देवानां रिपुनाशिनी ॥२८॥
द्वितीया तस्य या मूर्त्तिर्नाम्ना धातेति कीर्त्तिता। स्थिता प्रजापतित्वेन विविधा[4] सृजते प्रजाः ॥२९॥
तृतीयार्कस्य या मूर्त्तिः पर्जन्य इति विश्रुता। मेघेष्वेव स्थिता सा तु वर्षते च गभस्तिभिः ॥३०॥
चतुर्थी तस्य या मूर्त्तिर्नाम्ना त्वष्टेति विश्रुता। स्थिता वनस्पतौ सा तु ओषधीषु च सर्वतः ॥३१॥
पञ्चमी तस्य या मूर्त्तिर्नाम्ना पूषेति विश्रुता। अन्ने व्यवस्थिता सा तु प्रजा पुष्णाति नित्यशः ॥३२॥

देव है ॥१९॥ इसलिए कल्याण चाहने वाले को सूर्य को छोड़ कर अन्यत्र भक्ति नहीं करनी चाहिये। जिसलिए विष्णु आदि देव अप्रत्यक्ष हैं अतः आप लोगों को सतत सूर्य की अर्चना करनी चाहिये ॥२०½॥ सूर्य ही निखिल जगत् का माता पिता है। विप्रवर! यह अनादि, लोकनाथ, किरणों की माला वाला, जगत्पति, मित्रत्व में स्थित होकर तप करने वाला, जन्म-मरण से रहित, ब्रह्मा, नित्य और अक्षय है ॥२१-२२½॥ समुद्रों और द्वीपों सहित चौदहों भुवन की सृष्टि करके लोक कल्याण के लिए सूर्य चन्द्र-सरोवर के तट पर स्थित हुआ ॥२३½॥ प्रजापतियों और विविध प्रजाओं का निर्माण कर सौ हजार किरण वाले उस अव्यक्त ने बारह आदित्यों के रूप में अपने आत्मा को विभक्त कर दिया ॥२४-२५॥ द्विजवर्य! इन्द्र, धाता, पर्जन्य, त्वष्टा, पूषा, अर्यमा, भग, विवस्वान्, विष्णु अंश, वरुण और मित्र—इन बारह मूर्तियों से परमात्मा सूर्य ने समस्त जगत् को व्याप्त कर रखा है ॥२६-२७॥ उस सूर्य की इन्द्र नामक जो पहली मूर्ति है, वह देवताओं के शत्रुओं को नष्ट करने वाली है तथा देवराजत्व पर स्थित है ॥२८॥ धाता नाम की उसकी दूसरी मूर्ति प्रजापति बनकर विविध प्रजाओं की सृष्टि करती है। उसकी तीसरी मूर्ति, जो पर्जन्य नाम से प्रख्यात है, बादलों में ही स्थित रहती है और किरणों के द्वारा वर्षा करती है ॥२९-३०॥ त्वष्टा नाम से प्रख्यात उसकी चौथी मूर्ति ओषधी वनस्पतियों में स्थित है ॥३१॥ पूषा नाम से विख्यात उसकी पाँचवी मूर्ति अन्न में स्थित होकर नित्य प्रजा को पुष्टि प्रदान करती है ॥३२॥ सूर्य की अर्यमा नाम से प्रसिद्ध छठी मूर्ति देवों में ही

---

१ ख ०ता। दृष्टरोगापहो यस्माद्दृष्ट नित्यमेव हि। अ०। ग ०ता। दृष्ट न बाधते यस्माद्दृष्ट नित्यमेव हि। अ। २ क धाता। ३ क ०रसुरव। ४ ख विधाता।

मूर्ति: षष्ठी[1] रवेर्या तु अर्य्यमा इति विश्रुता। वायोः संसरणा सा तु देवेष्वेव समाश्रिता॥३३॥
भानोर्या सप्तमी मूर्त्तिर्नाम्ना भगेति विश्रुता। भूतिष्ववस्थिता सा तु शरीरेषु च देहिनाम्॥३४॥
मूर्त्तिर्या त्वष्टमी तस्य विवस्वानिति विश्रुता। अग्नौ प्रतिष्ठिता[3] सा तु पचत्यन्नं शरीरिणाम्॥३५॥
नवमी चित्रभानोर्या मूर्त्तिर्विष्णुश्च नामतः। प्रादुर्भवति सा नित्यं देवनामरिसूदनी॥३६॥
दशमी तस्य या मूर्त्तिरंशुमानिति विश्रुता। वायौ प्रतिष्ठिता सा तु प्रह्लादयति वै प्रजाः॥३७॥
मूर्त्तिस्त्वेकादशी[4] भानोर्नाम्ना वरुणसंज्ञिता[5]। जलेष्ववस्थिता सा तु प्रजां पुष्णाति नित्यशः॥३८॥
मूर्त्तिर्या द्वादशी भानोर्नाम्ना मित्रेति संज्ञिता। लोकानां सा हितार्थाय स्थिता[6] चन्द्रसरित्तटे॥३९॥
[7]वायुभक्षस्तपस्तेपे स्थिरवा मैत्रेण चक्षुषा। अनुगृह्णन् सदा भक्तान् वरैर्नानाविधैस्तु सः॥४०॥
एवं[8] सा जगतां मूर्त्तिर्हिताय विहिता पुरा। तत्र मित्रः स्थितो यस्मात्तस्मान्मित्रं परं स्मृतम्॥४१॥
आभिर्द्वादशभिस्तेन सवित्रा परमात्मना। कृत्स्नं जगदिदं व्याप्तं मूर्त्तिभिश्च द्विजोत्तमाः॥४२॥
तस्माद्ध्येयो नमस्यश्च द्वादशस्यासु मूर्त्तिषु। भक्तिमद्भिर्नरैर्नित्यं तद्गतेनान्तरात्मना॥४३॥
इत्येवं द्वादशादित्यान्नमस्कृत्वा तु मानवः। [9]नित्यं श्रुत्वा [10]पठित्वा च सूर्य्यलोके महीयते॥४४॥

आश्रित होकर वायु की संचालन-गति को बढाती है॥३३॥ भग नामवाली सातवीं मूर्ति भूमि में स्थित होकर देहधारियों के शरीर में प्रवेश करती है॥३४॥ विवस्वान् नामक आठवीं मूर्ति अग्नि में प्रतिष्ठित होकर देहधारियों के अन्न को पचाती है॥३५॥ विष्णु नामक नवीं मूर्ति देवताओं के शत्रुओं का वध करने के लिए नित्य अवतार लेती है॥३६॥ अंशुमान् नाम से प्रख्यात दसवीं मूर्ति वायु में प्रतिष्ठित होकर प्रजाओं को आनन्दित करती है।॥३७॥ सूर्य की ग्यारहवीं मूर्ति, जो वरुण नाम से प्रसिद्ध है, जल में अवस्थित होकर नित्य प्रजाओं का पोषण करती है॥३८॥ मित्र नामक बारहवीं मूर्ति लोक-कल्याण के लिए चन्द्र-सरोवर के तट पर स्थित रहती है॥३९॥ मित्रतापूर्ण नेत्रों से अनेक प्रकार के वरदानों द्वारा भक्तों के ऊपर कृपा करते हुए सूर्य ने केवल वायु भक्षण करके तपस्या की॥४०॥ इस प्रकार जगत्कल्याण के लिए उसने मूर्तियों का विधान किया। मित्रभाव से स्थित होने के कारण वह मित्र कहलाया॥४१॥ द्विजवर! परमात्मा सूर्य ने इन बारह मूर्तियों से अखिल जगत् को व्याप्त कर दिया है॥४२॥ इसलिए भक्तिमान् मनुष्य नित्य सूर्य में चित्त लगाकर बारह मूर्तियों में स्थित आदित्य को नमस्कार करें॥४३॥ इस तरह बारह आदित्यों को नमस्कार करके नित्य उनके माहात्म्य का श्रवण-पठन करने से मनुष्य सूर्यलोक में पूजित होता है॥४४॥

---

१ क ०ष्ठी तथामार्तोर्यमेत्यभिवि०। २ क ख व्यवस्थिता। ३ क ख ०ष्ठी या तुमानोर्वर०। ४ क ग ०शा। सा जीवयति वै कृत्स्नं जगदम्बु प्रतिष्ठितम्। मू०। ५ क ०ता मूर्ति स०। ६ ख ०न्द्रस्य मण्डले। बहुकाल तपस्तेपे स्थित स तु सरित्तटे। वा। ७ ग ०मुमून सदा। ८ ख एवमाप्त हित स्थान परवारवाध्वनयागिना। त०। ग एवमाद्य हि तत्स्थान यदवाप्त्यारनेन चाऽऽस्थितम्। त०। ९ क ०त्य समाहितो भूत्वा सू०। १० ख पवित्रो य सू०।

मुनय ऊचु

यदि तावदय सूर्य्यश्चादिदेव सनातन । तत कस्मात्तपस्तेपे वरेप्सु[1] प्राकृतो यथा ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

एतद्व सप्रवक्ष्यामि पर गुह्य विभावसो । पृष्ट मित्रेण[2] यत पूर्व नारदाय महात्मने ॥४६॥
प्राङमयोक्तास्तु युष्मभ्य रवेर्द्वादश मूर्त्तय । मित्रश्च वरुणश्चोभौ तासा तपसि सस्थितौ ॥४७॥
अम्भक्षो[3] वरुणस्तासा तस्थौ पश्चिमसागरे । मित्रो मित्रवने चास्मिन [4]वायुभक्षोऽभवत्तदा ॥४८॥
अथ मेरुगिरे श्रृङ्गात् प्रच्युतो गन्धमादनात । नारदस्तु महायोगी सर्व्वांलोकाश्चरन वशी ॥४९॥
आजगामाथ तत्रैव यत्र मित्रोऽचरत्तप । त दृष्ट्वा तु तपस्यन्त तस्य कौतूहल ह्यभूत् ॥५०॥
योऽक्षयश्चाव्ययश्चैव व्यक्ताव्यक्त सनातन । धृतमेकात्मक येन [5]त्रैलोक्य सुमहात्मना ॥५१॥
य पिता सर्व्वदेवाना पराणामपि[6] य पर[7] । अयजद्देवता[8] कास्तु पितॄन वा कानसौ यजेत् ॥
इति सञ्चिन्त्य मनसा त देव नारदोऽब्रवीत । ॥५२॥

नारद उवाच

वेदेषु सपुराणेषु साङ्गोपाङ्गेषु गीयसे । त्वमज शाश्वतो धाता त्व निधानमनुत्तमम ॥५३॥
भूत भव्य भवच्चैव त्वयि सर्व्व प्रतिष्ठितम । चत्वारश्चाश्रमा देव गृहस्थाद्यास्तथैव हि ॥५४॥

मुनियो ने कहा—यदि यह सूय सनातन आदिदेव है तो साधारण व्यक्ति की तरह वर-लोलुप होकर तपस्या क्या करने लगा ? ॥४५॥

ब्रह्मा ने कहा—यह एक एसा रहस्य है जिसे स्वय सूय ने महात्मा नारद से बतलाया था। वह मैं आपसे बतलाऊँगा ॥४६॥ मैं पहले कह चुका हूँ कि सूय का बारह मूर्तियां हैं। उनम से मित्र और वरुण तपस्या करने लग ॥४७॥ वरुण जल भक्षण कर पश्चिम समुद्र म स्थित हुआ और मित्र वायु भक्षण कर मित्रवन म रहने लगा ॥४८॥ तदुपरान्त मेरुपवत की चाटी पर से उतर कर गधमादन पवत होते हुए सब लोको म विचरण करने वाले वशात्मा तथा महायोगी नारद वहाँ आये जहाँ मित्र तप कर रहा था ॥४९३॥ तप करते हुए मित्र को देखकर नारद को बडा कुतूहल हुआ कि जो सब देवा का पिता व्यक्त अव्यक्त सनातन अक्षय अव्यय त्रैलोक्यधारी और परात्पर है वह भला किस देवता या पितर का उपासना करेगा। एसा मन म सोचकर नारद ने मित्र से कहा ॥५० ५२॥

नारद बोले—सागोपाग वद-पुराणा म आप हा का स्तुति की जाती है आप अजन्मा नित्य धाता सर्वोत्तम और सब निधान हैं भूत भविष्य वतमान—सब आप ही म प्रतिष्ठित हैं गृहस्थ आदि चारा आश्रम

---

१ म धरायां। २ क स मत्रेण। ३ क अप्यशो। स अव्यक्तो। ४ स ग ०मश्चरस्तप। अ०। ५ क ०त्र दवोऽच०। ६ क ग ०लोक्यमिन्माम०। ७ क ०रान्पि च य। ८ क ०र। सोऽय०। ९ ०वता कांतु पूजयति नित्यश। इ०।

यजन्ति त्वामहरहस्त्वां मूर्त्तिरत्वं समाश्रितम्। पिता माता च सर्व्वस्य दैवतं त्वं हि शाश्वतम् ॥५५॥
यजसे पितरं कं त्वं देवं वापि न विद्महे ॥५६॥

मित्र उवाच

अवाच्यमेतद्वक्तव्यं परं गुह्यं सनातनम्। त्वयि भक्तिमति ब्रह्मन् प्रवक्ष्यामि यथातथम् ॥५७॥
यत्तत् सूक्ष्ममविज्ञेयमव्यक्तमचलं ध्रुवम्। इन्द्रियैरिन्द्रियार्थैश्च सर्व्वभूतैर्विवर्जितम् ॥५८॥
स ह्यन्तरात्मा भूताना क्षेत्रज्ञश्चैव कथ्यते। त्रिगुणाद्व्यतिरिक्तोऽसौ पुरुषश्चैव कल्पितः ॥५९॥
हिरण्यगर्भो भगवान् सैव बुद्धिरिति स्मृतः। महानिति च योगेषु प्रधानमिति कथ्यते ॥६०॥
साङ्ख्ये च कथ्यते योगे नामभिर्बहुधात्मकः। स च त्रिरूपो विश्वात्मा शर्वोऽक्षर इति स्मृतः ॥६१॥
धृतमेकात्मकं तेन त्रैलोक्यमिदमात्मना। अशरीरः शरीरेषु सर्व्वेषु निवसत्यसौ ॥६२॥
वसन्नपि शरीरेषु न स लिप्येत कर्म्मभि.। ममान्तरात्मा तव च ये चान्ये देहसंस्थिता. ॥६३॥
सर्व्वेषां साक्षिभूतोऽसौ न ग्राह्यः केनचित् क्वचित्। सगुणो निर्गुणो विश्वो ज्ञानगम्यो ह्यसौ स्मृतः ॥६४॥
सर्व्वतः पाणिपादान्त: सर्व्वतोऽक्षिशिरोमुखः। सर्व्वत श्रुतिमाँल्लोके सर्व्वमावृत्य तिष्ठति ॥६५॥
विश्वमूर्द्धा विश्वभुजो विश्वपादाक्षिनासिकः। एकश्चरति वै क्षेत्रे स्वैरचारी यथासुखम् ॥६६॥
क्षेत्राणीह शरीराणि तेषाञ्चैव यथासुखम्। तानि वेत्ति स योगात्मा ततः क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥६७॥

नित्यप्रति आप ही की मूर्तियों की पूजा किया करते हैं और आप सबके माता पिता तथा सनातन देव हैं। हे देव! ऐसी परिस्थिति में आप किस देवता की उपासना करते हैं—यह मुझे नहीं जान पड़ता। ॥५३-५६॥

मित्र ने कहा—ब्रह्मन्! यद्यपि यह सनातन रहस्य कहने योग्य नहीं है तो भी आप जैसे भक्तों से मैं छिपाऊँगा नहीं ॥५७॥ जो सूक्ष्म, अज्ञेय, अव्यक्त, अचल, ध्रुव, और इन्द्रिया, इन्द्रियों के विषय तथा सब प्राणियों से विवर्जित है, वह प्राणियों का अन्तरात्मा और क्षेत्रज्ञ कहलाता है ॥५८½॥ सत्त्व-रज-तम—इन त्रिगुणों से परे पुरुष भी वही कहलाता है॥५९॥ वही भगवान् हिरण्यगर्भ तथा बुद्धि भी कहलाता है। योगों में उसे महान् तथा प्रधान (प्रकृति) कहते हैं॥६०॥ साङ्ख्य-योग में उसे बहुत नामों से कहा गया है। उसी के नाम त्रिरूप, विश्वात्मा, शर्व और अक्षर हैं॥६१॥ उसने त्रैलोक्य को धारण किया। वह शरीर रहित होकर सब देहों में निवास करता है॥६२॥ पर शरीरों में वास करते हुए भी कर्मों से लिप्त नहीं होता। वह मेरा, आपका और जितने देहधारी हैं—सब का साक्षी है। वह कहीं किसी से गृहीत नहीं होता॥६३½॥ वह सगुण निर्गुण, विश्व, ज्ञानगम्य और सब ओर हाथ-पैर नेत्र-सिर तथा कर्ण वाला है। वह सबको वेष्टित कर स्थित है॥६४-६५॥ वह विश्वमूर्धा, विश्वभुज और विश्वरूप पैर-नेत्र तथा नाक वाला है। वह क्षेत्र में गुप्त तथा इच्छा के अनुकूल अकेला ही विचरण करता है॥६६॥ यहाँ क्षेत्र शरीर को कहा गया है। वह योगी क्षेत्रों को आसानी से जानता रहता है। इसलिए उसका नाम क्षेत्रज्ञ पड़ा

---

१ स गुप्त। २ क ०मजरमुने। ३०१३ स ०क। पवित्र०। ४ क सत्वरूपेण वि०। ५ स म लिप्यति। ६ क मत।

अव्यक्ते[1] च पुरे शेते पुरुषस्तेन चोच्यते। विश्व बहुविध ज्ञेय स च सर्व्वत्र उच्यते ॥६८॥
तस्मात् स बहुरूपत्वाद्विश्वरूप इति स्मृत । तस्यैकस्य महत्त्व[2] हि स चैक[3] पुरुष स्मृत ॥६९॥
महापुरुषशब्द हि बिभर्त्त्येक सनातन । स तु विधिक्रियायत्त[4] सृजत्यात्मानमात्मना ॥७०॥
शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रधा। कोटिशश्च करोत्येष[5] प्रत्यगात्मानमात्मना ॥७१॥
आकाशात् पतित तोय याति स्वाद्वन्तर यथा। भूमे[6] रसविशेषेण तथा[7] गुणरसात्तु स ॥७२॥
एक एव यथा वायुर्देहेष्वेव हि पञ्चधा। एकत्वञ्च पृथकत्वञ्च तथा तस्य न सशय ॥७३॥
स्थानान्तरविशेषाच्च यथाग्निर्लभते पराम्। सज्ञा[8] तथा मुने सोऽप्य ब्रह्मादिषु तथाप्नुयात् ॥७४॥
यथा दीपसहस्राणि दीप एक[9] प्रसूयते। तथा रूपसहस्राणि स एक सम्प्रसूयते ॥७५॥
यदा स बुध्यत्यात्मान तदा भवति केवल । "एकत्वप्रलये[10] चास्य बहुत्वञ्च[11] प्रवर्त्तते[12] ॥७६॥
नित्य हि नास्ति जगति भूत स्थावरजङ्गमम्। अक्षयश्चाप्रमेयश्च सर्व्वगश्च स उच्यते ॥७७॥
तस्मादव्यक्तमुत्पन्न त्रिगुण[13] द्विजसत्तमा । अव्यक्ताव्यक्तभावस्था या सा प्रकृतिरुच्यते ॥७८॥
तां योनि ब्रह्मणो विद्धि योऽसौ सदसदात्मक[14] । लोके च पूज्यते योऽसौ देवे पित्र्ये च कर्म्मणि ॥७९॥

है ॥६७॥ अव्यक्त पुर मे वह सोता है। इसलिये उसे पुरुष कहते हैं। विश्व बहुत प्रकार का है और उसे सर्वत्र कहा गया है ॥६८॥ इसलिए अनेक रूप होने के कारण उसका विश्वरूप नाम पडा। उसी एक का महत्त्व अर्थात् महत्तत्त्व है और वही एक पुरुष कहलाता है ॥६९॥ वही एक सनातन महापुरुष के शब्द को धारण करता है। वह विधिक्रिया के अर्थ न आत्मा से आत्मा का सजन किया करता है ॥७०॥ वह आत्मा से प्रत्यगात्मा (जीवात्मा) को सौ हजार लाख और करोड प्रकार का बना डालता है ॥७१॥ आकाश से पतित जल जैसे भूमि रस के सयोग से भिन्न प्रकार के स्वाद को ग्रहण कर लेता है उसी प्रकार वैसे गुणो के रस-सयोग से वह विशेष रस को धारण करता है ॥७२॥ जैसे एक ही वायु शरीर म पाँच प्रकार से रहता है उसी प्रकार उसका एकत्व और पृथक्त्व है इसम कोई संदेह नही ॥७३॥ जैसे अग्नि स्थानान्तर के कारण दूसरी-दूसरी सज्ञा को प्राप्त होता है वैसे वह भी ब्रह्मा आदि सज्ञाएँ प्राप्त करता है ॥७४॥ जैसे हजारो दीपो को एक ही दीप उत्पन्न कर देता है वैसे वह भी एक होकर हजारो रूपो को उत्पन्न करता है ॥७५॥ जब वह आत्मा को जानता है तब केवल रूप होता है अर्थात एक ही रहता है और एकत्व का नाश होने पर उसका बहुत्व अर्थात् बहुरूप हो जाता है। ॥७६॥ ससार म स्थावर-जगम नित्य नही है। पर वह अक्षय अप्रमेय (न मापने योग्य) और व्यापक है ॥७७॥ द्विजवर्य! इसलिए उसी से अव्यक्तरूप त्रिगुण उत्पन्न होता है और अव्यक्त से व्यक्त भाव म जो स्थित है वही प्रकृति कहलाता है ॥७८॥ जो सत-असत रूप और लोक म देव पितृ कर्म म पूजित होता है वह ब्रह्मा की योनि है ॥७९॥

---

१ ख ०व्यक्तिन पु०। २ क ममत्व। ख समत्व। ३ क ग स त्व वि०। ४ क ग ०यात्म गु०। ५ क ०पपृथगा०। ६ क भूमी र०। ७ ग ०याप्य शाश्वतो महान्। ए०। ८ ग ०णवत्तानुग। ए०। ९ ग ०ज्ञां यथाऽध्वरा ह्यपु ब्रह्माद्यपु तथा ह्यसौ। य०। १० क ग ०त्व प्र०। ११ क ०प्रत्य प०। १२ ख स ततो भवेत। नि०। १३ क प्रसवन। १४ क द्विगुण।

नास्ति तस्मात् परो ह्यन्यः पिता देवोऽपि वा द्विजाः। आत्मना स तु विज्ञेयस्ततस्तं पूजयाम्यहम् ॥८०॥
स्वर्गेष्वपि हि ये केचित्तं नमस्यन्ति देहिनः। तेन गच्छन्ति देवर्षे तेनोद्दिष्टफलां गतिम् ॥८१॥
तं देवाः स्वाश्रमस्थाश्च नानामूर्तिसमाश्रिताः। भक्त्या सम्पूजयन्त्याद्यं गतिश्चैषां ददाति सः ॥८२॥
स हि सर्व्वगतश्चैव निर्गुणश्चैव कथ्यते। एवं मत्वा यथाज्ञानं पूजयामि दिवाकरम् ॥८३॥
ये च तद्भाविता लोके एकतत्त्वं समाश्रिताः। एतदप्यधिकं तेषां यदेकं प्रविशन्त्युत ॥८४॥
इति गुह्यसमुद्देशस्तव नारद कीर्तितः। अस्मद्भक्त्यापि देवर्षे त्वयापि परमं स्मृतम् ॥८५॥
सुरैर्वा मुनिभिर्व्वापि पुराणैर्व्वरदं स्मृतम्। सर्व्वे च परमात्मानं पूजयन्ति दिवाकरम् ॥८६॥

ब्रह्मोवाच

एवमेतत् पुराख्यातं नारदाय तु भानुना। मयापि च समाख्याता कथा भानोर्द्विजोत्तमाः ॥८७॥
इदमाख्यानमाख्येयं मयाख्यातं द्विजोत्तमाः। न ह्यनादित्यभक्ताय इदं देयं कदाचन ॥८८॥
यश्चैतच्छ्रावयेन्नित्यं यश्चैव शृणुयान्नरः। स सहस्रार्चिषं देवं प्रविशेन्नात्र संशयः ॥८९॥
मुच्येतार्तस्तथा रोगाच्छ्रुत्वेमामादितः कथाम्। जिज्ञासुर्लभते ज्ञानं गतिमिष्टां तथैव च ॥९०॥
क्षणेन लभतेऽध्वानमिदं य. पठते मुने। यो यं कामयते कामं स तं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥९१॥

उससे बढ़कर अन्य कोई पिता, द्विज और देव नहीं है। वह आत्मा द्वारा जानने योग्य है। अतः उसी की पूजा मैं करता हूँ ॥८०॥ हे देवर्षि! स्वर्ग में भी जो कोई उसे नमस्कार करते हैं, वे उससे अपने अभीष्ट फल को प्राप्त करते हैं ॥८१॥ अनेक मूर्तियों में आश्रित देवता अपने आश्रम में ही रहकर भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करते हैं और उससे अपनी कामनाएँ पूर्ण करते हैं। वह सब में व्याप्त और निर्गुण कहलाता है ॥८२½॥ ऐसा जानकर मैं अपने ज्ञानानुसार सूर्य की पूजा करता हूँ। सूर्य से प्रेरित लोग एक तत्त्व को प्राप्त कर फिर उसी एक (सूर्य) में प्रवेश करते हैं ॥८३½॥ हे नारद! यह रहस्य मैंने आपसे बतला दिया और हमारी भक्ति से आपने भी सुना ॥८४-८५॥ देवता या पुराणज्ञ मुनियों ने उस सूर्य को वरदायक कहा है। सभी परमात्मा सूर्य की पूजा करते हैं ॥८६॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजवर्य! पहले इस प्रकार नारद से सूर्य ने कहा था और अब मैंने भी आप लोगों से बतला दिया ॥८७॥ विप्रवर! मेरे द्वारा वर्णित इस आख्यान को आप लोग भी सुनाएँगे, पर सूर्य के अभक्त को कभी नहीं सुनाएँगे ॥८८॥ जो मनुष्य नित्य इसका श्रवण करेगा या कराएगा, वह सहस्रकिरणधारी देव में प्रविष्ट होगा ॥८९॥ इस कथा को आदि से सुनने से रोगी रोग-मुक्त हो जाता है और जिज्ञासु ज्ञान तथा अभीष्ट गति प्राप्त करता है ॥९०॥ मुने! जो इसका पाठ करता है, वह तत्काल मार्ग-प्राप्ति करता है। जिसकी वस्तु की कामना करता है ॥९१॥

---

१ क ग त। २ क ख ०व वध्यते स्याणुजन्मने। ए०। ३ क ०क ह्यधिक पुन। इ०। ४ ख ०मार्यं च म०। ग ०मा। ५ अभक्ताय न देयं वं शठायापि कथञ्चन। ६ क ०यच्छ्राद्धे य०। ७ग ग वं दिवाकर दे०।

तस्माद्भवद्भिः सततं स्मर्त्तव्यो भगवान् रविः। स च धाता विधाता च सर्व्वस्य जगतः प्रभुः॥९२॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे आदित्यमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥३०॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

आदित्यमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

आदित्यमूलमखिलं[1] त्रैलोक्यं मुनिसत्तमा। भवत्यस्माज्जगत् सर्व्वं सदेवासुरमानुषम्॥१॥
रुद्रोपेन्द्रमहेन्द्राणां विप्रेन्द्र त्रिदिवौकसाम्। महाद्युतिमताञ्चैव तेजोऽयं सार्व्वलौकिकम्॥२॥
सर्व्वात्मा सर्व्वलोकेशो देवदेवः प्रजापतिः। सूर्य्य एव त्रिलोकस्य मूलं परमदैवतम्॥३॥
अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते[3]। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजा॥४॥
सूर्य्यात् प्रसूयते सर्व्वं तत्र चैव प्रलीयते। भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा॥५॥
एतत्तु[4] ध्यानिनां ध्यानं मोक्षश्चाप्येष मोक्षिणाम्। तत्र गच्छन्ति निर्व्वाणं जायन्तेऽस्मात् पुनः पुनः॥६॥

जो कामना हो, वह इसके पाठ से निःसंदेह पूर्ण हो जाती है॥९१॥ इसलिए आप लोग सदा भगवान् सूर्य का स्मरण करें। वही धाता, विधाता और संपूर्ण जगत् का स्वामी है॥९२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में आदित्य-माहात्म्य-वर्णन
नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त॥३०॥

अध्याय ३१

आदित्य के नाम का महात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर! समस्त त्रैलोक्य का मूल सूर्य है। देवता, राक्षस और मनुष्य सहित यह संपूर्ण जगत सूर्य से उत्पन्न है॥१॥ विप्रगण! रुद्र, इन्द्र, विष्णु और महाकान्तिमान् देवताओं का सार्वलौकिक तेज यह सूर्य ही है॥२॥ सर्वात्मा, सब लोकों का स्वामी, देव-देव, प्रजापति, परमदेवता और त्रैलोक्य का मूल भी सूर्य ही है॥३॥ अग्नि में प्रक्षिप्त आहुति सूर्य को प्राप्त होती है, सूर्य से वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न और अन्न से प्रजा॥४॥ सूर्य से सब की उत्पत्ति होती है और उसी में सब लीन होते हैं। पहले लोकों के भाव (सत्ता) और अभाव दोनों सूर्य से निःसृत हुए॥५॥ वही ध्यानियों का ध्यान और मोक्षार्थियों का मोक्ष है। उसी में मनुष्य निर्वाण

---

१ ख ०गतो गुरु। २ क ०रयमूलम्०। ३ ख ग ०ष्ठति। आ०। ४ ख ०तद्दराणां ध्यातानां मोक्षदास्ये०।

क्षणा मुहूर्त्ता दिवसा निशा पक्षाश्च नित्यशः। मासाः संवत्सराश्चैव ऋतवश्च युगानि च॥७॥
अथादित्यादृते ह्येषां कालसंख्या न विद्यते। कालादृते न नियमो नाग्नौ विहरणक्रिया[1]॥८॥
ऋतूनामविभागश्च[2] ततः पुष्पफलं[3] कुतः। कुतो वै शस्यनिष्पत्तिस्तृणौषधिगणः कुतः॥९॥
अभावो व्यवहाराणां जन्तूनां दिवि चेह च। जगत्प्रभावाद्विशते[4] भास्कराद्वारितस्करात्[5]॥१०॥
नावृष्ट्या तपते सूर्यो नावृष्ट्या परिशुष्यति[6]। नावृष्ट्या परिधिं धत्ते वारिणा दीप्यते रविः॥११॥
वसन्ते कपिलः सूर्यो ग्रीष्मे काञ्चनसन्निभः। श्वेतो वर्षासु वर्णेन[7] पाण्डुः शरदि[8] भास्करः॥१२॥
हेमन्ते ताम्रवर्णाभः शिशिरे लोहितो रविः। इति वर्णाः समाख्याताः सूर्य्यस्य ऋतुसम्भवाः॥१३॥
ऋतुस्वभाववर्णैश्च सूर्य्यः क्षेमसुभिक्षकृत्। अथादित्यस्य नामानि सामान्यानि द्विजोत्तमाः॥१४॥
द्वादशैव पृथक्त्वेन तानि वक्ष्याम्यशेषतः। आदित्यः सविता सूर्यो मिहिरोऽर्कः प्रभाकरः॥१५॥
मार्त्तण्डो भास्करो भानुश्चित्रभानुर्दिवाकरः। रविर्द्वादशभिरतेषां ज्ञेयः सामान्यनामभिः॥१६॥
विष्णुर्धाता भगः पूषा मित्रेन्द्रौ वरुणोऽर्य्यमा। विवस्वानंशुमास्त्वष्टा पर्जन्यो द्वादशः[9] स्मृतः॥१७॥
इत्येते द्वादशादित्याः पृथक्त्वेन व्यवस्थिताः। उत्तिष्ठन्ति सदा ह्येते मासैर्द्वादशभिः क्रमात्॥१८॥
विष्णुस्तपति चैत्रे तु वैशाखे चार्य्यमा तथा। विवस्वान् ज्यैष्ठमासे तु आषाढे चांशुमान्[10] स्मृतः॥१९॥

प्राप्त करते हैं और उसी से पुन पुन उत्पन्न होते हैं॥६॥ क्षण, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, वर्ष, ऋतु और युग—इन सब की कालसख्या बिना सूर्य के नही हो सकती है ॥७॥ बिना काल के कोई नियम नही हो सकते और न अग्नि मे विहरण क्रिया ही हो सकती है। ऋतुओ का विभाग नही हो सकता, फल फूलो की तो बात ही क्या। धान्य तृण और ओषधियों की उपज भी नही हो सकती॥८-९॥ पृथ्वी तथा आकाशमे जीवो का व्यवहार नही हो सकता। जल चुराने वाले सूर्य से जगत् प्रभावित होता है ॥१०॥ बिना वृष्टि के सूर्य न तप सकता है, न सूख सकता है। वृष्टि के अभाव मे सूर्य अपनी परिधि को भी धारण नही कर सकता। जल से ही तो यह दीप्त होता है॥११॥ सूर्य वसन्त ऋतु में कपिल रूप, ग्रीष्म मे सुवर्ण के समान, वर्षा मे श्वेत, शरद् मे पाण्डु, हेमन्त मे ताम्रवर्ण और शिशिर में रक्त हो जाता है॥१२॥ सूर्य के ये ऋतुकालीन वर्ण मैंने वर्णन कर दिये। अब ऋतुओ के अनुसार सूर्य सुभिक्ष करता है—यह जानकर आप उसके सामान्य नामो को भी सुन लीजिये॥१३-१४॥

द्विजगण! आदित्य, सविता, सूर्य, मिहिर, अर्क, प्रभाकर, मार्तण्ड, भास्कर, भानु, चित्रभानु, दिवाकर और रवि —ये सामान्य नाम है॥१५-१६॥ विष्णु, धाता, भग, पूषा, मित्र, इन्द्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, अंशुमान्, त्वष्टा और पर्जन्य—ये द्वादश आदित्य पृथक् रूप से व्यवस्थित है। ये बारह महीनो मे क्रमश उत्थान करते हैं॥१७-१८॥ विष्णु चैत्र मे, अर्यमा वैशाख मे, विवस्वान् ज्येष्ठ मे, अंशुमान् आषाढ मे, वरुण भाद्रपद मे, इन्द्र

---

१ क० ख० या। धातूना०। २ क ख ०श्च पु०। ३ क ख ०प्पमूल्फ०। ४ ख ०त्प्रमाण हि ध्रुते। ५ ख. ०स्करो वारि०। ६ ख ०स्वर। ना०। ७ क परिविद्यते। ८ ख ०न श०। ९ ख ०दि श्यामवर्णव। हे०। १० क. ०दशो मन। ११ क ०शुमास्तथा। प०।

पर्ज्जन्यः श्रावणे मासि वरुणः प्रौष्ठसंज्ञके। इन्द्र आश्वयुजे मासि धाता तपति कार्त्तिके ॥२०॥
मार्गशीर्षे तथा मित्रः पौषे पूषा दिवाकरः। माघे भगस्तु विज्ञेयस्त्वष्टा तपति फाल्गुने ॥२१॥
शतैर्द्वादशभिर्विष्णू रश्मिभिर्दीप्यते सदा। दीप्यते गोसहस्रेण शतैश्च त्रिभिरर्य्यमा ॥२२॥
द्विःसप्तकैर्विवस्वांस्तु अंशुमान् पञ्चभिस्त्रिभिः। विवस्वानिव पर्ज्जन्यो वरुणश्चार्य्यमा तथा ॥२३॥
मित्रवद्भगवांस्त्वष्टा सहस्रेण शतेन च। इन्द्रस्तु द्विगुणैः षड्भिर्धातैकादशभिः शतैः ॥२४॥
सहस्रेण तु मित्रो वै पूषा तु नवभिः शतैः। उत्तरोपक्रमेऽर्कस्य वर्द्धन्ते रश्मयस्तथा ॥२५॥
दक्षिणोपक्रमे भूयो ह्रसन्ते सूर्य्यरश्मयः। एवं रश्मिसहस्रन्तु 'सूर्य्यलोकादनुग्रहम्' ॥२६॥
एवं 'नाम्नां चतुर्विंशदेकं' एषां प्रकीर्त्तितः। विस्तरेण सहस्रन्तु पुनरन्यत् प्रकीर्त्तितम् ॥२७॥

मुनय ऊचुः

ये तन्नामसहस्रेण स्तुवन्त्यर्कं प्रजापते। तेषां भवति किं पुण्यं गतिश्च परमेश्वर ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः सारभूतं सनातनम्। अलं नामसहस्रेण 'पठन्नेवं' स्तवं शुभम् ॥२९॥
यानि नामानि गुह्यानि पवित्राणि शुभानि च। तानि वः कीर्त्तयिष्यामि शृणुध्वं भास्करस्य वै ॥३०॥
विकर्त्तनो विवस्वांश्च मार्त्तण्डो भास्करो रविः। लोकप्रकाशकः श्रीमाँल्लोकचक्षुर्महेश्वरः ॥३१॥

आश्विन मे, धाता कार्तिक मे, मित्र अगहन मे, पूषा पौष मे, भग माघ मे और त्वष्टा फाल्गुन मे तपते हैं ॥१९-२१॥ बारहसौ किरणो से विष्णु, तेरह सौ किरणों से अर्यमा, चौदह सौ किरणो से विवस्वान् और पन्द्रह सौ किरणो से अंशुमान् सदा तपा करते हैं ॥२२½॥ विवस्वान् के बराबर किरणो से पर्जन्य, वरुण और अर्यमा दीप्त होते है ॥२३॥ ग्यारहसौ किरणो से मित्र, धाता, और त्वष्टा दीप्त होते हैं। बारहसौ किरणो से इन्द्र और नौसौ किरणो से पूषा दीप्त होते हैं ॥२४½॥ उत्तरायण मे सूर्य की रश्मियाँ बढती हैं और दक्षिणायन मे घटती हैं। इस प्रकार ये सहस्र किरणें सूर्यलोक से अनुग्रह किया करती हैं ॥२५-२६॥ सूर्य के चौबीस नाम तो मैंने बतला दिये, पर उनके सहस्र नाम भी हैं ॥२७॥

मुनियो ने कहा—हे परमेश्वर ! हे प्रजापते ! जो मनुष्य उन सहस्र नामों से सूर्य की स्तुति करते हैं, उनको क्या पुण्य प्राप्त होता है, कौन सी गति मिलती है ? ॥२८॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिगण ! सूर्य के सहस्र नामो से क्या प्रयोजन ? जो उनकी सनातन तथा सारभूत शुभ स्तुति है, उसे सुनिये ॥२९॥ सूर्य के जो पवित्र, शुभ तथा गुप्त नाम है, उन्हे मैं आपको बतला रहा हूँ, सुनिये ॥३०॥ विकर्तन, विवस्वान्, मार्तण्ड, भास्कर, रवि, लोक-प्रकाशक, श्रीमान्, लोकचक्षु, महेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, कर्ता, हर्ता, तमिस्रहा, तपन, तापन, शुचि, सप्ताश्ववाहन गभस्तिहस्त, ब्रह्मा और सर्वदेवनमस्कृत—इन इक्कीस नाम का स्तोत्र

---

१ क ०लोके च सप्र०। २ ग ०वानुग्रह। ए०। ३ ख नाम्ना। ४ ख ०देवतैषा प्र०। ५ क एवं। ६ क पठित्वेमं स्त०। ७ ख ०त्प्रीदस्त०। ८ क ०शन श्री०।

लोकसाक्षी त्रिलोकेश[1] कर्त्ता हर्त्ता तमिस्रहा। तपनस्तापनश्चैव शुचि सप्ताश्ववाहन ॥३२॥
गभस्तिहस्तो ब्रह्मा[2] च सर्व्वदेवनमस्कृत। एकविंशतिरित्यष स्तव इष्ट सदा रवे ॥३३॥
शरीरारोग्यदश्चैव धनवृद्धियशस्कर। स्तवराज इति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु विश्रुत ॥३४॥
य एतेन द्विजश्रेष्ठा[6] द्विसन्ध्येऽस्तमनोदये। स्तौति[7] सूर्यं शुचिर्भूत्वा सर्व्वपापै प्रमुच्यते॥३५॥
मानस वाचिक वापि देहज कर्म्मज तथा। एकजप्येन ततसर्वं नश्यत्यर्कस्य सन्निधौ॥३६॥
एकजप्यश्च होमश्च सन्ध्योपासनमेव च। धूपमन्त्राध्यमन्त्रश्च[8] बलिमन्त्रस्तथैव च॥३७॥
अन्नप्रदाने[9] दाने च प्रणिपाते प्रदक्षिणे। पूजितोऽय महामन्त्र सर्व्वपापहर शुभ ॥३८॥
तस्मादयूय[10] प्रयत्नेन स्तवेनानेन वै द्विजा। स्तुवीध्व वरद देव सव्वकामफलप्रदम ॥३९॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे मार्त्तण्डस्यैकविंशतिनामानुकीर्त्तन नाम एकत्रिंशोऽध्याय ॥३१॥

द्वात्रिंशोऽध्याय

मार्तण्डजन्ममाहात्म्य-वर्णनम्

मुनय ऊचु

निर्गुण शाश्वतो देवस्त्वया प्रोक्तो दिवाकर। पुनर्द्वादशधा जात श्रुतोऽस्माभिस्त्वयोदित ॥१॥

सूय को सदा प्रिय है॥३१ ३३॥ यह स्तवराज तानो लोक मे प्रसिद्ध और आराग्य धन तथा यश को देनेवाला है॥३४॥ जो मनुष्य पवित्र होकर दानो सध्या इस स्तोत्र का पाठ करता है वह सब पापो से मुक्त हो जाता है॥३५॥ कमणा मनसा वाचा तथा शरीर से जो कोई भा पाप किया गया है वह सब सूय की सनिधि म एक बार इस स्तोत्र का जप करने से नष्ट हो जाता है। ॥३६॥ यही स्तवराज जप होम सध्योपासन धूप मत्र अघ-मत्र और बलि-मत्र है॥३४॥ अन्न-दान दान प्रणाम और प्रदक्षिणा में पूजित किया गया यह महामत्र सब पापो का हरण कर लेता है॥३८॥ द्विजगण ! इसलिए आप लोग इस स्तोत्र से वर-दायक तथा सव-काम फल प्रद सूय का स्तुति कीजिय॥३९॥

श्री ब्रह्म महापुराण में सूय के इक्क स नामा का अनुकातन नामक

एकतीसवाँ अध्याय समाप्त॥३१॥

अध्याय ३२

सूय के जन्म का माहात्म्य

मुनियो ने कहा—आपने निगुण तथा नित्य सूयदेव के बारे म कहा। सूय बारह प्रकार के हो गये—

१क ०कशो दस्युह० ख ०वेन्द्रो लोककर्ता त०। २ख ब्रह्मण्य स०। ३ग ०वलोकन०। ४ख ग ०वे। श्रीदारोग्यकरश्चै०। ५ख ०त। पठनवद्धि०। ६ख ०श्रेष्ठो द्वि०। ७ख याति। ८क ख ०न्त्राघम०। ९ख ०दानमन्त्रश्च प्राप्तिमन्त्रस्तथैव च। पू०। १०क ख ०स्माज्जूय प्र०। ११ख नन्च कश्यपा जात।

स एष तेजसो राशिः[1] स्त्रिया गर्भे महाद्युतिः। सम्भूतो भास्करो[2] जातस्तत्र नः संशयो महान्॥२॥

ब्रह्मोवाच

दक्षस्य हि सुताः श्रेष्ठा बभूवुः षष्टिः शोभनाः। अदितिर्दितिर्दनुश्चैव विनताद्यास्तथैव च॥३॥
दक्षस्ताः प्रददौ कन्याः कश्यपाय त्रयोदश। अदितिर्जनयामास देवांस्त्रिभुवनेश्वरान्॥४॥
दैत्यान् दितिर्दनुश्चोग्रान् दानवान् बलदर्पितान्। विनताद्यास्तथा चान्याः सुषुवुः स्थाणुजङ्गमान्॥५॥
तासां च पुत्रदौहित्रैः पौत्रदौहित्रकादिभिः। व्याप्तमेतज्जगत् सर्वं तेषां[3] तासां च वै मुने॥६॥
तेषां कश्यपपुत्राणां प्रधाना देवतागणाः। सात्त्विका राजसाश्चान्ये तामसाश्च गणाः स्मृताः॥७॥
देवान् यज्ञभुजश्चक्रे तथा त्रिभुवनेश्वरान्। स्रष्टा ब्रह्मविदां श्रेष्ठः परमेष्ठी प्रजापतिः॥८॥
तानबाधन्त सहिताः सापत्न्याद्दैत्यदानवाः।[4] ततो निराकृतान् पुत्रान् दैतेयैर्दानवैस्तथा॥९॥
हृतं त्रिभुवनं दृष्ट्वा अदितिर्मुनिसत्तमाः[5]। आच्छिन्नयज्ञभागांश्च क्षुधासम्पीडितान् भृशम्॥१०॥
आराधनाय सवितुः परं यत्नं[6] प्रचक्रमे[7]। एकाग्रा नियताहारा परं नियममास्थिता॥
तुष्टाव तेजसां राशिं गगनस्थं दिवाकरम्। ॥११॥

यह भी हमने अवगत किया। परन्तु यह सन्देह हमें हो रहा है कि महाकान्तिमान् तथा तेजोराशि सूर्य स्त्री के गर्भ से कैसे उत्पन्न हुए?॥१-२॥

ब्रह्मा बोले—दक्ष की साठ सुन्दरी कन्याएँ हुईं जिनमें से अदिति, दिति, दनु और विनता आदि तेरह कन्याएँ दक्ष ने कश्यप को दीं॥३॥। अदिति ने तीनों भुवन के स्वामी देवों को उत्पन्न किया॥४॥ दिति ने दैत्यों को, दनु ने उग्र तथा बलाभिमानी दानवों को और विनता आदि दूसरी कन्याओं ने स्थावर-जंगमों को उत्पन्न किया।५॥ कश्यप के पुत्र-दौहित्र तथा पौत्र-दौहित्र आदि से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है॥६। कश्यप-पुत्रों में देवता तो सात्त्विक हैं पर दूसरे पुत्र राजस तथा तामस हैं। ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ प्रजापति कश्यप ने देवताओं को त्रिभुवन-स्वामी तथा यज्ञ भोक्ता बनाया।७-८॥ उन देवताओं को दैत्य और दानव पीड़ा देने लगे। मुनिगण! दैत्य तथा दानवों ने देवताओं को भगाकर उनका यज्ञ भाग अपहरण कर लिया। देवताओं को अत्यन्त पीड़ित तथा त्रिभुवन को विनष्ट होते हुए देखकर अदिति सूर्य की आराधना करने लगी। वह नियमित भोजन तथा कठिन नियमों को धारण कर एकाग्रचित्त होकर आकाशस्थ तेजोराशि सूर्य की स्तुति करने लगी।९-११॥

---

१ ख० ०मा राशिस्त्रिगर्भजा म०। २ ख० ०रो देवस्त०। ३ ग० ०श्चान्तिर सर्वा व०। ४ क० ०ति। दानवा यक्षसहिताः सपत्ना दैत्यदानवाः राक्षसाश्च ततो युद्धं तपामास सुदारुणम्। दिव्यं वर्षसहस्रं तु तत्राजीयन्त देवताः। जयवन्तोऽभवंस्तत्र बलिनो दैत्यदानवाः। त०। ५ क० ०भा। विच्छि०। ६ ख० यत्नमुपस्थिता। ए०। ७ क० ०म। जिताहारा तन्मनस्का प०।

अदितिरुवाच

नमस्तुभ्यं परं सूक्ष्मं सुपुण्यं [1]बिभ्रतेऽतुलम्। धाम धामवतामीशं[2] धामाधारं च शाश्वतम् ॥१२॥
[3]जगतामुपकाराय त्वामहं स्तौमि [4]गोपते। आददानस्य यद्रूपं तीव्रं तस्मै नमाम्यहम् ॥१३॥
ग्रहीतुमष्टमासेन [5]कालेनाम्बुमयं रसम्। बिभ्रतस्तव यद्रूपमतितीव्रं नतास्मि तत् ॥१४॥
समेतमग्निषोमाभ्यां नमस्तस्मै गुणात्मने। यद्रूपमृग्यजुःसाम्नामैक्येन तपते तव ॥१५॥
विश्वमेतत्त्रयीसंज्ञं नमस्तस्मै विभावसो। यत्तु तस्मात्परं रूपमोमित्युक्त्वाभिसंहितम्॥
अस्थूलं स्थूलममलं नमस्तस्मै सनातन ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

एवं सा नियता देवी चक्रे स्तोत्रमहर्निशम्। निराहारा विवस्वन्तमारिराधयिषुर्द्विजाः ॥१७॥
ततः कालेन महता भगवांस्तपनो द्विजाः। प्रत्यक्षतामगात्तस्या दाक्षायण्या द्विजोत्तमाः ॥१८॥
सा ददर्श महाकूटं तेजसोऽम्बरसंवृतम्। भूमौ च संस्थितं भास्वज्ज्वालाभिरतिदुर्दृशम् ॥१९॥
तं दृष्ट्वा च ततो देवी साध्वसं परमं गता ॥२०॥

अदिति ने कहा—हे पृथ्वीपते! तुम्हे नमस्कार है। तुम परम सूक्ष्म, अनुपमेय तेज को धारण करने वाले, तेजधारियो के स्वामी, तेजो के आधार तथा नित्य हो ॥१२॥ ससार के उपकार के लिए मैं तुम्हारी स्तुति करती हूँ। तुम्हारे तीक्ष्ण रूप को मैं नमस्कार करती हूँ ॥१३॥ आठ महीनो मे जलमय रस को धारण करने वाले आपके अत्यन्त तीक्ष्ण रूप को नमस्कार है ॥१४॥ सत्त्व-रज-तम से युक्त तथा अग्नि-सोम सहित आपके रूप को नमस्कार है। ऋक्, यजुस् और साम की एकता से जो आपका रूप तपता है, उसे नमस्कार है ॥१५॥ विश्वात्मक जो आपका रूप है, उसे नमस्कार है। हे सूर्य! सब से परे जो आपका ओम् रूप है उसे नमस्कार है। हे सनातन! आपके अस्थूल, स्थल और निर्मल रूप को भी नमस्कार है ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण! सूर्य की आराधना करने वाली अदिति निराहार तथा नियमो से युक्त होकर इस प्रकार सूर्य की स्तुति किया करती थी ॥१७॥ विप्रवृन्द! बहुत दिनो बाद भगवान् सूर्य उस दक्ष-पुत्री के सामने प्रकट हुए ॥१८॥ विप्रवर! अदिति ज्वालाओ के कारण देखने न योग्य, तेजोराशि और भूमि पर स्थित सूर्य को देखकर अत्यन्त डर गई ॥१९॥

अदिति बोली—हे गोपते! हे जगत् के आदि! प्रसन्न हो! मैं आप को नही देखती। इसलिए कृपा

---

१ म. ०ते पुनः धा०। २ क ०धार जगत्पते। ज०। ३ग ०य तथाऽह। ४क ०ते। अदर्शन०। ५ग. ०लेनेन्दुम०।

अदितिरुवाच

जगदाद्य[1] प्रसीदेति न त्वां पश्यामि गोपते। प्रसादं कुरु पश्येयं यद्रूपं ते दिवाकर
भक्तानुकम्पक विभो त्वद्भक्तान् पाहि मे सुतान्। ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

ततः स तेजसस्तस्मादाविर्भूतो विभावसुः। अदृश्यत तदादित्यस्तप्तताम्रोपमः प्रभुः ॥२२॥
ततस्तां प्रणतां देवीं तस्यासन्दर्शने द्विजाः। प्राह[2] भास्वान् वृणुष्वैकं वरं मत्तो यमिच्छसि ॥२३॥
प्रणता शिरसा सा तु जानुपीडितमेदिनी। प्रत्युवाच विवस्वन्तं वरदं समुपस्थितम् ॥२४॥

अदितिरुवाच

देव प्रसीद पुत्राणां हृतं त्रिभुवनं मम। यज्ञभागाश्च दैतेयैर्दानवैश्च बलाधिकैः ॥२५॥
तन्निमित्तं प्रसादं त्वं कुरुष्व मम गोपते। अंशेन तेषां भ्रातृत्वं गत्वा तान्नाशये रिपून् ॥२६॥
यथा मे तनया भूयो यज्ञभागभुजः प्रभो। भवेयुरधिपाश्चैव त्रैलोक्यस्य दिवाकर ॥२७॥
तथानुकल्पं पुत्राणां सुप्रसन्नो रवे मम। कुरु प्रपन्नार्तिहर कार्यं कर्ता त्वमुच्यते[3] ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तामाह भगवान् भास्करो वारितस्करः। प्रणतामदितिं विप्राः प्रसादसुमुखो विभुः ॥२९॥

कर मुझे अपना रूप दिखलाइये। हे भक्तों पर अनुकम्पा करने वाले! हे विभो! आप अपने भक्त मेरे पुत्रों की रक्षा कीजिये ॥२०-२१॥

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त सूर्य उस तेज से निकलकर तप्त तांबे के समान कान्तिमान् होकर अदिति के सामने प्रकट हुए ॥२२॥ और प्रणाम करती हुई अदिति से सूर्य ने कहा—'तुम एक वर जो चाहो मुझसे माग लो ॥२३॥ घुटने टेक कर प्रणाम करती हुई अदिति ने वर देने के लिए प्रस्तुत सूर्य से कहा ॥२४॥

अदिति बोली—हे देव! प्रसन्न हो। अधिक बल वाले दैत्य मानवों ने मेरे पुत्रों से तीनों लोक तथा यज्ञ भागों को छीन लिया ॥२५॥ हे गोपते! उन्हीं के निमित्त आप मुझ पर अनुग्रह करें। अपने एक अंश से आप उनके भाई बनकर शत्रुओं का नाश कीजिये ॥२६॥ हे प्रभो! जिस प्रकार मेरे पुत्र पुनः यज्ञ-भोक्ता और त्रिलोकी के स्वामी बनें उसी प्रकार की कृपा आप मुझ पर करें। हे शरणागतों की पीडा हरने वाले! आप सबके कर्ता कहे जाते हैं, मेरे मनोरथ पूरा कर दीजिये ॥२७-२८॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रवृन्द! तब जल चुराने वाले भगवान् सूर्य प्रसन्न होकर दण्डवत् करती हुई अदिति से बोले ॥२९॥

---

१ क जगन्नाथ। २ ख. ०ह बाढ वृणु०। ३ ख त्वमच्युत। त०।

सूर्य्य उवाच

सहस्रांशेन ते गर्भः सम्भूयाहमशेषतः। त्वत्पुत्रशत्रून् दक्षोऽहं नाशयाम्याशु निर्वृतः॥३०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा भगवान् भास्वानन्तर्धानमुपागतः। निवृत्ता सापि तपसः सम्प्राप्ताखिलवाञ्छिता॥३१॥
ततो रश्मिसहस्रात्तु सुषुम्णाख्यो रवे: कर:[1]। ततः संवत्सरस्यान्ते तत्कामपूरणाय सः॥३२॥
निवासं सविता चक्रे देवमातुस्तदोदरे। कृच्छ्रचान्द्रायणादींश्च सा चक्रे सुसमाहिता॥३३॥
शुचिना धारयाम्येनं दिव्यं गर्भमिति द्विजाः। ततस्तां कश्यपः प्राह किञ्चित्कोपप्लुताक्षरम्॥३४॥

कश्यप उवाच

किं मारयसि [2]गर्भाण्डमिति नित्योपवासिनी॥

ब्रह्मोवाच

सा च तं प्राह गर्भाण्डमेतत्पश्येति कोपना। न मारितं विपक्षाणां मृत्युरेव भविष्यति॥३५॥
इत्युक्त्वा [3]तं तदा [4]गर्भमुत्ससर्ज सुरारणिः। जाज्वल्यमानं तेजोभिः पत्युर्वचनकोपिता॥३६॥
तं दृष्ट्वा कश्यपो गर्भमुद्यद्भास्करवर्चसम्। तुष्टाव प्रणतो भूत्वा [5]वाग्भिराद्याभिरादरात्॥३७॥

सूर्य ने कहा—मैं अपने हजार अंश से तेरे गर्भ मे वास करूँगा और तेरे पुत्रो के शत्रुओ को शीघ्र ही नष्ट कर दूगा॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—इतना कहकर भगवान् सूर्य अन्तर्धान हो गये और अदिति भी वाछित फल प्राप्त कर तपस्या से निवृत्त हुई॥३१॥ एक वर्ष बाद अदिति की कामना पूर्ण करने के लिए सहस्र किरणो मे से सुषुम्ना नामक सूर्य किरण आकर देवमाता के गर्भ मे वास करने लगी॥३२॥ अदिति भी सावधान होकर कठिन चान्द्रायण आदि व्रत करने मे प्रवृत्त हुई। द्विजगण! *'मैं पवित्रता से गर्भ धारण करूँगी'* ऐसा निवेदन करती हुई अदिति से कश्यप ने कोप युक्त कुछ बातें कही॥३३-३४॥

कश्यप ने कहा—नित्य उपवास करके क्या तुम गर्भस्थ अडे को मार रही हो?

ब्रह्मा ने कहा—अदिति भी क्रोध मे आकर बोली—देखो, यह गर्भस्थ अड (बालक) नही मरा है। बल्कि इससे शत्रुओ की मृत्यु होगी,॥३५॥ इतना कहकर पति के वचन से कुपित अदिति ने तेज से जाज्वल्यमान गर्भ का त्याग कर दिया॥३६॥ उदयकालीन सूर्य के समान तेजस्वी उस गर्भ को देखकर कश्यप झुककर आद्य वाणियो

---

१ ग०रः। विप्रावतारसचक्रेदे०। २ख कृच्छ्रात्सुधारण तस्य सा। ३ख गर्भाण्ड०। ४ ख ०र्भमासस०।
५ ख. ०ग्भिरीड्यामि०।

संस्तूयमानः स तदा गर्भाण्डात् प्रकटोऽभवत्। [1]पद्मपत्रसवर्णाभस्तेजसा व्याप्तदिङ्मुखः ॥३८॥
अथान्तरिक्षादाभाष्य कश्यपं मुनिसत्तमम्। सतोयमेघगम्भीरा वागुवाचाशरीरिणी ॥३९॥

वागुवाच

[2]मारितमिति यत् प्रोक्तमेतदण्डं [3]त्वयादितेः। तस्मान्मुने सुतस्तेऽयं मार्तण्डाख्यो भविष्यति ॥४०॥
हनिष्यत्यसुरांश्चायं यज्ञभागहरानरीन्। देवा निशम्येति वचो गगनात् समुपागतम् ॥४१॥
प्रहर्षमतुलं याता दानवाश्च हतौजसः। ततो युद्धाय दैतेयानाजुहाव शतक्रतुः ॥४२॥
सह देवैर्मुदा युक्ता दानवाश्च तमभ्ययुः। तेषां युद्धमभूद्घोरं देवानामसुरैः सह ॥४३॥
शस्त्रास्त्रवृष्टिसन्दीप्तसमस्तभुवनान्तरम्। तस्मिन् युद्धे भगवता मार्तण्डेन निरीक्षिता ॥४४॥
तेजसा दह्यमानास्ते भस्मीभूता महासुराः। ततः प्रहर्षमतुलं प्राप्ताः सर्वे दिवौकसः ॥४५॥
तुष्टुवुस्तेजसां योनिं मार्तण्डमदितिं तथा। स्वाधिकारांस्ततः प्राप्ता यज्ञभागांश्च पूर्ववत् ॥४६॥
भगवानपि मार्तण्डः स्वाधिकारमथाकरोत्। कदम्बपुष्पवद्भास्वानधश्चोर्ध्वञ्च रश्मिभिः।
[4]वृतोऽग्निपिण्डसदृशो दध्रे नातिस्फुटं वपुः ॥४७॥

मुनय ऊचुः

कथं कान्ततरं पश्चाद्रूपं संलब्धवान् रविः। कदम्बगोलकाकारं तन्मे ब्रूहि जगत्पते ॥४८॥

से आदरपूर्वक उसकी स्तुति करने लगे ॥३७॥ स्तुति किये जाने पर जब गर्भस्थ अड से निकल कर कमल-पत्र के समान कान्तिमान् सूर्य तेज से दशा दिशाओ का व्याप्त करते हुए प्रकट हुए तब मुनि-श्रेष्ठ कश्यप को लक्ष्य करके सजल मेघ के समान गंभीर आकाशवाणी हुई ॥३८-३९॥

वाणी ने कहा—हे मुने! जिसलिए तुमने अदिति से कहा था कि क्यो अडे को मार रही हो इसीलिए यह तुम्हारा पुत्र मार्तण्ड नाम से प्रख्यात होगा ॥४०॥ यह यज्ञ भागो को हरने वाले असुरो का सहारक होगा। आकाशवाणी सुनकर देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए और दानव निस्तेज हुए ॥४१½॥ तब इन्द्र ने दैत्यो को युद्ध के लिए आह्वान किया। दानव भी देवताओ के साथ सग्राम मे प्रसन्नतापूर्वक जुट गये। बडा भयानक देवासुर-सग्राम हुआ ॥४२-४३॥ उनके शस्त्र अस्त्रो की वृष्टि से त्रिभुवन व्याप्त हो गया। उस युद्ध मे भगवान् मार्तण्ड ने देखा कि तेज से सब महादैत्य भस्मसात् हो गये ॥४४½॥ तब देवगण अत्यन्त हर्षित होकर तेजोराशि सूर्य की स्तुति करने लगे। भगवान् की कृपा से देवताओ को पूर्ववत् अपना-अपना अधिकार मिल गया ॥४५-४६॥ स्वय सूर्य ने भी स्वाधिकार प्राप्त कर अग्नि पिण्ड के समान किंचित् अस्फुट शरीर को धारण किया, जो कदम्ब-पुष्प के सदृश रश्मियो से कान्तिमान् था ॥४७॥

मुनियों ने कहा—हे जगत्पते! सूर्य का कदम्ब के समान गोल तथा रमणीयतर रूप कैसे हुआ? ॥४८॥

---

१ ग ०त्रसुव०। २ ख ०रितस्ते यत् प्रो०। ३ ख त्वयोदितम्। त०। ग त्वयोदिते। त०। ४ ख. ०तोऽपि पि०।

ब्रह्मोवाच

त्वष्टा तस्मै ददौ कन्यां संज्ञां नाम विवस्वते। प्रसाद्य प्रणतो भूत्वा विश्वकर्म्मा प्रजापतिः ॥४९॥
त्रीण्यपत्यान्यसौ तस्यां जनयामास गोपतिः। द्वौ पुत्रौ सुमहाभागौ कन्याञ्च यमुनां तथा ॥५०॥
यत्तेजोऽभ्यधिकं तस्य मार्त्तण्डस्य विवस्वतः। तेनातितापयामास त्रींल्लोकान् सचराचरान् ॥५१॥
तद्रूपं गोलकाकारं दृष्ट्वा संज्ञा विवस्वतः। असहन्ती महत्तेजः स्वां छायां वाक्यमब्रवीत् ॥५२॥

संज्ञोवाच

अहं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव भवनं पितुः। निर्विकारं त्वयात्रैव स्थेयं मच्छासनाच्छुभे ॥५३॥
इमौ च बालकौ मह्यं कन्या च वरवर्णिनी। सम्भाव्या नैव चाख्येयमिदं भगवते त्वया ॥५४॥

छायोवाच

आ कचग्रहणाद्देवि आ शापान्नैव कर्हिचित्। आख्यास्यामि मतं तुभ्यं गम्यतां यत्र वाञ्छितम् ॥५५॥
इत्युक्ता व्रीडिता संज्ञा जगाम पितृमन्दिरम्। वत्सराणां सहस्रन्तु वसमाना पितुर्गृहे ॥५६॥
भर्त्तुः समीपं याहीति पित्रोक्ता सा पुनः पुनः। आगच्छद्वडवा भूत्वा कुरूनथोत्तरांस्ततः ॥५७॥
तत्र तेपे तपः साध्वी निराहारा द्विजोत्तमाः। पितुः समीपं यातायां संज्ञायां वाक्यतत्परा ॥५८॥

ब्रह्मा ने कहा—त्वष्टा नामक प्रजापति विश्वकर्मा ने सूर्य को नित्य नमस्कार के द्वारा प्रसन्न करके संज्ञा नामक अपनी कन्या ब्याह दी ॥४९॥ सूर्य से संज्ञा में दो पुत्र और एक यमुना नामक कन्या की उत्पत्ति हुई ॥५०॥ मार्त्तण्ड का जो अत्यधिक तेज था, वह चराचर सहित तीनों लोकों का बहुत तपाता था ॥५१॥ उसके गोलाकार रूप को देखकर महान् तेज को न सहती हुई संज्ञा अपनी छाया से बोली ॥५२॥

संज्ञा ने कहा—मैं अपने पिता के घर जा रही हूँ। शुभे! तुम्हारा कल्याण हो! मेरी आज्ञा से तुम यहीं पर निर्विकार होकर रहो ॥५३॥ हे सुन्दरी! मेरे दोनों बालकों तथा कन्या का पालन-पोषण करना। पर भगवान् से इस आख्यान को कभी न कहना ॥५४॥

छाया ने कहा—हे देवी! जब तक मेरे बाल नहीं पकड़े जायेंगे और शाप नहीं पड़ेगा तब तक मैं इस रहस्य को कभी नहीं बतला सकती। तुम जहाँ चाहो वहाँ जाओ ॥५५॥ इस प्रकार कही जाने पर लजाती हुई संज्ञा पितृ-गृह को चली गयी। वहाँ एक हजार वर्ष तक वास करने के उपरान्त पिता ने उसे अपने स्वामी के पास लौट जाने के लिए विवश किया ॥५६½॥ तब पतिव्रता संज्ञा घोड़ी का रूप धारण करके उत्तर-कुरु देश में आयी और निराहार रहकर तपस्या करने लगी ॥५७½॥ द्विजगण! संज्ञा के अपने पिता के पास चली जाने पर उसी का रूप

---

१ क ग अथ। २ ख तत्र। ३ क ०न्ती तदा तेज। ४ ग ०याऽप्यत्रये०। ५ ख आ केशग्र०। ६ ख तु। ७ ख ०रूनेवोत्त०।

तद्रूपधारिणी छाया भास्कर समुपस्थिता। तस्याञ्च भगवान् सूर्य्य सञ्ज्ञेयमिति चिन्तयन् ॥५९॥
तथैव जनयामास द्वौ पुत्रौ कन्यका तथा। सज्ञा तु पार्थिवी तेषामात्मजाना तथाकरोत ॥६०।
स्नेह न पूर्व्वजाताना तया कृतवती तु सा। मनुस्तत्क्षान्तवास्तस्या यमस्तस्या न चक्षमे ॥६१॥
बहुधा पीडयमानस्तु पितु पत्न्या सुदु खित । स वै कोपाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ॥
पदा स तर्ज्जयामास न तु देहे न्यपातयत् ॥६२॥

छायोवाच

पदा तर्ज्जयसे यस्मात्पितुर्भार्य्यां गरीयसीम्। तस्मात्तवैष चरण पतिष्यति न सशय ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

यमस्तु तेन शापेन भृश पीडितमानस। मनुना सह धर्म्मात्मा पित्र सर्व्वं न्यवेदयत् ॥६४॥

यम उवाच

स्नेहेन तुल्यमस्मासु माता देव न वर्त्तते। विसृज्य ज्यायस भक्त्या कनीयास बुभूषति ॥६५॥
तस्या मयोद्यत पादो न तु देहे निपातित । बाल्याद्वा यदि वा मोहात्तद्भवान् क्षन्तुमर्हसि ॥६६॥
शप्तोऽह तात कोपेन जनन्या तनयो यत । ततो मन्ये न जननीमिमा वै तपतांवर ॥६७॥
तव प्रसादाच्चरणो भगवन् न पतेद्यथा। मातृशापादय मेऽद्य तथा चिन्तय गोपते ॥६८॥

धारण करने वाली छाया सूय के समीप आई॥५८३॥ भगवान सूय ने उसे सना हा समझते हुए दो पुत्र और एक पुत्री उससे उत्पन्न किया॥५९३॥ अब नकली सज्ञा अपने पुत्र-पुत्री का सच्च सना के बच्चे की अपेक्षा अधिक मानने लगी। मनु ने तो इसका सहन किया पर यम नही सह सका॥६० ६१॥ उसने विमाता द्वारा बहुत प डित होने पर कोप या लडकपन या भावी अनथ के कारण छाया को लात मारना चाहा पर उसके शरीर पर चरण प्रहार नही किया॥६२॥

छाया ने कहा—जिस चरण से तू माता को मारता है तेरा यह चरण गिर पडेगा इसमे कोई सशय नही॥६३॥

ब्रह्मा ने कहा—छाया के शाप से अत्यन्त दु ख होकर धर्मात्मा यम ने मनु के साथ पिता के पास जाकर उनसे सारी बात निवेदन कर दीं॥६४॥

यम ने कहा—हे देव! माता को समान भाव से हम लोगो के साथ बरतना चाहिये पर वह तो बड़ों को छोड कर छोटे हा को मानती है॥६५॥ इसलिये मैंने बचपन या मोह के कारण उसके ऊपर पर उठाया किन्तु मारा नही। आप मेरे इस अपराध को क्षमा करें॥६६॥ हे तात! हे तपनश्रेष्ठ! माता ने क्रोध से मुझ शाप दे दिया। इससे मैं समझता हु कि यह मेरा माँ नही हैं।६७॥ हे भगवन्! मात शाप के कारण मेरे पैर न गिरें ऐसा कोई उपाय करने की कृपा करें॥६८॥

---

१ ख तदा सम०। २ ख सुतौ। ३ क यथा। ४ क ०ता पुरा। म०। ५ क वशात्। ६ ख ०मु आत्मजेषु न।

रविरुवाच

असंशयं महत्पुत्र भविष्यत्यत्र कारणम्। येन त्वामाविशत्क्रोधो धर्मज्ञं धर्मशीलिनम्[१] ॥६९॥
सर्वेषामेव शापानां प्रतिघातो हि विद्यते। न तु मात्राभिशप्तानां क्वचिच्छापनिवर्त्तनम् ॥७०॥
न शक्यमेतन्मिथ्या तु कर्त्तुं [२]मातुर्वचस्तव। किञ्चित्तेऽहं विधास्यामि [३]पुत्रस्नेहादनुग्रहम् ॥७१॥
कृमयो मांसमादाय प्रयास्यन्ति महीतलम्। [४]कृतं तस्या वचः सत्यं त्वञ्च त्रातो भविष्यसि ॥७२॥

ब्रह्मोवाच

आदित्यस्त्वब्रवीच्छायां किमर्थं तनयेषु वै। तुल्येष्वप्यधिकः स्नेह एकं प्रति कृतस्त्वया ॥७३॥
नूनं नैषा त्वं जननी संज्ञा कापि त्वमागता। निर्गुणेष्वप्यपत्येषु माता शापं न दास्यति ॥७४॥
सा तत्परिहरन्ती च शापाद्भीता तदा रवेः। कथयामास वृत्तान्तं स श्रुत्वा श्वशुरं ययौ ॥७५॥
स चापि तं यथान्यायमर्च्चयित्वा तदा रविम्। निर्दग्धुकामं रोषेण सान्त्वयानस्तमब्रवीत् ॥७६॥

विश्वकर्मोवाच

तवातितेजसा व्याप्तमिदं रूपं सुदुःसहम्। असहन्ती तु तत्संज्ञा वने चरति वै तपः ॥७७॥
द्रक्ष्यते तां भवानद्य स्वां भार्यां शुभचारिणीम्। रूपार्थं भवतोऽरण्ये चरन्तीं सुमहत्तपः ॥७८॥
श्रुतं मे ब्रह्मणो वाक्यं तव तेजोऽवरोधने। रूपं निर्वर्त्तयाम्यद्य तव कान्तं दिवस्पते ॥७९॥

सूर्य ने कहा—पुत्र ! निःसन्देह इसमें कोई महान् कारण है जिससे तुम्हारे जैसे धर्मज्ञ तथा धर्मात्मा को क्रोध आ गया ॥६९॥ सबके शापों का प्रतीकार है किन्तु माता से अभिशप्तों के शाप निवृत्ति कहीं नहीं होती ॥७०॥ किन्तु मैं तुम्हारी माता के वचन को मिथ्या नहीं कर सकता। फिर भी पुत्र-स्नेह के कारण मैं कोई उपाय करूँगा ॥७१॥ कीड़े तुम्हारे पैर का मांस लेकर पृथ्वी पर जायेंगे इससे उसका वचन भी सत्य होगा और तुम भी बच जाओगे ॥७२॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके उपरान्त सूर्य ने छाया से कहा—क्या तुम समान पुत्रों में से एक के प्रति अधिक स्नेह कर रही हो ? ॥७३॥ (इससे जान पड़ता है कि) निश्चय ही तुम इनकी माता नहीं हो कोई दूसरी संज्ञा आ गई हो। क्योंकि गुणहीन सन्तान को भी माता शाप नहीं देती ॥७४॥ तब सूर्य के शाप भय से छाया ने सारा वृत्तान्त कह दिया। सूर्य भी यह सुनकर अपने श्वशुर के पास गये ॥७५॥ विश्वकर्मा ने क्रोध से दग्ध करने के इच्छुक सूर्य की समयोचित पूजा की और सान्त्वना देते हुए उनसे कहा ॥७६॥

विश्वकर्मा ने कहा—आपके अत्यन्त तेज से व्याप्त इस दुःसह रूप को न सहती हुई संज्ञा वन में तपस्या कर रही है ॥७७॥ आपके रूप के लिए वन में घोर तपस्या करती हुई पवित्र आचरण वाली अपनी पत्नी को आज आप देखेंगे ॥७८॥ आपके तेज को अवरुद्ध करने के विषय में मैंने ब्रह्मा जी का वाक्य सुना है। हे आकाश के स्वामी ! आज मैं आपके रूप को मनोहर बना दूँगा ॥७९॥

---

१ घ ०मनास्विनम्। २ ग ०चितारः०। ३ क मातवच०। ४ ख प्रयास्यामि। ५ ग त्व। ६ ग ०य स्त्वपि पुत्र म०। ७ क च। ८ क ग ०र्निव या०। ९ क ग ०वयं मति ते न त रोचने। क०।

तद्रूपधारिणी छाया भास्करं समुपस्थिता। 'तस्याञ्च भगवान् सूर्य्यः संज्ञेयमिति चिन्तयन् ॥५९॥
तथैव जनयामास द्वौ पुत्रौ कन्यकां तथा। संज्ञा तु पार्थिवी तेषामात्मजानां तथाकरोत् ॥६०॥
स्नेहं न पूर्व्वजातानां तथा कृतवती तु सा। मनुस्तत्क्षान्तवांस्तस्या यमस्तस्या न चक्षमे ॥६१॥
बहुधा पीड्यमानस्तु पितुः पत्न्या सुदुःखितः। स वै कोपाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ॥
पदा सन्तर्ज्जयामास न तु देहे न्यपातयत् ॥६२॥

छायोवाच

पदा तर्ज्जयसे यस्मात्पितुर्भार्य्यां गरीयसीम्। तस्मात्तवैष चरणः पतिष्यति न संशयः ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः। मनुना सह धर्म्मात्मा पित्रे सर्व्वं न्यवेदयत् ॥६४॥

यम उवाच

स्नेहेन तुल्यमस्मासु माता देव न वर्त्तते। विसृज्य ज्यायसं भवत्या कनीयांसं बुभूषति ॥६५॥
तस्यां मयोद्यतः पादो न तु देहे निपातितः। बाल्याद्वा यदि वा मोहात्तद्भवान् क्षन्तुमर्हसि ॥६६॥
शप्तोऽहं तात कोपेन जनन्या तनयो यतः। ततो मन्ये न जननीमिमां वै तपतांवर ॥६७॥
तव प्रसादाच्चरणो भगवन् न पतेद्यथा। मातृशापादयं मेऽद्य तथा चिन्तय गोपते ॥६८॥

धारण करने वाली छाया सूर्य के समीप आई ॥५८½॥ भगवान् सूर्य ने उसे सज्ञा ही समझते हुए दो पुत्र और एक पुत्री उससे उत्पन्न किया ॥५९½॥ अब नकली सज्ञा अपने पुत्र-पुत्री को सच्चे सज्ञा के बच्चे की अपेक्षा अधिक मानने लगी। मनु ने तो इसका सहन किया, पर यम नहीं सह सका ॥६०-६१॥ उसने विमाता द्वारा बहुत पीडित होने पर कोप या लडकपन या भावी अनर्थ के कारण छाया को लात मारना चाहा, पर उसके शरीर पर चरण प्रहार नही किया ॥६२॥

छाया ने कहा—जिस चरण से तू माता को मारता है तेरा यह चरण गिर पडेगा, इसमे कोई सशय नही ॥६३॥

ब्रह्मा ने कहा—छाया के शाप से अत्यन्त दुःखी होकर धर्मात्मा यम ने मनु के साथ पिता के पास जाकर उनसे सारी बातें निवेदन कर दी ॥६४॥

यम ने कहा—हे देव ! माता को समान भाव से हम लोगो के साथ बरतना चाहिये, पर वह तो बडे को छोड कर छोटे ही को मानती है ॥६५॥ इसलिये मैंने बचपन या मोह के कारण उसके ऊपर पैर उठाया, किन्तु मारा नही। आप मेरे इस अपराध को क्षमा करें ॥६६॥ हे तात ! हे तपनश्रेष्ठ ! माता ने क्रोध से मुझे शाप दे दिया। इससे मैं समझता हु कि यह मेरी माँ नही हैं ॥६७॥ हे भगवन् ! मातृ शाप के कारण मेरे पैर न गिरें ऐसा कोई उपाय करने की कृपा करें ॥६८॥

---

१ ख तदा सम०। २ ख सुतौ। ३ क यथा। ४ क ०त्री पुरा। म०। ५ क. वशात्। ६ ख ०मु आत्मजेषु न।

अग्निराद्यादच भास्वन्तं लिख्यमानं मुदा युताः¹। त्वं नाथ मोक्षिणां मोक्षो ध्येयस्त्वं ध्यानिनां परः ॥९३॥
त्वं गतिः सर्व्वभूतानां ²कर्म्मकाण्डविवर्त्तिनाम्। सम्पूज्यस्त्वं तु देवेश शं नोऽस्तु जगतां पते ॥९४॥
शं नोऽस्तु द्विपदे नित्यं शं नश्चास्तु चतुष्पदे। ततो विद्याधरगणा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥९५॥
कृताञ्जलिपुटाः सर्व्वे शिरोभिः प्रणता रविम्। ऊचुस्ते विविधा वाचो मनःश्रोत्रसुखावहाः ॥९६॥
सह्यं भवतु तेजस्ते भूतानां भूतभावन। ततो हाहाहूहूश्चैव नारदस्तुम्बुरुस्तथा ॥९७॥
उपगायितुमारब्धा गान्धर्व्वकुशला रविम्। षड्जमध्यमगान्धारगानत्रयविशारदाः ॥९८॥
मूर्च्छनाभिश्च तालैश्च³ सम्प्रयोगैः⁴ सुखप्रदम्। विश्वाची च घृताची च उर्व्वश्यय तिलोत्तमा ॥९९॥
मेनका सहजन्या च रम्भा चाप्सरसांवरा⁵। ननृतुर्जगतामीशे⁶ लिख्यमाने विभावसौ ॥१००॥
भावहावविलासाद्यान् कुर्व्वत्योऽभिनयान्बहून्। प्रावाद्यन्त ततस्तत्र वीणा वेण्वादिझर्झराः ॥१०१॥
पणवाः⁷ पुष्कराश्चैव मृदङ्गाः पटहानकाः। देवदुन्दुभयः⁸ शङ्खाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥१०२॥
गायद्भिश्चैव नृत्यद्भिर्गन्धर्व्वैरप्सरोगणैः। तूर्य्यवादित्रघोषैश्च सर्व्वं कोलाहलीकृतम् ॥१०३॥
ततः कृताञ्जलिपुटा भक्तिनम्रात्ममूर्त्तयः। लिख्यमानं सहस्रांशुं प्रणेमुः सर्व्वदेवताः ॥१०४॥
ततः कोलाहले तस्मिन् सर्व्वदेवसमागमे। तेजसः ⁹शातनं चक्रे विश्वकर्म्मा शनैः शनैः ॥१०५॥
आजानुलिखितश्चासौ निपुणं विश्वकर्म्मणा। नाभ्यनन्दत्तु लिखनं ततस्तेनावतारितः ॥१०६॥

॥९१॥ वालखिल्य सञ्ज्ञक मुनिगण ने भी वेदोक्त मन्त्रों से भास्कर की स्तुति की। अग्नि प्रमुख देवों ने भी खराद जाते हुए सूर्य की हर्षपूर्वक स्तुति की—'तुम मुक्तों के मोक्ष और ध्यानियों के ध्येय हो॥९२-९३॥ कर्मकाण्ड का अनुष्ठान करने वाले प्राणियों की गति भी तुम्हीं हो। हे देवेश! तुम पूज्य हो! हे जगत्पते! हमारा मंगल हो! द्विपद तथा चतुष्पद जीवों से नित्य हमारा कल्याण हो।।९४॥ तब यक्ष, राक्षस, सर्प और विद्याधर गण ने अंजलि बाँध शिर झुका कर सूर्य को प्रणाम किया और मन तथा कानों को सुख देने वाली अनेक बातें भी कहीं॥९५-९६॥ 'हे भूतपाल! आपका तेज हम सह्य हो!' तब हाहा, हूहू, नारद और तुम्बुरु जो गान्धर्व विद्या में कुशल तथा षड्ज, मध्यम और गान्धार—इन तीनों गानों में विशारद थे, मूर्छना और तालों के साथ सुखप्रद गीत गाने लगे॥९७-९८॥ विश्वाची, घृताची, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेनका सहजन्या और रम्भा—ये श्रेष्ठ अप्सराएँ हाव, भाव तथा विलास पूर्वक अभिनय करती हुई नाचने लगीं। वीणा, वंशी, झाँझ, ढोल, नक्कारे, मृदंग, डमरू, देवदुन्दुभि और शंख आदि बाजे सैकड़ों-हजारों की संख्या में बजने लगे। गन्धर्व तथा अप्सरागणों के गान, नाच और भेरी आदि बाजों के शब्द से महान् कोलाहल हुआ।९९-१०३॥ तब भक्ति से नतमस्तक हो अंजलि जोड़कर सब देवताओं ने सूर्य को प्रणाम किया॥१०४॥ देवों के एकत्रित होने से कोलाहल मच गया। उसी समय विश्वकर्मा ने धीरे धीरे तेज को संक्षिप्त कर दिया। ॥१०५॥ विश्वकर्मा ने दक्षता से जंघे तक सूर्य को खराद

१ क ०ता। स्वग्रामसमरणान्मक्षो। २ क ०ण्डप्रव०। ३ क ०श्च सुप्र०। ४ क ०यागसु०। ५ क ०रा। तुष्टुवुर्जं०। ६ क ०मीश लि०। ७ ख ०णवादीनि वाद्यानि मृ०। ८ ख शमन। ९ ख ०नै। अथामीलिलि०।

ब्रह्मोवाच

ततस्तथेति तं प्राह त्वष्टारं भगवान् रवि.। ततो विवस्वतो रूपं प्रागासीत्परिमण्डलम् ॥८०॥
विश्वकर्म्मा त्वनुज्ञातः शाकद्वीपे विवस्वता। भ्रमिमारोप्य तत्तेज.शातनायोपचक्रमे ॥८१॥
भ्रमताशेषजगतां नाभिभूतेन भास्वता। समुद्राद्रिवनोपेता त्वारुरोह मही नभ. ॥८२॥
गगनञ्चाखिलं विप्राः सचन्द्रग्रहतारकम्। अधो गतं महाभागा बभूवाक्षिप्तमाकुलम् ॥८३॥
विक्षिप्तसलिला. सर्वे बभूवुश्च तथार्णवाः[1]। व्यभिद्यन्त महाशैलाः शीर्णसानुनिबन्धना.[2] ॥८४॥
ध्रुवाधाराण्यशेषाणि धिष्ण्यानि मुनिसत्तमाः। त्रुट्यद्रश्मिनिबन्धीनि बन्धनानि अधो ययुः ॥८५॥
वेगभ्रमणसम्पातवायुक्षिप्ता सहस्रशः। व्यशीर्य्यन्त महामेघा घोरारावविराविणः ॥८६॥
भास्वद्भ्रमणविभ्रान्तभूम्याकाशरसातलम्। जगदाकुलमत्यर्थं [3]तदासीन्मुनिसत्तमा. ॥८७॥
त्रैलोक्यमाकुलं वीक्ष्य भ्रममाणं सुरर्षयः। देवाश्च ब्रह्मणा सार्द्धं भास्वन्तमभितुष्टुवुः ॥८८॥
आदिदेवोऽसि देवानां जातस्त्वभूतये भुवः। स्वर्गस्थित्यन्तकालेषु त्रिधा भेदेन तिष्ठसि ॥८९॥
स्वस्ति तेऽस्तु जगन्नाथ[4] घर्म्मवर्ष दिवाकर। इन्द्राद्यस्तदा देवा लिख्यमानमथास्तुवन्[5] ॥९०॥
जय देव [6]जगत्स्वामिन् जयाशेष जगत्पते। ऋषयश्च ततः सप्त वसिष्ठात्रिपुरोगमा ॥९१॥
तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रै. स्वस्ति स्वस्वीतिवादिन.। वेदोक्तिभिरथाग्र्याभिर्वालखिल्याश्च तुष्टुवुः[7] ॥९२॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद भगवान् सूर्य ने त्वष्टा से कहा—ऐसा ही सही।' तब सूर्य का रूप पहले मडलाकार था ॥८०॥ पश्चात् शाकद्वीप मे सूर्य की आज्ञा से विश्वकर्मा ने उनको भ्रमि (भ्रमण-यन्त्र) पर चढा कर उनके तेज को विशीर्ण अर्थात् सक्षिप्त करना प्रारम्भ किया ॥८१॥ समस्त जगत् के नाभिरूप सूर्य के भ्रमण से समुद्र, वन आदि सहित पृथिवी आकाश मे चली गई ॥८२॥ विप्रवृन्द! चन्द्रमा, ग्रह और तारा सहित निखिल आकाश व्याकुल होकर नीचे आ गया ॥८३॥ समुद्र का जल चचल हो उठा। चाटियो के शीर्ण विशीर्ण हो जाने से बडे-बडे पर्वत टूटने लगे ॥८४॥ मुनिगण! ध्रुव रूपी आधार वाले समस्त नक्षत्र, जिनकी किरणो के बन्धन टूट गये, नीचे गिर पडे ॥८५॥ भ्रमण-वेग से पतित वायु के द्वारा हजारा घोर शब्द करने वाले मेघ उखाड कर फेंक दिये गये ॥८६॥ मुनिगण! सूर्य-भ्रमण के समय भूमि, आकाश और पाताल आदि विशिष्ट जगत् अत्यन्त व्याकुल हो गया ॥८७॥ तीनो लोक को भ्रमण से आकुल देखकर ब्रह्मा सहित देवगण सूर्य की स्तुति करने लगे ॥८८॥ 'तुम देवा के आदिदेव हो, तुम ससार की उत्पत्ति के लिए हा और सृष्टि स्थिति प्रलय—तीनो काल मे तुम तीन प्रकार से रहते हो ॥८९॥ हे दिनकर! हे जगन्नाथ! हे ताप बरसाने वाले! तुम्हारा कल्याण हो।' उस समय इन्द्र आदि देवताओ ने मो खरादे जाते हुए सूर्य की स्तुति की ॥९०॥ हे देव! आप की जय हो! हे अशेष जगत् के स्वामी! आपकी जय हो।' वसिष्ठ, अत्रि आदि सप्तर्षि मो स्वस्तिवाचन पूर्वक अनेक प्रकार के स्तोत्रो से सूर्य की स्तुति करने लगे

---

१ ख ०वा। भिद्यन्ते स्म। म०। २ ख ०ना। ब्रह्मलोकवदो०। ३ क ०दाप्रभृति स०। ४ क ०थ त्वमर्हसि दि०। ५ क ०थाब्रुव०। ६ क ०गद्व्यापिनेजधाम ज०। ७ क ग ०वु। ऋग्नि०।

अग्निराद्याश्च भास्वन्तं लिख्यमानं मुदा युता¹। त्वं नाथ मोक्षिणां मोक्षो ध्येयस्त्वं ध्यानिनां परः ॥९३॥
त्वं गतिः सर्वभूतानां कर्मकाण्डविवर्त्तिनाम्। सम्पूज्यस्त्वं तु देवेश शं नोऽस्तु जगतां पते ॥९४॥
शं नोऽस्तु द्विपदे नित्यं शं नश्चास्तु चतुष्पदे। ततो विद्याधरगणा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥९५॥
कृताञ्जलिपुटाः सर्वे शिरोभिः प्रणता रविम्। ऊचुस्ते विविधा वाचो मनःश्रोत्रसुखावहाः ॥९६॥
सह्यं भवतु तेजस्ते भूतानां भूतभावन। ततो हाहाहूहूश्चैव नारदस्तुम्बुरुस्तथा ॥९७॥
उपगायितुमारब्धा गान्धर्वकुशला रविम्। षड्जमध्यमगान्धारगानत्रयविशारदाः ॥९८॥
मूर्च्छनाभिश्च तालैश्च² सम्प्रयोगैः³ सुखप्रदम्। विश्वाची च घृताची च उर्वश्यथ तिलोत्तमा ॥९९॥
मेनका सहजन्या च रम्भा चाप्सरसां वरा। ननृतुर्जगतामीशे⁴ लिख्यमाने विभावसौ ॥१००॥
भावहावविलासाढ्यान् कुर्वन्त्योऽभिनयान्बहून्। प्रावाद्यन्त ततस्तत्र वीणा वेण्वादिझर्झराः ॥१०१॥
पणवाः⁵ पुष्कराश्चैव मृदङ्गाः पटहानकाः। देवदुन्दुभयः शङ्खाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥१०२॥
गायद्भिश्चैव नृत्यद्भिर्गन्धर्वैरप्सरोगणैः। तूर्यवादित्रघोषैश्च सर्वं कोलाहलीकृतम् ॥१०३॥
ततः कृताञ्जलिपुटा भक्तिनम्रात्ममूर्त्तयः। लिख्यमानं सहस्रांशुं प्रणेमुः सर्वदेवताः ॥१०४॥
ततः कोलाहले तस्मिन् सर्वदेवसमागमे। तेजसः⁶ शातनं चक्रे विश्वकर्मा शनैः शनैः⁷ ॥१०५॥
आजानुलिखितश्चासौ निपुणं विश्वकर्मणा। नाभ्यनन्दत्तु लिखनं ततस्तेनावतारितः ॥१०६॥

॥९१॥ वालखिल्य सनक मुनिगण ने भी वेदोक्त मन्त्रों से भास्कर की स्तुति की। अग्नि प्रमुख देवों ने भी खरादे जाते हुए सूर्य की हर्षपूर्वक स्तुति की—तुम मुक्तों के मोक्ष और ध्यानियों के ध्येय हो ॥९२ ९३॥ कर्मकाण्ड का अनुष्ठान करने वाले प्राणियों की गति भी तुम्हीं हो। हे देवेश ! तुम पूज्य हो ! हे जगत्पते ! हमारा मंगल हो ! द्विपद तथा चतुष्पद जीवों से नित्य हमारा कल्याण हो ॥९४॥ तब यक्ष राक्षस सर्प और विद्याधर गण ने अंजलि बाँध सिर झुका कर सूर्य को प्रणाम किया और मन तथा कानों को सुख देने वाली अनेक बातें भी कहीं ॥९५ ९६॥ हे भूतपाल ! आपका तेज हम सह्य हो। तब हाहा हूहू नारद और तुम्बरु जो गान्धर्व विद्या में कुशल तथा षड्ज मध्यम और गान्धार—इन तीनों गानों में विशारद थे मूर्च्छना और तालों के साथ सुख प्रद गीत गाने लगे ॥९७ ९८॥ विश्वाची घृताची उर्वशी तिलोत्तमा मेनका सहजन्या और रम्भा—ये श्रेष्ठ अप्सराएं हाव भाव तथा विलास पूर्वक अभिनय करती हुई नाचने लगीं। वीणा वंशी झांझ ढोल नक्कारे मृदंग डमरू देवदुन्दुभि और शंख आदि बाजे सैकड़ों-हजारों की संख्या में बजने लगे। गन्धर्व तथा अप्सरागणों के गान नाच और भेरी आदि बाजों के शब्द से महान कोलाहल हुआ ॥९९ १०३॥ तब भक्ति से नतमस्तक हो अंजलि जोड़कर सब देवताओं ने सूर्य को प्रणाम किया ॥१०४॥ देवों के एकत्रित होने से कोलाहल मच गया। उसी समय विश्वकर्मा ने धीरे धीरे तेज को संक्षिप्त कर दिया ॥१०५॥ विश्वकर्मा ने दक्षता से जंघा तक सूर्य को खराद

१ क ०ता। वनामस्मरणान्मक्षो। २ क ०न्प्रद०। ३ क ०श्च सुप्र०। ४ क ०यगसु०। ५ क ०रा। तुष्टवज०। ६ क ०मन्न लि०। ७ ख ०णवादीनि वाद्यानि म०। ८ ख गमन। ९ ख ०न। अयाम लिखि०।

न तु निर्भर्त्सितं रूपं तेजसो हननेन तु। कान्तात्कान्ततरं रूपमधिकं शुशुभे ततः॥१०७॥
इति हिमजलघर्मकालहेतोर्हरकमलासनविष्णुसंस्तुतस्य।
तदुपरि लिखनं निशम्य भानोर्व्रजति दिवाकरलोकमायुषोऽन्ते ॥१०८॥
एवं जन्म रवेः पूर्वं बभूव मुनिसत्तमाः। रूपञ्च परमं तस्य मया सम्परिकीर्त्तितम्॥१०९॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे मार्त्तण्डजन्मशरीरलिखनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

मार्तण्डमाहात्म्य-वर्णनम्

मुनय ऊचुः

भूयोऽपि कथयास्माकं कथां सूर्य्यसमाश्रिताम्। न तृप्तिमधिगच्छामः शृण्वन्तस्तां कथां शुभाम्॥१॥
योऽयं दीप्तो महातेजा वह्निराशिसमप्रभः। एतद्वेदितुमिच्छामः प्रभावोऽस्य कुतः प्रभो॥२॥

ब्रह्मोवाच

तमोभूतेषु लोकेषु नष्टे स्थावरजङ्गमे। 'प्रकृतेर्गुणहेतुस्तु' पूर्वं बुद्धिरजायत॥३॥

दिया। यद्यपि सूर्य इससे प्रसन्न नहीं हुए, फिर भी संक्षिप्त तेज वाले रूप की उन्होंने निन्दा भी नहीं की। और अब उनका रूप सुन्दर से भी सुन्दर बन गया॥१०६-१०७॥ हिम, जल, धर्म और काल के कारण तथा ब्रह्मा विष्णु-महेश से स्तुत सूर्य के खरादे जाने के सम्बन्ध में सुनकर आयु के अन्त में मनुष्य सूर्य-लोक को प्राप्त करता है॥१०८॥ मुनिवर! पहले इस प्रकार सूर्य का जन्म हुआ। उनके परमरूप के बारे में भी मैंने कह दिया॥१०९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में सूर्य-जन्म शरीर लिखन नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥३२॥

अध्याय ३३

सूर्य के अष्टोत्तरशत नामों का कीर्तन

मुनियों ने कहा—फिर हम सूर्य सम्बन्धी कथा सुनाइये। क्योंकि उस पवित्र कथा को सुनते हुए हमें तृप्ति नहीं हो रही है। हम जानना चाहते हैं कि अग्नि राशि के समान कान्तिमान् तथा महातेजस्वी (सूर्य) को इतना प्रभाव कैसे प्राप्त हुआ॥१-२॥

ब्रह्मा ने कहा—जब तीनों लोक अन्धकारमय थे और स्थावर-जंगम नष्ट हो चुके थे तब पहले (त्रिगुणा-

---

१ ग प्रवृत्तं गुण०। २ ग ०तुं व प०।

अहङ्कारस्ततो जातो महाभूतप्रवर्त्तकः। वाय्वग्निरापः खं भूमिस्ततस्तत्त्वण्डमजायत ॥४॥
तस्मिन्नण्डे त्विमे लोकाः सप्त[१] चैव प्रतिष्ठिता.। पृथिवी सप्तभिर्द्वीपैः समुद्रैश्चैव सप्तभिः ॥५॥
तत्रैवावस्थितो ह्यासीदहं विष्णुर्महेश्वरः। विमूढास्तामसाः सर्व्वे प्रध्यायन्ति तमीश्वरम् ॥६॥
ततो वै सुमहातेजाः प्रादुर्भूतस्तमोनुदः। ध्यानयोगेन चास्माभिर्विज्ञातं सविता तदा ॥७॥
ज्ञात्वा च परमात्मानं सर्व एव पृथक् पृथक्। दिव्याभिः स्तुतिभिर्देवः स्तुतोऽस्माभिस्तदेश्वरः ॥८॥
आदिदेवोऽसि देवानामैश्वर्य्याच्च त्वमीश्वरः। आदिकर्त्तासि भूतानां देवदेवो दिवाकरः ॥९॥
जीवन· सर्व्वभूतानां देवगन्धर्व्वरक्षसाम्। मुनिकिन्नरसिद्धानां तथैवोरगपक्षिणाम् ॥१०॥
त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः। वायुरिन्द्रश्च सोमश्च विवस्वान्वरुणस्तथा ॥११॥
त्वं कालः सृष्टिकर्त्ता च हर्त्ता भर्त्ता तथा प्रभु·। सरित· सागराः शैला विद्युदिन्द्रधनूंषि च ॥१२॥
प्रलयः प्रभवश्चैव व्यक्ताव्यक्तः सनातनः। ईश्वरात्परतो विद्या विद्यायाः परत. शिवः ॥१३॥
शिवात्परतरो देवस्त्वमेव परमेश्वरः। सर्व्वतः पाणिपादान्तः सर्व्वतोक्षिशिरोमुखः ॥१४॥
सहस्रांशुः सहस्रास्यः सहस्रचरणेक्षण·। भूतादिर्भूर्भुवः स्वश्च महः सत्यं तपो जन. ॥१५॥
प्रदीप्तं दीपनं दिव्यं सर्वलोकप्रकाशकम्। दुर्निरीक्ष्यं सुरेन्द्राणां यद्रूपं तस्य ते नम ॥१६॥
सुरसिद्धगणैर्जुष्टं भृग्वत्रिपुलहादिभि। स्तुतं परममव्यक्तं यद्रूपं तस्य ते नम ॥१७॥

त्मिका) प्रकृति की हेतुभूत बुद्धि उत्पन्न हुई ॥३॥ बुद्धि से पचमहाभूत प्रवर्तक अहकार उत्पन्न हुआ। अहकार से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से आकाश, आकाश से भूमि और भूमि से अण्ड उत्पन्न हुआ ॥४॥ उस अण्ड म साता लोक और साता द्वीप तथा साता समुद्र सहित पृथिवी प्रतिष्ठित हुई ॥५॥ उसी अण्ड मे मै, विष्णु और शकर भी अवस्थित थे। विमूढ तामसी जीव उसी ईश्वर का ध्यान करते हैं ॥६॥ तब अन्धकार-नाशक महातेजस्वी सूर्य प्रकट हुए, जिन्हे ध्यान-योग से हमने समझा ॥७॥ उन्हें परमात्मा जानकर दिव्य स्तोत्रो के द्वारा हमने उनकी स्तुति की—॥८॥ 'तुम देवो के आदिदेव हो, ऐश्वर्य के कारण ईश्वर हो, प्राणियो के आदिकर्ता हो, देवाधिदेव हो, दिनकर हो और देव, गन्धर्व, रक्ष, मुनि, किन्नर, सिद्ध, नाग, पक्षी तथा सब प्राणियो के जीवन हो ॥९-१०॥ तुम्ही ब्रह्मा, तुम्ही महादेव, तुम्ही विष्णु, तुम्ही प्रजापति, वायु, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, तथा वरुण भी तुम्ही हो ॥११॥ तुम्ही काल, सृष्टि-कर्ता, हर्ता, भर्ता, प्रभु नदी, समुद्र, पर्वत, विद्युत, इन्द्र धनुष, प्रलय, उत्पत्ति, व्यक्त, अव्यक्त और सनातन हो ॥१२½॥ ईश्वर से परे विद्या, विद्या से परे शिव और शिव से बढ़कर परमेश्वर तुम्ही हो ॥१३½॥ तुम्हारे हाथ, पैर, नेत्र, सिर तथा मुख सब जगह है। तुम हजार मुख, हजार चरण, हजार नेत्र और हजार किरण वाले हो ॥१४½॥ तुम प्राणियो के आदि हो। भूर्, भुवर्, स्वर्, महर्, सत्य, तपम् तथा जनम् लोकवाला, दिव्य, सर्व-लोक प्रकाशक, उद्दीप्त, उद्दीपक और देवताओ से दुर्निरीक्ष्य जो तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है ॥१५-१६॥ देवता और सिद्धगणो से सेवित तथा भृगु, अत्रि, पुलह आदि मुनियो से प्रशसित जो परम अव्यक्त तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है ॥१७॥

१ क जज्ञ। २ क सर्वदेव।

वेद्यं वेदविदां नित्यं सर्वज्ञानसमन्वितम्। सर्वदेवातिदेवस्य यद्रूपं तस्य ते नमः॥१८॥
विश्वकृद्विश्वभूतं च वैश्वानरसुरार्च्चितम्। विश्वस्थितमचिन्त्यं च यद्रूपं तस्य ते नमः॥१९॥
परं यज्ञात् परं वेदात् परं लोकात् परं दिवः। परमात्मेत्यभिख्यातं यद्रूपं तस्य ते नमः॥२०॥
अविज्ञेयमनालक्ष्यमध्यानगतमव्ययम्। अनादिनिधनं चैव यद्रूपं तस्य ते नमः॥२१॥
नमो नमः कारणकारणाय, नमो नमः पापविमोचनाय[१]।
नमो नमस्ते दितिजार्दनाय, नमो नमो रोगविमोचनाय[२] ॥२२॥
नमो नमः सर्व्ववरप्रदाय, नमो नम[३] सर्व्वसुखप्रदाय।
नमो नमः सर्वधनप्रदाय, नमो नमः सर्व्वमतिप्रदाय ॥२३॥
स्तुत. स भगवानेवं तैजसं रूपमास्थितः। उवाच वाचा कल्याण्या को वरो व: प्रदीयताम्॥२४॥

देवा ऊचुः

तवातितैजसं रूपं न कश्चित्सोढुमुत्सहेत्। सहनीयं तद्भवतु हिताय जगतः प्रभो॥२५॥
एवमस्त्विति सोऽप्युक्त्वा[४] भगवानादिकृत् प्रभुः। लोकानां कार्यसिद्ध्यर्थं घर्म्मवर्षहिमप्रदः[५]॥२६॥
ततः सांख्याश्च योगाश्च ये चान्ये मोक्षकाङ्क्षिणः। ध्यायन्ति[६] ध्यायिनो देवं हृदयस्थं दिवाकरम्॥२७॥
सर्वलक्षणहीनोऽपि [७]युक्तो वा सर्व्वपातकैः। सर्व्वञ्च तरते पापं[८] [९]देवमर्कं समाश्रितः॥२८॥

वेद-वेत्ताओ से जानने योग्य, नित्य सब ज्ञानो से युक्त तथा सब देवो के रूप से बढ़कर जो तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है॥१८॥ विश्व-कर्ता, विश्वात्मा, अग्नि तथा देवताओ से पूजित, ससार मे स्थित और अचिन्त्य जो तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है॥१९॥ यज्ञ, वेद, लोक और आकाश से परे तथा परमात्मा नाम से विख्यात जो तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है॥२०॥ अविज्ञेय, अशोच्य, ध्यान से अगम्य, अव्यय, अनादि और अनन्त जो तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है॥२१॥ कारणो के कारण रूप तुम्हे नमस्कार है, पाप विमोचन रूप। प्रभो! तुम्हें नमस्कार है, दैत्यो के नाश करने वाले तुम्हे नमस्कार है, रोगो से उन्मुक्त करने वाले तुम्हे नमस्कार है, सब वरदानो को देने वाले तुम्हे नमस्कार है, सब के सुखदायक तुम्हें नमस्कार है, सब को धन देने वाले तुम्हे नमस्कार है और सब को बुद्धि देने वाले तुम्हें नमस्कार है'॥२२-२३॥ इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् सूर्य तैजस रूप को धारण कर कल्याणमयी वाणी से कहने लगे—'आप लोगो को मैं कौन सा वरदान दूँ?'॥२४॥

देवताओं ने कहा—'प्रभो! तुम्हारे इस तैजस रूप को कोई नही सह सकेगा। इसलिए ससार के कल्याण के निमित्त अपने रूप को सहन करने योग्य बनाने की कृपा करो॥२५॥ तब 'एवमस्तु' कहकर आदिकर्ता भगवान् सूर्य लोकों के कल्याण के लिये घाम, वर्षा तथा हिम देने लगे॥२६॥ तभी से साख्य, योगी और मोक्षाकाक्षी जन हृदयस्थ भास्कर का ध्यान किया करते है॥२७॥ सब लक्षणो से हीन तथा सब पापो से युक्त मनुष्य भी सूर्यदेव का आश्रय

---

१ क ख ०विनाशना०। २ क ख ०विनाशना०। ३ क. ०म स्वर्गगतिप्र०। ४ ग ०प्युक्तो स०। ५ क ख ०प्रभु। त०। ६ ख मनसा ७ ग मुक्तो। ८ ख दुःख। ९ ख ०वमाश्रित्य मानव। अ०।

अग्निहोत्रञ्च वेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः। भानोर्भक्तिनमस्कारकलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥२९॥
तीर्थानां परमं तीर्थं मङ्गलानाञ्च मंगलम्। पवित्रञ्च पवित्राणाम् प्रपद्यन्ते दिवाकरम् ॥३०॥
शक्राद्यैः संस्तुतं देवं ये नमस्यन्ति भास्करम्। सर्वकिल्विषनिर्मुक्ताः सूर्यलोकं व्रजन्ति ते ॥३१॥

मुनय ऊचुः

चिरात्प्रभृति नो ब्रह्मन् श्रोतुमिच्छा प्रवर्तते। नाम्नामष्टशतं ब्रूहि यत्त्वयोक्तं पुरा रवेः ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

अष्टोत्तरशतं नाम्नां शृणुध्वं गदतो मम। भास्करस्य परं गुह्यं स्वर्गमोक्षप्रदं द्विजाः ॥३३॥
ॐ सूर्योऽर्य्यमा भगस्त्वष्टा पूषार्कः सविता रविः। गभस्तिमानजः कालो मृत्युर्धाता प्रभाकरः॥ ३४॥
पृथिव्यापश्च तेजश्च खं वायुश्च परायणम्। सोमो बृहस्पतिः शुक्रो बुधोऽङ्गारक एव च ॥३५॥
इन्द्रो विवस्वान्दीप्तांशुः शुचिः शौरिः शनैश्चरः। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्दो वैश्रवणो यमः ॥३६॥
वैद्युतो जाठरश्चाग्निरैन्धनस्तेजसां पतिः। धर्मध्वजो वेदकर्त्ता वेदाङ्गो वेदवाहनः ॥३७॥
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिः सर्वामराश्रयः। कलाकाष्ठामुहूर्त्ताश्च क्षपा यामास्तथा क्षणाः ॥३८॥
संवत्सरकरोऽश्वत्थः कालचक्रो विभावसुः। पुरुषः शाश्वतो योगी व्यक्ताव्यक्तः सनातनः ॥३९॥

ग्रहण कर पाप-समुद्र को पार कर जाता है ॥२८॥ अग्निहोत्र, वेद, यज्ञ, बहुत दक्षिणा—ये सब सूर्य को भक्तिपूर्वक नमस्कार करने की सोलहवी कला के बराबर भी नही हैं ॥२९॥ भक्तलोग तीर्थों के तीर्थ, मंगलो के मंगल और पवित्रो के पवित्र सूर्य को प्राप्त करते हैं ॥३०॥ जो मनुष्य इन्द्र आदि द्वारा स्तुति किए गए सूर्यदेव को नमस्कार करते हैं, वे सब पापो से मुक्त होकर सूर्य-लोक को जाते हैं ॥३१॥

मुनियों ने कहा—ब्रह्मन्! चिरकाल से हमारी सुनने की इच्छा है, अतः आप सूर्य के एकसौ आठ नामो को बताइए, जो आपने पहले कहा था ॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण! (यदि यही इच्छा है तो) भास्कर के गुह्य तथा स्वर्ग-मोक्ष-दायक अष्टोत्तरशत नामो को सुनिये—ॐ सूर्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा, पूषा, अर्क, सविता, रवि, गभस्तिमान्, अज, काल, मृत्यु, धाता, प्रभाकर, ॥३४॥ पृथिवी, आप, तेज, आकाश, वायु, परायण, सोम, बृहस्पति, शुक्र, बुध, अङ्गारक, ॥३५॥ इन्द, विवस्वान्, दीप्तांशु, शुचि, शौरि, शनैश्चर, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, स्कन्द, वैश्रवण, ॥३६॥ यम, वैद्युत, जाठर, अग्नि एन्धन, तेजसपति, धर्मध्वज, वेदकर्ता, वेदांग, वेदवाहन ॥३७॥ कृत, त्रेता, द्वापर, कलि, सर्वअमराश्रय, कला, काष्ठा, मुहूर्त, क्षपा, याम, क्षण, ॥३८॥ संवत्सरकर, अश्वत्थ, कालचक्र, विभावसु, पुरुष, शाश्वत, योगी, व्यक्ताव्यक्त, सनातन, ॥३९॥ कालाध्यक्ष, प्रजाध्यक्ष,

---

१ ख ग ०होत्राश्च वे०। २ ग ०द्यच्च दि०। ३ ख देवैर्येन०। ४ ख प्रयान्ति। ५ क सोमश्च। ६ ग ०णोपम। ७ ख ०म। विकर्तनश्च ब्रध्नश्च स्वीश्वरस्ते०। ८ क सत्य। ९ ख कल्कि। १० ख ०श्च पक्षा मासास्त०। ११ क ०पा मासास्त०।

कालाध्यक्षः प्रजाध्यक्षो विश्वकर्म्मा तमोनुदः। वरुणः 'सागरोऽशश्च' जीमूतो जीवनोऽरिहा ॥४०॥
भूताश्रयो भूतपतिः सर्व्वलोकनमस्कृतः। स्रष्टा संवर्त्तको वह्निः सर्व्वस्याऽऽदिरलोलुपः ॥४१॥
'अनन्तः कपिलो भानुः कामदः सर्वतोमुखः। जयो विशालो वरदः सर्व्वभूतनिषेवित.' ॥४२॥
मनः सुपर्णो' भूतादिः शीघ्रगः प्राणधारण.। धन्वन्तरिर्धूमकेतुरादिदेवोऽदितेः सुतः ॥४३॥
द्वादशात्मा रविर्दक्ष.' पिता माता पितामहः। स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम् ॥४४॥
देहकर्त्ता प्रशान्तात्मा' विश्वात्मा विश्वतोमुखः। चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा मैत्रेयः' करुणान्वितः ॥४५॥
एतद्वै कीर्तनीयस्य सूर्य्यस्यामिततेजस.। नाम्नामष्टशतं रम्यं मया प्रोक्तं द्विजोत्तमा. ॥४६॥

सुरगणपितृयक्षसेवितं, ह्यसुरनिशाकरसिद्धवन्दितम्।
वरकनकहुताशनप्रभं, प्रणिपतितोऽस्मि हिताय भास्करम् ॥४७॥
सूर्योदये य. सुसमाहित. पठेत्, स पुत्रदारान् धनरत्नसञ्चयान्।
लभेत जातिस्मरतां नरः स तु, स्मृतिञ्च मेधाञ्च स विन्दते पराम् ॥४८॥
इमं स्तवं देववरस्य यो नर', 'प्रकीर्तयेच्छुद्धमना· समाहितः।
विमुच्यते शोकदवाग्निसागराल्लभेत कामान्मनसा'' यथेप्सितान् ॥४९॥

इति श्री आदिब्राह्मे महापुराणे स्वयंम्भुविसंवादे सूर्य्यनामाष्टोत्तरशतं नाम त्रयस्त्रिशोऽध्यायः ॥३३॥

विश्वकर्मा, तमोनुद, वरुण सागर, अंश, जीमूत, जीवन, अरिहन्, ॥४०॥ भूताश्रय, भूतपति, सर्वलोकनमस्कृत, स्रष्टा, सवर्तक, वह्नि, सर्वादि, अलोलुप, ॥४१॥ अनन्त, कपिल, भानु, कामद, सर्वतोमुख, जय, विशाल, वरद, सर्वभूतनिषेवित, ॥४२॥ मन, सुपर्ण, भूतादि, शीघ्रग, प्राणधारण धन्वन्तरि, धूमकेतु, आदिदेव, अदितिसुत, ॥४३॥ द्वादशात्मा, रवि, दक्ष, पिता, माता पितामह स्वर्गद्वार, प्रजाद्वार, मोक्षद्वार, त्रिविष्टप ॥४४॥ देहकर्ता, प्रशान्तात्मा, विश्वात्मा, विश्वतोमुख चराचरात्मा, सूक्ष्मात्मा, मैत्रय और करुणान्वित ॥४५॥ द्विजवर्य ! अमित तेजस्वी तथा कीर्तनीय सूर्य के रमणीय अष्टोत्तरशत नामो को मैंने सुना दिया ॥४६॥ देवगण, पिता तथा यक्षा से सेवित, राक्षस, चन्द्रमा तथा सिद्धो से वन्दित और अग्नि तथा सुवर्ण के समान कान्तिमान् सूर्य को जगत् कल्याण के लिए मैं प्रणाम करता हूँ ॥४७॥ जो मनुष्य सूर्योदयकाल मे सावधान होकर इन नामो का पाठ करेगा, वह स्त्री, पुत्र, धन, रत्न समह पूर्वजन्म के स्मरण, स्मरण-शक्ति और उत्तम बुद्धि को प्राप्त करेगा ॥४८॥ देवश्रेष्ठ सूर्य के इस स्तोत्र का जो मनुष्य सावधान होकर शुद्ध मन से कीर्तन करेगा, वह शोकाग्निरूपी सागर से मुक्त होकर यथेप्सित कामनाओ को प्राप्त करेगा ॥४९॥

श्री ब्रह्म महापुराण मे ब्रह्मा और ऋषि के सवाद प्रकरण म सूर्य के अष्टोत्तरशत नामक तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३३॥

---

१ ग ०गरांश०। २ ख ०रोऽम्मदच। ३ क अन्तक। ४ ग ०वंधातुनि०। ५ क सुवर्णो। ६ ग ०विर्दार्क्ष। ७ क ख प्रसन्नात्मा। ८ क ख ०त्रण वपुषाऽन्वि०। ९ क ०येच्छान्तम०। १० क ०सा सदेप्सि०।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

रुद्राख्यानवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

योऽसौ सर्व्वगतो देवस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः। उमाप्रियकरो रुद्रश्चन्द्रार्द्धकृतशेखरः ॥१॥
विद्राव्य विबुधान् सर्व्वान् सिद्धविद्याधरानृषीन्। गन्धर्व्वयक्षनागांश्च तथान्यांश्च समागतान् ॥२॥
जघान पूर्व्वं दक्षस्य यजतो धरणीतले। यज्ञं समृद्धं रत्नाढ्यं [1]सर्व्वसम्भारसंभृतम् ॥३॥
यस्य प्रतापसन्त्रस्ताः शक्राद्यास्त्रिदिवौकसः[2]। शान्तिं न लेभिरे विप्रा [3]कैलासं शरणं गताः[4] ॥४॥
स आस्ते तत्र वरदः शूलपाणिर्वृषध्वजः। पिनाकपाणिर्भगवान् [5]दक्षयज्ञविनाशनः ॥५॥
[6]महादेवोऽकले देशे कृत्तिवासा वृषध्वजः। एकाम्रके मुनिश्रेष्ठाः सर्व्वकामप्रदो हरः ॥६॥

मुनय ऊचुः

[7]किमर्थं स भवो देवः सर्वभूतहिते रतः। जघान यज्ञं दक्षस्य देवैः सर्वैरलङ्कृतम् ॥७॥
न ह्यल्पं कारणं तत्र प्रभो मन्यामहे वयम्। श्रोतुमिच्छामहे[8] ब्रूहि परं कौतूहलं हि नः ॥८॥

अध्याय ३४

रुद्र का आख्यान-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—जो ये सर्वव्यापक, त्रिपुर-शत्रु, त्रिनेत्र, पार्वती प्रिय, रुद्र और मस्तक पर अर्धचन्द्रधारी देव हैं, उन्होंने सिद्ध, विद्याधर, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष, नाग, देवता तथा दूसरे भी समागत व्यक्तियों का तिरस्कार कर पहले पृथ्वी-तल पर यज्ञ करते हुए दक्ष के समृद्ध, रत्नों से परिपूर्ण और सब प्रकार के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञ का विध्वंस कर दिया ॥१-३॥ विप्रवृन्द ! उनके प्रताप से सन्त्रस्त इन्द्र आदि देवता शान्ति न प्राप्त कर शरणरूप कैलाश पर्वत पर गये ॥४॥ मुनिवर्य ! वहाँ वे वरदायक, शूलपाणि, वृषध्वज, पिनाकपाणि, दक्ष-यज्ञ-विनाशक, श्मशानवासी, व्याघ्र-चर्मधारी, हर तथा एकाम्रक (स्थानविशेष) में सर्वकामप्रद भगवान् महादेव रहते हैं ॥५-६॥

मुनियों ने कहा—सब प्राणियों के हित में निरत उस शंकरदेव ने सब देवों से अलंकृत दक्ष के यज्ञ को क्या नष्ट किया ? प्रभो ! अवश्य ही इसका कोई महान् कारण होगा ? हम सुनना चाहते हैं, हम बड़ी उत्सुकता हो रही है, कृपया सुनाइए ॥७-८॥

---

१ ख ०र्वलोकैश्च संस्तुत०। २ क ०सः। न शर्म ले०। ३ क ग पुनस्त। ४ क ०ता। यत्रास्ते वरदो देव शू०। ५ क ख ०शक्रतुवि०। ६ क ख ०वोऽकले। ७ क ख ०र्थं भगवान्देव। ८ क ०हे ब्रह्मन्पर।

ब्रह्मोवाच

दक्षस्याऽऽसन्नष्ट कन्या याश्चैव पतिसङ्गना[1]। स्वेभ्यो गृहेभ्यश्चाऽऽनीयता पिताऽभ्यर्च्चयद्गृहे ॥९॥
ततस्त्वभ्यर्च्चिता[2] विप्रान्यवसस्ता पितुर्गृहे। तासां ज्येष्ठा सती नाम पत्नी या [3]त्र्यम्बकस्य वै ॥१०॥
नाऽऽजुहावाऽऽत्मजा ता वै दक्षो रुद्रमभिद्विषन। अकरोत्सन्नति दक्षे[4] न च काञ्चिन्महेश्वर[5] ॥११॥
जामाता श्वशुरे तस्मिन् स्वभावात्तेजसि स्थित । ततो ज्ञात्वा सती सर्वास्तास्तु प्राप्ता पितुर्गृहम ॥१२॥
जगाम साऽप्यनाहूता सती तु स्वपितुर्गृहम्। ताभ्यो हीना पिता चक्रे सत्या पूजामसम्मताम[6]॥
ततोऽब्रवीत्सा पितर देवी क्रोधसमाकुल ॥१३॥

सत्युवाच

यवीयसीभ्य[7] श्रेष्ठाऽह किं न पूजसि मा प्रभो। असत्कृतामवस्थां य कृतवानसि गर्हिताम् ॥
अह ज्येष्ठा[7] वरिष्ठा च मा त्व सत्कर्त्तुमर्हसि ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तोऽब्रवादना दक्ष सरक्तलोचन ॥१५॥

दक्ष उवाच

त्वत्त श्रेष्ठा वरिष्ठाश्च पूज्या बाला सुता मम। तासा ये चैव भर्त्तारस्ते मे बहुमता सति ॥१६॥

ब्रह्मा बोले—दक्ष की आठ कन्यायें थीं जिन्हें उसने यथायोग्य पतियों से व्याह दिया। (एक समय यज्ञ में) दक्ष ने सब कन्याओं को बुलाकर सत्कार किया ॥९॥ विप्रवृन्द ! वे सम्मानित कन्याये तब से पिता के ही घर मे वास करने लगी। उनमे बड़ी बहिन सती थी जो शिव की पत्नी थी और जिसे दक्ष ने रुद्र से शत्रुता के कारण नही बुलाया था ॥१०½॥ शिव ने इससे दक्ष के प्रति कोई क्षोभ नही प्रकट किया। स्वभाव से तेजस्वी जामाता श्वशर के प्रति तटस्थ रहा ॥११½॥ तब सब बहनें पिता के घर गई हैं—यह जानकर सती बिना बुलाये ही पिता के घर चली गई ॥१२½॥ पिता ने और कन्याओं की अपेक्षा सती का कम आदर किया। तब क्रोध से आकुल सती ने पिता से कहा ॥१३॥

सती बोली—प्रभो ! छोटी बहनो से मैं बडी हूँ। फिर आप सम्मान क्यों नही करते ? मेरा निरादर करके मेरी अवस्था को क्यों बुरी बना रहे हैं ! मैं श्रेष्ठ और ज्येष्ठ हूँ। मेरा भी सत्कार कीजिये ॥१४॥

ब्रह्मा ने कहा—सती की यह बात सुनकर दक्ष ने आख लाल कर उससे कहा ॥१५॥

दक्ष ने कहा—सती ! तुमसे श्रेष्ठ उत्तम और पूज्य मेरी छोटी पुत्रियाँ हैं। उनके जो स्वामी हैं वे

---

१ ग ०समता। २ क ख ०र्चिता सवा निवसति पि०। ३ क शकरस्य। ४ ख दक्षो। ५ ख ०श्वरे। आजगामाप्यनाहू०। ६ क ख ०सगता०। ७ क ०ष्ठा च पूज्या च।

ब्रह्मिष्ठाश्च व्रतस्याश्च महायोगा सुधार्म्मिका । गुणैश्चैवाधिका श्लाघ्या सर्व्वे ते त्र्यम्बकात् सति ॥१७॥
वसिष्ठोऽत्रि पुलस्त्यश्च अङ्गिरा पुलह क्रतु । भृगुर्मरीचिश्च तथा श्रेष्ठा जामातरो मम ॥१८॥
तैश्चापि स्पर्द्धते शर्व्वं सर्व्वे ते चैव त प्रति । तेन त्वा न बुभूषामि प्रतिकूलो हि मे भव ॥१९॥
इत्युक्तवास्तदा दक्ष सम्प्रमूढेन नेतसा । शापार्यमात्मनश्चैव येनोक्ता वै महर्षय ,
तयोक्ता पितर सा वै क्रुद्धा देवी तमब्रवीत ।२०।

सत्युवाच

वाड्मन कर्म्मभिर्यस्माददुष्टा मां विगर्हसि । तस्मात्त्यजाम्यह देहमिम तात तवाऽऽत्मजम् ॥२ ।

ब्रह्मोवाच

ततस्तेनापमानेन सती दु खादमर्षिता । अब्रवीद्वचन देवी नमस्कृत्य स्वयम्भव ॥२ ।

सत्युवाच

येनाहमपदेहा वै पुनर्देहेन भास्वता । तत्राप्यहमसम्मूढा सम्भूता धार्म्मिकी पुन ।
गच्छेय धर्म्मपत्नीत्व त्र्यम्बकस्यैव धीमत ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

तत्रैवाथ समासीना रुष्टाऽऽत्मान समादधे । धारयामास चाऽऽग्नेयीं धारणामात्मनाऽऽत्मान ॥२४॥

मेरे सम्माननीय हैं ॥१६॥ सती ! वे सब जामाता शिव से अधिक गुणवान ब्रह्मिष्ठ व्रती महायोगी धर्मात्मा तथा प्रशंसनीय हैं ॥१७॥ वसिष्ठ अत्रि पुलस्त्य अगिरा पुलह, क्रतु भृगु और मरीचि—ये मेरे श्रेष्ठ जामाता हैं ॥१८॥ इनसे शिव स्पर्धा करता है और उससे ये सब । इस कारण शिव को मैं अपना शत्रु समझ कर तुम्हारा मान नहीं करना चाहता ॥१९॥ इस प्रकार दक्ष ने बिना सोचे समझे वह क्या दिया मानो उसने अपने को शाप दिलाने के लिए ही महर्षियों का नाम ले लिया। पिता का यह उत्तर सुनकर सती ने क्रुद्ध होकर कहा ॥२०॥

सती बोली—तात ! जिसलिए आप मन वाणी और कर्म से मुझे दुष्ट तथा निन्दित बना रहे हैं इसलिए आपसे उत्पन्न इस शरीर का अब मैं त्याग कर रही हूँ ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—तब उस अपमान के दुःख से कुपित सती ब्रह्मा को नमस्कार करके कहने लगी ॥२२॥

सती बोली—इस देह का परित्याग करने पर फिर जो मुझे कान्तिमान् शरीर मिले उस शरीर में भी मैं विवेकशील तथा धर्मात्मा होऊँ और बुद्धिमान् शिव की ही पत्नी बनूँ ॥२३॥

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त वहीं पर बैठी क्रुद्ध सती ने आत्मा को समाहित किया और आत्मा से आत्मा

---

१ ग धुनमाच। २ ख ०कान्वि। व०।

ततः स्वात्मानमुत्थाप्य वायुना समुदीरितः। सर्व्वाङ्गेभ्यो विनिःसृत्य वह्निर्भस्म चकार ताम् ॥२५॥
तदुपश्रुत्य निधनं सत्या देव्याः स शूलधृक्। संवादञ्च तयोर्बुद्ध्वा याथातथ्येन, शङ्करः॥
दक्षस्य च विनाशाय चुकोप भगवान् प्रभुः ॥२६॥

श्रीशङ्कर उवाच

यस्मादवमता दक्ष सहसैवाऽऽगता सती। प्रशस्ताश्चेतराः सर्व्वास्त्वत्सुता भर्त्तृभिः सह ॥२७॥
तस्माद्वैवस्वते प्राप्ते पुनरेते महर्षयः। उत्पत्स्यन्ति द्वितीये[1] वै तव यज्ञे ह्ययोनिजाः ॥२८॥
हुते वै ब्रह्मणः सत्रे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः[2]। अभिव्याहृत्य सप्तर्षीन् दक्षं सोऽभ्यशपत् पुनः ॥२९॥
भविता मानुषो राजा चाक्षुषस्यान्तरे मनोः। प्राचीनबर्हिषः पौत्रः पुत्रश्चापि प्रचेतसः ॥३०॥
दक्ष इत्येव नाम्ना त्वं मारिषायां जनिष्यसि। कन्यायां[3] शाखिनाञ्चैव प्राप्ते वै चाक्षुषान्तरे ॥३१॥
अहं तत्रापि ते विघ्नमाचरिष्यामि दुर्म्मते। धर्म्मकामार्थयुक्तेषु कर्म्मस्विह पुनः पुनः ॥३२॥
ततो वै व्याहृतो दक्षो रुद्रं सोऽभ्यशपत् पुनः ॥३३॥

दक्ष उवाच

यस्मात्वं मत्कृते क्रूर ऋषीन् व्याहृतवानसि। तस्मात् सार्द्धं सुरैर्यज्ञे न त्वां यक्ष्यन्ति वै द्विजाः ॥३४॥
कृत्वाऽऽहुतिं तव क्रूर अपः स्पृशन्ति कर्म्मसु। इहैव वत्स्यसे लोके दिवं हित्वाऽऽयुगक्षयात् ॥
ततो देवैस्तु ते सार्द्धं न तु पूजा भविष्यति ॥३५॥

मे आग्नेयी धारणा को जब धारण किया तब वायु से प्रेरित अग्नि ने सती के सब अगो से निकल कर उसे भस्मसात् कर दिया॥२४ २५॥ सती देवी का मरण सुनकर तथा दक्ष और सती का सवाद यथार्थत जान कर दक्ष के विनाश के लिए भगवान् शकर ने क्रोध किया॥२६॥

श्री शकर बोले—'दक्ष ! जिसलिए हठात् आई हुई सती का तुमने अपमान किया और इतर पुत्रियो का स्वामियो के साथ सम्मान किया इसलिए द्वितीय वैवस्वत मनु के आने पर पुन ये महर्षि तुम्हारे यज्ञ मे अयोनिज होकर उत्पन्न होगे॥२७ २८॥ चाक्षुष मन्वन्तर मे ब्रह्मा के यज्ञ मे फिर उत्पन्न होगे।' इस प्रकार सप्तर्षियो को शाप देकर शिव ने फिर से दक्ष को शाप दिया॥२९॥ चाक्षुष मन्वन्तर मे तुम मनुष्यो के राजा, प्राचीनबर्हि के पौत्र प्रचेता के पुत्र तथा 'दक्ष' इसी नाम से प्रख्यात होगे और वृक्ष की पुत्री मारिषा से तुम्हारी उत्पत्ति होगी ॥३१॥ दुष्ट-बुद्धे ! वहाँ भी मैं तुम्हारे धर्म अर्थ, और काम से युक्त कर्मों मे बार-बार विघ्न डालूँगा॥३२॥ इस प्रकार कहे गये दक्ष ने भी रुद्र को शाप दिया॥३३॥

दक्ष ने कहा—क्रूर ! मेरे कारण तुमने ऋषियो को शाप दिया है, इसलिए ब्राह्मणगण यज्ञ मे देवताओ के साथ तुम्हारी पूजा नही करेंगे॥३४॥ क्रूर ! पुण्य कर्म करते समय तुम्हें आहुति देकर लोग जलस्पर्श करेंगे। स्वर्ग छोड़कर युग बीतने तक तुम इसी लोक मे वास करोगे। देवताओ के साथ तुम्हारी पूजा नही होगी॥३५॥

---

१ क गते। २ क ०नौ। इति व्या०। ३ क ०या सावितश्चैव। ख ०या सात्वताश्चैव।

रुद्र उवाच

चातुर्वर्ण्यंन्तु देवानां ते चाप्येकत्र भुञ्जते। न भोक्ष्ये सहितस्तैस्तु ततो भोक्ष्याम्यहं पृथक्॥३६॥
सर्व्वेषाञ्चैव लोकानामादिर्भूर्लोक उच्यते। तमहं धारयाम्येकः स्वेच्छया न तवाऽऽज्ञया॥३७॥
तस्मिन् धृते सर्व्व(स्वर्ग)लोकाः सर्व्वे तिष्ठन्ति शाश्वताः। तस्मादहं वसामीह सततं न तवाज्ञया॥३८॥

ब्रह्मोवाच

ततोऽभिव्याहृतो दक्षो रुद्रेणामिततेजसा। स्वायम्भुवीं तनुं त्यक्त्वा उत्पन्नो मानुषेष्विह॥३९॥
यदागृहपतिर्दक्षो यज्ञानामीश्वरः प्रभुः। समस्तैनेह यज्ञेन सोऽयजद्दैवतैः सह॥४०॥
अथ देवी सती (यत्ते) जज्ञे प्राप्ते वैवस्वतेऽन्तरे। मेनायां तामुमां देवीं जनयामास शैलराट्॥४१॥
सा तु देवी सती पूर्व्वमासीत् पश्चादुमाऽभवत्। सहव्रता भवस्यैषा नैतया मुच्यते भव.॥४२॥
यावदिच्छति संस्थानं प्रभुर्मन्वन्तरेष्विह। मारीचं कश्यपं देवी यथाऽदितिरनुव्रता॥४३॥
साऽर्द्धं नारायणं श्रीस्तु मघवन्तं शची यथा। विष्णुं कीर्त्तिरुषा सूर्यं वसिष्ठं चाप्यरुन्धती॥४४॥
नैतास्तु विजहत्येता भर्त्तॄन् देव्य. कथञ्चन। एवं प्राचेतसो दक्षो जज्ञे वै चाक्षुषेऽन्तरे॥४५॥
प्राचीनबर्हिषः पौत्रः पुत्रश्चापि प्रचेतसाम्। दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषाया पुनर्नृप॥४६॥
जज्ञे रुद्राभिशापेन द्वितीयमिति नः श्रुतम्। भृग्वादयस्तु ते सर्व्वे जज्ञिरे वै महर्षयः॥४७॥
आद्ये त्रेतायुगे पूर्व्वं मनोर्वैवस्वतस्य ह। देवस्य महतो यज्ञे वारुणीं बिभ्रतस्तनुम्॥४८॥

रुद्र ने कहा—देवताओं के चार वर्ण हैं। वे भी एक जगह खाते हैं। उनके साथ मैं नहीं खाऊँगा। मैं अलग ही खाऊँगा ॥३६॥ सब लोकों का आदि भूलोक कहा जाता है। उसको मैं अकेला ही अपनी इच्छा से धारण करूँगा, न कि तुम्हारी आज्ञा से॥३७॥ उसके धारण करने से सब लोक स्थित रहेंगे। इसलिए मैं सतत भूलोक में ही वास करूँगा, पर तुम्हारी आज्ञा से नहीं॥३८॥

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त अत्यन्त तेजस्वी रुद्र से अभिशप्त दक्ष स्वयम्भू सवन्धी शरीर का परित्याग कर मनुष्य-योनि में उत्पन्न हुआ॥३९॥ जब यज्ञों का स्वामी, शक्तिसम्पन्न गृहपति दक्ष देवताओं के साथ निखिल यज्ञ कर रहा था तब वैवस्वत मन्वन्तर में सती की हिमालय से मेना में उत्पत्ति हुई।॥४०-४१॥ उस देवी का नाम पहले सती था, पश्चात् उमा नाम हुआ। वह शिव की पतिव्रता पत्नी हुई। मन्वन्तरों में शङ्कर जब तक स्थिति चाहते हैं तब तक सती से मुक्त नहीं होते हैं॥४२½॥ जैसे मरीचि-पुत्र कश्यप को अदिति, नारायण को लक्ष्मी, इन्द्र को शची, विष्णु को कीर्ति, सूर्य को उषा और वसिष्ठ को अरुन्धती किसी भी अवस्था में नहीं छोड़ती उसी तरह सती भी शिव का त्याग नहीं करती॥४३-४४½॥ इस प्रकार प्रचेता-पुत्र दक्ष चाक्षुप मन्वन्तर में उत्पन्न हुआ, जो प्राचीन-बर्हिष् का पौत्र और प्रचेताओं का पुत्र था॥४५½॥ रुद्र शाप के कारण राजा दक्ष ने दूसरी बार फिर प्रचेताओं से मरिषा में जन्म लिया—ऐसा हमने सुना है॥४६½॥ आद्य त्रेतायुग में वारुणी शरीर को धारण किये हुए महान् देव वैवस्वत मनु से भृगु आदि वे सब महर्षि उत्पन्न हुए॥४७-४८॥ प्रजापति दक्ष और धीमान् शिव दोनों

इत्येषोऽनुशयो 'ह्यासीत्तयोर्जात्यन्तरं गतः'[1]। प्रजापतेश्च दक्षस्य त्र्यम्बकस्य च धीमतः ॥४९॥
'तस्मान्नानुशयः कार्यो' वरेष्विह कदाचन। जात्यन्तरगतस्यापि भावितस्य[2] शुभाशुभैः'[3]॥
जन्तोर्न भूतये ख्यातिस्तत्र कार्यं विजानता ॥५०॥

मुनय ऊचुः

कथं रोषेण सा पूर्वं[4] दक्षस्य दुहिता सती। त्यक्त्वा देहं पुनर्जाता गिरिराजगृहे प्रभो ॥५१॥
देहान्तरे[5] कथं तस्याः[6] पूर्वदेहो बभूव ह। भवेन सह संयोगः संवादश्च तयोः कथम् ॥५२॥
स्वयंवरः कथं वृत्तस्तस्मिन् महति जन्मनि। विवाहश्च जगन्नाथ सर्वाश्चर्यसमन्वितः ॥५३॥
तत्सर्वं विस्तराद्ब्रह्मन् वक्तुमर्हसि साम्प्रतम्। श्रोतुमिच्छामहे पुण्यां कथां चातिमनोहराम् ॥५४॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः कथां पापप्रणाशिनीम्। उमाशङ्करयोः पुण्यां सर्वकामफलप्रदाम् ॥५५॥
कदाचित् स्वगृहात् प्राप्तं कश्यपं द्विपदां वरम्। अपृच्छद्धिमवान् वृत्तं लोके ख्यातिकरं हितम् ॥५६॥
केनाक्षयाश्च लोकाः स्युः ख्यातिश्च परमा मुने। तथैव चार्चनीयत्वं सत्सु तत्कथयस्व मे ॥५७॥

का ऐसा पूर्व वैर था, जिसका परिणाम जन्मान्तर मे जाकर निकला ॥४९॥ इसलिए बडो के साथ वैर नही करना चाहिये। जीवो को पूर्व वैर का फल जन्मान्तर मे भी भुगतना पडता है। अत विद्वान् को ऐसा नही करना चाहिये ॥४९ ५०॥

मुनियो ने कहा—प्रभ! पहले क्यो क्रोध से दक्ष की पुत्री सती अपने शरीर का त्याग कर हिमालय के गृह मे उत्पन्न हुई? ॥५१॥ दूसरे जन्म मे भी कैसे उसको पहली देह मिली? शिव के साथ सयोग कैसे हुआ? महादेव और पार्वती का सवाद कैसे हुआ? ॥५२॥ उस महान् जन्म मे स्वयवर तथा विवाह कैसे हुआ? हे जगन्नाथ! यह सब आश्चर्यजनक बात है ॥५३॥ ब्रह्मन्! यह सब विस्तारपूर्वक हमे बतलाइये। अत्यन्त *मनोहर तथा पवित्र कथा को हम सुनना चाहते है ॥५४॥*

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवृन्द! उमा और शकर की पापनाशिनी, पवित्र तथा सब कामनाओ को देनेवाली कथा को आप लोग सुनिये ॥५५॥ किसी समय अपने गृह से आये हुए मानवो मे श्रेष्ठ कश्यप से हिमालय ने लोक मे ख्याति-वर्धक तथा कल्याणकर वृत्तान्त पूछा—'मुने! किस तरह अक्षय लोक मिलेंगे, परम ख्याति होगी और सत्पुरुषो में प्रतिष्ठा बढेगी—यह हमे बताइये ॥५६ ५७॥

---

१ क ०र्सात्तेपु तेष्वन्तराऽन्तरा। प्र०। २ ख गते। ३ क ०स्मान्न सश०। ४ ख ०र्यो धीरे। ५ क ०स्य सुरैरपि। ज०। ६ ख मे। देहान्तरे कथ तस्य पुनर्देह न मुञ्चति। वासना न जहात्येव देहान्तरगतेऽपि वा। दु ख त्वनुशयात्यन्तस्तत्र कार्यो विजानता। मु०। ७ क पूर्णा। ८ ग ०रे पुनस्तस्या कथ दे०। ९ ख ०स्या पुनर्देहो।

कश्यप उवाच

अपत्येन[1] महाबाहो सर्व्वमेतदवाप्यते। ममाऽऽ[2]ख्यातिरपत्येन ब्रह्मणा ऋषिभि सह ॥५८॥
किं न पश्यसि शैलेन्द्र यतो मा परिपृच्छसि। वर्त्तयिष्यामि यच्चापि यथादृष्ट पुराऽचल ॥५९॥
वाराणसीमह गच्छन्नपश्य सस्थित दिवि। विमान[3] सुनव दिव्यमनौपम्य महर्द्धिमत् ॥६०॥
तस्याधस्तादार्त्तनाद गर्त्तस्थाने शृणोम्यहम्। तमह तपसा ज्ञात्वा तत्रैवान्तर्हित स्थित ॥६१॥
अथागात्तत्र शैलेन्द्र[4] विप्रो नियमवान् शुचि। तीर्थाभिषेकपूतात्मा परे तपसि सस्थित ॥६२॥
अथ स व्रजमानस्तु व्याघ्रेणाऽऽभीषितो द्विज। विवेश त तदा देश स गर्त्तो यत्र भूधर ॥६३॥
गर्त्तायां वीरणस्तम्बे लम्बमानास्तदा मुनीन्। अपश्यदार्त्तोदु खार्त्तांस्तानपृच्छच्च स द्विज ॥६४॥

द्विज उवाच

के यूय वीरणस्तम्बे लम्बमाना ह्यधोमुखा। दु खिता केन मोक्षश्च युष्माक भविताऽनघा ॥६५॥

पितर ऊचु

वय ते कृतपुण्यस्य पितर सपितामहा। प्रपितामहाश्च क्लिश्यामस्तव दुष्टेन कर्म्मणा ॥६६॥
नरकोऽय महाभाग गर्त्तरूपेण सस्थित। त्व चापि वीरणस्तम्बस्त्वयि लम्बामहे वयम् ॥६७॥
यावत्त्व जीवसे विप्र तावदेव वय स्थिता। मृते त्वयि गमिष्यामो नरक पापचेतस ॥६८॥

कश्यप ने कहा—हे महाबाहो! सन्तान से सब कुछ प्राप्त होता है। ब्रह्मा और ऋषियो के साथ मेरी ख्याति सन्तान ही से है॥५८॥ हे शैलेन्द्र! क्या यह आप देख नही रहे हैं जो मुझसे पूछते है। हे पवत! तो भी जैसा मैंने देखा है वैसा बतलाऊगा॥५९॥ जब मैं वाराणसी जा रहा था तब आकाश में स्थित नवीन दिव्य अनुपम तथा महदैश्वय-सम्पन्न एक विमान मुझे दिखाई पडा॥६०॥ उस विमान के नीचे गतस्थान (गडढा) मे मैंने आतनाद सुना। उसको तपस्या से मैं जानकर वही अन्तर्हित होकर ठहर गया॥६१॥ इसके उपरान्त हे शैलेन्द्र!, एक सयमी पवित्र तीथस्नानो से पवित्रात्मा और उत्कृष्ट तपस्वी ब्राह्मण वहा आया॥६२॥ गमन करते हुए ब्राह्मण को एक व्याघ्र ने डरा दिया। हे भूधर! तब वह द्विज उस स्थान मे चला गया जहाँ वह गडढा था॥६३॥ गडढ मे वीरण (खस) के गुच्छो से लटकते हुए दु खपीडित मुनियो को देखकर उस द्विज ने पूछा॥६४॥

द्विज ने कहा—वीरण के गुच्छो से लटकते हुए नीचे मुख किये हुए तुम कौन हो! किसने तुम्हे यह दुख दिया है? हे निष्पाप! किस प्रकार तुम्हे छुटकारा मिल सकता है?॥६५॥

पितरों ने कहा—तुझ पुण्यात्मा के पितामह प्रपितामह आदि पितर तेरे दुष्ट कम से कष्ट पा रहे है॥६६॥ महाभाग! गत रूप मे स्थित यह नरक ही है। तूही वीरण का गुच्छा है। तुझमे ही हम लोग लटक रहे हैं॥६७॥ विप्र! जब तक तू जी रहा है तभी तक हम लोग स्थित हैं। तेरे मर जाने पर हम सब पापी नरक को जायेंगे

---

१ ख तपसैव। २ क ०ख्याति परा तेन। ३ ख ०न स्वस्ति मद्दिव्य मनोवेग म०। ४ ख ०द्र वसिष्ठो नियमस्थित। वी०।

यदि त्व दारसयोग कृत्वापत्य गुणोत्तरम्। उत्पादयसि तेनास्मान् मुच्येम वयमेनस ॥६९॥
नान्येन तपसा पुत्र तीर्थानाञ्च फलेन च। एतत् कुरु महाबुद्धे तारयस्व पितॄन् भयात् ॥७०॥

कश्यप उवाच

स तथेति प्रतिज्ञाय आराध्य वृषभध्वज्म्। पितॄन् गर्त्तात्समुद्धृत्य गणपान् प्रचकार ह ॥७१॥
स्वय रुद्रस्य दयित सुवेशो नाम नामत। सम्मतो बलवाश्चैव रुद्रस्य गणपोऽभवत् ॥७२॥
तस्मात् कृत्वा तपो घोरमपत्य गुणवद्भृशम्। उत्पादयस्व शैलेन्द्र सुतां त्व वरवर्णिनीम् ॥७३॥

ब्रह्मोवाच

स एवमुक्त्वा ऋषिणा शैलेन्द्रो नियमस्थित। तपश्चकाराप्यतुल येन तुष्टिरभू मम ॥७४॥
तदा तमुत्पपाताह वरदोऽस्मीति चाब्रवम्। ब्रूहि तुष्टोऽस्मि शैलेन्द्र तपसानेन सुव्रत ॥७५॥

हिमवानुवाच

भगवन् पुत्रमिच्छामि गुणै सर्व्वैरलङ्कृतम्। एव वर प्रयच्छस्व यदि तुष्टोऽसि मे[1] प्रभो ॥७६॥

ब्रह्मोवाच

तस्य तद्वचन श्रुत्वा गिरिराजस्य[2] भो द्विजा। तदा तस्मै वर चाह [3]दत्तवान्मनसेप्सितम ॥७७॥

॥६८॥ यदि तू विवाह कर गुणवान सन्तान को उत्पन्न करता है तो उसी से हम लोगो की मुक्ति हो जायगी ॥६९॥ पुत्र! और किसी तपस्या या तीर्थों के फल से हमारी मुक्ति सम्भव नही है। महाबुद्ध! ऐसा करके भय से पितरो का उद्धार कर ॥७०॥

कश्यप ने कहा—द्विज ने ऐसा ही करूँगा यह प्रतिज्ञा कर शिव की आराधना की और गर्त से पितरो का उद्धार कर उन्हे गणपालक बना दिया ॥७१॥ वह स्वय रुद्र का सुवेश नामक प्रिय बुद्धिमान तथा बलवान गणपाल हुआ ॥७२॥ हे शैलेन्द्र! इसलिए घोर तपस्या करके अत्यन्त गुणवान पुत्र तथा सुन्दरी कन्या को उत्पन्न कीजिये ॥७३॥

ब्रह्मा ने कहा—ऋषि द्वारा इस प्रकार का सुझाव प्राप्त कर शैलेन्द्र नियमयुक्त होकर अतुल तप करने लगा जिससे मैं प्रसन्न हो उसके समीप जाकर बोला— मैं वर देने आया हू। हे शैलेन्द्र! तुमसे पूर्ण सतुष्ट हूँ! हे सुव्रती! मागो इस तपस्या का फल तुम क्या चाहते हो? ॥७४ ७५॥

हिमवान ने कहा—भगवन! मैं सवगुणसम्पन्न सन्तान चाहता हू। प्रभो! यदि आप सतुष्ट हैं तो ऐसा ही वरदान मुझ दीजिये ॥७६॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण! हिमालय के वचन को सुनकर मैंने उसे यह मनोमिलषित वरदान दिया

---

१ ख न। २ क ०स्य सुव्रता। त०। ३ ख ०वा मान०।

कन्या भवित्री[1] शैलेन्द्र[2] तपसाऽनेन सुव्रत। यस्याः प्रभावात्सर्व्वत्र कीर्त्तिमाप्स्यसि शोभनाम्[3] ॥७८॥
अर्च्चितः सर्व्वदेवानां तीर्थकोटिसमावृतः। पावनश्चैव[4] पुण्येन देवानामपि सर्व्वतः ॥७९॥
ज्येष्ठा च सा भवित्री ते अन्ये[5] चात्र ततः शुभे[6] ॥८०॥
सोऽपि कालेन शैलेन्द्रो मेनायामुदपादयत्। अपर्णामेकपर्णाञ्च तथा चैवैकपाटलाम् ॥८१॥
न्यग्रोधमेकपर्णन्तु[7] पाटलञ्चैकपाटलाम्। अशित्वा[8] द्वेकपर्णान्तु अनिकेतस्तपोऽचरत् ॥८२॥
शतं वर्षसहस्राणां[9] दुश्चरं देवदानवैः। आहारमेकपर्णं तु एकपर्णा समाचरत् ॥८३॥
पाटलेन तथैकेन विदधे चैकपाटला। पूर्णे वर्षसहस्रे तु आहारं ता. प्रचक्रतुः ॥८४॥
अपर्णा तु निराहारा तां माता प्रत्यभाषत। निषेधयन्ती चोमेति मातृस्नेहेन दुःखिता ॥८५॥
सा तयोक्ता तया मात्रा देवी दुश्चरचारिणी। तेनैव नाम्ना लोकेषु विख्याता सुरपूजिता ॥८६॥
"एतत्तु[10] त्रिकुमारीकं जगत्स्थावरजङ्गमम्। एतासां तपसा[11] वृत्तं यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥८७॥
तप शरीरास्ताः सर्व्वास्तिस्रो योगं समाश्रिता.। सर्व्वाश्चैव महाभागास्तथा च स्थिरयौवना[12]" ॥८८॥
ता लोकमातरश्चैव ब्रह्मचारिण्य एव च। अनुगृह्णन्ति लोकांश्च तपसा स्वेन[13] सर्व्वदा ॥८९॥
उमा तासां वरिष्ठा च ज्येष्ठा च वरवर्णिनी। महायोगबलोपेता महादेवमुपस्थिता ॥९०॥

॥७७॥ 'सुव्रती ! शैलेन्द्र ! इस तपस्या से तुम्हे कन्या होगी, जिसके प्रभाव से तुम सर्वत्र सुन्दर कीर्ति प्राप्त करोगे ॥७८॥ करोडो तीर्थों से तुम आवृत रहोगे। सब देवताओ से पूजित तथा देवताओ को भी पुण्य से पवित्र करने वाले होगे ॥७९॥ वह तुम्हारी ज्येष्ठ कन्या होगी और दो दूसरी कन्याएँ भी होगी ॥८०॥ यथासमय शैलेन्द्र ने मेना मे अपर्णा, एकपर्णा और एकपाटला नाम की कन्याएँ उत्पन्न की ॥८१॥ बरगद के पत्र को खाने वाली एकपर्णा, पाटला वृक्ष के पत्ता का आहार करने वाली एकपाटला और पत्र को न खाने वाली अपर्णा—ये तीनो देवियाँ एक लाख वर्ष तक देव-दानवो से भी दु साध्य तप करती रही ॥८२-३॥ एकपर्णा एक पत्र तथा एक पाटला एक पाटल-पत्र का भोजन किया करती थी। हजार वर्ष पूर्ण होने पर उन्होने भोजन किया ॥८३-८४॥ किन्तु अपर्णा फिर भी भोजन नही करती थी। तब सन्तान स्नेह से कातर माता ने 'उमा' कहकर उसका निवारण किया। घोर तप करने वाली देव-कन्या वह देवी तब से तीनो लोक मे उमा नाम से विख्यात हुई ॥८५-८६॥ स्थावर-जगम रूप यह जगत् इन तीनो कुमारियो द्वारा धारण किया जाता है। इनकी तपस्या का वृत्तान्त तब तक प्रचलित रहेगा जब तक कि यह पृथ्वी रहेगी ॥८७॥ तप शरीर धारण करने वाली ये तीनो देवियाँ योग से अन्वित, महाभाग्यवती, स्थिरयौवना, ब्रह्मचारिणी तथा लोक मातायें हैं। ये तपस्या के द्वारा सदा लोको को अनुगृहीत करती हैं ॥८९॥ इनमे सबसे ज्येष्ठ उत्तम, सुन्दरी और महायोगिनी उमा ने शिव को

---

१ क ख भवतु। २ क ख ०न्द्र सुता ते वरवर्णिनी। य०। ३ क ख पुष्कलाम्। ४ ख ०व देवानामृषी-णाम्०। ५ क ख अन्या चानु त०। ६ क ख प्रभो। ७ क ०ग्रोधा चैकपर्णांतु। ८ क ख पाटला। ९ ग ०पर्णं तु। १० क. ख दुष्कर। ११ ख ०तत्रिककु०। १२ क ख ०पसा व्याप्त या०। १३ क ख ०ना। त्रैलक्यमा०। १४ ख तेन।

दत्तकश्चोशना तस्य पुत्रः स भृगुनन्दनः। आसीत्तस्यैकपर्णा तु देवलं सुषुवे सुतम्॥९१॥
या तु तासां कुमारीणां तृतीया ह्येकपाटला। पुत्रं सा तमलर्कस्य जैगीषव्यमुपस्थिता॥९२॥
तस्याश्च शङ्खलिखितौ स्मृतौ पुत्रावयोनिजौ। उमा तु या मया तुभ्यं कीर्त्तिता वरवर्णिनी॥९३॥
अथ तस्यास्तपोयोगात्त्रैलोक्यमखिलं तदा। प्रधूपितमिहाऽऽलक्ष्य वचस्तामहमब्रवम्॥९४॥
देवि किं तपसा लोकांस्तापयिष्यसि शोभने। त्वया सृष्टमिदं सर्व्वं मा कृत्वा तद्विनाशय॥९५॥
त्वं हि धारयसे लोकानिमान् सर्व्वान् स्वतेजसा। ब्रूहि किं ते जगन्मातः प्रार्थितं सम्प्रतीह नः॥९६॥

देव्युवाच

यदर्थं तपसो ह्यस्य चरणं मे पितामह। त्वमेव तद्विजानीषे ततः पृच्छसि किं पुनः॥९७॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तामब्रवं चाहं यदर्थं तप्यसे शुभे। स त्वां स्वयमुपागम्य इहैव वरयिष्यति॥९८॥
शर्व्व एव पतिः श्रेष्ठः सर्व्वलोकेश्वरेश्वरः। वयं सदैव यस्येमे वश्या वै किङ्कराः शुभे॥९९॥
स देवदेवः परमेश्वरः स्वयं, स्वयम्भुरायास्यति देवि तेऽन्तिकम्।
उदाररूपो विकृतादिरूपः[1], समानरूपोऽपि न यस्य[2] कस्यचित् ॥१००॥

प्राप्त किया॥९०॥ दत्तक का पुत्र भृगु-वंशी शुक्र था, जिससे व्याह कर एकपर्णा ने देवल नामक पुत्र को उत्पन्न किया॥९१॥ *इन कुमारियों में तीसरी एकपाटला का विवाह अलर्क के पुत्र जैगीषव्य से हुआ॥९२॥* उसके शङ्ख और लिखित नामक दो अयोनिज पुत्र हुए। जिस सुन्दरी उमा के बारे में मैंने आपसे कहा है, उसने तपस्या के बल से सम्पूर्ण त्रिलोकी को प्रकाशित कर दिया। यह देखकर मैंने उससे कहा॥९३-९४॥ हे देवि! हे सुन्दरि! क्या तुम तपस्या से लोकों को तपाओगी? तुमने सब की सृष्टि की है। ऐसा करके पुनः उनका विनाश मत करो॥९५॥ तुम्हीं अपने तेज से लोकों को धारण करती हो। हे जगन्माता! कहो, तुम्हें क्या अभीष्ट है॥९६॥

देवी ने कहा—पितामह! मैं जिसलिए तप कर रही हूँ, वह तो आप जानते ही हैं। फिर क्यों पूछ रहे हैं?॥९७॥

ब्रह्मा ने कहा—तब मैंने उससे कहा—'शुभे! तुम जिसके लिए तप कर रही हो, वह स्वयं यहाँ आकर *तुम्हें स्वीकार करेंगे॥९८॥ कल्याणमयी! सब लोकों के ईश्वर के ईश्वर शिव ही श्रेष्ठ पति हैं, जिनके सदा हम* वश्य तथा दास बने रहते हैं॥९९॥ देवी! वह देव-देव, स्वयम्भु, परमेश्वर स्वयं तुम्हारे पास आयेंगे, जो उदार रूप विकृत आदि-रूप महेश्वर, पर्वतलोकवासी, चराचर के स्वामी, प्रथम, अप्रमेय (न मापने योग्य), चन्द्रमा

---

[1] क ख ०त्र शान्तमशोकस्य। [2] क ख ०तातिरू०। [3] ख ०स्य कुत्रचि०।

महेश्वरः पर्व्वतलोकवासी, चराचरेशः प्रथमोऽप्रमेयः।
विनेन्दुना ह्यीन्द्रसमानवर्च्चसा, 'विभीषणं रूपमिवास्थितो यः ॥१०१॥
इति श्री आदिब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भु-ऋषि-संवादे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥३४॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

पार्वत्युपाख्यान-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

ततस्तामब्रुवन् देवास्तदा गत्वा तु सुन्दरीम्। देवी शीघ्रेण कालेन धूर्जटिर्नीललोहितः॥१॥
स भर्त्ता तव देवेशो भविता' मा तपः कृथाः। ततः प्रदक्षिणीकृत्य देवा विप्रा गिरेः सुताम्॥२॥
जग्मुश्चादर्शनं तस्याः सा चापि विरराम ह। सा देवी सुव्रतमित्येवमुक्त्वा स्वस्याश्रमे शुभे॥३॥
द्वारि जातमशोकञ्च समुपाश्रित्य चास्थिता। अथागाच्चन्द्रतिलकस्त्रिदशार्त्तिहरो हरः॥४॥
विकृतं रूपमास्थाय ह्रस्वो बाहुक एव च। विभग्ननासिको भूत्वा कुब्ज केशान्तपिङ्गलः॥५॥
उवाच विकृतास्यश्च देवि त्वां वरयाम्यहम्। अथोमा योगसंसिद्धा ज्ञात्वा शङ्करमागतम्॥६॥

के बिना ही इन्द्र के समान तेजस्वी तथा भयानक रूप के सदृश अवस्थित हैं और जिनके समान रूप वाला कोई नहीं है॥१००-१०१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे ब्रह्म और ऋषि के संवाद प्रकरण मे चौतीसवाँ अध्याय समाप्त॥३४॥

अध्याय ३५

पार्वती का उपाख्यान-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त देवता लोग जाकर उस सुन्दरी से कहने लगे—'हे देवि! अब शीघ्र ही देवो के स्वामी महादेव जी तुम्हारे पति होंगे। तप मत करो'॥१½॥ ऐसा कहकर देवगण पार्वती की प्रदक्षिणा कर अदृश्य हो गये। और पार्वती भी विश्राम करने लगी॥२½॥ वह देवी 'अच्छा कहा' ऐसा कहकर अपने पवित्र आश्रम के द्वार पर उत्पन्न अशोक वृक्ष के नीचे बैठ गई॥३½॥ इसके अनन्तर देव-दुःखहारी, चन्द्रमा को मस्तक पर धारण करने वाले महादेव वहाँ आये, जिनके रूप तथा मुख विकृत थे, नाक कटी हुई थी, केशो का अन्तिम भाग पीला था और बाहें छोटी थी। उन्होंने गिरि-नन्दिनी से कहा—'देवी! मैं तुम्हें स्वीकार करता हूँ'॥४-५॥ इसके बाद ब्राह्मणप्रिय,

१ ग. विभूषण। २ ख ता तपस क्षये। ता०।

अन्तर्भावविशुद्धात्मा[1] कृपानुष्ठानलिप्सया। तमुवाचार्घ्यपाद्याभ्यां मधुपर्केण चैव ह॥७॥
सम्पूज्य सुमनोभिस्तं ब्राह्मणं ब्राह्मणप्रिया ॥८॥

देव्युवाच

भगवन्न स्वतन्त्राहं पिता मे त्वत्प्रणोगृहे। स प्रभुर्म्मम दाने वै कन्याहं द्विजपुङ्गव॥९॥
गत्वा याचस्व पितरं मम शैलेन्द्रमव्ययम्। स चेद्ददाति मां विप्र तुभ्यं तदुचितं मम॥१०॥

ब्रह्मोवाच

ततः स भगवान् देवस्तथैव[2] विकृतः प्रभुः। उवाच शैलराजानं सुतां मे यच्छ शैलराट्॥११॥
स तं विकृतरूपेण ज्ञात्वा रुद्रमथाव्ययम्। भीतः शापाच्च विमना इदं वचनमब्रवीत्॥१२॥

शैलेन्द्र उवाच

भगवन्नावमन्येऽहं ब्राह्मणान्[3] भुवि देवता। मनोषितन्तु यत् पूर्वं तच्छृणुष्व महामते॥१३॥
स्वयंवरो मे दुहितुर्भविता विप्रपूजितः। वरयेद्यं स्वयं तत्र स भर्त्तास्या भविष्यति॥१४॥
तच्छ्रुत्वा शैलवचनं भगवान् वृषभध्वजः। देव्या समीपमागत्य इदमाह महामनाः॥१५॥

शिव उवाच

देवि पित्रा त्वनुज्ञातः स्वयंवर इति श्रुतिः[4]। तत्र त्वं वरयित्री यं स ते भर्त्ता[5] भवेदिति॥१६॥

योग से सिद्ध तथा विशुद्ध अन्तरात्मा उमा ने शंकर के आगमन को जानकर उनकी कृपा पाने की लिप्सा से उन्हें अर्घ आचमनीय तथा मधुपर्क दिया और पुष्पों से उनकी पूजा करके कहा—॥६-८॥

देवी बोली—भगवन्! मैं स्वतंत्र नहीं हूँ। मेरे घर मे पिताजी मुख्य हैं। द्विजश्रेष्ठ! मैं तो कन्या हूँ। वे ही मेरे दान करने में समर्थ हैं। अतः आप जाकर के उन विनाशरहित पर्वतराज से याचना कीजिये। विप्र! यदि वे मुझे आपको दे दें तो उचित है॥९-१०॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर पूर्ववत् विकृतरूपधारी भगवान् शिव ने पर्वतेश्वर से कहा—'शैलराज! मुझे आप अपनी कन्या दें।' तब पर्वतराज ने विकृत रूप से ही उन्हें अविनाशी रुद्र समझ कर शाप के डर से दुःखी होकर यह वचन कहा॥११-१२॥

शैलेन्द्र ने कहा—भगवन्! मैं पृथ्वी पर देवरूप ब्राह्मणों का अपमान नहीं करता। महामेधाविन्! मेरी जो इच्छा है वह आप सुनिये॥१३॥ मेरी कन्या का ब्राह्मणों से सत्कृत स्वयंवर होगा। वहाँ वह जिसका वरण करेगी, वही उसका पति होगा॥१४॥ पर्वतेन्द्र के ये वचन सुनकर भगवान् शिव पार्वती के समीप आकर कहने लगे॥१५॥

शिव ने कहा—देवी! ऐसा सुना जाता है कि तुम्हारे पिता की आज्ञा से स्वयंवर होगा, उसमें तुम

---

१ क ०त्मा क्रियानु०। २ क ०य। स। ३ ख ०व कृतवान्प्रभुः। ४ क. ०णान्भूमिदे०। ५ क ख ०र्तां किलानघ। त०।

तदापृच्छ्य गमिष्यामि 'दुर्लभां त्वां वरानने। रूपवन्तं समुत्सृज्य वृणोष्यसदृशं कथम्॥१७॥

ब्रह्मोवाच

तेनोक्ता सा तदा तत्र भावयन्ती तदीरितम्। भावञ्च रुद्रनिहितं प्रसादं मनसस्तया[2]॥१८॥
सम्प्राप्योवाच देवेशं मा तेऽभूद्बुद्धिरन्यथा[3]। अहं त्वां वरयिष्यामि 'नाद्भुतन्तु कथञ्चन॥१९॥
अथवा तेऽस्ति सन्देहो मयि विप्र कथञ्चन। इहैव त्वां महाभाग वरयामि मनोगतम्॥२०॥

ब्रह्मोवाच

गृहीत्वा स्तवकं सा तु हस्ताभ्यां तत्र संस्थिता। स्कन्धे शम्भोः समाधाय देवी प्राह वृतोऽसि मे॥२१॥
ततः स भगवान् देवस्तया देव्या वृतस्तदा। उवाच तमशोकं वै वाचा सञ्जीवयन्निव॥२२॥

शिव उवाच

यस्मात्तव सुपुण्येन स्तवकेन वृतोऽस्म्यहम्। तस्मात्त्वं जरया त्यक्तस्त्वमरः सम्भविष्यसि॥२३॥
कामरूपी कामपुष्पः कामदो दयितो मम। सर्व्वाभरणपुष्पाढ्यः 'सर्व्वपुष्पफलोपगः[6]॥२४॥
सर्व्वान्नभक्षकश्चैव अमृतस्वाद[7] एव च। सर्व्वगन्धश्च देवानां भविष्यसि दृढप्रियः॥२५॥
निर्भयः सर्व्वलोकेषु[8] भविष्यसि सुनिर्वृतः। आश्रमं वेदमत्यर्थं चित्रकूटेति विश्रुतम्॥२६॥

जिसको चुनोगी, वही तुम्हारा स्वामी होगा। हे सुमुखी ! इसलिए तुम्हे दुष्प्राप्य जानकर मैं जा रहा हूँ, क्योंकि रूपवान् को छोड़कर भला तुम कैसे कुरूप का वरण करोगी ? ॥१६-१७॥

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त शिव के प्रति अपने भाव और मन को प्रसन्न करने वाली उनकी वाणी को सोचती हुई उमा ने देवताओ के स्वामी शंकर से कहा—'आप अन्यथा न मानें। मैं आप ही का वरण करूँगी, इसमे कोई आश्चर्य की बात नही। अथवा हे विप्र ! हे महाभाग ! यदि आपको किसी प्रकार का सदेह होता है, तो यही पर मैं आपको मन से वरण किए लेती हूँ।'॥१८-२०॥

ब्रह्मा ने कहा—उमा ने वही पर स्थित अशोक की मजरी को हाथो से उठाकर शिव के कधे पर रखकर कहा—'आप मेरे वृत (वरण किये गये) हो चुके।' तब भगवान् शिव उमा से वृत होकर उस अशोक वृक्ष से इस प्रकार कहने लगे मानो वाणी से उसे जीवित कर रहे हो॥२१-२२॥

शिव बोले—तुम्हारी इस पवित्र मजरी से जैसे मैं वृत हुआ हूँ वैसे ही तुम भी अजर-अमर हो जाओगे॥२३॥ तुम कामरूपी, कामरूप पुष्पवाले, काम देने वाले, मेरे प्रिय, सब आभूषण रूप पुष्पो से धनी, सब प्रकार के फूल-फलो से युक्त, सब अन्नो का भक्षण करने वाले, अमृत के समान स्वादिष्ट, निखिल गन्धो से परिपूर्ण तथा देवताओ के अत्यन्त प्रिय होगे॥२४-२५॥ समस्त लोक में तुम निश्चिन्त तथा निर्भय रहोगे। चित्रकूट नाम से प्रसिद्ध इस

---

१ ग. ०र्लभमार्यास स०। २ क. ०या। देवी प्रोवा०। ३ क. ०द्धिरीदृशी। अ०। ४ ग नान्यदृभुत क०। ५ क. ०र्वरत्नक०। ६ ख. ०पुष्पफलोपम.। स०। ७ क. ०तगन्ध ए०। ग. ०तस्वर ए०। ८ ख. ०षु सर्वत्र परिप्ल०।

यो हि यास्यति पुण्यार्थी' सोऽश्वमेधमवाप्स्यति। यस्तु तत्र मृतश्चापि ब्रह्मलोकं स गच्छति॥२७॥
यश्चात्र नियमैर्युक्त प्राणान् सम्यक् परित्यजेत्। स देव्यास्तपसा युक्तो महागणपतिर्भवेत्॥२८॥

ब्रह्मोवाच

'एवमुक्त्वा तदा देव आपृच्छ्य' हिमवत्सुताम्। अन्तर्दधे जगत्स्रष्टा सर्वभूतप' ईश्वरः॥२९॥
सापि देवी गते तस्मिन् 'भगवत्यमितात्मनि। तत' एवोन्मुखी भूत्वा शिलायां सम्बभूव ह॥३०॥
उन्मुखी सा भवे तस्मिन् महेशे जगतां प्रभौ। निशेव चन्द्ररहिता न' बभौ विमनास्तदा॥३१॥
अथ शुश्राव शब्दञ्च बालस्यार्तस्य शैलजा। सरस्युदकसम्पूर्णे समीपे चाश्रमस्य च॥३२॥
स कृत्वा बालरूपन्तु देवदेव स्वयं शिवः। क्रीडाहेतो' सरोमध्ये ग्राहग्रस्तोऽभवत्तदा॥३३॥
योगमाया समास्थाय प्रपञ्चोद्भवकारणम्। तद्रूपं सरसो मध्ये कृत्वैवं समभाषत॥३४॥

बाल उवाच

त्रातु मां कश्चिदित्याह ग्राहेण हृतचेतसम्। धिक्कष्टं बाल एवाहमप्राप्तार्थमनोरथ॥३५॥
प्रयामि निधनं वक्त्रे ग्राहस्यास्य दुरात्मन। शोचामि न स्वकं देहं ग्राहग्रस्त' सुदुःखितः॥३६॥
यथा शोचामि पितरं मातरञ्च तपस्विनीम्'। ग्राहगृहीतं मां श्रुत्वा प्राप्तं निधनमुत्सुकौ॥३७॥

आश्रम पर जो कोई पुण्याभिलाषी व्यक्ति आयेगा, उसे अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होगा॥२६३॥ जो यहाँ मरेगा वह भी ब्रह्मलोक को जाएगा। और जो यहाँ नियमपूर्वक प्राण-त्याग करेगा, वह देवी की तपस्या से युक्त होकर महा-गणाधिपति होगा॥२७-२८॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद सब भूतो के पालक, जगत्स्रष्टा, तथा ऐश्वर्य सम्पन्न शकर उमा से विदाई लेकर अन्तर्ध्यान हो गये॥२९॥ पार्वती भी सर्वात्मा शिव के चले जाने पर उन्ही का ध्यान करती हुई शिला-खड पर बैठ गई॥३०॥ उस समय उसी जगत्प्रभु महेश्वर शिव मे मन लगाये हुई दुःखी उमा चन्द्रमा रहित रात्रि की तरह शोभाहीन थी॥३१॥ कुछ समय बाद पार्वती ने आश्रम के समीप ही जल से परिपूर्ण सरोवर मे बालक का आर्तनाद सुना॥३२॥ देवताओ के भी देव स्वय शिव ही बालक का रूप धारण करके क्रीडा के निमित्त बीच सरोवर मे ग्राह-ग्रस्त हो गये थे॥३३॥ योगमाया मे स्थित होकर ससार की उत्पत्ति के कारणभूत शिव अपने रूप को इस प्रकार मध्य सरोवर मे करके बोले॥३४॥

बालक ने कहा—ग्राह के द्वारा नष्ट चेतना वाले मुझे कोई बचाये! हाय कष्ट है! मैं बालक ही रहा, अपनी अभिलाषा को भी पूरी नही कर सका॥३५॥ इस दुरात्मा ग्राह के मुँह मे मैं मर रहा हूँ। ग्राह के ग्रसने से अत्यन्त दुःखी मुझे अपनी देह की उतनी चिन्ता नही है जितनी कि पिता तथा तपस्विनी माता की है॥३६३॥ मैं ग्राह-गृहीत होकर मर गया—ऐसा सुनकर मेरा प्यार करने वाले तथा एक पुत्र वाले माता पिता निश्चय ही

---

१ ख यात्रार्थं। २ ग देवस्त०। ३ ख ०क्त्वा वृषराजमशोक हि०। ४ क ०च्छय गिरिजां द्रुतम्। ५ क ०तगणश्व०। ख ०तमहेश्व०। ६ ख ०त्यमलात्म०। ७ ख तदैव दुःखी भूत्वा सा समाया सविवेश ह। ८ख सा। ९क मनस्विनीम्।

'प्रियपुत्रावेकपुत्रौ प्राणान् न्यूनं त्यजिष्यत'। अहो बत सुकष्टं वै योऽहं बालोऽकृताश्रम ॥
अन्तर्ग्राहेण ग्रस्तस्तु यास्यामि निधनं किल ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा तु देवी तं नाद[1] विप्रस्याऽऽर्तस्य शोभना। उत्थाय प्रस्थिता तत्र यत्र तिष्ठत्यसौ द्विज[2] ॥३९॥
सापश्यदिन्दुवदना बालकं चारुरूपिणम्। ग्राहस्य मुखमापन्न वेपमानमवस्थितम् ॥४०॥
सोऽपि ग्राहवर. श्रीमान् दृष्ट्वा देवीमुपागताम्। त गृहीत्वा द्रुत यातो मध्यं सरस एव हि ॥४१॥
स कृष्यमाणस्तेजस्वी नादमार्त्तं तदाकरोत्। अथाह देवी दु खार्त्ता[3] बालं दृष्ट्वा ग्रहावृतम् ॥४२॥

पार्वत्युवाच

ग्राहराज महासत्त्व बालकं ह्येकपुत्रकम्। विमुञ्चेम महादंष्ट्र क्षिप्र भीमपराक्रम ॥४३॥

ग्राह उवाच

यो देवि दिवसे षष्ठे[4] प्रथमं समुपैति माम्। स आहारो मम पुरा विहितो लोककर्तृभि ॥४४॥
सोऽयं मम महाभागे षष्ठेऽहनि गिरीन्द्रजे। ब्रह्मणा प्रेरितो नूनं नैन मोक्ष्ये कथञ्चन ॥४५॥

देव्युवाच

यन्मया हिमवच्छृङ्गे[7] चरित तप उत्तमम्। तेन बालमिम मुञ्च ग्राहराज नमोऽस्तु ते ॥४६॥

प्राणों को त्याग देंगे। अहो खेद तथा कष्ट है कि मैं अकृताश्रम बालक (आश्रम धर्म को बिना प्राप्त किये ही) बीच सरोवर म ग्राह-ग्रस्त हुए मर जाऊँगा ॥३७-३८॥

ब्रह्मा ने कहा—सुन्दरी उमा दु खी बालक क उस आर्तनाद को सुनते ही उठकर उधर ही चल पडी, जिधर वह ब्राह्मण-बालक था ॥३९॥ चन्द्रमुखी उमा ने ग्राह के मुँह म पडे हुए तथा काँपते हुए सुरूपवान् बालक को देखा ॥४०॥ देवी को देखते ही वह ग्राहराज बालक को खींचकर बीच सरोवर म ले जाने लगा तब तेजस्वी बालक आर्तनाद करने लगा ॥४१३॥ अनन्तर ग्राह-गृहीत बालक को देखकर दु ख-पीडित देवी कहने लगी ॥४२॥

पार्वती बोली—हे महापराक्रमी ग्राहराज ! हे महादंष्ट्र ! इस बालक को शीघ्र छोड दो। हे महासत्त्व शाली ! यह अपने माँ-बाप का एक ही पुत्र है ॥४३॥

ग्राह ने कहा—हे देवि ! छठे दिन पहले-पहल जो मुझे प्राप्त होता है वही मेरा आहार होता है—ऐसा विधाता ने मेरे लिए पहले से विधान बना रखा है। हे महाभागे ! हे गिरिनन्दिनी ! नि सन्देह यह आज छठे दिन ब्रह्मा से प्रेरित भोजन मुझे मिला है। मैं इसे किसी (भी) अवस्था म नही छोड़ूँगा ॥४४-४५॥

देवी ने कहा—हे ग्राहों के स्वामी ! तुम्हें नमस्कार है। मैंने हिमालय के शिखर पर जो कुछ भी उत्तम तपस्या की है उससे इस बालक को छोड दो ॥४६॥

---

१ क ०ना तु सा नूनमथ प्राणास्त्यजि०। २ क ०व्यति। अ०। ३ ख ०ई बालस्याऽऽ०। ४ ख शिशु। ५ ख दुखार्ते। ६ क प्राप्ते। ७ क ०ङ्गे चीर्णं वैत०।

ग्राह उवाच

मा व्ययस्तपसो देवि भृश बाले शुभानने। यद्ब्रवीमि कुरु श्रेष्ठे तथा मोक्षमवाप्स्यति ॥४७॥

देव्युवाच

ग्राहाधिप वदस्वाशु यत् सतामविगर्हितम्। तत् कृत नात्र सन्देहो यतो मे ब्राह्मणा प्रिया ॥४८॥

ग्राह उवाच

यत् कृत वै तप किञ्चिदभवत्या स्वल्पमुत्तमम्। तत् सर्वं मे प्रयच्छाऽऽशु ततो मोक्षमवाप्स्यति ॥४९॥

देव्युवाच

जन्मप्रभृति यत् पुण्य महाग्राह कृतं मया। तत्ते सर्वं मया दत्त बाल मुञ्च महाग्रह ॥५०॥

ब्रह्मोवाच

प्रजज्वाल ततो ग्राहस्तपसा तेन भूषित। आदित्य इव मध्याह्ने दुर्निरीक्ष्यस्तदाभवत् ॥५१॥
उवाच चैव तुष्टात्मा[२] देवीं लोकस्य धारिणीम् ॥५२॥

ग्राह उवाच

देवि किं कृत्यमेतत्ते[३] सुनिश्चित्य महाव्रते। तपसोऽप्यर्ज्जन दुःखं तस्य त्यागो न शस्यते।

ग्राह ने कहा—हे बाले! हे सुमुखी! हे देवी! कठिन तपस्या का व्यय मत करो! हे श्रेष्ठे! मैं जो कहता हूँ वह करो! उसी से इसको मुक्ति मिलेगी ॥४७॥

देवी ने कहा—ग्राहराज! शीघ्र कहो! जो सज्जनो से अनिन्दित बात है उसे मैं अवश्य करूँगी इसमे कोई सदेह नही। क्योकि ब्राह्मण मुझे प्रिय हैं ॥४८॥

ग्राह ने कहा—तुमने जो कुछ थोडा किन्तु उत्तम तप किया है वह सब मुझे शीघ्र दे दो ताकि इसे मोक्ष मिल जाय ॥४९॥

देवी ने कहा—हे महाग्राह! जन्म से लेकर जो कुछ भी मैंने पुण्य किया है वह सब तुम्हें समर्पित है बालक को मुक्त कर दो ॥५०॥

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त वह ग्राह उस तपस्या से भूषित हो मध्याह्नकालीन सूर्य के समान देदीप्यमान तथा दुर्निरीक्ष्य हो गया। प्रसन्नचित्त ग्राह लोक धारिणी देवी से कहने लगा ॥५१॥

ग्राह बोला—हे महाव्रतधारिणी देवी! तुमने ऐसा क्यो किया? तपस्या का अर्जन बहुत दुःख से होता है। उसका त्याग ठीक नही है। हे सुन्दर कटि वाली! तुम इस बालक के साथ साथ अपना तप भी ले लो। तुम्हारी

---

१ ख ०वि व्यर्यं भवतु शोभने। २ क ख दुष्टात्मा। ३ क ०त्ते अनि०।

गृहाण तप एव त्व बाल चेमं सुमध्यमे[1]। तुष्टोऽस्मि ते विप्रभक्त्या वर तस्माद्ददामि त ॥
सा त्वेवमुक्ता ग्राहेण[2] उवाचेद महाव्रता ॥५३॥

देव्युवाच

देहेनापि मया ग्राह रक्ष्यो विप्र प्रयत्नत । तप पुनर्मया प्राप्त न प्राप्यो ब्राह्मण पुन ॥५४॥
सुनिश्चित्य महाग्राह कृत बालस्य मोक्षणम्। न विप्रेभ्यस्तप श्रेष्ठ श्रेष्ठा मे ब्राह्मणा मता ॥५५॥
दत्त्वा चाह न गृह्णामि ग्राहेन्द्र विहित हि ते। न हि कश्चिन्नरो ग्राह प्रदत्त पुनराहरेत ॥५६॥
दत्तमेतन्मया तुभ्य नाऽऽददानि हि तत् पुन । त्वय्येव रमतामेतद्बालश्चाय विमुच्यताम् ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

तयोक्तस्तता प्रशस्याथ मुक्त्वा बाल नमस्य च। देवीमादित्यावभासस्तत्रैवान्तरधीयत ॥५८॥
बालोऽपि सरसस्तीरे मुक्तो ग्राहेण वै तदा। स्वप्नलब्ध इवार्थौघस्तत्रैवान्तरधीयत ॥५९॥
तपसोऽपचय मत्वा देवी हिमगिरीन्द्रजा। भूय एव तप कर्तुमारेभे नियमस्थिता ॥६०॥
कर्तुकामा तपो भूयो ज्ञात्वा ता शङ्कर स्वयम्। प्रोवाच वचन विप्रा[3] मा कृथास्तप इत्युत ॥६१॥
मह्यमेतत्तपो देवी त्वया दत्त महाव्रते। तत्तेनैवाक्षय तुभ्य भविष्यति सहस्रधा ॥६२॥
इति लब्ध्वा वर देवी तपसोऽक्षयमुत्तमम्। स्वयवरमुदीक्षन्ती तस्थौ प्रीता मुदा युता ॥६३॥

ब्राह्मण भक्ति से मैं सन्तुष्ट हूँ। अत वर देता हूँ। ग्राह के इस प्रकार कहने पर उस महाव्रतधारिणी देवी ने यह कहा ॥५२ ५३॥

देवी बोली—हे ग्राह ! मुझ तो शरीर देकर भी ब्राह्मण की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये। हे महाग्राह ! तप तो मैं पुन प्राप्त कर सकता हूँ ब्राह्मण नही—एसा सोच कर मैंने बालक को मुक्त कराया है ॥५४२ ॥ तपस्या ब्राह्मणो से श्रेष्ठ नही है ब्राह्मण ही श्रेष्ठ है—यह मेरा मत है। ह ग्राहेन्द्र ! मैं अपना तप देकर फिर उसे ग्रहण नही करूगी। क्योकि कोई भी मनुष्य दत्त वस्तु का पुनग्रहण नहीं करता है। मैंने तुम्हे यह दे दिया अब वापस नही ले सकती। इस तपस्या का उपभोग तुम्ही करो और बालक को छोड दो ॥५५ ५७॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद सूय के समान कान्तिमान वह ग्राह बालक को छोड देवी की प्रशसा करके उसे नमस्कार करके वही पर अन्तर्धान हो गया ॥५८॥ सरोवर के तीर म ग्राह से मुक्त बालक भी स्वप्न म प्राप्त धनराशि की तरह उसी जगह अन्तर्हित हो गया ॥५९॥ गिरिनन्दिनी उमा ने तपस्या का ह्रास जानकर पुन नियम म स्थित हो तप करना आरम्भ कर दिया ॥६०॥ पुन तप करने की इच्छुक उमा को देखकर स्वय शकर ने उससे कहा—तप मत करो ॥६१॥ हे महाव्रते। हे देवि ! तुमने मझ अपना तप दिया है। इसलिए तुम्हारा तप अक्षय रूप म हजार गुना अधिक हो जायगा ॥६२॥ *अक्षय तथा उत्तम तप रूप वरदान प्राप्त कर पावती आनन्दित हो*

---

१ ग ०ध्यमम्। तु०। २ क ०ण प्रत्युवाच म०। ३ क भूय।

इद पठेद्यो हि नर सदैव, बालानुभावाचरण हि शम्भो ।
स देहभेद' समवाप्य पूतो' भवेद्गणेशस्तु कुमारतुल्य ॥६४॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भु-ऋषि सवादे पार्व्वत्या रुत्त्वदर्शन नाम पञ्चत्रिंशोऽध्याय ॥३५॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

पार्वतीस्वयवर-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विस्तृते हिमवत्पृष्ठे विमानशतसङ्कुले। अभवत स तु कालेन शैलपुत्र्या स्वयवर ॥१॥
अथ पर्व्वतराजोऽसौ हिमवान्' ध्यानकोविद । दुहितुर्देवदेवेन ज्ञात्वा तदभिमन्त्रितम् ॥२॥
जानन्नपि महाशैल समयारक्षणेप्सया। स्वयवर ततो देव्या सर्व्वलोकेष्वघोषयत् ॥३॥
देवदानवसिद्धाना सर्व्वलोकनिवासिनाम्। वृणुयात् परमेशान समक्ष यदि मे मे सुता ॥४॥
तदेव सुकृत श्लाघ्य ममाभ्युदयसम्मतम। इति सञ्चिन्त्य शैलेन्द्र धृत्वा हृदि महेश्वरम् ॥५॥

स्वयवर की प्रतीक्षा करती हुई रहने लगी ॥६३॥ जो मनुष्य गकर के इस बालभावानुकूल आचरण को सदा पढेगा वह पवित्र होकर देह भेद प्राप्त कर (अर्थात शरीर-त्यागकर) गणेश तथा कार्तिकेय के समान हो जायगा ॥६४॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म ब्रह्मा और ऋषि के सवाद प्रकरण म पार्वती के
सत्त्वदर्शन नामक पैतीसवा अध्याय समाप्त ॥३५॥

अध्याय ३६

पार्वती स्वयवर का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सैकडो विमानो से व्याप्त विस्तृत हिमालय के पृष्ठ पर समय पाकर गिरि-पुत्री का स्वयवर हुआ ॥१॥ ध्यानशील पर्वतराज हिमालय ने शिव के द्वारा अपनी कन्या का अभिमन्त्रण (स्वीकार) जानकर भी समय निर्धारण (शिष्टाचार) करने की इच्छा से देवी का स्वयवर सब लोको मे घोषित कर दिया ॥२ ३॥ सबलोकनिवासी देव दानव सिद्धो के समक्ष यदि मेरी कन्या शिव का वरण कर लेगी तभी मेरा श्लाघनीय पुण्योदय होगा—ऐसा सोचकर शैलेन्द्र ने अपने हृदय म महेश्वर का ध्यान कर देवी के स्वयवर के लिये ब्रह्मलोक तक के देवो को रत्नो

---

१ क देवपूज्य स०। २ क मक्ति। ३ क ०वाञ्छानिवा०।

आब्रह्मकेषु देवेषु देव्या शैलेन्द्रसत्तम । कृत्वा रत्नाकुलं देशं स्वयंवरमचीकरत् ॥६॥
अथैवमाघोषितमात्र एव, स्वयंवरे तत्र नगेन्द्रपुत्र्याः ।
देवादयः सर्वजगन्निवासाः, समाययुस्तत्र गृहीतवेशाः ॥७॥
प्रफुल्लपद्मासनसंनिविष्टः, सिद्धैर्वृतो योगिभिरप्रमेयैः ।
विज्ञापितस्तेन महीधराज्ञाऽऽगतस्तदाऽऽह त्रिदिवैरुपेतः ॥८॥
अक्ष्णां सहस्रं सुरराट् स बिभ्रद् दिव्याङ्गहारस्रगुदाररूपः ।
ऐरावतं सर्वगजेन्द्रमुख्यं, स्रवन्मदासारकृतप्रवाहम् ॥९॥
आरुह्य सर्वामरराट् स वज्रं, बिभ्रत् समागात् पुरतः सुराणाम् ।
तेजःप्रभावाधिकतुल्यरूपो, प्रोद्भासयन् सर्वदिशो विवस्वान् ॥१०॥
हैमं विमानं स बलत्पताकमारुह्य आगात्त्वरितं जवेन ।
मणिप्रदीप्तोज्ज्वलकुण्डलश्च वह्न्यर्कतेजःप्रतिमे विमाने ॥११॥
समन्वगात् कश्यपसूनुरेक, आदित्यमध्याद्भगनामधारी ।
पीनाङ्गयष्टिः सुकृताङ्गहारस्तेजोबलाशासदृशप्रभावः ॥१२॥
दण्डं समागृह्य कृतान्त आगादारुह्य भीमं महिषं जवेन ।
[1]महामहीध्रोच्छ्रायपीनगात्रः स्वर्णादिरत्नाञ्चितचारुवेशः ॥१३॥

से सुसज्जित किया ॥५-६॥ पार्वती के स्वयंवर की घोषणा होते ही सम्पूर्ण जगत् के निवासी देव आदि गण सुन्दर वेश बनाकर वहाँ पधारे ॥७॥ पहले विकसित कमलों के आसन पर उपविष्ट अप्रमेय योगियों तथा सिद्धों से आवृत देवताओं से युक्त होकर मेरु वहाँ पहुँचने की सूचना पवनराज को मिली ॥८॥ तदनन्तर सहस्र नेत्रों वाले, दिव्य अंगों के हार तथा पुष्पमाला धारण किए हुए, उदार रूप वाले, गजेन्द्रों में मुख्य तथा बहते हुए मद से मूसलधार वृष्टि से धारा बनाते हुए ऐरावत नामक हाथी पर आरूढ़ और वज्र को धारण किए हुए इन्द्र देवताओं के अग्रगामी होकर वहाँ आये ॥९॥ अनन्तर तेज के प्रभाव से अधिक सुन्दर और छत्र-पताका से युक्त सुवर्ण के विमान पर स्थित सूर्य सब दिशाओं को प्रकाशित करते हुए वेग से शीघ्र वहाँ आये। अग्नि तथा सूर्य के तेज के समान विमान पर आरूढ़ और प्रदीप्त मणि के उज्ज्वल कुण्डल को धारण किए हुए एक भग नामक आदित्य जो कश्यप के पुत्र कहलाते हैं आदित्यों के मध्य से निकल कर वहाँ आये ॥१०-११॥ भयानक महिष पर चढ़कर अंगों को हार आदि से सुसज्जित कर तेज, बल और आभा के समान प्रभाव वाले तथा स्थूल देह वाले यमराज दण्ड को धारण किए हुए वहाँ पहुँचे ॥१२॥ महापर्वत के समान उच्च तथा पुष्ट शरीर वाले, सुवर्ण आदि रत्नों से अञ्चित चारु वेश वाले और निखिल जगत् के पावक वायु भी विमान पर चढ़कर आये ॥१३॥ अधिक तेजवाले तेज से आत-प्रोत सब देव रक्षकों को

---

१ क आरुह्य०। २ क ०प्रदिञ्चित०।

समीरणः सर्व्वजगद्विभर्त्ता, विमानमारुह्य समभ्यगाद्धि।
संतापयन् सर्व्वसुरासुरेशांस्तेजोधिकस्तेजसि सन्निविष्टः ॥१४॥
वह्निः समभ्येत्य सुरेन्द्रमध्ये, ज्वलन् प्रतस्थौ वरवेशधारी ।
नानामणिप्रज्वलिताङ्गयष्टिर्जगद्वरं दिव्यविमानमग्र्यम् ॥१५॥
आरुह्य सर्वद्रविणाधिपेश', स राजराजस्त्वरितोऽभ्यगाच्च ।
आप्याययन् सर्व्वसुरासुरेशान्, कान्त्या च वेशेन च चारुरूपः ॥१६॥
ज्वलन्महारत्नविचित्ररूपं, विमानमारुह्य शशी समायात् ।
श्यामाङ्गयष्टिः सुविचित्रवेशः, सर्व्वाङ्ग आबद्धसुगन्धिमाल्यः ॥१७॥
तार्क्ष्यं समारुह्य महीध्रकल्पं, गदाधरोऽसौ त्वरितः समेतः ।
अथाश्विनौ चापि भिषग्वरौ द्वावेकं विमानं त्वरयाऽधिरुह्य ॥१८॥
मनोहरौ प्रज्वलचारुवेशौ, आजग्मतुर्देववरौ सुवीरौ' ।
सहस्रनागः स्फुरदग्निवर्णः, बिभ्रत्तदानीं ज्वलनार्कतेजाः ॥१९॥
सार्द्धं स नागैरपरैर्महात्मा, विमानमारुह्य समभ्यगाच्च ।
दितेः सुतानाञ्च महासुराणा, वह्न्यर्कशक्रानिलतुल्यभासाम् ॥२०॥
वरानुरूपं प्रविधाय वेशं, वृन्दं समागात् पुरतः सुराणाम् ।
गन्धर्व्वराजः स च चारुरूपी, । दिव्याङ्गदो दिव्यविमानचारी ॥२१॥

संतापित करने-वाले और सुन्दर वेश धारण करने वाले जलते हुए अग्नि भी देवताओं के मध्य में स्थित हुए ॥१४३॥ अनेक मणियों के सदृश कान्तिमान् शरीर वाले तथा सब धनों के स्वामी कुबेर संसार में श्रेष्ठ दिव्य विमान पर आरूढ़ होकर शीघ्रता से आये ॥१५३॥ मनोहर रूप वाले चन्द्रमा महारत्नों से चित्रित रूप वाले विमान पर चढ़कर अपनी कान्ति तथा वेश से सब देव असुरों को पुष्ट करते हुए आये ॥१६३॥ श्याम शरीर वाले विचित्र वेशवाले और सम्पूर्ण अंगों में सुगन्धित मालाओं को धारण करने वाले विष्णु पर्वत सदृश गरुड पर सवार होकर वेग से आये ॥१७३॥ अनन्तर वैद्य-श्रेष्ठ, देवश्रेष्ठ सुन्दरवीर मनोहर तथा चारुवेश वाले दोनों अश्विनीकुमार भी एक ही विमान पर चढ़कर शीघ्रता से आये ॥१८३॥ हजारों नागों को धारण करने वाले अग्नि के समान कान्तिमान् और सूर्य के सदृश तेजस्वी महात्मा शंकर भी बहुत से नागों के साथ विमान पर आरूढ़ होकर उस समय वहाँ पधारे ॥१९३॥

- र्य, इन्द्र और वायु के तुल्य कान्तिमान् दिति-पुत्र राक्षसों का समूह भी वर के योग्य वेश बना कर देव-हले उपस्थित हुआ ॥२०३॥ इन्द्र की आज्ञा से सुन्दर रूप वाले गन्धर्वराज विश्वावसु भी दिव्य ढ़कर गन्धर्वसमूह और अप्सराओं के साथ वहाँ आये ॥२१३॥ और भी गन्धर्व, यक्ष, नाग,

।

गन्धर्व्वसङ्घैः सहितोऽप्सरोभिः, शक्राज्ञया तत्र समाजगाम।
अन्ये च देवास्त्रिदिवात्तदानीं, पृथक् पृथक् चारुगृहीतवेशा ॥२२॥
आजग्मुराहृह्य विमानपृष्ठं, गन्धर्वयक्षोरगकिन्नराश्च।
शचीपतिस्तत्र सुरेन्द्रमध्ये, रराज राजाऽधिकल्यमूर्त्ति ॥२३॥
आज्ञाबलैश्वर्य्यकृतप्रमोद,[1] स्वयवरं तं समलञ्चकार।
हेतुस्त्रिलोकस्य जगत्प्रसूतेर्माता च तेषा स सुरासुराणाम् ॥२४॥
पत्नी च शम्भोः पुरुषस्य धीमतो, गीता पुराणे प्रकृतिः परा या।
दक्षस्य कोपाद्धिमवद्गृहं सा, कार्यार्थमायात्त्रिदिवौकसां हि ॥२५॥
[2]विमानपृष्ठे [3]मणिहेमजुष्टे, स्थिता बलच्चामरवीजिताङ्गी।
[4]सर्व्वर्त्तुपुष्पा [5]सुसुगन्धमाला, प्रगृह्य देवी प्रसभं प्रतस्थे[6] ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

माला प्रगृह्य देव्यान्तु स्थितायां देवसंसदि। शक्राद्यैरागतैर्देवैः स्वयंवर उपागते ॥२७॥
देव्या जिज्ञासया शम्भुर्भूत्वा पञ्चशिखः शिशुः। उत्सङ्गतलसंसुप्तो बभूव सहसा विभुः[7] ॥२८॥
ततो ददर्श तं देवी शिशुं पञ्चशिखं स्थितम्। ज्ञात्वा तं समवध्यानाज्जगृहे[8] प्रीतिसंयुता[9] ॥२९॥
अथ सा शुद्धसङ्कल्पा काङ्क्षितं प्राप्य सत्पतिम्[10]। निवृत्ता च तदा तस्थौ कृत्वा सा हृदि तं विभुम् ॥३०॥
ततो दृष्ट्वा शिशुं देवा देव्या उत्सङ्गवर्त्तिनम्। कोऽयमत्रेति संमन्त्र्य चुक्षुभुः शमोहिता[11] ॥३१॥

किन्नर आदि देवता पृथक्-पृथक् सुन्दर वेश बनाकर विमान पर आरूढ होकर स्वर्ग से वहाँ आये ॥२२½॥

राजाओं से अधिक सुन्दर और आज्ञा, बल तथा ऐश्वर्य से प्रमोद करने वाले इन्द्र देवताओं के मध्य में सुशोभित होते हुए स्वयंवर सभा को अलङ्कृत करने लगे ॥२३½॥ संसार की उत्पत्ति के कारण सुरासुरों की माता, धीमान् पुरुष शङ्कर की पत्नी पुराण में परा प्रकृति नाम से प्रख्यात दक्ष के शाप से देवताओं के कार्य के लिए हिमालय के गृह में उत्पन्न, मणि तथा सुवर्ण जटित विमान पर स्थित एवम् छत्र चामरों से वीजित अङ्गों वाली उमा सब ऋतुओं के पुष्पों की सुगन्धित माला को ग्रहण कर हठात् प्रस्थित हुई ॥२४ २६॥

ब्रह्मा ने कहा—जब स्वयंवर में इन्द्र आदि देवता उपस्थित हुए और देवसभा में पार्वती भी माला लेकर उपस्थित हो गईं तब देवी के मनोभाव को समझने के लिए भगवान् शङ्कर एकाएक पञ्चशिखाधारी गोद में सोया हुआ-सा बालक, बन गये ॥२७ २८॥ देवी ने उस बालक को देखकर ध्यान योग से पहचानकर प्रीतिपूर्वक पकड़ लिया ॥२९॥ शुद्ध सङ्कल्प वाली उमा अभिलषित सत्पति की प्राप्ति कर उस प्रभु बालक को हृदय से लगाकर निवृत्त हो गई ॥३०॥ देवगण देवी के क्रोड-देश में स्थित बालक को देखकर मोहित हो गये और 'यह कौन यहाँ' इस प्रकार

१ ग ०मोहा वृथाधिक यत्नमुमा च०। २ क ०नवर्य म०। ३ क ०मपृष्ट स्थि०। ४ क गुगन्धपुष्पा। ५ ख अनर्घ्यपुष्पो। ४ ख वरगन्धमाला। ६ क ०स्थे। मा०। ७ क ख ०भु। अकस्मादेव त। ८ ग ०ज्जहृषे प्री०। ९ ख ०ता। तपस द्यु०। १० क सत्फलम्। ११ ग ०नमादिना।

वज्रमाहारयत्तस्य बाहुमुत्क्षिप्य वृत्रहा। स [1]बाहुरुत्थितस्तस्य तथैव समतिष्ठत॥३२॥
स्तम्भितः [2]शिशुरूपेण देवदेवेन शम्भुना। [3]वज्रं क्षेप्तुं न शशाक वृत्रहा चलितुं न च॥३३॥
भगो नाम ततो देव आदित्यः काश्यपो बली। उत्क्षिप्य (चिक्षेप) आयुधं दीप्तं छेत्तुमिच्छन् विमोहितः॥३४॥
तस्यापि भगवान् बाहुं तथैवास्तम्भयत्तदा। बलं तेजश्च योगश्च तथैवास्तम्भयद्विभुः॥३५॥
शिरः प्रकम्पयन् विष्णुः शङ्करं समवैक्षत। अथ तेषु स्थितेष्वेवं मन्युमत्सु सुरेषु च॥३६॥
अहं परमसंविग्नो ध्यानमास्थाय सादरम्। बुद्धवान् देवदेवेशमुमोत्सङ्गे समास्थितम्॥३७॥
ज्ञात्वाऽहं परमेशानं शीघ्रमुत्थाय सादरम्। ववन्दे चरणं शम्भोः स्तुतवानस्तमहं द्विजाः॥३८॥
पुराणैः [4]सामसङ्गीतैः पुण्याख्यैर्गुह्यनामभिः। अजरस्त्वमजरो देवः स्रष्टा विभुः [5]परापरम्॥३९॥
प्रधानं पुरुषो यस्त्वं ब्रह्म ध्येयं तदक्षरम्[6]। अमृतं परमात्मा च ईश्वरः कारणं महत्॥४०॥
ब्रह्मसृक् प्रकृतेः स्रष्टा सर्व्वकृत्प्रकृतेः परः। इयञ्च प्रकृतिर्देवी सदा ते सृष्टिकारणम्॥४१॥
पत्नीरूपं समास्थाय जगत्कारणमागता। नमस्तुभ्यं महादेव देव्या वै सहिताय च॥४२॥
प्रसादात्तव देवेश नियोगाच्च मया प्रजाः। देवाद्यास्तु इमा सृष्टा मढास्त्वद्योगमायया॥४३॥

परस्पर बातें करने लगे॥३१॥ इन्द्र ने तो वज्र उठाकर उस पर फेंकना चाहा, पर उनकी भुजा जैसे उठी थी, वैसे रुक गई॥३२॥ बालक रूपधारी देव देव शंकर ने उनका स्तम्भन कर दिया। इन्द्र न तो वज्र को फेंक सके न चल सके॥३३॥ *तब कश्यप-पुत्र भग नामक बली आदित्य बिना सोचे-समझे उस बालक को मारने के लिए प्रदीप्त* अस्त्र फेंकने लगे, पर उनकी भी भुजा को भगवान् शिव ने स्तम्भित कर दिया। शिवजी ने बल, तेज और योग का भी स्तम्भन कर दिया॥३४-३५॥ शिर को कँपाते हुए विष्णु शंकर को देखने लगे। सब देवों के इस प्रकार कुपित हो जाने पर मैं बहुत चिन्तित हुआ और ध्यानस्थित होकर देखने के बाद उमा की गोद में समासीन स्थित देवों के स्वामी शंकर को समझ पाया॥३६-३७॥ द्विजगण! मैं महादेव जानकर शीघ्र उठा और सत्कारपूर्वक शम्भु की चरण-वन्दना कर पुराण सामवेदोक्त सगीत और उनके पवित्र गुप्त नामों से उनकी यह स्तुति करने लगा॥३८॥ 'आप अजर अमर देव, सृष्टिकर्ता व्यापक, परात्पर, प्रकृति, पुरुष, ब्रह्म, ध्यान करने योग्य, अविनाशी, अमृत, परमात्मा ईश्वर कारण महत्तत्त्व ब्रह्म-स्रष्टा प्रकृति-स्रष्टा, प्रकृति से परे और सर्व कर्ता हैं॥३९-४०½॥ *ये देवी आपकी प्रकृति हैं जो सदा सृष्टि कारण तथा जगत्कारण होती हुई आपकी पत्नी के रूप में आई हैं॥४१½॥* हे महादेव! देवी सहित आपको नमस्कार है। हे देवेश! आपकी कृपा तथा आज्ञा से मैंने योगमाया के बल से देव आदि मूढ प्रजा की सृष्टि की है॥४२-४३॥ अब आप इनके ऊपर अनुग्रह करें ताकि ये पहले की तरह हो जायँ।'

---

१ क ०हुस्तस्य चाभिन्नस्तथैव०। २ ख शिशुवेषेन। ३ ग रुद्र। ४ क ग ०सर्गमन्त्रै पु०। ५ क परावर। ६ क चराचरम्।

कुरु प्रसादमेतेषां यथापूर्वं भवन्त्विमे। तत एवमहं विप्रा विज्ञाप्य परमेश्वरम् ॥४४॥
स्तम्भितान् सर्वदेवांस्तानिदं चाह तदोक्तवान्। मूढाश्च देवता सर्वा नैनं बुध्यत शङ्करम ॥४५॥
गच्छध्वं शरणं शीघ्रमेनमेव महेश्वरम। सार्धं मयैव देवेशं परमात्मानमव्ययम ॥४६॥
ततस्ते स्तम्भिता सर्व्वे तथैव त्रिदिवौकस। प्रणेमुर्मनसा सर्व्वे भावशुद्धेन चेतसा ॥४७॥
अथ तदा प्रसन्नोऽभवद्देवदेवो महेश्वर। यथापूर्वं चकाराऽऽशु देवतानां तनूस्तदा ॥४८॥
तत एव प्रवृत्ते तु सर्व्वदेवनिवारणे। वपुश्चकार देवेशस्त्र्यक्षं परममद्भुतम ॥४९॥
तेजसा तस्य ते ध्वस्ताश्चक्षु सर्व्वे न्यमीलयन्। तेभ्य स परमं चक्षु स्ववपुर्दृष्टिशक्तिमत ॥५०॥
प्रादात् परमदेवेशमपश्यस्ते तदा विभुम। ते दृष्ट्वा परमेशानं तृतीयेक्षणधारिणम ॥५१॥
शक्राद्या मेनिरे देवा सर्व्व एव सुरेश्वरा। तस्य देवी तदा हृष्टा समक्षं त्रिदिवौकसाम ॥५२॥
पादयो स्थापयामास स्रङमालाममितद्युति। साधु साध्विति ते होचु सर्व्वे देवा पुनर्विभुम ॥५३॥
सह देव्या नमश्चक्रु शिरोभिर्भूतलाश्रितै[1]। अथास्मिन्नन्तरे विप्रास्तमहं दैवतै सह ॥५४॥
हिमवन्तं महाशैलमुक्तवांश्च महाद्युतिम। श्लाघ्य पूज्यश्च वन्द्यश्च सर्व्वेषां त्वं महानसि ॥५५॥
शर्वेण सह सम्बन्धो यस्य तेऽभ्युदयो महान्। क्रियतां चारुरुद्वाहं क्षिमर्थं स्थीयते[3] परम ॥
तत प्रणम्य हिमवांस्तदा मां प्रत्यभाषत ॥५६॥

विप्रवृन्द। इस प्रकार शिव की वन्दना कर चुकने के बाद मैंने स्तम्भित देवगणों से कहा— ४४३॥ तुम सब देवता मूढ़ हो। भगवान् शिव को नहीं जानते हो। अब इन्हीं परमात्मा अव्यय तथा देवेश महेश्वर की शरण में मेरे साथ शीघ्र चलो। यह सुन कर समस्त स्तम्भित देवगण भाव शुद्ध चित्त से मन ही मन शंकर को प्रणाम करने लगे। ४५ ४७। तब उन पर प्रसन्न होकर देवदेव महेश्वर ने शीघ्र ही उन्हें पूर्ववत् कर दिया। इस प्रकार सब देवों का दुःख निवारण करके देवेश ने अपना तीन आँखों वाला अद्भुत शरीर बना लिया। ४८ ४९ उनके तेज से देवगण नष्ट होने लगे। सब ने आँखें मूँद लीं। तब शिव ने देवों को अत्यन्त दृष्टि शक्ति वाले नेत्र दिये जिनसे वे शंकर को देखने लगे। ५०१॥ तृतीय नेत्रधारी परमेश्वर को देखकर इन्द्र आदि समस्त देव उन्हें महादेव मानने लगे ॥५१३॥ देवताओं के समक्ष अत्यन्त कान्तिमती पार्वती ने हर्ष से पुष्पमाला शिव के चरणों पर समर्पित कर दी ॥५२३॥ फिर देवगण ने साधु साधु कहकर पार्वती सहित शंकर को पृथ्वी पर माथा टेक कर प्रणाम किया ५३॥ विप्रवृन्द इसके उपरान्त देवताओं के साथ में महाकान्तिमान पर्वतराज हिमालय से कहने लगा—। ५४१। आप श्लाघनीय सबके पूज्य वन्दनीय तथा महान हैं। आपके साथ जिसका सम्बन्ध होगा उसका महान अभ्युदय कहना चाहिये। अब आप पवित्र विवाह संस्कार सम्पन्न करें देर हो रही है। तब हिमालय ने मुझे प्रणाम कर कहा ॥५५ ५६।

---

१ क शीघ्र देवेशं शूलपाणिनम। २ क ०त। एतस्मि०। ३ क स्थीयते।

हिमवानुवाच

त्वमेव कारणं देव यस्य सर्व्वोदये मम। प्रसादः सहसोत्पन्नो हेतुश्चापि त्वमेव हि॥
उद्वाहस्तु यदा यादृक् तद्वि (त्तं वि) धत्स्व पितामह ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

तत एवं वचः श्रुत्वा गिरिराजस्य भो द्विजाः: उद्वाहः क्रियतां देव इत्यहं चोक्तवान् विभुम् ॥५८॥
मामाह शङ्करो देवो यथेष्टमिति लोकपः। तत्क्षणाच्च ततो विप्रा अस्माभिर्निर्म्मितं पुरम् ॥५९॥
उद्वाहार्थे महेशस्य नानारत्नोपशोभितम्। रत्नानि मणयश्चित्रा हेममौक्तिकमेव च ॥६०॥
मूर्त्तिमन्त उपागम्य अलञ्चक्रु पुरोत्तमम्[1]। चित्रा मारक्ती भूमिः सुवर्णस्तम्भशोभिता ॥६१॥
भास्वत्स्फटिकभित्तिश्च मुक्ताहारप्रलम्बिता। तस्मिन् द्वारि पुरे रम्य उद्वाहार्थं विनिर्म्मिता ॥६२॥
शुशुभे देवदेवस्य महेशस्य महात्मनः। सोमादित्यौ समं तत्र तापयन्तौ महामणी ॥६३॥
सौरभेयं मनोरम्यं गन्धमादाय मारुतः। प्रववौ सुखसंस्पर्शो भवभक्तिं प्रदर्शयन् ॥६४॥
समुद्रास्तत्र चत्वारः शक्राद्याश्च सुरोत्तमाः। देवनद्यो महानद्यः सिद्धा मुनय एव च ॥६५॥
[2]गन्धर्व्वाप्सरसः सर्व्वे नागा यक्षाः सराक्षसाः। [3]औदकाः खेचराश्चान्ये किन्नरा देवचारणाः ॥६६॥

हिमालय ने कहा—हे देव! हम सब के अभ्युदय में आप ही कारण हैं। अकस्मात् जो हम लोगो को प्रसन्नता उत्पन्न हो गई, इसमे भी आप ही कारण है। हे पितामह! जब और जिस तरह विवाह सम्पन्न हो, उसकी व्यवस्था आप ही करें। ॥५७॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण! तब पर्वतराज के वचन सुनकर मैंने परमेश्वर से कहा—'देव! विवाह कीजिये' ॥५८॥ लोक-पालक शंकर ने भी मुझसे कहा—'जैसी आप सबकी इच्छा।' विप्रवृन्द! तत्काल ही हमने शिव के विवाह के निमित्त अनेक प्रकार के रत्नो से सुशोभित नगरी का निर्माण किया ॥५९½॥ चित्र विचित्र रत्न मणि, मोती और सुवर्ण नाना शरीर धारण कर उस श्रेष्ठ नगरी को अलङ्कृत कर रहे थे। वहाँ की भूमि मरकत मणिमय थी, जहाँ सुवर्ण के स्तम्भ सुशोभित हो रहे थे ॥६०-६१॥ देवों के देव भगवान् शिव के विवाह के लिए उस रमणीय नगर के द्वार पर निर्मित चमकते हुए स्फटिकों की दीवार सुशोभित हो रही थी, जहाँ मोतियों के हार लटक रहे थे ॥६२½॥ वहाँ महामणि रूप सूर्य-चन्द्रमा समान रूप से प्रकाश फैला रहे थे। शिव भक्ति को प्रकट करते हुए वायु, जिसका स्पर्श सुखदायक था सुगन्धित तथा मनोरम गन्ध से युक्त होकर बह रहे थे ॥६३-६४॥ चारों समुद्र, इन्द्र आदि देवता, देवनदियाँ, महानदियाँ सिद्ध मुनि, गन्धर्व,अप्सरा नाग, यक्ष, राक्षस, जलचर, आकाशचर, किन्नर, देवचारण, तुम्बुरु नारद हाहा, हूहू, और साम गाने वाले (यथायोग्य) रमणीय वाद्यों को लेकर

---

१ ग ०पु। विरराज सदा मू०। २ क ०न्धर्वा किन्नरा ग०। ३ क गारका। ४ ग मूदरा।

तुम्बुरुर्नारदो हाहाहूहूश्चैव तु सामगाः। रम्याण्यादाय वाद्यानि तत्राऽऽजग्मुस्तदा पुरम् ॥६७॥
ऋषयस्तु कथास्तत्र वेदगीतास्तपोधनाः। पुण्यान् वैवाहिकान्मन्त्राञ्जेपुः संहृष्टमानसाः ॥६८॥
जगतो मातरः सर्वा देवकन्याश्च कृत्स्नशः। गायन्ति हर्षिताः सर्वा उद्वाहे परमेष्ठिनः ॥६९॥
ऋतवः षट् समं तत्र नानागन्धसुखावहाः। 'उद्वाहः शङ्करस्येति' मूर्तिमन्त उपस्थिताः ॥७०॥
नीलजीमूतसङ्काशैर्मन्द्रध्वनिप्रहर्षिभिः। केकायमानैः शिखिभिर्नृत्यमानैश्च सर्वशः ॥७१॥
विलोलपिङ्गस्पष्टविद्युल्लेखाविहासिता। कुमुदापीडशुक्लाभिर्बलाकाभिश्च शोभिता ॥७२॥

प्रत्यग्रसञ्जातशिलीन्ध्रकन्दलीलताद्रुमाद्युद्गतपल्लवा शुभा ।
शुभाम्बुधाराप्रणयप्रबोधितैर्महालसैर्भेकगणैश्च नादिता ॥७३॥
प्रियेषु मानोद्धतमानसानां, मनस्विनीनामपि कामिनीनाम् ।
मयूरकेकाभिरुतैः क्षणेन, मनोहरैर्मानविभङ्गहेतुभिः ॥७४॥
तथा विवर्णोज्ज्वलचारुमूर्त्तिना, शशाङ्कलेखाकुटिलेन सर्वतः ।
पयोदसङ्घातसमीपवर्त्तिना, महेन्द्रचापेन भृशं विराजिता ॥७५॥
"विचित्रपुष्पाम्बुभवैः सुगन्धिभिर्घनाम्बुसम्पर्कतया सुशीतलैः ।
विकम्पयन्ती पवनैर्मनोहरैः, सुराङ्गनानामलकावलीः शुभाः ॥७६॥

वहाँ उपस्थित हुए ॥६५-६७॥ तपोधन ऋषिगण वेदविहित कथा और विवाह-सबंधी पवित्र मन्त्रों का जप हर्ष पूर्वक करने लगे ॥६८॥ निखिल जगन्माताएँ तथा देवकन्याएँ शिव के विवाह में हर्ष से गान करने लगी ॥६९॥ नाना प्रकार की गन्ध तथा सुख को देने वाली छहों ऋतुएँ समान रूप से शकर के विवाह मे शरीर धारण कर उपस्थित हुईं ॥७०॥ ((वर्षा ऋतु के आने पर) नील मेघ के समान कान्ति वाले और मन्द्र-ध्वनि से हर्षित होने वाले मयूर शब्द करते हुए नाचने लगे ॥७१॥)वह ऋतु चचल तथा पिंगलवर्ण वाली विद्युत्-पंक्तियों से आभासित एवम् कुमुदों की माला के समान शुक्ल बलाकाओं (बगलियों) से सुशोभित थी ॥७२॥ कदली, लता और वृक्षों के अभिनव पल्लवों से उसकी अपूर्व शोभा थी। कल्याणमय मेघों के प्रेम के कारण जगे हुए अत्यन्त आलसी मेढकों से एवम् प्रियजनों के प्रति मान करने से उद्धत मन वाली मनस्विनी कामिनियों के क्षण भर में मान-भग के हेतुभूत मनोहर मयूर-वाणी के शब्दों से वह शब्दायमान हो रही थी ॥७३-७४॥ विविध वर्ण तथा उज्ज्वल वर्ण वाले, सुन्दर रूप वाले चन्द्र-लेखा के समान सब ओर से कुटिल तथा मेघसमूह के समीपवर्ती इन्द्र-धनुष से वह अत्यन्त सुशोभित हो रही थी ॥७५॥ नाना प्रकार के पुष्पों के रस से सुगन्धित और मेघ-जल के सपर्क से सुशीतल मनोहर पवनों के द्वारा वह मानों देवागनाओं की पवित्र अलकावलियाँ (केश समूह) को कंपित कर रही थी ॥७६॥ गरजते हुए बादल में चन्द्रबिम्ब को छिपाने वाली तथा

---

१ क ०म्मुगिरे पु०। २ क ०कन्या सहस्रशः। ३ क ख उद्वाहे। ४ क ०रस्येह मू०। ५ ख ०नीरक्ताकारं प्रदर्शितं। वे०। ६ क ०विनामिता। ७ क कुसुमापी०। ८ ख ०दाकरसु०। ९ ग ०या त्रिव०। १० क ०पुष्पामरणं मु०। ग ०पुष्पस्य रसे सु०।

गर्जत्पयोदस्थगितेन्दुबिम्बा, नवाम्बुसिक्तोदकचारुदूर्वा ।
निरीक्षिता सादरमुत्सुकाभिर्निश्वासधूम्रं पथिकाङ्गनाभिः ॥७७॥
हंसनूपुरशब्दाढ्या समुन्नतपयोधरा। चलद्विद्युल्लताहारा स्पष्टपद्मविलोचना ॥७८॥
असितजलदघोरध्वानवित्रस्तहंसा, विमलसलिलधारोत्पातनम्रोत्पलाग्रा ।
सुरभिकुसुमरेणुक्लृप्तसर्वाङ्गशोभा, गिरिदुहितृविवाहे प्रावृडाविर्बभूव ॥७९॥
मेघकञ्चुकनिर्मुक्ता पद्मकोशोद्भवस्तनी। हंसनूपुरनिह्रादा सर्वशस्यदिगन्तरा ॥८०॥
विस्तीर्णपुलिनश्रोणी कूजत्सारसमेखला। प्रफुल्लेन्दीवरश्यामविलोचनमनोहरा ॥८१॥
पक्वबिम्बाधरपुटा कुन्ददन्तप्रहासिनी। नवश्यामलताश्यामरोमराजिपुरस्कृता ॥८२॥
चन्द्रांशुहारवर्गेण कण्ठोरस्थलगामिना। प्रह्लादयन्ती चेतांसि सर्वेषां त्रिदिवौकसाम् ॥८३॥
समदालिकुलोद्गीतमधुरस्वरभाषिणी। चलत्कुमुदसंघातचारुकुण्डलशोभिनी ॥८४॥
रक्ताशोकप्रशाखोत्थपल्लवाङ्गुलिधारिणी । तत्पुष्पसञ्चयमयैर्वासोभिः समलङ्कृता ॥८५॥
रक्तोत्पलाग्रचरणा जातीपुष्पनखावली। कदलीस्तम्भवामोरुः शशाङ्कवदना तथा ॥८६॥
सर्वलक्षणसम्पन्ना सर्वालङ्कारभूषिता। प्रेम्णा स्पृशति कान्तेव सानुरागा मनोरमा ॥८७॥

नवीन जल से सिक्त सुन्दर घासवाली वर्षा ऋतु को राह चलने वाली रमणियाँ आदर तथा उत्सुकता से देखकर अपनी साँसों से मानो धूमिल कर रही थी ॥७७॥ वह ऋतु मानो समुन्नत पयोधर (मेघ, स्तन) वाली, विकसित कमल सदृश नेत्र वाली, चपल विद्युल्लता रूप हार वाली तथा हंस (हंस पक्षी, पैर के कड़े) और नूपुर के शब्दों से युक्त रमणी थी ॥७८॥ वह काले बादल के गम्भीर गर्जन से त्रस्त हंस वाली, निर्मल जलधारा के गिरने से अवनत कमल के अग्रभाग वाली और सुगन्धित पुष्पों की रेणु से सुशोभित सर्वाङ्ग वाली थी। इस प्रकार वर्षा ऋतु गिरि-कन्या के विवाह में आविर्भूत हुई ॥७९॥ (तदनन्तर शरद् ऋतु का आगमन)। मेघरूप कंचुकी से निर्मुक्त, कमल की कलियों रूपी स्तनों वाली, हंस और नूपुर से शब्दित, सब दिशाओं में अन्नों से परिपूर्ण, विस्तृत तट रूप नितम्ब वाली, शब्द करते हुए सारस पक्षी रूप मेखला वाली, विकसित नील कमल रूपी मनोहर नेत्र वाली, पके बिम्ब फल (कुन्दुरु के फल) रूपी अधर वाली, कुन्द पुष्प रूपी दाँतों से हँसने वाली, श्यामलता रूपी कृष्ण रोमावलियों से युक्त, गले से वक्षःस्थल तक लटकते हुए चन्द्रकिरण रूपी हारों से देवताओं के चित्त को आह्लादित करने वाली, मदमत्त भ्रमरों के गीत रूपी मधुर स्वर में बोलने वाली, चञ्चल कुमुद-पुष्प-समूह रूपी सुन्दर कुण्डलों से शोभित रक्त अशोक की शाखा के पल्लव रूपी अंगुलियाँ धारण करने वाली, लाल अशोक-पुष्पों के संचय रूपी वस्त्रों से अलंकृत, रक्त कमल के अग्रभाग रूपी चरणों वाली, चमेली के पुष्प रूपी नख-पंक्ति वाली कदली-स्तम्भ रूपी सुन्दर जंघा वाली, चन्द्रमुखी, समस्त लक्षणों से युक्त और सब प्रकार के भूषणों से भूषित शरद् ऋतु मानो अनुरागपूर्ण सुन्दरी स्त्री की तरह प्रेम से स्पर्श करती

निर्मुक्तासितमेघकञ्चुकपटा पूर्णेन्दुबिम्बानना[1], नीलाम्भोजविलोचना रविकरप्रोद्भिन्नपद्मस्तनी।
नानापुष्परजःसुगन्धिपवनप्रह्लादनी चेतसां, तत्राऽऽसीत् कलहंसनूपुररवा देव्या विवाहे शरत् ॥८८॥
अत्यर्थशीतलाम्भोभिः प्लावयन्तौ दिशः सदा। ऋतू हेमन्तशिशिरौ आजग्मतुरतिद्युतौ ॥८९॥
ताभ्यामृतुभ्यां संप्राप्तो[2] हिमवान् स नगोत्तमः। प्रालेयचूर्णवर्षिभ्यां क्षिप्रं रौप्यहरो[3] बभौ ॥९०॥
तेन प्रालेयवर्षेण घनेनैव हिमालयः। अगाधेन तदा रेजे क्षीरोद इव सागरः ॥९१॥
ऋतुपर्यायसम्प्राप्तो बभूव स महागिरिः। साधूपचारात् सहसा कृतार्थ[4] इव दुर्जनः ॥९२॥
प्रालेयपटलच्छन्नैः शृङ्गैस्तु शुशुभे नगः। छत्रैरिव महाभागैः पाण्डरैः पृथिवीपतिः ॥९३॥

मनोभवोद्रेककराः[5] सुराणां[6] सुराङ्गनानाञ्च मुहुः समीराः[7] ।
स्वच्छाम्बुपूर्णाश्च[8] तथा नलिन्यः पद्मोत्पलानां कुसुमैरुपेताः ॥९४॥
विवाहे गुरुकन्यायां वसन्तः समगादृतुः ॥९५॥
ईषत्समुद्भिन्नपयोधराग्रा नार्यो यथा रम्यतरा बभूवुः ।
नात्युष्णशीतानि[9] पयःसरांसि[10] किञ्जल्कचूर्णैः कपिलीकृतानि[11] ॥
चक्राह्वयुग्मैरुपनादितानि ययुः प्रहृष्टाः सुरदन्तिमुख्याः ॥९६॥

प्रियङ्गुश्चूततरवश्चूताश्चापि प्रियङ्गवः। तर्ज्जयन्त इवान्योन्यं मञ्जरीभिश्चकाशिरे ॥९७॥

था ॥८०-८७॥ कृष्ण मेघ रूपी कंचुकी से निर्मुक्त पूर्ण-चन्द्र बिम्ब के समान मुख वाली नील कमल के समान नेत्र वाली, सूर्य किरण से विकसित कमल के समान स्तन वाली, अनेक पुष्पों की रेणु से सुगन्धित पवनों द्वारा चित्त को आनन्द देने वाली तथा राजहंस के समान नूपुरों द्वारा शब्द करने वाली शरद् ऋतु पार्वती के विवाह में उपस्थित हुई। ॥८८॥ अत्यन्त शीतल जल से दिशाओं को सदा प्लावित करती हुई महाकान्ति वाली हेमन्त तथा शिशिर ऋतुएँ भी आयी ॥८९॥ हिम चूर्णों को बरसाने वाली उन ऋतुओं से प्राप्त (सम्मिलित) पर्वतश्रेष्ठ हिमालय शीघ्र ही चाँदनी के आलयों की तरह शोभित होने लगा ॥९०॥ हिमवर्षा करने वाले अगाध मेघ से हिमालय क्षीर-समुद्र की तरह सुशोभित हुआ ॥९१॥ अच्छे उपचारों से जैसे दुर्जन कृतार्थ हो जाता है वैसे ऋतुओं के आगमन से वह महापर्वत (कृतकृत्य) हुआ ॥९२॥ हिम समूह से आच्छादित शिखरों से पर्वत की वैसी ही शोभा हुई जैसी महा-सुन्दर श्वेत छत्र से राजा की होती है ॥९३॥ देवता तथा देवांगनाओं में कामोद्दीपन करने वाले पवन बार-बार बहने लगे। जलाशय स्वच्छ जल से पूर्ण एवं कमल और कुमुद के पुष्पों से युक्त हुए ॥९४॥ पवन-पुत्री के विवाह में बसन्त ऋतु आई ॥९५॥ (उसके आने पर) जैसे थोड़े उभरे हुए स्तनाग्र वाली नारियाँ अधिक रमणीय होती हैं वैसे न अधिक गरम न अधिक ठंढे जल वाले सरोवर पुष्परेणु (या कमल के केसरों) से कपिल वर्ण बन शोभित हो रहे थे। चकवा चकई से शब्दित उन सरोवरों में देवताओं के श्रेष्ठ हाथी हर्ष से जाते थे ॥९६॥ प्रियंगुवृक्ष आम्रवृक्षों को और आम्रवृक्ष प्रियंगुवृक्षों को मानो परस्पर धकेलते हुए मंजरियों से सुशोभित हो रहे थे ॥९७॥ हिमालय के उज्ज्वल

---

१ ग ०ना ग्लिा०। २ क सम्याप्तो। ३ ख ०भो। हिममयप्रव०। ४ ग हृतार्थ। ५ ग ०वाद्वेगक०। ६ ग ०णां नगाग०। ७ क समीरणा। ख सुचिरा। ८ ग ०म्बुपर्णा०। ९ ख ०नि दिव पयासि। १० ख सरोयासि। ११ क ०पलाञ्छिता०।

'हिमशृङ्गेषु शुक्लेषु तिलकाः 'कुसुमोत्कराः। शुशुभुः कार्य्यमुद्दिश्य वृद्धा इव समागताः॥९८॥
फुल्लाशोकलतास्तत्र रेजिरे शालसंश्रिताः। कामिन्य इव' कान्तानां कण्ठालम्बितबाहवः'॥९९॥

तस्मिन्नृतौ शुभ्रकदम्बनीपास्तालास्तमालाः सरलाः कपित्थाः ॥१००॥
अशोकसर्ज्जार्ज्जुनकोविदाराः पुन्नागनागेश्वरकर्णिकाराः ।
लवङ्गतलागुरुसप्तपर्णा न्यग्रोधशोभाञ्जननारिकेलाः ॥१०१॥
वृक्षास्तथाऽन्ये फलपुष्पवन्तो 'दृश्या बभूवुः सुमनोहराङ्गाः ।
जलाशयाश्चैव सुवर्णतोयाश्चक्राङ्गकारण्डवहंसजुष्टाः ॥१०२॥
कोयष्टिदात्यूहबलाकयुक्ता 'दृश्यास्तु पद्मोत्पलमीनपूर्णाः ।
खगाश्च नानाविधभूषिताङ्गा 'दृश्यास्तु वृक्षेषु सुचित्रपक्षाः ॥१०३॥
क्रीडासु' युक्तानय' तज्जयन्तः कुर्वन्ति शब्दं मदनेरिताङ्गाः ।
तस्मिन् गिरावद्रिसुताविवाहे ववुश्च वाताः सुखशीतलाङ्गाः ॥१०४॥
पुष्पाणि ''शुभ्राण्यपि पातयन्तः शनैर्नगेभ्यो मलयाद्रिजाताः
तथैव सर्वे ऋतवश्च पुण्याश्चक्राशिरेऽन्योन्यविमिश्रिताङ्गाः ॥१०५॥
येषां सुलिङ्गानि च कीर्तितानि, ते तत्र आसन् सुमनोज्ञरूपाः ॥१०६॥
समदालिकुलोद्गीतशिलाकुसुमसञ्चयैः। परस्पर हि मालत्यो भावयन्त्यो विरेजिरे॥१०७॥

शिखरों पर पुष्पों से युक्त तिलक वृक्ष कार्य के उद्देश्य से आये हुए वृद्ध पुरुषों की तरह शोभा पा रहे थे॥९८॥ साखू से लिपटी हुई प्रफुल्लित अशोकलता प्रियतम के गले में अपनी बाँह डाले हुई कामिनी की तरह विराजमान थी।॥९९॥ उस ऋतु में सफेद कदम्ब, नील अशोक, ताल, तमाल, सरल, कैथा, अशोक, सर्ज (साखू) अर्जुन, कचनार, पुन्नाग, नागेश्वर वनचम्पा लवंग, अगर, सप्तवर्ण (छितवन) वट, शोभाञ्जन (सहिजन), नारियल और दूसरे भी फल-फूल वाले वृक्ष अत्यन्त सुन्दर अंगों में दिखाई पड़े॥१००-१०१½॥ सुवर्ण के समान जल वाले, चक्राङ्ग, कारण्डव और हंसों से सेवित टिट्टिभ, दात्यूह (कठफोड़वा) तथा बलाकों से युक्त एवम् कमल, कुमुद तथा मछलियों से पूर्ण तालाब देखने योग्य थे॥१०२½॥ वृक्षों पर चित्र विचित्र पंख वाले तथा विविध भूषणों से भूषित पक्षीगण काम-विह्वल होकर क्रीडा में निरत पक्षियों को (चंचु से) मारते हुए कलरव कर रहे थे॥१०३½॥ पार्वती के विवाह में उस पर्वत पर सुख तथा शीतल स्पर्श वाला वायु बह रहा था॥१०४॥ पर्वतों से धीरे-धीरे मलयानिल निकल कर श्वेत पुष्पों को गिरा रहा था। उसी प्रकार सब पवित्र ऋतुएँ परस्पर मिलकर विराज रही थीं॥१०५॥ जिन ऋतुओं के सब चिह्न बना दिये गये हैं, वे सब मनोहर रूप में वहाँ थीं॥१०६॥ मदमत्त भ्रमरों से गुंजित शिला-पुष्प के समूह से परस्पर मिलती हुई मालती लतायें शोभित हो रही थीं॥१०७॥ सरोवर का जल नील

---

१ क हिमाद्यस्य शृङ्गेषु। २ ख कुसुमाकराः। ३ क कराल०। ४ ग ०नमूलेय। ग०। ५ क ग दृश्यन्ति सर्वत्र म०। ६ क ग दृश्यन्ति। ७ क ग दृश्यन्ति। ८ ख ०डा प्रयुक्तास्तव्य। ९ ग ०क्तास्तव्य। १० ख पत्राण्यपि।

नीलानि नीलाम्बुरुहैः पयांसि, गौराणि गौरैश्च मृणालदण्डैः ।
रक्तैश्च रक्तानि भृशं कृतानि, मत्तद्विरेफावलिजुष्टपत्रैः ॥१०८॥
हैमानि विस्तीर्णजलेषु केषुचिन्निरन्तरं चारुतराणि केषुचित् ।
वैदूर्यनालानि सरःसु केषुचित्प्रजज्ञिरे पद्मवनानि सर्वतः ॥१०९॥
वाप्यस्तत्राभवन्रम्याः कमलोत्पलपुष्पिता.। नानाविहङ्गसंजुष्टा[1] हैमसोपानपङ्क्तयः ॥११०॥
शृङ्गाणि तस्य तु गिरेः कर्णिकारैः सुपुष्पितैः। समुच्छ्रितान्यविरलैर्हेमानीव बभुर्द्विजा ॥१११॥
ईषद्विभिन्नकुसुमैः[2] पाटलैश्चापि पाटलाः। संबभूवुर्दिशः सर्वाः पवनाकम्पिमूर्तिभिः ॥११२॥
कृष्णार्जुना दशगुणा नीलाशोकमहीरुहाः। गिरौ ववृधिरे फुल्लाः स्पर्धयन्तः परस्परम् ॥११३॥
वाग्रावविजुष्टानि किंशुकानां वनानि च। पर्वतस्य नितम्बेषु सर्वेषु च विरेजिरे ॥११४॥
तमालगुल्मैस्तस्यासीऽऽच्छोभा हिमवतस्तदा[3]। नीलजीमूतसङ्घातैर्निलीनैरिव सन्धिषु[4] ॥११५॥
निकामपुष्पैः सुविशालशाखैः[5], समुच्छ्रितैश्चन्दनचम्पकैश्च ।
प्रमत्तपुंस्कोकिलसम्प्रलापैर्हिमाचलोऽतीव तदा रराज ॥११६॥
श्रुत्वा शब्दं मृदुमदकलं सर्वतः कोकिलानां, चञ्चत्पक्षाः सुमधुरतरं नीलकण्ठा विनेदुः।
तेषां शब्दैरुपचितबलः पुष्पचापेषु हस्तः, सज्जीभूतस्त्रिदशवनिता[7] वेद्धुमङ्गेष्वनङ्गः ॥११७॥
पटुः सूर्यातपश्चापि प्रायशोऽल्प (ल्पो) जलाशयः। देवीविवाहसमये ग्रीष्म आगाद्धिमाचलम् ॥११८॥

कमलों म से नील, श्वेत मृणालदण्डो से श्वेत तथा मदमत्त भ्रमरावली स सेवित पत्रवाले लाल कमलों से लाल हो गया था॥१०८॥ किसी विस्तीर्ण जल वाले सरोवर म स्वर्ण वर्ण वाले, किसी मे अत्यन्त रमणीय और किसी मे वैदूर्य मणि के मृणाल वाले कमलो के वन उत्पन्न हुए थे ॥१०९॥ वहाँ कमल तथा कुमुद पुष्पो से युक्त अनेक पक्षियो से सेवित तथा सुवर्ण की पीढ़ियो से समन्वित बावलियाँ थी ॥११०॥ द्विजगण ! उस पर्वत के विस्तृत शिखर सघन कनकचम्पा वृक्षो से सुपुष्पित होकर सोने की तरह छिटक रहे थे ॥१११॥ वायु से कम्पित किञ्चित् विकसित पाटला के पुष्पो से सब दिशायें श्वेत-रक्त वर्ण की हो गई थी ॥११२॥ पर्वत पर नील अशोक वृक्ष तथा कृष्ण अर्जुन वृक्ष परस्पर स्पर्धा करते हुए दश गुना बढने लगे ॥११३॥ मनोहर शब्दो से सेवित पलाश के वन पर्वत के नितम्बो पर विराज रहे थे॥११४॥ सधियो (सन्ध्या समय) मे छिपे हुए काले बादलो के समूह जैसे तमाल वृक्षो से हिमालय की शोभा हो रही थी॥११५॥ अतिशय पुष्पित विशाल शाखाओ से युक्त तथा विस्तृत चन्दन और चम्पा वृक्षो से और मत्त पुरुष-कोकिलो के प्रलाप से हिमालय अत्यन्त शोभित हो रहा था॥११६॥ कोकिलो के मृदु तथा मद से भरे शब्दो को सुनकर मयूर पखो को फैलाकर अत्यन्त मधुर शब्द करने लगे। उनके शब्दो से बल प्राप्त कर पुष्पो का धनुष हाथ मे लेकर तैयारी के साथ कामदेव देवागनाओं को वेध करने लगा॥११७॥ सूर्य की किरणें तीक्ष्ण होने लगी और प्राय तालाबो म जल घटने लगा, जब देवी

---

१ ख ०गमयुता है०। २ ग सपुष्टा। ३ क ०पदुद्मिम०। ४ ख ०वत शुभा। नी०। ५ ख सानुषु।
६ क शब्दमृदुम०। ७ ग ०निता वे०।

स चापि तरुभिस्तत्र बहुभिः कुसुमोत्करैः। शोभयामास शृङ्गाणि प्रालेयाद्रेः समन्ततः॥११९॥
तथाऽपि च गिरौ तत्र वायवः सुमनोहराः। ववुः पाटलविस्तीर्णकदम्बार्जुनगन्धिनः॥१२०॥
वाप्यः प्रफुल्लपद्मौघकेसरारुणमूर्तयः। अभवंस्तत्तसंघु (जु) ष्टकलहंसकदम्बकाः[१]॥१२१॥
तथा कुरवकाश्चापि कुसुमापाण्डुमूर्तयः। सर्वेषु नगशृङ्गेषु भ्रमरावलिसेविताः॥१२२॥
बकुलाश्च नितम्बेषु विशालेषु महीभृतः। उत्ससर्जुर्मनोज्ञानि कुसुमानि समन्ततः॥१२३॥

इति कुसुमविचित्रसर्ववृक्षा विविधविहङ्गमनादरम्यदेशाः ।
[२]हिमगिरितनयाविवाहभूत्यै षडृतवो मुनिप्रवीराः ॥१२४॥

तत एवं प्रवृत्ते तु सर्वभूतसमागमे। 'नानावाद्यसमाकीर्णे[३] अहं तत्र द्विजातयः॥१२५॥
शैलपुत्रीमलंकृत्य योग्याभरणसम्पदा[४]। पुरं प्रवेशितवांस्तां स्वयमादाय भो द्विजाः॥१२६॥
ततस्तु पुनरेवेशमहं चैवोक्तवान् विभुम्[५]। हविर्जुहोमि[६] वह्नौ ते उपाध्यायपदे स्थितः[७]॥१२७॥
ददासि मह्यं यद्याज्ञां कर्त्तव्योऽयं क्रियाविधिः। मामाह शङ्करश्चैवं देवदेवो जगत्पतिः॥१२८॥

शिव उवाच

[९]यदुद्दिष्टं सुरेशान तत्कुरुष्व यथेप्सितम्। कर्त्ताऽस्मि वचनं सर्वं ब्रह्मंस्तव जगद्विभो॥१२९॥

के विवाह के समय ग्रीष्म ऋतु हिमालय पर जा पहुँचा॥११८॥ वह भी प्रचुर पुष्पों से युक्त वृक्षों से हिमालय के शिखरों को सब ओर से शोभित कर रही थी॥११९॥ पर्वत पर पाटला, विस्तीर्ण कदम्ब तथा अर्जुन के गन्धों से युक्त मनोहर वायु बह रहा था॥१२०॥ बावलियाँ विकसित पद्म-समूह के केसरों से अरुण रंग की हो गई थीं॥१२१॥ जिनके तट कलहंसों और कदम्बों से सेवित थे॥१२१॥ श्वेतवर्ण के कुसुमों से युक्त तथा भ्रमरावलियों से सेवित कुरवक वृक्ष समस्त पर्वत शिखरों पर शोभित हो रहे थे। पर्वत के विशाल नितम्बों पर मौलसिरी मनोहर पुष्पों को चारों ओर बिखेर रहे थे॥१२२-१२३॥ मुनिवर! सब वृक्ष पुष्पों से विचित्र दीखते थे। विविध पक्षियों से सब स्थान रम्य लगते थे। गिरिपुत्री का विवाहोत्सव मनाने के लिए छहों ऋतुएँ उपस्थित हुईं॥१२४॥ द्विजगण! तदुपरान्त नानाप्रकार के बाजों से युक्त सब प्राणियों के समागम होने पर मैंने पार्वती को समुचित आभूषणों से अलंकृत कर स्वयं लेकर नगर में प्रवेश कराया॥१२५-१२६॥ तब भगवान् शंकर से मैंने कहा—'भगवन् उपाध्याय-पद पर स्थित होकर मैं हवन करूँगा। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं यह क्रिया प्रारम्भ करूँ।' तब देवदेव जगत्पति शंकर ने मुझसे कहा॥१२७-१२८॥

शिव बोले—देवेश! एवमस्तु। ब्रह्मन्! जगत्स्वामी! मैं तुम्हारे सभी वचनों का अनुमोदन करता हूँ॥१२९॥

---

१ क ०सपुष्प०। २ क ०हमूर्ध्ने। ३ ग ०धातारौ०। ४ ख ०र्णे देवास्तत्र द्विजा स्वयम्। मं०। ५ ग ०दा। सम्यो षयैन्यामागु स्व०। ६ क ०म्। वह्निं जुहो०। ७ क ०मि विधिवद्गुरा०। ८ क ०ग। इति तस्य वदतस्य-सर्वाङ्गस्या क्रियाविधौ। मा०। ९ ख यदादिष्ट।

ब्रह्मोवाच

ततश्चाहं प्रहृष्टात्मा कुशानादाय सत्वरम्। हस्तं देवस्य देव्याश्च योगबन्धेन युक्तवान् ॥१३०॥
ज्वलनश्च स्वयं तत्र कृताञ्जलिपुटः स्थितः। श्रुतिगीतैर्महामन्त्रैर्मूर्तिमद्भिरुपस्थितैः ॥१३१॥
यथोक्तविधिना हुत्वा सर्पिस्तदमृतं हविः। ततस्तं ज्वलनं सर्वं कारयित्वा प्रदक्षिणम् ॥१३२॥
मुक्त्वा हस्तसमायोगं सहितः सर्वदैवतैः। पुत्रैश्च मानसैः सिद्धैः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥१३३॥
वृत्त उद्वाहकाले तु प्रणम्य च वृषध्वजम्। योगेनैव तयोर्विप्रास्तदुमापरमेशयोः ॥१३४॥
उद्वाहः स परो वृत्तो यं देवा न विदुः क्वचित्। इति वः सर्वमाख्यातं स्वयंवरमिदं शुभम्। ।
उद्वाहश्चैव देवस्य शृणुध्वं परमाद्भुतम् ॥१३५॥

इति श्रीआदिब्राह्मे महापुराणे स्वयंभु-ऋषिसंवादे उमामहेश्वरयोर्विवाहनिरूपणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

ब्रह्मा ने कहा—उसके बाद मैं प्रसन्न होकर शीघ्र कुशो को लेकर देवी और देव के हाथो को योगबन्धन से बाँध दिया ॥१३०॥ स्वयं अग्नि हाथ जोड कर वहाँ उपस्थित थे। शरीर धरकर वहाँ उपस्थित वेदविहित महामन्त्रो से विधानपूर्वक मैंने हवन किया। वहाँ घी की जगह अमृत ही था ॥१३१½॥ तब अग्नि की प्रदक्षिणा करा कर उनका हस्तबन्धन छोड़वा दिया। विप्रवृन्द! विवाह काल के समाप्त होने पर मैंने प्रसन्न चित्त से सभी देवताओ, अपने मानस पुत्रो तथा सिद्धो के साथ शिव को प्रणाम किया। योग ही से उमा और महेश्वर का विवाह सम्पन्न हुआ—इस वृत्तान्त को वही देवताओ ने नही समझा। इस शुभ स्वयंवर का सब-वर्णन मैंने आपसे कर दिया ॥१३२-१३४½॥ अब शिव के परम अद्भुत विवाह के विषय मे भी सुन लीजिये ॥१३५॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण मे उमा और महेश्वर के विवाह निरूपण नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३६॥

---

१ ख ०तिगीतै०। २ क ०गेनानेन विप्रास्तु तुष्टुवुः परमेश्वरौ। उ०। ३ ख वृतम्।

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

शिवस्तुति-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अथ वृत्ते विवाहे तु[1] भवस्यामिततेजसः। प्रहर्षमतुलं गत्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ॥
[2]तुष्टुवुर्वाग्भिराद्याभि[3] प्रणेमुस्ते महेश्वरम् ॥१॥

देवा ऊचुः

नमः पर्वतलिङ्गाय[4] पर्वतेशाय वै नमः। नमः पवनवेगाय विरूपायाजिताय च ॥
नमः क्लेशविनाशाय दात्रे च[5] शुभसम्पदाम् ॥२॥
नमो नीलशिखण्डाय अम्बिकापतये नमः। नमः पवनरूपाय[6] शतरूपाय[7] वै नमः॥३॥
नमो भैरवरूपाय विरूपनयनाय च[8]। नमः सहस्रनेत्राय[9] सहस्रचरणाय च॥४॥
नमो देववयस्याय वेदाङ्गाय नमो नमः। विष्टम्भनाय शक्रस्य बाह्वोर्वेदाङ्कुराय च॥५॥
चराचराधिपतये शमनाय नमो नमः। सलिलाशयलिङ्गाय युगान्ताय नमो नमः॥६॥
नमः कपालमालाय कपालसूत्रधारिणे। नमः कपालहस्ताय दण्डिने[10] गदिने नमः॥७॥

अध्याय ३७

शिव की स्तुति का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—अमित तेजस्वी शिव के विवाह सम्पन्न हो जाने पर इन्द्र को अगुवा बनाकर देवगण अत्यन्त हर्ष से महेश्वर के पास गए और प्रणाम करके आद्य वाणी से उनकी स्तुति करने लगे॥१॥

देववृन्द बोले—पर्वतलिंग को नमस्कार है, पर्वतेश को नमस्कार है, पवनवेग, विरूप और अजित को नमस्कार है, क्लेश-नाशक तथा शुभ-सम्पत्तिदायक को नमस्कार है॥२॥ नीलशिखण्ड को नमस्कार है, अम्बिकापति को नमस्कार है, पवनरूप को नमस्कार है, शतरूप को नमस्कार है॥३॥ भैरवरूप तथा विरूपाक्ष को नमस्कार है, सहस्रनेत्र तथा सहस्रचरण को नमस्कार है॥४॥ देवमित्र को नमस्कार है, वेदाग को नमस्कार है, इन्द्र की बाहों को स्तम्भित करने वाले तथा वेदांकुर को नमस्कार है॥५॥ चराचर के स्वामी तथा शमन को नमस्कार है, जलाशय म लिंग वाले तथा युगो का अन्त करने वाले को नमस्कार है॥६॥ कपालमाला तथा कपाल-सूत्र धारी को नमस्कार है, कपाल,

---

१ क. ख शिव०। २ क ०ग्भिरर्घ्याभि०। ख ०ग्भिरिष्टाभि०। ३ क ०द्याभिरमया सह शंकर०। ४ ख ०तवाशाय नमः पर्वतचारिणे। न०। ५ ख पर्वतजामात्रे। ६ ग घ मुनस०। ७ क. पवनरूपाय। ख. पर्वतनाथाय। ८ क स्वेतरूपाय। ९ क. घ। सहस्रनेत्रशीर्षाय। १० ग दण्ड्रिणे।

नमस्त्रैलोक्यनाथाय पशुलोकरताय च। नमः खट्वाङ्गहस्ताय प्रमथार्त्तिहराय च॥८॥
नमो यज्ञशिरोहन्त्रे कृष्णकेशापहारिणे[1]। भगनेत्रनिपाताय पूष्णो दन्तहराय च॥९॥
नमः पिनाकशूलासिखड्गमुद्गरधारिणे। नमोऽस्तु कालकालाय तृतीयनयनाय च॥१०॥
अन्तकान्तकृते चैव नमः पर्व्वतवासिने। सुवर्णरेतसे चैव नमः कुण्डलधारिणे॥११॥
दैत्यानां[2] योगनाशाय योगिनां गुरवे नमः। शशाङ्कादित्यनेत्राय ललाटनयनाय च॥१२॥
नमः श्मशानरतये श्मशानवरदाय च। [3]नमो दैवतनाथाय त्र्यम्बकाय नमो नमः॥१३॥
गृहस्थसाधवे नित्यं जटिले ब्रह्मचारिणे। नमो मुण्डार्धमुण्डाय पशूनां पतये नमः[4]॥१४॥
सलिले तप्यमानाय योगैश्वर्यप्रदाय च। नमः शान्ताय दान्ताय प्रलयोत्पत्तिकारिणे॥१५॥
नमोऽनुग्रहकर्त्रे च स्थितिकर्त्रे नमो नमः। नमो रुद्राय वसव आदित्यायाश्विने नमः[5]॥१६॥
नमः पित्रेऽथ साङ्ख्याय विश्वेदेवाय वै नमः। नमः शर्वाय उग्राय शिवाय वरदाय च॥१७॥
नमो भीमाय सेनान्ये पशूनां पतये नमः। शुचये वैरिहानाय सद्योजाताय वै नमः॥१८॥
महादेवाय चित्राय[6] विचित्राय च वै नमः। प्रधानायाप्रमेयाय कार्याय कारणाय च॥१९॥
पुरुषाय नमस्तेऽस्तु पुरुषेच्छाकराय च। नमः पुरुषसंयोगप्रधानगुणकारिणे॥२०॥

दण्ड तथा गदाधारी को नमस्कार है॥७॥ त्रिलोकीनाथ तथा पशुलोक में रत रहने वाले को नमस्कार है, खट्वाग (अस्त्र विशेष) धारी तथा प्रमथ (शिव के अनुचर) की आर्ति को हरने वाले को नमस्कार है॥८॥ यज्ञ शिर के हन्ता तथा कृष्णकेश (मृगचर्म ?) के अपहर्ता को नमस्कार है, भग देवता के नेत्र को गिराने वाले तथा पूषा के दन्तों को तोडने वाले को नमस्कार है॥९॥ पिनाक (शिवधनुष), त्रिशूल तल्वार, खाँडा तथा मुदगर धारण करन वाले को नमस्कार है, कालो के काल तथा तृतीय नेत्रधारी को नमस्कार है॥१०॥ कालनाशन तथा पर्वतवासी को नमस्कार है, सुवर्णरूप वीर्यवाले (?) तथा कुण्डल धारण करने वाले को नमस्कार है॥११॥ दैत्यो के योग के नाशकर्ता तथा योगियो के गुरु को नमस्कार है, सूर्य-चन्द्रमा-रूपी नेत्रो वाले तथा मस्तक पर नत्र वाले को नमस्कार है॥१२॥ श्मशान म रत तथा श्मशान मे वर देने वाले को नमस्कार है, देवताओ के स्वामी तथा त्र्यम्बक (तीन नेत्र वाले) को नमस्कार है॥१३॥ गृहस्थो म साधु, नित्य जटाधारी तथा ब्रह्मचारी को नमस्कार है, मुण्डी, अध-मुण्डी तथा पशुपति को नमस्कार है॥१४॥ जल म तप्त होने वाले तथा योग-ऐश्वर्य को देने वाले को नमस्कार है शान्त, दान्त तथा सृष्टि प्रलयकारी को नमस्कार है॥१५॥ अनुग्रह-कर्ता तथा स्थिति-कर्ता को नमस्कार है रुद्र, वसु आदित्य तथा अश्विनीकुमार को नमस्कार है॥१६॥ पिता, साख्यरूप तथा विश्वेदेव को नमस्कार है, शर्व, उग्र, शिव तथा वरद को नमस्कार है॥१७॥ भीमरूप, सेनानी तथा पशुपति को नमस्कार है, पवित्ररूप, शत्रुनाशन तथा सद्य उत्पन्न को नमस्कार है॥१८॥ महादेव, चित्त तथा विचित्ररूप को नमस्कार है, प्रधान, अप्रमेय, कार्य तथा कारणरूप को नमस्कार है॥१९॥ पुरुष तथा पुरुषरूप पुत्र की इच्छा करने वाल को नमस्कार

---

१ ग ०ायहा०। २ क वृषभगामिने। ३ क राहवे। ४ ख ०ोऽवनतना०। ५ ख ०म। मुनिशनमुमा०। ६ ख ०म। साध्याय विश्वगनये वि०। ७ ग ०य शूलिने च नमः न०।

प्रवर्त्तकाय प्रकृते पुरुषस्य च सर्वशः। कृताकृतस्य [1]सत्कर्त्रे फलसयोगदाय च॥२१॥
कालज्ञाय च [2]सर्वेषा नमो नियमकारिणे। नमो वैषम्यकर्त्रे च गुणाना वृत्तिदाय च॥२२॥
नमस्ते देवदेवेश नमस्ते भूतभावन। शिव सौम्यमुखो द्रष्टु भव सौम्यो हि नः प्रभो॥२३॥

ब्रह्मोवाच

एवं स भगवान् देवो जगत्पतिरुमापति। स्तूयमान सुरै सर्वैरमरानिदमब्रवीत्॥२४॥

श्रीशङ्कर उवाच

द्रष्टु सुखश्च सौम्यश्च देवानामस्मि भो. सुरा। [3]वर वरयत क्षिप्र दाताऽस्मि तमसशयम्॥२५॥

ब्रह्मोवाच

ततस्ते प्रणता. सर्वे सुरा ऊचुस्त्रिलोचनम् ॥२६॥

देवा ऊचुः

तवैव भगवन् हस्ते वर एवोऽवतिष्ठताम्। यदा कार्यं तदा नस्त्वं दास्यसे वरमीप्सितम्॥२७॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति तानुक्त्वा विसृज्य च सुरान् हरः। लोकाश्च [4]प्रमथै सार्धं विवेश [5]भवनंस्वकम्॥२८॥

है पुरुष-सयोग से प्रधान गुण क करने वाले को नमस्कार है ॥२०॥ प्रकृति पुरुष क प्रवतक को नमस्कार है कृत और अकृत के सत् करनवाले को तथा फलसयोग देने वाले को नमस्कार है ॥२१॥ कालज्ञ तथा सब के नियामक को नमस्कार है और विषम करने वाले तथा गुणा की वृत्ति देने वाले को नमस्कार है॥२२॥ हे देवदेवेश ! हे प्राणियो की उत्पत्ति करनेवाले ! आपको नमस्कार है ! हे शिव ! हे प्रभो ! आप दर्शन करने के योग्य सौम्य रूप तथा सौम्यमुखवाले हो जायें ॥२३॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार देवगणो द्वारा स्तुति किये जाने पर जगत्पति तथा उमापति भगवान् शङ्कर न उनसे कहा ॥२४॥

श्रीशंकर ने कहा—देववृन्द ! मैं देवताओ के लिए सुख से देखने योग्य तथा सौम्यरूप हूँ। आप लोग जो वरदान मुझसे चाहे उसे मैं नि सदेह दूँगा ॥२५॥

ब्रह्मा ने कहा—तब समस्त देवता शिव को प्रणाम करते हुए बोले ॥२६॥

देवताओं ने कहा—भगवन् ! आप हम जो वरदान देना चाहते हैं, अपने पास सुरक्षित रखें। जब आवश्यकता पडेगी तब आप हमे अभिलषित वरदान दीजिएगा ॥२७॥

ब्रह्मा ने कहा—एवमस्तु कहकर भगवान् शिव ने देवताओ को विदा किया और प्रमथ नामक गण के साथ

---

१ ग सत्कर्त्रे। २ ग सर्वत्र। ३ ग ०र वन यवेप्स च दा०। ४ ग स्वगणै। ५ क ग भगवालय। य०।

यस्तु हरोत्सवमद्भुतमेनं गायति दैवतविप्रसमक्षम् ।
सोऽप्रतिरूपगणेशसमानो देहविपर्ययमेत्य सुखी स्यात् ॥२९॥

ब्रह्मोवाच

विप्रवर्या स्तव होम शृणुयाद्वा पठेच्च य । स सर्व्वलोकगो देवै पूज्यतेऽमरराडिव ॥३०॥

इति श्रीआदिब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भुऋषिसंवादे शिवस्तुतिनिरूपणं
नाम सप्तत्रिंशोऽध्याय ॥३७॥

अथाष्टात्रिंशोऽध्यायः

मदनदहन-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

प्रविष्टे भवनं देवे सुपविष्टे वरासने। स वक्रो मन्मथ क्रूरो देव वेद्धुमना भवत् ॥१॥
तमनाचारसंयुक्त दुरात्मानं कुलाधमम्। लोकान् सर्व्वान् पीडयन्तं 'सर्वाङ्गावरणात्मकम्' ॥२॥

अपने भवन में प्रवेश किया। जो देवता तथा ब्राह्मणों के समक्ष शिव के इस अद्भुत उत्सव का गान करेगा वह मरने पर गणेश के समान देह प्राप्त कर सुखी होगा ॥२८-२९॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रवर! जो इस स्तोत्र को सुनेगा या पढ़ेगा वह समस्त लोकों को प्राप्त कर देवताओं द्वारा इन्द्र के समान पूजित होगा ॥३०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में शिवस्तुतिनिरूपण
नामक सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३७॥

अध्याय ३८

मदन-दाह का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—जब शिव ने अपने भवन में प्रविष्ट होकर श्रेष्ठ आसन ग्रहण किया तो कुटिल क्रूर कन्दर्प ने उन्हें काम-वासना से विचलित करना चाहा ॥१॥ विप्रवृन्द! अनाचार से संयुक्त दुरात्मा कुल में अधम

---

१ क० सकामर। २ ख० ॰ङ्गामर॰।

ऋषीणां विघ्नकर्त्तार नियमानां व्रतं सह। चक्राह् वयस्य रूपेण रत्या सह समागतम॥३॥
अथाऽऽततायिन विप्रा वेद्धुकाम सुरेश्वर'। नयनेन तृतीयेन सावज्ञ समवक्षत ॥४॥
ततोऽस्य नेत्रजो वह्निर्ज्वालामालासहस्रवान। सहसा रतिभर्त्तारमदहत् सपरिच्छदम॥५॥
स दह्यमान करुणमार्त्तोऽक्रोशत विस्वरम। प्रसादयश्च त देव पपात धरणीतले॥६॥
अथ सोऽग्निपरीताङ्गो मन्मथो लोकतापन'। पपात सहसा मूर्च्छां क्षणेन समपद्यत॥७॥
पत्नी तु करुण तस्य विललाप सुदु खिता। देवीं देवञ्च दु खार्त्ता अयाचत् करुणावती ॥८॥
तस्याश्च करुण ज्ञात्वा देवौ तौ करुणात्मकौ। ऊचतुरतां समालोक्य समाश्वास्य च दु खिताम॥९॥

उमामहेश्वरावूचतु

दग्ध एव ध्रुव भद्रे नास्योत्पत्तिरिहष्यते। अशरीरोऽपि ते भद्रे कार्यं सर्वं करिष्यति॥१०॥
यदा तु विष्णुर्भगवान वसुदेवसुत शुभे। तदा तस्य सुतो यश्च पतिस्ते सम्भविष्यति॥११॥

ब्रह्मोवाच

तत सा तु वर लब्ध्वा कामपत्नी शुभानना'। जगामेष्ट तदा देश प्रीतियुक्ता 'गतक्लमा'॥१२॥
दग्ध्वा काम ततो विप्रा स तु देवो वृषध्वज । रेमे तत्रोमया सार्द्धं प्रहृष्टस्तु हिमाचले'॥१३॥

समस्त लोगो का उत्पीडन करने वाले सब अगो को आवन करने वाले ऋषियो के नियमो एव व्रतो म विघ्न करने वाले चकवे का रूप धारण कर रति क साथ आने वाले अत्याचारी और शिव को विचलित करने के इच्छक उस काम को महादेव ने अपने तीसरे नेत्र स तिरस्कार पूवक देखा॥२ ४। तदनन्तर सहस्रो ज्वालाओ वाला अग्नि शिव के नेत्र से उत्पन्न होकर वस्त्र आभूषण सहित कामदेव को सहसा जलाने लगा ।५॥ दग्ध होता हुआ काम दुखी होकर जोर स चिल्लाने लगा और शिव की स्तुति करता हुआ पृथ्वी पर गिर पडा। ६। लोकतापन काम अग्नि से सर्वागदग्ध होकर सहसा मूर्छित हो गया॥७॥ उसकी पत्नी रति दु खित होकर करुण विलाप करने लगी। करुणावती दु खपीडिता रति शिव तथा पार्वती स याचना करने लगी। ८। उसकी करुण स्थिति समझकर करुणारूप भवानी शकर दु खित रति को आश्वासन देत हुए बोले—।९॥

उमा और महेश्वर ने कहा—भद्रे ! यह तो दग्ध हो गया। अब इसकी उत्पत्ति नहीं होगी। पर शरीर न होने पर भी यह तुम्हारा सब काम कर देगा। शुभे ! जब विष्णु भगवान् वसुदेव के पुत्र होगे तब उनका पुत्र तुम्हारा पति होगा। १० ११

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त कल्याणमयी कामपत्नी वर प्राप्त कर शोक रहित हो गई और प्रसन्न होकर अभीष्ट स्थान को चली गई॥१२॥ द्विजगण कामको दग्ध कर भगवान् शकर उसी हिमाचल पर प्रसन्नतापूर्वक उमा क साथ रमण करने लगे। १३। रमणीय कन्दराओ म पद्मवनो म गुफाओ म मनोहर शिलाओ म कनकचम्पकवनो

---

१ ख सु ज्वलनस्तस्य। २ क वराङ्गना। ३ क मनस्विनी। ४ ग ०मा। तदन्वास्य रति वि०। ५ क हिमालय।

कन्दरेषु च रम्येषु पद्मिनीषु गुहासु¹ च। निर्झरेषु च रम्येषु कर्णिकारवनेषु च॥१४॥
नदीतीरेषु कान्तेषु किन्नराचरितेषु च। शृङ्गेषु शैलराजस्य तडागेषु सरःसु च॥१५॥
वनराजिषु रम्यासु नानापक्षिरुतेषु च। तीर्थेषु पुण्यतोयेषु मुनीनामाश्रमेषु च॥१६॥
एतेषु पुण्येषु² मनोहरेषु, देशेषु विद्याधरभूषितेषु।
गन्धर्वयक्षामरसेवितेषु, रेमे स देव्या सहितस्त्रिनेत्रः॥१७॥
देवैः सहेन्द्रैर्मुनियक्षसिद्धैर्गन्धर्वविद्याधरदैत्यमुख्यैः।
अन्यैश्च सर्वैर्विविधैर्वृतोऽसौ, तस्मिन्नगे हर्षमवाप शम्भुः॥१८॥
नृत्यन्ति तत्राप्सरसः सुरेशा, गायन्ति गन्धर्वगणाः प्रहृष्टाः।
दिव्यानि वाद्यान्यथ वादयन्ति, केचिद्द्रुतं³ 'देववरं स्तुवन्ति'⁴॥१९॥
एवं स देवः स्वगणैरुपेतो, महाबलैः शक्रयमाग्नितुल्यैः।
देव्याः प्रियार्थं भगनेत्रहन्ता, गिरिं न तत्याज तदा महात्मा॥२०॥

ऋषय ऊचुः

देव्या समं तु भगवांस्तिष्ठंस्तत्र स कामहा। अकरोत् किं महादेव एतदिच्छाम वेदितुम्॥२१॥

ब्रह्मोवाच

भगवान् हिमवच्छृङ्गे स हि देव्याः प्रियेच्छया। गणैर्विविधाकारैर्हासं सञ्जनयन् मुहुः॥२२॥

में, सुन्दर नदी-तटों पर, किन्नरों से सेवित पर्वतराज के शिखरों पर तालाबों में, सरोवरों में मनोरम तथा नाना पक्षियों के कलरव से प्रतिध्वनित वनों में पवित्र जल वाले तीर्थों में और मुनियों के आश्रमों में— मनोहर, विद्याधरों से भूषित और गन्धर्व, यक्ष तथा देवताओं से सेवित पवित्र स्थानों में—शंकर ने भवानी के साथ रमण किया॥१४-१७॥ उसी पर्वत पर इन्द्र आदि देवता, मुनि, यक्ष, सिद्ध, गन्धर्व विद्याधर, राक्षस एवं विविध गणों से आवृत होकर शंकर हर्षित हुए॥१८॥ (वहाँ अप्सरायें नाच करती थीं, देवता तथा गन्धर्वगण प्रसन्न होकर गान करते थे कोई दिव्य बाजे बजाते थे और कोई द्रुत गति से शंकर की स्तुति करते थे॥१९॥) इस प्रकार इन्द्र और यम के तुल्य महाबलवान् अपने गणों से युक्त होकर भग देवता के नेत्र को नष्ट करने वाले महात्मा शम्भु ने प्रिया के निमित्त पर्वत को नहीं छोड़ा॥२०॥

ऋषियों ने कहा—काम-नाशन भगवान् शिव ने वहाँ रहते हुए उमा की प्रसन्नता के लिए क्या किया—यह हम समझना चाहते हैं॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—हिमालय के शिखर पर उमा के मनोरञ्जन के लिए भगवान् शिव अनेक प्रकार के

---

१ ख सरःसु। २ ख मतेषु। ३ क ख ०विद्रुतं। ४ क स्मरन्ति।

देवीं बालेन्दुतिलको रमयश्च रराम च। महानुभावं सर्वज्ञं कामरूपधरं शुभं ॥२३॥
अथ देव्यासंसादैका मातरं परमेश्वरी। आसीनां काञ्चने शुभ्र आसने परमाद्भुते॥२४॥
अथ दृष्ट्वा सतीं देवीमागता सुररूपिणीम्। आसनेन महार्हेणासम्पादयदनिन्दिताम् ।
आसीना तामथोवाच मेना हिमवत प्रिया ॥२५॥

मेनोवाच

चिरस्यागमनं तेऽद्य वद पुत्रि शुभेक्षणे। दरिद्रा क्रीडनैस्त्वं हि भर्त्रा क्रीडसि सङ्गता॥२६॥
ये दरिद्रा भवन्ति स्म तथैव च निराश्रया । उभे त एव क्रीडन्ति यथा तव पतिः शुभे॥२७॥

ब्रह्मोवाच

सैवमुक्ताऽथ मात्रा तु नातिहृष्टमनाभवत। महत्या क्षमया युक्ता न किञ्चित्तामुवाच ह।
विसृष्टा च तदा मात्रा गत्वा देवमुवाच ह ॥२८॥

पार्वत्युवाच

भगवन् देवदेवेश नेह वत्स्यामि भूधरे। अन्य कुरु ममाऽऽवासं भुवनेषु महाद्युते॥२९॥

देव उवाच

सदा त्वमुच्यमाना वै मया वासार्थमीश्वरि। अन्य न रोचितवती वासं वै देवि कर्हिचित॥३०॥

गण-नायकों के साथ बार बार हास्य करते थे॥२२॥ बालचन्द्ररूप तिलकधारी शिव इच्छानुसार रूप धारण करने वाले कल्याणमय सर्वज्ञ तथा विशाल हृदयवाले गण-पतियों के साथ हास्य करके उमा को प्रमुदित करते थे तथा स्वयं आनन्दित होते थे॥२३॥ एक समय पार्वती सुवर्ण के स्वच्छ तथा परम अद्भुत आसन पर बैठी हुई माता के पास गई॥२४॥ देव रूपधारिणी सती को देखकर हिमालय की पत्नी मेना ने उस अनिन्द्य देवी को बहुमूल्य आसन पर बैठाया और कहा ॥२५॥

मेना बोली—हे शुभ नेत्रों वाली पुत्रि ! बहुत दिनों पर तुम आई हो। क्या स्वामी के संग क्रीडा करते करते तुम भी दरिद्र हो गई क्या ? जो दरिद्र तथा आश्रयहीन होते हैं वे ही इस प्रकार क्रीडा करते हैं जैसे कि तुम्हारा पति कर रहा है॥२६ २७॥

ब्रह्मा ने कहा—माता की यह बात सुनकर उमा हर्षित न हुई। क्षमाशील होने के कारण वह माता से बिना कुछ कहे बिदा होकर शंकर के पास जाकर बोली। २८॥

पार्वती ने कहा—भगवन् ! हे देव-देवेश ! मैं अब इस पर्वत पर नहीं रहूँगी। हे महाकान्तिमान् ! मेरे लिए त्रिभुवन में कहीं दूसरा आवास-स्थान ढूँढ़िये॥२९॥

देव ने कहा—देवी ! ईश्वरी ! मैं तो वासस्थान के लिए तुमसे सदा कहता था पर तुम्हें तो कभी

---

१ क देवा। २ क ग वृणु।

इदानीं स्वयमेव त्व वासमन्यत्र शोभने। कस्मान्मृगयसे देवि ब्रूहि तन्मे शुचिस्मिते॥३१॥

देव्युवाच

गृह गतास्मि देवेश पितुरद्य महात्मन। दृष्ट्वा च तत्र मे माता विजने लोकभावने॥३२॥
आसनादिभिरभ्यर्च्य सा मामेवमभाषत। उमे तव सदा भर्ता दरिद्र क्रीडते शुभे॥३३॥
क्रीडते न हि देवाना क्रीडा भवति तादृशी। यत किल त्व महादेव गणैश्च विविधैस्तथा।
रमसे तदनिष्ट हि मम मातुर्वृषध्वज ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

ततो देव प्रहस्याऽऽह देवीं हासयितु प्रभु ॥३५॥

देव उवाच

एवमेव न सन्देह कस्मान्मन्युरभूत्तव। कृत्तिवासा ह्यवासाश्च श्मशाननिलयश्च ह॥३६॥
अनिकेतो ह्यरण्येषु पर्वताना गुहासु च। विचरामि [1]गणैर्नग्नैर्वृतोऽम्भोजविलोचने॥३७॥
मा क्रुधो देवि मात्रे त्व तथ्य माताऽवदत्तव। न हि मातृसमो बन्धुर्जन्तूनामस्ति भूतले॥३८॥

देव्युवाच

न मेऽस्ति बन्धुभि किञ्चित कृत्य सुरवरेश्वर। तथा कुरु महादेव [2]यथाऽह सुखमाप्नुयाम्॥३९॥

इस जगह रहा ही नहीं। सुन्दरी! पवित्रहास्य वाले! क्या कारण है कि इस समय तुम स्वय दूसरी जगह चाहती हो?॥३० ३१॥

देवी ने कहा—देवेश! आज मैं पूज्य पिता के घर गई थी। वहाँ जन मन भावन एकान्त स्थान में मैंने माता को मन देखा। आसन आदि प्रदान कर मेरा सत्कार करती हुई वह मुझसे इस प्रकार कहने लगी—उमे! तुम्हारा पति क्रीडा करते-करते दरिद्र हो गया है। इसलिए कि देवताओं की तरह वह क्रीडा नहीं करता। हे महादेव! आप जो विविध गणों के साथ रमण करते हैं वह मेरी माता को बुरा लगता है॥३२ ३४॥

ब्रह्मा ने कहा—तब प्रभु स्वय हसकर देवी को हसाते हुए बोले॥३५॥

देव ने कहा—बात ऐसी ही है इसमें कोई सशय नहीं है तुम्हें क्या क्रोध हुआ? हे पद्मलोचने! मैं चर्म पहनता हूँ नहीं भी कुछ पहनता हूँ श्मशान में रहता हूँ नहीं भी कहीं रहता हूँ और वनों में तथा पर्वतों की गुफाओं में नग्न गणों के साथ विचरण करता हूँ। देवी! तुम माता के ऊपर क्रोध मत करो। उसने सत्य कहा है। पृथ्वीतल पर प्राणियों के लिए माता के समान कोई बन्धु नहीं है॥३६ ३८॥

देवी ने कहा—देवश्रेष्ठ! मुझे बन्धुओं से कुछ करना नहीं है। महादेव अब आप वही कीजिये जिससे मुझे सुख मिले॥३९॥

---

१ ग ०धृतम्भोयजतो०। २ ग ०थायत्र वसामहे। क०।

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा स देव्या वचनं सुरेशस्तस्याः प्रियार्थं 'स्वगिरिं विहाय ।
जगाम मेरुं सुरसिद्धसेवितं', भार्य्यासहाय' स्वगणैश्च युक्तः ॥४०॥

इति श्रीआदिब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भुऋषिसंवाद उमा-महेश्वरयोर्हिमवत्परित्यागनिरूपणं नामाष्टात्रिंशोऽध्याय. ॥३८॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

दक्षयज्ञविध्वंसनम्

ऋषय ऊचुः

प्राचेतस्य दक्षस्य कथं वैवस्वतेऽन्तरे। 'विनाशमगमद्' ब्रह्मन् हयमेध.' प्रजापते' ॥१॥
देव्या 'मन्यु कृतं बुद्ध्वा क्रुद्धः सर्वात्मक' प्रभु.। कथं विनाशितो यज्ञो दक्षस्यामिततेजस' ॥
महादेवेन रोषाद्वै तन्नः प्रब्रूहि विस्तरात् ॥२॥

ब्रह्मा ने कहा—देवी क वचन सुनकर उसकी अभीष्ट सिद्धि के लिए शकर अपने पर्वत को छोडकर भार्या और अपने गणों से युक्त होकर देवता तथा सिद्धो से सुसेवित मेरुपर्वत पर चले गय ॥४०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म ब्रह्मा और ऋषि के सवाद प्रकरण मे शिव और पार्वती के हिमालय-त्याग निरूपण नामक अडतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३८॥

अध्याय ३९

दक्ष के यज्ञ का विध्वस

ऋषियों ने कहा—ब्रह्मन्! वैवस्वत नामक मन्वन्तर म प्रचेता-पुत्र प्रजापति दक्ष का अश्वमेध यज्ञ कैसे विनष्ट हुआ? दवी के क्रोध (-जन्य विनाश) को जानकर क्रुद्ध सर्वात्मा प्रभु ने अमित तेजस्वी दक्ष के यज्ञ का विनाश कैसे किया? महादेव ने क्रोध मे जो किया वह विस्तारपूर्वक हम बतलाइए ॥१-२॥

---

१ क ग स्वगुर। २ क ०न हृष्टात्म सर्वग०। ३ ग ०नाशमगमद्व०। ४ ग ०न्द्यामसद्व०। ५ क ग ०मेध प्र०। ६ ग ०मुनेतस्तु०।

ब्रह्मोवाच

वर्णयिष्यामि वो विप्रा महादेवेन वै यथा। क्रोधाद्विध्वंसितो यज्ञो देव्याः प्रियचिकीर्षया ॥३॥
पुरा मेरोर्द्विजश्रेष्ठाः शृङ्गं त्रैलोक्यपूजितम्[1]। ज्योतिः स्थलं नाम[1] चित्रं सर्वरत्नविभूषितम् ॥४॥
अप्रमेयमनाधृष्यं सर्वलोकनमस्कृतम्। तत्र देवो गिरितटे सर्वधातुविचित्रिते ॥५॥
पर्यङ्क इव विस्तीर्ण[2] उपविष्टो बभूव ह। शैलराजसुता चास्य नित्यं पार्श्वस्थिताऽभवत् ॥६॥
आदित्याश्च महात्मानो वसवश्च महौजसः। तथैव च महात्मानावश्विनौ भिषजां वरौ ॥७॥
तथा वैश्रवणो राजा गुह्यकैः परिवारितः। यक्षाणामीश्वरः श्रीमान् कैलासनिलयः प्रभुः ॥८॥
उपासते महात्मानमुशना च महामुनिः। सनत्कुमारप्रमुखास्तथैव परमर्षयः ॥९॥
अङ्गिरःप्रमुखाश्चैव तथा देवर्षयोऽपि च। विश्वावसुश्च गन्धर्वस्तथा नारदपर्वतौ ॥१०॥
अप्सरोगणसङ्घाश्च समाजग्मुरनेकशः। ववौ सुखशिवो वायुर्नानागन्धवहः शुचिः ॥११॥
सर्वर्त्तुकुसुमोपेताः [3]पुष्पवन्तोऽभवन्द्रुमाः। तथा विद्याधराः साध्या सिद्धाश्चैव तपोधनाः ॥१२॥
महादेवं पशुपतिं पर्युपासत तत्र वै। भूतानि च तथाऽन्यानि नानारूपधराण्यथ ॥१३॥
राक्षसाश्च महारौद्राः पिशाचाश्च महाबलाः। बहुरूपधरा धृष्टा[4] नानाप्रहरणायुधाः ॥१४॥
देवस्यानुचरास्तत्र तस्थुर्वैश्वानरोपमाः। नन्दीश्वरश्च भगवान् देवस्यानुमते स्थितः ॥१५॥
प्रगृह्य ज्वलितं शूलं दीप्यमानं स्वतेजसा। गङ्गा च सरितां श्रेष्ठा सर्वतीर्थजलोद्भवा ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रवृन्द! देवी का प्रिय करने की इच्छा से जैसे महादेव ने क्रोध से यज्ञ का विध्वंस किया, उसका मैं सविस्तार वर्णन करूँगा ॥३॥ द्विजश्रेष्ठो! पहले ज्योतिःस्थल नामक मेरु पर्वत का शिखर तीनों लोक से पूजित, विचित्र, सब प्रकार के रत्नों से विभूषित, मापने न योग्य, जनसमागमशून्य तथा समस्त लोकों से नमस्कृत था ॥४½॥ वहाँ सब प्रकार के धातुओं से चित्रित पलंग की तरह विस्तीर्ण पर्वत-तट पर शंकर बैठते थे। उनकी बगल में गिरिराज-कन्या भी नित्य बैठती थी ॥५-६॥ महात्मा आदित्यगण, महातेजस्वी वसुगण, दोनों वैद्यश्रेष्ठ अश्विनीकुमार और गुह्यकों से युक्त, यक्षों के ईश्वर, कैलासवासी तथा शक्ति सम्पन्न श्रीमान् कुबेर उनकी उपासना करते थे। ॥७-८॥ महामुनि शुक्र, सनत्कुमार आदि परमर्षि, अंगिरा आदि देवर्षि, विश्वावसु गन्धर्व, नारद पर्वत और अप्सरा गण वहाँ अनेक बार आते थे ॥१०½॥ सुख-शान्ति-दायक तथा गन्धवाहक पवित्र वायु बहता था। वृक्ष सब ऋतुओं में होने वाले पुष्पों से समन्वित थे। विद्याधर, साध्य, सिद्ध और तपस्वीगण पशुपति महादेव की आराधना करते थे ॥११-१२½॥ नाना प्रकार के रूपों को धरकर दूसरे प्राणी, महाभयंकर राक्षस, बहुरूपी, धृष्ट नाना अस्त्र शस्त्रों से युक्त तथा महाबलवान् पिशाच और अग्नि के समान शिव के अनुचर वहाँ उपस्थित रहते थे ॥१३-१४½॥ अपने तेज से दीप्यमान तथा प्रज्वलित त्रिशूल को धारण कर भगवान् नन्दीश्वर भी शंकर की आज्ञा पाने के लिए तैयार खड़े रहते थे। द्विजश्रेष्ठो! सब तीर्थों के जल से उत्पन्न तथा नदियों में श्रेष्ठ गंगा रूप धारण कर शंकर

---

१ ग ०म्। विस्त ज्यो०। २ स ०म स०। ३ क ग विभ्राजनुप०। ४ स पुण्यव०। ५ क ग हृष्टा।

पर्युपासत तं देवं रूपिणो द्विजसत्तमाः। एवं स भगवांस्तत्र पूज्यमानः सुरर्षिभिः॥१७॥
देवैश्च सुमहाभागैर्महादेवो व्यतिष्ठत। कस्यचित्त्वथ कालस्य दक्षो नाम प्रजापतिः॥१८॥
पूर्वोक्तेन विधानेन यक्ष्यमाणोऽन्वपद्यत। ततस्तस्य मखे देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः॥१९॥
स्वर्गस्थानादथाऽऽगम्य दक्षमापेदिरे तथा। ते विमानैर्महात्मानो ज्वलद्भिर्ज्वलनप्रभाः॥२०॥
देवस्यानुमतेऽगच्छन् गङ्गाद्वारमिति श्रुतिः। गन्धर्वाप्सरसाकीर्णं नानाद्रुमलतावृतम्॥२१॥
ऋषिसिद्धैः परिवृतं दक्षं धर्मभृतां वरम्। पृथिव्यामन्तरिक्षे च ये च स्वर्लोकवासिनः॥२२॥
सर्वे प्राञ्जलयो भूत्वा उपतस्थुः प्रजापतिम्। आदित्या वसवो रुद्राः साध्याः सर्वे मरुद्गणाः॥२३॥
विष्णुना सहिताः सर्वे आगता यज्ञभागिनः। ऊष्मपा धूमपाश्चैव आज्यपाः सोमपास्तथा॥२४॥
अश्विनौ मरुतश्चैव नानादेवगणैः सह। एते चान्ये च बहवो भूतग्रामास्तथैव च॥२५॥
जरायुजाण्डजाश्चैव तथैव स्वेदजोद्भिदः। आगताः सत्रिणः सर्वे देवाः स्त्रीभिः सहर्षिभिः॥२६॥
विराजन्ते विमानस्था दीप्यमाना इवाग्नयः। तान् दृष्ट्वा मन्युनाऽऽविष्टो दधीचिर्वाक्यमब्रवीत्॥२७॥

की उपासना में लगी रहती थी॥१५-१६॥ इस प्रकार देवर्षियों तथा महाभाग देवताओं से पूज्यमान भगवान् शिव वहाँ रहते थे। कुछ काल बाद दक्ष नामक प्रजापति ने पूर्वोक्त विधान के अनुसार यज्ञ करना आरम्भ किया॥१७-१८½॥ ऐसा सुना जाता है कि उसके यज्ञ में इन्द्र आदि देवता स्वर्ग से आकर उपस्थित हुए। जलते हुए अग्नि के समान कान्तिवाले वे महात्मागण शिव की अनुमति पाकर गंगा-द्वार (हरिद्वार) में पहुँचे।—॥१९-२०½॥ पृथिवी, आकाश तथा स्वर्गलोकवासी—सबके सब गन्धर्व तथा अप्सराओं से समन्वित, नाना वृक्ष-लताओं से आवृत, ऋषि, तथा सिद्धों से वेष्टित और धर्मधारियों में श्रेष्ठ प्रजापति दक्ष को हाथ जोड़कर उपस्थित हुए॥२१-२२½॥ विष्णु सहित आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य और मरुद्गण—ये सब यज्ञ में भाग लेने के लिए आये॥२३½॥ ऊष्म पान करने वाले, धूम पान करने वाले, घी पान करने वाले, सोमरस पान करने वाले, अश्विनीकुमार, नाना देवगण, मरुद्गण—ये तथा दूसरे बहुत से प्राणी—जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज वहाँ आये। सब देवगण ऋषियों तथा स्त्रियों के साथ विमान में स्थित होकर अग्नि के समान दीप्यमान तथा शोभायमान होते हुए पधारे। उन्हें देखकर क्रोध से आविष्ट हो दधीचि ने कहा॥२४-२७॥

दधीचिरुवाच

अपूज्यपूजने चैव पूज्यानां चाप्यपूजने। नरः पापमवाप्नोति महद्वै नात्र संशयः ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा[1] तु विप्रर्षिः पुनर्दक्षमभाषत ॥२९॥

दधीचिरुवाच

पूज्यञ्च पशुभर्त्तारं कस्मान्नार्च्चयसे प्रभुम्[2] ॥३०॥

दक्ष उवाच

[3]सन्ति मे बहवो रुद्राः शूलहस्ताः कपर्दिनः। [4]एकादशस्थानगता नान्यं विद्मो महेश्वरम् ॥३१॥

दधीचिरुवाच

सर्वेषामेकमन्त्रोऽयं ममेशो न निमन्त्रितः। यथाऽहं शङ्करादूर्ध्वं नान्यं पश्यामि दैवतम्।
तथा दक्षस्य विपुलो यज्ञोऽयं न भविष्यति ॥३२॥

दक्ष उवाच[5]

विष्णोश्च भागा विविधाः प्रदत्तास्तथा च रुद्रेभ्य उत प्रदत्ताः ।
अन्येऽपि देवा निजभागयुक्ता, ददामि भागं न तु शङ्कराय ॥३३॥

दधीचि बोले—अपूज्यों के पूजन तथा पूज्यों के अपूजन से मनुष्य महापाप का भागी होता है इसमें कोई संशय नहीं ॥२८॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रर्षि इतना कहकर फिर दक्ष से कहने लगे ॥२९॥

दधीचि ने कहा—सर्वशक्तिमान् पशुपति की पूजा क्यों नहीं करते हो ? ॥३०॥

दक्ष ने कहा—ग्यारह स्थानों में प्राप्त, जटाधारी तथा त्रिशूल हाथ में लिए अनेक रुद्र मेरे पास है मैं दूसरे महेश्वर को नहीं जानता ॥३१॥

दधीचि ने कहा—सबका एकमात्र यही कहना है कि मेरे प्रभु का निमन्त्रित नहीं किया गया। जिस प्रकार मैं शंकर से बढ़कर किसी दूसरे देव को नहीं समझता उसी प्रकार दक्ष का यह वृहत् यज्ञ (सम्पन्न) नहीं होगा ॥३२॥

दक्ष ने कहा—मैंने विष्णु को विविध भाग दिये, रुद्रों को दिये और दूसरे देवों ने भी अपने-अपने भाग पाये, पर मैं शंकर को यज्ञ-भाग नहीं दे सकता हूँ ॥३३॥

---

१ ग ०क्त्वा मुनिर्विप्रान्पुनर्वाक्यम०। २ ग विभुम्। ३ ख सन्तीह ब०। ४ ख ०ता तथा नान्यं विद्महे न म०। ५ ख ग ०च। एतन्महेशाय सुवर्णपात्रे हविः समस्तं विधिमन्त्रपूतम्। विष्णोश्च यस्याप्रतिमस्य भागं न यज्ञभागं तु महेश्वराय। जगत्प्रभोस्तस्य दधीचि भागं विष्णोश्च नित्यं विबुधैः प्रदत्तम्। तस्मादहं देववराय दद्यां यज्ञस्य भागं।

ब्रह्मोवाच

गतास्तु देवता ज्ञात्वा शैलराजसुता तदा। उवाच वचनं 'शर्वं देवं पशुपतिं पतिम् ॥३४॥

उमोवाच

भगवन् कुत्र यान्त्येते देवाः शक्रपुरोगमाः। ब्रूहि तत्त्वेन तत्त्वज्ञ संशयो मे महानयम् ॥३५॥

महेश्वर उवाच

दक्षो नाम महाभागे प्रजानां पतिरुत्तमः। हयमेधेन यजते तत्र यान्ति दिवौकसः ॥३६॥

देव्युवाच

यज्ञमेतं ²महाभाग किमर्थं नानुगच्छसि। केन वा प्रतिषेधेन गमनं ते न विद्यते ॥३७॥

महेश्वर उवाच

सुरैरेव³ महाभागे सर्वमेतदनुष्ठितम्। यज्ञेषु मम सर्वेषु न भाग उपकल्पितः ॥३८॥
पूर्वागतेन गन्तव्यं मार्गेण वरवर्णिनि। न मे सुराः प्रयच्छन्ति भागं यज्ञस्य धर्मतः ॥३९॥

उमोवाच

भगवन् सर्वदेवेषु प्रभावाभ्यधिको गुणैः। अजेयश्चाप्यधृष्यश्च⁴ तेजसा यशसा श्रिया ॥४०॥
अनेन तु महाभाग प्रतिषेधेन भागतः। अतीव दुःखमापन्ना वेपथुश्च महानयम् ॥४१॥

ब्रह्मा ने कहा—तब (दक्ष के यज्ञ मे) गये देवताओ को जानकर गिरि-कुमारी अपने पति पशुपति शिव से कहने लगी ॥३४॥

पार्वती बोली—भगवन्! ये इन्द्र आदि देवता कहाँ जा रहे हैं? हे तत्त्वज्ञ! बतलाइए, मुझे बडा संशय हो रहा है ॥३५॥

महेश्वर ने कहा—महाभागे! दक्ष नामक उत्तम प्रजापति अश्वमेध यज्ञ करते है। वहीं ये देवता लोग जा रहे हैं ॥३६॥

देवी बोली—हे महाभाग! इस यज्ञ म आप क्या नहीं जाते? आपके गमन पर कौन-सा प्रतिबन्ध लग गया है? ॥३७॥

महेश्वर ने कहा—महाभाग! देवताओ ने ही यह सब किया है। किसी भी यज्ञ म मुझे भाग नहीं मिलता। श्रेष्ठ वर्णवाली! पहले के मार्ग का ही अनुसरण करना चाहिये। देवता लोग यज्ञ म धर्मपूर्वक भाग मुझे नहीं देत ॥३८-३९॥

उमा ने कहा—भगवन्! समस्त देवताओ से आप अधिक प्रभाववान् तथा गुणवान् हैं। तेज, यश और श्री मे भी आप अजेय तथा अधृष्य (न दबाने योग्य) हैं ॥४०॥ भाग के इस निषेध के कारण मैं बड़ी दुःखी हूँ,

---

१ ख साध्वी। २ ग महादेव। ३ क देव म०। ४ क ख ०श्चाप्रमेयश्च।

किं नाम दान नियम तपो वा, 'कुर्यामिह येन पतिर्ममाद्य ।
लभेत भाग भगवानचिन्त्यो, यज्ञस्य' चेन्द्राद्यमरैर्विचित्र (भवत) म् ॥४२॥

ब्रह्मोवाच

एव ब्रुवाणा भगवान् विचिन्त्य, पत्नीं प्रहृष्ट क्षुभितामुवाच ।

महेश्वर उवाच

न वेत्सि मा देवि कृशोदराङ्गि, किं नाम युक्त वचन तवेदम् ॥४३॥
अह विजानामि विशालनेत्रे, ध्यानेन सर्वं च विदन्ति सन्त ।
तवाद्य' मोहेन सहेन्द्रदेवा, लोकत्रय सर्वमयो विनष्टम् ॥४४॥
मामध्वरेश नितरा स्तुवन्ति, रथन्तर साम गायन्ति मह्यम् ।
मा ब्राह्मणा ब्रह्ममन्त्रैर्यजन्ति, ममाध्वर्यंव कल्पयन्ते च भागम् ॥४५॥

देव्युवाच'

विकत्थसे प्राकृतवत् सर्वस्त्रीजनससदि। 'स्तौषि गर्वायसे' चापि स्वमात्मान न सशय ॥४६॥

भगवानुवाच

नाऽऽत्मान स्तौमि देवेशि यथा त्वमनुगच्छसि। सस्रक्ष्यामि' वरारोहे भागार्थं वरवर्णिनि॥४७॥

मेरा शरीर काँप रहा है॥४१॥ मैं कौन सा दान नियम या तप करू जिससे मरे अचिन्त्य तथा शक्तिमान् पति यज्ञ म इन्द्र आदि देवताओ से भी विलक्षण भाग प्राप्त करेंगे॥४२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहती हुई दक्ष की पत्नी को देख कर प्रसन्न भगवान शकर बोले।

महेश्वर ने कहा—हे क्षीण कटि वाली ! देवी ! क्या तुम मुझ नही जानती हो ? क्या यह तुम्हारा वचन युक्ति-सगत है ? ॥४३॥ हे विशालाक्षी ! मैं सब कुछ जानता हूँ क्योकि योगीजन ध्यान से सब कुछ समझ लेते हैं। आज तुम्हारे मोह के कारण इन्द्र आदि देवता सहित तीनो लोक नष्ट हो जायगे॥४४॥ ब्राह्मण लोग मुझ यज्ञपति की स्तुति करते हैं मेरे लिए रथतर साम का गान करते हैं तथा वेद मत्रो म यज्ञ करते हैं और अध्वयु मुझ भाग देते हैं॥४५॥

देवी ने कहा—स्त्रियो की सभा म साधारण मनुष्य की तरह आप अपनी बडाई करते हैं डीग हाँकते है तथा गर्व करते हैं इसम कोई सन्देह नही॥४६॥

भगवान् ने कहा—हे देवताओ की स्वामिनी ! मैं अपनी प्रशसा नही करता जैसा कि तुम समझ रही हो। हे स्त्री रत्न ! हे सुन्दर वर्ण वाली ! मैं अपने भाग के लिए सृष्टि करूगा॥४७॥

---

१ क कुर्या मम येन विभागमद्य। २ ग ०स्य भाग ह्ययवानूर्त यम। ३ ख कलेन। ४ ग ०च-प्राकृत।'गीहि पुरुष सव०। ५ ग स्तौति। ६ ख ०र्वामिमूतस्तु स्वमा०। ७ क ख प्रवक्ष्यामि।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा भगवान् पत्नीमुमां प्राणैरपि प्रियाम्। सोऽसृजद्भगवान् वक्त्राद्भूतं क्रोधाग्निसम्भवम् ॥४८॥
तमुवाच मखं गच्छ दक्षस्य त्वं महेश्वर। नाशयाऽऽशु क्रतुं तस्य दक्षस्य मदनुज्ञया ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

ततो रुद्रप्रयुक्तेन सिंहवेषेण लीलया। देव्या मन्युकृतं ज्ञात्वा हतो दक्षस्य स क्रतुः ॥५०॥
मन्युना च महाभीमा भद्रकाली महेश्वरी। आत्मनः कर्मसाक्षित्वे तेन सार्द्धं सहानुगा ॥५१॥
स एष भगवान् क्रोधः प्रेतावासकृतालयः। वीरभद्रेति विख्यातो देव्या मन्युप्रमार्जकः ॥५२॥
सोऽसृजद्रोमकूपेभ्य आत्मनैव गणेश्वरान्। रुद्रानुगान्गणान्रौद्रान्रुद्रवीर्यपराक्रमान् ॥५३॥
रुद्रस्यानुचराः सर्वे सर्वे रुद्रपराक्रमाः। ते निपेतुस्ततस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ॥५४॥
ततः किलकिलाशब्द आकाशं पूरयन्निव। समभूत् सुमहान् विप्राः सर्वरुद्रगणैः कृतः ॥५५॥
तेन शब्देन महता त्रस्ताः सर्वे दिवौकसः। पर्वताश्च व्यशीर्यन्त चकम्पे च वसुन्धरा ॥५६॥
मरुतश्च ववुः क्रूराश्चुक्षुभे वरुणालयः। अग्नयो वै न दीप्यन्ते न चादीप्यत भास्करः ॥५७॥
ग्रहा नैव प्रकाशन्ते नक्षत्राणि न तारकाः। ऋषयो न प्रभासन्ते न देवा न च दानवाः ॥५८॥
एवं हि तिमिरीभूते निर्दहन्ति गणेश्वराः। प्रभञ्जन्त्यपरे यूपान् घोरानुत्पाटयन्ति च ॥५९॥

ब्रह्मा ने कहा—प्राणाधिक प्रिया उमा से इस तरह कहकर भगवान् ने क्रोधाग्नि के द्वारा अपने मुख से एक भूत को उत्पन्न किया। उससे शंकर ने कहा—'तुम दक्ष के यहाँ शीघ्र जाकर उसके यज्ञ का विध्वंस करो।' ॥४८-४९॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर रुद्र के भेजे हुए उस भूत ने लीला में सिंह का वेष धारण कर पार्वती का क्रोध जानकर दक्ष के यज्ञ को नष्ट किया ॥५०॥ क्रोध से महाभयंकर भद्रकाली माहेश्वरी भी आत्मा को कर्म-साक्षी बनाकर भूत के साथ ही चल पड़ी ॥५१॥ उस बली, क्रोधरूपी, श्मशानवासी तथा देवी के क्रोध को मिटाने वाले भूत का नाम वीरभद्र था ॥५२॥ उसने अपने रोम-कूपों से रुद्र के अनुगामी, भयंकर तथा रुद्रतुल्य पराक्रमी गण-नायकों की सृष्टि की ॥५३॥ सबके सब रुद्रतुल्य पराक्रमी तथा रुद्र के अनुचर थे। वे सैकड़ों हजारों की संख्या में शीघ्रता से टूट पड़े ॥५४॥ विप्रवृन्द! तब रुद्रगणों की किलकारी इतनी अधिक हुई कि (उससे) आकाश भर गया ॥५५॥ उस महाशब्द से देवता डर गये, पर्वत टूटने लगे, पृथ्वी काँप उठी, वायु क्रूरता से बहने लगा, समुद्र संक्षुब्ध हो उठा, अग्नि शीतल पड़ गया, सूर्य, ग्रह नक्षत्र और तारे प्रकाश खो बैठे और ऋषि, देव तथा दानव तेजोहीन हो गये ॥५६-५८॥ इस प्रकार सर्वत्र तिमिरावृत हो जाने पर वे

---

१ ख ०वक्त्राद्भूत। २ ख ०कृते ज्ञा०। ३ ख ०त्व अनूच कर्मवर्णिनी। वीरभद्रो महाक्रूरस्तया सार्धं सहानुगः। स। ४ ख ०रमनश्च ग०।

प्रणदन्ति तथा चान्ये विकुर्वन्ति तथा परे। त्वरितं वै प्रधावन्ति वायुवेगा मनोजवाः ॥६०॥
चूर्ण्यन्ते यज्ञपात्राणि यज्ञस्यायतनानि। शीर्यमाणान्यदृश्यन्त तारा[1] इव नभस्तलात् ॥६१॥
दिव्यान्नपानभक्ष्याणां राशयः पर्व्वतोपमाः। क्षीरनद्यस्तथा चान्या घृतपायसकर्दमाः ॥६२॥
मधुमण्डोदका दिव्याः खण्डशर्करवालुकाः। षड्रसान्निवहन्त्यन्या गुडकुल्या मनोरमाः ॥६३॥
उच्चावचानि मांसानि भक्ष्याणि विविधानि च[2]। यानि कानि च दिव्यानि लेह्यचोष्याणि यानि च ॥६४॥
भुञ्जन्ति विविधैर्वक्त्रैर्विलुम्पन्ति क्षिपन्ति च। रुद्रकोपा महाकोपाः कालाग्निसदृशोपमाः ॥६५॥
भक्षयन्तोऽथ शैलाभा भीषयन्तश्च सर्वतः। क्रीडन्ति विविधकाराश्चिक्षिपुः सुरयोषितः ॥६६॥
एवं गणाश्च तैर्युक्तो वीरभद्रः प्रतापवान्। रुद्रकोपप्रयुक्तश्च सर्वदेवैः सुरक्षितम् ॥६७॥
तं यज्ञमदहच्छीघ्रं भद्रकाल्याः समीपतः। चक्रुरन्ये तथा नादान् सर्वभूतभयङ्करान् ॥६८॥
छित्त्वा शिरोऽन्ये यज्ञस्य व्यनदन्त भयङ्करम्। ततः शक्रादयो देवा दक्षश्चैव प्रजापतिः ॥
ऊचुः प्राञ्जलयो भूत्वा कथ्यतां को भवानिति ॥६९॥

वीरभद्र उवाच

नाहं देवो न दैत्यो वा [3]न च भोक्तुमिहागतः। नैव द्रष्टुञ्च देवेन्द्रा न च कौतूहलान्वितः ॥७०॥

गणेश्वर यज्ञमंडप को जलाने लगे। कोई भयानक यूपों (यज्ञ स्तम्भों) को तोड़ते उखाड़ते, तो कोई अव्यक्त शब्द करते थे। कोई कुत्सित शब्द करते थे और कोई वायु तुल्य या मन तुल्य शीघ्रता से दौड़ते थे ॥५९-६०॥ यज्ञ-पात्र चूर-चूर कर दिये गये। यज्ञ-गृह टूट कर इस प्रकार गिरे जैसे आकाश से तारे गिरते हैं ॥६१॥ (वहाँ) दिव्य अन्न, पान तथा भक्ष्य पदार्थों की राशि पर्वत की तरह थी। दूधकी नदियाँ बह रही थी। घी तथा खीर रूप कीचड़ वाली, मधु तथा मट्ठा रूप जल वाली और खांड तथा शक्कर रूप रेत वाली दूसरी दिव्य नदियाँ बह रही थी। छहों रसों को बहाने वाली अन्य मनोरम गुड़ की नहरें थी ॥६२-६३॥ छोटे-बड़े मांस तथा चाटने योग्य और चूसने योग्य विविध प्रकार की भक्ष्य सामग्रियाँ थी ॥६४॥ (इन पदार्थों को) रुद्र कोपरूपी, महाकोपरूपी, कालाग्नि की उपमा देने योग्य तथा पर्वताकार गणेश्वर अनेक मुखों से खाते और फकते थे। अनेक रूपधारी गण सामग्रियों को खाते, लोगों को डराते, क्रीडा करते तथा देवांगनाओं के ऊपर प्रक्षेप करते थे ॥६५-६६॥ इस प्रकार गणों से युक्त, रुद्रकोप से उत्पन्न, प्रतापी वीरभद्र ने निखिल देवों से सुरक्षित उस यज्ञ को भद्रकाली के सामने ही शीघ्र जला डाला। अतिरिक्त गणों में से कुछ तो प्राणीमात्र को भयानक लगने वाले शब्द करने लगे और कुछ यज्ञ के शिर को काट कर भीषण चीत्कार करने लगे। तदनन्तर शक्र आदि देवता और प्रजापति दक्ष ने अंजलि बांध कर पूछा कि आप कौन हैं ॥६७-६९॥

वीरभद्र ने कहा—देवश्रेष्ठो! मैं न देव हूँ, न दैत्य हूँ, न खाने के लिए आया हूँ, न देखने के लिए आया हूँ और न मुझे कुतूहल ही है ॥७०॥ देववृन्द! मैं तो दक्ष के यज्ञ को नष्ट करने के लिए आया हूँ। वीरभद्र

---

१ ग वाता। २ ग च। पानका०। ३ ख न यक्षो न च राक्षस। नै०।

दक्षयज्ञविनाशार्थं सम्प्राप्तोऽह सुरोत्तमा । वीरभद्रेति विख्यातो रुद्रकोपाद्विनि सृत ॥७१॥
भद्रकाली च विख्याता[1] देव्या क्रोधाद्विनिर्गता। प्रेषिता देवदेवेन यज्ञान्तिकमुपागता॥७२॥
शरण गच्छ राजेन्द्र देवदेवमुमापतिम्। वर क्रोधोऽपि देवस्य न वर[2] परिचारके[3]॥७३॥

ब्रह्मोवाच

निखातोत्पाटितैर्यूपैरपविद्धैस्ततस्तत । उत्पतद्भि पतद्भिश्च गृध्रैरामिषगृध्नुभि ॥७४॥
पक्षवातविनिर्धूते शिवारुतविनादिते । स तस्य यज्ञो [4]नृपतेर्बाध्यमानस्तदा गणै ॥७५॥
आस्थाय मृगरूप वै खमेवाभ्यपतत्तदा। तन्तु यज्ञ तथारूप गच्छन्तमुपलभ्य स ॥७६॥
धनुरादाय [5]बाणञ्च तदर्थमगमत् प्रभु । ततस्तस्य[6] गणेशस्य क्रोधादमिततेजस ॥७७॥
ललाटात्प्रसृतो घोर स्वेदबिन्दुर्बभूव ह। तस्मिन्पतितमात्रे च स्वेदबिन्दौ तदा भुवि॥७८॥
प्रादुर्भूतो [7]महानग्निर्ज्वलत्कालानलोपम । तत्रोदपद्यत तदा पुरुषो द्विजसत्तमा ॥७९॥
ह्रस्वोऽतिमात्रो रक्ताक्षो हरिच्छ्मश्रुर्विभीषण । ऊर्ध्वकेशोऽतिरोमाङ्ग[8] शोणकर्णस्तथैव च॥८०॥
करालकृष्णवर्णश्च रक्तवासास्तथैव च। त यज्ञ स [9]महासत्त्वोऽदहत्कक्षमिवानल ॥८१॥
देवाश्च प्रद्रुता सर्वे गता भीता दिशो दश। तेन तस्मिन्विचरता विक्रमेण तदा तु वै॥८२॥
पृथिवी व्यचलत्सर्वा सप्तद्वीपा समन्तत । [10]महाभूते प्रवृत्ते तु देवलोकभयकरे॥८३॥

मेरा नाम है। रुद्र-कोप से मेरी उत्पत्ति हुई है॥७१॥ पार्वती के क्रोध से उत्पन्न भद्रकाली को भी शिव ने यज्ञ के समीप भेजा है। राजेन्द्र! देव-देव उमापति की शरण म जाओ। महान् का क्रोध भी वरदान होता है और नीच का वरदान भी हेय होता है॥७२ ७३॥

ब्रह्मा ने कहा—तोडे उखाडे तथा इधर उधर बिखरे हुए यूपो उडत गिरते तथा पक्षो के वायु स कँपाते मांसाभिलाषी गिद्धो और शृगालो के शब्दो द्वारा जब रुद्र गण राजा के यज्ञ म बाधा डालने लगे तब यज्ञ मृग का रूप धारण कर आकाश म उड गया॥७४ ७५½॥ यज्ञ को उस प्रकार जाते हुए देख कर प्रभु वीरभद्र न धनुष और बाण लेकर उसका पीछा किया॥७६½॥ क्रोध म उस अमित तेजस्वी गणनायक क मस्तक से भयकर स्वेद बिन्दु टपक पडा ॥७७½॥ द्विजश्रेष्ठो! पृथ्वी पर उस स्वेद बिन्दु क गिरते ही कालाग्नि क समान जलता हुआ महान् अग्निरूप पुरुष उसम उत्पन्न हुआ॥७८ ७९॥ वह अत्यन्त छोटा था उसके नेत्र लाल थे दाढ़ी-मूँछ नील तथा भयकर थी केश ऊपर की ओर उठे थ अगो म बहुत रोएँ थ कान लाल थ वर्ण भयानक तथा काला था और वस्त्र लाल था॥८०½॥ उस महाजीव न यज्ञ को उसी तरह जला डाला जैसे अग्नि सूखे तृण को जला देता है। देवगण डर क मारे दसो दिशाओ म भाग गय॥८१½॥ जब वह जीव पराक्रम से विचरण करने लगा तब सातो द्वीप सहित पृथिवी काँप उठी॥८२½॥ देव समूह को डराने वाले उस महाजीव के उत्पन्न

१ ख ०ताऽद्रकोपाद्वि०। २ क पर। ३ क ०रके। नि०। ४ क ग ०नेर्बध्य०। ५ ग बाणारच त०। ६ क ०रवगुणे मन्यवर शा०। ७ क ०निर्ज्वलितमार्ग। भयकर। त०। ८ क ०ङ्ग गतान्तकस्त०। ९ क महात्मेरे। ग महौजोर न प्रस्ते द०।

तदा चाहं महादेवमब्रवं प्रतिपूजयन्। १भवतेऽपि सुराः सर्वे भागं दास्यन्ति वै प्रभो ॥८४॥
क्रियतां प्रतिसंहारः सर्वदेवेश्वर त्वया। इमाश्च देवताः सर्वा ऋषयश्च सहस्रशः ॥८५॥
तव क्रोधान्महादेव न शान्तिमुपलेभिरे। यश्चैव पुरुषो जातः स्वेदजस्ते सुरर्षभ ॥८६॥
ज्वरो नामैष धर्मज्ञ लोकेषु प्रचरिष्यति। एकीभूतस्य न ह्यस्य धारणे तेजसः प्रभो ॥८७॥
समर्था सकला पृथ्वी बहुधा सृज्यतामयम्। इत्युक्तः स मया देवो भागे चापि प्रकल्पिते ॥८८॥
भगवान्मां तथेत्याह देवदेवः पिनाकधृक्। परां च प्रीतिमगमत्स्वयं च पिनाकधृक् ॥८९॥
दक्षोऽपि मनसा देवं भवं शरणमन्वगात्। प्राणापानौ समारुध्य२ चक्षुःस्थाने३ प्रयत्नतः ॥९०॥
विधार्य४ सर्वतो दृष्टिं ५बहुदृष्टिरमित्रजित्। स्मितं कृत्वाऽब्रवीद्वाक्यं ब्रूहि किं करवाणि ते ॥९१॥
श्राविते च महाख्याने देवानां पितृभिः सह। तमुवाचाञ्जलिं कृत्वा दक्षो देवं प्रजापतिः ॥
भीतः शङ्कितचित्तस्तु सबाष्पवदनेक्षणः ॥९२॥

दक्ष उवाच

यदि प्रसन्नो भगवान्यदि वाऽहं तव प्रियः। यदि चाहमनुग्राह्यो यदि देयो वरो मम ॥९३॥
यद्भक्ष्यं भक्षितं पीतं त्रासितं यच्च नाशितम्। चूर्णीकृतापविद्धं च यज्ञसंभारमीदृशम् ॥९४॥
दीर्घकालेन महता प्रयत्नेन च संचितम्। न च मिथ्या भवेन्मह्यं त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥९५॥

होने पर मैंने शिव की पूजा करते हुए उनसे कहा—'प्रभो! आपको भी सब देवता भाग देंगे॥८३-८४॥ हे समस्त देवों के ईश्वर! आप संहार को रोकिये। आप के क्रोध के कारण ये सब देवता और हजारों मुनि शान्ति नहीं प्राप्त कर रहे हैं। हे देवश्रेष्ठ! हे धर्मज्ञ! जो यह आपके पसीने से उत्पन्न पुरुष है यह तीनों लोक में ज्वर नाम से प्रसिद्ध होगा॥८५-८६½॥ हे प्रभो! एकीभूत इस तेज को धारण करने में संपूर्ण पृथिवी समर्थ नहीं हो सकती। अतः इसको अनेक कर दीजिये'॥८७½॥ जब इतना मैंने शंकर से कहा और उनका भाग भी ठीक कर दिया तब पिनाक नामक धनुषधारी महादेव अत्यन्त प्रसन्न हुए और मुझसे कहने लगे कि ऐसा ही होगा॥८८-८९॥ दक्ष भी मन से शिव की शरण में गया। तब नेत्रस्थान में प्राण अपान वायु को यत्नपूर्वक रोक कर सब तरफ से दृष्टि हटाकर बहुदृष्टि वाले तथा शत्रुजित् शिव ने मुस्कराते हुए दक्ष से कहा—'कहिये प्रजापति मैं आपका क्या उपकार करूँ?' भयभीत, सशंकित तथा नेत्रों में आँसू भरे प्रजापति दक्ष ने पितरों के साथ देवताओं का महान् आख्यान सुना कर हाथ जोड़कर शिव से कहा॥९०-९२॥

दक्ष ने कहा—हे महेश्वर! यदि आप प्रसन्न हैं और मैं आपका प्रिय हूँ मुझपर आपकी कृपा है और आप मुझे वर देना चाहते हैं, तो जो मेरी खाद्य सामग्रियाँ खायी गईं तथा नष्ट की गईं और जो चिरकाल से महान् प्रयत्न से संचित यज्ञ-पदार्थ तोड़-ताड़ कर चूर चूर कर दिये गये वे सब मिथ्या न हों अर्थात् फिर मुझे प्राप्त हों॥९३-९५॥

---

१ क ग ०वतोऽपि। २ ख समाधाय। ३ ख चित्तस्थाने। ४ क विस्तार्य। ख विचार्य। ५ क ०रमावजि०।

ब्रह्मोवाच

तथाऽस्त्वित्याह भगवान्भगनेत्रहरो हर। धर्माध्यक्षं महादेव त्र्यम्बक च प्रजापति ॥९६॥
जानुभ्यामवनीं गत्वा दक्षो लब्ध्वा भवाद्वरम्[1]। नाम्ना चाष्टसहस्रेण स्तुतवान्वृषभध्वजम् ॥९७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयभुऋषिसवादे दक्षयज्ञविध्वसन नामैकोनचत्वारिंशो-
शोऽध्याय ॥३९॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

दक्षकृतिशिवस्तुति-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एव दृष्ट्वा तदा दक्ष[2] शभोर्वीर्यं द्विजोत्तमा। प्राञ्जलि प्रणतो भूत्वा सस्तोतुमुपचक्रमे ॥१॥

दक्ष उवाच

नमस्ते देवदेवेश नमस्तेऽन्धकसूदन। देवेन्द्र त्व बलश्रेष्ठ देवदानवपूजित ॥२॥

ब्रह्मा ने कहा—भग नामक आदित्य के नेत्र को फोडने वाले शिव ने एसा ही सही यह कहा। प्रजापति दक्ष शिव स वर प्राप्त कर पृथ्वी पर घुटने टेककर धर्म के अध्यक्ष तीन नेत्र से युक्त तथा वृषभारूढ महादेव की स्तुति करने लगा ॥९६ ९७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म ब्रह्मा और ऋषि क सवाद प्रकरण म दक्ष-यज्ञ विध्वसन
नामक उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३९॥

अध्याय ४०

दक्ष द्वारा शिव की स्तुति

ब्रह्मा ने कहा—द्विजवर! शभु के एसे पराक्रम को देखकर दक्ष हाथ जोडकर मस्तक झुका कर उनकी स्तुति करन लगा ॥१॥

दक्ष ने कहा—हे देवदेवेश! आपको नमस्कार है। ह अन्धक नामक दैत्य को मारने वाले! आपको

---

१ ग ०म। त घ नाम्नां स०। २ घ ०ण सद्यो ईश्वरं द्विजा। प्रा०।

सहस्राक्ष विरूपाक्ष त्र्यक्ष यक्षाधिपप्रिय। सर्वत.पाणिपादस्त्वं सर्वतोक्षिशिरोमुख ॥३॥
सर्वत श्रुतिमांल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि। शङ्कुकर्णो महाकर्णः। कुम्भकर्णोऽर्णवालय ॥४॥
गजेन्द्रकर्णो गोकर्णः शतकर्णो नमोऽस्तु ते। शतोदर: शतावर्तः शतजिह्व सनातन.[1] ॥५॥
गायन्ति त्वां गायत्रिणो अर्चयन्त्यर्कमर्किणः। देवदानवगोप्ता च ब्रह्मा च त्वं शतक्रतु. ॥६॥
मूर्तिमांस्त्वं महामूर्तिः समुद्र· सरसां निधिः। त्वयि सर्वा देवता हि गावो गोष्ठ इवाऽऽसते ॥७॥
त्वत्तः शरीरे पश्यामि सोममग्निजलेश्वरम्। आदित्यमथ विष्णुं च ब्रह्माणं सबृहस्पतिम् ॥८॥
क्रिया करणकार्ये च कर्ता कारणमेव च। असच्च सदसच्चैव तथैव प्रभवाव्य (प्य) यौ ॥९॥
नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च। पशूनां पतये चैव नमोऽस्त्वन्धकघातिने ॥१०॥
त्रिजटाय त्रिशीर्षाय त्रिशूलवरधारिणे। त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय त्रिपुरघ्नाय वै नम· ॥११॥
नमश्चण्डाय मुण्डाय विश्वचण्डधराय च। [2]दण्डिने शङ्कुकर्णाय [3]दण्डिदण्डाय वै नम. ॥१२॥
नमोऽर्धदण्डिकेशाय शुष्काय विकृताय च। विलोहिताय धूम्राय[4] नीलग्रीवाय वै नम ॥१३॥
[5]नमोऽस्त्वप्रतिरूपाय विरूपाय शिवाय च। सूर्याय सूर्यपतये सूर्यध्वजपताकिने ॥१४॥
नम. प्रमथनाशाय [6]वृषस्कन्धाय वै नमः। नमो हिरण्यगर्भाय[7] हिरण्यकवचाय च ॥१५॥

नमस्कार है। देवेन्द्र! बलश्रेष्ठ! देवदानवपूजित! सहस्राक्ष! विरूपाक्ष! त्रिनेत्र! कुबेर के सखा! आप सब ओर हाथ-पैर वाले हैं, सब तरफ नेत्र शिर वाले हैं, सब जगह कान वाले हैं और लोक मे सबको आवृत करके स्थित हैं ॥२-३½॥ शङ्कु के समान कर्ण वाले, महाकर्ण, घडे के समान कर्णवाले, समुद्र म रहने वाले गजेन्द्र सदृश कर्णवाले गो सदृश कर्णवाले और सौ कर्णवाले आपको नमस्कार है ॥४½॥ आप सौ उदर वाले सौ आवत वाले सौ जिह्वा वाले तथा सनातन हैं ॥५॥ गायत्री के उपासक आपका गान करते हैं और सूय के उपासक सूर्य रूप म आप ही की पूजा करते हैं। आप देव-दानवो के रक्षक, ब्रह्मा तथा इन्द्र हैं ॥६॥ आप मूर्तिमान् महामूर्तिमान् तथा सरोवरो की निधि समुद्र हैं। जैसे गायें गोष्ठ (गोठ) म रहती हैं वैसे अखिल देवता आप म रहत हैं ॥७॥ आप ही से शरीर म मैं चन्द्रमा, अग्नि, वरुण, सूर्य, विष्णु ब्रह्मा और बृहस्पति को देखता हूँ ॥८॥ आप क्रिया करण कार्य कर्ता कारण, सत्-असत् तथा उत्पत्ति प्रलय रूप हैं ॥९॥ भव, शर्व, रुद्र तथा वरद को नमस्कार है। पशुपति तथा अन्धक-नाशन को नमस्कार है ॥१०॥ तीन जटा वाले, तीन शिर वाले, तीन नेत्र वाले त्रिशूलधारी तथा त्रिपुर नामक राक्षस को मारने वाले शिव को नमस्कार है ॥११॥ चण्ड, मुण्ड, विश्वचण्डधर दण्ड धारण करने वाले शङ्कुकर्ण तथा दण्डियो के दण्डरूप को नमस्कार है ॥१२॥ अर्ध दण्ड तथा केश वाले, शुष्क, विकृत, रक्त-कृष्ण वर्ण वाले और नीलग्रीव को नमस्कार है ॥१३॥ अनुपमेय रूप वाले, विरूप, शिव, सूर्य, सूर्यपति एवम् सूर्यध्वज की पताकावाले को नमस्कार है ॥१४॥ प्रमथनाशन तथा वृषस्कन्ध को नमस्कार है। हिरण्यगर्भ, हिरण्यकवच, हिरण्यकृतचूड तथा हिरण्यपति को

---

१ क. ख शतानन। २ ख. ०यकाश्च तर्पयन्ति च सर्वि०। ३ ख चण्डिने। ४ ख चण्डदण्डाय। ५ ख ताम्राय। ६ ख. ०मोऽस्तु प्र०। ७ ख. ०य धन्विने। न०। ८ ख. ०प्यवर्णाग्र।

हिरण्यकृतचूडाय हिरण्यपतये नमः। शत्रुघाताय चण्डाय पर्णसंघशयाय च॥१६॥
नमः स्तुताय[1] स्तुतये स्तूयमानाय चै नमः। सर्वाय सर्वभक्षाय सर्वभूतान्तरात्मने॥१७॥
नमो होमाय[2] मन्त्राय शुक्लध्वजपताकिने। नमोऽनम्याय[3] नम्याय नमः किलकिलाय च॥१८॥
नमस्त्वा शयमानाय शयितायोत्थिताय च। स्थिताय धावमानाय कुब्जाय कुटिलाय च॥१९॥
नमो नर्तनशीलाय मुखवादित्रकारिणे। बाधापहाय लुब्धाय गीतवादित्रकारिणे॥२०॥
नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय बलप्रमथनाय च। उग्राय च नमो नित्यं नमश्च दशबाहवे॥२१॥
नमः कपालहस्ताय सितभस्मप्रियाय च। विभीषणाय भीमाय भीष्मव्रतधराय च[4]॥२२॥
नानाविकृतवक्त्राय खड्गजिह्वोग्रदंष्ट्रिणे। पक्षमासलवार्धाय तुम्बीवीणाप्रियाय च॥२३॥
अघोरघोररूपाय घोराघोरतराय च। नमः शिवाय शान्ताय: नमः शान्ततमाय च॥२४॥
नमो बुद्धाय[5] शुद्धाय[6] संविभागप्रियाय च। पवनाय[7] पतङ्गाय नमः सांख्यपराय च॥२५॥
नमश्चण्डैकघण्टाय घण्टाजल्पाय घण्टिने। सहस्रशतघण्टाय[8] घण्टामालाप्रियाय च॥२६॥
प्राणदण्डाय नित्याय "नमस्ते लोहिताय च। हूंहूंकाराय" रुद्राय "भगाकारप्रियाय च॥२७॥
नमोऽपारवते नित्यं गिरिवृक्षप्रियाय च। नमो यज्ञाधिपतये भूताय" प्रस्तुताय" च॥२८॥

नमस्कार है॥१५½॥ शत्रुघाती, चण्ड तथा पत्तों पर सोने वाले को नमस्कार है॥१६॥ स्तुत, स्तुति, और स्तूयमान को नमस्कार है। सबके रूप, सर्वभक्षक तथा सब प्राणियों के अन्तरात्मा को नमस्कार है॥१७॥ होम, मन्त्र तथा शुक्ल ध्वज-पताका वाले को नमस्कार है। अनम्य, नम्य तथा किलकिला शब्द करने वाले को नमस्कार है॥१८॥ सोते हुए सुप्त, उत्थित स्थित, दौड़ते हुए, कुब्ज तथा कुटिल आपको नमस्कार है॥१९॥ (नर्तनशील, मुंह बजाने वाले बाधा नष्ट करने वाले, व्याधरूपधारी तथा गाना-बजाना करने वाले आपको नमस्कार है॥२०॥) ज्येष्ठ श्रेष्ठ और बल नाशन को नमस्कार है। उग्र को नित्य नमस्कार है। दशभुजाधारी को नमस्कार है॥२१॥ हाथ में कपाल लिये, स्वच्छभस्मप्रिय, विभीषण, भीम, भीष्मव्रतधारी, अनेक विकृत मुख वाले, खड्ग के समान जिह्वा तथा तीक्ष्ण दंष्ट्रा वाले, पक्ष, मास, तथा अर्ध लव रूप, तुम्बी तथा वीणा के प्रिय, अघोररूप, घोर रूप, घोरतररूप और अघोरतररूप आपको नमस्कार है॥२२-२३½॥ शिव, शान्त तथा शान्ततम को नमस्कार है। बुद्ध, शुद्ध, विभागप्रिय पवन तथा पतङ्गरूप को नमस्कार है। सांख्यपरायण रूप को नमस्कार है॥२४-२५॥ एकमात्र प्रचण्ड नाद घण्टा के शब्द करने वाले घण्टाधारी, सैकड़ों-हजारों घण्टा धारण करने वाले, घण्टा की माला के प्रिय, प्राण-दण्ड रूप, नित्य तथा रक्त वर्ण वाले को नमस्कार है॥२६½॥ 'हूं हूं' करने वाले, रुद्र तथा भगाकार के प्रेमी को नमस्कार है॥२७॥ पाररहित तथा पर्वत-वृक्ष के प्रेमी को नित्य नमस्कार है। यज्ञपति, भूतरूप, प्रस्तुतरूप, यज्ञ के

---

१ न स्तुत्यायास्तुत्याय स्तू०। २ क त हंसाय। ३ क ०मो देवनम्याय नम०। ४ क भीष्म०। ग मार्गप्रहरणाय। ५ क ०मो गन्धर्वसत्याय न०। ६ क बुद्धाय। ७ क रूपाय। ८ क पाञ्चालाय। ९ क ०मस्ततमा०। १० ग नमो लोहिते। ११ क दण्डकाराय। १२ क हंसकारप्रियाय। १३ क दुताय। १४ क प्रहुताय।

धन्वावाहाय दान्ताय तप्याय[1] च भगाय च। नमस्तटाय[2] तट्याय तटिनीपतये नमः ॥२९॥
अन्नदायान्नपतये नमस्त्वन्नभुजाय च। नमः सहस्रशीर्षाय सहस्रचरणाय च॥३०॥
सहस्रोद्यतशूलाय सहस्रनयनाय च। नमो बालार्कवर्णाय बालरूपधराय च॥३१॥
नमो बालार्करूपाय कालक्रीडनकाय च। नमः शुद्धाय बुद्धाय क्षोभणाय क्षयाय च॥३२॥
तरङ्गाङ्कितकेशाय मुक्तकेशाय वै नमः। नमः षट्कर्मनिष्ठाय त्रिकर्मनियताय च॥३३॥
वर्णाश्रमाणां विधिवत्पृथग्धर्मप्रवर्तिने। नमः श्रेष्ठाय ज्येष्ठाय नमः कलकलाय च॥३४॥
श्वेतपिङ्गलनेत्राय कृष्णरक्तेक्षणाय च। धर्मकामार्थमोक्षाय क्रथाय क्रथनाय च॥३५॥
सांख्याय सांख्यमुख्याय योगाधिपतये नमः। नमो रथ्याधिरथ्याय चतुष्पथपथाय च॥३६॥
कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञोपवीतिने। ईशान[3] रुद्रसंघात हरिकेश नमोऽस्तु ते॥३७॥
त्र्यम्बकायाम्बिकानाथ व्यक्ताव्यक्त नमोऽस्तु ते। कालकामदकामघ्न[4] दुष्टोद्वृत्तनिषूदन॥३८॥
सर्वगर्हितसर्वघ्न सद्योजात नमोऽस्तु ते[5]। उन्मादनशतावर्त गङ्गातोयार्द्रमूर्धज॥३९॥
चन्द्रार्धसंयुगावर्त मेघावर्त नमोऽस्तु ते। नमोऽन्नदानकर्त्रे च अन्नदप्रभवे नमः॥४०॥
अन्नभोक्त्रे च गोप्त्रे च त्वमेव प्रलयानल। जरायुजाण्डजाश्चैव स्वेदजोद्भिज्ज एव च॥४१॥

अश्वरूप, दान्त, तपने योग्य और भग रूप को नमस्कार है ॥२८½॥ तटरूप, तट से युक्त तथा नदियो के स्वामी को नमस्कार है ॥२९॥ अन्न देनेवाले अन्नपति तथा अन्नभोक्ता को नमस्कार है। सहस्र शिर वाले सहस्र चरणवाले हजारो उद्यत त्रिशूल वाले तथा सहस्र नेत्र वाले को नमस्कार है ॥३०½॥ बाल सूर्य के समान वर्ण वाले तथा बाल रूप धारीको नमस्कार है ॥३१॥ बालार्करूपी तथा काल से खेलने वाले को नमस्कार है। शुद्ध बुद्ध क्षोभ रूप, क्षयरूप तरगो से अकित केश वाले तथा बिखरे केश वाले को नमस्कार है ॥३२½॥ छहो कर्मों मे निष्ठा रखने वाले तीन कर्मों मे नियमित तथा वर्णाश्रमो के पृथक्-पृथक् धर्मों के प्रवर्तक को नमस्कार है ॥३३½॥ ज्येष्ठ, श्रेष्ठ तथा कलकल शब्द करने वाले को नमस्कार है। श्वेत पिंगल नेत्र वाले रक्त कृष्ण नेत्रवाले धर्म अर्थ-काम मोक्ष रूप, मारण छेदन रूप सांख्य (सम्यक्ज्ञान) रूप, सांख्यो मे प्रधान तथा योग के अधिपति को नमस्कार है ॥३४ ३५½॥ रथ्या (गली) रूप, गलियो के स्वामी ,चौराहेरूप कृष्णमृग-चर्म के उत्तरीय वाले तथा सर्प के यज्ञोपवीत धारीको नमस्कार है ॥३६½॥ ईशान ! रुद्रो के समूह ! हरिकेश ! आपको नमस्कार है ॥३७॥ पार्वतीपते ! व्यक्त-अव्यक्त ! तीन नेत्र वाले आपको नमस्कार है। काल ! काम-दाता ! कन्दर्पनाशन ! दुष्टो की उद्वृत्ति (उपद्रव)को दबाने वाले ! सब बुराइयो की समाप्ति करने वाले ! सद्य उत्पन्न ! आपको नमस्कार है ॥३८½॥ सैंकडो उन्मादक भँवरो वाले ! गगाजल से सिक्त मस्तक वाले ! अर्धचन्द्र युक्त ! मेघ रूप आवर्त वाले आपको नमस्कार है ॥३९½॥ अन्नदान करने वाले, अन्नदाताओ के स्वामी, अन्नभोक्ता तथा रक्षक आपको नमस्कार है। आप ही प्रलयाग्नि हैं। जरायुज अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज आप ही हैं ॥४१॥ हे देवदेवेश ! चार

---

१ क पथ्याय। ख तथ्याय वितथाय। २ ख ०स्तडागरन्ध्राय। ३ ख ०न महासपात। ४ ख ०घ्न दृप्तोद्दृप्तनिवारण। स०। ५ ख ते। ऋक्सादनदा०।

त्वमेव देवदेवेश भूतग्रामश्चतुर्विधः। चराचरस्य स्रष्टा त्वं प्रतिहर्ता त्वमेव च॥४२॥
त्वमेव ब्रह्मा विश्वेश अप्सु ब्रह्म वदन्ति ते। सर्वस्य परमा योनिः सुधांशो ज्योतिषां निधिः॥४३॥
ऋक्सामानि तथोंकारमाहुस्त्वां ब्रह्मवादिनः। हायि हायि हरे हायि हुवाहावेति वाऽसकृत्॥४४॥
गायन्ति त्वां सुरश्रेष्ठाः सामगा ब्रह्मवादिनः। यजुर्मयं ऋङ्मयश्च सामाथर्वयुतस्तथा[1]॥४५॥
पठ्यसे ब्रह्मविद्भिस्त्वं कल्पोपनिषदां गणैः। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा[2] वर्णाश्रमाश्च ये॥४६॥
त्वमेवाऽऽश्रमसंघाश्च विद्युत्स्तनितमेव च। संवत्सरस्त्वमृतवो मासा मासार्धमेव च॥४७॥
कला काष्ठा निमेषाश्च नक्षत्राणि युगानि च। वृषाणा ककुदं त्वं हि गिरीणा शिखराणि च॥४८॥
सिंहो [3]मृगाणा पतयस्तक्षकानन्तभोगिनाम्। क्षीरोदो ह्युदधीनां च मन्त्राणा प्रणवस्तथा॥४९॥
वज्रं प्रहरणाना च व्रतानां सत्यमेव च। त्वमेवेच्छा च द्वेषश्च रागो मोहः शम. क्षमा॥५०॥
व्यवसायो धृतिर्लोभः कामक्रोधौ जयाजयौ। त्वं गदी त्वं शरी चापी खट्वाङ्गी मुद्गरी तथा॥५१॥
छेत्ता भेत्ता प्रहर्ता च नेता[4] मन्ताऽसि नो मतः। दशलक्षणसंयुक्तो धर्मोऽर्थः काम एव च॥५२॥
[5]इन्दुः समुद्रः सरितः पल्वलानि सरांसि च। लतावल्यस्तृणौषध्यः पशवो मृगपक्षिणः॥५३॥
द्रव्यकर्मगुणारम्भः कालपुष्पफलप्रदः। आदिश्चान्तश्च मध्यश्च गायत्र्योंकार एव च॥५४॥
हरितो लोहितः कृष्णो नीलः पीतस्तथा क्षणः। कद्रुश्च कपिलो बभ्रुः कपोतो मत्स्य (त्स्य) कस्तथा॥५५॥

प्रकार के प्राणी समूह भी आप ही हैं। चराचर के स्रष्टा तथा संहारक आप ही हैं॥४२॥ हे विश्वेश! आप ही ब्रह्मा हैं। आप ही को लोग ब्रह्म कहते हैं। आप सब की उत्कृष्ट योनि तथा ज्योतियों की निधि चन्द्रमा हैं॥४३॥ ब्रह्मवादी आप ही को ऋग्वेद, सामवेद तथा ओंकार कहते हैं। साम गाने वाले सुरश्रेष्ठ ब्रह्मवादी 'हायि ह यि-हरे हायि-हुवाहावा' इससे बार-बार आप ही का गान करते हैं॥४४½॥ यजुर्वेदमय, ऋग्वेदमय, सामवेदमय तथा अथर्ववेद से युक्त आप ही ब्रह्मवेत्ताओं तथा कल्प और उपनिषद्गणों द्वारा पढ़े जाते हैं॥४५½॥ ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णाश्रम और आश्रम समूह भी आप ही हैं। आप विद्युत्, मेघगर्जन, वर्ष, ऋतु, मास, मासार्ध, कला, काष्ठा, निमेष, नक्षत्र युग बैलों के ककुद, पर्वतों के शिखर, मृगों के स्वामी सिंह, सर्पों में अनन्त और तक्षक, समुद्रों में क्षीरसमुद्र, मन्त्रों में प्रणव (ओं), अस्त्रों में वज्र और व्रतों में सत्य हैं॥४६-४९½॥ आप ही इच्छा, द्वेष, राग, मोह, शम, क्षमा, व्यवसाय, धैर्य लोभ, काम, क्रोध जय और पराजय हैं॥५०½॥ आप गदाधारी, बाणधारी, धनुषधारी, खट्वांगधारी, मुद्गरधारी, छेदन करने वाले, भेदन करने वाले, प्रहार करने वाले, नेता और मानने वाले हैं—यह मेरा मत है॥५१½॥ आप दस प्रकार के लक्षणों से युक्त धर्म अर्थ, काम, चन्द्रमा, समुद्र, नदियाँ तालाब, सरोवर, लता, वल्ली, तृण औषधियाँ पशु मृग, पक्षी, द्रव्य, कर्म और गुणों के आरम्भ, समय पर फल-फूल देने वाले, आदि, अन्त, मध्य गायत्री, ओंकार, हरित-लोहित-कृष्ण-नील-पीत (रंग), क्षण, कद्रु कपिल, बभ्रु, कबूतर और मत्स्य हैं॥५२-५५॥

---

१ ग. ०था। मेध्यस्तु क०। २ ख शूद्रवर्णास्त्वमेव च। ३ ख ०णां च पतिः कच्छपो योऽसि भो०। ४ ख ०ता मर्ताऽभिगतो मतः। ५ ख इन्द्रः।

सुवर्णरेता विख्यातः सुवर्णश्चाप्ययो मतः। सुवर्णनाम च तथा सुवर्णप्रिय एव च ॥५६॥
त्वमिन्द्रश्च यमश्चैव वरुणो धनदोऽनलः। उत्फुल्लश्चित्रभानुश्च स्वर्भानुर्भानुरेव च ॥५७॥
होत्रं होता च होम्यं च हुतं चैव तथा प्रभुः। त्रिसौपर्णस्तथा ब्रह्मन्यजुषा शतरुद्रियम् ॥५८॥
पवित्रं च पवित्राणां मङ्गलानां च मङ्गलम्। प्राणश्च त्वं रजश्च त्वं तमः सत्त्वयुतस्तथा ॥५९॥
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च। उन्मेषश्च निमेषश्च क्षुत्तृड्जृम्भा तथैव च ॥६०॥
लोहिताङ्गश्च दंष्ट्री च महावक्त्रो महोदरः। शुचिरोमा हरिच्छ्मश्रुरूर्ध्वकेशश्चलाचलः ॥६१॥
गीतवादित्रनृत्याङ्गो गीतवादनकप्रियः। मत्स्यो जालो जलोऽजय्यो जलव्यालः कुटीचरः ॥६२॥
विकालश्च सुकालश्च दुष्कालः कालनाशनः। मृत्युश्चैवाक्षयोऽन्तश्च क्षमामायाकरोत्करः ॥६३॥
संवर्तो वर्तकश्चैव संवर्तकबलाहकौ। घण्टाकी घण्टकी घण्टी चूडाली लवणोदधिः ॥६४॥
ब्रह्मा कालाग्निवक्त्रश्च दण्डी मुण्डस्त्रिदण्डधृक्। चतुर्युगश्चतुर्वेदश्चतुर्होत्रश्चतुष्पथः ॥६५॥
चातुराश्रम्यनेता च चातुर्वर्ण्यकरश्च ह। क्षराक्षरः प्रियो धूर्तो गणैर्गण्यो गणाधिपः ॥६६॥
रक्तमाल्याम्बरधरो गिरीशो गिरिजाप्रियः। शिल्पीशः शिल्पिनः श्रेष्ठ सर्वशिल्पिप्रवर्तकः ॥६७॥
भगनेत्रान्तकश्चण्ड. पूष्णो दन्तविनाशन। स्वाहा स्वधा वषट्कारो नमस्कार नमोऽस्तु ते ॥६८॥
गूढव्रतश्च गूढश्च गूढव्रतनिषेवितः। तरणस्तारणश्चैव सर्वभूतेषु तारणः ॥६९॥
धाता विधाता सधाता निधाता धारणो धरः। तपो ब्रह्म च सत्यं च ब्रह्मचर्यं तथाऽऽर्जवम् ॥७०॥

आप सुवर्ण के वीर्य वाले तथा सुवर्ण भी हैं। सुवर्ण आपका नाम है और आप सुवर्ण के प्रेमी हैं ॥५६॥ आप इन्द्र, यम, वरुण, कुवेर, अग्नि, प्रफुल्लित चित्रभानु, स्वर्भानु भानु, हवन, होता, होम करने योग्य, हुत तथा प्रभु हैं ॥५७३॥ ब्रह्मन्! आप त्रिसौपर्ण (ऋग्वेद के दशम मंडल के तीन विशिष्ट मंत्र), यजुर्वेदीय के शत रुद्र पवित्रों में पवित्र तथा मंगलों में मंगल हैं ॥५८३॥ आप प्राण, रजोगुण, तमोगुण, तथा सत्त्वगुण हैं ॥५९॥ प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, उन्मेष, निमेष, भूख, प्यास, जमुहाई, लाल अंगवाले, दंष्ट्रावाले विशाल मुख तथा पेट वाले, श्वेत रोम वाले, हरी मूछ वाले, ऊर्ध्वकेश वाले, सतत गतिशील, गाने, बजाने तथा नाचने के अंगरूप, गाने-बजाने के प्रेमी, मत्स्य, जाल, जल, अजेय, जल-सर्प, कुटीचर विकाल, सुकाल, दुष्काल कालनाशन मृत्यु, अक्षय, नाश, क्षमा और मायाकर, उत्कर, प्रलय, वर्तक संवर्तक, मेघ, घण्टाकी, घण्टकी, घण्टी, शिखायुक्त, लवणसमुद्र, ब्रह्मा, कालाग्निमुख, दण्डी, मुण्ड, त्रिदण्डधारी, चारों युग, चारों वेद, चारों अग्नि चारों मार्ग चारों आश्रमों के नेता, चारों वर्णों के विधाता, क्षर (नाशशील), अक्षर (नाशरहित), प्रिय, धूर्त, गणों में गण्य, गणाधिप, रक्त माला और वस्त्रधारी, पर्वतेश, पार्वतीप्रिय, शिल्पियों के स्वामी, शिल्पी, श्रेष्ठ सब शिल्पों के प्रवर्तक, भग के नेत्र को नष्ट करने वाले, चण्ड, पूषा के दन्तविनाशक, स्वाहा, स्वधा, वषट्कार और नमस्कार रूप आपको नमस्कार है ॥६०-६८॥ गूढव्रती, गूढ, गूढव्रत से सेवित, तरण, तारण, सब प्राणियों के तारक, धाता, विधाता, सधाता, निधाता, धारण, धर, तप, ब्रह्म, सत्य, ब्रह्मचर्य, सीधापन, भूतात्मा, भूतकृत्, भूत, भूत-भविष्य-

---

१ ख ०श्चैव क्ष०। २ ख ०निचयश्च।

भूतात्मा भूतकृद्भूतो भूतभव्यभवोद्भव। भूर्भुवः स्वरितश्चैव भूतो ह्यग्निर्महेश्वरः ॥७१॥
ब्रह्मावर्त. 'सुरावर्त' कामावर्त नमोऽस्तु ते। 'कामबिम्बविनिर्हन्ता कर्णिकारस्रजप्रिय ॥७२॥
गोनेता गोप्रचारश्च गोवृषेश्वरवाहनः। त्रैलोक्यगोप्ता गोविन्दो गोप्ता' गोगर्ग (?) एव च ॥७३॥
अखण्डचन्द्राभिमुख सुमुखो दुर्मुखोऽमुख। चतुर्मुखो बहुमुखो रणेष्वभिमुखः सदा ॥७४॥
हिरण्यगर्भ. शकुनिर्धनदोऽर्थपतिर्विराट्। अधर्महा महादक्षो दण्डधारो रणप्रिय ॥७५॥
तिष्ठन्स्थिरश्च स्थाणुश्च निष्कम्पश्च सुनिश्चलः। दुर्वारणो दुर्विषहो दु सहो दुरतिक्रम ॥७६॥
दुर्धरो दुर्वशो नित्यो दुर्दर्पो विजयो जयः। शशः' शशाङ्कनयनशीतोष्णः क्षुत्तृषा जरा ॥७७॥
आधयो व्याधयश्चैव व्याधिहा व्याधिपश्च यः। सह्यो यज्ञमृगव्याधो व्याधिनामाकरोऽकर ॥७८॥
शिखण्डी पुण्डरीकश्च पुण्डरीकावलोकनः। दण्डधृक्चक्रदण्डश्च रौद्रभागविनाशन '॥७९॥
विषपोऽमृतपश्चैव सुराप क्षीरसोमपः। मधुपश्चाऽऽपपश्चैव सर्वपश्च बलाबलः ॥८०॥
'वृषाङ्कराम्भो (?) वृषभस्तथा वृषभलोचन। वृषभश्चैव विख्यातो लोकानां लोकसंस्कृत ॥८१॥
चन्द्रादित्यौ चक्षुषी ते हृदयं च पितामह। अग्निष्टोमस्तथा देहो धर्मकर्मप्रसाधित ॥८२॥
न ब्रह्मा न च गोविन्दः पुराणऋषयो न च। माहात्म्य वेदितुं शक्ता याथातथ्येन ते शिव ॥८३॥
शिवा या मूर्तयः सूक्ष्मास्ते मह्यं यान्तु दर्शनम्। ताभिर्मां 'सर्वतो रक्ष पिता पुत्रमिवौरसम् ॥८४॥
रक्ष मा रक्षणीयोऽहं तवानघ नमोऽस्तु ते। भक्तानुकम्पी भगवान्भक्तश्चाहं सदा त्वयि ॥८५॥

वर्तमान, उद्भव, भूर् भुवर्, स्वर्, अग्नि, महेश्वर, ब्रह्मावर्त, सुरावर्त और कामावर्त रूप आपको नमस्कार है ॥६९-७१½॥ आप कन्दर्पनाशन, कनकचम्पा की माला के प्रेमी, गो-नेता, गो प्रचारक, गोवृषेश्वरवाहन त्रैलोक्यरक्षक, गो लाभ करने वाले, सरक्षक, गोगर्ग (?) ॥७२ ७३॥ पूर्णचन्द्रमुख, सुमुख, दुर्मुख, मुखरहित, चतुर्मुख बहुमुख सदा रणसमुख ॥७४॥ हिरण्यगर्भ, शकुनि, धनद, धनपति, विराट्, अधर्मनाशन, महादक्ष, दण्डधार रणप्रिय ॥७५॥ खडे होनेवाले, स्थिर स्थाणु कम्परहित, निश्चल, दुर्वारण, दुर्विषनाशन, दु सह, दुर्लंघ्य ॥७६॥ दुर्धर, दुर्वश, नित्य, दुर्दर्प, विजय, जय खरगोश, चन्द्रनेत्र, शीत, उष्ण, भूख प्यास बुढ़ापा ॥७७॥ आधि, व्याधि, व्याधिनाशन, व्याधिप (?), सह्य यज्ञरूपी मृग के लिए व्याध, व्याधिनामक, निधि अकर्ता ॥७८॥ मयूर, कमल, कमलनेत्र, दण्डधारी, चक्र-दण्ड, रौद्रमार्गविनाशन ॥७९॥ विष पीने वाले अमृत पीनेवाले, मदिरा पीने वाले, दूध तथा सोमरस पीने वाले, मधु पीने वाले, जल पीनेवाले, सब पीने वाले, बलाबल ॥८०॥ बैला का (रोमना) (?) बैल, बैल के समान नेत्र वाले, वृषभ नाम से विख्यात तथा लोक-सस्कृत हैं ॥८१॥ सूर्य-चन्द्रमा आपके नेत्र हैं ब्रह्मा हृदय है और अग्निष्टोम धर्म-कर्म से साधित शरीर है ॥८२॥ हे शिव ! ब्रह्मा, विष्णु तथा प्राचीन ऋषि कोई भी आपके माहात्म्य को यथार्थत नही जान सकते ॥८३॥ आपकी जो सूक्ष्म शिवमूर्तियाँ हैं, उनका मुझे दर्शन हो। उनसे मेरी सब तरह रक्षा कीजिये जैसे पिता पुत्र की रक्षा करता है ॥८४॥ मेरी रक्षा कीजिये। मैं रक्षा करने योग्य हूँ। हे निष्पाप ! आपको नमस्कार

---

१ ग स्वरावर्त। २ ख ०म्बनिहन्ता च क०। ३ ग गोमार्गो मार्ग। ४ ख ०रा सनाशनयन प्रभूष्णश्च तृषा ज्वर०। आ०। ५ ग ०मार्गवि०। ६ घ वृषाङ्कधान्यो। ७ ख ग्रजत।

य' सहस्राण्यनेकानि पुसामावृत्य दुर्दृशाम्। तिष्ठत्येव' समुद्रान्ते स मे गोप्तास्तु नित्यश ॥८६॥
य विनिद्रा जितश्वासा सत्त्वस्था समदर्शिन'। ज्योति पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मने नम ॥८७॥
सभक्ष्य सर्वभूतानि युगान्ते समुपस्थिते। य' शेते जलमध्यस्थस्त प्रपद्येऽम्बुशायिनम् ॥८८॥
प्रविश्य वदन राहोर्य सोम पिबते निशि। ग्रसत्यर्कं च स्वर्भानुर्भूत्वा सोमाग्निरेव' च ॥८९॥
अङ्गुष्ठमात्रा पुरुषा देहस्था' सर्वदेहिनाम्। रक्षन्तु ते च मा नित्य नित्य चाऽऽप्याययन्तु माम ॥९०॥
येनाप्युत्पादिता गर्भा अपो भागगताश्च ये। तेषा स्वाहा स्वधा चैव आप्नुवन्ति स्वदन्ति च ॥९१॥
येन रोहन्ति देहस्था प्राणिनो रोदयन्ति च। हर्षयन्ति न 'कृष्यन्ति नमस्तेभ्यस्तु नित्यश' ॥९२॥
ये समुद्रे नदीदुर्गे पर्वतेषु गुहासु च। वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु कान्तारगहनेषु च ॥९३॥
चतुष्पथेषु रथ्यासु चत्वरेषु सभासु च। हस्त्यश्वरथशालासु जीर्णोद्यानालयेषु च ॥९४॥
येषु पञ्चसु भूतेषु दिशासु विदिशासु च। इन्द्रार्कयोर्मध्यगता ये च चन्द्राकरश्मिषु ॥९५॥
रसातलगता ये च येच तस्मात्पर गता। नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यस्तु सर्वश' ॥९६॥
सर्वस्त्व सर्वगो देव सर्वभूतपतिर्भव। सर्वभूतान्तरात्मा च तेन त्व न निमन्त्रित ॥९७॥
त्वमेव चेज्यसे देव यज्ञैर्विविधदक्षिणै। त्वमेव कर्ता सर्वस्य तेन त्व न निमन्त्रित' ॥९८॥

है। भगवान भक्त के ऊपर कृपा करते हैं। मैं आपका सदा भक्त हूँ ॥८५॥ जो हजारों दुर्दृष्टि वाले पुरुषों को आवृत कर समुद्र के अन्त में एकाकी वास करते हैं वे मेरी नित्य रक्षा करें ॥८६॥ जिनको ज्योतिरूप में निद्रा तथा श्वास को जीतने वाले सत्त्व गुण में स्थित एवम समदर्शी जन देखते हैं उन योगात्मा को नमस्कार है ॥८७॥ जो युगान्त उपस्थित होने पर सब प्राणियों का भक्षण करके जल मध्य में सोते हैं उन जलशायी को मैं प्राप्त हूँ ॥८८॥ जो राहु के मुख में प्रवेश कर रात में सोम-पान करते हैं चन्द्राग्नि तथा राहु बनकर सूर्य को ग्रसते हैं ॥८९॥ और सब प्राणियों के शरीर में अंगुष्ठ प्रमाण-पुरुष के रूप में वास करते हैं, वे मेरी नित्य रक्षा करें और मुझे नित्य समृद्ध बनायें ॥९०॥ जिन्होंने जल को विभक्त करके उत्पन्न किया जिनको स्वाहा और स्वधा प्राप्त होना है तथा आस्वादन करती हैं और जो देह स्थित होते हुए भी जन्म नहीं लेते प्राणियों को रुलाते आनंदित करते और स्वयं आकृष्ट नहीं होते उनको नित्य नमस्कार है ॥९१ ९२॥ जो समुद्रों में दुस्तर नदियों में पर्वतों में गुफाओं में वृक्षमूलों में गोष्ठों में कान्तारों में वनों में चतुष्पथों में गलियों में चत्वरों में सभाओं में हाथी घोड़े तथा रथ की शालाओं में जीर्ण उद्यानालयों में पञ्च महाभूतों में दिशाओं में विदिशाओं में सूर्य-चन्द्रमा के मध्य में चन्द्र-सूर्य की किरणों में और रसातल में प्राप्त हैं तथा रसातल से भी आगे गये हुए हैं उन्हें नमस्कार है उन्हें नमस्कार है उन्हें सब प्रकार से नमस्कार है ॥९३ ९६॥ आप सब हैं सर्वगत हैं सब प्राणियों के स्वामी हैं भव नाम वाले हैं और सब प्राणियों के अन्तरात्मा हैं। इस कारण मैंने आपको निमन्त्रण नहीं दिया ॥९७॥ हे देव! विविध दक्षिणा वाले यज्ञों के द्वारा आप ही यज्ञ किये जाते हैं। आप ही सबके कर्ता हैं। इस कारण आपको निमन्त्रित नहीं किया ॥९८॥ अथवा हे देव!

---

१ ख ०त्यवस्य स्व०। २ ख सोम तथा रविम। अ०। ३ ख हृष्यन्ति। ४ ख ०ग। स्थगजलन्ग्दुर्गे। ५ ख नित्यश।

अथवा मायया देव मोहितः[1] सूक्ष्मया तव। तस्मात्तु कारणाद्वाऽपि त्वं मया न निमन्त्रितः ॥९९॥
प्रसीद मम देवेश त्वमेव शरणं मम। त्वं गतिस्त्वं प्रतिष्ठा च न चान्योऽस्तीति मे मतिः ॥१००॥

ब्रह्मोवाच

स्तुत्वैवं स महादेवं विरराम प्रजापतिः। भगवानपि सुप्रीतः पुनर्दक्षमभाषत ॥१०१॥

श्रीभगवानुवाच

परितुष्टोऽस्मि ते दक्ष स्तवेनानेन सुव्रत। बहुना तु किमुक्तेन मत्समीपं गमिष्यसि ॥१०२॥

ब्रह्मोवाच

तथैवमब्रवीद्वाक्यं त्रैलोक्याधिपतिर्भवः। कृत्वाऽऽश्वासकरं वाक्यं सर्वज्ञो वाक्यसंहितम् ॥१०३॥

श्रीशिव उवाच

दक्ष दुःखं न कर्तव्यं यज्ञविध्वंसनं प्रति। अहं यज्ञहनस्तुभ्यं दृष्टमेतत्पुराऽनघ ॥१०४॥
भूयश्च त्वं वरमिमं मत्तो गृह्णीष्व सुव्रत। प्रसन्नसुमुखो भूत्वा ममैकाग्रमनाः शृणु ॥१०५॥
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य वै। प्रजापते मत्प्रसादात्फलभागी भविष्यसि ॥१०६॥
वेदान्षडङ्गान्बुध्यस्व सांख्ययोगांश्च कृत्स्नशः। तपश्च विपुलं तप्त्वा[2] दुश्चरं देवदानवैः ॥१०७॥

मैं आपकी सूक्ष्म माया से मोहित हो गया था। इस कारण भी मैंने आपको निमन्त्रित नहीं किया ॥९९॥ हे देवेश ! प्रसन्न होइए, आप ही मेरे रक्षक हैं, गति है तथा प्रतिष्ठा है। आपके सिवाय मेरा दूसरा कोई नहीं है—ऐसी मेरी धारणा है ॥१००॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार महादेव की स्तुति करके प्रजापति विराम करने लगा। भगवान् शिव भी प्रसन्न होकर दक्ष से बोले ॥१०१॥

श्री भगवान् ने कहा—हे सुव्रती दक्ष ! मैं तुम्हारी इस स्तुति से सन्तुष्ट हूँ। मैं अधिक क्या कहूँ, तुम मेरे समीप जाओगे ॥१०२॥

ब्रह्मा ने कहा—त्रिभुवन के स्वामी सर्वज्ञ शङ्कर सान्त्वनादायक तथा वाक्यसमूह रूप वाक्य इस प्रकार बोले ॥१०३॥

ब्रह्मा ने कहा—दक्ष ! यज्ञ विध्वंस के प्रति तुम खेद मत करो ! निष्पाप ! पहले तुमने देखा है कि तुम्हारे यज्ञ का नाशकर्ता मैं हूँ। फिर तुम मुझसे वर माँगो ॥१०४॥ सुव्रती ! प्रसन्न होकर एकाग्र मन से (मेरे वचन) सुनो ! ॥१०५॥ प्रजापते ! मेरी कृपा से तुम सहस्र अश्वमेध तथा सौ वाजपेय यज्ञ के फलभागी होगे ॥१०६॥ छह अंगों सहित वेदों तथा सांख्य-योगों का पूर्ण ज्ञान करो। दक्ष ! देव-दानवों से दुःसाध्य प्रचुर तप करो ॥१०७॥

---

१ ग. ०तः सर्वरूपया। ख०। २ ग. ०ज्ञ नमस्तु०। ३ ख. लब्ध्वा।

अब्दैर्द्वादशभिर्युक्तं　गूढमप्रज्ञनिन्दितम्। वर्णाश्रमकृतैर्धर्मैर्विनीतं　न　क्वचित्क्वचित्[1] ॥१०८॥
समागतं व्यवसितं पशुपाशविमोक्षणम्[2]। सर्वेषामाश्रमाणां च मया पाशुपतं व्रतम् ॥१०९॥
उत्पादितं दक्ष शुभं सर्वपापविमोचनम्[3]। अस्य चीर्णस्य यत्सम्यक्फलं भवति पुष्कलम् ॥
तच्चास्तु सुमहाभाग मानसस्त्यज्यतां ज्वरः　　॥११०॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु देवेशः सपत्नीकः सहानुगः। अदर्शनमनुप्राप्तो दक्षस्यामिततेजसः ॥१११॥
अवाप्य च तथा भागं[4]यथोक्तं चोमया भव[5]। ज्वरं च सर्वधर्मज्ञो बहुधा व्यभजत्तदा ॥११२॥
शान्त्यर्थं सर्वभूतानां शृणुध्वमथ वै द्विजाः। शिखाभितापो नागानां पर्वतानां शिलाजतु ॥११३॥
अपां तु नीलिका विद्यान्निर्मोकं भुजगेषु च। खोरकः[6] सौरभेयाणामूखरः पृथिवीतले ॥११४॥
शुनामपि च धर्मज्ञा दृष्टिप्रत्यवरोधनम्। रन्ध्रागतमथाश्वानां शिखोद्भेदश्च बर्हिणाम् ॥११५॥
नेत्ररागः कोकिलानां द्वेषः प्रोक्तो महात्मनाम्। जनानामपि भेदश्च सर्वेषामिति नः श्रुतम् ॥११६॥
शुकानामपि सर्वेषां हिक्किका[7] प्रोच्यते ज्वरः। शार्दूलेष्वथ वै विप्राः[7]श्रमो ज्वर इहोच्यते ॥११७॥
मानुषेषु च सर्वज्ञा[8] ज्वरो नामैष कीर्तितः। मरणे जन्मनि तथा मध्ये चापि निवेशितः ॥११८॥
एतन्माहेश्वरं तेजो ज्वरो नाम सुदारुणः। नमस्यश्चैव मान्यश्च सर्वप्राणिभिरीश्वरः ॥११९॥

बारह वर्षों में सम्पन्न होने वाले कठिन मूर्खों द्वारा निन्दित वर्णाश्रम विहित धर्मों से युक्त जहाँ-कहीं नहीं प्राप्त निश्चित, सब आश्रमों को पशु-पाश से मुक्त करने वाले सब पापों से छुड़ाने वाले तथा पवित्र पाशुपत नामक व्रत को मैंने उत्पन्न किया है। महाभाग! इस व्रत का जो पर्याप्त उत्तम फल है, वह तुम्हें मिलेगा। तुम मन में पीड़ा मत करो ॥१०८-११०॥

ब्रह्मा ने कहा—इतना कह कर पत्नी और अनुचरों सहित महेश्वर अमित तेजस्वी दक्ष के दृष्टि-पथ से बहिर्भूत हो गए ॥१११॥ पार्वती सहित सब धर्मों के ज्ञाता शिव अपना भाग जैसा कि पहले कहा गया है, प्राप्त कर ज्वर का अनेक भागों में बाँट दिया ॥११२॥ द्विजगण! धर्म के ज्ञाताओ! प्राणीमात्र की शान्ति के लिए अब आप सुनिए। नागों का शिखाभिताप, पर्वतों का शिलाजतु, जल का नीलिका, सर्पों का निर्मोक गो जाति का खोरक, पृथ्वी का ऊषर, कुत्तों का दृष्टिप्रत्यवरोध घोड़ों का रन्ध्रागत, मयूरों का शिखोद्भेद, कोयलों का नेत्ररोग, महात्माओं का द्वेष, व्यक्तियों का भेद, तोतों का हिक्किका और बाघों का श्रम नामक ज्वर कहा जाता है ॥११३-११७॥ सर्वज्ञ ऋषिगण! मनुष्यों में यह ज्वर नाम से ही प्रसिद्ध है, जो मरणकाल, जन्मकाल तथा मध्य में भी प्रवेश करता है ॥११८॥ भयंकर ज्वर नाम से प्रसिद्ध यह शिव का तेज अखिल प्राणियों से

---

१ ग विस्तमम्। गतार्तैरप्य०। २ ख ०मोक्षणम्। ३ ख यथाप्रोक्तं मयो म०। ४ ख भरक। ५ ग ज्वर। ६ ख दम्भिका। ७ ख ०श्रा समोहो ज्वर उच्य०। ८ क धर्मज्ञा।

इमां ज्वरोत्पत्तिमदीनमानसः, पठेत्सदा यः सुसमाहितो नरः
विमुक्तरोगः स नरो मुदायुतो, लभेत कामांश्च यथामनीषितान् ॥१२०॥
दक्षप्रोक्तं स्तवं चापि कीर्तयेद्यः शृणोति वा। नाशुभं प्राप्नुयात्किञ्चिद्दीर्घमायुरवाप्नुयात्॥१२१॥
यथा सर्वेषु देवेषु वरिष्ठो भगवान्भवः'। तथा स्तवो वरिष्ठोऽयं स्तवानां दक्षनिर्मितः॥१२२॥
यशःस्वर्गसुरैश्वर्यवित्तादिजयकाङ्क्षिभिः। स्तोतव्यो भक्तिमास्थाय विद्याकामैश्च यत्नतः॥१२३॥
व्याधितो दुःखितो दीनो नरो ग्रस्तो भयादिभिः। राजकार्यनियुक्तो वा मुच्यते महतो भयात्॥१२४॥
अनेनैव च देहेन गणानां च महेश्वरात्। इह लोके सुखं प्राप्य गणराड्डुपजायते॥१२५॥
न यक्षा न पिशाचा वा न नागा न विनायकाः। कुर्युर्विघ्नं गृहे तस्य यत्र संस्तूयते भवः॥१२६॥
शृणुयाद्वा इदं नारी भर्वत्याऽस्य भवभाविता। पितृपक्षे भर्तृपक्षे पूज्या भवति चैव ह॥१२७॥
शृणुयाद्वा इदं सर्वं कीर्तयेद्वाऽप्यभीक्ष्णशः। तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्धिं गच्छन्त्यविघ्नतः॥१२८॥
मनसा चिन्तितं यच्च यच्च वाचाऽप्युदाहृतम्। सर्वं संपद्यते तस्य स्तवस्यास्यानुकीर्तनात्॥१२९॥
देवस्य सगुहस्याथ देव्या नन्दीश्वरस्य च। बलिं विभज (भाग) तः कृत्वा दमेन नियमेन च॥१३०॥
ततः प्रयुक्तो गृह्णीयान्नामान्याशु यथाक्रमम्। इप्सितांल्लँभतेऽप्यर्थान्कामान्भोगांश्च मानवः॥१३१॥
मृतश्च स्वर्गमाप्नोति स्त्रीसहस्रसमावृतः। सर्वकामसुयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः॥१३२॥

आदरणीय तथा नमस्कार करने योग्य है॥११९॥ जो मनुष्य सावधान होकर दीनता रहित मन से इस ज्वरोत्पत्ति का सदा पाठ करेगा, वह मनुष्य रोग-मुक्त तथा प्रीतियुक्त हो कर यथेप्सित कामनाओं को प्राप्त करेगा॥१२०॥ दक्ष के द्वारा कथित स्तोत्र का जो कीर्तन या श्रवण करेगा, उसे किसी प्रकार का अशुभ नहीं होगा और वह दीर्घायु प्राप्त करेगा॥१२१॥ जैसे सब देवों में भगवान शंकर श्रेष्ठ है वैसे सब स्तोत्रों में दक्ष निर्मित यह स्तोत्र श्रेष्ठ है॥१२२॥ यश, स्वर्ग, देव विभूति, वित्त तथा जय के अभिलाषियों को भक्तिपूर्वक इस स्तोत्र का पाठ करना चाहिए। विद्या चाहने वालों को तो यत्न से इसका पाठ करना चाहिए॥१२३॥ (इस स्तोत्र के पाठ से) व्याधि-पीड़ित, दुःख-पीड़ित, दीन, भय आदि से ग्रस्त, राज कार्य में नियुक्त मनुष्य महाभय से मुक्त होता है और इसी देह से गणों का ईश्वर बन कर तथा इस लोक में सुख प्राप्त कर गण-राज हो जाता है॥१२५॥ न यक्ष, न पिशाच, न नाग, न विनायक ही उस घर में विघ्न करते हैं, जहाँ शिव की स्तुति की जाती है॥१२६॥ जो स्त्री शिव में मन लगा कर भक्ति से इस स्तोत्र को सुनती है, वह पिता के घर तथा पति के यहाँ भी सम्मानित होती है॥१२७॥ जो इसका बार-बार कीर्तन या श्रवण करेगा, उसके सब कार्य बिना विघ्न के सिद्ध हो जायेंगे॥१२८॥ इस स्तव के कीर्तन से मन से चिन्तित या वाणी से कथित सब काम सिद्ध हो जाते हैं॥१२९॥ दम तथा नियम से शिव, कार्त्तिकेय, पार्वती और नन्दीश्वर को अलग अलग बलि चढ़ा कर शीघ्र ही क्रमानुसार नामों के ग्रहण करने से मनुष्य यथाभिलषित कामनाओं तथा भोगों को प्राप्त करता है और मरने पर हजारों स्त्रियों से आवृत होकर स्वर्ग प्राप्त करता है॥१३०-१३२॥ मनुष्य सब कामनाओं से युक्त हो या सब पापों से युक्त हो पर दक्षकृत स्तोत्र का पाठ करने से सब पापों

---

१ ख ०वान्हर। त०। २ ख ०र्गप्राप्त स्यात्स्त्रीस०। ३ ख ०मप्रयु०।

पठन्दक्षकृतं स्तोत्रं सर्वपापैः प्रमुच्यते। मृतश्च गणसायुज्यं पूज्यमानः सुरासुरैः ॥१३३॥
वृषेण विनियुक्तेन विमानेन विराजते'। आभूतसंप्लवस्थायी रुद्रस्यानुचरो भवेत् ॥१३४॥
इत्याह भगवान्व्यासः पराशरसुतः प्रभुः। नैतद्वेदयते कश्चिन्नैतच्छ्राव्यं च कस्यचित्'॥१३५॥
श्रुत्वेमं परमं गुह्यं येऽपि स्युः पापयोनयः। वैश्याः स्त्रियश्च शूद्राश्च रुद्रलोकमवाप्नुयुः ॥१३६॥
श्रावयेद्यश्च विप्रेभ्यः सदा पर्वसु पर्वसु। रुद्रलोकमवाप्नोति द्विजो वै नात्र संशयः ॥१३७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भ्वृषिसंवादे दक्षस्तवनिरूपणं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

एकाम्रकक्षेत्रमाहात्म्यकथनम्

लोमहर्षण उवाच

श्रुत्वैवं वै मुनिश्रेष्ठाः कथां पापप्रणाशिनीम्। रुद्रक्रोधोद्भवां पुण्यां व्यासस्य वदतो द्विजाः ॥१॥
पार्वत्याश्च तथा रोषं क्रोधं शंभोश्च दुःसहम्। उत्पत्तिं वीरभद्रस्य भद्रकाल्याश्च संभवम् ॥२॥

से मुक्त हो जाता है मरने पर सुर असुरों से पूजित होते हुए गण सायुज्य प्राप्त करता है वृष-युक्त विमान पर विराजता है और महाप्रलय तक रुद्र का अनुचर होता है ॥१३२-१३४॥ ऐसा पराशर-पुत्र भगवान व्यास ने कहा है। इस कोई नहीं जानता है यह किसी को नहीं सुनाना चाहिए ॥१३५॥ जो कोई भी पापयोनि वैश्य स्त्री तथा शूद्र इसे सुनेंगे वे रुद्रलोक को प्राप्त करेंगे। जो द्विज पर्वकाल में ब्राह्मणों को यह स्तोत्र सुनाता है उसे निःसंदेह शिवलोक की प्राप्ति होती है ॥१३६-१३७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और मुनि के संवाद प्रकरण में दक्ष-स्तुति निरूपण नामक
चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४०॥

अध्याय ४१

एकाम्रक क्षेत्र का माहात्म्य-कथन

लोमहर्षण ने कहा—मुनिवर! इस प्रकार रुद्र क्रोध से उत्पन्न पापनाशिनी पवित्र कथा को एवम् पार्वती के रोष तथा शंकर के दुःसह क्रोध वीरभद्र तथा भद्रकाली की उत्पत्ति ... विनाश शंकर

---

१ म विराजता। २ ग वर्हिषि०।

दक्षयज्ञविनाशं च वीर्यं शंभोस्तथाऽद्भुतम्। पुनः प्रसादं देवस्य दक्षस्य सुमहात्मनः॥३॥
यज्ञभागं च रुद्रस्य दक्षस्य च फलं क्रतोः। हृष्टा बभूवुः संप्रीता विस्मिताश्च पुनः पुनः॥४॥
पप्रच्छुश्च पुनर्व्यासं [1]कथाशेषं तथा द्विजाः। पृष्टः प्रोवाच तान्व्यासः क्षेत्रमेकाम्रकं पुनः॥५॥

व्यास उवाच

ब्रह्मप्रोक्तां कथां पुण्यां श्रुत्वा तु ऋषिपुंगवाः। प्रशशंसुस्तदा हृष्टा रोमाञ्चिततनूरुहाः॥६॥

ऋषय ऊचुः

अहो देवस्य माहात्म्यं त्वया शंभोः प्रकीर्तितम्। दक्षस्य च सुरश्रेष्ठ यज्ञविध्वंसनं तथा॥७॥
एकाम्रकं क्षेत्रवरं वक्तुमर्हसि सांप्रतम्। श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्परं कौतूहलं हि नः॥८॥

व्यास उवाच

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा लोकनाथश्चतुर्मुखः। प्रोवाच शंभोस्तत्क्षेत्रं भूतले दुष्कृतच्छदम्॥९॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूला प्रवक्ष्यामि समासतः। सर्वपापहरं पुण्यं क्षेत्रं परमदुर्लभम्॥१०॥
लिङ्गकोटिसमायुक्तं वाराणसीसमं शुभम्। एकाम्रकेति विख्यातं तीर्थाष्टकसमन्वितम्॥११॥
एकाम्रवृक्षस्तत्राऽऽसीत्पुरा कल्पे द्विजोत्तमाः। नाम्ना तस्यैव तत्क्षेत्रमेकाम्रकमिति [2]श्रुतम्॥१२॥

के अद्भुत पराक्रम, महात्मा दक्ष के ऊपर पुनः शिव की कृपा, रुद्र के यज्ञ-भाग तथा दक्ष के यज्ञ-फल को व्यास से सुन कर द्विजगण हृष्ट तुष्ट तथा विस्मित हो कर फिर व्यास से कथा का अवशिष्ट भाग पूछने लगे॥१-५॥

व्यास ने कहा—ब्रह्मा द्वारा कही गई पवित्र कथा को सुन कर हर्षित तथा रोमाञ्चित शरीर होकर ऋषिगण प्रशंसा करने लगे॥६॥

ऋषियों ने कहा—अहो! देवश्रेष्ठ! आपने शम्भु का माहात्म्य तथा दक्ष का यज्ञ-विध्वंस वर्णन किया। अब एकाम्रक क्षेत्र का वर्णन कीजिए। ब्रह्मन्, हम सुनना चाहते हैं, हमें बड़ी उत्सुकता है॥७-८॥

व्यास ने कहा—उनके इस वचन को सुनकर लोकपति ब्रह्मा भूतल पर पापनाशन शम्भु के उस क्षेत्र के बारे में कहने लगे॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर्य! सुनिये, मैं संक्षेप से कहूँगा। सब पापों को हरने वाला, परम दुर्लभ, करोड़ों लिंगों से युक्त, वाराणसी के समान शुभदायक तथा पवित्र एकाम्रक नाम से प्रसिद्ध तीर्थ आठ तीर्थों से युक्त है॥१०-११॥ द्विजवर! पहले वहाँ एक आम का वृक्ष था। उसी के नाम पर वह क्षेत्र

---

१ ख ०प पुनर्द्विजाः। २ ख स्मृतम्।

हृष्टपुष्टजनाकीर्णं नरनारीसमन्वितम्। विद्वांसग (द्यावद्ग)णभूयिष्ठं धनधान्यादिसंयुतम् ॥१३॥
गृहगोपुरसंबाधं त्रिकचाद्वारभूषितम्। नानावणिक्समाकीर्णं नानारत्नोपशोभितम् ॥१४॥
पुराट्टालकसंयुक्तं रथिभिः समलंकृतम्। राजहंसनिभैः शुभ्रैः प्रासादैरुपशोभितम् ॥१५॥
मार्गद्वारसंयुक्तं सितप्राकारशोभितम्। रक्षितं शस्त्रसंघैश्च परिखाभिरलंकृतम् ॥१६॥
सितरक्तैस्तथा पीतैः कृष्णश्यामैश्च वर्णकैः। समीरणोद्धताभिश्च पताकाभिरलंकृतम् ॥१७॥
नित्योत्सवप्रमुदितं [1]नानावादित्रनिस्वनैः। वीणावेणुमृदङ्गैश्च क्षेपणीभिरलंकृतम् ॥१८॥
देवतायतनैर्दिव्यैः [2]प्राकारोद्यानमण्डितैः। पूजाविचित्ररचितैः सर्वत्र समलंकृतम् ॥१९॥
स्त्रियः प्रमुदितास्तत्र दृश्यन्ते तनुमध्यमाः। [3]हारैरलंकृतग्रीवाः पद्मपत्रायतेक्षणाः ॥२०॥
पीनोन्नतकुचाः श्यामाः पूर्णचन्द्रनिभानना[4]। स्थिरालकाः सुकपोलाः काञ्चीनूपुरनादिताः ॥२१॥
सुकेश्यश्चारुजघना कर्णान्तायतलोचनाः। सर्वलक्षणसंपन्नाः सर्वाभरणभूषिताः ॥२२॥
दिव्यवस्त्रधराः शुभ्राः काश्चित्काञ्चनसंनिभाः। हंसवारणगामिन्यः कुचभारावनामिताः ॥२३॥
दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गाः कर्णाभरणभूषिताः। मदालसाश्च सुश्रोण्यो नित्यं प्रहसिताननाः ॥२४॥
ईषद्विस्पष्टदशना बिम्बोष्ठा[5] मधुरस्वराः। ताम्बूलरञ्जितमुखा विदग्धा प्रियदर्शना ॥२५॥

एकाम्रक नाम से विख्यात ॥१२॥ हृष्ट-पुष्ट जनों से प्रपूर्ण, नर-नारियों से समन्वित, विद्वद्गणों से परिपूर्ण, धन धान्य आदि से संयुत ॥१३॥ गृह तथा पुरद्वारों से संकीर्ण, त्रिकोण द्वारों से भूषित, अनेक व्यापारियों से व्याप्त, नाना रत्नों से सुशोभित ॥१४॥ नगर की अट्टालिकाओं से संयुक्त, रथ वालों से अलंकृत, राजहंस के समान उज्ज्वल प्रासादों से शोभित ॥१५॥ मार्ग-द्वारों से संयुक्त, श्वेत चहारदीवारियों से शोभित, शस्त्रसमूहों से रक्षित, खाइयों से अलंकृत ॥१६॥ वायु द्वारा चचल और सफेद, लाल, पीत, कृष्ण तथा श्याम वर्ण वाली पताकाओं से अलंकृत ॥१७॥ नित्य उत्सवों से प्रमुदित, अनेक प्रकार के वाद्यों—वीणा, वेणु, मृदंग और क्षेपणी के शब्दों से अलंकृत ॥१८॥ और चहारदीवारी युक्त उद्यानों से मंडित तथा पूजा की विचित्र रचनाओं से युक्त देवालयों से भूषित है ॥१९॥ वहाँ क्षीण कटिवाली, युक्त-दिव्य हारों से अलंकृत ग्रीवा वाली, कमललोचना ॥२०॥ स्थूल तथा उन्नत स्तनों वाली, श्यामा, पूर्णचन्द्र के समान मुख वाली, स्थिर केश वाली, सुन्दर कपोल वाली, करधनी और नूपुर का शब्द करने वाली ॥२१॥ सुन्दर केशवाली, सुन्दर जघा वाली, कानों तक लम्बी आँखों वाली, सब लक्षणों से सपन्न, सब भूषणों से भूषित ॥२२॥ दिव्यवस्त्रधारिणी, गौरवर्णा, सुवर्ण-समान वर्ण वाली, हंस तथा हाथी के समान चाल वाली, स्तनों के भार से झुकी हुई ॥२३॥ दिव्य गन्धों से लिप्त अंग वाली, कानों के गहनों से भूषित, मद से अलसायी हुई, सुन्दर नितम्ब वाली, सदा हँसमुख ॥२४॥ किञ्चित् स्पष्ट दाँतों वाली, बिम्बोष्ठी, मधुर स्वर वाली, ताम्बूलों से रञ्जित मुख वाली, चतुर, प्रिय-

---

१ ग °नवादितम्। वी°। २ ख °कारैर्धातुम°। ३ ग हावभावानत°। ४ ख °न्द्रसमान°। ५ ख गुरुष्ठ्यो।

सुभगाः प्रियवादिन्यो नित्यं यौवनगर्विताः। दिव्यवस्त्रधराः सर्वाः सदा चारित्रमण्डिताः॥२६॥
क्रीडन्ति ताः सदा तत्र स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः। स्वे स्वे गृहे प्रमुदिता दिवा रात्रौ वराननाः॥२७॥
पुरुषास्तत्र दृश्यन्ते रूपयौवनगर्विताः। सर्वलक्षणसंपन्नाः सुमृष्टमणिकुण्डलाः॥२८॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च मुनिसत्तमाः। स्वधर्मनिरतास्तत्र निवसन्ति सुधार्मिकाः॥२९॥
अन्याश्च तत्र तिष्ठन्ति वारमुख्याः सुलोचनाः। घृताचीमेनकातुल्यास्तथा समतिलोत्तमाः॥३०॥
उर्वशीसदृशाश्चैव[1] विप्रचित्तिनिभास्तथा। विश्वाचीसहजन्याभाः प्रम्लोचासदृशास्तथा॥३१॥
सर्वास्ताः प्रियवादिन्यः सर्वा विहसिताननाः। कलाकौशलसंयुक्ताः सर्वास्त[2] गुणसंयुताः॥३२॥
एव पण्यस्त्रियस्तत्र नृत्यगीतविशारदाः। निवसन्ति मुनिश्रेष्ठाः सर्वस्त्रीगुणगर्विताः॥३३॥
प्रेक्षणालापकुशलाः सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः। न रूपहीना दुर्वृत्ता न परद्रोहकारिकाः॥३४॥
यासां कटाक्षपातेन मोहं गच्छन्ति मानवाः। न तत्र निर्धनाः सन्ति न मूर्खा न परद्विषः॥३५॥
न रोगिणो न मलिना न कदर्या न मायिनः[3]। न रूपहीना दुर्वृत्ता न परद्रोहकारिणः॥३६॥
तिष्ठन्ति मानवास्तत्र क्षेत्रे जगति विश्रुते। सर्वत्र सुखसंचारं सर्वसत्त्वसुखावहम्॥३७॥
[4]नानाजनसमाकीर्णं सर्वसस्यसमन्वितम्। कर्णिकारैश्च पनसैश्चम्पकैर्नागकेसरैः॥३८॥
पाटलाशोकबकुलैः [5]कपित्थैर्बहुलैर्धवैः। चूतनिम्बकदम्बैश्च तथाऽन्यैः पुष्पजातिभिः॥३९॥
नीपकैर्धवखदिरैर्लताभिश्च विराजितम्। शालैस्तालैस्तमालैश्च नारिकेलैः शुभाञ्जनैः॥४०॥

दर्शना॥२५॥ सौभाग्यवती, प्रियवादिनी, नित्य यौवन से गर्वित और सुचरित्रा स्त्रियाँ दीखती हैं॥२६॥ अप्सराओं के समान वे श्रेष्ठ स्त्रियाँ दिनरात अपने अपने घरों में हर्ष से क्रीडा करती रहती हैं॥२७॥ वहाँ रूप यौवन-गर्वित, सर्वलक्षण-सपन्न तथा सुन्दर मणि-कुण्डलों से युक्त पुरुष देखे जाते हैं॥२८॥ मुनिवर्य, स्वधर्मपरायण अत्यन्त धार्मिक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वहाँ वास करते हैं॥२९॥ वहाँ और भी घृताची, मेनका, तिलोत्तमा, उर्वशी, विप्रचित्ति, विश्वाची तथा प्रम्लोचा तुल्य सुन्दर नेत्र वाली वेश्यायें रहती हैं॥३०-३१॥ वे सब प्रियवादिनी, हास्ययुक्त मुख वाली, कला-कौशल सयुक्त तथा सर्वगुण-सम्पन्न हैं॥३२॥ मुनिवर्य! इस प्रकार नृत्य-गीत विशारद, समस्त स्त्रीगुणों से गर्वित, ताकने तथा बातचीत करने में कुशल, प्रिय दीखने वाली, सुन्दरी गणिकायें वहाँ बसती हैं, जो न रूप से हीन, न दुराचारिणी और न दूसरे से द्रोह करने वाली हैं, जिनके कटाक्षपात से ही मनुष्य मुग्ध हो जाते हैं॥३३-३४½॥ वहाँ न निर्धन, न मूर्ख, न परद्रोही, न रोगी, न म्लेच्छ, न कृपण, न मायाकारी, न रूपहीन और न दुराचारी मनुष्य रहते हैं॥३५-३६॥ उस जगद्विख्यात क्षेत्र में सब जगह सुख का सचार है, सब जीवों को सुख ही सुख होता है॥३७॥ वह क्षेत्र अनेक प्रकार के मनुष्यों से व्याप्त, सब तरह के अन्नों से समन्वित, कनकचम्पा, कटहल, चम्पा, नागकेसर॥३८॥ पाटला, अशोक, मौलसिरी, कैथा, आम, नीम, कदम्ब तथा दूसरी पुष्प जातियों॥३९॥ कदम्ब, धव, खैर और लताओं से विराजित, साखू, ताल, तमाल, नारियल, सहिजन॥४०॥ अर्जुन, समपर्ण,

---

१ ग ०व पूर्वचित्ति०। २ ख. ०र्वाश्च गु०। ३ ख. मानिन। ४ ग ०नपदाकी०। ५ ख ०र्बदरै०।

अर्जुनैः समपर्णैश्च कोविदारैः सपिप्पलैः। लकुचैः सरलैर्लोध्रैर्हिन्तालैर्देवदारुभिः ॥४१॥
पलाशैर्मुचुकुन्दैश्च पारिजातैः सकुब्जकैः। कदलीवनखण्डैश्च जम्बूपूगफलैस्तथा ॥४२॥
केतकीकरवीरैश्च अतिमुक्तैश्च किंशुकैः। मन्दारकुन्दपुष्पैश्च तथाऽन्यैः पुष्पजातिभिः ॥४३॥
नानापक्षिरुतैः सेव्यैरुद्यानैर्नन्दनोपमैः। फलभारानतैर्वृक्षैः सर्वर्तुकुसुमोत्करैः ॥४४॥
चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैश्च कोकिलैः। कलविङ्कैर्मयूरैश्च प्रियपुत्रैः शुकैस्तथा ॥४५॥
जीवंजीवकहारीतैश्चातकैर्वनवेष्टितैः। नानापक्षिगणैश्चान्यैः कूजद्भिर्मधुरस्वरैः ॥४६॥
दीर्घिकाभिस्तडागैश्च पुष्करिणीभिश्च वापिभिः। नानाजलाशयैश्चान्यैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः ॥४७॥
कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शुभैः। कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः ॥४८॥
कारण्डवैः प्लवैर्हंसैस्तथाऽन्यैर्जलचारिभिः। एवं नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पैर्नानाविधैर्वरैः ॥४९॥
नानाजलाशयैः पुण्यैः शोभितं तत्समन्ततः। आस्ते तत्र स्वयं देवः कृत्तिवासा वृषध्वजः ॥५०॥
हिताय सर्वलोकस्य भुक्तिमुक्तिप्रदः शिवः। पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च ॥५१॥
पुष्करिण्यस्तडागानि वाप्यः कूपाश्च सागराः। तेभ्यः पूर्वं समाहृत्य जलबिन्दून्पृथक्पृथक् ॥५२॥
सर्वलोकहितार्थाय रुद्रः सर्वसुरैः सह। तीर्थं बिन्दुसरो नाम तस्मिन्क्षेत्रे द्विजोत्तमाः ॥५३॥
चकार ऋषिभिः सार्धं तेन बिन्दुसरः स्मृतम्। अष्टम्यां बहुले पक्षे मार्गशीर्षे द्विजोत्तमाः ॥५४॥

कचनार, पीपल, बड़हल, सरल, लोध्र, हिन्ताल, देवदारु ॥४१॥ पलाश, मुचुकुन्द, पारिजात, कुब्ज, कदलीवन-खण्ड, जामुन, सुपारी ॥४२॥ केतकी, करवीर, अतिमुक्त, पलाश, मन्दार, कुन्द तथा दूसरी पुष्प-जातियों ॥४३॥ नाना पक्षियों के शब्दों, नन्दनवन के समान सेव्य उद्यानों, फलों के भार से झुके वृक्षों, सब ऋतुओं में होने वाले पुष्पों की राशि ॥४४॥ चकोर, शतपत्र (कठफोड़वा), भृङ्गराज, कोकिल, चटक (गौरैया), मयूर, प्रियपुत्र, तोते ॥४५॥ जीवजीवक, हारीत, पपीहे, तथा वन में व्याप्त मधुर स्वर से बोलने वाले अन्य पक्षीगण ॥४६॥ बावली, तालाब, पुष्करिणी तथा कमलिनी-वन मण्डित अनेक जलाशय ॥४७॥ कुमुद, कमल, सुन्दर नीलकमल, हंस, चक्रवाक, जलकुक्कुट ॥४८॥ कारण्डव, प्लव, हंस तथा अन्य जलचर पक्षियों एवम् अनेक प्रकार के वृक्षों, पुष्पों तथा पवित्र जलाशयों से चारों ओर सुशोभित है ॥४९॥ वहाँ स्वयं चर्म रूप वस्त्रधारी शिव रहते हैं ॥५०॥ भुक्ति-मुक्ति-दाता शिव ने सब लोकों के कल्याण के लिए पृथिवी पर जितने तीर्थ, नदियाँ, सरोवर, पुष्करिणियाँ, तालाब, बावलियाँ, कुएँ तथा समुद्र हैं, उन सब से पृथक्-पृथक् जल बिन्दुओं को लाकर वहाँ स्थापित कर दिया ॥५१-५२॥ द्विजश्रेष्ठो ! सर्वलोक-हित के लिए अखिल देवगण तथा मुनिवृन्द सहित रुद्र ने उस क्षेत्र में बिन्दुसर नामक तीर्थ का निर्माण किया। बिन्दुओं से बनने के कारण उसका नाम बिन्दुसर पड़ा ॥५३॥ द्विजवर्य ! जो अगहन-कृष्ण-अष्टमी तिथि एवं विषुव में (वह समय जब दिन-रात का मान बराबर होता है) उस क्षेत्र के लिए यात्रा करता

---

१ ख ०कुब्जकैः। २ ख ०म्बूकन्दफ०। ३ ख ०सुमाकरैः। ४ ख ०स्वनैः। दी०। ५ ख ०रिण्याश्च राजिभिः। ६ ख ०र्धैर्जनैः। ना०। ७ ख. सदा।

कुरुते विषुवे विजितेन्द्रियः। विधिवद्विन्दुसरसि स्नात्वा श्रद्धासमन्वितः ॥५५॥
ांश्च पितृन्सतर्प्य वाग्यतः। तिलोदकेन विधिना नामगोत्रविधानवित् ॥५६॥
स्नात्वैवं विधिवत्तत्र सोऽश्वमेधफलं लभेत्। ग्रहोपरागे विषुवे सङ्क्रान्त्यामयने तथा ॥५७॥
युगादिषु षडशीत्यां तथाऽन्यत्र शुभे तिथौ। ये तत्र दानं विप्रेभ्यः प्रयच्छन्ति धनादिकम् ॥५८॥
अन्यतीर्थाच्छतगुणं फलं ते प्राप्नुवन्ति वै[१]। पिण्डं ये[२] संप्रयच्छन्ति पितृभ्यः सरसस्तटे ॥५९॥
पितॄणामक्षया तृप्तं ते कुर्वन्ति न संशयः। ततः शम्भोर्गृहं गत्वा[३] वाग्यतः संयतेन्द्रियः ॥६०॥
प्रविश्य पूजयेच्छर्वं कृत्वा तं त्रि:प्रदक्षिणम्। घृतक्षीरादिभिः स्नानं कारयित्वा भवं शुचि[४] ॥६१॥
चन्दनेन सुगन्धेन विलिप्य कुङ्कुमेन च[५]। ततः सपूजयेद्देवं चन्द्रमौलिमुमापतिम् ॥६२॥
पुष्पैर्नानाविधैर्मेध्यैर्बिल्वार्ककमलादिभिः। आगमोक्तेन मन्त्रेण वेदोक्तेन च शंकरम् ॥६३॥
अदीक्षितस्तु नाम्नैव मूलमन्त्रेण चार्चयेत्। एवं संपूज्य तं देवं गन्धपुष्पानुरागिभिः ॥६४॥
धूपदीपैश्च नैवेद्यैरुपहारैस्तथा स्तवैः। दण्डवत्प्रणिपातैश्च गीतैर्वाद्यैर्मनोहरैः ॥६५॥
नृत्यजप्यनमस्कारैर्जयशब्दैः प्रदक्षिणैः। एवं सपूज्य विधिवद्देवदेवमुमापतिम् ॥६६॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो रूपयौवनगर्वितः। कुलैकविंशमुद्धृत्य दिव्याभरणभूषितः ॥६७॥
सौवर्णेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना। उपगीयमानो गन्धर्वैरप्सरोभिरलंकृतः ॥६८॥

है अर्थात् जितेन्द्रिय होकर विधिपूर्वक विन्दुसर मे स्नान कर श्रद्धापूर्वक देवता, ऋषि, मनुष्य तथा पितरो का तिल-जल से नाम-गोत्र उच्चारण कर मे तर्पण करता है, वह इस प्रकार विधिवत् स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है ॥५४-५६½॥ सूर्य और चन्द्र के ग्रहणो मे, तुला और मेष राशि की सक्रान्ति मे, अयन मे (सूर्य के उत्तरायण और दक्षिणायन होने के दिन), युगारम्भ मे (अक्षय तृतीया के दिन), मिथुन, कन्या, धन तथा मीन राशि मे और अन्य शुभ तिथि म जो वहाँ पर ब्राह्मणो क। धन आदि दान देते है, वे अन्य तीर्थो से सौ गुना अधिक फल प्राप्त करते है ॥५७-५८½॥ जो उस सरावर मे तट पर पितरा को पिण्ड देत हैं, वे नि सन्देह पितरो का अक्षय तृप्ति प्रदान करते हैं ॥५९½॥ इसके अनन्तर शिवालय मे जाकर वाक्सयम तथा इन्द्रिय सयम कर के शिव की तीन बार प्रदक्षिणा कर के पूजा करे ॥६०॥ पवित्रतापूर्वक घी, दूध आदि से शिव को स्नान कराये। फिर सुगन्धित चन्दन तथा कुकुम लेप कर नानाविध पुष्प, पवित्र बिल्वपत्र, आक तथा कमल से एवम् आगमाक्त और वेदोक्त मन्त्र से चन्द्र मुकुटधारी उमापति की पूजा करे ॥६१-६३॥ अदीक्षित व्यक्ति केवल नाम ही लेकर मूलमन्त्र से पूजा करे। इस प्रकार गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, उपहार, स्तुति, दण्डवत् प्रणाम, गीत, मनाहर वाद्य, नत्य, जप, नमस्कार, जय शब्द तथा प्रदक्षिणा से विधिपूर्वक उमापति की पूजा करने से मनुष्य सर्वपापरहित, रूप-यौवन-गर्वित, इक्कीस कुलो का उद्धारक, दिव्य भूषणा से भूषित तथा क्षुद्रघण्टिकाओ की माला से युक्त सुवर्ण के विमान पर आरूढ होकर गन्धर्व और अप्सराओ से स्तुत

---

१ ख च। २ ख ये च प्र०। ३ ख गच्छेद्वाग्य०। ४ ख वा। ५ ख ०र्धैर्दिव्यै पुनागक०।

उद्योतयन्दिशः सर्वाः शिवलोकं स गच्छति। भुक्त्वा तत्र सुखं विप्रा मनसः प्रीतिदायकम्॥६९॥
शिवलोकवासिभिः सार्धं यावदाभूतसंप्लवम्। ततस्तस्मादिहाऽऽयातः पृथिव्यां पुण्यसंक्षये॥७०॥
जायते योगिनां गेहे चतुर्वेदी द्विजोत्तमाः। योगं पाशुपतं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात्॥७१॥
शयनोत्थापने चैव सत्रारम्भायने तथा। अशोकाख्यां तथाऽष्टम्यां पवित्रारोपणे तथा॥७२॥
ये च पश्यन्ति तं देवं कृत्तिवाससमुत्तमम्। विमानेनार्कवर्णेन शिवलोकं व्रजन्ति ते॥७३॥
सर्वकालेऽपि तं देवं ये पश्यन्ति सुमेधसः। तेऽपि पापविनिर्मुक्ताः शिवलोकं व्रजन्ति वै॥७४॥
देवस्य पश्चिमे पूर्वे दक्षिणे चोत्तरे तथा। योजनद्वितयं सार्धं क्षेत्रं तद्भुक्तिमुक्तिदम्॥७५॥
तस्मिन्क्षेत्रवरे लिङ्गं भास्करेश्वरसंज्ञितम्। पश्यन्ति ये तु तं देवं स्नात्वा कुण्डे महेश्वरम्॥७६॥
आग्नेयेनार्चितं पूर्वं देवदेवं त्रिलोचनम्। सर्वपापविनिर्मुक्ता विमानवरमास्थिताः॥७७॥
उपगीयमाना गन्धर्वैः शिवलोकं व्रजन्ति ते। तिष्ठन्ति तत्र मुदिताः कल्पमेकं द्विजोत्तमाः॥७८॥
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगाञ्छिवलोके मनोरमान्। पुण्यक्षयादिहाऽऽयाता जायन्ते प्रवरे कुले॥७९॥
अथवा योगिनां गेहे वेदवेदाङ्गपारगाः। उत्पद्यन्ते द्विजवराः सर्वभूतहिते रताः॥८०॥
मोक्षशास्त्रार्थकुशलाः सर्वत्र समबुद्धयः। योगं शंभोर्वरं प्राप्य ततो मोक्षं व्रजन्ति ते॥८१॥
तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये लिङ्गं यद्दृश्यते द्विजाः। पूज्यापूज्यं च सर्वत्र वने रथ्यान्तरेऽपि वा॥८२॥

चतुष्पथे श्मशाने वा यत्र कुत्र च तिष्ठति। दृष्ट्वा तल्लिङ्गमव्यग्रः श्रद्धया सुसमाहितः ॥८३॥
स्नापयित्वा तु तं भक्त्या गन्धैः पुष्पैर्मनोहरैः। धूपैर्दीपैः सनैवेद्यैर्नमस्कारैस्तथा स्तवैः ॥८४॥
दण्डवत्प्रणिपातैश्च नृत्यगीतादिभिस्तथा। संपूज्यैवं विधानेन शिवलोकं व्रजेन्नरः ॥८५॥
नारी वा द्विजशार्दूलाः संपूज्य श्रद्धयाऽन्विता। पूर्वोक्तं फलमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥८६॥
कः शक्नोति गुणान्वक्तुं समग्रान्मुनिसत्तमाः। तस्य क्षेत्रवरस्याथ[1] ऋते देवान्महेश्वरात् ॥८७॥
तस्मिन्क्षेत्रोत्तमे गत्वा श्रद्धयाऽश्रद्धयाऽपि वा। माधवादिषु[2] मासेषु नरो वा यदिवाऽङ्गना[3] ॥८८॥
यस्मिन्यस्मिंस्तिथौ विप्राः स्नात्वा बिन्दुसरोम्भसि। पश्येद्देवं विरूपाक्षं देवीं च वरदां शिवाम् ॥८९॥
गणं[4] चण्डं[5] कार्तिकेयं गणेशं वृषभं तथा। कल्पद्रुमं च सावित्रीं शिवलोकं स गच्छति ॥९०॥
स्नात्वा च कापिले तीर्थे विधिवत्पापनाशने। प्राप्नोत्यभिमतान्कामाञ्छिवलोकं स गच्छति ॥९१॥
यः स्तम्भं तत्र विधिवत्करोति नियतेन्द्रियः। कुलैकविंशमुद्धृत्य शिवलोकं स गच्छति ॥९२॥
एकाम्रके शिवक्षेत्रे वाराणसीसमे शुभे[6]। स्नानं करोति यस्तत्र मोक्षं स लभते ध्रुवम् ॥९३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभ्वृषिसंवाद एकाम्रक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

लिंग वन मे गलियो मे, चौराहो पर, श्मशान मे या जहाँ-कही भी मिले, उस लिंग को प्रसन्नता, श्रद्धा तथा सावधानी से स्नान करा कर भक्तिपूर्वक गन्ध, मनोहर पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, नमस्कार, स्तुति, दण्डवत्प्रणाम (तथा नृत्य-गीत आदि से पूजे।) इस प्रकार विधानपूर्वक लिंग की पूजा करने से मनुष्य शिवलोक को जाता है ॥८३-८५॥ द्विजवर्य! स्त्री भी अगर श्रद्धान्वित होकर इस तरह पूजा करेगी तो वह पूर्वोक्तफलभागिनी होगी, इसमे सोचने की कोई आवश्यकता नहीं ॥८६॥ मुनिवर! महेश्वर को छोडकर कौन ऐसा व्यक्ति है, जो उस उत्तम क्षेत्र के समग्र गुणो का वर्णन कर सके? ॥८७॥ विप्रगण! पुरुष या स्त्री जो कोई भी श्रद्धा या अश्रद्धा से उस उत्तम क्षेत्र मे जाकर वैशाख आदि मासो मे जिसी किसी तिथि को बिन्दुसर मे स्नान कर विरूप नेत्र वाले शिव, वर देने व ली पार्वती गण, कार्तिकेय, गणेश, वृषभ कल्पद्रुम तथा सावित्री का दर्शन करेगा, वह शिवलोक को जायेगा ॥८८-९०॥ वहाँ पापनाशक कापिल तीर्थ में विधिवत् स्नान कर के मनुष्य अभिलषित भोगो को प्राप्त करता है तथा शिवलोक को जाता है ॥९१॥ जो जितेन्द्रिय होकर ध्वजारोपण करता है, वह इक्कीस कुलो का उद्धार कर शिवलाक को जाता है ॥९२॥ वाराणसी के समान पवित्र उस एकाम्रक नामक शिव-क्षेत्र में जा स्नान करता है उसे निश्चय ही मुक्ति मिलती है ॥९३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे ब्रह्मा और ऋषि के सवाद प्रकरण मे एकाम्र-क्षेत्र माहात्म्य-वर्णन नामक एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४१॥

---

[1] क ०थ तस्य देवस्य शूलिनः। त०। [2] ख व्यापरया०। [3] ख माघाद्यादि०। [4] ख ०ना। तस्मिन्क्षेत्रे स्थितो वि०। [5] ख गणांश्चन्द्र का०। [6] ख ०भे। काल नयति।

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

उत्कलक्षेत्र-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विरजे विरजा माता ब्रह्माणी संप्रतिष्ठिता। यस्याः 'संदर्शनान्मर्त्यः पुनात्यासप्तमं कुलम्'॥१॥
सकृद्दृष्ट्वा तु तां देवीं भक्त्याऽऽपूज्य प्रणम्य च। नरः स्ववंशमुद्धृत्य मम लोकं स गच्छति॥२॥
'अन्याश्च तत्र तिष्ठन्ति विरजे' लोकमातरः। सर्वपापहरा देव्यो वरदा भक्तवत्सलाः॥३॥
आस्ते वैतरणी तत्र सर्वपापहरा नदी। यस्यां स्नात्वा नरश्रेष्ठः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥४॥
आस्ते 'स्वयंभूस्तत्रैव' क्रोडरूपी हरिः स्वयम्। दृष्ट्वा प्रणम्य तं भक्त्या' परं विष्णुं व्रजन्ति ते॥५॥
कापिले गोग्रहे सोमे तीर्थे चालाबुसंज्ञिते। 'मृत्युंजये क्रोडतीर्थे वासुके सिद्धकेश्वरे॥६॥
तीर्थेष्वेतेषु मतिमान्विरजे संयतेन्द्रियः गत्वाऽऽप्तत्तीर्थे विधिवत्स्नात्वा देवान्प्रणम्यच॥७॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विमानवरमास्थितः। उपगीयमानो गन्धर्वैर्मम लोके महीयते॥८॥
विरजे यो मम क्षेत्रे पिण्डदानं करोति वै। स 'करोत्यक्षयां तृप्तिं पितॄणां नात्र संशयः॥९॥
मम क्षेत्रे मुनिश्रेष्ठा विरजे ये कलेवरम्। परित्यजन्ति पुरुषास्ते मोक्षं प्राप्नुवन्ति वै॥१०॥
स्नात्वा यः सागरे मर्त्यो दृष्ट्वा च कपिलं हरिम्। पश्येद्देवीं च वाराहीं स याति त्रिदशालयम्॥११॥

अध्याय ४२

उत्कलक्षेत्र का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—विरज नामक क्षेत्र मे विरजा नामक माता ब्रह्माणी प्रतिष्ठित है, जिसके दर्शन करने से मनुष्य सात कुलो को पवित्र करता है॥१॥ एक बार उस देवी के दर्शन करके भक्तिपूर्वक पूजा तथा प्रणाम करने से मनुष्य अपने वश का उद्धार कर मेरे लोक को प्राप्त करता है॥२॥ उस विरज-क्षेत्र मे दूसरी भी सब पापो को हरने वाली, वर देने वाली तथा भक्तवत्सला लोकमातायें रहती हैं॥३॥ वहाँ निखिल पापनाशिनी वैतरणी नामक नदी है, जिसमे स्नान कर मनुष्य सब पापो से मुक्त हो जाता है॥४॥ वही पर साक्षात् वराहरूपी स्वयभू हरि विराजते हैं। उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम करने से मनुष्य विष्णुलोक को जाता है॥५॥ विरज-क्षेत्र म कापिल, गोग्रह, सोम, अलाबु, मृत्युजय, क्रोडतीर्थ, वासुक तथा सिद्धकेश्वर नामक तीर्थों मे जो बुद्धिमान मनुष्य इन्द्रिय सयमपूर्वक स्नान करके देवताओ को प्रणाम करता है, वह सब पापो से रहित तथा उत्तम विमानम स्थित होकर-गन्धर्वों से स्तुत होते हुए मेरे लोक मे पूजित होता है॥६-८॥ मेरे विरज-क्षेत्र मे जो पिण्डदान करता है, उसके पितर लोग अक्षय तृप्ति प्राप्त करते हैं, इसम कोई सशय नही॥९॥ मुनिवर्य! मेरे विरज-क्षेत्र मे जो शरीर त्याग करता है, वह मोक्ष प्राप्त करता है॥१०॥ जो मनुष्य समुद्र म स्नान कर भगवान् कपिल तथा वाराही देवी का

---

१ ग ०र्शने मर्त्यं। २ ख ०म्। तत्र दृष्ट्वा ३ ख अथान्यास्तत्र। ४ ख विरजा। ५ ख ०यम्भुस्तत्रै०। ६ ख ०व क्रोडरूपि ह०। ७ ख ०क्त्या नरस्तु मत्पुरं व्रजेत्। वा०। ८ ख मृत्युक्षये। ९ ग करोति परां तृ०।

सन्ति चान्यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च। 'तत्काले तु मुनिश्रेष्ठा वेदितव्यानि तानि वै ॥१२॥
समुद्रस्योत्तरे 'तीरे तस्मिन्देशे द्विजोत्तमाः। 'आस्ते गुह्यं परं क्षेत्रं मुक्तिदं पापनाशनम् ॥१३॥
सर्वत्र वालुकाकीर्णं 'पवित्रं सर्वकामदम्। दशयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥१४॥
अशोकार्जुनपुंनागैर्बकुलैः सरलद्रुमैः। पनसैर्नारिकेलैश्च शालैस्तालैः कपित्थकैः ॥१५॥
चम्पकैः कर्णिकारैश्च चूतबिल्वैः सपाटलैः। कदम्बैः कोविदारैश्च लकुचैर्नागकेसरैः ॥१६॥
प्राचीनामलकैर्लोध्रैर्नारङ्गैर्धवखादिरैः। सर्जभूर्जाश्वकर्णैश्च तमालैर्देवदारुभिः ॥१७॥
मन्दारैः पारिजातैश्च न्यग्रोधागुरुचन्दनैः। खर्जूराम्रातकैः सिद्धैर्मुचुकुन्दैः सकिंशुकैः ॥१८॥
अश्वत्थैः सप्तपर्णैश्च 'मधुघारशुभाञ्जनैः। शिंशपामलकैर्नीपैर्निम्बतिन्दुविभीतकैः ॥१९॥
सर्वर्तुफलगन्धाढ्यैः सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलैः। मनोह्लादकरैः शुभ्रैर्नानाविहगनादितैः ॥२०॥
श्रोत्ररम्यैः 'सुमधुरैर्बलनिदमनैरितैः। मनसः प्रीतिजनकैः शब्दैः 'खगमुखेरितैः ॥२१॥
चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैस्तथा शुकैः। कोकिलैः कलविङ्कैश्च हारीतैर्जीवजीवकैः ॥२२॥
प्रियपुत्रैश्चातकैश्च तथाऽन्यैर्मधुरस्वरैः। श्रोत्ररम्यैः प्रियकरैः कूजद्भिश्चाविधिष्ठितैः ॥२३॥
केतकीवनखण्डैश्च अतिमुक्तैः सकुब्जकैः। 'मालतीकुन्दबाणैश्च करवीरैः सितेतरैः ॥२४॥
जम्बीरकरुणाङ्कोलैर्दाडिमैर्बीजपूरकैः। मातुलुङ्गैः पूगफलैर्हिन्तालैः कदलीवनैः ॥२५॥
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः पुष्पैश्चान्यैर्मनोहरैः'। लतावितानगुल्मैश्च विविधैश्च जलाशयैः ॥२६॥

दर्शन करता है, वह देवलोक जाता है ॥११॥ मुनिवर्य ! दूसरे भी बहुत से तीर्थ तथा आलय हैं, जिन्हे इस समय जानना चाहिए ॥१२॥ द्विजवर ! समुद्र के उत्तरी तट पर एक पापनाशन, मोक्षदायक परम गुप्त, बालुकामय, पवित्र सर्वकामप्रद, दश योजन प्रमाण विस्तृत तथा परम दुर्लभ क्षेत्र है ॥१३-१४॥ वह अशोक, अर्जुन, पुन्नाग मौलसिरी सरल, कटहल, नारियल, साखू, ताल; कठबेल, चम्पा, कनकचम्पा, आम, बेल, पाटला, कदम्ब, कचनार, बडहर, नागकेसर, जलामलक, लोध, नारगी, कैथा, खैर, सर्ज, भोजपत्र अश्वकर्ण, तमाल, देवदारु, मदार, पारिजात बरगद अगर चन्दन खजूर, आमडा, मुचुकुन्द, पलाश, अश्वत्थ, सप्तपर्ण, मधुर सहिजन शिंशपा, आमलक, नीप, निम्ब तिन्दु बहेडा आदि वृक्षो से तथा मन को आनन्दित करने वाले, शुक्ल वर्ण वाले, नाना पक्षियो के शब्दो से शब्दित और सब ऋतुओ मे फल फूलो से सम्पन्न वृक्षो से सुशोभित है ॥१५-२०॥ सुनने में मनोरम, अत्यन्त मधुर, कामप्रेरित तथा मन मे प्रीति उत्पन्न करने वाले पक्षी-मुखोच्चरित शब्दो से, चकोर, शतपत्र, भृगराज, तोते, कोकिल गौरेये, हारीत जीवजीवक प्रियपुत्र, चातक तथा दूसरे भी मधुर स्वर से आलाप करने वाले और प्रीति उत्पन्न करने वाले पक्षियो से और केतकीवन, अतिमुक्त, कुब्ज, मालती, कुन्द बाण, लाल करवीर नीबू, करुण, अकाल, दाडिम, बीजपूरक, मातुलुग, सुपारी, हिन्ताल कदलीवन तथा अन्य विविध वृक्षो एवम मनोहर पुष्पो से भी वह अलकृत है ॥२१-२५½॥ वहाँ लताओ का विस्तार विविध

---

१ ग उत्कले। २ ख भागे। ३ ख अस्ति। ४ ख सावित्र। ५ ख ०र्नालिकेरैश्च। ६ ख ०नै.। शिरीषाम०। ७ ख ०रैर्वर्णान्वारमूगितैः। ८ ख ०मुखादितैः। ९ ख ०-दपुष्पैश्च। १० ख ०नारमैः। ल०।

दीर्घिकाभिस्तडागैश्च[1] पुष्करिणीभिश्च वापिभिः। नानाजलाशयैः पुण्यैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः ॥२७॥
सरांसि च मनोज्ञानि प्रसन्नसलिलानि च। कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शुभैः ॥२८॥
कह्लारैः कमलैश्चापि आचितानि समन्ततः। कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः ॥२९॥
कारण्डवैः[2] प्लवैर्हंसैः कूर्मैर्मत्स्यैश्च मद्गुभिः। दात्यूहसारसाकीर्णैः कोयष्टिबकशोभितैः ॥३०॥
एतैश्चान्यैश्च कूजद्भिः[3] समन्ताज्जलचारिभिः[4]। खगैर्जलचरैश्चान्यैः कुसुमैश्च जलोद्भवैः ॥३१॥
एवं नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पैः स्थलजलोद्भवैः। ब्रह्मचारिगृहस्थैश्च वानप्रस्थैश्च भिक्षुभिः ॥३२॥
स्वधर्मनिरतैर्वर्णैस्तथाऽन्यैः समलंकृतम्। हृष्टपुष्टजनाकीर्णं नरनारीसमाकुलम् ॥३३॥
अशेषविद्यानिलयं सर्वधर्मगुणाकरम्। एवं सर्वगुणोपेतं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥३४॥
आस्ते तत्र मुनिश्रेष्ठा विख्यातः पुरुषोत्तमः। यावदुत्कलमर्यादा दिक्क्रमेण प्रकीर्तिता ॥३५॥
तावत्कृष्णप्रसादेन देशः पुण्यतमो हि सः। यत्र तिष्ठति विश्वात्मा देशे स पुरुषोत्तमः[5] ॥३६॥
जगद्व्यापी जगन्नाथस्तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्। अहं रुद्रश्च शक्रश्च देवाश्चाग्निपुरोगमाः ॥३७॥
निवसामो मुनिश्रेष्ठास्तस्मिन्देशे सदा वयम्। गन्धर्वाप्सरसः सर्वाः पितरो देवमानुषाः ॥३८॥
यक्षा विद्याधराः सिद्धा मुनयः संशितव्रताः[6]। ऋषयो वालखिल्याश्च कश्यपाद्याः प्रजेश्वराः ॥३९॥
सुपर्णाः किंनरा नागास्तथाऽन्ये स्वर्गवासिनः। साङ्गाश्च चतुरो वेदाः शास्त्राणि विविधानि च ॥४०॥

जलाशय, दीर्घिकाएँ, तालाब, पुष्करिणियाँ, बावलियाँ, कमलिनी-वन-मण्डित नाना जलाशय और कुमुद, कमल, नील कमल तथा लाल कमल से परिपूर्ण सरोवर हैं ॥२६-२८½॥ कादम्ब, चक्रवाक, जलकुक्कुट, कारण्डव, प्लव, हंस, मद्गु (पानिकौडि), कालकण्ठ और बक—ये तथा दूसरे भी जलचर पक्षी और जल में उत्पन्न होने वाले फूल उस क्षेत्र की शोभा बढ़ा रहे हैं ॥२९-३१॥ इस प्रकार नाना वृक्षों स्थल और जल में होने वाले पुष्पों, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासियों और स्वधर्मपरायण चारों वर्णों से वह अलंकृत है ॥३२½॥ वह हृष्ट-पुष्ट व्यक्तियों से प्रपूर्ण तथा नर-नारियों से समन्वित है। अशेष विद्याओं का केन्द्र तथा समस्त धर्म-गुणों की निधि वह माना जाता है। इस प्रकार वह क्षेत्र निखिल गुणों से युक्त एवम् परमदुर्लभ है ॥३३-३४॥ मुनिश्रेष्ठो! वहाँ पुरुषोत्तम नाम से विख्यात कृष्ण भगवान् रहते हैं। दिशा के क्रम से जहाँ तक उत्कल (उड़ीसा) की सीमा है वहाँ तक वह देश कृष्ण की अनुकम्पा से पुण्यतम माना गया है ॥३५½॥ जिस देश में विश्वात्मा, जगद्व्यापी, जगन्नाथ, पुरुषोत्तम वास करते हैं, वहाँ सब कुछ स्थित है ॥३६½॥ मुनिवर! मैं, रुद्र, इन्द्र और अग्नि आदि देवता उस देश में सदा वास करते हैं ॥३७½॥ गन्धर्व, अप्सराएँ, पितर, देव, मनुष्य, यक्ष, विद्याधर, सिद्ध, मुनि, महाव्रती ऋषि वालखिल्य, प्रजापति कश्यप आदि, सुपर्ण, किन्नर, नाग तथा अन्य स्वर्गवासी, अंगों सहित चारों वेद, विविध शास्त्र इतिहास, पुराण, उत्तम दक्षिणा वाले यज्ञ, अनेक पवित्र नदियाँ,

---

१ ख. ०श्च कामारैश्च समन्ततः। ना०। २ ग कमुकैः। ३ स ०ण्डवैर्द्वं६०। ४ ग कीर्णानि। ५ ख ०लचारिभिः। ६ ख अरिते। ७ ख। ०म आत्मा स्वयं ज०।

इतिहासपुराणानि यज्ञाश्च वरदक्षिणाः। नद्यश्च विविधाः पुण्यास्तीर्थान्यायतनानि च ॥४१॥
सागराश्च तथा शैलास्तस्मिन्देशे व्यवस्थिताः। एवं पुण्यतमे देशे देवर्षिपितृसेविते ॥४२॥
सर्वोपभोगसहिते वासः कस्य न रोचते। श्रेष्ठत्वं कस्य देशस्य किं 'चान्यदधिकं ततः ॥४३॥
आस्ते यत्र स्वयं देवो मुक्तिदः पुरुषोत्तमः। धन्यास्ते विबुधप्रख्या ये वसन्त्युत्कले नराः' ॥४४॥
तीर्थराजजले स्नात्वा पश्यन्ति पुरुषोत्तमं। स्वर्गे वसन्ति ते मर्त्या न ते यान्ति यमालये ॥४५॥
ये वसन्त्युत्कले क्षेत्रे पुण्ये श्रीपुरुषोत्तमे। सफलं जीवितं तेषामुत्कलानां सुमेधसाम् ॥४६॥
ये पश्यन्ति सुरश्रेष्ठं प्रसन्नायतलोचनम्'। चारुभ्रूकेशमुकुटं चारुकर्णावतंसकम्' ॥४७॥
चारुस्मितं चारुदन्तं 'चारुकुण्डलमण्डितम्। सुनासं सुकपोलं च सुललाटं सुलक्षणम् ॥४८॥
त्रैलोक्यानन्दजननं कृष्णस्य मुखपङ्कजम् ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभु-ऋषिसंवाद उत्कलक्षेत्रवर्णनं नाम
द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

तीर्थ, देवालय, समुद्र और पर्वत उस देश मे व्यवस्थित हैं ॥३८-४१½॥ ऐसे देवर्षियो तथा पितरो से सेवित, समस्त उपभोग पदार्थो से युक्त एवम् पवित्रतम देश में किसको बसने की इच्छा नही होती ? उससे भला कौन देश श्रेष्ठ है ? कहाँ उससे अधिक पदार्थ है ? ॥४२-४३॥ जिस उत्कल देश मे साक्षात् मुक्ति-दायक पुरुषोत्तम देव रहते हैं, वहा के निवासी देवतुल्य हैं और धन्यवाद के पात्र हैं ॥४४॥ जो मनुष्य तीर्थराज के जल मे स्नान कर पुरुषोत्तम के दर्शन करते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं, यमपुरी कभी नही जाते ॥४५॥ जो बुद्धिमान् पुरुषोत्तमाश्रित उस उत्कल क्षेत्र मे बसते हैं उनका जीवन सफल है ॥४६॥ जो देवश्रेष्ठ, विकसित कमल सदृश नेत्र वाले, सुन्दर भौं, केश, और मुकुट वाले, मनोहर कर्ण-भूषणो वाले, सुन्दर हास्य और दांत वाले, सुन्दर कुण्डलो से विभूषित, सुन्दर नाक, कपाल, ललाट और लक्षण वाले तथा तीनो लोक को आनन्द देने वाले कृष्ण के मुखकमल को देखते हैं, उनका जीवन सफल है ॥४७-४९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे ब्रह्मा और ऋषि के सवाद-प्रकरण मे उत्कल क्षेत्र-वर्णन
नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४२॥

---

१ ख वाऽस्त्यमधि०। २ ख शुभे। ३ ख ०म्। सुचारुकें०। ४ ग ०र्णालिकाञ्चितम्। ५ ख ०रुच-न्दनचर्चित०।

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

अवन्तिकावर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पुरा कृतयुगे विप्राः शक्रतुल्यपराक्रमः। बभूव नृपतिः श्रीमानिन्द्रद्युम्न इति श्रुतः॥१॥
सत्यवादी शुचिर्दक्षः [1]सर्वशास्त्रविशारदः। रूपवान्सुभगः शूरो दाता भोक्ता प्रियंवदः॥२॥
[2]यष्टा समस्तयज्ञानां ब्रह्मण्यः सत्यसगरः। धनुर्वेदे च वेदे च शास्त्रे च निपुणः कृती॥३॥
वल्लभो [3]नरनारीणा पौर्णमास्यां यथा शशी। आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यः शत्रुसघभयंकरः॥४॥
वैष्णवः सत्त्वसपन्नो[4] जितक्रोधो जितेन्द्रियः। अध्येता योगसांख्यानां मुमुक्षुर्धर्मतत्परः॥५॥
एवं स पालयन्पृथ्वीं राजा सर्वगुणाकरः। तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना हरेराराधनं प्रति॥६॥
कथमाराधयिष्यामि देवदेवं जनार्दनम्। कस्मिन्क्षेत्रेऽथवा तीर्थे नदीतीरे तथाऽऽश्रमे॥७॥
एवं चिन्तापरः सोऽथ निरीक्ष्य मनसा महीम्। आलोक्य सर्वतीर्थानि क्षेत्राण्यथ[5] पुराण्यपि॥८॥
[6]तानि सर्वाणि संत्यज्य[7] [8]जगामाऽऽयतनं पुनः। विख्यातं परम क्षेत्रं मुक्तिद पुरुषोत्तमम्॥९॥
स गत्वा [9]तत्क्षेत्रवरं समृद्धबलवाहन.। अयजच्चाश्वमेधेन विधिवद्भूरिदक्षिणः॥१०॥
कारयित्वा [10]महोत्सेधं [11]प्रासादं चैव[12] विश्रुतम्। तत्र संकर्षण कृष्णं सुभद्रां स्थाप्य वीर्यवान्॥११॥

अध्याय ४३

अवन्तिका नगरी का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—विप्रवृन्द! पूर्वकाल म इन्द्र तुल्य पराक्रमी इन्द्रद्युम्न नामक राजा हुआ॥१॥ वह सत्यवादी, पवित्र निपुण, सब शास्त्रो म विशारद रूपवान् सुभग, वीर, दाता, भोक्ता, प्रियवक्ता, समस्त यज्ञा का कर्ता, ब्रह्मनिष्ट, सत्यात्मा, धनुर्वेद, वेद तथा शास्त्र म दक्ष, विद्वान्, पौर्णमासी के चन्द्रमा के समान नर-नारियो का प्रिय, सूर्य के समान दुष्प्रेक्ष्य, शत्रु समूह के लिए भयकर, वैष्णव, सत्त्वसपन्न, जितक्रोध, जितेन्द्रिय, सांख्य-योग का ज्ञाता, मोक्ष का इच्छुक, धर्मपरायण और समस्त गुणो का आकर था। पृथ्वी का पालन करते हुए उस राजा मे हरि की आराधना के प्रति बुद्धि उत्पन्न हुई॥२-६॥ मैं किस क्षेत्र तीर्थ, नदी-तीर या आश्रम मे देव-देव जनार्दन की उपासना करूँ?' इस प्रकार सोचते हुए राजा ने मन से पृथ्वी, सब तीर्थों, क्षेत्रो तथा नगरो को देख कर उन सब का त्याग कर पुन उसी क्षेत्र के लिए प्रस्थान किया, जो पुरुषोत्तम नाम मे प्रसिद्ध, मोक्षदायक परम क्षेत्र है॥७ ८॥ राजा सेना और वाहन से युक्त होकर उस उत्तम क्षेत्र म पहुँचा। वहाँ उसने विधिपूर्वक अश्वमेध यज्ञ किया, बहुत-सी दक्षिणायें दी, महायज्ञ को सम्पन्न कर एक महाप्रसिद्ध भवन बनवाया, उसम बलभद्र, कृष्ण और सुभद्रा की स्थापना की। फिर शक्तिशाली राजा ने विधिपूर्वक पञ्चतीर्थ का

---

१ ख ०र्वशस्त्रभृतां वर। ध०। २ ख स्रष्टा। ३ ख ०मा वर०। ४ ख ०न्नो हृष्ट सर्वजनप्रिय। अध्यात्मविद्यानिरतो मु०। ५ ख ०न्याण्यायतनानि च। ता०। ६ ग गूमौ। ७ ख सवित्य। ८ ग ०गाम मनसा पु०। ९ ख तत्र नृपति श०। १० ख महारम्य। ११ ग प्राकार। १२ ख भूरि।

पञ्चतीर्थं च विधिवत्कृत्वा तत्र महीपतिः। स्नानं दानं तपो होमं देवताप्रेक्षणं तथा ॥१२॥
भक्त्या चाऽऽराध्य विधिवत्प्रत्यहं पुरुषोत्तमम्। प्रसादाद्देवदेवस्य ततो मोक्षमवाप्तवान् ॥१३॥
[1]मार्कण्डेयं च कृष्णं च दृष्ट्वा रामं च भो द्विजाः। सागरे चेन्द्रद्युम्नाख्ये स्नात्वा मोक्षं लभेद् ध्रुवम् ॥१४॥

मुनय ऊचुः

कस्मात्स नृपतिः पूर्वमिन्द्रद्युम्नो जगत्पतिः। जगाम परमं क्षेत्रं मुक्तिदं पुरुषोत्तमम् ॥१५॥
गत्वा तत्र सुरश्रेष्ठ[2] कथं स नृपसत्तमः। वाजिमेधेन विधिवदिष्टवान्पुरुषोत्तमम् ॥१६॥
कथं स सर्वफलदे क्षेत्रे परमदुर्लभे। प्रासादं कारयामास चेष्टं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥१७॥
कथं स कृष्णं रामं च सुभद्रां च प्रजापते। निर्ममे राजशार्दूल क्षेत्रं रक्षितवान्कथम् ॥१८॥
कथं तत्र महीपाल प्रासादे भुवनोत्तमे। स्थापयामास मतिमान्कृष्णादींस्त्रिदशार्चितान्[3] ॥१९॥
एतत्सर्वं सुरश्रेष्ठ विस्तरेण यथातथम्। वक्तुमर्हस्यशेषेण चरितं तस्य धीमतः ॥२०॥
न तृप्तिमधिगच्छामस्तव वाक्यामृतेन वै। श्रोतुमिच्छामहे[4] ब्रह्मन्परं कौतूहलं हि नः ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

साधु साधु द्विजश्रेष्ठा यत्पृच्छध्वं पुरातनम्। सर्वपापहरं पुण्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम्[5] ॥२२॥
वक्ष्यामि तस्य चरितं यथावृत्तं कृते युगे। शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रयताः संयतेन्द्रियाः ॥२३॥

निर्माण कर स्नान दान तप तथा देव-दर्शन किया और प्रतिदिन भक्ति से विधिपूर्वक पुरुषोत्तम की पूजा करके देवदेव की कृपा से मोक्ष प्राप्त किया ॥१२-१३॥ द्विजगण! मार्कण्डेय कृष्ण तथा राम का दर्शन कर इन्द्रद्युम्न नामक सागर में स्नान करने से निश्चय ही मुक्ति मिलती है ॥१४॥

मुनियों ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ! पहले किसलिए जगत्पति इन्द्रद्युम्न नामक राजा पुरुषोत्तम संज्ञक मोक्षदायक परम क्षेत्र को गया ॥१५॥ वहाँ जाकर कैसे उस श्रेष्ठ राजा ने अश्वमेध यज्ञ द्वारा विधिपूर्वक पुरुषोत्तम की आराधना की? ॥१६॥ कैसे सर्वफलप्रद परमदुर्लभ क्षेत्र में उसने त्रैलोक्य प्रसिद्ध श्रेष्ठ भवन बनवाया? ॥१७॥ हे प्रजापते! कैसे उसने कृष्ण राम तथा सुभद्रा का निर्माण किया और क्षेत्र की रक्षा की? ॥१८॥ कैसे बुद्धिमान राजा ने तीनों लोक में उत्तम उस भवन में देवताओं से अर्चित कृष्ण आदि देवों की स्थापना की? ॥१९॥ देवश्रेष्ठ! उस धीमान के समस्त चरित्र विस्तार से यथावत् वर्णन कीजिए ॥२०॥ आपके वचनामृत से हमें तृप्ति नहीं मिलती। ब्रह्मन्! सुनने के लिए हमें बड़ी उत्सुकता हो रही है ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजश्रेष्ठो! ठीक है! ठीक है! जो आपने प्राचीन सर्वपापनाशन भुक्ति मुक्ति प्रद तथा पवित्र चरित्र पूछा है उसे मैं कहूँगा। मुनिवर! सत्ययुग में जैसे वह वृत्तान्त हुआ था वैसे आप पवित्रता से इन्द्रिय संयमपूर्वक सुनिये ॥२२-२३॥ उस राजा की मालव देश में अवन्ती नाम से प्रसिद्ध नगरी मानो पृथिवी का ककुद

---

१ ग ०ण्डेयवटं कृ०। २ ख श्रेष्ठ। ३ ख दशात्तमान। ४ ख ०हे तस्मात्पर। ५ ख शिवम्।

अवन्ती नाम नगरी मालवे भुवि विश्रुता[1]। बभूव तस्य नृपते पृथिवी ककुदोपमा ॥२४॥
हृष्टपुष्टजनाकीर्णा दृढप्राकारतोरणा। दृढयन्त्रार्गलद्वारा[2] परिखाभिरलङ्कृता ॥२५॥
नानावणिक्समाकीर्णा नानाभाण्डसुविक्रिया। रथ्यापणवती रम्या[3] सुविभक्तचतुष्पथा ॥२६॥
गृहगोपुरसबाधा वीथीभि समलङ्कृता। राजहंसनिभै शुभ्रैश्चित्रग्रीवैर्मनोहरै ॥२७॥
अनेकशतसाहस्रै प्रासादै समलङ्कृता। यज्ञोत्सवप्रमुदिता गीतवादित्रनिस्वना ॥२८॥
नानावर्णपताकाभिर्ध्वजैश्च समलङ्कृता। हस्त्यश्वरथसकीर्णपदातिगणसकुला ॥२९॥
नानायोधसमाकीर्णा नानाजनपदैर्युता। ब्राह्मणै क्षत्रियैर्वैश्यै शूद्रैश्चैव द्विजातिभि ॥३०॥
समृद्धा सा मुनिश्रेष्ठा विद्वद्भि समलङ्कृता। न तत्र मलिना सन्ति न मूर्खा [4]नापि निधना ॥३१॥
न रोगिणो न हीनाङ्गा[5] न द्यूतव्यसनान्विता। सदा हृष्टा सुमनसो दृश्यन्त पुरुषा स्त्रिय ॥३२॥
क्रीडन्ति स्म दिवा रात्रौ हृष्टास्तत्र पृथक्पृथक्। सुवेष पुरुषास्तत्र दृश्यन्ते मृष्टकुण्डला[6] ॥३३॥
सुरूपा सुगुणाश्चैव दिव्यालङ्कारभूषिता। कामदेवप्रतीकाशा सर्वलक्षणलक्षिता ॥३४॥
सुकेशा सुकपोलाश्च सुमुखा श्मश्रुधारिण। ज्ञातार सर्वशास्त्राणा भेत्तार शत्रुवाहिनीम ॥३५॥
दातार [7]सर्वरत्नाना भोक्तार सर्वसपदाम। स्त्रियस्तत्र मुनिश्रेष्ठा दृश्यन्ते सुमनोहरा ॥३६॥
हसवारणगामिन्य[8] प्रफुल्लाम्भोजलोचना। सुमध्यमा[9] सुजघना पीनोन्नतपयोधरा ॥३७॥

(डिल्ला) है। वह नगरी हृष्ट पुष्ट लगो से परिपूण दढ प्राकार-तोरण (चहार दीवारी-वदनवार) वाली दढ यत्र (ताला) तथा अगला (जजीर) यक्त द्वार वाली खाइयो से अलकृत अनेक यापारियो से प्रपूण विविध बरतना के विक्रय से यक्त गलियो और बाजारो से समन्वित रमणीय अच्छी तरह विभक्त चौराहो से सयत गहो तथा नगर-द्वारो से पूण गलियो से अलकृत राजहस के समान उज्ज्वल तथा मन हर सकडो हजारो चित्र विचित्र महलो से भूषित यज्ञो और उत्सवों से आनन्दित गीत तथा वाद्य से शब्दित अनेक वर्णों की ध्वजा पताकाओ से सुशोभित हाथी घोड रथ तथा पैदल सेनाओ से परिपूण और नाना योद्धाओ तथा जनपदो से यक्त है ॥२५ २९½॥ मुनिवय! ब्राह्मण क्षत्रिय वश्य तथा शद्र जातियो और विद्वदगणो वह विभूषित है ॥३०½॥ वहाँ न म्लेच्छ न मूख न निधन न रगी न हीन अग वाले और न जआरी रहते हैं ॥३१॥ वहा सदा हृष्ट प्रसन्न स्त्री-पुरुष दिन रात पथक पथक क्रीडा करते है ३२½॥ वहा के पुरुष सुदर वश तथा कुण्डलधारी रूपवान गुणवान दिव्य अलकारो से भूषित कदपतुल्य सवलक्षण सम्पन सुदर केश कपोल तथा मुख वाले दाढी मूछ धारण करने वाले सब शास्त्रो के ज्ञाता शत्रु सेना के छेदनकर्ता अखिल रत्नो के दाता और निखिल सम्पत्तियो के भोक्ता हैं ॥३३ ३५½॥ मुनिवय! वहा की मनोहर हस तथा गज के समान चलने वाली विकसित कमल के समान नेत्र वाली सुदर कटि तथा जघा वाली

---

१ ख ०ता। इन्द्रद्युम्नस्य। २ ग ०त्राकुल०। ३ ख ०म्या चतुष्पथविभूषिता। पुराट्टालकसयक्ता सुविविक्त०। ४ ग नातिनि०। ५ ख ०ङ्गा नाज्ञानव्य०। ६ ख ०ला। पुरुषा सुभगा शूरा दि०। ७ ग सवकामाना। ८ ख ०न्य कर्णान्तायतलो०। ९ ख ०मध्याश्च सु०।

सुकेशाश्चारुवदनाः सुकपोलाः स्थिरालकाः[1]। हावभावानतग्रीवाः कर्णाभरणभूषिताः ॥३८॥
बिम्बोष्ठ्यो रञ्जितमुखास्ताम्बूलेन विराजिताः॥ सुवर्णाभरणोपेताः सर्वालंकारभूषिता ॥३९॥
श्यामावदाताः सुश्रोण्यः काञ्चीनूपुरनादिता.। दिव्यमाल्याम्बरधरा दिव्यगन्धानुलेपनाः ॥४०॥
विदग्धाः सुभगाः कान्ताश्चार्वङ्ग्यः प्रियदर्शनाः। रूपलावण्यसंयुक्ताः सर्वाः प्रहसिताननाः ॥४१॥
क्रीडन्त्यश्च मदोन्मत्ताः[2] सभासु चत्वरेषु च। गीतावाद्यकथालापै रमयन्त्यश्च ताः स्त्रियः ॥४२॥
वारमुख्याश्च दृश्यन्ते नृत्यगीतविशारदाः। प्रेक्षणालापकुशलाः सर्वयोषिद्गुणान्विताः ॥४३॥
अन्याश्च तत्र दृश्यन्ते गुणाचार्याः कुलस्त्रियः। पतिव्रताश्च सुभगा गुणैः सर्वैरलंकृताः ॥४४॥
वनैश्चोपवनैः पुण्यैरुद्यानैश्च मनोरमैः। देवतायतनैर्दिव्यैर्नानाकुसुमशोभितैः ॥४५॥
शालैस्तालैस्तमालैश्च बकुलैर्नागकेसरैः। पिप्पलैः[3] कर्णिकारैश्च चन्दनागुरुचम्पकैः ॥४६॥
पुंनागैर्नारिकेरैश्च पनसैः सरलद्रुमैः। नारङ्गैर्लकुचैर्लोध्रैः सप्तपर्णैः शुभाञ्जनैः ॥४७॥
चूतबिल्वकदम्बैश्च शिशपैर्धवखादिरैः। पाटलाशोकतगरैः करवीरैः सितेतरैः ॥४८॥
पीतार्जुनकभल्लातैः सिद्धैराम्रातकैस्तथा। न्यग्रोधाश्वत्थकाश्मर्यै. पलाशैर्देवदारुभि ॥४९॥
मन्दारैः पारिजातैश्च तिन्तिडीकविभीतकैः। प्राचीनामलकैः प्लक्षैर्जम्बूशिरीषपादपैः ॥५०॥
कालेयैः काञ्चनारैश्च मधुजम्बीरतिन्दुकैः। खर्जुरागस्त्यबकुलैः शाखोटकहरीतकैः ॥५१॥
कङ्कोलैर्मुचुकुन्दैश्च हिन्तालैर्बीजपूरकैः। केतकीवनखण्डैश्च अतिमुक्तैः सकुब्जकैः ॥५२॥

स्थूल तथा उन्नत स्तनो वाली, सुन्दर केश, मुख तथा कपोल वाली, स्थिर लट वाली, हाव-भाव से झुकी ग्रीवा वाली, कर्णाभूषणो से भूषित, बिम्बोष्ठी, ताम्बूल से रञ्जित मुख वाली, सुवर्ण के आभूषणो से युक्त, अशेष अलकरणो से भूषित, श्याम तथा श्वेत वर्णवाली, सुनितम्बा, काञ्ची (करधनी) और नूपुरोसे शब्दित, दिव्य माला तथा वस्त्रधारिणी, दिव्य गन्ध तथा लेप से युक्त, चतुर, सौभाग्यवती, रमणीय, मनोहर अगो वाली, देखने मे आकर्षक, रूप-सौन्दर्य सयुक्त और हँसमुख स्त्रियाँ मदोन्मत्त होकर समाओ म, चबूतरो पर क्रीडा करती हैं और गीत, वाद्य, कथा तथा आलापो से मनोरजन करती हैं॥३६-४२॥ (वहाँ नाचने गाने मे निपुण, कटाक्ष तथा आलाप करने मे कुशल और समस्त स्त्रियो के गुणो से सम्पन्न वेश्यायें देखी जाती हैं।४४॥) दूसरी भी कुलवधुएँ वहाँ दीखती हैं, जो गुणो म आचार्य पतिव्रता, सौभाग्यवती और सर्वगुण सम्पन्न हैं॥४४॥ वनो से पवित्र उपवनो से मनोरम उद्यानो से, दिव्य तथा नाना पुष्प समन्वित देवालयो से,॥४५॥ साखू ताल, तमाल, मौलसिरी, नागकेसर, पीपल, कनकचम्पा वृक्ष, चन्दन, अगर, चम्पक,॥४६॥ पुन्नाग, नारियल, कटहल, सरल, नारगी, बडहर, लोध, सप्तपर्ण सहिजन ॥४७॥ आम, बेल, कदम्ब, शीशम, कैथ, खैर, पाटल, अशोक, तगर, लाल करवीर,॥४८॥ पीतअर्जुन, भल्लात, सिद्ध, आम्रातक, बरगद, अश्वत्थ, काश्मर्य, पलाश, देवदारु,॥४९॥ मदार, पारिजात, तिन्तिडीक, बहेडा, प्राचीनामलक (जलआमला) पाकर, जामुन, शिरीष,॥५०॥ कालेय (काला चदन), कचनार, मधु, नीबू, खजूर, अगस्त्य, शाखोटक, हरीतक,॥५१॥ कङ्कोल, मुचुकुन्द, हिन्ताल

---

१ ख ०का। मुक्ताहारहंसुप्रा०। २ ख ०न्मत्ता उद्यानेषु गृहेषु। ३ ख प्रियालै।

मल्लिकाकुन्दबाणैश्च कदलीखण्डमण्डितैः। मातुलुङ्गैः पूगफलैः करुणैः सिन्धुवारकैः ॥५३॥
बहुवारैः कोविदारैर्बदरैः सकरञ्जकैः। अन्यैश्च विविधैः पुष्पवृक्षैश्चान्यैर्मनोहरैः ॥५४॥
लतागुल्मैर्वितानैश्च उद्यानैर्नन्दनोपमैः। सदा कुसुमगन्धाढ्यैः सदा फलभरानतैः ॥५५॥
नानापक्षिरुतै रम्यैर्नानामृगगणावृतैः[1]। चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गारैः प्रियपुत्रकैः ॥५६॥
कलविङ्कैर्मयूरैश्च शुकैः कोकिलकैस्तथा। कपोतैः खञ्जरीटैश्च श्येनैः पारावतैस्तथा ॥५७॥
खगैश्चान्यैर्बहुविधैः श्रोत्ररम्यैर्मनोरमैः। सरितः पुष्करिण्यश्च सरांसि सुबहूनि च ॥५८॥
अन्यैर्जलाशयैः पुण्यैः कुमुदोत्पलमण्डितैः। पद्मैः सितेतरैः शुभ्रैः कह्लारैश्च सुगन्धिभिः ॥५९॥
अन्यैर्बहुविधैः पुष्पैर्जलजैः सुमनोहरैः। गन्धामोदकरैर्दिव्यैः सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलैः ॥६०॥
हंसकारण्डवाकीर्णैश्चक्रवाकोपशोभितैः। सारसैश्च बलाकैश्च कूर्मैर्मत्स्यैः सनक्रकैः ॥६१॥
जलपादैः कदम्बैश्च प्लवैश्च जलकुक्कुटैः। खगैर्जलचरैश्चान्यैर्नानारवविभूषितैः ॥६२॥
नानावर्णैः सदा हृष्टैरञ्जितानि[2] समन्ततः। एवं नानाविधैः पुष्पैर्विविधैश्च जलाशयैः ॥६३॥
विविधैः पादपैः पुण्यैरुद्यानैर्विविधैस्तथा। जलस्थलचरैश्चैव विहगैश्चाविधिष्ठितैः ॥६४॥
देवतायतनैर्दिव्यैः शोभिता सा महापुरी। तत्राऽऽस्ते भगवान्देवस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः[3] ॥६५॥
[4]महाकालेति विख्यातः सर्वकामप्रदः शिवः। शिवकुण्डे नरः स्नात्वा विधिवत्पापनाशने ॥६६॥

बीजपूरक, केतकीवन, अतिमुक्त, कुब्ज, ॥५२॥ मल्लिका, कुन्द, बाण, केला, मातुलुङ्ग, सुपारी, करुण, सिन्धुवारक, ॥५३॥ बहुवारक, कोविदार, बेर, करञ्ज आदि वृक्षो से, अन्य अनेक मनोहर पुष्प-वृक्षो से, ॥५४॥ लता के गुच्छो से, नन्दन वन के समान विस्तृत उद्यानो से, सदा पुष्प-गन्धों से सुसम्पन्न वृक्षो से, सदा फलो के भार से अवनत वृक्षो से ॥५५॥ नाना पक्षियो के मनोरम शब्दो से, विभिन्न पशुगणो से और चकोर, शतपत्र, भृंगार प्रियपुत्र ॥५६॥ गौरेये मयूर, तोते, कोयल, कबूतर, खञ्जन, बाज, पारावत तथा और भी विविध मनोरम पक्षियो से वह नगरी आवृत है ॥५७½॥ वहाँ नदियाँ, पुष्करिणियाँ और बहुत से सरोवर तथा तालाब है जो कुमुद-कमलो से, श्वेत से इतर वर्ण वाले कमलो से, सुगन्धित श्वेत कमलो से, दूसरे भी अनेक जलोत्पन्न मनोहर पुष्पो से और अत्यन्त गन्ध युक्त, दिव्य तथा सब ऋतुओ मे होने वाले उज्ज्वल पुष्पो से सुशोभित हैं ॥५८-६०॥ जिनमें हंस, कारण्डव, चक्रवाक, सारस, बलाक, कूर्म, मत्स्य, नक्र, जलपाद, कदम्ब प्लव जलकुक्कुट और दूसरे भी नाना प्रकार के शब्दो से विभूषित तथा सदा प्रसन्न, अनेक वर्ण वाले जलचर पक्षीगण रहते हैं ॥६१-६२½॥ इस प्रकार विविध पुष्प, जलाशय, वृक्ष, उद्यान, जल तथा स्थलचारी पक्षी और दिव्य देवालयो से वह महानगरी सुशोभित है ॥६३-६४½॥ वहाँ महाकाल नाम से विख्यात सब कामनाओ के दाता, त्रिनेत्रधारी तथा त्रिपुर नामक राक्षस के शत्रु भगवान् शिव रहते हैं ॥६५½॥ (विद्वान् मनुष्य पापनाशन शिवकुण्ड मे विधिपूर्वक स्नान कर देवता, पितर तथा ऋषियों का विधान से तर्पण कर शिवालय मे जाये।

---

१ ग ०नामुनिग०। २ ख ०ष्टैरगविभाति स०। ३ ख ०रान्तस्त्रि०। ४ ख ०हादेवेति।

देवान्पितृनृषींश्चैव संतर्प्य विधिवद्बुध । गत्वा शिवालयं पश्चात्कृत्वा तं त्रिःप्रदक्षिणम् ॥६७॥
प्रविश्य संयतो भूत्वा धौतवासा जितेन्द्रियः। स्नानैः पुष्पैस्तथा गन्धैर्धूपैर्दीपैश्च भक्तितः ॥६८॥
नैवेद्यैरुपहारैश्च गीतवाद्यैः प्रदक्षिणैः। दण्डवत्प्रणिपातैश्च नृत्यैः स्तोत्रैश्च शंकरम् ॥६९॥
सपूज्य विधिवद्भक्त्या महाकालं सकृच्छिवम्। अश्वमेधसहस्रस्य फल प्राप्नोति मानव ॥७०॥
पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तो विमानैः सर्वकामिकैः। आरुह्य त्रिदिव याति यत्र शंभोर्निकेतनम् ॥७१॥
दिव्यरूपधरः श्रीमान्दिव्यालकारभूषितः। भुङ्क्ते तत्र वरान्भोगान्याऽऽवदाभूतसंप्लवम् ॥७२॥
शिवलोके मुनिश्रेष्ठा [1]जरामरणवर्जितः। पुण्यक्षयादिहाऽऽयातः प्रवरे ब्राह्मणे कुले ॥७३॥
चतुर्वेदी भवेद्विप्रः सर्वशास्त्रविशारदः। योगं पाशुपतं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥७४॥
आस्ते तत्र नदी 'पुण्या शिप्रा' नामेति विश्रुता। तस्यां स्नातस्तु विधिवत्संतर्प्य पितृदेवताः ॥७५॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विमानवरमास्थित। भुङ्क्ते बहुविधान्भोगान्स्वर्गलोके नरोत्तमः ॥७६॥
आस्ते तत्रैव भगवान्देवदेवो जनार्दन। गोविन्दस्वामिनामाऽसौ भुक्तिमुक्तिप्रदो हरि ॥७७॥
त दृष्ट्वा मुक्तिमाप्नोति त्रिसप्तकुलसंयुतः। विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना ॥७८॥
सर्वकामसमृद्धेन कामगेनास्थिरेण च। उपगीयमानो गन्धर्वैर्विष्णुलोके महीयते ॥७९॥
भुङ्क्ते च 'विविधान्कामान्निरातङ्को' गतज्वरः। आभूतसंप्लवं यावत्सुरूपः सुभगः सुखी ॥८०॥

पश्चात् तीन बार प्रदक्षिणा कर पवित्रवस्त्रधारी, जितेन्द्रिय तथा सयमी होकर स्नान, पुष्प, गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य, उपहार, गीत, वाद्य, प्रदक्षिण, दण्डवत् प्रणाम, नृत्य और स्तोत्र से महाकाल शिव की विधिपूर्वक भक्ति से पूजा करे। (इस तरह एक बार पूजा करने से) मनुष्य सहस्र अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है और समस्त पापों से रहित हो स्वेच्छाचारी विमानों पर चढ कर शम्भु के निवास स्थल को जाता है ॥६६-७१॥ वहाँ दिव्य भूषणों से भूषित तथा दिव्यरूपधारी होकर कल्पान्त तक अनेक प्रकार के उत्तम भोगों का भोगता है ॥७२॥ मुनिवर्य ! शिवलोक मे बुढापा तथा मृत्यु नहीं होती। पुण्यक्षय होने पर जीव यहाँ आकर उत्तम ब्राह्मण कुल मे जन्म लेता है और चारो वेदों का ज्ञाता तथा सर्वशास्त्र-कुशल होकर पाशुपत योग प्राप्त कर मोक्ष प्राप्ति कर लेता है ॥७३-७४॥ वहाँ एक शिप्रा नाम से प्रसिद्ध पवित्र नदी है। उसमे स्नान तथा विधिपूर्वक पितर देवताओ के तर्पण करने से मनुष्य सर्वपाप रहित हो जाता है और उत्तम विमान द्वारा स्वर्गलोक जाकर अनेक भोगों का उपभोग करता है ॥७५ ७६॥ वहीं पर गोविन्दस्वामी नाम से प्रसिद्ध, भुक्ति-मुक्ति दायक, देवो के देव, भगवान् जनार्दन रहते हैं ॥७७॥ उनका दर्शन कर मनुष्य मुक्त हो जाता है और इक्कीस कुलों के साथ सूय के समान वर्ण वाले, क्षुद्र घण्टिकाओं की माला वाले, सब कामनाओं के पूरणकर्ता, स्वेच्छाचारी तथा अस्थिर विमान मे स्थित होकर गन्धर्वों से स्तुत होते हुए विष्णुलोक मे पूजित होता है ॥७८-७९॥ वहाँ वह आतङ्क तथा ज्वर से रहित, रूपवान्, भाग्यवान् तथा सुखी होकर

---

१ ख ०जिने। पु० । २ ग रम्या। ३ ख क्षिप्रा। ४ ख ०यान्भोगानि०। ५ ख ०तङ्कान्गत०।

कालेनाऽऽगत्य मतिमान्ब्राह्मण स्याम्महीतले। प्रवरे योगिना गेहे वेदशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥८१॥
वैष्णव योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात्। विक्रमस्वामिनामान विष्णु तत्रैव भो द्विजा ॥८२॥
दृष्ट्वा नरो वा नारी वा फलपूर्वोदित लभेत्। अन्येऽपि तत्र तिष्ठन्ति देवा शक्रपुरोगमा ॥८३॥
मातरश्च मुनिश्रेष्ठा सवकामफलप्रदा। दृष्ट्वा तान्विधिवद्भक्त्या सपूज्य प्रणिपत्य च॥८४॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो नरो याति त्रिविष्टपम्। एव सा नगरी रम्या राजसिंहेन पालिता ॥८५॥
नित्योत्सवप्रमुदिता यथेन्द्रस्यामरावती। पुराष्टादशसयुक्ता[1] सुविस्तीर्णचतुष्पथा ॥८६॥
धनुर्ज्याघोषनिनदा सिद्धसगमभूषिता। विद्यावद्गणभूयिष्ठा वेदनिर्घोषनादिता ॥८७॥
इतिहासपुराणानि शास्त्राणि विविधानि च। काव्यालापकथाश्चैव श्रूयन्तेऽहर्निश द्विजा ॥८८॥
एवमथागुणाढ्या सा तद्गु (सोज्ज) यिनी समुदाहृता। यस्या राजाऽभवत्पूर्वमिन्द्रद्युम्नो महामति ॥८९॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयभुऋषिसवादेऽवन्तिकावर्णन नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्याय ॥४३॥

कल्पान्त तक विविध म गा क म गता है॥८०॥ फिर समय पाकर भू तल पर आकर य गियो के उत्तम घर म ज म लेता है और वेद ास्त्रो का तत्त्वज्ञाता ब्राह्मण ह कर वैष्णव य ग मे स्थित ह ते हुए मोक्ष प्राप्त करता है॥८१३॥ द्विजगण! वही पर विक्रमस्वामी नामक विष्णु व दशन करन से नर या नारी पूर्वोक्त फल लाभ करते हैं। मुनिवर! वहाँ दूसरे भी इन्द्र आदि देवता तथा सब कामनाओका देने वाले मात गण विद्यमान हैं। उनका दशन कर भक्ति से विधिपूवक पूजा तथा प्रणाम करने से मनुष्य सवपाप रहित ह कर स्वग जाता है॥८२ ८४३॥ इस प्रकार श्रेष्ठ राजा से पालित वह रमणीय नगरी अमरावती की तरह नि य उ सवो से प्रमुदित रहता है॥८५३॥ द्विजगण! उस नगरी मे अठारह विस्तत चौराहे हैं धनष-गणा के महा ाब्द होते रहते हैं अनेक स त महात्मा तथा विद्वद्गण वेद ध्वनि करते रहते हैं और इतिहास पुराण विविध ास्त्र का य कथा तथा आख्यानको की चर्चा रात दिन चलती रहती है॥८६ ८८॥ इस प्रकार वर्णित उस गुण-सम्पन्न नगरी का नाम उज्जयिनी है जिसमे पहले इन्द्रद्युम्न नामक महाबुद्धिमान राजा हुआ था॥८९॥

श्री ब्रह्मपुराण मे ब्रह्मा और ऋषि के सवाद प्रकरण मे अवन्तिका-वणन
नामक ततालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४३॥

---

१ ख ०वकामवि०। २ ग ०क्ता षड्विंशग्रामम्०।

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नस्य दक्षिणोदधितटगमनम्

ब्रह्मोवाच

तस्यां स नृपतिः पूर्वं कुर्वन्राज्यमनुत्तमम्। पालयामास मतिमान्प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥१॥
सत्यवादी महाप्राज्ञः शूरः सर्वगुणाकरः[1]। मतिमान्धर्मसंपन्नः सर्वशास्त्रभृतां वरः ॥२॥
सत्यवाञ्छीलवान्दान्तः श्रीमान्परपुरंजयः। आदित्य इव तेजोभी रूपैरश्विनयोरिव[2] ॥३॥
वर्धमानसुराश्चर्यः शक्रतुल्यपराक्रमः। शारदेन्दुरिवाऽऽभाति लक्षणैः समलंकृतः ॥४॥
आहर्ता सर्वयज्ञानां हयमेधादिकृत्तया। दानैर्यज्ञैस्तपोभिश्च तत्तुल्यो नास्ति[3] भूपतिः ॥५॥
सुवर्णमणिमुक्ताना गजाश्वानां च भूपतिः। प्रददौ विप्रमुख्येभ्यो यागे यागे महाधनम् ॥६॥
हस्त्यश्वरथमुख्याना कम्बलाजिनवाससाम्। रत्नानां धनधान्यानामन्तस्तस्य[4] न विद्यते ॥७॥
एवं सर्वधनैर्युक्तो गुणैः सर्वैरलंकृतः। सर्वकामसमृद्धात्मा कुर्वन्राज्यमकण्टकम् ॥८॥
तस्येयं मतिरुत्पन्ना सर्वयोगेश्वरं हरिम्। कथमाराधयिष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदं प्रभुम् ॥९॥
विचार्य सर्वशास्त्राणि तन्त्राण्यागमविस्तरम्। इतिहासपुराणानि वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥१०॥

अध्याय ४४

इन्द्रद्युम्न का दक्षिणसमुद्र के तट पर जाना

ब्रह्मा ने कहा—पहले उस नगरी में उत्तम राज्य करते हुए वह बुद्धिमान् राजा अपने पुत्रों की तरह प्रजाओं का पालन करता था ॥१॥ वह सत्यवादी महाविद्वान्, वीर, सर्वगुणाकर, बुद्धिमान्, धर्मसंपन्न, शास्त्रज्ञों में श्रेष्ठ, सत्यवान्, शीलवान्, संयमी, श्रीमान्, शत्रुविजयी, सूर्य के समान तेजस्वी, अश्विनीकुमार के सदृश रूपवान्, देवताओं को चकित करने वाला, इन्द्रतुल्य पराक्रमी, शरद् ऋतु के चन्द्र तुल्य कान्तिमान् अगणित लक्षणों से अलंकृत अश्वमेध आदि यज्ञों का कर्ता और दान, यज्ञ तथा तप करने में अद्वितीय राजा था ॥२-५॥ वह प्रतियज्ञ में उत्तम ब्राह्मणों को पर्याप्त धन—सुवर्ण, मणि, मोती, हाथी और घोड़े—देता था। उसके हाथी, घोड़े, रथ, कम्बल, चर्म, वस्त्र, रत्न तथा धन धान्यों का अन्त नहीं था। इस तरह सब प्रकार के धनों से युक्त, समस्त गुणों से अलंकृत तथा सब कामनाओं से परिपूर्ण वह राजा अकण्टक राज्य करता था ॥६-८॥ उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं भुक्ति-मुक्ति-दायक प्रभु हरि की कैसे उपासना करूँ। तब वह अखिल शास्त्र, तन्त्र, आगम, इतिहास, पुराण, वेदाङ्ग, धर्मशास्त्र, ऋषिप्रोक्त नियम तथा विद्याओं के रहस्य को

---

१ ख ०रः। सर्वविद्वर्म०। २ ग ०व। पोष्यार्थगुणैर्युक्त च०। ३ ख नाप। ४ ख ०न्तस्तेषां न।

धर्मशास्त्राणि सर्वाणि नियमानृषिभाषितान्। वेदाङ्गानि च शास्त्राणि विद्यास्थानानि[1] यानि च ॥११॥
गुरुं संसेव्य[2] यत्नेन ब्राह्मणान्वेदपारगान्। आधाय परमां काष्ठां कृतकृत्योऽभवत्तदा ॥१२॥
संप्राप्य परमं तत्त्वं वासुदेवाख्यमव्ययम्। भ्रान्तिज्ञानादतीतस्तु मुमुक्षुः संयतेन्द्रियः ॥१३॥
कथमाराधयिष्यामि देवदेवं सनातनम्। पीतवस्त्रं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥१४॥
वनमालावृतोरस्कं पद्मपत्रायतेक्षणम्। श्रीवत्सोरःसमायुक्तं मुकुटाङ्गदशोभितम् ॥१५॥
स्वपुरात्स तु निष्क्रान्त उज्जयिन्याः प्रजापतिः। बलेन महता युक्तः [3]सभृत्यः सपुरोहितः ॥१६॥
अनुजग्मुस्तु तं सर्वे रथिनः शस्त्रपाणयः। रथैर्विमानसंकाशैः पताकाध्वजसेवितैः ॥१७॥
सादिनश्च तथा सर्वे प्रासतोमरपाणयः। अश्वैः पवनसंकाशैरनुजग्मुस्तु तं नृपम् ॥१८॥
हिमवत्सम्भवैर्मत्तैर्वारणैः पर्वतोपमैः। ईषादन्तैः[4] सदा मत्तैः प्रचण्डैः षष्टिहायनैः ॥१९॥
हेमकक्षैः सपताकैर्घण्टारवविभूषितैः। अनुजग्मुश्च तं [5]सर्वे गजयुद्धविशारदाः ॥२०॥
असंख्येयाश्च पादाता धनुःप्रासासिपाणयः[6]। दिव्यमाल्याम्बरधरा दिव्यगन्धानुलेपनाः ॥२१॥
अनुजग्मुश्च तं सर्वे युवानो मृष्टकुण्डलाः। सर्वास्त्रकुशलाः शूराः सदा सङ्ग्रामलालसाः ॥२२॥
अन्तःपुरनिवासिन्यः स्त्रियः सर्वाः स्वलंकृताः। बिम्बोष्ठ्यश्चारुदशनाः[7] सर्वाभरणभूषिताः ॥२३॥
दिव्यवस्त्रधराः सर्वा दिव्यमाल्यविभूषिताः। दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गाः शरच्चन्द्रनिभाननाः ॥२४॥

विचार कर यत्नपूर्वक वेदपारगत ब्राह्मणों तथा गुरु की सेवा कर चरम सीमा पर पहुँचकर कृतकृत्य हो गया ॥९-१२॥ पश्चात् काल वासुदेव संज्ञक अविनाशी परम तत्त्व को प्राप्त कर मुमुक्षु, जितेन्द्रिय तथा भ्रमात्मक ज्ञान से परे होकर देवों के देव, सनातन, पीतवस्त्रधारी, चतुर्भुज, शंख-चक्र गदाधारी वनमाला से आवृत वक्षःस्थल वाले, विकसित कमल के समान दीर्घ नेत्र वाले, हृदय पर श्रीवत्स नामक चिह्न से युक्त तथा मुकुट और अंगद (बाहुभूषण) से सुशोभित (कृष्ण की कैसे आराधना करूँ' यह सोचते हुए राजा अपने नगर उज्जयिनी से चल पड़ा। ॥१३-१५½॥) उसके पीछे विशाल सेना, नौकर-चाकर, पुरोहित और शस्त्र हाथों में लिए सब रथारोही ध्वजा-पताकाओं से सेवित, विमान तुल्य रथों में स्थित होकर चल पड़े ॥१६-१७॥ अश्वारोहीगण भी पवन तुल्य वेगी अश्वों पर चढ़ कर भाले और तोमर धारण कर राजा के पीछे हो लिए ॥१८॥ हिमालय प्रदेश में उत्पन्न, पर्वताकार, हरिस के समान दाँत वाले, सदा मतवाले भयंकर, साठ वर्ष वाले सुवर्णमय हौदा तथा पताका से युक्त और घंटा के शब्दों से विभूषित हाथियों पर चढ़ कर गजयुद्धविशारदवृन्द राजा का अनुसरण करने लगे ॥१९-२०॥ दिव्यमाला वस्त्र और सुगन्धित लेपधारी, सब प्रकार के अस्त्र चलाने में कुशल वीर, सदा संग्राम के अभिलाषी तथा सुन्दर कुण्डलों से विभूषित असंख्य युवक धनुष, भाले और तलवार हाथों में लिये पैदल ही राजा का अनुगमन करने लगे ॥२१-२२॥ बिम्बोष्ठी, सुन्दर दाँत वाली, अशेष आभूषणों से अलङ्कृत, दिव्यवस्त्रधारिणी, दिव्य मालाओं से विभूषित,

---

१ ख ०नि सर्वश। गु०। २ ख समाव्य ३ ख सोत्हलास। ४ ग रेखादन्तैः। ५ ख ०र्वे जययु०। ६ ग सादिषा०। ७ ख रूपयौवनसम्पन्ना।

सुमध्यमाश्चारुवेषाश्चारुकर्णालकाञ्चिताः। ताम्बूलरञ्जितमुखा रक्षिभिश्च सुरक्षिताः॥२५॥
यानैरुच्चावचैः शुभ्रैर्मणिकाञ्चनभूषितैः। उपगीयमानास्ताः सर्वा गायनैः स्तुतिपाठकैः॥२६॥
वेष्टिताः 'शस्त्रहस्तैश्च' पद्मपत्रायतेक्षणाः। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या अनुजग्मुश्च तं नृपम्॥२७॥
वणिग्ग्रामगणाः सर्वे नानापुरनिवासिनः। धनै रत्नैः सुवर्णैश्च सदाराः सपरिच्छदाः॥२८॥
अस्त्रविक्रयकाश्चैव ताम्बूलपण्यजीविनः। तृणविक्रयकाश्चैव काष्ठविक्रयकारका॥२९॥
रङ्गोपजीविनः सर्वे मांसविक्रयिणस्तथा। तैलविक्रयकाश्चैव वस्त्रविक्रयकास्तथा॥३०॥
फलविक्रयिणश्चैव पत्रविक्रयिणस्तथा। तथा जवसहाराश्च रजकाश्च सहस्रशः॥३१॥
गोपाला नापिताश्चैव तथाऽन्ये वस्त्रसूचका। मेषपालाश्चाजपाला मृगपालाश्च हंसकाः॥३२॥
धान्यविक्रयिणश्चैव सक्तुविक्रयिणश्च ये। गुडविक्रयिकाश्चैव तथा लवणजीविनः॥३३॥
(गायना नर्तकाश्चैव तथा मङ्गलपाठकाः। शैलूषाः कथकाश्चैव पुराणार्थविशारदाः॥३४॥)
कवयः काव्यकर्तारो नानाकाव्यविशारदाः। विषघ्ना गारुडाश्चैव नानारत्नपरीक्षका॥३५॥
व्योकारास्ताम्रकाराश्च कांस्यकाराश्च रूठकाः। कौषकाराश्चित्रकाराः कुन्दकाराश्च पावकाः॥३६॥

दिव्य गन्धो से लिप्त अंग वाली, शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान मुख वाली, सुन्दर कटि वाली, सुन्दर वेश वाली, कानों पर लटकते हुए बालों से सुशोभित, ताम्बूल से रञ्जित मुख वाली, रक्षकगणों से सुरक्षित, सब तरह की मणि काञ्चन भूषित सवारियों पर स्थित, मागधबन्दियों से स्तुत, पद्म पत्र के समान दीर्घ नेत्र वाली और शस्त्रधारियों से आवृत अन्तःपुर की स्त्रियाँ अच्छी तरह सज धज कर राजा के पश्चात् प्रस्थित हुई॥२३-२६½॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा धन रत्न, सुवर्ण, स्त्री और सामानों को साथ लिये वणिक-समूह, अस्त्र-विक्रेता ताम्बूल तथा जूए से जीविका उपार्जन करने वाले, घास-विक्रेता, लकड़ी का व्यापार करने वाले॥२७-२९॥ रंगों से जीविका कमाने वाले, मांस विक्रेता, तेल विक्रेता, वस्त्र-विक्रेता,॥३०॥ फल विक्रेता पत्र विक्रेता, घास ढोने वाले, हजारों धोबी,॥३१॥ अहीर, नाई, दर्जी, गड़रिये, बकरी पालने वाले, हरिण पालने वाले, हंस पालने वाले,॥३२॥ धान्य विक्रेता, सत्तू बेचने वाले, गुड़ बेचने वाले, लवण विक्रेता॥३३॥ (गवैये, नर्तक, वंदी, नट कथक, पौराणिक,॥३४॥ कवि, काव्यकर्ता, नाना काव्यनिपुण विषवैद्य, विष मंत्रज्ञाता, रत्नों के परीक्षक,॥३५॥) लोहार, कसेरा, कोशकार, चित्रकार

१ ख यष्टिहस्तैश्च। २ ख ०श्च अ०। ३ ख ०म्। वश्या सर्वाङ्गसुन्दर्यो नानालंकारभूषिता। परिवार-गणैः सार्धमनुजग्मुस्तथा नृपम्। तथा मणि ग०। ४ ख ०दा। साङ्गवेदविदश्चैव नानाशास्त्रार्थपारगा। ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चैवाष्टजातयः। स्वर्णकाराश्च कर्मारा लोहकाराश्मकुट्टका। मणिकारा कुम्भकाराश्चर्मकाराश्च पावका। पत्रकारा वेत्रकारा मुद्गकाराश्च शिल्पिन। वेणुकारास्तुम्बिकारा इषुकारा स्वर्जीविन। स्वर्णकारा सङ्गकारा स्वधाकाराश्च वाहका। अपूपकारका सर्वे तापविक्रयकास्तथा। मालाकारा पर्वकारा सर्वविक्रयिणश्च ये। मत्स्यविक्रयिणश्चैवमां०। ५ ख ०था। मुक्तविक्रयकाश्चैव ताम्बूलपण्यजीविन। तृणविक्रयकाश्चैव काष्ठविक्रय-कास्तथा। रङ्गोपजीविनश्चैव रज०। ६ ख वयका०।

दण्डकाराश्चासिकारा सुराधतोपजीविनः। मल्ला दूताश्च कायस्था ये चान्ये कर्मकारिणः ॥३७॥
तन्तुवाया रूपकारा वार्तिकास्तैलपाठकाः। लावजीवास्तैत्तिरिका मृगपक्ष्युपजीविनः ॥३८॥
गजवैद्याश्च वैद्याश्च नरवैद्याश्च ये नराः। वृक्षवैद्याश्च गोवैद्या ये चान्ये छेददाहकाः ॥३९॥
एते नागरकाः सर्वे ये चान्ये नानुकीर्तिताः। अनुजग्मुस्तु राजानं समस्तपुरवासिनः ॥४०॥
यथा व्रजन्तं पितरं ग्रामान्तरं समुत्सुकाः। अनुयान्ति यथा पुत्रास्तथा तं तेऽपि नागराः ॥४१॥
एवं स नृपतिः श्रीमान्वृतः सर्वैर्महाजनैः। हस्त्यश्वरथपादातैर्जगाम च शनैः शनैः ॥४२॥
एवं गत्वा स नृपतिर्दक्षिणस्योदधेस्तटम्। सर्वैस्तैर्दीर्घकालेन बलैरनुगतः प्रभुः ॥४३॥
ददर्श सागरं रम्यं नृत्यन्तमिव च स्थितम्। अनेकशतसाहस्रैरूर्मिभिश्च समाकुलम् ॥४४॥
नानारत्नालयं पूर्णं नानाप्राणिसमाकुलम्। वीचीतरङ्गबहुलं महाश्चर्यसमन्वितम् ॥४५॥
तीर्थराजं महाशब्दमपारं सुभयंकरम्। मेघवृन्दप्रतीकाशमगाधं मकरालयम्[1] ॥४६॥
मत्स्यैः कूर्मैश्च शङ्खैश्च शुक्तिकानक्रशङ्कुभिः। शिशुमारैः कर्कटैश्च वृतं सर्पैर्महाविषैः ॥४७॥
लवणोदं हरेः स्थानं शयनस्य नदीपतिम्। सर्वपापहरं पुण्यं सर्ववाञ्छाफलप्रदम् ॥४८॥
अनेकावर्तगम्भीरं दानवानां समाश्रयम्। अमृतस्यारणिं दिव्यं देवयोनिमपां पतिम् ॥४९॥
विशिष्टं सर्वभूतानां प्राणिनां जीवधारणम्[4]। सुपवित्रं पवित्राणां मङ्गलानां च मङ्गलम् ॥५०॥

खरादने वाले रुटक? पावक (तपस्वी?) ॥३६॥ दण्ड बनाने वाले तलवार बनाने वाले मद्य विक्रेता पहलवान दूत कायस्थ अन्य कर्मचारी ॥३७॥ जुलाहे सोनार, वार्तिक (जासूस) तैलपाठक (तेली) लावा पक्षी से जीविका कमाने वाले तीतर पक्षी से निर्वाह करने वाले पशु पक्षियो से जीने वाले ॥३८॥ हाथी के वैद्य वैद्य मनुष्य वैद्य वृक्ष-वैद्य गो वैद्य छदनकर्ता दाह-कर्ता—ये नागरिक और दूसरे भी समस्त पुरवासी जिनके नाम नहीं लिए गए राजा के अनुगमन करने लगे ॥३९ ४०॥ जैसे दूसरे गाँव को जाने वाले पिता का पुत्र उत्सुकता से अनुगमन करते हैं उसी तरह वे नागरिक भी भी राजा के अनुयायी हुए ॥४१॥ इस प्रकार हाथी घोड़े रथ पैदल सेना और समस्त नागरिको से वेष्टित राजा धीरे धीरे प्रस्थान करने लगा ॥४२॥ इस प्रकार वह राजा सकल सैनिकों के साथ दक्षिण समुद्र के तट पर पहुँचा ॥४३॥ राजा ने नाचते हुए से स्थित रमणीय सैकड़ा-हजारो तरंगो से व्याप्त ॥४४॥ नाना रत्नो के आलय पूर्ण अनेक जीव जन्तुओ से भरे महान आश्चर्यजनक ॥४५॥ तीर्थराज महाशब्दकारी पार रहित अतिभयकर मेघसमूहतुल्य अगाध ग्राहो के घर ॥४६॥ मत्स्य कूर्म शख शुक्तिका (सितुही) नक्र शकु शिशुमार कर्कट तथा महाविषधर सर्पों से युक्त ॥४७॥ खारे जल वाले हरि के शयन-स्थान नदियो के पति सब पापो के हरने वाले पवित्र सब कामनाओं के फल देने वाले ॥४८॥ अनेक आवर्तों से गम्भीर, दानवो के आश्रय अमृत के उत्पत्ति-स्थान दिव्य देव-योनि जल के स्वामी ॥४९॥ सब के प्रिय प्राणियो के जीव धारण

---

१ ख ०रं रौद्रमपारकलवर्तिनम्। २ ख ०म। बहुकू०। ३ ख श्रितं। ४ ख ०धारिणाम्।

तीर्थानामुत्तमं तीर्थमव्ययं यादसां पतिम्। चन्द्रवृद्धिक्षयस्येव यस्य मान प्रतिष्ठितम्॥५१॥
अभेद्यं सर्वभूतानां देवानाममृतालयम्। उत्पत्तिस्थितिसंहारहेतुभूतं सनातनम् ॥५२॥
उपजीव्यं च सर्वेषां पुण्यं नदनदीपतिम्। दृष्ट्वा तं नृपतिश्रेष्ठो विस्मयं परमं गतः॥५३॥
निवासमकरोत्तत्र वेलामासाद्य सागरीम्। पुण्ये मनोहरे देशे सर्वभूमिगुणैर्युते॥५४॥
वृतं शालैः कदम्बैश्च पुंनागैः सरलद्रुमैः। पनसैर्नारिकेलैश्च[1] बकुलैर्नागकेसरैः॥५५॥
तालैः पिप्पलैः खर्जूरैर्नारङ्गैर्बीजपूरकैः। शालैराम्रातकैर्लोध्रैर्बकुलैर्बहुवारकैः॥५६॥
कपित्थैः कर्णिकारैश्च पाटलाशोकचम्पकैः। दाडिमैश्च तमालैश्च पारिजातैस्तथार्जुनैः॥५७॥
प्राचीनामलकैर्बिल्वैः प्रियंगुवटखादिरैः। इङ्गुदीसप्तपर्णैश्च अश्वत्थागस्त्यजम्बुकैः॥५८॥
मधुकैः कर्णिकारैश्च बहुवारैः सतिन्दुकैः। पलाशबदरैर्नीपैः सिद्धनिम्बशुभाञ्जनैः[2]॥५९॥
वारकैः कोविदारैश्च भल्लातामलकैस्तथा[3]। इति हिन्तालकाङ्कोलैः करञ्जैः सविभीतकैः॥६०॥
ससर्जमधुकाश्मर्यैः शाल्मलीदेवदारुभिः। शाखोटकैर्निम्बवटैः कुम्भीकोष्ठहरीतकैः॥६१॥
गुग्गुलैश्चन्दनैर्वृक्षैस्तथैवागुरुपाटलैः[4]। जम्बीरकरुणैर्वृक्षैस्तिन्तिडीरक्तचन्दनैः॥६२॥
एवं नानाविधैर्वृक्षैस्तथाऽन्यैर्बहुपादपैः। कल्पद्रुमैर्नित्यफलैः सर्वर्तुकुसुमोत्करैः॥६३॥
नानापक्षिरुतैर्दिव्यैर्मत्तकोकिलनादितैः। मयूरवरसंघुष्टैः शुकसारिकसंकुलैः॥६४॥
हारीतैर्भृङ्गराजैश्च चातकैर्बहुपुत्रकैः। जीवंजीवककाकोलैः कलविङ्कैः कपोतकैः॥६५॥

करने वाले, पवित्रों में पवित्र, मगलों मे मगल,॥५०॥ तीर्थों मे उत्तम तीर्थ, नाश-रहित, जलजन्तुओं के स्वामी, चन्द्रमा की वृद्धि तथा क्षय की तरह मान (सीमा प्रमाण) वाले,॥५१॥ सब प्राणियो से अभेद्य देवताओं के अमृतालय, उत्पत्ति-स्थिति-संहार के कारण, सनातन,॥५२॥ सब के आश्रय और नद-नदियों के स्वामी सागर को देखा। देख कर वह अत्यन्त विस्मित हो गया। समुद्र-तट पर पहुँचकर राजा वहाँ निवास करने लगा॥५३½॥ (उस) पवित्र, मनोहर तथा भूमि के समस्त गुणों से युक्त देश मे साखू, कदम्ब, पुंनाग सरल, कटहल, नारियल, मौलसिरी, नागकेसर,॥५४-५५॥ ताल, पीपल, खजूर, नारंगी, बीजपूरक, आम्रातक, लोध, बहुवारक, कठबेल, वनकचम्पा, पाटला, अशोक, चम्पा, अनार,तमाल, पारिजात, अर्जुन,॥५७॥ प्राचीनामलक, बेल, प्रियगु, वट, खैर, हिंगोट, छतिवन अश्वत्थ, अगस्त्य, नीबू,॥५८॥ महुआ, तिन्दुक, पलाश, बेर, कदम्ब, सिद्ध, नीम, सहिजन॥५९॥ वारक, कचनार, भल्लात, आमलक, हिन्ताल, काङ्कोल, करञ्ज, बहेडा,॥६०॥ सर्ज, मधु, काश्मर्य, सेमल, देवदारु, शाखोटक कुम्भीकोष्ठ, हर्रे,॥६१॥ गुग्गुल चन्दन, अगर, करुण तिन्तिडी, रक्तचन्दन—ऐसे नाना प्रकार के वृक्षो से, नित्य फूलने वाले तथा सब ऋतुओं में फूलने वाले कल्पवृक्षो से,॥६२-६३॥ नाना पक्षियो के दिव्य शब्दो से, मत्त कोकिल, मयूर, तोते, मैने, हारीत, भृङ्गराज, पपीहे, बहुपुत्रक, जीवजीव (चकोर), गौरैये, कबूतर—पक्षियो से तथा दूसरे

१ ख ०श्च लकुचैर्ना०। २ ख ०म्बसुपत्रकैं। वा०। ३ ख ०था। तीनि। ४ ग ०पादपैं। ज०। ५ ख ०मैर्नीलफ०।

खगैर्नानाविधैश्चान्यैः श्रोत्ररम्यैर्मनोहरैः। पुष्पिताग्रेषु वृक्षेषु कूजद्भिश्चाधिष्ठितैः ॥६६॥
केतकीवनखण्डैश्च[1] सदा पुष्पधरैः सितैः। मल्लिकाकुन्दकुसुमैर्यूथिकातगरैस्तथा ॥६७॥
कुटजैर्बाणपुष्पैश्च अतिमुक्तैः सकुब्जकैः। मालतीकरवीरैश्च तथा कदलकाञ्चनैः[2] ॥६८॥
अन्यैर्नानाविधैः पुष्पैः सुगन्धैश्चारुदर्शनैः। वनोद्यानोपवनजैर्नानावर्णैः सुगन्धिभिः ॥६९॥
विद्याधरगणाकीर्णैः सिद्धचारणसेवितैः। गन्धर्वोरगरक्षोभिर्भूताप्सरसकिन्नरैः ॥७०॥
मुनियक्षगणाकीर्णैर्नानासत्त्वनिषेवितैः। मृगैः शाखामृगैः सिंहैर्वराहमहिषाकुलैः ॥७१॥
तथाऽन्यैः कृष्णसाराद्यैर्मृगैः सर्वत्र शोभितैः। शार्दूलैर्दृप्तमातङ्गैस्तथाऽन्यैर्वनचारिभिः ॥७२॥
एवं नानाविधैर्वृक्षैरुद्यानैर्नन्दनोपमैः। लतागुल्मवितानैश्च विविधैश्च जलाशयैः ॥७३॥
हंसकारण्डवाकीर्णैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः। कादम्बैश्च प्लवैर्हंसैश्चक्रवाकोपशोभितैः ॥७४॥
कमलैः शतपत्रैश्च कह्लारैः कुमुदोत्पलैः। खगैर्जलचरैश्चान्यैः पुष्पैर्जलसमुद्भवैः ॥७५॥
पर्यन्तैर्दीप्तशिखरैश्चारुकन्दरमण्डितैः। नानावृक्षसमाकीर्णैर्नानाधातुविभूषितैः ॥७६॥
सर्वाश्चर्यमयैः शृङ्गैः सर्वभूतालयैः शुभैः। सर्वौषधिसमायुक्तैर्विपुलैश्चित्रसानुभिः ॥७७॥
एवं सर्वैः समुदितैः शोभितं सुमनोहरैः। ददर्श स महीपालः स्थानं त्रैलोक्यपूजितम् ॥७८॥
दशयोजनविस्तीर्णं पञ्चयोजनमायतम्। [3]नानाश्चर्यसमायुक्तं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥७९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंम्भुऋषिसंवादे क्षेत्रदर्शनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

भी पुष्पित वृक्षों के ऊपर शब्द करने वाले मनोहर पक्षियों से, सदा श्वेत पुष्प समन्वित केतकी, मल्लिका, कुन्द, जूही, तगर, कुटज, बाण, अतिमुक्त, कुब्ज, मालती, करवीर, कदल, काञ्चन—इन पुष्पों से ॥६४-६८॥ तथा अन्य अनेक सुगन्धित मनोहर पुष्पों से, अनेक प्रकार के सुगन्धित वन, उपवन तथा उद्यानों से, विद्याधरगण, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, अप्सरा, किन्नर ॥६९-७०॥ मुनि यक्षगण तथा अनेक जीवों से, हरिण, बन्दर, सिंह, शूकर, महिष, कृष्णमृग, बाघ, मतवाले हाथी तथा अन्य वनचारी पशुओं से, नाना प्रकार के वृक्षों तथा नन्दनवन तुल्य उद्यानों से, लता-गुल्म-वितानों से हंस-कारण्डवों से प्रपूर्ण, कमलिनीखण्डों से सुशोभित, कादम्ब, प्लव, हंस तथा चक्रवाकों से अलङ्कृत, कमल, शतपत्र कह्लार कुमुद तथा उत्पलों से विभूषित, जलचर पक्षियों तथा जलोत्पन्न पुष्पों से युक्त विविध जलाशयों और सुन्दर गुफाओं से मण्डित, नाना वृक्षों से व्याप्त, विविध धातुओं से विभूषित, सब प्राणियों के आश्रय, समस्त औषधियों से युक्त तथा सब को चकित करने वाले कान्तिमान् शिखरों से युक्त अत्यन्त मनोहर पर्वतों से सुशोभित एक क्षेत्र राजा को दृष्टिगोचर हुआ, जो तीनों लोकों से पूजित, दश योजन प्रमाण चौड़ा, पाँच योजन प्रमाण लम्बा, अनेक आश्चर्यजनक वस्तुओं से समन्वित तथा परम दुर्लभ था ॥७१-७९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद-प्रकरण में क्षेत्र-दर्शन नामक चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४४॥

---

[1] ख ०श्च तथा पुष्पधरै। [2] ख ०लैर्देवमा०। [3] ख ०श्चर्य समायान्त शो०।

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

पुरुषोत्तमक्षेत्र-वर्णनम्

मुनय ऊचुः

तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये वैष्णवे पुरुषोत्तमे। किं तत्र प्रतिमा पूर्वं न स्थिता वैष्णवी प्रभो॥१॥
येनासौ नृपतिस्तत्र गत्वा सबलवाहनः। स्थापयामास कृष्णं च रामं[1] भद्रां शुभप्रदाम्॥२॥
संशयो नो महानत्र विस्मयश्च जगत्पते। श्रोतुमिच्छामहे सर्वं ब्रूहि तत्कारणं च नः॥३॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं पूर्वसंवृत्तां कथां पापप्रणाशिनीम्। प्रवक्ष्यामि समासेन श्रिया पृष्टः सुरा हरिः॥४॥
सुमेरोः काञ्चने शृङ्गे सर्वाश्चर्यसमन्विते। सिद्धविद्याधरैर्यक्षैः किंनरैरुपशोभिते॥५॥
देवदानवगन्धर्वैर्गिरप्सरसा गणैः। मुनिभिर्गुह्यकैः सिद्धैः सौपर्णैः समरुद्गणैः॥६॥
अन्यैर्देवा श्यैः साध्यैः कश्यपाद्यैः प्रजेश्वरैः। वालखिल्यादिभिश्चैव शोभिते सुमनोहरे॥७॥
कर्णिकारवनैर्दिव्यैः सर्वर्तुकुसुमोत्करैः। जातरूपप्रतीकाशैर्भूषिते सूर्यसंनिभैः॥८॥
अन्यैश्च बहुभिर्वृक्षैः शालतालादिभिर्वनैः। पुंनागाशोकसरलन्यग्रोधाम्रातकार्जुनैः॥९॥
पारिजाताम्रखदिरनीपबिल्वकदम्बकैः। धवखादिरपालाशशीर्षामलकतिन्दुकैः॥१०॥

अध्याय ४५

पुरुषोत्तमक्षेत्र का वर्णन

मुनियो ने कहा—प्रभो! क्या विष्णु के उस पवित्र पुरुषोत्तम क्षेत्र में पहले कोई वैष्णवी प्रतिमा नही थी, जो सेना वाहनों के साथ जाकर उस राजा ने वहाँ कृष्ण, राम और कल्याण-दायिका सुभद्रा की स्थापना की? जगत्पते! इसमे हमे बडा सशय है और आश्चर्य भी है। हम सविस्तर सुनना चाहते हैं। आप इसका कारण बतलायें॥१-३॥

ब्रह्मा ने कहा— सुनिये, जो कथा पूर्वकाल मे लक्ष्मी ने विष्णु से पूछी थी, उसी पापनाशिनी कथा का मैं सक्षेप से वर्णन करूँगा॥४॥ सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, किन्नर, देव, दानव, गन्धर्व, अप्सरागण, मुनि, गुह्यक, सौपर्ण, मरुद्गण, साध्य, कश्यप आदि प्रजापति, वालखिल्य आदि ऋषि तथा देवालयों से शोभित, अत्यन्त मनोहर, सब ऋतुओं म सुनहले पुष्पों से समन्वित, दिव्य कनक चम्पा वृक्षो से भूषित, सूर्य के समान वर्ण वाले पुष्पो से युक्त, दूसरे भी बहुत से वृक्षो से अलंकृत, शाल, ताल, पुन्नाग, अशोक सरल वट, आम्रातक, अर्जुन, पारिजात, आम, खैर, नीप, बेल, कदम्ब, धँव, पलाश, शिरीष, आँवला, तिन्दुक,॥५-१०॥

---

[1] ख रामचन्द्र सुखप्रदम्।

नारिङ्गकोलबकुललोध्रदाडिमदारुकैः। सर्जैश्च कर्णैस्तगरैः शिशिभूर्जवनिम्बकैः ॥११॥
अन्यैश्च काञ्चनैश्चैव फलभारैश्च नामितैः। नानाकुसुमगन्धाढ्यैर्भूषिते पुष्पपादपैः ॥१२॥
मालतीयूथिकामल्लीकुन्दबाणकुरुण्टकैः। पाटलागस्त्यकुटजमन्दारकुसुमाविभिः ॥१३॥
अन्यैश्च विविधैः पुष्पैर्मनसः प्रीतिदायकैः। नानाविहगसंघैश्च कूजद्भिर्मधुरस्वरैः॥१४॥
पुंस्कोकिलरुतैर्दिव्यैर्मत्तबर्हिणनादितैः। एवं नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पैर्नानाविधैस्तथा॥१५॥
खगैर्नानाविधैश्चैव शोभिते सुरसेविते। तत्र स्थितं जगन्नाथं जगत्स्रष्टारमव्ययम्॥१६॥
सर्वलोकविधातारं वासुदेवाख्यमव्ययम्। प्रणम्य शिरसा देवी लोकानां हितकाम्यया॥
पप्रच्छेमं महाप्रश्नं पद्मजा तमनुत्तमम् ॥१७॥

श्रीरुवाच

ब्रूहि त्वं सर्वलोकेश संशयं मे हृदि स्थितम्। मर्त्यलोके महाश्चर्ये कर्मभूमौ सुदुर्लभे ॥१८॥
लोभमोहग्रहग्रस्ते कामक्रोधमहार्णवे। येन मुच्येत देवेश अस्मात्संसारसागरात्॥१९॥
आचक्ष्व सर्वदेवेश प्रणतां यदि मन्यसे। त्वदृते नास्ति लोकेऽस्मिन्वक्ता संशयनिर्णये॥२०॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वैवं वचनं तस्या देवदेवो जनार्दनः। प्रोवाच परया प्रीत्या परं सारामृतोपमम्॥२१॥

नारगी, कोल, मौलसिरी लोध, अनार, दारुक, सर्ज, कनैल, तगर, शिशिमू (?), ज्व अ र नीम वृक्षा से तथा फलो के भार से झुके हुए अन्य वृक्षा स मडित, मालती, जूही, मल्लिका कुन्द, बाण कुरुण्टक, पाटला, अगस्त्य, कुटज मन्दार आदि पुष्पा से तथा मन को प्रसन्न करने वाले अन्य विविध पुष्पो से विभूषित, मधुर स्वर से आलाप करने वाले नाना पक्षिया के समूहा से तथा कोकिल एवम् मस्त मयूरा से शब्दित, देवताओ से सुसेवित, समस्त आश्चर्यजनक वस्तुओ से समन्वित मेरुपर्वत के सुवर्णमय शिखर पर स्थित जगत्स्रष्टा जगत्पति, अविनाशी, सब लोका के विधाता, वासुदेव को शिर झुका कर प्रणाम करके लक्ष्मी ने लोक-कल्याण के लिए उनसे यह महाप्रश्न पूछा॥११-१७॥

रमा ने कहा—हे त्रिभुवन के स्वामी ! मेरे हृदय मे जो सशय है, उसका आप निराकरण कीजिए। देवेश ! महान् आश्चर्यजनक, अत्यन्त दुर्लभ, कर्म की भूमि, लोभ-मोह रूपी ग्राहो से ग्रस्त, काम क्रोध रूपी महासमुद्र से युक्त मर्त्य लोक मे मनुष्य इस ससार सागर से किस प्रकार मुक्त हो वह उपाय आप बतलाइये। हे अखिल देवो के स्वामी ! इस लोक म आपको छोडकर दूसरा कोई सशय निर्णय करने म समर्थ नही है॥१८-२०॥

ब्रह्मा ने कहा—लक्ष्मी के एसे वचना को सुन कर देव-देव जनार्दन बहुत प्रेम स अमृततुल्य सार बात बतलाने लगे॥२१॥

---

१ ग ०पितैस्त्रिदशार्चिते। २ ख ०कुरुण्ट०। ३ ख देव। ४ ग ०ज्ञ भूमौ रथानम०। ५ ख ०र कैं चामृ०।

श्रीभगवानुवाच

सुखोपास्यः सुसाध्यश्चाभिरामश्च सुमत्फलः। आस्ते तीर्थवरे देवि विख्यातः पुरुषोत्तमः॥२२॥
न तेन सदृशः कश्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते। कीर्तनादस्य देवेशि मुच्यते सर्वपातकैः॥२३॥
न विज्ञातोऽमरैः सर्वैर्न दैत्यैर्न च दानवैः। मरीच्याद्यैर्मुनिवरैर्गोपितं मे वरानने॥२४॥
ततोऽहं संप्रवक्ष्यामि तीर्थराज च साप्रतम्। भावेनैकेन सुश्रोणि शृणुष्व वरवर्णिनि॥२५॥
[1]आसीत्कल्पे [2]समुत्पन्ने नष्टे स्थावरजङ्गमे। [3]प्रलीना [4]देवगन्धर्वदैत्यविद्याधरोरगा[5]॥२६॥
तमोभूतमिदं सर्वं न प्राज्ञायत किंचन। तस्मिञ्जार्गात भूतात्मा[6] परमात्मा जगद्गुरुः॥२७॥
श्रीमांस्त्रिमूर्तिकृद्देवो जगत्कर्ता महेश्वरः। वासुदेवेति विख्यातो योगात्मा हरिरीश्वरः[7]॥२८॥
सोऽसृजद्योगनिद्रान्ते नाभ्यम्भोरुहमध्यगम्[8]। "पद्मकेशरसंकाशं ब्रह्माणं भूतमव्ययम्"॥२९॥
तादृग्भूतस्ततो ब्रह्मा[10] सर्वलोकमहेश्वरः। पञ्चभूतसमायुक्तं सृजते च[11] शनै शनैः[12]॥३०॥
मात्रायोनीनि भूतानि स्थूलसूक्ष्माणि यानि च। चतुर्विधानि सर्वाणि स्थावराणि चराणि च॥३१॥
ततः प्रजापतिर्ब्रह्मा चक्रे सर्वं चराचरम्। संचिन्त्य मनसाऽऽत्मानं ससर्ज विविधाः प्रजाः॥३२॥
मरीच्यादीन्मुनीन्सर्वान्देवासुरपितॄनपि। यक्षविद्याधरांश्चान्यान्गङ्गाद्याः सरितस्तथा॥३३॥

श्री भगवान् ने कहा—देवी! उत्तम तीर्थों में प्रसिद्ध पुरुषोत्तम नामक तीर्थ सुख से उपासना करने योग्य, शामनतया साधना करने योग्य, मनोहर तथा सत्फलदायक है। उसके समान तीनों लोक में कोई नहीं है। उसका कीर्तन करने से सब पाप दूर हो जाते हैं॥२२-२३॥ श्रेष्ठ मुख वाली! न देवता, न दैत्य, न दानव, न मरीचि आदि मुनि ही उस गुप्त स्थान को जानते हैं॥२४॥ हे सुन्दर कटि वाली! हे सुन्दरी! इस समय मैं उस तीर्थराज के बारे में कहता हूँ, तुम एकाग्र मन से सुनो॥२५॥ कल्प उत्पन्न होने पर (कल्पान्त में) स्थावर जंगमों के नष्ट हो जाने पर तथा देवों, गन्धर्वों, दैत्यों, विद्याधरों और सर्पों के लीन हो जाने पर यह सब कुछ अन्धकारमय दीखता था, कुछ भी मालूम नहीं पड़ता था। ॥२६॥ उस समय प्राणियों के आत्मा, परमात्मा, जगद्गुरु, श्रीमान्, त्रिमूर्तिकृत् (सत्त्व रजस् तमोमय), देव, जगत्कर्ता, महेश्वर, ईश्वर, योगात्मा, हरि (इत्यादि नामधारी) वासुदेव जागते थे॥ २७-२८॥ उन्होंने योगनिद्रा के अन्त में नाभि रूपी कमल के मध्य में स्थित, कमल के केसर के सदृश, सत्य रूप तथा अविनाशी ब्रह्मा की सृष्टि की॥२९॥ तदुपरान्त समस्त लोकों में महान् ईश्वर ब्रह्मा धीरे-धीरे पंचभूतात्मक सृष्टि करने लगे॥३०॥ मात्रामूलक स्थूल-सूक्ष्म जितने चार प्रकार के स्थावर-जंगम हैं, उन सब को उन्होंने रचा॥३१॥ तब प्रजापति ब्रह्मा ने समस्त चराचरों को उत्पन्न किया। मन से आत्मा का ध्यान कर विविध प्रजाओं की उत्पत्ति की॥३२॥ मरीचि आदि समस्त मुनि, देव, राक्षस, पितर, यक्ष, विद्याधर, गंगा आदि नदी, मनुष्य, बन्दर, सिंह, विविध

---

१ ख ०र्वैर्नो दित्यै०। २ ख ०सीतपद्म स०। ३ ख ०त्यह न०। ४ ग पर्गते। ५ ग ०न्धर्वदैत्य०। ६ ग. ०रगै। त०। ७ ख ०त्मा प्रलये चैज०। ८ ख ०र। आर्विरासा०। ९ ख ०ध्यग। पद्म केशा०। १० ख ०ब्रह्म०। ११ ख ०म्। आविर्भूता०। १२ ख देव। १३ ख स्म। १४ ख ०नै। विश्वच नानागू०।

नरवानरसिंहांश्च विविधांश्च विहंगमान्। जरायुजाण्डजाश्चैव स्वेदजोद्भिज्जांस्तथा॥३४॥
ब्रह्मक्षत्रं तथा वैश्यं शूद्रं चैव चतुष्टयम्। अन्त्यजातांश्च म्लेच्छांश्च ससर्ज विविधान्पृथक्॥३५॥
यत्किंचिज्जीवसंज्ञं तु तृणगुल्मपिपीलिकम्। ब्रह्मा भूत्वा जगत्सर्वं निर्ममे सचराचरम्॥३६॥
दक्षिणाङ्गे तथाऽऽत्मानं संचिन्त्य पुरुषं स्वयम्। वामे चैव तु नारीं स द्विधा भूतमकल्पयत्॥३७॥
ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन्प्रजा मैथुनसंभवा। अधमोत्तममध्याश्च मम क्षेत्राणि यानि च॥३८॥
एवं संचिन्त्य देवोऽसौ पुरा सलिलयोनिजः। जगाम ध्यानमास्थाय वासुदेवात्मिकां तनुम्॥३९॥
ध्यानमात्रेण देवेन स्वयमेव जनार्दनः। तस्मिन्क्षणे समुत्पन्नः सहस्राक्षः सहस्रपात्॥४०॥
सहस्रशीर्षा पुरुषः पुण्डरीकनिभेक्षणः। सलिलध्वान्तमेघाभः श्रीमाञ्छ्रीवत्सलक्षणः॥४१॥
अपश्यत्सहसा तं तु ब्रह्मा लोकपितामहः। आसनैरर्घ्यपाद्यैश्च अक्षतैरभिनन्द्य च॥४२॥
तुष्टाव परमैः स्तोत्रैर्विरिञ्चिः सुसमाहितः। ततोऽहमुक्तवांस्तत्र ब्रह्माणं कमलोद्भवम्॥
कारणं वद मां तात मम ध्यानस्य सांप्रतम् ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

जगद्धिताय देवेश मर्त्यलोकेऽश्च दुर्लभम्। स्वर्गद्वारस्य मार्गाणि यज्ञदानव्रतानि च॥४४॥
योगः सत्यं तपः श्रद्धा तीर्थानि विविधानि च। विहाय सर्वमेतेषां सुखं तत्साधनं वद॥४५॥
स्थानं जगत्पते मह्यामुत्कृष्टं च तदुच्यते। सर्वेषामुत्तमं स्थानं ब्रूहि मे पुरुषोत्तम॥४६॥

पक्षी, जरायुज अण्डज स्वेदज और उद्भिज्ज जीव, ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र, अन्त्यज (अछूत), म्लेच्छ—सब को पृथक् पृथक् रचा॥३३ ३५॥ जो कुछ भी जीवसंज्ञक घास पात कीड़े मकोड़े हैं, उन सब चराचरों का निर्माण उन्होंने ब्रह्मा होकर किया॥३६॥ अपने दाहिने अंग में पुरुष और वाम अंग में स्त्री की कल्पना कर वे स्वयम् दो हो गए॥३७॥ तब से लोक में प्रजा की मैथुनी सृष्टि होती है। मेरे जितने उत्तम-मध्यम अधम क्षेत्र (शरीर) हैं, उन सबकी चिन्तना कर ब्रह्मा ध्यान स्थित हो कर वासुदेव के शरीर को प्राप्त हुए॥३८ ३९॥ ध्यानमात्र से ही तत्क्षण सहस्रनेत्र, सहस्रचरण और सहस्रशिर, कमल-नयन, नील नीरद तुल्य सुन्दर तथा श्रीवत्स चिह्न से युक्त स्वयम् जनार्दन प्रकट हुए॥४०-४१॥ सहसा उनको देख कर लोक रचयिता ब्रह्मा आसन, अर्घ्य, पाद्य और अक्षत से उनकी पूजा कर प्रणतिपूर्वक सावधान मन से स्तुति करने लगे। तत्पश्चात् कमलोत्पन्न ब्रह्मा से मैंने कहा—तात! किस हेतु तुमने इस समय मेरा ध्यान किया है?'॥४२-४३॥

ब्रह्मा ने कहा—देवेश! जगत्कल्याण के लिए स्वर्ग-द्वार के मार्ग—यज्ञ दान तप, व्रत, योग, सत्य, श्रद्धा और विविध तीर्थ—इनको छोड़ कर मर्त्यलोक में दुर्लभ जो सुख-साधन है, उसे बतलाइए॥४४ ४५॥ जगत्पते! पुरुषोत्तम! पृथ्वी पर सब से उत्कृष्ट स्थान जो हो, उसे भी बतला दीजिए॥४६॥ प्रिये! ब्रह्मा के

१ स अन्त्यजातींश्च। २ ग ०ध्यानि म उक्तो०। ३ ग ०लें तुभ्य मत्यलोके य०। ४ ध मा।

विधातुर्वचन श्रुत्वा ततोऽहं प्रोक्तवान्प्रिये। श्रृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्यामि [1]निर्मल भुवि दुर्लभम् ॥४७॥
उत्तमं सर्वक्षेत्राणा धन्य ससारतारणम्। गोब्राह्मणहित पुण्य चातुर्वर्ण्यसुखोदयम् ॥४८॥
भुक्तिमुक्तिप्रद नृणा क्षेत्र [2]परमदुर्लभम्। महापुण्य तु [3]सर्वेषा सिद्धिद वै पितामह ॥४९॥
[4]तस्मादासीत्समुत्पन्न तीर्थराज सनातनम्। विख्यात परम क्षेत्र चतुर्युगनिषेवितम्[5] ॥५०॥
सर्वेषामेव देवानामृषीणा ब्रह्मचारिणाम्। दैत्यदानवसिद्धाना गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥५१॥
नानाविद्याधराणा च स्थावरस्य चरस्य च। उत्तम पुरुषो यस्मात्तस्मात्स पुरुषोत्तम ॥५२॥
दक्षिणस्योदधेस्तीरे न्यग्रोधो यत्र तिष्ठति। दशयोजनविस्तीर्णं क्षेत्र परमदुर्लभम् ॥५३॥
यस्तु कल्पे समुत्पन्ने महद्‌ (त्यु) ल्कानिबर्हणे। [6]विनाश नैवमभ्येति स्वय तत्रैवमास्थित. ॥५४॥
दृष्टिमात्रे वटे तस्मिश्छायामाक्रम्य चासकृत्। [7]ब्रह्महत्याप्रमुच्येत पापेष्वन्येषु का कथा ॥५५॥
प्रदक्षिणा कृता यैस्तु नमस्कारश्च जन्तुभि। [8]सर्वे विधूतपाप्मानस्ते गता. केशवालयम् ॥५६॥
न्यग्रोधस्योत्तरे किंचिद्दक्षिणे केशवस्य तु। प्रासादस्तत्र तिष्ठेत्तु पद धर्ममय हि तत् ॥५७॥
प्रतिमा तत्र वै दृष्ट्वा स्वय देवेन निर्मिताम्। अनायासेन वै यान्ति भुवन[9] मे ततो नरा ॥५८॥
गच्छमानास्तु तान्प्रेक्ष्य एकदा धर्मराट् प्रिये। मदन्तिकमनुप्राप्य प्रणम्य शिरसाऽब्रवीत् ॥५९॥

वचन सुनकर मैंने कहा—ब्रह्मन्! सुनिए, पृथ्वी पर दुर्लभ निर्मल निखिल क्षेत्रों में उत्तम, धन्यवाद के योग्य ससार-तारण गौ, ब्राह्मणों का हितकारक, पवित्र चारों वर्णों के लिए सुखदायक, भुक्ति मुक्ति प्रद परम दुर्लभ महापुण्यवर्धक और सब के लिए सिद्धिदाता स्थान मैं बतलाऊँगा ॥४७ ४९॥ चारों युगों में रहने वाला, सनातन तीर्थों का राजा और परम विख्यात एक क्षेत्र है ॥५०॥ वहाँ पर समस्त देव ऋषि, ब्रह्मचारी, दैत्य, दानव, सिद्ध, गंधर्व, सर्प राक्षस नाग विद्याधर, स्थावर, जगम और सब से उत्तम पुरुष वास करते हैं अत उसका नाम पुरुषोत्तम पडा है ॥५१ ५२॥ दक्षिण समुद्र के तट पर जहाँ वट वृक्ष है, वहाँ दश योजन प्रमाण विस्तीर्ण क्षेत्र परम दुर्लभ है ॥५३॥ जो कल्प के उत्पन्न होने पर (कल्पान्त में) महान् उल्कापात होने पर (ससार के विनष्ट होने पर) स्वय विनष्ट नहीं होते, वे उसी क्षेत्र में स्थित होते हैं ॥५४॥ एक बार उस वट के दर्शन कर छाया में बैठने से ब्रह्महत्या भी दूर हो जाती है, और पापों की तो बात ही क्या है? ॥५५॥ जिन प्राणियों ने उसकी प्रदक्षिणा कर नमस्कार किया है, वे सब निष्पाप होकर वैकुण्ठ गए हैं। वट से उत्तर और कृष्ण से कुछ दक्षिण जो मंदिर है वह धर्ममय स्थान है। वहाँ साक्षात् भगवान् द्वारा निर्मित प्रतिमा का दर्शन कर मनुष्य अनायास ही वैकुण्ठ पहुँच जाते हैं। प्रिये! एक समय वैकुण्ठ जाते हुए उन मनुष्यों को देख कर धर्मराज मेरे पास आकर प्रणाम करके मुझसे कहने लगा ॥५६ ५९॥

---

१ ख निर्मित। २ ग ०मशाश्मनम्। ३ ग ०षा वसता प्रभि०। ४ ख ततदा०। ५ ख ०गयुगादिह्न्। ग०। ६ ख ०नाश नैव वमने स्वय तत्रैव दुर्लभ। द्०। ७ ख ०हत्या विनश्यन्। ८ ख ०र्वे त पापनिमुक्ता गच्छन्ति च गिरा०। ९ ख भवन।

यम उवाच

नमस्ते भगवन्देव लोकनाथ जगत्पते। [1]क्षीरोदवासिनं देवं शेषभोगानुशायिनम् ॥६०॥
वरं वरेण्यं वरदं [2]कर्तारमकृतं प्रभुम्। विश्वेश्वरमजं विष्णुं सर्वज्ञमपराजितम् ॥६१॥
नीलोत्पलदलश्यामं पुण्डरीकनिभेक्षणम्। सर्वज्ञं निर्गुणं शान्तं जगद्धातारमव्ययम् ॥६२॥
सर्वलोकविधातारं [3]सर्वलोकसुखावहम्। पुराणं पुरुषं वेद्यं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ॥६३॥
परावराणां स्रष्टारं लोकनाथं जगद्गुरुम्। श्रीवत्सोरस्कसंयुक्तं वनमालाविभूषितम् ॥६४॥
पीतवस्त्रं चतुर्बाहुं शङखचक्रगदाधरम्। हारकेयूरसंयुक्तं मुकुटाङ्गदधारिणम् ॥६५॥
सर्वलक्षणसंपूर्णं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्। कूटस्थमचलं सूक्ष्मं ज्योतीरूपं सनातनम् ॥६६॥
भावाभावविनिर्मुक्तं व्यापिनं प्रकृतेः परम्। नमस्यामि जगन्नाथमीश्वरं सुखदं प्रभुम् ॥६७॥
इत्येवं धर्मराजस्तु पुरा [4]न्यग्रोधसंनिधौ। स्तुत्वा नानाविधैः स्तोत्रैः प्रणाममकरोत्तदा ॥६८॥
तं दृष्ट्वा तु महाभागे प्रणतं प्राञ्जलिस्थितम्। स्तोत्रस्य कारणं देवि पृष्टवानहमन्तकम् ॥६९॥
वैवस्वत महाबाहो सर्वदेवोत्तमो ह्यसि। किमर्थं स्तुतवान्मां त्वं संक्षेपात्तद्ब्रवीहि मे ॥७०॥

[5]धर्मराज उवाच

अस्मिन्नायतने पुण्ये विख्याते पुरुषोत्तमे। इन्द्रनीलमयी श्रेष्ठा प्रतिमा सार्वकामिकी ॥७१॥
तां दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्ष भावेनैकेन श्रद्धया। श्वेताख्यं भवनं यान्ति निष्कामाश्चैव मानवाः ॥७२॥

यम ने कहा--भगवन्! देव! जगत्पते! लोकनाथ! आपको नमस्कार है। क्षीरसमुद्रवासी, शेषशायी, ॥६०॥ श्रेष्ठ, वरदाता, कर्ता, अविनाशी, समर्थ, विश्वेश्वर, अजन्मा, विष्णु, सर्वज्ञ, अपराजित, ॥६१॥ नील कमल के पत्र के समान श्याम, कमलनयन सर्वज्ञ निर्गुण, शान्त, जगत् धारणकर्ता, नित्य, ॥६२॥ सर्वलोक-विधाता, सर्वलोक-सुखदायक, प्राचीन पुरुष, जानने योग्य, व्यक्त, अव्यक्त, सनातन, ॥६३॥ उच्च-नीच सब के स्रष्टा, लोकनाथ, जगद्गुरु, वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिह्न-धारी, वनमाला से विभूषित, ॥६४॥ पीतवस्त्र-शंख-चक्र-गदा हार-केयूर-मुकुट-अंगद-धारी ॥६५॥ चतुर्भुज, सर्वलक्षण सपन्न, सब इन्द्रियों से वर्जित, कूटस्थ, अचल, सूक्ष्म, ज्योतिरूप सनातन, ॥६६॥ भाव अभाव से निर्मुक्त व्यापक, प्रकृति से परे, जगन्नाथ, ईश्वर, सुखदाता और सर्वशक्तिमान् को नमस्कार है। ॥६७॥ इस प्रकार पूर्वकाल में वट वृक्ष के समीप धर्मराज ने अनेक स्तोत्रों से स्तुति कर मुझ प्रणाम किया। ॥६८॥ महाभागे! मैंने हाथ जोड कर प्रणाम करते हुए यम से स्तुति का कारण पूछा। ॥६९॥ सूर्य के पुत्र! महाबाहो! तुम सब देवो मे उत्तम हो। किसलिए तुमने मेरी स्तुति की? सक्षपत बताओ? ॥७०॥

धर्मराज ने कहा—इस पवित्र तथा विख्यात पुरुषोत्तम क्षेत्र में सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली इन्द्रनील-मणि की उत्तम प्रतिमा है। ॥७१॥ पुण्डरीकाक्ष! अनन्य भाव से श्रद्धापूर्वक उस प्रतिमा का दर्शन करके मनुष्य

---

१ ख ०रोदार्णवसस्थान शे०। २ ख ०मनघाकृतिम्। ३ ख ०र्वस स्वसु०। ४ ग पर। ५ ख बजराज।

अतः कर्तुं न शक्नोमि व्यापारमरिसूदन। [1]प्रसीद सुमहादेव संहर प्रतिमां विभो ॥७३॥
श्रुत्वा [2]वैवस्वतस्यैतद्वाक्यमेतदुवाच ह। यम त्वां गोपयिष्यामि सिकताभिः समन्ततः ॥७४॥
ततः सा प्रतिमा देवि वल्लिभिर्गोपिता[3] मया। यथा तत्र न पश्यन्ति मनुजाः स्वर्गकाङ्क्षिण ॥७५॥
प्रच्छाद्य वल्लिकैर्देवि जातरूपपरिच्छदैः। यम प्रस्थापयामास स्वां पुरीं दक्षिणां दिशम् ॥७६॥

ब्रह्मोवाच

लुप्तायां प्रतिमायां तु इन्द्रनीलस्य भो द्विजाः। तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये विख्याते पुरुषोत्तमे ॥७७॥
यो भूतस्तत्र वृत्तान्तो देवदेवो जनार्दनः। तं सर्वं कथयामास स तस्यै भगवान्पुरा ॥७८॥
इन्द्रद्युम्नस्य गमनं क्षेत्रसंदर्शनं तथा। क्षेत्रस्य वर्णनं चैव प्रासादकरणं तथा ॥७९॥
हयमेधस्य यज्ञं स्वप्नदर्शनमेव च। लवणस्योदधेस्तीरे [4]काष्ठस्य दर्शनं तथा ॥८०॥
दर्शनं वासुदेवस्य शिल्पिराजस्य च द्विजाः। निर्माणं प्रतिमायास्तु यथावर्णं विशेषतः ॥८१॥
[5]स्थापनं चैव सर्वेषां प्रासादे भुवनोत्तमे। [6]यात्राकाले च विप्रेन्द्राः [7]कल्पसकीर्तनं तथा ॥८२॥
मार्कण्डेयस्य चरितं स्थापनं शंकरस्य च। पञ्चतीर्थस्य माहात्म्यं दर्शनं शूलपाणिनः ॥८३॥
वटस्य दर्शनं चैव व्युष्टिं तस्य च भो द्विजा.। दर्शनं बलदेवस्य कृष्णस्य च विशेषतः ॥८४॥
सुभद्रायाश्च तत्रैव माहात्म्यं चैव सर्वशः। दर्शनं नरसिंहस्य व्युष्टिसंकीर्तनं तथा ॥८५॥

निष्काम हो जाते हैं और श्वेतराजक भवन को जाते हैं ॥७२॥ शत्रुनाशन ! इसलिए मैं अपना कार्य नहीं कर सकता। महादेव ! विभो ! मुझ पर प्रसन्न हों, प्रतिमा को हटा दीजिए ॥७३॥ यम की यह बात सुनकर मैंने कहा—'यम ! मैं बालुआ से उस प्रतिमा को चारों ओर से ढक दूंगा ॥७४॥ देवी ! तब मैंने लताओं से उस प्रतिमा को छिपा दिया, जिससे स्वर्गाभिलाषी मनुष्य उसका दर्शन न कर पाये ॥७५॥ सुनहली लताओं से उसे आच्छादित कर मैंने यम को दक्षिण दिशा की ओर अपनी नगरी के लिए विदा कर दिया ॥७६॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण ! उस पवित्र तथा प्रसिद्ध पुरुषोत्तम नामक श्रेष्ठ क्षेत्र में इन्द्रनील मणि की प्रतिमा के लुप्त हो जाने पर जो दशा वहाँ की हुई उसे भगवान् जनार्दन ने लक्ष्मी को बतला दिया ॥७७-७८॥ विप्रवृन्द ! इन्द्रद्युम्न का गमन, क्षेत्र का दर्शन तथा वर्णन, भवन निर्माण, ॥७९॥ अश्वमेध यज्ञ, स्वप्नदर्शन, क्षार समुद्र के तट पर काष्ठ का दर्शन, ॥८०॥ वासुदेव तथा शिल्पिराज का दर्शन, प्रतिमा का उचित वर्णानुकूल निर्माण ॥८१॥ तथा तीनों लोकों में सब से उत्तम भवन में स्थापन, यात्राकाल में कल्प का कीर्तन, मार्कण्डेय का चरित्र, शंकर की स्थापना, पञ्चतीर्थ का माहात्म्य, शिव का दर्शन, ॥८२-८३॥ वट का दर्शन तथा स्तुति, बलदेव, कृष्ण तथा सुभद्रा का दर्शन और माहात्म्य, नरसिंह के दर्शन, स्तुति तथा कीर्तन, अनन्त वासुदेव के दर्शन तथा

---

१ स ०दस्व म०। २ स ०स्वन्वाक्य युक्तमतदचिन्तयम्। सा तदा प्र०। ३ स ०मिरछादिता। ४ स ०प्लगद०। ५ स स्थापना। ६ स ०काल च। ७ स ०मर्त्त०।

अनन्तवासुदेवस्य दर्शनं गुणकीर्तनम्[1]। श्वेतमाधवमाहात्म्यं स्वर्गद्वारस्य दर्शनम्[2]॥८६॥
उदधेर्दर्शनं चैव स्नानं तर्पणमेव च। समुद्रस्नानमाहात्म्यमिन्द्रद्युम्नस्य च द्विजाः॥८७॥
पञ्चतीर्थफलं चैव महाज्येष्ठं तथैव च। स्थानं कृष्णस्य हलिनः[3] पर्वयात्राफलं तथा॥८८॥
वर्णनं विष्णुलोकस्य क्षेत्रस्य च पुनः पुनः[4]। पूर्वं कथितवान्सर्वं तस्यै स पुरुषोत्तमः॥८९॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे पूर्ववृत्तानुवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥४५॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

पुरुषोत्तमक्षेत्र-वर्णनम्

मुनय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे देव कथाशेषं महीपतेः[5]। तस्मिन्क्षेत्रवरे गत्वा किं चकार नराधिपः॥१॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्यामि समासतः। क्षेत्रसंदर्शनं चैव कृत्यं[6] तस्य च भूपतेः॥२॥

गुणों का कीर्तन, श्वेतमाधव का माहात्म्य, स्वर्ग का दर्शन, समुद्र का दर्शन तथा उसमें स्नान और तर्पण, समुद्र-स्नान तथा इन्द्रद्युम्न का माहात्म्य, पञ्चतीर्थ का फल, महाज्येष्ठ (ज्येष्ठ की पूर्णिमा), कृष्ण तथा बलराम का स्थान, पर्व यात्रा का फल, विष्णु लोक का वर्णन, क्षेत्र का पुनः-पुनः वर्णन—यह सब भगवान् पुरुषोत्तम ने लक्ष्मी को बतला दिया ॥८४-८९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में पूर्व वृत्तान्त वर्णन
नामक पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४५॥

अध्याय ४६

पुरुषोत्तमक्षेत्र का वर्णन

मुनियों ने कहा—*देव! हम राजा की अवशिष्ट कथा को सुनना चाहते हैं। उस उत्तम क्षेत्र में जाकर राजा ने क्या किया?* ॥१॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर! सुनिये, मैं संक्षेप से उस राजा के कर्म तथा क्षेत्र-दर्शन का वर्णन करता हूँ

---

१ ख अथ तु वा०। २ ख पुण्यकीर्तनम्। ३ ख वर्णनम्। ४ ख ०न सर्व०। ५ ख स्वयम्। ६ ख स्वदाननात्। ७ ख जात।

गत्वा तत्र महीपालः क्षेत्रे त्रैलोक्यविश्रुते। ददर्श रमणीयानि स्थानानि सरितस्तथा ॥३॥
नदी तत्र महापुण्या विन्ध्यपादविनिर्गता[1]। स्वित्रोपलेति विख्याता सर्वपापहरा शिवा[2]॥४॥
गङ्गातुल्या महास्रोता दक्षिणार्णवगामिनी। महानदीति नाम्ना सा पुण्यतोया सरिद्वरा ॥५॥
[3]दक्षिणस्योदधेर्गर्भं गताऽऽवर्तातिशोभिता। उभयोस्तटयोर्यस्या ग्रामाश्च नगराणि च ॥६॥
दृश्यन्ते मुनिशार्दूला: [4]सुसस्याः सुमनोहराः। हृष्टपुष्टजनाकीर्णा [5]वस्त्रालंकारभूषिताः ॥७॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रास्तत्र पृथक्पृथक्। स्वधर्मनिरताः शान्ता दृश्यन्ते शुभलक्षणा ॥८॥
ताम्बूलपूर्णवदना मालादामविभूषिताः। वेदपूर्णमुखा विप्राः सषडङ्गपदक्रमाः ॥९॥
अग्निहोत्ररता केचित्केचिदौपासनक्रियाः[6]। सर्वशास्त्रार्थकुशला यज्वानो भूरिदक्षिणा ॥१०॥
चत्वरे राजमार्गेषु वनेषूपवनेषु च। सभामण्डलहर्म्येषु देवतायतनेषु च ॥११॥
इतिहासपुराणानि वेदाः साङ्गाः सुलक्षणाः। [7]काव्यशास्त्रकथास्तत्र श्रूयन्ते च महाजनैः ॥१२॥
स्त्रियस्तद्देशवासिन्यो रूपयौवनगर्विताः। संपूर्णलक्षणोपेता विस्तीर्णश्रोणिमण्डला ॥१३॥
सरोरुहमुखाः श्यामाः शरच्चन्द्रनिभाननाः। पीनोन्नतस्तनाः सर्वाः समृध्या चारुदर्शनाः ॥१४॥
सौवर्णवलयाक्रान्ता दिव्यैर्वस्त्रैरलंकृताः। कदलीगर्भसंकाशाः पद्मकिञ्जल्कसप्रभाः ॥१५॥
बिम्बाधरपुटाः कान्ताः कर्णान्तायतलोचनाः। सुमुखाश्चारुकेशाश्च हावभावाचनामिताः ॥१६॥

॥२॥ त्रैलोक्य प्रसिद्ध उस क्षेत्र में जाकर राजा ने रमणीय स्थानों तथा नदियों को देखा॥३॥ वहाँ विन्ध्य-पर्वत से निकली स्वित्रोपला नामक नदी है, जो अखिल पापों को हरने वाली, कल्याणमयी, गंगातुल्य, महा-स्रोतवाली, दक्षिण समुद्र की ओर जाने वाली, महानदी नाम से विख्यात, पवित्रसलिला, नदियों में श्रेष्ठ, दक्षिण समुद्र के गर्भ में प्राप्त तथा आवर्तों से सुशोभित है॥४-५३॥ मुनिवर्य! उस नदी के दोनों तट पर धन धान्य-सम्पन्न सुन्दर ग्राम और नगर हैं, जो हृष्ट-पुष्ट लोगों से प्रपूर्ण तथा वस्त्र-अलंकारों से भूषित हैं॥६-७॥ वहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने-अपने धर्मों में निरत, शान्त, शुभलक्षण सम्पन्न मालाओं से विभूषित तथा ताम्बूल से पूर्ण मुखवाले दीखते हैं॥८३॥ वहाँ के ब्राह्मण छहों अंग पद और क्रम सहित वेदों के ज्ञाता, सब शास्त्रों में कुशल, यज्ञकर्ता तथा विपुल-दक्षिणादाता होते हैं। उनमें कोई अग्निहोत्री तो कोई कर्मकाण्डी होते हैं॥९-१०॥ वहाँ चबूतरों पर, राजमार्गों में, वनों में, उपवनों में, सभामण्डल में तथा देवालयों में इतिहास, पुराण, अंगों सहित वेद, सुन्दर काव्य, शास्त्र और कथायें महान् व्यक्तियों द्वारा सुनी जाती हैं॥११-१२॥ उस देश की स्त्रियाँ रूप यौवन से गर्वित समस्त लक्षणों से युक्त विशाल नितम्ब वाली,॥१३॥ कमलमुखी, श्यामा, शरद्-चन्द्र तुल्य मुख वाली, स्थूल तथा उन्नत स्तन वाली, सुन्दर दीखने वाली,॥१४॥ सोने की चूड़ियाँ पहनने वाली, दिव्य वस्त्रों से अलंकृत, केले के (भीतरी भाग) के तुल्य, (वर्ण वाली), कमल के केसर के समान कान्ति वाली॥१५॥ बिम्बोष्ठी, मनोरम, कानों तक लम्बी आँखों वाली, सुमुखी, सुन्दर केश वाली, हाव भाव दिखाने में चतुर,॥१६॥

---

१ ख ०ता। विन्ध्योतले०। २ ख. शुभा। ३ ख ०दधे कान्ता दुहितृशतदा०। ४ ख शपन्ना। ५ क ०श्यामरणम्०। ६ ख ०विद्यागमनप्रिया। ७ ग. ०कलालापा दृश्यन्ते शुभहास्मनः। स्त्रि०।

काश्चित्पद्मपलाशाक्ष्य काश्चिदिन्दीवरेक्षणा । विद्युद्विस्पष्टदशनास्तन्वङ्ग्यश्च तथाऽपरा ॥१७॥
कुटिलालकसंयुक्ता सीमन्तेन विराजिता । ग्रीवाभरणसंयुक्ता माल्यदामविभूषिता ॥१८॥
कुण्डलं रत्नसंयुक्तं कर्णपूरैर्मनोहरै । देवयोषित्प्रतीकाशा दृश्यन्ते शुभलक्षणा ॥१९॥
दिव्यगीतवरैर्धन्यै क्रीडमाना वराङ्गना । वीणावेणुमृदङ्गैश्च पणवैश्चैव गोमुखं ॥२०॥
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्नानावाद्यैर्मनोहरै । क्रीडन्त्यस्ता सदा हृष्टा विलासिन्य परस्परम् ॥२१॥
एवमादि तथाऽनेकगीतवाद्यविशारदा । दिवा रात्रौ समायुक्ता कामोन्मत्ता वराङ्गना ॥२२॥
भिक्षुवैखानसै सिद्धै स्नातकैर्ब्रह्मचारिभि । मन्त्रसिद्धैस्तप सिद्धैर्यज्ञसिद्धैर्निषेवितम् ॥२३॥
इत्येव ददृशे राजा क्षेत्र परमशोभनम् । 'अत्रैवाऽऽराधयिष्यामि भगवत सनातनम् ॥२४॥
जगद्गुरु पर देव पर पार पर पदम् । सर्वेश्वरेश्वर विष्णुमनन्तमपराजितम्' ॥२५॥
इद तन्मानस तीर्थं ज्ञात मे पुरुषोत्तमम् । कल्पवृक्षो महाकायो न्यग्रोधो यत्र तिष्ठति ॥२६॥
प्रतिमा चेन्द्रनीलाख्या स्वय देवेन गोपिता । 'न चात्र दृश्यते चान्या प्रतिमा वैष्णवी शुभा ॥२७॥
तथा यत्न करिष्यामि यथा देवो जगत्पति । प्रत्यक्ष मम चाभ्येति विष्णु सत्यपराक्रम ॥२८॥
यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च होमैर्ध्यानैस्तथाऽर्चनै । उपवासैश्च विधिवच्चरेय व्रतमुत्तमम् ॥२९॥

कमललोचना बिजली की तरह छिटकते हुए दाँतो वाली कामलाङ्गी ॥१७॥ घुघराले बालो से युक्त सीमन्त (स्त्रियो की मांग) से सुशोभित गले के आभूषणो से युक्त मालाओ से विभूषित ॥१८॥ रत्न-संयुक्त कुण्डलो तथा मनोहर कर्णपूरो से अलंकृत देवागना तुल्य और समस्त शुभ लक्षणो से सपन्न देखी जाती हैं ॥१९॥ वे विलासिनियाँ दिव्य गीत वीणा वेणु मृदग ढोल गोमुख (तुरही) शख नगाडे तथा अनेक दूसरे मनोहर वाद्यो से परस्पर प्रसन्नता पूर्वक क्रीडा करती हैं ॥२० २१॥ अनेक गीत-वाद्य विशारद कामिनियाँ काम से उन्मत्त होकर रात दिन विलास करती रहती हैं ॥२२॥ वहाँ राजा ने सन्यासी वानप्रस्थी, सिद्ध स्नातक, ब्रह्मचारी मन्त्र सिद्ध तप सिद्ध तथा यज्ञसिद्धो द्वारा सुसेवित एक अत्यन्त मनोहर क्षेत्र देखा। पश्चात वह सोचने लगा—यही पर मैं सनातन जगद गुरु परम देव परो से भी परे परम पद सर्वेश्वर, अनन्त अपराजित भगवान विष्णु की आराधना करूँगा ॥२३ ॥२५॥ यह पुरुषोत्तम तीर्थ उनका मानस तीर्थ है—एसा मुझे ज्ञात हो रहा है। यहाँ कल्पवृक्ष रूपी विशालकाय वट वृक्ष स्थित है ॥२६॥ इन्द्रनील मणि की प्रतिमा को स्वय देव ने छिपा दिया था। यहाँ कोई दूसरी वैष्णवी प्रतिमा नहीं दीख पडती ॥२७॥ मैं वैसा यत्न करूँगा जिससे जगत्पति सत्यपराक्रमी विष्णु मेरे प्रत्यक्ष होगे। अनन्य मन से

---

१ ख अत्र स्वारा०। २ ख ०श्वर विष्णुरूपमरूपमर०। ३ ख ०म। ददत चापवर्गं त ज्ञान मा पु०। ४ ख न वा न्त् दृश्यते चापि वल्लिमिर्वर्ण०। ५ ख ०या चात्र क०। ६ ख ०व दृश्यते सर्वविष्णु।

अनन्यमनसा चैव तन्मना नान्यमानस । विष्णवायतनविन्यासे[1] प्रारम्भ च करोम्यहम् ॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयभुऋषिसवादे क्षेत्रवर्णन नाम षटचत्वारिंशोऽध्याय ॥४६॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्याय.

इन्द्रद्युम्नस्य प्रासादकरणार्थं राज्ञामाह्वानम्

ब्रह्मोवाच

एव स पृथिवीपालश्चिन्तयित्वा द्विजोत्तमा । प्रासादार्थं हरेस्तत्र प्रारम्भमकरोत्तदा ॥१॥
आनाय्य गणकान्सर्वानाचार्याञ्छास्त्रपारगान । भूमि सशोध्य यत्नेन राजा तु परया मुदा ॥२॥
ब्राह्मणैर्ज्ञानसपन्नैर्वेदशास्त्रार्थपारगै । अमात्यैर्मन्त्रिभिश्चैव वास्तुविद्याविशारदै ॥३॥
तै सार्धं स समालोच्य सुमुहूर्ते शुभे दिने[4]। सुचन्द्रतारसयोगे ग्रहानुकूल्यसयुते ॥४॥
जयमङ्गलशब्दैश्च नानावाद्यैर्मनोहरै । वेदाध्ययननिर्घोषैर्गीतै सुमधुरस्वरै ॥५॥

अर्थात उन्ही म मन क लगा कर यज्ञ दान तप होम पूजा तथा उपवासा से मैं विधान पूवक उत्तम व्रत करूँगा। विष्णु मन्दिर का निमाण तो प्रारभ ही कर रहा हू ॥२८ ३०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे ब्रह्मा और ऋषि के सवाद प्रकरण म क्षत्रवणन नामक छियालीसवा अध्याय समाप्त॥४६॥

अध्याय ४७

मदिर बनाने के लिए राजाओ का आह्वान

ब्रह्मा ने कहा—द्विजवर! इस प्रकार सोचने के बाद उस राजा ने हरि मन्दिर बनवाना प्रारम कर दिया॥१॥ उसने परम हर्ष से शास्त्र-पारगत आचार्यो तथा ज्योतिषियो को बुलवाकर यत्नपूवक भूमि का शोधन कराया॥२॥ फिर वेदशास्त्र-कुशल ज्ञानसपन्न वास्तु विद्या विशारद ब्राह्मणा तथा अमात्य-मन्त्रियो से सलाह करके सुन्दर मुहूर्त शुभ दिन सुदर चन्द्रमा और नक्षत्रो क सयोग तथा ग्रहो की अनुकूलता म जय मगलशब्दो अनेक मनोहर वाद्यो वेदध्वनियो गीतो मधुर स्वरो पुष्प-लाजा-अक्षतो गधो पूर्णकुम्भो तथा

---

१ ख विन्यासे०। २ ख ०याञ्छास्त्र०। ३ ख सूत उवा०। ४ ख ०ने। सच्चन्द्र०। ५ ख ग्रहलग्ने शुभ तथा। ज०। ६ ग ०रस्तवै।पु०।

पुष्पलाजाक्षतैर्गन्धैः पूर्णकुम्भैः सदीपकैः । ददावर्घ्यं ततो राजा श्रद्धया सुमानसितः ॥६॥
दत्त्वैवमर्घ्यं विधिवदानाय्य स महीपतिः । कलिङ्गाधिपतिं शूरमुत्कलाधिपतिं तथा ॥
कोशलाधिपतिं चैव तानुवाच तदा नृपः ॥७॥

राजोवाच

गच्छध्वं सहिताः सर्वे शिलार्थं[1] सुसमाहिताः । गृहीत्वा शिल्पिमुख्यांश्च शिलाकर्मविशारदान् ॥८॥
विन्ध्याचलं सुविस्तीर्णं बहुकन्दरशोभितम् । निरूप्य सर्वसानूनि च्छेदयित्वा शिलाः शुभाः ॥
सवाह्यन्तां च शकटैर्नौकाभिर्मा विलम्बथ ॥९॥

ब्रह्मोवाच

एवं गन्तुं समादिश्य तान्नृपान्स महीपतिः । पुनरेवाब्रवीद्वाक्यं सामात्यान्स पुरोहितान् ॥१०॥

राजोवाच

गच्छन्तु दूताः सर्वत्र ममाऽऽज्ञा प्रवदन्तु वै । यत्र तिष्ठन्ति राजानः पृथिव्यां ताः सुशीघ्रगाः ॥११॥
हस्त्यश्वरथपादातैः सामात्यैः सपुरोहितैः । गच्छत सहिताः सर्वे इन्द्रद्युम्नस्य शासनात् ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

एवं दूताः समाज्ञाता राज्ञा तेन महात्मना । गत्वा तदा नृपानूचुर्वचनं तस्य भूपतेः ॥१३॥
श्रुत्वा तु ते तथा सर्वे दूतानां वचनं नृपाः । आजग्मुस्त्वरिताः सर्वे स्वसैन्यैः परिवारिताः ॥१४॥

दीपों से पूजा की ॥३-५॥ तत्पश्चात् सावधान होकर श्रद्धा से अर्घ्यदान किया। विधिपूर्वक अर्घ देकर भूपति ने कलिंग-नरेश शूर-पति उत्कल के अधिपति तथा कोशल महाराज से कहा ॥६-७॥

राजा ने कहा—आप लोग मिलकर सावधानी से शिला लाने के लिए जाइए। शिलाकर्म में निपुण अच्छे कारीगरों को साथ लेकर अनेक गुफाओं से शोभित तथा अत्यन्त विस्तीर्ण विन्ध्याचल पर जाकर उसकी शिखरस्थ शिलाओं को कटा कर नावों द्वारा शीघ्र ले आइए ॥८-९॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार राजाओं को आदेश देकर भूपति ने फिर मंत्री और पुरोहितों से कहा ॥१०॥

राजा ने कहा—सब जगह दूत जायें और मेरी आज्ञा घोषित करें कि— पृथ्वी पर जितने राजा लोग हैं वे शीघ्र ही हाथी घोड़े रथ सिपाही मंत्री और पुरोहित सहित इन्द्रद्युम्न के पास जायें। ॥११-१२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार उस महात्मा राजा की आज्ञा पाकर दूत राजाओं के पास जाकर उसकी आज्ञा सुनाने लगे ॥१३॥ दूतों का वचन सुनकर राजाओं ने अपनी-अपनी सेनाओं के साथ शीघ्र प्रस्थान कर दिया ॥१४॥

---

१ ख. ०लाप्रक्षायमुत्तमा । गृ० ।

येनृपाः सर्वदिग्भागे ये च दक्षिणतः स्थिताः। पश्चिमायां स्थिता ये च उत्तरापथसंस्थिताः ॥१५॥
प्रत्यन्तवासिनो येऽपि ये च संनिधिवासिनः। पार्वतीयाश्च ये केचित्तथा द्वीपनिवासिनः ॥१६॥
रथैर्नागैः पदातैश्च वाजिभिर्घनविस्तरैः। सम्प्राप्ता बहुशो विप्राः श्रुत्वेन्द्रद्युम्नशासनम् ॥१७॥
तानागतान्नृपान्दृष्ट्वा सामात्यान्सपुरोहितान्। प्रोवाच राजा हृष्टात्मा कार्यमुद्दिश्य सादरम् ॥१८॥

राजोवाच

शृणुध्वं नृपशार्दूला यथा किंचिद्ब्रवीम्यहम्। अस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये भुक्तिमुक्तिप्रदे शिवे ॥१९॥
हयमेध महायज्ञं प्रासादं चैव वैष्णवम्। कथं शक्नोम्यहं कर्तुमिति चिन्ताकुलं मनः ॥२०॥
[1]भवद्भिः सुसहायैस्तु [2]सर्वमेतत्करोम्यहम्। यदि यूयं सहाया मे भवध्वं नृपसत्तमाः ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वदमानस्य राजराजस्य धीमतः। सर्वे प्रमुदिता हृष्टा भूपास्ते तस्य शासनात् ॥२२॥
ववृषुर्धनैरत्नैश्च सुवर्णमणिमौक्तिकैः। कम्बलाजिनरत्नैश्च राङ्कवास्तरणैः शुभैः ॥२३॥
वज्रवैदूर्यमाणिक्यैः पद्मरागेन्द्रनीलकैः। गजैरश्वैर्धनैश्चान्यै रथैश्चैव करेणुभिः ॥२४॥
असंख्येर्बहुविधैर्द्रव्यैरुच्चावचैस्तथा। शालिव्रीहियवैश्चैव माषमुद्गतिलैस्तथा ॥२५॥
सिद्धार्थचणकैश्चैव गोधूमैर्मसुरादिभिः। श्यामाकैर्मधुकैश्चैव नीवारैः सकुलत्थकैः ॥२६॥
अन्यैश्च विविधैर्धान्यैर्ग्राम्यारण्यैः सहस्रशः। बहुधान्यसहस्राणां तण्डुलानां च राशिभिः ॥२७॥

सब दिशाओं के राजा लोग अर्थात् दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर के रहने वाले, म्लेच्छदेशवासी, समीप के रहने वाले, पर्वत प्रदेश के वासी तथा द्वीपनिवासी राजा हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे तथा पर्याप्त धन लेकर चल पड़े ॥१५-१६½॥ इन्द्रद्युम्न की आज्ञा सुनकर बहुत से ब्राह्मण भी पहुँचे। अमात्य-पुरोहितों के साथ आए हुए उन राजाओं को देखकर इन्द्रद्युम्न हर्षित होकर आदर से अपने कार्य का उद्देश्य बताने लगा ॥१७-१८॥

राजा ने कहा—नृपवर! मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे आपलोग ध्यान से सुनें। भुक्ति मुक्तिदायक, कल्याणमय, पवित्र इस उत्तम क्षेत्र में मैं अश्वमेध महायज्ञ तथा विष्णु के मन्दिर की रचना कैसे करूँ—इस चिन्ता से मेरा मन व्याकुल हो रहा है। नृपवर्य! यदि आप लोग सहायता करें तो आप जैसे सुयोग्य सहायक पाकर मैं सब कुछ कर सकता हूँ ॥१९-२१॥

ब्रह्मा ने कहा—बुद्धिमान महाराज की बात सुनकर उसके शासन में रहने वाले समस्त राजवृन्द हर्षित हुए ॥२२॥ उन्होंने धन, रत्न सुवर्ण, मणि, मोती, कम्बल, चर्म पवित्र मृगरोम निर्मित बिस्तर (कालीन) वज्रमणि, वैदूर्यमणि, पद्मराग, इन्द्रनील, असंख्य तथा अनेक प्रकार के हाथी-घोड़े-रथ, छोटे-बड़े द्रव्य, धान, यव, चावल, उड़द, तिल, श्वेत सरसों, चना, गेहूँ, मसूरी, श्यामाक, मधुक, नीवार, कुल्त्थक तथा दूसरे भी विविध प्रकार के ग्राम्य एवम् जंगली अन्न, गो घृत के सैकड़ा-हजारों घड़े, अनेक भक्ष्य, भोज्य तथा लेप करने के पदार्थ—इन सब

---

१ ख ०द्भिम समर्थैश्च स०। २ ख ०भव करो०।

गव्यस्य हविषः कुम्भैः शतशोऽथ सहस्रशः। तथाऽन्यैर्विविधैर्द्रव्यैर्भक्ष्यभोज्यानुलेपनैः ॥२८॥
राजानः पूरयामासुर्यत्किंचिद्द्रव्यसंभवैः। तान्दृष्ट्वा यज्ञसंभारान्सर्वसंपत्समन्वितान्[1] ॥२९॥
यज्ञकर्मविदो विप्रान्वेदवेदाङ्गपारगान्। शास्त्रेषु निपुणान्दक्षान्कुशलान्सर्वकर्मसु ॥३०॥
ऋषींश्चैव महर्षींश्च देवर्षींश्चैव तापसान्। ब्रह्मचारिगृहस्थांश्च वानप्रस्थान्यतींस्तथा ॥३१॥
स्नातकान्ब्राह्मणांश्चान्यानग्निहोत्रे सदा स्थितान्। आचार्योपाध्यायवरान्स्वाध्यायतपसाऽन्वितान्॥३२॥
सदस्यांश्छास्त्रकुशलांस्तथाऽन्यान्पावकान्बहून्। दृष्ट्वा तान्नृपतिः श्रीमानुवाच स्वं पुरोहितम् ॥३३॥

राजोवाच

ततः प्रयान्तु विद्वांसो ब्राह्मणा वेदपारगाः। वाजिमेधार्थसिद्ध्यर्थं देशं[3] पश्यन्तु [4]यज्ञियम् ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तः स तथा चक्रे वचनं तस्य भूपतेः। हृष्टः स मन्त्रिभिः सार्धं तदा राजपुरोहितः ॥३५॥
ततो ययौ पुरोधाश्च प्राज्ञः स्थपतिभिः सह। [5]ब्राह्मणानग्रतः कृत्वा कुशलान्यज्ञकर्मणि ॥३६॥
तं देशं धीवरग्रामं सप्रतोलिविटङ्किनम्। कारयामास विप्रोऽसौ यज्ञवाटं यथाविधि ॥३७॥
प्रासादशतसंबाधं [6]मणिप्रवरशोभितम्। इन्द्रसद्मनिभं रम्यं हेमरत्नविभूषितम् ॥३८॥
स्तम्भान्कनकचित्रांश्च तोरणानि बृहन्ति च। यज्ञायतनदेशेषु ददौ शुद्धं च काञ्चनम् ॥३९॥

द्रव्य से प्राप्त होने वाली सामग्रियों को पूरा किया ॥२३-२८½॥ अखिल संपत्ति-समन्वित यज्ञ सामग्रियों, यज्ञकर्मवेत्ता, वेद वेदांगपारगत, शास्त्रों में निपुण तथा सब कर्मों में कुशल ब्राह्मणों, ऋषियों, महर्षियों, देवर्षियों, तपस्वियों, ब्रह्मचारियों, गृहस्थों, वानप्रस्थों, संन्यासियों, स्नातकों, अग्निहोत्री ब्राह्मणों, आचार्यों, उपाध्यायों, स्वाध्याय तथा तपस्या से युक्त विप्रों, शास्त्र-कुशल सदस्यों और अन्य बहुत से पवित्र मनुष्यों को देखकर राजा ने अपने पुरोहित से कहा ॥२९-३३॥

राजा ने कहा—वेदपारगत विद्वान् ब्राह्मण जायें और अश्वमेध यज्ञ की सिद्धि के लिए यज्ञ-स्थल का निरीक्षण करें ॥३४॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा के वचन सुनकर राजपुरोहित ने वैसा ही किया। वह प्रसन्न होकर मन्त्रियों के साथ चल पड़ा ॥३५॥ यज्ञ-कर्मों में दक्ष ब्राह्मणों को आगे करके कारीगरों के साथ विद्वान् पुरोहित गलियों तथा विटंकों (कबूतरों के अड्डे) से युक्त धीवर ग्राम को विधानपूर्वक यज्ञस्थल बनवाया ॥३६-३७॥ उत्तम मणियों से शोभित, सुवर्ण-रत्नों से विभूषित, मनोरम तथा इन्द्र भवन तुल्य सैकड़ों महल बनवाये। सुवर्ण के चित्र विचित्र स्तम्भ अनेक तोरण, शुद्धसुवर्णमय यज्ञ गृह और नाना देश निवासी राजाओं के अन्तःपुर को उस धर्मात्मा ने

---

१ ख तथैव विवि०। २ ख ०न्सर्वान्यानसम०। ३ ख दिशं। ४ ख याज्ञिकां। ५ ख ०णान्पुरतः। ६ ग ०रकुट्टिमम्। कारयामास विधिवद्धम०।

अन्त.पुराणि राज्ञां च नानादेशनिवासिनाम्। कारयामास धर्मात्मा तत्र तत्र यथाविधि ॥४०॥
ब्राह्मणानां च वैश्यानां नानादेशसमीयुषाम्। कारयामास विधिवच्छालास्तत्राप्यनेकशः ॥४१॥
प्रियार्थं तस्य नृपतेराययुर्नृपसत्तमाः। रत्नान्यनेकान्यादाय स्त्रियश्चाऽऽययुरुत्सवे ॥४२॥
तेषां निविशतां स्वेषु शिबिरेषु महात्मनाम्। नदतः सागरस्येव दिविस्पृगभवद्ध्वनिः ॥४३॥
तेषामभ्यागतानां च स राजा मुनिसत्तमाः। व्यादिदेशाऽऽयतनानि शय्याश्चाप्युपचारतः ॥४४॥
भोजनानि विचित्राणि शालीक्षुयवगोरसैः। उपेत्य नृपतिश्रेष्ठो व्यादिदेश स्वयं तदा ॥४५॥
तथा तस्मिन्महायज्ञे बहवो ब्रह्मवादिनः। ये च द्विजातिप्रवरास्तत्राऽऽसन्द्विजसत्तमाः ॥४६॥
समाजग्मुः सशिष्यास्तान्प्रतिजग्राह पार्थिवः। सर्वांश्चताननुययौ यावदावसथानिति ॥४७॥
स्वयमेव महातेजा दम्भं त्यक्त्वा नृपोत्तमः। ततः कृत्वा स्वशिल्पं च शिल्पिनोऽन्ये च ये तदा ॥४८॥
कृत्स्नं यज्ञविधिं राज्ञे तदा तस्मै न्यवेदयन्। ततः श्रुत्वा नृपश्रेष्ठः कृतं सर्वमतन्द्रितः ॥
हृष्टरोमाऽभवद्राजा सह मन्त्रिभिरच्युतः ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

तस्मिन्यज्ञे प्रवृत्ते तु वाग्मिनो हेतुवादिभिः। हेतुवादान्बहूनाहुः परस्परजिगीषवः ॥५०॥
देवेन्द्रस्येव (?) विहितं राजसिंहेन भो द्विजाः। ददृशुस्तोरणान्यत्र शातकुम्भमयानि च ॥५१॥
शय्यासनविकारांश्च सुबहून्रत्नसंचयान्। घटपात्रीकटाहानि कलशान्वर्धमानकान् ॥५२॥

अच्छी तरह बनवाया ॥३८-४०॥ अनेक देशवासी ब्राह्मणों तथा वैश्यों की बहुत सी शालायें विधिपूर्वक बनवायीं ॥४१॥ इन्द्रद्युम्न के हित के निमित्त राजा और स्त्रियाँ भी विविध रत्नों को लेकर उत्सव में आयीं ॥४२॥ जब वे महात्मावृन्द अपने-अपने शिविरों के अन्दर थे उस समय समुद्र-गर्जन की तरह आकाशव्यापी ध्वनि होने लगी ॥४३॥ मुनिगण! तब राजा ने स्वयं वहाँ जाकर उन अभ्यागतों को गृह, शय्या, अद्भुत भोजन—चावल, गुड, यव, दूध, घी आदि—देने की आज्ञा दी ॥४४-४५॥ द्विजवर! उस महायज्ञ में जितने शिष्य सहित ब्रह्मवादी द्विजवर आये हुए थे, उन सब का राजा ने सत्कार किया और स्वयं उनको घर तक पहुँचाया ॥४६-४७॥ महातेजस्वी नृप ने दम्भ का परित्याग कर दिया। जितने शिल्पी लोग थे, उन्होंने अपनी कारीगरी अर्थात् सम्पूर्ण यज्ञविधि (यज्ञस्थल के निर्माण) को पूर्ण कर राजा से निवेदन किया कि सब कार्य सम्पन्न हो गया—यह सुन कर आलस्यरहित राजा मन्त्रियों सहित आनन्द से गद्गद हो गया ॥४८-४९॥

ब्रह्मा ने कहा—उस यज्ञ के प्रारम्भ में परस्पर विजय के इच्छुक वाग्मी लोग हेतुवादियों से अनेक कारणवाद कहने लगे ॥५०॥ द्विजगण! उस श्रेष्ठ भूपति ने इन्द्र की तरह कार्य किया। वहाँ सुवर्णमय तोरण, घट, पात्र तथा

---

१ ग. वेश्मानि। २ ग. ०र्वाद्विजातमा इने०। ३ ख. ०स्तान्प्रत्या ज०। ४ क. कृत्स्नयज्ञविधान शास्तदा। ५ ख. वादिनो। ६ ख. ०न्द्रस्य विधि चिन्त्य रा०। ७ ख. ०बहुवस्त्रस्य स०। ८ ख. ०न्। स्फाटिकानि च मेहानि क०।

महि कश्चिदसौवर्णमपश्यद्वसुधाधिप । यूपाश्च शास्त्रपठितान्दारवान्हेमभूषितान ॥५३॥
उपक्षिप्तान्यथाकाल विधिवद्भूरिवर्चस[1]। स्थलजा जलजा ये च पशव केचन द्विजा ॥५४॥
सर्वानेव समानीतानपश्यस्तत्र ते नृपा । गावश्चैव महिषीश्चैव तथा वृद्धस्त्रियोऽपि च ॥५५॥
औदकानि च सत्त्वानि श्वापदानि वयांसि च। जरायुजाण्डजातानि स्वेदजा युद्भिदानि च ॥५६॥
पर्वतायुपधान्यानि भूतानि ददृशुश्च ते। एव प्रमुदित सर्वं पशुतो धनधान्यत ॥५७॥
यज्ञवाट नृपा दृष्ट्वा विस्मय परम गता । ब्राह्मणाना विशा चैव बहुमिष्टान्नमृद्धिमत ॥५८॥
पूर्णे शतसहस्रे तु विप्राणा तत्र भुञ्जताम। दुन्दुभिर्मेघनिर्घोषान्मुहुर्मुहुरथाकरोत ॥५९॥
विननादासकृच्चापि दिवसे दिवसे गते। एव स ववृधे यज्ञस्तस्य राज्ञस्तु धीमत ॥६०॥
अन्नस्य सुबहून्विप्रा उत्सर्गान्निर्गतोपमान। दधिकुल्याश्च ददृशु पयसश्च ह्रदास्तथा ॥६१॥
जम्बूद्वीपो हि सकलो नानाजनपदैर्युत । द्विजाश्च तत्र दृश्यन्ते राज्ञस्तस्य महामखे ॥६२॥
तत्र [2]यानि सहस्राणि पुरुषाणा ततस्तत । गृहीत्वा भाजन जग्मुबहूनि द्विजसत्तमा[3] ॥६३॥
श्राविणश्चापि ते सर्वे सुमृष्टमणिकुण्डला । पर्यवेषयद्द्विजातीञ्छतशोऽथ सहस्रश ।६४॥
विविधान्यनुपानानि पुरुषा येऽनुयायिम । ते वै नृपोपभोज्यानि ब्राह्मणेभ्यो ददु सह ॥६५॥
समागतान्वेदविदो राज्ञश्च पृथिवीश्वरान। पूजां चक्रे तदा तेषां विधिवद्भूरिदक्षिण ॥६६॥
(दिग्देशादागताञ्राज्ञो महासङग्रामशालिन । नटनर्तककादींश्च गीतस्तुतिविशारदान् ॥६७॥)

कडाह और रत्नजटित शय्या आसन एवम् अनेक उपकरण थे ॥५१ ५२॥ राजा ने ऐसी कोई चीज नही देखी जो सोने की नही थी। उन्होने शास्त्रविहित काष्ठ के यूपो को स्वणभूषित अत्यन्त तेजस्वी तथा ठीक समय से विधिपूवक गडते हुए देखा। विप्रवृन्द ! स्थलचर और जलचर सभी जन्तु वहा लाये गए ॥५३ ५४½॥ गाय भैसें वृद्धा स्त्रियाँ जलीय जन्तु हिंसक जन्तु पक्षीगण जरायुज अण्डज स्वेदज उदभिज्ज पवत अन्न, प्राण —सब वहाँ विद्यमान थे ॥५५ ५६½॥ इस प्रकार पशुओ और धनधान्यो से आनन्दित यज्ञस्थल को देख कर राजा लोग आश्चयचकित रह गए ॥५७½॥ ब्राह्मणो और वश्यो के पास पर्याप्त मिष्टान्न था। वहा एक लाख वर्षो तक ब्राह्मण भोजन होता रहा ॥५८½॥ मेघ-गजन के समान नगाडो के अनवरत घोष हो रहे थे। इस प्रकार उस बुद्धिमान राजा का यज्ञ काय विस्तृत होने लगा ॥५९ ६०॥ विप्रवृन्द ! अन्न जितना खच होता था उतना ही बढता जाता था। दही के सर वर और दूध की झीलें वहाँ दीखती थी ॥६१॥ द्विजगण ! अनेक देशो से युक्त सम्पूण जम्बूद्वीप ही उस राजा के महायज्ञ मे उपस्थित हुआ था ॥६२॥ द्विजवय ! हजारो पुरुष पात्रो को लेकर वहा पहुचे। निमल मणि-कुण्डलो से युक्त सैकडो हजारो भक्त लोग ब्राह्मणो को अलकृत करते राजा के खाने योग्य भोजन कराते और विविध प्रकार के अनुपान देते थे ॥६३ ६५॥ विधिपूवक भूरि दक्षिणा देने वाला राजा आये हुए वेदवेत्ताओ तथा पृथिवीश्वर राजाओ की पूजा करता था ॥६६॥ (सभी दिशाओ के देशो से वहाँ महासंग्रामशाली राजवृन्द तथा गीत-स्तुति विशारद नट नतक आदि

---

१ ख ०रिदक्षिण । स्थ०। २ ख च। यावत यानि भूतानि भतपा द०। ३ ग यामास०। ४ ख ०मा।

ते है।

पत्न्यो मनोरमास्तस्य पीनोन्नतपयोधरा । इन्दीवरपलाशाक्ष्य शरच्चन्द्रनिभानना ॥६८॥
कुलशीलगुणोपेता सहस्रैक शताधिकम् । एव तद्भूपपरमपत्नीगणसमन्वितम् ॥६९॥
रत्नमालाकुल दिव्य पताकाध्वजसेवितम् । रत्नहारयुत रम्य चन्द्रकान्तिसमप्रभम् ॥७०॥
'करिण पर्वताकारान्मदसिक्तान्महाबलान्' । शतश कोटिसघातैर्दन्तिभिर्दन्तभूषणै' ॥७१॥
वातवेगजवैरश्वै सिन्धुजातै सुशोभनै । 'श्वेताश्वै श्यामकर्णैश्च कोट्यनेकैर्जवान्वितै ॥७२॥
सनद्धैर्बद्धकक्षैश्च नानाप्रहरणोद्यतै । असख्येयै पदातैश्च देवपुत्रोपमैस्तथा ॥७३॥
इत्येव ददृशे राजा 'यज्ञसभारविस्तरम् । 'मुद लेभे तदा राजा सहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥७४॥

राजोवाच

आनयध्व हयश्रेष्ठ सर्वलक्षणलक्षितम् । चारयध्व पृथिव्यां वै राजपुत्रा सुसयता ॥७५॥
विद्वद्भिर्धर्मविद्भिश्च अत्र होमो विधीयताम् । कृष्णच्छाग च महिष कृष्णसारमृग द्विजान् ॥७६॥
अनड्वाह च गाश्चैव सर्वांश्च पशुपालकान् । इष्टयश्च प्रवर्तन्ता प्रासाद वैष्णव तत ॥७७॥
सर्वमेनच्च विप्रेभ्यो दीयता मनसेप्सितम् । स्त्रियश्च रत्नकोट्यश्च ग्रामाश्च नगराणि च ॥७८॥
सम्यक्सस्यसमृद्धभूम्यश्च विषयाश्चैवमर्थिनाम् । अन्यानि द्रव्यजातानि मनोज्ञानि बहूनि च ॥७९॥
सर्वेषा याचमानाना नास्ति ह्येतन्न भाषयेत् । तावत्प्रवर्तता यज्ञो 'यावद्देव पुरा विह ॥
प्रत्यक्ष मम चाभ्येति दशरथस्य समीपत ॥८०॥

आए हुए थे ॥६७॥) इन्द्रद्युम्न की ग्यारह सौ मनोरम पत्नियाँ थीं जो स्थूल और उन्नत स्तन वाली कमललोचना, शरदचन्द्र तुल्य मुख वाली और कुल शील तथा गुणों से सम्पन्न थीं ॥६८½॥ इस प्रकार पत्नीगण से समन्वित रत्न मालाओं से व्याप्त दिव्य ध्वजा-पताकाओं से सेवित और चन्द्रकान्तमणि के समान कान्तिमान वह यज्ञ-स्थल था ॥६९ ७०॥ पर्वताकार, महाबली, मद से सिक्त और दन्त रूप आभूषणों से युक्त करोड़ों हाथियों के झुण्ड, से पवन तुल्य वेग वाले सिन्धु देश के सुन्दर तथा श्वेत अंग वाले करोड़ों श्यामकर्ण घोड़ों से और कवचधारी बद्धकक्ष अनेक अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित तथा देव-पुत्र तुल्य असंख्य सैनिकों से यज्ञ-स्थल सुशोभित था ॥७१-७३॥ इस प्रकार यज्ञ-स्थान के महान ठाट-बाट को देख कर राजा अत्यन्त आनन्दित हो कर बोला ॥७४॥

राजा ने कहा—समस्त लक्षणों से सम्पन्न उत्तम घोड़े को संयमी राजकुमार लायें। और फिर पृथिवी पर उसको विचरण करायें ॥७५॥ विद्वान तथा धर्मवेत्ता लोग हवन करें। काले बकरे महिष कृष्णमृग ब्राह्मणों बैल गाय और समस्त पशु-पालकों को बुलाकर यज्ञ आरम्भ किया जाए। विष्णु का मन्दिर बने ॥७६-७७॥ विप्रों को अभिलषित दान दिया जाय याचकों को स्त्रियाँ रत्न गाँव नगर अच्छी उपजाऊ भूमि राज्य तथा दूसरे सुन्दर द्रव्य दिए जायें ॥७८॥ किसी भी याचक से नहीं है ऐसा शब्द नहीं कहा जाय। जब तक भगवान् यज्ञ वेदी में प्रत्यक्ष प्रकट न हो तब तक यज्ञ होता रहे ॥७९-८०॥

---

१ ग ० मनोहरान। २ ग ०न्तिभि शृतम। ३ ग ०मवर्णै०। ४ ग ०श्वान्प्रवि०। ५ ब ०द पैशागुण्यं प्राप्य स०। ६ ग ०व सुराविह।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदा विप्रा राजसिंहो महाभुज । ददौ सुवर्णसंघातं कोटीनां चैव भूषणम् ॥८१॥
करेणुशतसाहस्रं वाजिनो नियुतानि च। अर्बुदं चैव वृषभं स्वर्णशृङ्गीश्च धेनुका ॥८२॥
सुरूपा सुरभीश्चैव कांस्यदोहा पयस्विनी । प्रायच्छत्स तु विप्रेभ्यो वेदविद्भयो मुदा युत ॥८३॥
वासांसि च महार्हाणि राङ्कवास्तराणानि च। सुशुक्लानि च शुभ्राणि प्रवालमणिमुत्तमम् ॥८४॥
अददात्स महायज्ञे रत्नानि विविधानि च ॥८५॥
वज्रवैदूर्यमाणिक्यमुक्तिकाद्यानि यानि च। अलंकारवती शुभ्रा कन्या राजीवलोचना ॥८६॥
शतानि पञ्च विप्रेभ्यो राजा हृष्ट प्रदत्तवान्। स्त्रिय पीनपयोभारा कञ्चुकै स्वस्तनावृता ॥८७॥
मध्यहीनाश्च सुश्रोण्य पद्मपत्रायतेक्षणा । हावभावान्वितग्रीवा बह्व्यो वलयभूषिता ॥८८॥
पादनूपुरसंयुक्ता पट्टदुकूलवासस । एकैकशोऽददात्तस्मिन्काम्याश्च कामिनीर्बहू ॥८९॥
अर्थिभ्यो ब्राह्मणादिभ्यो हयमेधे द्विजोत्तमा । भक्ष्य भोज्य च संपूर्णं नानासंभारसंयुतम् ॥९०॥
खण्डकाद्यान्यनेकानि स्विन्नपक्वाश्च पिष्टकान । अन्नान्यन्यानि मेध्याश्च घृतपूराश्च खाण्डवान ॥९१॥
मधुरास्तर्जितान्पूपानन्न मृष्टं सुपाकिकम। प्रीत्यर्थं सर्वसत्त्वानां दीयतेऽन्न पुन पुन ॥९२॥
दत्तस्य दीयमानस्य धनस्यान्तो न विद्यते। एवं दृष्ट्वा महायज्ञं देवदैत्या सचा (चा) रणा ॥९३॥
गन्धर्वाप्सरस सिद्धा ऋषयश्च प्रजेश्वरा । विस्मय परम याता दृष्ट्वा क्रतुवर शुभम ॥९४॥
पुरोधा मन्त्रिणो राजा हृष्टास्तत्रैव सर्वश । न तत्र मलिन कश्चिन्न दीनो न क्षुधाऽन्वित ॥९५॥

ब्रह्मा ने कहा—इतना कहकर उस महाबलवान नृपवर ने हर्षपूर्वक सुवर्ण समूह करोडों भूषण एक लाख हाथी दस लाख घोडे एक अरब बैल तथा स्वर्णशृङ्गी सुन्दररूपवती एवम दुधारू गायें वेदवेत्ता ब्राह्मणों को दान में दी॥८१ ८३॥ तथा बहुमूल्य वस्त्र उज्ज्वल मृगरोम निर्मित बिस्तर (कालीन) उत्तम प्रवाल मणियाँ और विविध रत्न भी दिए॥८४ ८५॥ वज्रमणि वैदूर्यमणि मोती तथा अलंकारों से युक्त गौरवर्ण एवम कमल के समान नेत्रों वाली पाँच सौ कन्यायें राजा ने प्रसन्न होकर विप्रों को दीं॥८६॥ द्विजवर्य ! अश्वमेध यज्ञ में स्थूल तथा कञ्चुकियों से आवृत स्तनों वाली क्षीण कटि वाली सुन्दर नितम्ब वाली कमल-पत्र के समान दीर्घ नेत्रों वाली हाव भावों से अवनत ग्रीवा वाली कंकण तथा नूपुरों से विभूषित कौशेयवस्त्रधारिणी बहुत सी कामिनियों को राजा ने एक एक कर के ब्राह्मण आदि याचकों को दे दिया॥८७ ८९॥ अनेक प्रकार के रसों से युक्त पर्याप्त भक्ष्य भोज्य खाद्य मिश्रित विविध अन्न तथा उबालकर बनाये गए पीसकर बनाये गए पवित्र तथा घृतपूर्ण खाँड के बने मधुर अच्छी तरह पकाये हुए खाद्यान्न एवं पूए—समस्त प्राणियों की तृप्ति के लिए बार-बार दिये जाते थे॥९० ९२॥ दिए गए तथा दिए जाने वाले अन्न का अन्त नहीं था। इस प्रकार महायज्ञ को देखकर देव दैत्य चारण गन्धर्व अप्सरा सिद्ध ऋषि तथा प्रजापति अत्यन्त विस्मित हुए॥९३ ९४॥ पवित्र तथा उत्तम यज्ञ को देखकर पुरोहित मन्त्री राजा—सब के सब हर्षित हुए। वहाँ न कोई मलिन न दीन और न क्षुधा-पीडित

न चोपसर्गो न ग्लानिर्नाऽऽधयो व्याधयस्तथा। नाकालमरणं तत्र न दंशो न ग्रहा विषम् ॥९६॥
हृष्टपुष्टजना· सर्वे तस्मिन्राज्ञो महोत्सवे। ये च तत्र तप.सिद्धा मुनयश्चिरजीविन. ॥९७॥
न जातं तादृशं यज्ञं धनधान्यसमन्वितम्। एवं स राजा विधिवद्वाजिमेधं द्विजोत्तमाः॥
क्रतुं समापयामास प्रासादं वैष्णवं तथा ॥९८॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे स्वयम्भृषिसवादे प्रासादकरणं नाम
सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नस्य प्रतिमानिर्माणम्

मुनय ऊचुः

ब्रूहि नो देवदेवेश यत्पृच्छाम पुरातनम्। यथा ताः प्रतिमा. पूर्वमिन्द्रद्युम्नेन निर्मिता· ॥१॥
केन चैव प्रकारेण तुष्टस्तस्मै स माधव। तत्सर्वं वद चास्माकं पर कौतूहलं हि न· ॥२॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्व मुनिशार्दूला. पुराणं वेदसंमितम्। कथयामि पुरा वृत्तं प्रतिमाना च संभवम् ॥३॥

दिखायी पड़ता था ॥९५॥ उत्पात, ग्लानि, आधि-व्याधि, अकाल मृत्यु, दश, ग्रह और विष किसी प्रकार की विपत्ति नही थी ॥९६॥ राजा के उस महोत्सव मे सब लोग हृष्ट-पुष्ट, तपस्वी, मुनि तथा चिरजीवी थे ॥९७॥ वैसा धन धान्य-समन्वित यज्ञ कही नही हुआ था। द्विजवय ! इस तरह राजा ने विधानपूर्वक अश्वमेध यज्ञ तथा विष्णु के मदिर को सम्पन्न किया ॥९८॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे ब्रह्मा और ऋषि के सवाद-प्रकरण मे मदिर-निर्माण नामक
सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४७॥

अध्याय ४८

इन्द्रद्युम्न द्वारा प्रतिमा का निर्माण

मुनियो ने कहा—हे देवदेवेश ! हम यह प्राचीन कथा सुनना चाहते है कि इन्द्रद्युम्न ने उन प्रतिमाओ का निर्माण कैसे कराया ? किस प्रकार माधव उससे सतुष्ट हुए ? यह सब हमसे कहिए, हमे बडी उत्सुकता है ॥१-२॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर ! वेदसम्मत पुराण को सुनिए। मैं पूर्वकालीन, वृत्तान्त—प्रतिमाओ का

प्रवृत्ते च महायज्ञे प्रासादे चैव निर्मिते। चिन्ता तस्य बभूवाथ प्रतिमार्थमहर्निशम् ॥४॥
न वेद्मि केन देवेशं सर्वेशं लोकपावनम्। सर्गस्थित्यन्तकर्तारं पश्यामि पुरुषोत्तमम् ॥५॥
चिन्ताविष्टस्त्वभूद्राजा शेते रात्रौ दिवाऽपि च। न भुङ्क्ते विविधान्भोगान्न च स्नानं प्रसाधनम् ॥६॥
नैव वाद्येन गन्धेन गायनैर्वर्णकैरपि। न गजैर्मदयुक्तैश्च न चान्यैर्हयान्वितैः ॥७॥
नेन्द्रनीलैर्महानीलैः पद्मरागमयैर्न च। सुवर्णरजताद्यैश्च वज्रस्फटिकसंयुतैः ॥८॥
बहुरागार्थकामैर्वा न वन्यैरन्तरिक्षगैः। बभूव तस्य नृपतेर्मनसस्तुष्टिवर्धनम् ॥९॥
शैलमृद्दारुजातेषु प्रशस्तं किं महीतले। विष्णुप्रतिमायोग्यं च सर्वलक्षणलक्षितम् ॥१०॥
एतैरेव त्रयाणां तु दयितं स्यात्सुरार्चितम्। स्थापिते प्रीतिमस्येति इति चिन्तापरोऽभवत् ॥११॥
पञ्चरात्रविधानेन संपूज्य पुरुषोत्तमम्। चिन्ताविष्टो महीपालः संस्तोतुमुपचक्रमे ॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे इन्द्रद्युम्नस्य प्रतिमानिर्माणविधानं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

निर्माण—करवाता हूँ ॥३॥ महायज्ञ का आरम्भ तथा मन्दिर का निर्माण हो जाने पर राजा को दिनरात प्रतिमा की चिन्ता लगी रहती थी ॥४॥ "मैं नहीं जानता कि किस प्रकार देवों के स्वामी, सब के स्वामी, लोकपावन तथा सृष्टि स्थिति प्रलयकर्ता पुरुषोत्तम भगवान का दर्शन कर सकूँगा" इस चिन्ता के कारण राजा को एक क्षण भी नींद नहीं आती थी। स्नान, शृंगार तथा भोगों से भी वह विरत हो गया था ॥५ ६॥ वाद्य गन्ध, गाना मदयुक्त हाथी घोड़े, इन्द्रनील महानील, पद्मराग, सोना, चांदी, वज्रमणि स्फटिकमणि अनुराग उत्पन्न करनेवाले बहुत से वन्य तथा गगन विहारी पक्षी—कोई भी राजा के मन को संतुष्ट नहीं कर पाता था ॥७ ९॥ भूतल पर पत्थर मिट्टी और लकड़ी—इन तीन चीजों में कौन विष्णु की प्रतिमा योग्य, सर्व-लक्षण सम्पन्न तथा प्रशस्त है? इन्हीं तीनों में से किसी वस्तु की प्रतिमा देवताओं को प्रिय होती है। प्रतिमा स्थापित होने पर ही भगवान प्रसन्न होंगे। इस तरह राजा सोचते हुए पञ्चरात्र के विधान से पुरुषोत्तम की पूजा कर चिन्तामग्न स्थिति में ही स्तुति करने लगा ॥१० १२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में प्रतिमानिर्माण विधान नामक अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४८॥

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नकृतभगवत्स्तुति

वासुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्ते मोक्षकारण। त्राहि मां सर्वलोकेश जन्मसंसारसागरात् ॥१॥
निर्मलाम्बरसंकाश नमस्ते पुरुषोत्तम। संकर्षण नमस्तेऽस्तु त्राहि मां धरणीधर॥२॥
नमस्ते हेमगर्भाभ नमस्ते मकरध्वज। रतिकान्त नमस्तेऽस्तु त्राहि मां संवरान्तक॥३॥
नमस्तेऽञ्जनसंकाश नमस्ते भक्तवत्सल। अनिरुद्ध नमस्तेऽस्तु त्राहि मां वरदो भव॥४॥
नमस्ते विबुधावास नमस्ते विबुधप्रिय। नारायण नमस्तेऽस्तु त्राहि मां शरणागतम्॥५॥
नमस्ते बलिनां श्रेष्ठ नमस्ते लाङ्गलायुध। चतुर्मुख जगद्धाम त्राहि मां प्रपितामह॥६॥
नमस्ते नीलमेघाभ नमस्ते त्रिदशार्चित। त्राहि विष्णो जगन्नाथ मग्नं मां भवसागरे॥७॥
प्रलयानलसंकाश नमस्ते दितिजान्तक। नरसिंह महावीर्य त्राहि मां दीप्तलोचन॥८॥
यथा रसातलादुर्वी त्वया दंष्ट्रोद्धृता पुरा। तथा महावराहस्त्वं त्राहि मां दुःखसागरात्॥९॥
त्वमेता मूतयः कृष्ण वरदाः संस्तुता मया। तवेमे बलदेवाद्या पृथग्रूपेण संस्थिताः॥१०॥
अङ्गानि तव देवेश गरुत्माद्यास्तथा प्रभो। दिक्पाला सायुधाश्चैव केशवाद्यास्तथाऽच्युत॥११॥

अध्याय ४९

इन्द्रद्युम्न द्वारा भगवान की स्तुति

वासुदेव! आपको नमस्कार है। मोक्षकारण! आपको नमस्कार है। अखिल लोकों के स्वामी! मुझे जन्म तथा संसार सागर से बचाइए॥१॥ स्वच्छ गगन तुल्य! पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। संकर्षण! आपको नमस्कार है। धरणीधर! मेरी रक्षा करें॥२॥ हिरण्यगर्भ! आपको नमस्कार है। मकरध्वज! आपको नमस्कार है। रतिपति! आपको नमस्कार है। शम्बरारि! मेरी रक्षा करें॥३॥ अञ्जनतुल्य! आपको नमस्कार है। भक्तवत्सल! आपको नमस्कार है। अनिरुद्ध! आपको नमस्कार है। मेरी रक्षा करें तथा वरदायक बनें॥४॥ देवताओं के स्थान! आपको नमस्कार है। देवप्रिय! आपको नमस्कार है। नारायण! आपको नमस्कार है। मुझ शरणागत की रक्षा करें॥५॥ बलियों में श्रेष्ठ! आपको नमस्कार है। हलायुध! आपको नमस्कार है। चतुर्मुख! जगद्धाम! प्रपितामह! मेरी रक्षा करें॥६॥ नीलमेघ के समान कान्ति वाले! आपको नमस्कार है। देवपूजित! आपको नमस्कार है। विष्णु! मेरी रक्षा करें। जगन्नाथ! भवसागर से मेरा उद्धार करें॥७॥ प्रलयाग्नि के सदृश! दैत्यनाशन! आपको नमस्कार है। नरसिंह! महापराक्रमी! दीप्त नेत्र वाले! मेरी रक्षा करें॥८॥ आपने जिस प्रकार महावराह का रूप धारण कर अपने दाँतों पर पाताल से पृथ्वी का उद्धार किया था वैसे मुझे भी दुःखसागर से बचायें॥९॥ कृष्ण! वर देने वाले आप ही हैं। आप ही की इन मूर्तियों की मैंने स्तुति की है। आप ही के ये बलदेव आदि रूप पृथक्-पृथक् स्थित हैं॥१०॥ देवेश! प्रभो! गरुड़ आदि आपके

ये चान्ये तव देवेश भेदाः प्रोक्ता मनीषिभिः। तेऽपि सर्वे जगन्नाथ प्रसन्नायतलोचन ॥१२॥
मयार्चिताः स्तुताः सर्वे तथा यूयं नमस्कृताः। प्रयच्छत वरं मह्यं धर्मकामार्थमोक्षदम् ॥१३॥
भेदास्ते कीर्तिता ये तु हरे संकर्षणादयः। तव पूजार्थसंभूतास्ततस्त्वयि समाश्रिताः ॥१४॥
न भेदस्तव देवेश विद्यते परमार्थतः। विविधं तव 'यद्रूपमुक्तं तदुपचारतः ॥१५॥
अद्वैतं त्वां कथं द्वैतं वक्तुं शक्नोति मानवः। 'एकस्त्वं हि हरे व्यापी चित्स्वभावो निरञ्जनः ॥१६॥
परमं तव यद्रूपं भावाभावविवर्जितम्। निर्लेपं निर्गुणं श्रेष्ठं कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥१७॥
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रव्यवस्थितम्। तद्देवाश्च न जानन्ति कथं जानाम्यहं प्रभो ॥१८॥
अपरं तव यद्रूपं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम्। शङ्खचक्रगदापाणिमुकुटाङ्गदधारिणम् ॥१९॥
श्रीवत्सोरस्कसंयुक्तं वनमालाविभूषितम्। 'तदर्चयन्ति विबुधा ये चान्ये तव संश्रयाः ॥२०॥
देवदेव सुरश्रेष्ठ भक्तानामभयप्रद। त्राहि मां पद्मपत्राक्ष मग्नं विषयसागरे ॥२१॥
नान्यं पश्यामि लोकेश यस्याहं शरणं व्रजे। त्वामृते कमलाकान्त प्रसीद मधुसूदन ॥२२॥
जराव्याधिशतैर्युक्तो नानादुःखैर्निपीडितः। हर्षशोकान्वितो मूढः कर्मपाशैः सुयन्त्रितः ॥२३॥
पतितोऽहं महारौद्रे घोरे संसारसागरे। विषमोदकदुष्पारे रागद्वेषझषाकुले ॥२४॥

अंग हैं। अच्युत! दिक्पाल तथा आयुधधारी केशव आदि भी आपके अवयव हैं ॥११॥ प्रसन्न तथा लम्बे नेत्र वाले जगन्नाथ! विद्वानों ने जितने आपके भेद बतलाए हैं, उन सबकी मैंने पूजा तथा स्तुति की और आपको नमस्कार किया। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षदायक वरदान मुझे दीजिए ॥१२-१३॥ हरे! आपके संकर्षण आदि जितने भेद हैं, वे सब आपकी पूजा के लिए उत्पन्न होकर आपही के आश्रित हैं ॥१४॥ देवेश! परमार्थ दृष्टि से आपका कोई भेद नहीं है। आपके जो ये विविध रूप कहे गए हैं, वे औपचारिक हैं ॥१५॥ आप अद्वैत हैं, भला मनुष्य आपको कैसे द्वैत कह सकता है। हरे! आप एक, व्यापक, चित्स्वभाव तथा निरञ्जन है ॥१६॥ प्रभो! आपका जो भाव-अभाव से वर्जित, निर्लेप, निर्गुण, श्रेष्ठ, कूटस्थ, अचल, ध्रुव, सब उपाधियों से निर्मुक्त तथा सत्तामात्र से व्यवस्थित रूप है, उसे तो देवता भी नहीं जानते, मैं कैसे जानूं ॥१७-१८॥ आपका दूसरा जो पीतवस्त्र, चतुर्भुज, शंख, चक्र, गदा, मुकुट तथा अंगद (बाजूबंद) धारी, वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिह्न से युक्त और वनमाला से विभूषित रूप है, उसी की पूजा आपके आश्रित देवगण करते हैं ॥१९-२०॥ देवों के देव! सुरश्रेष्ठ! भक्तों को अभय देने वाले! पद्म-पत्र के समान नेत्रों वाले! विषयसागर में डूबे हुए मुझको बचाइए ॥२१॥ लोकेश! आपको छोड़कर मैं किसी दूसरे को नहीं देखता, जिसकी शरण में जाऊँ। कमलाकान्त! मधुसूदन! मुझ पर प्रसन्न हो ॥२२॥ मैं सैंकड़ों जरा-व्याधियों से युक्त, नाना दुःखों से पीड़ित हर्ष शोकों से समन्वित मुग्ध तथा कर्म-जाल में निबद्ध होकर महाभयकर संसारसागर में गिर चुका हूँ ॥२३३॥ प्रभो! विषय-जल के कारण दुष्पार, राग-द्वेष रूपी मीनों से प्रपूर्ण, इन्द्रिय रूपी आवर्तों से गभीर, तृष्णा शोक रूपी तरंगों से व्याप्त, आश्रय

---

१ ख ०द्रूप यज्ञार्थमुप०। २ ख ०कश्चासि हरिर्व्यापी विश्वभावो नि०। ३ ख सर्चयन्ति च वि०।

इन्द्रियावर्तगम्भीरे तृष्णाशोकोर्मिसंकुले। निराश्रये निरालम्बे नि:सारेऽत्यन्तचञ्चले ॥२५॥
मायया मोहितस्तत्र भ्रमामि सुचिरं प्रभो। नानाजातिसहस्रेषु जायमानः पुनः पुनः ॥२६॥
मया जन्मान्यनेकानि सहस्राण्ययुतानि च। विविधान्यनुभूतानि संसारेऽस्मिञ्जनार्दन ॥२७॥
वेदाः साङ्गा मयाऽधीताः शास्त्राणि विविधानि च। इतिहासपुराणानि तथा शिल्पान्यनेकशः ॥२८॥
असंतोषाश्च संतोषाः संचयापचया व्ययाः। मया प्राप्ता जगन्नाथ क्षयवृद्ध्यक्षयेतराः ॥२९॥
भार्यारिमित्रबन्धूनां वियोगाः संगमास्तथा। पितरो विविधा दृष्टा मातरश्च तथा मया ॥३०॥
दुःखानि चानुभूतानि यानि सौख्यान्यनेकशः। प्राप्ताश्च बान्धवाः पुत्रा भ्रातरो ज्ञातयस्तथा ॥३१॥
मयोषितं तथा स्त्रीणां कोष्ठे विण्मूत्रपिच्छले। गर्भवासे महादुःखमनुभूतं तथा प्रभो ॥३२॥
दुःखानि यान्यनेकानि बाल्ययौवनगोचरे। वार्धके च हृषीकेश तानि प्राप्तानि वै मया ॥३३॥
मरणे यानि दुःखानि यममार्गे यमालये। मया तान्यनुभूतानि नरके यातनास्तथा ॥३४॥
कृमिकीटद्रुमाणां च हस्त्यश्वमृगपक्षिणाम्। महिषोष्ट्रगवां चैव तथाऽन्येषां वनौकसाम् ॥३५॥
द्विजातीनां च सर्वेषां शूद्राणां चैव योनिषु। धनिनां क्षत्रियाणां च दरिद्राणां तपस्विनाम् ॥३६॥
नृपाणां नृपभृत्यानां तथाऽन्येषां च देहिनाम्। गृहेषु तेषामुत्पन्नो देव चाहं पुनः पुनः ॥३७॥
गतोऽस्मि दासतां नाथ भृत्यानां बहुशो नृणाम्। दरिद्रत्वं चेश्वरत्वं स्वामित्वं च तथा गतः ॥३८॥
हतो मया हताश्चान्ये घातितो घातितास्तथा। दत्तं ममान्यैरन्येभ्यो मया दत्तमनेकशः ॥३९॥

तथा अवलम्ब से रहित, सार रहित और अत्यन्त चञ्चल भवसागर में माया से मोहित होकर चिरकाल से मैं भ्रमण कर रहा हूँ (अर्थात् डूब रहा हूँ) ॥२४-२५½॥ जनार्दन! इस संसार में नाना प्रकार की जातियों में हजारों-लाखों बार जन्म लेकर मैंने विविध सुख-दुःखों का अनुभव किया ॥२६-२७॥ जगन्नाथ! मैंने चारों वेदों, छहों शास्त्रों, इतिहास-पुराणों तथा अनेक शिल्पों का अध्ययन किया ॥२८॥ असंतोष, संतोष संचय, अपचय, व्यय, क्षय, वृद्धि तथा अक्षय मुझे प्राप्त हुए ॥२९॥ भार्या, शत्रु, मित्र तथा बंधुओं से संयोग वियोग हुए, अनेक पिता माता देखे ॥३०॥ विविध सुख-दुःखों का अनुभव किया, बहुत से भाई-बंधु मिले ॥३१॥ स्त्रियों के मल मूत्र से पिच्छल (फिसलन वाले) कोष्ठ में वास किया, गर्भ-वास में महान् दुःख का अनुभव किया ॥३२॥ हृषीकेश! बाल्यावस्था, यौवनकाल तथा बुढ़ापे में जितने कष्ट होते हैं, वे सब मुझे मिले ॥३३॥ मरणकाल में, यम के मार्ग में तथा यमालय में जितने दुःख होते हैं, उन सब का मैंने अनुभव किया, नरक में यातनायें भी सहीं ॥३४॥ कृमि-कीट वृक्ष हाथी, घोड़े, मृग, पक्षी, महिष, ऊँट, गौ तथा अन्य जंगली पशु, द्विज एवम् शूद्र की योनि में और धनवान् क्षत्रिय, दरिद्र, तपस्वी नृप, राजा के नौकर तथा अन्य प्राणियों के घरों में मैं बार-बार उत्पन्न हुआ ॥३५-३७॥ नाथ! मैं अनेकों मनुष्य तथा दासों का दास बना दरिद्र, धनी तथा स्वामी भी बना ॥३८॥ मैंने दूसरों को मारा और दूसरों ने मुझे मारा, मैंने दूसरों पर आघात किया और दूसरों ने मुझ पर आघात किया, मुझे दूसरों ने दिया और मैंने दूसरों को दिया ॥३९॥

---

१ ख ०ये। प्रयाता०। २ ख ०नाकुले। इ०। ३ ख दिवौकसाम्। ४ ख धन्यानां।

पितृमातृसुहृद्भ्रातृकलत्राणां कृतेन च। धनिनां श्रोत्रियाणां च दरिद्राणां तपस्विनाम् ॥४०॥
उक्तं दैन्यं च विविधं त्यक्त्वा लज्जां जनार्दन। देवतिर्यङ्मनुष्येषु स्थावरेषु चरेषु च ॥४१॥
न विद्यते तथा स्थानं यत्राहं न गतः प्रभो। कदा मे नरके वासः कदा स्वर्गे जगत्पते ॥४२॥
कदा मनुष्यलोकेषु कदा तिर्यग्गतेषु च। जलयन्त्रे यथा चक्रे घटी रज्जुनिबन्धना ॥४३॥
याति चोर्ध्वमधश्चैव कदा मध्ये च तिष्ठति। तथा चाहं सुरश्रेष्ठ कर्मरज्जुसमावृतः ॥४४॥
अधश्चोर्ध्वं तथा मध्ये भ्रमन्गच्छामि योगतः। एवं संसारचक्रेऽस्मिन्भैरवे रोमहर्षणे ॥४५॥
भ्रमामि सुचिरं कालं नान्तं पश्यामि कर्हिचित्। न जाने किं करोम्यद्य हरे व्याकुलितेन्द्रियः ॥४६॥
शोकतृष्णाभिभूतोऽहं कान्दिशीको विचेतनः। इदानीं त्वामहं देव विह्वलः शरणं गतः ॥४७॥
त्राहि मां दुःखितं कृष्ण मग्नं संसारसागरे। कृपां कुरु जगन्नाथ भक्तं मां यदि मन्यसे ॥४८॥
त्वदृते नास्ति मे बन्धुर्योऽसौ चिन्तां करिष्यति। देव त्वां नाथमासाद्य न भयं मेऽस्ति कुत्रचित् ॥४९॥
जीविते मरणे चैव योगक्षेमेऽथ वा प्रभो। ये तु त्वां विधिवद्देव नार्चयन्ति नराधमाः ॥५०॥
सुगतिस्तु कथं तेषां भवेत्संसारबन्धनात्। किं तेषां कुलशीलेन विद्यया जीवितेन च ॥५१॥
येषां न जायते भक्तिर्जगद्धातरि केशवे। प्रकृतिं त्वासुरीं प्राप्य ये त्वां निन्दन्ति मोहिताः ॥५२॥
पतन्ति नरके घोरे जायमानाः पुनः पुनः। न तेषां निष्कृतिस्तस्माद्विद्यते नरकार्णवात् ॥५३॥

पिता, माता, मित्र, भाई, स्त्री धनी, श्रोत्रिय, दरिद्र और तपस्वियों के लिए मैंने बहुत कुछ किया ॥४०॥ जनार्दन! मैंने लाज छोड़कर विविध प्रकार की दीनता प्रकट की। प्रभो! देव, पक्षी, मनुष्य, स्थावर और जंगम में ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ मैं नहीं गया ॥४१½॥ जगत्पते! मैं कर्म रूपी रस्सी से बँधा हुआ कभी नरक में, कभी स्वर्ग में कभी मनुष्य लोक में और कभी तिर्यग् योनि में उसी प्रकार नीचे-ऊपर भ्रमण कर रहा हूँ, जैसे जलयन्त्र में रस्सी से बँधी हुई गगरी ऊपर-नीचे तथा मध्य में घूमती रहती है ॥४२-४४½॥ इस प्रकार भयंकर तथा रोमांचकारी संसार-चक्र में मैं चिरकाल से घूम रहा हूँ, कहीं अन्त नहीं देखता ॥४५½॥ हरे! मैं नहीं जानता हूँ कि क्या करूँ मेरी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गई हैं, मैं शोक-तृष्णा से अभिभूत तथा अचेत हो रहा हूँ, मुझे इतना भी नहीं पता कि किस दिशा में जाऊँ। देव! इस समय विह्वल होकर मैं आपकी शरण में आया हूँ ॥४६-४७॥ कृष्ण! संसार-सागर में निमग्न मुझ पीड़ित की रक्षा करें। जगन्नाथ! यदि आप मुझे भक्त समझते हैं तो कृपा कीजिए ॥४८॥ आपको छोड़कर मेरा कोई बन्धु नहीं है, जो मेरी चिन्ता करे। देव! आपको स्वामी के रूप में प्राप्त कर जीवन, मरण या योगक्षेम—कहीं भी मुझे भय नहीं होता ॥४९½॥ प्रभो! जो नराधम विधिपूर्वक आपकी पूजा नहीं करते, उन्हें संसार-बन्धन से कैसे मुक्ति मिले? जिनकी जगद्धाता केशव में भक्ति नहीं है, उनके कुल-शील, विद्या तथा जीवन से क्या प्रयोजन? ॥५०-५१॥ आसुरी प्रकृति को प्राप्त कर मोहवश जो आपकी निन्दा करते हैं, वे बार-बार जन्म लेकर घोर नरक में गिरते हैं। देव! जो दुराचारी तथा अधम मनुष्य आपको दूषित करते हैं,

---

१ ख ०दा तीर्यंजनेषु। २ ख ०ष्ट वामर०। ३ ख ०त्संसारसागरे। किं। ४ ख ०केते तु जा०।

ये दूषयन्ति दुर्वृत्तास्त्वां देव पुरुषाधमाः। यत्र यत्र भवेज्जन्म मम कर्मनिबन्धनात् ॥५४॥
तत्र तत्र हरे भक्तिस्त्वयि चास्तु दृढा सदा। आराध्य त्वां सुरा दैत्या नराश्चान्येऽपि संयताः ॥५५॥
अवापुः परमां सिद्धिं कस्त्वां देव न पूजयेत्। न शक्नुवन्ति ब्रह्माद्याः स्तोतुं त्वां त्रिदशा हरे ॥५६॥
कथं मानुषबुद्ध्याहं स्तौमि त्वां प्रकृतेः परम्। तथा चाज्ञानभावेन संस्तुतोऽसि मया प्रभो ॥५७॥
तत्क्षमस्वापराधं मे यदि तेऽस्ति दया मयि। कृपापराधेऽपि हरे क्षमां कुर्वन्ति साधवः ॥५८॥
तस्मात्प्रसीद देवेश भक्तस्नेहं समाश्रित। स्तुतोऽसि यन्मया देव भक्तिभावेन चेतसा ॥
साङ्गं भवतु तत्सर्वं वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥५९॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं स्तुतास्तदा तेन प्रसन्नो गरुडध्वजः। ददौ तस्मै मुनिश्रेष्ठाः सकलं मनसेप्सितम् ॥६०॥
यः संपूज्य जगन्नाथं प्रत्यहं स्तौति मानवः। स्तोत्रेणानेन मतिमान्स मोक्षं लभते ध्रुवम्[1] ॥६१॥
त्रिसंध्यं यो जपेद्विद्वानिदं स्तोत्रवरं शुचिः। धर्मं चार्थं च कामं च मोक्षं च लभते नरः ॥६२॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा समाहित। स लोकं शाश्वतं[2] विष्णोर्याति निर्धूतकल्मषः ॥६३॥
धन्यं पापहरं चेदं भुक्तिमुक्तिप्रदं शिवम्। गुह्यं सुदुर्लभं पुण्यं न देयं यस्य कस्यचित् ॥६४
न नास्तिकाय मूर्खाय न कृतघ्नाय मानिने। न दुष्टमतये दद्यान्नाभक्ताय कदाचन ॥६५॥

उनका नरकार्णव से उद्धार नहीं होता ॥५२-५३॥ हरे! कर्म-बन्धन में पड़ कर जहाँ-जहाँ मेरा जन्म हो वहाँ-वहाँ आपमे मेरी दृढ भक्ति बनी रहे ॥५४½॥ सयमी, देव, दैत्य, मनुष्य तथा दूसरो ने भी आपकी आराधना कर परम सिद्धि प्राप्त की है। देव! कौन आपकी पूजा नहीं करेगा? हरे! ब्रह्मा आदि देवता भी आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं, फिर मनुष्य-बुद्ध्या मैं कैसे प्रकृति से भी परे आपकी स्तुति करूँगा? प्रभो! तो भी अज्ञानता से मैंने आपकी स्तुति की ॥५५-५७॥ यदि मेरे ऊपर आपका अनुग्रह है, तो मेरे इस अपराध को आप क्षमा कर दें। हरे! अपराधी पर भी साधु लोग दया करते हैं। देवेश! इसलिए भक्त के स्नेहवश आप प्रसन्न हों। देव! भक्ति-युक्त चित्त से जो मैंने आपकी स्तुति की, वह सब पूर्ण हो। वासुदेव! आपको नमस्कार है ॥५८-५९॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा ने इस प्रकार स्तुति की। भगवान् उससे प्रसन्न हुए। मुनिवर्य! भगवान् ने उसकी समस्त अभिलाषायें पूरी की ॥६०॥ जो मनुष्य प्रतिदिन जगन्नाथ की पूजाकर इस स्तोत्र से स्तुति करता है वह निश्चय ही मुक्ति प्राप्त करता है ॥६१॥ जो विद्वान् मनुष्य पवित्र होकर तीनों सन्ध्या इस उत्तम स्तोत्र का जप करता है वह धर्म, अर्थ काम और मोक्ष प्राप्त करता है ॥६२॥ जो सावधान होकर इस स्तोत्र को पढ़ेगा या सुनेगा या सुनाएगा वह निष्पाप होकर शाश्वत विष्णु-लोक को जाएगा ॥६३॥ यह स्तोत्र धन्य, पापहारी, भुक्ति मुक्तिदायक, कल्याणकारी, गोपनीय, अतिदुर्लभ और पवित्र है। यह हर किसी को नहीं देना चाहिए ॥६४॥ नास्तिक, मूर्ख, कृतघ्न, अभिमानी, अभक्त तथा दुष्ट बुद्धि को यह कभी भी नहीं देना चाहिए ॥६५॥ भक्त गुणवान्, शीलवान्,

---

१ ख ०म्। य सम्यग्जपे०। २ ख ०त दिव्यं याति।

दातव्यं भक्तियुक्ताय गुणशीलान्विताय च। विष्णुभक्ताय शान्ताय श्रद्धानुष्ठानशालिने ॥६६॥
इदं समस्ताघविनाशहेतुः, कारुण्यसंज्ञं सुखमोक्षदं च।
अशेषवाञ्छाफलदं वरिष्ठं, स्तोत्रं मयोक्तं पुरुषोत्तमस्य ॥६७॥
ये तं सुसूक्ष्मं विमला मुरारिं, ध्यायन्ति नित्यं पुरुषं पुराणम्।
ते मुक्तिभाजः प्रविशन्ति विष्णुं, मन्त्रैर्यथाऽऽज्यं हुतमध्वराग्नौ ॥६८॥
एकः स देवो भवदुःखहन्ता, परः परेषां न ततोऽस्ति चान्यत्।
द्र (स्र) ष्टा स पाता स तु नाशकर्ता, विष्णुः समस्ताखिलसारभूतः ॥६९॥
किं विद्यया किं स्वगुणैश्च तेषां, यज्ञैश्च दानैश्च तपोभिरुग्रैः।
येषां न भक्तिर्भवतीह कृष्णे, जगद्गुरौ मोक्षसुखप्रदे च ॥७०॥
लोके स धन्यः स शुचिः स विद्वान् मखैस्तपोभिः स गुणैर्वरिष्ठः।
ज्ञाता स दाता स तु सत्यवक्ता, यस्यास्ति भक्तिः पुरुषोत्तमाख्ये ॥७१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंम्भ्वृषिसंवादे कारुण्यस्तवर्णनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

विष्णु भक्त, शान्त, श्रद्धालु और अनुष्ठानशाली को यह देना चाहिए ॥६६॥ पुरुषोत्तम का यह समस्त पापों के नाश का कारण कारुण्यसंज्ञक सुखमोक्षदायक, अशेष कामना फल दाता और सब से श्रेष्ठ स्तोत्र मैंने बतला दिया ॥ ॥६७॥ जो निर्मल पुरुष उस अत्यन्त सूक्ष्म, पुराण पुरुष तथा मुरनामक दैत्य के शत्रु विष्णु का नित्य ध्यान करते हैं वे मोक्षाधिकारी होकर विष्णु में उसी तरह प्रवेश करते हैं जिस तरह मन्त्रों से छोड़ा गया घी अग्नि में प्रवेश करता है ॥६८॥ वह देव एक, संसार-दुःखनाशन, परों से भी परे, अद्वितीय, द्रष्टा, रक्षक, नाशकर्ता, व्यापक और अखिल पदार्थों के सारभूत है ॥६९॥ जिसको जगद्गुरु तथा मोक्षसुखदाता कृष्ण में भक्ति नहीं है, उसे विद्या, गुण, यज्ञ, दान और उग्र तप से क्या लाभ? ॥७०॥ लोक में वही धन्य, पवित्र, विद्वान् यज्ञकर्ता, तपस्वी गुणवान्, ज्ञाता, दाता और सत्यवक्ता है, जिसकी पुरुषोत्तम कृष्ण में भक्ति है ॥७१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में कारुण्यस्तुतिवर्णन नामक उनचासवाँ अध्याय समाप्त ॥४९॥

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

प्रतिमोत्पत्तिकथनम्

ब्रह्मोवाच

स्तुत्वैवं मुनिशार्दूल प्रणम्य च सनातनम्। वासुदेवं जगन्नाथं सर्वकामफलप्रदम् ॥१॥
चिन्ताविष्टो महीपालः कुशानास्तीर्य भूतले। वस्त्रं चैकमना भूत्वा सुष्वाप धरणीतले ॥२॥
कथं प्रत्यक्षमभ्येति देवदेवो जनार्दनः। मम चार्त्तिहरो देवस्तदाऽसाविति चिन्तयन् ॥३॥
सुप्तस्य तस्य नृपतेर्वासुदेवो जगद्गुरुः। आत्मानं दर्शयामास शङ्खचक्रगदाभृतम् ॥४॥
स ददर्श तु सप्रेमं देवदेवं जगद्गुरुम्। शङ्खचक्रधरं देवं गदाचक्रोग्रपाणिनम् ॥५॥
शार्ङ्गबाणधरं देवं ज्वलत्तेजोतिमण्डलम्। युगान्तादित्यवर्णाभं नीलवैदूर्यसन्निभम् ॥६॥
सुपर्णांसे समासीनं षोडशार्धभुजं शुभम्। स वाचं प्राब्रवीद्धीरां साधु राजन्महामते ॥७॥
क्रतुनाऽनेन दिव्येन तथा भक्त्या च श्रद्धया। तुष्टोऽस्मि ते महीपाल वृथा किमनुशोचसि ॥८॥
यदत्र प्रतिमा राजञ्जगत्पूज्या सनातनी। यथा सा प्राप्यते भूप तदुपायं ब्रवीमि ते ॥९॥

अध्याय ५०

प्रतिमोत्पत्ति का कथन

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर्य! इस प्रकार स्तुति कर चुकने के बाद राजा ने सर्व-काम-फल प्रद सनातन वासुदेव जगन्नाथ को प्रणाम किया और फिर भूमि पर कुशा एवं वस्त्र को बिछा कर चिन्तामग्न राजा जमीन पर सो गया ॥१-२॥ रात समय उसके मन में यही भावना बनी रही कि किस प्रकार देवाधिदेव दुःखनाशक भगवान् वासुदेव मेरे नेत्रों के सम्मुख हों। ॥३॥ सोये हुए उस राजा को शङ्ख-चक्र-गदा धारी जगद्गुरु भगवान् ने अपना रूप दिखाया ॥४। उस राजा ने बड़े प्रेम से देवों के देव संसार के गुरु (मोह नाशक) भगवान् को इस प्रकार देखा कि उनके हाथों में शङ्ख चक्र गदा धनुष और बाण थे प्रलयकालीन प्रचण्ड सूर्य के समान अत्यन्त तेजमय शरीर से एक दीप्त प्रभा-पुञ्ज चारों ओर बिखर रहा था नीलमणि सदृश मंगलमय विग्रह धारण किये हुए अष्टभुजाधारी भगवान् गरुडासन पर आसीन थे। मुनिगण! इस प्रकार प्रकट होकर भगवान् बोले—अनल्पमति राजन्! तुम धन्य हो ॥५-६॥ महीपाल! मैं तुम्हारे इस उत्कृष्ट यज्ञ भक्ति तथा श्रद्धा से प्रसन्न हूँ तुम व्यर्थ शोक क्यों कर रहे हो? ॥८। राजन्! इस संसार में जगत्पूज्य जो सनातनी प्रतिमा है उसकी प्राप्ति का उपाय मैं तुमको बता रहा हूँ ॥९॥ सूर्योदय

---

१ ख ०ति दृष्टमम ज०। २ ख ०न। स महार्ति०। ३ ख सुषुप्तस्य तु नृ०। ४ ग ०स स्वप्ने तस्मै समदृश्यत। स। ५ ग तु स्वप्ने वै दे०। ६ ख ०म। तत्र राजानमासाद्य विभुः प्राह महा०। ७ ख दानेन। ८ ख ते। प्रभाते विमले जाते नि०।

गतायामद्य शर्वर्यां निर्मले भास्करोदिते। सागरस्य जलस्यान्ते नानाद्रुमविभूषिते॥१०॥
जलं तथैव वेलायां दृश्यते तत्र यं महत्। एवणस्योदधे राजतरङ्गैः समभिप्लुतम्॥११॥
कूलान्ते हि महावृक्ष स्थित स्थलजलेषु च। वेलाभिर्हन्यमानश्च न चासौ कम्पते द्रुम॥१२॥
परशुमादाय हस्तेन ऊर्मेरन्तरततो व्रज। एकाकी विगतव्याजस्त्व पश्यसि पादपम्॥१३॥
ईदृग्विधं समालोक्य छेदय स्वमशङ्कित। छेद्यमान तु त वृक्ष प्रातरद्भुतदर्शनम्॥१४॥
दृष्ट्वा तेनैव सचिन्त्य ततो भूपालदर्शनात्। कुरु ता प्रतिमां दिव्यां जहि चिन्तां विमोहिनीम्॥१५॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा महाभागो जगामादर्शनं हरि। स चापि स्वप्नमालोक्य पर विस्मयमागत॥१६॥
तां निशां स समुद्वीक्ष्य स्थितस्तद्गतमानस। व्याहरन्वैष्णवान्मन्त्रान्सूक्त चैव तदात्मकम्॥१७॥
प्रभातायां रजन्यां तु उत्थितो नान्यमानस। स स्नात्वा सागरे सम्यग्यथावद्विधिना तत॥१८॥
दत्त्वा दानं च विप्रेभ्यो ग्रामांश्च नगराणि च। कृत्वा पौर्वाह्णिकं कर्म जगाम स नृपोत्तम॥१९॥
न चाश्वो न पदातिश्च न गजो न च सारथि। एकाकी स महावेगो प्रविवेश महीपति॥२०॥
तं ददर्श महावृक्ष तेजस्यन्त महाद्रुमम्। महाविमह रोह पुण्य विपुलमेव च॥२१॥
महोच्छ्रायं महाकायं प्रसुप्तं च जलान्तिके। ताम्रमाञ्जिष्ठवर्णाभ नामजातिविवर्जितम्॥२२॥

नरनाथस्तदा विप्रा[1] द्रुम दृष्ट्वा मुदान्वित । परशुना शातयामास निशितेन दृढेन च ॥२३॥
इंधीकर्तुमनास्तत्र बभूवेन्द्रसख स च। निरीक्ष्यमाणे काष्ठे तु बभूवाद्भुतदर्शनम ॥२४॥
विश्वकर्मा[2] च विष्णुश्च विप्ररूपधरावुभौ। [3]आजग्मतुर्महाभागौ तदा तुल्याप्रजन्मानौ ॥२५॥
[4]ज्वलमानौ स्वतेजोभिर्दिव्यस्रगनुलेपनौ[5]। अथ तौ त समागम्य नृपमिन्द्रसख तदा ॥२६॥
तावचतुर्महाराज किमत्र त्व करिष्यसि। किमर्थं च महाबाहो शातितश्च वनस्पति ॥२७॥
असहायो महादुर्गे निर्जने गहने वने। महासिन्धुतटे चैव[6] कथ व शातितो द्रुम ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

तयो श्रुत्वा वचो विप्रा स तु राजा मुदान्वित । बभाषे वचन ताभ्या मृदुल मधुर तथा ॥२९॥
दृष्ट्वा तौ[7] ब्राह्मणौ तत्र चन्द्रसूर्याविवाऽऽगतौ। नमस्कृत्य जगन्नाथाववाङ्मुखमवस्थित ॥३०॥

राजोवाच

देवदेवमनाद्यन्तमनन्त [8]जगता पतिम्। आराधयितु प्रतिमा करोमीति मतिर्मम ॥३१॥
अह स देवदेवेन परमेण महात्मना। स्वप्नान्ते च समुद्दिष्टो भवद्भ्या श्रावित मया ॥३२॥

क्या है जाति क्या है ॥२२॥ ब्राह्मणगण ! उस वृक्ष को देखकर अत्यन्त प्रसन्न चित्त राजा ने अपने कठोर तीक्ष्ण कुठार से काट कर गिरा दिया ॥२३॥ इन्द्र का सखा वह राजा उसको दो भागों म काटने की इच्छा से देखने लगा कि इतने म ही उसको अद्भुत दर्शन हुआ ॥२४॥ उस समय ब्राह्मण-वेश म अत्यन्त तेजस्वी तथा रूप और वय म समान विष्णु और विश्वकर्मा जा आये ॥२५॥ शारीरिक कान्ति से प्रदीप्त उनके अंगो पर दिव्य लेप और दिव्य माला सुशोभित थी ॥२६॥ विप्र वेषधारी विष्णु और विश्वकर्मा राजा के समीप आकर पूछने लगे कि महाराज ! आप यहाँ क्या कर रहे हैं ? महाबाहु ! इस महावृक्ष के काटने का क्या प्रयोजन है ? अब ने इस जनशून्य सघन दुर्गम वन म आकर महासागर तट पर स्थित इस वृक्ष को किसलिए काट डाला ? ॥२७ २८॥

ब्रह्मा बोले—ब्राह्मणवृन्द ! चन्द्रमा और सूर्य के समान देदीप्यमान उपस्थित उन दो ब्राह्मणो को देख कर और उनकी जिज्ञासा सुनकर प्रसन्नचित्त राजा ने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। फिर विनम्र वाणी से बोला ॥२९ ३०॥

राजा ने कहा—प्रभो ! इस काष्ठ से देवाधिदेव विश्वपति आद्यन्तरहित भगवान की आराध्य प्रतिमा बनाने की मेरी इच्छा है। देवाधिदेव परमात्मा द्वारा मुझे इस प्रकार प्रतिमा बनाने का जो आदेश स्वप्न मे प्राप्त हुआ है उसे मैने आप दोनों को सुना दिया ॥३१-३२॥

---

१ स विष्णु। २ क ०र्मा तथा विश्वकर्मा क०। ३ ख ०हात्मानौ ख०। ४ ख ०तौ मुने०। ५ ख ०पनै। अ०। ६ क ०व विमप गा०। ७ क ख तौ रूपसम्पन्नौ घ०। ८ ग जगत।

ब्रह्मोवाच

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा देवेन्द्रप्रतिमस्य च । प्रहस्य तस्मै विश्वेशस्तुष्टो वचनमब्रवीत् ॥३३॥

विष्णुरुवाच

साधु साधु महीपाल 'यदेतन्मतमुत्तमनम्'। संसारसागरे घोरे कदलीदलसन्निभे ॥३४॥
नि.सारे 'दु.खबहुले कामक्रोधसमाकुले। इन्द्रियावर्तकलिले दुस्तरे रोमहर्षणे ॥३५॥
नानाव्याधिशतावर्ते जलबुद्‌बुदसंनिभे। यतस्ते मतिरुत्पन्ना विष्णोराराधनाय वै ॥३६॥
धन्यस्त्वं नृपशार्दूल गुणैः सर्वैरलंकृतः। 'सप्रजा पृथिवी धन्या सशैलवनकानना ॥३७॥
सपुरग्रामनगरा चतुर्वर्णैरलंकृता। यत्र त्वं नृपशार्दूल प्रजाः पालयिता प्रभुः ॥३८॥
एह्येहि सुमहाभाग द्रुमेऽस्मिन्सुखशीतले। आवाभ्यां सह तिष्ठ त्वं 'कथाभिर्धर्मसंश्रितः ॥३९॥
अयं मम सहायस्तु आगतः शिल्पिना वर'। विश्वकर्मसमः' साक्षान्निपुणः' सर्वकर्मसु॥
मयोद्दिष्टां तु प्रतिमां करोत्येष तटं त्यज ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वैवं वचनं तस्य तदा राजा द्विजन्मनः। सागरस्य तटं त्यक्त्वा गत्वा तस्य समीपत. ॥४१॥

ब्रह्मा ने कहा—भगवत्प्रतिमा-निर्माण सम्बन्धी ऐसी बातें सुनकर विश्वपति विष्णु हँसते हुए राजा से बोले—॥३३॥

विष्णु ने कहा—भूपाल ! तुम धन्य हो, क्योकि तुम्हारा यह सकल्प उत्तम है। इस घोर, केले के पत्ते के समान नि सार, दु खो से भरे काम क्रोध से युक्त, इन्द्रिय रूपी आवर्त्तो से गहन, कठिनाई से पार करने योग्य, भयकर, अनेको व्याधियो से व्याप्त और जल बुदबुद के समान क्षणभगुर ससार सागर से विरक्त हो तुम्हारा ध्यान भगवान् की उपासना की ओर लगा है इसलिए तुम धन्य हो। नृपश्रेष्ठ ! तुम सब गुणो से विभूषित हो। यह पर्वत, वन, कानन और प्रजाओ से युक्त पृथ्वी जो चारो वर्णों से और पुर, ग्राम, नगरो से सुशोभित है, धन्य है जिस पर प्रजा के पालक और शासक के रूप मे तुमने जन्म लिया है। महाभाग ! तुम परम धार्मिक हो, आओ, आओ, इस वृक्ष की सुखद, शीतल छाया म हम लोगो के साथ बैठो, और कोई धम-चर्चा सुनाओ। यह मेरा साथी उत्तम शिल्पी है, साक्षात् विश्वकर्मा के समान सब कलाओ मे कुशल है। यह मेरे आदेशानुसार प्रतिमा बना देगा। तुम तट छोड कर मेरे पास आओ। ॥३४ ४०॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रगण ! तव वह राजा ब्राह्मण की ऐसी बाते सुन सागर-तट को छोड कर वृक्ष की

---

१ क ०तद्व्रत०। २ ख ०न्मन उत्त०। ३ क ख ०ले मोहग्राहस०। ४ क ससरया। ५ ख ०सहित। ६ ख ०म क्षत्तानिपु०। ७ ग क्षाद्विपुल स०।

तस्थौ स नृपतिश्रेष्ठो वृक्षच्छाये सुशीतले। ततस्तस्मै स विश्वात्मा ददावाज्ञां द्विजाकृतिः ॥४२॥
शिल्पिमुख्याय विप्रेन्द्रा कुरुष्व प्रतिमा इति। कृष्णरूपं परं शान्तं पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥४३॥
श्रीवत्सकौस्तुभधरं शङ्खचक्रगदाधरम्। गौराङ्गं क्षीरवर्णाभं द्वितीयं स्वस्तिकाङ्कितम् ॥४४॥
लाङ्गलास्त्रधरं देवमनन्ताख्यं महाबलम्। देवदानवगन्धर्वयक्षविद्याधरोरगैः[1] ॥४५॥
न विज्ञातो हि तस्यान्तस्तेनानन्त इति स्मृतः। भगिनीं वासुदेवस्य रुक्मवर्णां सुशोभनाम् ॥४६॥
तृतीयां वै सुभद्रां च सर्वलक्षणलक्षिताम् ॥४७॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वैतद्वचनं तस्य विश्वकर्मा सुकर्मकृत्[2]। तत्क्षणात्कारयामास प्रतिमाः शुभलक्षणाः ॥४८॥
प्रथमं शुक्लवर्णाभं शारदेन्दुसमप्रभम्। आरक्ताक्षं महाकायं स्फटाविकटमस्तकम् ॥४९॥
नीलाम्बरधरं चोग्रं[3] बलं बलमदोद्धतम्। कुण्डलैकधरं दिव्यं[4] गदामुशलधारिणम् ॥५०॥
द्वितीयं पुण्डरीकाक्षं नीलजीमूतसंनिभम्। अतसीपुष्पसंकाशं पद्मपत्रायतेक्षणम्[5] ॥५१॥
पीतवाससमत्युग्रं शुभं श्रीवत्सलक्षणम्। चक्रपूर्णकरं दिव्यं सर्वपापहरं हरिम् ॥५२॥

शीतल छाया में उनके समीप बैठ गया। इसके बाद ब्राह्मणवेशधारी परमात्मा ने 'मेरे कथनानुसार मूर्तियाँ बनाओ' ऐसी आज्ञा उस श्रेष्ठ शिल्पी को दी ॥४१-४२॥ पहली कृष्ण की मूर्ति हो जो कृष्णवर्ण की अत्यन्त शान्त कमल के समान नेत्रवाली श्रीवत्स और कौस्तुभमणि से युक्त वक्षःस्थलवाली तथा शङ्ख, चक्र और गदा धारण किए हुए हो। दूसरी गौर वर्ण, दूध के समान धवल और स्वस्तिक से युक्त हाथ में हल (अस्त्र) धारण किए हुए अनन्त देव की मूर्ति बनाओ। इनका अन्त (रहस्य) देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर और नागों ने भी नहीं जाना इसीलिए ये 'अनन्त' इस नाम से प्रसिद्ध हुए। तीसरी स्वर्ण वर्ण की अत्यन्त मनोहर और सब लक्षणों से विभूषित, उससे युक्त भगवान् वासुदेव की बहिन सुभद्रा की प्रतिमा की रचना करो ॥४३-४७॥

ब्रह्मा ने कहा—ब्राह्मणवेषधारी विष्णु की उपर्युक्त बातें सुनकर देवशिल्पी विश्वकर्मा ने शीघ्र ही मनोहर तथा सब लक्षणों से युक्त प्रतिमायें बना दीं ॥४८॥ पहली तेजस्वी तथा बल के गर्व से उद्धत बलदेव जी की प्रतिमा थी जो शुक्लवर्ण, शरत्कालीन चन्द्रमा के समान कान्तिमान थे जिनके नेत्र कुछ लाल, फण से युक्त विकट मस्तक, महाकाय शरीर पर नील वस्त्र, कान में एक दिव्य कुण्डल, हाथ में गदा और मुशल था ॥४९-५०॥ दूसरी सब पापों के हरने वाले कमलनयन नील मेघ के समान श्यामशरीर वाले भगवान् कृष्ण की मूर्ति थी जो पीत वस्त्र पहने हुए श्रीवत्स से सुशोभित थे। जिनके शरीर की आभा अलसी के कुसुम के समान थी, नेत्र कमलदल के समान थे और हाथ में चक्र था ॥५१-५२॥ तीसरी मनोहर मूर्ति सोने के समान पीत वर्ण वाली सुभद्रा की थी जिनकी आँखें कमल के समान बड़ी बड़ी थीं जो विचित्र वस्त्रों से अलंकृत थीं जिनके अंग

---

१ क ०र्गैः। महिमा यस्य न ज्ञातस्त०। २ ख स्वकर्मकृत्। ३ ख ०र्थं प्रटा०। क ०थं बलवन्तं। म० ४ ख घोरं। ५ क ग ०व्यं महामु०। ६ क ०पत्रनिभेक्ष०।

तृतीयां स्वर्णवर्णाभां पद्मपत्रायतेक्षणाम्। विचित्रवस्त्रसंछन्नां हारकेयूरभूषिताम् ॥५३॥
विचित्राभरणोपेतां [1]रत्नहारावलम्बिताम्। पीनोन्नतकुचां रम्यां विश्वकर्मा विनिर्ममे ॥५४॥
स तु राजाऽद्भुतं दृष्ट्वा क्षणेनैकेन निर्मिताः। दिव्यवस्त्रयुगच्छन्ना नानारत्नैरलंकृताः ॥५५॥
सर्वलक्षणसंपन्नाः प्रतिमाः सुमनोहराः। विस्मयं परमं गत्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥५६॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

किं देवौ [2]समनुप्राप्तौ द्विजरूपधरावुभौ। उभौ चाद्भुतकर्माणौ देववृत्तावमानुषौ ॥५७॥
देवौ वा मानुषौ वाऽपि [3]यक्षविद्याधरौ युवाम्। किंनु ब्रह्महृषीकेशौ किं वसू किमुताश्विनौ ॥५८॥
न वेद्मि सत्यसद्भावौ मायारूपेण संस्थितौ। युवां गतोऽस्मि शरणमात्मा तु मे प्रकाश्यताम् ॥५९॥

इति श्री महापुराणे ब्राह्मे स्वयम्भ्वृषिसंवादे प्रतिमोत्पत्तिकथनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

प्रत्यंग हार केयूर आदि विचित्र आभूषणों से भूषित थे ग्रीवा में रत्नों के हार लटक रहे थे और जिनके कुच पीन और ऊंचे थे ॥५३-५४॥ जब राजा ने देखा कि इस शिल्पी ने क्षण भर में ही दिव्य युगल वस्त्र से युक्त अनेक आभूषणों से सुशोभित समस्त लक्षणों से युक्त मनोहर मूर्त्तियां बना दी तो इस आश्चर्यजनक कौशल पर उसे अत्यन्त विस्मय हुआ और आश्चर्य-चकित हो पूछने लगा—॥५५-५६॥

इन्द्रद्युम्न ने कहा—क्या आप लोग देवता हैं जो इस ब्राह्मण-वेश में मुझे कृतार्थ करने के लिए आये हुए हैं? आप दोनों महानुभावों के कार्य अद्भुत हैं, व्यवहार देवोचित हैं आप लोग मानव नहीं ज्ञात होते। आप देव हैं या मनुष्य? यक्ष हैं या विद्याधर अथवा ब्रह्मा हृषीकेश वसु या अश्विनीकुमार हैं? मैं इस समय सत्यतत्त्व और रहस्य को नहीं समझ पा रहा हूं क्योंकि आप दोनों ने माया वेश धारण कर रखा है। मैं आप लोगों की शरण में हूं। कृपा कर अपने यथार्थ परिचय के प्रकाश से मेरे अन्तःकरण को प्रकाशित करें ॥५७-५९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण के अन्तर्गत स्वयम्भू और ऋषि के संवाद प्रकरण में प्रतिमोत्पत्ति
कथन नामक पचासवां अध्याय समाप्त ॥५०॥

---

१ क ०हारविलम्बिनीम्। ख ०हारविल०। २ ख ०प्तौ दिव्यरू०। ३ ख ०रौ च किम्।

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भगवदिन्द्रद्युम्नसंवादकथनम्

श्रीभगवानुवाच[1]

नाहं देवो न यक्षो वा न दैत्यो न च देवराट्[2]। न ब्रह्मा न च रुद्रोऽहं विद्धि मां पुरुषोत्तमम्[3] ॥१॥
अतिहा सर्वलोकानामनन्तबलपौरुषः। आराधनीयो भूतानामन्तो यस्य न विद्यते ॥२॥
पठ्यते सर्वशास्त्रेषु वेदान्तेषु निगद्यते। यमाहुर्ज्ञानगम्येति वासुदेवेति योगिनः ॥३॥
अहमेव स्वयं ब्रह्मा अहं विष्णुः शिवोऽप्यहम्। इन्द्रोऽहं देवराजश्च[4] जगत्संयमनो यमः ॥४॥
पृथिव्यादीनि भूतानि त्रेताग्निर्हुतभुङ्नृप। वरुणोऽपां पतिश्चाहं धरित्री च महीधरः ॥५॥
यत्किञ्चिद्वाङ्मयं लोके जगत्स्थावरजङ्गमम्। चराचरं च यद्विश्वं मदन्यन्नास्ति किंचन ॥६॥
प्रीतोऽहं ते नृपश्रेष्ठ वरं वरय सुव्रत। यदिष्टं तत्प्रयच्छामि हृदि यत्ते व्यवस्थितम् ॥७॥
मद्दर्शनमपुण्यानां स्वप्नान्तेऽपि न जायते। त्वं पुनर्दृढभक्तित्वात्प्रत्यक्षं दृष्टवानसि ॥८॥

अध्याय ५१

भगवान् और इन्द्रद्युम्न का संवाद

श्री भगवान् ने कहा—"मैं न देव हूँ न यक्ष, न दैत्य न तो देवराज इन्द्र। मैं ब्रह्मा और रुद्र भी नहीं। राजन् मुझे पुराण पुरुषोत्तम जानो ॥१॥ *जिसका अन्त नहीं है, जो समस्त प्राणियों का एकमात्र आराध्य है, जिसका बल और पराक्रम निःसीम है, जो अखिल-लोक की पीड़ा दूर करने वाला है, जिसकी सभी शास्त्रों में चर्चा है, जो* वेदान्त का वर्ण्य विषय है, जिसको योगीजन ज्ञान-गम्य (ज्ञान से प्राप्त करने योग्य), वासुदेव (सर्व व्यापक) कहा करते हैं। मैं ही स्वयं ब्रह्मा हूँ, विष्णु और शिव भी मैं ही हूँ। देवराज इन्द्र और संसार का नियन्त्रण में रखने वाला यम (मृत्यु देव) मैं ही हूँ ॥२-४॥ नृप! पृथ्वी आदि पाँच महाभूत, आहुति ग्रहण करने वाले तीनों अग्नि मैं ही हूँ। जल के स्वामी वरुण, धरणी और पहाड़ भी मेरे ही रूप हैं ॥५॥ संसार का सारा वाङ्मय, स्थावर जंगम रूपात्मक जगत् और जो कुछ भी चराचर विश्व है वह मुझसे अतिरिक्त नहीं है ॥६॥ नृपश्रेष्ठ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। सुव्रत! वर माँगो। तुम्हारे मनोरथ पूर्ण होंगे, मनोवाञ्छित फल तुम्हें दूँगा। देखो, मेरा दर्शन पुण्य न करने वाले को स्वप्न में भी नहीं होता। तुमने अपनी अविचल भक्ति द्वारा ही मेरा यह प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त किया है" ॥७-८॥

---

१ ख ब्राह्मण उवा०। २ ख देवता। ३ क ख परमेश्वरम्। ४ क अहमेव गदाधर। तथैव दे०। ५ क ०श्च प्रजापत०।

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वैवं वासुदेवस्य वचनं तस्य भो द्विजाः। रोमाञ्चिततनुर्भूत्वा इदं स्तोत्रं जगौ नृपः॥९॥

राजोवाच

श्रियः कान्त नमस्तेऽस्तु श्रीपते पीतवाससे। श्रीदश्रीश श्रीनिवास नमस्ते श्रीनिकेतन॥१०॥
आद्यं पुरुषमीशानं सर्वेशं सर्वतोमुखम्। निष्कलं परमं देवं प्रणतोऽस्मि सनातनम्॥११॥
शब्दातीतं गुणातीतं भावाभावविवर्जितम्। निर्लेपं निर्गुणं सूक्ष्मं सर्वज्ञं सर्वभावनम्॥१२॥
प्रावृण्मेघप्रतीकाशं गोब्राह्मणहिते रतम्। सर्वेषामेव गोप्तारं व्यापिनं सर्वभाविनम्॥१३॥
शङ्खचक्रधरं देवं गदामुशलधारिणम्। नमस्ये वरदं देवं नीलोत्पलदलच्छविम्॥१४॥
नागपर्यङ्कशयनं क्षीरोदार्णवशायिनम्। नमस्येऽहं हृषीकेशं सर्वपापहरं हरिम्॥१५॥
पुनस्त्वां देवदेवेशं नमस्ये वरदं विभुम्। सर्वलोकेश्वरं विष्णुं मोक्षकारणमव्ययम्॥१६॥

ब्रह्मोवाच

एवं स्तुत्वा तु तं देवं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः। उवाच प्रणतो भूत्वा निपत्य धरणीतले॥१७॥

ब्रह्मा ने कहा—वासुदेव की इस प्रकार की बातें सुन कर, द्विजगण! उस राजा को रोमांच हो गया, वह आनन्द विभोर हो यह स्तोत्र गाने लगा॥९॥

राजा ने कहा—हे लक्ष्मीकान्त! श्रीपते! पीत वस्त्र धारण करने वाले आपको मेरा नमस्कार है। लक्ष्मी के देने वाले! श्री के स्वामी! श्री निवास! श्री निकेतन! आपको नमस्कार है॥१०॥ आप आद्यपुरुष, सामर्थ्यवान, सब के स्वामी और सर्वतोमुख (चारों ओर मुख वाले, व्यापक) हैं। निरवयव, सनातन, परम (श्रेष्ठ) देव को मैं प्रणाम करता हूँ॥११॥ शब्द-गुण से परे भाव और अभाव से रहित आसक्तिहीन, निर्गुण (गुण रहित) सूक्ष्म, सब कुछ जानने वाले, और सब के एकमात्र ध्येय आपको प्रणाम है। वर्षाकालीन मेघ के समान श्याम, गौ-ब्राह्मणों के हित में लीन, सभी के रक्षक, व्यापक और सर्व भावी (स्रष्टा) तथा शंख, चक्र गदा और मुशल धारण करने वाले, नीलकमल की पखड़िया के समान कान्तिमय वरदायक देव को मैं नमस्कार करता हूँ। शेष-शैय्या पर सोने वाले क्षीर-सागर शायी, इन्द्रियों के स्वामी, पाप-नाशन हरि को नमस्कार है। देवदेवेश, वरदाता, व्यापक, सब लोकों के स्वामी, मोक्षदाता और अव्यय (नष्ट न होने वाले) विष्णु रूप को नमस्कार है॥१२-१६॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार भगवान् की स्तुति करने के बाद करबद्ध साष्टांग दण्डवत् करते हुए राजा ने कहा—॥१७॥

---

१ क. ०तवपुर्मू०। २ क. सर्वगं। ३ख पुरातनम्। ४ ख ज्ञानगम्यं। ५ ख ०म्। सान्द्रमेघ०। ६ख ०शङ्खा०। ७ख ०ह्मणानां हित शिवम्। ८ख ०ववासिन०। ९ क देवं।

राजोवाच

प्रीतोऽसि यदि मे नाथ वृणोमि वरमुत्तमम्। देवासुरा सगन्धर्वा यक्षरक्षोमहोरगा ॥१८॥
सिद्धविद्याधरा साध्या किन्नरा गुह्यकास्तथा। 'ऋषयो ये महाभागा नानाशास्त्रविशारदा ॥१९॥
परिव्राडयोगयुक्ताश्च वेदतत्त्वार्थचिन्तका । मोक्षमार्गविदो येऽन्ये ध्यायन्ति परम पदम्॥२०॥
निर्गुण निर्मल 'शान्त यत्पश्यन्ति मनीषिण । तत्पद गन्तुमिच्छामि त्वत्प्रसादात्सुदुर्लभम्॥२१॥

श्रीभगवानुवाच

'सर्वं भवतु भद्र ते यथेष्ट सर्वमाप्नुहि। भविष्यति यथाकाम मत्प्रसादान्न सशय ॥२२॥
दश वर्षसहस्राणि तथा नव शतानि च। अविच्छिन्न महाराज्य कुरु त्व नृपसत्तम॥२३॥
प्रयास्यसि पद दिव्य दुर्लभ यत्सुरासुरै । पूर्णमनोरथ शान्त गुह्यमव्यक्तमव्ययम्॥२४॥
परात्परतर सूक्ष्म निर्लेप' निष्कल' ध्रुवम्'। चिन्ताशोकविनिर्मुक्त क्रियाकारणवर्जितम॥२५॥
तदह दर्शयिष्यामि ज्ञेयाख्य परम पदम्। य प्राप्य परमानन्द प्राप्स्यसि परमा गतिम॥२६॥
कीर्तिश्च तव राजेन्द्र भवत्यत्र' महीतले। यावद्घना' नभो यावद्यावच्चन्द्रार्कतारकम्॥२७॥
यावत्समुद्रा सप्तैव यावन्मेर्वादिपर्वता । तिष्ठन्ति दिवि देवाश्च तावत्सर्वत्र चाव्यया॥२८॥

राजा ने कहा—नाथ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मैं यही उत्तम वर माँगता हूँ कि देव असुर गन्धर्व यक्ष राक्षस महानाग सिद्ध विद्याधर साध्यगण किन्नर और गुह्यक तथा भिन्न भिन्न शास्त्रों के पारगत महाभाग्यशाली ऋषि सन्यासी योगी वेद के रहस्य जानने वाले और मोक्ष मार्ग के ज्ञाता जिस परम पद का ध्यान करते हैं तथा मनीषी (ज्ञानी) जिस अमल निर्गुण और शान्त परम पद को देखा करते हैं उस दुर्लभ परम पद को आपकी कृपा से प्राप्त करूँ यही मेरी अभिलाषा है॥१८ २१॥

श्रीभगवान् ने कहा—सब प्रकार से तुम्हारा कल्याण होगा तुम अपने समस्त मनोरथ प्राप्त करोगे। मेरी कृपा से तुम्हारे सभी कार्य इच्छानुरूप होंगे इसमें सन्देह नहीं॥२२॥ नृप-श्रेष्ठ! पहले तुम दश हजार नौ सौ वर्ष निरन्तर अपने साम्राज्य का शासन करो। तदनन्तर उस दिव्य परमपद को प्राप्त करोगे जो देव दानवों के लिए दुर्लभ मनोरथ को पूर्ण करनेवाला शान्त रहस्यमय अप्रत्यक्ष और नित्य है जो परात्पर (सर्वोपरि) सूक्ष्म निर्लेप अखण्ड अटल चिन्ता शोक से रहित कार्यकरण मुक्त (अनादि-अनन्त) है॥२३ २५॥ मैं ऐसे ज्ञेय परम पद को दिखाऊँगा जिसको पाकर तुम अत्यन्त आनन्दित हो मोक्ष पद प्राप्त करोगे॥२६॥ राजेन्द्र! जब तक मेघ आकाश चन्द्रमा सूर्य और तारा मण्डल एव जब तक केवल समुद्र तथा सात मेरु आदि पर्वत और स्वर्गलोक में देवगण स्थित हैं तब तक इस मही मण्डल पर तुम्हारी अक्षय कीर्ति फैली रहेगी॥२६ २८॥ यह इन्द्रद्युम्न

---

१ ख ०यागुय म०। २ ख ०न्त गुह्य परमपावनम। त०। ३ क एवं। ४ क निगुण। ख निमल। ५ क ख निश्चल। ६ ख ०म। जरागो०। ७ ख तिष्ठत्वत्र। ८ ख ०वच्चराचरो लोको यावच्च०।

इन्द्रद्युम्नसरो नाम तीर्थं यज्ञाङ्गसंभवम्[1]। यत्र स्नात्वा सकृल्लोकः शक्रलोकमवाप्नुयात् ॥२९॥
दापयिष्यति यः पिण्डांस्तटेऽस्मिन्सरसः शुभे। कुलैकविंशमुद्धृत्य शक्रलोकं गमिष्यति ॥३०॥
पूज्यमानोऽप्सरोभिश्च गन्धर्वैर्गीतनिस्वनैः। विमानेन वसेत्तत्र यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥३१॥
सरसो दक्षिणे भागे नैर्ऋत्यां तु समाश्रिते। न्यग्रोधस्तिष्ठते तत्र तत्समीपे तु मण्डपः ॥३२॥
केतकीवनसंछन्नो नानापादपसंकुलः। नारिकेलैरसंख्येयैश्चम्पकैर्बकुलावृते.[2] ॥३३॥
अशोकैः कर्णिकारैश्च पुंनागैर्नागकेसरैः। पाटलाम्रातसरलैश्चन्दनैर्देवदारुभि. ॥३४॥
न्यग्रोधाश्वत्थखदिरैः पारिजातै. सहार्जुनैः। हिन्तालैश्चैव तालैश्च शिंशपैर्बदरैस्तथा ॥३५॥
करञ्जैर्लकुचैः प्लक्षैः पनसैर्बिल्वधातुकैः। अन्यैर्बहुविधैर्वृक्षैः शोभितः समलंकृतः ॥३६॥
आषाढस्य सिते पक्षे पञ्चम्यां पितृदैवते। ऋक्षे नेष्यन्ति नरस्तत्र नीत्वा सप्त दिनानि वै ॥३७॥
मण्डपे स्थापयिष्यन्ति सुवेश्याभिः सुशोभनैः। क्रीडाविशेषबहुलैर्नृत्यगीतमनोहरैः ॥३८॥
चामरै. स्वर्णदण्डैश्च व्यजनै [3]रत्नभूषणैः। वीजयन्तस्तथाऽस्मभ्यं स्थापयिष्यन्ति मङ्गला ॥३९॥
ब्रह्मचारी यतिश्चैव स्नातकाश्च द्विजोत्तमाः। वानप्रस्था गृहस्थाश्च सिद्धाश्चान्ये च ब्राह्मणा ॥४०॥
[4]नानावर्णपदैः स्तोत्रैर्ऋग्यजु.सामनिस्वनै.। करिष्यन्ति स्तुतिं राजन्रामकेशवयोः पुनः ॥४१॥
तत. स्तुत्वा च दृष्ट्वा च सप्रणम्य च भक्तित.। नरो वर्षायुत दिव्यं श्रीमद्धरिपुरे वसेत् ॥४२॥

सर यज्ञाग से उत्पन्न पवित्र और अमर तीर्थ होगा, जिसमे एक बार स्नान करने से भी मनुष्य इन्द्रलोक को प्राप्त करेगा ॥२९॥ जो इस सरोवर के पुनीत तट पर पिण्डदान करेगा वह अपनी इक्कीसपीढी का उद्धार कर स्वय देव-लोक का अधिकारी होगा ॥३०॥ वहाँ गन्धर्व और अप्सराएँ अपनी मधुर गीत-ध्वनि से उसकी पूजा करेंगी। जब तक चौदहो इन्द्र रहेगे तब तक वह पुण्यात्मा विमान द्वारा बिहार करता हुआ स्वर्ग मे निवास करेगा। सरोवर के दक्षिण तीर पर नैर्ऋत कोण मे एक वट वृक्ष है जिसके निकट केतकी वन से घिरा हुआ एक मण्डप है। जिसके चारो ओर अनेक वृक्ष, अनगिनत नारियल, चम्पक और मौलसिरी की पक्तियाँ हैं ॥३२ ३३॥ अशोक, कर्णिकार (कनेर), पुनाग, नागकेसर, पाटल, आम्रात (आमडा), सरल, चन्दन, देवदारु, वट, पीपल खदिर, अर्जुन पारिजात हिताल, ताल, शीशम बदर (बेर) तथा करञ्ज, लकुच (बडहर), प्लक्ष (पाकड), कटहल, बिल्व धातुक एव अन्य बहुत प्रकार के वृक्षो से वह मण्डप सुशोभित है ॥३४-३६॥ उस मण्डप मे आषाढ के शुक्ल पक्ष की मघा नक्षत्र वाली पञ्चमी तिथि मे जो हमारी मूर्ति ले जा कर प्रतिष्ठित करेगा और सात दिन तक सुन्दर वेश्याओ के मधुर गान, विभिन्न क्रीडाओ एव मनोहर नृत्य-गीत द्वारा समारोहपूर्वक पूजन करेगा, चँवर और रत्नजटित स्वर्ण-दण्ड वाले पखों से आदरपूर्वक पखा झलते हुए मागलिक पूजा करेगा राजन्! जो ब्रह्मचारी, यति, स्नातक, उत्तम वेदपाठी, वानप्रस्थाश्रमी गृहस्थ, सिद्ध अथवा जो कोई ब्राह्मण भिन्न भिन्न वर्ण-पद वाले स्तोत्र पाठ से, ऋग्, यजु, साम के ऋचा-पाठ से राम और केशव की स्तुति करेगा और स्तुति के उपरान्त भक्तिपूर्वक दर्शन एव प्रणाम करेगा, वह नर दिव्य अयुत (दस हजार) वर्ष तक विष्णु लोक मे निवास

---

१ ख ०ज्ञान्तस०। २ ख ०बुलैर्वृत। अ०। ३ क ख ०भूषितैः। र्वा०। ४ क ख ०नामन्त्र०।

पूज्यमानोऽप्सरोभिश्च गन्धर्वैर्गीतनिस्वनैः[1]। हरेरनुचरस्तत्र क्रीडते केशवेन[ ] वै ॥४३॥
विमानेनार्कवर्णेन रत्नहारेण भ्राजता[2]। सर्वकामैर्महाभोगैस्तिष्ठते भुवनोत्तमे ॥४४॥
तपःक्षयादिहाऽऽगत्य मनुष्यो ब्राह्मणो भवेत्। कोटीधनपतिः श्रीमांश्चतुर्वेदी[3] भवेद्ध्रुवम् ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

एव तस्मै वर दत्त्वा[4] कृत्वा च समयं हरिः। जगामादर्शनं विप्राः सहितो विश्वकर्मणा ॥४६॥
स तु राजा तदा हृष्टो रोमाञ्चिततनूरुहः। कृतकृत्यमिवाऽऽत्मानं मेने संदर्शनाद्धरेः ॥४७॥
ततः कृष्णं च रामं सुभद्रां च वरप्रदाम्। रथैर्विमानसंकाशैर्मणिकाञ्चनचित्रितैः ॥४८॥
संवाह्य तास्तदा राजा महामङ्गलनि.स्वनैः। आनयामास मतिमान्सामात्यः सपुरोहितः ॥४९॥
नानावादित्रनिर्घोषैर्नानावेदस्वनैः शुभैः। संस्थाप्य च शुभे देशे पवित्रे सुमनोहरे ॥५०॥
तत शुभतिथौ काले नक्षत्रे शुभलक्षणे। प्रतिष्ठां कारयामास सुमुहूर्ते द्विजैः सह ॥५१॥
यथोक्तेन विधानेन विधिदृष्टेन कर्मणा। आचार्यानुमतेनैव सर्वं कृत्वा महीपतिः ॥५२॥
आचार्याय तदा दत्त्वा दक्षिणां विधिवत्प्रभु.। ऋत्विग्भ्यश्च विधानेन तथाऽन्येभ्यो धनं ददौ ॥५३॥
कृत्वा प्रतिष्ठा विधिवत्प्रासादे भवनोत्तमे। स्थापयामास तान्सर्वान्विधिदृष्टेन कर्मणा ॥५४॥

करेगा ॥३७-४२॥ उस ल.क म उस भगवद्भक्त की गन्धर्व और अप्सरायें अपने मधुर गीत गा-गाकर सवा करेंगी। वह भगवान् केशव के साथ वहाँ सुखपूर्वक क्रीडा करेगा ॥४३॥ उस उत्तम लोक मे वह रत्नहार से सुसज्जित, सूर्य के समान चमकीले विमान पर सवार हो अपनी सभी कामनाओ की तृप्ति और भोगो का उपभोग करता हुआ निवास करेगा। इस प्रकार भ.ग द्वारा पुण्य क्षीण हो जाने पर वह इस मृत्यु ल.क मे आकर चारो वेदो का ज्ञाता ब्राह्मण तथा वैभवशाली करोड़पति होगा ॥४४-४५॥

ब्रह्मा बोले—'विप्रगण! इस प्रकार भगवान् उस राजा का वर देकर तथा एसी प्रतिज्ञा करके विश्वकर्मा के साथ स्वय अन्तर्हित हो गए। वह राजा भगवान् के इस अद्भुत दर्शन से अत्यन्त प्रसन्न हुआ, उसके रोम आनन्द से पुलकित हो गए, वह अपने को कृतकृत्य-सा समझने लगा ॥४६-४७॥ इसके उपरान्त मन्त्रियो और पुरोहितो के साथ वह बुद्धिमान् राजा मणि, सुवर्ण से अलकृत विमान के समान रथ पर कृष्ण, बलराम और वर देने वाली सुभद्रा की मूर्तियो को चढा कर परम मागलिक वाद्य ध्वनि के साथ ले आया ॥४८-४९॥ भिन्न भिन्न प्रकार की वाद्य ध्वनि और मागलिक वेद-ध्वनि के साथ पवित्र शुभ, मनोहर प्रदेश मे मूर्तियाँ स्थापित की गई ॥५०॥ तदनन्तर शुभ तिथि, काल और शुभ लक्षण वाले नक्षत्र म ब्राह्मणो द्वारा प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराई गई ॥५१॥ महीपति ने आचार्य की अनुमति से शास्त्रोक्त नियमानुष्ठान पूर्वक सारा देवकार्य समाप्त किया, विधिपूर्वक आचार्य, तथा ऋत्विजो को दक्षिणा दी, अन्य ब्राह्मणो को विधान के अनुसार धन दान दिया। इस प्रकार राजा ने सर्वोत्तम भवन मे मूर्ति की प्रतिष्ठा कर शास्त्र-सम्मत कर्म से स्थापन क्रिया समाप्त की ॥५२-

---

[1] क. ख. ०नैः। हारग्लधर०। [2] ख. राजता। [3] ख. ०र्वेदो म०। [4] क. ०त्वा ध्मात्वा दाम तदा ह०।

ततः संपूज्य विधिना नानापुष्पैः सुगन्धिभिः। सुवर्णमणिमुक्ताद्यैर्नानावस्त्रैः सुशोभनैः ॥५५॥
रत्नैश्च विविधैर्दिव्यैरासनैर्ग्रामपत्तनैः। ददौ चान्यान्स[1] विषयान्पुराणि नगराणि च ॥५६॥
एवं बहुविधं दत्त्वा राज्यं कृत्वा यथोचितम्। इष्ट्वा च विविधैर्यज्ञैर्दत्वा दानान्यनेकशः ॥५७॥
कृतकृत्यस्ततो राजा [2]त्यक्तसर्वपरिग्रहः। जगाम परमं स्थानं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥५८॥
एवं मया मुनिश्रेष्ठाः[3] कथितो वो नृपोत्तमः। क्षेत्रस्य चैव माहात्म्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥५९॥

विष्णुरुवाच

श्रुत्वैवं वचनं तस्य ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। आश्चर्यं मेनिरे विप्राः पप्रच्छुश्च पुनर्मुदा ॥६०॥

मुनय ऊचुः

कस्मिन्काले सुरश्रेष्ठ गन्तव्यं पुरुषोत्तमम्। विधिना केन कर्तव्यं पञ्चतीर्थमिति प्रभो ॥६१॥
एकैकस्य च तीर्थस्य स्नानदानस्य यत्फलम्। देवताप्रेक्षणे चैव ब्रूहि सर्वं पृथक्पृथक् ॥६२॥

ब्रह्मोवाच

निराहारः कुरुक्षेत्रे पादेनैकेन यस्तपेत्। जितेन्द्रियो जितक्रोधः सप्तसंवत्सरायुतम् ॥६३॥

५४॥ तदनन्तर राजा ने भगवान् की अनेक सुगन्धित पुष्पों से विधिवत पूजा की, स्वर्ण, मणि, मुक्ता एवं आभूषण चढ़ाये, अनेक सुन्दर वस्त्र, विविध रत्न, दिव्य आसन भगवान् को अर्पित किए, बहुत से गाँव पत्तन, अनेकों विषय (जिले), पुर और नगर इच्छानुसार दान में दिए गए ॥५५-५६॥ इस प्रकार इच्छानुरूप बहुविध दान देकर राजा ने न्यायपूर्वक शासन किया। विविध यज्ञों में अनुष्ठान, तथा अनेक प्रकार के दान से उसने अपने को कृतकृत्य समझा। अन्त में सारी इच्छाओं और वस्तुओं का परित्याग कर विष्णु के परम पद को प्राप्त किया ॥५७ ५८॥ श्रेष्ठ मुनिगण! मैंने राजा इन्द्रद्युम्न का चरित्र और क्षेत्र की महिमा आप लोगों को बतलायी, इसके अतिरिक्त आप लोग क्या सुनना चाहते हैं? ॥५९॥

विष्णु ने कहा—अव्यक्तजन्मा (अनादि) ब्रह्मा की उपर्युक्त बातें सुन कर ब्राह्मणों को अत्यन्त आश्चर्य हुआ, फिर प्रसन्न मन से प्रश्न किया ॥६०॥

मुनियों ने पूछा—"सुरश्रेष्ठ! किस समय पुरुषोत्तम तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए, किस विधि से पाँचों तीर्थों को करना चाहिए। एक-एक तीर्थ के स्नान, दान और देव-दर्शन का जो फल होता है उसको अलग-अलग समझा कर बताएँ ॥६१-६२॥

ब्रह्मा ने कहा—"कुरुक्षेत्र में सात अयुत (सत्तर हजार) वर्ष तक इन्द्रिय-संयमपूर्वक क्रोध को वश में कर

---

१ क ॰न्यानि वित्तानि ग्रामाणि न॰। २ ख. त्यक्त्वा देहं दिवं ययौ। देवदेवप्रसादेन जगाम परमं प॰। ३ ख. मुनिश्रेष्ठ।

दृष्ट्वा [1]सदा ज्येष्ठशुक्लद्वादश्यां पुरुषोत्तमम्। कृतोपवासः प्राप्नोति ततोऽधिकतरं फलम्॥ ४॥
तस्माज्ज्येष्ठे मुनिश्रेष्ठाः प्रयत्नेन सुसंयतैः। स्वर्गलोकेप्सुविप्राद्यैर्द्रष्टव्यः पुरुषोत्तमः॥६५॥
[2]पञ्चतीर्थं तु विधिवत्कृत्वा ज्येष्ठे नरोत्तमः। शुक्लपक्षस्य द्वादश्यां पश्येत्तं पुरुषोत्तमम्॥६६॥
ये पश्यन्त्यव्ययं देवं द्वादश्यां पुरुषोत्तमम्। ते विष्णुलोकमासाद्य न च्यवन्ते कदाचन॥६७॥
तस्माज्ज्येष्ठे प्रयत्नेन गन्तव्यं भो द्विजोत्तमाः। कृत्वा तस्मिन्पञ्चतीर्थं द्रष्टव्यः पुरुषोत्तमः॥६८॥
सुदूरस्थोऽपि यो भक्त्या कीर्तयेत्पुरुषोत्तमम्। अहन्यहनि शुद्धात्मा सोऽपि विष्णुपुरं व्रजेत्॥६९॥
यात्रां करोति कृष्णस्य श्रद्धया[3] यः समाहितः[4]। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं व्रजेन्नरः॥७०॥
चक्रं दृष्ट्वा हरेर्दूरात्प्रासादोपरि संस्थितम्। सहसा मुच्यते पापान्नरो भक्त्या प्रणम्य तत्॥७१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे पुरुषोत्तमवर्णनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५१॥

एक पैर पर खड़ा हो, निराहार तपस्या करने से जितना फल मनुष्य को मिलता है, उससे अधिक ज्येष्ठ-शुक्ल-द्वादशी के दिन निराहार रह कर पुरुषोत्तम के दर्शन से प्राप्त होता है॥६३-६४॥ इसलिए, श्रेष्ठ मुनिगण! स्वर्ग चाहने वाले, संयमशील ब्राह्मण आदि मनुष्यों को ज्येष्ठ मास में प्रयत्न पूर्वक पुरुषोत्तम का दर्शन करना चाहिए॥६५॥ ज्येष्ठ मास में उत्तम मनुष्य पाँचों तीर्थों की विधिवत् यात्रा करके अवश्य पुरुषोत्तम तीर्थ का दर्शन करे॥६६॥ जो द्वादशी के दिन अव्यय पुरुषोत्तम देव का दर्शन करते हैं वे विष्णुलोक में जाते हैं, कभी भी उनका वहाँ से पतन नहीं होता है॥६७॥ इसलिए हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! ज्येष्ठ मास में प्रयत्नपूर्वक पंचतीर्थ की यात्रा कर पुरुषोत्तम का दर्शन करना चाहिए॥६८॥ तीर्थ-यात्रा में असमर्थ व्यक्ति अत्यन्त दूर रह कर भी यदि भक्तिपूर्वक पुरुषोत्तम का कीर्तन करे, तो वह भी दिन-प्रतिदिन पाप-रहित हो कर विष्णुपुर का अधिकारी होगा। और जो व्यक्ति एकाग्र मन से श्रद्धापूर्वक इस कृष्ण-तीर्थ की यात्रा करता है, वह सब पापों से मुक्त हो कर विष्णु-लोक को निश्चय ही प्राप्त करता है। दूर से ही कृष्ण-मन्दिर के ऊपर बने हुए चक्र को देख कर जो भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है वह मनुष्य सहसा (शीघ्र ही) पापों से मुक्त हो जाता है॥६९-७१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में स्वयम्भू और ऋषि के संवाद प्रकरण में पुरुषोत्तम वर्णन नामक इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त॥५१॥

---

१ ग महानुरश्रेष्ठद्वार०। २ क स. पञ्चतीर्थानि। ३ क. ०या परया युत। ४ ग समाश्रितः।

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेयाख्यानम्

ब्रह्मोवाच

आसीत्कल्पे मुनिश्रेष्ठा संप्रवृत्ते महाक्षये। नष्टेऽर्कचन्द्रे पवने नष्टे स्थावरजङ्गमे॥१॥
उदिते प्रलयादित्ये प्रचण्डे घनगर्जिते। विद्युदुत्पातसंघाते संभग्ने तरुपर्वते॥२॥
लोके च संहृते[1] सर्वे महदुल्कानिबर्हणे। शुष्केषु सर्वतोयेषु सरःसु च सरित्सु च॥३॥
ततः संवर्तको वह्निर्वायुना सह[2] भो द्विज। लोकं तु प्राविशत्सर्वमादित्यैरुपशोभितम्॥४॥
पश्चात्स पृथिवीं भित्त्वा प्रविश्य च रसातलम्। देवदानवयक्षाणां भयं जनयते महत्॥५॥
निर्दहन्नागलोकं च यच्च किंचित्क्षिताविह। अधस्तान्मुनिशार्दूला सर्वं नाशयते क्षणात्॥६॥
ततो योजनविंशाना सहस्राणि शतानि च। निर्दहत्याशुगो वायुः स च संवर्तकोऽनलः॥७॥
सदेवासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम्। ततो दहति सदीप्तः[3] सर्वमेव जगत्प्रभुः॥८॥
प्रदीप्तोऽसौ महारौद्रः कल्पाग्निरिति संश्रुतः[4]। महाज्वालो महार्चिष्मान्संप्रदीप्तमहास्वनः॥९॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशो ज्वलन्निव स तेजसा। त्रैलोक्यं चादहत्तूर्णं ससुरासुरमानुषम्॥१०॥

अध्याय ५२

मार्कण्डेयमुनि का वटवृक्ष-दर्शन

ब्रह्मा ने कहा—श्रेष्ठ मुनिगण! जब कल्पान्त मे महानाश प्रारम्भ हो गया तब सूर्य चन्द्र नष्ट हो गए वायु, स्थावर, जगम सभी विनष्ट हो गए। प्रलय-सूर्य आकाश मे चमकने लगे, प्रचण्ड मेघ गरजने लगे बार-बार बिजली गिरने से तरु-पर्वत टूट फूट गए महाभयकर उल्कापात मे सारा ससार भस्म हो गया सर, सरिता और समुद्र का जल सूख गया॥१-३॥ इसके बाद विप्रवृन्द! वायु के साथ सवर्तक अग्नि (बारह) सूर्यों मे शोभित लोको मे प्रविष्ट हुआ॥४॥ वहाँ वह नाश लीला समाप्त कर पृथ्वी को फोड़ता हुआ रसातल लोक मे पहुँचा जिसे देखकर देव, दानव, यक्ष सभी भय-त्रस्त हो गए॥५॥ नागलोक को जलाकर पृथ्वी और रसातल मे जो कुछ था सब क्षण भर मे जला डाला॥६॥ तदनन्तर शीघ्रता से चलने वाला वह वायु और सवर्तक अग्नि बीस हजार बीस सौ योजन (बाइस हजार योजन) मे फैल कर जलाने लगे।॥७॥ इस भाँति प्रभु ने देव-असुर, गन्धर्व, यक्ष, नाग और राक्षसो सहित सम्पूर्ण ससार को जला डाला॥८॥ इस प्रकार प्रचण्ड, प्रदीप्त कल्पाग्नि नाम से प्रसिद्ध उस अग्नि ने शीघ्र ही सुर, असुर तथा मनुष्यो से युक्त इस त्रिलोक को भस्म कर दिया। उसकी लपटें बड़ी भयंकर और व्यापक थी। ज्वाला प्रचण्ड थी। उससे घोर शब्द हो रहे थे। वह करोड़ो सूर्य के समान, अपने तेज से

---

१ ख ०र्महिताललत्त्वोपनर ग०। २ ख महते। ३ क. ख सहितो ह०। ४ ख सतप्त।

एवंविधे महाघोरे महाप्रलयदारुणे। ऋषिः परमधर्मात्मा ध्यानयोगपरोऽभवत् ॥११॥
एकः संतिष्ठते विप्रा मार्कण्डेयेति विश्रुतः। मोहपाशैर्निबद्धोऽसौ क्षुत्तृष्णाकुलितेन्द्रियः[1] ॥१२॥
स दृष्ट्वा तं महावह्निं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः। तृष्णार्तः प्रस्खलन्विप्रास्तदाऽसौ भयविह्वलः ॥१३॥
बभ्राम पृथिवीं सर्वां कादिशीको[2] विचेतनः। त्रातारं नाधिगच्छन्वै इतश्चेतश्च धावति ॥१४॥
न लेभे च तदा शर्म यत्र विश्राम्यता द्विजाः। करोमि किं न जानामि यस्याहं शरणं व्रजे ॥१५॥
कथं पश्यामि[3] तं देवं पुरुषेशं सनातनम्। इति संचिन्तयन्देवमेकाग्रेण सनातनम् ॥१६॥
प्राप्तवांस्तत्पदं दिव्यं महाप्रलयकारणम्। पुरुषेशमिति ख्यातं वटराजं सनातनम् ॥१७॥
त्वरायुक्तो मुनिश्चासौ न्यग्रोधस्यान्तिकं ययौ। आसाद्य तं मुनिश्रेष्ठास्तस्य मूले समाविशत् ॥१८॥
न कालाग्निभयं तत्र न चाङ्गारप्रवर्षणम्। न संवर्तागमस्तत्र न च वज्राशनिस्तथा ॥१९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे मार्कण्डेयेन
वटदर्शनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

स्वयं जलता हुआ सा जान पडता था ॥९-१०॥ ऐसे महाघोर, दारुण प्रलयकाल में, विप्रगण! परम धर्मात्मा, ध्यान योग में लीन रहने वाले केवल मार्कण्डेय नामक ऋषि बच गए थे। उनकी इन्द्रियाँ भूख-प्यास से व्याकुल हो रही थी, वह मोह-बन्धन से मुक्त होते हुए भी मोह बन्धन से बँधे थे ॥११-१२॥ उस समय उस महान अग्नि को देखते ही उनके कण्ठ, ओंठ और तालु सूख गए, भय से वे विह्वल हो गए और भूख प्यास के कारण उनके पैर सीधे न पडते थे ॥१३॥ वे चेतना-शून्य, दिशा-ज्ञान रहित हो सम्पूर्ण पृथ्वी पर घूमने लगे, कहीं कोई रक्षक न पाकर इधर-उधर दौडने लगे ॥१४॥ विप्रवृन्द! वह जहाँ कहीं गए उनको सुख नहीं मिला। "क्या करूँ नहीं समझ पाता कि किसकी शरण में जाऊँ ॥१५॥ किस प्रकार सनातन पुरुषोत्तम देव को देख पाऊँ' इस प्रकार एकाग्र भाव से सनातन देव भगवान् का स्मरण करने लगे ॥१६॥ इतने ही में महाप्रलय का कारण, पुरुषेश नाम से प्रसिद्ध, भगवान् का दिव्य पद, सनातन वटराज (अक्षयवट) उन्हें दिखायी पडा तो लपक कर शीघ्रता से वे उस वट वृक्ष की ओर बढे। मुनिश्रेष्ठ! उस वृक्ष के पास जाकर वे उसकी जड में घुस गए। वहाँ न मृत्यु का भय था, न तो प्रलय अग्नि की ज्वालायें अंगार बरसा रही थी न तो संवर्तक (अग्नि) अथवा वज्र की ही वहाँ पहुँच थी ॥१७-१९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में स्वयम्भू और ऋषि के संवाद प्रकरण में मार्कण्डेय
का वटदर्शन नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५२॥

---

१ ख ०ष्णाभ्याकुलेन्द्रि०। २ ख ग कांदिग्भूतो। ३ क ख यास्यामि।

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेयाख्यानम्

ब्रह्मोवाच

ततो गजकुलप्रख्यास्तडिन्मालाविभूषिताः। समुत्तस्थुर्महामेघा नभस्यद्भुतदर्शनाः॥१॥
केचिन्नीलोत्पलश्यामाः केचित्कुमुदसंनिभाः। केचित्किञ्जल्कसंकाशाः केचित्पीताः पयोधराः॥२॥
केचिद्धरितसंकाशाः काकाण्डसंनिभास्तथा। केचित्कमलपत्राभाः केचिद्धिङ्गुलसंनिभाः॥३॥
केचित्पुरवराकाराः केचिद्गिरिवरोपमाः। केचिदञ्जनसंकाशाः केचिन्मरकतप्रभाः॥४॥
विद्युन्मालापिनद्धाङ्गाः समुत्तस्थुर्महाघनाः। घोररूपा महाभागा घोरस्वननिनादिताः॥५॥
ततो जलधराः सर्वे समावृण्वन्नभस्तलम्। तैरियं पृथिवी सर्वा सपर्वतवनाकरा॥६॥
आपूरिता दिशः सर्वाः सलिलौघपरिप्लुताः। ततस्ते जलदा घोरा वारिणा मुनिसत्तमाः॥७॥
सर्वतः प्लावयामासुश्चोदिताः परमेष्ठिना। वर्षमाणा महातोयं[1] पूरयन्तो वसुंधराम्॥८॥
सुघोरमशिवं रौद्रं नाशयन्ति स्म पावकम्। ततो द्वादश वर्षाणि पयोदाः समुपप्लवे॥९॥
धाराभिः पूरयन्तो वै चोद्यमाना महात्मना। ततः समुद्राः स्वां वेलामतिक्रामन्ति भो द्विजाः॥१०॥

अध्याय ५३

मार्कण्डेयमुनि का प्रलय-दर्शन

ब्रह्मा ने कहा—इसके अनन्तर आकाश में गजकुल नाम के विचित्र महामेघ प्रकट हुए, जिनके बीच बिजली चमक रही थी॥१॥ उनमें कुछ नीलकमल के समान श्यामवर्ण के, कुछ कुमुद के समान, कुछ कमल-केसर के समान और कुछ पीत वर्ण के थे। कुछ बादल हरे-हरे तथा कुछ कौआ के अण्डे के समान, कुछ कमल पत्र के समान एवं कुछ हिंगुल वर्ण के समान थे॥२-३॥ विस्तार में कुछ तो बड़े-बड़े नगरों के समान विस्तीर्ण तो कुछ हिमालय के समान विशाल थे, कुछ तो काजल के समान अत्यन्त काले, कुछ मरकत मणि के समान प्रभापूर्ण थे॥४॥ ऐसे भयंकर आकार वाले मेघ—जिनके मध्य बिजली बार-बार चमक रही थी, जो भयंकर गर्जना कर रहे थे—आकाश मण्डल में चारों ओर फैल गये। पितामह ब्रह्मा की प्रेरणा से उन मेघों ने पर्वत-वनों सहित पृथ्वी को आच्छादित कर लिया। सम्पूर्ण दिशायें जल प्रवाह से व्याप्त हो गईं। श्रेष्ठ मुनिवृन्द! उन घोर बादलों ने जल से चारों ओर भर दिया। अत्यधिक जल से सारी पृथ्वी परिपूर्ण हो गई जिससे पृथ्वीतल का वह अत्यन्त भयंकर, अकल्याणकर और प्रचण्डाग्नि शान्त हो गया॥ ब्रह्मा की प्रेरणा से इस प्रकार बारह वर्षों तक निरन्तर वर्षा होती रही॥५-९॥ मूसलधार वर्षा से सभी समुद्र जलाप्लव भर गए और जल की अधिकता से अपनी तट-सीमा का

---

[1] क. ख. महत्तोयं।

पर्वताश्च व्यशीर्यन्त मही चाप्सु निमज्जति। सर्वतः सुमहाभ्रान्तास्ते पयोदा नभस्तलम् ॥११॥
संवेष्टयित्वा नश्यन्ति वायुवेगसमाहताः। ततस्तं मारुतं घोरं स विष्णुर्मुनिसत्तमाः¹॥१२॥
आदिपद्मालयो देवः पीत्वा स्वपिति भो द्विजाः। तस्मिन्नेकार्णवे घोरे² नष्टे स्थावरजङ्गमे॥१३॥
नष्टे देवासुरनरे यक्षराक्षसवर्जिते। ततो मुनिः स विश्रान्तो ध्यात्वा च पुरुषोत्तमम् ॥१४॥
ददर्श चक्षुरुन्मील्य जलपूर्णां वसुधराम्। नापश्यत्तं वटं नोर्वीं न दिगादि न भास्करम् ॥१५॥
न चन्द्रार्काग्निपवनं न देवासुरपन्नगम्³। तस्मिन्नेकार्णवे घोरे तमोभूते निराश्रये॥१६॥
निमज्जन्स तदा विप्राः संतर्तुमुपचक्रमे। बभ्रामासौ मुनिस्तत्राऽऽर्त इतश्चेतश्च संप्लवन्⁴॥१७॥
निममज्ज तदा विप्रास्त्रातारं नाधिगच्छति। एवं तं विह्वलं दृष्ट्वा कृपया, पुरुषोत्तमः॥
प्रोवाच मुनिशार्दूलास्तदा ध्यानेन तोषितः ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच

वत्स⁵ श्रान्तोऽसि बालस्त्वं भक्तश्च मम सुव्रत। आगच्छाऽऽगच्छ शीघ्रं⁶ त्वं मार्कण्डेय ममान्तिकम् ॥१९॥
मा त्वयैव च भेतव्यं संप्राप्तोऽसि ममाग्रतः। मार्कण्डेय मुने धीर बालस्त्वं श्रमपीडितः॥२०॥

उल्लंघन करने लगे॥१०॥ जिससे सभी पर्वत गल गए, पृथ्वी जलमग्न हो गई। पुनः वे उपद्रवी, इधर उधर घूमने वाले आकाशव्यापी मेघ वायु-वेग से टक्कर खाकर स्वयं नष्ट हो गए ॥११½॥ मुनिवर! उस घोर वायु का भी आदि कमल के आधार भगवान् विष्णु पीकर उस घोर महासागर में, जब कि उस समय स्थावर जंगम देव असुर यक्ष राक्षस सभी नष्ट हो चुके थे, सो गए। इधर थके-मांदे मार्कण्डेय मुनि ने जब भगवान् के ध्यान के बाद आँखें खोली तब केवल जल से भरी हुई पृथ्वी दिखाई दी, न वट, न पृथ्वी, यहाँ तक कि दिशायें, सूर्य चन्द्र अग्नि वायु तथा देव, राक्षस, नाग कोई भी वहाँ दिखाई नहीं पड़ता था॥१२-१५½॥ उस घोर अन्धकारमय, आश्रयहीन महासमुद्र में जब मार्कण्डेय मुनि डूबने लगे तब उसको पार करने के उपाय सोचने लगे। कोई साधन न पाकर दुःखी हो, इधर-उधर जलप्रवाह में भटकते हुए घूमने लगे। विप्रवर! उस समय मुनि को कोई रक्षक न मिलने से वे असहाय होकर डूबने लगे। मुनिशार्दूल! उनको इस प्रकार विह्वल देख कर भगवान् उनकी ध्यान-भावना से प्रसन्न होकर कृपा करके बोले॥१६-१८॥

श्री भगवान बोले—'वत्स! सुव्रत! भक्तरत्न! तुम बालक हो, थक गए हो। इस समय थक गए हो। आओ मार्कण्डेय! शीघ्र मेरे समीप आओ। तुम इस प्रकार मत डरो, अब मेरे समीप आ गए हो। धीर मार्कण्डेय मुनि! तुम श्रम से दुःखी बालक जान पड़ते हो"॥१९-२०॥

---

१ क ०र्मुद्विजस०। २ क ख ०रे तमोभूते निराश्रये। न०। ३ क. ०रमानवम्। ४ क संप्लवे। ५ ख ०त्स प्रीतोऽसि बा०। ६ ख शीघ्रेण मा०।

ब्रह्मोवाच

तस्य तद्वचन श्रुत्वा मुनि परमकोपित । उवाच स तदा विप्रा विस्मितश्चाभवन्मुहु ॥२१॥

मार्कण्डेय उवाच

कोऽयं नाम्ना कीर्तयति तप[1] परिभवन्निव। बहुवर्षसहस्राख्य धर्षयन्निव मे वपु ॥२२॥
न ह्येष समुदाचारो देवेष्वपि समाहित । मा ब्रह्मा स च देवेशो दीर्घायुरिति[2] भाषते॥२३॥
कस्तपो घोरशिरसो ममाद्य त्यक्तजीवित । मार्कण्डेयेति चोक्त्वा मन्मृत्यु गन्तुमिहेच्छति॥२४॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदा विप्राश्चिन्ताविष्टोऽभवन्मुनि । किं स्वप्नोऽयं मया दृष्ट किंवा मोहोऽयमागत[4] ॥२५॥
इत्थं चिन्तयतस्तस्य उत्पन्ना दु खहा[6] मति । व्रजामि शरण देव भक्त्याऽह पुरुषोत्तमम् ॥२६॥
स गत्वा शरण देव[7] मुनिस्तद्गतमानस । ददर्श त वट भूयो विशाल सलिलोपरि॥२७॥
शाखायां तस्य सौवर्णं विस्तीर्णायां महाद्भुतम्। रुचिर दिव्यपर्यङ्क रचित विश्वकर्मणा॥२८॥
वज्रवैदूर्यरचित मणिविद्रुमशाभितम्। पद्मरागादिभिर्जुष्ट रत्नैरन्यैरलकृतम्॥२९॥
नानास्तरणसवीत नानारत्नोपशोभितम्। नानाश्चर्यसमायुक्त प्रभामण्डलमण्डितम्॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—विष्णु की उन बातो को सुन कर मुनि तो पहले अत्यन्त कुपित हुए परन्तु शीघ्र ही विस्मित हो बोले—॥२१॥

मार्कण्डेय ने कहा—कौन है यह जो मेरी चिरसचित तपस्या और मेरे इस दीर्घजीवी शरीर की उपेक्षा करता हुआ सा मेरा नाम लेकर बुला रहा है। ऐसा शिष्टाचार तो देवो मे भी नही देखा है मुझ देवेश ब्रह्मा भी दीर्घायु इस नाम से पुकारते है। यह कौन है जिसको जीवन का मोह नही जो आज तपोमानी मुझे मार्कण्डेय ऐसा कह कर मेरे द्वारा मृत्यु पाना चाहता है॥२२ २४॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा कह कर विप्रगण ! उस समय मुनि चिन्ताग्रस्त हो गए। क्या मैंने यह स्वप्न देखा है अथवा यह मोह तो नही हो गया ॥२५॥ इस प्रकार सोच ही रहे थे कि उनके हृदय मे मैं अवश्य भक्ति पूर्वक भगवान की शरण चलू ऐसी दु खनाशिनी सद्बुद्धि उत्पन्न हो गई॥२६॥ मुनि इस प्रकार अनन्य भाव से भगवान की शरण मे गए। पुन उन्होने जल के ऊपर विशाल वट वृक्ष को देखा जिसकी विस्तृत शाखा पर विश्वकर्मा द्वारा निर्मित परम अद्भुत शाभामय दिव्य पलग था जो वज्र और वैदूर्य मणि का बना था जिसमे विद्रुम पद्मराग आदि मणि जड हुए थे जो भिन्न भिन्न रत्नो से अलकृत और नाना प्रकार के बिछौनो से सुसज्जित था॥२७ २९॥ इस प्रकार की आश्चर्यजनक प्रभा मण्डल से सुशोभित शय्या पर करोडो सूर्य के समान प्रकाशमान अत्यन्त तेजोमय

---

१ ख वपु । २ ग ०व तेजसा। न । ३ क न। ४ क ०युपममाषत। क०। ५ ख किं माहो मां समारुढ किं वा भ्रमोऽयम०। ६ क ख दु सहा। ७ क ख विष्णु।

तस्योपरि स्थितं देवं कृष्णं बालवपुर्धरम्। सूर्यकोटिप्रतीकाशं दीप्यमानं सुवर्चसम् ॥३१॥
'चतुर्भुजं सुन्दराङ्ग पद्मपत्रायतेक्षणम्। श्रीवत्सवक्षसं देव शङ्खचक्रगदाधरम् ॥३२॥
वनमालावृतोरस्कं दिव्यकुण्डलधारिणम्। हारभारार्पितग्रीवं दिव्यरत्नविभूषितम् ॥३३॥
दृष्ट्वा तदा मुनिर्देवं विस्मयोत्फुल्ललोचन। रोमाञ्चिततनुर्देवं प्रणिपत्येदमब्रवीत् ॥३४॥

मार्कण्डेय उवाच

अहो चैकार्णवे घोरे विनष्टे सचराचरे। कथमेको ह्यय बालस्तिष्ठत्यत्र 'सुनिर्भयः ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

भूत भव्यं भविष्यं च जानन्नपि महामुनि·। न बुबोध तदा देव मायया तस्य मोहितः॥
यदा न बुबुधे चैनं तदा' खेदादुवाच ह ॥३६॥

मार्कण्डेय उवाच

वृथा मे तपसो वीर्यं वृथा ज्ञानं वृथा क्रिया। वृथा मे जीवितं दीर्घं वृथा 'मानुष्यमेव च ॥३७॥
योऽहं सप्त न जानामि पर्यङ्के दिव्यबालकम् ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

एवं सचिन्तयन्विप्र· प्लवमानो विचेतन·। त्राणार्थं विह्वलश्चासौ निर्वेदं गतवांस्तदा॥३९॥

कृष्ण भगवान का बाल रूप मे बैठे हुए देखा, जिनके चार भुजाएँ थी, मनोहर अंग, नेत्र कमल के समान बडे थे, वक्षस्थल पर श्रीवत्स, हाथो म शख, चक्र और गदा थी, उर प्रदेश वनमाला से ढँका, कानो म दिव्य कुण्डल और ग्रीवा म हारावली लटक रही थी। इस प्रकार दिव्य रत्नो से सुशोभित देव को देखकर मुनि की आँखें आश्चर्य-चकित हो गई, शरीर म रोमाच हो गया। वे प्रणाम कर कहने लगे—॥३०-३४॥

मार्कण्डेय बोले—अहो ! इस चराचर शून्य घोर सागर म कैसे यह निर्भीक बालक रह रहा है॥३५॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय महामुनि उस देव की माया से मोहित होने के कारण उस विषय म कुछ नही जान सके यद्यपि वे भूत, भविष्यत् और वर्तमान के ज्ञाता थे। जब वे देव के विषयम कुछ न जान सके तब दुःखी होकर व बोले ३६॥

मार्कण्डेय ने कहा—मेरी तपस्या, ज्ञान और शक्ति व्यर्थ हैं, सारी क्रियायें विफल हैं, मेरा यह दीर्घ जीवन यहाँ तक कि मानव जन्म भी व्यर्थ है जो आज मैं इस दिव्य पर्यङ्क पर सोए बालक को नही जान पा रहा हूँ॥३७-३८॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार चिन्ता मग्न मुनि चेतना शून्य-से हो कर, इधर उधर जलप्रवाह में भटकने लगे, रक्षा के लिए व्याकुलता बढ़ने लगी, अन्त म असमर्थता के कारण दुःखी हो गए। इसके अनन्तर प्रभातकाल में

---

१ क ग ०र्भुजमुदाराङ्ग। २ क मुनिरचैन। ३ क ख ०दा दुःखादु०। ४ ख ०नुषजन्म च।

ततो बालार्कसंकाशं 'स्वमहिम्ना व्यवस्थितम्। सर्वतेजोमयं विप्रा न 'शशाकाभिवीक्षितुम् ॥४०॥
दृष्ट्वा तं मुनिमायान्तं स बालः प्रहसन्निव। प्रोवाच मुनिशार्दूलास्तदा मेघौघनिस्वनः ॥४१॥

श्रीभगवानुवाच

वत्स जानामि श्रान्तं 'त्वा त्राणार्थं मामुपस्थितम्। शरीरं विश मे क्षिप्रं विश्रामस्ते 'मयोदितः ॥४२॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा स वचनं तस्य किंचिन्नोवाच मोहितः। विवेश वदनं तस्य विवृतं चावशो मुनिः ॥४३॥

इति श्रीमहापुराणे ब्राह्मे स्वयंभ्वृषिसंवादे मार्कण्डेयप्रलयदर्शनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

अथ चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेयाख्यानम्

ब्रह्मोवाच

स प्रविश्योदरे तस्य बालस्य मुनिसत्तम। ददर्श पृथ्वीं कृत्स्नां नानाजनपदैर्वृताम् ॥१॥

सूर्य के समान, तेजस्वी, महामहिमाशाली उस बालक को देखने में भी असमर्थ हो गए। मुनिवर्यवृन्द! मुनि को अपनी ओर आता देख कर, हँसता हुआ सा वह बालक मेघ के समान गम्भीर स्वर से बोल उठा ॥३९-४१॥

भगवान बोले—वत्स! मैं जानता हूँ कि तुम थक गए हो और अपनी रक्षा के लिए मेरे पास आए हो। शीघ्र ही मेरे शरीर में घुस जाओ, यही तुम्हारे लिए सुख का स्थान है जिसे मैंने तुम्हें बता दिया ॥४२॥

ब्रह्मा बोले—भगवान् की इन बातों को सुन कर मुनि मोहित हो गए, कुछ भी न कह सके, और विवश हो उनके (विवृत) फैले हुए मुख में घुस गए ॥४३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में स्वयंभू और ऋषि के संवाद-प्रकरण में मार्कण्डेय का प्रलय दर्शननामक तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ॥५३॥

अध्याय ५४

मार्कण्डेय का भगवान् की कुक्षि में प्रवेश

ब्रह्मा बोले—उस बालक के उदर में घुसकर मार्कण्डेय मुनि ने अनेक जनपदों से युक्त सम्पूर्ण पृथ्वी को

---

१ ख स्वमहिम्नि। २ ख ०शाक च धी०। ३ क ख त्वां प्राणार्थिनम्०। ४ क विषयस्ते।

लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलोदधीन्। ददर्श तान्समुद्रांश्च जम्बु प्लक्षं च शाल्मलम् ॥२॥
कुशं क्रौञ्चं च शाकं च पुष्करं च ददर्श सः। भारतादीनि वर्षाणि तथा सर्वांश्च पर्वतान् ॥३॥
मेरुं च सर्वरत्नाढ्यमपश्यत्कनकाचलम्। नानारत्नान्वितैः शृङ्गैर्भूषितं बहुकन्दरम् ॥४॥
नानामुनिजनाकीर्णं नानावृक्षवनाकुलम्। नानासत्त्वसमायुक्तं नानाश्चर्यसमन्वितम् ॥५॥
व्याघ्रैः सिंहैर्वराहैश्च चामरैर्महिषैर्गजैः। मृगैः शाखामृगैश्चान्यैर्भूषितं सुमनोहरम् ॥६॥
शक्राद्यैर्विविधैर्देवैः सिद्धचारणपन्नगैः। मुनियक्षाप्सरोभिश्च वृतैश्चान्यैः सुरालयैः ॥७॥

ब्रह्मोवाच

एवं सुमेरुं श्रीमन्तमपश्यन्मुनिसत्तमः। पर्यटन्स तदा विप्रस्तस्य बालस्य चोदरे ॥८॥
हिमवन्तं हेमकूटं निषधं गन्धमादनम्। श्वेतं च दुर्धरं नीलं कैलासं मन्दरं गिरिम् ॥९॥
महेन्द्रं मलयं विन्ध्यं पारियात्रं तथार्बुदम्। सह्यं च शुक्तिमन्तं च मैनाकं वज्रपर्वतम् ॥१०॥
एतांश्चान्यांश्च बहवो यावन्तः पृथिवीधराः। ततस्तांस्तु मुनिश्रेष्ठाः सोऽपश्यद्रत्नभूषितान् ॥११॥
कुरुक्षेत्रं च पाञ्चालान्मत्स्यान्मद्रान्सकेकयान्। बाह्लीकान्शूरसेनांश्च काश्मीरांस्तङ्गणान्खसान् ॥१२॥
पार्वतीयान्किरातांश्च कर्णप्रावरणान्मरून्। अन्त्यजानन्त्यजातींश्च सोऽपश्यत्तस्य चोदरे ॥१३॥
मृगाञ्छाखामृगान्सिंहान्वराहान्सृमराञ्छशान्[1]। गजांश्चान्यांस्तथा सत्त्वान्सोऽपश्यत्तस्य चोदरे ॥१४॥

देखा ॥१॥ वहाँ लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दुग्ध और जल के सागरों को जम्बु (जामुन), प्लक्ष (पाकड), शाल्मली (सेमर), कुश, क्रौंच, शाक, पुष्कर नामक द्वीपों को भारत आदि वर्षों को एवं सभी पर्वतों और सभी रत्नों से युक्त मेरु नामक सुवर्णपर्वत पर्वत को देखा। जिसकी चोटियाँ अनेक रत्नों से विभूषित थीं जिसकी कन्दरायें अनेक मुनियों से व्याप्त थीं ॥२-४॥ जहाँ भिन्न भिन्न प्रकार के वृक्षों से सुशोभित वन थे जो अनेक आश्चर्यजनक दृश्यों तथा विभिन्न जीवों से युक्त था, जो बाघ, सिंह, सूकर, चामर (चमरी गौ), महिष, हाथी, मृग, बन्दर एवं अन्य विविध जीवों से सुशोभित सबके मन को प्रसन्न कर रहा था, जहाँ इन्द्र आदि विविध देवता, सिद्ध, चारण, पन्नग, मुनि, यक्ष एवं अप्सरायें निवास करती थीं। इसी प्रकार अनेकों देव मन्दिरों से वह मेरु पर्वत सुशोभित था ॥५-७॥ इस प्रकार अतिशोभाशाली सुमेरु पर्वत को देखने के बाद मुनि उस बालक के उदर-प्रदेश में घूमने लगे ॥८॥ श्रेष्ठ मुनिगण! वहाँ मेरुपर्वत के अतिरिक्त हिमालय, हेमकूट, निषध, गन्धमादन, श्वेत, दुर्धर, नील कैलास, मन्दरा-चल, महेन्द्र, मलय विन्ध्य, पारियात्र, अर्बुद, सह्य, शुक्तिमान् मैनाक, वज्र आदि पर्वतों और अन्यान्य रत्नों से अलंकृत पहाड़ों को उन्होंने देखा ॥९-११॥ इसके बाद उस बालक के उदर में कुरुक्षेत्र, पाञ्चाल, मत्स्य, मद्र, केकय, बाह्लीक, शूरसेन, काश्मीर, तङ्गण, खस आदि देशों और वहाँ के निवासियों एवं पहाड़ी, किरात, कर्णप्रावरण मरुदेशवासियों, अन्त्यजों और अन्यान्य जातियों के लोगों को भी देखा। ऐसे ही मृग, बन्दर, सिंह, वराह, सृमर शश (खरहे), गज आदि अन्य जीवों को तथा समस्त तीर्थों, गाँवों, नगरों, कृषि, गोरक्षा, व्यापार, क्रय विक्रय

---

[1] क •रत्नचितं। २ क ख। रा• महाम्गान्। ग०।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि ग्रामाश्च नगराणि च। कृषिगोरक्षवाणिज्यं क्रयविक्रयणं तथा॥१५॥
शक्रादीन्विबुधाञ्छ्रेष्ठांस्तथाऽन्यांश्च दिवौकसः। गन्धर्वाप्सरसो यक्षानृषींश्चैव सनातनान्॥१६॥
दैत्यदानवसंघांश्च[1] नागांश्च मुनिसत्तमाः। सिंहिकातनयांश्चैव ये चान्ये सुरशत्रवः॥१७॥
यत्किंचित्तेन लोकेऽस्मिन्दृष्टपूर्वं चराचरम्। अपश्यत्स तदा सर्वं तस्य कुक्षौ द्विजोत्तमाः॥१८॥
अथवा किं बहूक्तेन कीर्तितेन पुनः पुनः। ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं यत्किंचित्सचराचरम्॥१९॥
भूर्लोकं च भुवर्लोकं स्वर्लोकं च द्विजोत्तमाः। महर्जनस्तपः सत्यमतलं वितलं तथा॥२०॥
पातालं सुतलं चैव वितलं च रसातलम्। महातलं च ब्रह्माण्डमपश्यत्तस्य चोदरे॥२१॥
अव्याहता[2] गतिस्तस्य तदाऽभूद्द्विजसत्तमाः। प्रसादात्तस्य देवस्य स्मृतिलोपश्च नाभवत्॥२२॥
भ्रममाणस्तदा कुक्षौ कृत्स्नं जगदिदं द्विजाः। नान्तं जगाम देहस्य[3] तस्य विष्णोः कदाचन॥२३॥
यदाऽसौ नाऽऽगतश्चान्तं तस्य देहस्य भो द्विजाः। तदा तं वरदं देवं शरणं गतवान्मुनिः॥२४॥
ततोऽसौ सहसा विप्रा[4] वायुवेगेन निःसृतः। महात्मनो मुखात्तस्य विवृतात्पुरुषस्य सः॥२५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभ्वृषिसंवादे मार्कण्डेयस्य भगवत्कुक्षिपरिवर्तनं नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५४॥

आदि कर्मों को भी वहाँ देखा॥१२-१५॥ इन्द्र आदि देवता एवं अन्य स्वर्गलोकवासी, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, सनातन ऋषिगण दैत्य-दानव-समूह नाग सिंहिका-पुत्र (राहु-केतु) और अन्य जितने देवशत्रु हैं उन सबको यहाँ तक कि इस संसार में सभी पूर्व परिचित चराचर को उस बालक के उदर में उन्होंने देखा॥१६-१८॥ अथवा नाम गिनाने से क्या लाभ? ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त (जड पदार्थ तक) चर अचर जो कुछ हैं उन सब को भू, भुव, स्व मह जन तप, सत्य आदि लोकों अतल, वितल तथा पाताल, सुतल, वितल रसातल, महातल पर्यन्त ब्रह्माण्ड को उस मुनि ने उस बालक के उदर में देखा॥१९-२१॥ श्रेष्ठब्राह्मणवर्ग! उस समय उस देव के प्रभाव से मुनि को अव्याहत (कहीं न रुकने वाली) गति प्राप्त हो गई। उनकी स्मरण शक्ति भी लुप्त नहीं हुई॥२२॥ द्विजवर्यवृन्द! उदरस्थ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का चक्कर लगाते हुए मार्कण्डेयमुनि किसी भी प्रकार से भगवान् विष्णु के शरीर का अन्त न पा सके॥२३॥ द्विजगण! जब मुनि ने उस देव के शरीर का अन्त न पाया तब विवश होकर वह मनोरथदाता देव की शरण में गये॥२४॥ और परमात्मा के फैले हुए मुख से वायु के वेग के समान एकाएक बाहर निकल आये॥२५॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में स्वयंभू और ऋषि के संवाद-प्रकरण में मार्कण्डेय का भगवत्कुक्षि-
परिवर्तन नामक चौवनवाँ अध्याय समाप्त॥५४॥

---

[1] ख. ०वसर्पांश्च। [2] ग. ०ता मति०। [3] क. ग. देवस्य। [4] क. विप्रो।

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेयाख्यानम्

ब्रह्मोवाच

स निष्क्रम्योदरात्तस्य बालस्य मुनिसत्तमा। पुनश्चैकार्णवामुर्वीमपश्यज्जनवर्जिताम् ॥१॥
पूर्वदृष्टं च तं देवं ददर्श शिशुरूपिणम्। शाखायां वटवृक्षस्य पर्यङ्कोपरि संस्थितम् ॥२॥
श्रीवत्सवक्षसं देवं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम्। जगदादाय तिष्ठन्तं पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥३॥
सोऽपि तं मुनिमायान्तं [1]प्लवमानमचेतनम्। दृष्ट्वा मुखाद्विनिष्क्रान्तं प्रोवाच प्रहसन्निव ॥४॥

श्रीभगवानुवाच

कच्चित्त्वयोषितं वत्स विश्रान्तं च ममोदरे। भ्रममाणश्च किं तत्र आश्चर्यं दृष्टवानसि ॥५॥
भक्तोऽसि मे मुनिश्रेष्ठ श्रान्तोऽसि च ममाऽऽश्रित.। तेन त्वामुपकाराय सभावे पश्य मामिह ॥६॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा स वचनं तस्य संप्रहृष्टतनूरुह.। ददर्श तं सुदुष्प्रेक्षं रत्नैर्दिव्यैरलंकृतम् ॥७॥
प्रसन्ना निर्मला दृष्टिर्मुहूर्तात्तस्य भो द्विजाः। प्रसादात्तस्य देवस्य प्रादुर्भूता पुनर्नवा ॥८॥

अध्याय ५५

मार्कण्डेय द्वारा भगवान् की स्तुति

ब्रह्मा बोले—उस बालक के उदर से निकलकर मुनि ने पुन जनशून्य, समुद्रमय पृथ्वी देखी। सामने वही पहले का देखा हुआ बालरूपधारी देवता दिखाई दिया, जो वटवृक्षकी शाखा पर अवलम्बित पालने पर लेटा हुआ था। श्रीवत्स से सुशोभित वक्षस्थल, कमल के समान बड़े बड़े नेत्र, चार भुजायें और पीताम्बर से सुशोभित उसका शरीर था। ऐसा वह दिव्य बालक संसार को समेट कर स्थित था। अपने मुख से बाहर निकले हुए और जलप्रवाह में भटकते हुये चेतनारहित मुनि को अपनी ओर आता देख कर मुस्कराता वह बालक बोला॥१-४॥

श्री भगवान बोले—वत्स! मेरे उदर में तुमने निवास किया। थक गये हो क्या? घूम घूमकर तुमने कौन-सा आश्चर्यजनक दृश्य देखा है? मुनिश्रेष्ठ! तुम मेरे भक्त हो, आश्रित हो, थक गये हो, तुम्हारे हित के लिए मैं तुमसे कह रहा हूँ। मेरा यह रूप देखो॥५-६॥

ब्रह्मा बोले—भगवान् की यह बात सुनकर मुनि के रोम रोम पुलकित हो उठे, उन्होंने दिव्य-रत्नालंकारों से अलंकृत, कठिनाई से देखने योग्य भगवान् को देखा। भगवान् की कृपा से द्विजवर्य! क्षणभर में ही मुनि की दृष्टि

---

[1] क. ०तसम्।

रक्ताङ्गुलितलौ पादौ ततस्तस्य सुरार्चितौ। प्रणम्य शिरसा विप्रा हर्षगदगदया गिरा ॥९॥
कृताञ्जलिस्तदा हृष्टो विस्मितश्च पुन पुन । दृष्ट्वा त परमात्मान सस्तोतुमुपचक्रमे ॥१०॥

मार्कण्डेय उवाच

देवदेव जगन्नाथ मायाबालवपुर्धर। त्राहि मा चारुपद्माक्ष दु खित शरणागतम ॥११॥
सतप्तोऽस्मि सुरश्रेष्ठ सवर्ताख्येन वह्निना। अङ्गारवर्षभीत च त्राहि मा पुरुषोत्तम ॥१२॥
शोषितश्च प्रचण्डेन वायुना जगदामुना। विह्वलोऽह तथा श्रान्तस्त्राहि मा पुरुषोत्तम ॥१३॥
तापितश्च तथात्यर्थं (?) प्रलयावर्तकादिभि । न शान्तिमधिगच्छामि त्राहि मा पुरुषोत्तम ॥१४॥
तृषितश्च क्षुधाऽऽविष्टो दु खितश्च जगत्पते। त्रातार नात्र पश्यामि त्राहि मा पुरुषोत्तम ॥१५॥
अस्मिन्नेकार्णवे घोरे विनष्टे सचराचरे। न चा तमधिगच्छामि त्राहि मा पुरुषोत्तम ॥१६॥
तवोदरे च देवेश मया दृष्ट चराचरम। विस्मितोऽह विषण्णश्च त्राहि मा पुरुषोत्तम ॥१७॥
ससारेऽस्मिन्निरालम्बे प्रसीद पुरुषोत्तम। प्रसीद विबुधश्रेष्ठ प्रसीद विबुधप्रिय ॥१८॥
प्रसीद विबुधा नाथ प्रसीद विबुधालय[1]। प्रसीद सवलोकेश जगत्कारणकारण ॥१९॥

पुन प्रसन्न निमल और नवीन हो गई। इसके अनन्तर उनके रक्तवण अगुलिय और तलवो से सुशोभित चरणो पर जिनका पूजा मे देवगण सदा निरत रहते हैं शिर रखकर प्रणाम किया। परमात्मा के उस मनोहर रूप को देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न और आश्चयमग्न हो गये। पुन हाथ जोडकर बार-बार भगवान् को देखते हुए मुनि गद गद वाणी से स्तुति करने लगे ॥७ १०॥

माकण्डेय बोले—देवाधिदेव! ससार के स्वामी! माया से बालरूप धारण करने वाले! सुन्दर कमल के समान नेत्र वाले! शरण मे आये हुए मुझ दु खी क रक्षा कीजिये ॥११॥ सुरश्रेष्ठ! मैं इस सवत्तनामक अग्नि स जला जा रहा हू। पुरुषोत्तम! अगार की वर्षा से भयभीत मेरी रक्षा कीजिये। ॥१२॥ ससार के प्राणाधार आज के इस ज्वालामय वायु से मैं सूख गया हू और भय से व्याकुल होकर थक गया हू पुरुषोत्तम! मेरी रक्षा कीजिये ॥१३॥ इन प्रलयकारी आवत्तक आग्नेय सूर्यो से मैं जल गया हू। किसी प्रकार मुझे शान्ती नही मिल रही है पुरुषोत्तम! मेरी रक्षा कीजिये ॥१४॥ जगत्पते! मैं प्यासा हूँ भूखा हू अति दु खी हूं इस ससार मे किसी को भी अपना रक्षक नही देख रहा हू हे पुरुषोत्तम मेरी रक्षा कीजिये ॥१५॥ इस भयकर घोर एकान्त सागर मे जबकि चराचर विनष्ट हो गया है मैं अन्त नही पा रहा हू हे पुरुषोत्तम मेरी रक्षा कीजिये ॥१६॥ देवेश! आपके उदर मे मैंने चराचर-व्याप्त विश्व देखा है। इसलिये मैं आश्चयचकित हू खिन्न हू पुरुषोत्तम! मेरी रक्षा कीजिये ॥१७॥ पुरुषोत्तम! इस अवलम्बरहित ससार मे मुझ आश्रयहीन पर प्रसन्न हो देवश्रेष्ठ! प्रसन्न हो देवप्रिय! प्रसन्न हो ॥१८॥ देवो के स्वामी! देवो के एकमात्र सहायक! प्रसन्न हो! अखिल लोक के स्वामी! जगत के कारण

---

१ ख ०न स स्तो०। २ ख ०धाश्रय।

प्रसीद सर्वकृद्देव[1] प्रसीद मम भूधर। प्रसीद[2] सलिलावास[3] प्रसीद मधुसूदन॥२०॥
प्रसीद कमलाकान्त प्रसीद त्रिदशेश्वर। प्रसीद कंसकेशिघ्न प्रसीदारिष्टनाशन॥२१॥
प्रसीद कृष्ण दैत्यघ्न प्रसीद दनुजान्तक। प्रसीद मथुरावास प्रसीद यदुनन्दन॥२२॥
प्रसीद शक्रावरज प्रसीद वरदाव्यय[4]। त्वं मही त्वं जलं देव त्वमग्निस्त्वं समीरणः॥२३॥
त्वं नभस्त्वं मनश्चैव त्वमहंकार एव च। त्वं बुद्धिः प्रकृतिश्चैव सत्त्वाद्यास्त्व[5] जगत्पते[6]॥२४॥
पुरुषस्त्व[7] जगद्व्यापी पुरुषादपि चोत्तमः। त्वमिन्द्रियाणि सर्वाणि शब्दाद्या विषयाः प्रभो॥२५॥
त्वं दिक्पालाश्च धर्मश्च वेदा यज्ञाः सदक्षिणा[8]। त्वमिन्द्रस्त्व शिवो देवस्त्वं हविस्त्वं हुताशनः॥२६॥
त्वं यमः पितृराट्देव त्वं रक्षोधिपतिः स्वयम्। वरुणस्त्वमपा नाथ[9] त्वं [10]वायुस्त्वं धनेश्वरः॥२७॥
त्वमीशानस्त्वमनन्तस्त्वं गणेशश्च षण्मुख.। वसवस्त्वं तथा रुद्रास्त्वमादित्याश्च खेचराः॥२८॥
दानवास्त्वं तथा यक्षास्त्वं दैत्याः समरुद्गुणाः। सिद्धाश्चाप्सरसो नागा गन्धर्वास्त्वं सचारणाः॥२९॥
पितरो बालखिल्याश्च प्रजानां पतयोऽच्युत। मुनयस्त्वमृषिगणास्त्वमश्विनौ निशाचरा.॥३०॥
अन्याश्च जातयस्त्वं हि यत्किंचिज्जीवसंज्ञितम्। किंचात्र बहुनोक्तेन ब्रह्मादिस्तम्बगोचरम्॥३१॥
भूतं भव्यं भविष्यं च त्वं जगत्सचराचरम्। यत्ते रूप परं देव कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥३२॥

के भी कारण! प्रसन्न हो॥१९॥ सबके कर्त्ता देव! पृथ्वी के पालक! मेरे ऊपर कृपा करें। जलशायी! मधुसूदन! प्रसन्न हो॥२०॥ कमलाकात! देवेश्वर! प्रसन्न हो। कंस, केशी और अरिष्टासुर के संहारक! मुझ पर प्रसन्न हो! ॥२१॥ कृष्ण! दैत्यों के नाशक! दानवों के संहारक! प्रसन्न हो। मथुरावासिन्! यदुनन्दन कृष्ण! आप प्रसन्न हो जायँ॥२२॥ इन्द्र के लघुभ्राता! वरदाता! अव्यय! आप मुझ पर प्रसन्न हो! देव! तुम मही हो, जल हो, तुम्हीं अग्नि और वायु भी हो। ॥२३॥ तुम आकाश मन और अहंकार भी हो, जगत्पते! तुम बुद्धि, प्रकृति, और सत्व आदि गुण हो॥२४॥ तुम संसार में व्याप्त रहने वाले पुरुष (अक्षर ब्रह्म) से भी उत्तम पुरुष (पुरुषोत्तम) हो। प्रभो! तुम्हीं सभी इन्द्रियाँ और उनके विषय शब्द, स्पर्श, रस आदि भी हो॥२५॥ तुम दश दिक्पाल, धर्म, वेद और दक्षिणायुक्त (उत्तम) यज्ञ हो, इन्द्र, शिव, देव, हवि यहाँ तक कि हुताशन (अग्नि) भी तुम्हीं हो॥२६॥ देव! तुम पितरों के अधिपति यम हो, राक्षसों के राजा भी स्वयं तुम्हीं हो। जल के स्वामी वरुण, वायु, धनेश्वर कुबेर तुम्हीं हो॥२७॥ तुम ईशान (शिव) अनन्त, गणेश और कार्तिकेय भी हो। तुम वसु, तथा रुद्र हो और आकाशचारी आदित्य भी हो॥२८॥ तुम दानव, यक्ष तथा मरुद्गण सहित दैत्य हो। सिद्ध, अप्सरायें, नाग, चारणों सहित गन्धर्व, ये सभी तुम्हीं हो॥२९॥ अच्युत! पितर, बालखिल्य (ऋषि) प्रजाओं के पति (प्रजापति), मुनि, ऋषिगण, अश्विन, अथच निशाचर तुम्हीं हो॥३०॥ जो कुछ जीव नाम से प्रसिद्ध दूसरी जातियाँ हैं सभी तुम हो अथवा बहुत अधिक वर्णन से क्या प्रयोजन? ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब (ठूंठ) पर्यन्त दिखाई पड़ने वाले भूत, भव्य भविष्यत् सचराचर जगत् तुम्हारे ही रूप हैं॥३१॥ देव! जो तुम्हारा कूटस्थ, अचल,

१ख सर्वदेवेश। २क ०द मे श्रीनिवास। ३ख कमलावास। ४क ०दायक। त्व। ५क सत्य स्व च ज०। ६ख जगत्प्रभो। ७ख ०ते। जगत्स्रष्टा जगद्बीज पु०। ८क जगद्बीज। ९ख ०प च०। १०ख ०स्य धनदेवता। स्व०।

ब्रह्माद्यास्तन्न जानन्ति कथमन्येऽल्पमेधसः। देव शुद्धस्वभावोऽसि नित्यस्त्वं प्रकृतेः परः॥३३॥
अव्यक्तः शाश्वतोऽनन्तः सर्वव्यापी महेश्वरः। त्वमाकाशः परः शान्तो अजस्त्वं विभुरव्ययः॥३४॥
एवं त्वां निर्गुणं स्तोतुं कः शक्नोति निरञ्जनम्। स्तुतोऽसि यन्मया देव [1]विकलेनाल्पचेतसा॥
तत्सर्वं देवदेवेश क्षन्तुमर्हसि चाव्यय ॥३५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे
भगवत्स्तवनिरूपणं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५५॥

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

विस्तरेण विष्णुमार्कण्डेयसंवादकथनम्

ब्रह्मोवाच

इत्थं स्तुतस्तदा तेन मार्कण्डेयेन भो द्विजाः। प्रीतः प्रोवाच भगवान्मेघगम्भीरया गिरा॥१॥

श्रीभगवानुवाच

ब्रूहि कामं मुनिश्रेष्ठ यत्ते मनसि वर्तते। ददामि सर्वं [2]विप्रर्षे मत्तो यदभिवाञ्छसि॥२॥

ध्रुव, पर (उत्कृष्ट निरजन) रूप है उसको तो ब्रह्मा आदि भी नहीं जानते, दूसरे थोड़ी बुद्धि वालों की तो चर्चा भी व्यर्थ है॥३२३॥ देव! तुम शुद्ध स्वभाव वाले, नित्य और प्रकृति से परे हो। तुम अव्यक्त, शाश्वत (नित्य), अनन्त, सर्वव्यापी, महेश्वर, आकाश, पर (सर्वश्रेष्ठ) और शान्त तथा अज, व्यापक, अव्यय भी हो॥३३-३४॥ इस प्रकार निरञ्जन, निर्गुण तुम्हारी कौन स्तुति कर सकता है, जो कुछ विकल, अल्पबुद्धि मैंने तुम्हारी स्तुति की है, देवदेवेश, अव्यय!, वह तुमसे क्षमा के योग्य है। अर्थात् उसको क्षमा कर दो॥३५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण का भगवत्स्तवन नामक पचपनवाँ अध्याय समाप्त॥५५॥

अध्याय ५६

विस्तार से विष्णु और मार्कण्डेय का संवाद-कथन

ब्रह्मा बोले—मार्कण्डेय ऋषि द्वारा इस प्रकार स्तुति किए जाने पर हे ब्राह्मण वर्ग! अत्यन्त प्रसन्न भगवान मेघ के समान गम्भीर वाणी से बोले—॥१॥

भगवान् ने कहा—मुनिश्रेष्ठ! अपनी मन कामना बताओ? विप्रर्षे! मैं तुम्हारे सभी मनोरथ पूर्ण करूँगा॥२॥

[1] ख विह्वले०। [2] क एव।

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा स वचनं विप्रा[1] शिशोस्तस्य महात्मनः । उवाच परमप्रीतो मुनिस्तद्गतमानसः ॥३॥

मार्कण्डेय उवाच

ज्ञातुमिच्छामि देव त्वां मायां वै तव चोत्तमाम् । त्वत्प्रसादाच्च देवेश स्मृतिर्न परिहीयते ॥४॥
द्रुतमन्तः शरीरेण सततं पर्य (रि) वर्तितम् । इच्छामि पुण्डरीकाक्ष ज्ञातुं त्वामहमव्ययम् ॥५॥
इह भूत्वा शिशुः साक्षात्किं भवानवतिष्ठते । पीत्वा जगदिदं सर्वमेतदाख्यातुमर्हसि ॥६॥
किमर्थं च जगत्सर्वं शरीरस्थं तवाऽनघ । कियन्तं च त्वया कालमिह स्थेयमरिंदम ॥७॥
ज्ञातुमिच्छामि देवेश ब्रूहि सर्वमशेषतः । त्वत्तः कमलपत्राक्ष विस्तरेण यथातथम् ॥
महदेतदचिन्त्यं च यदहं दृष्टवान्प्रभो ॥८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तः स तदा तेन देवदेवो महाद्युतिः[2] । सान्त्वयन्स तदा[3] वाक्यमुवाच वदतां वरः ॥९॥

श्रीभगवानुवाच

कामं देवाश्च मां विप्र नहि जानन्ति तत्त्वतः । तव प्रीत्या प्रवक्ष्यामि यथेदं विसृजाम्यहम् ॥१०॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रगण ! परमात्मा शिशु की ऐसी बातें सुनकर अत्यन्त प्रसन्न मुनि प्रभु में तन्मय होकर बोले॥३॥

मार्कण्डेय बोले—देव ! मैं आपको और आपकी इस अनुपम माया को जानना चाहता हूँ। देवेश ! आपके प्रसाद से मेरी स्मृति लुप्त नहीं हुई है॥४॥ पुण्डरीकाक्ष ! आपके शरीर में प्रवेश कर मैंने अभी-अभी घूम घूमकर सब कुछ देखा है। अविनाशी ! अब आपको जानना चाहता हूँ॥५॥ आप सारे संसार को उदरस्थ कर स्वयं शिशु रूप धारण किए हुए क्यों यहाँ विराजमान हैं ? यह सब कुछ आप मुझसे कहिये॥६॥ निष्पाप ! किस प्रयोजन से सारा संसार तुम्हारे शरीर में समाहित हो गया है ? मधुसूदन ! कितने समय तक इस प्रकार तुम्हारा यहाँ निवास होगा॥७॥ देवेश ! मैं यह जानने की इच्छा रखता हूँ सम्पूर्ण रूप से सब कुछ मुझसे कहें। प्रभो ! जो कुछ मैंने देखा है वह अत्यन्त अगम्य और अचिन्त्य है। कमलनयन ! मैं यथार्थ रूप से तुम्हारे मुख से सब कुछ विस्तार-पूर्वक सुनना चाहता हूँ॥८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार मार्कण्डेय मुनि ने परम तेजस्वी भगवान से कहा। तदनन्तर परमवाग्मी मुनि को आश्वासन देते हुए भगवान् बोले—॥९॥

भगवान् बोले—विप्र ! देवता भी मुझको यथार्थ और पूर्ण रूप से नहीं जानते हैं। किन्तु तुम्हारे प्रेम

---

१ ग विप्रा विष्णास्त०। २ क जगत्पतिः। ग महत्तरः। ३ क ०न्वा विप्रमु०।

पितृभक्तोऽसि विप्रर्षे मामेव शरणं गतः। ततो दृष्टोऽस्मि ते साक्षाद्ब्रह्मचर्यं च ते महत् ॥११॥
आपो नारा इति पुरा सञ्ज्ञाकर्म कृतं मया। तेन नारायणोऽस्म्युक्तो मम तास्त्वयनं सदा ॥१२॥
अहं नारायणो नाम प्रभवः शाश्वतोऽव्ययः। विधाता सर्वभूतानां संहर्ता च द्विजोत्तम ॥१३॥
अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शक्रश्चापि सुराधिपः। अहं वैश्रवणो राजा यमः प्रेताधिपस्तथा ॥१४॥
अहं शिवश्च सोमश्च कश्यपश्च प्रजापतिः। अहं धाता विधाता च यज्ञश्चाहं द्विजोत्तम ॥१५॥
अग्निरास्यं क्षितिः पादौ चन्द्रादित्यौ च लोचने। द्यौर्मूर्धा खं दिशः श्रोत्रे तथाऽऽपः स्वेदसंभवाः ॥१६॥
सदिशं च नभः कायो वायुर्मनसि मे स्थितः। मया क्रतुशतैरिष्टं बहुभिश्चाऽऽप्तदक्षिणैः ॥१७॥
यजन्ते वेदविदुषो मां देवयजने स्थितम्। पृथिव्यां क्षत्रियेन्द्राश्च पार्थिवाः स्वर्गकाङ्क्षिणः ॥१८॥
यजन्ते मां तथा वैश्याः स्वर्गलोकजिगीषवः। चतुःसमुद्रपर्यन्तां मेरुमन्दरभूषणाम् ॥१९॥
शेषो भूत्वाऽहमेको हि धारयामि वसुंधराम्। वाराहं रूपमास्थाय ममेयं जगती पुरा ॥२०॥
मज्जमाना जले विप्र वीर्येणास्मि समुद्धृता। अग्निश्च वाडवो विप्र भूत्वाऽहं द्विजसत्तम ॥२१॥
पिबाम्यपः समाविष्टस्ताश्चैव विसृजाम्यहम्। ब्रह्म वक्त्रं भुजौ क्षत्रमूरू मे संश्रिता विशः ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा स वचनं विप्रा' शिशोस्तस्य महात्मन. । उवाच परमप्रीतो मुनिस्तद्गतमानसः ॥३॥

मार्कण्डेय उवाच

ज्ञातुमिच्छामि देव त्वा मायां वै तव चोत्तमाम्। त्वत्प्रसादाच्च देवेश स्मृतिर्न परिहीयते ॥४॥
द्रुतमन्त. शरीरेण सततं पर्य (रि) वर्तितम्। इच्छामि पुण्डरीकाक्ष ज्ञातुं त्वामहमव्ययम् ॥५॥
इह भूत्वा शिशुः साक्षात्किं भवानवतिष्ठते। पीत्वा जगदिदं सर्वमेतदाख्यातुमर्हसि ॥६॥
किमर्थं च जगत्सर्वं शरीरस्थं तवाऽनघ। कियन्तं च त्वया कालमिह स्थेयमरिंदम ॥७॥
ज्ञातुमिच्छामि देवेश ब्रूहि सर्वमशेषत.। त्वत्त. कमलपत्राक्ष विस्तरेण यथातथम् ॥
महदेतदचिन्त्यं च यदहं दृष्टवान्प्रभो ॥८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त. स तदा तेन देवदेवो महाद्युति[१]। सान्त्वयन्स तदा[१] वाक्यमुवाच वदतां वर ॥९॥

श्रीभगवानुवाच

कामं देवाश्च मां विप्र नहि जानन्ति तत्त्वत । तव प्रीत्या प्रवक्ष्यामि यथेदं विसृजाम्यहम् ॥१०॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रगण! परमात्मा शिशु की एसी बातें सुनकर अत्यन्त प्रसन्न मुनि प्रभु मे तन्मय होकर बाले॥३॥

मार्कण्डेय बोले—देव! मैं आपका और आपकी इस अक्षय माया का जानना चाहता हूँ। देवेश! आपके प्रसाद से मेरी स्मृति लुप्त नहीं हुई है॥४॥ पुण्डरीकाक्ष! आपके शरीर मे प्रवेश कर मैंने अभी-अभी घूम-घूमकर सब कुछ देखा है। अविनाशी! अब आपको जानना चाहता हूँ॥५॥ आप सारे ससार को उदरस्थ कर स्वय शिशु रूप धारण किए हुए क्या यहाँ विराजमान है? यह सब कुछ आप मुझसे कहिये॥६॥ निष्पाप! किस प्रयोजन से सारा ससार तुम्हारे शरीर मे समाहित हो गया है? शत्रुसूदन! कितने समय तक इस प्रकार तुम्हारा यहा निवास होगा॥७॥ देवश! मैं यह जानने की इच्छा रखता हूँ, सम्पूर्ण रूप से सब कुछ मुझसे कहे। प्रभो! जो कुछ मैंने देखा है वह अत्यन्त अगम्य और अचिन्त्य है। कमलनयन! मैं यथार्थ रूप से तुम्हारे मुख से सब कुछ विस्तार-पूर्वक सुनना चाहता हूँ॥८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार मार्कण्डेय मुनि ने परमदेव तेजोमय भगवान् से कहा। तदनन्तर परमवाग्मी मुनि को आश्वासन देते हुए भगवान् बाले—॥९॥

भगवान् बोले—विप्र! देवता भी मुझको यथार्थ और पूर्ण रूप से नहीं जानते हैं। किन्तु तुम्हारे प्रेम

---

१ ख. विप्रा विप्णास्त०। २ क जगत्पतिः। ख महेश्वरः। ३ क ०दा विप्रमु०।

पितृभक्तोऽसि विप्रर्षे' मामेव शरणं गतः। ततो दृष्टोऽस्मि ते साक्षाद्ब्रह्मचर्यं च ते महत् ॥११॥
आपो नारा इति पुरा संज्ञाकर्म' कृतं मया। तेन नारायणोऽस्म्युक्तो मम' तास्त्वयनं सदा ॥१२॥
अहं नारायणो नाम प्रभवः शाश्वतोऽव्ययः। विधाता सर्वभूतानां संहर्ता च द्विजोत्तम ॥१३॥
अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शक्रश्चापि 'सुराधिपः। अहं वैश्रवणो राजा यमः 'प्रेताधिपस्तथा ॥१४॥
अहं शिवश्च सोमश्च कश्यपश्च' प्रजापतिः। अहं धाता विधाता च यज्ञश्चाहं द्विजोत्तम ॥१५॥
अहं शिवश्च सोमश्च कश्यपश्च' प्रजापतिः। अहं धाता विधाता च यज्ञश्चाहं द्विजोत्तम ॥१६।
अग्निरास्यं क्षितिः पादौ चन्द्रादित्यौ च लोचने। 'द्यौर्मूर्धा खं दिशः श्रोत्रे तथाऽऽपः स्वेदसंभवाः ॥१७॥
सदिशं च नभः कायो वायुर्मनसि मे स्थितः। मया 'क्रतुशतैरिष्टं' बहुभिश्चाऽऽप्तदक्षिणैः ॥१८॥
यजन्ते वेदविदुषो मा देवयजने स्थितम्। पृथिव्यां क्षत्रियेन्द्राश्च पार्थिवाः स्वर्गकाङ्क्षिणः ॥१९॥
यजन्ते मां तथा वैश्याः स्वर्गलोकजिगीषवः। चतुःसमुद्रपर्यन्तां मेरुमन्दरभूषणाम् ॥२०॥
शेषो 'भूत्वाऽहमेको हि धारयामि वसुंधराम्'। वाराहं रूपमास्थाय ममेयं जगती पुरा ॥२१॥
मज्जमाना जले विप्रवीर्येणास्मि समुद्धृता। अग्निश्च वाडवो विप्र भूत्वाऽहं द्विजसत्तम ॥२२॥
पिबाम्यपः समाविष्टस्ताश्चैव विसृजाम्यहम्। ब्रह्म वक्त्रं भुजौ क्षत्रमूरू मे संश्रिता विशः ॥२२॥

यश जिस प्रकार इस जगत् का विसर्जन करता हूँ कहूँगा ॥१०॥ विप्रर्षे! तुम पितृ-भक्त हो, मेरी ही शरण मे आए हो, इसके बाद मैंने स्वय तुम्हारे महान् ब्रह्मचर्य व्रत को देखा है ॥११॥ आदि काल मे मैंने जल का नार, यह नामकरण किया है। मेरा जल ही सर्वदा निवास-स्थान है, इसलिए मैं नारायण कहलाता हूँ ॥१२॥ द्विजोत्तम! मैं ही नारायण नाम से प्रसिद्ध आदिकारण, नित्य, अविनाशी, सभी भूतो का विधाता और विनाशकर्ता हूँ ॥१३॥ मेरा ही नाम शिव विष्णु, ब्रह्मा और देवराज इन्द्र हूँ। मैं ही वैश्रवण नामक राजा तथा प्रेतपति यम हूँ ॥१४॥ मेरा मुख अग्नि, सोम और प्रजापति कश्यप है। द्विजवर्य! मैं ही सब का स्रष्टा, पालक तथा यज्ञ भी हूँ ॥१५॥ मेरा मुख अग्नि, चरण पृथ्वी, नेत्र चन्द्र और सूर्य, द्यौ (स्वर्ग) मूर्धा, आकाश और दिशाये मेरे कर्ण हैं ॥१६॥ और जल मेरे पसीने से उत्पन्न है। सम्पूर्ण दिशाओ सहित नभ मेरा शरीर है, वायु मेरे मन मे स्थित है। बहुसख्यक भरपूर दक्षिणा वाले सैकडो यज्ञो मे मैं पूजित हूँ ॥१७॥ देव-यज्ञ मे प्रतिष्ठित मेरा ही पूजन वेदज्ञ लोग किया करते है। इस पृथ्वी पर स्वर्गलोक के इच्छुक बडे-बडे प्रतापी सम्राट् तथा स्वर्गकामना वाले वैश्य (धनिक वर्ग) मेरी ही पूजा करते हैं ॥१८½॥ मैं ही अकेला शेष रूप होकर चारो समुद्र तक विस्तीर्ण, मेरु, मन्दर आदि पर्वतो से सुशोभित, गुरु भार वाली वसुन्धरा को धारण करता हूँ ॥१९½॥ प्राचीन काल मे वाराह रूप धारण कर मैंने ही जल मे डूबी हुई पृथ्वी का अपने पराक्रम से उद्धार किया था। द्विजवर! विप्र! वडवानल होकर मैं ही सम्पूर्ण जल को पी जाता हूँ और इस प्रकार अपने उदर मे जल का समावेश कर पुन उसको छोड भी देता हूँ ॥२०-२१½॥ ब्राह्मण मेरा मुख, क्षत्रिय मेरी भुजायें और वैश्य मेरे ऊरु के आश्रित हैं। शक्ति और क्रम (श्रेणी) मे रूप से शूद्र मेरे

---

१ क ख ०र्षे मां चैव शा०। २ क ०मता शय०। ३ ख द्विजोत्तम। ४ क प्रेतपतिस्त०। ५ ख द्यौर्मूर्वौ ख।
६ क. सदा। ७ क ०ष्ट यथावतवरद०। ८ क ०त्वा महीमेको धा०। ९ क महामुने।

पादौ शूद्रा भवन्तीमे विक्रमेण क्रमेण च। ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदस्त्वथर्वण ॥२३॥
मत्तः प्रादुर्भवन्त्येते मामेव प्रविशन्ति च। यतयः शान्तिपरमा यतात्मानो बुभुत्सवः ॥२४॥
कामक्रोधद्वेषमुक्ता निःसङ्गा वीतकल्मषाः। सत्त्वस्था निरहंकारा नित्यमध्यात्मकोविदाः ॥२५॥
मामेव सततं विप्राश्चिन्तयन्त उपासते। अहं संवर्तको ज्योतिरहं संवर्तकोऽनलः ॥२६॥
अहं संवर्तकः सूर्यस्त्वहं संवर्तकोऽनिलः। तारारूपाणि दृश्यन्ते यान्येतानि नभस्तले ॥२७॥
मम वै रोमकूपाणि विद्धि त्वं द्विजसत्तम। रत्नाकराः समुद्राश्च सर्व एव चतुर्दिशः ॥२८॥
वसनं शयनं चैव निलयं चैव विद्धि मे। कामः क्रोधश्च हर्षश्च भयं मोहस्तथैव च ॥२९॥
ममैव विद्धि रूपाणि सर्वाण्येतानि सत्तम। प्राप्नुवन्ति नरा विप्र यत्कृत्वा कर्म शोभनम् ॥३०॥
सत्यं दानं तपश्चोग्रमहिंसां सर्वजन्तुषु। मद्विधानेन विहिता मम देहविचारिणः ॥३१॥
मयाऽभिभूतविज्ञानाश्चेष्टयन्ति[1] न कामतः। सम्यग्वेदमधीयाना यजन्तो विविधैर्मखैः ॥३२॥
[2]शान्तात्मानो जितक्रोधाः प्राप्नुवन्ति द्विजातयः। प्राप्तुं शक्यो न चैवाहं नरैर्दुष्कृतकर्मभिः ॥३३॥
लोभाभिभूतैः कृपणैरनार्यैरकृतात्मभिः। तन्मां महाफलं विद्धि नराणां भावितात्मनाम् ॥३४॥
सुदुष्प्रापं विमूढानां मां कुयोगनिषेविणाम्। यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति सत्तम ॥३५॥

चरण हैं। ऋक्, यजुस्, साम और अथर्वण ये चारों वेद मुझसे उत्पन्न होते पुनः मुझमें प्रविष्ट हो जाते हैं॥२२-२३½॥ शान्ति के परम उपासक, संयमी, जिज्ञासु (ब्रह्मज्ञान के इच्छुक) यती एवं काम, क्रोध, द्वेष से दूर रहने वाले, अनासक्त, निष्पाप, सात्त्विक, अहंकार-रहित (परम विनीत) सर्वदा अध्यात्म (ज्ञान) के ही उपासक ब्राह्मण सर्वदा मेरा ही चिन्तन और मेरी ही उपासना किया करते हैं॥२४-२५½॥ आकाश मण्डल में तारागण के रूप में दिखायी पड़ने वाले संवर्तक (प्रलयकालीन) ज्योति, संवर्तक अग्नि, संवर्तक सूर्य और संवर्तक वायु मैं ही हूँ। द्विजवर्य! इन्हें मेरे ही रोम छिद्र जानो। चारों दिशाओं में फैले रत्न के भाण्डार इन समुद्रों को ही मेरा वस्त्र, शय्या और घर जानो॥२६-२८½॥ काम, क्रोध, हर्ष, भय, मोह, इन सब को भी मुनिश्रेष्ठ! मेरे ही रूप जानो॥२९½॥ विप्र! जिन शुभ कर्मों के अनुष्ठान से मनुष्य मुझे प्राप्त करते हैं वे भी मेरे ही रूप हैं। सत्य, दान, उग्र तपस्या, सब प्राणियों में अहिंसा की भावना करने वाले मनुष्य मेरे ही विधान से रचे गए हैं और मेरे ही शरीर में विचरण करते हैं॥३०-३१॥ वे मेरे द्वारा अभिभूत विज्ञान वाले होने के कारण ऐसी चेष्टा करते हैं न कि अपनी इच्छा से। सम्यक् रूप से वेद का अध्ययन करने वाले, विविध यज्ञों से यज्ञ करने वाले, शान्त चित्त वाले, क्रोध को अपने वश में करने वाले द्विजाति ही मुझे प्राप्त करते हैं॥३२½॥ बुरे काम करने वाले, लोभी, कृपण, अनार्य और स्वेच्छाचारी, उनके लिए मैं सर्वथा अप्राप्य हूँ॥३३½॥ शुद्ध हृदय वाले मनुष्यों के जीवन का (प्राप्य) महाफल मुझको जानो। विमूढ कुपथ निषेवी (असत्पथ पर चलने वाले) जनों से मैं अत्यन्त दुष्प्राप्य हूँ॥३४½॥ हे सज्जनाग्रणी! जब-जब धर्म की हानि, और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब मैं अवतीर्ण होता हूँ॥३५½॥ जब हिंसा में लिप्त

---

१ म ०न्ति मु कामिन। २ क जितमाना। ग यतात्मानो।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्। दैत्या हिंसानुरक्ताश्च अवध्याः सुरसत्तमैः ॥३६॥
राक्षसाश्चापि लोकेऽस्मिन्यदोत्पत्स्यन्ति दारुणाः। तदाऽहं सम्प्रसूयामि गृहेषु पुण्यकर्मणाम्[1] ॥३७॥
प्रविष्टो मानुषं देहं सर्वं प्रशमयाम्यहम्। सृष्ट्वा देवमनुष्यांश्च गन्धर्वोरगराक्षसान् ॥३८॥
स्थावराणि च भूतानि संहराम्यात्ममायया। कर्मकाले पुनर्देहमनुचिन्त्य सृजाम्यहम् ॥३९॥
आविश्य मानुषं देहं मर्यादाबन्धकारणात्। श्वेतः कृतयुगे धर्मः श्यामस्त्रेतायुगे मम ॥४०॥
रक्तो द्वापरमासाद्य कृष्णः कलियुगे तथा। त्रयो भागा ह्यधर्मस्य तस्मिन्काले भवन्ति च ॥४१॥
अन्तकाले च संप्राप्ते कालो भूत्वाऽतिदारुणः[2]। त्रैलोक्यं नाशयाम्येकः सर्वं स्थावरजङ्गमम् ॥४२॥
अहं त्रिधर्मा विश्वात्मा सर्वलोकसुखावहः। [3]अभिन्नः सर्वगोऽनन्तो हृषीकेश उरुक्रम ॥४३॥
कालचक्रं नयाम्येको ब्रह्मरूपं ममैव तत्। शमनं सर्वभूतानां सर्वभूतकृतोद्यमम् ॥४४॥
एवं प्रणिहितः सम्यङ्ममाऽऽत्मा मुनिसत्तम। सर्वभूतेषु विप्रेन्द्र न च मां वेत्ति कश्चन ॥४५॥
सर्वलोके च मां भक्ताः पूजयन्ति च सर्वशः। यच्च किंचित्त्वया प्राप्तं मयि क्लेशात्मकं द्विज ॥४६॥
सुखोदयाय तत्सर्वं श्रेयसे च तवानघ। यच्च किंचित्त्वया लोके दृष्टं स्थावरजङ्गमम् ॥४७॥
विहितः सर्व एवासौ मयाऽऽत्मा भूतभावनः। अहं नारायणो नाम शङ्खचक्रगदाधरः ॥४८॥

रहने वाले (हिंसक) दैत्य देवताओं से न मारे जा सकेंगे और इस लोक में दारुण, घोर राक्षस उत्पन्न होंगे तब मैं पुण्य कर्म करने वाले, सज्जनों के घर में जन्म लूंगा। ॥३६-३७॥ इस प्रकार मैं मनुष्य-देह में प्रविष्ट होकर सब कुछ शान्त करूँगा। देव, मनुष्य, गन्धर्व नाग तथा राक्षस स्थावर तथा सभी भूतों (प्राणियों) को उत्पन्न कर अपनी माया से मैं इनका पुनः संहार भी करता हूँ। काम के समय अर्थात् कार्य की आवश्यकता पड़ने पर मैं पुनः विचार कर शरीर धारण करता हूँ ॥३८-३९॥ इस प्रकार लोक मर्यादा की रक्षा के लिए मानव-शरीर में प्रवेश कर मैं सत्ययुग में श्वेत, त्रेता में श्याम, द्वापर आने पर रक्त और कलियुग में कृष्णवर्ण का स्वरूप धारण करता हूँ ॥४०½॥ उस काल में (कलि में) अधर्म के भी तीन भाग हो जाते हैं। प्रलय काल आ जाने पर मैं अतिभयंकर कालरूप होकर अकेले ही स्थावर-जंगमात्मक त्रिलोकी का नाश करता हूँ ॥४१-४२॥ मैं त्रिधर्मा (सत्त्व, रज, तम गुण वाला), विश्वात्मा (व्यापक), सम्पूर्ण लोक को सुख देने वाला, अभिन्न (एक), सर्वग, अनन्त, हृषीकेश (इन्द्रियों का स्वामी) उरुक्रम (शक्तिशाली विष्णु) हूँ ॥४३॥ अकेला ही कालचक्र का संचालन करता रहता हूँ। वह सम्पूर्ण भूतों को शान्त करने वाला, अखिल लोक के कल्याणार्थ यत्नशील ब्रह्मरूप भी मेरा ही है ॥४४॥ मुनिवर्य! सभी पदार्थों में मेरा आत्मा भलीभांति व्याप्त है फिर भी हे विप्रेन्द्र! मुझे कोई भी नहीं जान पाता ॥४५॥ सम्पूर्ण भुवन में भक्तजन सब प्रकार से मेरी पूजा करते हैं। द्विज! मेरे लिए जो कुछ तुमने कष्ट उठाया है, अनघ! वह सब तुम्हारे भाग्योदय और मंगल का कारण होगा। लोक में जो कुछ स्थावर, जंगम रूप से तुमने देखा है, सब मेरे द्वारा ही विहित है, मेरा ही भूत भावन (उत्पादक) रूप सर्वत्र व्याप्त है। मैं शङ्ख-चक्र-गदा-धारी नारायण हूँ ॥४६-४८॥ विप्रर्षे!

---

[1] क ख शुभकर्मणाम्। [2] क ०त्वा सुदा०। [3] क अग्निसू।

ुगानां विप्रर्षे सहस्रं परिवर्तते। तावत्स्वपिति विश्वात्मा सर्वविश्वानि मोहयन् ॥४९॥
सर्वमहं कालमिहाऽऽसे मुनिसत्तम। अशिशुः शिशुरूपेण यावद्ब्रह्मा न बुध्यते ॥५०॥
च दत्तो विप्रेन्द्र वरस्ते ब्रह्मरूपिणा[1]। असकृत्परितुष्टेन विप्रर्षिगणपूजित ॥५१॥
ाकार्णवं कृत्वा नष्टे स्थावरजङ्गमे। निर्गतोऽसि मयाऽज्ञातस्ततस्ते दर्शितं जगत् ॥५२॥
न्तरं शरीरस्य प्रविष्टोऽसि यदा मम। दृष्ट्वा लोकं समस्तं हि विस्मितो नावबुध्यसे ॥५३॥
ऽसि वक्त्राद्विप्रर्षे द्रुतं निःसारितो मया[2]। आख्यातस्ते मया चाऽऽत्मा दुर्ज्ञेयो[3] हि सुरासुरैः ॥५४॥
ःस भगवान्ब्रह्मा न बुध्येत महातपाः। तावत्त्वमिह विप्रर्षे विश्रब्धश्चर वै सुखम् ॥५५॥
विबुद्धे तस्मिंस्तु सर्वलोकपितामहे। एको भूतानि स्रक्ष्यामि शरीराणि द्विजोत्तम ॥५६॥
ाशं पृथिवीं ज्योतिर्वायुः सलिलमेव च। लोके यच्च भवेत्किंचिदिह स्थावरजङ्गमम् ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

ुक्त्वा तदा विप्राः पुनस्तं प्राह माधवः। पूर्णे युगसहस्रे तु मेघगम्भीरनिस्वनः ॥५८॥

श्रीभगवानुवाच

ब्रूहि यदर्थं मां स्तुतवान्परमार्थतः। वरं वृणीष्व यच्छ्रेष्ठं ददामि नचिरादहम्[4] ॥५९॥

तक चारों युग एक हजार बार व्यतीत होते हैं तब तक मैं विश्व को अपने वश में कर सोता रहता हूँ ॥४९॥
श्रेष्ठ! जब तक ब्रह्मा उत्पन्न नहीं होते तब तक बालक न होते हुए भी मैं बाल रूप में यहाँ विराजमान
ा ॥५०॥ विप्रेन्द्र! विप्रर्षिगणों से पूजित मुनि! ब्रह्म स्वरूप मैंने अत्यन्त प्रसन्न होकर तुमको यह वर
है। स्थावर-जंगम के नष्ट हो जाने पर जब सारी पृथ्वी समुद्रमय हो गई तब तुम मेरी आज्ञा से निर्गत हुए
जब तुम मेरे शरीर के भीतर प्रविष्ट हुए तब तुमने सारे विश्व को देखा, समस्त ब्रह्माण्ड को देखकर भी
आश्चर्यचकित हो कुछ जान न पाए ॥५१-५३॥ तदनन्तर विप्रर्षे! मेरे ही द्वारा तुम मुख से शीघ्र निकाले
। सुर, असुरों के द्वारा दुःख से जानने योग्य अपने स्वरूप को मैंने तुमसे कहा है ॥५४॥ इसलिए यावत् काल
त महातपस्वी ब्रह्मा प्रकट नहीं होते तब तक हे विप्रर्षे! तुम यहाँ सुखपूर्वक विश्रब्ध हो, स्वेच्छा से विचरण
॥५५॥ तदनन्तर सर्वलोक-पितामह ब्रह्मा के प्रकट हो जाने पर द्विजोत्तम! अकेला मैं सम्पूर्ण भूतों की
 करूँगा ॥५६॥ इस प्रकार युग-सहस्र बीत जाने पर आकाश, पृथ्वी, वायु, तेज, जल अथवा इस लोक में
कुछ स्थावर जंगम रहा, सब का निर्माण करूँगा ॥५७॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार कहने के बाद एक सहस्र युग बीत जाने पर फिर मेघ के समान गम्भीर वाणी वाले
व ने मार्कण्डेय से कहा—॥५८॥ हे मुने! परमार्थ रूप से जिस लिए तुमने मेरी स्तुति की है—वही,

---

१ ख ब्रह्मरूपिणे। २ ग मम। ३ ख दुर्गम्यश्च सु०। ४ ख स्वविचारतः।

आयुष्मानसि देवाना मद्भक्तोऽसि दृढव्रत । तेन त्वमसि विप्रेन्द्र पुनर्दीर्घायुराप्नुहि ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा वाणीं शुभा तस्य विलोक्य स तदा पुन । मूर्ध्ना निपत्य सहसा प्रणम्य पुनरब्रवीत् ॥६१॥

मार्कण्डेय उवाच

दृष्ट परं हि देवेश तव रूप द्विजोत्तम। मोहोऽद्य विगत सत्य त्वयि दृष्टे तु मे हरे ॥६२॥
एवमेवमह नाथ इच्छेय त्वत्प्रसादत । लोकाना च हितार्थाय नानाभावप्रशान्तये ॥६३॥
शैवभागवताना च वादार्थप्रतिषेधकम्। अस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये निर्मले पुरुषोत्तमे[1] ॥६४॥
शिवस्याऽऽयतन देव करोमि परम महत्। प्रतिष्ठेय तथा तत्र तव स्थाने च शकरम् ॥६५॥
ततो ज्ञास्यन्ति लोकेऽस्मिन्नेकमूर्तो हरीश्वरौ। प्रत्युवाच जगन्नाथ स पुनरत महामुनिम् ॥६६॥

श्रीभगवानुवाच

यदेतत्परम देव कारण भुवनेश्वरम्। लिङ्गमाराधनार्थाय नानाभावप्रशान्तये ॥६७॥
ममाऽऽदिष्टेन विप्रेन्द्र कुरु शीघ्र शिवालयम्। तत्प्रभावाच्छिवलोके तिष्ठ त्व च तयाऽक्षयम् ॥६८॥
शिवे सस्थापिते विप्र मम सस्थापन भवेत्। नाऽऽवयोरन्तर किंचिदेकभावौ द्विधा कृतौ ॥६९॥

वह श्रेष्ठ वर माग, मै तुम्हे शीघ्र ही प्रदान करूँगा। तुम देवताओ से भी अधिक दीर्घायु हो मेरे भक्त हो दृढव्रती हो। इसलिए विप्रवय ! तुम पुन दीर्घायु प्राप्त कर ॥५९ ६०॥

ब्रह्मा ने कहा—भगवान की इस मगलमयी वाणी को सुनकर पुन प्रसन्नता से उनकी ओर देख कर मुनि न चरणो पर सिर झुका कर प्रणाम करते हुए कहा—॥६१॥

मार्कण्डेय बोले—देवेश ! द्विजोत्तम ! मैंने तुम्हारा उत्कृष्ट स्वरूप देखा। हरे ! निश्चय ही तुम्हारे रूप-दर्शन से मेरा आन्तरिक मोह नष्ट हो गया। तुम्हारे प्रसाद से नाथ ! मैं ऐसा चाहता हूँ कि लोक हित की दृष्टि से भिन्न भिन्न भावनाओ (साम्प्रदायिकता) की शान्ति के लिए जिससे कि शैव और भागवतो की प्रतिद्वन्द्विता मिट जाय इस पवित्र निर्मल श्रेष्ठ पुरुषोत्तम क्षेत्र मे देव ! बृहत शिव मन्दिर का निर्माण करूँ और वहाँ तुम्हारे स्थान पर शकर की प्रतिष्ठा करूँ। ऐसा करने के उपरान्त इस ससार मे लोग समझेंगे कि शिव और हरि (विष्णु) एक रूप ही हैं। इतनी बातें सुन कर जगन्नाथ ने महामुनि से पुन कहा ॥६२–६६॥

श्री भगवान् बोले—विप्रेन्द्र ! जो ये उत्कृष्ट कारण स्वरूप भुवनेश्वर महादेव हैं उनके लिंग की आराधना के निमित्त विभिन्न भावो की शान्ति के लिए मेरे आदेश से शीघ्र ही शिव मन्दिर का निर्माण करो ॥६७½॥ इस सुकृति के प्रभाव से तुम शिवलोक मे अक्षय रूप से निवास करोगे। विप्र ! शिव की स्थापना से मेरी ही स्थापना होगी हम दोनो मे कोई अन्तर नही नाम्ना दो रूपो में विभक्त होते हुए भी हम लोग यथार्थत एक

---

[1] क ०त्तम। शि०।

यो रुद्रः स स्वयं विष्णुर्यो विष्णुः स महेश्वरः। उभयोरन्तरं नास्ति पवनाकाशयोरिव॥ ७०॥
मोहितो नाभिजानाति य एव गरुडध्वजः। वृषध्वजः स एवेति त्रिपुरघ्नं त्रिलोचनम्[1]॥७१॥
तव नामाङ्कितं तस्मात्कुरु विप्र शिवालयम्। उत्तरे देवदेवस्य कुरु तीर्थं सुशोभनम्॥७२॥
मार्कण्डेयह्रदो नाम नरलोकेषु विश्रुतः। भविष्यति द्विजश्रेष्ठ सर्वपापप्रणाशनः॥७३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा स तदा देवस्तत्रैवान्तरधीयत। मार्कण्डेयं मुनिश्रेष्ठाः सर्वव्यापी जनार्दनः॥७४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंम्भृषिसंवादे मार्कण्डेयस्य
श्रीभगवद्दर्शनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५६॥

अथ सप्तञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पञ्चतीर्थविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि पञ्चतीर्थविधिं द्विजा। यत्फलं स्नानदानेन देवताप्रेक्षणेन च॥१॥

ही हैं॥६८-६९॥ जो रुद्र वही स्वयं विष्णु और जो विष्णु वही स्वयं महेश्वर (शिव) हैं॥ दोनों में पवन और आकाश के समान कुछ भी अन्तर नहीं है॥७०॥ माया-मूढ व्यक्ति नहीं जानता है कि जो गरुडध्वज है वही त्रिपुर नाशक, त्रिलोचन वृषभध्वज (शिव) हैं॥७१॥ इसलिए विप्र! देव देव शिव के मन्दिर के उत्तर भाग में अपने नाम से अंकित एवं सुन्दर तीर्थ भी बनवाओ॥७२॥ हे द्विजश्रेष्ठ! इस लोक में सब पापों को दूर करने वाला वह तीर्थ 'मार्कण्डेयह्रद' नाम से विख्यात होगा॥७३॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसी बातें कहकर हे मुनिवर! सर्वव्यापी जनार्दन भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गए॥७४॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में मार्कण्डेय ऋषि का श्रीभगवद्दर्शन नामक छप्पनवाँ अध्याय समाप्त॥५६॥

अध्याय ५७

पचतीर्थ की विधि का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण! अब मैं पचतीर्थ करने की विधि, उन तीर्थों में स्नान, दान और देव दर्शन का

---

१ ख ग त्रिविक्रमम्।

मार्कण्डेयह्रदं गत्वा नरश्चोदङ्मुखः शुचिः। निमज्जेत्तत्र वारांस्त्रीनिमं मन्त्रमुदीरयेत्॥२॥
संसारसागरे मग्नं पापग्रस्तमचेतनम्। त्राहि मां भगनेत्रघ्न[1] त्रिपुरारे नमोऽस्तु ते॥३॥
नमः शिवाय शान्ताय सर्वपापहराय च। स्नानं करोमि देवेश मम नश्यतु पातकम्॥४॥
नाभिमात्रे जले स्नात्वा विधिवद्देवता ऋषीन्। तिलोदकेन [2]मतिमान्पितॄंश्चान्यांश्च तर्पयेत्॥५॥
स्नात्वा तथैव चाऽऽचम्य ततो गच्छेच्छिवालयम्। प्रविश्य देवतागारं कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम्॥६॥
मूलमन्त्रेण संपूज्य मार्कण्डेयस्य चेश्वरम्। अघोरेण च भो विप्राः प्रणिपत्य प्रसादयेत्॥७॥
त्रिलोचन नमस्तेऽस्तु नमस्ते शशिभूषण। त्राहि मां त्वं विरूपाक्ष महादेव नमोऽस्तु ते॥८॥
मार्कण्डेयह्रदे त्वेवं स्नात्वा[3] दृष्ट्वा च शंकरम्। दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः॥९॥
पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति। तत्र भुक्त्वा वरान्भोगान्यावदाभूतसंप्लवम्॥१०॥
इहलोकं समासाद्य भवेद्विप्रो बहुश्रुतः। शांकरं योगमासाद्य ततो मोक्षमवाप्नुयात्॥११॥
कल्पवृक्षं ततो गत्वा कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम्। पूजयेत्परया भक्त्या मन्त्रेणानेन तं वटम्॥१२॥
ओं नमो व्यक्तरूपाय महाप्रलयकारिणे। महद्रसोपविष्टाय न्यग्रोधाय नमोऽस्तु ते॥१३॥
अमरस्त्वं सदा कल्पे हरेश्चाऽऽयतनं वट। न्यग्रोध हर मे पापं कल्पवृक्ष नमोऽस्तु ते॥१४॥

फल बतला रहा हूं ॥१॥ मार्कण्डेय ह्रद में उत्तराभिमुख होकर, पवित्र भाव से तीन बार डुबकी लगा कर स्नान करने के बाद निम्नांकित मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए॥२॥ हे भगनेत्रघ्न, त्रिपुरारे, तुम्हें नमस्कार है। मैं भवसागर में निमज्जित पापलिप्त और ज्ञान शून्य हूं—मेरी रक्षा करो॥३॥ पापनाशन, शान्त शिव को नमस्कार है। हे देवेश! मैं स्नान कर रहा हूं, मेरे सभी पाप को आप नष्ट करें॥४॥ इस प्रकार नाभि पर्यन्त जल में स्नान कर बुद्धिमान् व्यक्ति तिल युक्त जल से देवता, ऋषि, पितरों आदि का यथाविधि तर्पण करे॥५॥ फिर आचमन करने के बाद शिवालय में जाकर तीन बार प्रदक्षिणा कर मूल मंत्र से मार्कण्डेय ऋषि के सहित शिव की पूजा करे। तदनन्तर शिर झुका कर इस अधोलिखित अघोर मंत्र से भगवान् शिव की स्तुति करे— हे त्रिलोचन! हे चन्द्रभूषण! आपको मेरा नमस्कार है, हे विरूपाक्ष! तुम मेरी रक्षा करो, महादेव! तुम्हें नमस्कार है॥६-८॥ इस प्रकार मार्कण्डेय ह्रद में स्नान और शंकर का दर्शन करने से मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त करता है॥९॥ वह सब पापों से निर्मुक्त हो कर शिवलोक में जाता है और वहाँ कल्पान्त तक दिव्य भोगों का भोग करता है॥१०॥ भोग समाप्त होने पर मृत्युलोक में बहुज्ञ, विद्वान्, ब्राह्मण के रूप में उत्पन्न होता है और शांकर योग का अभ्यास कर मोक्ष पद प्राप्त करता है॥११॥ स्नान पूजन कर चुकने के बाद कल्पवृक्ष (वट वृक्ष) के पास जाकर उसकी तीन परिक्रमा कर अनन्य भक्ति भावना से निम्नांकित मन्त्र से वट की पूजा करनी चाहिए॥१२॥ मन्त्र—'ओं, महाप्रलयकर, प्रत्यक्ष रूप वट वृक्ष को नमस्कार है महान् रस (अमृत) पर सर्वदा स्थित (अमृत पान करने वाले) न्यग्रोध (वट) को नमस्कार है॥१३॥ वट! तुम शाश्वत हो। तुम कल्पान्त में भी अमर हो,

---

१ ख ०भगघ्न त्रिपुरान्तक न०। २ ख ०न्पितृ-मातृश्च। ३ ख ०त्वा पश्यन्त श०।

भक्त्या प्रदक्षिणं कृत्वा नत्वा कल्पवटं नरः। सहसा मुच्यते पापाज्जीर्णत्वच इवोरगः॥१५॥
छायां तस्य समाक्रम्य कल्पवृक्षस्य भो द्विजाः। ब्रह्महत्यां नरो जह्यात्पापेष्वन्येषु का कथा॥१६॥
दृष्ट्वा कृष्णाङ्गसंभूतं ब्रह्मतेजोमयं परम्। न्यग्रोधाकृतिकं विष्णुं प्रणिपत्य च भो द्विजाः॥१७॥
राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं प्राप्नोति चाधिकम्। तथा स्ववंशमुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति॥१८॥
वैनतेयं नमस्कृत्य कृष्णस्य पुरतः स्थितम्। सर्वपापविनिर्मुक्तस्ततो विष्णुपुरं व्रजेत्॥१९॥
दृष्ट्वा वटं वैनतेयं यः पश्येत्पुरुषोत्तमम्। संकर्षणं सुभद्रां च स याति परमां गतिम्॥२०॥
प्रविश्याऽऽयतनं विष्णोः कृत्वा[1] तं त्रि[2] प्रदक्षिणम्। संकर्षणं स्वमन्त्रेण भक्त्याऽऽपूज्य प्रसादयेत्॥२१॥
नमस्ते हलधृग्राम[3] नमस्ते मुशलायुध। नमस्ते रेवतीकान्त नमस्ते भक्तवत्सल॥२२॥
नमस्ते बलिनां श्रेष्ठ नमस्ते धरणीधर। प्रलम्बारे नमस्तेऽस्तु त्राहि मां कृष्णपूर्वज॥२३॥
एवं प्रसाद्य चानन्तमजेयं त्रिदशार्चितम्। कैलासशिखराकारं चन्द्रात्कान्ततराननम्॥२४॥
नीलवस्त्रधरं देवं फणाविकटमस्तकम्। महाबलं हलधरं कुण्डलैकविभूषितम्॥२५॥
रौहिणेयं नरो भक्त्या[4] लभेदभिमतं फलम्। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥२६॥

तुम विष्णु के निवास-स्थान हो, न्यग्रोध! मेरे पापों को दूर करो, कल्प-वृक्ष! तुम्हें नमस्कार है॥१४॥ भक्ति-पूर्वक कल्पवृक्ष की प्रदक्षिणा कर नमस्कार करने से मनुष्य सब पापों से एकाएक उसी प्रकार मुक्त हो जाता है, जिस प्रकार सर्प अपने पुराने चर्म (केंचुली से)॥१५॥ द्विजगण! उस कल्पवृक्ष की छाया में बैठने से मनुष्य ब्रह्म-हत्या से भी मुक्त हो जाता है तो फिर अन्य पापों से मुक्त होने के विषय में कहना ही क्या है?॥१६॥ ब्राह्मण-गण! कृष्णाङ्ग से उत्पन्न, ब्रह्मतेज से व्याप्त, पर, न्यग्रोध की आकृति वाले विष्णु को प्रणाम कर मनुष्य राजसूय और अश्वमेध से भी अधिक फल प्राप्त करता है और अपने वंश का उद्धार कर स्वयं विष्णुलोक को प्राप्त करता है॥१७-१८॥ कृष्ण के अग्रभाग में स्थित गरुड को नमस्कार करने से मनुष्य सब पापों से विनिर्मुक्त हो विष्णु-पुर को जाता है॥१९॥ जो मनुष्य वट एवं विनतापुत्र गरुड का दर्शन कर पुरुषोत्तम, संकर्षण (बलभद्र) और सुभद्रा का दर्शन करता है, वह परमगति (मोक्ष) को प्राप्त करता है॥२०॥ विष्णु के मन्दिर में प्रवेश कर तीन बार परिक्रमा करने के बाद भगवान् संकर्षण की पूजा निम्नांकित मन्त्र से भक्तिपूर्वक करके उन्हें प्रसन्न करना चाहिए॥२१॥ मन्त्र—हे हलधर राम! तुम्हें मेरा नमस्कार है। मुशलायुध, रेवतीकान्त! हे भक्तवत्सल, तुम्हें नमस्कार है॥२२॥ बलशालियों में अग्रगण्य! धरणीधर! आपको नमस्कार है। हे प्रलम्ब-सूदन, कृष्णाग्रज! आपको नमस्कार है, मेरी रक्षा करें॥२३॥ इस प्रकार अनन्त, सर्वविजयी, देवों से पूजित, कैलाश-शिखर के समान शुभ्र आकार वाले, चन्द्रमा से भी अधिक रम्य मुखवाले, नीलवस्त्रधारी, शेषफण से सुशोभित विकट मस्तक वाले, एक कुण्डल से अलंकृत, महाबली, रोहिणीपुत्र हलधर का अनन्य भक्ति से प्रसन्न कर अपने मन चाहे फल को प्राप्त करता है। वह सब पापों से मुक्त हो कर शीघ्र ही विष्णुलोक को प्राप्त करता है॥२४-२६॥

---

१ ख. ०त्सानय प्र०। २ ख. हलधृताय। ३ ख. ०व पदादि०। ४ क. नत्वा।

आभूतसंप्लवं यावद्भुक्त्वा तत्र सुखं नरः[1]। पुण्यक्षयादिहाऽऽगत्य प्रवरे योगिनां कुले ॥२७॥
ब्राह्मणप्रवरो भूत्वा सर्वशास्त्रार्थपारगः। ज्ञानं तत्र समासाद्य मुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभाम्[2]॥२८॥
एवमभ्यर्च्य हलिनं ततः कृष्णं विचक्षणः। द्वादशाक्षरमन्त्रेण पूजयेत्सुसमाहितः[3]॥२९॥
द्विषट्कवर्णमन्त्रेण भक्त्या ये पुरुषोत्तमम्। पूजयन्ति सदा धीरास्ते मोक्षं प्राप्नुवन्ति वै॥३०॥
न तां गतिं सुरा यान्ति योगिनो नैव सोमपाः[4]। या गतिं यान्ति भो विप्रा द्वादशाक्षरतत्पराः[5]॥३१॥
तस्मात्तेनैव मन्त्रेण भक्त्या कृष्णं जगद्गुरुम्। संपूज्य गन्धपुष्पाद्यैः प्रणिपत्य प्रसादयेत्॥३२॥
जय कृष्ण जगन्नाथ जय सर्वाघनाशन[6]। जय चाणूरकेशिघ्न जय कंसनिषूदन[7]॥३३॥
जय पद्मपलाशाक्ष जय चक्रगदाधर। जय नीलाम्बुदश्याम जय सर्वसुखप्रद[8]॥३४॥
जय देव जगत्पूज्य जय संसारनाशन। जय लोकपते नाथ जय वाञ्छाफलप्रद॥३५॥
संसारसागरे घोरे[9] निःसारे दुःखफेनिले। क्रोधग्राहाकुले रौद्रे विषयोदकसंप्लवे॥३६॥
[10]नानारोगोर्मिकलिले मोहावर्तसुदुस्तरे। निमग्नोऽहं सुरश्रेष्ठ त्राहि मां पुरुषोत्तम॥३७॥
एवं प्रसाद्य देवेशं वरदं भक्तवत्सलम्। सर्वपापहरं देवं सर्वकामफलप्रदम्[11]॥३८॥

वहाँ प्रलय काल तक नाना दिव्य सुखों का भोग कर पुनः पुण्यक्षय होने पर इस मृत्यु लोक में आकर श्रेष्ठ योगी के वंश में उत्पन्न होता है॥२७॥ इस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मण हो कर, सम्पूर्ण शास्त्रों का पारगत विद्वान् हो जाता है और शास्त्राभ्यास के द्वारा ज्ञान प्राप्त कर दुर्लभ मुक्ति का अधिकारी हो जाता है ॥२८॥ हलधर की पूजा के बाद एकाग्रमन होकर द्वादशाक्षर मन्त्र से कृष्ण की विधिवत् पूजा करनी चाहिए॥२९॥ जो धीरमति सर्वदा द्वादशाक्षर मन्त्र से भक्तिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तम की पूजा करते हैं वे निश्चय ही मोक्ष लाभ करते हैं॥३०॥ विप्रगण! द्वादशाक्षर मन्त्र के जप में सर्वदा लीन रहने वाले जिस गति को प्राप्त करते हैं, उस गति को देवता, योगी तथा सोम-रस का पान करने वाले भी नहीं प्राप्त करते॥३१॥ इसलिए उसी मन्त्र से भक्तिपूर्वक जगद्गुरु कृष्ण का गन्ध, पुष्पाद्यादि द्वारा विधिवत् पूजन कर स्तुति से प्रसन्न करें॥३२॥ स्तुति—हे जगन्नाथ कृष्ण! तुम्हारी जय हो। हे सम्पूर्ण पापों के नाश करने वाले! चाणूर, केशी के मारने वाले, कंस प्राण हर! आपकी जय हो, जय हो॥३३॥ कमल-दल के समान आयत नेत्र वाले! जय हो, चक्र गदा धारण करने वाले! नीलमेघ के समान श्याम वर्ण वाले! सब को सुख देने वाले! (तुम्हारी) जय हो॥३४॥ जगत्पूज्य! संसार का संहार करने वाले देव! जय हो। अखिल लोक के स्वामी! अभिवाञ्छित फल के देने वाले नाथ! तुम्हारी जय हो॥३५॥ इस महाघोर, निःसार, दुःखरूपी फेन से परिपूर्ण, क्रोध-रूपी ग्राह से व्याप्त, भयंकर, विषयवासना-रूपी जल से भरे हुए, अनेक रोग रूपी तरंगों से क्षुब्ध, मोह के जलावर्त (भँवर) से पार करने में अति कठिन संसार रूपी सागर में मग्न, हे सुरश्रेष्ठ पुरुषोत्तम! मेरी रक्षा करो॥३६-३७॥ इस प्रकार स्तुति से वरदाता भक्तवत्सल, सभी पापों का

---

१ ग युधः। २ क निश्चितम्। ३ क ०तः। त्रिप०। ४ ख सामगाः। ५ क ०रचिन्तकाः। त०। ६ ख सर्ववित्रा०। ७ क कंसप्रमर्दन। ८ ख ०द देवदे०। ९ क ०रे दुःखसंतापप०। १० ग ०नावेगा०। ११ ख ०म्। योगिध्येयपदं विष्णुं प०।

पीनांस द्विभुजं कृष्णं पद्मपत्रायतेक्षणम्। महोरस्कं महाबाहुं पीतवस्त्रं शुभाननम्॥३९॥
शङ्खचक्रगदापाणिं मुकुटाङ्गदभूषणम्। सर्वलक्षणसंयुक्तं वनमालाविभूषितम्॥४०॥
दृष्ट्वा नरोऽञ्जलिं कृत्वा दण्डवत्प्रणिपत्य च। अश्वमेधसहस्राणां फलं प्राप्नोति वै द्विजाः॥४१॥
यत्फलं सर्वतीर्थेषु स्नाने दाने प्रकीर्तितम्। नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च॥४२॥
यत्फलं सर्वरत्नाद्यैरिष्टे बहुसुवर्णके। नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च॥४३॥
यत्फलं सर्ववेदेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम्। तत्फलं समवाप्नोति नरः कृष्णं प्रणम्य च॥४४॥
यत्फलं सर्वदानेन व्रतेन नियमेन च। नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च॥४५॥
तपोभिर्विविधैरुग्रैर्यत्फलं समुदाहृतम्। नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च॥४६॥
यत्फलं ब्रह्मचर्येण सम्यक्चीर्णेन तत्कृतम्। नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च॥४७॥
यत्फलं च गृहस्थस्य यथोक्ताचारवर्तिनः। नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च॥४८॥
यत्फलं वनवासेन वानप्रस्थस्य कीर्तितम्। नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च॥४९॥
संन्यासेन यथोक्तेन यत्फलं समुदाहृतम्। नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च॥५०॥
किं चात्र बहुनोक्तेन माहात्म्ये तस्य भो द्विजाः। दृष्ट्वा कृष्णं नरो भक्त्या मोक्षं प्राप्नोति दुर्लभम्॥५१॥

हरने वाले सम्पूर्ण संसार का त्राण देने वाले पुरुष रूप वाले, दो भुजा वाले, पद्म-पत्र के समान मनोहर नेत्र वाले, विशाल वक्ष, महाबाहु, पीत वस्त्रधारी, शुभानन, शंख, चक्र, गदा, पद्म से युक्त, मुकुट और केयूर से अलंकृत, सर्व लक्षण सम्पन्न, वनमाला से सुशोभित देवेश कृष्ण को प्रसन्न कर और उनका दर्शन कर मनुष्य करबद्ध साष्टांग दण्डवत् करे, तो द्विजगण! वह मनुष्य निश्चय ही सहस्र अश्वमेध का फल प्राप्त करता है॥३८-४१॥ सब तीर्थों में स्नान करने से, दान देने से जो फल कहे गये हैं, उन सब को मनुष्य कृष्ण का दर्शन और प्रणाम करने से प्राप्त करता है॥४२॥ जो फल सब प्रकार के रत्नों एवं प्रचुर सुवर्ण में यज्ञ करने पर प्राप्त होते हैं, मनुष्य उन सब फलों को कृष्ण के दर्शन और प्रणाम से प्राप्त कर लेता है॥४३॥ सकल वेद (के ज्ञान) तथा समस्त यज्ञ (के अनुष्ठान) से जो फल प्राप्त होता है उस फल को मनुष्य कृष्ण को प्रणाम करके प्राप्त कर लेता है॥४४॥ जो फल सब प्रकार के दान व्रत एवं संयम से प्राप्त होता है, उस फल को मनुष्य कृष्ण के दर्शन और प्रणाम से प्राप्त कर लेता है॥४५॥ विविध कठिन तपस्या से जो फल कहे गये हैं, वे सभी कृष्ण के दर्शन और प्रणाम करने से मनुष्य को प्राप्त होते हैं॥४६॥ भलीभाँति ब्रह्मचर्य-व्रत पालन और शास्त्रोक्त विधि से संन्यास ग्रहण करने से जो फल मिलते हैं वे सभी फल कृष्ण के दर्शन और प्रणाम से मिलते हैं॥४७॥ शास्त्रानुसार आचार-पालन करने वाले गृहस्थ को जो फल प्राप्त होते हैं, वे सब फल कृष्ण के दर्शन और उन्हें प्रणाम करने से प्राप्त हो जाते हैं। ॥४८॥ वन में निवास कर वानप्रस्थाश्रम के पालन से जो फल कहा गया है वह फल मनुष्य को कृष्ण के दर्शन और प्रणाम से प्राप्त होता है॥४९॥ शास्त्रोक्त विधि से संन्यास-पालन से जिन फलों की प्राप्ति का वर्णन किया गया है वे फल मनुष्य को कृष्ण के दर्शन और प्रणाम से अनायास प्राप्त हो जाते हैं॥५०॥ अथवा द्विजगण! कृष्ण दर्शन माहात्म्य के विषय में अधिक कहने से क्या लाभ, कृष्ण के दर्शन से मनुष्य दुर्लभ मोक्ष को भी प्राप्त कर

पापैर्विमुक्त शुद्धात्मा कल्पकोटिसमुद्भवै । धिया परमया युक्त सर्वै समुदितो[1] गुणै ॥५२॥
सर्वकामसमृद्धेन विमानेन सुवर्चसा । त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य नरो विष्णुपुर व्रजेत् ॥५३॥
तत्र कल्पशत यावद्भुक्त्वा भोगान्मनोरमान् । गन्धर्वाप्सरसै सार्धं यथा विष्णुश्चतुर्भुज ॥५४॥
च्युतस्तस्मादिहायातो विप्राणा प्रवरे कुले । [2]सर्वज्ञ [3]सर्ववेदी च जायते गतमत्सर ॥५५॥
स्वधर्मनिरत शान्तो[4]दाता भूतहिते रत । आसाद्य वैष्णव ज्ञान ततो मुक्तिमवाप्नुयात् ॥५६॥
[5]तत सपूज्य म त्रेण सुभद्रा भक्तवत्सलाम्[6] । प्रसादयेत्ततो विप्रा प्रणिपत्य कृताञ्जलि ॥५७॥
नमस्ते सर्वगे देवि नमस्ते शुभसौख्यदे । त्राहि मा पद्मपत्राक्षि कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥५८॥
एव प्रसाद्य ता देवीं जगद्धात्रीं जगद्धिताम् । बलदेवस्य भगिनीं सुभद्रा वरदा शिवाम् ॥५९॥
कामगेन विमानेन नरो विष्णुपुर व्रजेत । आभूतसप्लव यावत्क्रीडित्वा तत्र देववत् ॥६०॥
इह मानुषता प्राप्तो ब्राह्मणो वेदविद्भवेत् । प्राप्य योग हरेस्तत्र मोक्ष च लभते ध्रुवम् ॥६१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयभुऋषिसवादे कृष्णदर्शनमाहात्म्य
नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥५७॥

ला है ॥५१॥ कृष्ण-दर्शन के प्रभाव से मनुष्य करोडों कल्पों के सचित पापों से मुक्त होकर निर्मल हृदय हो जाता है वह सर्व गुण सम्पन्न बन जाता है और परम-श्री से युक्त हो जाता है ॥५२॥ अपने पुण्य प्रभाव से वह इक्कीस कुल परम्परा का उद्धार कर सब इच्छित पदार्थ से पूर्ण तेजोमय विमान पर आरूढ होकर विष्णु लोक प्राप्त करता है ॥५३॥ वहा सौ कल्प तक चतुर्भुज भगवान विष्णु के समान गधर्व और अप्सराओं के साथ मनोहर भोगों का भोग करता है ॥५४॥ पुन वहा से पुण्यक्षय होने पर च्युत होकर इस लोक में श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण करता है। यहाँ आकर वह सब शास्त्रों का ज्ञाता अनुभवी ईर्ष्यारहित अपने धर्म में निरत शान्त दानी और सब प्राणियों के हित में लगा रहता है। तदनन्तर भागवत ज्ञान को प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त करता है ॥५५ ५६॥ कृष्ण का इस प्रकार पूजा करने के बाद मनुष्य भक्तों पर पुत्रवत प्रेम करने वाली सुभद्रा जी की मन्त्र द्वारा पूजा कर हाथ जोड कर प्रणाम करे और इस स्तुति से उन्हें प्रसन्न करे ॥५७॥ स्तुति —हे सर्वव्यापिनि शुभ सौख्य प्रदान करने वाली देवि! तुम्हें नमस्कार है पद्मपत्राक्षि! मेरी रक्षा करो। कात्यायनि! आपको प्रणाम है ॥५८॥ इस प्रकार जगत का पालन करने वाली ससार का कल्याण करने वाली वरदायिनी मगलदायिनी बलदेव की भगिनी सुभद्रा की स्तुति और श्रद्धापूर्वक पूजन से प्रसन्न कर मनुष्य इच्छा-परिचालित विमान पर आरूढ हो कर विष्णुलोक को जाता है। वहाँ वह देवताओं के समान कल्प पर्यन्त विहार कर पुन मनुष्य लोक में आने पर मनुष्य योनि में वेदज्ञ ब्राह्मण होता है और भागवत ज्ञान की प्राप्ति कर निश्चय ही मोक्ष लाभ करता है ॥५९ ६१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में कृष्ण-दर्शन माहात्म्य नामक सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५७॥

---

१ ग प्रमुदितो। २ ख धर्म। ३ क ख सत्यवादी। ४ ख दान्तो। ५ ख ग ०त पूज्य स्वम०। ६ क भद्रकारिणीम ।

अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्याय

नरसिंहमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एवं दृष्ट्वा बलं कृष्णं सुभद्रां प्रणिपत्य च। धर्मं चार्थं च कामं च मोक्षं च लभते ध्रुवम्॥१॥
निष्क्रम्य देवतागारात्कृतकृत्यो भवेन्नरः। प्रणम्याऽऽयतनं पश्चादव्रजत्तत्र समाहितः॥२॥
इन्द्रनीलमयो विष्णुर्यत्राऽऽस्ते वालुकावृतः। अन्तर्धानगतं मत्वा ततो[१] विष्णुपुरं व्रजेत्॥३॥
सर्वदेवमयो योऽसौ हतवानसुरोत्तमम्। स आस्ते तत्र भो विप्राः सिंहार्धकृतविग्रहः॥४॥
भक्त्या दृष्ट्वा तु तं देवं प्रणम्य नरकेसरीम्। मुच्यते पातकैमर्त्यः समस्तैर्नात्र संशयः॥५॥
नरसिंहस्य ये भक्ता भवन्ति भुवि मानवाः। न तेषां दुष्कृतं किंचित्फलं स्याद्यद्यदीप्सितम्॥६॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नरसिंहं समाश्रयेत्। धर्मार्थकाममोक्षाणां फलं यस्मात्प्रयच्छति॥७॥

मुनय ऊचुः

माहात्म्यं नरसिंहस्य सुखदं[२] भुवि दुर्लभम्। यथा कथयसे देव तेन नो विस्मयो महान्॥८॥

अध्याय ५८

नरसिंह का माहात्म्य वर्णन

ब्रह्मा बोले—उपर्युक्त विधि से बलराम कृष्ण तथा सुभद्रा का दर्शन और प्रणाम करने से मनुष्य धर्म अर्थ काम और मोक्ष प्राप्त करता है यह ध्रुव है १ उस देवालय से निकलने पर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। इस इस प्रकार देव मन्दिर से निकल कर उसको प्रणाम कर तत्पश्चात उस स्थान पर अनन्य भाव से जाय जहाँ इन्द्रनीलमय विष्णु बालू की ढेरी में ढके हुए हैं वहाँ इस प्रकार बालूकामय भूमि में छिपे हुए भगवान् को प्रणाम करने से मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त करता है॥२ ३॥ विप्रगण! जिन सर्वदेवमय (सम्पूर्ण देवों के तेज से सम्पन्न) ने असुरोत्तम हिरण्य कश्यप को मारा व वहीं पर हैं जिनका आधा शरीर सिंह का है अर्थात जो नृसिंह कहे जाते हैं। उन नृसिंह भगवान को देख कर जो मर्त्य (मानव) भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है वह समस्त पापों से छूट जाता है इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं।४ ५। इस भूलोक में जो नरसिंहदेव के भक्त होते हैं उनके सभी पाप मिट जाते और वे मनचाहे फल को प्राप्त करते हैं ६ इसलिए मनुष्य प्रयत्न प्रकार से भगवान का आश्रय प्राप्त कर जिससे उसे धर्म अर्थ काम और मोक्ष की प्राप्ति हो। ७।

मुनियों ने कहा—देव! इस लोक में दुर्लभ और सुखद नरसिंह देव के माहात्म्य का जिस रूप में आपने

---

१ ख ०त्तमो वि०। २ ख० नरो। ३ क नरकेशरम्। ४ ख अनन्त। ग अयन्त।

प्रभावं तस्य देवस्य विस्तरेण जगत्पते[1]। श्रोतुमिच्छामहे ब्रूहि परं कौतूहलं हि नः॥९॥
यथा प्रसीदेद्देवोऽसौ नरसिंहो महाबलः। भक्तानामुपकाराय ब्रूहि देव नमोऽस्तु ते॥१०॥
प्रसादान्नरसिंहस्य या भवन्त्यत्र सिद्धयः। ब्रूहि ताः कुरु चास्माकं प्रसादं प्रपितामह॥११॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं तस्य भो विप्राः प्रभावं गदतो मम। अजितस्याप्रमेयस्य भुक्तिमुक्तिप्रदस्य च॥१२॥
कः शक्नोति गुणान्वक्तुं समस्तांस्तस्य भो द्विजाः। सिंहार्धकृतदेहस्य प्रवक्ष्यामि समासतः॥१३॥
याः काश्चित्सिद्धयश्चात्र श्रूयन्ते देवमानुषाः। प्रसादात्तस्य ताः सर्वाः सिध्यन्ति नात्र संशय॥१४॥
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले दिक्षु तोये[2] पुरे नगे। प्रसादात्तस्य देवस्य भवत्यव्याहता गतिः॥१५॥
असाध्यं तस्य देवस्य नास्त्यत्र सचराचरे। नरसिंहस्य भो विप्रा सदा भक्तानुकम्पिनः॥१६॥
विधानं तस्य वक्ष्यामि भक्तानामुपकारकम्। येन प्रसीदेच्चैवासौ सिंहार्धकृतविग्रहः॥१७॥
शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः कल्पराज सनातनम्। नरसिंहस्य[3] तत्त्वं च यन्न ज्ञात सुरासुरैः॥१८॥
शाकयावकमूलैस्तु फलपिण्याकसक्तुकैः। पयोभक्षेण विप्रेन्द्रा वर्तयेत्साधकोत्तमः[4]॥१९॥
कौशकौपीनवासाश्च ध्यानयुक्तो जितेन्द्रियः। अरण्ये विजने देशे पर्वते सिन्धुसगमे॥२०॥

वर्णन किया है, इससे हम लोगों को महान् विस्मय हो रहा है॥८॥ जगत्पते! उस देवता के प्रभाव को विस्तार-पूर्वक सुनना चाहते हैं, कहिए, हम लोगों को अत्यन्त उत्सुकता हो रही है॥९॥ देव! जिस प्रकार महाबली नरसिंह भगवान् प्रसन्न होते हैं; उसको भक्तों के उपकार के लिए कहिये, आपको हमारा नमस्कार है॥१०॥ नरसिंह की कृपा से जो सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, उनको कहिए। प्रपितामह! हम लोगों पर अनुग्रह कीजिए॥११॥

ब्रह्मा बोले—विप्रगण! उस अजित, अप्रमेय (जिसका यथार्थ ज्ञान न हो) भुक्ति और मुक्ति के देने वाले नृसिंह देव के प्रभाव को मैं कह रहा हूँ, तुम लोग ध्यानपूर्वक सुनो॥१२॥ द्विजगण! उस देवता के—जिसका आधा शरीर सिंह का है—समस्त गुणों का वर्णन कौन कर सकता है, इसलिए संक्षेप में ही कह रहा हूँ॥१३॥ इस संसार में जो कुछ सिद्धियाँ देवों या मनुष्यों में सुनी जाती हैं, वे सभी सिद्धियाँ उस देव की कृपा से प्राप्त होती हैं, इसमें सन्देह नहीं॥१४॥ उस देव की कृपा से स्वर्ग, मर्त्य, पाताल लोक तथा दिशाओं में, जल, पुर और पहाड़ों में सर्वत्र मनुष्य की अव्याहत गति हो जाती है॥१५॥ विप्रगण! सर्वदा भक्तजनों पर कृपा करने वाले, नरसिंह देव के लिए इस सचराचर जगत् में कुछ भी असाध्य अथवा अदेय नहीं है॥१६॥ मैं भक्तजनों के लिए उपकारक उन नियमों को कह रहा हूँ, जिनसे आधा सिंह का शरीर धारण करने वाले नृसिंह भगवान प्रसन्न होते हैं॥१७॥ मुनिवर! नरसिंह देव के उस सनातन, कल्पराज (कल्पान्त में भी विद्यमान रहने वाले अमृत) तत्त्व को सुनो, जो अब तक देव और असुरों से अज्ञात रहा है॥१८॥ विप्रवृन्द! पहले उत्तम साधक, शाक, यावक (अलक्त, अन्न विशेष), कन्द मूल, फल, पिण्याक (तिल से बना कोई भोज्य), सत्तू अथवा केवल दुग्धाहार पर निर्वाह करे,

---

१ ख. जगत्पते। २ क. तोयान्तरे न०। ३ क. ०स्य शास्त्रस्य य०। ४ ख. ०मः। कुश को०।

ऊपरे सिद्धक्षेत्रे च नरसिंहाश्रमे तथा। प्रतिष्ठाप्य स्वयं[1] वाऽपि पूजां कृत्वा विधानतः॥२१॥
द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य उपोष्य मुनिपुंगवाः। जपेल्लक्षाणि वै विंशन्मनसा संयतेन्द्रियः॥२२॥
उपपातकयुक्तश्च महापातकसंयुतः। मुक्तो भवेत्ततो विप्राः साधको नात्र संशयः॥२३॥
कृत्वा प्रदक्षिणं तत्र[2] नरसिंहं प्रपूजयेत्। पुष्पगन्धादिभिर्धूपैः प्रणम्य शिरसा प्रभुम्[4]॥२४॥
कर्पूरचन्दनाक्तानि जातीपुष्पाणि मस्तके। प्रदद्यान्नरसिंहस्य ततः सिद्धिः प्रजायते॥२५॥
भगवान्सर्वकार्येषु न क्वचित्प्रतिहन्यते। तेजः सोढुं न शक्ताः स्युर्ब्रह्मरुद्रादयः सुराः॥२६॥
किं पुनर्दानवा लोके सिद्धगन्धर्वमानुषाः। विद्याधरा यक्षगणाः सकिंनरमहोरगाः॥२७॥
मन्त्रं यानासुरान्हन्तुं जपन्त्यन्येऽन्यसाधकाः। ते सर्वे प्रलयं यान्ति दृष्ट्वाऽऽदित्याग्निवर्चसः॥२८॥
सकृज्जप्तं तु कवचं रक्षेत्सर्वमुपद्रवम्। द्विर्जप्तं कवचं दिव्यं रक्षते देवदानवात्॥२९॥
गन्धर्वाः किंनरा यक्षा विद्याधरमहोरगाः। भूताः पिशाचा रक्षांसि ये चान्ये परिपन्थिनः॥३०॥
त्रिर्जप्तं कवचं दिव्यमभेद्यं च सुरासुरैः। द्वादशाभ्यन्तरे चैव योजनाना द्विजोत्तमाः॥३१॥
रक्षते भगवान्देवो नरसिंहो महाबलः। ततो गत्वा बिलद्वारमुपोष्य रजनीत्रयम्॥३२॥

कौश अथवा कौपीन वस्त्र धारण करे, सर्वदा ध्यानपरायण और जितेन्द्रिय रहे फिर किसी वन, निर्जन प्रदेश, पर्वत, नदियों का संगम स्थान, ऊसर, सिद्ध क्षेत्र अथवा नृसिंह के मन्दिर में ही स्वयं नरसिंह भगवान् की मूर्ति स्थापित कर विधिपूर्वक पूजा करे॥१९-२१॥ मुनिपुंगव! वह साधक शुक्ल पक्ष की द्वादशी को निराहार व्रत रहे, इस प्रकार संयमपूर्वक वह बीस लक्ष मन्त्र का मानस जप करे॥२२॥ इस प्रकार साधक चाहे उपपातक से युक्त अथवा महापातक से युक्त क्यों न हो, मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं॥२३॥ जप के अनन्तर प्रदक्षिणा कर पुष्प, गन्ध, धूपादि से नरसिंह की पूजा करे॥२४॥ पुनः शिर झुकाकर प्रभु को प्रणाम कर कर्पूर-चन्दन में रंगे जाती पुष्प (जूही) को नरसिंह देव के मस्तक पर चढ़ाये। इस प्रकार नियमपूर्वक पूजन तथा जप से सिद्धि प्राप्त होती है॥२५॥ इस प्रकार का साधक सब कार्यों को करने में समर्थ हो जाता है, उसकी गति कहीं भी रोकी नहीं जा सकती, उसके तेज को ब्रह्मा, रुद्र आदि देवता सहने में असमर्थ हो जाते हैं तो उसके सामने इस लोक के दानव, सिद्ध, गन्धर्व, मनुष्य, विद्याधर और किन्नर, महानागों सहित यक्षों की क्या गणना॥२६-२७॥ अन्य विशिष्ट साधक जिन असुरों को मारने के अभिप्राय से मन्त्र का जप करते हैं, वे सभी असुर आदित्याग्नि के समान तेजस्वी उस साधक को देखकर ही नष्ट हो जाते हैं॥२८॥ एक बार नरसिंह-कवच का जप करने से सभी प्रकार के उपद्रवों से रक्षा होती है। दो बार जपा हुआ वह दिव्य कवच देव-दानवों से रक्षा करता है, सुर एवं असुरों से अभेद्य वह दिव्य कवच जब तीन बार जपा जाता है तब गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, विद्याधर, नाग, भूत, पिशाच, राक्षस तथा अन्य दूसरे विघ्न करने वालों से हे द्विजोत्तमवृन्द! महाबली भगवान् नरसिंह देव बारह योजन तक रक्षा करते हैं॥२९-३१॥ तदनन्तर बिल-द्वार के पास जाकर तीन रात्रि तक निराहार रह कर पलाश की लकड़ी से भगवान् अग्निदेव को प्रज्वलित कर मधु में डुबोई दो सौ पलाश की समिधा का वषट्कार मन्त्र से वह साधक उस

---

१ ख ग ०यं चापि। २ ग. तस्य। ३ क. ख. पुष्पग०। ४ क. पद्मभुम्।

पलाशकाष्ठैः प्रज्वाल्य भगवन्तं हुताशनम्। [1]पलाशसमिधस्तत्र जुहुयात्त्रिमधुप्लुता [2]॥३३॥
[3]द्वे शते द्विजशार्दूला[4] वषट्कारेण साधकः। ततो विवरद्वारं तु प्रकट जायते, क्षणात् ॥३४॥
ततो विशेत्तु निःशङ्कं[5] कवची विवरं बुध.। गच्छतः सकट तस्य तमोमोहश्च नश्यति॥३५॥
राजमार्गः सुविस्तीर्णो दृश्यते भ्रमराजि (ञ्चि)त[6]। नरसिंह स्मरंस्तत्र पातालं विशते द्विजा॥३६॥
गत्वा तत्र जपेत्तत्त्वं नरसिंहाख्यमव्ययम्। तत स्त्रीणा सहस्राणि वीणावादनकर्मणाम्॥३७॥
निर्गच्छन्ति पुरो विप्राः स्वागत ता वदन्ति च। प्रवेशयन्ति ता हस्ते गृहीत्वा [7]साधकेश्वरम्॥३८॥
ततो रसायनं दिव्यं पाययन्ति द्विजोत्तमाः। पीतमात्रे दिव्यदेहो जायते सुमहाबल.॥३९॥
[8]क्रीडते सह कन्याभिर्यावदाभूतसंप्लवम्। [9]भिन्नदेहोॢ वासुदेवेॢ लीयते॥ नात्र सशय.॥४०॥
यदा न रोचते वासस्तस्मान्निर्गच्छते पुन.। पट्टं शूलं च खड्ग च रोचना च मणि तथा॥४१॥
रस रसायन चैव पादुकाञ्जनमेव च। कृष्णाजिनं मुनिश्रेष्ठा[10] गुटिका[11] च मनोहराम्[12]॥४२॥
कमण्डलु चाक्षसूत्र यष्टि[13] सञ्जीवनीं तथा। सिद्धविद्या च शास्त्राणि गृहीत्वा साधकेश्वर॥४३॥
ज्वलद्वह्निस्फुलिङ्गोर्मिवेष्टितं त्रिशिख हृदि। सकृन्न्यस्तं दहेत्सर्वं वृजिन जन्मकोटिजम्[14]॥४४॥

प्रज्वलित अग्नि मे हवन करे॥३२-३३॥ विप्रवर! इतनी साधना करने के बाद उस विवर का द्वार उसी क्षण प्रकट हो जायगा॥३४॥ इसके अनन्तर वह कवचधारी मनीषी निःशंक भाव से उस बिल मे प्रवेश करे, उस विवर मे प्रवेश करने वाले साधक की सारी विपत्तियाँ और अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाते हैं॥३५॥ प्रवेश करने पर वहाँ भ्रमरावलियो से सुशोभित विस्तीर्ण राजपथ दिखाई देगा। द्विजगण! वह साधक भगवान् नरसिंह का स्मरण करते हुए पाताल मे प्रवेश करे॥३६॥ वहाँ जाकर अव्यय नरसिंह नामक मन्त्र तत्त्व का जप करे। जप के प्रभाव से वीणावादन करती हुई सहस्रो स्त्रियाँ उसके आगे उपस्थित हो जाती हैं और उस साधक-शिरोमणि का हाथ पकड कर विवर मे ले जाती हैं॥३७-३८॥ वहाँ ले जाकर उसको दिव्य रसायन पिलाती हैं, पीते ही वह साधक दिव्य शरीरधारी और बलशाली हो जाता है। वह भाग्यशाली कल्पान्त पर्यंत उन कन्याओ के साथ क्रीडा करता है तथा शरीर त्याग करने के बाद वासुदेव मे लीन हो जाता है, इसमे कोई सन्देह नही॥३९-४०॥ मुनिप्रवर! यदि उस साधक को वहाँ का निवास प्रिय नही जान पडे, तब भी वह साधक शिरोमणि पट्ट, शूल, खड्ग, रोचना (वंशलोचन या गोरोचन) मणि तथा रस (शोधित द्रव्य), रसायन पादुका, अंजन कृष्णमृगचर्म मनोहर गुटिका, कमण्डलु, अक्षसूत्र (रुद्राक्ष), सञ्जीवनी यष्टी (एक लकडी जो मरते को जिलाती है) सिद्ध विद्या और शास्त्रो को प्राप्त कर उस पाताल देश से निकलता है॥४१-४३॥ उस कवच का प्रभाव ऐसा है कि यदि जलती अग्नि की लपटो से वेष्टित कर उसको हृदय पर एक बार रखा जाय तो करोडो जन्म के पापो को जला देता है। विष

१ख ०मिधा तत्र। ग ०मिध तत्र। २क ०त्रिमंधु०। ३ख ग द्वे युते। ४क ०ला एकोनपञ्चाशत्तथा। त०। ५ख निःशङ्क'। ६ख भगवद्द्विजा। ७क ०धकोत्तमम्। ८ग ०ते शतर०। ९ग ग ०देह वा०। १०ख द्विजश्रेष्ठा। ११ग गुटिकां। १२ग मन शिलाम्। १३क विद्यां। १४क ०म्। देह न्यस्त कर न्यस्त हृन्यासप्तशते कृत०।

विषे न्यस्त विषं हन्यात्कुष्ठं हन्यात्तनौ स्थितम्। स्वदेहे भ्रूणहत्यादि कृत्वा दिव्येन शुध्यति।
'महाग्रहगृहीतेषु ज्वलमानं विचिन्तयेत्। 'हृदन्ते वै ततः शीघ्रं नश्येयुर्दारुणा ग्रहाः।
बालानां कण्ठके' बद्धं रक्षा भवति नित्यशः। गण्डपिण्डकलूतानां नाशनं' कुरुते ध्रुवम्।
व्याधिजाते समिद्भिश्च घृतक्षीरेण होमयेत्। त्रिसंध्यं मासमेकं तु सर्वरोगान्विनाशयेत्।
असाध्यं तु न पश्यामि त्रैलोक्ये सचराचरे। यां यां कामयते सिद्धिं तां तां प्राप्नोति स ध्रुवम्।
अष्टोत्तरशतं त्वेके पूजयित्वा मृगाधिपम्। मृत्तिकाः सप्त वल्मीके श्मशाने च चतुष्पथे।
रक्तचन्दनसमिश्रा गवा क्षीरेण लोडयेत्'। सिंहस्य प्रतिमां कृत्वा प्रमाणेन षडङ्गुलाम्॥
लिम्पेत्तया भूर्जपत्रे रोचनया समालिखेत्। नरसिंहस्य कण्ठे तु बद्ध्वा चैव हि मन्त्रवित्॥
जपेत्संख्याविहीनं तु पूजयित्वा जलाशये। यावत्सप्ताहमात्रं तु जपेत्संयमितेन्द्रियः॥
जलाकीर्णा मुहूर्तेन जायते सर्वमेदिनी। अथवा शुष्कवृक्षाग्रे नरसिंहं तु पूजयेत्॥
जप्त्वा चाष्टशतं तत्वं वर्षन्तं विनिवारयेत्। तमेवं पिञ्जके' बद्ध्वा भ्रामयेत्साधकोत्तमः॥
महावातो मुहूर्तेन आगच्छेन्नात्र संशय.। पुनश्च धारयेत्क्षिप्रं सप्तस (ज)प्तेन वारिणा॥
अथ तां प्रतिमां द्वारि निखनेद्यस्य साधकः। गोत्रोत्सादो भवेत्तस्य उद्धृते' चैव शान्तिदः॥

म स्थापित करने पर विष प्रभाव को नष्ट कर देता है और किसी कोढ़ी के शरीर पर रखने से कुष्ठ रोग को द
देता है। स्वय भ्रूण-हत्यादि पापो को करने वाला व्यक्ति अपने शरीर पर वह दिव्य कवच धारण करने से पा
हो, शुद्ध हो जाता है ॥४४-४५॥ महादुष्ट ग्रहो से पीडित व्यक्ति यदि अपने हृदय मे उस तेजोमय का स्मर
तो शीघ्र ही उसके दारुण ग्रह नष्ट हो जाते हैं॥४६॥ बालको के कण्ठ मे बाँधने से उनकी सर्वदा व्याधि
रक्षा होती है और गण्ड, पिण्डक, लूता आदि रोग निश्चय ही मिट जाते हैं॥४७॥ व्याधि उत्पन्न होने पर
की प्रतिष्ठा कर एक महीने तक समिधा, घी और दूध से तीनो काल—प्रात, मध्याह्न और सध्या—हवन
से सभी रोग विनष्ट हो जाते हैं॥४८॥ उस साधक के लिए इस चराचर युक्त त्रिभुवन मे कुछ भी असाध्य
देख रहा हूँ, वह तो जिन-जिन सिद्धियो की कामना करता है, निश्चय ही उन-उनको प्राप्त कर लेता है॥४९॥ मृ
(नृसिह) की एक सौ आठ बार पूजा कर, वल्मीक, श्मशान, चौराहे आदि से सप्त मृत्तिका ला कर, उसम
चन्दन मिलाय। पुन गो दुग्ध म उसको मिश्र कर छह अगुल प्रमाण की सिह की प्रतिमा बनाय॥५०-
भोजपत्र पर गोरोचन से शुद्ध कर नृसिहकवच लिख कर वह मन्त्रज्ञ उसको नरसिंह के कण्ठ म बाँधे॥५२॥ स
साधक उस मूर्ति को किसी जलाशय म स्थापित कर सप्ताह पर्यन्त पूजन कर बिना गणना किए
का जप कर॥५३॥ ऐसा करने से क्षण भर म पृथ्वी जल स परिपूर्ण हो जाती है अथवा यदि सूखे वृक्ष के
भाग पर नृसिह देव का पूजन और एक सौ आठ बार जप करे तो वृष्टि का निवारण हो जाता है॥५४॥
मूर्ति को रस्सी म बाँध कर घुमाने स क्षण भर म ही जोरो की आँधी आ जाती है, इसम कुछ भी सन्देह न
पुन उसको शीघ्र ही जल म सात बार डुबा देने से वह महावात शीघ्र ही शान्त भी हो जाता है॥५५-५६॥

१क ०हृदयीते। २ख तुल्ते। ३घ कापुके। ४क दामन। ५क रिपयेत्। ६क पिच्छके। ७ख, ०द्वै

तस्मात्तं मुनिशार्दूला भक्त्या संपूजयेत्सदा। मृगराजं महावीर्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥५८॥
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातयः ॥५९॥
संपूज्य तं सुरश्रेष्ठं भक्त्या सिंहवपुर्धरम्। मुच्यन्ते चाशुभैर्दुःखैर्जन्मकोटिसमुद्भवैः ॥६०॥
संपूज्य तं सुरश्रेष्ठं प्राप्नुवन्त्यभिवाञ्छितम्। देवत्वममरेशत्वं [1]गन्धर्वत्वं च भो द्विजाः ॥६१॥
यक्षविद्याधरत्वं च तथाऽन्यच्चाभिवाञ्छितम्। दृष्ट्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा सपूज्य [2]नरकेसरीम् ॥६२॥
प्राप्नुवन्ति नरा राज्यं स्वर्गं मोक्षं च दुर्लभम्। नरसिंहं नरो दृष्ट्वा लभेदभिमतं फलम् ॥६३॥
निर्मुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति। सकृद्दृष्ट्वा तु तं देवं भक्त्या सिंहवपुर्धरम् ॥६४॥
[3]मुच्यते चाशुभैर्दुःखैर्जन्मकोटिसमुद्भवैः। संग्रामे संकटे दुर्गे चोरव्याघ्रादिपीडिते ॥६५॥
कान्तारे प्राणसंदेहे विषवह्निजलेषु च। राजादिभ्यः समुद्रेभ्यो [4] ग्रहरोगादिपीडिते ॥६६॥
स्मृत्वा तं पुरुषः सर्वैं राजग्रामैर्विमुच्यते। सूर्योदये यथा नाशं तमोऽभ्येति महत्तरम् ॥६७॥
तथा संदर्शने तस्य विनाशं यान्त्युपद्रवा.। गुटिकाञ्जनपातालपादुके च रसायनम् ॥६८॥
नरसिंहे प्रसन्ने तु [5]प्राप्नोत्यन्यांश्च वाञ्छितान्[6]। यान्यान्कामानभिध्यायन्भजते नरकेसरीम् ॥६९॥

अनन्तर साधक यदि किसी के द्वार पर उसको खोद कर गाड दे, तो उसके वश का उच्चाटन हो जाय, उखाड देने से पुन वही प्रतिमा शान्तिप्रद हो जाती है ॥५७॥ इसलिए हे मुनिवर ! सर्वदा उस महापराक्रमी, सम्पूर्ण कामनाओ को पूर्ण करने वाले नरसिंह भगवान् की भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए, ऐसा करने से वह भक्त सब पापो से मुक्त होकर विष्णुपुर को प्राप्त करता है ॥५८½॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्रियाँ, शूद्र और चाण्डाल सभी उस सिंह शरीर धारण करने वाले देव को भक्ति से पूज कर करोडो जन्म के किए पापो से मुक्त हो जाते हैं ॥५९-६०॥ उस सुर श्रेष्ठ की पूजा कर द्विजो ! मनुष्य इच्छित देवपद, इन्द्रपद अथवा गन्धर्वपद को प्राप्त कर लेते है ॥६१॥ नरसिंह की पूजा, दर्शन, स्तुति और नमस्कार से मनुष्य, यक्ष, विद्याधर अथवा अन्य मन चाहे पद, राज्य, स्वर्ग और दुर्लभ मोक्ष को भी प्राप्त कर लेते है। नरसिंह का दर्शन कर मनुष्य अभिमत फल को प्राप्त कर अपने पापो से मुक्त हो विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥६२-६३ ॥ श्रद्धापूर्वक सिंह शरीरधारी देव को एक बार देख कर भी मनुष्य करोडो जन्म के पापो से अपने को मुक्त कर लेता है ॥६४½॥ सग्राम मे सकट या कठिनाइयाँ आ पडने पर, चोर, व्याघ्र आदि से कष्ट पाने के समय जगल मे, प्राण-सकट उपस्थित होने पर, विष, अग्नि, जल से भय होने पर राजा, समुद्र, ग्रह, रोगादि से पीडित होने पर उस नृसिंह का स्मरण कर मनुष्य उन सभी सकटो से इस प्रकार छूट जाता है जिस प्रकार सूर्योदय होने पर निविड अन्धकार से यह लोक ॥६५-६७॥ इसी प्रकार उसके दर्शन से सारे उपद्रव भी नष्ट हो जाते है। मनुष्य श्रीनृसिंह के प्रसन्न हो जाने पर गुटिका-अजन, पाताल-पादुका (वह खडाउँ जिसको पहन कर पाताल लोक मे मनुष्य चला जाता है), रसायन तथा अन्य मनोरथो को भी प्राप्त करता है। जिन जिन कामनाओ को हृदय मे रख कर मनुष्य नरकेसरी की

१ख सर्वज्ञत्व। २क ग ०न्यच्च प्रयच्छति। द०। ३क. ०केशवम्। ४क ०ते कल्मषैः सर्वैर्जं०। ५ख. समुद्रासे। ६ख ०त्यन्यच्च वा०। ७ख ०ञ्छितम्। मा०।

तांस्तान्कामानवाप्नोति नरो नास्त्यत्र संशयः। दृष्ट्वा तं देवदेवेशं भक्त्याऽऽपूज्य प्रणम्य च ॥७०॥
दशानामश्वमेधानां फलं दशगुणं लभेत्। पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तो गुणैः सर्वैरलंकृतः ॥७१॥
सर्वकामसमृद्धात्मा जरामरणवर्जितः। सौवर्णेन विमानेन किंकिणीजालमालिना ॥७२॥
सर्वकामसमृद्धेन कामगेन सुवर्चसा। तरुणादित्यवर्णेन मुक्ताहारावलम्बिना[1] ॥७३॥
दिव्यस्त्रीशतयुक्तेन दिव्यगन्धर्वनादिना[2]। कुलैकविंशमुद्धृत्य देववन्मुदितः सुखी ॥७४॥
स्तूयमानोऽप्सरोभिश्च विष्णुलोकं व्रजेन्नरः। भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्विष्णुलोके द्विजोत्तमाः ॥७५॥
गन्धर्वैरप्सरैर्युक्तः कृत्वा रूपं चतुर्भुजम्। मनोह्लादकरं सौख्यं यावदाभूतसंप्लवम् ॥७६॥
पुण्यक्षयादिहाऽऽयातः प्रवरे योगिनां कुले। चतुर्वेदी भवेद्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः ॥
वैष्णवं योगमास्थाय[3] ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥७७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभ्वृषिसंवादे नरसिंहमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

उपासना करता है, उन-उनको वह निःसन्देह प्राप्त करता है॥६८-६९३॥ उस देव-देवेश का दर्शन कर, भक्ति से उसका पूजन तथा प्रणाम कर मनुष्य दश अश्वमेध यज्ञ के दश गुने फल को (सौ अश्वमेध के बराबर) प्राप्त करता है। वह सब पापों से मुक्त हो सभी गुणों से विभूषित हो जाता है॥७०-७१॥ वह जरा मृत्यु से मुक्त हो सभी मनोरथों को प्राप्त कर लेता है, क्षुद्र घण्टिकाओं से युक्त, सभी इच्छित साधनों से सुसज्जित, तेजोमय, इच्छा-परिचालित स्वर्णमय, तरुण सूर्य के समान प्रकाशमान विमान पर आरूढ हो, मुक्ताहार से सुशोभित, दिव्य गान और वादन में निरत सैकड़ों स्वर्गाङ्गनाओं से घिरा, देवता के समान आनन्द मग्न और सुखी वह व्यक्ति अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करता हुआ विष्णुलोक को प्राप्त करता है, रास्ते में अप्सरायें उसकी स्तुति करती जाती हैं॥७२-७४३॥ द्विजवर! वहाँ गन्धर्व और अप्सराओं के साथ क्रीडा करता हुआ, मन को आनन्द और सुख देने वाले चतुर्भुज रूप को धारण कर कल्पान्त तक दिव्य भोगों का आस्वादन करता है। पुनः पुण्य क्षय होने पर इस मर्त्यलोक में पुनीत योगि कुल में जन्म लेकर वेद, वेदाङ्ग का पारदर्शी, चतुर्वेदपाठी विद्वान् ब्राह्मण होता है। तदनन्तर वैष्णव योग (भागवत ज्ञान) का अभ्यास कर मोक्ष-पदवी प्राप्त करता है॥७५-७७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण के अन्तर्गत स्वयम्भू और ऋषि के संवादप्रकरण में नरसिंह-माहात्म्य-वर्णन नामक अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त॥५८॥

१क ख ०हारविर०। २ख ग ०र्वनादि०। ३क ख ०मासाद्य त०।

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

श्वेतमाधवमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अनन्ताख्यं वासुदेवं दृष्ट्वा भक्त्या प्रणम्य च। सर्वपापविनिर्मुक्तो नरो याति परं पदम्॥१॥
मया चाऽऽराधितश्चासौ शक्रेण तदन्तरम्। विभीषणेन रामेण कस्तं नाऽऽराधयेत्पुमान्॥२॥
श्वेतगङ्गां नरः स्नात्वा यः पश्येच्छ्वेतमाधवम्। मत्स्याख्य माधवं चैव श्वेतद्वीपं स गच्छति॥३॥

मुनय ऊचुः

श्वेतमाधवमाहात्म्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः। विस्तरेण जगन्नाथ प्रतिमां तस्य वै हरेः॥४॥
तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये विख्याते जगतीतले[१]। श्वेताख्यं माधवं देवं कस्तं स्थापितवान्पुरा॥५॥

ब्रह्मोवाच

अभूत्कृतयुगे विप्राः श्वेतो नाम नृपो बली। मतिमान्धर्मविच्छूरः सत्यसंधो दृढव्रतः॥६॥
यस्य राज्ये तु वर्षाणां[२] सहस्रं दश मानवाः। भवन्त्यायुष्मन्तो लोका बालस्तस्मिन्न सीदति॥७॥
वर्तमाने तदा राज्ये किंचित्काले गते द्विजाः। [३]कपालगौतमो नाम ऋषि परमधार्मिकः[४]॥८॥

अध्याय ५६

श्वेतमाधव का महात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा बोले—मनुष्य अनन्त नामक वासुदेव का भक्तिपूर्वक दर्शन और प्रणाम करने से सब पापों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करता है। सर्वप्रथम मैंने इस वासुदेव की आराधना की तदनन्तर इन्द्र, विभीषण और राम ने। अतः कौन ऐसा मनुष्य है जो उस देव की आराधना न करेगा। जो मनुष्य श्वेत गंगा में स्नान कर श्वेतमाधव और मत्स्यमाधव का दर्शन करता है वह श्वेतद्वीप को प्राप्त करता है॥१-३॥

मुनिगण बोले—जगन्नाथ! श्वेतमाधव का माहात्म्य और उनकी प्रतिमा के विषय में विस्तारपूर्वक बतलाइए। उस पुनीत, जगतीतल पर प्रसिद्ध शुभक्षेत्र में सर्वप्रथम किसने श्वेतमाधव देव की स्थापना की॥४-५॥

ब्रह्मा बोले—विप्रगण! कृतयुग में श्वेत नाम का वशी, बुद्धिमान्, धर्मज्ञ, शूर, सत्यप्रेमी और दृढव्रती राजा हुआ। जिसके राज्य में मनुष्य दश हजार वर्ष आयु वाले होते थे, बालकों की मृत्यु नहीं होती थी। उस समय द्विजगण! उसके राज्यकाल के कुछ वर्ष बीत जाने पर परम धार्मिक और बुद्धिमान् कपालगौतम नामक ऋषि

१क ग पुरुषोत्तमे। २क. ०त। जीवन्ति तस्य राज्ये वै व०। ३क ०णा द०। ४ख ०ह्मोनको ना०।

सुतोऽस्याजातदन्तश्च मृत.' कालवशाद् द्विजा.। तमादाय ऋषिर्धीमान्नृपस्यान्तिकमानयत्॥९॥
दृष्ट्वैव नृपति सुतं कुमार गतचेतसम्। प्रतिज्ञामकरोद्विप्रा जीवनार्थं शिशोस्तदा॥१०॥

राजोवाच

यावद्बालमहं त्वेनं यमस्य सदने गतम्। नाऽऽनये सप्तरात्रेण चिता दीप्तां समारुहे॥११॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वाऽसितैः पद्मैः शतैर्दशशतादिकैं। सपूज्य च महादेव राजा विद्यां पुनर्जपेत् (?)॥१२॥
अतिभक्ति तु संचिन्त्य नृपस्य जगदीश्वर। सान्निध्यमगमत्तुष्टोऽस्मीत्युवाच सहोमया॥१३॥
श्रुत्वैवं गिरमीशस्य विलोक्य सहसा हरम्। भस्मदिग्धं विरूपाक्ष शरत्कुन्देन्दुवर्चसम्॥१४॥
शार्दूलचर्मवसनं शशाङ्काङ्कितमूर्धजम्। महीं निपत्य सहसा प्रणम्य स तदाऽब्रवीत्॥१५॥

श्वेत उवाच

कारुण्य यदि मे दृष्ट्वा प्रसन्नोऽसि प्रभो यदि। कालस्य वशमापन्नो बालको द्विजपुत्रकः॥१६॥
जीवत्वेष पुनर्बाल इत्येवं व्रतमाहितम्। अकस्माच्च मृतं बालं नियम्य भगवन्स्वयम्॥
यथोक्तायुष्यसयुक्त क्षेम कुरु महेश्वर। ॥१७॥

काल की प्रेरणा से मरे पुत्र को—जिसके अभी दांत भी नहीं निकले थे—लेकर उस राजा के पास आए। विप्रगण! राजा ने इस प्रकार उस समय से, गतप्राण बालक को देख कर उसको पुन जीवित कर देने की प्रतिज्ञा की॥९-१०॥

राजा ने कहा—यदि मैं सात दिन के भीतर यमलोक गए इस बालक को लौटा न लाऊँ तो जलती चिता मे प्रवेश कर भस्म हो जाऊँगा॥११॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार प्रतिज्ञा कर राजा शत सहस्र (एक लाख) नील कमलों से महादेव की पूजा कर पुन विद्या (मन्त्र) का जप करने लगा। जगदीश्वर शकर राजा की उस उत्कृष्ट भक्ति को देख कर अति प्रसन्न हुए और पार्वती के सहित नृपति के समीप आकर बोले—'मैं तुम पर प्रसन्न हूँ।" भगवान् शकर की ऐसी वाणी को सुन कर राजा ने अकस्मात् देखा कि शरीर पर भस्म लगाए, तीन नेत्र वाले, शरत्कालीन चन्द्रमा और कुन्द के समान शुभ्र, व्याघ्रचर्मधारी, भालचन्द्र शकर सामने खडे हैं, तुरन्त साष्टाग दण्डवत् किया और फिर उसने कहा—॥१२-१५॥

श्वेत ने कहा—प्रभो! यदि मुझको देख कर आपके हृदय मे करुणा उत्पन्न हुई है, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो 'यम के वश मे गया (मृत) यह ब्राह्मण-शिशु पुन जीवित हो जाय, ऐसी प्रतिज्ञा मैंने की है।' अकस्मात् मरे हुए इस बालक पर अनुग्रह कर इसे पूर्ववत् जीवित (दीर्घायु) कर दीजिए। महेश्वर! यही शुभ अनुग्रह कीजिए॥१६-१७॥

---

१ क ग ०त पञ्चशताब्दिक। त०। २ख ०येष सपुत्रो हि चि०। ३क ख राजवि०। ४ख ०नर्यजेत्। ५क ०न्नो जीवतु द्वि०। ६क. ०कः। आनयिष्ये पु०।

ब्रह्मोवाच

श्वेतस्यैतद्वचः श्रुत्वा मुदं प्राप हरस्तदा। कालमाज्ञापयामास सर्वभूतभयंकरम् ॥१८॥
नियम्य कालं दुर्धर्षं यमस्याऽऽज्ञाकरं द्विजाः। बालं सजीवयामास मृत्योर्मुखगतं पुनः ॥१९॥
कृत्वा क्षेम जगत्सर्वं मुनेः पुत्रं स त द्विजाः। देव्या सहोमया देवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥२०॥
एवं संजीवयामास मुनेः पुत्रं नृपोत्तमः ॥२१॥

मुनय ऊचुः

देवदेव जगन्नाथ त्रैलोक्यप्रभवाव्यय। ब्रूहि नः परम तथ्यं श्वेताख्यस्य च सांप्रतम् ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः सर्वसत्त्वहितावहम्[1]। प्रवक्ष्यामि यथातथ्यं यत्पृच्छथ ममानघाः ॥२३॥
माधवस्य च माहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम्। यच्छ्रुत्वाऽभिमतान्कामान्ध्रुव प्राप्नोति मानव ॥२४॥
श्रुतवान्पुविभि. पूर्वं माधवाख्यस्य भो द्विजाः। शृणुध्व ता कथां दिव्या भयशोकार्तिनाशिनीम् ॥२५॥
स कृत्वा राज्यमेकाग्र्य[2] वर्षाणां च सहस्रशः। विचार्य लौकिकान्धर्मान्वैदिकान्नियमास्तथा[3] ॥२६॥
केशवाराधने विप्रा[4] निश्चितं व्रतमास्थितः। स गत्वा परमं क्षेत्रं सागर[5] दक्षिणाश्रयम् ॥२७॥
तटे तस्मिञ्छुभे रम्ये[6] देशे कृष्णस्य चान्तिके। श्वेतोऽथ कारयामास प्रसाद शुभलक्षणम् ॥२८॥

ब्रह्मा बोले—राजा श्वेत की इस वाता को सुन कर शकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होने सब प्राणियो को भयभीत करने वाले काल को आज्ञा दी। यम देव के आज्ञाकारी दुर्धर्ष काल को वशीभूत कर मृत्यु के मुख म गए बालक को पुन जीवित कर दिया। इस प्रकार विप्रवृन्द ! शकर ने उस मुनि-पुत्र को जीवित कर सारे ससार का कल्याण किया। और देवी पार्वती के सहित वह वही पर अन्तर्हित हो गए ॥१८-२१॥

मुनियो ने कहा—हे त्रैलोक्य के आदिकारण, अव्यय, देवाधिदेव जगत्पते ! इस समय राजा श्वेत की परम रहस्यमयी बातें अविकल रूप से हम लोगो को बतलाइये ॥२२॥

ब्रह्मा बोले—हे निष्पाप मुनिवृन्द ! जो मुझसे पूछ रहे हो, उस सम्पूर्ण लोक के लिए उपकारक रहस्य को यथार्थ रूप से कह रहा हूँ, तुम लोग सुनो ॥२३॥ श्वेतमाधव का माहात्म्य अखिल पापो का नाशक है, जिसको सुन कर मनुष्य अपनी इष्ट कामनाओ का निश्चय ही प्राप्त करता है ॥२४॥ विप्रवृन्द ! प्राचीनकाल मे ऋषियो ने इस श्वेत माधव की कथा सुनी, उसी दिव्य, भय, शोक और पीडा को नष्ट करने वाली कथा को तुम लोग सुनो ॥२५॥ उस राजा श्वेत ने एकाग्र भाव से एक हजार वर्ष तक लोक-धर्म और वैदिक नियमो का यथावत् पालन करते हुए धर्मपूर्वक राज्य किया ॥२६॥ विप्रवृन्द ! राज्य-शासन के अनन्तर उसके मन मे भगवान् की आराधना का दृढ सकल्प उत्पन्न हुआ। इस विचार से दक्षिण दिशा मे पवित्र समुद्र के तट पर स्थित शुभ तीर्थ मे कृष्ण मन्दिर के समीप

१क ख ०ताद वै। प्र०। २क सर्व। ३क ०कान्विधिवत्तथा। ४ख मत्तो। ५क सादर। ६ख मनोज्ञ।

धन्वन्तरशत चैक देवदेवस्य दक्षिणे। तत श्वेतेन विप्रेन्द्रा श्वेतशङ्खमयेन च ॥२९॥
कृत स भगवाञ्छ्वेतो माधवश्चन्द्रसनिभ। प्रतिष्ठा विधिवच्चक्रे यथोद्दिष्टा स्वयतु स ॥३०॥
दत्त्वा दान द्विजातिभ्यो दीनानाथतपस्विनाम्। अथानन्तरतो राजा माधवस्य च सनिधौ ॥३१॥
महीं निपत्य सहसा ओकार द्वादशाक्षरम्। जपन्स मौनमास्थाय मासमेक समाधिना ॥३२॥
निराहारो महाभाग सम्यग्विष्णुपदे स्थित। जपान्ते स तु देवेश सस्तोतुमुपचक्रमे ॥३३॥

श्वेत उवाच

ओ नमो वासुदेवाय नम सकर्षणाय च। प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमो नारायणाय च ॥३४॥
नमोऽस्तु बहुरूपाय विश्वरूपाय वेधसे। निर्गुणायाप्रतर्क्याय शुचये शुक्लकर्मणे ॥३५॥
ओ नम पद्मनाभाय पद्मगर्भोद्भवाय च। नमोऽस्तु पद्मवर्णाय पद्महस्ताय ते नम ॥३६॥
ओ नम पुष्कराक्षाय सहस्राक्षाय[1] मीढुषे। नम सहस्रपादाय सहस्रभुज मन्यवे ॥३७॥
ओ नमोऽस्तु वराहाय वरदाय सुमेधसे। वरिष्ठाय[2] वरेण्याय[3] शरण्यायाच्युताय च ॥३८॥
ओं नमो बालरूपाय बालपद्मप्रभाय च। बालार्कसोमनेत्राय मुञ्जकेशाय धीमते ॥३९॥
केशवाय नमो नित्य नमो नारायणाय च। माधवाय वरिष्ठाय गोविन्दाय नमो नम ॥४०॥

ही परम मनोहर सौ धन्वन्तर (४०० हाथ) की नाप का उत्तम मंदिर बनवाया उसमे श्वेत पत्थर की चन्द्रमा के समान स्वच्छ भगवान श्वेतमाधव की विधिवत मूर्ति स्थापित का दान अनाथ और तपस्वी ब्राह्मणो का दान दिया ॥२७ ३०॥ इसके उपरान्त राजा ने माधव मूर्ति के समीप जाकर सहसा साष्टांग प्रणाम किया। वह एक मास तक मौन रह कर समाधिस्थ हो द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करता रहा। जप-काल मे वह महाभाग निराहार रह कर अपने मन को भलीभांति विष्णु के चरणो मे ही लगाये रहा। जप के उपरान्त वह श्रद्धा से देवेश की स्तुति करने लगा ॥३१ ३३॥

श्वेत ने कहा—ओ वासुदेव सकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध और नारायण को नमस्कार है ॥३४॥ बहुरूपधारी विश्वरूप निर्गुण तर्को से अगम्य पवित्र तथा शुभ कर्म करने वाले ब्रह्म को नमस्कार है ॥३५॥ पद्मनाभ कमल के गर्भ से उत्पन्न होने वाले तथा कमल के समान वर्ण और हस्त वाले प्रभु को नमस्कार है ॥३६॥ कमल के समान सहस्र नेत्र वाले कल्याणदाता को नमस्कार है। सहस्र चरण और भुजा वाले मन्यु (यज्ञ रूप) को नमस्कार है ॥३७॥ वरद सुन्दर प्रतिमा वाले श्रेष्ठ वरेण्य शरण्य और अच्युत भगवान् वराह को नमस्कार है ॥३८॥ बाल-रूप धारण करने वाले नवीन कमल के समान कान्ति वाले नवीन सूर्य और चन्द्रमा रूपी नेत्र तथा कोमल केश वाले भगवान को नमस्कार है ॥३९॥ केशव को नमस्कार है, नारायण को मेरा नित्य नमस्कार तथा वरिष्ठ माधव और गोविन्द

१ख ०श्वेतमा०। २ख ०नानो च त०। ३ख गजार मो०। ४क ख सर्वकर्मणाम्। ५ख ०यते नम। मे०। ६ख वसिष्ठा०। ७क ०थ वरदाया०।

ओं नमो विष्णवे नित्यं[1] देवाय[2] वसुरेतसे। मधुसूदनाय नमः [3]शुद्धायाशुधराय च ॥४१॥
[4]नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय नम. श्रीवत्सधारिणे। त्रिविक्रमाय च नमो [5]दिव्यपीताम्बराय च ॥४२॥
सृष्टिकर्त्रे नमस्तुभ्यं गोप्त्रे धात्रे[6] नमो नमः। नमोऽस्तु [7]गुणभूताय निर्गुणाय नमो नम ॥४३॥
नमो वामनरूपाय नमो वामनकर्मणे। नमो वामननेत्राय नमो वामनवाहिने ॥४४॥
[8]नमो रम्याय पूज्याय नमोऽस्त्वव्यक्तरूपिणे। अप्रतर्क्याय शुद्धाय नमो भयहराय च ॥४५॥
ससारार्णवपोताय प्रशान्ताय स्वरूपिणे। शिवाय सौम्यरूपाय [9]रुद्रायोत्तारणाय च ॥४६॥
भवभङ्गकृते चैव भवभोगप्रदाय च। भवसंघातरूपाय भवसृष्टिकृते नम ॥४७॥
ओं नमो दिव्यरूपाय सोमाग्निश्वसिताय च। [10]सोमसूर्यांशुकेशाय गोब्राह्मणहिताय च ॥४८॥
ओं नम ऋक्स्वरूपाय पदक्रमस्वरूपिणे। ऋक्स्तुताय नमस्तुभ्यं नम ऋक्साधनाय च ॥४९॥
ओं नमो यजुषा धात्रे यजूरूपधराय च। यजुर्याज्याय जुष्टाय यजुषा पतये नमः ॥५०॥
ओं नम श्रीपते देव श्रीधराय धराय च। श्रियः कान्ताय दान्ताय योगिचिन्त्याय योगिने ॥५१॥
ओं नम. सामरूपाय सामध्वनिवराय च। ओं नम सामसौम्याय सामयोगविदे नम ॥५२॥
साम्ने च सामगीताय ओं नम. सामधारिणे। सामयज्ञविदे चैव नमः सामकराय च ॥५३॥
नमस्त्वथर्वशिरसे नमोऽथर्वस्वरूपिणे। नमोऽस्त्वथर्वपादाय नमोऽथर्वकराय च ॥५४॥

को बार-बार नमस्कार है॥४०॥ विष्णु, वासुदेव देव को मेरा नित्य नमस्कार है, शुद्ध स्वरूप, तेजोमय मधुसूदन को नमस्कार है॥४१॥ अनन्त, सूक्ष्म, श्रीवत्सधारी, त्रिविक्रम, दिव्य पीत वस्त्र धारण करने वाले भगवान को नमस्कार है॥४२॥ सृष्टि, पालन और पोषण करने वाले, गुणभूत, निर्गुण ब्रह्म को बार-बार नमस्कार है॥४३॥ वामन रूप वामन कर्म, वामन नेत्र और वामन अश्व (यान) वाले वामन भगवान् को नमस्कार है॥४४॥ रम्य, पूज्य, अव्यक्त स्वरूप वाले, अप्रतर्क्य, शुद्ध और भय दूर करने वाले भगवान् को नमस्कार है॥४५॥ संसार रूपी सागर से पार करने के लिए पोत के समान, प्रशान्त रूप वाले, सौम्य रूप शिव, उद्धारकर्त्ता रुद्र, संसार का नाश करने वाले, संसार में सुखदाता, संसारव्यापी और सृष्टिकर्त्ता को नमस्कार है। दिव्य रूप वाले, सोम, अग्नि और वायु रूप में लोक में प्रसिद्ध साम और सूर्य की किरण रूपी केश वाले तथा गो ब्राह्मण के हितकारी ब्रह्म को नमस्कार है॥४६-४८॥ पद क्रम रूपवाले ऋग्वेद स्वरूप ऋचाओं से स्तुत, ऋग्वेद की साधना के परम लक्ष्य तुमको नमस्कार है॥४९॥ यजुर्वेद को धारण करने वाले फिर भी यजुरूपधारी यजुष से पूजित और सप्रेम वन्दित पालक ब्रह्म को नमस्कार है॥५०॥ श्रीपते! हे देव! आपको नमस्कार है, श्रीधर, लक्ष्मी के स्वामी, उदार, योगियों के द्वारा स्मृत और स्वयं भी योगी नारायण को नमस्कार है॥५१॥ साम स्वरूप साम की सौम्य ध्वनि से गेय, साम के समान मधुर और सामयोग के ज्ञाता, साम से गाए गए और सामवेदधारी, साम यज्ञ के ज्ञाता और साम के कर्त्ता को नमस्कार है॥५२ ५३॥ अथर्व शिर, अथर्व रूप वाले, अथर्व रूपी चरण वाले अथ च अथर्व के कर्त्ता के लिए

१ख तुभ्य। २क ०य सुररे०। ३ख ०द्धाय अजरा०। ४ख नम पी०। ५ख ०म्बरधरा०। ६क हर्त्रे। ख हन्त्रे। ७ख गुणयुक्ताय। ८क ख ०मोऽनन्ताय। ९ख घोररूपधराय। १०क ०सूर्याग्निके०।

ओं 'नमो वज्रशीर्षाय मधुकैटभघातिने। महोदधिजलस्थाय, वेदाहरणकारिणे॥५५॥
नमो 'दीप्तस्वरूपाय हृषीकेशाय वै नमः। नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय ते नमः॥५६॥
नारायण नमस्तुभ्यं नमो लोकहिताय च। ओं नमो मोहनाशाय भवभङ्गकराय च॥५७॥
गतिप्रदाय च नमो नमो बन्धहराय च। त्रैलोक्यतेजसां कर्त्रे नमस्तेजःस्वरूपिणे॥५८॥
योगीश्वराय' 'शुद्धाय' रामायोत्तरणाय च। सुखाय सुखनेत्राय नमः सुकृतधारिणे॥५९॥
वासुदेवाय वन्द्याय वामदेवाय वै नमः। देहिनां देहकर्त्रे च भेदभङ्गकराय च॥६०॥
देवैर्वन्दितदेहाय नमस्ते दिव्यमौलिने। नमो वासनिवासाय वासव्यवहराय च॥६१॥
ओं नमो वसुकर्त्रे च वसुवासप्रदाय' च। नमो यज्ञस्वरूपाय यज्ञेशाय च योगिने॥६२॥
यतियोगकरेशाय नमो यज्ञाङ्गधारिणे। सङ्कर्षणाय च नमः प्रलम्बमथनाय च॥६३॥
'मेघघोषस्वनोत्तीर्णवेगलाङ्गलधारिणे। नमोऽस्तु ज्ञानिनां ज्ञान नारायणपरायण॥६४॥
न मेऽस्ति त्वामृते बन्धुर्नरकोत्तारणे प्रभो। अतस्त्वां सर्वभावेन प्रणतो नतवत्सल॥६५॥
मलं यत्कायजं वाऽपि मानसं चैव केशव। न तस्यान्योऽस्ति देवेश क्षालकस्त्वामृतेऽच्युत॥६६॥
संसर्गाणि समस्तानि विहाय 'त्वामुपस्थितः'। सङ्गो मेऽस्तु त्वया सार्धमात्मलाभाय केशव॥६७॥
कष्टमापत्सुदुष्पारं संसारं वेद्मि केशव। तापत्रयपरिक्लिष्टस्तेन त्वां शरणं गतः॥६८॥

हमारा नमस्कार है॥५४॥ वज्र के समान सिर वाले, मधुकैटभ को मारने वाले एवं महान् समुद्र के जल में स्थित और वेदों के उद्धारकर्त्ता को नमस्कार है॥५५॥ परम प्रभामय हृषीकेश वासुदेव भगवान् तुमको मेरा नमस्कार है॥५६॥ नारायण! लोक हित करने वाले, मोहनाशक, भवभङ्गकारी आपको नमस्कार है॥५७॥ संसार को गति देने वाले, बाधाहारी को नमस्कार है, त्रिलोक को तेजोमय करने वाले, तेजस्वरूप भगवान् को नमस्कार है॥५८॥ योगीश्वर, शुद्ध लोक से उद्धार करने वाले राम को नमस्कार है, सुखद नेत्र वाले, सुखस्वरूप और सुकृत धारण करने वाले को नमस्कार है॥५९॥ वन्दनीय वासुदेव वामदेव, देहधारियों के स्रष्टा और भेदभाव को नष्ट करने वाले को नमस्कार है॥६०॥ देवताओं से वन्दित दिव्य मुकुट वाले, वास रूप, निवास रूप तथा वासव्यवहार को नमस्कार है॥६१॥ वसु (जल) की सृष्टि करने वाले, वसु का वास देने वाले, यज्ञ स्वरूप योगी और यज्ञपति को नमस्कार है॥६२॥ यति और योगियों के ईश यज्ञाङ्गधारी प्रलम्ब नामक असुर के मारने वाले सङ्कर्षण को नमस्कार है॥६३॥ मेघ ध्वनि से भी अधिक गम्भीर ध्वनि वाले, हल धारण करने वाले ज्ञानियों में ज्ञान रूप तथा नारायण-परायण को नमस्कार है॥६४॥ प्रभो! इस नरक से पार उतारने के लिए तुमसे बढ़ कर कोई मेरा सहायक नहीं है, अतः भक्त-वत्सल! मैं सब प्रकार से आपकी शरण में हूँ॥६५॥ देव! अच्युत! केशव! तुमको छोड़ कर शारीरिक और मानसिक पापों को धोने वाला दूसरा कोई नहीं है॥६६॥ केशव! मैं समस्त सम्बन्धों को त्याग कर तुम्हारे समीप आया हूँ इसलिए तुम्हारे साथ मेरा दृढ़ सम्बन्ध हो जाय जिससे आत्मज्ञान पा जाऊँ॥६७॥ केशव! कष्ट

१ग ०मो वज्रशी०। २ग दीप्तरव०। ३ग योगीश्वराय। ४ख ग शुद्धाय। ५ख ग ०य वामा०। ६ख दत्तवसुप्रदाय। ७ख ०भवदत्ता०। ग ०नदेवता०। ८ग ०मुपस्थितः। ९ख ग ०ऽतः। यतोऽस्तु मे त्व०।

एषणाभिर्जगत्सर्वं मोहितं मायया तव। आकर्षितं च लोभाद्यैरतस्त्वामहमाश्रित ॥६९॥
नास्ति किंचित्सुखं विष्णो संसारस्यस्य देहिनः। यथा यथा हि यज्ञेश त्वयि चेतः प्रवर्तते ॥७०॥
तथा फलविहीनं तु सुखमात्यन्तिकं लभेत्। नष्टो विवेकशून्योऽस्मि दृश्यते जगदातुरम् ॥७१॥
गोविन्द त्राहि संसारान्मामुद्धर्तुं त्वमर्हसि। मग्नस्य मोहसलिले निरुत्तारे भवार्णवे॥
उद्धर्ता पुण्डरीकाक्ष त्वामृतेऽन्यो न विद्यते ॥७२॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं स्तुतस्ततस्तेन राज्ञा श्वेतेन भो द्विजा[1]। तस्मिन्क्षेत्रवरे दिव्ये विख्याते पुरुषोत्तमे ॥७३॥
भक्ति तस्य तु सचिन्त्य देवदेवो जगद्गुरुः। आजगाम [2]नृपस्याग्रे सर्वदेवैर्वृतो हरिः ॥७४॥
नीलजीमूतसंकाश. पद्मपत्रायतेक्षणः। दधत्सुदर्शनं धीमान्कराग्रे दीप्तमण्डलम् ॥७५॥
क्षीरोदजलसंकाशो विमलश्चन्द्रसंनिभ। रराज वामहस्तेऽस्य पाञ्चजन्यो महाद्युति ॥७६॥
पक्षिराजध्वज श्रीमान्गदाशार्ङ्गासिधृक्प्रभु। उवाच साधु भो राजन्यस्य ते मतिरुत्तमा॥
यदिष्टं वर भद्रं ते प्रसन्नोऽस्मि तवानघ ॥७७॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वैव देवदेवस्य वाक्यं तत्परमामृतम्[3]। प्रणम्य शिरसोवाच श्वेतस्तद्गतमानस ॥७८॥

और आपत्तियो के कारण, दु ख से पार पाने योग्य इस ससार को भलीभाँति जानता हूँ। अब मैं त्रिविध ताप से सतप्त हो गया हूँ, इसलिए प्रभो! आपकी शरण आया हूँ ॥६८॥ तुम्हारी माया के कारण यह सारा ससार कामनाओ से मुग्ध, लिप्त और लोभ आदि से आकृष्ट है, अत मैं तुम्हारा आश्रित हूँ ॥६९॥ विष्णो! सांसारिक जीवो को कुछ भी सुख प्राप्त नही। यज्ञेश! ज्यो-ज्यो आप मे मनुष्य का चित्त लगता जाता है, त्यो-त्यो फलाकाक्षा रहित आत्यन्तिक सुख उसको मिलते जाते हैं। मैं ज्ञान शून्य और नष्ट-सा हूँ, यह सारा ससार व्याकुल दिखाई पड रहा है। गोविन्द! रक्षा करो। तुम्हीं ससार-सागर से मेरा उद्धार कर सकते हो। पुण्डरीकाक्ष! इस मोह रूपी जल से भरे, पार न करने योग्य ससार सागर म मग्न (डूबे हुए) मुझ जैसे के उद्धारक तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नही है ॥७०-७२॥

ब्रह्मा बोले—'विप्रवृन्द! उस दिव्य, प्रसिद्ध पुरुषोत्तम नामक पवित्र तीर्थ मे इस प्रकार राजा श्वेत ने भगवान् की स्तुति की। उसकी भक्ति से आकृष्ट होकर नील मेघ के समान कान्तिमान् कमल-पत्र के समान बडे और मनोहर नेत्र वाले, हस्ताग्र म प्रकाशमान सुदर्शन धारण किये निर्मल चन्द्रमा के समान कान्तिमान्, क्षीरसागर के जल के समान प्रभापूर्ण, बायें हाथ मे महातेजोमय पाञ्चजन्य शख धारण किये हुए गरुड के ऊपर आसीन तथा गदा, धनुष, खड्ग धारण किये हुये देवदेव जगद्गुरु हरि देवताओ के सहित राजा के पास आए और बोले—'राजन्! तुम धन्य हो, तुम्हारी उत्तम बुद्धि प्रशसनीय है। अनघ! अभीष्ट वर माँगो, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, ॥७३-७७॥

ब्रह्मा बोले—देवाधिदेव भगवान् की ऐसी परम सुधामयी वाणी को सुनकर राजा श्वेत ने नत-मस्तक हो प्रणाम करते हुए कहा—॥७८॥

१ख. ०स्यार्थे स०। २क. सर्वदेवमयो ह०। ३ख. ०माद्भुत०।

श्वेत उवाच

यद्यहं भगवन्भक्तः प्रयच्छ वरमुत्तमम्। आब्रह्मभवनादूर्ध्वं वैष्णवं पदमव्ययम् ॥७९॥
विमलं विरजं शुद्धं संसारासङ्गवर्जितम्। तत्पदं गन्तुमिच्छामि त्वत्प्रसादाज्जगत्पते ॥८०॥

श्रीभगवानुवाच

यत्पदं विबुधाः सर्वे मुनयः सिद्धयोगिनः। नाभिगच्छन्ति यद्रम्यं परं पदमनामयम् ॥८१॥
यास्यसि परमं स्थानं राज्यामृतमुपास्य च। सर्वांल्लोकानतिक्रम्य मम लोकं गमिष्यसि ॥८२॥
कीर्तिस्तवात्र राजेन्द्र त्रींल्लोकांश्च गमिष्यति। सानिध्यं मम चैवात्र सर्वदैव भविष्यति ॥८३॥
श्वेतगङ्गेति गास्यन्ति सर्वे ते देवदानवाः। कुशाग्रेणापि राजेन्द्र श्वेतगाङ्गेयमम्बु च ॥८४॥
स्पृष्ट्वा स्वर्गं गमिष्यन्ति मद्भक्ता ये समाहिताः। यस्त्विमां प्रतिमां गच्छेन्माधवाख्यां शशिप्रभाम् ॥८५॥
शङ्खगोक्षीरसकाशामशेषाघविनाशिनीम्। तां प्रणम्य सकृद्भक्त्या पुण्डरीकनिभेक्षणाम् ॥८६॥
विहाय सर्वलोकान्वै मम लोके महीयते। मन्वन्तराणि तत्रैव देवकन्याभिरावृतः ॥८७॥
गीयमानश्च मधुरं सिद्धगन्धर्वसेवितः। भुनक्ति विपुलान्भोगान्यथेष्टं मामकैः सह ॥८८॥
च्युतस्तस्मादिहाऽऽगत्य मनुष्यो ब्राह्मणो भवेत्। वेदवेदाङ्गविच्छ्रीमान्भोगवाञ्चिरजीवितः[1] ॥८९॥
गजाश्वरथयानाढ्यो [2]धनधान्यावृत. शुचिः। रूपवान्बहुभाग्यश्च[3] पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥९०॥

श्वेत बोले—भगवन्! यदि मैं तुम्हारा भक्त हूँ, तो मुझे यह उत्तम वर दो। जगत्पते! मैं तुम्हारे अनुग्रह से उस परम अव्यय वैष्णव पद को प्राप्त करना चाहता हूँ, जो ब्रह्मलोक से भी ऊपर, विमल, रजोगुण से रहित, शुद्ध और ससार के आकर्षण से परे हैं ॥७९-८०॥

श्री भगवान् बोले—सभी देवता, मुनि, सिद्ध और योगीजन भी जिस मनोहर, व्याधि-रहित परम पद को नहीं प्राप्त करते हैं, राज्य-सुख भोग कर भी तुम सब लोकों से परे मेरे उस परम स्थान एवं श्रेष्ठलोक को जाओगे ॥८१-८२॥ राजेन्द्र! तुम्हारी कीर्ति त्रिभुवन में फैलेगी और मेरा सर्वदा ही इस क्षेत्र में निवास रहेगा। इस जलोदधि को श्वेत गंगा, इस नाम से देव और दानव पुकारेंगे। राजेन्द्र! इस श्वेतगंगा के जल को कुशाग्र से भी छूकर मेरे एकान्त भक्त स्वर्ग प्राप्त करेंगे। जो शशि के समान कान्तिमती, शंख तथा गो दुग्ध के समान श्वेत, समस्त पापों को नष्ट करने वाली और मनोहर कमल के समान नेत्रवाली इस माधव की प्रतिमा के समीप जाता है एवं एक बार भी भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है वह भक्त सब लोकों को छोड़कर मेरे लोक में स्थान प्राप्त करता है और पूजित होता है ॥८३-८६½॥ वहाँ पर मन्वंतर पर्यन्त देव-कन्याओं के साथ रह कर मधुर गान का श्रवण करता है, सिद्ध गन्धर्व उसकी सेवा करते हैं और वह मेरे पार्षदों के साथ विपुल भोगों का यथेष्ट भोग करता है ॥८७-८८॥ पुन वहाँ से च्युत होकर इस लोक में ब्राह्मण कुल में जन्म लेता है वह वेद-वेदांग का ज्ञाता श्रीमान् चिरञ्जीवी, गज, अश्व, रथ, यान आदि वाहनों से सम्पन्न धन धान्य से समृद्ध, पवित्र, रूपवान्, भाग्यशाली और पुत्र-पौत्रादि वाला होता

---

१ ख० जीवन। ग०। २ ख ०नवांश्च पुन घ०। ३ ख ०मार्यश्च।

पुरुषोत्तमं पुनः प्राप्य वटमूलेऽथ सागरे। त्यक्त्वा देहं हरिं स्मृत्वा ततः शान्तपदं व्रजेत् ॥९१॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे श्वेतमाधवमाहात्म्यवर्णनं
नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

अथ षष्टितमोऽध्यायः

समुद्रस्नानविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

श्वेतमाधवमालोक्य समीपे मत्स्यमाधवम्। एकार्णवजले [१]पूर्वं [२]रोहितं रूपमास्थितम् ॥१॥
वेदाना [३]हरणार्थाय रसातलतले स्थितम्। चिन्तयित्वा क्षितिं सम्यक्तस्मिन्स्थाने प्रतिष्ठितम् ॥२॥
आद्यावतरणं रूपं माधवं मत्स्यरूपिणम्। प्रणम्य प्रणतो भूत्वा सर्वदुःखाद्विमुच्यते ॥३॥
प्रयाति परमं स्थानं यत्र देवो हरिः स्वयम्। काले पुनरिहाऽऽयातो राजा स्यात्पृथिवीतले ॥४॥
मत्समाधवमासाद्य दुराधर्षो भवेन्नरः। दाता भोक्ता भवेद्यज्वा वैष्णवः सत्यसंगरः ॥५॥

है ॥९०॥ तदुपरान्त पुरुषोत्तमतीर्थ में आकर सागर तट पर स्थित वट की छाया में भगवान् का स्मरण करता हुआ शरीर त्याग कर परम पद को प्राप्त करता है ॥९१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में श्वेतमाधव-माहात्म्य-वर्णन नामक उनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥५९॥

अध्याय ६०

समुद्र-स्नान की विधि का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—श्वेतमाधव का दर्शन कर समीप में ही स्थित उस मत्स्यमाधव को विनम्र भाव से प्रणाम करने पर मनुष्य सब दुःखों से छूट जाता है। पूर्वकाल में मत्स्यमाधव ने समुद्रमग्न पृथ्वी पर रोहित मत्स्य का रूप धारण किया था तथा वेदों का उद्धार करने के लिये वह रसातल में स्थित रहे और पृथ्वी को पुनः पूर्व स्थान पर प्रतिष्ठित किया था, यही भगवान् का मत्स्यरूप में प्रथम अवतार था। वह मनुष्य, जो मत्स्य को प्रणाम करता है वह उसी स्थान को प्राप्त करता है, जहाँ भगवान् विष्णु स्वयं निवास करते हैं। समय पर (सृष्टि काल में) वह पुनः इस मृत्युलोक में आकर राजा होता है। मनुष्य मत्स्यमाधव का दर्शन कर अत्यन्त पराक्रमी, अजेय, दानी, भोगी, यज्ञकर्ता, विष्णुभक्त और सत्यप्रेमी होता है लौकिक सुख-भोग के पश्चात् वैष्णव योग को पाकर मोक्ष प्राप्त

१क. ख. पूर्णं। २क. मोहितं। ३ख करणार्थाय।

योग प्राप्य हरे पश्चात्ततो मोक्षमवाप्नुयात्। मत्स्यमाधवमाहात्म्य मया सपरिकीर्तितम्।।
य दृष्ट्वा मुनिशार्दूला सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।।६।।

मुनय ऊचु:

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामो मार्जन वरुणालये। क्रियते स्नानदानादि तस्याशेषफल वद।।७।।

ब्रह्मोवाच

शृणुध्व मुनिशार्दूला मार्जनस्य यथाविधि। भक्त्या तु तन्मना भूत्वा सप्राप्य पुण्यमुत्तमम्।।८।।
मार्कण्डेयह्रदे स्नान पूर्वकाले [1]प्रशस्यते। चतुर्दश्या विशेषेण सर्वपापप्रणाशनम्।।९।।
तद्वत्स्नान समुद्रस्य सर्वकाल प्रशस्यते। पौर्णमास्या विशेषेण हयमेधफल लभेत्।।१०।।
मार्कण्डेय वट कृष्ण रौहिणेय महोदधिम्। इन्द्रद्युम्नसरश्चैव पञ्चतीर्थीविधि स्मृत (?) ।।११।।
पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य ज्येष्ठा ऋक्ष यदा भवेत्। तदा गच्छेद्विशेषेण तीर्थराज पर शुभम्।।१२।।
कायवाङ्मानसं शुद्धस्तद्भावो नान्यमानस । सर्वद्वद्वविनिर्मुक्तो वीतरागो विमत्सर ।।१३।।
कल्पवृक्षवट रम्य तत्र स्नात्वा जनार्दनम्। प्रदक्षिण प्रकुर्वीत त्रिवार सुसमाहित ।।१४।।
य दृष्ट्वा मुच्यते पापात्सप्तजन्मसमुद्भवात्। पुण्य चाऽऽप्नोति विपुल गतिमिष्टा च भो द्विजा ।।१५।।

करता है। मुनिवर ! मैंने मत्स्यमाधव का माहात्म्य कह दिया जिसका दशन कर मनुष्य सभी मनोरथो को प्राप्त करता है।।१ ६।।

मुनियो ने कहा—भगवन् ! अब हम लोग समुद्र मे स्नान करने की विधि स्नान दानादि करने का फल भलीभाति सुनना चाहते हैं कृपया सुनाइए ।।७।।

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर ! माजन की विधि और भक्तिपूर्वक अनन्य भाव से तीथ मे जाने से जो उत्तम पुण्य प्राप्त होता है उसे सुनिए।।८।।

माकण्डय ह्रद का प्रात कालीन स्नान पापनाशक होता है चतुदशी के दिन का स्नान तो विशेष रूप से सभी पापो को दूर करता है।।९।। उसी प्रकार यो तो सवदा समुद्र का स्नान प्रशस्त माना गया है परन्तु पूर्णिमा के दिन स्नान करने से विशेष रूप से अश्वमेध का फल प्राप्त होता है।।१०।। माकण्डय ह्रद कृष्ण वट रौहिणय महोदधि (सागर) इन्द्रद्युम्न सर—इन पाच तीर्थों के स्नान की विशेष विधि कही गई है।।११।। ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा यदि ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त हो तो उस दिन विशेष रूप से परम शुभ तीथराज की यात्रा करनी चाहिये।।१२।। वहाँ शरीर वाणी और मन से शुद्ध एव सभी प्रकार के आन्तरिक द्वन्द्व राग ईर्ष्या से मुक्त हो अनन्य मन और भावना से मनोहर कल्पवटवृक्ष के समीप स्नान कर एकाग्र हो जनादन की तीन बार प्रदक्षिणा करे।।१३ १४।। विप्रगण वहाँ पर जनादन भगवान का दशन कर मनुष्य अपने सात जन्म के पापो से छूट जाता है और अत्यन्त पुण्य तथा मनचाहे

१क. ०काल विशिष्यते।

तस्य नामानि वक्ष्यामि प्रमाणं च युगे युगे। यथासंख्यं च भो विप्राः कृतादिषु यथाक्रमम्॥१६॥
वटं वटेश्वरं [1]कृष्णं पुराणपुरुषं द्विजाः। वटस्यैतानि नामानि कीर्तितानि कृतादिषु॥१७॥
योजनं पादहीनं च योजनार्धं तदर्धकम्। प्रमाणं कल्पवृक्षस्य कृतादौ परिकीर्तितम्॥१८॥
[2]यथोक्तेन तु मन्त्रेण नमस्कृत्वा तु तं वटम्। दक्षिणाभिमुखो गच्छेद्धन्वन्तरशतत्रयम्॥१९॥
यत्रासौ दृश्यते विष्णुः[3] स्वर्गद्वारं मनोरमम्। सागराम्भ.[4]समाकृष्टं काष्ठं सर्वगुणान्वितम्॥२०॥
प्रणिपत्य ततस्तं भो परिपूज्य ततः पुनः। [5]मुच्यते सर्वरोगाद्यैस्तथा पापैर्ग्रहादिभि.॥२१॥
उग्रसेनं पुरा दृष्ट्वा स्वर्गद्वारेण [6]सागरम्। [7]गत्वाऽऽचम्य शुचिस्तत्र ध्यात्वा नारायणं परम्॥२२॥
न्यसेदष्टाक्षरं मन्त्रं पश्चाद्धस्तशरीरयोः। ॐ नमो नारायणायेति यं वदन्ति मनीषिणः॥२३॥
किं कार्यं बहुभिमन्त्रैर्मनोविभ्रमकारकैः। ॐ नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः॥२४॥
आपो नरस्य सूनुत्वान्नारा इतीह कीर्तिताः। विष्णोस्तास्त्वयनं[8] पूर्वं तेन नारायण. स्मृतः॥२५॥
नारायणपरा वेदा नारायणपरा द्विजाः। नारायणपरा यज्ञा नारायणपराः क्रियाः॥२६॥
नारायणपरा पृथ्वी नारायणपरं जलम्। नारायणपरो वह्निर्नारायणपरं नभः॥२७॥
नारायणपरो वायुर्नारायणपरं मनः। अहंकारश्च बुद्धिश्च उभे नारायणात्मके॥२८॥

फल को प्राप्त करता है॥१५॥ विप्रगण ! मैं उस वट के नाम युगानुरूप प्रमाण और कृतादि युगों के अनुसार संख्या क्रमपूर्वक कहूँगा, ध्यानपूर्वक सुनो। द्विजगण ! कृत आदि युगों में इस वट के वट, वटेश्वर, कृष्ण और पुराण पुरुष—ये नाम कहे गये हैं॥१६-१७॥ इस कल्पवृक्ष का प्रमाण एक योजन, पादोन योजन (तीन कोश) आधा (दो कोश) उसका आधा (एक कोश) क्रमशः कृत त्रेता, द्वापर और कलि में कहा गया है॥१८॥ यथोक्त मन्त्र से उस वट को नमस्कार कर दक्षिण की ओर तीन सौ धन्वन्तर (१२०० हाथ) पर्यन्त जाना चाहिए। जहाँ विष्णु मनोरम स्वर्गद्वार तथा समुद्र-जल के द्वारा लाया गया सर्वगुणसम्पन्न काष्ठ दिखाई देता है॥१९ २०॥ वहाँ पर भगवान् को नमस्कार और पुनः पूजन करने से मनुष्य सब प्रकार के रोग, पाप और ग्रह-पीडा से छूट जाता है॥२१॥ पहले उग्रसेन का दर्शन कर स्वर्ग द्वार से सागर के समीप जाकर, आचमन करके पवित्र हो जाय, फिर नारायण का स्मरण कर हाथ और शरीर पर 'ओ नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षर मन्त्र से न्यास करे। अन्य बहुत से भ्रम पैदा करने वाले मन्त्रों से कोई लाभ नही, यह ओ नमो नारायणाय मन्त्र ही सभी अर्थों का साधक है॥२२-२४॥ नर से उत्पन्न होने के कारण आप (जल) को 'नार' इस नाम से इस लोक में कहा गया है, वह पहले-पहल विष्णु का निवास-स्थान बना इसलिये विष्णु 'नारायण' इस नाम से विख्यात हुये॥२५॥ वेद द्विज, यज्ञादि सभी क्रियायें पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि वायु और मन सभी नारायण पर हैं, अर्थात् नारायण की उपासना में लीन और नारायण रूप हैं। अहंकार और बुद्धि दोनो नारायणात्मक हैं, भूत, भव्य, भविष्य और समस्त जीव नाम से प्रसिद्ध पदार्थ तथा स्थूल, सूक्ष्म पर ये सभी नारायणात्मक हैं॥२६-२९॥ शब्द, रस आदि सभी विषय, श्रोत्र (कान) आदि इन्द्रियाँ, प्रकृति—यहाँ तक कि पुरुष भी

१क पूर्वं। २ग पूर्वोक्तेन। ३क ग चिह्नं। ४ग ०माकीर्णं का०। ५ख ०ते दुष्टरोगैस्तु तथा।
६क सगतम्। ७क ०त्वा तत्र शुचिर्भूत्वा ध्या०। ८क ०स्तास्वय०।

भूतं भव्यं भविष्यं च यत्किचिज्जीवसंज्ञितम्। स्थूलं सूक्ष्मं परं चैव सर्वं नारायणात्मकम्॥२९॥
शब्दाद्या विषयाः सर्वे श्रोत्रादीनीन्द्रियाणि च। प्रकृतिः पुरुषश्चैव सर्वे नारायणात्मकाः॥३०॥
जले स्थले च पाताले स्वर्गलोकेऽम्बरे नगे। अवष्टभ्य इदं सर्वमास्ते नारायणः प्रभुः॥३१॥
किं चात्र बहुनोक्तेन जगदेतच्चराचरम्। ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं नारायणात्मकम्॥३२॥
नारायणात्परं किंचिन्नेह पश्यामि भो द्विजाः। तेन व्याप्तमिदं सर्वं दृश्यादृश्यं चराचरम्॥३३॥
आपो ह्यायतनं विष्णोः स च एवाम्भसां पतिः। तस्मादप्सु स्मरेन्नित्यं नारायणमघापहम्॥३४॥
स्नानकाले विशेषेण[1] चोपस्थाय जले शुचिः। स्मरेन्नारायणं ध्यायेद्धस्ते काये च विन्यसेत्॥३५॥
ओंकारं च नकारं च अङ्गुष्ठे हस्तयोर्न्यसेत्। शेषैः (षान्ह) स्तलं (ले) यावत्तर्जन्यादिषु विन्यसेत्॥३६॥
ओंकारं वामपादे तु नकारं दक्षिणे न्यसेत्। मोकारं वामकट्यां तु नाकारं दक्षिणे न्यसेत्॥३७॥
राकारं नाभिदेशे तु यकारं वामबाहुके। णाकारं दक्षिणे न्यस्य यकारं मूर्ध्नि विन्यसेत्॥३८॥
अधश्चोर्ध्वं च हृदये पार्श्वतः पृष्ठतोऽग्रतः। ध्यात्वा नारायणं पश्चादारभेत्कवचं बुधः॥३९॥
पूर्वे मां पातु गोविन्दो दक्षिणे मधुसूदनः। पश्चिमे श्रीधरो देवः केशवस्तु तथोत्तरे॥४०॥
पातु विष्णुस्तथाऽऽग्नेये नैर्ऋते माधवोऽव्ययः। वायव्ये तु हृषीकेशस्तथेशाने च वामनः॥४१॥
[2]भूतले पातु वाराहस्तथोर्ध्वे च त्रिविक्रमः। कृत्वैवं कवचं पश्चादात्मानं चिन्तयेत्ततः॥४२॥

नारायणात्मक है॥३०॥ जल, स्थल, पाताल, स्वर्ग, लोक, आकाश और पहाड़ सर्वत्र प्रभु नारायण व्यापक रूप से स्थित है॥३१॥ इस विषय में और अधिक क्या कहा जाय, यह सचराचर जगत् ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त सब कुछ नारायणात्मक है॥३२॥ द्विजगण! नारायण के अतिरिक्त कोई भी वस्तु यहाँ नहीं दिखाई दे रही है, यह सारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष चराचरात्मक जगत् उसी नारायण से व्याप्त है॥३३॥ विष्णु का जल ही निवास स्थान है वे ही जल के स्वामी हैं इसलिये जल में सर्वदा उस अघहर नारायण का स्मरण करना चाहिये॥३४॥ स्नान के समय तो विशेष रूप से जल में पवित्र भाव से स्थित होकर नारायण का स्मरण, ध्यान और हस्त तथा शरीर पर 'अग-न्यास करना चाहिये॥३५॥ पहले ओंकार और नकार को हाथों के अगूठे पर न्यास करे, शेष मन्त्रभाग से हस्त तल (हथेली) से लेकर तर्जनी आदि तक न्यास करना चाहिए॥३६॥ पुनः ओंकार को बायें और नकार को दाहिने चरण पर न्यस्त करे। मोकार को वाम तथा नाकार को दक्षिण कटि भाग पर स्थापित करे॥३७॥ इसी प्रकार णकार को नाभि-देश में, यकार को बाई भुजा पर, णकार को दाहिनी भुजा पर रखकर यकार को शिर भाग पर स्थापित करे। ॥३८॥ तदनन्तर अधः, ऊर्ध्व, हृदय, पार्श्व (बगल) पृष्ठ (पीछे) और अग्र भाग में नारायण का ध्यान कर विद्वान् आगे कहे हुये नारायण कवच का पाठ प्रारम्भ करे॥३९॥ गोविन्द पूर्व में, मधुसूदन दक्षिण में, श्रीधर पश्चिम में, इसी प्रकार उत्तर में केशव देव मेरी रक्षा करे॥४०॥ और अग्निकोण में विष्णु नैर्ऋत में अविनाशी माधव, वायव्य में हृषीकेश तथा ईशान में भगवान् वामन मेरी रक्षा करें॥४१॥ एवं भू-पृष्ठ पर वाराह तथा आकाश में त्रिविक्रम विष्णु मेरी रक्षा करें। मैं ही शंख, चक्र और गदाधारी भगवान् नारायण

१क ख ०ण वेदस्याप्यतन शु०। २ख सुतले।

अहं नारायणो देवः शङ्खचक्रगदाधरः। एवं ध्यात्वा तदाऽऽत्मानमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥४३॥
त्वमग्निर्द्विपदां नाथ रेतोधाः कामदीपनः। प्रधानः सर्वभूतानां जीवानां प्रभुरव्ययः ॥४४॥
अमृतस्यारणिस्त्वं हि देवयोनिरपां पते। वृजिनं हर मे सर्वं तीर्थराज नमोऽस्तु ते ॥४५॥
एवमुच्चार्य विधिवत्ततः स्नानं समाचरेत्। अन्यथा भो द्विजश्रेष्ठाः स्नानं तत्र न शस्यते ॥४६॥
कृत्वा तु वैदिकैर्मन्त्रैरभिषेकं च मार्जनम्। अन्तर्जले जपेत्पश्चात्त्रिरावृत्त्याऽघमर्षणम् ॥४७॥
हयमेधो यथा विप्राः सर्वपापहरः क्रतुः। तथाऽघमर्षणं चात्र सूक्तं सर्वाघनाशनम् ॥४८॥
उत्तीर्य वाससी धौते निर्मले परिधाय वै। प्राणानायम्य चाऽऽचम्य संध्यां चोपास्य भास्करम् ॥४९॥
उपतिष्ठेत्ततश्चोर्ध्वं क्षिप्त्वा पुष्पजलाञ्जलिम्। उपस्थायोर्ध्वबाहुश्च तल्लिङ्गैर्भास्करं ततः ॥५०॥
गायत्रीं पावनीं देवीं जपेदष्टोत्तरं शतम्। अन्यांश्च सौरमन्त्रांश्च जप्त्वा तिष्ठ समाहितः ॥५१॥
कृत्वा प्रदक्षिणं सूर्यं नमस्कृत्योपविश्य च। स्वाध्यायं प्राङ्मुखः कृत्वा तर्पयेद्दैवतान्यृषीन् ॥५२॥
मनुष्यांश्च पितॄंश्चान्यान्नामगोत्रेण मन्त्रवित्। तोयेन तिलमिश्रेण विधिवत्सुसमाहितः ॥५३॥
तर्पणं देवतानां च पूर्वं कृत्वा समाहितः। अधिकारी भवेत्पश्चात्पितॄणां तर्पणे द्विजः ॥५४॥
श्राद्धे हवनकाले च पाणिनैकेन निर्वपेत्। तर्पणे तूभयं कुर्यादेष एव विधिः सदा ॥५५॥

हूँ इस प्रकार नारायण रूप मे अपने को ध्यान मे रखकर इस आगे कहे हुए मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये ॥४३॥ हे नरनाथ! तुम अग्नि वीर्य धारण वाले और प्राणियो के हृदय मे काम को दीप्त करने वाले हो तुम सभी भूतो (जीव या पदार्थ) मे प्रधान और जीवो के अविनाशी प्रभु हो ॥४४॥ जल के स्वामी! तुम अमृत के निधान और देवयोनि हो तीर्थराज! मेरे सभी पापो को दूर करो तुम्हे मेरा नमस्कार है ॥४५॥ इस प्रकार मन्त्रोच्चारण कर विधिवत् स्नान करना चाहिये। विप्रवय! अन्यथा (अविधि से) समुद्र मे स्नान करने का कोई विशेष फल नही होता ॥४६॥ वैदिक मन्त्रो से अभिषेक और मार्जन करने के पश्चात् जल म डूबकर तीन बार अघमर्षण मन्त्र का जप करे ॥४७॥ ब्राह्मणो! जिस प्रकार अश्वमेघ सब पापो को नष्ट करनेवाला यज्ञ है उसी प्रकार इस लोक मे अघमर्षण सब पापो को नष्ट करने वाला सूक्त है ॥४८॥ जल से निकल कर स्वच्छ धुले उत्तरीय वस्त्र पहनकर प्राणायाम और आचमन कर विधिवत संध्योपासन करे। तदनन्तर पुष्पयुक्त जलाञ्जलि देकर खड होकर सूर्योपस्थान करे ऊर्ध्वबाहु हो पूर्व प्रकार से ही सूर्योपस्थान करने के बाद एकाग्रचित्त से पवित्र गायत्री देवी का एक सौ आठ बार और अन्य सूर्य-मन्त्रो का भी जप करे ॥४९ ५१॥ पुन सूर्य की प्रदक्षिणा तथा नमस्कार कर आसनस्थ हो पूर्व की ओर मुख कर स्वाध्याय करे। मन्त्रज्ञ मनुष्य स्वाध्याय के बाद तिलमिश्रित जल से विधिपूर्वक एकाग्र मन से देवताओ ऋषियो और नाम गोत्रपूर्वक मनुष्यो पितरो एव अन्य भूतो का तर्पण करे ॥५२ ५३॥ ब्राह्मण एकाग्र मन से देवतर्पण करने के बाद ही पितृतर्पण का अधिकारी होता है। श्राद्ध और हवन काल म एक हाथ से ही निर्वपन (श्राद्ध या हवन की क्रिया) करना चाहिये। तर्पण मे दोनो हाथो से क्रिया करे यही सनातन विधि है ॥५४

१क ख -द्विपता ना०। २ख ना च प्रमुख्यक। अ०। ३क ख ०य। यतस्तस्या०। ४क देव। ५ग मुनिश्रेष्ठा। ६क ०श्चान्मन्त्र चाप्यघ०। ७ख ०त्ततो विप्रा' श्वि०। ८क नर। ९क तपयेत। १०ख द्वितय।

अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु। 'तृप्यतामिति सिञ्चेत्तु नामगोत्रेण वाग्यतः॥५६॥
कायस्थैर्यस्तिलैर्मोहात्करोति पितृतर्पणम्। तर्पितास्तेन पितरस्त्वङ्मांसरुधिरास्थिभिः॥५७॥
अङ्गस्थैर्न तिलैः कुर्याद्देवतापितृतर्पणम्। रुधिरं तद्भवेत्तोय प्रदाता किल्बिषी भवेत्॥५८॥
भूम्यां यद्दीयते तोयं दाता चैव जले स्थितः। वृथा तन्मुनिशार्दूला नोपतिष्ठति कस्यचित्॥५९॥
स्थले स्थित्वा जले यस्तु प्रयच्छेदुदकं नरः। पितृणा नोपतिष्ठेत सलिलं तन्निरर्थकम्॥६०॥
उदके नोदकं कुर्यात्पितृभ्यश्च कदाचन। उत्तीर्य तु शुचौ देशे कुर्यादुदकतर्पणम्॥६१॥
नोदकेषु न पात्रेषु न क्रुद्धो नैकपाणिना। नोपतिष्ठति तत्तोयं यद्भूम्यां न प्रदीयते॥६२॥
पितृणामक्षयं स्थानं मही दत्ता मया द्विजाः। तस्मात्तत्रैव दातव्यं पितृणां प्रीतिमिच्छता॥६३॥
भूमिपृष्ठे समुत्पन्ना भूम्यां चैव च संस्थिताः। भूम्यां चैव लयं याता भूमौ दद्यात्ततो जलम्॥६४॥
आस्तीर्य च कुशान्साग्रांस्तानावाह्य स्वमन्त्रतः। प्राचीनाग्रेषु वै देवान्याम्याग्रेषु तथा पितॄन्॥६५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुवृषिसंवादे समुद्रस्नानविधिनिरूपणं नाम
षष्टितमोऽध्यायः॥६०॥

५५॥ अन्वारब्ध (बायें पैर को मोडकर बैठना) हो बायें हाथ से दाहिने हाथ मे जल गिराता हुआ वाणी का सयम कर नाम गोत्र का उल्लेख करता हुआ 'तृप्यताम्' इस मत्र से तर्पण करना चाहिये। जो मनुष्य शरीर पर तिल रख कर अज्ञान वश पितृतर्पण करता है वह अपने पितरो का मास, रुधिर और चर्म अस्थि से तर्पण करता है॥५६-५७॥ इसलिये शरीर पर रखे तिलो से कभी भी देव पितृ तर्पण नही करना चाहिये क्योकि तर्पण मे दिया वह जल रुधिर के समान होता और वह दाता पाप का भागी होता है॥५८॥ मुनिवय ! दाता द्वारा स्वय जल मे स्थित होकर भूमि पर दिया हुआ जल व्यर्थ जाता है वह किसी पितर या देव को प्राप्त नही होता॥५९॥ इसी प्रकार जो स्थल पर बैठ कर जल मे तर्पण जल गिराता है वह जल व्यर्थ हो जाता है, किसी पितर को प्राप्त नही होता॥६०॥ जल मे स्थित होकर जल मे कभी भी तर्पण नही करना चाहिये किन्तु जल से बाहर निकल कर पवित्र स्थान पर जल-तर्पण करना चाहिए॥६१॥ क्रुद्ध होकर, एक हाथ से, जल मे या किसी पात्र मे तर्पण जल नही गिराना चाहिये क्योकि वह जल जो पृथ्वी पर नही दिया जाता व्यर्थ जाता है किसी अभीष्ट उद्दिष्ट पितर या देवता को प्राप्त नही होता॥६२॥ हे द्विजगण ! मैंने पितरो को पृथ्वी ही अक्षय स्थान के रूप मे दी है इसलिये पितृप्रेमी व्यक्ति पितरो को प्रसन्न करने के लिये पृथ्वी पर ही तर्पण जल दे॥६३॥ पितर लोग इस भूपृष्ठ पर ही उत्पन्न हुये, भूमि पर ही रहे और अ त मे भूमि मे ही लीन भी हो गये इसलिये भूमि पर ही अग्रभागसहित कुशाओ को फैलाकर, उनका मन्त्रो से आवाहन कर पूर्वाग्रभाग मे देवताओ के लिये और दक्षिण भाग मे पितरो के लिये जल देना चाहिये॥६४ ६५॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे समुद्रस्नान विधि निरूपण नामक साठवाँ अध्याय समाप्त॥६०॥

१क. ख. ०ति वक्तव्य ना०। २ख ०य सम्यङ्मही।

अथैकषष्टितमोऽध्यायः

पूजाविधिकथनम्

ब्रह्मोवाच

देवान्पितृंस्तथा चान्यान्संतर्प्याऽऽचम्य वाग्यत । हस्तमात्रं चतुष्कोणं चतुर्द्वारं सुशोभनम् ॥१॥
पुरं विलिख्य[1] भो विप्रास्तीरे तस्य महोदधेः । मध्ये तत्र लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥२॥
एवं मण्डलमालिख्य पूजयेत्तत्र भो द्विजाः । अष्टाक्षरविधानेन नारायणमजं विभुम् ॥३॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि कायशोधनमुत्तमम् । [2]अकारं हृदये ध्यात्वा[3] चक्ररेखासमन्वितम्[4] ॥४॥
ज्वलन्तं त्रिशिखं चैव दहन्तं पापनाशनम् । [5]चन्द्रमण्डलमध्यस्थं [6]राकारं मूर्धिन चिन्तयेत् ॥५॥
[7]शुक्लवर्णं प्रवर्षन्तममृतं प्लावयन्महीम् । एवं निर्धूतपापस्तु [8]दिव्यदेहस्ततो भवेत् ॥६॥
अष्टाक्षरं ततो मन्त्रं न्यसेदेवाऽऽत्मनो बुधः । वामपादं समारभ्य क्रमशश्चैव विन्यसेत् ॥७॥
पञ्चाङ्गं वैष्णवं चैव चतुर्व्यूहं तथैव च । करशुद्धिं प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण साधकः ॥८॥
एकैकं चैव वर्णं तु अङ्गुलीषु पृथक्पृथक् । ओंकारं पृथिवीं शुक्लां वामपादे तु विन्यसेत् ॥९॥
नकारं [9]शाम्भवं श्यामो दक्षिणे तु व्यवस्थितम् । मोकारं कालमेवाऽऽहुर्वामकट्यां निधापयेत् ॥१०॥

अध्याय ६१

पूजा की विधि का निर्देश

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार देव पितर और मनुष्यों का तर्पण कर मौन हो आचमन कर विप्रगण उस महोदधि के तट पर एक हाथ लम्बा उतना ही चौड़ा एक सुन्दर चतुर्भुज क्षेत्र बनाये जिसके चारों ओर चार द्वार हों उसके मध्य में आठ पखुड़ियों वाला कमल बनाये। द्विजवृन्द ! ऐसा मण्डल बना कर उसमें अष्टाक्षर मन्त्र से अज, व्यापक नारायण की स्थापना कर पूजा करे ॥१ ३॥ अब इसके बाद उत्तम शरीर-शोधन की विधि बतला रहा हूँ। पहले हृदय में चक्र रेखा से युक्त आकार का जिसमें पापों को नष्ट करने वाले प्रज्वलित अग्नि का भी रूप हो—ध्यान करे और मस्तक में चन्द्रमण्डल के मध्य में स्थित शुक्ल वर्ण और अपनी अमृत-वर्षा से पृथ्वी को डुबाते या भरते हुए से 'रा' का ध्यान करे ॥४ ५½॥ इस प्रकार ध्यान करने से मनुष्य पापमुक्त और दिव्य देहवाला हो जाता है। तदुपरान्त विद्वान् मनुष्य अपने बायें पैर से आरम्भ कर क्रमशः अन्य अंगों में अष्टाक्षर मन्त्र से अङ्गन्यास करे ॥६ ७॥ वह साधक फिर वैष्णव पचाङग तथा चतुर्व्यूह और मूल मन्त्र से कर शुद्धि करे ॥८॥ अङ्गुलियों पर पृथक पृथक एक एक वर्ण का और बायें पैर पर शुक्ल वर्ण पृथिवी आकार का न्यास करे ॥९॥ दक्षिण

१ख विलिप्य। ग प्रलिप्य। २ग क्षकारं। ३ख ग चिन्त्य। ४ख ०रेफसं०। ५ख चतुर्मुण्ड०। ६क वकारं। ख चकारं। ७क रक्तवर्ण। ८ख ०व्यहस्तस्त०। ९क शोभनं।

नाकार 'सर्वबीज तु दक्षिणस्या व्यवस्थित । राकारस्तेज इत्याहुर्नाभिदेशे व्यवस्थित ॥११॥
वायव्योऽय यकारस्तु वामस्कन्धे समाश्रित । णाकार सर्वगो ज्ञेयो दक्षिणासे व्यवस्थित ॥
यकारोऽय शिरस्थश्च यत्र लोका प्रतिष्ठिता ॥१२॥

ॐ विष्णवे नम शिर । ॐ ज्वलनाय नम शिखा। ॐ विष्णवे नम कवचम्। ॐ विष्णव' नम' स्फुरण दिशोबन्धाय। ॐ हुफडस्त्रम'। ॐ शिरसि शुक्लो वासुदेव इति'। ॐ आ ललाटे 'रक्त सकर्षणो' गरुत्मान्वह्निस्तेज आदित्य इति'। ॐ आ ग्रीवाया पीत प्रद्युम्नो वायुमेघ'इति'। ॐ आं हृदये कृष्णोऽनिरुद्ध सर्वशक्तिसमन्वित इति। एव चतुर्व्यूहमात्मान कृत्वा तत कर्म समाचरेत् ॥१३॥

ममाग्रेऽवस्थितो विष्णु पृष्ठतश्चापि केशव । गोविन्दो दक्षिणे पार्श्वे वामे तु मधुसूदन.॥१४॥
''उपरिष्टात्तु वैकुण्ठो वाराह पृथिवीतल। अवान्तरदिशो यास्तु तासु सर्वासु माधव ॥१५॥
गच्छतस्तिष्ठतो वाऽपि जाग्रत स्वपतोऽपि वा। नरसिंहकृता गुप्तिर्वासुदेवमयो ह्यहम् ॥१६॥
एव विष्णुमयो भूत्वा तत कर्म समारभत्। यथा'' देहे तथा देवे सर्वतत्त्वानि योजयेत् ॥१७॥

पाद पर श्यामवण के शम्भु प्रतीक 'न' को स्थापित करे। 'मो' को काल ही कहा जाता है उसको वाम कटि प और सबके बीज रूप 'ना' को दक्षिण कटि पर स्थापित करे 'रा' को तेज कहा जाता है उसको नाभि प्रदेश मे वा प्रतीक 'य' को वायें कन्धे पर न्यस्त करे णकार को सर्वव्यापक जानना चाहिये। इसी प्रकार 'ण' को दाहिने क पर तथा 'य' को —जिसमे सब लोक प्रतिष्ठित हैं—शिर पर स्थापित करे ॥१० १२॥

पुन ॐ विष्णवे नम कहकर शिर ॐ ज्वलनाय नम कहकर शिखा ॐ विष्णवे नम कहकर कवच ॐ विष्णवे नम और हुँ फडस्त्रम कहकर नेत्र-स्पर्श और दिग्बन्ध करे। इसके पश्चात् ॐ शिरसि शुक्लो वासुदेव (शिर पर शुक्ल वासुदेव) ॐ अं ललाटे (ललाट पर) रक्त सकर्षणो गरुत्मान् वह्निस्तेज आदित्य ॐ आं ग्रीवाया (ग्रीवा मे) पीत प्रद्युम्न वायुमेघ ॐ आ हृदये कृष्णोऽनिरुद्ध सर्वशक्तिसमन्वित इन मन्त्रो से अपने को चतुर्व्यूह से सुरक्षित कर के बाद आगे कही विधि का अनुष्ठान करे ॥१३॥ मेरे अग्रभाग म विष्णु पीछे केशव दाहिने पार्श्व म गोवि बायें मधुसूदन ऊपर से वैकुण्ठ पृथिवी-तल पर भगवान वाराह सम्पूर्ण दिशाओ और अवान्तर दिशाओ (कोणो मे माधव रक्षा करें इसी प्रकार चलते बैठते जागते और सोते समय मेरी नृसिंह भगवान् के द्वारा रक्षा है अब मैं वासुदेवमय हो गया। इस प्रकार भावना स विष्णुमय होकर अग्रिम कर्म का प्रारम्भ करे और जि प्रकार शरीर पर सब तत्त्वो की योजना की उसी प्रकार देव पर (मण्डलस्थदेव पर) सम्पूर्ण तत्त्वो की योजना करे ॥१

---

१ ग पूर्वबीज। २ क ०वेस्फु०। ३ ख ०म स्फुरत्कारशि०। ग ०म क्षारक्षारशि०। ४ ०पण्मन्त्रम। ५ क ०नि। ए०। ख ०निल०। ६ ख ०णो वह्नि०। ७ क ०नि। आग्नि०। ख ०नि अग्री०। ८ ख ०मेघाभ्र इ०। ९ ग ०नि। अ ऊ हृ०। १० ग ०य हृष्टोनि०। ११ क ०पनिष्टनु वै० १२ ख ०पार्मनि त०।

ततश्चैव प्रकुर्वीत प्रोक्षण 'प्रणवेन तु। फट्कारान्त समुद्दिष्ट सर्वविघ्नहर शुभम्॥
'तत्रार्कचन्द्रवह्नीना मण्डलानि विचिन्तयेत्। पद्ममध्ये न्यसेद्विष्णु' पवनस्याम्बरस्य च॥
ततो विचिन्त्य हृदय ओकार ज्योतीरूपिणम्। कर्णिकाया समासीन ज्योतीरूप सनातनम्॥
अष्टाक्षर ततो मन्त्र विन्यसेच्च यथाक्रमम्। तेन व्यस्तसमस्तेन पूजन परम स्मृतम्॥
द्वादशाक्षरमन्त्रेण यजेद्देव सनातनम्। ततोऽवधार्य हृदये कर्णिकाया' बहिर्न्यसेत्॥
चतुर्भुज महासत्त्व सूर्यकोटिसमप्रभम्। चिन्तयित्वा महायोग ज्योतीरूप सनात
ततश्चाऽऽवाहयेन्मन्त्र क्रमेणाऽऽचिन्त्य मानसे ॥

आवाहनमन्त्र —मीनरूपो वराहश्च नरसिहोऽथ वामन। आयातु देवो मम नारायणोऽग्रत। ॐ नमो नारायणाय नम ॥

स्थापनमन्त्र '—कर्णिकाया सुपीठेऽत्र पद्मकल्पितमासनम्। सर्वसत्त्वहितार्थाय तिष्ठ मधुसूदन। ओ नमो नारायणाय नम ॥

अघमन्त्र —ॐ त्रैलोक्यपतीना' पतये' देवदेवाय हृषीकेशाय विष्णव नम। ओं नारायणाय नम ॥

१७॥ इतनी क्रिया के पश्चात् विघ्न विनाशक शुभ प्रणव से प्रारब्ध फट्कारान्त वाले मन्त्र (ॐ नमो नारा फट) प्रोक्षण (जल सिचन) करे॥१८॥ उस मण्डल मे सूय चन्द्र अग्नि वायु और आकाश के चक्र स्थापि पद्म के मध्य भाग म विष्णु की स्थापना करे॥१९॥ तदुपरान्त अपने हृदय म पद्मपत्र पर स्थित ज्योति सनातन ज्योतिमय ओकार का ध्यान कर क्रमपूवक अष्टाक्षर मन्त्र का विन्यास करे फिर उसी मन्त्र से अलग और समूहात्मक रूप म पूजन करना परम उत्कृष्ट कहा गया है॥२० २१॥ द्वादशाक्षर मन्त्र से सनातन दे पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार पूजन के बाद हृदय मे भगवान् का ध्यान और सनातन ज्योति रूप महायो स्मरण कर कर्णिका के बाहरी भाग म महापराक्रमी कोटि सूय के समान तेजस्वी चतुभुज भगवान की रु कर मन्त्रा का क्रमश मन मे ध्यान कर आवाहन करे॥२२ २३॥ आवाहन के मन्त्र– मीनरूप वराह न और वामन रूप धारण करने वाले वरदनारायण देव मेरे सम्मुख आयें। ॐ नमो नारायणाय नम ॥२४॥

स्थापन मन्त्र—इस सुन्दर कर्णिका के पीठ पर पद्म रूप मे कल्पित आसन पर हे मधुसूदन! अखिल के कल्याण के लिए तुम बठो। ॐ नमो नारायणाय नम ॥२५॥

अघमन्त्र—ॐ त्रिभुवनपति के भी पति देवदेव हृषीकेश विष्णु को नमस्कार है ॐ नमो नारायणाय नम।

१क प्रवणन। २ग प्रवरेण। क ०त्राथधच०। ३क ०द्विष्णुमवमस्यापरस्य तु। त०। ४ख ०या हरि ५ग ०त्र०। सुमेह० पादपीठ ते प०। ६क तैलामर्च्याय दे०। ७ख ०येऽर्च्याय दे०।

पाद्यमन्त्रः—ओं पाद्यं पादयोर्देव पद्मनाभ सनातन। विष्णो कमलपत्राक्ष गृहाण मधुसूदन। ओं नमो नारायणाय नमः ॥२७॥

मधुपर्कमन्त्र :—मधुपर्कं महादेव ब्रह्माद्यैः कल्पित तव। मया निवेदितं भक्त्या गृहाण पुरुषोत्तम। ओ नमो नारायणाय नम ॥२८॥

आचमनीयमन्त्र :—मन्दाकिन्या सित वारि सर्वपापहरं शिवम्। गृहाणाऽऽचमनीय त्वं मया भक्त्या निवेदितम्। ओ नमो नारायणाय नम. ॥२९॥

स्नानमन्त्र :—त्वमाप. पृथिवी चैव ज्योतिस्त्वं वायुरेव च। [1]लोकेश वृत्तिमात्रेण वारिणा स्नापयाम्यहम्। ओ नमो नारायणाय नमः ॥३०॥

वस्त्रमन्त्र :—देवतत्त्वसमायुक्त[2] यज्ञवर्णसमन्वित। स्वर्णवर्णप्रभे देव वाससी तव केशव। ओं नमो नारायणाय नम. ॥३१॥

विलेपनमन्त्र :—शरीरं ते न जानामि चेष्टां चैव च केशव। मया निवेदितो गन्ध. प्रतिगृह्य विलिप्यताम्। ओ नमो नारायणाय नमः ॥३२॥

उपवीतमन्त्र :—ऋग्यजु साममन्त्रेण त्रिवृतं पद्मयोनिना। सावित्रीग्रन्थिसंयुक्तमुपवीत [3]तवार्पये। ओ नमो नारायणाय नमः ॥३३॥

पाद्य मन्त्र—हे पद्मनाभ सनातन देव ! तुम्हारे चरणो पर पाद्य अर्पित कर रहा हूँ, कमलपत्राक्ष ! मधुसूदन ! विष्णो, ग्रहण करो, ॐ नमो नारायणाय नम ॥२७॥

मधुपर्क मन्त्र—महादेव ! ब्रह्मा आदि द्वारा कल्पित तुम्हारे इस मधुपर्क को मैं भक्तिपूर्वक अर्पित कर रहा हूँ, पुरुषोत्तम ! ग्रहण करो। ॐ नमो नारायणाय नम ॥२८॥

आचमनीय मन्त्र—इस सर्वपापहर शुभ मन्दाकिनी के जल को आचमन के लिये भक्तिपूर्वक अर्पित कर रहा हूँ, देव ! तुम ग्रहण करो। ॐ नमो नारायणाय नम ॥२९॥

स्नान मन्त्र—तुम जल, पृथिवी, और ज्योति रूप हो, तुम्ही वायु हो, फिर भी लोकपते ! केवल औपचारिक रूप से जल से स्नान करा रहा हूँ, ॐ नमो नारायणाय नम ॥३०॥

वस्त्र मन्त्र—देव-तत्त्व से युक्त यज्ञवर्ण से समन्वित देव ! केशव ! ये तुम्हारे लिये स्वर्णवर्ण के वस्त्र हैं। ॐ नमो नारायणाय नम ॥३१॥

विलेपन मन्त्र—केशव ! तुम्हारे शरीर को नही जानता न तो तुम्हारी इच्छाओ को ही जानता हूँ, पुनरपि यह सुगन्धित लेप अर्पित कर रहा हूँ, इसको ग्रहण कर अपने शरीर पर लगा लो। ॐ नमो नारायणाय नम ॥३२॥

यज्ञोपवीत मन्त्र—पद्मयोनि ब्रह्मा द्वारा ऋक्, यजु और सामवेद के मन्त्रो से तीन बार लपेटा हुआ और सावित्री द्वारा बनाई गाँठो से युक्त इस यज्ञोपवीत को अर्पित कर रहा हूँ। ॐ नमो नारायणाय नम ॥३३॥

१ग लोकसपूतिमा०। २ख. ०शकर्मस०। ३क. तवाच्युत। ख तया तव। ओ।

अलंकारमन्त्र —दिव्यरत्नसमायुक्त वह्निभानुसमप्रभ। गात्राणि तव शोभन्तु सालंकाराणि माधव। ओं नमो नारायणाय नम ॥३४॥

ओं नम इति प्रत्यक्षरं समस्तेन मूलमन्त्रेण वा पूजयेत् ॥३५॥

धूपमन्त्र —वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्य 'सुरभिश्च ते। मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्। ओं नमो नारायणाय नम ॥३६॥

दीपमन्त्र —सूर्यचन्द्रसमो ज्योतिर्विद्युदग्न्योस्तथैव च। त्वमेव ज्योतिषां देव दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्। ओं नमो नारायणाय नम ॥३७॥

नैवेद्यमन्त्र —अन्नं चतुर्विधं चैव रसैं षड्भि समन्वितम्। मया निवेदितं भक्त्या नैवेद्यं तव केशव। ओं नमो नारायणाय नम । ॥३८॥

पूर्वे दले वासुदेवं याम्ये संकर्षणं न्यसेत्। प्रद्युम्नं पश्चिमे कुर्यादनिरुद्धं तथोत्तरे॥३९॥
वाराहं च तथाऽऽग्नेये नरसिंहं च नैर्ऋते। वायव्ये माधवं चैव तथैशाने त्रिविक्रमम्॥४०॥
तथाऽष्टाक्षरदेवस्य गरुडं पुरतो न्यसेत्। वामपार्श्वे तथा चक्रं शङ्खं दक्षिणतो न्यसेत् ॥४१॥
तथा महागदां चैव न्यसद्देवस्य दक्षिणे। तत शार्ङ्गं धनुर्विद्वान्न्यसेद्देवस्य वामत ॥४२॥
दक्षिणेनेषुधी दिव्ये खड्गं वामे च विन्यसेत। श्रियं दक्षिणत स्थाप्य पुष्टिमुत्तरतो न्यसेत्॥४३॥

अलङ्कार मन्त्र—दिव्य रत्नो से आभूषित अग्नि और भान के समान प्रभा वाले माधव! तुम्हारे अङ्ग इन मेरे दिये गए आभूषणो से सुशोभित हो। ॐ नमो नारायणाय नम ॥३४॥

ओ नम इसके प्रत्येक अक्षर से या समस्त मूल मन्त्र से पूजन करना चाहिये॥३५॥

धूप मन्त्र—मैं तुम्हारे लिये इस दिव्य गन्ध से भरे सुरभित वनस्पति रस धूप को श्रद्धा से समर्पित कर रहा हूँ देव! ग्रहण करो ॐ नमो नारायणाय नम ॥३६॥

दीप मन्त्र—तुम सूय चन्द्र विद्युत और अग्नि के समान ज्योतिष्मान् हो तुम ही प्रकाश-पुञ्ज हो देव! यह दीप स्वीकार करो ॐ नमो नारायणाय नम ॥३७॥

नैवेद्य मन्त्र—चार प्रकार का षड्रस से युक्त मधुर भोजन श्रद्धापूर्वक अर्पित कर रहा हूँ केशव! स्वीकार करो ॐ नमो नारायणाय नम ॥३८॥ (इन उपर्युक्त मन्त्रो से सविधि भगवान् की पूजा करने के बाद पुन देवन्यास करे।) पूर्व दल पर वासुदेव को दक्षिण पर संकर्षण को एव पश्चिम दल पर प्रद्युम्न को एव उत्तर वाले दल पर अनिरुद्ध को न्यस्त करे॥३९॥ इसी प्रकार अग्नि निर्ऋति वायव्य और ईशानकोण मे क्रमश वाराह नरसिंह माधव और त्रिविक्रम का न्यास करे॥४०॥ इस प्रकार आठ अक्षरो मे न्यस्त देवता के अग्रभाग मे गरुड का तथा वाम पार्श्व और दक्षिण पार्श्व मे चक्र शख का न्यास कर देव के दक्षिण महागदा तथा वामभाग मे शार्ङ्ग धनुष का विद्वान् मनुष्य न्यास करे॥४१ ४२॥ पुन दक्षिण ओर दो दिव्य तरकस और बायी ओर खडग का न्यास करे। शस्त्रन्यास के उपरान्त दक्षिण ओर श्री को उत्तर ओर पुष्टि को आगे की ओर वनमाला श्रीवत्स और कौस्तुभ तथा

१क सुमनोहर। म०।

वनमालां च पुरतस्ततः श्रीवत्सकौस्तुभौ। विन्यसेद्धृदयादीनि पूर्वादिषु चतुर्दिशम् ॥४४॥
ततोऽस्त्र देवदेवस्य कोणे चैव तु विन्यसेत्। इन्द्रमग्निं यम चैव नैर्ऋतं वरुणं तथा ॥४५॥
वायु धनदमीशानमनन्त ब्रह्मणा सह। [1]पूजयेत्तान्त्रिकैर्मन्त्रैरधश्चोर्ध्वं तथैव च ॥४६॥
एवं संपूज्य देवेशं मण्डलस्थ जनार्दनम्। लभेदभिमतान्कामान्नरो नास्त्यत्र संशयः ॥४७॥
अनेनैव विधानेन मण्डलस्थ जनार्दनम्। पूजित य सपश्येन स विशेद्विष्णुमव्ययम् ॥४८॥
सकृदप्यर्चितो येन विधिनाऽनेन केशवः। जन्ममृत्युजरा[2] तीर्त्वा स विष्णोः पदमाप्नुयात् ॥४९॥
यः स्मरेत्सतत भक्त्या नारायणमतन्द्रितः। [3]अन्वह तस्य वासाय श्वेतद्वीपः प्रकल्पितः ॥५०॥
ओंकारादिसमायुक्तं नमःकारान्तदीपितम्। तन्नाम सर्वतत्त्वाना मन्त्र इत्यभिधीयते ॥५१॥
अनेनैव विधानेन गन्धपुष्प निवेदयेत्। एकैकस्य प्रकुर्वीत यथोद्दिष्टं क्रमेण तु ॥५२॥
मुद्रास्ततो [4]निबध्नीयाद्यथोक्तक्रमचोदिताः। जपं चैव प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥५३॥
अष्टाविंशतिमष्टौ वा शतमष्टोत्तरं तथा। कामेषु च[5] यथाप्रोक्तं यथाशक्ति समाहितः ॥५४॥
पद्म शङ्खश्च श्रीवत्सो गदा गरुड एव च। चक्रं खड्गश्च शार्ङ्गं च अष्टौ मुद्राः प्रकीर्तिताः ॥५५॥
विसर्जनमन्त्रः—गच्छ गच्छ परंस्थानं पुराणपुरुषोत्तम[6]। यत्र ब्रह्मादयो देवा विन्दन्ति परम पदम् ॥५६॥

हृदयादि को पूर्वादि चारो दिशाओं म क्रमानुसार न्यस्त करना चाहिये ॥४३-४४॥ तदनन्तर कोण म देवदेव के अस्त्रो की स्थापना कर इन्द्र, अग्नि, यम, नैर्ऋत्य, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, अनन्त आदि देवो का ब्रह्मा के साथ अध और ऊर्ध्व भाग म आवाहन कर तान्त्रिक मन्त्रो से पूजन करे ॥४५-४६॥ इस प्रकार मण्डल मे स्थित देवेश जनार्दन का पूजन करने से मनुष्य अपने अभीष्ट कामनाओ को अवश्य प्राप्त करता है इसमे सन्देह नही ॥४७॥ इसी विधि से पूजित मण्डलस्थ जनार्दन का जो दर्शन करता है वह भी अविनाशी विष्णु का सायुज्य प्राप्त करता है ॥४८॥ एक बार भी जो मनुष्य केशव की इस प्रकार अर्चा करता है वह जन्म, मृत्यु और बुढ़ापे को पारकर विष्णु लोक को प्राप्त करता है ॥४९॥ जो मनुष्य सर्वदा आलस्य-रहित हो नारायण का स्मरण करता है उसके निवास के लिये प्रतिदिन श्वेतद्वीप की व्यवस्था की जाती है ॥५०॥ ओंकार जिसके आदि मे और नमस्कार जिसके अन्त मे लगा हो वह सम्पूर्ण तत्त्वो का सार है और वही श्रेष्ठ मन्त्र कहा गया है ॥५१॥ इसी विधान से गन्ध, पुष्प अर्पित करना चाहिये एव यथोद्दिष्ट क्रम से एक एक देव का पूजन करना चाहिये ॥५२॥ पूजनानन्तर यथोक्त क्रम से मुद्रा बन्धन कर मन्त्रज्ञ मनुष्य मूल मन्त्र का जप करे ॥५३॥ भिन्न भिन्न कामनाओ के लिये जिस प्रकार सख्या का विधान है उसी के अनुसार यथाशक्ति एकाग्रचित्त हो अट्ठाईस आठ अथवा एक सौ आठ बार जप करे ॥५४॥ पद्म, शख श्रीवत्स गदा गरुड, चक्र खड्ग और शार्ङ्ग धनुष यही आठ मुद्राये कही गई हैं ॥५५॥

विसर्जन का मन्त्र—"हे पुराणपुरुषोत्तम! अपने उस परम स्थान को जाओ, जाओ, जहाँ जाकर ब्रह्मा

१क ०त्तान्त्रिकं०। २क ०जरातीत स। ३क ०क स्वर्णमार्गे च तेन दीप प्रकल्पित। ४ख ०याद्यत्नमान्येव विधानत। ज०। ५ग च तथा ज्यत्र म०। ६ग ०राण पु०।

अर्चनं ये न जानन्ति हरेर्मन्त्रैर्यथोदितम्। ते तत्र मूलमन्त्रेण पूजयन्त्वच्युतं सदा ॥५७॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंम्भृषिसंवादे पूजाविधिकथनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

समुद्रस्नानमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एवं संपूज्य विधिवद्भक्त्या तं पुरुषोत्तमम्। प्रणम्य शिरसा पश्चात्सागरं च प्रसादयेत् ॥१॥
प्राणस्त्वं सर्वभूतानां योनिश्च सरितां पते। तीर्थराज नमस्तेऽस्तु त्राहि मामच्युतप्रिय ॥२॥
स्नात्वैव सागरे सम्यक्तस्मिन्क्षेत्रवरे द्विजाः। तीरे चाभ्यर्च्य विधिवन्नारायणमनामयम् ॥३॥
रामं कृष्णं सुभद्रां च प्रणिपत्य च सागरम्[१]। शतानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥४॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वदुःखविवर्जितः। वृन्दारक इव श्रीमान्रूपयौवनगर्वितः ॥५॥

आदि देवता परम पद को प्राप्त करते हैं।" इस मन्त्र से विसर्जन करे ॥५६॥ जो मनुष्य ऊपर कहे गये मन्त्रो से हरि का पूजन करना नही जानते हैं वे वहाँ मूल मन्त्र से ही सर्वदा अच्युत विष्णु की पूजा करें ॥५७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे ब्रह्मा और ऋषि के सवाद मे पूजाविधि-कथन नामक
इकसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६१॥

अध्याय ६२

समुद्र-स्नान का माहात्म्य

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार भक्तिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तम का विधिवत् पूजन और नतमस्तक होकर प्रणाम करने के बाद सागर की यह स्तुति करनी चाहिए—हे नदियो के स्वामी ! तुम सब प्राणियो के जीवन और उत्पादक हो, तीर्थराज ! तुम्हे प्रणाम है। अच्युतप्रिय ! मेरी रक्षा करो ॥१-२॥ विप्रगण, इस विधि से इस पुनीत और श्रेष्ठ तीर्थ मे आकर स्नान कर और तीर पर अनामय (निर्विकार) नारायण की विधिवत् पूजा कर राम, कृष्ण, सुभद्रा और सागर को प्रणाम करना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य सौ अश्वमेघ यज्ञो का फल प्राप्त करता है, वह सब पापो और दुःखो से रहित हो, तेजस्वी तथा रूप-यौवन से सुशोभित हो जाता है ॥३ ५॥ और सूर्य

१क. ०म्। दशाना०।

विमानेनार्कवर्णेन दिव्यगन्धर्वनादिना। कुलैकविंशमुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति॥६॥
भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्क्रीडित्वा चाप्सरैः सह। मन्वन्तरशतं साग्रं जरामृत्युविवर्जितः॥७॥
पुण्यक्षयादिहाऽऽयातः कुले सर्वगुणान्विते। रूपवान्सुभगः श्रीमान्सत्यवादी जितेन्द्रियः॥८॥
वेदशास्त्रार्थविद्विप्रो भवेद्यज्वा तु वैष्णवः। योगं च वैष्णवं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात्॥९॥
ग्रहोपरागे संक्रान्त्यामयने विषुवे तथा। युगादिषु षडशीत्यां व्यतीपाते दिनक्षये॥१०॥
आषाढ्यां चैव कार्तिक्यां माघ्यां वाऽन्ये शुभे तिथौ। ये तत्र दानं विप्रेभ्यः प्रयच्छन्ति सुमेधसः॥११॥
फलं सहस्रगुणितमन्यतीर्थाल्लभन्ति ते। पितृणां ये प्रयच्छन्ति पिण्डं तत्र विधानतः॥१२॥
अक्षयां पितरस्तेषां तृप्तिं संप्राप्नुवन्ति वै। एवं स्नानफलं सम्यक्सागरस्य मयोदितम्॥१३॥
दानस्य च फलं विप्राः पिण्डदानस्य चैव हि। धर्मार्थमोक्षफलदमायुष्कीर्तियशस्करम्॥१४॥
भुक्तिमुक्तिफलं नृणां धन्यं दुःस्वप्ननाशनम्। सर्वपापहरं पुण्यं सर्वकामफलप्रदम्॥१५॥
नास्तिकाय न वक्तव्यं पुराणं च द्विजोत्तमाः। तावद्गर्जन्ति तीर्थानि माहात्म्यैः स्वैः पृथक्पृथक्॥१६॥
यावन्न तीर्थराजस्य माहात्म्यं वर्ण्यते द्विजाः। पुष्करादीनि तीर्थानि प्रयच्छन्ति स्वकं फलम्॥१७॥

के समान प्रकाशमान, स्वर्गीय गन्धर्वों के जयकार, तथा स्तुतिगान से मुखरित विमान पर आरूढ होकर, देवता के समान, अपने इक्कीस कुलो का उद्धार करता हुआ विष्णुलोक को जाता है॥६॥ वहाँ वह जरा-मृत्यु से रहित हो अगले सौ मन्वन्तरो तक दिव्य भोगो का भोग करता हुआ अप्सराओं के साथ क्रीडा कर पुनः पुण्य के क्षीण हो जाने पर इह लोक मे सब गुणो से युक्त परिवार मे जन्म ग्रहण करता है। इस जन्म मे भी अपने पुण्य के प्रभाव से रूपवान्, भाग्यशाली, धनवान्, सत्यवक्ता, जितेन्द्रिय, वेद शास्त्रो का ज्ञाता और वैष्णव भक्त विप्र होता है। अन्तकाल मे वैष्णव योग को पाकर मोक्ष लाभ करता है॥७ ९॥ जो बुद्धिमान् उस पुनीत क्षेत्र मे ग्रहण, सक्रान्ति, अयन, विषुव (तुला और मेष सक्रान्ति काल), युगादि काल मे तथा षडशीति, व्यतीपात, दिन-क्षय और आषाढ़ी कार्तिकी तथा माघी पूर्णिमा के दिन अथवा अन्य शुभ तिथियो म ब्राह्मणो को दान देते हैं, एव विधान पूवक पितरो को पिण्डदान देते हैं वे अन्य तीर्थों की अपेक्षा हजार गुना अधिक फल प्राप्त करते है॥१०-१२॥ उनके पितर भी निश्चय ही अक्षय तृप्ति प्राप्त करते हैं। इस प्रकार मैंने समुद्र स्नान पिण्डदान का फल कह दिया॥१३॥ वस्तुतः हे द्विजगण, धर्म, अथ और मोक्ष को देने वाले, आयु बढाने वाले, कीर्ति एव यश फैलाने वाले, भुक्ति मुक्तिदाता दुःस्वप्ननाशक, मनुष्यो को शुभ फल देनेवाले, सर्व पाप-हर, पवित्र और सब मनोरथो को पूर्ण करने वाले पुराणो को अश्रद्धालु नास्तिको से नही कहना चाहिए॥१४ १५॥ सभी तीर्थ तब तक ही अलग अलग अपने माहात्म्य के गर्व से गरजते रहते हैं जब तक द्विजगण! तीर्थराज पुरुषोत्तम तीर्थ का माहात्म्य नही कहा जाता है॥१६½॥ पुष्कर आदि तीर्थ तो केवल अपने फल को ही देते है परन्तु यह तीर्थराज तो पृथ्वी के सम्पूर्ण तीर्थों का फल देता है॥१७½॥ पृथ्वी-तल के जितने तीर्थ, नदियाँ और सरोवर हैं वे सागर मे

१ख ०प्र नरो मृ०।

तीर्थराजस्तु स पुनः सर्वतीर्थफलप्रदः। भूतले यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च ॥१८॥
विशन्ति सागरे तानि तेनासौ श्रेष्ठता गतः। राजा समस्ततीर्थानां सागरः सरिता पतिः ॥१९॥
तस्मात्समस्ततीर्थेभ्य. श्रेष्ठोऽसौ सर्वकामद। तमोनाशं यथाऽभ्येति भास्करेऽभ्युदिते द्विजाः ॥२०॥
स्नानेन तीर्थराजस्य तथा पापस्य संक्षयः। तीर्थराजसमं तीर्थं न भूत न भविष्यति ॥२१॥
अधिष्ठानं यदा यत्र प्रभोर्नारायणस्य वै। क. शक्नोति गुणान्वक्तुं तीर्थराजस्य भो द्विजाः ॥२२॥
कोट्यो नवनवत्यस्तु यत्र तीर्थानि सन्ति वै। तस्मात्स्नान च दानं च होमं जप्य सुरार्चनम्।
यत्किंचित्क्रियते तत्र चाक्षय क्रियते द्विजाः ॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे समुद्रस्नानमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विषष्टितमोऽध्याय. ॥६२॥

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

पञ्चतीर्थीमाहात्म्यनिरूपणम्

ब्रह्मोवाच

ततो गच्छेद्द्विजश्रेष्ठास्तीर्थं यज्ञाङ्गसंभवम्। इन्द्रद्युम्नसरो नाम यत्राऽऽस्ते पावन शुभम् ॥१॥

किसी न किसी रूप से प्रवेश करते हैं (सभी जलाशयो का जल समुद्र से आता अथवा समुद्र मे जाता है) इसलिये यह तीर्थराज सर्वश्रेष्ठ पदवी का अधिकारी है ॥१८३॥ समुद्र सब नदियो का स्वामी है, समस्त तीर्थों (जलाशयो) का राजा है इसलिये यह सब तीर्थों से श्रेष्ठ और सब मनोरथो का दाता है ॥१९३॥ द्विजवर! जिस प्रकार सूर्योदय होने पर अन्धकार स्वयमेव नष्ट हो जाता है उसी प्रकार तीर्थराज के स्नान से मनुष्य के पापो का नाश हो जाता है ॥२०॥ तीर्थराज के समान न तो कोई तीर्थ हुआ है न होगा ॥२१॥ प्रभु नारायण का जहाँ सर्वदा वास है हे द्विजवृन्द! उस तीर्थराज के गुणो को कहने मे कौन समर्थ हो सकता है ॥२२॥ जहाँ पर नवासी करोड तीर्थ सर्वदा निवास करते है, वहाँ स्नान दान, होम, जप, देवपूजन अथवा जो कुछ भी किया जाता है निश्चय ही द्विजवृन्द! वह अक्षय हो जाता है ॥२३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे समुद्रस्नान-माहात्म्य वर्णन नामक बासठवाँ अध्याय समाप्त ॥६२॥

अध्याय ६३

पचतीर्थी का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा बोले—द्विजश्रेष्ठ! तदनन्तर यज्ञो के कारण शुभ, पवित्र इन्द्रद्युम्न तीर्थ मे जाकर विवेकी मनुष्य

गत्वा तत्र शुचिर्धीमानाचम्य मनसा हरिम्। ध्यात्वोपस्थाय च जलमिमं मन्त्रमुदीरयेत्॥२॥
अश्वमेधाङ्गसंभूत तीर्थ सर्वाघनाशन। स्नानं त्वयि करोम्यद्य पापं हर नमोऽस्तु ते॥३॥
एवमुच्चार्य विधिवत्स्नात्वा देवानृषीन्पितॄन्। तिलोदकेन चान्यांश्च संतर्प्याऽऽचम्य वाग्यतः॥४॥
दत्त्वा पितॄणां पिण्डांश्च संपूज्य पुरुषोत्तमम्। दशाश्वमेधिकं सम्यक्फलं प्राप्नोति मानवः॥५॥
सप्तावरान्सप्त परान्वंशानुद्धृत्य देववत्। कामगेन विमानेन विष्णुलोकं स गच्छति॥६॥
भुक्त्वा तत्र [1]सुखान्भोगान्यावच्चन्द्रार्कतारकम्। च्युतस्तस्मादिहाऽऽयातो मोक्षं च लभते ध्रुवम्॥७॥
एवं कृत्वा [2]पञ्चतीर्थीमेकादश्यामुपोषितः। ज्येष्ठशुक्लपञ्चदश्यां यः पश्येत्पुरुषोत्तमम्॥८॥
स पूर्वोक्तं फलं प्राप्य क्रीडित्वा वाऽच्युतालये। प्रयाति परमं स्थानं यस्मान्नाऽऽवर्तते पुनः॥९॥

मुनय ऊचुः

मासानन्यान्परित्यज्य [3]माघादीन्प्रपितामह। प्रशंससि कथं ज्येष्ठं ब्रूहि तत्कारणं प्रभो[4]॥१०॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्यामि समासतः। ज्येष्ठं मासं तथा तेभ्यः प्रशंसामि पुनः पुनः॥११॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च। पुष्करिण्यस्तडागानि वाप्यः कूपास्तथा ह्रदाः॥१२॥

पवित्र भाव से आचमन और हृदय से भगवान् हरि का ध्यान कर जल के निकट इस मन्त्र का उच्चारण करे॥१-२॥ मन्त्र—'अश्वमेध के अङ्ग से उत्पन्न ! सब पापो के विनाशक हे तीर्थ ! आज मैं तुम्हारे जल मे स्नान कर रहा हूँ, मेरे पापो को दूर करो, तुम्हे नमस्कार है॥३॥ इस प्रकार मन्त्र का उच्चारण कर विधिवत् स्नान करना चाहिये। पुन तिल युक्त जल से देवता, ऋषि, पितरो और दूसरे देवो का तर्पण और आचमन कर वाणी पर सयम रख पितरो को पिण्ड दान दे और भगवान् पुरुषोत्तम की विधिवत् पूजा करे। ऐसी क्रिया का विधिवत् अनुष्ठान कर मनुष्य दश अश्वमेध यज्ञो का फल प्राप्त करता है॥४ ५॥ अपने सात पिछले एव सात अगले वश का उद्धार कर देवता के समान इच्छानुसार चलने वाले विमान से विष्णुलोक को जाता है॥६॥ वहाँ वह जब तक चन्द्र, सूर्य और तारागण रहते हैं तब तक सुखमय भोगो का भोग करता है। भोग के बाद वहाँ से लौटकर इस लोक मे उत्तम कुल मे जन्म ग्रहण करता और अन्त मे निश्चय ही मोक्ष प्राप्त करता है॥७॥ उक्त नियम के अनुसार जो मनुष्य एकादशी के दिन निराहार रहकर पञ्चतीर्थी एव ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा को पुरुषोत्तम का दर्शन करता है, वह पूर्वोक्त फल प्राप्त करता है अथवा अच्युत हरि के लोक मे सुखपूर्वक निवास कर उस लोक को प्राप्त करता है जहाँ से पुन नही लौटता॥८ ९॥

मुनियो ने कहा—प्रपितामह ! माघ आदि अन्य महीनो को छोड कर क्यो आप जेठ महीने की इतनी प्रशसा करते हैं। प्रभो ! इसका कारण बताइए॥१०॥

ब्रह्मा बोले—मुनिवर अन्य महीनो की अपेक्षा जेष्ठमास की प्रशसा का कारण सक्षप मे सुनाता हूँ॥११॥ पृथ्वी पर जितने तीर्थ, सरिता, सरोवर, पुष्करिणी (पोखरियाँ), तालाब, बावलियाँ, कुएँ, झीलें, अनेक नदियाँ और

१ख सुख भोगा०। २ख ०तीर्थं मे०। ३ख मार्गादी०। ४ख विभो।

नानानद्यः समुद्राश्च सप्ताहं पुरुषोत्तमे। ज्येष्ठशुक्लदशम्यादि प्रत्यक्षं यान्ति सर्वदा ॥१३॥
स्नानदानादिकं तस्माद्देवताप्रेक्षणं द्विजाः। यत्किंचित्क्रियते तत्र तस्मिन्कालेऽक्षयं भवेत् ॥१४॥
शुक्लपक्षस्य दशमी ज्येष्ठे मासि द्विजोत्तमाः। हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता ॥१५॥
यस्तस्यां हलिनं कृष्णं पश्येद्भद्रां सुसंयतः। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥१६॥
उत्तरे दक्षिणे विप्रास्त्वयने पुरुषोत्तमम्। दृष्ट्वा रामं सुभद्रां च विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥१७॥
नरो दोलागतं[1] दृष्ट्वा गोविन्दं पुरुषोत्तमम्। फाल्गुन्यां प्रयतो भूत्वा [2]गोविन्दस्य पुरं व्रजेत् ॥१८॥
विषुवद्दिवसे प्राप्ते पञ्चतीर्थीविधानतः। कृत्वा संकर्षणं कृष्णं दृष्ट्वा भद्रां च भो द्विजाः ॥१९॥
नरः समस्तयज्ञानां फलं प्राप्नोति दुर्लभम्। विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२०॥
यः पश्यति तृतीयायां कृष्णं [3]चन्दनरूषितम्। वैशाखस्यासिते पक्षे स यात्यच्युतमन्दिरम् ॥२१॥
ज्येष्ठ्यां ज्येष्ठर्क्षयुक्तायां यः पश्येत्पुरुषोत्तमम्। कुलैकविंशमुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंम्भृषिसंवादे पञ्चतीर्थीमाहात्म्यनिरूपणं नाम त्रिषष्टितमोऽध्याय ॥६३॥

समुद्र हैं, वे सभी इस पुरुषोत्तम तीर्थ में जेठ शुक्ल की दशमी आदि तिथियों को एक सप्ताह तक सर्वदा प्रत्यक्ष रूप में रहते हैं ॥१२-१३॥ इसलिये द्विजगण ! उस समय स्नान, दान देव-दर्शन अथवा अन्य जो कुछ पुण्यकर्म किये जाते हैं, वे अक्षय होते हैं ॥१४॥ विप्रवृन्द ! ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की दशमी दशविध पापों को नष्ट करती है इसलिये यह 'दशहरा' नाम से प्रसिद्ध है ॥१५॥ जो मनुष्य एकाग्र मन से बलराम, कृष्ण और सुभद्रा का दर्शन करता है, वह सब पापों से मुक्त हो विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥१६॥ विप्रवृन्द ! उत्तर और दक्षिण अयन काल में भी पुरुषोत्तम राम और सुभद्रा का दर्शन कर मनुष्य विष्णुलोक का अधिकार प्राप्त करता है ॥१७॥ मनुष्य फाल्गुन पूर्णिमा के दिन झूले में झूलते हुए पुरुषोत्तम का अनन्य भाव से दर्शन करके गोविन्दलोक को जाता है ॥१८॥ द्विजगण ! जो मनुष्य विषुव दिन आने पर विधिपूर्वक पञ्चतीर्थी की यात्रा करके राम, कृष्ण और सुभद्रा का दर्शन करता है, वह समस्त यज्ञो के दुर्लभ फल को पाता है और सब पापों से छूट कर विष्णुलोक का अधिकारी होता है ॥१९॥ जो वैशाख मास की कृष्ण-तृतीया को चन्दन चर्चित कृष्ण का दर्शन करता है वह अच्युतलोक को प्राप्त करता है ॥२१॥ ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त ज्येष्ठ पूर्णिमा को जो पुरुषोत्तम का दर्शन करता है वह अपने इक्कीस कुलों का उद्धार कर स्वयं विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥२२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में पञ्चतीर्थीमाहात्म्यवर्णन नामक तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६३॥

१क. दोलायित। २क. ०न्दभवन व्र०। ३ख ०नभूषि०।

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

महाज्यैष्ठीप्रशसावर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यदा भवेन्महाज्यैष्ठी राशिनक्षत्रयोगत'। प्रयत्नेन तदा मर्त्यैर्गन्तव्यं पुरुषोत्तमम् ॥१॥
कृष्णं दृष्ट्वा महाज्यैष्ठ्यां राम भद्रां च भो द्विजा'। नरो द्वादशयात्रायाः फलं प्राप्नोति चाधिकम् ॥२॥
प्रयागे च कुरुक्षेत्रे नैमिषे पुष्करे गये। [1]गङ्गाद्वारे कुशावर्ते गङ्गासागरसंगमे ॥३॥
कोकामुखे [2]शूकरे च मथुरायां मरुस्थले। शालग्रामे वायुतीर्थे मन्दरे सिन्धुसागरे ॥४॥
पिण्डारके चित्रकूटे प्रभासे कनखले द्विजा.। शङ्खोद्धारे द्वारकायां तथा बदरिकाश्रमे ॥५॥
[3]लोहकुण्डे चाश्वतीर्थे सर्वपापप्रमोचने। [4]कामालये कोटितीर्थे तथा चामरकण्टके ॥६॥
लोहार्गले [5]जम्बुमार्गे सोमतीर्थे पृथूदके। उत्पलावर्तके चैव [6]पृथुतुङ्गे सुकुब्जके ॥७॥
एकाम्रके च केदारे काश्या च विरजे द्विजाः। कालञ्जरे च गोकर्णे श्रीशैले गन्धमादने ॥८॥
महेन्द्रे मलये विन्ध्ये पारियात्रे हिमालये। सह्ये च शुक्तिमन्ते च गोमन्ते चार्बुदे तथा ॥९॥
गङ्गायां सर्वतीर्थेषु यामुनेषु च भो द्विजा'। सारस्वतेषु गोमत्या ब्रह्मपुत्रेषु सप्तसु ॥१०॥
गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च नर्मदा। तापी पयोष्णी कावेरी शिप्रा चर्मण्वती द्विजाः ॥११॥

अध्याय ६४

महाज्यैष्ठी की प्रशसा

ब्रह्मा ने कहा—जब उत्तम राशि, नक्षत्र से युक्त महाज्येष्ठपूर्णिमा हो, उस समय प्रयत्नपूर्वक मनुष्य को पुरुषोत्तम तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये ॥१॥ हे विप्रवृन्द ! मनुष्य ज्येष्ठ की महापूर्णिमा को कृष्ण, राम और सुभद्रा का दर्शन करके बारह बार तीर्थ यात्रा का फल प्राप्त करता है ॥२॥ द्विजगण ! प्रयाग, कुरुक्षेत्र, नैमिपारण्य, पुष्कर, गया, हरद्वार, कुशावर्त, गगासागर सगम ॥३॥ कोकामुख, शूकरक्षेत्र, मथुरा, मरस्थल, शालग्राम, वायुतीर्थ, मन्दर, सिन्धुसागर ॥४॥ पिण्डारक, चित्रकूट, प्रभास, कनखल, शङ्खोद्धार, द्वारका, बदरिकाश्रम ॥५॥ लोहकुण्ड, सब पापो को दूर करने वाले अश्वतीर्थ कामालय, कोटितीर्थ, अमरकण्टक ॥६॥ लोहार्गल, जम्बुमार्ग, सोमतीर्थ, पृथूदक, उत्पलावर्तक, पृथुतुग, सुकुब्जक ॥७॥ एकाम्रक, केदार, काशी, विरज, कालञ्जर, गोकर्ण, श्रीशैल, गन्धमादन ॥८॥ महेन्द्र, मलय, विन्ध्य, पारियात्र, हिमालय, सह्य, शुक्तिमन्त, गोमन्त, अर्बुद ॥९॥ गगा के सभी तीर्थ एव यमुना, सरस्वती, गोमती और ब्रह्मपुत्र के सप्त तीर्थ ॥१०॥ गोदावरी, भीमरथी, तुगभद्रा, नर्मदा, तापी, पयोष्णी, कावेरी,

---

१ ग ०रे च कुब्जाम्रे ग०। २ क ०करके म०। ३ क ख ०हृदण्डे। ४ क रुद्रमाले। ग. कर्दमाले। ५क. जम्बुतीर्थे। ६क. पृथुकुब्जे। ख. पृथुनगे।

वितस्ता चन्द्रभागा च शतद्रुर्बाहुदा तथा। ऋषिकुल्या कुमारी च विपाशा च दृषद्वती॥१२॥
सरयूर्नाकगङ्गा च गण्डकी च महानदी। कौशिकी करतोया च त्रिस्रोता मधुवाहिनी॥१३॥
महानदी वैतरणी याश्चान्या नानुकीर्तिताः। अथवा किं बहूक्तेन भाषितेन द्विजोत्तमाः॥१४॥
पृथिव्यां सर्वतीर्थेषु सर्वेष्वायतनेषु च। सागरेषु च शैलेषु नदीषु च सरःसु च॥१५॥
यत्फलं स्नानदानेन राहुग्रस्ते दिवाकरे। तत्फलं कृष्णमालोक्य महाज्यैष्ठ्यां लभेन्नरः॥१६॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गन्तव्यं पुरुषोत्तमे। महाज्यैष्ठ्यां मुनिश्रेष्ठा सर्वकामफलेप्सुभिः॥१७॥
दृष्ट्वा रामं महाज्येष्ठं कृष्णं सुभद्रया सह। विष्णुलोकं नरो याति समुद्धृत्य स्वमं कुलम्॥१८॥
भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्यावदाभूतसंप्लवम्। पुण्यक्षयादिहाऽऽगत्य चतुर्वेदी द्विजो भवेत्॥१९॥
स्वधर्मनिरतः शान्तः कृष्णभक्तो जितेन्द्रियः। वैष्णवं योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात्॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भ्वृषिसंवादे महाज्येष्ठीप्रशंसावर्णनं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः॥६४॥

शिप्रा, चर्मण्वती॥११॥ वितस्ता, चन्द्रभागा, शतद्रु (सतलज) तथा बाहुदा, ऋषिकुल्या, कुमारी, विपाशा, दृषद्वती॥१२॥ ॥१२॥ सरयू, स्वर्गगंगा, गण्डकी, महानदी कौशिकी (कोसी), करतोया, त्रिस्रोता, मधुवाहिनी॥१३॥ महानदी, वैतरणी, या जो अन्य नदियाँ लोक प्रसिद्ध हैं अथवा द्विजवर्यवृन्द! बहुत अधिक कहने से क्या लाभ॥१४॥ पृथ्वी के सम्पूर्ण तीर्थों में जाने से सब मन्दिरों में दर्शन करने से, सागर, शैल, नदी और सरोवरों में स्नान करने दान देने एवं सूर्यग्रहण के समय स्नान और दान से जितना फल मिलता है, उस सम्पूर्ण फल को ज्येष्ठ की उस अतिपवित्र पूर्णिमा के दिन कृष्ण के दर्शन करने से मनुष्य प्राप्त करता है॥१५-१६॥ इसलिए मुनिवर्यवृन्द! सब मनोरथों को पाने की कामना करने वाले मनुष्यों को अपने सभी प्रयत्नों से पुरुषोत्तम तीर्थ को जाना चाहिए॥१७॥ वहाँ मनुष्य सुभद्रा सहित ज्येष्ठ राम और कृष्ण का दर्शन करके अपने सम्पूर्ण कुल का उद्धार करता है और स्वयं विष्णुलोक को प्राप्त करता है॥१८॥ वहाँ कल्पान्त तक दिव्य भोगों का भोग करता है। पुनः पुण्यक्षय हो जाने पर इस मर्त्य लोक में चतुर्वेदपाठी ब्राह्मण होता है॥१९॥ यहाँ वह जीवन पर्यन्त अपने धर्म में निरत रहने वाला, शान्त, जितेन्द्रिय और कृष्ण का भक्त होता है। पुनः वैष्णव भक्ति या ज्ञान को पाकर मोक्ष की प्राप्ति करता है॥२०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में महाज्येष्ठी-प्रशंसा वर्णन नामक चौसठवाँ अध्याय समाप्त॥६४॥

---

१ क. ०यूर्वरग०। २ क. ख. ०षु ह्रदेष्वाऽऽय०। ३ ग. ०त्तमम्। म०। ४ ख. ०मासाद्य त०।

अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

कृष्णस्नानमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

कस्मिन्काले भवेत्स्नानं कृष्णस्य कमलोद्भव।[1] विधिना केन तद्ब्रूहि ततो विधिविदां वर॥१॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनयः स्नानं कृष्णस्य वदतो मम। रामस्य च सुभद्रायाः पुण्यं सर्वाघनाशनम्॥२॥
[2]मासि ज्येष्ठे च संप्राप्ते नक्षत्रे चन्द्रदैवते। पौर्णमास्यां तदा स्नानं सर्वकालं हरेर्द्विजा.॥३॥
सर्वतीर्थमयः कूपस्तत्राऽऽस्ते निर्मलः शुचिः। तदा भोगवती तत्र प्रत्यक्षा[3] भवति द्विजाः॥४॥
तस्माज्ज्येष्ठ्यां समुद्धृत्य हैमाद्यैः कलशैर्जलम्। कृष्णरामाभिषेकार्थं सुभद्रायाश्च भो द्विजाः॥५॥
कृत्वा सुशोभनं मञ्च पताकाभिरलंकृतम्। सुदृढं सुखसचारं वस्त्रैः पुष्पैरलकृतम्॥६॥
विस्तीर्णं धूपितं धूपैः स्नानार्थं रामकृष्णयो.। [4]सितवस्त्रपरिच्छन्नं मुक्ताहारावलम्बितम्॥७॥
तत्र नानाविधैर्वाद्यै कृष्ण नीलाम्बरं द्विजाः। मध्ये सुभद्रां चाऽऽस्थाप्य जयमङ्गलनिस्वनैः॥८॥

अध्याय ६५

कृष्ण-स्नान का महात्म्य-वर्णन

मुनियो ने कहा—कमल से उत्पन्न, विधिज्ञो मे श्रेष्ठ! किस समय और किस विधि से भगवान् कृष्ण का स्नान होता है, कृपया बताइए॥१॥

ब्रह्मा बोले—मुनिगण! मैं कृष्ण, राम और सुभद्रा के शुभ और अखिल पापो को नष्ट करने वाली स्नान-विधि का वर्णन कर रहा हूँ सुनो॥२॥ द्विजगण! जेठ के महीने मे चन्द्रदैवत नक्षत्र (ज्येष्ठा) से युक्त पूर्णिमा के दिन भगवान् का स्नान सदा प्रशस्त और शुभ माना गया है॥३॥ उस समय कूप निर्मल, पवित्र और सम्पूर्ण तीर्थों के जल से युक्त हो जाता है और भोगवती प्रत्यक्ष रूप मे उपस्थित हो जाती है॥४॥ इसलिये! द्विजगण! कृष्ण, राम और सुभद्रा के अभिषेक के लिये सुवर्ण-कलशो मे कुयें से जल निकाल लिया जाता है॥५॥ इसके पूर्व पताकाओ से सुशोभित दृढ, सुविधा से इधर उधर घुमा देने योग्य, विस्तृत और मनोहर मच बनाना चाहिए। उसको रग बिरंगे फूलो और पुष्पो से सजाकर धूप से सुगंधित कर देना चाहिये। उस मगल मच पर राम-कृष्ण के स्नान के लिये श्वेत वस्त्र मुक्ताहार आदि विविध सामग्री एकत्र कर रख देनी चाहिये॥६-७॥ ऐसे सुसज्जित मच पर अनेक बाजे बजाते हुए, जयकार और मगल ध्वनि के साथ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्य जातियो के लोगो

---

१ ख ०व। के च तत्कारयन्तीह स्नान तस्य विधि वद। ब्र०। २ क ख मासे। ३ ग प्रत्यक्ष। ४ख. ०वस्त्रै। प०।

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च जातिभिः। अनेकशतसाहस्रैर्वृतं, स्त्रीपुरुषैर्द्विजाः॥९॥
गृहस्थाः स्नातकाश्चैव यतयो ब्रह्मचारिणः। स्नापयन्ति तदा कृष्णं मञ्चस्थं सहलायुधम्॥१०॥
तथा समस्ततीर्थानि पूर्वोक्तानि द्विजोत्तमाः। स्वोदकैः पुष्पमिश्रैश्च स्नापयन्ति पृथक्पृथक्॥११॥
पश्चात्पटहशङ्खाद्यैर्भेरीमुरजनिस्वनैः। काहलैस्तालशब्दैश्च मृदङ्गैर्झर्झरैस्तथा॥१२॥
अन्यैश्च [1]विविधैर्वाद्यैर्घण्टास्वनविभूषितैः। स्त्रीणां मङ्गलशब्दैश्च स्तुतिशब्दैर्मनोहरैः॥१३॥
जयशब्दैस्तथा स्तोत्रैर्वीणावेणुनिनादितैः। श्रूयते सुमहाञ्छब्दः सागरस्येव गर्जतः॥१४॥
मुनीनां वेदशब्देन मन्त्रशब्दैस्तथाऽपरैः। नानास्तोत्ररवैः पुण्यैः सामशब्दोपबृंहितैः॥१५॥
यतिभिः स्नातकैश्चैव गृहस्थैर्ब्रह्मचारिभिः। स्नानकाले सुरश्रेष्ठ स्तुवन्ति परया मुदा॥१६॥
श्यामैर्वेश्याजनैश्चैव कुचभारावनामिभिः। पीतरक्ताम्बराभिश्च माल्यदामावनामिभिः॥१७॥
सरत्नकुण्डलैर्दिव्यैः [2]सुवर्णस्तबकान्वितैः। चामरै[3] रत्नदण्डैश्च वीज्येते रामकेशवौ॥१८॥
यक्षविद्याधरैः सिद्धैः किन्नरैश्चाप्सरोगणैः[4]। [5]परिवार्याम्बरगतैर्देवगन्धर्वचारणैः॥१९॥
आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वे मरुद्गणाः। लोकपालास्तथा चान्ये स्तुवन्ति पुरुषोत्तमम्॥२०॥
नमस्ते देवदेवेश पुराण पुरुषोत्तम। सर्गस्थित्यन्तकृद्देव लोकनाथ जगत्पते॥२१॥
त्रैलोक्यधारिणं देवं ब्रह्मण्यं[6] मोक्षकारणम्। तं नमस्यामहे भक्त्या सर्वकामफलप्रदम्॥२२॥

एवं अनेक सैकडा हजारों स्त्री पुरुषों के साथ समारोहपूर्वक राम, कृष्ण और सुभद्रा की स्थापना की जाती है॥८-९॥ ऐसे शुभ मुहूर्त में पहले गृहस्थ, स्नातक, यति, और वेदपाठी ब्रह्मचारी मञ्च पर अवस्थित हलधर राम और कृष्ण को नहलाते हैं॥१०॥ इसी प्रकार ऊपर कहे गये सम्पूर्ण तीर्थ भी पृथक् पृथक् पुष्प मिले अपने जल से अप्रत्यक्ष रूप से स्नान कराते हैं॥११॥ तदनन्तर वहाँ पटह, शंख, भेरी, मुरज, काहल, मृदंग, झझर एवं अन्य विविध बाजों की ध्वनि और स्त्रियों के मंगल शब्द, मनोहर स्तुतिपाठ, जयध्वनि, स्तोत्रपाठ, और वीणा-वेणु की मधुर ध्वनि से गरजते हुये समुद्र की गम्भीर ध्वनि के समान महान् शब्द सुनाई पडता है॥१२-१४॥ उस समय स्नान-काल में अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक मुनिगण वेदपाठ से, अपर ऋषि मन्त्रोच्चारण से, नानास्तोत्रों के पाठ से, पवित्र स्वरयुक्त सामवेद के गान से, यति, स्नातक, गृहस्थ और ब्रह्मचारी स्तुति करते हैं॥१५-१६॥ श्यामाङ्गी, स्तनभार से विनम्र, पीले, लाल वस्त्र धारण करने वाली रत्नजटित कुण्डल आदि आभूषण एवं पुष्पमाला से सजी हुई गणिकायें अनेक शिल्पकलाओं से आभूषित रत्नजटित स्वर्ण के बने चँवर राम और केशव को डुलाती हैं॥१७-१८॥ आकाश में यक्ष, विद्याधर, सिद्ध, किन्नर, अप्सरायें, देव, गन्धर्व आदि मण्डल बनाकर एवं आदित्य, वसु रुद्र, साध्यगण, विश्वेदेव, मरुद्गण, और लोकपाल सभी पुरुषोत्तम की इस प्रकार स्तुति करते हैं॥१९-२०॥ 'देवदेवेश! पुराणपुरुषोत्तम! सृष्टि पालन और विनाश करने वाले देव! लोक के स्वामी! जगत्पते! आपको नमस्कार है॥२१॥ हम सब मनोरथों को देने वाले, त्रिभुवन पालन करने वाले, ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले, मोक्षदायक भगवान् को भक्तिपूर्वक नमस्कार

१क ख ०र्घर्घोर्घर्घ०। २ख ०कान्वितै। ३ ख ०रै स्वमद०। ४ख ०र्णै। सविचार्य वरगुणैर्द०। ५क. ०र्यामरगणैर्द०। ६क ख ब्रह्माण।

स्तुत्वैव विबुधाः कृष्णं रामं चैव महाबलम्। सुभद्रा च मुनिश्रेष्ठास्तदाऽऽकाशे व्यवस्थिताः ॥२३॥
गायन्ति देवगन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसस्तथा। देवतूर्याण्यवाद्यन्त वाता वान्ति सुशीतलाः ॥२४॥
पुष्पमिश्रं तदा मेघा वर्षन्त्याकाशगोचराः। जयशब्दं च कुर्वन्ति मुनयः सिद्धचारणाः ॥२५॥
शक्राद्या विबुधाः सर्वे ऋषयः [१]पितरस्तथा। प्रजाना पतयो नागा ये चान्ये स्वर्गवासिनः ॥२६॥
ततो मङ्गलसंभारैर्विधिमन्त्रपुरस्कृतम्। आभिषेचनिकं द्रव्यं गृहीत्वा देवतागणाः ॥२७॥
इन्द्रो विष्णुर्महावीर्यः सूर्याचन्द्रमसौ तथा। धाता चैव विधाता च तथा चैवानिलानलौ ॥२८॥
पूषा भगोऽर्यमा त्वष्टा अंशुनैव विवस्वता[२]। पत्नीभ्यां सहितो धीमान्मित्रेण वरुणेन च ॥२९॥
रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां च वृतः प्रभुः। विश्वैर्देवैर्मरुद्भिश्च साध्यैश्च पितृभिः सह ॥३०॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च यक्षराक्षसपन्नगैः। देवर्षिभिरसंख्येयैस्तथा ब्रह्मर्षिभिर्वरैः ॥३१॥
वैखानसैर्वालखिल्यैर्वाय्वाहारैर्मरीचिपैः। भृगुभिश्चाङ्गिरोभिश्च[३] सर्वविद्यासुनिष्ठितैः ॥३२॥
सर्वविद्याधरैः पुण्यैर्योगसिद्धिभिरावृतः। पितामहः पुलस्त्यश्च पुलहश्च महातपाः ॥३३॥
अङ्गिराः कश्यपोऽत्रिश्च मरीचिर्भृगुरेव च। क्रतुर्हरः प्रचेताश्च [४]मनुर्दक्षस्तथैव च ॥३४॥
[५]ऋतवश्च ग्रहाश्चैव[६] ज्योतींषि च द्विजोत्तमाः। मूर्तिमत्यश्च सरितो[७] देवाश्चैव सनातनाः ॥३५॥
समुद्राश्च ह्रदाश्चैव तीर्थानि विविधानि च। पृथिवी द्यौर्दिशश्चैव पादपाश्च द्विजोत्तमाः ॥३६॥

करते हैं ॥२२॥ मुनिगण! देववृन्द इस प्रकार कृष्ण, महाबलशाली राम और सुभद्रा की स्तुति कर आकाश मे स्थित हो जाते है। उस समय देवगन्धर्व गाते हैं, अप्सरायें नृत्य करती है, और देव वाद्य बजाने लगते है, शीतल वायु चलने लगता है ॥२३-२४॥ आकाश से मेघ पुष्पो से मिश्रित जल की वृष्टि करते है, मुनि, सिद्ध, और चारण, इन्द्र आदि देवता, सभी ऋषि, पितर, प्रजापति, नाग और अन्य सभी स्वर्ग मे निवास करने वाले देव विशेष जयध्वनि करते हैं ॥२५-२६॥ तदनन्तर मागलिक सामग्रियो के साथ यथाविधि वेदध्वनि की जाती है। उस समय अभिषेकोपयोगी द्रव्य लेकर देवगण, इन्द्र, महापराक्रमी विष्णु, सूर्य, चन्द्रमा, ब्रह्मा, विधाता, वायु, अग्नि ॥२७॥ पूषा, भग, अर्यमा, त्वष्टा, तथा अशु (किरण) विवस्वान्, मित्र, वरुण, पत्नियो सहित धीमान्, रुद्र, वसु, आदित्य, अश्विन् सहित प्रभु, विश्वेदेव, मरुद्, साध्य, पितरो के साथ गन्धर्व, अप्सराएँ, यक्ष-राक्षस, पन्नग, असख्य देवर्षिगण तथा श्रेष्ठ ब्रह्मर्षिगण ॥२८-३१॥ वैखानस, वायु का आहार करने वाले, किरण पान कर जीवन बिताने वाले बालखिल्यगण, भृगुवशी, सब विद्याओ मे निपुण अङ्गिरस् ॥३२॥ सब शुभ विद्याधरो, तथा योग-सिद्धिया के साथ पितामह, पुलस्त्य, महातपस्वी पुलह, अङ्गिरा, कश्यप, अत्रि, मरीचि, भृगु क्रतु, हर, प्रचेता, मनु दक्ष, ऋतु, ग्रह, ज्योति पिण्ड, मूर्तिमती नदियाँ, नित्य सनातन देवता, समुद्र, ह्रद, सरोवर, विविध तीर्थ, पृथिवी, आकाश, दिशाये, वृक्ष, देवमाता अदिति, ह्री, श्री, स्वाहा, सरस्वती,

---

१क ग ०तरोऽव्यया। प्र०। २ग ०ता। रुद्राविवस०। ३ख ०श्च यतिभिश्च महात्मभि। स०। ४क ख. ०श्यपश्चैव म०। ५ख मधुर्द०। ६क ईश्वराश्च। ख ऐश्वराश्च। ७क ख. ०व नक्षत्राणि द्वि०। ८ग. ०तो वेदाश्चै०।

अदितिर्देवमाता च ह्रीः श्रीः स्वाहा सरस्वती। उमा शची सिनीवाली तथा चानुमतिः कुहूः ॥३७॥
राका च धिषणा चैव पत्न्यश्चान्या दिवौकसाम्। हिमवांश्चैव विन्ध्यश्च मेरुश्चानेकशृङ्गवान् ॥३८॥
ऐरावतः सानुचरः कलाकाष्ठास्तथैव च। मासार्धं मासऋतवस्तथा रात्र्यह्नी समाः ॥३९॥
उच्चैःश्रवा हयश्रेष्ठो नागराजश्च वामनः। अरुणो गरुडश्चैव वृक्षाश्चौषधिभिः सह ॥४०॥
धर्मश्च भगवान्देवः[1] समाजग्मुर्हि संगताः। कालो यमश्च मृत्युश्च यमस्यानुचराश्च[2] ये ॥४१॥
बहुलत्वाच्च नोक्ता ये विविधा देवतागणाः। ते देवस्याभिषेकार्थं समायान्ति ततस्ततः ॥४२॥
गृहीत्वा ते तदा विप्राः सर्वे देवा दिवौकसः। आभिषेचनिकं द्रव्यं मङ्गलानि च सर्वशः ॥४३॥
दिव्यसंभारसंयुक्तैः कलशैः काञ्चनैर्द्विजाः। सारस्वतीभिः पुण्याभिर्दिव्यतोयाभिरेव च ॥४४॥
[3]तोयेनाऽऽकाशगङ्गायाः कृष्णं रामेण संगतम्। सपुष्पैः काञ्चनैः कुम्भैः [4]स्नापयन्त्यवनिस्थिताः[5] ॥४५॥
संचरन्ति विमानानि देवानामम्बरे[6] तथा। उच्चावचानि दिव्यानि कामगानि स्थिराणि च ॥४६॥
दिव्यरत्नविचित्राणि सेवितान्यप्सरोगणैः। गीतैर्वाद्यैः पताकाभिः शोभितानि समन्ततः ॥४७॥
एवं तदा मुनिश्रेष्ठाः कृष्णं रामेण संगतम्। स्नापयित्वा सुभद्रां च संस्तुवन्ति मुदाऽन्विताः ॥४८॥
जय जय लोकपाल[7] भक्तरक्षक जय जय प्रणतवत्सल जय जय भूतचरण जय जयाऽऽदिदेव

उमा, शची, सिनीवाली, अनुमति, कुहू ॥३३-३७॥ राका, धिषणा एवं अन्य देवपत्नियाँ, हिमालय, विन्ध्य, अनेक शिखरों वाला मेरु ॥३८॥ अनुचरों सहित ऐरावत, कला काष्ठा (समय परिमाण) पक्ष मास, ऋतु, रात्रि, दिन, वर्ष उत्तम अश्व उच्चैःश्रवा, नागराज शेष, वामन, अरुण, गरुड, ओषधियों के सहित वृक्ष ॥३९-४०॥ काल, यम, मृत्यु, एवं यम के अन्य अनुचर, भगवान् धर्म, ये सभी देवता वहाँ इकट्ठे होते हैं। इसी प्रकार अन्य विविध अगणित देवगण जिनका नाम यहाँ अधिकता के कारण नहीं कहा गया है—अपने अपने स्थानों से वहाँ अभिषेक के लिये आते हैं ॥४१ ४२॥ विप्रवृन्द! उस समय वे सभी देवलोकवासी देवता स्वयं पृथ्वी पर स्थित हो मांगलिक अभिषेकोचित सामग्रियों एवं दिव्य स्नानोचित द्रव्यों से भरे सुवर्ण कलशों में पवित्र सरस्वती आदि नदियों एवं आकाशगंगा का दिव्य जल भरकर पुष्पादि सुगन्धित द्रव्यों से युक्त सुवर्ण कुम्भों से बलराम सहित कृष्ण और सुभद्रा को स्नान कराते हैं ॥४३-४५॥ उस समय आकाश में देवताओं के छोटे बड़े, मनोहर, दृढ और इच्छानुसार चलने वाले (इच्छा-परिचालित) विमान इधर-उधर उड़ते दिखाई देते हैं ॥४६॥ आकाश मण्डल अप्सराओं के दिव्य और विचित्र विचित्र आभूषणों, चारों ओर फहराती हुई मनोहर पताकाओं से जगमगा जाता है गन्धर्वों और कलकण्ठ मधुरालापी अप्सराओं के गान एवं वाद्य से आकाश गूंज उठता है ॥४७॥ मुनिगण! इस प्रकार आनन्द मग्न हो बलराम के सहित कृष्ण और सुभद्रा को स्नान कराने के उपरान्त सभी श्रद्धापूर्वक स्तुति करने लगते हैं ॥४८॥ हे लोकपाल! भक्तों के रक्षक, शरणागतों पर वात्सल्य भाव रखने वाले, आदिदेव प्राणिमात्र में स्थित

---

1 ग ०न्देवै स०। 2 क ०रास्तथा। ब०। 3 क तोयैराका०। 4 ख ०यन्ति धरास्थि०। 5 ग ०न्त्यम्बरे स्थि०। 6 ग ०पन्तरे। 7 क ०ल जय जयजय वाडक्षण जय जय पद्मनाभ जय जय परायण। ग ०ल जय जय पद्मनाभ भूधर०।

बहुकारण' जय जय वासुदेव जय जयासुरसहरण जय जय "दिव्यमीन' जय जय त्रिदशवर जय जय जलधिशयन जय जय योगिवर' जय जय सूर्यनेत्र जय जय देवराज जय जय कैटभारे जय जय वेदवर' जय जय कूर्मरूप जय जय यज्ञवर' जय जय कमलनाभ जय जय शैलचर जय जय योगशायिन्जय जय वेगधर जय जय विश्वमूर्ते जय जय चक्रधर जय जय भूतनाथ जय जय धरणीधर जय जय शेषशायिन्जय जय पीतवासो जय जय सोमकान्त जय जय योगवास जय जय दहनवक्त्र' जय जय धर्मवास जय जय गुणनिधान जय जय श्रीनिवास जय जय गरुडगमन जय जय सुखनिवास जय जय धर्मकेतो जय जय महीनिवास जय जय 'गहनचरित्र' जय जय योगिगम्य जय जय मखनिवास जय जय वेदवेद्य जय जय शान्तिकर जय जय योगिचिन्त्य जय जय पुष्टिकर जय जय ज्ञानमूर्ते जय जय कमलाकर जय जय भाववेद्य'' जय जय मुक्तिकर'' जय जय विमलदेह जय जय सत्त्वनिलय'' जय जय गुणसमृद्ध 'जय जय यज्ञकर जय जय गुणविहीन जय जय मोक्षकर जय जय भूशरण्य जय जय कान्तियुत जय जय लोकशरण जय जय लक्ष्मीयुत जय जय पङ्कजाक्ष जय जय सृष्टिकर जय जय योगयुत जय जयातसीकुसुमश्यामदेह'' जय जय "समुद्रविष्टदेह'' जय जय लक्ष्मीपङ्कजषट्चरण जय जय भक्तवश जय जय लोककान्त जय जय परमशान्त जय जय परमसार जय जय चक्रधर जय जय भोगियुत जय जय नीलाम्बर जय जय शान्तिकर जय जय मोक्षकर जय जय कलुषहर ॥४९॥

बहुकारण वासुदेव असुर विनाशक दिव्यमत्स्यरूपधारिन देववर समुद्र म सोने वाले योगिश्रेष्ठ देवो के स्वामी, सूर्यनेत्र कैटभ के शत्रु वेद रूप कूर्मावतार धारण करने वाले यज्ञवर पद्मनाभ शैलचर! आपकी जय हो जय हो। हे प्रलयकाल मे योगमाया मे शयन करने वाले वेगधर विश्वरूप चक्रधर भूतो के नाथ पृथ्वी को धारण करने वाले, शेष पर शयन करने वाले पीताम्बर चन्द्र के समान कान्तिमान् योग-वास मुख से अग्नि उत्पन्न करने वाले धर्मरूप, गुणो के कोष श्री के वासस्थान (पति) गरुड पर गमन करने वाले सुख के सागर धर्म की पताका फहराने वाले, पृथ्वी व्यापक गढ चरित्र वाले योगियो द्वारा प्राप्त होने वाले यज्ञो मे वास करने वाले वेदो के द्वारा जानने योग्य, शान्ति दाता योगियो से ध्यान किये जाने वाले भगवन्! आपका जय जयकार हो। हे पुष्टिकर्त्ता! ज्ञान के स्वरूप कमलाकर भावनाओ द्वारा जानने योग्य मुक्तिदाता निर्मल स्वरूप वाले सत्त्व के निधान गुणशाली (सगुण) यज्ञकर गुणातीत मोक्षदाता लोकरक्षक कान्तिमान लोकाश्रय लक्ष्मीपति कमलनेत्र सृष्टि करनेवाले अल्सी (तीसी) के कुसुम के समान श्याम शरीर वाले घनश्याम! सागर के मध्य निवास करने वाले लक्ष्मीरूपी कमल का भ्रमर के समान मधुपान करने वाले भक्तजनो के वश रहने वाले लोकपति परमशान्त! आपकी जय हो जय हो। हे परमतत्त्व! चक्रधर! हे सर्पशायिन् नीलाम्बर (बलराम) शान्तिकर मोक्षप्रद और कलुषहरण करने वाले! आपकी

१ग ०हुकर०। २ख दिव्यगीत। ३क ०न जय जय जल०। ४क ०वन्द्य ज०। ५क ख वैदवर ६क यज्ञरूप। ख यनचर। ७क ख दहनचक्र। ८ग गहनगेहनिवास। ९ख ०नगमन जय जय भवाब्धिवास ज०। १०क भववेद्य। ११क ख मूर्तिकर। १२क ख प्रीतिकर। १३ग गुणसमह। १४ख ०म ज०। १५क ख सप्तसमु०। १६क ख ०न्गेह०।

जय कृष्ण जगन्नाथ जय सङ्कर्षणानुज। जय पद्मपलाशाक्ष जय वाञ्छाफलप्रद ॥५०॥
जय मालावृतोरस्क जय चक्रगदाधर। जय पद्मालयाकान्त जय विष्णो नमोऽस्तु ते ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

एवं स्तुत्वा तदा देवा शक्राद्या हृष्टमानसा। सिद्धचारणसंघाश्च ये चान्ये स्वर्गवासिन ॥५२॥
मुनयो वालखिल्याश्च कृष्णं रामेण सगतम्। सुभद्रां च मुनिश्रेष्ठा प्रणिपत्याम्बरे स्थिता ॥५३॥
दृष्ट्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा तदा ते त्रिदिवौकस। कृष्णं रामं सुभद्रां च यान्ति स्वं स्वं निवेशनम् ॥५४॥
सचरन्ति विमानानि देवानामम्बरे तदा। उच्चावचानि दिव्यानि कामगानि स्थिराणि च ॥५५॥
दिव्यरत्नविचित्राणि सेवितान्यप्सरोगणै। गीतैर्वाद्यै पताकाभि शोभितानि समन्तत ॥५६॥
तस्मिन्काले तु ये मर्त्या पश्यन्ति पुरुषोत्तमम्। बलभद्रं सुभद्रां च ते यान्ति पदमव्ययम् ॥५७॥
सुभद्रारामसहितं मञ्चस्थं पुरुषोत्तमम्। दृष्ट्वा निरामयस्थानं याति नास्त्यत्र संशय ॥५८॥
कपिलाशतदानेन यत्फलं पुष्करे स्मृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य[1] मञ्चस्थं सहलायुधम्॥
सुभद्रां च मुनिश्रेष्ठा प्राप्नोति शुभकृन्नर ॥५९॥
कन्याशतप्रदानेन यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नर ॥६०॥
सुवर्णशतनिष्काणां दानेन यत्फलं स्मृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नर ॥६१॥

जय हो ॥४९॥ कृष्ण! जगत्पते! बलराम के छोटे भ्राता! पद्मपत्र के समान मनोहर नेत्रवाले! मनोरथ सिद्ध करने वाले! सर्वदा वक्षःस्थल पर वैजयन्ती माला धारण करने वाले! चक्रगदाधारिन्! लक्ष्मीपते विष्णो! आपकी जय हो। आपको हमारे असंख्य नमस्कार हैं ॥५०-५१॥

ब्रह्मा बोले—मुनिवर! उस समय इस प्रकार इन्द्र आदि देवता सिद्ध और चारणों का समूह एवं अन्य सभी स्वर्गवासी देवता समस्त मुनिगण और वालखिल्य प्रभृति ऋषिगण राम सहित कृष्ण और सुभद्रा की स्तुति करते तथा प्रणाम कर आकाश में स्थित हो जाते हैं ॥५२-५३॥ इसके अनन्तर वे देववृन्द कृष्ण, राम एवं सुभद्रा का दर्शन, स्तुति अथवा नमस्कार कर अपने-अपने निवास-स्थान को चले जाते हैं ॥५४॥ उस समय आकाश में मनोहर छोटे बड़े उत्तम दृढ़ विमान उड़ते हुये दिखाई देते हैं। आकाश रंग बिरंगी पताकाओं और अप्सराओं के विचित्र विचित्र आभूषणों से सुशोभित हो जाता है अप्सराओं के मनोहर मधुर गान और वाद्य से स्वयं गाता हुआ सा जान पड़ता है ॥५५-५६॥ उस समय जो मनुष्य राम कृष्ण और सुभद्रा का दर्शन करते हैं वे अव्यय पद को प्राप्त करते हैं। मञ्च पर बैठे सुभद्रा राम के सहित पुरुषोत्तम कृष्ण का दर्शन कर मनुष्य निरामय स्थान को प्राप्त करते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥५७॥ मुनिवर! पुष्कर क्षेत्र में सैकड़ों गौओं के दान से जो फल मिलता है उस फल को शुभ कार्य करनेवाला मनुष्य मञ्चस्थ कृष्ण, बलराम और सुभद्रा को देखकर प्राप्त करता है ॥५८॥ सैकड़ों कन्यादान में जो फल शास्त्रों में कहे गये हैं मनुष्य उसको मञ्चस्थ कृष्ण के दर्शन में प्राप्त करता है ॥६०॥ सौ निष्क (एक निष्क १६ माशा)

१क सदा। २क ०क्य सुवर्णं लभते नर। क०।

गोसहस्रप्रदानेन यत्फलं परिकीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६२॥
भूमिदानेन विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६३॥
यत्फलं चान्नदानेन अर्घातिथ्येन कीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६४॥
वृषोत्सर्गेण विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६५॥
यत्फलं तोयदानेन ग्रीष्मे वाऽन्यत्र कीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६६॥
तिलधेनुप्रदानेन यत्फलं संप्रकीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६७॥
गजाश्वरथदानेन यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६८॥
सुवर्णशृङ्गीदानेन यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६९॥
जलधेनुप्रदानेन यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥७०॥
दानेन घृतधेन्वाश्च फलं यत् समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥७१॥
चान्द्रायणेन चीर्णेन यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥७२॥
मासोपवासैर्विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥७३॥
अथ किं बहुनोक्तेन भाषितेन पुनः पुनः। तस्य देवस्य माहात्म्यं मञ्चस्थस्य द्विजोत्तमाः॥७४॥
यत्फलं सर्वतीर्थेषु व्रतैर्दानैश्च कीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं सहलायुधम्॥७५॥
सुभद्रां च मुनिश्रेष्ठाः प्राप्नोति शुभकृन्नरः। तस्मान्नरोऽथवा नारी पश्येत्तं पुरुषोत्तमम्॥७६॥
ततः समस्ततीर्थानां लभेत्स्नानादिकं फलम्। स्नानशेषेण कृष्णस्य तोयेनाऽऽत्माऽभिषिच्यते॥७७॥
वन्ध्या मृतप्रजा या तु दुर्भगा ग्रहपीडिता। राक्षसाद्यैर्गृहीता वा तथा रोगैश्च संहता॥७८॥

परिमित स्वर्णदान से हजार गौओ के दान से, विधिपूर्वक भूमिदान करने से एव अन्नदान और अतिथि सत्कार से जो फल मिलते हैं वे सभी मञ्चस्थ कृष्ण का दर्शन करने से मनुष्यो को मिल जाते हैं॥६१-६४॥ इसी प्रकार विधिपूर्वक वृषोत्सर्ग श्राद्ध करने से गर्मी के दिनो मे जल पिलाने से, तिलधेनु (कूटे हुए तिला की बनी गाय की प्रतिमा) के दान से, हाथी घोडे और रथ के दान से सोने से मढे सीग वाली गौओ के दान से, जल धेनु, घृत धेनु (घी से बनी धेनु) के दान से जो फल शास्त्रानुसार प्राप्त होते हैं वे फल मञ्च पर आसीन पुरुषोत्तम कृष्ण के दर्शन से प्राप्त होते हैं॥६५ ७१॥ चान्द्रायण व्रत एव विधिपूर्वक एक मास के उपवास से जो फल प्राप्त होता है वह मञ्च पर स्थित कृष्ण के दर्शन से मनुष्य को मिलता है॥७२॥ द्विजवर! उस मञ्चस्थ देव कृष्ण के दर्शन की महिमा को इस प्रकार बार बार अधिक कहने से क्या लाभ? सब तीर्थों के करने दान देने और व्रतो के अनुष्ठान से जो फल होते हैं वे सभी मञ्चस्थ बलराम के सहित कृष्ण और सुभद्रा के दर्शन से पुण्यवान् मनुष्य को प्राप्त होते हैं॥७३ ७५३॥ इसलिये नर अथवा नारी अवश्य उस पुरुषोत्तम का दर्शन करे॥७६॥ इसके अतिरिक्त कृष्ण के अभिषेक से बचे जल से जो स्नान करता है वह सम्पूर्ण तीर्थ के स्नान का फल पाता है॥७७॥ वन्ध्या, मृतवत्सा, विधवा या भाग्यहीन, ग्रहो से पीडित, भूतप्रेतादि

---

१ ख समुदाहृतम्।

सद्यस्ता स्नानशेषेण उदकेनाभिषेचिता.। प्राप्नुवन्तीप्सितान् कामान्यान्वाञ्छन्ति चेप्सितान् ॥७९॥
पुत्रार्थिनी लभेत्पुत्रान्सौभाग्य च सुखार्थिनी। रोगार्ता मुच्यते रोगाद्धन च धनकाङ्क्षिणी॥८०॥
पुण्यानि यानि तोयानि तिष्ठन्ति धरणीतले। तानि स्नानावशेषस्य कला नार्हन्ति षोडशीम्॥८१॥
तस्मात्स्नानावशेष यत्कृष्णस्य सलिल द्विजा। तेनाभिषिञ्चेद्गात्राणि सर्वकामप्रद हि तत्॥८२॥
स्नात पश्यन्ति ये कृष्ण व्रजन्त दक्षिणामुखम्। ब्रह्महत्यादिभि पापैर्मुच्यन्ते ते न सशय॥८३॥
शास्त्रेषु यत्फल प्रोक्त पृथिव्यास्त्रिप्रदक्षिणे। दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण व्रजन्त दक्षिणामुखम्॥८४॥
तीर्थयात्राफल यत्तु पृथिव्या समुदाहृतम्। दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम्॥८५॥
बदर्यां यत्फल प्रोक्त दृष्ट्वा नारायण नरम्। दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम्॥८६॥
गङ्गाद्वारे कुरुक्षेत्रे स्नानदानेन यत्फलम्। दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम्॥८७॥
प्रयागे च महामाघ्या यत्फल समुदाहृतम्। दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम्॥८८॥
शालग्रामे महाचैत्र्या स्नानदानेन यत्फलम्। दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम्॥८९॥
महाभिधानकार्तिक्या पुष्करे यत्फल स्मृतम्। दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम्॥९०॥
यत्फल स्नानदानेन गङ्गासागरसगमे। दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम्॥९१॥
ग्रस्ते सूर्ये कुरुक्षेत्रे स्नानदानेन यत्फलम्। दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम्॥९२॥

से दुखी और रोगग्रस्त स्त्रिया यदि उस स्नान से बचे जल से स्नान करें तो तत्क्षण ही अपनी सम्पूर्ण इच्छाओ और मनोरथो को प्राप्त कर लेती हैं॥७९॥ पुत्र की कामना करने वाली स्त्री पुत्र को पाती है, सुख चाहने वाली अपने सौभाग्य को प्राप्त करती है, रोगी अपन रोगो से छूट जाती है और धन की इच्छा रखने वाली धन प्राप्त करती है॥८०॥ इस पृथ्वीतल पर जितने प्रकार के जल पाये जाते हैं वे सभी इस स्नान से बचे जल के सोल्हवे भाग के बराबर भी पुण्य देने वाले नही होते॥८१॥ द्विजगण[1] इसलिये कृष्ण के स्नान से बचे जल से अवश्य अपने गात्रो का अभिषेक करना चाहिये क्योकि वह सब मनोरथो को देने वाला है॥८२॥ जो मनुष्य स्नान किये हुए और दक्षिण की ओर जाने वाले (यहाँ रथयात्रा से अभिप्राय है। स्नान के बाद रथ पर कृष्ण को चढ़ाकर घुमाया जाता है) कृष्ण को देखता है वह नि सन्देह ब्रह्महत्या आदि पापो से मुक्त हो जाता है॥८३॥ शास्त्रो मे पृथ्वी की तीन बार प्रदक्षिणा करने से जो फल कहे गये हैं वे दक्षिणाभिमुख जाने वाले कृष्ण के दर्शन से मनुष्यो को प्राप्त होते है॥८४॥ पृथ्वी पर तीर्थयात्रा करने से जो फल मिलते हैं, बदरिकाश्रम जाकर नारायण के दर्शन करने से जो फल मिलते है हरद्वार कुरुक्षेत्र मे स्नान करने एव दान देने से जो फल मिलते हैं माघी अमावस्या को प्रयाग मे स्नान करने से जो फल मिलते हैं, वे सभी दक्षिणाभिमुख जाने वाले कृष्ण के दर्शन से मनुष्य को मिलते हैं॥८५ ८८॥ पुण्यदायक चैत्रमास मे शालग्राम तीर्थ मे स्नान करने, और दान देने से, महापुण्यदायिनी कार्तिक-पूर्णिमा के दिन पुष्कर क्षेत्र मे स्नान और दान से, गङ्गासागर सगम के स्नान और दान से, सूर्य ग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र मे स्नान करने और दान देने से जो

१क ग ०रे च कुब्जाम्रे स्ना०।

गङ्गाया सर्वतीर्थेषु यामुनेषु च भो द्विजा । सारस्वतेषु तीर्थेषु तथाऽन्येषु सर सु च ॥९३॥
यत्फल स्नानदानेन विधिवत्समुदाहृतम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥९४॥
पुष्करे चाथ तीर्थेषु गये चामरकण्टके । नैमिषादिषु तीर्थेषु क्षेत्रेष्वायतनेषु च ॥९५॥
यत्फल स्नानदानेन राहुग्रस्ते दिवाकरे । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥९६॥
अथ कि पुनरुक्तेन भाषितेन पुन पुन । यत्किचित्कथित चात्र फल पुण्यस्य कर्मण ॥९७॥
वेदशास्त्रे पुराणे च भारते च द्विजोत्तमा । धर्मशास्त्रेषु सर्वेषु तथाऽन्यत्र मनीषिभि ॥९८॥
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल सहलायुधम् । सकल भद्रया साध व्रजन्त दक्षिणामुखम् ॥९९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भूषिसवादे कृष्णस्नानमाहात्म्यवर्णन नाम पञ्चषष्टितमोऽध्याय ॥६५॥

फल होता है वह दक्षिणाभिमुख जाने वाले कृष्ण के दर्शन से होता है॥८९ ९२॥ गगा के सभी तीर्थों यमुना के सभी तीर्थों सरस्वती एव अन्य सरोवरा के तीर्थों मे विधिवत् स्नान और दान से जो फल कहे गये हैं वे समा फल दक्षिणाभिमुख जाने वाले कृष्ण के दशन से मनुष्य को प्राप्त होते हैं॥९३ ९४॥ सभप म पुष्कर गया अमरकण्टक नमिषारण्य इत्यादि तीर्थों क्षत्रो एव देवमन्दिरो मे जाने दशन करने दान देने तथा सूयग्रहण काल के स्नान-दान से जो फल मिलत है वे सभी फल उस भाग्यवान मनुष्य को मिलते हैं जो दक्षिणाभिमुख जाते हुए कृष्ण का दशन करता है॥९५ ९६॥ अथवा बार बार पुनरुक्त भाषण करने से क्या प्रयाजन ? वेदशास्त्र पुराण महाभारत तथा सभी धमशास्त्रो और अन्यत्र भी विद्वानो द्वारा ज पुण्य-फल कहे गये हैं वे सभी उस मनुष्य को प्राप्त होते हैं जो बलराम और सुभद्रा के सहित दक्षिण की ओर जाते हुए कृष्ण का दशन करता है॥९७ ९९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे कृष्ण माहात्म्य-वणन नामक पसठवाँ अध्याय समाप्त॥६५॥

[illegible]

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

गुडिवायात्रामाहात्म्यकथनम्

ब्रह्मोवाच

'गुडिवामण्डप यान्त ये पश्यन्ति रथे स्थितम। कृष्ण बल सुभद्रा च ते यान्ति भवन हरे ॥१॥
ये पश्यन्ति तदा कृष्ण सप्ताह मण्डपे स्थितम। हलिन च सुभद्रा च विष्णुलोक व्रजन्ति ते॥२॥

मुनय ऊचु

कन सा निर्मिता यात्रा दक्षिणस्या जगत्पते। यात्राफल च किं तत्र प्राप्यते ब्रूहि मानवं ॥३॥
किमर्थं सरसस्तीरे राजस्तस्य जगत्पते। पवित्रे विजने देशे गत्वा तत्र च मण्डपे॥४॥
कृष्ण सकर्षणश्चैव सुभद्रा च रथन त। स्वस्थान सपरित्यज्य सप्तरात्र वसन्ति वै॥५॥

ब्रह्मोवाच

इन्द्रद्युम्नेन भो विप्रा पुरा वै प्रार्थितो हरि। सप्ताह सरसस्तीरे मम यात्रा भवत्विति॥६॥
गुडिवा नाम देवेश भुक्तिमुक्तिफलप्रदा। तस्मै किल वर चासौ ददौ स पुरुषोत्तम ॥७॥

अध्याय ६६

गुडिवायात्रा का माहात्म्य कथन

ब्रह्मा बोल—जो मनुष्य रथ पर चढ कृष्ण बलराम और सुभद्रा को गुडिवा मण्डप की ओर जाते हुए देखते हैं वे विष्णुधाम को प्राप्त करते हैं। और जो मण्डप म स्थित कृष्ण राम और सुभद्रा का एक सप्ताह पर्यन्त दर्शन करते हैं वे विष्णुलोक को जाते हैं॥१ २॥

मुनियो ने पूछा—जगत्पते! किसने भगवान् की उस दक्षिण की ओर की यात्रा का नियम निकाला और इस यात्रा के दर्शन से मनुष्यों को कौन सा फल मिलता है कृपा करके सुनाइये। जगत्पते! उस इन्द्रद्युम्न सर के तार पर पवित्र निर्जन प्रान्त म कृष्ण बलराम और सुभद्रा मन्दिर से रथ द्वारा [illegible] जाकर उस मण्डप म एक सप्ताह तक किसलिये रह जाते हैं॥३ ५॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रवृन्द! पहले इन्द्रद्युम्न ने भगवान् से प्रार्थना की थी कि मेरे सरोवर के तट पर एक सप्ताह तक आपकी यात्रा हो। देवेश! यह यात्रा भोग और मोक्ष को देनेवाली गुण्डिया नाम से विख्यात हो। ऐसी प्रार्थना सुनकर पुरुषोत्तम ने उनको मनचाहा वर प्रदान किया॥६-७॥

१क गुटिवा०। ख गुण्डिवा०। २ख दक्षिणास्यां। ग गुडिवास्यां। ३ख म जगन्न। ४ख यात्रा।

श्रीभगवानुवाच।

सप्ताहं सरसस्तीरे तव राजन्भविष्यति। गुडिवा[1] नाम यात्रा मे सर्वकामफलप्रदा॥८॥
ये मां तत्रार्चयिष्यन्ति श्रद्धया मण्डपे स्थितम्। संकर्षणं सुभद्रां च विधिवत्सुसमाहिताः॥९॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्राश्च वै नृप। पुष्पैर्गन्धैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यकैर्वरैः॥१०॥
उपहारैर्बहुविधैः[2] प्रणिपातैः प्रदक्षिणैः। जयशब्दैस्तथा स्तोत्रैर्गीतैर्वाद्यैर्मनोहरैः॥११॥
न तेषां दुर्लभं किञ्चित्फलं यस्य यदीप्सितम्। भविष्यति नृपश्रेष्ठ मत्प्रसादादसंशयम्॥१२॥

ब्रह्मोवाच

[एवमुक्त्वा] तु तं देवस्तत्रैवान्तरधीयत। स तु [3]राजवरः श्रीमान्कृतकृत्योऽभवत्तदा॥१३॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन [4]गुडिवायां [द्विजोत्तमाः। सर्वकामप्रदं] देवं पश्येत्तं पुरुषोत्तमम्॥१४॥
अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनो लभते धनम्। रोगाच्च मुच्यते रोगी कन्या प्राप्नोति सत्पतिम्॥१५॥
आयुः कीर्तिं यशो मेधां बलं विद्यां धृतिं पशून्। नरः संततिमाप्नोति रूपयौवनसंपदम्॥१६॥
यान्यान्समीहते[6] भोगान्दृष्ट्वा तं पुरुषोत्तमम्। नरो वाऽप्यथवा नारी तांस्तान्प्राप्नोत्यसंशयम्॥१७॥
यात्रां कृत्वा [7]गुडिवाख्यां विधिवत्सुसमाहितः। आषाढस्य[8] सिते पक्षे नरो योषिदथापि वा॥१८॥

श्री भगवान् ने कहा—राजन्! तुम्हारे सरोवर के तट पर मेरी सब मनोरथो को देनेवाली गुडिवा नाम की यात्रा एक सप्ताह पर्यन्त होगी। जो एकाग्र चित्त से मण्डप मे स्थित मेरी, बलराम और सुभद्रा की पुष्प, गंध, धूप दीप, नैवेद्य तथा विविध उत्तम उपहारो से विधिवत् पूजा कर नमस्कार एवं प्रदक्षिणा करेंगे तथा जयध्वनि, स्तोत्रपाठ मनोहर गान, वाद्य आदि से मुझे संतुष्ट करेंगे, नृप! वे चाहे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कोई भी क्यो न हो उनके लिये संसार म कुछ भी दुर्लभ नही रहेगा। नृपश्रेष्ठ! मेरी कृपा से उनको निश्चित ही इच्छानुकूल फल प्राप्त होंगे॥८-१२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार भगवान् विष्णु राजा से कहकर अन्तर्हित हो गये। वह प्रभावशाली राजा भी अत्यन्त कृतकृत्य हो गया॥१३॥ इसलिये, द्विजवर! मनुष्य को प्रयत्न करके गुडिवा यात्रा के समय सब मनोरथ सिद्ध करने वाले पुरुषोत्तम देव का दर्शन करना चाहिये॥१४॥ पुत्रहीन व्यक्ति पुत्रो को, और धनहीन धन को प्राप्त करता है। इसी प्रकार रोगी अपने रोग से मुक्त हो जाता है और कन्या इच्छानुरूप उत्तम पति प्राप्त करती है॥१५॥ भगवान् पुरुषोत्तम के दर्शन से मनुष्य आयु, कीर्ति, यश, बुद्धि, बल, विद्या, धैर्य, रूप, यौवन, धन और उत्तम सन्तान प्राप्त करता है॥१६॥ नर हो या नारी सभी भगवान् के दर्शन से जिन जिन सुखो की इच्छा करते है, निःसन्देह उनकी वे सभी इच्छाएँ पूरी होती है। नर हो अथवा स्त्री कोई भी आषाढ़ के शुक्ल पक्ष मे अनन्य भाव से विधि-

---

१ग. गुण्डिचा। २ग. ०विधैरपचारैः प्रणामैः। ख०। ख. ०विधैश्चपचारैः प्र०। ३ग. भूपवरः। ४ग. गुण्डिचायां। ५ग. ०ट सद्गति०। ६ग. ०ते भोगान्दृ०। ७ख. गुण्डिचा०। ८ख. ०ढस्यासि०।

दृष्ट्वा कृष्णं च रामं च सुभद्रां च द्विजोत्तमाः। दशपञ्चाश्वमेधानां फलं प्राप्नोति चाधिकम्॥१९॥
सप्तावरान्सप्त परान्वंशानुद्धृत्य चाऽऽत्मनः। कामगेन विमानेन सर्वरत्नैरलंकृतः॥२०॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सेव्यमानो यथोत्तरैः। रूपवान्सुभगः शूरो नरो विष्णुपुरं व्रजेत्॥२१॥
तत्र भुक्त्वा वरान्भोगान्यावदाभूतसंप्लवम्। सर्वकामसमृद्धात्मा जरामरणवर्जितः॥२२॥
पुण्यक्षयादिहाऽऽगत्य चतुर्वेदी द्विजो भवेत्। वैष्णवं योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात्॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे गुडिवायात्रामाहात्म्यनिरूपणं
नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः॥६६॥

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

द्वादशयात्रामाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

एकैकस्यास्तु यात्राया[१] फलं ब्रूहि पृथक्पृथक्[२]। यत्प्राप्नोति नरः कृत्वा नारी[३] वा तत्र संयता[४]॥१॥

पूर्वक गुडिवा नाम की यात्रा कर एव कृष्ण, राम और सुभद्रा का दर्शन कर द्विजवृन्द! पन्द्रह अश्वमेध यज्ञों से भी अधिक फल प्राप्त करता है॥१७-१९॥ वह अपने सात बीते और सात आने वाले वंशों का उद्धार कर स्वयं इच्छागामी विमान से सब रत्नों से अलङ्कृत होकर विष्णुलोक को जाता है॥२०-२१॥ वहाँ उसकी गन्धर्व और अप्सराओं द्वारा उत्तरोत्तर क्रम से सेवा होती है और वह रूपवान्, भाग्यशाली एव शूरवीर होता है। उस विष्णुलोक में वह जरा-मृत्यु से रहित और शान्त होकर कल्पान्त तक उत्तम भोगों का भोग करता है। पुनः पुण्य क्षीण हो जाने पर इस लोक में आकर चारों वेदों का ज्ञाता ब्राह्मण होता है। तदनन्तर वैष्णव योग (ज्ञान) को पाकर मोक्ष का अधिकारी होता है॥२२-२३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद में गुडिवा-यात्रा माहात्म्य-वर्णन नामक
छाछठवाँ अध्याय समाप्त॥६६॥

अध्याय ६७

बारह यात्राओं का माहात्म्य-वर्णन

मुनियों ने कहा—उन यात्राओं को अनन्य भाव से करके स्त्री पुरुष क्या फल पाते हैं कृपया एक-एक यात्रा का फल अलग-अलग कहिये॥१॥

१क. ख ०मात्राद्वत०। २ख. ०यग्विमो। य०। ३ख. ०रीमिस्तत्र सं०। ४क. ख. सयुतः।

ब्रह्मोवाच

प्रतियात्राफलं विप्राः शृणुध्वं गदतो मम। यत्प्राप्नोति नरः कृत्वा तस्मिन्क्षेत्रे सुसंयतः ॥२॥
गुडिवायां तथोत्थाने फाल्गुन्यां विषुवे तथा। यात्रां कृत्वा विधानेन दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥३॥
संकर्षणं सुभद्रां च लभेत्सर्वत्र वै फलम्। नरो गच्छेद्विष्णुलोके यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥४॥
यावद्यात्रां ज्येष्ठमासे करोति विधिवन्नरः। तावत्कल्पं विष्णुलोके सुखं भुङ्क्ते न संशयः ॥५॥
तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये रम्ये श्रीपुरुषोत्तमे। भुक्तिमुक्तिप्रदे नृणां सर्वसत्त्वसुखावहे ॥६॥
ज्येष्ठे यात्रा(त्रां) नरः कृत्वा नारी वा संयतेन्द्रियः। यथोक्तेन विधानेन दश[1] द्वे च समाहितः ॥७॥
प्रतिष्ठां कुरुते यस्तु शाठ्यदम्भविवर्जितः। स भुक्त्वा विविधान्भोगान्मोक्षं चान्ते लभेद्ध्रुवम् ॥८॥

मुनय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे देव प्रतिष्ठां वदतस्तव। विधानं चार्चनं दानं फलं तत्र जगत्पते[2] ॥९॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रतिष्ठाविधिचोदिताम्। यां कृत्वा तु नरो भक्त्या नारी वा लभते फलम् ॥१०॥
यात्रा द्वादश संपूर्णा यदा स्यात्तु (स्युस्तु) द्विजोत्तमाः। तदा कुर्वीत विधिवत्प्रतिष्ठां पापनाशिनीम् ॥११॥

ब्रह्मा बोले—विप्रवृन्द! संयमी व्यक्ति उस तीर्थ (गुडिवा) की यात्रा को संपन्न कर प्रत्येक यात्रा का जो फल प्राप्त करते हैं उसको मैं कह रहा हूँ सुनो ॥२॥ फाल्गुन की पूर्णिमा, विषुव (जिस दिन रात्रि दिन समान होते हैं) काल में तथा देवोत्थान एकादशी के दिन गुडिवा यात्रा कर विधिपूर्वक कृष्ण बलराम तथा सुभद्रा को प्रणाम कर मनुष्य सब फलों को प्राप्त करता है और चौदह इन्द्रों के भोग-काल तक विष्णु के लोक में निवास करता है ॥३-४॥ ज्येष्ठ के महीने में मनुष्य जितने बार विधिपूर्वक यात्रा करता है वह उतने ही कल्पों तक विष्णु लोक में सुख भोग करता है इसमें सन्देह नहीं ॥५॥ उस पवित्र मनोहर भोग और मोक्ष को देने वाले सभी प्राणियों को सुख पहुँचाने वाले पुरुषोत्तम क्षेत्र में जो जितेन्द्रिय नारी या नर अनन्य भाव से विधान के अनुसार बारह बार ज्येष्ठ मास में यात्रा करके तथा शठता और दम्भ को छोड़कर स्वप्रतिष्ठा करेंगे वे विविध भोगों का भोग कर अन्तकाल में निश्चित ही मोक्ष प्राप्त करेंगे ॥६-८॥

मुनिगण बोले—देव! अभी आपने जो जगत्पति की प्रतिष्ठा की चर्चा की है उस प्रतिष्ठा के विधान पूजन दान और फल के विषय में हम लोग सुनना चाहते हैं कृपाकर सुनाइये ॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर! जिस देवप्रतिष्ठा के करने से मनुष्य उत्तम फलों को प्राप्त करता है उस प्रतिष्ठा की विधि मैं बता रहा हूँ ध्यानपूर्वक सुनो ॥१०॥ उत्तम द्विजवृन्द! जब बारह बार यात्रा पूरी हो जाय तब

१ग. गुण्डिवा०। २घ. दशाब्द च। ३ग. जगत्पते।

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे त्वेकादश्यां समाहित । गत्वा जलाशयं पुण्यमाचम्य प्रयत शुचि ॥१२॥
आवाह्य सर्वतीर्थानि ध्यात्वा नारायण तथा। तत स्नान प्रकुर्वीत विधिवत्सुसमाहित ॥१३॥
यस्य यो विधिरुद्दिष्ट ऋषिभि स्नानकर्मणि। तेनैव तु विधानेन स्नान तस्य विधीयते ॥१४॥
स्नात्वा सम्यग्विधानेन तता देवानृषीन्पितॄन्। सतर्पयेत्तथाऽन्यांश्च नामगोत्रविधानवित ॥१५॥
उत्तीर्य वाससी धौते निर्मले परिधाय वै। उपस्पृश्य विधानेन भास्कराभिमुखस्तत ॥१६॥
गायत्रीं पावनीं देवीं मनसा वेदमातरम्। सर्वपापहरा पुण्यां जपेदष्टोत्तर शतम् ॥१७॥
पुण्याश्च सौरमन्त्राश्च श्रद्धया सुसमाहित । त्रि प्रदक्षिणमावृत्य भास्कर प्रणमेत्तत ॥१८॥
वेदोक्त त्रिषु वर्णेषु स्नान[1] जाप्यमुदाहृतम। स्त्रीशूद्रयो स्नानजाप्य वेदोक्तविधिवर्जितम् ॥१९॥
ततो गच्छेद्‌गृह मौनी पूजयेत्पुरुषोत्तमम्। प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च उपस्पृश्य यथाविधि ॥२०॥
घृतेन स्नापयेद्देव क्षीरेण तदनन्तरम्। मधुगन्धोदकेनैव तीर्थचन्दनवारिणा[2] ॥२१॥
ततो वस्त्रयुग श्रेष्ठ भक्त्या त परिधापयेत। चन्दनागरुकर्पूरैं कुङ्कुमेन विलेपयेत ॥२२॥
पूजयेत्परया भक्त्या [3]पद्मैश्च पुरुषोत्तमम। अन्यैश्च वैष्णवै[4] पुष्पैरर्चयेन्मल्लिकादिभि ॥२३॥
सपूज्यैव जगन्नाथ भुक्तिमुक्तिप्रद हरिम्। धूप चागुरुसयुक्त[5] दहेद्देवस्य चाग्रत ॥२४॥

विधिपूर्वक इस पापनाशिनी प्रतिष्ठा को करना चाहिये ॥११॥ ज्येष्ठ मास की शुक्ल-एकादशी के दिन सयत भाव से उस पवित्र जलाशय के समीप जाकर आचमन कर पवित्र होना चाहिये ॥१२॥ पुन सब तीर्थों का आवाहन कर तथा भगवान् का ध्यान कर विधिपूर्वक समाहित चित्त से उसमे स्नान करना चाहिये ॥१३॥ ऋषियो ने स्नान-कर्म मे जिसके लिये जो विधि बताई है उसी विधि से स्नान करना चाहिये ॥१४॥ तदनन्तर भली भाँति स्नान कर नाम गोत्र का जानने वाला व्यक्ति देव ऋषि पितर तथा अन्य देवो का तर्पण करे ॥१५॥ इसके बाद जल से निकल कर स्वच्छ निर्मल धुले वस्त्र पहन कर सूर्याभिमुख हो विधिपूर्वक आचमन करे ॥१६॥ आचमन से पवित्र हो सब पापो को दूर करने वाली पवित्र वेदमाता गायत्री देवी का मन मे जप करे ॥१७॥ इसके अनन्तर पवित्र सूर्यमन्त्रो का पाठ करते हुए श्रद्धा और सयत भाव से तीन बार प्रदक्षिणा कर सूर्य को प्रणाम करे ॥१८॥ मैंने तीन वर्णों के लिये वेदो द्वारा कहे गये स्नान और जपविधान को कहा है स्त्री शूद्रो के लिए वेदविधि से स्नान और जप वर्जित है ॥१९॥ इस प्रकार सन्ध्या वन्दन से निवृत्त होकर मौन हो घर जाय वहाँ हाथ-पैर धोकर यथाविधि आचमन कर पुरुषोत्तम की पूजा प्रारम्भ करे ॥२०॥ पहले भगवान् को घृत से तदनन्तर दूध से नहलाय फिर मधु-सुगन्ध मे युक्त जल तथा चन्दन मिश्रित तीर्थ-जल से नहलाकर भक्तिपूर्वक भगवान् को उत्तम युगल वस्त्र पहनाय शरीर मे चन्दन अगर कुङ्कुम और कपूर का लेप लगाकर तथा अत्यन्त भक्तिभाव से कमल एव अन्य मल्लिका आदि विष्णु को प्रिय लगने वाले फूलो से पुरुषोत्तम की पूजा करे ॥२१ २३॥ इस विधि से भुक्ति-मुक्ति-दाता जगत्पति भगवान् विष्णु देव की पूजा कर उनके आगे अगुरु मिले धूप और सुगन्धित गुग्गुल को जलाये शक्ति के अनुसार भक्तिपूर्वक

---

१ ग ०न जप्य०। २ख ०णा। नम्यव०। ३ क मन्त्रैश्च। ख गन्धैश्च। ४ क विविधै।
५क ०क्तं देवदेव०।

गुग्गुल च मुनिश्रेष्ठा दहेदगन्धसमन्वितम्। दीप प्रज्वालयेद्भक्त्या यथाशक्त्या (क्ति) घृतेन वै ॥२५॥
अन्यांश्च दीपकान्दद्यादद्वादशैव समाहित। घृतेन च मुनिश्रेष्ठास्तिलतैलेन वा पुन ॥२६॥
नैवेद्ये पायसापूपशष्कुलीवटक तथा। मोदक फाणित वाऽल्प फलानि च निवेदयेत् ॥२७॥
एव पञ्चोपचारेण सपूज्य पुरुषोत्तमम[1]। नम पुरुषोत्तमायेति जपेदष्टोत्तर शतम् ॥२८॥
तत प्रसादयेद्देव भक्त्या त पुरुषोत्तमम्। नमस्ते सर्वलोकेश भक्तानामभयप्रद ॥२९॥
ससारसागरे मग्न त्राहि मा पुरुषोत्तम। यास्ते मया कृता यात्रा द्वादशैव जगत्पते ॥३०॥
प्रसादात्तव गोविन्द सपूर्णास्ता भवन्तु मे। एव प्रसाद्य त देव दण्डवत्प्रणिपत्य च ॥३१॥
ततोऽर्चयेदगुरु भक्त्या पुष्पवस्त्रानुलेपनै[2]। नानयोरन्तर यस्माद्विद्यते मुनिसत्तमा ॥३२॥
देवस्योपरि कुर्वीत श्रद्धया सुसमाहित। नानापुष्पैर्मुनिश्रेष्ठा विचित्र पुष्पमण्डपम्[3] ॥३३॥
कृत्वाऽवधारण पश्चाज्जागर कारयेन्निशि। कथा च वासुदेवस्य गीतिका चापि कारयेत् ॥३४॥
[4]ध्यायन्पठ स्तुवन्देव[5] प्रणयेद्रजनीं बुध। तत प्रभाते विमले द्वादश्यां द्वादशैव तु ॥३५॥
[6]निमन्त्रयेद्व्रतस्नातान्ब्राह्मणान्वेदपारगान्। इतिहासपुराणज्ञाञ्श्रोत्रियान्सयतेन्द्रियान् ॥३६॥
स्नात्वा सम्यग्विधानेन धौतवासा जितेन्द्रिय। स्नापयेत्पूर्ववत्तत्र पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥३७॥

घृत का दीपक जलावे। इसी प्रकार मुनिवर! घृत के अथवा तिल-तैल के अन्य बारह प्रदीप श्रद्धापूर्वक भगवान को दिखावे। भोजन के लिए विभिन्न प्रकार के मधुर पदार्थ खीर मालपूआ पूरी लड्डू राब एव फल भगवान् को अर्पित करे ॥२४ २७॥ इस प्रकार पञ्चोपचार से भगवान् की पूजा कर नम पुरुषोत्तमाय इस मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करे ॥२८॥ जप के बाद भगवान् पुरुषोत्तम की स्तुति द्वारा प्रसन्न करे। भक्तो को अभय दान देने वाले देवेश! आप को नमस्कार है। पुरुषोत्तम! ससार-सागर म डूबे हुए मेरी रक्षा करो। जगत्पते! मैंने आप की कृपा से जो ये तुम्हारी द्वादश यात्रायें की हैं वे पूर्णरूप से मन फल दें। इस प्रकार स्तुति से भगवान् को प्रसन्न कर दण्डवत् प्रणाम करना चाहिये ॥२९ ३१॥ मुनिश्रेष्ठ! गुरु और भगवान मे थोडा भी अन्तर नहीं है इसलिय भगवान् की पूजा के बाद गुरु की फूल वस्त्र और सुगन्धित द्रव्यो से पूजा करनी चाहिये। मुनिश्रेष्ठ! भगवान् की प्रसन्नता के लिये उनके ऊपर अनेक पुष्पो का विचित्र मण्डप श्रद्धापूर्वक अनन्य भाव से बनाना चाहिय ॥३२ ३३॥ इस प्रकार देव प्रतिष्ठा कर रात्रि म जागरण करना चाहिय वासुदेव की मनोहर कथा और गीत भी गाये जाने चाहिए। बुद्धिमान् व्यक्तियो को चाहिये कि इस प्रकार पुरुषोत्तम का ध्यान स्तुति और स्तोत्र पाठ करते हुये रात बिताएँ ॥३४॥ तदनन्तर द्वादशी के दिन प्रातःकाल वेद के प्रकाण्ड विद्वान् इतिहास-पुराणो के ज्ञाता श्रोत्रिय जितेन्द्रिय और व्रती बारह ब्राह्मणो को निमन्त्रित करे ॥३५ ३६॥ स्वय स्नान कर धुले हुए वस्त्र पहनकर विधिपूर्वक सयत भाव से भगवान् पुरुषोत्तम को पहले की तरह स्नान कराये विविध पुष्पो उपहार नैवेद्य दीप तथा विविध उपचारो

१ख वा। २ग ०म्। ग्रो न०। ३ख ०नै। स्नानसध्योत्तर पश्चाद्धोमन मु०। ४ग ०ण्डलम्। ५क. *०मन्नायन्स्तु०। ६क ०व ममरे०। ७ख ०मेत्द्रतस्नातान्ब्रा०।*

गन्धं. पुष्पैरुपहारैर्नैवेद्यैर्दीपकैस्तथा। उपचारैर्बहुविधैः प्रणिपातैः, प्रदक्षिणैः ॥३८॥
माल्यैः स्तुतिनमस्कारैर्गीतवाद्यैर्मनोहरैः। संपूज्यैवं जगन्नाथं ब्राह्मणान्पूजयेत्ततः ॥३९॥
द्वादशैव तु गास्तेभ्यो दत्त्वा कनकमेव च। छत्रोपानद्युगं चैव श्रद्धाभक्तिसमन्वितः[1] ॥४०॥
भक्त्या तु सधनं तेभ्यो दद्याद्वस्त्रादिकं द्विजाः। सद्भावेन तु [2]गोविन्दस्तोष्यते पूजितो यतः ॥४१॥
आचार्याय ततो [3]दद्याद्गोवस्त्रं कनकं तथा। छत्रोपानद्युगं[4] चान्यत्कांस्यपात्रं च भक्तितः ॥४२॥
ततस्तान्भोजयेद्विप्रान्भोज्यं पायसपूर्वकम्। पक्वान्नं भक्ष्यभोज्यं च गुडसर्पिःसमन्वितम् ॥४३॥
ततस्तानन्नतृप्तांश्च ब्राह्मणान्स्वस्थमानसान्। द्वादशैवोदकुम्भांश्च दद्यात्तेभ्यः समोदकान् ॥४४॥
दक्षिणां च यथाशक्त्या (वित्त) दद्यात्तेभ्यो विमत्सरः। कुम्भं च दक्षिणां चैव आचार्याय निवेदयेत् ॥४५॥
एवं संपूज्य तान्विप्रान्गुरुं ज्ञानप्रदायकम्। पूजयेत्परया भक्त्या विष्णुतुल्यं द्विजोत्तमाः ॥४६॥
सुवर्णवस्त्रगोधान्यैर्द्रव्यैश्चान्यैर्वरैर्बुधः। संपूज्य तं नमस्कृत्य इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥४७॥
सर्वव्यापी जगन्नाथः शङ्खचक्रगदाधरः। अनादिनिधनो देवः प्रीयतां पुरुषोत्तमः ॥४८॥
इत्युच्चार्य ततो विप्रांस्त्रिः कृत्वा च प्रदक्षिणाम्। प्रणम्य शिरसा भक्त्या आचार्यं तु विसर्जयेत् ॥४९॥
ततस्तान्ब्राह्मणान्भक्त्या चाऽऽसीमान्तमनुव्रजेत्। अनुव्रज्य तु तान्सर्वान्नमस्कृत्य निवर्तयेत् ॥५०॥

से विधिवत् पूजा करे पुनः दण्डवत् और प्रदक्षिणा कर भगवान् को मनोहर गान, स्तुति, नमस्कार और जप द्वारा प्रसन्न करे। इस प्रकार भगवान की पूजा करने के बाद उन निमन्त्रित ब्राह्मणों की यथा विधि पूजा करे ॥३७-३९॥ प्रत्येक को एक-एक गाय सुवर्ण छाता, और एक एक जोड़े जूते भक्तिपूर्वक दान दे ॥४०॥ द्विजगण! प्रत्येक ब्राह्मण को धन सहित वस्त्र आदि भी दे। क्योंकि सद्भावपूर्वक ब्राह्मणों की पूजा करने से भगवान् विष्णु भी प्रसन्न होते हैं ॥४१॥ ब्राह्मणों की पूजा के बाद भक्तिपूर्वक आचार्य को गौ, वस्त्र, सुवर्ण, छत्र और उपानह आदि प्रदान करे। फिर उन ब्राह्मणों को पायस, पक्वान्न एवं गुड़, घी से बने स्वादिष्ट भोज्य पदार्थों का भोजन कराये। उस भोजन से तृप्त ब्राह्मणों को मोदक के साथ बारह जल के घड़े दे और यथाशक्ति विनम्र भाव से दक्षिणा भी दे। इसी प्रकार अपने आचार्य को भी जल-कलश दक्षिणा सहित प्रदान करे ॥४२-४५॥ द्विजोत्तम! इस प्रकार उन ब्राह्मणों तथा विष्णुतुल्य ज्ञान दाता गुरु की अत्यन्त श्रद्धा से पूजा करे ॥४६॥ पुनः सुवर्ण वस्त्र, गौ एवं दूसरे उत्तम पदार्थों से चतुर व्यक्ति गुरु की पूजा और नमस्कार कर इस मन्त्र का उच्चारण करे ॥४७॥ सर्वव्यापक, जगत् के स्वामी, शङ्ख, चक्र और गदा के धारण करने वाले और अनादि अनन्त पुरुषोत्तम देव प्रसन्न हो जायँ ॥४८॥ इस मन्त्र का उच्चारण कर ब्राह्मणों की तीन बार प्रदक्षिणा करे, पुनः आचार्य को विनम्र प्रणाम कर विदा करे ॥४९॥ उन ब्राह्मणों के पीछे-पीछे ग्राम की सीमा तक भक्तिपूर्वक जाय और वहाँ से उन ब्राह्मणों का नमस्कार कर लौटा दे ॥५०॥ घर लौटकर बान्धव, स्वजन एवं अन्य उपासक, दीन, भिक्षुक तथा

१ख. ०क्तिपुटः सटः। म०। २ख. ०न्दस्तुष्य०। ३क. ख. ०द्यात्तुव०। ४क. ख. ०गं धान्यं कांस्य०। ५ख. ०द्भक्त्या स०।

बान्धवैः स्वजनैर्युक्तस्ततो भुञ्जीत वाग्यतः।[1] अन्यैश्चोपासकैर्दीनैर्भिक्षुकैश्चान्नकाङ्क्षिभिः ॥५१॥
एवं कृत्वा नरः सम्यङ्नारी वा लभते फलम्। अश्वमेधसहस्राणां राजसूयशतस्य च ॥५२॥
अतीतं शतमादाय पुरुषाणां नरोत्तमाः। भविष्यं च शतं विप्राः स्वर्गत्या दिव्यरूपधृक् ॥५३॥
सर्वलक्षणसंपन्नः सर्वालंकारभूषितः। सर्वकामसमृद्धात्मा देववद्विगतज्वरः ॥५४॥
रूपयौवनसंपन्नो गुणैः सर्वैरलंकृतः। स्तूयमानोऽप्सरोभिश्च गन्धर्वैः समलंकृतः ॥५५॥
विमानेनार्कवर्णेन कामगेन स्थिरेण च। पताकाध्वजयुक्तेन सर्वरत्नैरलंकृतः ॥५६॥
उद्योतयन्दिशः सर्वा आकाशे विगतक्लमः। युवा महाबलो धीमान्विष्णुलोकं स गच्छति ॥५७॥
तत्र कल्पशतं यावद्भुङ्क्ते भोगानभीप्सितान्। सिद्धाप्सरोभिर्गन्धर्वैः सुरविद्याधरोरगैः ॥५८॥
स्तूयमानो मुनिवरैस्तिष्ठते विगतज्वरः। यथा देवो जगन्नाथ: शङ्खचक्रगदाधरः ॥५९॥
तथाऽसौ मुदितो विप्राः कृत्वा रूपं चतुर्भुजम्।[2] भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्[3] क्रीडां कृत्वा सुरैः सह ॥६०॥
तदन्ते ब्रह्मसदनमायाति सर्वकामदम्। सिद्धविद्याधरैश्चापि शोभितं सुरकिंनरैः ॥६१॥
कालं नवतिकल्पं तु तत्र भुक्त्वा सुखं नरः। तस्मादायाति विप्रेन्द्राः सर्वकामफलप्रदम् ॥६२॥
रुद्रलोकं सुरगणैः सेवितं सुखमोक्षदम्। अनेकशतसाहस्रैर्विमानैः समलंकृतम् ॥६३॥

भूखे व्यक्तियों के साथ मौन होकर भोजन करे॥५१॥ कोई भी स्त्री या पुरुष इस प्रकार भली भाँति व्रत का अनुष्ठान कर हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञों के बराबर फल प्राप्त कर सकते हैं॥५२॥ नरश्रेष्ठ! इस प्रकार देवानुष्ठान-परायण व्यक्ति अपने कुल के अतीत काल के सौ और आने वाले सौ व्यक्तियों के सहित दिव्य रूप धारण कर, सब लक्षणों से युक्त, सब आभूषणों से आभूषित, पूर्णमनोरथ, देवता के समान ताप रहित, रूप और यौवन से युक्त, सब गुणों से सुशोभित होकर रंग बिरंगे पताकाओं से सुसज्जित, दृढ़ और सूर्य के समान चमकने वाले इच्छागामी विमान से विष्णुलोक को जाता है॥५३-५७॥ साथ-साथ अप्सरायें और गन्धर्व स्तुति गान करते जाते हैं। आकाश में वह अपनी देह-कान्ति से सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाशित करता जाता है। इस प्रकार वह युवा, महाबली, ज्ञानवान् व्यक्ति शान्तचित्त से आकाश मार्ग से विष्णुलोक को प्रयाण करता है। वहाँ वह सौ कल्प तक अपने ईप्सित भोगों का भोग करता है, सिद्ध, अप्सरायें, गन्धर्व, देवता, विद्याधर, नाग और मुनिप्रवर उसका यशोगान करते हैं, वह शंख चक्र-गदाधारी विष्णु का चतुर्भुज रूप स्वयं धारण कर हे विप्रगण! शान्त भाव से, प्रसन्नचित्त हो निवास करता है। वहाँ उत्तम भोगों का भोग तथा देववृन्दों के साथ क्रीडा करके उस विष्णु-मन्दिर में स्थान पाता है जो सुर, किन्नर, सिद्ध और विद्याधरों से सुशोभित रहता है॥५८-६१॥ वहाँ से वह व्यक्ति नब्बे कल्प तक सुखों का उपभोग कर हे विप्रेन्द्रगण! पुनः उस रुद्रलोक में जाता है जो सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाला, सुर-समूह से भरा हुआ, सुख और मोक्ष को देने वाला है, जो अनेक सहस्र देव विमानों से सुशोभित है,

---

[1] ख अन्नैश्च सर्वप्रदीनान्भिक्षुकांश्चान्नकाङ्क्षिणः। ए०। [2] ख. ०वनारायते रण। ए०। [3] ख. ग. ०यान्क्रीडित्वा चाप्सरैः।

सिद्धविद्याधरैर्यक्षैर्भूषितं दैत्यदानवैः। अशीतिकल्पकालं तु तत्र भुक्त्वा सुखं नरः ॥६४॥
तदन्ते याति गोलोकं सर्वभोगसमन्वितम्। सुरसिद्धाप्सरोभिश्च शोभितं सुमनोहरम् ॥६५॥
तत्र सप्ततिकल्पांस्तु भुक्त्वा भोगमनुत्तमम्। दुर्लभं त्रिषु लोकेषु स्वस्थचित्तो[१] यथाऽमरः ॥६६॥
तस्मादागच्छते लोकं प्राजापत्यमनुत्तमम्। गन्धर्वाप्सरसैः सिद्धैर्मुनिविद्याधरैर्वृतः ॥६७॥
षष्टिकल्पान्सुखं तत्र भुक्त्वा नानाविधं मुदा[१]। तदन्ते शक्रभवनं नानाश्चर्यसमन्वितम् ॥६८॥
गन्धर्वैः किंनरैः सिद्धैः सुरविद्याधरोरगैः। गुह्यकाप्सरसैः साध्यैर्वृतैश्चान्यैः सुरोत्तमैः ॥६९॥
आगत्य तत्र पञ्चाशत्कल्पान्भुक्त्वा सुखं नरः[२]। सुरलोकं ततो गत्वा विमानैः समलंकृतः ॥७०॥
चत्वारिंशत्सुकल्पांस्तु भुक्त्वा भोगान्सुदुर्लभान्। आगच्छते ततो लोकं नक्षत्राख्यं सुदुर्लभम् ॥७१॥
ततो भोगान्वरान्भुङ्क्ते त्रिंशत्कल्पान्यथेप्सितान्। तस्मादागच्छते लोकं शशाङ्कस्य द्विजोत्तमाः ॥७२॥
यत्रासौ तिष्ठते सोमः सर्वदेवैरलंकृतः। तत्र विंशतिकल्पांस्तु भुक्त्वा भोगं सुदुर्लभम् ॥७३॥
आदित्यस्य ततो लोकमायाति सुरपूजितम्। नानाश्चर्यमयं पुण्यं गन्धर्वाप्सरसेवितम् ॥७४॥
तत्र भुक्त्वा शुभान्भोगान्दश कल्पान्द्विजोत्तमाः। तस्मादायाति भुवनं गन्धर्वाणां सुदुर्लभम् ॥७५॥
तत्र भोगान्समस्तांश्च कल्पमेकं यथासुखम्। भुक्त्वा चाऽऽयाति मेदिन्यां राजा भवति धार्मिकः ॥७६॥
चक्रवर्ती महावीर्यो गुणैः सर्वैरलंकृतः। कृत्वा राज्यं स्वधर्मेण यज्ञैरिष्ट्वा सुदक्षिणैः ॥७७॥

जो दैत्य, दानव, सिद्ध, विद्याधर और यक्ष गणो से अलङ्कृत है, वहाँ अस्सी कल्प तक वह मनुष्य सुखो का भोग करता है ॥६२-६४॥ तदनन्तर सब भोग-सुख से युक्त देव, सिद्ध और अप्सराओ से सुशोभित और चित्ताकर्षक गोलोक को जाता है। वहाँ स्वस्थचित्त होकर सत्तर कल्प तक देवताओ के समान तीनो लोको मे दुर्लभ सुखो का उपभोग करता है ॥६५-६६॥ वहा से वह सर्वोत्तम प्राजापत्य लोक को आता है, जो सवदा सिद्ध, मुनि, विद्याधर, और गन्धर्वो से घिरा रहता है ॥६७॥ वहाँ साठ कल्प तक प्रसन्नता से नाना प्रकार के सुखो का उपभोग करता है। तदनन्तर वह नाना आश्चर्यों से भरे इन्द्र भवन को जाता है ॥६८॥ वहाँ सर्वदा गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, विद्याधर, सुर, नाग, गुह्यक अप्सरा, साध्य एव अन्य देववृन्दा से घिरा रहता है ॥६९॥ वह मनुष्य वहाँ आकर पचास कल्प तक सुखो का उपभोग कर पुन विमानो पर आरूढ होकर देवलोक को जाता है। वहाँ वह चालीस कल्पो तक सुदुर्लभ भोगो का आनन्दपूर्वक भोग करता है। इसके अनन्तर वह उस लोक को जाता है जो दूसरो के लिये अत्यन्त दुर्लभ है ॥७०-७१॥ वहाँ वह तीस कल्पो तक ईप्सित उत्तम भोगो का भोग करता है। वहाँ से पुन वह चन्द्रलोक को आता है जहाँ चन्द्र देवता सब देवताओ के साथ विराजमान रहते हैं। वहाँ बीस कल्पो तक सुदुर्लभ भोगो का भोग करता है ॥७२-७३॥ तदनन्तर नाना आश्चर्य से भरे, पवित्र सूर्यलोक को आता है, जो देवताओ से भी पूजित है, जहाँ गन्धर्व और अप्सरायें सर्वदा विराजमान रहती हैं ॥७४॥ द्विजोत्तम ! दस कल्प तक शुभ भोगो को भोग कर वह वहाँ से दुष्प्राप्य गन्धर्व-लोक मे आता है। वहाँ सुखपूर्वक एक कल्प तक समस्त भोगो को भोगकर पुन पृथ्वी पर परम धार्मिक राजा बनकर आता है ॥७५-७६॥ यहाँ वह महापराक्रमी, सब गुणो से विभूषित चक्रवर्ती राजा होकर न्यायपूर्वक शासन करता है

१क. ०त्तो जितेन्द्रिय। त०। २क. बुधा। ख बुध। ३ख बुध।

तदन्ते योगिना लोक गत्वा मोक्षप्रद शिवम्। तत्र भुक्त्वा वरान्भोगान्यावदाभूतसंप्लवम् ॥७८॥
तस्मादागच्छते चात्र जायते योगिना कुले। प्रवर वैष्णव विप्रा दुर्लभे साधुसमते ॥७९॥
चतुर्वेदी विप्रवरो यज्ञैरिष्टवाऽऽप्तदक्षिणे। वैष्णव योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥८०॥
एव यात्राफल विप्रा मया सम्यगुदाहृतम। भुक्तिमुक्तिप्रद नृणा किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥८१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भृषिसवादे द्वादशयात्राफलमाहात्म्यनिरूपण नाम सप्तषष्टितमोऽध्याय ॥६७॥

अथाष्टषष्टितमोऽध्यायः

विष्णुलोकवर्णनम्

मुनय ऊचु

श्रोतुमिच्छामहे देव [1]विष्णुलोकमनामयम्। लोकानन्दकर कान्त सर्वाश्चर्यसमन्वितम् ॥१॥

और बड बड यज्ञ करता है जिनम ब्राह्मणा को भरपूर दक्षिणाय देता है ॥७७॥ इसके उपरान्त मोक्ष देने वाले योगियों के शुभ लोक म जाकर कल्प पयन्त उत्तम भोगा को भोगता है ॥७८॥ वहाँ से इस पृथ्वी पर दुलभ सर्वोत्तम वैष्णव भक्ता के कुल म—जिसकी साधु जन भी इच्छा करते हैं—जन्म लेता है और चतुर्वेद का ज्ञाता ब्राह्मण होता है जो यथेष्ट दक्षिणा वाले यज्ञो का अनुष्ठान करता है। पुन वैष्णव योग को प्राप्त कर मोक्ष का अधिकार प्राप्त करता है ॥७९ ८०॥ विप्रगण! मनुष्या को भुक्ति और मुक्ति देने वाले इस यात्रा के फल को मैंने वह सुनाया अब तुम लोग और क्या सुनना चाहते हो ॥८१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म स्वयम्भू तथा ऋषि के सवाद प्रकरण म द्वादशयात्राफलमाहात्म्यवणन नामक सरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६७॥

अध्याय ६८

विष्णुलोक का वर्णन

मुनियों ने कहा—देव! सब आदमयजात यमुआ म मरे पवित्र मनोहर लोक को आनन्द देने वाले और

---

[1] क ०लोक यथातथम्। लो०।

प्रमाणं तस्य लोकस्य भोगं कान्तिं बलं प्रभो। कर्मणा केन गच्छन्ति तत्र धर्मपरायणाः ॥२॥
दर्शनात्स्पर्शनाद्वाऽपि तीर्थस्नानादिनाऽपि वा। विस्तराद्ब्रूहि तत्त्वेन परं कौतूहलं हि नः ॥३॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्वे यत्परं परमं पदम्। भक्तानामीहितं धन्यं पुण्यं संसारनाशनम् ॥४॥
प्रवरं सर्वलोकानां विष्ण्वाख्यं वदतो मम। सर्वाश्चर्यमयं पुण्यं स्थानं त्रैलोक्यपूजितम् ॥५॥
अशोकैः पारिजातैश्च मन्दारैश्चम्पकद्रुमैः[1]। मालतीमल्लिकाकुन्दैर्बकुलैर्नागकेसरैः ॥६॥
पुन्नागैरतिमुक्तैश्च प्रियङ्गुतगरार्जुनैः[2]। पाटलाचूतखदिरैः कर्णिकारवनोज्ज्वलैः ॥७॥
नारङ्गैः पनसैर्लोध्रैर्निम्बदाडिमसर्जकैः। द्राक्षालकुचखर्जूरैर्मधुकेन्द्रफलैर्द्रुमैः ॥८॥
कपित्थैर्नारिकेरैश्च तालैः श्रीफलसंभवैः। कल्पवृक्षैरसंख्यैश्च वन्यैरन्यैः सुशोभनैः ॥९॥
सरलैश्चन्दनैर्नीपैर्देवदारुशुभाञ्जनैः। जातीलवङ्गकङ्कोलैः कर्पूरामोदवासिभिः ॥१०॥
ताम्बूलपत्रनिचयैस्तथा पूगीफलद्रुमैः। अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः सर्वर्तुफलशोभितैः ॥११॥
पुष्पैर्नानाविधैश्चैव लतागुच्छसमुद्भवैः। नानाजलाशयैः पुण्यैर्नानापक्षिरुतैर्वरैः ॥१२॥
दीर्घिकाशतसंघातैस्तोयपूर्णैर्मनोहरैः। कुमुदैः शतपत्रैश्च पुष्पैः कोकनदैर्वरैः ॥१३॥
रक्तनीलोत्पलैः कान्तैः कह्लारैश्च सुगन्धिभिः। अन्यैश्च जलजैः पुष्पैर्नानावर्णैः सुशोभनैः ॥१४॥

शान्तिप्रद विष्णुलोक के विषय में हम लोग सुनना चाहते हैं। इसलिए उस लोक के प्रमाण भोग शोभा और बल (आयु) के बारे में कहिए। दर्शन स्पर्शन अथवा तीर्थस्नान आदि किन शुभ कर्मों से धर्माचरण-परायण व्यक्ति वहाँ जाते हैं कृपया यथार्थरूप से विस्तारपूर्वक कहिये हम लोगों को सुनने की अत्यन्त उत्कण्ठा हो रही है॥१-३॥

ब्रह्मा बोले—मुनिवृन्द! वह विष्णुलोक नाम से प्रसिद्ध पवित्र परम पद संसार के दुःखों को नष्ट करने वाला सब लोकों से श्रेष्ठ आश्चर्यमय और धन्य है उसे पाने के लिये भक्तजन प्रयत्न किया करते हैं वह लोक सम्पूर्ण लोकों में पूजित है॥४-५॥ अशोक पारिजात मन्दार चम्पक मालती मल्लिका कुन्द बकुल नागकेसर॥६॥ अतिमुक्त (माधवी) प्रियङ्गु तगर अर्जुन पाटल आम खदिर उज्ज्वल कर्णिकार॥७॥ नारंग पनस लोध निम्ब अनार सर्जक द्राक्षा लकुच (बड़हर) खजूर मधुकेन्द्र आदि फल॥८॥ और वृक्ष तथा कपित्थ नारिकेल ताड श्रीफल असंख्य कल्पवृक्ष और अन्य मनोहर जंगली वृक्ष॥९॥ सरल चन्दन अशोक देवदारु शुभाञ्जन (सहिजन) जाती (चमेली) लवंग कंकोल कपूर आदि सुगन्ध फैलाने वाले वृक्ष॥१०॥ ताम्बूल पूगीफल इसी प्रकार अन्य प्रत्येक ऋतु में फलने वाले वृक्ष॥११॥ नाना प्रकार की लताओं और गुच्छों से उत्पन्न होने वाले पुष्पों से सुशोभित है जहाँ नाना प्रकार के पवित्र जलाशय और जल से भरी मनोहर सैकड़ों बावलियाँ स्थित हैं जिनमें भिन्न भिन्न प्रकार के पक्षी कलरव करते रहते हैं॥१२-१३॥ जो जलाशय कुमुद शतपत्र कमल मनोहर कोकनद, नीलकमल, कह्लार एवं अनेक सुगन्धित कमलों से सुशोभित है जहाँ हंस कारण्डव मनोहर चक्रवाक कोयष्टिक,

---

१ ख ०नैः। पलाशचू। २ ख ०पुरकाचुक०।

हंसकारण्डवाकीर्णैश्चक्रवाकोपशोभितैः। कोयष्टिकैश्च दात्यूहैः कारण्डवरवाकुलैः॥१५॥
चातकैः प्रियपुत्रैश्च जीवंजीवकजातिभिः। अन्यैर्दिव्यैर्जलचरैर्विहारमधुरस्वनैः॥१६॥
एवं नानाविधैर्दिव्यैर्नानाश्चर्यसमन्वितैः। वृक्षैर्जलाशयैः पुण्यैर्भूषितं सुमनोहरैः॥१७॥
तत्र दिव्यैर्विमानैश्च नानारत्नविभूषितैः। कामगैः काञ्चनैः शुभ्रैर्दिव्यगन्धर्वनादितैः॥१८॥
तरुणादित्यसंकाशैरप्सरोभिरलंकृतैः। [1]हेमशय्यासनयुतैर्नानाभोगसमन्वितैः॥१९॥
खेचरैः सपताकैश्च मुक्ताहारावलम्बिभिः। नानावर्णैरसंख्यातैर्जातरूपपरिच्छदैः॥२०॥
नानाकुसुमगन्धाढ्यैश्चन्दनागुरुभूषितैः। सुखप्रचारबहुलैर्नानावादित्रनिःस्वनैः॥२१॥
मनोमारुततुल्यैश्च किङ्किणीस्तवकाकुलैः। विहरन्ति पुरे तस्मिन्वैष्णवे लोकपूजिते॥२२॥
नानाङ्गनाभिः सततं गन्धर्वाप्सरसादिभिः। चन्द्राननाभिः कान्ताभिर्योषिद्भिः सुमनोहरैः॥२३॥
पीनोन्नतकुचाग्राभिः सुमध्याभिः समन्ततः। श्यामावदातवर्णाभिर्मत्तमातङ्गगामिभिः॥२४॥
परिवार्य नरश्रेष्ठं वीजयन्ति स्म ताः स्त्रियः। चामरै रत्नदण्डैश्च नानारत्नविभूषितैः॥२५॥
गीतनृत्यैस्तथा वाद्यैर्मोदमानैर्मदालसैः। यक्षविद्याधरैः सिद्धैर्गन्धर्वैरप्सरोगणैः॥२६॥
सुरसंघैश्च ऋषिभिः शुशुभे भुवनोत्तमम्। तत्र प्राप्य महाभोगान्प्राप्नुवन्ति मनीषिणः॥२७॥

टिट्टिभ (टिटिहिरी) दात्यूह (कालकण्ठक) चातक, प्रियपुत्र, चकोर, एव अन्य दिव्य जलचर विहार करते और जो उनकी मधुर ध्वनि से गुञ्जित रहते हैं॥१३-१६॥ इस प्रकार वह लोक भिन्न-भिन्न प्रकार के आश्चर्यजनक वृक्षों, पवित्र मनोहर जलाशयों से सुशोभित है॥१७॥ उस लोक मे नाना रत्नो से विभूषित, सुवर्णमय (सुनहले) तरुण सूर्य के समान चमकने वाले शुभ्र दिव्य विमानो पर आरूढ गन्धर्वगण मधुर गान करते रहते हैं। वे अप्सराओंएव स्वर्णमय शय्या आसन और नाना प्रकार की भोग-सामग्रियो से सर्वदा भरे रहते हैं, जिन पर आकाश मे फहराने वाली पताकायें फहराती रहती हैं जो अनगिनत, रग बिरगे सुनहले वस्त्रो से सजे रहते हैं॥१८-२०॥ जो नाना प्रकार के सुगन्धित पुष्पो चन्दन अगुर आदि से सुगन्धित और नाना प्रकार की सुखदायक सामग्रियो से युक्त रहते हैं, जिन पर अनेक प्रकार के वाद्य बजते रहते हैं, किङ्किणी की ध्वनि होती रहती है और जो मन तथा वायु के समान गतिमान् है, उसम पुण्यवान् व्यक्ति बैठकर उस लोकपूज्य वैष्णव लोक मे विहार करते हैं॥२१-२२॥ उन भाग्यशाली श्रेष्ठ व्यक्तियो के चारो ओर सर्वदा अनेको चन्द्रमुखी स्त्रियाँ, गन्धर्व अप्सरायें, और मनोहर श्याम,गौराङ्गी, मत्त हस्ती के समान गमन करने वाली मनोहर कटिवाली अङ्गनायें जिनके कुच कठोर और उभडे हुए रहते हैं घेर कर बैठी रहती हैं और नाना रत्नो से सुशोभित स्वर्ण दण्ड वाले चामर डुलाती रहती हैं। (वह उत्तम लोक प्रसन्न, नशे मे झूमते यक्ष, विद्याधर, सिद्ध, गन्धर्व और अप्सराओ के नृत्य गीत तथा वाद्य मे सुर-समूह और ऋषियो से सुशोभित रहता है उस लोक मे जाकर भाग्यशाली ज्ञानी मनुष्य अनेक सुखो का भोग करते हैं॥२३-२७॥)

१ख ०ससारससरी०। २ग ०मधुरमधुरतरै०।

वटराजसमीपे तु दक्षिणस्योदधेस्तटे। दृष्टो यैर्भगवान्कृष्ण 'पुष्कराक्षो जगत्पति ॥२८॥
क्रीडन्त्यप्सरसैः सार्धं याव‍द्धौश्च सतारकम्। प्रतप्तहेमसंकाशा जरामरणवर्जिता ॥२९॥
सर्वदुःखविहीनाश्च तृष्णाग्लानिविवर्जिता। चतुर्भुजा महावीर्या वनमालाविभूषिता ॥३०॥
श्रीवत्सलाञ्छनैर्युक्ता शङ्खचक्रगदाधरा। केचिन्नीलोत्पलश्यामा केचित्काञ्चनसंनिभा ॥३१॥
केचिन्मरकतप्रख्या केचिद्वैदूर्यसंनिभा। श्यामवर्णा कुण्डलिनस्तथाऽन्ये वज्रसंनिभा ॥३२॥
न तादृक्सर्वदेवानां भाति लोका द्विजोत्तमा। यादृग्भाति हरेर्लोकं सर्वाश्चर्यसमन्वित ॥३३॥
न तत्र पुनरावृत्तिर्गमनाज्जायते द्विजा। प्रभावात्तस्य देवस्य यावदाभूतसम्प्लवम् ॥३४॥
विचरन्ति पुरे दिव्ये रूपयौवनगर्विता। कृष्णं रामं सुभद्रां च पश्यन्ति पुरुषोत्तमे ॥३५॥
प्रतप्तहेमसंकाशं तरुणादित्यसंनिभम्। पुरमध्ये हरेर्भाति मन्दिरं रत्नभूषितम् ॥३६॥
अनेकशतसाहस्रैः पताकैः समलंकृतम्। योजनायतविस्तीर्णं हेमप्राकारवेष्टितम् ॥३७॥
नानावर्णैर्ध्वजैश्चित्रैः कल्पितैः सुमनोहरैः। विभाति शारदो यद्वन्नक्षत्रैः सह चन्द्रमा ॥३८॥
चतुर्द्वारं सुविस्तीर्णं कञ्चुकीभिः सुरक्षितम्। पुरसप्तकसंयुक्तं महोत्सेकं मनोहरम् ॥३९॥
प्रथमं काञ्चनं तत्र द्वितीयं मरकतैर्युतम्। इन्द्रनीलं तृतीयं तु महानीलं ततः परम् ॥४०॥

जो मनुष्य दक्षिण सागर के तट पर स्थित वटराज के समीप जगत्पति कमल-नेत्र भगवान कृष्ण का दर्शन करते हैं वे जब तक आकाश में चन्द्र और तारागण रहते हैं तब तक अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करते हैं वे जरा मरण के भय से मुक्त सब दुःखों तृष्णा और आत्मग्लानि से रहित हो जाते हैं तपे सोने के समान कान्तिमान चतुर्भुज शंख चक्र-गदाधारी श्रीवत्स और वनमाला से सुशोभित महापराक्रमी हो जाते हैं॥२८-३०॥ उनमें से कोई नील-कमल के समान श्याम कोई सोने के समान गौर वर्ण कोई मरकतमणि के समान कोई वैदूर्यमणि के समान कोई श्यामवर्ण के कुण्डल पहने हुये और अन्य वर्ण के समान कान्तिमान होते हैं॥३१-३२॥ द्विजगण! सम्पूर्ण देव लोकों की भी वैसी शोभा नहीं होती जैसी उस आश्चर्यजनक विष्णुलोक की शोभा होती है॥३३॥ विप्रवृन्द! विष्णु देव के प्रभाव से कल्प पर्यन्त पुनर्जन्म नहीं होता॥३४॥ जो पुरुषोत्तम क्षेत्र में जाकर राम कृष्ण और सुभद्रा का दर्शन करते हैं वे अपने रूप और यौवन पर इतराते हुये उस दिव्य पुर में विचरण करते हैं॥३५॥ उस पुर के मध्य में रत्नों से सुशोभित तपाये हुए सोने की भाँति कान्तिमान और तरुण सूर्य के समान चमकता हुआ भगवान का मन्दिर है॥३६॥ उसके चारों ओर दश लाख योजन विस्तार में सुनहली चहारदिवारी बनी हुई है। असंख्य पताकाओं मनोहर रंग बिरंगी चित्र विचित्र ध्वजाओं से सुशोभित वह मन्दिर नक्षत्रों से घिरे चन्द्रमा के समान शोभा देता है॥३७-३८॥ उस चहारदीवारी में चार बड़े बड़े द्वार हैं जो रक्षकों से सुरक्षित हैं। भीतर ऊँचे ऊँचे भवनों वाले मनोहर सात उपपुर हैं॥३९॥ पहला काञ्चन (सुनहला) दूसरा मरकत मणियों से जड़ा हुआ नील वर्ण का तीसरा इन्द्र नीलमणि का बना चौथा महानीलमणि का पाँचवाँ

१क पुरुषो जगतां पति।

पुरं तु पञ्चमं दीप्तं पद्मरागमयं पुरम्। षष्ठं वज्रमयं विप्रा वैदूर्यं सप्तमं पुरम् ॥४१॥
नानारत्नमयैर्हेमप्रवालाङ्कुरभूषितैः। स्तम्भैरद्भुतसंकाशैर्भाति तद्भवनं महत् ॥४२॥
दृश्यन्ते तत्र सिद्धाश्च भासयन्ति दिशो दश। पौर्णमास्या सनक्षत्रो यथा भाति निशाकरः ॥४३॥
आरूढस्तत्र भगवान्सलक्ष्मीको[1] जनार्दनः। पीताम्बरधरः श्यामः श्रीवत्सलक्ष्मसंयुत. ॥४४॥
ज्वलत्सुदर्शनं चक्र घोर सर्वास्त्रनायकम्। दधार दक्षिणे हस्ते सर्वतेजोमयं हरिः ॥४५॥
कुन्देन्दुरजतप्रख्य हारगोक्षीरसन्निभम्। आदाय तं मुनिश्रेष्ठाः सव्यहस्तेन केशवः ॥४६॥
यस्य शब्देन सकल [2]संक्षोभ जायते जगत्। विश्रुतं पाञ्चजन्येति सहस्रावर्तभूषितम् ॥४७॥
दुष्कृतान्तकरीं रौद्रां दैत्यदानवनाशिनीम्। ज्वलद्वह्निशिखाकारां दु.सहां त्रिदशैरपि ॥४८॥
कौमोदकीं गदा चासौ धृतवान्दक्षिणे करे। वामे विस्फुरति ह्यस्य शार्ङ्गं सूर्यसमप्रभम् ॥४९॥
शरैरादित्यसंकाशैर्ज्वालामालाकुलैर्भृशैः। योऽसौ संहरते देवस्त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥५०॥
सर्वानन्दकरः श्रीमान्सर्वशास्त्रविशारदः। सर्वलोकगुरुर्देवः सर्वैर्देवैर्नमस्कृतः ॥५१॥
सहस्रमूर्धा देवेशः सहस्रचरणेक्षण। सहस्राख्यः सहस्राङ्गः सहस्रभुजवान्प्रभुः ॥५२॥
सिंहासनगतो देवः पद्मपत्रायतेक्षणः। विद्युद्विस्पष्टसंकाशो जगन्नाथो जगद्गुरुः ॥५३॥

चमकते पद्मराग मणियो से बना अति सुशोभित, छठा वज्रमय और सातवाँ वैदूर्यमणि से बना हुआ है ॥४०-४१॥ ऐसे उपपुरो के मध्य वह ऊँचा हरिमन्दिर नाना रत्नो से बने हुए और प्रवाल खण्डो से जडे हुए अद्भुत वर्ण के खम्भों से सुशोभित है ॥४२॥ उस मन्दिर मे सिद्ध समूह रहते हैं, जो दशो दिशाओ को जगमगाते रहते है। उस भवन की वैसी शोभा होती है मानो पूर्णिमा की जगमग रात्रि मे नक्षत्रो के बीच चन्द्रमा शोभायमान हो ॥४३॥ वहाँ सिंहासन पर पीताम्बर पहने हुये, श्रीवत्स से अङ्कित, श्यामवर्ण के भगवान् जनार्दन लक्ष्मी के सहित विराजमान रहते हैं ॥४४॥ वे हरि अपने दाहिने हाथ म सब अस्त्रा मे श्रेष्ठ, भयङ्कर सर्वतेजोमय और अग्नि के समान जलता हुआ-सा सुदर्शन चक्र धारण किय रहते हैं ॥४५॥ बायें हाथ मे कुन्द, चन्द्रमा और रजत के समान शुभ्र हार, गोदुग्ध के सम न श्वेत, सहस्रो आवर्तो (चक्कर घुमाव) से सुशोभित वह प्रसिद्ध पञ्चजन्य शख रहता है, जिसकी ध्वनि से सारा ससार क्षुब्ध हो जाता है ॥४६-४७॥ दाहिने हाथ मे प्रलय मचा देने वाली, भयङ्कर, दैत्य दानवो को विनष्ट करने वाली, जलते अग्नि के लपटो के समान और देवताओ से भी कठिनाई से सही जाने योग्य कौमोदकी गदा को धारण किये रहते हैं ॥४८½॥ उसी प्रकार उनके बाये हाथ मे सूर्य के समान प्रभापूर्ण शाङ्र्गनामक धनुप रहता है। वह भगवान् उसी धनुप से छूटे हुए असख्य लपटो से जगमगाते, सूर्य के समान जलते बाणो से चराचर जगत् का सहार करते हैं ॥४९-५०॥ ऐसे सबको आनन्द देने वाले श्रीमान् सम्पूर्ण शास्त्रो के ज्ञाता, सब लोका के गुरु, देवपूज्य, सहस्र शिर, सहस्रचरण और सहस्र नेत्रवाले, अनन्त नामो से प्रसिद्ध, सहस्र भुजाओ से युक्त देवेश, जगन्नाथ जगद्गुरु भगवान् सिंहासन पर विराजमान रहते हैं, जिनके नेत्र पद्म के समान बडे और जिनके शरीर की कान्ति विद्युत् के

१क स ०न्सर्वलोकज०। २ख ग विक्षोभ।

परीतः सुरसिद्धैश्च गन्धर्वाप्सरसां गणैः। यक्षविद्याधरैर्नागैर्मुनिसिद्धैः सचारणैः ॥५४॥
सुपर्णैर्दानवैर्दैत्यै राक्षसैर्गुह्यकिंनरैः। अन्यैर्देवगणैर्दिव्यैः स्तूयमानो विराजते ॥५५॥
तत्रस्था सततं कीर्तिः[1] प्रज्ञा मेधा सरस्वती। बुद्धिर्मतिस्तथा क्षान्तिः [2]सिद्धिर्मूर्तिस्तथा द्युतिः ॥५६॥
गायत्री चैव सावित्री मङ्गला सर्वमङ्गला। प्रभा मतिस्तथा कान्तिस्तत्र नारायणी स्थिता ॥५७॥
श्रद्धा च कौशिकी देवी विद्युत्सौदामिनी तथा। निद्रा रात्रिस्तथा माया तथाऽन्यामरयोषितः ॥५८॥
वासुदेवस्य सर्वास्ता भवने[3] संप्रतिष्ठिताः। अथ किं बहुनोक्तेन सर्वं तत्र प्रतिष्ठितम् ॥५९॥
घृताची मेनका रम्भा सहजन्या तिलोत्तमा। उर्वशी[4] चैव निम्लोचा तथाऽन्या वामना[5] परा ॥६०॥
मन्दोदरी[6] च सुभगा विश्वाची विपुलानना। भद्राङ्गी चित्रसेना च प्रम्लोचा सुमनोहरा ॥६१॥
मुनिसंमोहनी रामा चन्द्रमध्या शुभानना। सुकेशी नीलकेशा च तथा मन्मथदीपिनी ॥६२॥
अलम्बुषा मिश्रकेशी तथाऽन्या [7]मुञ्जिकस्थला। [8]क्रतुस्थला वराङ्गी च पूर्वचित्तिस्तथा परा ॥६३॥
[9]परावती महारूपा [10]शशिलेखा शुभानना। हंसलीलानुगामिन्यो मत्तवारणगामिनी ॥६४॥
बिम्बोष्ठी नवगर्भा च विख्याताः सुरयोषितः। एताश्चान्या अप्सरसो रूपयौवनगर्विता ॥६५॥
सुमध्याश्चारुवदना सर्वालंकारभूषिता। गीतमाधुर्यसंयुक्ता सर्वलक्षणसंयुताः ॥६६॥
गीतवाद्ये च कुशला सुरगन्धर्वयोषितः। नृत्यन्त्यनुदिनं तत्र यत्रास्ते पुरुषोत्तमः ॥६७॥

समान है, जिनको सुर, सिद्ध, गन्धर्व, अप्सराएं, यक्ष, विद्याधर, नाग, मुनि, सिद्ध, चारण, सुपर्ण (गरुड) दानव, दैत्य, राक्षस, गुह्य, किन्नर एवं अन्य दिव्य देवगण चारों ओर से घेरे हुए स्तुति किया करते हैं ॥५१-५५॥ वहाँ सर्वदा कीर्ति, प्रज्ञा, मेधा, सरस्वती, बुद्धि, मति, क्षान्ति, सिद्धि, मूर्ति, द्युति, गायत्री, सावित्री, मङ्गला, सर्वमङ्गला, प्रभा, मति, कान्ति, नारायणी, श्रद्धा, कौशिकी, देवी, विद्युत्, सौदामिनी, निद्रा, रात्रि, माया तथा अन्य देवस्त्रियाँ भगवान् के मन्दिर में विराजमान रहती हैं। अधिक कहाँ तक कहा जाय? वहाँ सब कुछ सर्वदा विद्यमान रहता है ॥५६-५९॥ (घृताची, मेनका, रम्भा, सहजन्या, तिलोत्तमा, उर्वशी, निम्लोचा, वामना, मन्दोदरी, सौभाग्यवती, विश्वाची, विपुलानना, भद्राङ्गी, चित्रसेना, अत्यन्त मनोहर प्रम्लोचा, मुनिजनों को भी मुग्ध करने वाली रामा, सुन्दर मुख वाली चन्द्रमध्या, सुकेशी, नीलकेशा, मन्मथदीपिनी, अलम्बुषा, मिश्रकेशी, मुञ्जिकस्थला, वराङ्गी, क्रतुस्थला, पूर्वचित्ति, परावती, महारूपा, शुभानना शशिलेखा, आदि हंसी के समान क्रीडा करने वाली, मत्त गज के समान गमन करने वाली बिम्ब के समान लाल ओठों वाली विख्यात सुर-सुन्दरियाँ एवं अन्य अपने रूप और यौवन पर गर्व करने वाली वाली अप्सराएं, तथा सब आभूषणों से आभूषित, सुन्दर मुख वाली तथा क्षीण कटि वाली सर्वलक्षणसम्पन्न सुर-गन्धर्वों की गीत और वाद्य में कुशल स्त्रियाँ प्रतिदिन, अपने मधुर गान और नृत्य से भगवान् पुरुषोत्तम को प्रसन्न किया करती

१ख. सतति। २क ख ०द्धिर्मूर्ति०। ३क भुवने। ४क ख ०शी सुरसेना च त०। ५क ख वासना। ६क. महोद०। ७क जम्बुकस्तना। ८क जन्तुस्थला। ९क. पञ्चजन्या। १०. क. सलिलेखा।

न तत्र रोगो नो ग्लानिन मृत्युर्न हिमातपौ। न क्षुत्पिपासा न जरा न वैरूप्य न चासुखम् ॥६८॥
परमानन्दजनन सर्वकामफलप्रदम्। विष्णुलोकात्पर लोक नात्र पश्यामि भो द्विजा ॥६९॥
ये लोका स्वर्गलोक तु श्रूयन्ते पुण्यकर्मणाम्। विष्णुलोकस्य ते विप्रा कला नार्हन्ति षोडशीम् ॥७०॥
एव हरे पुरस्थान सर्वभोगगुणान्वितम्। सर्वसौख्यकर पुण्य सर्वाश्चर्यमय द्विजा ॥७१॥
न तत्र नास्तिका यान्ति पुरुषा विषयात्मका। न कृतघ्ना न पिशुना नो स्तेना नाजितेन्द्रिया ॥७२॥
येऽर्चयन्ति सदा भक्त्या वासुदेव जगद्गुरुम्। त तत्र वैष्णवा यान्ति विष्णुलोक न सशय ॥७३॥
दक्षिणस्योदधेस्तीर क्षेत्र परमदुर्लभ। दृष्ट्वा कृष्ण च राम च सुभद्रा च द्विजोत्तमा[1] ॥७४॥
कल्पवृक्षसमीप तु ये त्यजन्ति कलेवरम्। तेतत्र मनुजा यान्ति मृता ये पुरुषोत्तमे ॥७५॥
वटसागरयोर्मध्य य स्मरेत्पुरुषोत्तमम्। तेऽपि तत्र नरा यान्ति ये मृता पुरुषोत्तमे ॥७६॥
तेऽपि तत्र पर स्थान यान्ति नास्त्यत्र सशय। एव मया मुनिश्रेष्ठा विष्णुलोक सनातन ॥
सर्वानन्दकर प्रोक्तो भुक्तिमुक्तिफलप्रद ॥७७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भृषिसवादे विष्णुलोकानु कीर्तननामाष्ट-
षष्टितमोऽध्याय ॥६८॥

हैं ॥६० ६७॥ मुनिगण ! उस लोक म रोग ग्लानि (मानसिक चिन्ता) मृत्यु हिम और आतप का भय नहीं न तो भूख प्यास की ही चिन्ता और न तो बुढापा अङ्गदोष और किसी दुख की ही सम्भावना रहती है ॥६८॥ हे विप्रगण ! इस सृष्टि म विष्णुलोक से अधिक आनन्ददायक और मनोरथ पूर्ण करने वाला कोई लोक नहीं है। स्वर्गलोक म जो कोई अन्य पुण्य देवलोक सुने जाते हैं वे विष्णुलोक की सोलहवीं कला की भी समानता नहीं कर सकते ॥६९ ७०॥ द्विजगण ! भगवान का इस प्रकार का वह पावन लोक है जहाँ प्रत्येक प्रकार की भोगसामग्रियाँ विद्यमान रहती हैं। उस आश्चर्यमय पवित्र स्थान पर जाकर भक्त जन सुख का अनुभव करते हैं ॥७१॥ उस पुण्य लोक म नास्तिक विषयी या इन्द्रियलोलुप मनुष्य नहीं जा सकते न तो विश्वासघाती न चुगुलखोर और न चोर ही वहाँ जा सकते हैं ॥७२॥ इसके विपरीत जो वैष्णव भक्त सर्वदा भक्तिपूर्वक जगद्गुरु वासुदेव की उपासना म रत रहते हैं वे ही उस लोक म जाते हैं इसम तनिक भी सन्देह नहीं ॥७३॥ द्विजोत्तम ! दक्षिण समुद्र के तट पर उस परम दुर्लभ पवित्र क्षेत्र मे राम कृष्ण और सुभद्रा का दर्शन कर जो मनुष्य कल्पवृक्ष के समीप शरीर त्याग करते हैं पुरुषोत्तम क्षेत्र म मरने वाले वे मनुष्य उसी लोक म जाते हैं ॥७४ ७५॥ जो मनुष्य वट और सागर के मध्यवर्ती पुनीत प्रदेश म भगवान् का स्मरण करते हुए प्राण त्याग करते हैं वे भी विष्णुलोक को प्राप्त करते हैं इसम थोडा भी सन्देह नहीं ॥७६॥ मुनिगण ! आप लोगों के इच्छानुसार सब आनन्द को देने वाले और भुक्ति मुक्ति उभय प्रदान करने वाले विष्णुलोक का वर्णन मैंने सुना दिया ॥७७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म विष्णुलोकानुकीर्तन नामक अडसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६८॥

---

१ जितेन्द्रिया।

अथोनसप्ततितमोऽध्यायः

पुरुषोत्तममाहात्म्यनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

बह्वाश्चर्यस्त्वया प्रोक्तो विष्णुलोको जगत्पते[1]। नित्यानन्दकरः श्रीमान्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥१॥
क्षेत्र च दुर्लभं लोके कीर्तित पुरुषोत्तमम् । त्यक्त्वा यत्र नरो देहं याति सालोक्यतां हरे. ॥२॥
सम्यक्क्षेत्रस्य माहात्म्य त्वया[2] सम्यक्प्रकीर्तितम्। यत्र स्वदेहसंत्यागाद्विष्णुलोक व्रजेन्नरः ॥३॥
[3]अहो मोक्षस्य मार्गोऽयं देहत्यागस्त्वयोदितः। नराणामुपकाराय पुरुषाख्ये न संशयः ॥४॥
अनायासेन देवेश देहं त्यक्त्वा नरोत्तमाः । तस्मिन्क्षेत्रे पर[4] विष्णो. पदं यान्ति निरामयम् ॥५॥
श्रुत्वा क्षेत्रस्य माहात्म्यं विस्मयो नो महानभूत्। प्रयागपुष्करादीनि क्षेत्राण्यायतनानि च ॥६॥
पृथिव्यां सर्वतीर्थानि सरितश्च सरांसि च। न तथा तानि सर्वाणि प्रशंससि सुरोत्तम ॥७॥
यथा प्रशंससि क्षेत्रं पुरुषाख्यं पुन. पुनः। ज्ञातोऽस्माभिरभिप्रायस्त्वेदानीं पितामह ॥८॥
येन प्रशंससि क्षेत्र मुक्तिद पुरुषोत्तमम्। पुरुषाख्यसमं नूनं क्षेत्र नास्ति महीतले॥
तेन त्वं विबुधश्रेष्ठ प्रशंससि पुनः पुनः ॥९॥

अध्याय ६९

पुरुषोत्तम का माहात्म्य-निरूपण

मुनियों ने कहा—जगत्पते! आपने नित्य आनन्दप्रद मुक्ति और मुक्ति के दाता, शोभाशाली विष्णुलोक के विषय मे बहुत सी आश्चर्यजनक बात सुनाईं ॥१॥ आपसे यह भी ज्ञात हुआ कि यह पुरुषोत्तम क्षेत्र इस ससार मे दुर्लभ है और वहाँ पर देहत्याग कर मनुष्य हरि की सालोक्य मुक्ति प्राप्त करता है ॥२॥ आपने इस पवित्र क्षेत्र की महिमा भी भलीभाँति बतलाई जहाँ देहत्याग करने से मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥३॥ अहा! आपने लोक के उपकार के लिये यह मोक्ष का सरल मार्ग बतलाया (कि इस पुरुषोत्तम तीर्थ मे देह त्याग करने से निश्चय ही मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है) ॥४॥ देवेश! आपने यह भी बतलाया कि इस पुरुषोत्तम क्षेत्र म देह त्याग कर मनुष्य अनायास विष्णुपद को प्राप्त कर लेता है ॥५॥ इस क्षेत्र की महिमा सुनकर हम लोगो को महान् आश्चर्य हुआ। सुरोत्तम! आप जिस प्रकार इस तीर्थ की प्रशसा करते हैं, वैसी प्रशसा प्रयाग, पुष्कर आदि क्षेत्र, अन्य देव-मन्दिर या पृथ्वीपर के किसी तीर्थ, नदी या सरोवर की नहीं करते ॥६-७॥ आप जिस अभिप्राय से बार-बार इस क्षेत्र की प्रशसा करते हैं, हे पितामह! आपके उस अभिप्राय को हम लोगो ने जान लिया ॥८॥ इस मुक्तिदायक पुरुषोत्तम क्षेत्र की प्रशसा से ज्ञात होता है कि निश्चय ही इस धरातल पर पुरुषोत्तम के समान अन्य कोई भी तीर्थ नही है। इसीलिये हे देवेन्द्र! आप इसकी बार बार प्रशसा करते हैं ॥९॥

१क जगत्पतेः। २ख •या ब्रह्मन्प्रकी०। ३ग अथ। ४क वर।

ब्रह्मोवाच

सत्य सत्य मुनिश्रेष्ठा भवद्भि समुदाहृतम् । 'पुरुषाख्यसम क्षेत्र 'नास्त्यत्र पृथिवीतले ॥१०॥
सन्ति यानि तु तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च । तानि श्रीपुरुषाख्यस्य कला नार्हन्ति षोडशीम् ॥११॥
यथा सर्वेश्वरो विष्णु 'सर्वलोकोत्तमोत्तम । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१२॥
आदित्यानां यथा विष्ण श्रेष्ठत्वे समुदाहृत । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१३॥
नक्षत्राणा यथा सोम सरसा सागरो यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१४॥
वसूना पावको यद्वद्रुद्राणा शकरो यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१५॥
वर्णानां ब्राह्मणो यद्वद्वैनतेयश्च पक्षिणाम् । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१६॥
शिखरिणा यथा मेरु पर्वतानां हिमालय । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१७॥
प्रमदानां यथा लक्ष्मी सरिता जाह्नवी यथा । तथा समस्ततीर्थाना वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१८॥
ऐरावतो गजेन्द्राणा महर्षीणा भृगुर्यथा । तथा समस्ततीर्थाना वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१९॥
सेनानीना यथा स्कन्द सिद्धाना कपिलो यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥२०॥
उच्चै श्रवा यथाऽश्वाना कवीनामुशना कवि । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥२१॥
मुनीना च यथा व्यास कुबेरो यक्षरक्षसाम् । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥२२॥
इन्द्रियाणां मनो यद्वद्भूतानामवनी यथा । तथा समस्ततीर्थाना वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥२३॥
अश्वत्थ सर्ववृक्षाणां पवन प्लवतां यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥२४॥

ब्रह्मा बोले—मुनिश्रष्ठ ! आप लोगो का कथन सत्य है। वास्तव म इस पृथ्वी-तल पर पुरुषोत्तम तीथ के समान तीर्थ नही हैं ॥१०॥ जितने तीथ और पुनीत क्षत्र हैं वे सभी श्री पुरुषोत्तम तीथ के सोलहवें भाग की भी बराबरी नही कर सकते ॥११॥ जिस प्रकार सब के ईश्वर विष्णु सम्पूण लोको म सवश्रष्ठ हैं उसी प्रकार सब तीर्थों म पुरुषोत्तम तीथ श्रष्ठ है ॥१२॥ जिस प्रकार आदित्यो म विष्णु की श्रष्ठता स्वीकार की गई है उसी प्रकार समस्त तीर्थों म पुरुषोत्तम तीर्थ श्रष्ठ है ॥१३॥ जिस प्रकार नक्षत्रो म चद्रमा और जलाशयो मे सागर की वसुओ म पावक की तथा रुद्रो म शकर की श्रष्ठता है उसी प्रकार समस्त तीर्थों म पुरुषोत्तम तीर्थ श्रष्ठ है ॥१४ १५॥ जिस प्रकार वर्णों म ब्राह्मण पक्षियो मे गरुड शिखर वालो म मेरु तथा पवतो म हिमालय और स्त्रियो मे लक्ष्मी नदियो म गङ्गा श्रष्ठ मानी जाती हैं उसी प्रकार तीर्थों मे पुरुषोत्तम तीर्थ श्रष्ठतम है ॥१६ १८॥ मुनिगण ! जिस प्रकार गजेद्रो मे ऐरावत महर्षियो मे भृगु सेनापतियो म स्कन्द सिद्धो म कपिल अश्वो म उच्चश्रवा कवियो म शुक्र मुनियो मे व्यास यक्ष और राक्षसो म कुबेर, इद्रियो म मन और सम्पूण तत्त्वो म पृथ्वी श्रेष्ठतम है उसी प्रकार समस्त तीर्थों मे पुरुषोत्तम तीथ श्रष्ठ है ॥१९ २३॥ और जिस प्रकार सब वृक्षो म अश्वत्थ (पीपल) सचरणशील पदार्थों मे

१ख ०म नून क्षे० । २ख नास्ति महीत० । ३ख ०त्तोतेषु श्रेष्ठ० ।

भूषणानां तु सर्वेषां यथा चूडामणिर्द्विजाः। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥२५॥
गन्धर्वाणां चित्ररथः शस्त्राणां कुलिशो यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥२६॥
अकारः सर्ववर्णानां गायत्री छन्दसां यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥२७॥
सर्वाङ्गेभ्यो यथा श्रेष्ठमुत्तमाङ्गं द्विजोत्तमाः। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥२८॥
अरुन्धती यथा स्त्रीणां सतीनां श्रेष्ठतां गता। तथा समस्ततीर्थानां श्रेष्ठं तत्पुरुषोत्तमम्॥२९॥
यथा समस्तविद्यानां मोक्षविद्या परा स्मृता। तथा समस्ततीर्थानां श्रेष्ठं तत्पुरुषोत्तमम्॥३०॥
मनुष्याणां यथा राजा धेनूनामपि कामधुक्। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥३१॥
सुवर्णं सर्वरत्नानां सर्पाणां वासुकिर्यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥३२॥
प्रह्लादः सर्वदैत्यानां रामः शस्त्रभृतां यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥३३॥
झषाणां मकरो यद्वन्मृगाणां मृगराड्यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥३४॥
समुद्राणां यथा श्रेष्ठः क्षीरोदः सरितां पतिः। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥३५॥
वरुणो यादसां यद्वद्यमः संयमिनां यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥३६॥
देवर्षीणां यथा श्रेष्ठो नारदो मुनिसत्तमाः। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥३७॥
धातूनां काञ्चनं यद्वत्पवित्राणां च दक्षिणा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥३८॥

पवन श्रेष्ठ है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है॥२४॥ द्विजवृन्द! जिस प्रकार सम्पूर्ण आभूषणों में चूडामणि श्रेष्ठ है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है॥२५॥ जिस प्रकार गन्धर्वों में चित्ररथ शस्त्रों में वज्र श्रेष्ठ माना गया है उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है॥२६॥ तथा जिस प्रकार सब अक्षरों में अकार छन्दों में गायत्री श्रेष्ठ छन्द है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है॥२७॥ द्विजश्रेष्ठ! जिस प्रकार सब अंगों में मस्तक उत्तम अङ्ग है उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों में पुरुषोत्तम उत्तम तीर्थ है॥२८॥ जिस प्रकार सती स्त्रियों में अरुन्धती परमश्रेष्ठ सती मानी गई है है उसी प्रकार तीर्थों में पुरुषोत्तम श्रेष्ठ तीर्थ माना गया है॥२९॥ जिस प्रकार समस्त विद्याओं में मोक्ष विद्या परा (सर्वोत्तम) विद्या मानी गयी है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम सर्वोत्तम माना गया है॥३०॥ जिस प्रकार मनुष्यों में राजा दूध देने वाली गायों में कामधेनु उत्तम धेनु है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ उत्तम है॥३१॥ जिस प्रकार सब रत्नों में सोना और साँपों में वासुकि श्रेष्ठ है उसी प्रकार सब तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है॥३२॥ जिस प्रकार सब दैत्यों में प्रह्लाद और धनुर्धारियों में राम श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार सब तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है॥३३॥ जिस प्रकार मत्स्यों में मकर और वन्य पशुओं में सिंह श्रेष्ठ है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है॥३४॥ जिस प्रकार समुद्रों में सरित्पति क्षीरसमुद्र श्रेष्ठ है उसी प्रकार सब तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है॥३५॥ जैसे यादस (जलचर) समूह में वरुण और शासकों में यम श्रेष्ठ है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है॥३६॥ मुनिशार्दूल! जिस प्रकार देवर्षियों में नारद श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है॥३७॥ तथा जिस प्रकार धातुओं में काञ्चन (सोना) पवित्र द्रव्यों में दक्षिणा पवित्र है उसी प्रकार

प्रजापतिर्यथा दक्ष ऋषीणा कश्यपो यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥३९॥
ग्रहाणा भास्करो यद्वन्मन्त्राणां प्रणवो यथा। तथा समस्ततीर्थाना वरिष्ठ पुरुषोत्तमम्॥४०॥
अश्वमेधस्तु यज्ञानां यथा श्रेष्ठः प्रकीर्तितः। तथा समस्ततीर्थानां क्षेत्रं च तद्द्विजोत्तमा.॥४१॥
ओषधीनां यथा धान्यं तृणेषु तृणराड्यथा। तथा समस्ततीर्थानामुत्तम पुरुषोत्तमम्॥४२॥
यथा समस्ततीर्थानां धर्मः ससारतारक। तथा समस्ततीर्थाना श्रेष्ठ तत्पुरुषोत्तमम्॥४३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंम्भुवृषिसंवादे पुरुषोत्तममाहात्म्यनिरूपण नामैकोनसप्ततितमोऽध्याय॥६९॥

अथसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्माणं प्रति तीर्थसंख्याविषयको नारदप्रश्न.

ब्रह्मोवाच

सर्वेषां चैव तीर्थानां क्षेत्राणां च द्विजोत्तमाः। जपहोमव्रताना च तपोदानफलानि च॥१॥
न तत्पश्यामि भो विप्रा यत्तेन सदृशं भुवि। किं चात्र बहुनोक्तेन भाषितेन पुन पुन॥२॥

समस्त तीर्थों मे पुरुषोत्तम क्षेत्र पवित्र है॥३८॥ जिस प्रकार प्रजापतियो मे दक्ष, ऋषियो मे कश्यप श्रेष्ठतम माने गये हैं उसी प्रकार तीर्थों मे पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ माना गया है॥३९॥ जिस प्रकार ग्रहो मे भास्कर (सूर्य) और मन्त्रो में प्रणव (ओंकार) श्रेष्ठतम माने गए हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों मे पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है॥४०॥ जिस प्रकार यज्ञो मे अश्वमेघ यज्ञ को श्रेष्ठ बतलाया गया है उसी प्रकार तीर्थों मे पुरुषोत्तम तीर्थ को श्रेष्ठ कहा गया है॥४१॥ मुनिवृन्द! जिस प्रकार ओषधियो (जीवन-दायि-पदार्थों) मे धान्य (अन्न) और तृणो मे तृणराड् (कुश) की श्रेष्ठता कही गई है, उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों मे पुरुषोत्तम की श्रेष्ठता है॥४२॥ जिस प्रकार समस्त तीर्थों म धर्म ससार से उद्धार करने वाला है, उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों मे पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ (ससारोद्धारक) है।

श्री ब्रह्ममहापुराण मे पुरुषोत्तम-माहात्म्य-वर्णन नामक उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥६९॥

अध्याय ७०

ब्रह्मा से नारद का तीर्थसंख्याविषयक प्रश्न

ब्रह्मा ने कहा—विप्रवृन्द! इस संसार के जितने तीर्थ क्षेत्र, जप होम, व्रत तप और दान आदि हैं उनम एक भी ऐसा नही है जो पुरुषोत्तम तीर्थ के समान पवित्र तथा फल देने वाला हो। इसकी महिमा के विषय म बार-

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं क्षेत्रं तत्परमं महत्। पुरुषाख्यं सकृद्दृष्ट्वा सागराम्भःसमाप्लुतम् ॥३॥
ब्रह्मविद्या सकृज्ज्ञात्वा गर्भवासो न विद्यते। हरेः सन्निहिते स्थाने उत्तमे पुरुषोत्तमे॥४॥
संवत्सरमुपासीत मासमात्रमथापि वा। तेन जप्तं हुतं तेन तेन तप्तं तपो महत्॥५॥
स याति परमं स्थानं यत्र योगेश्वरो हरिः। भुक्त्वा भोगान्विचित्रांश्च देवयोषित्समन्वित.[1]॥६॥
कल्पान्ते पुनरागत्य मर्त्यलोके नरोत्तमः। जायते योगिनां विप्रा ज्ञानज्ञेयोद्यतो[2] गृहे॥७॥
संप्राप्य वैष्णवं योगं हरेः स्वच्छन्दतां व्रजेत्। कल्पवृक्षस्य रामस्य कृष्णस्य भद्रया सह॥८॥
मार्कण्डेयेन्द्रद्युम्नस्य माहात्म्यं माधवस्य च। स्वर्गद्वारस्य माहात्म्यं सागरस्य विधिः क्रमात्॥९॥
मार्जनस्य यथाकाले भागीरथ्याः समागमम्। सर्वमेतन्मया ख्यातं यत्परं श्रोतुमिच्छथ॥१०॥
इन्द्रद्युम्नस्य माहात्म्यमेतच्च कथितं मया। सर्वाश्चर्यं समाख्यातं रहस्यं पुरुषोत्तमम्॥
पुराणं परमं गुह्यं धन्यं संसारमोचनम्॥११॥

मुनय ऊचुः

नहि नस्तृप्तिरस्तीह शृण्वतां तीर्थविस्तरम्। पुनरेव परं गुह्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः॥
परं तीर्थस्य माहात्म्यं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्॥१२॥

बार कहने से क्या लाभ? ॥१-२॥ समुद्र-जल से सुशोभित परम श्रेष्ठ पुरुषोत्तम तीर्थ का एक बार भी दर्शन करने से तथा ब्रह्मविद्या का ज्ञान प्राप्त करने से मनुष्य कभी भी जन्म-मरण के फन्दे मे नही फँसता, यह निश्चय ही परम श्रेष्ठ सत्य है। भगवान् के शाश्वत निवास इस पुरुषोत्तम क्षेत्र में जो व्यक्ति एक वर्ष या एक मास रह कर उपासना करता है उसे जप, हवन और तप से प्राप्त होनेवाले सभी फल प्राप्त होते हैं और वह उस परम स्थान को जाता है जहाँ स्वय योगेश्वर हरि निवास करते हैं॥३ ५३॥ विप्रगण! देवकन्याओ के साथ वह विचित्र भोगों को भोग कर कल्पान्त मे पुन इस मृत्यु लोक में ज्ञान और ज्ञेय की जिज्ञासा रखने वाला वह सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति योगियो के कुल मे जन्म लेता है॥६ ७॥ पुन देह त्यागने के बाद वह नरोत्तम वैष्णव ज्ञान को प्राप्त कर हरिलोक मे सामीप्य भक्ति प्राप्त करता है। मैंने इस प्रकार कल्पवृक्ष एव सुभद्रा सहित राम कृष्ण, मार्कण्डेय, इन्द्रद्युम्न, माधव स्वर्गद्वार, और सागर का माहात्म्य क्रमश सुना दिया॥८ ९॥ भागीरथी के तट पर आने का समय और स्नान विधि आदि बातें भी मैंने सुना दी, जिनके सुनने के लिये तुम लोगो को अत्यन्त उत्कण्ठा थी॥१०॥ इन्द्रद्युम्न का माहात्म्य पुरुषोत्तम की रहस्यमयी और आश्चर्यजनक बातें तथा ससार के क्लेशो को मिटाने वाले इस परम गुह्य शुभ पुराण को भी सुना दिया॥११॥

मुनिगण बोले—भगवन्! तीर्थों की इस विस्तृत विवेचना को सुनकर भी हम लोग अभी तृप्त नही हुए हैं। इसलिये पुन तीर्थों का माहात्म्य और सर्वोत्तम तीर्थ की परम रहस्यमय बातें पूर्ण रूप से सुनाइये॥१२॥

१ख ०न्वितान्। क०। २ख ०यो यतो गृही। स०।

ब्रह्मोवाच

इममेव पुरा प्रश्नं पृष्टोऽस्मि द्विजसत्तमा। नारदेन प्रयत्नेन तदा तं प्रोक्तवानहम्॥ ॥१३॥

नारद उवाच

तपसो यज्ञदानानां तीर्थानां[1] पावनं स्मृतम्। सर्वं श्रुतं मया त्वत्तो जगद्योने जगत्पते[2]॥१४॥
'कियन्ति सन्ति तीर्थानि'[3] स्वर्गमर्त्यरसातले। सर्वेषामेव तीर्थानां सर्वदा किं विशिष्यते॥१५॥

ब्रह्मोवाच

चतुर्विधानि तीर्थानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले। दैवानि मुनिशार्दूल आसुराण्यार्षाणि च॥१६॥
मानुषाणि त्रिलोकेषु विख्यातानि सुरादिभिः। मानुषेभ्यश्च तीर्थेभ्य आर्षं तीर्थमनुत्तमम्॥१७॥
आर्षेभ्यश्चैव तीर्थेभ्य आसुरं बहुपुण्यदम्। आसुरेभ्यस्तथा पुण्यं दैवं तत्सार्वकामिकम्॥१८॥
ब्रह्मविष्णुशिवैश्चैव निर्मितं दैवमुच्यते। त्रिभ्यो यदेकं जायेत तस्मात्प्रातः परं विदुः॥१९॥
त्रयाणामपि लोकानां तीर्थं मेध्यमुदाहृतम्। तत्रापि जाम्बवं द्वीपं तीर्थं बहुगुणोदयम्॥२०॥
जाम्बवे भारतं वर्षं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। कर्मभूमिर्यतः पुत्र तस्मात्तीर्थं तदुच्यते॥२१॥
तत्रैव यानि तीर्थानि यान्युक्तानि मया तव। हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये षण्नद्यो देवसम्भवाः[4]॥२२॥

ब्रह्मा बोले—द्विजवर्य! पूर्वकाल मे नारदमुनि ने इसी प्रश्न को मुझसे पूछा था। उस समय मैंने जो कुछ कहा, उसी को पुनः कह रहा हूँ॥१३॥

नारद ने कहा—जगत् के आदि कारण! जगत्पते! आपसे मैंने तप, यज्ञ, दान और तीर्थों का पवित्र माहात्म्य पूर्णरूपेण सुना। अब यह बतलाइये कि स्वर्ग, मर्त्य और रसातलो मे कितने तीर्थ हैं और उन सब तीर्थों मे किसकी महत्ता सर्वदा मानी जाती है॥१४-१५॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिशार्दूल! देवताओ एवं तत्त्वज्ञानियो ने स्वर्ग, मर्त्य और रसातल मे स्थित दैव आसुर, आर्ष और मानुष—ये चार प्रकार के तीर्थ बतलाये हैं। इनमे मानुष तीर्थों से आर्षतीर्थ उत्तम माने गये हैं आर्ष से आसुरतीर्थ अधिक पुण्यप्रद माने गये हैं, और आसुरतीर्थों से दैवतीर्थ सब मनोरथो के दाता कहे गये हैं। ब्रह्मा-विष्णु-महेश द्वारा प्रतिष्ठित तीर्थ दैवतीर्थ कहे जाते हैं। इन तीनो देवो द्वारा जो तीर्थ प्रतिष्ठित हुआ उस दैव तीर्थ से श्रेष्ठ कोई अन्य तीर्थ नहीं हैं॥१६-१९॥ यो तो तीनो लोको के तीर्थ पवित्र माने गये हैं। परन्तु उनमे भी जम्बू द्वीप के तीर्थ बहुत उत्तम फल देने वाले हैं॥२०॥ जम्बूद्वीप के तीर्थों से भी भारतवर्ष त्रिभुवन प्रसिद्ध तीर्थ हैं। चूंकि यह भारतवर्ष कर्मभूमि है इसलिये यह तीर्थ कहा जाता है॥२१॥ उस देश मे जितने तीर्थ हैं उनके विषय मे मैंने तुमसे कहा है कि हिमालय और विन्ध्य गिरि के मध्य की छह नदियाँ देवनदियाँ है॥२२॥ उसी प्रकार हे नारद!

१घ तीर्थमेवनमुत्तमम्। इति मु०। २घ जगत्प्रभो। ३घ० यन्मेदानि ती०। ४घ ०नि दिव्यानि सुरेश्वर। ग।

तथैव देवजा ब्रह्मन्दक्षिणार्णवविन्ध्ययोः। एता द्वादश नद्यस्तु प्राधान्येन प्रकीर्तिताः॥२३॥
अभिसंपूजितं यस्माद्भारतं बहुपुण्यदम्। कर्मभूमिरतो देवैर्वर्षं तस्मात्प्रकीर्तितम्॥२४॥
आर्षाणि चैव तीर्थानि देवजानि क्वचित्क्वचित्। आसुरैरावृतान्यासंस्तदेवाऽऽसुरमुच्यते॥२५॥
दैवेष्वेव प्रदेशेषु तपस्तप्त्वा महर्षयः। दैवप्रभावात्तपस आर्षाण्यपि च तान्यपि॥२६॥
आत्मनः श्रेयसे मुक्त्यै पूजायै भूतयेऽथवा। आत्मनः फलभूत्यर्थं यशसोऽवाप्तये पुनः॥२७॥
मानुषैः कारितान्याहुर्मानुषाणीति नारद। एवं चतुर्विधो भेदस्तीर्थानां मुनिसत्तम॥२८॥
भेदं न कश्चिज्जानाति श्रोतुं युक्तोऽसि नारद। बहवः पण्डितम्मन्याः शृण्वन्ति कथयन्ति च॥
सुकृती कोऽपि जानाति वक्तुं श्रोतुं निजैर्गुणैः ॥२९॥

नारद उवाच

तेषां स्वरूपं भेदं च श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः। यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥३०॥
ब्रह्मन्कृतयुगादौ तु उपायोऽन्यो न विद्यते। तीर्थसेवां विना स्वल्पायासेनाभीष्टदायिनीम्॥३१॥
न त्वया सदृशो धातर्वक्ता ज्ञाताऽथवा क्वचित्। त्वं नाभिकमले विष्णोः संजातोऽखिलपूर्वजः॥३२॥

ब्रह्मोवाच

गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च वेणिका। तापी पयोष्णी विन्ध्यस्य दक्षिणे तु प्रकीर्तिताः॥३३॥
भागीरथी नर्मदा तु यमुना च सरस्वती। विशोका च वितस्ता च हिमवत्पर्वताश्रिताः॥३४॥

विन्ध्य और दक्षिण सागर के मध्य की छह नदियाँ भी देवनदियाँ हैं। ये बारह नदियाँ प्रधान रूप से श्रेष्ठ मानी गई हैं॥२३॥ क्योंकि भारत सबसे पूजित, अधिक पुण्य देने वाला और कर्मभूमि है, अतएव इसको देवों ने वर्ष (श्रेष्ठ) कहा है॥२४॥ आर्ष और कहीं कहीं दैवतीर्थ भी आसुर प्रदेश अथवा असुर-समूह से घिरे हैं, इसीलिए उनको आसुर कहा गया है॥२५॥ दैव प्रदेश में ही ऋषियों ने तपस्या कर दैव प्रभाव या अपनी तपस्या के प्रभाव से आर्ष तीर्थों का निर्माण किया है॥२६॥ लोक-कल्याण, मुक्ति, पूजा, ऐश्वर्य प्राप्ति अथवा अपनी अभीष्ट-सिद्धि या यश प्राप्ति के लिये मनुष्यों ने जिन तीर्थों को बनाया, वे ही मानुष तीर्थ कहे जाते हैं॥२७॥ मुनिवर नारद! इस प्रकार तीर्थों के चार भेद हैं। नारद! इस भेद को कोई नहीं जानता। तुम्हीं इस भेद को सुनने के अधिकारी हो। यद्यपि बहुत से पण्डितम्मन्य लोग इस भेद को सुनते और सुनाते हैं, किन्तु कोई पुण्यवान् व्यक्ति ही अपने गुणों के कारण सुनने और कहने (प्रवचन) का अधिकारी होता है, सभी नहीं॥२८-२९॥

नारद बोले—ब्रह्मन्! यथार्थ रूप से मैं उपर्युक्त तीर्थों का स्वरूप और भेद सुनना चाहता हूँ जिसको सुनकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। कृतयुग आदि में थोड़े श्रम से मनोरथ सिद्ध करने वाली तीर्थ-सेवा के अतिरिक्त और कोई उपाय भी तो नहीं है। धातः! तुम्हारे समान ज्ञाता और वक्ता कहीं नहीं है, क्योंकि तुम विष्णु के नाभि-कमल से उत्पन्न हुए हो और सबके पूर्वज हो॥३०-३२॥

ब्रह्मा ने कहा—विन्ध्य के दक्षिण भाग में गोदावरी, भीमरथी, तुङ्गभद्रा, वेणिका, तापी, पयोष्णी, ये नदियाँ कही गई हैं। भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका और वितस्ता ये हिमालय पर्वत से निकली हैं॥३३-३४॥

एता नद्यः पुण्यतमा देवतीर्थान्युदाहृताः। गयः 'कोल्लासुरो वृत्रस्त्रिपुरो ह्यन्धकस्तथा॥३५॥
हयमूर्धा च लवणो नमुचिः शृङ्गकस्तथा। यमः पातालकेतुश्च मयः पुष्कर एव च॥३६॥
एतैरावृततीर्थानि आसुराणि शुभानि च। प्रभासो भार्गवोऽगस्तिर्नरनारायणौ तथा॥३७
वसिष्ठश्च भरद्वाजो गौतमः कश्यपो मनुः। इत्यादिमुनिजुष्टानि ऋषितीर्थानि नारद॥३८॥
अम्बरीषो हरिश्चन्द्रो माधाता मनुरेव च। कुरुः कनखलश्चैव भद्राश्वः' सगरस्तथा॥३९॥
अश्वयूपो नाचिकेता वृषाकपिररिंदमः। इत्यादिमानुषैर्विप्र निर्मितानि शुभानि च॥४०॥
यशसः फलभूत्यर्थं निर्मितानीह नारद। स्वतोद्भूतानि दैवानि यत्र क्वापि जगत्त्रये॥
पुण्यतीर्थानि तान्याहुस्तीर्थभेदो मयोदितः ॥४१॥

इति श्रीमहापुराणे' स्वयंम्वृषिसंवादे तीर्थमाहात्म्ये तीर्थभेदवर्णनं नाम सप्ततितमोऽध्यायः॥७०॥
गौतमीमाहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः॥१॥

ये नदियाँ अत्यन्त पुण्यजनक और देवतीर्थ कही गयी हैं। गय, कोल्लासुर, वृत्र, त्रिपुर, अन्धक, हयमूर्धा, लवण नमुचि, शृंगक, यम, पातालकेतु, मय और पुष्कर इन असुरो से अधिष्ठित अथवा घिरे हुये तीर्थ आसुर हैं और शुभ भी हैं॥३५-३६॥ प्रभास, भार्गव, अगस्ति, नरनारायण, वशिष्ठ, भारद्वाज, गौतम, कश्यप और मनु इत्यादि ऋषियों से सेवित आर्षतीर्थ है॥३७-३८॥ अम्बरीष, हरिश्चन्द्र, मान्धाता, मनु, कुरु, कनखल, भद्राश्व, सगर, अश्वयूप, नचिकेता, वृषाकपि, अरिंदम, आदि से निर्मित शुभ मानुषतीर्थ है। नारद! इसलोक मे यश तथा ऐश्वर्य की सिद्धि के निमित्त बनाये गये या स्वयं उत्पन्न दैवतीर्थ जहाँ-कहीं भी इन तीनो लोको मे हैं, वे सभी पुण्यतीर्थ कहे जाते हैं। इस प्रकार मैंने तीर्थ के भेद सुना दिये॥३९-४१॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे तीर्थ माहात्म्य के क्रम मे तीर्थ भेद-वर्णन नामक सत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥७०॥

१ख कोट्लासु०। २ख भरत। ३ख. ०णे गौतमीमाहात्म्ये।

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

गङ्गोत्पत्तिकथोपक्रम

नारद उवाच

त्रिदैवत्य तु यत्तीर्थं सर्वेभ्यो ह्यवतमुत्तमम। तस्य स्वरूपभेद च विस्तरेण वदस्व मे॥१॥

ब्रह्मोवाच

तावदन्यानि तीर्थानि तावत्ता पुण्यभूमय। तावद्यज्ञादयो यावत्त्रिदैवत्य न दृश्यते॥२॥
गङ्गेय सरिता श्रेष्ठा सर्वकामप्रदायिनी। त्रिदैवत्या मुनिश्रेष्ठ तदुत्पत्तिमत शृणु॥३॥
वर्षाणामयुतात्पूर्वं देवकार्य उपस्थिते। तारको बलवानासीन्मद्वरादतिगर्वित ॥४॥
देवाना परमैश्वर्यं हृत तेन बलीयसा। ततस्ते शरण जग्मुर्देवा सेन्द्रपुरोगमा॥५॥
क्षीरोदशायिन देव जगता प्रपितामहम्। कृताञ्जलिपुटा देवा विष्णुमूचुरनन्यगा॥६॥

देवा ऊचु

त्व त्राता जगता नाथ देवाना कीर्तिवर्धन। सर्वेश्वर जगद्योने त्रयीमूर्ते नमोऽस्तु ते॥७॥

अध्याय ७१

गगा की उत्पत्ति की कथा

नारद ने कहा—आपने जो त्रिदैवत्य तीर्थ को सबसे उत्तम तीर्थ कहा है सो उसके स्वरूप और भेद का विस्तारपूर्वक वर्णन मुझे सुनाइये॥१॥

ब्रह्मा बोले—तब तक ही अन्य तीर्थों पुण्यभूमि और अन्य यज्ञों का महत्व है जब तक कि त्रिदैवत्य का दर्शन नहीं होता है। मुनिश्रेष्ठ! यह गगा नदी ही—जो सब नदियों में श्रेष्ठ है सम्पूर्ण फल को देने वाली है—त्रिदैवत्या है, अतः उसकी उत्पत्ति की कथा सुनो। आज से दस हजार वर्ष पूर्व एक देवकार्य उपस्थित हुआ। उस समय तारक नामक एक असुर था जो मुझसे वर पाकर अत्यन्त गर्वोद्धत हो गया था। उस महाबली ने बलपूर्वक देवताओं का सारा वैभव छीन लिया। इसलिये वे देवगण हृतसर्वस्व इन्द्र को अगुवा बना कर देवताओं के एकमात्र रक्षक क्षीरशायी जगत्कर्ता विष्णु की शरण में गये। उनके पास जाकर देवगण हाथ जोड़कर कहने लगे॥२-६॥

देवगण बोले—समस्त लोक के स्वामी! हे देवों की कीर्ति बढ़ाने वाले सर्वेश्वर! तुम हमारे एकमात्र रक्षक हो ससार के उत्पत्ति-स्थान! हे त्रिमूर्ति! आपको नमस्कार है॥७॥ तुम्ही असुरों को मारने वाले लोक के

१घ ०णु। इन्द्राणा०। २-घ ०ने त्रिमूर्ते तु न०। ३क ०ते। क्षपा स०।

लोकस्रष्टाऽसुरान्हन्ता त्वमेव जगता पति । स्थित्युत्पत्तिविनाशाना कारण त्व जगन्मय ॥८॥
त्राता न कोऽप्यस्ति जगत्त्रयेऽपि, शरीरिणा सर्वविपदगतानाम।
त्वया विना वारिजपत्रनेत्र, तापत्रयाणा शरण न चान्यत ॥९॥
पिता च माता जगतोऽखिलस्य, त्वमेव सवासुलभोऽसि विष्णो।
प्रसीद पाहीश महाभयम्योऽस्मदार्तिहन्ता वद कस्त्वदन्य ॥१०॥
आदिकर्ता वराहस्त्व मत्स्य कूर्मस्तथैव च। इत्यादिरूपभेदैर्नो रक्षसे भय आगते ॥११॥
हृतस्वाम्यान्सुरगणान्हृतदारान्गतापद । कस्मान्न रक्षसे देव अनन्यशरणान्हरे ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

तत प्रोवाच भगवाञ्शेषशायी जगत्पति । कस्माच्च भयमापन्न तद्ब्रुवन्तु गतज्वरा ॥
तत भियपति प्राहुस्त तारकवध प्रति ॥१३॥

देवा ऊचु

तारकाद्भयमापन्न भीषण रोमहर्षणम्। न युद्धैस्तपसा शापैर्हन्तु नैव क्षमा वयम् ॥१४॥
अर्वाग्दशाहाद्यो बालस्तस्मान्मृत्युमवाप्स्यति,। तस्माद्देव] न चान्येभ्यस्तन्‌[१] नीतिर्विधीयताम् ॥१५॥

निर्माता और ससार के स्वामी हो। हे ससारमय ! ससार की सृष्टि पालन और विनाश के कारण तुम्ही हो ॥८॥ इन तीनो लोको म सब प्रकार की विपत्तियो मे फँसे जीवा क रक्षक तुम्हा हो दूसरा कोई नही। कमलनेत्र ! त्रिताप से सतप्त प्राणियो को तुम्हारे अतिरिक्त कोई आश्रय देनेवाला नही है। विष्णो ! इस अखिल लोक के तुम्ही पिता और माता हो और तुम्ही केवल सेवा द्वारा सुलभ हो। ईश ! प्रसन्न हो जाओ। इस महाविनाश से हम लोगा की रक्षा करो। तुम्हारे सिवा और कौन हम लोगा के कष्टो को दूर कर सकता है ? ॥९ १०॥ विपत्ति आ जाने पर तुम्ही आदिकर्ता वराह मत्स्य तथा कूम आदि रूपो म अवतार लेकर हमारी रक्षा करते हो। दव ! हरे ! इन अनन्यशरण तथा विपत्तियो मे फँसे देवो की—जिनके सारे अधिकार छीन लिये गये हैं और जिनकी स्त्रियाँ लूट ली गई हैं—क्या नही रक्षा करते ? ॥११ १२॥

ब्रह्मा बोले—इन बाता को सुनकर जगत्पति शेषशायी भगवान् न पूछा—देववन्द ! तुम लोगो को किससे भय है ? निशक होकर कहो। भगवान् की बातें सुनकर देवा न तारक के वध क सबध म उनस कहा ॥१३॥

देवों ने कहा—भगवन् ! तारकासुर के भीषण रोमाञ्चकारी अत्याचारा से हम लोग भयभीत हो गय हैं। हम लोग युद्ध तप शाप आदि किन्ही उपाया स उसको मारन म समथ नही हैं। देव ! दस दिन के बाद का ही शिशु उसकी मृत्यु का कारण होगा दूसरे से उसकी मृत्यु नही होगी। इसलिये कोई उपाय हूँढ निकालिये ॥१४ १५॥

१क ०क्षमो भयमागतान्। हृत०।

ब्रह्मोवाच

पुनर्नारायणः प्राह नाहं बलोत्कटः सुराः। न मत्तो मदपत्याच्च न देवेभ्यो वधो भवेत् ॥१९॥
ईश्वराद्यदि जायेत अपत्यं बहुशक्तिमत्। तस्माद्वधमवाप्नोति तारको लोकदारुणः[1] ॥१७॥
तद्गच्छामः सुराः सर्वे यतितुमृषिभिः सह। भार्यार्थं प्रथमो यत्नः कर्तव्यः प्रभविष्णुभिः ॥१८॥
तथेत्युक्त्वा सुरगणा जग्मुस्ते च नगोत्तमम्। हिमवन्तं रत्नमयं मेनां च हिमवत्प्रियाम् ॥१९॥
इदमूचुः सर्व एव सभार्यं तुहिनं गिरिम् ॥२०॥

देवा ऊचुः

दाक्षायणी लोकमाता या शक्तिः संस्थिता गिरौ[2]। बुद्धिः प्रज्ञा धृतिर्मेधा लज्जा पुष्टिः सरस्वती ॥२१॥
एवं त्वनेकधा लोके या स्थिता लोकपावनी। देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं युवयोर्गर्भमाविशत्[3] ॥२२॥
समुत्पन्ना[4] जगन्माता शंभोः पत्नी भविष्यति। अस्माकं भवतां चापि पालनी च भविष्यति ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

हिमवानपि तद्वाक्यं सुराणामभिनंद्य च। मेना चापि महोत्साहा अस्त्वित्येवं वचोऽब्रवीत् ॥२४॥
तदोत्पन्ना जगद्धात्री[5] गौरी हिमवतो गृहे। शिवध्यानरता नित्यं तन्निष्ठा तन्मनोगता[6] ॥२५॥
तां वै प्रोचुः सुरगणा ईशार्थे तप आविश। तथा हिमवतः पृष्ठे गौरी तेपे तपो महत् ॥२६॥

ब्रह्मा बोले—तदनन्तर भगवान् नारायण ने कहा—'देवगण ! मैं उत्कट बलशाली नही हूँ और उसका वध न मुझसे न मेरे पुत्र से न देवताओ से ही हो सकता है। यदि शकर से कोई अत्यन्त बलवान पुत्र उत्पन्न हो तो वह लोक-पीडक तारक उससे मारा जा सकता है। इसलिये प्रभावशाली ऋषियो के सहित हम सब प्रयत्न करने के लिये चलें। सर्वप्रथम उनके विवाह के लिये प्रयत्न करना चाहिये। 'ऐसा ही हो' यह कहकर वे देवगण रत्नपूर्ण नगाधिराज हिमालय और उसकी स्त्री मेना के पास गये। सभी उसकी भार्या मेना और हिमालय से बोले ॥१९-२०॥

देवों ने कहा—लोक-माता शक्तिस्वरूपिणी दाक्षायणी तुम्हारे यहाँ विराजमान हैं। लोक को पवित्र करने वाली उस जननी के, बुद्धि, प्रज्ञा, धृति, मेघा, लज्जा, पुष्टि, सरस्वती आदि अनेक नाम लोक में प्रसिद्ध हैं। वही देवा की कार्य-सिद्धि के लिये आपके गर्भ मे प्रविष्ट हुई हैं। उत्पन्न होकर वह जगन्माता भविष्य में शंभु की पत्नी होगी और हम लोगो की तथा आप लोगो की भी वह रक्षिका बनेगी ॥२१-२३॥

ब्रह्मा बोले—पर्वतराज हिमालय ने भी देवो के इस प्रस्ताव की सराहना की और मेना ने भी बड़े उत्साह से कहा कि 'ऐसा ही हो।' उस समय हिमालय के घर मे उत्पन्न जगन्माता गौरी भी सर्वदा शिव के ध्यान में मग्न रहती थी। उनकी निष्ठा और मन उनमे ही लगा रहता था। देवो ने उस हिमकन्या से कहा कि तुम भगवान् को पति रूप मे पाने के लिये तप करो। तब गौरी भी हिमालय के ऊपर बैठकर कठोर तपस्या करने लगी। पुनः

१घ. लोकदारक। २घ शिवे। ३क. ॰विशेत्। ४घ ॰त्। सा तूप॰। ५ख. जगद्धात्री। ६घ. तत्परायणा।

पुनः संमन्त्रयामासुरीशो ध्यायति तां शिवाम्। आत्मानं वा तथाऽन्यद्वा न जानीमः कथं भवः ॥२७॥
मेनकायाः सुतायां तु चित्तं दध्यात्सुरेश्वरः। तत्र नीतिर्विधातव्या ततः श्रेष्ठमवाप्स्यथ॥
ततः प्राह महाबुद्धिर्वाचस्पतिरुदारधीः ॥२८॥

बृहस्पतिरुवाच

यस्त्वयं मदनो धीमान्कन्दर्पः पुष्पचापधृक्। स विध्यतु शिवं शान्तं बाणैः पुष्पमयैः शुभैः॥२९॥
तेन विद्धस्त्रिनेत्रोऽपि ईशायां बुद्धिमादधेत्। परिणेष्यत्यसौ नूनं तदा तां गिरिजां हरः॥३०॥
जयिनः पञ्चबाणस्य न बाणाः क्वापि कुण्ठिताः। तयोढाया जगद्धात्र्यां शंभोः पुत्रो भविष्यति॥३१॥
जातः पुत्रस्त्रिनेत्रस्य तारकं स हनिष्यति। वसन्तं च सहायार्थं शोभिष्ठं कुसुमाकरम्॥३२॥
आह्लादनं च मनसा कामायैनं प्रयच्छत ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा सुरगणा मदनं कुसुमाकरम्। प्रेषयामासुरव्यग्राः शिवान्तिकमरिंदमाः॥३४॥
स जगाम त्वरा कामो धृतचापो समाधवः। रत्या च सहितः कामः कर्तुं कर्म सुदुष्करम्॥३५॥
गृहीत्वा सशरं चापमिदं तस्य मनोऽभवत्। मया वेध्यस्त्ववेध्यो वै शंभुर्लोकगुरुः प्रभुः॥३६॥
त्रैलोक्यजयिनो बाणाः शंभौ मे किं दृढा न वा। तेनासौ चाग्निनेत्रेण भस्मशेषस्तदा कृतः॥३७॥

देवताओं ने मन्त्रणा की कि भगवान् शंकर स्वयं गौरी या अपने आपका या अन्य किसी वस्तु का चिन्तन करते हैं; इस बात को हम नहीं जानते। अतः सुरेश्वर शंकर किस प्रकार मेना-पुत्री में अपना मन लगायेंगे, इस बात के लिए कोई उपाय करना चाहिये, तभी सफलता प्राप्त होगी। इतनी बातें सुनकर महाबुद्धिमान्, उदारचेता बृहस्पति ने कहा ॥२७-२८॥

बृहस्पति बोले—जो यह कुसुम-धनुष धारण करने वाला बुद्धिमान् कामदेव है, वह शान्त शिव को अपने शोभन पुष्पबाणों से मारे। पुष्पबाणों से बिंधे त्रिनेत्र गौरी की ओर आकृष्ट होंगे, तब निश्चय ही शंकर गिरिजा का पाणिग्रहण करेंगे। विजयी कामदेव के बाण कहीं भी असफल नहीं हुये। इस प्रकार पार्वती से विवाह हो जाने पर शम्भु से पुत्र उत्पन्न होगा। शंकर से उत्पन्न वह पुत्र तारक का वध करेगा। इसके पूर्व मनोहर वसन्त को जो कि मन में आह्लाद उत्पन्न कर देता है—सहायता के लिए मदन को दे दिया जाय ॥२९-३३॥

ब्रह्मा ने कहा—यही ठीक है—ऐसा कहकर शत्रुसूदन देवताओं ने प्रसन्नतापूर्वक वसन्त के साथ मदन को शिव के समीप भेजा। कामदेव भी वसन्त और रति के साथ हाथ में अपना अमोघ धनुष लेकर उस दुष्कर कार्य को करने के लिये शीघ्रता से गया। हाथ में बाण सहित धनुष लेकर कामदेव मन में सोचने लगा कि लोकपूज्य (अतएव) न बेधने योग्य प्रभु शंकर अवश्य मेरे बाणों के लक्ष्य बनेंगे। त्रिभुवन को वश में करने वाले मेरे बाण शंभु पर अपना प्रभाव दिखायेंगे कि नहीं, कामदेव यह सोच ही रहा था कि इतने ही में वह भगवान् के नेत्र से निकली

तदेव कर्म सुदृढमीक्षितुं सुरसत्तमाः। आजग्मुस्तत्र यद्वृत्तं शृणु विस्मयकारकम् ॥३८॥
शंभुं दृष्ट्वा सुरगणा यावत्पश्यन्ति मन्मथम्। तावच्च भस्मसाद्भूतं कामं दृष्ट्वा भयातुराः॥
तुष्टुवुस्त्रिदशेशानं कृताञ्जलिपुटाः सुराः ॥३९॥

देवा ऊचुः

तारकाद्भयमापन्नं कुरु पत्नीं गिरेः सुताम् ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

विद्धचित्तो हरोऽप्याशु मेने वाक्यं सुरोदितम्। अरुन्धतीं वसिष्ठं च मां तु चक्रधरं तथा ॥४१॥
प्रेषयामासुरमरा विवाहाय परस्परम्। संबन्धोऽपि तथाप्यासीद्धिमवल्लोकनाथयोः ॥४२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंम्भूऋषिसंवादे गङ्गोत्पत्तौ शंभुविवाहसंभवो
नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥
गौतमीमाहात्म्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

ज्वाला से जलकर भस्म हो गया। इस कठोर कर्म को देखने के लिये वहाँ वे देवता आये। इसके आगे जो आश्चर्य-जनक घटना हुई उसको हे पुत्र! सुनो। शम्भु को देखने के बाद देवगण ज्योंही मदन की ओर ताकने लगे त्योंही उसको भस्मीभूत देखकर भय से अधीर हो गये। तब हाथ जोडकर देवताओं ने देवेश शङ्कर की स्तुति की ॥३४-३९॥

देवों ने कहा—तारकासुर से हम लोग त्रस्त हैं, हमारे उद्धार के लिये (प्रभो) पार्वती को अपनी पत्नी बनाइये ॥४०॥

ब्रह्मा ने कहा—इधर मदन-पीडित शङ्कर ने भी शीघ्र ही देवों की प्रार्थना स्वीकार कर ली। अपना मनोरथ सिद्ध जानकर देवताओं ने अरुन्धती, वशिष्ठ, मुझ (ब्रह्मा) को और विष्णु को विवाह का संघटन (घटकैती) करने के लिये भेजा। यथार्थ में वह विवाह भी हिमालय और लोकस्वामी शङ्कर के पद और प्रतिष्ठा के अनुरूप ही था ॥४१-४२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में गङ्गोत्पत्ति-प्रकरण में शम्भुविवाह की संभावना नामक
इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७१॥

अथ द्विसप्ततितमोऽध्याय

हिमवद्वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

हिमवत्पर्वत श्रेष्ठे नानारत्नविचित्रित। नानावृक्षलताकीर्णे नानाद्विजनिषेविते ॥१॥
नदीनदसरःकूपतडागादिभिरावृते। देवगन्धर्वयक्षादिसिद्धचारणसेविते ॥२॥
शुभमारुतसपन्ने हर्षोत्कर्षैककारण। मेरुमन्दरकलासमैनाकादिनगैवृते ॥३॥
वसिष्ठागस्त्यपौलस्त्यलोमशादिभिरावृते। महोत्सव वर्तमान विवाह समजायत ॥४॥
तत्र वदी रत्नमयी शोभिता स्वर्णभूषिता। वज्रमाणिक्यवैदूर्यतन्मयस्तम्भशोभिता ॥५॥
जयालक्ष्मीशुभाक्षान्तिकीर्तिपुष्ट्यादिसवृता। मेरुमन्दरकैलासरैवतै[1] परिशोभिते ॥६॥
पूजितो लोकनाथेन विष्णुना प्रभविष्णुना। मैनाक पर्वतश्रेष्ठो रेजेऽतीव हिरण्मय ॥७॥
ऋषयो लोकपालाश्च आदित्या समरुद्गणा। विवाह वेदिकां चक्रुर्देवदेवस्य शूलिन ॥८॥
विश्वकर्मा स्वय त्वष्टा वेदीं चक्र सतोरणाम। सुरभी नन्दिनी नन्दा [2]सुनन्दा कामदोहिनी ॥९॥
आभिस्तु शोभितशाल्या विवाह समजायत। समुद्रा सरितो नागा ओषध्यो लोकमातर ॥१०॥

अध्याय ७२

हिमालय का वर्णन

ब्रह्मा बोले—नाना रत्नों से विचित्र शोभाशाली श्रेष्ठ हिमालय-पर्वत पर जो अनेक वृक्ष और लताओं से प्रपूर्ण था जहाँ भिन्न भिन्न रग के अनेक पक्षी रहते थे जो नदी नद सरोवर कूप और तडाग आदि से घिरा हुआ था जहाँ देव गन्धर्व यक्ष आदि तथा सिद्ध चारण निवास करते थे और वसिष्ठ अगस्त्य पौलस्त्य लोमश आदि विवाहोत्सव देखने के लिये आये थे—बड़े समारोह के साथ विवाह-कृत्य शुभ बेला मे प्रारम्भ हुआ ॥१ ४॥ वहाँ सोने से सुसज्जित रत्नजटित वेदी बनाई गई उस पर वज्र-माणिक्य और वदूर्य जड़ स्तम्भ खड़े किये गये ॥५॥ जया लक्ष्मी शुभा शान्ति कीर्ति पुष्टि आदि देवियाँ वहाँ विवाह-मण्डप म उपस्थित थी मेरु मन्दर कैलाश रैवत आदि विराजमान थ और लोकस्वामी सर्वसमर्थ विष्णु से सम्मानित स्वर्णमय पर्वत शिरोमणि मैनाक वहाँ अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ॥६ ७॥ उस अवसर पर विवाह मे ऋषि लोकपाल तथा मरुद्गणों के साथ आदित्यगणो ने मिलकर वेदी बनाया देव शिल्पी विश्वकर्मा ने तोरण से उसको सजाया। तदनन्तर सुरभी नन्दिनी नन्दा सुनन्दा कामधेनु आदि सखियों के मध्य सुशोभित पार्वती का विवाह सम्पन्न हुआ। समुद्र सरिता पर्वत ओषधियाँ लोकमाताय

---

[1] ग ०लासै तैरेवोपरिशोभिते। पु० । [2] ग कामदा।

सवनस्पतिबीजाश्च सर्वे तत्र समाययु । भुव कर्म इला चक्रे ओषध्यस्त्वन्नकर्म च ॥११॥
वरुण [1] पानकर्माणि दानकर्म धनाधिप । अग्निश्चकार [2] तत्रान्न यच्चेष्ट लोकनाथयो [3]॥१२॥
तत्र [4] तत्र पृथक्पूजा चक्रे विष्णु सनातन । 'वेदाश्च सरहस्या' वै गायन्ति च [4] हसन्ति च ॥१३॥
नृत्यन्त्यप्सरस सर्वा जगुर्गन्धर्वकिनरा । लाजाधृवचापि मैनाको बभूव मुनिसत्तम ॥१४॥
पुण्याहवाचन [5] वृत्तमन्तर्वेश्मनि नारद । वेदिकायमुपाविष्टौ दपती सुरसत्तमौ ॥१५॥
प्रतिष्ठाप्याग्नि विधिवदश्मान चापि पुत्रक । हुत्वा लाजाश्च विधिवत्प्रदक्षिणमथाकरोत ॥१६॥
अश्मन स्पर्शहेतोश्च देव्यङ्गुष्ठ करेऽस्पृशत् । विष्णुना प्रेरित शभुर्दक्षिणस्य पदस्य च ॥१७॥
तामदर्शमह तत्र होम कुर्वन्हरान्तिके । दृष्टेऽङ्गुष्ठे दुष्टबुद्ध्या वीर्यं सुस्राव मे तदा ॥१८॥
लज्जया कलुषीभूत स्कन्न वीर्यमचूर्णयम् । मद्वीर्याच्चूर्णितात्सूक्ष्माद्वालखिल्यास्तु जज्ञिरे ॥१९॥
ततो महानभूत्तत्र हाहाकार सुरोदित । लज्जया परिभूतोऽह निर्गतस्तु तदाऽऽसनात ॥२०॥
पश्यत्सु देवसघेषु तूष्णींभूतेषु नारद । गच्छन्त मा महादेवो दृष्ट्वा नन्दिनमब्रवीत् ॥२१॥

वनस्पति बीज सभी वहाँ उत्सव म सम्मिलित हुये ॥८ १०॥ नारद ! उस उत्सव म इला ने पृथ्वी-कम (झाडना लीपना आदि) किया ओषधियो ने अन्न-सामग्री जुटायी वरुण ने जलपान का प्रबन्ध किया धनपति कुबेर ने दान-दक्षिणा देने का काय किया अग्नि ने शिव की इच्छा के अनुरूप विविध स्वादु भोजन बनाया ॥११ १२॥ सनातन विष्णु ने स्थान स्थान पर विवाहोचित पृथक्-पृथक पूजा की। वहा सागोपाग वेद स्वय गान करते थे तथा हँसते भी थे ॥१३॥ (सभी अप्सराओ ने अपना नृत्य दिखाया गन्धव और किन्नरो ने मधुर गान गाया।) मुनिश्रेष्ठ ! मैनाक ने मागलिक धान के लाजा (लावा) बिखेरने की विधि पूण की ॥१४॥ नारद ! अन्तगह म पुण्याहवाचन हुआ और दोनो देव-दम्पति ने वेदिका पर बैठकर विधिपूवक अग्नि और पत्थर की प्रतिष्ठा की। तदनन्तर लाजा-होम और अग्नि प्रदक्षिणा विधि समाप्त हुई। विष्णु की प्ररणा से शम्भु ने पावती के दाहिने पैर के अगूठ का पत्थर से स्पश कराने के लिये हाथ से स्पश किया। पुत्र ! उस समय मैं शकर के समीप हवन कर रहा था। मैंने पावती को देख लिया। उनके अगूठ को देखने से ही मेरे हृदय मे काममावना जागरित हो गई और वीय-पात हो गया ॥१५ १८॥ लज्जा से सकुचित होकर मैंने उस गिरे हुए वीय को चूण कर दिया। उस बारीक चूण किये वीय से बालखिल्य उत्पन्न हुये ॥१९॥ यह देखकर देवताओ ने बड़ा हाहाकार मचाया। तब लज्जा से आसन छोडकर मैं बाहर चला आया ॥२०॥ नारद ! इस प्रकार लज्जित और मण्डप से बाहर जाते मुझ देखकर सभी देवता मौन हो गये। किन्तु मुझको जाते देखकर शकर ने नन्दी से कहा ॥२१॥

---

१ घ ०र यच्चेष्ट हिमवल्लोक०। २ क वेदाश्च। ३ क ०स्यान्वै गा०। ४ क वदन्ति। ५ क ०वै सुरा०।

शिव उवाच

ब्रह्माणमाह्‌वयस्वेह गतपापं करोम्यहम्। कृतापराधेऽपि [जने संतः सकृपमानसाः ॥
मोहयन्त्यपि विद्वांसं विषयाणामियं स्थिात. [॥२२॥]

ब्रह्मोद ।

एवमुक्त्वा स भगवानुमया सहितः शिवः। ममानुकम्पया चैव लोकानां हितकाम्यया ॥२३॥
एतच्चकार लोकेशः शृणु नारद यत्नतः। पापिना पापमोक्षाय भूमिरापो भविष्यति ॥२४॥
तयोश्च सारसर्वस्वमाहरिष्यामि पावनम्। एवं निश्चित्य भगवांस्तयोः सारं समाहरत् ॥२५॥
भूमिं कमण्डलुं कृत्वा तत्रापः सनिवेश्य च। पावमान्यादिभिः सूक्तैरभिमन्त्र्य च यत्नत. ॥२६॥
त्रिजगत्पावनीं शक्ति तत्र सस्मार पापहा। मामुवाच स लोकेशो गृहाणेम कमण्डलुम् ॥२७॥
आपो वै मातरो देव्यो भूमिर्माता तथाऽपरा। स्थित्युत्पत्तिविनाशानां हेतुत्वमुभयोः स्थितम् ॥२८॥
अत्र प्रतिष्ठतो धर्मो ह्यत्र यज्ञः सनातनः। अत्र भुक्तिश्च मुक्तिश्च स्थावरं जङ्गमं तथा ॥२९॥
स्मरणान्मानसं पाप वचनाद्वाचिकं तथा। स्नानपानाभिषेकाच्च प्रणश्यत्यपि कायिकम् ॥३०॥
एतदेवामृतं लोके नैतस्मात्पावनं परम्। मयाऽभिमन्त्रितं ब्रह्मन्गृहाणेम कमण्डलुम् ॥३१॥
अत्रत्य वारि यः कश्चित्स्मरेदपि पठेदपि। स सर्वकामानाप्नोति गृहाणेमं कमण्डलुम् ॥३२॥

शकर बोले—तुम ब्रह्मा को यहाँ बुलाओ, मैं उनको निष्पाप करूँगा। सन्त मनुष्य अपराधी पर भी दया दिखलाते हैं, विषयवासनाओ की यह स्थिति है कि वे ज्ञानी को भी वशीभूत कर लेती हैं ॥२२॥

ब्रह्मा ने कहा—उमा के सहित शकर ने ऐसा कहकर मेरे ऊपर कृपाकर, लोक-हित की भावना से आगे क्या किया उसको तुम सावधानी से सुनो। उन्होंने कहा कि पृथ्वी और जल पापियो के पाप को नष्ट करने मे सहायक होते हैं। मैं इनके पवित्र सार भाग को निकालूँगा, ऐसा निश्चय कर भगवान् शकर ने उनके सार भाग को निकाल लिया ॥२३ २५॥ पृथ्वी को कमण्डलु बनाकर उसमें जल को रख दिया। पावमान्य आदि वैदिक मत्रो से भलीभाँति अभिमन्त्रित कर उस पाप-विनाशक ने उसम तीनो लोको को पवित्र करने वाली शक्ति का आवाहन किया। पुन लोकपति शकर ने मुझसे कहा कि इस कमण्डलु को लो ॥२६-२७॥ सुनो, जल मातृदेवी है, तथा पृथ्वी भी दूसरी माता है। इन दोना म सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश के कारण निहित हैं ॥२८॥ इनमे धर्म प्रतिष्ठित है। सनातन यज्ञ इनम वर्तमान है। इनमे भुक्ति और मुक्ति है। स्थावर, जगम सभी इनम ही रहते हैं ॥२९॥ जल के स्मरण से मन के पाप, इसके विषय मे चर्चा करने से वचन के पाप और इसके स्नान, पान और अभिषेक से शरीर के पाप नष्ट हो जाते है ॥३०॥ यही ससार मे अमृत है। इससे अधिक कोई भी वस्तु पवित्र नहीं। मैंने इसको अभिमन्त्रित कर दिया है, इस कमण्डलु को ग्रहण करो ॥३१॥ इस कमण्डलु के जल का जो कोई स्मरण करेगा अथवा इसका स्तोत्र पाठ करेगा, उसके सब मनोरथ पूर्ण होंगे, अत इस कमण्डलु को लो। ॥३२॥ पञ्च महाभूतो से ब्रह्म-

भूतेभ्यश्चापि पञ्चभ्य आपो भूत महोदितम्। तासामुत्कृष्टमेतस्माद्गृहाणेम कमण्डलुम् ॥३३॥
अत्र यद्वारि शोभिष्ठ पुण्य पावनमेव च। स्पृष्ट्वा स्मृत्वा च दृष्ट्वा च ब्रह्मन्पापाद्विमोक्ष्यसे ॥३४॥
एवमुक्त्वा महादेव प्रादान्मम कमण्डलुम्। तत सुरगणा सर्वे भक्त्या प्रोचु सुरेश्वरम्॥
आह्लादश्च महास्तत्र जयशब्दो व्यवर्तत ॥३५॥
देवोत्सवे मातुरज पदाग्र, समीक्ष्य पापात्पतितत्वमाप।
प्रादात्कृपालु स्मरणात्पवित्रा गङ्गा पिता पुण्यकमण्डलुस्थाम् ॥३६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयभुऋषिसवादे तीर्थमाहात्म्ये गङ्गोत्पत्तौ ब्रह्मकमण्डलुदान नाम द्विसप्ततितमोऽध्याय ॥७२॥

गौतमीमाहात्म्ये तृतीयोऽध्याय ॥३॥

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

बलिप्रशसावर्णनम्

नारद उवाच

कमण्डलुस्थिता देवी तव पुण्यविवर्धिनी। यथा मर्त्यं गता नाथ तन्मे विस्तरतो वद ॥१॥

तत्त्व श्रेष्ठ कहा गया है। यह तो उसका सार तत्त्व होने के कारण उससे भी अति उत्कृष्ट है इसलिये इस कमण्डलु को ग्रहण करो ॥३३॥ ब्रह्मन्! इस कमण्डलु में जो जल है वह पवित्र पापनाशक और शुभदायक है। इसके स्पर्श स्मरण और दर्शन से मनुष्य पापों से छूट जाता है ॥३४॥ ऐसा कहकर महादेव ने मुझको कमण्डलु दे दिया। इस घटना को देखकर सबको अत्यन्त प्रसन्नता हुई जय घोष की तुमुल ध्वनि से मण्डप गूज उठा। देवताओं ने भक्तिपूर्वक सुरेश्वर शकर से कहा ॥३५॥ देवोत्सव के अवसर पर माता के चरण के अगूठे को देखकर ब्रह्मा अपने पाप से पतित हो गये परन्तु कृपालु पिता शकर ने इसका स्मरण करके भी परम पवित्र गगा को कमण्डलु में रखकर ब्रह्मा को दे दिया ॥३६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में तीर्थ माहात्म्य-प्रकरण में गगोत्पत्ति नामक बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७२॥

अध्याय ७३

बलि की प्रशसा का वर्णन

नारद ने कहा—प्रभो! आपके कमण्डलु में रहने वाली पुण्यदायिनी गगा किस प्रकार मर्त्यलोक में आयी इसे भी विस्तारपूर्वक सुनाइये ॥१॥

१ग ०तस्मान्गृ०।

ब्रह्मोवाच

बलिर्नाम महादैत्यो देवारिरपराजितः। धर्मेण यशसा चैव प्रजासंरक्षणेन च ॥२॥
गुरुभक्त्या च सत्येन वीर्येण च बलेन च। त्यागेन क्षमया चैव त्रैलोक्ये नोपमीयते ॥३॥
तस्यर्द्धिमुन्नतां दृष्ट्वा देवाश्चिन्तापरायणाः। मिथः समूचुरमरा जेष्यामो वै कथं बलिम् ॥४॥
तस्मिञ्छासति राज्यं तु त्रैलोक्यं हतकण्टकम्। नारयो व्याधयो वाऽपि नाऽऽधयो वा कथंचन ॥५॥
अनावृष्टिरधर्मो वा नास्तिशब्दो न दुर्जनः। स्वप्नेऽपि नैव दृश्येत बलौ राज्यं प्रशासति ॥६॥
तस्योन्नतिशरैर्भग्ना कीर्तिखड्गद्विधाकृताः। तस्याऽऽज्ञाशक्तिभिन्नाङ्गा देवा शर्म न लेभिरे ॥७॥
ततः समन्त्रयामासुः कृत्वा मात्सर्यमग्रतः। तच्छोकाग्निप्रदीप्ताङ्गा विष्णुं जग्मुः सुविह्वलाः ॥८॥

देवा ऊचुः

आर्ताः स्म गतसत्त्वाः स्म शङ्खचक्रगदाधर। अस्मदर्थे [1]भवान्नित्यमायुधानि बिभर्ति च ॥९॥
त्वयि नाथे जगन्नाथ अस्माकं दुःखमीदृशम्। त्वां तु प्रणमती वाणी कथं दैत्यं नमस्यति ॥१०॥
मनसा कर्मणा वाचा त्वामेव शरणं गताः। त्वदङ्घ्रिशरणाः सन्तः कथं दैत्यं नमेमहि ॥११॥
यजामस्त्वां महायज्ञैर्वदामो वाग्भिरच्युत। त्वदेकशरणाः सन्तः कथं दैत्यं नमेमहि ॥१२॥

ब्रह्मा ने कहा—बलि नामक एक महादैत्य था जो देवताओं का परम शत्रु था। देवता उसको कभी भी पराजित न कर सके। वह अपने धर्म-पालन, यश, प्रजा-संरक्षण, गुरुभक्ति, सत्य, पौरुष, पराक्रम, त्याग और क्षमा आदि गुणों के कारण तीनों लोकों में अनुपम था। उसके महान् वैभव को देखकर देवता अत्यन्त चिंतित हो उठे। वे परस्पर कहने लगे कि किस प्रकार बलि को हम लोग जीत सकेंगे ॥२-४॥ इसके शासनकाल में तो सारा संसार निष्कण्टक है, न शत्रु है, न रोग है और न किसी को किसी प्रकार की मानसिक चिंता ही है ॥५॥ अनावृष्टि (सूखा), अधर्म, नास्तिकता और दुष्ट मनुष्य नहीं है। और क्या कहा जाय इस बलि के शासन-काल में स्वप्न में भी ये सब नहीं देखे जाते ॥६॥ इस प्रकार उसकी उन्नति रूपी बाणों से वे हतोत्साह हो गये, उसकी यशरूपी तलवार से आहत हो गये, उसकी प्रभुता शक्ति को देखकर वे देव क्षत-विक्षत अर्थात् खिन्न हो गये। उनको किसी प्रकार शान्ति नहीं मिली ॥७॥ अन्त में ईर्ष्याभाव से मिल-जुलकर उन लोगों ने मन्त्रणा की और उसके दुःखरूपी अग्नि से जलते हुए वे देव अत्यन्त व्याकुल होकर भगवान् विष्णु के समीप गये ॥८॥

देवों ने कहा—शंख, चक्र, गदा के धारण करने वाले! हम लोगों की रक्षा के लिये ही आप सब अस्त्र धारण करते हैं फिर भी हम लोग दुःखी हैं, अधिकार से वंचित हैं। जगन्नाथ! आपके रक्षक रहने पर भी हम लोगों की यह दुर्गति! आप की सर्वदा स्तुति करने वाली यह वाणी किस प्रकार उस अधम दैत्य की स्तुति करेगी ॥९-१०॥ हम सभी मन, वचन और कर्म से आप की ही शरण में रहते हैं। अतः आपके चरणों के रक्षक हम उस दैत्य को कैसे नमस्कार करेंगे? ॥११॥ हम महायज्ञों के द्वारा आपकी ही आराधना करते हैं। अच्युत! अपनी वाणी से आप का ही स्तोत्र गान करते हैं, एकमात्र आपकी ही शरण में रहते हैं, फिर हम कैसे उस दैत्य को नमस्कार कर सकेंगे

१प भावाना जगतामीश सा०। २प ०नित्य धामाद्य वि०।

त्वद्वीर्यमाश्रिता नित्यं देवाः सेन्द्रपुरोगमाः। त्वया दत्तं पदं प्राप्य कथं दैत्य नमेमहि ॥१३॥
स्रष्टा त्वं ब्रह्ममूर्त्या तु विष्णुर्भूत्वा तु रक्षसि। संहर्ता रुद्रशक्त्या त्वं कथं दैत्य नमेमहि ॥१४॥
ऐश्वर्यं कारणं लोके विनैश्वर्यं तु किं फलम्। हृतैश्वर्याः सुरेशान कथं दैत्य नमेमहि ॥१५॥
अनादिस्त्वं जगद्धातरनन्तस्त्वं जगद्गुरुः। अनन्तमन्तमं शत्रुं कथं दैत्य नमेमहि ॥१६॥
तवैश्वर्येण पुष्टाङ्गा जित्वा त्रैलोक्यमोजसा। स्थिराः स्याम सुरेशान कथं दैत्य नमेमहि ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

इत्येतद्देव वचनं श्रुत्वा दैतेयसूदनः। उवाच सर्वानमरान्देवानां कार्यसिद्धये ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच

मद्भक्तोऽसौ बलिर्दैत्यो ह्यवध्योऽसौ सुरासुरैः। यथा भवन्तो मत्पोष्यास्तथा पोष्यो बलिर्मम ॥१९॥
विना तु संगरं देवा हृत्वा राज्यं त्रिविष्टपे। बलिं निबध्य मन्त्रोक्त्या राज्यं वः प्रददाम्यहम् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा सुरगणाः सजग्मुर्दिवमेव हि। भगवानपि देवेशो ह्यदित्या गर्भमाविशत् ॥२१॥
तस्मिन्नुत्पद्यमाने तु उत्सवाश्च बभूविरे। जातोऽसौ वामनो ब्रह्मन्यज्ञेशो यज्ञपूरुषः ॥२२॥

हैं? ॥१२॥ इन्द्र आदि हम सभी देव आपके पराक्रम के सहारे जीते हैं आपके द्वारा प्राप्त अधिकार को पाकर कैसे अधिकार-हीन (याचक) की भाँति उस दैत्य को नमस्कार करें॥१३॥ प्रभो आप ब्रह्मा के रूप में सृष्टि करते हैं विष्णु होकर रक्षा करते हैं और रुद्रशक्ति से विनाश करते हैं फिर हम कैसे उसको नमस्कार करें॥१४॥ इस लोक में ऐश्वर्य ही जीने का आधार है ऐश्वर्यहीन जीवन से क्या लाभ देवाधिदेव शुभेच्छु! ऐश्वर्यहीन हम कैसे उसको नमस्कार करें? ॥१५॥ जगत् के पालक आप अनादि हैं अनन्त हैं जगत् के एकमात्र गुरु हैं आपके रहते हुए इस नश्वर दैत्य को गुरु मानकर हम लोग कैसे नमस्कार करें॥१६॥ आपके ही प्रभाव से हम पुनः पराक्रमी होकर अपने पराक्रम से तीनों लोकों को जीत कर स्थिर और शान्त होंगे। सुरपालक! आपके समान रहकर पार कैसे उस दैत्य को नमस्कार करें॥१७॥

ब्रह्मा ने कहा—देवताओं की इतनी बात सुनकर दैत्यारि भगवान् ने कहा—॥१८॥

श्रीभगवान् बोले—यह दैत्य बलि मेरा भक्त है और देव दानव कोई इसे मार नहीं सकते। जिस प्रकार आप लोगों का पालन मेरा कर्तव्य है उसी प्रकार बलि भी मेरा पोष्य है। फिर भी देववृन्द! बिना युद्ध के ही उससे राज्य छीनकर मैं युक्ति से उसी को स्वर्ग से हटाकर ही उसको बाँधकर स्वर्ग का राज्य तुम लोगों को दे दूँगा॥१९-२०॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा ही हो यह कहकर सुरगण स्वर्ग चले गये। इधर देवेश भगवान् ने भी अदिति के गर्भ में प्रवेश किया॥२१॥ ब्रह्मन्! यज्ञेश यज्ञपुरुष वामन के रूप में उत्पन्न हुए उनके उत्पन्न

---

२१ ०द्वीर्याश्रिता सन्तः क०। २५ ह्यवध्योऽसौ।

एतस्मिन्नतरे ब्रह्मन्हयमेधाय दीक्षित । बलिर्बलवता श्रेष्ठ ऋषिमुख्यं समाहित ॥२३॥
पुरोधसा च शुक्रेण वेदवेदाङ्गवेदिना। मखे तस्मिन्वर्तमाने यजमाने बलौ तथा॥२४॥
आर्त्विज्य ।¹ ऋषिमुख्ये तु शुक्रे तत्र पुरोधसि। हविर्भागार्थमासन्नदेवगन्धर्वपन्नगे॥२५॥
दीयता भुज्यता पूजा क्रियता च पृथक्पृथक। परिपूर्णं पुन पूर्णमेव वाक्ये प्रवर्तति॥२६॥
शनैस्तद्देशमभ्यागाद्वामन सामगायन । यज्ञवाटमनुप्राप्तो ²वामनश्चित्रकुण्डल ॥२७॥
प्रशसमानस्त यज्ञ वामन। प्रेक्ष्य भार्गव । ब्रह्मरूपधर देव वामन दैत्यसूदनम्॥२८॥
दातार यज्ञतपसा फल हन्तार रक्षसाम्। ज्ञात्वा त्वरन्नथोवाच राजान भूरितेजसम्॥२९॥
जेतार क्षत्रधर्मेण दातार भक्तितो धनम्। ³बलि बलवता श्रेष्ठ सभार्य दीक्षित मखे॥३०॥
ध्यायन्त यज्ञपुरुषमुत्सृजन्त हवि पृथक। तमाह भृगुशार्दूल शुक्र परमबुद्धिमान्॥३१॥

शुक्र उवाच

योऽसौ तव मख प्राप्तो ब्राह्मणो वामनाकृति । नासौ विप्रो बले सत्य यज्ञेशो यज्ञवाहन ॥३२॥
शिशुस्त्वा याचितु प्राप्तो नून देवहिताय हि। मया च सह समन्त्र्य पश्चाद्देय त्वया प्रभो॥३३॥

ब्रह्मोवाच

बलिस्तु भार्गव प्राह पुरोधसमरिंदम ॥३४॥

होने पर बड-बड उत्सव मनाये गये॥२२॥ ब्रह्मन्! इसी बीच बलवानो म श्रेष्ठ बलि ने अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा ली। उसके यज्ञ म प्रमुख प्रमुख ऋषि सम्मिलित हुए॥२३॥ वेद वेदागो के ज्ञाता शुक्र पुरोहित थे। उस यज्ञ म बलि यजमान बनकर बैठा हुआ था ऋषि-वर शुक्र पुरोहित बन हुये थे और अपने अपने हवि भाग पाने के लिये देव गधर्व और नाग उपस्थित थे। पुरोहित शुक्र यहा अमुक सामग्री दो यहाँ बलि दो यहाँ पूजा करो इस प्रकार पृथक पृथक आदेश दे रहे थे और परिपूर्ण पुन पूर्णम आदि वाक्य कह रहे थे कि इतने म सामवेद का गान करते हुए हाथ म विचित्र कमण्डलु लिये हुये भगवान वामन यज्ञ प्रान्त म पहुँच गये और उस यज्ञ की प्रशसा करने लगे। भार्गव शुक्र विप्ररूपधारी दैत्यारि वामन को—देखकर समझ गये कि ये यज्ञ और तप के फल के दाता राक्षसो के विनाशक भगवान् हैं। इसलिये परम बुद्धिमान् भृगुश्रेष्ठ शुक्र ने अत्यन्त पराक्रमी पराक्रम से युद्ध म शत्रु को जीतने वाले गम्भीर यजमान बलि से जो भक्तिपूर्वक धन का दान किया करता था और उस समय यज्ञ पुरुष का ध्यान कर पृथक उनके निमित्त हवि देने को प्रस्तुत था कहा—॥२४ ३१॥

शुक्र ने कहा—यज्ञ स्थल म आया हुआ वामन रूप यह ब्राह्मण ब्राह्मण नहा है अपितु साक्षात् यज्ञपुरुष यज्ञ के स्वामी हैं। बलि! अवश्य ही यह शिशु देवताओ की भलाई करने के लिये तुमसे याचना करने आया है। इसलिये राजन् मेरे साथ परामर्श करने के बाद ही इसको दान देना उचित होगा॥३२ ३३॥

ब्रह्मा ने कहा—शत्रु-सूदन बलि न पुरोहित भार्गव से कहा॥३४॥

१घ ०नान्त्यम०। २घ ०लि तं० कन्दिन्नार ग०। ३क ०प्तो य पद परमात्मनि। म०।

बलिरुवाच

धन्योऽहं मम यज्ञेशो [1]गृहमायाति मूर्तिमान्। आगत्य याचते किंचित्किं[2] मन्त्र्यमवशिष्यते ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा सभार्योऽसौ शुक्रेण च पुरोधसा। जगाम यत्र विप्रेन्द्रो वामनोऽदितिनन्दन ॥३६॥
कृताञ्जलिपुटो [3]भूत्वा केनार्थित्व तदुच्यताम्। वामनोऽपि तदा प्राह पदत्रयमिता भुवम् ॥३७॥
देहि राजेन्द्र नान्येन कार्यमस्ति धनेन किम्। तथेत्युक्त्वा तु कलशानानारत्नविभूषितात् ॥३८॥
वारिधारा। पुरस्कृत्य वामनाय भुव ददौ। पश्यत्सु ऋषिमुख्येषु शुक्रे चैव पुरोधसि ॥३९॥
पश्यत्सु [4]लोकनाथेषु वामनाय भुव ददौ। पश्यत्सु दैत्यसघेषु जयशब्दे [ ] प्रवर्तति ॥४०॥
शनैस्तु वामन प्राह स्वस्ति राजन्सुखी भव। देहि मे समिता भूमि त्रिपदामाशु गम्यते ॥४१॥
तथेत्युवाच दैत्येशो यावत्पश्यति वामनम्। यज्ञेशो यज्ञपुरुषश्चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे ॥४२॥
यथा स्याता [5]सुरा मूर्ध्नि ववृधे विक्रमाकृति। अनन्तश्चाच्युतो देवो विक्रान्तो विक्रमाकृति[6]॥
त दृष्ट्वा दैत्यराट् प्राह सभार्यो विनयान्वित ॥४३॥

बलि बोले—मैं धन्य हूँ कि आज स्वय यज्ञेश मूर्तिमान् होकर मेरे घर आये हुये हैं। यदि आकर कुछ माँगते ही हो तो इस विषय म मन्त्रणा की क्या आवश्यकता है? ॥३५॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा कहकर पुरोहित शुक्र को साथ लेकर भार्या सहित राजा बलि उस स्थान पर गया जहाँ अदितिपुत्र ब्राह्मण शिरोमणि वामन विराजमान थे ॥३६॥ हाथ जोडकर बलि ने कहा कि आप किस वस्तु की इच्छा करते हैं। वामन ने कहा 'केवल तीन डग मात्र भूमि। राजेन्द्र! केवल मुझे इतनी ही भूमि दे दो अन्य किसी वस्तु या धन की आवश्यकता नहीं है ॥३७॥ ऐसा ही हो' यह कहकर नानारत्नों से विभूषित कलश म जल निकाल कर ऋषियो के देखते-देखते पुरोहित शुक्र के सामने वामन को (तत्परिमित) पृथ्वी दे दी। इस दान को लोकपाल और दानवो का समूह भी देख रहे थे। इस अपूर्व दान को देखकर आनन्द-पुलकित हो सबने जय ध्वनि की ॥३८-४०॥ इधर भगवान् वामन ने धीरे से कहा—'राजन्! स्वस्ति हो तुम सुखी बनो। मेरी अभीष्ट तीन डग पृथ्वी शीघ्र दे दो मैं शीघ्र चला जाऊँ ॥४१॥ ऐसा ही हो' यह कहकर दैत्यराज ज्यो ही वामन को देखता है त्योंही यज्ञेश यज्ञपुरुष का इतना विराट रूप दिखाई दिया कि चन्द्र और सूर्य उसके वक्षस्थल पर दिखाई देने लगे ॥४२॥ वे अनन्त अच्युत देव इतने बड़े विशाल दिखाई पड़े कि सुरगण भी उनके मस्तक म दिखाई पडने लगे। तब भार्या के सहित विनय से नम्र दैत्यराज ने कहा—॥४३॥

---

[1] क ०मागत्य यज्ञराट्। आ०। [2] क ०चिन्त्रिम शक्र०। [3] घ ०त्वा मम कृत्य तु तद्वद्। कां०। [4] घ लोकपालेषु। [5] क सुरेन्द्रानो क०। [6] घ विक्रमाश्रय।

बलिरुवाच

त्व विष्णो लोकेश यावच्छक्त्या (क्रि)जगन्मय। जित मया सुरेशान सर्वभावेन विश्वकृत्॥४४॥

ब्रह्मोवाच

त्यसमकाल तु विष्णु प्राह महाक्रतु ॥४५॥

विष्णुरुवाच

श्वर महाबाहो क्रमिष्ये पश्य दैत्यराट ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

वदन्त स प्राह श्रम विष्णो पुन पुन ॥४७॥

ब्रह्मोवाच

पृष्ठे पद न्यस्य बलियज्ञ पद न्यसत। द्वितीय तु पद प्राप ब्रह्मलोक सनातनम्॥४८॥
यस्य पदस्यात्र स्थान नास्त्यसुरेश्वर। क्व क्रमिष्ये भुव देहि बलि स हरिरब्रवीत॥
स्य बलिरप्याह सभार्य स कृताञ्जलि ॥४९॥

बलिरुवाच

। सृष्ट जगत्सर्व न स्रष्टाऽह सुरेश्वर। त्वद्दोषादल्पमभवत्कि करोमि जगन्मय॥५०॥

बलि ने कहा—लोक-स्वामिन व्यापक! विष्णो अपनी शक्ति के अनुसार नाप लो। सुरस्वामिन्! । के रचयिता! मैंने सब प्रकार स ससार को जीत लिया है नाप लीजिये॥४४॥

ब्रह्मा ने कहा—उसके वाक्य के साथ ही महाक्रतुरूप विष्णु ने कहा—॥४५॥

विष्णु बोले—असुरराज! महाबाहो! देखो मैं नाप रहा हूँ। दैत्यराज! देखो॥४६॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार की विष्णु की बात सुनकर बलि ने कहा—विष्णो यथारुचि अलग अलग [illegible]॥४७।

ब्रह्मा ने कहा—[illegible] पीठ पर रखकर दूसरा चरण बलि के यज्ञ में रख लिया [illegible] ब्रह्मलोक [illegible] गया। [illegible] बलि से कहा—असुरेश्वर! [illegible] स्थान [illegible] (अत [illegible]) पृथ्वी दो। इसपर अपनी [illegible] बलि ने हाथ जोड़कर कहा—॥४८ ४९।

बलि बोले—सुरेश्वर! तुमने सम्पूर्ण ससार को बनाया है मैंने नहीं। (अतएव) तुम्हारे दोष से कमी

१क पद स्थान नवास्ति त्रिजगतम। कख। २क [illegible] सु०।

तथाऽपि नानृतपूर्वं कदाचिद्वच्मि केशव। सत्यवाक्यं च मा कुर्वमत्पृष्ठे हि पदं न्यस॥५१॥

ब्रह्मोवाच

तत प्रसन्नो भगवांस्त्रयीमूर्तिः सुरार्चितः ॥५२॥

भगवानुवाच

वरं वृणीष्व भद्रं ते भक्त्या प्रीतोऽस्मि दैत्यराट् ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

स तु प्राह जगन्नाथं न याचे त्वां त्रिविक्रम। स तु प्रादात्स्वयं विष्णुः प्रीतः स्वमनसेप्सितम्॥५४॥
रसातलपतित्वं च भावि चन्द्रपदं पुनः। आत्माधिपत्यं च हरिरविनाशि यशो विभुः॥५५॥
एवं दत्त्वा बलं सर्वं ससुतं भार्ययाऽन्वितम्। रसातलं हरिः स्थाप्य बलिं त्वमरवैरिणम्॥५६॥
शतक्रतोस्तथा प्रादात्सुरराज्यं यथाभवम्। एतस्मिन्नन्तरे तत्र पदं प्रागात्सुरार्चितम्॥५७॥
द्वितीयं तत्पदं विष्णोः पितुर्मम महामते। यत्पदं समनुप्राप्तं गृहं दृष्ट्वाऽप्यचिन्तयम्॥५८॥
किं कृत्यं यच्छुभं मे स्यात्पदं विष्णोः समागतम्। सर्वस्वं च समालोक्य श्रेष्ठो मे स्यात्कमण्डलुः॥५९॥
तद्वारि यत्पुण्यतमं दत्तं च त्रिपुरारिणा। वरं वरेण्यं वरदं वरं शान्तिकरं परम्॥६०॥
शुभं च शुभदं नित्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्। मातृस्वरूपं लोकानाममृतं भेषजं शुचि॥६१॥

हो गई जगन्मय मैं क्या करूँ फिर भी हे केशव मैं कभी भी असत्य नहीं करता हूँ इसलिये मेरे सत्य की रक्षा के लिये मेरी पीठ पर अपना चरण रखिये। ५० ५१।

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर तीन मूर्ति वाले तथा देवताओं द्वारा पूजे गये भगवान ने प्रसन्न होकर कहा—'तुम वर मांगो तुम्हारा कल्याण होगा दैत्यराज। तुम्हारी भक्ति से मैं प्रसन्न हूँ। ५२ ५३

ब्रह्मा ने कहा—राजा बलि ने कहा कि मैं तीन डगों से सम्पूर्ण लोक को नापने वाले तुम जगत्पति से कुछ नहीं मांगूंगा। परन्तु भगवान् ने प्रसन्न होकर स्वयं उसको अपनी इच्छा के अनुसार वर दिया कि तुम सम्प्रति रसातल के स्वामी बनो और भविष्य में इन्द्र की पदवी तुम्हें मिलेगी तुम्हारी अक्षय कीर्ति लोक में फैलेगी और तुम्हारा एकमात्र आधिपत्य रहेगा। ५४ ५५। इस प्रकार जगद्व्यापी भगवान हरि ने पुत्र और भार्या के सहित बलि को सब कुछ देकर उस देव शत्रु (बलि) को परिवार सहित रसातल में भेज दिया और इन्द्र का पूर्व की भांति स्वर्ग का राज्य दे दिया। ५६॥ महामते! ऐसा बीच जबकि भगवान दूसरे चरण से नापने का प्रयत्न कर रहे थे तब वह देवों से पूजित द्वितीय चरण मेरे लोक में आया। मैं अपने पिता के चरण को अपने घर में आया देखकर सोचने लगा कि मेरे घर आये इस चरण की क्या सेवा करूं कि मेरा नाम हो इस विचार से मैं सब कुछ देखने लगा तब तक ध्यान में आया कि यह मेरा कमण्डलु ही इस कार्य के लिये श्रेष्ठ है। इसमें त्रिपुरारि शंकर का दिया हुआ वह जल है जो पावन वर देने वाला श्रेष्ठ अत्यन्त शान्तिप्रद शुभ शुभ देनेवाला सर्वदा मुक्ति और भक्ति देने वाला माता के समान लोकपालक अमृत रोगनाशक पवित्र पूज्य सर्वोत्तम और उत्तम गुणों से युक्त है। जिसके स्मरण मात्र से

पवित्रं पावनं पूज्यं[1] ज्येष्ठं श्रेष्ठं गुणान्वितम्। स्मरणादेव लोकानां पावनं किं नु दर्शनात्॥६२॥
तादृग्वारि शुचिर्भूत्वा कल्पयेऽर्घाय मे पितुः। इति संचिन्त्य तद्वारि गृहीत्वाऽर्घाय कल्पितम्॥६३॥
विष्णो. पादे तु पतितमर्घवारि सुमन्त्रितम्। तद्वारि पतितं मेरौ चतुर्धा व्यगमद्भुवम्॥६४॥
पूर्वे तु दक्षिणे चैव पश्चिमे चोत्तरे तथा। दक्षिणे पतितं यत्तु जटाभिः शंकरो मुने॥६५॥
जग्राह पश्चिमे यत्तु पुनः प्रायात्कमण्डलुम्। उत्तरे यत्तु पतितं विष्णुर्जग्राह तज्जलम्॥६६॥
पूर्वस्मिन्नृषयो देवा पितरो लोकपालका। जगृहु. शुभदं वारि तस्माच्छ्रेष्ठं तदुच्यते॥६७॥
या दक्षिणां दिशं प्राप्ता आपो वै लोकमातरः। विष्णुपादप्रसूतास्ता[2] ब्रह्मण्या लोकमातरः॥६८॥
महेश्वरजटासंस्था[3]: पर्वजातशुभोदयाः। तासां प्रभावस्मरणात्सर्वकामानवाप्नुयात्॥६९॥

इति श्रीमहापुराणे ब्राह्मे स्वयंम्भूऋषिसंवादे तीर्थमाहात्म्ये गंगाया महेश्वरजटागमन-
निरूपणं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः॥७३॥
गौतमीमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

प्राणी पवित्र हो जाते हैं, दर्शन के विषय में तो कहना ही क्या? तो आज इस पवित्र जल से, स्वयं पवित्र होकर अपने पिता को अर्घ प्रदान करूँ, ऐसा सोचकर उस जल को लेकर अर्घ देने को प्रस्तुत हुआ॥५७-६३॥ जब मन्त्र से अभिमन्त्रित कर उस अर्घ-जल को विष्णु के चरण पर गिराया तो वह जल वहाँ से मेरु पर्वत पर गिर कर चार भागों में बँट कर पृथ्वी पर कुछ पूर्व, कुछ पश्चिम, कुछ उत्तर और कुछ दक्षिण की ओर गिर पड़ा॥६४½॥ जो जल-धारा दक्षिण की ओर गिरी उसको, हे मुने, शंकर ने अपनी जटा में धारण कर लिया। पश्चिम की ओर गिरा जल मेरे कमण्डलु में आया। उत्तर दिशा में जो गिरा उसको विष्णु ने ले लिया और जो पूर्व की ओर गिरा, उस मंगल-प्रद जल को ऋषि, देव, पितर और लोकपालों ने ले लिया। इस प्रकार विष्णु का अर्घ के रूप में दिया गया वह जल और अधिक पवित्र हो गया। जो जल दक्षिण दिशा में गया वह विष्णु चरण से निकला हुआ, लोक-माता, और ब्रह्म-संबंधी है। जिसको पवित्र जानकर स्वयं महेश्वर ने अपनी जटा में स्थापित किया, और जिसका पर्ववेला में उदय (उत्पत्ति) हुआ है। इसलिये ऐसे जल की महिमा का स्मरण करने से मनुष्य सब मनोरथों को प्राप्त करता है॥६५-६९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में तीर्थ-माहात्म्य-प्रकरण में गंगा का महेश्वर की जटा में आगमन निरूपण नामक
तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥७३॥

१क. ०ज्यं श्रेष्ठं श्रेष्ठमुमावहम्। २घ. ०रता ब्राह्म्यो वै लो०। ३घ. ०स्थया एव जाता शु०।

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

गङ्गाया द्वैरूप्यकथनम्

नारद उवाच

कमण्डलुस्थिता देवी महेश्वरजटागता। श्रुता देव यथा मर्त्यमागता तद्ब्रवीतु मे॥१॥

ब्रह्मोवाच

महेश्वरजटास्था या आपो देव्यो महामते। तासा च द्विविधो भेद आहर्तृद्वयकारणात्॥२॥
एकाशो [1]ब्राह्मणेनात्र व्रतदानसमाधिना। गौतमेन शिव पूज्य आहृतो लोकविश्रुत॥३॥
अपरस्तु महाप्राज्ञ क्षत्रियेण बलीयसा। आराध्य शकर देव तपोभिर्नियमैस्तथा॥४॥
भगीरथेन भूपेन आहृतोऽशोऽपरस्तथा। एव द्वैरूप्यमभवद्गङ्गाया[2] मुनिसत्तम॥५॥

नारद उवाच

महेश्वरजटास्था या हेतुना केन गौतम। आहर्ता क्षत्रियेणापि आहृता केन तद्वद॥६॥

ब्रह्मोवाच

यथाऽऽनीता पुरा वत्स ब्राह्मणेनेतरेण वा। तत्सर्वं विस्तरेणाह वदिष्ये प्रीतये तव॥७॥

अध्याय ७४

गगा के दो भेदो का कथन

नारद ने कहा—कमण्डलु मे रहने वाली देवी जिस प्रकार महेश्वर की जटा म आयी उसको तो मैंने सुना। अब जिस प्रकार वे मर्त्यलोक मे आयी, उसको सुनाइये॥१॥

ब्रह्मा बोले—महामते! महेश्वर की जटा मे रहनेवाली जल-देवी को पृथ्वी पर लाने वाले दो व्यक्ति थे इसलिये उसके दो भेद हो गये। एक अश को गौतम नामक ब्राह्मण व्रत दान और समाधि से शकर की पूजाकर पथ्वी पर लाया, यह लोक म प्रसिद्ध है। महाभाग! दूसरे अश को बलवान् भगीरथ नामक क्षत्रिय राजा तप और नियम से शकर को प्रसन्न करके ले आया। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार गगा के दो भेद हो गये॥२ ५॥

नारद ने कहा—महेश्वर की जटा मे रहने वाली गगा के एक अश को किस कारण गौतम और दूसरे अश को किस कारण क्षत्रिय (यहाँ) लाये, सो बतलाइये॥६॥

ब्रह्मा ने कहा—पूर्वकाल मे जिस कारण ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय गगा को पथ्वी पर लाये, इन सब बातो

१घ ०णेनेज्यो ब्र०। २क ०ङ्गाया गां गता यत। ना०।

यस्मिन्काले सुरेशस्य उमा पत्न्यभवत्प्रिया।, तस्मिन्नेवाभवद्गङ्गा प्रिया शम्भोर्महामते॥८॥
मम दोषापनोदाय चिन्तयान शिवस्तदा। उमया सहित श्रीमान्देवीं प्रेक्ष्य विशेषत ॥९॥
रसवृत्तौ स्थितो यस्मान्निर्मम रसमुत्तमम्।, रसिकत्वात्प्रियत्वाच्च स्त्रैणत्वात्पावनत्वत ॥१०॥
सर्वाभ्यो ह्यधिकप्रीतिर्गङ्गाऽभूद्द्विजसत्तम । तामव चिन्तयानोऽसौ सर्वदाऽऽस्ते महेश्वर ॥११॥
संवोद्भूता जटामार्गात्किस्मिंश्चित्कारणान्तरे। स तु सगोपयामास गङ्गा शम्भुजटागताम्॥१२॥
शिरसा च धृता ज्ञात्वा न शशाक उमा तदा। सोढुं ब्रह्मञ्जटाजूटे स्थिता दृष्ट्वा पुन पुन[१]॥१३॥
अमर्षेण भव गौरी प्रेरयस्वेत्यभाषत। नैवासौ प्रैरयच्छम्भू रसिको रसमुत्तमम्॥१४॥
जटास्वेव तदा देवीं गोपायन्त विमृश्य सा। विनायक जया स्कन्द रहो वचनमब्रवीत्॥१५॥
नैवाय त्रिदशेशानो गङ्गा त्यजति कामुक । साऽपि प्रिया शिवस्याद्य कथ त्यजति ता प्रियाम्॥१६॥
एव विमृश्य बहुशो गौरी चाऽऽह विनायकम् ॥१७॥

पार्वत्युवाच

न देवैर्नासुरैर्यक्षैर्न[२] सिद्धैर्भवताऽपि च। न राजभिरथान्यैर्वा न गङ्गा त्यजति प्रभु[३]॥१८॥
पुनस्तप्स्यामि वा गत्वा हिमवन्त नगोत्तमम्। अथवा ब्राह्मणं पुण्यैस्तपोभिर्हतकल्मषैं ॥१९॥

को मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिये विस्तारपूर्वक कह रहा हूँ॥७॥ महामते! जिस समय उमा शंकर की पत्नी हुई उसी समय गंगा भी शम्भु की प्रिय पत्नी हुई॥८॥ उस समय मेरे दोष को दूर करने के लिए पार्वती सहित शंकर ने चिन्तन करते हुए विशेष रूप से देवी को देखा। उस समय रसभाव में रहने के कारण उन्होंने उत्तम रस (शृंगार) का निर्माण किया। द्विजवर! रसिक प्रिय स्त्रीभक्त (माया मग्न) तथा लोकपावन होने के कारण शंकर की सबसे अधिक प्रीति गंगा में हो गई। महेश्वर दिन रात उसी गंगा के ध्यान में मग्न रहने लगे॥९ १०॥ वहाँ गंगा किसी अन्य कारण जटा भाग से प्रकट हुई। शंकर जी ने जटा में आयी हुई गंगा को छिपा लिया॥११ १२॥ ब्रह्मन्! उस समय उमा गंगा को सिर पर प्रतिष्ठित देखकर इस बात को सह न सकी। जटाजूट में स्थित गंगा को बार बार देखकर गौरी ने क्रोध से गंगा को हटा देने के लिये शंकर से कहा। किन्तु रसिक शिरोमणि शंकर ने उत्तम रस देनेवाली गंगा को नहीं हटाया। गौरी ने फिर भी गंगा को जटा में ही छिपाते देखकर विनायक स्कन्द और जया से एकान्त में कहा कि यह देवों के स्वामी कामी शिव गंगा को नहीं छोड़ रहे हैं वह इनकी प्रिया भी इनको नहीं छोड़ रही है तो ये किस प्रकार गंगा को छोड़ सकते हैं? ऐसा कहने के बाद सोच विचारकर गौरी ने गणेश से कहा॥१३ १७॥

पार्वती बोलीं—ये शंकर देवों असुरों यक्षों सिद्धों राजाओं तुम्हारे अथवा अन्य किसी के कहने से गंगा को नहीं छोड़ रहे हैं। इसलिये या तो मैं इस कार्य के लिये पुनः नगाधिराज हिमालय पर जाकर स्वयं तपस्या करूँगी

१क ०भ। आत्मना मरतके गङ्गा जानाथव उपैति वै। गङ्गां अगान्गुह्यैव कसिम०। २क ०न। उमा तन्त्रवन्द्. शान्नापास्मीति धे तदा। ज०। ३घ ०र्नै मर्त्यैर्भ०।

तैर्वा जटास्थिता गङ्गा प्रार्थिता भुवमाप्नुयात् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा मातृवाक्यं मातरं प्राह विघ्नराट्। भ्रात्रा स्कन्देन जयया संमन्त्र्येह च युज्यते॥२१॥
तत्कुर्मो मस्तकाद्गङ्गां यथा त्यजति मे पिता। एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्ननावृष्टिरजायत॥२२॥
द्विर्द्वादश समा मर्त्ये सर्वप्राणिभयावहा। ततो विनष्टमभवज्जगत्स्थावरजङ्गमम्॥२३॥
विना तु गौतमं पुण्यमाश्रमं सर्वकामदम्। स्रष्टुकामः पुरा पुत्र स्थावरं जङ्गमं तथा॥२४॥
कृतो यज्ञो मया पूर्वं स देवयजनो गिरिः। मन्नामा तन्न विख्यातस्ततो ब्रह्मगिरिः सदा॥२५॥
तमाश्रित्य नगश्रेष्ठं सर्वदाऽऽस्ते स गौतमः। तस्याऽऽश्रमे महापुण्ये श्रेष्ठे ब्रह्मगिरौ शुभे॥२६॥
आधयो व्याधयो वाऽपि दुर्भिक्ष वाऽप्यवर्षणम्। भयशोकौ च दारिद्र्यं न श्रूयन्ते कदाचन॥२७॥
तदाश्रमं विनाऽन्यत्र हव्य या कव्यमेव वा। नास्ति पुत्र तथा दाता होता यष्टा तथैव च॥२८॥
यदेव गौतमो विप्रो ददाति च जुहोति च। तदेवाप्ययनं स्वर्गे सुराणामपि नान्यतः॥२९॥
देवलोकेऽपि मर्त्ये वा श्रूयते गौतमो मुनि.[1]। होता दाता च भोक्ता च स एवेति जना विदुः॥३०॥
तच्छ्रुत्वा मुनय. [illegible]सर्वे नानाश्रमनिवासिन। गौतमाश्रममापृच्छन्नागच्छन्तस्तपोधना॥३१॥

अथवा तपस्या द्वारा निष्पाप एव पवित्र ब्राह्मण की प्रार्थना से प्रसन्न होकर गगा पृथ्वी पर जाय, ऐसा कोई प्रयत्न करना चाहिये॥१८-२०॥

ब्रह्मा ने कहा—माता की इन वातो को सुनकर विघ्नराज विनायक ने कहा कि भाई स्कन्द और जया से इसके लिए परामर्श करना ठीक होगा। इनके परामर्श से मैं वही प्रयत्न करूँगा जिससे कि मेरे पिता गगा को मस्तक से हटा सकें॥२१॥ ब्रह्मन्! इसी बीच समस्त प्राणियों को त्रस्त करने वाला बारह वर्ष का अकाल पड गया। सारा स्थावर जगमात्मक ससार विनष्टप्राय हो गया केवल सब मनोरथो को देने वाला गौतम का आश्रम ही शेष रहा। पुत्र! इसका कारण यह है कि अत्यन्त प्राचीन काल म जब स्थावर (अचल) जगम (चल) की सृष्टि की इच्छा मेरे मन मे उत्पन्न हुई तब उसी देवयजन गिरि पर मैंने यज्ञ किया था। तभी से सर्वदा के लिए वह पहाड मेरे नाम से प्रसिद्ध हो गया॥२२-२५॥ वह गौतम उसी श्रेष्ठ पर्वत पर अपना आश्रम बना कर सदा रहता है। उस पवित्र ब्रह्मगिरि पर बने अतिपवित्र शुभ आश्रम म रोग, मानसिक चिन्ता, दुर्भिक्ष, सूखा, भय, शोक और दरिद्रता आदि कभी भी नही सुने गये हैं॥२६-२७॥ पुत्र! उस आश्रम को छोड कर अन्यत्र कही भी हव्य कव्य (पितरो को दिया जाने वाला अन्न) दाता, होता, और यज्ञकर्ता नही थे॥२८॥ जब भी विप्र गौतम, पितरो को अन्न देते या हवन करते थे, तभी स्वर्ग मे देवताओ को भी तृप्ति मिलती थी। अन्य किसी प्रकार से नही॥२९॥ देव या मृत्युलोक मे गौतम ऋषि की ही प्रसिद्धि थी। सभी यही जानते थे कि हवन करने वाले, दान देने वाले और सुख भोगने वाले केवल गौतम ऋषी ही हैं। इस चर्चा को

१क. च पूज्य च। त०। २क ०नि। स एव दाता भो०।

तेषा मुनीना सर्वेषामागताना स गौतम । शिष्यवत्पुत्रवद्भक्त्या पितृवत्पोषकोऽभवत् ॥३२॥
यस्य(तेषा)यथेप्सित काम यथायोग्य यथाक्रमम्। यथानुरूप सर्वेषा शुश्रूषामकरोन्मुनि ॥३३॥
आज्ञया गौतमस्याऽऽसन्नोषध्यो लोकमातर । आराधिता पुनस्तेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ॥३४॥
जायन्ते च तदौषध्यो लूयन्ते च तदैव हि। सपत्स्यन्ते तदोप्यन्ते गौतमस्य तपोबलात् ॥३५॥
सर्वा समृद्धयस्तस्य ससिध्यन्ते मनोगता । प्रत्यह वक्ति विनयाद्गौतमस्त्वागतान्मुनीन् ॥३६॥
पुत्रवच्छिष्यवच्चैव प्रेष्यवत्करवाणि किम्। पितृवत्पोषयामास सवत्सरगणान्बहून् ॥३७॥
एव वसत्सु मुनिषु त्रैलोक्ये ख्यातिराश्रयात्। ततो विनायक प्राह मातर भ्रातर जयाम् ॥३८॥

विनायक उवाच

देवाना सदने मातर्गीयते गौतमो द्विज । यन्न साध्य सुरगणैर्गौतम कृतवानिति ॥३९॥
एव श्रुत मया देवि ब्राह्मणस्य तपोबलम्। स विप्रश्चालयेदेना मातर्गङ्गा जटागताम् ॥४०॥
तपसा वाऽन्यतो वाऽपि पूजयित्वा त्रिलोचनम्। स एव च्यावयेदेना जटास्था मे पितृप्रियाम् ॥४१॥
तत्र नीतिर्विधातव्या ता विप्रो याचयेद्यया। तत्प्रभावात्सरिच्छ्रेष्ठा शिरसोऽवतरत्यपि ॥४२॥

सुनकर अनेक आश्रमो के रहने वाले ऋषिमुनि गौतम के आश्रम को पूछते हुए आने लगे। ऋषि ने भी उन आगत सभी मुनियो की योग्यतानुसार किसी का शिष्य के समान किसी का भक्ति नम्र पुत्र के समान और किसी का पिता के समान आदर और पालन पोषण किया ॥३०-३२॥ जिसकी जैसी इच्छा थी उसी के अनुसार यथायोग्य मुनि ने सेवा-सत्कार किया। गौतम की इस अतिथि सेवा और तपस्या से ब्रह्मा विष्णु और महेश भी अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥३३-३४॥ उनकी आज्ञा से लोक का भरण पोषण करने वाली मातृस्वरूप औषधियाँ थोडी ही देर म बढ जाती थी और पुन काट भी ली जाती थी। ऋषि के तप प्रभाव से बोते ही बोते पक कर तैयार भी हो जाती थी ॥३५॥ इस प्रकार सबको उस अतिथि सेवी गौतम ऋषि का मनोवाञ्छित वैभव प्राप्त हो जाते थे। प्रतिदिन वे ऋषि आश्रम म आये हुए अतिथियो स विनयपूर्वक कहा करते थे कि पुत्र के समान शिष्य के समान मुझको आज्ञा दीजिये कि मैं आप लोगो की कौन सी सेवा करूँ ॥३६-३७॥ इस प्रकार अनेक वर्षों तक पिता के समान ऋषि ने आश्रमो से आये अतिथियो का पालन किया और इस प्रकार वहाँ मुनियो के निवास करने से गौतम ऋषि की प्रसिद्धि चारो ओर फैल गई ॥३८॥ गौतम की इस कीर्ति को सुनकर गणेश ने अपनी माता भाई और जया से कहा।

गणेश बोले—माता! स्वर्ग म गौतम का बडा गुण-गान हो रहा है। सभी कहते हैं कि इन्होने वह कार्य कर दिखाया जो देवताओ से भी नहीं हो सकता था। इस प्रकार मैंने ब्राह्मण गौतम के तपोबल को सुना है। वह विप्र निश्चय ही जटा म छिपी रहने वाली गगा को वहाँ से हटा देगा। तपस्या या अन्य किसी प्रकार से वह त्रिनेत्र शकर को प्रसन्न कर अवश्य ही पिता की प्यारी गगा को जटा से च्युत कर देगा। इस विषय म कोई ऐसा उपाय होना चाहिए कि गौतम गगा की याचना करे। उसके प्रभाव से गगा (शिव के) सिर से उतर सकती है ॥३९-४२॥

१घ पुराान। २घ सूयन्ते। ३क हि। त कलान्ते।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा मातरं भ्रात्रा जयया सह विघ्नराट्। जगाम गौतमो यत्र ब्रह्मसूत्रधर' कृश ॥४३॥
वसन्कतिपयाह'सु गौतमाश्रममण्डले। उवाच ब्राह्मणान्सर्वांस्तत्र तत्र च विघ्नराट् ॥४४॥
गच्छाम स्वमधिष्ठानमाश्रमाणि शुचीनि च। पुष्टा स्म गौतमान्नेन पृच्छामो गौतमं मुनिम् ॥४५॥
इति समन्त्र्य पृच्छन्ति मुनयो मुनिसत्तमा। स तान्निवारयामास स्नेहबुद्ध्या मुनीन्पृथक् ॥४६॥

गौतम उवाच

कृताञ्जलि सविनयमासध्वमिह चैव हि। युष्मच्चरणशुश्रूषां करोमि मुनिपुंगवा ॥४७॥
शुश्रूषौ पुत्रवन्नित्य मयि तिष्ठति नोचितम्। भवता भूमिदेवानामाश्रमान्तरसेवनम् ॥४८॥
इदमेवाऽऽश्रम पुण्य सर्वेषामिति मे मति। अलमन्येन मुनय आश्रमेण गतेन वा ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा 'मुनेर्वाक्य विघ्नकृत्यमनुस्मरन्। उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा ब्राह्मणान्स गणाधिप ॥५०॥

गणाधिप उवाच

अन्नक्रीता वय किं नो' निवारयत गौतम। साम्ना' नैव वय शक्ता गन्तु ह्य स्व निवेशनम् ॥५१॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार माता से कहकर विघ्नराज विनायक भाई स्कन्द और जया के साथ उस स्थान पर पहुँचे जहाँ यज्ञोपवीतधारी दुबले-पतले गौतम थे। कुछ दिनों तक गौतम के आश्रम मे रहने के बाद विघ्नराज वहाँ के सब ब्राह्मणो से कहा—हम लोग गौतम के अन्न को खाकर स्वस्थ और पुष्ट हो गये हैं अब अपने-अपने घरो पवित्र आश्रमो को चलना चाहिये इसके लिये मुनि गौतम से पूछ लेना चाहिये। इस प्रकार परामर्श कर उन श्रेष्ठ मुनियो ने गौतम से पूछा। उनके इस प्रकार के प्रस्ताव को सुनकर मुनि ने बड़े स्नेहपूर्वक उन मुनियो को जाने से रोका ॥४६॥

गौतम ने कहा—मुनिपुंगव! मैं हाथ जोड़कर विनयपूर्वक आप लोगो से प्रार्थना करता हूँ कि आप लोग मेरे आश्रम मे रहें। आप लोगो की और अधिक चरण सेवा करना चाहता हूँ। क्योंकि अभी इस क्षुद्र सेवा से मुझे संतोष नही है। पुत्र के समान सेवा करने की इच्छा रखने वाले गौतम के रहते आप भूदेवो का दूसरे आश्रम मे जाना ठीक नहीं है। मेरा विचार है कि यह पवित्र आश्रम ही आप लोगो के रहने के लिये सर्वथा उचित है। मुनिवृन्द! आप लोगो का अन्य आश्रमो मे जाना मेरी दृष्टि से उचित नहीं है ॥४७-४९॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनि की बातो को सुनकर बाधा डालने वाले कार्यों का स्मरण करते हुए गणपति ने हाथ जोड़कर ब्राह्मणो से कहा ॥५०॥

गणपति बोले—क्या हम लोग अन्न से खरीद लिये गये हैं कि गौतम हमको घर जाने से रोक रहे हैं?

१घ ०क्य दिव्यकृ०। २क तु। ३क शप्तु। ४क वा।

नायमर्हति दण्डं वा उपकारी द्विजोत्तमः। तस्माद्बुद्ध्या व्यवस्यामि तत्सर्वैरनुमन्यताम् ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

ततः सर्वे द्विजश्रेष्ठाः क्रियतामित्यनुब्रुवन्। एतस्य तूपकाराय लोकानां हितकाम्यया ॥५३॥
ब्राह्मणानां च सर्वेषां श्रेयो यत्स्यात्तथा कुरु। ब्राह्मणानां वचः श्रुत्वा मेने वाक्यं गणाधिपः ॥५४॥

विनायक उवाच

क्रियते गुणरूपं यद्गौतमस्तु विशेषतः ॥५५॥

ब्रह्मोवाच

अनुमान्य द्विजान्सर्वान्पुनः पुनरुदारधीः। स्वयं च ब्राह्मणो भूत्वा प्रणम्य ब्राह्मणान्पुनः॥
मातुर्मते स्थितो विद्वाञ्जयां प्राह गणेश्वरः ॥५६॥

विनायक उवाच

यथा नान्यो विजानीते तथा कुरु शुभानने। गोरूपधारिणी गच्छ गौतमो यत्र तिष्ठति ॥५७॥
शालीन्खाद विनाशाय विकारं कुरु भामिनि[1]। कृते प्रहारे[2] हुंकारे प्रेक्षिते वापि किंचन॥
पत दीनं स्वनं कृत्वा न म्रियस्व न जीव च ॥५८॥

शान्त (सीधे) उपाय से हम अपने-अपने घर को जाने में सर्वथा समर्थ नहीं हैं, परन्तु इस उपकारी ब्राह्मण को कोई दण्ड देना भी उचित नहीं है। इसलिये मैं चतुराई से एक नई युक्ति कर रहा हूँ। आप सभी इसका समर्थन करें ॥५१-५२॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके उपरान्त उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने कहा—'ठीक है, ऐसा ही कीजिये। लोक-हित की दृष्टि से इस ऋषि के उपकार एवं हम सभी ब्राह्मणों के कल्याण की दृष्टि से जो कुछ आपको श्रेयस्कर जान पड़े वैसा ही करें।' गणनायक ने ब्राह्मणों की स्वीकृति सुनकर उनके वचनों की सराहना की। पुनः कहा कि जो गौतम के गुण और प्रतिष्ठा के अनुरूप हो विशेष रूप से उसी कार्य को करना चाहिए ॥५३-५५॥

ब्रह्मा बोले—बार-बार उन सभी ब्राह्मणों को सान्त्वना देकर और उनका समर्थन प्राप्त कर उदार बुद्धि गणेश जी ने स्वयं ब्राह्मण का रूप धारण किया और पुनः ब्राह्मणों को प्रणाम किया। अपनी माता की भी स्वीकृति लेकर विद्वान् गणेश ने जया से कहा ॥५६॥

विनायक बोले—सुमुखी! जिसको दूसरे न जान सकें इस रूप से कार्य करो। तुम गौ का रूप धारण कर जहाँ गौतम हैं वहाँ जाओ। भामिनि! वहाँ जाकर धान खाने लगो अथवा उसको पैरों से कुचलकर नष्ट कर दो। इसको देख कर यदि गौतम मारें या हुंकार के साथ तुम्हारी ओर देखें, तो तुरन्त वहीं आर्तनाद कर गिर जाओ। न तो मरना न तो जीना ही, अचेत हो पड़ जाना ॥५७-५८॥

१क. ०नि। दत्ते प्र०। २क ०हारवचने प्रेक्षिते वापि।

ब्रह्मोवाच

तथा चकार विजया विघ्नेश्वरमते स्थिता। यत्राऽऽसीद्गौतमो विप्रो जया गोरूपधारिणी॥५९॥
जगाम शालीन्खादन्ती तां ददर्श स गौतमः। गां दृष्ट्वा विकृतां विप्रस्तां तृणेन न्यवारयत॥६०॥
निवार्यमाणा सा तेन स्वनं कृत्वा पपात गौः। तस्यां तु पतितायां च हाहाकारो महानभूत्॥६१॥
स्वनं श्रुत्वा च दृष्ट्वा च गौतमस्य विचेष्टितम्। व्यथिता ब्राह्मणाः प्राहुर्विघ्नराजपुरस्कृताः॥६२॥

ब्राह्मणा ऊचुः

[1]इतो गच्छामहे सर्वे न स्थातव्यं तवाऽऽश्रमे। पुत्रवत्पोषिताः सर्वे पृष्टोऽसि मुनिपुंगव॥६३॥

ब्रह्मोवाच

[1]इति श्रुत्वा मुनिर्वाक्यं विप्राणां गच्छतां तदा। वज्राहत इवाऽऽसीत्स विप्राणां पुरतोऽपतत्॥६४॥
तमूचुर्ब्राह्मणाः सर्वे पश्यमां पतितां भुवि। रुद्राणां मातरं देवीं जगतां पावनीं प्रियाम्॥६५॥
तीर्थदेवस्वरूपिण्यामस्यां गवि विधेर्बलात्। पतितायां मुनिश्रेष्ठ गन्तव्यमवशिष्यते॥६६॥
चीर्णं व्रतं क्षयं याति यथा वासस्त्वदाश्रमे। वयं नान्यधना ब्रह्मन्केवलं तु तपोधनाः॥६७॥

ब्रह्मा बोले—विघ्नराज के मत को मान कर जया ने वैसा ही किया। वह जया गो रूप धारणकर वहाँ गई जहाँ विप्र गौतम विराजमान थे। वह जाकर चावल खाने लगी। गौतम ने चावल खाती हुई उस गाय को देखा और उसे दुर्बल जानकर एक तिनके से उसको हाँकने लगे। उसको गौतम हाँक रहे थे कि वह निर्बल गौ करुणाजनक क्रन्दन कर गिर पड़ी। उसके गिर जाने पर वहाँ महान् हाहाकार हुआ। गौ की आर्तध्वनि को सुनकर और गौतम की चेष्टाओं को देखकर वे ब्राह्मण बहुत दुःखी हुये और विघ्नराज के साथ जाकर गौतम से बोले॥५९-६२॥

ब्राह्मणों ने कहा—हम सभी यहाँ से जा रहे हैं तुम्हारे आश्रम में रहना अब उचित नहीं। मुनिवर्य! तुमने पुत्र के समान हम लोगों का पालन किया है इसलिये हम तुमसे विदा ले रहे हैं॥६३॥

ब्रह्मा बोले—मुनि गौतम उस समय ब्राह्मणों की बात सुनकर और आश्रम से उनको जाते देखकर वज्राहत-से हो गये और ब्राह्मणों के सामने पृथ्वी पर गिर पड़े। ब्राह्मणों ने कहा—संसार को पवित्र करने वाली प्रिय इस रुद्रों की माता को जो धरती पर पड़ी हुई है देखो। काल की प्रेरणा से तीर्थ-देव-रूप गौ के इस प्रकार मूर्च्छित हो गिरने पर मुनिश्रेष्ठ! हम लोगों का यहाँ से चला जाना ही एकमात्र उचित उपाय है। अब तुम्हारे आश्रम में पूर्व की भाँति निवास करने से हमारा यह चिरसञ्चित व्रत (पुण्य-तप) नष्ट हो जायगा। ब्रह्मन्! हम लोगों के पास अन्य कोई धन नहीं केवल तप ही धन है॥६४-६७॥

---

[1] घ. चीर्णव्रतं पुनीतं स्वामेष्याम पुनरेव हि। च०।

ब्रह्मोवाच

विप्राणा पुरत स्यित्वा विनीत प्राह गौतम ॥६८॥

गौतम उवाच

भवन्त एव शरण पूत मा कर्तुमर्हथ ॥६९॥

ब्रह्मोवाच

तत प्रोवाच भगवान्विघ्नराड्ब्राह्मणैर्वृत ॥७०॥

विघ्नराज उवाच

नैवेय म्रियते तत्र नैव जीवति तत्र किम्। वदामोऽस्मिन्सुसदिग्धे निष्कृति गतिमेव वा ॥७१॥

गौतम उवाच

कथमुत्थास्यतीय गौरथ चास्मिश्च निष्कृतिम्। वक्तुमर्हथ तत्सर्वं करिष्येऽहमसशयम् ॥७२॥

ब्राह्मणा ऊचु

सर्वेषा च मतेनाय वदिष्यति च बुद्धिमान्। एतद्वाक्यमथास्माक प्रमाण तव गौतम[1] ॥७३॥

ब्रह्मोवाच

ब्राह्मणै प्रेर्यमाणोऽसौ गौतमेन बलीयसा। विघ्नकृद्ब्रह्मवपुषा प्राह सर्वानिद वच ॥७४॥

ब्रह्मा बोले—ब्राह्मणो की इन बातो को सुनकर गौतम ने विप्रा के सामने विनीत भाव स खडे होकर कहा—मेरे एक मात्र सहायक आप ही लोग हैं आप लोग मुझ अवश्य पवित्र करने म समर्थ हैं ॥६८ ६९॥

ब्रह्मा न कहा—गौतम की करुण बातो को सुनकर ब्राह्मणा से घिरे हुए विघ्नराज ने कहा—'यह गौ न तो मरी ही है और न तो जीवित ही जान पडती है। तो इससे क्या प्रयोजन ? मैं इस अत्यन्त सन्देहजनक अवसर पर इसके बचाव और उद्धार का उपाय बताता हूँ ॥७०-७१॥

गौतम न कहा—यह गौ किस प्रकार उठ खडी होगी और मेरे इस पाप का प्रायश्चित्त कैसे होगा इसको आप लाग बतायें। मैं निश्चय ही उन सब बाता का पालन करूँगा ॥७२॥

ब्राह्मणों ने कहा—गौतम ! सबकी ओर स यह चतुर ब्राह्मण कहेगा। इसके कहे वाक्य हमारे और आपके लिए प्रमाण स्वरूप होगे ॥७३॥

ब्रह्मा बोले—ब्राह्मणा और स्वय तपस्वी गौतम की प्ररणा स ब्राह्मण वेशधारी उस विघ्नराज ने सबको सुनाकर यह कहा ॥७४॥

१क ०ध्नाद्ब्राह्म०। २घ ०ष्यत्यतिबु०। ३घ ०म। तछ्रुत्वा हर्षमपन्नो गौ०।

विघ्नराज उवाच

सर्वेषां च मतेनाहं वदिष्यामि यथार्थवत्। अनुमन्यन्तु मुनयो मद्वाक्यं गौतमोऽपि च ॥७५॥
महेश्वरजटाजूटे ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। कमण्डलुस्थितं वारि तिष्ठतीति हि शुश्रुम ॥७६॥
तदानयस्व तरसा तपसा नियमेन च। तेनाभिषिञ्च गामेतां भगवन्भुवमाश्रिताम्॥
ततो वत्स्यामहे सर्वे पूर्ववत्तव वेश्मनि ॥७७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तवति विप्रेन्द्रे ब्राह्मणानां च संसदि। तत्रापतत्पुष्पवृष्टिर्जयशब्दो व्यवर्धत॥
ततः कृताञ्जलिर्नम्रो गौतमो वाक्यमब्रवीत् ॥७८॥

गौतम उवाच

तपसाऽग्निप्रसादेन देवब्रह्मप्रसादतः। भवतां च प्रसादेन मत्संकल्पोऽनुसिध्यताम् ॥७९॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति तं विप्रा आपृच्छन्मुनिपुंगवम्। स्वानि स्थानानि ते जग्मुः समृद्धान्यन्नवारिभिः ॥८०॥
यातेषु तेषु विप्रेषु भ्रात्रा सह गणेश्वरः। जयया सह सुप्रीतः कृतकृत्यो न्यवर्तत ॥८१॥
गतेषु ब्रह्मवृन्देषु गणेशे च गते तथा। गौतमोऽपि मुनिश्रेष्ठस्तपसा हतकल्मषः ॥८२॥

विघ्नराज बोले—मैं सबकी प्रेरणा और राय से यथार्थ बात कह रहा हूँ। आप यहाँ के उपस्थित सभी मुनि और गौतम मेरी बात का समर्थन करें। भगवान् शंकर के जटाजूट में अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के कमण्डलु का पवित्र जल स्थित है ऐसा हम सभी सुनते हैं। उस जल को योग-साधना तपस्या या नियमानुसार अनुष्ठान से लाओ। भगवन् ! उसी को इस धरती पर पड़ी गौ पर छिड़को। ऐसा करने से ही हम सभी पहले की भाँति तुम्हारे आश्रम में रह सकेंगे ॥७५-७७॥

ब्रह्मा बोले—ब्राह्मणों की उस सभा में विप्र-श्रेष्ठ के इतना कहने पर वहाँ आकाश से फूलों की वर्षा हुई और तारों की जय-ध्वनि हुई। तदनन्तर गौतम ने अञ्जलि बाँध कर बड़ी नम्रता से यह कहा—॥७८॥

गौतम बोले—तपस्या अग्निदेव की कृपा देवों और ब्राह्मणों के अनुग्रह और आप लोगों की दया से मेरा यह संकल्प सिद्ध हो ॥७९॥

ब्रह्मा बोले—तुम्हारे संकल्प पूर्ण हों ऐसा कहकर ब्राह्मणों ने उस मुनिवर गौतम से विदा लेकर अन्न और जल से समृद्ध अपने-अपने निवास-स्थान को चले गये। उन ब्राह्मणों के चले जाने पर जया और भाई (स्कन्द) के साथ गणेश प्रसन्नता में कृतार्थ होकर लौट गये। उन ब्राह्मणों और गणेश जी के चले जाने पर मुनिश्रेष्ठ गौतम भी तपस्या से अपने को निष्पाप समझ कर इस घटना पर विचार करने लगे। वे सोचने लगे कि मेरे द्वारा यह क्या हो गया। इस प्रकार बार-बार ध्यान करने पर अन्त में अपने ज्ञान से इन सब बातों को जान गये। देव-कार्य

ध्यायस्तदर्थं स मुनि किमिद मम सस्थितम्। इत्येव बहुशो ध्यायञ्ज्ञानेन ज्ञातवान्द्विज ॥८३॥
निश्चित्य देवकार्यार्थमात्मन किल्विषा गतिम्। लोकानामुपकार च शभो प्रीणनमेव च ॥८४॥
उमाया प्रीणन चापि गङ्गानयनमेव च। सर्वं श्रेयस्कर मन्ये मयि नैव च किल्विषम् ॥८५॥
इत्येव मनसा ध्यायन्सुप्रीतोऽभूद्द्विजोत्तम । आराध्य जगतामीश त्रिनेत्र वृषभध्वजम् ॥८६॥
आनयिष्ये सरिच्छ्रेष्ठा प्रीताऽस्तु गिरिजा मम। सपत्नी जगदम्बाया महेश्वरजटास्थिता ॥८७॥

एव हि सकल्प्य मुनिप्रवीर, स गौतमो ब्रह्मगिरेर्जगाम।
कैलासमाधिष्ठितमुग्रधन्वना, सुरार्चित प्रियया ब्रह्मवृन्दै ॥८८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भ्वृषिसवादे तीर्थमाहात्म्ये विनायकगौतमव्यापारनिरूपण नाम चतु सप्ततितमोऽध्याय ॥७४॥
गौतमीमाहात्म्ये पञ्चमोऽध्याय ।

अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

गौतमकृतमुमामहेश्वरस्तवनम्

नारद उवाच

कैलासशिखर गत्वा गौतमो भगवानृपि । कि चकार तपो वाऽपि का चक्रे स्तुतिमुत्तमाम् ॥१॥

की सिद्धि अपने पापो का उद्धार ससार का कल्याण उमा और शभु की प्रसन्नता और गगा का पृथ्वी पर आगमन ये सभी कल्याणकर है। इसमे मुझे कोई पाप नही लगेगा। इस प्रकार मन मे ध्यान करते हुए वह द्विजवर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने प्रतिज्ञा की कि मैं जगत् के स्वामी वृषभध्वज त्रिनेत्र की आराधना कर पवित्र नदी गगा को अवश्य ले आऊगा। गिरिजा पार्वती और जगन्माता की सौत महेश्वर की जटा मे रहने वाली गगा मुझ पर प्रसन्न हो। इस प्रकार वह मुनिवर गौतम अपने मन मे दृढ सकल्प कर ब्राह्मण वृन्द के आदेशानुसार ब्रह्मगिरि को छोडकर देवो से पूजित कैलाश पर्वत पर गये जहाँ उग्र धनुष धारण करने वाले शकर, प्रिया पार्वती के साथ रहते थे ॥८०-८८॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे गणेश और गौतम के कार्य निरूपण नामक चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७४॥

अध्याय ७५

गौतम द्वारा उमा और महेश्वर की स्तुति

नारद ने कहा—भगवान् ऋषि गौतम ने कैलाश शिखर पर जाकर कौन-सी तपस्या की या कौन सी उत्तम स्तुति की ॥१॥

ब्रह्मोवाच

गिरिं गत्वा ततो[1] वत्स वाचं संयम्य गौतम । आस्तीर्य स कुशान्प्राज्ञः कैलासे पर्वतोत्तमे ॥२॥
उपविश्य शुचिर्भूत्वा स्तोत्रं चेदं ततो जगौ। अपतत्पुष्पवृष्टिश्च स्तूयमाने महेश्वरे॥३॥

गौतम उवाच

भोगार्थिना भोगमभीप्सितं च, दातुं महान्त्यष्टवपूंषि धत्ते[2] ।
सोमो जनानां गुणवन्ति नित्यं, देवं महादेवमिति स्तुवन्ति ॥४॥
कर्तुं स्वकीयैर्विषयैः सुखानि, भर्तुं समस्तं सचराचरं च ।
संपत्तये ह्यस्य[3] विवृद्धये च, महीमयं रूपमितीश्वरस्य ॥५॥
सृष्टेः स्थितेः संहरणाय भूमेराधारमाधातुमपां स्वरूपम् ।
भेजे शिवः शान्ततनुर्जनानां, सुखाय धर्माय जगत्प्रतिष्ठितम्[4] ॥६॥
[5]कालव्यवस्थाममृतस्रवं च, जीवस्थितिं सृष्टिमथो विनाशनम् ।
मुदं प्रजानां सुखमुन्नतिं च, चक्रेऽर्कचन्द्राग्निमयं शरीरम् ॥७॥
वृद्धिं गतिं शक्तिमथाक्षराणि, जीवव्यवस्थां मुदमप्यनेकाम् ।
स्रष्टुं कृतं वायुरितीशरूपं, त्वं वेत्सि नूनं भगवन्भवन्तम् ॥८॥

ब्रह्मा बोले—वत्स ! तदनन्तर विवेकी गौतम पर्वत पर जाकर अपनी वाणी को वश में कर कुशाओं को बिछा कर पर्वतों में श्रेष्ठ कैलाश पर बैठ गये। पुनः पवित्र होने के बाद जब वे यह स्तोत्रगान करने लगे तो फूलों की वर्षा होने लगी॥२-३॥

गौतम ने कहा—जो भगवान् सोम (शंकर) भोग चाहने वाले मनुष्यों की भोगेच्छा की पूर्ति और मनचाहे पदार्थों को देने के लिये आठ महान शरीरों को धारण करते हैं और जिस नित्य देव को विवेकी जन महादेव कहकर स्तुति किया करते हैं॥४॥ जिस ईश्वर ने समस्त चर-अचर जगत को अपनी महिमा से उत्पन्न पदार्थों से सुख देने के लिए और इसका भरण पोषण करने के लिये इसको ऐश्वर्य युक्त बनाने तथा इसकी समृद्धि के लिये महीमय (पृथ्वी) रूप धारण किया है॥५॥ जिस शान्त वपु शिव ने सृजन पालन और संहार के लिये भूमि का आधार रूप बनने के लिए (अर्थात् पृथ्वी को सहारा देने के लिये) जन समूह को सुख देने के लिए और धर्म की रक्षा के लिये लोक प्रसिद्ध जल के रूप को धारण किया है॥६॥ जिसने अपने सूर्य चन्द्र और अग्निमय शरीर से समय की व्यवस्था (सूर्यरूप से) सुधा की वृष्टि (चन्द्ररूप से) जीव की स्थिति (पालन) सृष्टि और विनाश (अग्निरूप से) किया है एवं प्रजा को सुख आनन्द और उन्नति दी है॥७॥ भगवन् ! ऐसे आपने वृद्धि गति शक्ति और अक्षर (नित्य पदार्थ) जीव व्यवस्था तथा अनेक प्रकार के आनन्द की सृष्टि करने के लिये ही वायु इस ईशरूप (शक्तिशाली स्वरूप) को धारण किया है। आप स्वयं इन सब रहस्यों को निश्चय ही जानते हैं॥८॥

१घ ०त्वा यतो भूत्वा वा०। २क धत्से। ३घ तस्य। ४घ ०तिष्ठम। ५घ ०लप्रतिष्ठाम०।

भेदैर्विना नैव कृतिर्न धर्मो, नाऽऽत्मीयमन्यन्न दिशोऽन्तरिक्षम् ।
द्यावापृथिव्यौ न च भुक्तिमुक्ती, तस्मादिदं व्योमवपुस्तवेश ॥९॥
धर्मं व्यवस्थापयितु व्यवस्य, ऋक्सामशास्त्राणि यजुश्च शाखा ।
लोके च गाथा स्मृतय पुराणमित्यादिशब्दात्मकतामुपैति ॥१०॥
यष्टा क्रतुर्यान्यपि साधनानि, ऋत्विक्प्रदेश(य)फलदेशकाला ।
त्वमेव शंभो परमार्थतत्त्व, वदन्ति यज्ञाङ्गमय वपुस्ते ॥११॥
कर्ता प्रदाता प्रतिभू प्रदान, सर्वज्ञसाक्षी पुरुष परश्च ।
प्रत्यात्मभूत परमार्थरूपस्त्वमेव सर्वं किमु वाग्विलासं ॥१२॥
न वेदशास्त्रैर्गुरुभि प्रदिष्टो,[1] न नासि[2] बुद्ध्यादिभिरप्रधृष्य ।
अजोऽप्रमेय [3]शिवशब्दवाच्यस्त्वमस्ति (मेव) सत्य भगवन्नमस्ते ॥१३॥
आत्मैकता स्वप्रकृति कदाचिदेक्षच्छिव सपदिय [4]ममेति ।
पृथक्तदैवाभवदप्रतर्क्याचिन्त्यप्रभावो बहुविश्वमूर्ति ॥१४॥
भावेऽभिवृद्धा[5] च भवे भवे च, स्वकारण कारणमास्थिता च ।
नित्या शिवा सर्वसुलक्षणा या, विलक्षणा विश्वकरस्य शक्ति ॥१५॥

ईश ! भेदों के बिना न तो कृति न धर्म न आत्मीयता न अन्य पदार्थ न दिशाय न अन्तरिक्ष न आकाश न पृथिवी और न मुक्ति या मुक्ति की ही कल्पना सम्भव हो सकती है। अत हे नाथ ! इसलिए यह जो है वह तुम्हारा ही है॥९॥ आप इस लोक में धर्म की व्यवस्था (स्थापना) करने के लिये ऋक् यजु साम आदि वेद और शाखाय तथा शास्त्र गाथाय स्मृतियां और पुराण आदि शब्दात्मक रूप धारण करते हैं॥१०॥ यज्ञकर्ता यज्ञ सभी साधन ऋत्विक प्रदेश फल देश और काल एव परमार्थतत्त्व आदि सब कुछ तुम्ही हो। तुम्हारा शरीर यज्ञाङ्गमय है॥११॥ कर्ता प्रदाता प्रतिभू (जामिन) प्रदान सर्वज्ञ साक्षी सर्वोपरि पुरुष सब आत्मा में वर्तमान रहने वाले और परमार्थ रूप आदि सब कुछ तुम्हा हो। इस विषय में अधिक कहने में क्या लाभ॥१२॥ तुम वेद शास्त्र और गुरुओं में भी अनय हो अर्थात् वेद शास्त्र और ऋषि मुनियों ने भी तुम्हें नहीं जान पाया। बुद्धि आदि की पहुंच में तुम परे हो। तुम अज (जन्म रहित) अप्रमेय (बुद्धि से न जानने योग्य) और शिव शब्द के वाच्य (अर्थ) हो। भगवन ! तुम्हा एकमात्र सत्य हो। इसलिये सत्यरूप भगवान् को मेरा नमस्कार है॥१३॥ जब किसी समय अपने में लीन अपनी प्रकृति को यह मेरा साथ योग्य हो इस रूप में देखने लगते हो उसी समय यह प्रकृति तुमसे अलग हो जाता है और अप्रतर्क्य (जिसके विषय में तर्क न किया जा सके) अचिन्त्य प्रभाव (जिसका प्रभाव न जाना जा सके) तुम विश्व के अनेक रूपों में मूर्तिमान् हो जाते हो॥१४॥ संसार के रचयिता शङ्कर की नित्य सब सुलक्षणा से युक्त शिवा विलक्षण शक्ति है जो अपना स्वय कारण होते हुए भी संसार का कारण है

१ख ०प्टो नाना गि। २ग नास्ति यु०। ३ख ०नाति वा०। ४क ०ति। वृथा ग०। ५ख ०वृ,ध्या भिमते मतस्य या कारण कारणता मवानी। नि०।

उत्पादन सस्थितिरस्वबृद्धिलया सता यत्र सनातनास्ते ।
एकैव[1] मूर्तिर्न समस्ति किचिदसाध्यमस्या दयिता हरस्य ॥१६॥
यदर्थमन्नानि धनानि जीवा, यच्छन्ति कुर्वन्ति तपासि धर्मान् ।
साऽपीयमम्बा जगतो जनित्री, प्रिया तु सोमस्य[2] महासुकीर्ति ॥१७॥
यदीक्षित काङ्क्षति वासवोऽपि, यन्नामतो मङ्गलमाप्नुयाच्च ।
या व्याप्य विश्व विमलीकरोति[3], सोमा सदा सोमसमानरूपा ॥१८॥
ब्रह्मादिजीवस्य[4] चराचरस्य, [5]बुद्ध्यक्षिचैतन्यमन सुखानि ।
यस्या प्रसादात्फलवन्ति नित्य, वागीश्वरी लोकगुरो सुरम्या ॥१९॥
चतुर्मुखस्यापि मनो मलीन, किमन्यजन्तोरिति चिन्त्य माता ।
गङ्गाऽवतार विविधैरुपायै, सर्व जगत्पावयितु चकार ॥२०॥
श्रुती समालक्ष्य हरप्रभुत्व, विश्वस्य लोक सकलै प्रमाणै ।
कृत्वा च धर्मान्विभुजे च भोगानविभूतिरेषा तु सदाशिवस्य ॥२१॥
कार्यक्रियाकारकसाधनाना, वेदोदितानामथ लौकिकानाम् ।
यत्साध्यमुत्कृष्टतम प्रिय च, प्रोक्ता च सा सिद्धिरनादिकर्तु ॥२२॥

और जो मव (जन्म) मव म अपने भाव मे अभिवृद्ध है ॥१५॥ शकर की सनातन शक्ति से ही विश्व के पदार्थों की उत्पत्ति सस्थिति पालन होता है और पुन उसी म लय भी हो जाता है इस प्रकार शकर की एक ही शक्ति के लिये इस ससार म कुछ भी असाध्य नही है। जगत को पैदा करने वाली जिस जननी को ससार के जीव अन्न और धन का उपहार देते हैं और जिसकी प्रसन्नता के लिये तपस्या करते हैं वह अत्यन्त शोभन कीर्ति वाली जगज्जननी शिव की प्रिया है ॥१६ १७॥ इन्द्र भी जिस शिव प्रिया शिवा की कृपा को चाहते ह जिसके नाम लेने से ही कल्याण की प्राप्ति होती है जो इस विश्व मे व्यापक होकर इसको निमल बना देती है यानी तमोगुण का नाश कर देती है वह सोमा (शिवा) सवदा सोमस्वरूप (शिवस्वरूप) ही है ॥१८॥ ब्रह्मा म लेकर चराचर जीव की बुद्धि नेत्र चैतन्य (ज्ञान) मन और सुख जिस लोक-गुरु की रमणीय वागीश्वरी की प्रसन्नता और कृपा से फलयुक्त होते है उस माता ने अन्य जन्तुओ की कौन कहे ब्रह्मा के भी मन को मलिन देखकर विविध उपायो से ससार का पवित्र करने के लिये गगा को पृथ्वी पर अवतरित किया ॥१९ २०॥ सम्पूण ससार वेदो मे वर्णित शिव महिमा को समझ कर समस्त प्रमाणो के आधार पर विविध विधि निषधो की कल्पना कर जो विविध भोगो का भोग कर रहा है यह सब सदाशिव शकर की ही विभूति है (उनका ही प्रभाव है) ॥२१॥ वेदोक्त अथवा लौकिक काय क्रिया कारक और साधना का जो परम उत्कृष्ट प्रिय साध्य है वह अनादि ससार स्रष्टा शकर की सिद्धि ही है अर्थात वैदिक लौकिक कार्य-कलाप और प्रयत्ना का एकमात्र उद्देश्य शकर को प्रसन्न

१घ एवैव भूमिन समा स्ति किञ्चिन्न ध्यानगम्या द०। २क ०स्य सहस्र की०। ३घ ०ति सा मा स०। ४क ०दिवेव०। ५क बुद्ध्यादिचै०।

ध्यात्वा वर ब्रह्म पर प्रधान, यत्सारभूत यदुपासितव्यम्
यत्प्राप्य मुक्ता न पुनर्भवन्ति, सद्योगिनो मुक्तिरुमापति स ॥२३॥
यथा यथा शभुरमेयमायारूपाणि धत्ते जगतो हिताय
तद्योगयोग्यानि तथैव धत्से, पतिव्रतात्व त्वयि मातरेवम् ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

इत्येव स्तुवतस्तस्य पुरस्तादवृषभध्वज । उमया सहित *श्रीमान्गणेशादिगणैर्वृत* ॥२५॥
साक्षादागत्य त शभु प्रसन्नो वाक्यमब्रवीत ॥२६॥

शिव उवाच

कि ते गौतम दास्यामि भक्तिस्तोत्रव्रतैं शुभैं । परितुष्टोऽस्मि याचस्व देवानामपि दुष्करम ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा जगन्मूर्तेर्वाक्य वाक्यविशारद । हर्षबाष्पपरीताङ्गो गौतम पर्यचिन्तयत ॥२८॥
अहो देवमहो धर्मो ह्यहो वै विप्रपूजनम्। अहो लोकगतिश्चित्रा अहो धातर्नमोऽस्तु त ॥२९॥

गौतम उवाच

जटास्थितां शुभां गङ्गा देहि मे त्रिदशार्चित। यदि तुष्टोऽसि देवेश त्रयीधाम नमोऽस्तु ते ॥३०॥

करना ही है ॥२२॥ जिस परम ब्रह्म सारभूत प्रधान तत्त्व का योगीजन ध्यान करते हैं जिसकी उपासना करते हैं और जिस तत्त्व को पाकर मुक्तजन आवागमन के बधन से छूट जाते हैं वे अच्छे योगीजनों के मुक्तिदाता उमापति शकर ही हैं ॥२३॥ जगत् के कल्याण के लिये जिस प्रकार भगवान् शकर न जानने योग्य माया के रूप धारण करते हैं उनके अनुरूप ही हे माता शिवा! तुम भी उनमें अपनी दृढ़ पतिभक्ति धारण करती हो ॥२४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार गौतम की स्तुति सुनकर उमा सहित श्रीमान् शकर जी गणेश आदि गणों को साथ लिये हुये मुनि के सामने प्रत्यक्ष रूप में आये और प्रसन्नतापूर्वक गौतम से कहने लगे ॥२५ २६॥

शिव बोले—गौतम! तुम्हें क्या दूँ। तुम्हारी भक्ति स्तुति और शुभ व्रत के अनुष्ठान से प्रसन्न हूँ। तुम वर माँगो देवदुर्लभ वर भी तुम्हें दूँगा। ॥२७॥

ब्रह्मा बोले—जगन्मूर्ति शकर की वाणी को सुनकर वाणी प्रयोग में निपुण गौतम आनन्द से गद्गद हो गये और मन में विचार करने लगे कि अहो! देव क्या है धर्म और विप्रों की पूजा भी क्या है अहो! ससार की गति भी क्या विचित्र है अहो! धाता! आपको नमस्कार है ॥२८ २९॥

गौतम बोले—देवों के पूज्य शकर! देवेश! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो अपनी जटा में रहने वाली कल्याणी गगा को मुझे दे दीजिये। हे त्रैलोक्यवासिन्! आपको नमस्कार है ॥३०॥

ईश्वर उवाच

त्रयाणामुपकारार्थं लोकाना याचित त्वया। आत्मनस्तूपकाराय तद्याचस्वाकुतोभय ॥३१॥

गौतम उवाच

स्तोत्रेणानेन ये [1]भक्तास्त्वा च देवीं स्तुवन्ति वै। सर्वकामसमृद्धा स्युरेतद्धि वरयाम्यहम्॥३२॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति देवेश परितुष्टोऽब्रवीद्वच। अन्यानपि वराम्मत्तो याचस्व विगतज्वर ॥३३॥
एवमुक्तस्तु हर्षेण गौतम प्राह शकरम् ॥३४॥

गौतम उवाच

इमा देवीं जटासस्था पावनीं लोकपावनीम्। तव प्रियां जगन्नाथ उत्सृज ब्रह्मणो गिरौ॥३५॥
सर्वासा तीर्थभूता तु यावद्गच्छति सागरम्। ब्रह्महत्यादिपापानि मनोवाक्कायिकानि च॥३६॥
स्नानमात्रेण सर्वाणि विलय यान्तु शकर। चन्द्रसूर्योपरागे च अयने विषुवे तथा॥३७॥
सक्रान्तौ वैधृतौ पुण्यतीर्थेष्वन्येषु यत्फलम्। अस्यास्तु स्मरणादेव तत्पुण्य जायता हर॥३८॥
श्लाघ्य कृते तप प्रोक्त त्रेताया यज्ञकर्म च। द्वापरे यज्ञदाने च दानमेव कलौ युगे॥३९॥

शकर ने कहा—तुमने तो तीनो लोको के उपकार के लिये यह याचना की है अपने उपकार के लिये भी कुछ मागो इसमे डरने की कोई आवश्यकता नही॥३१॥

गौतम ने कहा—जो भक्त इस स्तोत्र से आपकी और देवी गौरी की स्तुति कर वे भी अपनी सब कामनाओ से परिपूर्ण होकर विभवशाली बन यही वर मैं चाहता हू॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—प्रसन्न भगवान् शकर ने कहा कि ऐसा ही हो' तुम निशोक होकर दूसरे वरो को भी मुझसे मागो। इस प्रकार आश्वासन पाने पर गौतम ने प्रसन्न होकर शकर से कहा—३३ ३४॥

गौतम ने कहा—जगन्नाथ! इस लोक को पवित्र कर देने वाली जटा म रहने वाली अपनी पुनीत प्रिया गगा को ब्रह्मगिरि पर छोड दो॥३५॥ शकर! सब तीर्थों का स्वरूप यह गगा जहाँ तक सागर म जाती है वहा तक अर्थात उद्गम से सगम तक इसके जल म स्नान करने मात्र से मनुष्यो के ब्रह्महत्या आदि पाप अथवा मन वचन और शरीर से किये गये पाप विनष्ट हो जाय॥३६॥ अन्य पवित्र तीर्थों म चन्द्र-सूर्यग्रहण के समय अयन काल म तथा विषुवकाल म सक्रान्ति और वधृति योग मे स्नान करने से जो फल (पुण्य) मिलते हैं वे सब पुण्य इसके स्मरण मात्र से मिल जाय॥३७ ३८॥ कृतयुग म तपस्या त्रेता म यज्ञ द्वापर म यज्ञ और दान तथा कलियुग म केवल दान महत्वपूर्ण कहा गया है॥३९॥ इसी प्रकार युगधर्म तथा सब देशधर्म एव देशकाल के सयोग म जो धर्म श्रेष्ठ माने गये हैं और अन्यत्र स्नान दान तप आदि से जो पुण्य प्राप्त होते हैं, हर! वे सभी पुण्यफल

---

[1] १–घ भक्त्या त्वा च।

युगधर्माश्च ये सर्वे देशधर्मास्तथैव च। देशकालादिसयोगे यो धर्मो यत्र शस्यते ॥४०॥
यदन्यत्र कृत पुण्य स्नानदानादिसयमै। अस्यास्तु स्मरणादव तत्पुण्य जायता हर ॥४१॥
यत्र यत्र त्विय याति यावत्सागरगामिनी। तत्र तत्र त्वया भाव्यमष चास्तु वरो वर ॥४२॥
योजनाना तूपरि तु दश यावच्च सख्यया। तदन्तरप्रविष्टाना महापातकिनामपि ॥४३॥
तत्पितणा च तेषा च स्नानायाऽऽगच्छता शिव। स्नान चाप्यन्तर मृत्योमुक्तिभाजो भवन्तु दै ॥४४॥
एकत सवतीर्थानि स्वगमत्यरसातले। एषा तम्यो विशिष्टा तु अल शभो नमोऽस्तु त ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

तदगौतमवच श्रुत्वा तथाऽस्त्वित्यब्रवीच्छिव। अस्या परतर तीर्थं न भूत न भविष्यति ॥४६॥
सत्य सत्य पुन सत्य वेदे च परिनिष्ठितम्। सर्वेषा गौतमी पुण्या इत्युक्त्वाऽन्तरधीयत ॥४७॥
ततो गत भगवति लोकपूजिते, तदाज्ञया पूणबल स गौतम
जटा समादाय सरिद्वरा ता, सुरैर्वृतो ब्रह्मगिरिं विवश ॥४८॥
ततस्तु गौतम प्राप्ते जटामादाय नारद। पुष्पवृष्टिरभूत्तत्र समाजग्मु सुरेश्वरा ॥४९॥
ऋषयश्च महाभागा ब्राह्मणा क्षत्रियास्तथा। जयशब्देन त विप्र पूजयन्तो मुदान्विता ॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयभुवृषिसवाद तीर्थमाहात्म्य गौतम्यानयन नाम
पञ्चसप्ततितमोऽध्याय ॥७५॥
गौतमीमाहात्म्य षष्ठोऽध्याय

इस (गौतमी) गगा के स्मरण मात्र से मनुष्यों को मिल जाय ॥४० ४१॥ जहाँ जहाँ यह जाय और जब तक सागर म न मिले वहाँ वहाँ आप अवश्य विराजमान रह यही मेरे लिय श्रेष्ठ वरदान होगा। शिव ! दस योजन तक के भीतर रहनेवाले या इस सीमा तक प्रवश पा जाने वाले महापातकियों स्नान के लिये आय हुए मनुष्यों और उनके पितरों के भी पाप इस गगा म स्नान करने स नष्ट हो जाय और वे मृत्यु के बाद निश्चित रूप स मुक्ति के अधिकारी हो जाय। स्वग मर्त्य और रसातल के सभी तीर्थों म यह अद्वितीय तीर्थ हो और सबम यह विशिष्ट मानो जाय। शभो बस यही इच्छा है। अब आपको मेरा नमस्कार है ॥४२ ४५॥

ब्रह्मा बोले—गौतम के (उपयुक्त) शब्दों को सुनकर शकर न कहा एसा ही हो इसस श्रेष्ठ तीर्थ न तो हुआ और न होगा। यह सत्य है सत्य है पुन सत्य है और वेद स प्रमाणित है कि गौतमी सब तीर्थों स विशिष्ट तीर्थ है यह कहकर वे अन्तर्हित हो गय ॥४६ ४७॥ तदनन्तर लोकपूजित भगवान् शकर के चले जाने पर उनकी आज्ञा स पूर्णमनोरथ और तपोबलशाली गौतम शिव की जटा और उसम स्थित सरिता शिरोमणि गगा को लकर देवताओं के सहित ब्रह्मगिरि पर आय ॥४८॥

नारद जटा को लकर जब मुनि गौतम अपने आश्रम म आय तब वहाँ (आकाश म) पुष्पों की वृष्टि हुई सब देवता वहाँ उपस्थित हो गये। साथ-साथ ऋषिगण महाभाग ब्राह्मण तथा क्षत्रिय सभी वहाँ एकत्रित हो गये और वह आनन्द म गौतम की पूजा कर जयजयकार करने लगे ॥४९ ५०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म गगानयन नामक पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७५॥

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः ।

स्वर्गादौ पचदशाकृत्या गङ्गाया गमनम्

नारद उवाच

महेश्वरजटाजूटाद्‌गङ्गामादाय गौतम । आगत्य ब्रह्मण पुण्ये तत किमकरोद्‌गिरौ ॥१॥

ब्रह्मोवाच

आदाय गौतमो गङ्गां शुचि प्रयतमानस । पूजितो देवगन्धर्वैस्तथा गिरिनिवासिभि ॥२॥
गिरेर्मूर्ध्नि जटा स्थाप्य स्मरन्देवं त्रिलोचनम्। उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा गङ्गा स द्विजसत्तम ॥३॥

गौतम उवाच

त्रिलोचनजटोद्‌भूते सर्वकामप्रदायिनि। क्षमस्व मात शान्तासि सुख याहि हित कुरु ॥४॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्ता गौतमेन गङ्गा प्रोवाच गौतमम्। दिव्यरूपधरा देवी दिव्यस्रगनुलेपना ॥५॥

गङ्गोवाच

गच्छेयं देवसदनमथवाऽपि कमण्डलुम्। रसातल वा गच्छेय जातस्त्व सत्यवागसि ॥६॥

अध्याय ७६

१५ रूप बनाकर स्वर्ग आदि में गगा का गमन

नारद ने पूछा—महेश्वर की जटा से गंगा को ले आने के बाद गौतम न उस पवित्र ब्रह्मगिरि पर क्या किया ॥१॥

ब्रह्मा बोले—पवित्रात्मा, सयमी गौतम जब गगा को लेकर उस पर्वत पर आये तब देव गधव और पर्वत-निवासियोने उनकी बडे प्रेम से पूजा की। पर्वत के शिखर पर जटा की स्थापना कर त्रिनेत्र शकर का स्मरण करते हुए उन्होने गगा से कहा ॥२-३॥

गौतम बोले—त्रिलोचन की जटा से उत्पन्न होन वाली ! सब मनोरथो को पूण करन वाली माता ! आप अपराधो को क्षमा कीजिये। आप शान्तिपूर्वक सुख से जायँ और हम लोगा का कल्याण करें ॥४॥

ब्रह्मा ने कहा—गौतम की प्राथना सुनकर दिव्य रूप धारण करने वाली और दिव्य माला तथा लेप से विभूषित अग वाली गगा ने कहा ॥५॥

गगा ने कहा—मैं देवलोक जाऊँ या ब्रह्मा के कमण्डलु म अथवा रसातल जाऊँ ? तुम सत्यवादी मानव हो, इसलिये बतलाओ ॥६॥

गौतम उवाच

त्रयाणामुपकारार्थं लोकानां याचिता मया। शम्भुना च तथा दत्ता देवि तन्नान्यथा भवत॥७॥

ब्रह्मोवाच

तद्गौतमवचः श्रुत्वा गङ्गा मेने द्विजेरितम्। त्रेधाऽऽत्मानं विभज्याथ स्वर्गमर्त्यरसातले॥८॥
स्वर्गे चतुर्धा व्यगमत्सप्तधा मर्त्यमण्डले। रसातले चतुर्धैव सव पञ्चदशाकृति॥९॥
सर्वत्र सर्वभूतैव सर्वपापविनाशिनी। सर्वकामप्रदा नित्यं सैव वेदे प्रगीयते॥१०॥
मर्त्यामर्त्यगतामेव पश्यन्ति न तल गताम्। नैव स्वर्गगता मर्त्याः पश्यन्त्यज्ञानबुद्धयः॥११॥
यावत्सागरगा देवी तावद्देवमयी स्मृता। उत्सृष्टा गौतमनैव प्रायात्पूर्वार्णवं प्रति॥१२॥
ततो देवर्षिभिर्जुष्टां मातरं जगतः शुभाम्। गौतमो मुनिशार्दूलः प्रदक्षिणमथाकरोत॥१३॥
त्रिलोचनं सुरेशानं प्रथमं पूज्य गौतमः। उभयोस्तीरयोः स्नानं करोमीति दधे मतिम्॥१४॥
स्मृतमात्रस्तदा तत्राऽऽविरासीत्करुणार्णवः। तत्र स्नानं कथं सिध्येदित्येवं शर्वमब्रवीत्॥१५॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा भक्तिनम्रस्त्रिलोचनम् ॥१६॥

गौतम उवाच

देवदेव महेशान तीर्थस्नानविधिं मम। ब्रूहि सम्यङ्महेशान लोकानां हितकाम्यया॥१७॥

गौतम ने कहा—तीनों लोकों के उपकार के लिये मैंने शम्भु से प्रार्थनापूर्वक आपको माँगा है। शम्भु ने भी इसी उद्देश्य से प्रदान किया है इसलिये देवि! इसके विपरीत नहीं होना चाहिए॥७॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसी बात सुन कर गंगा ने गौतम की बात मान ली और स्वर्ग, मर्त्य एवं रसातल में जाने के लिये अपने को तीन भागों में बाँट कर स्वर्ग में चार रूप से मर्त्युलोक में सात रूप से और रसातल में चार रूप से प्रवाहित किया। इस प्रकार गंगा की पन्द्रह आकृतियाँ हुई॥८-९॥ सब जगह सब रूप से सबके पापों का विनाश करनेवाली तथा सबके मनोरथ को देने वाली उस गंगा का वेदों ने गान किया है॥१०॥ मृत्युलोकवासी अपने लोक का गंगा को ही देखते हैं रसातल वाली गंगा को नहीं। इसी प्रकार अज्ञानी व्यक्ति स्वर्ग में गयी गंगा को भी नहीं देखते हैं॥११॥ सागर तक की गंगा अर्थात् जिस स्थान पर गंगा सागर में मिल जाती है वहाँ तक वह देवमयी मानी जाती है॥१२॥ इस प्रकार गौतम से छोड़ी गयी गंगा पूर्व सागर की ओर चली गई। तदनन्तर देवर्षियों द्वारा पूजित जगत् का कल्याण करने वाली शुभ गंगा की मुनिशार्दूल गौतम ने प्रदक्षिणा की॥१३॥ पुनः गौतम ने सुरस्वामी त्रिलोचन की पहले पूजा की और फिर मैं दोनों तटों पर जाकर स्नान करूँ इस प्रकार का निश्चय मन में किया॥१४॥ तब स्मरण मात्र से करुणा के सागर शम्भु वहाँ प्रकट हो गये। गौतम ने हाथ जोड़कर भक्ति से विनम्र होकर शंकर से कहा कि किस विधि से मैं स्नान करूँ कृपाकर आप बतलायें॥१५-१६॥

गौतम ने कहा—हे देवों के देव! महेशान! लोक-हित की कामना से आप मुझे सम्यक् रूप से तीर्थ स्नान की विधि बतलाइये॥१७॥

---

१ घ. ०त्र घमभू०।

शिव उवाच

महर्षे शृणु सर्वं च विधिं गोदावरीभवम्। पूर्वं नान्दीमुखं कृत्वा देहशुद्धिं विधाय च ॥१८॥
ब्राह्मणान्भोजयित्वा च तेषामाज्ञां प्रगृह्य च। ब्रह्मचर्येण गच्छन्ति पतितालापवर्जिताः ॥१९॥
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्। विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥२०॥
भावदुष्टिं परित्यज्य स्वधर्मपरिनिष्ठितः। श्रान्तसंवाहनं कुर्वन्दद्यादन्नं यथोचितम् ॥२१॥
अकिंचनेभ्यः साधुभ्यो दद्याद्वस्त्राणि कम्बलान्। शृण्वन्हरिकथां दिव्यां तथा गङ्गासमुद्भवाम् ॥
अनेन विधिना गच्छन्सम्यक्तीर्थफलं लभेत् ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥
गौतमीमाहात्म्ये सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

गौतमीमहत्त्ववर्णनम्

ब्रह्मोवाच

त्र्यम्बकश्च इति प्राह गौतमं मुनिभिर्वृतम् ॥१॥

शिव ने कहा—महर्षि गौतम! गोदावरी तीर्थ की सभी विधियाँ सुनो। पहले नान्दी मुख श्राद्ध कर के फिर शरीर-शुद्धि करनी चाहिये। फिर ब्राह्मणों को भोजन कराकर उनसे आज्ञा लेकर ब्रह्मचर्य पूर्वक यात्रा प्रारम्भ करनी चाहिये। मार्ग में पतितों से वार्तालाप सर्वथा निषिद्ध है। जिस मनुष्य के हाथ पैर और मन वश में रहते हैं एवं जो अपनी विद्या तप और कीर्ति पर अभिमान नहीं करता वही तीर्थ का फल प्राप्त करता है। अपनी आन्तरिक दुष्ट भावनाओं को छोड़कर अपने धर्म पर पूर्ण श्रद्धा रखकर थके मांदे यात्रियों की थकावट को दूर करते हुये यथाशक्ति भोजनादि अन्न प्रदान करना चाहिए। दरिद्रों और साधुओं को वस्त्र और कम्बल प्रदान करना चाहिए और हरिकथा तथा स्वर्गीय गंगा सम्बन्धी कथा सुननी चाहिये। इस विधि से तीर्थयात्रा करने पर पूर्णरूप से तीर्थ का फल मिलता है॥१८-२२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण के तीर्थमाहात्म्य प्रकरण में छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥७६॥

अध्याय ७७

गौतमी का महत्त्व-वर्णन

ब्रह्मा बोले—इसके बाद ऋषियों से घिरे हुए गौतम से शिव ने पुनः यह कहा॥१॥

शिव उवाच

द्विहस्तमात्रे तीर्थानि सभविष्यन्ति गौतम। सर्वत्राह सनिहित सर्वकामप्रदस्तथा ॥२॥

ब्रह्मोवाच

गङ्गाद्वारे प्रयागे च तथा सागरसगमे। एतेषु पुण्यदा पुसां मुक्तिदा सा भगीरथी ॥३॥
नमदा तु सरिच्छ्रेष्ठा पर्वतेऽमरकण्टके। यमुना सगता तत्र[1] प्रभासे तु सरस्वती ॥४॥
कृष्णा भीमरथी चैव तुङ्गभद्रा तु नारद। तिसृणा सगमो यत्र तत्तीर्थं मुक्तिद नृणाम्[2] ॥५॥
पयोष्णी सगता यत्र[3] तत्रत्या[4] तच्च मुक्तिदम्। इय तु गौतमी वत्स यत्र क्वापि ममाऽऽज्ञया ॥६॥
सर्वेषां सर्वदा नृणा[5] स्नानान्मुक्ति प्रदास्यति। किंचित्काले पुण्यतम किंचित्तीर्थं सुरागमे ॥७॥
सर्वेषां सर्वदा तीर्थं गौतमी नात्र सशय। तिस्र कोटयोऽर्धकोटी च योजनाना शतद्वये ॥८॥
तीर्थानि मुनिशार्दूल सभविष्यन्ति गौतम। इय माहेश्वरी गङ्गा गौतमी वैष्णवीति च ॥९॥
ब्राह्मी गोदावरी नन्दा सुनन्दा कामदायिनी। ब्रह्मतेज समानीता सर्वपापप्रणाशनी ॥१०॥
स्मरणादेव पापौघहन्त्री मम सदा प्रिया। पञ्चानामपि भूतानामपि श्रेष्ठत्वमागता ॥११॥
तत्रापि तीर्थभूतास्तु तस्मादपि परा स्मृता। तासां भागीरथी श्रेष्ठा ताभ्योऽपि गौतमी तथा ॥१२॥

शिव बोले—गौतम! दो हाथ परिमित स्थानो पर तीर्थ रहते हैं और सबके मनोरथ को पूर्ण करने वाला मैं सब स्थानो पर सवदा विद्यमान रहता हू ॥२॥

ब्रह्मा ने कहा—हरिद्वार प्रयाग तथा गगासागर सगम म मुक्तिदायिनी भागीरथी अधिक पुण्य देनेवाली है ॥३॥ नदियो म श्रेष्ठ नमदा अमरकण्टक पवत पर यमुना सगम क्षेत्र मे और सरस्वती प्रभास क्षेत्र मे अधिक पुण्यप्रद मानी गयी हैं ॥४॥ नारद! कृष्णा भीमरथी तुगभद्रा ये तीनो नदियाँ जहाँ मिलती हैं वह तीर्थ मनुष्यो के लिये मोक्षदायक है ॥५॥ पयोष्णी नदी जहाँ सगम बनाती है वह स्थान और जो नदी उससे मिलती है दोनों मोक्षप्रद हैं। वत्स! इस गौतमी गगा म जहाँ-कहीं भी स्नान किया जाय यह मेरी आज्ञा से सब लोगो को सर्वदा मोक्ष प्रदान करेगी। कुछ तीर्थ किसी विशेष अवसर पर देवताओ के आगमन पर अत्यन्त पुण्यदायक होते हैं परन्तु गौतमी सब के लिये सब काल म पुण्यप्रद तीर्थ है इसम कुछ भी सन्देह नही। तीन करोड पचास लाख दो सौ योजन परिमित क्षेत्र म हे मुनिशार्दूल गौतम! बहुत से तीर्थ हैं और होंगे परन्तु ये माहेश्वरी गगा गौतमी वैष्णवी ब्राह्मी गोदावरी नन्दा सुनन्दा कामदायिनी आदि नदियाँ ब्रह्म तेज से पृथ्वी पर लाई गयी हैं इसलिये सब पापो को नष्ट करने वाली हैं। परन्तु मेरी प्रिया गौतमी स्मरण मात्र से ही पाप-समूह का नाश करने वाली है। पाचो महाभूतो म जल श्रेष्ठ है। उसम भी तीर्थीभूत जल अत्यन्त श्रेष्ठ माना गया है। उन तीर्थों म भी भागीरथी परमश्रेष्ठ मानी गई है परन्तु भागीरथी से भी गौतमी श्रेष्ठतर मानी गई है। मुने! यद्यपि स्वर्ग पृथ्वी और पाताल के

१घ यत्र। २घ स्मृतम्। ३ग तत्र। ४क तपत्या। ५क ०णां नाम्ना मुक्ति।

आनीता सजटा गङ्गा अस्या नान्यच्छुभावहम्। स्वर्गे भुवि तले वाऽपि तीर्थं सर्वार्थदं मुने॥१३॥

ब्रह्मोवाच

इत्येतत्कथितं पुत्र गौतमाय महात्मने। साक्षाद्धरेण तुष्टेन मया तव निवेदितम्॥१४॥
एवं सा गौतमी गङ्गा सर्वेभ्योऽप्यधिका मता। तत्स्वरूपं च कथितं कुतोऽन्या श्रवणस्पृहा॥१५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सप्तसप्ततितमोऽध्यायः॥७७॥
गौतमीमाहात्म्येऽष्टमोऽध्यायः॥८॥

अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

सगराख्यानकथनम्

नारद उवाच

द्विविधा सैव गदिता एकाऽपि सुरसत्तम। एको भेदस्तु कथितो ब्राह्मणेनाऽऽहृतो [1]यतः॥१॥
क्षत्रियेणापरोऽप्यंशो जटास्वेव व्यवस्थितः। भवस्य देवदेवस्य आहृतस्तद्वदस्व मे॥२॥

सभी तीर्थ मनोरथपूर्ण करने वाले हैं किन्तु गौतमी जटासहित यहाँ लाई गई है अतः इससे अधिक शुभदायक *अन्य तीर्थ नहीं है॥६-१३॥*

ब्रह्मा बोले—पुत्र! यह सारी बात स्वयं हर ने प्रसन्न होकर गौतम से कही थी जिसे मैंने तुमसे कह दिया। इस प्रकार वह गौतमी गंगा सबसे अधिक श्रेष्ठ सिद्ध हुई। इसके स्वरूप का परिचय मैंने दे ही दिया अब अधिक *क्या सुनने की इच्छा है?॥१४-१५॥*

श्रीब्रह्ममहापुराण में तीर्थ माहात्म्य प्रसंग में सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥७७॥

अध्याय ७८

सगर का आख्यान

नारद बोले—सुरश्रेष्ठ! आपने उस एक ही गंगा के दो भेद कहे हैं उनमें से एक अंश जिस प्रकार ब्राह्मण द्वारा जहाँ से लाया गया उसको तो कह दिया अब दूसरा अंश जो कि देवदेव शिव की जटा में ही रह गया था, वह क्षत्रिय भगीरथ द्वारा किस प्रकार लाया गया उसे भी कहने की कृपा करें॥१-२॥

---

[1] घ. मतः।

ब्रह्मोवाच

वैवस्वतान्वये जात इक्ष्वाकुकुलसभव । पुरा वै सगरो नाम राजाऽऽसीदतिधार्मिक ॥३॥
यज्वा दानपरो नित्य धर्माचारविचारवान। तस्य भार्याद्वय चाऽऽसीत्पतिभक्तिपरायणम॥४॥
तस्य व सततिर्नाभूदिति चिंतापरोऽभवत। वसिष्ठ गृहमाहूय सपूज्य विधिवत्तत ॥५॥
उवाच वचन राजा सतत कारण प्रति। इति तद्वचन श्रुत्वा ध्यात्वा राजानमब्रवीत॥६॥

वसिष्ठ उवाच

सपत्नीक सदा राजन्नृषिपूजापरो भव ॥७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा स मुनिर्विप्र यथास्थान जगाम ह। एकदा तस्य राजर्षेर्गृहमागात्तपोनिधि ॥८॥
तस्यर्षे पूजन चक्रे स सतुष्टोऽब्रवीद्वच । वर ब्रूहि महाभागेत्युक्त पुत्रान् चावृणोत॥९॥
स मुनि प्राह राजानमेकस्या वशधारक । पुत्रो भूयात्तथाऽन्यस्या षष्टिसाहस्रक सुता ॥१०॥
वर दत्त्वा मुनौ याते पुत्रा जाता सहस्रश । स यज्ञान्सुबहूश्चक्रे हयमेधान्सुदक्षिणान॥११॥
एकस्मिन्हयमेध व दीक्षितो विधिवन्नृप । पुत्रान्न्ययोजयद्राजा ससैन्यान्हयरक्षण॥१२॥
क्वचिदन्तरमासाद्य हय जह्रे शतक्रतु । मार्गमाणाश्च त पुत्रा नवापश्यन्हय तदा॥१३॥

ब्रह्मा ने कहे – प्राचीन काल मे वैवस्वत वंश की इक्ष्वाकु कुल-परम्परा मे सगर नाम का एक अत्यन्त धार्मिक राजा हुआ । वह धर्मानुकूल आचार और विचार का पालन करता था और नित्य यज्ञानुष्ठान एव दान किया करता था। उसकी दो पतिव्रता स्त्रियाँ थी। सन्तानहीन होने के कारण वह सर्वदा सन्तान चिन्ता मे ही लीन रहता था। एक दिन उसने घर वशिष्ठ को घर बुलाकर उनकी विधिवत पूजा की। तदनन्तर उनसे सन्तान न होने का कारण पूछा राजा के प्रश्न को सुनकर कुछ समय ध्यान करके वसिष्ठ बोले॥

वसिष्ठ ने कहा—राजन् तुम सर्वदा पत्नी सहित ऋषि-पूजा किया करो॥७॥

ब्रह्मा बोले—इतना कहकर मुनि वसिष्ठ अपने स्थान को चले गये। एक दिन उस राजर्षि के घर एक तपस्वी आया ।८। राजा ने उस ऋषि की भक्तिपूर्वक पूजा की। उसकी पूजा से प्रसन्न होकर ऋषि ने कहा—'महाभाग ! वर माँगो। तब राजा ने ऋषि से पुत्रोत्पत्ति का वर माँगा ।९

मुनि ने राजा से कहा—तुम्हारी एक स्त्री से वंश चलाने वाला यशस्वी पुत्र होगा। दूसरी से साठ हजार लड़के उत्पन्न होंगे ॥१०॥ इस प्रकार वर देकर मुनि चले गये। इधर राजा के हजारों लड़के उत्पन्न हुये। राजा ने बहुत से अश्वमेध यज्ञ किये जिनमे ब्राह्मणो को भरपूर दक्षिणा दी गई ।११॥ एक अश्वमेध यज्ञ मे जब राजा ने विधिपूर्वक दीक्षा ले ली तब अपने पुत्रो को सेना के साथ यज्ञाश्व की रक्षा के लिये नियुक्त किया॥१२॥ किन्तु शतक्रतु इन्द्र ने उस घोड़े का हरण कर लिया। सगर-पुत्र घोड़े को ढूंढ कर हार गये परन्तु कहीं पता नहीं

सहस्राणा ? तथा नर्द्भिर्नानायुद्धविशारदा । तेषु पश्यत्सु रक्षांसि पुत्रेषु सगरस्य हि ॥१४॥
प्रोक्षित तद्धय नीत्वा ते रसातलमागमन् । राक्षसान्मायया युक्तान्नैवापश्यन्त सागरा ॥१५॥
न दृष्ट्वा ते हय पुत्रा सगरस्य बलीयस । इतश्चेतश्चरन्तस्ते नैवापश्यन्हय तदा ॥१६॥
देवलोक तदा जग्मु पर्वताश्च सरासि च । वनानि च विचिन्वन्तो नैवापश्यन्हय तदा ॥१७॥
कृतस्वस्त्ययनो राजा ऋत्विग्भि कृतमङ्गल । अदृष्ट्वा तु पशु रम्य राजा चिन्तामुपेयिवान् ॥१८॥
[1]अटन्त सागरा सर्वे[2] देवलोकमुपागमन् । हय तमनुचिन्वन्तस्तत्रापि न हयोऽभवत् ॥१९॥
ततो महीं समाजग्मु पर्वताश्च वनानि च । तत्रापि च हय नैव दृष्टवन्तो नृपात्मजा ॥२०॥
एतस्मिन्नन्तरे यत्र दैवी वागभवत्तदा । रसातले हयो बद्ध आस्ते नान्यत्र सागरा ॥२१॥
इति श्रुत्वा ततो वाक्य गन्तुकामा रसातलम् । अखनन्पृथिवी सर्वा परित सागरास्तत ॥२२॥
ते क्षुधार्ता मूढ दृष्टा भक्षयन्तस्त्वहर्निशम् । न्यखनश्चापि जग्मुश्च सत्वरास्ते रसातलम् ॥२३॥
तानागतान्भूपसुतान्सागरान्बलिन कृतीन् । श्रुत्वा रक्षांसि सत्रस्ता व्यगम कपिलान्तिकम् ॥२४॥
कपिलोऽपि महाप्राज्ञस्तत्र दाते रसातले । पुरा च साधित तेन देवाना कार्यमुत्तमम् ॥२५॥
विनिद्रेण तत श्रान्त सिद्ध कार्ये सुरान्प्रति । अब्रवीत्कपिल श्रीमान्निद्रास्थान प्रयच्छथ(त) ॥२६॥
रसातल ददुस्तस्मै पुनराह सुरान्मुनि । यो मामुत्थापयेन्मन्दो भस्मी भूयाच्च सत्वरम् ॥२७॥

चला ॥१३॥ भिन्न भिन्न प्रकार की युद्धविद्या में कुशल उन साठ हजार सगर-पुत्रों के देखते रहने पर भी (इन्द्र के अनुगामी) राक्षस लोग यज्ञाभिषिक्त अश्व को लेकर रसातल चले गये। किन्तु सगरपुत्रों ने मायावी राक्षसों को नहीं देखा ॥१४ १५॥ राजा सगर के वे बलवान् पुत्र अश्व को न पाकर इधर-उधर ढूंढते हुए देवलोक में गये पर्वत सरोवर वनों को छान डाला फिर भी घोडे का कुछ पता न चला ॥१६ १७॥ इधर राजा ने स्वस्त्ययन क्रिया की और ऋत्विजों ने मङ्गल क्रिया की परन्तु उस यज्ञाश्व को आये न देखकर राजा अधिक चिंतित हो गया ॥१८॥ देवलोक में ढूंढने के पश्चात् सगर-पुत्र पृथ्वी पर आये पर्वतों और वनों को छान डाला किन्तु घोडा कहीं भी दिखाई न पडा ॥१९ २०॥ इसी बीच यह आकाशवाणी हुई कि सगर-कुमारो! रसातल में घोडा बँधा हुआ है दूसरी जगह नहीं है ॥२१॥ ऐसी आकाशवाणी सुन कर वे सब रसातल जाने के लिये चारो ओर से पृथ्वी को खोदने लगे ॥२२॥ भूख से व्याकुल वे लोग भूखी मिट्टी खा-खाकर रातदिन परिश्रम कर पृथ्वी खोद कर रसातल में पहुँच गये ॥२३॥ उन बली वमस्त एवं कार्य-कुशल सगर कुमारों का आगमन सुनकर राक्षस भयत्रस्त हो कपिल मुनि के समीप चले गये ॥२४॥ महाज्ञानी कपिल मुनि भी उस समय रसातल में ही सोये हुये थे। बहुत पहले उन्होंने देवताओं का एक उत्तम कार्य सिद्ध किया था ॥२५॥ रात दिन जाग कर कार्य करते से थके हुए कपिल मुनि ने देवताओं से कहा कि मुझे सोने के लिये स्थान दो ॥२६॥ तब देवताओं ने उन्हें सोने के लिए रसातल लोक दे दिया कपिलमुनि ने देवों से कहा— जो कोई मन्दमति मुझे जगाये ॥२७॥ वह शीघ्र ही भस्म हो जाय ऐसा होने पर ही मैं रसातल में जाकर सो

---

१ घ अथ ते सा०। २क ०र्वे लोकपालमु०।

तत दाये तलगतो नो चेन्न स्वप्न एव हि। तथेत्युक्त सुरगणैस्तत्र शेते रसातले ॥२८॥
तस्य प्रभाव ते ज्ञात्वा राक्षसा मायया युता। सागराणा च सर्वेषा वधोपाय प्रचक्रिरे ॥२९॥
विना युद्धेन ते भीता राक्षसा सत्वरास्तदा। आगत्य यत्र स मुनि कपिल कोपनो महान् ॥३०॥
शिरोदेशे हय ते वै बद्ध्वाऽथ त्वरयाऽन्विता। दूरे स्थित्वा मौनिनश्च प्रेक्षन्त किं भवेदिति ॥३१॥
ततस्तु सागरा सर्वे निर्विशन्तो रसातलम्। ददृशुस्त हय बद्ध शयान पुरुष तथा ॥३२॥
त मेनिरे च हर्तार क्रतुहन्तारमेव च। एन हत्वा महापाप नयामोऽश्व नृपान्तिकम् ॥३३॥
केचिदूचु पशु बद्ध नयामोऽनेन किं फलम्। तदाऽऽहुरपरे शूरा राजान शासका वयम् ॥३४॥
उत्थाप्यैन महापाप हन्म क्षात्रेण वर्चसा। ते त जघ्नुर्मुनि पादैर्ब्रुवन्तो निष्ठुराणि च ॥३५॥
तत कोपेन महता कपिलो मुनिसत्तम। सागरानीक्षयामास ता कोपाद्भस्मसात्करोत् ॥३६॥
जज्वलुस्ते ततस्तत्र सागरा सर्व एव हि। तत्तु सर्व न जानाति दीक्षित सगरो नृप ॥३७॥
नारद कथयामास सगराय महात्मने। कपिलस्य तु सस्थान हयस्यापि तु सस्थितिम् ॥३८॥
राक्षसाना तु विकृति सागराणा च नाशनम्। ततश्चिन्तापरो राजा कर्तव्य नावबुध्यत ॥३९॥
अपरोऽपि सुतश्चाऽऽसीदसमञ्जा इति श्रुत। स तु बालास्तथा पौरान्मौर्ख्यात्क्षिपति चाम्भसि ॥४०॥
सगरोऽप्यथ विज्ञप्त पौरै समिलितैस्तदा। दुर्नय तस्य त ज्ञात्वा तत क्रुद्धोऽब्रवीन्नृप ॥४१॥

सकता हूँ अन्यथा मुम नीद नही आयेगी। देवताओ ने उनकी इच्छा क अनुरूप धर दे दिया। इसीलिये वे वहाँ रसातल म सोये हुए थे ॥२८॥ मायावी राक्षसा ने मुनि के उस प्रभाव को जानकर (मायापूर्वक) उन सगर-पुत्रो के वध का उपाय किया ॥२९॥ भयभीत राक्षस विना युद्ध किये ही शीघ्र वहाँ आये जहाँ महाक्रोधी कपिलमुनि थे और उनके सिर की ओर घोड को बाँध कर तुरत वहाँ स हट गय। दूर जाकर चुपचाप छिपकर यह देखने लगे कि क्या परिणाम होता है ॥३० ३१॥ इसके अनन्तर वे सब सगरपुत्र रसातल म पहुँचे। वहाँ उन लोगा ने बँधे हुये घोड और सोये हुये एक पुरुष को देखा ॥३२॥ उस पुरुष को ही उन सबा न घाड का चोर और यज्ञ-विध्वसक समझा। उनमे से कुछ लोगा ने कहा कि इस पापी को मारकर अश्व को राजा के निकट ले चल ॥३३॥ किसी ने कहा कि बँधे हुये घोड को ही ले चलना चाहिये इस पुरुष को मारन स क्या लाभ ? यह सुनकर दूसरे कुछ शूर पुरुषा ने कहा कि हम शासक राजा हैं ॥३४॥ इस महापापी को उठाकर क्षात्र तेज स इसको मारग। ऐसा कहकर मुनि को अनुचित बातें कहते हुय व पैरा से मारने लग ॥३५॥ इस पर महामुनि कपिल अत्यन्त क्रोध से उन सगर-पुत्रा को देखा और देखते ही व सब मुनि के क्रोधाग्नि म भस्म हो गए ॥३६॥ इस दुघटना को यज्ञ म दीक्षित नृप सगर नही जानते थ ॥३७॥ नारद न आकर उनसे कपिल का रसातल म रहना और वहाँ घोडे का बाँधा जाना राक्षसा का कपट व्यवहार तथा उनके पुत्रा का सवनाश आदि सारा हाल बता दी ॥३८॥ इन बाता को सुनकर राजा अत्यन्त चिन्तित हो गये और क्या करना चाहिये यह भी न सोच सके ॥३९॥ राजा का दूसरा पुत्र एक असमजस नाम का था। वह अपनी दुष्टता और अज्ञानता के कारण नगर के बालका को जल म फेंक देता था ॥४०॥ *नगरवासियो ने मिलकर राजा से यह बात बताई। उसके इस अत्याचार को जानकर राजा अत्यन्त क्रुद्ध हो* गया और मन्त्रिया से बोला कि असमजस क्षत्रिय-धर्मभ्रष्ट और बालका को मारने वाला है। इसलिये यह देश से

स्थानमात्यास्तदा राजा देशत्याग करोत्वयम्। असमञ्जा क्षत्रधर्मत्यागी च बालघातक ॥४२॥
सगरस्य तु तद्वाक्य श्रुत्वाऽमात्यास्त्वरान्विता । तत्यजुर्नृपते पुत्रमसमञ्जा गतो वनम् ॥४३॥
सागरा ब्रह्मशापेन नष्टा सर्वे रसातले। एकोऽपि च वन प्राप्त इदानीं का गतिर्मम ॥४४॥
अशुमानिति विख्यात पुत्रस्तस्यासमञ्जस । आनाय्य बालक राजा कार्यं तस्मै न्यवेदयत् ॥४५॥
कपिल च समाराध्य अशुमानपि बालक । सगराय हय प्रादात्तत पूर्णोऽभवत्क्रतु ॥४६॥
तस्यापि पुत्रस्तेजस्वी दिलीप इति धार्मिक । तस्यापि पुत्रो मतिमान्भगीरथ इति श्रुत ॥४७॥
पितामहाना सर्वेषा गति श्रुत्वा सुदु खित । सगर नृपशार्दूल पप्रच्छ विनयान्वित ॥४८॥
सागराणा तु सर्वेषा निष्कृतिस्तु कथ भवेत्। भगीरथ नृप प्राह कपिलो वेत्ति पुत्रक ॥४९॥
तस्य तद्वचन श्रुत्वा बाल प्रायाद्रसातलम्। कपिल च नमस्कृत्वा सर्वं तस्मै न्यवेदयत् ॥५०॥
स मुनिस्तु चिर ध्यात्वा तपसाऽऽराध्य शकरम्। जटाजलेन स्वपितृनाप्लाव्य नृपसत्तम ॥५१॥
तत कृतार्थो भविता त्व च ते पितरस्तथा। तथा करोमीति मुनि प्रणम्य पुनरब्रवीत् ॥५२॥
क्व गच्छेऽह मुनिश्रेष्ठ कर्तव्य चापि तद्वद ॥५३॥

कपिल उवाच

कैलास त नरश्रेष्ठ गत्वा स्तुहि महेश्वरम्। तप कुरु यथाशक्ति ततश्चेप्सितमाप्स्यसि ॥५४॥

निकाल दिया जाय ॥४१ ४२॥ राजा सगर की आज्ञा सुनकर मन्त्रियो ने शीघ्र ही राजपुत्र को देश से निकाल दिया। वह वन को चला गया ॥४३॥ राजा सोचने लगे कि मेरे साठ हजार पुत्र रसातल मे मुनि शाप से भस्म हो गये और एक जो था वह भी वन को चला गया। अब मेरे लिये कौन-सा मार्ग है ॥४४॥ अशुमान नाम से प्रसिद्ध असमञ्ज का एक पुत्र था। राजा ने उस बालक को बुलवा कर यह कार्यभार उसको सौंप दिया ॥४५॥ बालक अशुमान् ने कपिल मुनि को प्रसन्न कर घोडा लाकर सगर को दे दिया। तदनन्तर वह यज्ञ समाप्त हुआ ॥४६॥ अशुमान का पुत्र दिलीप तेजस्वी तथा धार्मिक था। उससे भगीरथ नाम का बुद्धिमान् पुत्र हुआ ॥४७॥ अपने पितामहो की गति सुनकर अत्यन्त दुखी भगीरथ ने हाथ जोडकर विनयपूर्वक नृपशार्दूल सगर से पूछा ॥४८॥ सब पितामहो का उद्धार कैसे होगा। राजा ने भगीरथ से कहा—पुत्रक ! इसको कपिल मुनि ही जानते है ॥४९॥ यह सुनकर बालक भगीरथ कपिलमुनि के पास रसातल चला गया। मुनि को नमस्कार कर सारी कथा उनसे कह दी ॥५०॥ तब मुनि बोले—नृपश्रेष्ठ ! चिरकाल तक ध्यानावस्थित होकर अपनी तपस्या से शकर की आराधना करके प्रसन्न करो। उनकी जटा मे स्थित गगा के जल से अपने पितरो को अभिषिक्त करो ॥५१॥ तुम स्वय कृतार्थ (सफल) होगे और अपने पितरो को भी कृतकृत्य कर सकोगे। मैं आपके आज्ञानुसार कार्य करूँगा। यह कह कर भगीरथ ने मुनि को प्रणाम करके कहा—मुनिश्रेष्ठ ! मैं कहाँ जाऊँ किस प्रकार साधना करूँ कृपया यह भी बतलाइये ॥५२ ५३॥

कपिल ने कहा—नरश्रेष्ठ ! कैलास पर जाकर महेश्वर की स्तुति और यथाशक्ति तपस्या करो। तभी तुम अपने अभीष्ट को प्राप्त कर सकोगे ॥५४॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा स मुनेर्वाक्यं मुनिं नत्वा त्वगान्नगम्। कैलासं स शुचिर्भूत्वा बालो बालक्रियान्वितः॥
तपसे निश्चयं कृत्वा उवाच स भगीरथः ॥५५॥

भगीरथ उवाच

बालोऽहं बालबुद्धिश्च बालचन्द्रधर प्रभो। नाहं किमपि जानामि ततः प्रीतो भव प्रभो॥५६॥
वाग्भिर्मनोभिः कृतिभिः कदाचिन्ममोपकुर्वन्ति हिते रता ये ।
तेभ्यो हितार्थं त्विह चामरेश, सोमं नमस्यामि सुरादिपूज्यम् ॥५७॥
उत्पादितो यैरभिवर्धितश्च, समानगोत्रश्च समानधर्मा ।
तेषामभीष्टानि शिवः करोतु, बालेन्दुमौलिं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥५८॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु ब्रुवतस्तस्य पुरस्तावभवच्छिवः। वरेण च्छन्दयानो[1] वै भगीरथमुवाच ह॥५९॥

शिव उवाच

यन्न साध्यं सुरगणैर्देयं तत्ते मया ध्रुवम्। वदस्व निर्भयो भूत्वा भगीरथ महामते॥६०॥

ब्रह्मा ने कहा—वह बालक मुनि की बातो को सुनकर उन्हे प्रणाम करके कैलाश पर्वत पर चला गया। वहाँ पवित्र होकर अपने बाल-सुलभ व्यवहार के साथ तपस्या का दृढ निश्चय करके शकर की स्तुति करने लगा॥५५॥

भगीरथ ने कहा—बालचन्द्र को धारण करने वाले प्रभो! मैं बाल हूँ, बालबुद्धि हूँ, कुछ भी नही जानता हूँ। इसलिये प्रभो! मुझ बालक पर प्रसन्न हो जाओ॥५६॥ देवेश, जो किसी समय मेरा मन वाणी और कर्म से सदा उपकार और हित किये करते थे, उन्ही पूर्वजो के उद्धार के लिये मैं देवो के पूज्य शकर को नमस्कार करता हूँ॥५७॥ जिन महापुरुषो के द्वारा मैं उत्पन्न किया गया हूँ, पाल-पोस कर बडा बनाया गया हूँ, जिनका मैं सगोत्री और सधर्मी हूँ, उनकी इष्ट सिद्धि (उद्धार) शिवजी करें, मैं बालचन्द्र को धारण करनेवाले शकर को नित्य प्रणाम करता हूँ॥५८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार भगीरथ प्रार्थना कर ही रहे थे कि शकर जी ने वरदान देने की इच्छा से भगीरथ से कहा॥५९॥

शिव बोले—महामति भगीरथ! जो देवो के लिये दुष्प्राप्य है उस वर को भी तुम प्राप्त कर सकते हो। इसलिये निर्भीक होकर कहो॥६०॥

---

१ प. ०यामास म०।

ब्रह्मोवाच

भगीरथः प्रणम्येशं हृष्टः प्रोवाच शंकरम् ॥६१॥

भगीरथ उवाच

जटास्थितां पितॄणां मे पावनाय सरिद्वराम्। तामेव देहि देवेश सर्वमाप्त ततो भवेत्॥६२॥

ब्रह्मोवाच

महेशोऽपि विहस्याथ भगीरथमुवाच ह ॥६३॥

शिव उवाच

दत्ता मयेयं ते पुन पुनस्तां स्तुहि सुव्रत ॥६४॥

ब्रह्मोवाच

तद्देववचनं श्रुत्वा तदर्थं तु तपो महत्। स्तुतिं चकार गङ्गाया भक्त्या प्रयतमानस.॥६५॥
तस्या अपि प्रसाद च प्राप्य बालोऽप्यबालवत्। गङ्गा महेश्वरात्प्राप्तामादायागाद्रसातलम्॥६६॥
न्यवेदयत्स मुनये कपिलाय महात्मने। यथोदितप्रकारेण गङ्गा सस्थाप्य यत्नत॰॥६७॥
प्रदक्षिणमथाऽऽवर्त्य कृताञ्जलिपुटोऽब्रवीत् ॥६८॥

भगीरथ उवाच

देवि मे पितर॰ शापात्कपिलस्य महामुनेः। प्राप्तास्ते विगतिं मातस्तस्मात्त्रातुमर्हसि॥६९॥

ब्रह्मा बोले—भगीरथ ने शकर को प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्वक उनसे कहा॥६१॥

भगीरथ ने कहा—मेरे पितरों के उद्धार के लिये अपनी जटा मे रखी हुई उत्तम सरिता (गगा) को प्रदान करें। इस दान से ही मेरे मनोरथ पूर्ण हो जायेंगे॥६२॥

ब्रह्मा बोले—इसके बाद शकर ने हँसकर भगीरथ स कहा॥६३॥

शिव बोले—पुत्र! मैंने गगा को तुम्हें दे दिया। सुव्रत! अब उसकी स्तुति करो॥६४॥

ब्रह्मा ने कहा—भगवान् शकर की बातो को सुनकर भगीरथ ने गगा को प्रसन्न करने के लिये एकाग्र मन से महान् तपस्या और गगा की स्तुति की। बालक होते हुए भी भगीरथ ने अबालक के समान गगा का कृपापात्र बनकर महेश्वर द्वारा दी गई गगा को लेकर रसातल चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने मुनि से सब कुछ कहा और उनके आदेशानुसार यत्नपूर्वक गगा की स्थापना की। तदनन्तर उनकी परिक्रमा कर बद्धा-जलि होकर कहा॥६५-६८॥

भगीरथ ने कहा—देवि! मेरे पितर महामुनि कपिल के शाप से दुर्गति को प्राप्त हो गये हैं। उस प प से हे माता! तुम्ही उन लोगो का उद्धार कर सकती हो॥६९॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा सुरनदी सर्वेषामुपकारिका। लोकानामुकारार्थं पितृणा पावनाय च ॥७०॥
अगस्त्यपीतस्याम्भोधे पूरणाय विशेषत। स्मरणादेव पापाना नाशाय सुरनिम्नगा ॥७१॥
भगीरथोदित चक्रे रसातलतले स्थितान्। भस्मीभूतान्नृपसुतान्सागराश्च विशेषत ॥७२॥
विनिर्दग्धानथाऽऽप्लाव्य खातपूरमथाकरोत्। ततो मेरु समाप्लाव्य स्थिता बालोऽब्रवीन्नृप ॥७३॥
कर्मभूमौ त्वया भाव्य तथेत्यागाद्धिमालयम्। हिमवत्पर्वतात्पुण्याद्भारत वर्षमभ्यगात् ॥७४॥
तन्मध्यत पुण्यनदी प्रायात्पूर्वार्णव प्रति। एवमेषाऽपि ते प्रोक्ता गङ्गा क्षात्रा महामुने ॥७५॥
माहेश्वरी वैष्णवी च सैव ब्राह्मी च पावनी। भागीरथी देवनदी हिमवच्छिखराश्रया ॥७६॥
महेश्वरजटावारि एव द्वैविध्यमागतम्। विन्ध्यस्य दक्षिणे गङ्गा गौतमी सा निगद्यते॥
उत्तरे साऽपि विन्ध्यस्य भागीरथ्यभिधीयते ॥७७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयभुऋषिसवादे भागीरथ्यवतरण नामाष्टसप्ततितमोऽध्याय ॥७८॥

गौतमीमाहात्म्ये नवमोऽध्याय ॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—सबका उपकार करने वाली देवनदी गगा ने एसा ही हो वह यह कहकर लोक-कल्याण के लिये पितरो को पुनीत करने के लिये विशेषरूप से अगस्त्य द्वारा पान किये गये समुद्र को भर देने के लिये, और स्मरणमात्र से पापो का नाश करने के लिये भगीरथ के कथनानुसार कार्य किया। पहले तो उसने प्रधानरूप से भस्मीभूत राजा सगर के पुत्रो को जल से भलीभाँति अभिषिक्त किया तदनन्तर उनसे खोदे गये गड्ढों को जल से भर दिया। फिर वहाँ से मेरु पर्वत पर आकर विराजमान हो गयी। यह देखकर बालक राजा भगीरथ ने कहा आपको कर्मभूमि (भारतभूमि) पर चलना चाहिये। इसको भी स्वीकार कर वह हिमालय पर्वत पर चली गई। उस हिमालय पर्वत से पुण्य भूमि भारतवर्ष में आ गई। उसके मध्य में होकर वह पुण्य नदी पूर्वसागर (बगसागर) की ओर चली गई (और उसमे मिल गई)। महामुनि नारद[1] इस प्रकार मैंने क्षत्रिय द्वारा लाई हुई गगा के विषय मे सुना दिया। वही माहेश्वरी वैष्णवी और पवित्र ब्राह्मी है। उसी को भगीरथी देवनदी और हिमालय के शिखर पर रहने वाली (हिमालयशिखराश्रया) कहते हैं। इस प्रकार महेश्वर की जटा का वह शुभ जल दो भागो मे विभक्त हो गया। विन्ध्य के दक्षिण में वह गगा गौतमी नाम से कही जाती है और विन्ध्य के उत्तर प्रदेश की गगा भगीरथी इस नाम से पुकारी जाती है ॥७०-७७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे भागीरथी-अवतरण नामक अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७८॥

अथोनाशीतितमोऽध्यायः

वराहतीर्थवर्णनम्

नारद उवाच

न मनस्तृप्तिमाधत्ते कथा शृण्वतस्त्वयेरिता। पृथक्तीर्थफलं श्रोतुं प्रवृत्तं मम मानसम् ॥१॥
क्रमशो ब्राह्मणानीतां गङ्गां मे प्रथमं वद। पृथक्तीर्थफलं पुण्यं सेतिहासं यथाक्रमम् ॥२॥

ब्रह्मोवाच

तीर्थानां च पृथग्भावं फलं माहात्म्यमेव च। सर्वं वक्तुं न शक्नोमि न च त्वं श्रवणे क्षमः ॥३॥
तथाऽपि किंचिद्वक्ष्यामि शृणु नारद यत्नतः। यान्युक्तानि च तीर्थानि श्रुतिवाक्यानि यानि च ॥४॥
तानि वक्ष्यामि संक्षेपान्नमस्कृत्वा त्रिलोचनम्। यत्रासौ भगवानासीत्प्रत्यक्षस्त्र्यम्बको मुने ॥५॥
त्र्यम्बकं नाम तत्तीर्थं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्। वाराहमपरं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥६॥
तस्य रूपं प्रवक्ष्यामि नाम विष्णोर्यथाऽभवत्। पुरा देवान्पराभूय यज्ञमादाय राक्षसः ॥७॥
रसातलमनुप्राप्तः सिन्धुसेन इति श्रुतः। यज्ञे तलमनुप्राप्ते निर्यज्ञा ह्यभवन्मही ॥८॥
नायं लोकोऽस्ति न परो यज्ञे नष्ट इतीश्वराः। सुरास्तमेव विविशू रसातलमनुद्विपम् ॥९॥

नाशक्नुवंस्तु तं जेतुं देवा इन्द्रपुरोगमा.। विष्णुं पुराणपुरुषं गत्वा तस्मै न्यवेदयन् ॥१०॥
राक्षसस्य तु तत्कर्म यज्ञभ्रंशमशेषत.। तत. प्रोवाच भगवान्वाराहं वपुरास्थित ॥११॥
शङ्खचक्रगदापाणिर्गत्वा चैव रसातलम्। आनयिष्ये मखं पुण्यं हत्वा राक्षसपुगवान् ॥१२॥
स्व प्रयान्तु सुरा सर्वे व्येतु वो मानसो ज्वरः। येन गङ्गा तलं प्राप्ता पथा तेनैव चक्रधृक् ॥१३॥
जगाम तरसा पुत्र भुव भित्त्वा रसातलम्। स वराहवपु. श्रीमान्रसातलनिवासिनः ॥१४॥
राक्षसान्दानवान्हत्वा मुखे धृत्वा महाध्वरम्। वाराहरूपी भगवान्मखमादाय यज्ञभुक् ॥१५॥
येन प्राप तलं विष्णु पथा तेनैव शत्रुजित्। मुखे न्यस्य महायज्ञं निश्चक्राम रसातलात् ॥१६॥
तत्र ब्रह्मगिरौ देवा प्रतीक्षा चक्रिरे हरे। पयस्तस्माद्विनिःसृत्य गङ्गास्रवणमभ्यगात् ॥१७॥
प्राक्षालयच्च स्वाङ्गानि असृग्लिप्तानि नारद। गङ्गाम्भसा तत्र कुण्डं वाराहमभवत्तत ॥१८॥
मुखे न्यस्त महायज्ञ देवाना पुरतो हरिः। दत्तवांस्त्रिदशश्रेष्ठो मुखाद्यज्ञोऽभ्यजायत ॥१९॥
तत प्रभृति यज्ञाङ्ग प्रधान स्रुव उच्यते। वाराहरूपमभवदेवं वै कारणान्तरात् ॥२०॥
तस्मात्पुण्यतम तीर्थं वाराह सर्वकामदम्। तत्र स्नानं च दान च सर्वक्रतुफलप्रदम् ॥२१॥
तत्र स्थितोऽपि य कश्चित्पितॄन्स्मरति पुण्यकृत्। विमुक्ता. सर्वपापेभ्यः पितर. स्वर्गमाप्नुयु ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये वराहतीर्थवर्णनं नामोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥
गौतमीमाहात्म्ये दशमोऽध्यायः ॥१०॥

नेतृत्व मे जाने वाले वे देव उसको जीत न सके, इसलिये पुराणपुरुष विष्णु के पास जाकर उन्होने राक्षस का वह कुकृत्य और यज्ञलोप होने का समाचार पूर्णरूप से निवेदन किया ॥१०½॥ सुनकर भगवान् ने कहा कि मैं वराह शरीर धारण कर हाथ मे शख चक्र गदा लेकर रसातल को जाऊँगा और वहाँ के बडे-बडे राक्षसो को मारकर पुनीत यज्ञ को ले आऊँगा ॥११ १२॥ आप सब देवगण स्वर्गलोक को जाइयें और मानसिक चिन्ता को छोड दीजिये। पुत्र ! जिस मार्ग से गगा रसातल लोक को गयी थी उसी मार्ग से वह चक्रधारी भगवान् पृथ्वी को फाड कर चले गये ॥१३½॥ वह वराहरूपधारी श्रीमान रसातल निवासी राक्षसो एव दानवो को मारकर, महायज्ञ को मुख पर रख लिया। पुन वराहरूपधारी यज्ञ के भोक्ता तथा शत्रुओ के विजेता विष्णु जिस पथ से गये थे उसी पथ से महायज्ञ को मुख पर रखे हुये रसातल से निकल आये ॥१४ १६॥ इधर ब्रह्मगिरि पर देवता भगवान् की प्रतीक्षा कर रहे थे। नारद ! उस मार्ग से निकल कर विष्णु गगा की धारा मे पहुँचे ॥१७॥ वहाँ गगा-जल से रक्त लगे अपने अगो को धोया। इसलिये वहाँ का वह कुण्ड वाराह नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥१८॥ देव शिरोमणि भगवान् हरि ने मुख पर रखे हुए महायज्ञ को देवताओ के सामने रख दिया। इसलिये मुख से यज्ञ की पुन उत्पत्ति हुई ॥१९॥ तभी से स्रुव प्रधान यज्ञाग कहा जाता है, इस प्रकार कारणान्तर से वाराह रूप हुआ ॥२०॥ इस कारण वाराह सब कामो को देने वाला तीर्थ है। वहाँ का स्नान और दान सम्पूर्ण यज्ञो के फल देने वाला है ॥२१॥ जो कोई पुण्यकर्मा वहाँ स्थित होकर भी अपने पितरो का स्मरण करता है उसके वे पितर सब पापो से मुक्त होकर स्वर्ग मे चले जाते हैं ॥२२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे वराहतीर्थवर्णन नामक उन्यासीवाँ अध्याय समाप्त ॥७९॥

अथाशीतितमोऽध्यायः

कपोततीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कुशावर्तस्य माहात्म्यमह वक्तु न ते क्षम । तस्य स्मरणमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नर ॥१॥
कुशावर्तमिति ख्यात नराणा सर्वकामदम्। कुशेनाऽऽवर्तित यत्र गौतमेन महात्मना ॥२॥
कुशेनाऽऽवर्तयित्वा तु आनयामास ता मुनि । तत्र स्नान च दान च पितृणा तृप्तिदायकम् ॥३॥
नीलगङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा नि सृता नीलपर्वतात्। तत्र स्नानादि यत्किंचित्करोति प्रयतो नर ॥४॥
सर्वं तदक्षय विद्यात्पितृणा तृप्तिदायकम्। विश्रुत त्रिषु लोकेषु कपोत तीर्थमुत्तमम् ॥५॥
तस्य रूप च वक्ष्यामि मुने शृणु महाफलम्। तत्र ब्रह्मगिरौ कश्चिद्व्याध परमदारुण ॥६॥
हिनस्ति ब्राह्मणान्साधून्यतीन्गोपक्षिणो मृगान्। एवभूत स पापात्मा क्रोधनोऽनृतभाषण ॥७॥
भीषणाकृतिरत्युग्रो नीलाक्षो ह्रस्वबाहुक । दन्तुरो नष्टनासाक्षो ह्रस्वपात्पृथुकुक्षिक ॥८॥
ह्रस्वोदरो ह्रस्वभुजो विकृतो गर्दभस्वन । पाशहस्त पापचित्त [1]पापिष्ठ सधनु सदा ॥९॥

अध्याय ८०

कपोततीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—मैं कुशावर्ततीर्थ की महिमा तुमसे कहने मे समर्थ नहीं हूँ। उसके स्मरण मात्र से ही मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है ॥१॥ जहाँ पर महात्मा मुनि गौतम ने कुशा से घुमाया था वह मनुष्यो के सब मनोरथो को देने वाला स्थान कुशावर्त नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥२॥ मुनि कुश से गगा को घुमा कर ले आये थे। वहाँ का स्नान और दान पितरो को तृप्त करने वाला है ॥३॥ नील गगा नाम की उत्तम नदी नील पर्वत से निकली हुई है उसमे मनुष्य एकाग्रचित्त से स्नान आदि जो कुछ करता है वह पितरो के लिये अक्षय तृप्ति को देनेवाला होता है ॥४॥ तीनो लोको मे कपोत तीर्थ अति प्रसिद्ध उत्तम तीर्थ है ॥५॥ मुने! उसका इतिहास और फल बता रहा हूँ सुनो—ब्रह्म पर्वत पर कोई एक अतिक्रूर (शिकारी) रहता था ॥६॥ वह ब्राह्मण साधु यति गौ पक्षी और जगली जीवो को मारा करता था। ऐसा हिंसक वह पापात्मा क्रोधी असत्यवादी भयकर आकारवाला और अत्यन्त उद्धत था। उसकी आँख नीले रग की भुजायें छोटी छोटी दाँत निकले हुये नाक चिपटी एक आँख कानी पैर छोटे छोटे पेट लम्बा और मोटा और उसका स्वर गदहे के समान था। वह कुरूप पापी सर्वदा हाथ मे पाश और धनुष लिये हुए पाप (हिंसा) की ही बातें सोचा करता था। नारद! उसकी स्त्री और बच्चे भी उसी के समान थे ॥ ७-९ ॥

---

[1] घ सर्पिष्ट ।

तस्य भार्या तयाभूता अपत्यान्यपि नारद। तया तु प्रेर्यमाणोऽसौ विवेश गहन वनम् ॥१०॥
स जघान मृगान्पाप पक्षिणो बहुरूपिण । पञ्जरे प्राक्षिपत्काश्चिज्जीवमानास्तथेतरान् ॥११॥
क्षुधया परितप्ताङ्गो विह्वलस्तृषया तथा। भ्रान्तदेशो बहुतर न्यवर्तत गृह प्रति ॥१२॥
ततोऽपराह्ने सप्राप्ते निवृत्ते मधुमाधवे। क्षणात्तडिद्गर्जित च साभ्र चैवाभवत्तदा ॥१३॥
ववौ वायु साश्मवर्षो वारिधारातिभीषण । स गच्छल्लुब्धक श्रान्त पन्थान नावबुध्यत ॥१४॥
जल स्थल गर्तमयो पन्यानमथवा दिश । न बुबोध तदा पाप श्रान्त शरणमप्यथ ॥१५॥
क्व गच्छामि क्व तिष्ठेय किं करोमीत्यचिन्तयत्। सर्वेषा प्राणिना प्राणानाहर्ताऽह यथाऽन्तक ॥१६॥
ममाप्यन्तकर भूत सप्राप्त चाश्मवर्षणम्। त्रातार नैव पश्यामि शिला वा वृक्षमन्तिके ॥१७॥
एव बहुविध व्याधो विचिन्त्यापश्यदन्तिके। वने वनस्पतिमिव नक्षत्राणा यथाऽत्रिजम् ॥१८॥
मृगाणा च यथा सिंहमाश्रमाणा गृहाधिपम्। इन्द्रियाणा मन इव त्रातार प्राणिना नगम् ॥१९॥
श्रेष्ठ विटपिन शुभ्र शाखापल्लवमण्डितम्। तमाश्रित्योपविष्टोऽभूत्क्लिन्नवासा स लुब्धक ॥२०॥
स्मरन्भार्यामपत्यानि जीवेयुरथवा न वा। एतस्मिन्नन्तरे तत्र चास्त प्राप्त दिवाकर ॥२१॥
तमेव नगमाश्रित्य कपोतो भार्यया सह। पुत्रपौत्रै परिवृतो ह्यास्ते तत्र नगोत्तमे ॥२२॥

एक दिन अपनी स्त्री की प्ररणा से वह घने जगल म घुस गया। उस पापी ने बहुत-से मृगो और रग बिरगे पक्षियो को मारा। अपने पिंजरे म कुछ जीवित और कुछ मृत पक्षियो को भी भर लिया ॥१०-११॥ बहुत इधर उधर घूमने के कारण भूख की ज्वाला से उसका शरीर जलने लगा और वह प्यास से व्याकुल हो गया। विवश हो वह भटकता हुआ घर की ओर लौटा ॥१२॥ तत्पश्चात उस जेठ की दुपहरी बीत जाने पर तीसरे पहर क्षण भर मे बिजली गरजने लगी आकाश बादलो से घिर गया वायु जोरो से चलने लगी अति भीषण वृष्टि होने लगी और साथ-साथ पत्थर गिरने लगे। ऐसे समय वह बहेलिया चलते चलते थक गया और अपना मार्ग भी भूल गया ॥१३ १४॥ उसको जल स्थल या गड्ढे का ज्ञान न रहा। न तो उस समय उसको माग और दिशाओ का ही ज्ञान रहा। वह थका मादा पापी यह भी नही जान पाता था कि कहाँ उसको शरण (रहने को स्थान) मिलेगी। ॥१५॥ वह चिन्ता करने लगा कि कहाँ जाऊँ कहाँ रहूँ क्या करू। जिस प्रकार सब प्राणियो के प्राण का घातक मैं सबके लिये यमराज के समान हूँ उसी प्रकार मेरे प्राणो का अन्त करने वाला यम के रूप मे यह पत्थर की वर्षा भी आ गई है। यहाँ कोई अपना रक्षक नही दीख पडता न तो समीप मे कोई चट्टान या वृक्ष ही दिखाई देते हैं कि अपनी रक्षा कर सकू ॥१६ १७॥ इस प्रकार वह व्याध अपने मन मे भिन्न भिन्न प्रकार से सोच ही रहा था कि इतने म उसे समीप ही वन मे वनस्पति के समान, नक्षत्रो के मध्य चद्रमा के समान पशुओ मे सिंह के समान आश्रमो मे गहस्थ के समान इद्रियो मे मन के समान प्राणियो का रक्षक एक वक्ष दिखाई पडा ॥१८ १९॥ शाखाओ और पत्तो से सुशोभित शुभ्र उस उत्तम वृक्ष के नीचे आकर वह बैठ गया। उस शिकारी के वस्त्र भीग गये थे वह थर-थर काँप रहा था। वह सोच रहा था कि मेरे बच्चे और स्त्री जीवित रहेगे या नही। इसी बीच सूय भी अस्त हो गया ॥२० २१॥ उसी वृक्ष पर अपना (बसेरा) बनाकर एक कबूतर अपनी स्त्री पुत्र और पौत्रो के साथ रहता था। उस उत्तम वृक्ष पर वह सतुष्ट और

सुखेन निर्भयो भूत्वा सुतृप्तः प्रीत एव च। बहवो वत्सरा याता वसतस्तस्य पक्षिणः॥२३॥
पतिव्रता तस्य भार्या सुप्रीता तेन चैव हि। कोटरे तन्नगे श्रेष्ठे जलवाय्वग्निवर्जिते॥२४॥
भार्यापुत्रैः परिवृतः सर्वदाऽऽस्ते कपोतकः। तस्मिन्दिने दैववशात्कपोतश्च कपोतकी॥२५॥
भक्ष्यार्थं तु उभौ यातौ कपोतो नगमभ्यगात्। साऽपि दैववशात्पुन पञ्जरस्थैव वर्तते॥२६॥
गृहीता लुब्धकेनाथ जीवमानेव वर्तते। कपोतकोऽप्यपत्यानि मातृहीनान्युदीक्ष्य च॥२७॥
वर्षं च भीषणं प्राप्तमस्तं यातो दिवाकरः। स्वकोटरं तयाहीनमालोक्य विललाप सः॥२८॥
तां बद्धां पञ्जरस्थां वा न बुबोध कपोतराट्। अन्वारेभे कपोतो वै प्रियाया गुणकीर्तनम्॥२९॥
नाद्याप्यायाति कल्याणी मम हर्षविवर्धिनी। मम धर्मस्य जननी मम देहस्य चेश्वरी॥३०॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां सैव नित्यं सहायिनी। तुष्टे हसन्ती रुष्टे च मम दुःखप्रमार्जनी॥३१॥
सखी मन्त्रेषु सा नित्यं मम वाक्यरता सदा। नाद्याप्यायाति कल्याणी संप्रयातेऽपि भास्करे॥३२॥
न जानाति व्रतं मन्त्रं दैवं धर्मार्थमेव च। पतिव्रता पतिप्राणा पतिमन्त्रा पतिप्रिया॥३३॥
नाद्याप्यायाति कल्याणी किं करोमि क्व यामि वा। किं मे गृहं काननं च तया हीनं हि दृश्यते॥३४॥
तया युक्तं श्रिया मुक्तं भीषणं वाऽपि शोभनम्। नाद्याप्यायाति मे कान्ता यया गृहमुदीरितम्॥३५॥

प्रसन्न पक्षी निर्भय होकर सुखपूर्वक रहता था। इस प्रकार उस वृक्ष पर रहते हुये उस पक्षी के बहुत वर्ष बीत गये थे ॥२२-२३॥ उसकी पतिव्रता भार्या भी उससे अत्यन्त प्रसन्न रहती थी। उस श्रेष्ठ वृक्षके कोटर (खोडरा) म जहाँ अग्नि-जल और वायुका भय नहीं था—वह बेचारा कबूतर भार्या और पुत्रके साथ सर्वदा निवास करत था ॥२४½॥ दैववश उसी दिन कपोत और कपोती दोनो भोजन की खोज म बाहर गये हुए थे। कपोत तो उस वृक्ष पर पुन लौट आया। पुत्र! *दैवयोग से वह कपोती भी उस शिकारी के पिंजरे मे ही थी॥२५-२६॥* यद्यपि व्याध ने उसको पकड लिया था परन्तु वह अभी जीवित थी। बेचारा कपोत अपने मातृहीन बच्चा को देखकर और यह देखकर कि इतनी भीषण वर्षा हो रही है, सूर्य भी डूब गया है, कोटर मेरी कपोती से शून्य है, विलाप करने लगा॥२७-२८॥ उस कपोतराज ने नहीं जाना कि कपोती यहीं पिंजडे मे बधी पडी है। वह अपनी प्रिया की बडाई इस प्रकार करने लगा॥२९॥ वह कल्याणी मेरे आनन्द को बढाने वाली मेरे धर्म की जननी और मेरे शरीर की स्वामिनी अब तक नहीं आ रही है। वह मेरे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष म सर्वदा सहायता करने वाली रही है। मेरे प्रसन्न रहने पर वह स्वय प्रसन्न रहती थी और मेरे दुःख के समय सात्वना देकर दुःख का दूर कर देती थी॥३०-३१॥ *आवश्यक परामर्श के समय वह सखी के समान थी। वह सर्वदा मेरे कहने के अनुसार ही काम करती थी।* सूर्य डूब गया, परन्तु अब तक वह कल्याणी नहीं आई॥३२॥ वह कोई व्रत मन्त्र, दैव या धर्म के तत्त्व नहीं जानती है, वह तो केवल पतिव्रता है, पतिप्राणा है, पति की आज्ञाकारिणी और पतिप्रिया है वह कल्याणी अब तक नहीं आ रही है। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? उसके बिना आज यह मेरा घर और कानन क्या सूना दिखाई दे रहा है॥३३-३४॥ उसके साथ रहने पर मैं सकट काल अथवा सुख के क्षणा म सर्वदा श्रीसम्पन्न रहा। ऐसी मेरी भार्या नहीं आ रही है, जिसके रहने से ही गृह गृह कहा गया है (गृहिणी गृहमुच्यते) ॥३५॥ उसके बिना मैं जीवित नहीं रहूँगा, अपने इस प्रिय शरीर को छोड़ दूँगा। परन्तु मेरे ये बच्चे क्या करेंगे, कैसे रहेंगे, पुन मैं तो दोना रूपा म धर्म

विनाऽनया न जीविष्ये त्यजे वाऽपि प्रिया तनुम्। किं कुर्वन्तु त्वपत्यानि लुप्तधर्मस्त्वहं पुन ॥३६॥
एव विलपतस्तस्य भर्तुर्वाक्य निशम्य सा। पञ्जरस्थैव सा वाक्य भर्तारमिदमब्रवीत्॥३७॥

कपोतवयुवाच

अत्राहमस्मि बद्धैव विवशाऽस्मि खगोत्तम। आनीताऽह लुब्धकेन बद्धा पाशैर्महामते॥३८॥
धन्याऽस्म्यनुगृहीताऽस्मि पतिर्वदति गुणान्मम। सतो वाऽप्यसतो वाऽपि कृतार्थाऽह न सशय ॥३९॥
तुष्टे भर्तरि नारीणा तुष्टा स्यु सर्वदेवता। विपर्यये तु नारीणामवश्य नाशमाप्नुयात्॥४०॥
त्व दैव त्व प्रभुर्मह्य त्व सुहृत्व परायणम्। त्व व्रत त्व पर ब्रह्म स्वर्गो मोक्षस्त्वमेव च॥४१॥
मा चिन्ता कुरु कल्याण धर्मे बुद्धि स्थिरा कुरु। त्वत्प्रसादाच्च भुक्ता हि भोगाश्च विविधा मया॥४२॥
अल खेदेन मज्जेन धर्मे बुद्धि कुरु स्थिराम् ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा प्रियावाक्यमुत्ततार नगोत्तमात्। यत्र सा पञ्जरस्था तु कपोती वर्तते त्वर (द्रुत)म्॥४४॥
तामागत्य प्रिया दृष्ट्वा मृतवच्चापि लुब्धकम्। मोचयामीति तामाह निश्चेष्टो लुब्धकोऽधुना॥४५॥
मा मुञ्चस्व महाभाग ज्ञात्वा सबन्धमस्थिरम्। लुब्धाना खेचरा ह्यन्न जीवो जीवस्य चाशनम्॥४६॥
नापराध स्मराम्यस्य धर्मबुद्धि स्थिरा कुरु। गुरुरग्निर्द्विजातीना वर्णाना ब्राह्मणो गुरु॥४७॥

छोड रहा हू। ३६॥ इस प्रकार विलाप करते हुए अपने पति की बात सुनकर उस कपोती ने पिंजरे से ही अपने पति स य शब्द कहे॥३७॥

कपोती ने दहा—खगोत्तम! मैं यहीं बधी हुई हूँ विवश हूँ। महामति! व्याध पाश से बाँधकर मुझको यहा ले आया है। म धन्य हू अनुगृहीत हू कि मेरे रहते या न रहते हुए भी आप मेरे गुणो का वणन कर रहे हैं। इसलिये निश्चय ही म कृताथ हो गई। पति के प्रसन्न रहने पर नारी के ऊपर सब देवता प्रसन्न रहते है अन्यथा नारियो का निश्चय ही नाश हाता है। तुम मेरे देवता हो मेरे लिये तुम ईश्वर हो तुम सुहृद हो मेरे एकमात्र रक्षक हो तुम्हा व्रत हो परब्रह्म तुम्ही हो मेरे लिय मोक्ष अथवा स्वग भी तुम्ही हो। कल्याण! तुम चिन्ता मत करो, धम म अपनी बुद्धि स्थिर करो। तुम्हारे अनुग्रह से मैंने विविध भोगो को भोगा है। यह खेद व्यथ है। इस प्रकार चिन्तामग्न होना उचित नही। तुम धम (कत्तव्य) म अपनी बुद्धि (आस्था) स्थिर करो॥३८ ४३॥

ब्रह्मा बोल—पत्नी की इन बातो को सुनकर वह वृक्ष से उतर आया और जहाँ उसकी प जरबद्ध कपोती थी वहाँ शीघ्र ही चला गया। प्रिया के समीप जाकर अपनी प्रिया को साथ ही मत की भाति अचत व्याध को देखकर उसने अपनी प्रिया से कहा कि अभी तुमको छुडाता हू। इस समय शिकारी चेतना-शून्य सा हो रहा है॥४४ ४५॥ यह सुनकर कपोती न कहा कि महाभाग! पतिपत्नी के सम्बन्ध को अस्थिर (थोड समय का) समयकर मुझ मत छुडाओ। लुब्धको के लिये पक्षी ही अन्न (भोजन) है जीव ही जीव का भोजन है॥४६॥ इसमे इसका मैं कुछ भी अपराध नही समय रही हू। अपनी धार्मिक भावना को दढ करो। ब्राह्मणो के गुरु अग्नि और इतर वर्णों के गुरु ब्राह्मण हैं। स्त्रियो के गुरु पति ही हैं परन्तु अतिथि सब के गुरु माने गये हैं॥४७३॥ जो घर पर आये अतिथि

पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः। अभ्यागतमनुप्राप्तं वचनैस्तोषयन्ति ये॥४८॥
तेषां वागीश्वरी देवी तृप्ता भवति निश्चितम्। तस्यान्नस्य प्रदानेन शक्रस्तृप्तिमवाप्नुयात्॥४९॥
पितरः पादशौचेन अन्नाद्येन प्रजापतिः। तस्योपचाराद्वै लक्ष्मीर्विष्णुना प्रीतिमाप्नुयात्॥५०॥
शयने सर्वदेवास्तु तस्मात्पूज्यतमोऽतिथिः। अभ्यागतमनुश्रान्तं सूर्योढं गृहमागतम्॥
तं विद्याद्देवरूपेण सर्वक्रतुफलो ह्यसौ ॥५१॥

अभ्यागतं श्रान्तमनुव्रजन्ति, देवाश्च सर्वे पितरोऽग्नयश्च।
तस्मिन्हि तुष्टे मुदमाप्नुवन्ति, गते निराशेऽपि च ते निराशाः ॥५२॥

तस्मात्सर्वात्मना कान्त दुःखं त्यक्त्वा शमं व्रज। कृत्वा तिष्ठ शुभां बुद्धिं धर्मकृत्यं समाचर॥५३॥
उपकारोऽपकारश्च प्रवराविति संमतौ। उपकारिषु सर्वोऽपि करोत्युपकृतिं पुनः॥५४॥
अपकारिषु यः साधु पुण्यभाक्स उदाहृतः ॥५५॥

कपोत उवाच

आवयोरनुरूपं च त्वयोक्तं साधु मन्यसे। किंतु वक्तव्यमप्यस्ति तच्छृणुष्व वरानने॥५६॥
सहस्रं भरते कश्चिच्छतमन्यो दशापरः। आत्मानं च सुखेनान्यो वयं कष्टोदरंभराः॥५७॥
गर्तधान्यधनाः केचित्कुशूलधनिनोऽपरे। घटक्षिप्तधनाः केचिच्चञ्चुक्षिप्तधना वयम्॥५८॥
पूजयामि कथं श्रान्तमभ्यागतमिमं शुभे ॥५९॥

को अपनी मधुर वाणी से सन्तुष्ट करते हैं उन पर वागीश्वरी देवी निश्चय ही प्रसन्न होती है॥४८॥ उसको अन्न देने से स्वयं इन्द्र तृप्त होते हैं, पैर धोने से पितर और अन्न भोजन कराने से प्रजापति (ब्रह्मा) तृप्त होते हैं। उसकी सेवा करने से विष्णु सहित लक्ष्मी प्रसन्न होती हैं॥४९-५०॥ शयन कराने से सब देवता प्रसन्न होते हैं। इसलिये अतिथि सबसे पूज्य है। सूर्यास्त के समय थका माँदा अतिथि यदि घर आये तो उसको देवरूप समझना चाहिये, क्योंकि वह सब यज्ञों के फल के रूप में वहाँ आता है॥५१॥ थके अतिथि के पीछे-पीछे सब देवता पितर और अग्नि चलते हैं। उसके तृप्त हो जाने पर वे भी आनन्दित होते हैं और अतिथि के निराश होने पर वे भी निराश हो जाते हैं॥५२॥ इसलिये कान्त! सब प्रकार से दुःख का परित्याग कर आप शान्त हो जाएँ अपनी बुद्धि को निर्मल बना कर धर्मकार्य करें॥५३॥ उपकार और अपकार दोनों श्रेष्ठ माने गये हैं। उपकार करने वाले के प्रति सभी उपकार करते हैं परन्तु अपकार करने वाले के प्रति जो उपकार करता है वही पुण्य का अधिकारी कहा गया है॥५४-५५॥

कपोत ने कहा—तुमने तो दोनों के अनुरूप ही कहा है। मैं इसको उचित मानता हूँ। किन्तु सुमुखि! मेरी भी कथन सुनो! कोई हजारों का भरण-पोषण करता है, कोई सौ का अन्य कोई दस का और कोई सुख-पूर्वक अपना भी भरण-पोषण कर लेता है, परन्तु हम लोग कष्ट से अपनी उदर-पूर्ति कर पाते हैं। कोई गर्त (तहखाने) भर धान के धनी होते हैं, कोई कुशूल (बखार) परिमित धान के तो कोई घडे भर धान के ही धनी होते हैं, किन्तु हम तो केवल चोंच भर धान के ही धनी हैं। शुभे! इस अवस्था में मैं किस प्रकार इस थके हुए अतिथि की पूजा करूँ॥५६-५९॥

कपोत्युवाच

अग्निरापः शुभा वाणी तृणकाष्ठादिकं च यत्। एतदभ्यर्थिने देयं शीतार्तो लुब्धकस्त्वयम्॥६०॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा प्रियावाक्यं वृक्षमारुह्य पक्षिराट्। आलोकयामास तदा वह्निं दूरं ददर्श ह॥६१॥
स तु गत्वा वह्निदेशं चञ्चुनोल्मुकमाहरत्। पुरोऽग्निं ज्वालयामास लुब्धकस्य कपोतकः॥६२॥
शुष्ककाष्ठानि पर्णानि तृणानि च पुनः पुनः। अग्नौ निक्षेपयामास निशीथे स कपोतराट्॥६३॥
तमग्निं ज्वलितं दृष्ट्वा लुब्धकः शीतदुःखितः। अवशानि स्वकाङ्गानि प्रताप्य सुखमाप्तवान्॥६४॥
क्षुधाग्निना दह्यमानं व्याधं दृष्ट्वा कपोतकी। मा मुञ्चस्व महाभाग इति भर्तारमब्रवीत्॥६५॥
स्वशरीरेण दुःखार्तं लुब्धकं प्रीणयामि तम्। इष्टातिथीनां ये लोकास्तांस्त्वं प्राप्नुहि सुव्रत॥६६॥

कपोत उवाच

मयि तिष्ठति नैवायं तव धर्मो विधीयते। इष्टातिथिर्भवामीह अनुजानीहि मां शुभे॥६७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वाऽग्निं त्रिरावर्त्य स्मरन्देवं चतुर्भुजम्। विश्वात्मकं महाविष्णुं शरण्यं भक्तवत्सलम्॥६८॥
यथासुखं जुषस्वेति यदग्निं तथाऽऽविशत्। तं दृष्ट्वाऽग्नौ क्षिप्तजीवं लुब्धको वाक्यमब्रवीत्॥६९॥

कपोती ने कहा—अग्नि, जल, शुभवाणी, तृण, काष्ठ आदि जो कुछ हो, वही याचक को दे देना चाहिये। यह व्याध तो शीत से दुःख पा रहा है॥६०॥

ब्रह्मा ने कहा—प्रिया की इन बातो को सुनकर पक्षिराज कपोत वृक्ष पर चढ गया। उसने चारो ओर देखा तो दूर अग्नि दिखाई पडा। वह उस अग्नि वाले स्थान पर गया और अपनी चोंच से जलती लकडी ले आया। कबूतर ने शिकारी के आगे अग्नि जला दिया। उस अधेरी रात मे वह कपोतराज सूखे काठ, पत्तियाँ, और तिनके ला-लाकर बार-बार उसमे छोडने लगा। अग्नि को इस प्रकार जलता हुआ देखकर शीत से दुःखी वह शिकारी ठिठुरे हुये अपने अगो को आग से सेंक कर सुखी हुआ। भूख की ज्वाला से जलते हुए उस व्याध को देखकर कपोती ने अपने स्वामी से कहा—महाभाग! मुझको मत छुडाओ, मत छुडाओ। यह मैं अपने शरीर से दुःखी शिकारी की भूख मिटाकर उसे प्रसन्न करूँगी। सुव्रत! तुम (मेरी इस सेवा से) अतिथि-पूजको के जो लोक हैं, उन्हें प्राप्त करो॥६१-६६॥

कपोत ने कहा—मेरे रहते तुम्हारा यह धर्म नही है। मैं स्वय अतिथि का इष्ट-साधक बनूँगा। शुभे! मुझको आज्ञा दो॥६७॥

ब्रह्मा ने कहा—यह कहकर अग्नि की तीन बार प्रदक्षिणा कर विश्वरूप, शरण्य, भक्तरक्षक, चतुर्भुज भगवान् महाविष्णु का स्मरण करता हुआ 'तुम सुखपूर्वक भोजन करो' यह कहकर अग्नि मे घुस गया। इस प्रकार कबूतर को अपने को अग्नि मे फेंकता हुआ देखकर शिकारी ने यह अगले वाक्य कहे॥६८-६९॥

लुब्धक उवाच

अहो मानुषदेहस्य धिग्जीवितमिद मम। यदिदं पक्षिराजेन मदर्थे साहसं कृतम् ॥७०॥

ब्रह्मोवाच

एवं ब्रुवन्तं तं लुब्धं पक्षिणी वाक्यमब्रवीत् ॥७१॥

कपोत्युवाच

मां त्वं मुञ्च महाभाग दूरं यात्येष मे पति· ॥७२॥

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पञ्जरस्था कपोतकीम्। लुब्धको मोचयामास तरसा भीतवत्तदा ॥७३॥
साऽपि प्रदक्षिणं कृत्वा पतिमग्निं तदा जगौ ॥७४॥

कपोत्युवाच

स्त्रीणामयं परो धर्मो यद्भर्तुरनुवेशनम्। वेदे च विहितो मार्ग सर्वलोकेषु पूजित ॥७५॥
व्यालग्राही यथा व्याल बिलादुद्धरते बलात्। एव त्वनुगता नारी सह भर्त्रा दिव व्रजेत् ॥७६॥
तिस्र. कोटयोऽर्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे। तावत्काल वसेत्स्वर्गे भर्तार याऽनुगच्छति ॥७७॥
नमस्कृत्वा भुवं देवान्गङ्गा चापि वनस्पतीन्। आश्वास्य तान्यपत्यानि लुब्धक वाक्यमब्रवीत् ॥७८॥

व्याध ने कहा—अहा ! मेरे मानव शरीर के इस जीवन को धिक्कार है। क्योंकि आज पक्षिराज ने मेरे लिये अपूर्व साहस किया है ॥७०॥

ब्रह्मा ने कहा—कपोती ने इस प्रकार उसको कहता हुआ देखकर यह वाक्य कहा ॥७१॥

कपोती ने कहा—महाभाग ! तुम मुझको छोड दो देखो मेरा यह पति मुझसे दूर जा रहा है ॥७२॥

ब्रह्मा ने कहा—कपोती की उन बातो को सुनकर वह शिकारी कुछ डर-सा गया और उसने बँधी हुई कपोती को शीघ्र छोड दिया। वह भी अपने पति और अग्नि की परिक्रमा कर आगे कही हुई बातें कहने लगी ॥७३-७४॥

कपोती ने कहा—'*भर्ता के साथ सहगमन ही स्त्रियो का उत्तम धर्म है। यही मार्ग वेदो म प्रतिपादित* है, और सब लोको म यह श्रेष्ठ माना गया है। जिस प्रकार सँपेरा साँप को बिल से बलपूर्वक बाहर खीच लाता है उसी प्रकार पति के साथ अनुगत (सती होनेवाली) नारी पति को लेकर स्वर्ग चली जाती है। जो अपन पति के साथ सती होती है, *वह मनुष्य के शरीर म जितने तीन करोड पचास लाख के लगभग रोयें हैं उतने वर्ष तक स्वर्ग म* निवास करती है।' इस प्रकार सहगमन की महिमा कह कर कपोती ने पृथ्वी, देवगण गगा और वनस्पतियो को नमस्कार किया, अपने बच्चो को ढाढस बँधाया और पुन शिकारी से कहा ॥७८॥

कपोत्युवाच

त्वत्प्रसादान्महाभाग उपपन्नं ममेदृशम्। अपत्यानां क्षमस्वेह भर्त्रा यामि त्रिविष्टपम् ॥७९॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा पक्षिणी साध्वी प्रविवेश हुताशनम्। प्रविष्टायां हुतवहे जयशब्दो व्यवर्तत ॥८०॥
गगने सूर्यसंकाशं विमानमतिशोभनम्। तदाऽऽरूढौ सुरनिभौ दंपती ददृशे ततः ॥८१॥
हर्षेण प्रोचतुरुभौ लुब्धकं विस्मयान्वितम् ॥८२॥

दंपती ऊचतुः

गच्छावस्त्रिदशस्थानमापृष्टोऽसि महामते। आवयोः स्वर्गसोपानमतिथिस्त्वं नमोऽस्तु ते ॥८३॥

ब्रह्मोवाच

विमानवरमारूढौ तौ दृष्ट्वा लुब्धकोऽपि सः। सधनुः पञ्जरं त्यक्त्वा कृताञ्जलिरभाषत ॥८४॥

लुब्धक उवाच

न त्यक्तव्यो महाभागौ देयं किंचिदजानते। अहमत्रातिथिर्मान्यो निष्कृतिं वक्तुमर्हथः ॥८५॥

दंपती ऊचतुः

गौतमीं गच्छ भद्रं ते तस्यां पापं निवेदय। तत्रैवाऽऽप्लवनात्पक्षं सर्वपापैर्विमोक्ष्यसे ॥८६॥
मुक्तपापः पुनस्तत्र गङ्गायामवगाहने। अश्वमेधफलं पुण्यं प्राप्य पुण्यो भविष्यसि ॥८७॥

कपोती ने कहा—महाभाग ! तुम्हारी कृपा से मुझे यह सुअवसर प्राप्त हुआ। मेरे बच्चो को क्षमा करना अर्थात् बच्चो पर कृपा करना। मैं अब स्वामी के साथ स्वर्ग जा रही हूँ ॥७९॥

ब्रह्मा ने कहा—यह कहकर वह साध्वी कपोती अग्नि म प्रवेश कर गई। उसके अग्नि मे प्रवेश करते ही जयध्वनि हुई। आकाश मे अतिमनोहर सूर्य के समान चमकीला विमान और उस पर बैठ हुये वे पक्षी के जोडे देवता के समान दिखाई पडे। आश्चय म डूबे हुये उस व्याध से उन दोनो ने आनन्दपूवक कहा ॥८०-८२॥

दंपती ने कहा—हम दोनो देवलोक को जा रहे हैं। तुम से विदा चाहते है। महामति ! तुम हम लोगो के स्वग की सीढी के समान अतिथि हो अर्थात् तुम्हारे अतिथि होने से ही स्वर्ग मिला है। तुमको नमस्कार है ॥८३॥

ब्रह्मा बोले—उन दोनो को उत्तम देव विमान पर आरूढ देखकर वह शिकारी भी धनुष और पिंजरा फेंककर हाथ जोड कर बोला ॥८४॥

व्याध ने कहा—हे महाभाग ! मुझ अज्ञानी को इस प्रकार छोडना उचित नही। इस अनजान को भी कुछ ज्ञान देते जाइये। मैं आज मान्य अतिथि हूँ। इसलिये मेरे उद्धार का माग बताने की कृपा कीजिये ॥८५॥

दम्पती ने कहा—गौतमी नदी के तट पर जाओ। उनसे अपने पापो का निवेदन करो। तुम्हारा कल्याण होगा। वही एक पक्ष तक स्नान करने से तुम सब पापो से छूट जाओगे। पुन पापमुक्त होकर उस गगा मे स्नान

सरिद्वरायां गौतम्यां ब्रह्मविष्णवीशसंभुवि। पुनराप्लवनादेव त्यक्त्वा देहं मलीमसम्॥८८॥
विमानवरमारूढः स्वर्गं गन्ताऽस्यसंशयम् ॥८९॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं ताभ्यां तथा चक्रे स लुब्धकः। विमानवरमारूढो दिव्यरूपधरोऽभवत्॥९०॥
दिव्यमाल्याम्बरधरः पूज्यमानोऽप्सरोगणैः। कपोतश्च कपोती च तृतीयो लुब्धकस्तथा॥
गङ्गायाश्च प्रभावेण सर्वे ये दिवमाक्रमन् ॥९१॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं कापोतमिति विश्रुतम्। तत्र स्नानं च दानं च पितृपूजनमेव च॥९२॥
जपयज्ञादिकं कर्म तदानन्त्याय कल्पते ॥९३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कपोततीर्थवर्णनं नामाशीतितमोऽध्यायः॥८०॥
गौतमीमाहात्म्ये एकादशोऽध्यायः॥११॥

अथैकाशीतितमोऽध्यायः

कुमारतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कार्तिकेयं परं तीर्थं कौमारमिति विश्रुतम्। यन्नामश्रवणादेव कुलवान्रूपवान्भवेत्॥१॥

करने से अश्वमेध का फल पाकर पवित्र हो जाओगे। ब्रह्मा, विष्णु और शंकर द्वारा प्रकट की हुई उस उत्तम सरिता में पुनः स्नान करने से ही अपने पापमय शरीर को छोड़कर उत्तम विमान पर चढ़कर निःसन्देह स्वर्ग चले जाओगे॥८६-८९॥

ब्रह्मा ने कहा—उन दोनों से ऐसी बात सुनकर व्याध ने वैसा ही किया। जिसके फलस्वरूप वह दिव्यदेहधारी होकर उत्तम विमान पर आरूढ़ हो गया, उत्तम दिव्य माला और वस्त्रों से सुशोभित हो गया और अप्सराएँ उसकी पूजा करने लगीं। इस प्रकार वे कपोत, कपोती तथा तीसरा व्याध ये तीनों गौतमी गंगा के प्रभाव से स्वर्गलोक को चले गये। तब से वह तीर्थ कापोत तीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया। उस तीर्थ में स्नान, दान, पितृपूजन और जप, यज्ञ आदि कर्म करने से अक्षय और अनन्त फल प्राप्त होते हैं॥९०-९३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में कपोततीर्थ वर्णन नामक अस्सीवाँ अध्याय समाप्त॥८०॥

अध्याय ८१

कुमारतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—कार्तिकेय नाम का एक उत्तम तीर्थ है, जिसकी प्रसिद्धि कौमार तीर्थ नाम से भी है। उस

निहते तारके दैत्ये स्वस्थे जाते निविष्टपे। कार्तिकेयं सुतं ज्येष्ठं प्रीत्या प्रोवाच पार्वती॥२॥
यथासुखं भुङ्क्ष्व भोगांस्त्रैलोक्ये मनसः प्रियान्। ममाऽज्ञया प्रीतमनाः पितुश्चैव प्रसादत.॥३॥
एवमुक्त' स वै माता विशाखो देवतास्त्रियः(?)। यथासुख बलाद्रेमे देवपत्न्योऽपि रेमिरे॥४॥
ततः संभुज्यमानासु देवपत्नीषु नारद। नाशक्नुवन्वारयितु कार्तिकेयं दिवौकस.॥५॥
ततो निवेदयामासु' पार्वत्यै पुत्रकर्म तत्। असकृद्वार्यमाणोऽपि मात्रा देवै स शक्तिधृक्॥६॥
नैवासावकरोद्वाक्यं स्त्रीष्वासक्तस्तु षण्मुख.। अभिशापभयाद्भीता पार्वती पर्यचिन्तयत्॥७॥
पुत्रस्नेहात्तथैवेशा देवानां कार्यसिद्धये। देवपत्न्यश्चिर रक्ष्या इति मत्वा पुनः पुनः॥८॥
यस्यां तु रमते स्कन्दः पार्वती त्वपि तादृशी। तद्रूपमात्मनः कृत्वा वर्तयामास पार्वती॥९॥
इन्द्रस्य वरुणस्यापि भार्यामाहूय षण्मुखः। यावत्पश्यति तस्यां तु मातृरूपमपश्यत॥१०॥
तामपास्य नमस्याथ पुनरन्यामथाऽऽह्वयत्। तस्यां तु मातृरूप स प्रेक्ष्य लज्जामुपेयिवान्॥११॥
एवं बह्वीषु तद्रूपं दृष्ट्वा मातृमयं जगत्। इति संचिन्त्य गाङ्गेयो वैराग्यमगमत्तदा॥१२॥
स तु मातृकृतं ज्ञात्वा प्रवृत्तस्य निवर्तनम्। निवार्यश्चेदहं भोगात्कि तु पूर्वं प्रवर्तित'॥१३॥
तस्मान्मातृकृतं सर्वं मम हास्यास्पदं त्विति। लज्जया परया युक्तो गौतमीमगमत्तदा॥१४॥

तीर्थ का स्मरण करने मात्र से मनुष्य रूपवान् और पुत्रपौत्रादि से सपन्न हो जाता है॥१॥ जब तारक नामक असुर के मारे जाने पर स्वर्ग मे शान्ति स्थापित हो गई तब युद्ध मे थके अपने ज्येष्ठ प्रिय पुत्र कार्तिकेय से पार्वती ने कहा॥२॥ 'तुम मेरी आज्ञा और पिता की प्रसन्नता से इस त्रिभुवन मे प्रसन्नतापूर्वक प्रिय भोगो का यथेच्छ उपभोग करो'॥३॥ माता से इस प्रकार आज्ञा पा जाने पर कार्तिकेय वलपूर्वक देव स्त्रियो के साथ स्वेच्छापूर्वक विहार करने लगे देवस्त्रियाँ भी उनके साथ विहार करने लगी॥४॥ नारद! तदनन्तर इस प्रकार देवपत्नियो के साथ विहार करनेवाले कार्तिकेय को देवता किसी प्रकार से भी रोक न सके॥५॥ विवश हो उन्होने माता पार्वती से उनके पुत्र का यह अनुचित कर्म कहा। माता और देवताओ से वार-वार मना किये जाने पर भी वे शक्तिशाली षण्मुख स्त्रीजनो मे अधिक आसक्त हो जाने के कारण अपने को उस कार्य से विरत न कर सके॥६-७॥ तब अभिशाप (निन्दा) के भय से डरकर माता पार्वती सोचने लगी।—'पुत्र-स्नेह तथा देवा को कार्य सिद्धि के लिये देवपत्नियाँ भी चिररक्षणीय हैं' यह वार-वार सोचकर अन्त मे जिस स्त्री से कार्तिकेय विहार करते थे उसी के समान अपना रूप बनाकर पावती रहने लगी॥७ ९॥ इधर इन्द्र और वरुण की स्त्रियो को समीप बुलाकर स्कन्द ने ज्यो ही देखा त्या ही उनको उनमे मातृत्व का आभास मिला॥१०॥ यह देखकर वे अत्यन्त लज्जित हो गये। उनको हटाकर और प्रणाम कर पुन दूसरी को बुलाया। उसमे भी मातृरूप देखकर वे और भी लज्जित हुये॥११॥ उन बहुत सी देवभार्याओ मे मातृत्व का दर्शन करने से उनको यह सारा ससार ही मातृमय है यह ज्ञान हो जाने से वैराग्य हो गया॥१२॥ उन्होने 'यह सारा रहस्य कामासक्त मुझको निवृत्ति की ओर ले जाने के लिये ही माता द्वारा किया गया है यह जान लिया। वे सोचने लगे कि यदि मुझको भोगो से निवृत्त करना था तो क्यो पहले भोग की ओर मुझे झुकाया गया? इसलिए माता द्वारा किया गया यह सब कुछ मेरे लिए हास्यास्पद है। यह सोचकर अत्यन्त लज्जित होकर गौतमी

इयं च मातृरूपा मे शृणोतु मम भाषितम्। इतः स्त्रीनामधेयं यन्मम मातृसमं मतम्॥१५॥
एवं ज्ञात्वा लोकनाथः पार्वत्या सह शंकरः। पुत्रं निवारयामास वृत्तमित्यब्रवीद्गुरुः॥१६॥
ततः सुरपतिः प्रीत. किं ददामीति चिन्तयन्। कृताञ्जलिपुटः स्कन्दः पितरं पुनरब्रवीत्॥१७॥

स्कन्द उवाच

सेनापतिः सुरपतिस्तव पुत्रोऽहमित्यपि। अलमेतेन देवेश किं वरैः सुरपूजित॥१८॥
अथवा दातुकामोऽसि लोकानां हितकाम्यया। याचेऽहं नाऽऽत्मना देव तदनुज्ञातुमर्हसि॥१९॥
महापातकिनः केचिद्गुरुदाराभिगामिनः। अत्राऽऽप्लवनमात्रेण धौतपापा भवन्तु ते॥२०॥
आप्नुवन्तूत्तमा जाति तिर्यञ्चोऽपि सुरेश्वर। कुरूपो रूपसंपत्तिमत्र स्नानादवाप्नुयात्॥२१॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति त शंभुः प्रत्यनन्दत्सुतेरितम्। ततः प्रभृति तत्तीर्थं कार्तिकेयमिति श्रुतम्॥
तत्र स्नानं च दान च सर्वक्रतुफलप्रदम् ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कुमारतीर्थवर्णनं नामैकाशीतित-
मोऽध्यायः॥८१॥
गौतमीमाहात्म्ये द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

की ओर चले गये॥१३-१४॥ वहाँ जाकर गौतमी को सम्बोधित करते हुये कहा कि यह गौतमी मेरी माता के समान है, अत हे माता! मेरी प्रतिज्ञा सुनो 'आज से स्त्री मात्र का नाम मेरे लिये मातृनाम के तुल्य होगा, ऐसा मेरा विचार है'॥१५॥ पार्वती के सहित लोकपति शंकर ने जब इस प्रकार की घटना सुनी तब अपने विरागीपुत्र को वहाँ से लौटाने का प्रयत्न किया और कहा कि जो कुछ होना था सो हो गया, अब चलो। पुन: सुर-स्वामी शंकर प्रसन्न होकर सोचने लगे कि स्कन्द को क्या दिया जाय। इधर स्कन्द हाथ जोडकर पिता से बोले॥१६-१७॥

स्कन्द ने कहा—देवेन्द्र! देव-पूज्य! मैं सेनापति (देव-सेनापति) हूँ, सुर और तुम्हारा पुत्र भी हूँ, इसलिये मुझे वर देने से क्या प्रयोजन। अथवा यदि तुम वर देना ही चाहते हो तो मैं अपने लिये नही प्रत्युत लोकहित के लिये याचना करता हूँ, सो हे देव! मुझे प्रदान कीजिये। जो कोई महापातकी हो, चाहे वे गुरुपत्नीगामी ही क्यो न हों, व सभी यहाँ गौतमी मे स्नान मात्र से पाप मुक्त हो जायें। सुरेश्वर! यहाँ के स्नान से तिर्यग्योनि मे उत्पन्न भी उत्तम योनि को प्राप्त करें, और कुरूपजन रूप-सम्पदा को प्राप्त करें॥१८-२१॥

ब्रह्मा ने कहा—शम्भु ने 'ऐसा ही हो' यह कहकर अपने पुत्र की कही हुई बातो का समर्थन कर उसको प्रसन्न किया। तभी से वह तीर्थ कार्तिकेय नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस तीर्थ मे स्नान करने और दान देने से समस्त यज्ञो का फल प्राप्त होता है॥२२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे कुमारतीर्थ-वर्णन नामक इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त॥८१॥

अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः

कृत्तिकातीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यत्स्यात कृत्तिकातीर्थं कार्तिकेयादनन्तरम्। तस्य श्रवणमात्रेण सोमपानफल लभेत् ॥१॥
पुरा तारकनाशाय भवरेतोऽपिबत्कवि । रेतोगर्भं कवि दृष्ट्वा ऋषिपत्न्योऽस्पृह मुने ॥२॥
सप्तर्षीणामृतुस्नाता वर्जयित्वा त्वरुन्धतीम्। तासु गर्भ समभवत्पद्सु स्त्रीषु तदाऽग्नित ॥३॥
तप्यमानास्तु शोभिष्ठा (?) ऋतुस्नातास्तु ता मुने। किं कुर्म क्व नु गच्छाम किं कृत्वा सुकृत भवेत् ॥४॥
इत्युक्त्वा ता मिथो गङ्गा व्यग्रा गत्वा व्यपीडयन्। ताभ्यस्ते नि सृता गर्भा फेनरूपास्तदाऽम्भसि ॥५॥
अम्भसा त्वेकता प्राप्ता वायुना सर्व एव हि। एकरूपस्तदा ताभ्य षण्मुख समजायत ॥६॥
स्राविपित्वा तु तान्गर्भानृषिपत्न्यो गृहाययु। तासा विकृतरूपाणि दृष्ट्वा ते ऋषयोऽब्रुवन ॥७॥
गम्यता गम्यता शीघ्र स्वैरी वृत्तिर्न युज्यते। स्त्रीणामिति ततो वत्स निरस्ता पतिभिस्तु ता ॥८॥
ततो दु ख समाविष्टास्त्यक्ता स्वपतिभिश्च षट। ता दृष्ट्वा नारद प्राह कार्तिकेयो हरोद्भव ॥९॥

अध्याय ८२

कृत्तिकातीर्थ का वणन

ब्रह्मा न कहा—कार्तिकेय तीथ के बाद कृत्तिका नामक तीर्थ प्रसिद्ध है। उसके नाम सुनने मात्र से सोमपान का फल प्राप्त होता है ॥१॥ प्राचीन काल मे तारक के वध के लिये कवि (अग्नि) ने शकर का वीय पी लिया। मुने ! कवि को इस प्रकार शिववीय से युक्त देखकर ऋषिपत्नियो के मन मे इच्छा उत्पन्न हुई ॥२॥ उस समय अरुधती को छोड शेष सप्तर्षियो की पत्नियाँ ऋतु-स्नाता थी। उन छह स्त्रियो को इच्छामात्र से अग्नि के द्वारा गभ रह गया ॥३॥ मुनिनारद ! वे ऋतुस्नाता सु दर स्त्रियाँ यह देखकर अनुताप करने लगी सोचने लगी कि क्या करें हम कहाँ चले क्या करने से हमारा कल्याण होगा ॥४॥ इस प्रकार आपस मे विचार कर व्याकुल हो गगा के पास गइ। वहाँ जाकर अपने पेट को बलपूवक दबाने लगी। जिससे उन सबो का गभ फेन के रूप मे बाहर जल मे निकल पडा ॥५॥ वायु की प्ररणा से और जल के वेग से सभी एक मे मिल गये। तब वह मिलित गभ एक शरीर और छह मुखवाला हो गया ॥६॥ ऋषिपनियाँ भी गभ-स्राव के बाद अपने-अपने घर चली गयी। उनके विरूप मुख को देखकर उन ऋषियो ने कहा—॥६॥ 'जाओ तुम लोग यहाँ से शीघ्र जाओ। स्त्रियो के लिये स्वरी वृत्ति (पर पुरुष की कामना) उचित नही है। व स ! उसके बाद वे सभी स्त्रिया अपने पतियो से बहिष्कृत हो गइ ॥८॥ तब पतित्यक्ता वे छहो स्त्रिया अ यन्त दु खी हुइ। उनको इस प्रकार दु खी देखकर नारद ने कहा—शकर के पुत्र कार्तिकेय के पास जो

गाङ्गेयोऽग्निभवश्चेति विख्यातस्तारकान्तकः। तं यान्तु न चिरादेव प्रीतो भोगं प्रदास्यति॥१०॥
देवर्षेर्वचनादेव समभ्येत्य च षण्मुखम्। कृत्तिकाः स्वयमेवैतद्यथावृत्तं न्यवेदयन्॥११॥
ताभ्यो वाक्यं कृत्तिकाभ्यः कार्तिकेयोऽनुमन्य च। गौतमीं यान्तु सर्वाश्च स्नात्वाऽऽपूज्य महेश्वरम्॥१२॥
एष्यामि चाहं तत्रैव यास्यामि सुरमन्दिरम्। तथेत्युक्त्वा कृत्तिकाश्च स्नात्वा गङ्गां च गौतमीम्॥१३॥
देवेश्वरं च संपूज्य कार्तिकेयानुशासनात्। देवेश्वरप्रसादेन प्रययुः सुरमन्दिरम्॥१४॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं कृत्तिकातीर्थमुच्यते। कार्तिक्यां कृत्तिकायोगे तत्र यः स्नानमाचरेत्॥१५॥
सर्वक्रतुफलं प्राप्य राजा भवति धार्मिकः। तत्तीर्थस्मरणं वाऽपि य. करोति शृणोति च॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥१६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कृत्तिकातीर्थवर्णनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्याय.॥८२॥
गौतमीमाहात्म्ये त्रयोदशोध्याय ॥१३॥

अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः

दशाश्वमेधतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

दशाश्वमेधिकं तीर्थं तच्छृणुष्व महामुने। यस्य श्रवणमात्रेण हयमेधफलं लभेत्॥१॥

गागेय (गगा के पुत्र) अग्निभव (अग्नि से उत्पन्न) और तारकान्तक (तारक के वध करने वाले) नाम से प्रसिद्ध हैं, जाओ। वे शीघ्र ही प्रसन्न होकर मुक्ति के उपाय बतलायेंगे॥९-१०॥ देवर्षि नारद के कहने से षण्मुख स्कन्द के पास जाकर उन कृत्तिकाओं (ऋषि-पत्नियों ने) स्वयं जैसा हुआ था वैसा वह सुनाया। उन कृत्तिकाओं के मुख से इन बातों को सुनकर कार्तिकेय ने स्वयं विचार किया और कहा कि गौतमी नदी के पास आप सब जायें। वहाँ स्नान कर महेश्वर की पूजा करें। आप सबका उद्धार हो जायगा। मैं भी वहाँ आऊँगा और देवमन्दिर में चलूँगा॥११-१२½॥ कृत्तिकाओं ने भी 'ठीक है' यह कहकर गौतमी गगा में स्नान किया और कार्तिकेय के कथनानुसार महेश्वर की पूजा की। इस प्रकार देवेश्वर की कृपा से वे स्वर्ग को चली गईं॥१३-१४॥ उस समय से वह स्थान कृत्तिकातीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वहाँ जो कृत्तिका नक्षत्र से युक्त कार्तिकी पूर्णिमा को स्नान करता है, वह सब यज्ञों का फल प्राप्त करता है और परम धार्मिक राजा होता है। जो व्यक्ति उस तीर्थ का स्मरण करता है या वर्णन सुनता है, वह भी सब पापों से मुक्त होकर दीर्घायु प्राप्त करता है॥१५-१६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में कृत्तिकातीर्थ वर्णन नामक बयासीवाँ अध्याय समाप्त॥८२॥

अध्याय ८३

दशाश्वमेधतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—'महामुनि! अब दशाश्वमेधिक तीर्थ के विषय में सुनो, जिसके श्रवणमात्र से मनुष्य दस

विश्वकर्मसुतः श्रीमान्विश्वरूपो महाबलः। तस्यापि प्रथमः पुत्रस्तत्पुत्रो भौवनो विभुः॥२॥
पुरोधाः कश्यपस्तस्य सर्वज्ञानविशारदः। तमपृच्छन्महाबाहुर्भौवनः सार्वभौवन.॥३॥
यक्ष्येऽहं हयमेधैश्च युगपद्दशभिर्मुने। इत्यपृच्छद्‌गुरुं विप्र क्व यक्ष्यामि सुरानिति॥४॥
सोऽवदद्देवयजनं तत्र तत्र नृपोत्तम। यत्र यत्र द्विजश्रेष्ठाः प्रावर्तन्त महाक्रतून्॥५॥
तत्राभवन्नृषिगणा आर्त्विज्ये मखमण्डले। युगपद्दशमेधानि प्रवृत्तानि पुरोधसा॥६॥
पूर्णतां नाऽऽययुस्तानि दृष्ट्वा चिन्तापरो नृपः। विहाय देवयजनं पुनरन्यत्र तान्क्रतून्॥७॥
उपाक्रमत्तथा तत्र विघ्नदोषास्तमाययुः। दृष्ट्वाऽपूर्णांस्ततो यज्ञान्राजा गुरुमभाषत॥८॥

राजोवाच

देशदोषात्कालदोषान्मम दोषात्तवापि वा। पूर्णतां नाऽऽप्नुवन्ति स्म दशमेधानि वाजिन॥९॥

ब्रह्मोवाच

ततश्च दु:खितो राजा कश्यपेन पुरोधसा। गीष्पतेर्भ्रातरं ज्येष्ठं गत्वा संवर्तमूचतुः॥१०॥

कश्यपभौवनावूचतुः

भगवन्युगपत्कार्याण्यश्वमेधानि मानद। दश संपूर्णतां यान्ति तं देशं तं गुरुं वद॥११॥

अश्वमेध के फल को प्राप्त करता है॥१॥ महाबलवान् श्रीमान् विश्वरूप विश्वकर्मा का पुत्र था। उसके एक पुत्र था। उसके भी बलवान् भौवन नाम का एक पुत्र हुआ॥२॥ सब विद्याओं मे निपुण कश्यप जी उसके पुरोहित थे। उस महापराक्रमी, सार्वभौम (चक्रवर्ती) राजा भौवन ने उनसे पूछा—॥३॥ 'मुने! मैं एक ही साथ दस अश्वमेध यज्ञ करना चाहता हूँ।' फिर उसने ब्राह्मण गुरु से पूछा कि कहाँ मैं देवताओ का यजन करूँ॥४॥ कश्यपजी ने उन-उन स्थानो को—जहाँ-जहाँ द्विजवर्यों ने बडे-बडे यज्ञो को कराया था—यज्ञ करने के लिये बताया॥५॥ पुरोहित द्वारा एक साथ दस अश्वमेधयज्ञ प्रारम्भ करा दिये गये और उस यज्ञ-मण्डल मे ऋत्विक् का कार्य करने के लिये ऋषिगण नियुक्त भी कर दिये गये। परन्तु वे यज्ञ पूर्ण नही हुये। यह देखकर राजा चिन्तित हो गये। पुन वहाँ उन देव-यज्ञो को छोडकर अन्यत्र उन्ही दस यज्ञो को प्रारम्भ किया। वहाँ भी ज्योंही यज्ञ प्रारम्भ हुये, विघ्न और दोष उपस्थित हो गये। फिर यज्ञो को अपूर्ण देखकर राजा ने गुरु से कहा॥६-८॥

राजा ने कहा—देश दोष, समय दोष से, मेरे अथवा आपके दोष से ही मेरे ये दस अश्वमेध यज्ञ पूर्ण नही हो रहे हैं॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर राजा ने अत्यन्त दु खी होकर पुरोहित कश्यप के साथ बृहस्पति के बडे भाई संवर्त के पास जाकर कहा॥१०॥

कश्यप और भौवन ने कहा—भगवन्! प्रतिष्ठा देने वाले! दस अश्वमेध यज्ञ एक ही साथ करना चाहता हूँ। जहाँ और जिससे पूर्ण होंगे, उस स्थान और गुरु को बताइये॥११॥

ब्रह्मोवाच

ततो ध्यात्वा ऋषिश्रेष्ठः संवर्तो भौवनं तदा। अब्रवीद्गच्छ ब्रह्माणं गुरुं देशं वदिष्यति॥१२॥
भौवनोऽपि महाप्राज्ञः कश्यपेन महात्मना। आगत्य मामब्रवीच्च गुरुं देशादिकं च यत्॥१३॥
ततोऽहमब्रवं पुत्र भौवनं कश्यपं तथा। गौतमीं गच्छ राजेन्द्र स देशः क्रतुपुण्यवान्॥१४॥
अयमेव गुरुः श्रेष्ठः कश्यपो वेदपारगः। गुरोरस्य प्रसादेन गौतम्याश्च प्रसादतः॥१५॥
एकेन हयमेधेन तत्र स्नानेन वा पुनः। सेत्स्यन्ति तत्र यज्ञाश्च दशमेधानि वाजिनः॥१६॥
तच्छ्रुत्वा भौवनो राजा गौतमीतीरमभ्यगात्। कश्यपेन सहायेन हयमेधाय दीक्षितः॥१७॥
ततः प्रवृत्ते यज्ञेशे हयमेधे महाक्रतौ। संपूर्णे तु तदा राजा पृथिवीं दातुमुद्यतः॥१८॥
ततोऽन्तरिक्षे वागुच्चैरुवाच नृपसत्तमम्। पूजयित्वा स्थितं विप्रानृत्विजोऽथ सदस्पतीन्॥१९॥

आकाशवागुवाच

पुरोधसे कश्यपाय सशैलवनकाननाम्। पृथिवीं दातुकामेन दत्तं सर्वं त्वया नृप॥२०॥
भूमिदानस्पृहां त्यक्त्वा अन्नं देहि महाफलम्। नान्नदानसमं पुण्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते॥२१॥
विशेषतस्तु गङ्गाया श्रद्धया पुलिने मुने। त्वया तु हयमेधोऽयं कृतः सबहुदक्षिणः॥
कृतकृत्योऽसि भद्रं ते नात्र कार्या विचारणा॥२२॥

ब्रह्मा ने कहा—तब ऋषि-श्रेष्ठ संवर्त ने कुछ समय तक ध्यानस्थ होकर भौवन से कहा—'ब्रह्मा के पास जाओ, वही गुरु और उचित स्थान को बतायेंगे।' महाज्ञानी भौवन ने भी गुरु कश्यप के साथ मेरे पास आकर गुरु और देश आदि के विषय में पूछा। पुत्र! इसके बाद मैंने भौवन और कश्यप से कहा—'राजेन्द्र! गौतमी के तट पर जाओ, वही यज्ञ के योग्य पुण्यभूमि है। यही वेदों के पारगत विद्वान् कश्यप उत्तम गुरु हैं। इनकी और गौतमी की कृपा से एक ही अश्वमेध यज्ञ करने से और पुनः उसमें स्नान करने से दस अश्वमेध यज्ञ सिद्ध हो जायेंगे अर्थात् दस अश्वमेध यज्ञ का फल होगा। उन बातों को सुन कर राजा भौवन गौतमी तीर पर गुरु कश्यप के साथ गये और यज्ञ के लिये दीक्षित हो गये। इसके उपरान्त महायज्ञ तथा यज्ञराज अश्वमेध के प्रारम्भ हो जाने पर राजा ने विधिपूर्वक यज्ञ समाप्त किया। तब वह गुरु कश्यप को दक्षिणा में पृथ्वी देने के लिये उद्यत हो गया। तदनन्तर जब उसने विप्र, ऋत्विज और सदस्यों की पूजा समाप्त कर ली तब अन्तरिक्ष में उच्च स्वर से राजा से प्रति आकाशवाणी ने कहा॥१२-१९॥

आकाशवाणी ने कहा—नृप! पुरोहित कश्यप को शैल, वन, काननसहित दान देने की इच्छा कर तुमने सब कुछ दे दिया। इसलिये भूमिदान की इच्छा छोड़कर तुम अन्नदान दो, इससे महान् फल होगा। अन्नदान के समान पुण्यदायक दान इन तीनों लोकों में नहीं है। मुनि! गंगा के तट पर अन्नदान देने से तो और विशेष फल होता है। तुमने तो इस गंगा (गौतमी) के तट पर यह महान् अश्वमेध यज्ञ किया है, जिसमें बहुत दक्षिणा दी गई है। इसलिये तुम कृतकृत्य हो गये। तुम्हारा कल्याण होगा। इस पर अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है॥२०-२२॥

ब्रह्मोवाच

तथाऽपि दातुकामं तं मही प्रोवाच भौवनम् ॥२३॥

पृथिव्युवाच

विश्वकर्मज सार्वभौम मा मा देहि पुनः पुनः। निमज्जेऽहं सलिलस्य मध्ये तस्मान्न दीयताम् ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

ततश्च भौवनो भीत. किं देयमिति चाब्रवीत्। पुनश्चोवाच सा पृथ्वी भौवनं ब्राह्मणैर्वृतम् ॥२५॥

भूम्युवाच

तिला गावो धनं धान्यं यत्किंचिद्गौतमीतटे। सर्वं तदक्षयं दानं किं मां भौवन दास्यसि ॥२६॥
गङ्गातीरं समाश्रित्य ग्रासमेकं ददाति यः। तेनाहं सकला दत्ता किं मां भौवन दास्यसि ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

तद्भुवो वचनं श्रुत्वा भौवनः सार्वभौवनः। तथेति मत्वा विप्रेभ्यो ह्यन्नं प्रादात्सुविस्तरम् ॥२८॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं दशाश्वमेधिकं विदुः। दशानामश्वमेधानां फलं स्नानादवाप्यते ॥२९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये दशाश्वमेधतीर्थवर्णनं नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥
गौतमीमाहात्म्ये चतुर्दशोऽध्याय· ॥१४॥

ब्रह्मा ने कहा—इतना सुन लेने पर भी उसने पृथ्वी दान का विचार नहीं छोड़ा तब स्वयं पृथ्वी ने भौवन से कहा ॥२३॥

पृथ्वी ने कहा—विश्वकर्मा के वंशज! सार्वभौम! मुझको बार बार दान में मत दो। ऐसा करने से मैं जल में डूब जाऊँगी, इसलिये मेरा दान मत करो ॥२४॥

ब्रह्मा ने कहा—यह बात सुनकर भौवन डर गया और पूछा—कि कौन सी वस्तु देनी चाहिए। इसको सुनकर पुन पृथ्वी ने ब्राह्मणों से घिरे भौवन से कहा ॥२५॥

पृथ्वी ने कहा—तिल, गौ, धन, अन्न आदि जो कुछ गौतमी के तट पर दिया जाता है, यह सब अक्षय दान होता है, तो भौवन! क्या मुझे दान कर रहे हो? जो इस गङ्गातीर पर आकर एक कौर अन्न भी दान दे देता है, उससे मैं सम्पूर्ण रूप से दान में दे दी जाती हूँ। इसलिये भौवन! क्या मुझे दान में दे रहे हो ॥२६-२७॥

ब्रह्मा ने कहा—पृथ्वी की बात सुनकर चक्रवर्ती भौवन ने उसको स्वीकार कर लिया और प्रचुर अन्न विप्रों को दिया। तब से वह तीर्थ दशाश्वमेध तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वहाँ स्नान करने से दस अश्वमेध का फल प्राप्त होता है ॥२८-२९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में दशाश्वमेधतीर्थ वर्णन नामक तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८३॥

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः

पैशाचतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पैशाचं तीर्थमपरं पूजितं ब्रह्मवादिभिः। तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि गौतम्या दक्षिणे तटे॥१॥
गिरिर्ब्रह्मगिरेः पार्श्वे अञ्जनो नाम नारद। तस्मिञ्शैले मुनिवर शापभ्रष्टा वराप्सरा॥२॥
अञ्जना नाम तत्राऽऽसीदुत्तमाङ्गेन वानरी। केसरी नाम तद्भर्ता अद्रिकेति तथाऽपरा॥३॥
साऽपि केसरिणो भार्या शापभ्रष्टा वराप्सरा। उत्तमाङ्गेन मार्जारी साऽप्यास्तेऽञ्जनपर्वते॥४॥
दक्षिणार्णवमभ्यागात्केसरी लोकविश्रुतः। एतस्मिन्नन्तरेऽगस्त्योऽञ्जनं पर्वतमभ्यगात्॥५॥
अञ्जना चाद्रिका चैव अगस्त्यमृषिसत्तमम्। पूजयामासतुरुभे यथान्यायं यथासुखम्॥६॥
ततः प्रसन्नो भगवानाहोभे व्रियतां वरः। ते आहतुरुभेऽगस्त्यं पुत्रौ देहि मुनीश्वर॥७॥
सर्वेभ्यो बलिनौ श्रेष्ठौ सर्वलोकोपकारकौ। तथेत्युक्त्वा मुनिश्रेष्ठो जगामाऽऽशां स दक्षिणाम्॥८॥
ततः कदाचित्ते काले अञ्जना चाद्रिका तथा। गीतं नृत्यं च हास्यं च कुर्वत्यौ गिरिमूर्धनि॥९॥
वायुश्च निर्ऋतिश्चापि ते दृष्ट्वा सस्मितौ सुरौ। कामाक्रान्तधियौ चोभौ तदा सत्वरमीयतु.॥१०॥

अध्याय ८४

पैशाचतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—गौतमी के दाहिने किनारे पर पैशाच नामक एक दूसरा तीर्थ है, जिसकी ब्रह्मज्ञानी भी पूजा करते हैं। उसके स्वरूप का वर्णन मैं कर रहा हूँ॥१॥ नारद! ब्रह्मगिरि के बगल म अञ्जन नाम का एक पर्वत है। मुनिवर! उस पर्वत पर अञ्जना नाम की एक शाप-भ्रष्ट श्रेष्ठ अप्सरा थी, जिसका शिरोभाग वानरी का था। उसके पति का नाम केसरी था। दूसरी अद्रिका नाम की थी॥२-३॥ वह भी शापभ्रष्ट थी और उसी केसरी की स्त्री थी। उसका मुख मार्जारी के समान था॥४॥ वहीं अञ्जन पर्वत पर वह भी रहती थी। एक समय लोकविख्यात केसरी दक्षिण सागर के समीप गया। इसी बीच ऋषि अगस्त्य अञ्जन पर्वत पर गये॥५॥ ऋषि को आया देखकर अञ्जना और अद्रिका दोनो ने ऋषि-श्रेष्ठ अगस्त्य जी की यथोचित और सुखदायक पूजा की॥६॥ उनकी सेवा से प्रसन्न होकर भगवान् अगस्त्य ने कहा 'वर मांगो'। उन दोनो ने अगस्त्य से कहा कि हे मुनीश्वर! सबमे अधिक बलवान्, उत्तम गुण सम्पन्न और सब लोको का उपकार करने वाले दो पुत्र दीजिये। "ऐसा ही होगा' ऐसा कहकर अगस्त्य जी दक्षिण दिशा की ओर चले गये॥७-८॥ (इसके अनन्तर किसी समय अञ्जना और अद्रिका दोनो पर्वत के शिखर पर गीत, हास्य और नृत्य कर रही थीं उस समय वायु और निर्ऋति नामक दो देवता उन दोनो को देखकर प्रसन्न हो गये और काम के वशीभूत होकर शीघ्र ही वहाँ आ गये॥१०॥) और कहा कि 'तुम दोनों हम वर देने वाले देवताओं की स्त्रियाँ हो जाओ'। उन दोनो

अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

क्षुधातीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

क्षुधातीर्थमिति ख्यात शृणु नारद तन्मनाः। कथ्यमानं महापुण्यं सर्वकामप्रद नृणाम् ॥१॥
ऋषिरासीत्पुरा कण्वस्तपस्वी वेदवित्तमः। परिभ्रमन्नाश्रमाणि क्षुधया परिपीडित ॥२॥
गौतमस्याऽऽश्रमं पुण्यं समृद्ध चान्नवारिणा। आत्मानं च क्षुधायुक्त समृद्ध चापि गौतमम् ॥३॥
वीक्ष्य कण्वोऽथ वैषम्यं वैराग्यमगमत्तदा। गौतमोऽपि द्विजश्रेष्ठो ह्यहं तपसि निष्ठितः ॥४॥
समेन याच्ञाऽयुक्ता स्यात्तस्माद्गौतमवेश्मनि। न भोक्ष्येऽह क्षुधार्तोऽपि पीडितेऽपि कलेवरे ॥५॥
गच्छेयं गौतमीं गङ्गामर्जयेय च सपदम्। इति निश्चित्य मेधावी गत्वा गङ्गा च पावनीम् ॥६॥
स्नात्वा शुचिर्यतमना उपविश्य कुशासने। तुष्टाव गौतमीं गङ्गां क्षुधा च परमापदम् ॥७॥

कण्व उवाच

नमोऽस्तु गङ्गे परमार्तिहारिणि, नम. क्षुधे सर्वजनार्तिकारिणि ।
नमो महेशानजटोद्भवे शुभे, नमो महामृत्युमुखाद्विनि सृते ॥८॥

अध्याय ८५

क्षुधातीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—नारद! क्षुधातीर्थ नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है। मनुष्यो के सम्पूर्ण मनोरथा को पूर्ण करने वाले उस महापवित्र तीर्थ के विषय मे अब कहूँगा, तुम एकाग्र मन से सुनो। प्राचीन काल मे कण्व नामक वदवेत्ता और तपस्वी ऋषि थे। वे एक बार क्षुधा से पीडित होकर विभिन्न आश्रमो का भ्रमण करते हुये गौतम ऋषि के पवित्र आश्रम मे पहुँचे जो अन्न और जल से परिपूर्ण था। अपने को भूख से व्याकुल तथा गौतम को समृद्धिशाली देखकर कण्व को कठोर वैराग्य हो गया। सोचने लगे कि गौतम भी ब्राह्मण हैं, मैं भी उसी के समान तपस्या मे निरत रहने वाला उत्तम ब्राह्मण हूँ। समान श्रेणी और ज्ञान रखने वाले से याचना करना अनुचित है इसलिये मैं गौतम के आश्रम मे भूख से व्याकुल और शारीरिक कष्ट सहते हुए भी भोजन नही करूँगा। शीघ्र ही गौतमी गगा के पास जाऊँगा और विभव अर्जन करूँगा। इस प्रकार का दृढ निश्चय कर वह मेधावी ऋषि परम पवित्र गगा तट पर गया और स्नान से पवित्र हो कुशासन पर एकाग्रचित्त हो बैठ गया तथा गगा और आपत्ति स्वरूपिणी क्षुधा देवी की स्तुति करने लगा ॥१-७॥

कण्व बोले—मगानक कष्टो को दूर करने वाली गग! तुमको नमस्कार है, सब लोगों को कष्ट देने वाली क्षुधा! तुमको भी नमस्कार है। महेश की जटा से उत्पन्न होने वाली शुभे! तुमको नमस्कार है और महामृत्यु के मुख से निकलने वाली भगवती क्षुधा! तुमको भी नमस्कार है ॥८॥ पुण्यात्माओ के लिये शान्तरूपवाली!

पुण्यात्मना शान्तरूपे शोधरूपे दुरात्मनाम्। सरिद्रूपण सर्वेषा तापपापापहारिणि ॥९॥
क्षुधारूपण सर्वेषा तापपापप्रदे नम। नम श्रेयस्करि दवि नम॰ पापप्रतर्दिनि॥
नम शान्तिकरि दवि नमो दारिद्रघनाशिनि ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

इत्येव स्तुवतस्तस्य पुरस्तादभवद्द्वयम्। एक गाङ्ग मनोहारि ह्यपर भीषणाकृति॥
नम कृताञ्जलिर्भूत्वा नमस्कृत्वा द्विजोत्तम ॥११॥

कण्व उवाच

सवमङ्गलमाङ्गल्य ब्राह्मि माहेश्वरि शुभे। वैष्णवि त्र्यम्बके दवि गोदावरि नमोऽस्तु ते॥१२॥
त्र्यम्बकस्य जटोद्भूत गौतमस्याघनाशिनि। सप्तधा सागर यान्ति गोदावरि नमोऽस्तु ते॥१३॥
सवपापकृता पापे धर्मकामार्थनाशिनि। दु खलोभमयि देवि क्षुधे तुभ्य नमो नम ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तत्कण्ववचन श्रुत्वा सुप्रीते आहतुर्द्विजम् ॥१५॥

गङ्गाक्षुधे ऊचतु

अभीष्ट वद कल्याण वरार्थय सुव्रत ॥१६॥

दुरात्माओ क लिए शोधस्वरूपे! और सरिता के रूप म पापी तथा सज्जन सबक ताप पाप दोनो को हरन वाली गग! तुमको नमस्कार करता हू। सबको भूख के रूप म ताप और पाप देन वाली क्षुध! तुमको नमस्कार करता हू। श्रय (कल्याण) करने वाली! पापो को नष्ट करन वाली तुमको नमस्कार है। शान्ति प्रदान करन वाली दवि! तुमको नमस्कार करता हूँ। दरिद्रता को नष्ट करन वाली! तुमको नमस्कार है॥९ १०॥

ब्रह्मा न कहा—इस प्रकार कण्व ऋषि स्तुति कर रह थ कि उनक सामन दो विभिन्न रूपवाली मूर्तियाँ प्रकट हुइ। एक गगा की मनोहर मूर्ति दूसरी क्षुधा की भयकर आकृति। यह दखकर कण्व हाथ जोड़कर पुन प्रार्थना करन लग॥११॥

कण्व बोल—सब मगलो को दने वाली मगलरूपिणी! ब्राह्मि! शुभे! माहेश्वरि! वैष्णवि! त्र्यम्बके! देवि! गोदावरि! तुमको नमस्कार है। त्रिलोचन की जटा स उत्पन्न होने वाली! गौतम क पापो को नष्ट करने वाली! सात धाराओ म विभक्त होकर सागर म मिलन वाली! गोदावरी! आपको नमस्कार है। सब पापियो क लिए पापरूप वाली! धर्म काम अर्थ को नष्ट करन वाली! दुख लोभ स परिपूर्ण क्षुध! देवि! तुमको बार-बार नमस्कार है॥१२ १४॥

ब्रह्मा न कहा—ऋषि कण्व का वाक्य सुनकर दोनो देवियाँ प्रसन्न होकर ब्राह्मण कण्व स बोलीं॥१५॥
गगा और क्षुधा बोलीं—कल्याण! अपना मनोरथ कहो। सुव्रत! वर माँगो॥१६॥

ब्रह्मोवाच

प्रोवाच प्रणतो गङ्गां कण्व क्षुधा यथाक्रमम् ॥१७॥

कण्व उवाच

देहि देवि मनोज्ञानि कामानि विभव मम। आयुर्वित्त च भुक्ति च मुक्ति गङ्गे प्रयच्छ मे॥१८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा गौतमीं गङ्गां क्षुधा चाऽऽह द्विजोत्तम ॥१९॥

कण्व उवाच

मयि मद्वशजे चापि क्षुधे तृष्णे दरिद्रिणि। याहि पापतरे रूक्षे न भूयास्त्व कदाचन॥२०॥
अनेन स्तवेन ये वै त्वा स्तुवन्ति क्षुधातुरा। तेषा दारिद्र्यदु खानि न भवेयुर्वरोऽपर ॥२१॥
अस्मिस्तीर्थे महापुण्ये स्नानदानजपादिकम्। ये कुर्वन्ति नरा भक्त्या लक्ष्मीभाजो भवन्तु ते॥२२॥
यस्त्विद पठते स्तोत्र तीर्थे वा यदि वा गृहे। तस्य दारिद्र्यदु खेभ्यो न भय स्याद्वरोऽपर ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति चोक्त्वा ते कण्व याते स्वमालयम्। तत प्रभृति तत्तीर्थं काण्व गाङ्ग क्षुधाभिधम्॥
सर्वपापहर वत्स पितृणा प्रीतिवर्धनम् ॥२४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये क्षुधातीर्थवर्णन नाम पञ्चाशीतितमोऽध्याय ॥८५॥
गौतमीमाहात्म्ये षोडशोऽध्याय ॥१६॥

ब्रह्मा बोले—विनीत कण्व ने क्षुधा और गगा से क्रमपूर्वक कहा॥१७॥

कण्व बोले—देवि! मुझ मनोहर कामनाएँ और सम्पत्ति दो। गगे! आयु धन भुक्ति और मुक्ति मुझे दो॥१८॥

ब्रह्मा बोले—यह कहकर द्विजवर कण्व ने पुन गौतमी गगा और क्षुधा स कहा॥१९॥

कण्व बोले—अतिपापे! तुम जाओ मरे अथवा मेरे वशजा के समीप क्षुधा! तृष्णा! दरिद्रा! रूक्षा! ककशा! तुम कभी मत आना। जो कोई क्षुधा पीडित व्यक्ति इस स्तुति स तुम्हारी प्राथना कर उनको दरिद्रता और दुख कभी न सताय। दूसरा एक और वर है—इस महापुण्यवान् तीथ म जो कोई स्नान दान जप आदि भक्तिपूवक करे वह अवश्य धनवान हो। जो इस स्तोत्र को तीथ अथवा घर पर ही पढ उसको दरिद्रता और दुख से भय न हो यह एक मेरा और वर है॥२० २३॥

ब्रह्मा बोले—एसा ही हो यह कहकर वे दोना अन्तर्हित हो गईं। इधर कण्व भी अपने घर चले गये। उस समय से वह तीर्थ काण्व गाग या क्षुधा-तीथ नाम स प्रसिद्ध हो गया। वत्स! वह तीथ सब पापा को दूर करन वाला और पितरा की प्रीति बढाने वाला है॥२४ २५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे क्षुधातीथ वणन नामक पचासीवाँ अध्याय समाप्त॥८५॥

अथ षडशीतितमोऽध्यायः

चक्रतीर्थगणिकासंगमवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अस्ति ब्रह्मन्महातीर्थं चक्रतीर्थमिति श्रुतम्। तत्र स्नानान्नरो भक्त्या हरेर्लोकमवाप्नुयात् ॥१॥
एकादश्यां तु शुक्लायामुपोष्य पृथिवीपते। गणिकासंगमे स्नात्वा प्राप्नुयादक्षयं पदम् ॥२॥
पुरा तत्र यथा वृत्तं तन्मे निगदतः शृणु। आसीद्विश्वधरो नाम वैश्यो बहुधनान्वितः ॥३॥
उत्तरे वयसि श्रेष्ठस्तस्य पुत्रोऽभवन्नृपे। गुणवान्रूपसंपन्नो विलासी शुभदर्शनः ॥४॥
प्राणेभ्योऽपि प्रियः पुत्रः काले पञ्चत्वमागतः। तथा दृष्ट्वा तु तं पुत्रं दंपती दुःखपीडितौ ॥५॥
कुर्वाते स्म तदा तेन सहैव मरणे मतिम्। हा पुत्र हन्त कालेन पापेन सुदुरात्मना ॥६॥
यौवने वर्तमानोऽपि नीतोऽसि गुणसागर। आवयोश्च तथैव त्वं प्राणेभ्योऽपि सुदुर्लभः ॥७॥
इत्थं तु रुदितं श्रुत्वा दंपत्योः करुणं यमः। त्यक्त्वा निजपुरं तूर्णं कृपयाऽऽविष्टमानसः ॥८॥
गोदावर्याः शुभे तीरे स्थितो ध्यायञ्जनार्दनम्। अपि स्वल्पेन कालेन प्रजा वृद्धाः समन्ततः ॥९॥
इयत इति मे पृथ्वी कथ्यतां येन पूरिता (?)। न कश्चिन्म्रियते जन्तुर्भाराक्रान्ता वसुंधरा ॥१०॥

अध्याय ८६

चक्रतीर्थ और गणिकातीर्थ का संगम-वर्णन

ब्रह्मा बोले—ब्रह्मन्! चक्रतीर्थ नामक एक परम प्रसिद्ध महातीर्थ है, उस तीर्थ में भक्तिपूर्वक स्नान करने से मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥१॥ पृथ्वीपते! शुक्लपक्ष की एकादशी को उपवास कर गणिका-संगम में स्नान करने से मनुष्य अक्षय पद को प्राप्त करता है ॥२॥ पहले वहाँ जो कुछ हुआ, उसको मैं कह रहा हूँ, सुनो। कोई विश्वधर नाम का एक अत्यन्त धनवान् वैश्य था ॥३॥ नृपे! उसकी ढलती हुई अवस्था में उसको एक गुणवान् रूपवान् देखने में सुन्दर और विलासी उत्तम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥४॥ प्राणों से भी अधिक प्रिय वह पुत्र युवावस्था में ही मर गया। इस प्रकार अपने बालक को मरा देख वे दोनों पति-पत्नी अत्यन्त दुःख से व्याकुल हो गये और पुत्र के ही साथ मरने का निश्चय कर लिया ॥५॥ इस प्रकार निश्चय कर पुत्र-शोक से विलाप करने लगे—हा पुत्र! हे गुणसागर! शोक है कि पापी दुरात्मा काल के द्वारा तुम युवावस्था में ही हर लिये गये हो। तुम हम लोगों के लिए प्राणों से भी अधिक प्रिय और दुर्लभ हो ॥६-७॥ इस प्रकार दम्पति का करुणा उत्पन्न करने वाला विलाप सुनकर यम का हृदय करुणा से पिघल गया और वे अपने लोक को छोड़कर शीघ्र ही गोदावरी के पवित्र तीर पर आकर बैठ गये और भगवान् जनार्दन का ध्यान करने लगे ॥८॥ इसलिए मृत्यु न होने के कारण थोड़े ही समय में चारों ओर प्रजा की संख्या बढ़ गई। किसी भी प्राणी की मृत्यु नहीं होती थी इसलिए वसुन्धरा भार से आक्रान्त हो गई ॥९-१०॥ यम सोचने लगे कि इतने थोड़े समय में किसने मेरी पृथ्वी को भार से पूर्ण कर दिया।

ततो देवी गता तूर्णं वसुधा मुनिसत्तम। यत्रास्ति सुरसयुक्त शक्र परपुरजय ॥
दृष्ट्वा वसुन्धरामिन्द्र प्रणिपत्येदमब्रवीत् ॥११॥

इन्द्र उवाच

किमागमनकार्यं त इति मे पृथ्वि कथ्यताम् ॥१२॥

धरोवाच

भारेण गुरुणा शक्र पीडिताऽह् विना वधम। कारण प्रष्टुमायाता किमिद कथ्यता मम ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा महीवाक्यमिन्द्रो वचनमब्रवीत् ॥१४॥

इन्द्र उवाच

कारण यदि नाम स्यात्तदानीं ज्ञायते मया। सुराणा हि पतिर्यस्मादह सर्वासु(?) मेदिनि ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

अथ पृथ्वी तदा वाक्य श्रुत्वा चाऽऽह शचीपतिम्। यम आदिश्यता तर्हि यथा सहरते प्रजा ॥१६॥
इति श्रुत्वा वचो मह्या आदिष्टा सिद्धकिन्नरा। यमस्याऽऽनयने शीघ्र महेन्द्रेण महामुने ॥१७॥
ततस्ते सत्वर याता सर्वे वैवस्वत पुरम्। नैवापश्यन्यम तत्र ते सिद्धा सह किंनरै ॥
तथाऽऽगत्य पुनर्वेगाद्वार्ता शक्रे निवेदिता ॥१८॥

मुनिशार्दूल! इसके बाद वसुधरा देवी दौडी हुई वहाँ गई जहा देवताओ म युक्त शत्रुपुर को जीतने वाले इन्द्र विराजमान रहते हैं। वसुधरा को देखकर इन्द्र न प्रणाम किया और कहा ॥११॥

इन्द्र ने कहा—देवि पृथ्वि! तुम्हारे यहाँ आने का क्या प्रयोजन है? मुझसे कहो ॥१२॥

धरा ने कहा—इन्द्र! मैं भार की अधिकता से विना वध के ही (अर्थात बिना किसी स मार खाये ही) अत्यन्त पीडित हूँ। इसका कारण पूछने के लिए आई हूँ क्या कारण है मुझस कहिये ॥१३॥

ब्रह्मा बोले—पृथ्वी की उपर्युक्त बातें सुनकर इन्द्र ने यह बात कही ॥१४॥

इन्द्र ने कहा—मेदिनि! यदि कोई कारण है तो अवश्य मैं उसको जान सकता हूँ क्योंकि मैं (सब) अब स्थाओ म देवताओ का स्वामी हूँ ॥१५॥

ब्रह्मा बोले—तब पृथ्वी ने इन्द्र की बात सुनकर पुन इन्द्र म कहा—यदि ऐसा बात है तो यम को आना दीजिये ताकि वे प्रजाओ का सहार करें। पृथ्वी की यह बात सुन कर महेन्द्र ने सिद्ध किन्नरा को आदेश दिया कि यम को शीघ्र यहाँ बुला लाओ। तदनन्तर वे किंनर शीघ्र ही यमपुरी म गये परन्तु उन किन्नर और सिद्धा ने वहाँ यमराज को नहीं देखा। तब शीघ्र ही वहाँ स लौटकर इन्द्र स सारी वार्ता कह सुनाई ॥१६ १८॥

सिद्धकिनरा ऊचुः

यमो यमपुरे नाथ अस्माभिर्नविलोकित । महताऽपि सुयत्नेन वीक्ष्यमाण समन्तत ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचस्तेषा पृष्ट शक्रेण वै तदा। सविता स पिता तस्य यम कुत्राऽस्त इत्यथ ॥२०॥

सूर्य उवाच

शक्र गोदावरीतीरे कृतान्तो वर्ततेऽधुना। चरस्तत्र तपस्तीव्र न जाने किं नु कारणम् ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचो भानो शक्र शङ्कामुपाविशत् ॥२२॥

शक्र उवाच

अहो कष्ट महाकष्ट नष्टा मे सुरनायता। गोदावर्यां तप कुर्याद्यमो वै दुष्टचेष्टित ॥
जिघृक्षुर्मत्पद नून देवा इति मतिर्मम ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा सहसेन्द्रेण आहूतश्चाप्सरोगण ॥२४॥

इन्द्र उवाच

का भवतीषु कालस्य स्थितस्य तपसि द्विष । तप प्रणाशने शक्ता इति मे शीघ्रमुच्यताम् ॥२५॥

सिद्ध किन्नर बोले—नाथ ! यमलोक म हम लोगा ने यम को नही देखा यद्यपि बडे परिश्रम से चारो ओर खोज की ॥१९॥

ब्रह्मा बोले—उन की इन बाता को सुनकर इन्द्र ने यम के पिता सविता से पूछा यम इस समय कहाँ हैं ? ॥२०॥

सूर्य ने कहा—इन्द्र ! पुत्र यम इस समय गोदावरी क तीर पर बैठा हुआ उग्र तपस्या कर रहा है मैं यह नही जानता कि क्या कारण है ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—सूर्य की यह बात सुनकर इन्द्र को सन्देह हो गया ॥२२॥

इन्द्र बोले—अहो ! कष्ट है महाकष्ट है। मेरी देवन्द्र की पदवी लुप्त होना चाहती है। यम निश्चय ही ईर्ष्या भावना से गोदावरी तीर पर तपस्या कर रहा है। देवगण ! निश्चय ही वह मेरे पद को ले लेना चाहता है यही मेरी धारणा है ॥२३॥

ब्रह्मा बोले—इन्द्र ने इस प्रकार कहकर सहसा अप्सराओ को बुलवाया ॥२४॥

इन्द्र बोले—तपस्या म तल्लीन शत्रु यम की तपस्या भग करने म आप लोगो म से कौन समर्थ है यह मुझसे शीघ्र बतलाइये ? ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

इति शक्रवच श्रुत्वा नोचे काऽपि महामुने। अथ शक्र प्रकोपेण प्रत्युवाचाप्सरोगणम् ॥२६॥

इन्द्र उवाच

उत्तर नाब्रवीत्किञ्चिद्यामस्तर्हि वय स्वयम्। सज्जा भवन्तु विबुधा सैन्यैरायान्तु मा चिरम्॥
घातयामो वय शत्रु तपसा स्वर्गकामुकम् ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ते सति देवाना सेना प्रादुर्बभूव ह। इतीन्द्रहृदय ज्ञात्वा हरिणा लोकधारिणा ॥२८॥
प्रेषित चक्रिणा चक्र रक्षणाय यमस्य हि। चक्र यत्राभवत्तत्र चक्रतीर्थमनुत्तमम् ॥२९॥
अथेन्द्र मेनका प्राह शङ्कितेति वचस्तदा ॥३०॥

मेनकोवाच

कालावलोकने नाल काचिदस्ति सुरेश्वर। मरण च वर देव भवतो न यमात्पुन ॥३१॥
रूपयौवनमत्तेय गणिकायाचन प्रभो। प्रेषण तत्प्रयच्छैषा स्वामित्व मन्यते त्वया ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्या शक्र सुरवरेश्वर। आदिदेशाबला क्षामा सत्कृत्य गणिका तथा ॥३३॥

ब्रह्मा बोले—महामुने! इन्द्र की यह बात सुनकर किसी ने कुछ नही कहा। तब इन्द्र ने बड़े क्रोध से अप्सराओ से कहा ॥२६॥

इन्द्र बोले—तुम लोग कुछ उत्तर नही दे रही हो, इसलिये हम स्वय जा रहे हैं। देवताओ! तैयार हो जाओ, अपने सैनिको के साथ युद्धार्थ प्रस्थान करो विलम्ब न हो। हम स्वय तपस्या द्वारा स्वर्ग की इच्छा करने वाले शत्रु का वध करेगे ॥२७॥

ब्रह्मा बोले—इतना कह देने पर देवताओ की सेना प्रस्तुत हो गई। इन्द्र की इस कुटिलता को जान कर लोकरक्षक, चक्र धारण करने वाले विष्णु ने यम की रक्षा के लिये चक्र को भेज दिया। जहाँ चक्र रक्षार्थ प्रकट हुआ वह परम श्रेष्ठ चक्रतीर्थ हो गया। यह देखकर शकित मेनका ने इन्द्र से यह वचन कहा ॥२८-३०॥

मेनका ने कहा—सुरेश्वर! हम लोगो मे से कोई मृत्यु देव की ओर आँख उठाकर देखने का साहस नही कर सकती है। देव! आपके हाथ की मौत अच्छी है यम के नही। प्रभो! रूप और यौवन से मतवाली इस गणिका की यही प्रार्थना है। यदि आप भेजना चाहते हैं तो मुझे भेजिये, आपका प्रभु-आदेश मुझे सर्वथा स्वीकार है ॥३१-३२॥

ब्रह्मा ने कहा—उस गणिका की इन बातो को सुनकर सुरनायक इन्द्र ने अच्छे प्रकार से सत्कार कर उस कृशागी अबला गणिका को आज्ञा दी ॥३३॥

शक्र उवाच

गणिके गच्छ मे कार्यं कुरु सुन्दरि मा चिरम्। कृतकृत्याऽऽगता भूयो वल्लभा मे यथा शची ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वच शक्रादुत्पत्य गणिका दिश। क्षणेन यमसानिध्यमायाता चारुरूपिणी ॥३५॥
यमान्तिकमनुप्राप्ता द्योतयन्ती दिशो दश। सलील ललित बाला जगौ हिन्दोलककलम् (चञ्चला) ॥३६॥
ततश्चचाल कालस्य मनो लोल चलाचलम्। अथोन्मील्य यमो नेत्रे कामपावकपूरिते ॥३७॥
तस्या व्यापारयामास श्रेयशत्रौ महामुने। ततो विलीय सा सद्य सरित्त्वमगमत्तदा ॥३८॥
गौतम्या तु समागम्य गणिकागर्णाककरै। गीयमाना गता स्वर्गं तस्य तीर्थप्रभावत ॥३९॥
गच्छन्तीं गणिका दृष्ट्वा विमानस्थां दिव प्रति। विस्मय परम प्राप्त कालस्तरललोचन ॥
आऽऽदित्यन चाऽऽगत्य एवमुक्तो यमस्तदा ॥४०॥

सूर्य उवाच

कुरु पुत्र निज कर्म प्रजाना त्व परिक्षयम्। पश्य वात सदा वान्त सृजन्त वेधस प्रजा ॥
पर्यटन्त त्रिलोकीं मा वहन्तीं वसुधा प्रजा ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा यमो वाक्य पितुर्वचनमब्रवीत् ॥४२॥

इन्द्र बोले—गणिके! जाओ मेरे कार्य को पूरा करो। सुन्दरि! विलम्ब न हो। सफलता प्राप्त करने पर तुम शची की भाँति मेरी प्रिया बनोगी ॥३४॥

ब्रह्मा ने कहा—इन्द्र की इन बातों को सुनकर मनोहर रूप वाली वह गणिका आकाश मार्ग से उड़कर क्षण भर में ही यम के समीप आ गई। (अपनी शरीर-कान्ति से दसों दिशाओं को प्रकाशित करती हुई वह बाला (गणिका) यम के समीप आकर बड़े हाव भाव से आकर्षक हिन्दोलकल (राग) गाने लगी। उसके मधुर गान को सुनकर यम का चंचल मन विचलित हो गया।) महामुने! यम ने कामाग्नि से भरे नेत्रों को खोलकर कल्याण मार्ग में बाधा पहुँचाने वाली गणिका की ओर देखा। देखते ही वह उसी क्षण अदृश्य होकर नदीरूप में परिणत हो गई और गौतमी में मिल गई। उस तीर्थ के प्रभाव से वह गणिका गाती और किन्नरों के गान से सम्मानित होकर स्वर्ग लोक को चली गई। विमान में बैठकर जब वह स्वर्ग की ओर जाने लगी तब यह देखकर चञ्चललोचन काल को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। तत्पश्चात् उस समय स्वयं सूर्य ने आकर यम से कहा—॥३५-४०॥

सूर्य ने कहा—पुत्र! अपना कर्तव्य—प्रजा का नाश करो। देखो ब्रह्मा सर्वदा प्रजा की सृष्टि करते रहते हैं वायु सर्वदा बहते रहते हैं मैं सर्वदा त्रिभुवन का चक्कर लगाया करता हूँ और पृथ्वी अपने वक्षःस्थल पर प्रजा का भार ढोती रहती है ॥४१॥

ब्रह्मा बोले—पिता की इन बातों को सुनकर यम ने कहा—॥४२॥

यम उवाच

एतन्न गर्हितं कर्म कुर्यामहमिदं ध्रुवम्। कर्मण्यस्मिन्महाक्रूरे समादेष्टुं न चार्हसि ॥४३॥
इति श्रुत्वा च तद्वाक्यं भानुर्वचनमब्रवीत्। किं नाम गर्हितं कर्म तव कर्तुमलं यम ॥४४॥
किं न दृष्टा त्वया यान्ती गणिका गणकिंकरैः। गीयमाना दिवं सद्यो गौतमीतोयमाप्लुता ॥४५॥
त्वया चात्र तपस्तीव्रं कृतं पुत्र सुदुष्करम्। नैवान्तं तस्य पश्यामि तस्माद्गच्छ निजं पुरम् ॥४६॥
इत्युक्त्वा भगवान्भानुस्तत्र स्नात्वा गतो दिवम्। यमोऽपि सगमे स्नात्वा ततो निजपुरं ययौ ॥४७॥
भूतहाऽपि ततः शङ्कां तत्याज च महामुने। तथा दृष्ट्वा यमं यान्तं चक्रे चक्रं प्रयाणकम् ॥४८॥
भगवान्यत्र गोविन्दो वनमालाविभूषितः। इति यः शृणुयान्मर्त्यः पठेद्वाऽपि समाहितः ॥४९॥
आपदस्तस्य नश्यन्ति दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये चक्रतीर्थगणिकासगमवर्णनं नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥
गौतमीमाहात्म्ये सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

यम बोले—यह क्रूर और निन्द्य कर्म मैं नहीं करूँगा यह ध्रुव है। यह अति क्रूर कर्म करने के लिये आप आदेश न दीजिये। पुत्र यम की इन बातों को सुनकर सूर्य ने कहा—यम! क्या मैं तुमको गर्हित कर्म करने के लिये कभी भी कह सकता हूँ। क्या तुमने अभी-अभी गौतमी-जल में स्नान करने के फलस्वरूप गणिका को स्वर्ग की ओर जाते नहीं देखा जिसका गुणगान देवगण सेवक भाव से करते जा रहे थे? पुत्र! तुमने तो इस नदी के पुनीत तीर पर अन्यों से न करने योग्य कठिन तप किया है इस तपस्या का अन्त (नाश) नहीं देख रहा हूँ इसलिये तुम शीघ्र अपने लोक को जाओ। यह कह कर भगवान् सूर्य गौतमी में नहाकर स्वर्ग को चले गये। तदनन्तर यम भी सगम में स्नान कर अपने लोक को चले गये। महामुने! प्राणियों का वध करने वाले यम ने भी (गर्हित कर्म करने की) शंका को छोड़ दिया। इस प्रकार यम को जाते हुए देखकर चक्र भी जहाँ वनमाला से सुशोभित भगवान् गोविन्द थे वहाँ चला गया। इस उपर्युक्त कथा को जो कोई मनुष्य एकाग्रचित्त से सुनता है या पढ़ता है उसकी सभी आपत्तियाँ दूर हो जाती हैं और वह दीर्घायु प्राप्त करता है ॥४३-५०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में चक्रतीर्थ-गणिका-सगम-वर्णन नामक छियासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८६॥

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः

अहल्यासगमेन्द्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अहल्यासगम चेह तीर्थं त्रैलोक्यपावनम्। शृणु सम्यङ्मुनिश्रेष्ठ तत्र वृत्तमिदं यथा॥१॥
कौतुकेनातिमहता मया पूर्वं मुनीश्वर। सृष्टा कन्या बहुविधा रूपवत्यो गुणान्विता॥२॥
तासामेका श्रेष्ठतमा निर्ममे शुभलक्षणाम्। ता बाला चारुसर्वाङ्गीं दृष्ट्वा रूपगुणान्विताम्॥३॥
को वाऽस्या पोषणे शक्त इति मे बुद्धिराविशत्। न दैत्याना सुराणा च न मुनीना तथैव च॥४॥
नास्त्यस्या पोषणे शक्तिरिति मे बुद्धिरन्वभूत्। गुणज्येष्ठाय विप्राय तपोयुक्ताय धीमते॥५॥
सर्वलक्षणयुक्ताय वेदवेदाङ्गवेदिने। गौतमाय महाप्राज्ञामददा पोषणाय ताम्॥६॥
पालयस्व मुनिश्रेष्ठ यावदाप्स्यति यौवनम्। यौवनस्था पुन. साध्वीमानयेथा ममान्तिकम्॥७॥
एवमुक्त्वा गौतमाय प्रादा कन्या सुमध्यमाम्। तामादाय मुनिश्रेष्ठ तपसा हृतकल्मषः॥८॥
ता पोषयित्वा विधिवदलकृत्य ममान्तिकम्। निर्विकारो मुनिश्रेष्ठो ह्यहल्यामानयत्तदा॥९॥

अध्याय ८७

अहल्या-सगम या इन्द्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इस ससार मे त्रैलोक्य को पवित्र करने वाला अहल्या-सगम नाम का एक तीर्थ है। मुनिश्रेष्ठ! इस विषय म जो कुछ हुआ, उसको भलीभाँति सुनो॥१॥ मुनीश्वर! बहुत पहले मैंने अत्यन्त कौतूहल वश बहुत-सी रूपवती और गुणवती कन्याओ को बनाया॥२॥ उनम से एक को सर्वलक्षणसम्पन्न और अतिसुन्दर बनाया। उस रूप और गुण स युक्त, मनोहर अगो वाली बाला को देखकर इसके पालन-पोषण का भार कौन उठा॰ येगा, यह भावना मेरे मन मे उत्पन्न हुई॥३-३॥ इसक पालन-पोषण की क्षमता न तो दैत्यो न देवताओ और न तो मुनियो म ही है ऐसी मेरी धारणा हुई। यह सोचकर गुणश्रेष्ठ, परमतपस्वी, बुद्धिमान्, वेद-वेदांग के ज्ञाता, सर्वलक्षण-सम्पन्न विप्र गौतम को पालन करने के लिये उस परम बुद्धिमती कन्या को दे दिया और कहा कि मुनिश्रेष्ठ! तुम इसका तब तक पालन करो जब तक कि यह युवावस्था को न प्राप्त हो जाय। पुन युवती हो जाने पर इस साध्वी को मेरे समीप ले आना॥४-७॥ यह कहकर मैंने उस सुन्दर कटिवाली कन्या को गौतम को दे दिया। मुनिश्रेष्ठ! तप स पापो को दूर कर देने वाले उन मुनि ने उसको ले लिया और नियत अवधि तक उसका विधिवत् पालन-पोषण किया। और इसक बाद आभूषणो से आभूषित कर निर्विकार भाव से अहल्या को मेरे समीप ले आये॥८-९॥ उस समय उसको देखकर सब अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि देवता 'गुरुदेव! मुझको दीजिये, मुझको दीजिये'

ता दृष्ट्वा विबुधा सर्वे शक्राग्निवरुणादय। मम देया सुरेशान इत्यूचुस्ते पृथक्पृथक्॥१०॥
तथैव मुनय साध्या दानवा यक्षराक्षसा। तान्सर्वानागतान्दृष्ट्वा कान्यार्थमथ सगतान्॥११॥
इन्द्रस्य तु विशेषेण महाश्चाभूत्तदा ग्रह। गौतमस्य तु माहात्म्य गाम्भीर्यं धैर्यमेव च॥१२॥
स्मृत्वा सुविस्मितो भूत्वा ममैवमभवत्सुधी। देयेय गौतमायैव नान्ययोग्या शुभानना॥१३॥
तस्मा एव तु ता दास्ये तयाऽप्येवमचिन्तयम्। सर्वेषा च मतिर्धैर्यं मथित बालयाऽनया॥१४॥
अहल्येति सुरै प्रोक्त' मया च ऋषिभिस्तदा। देवानृषींस्तदा वीक्ष्य मया तत्रोक्तमुच्चकै॥१५॥
तस्मै सा दीयते सुभ्रूर्य पृथिव्या प्रदक्षिणाम्। कृत्वोपतिष्ठते पूर्वं न चान्यस्मै पुन पुन॥१६॥
तत सर्वे सुरगणा श्रुत्वा वाक्य मयेरितम्। अहल्यार्थं सुरा जग्मु पृथिव्याश्च प्रदक्षिणे॥१७॥
गतेषु सुरसघेषु गौतमोऽपि मुनीश्वर। प्रयत्नमकरोत्कचिदहल्यार्थमिम तथा॥१८॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्सुरभि सर्वकामधुक्। अर्धप्रसूता ह्यभवत्ता ददर्श स गौतम॥१९॥
तस्या प्रदक्षिण चक्रे इयमुर्वीति सस्मरन्। लिङ्गस्य च सुरेशस्य प्रदक्षिणमथाकरोत्॥२०॥
तयो प्रदक्षिण कृत्वा गौतमो मुनिसत्तम। सर्वेषा चैव देवानामेक चापि प्रदक्षिणम्॥२१॥
नैवाभवद्भुवो गन्तु सजात द्वितय मम। एव निश्चित्य स मुनिर्ममान्तिकमथाभ्यगात्॥२२॥

इस प्रकार अलग अलग कहने लगे॥१०॥ इसी प्रकार सभी मुनि साध्य दानव यक्ष राक्षस कन्याको मागनेके लिये आ गये। इस प्रकार कन्या के लिये सबको सामूहिक रूप से आया देखकर और इस विषय मे इन्द्र का विशेष रूप से महान् आग्रह देखकर मुझको अत्यन्त आश्चय हुआ॥११॥ इसके साथ ही गौतम का धैय गम्भीरता और उसकी महत्ता को स्मरण कर मैं तो अत्यन्त आश्चयचकित हो गया। इतने म मुझे यह सुबुद्धि हुई कि यह शुभानना गौतम को ही दी जानी चाहिए यह दूसरा के योग्य नही॥१२ १३॥ अत उसको ही दूगा। फिर भी मैंने इस प्रकार सोचा कि इस बाला ने सबके मान और धैय को मथ डाला है इसलिये इसका नाम अहल्या रखा जाय इसका समथन ऋषिया और देवताआ ने भी किया॥१४॥ तब मैंने देवताआ और ऋषियो की ओर देखकर ऊँचे स्वर से कहा कि यह सुदर भौं वाली कन्या उसी को दी जायगी जो पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर सबसे पहले आ जायगा दूसरे को को बार बार नही दी जायगी॥१५ १६॥ इसके बाद मेरी कही हुई बाता को सुनकर सब देवता अहल्या को प्राप्त करने की इच्छा से पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने के लिये चले गये॥१७॥ मुनीश्वर! देवताओ के चले जाने पर गौतम ने भी अहल्या के लिए कुछ इस ढग का प्रयत्न किया। ब्रह्मन्! इसी बीच सब कामनाओ को देने वाली कामधनु अध प्रसूता (आधा बच्चा जनने वाली) हुई। गौतम ने उसको देख लिया॥१८ १९॥ यह पृथ्वी है इस बात का स्मरण कर उसने उसी की प्रदक्षिणा की और सुरेश शकर के लिंग की भी प्रदक्षिणा की॥२०॥ उन दोनो की प्रदक्षिणा कर मुनि गौतम 'सब देवताआ ने अब तक पृथ्वी की एक भी प्रदक्षिणा नही की सब तक प्रदक्षिणा करने वाले मैंने तो दो प्रदक्षिणायें कर दी यह मन म निश्चय कर मेरे समीप आया॥२१ २२॥ महामति गौतम ने मुझे नमस्कार करके यह

१ग प्रोक्ता।

नमस्कृत्वाऽब्रवीद्वाक्य गौतमो मां महामति । कमलासन विश्वात्मन्नमस्तेऽस्तु पुन पुन ॥२३॥
प्रदक्षिणीकृता ब्रह्मन्मयेयं वसुधाऽखिला । यदत्र युक्त दवेश जानीषे तद्भवा स्वयम् ॥२४॥
मया तु ध्यानयोगेन ज्ञात्वा गौतममब्रवम । तवैव दीयते सुभ्रू प्रदक्षिणमिद कृतम् ॥२५॥
धर्म जानीहि विप्रर्षे दुर्ज्ञेय निगमैरपि । अर्धप्रसूता सुरभि सप्तद्वीपवती मही ॥२६॥
कृता प्रदक्षिणा तस्या पृथिव्या सा कृता भवेत । लिङ्ग प्रदक्षिणीकृत्य तदेव फलमाप्नुयात ॥२७॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मुने गौतम सुव्रत । तुष्टोऽह तव धैर्येण ज्ञानेन तपसा तथा ॥२८॥
दत्तयमृषिशार्दूल कन्या लोकवरा मया । इत्युक्त्वाऽह गौतमाय अहल्यामददा मुने ॥२९॥
जात विवाहे ते देवा क्रतवेलाया प्रदक्षिणम् शनै शनैरथाऽऽगत्य ददृशु सर्व एव ते ॥३०॥
त गौतममहल्या च दाम्पत्य प्रीतिवर्धनम । ते चाऽऽगत्याथ पश्यन्तो विस्मिताश्चाभवन्सुरा ॥३१॥
अतिक्रान्ते विवाहे तु सुरा सर्वे दिव ययु । समत्सर शचीभर्ता तामीक्ष्य च दिव ययौ ॥३२॥
तत प्रीतमनास्तस्मै गौतमाय महात्मने । प्रादा ब्रह्मगिरिं पुण्य सर्वकामप्रद शुभम् ॥३३॥
अहल्याया मुनिश्रेष्ठो रेमे तत्र स गौतम । गौतमस्य कथां पुण्या श्रुत्वा शक्रस्त्रिविष्टपे ॥३४॥

वाक्य कहा—कमलासन ! विश्वात्मन् ! आपको मेरा बार बार नमस्कार है ॥२३॥ ब्रह्मन् ! मैंने इस सम्पूर्ण पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर दी। देवेश ! इस विषय मे जो कुछ सत्यता है उसको आप स्वय जानते हैं, ॥२४॥ मैंने भी ध्यानावस्थित होकर योग-दृष्टि से यह सब कुछ जान लिया और गौतम से कहा यह सुन्दर भौं वाली अहल्या तुमको ही दी जायगी क्योंकि तुमने प्रदक्षिणा समाप्त कर दी है ॥२५॥ विप्रर्षि ! शास्त्रो से भी कठिनाई से जानने योग्य धर्म को तुम जानते हो। सचमुच अर्धप्रसूता (आधी ब्याई) कामधेनु सात द्वीप वाली पृथ्वी है ॥२६॥ इसकी की हुई प्रदक्षिणा पृथिवी की की हुई प्रदक्षिणा के बराबर हुई और शिवलिंग की प्रदक्षिणा से पृथ्वी प्रदक्षिणा का ही फल मिलता है ॥२७॥ इसलिये मुने ! उत्तम व्रत करने वाले गौतम ! तुम्हारे धैर्य ज्ञान और तपस्या से मैं भली भाँति प्रसन्न हूँ ॥२८॥ ऋषिशार्दूल ! सर्वसुन्दरी यह कन्या तुमको दे दी गई। मुने ! यह कहकर मैंने गौतम को अहल्या दे दी ॥२९॥ इधर विवाह हो जाने पर वे देवता पृथ्वी की परिक्रमा कर धीरे धीरे मेरे पास आये और यह सब कुछ देखा ॥३०॥ वे देवता आकर अहल्या और गौतम का प्रेम बढ़ाने वाला दाम्पत्य (विवाह-सबन्ध) देखकर अत्यन्त विस्मित हो गये ॥३१॥ इस प्रकार विवाह विधि समाप्त हो जाने पर सब देवता स्वर्ग को चले गये। परन्तु शचीपति इन्द्र ने अत्यन्त ईर्ष्या की दृष्टि से अहल्या को देखते हुए स्वर्ग को प्रस्थान किया ॥३२॥ इसके बाद मैंने प्रसन्न होकर महात्मा गौतम को सब कामनाओं को देने वाला पवित्र ब्रह्मगिरि दे दिया। उस पर्वत पर मुनिश्रेष्ठ गौतम आनन्द-पूर्वक अहल्या के साथ विहार करने लगे इस पवित्र शुभदायक गौतम के दाम्पत्य प्रेम की कथा को इन्द्र ने स्वर्ग मे

१क ०येल्ग द्वितिया पुन । घ० । २क ०येंगता पुन । ग० ।

तमाश्रमं तं च मुनिं तस्य भार्यामनिन्दिताम्। भूत्वा ब्राह्मणवेषेण द्रष्टुमागाच्छतक्रतुः॥३५॥
स दृष्ट्वा भवनं तस्य भार्यां च विभवं तथा। पापीयसीं मतिं कृत्वा अहल्यां समुदैक्षत॥३६॥
नाऽऽत्मानं न परं देशं कालं शापाद्भयम्। न बुबोध तदा वत्स कामाकृष्टः शतक्रतुः॥३७॥
तद्ध्यानपरमो नित्यं सुरराज्येन गर्वितः। संतप्ताङ्गः कथं कुर्यां प्रवेशो मे कथं भवेत्॥३८॥
एवं वसन्विप्ररूपो नान्तरं त्वध्यगच्छत। स कदाचिन्महाप्राज्ञः कृत्वा पौर्वाह्णिकीं क्रियाम्॥३९॥
सहितो गौतमः शिष्यैर्निर्गतश्चाश्रमाद्बहिः। आश्रमं गौतमीं[1] विप्रान्धान्यानि विविधानि च॥४०॥
द्रष्टुं गतो मुनिवर इन्द्रस्तं समुदैक्षत। इदमन्तरमित्युक्त्वा चक्रे कार्यं मन प्रियम्॥४१॥
रूपं कृत्वा गौतमस्य प्रियेप्सुः स शतक्रतुः। तां दृष्ट्वा[2] चारुसर्वाङ्गीमहल्यां वाक्यमब्रवीत्॥४२॥

इन्द्र उवाच

आकृष्टोऽहं तव गुणै रूपं स्मृत्वा स्खलत्पदः। इति ब्रुवन्हसन्हस्तमादायान्तः समाविशत्॥४३॥
न बुबोध त्वहल्या तं जारं मेने तु गौतमम्। रममाणा यथासौख्यं प्रागाच्छिष्यैः स गौतमः॥४४॥

सुता॥३३-३४॥ ईर्ष्यालु शतक्रतु इन्द्र उस आश्रम, उस मुनि और मुनि की पवित्र पतिव्रता भार्या को देखने के लिये ब्राह्मण के वेश मे आया॥३५॥ गौतम के भवन भार्या और विभव को देखकर उसके मन मे पापबुद्धि उत्पन्न हो गई। उसने बुरी दृष्टि से अहल्या को देखा॥३६॥ वत्स! उस काम के वशीभूत शतक्रतु इन्द्र ने न तो आत्मगौरव न लोकापवाद, न देश, न काल को ही समझा और न तो ऋषि-शाप के भय का ही उसको ज्ञान रहा॥३७॥ वह कामाग्नि से दग्ध शरीरवाला सर्वदा अहल्या के ही ध्यान मे मस्त रहा। उसको अपने सुर राज्य पर अभिमान था। वह तो यही सोचता रहा कि 'क्या करूँ कैसे ऋषि के घर मे मेरा प्रवेश होगा'॥३८॥ इस प्रकार ब्राह्मण के वेश मे छिपा हुआ इन्द्र ऋषि-आश्रम मे रहने लगा किन्तु उसको अवसर नही मिला। किसी समय वह महाबुद्धिमान् गौतम मुनि पूर्वाह्ण की नित्यक्रिया समाप्त कर शिष्यो के साथ आश्रम से बाहर चले गये॥३९॥ इन्द्र ने देखा कि मुनि आश्रम गौतमी, विप्रो और विविध धान्यो को देखने के लिए चले गये है। तो अब मुझे अवसर मिला, यह कहकर अपना अभिलषित कार्य करने लगा॥४०-४१॥ प्रिय अहल्या को पाने की इच्छा रखने वाले शतक्रतु ने गौतम का रूप धारण कर लिया और उस सर्वाङ्ग सुन्दरी अहल्या को देखकर यह कहा॥४२॥

इन्द्र ने कहा—मैं तुम्हारे गुणो से खिचा हुआ (वशीभूत) हूँ। तुम्हारे रूप का स्मरण कर मेरे पैर सीधे नही पडते (अपने पद से भ्रष्ट हो गया हूँ)। यह कहकर हँसता हुआ उसका हाथ पकडकर अन्त पुर मे घुस गया। अहल्या ने उसको जार (उपपति) नही समझा किन्तु गौतम ही मान लिया। इसलिए उसके साथ सुख-पूर्वक विहार करने लगी। इसी समय अपने शिष्यो सहित गौतम पहुँच गये। नित्यप्रति प्रिय वचन कहने वाली

---

[1] घ. आश्रमे। [2] घ ०नि च वनानि। ३घ गत्वा।

आगच्छन्त नित्यमेव अहल्या प्रियवादिनी। प्रतियाति[१] प्रिय वक्ति तोषयन्ती च त गुणै ॥४५॥
तामदृष्टवा महाप्राज्ञो मेने तन्महदद्भुतम। द्वारस्थित मुनिश्रेष्ठ सर्वे पश्यन्ति नारद ॥४६॥
अग्निहोत्रस्य शालाया रक्षिणो गृहकर्मिण। ऊचुर्मुनिवर भीता गौतम विस्मयान्विता ॥४७॥

रक्षिण ऊचु

भगवन्किमिद चित्र बहिरन्तश्च दृश्यसे। प्रिययाऽन्त प्रविष्टोसि तथैव च बहिर्भवान॥
अहो तप प्रभावोऽय नानारूपधरो भवान् ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा विस्मितस्त्वन्त प्रविष्ट को नु तिष्ठति। प्रिये अहल्ये भवति किं मा न प्रतिभाषसे॥४९॥
इत्यृषेर्वचन श्रुत्वा अहल्या जारमब्रवीत् ॥५०॥

अहल्योवाच

को भवान्मुनिरूपेण पाप त्व कृतवानसि। इति ब्रुवती शयनादुत्थिता सत्वर भयात् ॥५१॥
स चापि पापकृच्छक्रो विडालोऽभून्मुनेर्भयात। त्रस्तां च विकृता दृष्ट्वा स्वप्रिया दूषिता तदा ॥५२॥

अहल्या गौतम के आने पर उनका सत्कार करने के लिये द्वार तक जाती मधुर वचन बोलती थी और अपने स्त्रीसुलभ गुणो से उनको सतुष्ट करती थी। किन्तु आज उसको पूर्व की भाँति न देख कर उस महाप्राज्ञ को अत्यन्त आश्चर्य जान पडा। नारद! द्वार पर खडे मुनिश्रेष्ठ को सभी देखने लगे। अग्निहोत्रशाला के रक्षक और घर पर काम करने वाले सेवक आश्चर्य चकित और भयभीत होकर मुनि से कहने लगे ॥४३ ४७॥

रक्षकों ने कहा—भगवन्! यह क्या! आप बाहर और भीतर सर्वत्र दिखाई देते हैं अभी प्रिया के साथ अन्त पुर मे प्रविष्ट हुए और अभी उसी प्रकार बाहर भी दिखाई दे रहे हैं। अहो! यह तपस्या का प्रभाव है आप विभिन्न रूप धारण करने वाले हैं ॥४८॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर विस्मित गौतम घर के भीतर चले गये और बोले—यहाँ कौन है? प्रिये! अहल्ये! तुम आज मुझसे क्यो नही प्रतिभाषण कर रही हो? ऋषि की बातो को सुनकर अहल्या ने जार से कहा ॥४९ ५०॥

अहल्या बोली—तुम कौन हो? तुमने मुनि का वेश धारण कर मेरे साथ पाप कर्म किया है। यह कहती हुई भय से शीघ्र पलग से उठ गई। वह पापकर्मा इन्द्र भी मुनि के भय से बिडाल बन गया। उस समय भयभीत विकृत और दूषित अपनी प्रिया को देखकर उस मुनि ने शाप से कहा कि तुमने यह कौन-सा साहस (बुरा

---

१ पतिप्रिया।

उवाच स मुनि कोपात्किमिद साहस कृतम्। इति ब्रुवन्त भर्तार साऽपि नोवाच लज्जिता[१]॥५३॥
अन्वेषयस्तु त जार बिडाल ददृश मुनि। को भवानिति त प्राह भस्मीकुर्यां मृषा वदन॥५४॥

इन्द्र उवाच

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा चैवमाह शचीपति। शचीभर्ता पुरा भेत्ता तपोधन पुरुष्टुत॥५५॥
ममैव पापमापन्न सत्यमुक्त मयाऽनघ। महद्विगर्हित कर्म कृतवानस्म्यह मुने॥५६॥
स्मरसायकनिर्भिन्नहृदया कि न कुर्वते। ब्रह्मन्मयि महापापे क्षमस्व करुणानिधे॥५७॥
सन्त कृतापराधेऽपि न रौक्ष्य जातु कुर्वते। निशम्य तद्वचो विप्रो हरिमाह रुषाऽन्वित[३]॥५८॥

गौतम उवाच

भगभक्त्या कृत पाप सहस्रभगवान्भव। तामप्याह मुनि कोपात्त्व च शुष्कनदी भव॥५९॥
तत प्रसादयामास कथयन्ती तदाकृतिम् ॥६०॥

अहल्योवाच

मनसाऽप्यन्यपुरुष पापिष्ठा कामयन्ति या। अक्षयायान्ति नरकास्तासा सर्वेऽपि पूवजा॥६१॥

कर्म) कर डाला। इस प्रकार भर्त्ता को कहते हुए देखकर वह भी लज्जा के मारे कुछ न कह सकी। मुनि भी जार को ढूढने लगे इतने मे एक बिडाल दिखाई दिया। उन्होने उससे कहा कहा— तुम कौन हो? असत्य बोलोगे तो भस्म कर दूगा॥५१ ५४॥

इन्द्र बोले—हाथ जोडकर इन्द्र ने इस प्रकार कहा— तपोधन! शची का भर्ता पुर राक्षस को मारने वाला पुरुष्टुत (बहुत नाम वाला) इन्द्र हू। निष्पाप! मुझसे ही यह पापकम हुआ। मैंने सत्य कहा है। मुने! महान निन्दित कम मैंने किया है। काम के बाणो से आहत हृदय वाले (कामात) मनुष्य क्या नही कर देते हैं? ब्रह्मन्! करुणा सागर! मुझ महापापी को क्षमा कीजिये। सन्त पुरुष अपराधियो पर भी क्रोध नही करते। इन्द्र की बातो को सुनकर क्रुद्ध विप्र ने इन्द्र से कहा—॥५५ ५८॥

गौतम बोले—तुमने भग के प्रेम से यह काम किया है इसलिये हजार भग (योनि) वाले हो जाओ। मुनि ने क्रोध से अहल्या से भी कहा कि तुम भी सूखी नदी हो जाओ। तदनन्तर इन्द्र की आकृति का वर्णन करती हुई अहल्या उनको प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगी॥५९ ६०॥

अहल्या ने कहा—जो पापिष्ठा नारी मन से भी परपुरुष की कामना करती है उसकी तो कौन कहे उसके सभी पूवज भी कभी न नष्ट होने वाले नरक को जाते हैं। भगवन्! प्रसन्न होकर मेरी बातो पर विचार कीजिये।

१क ०ता। भ्रममाण मयोद्विग्न वि०। २घ ०र्या सहानुगम्। इ०। ३क ०त। त्वया गाफ इ०। ४घ ०गमाग्मव।

भूत्वा प्रसन्नो भगवन्नवधारय मद्वचः। तव रूपेण चाऽऽगत्य मामगात्साक्षिणस्त्विमे ॥६२॥
तथेति रक्षिणः प्रोचुरहल्या सत्यवादिनी। ध्यानेनापि मुनिर्ज्ञात्वा शान्तः प्राह पतिव्रताम् ॥६३॥

गौतम उवाच

यदा तु सगता भद्रे गौतम्या सरिदीशया। नदी भूत्वा पुना रूपं प्राप्यसे प्रियकृन्मम ॥६४॥
इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा तथा चक्रे पतिव्रता। तया तु संगता देव्या अहल्या गौतमप्रिया ॥६५॥
पुनस्तद्रूपमभवद्यन्मया निर्मितं पुरा। ततः कृताञ्जलिपुटः सुरराट् प्राह गौतमम् ॥६६॥

इन्द्र उवाच

मां पाहि मुनिशार्दूल पापिष्ठं गृहमागतम्। पादयोः पतितं दृष्ट्वा कृपया प्राह गौतमः ॥६७॥

गौतम उवाच

गौतमीं गच्छ भद्रं ते स्नानं कुरु पुरंदर। क्षणान्निर्धूतपापस्त्वं सहस्राक्षो भविष्यसि ॥६८॥
उभयं विस्मयकरं दृष्टवानस्मि नारद। अहल्यायाः पुनर्भावं शचीभर्ता सहस्रदृक् ॥६९॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थमहल्यासंगमं शुभम्। इन्द्रतीर्थमिति ख्यातं सर्वकामप्रदं नृणाम् ॥७०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽहल्यासगमेन्द्रतीर्थवर्णनं नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥
गौतमीमाहात्म्येऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

वह आप का ही रूप धारण कर मेरे पास आया, इसके ये रक्षक साक्षी हैं। उन रक्षकों ने भी कहा कि अहल्या सत्य कह रही है। मुनि ने भी अपने योगबल से जानकर शान्त हो पतिव्रता भार्या से कहा ॥६१-६३॥

गौतम ने कहा—कल्याणि! जब तुम नदी होकर नदियों की स्वामिनी गौतमी से मिलोगी तब पुन मेरे प्रिय करनेवाले रूप को प्राप्त करोगी। ऋषि की बात सुनकर पतिव्रता अहल्या ने वैसा ही किया। देवी गौतमी से मिल जाने पर गौतम की प्रिया अहल्या पुन उस रूप को पा गई जैसा कि मैंने पहले बताया था। इसके बाद सुरराज इन्द्र ने हाथ जोड़कर गौतम से कहा—॥६४-६६॥

इन्द्र बोले—'मुनिशार्दूल! घर में आये हुए इस महापापी की रक्षा कीजिये'। इस प्रकार इन्द्र को पैरों पर गिरा हुआ देखकर करुणा से आर्द्र मुनि ने कहा—॥६७॥

गौतम ने कहा—गौतमी के पास जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा। पुरंदर! उसमें जा कर स्नान करो, एक क्षण में ही तुम्हारे पाप धुल जायेंगे और तुम सहस्राक्ष हो जाओगे'। नारद! मैंने आश्चर्य में डाल देने वाली दोनों घटनाओं को—पहली अहल्या का नदी होकर भी पुन अपने स्वरूप को प्राप्त होना और दूसरी शचीपति का सहस्राक्ष होना—देखा है। तब से वह शुभतीर्थ अहल्या-संगम या इन्द्रतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हुआ, जो मनुष्यों के सब मनोरथों को पूर्ण करने वाला है ॥६८-७०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में अहल्या-संगम इन्द्रतीर्थ-वर्णन नामक सतासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८७॥

अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः

जनस्थानतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तस्मादप्यपरं तीर्थं जनस्थानमिति श्रुतम्। चतुर्योजनविस्तीर्णं स्मरणान्मुक्तिदं नृणाम्॥१॥
वैवस्वतान्वये जातो राजाऽभूज्जनकः पुरा। सोऽपापतेस्तु तनुजामुपयेमे गुणार्णवाम्॥२॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां जनका जनको नृप। अनुरूपगुणत्वाच्च तस्य भार्या गुणार्णवा॥३॥
याज्ञवल्क्यश्च विप्रेन्द्रस्तस्य राज्ञः पुरोहितः। तमपृच्छन्नृपश्रेष्ठो याज्ञवल्क्यं पुरोहितम्॥४॥

जनक उवाच

भुक्तिमुक्ती उभे श्रेष्ठे निर्णीते मुनिसत्तमैः। दासीदासेभतुरगरथाद्यैर्भुक्तिरुत्तमा॥५॥
किंत्वन्तविरसा भुक्तिर्मुक्तिरेका निरत्यया। भुक्तेर्मुक्तिः श्रेष्ठतमा भुक्त्या मुक्तिः कथं व्रजेत्॥६॥
सर्वसङ्गपरित्यागान्मुक्तिप्राप्तिः सुदुःखतः। तद्ब्रूहि द्विजशार्दूल सुखान्मुक्तिः कथं भवेत्॥७॥

अध्याय ८८

जनस्थानतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—उसके बाद जनस्थान नाम से प्रसिद्ध चार योजन तक विस्तृत एक तीर्थ है जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है। प्राचीन काल मे वैवस्वत वंश मे जनक नाम के एक राजा उत्पन्न हुये। उन्होने जल के स्वामी वरुण की कन्या गुणार्णवा (गुणों का समुद्र अत्यन्त गुणवती) से—जो कि धर्म अर्थ काम और मोक्ष को देने वाली थी—विवाह किया। उस राजा जनक की भार्या गुणार्णवा अपने अनुरूप गुणों के कारण वास्तव मे गुणार्णवा (गुण-सागर) थी। विप्रेन्द्र याज्ञवल्क्य उस राजा के पुरोहित थे। एक दिन नृपश्रेष्ठ जनक ने पुरोहित याज्ञवल्क्य से पूछा—॥१-४॥

जनक बोले—भुक्ति और मुक्ति दोनो श्रेष्ठ हैं ऐसा श्रेष्ठ मुनियों ने निर्णय किया है। यद्यपि दासी दास, हाथी, घोडे और रथ आदि सुख सामग्रियों के कारण भुक्ति उत्तम मानी जाती है परन्तु भुक्ति का अन्त आनन्द से रहित है केवल मुक्ति ही निरत्यय (नित्य और अविनाशी) है। भुक्ति से मुक्ति श्रेष्ठ है परन्तु भोग के बाद मुक्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है। सब प्रकार की आसक्ति के त्याग से ही मुक्ति प्राप्त होती है इसलिये यह मुक्ति अत्यन्त दुःख से प्राप्त करने योग्य है। अतः हे द्विजशार्दूल! मुक्ति सुखपूर्वक कैसे प्राप्त की जा सकती है यह कहिये॥५-७॥

याज्ञवल्क्य उवाच

अपापतिस्तव गुरुः श्वशुरः प्रियकृत्तथा। तं गत्वा पृच्छ नृपते उपदेक्ष्यति ते हितम्॥८॥
याज्ञवल्क्यश्च जनको राजानं वरुणं तदा। गत्वा चोचतुरव्यग्रौ मुक्तिमार्गं यथाक्रमम्॥९॥

वरुण उवाच

द्विधा तु संस्थिता मुक्तिः कर्मद्वारेऽप्यकर्मणि। वेदे च निश्चितो मार्गः कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः॥१०॥
सर्वं च कर्मणा बद्धं पुरुषार्थचतुष्टयम्। अकर्मणैवाऽप्यत इति मुक्तिमार्गो मृषोच्यते॥११॥
कर्मणा [1]सर्वधान्यानि सेत्स्यन्ति नृपसत्तम। तस्मात्सर्वात्मना कर्म कर्तव्यं वैदिकं नृभिः॥१२॥
तेन भुक्तिं च मुक्तिं च प्राप्नुवन्तीह मानवाः। अकर्मणः कर्म पुण्यं कर्म चाप्याश्रमेषु च॥१३॥
जात्याश्रितं च राजेन्द्र तत्रापि शृणु धर्मवित्। आश्रमाणि च चत्वारि कर्मद्वाराणि मानद॥१४॥
चतुर्णामाश्रमाणां च गार्हस्थ्यं पुण्यदं स्मृतम्। तस्माद्भुक्तिश्च मुक्तिश्च भवतीति मतिर्मम॥१५॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तु जनको याज्ञवल्क्यश्च बुद्धिमान्। वरुणं पूजयित्वा तु पुनर्वचनमूचतुः॥१६॥
को देशः किं च तीर्थं स्याद्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्। तद्वदस्व सुरश्रेष्ठ सर्वज्ञोऽसि नमोऽस्तु ते॥१७॥

याज्ञवल्क्य ने कहा—जल के स्वामी वरुण तुम्हारे श्वशुर गुरु (ज्ञानदाता) तथा प्रिय करने वाले हैं। नृपति! तुम उन्हीं के पास जाकर पूछो। वे तुम्हारे अनुकूल ज्ञान का उपदेश करेंगे। तब याज्ञवल्क्य और जनक दोनों ने राजा वरुण के पास जाकर शान्तभाव से यथाक्रम मुक्तिमार्ग के विषय में पूछा॥८-९॥

वरुण ने कहा—मुक्ति की स्थिति दो प्रकार की है, एक कर्म द्वारा, दूसरी अकर्म द्वारा, परन्तु वेदों में यही मार्ग निश्चित किया गया है कि अकर्म से कर्म ही श्रेयस्कर है। सब धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चारों पुरुषार्थ कर्म से ही आबद्ध हैं। अतः 'कर्मत्याग मुक्ति का मार्ग है' यह कहना व्यर्थ है। नृपश्रेष्ठ! कर्म से ही सब धान्यों की भी प्राप्ति होती है अतः सब प्रकार से वेदोक्त कर्म करना चाहिये। मनुष्य उस कर्म के द्वारा ही लोक में भुक्ति और मुक्ति प्राप्त करते हैं। अकर्म की अपेक्षा कर्म ही श्रेयस्कर है। चारों आश्रमों में भी कर्म की ही प्रधानता है। राजेन्द्र! धर्म के जानने वाले! उन कर्मों में भी जाति से सम्बन्ध रखने वाले कर्म को सुनो। मानद! चारों आश्रम भी कर्म के द्वारा ही बनाये गये हैं। चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम पुण्यप्रद कहा गया है। उसी गृहस्थाश्रम से भुक्ति और मुक्ति दोनों प्राप्त होती हैं, यह मेरा विचार है॥१०-१५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस बात को सुनकर जनक और बुद्धिमान् याज्ञवल्क्य ने वरुण की पूजा कर पुनः यह वचन कहा—'कौन-सा देश और कौन से तीर्थ, भुक्ति और मुक्ति को देने वाले हैं। सुरश्रेष्ठ! आप सर्वज्ञ हैं। इस बात को बतलाइये। आपको नमस्कार है'॥१६-१७॥

---

[1] ध ०र्वसाध्यानि।

वरुण उवाच

पृथिव्यां भारतं वर्षं दण्डकं तत्र पुण्यदम्। तस्मिन्क्षेत्रे कृतं कर्म भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम् ॥१८॥
तीर्थानां गौतमी गङ्गा श्रेष्ठा मुक्तिप्रदा नृणाम्। तत्र यज्ञेन दानेन भोगान्मुक्तिमवाप्स्यति ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

याज्ञवल्क्यश्च जनको वाचं श्रुत्वा ह्यपांपतेः। वरुणेन ह्यनुज्ञातौ स्वपुरीं जग्मतुस्तदा ॥२०॥
अश्वमेधादिकं कर्म चकार जनको नृप.। याजयामास विप्रेन्द्रो याज्ञवल्क्यश्च तं नृपम् ॥२१॥
गङ्गातीरं समाश्रित्य यज्ञान्मुक्तिमवाप राट्। तथा जनकराजानो बहवस्तत्र कर्मणा ॥२२॥
मुक्तिं प्रापुर्महाभागा गौतम्याश्च प्रसादतः। ततः प्रभृति तत्तीर्थं जनस्थानेति विश्रुतम् ॥२३॥
जनकानां यज्ञसदो जनस्थानं प्रकीर्तितम्। चतुर्योजनविस्तीर्णं स्मरणात्सर्वपापनुत् ॥२४॥
तत्र स्नानेन दानेन पितृणां तर्पणेन तु। तीर्थस्य स्मरणाद्वाऽपि गमनाद्भक्तिसेवनात् ॥२५॥
सर्वान्कामानवाप्नोति मुक्तिं च समवाप्नुयात् ॥२६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये जनस्थानतीर्थवर्णनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥
गौतमीमाहात्म्ये एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

वरुण बोले—इस भूमण्डल म भारतवर्ष और उसम भी दण्डकवन पुण्यदायक प्रदेश है। उस क्षेत्र मे किये गये कर्मों से मनुष्य को भुक्ति और मुक्ति प्राप्त होती है। तीर्थों म गौतमी गगा श्रेष्ठ और मनुष्यों को मुक्ति देने वाली है। वहां यज्ञ करने और दान देने से भोगो से मुक्ति मिल जाती है ॥१८-१९॥

ब्रह्मा ने कहा—याज्ञवल्क्य और राजा जनक वरुण की उपर्युक्त बातो को सुनकर उनसे आज्ञा लेकर अपनी नगरी को चले गये। वहां जाकर नृप जनक ने अश्वमेधादि यज्ञो को किया और विप्रेन्द्र याज्ञवल्क्य ने (पुरोहित बनकर) नृप जनक से यज्ञ करवाया। उस राजा ने इस प्रकार गगा-तीर का आश्रय लेकर यज्ञो द्वारा मुक्ति प्राप्त की। इसी प्रकार बहुत से जनक वश के राजाओ ने वहां पर कर्म करने से और गौतमी की कृपा से मुक्ति प्राप्त की। तब से वह तीर्थ जनस्थान नाम से प्रसिद्ध हो गया। जनकवशी राजाओं का यज्ञभवन ही जनस्थान कहा गया है, जो चार योजन विस्तीर्ण है। उसके स्मरण से ही सब प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं। वहां स्नान करने, दान देने और पितृतर्पण करने और तीर्थ के स्मरण करने, अथवा भक्तिपूर्वक वहां जाने और तीर्थ-सेवन करने से मनुष्य सब मनोरथो को प्राप्त कर अन्त मे मुक्ति प्राप्त करता है ॥२०-२६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे जनस्थान-तीर्थ-वर्णन नामक अट्ठासीवां अध्याय समाप्त ॥८८॥

अथोननवतितमोऽध्यायः

अरुणावरुणासगमाश्वभानुतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अरुणा वरुणा चैव नद्यौ पुण्यतरे शुभे। तयोश्च सगम पुण्यो गङ्गाया मुनिसत्तम ॥१॥
तदुत्पत्ति शृणुष्वेह सर्वपापविनाशिनीम्। काश्यपस्य सुतो ज्येष्ठ आदित्यो लोकविश्रुत ॥२॥
त्रैलोक्यचक्षुस्तीक्ष्णाशु सप्ताश्वो लोकपूजित । तस्य पत्नी उषा ख्याता त्वाष्ट्री त्रैलोक्यसुन्दरी ॥३॥
भर्तु प्रतापतीव्रत्वमसहन्ती सुमध्यमा। चिन्तयामास किं कृत्य मम स्यादिति भामिनी ॥४॥
तस्या पुत्रौ महाप्राज्ञौ मनुर्वैवस्वतो यम । यमुना च नदी पुण्या शृणु विस्मयकारणम् ॥५॥
साऽकरोदात्मनश्छायामात्मरूपेण यत्नत । तामब्रवीत्ततश्चोषा त्व च मत्सदृशी भव ॥६॥
भर्तार त्वमपत्यानि पालयस्व ममाऽज्ञया। यावदागमन मे स्यात्पत्युस्ताव‍त्प्रिया भव ॥७॥
नाऽऽख्यातव्य त्वया क्वापि अपत्याना तथा प्रिये। तथेत्याह च सा छाया निजगाम गृहादुषा ॥८॥
इत्युक्त्वा सा जगामाऽऽशु शान्त रूपमभीप्सती। सा गत्वोषा गृह त्वष्टु पित्रे सर्व न्यवेदयत् ॥
त्वष्टाऽपि चकित प्राह ता सुता सुतवत्सल ॥९॥

अध्याय ८९

अरुणा-वरुणा-सगम और अश्वभानुतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मुनिश्रेष्ठ! अरुण और वरुण नाम की दो शुभ पवित्र नदियाँ हैं। उनका सगम जो गगा म मिलने से बनता है—अत्यन्त पुण्य देने वाला है। उनकी उत्पत्ति की कथा—जो सब पापो को नष्ट करने वाली है—सुनो। कश्यप के ज्येष्ठ पुत्र लोक प्रसिद्ध आदित्य है—जो तीनो लोको के नेत्रस्वरूप तीक्ष्ण किरणवाले और लोक-पूजित हैं। उनके सात घाड़े है। उनकी पत्नी त्वष्टा की कन्या त्रिभुवन-सुन्दरी उषा हुई। वह सुन्दर कटि वाली भार्या पति के तीव्र तेज को नही सह पाती थी इसलिये अपने मन म विचार किया कि मुझ क्या करना चाहिये। उसके दो परम प्रभावान् वैवस्वत मनु और यम पुत्र हुए। परम पवित्र यमुना नदी पुत्री हुई। आगे कौन सी विस्मय उत्पन्न करने वाली घटना हुई उसको सुनो। उसने अपनी छाया को बडे यत्न से अपने रूप के समान ही बनाया। इसक अनन्तर उषा ने अपनी मूर्तिमती छाया से कहा—तुम मेरे समान हो जाओ। मेरी आज्ञा से मेरे पति और बच्चो का पालन करो जब तक मैं न आऊँ तब तक तुम मेरे पति की प्रिया बनो। प्रिये! इस रहस्य को कहा पर किसी से भी यहाँ तक कि अपने बच्चों से भी मत कहना। छाया ने इसको स्वीकार कर लिया। तब उषा घर से बाहर चली गई। इस प्रकार छाया को समझा कर शीघ्र आत्मशान्ति प्राप्त करने की इच्छा से अपने पिता त्वष्टा के घर जाकर पिता से सब कुछ कह सुनाया। सुतवत्सल त्वष्टा भी यह सुनकर चकित हो गये और पुत्री उषा से कहा—॥१-९॥

त्वष्टोवाच

नैतद्युक्तं भर्तृमत्या यत्स्वैरेण प्रवर्तनम्। अपत्यानां कथं वृत्तिर्भर्तुर्वा सवितुस्तव॥
बिभेमि भद्रे शिष्टोऽहं भर्तुर्गेहं पुनर्व्रज ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्ता तु पित्रा सा नेत्युक्त्वा वै पुनः पुनः। उत्तरं च कुरोर्देशं जगाम तपसे त्वरा॥११॥
तत्र तेपे तपस्तीव्रं वडवारूपधारिणी। दुष्प्रेक्षं तं स्वकं कान्तं ध्यायन्ती निश्चला उषा॥१२॥
एतस्मिन्नन्तरे तात छाया चोषास्वरूपिणी। पत्यौ सा वर्तयामास अपत्यान्यथ जज्ञिरे॥१३॥
सावर्णिश्च शनिश्चैव विष्टिर्या दुष्टकन्यका। सा छाया वर्तयामास वैषम्येणैव नित्यशः॥१४॥
स्वेष्वपत्येषु चोषाया यमस्तत्र चुकोप ह। वैषम्येणाथ वर्तन्तीं छाया तां मातरं तदा॥१५॥
ताडयामास पादेन दक्षिणाशापतिर्यमः। पुत्रदौर्जन्यसंक्षोभाच्छाया वैवस्वतं यमम्॥१६॥
शशाप पाप ते पादो विशीर्यतु ममाऽऽज्ञया। विशीर्णचरणो दुःखाद्दुःपितरमभ्यगात्॥
सवित्रे तं तु वृत्तान्तं न्यवेदयदशेषतः ॥१७॥

यम उवाच

नेयं माता सुरश्रेष्ठ यया शप्तोऽहमीदृशः। अपत्येषु विरुद्धेषु जननी नैव कुप्यते॥१८॥
यद्बाल्यादश्रवं किंचिदथवा दुष्कृतं कृतम्। नैव कुप्यति सा माता तस्मान्नेयं ममाम्बिका॥१९॥

त्वष्टा ने कहा—यह पति वाली स्त्रियों के लिये उचित नहीं है कि वह स्वेच्छा से कार्य करे। भला बताओ तो तुम्हारे भर्ता सविता और संतान की क्या स्थिति होगी। भद्रे! मैं शिष्टता के नाते डर रहा हूँ, तुम पुनः अपने स्वामी के घर चली जाओ॥१०॥

ब्रह्मा ने कहा—पिता के इस प्रकार कहने पर उस उषा ने बार बार "नहीं, नहीं" कहा और कुरु से उत्तर प्रदेश की ओर शीघ्रता से तपस्या करने चली गई। वहाँ वडवा (घोडी) का रूप धारण कर उषा ने निश्चल भाव से अपने कठिनाई से देखे जाने योग्य पति का ध्यान करती हुई तीव्र तप किया। तात! इस बीच उषा की प्रतिनिधि छाया ने पति के साथ दाम्पत्य व्यवहार किया और सावर्णि तथा शनि नाम के दो पुत्रों एवं विष्टि नाम की दुष्ट कन्या को उत्पन्न किया। वह छाया नित्य प्रति अपने पुत्रों और उषा के पुत्रों के साथ असमान व्यवहार करने लगी। यह देखकर यम क्रुद्ध हो गये। दक्षिण दिशा के स्वामी यम ने उस समय असमान व्यवहार करने वाली उस माता छाया को पैर से मारा। पुत्र की इस अशिष्टता को देखकर छाया को अत्यन्त क्षोभ हुआ। उसने वैवस्वत यम को शाप दिया कि पापी! मेरे शाप से तेरे चरण गल जायें।' माता के शाप से यम के पैर गल गए, दुःख से रोता हुआ वह पिता के समीप गया और सविता से आदि से अन्त तक सारा वृत्तान्त कह सुनाया॥११-१७॥

यम ने कहा—सुरश्रेष्ठ! जिसने मुझे इस प्रकार शाप दिया है, वह मेरी माता नहीं है। सन्तान के अशिष्ट आचरण करने पर माता कभी भी क्रोध नहीं करती है। बाल्य-काल में जो कुछ मैंने कहा था अशिष्टता की है,

यदपत्यकृतं किंचित्साध्वस्वाधु यथा तथा। मात्यस्यां सर्वमप्येतत्तस्मान्मातेति गीयते॥२०॥
प्रधक्ष्यन्तीव मा तात नित्यं पश्यति चक्षुषा। वक्त्यग्निकालसदृशा वाचा नेयं मदम्बिका॥२१॥

ब्रह्मोवाच

तत्पुत्रवचनं श्रुत्वा सवितार्ऽचिन्तयत्ततः। इयं छाया नास्य माता उषा माता तु साऽन्यतः॥२२॥
मम शान्तिमभीप्सन्ती देशेऽन्यस्मिंस्तपोरता। उत्तरे च कुरौ त्वाष्ट्री वडवारूपधारिणी॥२३॥
तत्राऽऽस्ते सा इति ज्ञात्वा जगामेशो दिवाकरः। यत्र सा वर्तते कान्ता अश्वरूपः स्वयं तदा॥२४॥
ता दृष्ट्वा वडवारूपां पर्यधावद्धयाकृतिः। कामातुरं हयं दृष्ट्वा श्रुत्वा वै ह्रेषितस्वनम्॥२५॥
उषा पतिव्रतोपेता पतिध्यानपरायणा। हयधर्षणसंभीता को न्वयं चेत्यजानती॥२६॥
अपलायत्पतौ प्राप्ते दक्षिणाभिमुखी त्वरा। को नु मे रक्षकोऽत्र स्यादृषयो वाऽथवा सुरा॥२७॥
धावन्तीं ता प्रियामश्वामश्वरूपधर. स्वयम्। पर्यधावद्यतो याति उषा भानुस्ततस्ततः॥२८॥
स्मरग्रहवशे जातः को दुश्चेष्टं न चेष्टते। भागीरथीं नदीश्चान्या वनान्युपवनानि च॥२९॥
नर्मदां चाथ विन्ध्यं च दक्षिणाभिमुखावु (खौ उ) भौ। अतिक्रम्य भयोद्विग्ना त्वाष्ट्र्यभ्यगाच्च गौतमीम्॥३०॥
भ्रातारः सन्ति मुनयो जनस्थान इति श्रुतम्। ऋषीणामाश्रमं साऽश्वा प्रविष्टा गौतमीं तथा॥३१॥

उसको देखकर वह मेरी माता कभी भी क्रुद्ध नहीं हुई। इसलिये यह मेरी माता नहीं है। जिस किसी प्रकार का सतान द्वारा किया हुआ कर्म चाहे वह अच्छा हो या बुरा सब कुछ उस माता के करण हृदय मे जाकर ही शान्त हो जाता है, इसीलिए उसको (माति अस्याम्) माता कहते हैं। तात! मुझ को यह इस प्रकार देखती है मानो आँखो से जला देगी और सर्वदा कालाग्नि के समान वाणी से ही बोलती है, इसलिये यह मेरी माता नहीं है॥१८-२१॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके उपरान्त सविता अपने पुत्र की बातो को सुनकर विचार करने लगे कि यह छाया इसकी माता नही है। इसकी माता उषा तो दूसरे स्थान पर है। वह त्वष्टा की पुत्री तो वडवा का रूप धारण कर इस समय उत्तर कुरु प्रदेश मे मेरी शान्ति की कामना से तपस्या म लीन है। 'वह वहाँ ही है' यह जानकर भगवान् दिवाकर स्वय अश्व का रूप धारण कर उस प्रदेश म गये जहाँ उनकी प्रिया उषा तपस्या कर रही थी। प्रिया उषा को इस प्रकार वडवा के रूप मे देखकर स्वय अश्व की आकृति वाले सूर्य कामातुर हो उसकी ओर दौड पडे। घोडे को कामातुर देखकर और उसकी हिनहिनाहट को सुनकर पतिव्रता, पति के ध्यान मे तल्लीन उषा अश्व की ढिठाई से डर गई। 'यह कौन है' यह जान कर पति के आने पर भी वह शीघ्र ही दक्षिण दिशा की ओर भाग चली और सोचने लगी कि अब इस परिस्थिति मे मेरा कौन रक्षक होगा ऋषिगण अथवा देवगण। उस अपनी प्रिया वडवा को भागती हुई देखकर अश्वरूप धारी सूर्य भी स्वय दौडने लगे। वह दौडती हुई जिधर जाती थी सूर्य भी उधर ही दौडते हुये जाते थे। कामदेव रूपी ग्रह के वश मे हो जाने पर कौन है जो अनिष्ट चेष्टायें नहीं कर देता है? इस प्रकार वे दोनो दक्षिण की ओर मुख किये हुये भागीरथी, अन्यान्य नदियां वन उपवन तथा नर्मदा और विन्ध्यपर्वत को पार कर गये। उषा किसी प्रकार अपनी रक्षा न देखकर भय से उद्विग्न हो गौतमी के समीप गई। यह सुनकर कि ऋषिमुनि इस लोक म दुखिया की पीडिना के रक्षक है, वह वडवा गौतमी-तट पर स्थित ऋषि-आश्रम म पहुँची। कुछ देर

अनुप्राप्तस्तथा चाश्वो भानुस्तुद्रूपवास्तत । अश्व निवारयामासुजनस्था मुनिदारका ॥
तत कोपादृर्पीस्ताश्च शशापोपापति प्रभु ॥३२॥

भानुरुवाच

निवारयथ मा यस्माद्वटा यूय भविष्यथ ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

ज्ञानदृष्ट्या तु मुनयो मेनिरेऽश्वमुषापतिम्। स्तुवन्तो देवदेवेश भानु त मुनयो मुदा ॥३४॥
स्तूयमानो मुनिगणैरश्वा भानुरथागमत्। वडवाया मुखे लग्न मुख चाश्वस्वरूपिणम् ॥३५॥
ज्ञात्वा त्वाष्ट्री च भर्तार मुखाद्वीर्यं प्रसुस्रुवे। तयोर्वीर्येण गङ्गायामश्विनौ समजायताम् ॥३६॥
तत्राऽऽगच्छन्सुरगणा सिद्धाश्च मुनयस्तथा। नद्यो गावस्तथौषध्यो देवा ज्योतिर्गणास्तथा ॥३७॥
सप्ताश्वश्च रथ पुण्यो ह्यरुणो भानुसारथि । यमो मनुश्च वरुण शनिर्वैवस्वतस्तथा ॥३८॥
यमुना च नदी पुण्या तापी चैव महानदी। तत्तद्रूप समास्थाय नद्यस्ता विस्मया मुने ॥३९॥
द्रष्टु ते विस्मयाविष्टा आजग्मु श्वशुरस्तथा। अभिप्राय विदित्वा तु श्वशुर भानुरब्रवीत् ॥४०॥

भानुरुवाच

उषाया प्रीतये त्वष्ट कुर्वत्यास्तप उत्तमम्। यन्त्रारूढ च मा कृत्वा छिन्धि तेजास्यनेकश ॥
यावत्सौख्य भवेदस्यास्तावच्छिन्धि प्रजापते ॥४१॥

बाद भानु भी अश्व के रूप म वहाँ पहुँच गये। आश्रम मे रहने वाले मुनि-कुमारो ने उस घोड को रोका। इस प्रकार रोके जाने पर क्रुद्ध होकर उपापति सूय ने उनको तथा ऋषियो को शाप दे दिया ॥२२ ३२॥

भानु ने कहा—तुम लोग मुझ जिम कारण निवारण कर रहे हो इसलिये वट वृक्ष हो जाओगे ॥३३॥

ब्रह्मा न कहा—ज्ञान दृष्टि से देखने पर मुनिया ने उस अश्व को उपापति समझ लिया। तब प्रसन्न होकर उस देवदेवेश सूय की स्तुति करने लगे। इस प्रकार मुनिगणो द्वारा स्तुति किये जाने के बाद सूय वडवा के पास गये और अपने घोड के मुख के आकार वाले मुख को वडवा (घोडी) के मुख म मिला दिया। त्वाष्ट्री ने मुखस्पर्श से अपने पति को पहचान कर मुख से वीय त्याग किया। गगा म उन दोनो के वीय गिरने से अश्विनी कुमारो की उत्पत्ति हुई। मुने! यह घटना देखकर विस्मित हो वहाँ पर सुरगण सिद्ध मुनि नदियाँ गौव अ षधियाँ देवता नक्षत्र सूय या सातो घोड तथा दिव्यरथ के सहित सूयसारथी अरुण यम मनु वरुण वैवस्वत शनि पवित्र नदी यमना तापी और महानदी आदि नदियाँ अपने रूप को धारण कर कौतूहलवश देखने के लिये आइ। उस समय सूय के श्वशुर त्वष्टा भी आश्चयचकित होकर वहाँ चले आये। उषा के अभिप्राय को समझकर सूय ने अपने ससुर त्वष्टा से कहा ॥३४ ४०॥

भानु न कहा—त्वष्टा! उत्तम तप करने वाली उषा की प्रसन्नता के लिये मुझको यत्र पर चढाकर अनेक प्रकार से मेरे तेज को काट डालो (खराद डालो)। प्रजापति! जितने से इसको सुख हो अर्थात् जितना तेज सह सके उतना मेरा तेज काट डालो ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा ततस्त्वष्टा सोमनाथस्य संनिधौ। तेजसां छेदनं चक्रे प्रभासं तु ततो विदु.॥४२॥
भर्त्रा च सगता यत्र गौतम्यामश्वरूपिणी। अश्विनोर्यत्र चोत्पत्तिरश्वतीर्थं, तदुच्यते॥४३॥
भानुतीर्थं तदाख्यात तथा पञ्चवटाश्रमः। तापी च यमुना चैव पितरं द्रष्टुमागते॥४४॥
अरुणावरुणानद्योर्गङ्गायां संगमः शुभ.। देवानां तत्र तीर्थानामागतानां पृथक्पृथक्॥४५॥
नव त्रीणि सहस्राणि तीर्थानि गुणवन्ति च। तत्र स्नानं च दानं च सर्वमक्षयपुण्यदम्॥४६॥
स्मरणात्पठनाद्वाऽपि श्रवणादपि नारद। सर्वपापविनिर्मुक्तो धर्मवान्स सुखी , भवेत्॥४७॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽरुणावरुणासंगमाश्वभानुतीर्थवर्णनं नामोननवतित-,
मोऽध्यायः॥८९॥

गौतमीमाहात्म्ये विंशतितमोऽध्यायः॥२०॥

अथ नवतितमोऽध्यायः

गरुडतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

गारुडं नाम यत्तीर्थं सर्वविघ्नप्रशान्तिदम्। तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु नारद यत्नत.॥१॥

ब्रह्मा ने कहा—"ऐसा ही होगा" यह कहकर त्वष्टा ने सोमनाथ के समीप सूर्य के तेज का छेदन किया। तब से वह स्थान प्रभास नाम से लोक-प्रसिद्ध हो गया। जहाँ गौतमी के तीर पर अश्वरूप धारण करनेवाली उषा का पति के साथ सयोग हुआ और जहाँ अश्विनीकुमार की उत्पत्ति हुई वही अश्वतीर्थ कहा जाता है। जहाँ तापी और यमुना अपने पिता का दर्शन करने के लिए आई, वह भानुतीर्थ अथवा पचवटाश्रम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जहाँ अरुणा और वरुणा गगा नदी से मिलती हैं, वह सगमस्थल अत्यन्त पुनीत एव शुभ है। वहाँ देवताओ और अन्य तीर्थों के आने से वहाँ पृथक्-पृथक् सत्ताइस सहस्र पुण्यप्रद तीर्थ हो गये। वहाँ स्नान करने और दान देने से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है। नारद! जो मनुष्य इस तीर्थ के माहात्म्य का स्मरण, पाठ या श्रवण करता है वह धार्मिक सब पापो से मुक्त होकर सुखी होता है॥४२-४७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे अरुणा-वरुणासगम, अश्वतीर्थ वर्णन नामक नवासीवाँ अध्याय समाप्त॥८९॥

अध्याय ९०

गरुडतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—गारुड नामक तीर्थ, सब विघ्नो को नष्ट करने वाला है। नारद! उसकी महिमा का वर्णन कर रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो।

मणिनाग इति त्वासीच्छेषपुत्रो महाबल। गरुडस्य भयाद्भक्त्या तोषयामास शंकरम् ॥२॥
तत प्रसन्नो भगवान्परमेष्ठी महेश्वर। तमुवाच महानाग वर वरय पन्नग ॥३॥
नाग प्राह प्रभो मह्य देहि मे गरुडाभयम्। तथेत्याह च त शम्भुर्गरुडादभय भवेत् ॥४॥
निर्गतो निर्भयो नागो गरुडादरुणानुजात्। क्षीरोदशायी यत्राऽऽस्ते क्षीरार्णवसमीपत ॥५॥
इतश्चेतश्च चरति नागोऽसौ सुखशीतले। गरुडोऽपि च यत्राऽऽस्ते त देशमपि यात्यसौ ॥६॥
गरुड पन्नग दृष्ट्वा चरन्त निर्भयेन तु। त गृहीत्वा महानाग प्राक्षिपत्स्वस्य वेश्मनि ॥७॥
त बद्ध्वा गारुडै पाशैर्गरुडो नागसत्तमम्। एतस्मिन्नन्तरे नन्दी प्रोवाचेश जगत्प्रभुम् ॥८॥

नन्दिकेश्वर उवाच

नून नागो न चाऽऽयाति भक्षितो बद्ध एव वा। गरुडेन सुरेशान जीवन्नागो न सव्रजेत् ॥९॥

ब्रह्मोवाच

नन्दिनो वचन श्रुत्वा ज्ञात्वा शम्भुरथाब्रवीत् ॥१०॥

शिव उवाच

गरुडस्य गृहे नागो बद्धस्तिष्ठति सत्वरम्। गत्वा त जगतामीश विष्णु स्तुहि जनार्दनम् ॥११॥
बद्ध नाग काश्यपेन मद्वाक्यादानय स्वयम्। तत्प्रभोर्वचन श्रुत्वा नन्दी गत्वा श्रिय पतिम् ॥१२॥
व्यज्ञापयत्स्वय वाक्य विष्णु लोकपरायणम्। नारायण प्रीतमना गरुड वाक्यमब्रवीत् ॥१३॥

शेषनाग का पुत्र महाबलवान् मणिनाग था। उसने गरुड के भय से भक्तियुत हो शङ्कर को सन्तुष्ट किया। उसकी भक्ति से प्रसन्न हो भगवान् परमेष्ठी शंकर ने उस महानाग से कहा—पन्नग! वर माँगो। नाग ने कहा—प्रभु! मुझे गरुड से अभय होने का वरदान दीजिये। शम्भु ने कहा ठीक है गरुड से निर्भीक हो जाओ। तब वह नाग अरुण के छोटे भाई गरुड से निर्भय होकर निकला और जहाँ क्षीरशायी भगवान् थे उस क्षीरसागर के समीप से ही होकर इधर उधर सुख-शान्ति के साथ घूमने लगा। यहाँ तक कि जहाँ स्वय गरुड थे वहाँ पर भी वह निर्भीक नाग जाता था। गरुड ने जब इस प्रकार निर्भीक भाव से नाग को टहलते हुये देखा तो उस नाग श्रेष्ठ को पकड़कर और गरुड-पाश से बाँधकर अपने घर में बन्द कर दिया। इसी बीच यह घटना देखकर नन्दी ने भगवान् शंकर से कहा ॥१-८॥

नन्दिकेश्वर ने कहा—सुरेशान! वह नाग इस समय नहीं आता है तो अवश्यमेव उसे गरुड ने खा लिया होगा या बाँध दिया होगा। यदि ऐसा न होता और वह जीवित रहता तो क्या नहीं आता? ॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—नन्दी की बातों को सुनकर महेश्वर ने कहा ॥१०॥

शिव बोले—गरुड के घर में वह नाग बँधा हुआ है इसलिये शीघ्र ही जगत के स्वामी जनार्दन विष्णु के पास जाकर उनकी स्तुति करो। स्वय मेरी ओर से कहकर गरुड द्वारा बाँधे गये उस सर्प को ले आओ।

विष्णुरुवाच

विनतात्मज मे वाक्यान्नन्दिने देहि पन्नगम्। कम्पमानस्तदाकर्ण्य नेत्युवाच विहंगमः॥
विष्णुमप्यब्रवीत्कोपात्सुपर्णो नन्दिनोऽन्तिके ॥१४॥

गरुड उवाच

यद्यत्प्रियतमं किंचिद्भृत्येभ्य प्रभविष्णवः। दास्यन्त्यन्ये भवांस्त्वेव मयाऽऽनीतं हरिष्यति॥१५॥
पश्य देवं त्रिनयनं नागं मोक्ष्यति नन्दिना। मयोपपादितं नागं त्वं तु दास्यसि नन्दिने॥१६॥
त्वां वहामि सदा स्वामिन्मम देयं सदा त्वया। मयोपपादितं नागं वक्तुं देहीति नोचितम्॥१७॥
सता प्रभुणा नेयं स्याद्वृत्तिः सद्वृत्तिकारिणाम्। सन्तो दास्यन्ति भृत्येभ्यो मदुपात्तहरो भवान्॥१८॥
दैत्याञ्जयसि संग्रामे मद्बलेनैव केशव। अहं महाबलीत्येवं मुधैव श्लाघते भवान्॥१९॥

ब्रह्मोवाच

गरुडस्येति तद्वाक्यं श्रुत्वा चक्रगदाधरः। विहस्य नन्दिनः पार्श्वे पश्यद्भिर्लोकपालकैः॥२०॥
इदमाह महाबुद्धिर्मां समुह्य कृशो भवान्। त्वद्बलादसुरान्सर्वाञ्जेष्येऽहं खगसत्तम॥२१॥
इत्युक्त्वा श्रीपतिर्ब्रह्मञ्शान्तकोपोऽब्रवीदिदम्। वहाङ्गुलिं करस्याऽऽशु कनिष्ठां नन्दिनोऽन्तिके॥२२॥
गरुडस्य ततो मूर्ध्नि न्यस्येदं पुनरब्रवीत्। सत्यं मां वहसे नित्यं पश्य धर्मं विहंगम॥२३॥

प्रभु की बातों को सुनकर नन्दी ने लक्ष्मीपति विष्णु के पास जाकर लोककल्याण में रत रहने वाले भगवान् से सारी घटना कह सुनाई। नारायण ने भी प्रसन्न होकर गरुड से ये शब्द कहे ॥११-१३॥

विष्णु ने कहा—विनतासुत! मेरे कहने से पन्नग को नन्दी के हाथ दे दो। इस बात को सुनकर गरुड ने काँपते हुए 'नहीं' ऐसा कहा। नन्दी के सामने ही उसने क्रोध से विष्णु से और भी कहा ॥१४॥

गरुड ने कहा—दूसरे समर्थ स्वामी सेवकों के जो जो पदार्थ प्रिय होते हैं उन सब पदार्थों को देते हैं, किन्तु आप ही ऐसे हैं जो कि सेवक के लाये हुए पदार्थ को भी (उससे) छीन लेते हैं। त्रिनेत्र शंकर को देखिये वह नन्दी के द्वारा नाग को मुक्त कराते हैं और मेरे द्वारा पाये हुए नाग को आप नन्दी को दे रहे हैं। स्वामी! मैं आपको सर्वदा ढोता हूँ अतः आपको सर्वदा मुझे कुछ न कुछ देना चाहिए अतः मेरे द्वारा पाये हुए 'नाग को दे दो' ऐसा कहना उचित नहीं है। सद्व्यवहार करने वाले स्वामी का ऐसा व्यवहार नहीं होना चाहिये। सज्जन लोग अपने भृत्यों को पुरस्कार देते हैं और आप तो मेरे द्वारा प्राप्त वस्तु को भी हर लेते हैं। केशव! मेरे बल से ही आप दैत्यों को जीतते है। और स्वयं मैं महाबलवान् हूँ ऐसी व्यर्थ में डींग हाँकते है ॥१५-१९॥

ब्रह्मा ने कहा—महाबुद्धिमान् चक्रगदाधारी विष्णु ने गरुड की उन बातों को सुनकर हँसकर नन्दी के समीप बैठे लोकपालों के सामने ही गरुड से कहा 'तुम सचमुच मुझे पीठ पर ढोते ढोते दुर्बल हो गये हो। खगश्रेष्ठ! तुम्हारे बल से ही मैं सब असुरों को जीतता हूँ, जीतूँगा भी। ब्रह्मन्! यह कह अपने क्रोध को छिपाकर लक्ष्मीपति ने कहा—मेरी कनिष्ठिका अंगुली को शीघ्र ही नन्दी के समीप तक ढो कर ले चलो। इतना कहकर भगवान् ने गरुड के सिर पर अपनी अङ्गुली रख दी और फिर कहा कि 'विहङ्गम! यदि तुम सचमुच मुझको नित्य

न्यस्ताया च ततोऽङ्गुल्या शिर कुक्षौ समाविशत्। कुक्षिश्च चरणस्यान्त प्राविशच्चूर्णितोऽभवत्॥
तत कृताञ्जलिर्दीनो व्यथितो लज्जयाऽन्वित ॥२४॥

गरुड उवाच

त्राहि त्राहि जगन्नाथ भृत्य मामपराधिनम्। त्व प्रभु सर्वलोकाना धर्ता धार्यस्त्वमेव च॥२५॥
अपराधसहस्राणि क्षमन्ते प्रभविष्णव। कृतापराधेऽपि जने महती यस्य वै कृपा॥२६॥
वदन्ति मुनय सर्वे त्वामेव करुणाकरम्। रक्षस्वाऽऽर्तं जगन्मातर्माम्म्बुजनिवासिनि॥
कमले बालक दीनमार्त तनयवत्सले ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

तत कृपान्विता देवी श्रीरप्याह जनार्दनम् ॥२८॥

कमलोवाच

रक्ष नाथ स्वक भृत्य गरुड विपद गतम्। जनार्दन उवाचेद नन्दिनं शभुवाहनम्॥२९॥

विष्णुरुवाच

नय नाग सगरुड शभोरन्तिकमेव च। तत्प्रसादाच्च गरुडो महेश्वरनिरीक्षित॥
आत्मीय च पुना रूप गरुड समवाप्स्यति ॥३०॥

होते हो तो इसका निणय आज देखो। इसके उपरा त अगुली के रखते ही शिर दबकर कोख मे घुस गया और कोख दोनो पैरो के बीच घुस गया इस प्रकार वह बेचारा चूर चूर हो गया। तब वह अत्य त लज्जित दीन व्यथा से करा हता हुआ हाथ जोड कर विनीत भाव से बोला॥२० २४॥

गरुड ने कहा—जगन्नाथ! मुझ अपराधी भृत्य की रक्षा करो रक्षा करो। तुम सम्पूण ससार के धारण करने वाले प्रभु हो तुम्ही सपूण लोक के धार्य (धारण करने योग्य) भी हो। समथ व्यक्ति हजारो अपराधो को क्षमा कर देते है और अपराधियो पर उनकी सर्वदा कृपा रहती है। सब मुनि तुमको ही करुणा का कोश कहते हैं। हे कमल मे निवास करने वाली! जगन्माता! मुझ दुखी की रक्षा करो। कमले! पुत्रवत्सले! इस दीन दु खी बालक की रक्षा करो॥२५ २७॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर करुण हृदयवाली कृपालु लक्ष्मी ने भी जनादन से कहा॥२८॥

कमला ने कहा—नाथ! अपने इस विपत्ति मे पड हुए सेवक गरुड की रक्षा कीजिये। जनादन ने यह सुनकर शम्भुवाहन नन्दी से कहा॥२९॥

विष्णु बोले—गरुड के सहित इस नाग को शकर के समीप ले जाओ। उनकी कृपा से यह गरुड जब वे अपनी कृपा दृष्टि से इसको देखगे तो पुन अपने स्वस्थ स्वरूप को प्राप्त करेगा॥३०॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा च वृषभो नागेन गरुडेन च। शनैः स शंकरं गत्वा सर्वं तस्मै न्यवेदयत्॥
शंकरोऽपि गरुत्मन्तं प्रोवाच शशिशेखरः ॥३१॥

शिव उवाच

याहि गङ्गां महाबाहो गौतमीं लोकपावनीम्। सर्वकामप्रदां शान्ता तामाप्लुत्य पुनर्वपुः॥३२॥
प्राप्स्यसे सर्वकामाश्च शतधाऽथ सहस्रधा। सर्वपापोपतप्ता ये दुर्दैवोन्मूलितोद्यमाः॥
प्राणिनोऽभीष्टदा तेषां शरणं खग गौतमी ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यं प्रणतो भूत्वा श्रुत्वा तु गरुडोऽभ्यगात्। गङ्गामाप्लुत्य गरुडः शिवं विष्णुं ननाम सः॥३४॥
ततः स्वर्णमयः पक्षी वज्रदेहो महाबलः। वेगी भवन्मुनिश्रेष्ठ पुनर्विष्णुमियात्सुधीः॥३५॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं गारुडं सर्वकामदम्। तत्र स्नानादि यत्किञ्चित्करोति प्रयतो नरः॥
सर्वं तदक्षयं वत्स शिवविष्णुप्रियावहम् ॥३६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये गरुडतीर्थवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः॥९०॥

गौतमीमाहात्म्ये एकविंशतितमोऽध्यायः॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—'आपकी जैसी आज्ञा' यह कहकर नन्दी नाग और गरुड के साथ मन्दगति से शंकर के पास गया और सारी घटना कह सुनाई। चन्द्रशेखर शंकर ने भी गरुड से कहा—॥३१॥

शिव ने कहा—महापराक्रमी! लोक को पुनीत करने वाली गौतमी गंगा के पास जाओ। उस शान्त, सब कामनाओं को देने वाली गंगा में स्नान करने से तुम पुनः अपना शरीर तथा अपने मनोरथ का सौगुना, हजार गुना अधिक फल प्राप्त करोगे। खग! सब पाप रूपी अग्नि से जले हुये, दुर्भाग्य से विफल परिश्रम वाले प्राणियों को यह मनोरथ पूर्ण करने वाली गौतमी एक मात्र शरण देने वाली है॥३२-३३॥

ब्रह्मा ने कहा—गरुड भगवान शंकर की बातों को विनीत भाव से सुनकर गंगा के समीप गया, उसमें स्नान किया और शिव तथा विष्णु को प्रणाम किया। मुनिश्रेष्ठ! स्नान के बाद गरुड स्वर्णमय पंख वाला, महाबली, वज्र के समान देह वाला और अति वेगवान् हो गया। तब वह महाबुद्धिमान् गरुड विष्णु के समीप चला गया। तब से वह स्थान सब कामनाओं को देने वाला गारुडतीर्थ कहा जाने लगा। जो व्यक्ति अनन्यभाव से उस तीर्थ में स्नान आदि जो कुछ सत्कर्म करता है वत्स! वह सब कुछ अक्षय हो जाता है तथा उससे शिव, विष्णु दोनों प्रसन्न होते हैं॥३४-३६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में गरुडतीर्थवर्णन नामक नब्बेवाँ अध्याय समाप्त॥९०॥

अथैकनवतितमोऽध्यायः

गोवर्धनतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

ततो गोवर्धनं तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम्। पितृणां पुण्यजननं स्मरणादपि पापनुत् ॥१॥
तस्य प्रभावं एष स्यान्मया दृष्टस्तु नारद। ब्राह्मणः कर्षकः कश्चिज्जाबालिरिति विश्रुतः ॥२॥
न विमुञ्चत्यनड्वाहौ मध्यं यातेऽपि भास्करे। प्रतोदेन प्रतुदति पृष्ठतोऽपि च पार्श्वयो ॥३॥
तौ गावावश्रुपूर्णाक्षौ दृष्ट्वा गौः कामदोहिनी। सुरभिर्जगतां माता नन्दिने सर्वमब्रवीत् ॥४॥
स चापि व्यथितो भूत्वा शम्भवे तन्न्यवेदयत्। शम्भुश्च वृषभं प्राह सर्वं सिध्यतु ते वचः ॥५॥
शिवाज्ञासहितो नन्दी गोजातं सर्वमाहरत्। नष्टेषु गोषु सर्वेषु स्वर्गे मर्त्ये ततस्त्वरा ॥६॥
मामवोचन्सुरगणा विना गोभिर्न जीव्यते। तानवोचं सुरान्सर्वाञ्शंकरं यात याचत ॥७॥
तथैवेशं तु ते सर्वे स्तुत्वा कार्यं न्यवेदयन्। ईशोऽपि विबुधानाह जानाति वृषभो मम ॥८॥
ते वृषं प्रोचुरमरा देहि गा उपकारिणः। वृषोऽपि विबुधानाह गोसवः क्रियतां क्रतुः ॥९॥

अध्याय ९१

गोवर्धन का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसके अनन्तर सब पापों को नष्ट करने वाला और पितरों को सुख देने वाला गोवर्धन तीर्थ है जिसके स्मरण से ही पाप नष्ट हो जाते है ॥१॥ नारद! उसका प्रभाव मैंने अपने नेत्रों से देखा है वह इस प्रकार है—जाबालि नाम से प्रसिद्ध कोई कृषक ब्राह्मण था ॥२॥ वह मध्याह्न हो जाने पर भी अपने बैलों को नहीं छोड़ता था अपितु चाबुक से उनके पृष्ठ और पार्श्व भाग पर मारता था ॥३॥ इस प्रकार पीड़ित आंसू से भरे नेत्र वाले बैलों को देखकर जगत की माता कामधेनु गौ ने नन्दी से जाकर सब कुछ कहा ॥४॥ नन्दी ने भी उन मूक पशुओं की व्यथा से व्यथित होकर भगवान् शंकर से निवेदन किया। शम्भु ने नन्दी से कहा कि तुम्हारी इच्छाओं के अनुसार ही कार्य सिद्धि होगी ॥५॥ नन्दी ने शिव की आज्ञा से सम्पूर्ण गो-समूह को ही छिपा दिया। इस प्रकार गो-समूह के नष्ट हो जाने पर स्वर्ग और मृत्युलोक में खलबली मच गई ॥६॥ देवताओं ने शीघ्रता से मेरे पास आकर कहा कि गौओं के बिना हम सब कैसे जी सकते हैं। उन देवताओं से मैंने कहा कि शंकर के पास जाओ और उनसे याचना करो ॥७॥ मेरे कहने के अनुसार उन सब देवताओं ने शिव की स्तुति की और उनसे अपना अभिप्राय व्यक्त किया। शंकर ने भी कहा कि इस विषय को मेरा वृषभ नन्दी ही जानता है ॥८॥ उन देवताओं ने पुनः नन्दी से कहा कि उपकारी गौओं को दे दो। नन्दी ने भी उनसे कहा कि आप लोग गोसव नामक यज्ञ करें ॥९॥ तभी जितनी

तत प्राप्स्यय गा सर्वा या दिव्या याश्च मानुषा । तत प्रवर्तते यज्ञो गोसवो देवनिर्मित ॥१०॥
गौतम्याश्च शुभे [1]पार्श्वे गावो ववृधिरे तत । गोवर्धन तु तत्तीर्थं देवाना प्रीतिवर्धनम् ॥११॥
तत्र स्नान मुनिश्रेष्ठ गोसहस्रफलप्रदम् । किंचिद्दानादिना यत्स्यात्फल तत्तु न विद्महे ॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये गोवर्धनतीर्थवर्णन नामैकनवतितमोऽध्याय ॥९१॥
गौतमीमाहात्म्ये द्वाविशोऽध्याय ॥२२॥

अथ द्विनवतितमोऽध्यायः

पापप्रणाशनतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पापप्रणाशन नाम तीर्थं पापभयापहम् । नामधेय प्रवक्ष्यामि शृणु नारद यत्नत ॥१॥
धृतव्रत इति ख्यातो ब्राह्मणो लोकविश्रुत । तस्य भार्या मही नाम तरुणी लोकसुन्दरी ॥२॥
तस्य पुत्र सूर्यनिभ सनाज्जात इति श्रुत । धृतव्रत तथाऽकर्षन्मृत्यु कालेरितो मुने ॥३॥
तत सा बालविधवा बालपुत्रा सुरूपिणी । त्रातार नैव पश्यन्ती गालवाश्रममभ्यगात् ॥४॥

दिव्य और मत्यलोक की गौएँ है प्राप्त हो सक्ती हैं। तदनन्तर देवो की योजना के अनुसार गोसव यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ ॥१०॥ यज्ञ के परिणामस्वरूप गौतमी के पवित्र कछार म गोओ की वद्धि होने लगी। वह गोवधन तीर्थ देवताओ को अधिक प्रसन्न करने वाला है ॥११॥ मुनिश्रष्ठ उस तीथ का स्नान सहस्र गोदान का फल देता है। वहाँ दान देने का जो फल है उसको तो मैं भी नही जानता अत कहने म असमथ हूँ ॥१२॥

श्रीब्रह्म महापुराण गोवधनतीथवणन नामक इक्यानववाँ अध्याय समाप्त ॥९१॥

अध्याय ९२

पापप्रणाशन तीर्थ का वर्णन

नारद ! पाप भय को दूर करने वाला एक पाप प्रणाशन नामक तीथ है उसका यह नाम क्या पडा इसको मैं कह रहा हूँ तुम यत्नपूवक सुनो ॥१॥ धतव्रत नाम का एक परम लोकप्रसिद्ध ब्राह्मण था। उसकी मही नाम की विश्व-सुन्दरी युवती स्त्री थी ॥२॥ उसके सूय के समान तेजस्वी सनाज्जात नामक एक पुत्र हुआ। मुनि ! काल की प्ररणा से मृत्यु ने उस धतव्रत को खीच लिया ॥३॥ इसके अनन्तर वह सुन्दरी बाल विधवा जिसका पुत्र अभी अबोध था—किसी को अपना रक्षक न देखकर गालव ऋषि के आश्रम म चली गई ॥४॥ गालव को अपना पुत्र

---

[1] म पारे।

तस्मै पुत्रं निवेद्याथ स्वैरिणी पापमोहिता। सा बभ्राम बहून्देशान्सुखकामा कामचारिणी ॥५॥
तत्पुत्रो गालवगृहे वेदवेदाङ्गपारगः। जातोऽपि मातृदोषेण वेश्यैरिलमतिस्त्वभूत् ॥६॥
जनस्थानमिति ख्यातं नानाजातिसमावृतम्। तत्रासौ पण्यवेषेण अध्यास्ते च मही तथा ॥७॥
तत्सुतोऽपि बहून्देशान्परिबभ्राम कामुकः। सोऽपि कालवशात्तत्र जनस्थानेऽवसत्तदा ॥८॥
स्त्रियमाकाङ्क्षते वेश्या धृतव्रतसुतो द्विजः। मही चापि धनं दातॄन्पुरुषान्समपेक्षते ॥९॥
मेने न पुत्रमात्मीयं स चापि न तु मातरम्। तयोः समागमश्चाऽऽसीद्विधिना मातृपुत्रयोः ॥१०॥
एवं बहुतिथे काले पुत्रः मातरि गच्छति। तयोः परस्परं ज्ञानं नैवाऽऽसीन्मातृपुत्रयोः ॥११॥
एवं प्रवर्तमानस्य पितृधर्मेण सन्मतिः। आसीत्तस्याप्यसद्वृत्ते शृणु नारद चित्रवत् ॥१२॥
स्वैरस्थित्या वर्तमानो नेदं स परिहातवान्। ब्राह्मीं संध्यामनुष्ठाय तदूर्ध्वं तु धनार्जनम् ॥१३॥
विद्याबलेन वित्तानि बहून्यार्ज्य ददात्यसौ। तथा स प्रातरुत्थाय गङ्गां गत्वा यथाविधि ॥१४॥
शौचादि स्नानसंध्यादि सर्वं कार्यं यथाक्रमम्। कृत्वा तु ब्राह्मणान्नत्वा ततोऽभ्येति स्वकर्मसु ॥१५॥
प्रातःकाले गौतमीं तु यदा याति विरूपवान्। कुष्ठसर्वाङ्गशिथिलः पूयशोणितनिःस्रवः ॥१६॥
स्नात्वा तु गौतमीं गङ्गां यदा याति सुरूपधृक्। ज्ञातः सूर्याग्निसदृशो मूर्तिमानिव भास्करः ॥१७॥

देकर वह स्वच्छन्दचारिणी पाप कर्मों के आकर्षण से मोहित होकर यौन सुख की कामना से स्वेच्छापूर्वक बहुत देशों में घूमने लगी ॥५॥ यद्यपि उसका पुत्र गालव के आश्रम में वेद वेदाङ्गों का ज्ञाता हुआ तथापि मातृदोष के कारण उसकी वेश्यागमन की ओर प्रवृत्ति हो गई ॥६॥ इधर वह जनस्थान नामक नगर में—जहाँ विभिन्न जाति के लोग रहते थे—वेश्या वृत्ति से रहने लगी ॥७॥ उसका कामुक पुत्र भी इधर-उधर बहुत से देशों का भ्रमण करता रहा। उस समय वह भी समय की प्रेरणा से उसी जनस्थान में रहता था ॥८॥ इधर ब्राह्मण धृतव्रत का पुत्र वेश्या नारी की इच्छा करता था उधर मही भी धन देने वाले लम्पट पुरुषों की अपेक्षा रखती थी। ॥९॥ उस कामी पुत्र ने न तो माता को और न माता ने ही अपने औरस पुत्र को पहचाना। फलतः उन माता-पुत्रों का परस्पर समागम हो गया ॥१०॥ इस प्रकार बहुत समय बीत गया। माता पुत्र में परस्पर अनुचित सम्बन्ध चलता रहा परन्तु उन दोनों को माता-पुत्र के पारस्परिक सम्बन्ध का ज्ञान नहीं था ॥११॥ नारद! सुनो यह आश्चर्य का विषय है कि इस प्रकार अनुचित व्यवहार में प्रवृत्त रहने वाले उस दुष्कर्मी ब्राह्मण में पिता के प्रभाव के कारण सद्बुद्धि थी ॥१२॥ इस प्रकार स्वेच्छा में लीन रहते हुए भी उसने अपने नित्यकर्म को नहीं छोड़ा। प्रतिदिन वह प्रातः संध्या का अनुष्ठान करता तत्पश्चात् धन कमाने के लिए जाता था ॥१३॥ वह अपने विद्या के प्रभाव से धन कमाता पुनः उसी को मायका दे देता था। प्रातःकाल उठ कर यथाविधि गङ्गातट पर जाता था और क्रम पूर्वक शौच स्नान सन्ध्या आदि सब क्रियाएँ समाप्त कर ब्राह्मणों को नमस्कार करता था तत्पश्चात् अपने कार्य में लग जाता था ॥१४-१५॥ प्रातःकाल जब वह गौतमी को जाता था तब वह विरूप रहता सर्वाङ्ग कुष्ठ रोग से शिथिल रहता। उसके शरीर के व्रण से पूय और रक्त बहता रहता था। जब उधर से स्नान के बाद लौटता था तब सुन्दर रूप वाला शान्त सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी होकर आता था। वह अपनी कान्ति से ऐसा ज्ञात होता था मानो मूर्तिमान् भास्कर है ॥१६-१७॥ परन्तु वह ब्राह्मण अपने इन दोनों रूपों को नहीं देख पाता था

एतद्रूपद्वय स्वस्य नैव पश्यति स द्विज । गालवो यत्र भगवांस्तपोज्ञानपरायण ॥१८॥
आश्रित्य गौतमीं देवीं आस्ते च मुनिभिर्वृत । ब्राह्मणोऽपि च तत्रैव नित्य तीर्थं समेत्य च ॥१९॥
गालव च नमस्याथ ततो याति स्वमन्दिरम् । गङ्गाया सेवनात्पूर्वं सनाज्जातस्य यद्वपु ॥२०॥
स्नानसध्योत्तरे काले पुनर्यदपि तद्द्विजे । उभय तस्य तद्रूप गालवो नित्यमेव च ॥२१॥
दृष्ट्वा सविस्मयो मेने किंचिदस्त्यत्र कारणम । एव सविस्मयो भूत्वा गालव प्राह त द्विजम् ॥२२॥
गच्छन्त तु नमस्याथ सनाज्जात गरुर्गृहम् । आहूय यत्नतो धीमान्कृपया विस्मयेन च ॥२३॥

गालव उवाच

को भवान्क्व च गन्तासि किं करोषि क्व भोक्ष्यसि । किंनामा त्व क्व शय्या ते का ते भार्या वदस्व मे ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

गालवस्य वच श्रुत्वा [1]ब्राह्मणोऽप्याह त मुनिम् ॥२५॥

ब्राह्मण उवाच

इव कथ्यते मया सर्व ज्ञात्वा कार्यविनिर्णयम् ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा गालव त सनाज्जातो गृह ययौ । भुक्त्वा रात्रौ तया सम्यक्शय्यामासाद्य बन्धकीम् ॥
उवाच चकित स्मृत्वा गालवस्य तु यद्वच ॥२७॥

तप और ज्ञान म सवदा त ीन रहने वाले गालवमुनि अपने साथी मुनियो के साथ जहाँ गौतमी के तट पर स ध्या व दनादि करते थे वहीं वह ब्राह्मण भी नित्य आता और मिलता था तथा गावल मुनि को प्रणाम कर अपने घर को जाता था ॥१८ १९॥ गगा स्नान के पूव सनाज्जात का जैसा शरीर रहता था और पुन स्नान सध्या के बाद उस ब्राह्मण का जैसा रूप हो जाता था उसके उस उभय रूपो को नित्य देखकर मुनि गालव को बहुत आश्चर्य हुआ सोचा इसम अवश्य कुछ कारण है ॥२० २१॥ निदान इस प्रकार विस्मित होकर बुद्धिमान गुरु गालव ने नमस्कार के बाद घर जाने के लिये प्रस्तुत उस ब्राह्मण को बुलाकर कृपा और आश्चय से युक्त होकर वड यत्न से पूछा ॥२२-२३॥

गालव ने कहा—तुम कौन हो ! कहाँ जा रहे हो ? क्या काय करते हो ? कहा भोजन करते हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? कहाँ सोते हो ? तुम्हारी भार्या कौन है ? इन प्रश्नो का उत्तर मुझे दो ॥२४॥

ब्राह्मण न कहा—मैं कल भलीभाँति विचार कर उत्तर दूगा ॥२६॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार गालव मुनि से कहकर सनाज्जात अपने घर को चला गया । रात्रि मे भोजन के पश्चात उस वश्या के साथ भलीभाँति शय्या पर बैठकर गालव की बातो का स्मरण करता हुआ वह चकित होकर वेश्या स बोला ॥२७॥

---

[1] घ ०णो भ्रान्तवन्मुनि० ।

ब्राह्मण उवाच

त्वं तु सर्वगुणोपेता बन्धक्यपि पतिव्रता। आवयोः सदृशी प्रीतिर्यावज्जीवं प्रवर्तताम्॥२८॥
तथाऽपि किंचित्पृच्छामि किंनाम्नी त्वं क्व वा कुलम्। किंनु स्थानं क्व वा बन्धुर्मम सर्वं निवेद्यताम्॥२९॥

बन्धक्युवाच

धृतव्रत इति ख्यातो ब्राह्मणो दीक्षितः शुचिः। तस्य भार्या मही चाहं मत्पुत्रो गालवाश्रमे॥३०॥
उत्सृष्टो मतिमान् बालः सनाज्जात इति श्रुतः। अहं तु पूर्वदोषेण त्यक्त्वा धर्मं कुलागतम्।
स्वैरिणी त्विह वर्तेऽहं विद्धि मां ब्राह्मणीं द्विज॥३१॥

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा मर्मविद्ध इवाभवत्। पपात सहसा भूमौ वेश्या तं वाक्यमब्रवीत्॥३२॥

वेश्योवाच

किं तु जातं द्विजश्रेष्ठ क्व च प्रीतिर्गता तव। किं तु वाक्यं मया चोक्तं तव चित्तविरोधकृत्॥३३॥
आत्मानमात्मनाऽऽश्वास्य ब्राह्मणो वाक्यमब्रवीत्॥३४॥

ब्राह्मण उवाच

धृतव्रतः पिता विप्रस्तत्पुत्रोऽहं सनात्यतः। माता मही मम इयं मम दैवादुपागता॥३५॥

ब्राह्मण ने कहा—तुम सब गुणों से युक्त वेश्या होते हुए भी पतिव्रता हो। यह हम लोगों का समान प्रेम जीवन भर रहे। फिर भी मैं कुछ पूछ रहा हूँ। तुम्हारा नाम क्या है? कुल क्या है? तुम्हारा कौन सा स्थान (जन्मभूमि) है? तुम्हारे बन्धु (हितच्छु माता पिता या परिवार) कहाँ रहते हैं? इन बातों को मुझे बताओ॥२८-२९॥

बन्धकी ने कहा—धृतव्रत नाम का पवित्र एवं यज्ञनिष्ठ ब्राह्मण था। उसी की मैं भार्या हूँ। मेरा नाम मही है। मैंने अपने सनाज्जात नामक बुद्धिमान् पुत्र को बाल्यावस्था में ही गालव के आश्रम में छोड़ दिया। स्वयं अपने पूर्वजन्म के दोष के कारण कुलधर्म को छोड़कर इस प्रकार वेश्या बनकर रह रही हूँ। द्विज! मुझ ब्राह्मणी की यही कथा है॥३०-३१॥

ब्रह्मा ने कहा—उसकी उन बातों को सुनकर वह मर्माहत सा हो गया। वह एकाएक पृथ्वी पर गिर पड़ा। यह देखकर वेश्या ने उस ब्राह्मण से कहा॥३२॥

वेश्या ने कहा—द्विजश्रेष्ठ! क्या क्या हो गया? तुम्हारा वह प्रेम कहाँ गया? क्या मैंने ऐसा वाक्य कह दिये जो तुम्हारे हृदय में विरुद्ध भावना उत्पन्न करने वाले हैं? इन बातों को सुनकर ब्राह्मण ने स्वयं अपने को सम्भाल कर कहा॥३३-३४॥

ब्राह्मण ने कहा—धृतव्रत मेरे पिता का नाम है। मैं उन्हीं का पुत्र विप्र सनाज्जात हूँ। यह मेरी ही माता मही है जो दैवयोग से मेरे समक्ष इस रूप में आई है॥३५॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तस्य वाक्यं साऽप्यभूदतिदुःखिता। तयोस्तु शोचतोः पश्चात्प्रभाते विमले रवौ॥
गालवं मुनिशार्दूलं गत्वा विप्रो न्यवेदयत् ॥३६॥

ब्राह्मण उवाच

धृतव्रतसुतो ब्रह्मंस्त्वया पूर्वं तु पालितः। उपनीतस्त्वया चैव मही माता मम प्रभो॥३७॥
किं करोमि च किं कृत्वा निष्कृतिर्मम वै भवेत् ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

तद्विप्रवचनं श्रुत्वा गालवः प्राह मा शुचः। तवेदं द्विविधं रूपं नित्यं पश्याम्यपूर्ववत्॥३९॥
ततः पृष्टोऽसि वृत्तान्त श्रुत ज्ञातं मया यथा[1]। यत्कृत्यं तव तत्सर्वं गङ्गायां प्रत्यगात्क्षयम्॥४०॥
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यादस्या देव्याः प्रसादतः। पूतोऽसि प्रत्यहं वत्स नात्र कार्या विचारणा॥४१॥
प्रभाते तव रूपाणि सपापानि त्वहर्निशम्। पश्येऽहं पुनरप्येव रूप तव गुणोत्तमम्[2]॥४२॥
आगच्छन्त त्वागोयुक्त गच्छन्त त्वामनागसम्। पश्यामि नित्य तस्मात्त्वं पूतो देव्या कृतोऽधुना॥४३॥
तस्मान्न कार्यं ते किंचिदवशिष्टं भविष्यति। इय च माता ते विप्र ज्ञाता या चैव बन्धकी॥४४॥

ब्रह्मा बोले—उसकी इन बातो को सुनकर वह भी अत्यन्त दुःखी हुई। इस प्रकार पश्चात्ताप करते-करते प्रात हो गया। निर्मल सूर्य प्राची मे चमकने लगे। तब विप्र ने मुनिपुगव गालव से कहा॥३६॥

ब्राह्मण ने कहा—ब्रह्मन्! मैं धृतव्रत का पुत्र हूँ। शैशव मे आपने ही मेरा पालन पोषण और उपनयन (यज्ञोपवीत) किया है। प्रभु! यही मेरी माता है। मैं क्या करूँ? क्या करने से मेरा उद्धार होगा?॥३७-३८॥

ब्रह्मा बोले—उस विप्र की बाते सुनकर गालव ने कहा—'मत डरो। तुम्हारे इन दो रूपो को प्रतिदिन अनोखे स्वरूप मे मैं देखता हूँ। इसके पश्चात् जैसा कि मैंने सुनाया और अनुमान द्वारा जाना, उसी वृत्तान्त को मैंने पूछा है। तुम्हारे प्राचीन किये हुए सभी दुष्कर्म इस समय गौतमी मे नष्ट हो गये। वत्स! इस तीर्थ के माहात्म्य वश, इस देवी की कृपा से तुम प्रतिदिन पवित्र हो इस विषय मे अधिक शोक करने की आवश्यकता नही। प्रतिदिन प्रात काल तुम्हारे पापयुक्त स्वरूप को देखता हूँ, पुन तत्काल ही तुम्हारे उस रूप-गुण से सम्पन्न आकृति को भी देखता हूँ॥३९-४२॥ नित्य ही आते समय तो तुम को रोगयुक्त देखता था परन्तु जाते समय स्वस्थ एव रूपमय। अत तुमको देवी गौतमी ने इस समय पवित्र बना दिया॥४३॥ तो तुम्हारा कोई भी कार्य शेष नही रह गया है। विप्र! यह तुम्हारी माता, जो वेश्या के नाम से प्रसिद्ध है, वह भी अत्यन्त पश्चात्ताप की ज्वाला मे जल चुकी है। इसलिये वह भी पाप से सर्वथा मुक्त हो गई। वत्स! प्राणियो की विषयो के प्रति आसक्ति स्वाभाविक है, परन्तु यह भी सत्य है कि दैववश सत्सग जन्य महापुण्य से निवृत्ति भी हो जाती है। इसके अतिरिक्त पूर्व-

---

१ घ. तया। २ घ ०त्तरम्।

पश्चात्तापं गताऽत्यन्तं निवृत्ता स्वय पातकात्। भूतानां विषये प्रीतिर्वत्स स्वाभाविकी यतः ॥४५॥
सत्सङ्गतो महापुण्यान्निवृत्तिर्दैवतो भवेत्। अत्यर्थमनुतप्तेयं प्रागाचरितपुण्यतः ॥४६॥
स्नानं कृत्वा चात्र तीर्थे ततः पूता भविष्यति। तथा तौ चक्रतुरुभौ मातापुत्रौ च नारद ॥४७॥
स्नानाद्बभूवतुरुभौ गतपापावसंशयम्। ततः प्रभृति तत्तीर्थं धौतपापं प्रचक्षते ॥४८॥
पापप्रणाशनं नाम गालवं चेति विश्रुतम्। महापातकमल्पं वा तथा यच्चोपपातकम्॥
तत्सर्वं नाशयेदेतद्धौतपापं सुपुण्यदम् ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे गौतमीमाहात्म्ये धौतपापमाहात्म्यनिरूपणं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥९२॥
गौतमीमाहात्म्ये त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः

विश्वामित्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यत्र दाशरथी रामः सीतया सहितो द्विज। पितॄन्संतर्पयामास पितृतीर्थं ततो विदुः ॥१॥
तत्र स्नानं च दानं च पितॄणां तर्पणं तथा। सर्वमक्षयतामेति नात्र कार्या विचारणा ॥२॥

जन्मकृत पुण्यों के फलस्वरूप यह अत्यन्त अनुतप्त भी है ॥४४-४६॥ इसलिये इस तीर्थ में स्नान करने से यह शीघ्र पवित्र हो जायगी। नारद! उन दोनों माता और पुत्रा ने ऋषि के कथनानुसार सारा कार्य किया। स्नान के करने से ही वे दोनों निश्चित ही पवित्र हो गये ॥४७॥ तभी से वह तीर्थ धौतपाप नाम से प्रसिद्ध हो गया, साथ ही उसके पापप्रणाशन (पाप नष्ट करने वाला) और गालव नाम भी प्रसिद्ध हैं। यह अत्यन्त पुण्य देने वाला गालव नामक तीर्थ चाहे अधिक पाप हो चाहे कम अथवा जो कुछ उपपाप भी हैं उनको क्षणभर में नष्ट कर देता है ॥४८-४९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में धौतपाप-माहात्म्य निरूपण नामक बानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥९२॥

अध्याय ९३

विश्वामित्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—जहाँ दशरथ-पुत्र राम ने सीता के सहित अपने पितरों को तृप्त किया, उसको पितृ-तीर्थ कहा जाता है। उस तीर्थ में स्नान, दान और पितरों का तर्पण, ये सभी अक्षय पुण्य के देने वाले हैं, इस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं। जहाँ पर दशरथ पुत्र राम ने महामुनि विश्वामित्र की तत्त्वद्रष्टा मुनिजनों के सहित पूजा

यत्र दाशरथी रामो विश्वामित्रं महामुनिम्। पूजयामास राजेन्द्रो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥३॥
विश्वामित्रं तु तत्तीर्थमृषिजुष्टं सुपुण्यदम्। तत्स्वरूपं च वक्ष्यामि पठितं वेदवादिभि.॥४॥
अनावृष्टिरभूत्पूर्वं प्रजानामतिभीषणा। विश्वामित्रो महाप्राज्ञ. सशिष्यो गौतमीमगात्॥५॥
शिष्यान्पुत्रांश्च जायां च कृशान्दृष्ट्वा क्षुधातुरान्। व्यथितः कौशिकः श्रीमाञ्छिष्यानिदमुवाच ह॥६॥

विश्वामित्र उवाच

यथाकथंचिद्यत्किंचिद्यत्र क्वापि यथा तथा। आनीयतां किंतु भक्ष्यं भोज्यं वा मा विलम्ब्यताम्॥
इदानीमेव गन्तव्यमानेतव्यं क्षणेन तु ॥७॥

ब्रह्मोवाच

ऋषेस्तद्वचनाच्छिष्याः क्षुधितास्त्वरया ययुः। अटमाना इतश्चेतो मृतं ददृशिरे शुनम्॥८॥
तमादाय त्वरायुक्ता आचार्याय न्यवेदयन्। सोऽपि तं भद्रमित्युक्त्वा प्रतिजग्राह पाणिना॥९॥
विशसध्वं श्वमासं च क्षालयध्वं च वारिणा पचध्वं मन्त्रवच्चापि हुत्वाऽग्नौ तु यथाविधि॥१०॥
देवानृषीन्पितृनन्यांस्तर्पयित्वाऽतिथीन्गुरून्। सर्वे भोक्ष्यामहे शेषमित्युवाच स कौशिकः॥११॥
विश्वामित्रवचः श्रुत्वा शिष्याश्चक्रुस्तथैव तत्। पच्यमाने श्वमासे तु देवदूतोऽग्निरभ्यगात्॥
देवाना सदने सर्वं देवेभ्यस्तन्न्यवेदयत् ॥१२॥

की, उस शुभ, पुण्यप्रद, ऋषियो से अहर्निश सेवित विश्वामित्र तीर्थ के स्वरूप का परिचय दे रहा हूँ, जिसका वेदाभ्यासी लोग सर्वदा गान किया करते है। आज से बहुत पहले का समय था। प्रजा को अत्यन्त कष्ट देने वाला भयकर सूखा (अनावृष्टि) पडा। यह देखकर महाप्राज्ञ विश्वामित्र अपने शिष्यवर्ग के साथ गौतमी के तट पर गये। अपने पुत्र स्त्री, और शिष्यो को कृशकाय और भूख से व्याकुल देखकर श्रीमान् विश्वामित्र व्यथित हो गये। उन्होने अपने शिष्यो से कहा ॥१-६॥

विश्वामित्र बोले—जिस किसी प्रकार जो कुछ, जहाँ कही भी खाने योग्य या पीने योग्य पदार्थ मिलें ले आओ। विलम्ब करने की आवश्यकता नही। अभी-अभी चले जाओ और क्षण भर मे ही लाना होगा॥७॥

ब्रह्मा बोले—ऋषि की बातें सुनकर भूखे वे शिष्य शीघ्र इधर-उधर चले गये। इधर उधर घूमने पर उन लोगो ने एक मृत कुत्ते को देखा। उसको लेकर बडी शीघ्रता से आचार्य विश्वामित्र को अर्पित कर दिया। उन्होंने भी कल्याण हो ऐसा कह कर अपने हाथो मे ले लिया और कहा कि इस श्वमास को काट डालो, पानी से धो डालो और अग्नि मे डाल कर विधिपूर्वक मन्त्र के साथ इसको पकाओ, पुन देवता, ऋषि, पितर, एव अन्य अतिथि गुरुजनो को तृप्त कर बचे हुए भाग को हम सब भोजन करेंगे। विश्वामित्र की उपर्युक्त बातें सुनकर शिष्यो नेउसी तरह किया। इस प्रकार जब कुत्ते का मास पकाया जाने लगा तब उसी समय देवदूत अग्नि देवो के समीप गये और सब देवो से उस घटना को कह सुनाया॥८-१२॥

---

१ क ०त्वा क्रमाद्यम्। स०।

अग्निरुवाच

देवैः श्वमांसं भोक्तव्यमापन्नमृषिकल्पितम् ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

अग्नेस्तद्वचनादिन्द्रः श्येनो भूत्वा विहायसि। स्थालीमथाहरत्पूर्णां मांसेन पिहितां तदा ॥१४॥
तत्कर्म दृष्ट्वा शिष्यास्ते ऋषेः श्येनं न्यवेदयन्। हृता स्थाली मुनिश्रेष्ठ श्येनेनाकृतबुद्धिना ॥१५॥
ततश्चुकोप भगवाञ्छप्तुकामस्तदा हरिम्। ततो ज्ञात्वा सुरपतिः स्थालीं चक्रे मधुप्लुताम् ॥१६॥
पुनर्निवेशयामास उल्कास्वेव खगो हरिः। मधुना तु समायुक्तां विश्वामित्रश्चुकोप ह॥
स्थालीं वीक्ष्य ततः कोपादिदमाह स कौशिकः ॥१७॥

विश्वामित्र उवाच

श्वमांसमेव नो देहि त्वं हरामृतमुत्तमम्। नो चेत्त्वां भस्मसात्कुर्यामिन्द्रो भीतस्तदाब्रवीत् ॥१८॥

इन्द्र उवाच

मधु हुत्वा यथान्यायं पिब पुत्रैः समन्वितः। किमनेन श्वमांसेन अमेध्येन महामुने ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

विश्वामित्रोऽपि नेत्याह भुक्तेनैकेन किं फलम्। प्रजा सर्वाश्च सीदन्ति किं तेन मधुना हरे ॥२०॥

अग्नि ने कहा—ऋषि द्वारा बनाया हुआ कुत्ते का मांस आप देवों को खाना होगा ॥१३॥

ब्रह्मा बोले—अग्नि की उन बातों को सुनकर इन्द्र श्येन (बाज) बनकर मांस से परिपूर्ण और ढकी हुई स्थाली को लेकर आकाश में उड़ गया। ऋषि शिष्यों ने यह कर्म देखकर श्येन के इस घोर कर्म को ऋषि से निवेदन किया कि मुनिश्रेष्ठ! किसी अविवेकी बाज ने मांस की स्थाली चुरा ली है। तदनन्तर भगवान विश्वामित्र इन्द्र को शाप देने की इच्छा से अत्यन्त कुपित हुए। इस अभिप्राय को जानकर बाजरूपधारी इन्द्र ने स्थाली को मधु से परिपूर्ण कर दिया और उसको पुनः जलती हुई लकड़ियों पर रख दिया। विश्वामित्र मधु से परिपूर्ण स्थाली को देखकर और अधिक कुपित हो गये। तब क्रोध से उन्होंने कहा ॥१४-१७॥

विश्वामित्र बोले—तुम हम लोगों को कुत्ते का मांस ही दो अपना उत्तम अमृत ले जाओ नहीं तो तुमको भस्म कर दूंगा। इन्द्र मुनि की क्रोध मुद्रा को देखकर भयभीत हो गये और बोले ॥१८॥

इन्द्र ने कहा—मधु को ही यथाभाग वितरित कर पुत्र परिवार सहित पीजिये। महामुने! इस अपवित्र, कुत्ते का मांस खाने से क्या लाभ होगा? ॥१९॥

ब्रह्मा बोले—विश्वामित्र ने भी कहा कि नहीं केवल हम लोगों के भोजन कर लेने से क्या लाभ होगा? इन्द्र! सारी प्रजा कष्ट पा रही है। तो उस मधु या मधुपान से क्या लाभ होगा? यदि सबके लिये अमृत का प्रबन्ध

---

१ क देवा। २ क ०नेन क०।

सर्वेषाममृत चेत्स्याद्भोक्ष्येऽहममृत शुचि। अथवा देवपितरो भोक्ष्यन्तीद श्वमासकम् ॥२१॥
पश्चादह तच्च मास भोक्ष्ये नानृतमस्ति मे। ततो भीत सहस्राक्षो मेघानाहूय तत्क्षणात् ॥२२॥
ववर्ष चामृत वारि ह्यमृतेनार्पिता प्रजा। पश्चात्तदमृत पुण्य हरिदत्त यथाविधि ॥२३॥
तर्पयित्वा सुरानादौ तर्पयित्वा जगत्त्रयम्। विप्र सभुक्तवाञ्शिष्यैर्विश्वामित्र स्वभार्यया ॥२४॥
तत प्रभृति तत्तीर्थमाख्यात चातिपुण्यदम्। यत्राऽऽगत सुरपतिर्लोकानाममृतार्पणम् ॥२५॥
सजात मासवर्जं तु तत्तीर्थं पुण्यद नृणाम्। तत्र स्नान च दान च सर्वक्रतुफलप्रदम् ॥२६॥
तत प्रभृति तत्तीर्थं विश्वामित्रमिति स्मृतम्। मधुतीर्थमथैन्द्र च श्येन पर्जन्यमेव च ॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भ्वृषिसवादे तीर्थमाहात्म्ये विश्वामित्रतीर्थवर्णन नाम त्रिनवतितमोऽध्याय ॥९३॥
गौतमीमाहात्म्ये चतुर्विंशोऽध्याय ॥२४॥

अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः

श्वेततीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

श्वेततीर्थमिति ख्याल त्रैलोक्ये विश्रुत शुभम्। तस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापै प्रमुच्यते ॥१॥

हो तो मैं भी पवित्र अमृत का पान करूँगा नही तो देव पितर सभी उस अमेध्य मास को ही खायेंगे। इसके बाद मैं उस मास को खाऊँगा मेरा कथन असत्य नही है। विश्वामित्र की इन बातो से सहस्र नेत्र वाले इन्द्र भयभीत हो गये। उसी समय मेघो को बुलाकर अमृत मय जल की वर्षा कर सम्पूण प्रजा को अमृतदान से तृप्त किया। इसके अनन्तर इन्द्र के दिये हुए पवित्र अमृत को लेकर यथाविधि पहले देवताओ को और तीनो लोक को विश्वामित्र ने तप्त किया पुन अपनी भार्या और शिष्यो के साथ स्वय पान किया। उस समय से वह तीथ अत्यन्त पुण्यप्रद माना जाने लगा। उस तीथ मे स्नान करने और दान देने से सब यज्ञो का फल प्राप्त होता है। और उसी समय से वह विश्वामित्र-तीथ नाम से प्रसिद्ध हुआ। कोई उसका मधुतीर्थ ऐन्द्र श्येन, और पजन्य भी कहते हैं ॥२०-२७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे विश्वामित्रतीर्थ वर्णन नामक तिरानबेवां अध्याय समाप्त ॥९३॥

अध्याय ९४

श्वेततीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—त्रिभुवन मे अति प्रसिद्ध श्वेततीथ नामक एक तीर्थ है। उस तीथ के नाम श्रवण मात्र से मनुष्य सब पापो से मुक्त हो जाते हैं। प्राचीन काल मे श्वेत नामक एक ब्राह्मण ऋषि गौतम का सखा था। वह गौतमी

श्वेतो नाम पुरा विप्रो गौतमस्य प्रिय सखा। आतिथ्यपूजानिरतो गौतमीतीरमाश्रित ॥२॥
मनसा कर्मणा वाचा शिवभक्तिपरायण । ध्यायन्त त द्विजश्रेष्ठ पूजयन्त सदाशिवम् ॥३॥
पूर्णायुष द्विजवर शिवभक्तिपरायणम्। नेतु दूता समाजग्मुर्दक्षिणाशापतेस्तदा ॥४॥
नाशक्नुवन्गृह तस्य प्रवेष्टुमपि नारद। तदा काले व्यतिक्रान्ते चित्रको मृत्युमब्रवीत् ॥५॥

चित्रक उवाच

किं नाऽऽयाति क्षीणजीवो मृत्यो श्वेत कथत्विति। नायाप्यायान्ति दूतास्ते मृत्योर्नैवोचित तु ते ॥६॥

ब्रह्मोवाच

ततश्च कुपितो मृत्यु प्रायाच्छ्वेतगृह स्वयम्। बहि स्थितास्तदा पश्यन्मृत्युर्दूता भयार्दितान् ॥
प्रोवाच' किमिद दूता मृत्युमूचुश्च दूतका ॥७॥

दूता ऊचु'

शिवेन रक्षित श्वेत वय नो वीक्षितु क्षमा। येषा प्रसन्नो गिरिशस्तेषा का नाम भीतय ॥८॥

ब्रह्मोवाच

पाशपाणिस्तदा मृत्यु प्राविशद्यत्र स द्विज। नासौ विप्रो विजानाति मृत्यु वा धर्मकिंकरान् ॥९॥

के तीर पर आश्रम बना कर रहता था। सवदा द्वार पर आये अतिथियो के आतिथ्य-सत्कार मे लगा रहता था। मन वचन और कम से उसकी शिव म निष्ठा रहती थी। एक दिन जब उस शिव भक्ति-परायण द्विजवर की आयु का अन्त समय आया तब सदाशिव की पूजा म रत और ध्यानमग्न उस श्रेष्ठ द्विज को ले जाने के लिये यम के दूत आये। नारद! उस शिवभक्त के तेज से हतवीर्य हो वे यमदूत उसके गृह म प्रवेश नही कर पाते थे। उधर विलम्ब होने पर चित्रक ने मृत्यु से पूछा—॥१ ५॥

चित्रक ने कहा—मृत्यु! आयु क्षीण हो जाने पर भी श्वेत क्यो नही आ रहा है? अब तक तुम्हारे त भी नही आये यह तुम्हारे लिये उचित नही है ॥६॥

ब्रह्मा बोले—इस पर मृत्यु कुपित होकर स्वय विप्र श्वेत के घर गया। वहाँ अपने भयत्रस्त दूतो को बाहर बैठे देखकर बोला— दूतो! यह क्या है? यह सुनकर दूतो ने मृत्यु से कहा ॥७॥

दूतो ने कहा—शिव के द्वारा रक्षित श्वेत को हम लोग आँख उठाकर भी देखने म समर्थ नही हो रहे हैं। जिनके उपर स्वय कैलाशपति शकर प्रसन्न हैं उनको डर किस बात का ॥८॥

ब्रह्मा बोले—यह सुनकर मृत्यु हाथ म पाश लिये हुए उस स्थान पर पहुँचा जहाँ वह विप्र विराजमान था। उसने अपनी तन्मयता के कारण मृत्यु अथवा यमदूतो को नही पहचाना। वह तो भक्तिपूर्वक शिवाराधन म ही लगा रहा। ऐसे भक्त श्वेत के समीप पाशहस्त मृत्यु को देख कर दण्डी ने अत्यन्त विस्मित हो उससे पूछा—॥९ १०॥

१–घ ०च किंचिद् मृत्य स्सवन्द्राच' समूचिरे। घि०।

शिवं पूजयते भक्त्या श्वेतस्य तु समीपतः। मृत्युं पाशधरं दृष्ट्वा दण्डी[1] प्रोवाच विस्मितः॥१०॥

दण्ड्युवाच

किमत्र वीक्षसे मृत्यो दण्डिन[2] मृत्युरब्रवीत् ॥११॥

मृत्युरुवाच

श्वेतं नेतुमिहाऽऽयातस्तस्माद्वीक्षे द्विजोत्तमम् ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

त्वं गच्छेत्यब्रवीद्दण्डी मृत्युः पाशानथाक्षिपत्। श्वेताय मुनिशार्दूल ततो दण्डी[3] चुकोप ह॥१३॥
शिवदत्तेन दण्डेन दण्डी मृत्युमताडयत्। ततः पाशधरो मृत्यु. पपात धरणीतले॥१४॥
ततस्ते त्वरं दूता हतं मृत्युमवेक्ष्य च। यमाय सर्वमवदन्वधं मृत्योस्तु दण्डिना[4]॥१५॥
ततश्च कुपितो धर्मो यमो महिषवाहनः। चित्रगुप्तं बहुबलं यमदण्डं च रक्षकम्॥१६॥
महिषं भूतवेतालानाधिव्याधींस्तथैव च। अक्षिरोगान्कुक्षिरोगान्कर्णशूलं तथैव च॥१७॥
ज्वरं च त्रिविधं पापं नरकाणि पृथक्पृथक्। त्वरन्तामिति तानुक्त्वा जगाम त्वरितो यमः॥१८॥
एतैरन्यैः परिवृतो यत्र श्वेतो द्विजोत्तमः। तमायान्तं यमं दृष्ट्वा नन्दी प्रोवाच सायुधः॥१९॥
विनायकं तथा स्कन्दं भूतनाथं तु दण्डिनम्। तत्र तद्युद्धमभवत्सर्वलोकभयावहम्॥२०॥

दण्डी बोला—मृत्यु! यहाँ क्या देख रहे हो? ॥११॥

मृत्यु ने दण्डी से कहा—श्वेत को ले जाने के लिए यहाँ आया हूँ इसलिये द्विजश्रेष्ठ श्वेत को देख रहा हूँ॥१२॥

ब्रह्मा बोले—तुम चले जाओ, दण्डी ने कहा। मुनिशार्दूल! इसके बाद मृत्यु ने श्वेत के लिए पाश फेंका। यह देख दण्डी के क्रोध का ठिकाना न रहा। उसने शिव-दत्त दण्ड से मृत्यु पर आक्रमण किया, जिसके फलस्वरूप यम पाश हाथ मे लिये ही पृथ्वी पर गिर पड़ा॥१३-१४॥ वे यमदूत इस प्रकार मृत मृत्यु को देखकर शीघ्र ही यम के पास गये और उसने दण्डी के द्वारा मृत्यु का वध आदि सब कुछ यम को सुना दिया॥१५॥ इसको सुनकर महिष वाहन यम कुपित हो गया। उसने अपने अतिबलशाली चित्रगुप्त, रक्षा करने वाले यमदण्ड, भैंसा, भूत, वेताल, व्याधि, इसी प्रकार नेत्ररोग, उदररोग, कर्णशूल तीन प्रकार के ज्वर पाप और विविध प्रकार के नरकों मे 'जल्दी करो' यह कहकर बडी शीघ्रता से सबको साथ लेकर घटनास्थल पर पहुँचा॥१६-१८॥ इस प्रकार उपर्युक्त गणों एव अन्य सहायकों के साथ यम वहाँ पहुँचा जहाँ श्वेत बैठा था। शास्त्रसज्जित यम को इस प्रकार आते देखकर शस्त्र सम्हालते हुए नन्दी ने विनायक, स्कन्द तथा दण्डधारी भूतनाथ शकर से यम की दुरभिसन्धि कह सुनाई। अब वहाँ सम्पूर्ण लोक को भय देने वाला भयकर युद्ध प्रारम्भ हो गया॥१९-२०॥ युद्ध मे कार्तिकेय ने स्वय अपनी शक्ति

---

१ घ नन्दी। २ घ नन्दिन। ३ घ नन्दी। ४ घ नन्दिना।

कार्तिकेयः स्वयं शक्त्या बिभेद यमकिंकरान्। दक्षिणाशापतिं चापि निजघान बलान्वितम् ॥२१॥
हतावशिष्टा याम्यास्ते आदित्याय न्यवेदयन्। आदित्योऽपि सुरैः सार्धं श्रुत्वा तन्महदद्भुतम् ॥२२॥
लोकपालैरनुवृतो मम् अन्तिकमुपागमत्। अहं विष्णुश्च भगवानिन्द्रोऽग्निर्वरुणस्तथा ॥२३॥
चन्द्रादित्यावश्विनौ च लोकपाला मरुद्गणाः। एते चान्ये च बहवो वयं याता यमान्तिकम् ॥२४॥
मृत आस्ते दक्षिणेशो गङ्गातीरे बलान्वितः। समुद्राश्च नदा नागा नानाभूतान्यनेकशः ॥२५॥
तत्राऽऽजग्मुः सुरेशानं द्रष्टुं वैवस्वतं यमम्। तं दृष्ट्वा हतसैन्यं च यमं देवा भयार्दिताः ॥
कृताञ्जलिपुटाः शंभुमूचुः सर्वे पुनः पुनः ॥२६॥

देवा ऊचुः

भक्तप्रियत्वं ते नित्यं दुष्टहन्तृत्वमेव च। आदिकर्तर्नमस्तुभ्यं नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते ॥
ब्रह्मप्रिय नमस्तेऽस्तु देवप्रिय नमोऽस्तु ते ॥२७॥

श्वेतं द्विजं भक्तमनायुषं ते, नेतुं यमादिः सकलोऽसमर्थः।
संतोषमाप्ताः परमं समीक्ष्य, भक्तप्रियत्वं त्वयि नाथ सत्यम् ॥२८॥
ये त्वां प्रपन्नाः शरणं कृपालुं, नालं कृतान्तोऽप्यनुवीक्षितुं तान्।
एवं विदित्वा शिव एव सर्वे, त्वामेव भक्त्या परया भजन्ते ॥२९॥

त्वमेव जगतां नाथ किं न स्मरसि शंकर। त्वां विना कः समर्थोऽत्र व्यवस्थां कर्तुमीश्वर ॥३०॥

से यमदूतों को छेद डाला। पुनः उन्होंने बलगर्वित दक्षिण दिशा के स्वामी यम को भी मार गिराया ॥२१॥ हतशेष यम के अनुचरों ने यमपिता आदित्य से सारी कथा कही। आदित्य भी इस अद्भुत संग्राम को सुनकर देवताओं और लोकपालों को साथ ले मेरे पास आये ॥२२॥ मैं (ब्रह्मा) विष्णु भगवान् इन्द्र अग्नि वरुण चन्द्र आदित्य अश्विन लोकपाल मरुद्गण तथा इनके अतिरिक्त और भी बहुत से देव यम के समीप गये ॥२३-२४॥ वहाँ गंगा के तट पर अपनी सेना सहित दक्षिणेश यम मरा हुआ पड़ा था। सभी समुद्र नद नाग एवं अनेक सब प्राणी देवस्वामी वैवस्वत यम को देखने के लिये वहाँ पहुँचे हुए थे। उसको इस प्रकार सैन्य सहित मरा देखकर सभी देवता भय से व्याकुल हो गये। वे हाथ जोड़कर भगवान् शंकर से पुनः पुनः कहने लगे ॥२५-२६॥

देवों ने कहा—तुम्हारा भक्तों के प्रति सर्वदा स्नेहभाव रहता है। तुम दुष्टों के वध के लिये सर्वदा तत्पर रहते हो। आदिकर्ता! तुमको नमस्कार है। नीलकण्ठ! तुमको हम नमस्कार करते हैं। ब्रह्मप्रिय! आपको नमस्कार है! देवप्रिय! आपको हम नमस्कार करते हैं ॥२७॥ तुम्हारे इस गतायुष भक्त द्विज श्वेत को ले जाने में यमादि सभी असमर्थ हो गये। नाथ! तुमम भक्तवात्सल्य का यह उत्कृष्ट सत्यस्वरूप देखकर हम अत्यन्त सन्तुष्ट हैं। जो व्यक्ति कृपालु तुम्हारी शरण में आते हैं उन लोगों की ओर यम भी आँख उठाकर देखने का साहस नहीं कर सकता। शिव! तुम्हारी इस कृपालुता को जानकर सब तुमको अत्यन्त भक्ति से भजते हैं। शंकर! क्या आप स्मरण नहीं करते कि आपही संसार के स्वामी हैं। तुमको छोड़कर कौन ऐसा है जो इस संसार में व्यवस्था स्थापित करने में समर्थ हो सकता है ॥२८-३०॥

ब्रह्मोवाच

एव तु स्तुवतां[1] तेषां पुरस्तादभवच्छिवः। किं ददामीति तानाह इदमूचुः सुरा अपि॥३१॥

देवा ऊचुः

अय वैवस्वतो धर्मो नियन्ता सर्वदेहिनाम्। धर्माधर्मव्यवस्थायां स्थापितो लोकपालकः॥३२॥
नायं वधमवाप्नोति नापराधी न पापकृत्। विना तेन जगद्धातुर्नैव किंचिद्भविष्यति॥३३॥
तस्माज्जीवय देवेश यम सबलवाहनम्। प्रार्थना सफला नाथ महत्सु न वृथा भवेत्॥३४॥

ब्रह्मोवाच

तत प्रोवाच भगवाञ्जीवयेयमसशयम्। यम यदि वचो मेऽद्य अनुमन्यन्ति देवताः॥३५॥
तत प्रोचु सुरा. सर्वे कुर्मो वाक्यं त्वयोदितम्। हरिब्रह्मादिसहितं वशे यस्याखिलं जगत्॥३६॥
तत प्रोवाच भगवानमरान्समुपागतान्। मद्भक्तो न मृतिं यातु नेत्यूचुरमराः पुनः॥३७॥
अमराः स्युस्ततो देव सर्वलोकाश्चराचरा। अमर्त्यमर्त्यभेदोऽयं न स्याद्देव जगन्मय॥३८॥
पुनरप्याह ताञ्शभु शृण्वन्तु मम भाषितम्। मद्भक्तानां वैष्णवानां गौतमीमनुसेवताम्॥३९॥
वय तु स्वामिनो नित्यं न मृत्युः स्वाम्यमर्हति। वार्ताऽप्येषां न कर्तव्या यमेन तु कदाचन॥४०॥
आधिव्याध्यादिभिर्जातु कार्यो नाभिभव. क्वचित्। ये शिवं शरण यातास्ते मुक्तास्तत्क्षणादपि॥४१॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार देवो की प्रार्थना सुनकर आशुतोष शिव उन देवो के सामने प्रत्यक्ष हुये। उन्होंने कहा—क्या दूं ? यह सुनकर देवो ने कहा॥३१॥

देवगण बोले—यह वैवस्वत धर्म सब प्राणियो पर अनुशासन करनेवाला है। यही धर्माधर्म की व्यवस्था के लिये लोक पालक के रूप मे प्रतिष्ठित है। यह न तो अपराधी ही और न पापकर्म करनेवाला ही है। अत यह वध के योग्य नही है इसके बिना विधाता की सृष्टि मे कोई व्यवस्था न हो सकेगी। देवेश ! इसलिये इस यम को सैन्य, वाहन के सहित जीवित कर दो। नाथ ! महानो से की गई प्रार्थना सफल होती है, व्यर्थ नही॥३२-३४॥

ब्रह्मा बोले—तदनन्तर भगवान् शकर ने कहा 'मै अवश्य यम को जीवित कर दूगा, यदि आप सब देवता आज मेरे प्रस्ताव का समर्थन कर । यह सुन कर सब देवताओ ने कहा कि आप की कही हुई बातो का हम सब अक्षरश पालन करेंगे। जिसके अधिकार मे विष्णु, और ब्रह्मा सहित सारा जगत है, उसकी कौन उपेक्षा कर सकता है ? तत्पश्चात् भगवान् ने आगत देवो से कहा—'मेरे भक्त कभी मृत्यु मुख मे न जायें।' पुन देवताओ ने कहा 'नही। देव ! तब तो चराचरात्मक सारा जगत् अमर हो जायगा। जगद्व्यापक ! देव ! अमर्त्य (देव) और मरणधर्मा मनुष्य का भेद भी मिट जायगा।' इन उपर्युक्त तर्कों को सुनकर शकर ने पुन कहा—मेरी कही हुई बातो का अभिप्राय सुनो 'मेरे भक्तो (शैव) और वैष्णवो—जो कि सर्वदा गौतमी गगा के आश्रय मे रहते हैं—के स्वामी हम सब ही हैं अत उन भक्तो पर मृत्यु का आधिपत्य कभी भी रहना उचित नही। अधिकार को कौन कहे,

---

[1] घ ब्रवता।

सानुगस्य यमस्यातो नमस्या सर्व एव ते। तथेत्यूचु सुरगणा देवदेव शिव प्रति ततश्च ॥४२॥
भगवान्नायो नन्दिन प्राह वाहनम् ॥४३॥

शिव उवाच

गौतम्या उदकेन त्वमभिषिञ्च मृत यमम् ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

ततो यमादय सर्वे अभिषिक्तास्तु नन्दिना। उत्थिताश्च सजीवास्ते दक्षिणाशा ततो गता ॥४५॥
उत्तरे गौतमीतीरे विष्ण्वाद्या सर्वदेवता। स्थिता आसन्पूजयन्तो देवदेव महेश्वरम् ॥४६॥
तत्राऽऽसन्नयुतान्यष्ट सहस्राणि चतुर्दश। तथा षट्च सहस्राणि पुन षट्च तथैव च ॥४७॥
षड्दक्षिणे तथा तीरे तीर्थानामयुतत्रयम्। पुण्यमाख्यानमेतद्धि श्वेततीर्थस्य नारद ॥४८॥
यत्रासौ पतितो मृत्युर्मृत्युतीर्थं तदुच्यते। तस्य श्रवणमात्रेण सहस्र जीवते समा ॥४९॥
तत्र स्नान च दान च सर्वपापप्रणाशनम्। श्रवण पठन चापि स्मरण च मलक्षयम्॥
करोति सर्वलोकाना भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये उत्तरतीरस्थैकलक्षद्वादशसहस्रतीर्थदक्षिण तीरस्थत्रिशत्सहस्रतीर्थवर्णन नाम चतुर्नवतितमोऽध्याय ॥९४॥
गौतमीमाहात्म्ये पञ्चविंशोऽध्याय ॥२५॥

इन लोगो के विषय मे यम कभी वार्ता तक न करे। वे कभी किसी अवस्था मे आधि व्याधि से सताये न जायें जो शिव की शरण मे चले जाते हैं वे तत्क्षण ही मुक्त समझे जाते हैं। अत वे सभी अनुचर सहित यम के लिये वन्द नीय हैं अचनीय हैं। यह सुनकर देवताओ ने देवाधिदेव शकर से कहा— एसा ही हो। इसके अनन्तर भगवान शकर ने अपने वाहन नन्दी से कहा ॥३५ ४३॥

शिव ने कहा—तुम गौतमी के जल से मृत यमराज का अभिषेक करो ॥४४॥

ब्रह्मा ने कहा—तब सभी यम आदि के ऊपर नन्दी ने गौतमी का जल छिडका। वे सभी जल स्पश से ही सजीव हो उठ गये और अपनी प्रिय दक्षिण दिशा की ओर चले गये। इधर उत्तर की ओर गौतमी के तीर पर विष्णु आदि सब देवताओ ने आसन जमाया और देवाधिदेव महेश्वर की सविधि पूजा की। वहा उस समय एक सौ छह हजार तीथ उपस्थित हुये थे। इसी प्रकार दक्षिण तीर पर छत्तीस हजार तीथउपस्थित थे। नारद! यही श्वेत तीथ का पुण्यदाता आख्यान है। जहाँ मृत्यु युद्ध मे आहत हो धराशायी हुए थे वही मृत्युतीर्थ कहा जाता है। उस मत्युतीथ के नाम श्रवण मात्र से मनुष्य सहस्र वष तक जीवित रहता है। वहाँ स्नान करने और दान देने से सब प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं। इस तीथ का माहात्म्य श्रवण पठन अथ च स्मरण सम्पूर्ण लोक का पाप नष्ट करता है और सबको भुक्ति मुक्ति प्रदान करता है ॥४५ ५०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे चौरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥९४॥

अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः

शुक्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शुक्रतीर्थमिति ख्यात सर्वसिद्धिकर नृणाम्। सर्वपापप्रशमन सर्वव्याधिविनाशनम् ॥१॥
अङ्गिराश्च भृगुश्चैव ऋषी परमधार्मिकौ। तयो पुत्रौ महाप्राज्ञौ रूपबुद्धिविलासिनौ ॥२॥
जीव कविरिति ख्यातौ मातापित्रोर्वशे रतौ । उपनीतौ सुतौ दृष्ट्वा पितरावूचतुर्मिथ ॥३॥

ऋषी ऊचतु

आवयोरेक एवास्तु शास्ता नित्य च पुत्रयो । तस्मादेक शासिता स्यात्तिष्ठत्वेको यथासुखम् ॥४॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तत शीघ्रमङ्गिरा प्राह भार्गवम। अध्यापयिष्ये सदृश सुख तिष्ठतु भार्गव ॥५॥
एतच्छ्रुत्वा चाङ्गिरसो वाक्य भृगुकुलोद्वह । तथेति मत्वाऽङ्गिरसे शुक्र तस्मै न्यवेदयत ॥६॥
उभावपि सुतौ नित्यमध्यापयति वै पृथक। वैषम्यबुद्धया तौ बालौ चिराच्छुक्रोऽब्रवीदिदम् ॥७॥

अध्याय ९५

शुक्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सब मनुष्यो के मनोरथ को पूर्ण करने वाला शुक्रतीर्थ नामक एक विश्वविख्यात तीर्थ है जो मनुष्य के सब पापो को दूर करता और सब प्रकार की व्याधियो को नष्ट करता है। अङ्गिरा और भृगु नाम के दो परम धार्मिक ऋषि थे। उनके दो पुत्र थे जो परम बुद्धिमान तथा रूप और बुद्धि के कोश थे। उन लोगो का नाम जीव (बृहस्पति) और कवि (शुक्र) था जो सवदा माता और पिता के आज्ञा-पालन मे निरत रहते थे। पुत्रो के यज्ञोपवीत सस्कार हो जाने के बाद उन दोनो बालको के पिता ने आपस मे मन्त्रणा की ॥१ ३॥

दोनो ऋषियो ने कहा—हम दोनो मे से एक ही सवदा इन दोनो का अभिभावक रहे। इसलिये एक तो इनका अभिभावक हो और दूसरा पुत्रपालन से निश्चिन्त होकर सुखपूर्वक रहे ॥४॥

ब्रह्मा बोले—यह सुनकर अङ्गिरा ने भार्गव से शीघ्र कहा— मै समान भाव से दोनो बालको को पढाऊँगा भार्गव सुखपूर्वक रहे। ऋषि अगिरा की इन बातो को सुनकर भृगुकुलश्रेष्ठ ने उसको स्वीकार कर लिया और शुक्र को अगिरा के हाथ समर्पित कर दिया। गुरु उन दोनो बालको को चिरकाल तक पृथक-पृथक असमान भाव से नित्य पढाते थे। यह चिरकालीन विषम अध्यापन देखकर शुक्र ने कहा ॥५ ७॥

१ख ०वशीकृतौ।

शुक्र उवाच

वैषम्येण गुरो मां त्वमध्यापयसि नित्यशः। गुरूणां नेदमुचितं वैषम्यं पुत्रशिष्ययोः॥८॥
वैषम्येण च वर्तन्ते मूढाः शिष्येषु देशिकाः। नैषां विषमबुद्धीनां संख्या पापस्य विद्यते॥९॥
आचार्य सम्यग्ज्ञातोऽसि नमस्येऽहं पुनः पुनः। गच्छेयं गुरुमन्यं वै मामनुज्ञातुमर्हसि॥१०॥
गच्छेयं पितरं ब्रह्मन्यद्यसौ विषमो भवेत्। ततो वाऽन्यत्र गच्छामि स्वामिन्पृष्टोऽसि गम्यते॥११॥

ब्रह्मोवाच

गुरुं बृहस्पतिं दृ(पृ)ष्ट्वा अनुज्ञातस्त्वगात्ततः। अवाप्तविद्यः पितरं गच्छेयं चेत्यचिन्तयत्॥१२॥
तस्मात्कमनुपृच्छेयमुत्कृष्टः को गुरुर्भवेत्। इति स्मरन्महाप्राज्ञमपृच्छद्वृद्धगौतमम्॥१३॥

शुक्र उवाच

को गुरुः स्यान्मुनिश्रेष्ठ मम ब्रूहि गुरुर्भवेत्। त्रयाणामपि लोकानां यो गुरुस्तं व्रजाम्यहम्॥१४॥

ब्रह्मोवाच

स प्राह जगतामीशं शंभुं देवं जगद्गुरुम्[१]। क्वाऽऽराधयामि गिरिशमित्युक्तः प्राह गौतमः॥१५॥

शुक्र बोले—गुरुदेव! तुम तो नित्य ही मुझको असमान रूप से पढाते हो। गुरुजनो का इस प्रकार पुत्र और शिष्य के प्रति विषम व्यवहार उचित नहीं। मूर्ख गुरु ही शिष्यो के प्रति पक्षपात युक्त व्यवहार करते हैं, ऐसे पक्षपाती गुरुओ के पापो की गणना नही हो सकती। आचार्य! तुम भलीभाँति पहचाने गये। तुमको मैं बार बार नमस्कार करता हूँ। अब अन्य गुरु के समीप जाना चाहता हूँ कृपा करके मुझे अनुमति प्रदान कीजिये। ब्रह्मन्! यदि वहाँ जाने पर भी ऐसा ही विषम व्यवहार होगा तो पिता जी के पास चला जाऊँगा अथवा दूसरे गुरु के समीप चला जाऊँगा। स्वामिन्! आप से पूछ लिया, अब जा रहा हूँ॥८-११॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार गुरु और सहपाठी बृहस्पति से भेंट कर उनसे विदा माँग कर वहाँ से प्रस्थान कर दिया। सोचने लगा कि सम्पूर्ण विद्याओ का ज्ञाता होकर ही पिता के समीप चलना चाहिये। इसलिये किससे पूछू, कौन ऐसा उत्कृष्ट व्यक्ति है जो मेरा गुरु हो। इस प्रकार सोचते हुए उसने महाबुद्धिमान् गौतम से पूछा—॥१२–१३॥

शुक्र ने कहा—मुनिश्रेष्ठ! इस लोक मे कौन ऐसा ज्ञानी व्यक्ति है जो मेरा गुरु हो, यह मुझको बतलाइये। तीनो लोको के जो गुरु हैं, उनके समीप भी मैं जा सकता हूँ॥१४॥

ब्रह्मा बोले—गौतम ने जगत् के स्वामी, जगद्गुरु भगवान शकर को ही गुरु के योग्य बताया। यह पूछने पर कि उनकी आराधना कहाँ करूँ, गौतम ने कहा॥१५॥

१क ०म्। शुक्र प्राह कथं तं वै पश्येयं त्रिदशेश्वरम्। गौतम प्राह धर्मज्ञो वृद्ध शुक्र गुरुप्रियम्। गौतम्या।

गौतम उवाच

गौतम्यान्तु शुचिर्भूत्वा स्तोत्रैस्तोषय शङ्करम्। ततस्तुष्टो जगन्नाथः स ते विद्यां प्रदास्यति ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

गौतमस्य तु तद्वाक्यात्प्रागाद्गङ्गां स भार्गवः। स्नात्वा भूत्वा शुचिः सम्यक्स्तुतिं चक्रे स बालकः ॥१७॥

शुक्र उवाच

बालोऽहं बालबुद्धिश्च बालचन्द्रधर प्रभो। नाहं जानामि ते किंचित्स्तुतिं कर्तुं नमोऽस्तु ते ॥१८॥
परित्यक्तस्य गुरुणा न ममास्ति सुहृत्सखा। त्वं प्रभुः सर्वभावेन जगन्नाथ नमोऽस्तु ते ॥१९॥
गुरुर्गुरुमतां देव महतां च महानसि। अहमल्पतरो बालो जगन्मय नमोऽस्तु ते ॥२०॥
विद्यार्थं हि सुरेशान नाहं वेद्मि भवद्गतिम्। मां त्वं च कृपया पश्य लोकसाक्षिन्नमोऽस्तु ते ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य प्रसन्नोऽभूत्सुरेश्वरः ॥२२॥

शिव उवाच

कामं वरय भद्रं ते यच्चापि सुरदुर्लभम् ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

कविरप्याह देवेशं कृताञ्जलिरुदारधीः ॥२४॥

गौतम बोले—गौतमी मे स्नान कर पवित्र हो स्तोत्र-पाठ से शकर को प्रसन्न करो। तब जगत्पति प्रसन्न होकर तुमको विद्या प्रदान करेंगे ॥१६॥

ब्रह्मा बोले—वह भार्गव (शुक्र) गौतम के कथनानुसार गगा की तीर पर गया। स्नान कर पवित्र हो उस बालक ने विधिपूर्वक शकर की स्तुति की ॥१७॥

शुक्र बोले—द्वितीया के चन्द्रमा को धारण करने वाले! प्रभो! मैं बालक हूँ, बाल-बुद्धि (अल्पबुद्धि) हूँ। किञ्चित्मात्र भी तुम्हारी स्तुति करना नही जानता, तुमको मेरा नमस्कार हो। गुरु से परित्यक्त मेरा कोई भी सहायक या मित्र नही है। जगन्नाथ! सब प्रकार से तुम्ही मेरे प्रभु हो, मैं तुमको नमस्कार करता हूँ। तुम श्रेष्ठो मे श्रेष्ठ तथा महानो के भी महान् हो। मै तो अत्यन्त अल्पबुद्धि बालक हूँ। जगद्व्यापक! आपको मेरा नमस्कार है। सुरेशान! मैं विद्या-प्राप्ति के लिये आपकी शरण मे आया हूँ, परन्तु आपकी गति नही जानता। अतः आप मुझको कृपा-दृष्टि से देखिए। लोकसाक्षिन्! आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१८-२१॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार बालक की स्तुति-प्रार्थना सुनकर सुरेश्वर शकर प्रसन्न हो गये ॥२२॥

शंकर ने कहा—तुम्हारा कल्याण हो। तुम अभिलषित वर माँगो। जो देवो से भी दुष्प्राप्य हो वह भी माँगो ॥२३॥

ब्रह्मा ने कहा—उदार बुद्धि शुक्र ने भी अञ्जलि बाँधकर देवेश से कहा—॥२४॥

शुक्र उवाच

ब्रह्मादिभिश्च ऋषिभिर्या विद्या नैव गोचरा। तां विद्यां नाथ याचिष्ये त्वं गुरुर्मम दैवतम् ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

मृतसंजीवनीं विद्यामज्ञातां त्रिदशैरपि। तां दत्तवान्सुरश्रेष्ठस्तस्मै शुक्राय याचते ॥२६॥
इतरा लौकिकी विद्या वैदिकी चान्यगोचरा। किं पुनः शंकरे तुष्टे विचार्यमवशिष्यते ॥२७॥
स तु लब्ध्वा महाविद्यां प्रायात्स्वपितरं गुरुम्। दैत्यानां च गुरुश्चाऽऽसीद्विद्यया पूजितः कविः ॥२८॥
ततः कदाचित्तां विद्यां कस्मिंश्चित्कारणान्तरे। कचो बृहस्पतिसुतो विद्यां प्राप्त कवेस्तु ताम् ॥२९॥
कचाद्बृहस्पतिश्चापि[1] ततो देवाः पृथक्पृथक्। अवापुर्महतीं विद्यां यामाहुर्मृतजीविनीम् ॥३०॥
यत्र सा कविना प्राप्ता विद्याऽऽपूज्य महेश्वरम्। गौतम्या उत्तरे पारे शुक्रतीर्थं तदुच्यते ॥३१॥
मृतसंजीविनीतीर्थमायुरारोग्यवर्धनम्। स्नानं दानं च यत्किंचित्सर्वमक्षयपुण्यदम् ॥३२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे मृतसंजीविनीतीर्थमाहात्म्यनिरूपणं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥९५॥

गौतमीमाहात्म्ये षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

शुक्र ने कहा—जिस विद्या को ब्रह्मादि देवता और ऋषियों ने भी नहीं जाना, नाथ ! उसी विद्या की याचना करता हूँ, तुम मेरे गुरु हो, देवता हो ॥२५॥

ब्रह्मा बोले—जब देवों से भी अज्ञात मृतसजीवनी विद्या को सुरश्रेष्ठ शकर ने शुक्र की याचना पर दे दिया तो इतर लौकिक, वैदिक या अन्य विद्याओं के दान के विषय मे प्रसन्न शकर के लिये कुछ सोच विचार करने का अवसर ही कहाँ रहा ? अर्थात् इतर विद्यायें तो अनायास शकर से प्राप्त हो गई। वह महाविद्या को प्राप्त कर अपने गुरु के समीप चला गया। अपनी विद्या के कारण पूजित कवि दैत्यों के गुरु हुये। तदनन्तर किसी समय कारणवश बृहस्पति पुत्र कच ने कवि से मृत सजीवनी विद्या प्राप्त की। कच से बृहस्पति और बृहस्पति से देवताओं ने पृथक् पृथक् उस श्रेष्ठ विद्या को—जिसको मृतसजीवनी (मरे को जिलाने वाली) कहते हैं—प्राप्त किया। जिस स्थान पर शुक्र ने महेश्वर की आराधना कर उस विद्या को प्राप्त किया था, वही गौतमी के उत्तम तीर वाला स्थान शुक्रतीर्थ कहा जाता है। वह मृतसजीवनीतीर्थ आयु-आरोग्य को बढाने वाला है। वहाँ पर स्नान, दान, आदि जो कुछ किया जाता है, वह अक्षय पुण्य को देता है ॥२६-३२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे मृत सजीवनी माहात्म्य-वर्णन नामक पचानबेवाँ अध्याय समाप्त।

---

[1] घ. ॰पि जीवाद्देवाः।

अथ षण्णवतितमोऽध्यायः

पुण्यासिक्तासगमेन्द्रतीर्थादिसप्तसहस्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

इन्द्रतीर्थमिति ख्यात ब्रह्महत्याविनाशनम्। स्मरणादपि पापौघक्लेशसघविनाशनम् ॥१॥
पुरा वृत्रवधे वृत्ते ब्रह्महत्या तु नारद। शचीपति चानुगता ता दृष्ट्वा भीतवद्धरि ॥२॥
इन्द्रस्ततो वृत्रहन्ता इतश्चेतश्च धावति। यत्र यत्र त्वसौ याति हत्या साऽपीन्द्रगामिनी ॥३॥
स महत्सर आविश्य पद्मनालमुपागमत्। तत्रासौ तन्तुवद्भत्वा वास चक्रे शचीपति ॥४॥
सरस्तीरेऽपि हत्याऽऽसीद्दिव्य वर्षसहस्रकम्। एतस्मिन्नन्तरे देवा निरिन्द्रा ह्यभवन्मुने ॥५॥
मन्त्रयामासुरव्यग्रा कथमिन्द्रो भवेदिति। तत्राहमवद देवान्हत्यास्थान प्रकल्प्य च ॥६॥
इन्द्रस्य पावनार्थाय गौतम्यामभिषिच्यताम्। यत्राभिषिक्त पूतात्मा पुनरिन्द्रो भविष्यति ॥७॥
तथा ते निश्चय कृत्वा गौतमीं शीघ्रमागमन्। तत्र स्नात सुरपति देवाश्च ऋषयस्तथा ॥८॥
अभिषेक्तुकामास्ते सर्वे शचीकान्त च तस्थिरे। अभिषिच्यमानमिन्द्र त प्रकोपाद् गौतमोऽब्रवीत् ॥९॥

अध्याय ९६

पुण्या-सिक्ता सगम, इन्द्रतीर्थ आदि सप्त सहस्र तीर्थो का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—ब्रह्महत्याजन्य पापो को भी नष्ट कर देने वाला इन्द्र तीर्थ नामक एक परम प्रसिद्ध तीर्थ है जिसके स्मरण मात्र से सब पाप और क्लेश-समूह विनष्ट हो जाते हैं। नारद ! प्राचीन काल मे वृत्रासुर वध के पश्चात ब्रह्महत्या साकार रूप मे शचीपति के पीछे चली। उसको देखकर इन्द्र भयभीत-से हो गये। तब वृत्र-हन्ता इन्द्र इधर उधर भागने लगे। जहाँ जहाँ व जाते थे वह ब्रह्महत्या भी उनके पीछे-पीछे जाती थी। अन्ततोगत्वा इन्द्र महासरोवर मे घुसकर कमल नाल मे छिप गये वहा तन्तु के रूप मे शचीपति इन्द्र निवास करने लगे। वह हत्या भी उस सरोवर के तीर पर दिव्य सहस्र वर्षो तक निवास करती रही। मुने ! इतने वर्षों तक देवता बिना इन्द्र के हो गये। आपस मे उन देवो ने शान्त चित्त से परामर्श किया कि किस प्रकार पुन इन्द्र प्रकट होगे। उस समय मैंने देवो से कहा कि कुछ समय तक हत्या को एक निर्दिष्ट स्थान दे दिया जाय और इन्द्र को हत्या से मुक्त करने के लिये गौतमी मे उनको स्नान कराया जाय। उस गौतमी मे अभिषिक्त होने से इन्द्र पुन पवित्र होकर इन्द्रत्व को प्राप्त कर लगे। ऐसा निश्चय कर वे देव शीघ्र ही गौतमी के तीर पर आये। वहा सुरेश को स्नान करा कर, उनका अभिषेक करने की इच्छा से देव ऋषि आदि प्रस्तुत हो गये। अभिषेक किये जाने वाले इन्द्र को देखकर गौतम ने कुपित होकर कहा—॥१-९॥

गौतम उवाच

अभिषेक्ष्यन्ति पापिष्ठं महेन्द्रं गुरुतल्पगम्। तान्सर्वान्भस्मसात्कुर्यां शीघ्रं यान्त्वसुरारय ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

तद्दृषेर्वचनं श्रुत्वा परिहृत्य च गौतमीम्। नर्मदामगमन्सर्व इन्द्रमादाय सत्वराः ॥११॥
उत्तरे नर्मदातीरे अभिषेकाय तस्थिरे। अभिषेक्ष्यमाणमिन्द्रं तं माण्डव्यो भगवानृषिः ॥१२॥
अब्रवीद्भस्मसात्कुर्यां यदि स्यादभिषेचनम्। पूजयामासुरमरा माण्डव्यं युक्तिभिः स्तवैः ॥१३॥

देवा ऊचुः

अयमिन्द्रः सहस्राक्षो यस्मिन्देशेऽभिषिच्यते। तत्रातिदारुण विघ्न मुने समुपजायते ॥१४॥
तच्छान्तिं कुरु कल्याण प्रसीद वरदो भव। मलनिर्यातनं यस्मिन्कुर्मस्तस्मिन्वरान्बहून् ॥१५॥
देशे दास्यामहे सर्वे तदनुज्ञातुमर्हसि। यस्मिन्देशे सुरेन्द्रस्य अभिषेको भविष्यति ॥१६॥
स सर्वकामदः पुंसां धान्यवृक्षफलैर्युतः। नानावृष्टिर्नदुर्भिक्ष भवेदत्र कदाचन ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

मेने ततो मुनिश्रेष्ठो माण्डव्यो लोकपूजितः। अभिषेकः कृतस्तत्र मलनिर्यातन तथा ॥१८॥
देवैस्तदोक्तो मुनिभिः स देशो मालवस्ततः। अभिषिक्ते सुरपतौ जाते च विमले तदा ॥१९॥

गौतम बोले—यदि गुरुतल्पगामी पापी इन्द्र का तुम लोग अभिषेक करोगे तो सबको अपने शापाग्नि से भस्म कर दूगा, अत राक्षसो के शत्रु देवगण यहाँ से शीघ्र चले जायँ ॥१०॥

ब्रह्मा ने कहा—उस ऋषि की बात सुनकर गौतमी को छोडकर इन्द्र को साथ ले वे देवता शीघ्र ही नमदा के तट पर चले गये। वहाँ नर्मदा के उत्तर तीर पर अभिषेक करने के लिये स्थित हुये। इस प्रकार इन्द्र के अभिषेक का समारोह देखकर *भगवान् ऋषि माण्डव्य ने कहा—'यदि यहाँ अभिषेक हुआ तो सबको भस्मावशेष कर दूगा। यह* देखकर देवा ने अनेक युक्तियो और स्तुतिपाठ से माण्डव्य ऋषि की पूजा की ॥११ १३॥

देवों ने कहा—इस सहस्र नेत्र वाले इन्द्र का जिस देश म अभिषेक होगा मुनिवर! उस देश म अति भयकर विघ्न उत्पन्न होगे। कल्याणमूर्ति! आप प्रसन्न होइये, उन विघ्नो की शाति कीजिये। वर देने वाले होइये। हम जिस प्रदेश मे मल मोचन करेंगे, उस प्रदेश को हम सब उत्तम कल्याणमय वरो से समृद्ध कर देंगे इसलिये आप कृपा कर आज्ञा प्रदान करें। जिस प्रदेश मे सुरराज का अभिषेक होगा वह प्रदेश भाँति भाँति के धान्य और फलदार वृक्षो से सुशोभित रहेगा एव मनुष्यो की कामनाओ की पूर्ति करेगा। वहाँ समयानुकूल वृष्टि होती रहेगी, कभी भी दुर्भिक्ष न होगा ॥१४-१७॥

ब्रह्मा ने कहा—इतनी प्रार्थना के उपरान्त लोक-पूजित माण्डव्य ऋषि ने इसको स्वीकार किया। वहाँ इन्द्र का अभिषेक तथा पापमोचन कर्म किया गया। तब देवताओ और मुनियो के द्वारा उस देश का मालव नामकरण किया गया। इस प्रकार अभिषेक हो जाने पर सुरपति इन्द्र पापमुक्त हो गये। पुन उनको गौतमी गगा के तट पर

आनीय गौतमो गङ्गा त पुण्यायाभिषेचिरे। सुराश्च ऋषयश्चैव अह विष्णुस्तथैव च ॥२०॥
वशिष्ठो गौतमश्चापि अगस्त्योऽत्रिश्च कश्यप। एते चान्ये च ऋषयो देवा यक्षा सपन्नगा ॥२१॥
स्नान तत्पुण्यतोयेन अकुर्वन्नभिषेचनम्। मया पुन शचीभर्ता कमण्डलुभवेन च ॥२२॥
वारिणाऽप्यभिषिक्तश्च तत्र पुण्याऽभवन्नदी। सिक्ता चेति च तत्राऽऽसीत्ते गङ्गाया च सगते ॥२३॥
सगमौ तत्र विख्यातौ सर्वदा मुनिसेवितौ। तत प्रभृति तत्तीर्थं पुण्यासगममुच्यत ॥२४॥
सिक्ताया सगम पुण्यमैन्द्र तदभिधीयते। तत्र सप्त सहस्राणि तीर्थान्यासञ्शुभानि च ॥२५॥
तषु स्नान च दान च विशेषेण तु सगमे। सर्वं तदक्षय विद्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥२६॥
यदेतत्पुण्यमाख्यान य पठेच्च शृणोति वा। सर्वपापै स मुच्येत मनोवाक्कायकर्मजै ॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पुण्यासिक्तासगमेन्द्रतीर्थादिसप्तसहस्रतीर्थवर्णन नाम षण्णवतितमोऽध्याय ॥९६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तविंशोऽध्याय ॥२७॥

लाकर सुरगण ऋषि मैं (ब्रह्मा) विष्णु वशिष्ठ गौतम अगस्त्य अत्रि कश्यप तथा अन्य ऋषि देव यक्ष और नागो आदि ने पुण्याथ उनका अभिषक किया। प्रथम उस नदी के पवित्र जल से स्नान हुआ पुन अभिषक क्रिया समाप्त हुई। तदनन्तर स्वय मने अपने कमण्डलु-जल से शचीपति का अभिषक किया। उस अभिषक के जल से वहाँ पुण्या नदी उत्पन्न हुई वहा एक सिक्ता नदी भी थी वे दोनो नदिया गग मे जाकर मिल गइ। उन दोनो के सगम स्थान अत्यन्त विख्यात तीथ हो गये वहाँ सवदा मुनिजन निवास करने लगे। तब से वह तीर्थ पुण्या-सगम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सिक्ता के सगम स्थान पर जो तीथ हुआ वह इन्द्रतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वहाँ सात हजार पवित्र तीर्थों का निवास है उन तीर्थो मे स्नान और वहाँ का दान अक्षय होता है सगम का स्नान और दान तो विशेष महत्व रखता है इसम विचार या सन्देह करने की आवश्यकता नही। जो इस पवित्र आख्यान को पढता अथवा श्रवण करता है वह अपने मानसिक और वाचिक पापो से मुक्त हो जाता है ॥१८ २७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे पुण्या सिक्ता-सगम इन्द्रतीथ आदि सप्तसहस्रतीर्थों का वणन नामक छियानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥९६॥

अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः

पौलस्त्यतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पौलस्त्यं तीर्थमाख्यातं सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम्। प्रभावं तस्य वक्ष्यामि भ्रष्टराज्यप्रदायकम् ॥१॥
उत्तराशापतिः पूर्वमृद्धिसिद्धिसमन्वितः। पुरा लङ्कापतिश्चाऽऽसीज्ज्येष्ठो विश्रवसः सुत. ॥२॥
तस्यैते भ्रातरश्चाऽऽसन्बलवन्तोऽमितप्रभाः। सापत्ना रावणश्चैव कुम्भकर्णो विभीषण ॥३॥
तेऽपि विश्रवसः पुत्रा राक्षस्यां राक्षसास्तु ते। मद्दत्तेन विमानेन धनदो भ्रातृभिः सह ॥४॥
ममान्तिकं भक्तियुक्तो नित्यमेति तु याति च। रावणस्य तु या माता कुपिता साऽऽब्रवीत्सुतान् ॥५॥

रावणमातोवाच

मरिष्ये न च जीविष्ये पुत्रा वैरूप्यकारणात्। देवाश्च दानवाश्चाऽऽसन्सापत्ना भ्रातरो मिथ ॥६॥
अन्योन्यवधमीप्सन्ते जयैश्वर्यवशानुगाः। तद्भवन्तो न पुरुषा न शक्ता न जयैषिणः॥
सापत्नं योऽनुमन्यते तस्य जीवो निरर्थकः ॥७॥

अध्याय ९७

पौलस्त्यतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाला पौलस्त्यनामक प्रसिद्ध तीर्थ है। राज्यच्युत व्यक्ति को पुन राज्य दिलाने वाले उस तीर्थ की महिमा का वर्णन करूँगा। विश्रवा का ज्येष्ठ पुत्र उत्तर दिशा का स्वामी कुबेर पहले लंका का अधिपति था। पहले वह ऋद्धि, सिद्धि से युक्त अत्यन्त वैभवशाली था। उसके अमित तेजस्वी, अत्यन्त बलवान् रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण नामक सौतेले भाई थे। वे भी विश्रवा के, राक्षसी के गर्भ से उत्पन्न राक्षस पुत्र थे। मेरे द्वारा दिये गये विमान से नित्य कुबेर अपने भाइयों के साथ भक्ति पूर्वक आता और जाता था। रावण की माता इस प्रकार मातृ-प्रेम देखकर कुपित हो गई, उसने अपने पुत्रों से कहा ॥१-५॥

रावण की माता बोली—पुत्रो! तुम लोगों के प्रकृति विरुद्ध कार्य को देखकर न तो मरती ही हूँ न जीवन-सुख ही प्राप्त करती हूँ। अब तक देवता और दानव आपस में सौतेले भाई थे। वे विजय और ऐश्वर्य की कामना से एक दूसरे का वध करना चाहते थे। इसीलिये तुम लोग न तो पुरुष हो, न शक्तिशाली और नही विजयाकांक्षी हो। उन लोगों का जीवन निरर्थक है जो अपने सौतेले भाई के अनुचर होकर रहते हैं ॥६-७॥

ब्रह्मोवाच

तन्मातृवचन श्रुत्वा भ्रातरस्ते त्रयो मुने। जग्मुस्ते तपसेऽरण्य कृतवन्तस्तपो महत् ॥८॥
मत्तो वरानवापुश्च त्रय एते च राक्षसा। मातुलेन मरीचेन तथा मातामहेन तु ॥९॥
तन्मातृवचनाच्चापि ततो लङ्कामयाचत। रक्षोभावान्मातृदोषाद्भ्रात्रोर्वैरमभन्महत् ॥१०॥
ततस्तदभवद्युद्ध देवदानवयोरिव। युद्धे जित्वाऽग्रज शान्त धनद भ्रातर तथा ॥११॥
पुष्पक च पुरीं लङ्का सर्वं चैव व्यपाहरत्। रावणो घोषयामास त्रैलोक्ये सचराचरे ॥१२॥
यो दद्यादाश्रय भ्रातु स च वध्यो भवेन्मम। भ्रात्रा निरस्तो वैश्रवणो नैव प्रापाऽऽश्रय क्वचित् ॥१३॥
पितामह पुलस्त्य त गत्वा नत्वाऽब्रवीद्वच ।

धनद उवाच

भ्रात्रा निरस्तो दुष्टेन कि करोमि वदस्व मे। आश्रय शरण यत्स्याद्दैव वा तीर्थमेव च ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तत्पौत्रवचन श्रुत्वा पुलस्त्यो वाक्यमब्रवीत् ॥१५॥

पुलस्त्य उवाच

गौतमीं गच्छ पुत्र त्व स्तुहि देव महेश्वरम्। तत्र नास्य प्रवेश स्याद्गङ्गाया जलमध्यत[1] ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—मुने! माता की बातो को सुनकर वे तीनो भाई तपस्या करने के लिये जगल मे चले गये। वहाँ जाकर उन्होने घोर तपस्या की और उन राक्षसो ने मुझसे वरदान भी पा लिया। तदनन्तर मामा मरीच मातामह तथा उस माता की वाणी से प्ररित होकर उन तीनो ने ज्येष्ठ भ्राता कुबेर से लका का अधिपत्य माँगा। एक तो स्वय राक्षस होने के कारण दूसरे माता की दुष्टता से उन भाइयो मे महान् वैर हो गया। इसके परिणाम स्वरूप देव और दानव के समान ही उन सौतेले भाइयो मे युद्ध हुआ। रावण ने अपने परम शान्त जेठ भाई कुबेर को युद्ध म पराजित कर पुष्पक विमान लकापुरी एव सारी सपत्ति छीन ली और सारे चराचर युक्त ससार मे घोषित करा दिया कि जो कोई उसके भाई को आश्रय देगा वह मेरे हाथो द्वारा मारा जायगा। इस प्रकार वह वश्रवण अपने भाई से निर्वासित कर दिया गया उसको किसी के यहाँ आश्रय नही मिला। अन्तत वह विवश होकर अपने पितामह पुलस्त्य के यहा गया और प्रणाम कर कहा—॥८ १३॥

कुबेर न कहा—मैं अपने ही भाई रावण से निर्वासित कर दिया गया हूँ अब क्या करूँ मुझ बताइये दैव का भरोस करना होगा या तीथ की शरण लेनी होगी ॥१४॥

ब्रह्मा ने कहा—अपने पौत्र की बातें सुनकर पुलस्त्य ने कहा ॥१५॥

पुलस्त्य न कहा—पुत्र! गौतमी के तीर पर जाओ वहाँ महेश्वर की स्तुति करो उस स्थान पर गगा जल के

---

१ घ ०लसप्लवात। सि०।

सिद्धिं प्राप्स्यसि कल्याणीं तथा कुरु मया सह　　　　॥१७॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा जगामासौ सभार्यो धनदस्तथा। पित्रा मात्रा च वृद्धेन पुलस्त्येन धनेश्वर ॥१८॥
गत्वा तु गौतमीं गङ्गां शुचिः स्नात्वा यतव्रत। तुष्टाव देवदेवेशं भुक्तिमुक्तिप्रदं शिवम् ॥१९॥

धनद उवाच

स्वामी त्वमेवास्य चराचरस्य, विश्वस्य शंभो न परोऽस्ति कश्चित्　　।
त्वामप्यवज्ञाय यदीह मोहात्प्रगल्भते कोऽपि स शोच्य एव　　॥२०॥
त्वमष्टमूर्त्या सकलं बिभर्षि, त्वदाज्ञया वर्तत एव सर्वम्
तथापि वेदेति बुधो भवन्त, न जात्वविद्वान्महिमा पुरातनम्　　॥२१॥
मलप्रसूतं यदवोचदम्बा हास्यात्सुतोऽयं तव देव शूरः　　।
त्वत्प्रेक्षिताद्य स च विघ्नराजो, जज्ञे त्वहो चेष्टितमीशदृष्टे　　॥२२॥
अश्रुप्लुताङ्गी गिरिजा समीक्ष्य, वियुक्तदाम्पत्यमितीशमूचे　　।
मनोभवोऽभून्मदनो रतिश्च, सौभाग्यपूर्वं (र्णं) त्वमवाप सोमात्　　॥२३॥

ब्रह्मोवाच

इत्यादि स्तुवतस्तस्य पुरतोऽभूत्त्रिलोचन। वरेण च्छन्दयामास हर्षान्नोवाच किंचन ॥२४॥

बीच से इसका प्रवेश न हो सकेगा। वहाँ अवश्य तुम कल्याणमयी सफलता प्राप्त कर करोगे। इसलिये चलो मेरे साथ पूर्वोक्त कार्य का अनुष्ठान प्रारम्भ करो ॥१६ १७॥

ब्रह्मा बोले—आपके कथनानुसार कार्य करूँगा यह कहकर अपनी भार्या तथा पिता माता और वृद्ध पुलस्त्य के साथ धनेश्वर कुबेर गौतमी तट पर चला गया। वहाँ जाकर उसने गगा मे स्नान कर अपने को पवित्र किया और व्रत की दीक्षा लेकर एकाग्र मन से देवदेवेश मुक्ति और मुक्ति के दाता शिव की स्तुति प्रारम्भ की ॥१८ १९॥

धनद ने कहा—तुम्ही इस चराचर विश्व के स्वामी हो शभो ! आपसे बढकर और कोई नही है। यदि इस ससार मे आपकी उपेक्षा कर कोई मनुष्य मोहवश अभिमान करता है तो वह अधम शोचनीय है ॥२०॥ आप अपनी आठ मूर्तियो से सम्पूर्ण जगत को धारण करते हैं। आपकी ही आज्ञा से सारा सृष्टि विधान सचालित होता है। तथापि विद्वान् ही सनातन आपको जानते हैं अविद्वान् कभी भी आपकी महिमा नही जान पाते ॥२१॥ हँसी म जननी ने अपने मल स उत्पन्न बालक को तुम्हारा बलवान् पुत्र कहा परन्तु देव ! तुम्हारी कृपादृष्टि से वही विघ्नराज विनायक हो गया। अहा ! आपकी कृपादृष्टि का यह फल है ॥२२॥ रति के करुण विलाप से आँसू से व्याप्त अगों वाली पार्वती ने करुणापूर्वक रति और मदन का पारस्परिक सम्बन्ध भग हो गया है—इस विषय की वार्त्ता भगवान् शकर से कही, जिससे कल्याण करने वाले आपकी कृपा से मदन ने मनोभव-पदवी और रति न अपना सौभाग्य-सुख प्राप्त किया ॥२३॥

ब्रह्मा ने कहा—*इस प्रकार स्तुति सलग्न कुबेर के सम्मुख त्रिनेत्र शकर स्वय उपस्थित हो गये और वरदान* से उसको कृतकृत्य किया, परन्तु धनद कुबेर आनन्दातिरेक से कुछ न बोले ॥२४॥ कुबेर और पुलस्त्य के इस प्रकार

तूष्णींभूते तु धनदे पुलस्त्ये च महेश्वरे। पुनः पुनर्वरस्वेति शिवे वादिनि हर्षिते ॥२५॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वागुवाचाशरीरिणी। प्राप्तव्यं धनपालत्वं वदन्तीदं महेश्वरम् ॥२६॥
पुलस्त्यस्य तु यच्चित्तं पितुर्वैश्रवणस्य तु। विदित्वेव तदा वाणी शुभमर्थमुदीरयत् ॥२७॥
भूतवद्भवितव्यं स्याद्दास्यमानं तु दत्तवत्। प्राप्तव्य प्राप्तवत्तत्र देवी वागभवच्छुभा ॥२८॥
प्रभूतशत्रुः परिभूतदुःखः, सपूज्य सोमेश्वरमाप लिङ्गम् ।
दिगीश्वरत्वं द्रविणप्रभुत्वमपारदातृत्वकलत्रपुत्रान् ॥२९॥
तां वाचं धनदः श्रुत्वा देवदेवं त्रिशूलिनम्। एवं भवतु नामेति धनदो वाक्यमब्रवीत् ॥३०॥
तथैवास्त्विति देवेशो दैवीं वाचममन्यत। पुलस्त्यं च वरैः पुण्यैस्तथा विश्रवसं मुनिम् ॥३१॥
धनपालं च देवेशो ह्यभिनन्द्य ययौ शिवः। ततः प्रभृति तत्तीर्थं पौलस्त्यं धनदं विदुः ॥३२॥
तथा वैश्रवसं पुण्यं सर्वकामप्रदं शुभम्। तेषु स्नानादि यत्किंचित्तत्सर्वं बहुपुण्यदम् ॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पौलस्त्यतीर्थवर्णनं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥९७॥
गौतमीमाहात्म्येऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

मौन होने पर शकर जी अति प्रसन्न होकर 'वर माँगो', वर माँगो, यह शब्द बार बार कहने लगे ॥२५॥ इसी बीच वहाँ आकाशवाणी ने शकर से कहा कि यह धनपाल (कुबेर) की पदवी ही प्राप्त करना चाहता है ॥२६॥ पुलस्त्य और पिता वैश्रवण के मन मे जैसी इच्छा थी उसको जानकर ही आकाशवाणी ने उस समय यह कल्याणमय अभिप्राय व्यक्त किया ॥२७॥ भविष्य भूत के समान समृद्धिपूर्ण, प्राप्तव्य, प्राप्त के समान और दिया जाने वाला, दिये हुये के समान हो ऐसी उस समय शुभ देववाणी हुई ॥२८॥ अनेक शत्रुवाले, अनेक कष्टो से दु खी कुबेर ने सोमेश्वर लिंग की पूजा कर दिक्पाल पदवी, प्रभूतधन, अमितदान की शक्ति और स्त्री-पुत्र को प्राप्त कर लिया ॥२९॥ उपर्युक्त आकाशवाणी को सुनकर कुबेर ने त्रिशूलधारी, देवो के देव शकर से कहा कि ऐसा ही हो ॥३०॥ देवेश शकर ने भी आकाशवाणी का ही समर्थन करते हुए कहा कि ऐसा ही हो। इस प्रकार पुलस्त्य, मुनि विश्रवा और कुबेर को पवित्र, उत्तम वरो से सम्मानित कर देवेश शकर जी अन्तर्हित हो गये। उस समय से वह तीर्थ पौलस्त्य और धनद नाम से प्रसिद्ध हो गया, तथा सब मनोरथो को देने वाला, शुभ, पवित्र वैश्रवस् तीर्थ भी वही कहा गया। उस तीर्थ मे स्नान आदि जो कुछ किया जाता है वह बहुत पुण्यप्रद होता है ॥३१ ३३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे पौलस्त्यतीर्थवर्णन नामक सत्तानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥९७॥

अथाष्टनवतितमोऽध्यायः

अग्नितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अग्नितीर्थमिति ख्यात सर्वक्रतुफलप्रदम्। सर्वविघ्नोपशमन तत्तीर्थस्य फल शृणु ॥१॥
जातवेदा इति ख्यातो अग्नेर्भ्राता स हव्यवाट्। हव्य वहन्त देवाना गौतम्यास्तीर एव तु ॥२॥
ऋषीणा सत्रसदने अग्नेर्भ्रातरमुत्तमम्। भ्रातु प्रिय तथा दक्ष मधुर्दितिसुतो बली ॥३॥
जघान ऋषिमुख्येषु पश्यत्सु च सुरेष्वपि। हव्य देवा नैव चाऽऽपुर्मृते वै जातवेदसि ॥४॥
मृते भ्रातरि स त्वग्नि प्रिये वै जातवेदसि। कोपेन महताऽविष्टो गाङ्गमम्भ समाविशत ॥५॥
गङ्गाम्भसि समाविष्टे ह्यग्नौ देवाश्च मानुषा। जीवमुत्सर्जयामासुरग्निजीवा यतो मता ॥६॥
यत्राग्निर्जलमाविष्टस्त देश सर्व एव ते। आजग्मुर्विबुधा सर्व ऋषय पितरस्तथा ॥७॥
विनाऽग्निना न जीवाम स्तुवन्तोऽग्नि विशेषत। अग्नि जलगत दृष्ट्वा प्रिय चोचुर्दिवौकस ॥८॥

देवा ऊचु

देवाञ्जीवय हव्येन कव्येन च पितृस्तथा। मानुषानन्नपाकेन बीजाना क्लेदनेन च ॥९॥

अध्याय ९८

अग्नितीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—जो सब यज्ञो के फल को देने वाला सम्पूर्ण विघ्नो को शान्त करने वाला प्रसिद्ध अग्नितीर्थ है उसके फल को सुनो। जातवेदस नाम का अग्नि का एक भ्राता था वह यज्ञो म हव्यवाहक था। एक समय वह गौतमी के तीर पर ऋषियो के यज्ञमण्डप म हव्य (हवनसामग्री) को ढो रहा था। उसी समय बलवान् दिति-सुत मधु ने देवताओ और मुख्य ऋषियो की आँखो के सामने ही अग्नि के उत्तम प्रिय कार्यकुशल भाई को मार डाला। जातवेदस के मर जाने पर देवताओ को हव्य नही प्राप्त होता था। इधर अपने प्रिय भ्राता जातवेदस के मर जाने से अग्नि अत्यन्त कुपित होकर गगा के जल मे प्रविष्ट हो गये। अग्नि के गङ्गा म इस प्रकार प्रविष्ट हो जाने पर सभी देवता मनुष्य निर्जीव से हो गये। क्योकि सभी अग्नि के ही आधार पर जीने वाले प्राणी हैं। वे सब देवता ऋषि और पितर गण जहाँ जल म अग्नि प्रविष्ट हुए थे वहाँ आ गये। हम लोग अग्नि के बिना जीवित नही रह सकते इस प्रकार विशेषरूप से अग्नि का गुणगान करने लगे। और प्रिय अग्नि को जल म प्रविष्ट देखकर सब देवता प्रेमपूर्वक कहने लगे ॥१ ८॥

देवों ने कहा—आप हव्य प्रदान कर देवताओ को और कव्य दान से पितरो को जीवित कीजिये। इसी प्रकार अन्न का परिपाक कर तथा बीजो को उगाकर मनुष्यो को जीवन-दान दीजिये ॥९॥

अग्निरप्याह तान्देवाञ्शक्तो यो मे गतोऽनुजः। क्रियमाणे भवत्कार्ये या गतिर्जातवेदसः॥१०॥
सा वाऽपि स्यान्मम सुरा नोत्सहे कार्यसाधने। कार्यं तु सर्वतस्तस्य भवतां जातवेदसः॥११॥
इमां स्थितिमनुप्राप्तो न जाने मे कथं भवेत्। इह चामुत्र च व्याप्तौ शक्तिरप्यत्र नो भवेत्॥१२॥
अथापि क्रियमाणे वं कार्ये सैव गतिर्मम। देवास्तमूचुर्भावेन सर्वेण ऋषयस्तथा॥१३॥
आयुः कर्मणि च प्रीतिर्व्याप्तौ शक्तिश्च दीयते। प्रयाजाननुयाजांश्च दास्यामो हव्यवाहन॥१४॥
देवानां त्व मुख श्रेष्ठमाहुत्यः प्रथमास्तव। त्वया दत्तं तु यद्द्रव्यं भोक्ष्याम. सुरसत्तम॥१५॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तुष्टोऽभवद्वह्निर्देववाक्याद्यथात्रमम्। इह चामुत्र च व्याप्तौ हव्ये वा लौकिके तथा॥१६॥
सर्वत्र वह्निरभयः समर्थोऽभूत्सुराज्ञया। जातवेदा बृहद्भानुः सप्तार्चिर्नीललोहितः॥१७॥
जलगर्भ· शमीगर्भो यज्ञगर्भ. स उच्यते। जलादाकृष्य विबुधा अभि(भ्य)षिच्य वि(ऽर्चन्वि)भावसुम्॥१८॥
उभयत्र पदे वासः सर्वगोऽग्निस्ततोऽभवत्। यथागतं सुरा जग्मुर्वह्नितीर्थं तदुच्यते॥१९॥
तत्र सप्त शतान्यासंस्तीर्थानि गुणवन्ति च। तेषु स्नानं च दान च यः करोति जितात्मवान्॥२०॥
अश्वमेधफलं साग्र प्राप्नोत्यविकलं शुभम्। देवतीर्थं च तत्रैव आग्नेयं जातवेदसम्॥२१॥

ब्रह्मा बोले—अग्नि ने भी उन देवताओ से कहा कि जो मेरा समर्थ शक्तिशाली छोटा भाई था वह तो चल गया। आप लोगो के कार्य करते रहने पर जो गति उस जातवेदस् की हुई, वही गति मेरी भी हो जायेगी। इसलिये, देवगण! आप लोगो के कार्य सम्पादन करने के लिए मुझे उत्साह नही हो रहा है। आप लोगो के कार्य को भलीभाँति करने वाला बेचारा जातवेदस् जब इस अवस्था को प्राप्त हुआ तो मेरी कैसी दुर्दशा होगी। साथ ही मृत्युलोक, स्वर्गलोक और व्याप्ति मे कार्य करने की शक्ति भी तो मुझमे नही है। इसके अतिरिक्त आप लोगो के कार्य करते रहने पर भी तो वही मेरी गति होगी। यह सुनकर देवो तथा ऋषियो ने सब प्रकार से अग्नि से कहा—हम लोग आयु कर्म मे प्रेम और व्याप्ति मे शक्ति दे रहे हैं। हव्यवाहन! प्रयाज और अनुयाज (यज्ञ भाग) भी हम आपको देगे। तुम देवो के श्रेष्ठ मुख हो इसलिए पहली आहुतियाँ तुम्हे दी जाएँगी। सुरश्रेष्ठ द्वारा दिये गये द्रव्य को ही हम लोग ग्रहण करेंगे॥१०-१५॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके अनन्तर देवताओ के कहने से अग्नि प्रसन्न हो गये। और क्रमानुसार भूलोक, स्वर्लोक, व्याप्ति हव्य तथा लौकिक कार्यो मे सर्वत्र ही देवो की आज्ञा से अग्नि भयरहित और शक्तिशाली हो गये। अब वे जलगर्भ (जल मे रहनेवाला वडवानल) शमीगर्भ और यज्ञगर्भ नाम से प्रसिद्ध हो गये। इस प्रकार देवों ने जल से अग्नि को निकाल कर अभिषेक द्वारा सतुष्ट कर (लोक-प्रतिष्ठित) किया। तब लोक, परलोक दोनो मे अग्नि का निवास हुआ। तदनन्तर देवो के अनुग्रह से अग्नि सर्वव्यापक हुये। इस प्रकार अग्निप्रतिष्ठा कर देवगण जहाँ से आये थे वहाँ चले गये। वह स्थान भी इसीलिए वह्नि तीर्थ कहा जाता है। वहाँ पर और भी सात सौ पवित्र, पुण्यप्रद तीर्थ हैं। जो जितात्मा उन तीर्थों मे स्नान और दान करता है वह सम्पूर्ण रूप से अश्वमेध का शुभ, उत्तम

अग्निप्रतिष्ठितं लिङ्गं तत्राऽऽस्तेऽनेकवर्णवत्। तद्देवदर्शनादेव सर्वक्रतुफलं लभेत् ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽग्नितीर्थवर्णनं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥९८॥

गौतमीमाहात्म्ये एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥२९॥

अथैकोनशततमोऽध्यायः

ऋणप्रमोचनतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

ऋणप्रमोचनं नाम तीर्थं वेदविदो विदुः। तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु नारद तन्मनाः ॥१॥

आसीत्पृथुश्रवा नाम प्रियः कक्षीवतः सुतः। न दारसंग्रहं लेभे वैराग्याद्नाग्निपूजनम् ॥२॥

कनीयांस्तु समर्थोऽपि परिवित्तिभयान्मुने। नाकरोद्दारकर्मादि नैवाग्नीनामुपासनम् ॥३॥

ततः प्रोचुः पितृगणाः पुत्रं कक्षीवतः शुभम्। ज्येष्ठं चैव कनिष्ठं च पृथक्पृथगिदं वचः ॥४॥

पितर ऊचुः

ऋणत्रयापनोदाय क्रियतां दारसंग्रहः ॥५॥

फल प्राप्त करता है। वहीं पर अग्नितीर्थ जातवेदा और देवतीर्थ भी है। तथा अनेक वर्ण के अग्नि द्वारा प्रतिष्ठित लिंग भी हैं। उन देवों के दर्शन मात्र से मनुष्य सम्पूर्ण यज्ञों का फल प्राप्त करता है ॥१६-२२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में अग्नितीर्थवर्णन नामक अट्ठानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥९८॥

अध्याय ९९

ऋणप्रमोचनतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—ऋण प्रमोचन नामक तीर्थ को वेदज्ञ लोग जानते हैं। नारद! मैं उसके स्वरूप का वर्णन कर रहा हूँ मन लगा कर सुनो। पृथुश्रवा नाम का कक्षीवान का प्रिय पुत्र था। उसने विरक्ति के कारण न तो विवाह ही किया और न तो अग्निपूजन (अग्नि स्थापन) ही। मुने! कनिष्ठ पुत्र ने योग्य होते हुए भी परिवित्ति (*ज्येष्ठभ्राता के अविवाहित रहने पर छोटे भाई के विवाह से उत्पन्न पाप या दुःख*) के भय से स्वयं विवाह या अग्निस्थापन आदि कर्म नहीं किया। यह देखकर पितृगणों ने कक्षीवान् के प्रिय ज्येष्ठ और कनिष्ठ पुत्र से अलग अलग *ये शब्द कहे ॥१-४॥*

पितरों ने कहा—तीन ऋणों से उद्धार पाने के लिये तुम लोगों को अपना विवाह कर लेना चाहिये ॥५॥

ब्रह्मोवाच

नेयुवाच ततो ज्येष्ठ. किमृण येन युज्यते। कनीयास्तु पितन्प्राह न योग्यो दारसंग्रह ॥६॥
ज्येष्ठे सति महाप्राज्ञ परिवित्तिभयादिति। तावुभौ पुनरप्येवमूचुस्ते वै पितामहाः॥७॥

पितर ऊचुः

यातामुभौ गौतमीं तु पुण्या कक्षीवत. सुतौ। कुरुतां गौतमीस्नानं सर्वाभीष्टप्रदायकम्॥८॥
गच्छतां गौतमीं गङ्गा लोकत्रितयपावनीम्। स्नानं च तर्पणं तस्या कुरुतां श्रद्धयाऽन्वितौ॥९॥
दृष्ट्वाऽवनामिता ध्याता गौतमी सर्वकामदा। न देशकालजात्यादिनियमोऽत्रावगाहने॥
ज्येष्ठोऽनृणस्ततो भूयात्परिवित्तिर्न चेतरः ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

तत पृथुश्रवा ज्येष्ठ कृत्वा स्नानं सतर्पणम्। त्रयाणामपि लोकाना काक्षीवतोऽनृणोऽभवत्॥११॥
तत. प्रभृति तत्तीर्थमृणमोचनमुच्यते। श्रौतस्मार्तऋणेभ्यश्च इतरेभ्यश्च नारद॥
तत्र स्नानेन दानेन ऋणी मुक्त सुखी भवेत् ॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ऋणमोचनतीर्थवर्णन नाम नवनवतितमोऽध्यायः॥९९॥
गौतमीमाहात्म्ये त्रिंशोऽध्याय.॥३०॥

ब्रह्मा बोले—पितरो के उपदेश सुनने पर भी ज्येष्ठ पुत्र ने कहा नही, 'कौन सा ऋणहै ? उससे किस प्रकार मनुष्य ऋणी हो जाता है ? छोटे पुत्र ने पितरो से कहा—जेठ भाई के रहते बुद्धिमान् छोटे भाई को विवाह नही करना चाहिये ऐसा करने से वह परिवित्ति दोष का भागी होता है ॥६-७॥

पितरो ने कहा—कक्षीवान् के तुम दोनो पुत्र पवित्र गौतमी तट पर जाओ, सब मनोरथो को देनेवाली गौतमी मे स्नान करो। तीनो लोको मे अति पुनीत उस नदी के तट पर जाओ, उसमे श्रद्धापूर्वक स्नान और तर्पण करो। गौतमी के दर्शन प्रणाम और ध्यान से सम्पूर्ण कामनाये प्राप्त होती है उसमे स्नान करने के लिये देश, काल जाति आदि का कोई बन्धन नही। ऐसा करने से ज्येष्ठ भ्राता अपने पितृ ऋण से मुक्त हो जायगा और छोटे को भी परिवित्ति दोष नही लगेगा॥८ १०॥

ब्रह्मा ने कहा—पितरो के उपदेशानुसार ज्येष्ठ पुत्र पृथुश्रवा ने गौतमी गगा मे स्नान और तर्पण आदि किया जिससे कि वह तीनो लोको तथा पिता कक्षीवान् के ऋण से उऋण हो गया। उसी समय से वह तीर्थ ऋण-मोचन तीर्थ कहा जाने लगा। नारद! वह तीर्थ श्रौत स्मार्त अथवा अन्य सब प्रकार के ऋणो से मनुष्य को मुक्त कर देता है। उस तीर्थ मे स्नान और दान से ऋणी मनुष्य ऋण से मुक्त हो सुखी हो जाता है॥११-१२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे ऋणमोचनतीर्थवर्णन नामक निन्यानवेवाँ अध्याय समाप्त॥९९॥

अथ शततमोऽध्यायः

कद्रूसुपर्णासगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सुपर्णासगम नाम काद्रवासगम तथा। महेश्वरो यत्र देवो गङ्गापुलिनमाश्रित ॥१॥
अग्निकुण्ड च तत्रैव रौद्र वैष्णवमेव च। सौर सौम्य तथा ब्राह्म कौमार वारण तथा॥२॥
अप्सरा च नदी यत्र सगता गङ्गया तथा। तत्तीर्थस्मरणादेव कृतकृत्यो भवेन्नर ॥३॥
सर्वपापप्रशमन शृणु यत्नेन नारद। इन्द्रेण हिसिता पूर्व वालखिल्या महर्षय ॥
दत्तार्धतपस सर्वे प्रोचुस्ते काश्यप मुनिम् ॥४॥

वालखिल्या ऊचु

पुत्रमुत्पादयानेन इन्द्रदर्पहर शुभम। तपसोऽर्धं तु दास्यामस्तथेत्याह मुनिस्तु तान् ॥५॥
सुपर्णाया[1] ततो गर्भमादधे स प्रजापति। कद्रवा चैव शर्नैर्ब्रह्मन्सर्पाणा सर्पमातरि ॥६॥
ते गर्भिण्यावुभ आह गन्तुकाम प्रजापति। अपराधो न च क्वापि कार्यो गमनमव च ॥७॥
अन्यत्र गमनाच्छापो भविष्यति न सशय ॥८॥

अध्याय १००

कद्रू सुपर्णा-सगमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सुपर्णा सगम और काद्रवा सगम नाम के दो तीर्थ हैं जहाँ भगवान शकर गगा तट पर विद्यमान हैं। वहीं पर अग्निकुण्ड रौद्रकुण्ड विष्णुकुण्ड सौर सौम्य ब्राह्म कौमार और वारुणकुण्ड है। जहा अप्सरा नाम की नदी गगा से मिलती है उस तीथ के स्मरण मात्र से मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। नाथ! उस सब पापो को शान्त करने वाले तीर्थ के विषय म ध्यानपूवक सुनो। आज से बहुत पहले इन्द्र ने वालखिल्य महर्षियो से बहुत अधिक ईर्ष्या की। वे सब अपनी तपस्या का आधा भाग कश्यप मुनि को देकर मुनि से बोले ॥१ ४॥

वालखिल्यो ने कहा—*मुनि कश्यप! आप हमारी तपस्या के इस आध भाग से इन्द्र के दप को चर करने वाले कल्याणकारी पुत्र को उत्पन्न कीजिये। इस काय के लिए तपस्या का आधा भाग दे रहे है। मुनि ने भी कहा कि अवश्य ऐसा करूँगा। तदनन्तर उस प्रजापति कश्यप ने सुपर्णा नामक पत्नी मे गर्भाधान किया। ब्रह्मन् साँपो की माता* कद्रू मे भी उन्होने सापो की उत्पत्ति के लिय गर्भाधान किया। एक दिन प्रजापति के मन मे अन्यत्र जाने की इच्छा हुई उन्होने अपनी दोनो गर्भिणी पत्निया से कहा— तुम लोगो को न कोई अपराध करना चाहिए और न कही जाना चाहिए। अन्यत्र जाने से अवश्य शाप पडगा ॥५ ८॥

---

[1] घ विनताया।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा स ययौ पत्न्यौ गते भर्तरि ते उभे। तदैव जग्मतुः सत्रमृषीणां भावितात्मनाम् ॥९॥
ब्रह्मवृन्दसमाकीर्णं गङ्गातीरसमाश्रितम्। उन्मत्ते ते उभे नित्यं वय.संपत्तिगर्विते ॥१०॥
निवार्यमाणे बहुशो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभि'। विकुर्वत्यौ तत्र सत्रे समानि च हवींषि च ॥११॥
योषितां दुर्विलसित कः सवरितुमीश्वरः। ते दृष्ट्वा चुक्षुभुर्विप्रा अपमार्गरते उभे ॥१२॥
अपमार्गस्थिते यस्मादापगे हि भविष्यथ। सुपर्णा चैव कद्रूश्च नद्यौ ते संबभूवतुः ॥१३॥
स कदाचिद्गृहं प्रायात्कश्यपोऽथ प्रजापतिः। ऋषिभ्यस्तत्र वृत्तान्तं शापं ताभ्यां सविस्तरम् ॥१४॥
श्रुत्वा तु विस्मयाविष्टः किं करोमीत्यचिन्तयत्। ऋषिभ्यः कथयामास वालखिल्या इति श्रुताः ॥१५॥
त ऊचु' कश्यप क्षिप्रं गत्वा गङ्गां तु गौतमीम्। तत्र स्तुहि महेशानं पुनर्भार्ये भविष्यतः ॥१६॥
ब्रह्महत्याभयादेव यत्र देवो महेश्वर.। गङ्गामध्ये सदा ह्यास्ते मध्यमेश्वरसंज्ञया ॥१७॥
तथेत्युक्त्वा कश्यपोऽपि स्नात्वा गङ्गां जितव्रत.। तुष्टाव स्तवनैः पुण्यैर्देवदेवं महेश्वरम् ॥१८॥

कश्यप उवाच

लोकत्रयैकाधिपतेर्न यस्य, क्वापि वस्तुन्यभिमानलेशः
स सिद्धनाथोऽखिलविश्वकर्ता, भर्ता शिवाया भवतु प्रसन्नः ॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा कहकर प्रजापति कश्यप चले गये। पति के चले जाने पर दोनो पत्नियाँ उसी समय शुद्धहृदय ऋषियो के यज्ञ मे चली गयी, जो गगा तट पर हो रहा था और जहाँ ब्राह्मण-मण्डली एकत्र थी। अपनी युवावस्था पर गर्व करने वाली उन्मत्त वे दोनो प्रतिदिन तत्त्वदर्शी ऋषियो के बार बार मना करने पर भी उस यज्ञ मे हविष्य (पदार्थो) को दूषित या विकृत कर देती थी। भला कौन ऐसा व्यक्ति है जो नारियो की अनु[illegible] त [illegible]ष्टा (व्यापार) को रोकने की शक्ति रखता है? इसलिए वे ऋषि बार बार अनुचित व्यापार मे लगी रहने वाली उन दोनो नारियो को देखकर क्षुब्ध हो ग[illegible] और शाप दिया कि तुम दोनो अपमार्ग पर स्थित हो इसलिये आपगा (नदी) हो जाओ। वे दोनो शाप वश शीघ्र नदियाँ बन गईं। इसके अनन्तर किसी समय प्रजापति कश्यप घर की ओर लौटे जा रहे थे। उन्होने ऋषियो के मुख से उन दोनो के शाप की घटना को विस्तार रूप से सुना। सुनकर विस्मित हो गये सोचने लगे कि 'अब क्या करूँ'। विवश हो उन्होने ऋषियो से कहा कि 'मैं वालखिल्यो से प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। यह सुनकर ऋषियो ने विप्र कश्यप से कहा—गौतमी गगा के समीप जाइये, वहाँ जाकर महेश की स्तुति कीजिये जहाँ वे ब्रह्महत्या के भय से देवमहेश्वर सर्वदा गगा के मध्य मे मध्यमेश्वर के नाम से प्रसिद्ध होकर रहते हैं। (ऐसा करने से) पुन आपको भार्यायें पहले के समान हो जायँगी। "ऐसा ही करूँगा" यह कहकर परम व्रती कश्यप ने भी गगा मे स्नान कर मगलमय स्तुतियो से देवदेव की स्तुति की ॥९-१८॥

कश्यप ने कहा—तीनो लोको के एकमात्र स्वामी होते हुए भी जिस शकर ने किसी भी अवस्था मे लेश-मात्र अभिमान गर्व नही किया वे सम्पूर्ण विश्व के कर्ता, सिद्धनाथ, शिवा के भर्ता मेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥१९॥ त्रिताप

तापत्रयोष्णद्युतितापितानामितस्ततो वै परिधावतां च
शरीरिणां स्थावरजङ्गमानां, त्वमेव दुःखव्यपनोददक्षः ॥२०॥
सत्त्वादियोगस्त्रिविधोऽपि यस्य, शक्रादिभिर्वक्तुमशक्य एव
विचित्रवृत्तिं परिचिन्त्य सोमं, सुखी सदा दानपरो वरेण्यः ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

इत्यादिस्तुतिभिर्देवः स्तुतो गौरीपतिः शिवः। प्रसन्नो ह्यददाच्छंभुः कश्यपाय वरान्बहून् ॥२२॥
भार्यार्थिनं तु तं प्राह स्यातां भार्ये उभे तु ते। नदीस्वरूपे पत्न्यौ ये गङ्गां प्राप्य सरिद्वराम् ॥२३॥
तत्संगममात्रेण ताभ्यां भूयात्स्वकं वपुः। ते गर्भिण्यौ पुनर्जाते गङ्गायाश्च प्रसादतः ॥२४॥
ततः प्रजापतिः प्रीतो भार्ये प्राप्य महामना। आहूयामास तान्विप्रान्गौतमीतीरमाश्रितान् ॥२५॥
सीमन्तोन्नयनं चक्रे ताभ्यां प्रीतः प्रजापतिः। ब्राह्मणान्पूजयामास विधिदृष्टेन कर्मणा ॥२६॥
भुक्तवत्स्वथ विप्रेषु कश्यपस्याथ मन्दिरे। भर्तृसमीपोपविष्टा कद्रूर्विप्रान्निरीक्ष्य च ॥२७॥
ततः कद्रूर्ह्यपाङ्गेनक्ष्णा प्राहसत्ते च चुक्षुभुः। येनाक्ष्णा हसिता पापे भज्यतां तेऽक्षि पापवत् ॥२८॥
काणाऽभवत्ततः कद्रूः सर्पमातेति योच्यते। ततः प्रसादयामास कश्यपो भगवानृषीन् ॥२९॥

ततः प्रसन्नास्ते प्रोचुर्गौतमी सरितां वरा। अपराधसहस्रेभ्यो रक्षिष्यति च सेवनात् ॥३०॥
भार्यान्वितस्तथा चक्रे कश्यपो मुनिसत्तमः। ततः प्रभृति तत्तीर्थमुभयोः संगमं विदुः॥
सर्वपापप्रशमनं सर्वक्रतुफलप्रदम् ॥३१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे कद्रूसुपर्णासंगमतीर्थवर्णनं नाम शततमोऽध्यायः ॥१००॥

गौतमीमाहात्म्ये एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

अथैकाधिकशततमोऽध्यायः

सरस्वतीसगमपुरूरवसब्रह्मतीर्थसिद्धेश्वरवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पुरूरवसमाख्यातं तीर्थं वेदविदो विदुः। स्मरणादेव पापानां नाशनं किंतु दर्शनात् ॥१॥
पुरूरवा ब्रह्मसदः प्राप्य तत्र सरस्वतीम्। यदृच्छया देवनदीं हसन्तीं ब्रह्मणोऽन्तिके॥
तां दृष्ट्वा रूपसंपन्नामुर्वशीं प्राह भूपतिः ॥२॥

राजोवाच

केयं रूपवती साध्वी स्थितेयं ब्रह्मणोऽन्तिके। सर्वासामुत्तमा योषिद्दीपयन्ती सभामिमाम् ॥३॥

उत्तम कोटि की गौतमी गगा सेवा करने से सहस्रो अपराधो से रक्षा करती है ॥३०॥ तब मुनि कश्यप ने भार्या सहित गौतमी की सेवा कर भार्या के नेत्रदोष को दूर किया। उस समय से वह तीर्थ सब पापो को नष्ट करने वाला, सब यज्ञो के फल को देने वाला सुपर्णासगम या कद्रूसगम के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥३१॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे कद्रू-सुपर्णा-सगमतीर्थ नामक सौवाँ अध्याय समाप्त ॥१००॥

अध्याय १०१

सरस्वतीसगम आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—वेदज्ञ व्यक्ति उस पुरूरवा नामक तीर्थ को जानते हैं, जो स्मरण मात्र से पापो को नष्ट कर देता है। उसके दर्शन के फल को तो कहना ही क्या। एक समय पुरूरवा ब्रह्मा के भवन मे गया। वहाँ उनके समीप अकारण हास करती हुई देवनदी सरस्वती को देखा। भूपति पुरूरवा ने उस रूपवती को देखकर उर्वशी से पूछा ॥१-२॥

राजा ने कहा—यह रूपवती साध्वी कौन है ? जो सब स्त्रियो मे उत्तम है, अपनी शारीरकान्ति से इस देवसभा को प्रकाशित कर रही है—और ब्रह्मा के समीप बैठी हुई है ॥३॥

ब्रह्मोवाच

उर्वशी प्राह राजानमिय देवनदी शुभा। सरस्वती ब्रह्मसुता नित्यमेति च याति च॥
तच्छ्रुत्वा विस्मितो राजा आनयेमा ममान्तिकम् ॥४॥

ब्रह्मोवाच

उर्वशी पुनरप्याह राजानं भूरिदक्षिणम् ॥५॥

उर्वश्युवाच

आनीयते महाराज तस्या सर्वं निवेद्य च ॥६॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तां प्राहिणोत्तत्र राजा प्रीत्या तदोर्वशीम्। सा गत्वा राजवचनं न्यवेदयदथोर्वशी ॥७॥
सरस्वत्यपि तन्मेने उर्वश्या यन्निवेदितम्। सा तथेति प्रतिज्ञाय प्रायाद्यत्र पुरूरवा ॥८॥
सरस्वत्यास्ततस्तीरे स रेमे बहुला समा। सरस्वानभवत्पुत्रो यस्य पुत्रो बृहद्रथ ॥९॥
तां गच्छन्तीं नृपगृह नित्यमेव सरस्वतीम्। सरस्वन्त ततो लक्ष्म ज्ञात्वाऽन्येषु तथा कृतम् ॥१०॥
तस्यै ददावहं शाप भया इति महानदी। मच्छापभीता वागीशा प्रागाद्देवीं च गौतमीम् ॥११॥
कमण्डलुभवां पूतां मातरं लोकपावनीम्। तापत्रयोपशमनीमैहिकामुष्मिकप्रदाम् ॥१२॥
सा गत्वा गौतमीं देवीं प्राह मच्छापमादित। गङ्गाऽपि मामुवाचेद विशापा कर्तुमर्हसि ॥१३॥

ब्रह्मा बोले—*उर्वशी ने राजा से कहा—यह ब्रह्मपुत्री पवित्र देवनदी सरस्वती है जो यहाँ सर्वदा आती और* जाती है। यह सुनकर राजा विस्मित हो गया और कहा—इसको मेरे समीप ले आओ ॥४॥

ब्रह्मा ने कहा—उर्वशी ने अत्यन्त दक्षिणा (दान) देने वाले राजा से पुन कहा ॥५॥

उर्वशी बोली—महाराज ! मैं उससे सारी बातें कहकर अभी ले आ रही हूँ ॥६॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके पश्चात राजा ने प्रेमपूर्वक उर्वशी को सरस्वती के समीप भेजा। सरस्वती ने भी उर्वशी ने जो कुछ कहा उसको स्वीकार कर लिया। और अवश्य मैं मिलूँगी यह प्रतिज्ञा कर जहाँ पुरूरवा थे वहाँ वह पहुँच गई। पुरूरवा ने बहुत वर्षों तक सरस्वती के तीर पर उसके साथ विहार किया। उसके गर्भ से एक सरस्वान् नामक पुत्र भी उत्पन्न हुआ जिसका पुत्र बृहद्रथ नामक प्रतापी राजा हुआ ॥७-९॥ मैं सरस्वती को प्रतिदिन राजा के घर जाते देखता था। सरस्वान को भी उसके आकार चिह्न एवं दूसरों से कहे गये संकेतों से सरस्वती का पुत्र *जान लिया। अन्त में यह सारा रहस्य जानकर सरस्वती को शाप दे दिया कि तुम महानदी हो जाओ ॥१०॥* मेरे शाप से डरी हुई वागीश्वरी गौतमी देवी के समीप गई। उसने कमण्डलु से उत्पन्न पवित्र लोकपावनी जगन्माता तीनों तापों को दूर करने वाली ऐहिक एवं पारलौकिक सुखों को देनेवाली गौतमी के पास जाकर आदि से अन्त तक मेरे शाप का विवरण सुनाया ॥११-१२॥ उसको सुनकर गंगा ने भी मुझसे कहा कि अवश्य इसको शापमुक्त कर देना चाहिए। सरस्वती को जो तुमने शाप दे दिया, यह ठीक नहीं किया क्योंकि स्त्रियों का यह स्वभाव है कि वे प्राय

न युक्तं यत्सरस्वत्या शापं त्वं वक्तवानसि। स्त्रीणामेष स्वभावो वै पुंस्कामा योषितो यतः ॥१४॥
स्वभावचपला ब्रह्मन्योषितः सकला अपि। त्वं कथं तु न जानीषे जगत्स्रष्टाऽम्बुजासन ॥१५॥
विडम्बयति कं वा न कामो धाऽपि स्वभावतः। ततो विशापमवदं दृश्याऽपि स्यात्सरस्वती ॥१६॥
तस्माच्छापान्नदी मर्त्ये दृश्याऽदृश्या सरस्वती। यत्रैषा संगता देवी गङ्गाया शापविह्वला ॥१७॥
तत्र प्रायान्नृपवरो धार्मिकः स पुरूरवाः। तपस्तप्त्वा समाराध्य देवं सिद्धेश्वरं हरम् ॥१८॥
सर्वान्कामानथावाप गङ्गायाश्च प्रसादतः। तत प्रभृति तत्तीर्थं पुरूरवसमुच्यते ॥१९॥
सरस्वतीसंगम च ब्रह्मतीर्थं तदुच्यते। सिद्धेश्वरो यत्र देवः सर्वकामप्रदं तु तत् ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सरस्वतीसंगमपुरूरवसब्रह्मतीर्थसिद्धेश्वरवर्णनं नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

अथ द्वयधिकशततमोऽध्यायः

पञ्चतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सावित्री चैव गायत्री श्रद्धा मेधा सरस्वती। एतानि पञ्च तीर्थानि पुण्यानि मुनयो विदुः ॥१॥

पुरुषसान्निध्य की कामना करती हैं ॥१३-१४॥ ब्रह्मन्! सभी स्त्रियाँ स्वभाव से ही चचल होती हैं, पकजासन! तुम जगत् के सृष्टिकर्ता होकर भी इसको क्यो नही जानते हो ॥१५॥ स्वभावत कामदेव सहज मे ही किसको अपने जाल मे नही फँसा लेता है? गौतमी की बातो को सुनकर मैंने उसको शाप से मुक्त कर दिया कि सरस्वती दृश्या (प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली) भी हो ॥१६॥ मेरे उस शाप के कारण ही इस मर्त्यलोक मे सरस्वती दृश्य और अदृश्य दो रूपो की हो गई। जहाँ यह सरस्वती शापविह्वल होकर गगा मे मिली, वहाँ वह धार्मिक, श्रेष्ठ राजा पुरूरवा गया। वहाँ तपस्या तथा सिद्धेश्वर शकर की आराधना करके उसने गगा की कृपा से अपने सब मनोरथो को प्राप्त किया। उस समय से वह पुरूरवा तीर्थ कहलाता है, सरस्वतीसगम और ब्रह्मतीर्थ भी उसी को कहते हैं। जहाँ सिद्धेश्वर महादेव विराजमान है, वह पुनीत तीर्थ सम्पूर्ण कामनाओ को देने वाला है ॥१७-२०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे सरस्वतीसगम पुरुरवस ब्रह्मतीर्थ सिद्धेश्वर वर्णन नामक एक सौ पहला अध्याय समाप्त ॥१०१॥

अध्याय १०२

पञ्चतीर्थ का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सावित्री, गायत्री, श्रद्धा, मेधा, और सरस्वती ये पाच तीर्थ अत्यन्त पवित्र है, इनको

तत्र स्नात्वा तु पीत्वा तु मुच्यते सर्वकल्मषात्। सावित्री चैव गायत्री श्रद्धा मेधा सरस्वती ॥२॥
एता[1] मम सुता ज्येष्ठा धर्मसंस्थानहेतव । सर्वासामुत्तमा काचिन्निर्ममे लोकसुन्दरीम् ॥३॥
तां दृष्ट्वा विकृता बुद्धिर्ममाऽऽसीन्मुनिसत्तम । गृह्यमाणा मया बाला सा मां दृष्ट्वा पलायिता ॥४॥
मृगीभूता तु सा बाला मृगोऽहमभवं तदा। मृगव्याधोऽभवच्छंभुर्धर्मसंरक्षणाय च ॥५॥
ता मद्भीताः पञ्च सुता गङ्गामीयुर्महानदीम्। ततो महेश्वरः प्रायाद्धर्मसंरक्षणाय स ॥६॥
धनुर्गृहीत्वा सशरमीशोऽपि मृगरूपिणम्। मामुवाच वधिष्ये त्वां मृगव्याधस्तदा हरः ॥७॥
तत्कर्मणो निवृत्तोऽहं प्रादां कन्यां विवस्वते। सावित्र्याद्याः पञ्च सुता नदीरूपेण संगताः ॥८॥
ता आगताः पुनश्चापि स्वर्गं लोकं ममान्तिकम्। यत्र ताः संगता देव्याः पञ्च तीर्थानि नारद ॥९॥
संगतानि च पुण्यानि पञ्च नद्यः सरस्वती। तेषु स्नानं तथा दानं यत्किंचित्कुरुते नरः ॥१०॥
सर्वकामप्रदं तस्मान्निष्कर्म्यान्मुक्तिदं स्मृतम्। तत्राभवन्मृगव्याधं तीर्थं सर्वार्थदं नृणाम् ॥
स्वर्गमोक्षफलं चान्यद्ब्रह्मतीर्थफलं स्मृतम्   ॥११॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पञ्चतीर्थमाहात्म्यनिरूपणं नाम
द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२॥
गौतमीमाहात्म्ये त्र्यस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

मुनिगण जानते हैं। इन तीर्थों में स्नान और आचमन करने से मनुष्य सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है। सावित्री गायत्री श्रद्धा मेधा और सरस्वती ये मेरी ज्येष्ठ कन्यायें हैं जिनके द्वारा धर्म संस्थापन का कार्य हुआ है। *इन सबों में से एक को मैंने त्रिभुवन में अलौकिक रूपवती बनाया। मुनिश्रेष्ठ! उस अद्वितीय सुन्दरी को देखकर* मेरी बुद्धि भी विकृत हो गई। कामवश मैंने जब उसको पकड़ना चाहा तब वह मुझको देखकर भाग खड़ी हुई। जब वह मृगी बनकर भागने लगी तब मैं भी मृग बन गया। यह देखकर धर्म की रक्षा के लिये शम्भु ने मृगव्याध (शिकारी) का रूप धारण कर लिया। वे पाँचों कन्यायें मुझसे डरकर महानदी गंगा में मिल गईं। इसके बाद ही धर्म रक्षा के लिये उद्यत शंकर भी पीछे पीछे आये। तब मृगवधिक (शंकर) ने हाथ में बाण सहित धनुष लेकर मृगरूपधारी मुझसे कहा मैं अवश्य तुम्हारा वध करूँगा ॥१-७॥ किसी प्रकार उस कर्म से पिण्ड छुड़ाकर मैंने अपनी कन्या को विवस्वान् के हाथों सौंप दिया। इधर सावित्री आदि पाँच कन्यायें नदी रूप होकर गंगा में मिल गई थीं परन्तु पुनः वे स्वर्ग लोक में मुझसे मिलीं। नारद! जहाँ जहाँ वे पाँचों मिलीं वे पाँचों स्थान पाँच तीर्थ बन गये। जहाँ वे सरस्वती आदि पाँचों नदियाँ मिलकर पवित्र तीर्थ बनाती हैं उन तीर्थों में स्नान दान अथवा जो कुछ शुभ कार्य किये जाते हैं सब अभिमत कामनाओं के देने वाले होते हैं तथा निष्काम भाव से किये जाने पर मुक्तिदायक होते हैं। वहीं मनुष्यों की सब इच्छाओं को पूर्ण करने वाला मृगव्याधतीर्थ भी है। दूसरा जो ब्रह्मतीर्थ है वह भी स्वर्ग अथवा मोक्षफल को देने वाला कहा गया है ॥८-११॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में पञ्चतीर्थ-माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ दूसरा अध्याय समाप्त ॥१०२॥

---

१ क. एता पञ्च सु०।

अथ त्र्यधिकशततमोऽध्याय

शम्यादितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शमीतीर्थमिति ख्यात सर्वपापोपशान्तिदम्। तस्याऽऽख्यान प्रवक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद ॥१॥
आसीत्प्रियव्रतो नाम क्षत्रियो जयता वर । गौतम्या दक्षिणे तीरे दीक्षा चक्रे पुरोधसा ॥२॥
हयमध उपक्रान्त ऋत्विग्भिर्ऋषिभिर्वृते। तस्य राज्ञो महाबाहोर्वसिष्ठस्तु पुरोहित ॥३॥
तद्यज्ञवाटमगमद्दानवोऽस्य हिरण्यक । त दानवमभिप्रेक्ष्य देवास्त्विन्द्रपुरोगमा ॥४॥
भीता केचिद्दिव जग्मुर्हव्यवाट्शमिमाविशत। अश्वत्थ विष्णुरगमद्भानुरर्कं वट शिव ॥५॥
सोम पलाशमगमद्गङ्गाम्भो हव्यवाहन । अश्विनौ तु हय गृह्य वायसोऽभूद्यम स्वयम् ॥६॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वसिष्ठो भगवानृषि । यष्टिमादाय दैतेयान्न्यवारयदयाऽऽज्ञया ॥७॥
तत प्रवृत्त पुनरेव यज्ञो, दैत्यो गत स्वेन बलेन युक्त ।
इमानि तीर्थानि तत शुभानि, दशाश्वमेधस्य फलानि दद्यु ॥८॥
प्रथम तु शमीतीर्थ द्वितीय वैष्णव विदु । आर्क शैव च सौम्य च वासिष्ठ सर्वकामदम ॥९॥

अध्याय १०३

शमी आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—शमीतीर्थ सम्पूर्ण पापो से मुक्त करने वाला है उसकी कथा मैं कह रहा हूँ नारद ! तुम चाव से सुनो। विजयप्रमी राजाओ मे श्रेष्ठ शिवव्रत नामक एक क्षत्रिय राजा था। उसने गौतमी के दक्षिण तीर पर पुरोहित द्वारा यज्ञ की दीक्षा ग्रहण की। उस महाबलवान राजा के अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ हो जाने पर सब ऋषि वहा ऋत्विक बनाये गये। वसिष्ठ ने पुरोहित का आसन ग्रहण किया। यज्ञ प्रारम्भ हो जाने के बाद हिरण्यक नाम का एक दानव यज्ञ मण्डप की ओर आया। उस दानव को देखकर इन्द्र आदि सभी देवता भयभीत हो गये। कुछ तो स्वर्ग भाग गये। स्वय अग्निदेव शमी वृक्ष मे छिप गये। विष्णु पीपल के वृक्ष मे सूर्य अर्क (मदार) मे शिव वट म और सोम पलाश म घुस गये। बेचारे हव्यवाहन गगा जल मे कूदकर छिपे अश्विनीकुमारो ने यज्ञाश्व मे छिप कर प्राण रक्षा की यम ने कौए का रूप धारण किया। इसी बीच मेरी आज्ञा से भगवान ऋषि वसिष्ठ ने हाथ मे डण्डा लेकर हठात उन दत्य पुत्रो को यज्ञ भूमि मे आने से रोक दिया ॥१ ७॥ तदनन्तर जब वह दत्य अपने अनुचर सनिको के साथ लौट गया तब पुन यज्ञ प्रारम्भ हुआ। तब से ये आगे कहे हुए तीर्थ शुभ और दश अश्वमेध के फल को देने वाले हुए ॥८॥ उनमे से पहला शमी तीर्थ दूसरा वैष्णव तीसरा आर्क (सूर्य सम्बन्धी) तीर्थ माना गया है। इसी प्रकार वहा सम्पूर्ण अभिमत वस्तुओ के देने वाले शैव सौम्य और वासिष्ठ तीर्थ भी हुये ॥९॥

देवाश्च ऋषयः सर्वे निवृत्ते मखविस्तरे। तुष्टाः प्रोचुर्वसिष्ठं तं यजमानं प्रियव्रतम् ॥१०॥
ताश्च वृक्षास्ता च गङ्गा मुदा युक्ता पुनः पुनः। हयमेधस्य निष्पत्त्यै एते याता इतस्ततः ॥११॥
हयमेधफलं वद्युस्तीर्थानीत्यवदन्सुराः। तस्मात्स्नानेन दानेन तेषु तीर्थेषु नारद॥
हयमेधफलं पुण्यं प्राप्नोति न मृषा वचः ॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुऋषिसंवादे तीर्थमाहात्म्ये शम्यादितीर्थवर्णनं नाम त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

अथ चतुरधिकशततमोऽध्यायः

विश्वामित्रादिद्वाविंशतिसहस्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विश्वामित्रं हरिश्चन्द्रं शुनःशेपं च रोहितम्। वारुणं ब्राह्ममाग्नेयमैन्द्रमैन्दवमैश्वरम् ॥१॥
मैत्रं च वैष्णवं चैव याम्यमाश्विनमौशनम्। एतेषां पुण्यतीर्थानां नामधेयं शृणुष्व मे ॥२॥
हरिश्चन्द्र इति ख्यातो सीदिक्ष्वाकुप्रभवो नृपः। तस्य गृहे मुनी प्राप्तौ नारदः पर्वतस्तथा॥
कृत्वाऽऽतिथ्यं तयोः सम्यग्घरिश्चन्द्रोऽब्रवीदृषी ॥३॥

जब उस महान् यज्ञ से सभी निवृत्त हुये तब देवो और ऋषियों ने प्रसन्न और आनन्दित होकर पुरोहित वसिष्ठ और उस यजमान प्रियव्रत से कहा कि यह गंगा और ये सभी वृक्ष अश्वमेध यज्ञ की पूर्ति के लिये ही यत्र तत्र विभिन्न रूपों में उत्पन्न हुये हैं ॥१०-११॥ देवों ने पुनः कहा कि वे तीर्थ अश्वमेध यज्ञ के समान फल देने वाले हैं। इसलिये हे नारद ! उन तीर्थों में स्नान करने और दान देने से मनुष्य अश्वमेध का पावन फल प्राप्त करता है इसको असत्य मत समझना ॥१२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में शम्यादितीर्थ वर्णन नामक एक सौ तीसरा अध्याय समाप्त ॥१०३॥

अध्याय १०४

विश्वामित्र आदि बाईस हजार तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इन पवित्र विश्वामित्र, हरिश्चन्द्र, शुनःशेप, रोहित, वारुण, ब्राह्म, आग्नेय, ऐन्द्रतीर्थ, ईश्वरतीर्थ, मैत्र, वैष्णव, याम्य, आश्विन और शुक्र आदि इन तीर्थों के नाम क्या पड़े इसको भी मुझसे सुनो। इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हरिश्चन्द्र नामक एक राजा था। एक समय उसके घर नारद और पर्वत नामक दो मुनि आये। उन दोनों की भली भाँति अतिथि सेवा कर हरिश्चन्द्र ने ऋषियों से कहा ॥१-३॥

हरिश्चन्द्र उवाच

पुत्रार्थं क्लिश्यते लोक किं पुत्रेण भविष्यति। ज्ञानी वाप्यथवाऽज्ञानी उत्तमो मध्यमोऽथवा॥
एत मे सशय नित्य ब्रूतामृषिवरावुभौ ॥४॥

ब्रह्मोवाच

तावूचतुर्हरिश्चन्द्र पर्वतो नारदस्तथा ॥५॥

नारदपर्वतावूचतु

एकधा दशधा राजञ्शतधा च सहस्रधा। उत्तर विद्यते सम्यक्तथाऽप्येतदुदीर्यते॥६॥
नापुत्रस्य परो लोको विद्यत नृपसत्तम। जाते पुत्रे पिता स्नान य करोति जनाधिप॥७॥
दशानामश्वमेधानामभिषेकफल लभेत। आत्मप्रतिष्ठा पुत्रात्स्याज्जायते चामरोत्तम॥८॥
अमृतेनामरा देवा पुत्रेण ब्राह्मणादय। त्रिऋणान्मोचयेत्पुत्र पितर च पितामहान्॥९॥
किंतु मल किंतु जल किंतु श्मश्रूणि किं तप। विना पुत्रेण राजेन्द्र स्वर्गो मुक्ति सुतात्स्मृता॥१०॥
पुत्र एव परो लोको धर्म कामोऽर्थ एव च। पुत्रो मुक्ति पर ज्योतिस्तारक सर्वदेहिनाम्॥११॥
विना पुत्रेण राजेन्द्र स्वर्गमोक्षौ सुदुर्लभौ। पुत्र एव परो लोके धर्मकामार्थसिद्धये॥१२॥
विना पुत्रेण यद्दत्त विना पुत्रेण यद्धुतम। विना पुत्रेण यज्जन्म व्यर्थं तदवभाति मे॥१३॥
तस्मात्पुत्रसम किंचित्काम्य नास्ति जगत्त्रये। तच्छ्रुत्वा विस्मयवास्तावुवाच नृप पुन॥१४॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—ससार के लोग पुत्र के लिये बहुत चिन्तित रहते और कष्ट उठाते हैं चाहे वे ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी उत्तम मनुष्य हो अथवा मध्यम सबकी यही गति है। परन्तु पुत्र से क्या होता है। यही सदा मुझ सदेह बना रहता है आप दोनो ऋषिवर मुझ समझा कर कहे॥४॥

ब्रह्मा ने कहा—वे दोनो नारद तथा पवत हरिश्चन्द्र से बोले॥५॥

नारद और पर्वत ने कहा—राजन ! इस प्रश्न के एक दश सौ और हजार प्रकार के युक्तियुक्त उत्तर हैं। तथापि यहा सक्षेप म कहा जा रहा है। नप श्रेष्ठ ! अपुत्र के लिये स्वगलोक म कोई स्थान नही। जनाधिप ! पुत्र हो जाने पर जो पिता स्नान करता है वह दश अश्वमेध के अभिषेक का फल प्राप्त करता है। पुत्र के द्वारा ही आत्म प्रतिष्ठा प्राप्त होती है और उत्तम देवत्व की प्राप्ति भी। अमृत के द्वारा देव अमर हुए है परन्तु ब्राह्मण आदि मानव पुत्र के द्वारा। पुत्र अपने पिता और पितरो को तीनो (देव पित ऋषि) ऋणो से छुडाता है। पुत्र के बिना मूल (वेदाध्ययन) जल (स्नान-तपण) पचकेश (दाढी आदि रखने) और तपस्या से क्या लाभ। राजेन्द्र ! स्वग अथवा मुक्ति की प्राप्ति पुत्र द्वारा ही होती है ऐसा कहा गय है॥६ १०॥ पुत्र ही उत्तम लोक धम काम और अथ भी है। पुत्र ही मुक्ति पर ज्योति और सब मनुष्यो का उद्धारकर्ता है। राजेन्द्र ! पुत्र के बिना स्वग और मोक्ष अत्यन्त दुलभ है। इस लोक मे धम काम और अथ सिद्धि के लिये पुत्र ही एकमात्र साधन है। मेरा मत है कि पुत्र के बिना दिया हुआ दान हवन कम (यज्ञ) यहा तक कि पुत्र के बिना मानव जीवन भी व्यर्थ है। इसलिये तीनो लोक मे पुत्र के समान कोई काम्य कर्म नही। इन बातो को सुनकर राजा को अत्यन्त आश्चय हुआ और पुन कहा—॥११ १४॥

हरिश्चन्द्र उवाच

कथं मे स्यात्सुतो ब्रूता यत्र क्वापि यथातथम्। येन केनाप्युपायेन कृत्वा किंचित्तु पौरुषम्॥
मन्त्रेण यागदानाभ्यामुत्पाद्योऽसौ सुतो मया ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

तावूचतुर्नृपश्रेष्ठं हरिश्चन्द्रं सुतार्थिनम्। ध्यात्वा क्षणं तथा सम्यग्गौतमीं याहि मानद॥१६॥
तत्राऽपांपतिरुत्कृष्टं ददाति मनसीप्सितम्। वरुणः सर्वदाता वै मुनिभिः परिकीर्तितः॥१७॥
स तु प्रीतः शनैः काले तव पुत्रं प्रदास्यति। एतच्छ्रुत्वा नृपश्रेष्ठो मुनिवाक्यं तथाऽकरोत्॥१८॥
तोषयामास वरुणं गौतमीतीरमाश्रितः। ततश्च तुष्टो वरुणो हरिश्चन्द्रमुवाच ह॥१९॥

वरुण उवाच

पुत्रं दास्यामि ते राजंल्लोकत्रयविभूषणम्। यदि यक्ष्यसि तेनैव तव पुत्रो भवेद्ध्रुवम्॥२०॥

ब्रह्मोवाच

हरिश्चन्द्रोऽपि वरुणं यक्ष्ये तेनेत्यवोचत। ततो गत्वा हरिश्चन्द्रश्चरुं कृत्वा तु वारुणम्॥२१॥
भार्यायै नृपतिः प्रादात्ततो जातः सुतो नृपात्। जाते पुत्रे अपामीशः प्रोवाच वदतां वरः॥२२॥

वरुण उवाच

अद्यैव पुत्रो यष्टव्यः स्मरसे वचनं पुरा ॥२३॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—मुझे पुत्र कैसे उत्पन्न होगा इसको आप बतायें। मैं जिस किसी उपाय से—चाहे कहीं जाने से अथवा कोई पौरुष करने से मन्त्र से अथवा दान से—वह पुत्र अवश्य उत्पन्न करना चाहता हूँ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—क्षण भर ध्यानावस्थित होकर (सोच विचार कर) पुत्राकांक्षी हरिश्चन्द्र से उन ऋषियों ने कहा—*मानद! तुम गौतमी के समीप जाओ। वहाँ जल के अधिपति वरुण उत्तम से उत्तम मनोवाञ्छित* फल को प्रदान करते हैं क्योंकि मुनियों ने वरुण को सर्व दाता कहा है। वह शनैः शनैः तुम्हारी आराधना से प्रसन्न होकर अथवा यथासमय तुम्हें पुत्र प्रदान करेंगे। मुनियों की उपर्युक्त बात सुनकर श्रेष्ठ नृपति ने तदनुकूल ही कार्य किया। गौतमीतीर पर आसनस्थ होकर उसने वरुण को प्रसन्न किया। तदनन्तर वरुण प्रसन्न होकर हरिश्चन्द्र से बोले—॥१६-१९॥

वरुण ने कहा—*राजन्! तीनों लोकों को अपने गुणों से विभूषित करने वाला पुत्र दूंगा यदि तुम* उसी पुत्र द्वारा मेरा यज्ञ करने की प्रतिज्ञा करो। ऐसी प्रतिज्ञा करने पर तुम्हें पुत्र उत्पन्न होगा यह ध्रुव है॥२०॥

ब्रह्मा ने कहा—पुत्रकामी हरिश्चन्द्र ने उत्पन्न पुत्र से यज्ञ करूँगा ऐसी प्रतिज्ञा वरुण से की। वर प्राप्ति के बाद नृपति हरिश्चन्द्र ने घर जाकर वारुण चरु (हविष्य) बनाया और भार्या को खिलाया। फलस्वरूप राजा को पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र उत्पन्न होने पर जल के पति वाग्मी वरुण ने कहा—॥२१-२२॥

वरुण ने कहा—*आज ही पुत्र द्वारा यज्ञ कीजिये, क्या पहले की बातों का स्मरण है?* ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

हरिश्चन्द्रोऽपि वरुणं प्रोवाचेद क्रमागतम् ॥२४॥

हरिश्चन्द्र उवाच

निर्दशो मेध्यतां याति पशुर्यक्ष्ये ततो ह्यहम् ॥२५॥
तच्छ्रुत्वा वचन राज्ञो वरुणोऽगात्स्वमालयम्। निर्दशे पुनरभ्येत्य यजस्वेत्याह तं नृपम् ॥२६॥
राजाऽपि वरुण प्राह निर्दन्तो निष्फल पशु। पशोर्दन्तेषु जातेषु एहि गच्छाधुनाऽप्पते ॥२७॥
तच्छ्रुत्वा राजवचन पुन प्रायादपांपति। जातेषु चैव दन्तेषु सप्तवर्षेषु नारद ॥२८॥
पुनरप्याह राजान यजस्वेति ततोऽब्रवीत्। राजाऽपि वरुण प्राह पतस्यन्तीमे अपांपते ॥२९॥
सपत्स्यन्ति तथा चान्ये ततो यक्ष्ये व्रजाधुना। पुन प्रायात्स वरुणः पुनर्दन्तेषु नारद ॥
यजस्वेति नृप प्राह राजा प्राह त्वपांपतिम् ॥३०॥

राजोवाच

यदा तु क्षत्रियो यज्ञे पशुर्भवति वारिप। धनुर्वेद यदा वेत्ति तदा स्यात्पशुरुत्तम ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा राजवचन वरुणोऽगात्स्वमालयम्। यदाऽस्त्रेषु च शस्त्रेषु समर्थोऽभूत्स रोहितः ॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—हरिश्चन्द्र ने भी इस प्रकार क्रमश वरुण से कहा ॥२४॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—दाँत निकल जाने पर ही पशु मेध्य (यज्ञ-योग्य) माना जाता है, इसलिये दाँत निकलने पर ही यज्ञ करूँगा ॥२५॥

ब्रह्मा बोले—राजा की बातें सुनकर वरुण अपने स्थान पर चले आये। दाँत निकल आने पर पुन आकर वरुण ने राजा से कहा 'यज्ञ करो'। राजा ने वरुण से कहा—निदन्त (बहुत-से दाँतो के बिना) पशु यज्ञ के योग्य नही होते। यज्ञपशु के बहुत दाँत निकल जाने पर पुन आइये। वरुण! इस समय आप चले जाइये। राजा की बातें सुनकर वरुण लौट गये। नारद! सात वर्षों मे बहुत दाँत निकल आने पर पुन राजा से वरुण ने कहा कि 'अब यज्ञ करो'। राजा ने वरुण से कहा कि जब ये दाँत गिर जायेंगे और दूसरे दाँत निकल आयेंगे तदुपरान्त यज्ञ करूँगा, इस समय आप जाइये। नारद! पुन दाँतो की निर्दिष्ट अवधि बीत जाने पर वरुण आये और राजा से यज्ञ करने के लिये कहा। यह सुनकर राजा ने वरुण से कहा ॥२६-३०॥

राजा ने कहा—जलरक्षक वरुण! जब क्षत्रिय यज्ञ मे पशु बनाया जाता है तब धनुर्वेद जान लेने पर ही वह उत्तम पशु होता है ॥३१॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा की बातें सुनकर वरुण पुन अपने स्थान को वापस चले गये। जब वह राजपुत्र रोहित क्षस्त्र और शस्त्र विद्या मे निपुण हो गया, शत्रुनाशक, एव सब वेदो और शास्त्रो का भी विद्वान् हो गया और जब

सर्ववेदेषु शास्त्रेषु वेत्ताऽभूत्स त्वरिदमः। युवराज्यमनुप्राप्ते रोहिते षोडशाब्दिके॥३३॥
प्रीतिमानगमत्तत्र यत्र राजा सरोहितः। आगत्य वरुणः प्राह यजस्वाद्य सुतं स्वकम्॥३४॥
ओमित्युक्त्वा नृपवर ऋत्विजः प्राह भूपतिः। रोहितं च सुतं ज्येष्ठं शृण्वतो वरुणस्य च॥३५॥

हरिश्चन्द्र उवाच

एहि पुत्र महावीर यक्ष्ये त्वां वरुणाय हि   ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

किमेतदित्ययोवाच रोहितः पितरं प्रति। पिताऽपि यद्यथावृत्तमाचचक्षे सविस्तरम्॥
रोहितः पितरं प्राह शृण्वतो वरुणस्य च   ॥३७॥

रोहित उवाच

अहं पूर्वं महाराज ऋत्विग्भिः सपुरोहित। विष्णवे लोकनायाय यक्ष्येऽहं त्वरितं शुचिः॥
पशुना वरुणेनाथ तदनुज्ञातुमर्हसि   ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

रोहितस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा वारीश्वरस्तदा। कोपेन महताऽऽविष्टो जलोदरमथाकरोत्॥३९॥
हरिश्चन्द्रस्य नृपते रोहित. स वनं ययौ। गृहीत्वा स धनुर्दिव्य रथारूढो गतव्यथः॥४०॥
यत्र चाऽऽराध्य वरुण हरिश्चन्द्रो जनेश्वर·। गङ्गायां प्राप्तवान्पुत्र तत्रागात्सोऽपि रोहितः॥४१॥
व्यतीतान्यथ वर्षाणि पञ्चषष्ठे प्रवर्तति। तत्र स्थित्वा नृपसुत. शुश्राव नृपते रुजम्॥४२॥
मया पुत्रेण जातेन पितुर्वै क्लेशकारिणा। किं फल किंनु कृत्य स्यादित्येव पर्यचिन्तयत्॥४३॥

उसने सोलह वर्ष का होकर युवराज पद का अधिकार भी प्राप्त कर लिया तब वरुण प्रसन्न चित्त हो, जहाँ राजा और रोहित थे वहाँ गये और कहा कि आज अपने पुत्र द्वारा यज्ञ करो। वह नृपश्रेष्ठ ऋत्विज् राजा वरुण के सामने ही अपने ज्येष्ठ पुत्र रोहित से बोला॥३२-३५॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—*पुत्र! आओ, मैं वरुण की प्रसन्नता के लिये तुम से यज्ञ करूँगा॥३६॥*

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर रोहित ने अपने पिता से कहा 'यह क्या'। पिता ने भी पूर्व की घटना का विस्तार-पूर्वक वर्णन कर दिया। पिता से सारा रहस्य जानकर रोहित ने वरुण के सामने ही कहा॥३७॥

रोहित ने कहा—महाराज! पहले मैं ही ऋत्विजों और पुरोहित के सहित वरुण को यज्ञ-पशु बनाकर लोक-स्वामी विष्णु का यज्ञ शीघ्र ही करना चाहता हूँ आप शीघ्र आज्ञा दीजिये॥३८॥

ब्रह्मा ने कहा—रोहित की बातें सुनकर वरुण अत्यन्त क्रोधान्ध होकर राजा हरिश्चन्द्र को जलोदर रोग का रोगी बना दिया। वह रोहित दिव्य धनुष लेकर रथ पर सवार होकर शान्त भाव से वन को चला गया। वह रोहित भी उस स्थान पर—जहाँ जननायक हरिश्चन्द्र ने गङ्गा के समीप वरुण की आराधना कर पुत्र को प्राप्त किया था—गया। वहाँ रहकर उसने पाँच वर्ष बिता दिये। छठे वर्ष के प्रारम्भ में ही सुना कि राजा को जलोदर रोग हो गया है। वह सोचने लगा कि 'पिता को कष्ट देने वाले मेरे समान पुत्र के जन्म लेने से क्या लाभ हुआ?' अब इस

तस्यास्तीरे ऋषीन्पुण्यानपश्यन्नृपते सुत। गङ्गातीरे वर्तमानमपश्यदृषिसत्तमम् ॥४४॥
अजीगर्तमिति ख्यातमृपेस्तु वयस सुतम्। त्रिभि पुत्रैरनुवृत भार्यया क्षीणवृत्तिकम्॥
त दृष्टवा नृपते पुत्रो नमस्येद वचोऽब्रवीत् ॥४५॥

रोहित उवाच

क्षीणवृत्ति कृश कस्माद्दुर्मना इव लक्ष्यसे ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

अजीगर्तोऽपि चोवाच रोहित नृपते सुतम ॥४७॥

अजीगर्त उवाच

वर्तन नास्ति देहस्य भोक्तारो बहवश्च मे। विनाऽन्नेन मरिष्यामो ब्रूहि कि करवामहे॥४८॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा पुनरप्याह नृपपुत्र ऋषि तदा ॥४९॥

रोहित उवाच

तव कि वर्तते चित्ते तद्ब्रूहि वदतावर ॥५०॥

अजीगर्त उवाच

हिरण्य रजत गावो धान्य वस्त्रादिक न मे। विद्यते नृपशार्दूल वर्तन नास्ति मे तत ॥५१॥
सुता मे सन्ति भार्या च अह वै पञ्चमस्तथा। नैतषा कतमस्यापि क्रेताऽन्नेन नृपोत्तम॥५२॥

समय मेरा क्या कर्त्तव्य है। उसी समय नृपपुत्र ने गगा के तट पर पवित्र ऋषियो को देखा। उसी तट पर वर्तमान वय नामक ऋषि के पुत्र अजीगत नामक ऋषिश्रेष्ठ को देखा जो अपनी भार्या और तीन पुत्रो के साथ थे परन्तु जीविका के साधन से हीन थे। उनको देखकर राजपुत्र ने नमस्कार करके पूछा ॥३९ ४५॥

रोहित ने कहा—आप इतने दुबल और जीविकाहीन क्यो हैं किस कारण इतने व्यग्र से जान पडते हैं?॥४६॥

ब्रह्मा न कहा—यह सुनकर अजीगत ने नृप पुत्र रोहित से कहा—॥४७॥

अजीगत न कहा—शरीर रक्षा के साधन नही है और मेरे परिवार मे भोजन करने वाले बहुत से हैं अन्न के बिना हम लोग मर जायगे कहो इस अवस्था मे हम लोग क्या कर॥४८॥

ब्रह्मा ने कहा—तब ऋषि की बातो को सुनकर नृपपुत्र ने पुन ऋषि से कहा—॥४९॥

रोहित ने कहा—हे श्रेष्ठ वक्ता! तुम्हारे क्या विचार है वह बताओ॥५०॥

अजीगत न कहा—नृप श्रेष्ठ! मेरे पास सोना चाँदी गौ धान्य और वस्त्रादि कुछ नही हैं इसके अतिरिक्त मेरे पास जीविका का भी कोई साधन नही है। हाँ मेरे पास पुत्र भार्या और पाँचवाँ मैं हू। नृपोत्तम! हम लोगो मे से किसी को अन्न देकर खरीदने वाला भी कोई नही है॥५१ ५२॥

रोहित उवाच

किं क्रीणासि महाबुद्धेऽजीगर्त सत्यमेव मे। वद नान्यच्च वक्तव्यं विप्रा वै सत्यवादिन ॥५३॥

अजीगर्त उवाच

त्रयाणामपि पुत्राणामेकं वा मां तथैव च। भार्यां वाऽपि गृहाणेमां क्रीत्वा जीवामहे वयम् ॥५४॥

रोहित उवाच

किं भार्यया महाबुद्धे किं त्वया वृद्धरूपिणा। युवानं देहि पुत्रं मे पुत्राणां यं त्वमिच्छसि ॥५५॥

अजीगर्त उवाच

ज्येष्ठपुत्रं शुनःपुच्छं नाहं क्रीणामि रोहित। माता कनीयसं चापि न क्रीणाति ततोऽन्यो[१]॥
मध्यमं तु शुनःशेपं क्रीणामि वद तद्धनम् ॥५६॥

रोहित उवाच

वरुणाय पशुः कल्प्यः पुरुषो गुणवत्तरः। यदि क्रीणासि मूल्यं त्वं वद सत्यं महामुने ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा त्वजीगर्तः पुत्रमूल्यमकल्पयत्। गवां सहस्रं धान्यानां निष्काणां चापि वाससाम् ॥
राजपुत्र धरं देहि दास्यामि स्वसुतं तव ॥५८॥

रोहित ने कहा—महाबुद्धिमान् अजीगर्त ! आप किसको कितने में बेचना चाहते हैं सत्य कहिये। दूसरी बात मत कहियेगा ब्राह्मण सर्वथा सत्य वक्ता होते हैं ॥५३॥

अजीगर्त ने कहा—इन तीनों पुत्रों में से किसी एक को अथवा मुझको या इस भार्या को ही खरीद कर ले जाओ जिससे कि हम लोगों की जीवन रक्षा हो ॥५४॥

रोहित ने कहा—इस भार्या से क्या होगा वृद्ध रूपी तुम्हारी भी आवश्यकता नहीं। हाँ इन पाँचों में से किसी युवक पुत्र को जिसको तुम चाहो दे दो ॥५५॥

अजीगर्त ने कहा—रोहित ! ज्येष्ठ पुत्र शुन पुच्छ को मैं नहीं बेच सकता। माता अपने कनिष्ठ पुत्र को भी बेचना नहीं चाहती है इसलिये इन दोनों से अतिरिक्त मझले पुत्र शुन शेप को बेचूँगा इसका मूल्य कहो ॥५६॥

रोहित ने कहा—एक अधिक गुणवान् पुरुष की वरुण-यज्ञ में यज्ञ-पशु बनाने के लिये आवश्यकता है महामुने ! यदि तुम बेचना चाहते हो तो उचित मूल्य कहो ॥५७॥

ब्रह्मा ने कहा—'ऐसा ही हो' यह कहकर अजीगर्त ने सहस्र गौ सहस्र निष्क (अशर्फी) धान्य और सहस्र वस्त्र अपने पुत्र का मूल्य बताया और कहा राजपुत्र ! इतना दे दो मैं तुमको अपना पुत्र दे दूंगा ॥५८॥

१ख स्वलाङ्गुलम्।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा रोहितोऽपि प्रादात्सवसन धनम्। दत्त्वा जगाम पितरमृषिपुत्रेण रोहित ॥
पित्रे निवेदयामास क्रयक्रीतमृषे सुतम् ॥५९॥

रोहित उवाच

वरुणाय यजस्व त्व पशुना त्वमरुग्भव ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

तथोवाच हरिश्चन्द्र पुत्रवाक्यादनन्तरम् ॥६१॥

हरिश्चन्द्र उवाच

ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या राज्ञा पाल्या इति श्रुति । विशेषतस्तु वर्णाना गुरवो हि द्विजोत्तमा ॥६२॥
विष्णोरपि हि ये पूज्या मादृशा कुत एव हि। अवज्ञयाऽपि येषा स्यान्नृपाणा स्वकुलक्षय ॥६३॥
तान्पशून्कृत्वा कृपण कथ रक्षितुमुत्सहे। अह च' ब्राह्मण कुर्यां पशु नैतद्धि युज्यते ॥६४॥
वर हि जातु मरण न कथचिद्द्विज पशुम्। करोमि तस्मात्पुत्र त्व ब्राह्मणेन सुख व्रज ॥६५॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र वागुवाचाशरीरिणी ॥६६॥

ब्रह्मा ने कहा—रोहित ने भी उसको स्वीकार कर लिया और ऋषि को मुह मांगा वस्त्र और धन दे दिया। धन देकर ऋषिपुत्र को साथ ले वह अपने पिता के पास गया। पिता से मूल्य देकर खरीदे हुये ऋषि पुत्र के विषय मे सारी बातें बताइ ॥५९॥

रोहित ने कहा—आप वरुण का इस पशु से यज्ञ कीजिये और नीरोग हो जाइये ॥६०॥

ब्रह्मा ने कहा—पुत्र की बातो को सुनकर हरिश्चन्द्र ने कहा ॥६१॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र का पालन राजा का कर्तव्य है एसी श्रुतियो की आज्ञा है। उत्तम ब्राह्मण की रक्षा तो विशेष रूप से होनी चाहिये इसलिये कि वे सब वर्णो के गुरु है। जो ब्राह्मण विष्णु के भी पूज्य है तो मेरे समान व्यक्तियो के लिये तो कुछ कहना ही नही। जिनके अपमान से भी राजाओ का कुल-क्षय हो जाता है उन देवपूज्यो को पशु बनाकर अपने क्षुद्र जीवन की रक्षा करने का साहस मुझसे नही होगा। मैं ब्राह्मण को यज्ञ पशु बनाऊ यह मेरे लिए उपयुक्त नही है। बल्कि मृत्यु उत्तम है परन्तु द्विज को किसी प्रकार पशु नही बनाऊँगा। इसलिये पुत्र! तुम सुखपूर्वक इस ब्राह्मण पुत्र के साथ जाओ मुझे रोगी ही रहने दो ॥६२ ६५॥

ब्रह्मा ने कहा—इसी समय वहा आकाशवाणी हुई ॥६६॥

१घ तु।

आकाशवागुवाच

गौतमीं गच्छ राजेन्द्र ऋत्विग्भि सपुरोहित । पशुना विप्रपुत्रेण रोहितेन सुतेन च ॥६७॥
त्वया काय क्रतुश्चैव शुन शेपवध विना । क्रतु पूर्णो भवेत्तत्र तस्माद्याहि महामते ॥६८॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचन शीघ्र गङ्गामगानृपोत्तम । विश्वामित्रेण ऋषिणा वसिष्ठेन पुरोधसा ॥६९॥
वामदवेन ऋषिणा तथाऽन्यैर्मुनिभि सह । प्राप्य गङ्गा गौतमीं ता नरमेधाय दीक्षित ॥७०॥
वेदिमण्डपकुण्डादि यूपपश्वादि चाकरोत् । कृत्वा सर्वं यथायाय तस्मिन्यज्ञे प्रवर्तिते ॥७१॥
शुन शेप पशु यूपे निबध्याय समन्त्रकम ।[1] वारिभि प्रोक्षित दृष्ट्वा विश्वामित्रोऽब्रवीदिदम ॥७२॥

विश्वामित्र उवाच

देवानृषीन्हरिश्चद्र रोहित च विशेषत । अनुजानन्त्विम सर्वे शुन शेप द्विजोत्तमम् ॥७३॥
येभ्यस्त्वय हविर्देयो देवेभ्योऽय पृथक्पृथक । अनुजानन्तु ते सर्वे शुन शेप विशेषत ॥७४॥
वसाभिर्लोमभिस्त्वग्भिर्मांसै सम्मन्त्रितैर्मख । अग्नौ होष्य पशुश्चाय शुन शेपो द्विजोत्तम ॥७५॥
उपासिता स्युर्विप्रेन्द्रास्ते सर्वे त्वनुमन्य माम । गौतमीं यान्तु विप्रेन्द्रा स्नात्वा देवान्पृथक्पृथक ॥७६॥
मन्त्रैं स्तोत्रैं स्तुवन्तस्ते मुद यान्तु शिवे रता । एन रक्षन्तु मुनयो देवाश्च हविषो भुज ॥७७॥

आकाशवाणी ने कहा—राजेन्द्र ! तुम अपने ऋत्विजो और पुरोहित के साथ गौतमी के तट पर जाओ । साथ म ऋषिपुत्र और राजपुत्र रोहित को भी ले लो । तुम यज्ञ करो । शुन शेप के वध के बिना ही तुम्हारा यज्ञ पूर्ण हो जायगा । इसलिये महामति वहाँ जाओ ॥६७ ६८॥

ब्रह्मा ने कहा—आकाशवाणी को सुनकर नृपोत्तम हरिश्चद्र शीघ्र ही ऋषि विश्वामित्र पुरोहित वसिष्ठ वामदेव एव अन्याय मुनियो के साथ गगा तट पर गया । वहाँ गौतमीगगा के तट पर आकर नरमेध यज्ञ की दीक्षा लेकर वेदी मण्डप यूप और पशु आदि की व्यवस्था करने लगा । यथाविधि सब सामग्री एकत्र कर यज्ञ काय प्रारम्भ हुआ । यूप म शुन शेप को पशु बनाकर मन्त्र पाठ पूवक बांधा गया । उसको जल से अभिषिक्त होते देखकर विश्वामित्र ने यह कहा ॥६९ ७२॥

विश्वामित्र ने कहा—देव ऋषि हरिश्चद्र विशेषरूप से रोहित से मैं कह रहा हूँ कि सभी इस द्विजोत्तम शुन शेप को आज्ञा द । जिन देवताओ को यह हवि (शुन शेप) पृथक पृथक दी जायगी वे सब देवता भी विशेष रूप से इस शुन शेप को अनुमति दें । इस यज्ञपशु द्विजवय शुन शेप के वसा (चर्बी) लोम त्वचा मांस से मन्त्रो च्चारणपूवक यज्ञाग्नि म हवन किया जायगा । अर्थात् शुन शेप इन सभी ब्राह्मणो और देवो की पूजा कर । वे सभी विप्रेन्द्र (देवता) आज पूजित हो । मेरी ओर ध्यान देकर आज सब विप्रवय भी गौतमी के तीर पर जाय और स्नान कर पृथक पृथक मन्त्र स्तोत्रो से देवताओ की स्तुति करते हुए आनन्दपूवक शिव उपासना म लीन हो जाय । इस प्रकार आज आप मुनि हविष्य को ग्रहण करने वाले देवता गण इस शुन शेप की प्राण रक्षा कर ॥७३-७७॥

---

[1] घ समन्त्रक ।

ब्रह्मोवाच

तथेत्यूचुश्च मुनयो मेने च नृपसत्तम । ततो गत्वा शुन शेपो गङ्गा त्रैलोक्यपावनीम् ॥७८॥
स्नात्वा तुष्टाव तान्देवान्ये तत्र हविषो भुज । ततस्तुष्टा सुरगणा शुन शेप च ते मुने॥
अवदन्त सुरा सर्वे विश्वामित्रस्य शृण्वत ॥७९॥

सुरा ऊचु

क्रतु पूर्णो भवत्वेष शुन शेपवध विना ॥८०॥

ब्रह्मोवाच

विशेषेणाय वरणश्चावदनृपसत्तमम् । तत पूर्णोऽभवद्राज्ञो नृमेधो लोकविश्रुत ॥८१॥
देवाना च प्रसादेन मुनीना च प्रसादत । तीर्थस्य तु प्रसादेन राज्ञ पूर्णोऽभवत्क्रतु ॥८२॥
विश्वामित्र शुन शेप पूजयामास सर्सदि। अकरोदात्मन पुत्र पूजयित्वा सुरान्तिके ॥८३॥
ज्येष्ठ चकार पुत्राणामात्मन स तु कौशिक । न मेनिरे ये च पुत्रा विश्वामित्रस्य धीमत ॥८४॥
शुन शेपस्य च ज्यैष्ठ्य ताञ्शशाप स कौशिक । ज्यैष्ठ्य ये मेनिरे पुत्रा पूजयामास तान्सुतान् ॥८५॥
वरेण मुनिशार्दूलस्तदेतत्कथित मया। एतत्सर्वं यत्र जात गौतम्या दक्षिणे तटे ॥८६॥
तत्र तीर्थानि पुण्यानि विख्यातानि सुरादिभि । बहूनि तेषा नामानि मत्त शृणु महामते ॥८७॥
हरिश्चन्द्र शुन शेप विश्वामित्र सरोहितम्। इत्याद्यष्ट सहस्राणि तीर्थान्यय चतुर्दश ॥८८॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनियो ने ऐसा ही होगा यह कहा और नृपश्रेष्ठ ने भी इसको स्वीकार किया। इसके अनन्तर शुन शेप त्रिभुवन पावनी गगा के पास गय। । गगा मे स्नानकर जितने वहाँ हविष ग्रहण करने वाले देवता थे उनको स्तुति द्वारा प्रसन्न किया। वे सभी देवता शुन शेप पर प्रसन्न हो गये। मुने ! सब देवताओ ने विश्वामित्र के सामने ही कहा ॥७८ ७९॥

देवो ने कहा—यह यज्ञ शुन शेप के वध के बिना ही पूर्ण हो जाय ॥८०॥

ब्रह्मा ने कहा—वरुण ने विशेषरूप से नृपवर्य को यज्ञपूर्ति का आशीर्वाद दिया। तदनन्तर राजा का वह लोक प्रसिद्ध नरमेध यज्ञ सम्पन्न हुआ। देवताओ की कृपा से मुनियो के अनुग्रह से और तीर्थ के माहात्म्य से राजा का यज्ञ इस प्रकार निर्विघ्न समाप्त हुआ। उस सभा मे ही विश्वामित्र से शुन शेप का सत्कार किया और देवो के समीप ही उसकी पूजा कर अपना पुत्र स्वीकार कर लिया। उस विश्वामित्र ने उसको ज्येष्ठ पुत्र बनाया। परम बुद्धिमान् ऋषि विश्वामित्र के जिन पुत्रो ने उसका ज्येष्ठत्व स्वीकार नही किया उनको ऋषि ने शाप दे दिया और जिन पुत्रो ने उसकी ज्येष्ठता स्वीकार कर ली उनका उस मुनिशादूल ने वर देकर आदर सत्कार किया। इस प्रकार नारद ! मैंने इस घटना को सुना दिया। यह सारा काय गौतमी के दक्षिण तीर पर जहाँ सम्पन्न हुआ वहाँ बहुत से पवित्र देवताओ के नाम से प्रसिद्ध तीथ हो गये। महामति नारद ! इनके नाम मैं कह रहा हूँ सुनो—हरिश्चन्द्र शुन शेर विश्वामित्र रोहित आदि बाईस हजार तीर्थ हैं। उन तीर्थों मे स्नान करन और दान देने से

तेपु स्नान च दानं च नरमेधफलप्रदम्। आख्यात चास्य माहात्म्य तीर्थस्य मुनिसत्तम ॥८९॥
य पठेत्पाठयेद्वाऽपि शृणुयाद्वाऽपि भक्तित । अपुत्र पुत्रमाप्नोति यच्चान्यन्मनस प्रियम् ॥९०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भ्वृषिसंवादे तीर्थमाहात्म्ये विश्वामित्रादिद्वाविंशतिसहस्र-
तीर्थवर्णन नाम चतुरधिकशततमोऽध्याय ॥१०४॥
गौतमीमाहात्म्ये पञ्चत्रिंशोऽध्याय ॥३५॥

अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

सोमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सोमतीर्थमिति ख्यात पितृणा प्रीतिवर्धनम्। तत्र वृत्त महापुण्य शृणु यत्नेन नारद ॥१॥
सोमो राजाऽमृतमयो गन्धर्वाणा पुराऽभवत्। न देवाना तदा देवा मामभ्येत्येदमब्रुवन् ॥२॥

देवा ऊचु

गन्धर्वैराहृत सोमो देवाना प्राणद पुरा। तमध्यायन्सुरगणा ऋषयस्त्वतिदु खिता ॥
यथा स्यात्सोमो ह्यस्माक तथा नीतिर्विधीयताम ॥३॥

नरमेधयज्ञ का फल प्राप्त होता है। मुनिश्रेष्ठ! इस तीर्थ की कथा और माहात्म्य को जो पढता या पढाता है अथवा भक्तिपूर्वक सुनता है वह अपुत्र रहने पर पुत्र को प्राप्त करता है अथवा जो कुछ उसकी अभिलाषा होती वह पूरी होती है ॥८९ ९०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे विश्वामित्र आदि बाईस हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ चौथा अध्याय समाप्त ॥१०४॥

अध्याय १०५

सोमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सोमतीर्थ नामक पितरो को आनन्द देने वाला एक तीर्थ है। नारद! वहाँ जो अत्यन्त पवित्र शुभ घटना हुई उसको सुना रहा हूँ ध्यानपूर्वक सुनो। बहुत पहले गन्धर्वो का अमृतमय सोम राजा हुआ देवो का नही (अर्थात गन्धर्वो को सोम प्राप्त हो गया देवो को नही)। यह देखकर देवता मेरे पास आये और बोले ॥१ २॥

देवो ने कहा—देवताओ के जीवनाधार सोम को गन्धर्वो ने पहले ही ले लिया। यह देखकर हम देवता लोग अत्यन्त चिन्तित हैं, ऋषिगण अति दु खी हैं। जिस प्रकार सोम हम लोगो को मिले वैसी कोई युक्ति कीजिये ॥३॥

ब्रह्मोवाच

तत्र वाग्विबुधानाह गन्धर्वा स्त्रीषु कामुका । तेभ्यो दत्त्वाऽथ मा देवा सोममाहर्तुमर्हथ ॥४॥
याच प्रत्यूचुरमरास्त्वा दातु न क्षमा वयम । विना तेनापि न स्यातु ह्यवय नैव त्वया विना ॥५॥
पुनर्वागब्रवीद्देवान्पुनरेष्याम्यहं त्विह । अत्र बुद्धिविधातव्या क्रियता क्रतुरुत्तम ॥६॥
गौतम्या दक्षिणे तीर भवेद्देवागमो यदि । मत्र तु विपय कृत्वा आयान्तु सुरसत्तमा ॥७॥
गन्धर्वा स्त्रीप्रिया नित्य पणध्व त मया सह । तथेत्युक्त्वा सुरगणा सरस्वत्या वच स्थिता ॥८॥
देवदूतै पृथग्देवा यक्षान्गन्धर्वपन्नगान । आह्वान चक्रिरे तत्र पुण्ये देवगिरौ तदा ॥९॥
ततो देवगिरिर्नाम पवतस्याभवन्मुने । तत्राऽऽगमन्सुरगणा गन्धर्वा यक्षकिंनरा ॥१०॥
दवा सिद्धाश्च ऋषयस्तयाऽष्टौ देवयोनय । ऋषिभिर्गौतमीतीरे क्रियमाणे महाध्वरे ॥११॥
तत्र दवै परिवृत सहस्राक्षोऽभ्यभापत ॥१२॥

इन्द्र उवाच

गन्धर्वानिय सपूज्य सरस्वत्या समीपत । सरस्वत्या पणध्व नो युष्माकममृतात्मना ॥१३॥

ब्रह्मा न कहा—उस समय वाणी (सरस्वती) ने कहा कि गन्धव अत्यन्त स्त्रीकामी होते हैं उनके हाथ मुझको सौंप कर तुम लोग सोम को प्राप्त कर सकते हो। वाणी की बात सुनकर देवताओ ने उत्तर दिया तुमको कभी भी हम देने को तैयार नही है। न तो हम सोम के बिना जीवित रह सकते हैं न तो तुम्हारे बिना। पुन वाणी ने देवताओ से कहा—मै पुन वहाँ से यहाँ चली आऊँगी। यहाँ चतुराई दिखलानी चाहिये। तुम लोग एक उत्तम यज्ञ का उपक्रम (तयारी) करो। गौतमी के दक्षिण तीर पर यदि यज्ञ को लक्षित कर देवागम (देवाचन) हो तो वहाँ सब सुर नर एकत्र हो जाय। गन्धव सवदा स्त्रीप्रमी होते हैं इसलिये मेरे साथ उनका सौदा पटा दिया जाय। इस बात को स्वीकार कर वे देव सरस्वती के कथनानुसार काय करने लगे। इसके अनन्तर उन लोगों ने देवदूतो को भेजकर पृथक पथक देवो गन्धर्वों यक्ष और पन्नगो को उस पवित्र देवगिरि पर बुलवाया॥९॥ मुने! उस समय से ही उस पवत का नाम देवगिरि पडा। वहाँ सुर गण गन्धव यक्ष किन्नर देव सिद्ध ऋषि तथा आठ देवयोनिज उपस्थित थे। जब उस गौतमी के तीर पर महायज्ञ प्रारम्भ हुआ उस समय देवताओ से घिरे इन्द्र ने कहा॥४ १२॥

इन्द्र ने कहा—सरस्वती के समीप गन्धर्वों की पूजा कर हम लोग अमृत प्राप्ति के लिये तुम लोगो से सरस्वती का विनिमय करना चाहते हैं तुम लोग यह सौदा स्वीकार कर लो॥१३॥

१ध ०त्त्वा तु मा।

ब्रह्मोवाच

तच्छक्रवचनात्ते वै गन्धर्वा स्त्रीषु कामुका । सोम दत्त्वा सुरेभ्यस्तु जगृहुस्ता सरस्वतीम् ॥१४॥
सोमोऽभवच्चामराणा गन्धर्वाणा सरस्वती। अवसत्तत्र वागीशा तथाऽपि च सुरान्तिके॥१५॥
आयाति च रहो नित्यमुपाशु म्रियतामिति । अत एव हि सोमस्य क्रयो भवति नारद ॥१६॥
उपाशुना वर्तितव्य सोमक्रयण एव हि। ततोऽभवद्देवताना सोमश्चापि सरस्वती ॥१७॥
गन्धर्वाणां नैव सोमो नैवाऽऽसीच्च सरस्वती। तत्रागमन्सर्वे एव सोमार्थं गौतमीतटम् ॥१८॥
गावो देवा पर्वता यक्षरक्षा, सिद्धा साध्या मुनयो गुह्यकाश्च ।
गन्धर्वास्ते मरुत पन्नगाश्च, सर्वौषध्यो मातरो लोकपाला ।
रुद्रादित्या वसवश्चाश्विनौ च, येऽन्ये देवा यज्ञभागस्य योग्या ॥१९॥
पञ्चविंशतिनद्यस्तु गङ्गाया सगता मुने। पूर्णाहुतिर्यत्र दत्ता पूर्णाख्यान तदुच्यते ॥२०॥
गौतम्या सगता यास्तु सर्वाश्चापि यथोदिता । तन्नामधेयतीर्थानि सक्षेपाच्छृणु नारद ॥२१॥
सोमतीर्थं च गान्धर्वं देवतीर्थमत परम्। [1]पूर्णातीर्थं तत शाल श्रीपर्णासगम तथा ॥२२॥
स्वागतासगम पुण्य कुसुमायाश्च सगमम्। पुष्टिसगममाख्यात कर्णिकासगम शुभम् ॥२३॥
वैणवीसगमश्चैव कृशरासगमस्तथा। वासवीसगमश्चैव [2]शिवशर्या तथा शिखी[3] ॥२४॥
कुसुम्भिका [4]उपारथ्या शान्तिजा देवजा तदा। अजो वृद्ध सुरो भद्रो गौतम्या सह सगता ॥२५॥

ब्रह्मा ने कहा—इन्द्र की घोषणा के अनुसार स्त्रीप्रेमी गन्धर्वों ने सोम को देकर बदले मे सरस्वती को ले लिया। अब सोम देवताओ के अधिकार मे आ गया और सरस्वती गन्धर्वों की हो गई फिर भी वागीश्वरी देवो के ही समीप रहती थी ॥१४ १५॥ प्रतिदिन एकान्त भाव से (छिपे रूप मे) आती थी और देवो को उपाशु (मौन) रहने के लिए कहती थी। नारद ! इसी कारण यज्ञ मे सोम को खरीदा जाता है ॥१६॥ और सोमक्रय के समय उपाशु व्यवहार किया जाना चाहिये अर्थात् मौन रहना चाहिये। इस प्रकार चतुराई से सोम और सरस्वती दोनो देवताओ के ही अधिकार मे रह गये ॥१७॥ गन्धर्वों के साथ न तो सोम और न तो सरस्वती ही थी। सोम के इस प्रकार प्राप्त हो जाने पर उस गौतमीतट पर यज्ञ मे सब गौयें देव पवत यक्ष रक्ष सिद्ध साध्य मुनि गुह्यक गन्धर्व मरुत् पन्नग सब ओषधियाँ मातृगण लोकपाल रुद्र आदित्य वसु अश्विन अथवा जो और यज्ञभाग के अधिकारी देवता थे आये ॥१८ १९॥ मुने ! पचीस नदियाँ गगा मे आकर मिल गई। जहाँ पूर्णाहुति दी गई वह पूर्णाख्यान नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥२०॥ गौतमी म जितनी नदियाँ मिली जिनका कि ऊपर वणन हो चुका है नारद ! उन नामो से प्रसिद्ध तीर्थों का नाम थोडे मे सुनो ॥२१॥ सोमतीथ गान्धवतीथ देवतीथ पूर्णातीथ शाल श्रीपर्णासगम पवित्र स्वागता-सगम कुसुमासगम प्रसिद्ध पुष्टिसगम शुभकर्णिका सगम तथा वैणवीसगम कृशरासगम, वासवीसगम शिवशर्यासगम शिखी कुसुम्भिका उपारथ्या शान्तिजा देवजा वृद्धअज और भद्रसुर इतनी नदियाँ और नद गौतमी के साथ सम्मिलित हुये ॥२२-२५॥ इसके अतिरिक्त बहुत सी नदियाँ और नद सम्मिलित

१क पूर्णती०। २घ शिल्या आर्या। ३घ शिली। ४घ थ्या रन्तिदा देवनो नद । आजो वृध्य सरो।

एते चान्ये च बहवो नदीनदसहायगा। पृथिव्यां यानि तीर्थानि ह्यागमन्देवपर्वते ॥२६॥
सोमार्थं वै तथा चान्येऽप्यागमन्मखमण्डपम्। तानि तीर्थानि गङ्गाया सगतानि यथाक्रमम् ॥२७॥
नदीरूपेण कान्येव नदरूपेण कानिचित्। सरोरूपेण कान्यत्र स्तवरूपेण कानिचित् ॥२८॥
तान्येव सर्वतीर्थानि विख्यातानि पृथक्पृथक्। तेषु स्नान जपो होम पितृतर्पणमेव च ॥२९॥
सर्वकामप्रद पुसा भुक्तिद मुक्तिभाजनम्। एतेषा पठन चापि स्मरण वा करोति य ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो यति विष्णुपुर जन ॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयभुऋषिसवादे तीर्थमाहात्म्ये पूर्णादिपञ्चविंशतिनदीदेवनदीनदसगमवर्णन नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्याय ॥१०५॥

गौतमीमाहात्म्ये षट्त्रिंशत्तमोऽध्याय ॥३६॥

अथ षडधिकशततमोऽध्यायः

देवदानवाना मेरुपर्वत प्राप्य मन्त्रकरणम्

ब्रह्मोवाच

प्रवरासगमो[1] नाम श्रेष्ठा चैव[2] महानदी। यत्र सिद्धेश्वरो देव सर्वलोकोपकारकृत् ॥१॥

हुये। उस देवगिरि पर पृथिवी के जितने तीर्थ आये थे व सभी तथा अन्य भी सोम के लिये उस यज्ञ-मडप म आये ॥२६॥ उन सब तीर्थों म से कुछ नदी रूप मे कुछ नद रूप म कुछ सरोवर के रूप म और कुछ स्तव (स्तुति) के रूप मे ही गौतमी गगा मे सम्मिलित हुये ॥२७ २८॥ वे सभी तीथ पृथक पृथक् प्रसिद्ध हैं। उन तीर्थों मे स्नान जप होम और पितृतपण आदि कम मनुष्यो के लिए सब मनोरथ तथा मुक्ति और मुक्ति के देने वाले हैं। इन तीर्थों की महिमा का जो कोई पठन या स्मरण करता है वह भी सब पापो से मुक्त होकर विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥१९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे पूर्णा आदि पचीस नदी देवनदी नद सगम वणन नामक एक सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥१०५॥

अध्याय १०६

देवता और दानवो का सुमेरपर्वत पर जाकर मत्रणा करना

ब्रह्मा ने कहा—प्रवरा सगम नामक तीथ और प्रवरा नामक श्रेष्ठ महानदी है। जहाँ सब लोक के उपकार

१घ ०मुक्तश्चान्ते विष्णुपद व्रजेत्। पुण्याप्रवरयोमध्य नद्यो विंशतिरीरित। वृद्धाप्रवरयोमध्ये या भूमि श्रयसयुता। तत्रस्था प्राणिन सर्वे मुक्तिभाजो न सशय। अह च वा य आसीच्च सृष्ट्यर्थं यजन कृतम्। प्रणीतासगमायार्थं पुरत कथयामि ते। इ०। २क ०गम श्रेष्ठ श्रे०। ३घ सैव।

देवाना दानवाना च सगमोऽभूत्सुदारुण । तेषा परस्पर वाऽपि प्रीतिश्चाभून्महामुने ॥२॥
तेऽप्येव मन्त्रयामासुर्देवा वै दानवा मिथ । मेरुपर्वतमासाद्य परस्परहितैषिण ॥३॥

देवदैत्या ऊचु

अमृतेनामरत्व स्यादुत्पाद्यामृतमुत्तमम्। पिबाम सर्व एवैत भवामश्चामरा वयम ॥४॥
एकीभूत्वा वय लोकान्पालयाम सुखानि च। प्राप्स्याम सगर हित्वा सगरो दु खकारणम् ॥५॥
प्रीत्या चैवार्जितानर्थान्भोक्ष्यामो गतमत्सरा । यत स्नेहेन वृत्तिर्या साऽस्माक सुखदा सदा ॥६॥
वैपरीत्य तु यद्वृत्त न स्मर्तव्य कदाचन। न च त्रैलोक्यराज्येऽपि कैवल्ये वा सुख मनाक्॥
तदूर्ध्वमपि वा यत्तु निर्वैरत्वादवाप्यते ॥७॥

ब्रह्मोवाच

एव परस्पर प्रीता सन्तो देवाश्च दानवा एकीभूताश्च सुप्रीता विमथ्य वरुणालयम् ॥८॥
मन्थान मन्दर कृत्वा रज्जु कृत्वा तु वासुकिम। देवाश्च दानवा सर्वे ममन्थुर्वरुणालयम ॥९॥
उत्पन्न च तत पुण्यममृत सुरवल्लभम। निष्पन्ने चामृते पुण्ये ते च प्रोचु परस्परम् ॥१०॥
याम स्व स्वमधिष्ठान कृतकार्या श्रम गता । सर्वे सम च सर्वेभ्यो यथायोग्य विभज्यताम ॥११॥
यदा सर्वागमो यत्र यस्मिल्लग्ने शुभावहे। विभज्यतामिद पुण्यममृत सुरसत्तमा ॥१२॥

करने वाले सिद्धेश्वर महादेव विराजमान हैं। एक समय देवो और दानवो मे अति भयकर युद्ध हुआ। महामुने ! थोडे समय बाद उन मे परस्पर प्रम भी हो गया। उन देव-दानवो ने आपस मे मिलजुल कर मेरु पवत पर परस्पर हित की कामना से परामश किया ॥१ ३॥

देव दानवो ने कहा—अमत से अमरत्व की प्राप्ति होती है। अत अमृत उत्पन्न कर हम सभी पान करें जिससे हम सब अमर हो जायँ। तब हम एक होकर लोक-पालन कर और युद्ध का त्याग कर सुख भोग कर। वास्तव म युद्ध ही दु ख का कारण है। इस प्रकार प्रमपूवक अपने श्रम से अर्जित सम्पत्ति का परस्पर मात्सय छोड कर भोग करेंगे। क्योकि प्रमपूवक जो हम लोगो का पारस्परिक व्यवहार होगा वह सदा सुखकर होगा। आज तक के जो विपरीत व्यवहार हुये उनका स्वप्न मे भी स्मरण नही करना चाहिये। जो सुख वर-कलह को छोडकर जीवन यापन करने म मिलता है उसका स्वल्पाश भी त्रिभुवन के राज्य अथवा मुक्ति की प्राप्ति मे नही ॥४ ७॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार देव और दानव परस्पर की प्रीति वार्ता से प्रसन्न होकर एक हो गये और प्रसन्नतापूवक समुद्र को मथकर अमृत उत्पन्न करने की युक्ति सोची। मन्दराचल को मथनी और वासुकि को रस्सी बनाकर सब देवो और दानवा ने समुद्र को मथ डाला। म थन के बाद समुद्र से देवा का प्रिय पवित्र अमत निकला। अमृत उत्पन्न हो जाने पर उन लोगो ने परस्पर विचार किया—हम सब अपने-अपने स्थान को इस समय चल अब तो हम सफलमनोरथ हो गये सारा श्रम दूर हो गया। पुन जब सब लोग शुभ लग्न म जहाँ-कहीं एकत्र होगे तब सब देवता सबको यथाभाग यह पवित्र अमृत बाट देंगे।

इत्युक्त्वा ते ययु सर्वे दैत्यदानवराक्षसा । गतेषु दैत्यसघेषु देवा सर्वेऽन्वमन्त्रयन् ॥१३॥

देवा ऊचुः

गतास्ते रिपवोऽस्माक दैवयोगादरिदमा । रिपूणाममृत नैव देय भवति सर्वथा ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

बृहस्पतिस्तथेत्याह पुनराह सुरानिदम ॥१५॥

बृहस्पतिरुवाच

न जानन्ति यथा पापा पिबध्व च तथाऽमृतम् । अयमेवोचितो मन्त्रो यच्छत्रूणा पराभव ॥१६॥
द्वेष्या सर्वात्मना द्वेष्या इति नीतिविदो विदु । न विश्वास्या न चाऽऽख्येया नैव मन्त्र्याश्च शत्रव ॥१७॥
तेभ्यो न देयममृत भवेयुरमरास्तत । अमरेषु च जातेषु तेषु दैत्येषु शत्रुषु ॥
ताञ्जेतु नैव शक्ष्यामो न देयममृत तत ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

इति समन्त्र्य ते देवा वाचस्पतिमथाब्रुवन् ॥१९॥

देवा ऊचु

क्व याम कुत्र मन्त्र स्यात्क्व पिबाम क्व सस्थिति । कुर्मस्तदेव प्रथम वद वाचस्पते तथा ॥२०॥

यह कहकर वे सब दैत्य दानव और राक्षस चले गये। उन दैत्य समूहो के चले जाने पर सब देवता परामर्श करने लगे ॥८ १३॥

देवो ने कहा—शत्रुनाशक! दैवयोग से हम लोगो के वे शत्रु चले गये। शत्रुओ को किसी भी प्रकार से अमृत देना उचित नही ॥१४॥

ब्रह्मा बोले—बृहस्पति ने भी इसका समथन किया। पुन उन्होने देवताओ से कहा ॥१५॥

बृहस्पति ने कहा—तुम लोग यह अमृत पी जाओ। किसी प्रकार वे पापी राक्षस इस भेद को न जान पाय। यह उचित मन्त्र है कि शत्रुओ की हार हो। नीतिज्ञो ने कहा है कि शत्रुओ से सब प्रकार से द्वेष करना चाहिये। शत्रु किसी प्रकार भी विश्वसनीय नही शत्रुओ से कोई हृदय की बात नही कहनी चाहिये न तो उनसे रहस्यमय परामश ही करना चाहिये। उनको अमृत नही देना चाहिये अन्यथा अमृत पान से वे अमर हो जायगे। उन शत्रु दैत्यो के अमर हो जाने पर हम किसी प्रकार उनको जीत न सकगे। इसलिये उनको अमृत नही देना चाहिए ॥१६ १८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार परस्पर मन्त्रणा कर देवताओ ने पुन बृहस्पति से कहा ॥१९॥

देवताओ ने कहा—वाचस्पति! कहाँ जायँ कहा परामश किया जाय और कहाँ स्थित होकर हम लोग अमृत पान करें। आप जैसा कहेगे हम वही करेंगे आप कहिये ॥२०॥

बृहस्पतिरुवाच

यान्तु ब्रह्माणममरा. पृच्छन्त्वत्र गतिं पराम्। स तु ज्ञाता च वक्ता च दाता चैव पितामहः ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

बृहस्पतेर्वचः श्रुत्वा मदन्तिकमथाऽऽगमन्। नमस्य मां सुराः सर्वे यद्वृत्तं तन्न्यवेदयन् ॥२२॥
तद्देववचनात्पुत्र तैः सुरैरगमं हरिम्। विष्णवे कथितं सर्वं शंभवे विषहारिणे ॥२३॥
अहं विष्णुश्च शंभुश्च देवगन्धर्वकिनरैः। मेरुकंदरमागत्य न जानन्ति यथाऽसुराः ॥२४॥
रक्षकं च हरिं कृत्वा सोमपानाय तस्थिरे। आदित्यस्तत्र विज्ञाता सोमभोज्यानयेतरान् ॥२५॥
सोमो दाताऽमृतं भागं चक्रधृग्रक्षकस्तथा। नैव जानन्ति तद्दैत्या दनुजा राक्षसास्तथा ॥२६॥
विना राहुं महाप्राज्ञं सैंहिकेयं च सोमपम्। कामरूपधरो राहुर्मरुतां मध्यमाविशत् ॥२७॥
मरुद्रूपं समास्थाय पानपात्रधरस्तथा। ज्ञात्वा दिवाकरो दैत्य तं सोमाय न्यवेदयत् ॥२८॥
तदा तदमृत तस्मै दैत्यायादैत्यरूपिणे। दत्त्वा सोमं तदा सोमो विष्णवे तन्न्यवेदयत् ॥२९॥
विष्णुः पीतामृतं दैत्यं चक्रेणोद्यम्य तच्छिरः। चिच्छेद तरसा वत्स तच्छिरस्त्वमरं त्वभूत् ॥३०॥
शिरोमात्रविहीनं यद्देहं तदपतद्भुवि। देहं तदमृतस्पृष्टं पतितं दक्षिणे तटे ॥३१॥
गौतम्या मुनिशार्दूल कम्पयद्वसुधातलम्। देह चाप्यमरं पुत्र तदद्भुतमिवाभवत् ॥३२॥

बृहस्पति ने कहा—सब देवता ब्रह्मा के पास जायें और इस विषय मे उन्ही से उचित राय पूछें। वे पितामह ज्ञाता, वक्ता और दाता हैं। ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—बृहस्पति की बातें सुनकर देवता मेरे पास आये और मुझे नमस्कार कर के जो कुछ हुआ था वह सुनाया ॥२२॥ पुत्र! उन देवताओं के कथनानुसार मैं उन लोगो के साथ विष्णु के समीप गया। सारा रहस्य विष्णु और विषपान करने वाले शंकर से कह दिया गया ॥२३॥ मैं, विष्णु शम्भु, देव, गन्धर्व और किन्नर मेरु की कन्दरा मे आकर जिस प्रकार असुर न जान पायें, उस प्रकार ॥२४॥ हरि को रक्षक बनाकर सोम पान के लिये बैठ गये। वहाँ आदित्य ही सोम पान के योग्य और अयोग्य व्यक्तियो को जानते थे ॥२५॥ सोम देव अमृत को बाँटने वाले तथा चक्रधारी विष्णु रक्षक थे, इस रहस्य को महाबुद्धिमान् और सोम-पायी सिंहिका सुत राहु को को छोडकर अन्य दैत्य दानव तथा राक्षस नही जानते थे ॥२६॥ माया रूपधारी राहु मरुद्गणो के मध्य घुस गया और मरुद् का रूप धारण कर पान-पात्र हाथ मे लेकर बैठ गया ॥२७॥ दिवाकर ने उस रहस्यमय दैत्य को जानकर सोम को बता दिया ॥२८॥ उस समय देवरूपधारी उस दैत्य को सोम अमृत दे चुके थे, तब इस घटना को उन्होने विष्णु से कहा ॥२९॥ विष्णु ने अमृत पान कर चुके उस दैत्य के शिर को चक्र उठाकर बलपूर्वक काट डाला ॥३०॥ वत्स! काटने पर भी उसका शिर अमर हो गया। शिर से रहित जो कबन्ध था वह पृथिवी पर गिर पडा। मुनि शार्दूल! वह अमृत से स्पृष्ट शरीर गौतमी के दक्षिण तट पर पृथ्वीतल को कँपाता हुआ सा गिर पडा। पुत्र! उस अमर देह की अद्भुत अवस्था हो गई ॥३१-३२॥ देह शिर की अपेक्षा रखती और शिर देह के

देहं च शिरसोऽपेक्षि शिरो देहमपेक्षते। उभयं चामरं जातं दैत्यश्चायं महाबलः ॥३३॥
शिरः काये समाविष्टं सर्वान्भक्षयते सुरान्। तस्माद्देहमिदं पूर्वं नाशयामो महीगतम्॥
ततस्ते शंकरं प्राहुर्देवाः सर्वे ससंभ्रमा. ॥३४॥

देवा ऊचु

महीगतं दैत्यदेह नाशयस्व सुरोत्तम। त्वं देव करुणासिन्धुः शरणागतरक्षकः॥३५॥
शिरसा नैव युज्येत दैत्यदेहं तथा कुरु ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

प्रेषयामास चेशोऽपि श्रेष्ठां शक्तिं तदाऽऽत्मनः। मातृभिः सहितां देवीं मातरं लोकपालिनीम्॥३७॥
ईशायुधधरा देवी ईशशक्तिसमन्विता। महीगतं यत्र देहं तत्रागाद्भक्ष्यकाङक्षिणी॥३८॥
शिरोमात्रं सुरा सर्वे मेरौ तत्रैव सान्त्वयन्। देहो देव्या[1] पुनस्तत्र युयुधे बहवः समा॥३९॥
राहुस्तान सुरानाह भित्त्वा देहं पुरा मम(?)। अत्राऽऽस्ते रसमुत्कृष्टं तदाकृष्य शरीरत(?)॥४०॥
पृथग्भूते रसे देह प्रवरेऽमृतमुत्तमम्। भस्मीभूयात्क्षणेनैव तस्मात्कुर्वन्तु तत्पुरा॥४१॥

ब्रह्मोवाच

एतद्राहुवचः श्रुत्वा प्रीता. सर्वेऽसुरारयः। अभ्यषिञ्चन्ग्रहाणां त्वं ग्रहो भूया मुदाऽन्वितः॥४२॥

बिना अलग नही रह सकता परन्तु वह महाबली (शिर और धड) उभय रूप मे भी अमर हो गया ॥३३॥ देवताओ ने सोचा कि यदि शिर पुन धड पर जुट जायगा तो यह राक्षस सब देवो को खा जायेगा, इसलिये पृथ्वी पर पडे इस शरीर का पहले ही नाश कर दिया जाय। यह सोच कर उन देवताओ ने बडी शीघ्रता से शकर के पास जाकर निवेदन किया॥३४॥

देवो ने कहा—सुरोत्तम! पृथ्वी पर पडे इस दैत्य-शरीर को नष्ट कीजिये। देव! आप करुणा के सागर है, शरणागत जनो के एकमात्र रक्षक हैं। यह देह शिर से युक्त न होने पाये, ऐसा कोई उपाय कीजिये॥३५-३६॥

ब्रह्मा ने कहा—देवो की प्रार्थना सुनकर शकर ने अपनी श्रेष्ठ शक्ति लोकपालक माता, देवी चण्डिका को मातृकाओं के साथ भेजा। शिव के आयुधो और उनकी शक्ति से युक्त होकर वह देवी उस दैत्य शरीर को खा जाने की इच्छा से वहाँ गई। उधर सब देवता केवल शिर भाग को उसी मेरु पर्वत पर रोक रखे। उधर वह देह देवी के साथ बहुत वर्षों तक युद्ध करती रही। अन्त मे मेरु स्थित राहु के शिर ने देवो से कहा कि पहले मेरे शरीर को फाड कर उसमे से उत्तम रस को शरीर से अलग खीच लो। उस उत्तम रस के अलग हो जाने पर वह अमर शरीर क्षण भर मे ही भस्म हो जायगा। इसलिये पहले इस कार्य को करें॥३७-४१॥

ब्रह्मा बोले—राहु की कही हुई बात को सुनकर सब देव अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन लोगो ने राहु का प्रसन्नतापूर्वक अभिषेक करते हुए कहा कि तुम आनन्दपूर्वक ग्रहों के मध्य एक ग्रह हो जाओ॥४२॥ देवताओ के कथनानुसार

---

[1] घ ०व्या सह तदा यु०।

तद्देववचनाच्छक्तिरीश्वरी या निगद्यते। देहं भित्त्वा दैत्यपतेः सुरशक्तिसमन्विता ॥४३॥
आकृष्य शीघ्रमुत्कृष्टं प्रवरं चामृतं बहिः। स्थापयित्वा तु तद्देहं भक्षयामास चाम्बिका ॥४४॥
कालरात्रिर्भद्रकाली प्रोच्यते या महाबला। स्थापितं रसमुत्कृष्टं रसानां प्रवरं रसम्(?) ॥४५॥
व्यस्रवत्स्थापितं तत्तु प्रवरा साऽभवन्नदी। आकृष्टममृतं चैव स्थापितं साऽप्यभक्षयत् ॥४६॥
ततः श्रेष्ठा नदी जाता प्रवरा चामृता शुभा। राहुदेहसमुद्भूता रुद्रशक्तिसमन्विता ॥४७॥
नदीनां प्रवरा रम्या चामृता प्रेरिता तथा। तत्र पञ्च सहस्राणि तीर्थानि गुणवन्ति च ॥४८॥
तत्र शंभुः स्वयं तस्थौ सर्वदा सुरपूजितः। तस्यै तुष्टाः सुराः सर्वे देव्यै नद्यै पृथक् पृथक् ॥४९॥
वरान्ददुर्मुदा युक्ता यथा पूजामवाप्स्यति। शंभुः सुरपतिर्लोके तथा पूजामवाप्स्यसि ॥५०॥
निवासं कुरु देवि त्वं लोकानां हितकाम्यया। सदा तिष्ठ रसेशानि सर्वेषां सर्वसिद्धिदा ॥५१॥
स्तवनात्कीर्तनाद्ध्यानात्सर्वकामप्रदायिनी। त्वां नमस्यन्ति ये भक्त्या किंचिदापेक्ष्य सर्वदा ॥५२॥
तेषां सर्वाणि कार्याणि भवेयुर्देवताज्ञया। शिवशक्त्योर्यतस्तस्मिन्निवासोऽभूत्सनातनः ॥५३॥
अतो वदन्ति मुनयो निवासपुरमित्यदः। प्रवरायाः पुरा देवाः सुप्रीतास्ते वरान्ददुः ॥५४॥
गङ्गायाः संगमो यस्ते विख्यातः सुरवल्लभः। तत्राऽऽप्लुतानां सर्वेषां भुक्तिर्वा मुक्तिरेव च ॥५५॥
यद्वाऽपि मनस काम्यं देवानामपि दुर्लभम्। स्यात्तेषां सर्वमेवेह एवं दत्त्वा सुरा ययुः ॥५६॥

ईश्वरी नाम से विख्यात शिवशक्ति ने देवो की शक्ति से उत्साहित होकर दैत्यराज का शरीर फाड कर शीघ्र ही उस उत्कृष्ट अमृत रस को खींचकर बाहर निकाल डाला। और कालरात्रि भद्रकाली एव महाबला कही जानेवाली वह अम्बिका उसके शरीर को खा गई और उस रसो मे श्रेष्ठ रस को एक स्थान पर स्थापित कर दिया ॥४३-४५॥ उस रखे गये रस का जो भाग बाहर बह गया उससे प्रवरा नाम की उत्तम और शुभ नदी हो गई। उस घटस्थापित उत्तम अमृत को भी वह अम्बिका खा गई ॥४६॥ इस प्रकार राहु देह से निकली हुई, रुद्रशक्ति से युक्त वह शुभ श्रेष्ठ प्रवरा नाम की अमृत सरिता उत्पन्न हो गई। वहाँ पाँच हजार पवित्र पुण्यप्रद तीर्थ सर्वदा निवास करते हैं ॥४७-४८॥ वहाँ देवपूजित शमु सर्वदा विद्यमान रहते हैं। देवताओ ने प्रसन्न होकर उस देवी (नदी) को पृथक्-पृथक् वरदान दिया कि जिस प्रकार भगवान् शमु लोक मे पूजा प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार तुम भी लोक मे पूजा प्राप्त करोगी ॥४९-५०॥ देवि! तुम लोकहित की कामना से सर्वदा इस पृथ्वी पर निवास करो, रसेशानि! सबको सर्वदा सिद्धि प्रदान करने वाली तुम सर्वदा यहाँ विराजमान रहो ॥५१॥ स्तुति कीर्तन और ध्यान करने से मनुष्यो को सब मनोरथ देने वाली बनो। जो भक्तिपूर्वक किसी मनोरथ की पूर्ति के लिए सर्वदा तुम्हें नमस्कार करेंगे उन भक्तो के सभी कार्य देवताओ की आज्ञा से अवश्य पूर्ण होंगे। यत वहाँ शिव और शक्ति का सर्वदा निवास रहता है इसलिये उस तीर्थ को मुनिगण 'निवासपुर' कहते हैं। इस भाँति देवताओ ने प्राचीन काल मे प्रवरा को प्रसन्न होकर वर प्रदान किया ॥५२-५४॥ जो देवो का अत्यन्त प्रिय विख्यात गगा-सगम है वहाँ स्नान करने वालो को भुक्ति और मुक्ति अथवा जो भी उनका मनोभिलषित है चाहे वह देव-दुर्लभ ही क्यो न हो, सब उनको प्राप्त हो, ऐसा वर देकर देवता चले गये। ॥५५-५६॥ सब से वह

ततः प्रभृति तत्तीर्थं प्रवरासंगमं विदुः। प्रेरिता देवदेवेन शक्तिर्या प्रेरिता तु सा॥५७॥
अमृता[1] सैव विख्याता प्रवरैव महानदी ॥५८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे शिवप्रेरितामृतासंगमादितीर्थवर्णनं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः॥१०६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥३७॥

अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

वृद्धासंगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

वृद्धासंगममाख्यातं यत्र वृद्धेश्वरः शिवः। तस्याऽऽख्यानं प्रवक्ष्यामि शृणु पापप्रणाशनम्॥१॥
गौतमो वृद्ध इत्युक्तो मुनिरासीन्महातपाः। यदा पुराऽभवद्बालो गौतमस्य सुतो द्विजः॥२॥
अनासः स पुरोत्पन्नस्तस्माद्विकृतरूपधृक्। स वैराग्याज्जगामाथ देशं तीर्थमितस्ततः॥३॥
उपाध्यायेन नैवाऽऽसील्लज्जितस्य समागमः। शिष्यैरन्यैः सहाध्यायो लज्जितस्य च नाभवत्॥४॥

तीर्थ प्रवरा संगम के नाम से प्रसिद्ध हो गया। इस प्रकार देवदेव शंकर ने जिस शक्ति को प्रेरित प्रेरित किया था, वही प्रेरित होने पर विख्यात अमृत स्वरूपिणी महानदी प्रवरा हो गई ॥५०-५८।

श्री ब्रह्ममहापुराण में शिव प्रेरित अमृतासंगमादि तीर्थ वर्णन नामक
एक सौ छठा अध्याय समाप्त ॥१०६॥

अध्याय १०७

वृद्धासंगमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—जहाँ वृद्धेश्वर शिव निवास करते हैं उस वृद्धासंगम नाम से प्रसिद्ध तीर्थ की पापविनाशक कथा का वर्णन कर रहा हूँ उसको सुनो ॥१॥ वृद्ध गौतम नामक एक महातपस्वी मुनि थे। बहुत पहले गौतम मुनि को एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो कि जन्म से ही नासिका हीन था। इसलिये विरूप होने के कारण विरक्त होकर वह बाल गौतम इधर उधर देश और तीर्थ का भ्रमण करने लगा॥२-३॥ अपनी विरूपता से लज्जित होने के कारण वह उपाध्याय (विद्यागुरु) के समीप न जा सका, न तो अन्य शिष्यों के साथ उस सकोचशील गौतम का सहाध्ययन ही हुआ ॥४॥ किसी प्रकार उसके पिता गौतम ने उसका उपनयन संस्कार कर दिया। इतने ही ब्रह्म-

---

१ क. अमृत।

उपनीत कथचिच्च पित्रा वै गौतमेन स। एतावता गौतमोऽपि व्यगमच्चरितु बहि ॥५॥
एव बहुतिथे काले ब्रह्ममात्रा धृते द्विजे। नैव चाध्ययन तस्य सजात गौतमस्य हि ॥६॥
नैव शास्त्रस्य चाभ्यासो गौतमस्याभवत्तदा। अग्निकार्यं ततश्चक्रे नित्यमेव यतव्रत ॥७॥
गायत्र्यभ्यासमात्रेण ब्राह्मणो नामधारक। अग्न्युपासनमात्र च गायत्र्यभ्यसन तथा ॥८॥
एतावता ब्राह्मणत्व गौतमस्याभवन्मुने। उपासतोऽग्नि विधिवद्गायत्रीं च महात्मन ॥९॥
तस्याऽऽयुर्ववृधे पुत्र गौतमस्य चिरायुष। न दारसग्रह लेभे नैव दाताऽस्ति कन्यकाम् ॥१०॥
तथा चरस्तीर्थदेशे वनेषु विविधेषु च। आश्रमेषु च पुण्येषु अटन्नास्ते स गौतम ॥११॥
एव भ्रमञ्शीतगिरिमाश्रित्याऽऽस्ते स गौतम। तत्रापश्यद्गुहा रम्या वल्लीविटपमालिनीम् ॥१२॥
तत्रोपविश्य विप्रेन्द्रो वस्तु समकरोन्मतिम्[1]। चिन्तयस्तु प्रविष्टोऽसावपश्यस्त्रियमुत्तमाम् ॥१३॥
शिथिलाङ्गीमथ कृशा वृद्धा च तपसि स्थिताम्। ब्रह्मचर्येण वर्तन्तीं विरागा[2] रहसि स्थिताम् ॥१४॥
स ता दृष्ट्वा मुनिश्रेष्ठो नमस्काराय तस्थिवान्। नमस्यन्त मुनिश्रेष्ठ स गौतममवारयत् ॥१५॥

वृद्धोवाच

गुरुस्त्व भविता मह्य न मा वन्दितुमर्हसि। आयुर्विद्या धन कीर्तिर्धर्म स्वर्गादिक च यत् ॥
तस्य नश्यति वै सर्वं य नमस्यति वै गुरु ॥१६॥

चिह्न से (यज्ञोपवीत सस्कार) से युक्त होकर वह बाहर भ्रमण करने चला गया ॥५॥ इस प्रकार यज्ञोपवीत मात्र (ब्रह्म चिह्न) धारण किये हुये उस ब्राह्मण के जीवन का बहुत अश बीत गया। उस द्विज गौतम ने न तो अध्ययन ही किया और न तो शास्त्रो का अभ्यास ही। परन्तु उस सयम व्रत वाले गौतम ने अग्न्याधान अवश्य किया और गायत्री जप के अभ्यास से ब्रह्मत्व की रक्षा अवश्य करता रहा। मुने! इस प्रकार अग्निपूजा और गायत्रीजप मात्र ही उसके ब्राह्मणत्व का प्रतीक रहा ॥६ ८॥ विधिपूर्वक अग्नि की उपासना एव गायत्री का जप करते करते हे पुत्र! उस दीर्घजीवी महात्मा ब्राह्मण की आयु अधिक हो चली। परन्तु उसका विवाह नही हुआ क्योकि उस विरूप को कोई अपनी कन्या देने वाला नही था ॥९ १०॥ इस प्रकार अविवाहित वह गौतम तीर्थों विविध वनो और पुण्य आश्रमो मे भटकता हुआ समय बिताने लगा ॥११॥ एक समय वह घूमता हुआ हिमालय पहाड पर पहुँचा। वहाँ उसने लताओ और वृक्षमालाओ से सुशोभित एक रमणीय गुफा को देखा ॥१२॥ वहीं बैठकर उस विप्रेन्द्र ने उसी गुफा मे निवास करने का विचार किया। इसी विचार से वह उस गुहा मे प्रविष्ट हुआ इतने मे उसने एक उत्तम स्त्री को जो कृशकाय और वृद्ध थी जिसके अग शिथिल हो गये थे जो सवदा एकान्त मे रहने वाली वीतराग और ब्रह्मचयपरायण थी देखा। वह मुनिश्रेष्ठ उसको देखकर नमस्कार करने के लिये उद्यत हुआ। यह देखकर उस वृद्धा ने नमस्कारोन्मुख उस मुनि गौतम को रोका ॥१३ १५॥

वृद्धा ने कहा—तुम मेरे भविष्यद् गुरु हो मुझ नमस्कार मत करो उस व्यक्ति की आयु विद्या, धन, कीर्ति, धर्म स्वग आदि सब कुछ नष्ट हो जाते हैं जिसको गुरुजन नमस्कार करते हैं ॥१६॥

१घ ०म्। तदाऽन्तस्तु। २घ कुमारी।

ब्रह्मोवाच

कृताञ्जलिपुटस्तां वै गौतमः प्राह विस्मितः ॥१७॥

गौतम उवाच

तपस्विनी त्वं वृद्धा च गुणज्येष्ठा च भामिनी। अल्पविद्यस्त्वल्पवया अहं तव गुरुः कथम् ॥१८॥

वृद्धोवाच

आर्ष्टिषेणप्रियपुत्र ऋतध्वज इति श्रुतः। गुणवान्मतिमाञ्शूरः क्षत्रधर्मपरायणः ॥१९॥
स कदाचिद्वनं प्रायान्मृगयाकृष्टचेतनः। विश्राममकरोदस्यां गुहायां स ऋतध्वजः ॥२०॥
युवा स मतिमान्दक्षो बलेन महता वृत। तं विश्रान्तं नृपवरमप्सरा ददृशे ततः ॥२१॥
गन्धर्वराजस्य सुता सुश्यामा इति विश्रुता। तां दृष्ट्वा चकमे राजा राजानं चकमे च सा ॥२२॥
इति क्रीडा समभवत्तया राज्ञो महामते। निवृत्तकामो राजेन्द्रस्तामापृच्छ्याऽऽगमद्गृहम् ॥२३॥
उत्पन्नाऽहं ततस्तस्यां सुश्यामायां महामते। गच्छन्ती मां तदा माता इदमाह तपोधन ॥२४॥

सुश्यामोवाच

यस्त्वस्यां प्रविशेद्भद्रे स ते भर्ता भविष्यति ॥२५॥

वृद्धोवाच

इत्युक्त्वा सा जगामाथ माता मम महामते। तस्मादत्र प्रविष्टस्त्वं पुमान्नान्यः कदाचन ॥२६॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर विस्मित गौतम ने हाथ जोड़कर उस वृद्ध ब्रह्मचारिणी से कहा ॥१७॥

गौतम ने कहा—तुम तपस्विनी, वृद्ध और गुणश्रेष्ठ स्त्री हो, मैं, अल्पज्ञ तथा अल्प वय वाला व्यक्ति किस प्रकार तुम्हारा गुरु हो सकता हूँ ॥१८॥

वृद्धा ने कहा—ऋतध्वज नाम का आर्ष्टिषेण का प्रिय पुत्र था। वह बड़ा ही शूर, गुणशाली, बुद्धिमान् और क्षत्रिय धर्म का पालन करने वाला था। वह ऋतध्वज किसी समय मृगया (शिकार) खेलने की प्रबल इच्छा से प्रेरित होकर वन में आया और इसी गुहा में विश्राम करने लगा। वह युवा, बुद्धिमान्, कुशल, महाबलवान् ऋतध्वज यहाँ विश्राम कर रहा था कि उस श्रेष्ठ नृप को गन्धर्वराज की कन्या सुश्यामा नामक अप्सरा ने देख लिया। राजा उसको देखकर कामासक्त हो गए और वह राजा को देखकर। महामति ! इसलिये राजा का उस अप्सरा के साथ प्रेम-सम्बन्ध हो गया। राजेन्द्र की काम-पिपासा जब शान्त हो गई तब उससे परिचय-भाषण कर अपने घर को चले गये। महामन ! तदनन्तर मैं उस सुश्यामा के गर्भ से उत्पन्न हुई। तपोधन ! मुझको यहाँ छोड़कर जाती हुई माता ने मुझसे यह कहा—॥१९-२४॥

सुश्यामा ने कहा—भद्रे ! जो इस गुहा में प्रवेश करेगा वही तुम्हारा भर्ता होगा ॥२५॥

वृद्धा ने कहा—महामति ! इसके बाद यह कहकर वह मेरी माता चली गई। इस कारण आज इस गुहा में आये हुए तुम कभी भी अन्य (अर्थात् पति से अन्य) नहीं हो सकते। मेरे पिता एक हजार अस्सी वर्ष तक राज्य

सहस्राणि तथाऽशीति कृत्वा राज्यं पिता मम। अत्रैव च तपस्तप्त्वा ततः स्वर्गमुपेयिवान् ॥२७॥
स्वर्गं यातेऽपि पितरि सहस्राणि तथा दश। वर्षाणि मुनिशार्दूल राज्यं कृत्वा तथा परः ॥२८॥
स्वर्गं यातो मम भ्राता अहमत्रैव संस्थिता। अहं ब्रह्मन्नान्यवृत्ता न माता न पिता मम ॥२९॥
अहमात्मेश्वरी ब्रह्मन्निर्दिष्टा[1] क्षत्रकन्यका। तस्माद्भजस्व मां ब्रह्मन्व्रतस्थां पुण्यचारिणीम् ॥३०॥

गौतम उवाच

सहस्रायुरहं भद्रे मत्तस्त्वं वयसाऽधिका। अहं बालस्त्वं तु वृद्धा नैवायं घटते मिथः ॥३१॥

वृद्धोवाच

त्वं भर्ता मे पुरा दिष्टो नान्यो भर्ता मतो मम। धात्रा दत्तस्ततस्त्वं मां न निराकर्तुमर्हसि ॥३२॥
अथवा नेच्छसि मां त्वमप्रदुष्टामनुव्रताम्। ततस्त्यक्ष्यामि जीवं मे इदानीं तव पश्यतः ॥३३॥
अपेक्षिताप्राप्तितो हि देहिनां मरणं वरम्। अनुरक्तजनत्यागे पातकान्तो न विद्यते ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

वृद्धायास्तद्वचः श्रुत्वा गौतमो वाक्यमब्रवीत्   ॥३५॥

गौतम उवाच

अहं तपोविरहितो विद्याहीनो ह्यकिंचनः। नाहं वरो हि योग्यस्ते कुरूपो भोगवर्जितः ॥३६॥

पालन कर यहां तपस्या कर स्वर्ग को चले गये। मुनिशार्दूल ! पिता के स्वर्ग चले जाने पर एक हजार दस वर्ष तक राज्य कर दूसरा मेरा भाई भी स्वर्ग चला गया और मैं यहीं स्थित हूँ। ब्रह्मन् ! मैं अन्य किसी से वृत (ब्याही गई) नहीं हूँ न तो मेरी माता और पिता ही हैं। इस समय मैं स्वयं अपनी स्वामिनी हूं। ब्रह्मन्, मैं क्षत्रिय-कन्या हूं तपस्विनी हूं इसलिये पति की इच्छा करने वाली मुझ सदाचारिणी को तुम अपना लो ॥२६-३०॥

गौतम ने कहा—भद्र ! मैं सहस्रायु हूँ तुम मुझसे आयु में अधिक हो मैं बालक हूं तुम वृद्ध हो अतः हम दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध उपयुक्त नहीं जच रहा है ॥३१॥

वृद्धा ने कहा—पहले से ही तुम मेरे भर्ता निर्दिष्ट (कहे गये) हो। ब्रह्मा ने तुम्हारे हाथों मुझे सौंप दिया। इसलिये मेरा अनादर करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है। अथवा यदि तुम (निष्पाप) सदाचारिणी व्रतपरायण मुझको नहीं अपनाओगे तो अभी तुम्हारे देखते देखते मैं अपने प्राणों को छोड दूंगी। क्योंकि अपेक्षित (मनचाही) वस्तु को न पाने की अपेक्षा मनुष्यों का मर जाना ही अच्छा है। और यह भी समझ लो कि अनुरक्त (प्रेमी) जन के परित्याग में पापों का अन्त भी नहीं है। अर्थात् प्रेमी के परित्याग से अनन्त पाप होते हैं ॥३२-३४॥

ब्रह्मा ने कहा—वृद्धा की उन बातों को सुनकर गौतम ने कहा ॥३५॥

गौतम ने कहा—मैं तपस्या विमुख अशिक्षित और धनहीन हूं इसलिये कुरूप और भोगरहित मैं तुम्हारे वर बनने के योग्य नहीं हूँ। नासिकाहीन मूर्ख और तपोहीन मैं क्या करूं मैं सर्वदा तुम्हारे लिए अयोग्य हूं। इसलिये

---

[1] घ. ०न्निर्दिष्टा।

अनासोऽहं किं करोमि अतपोविद्य एव च। तस्मात्सुरूपं सुविद्यामापाद्य प्रथमं शुभे॥
पश्चात्ते वचनं कार्यं ततो वृद्धाऽब्रवीद्द्विजम् ॥३७॥

वृद्धोवाच

मया सरस्वती देवी तोषिता तपसा द्विज। तथैवाऽऽपो रूपवत्यो रूपदाताऽग्निरेव च ॥३८॥
तस्माद्वागीश्वरी देवी सा ते विद्या प्रदास्यति। अग्निश्च रूपवान्देवस्तव रूपं प्रदास्यति ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा गौतमं तं वृद्धोवाच विभावसुम्। प्रार्थयित्वा सुविद्यं तं सुरूपं चाकरोन्मुनिम् ॥४०॥
ततः सुविद्यः सुभगः सुकान्तो, वृद्धां स पत्नीमकरोत्प्रीतियुक्तः ।
तया स रेमे बहुला मनोज्ञया, समाः सुखं प्रीतमना गुहायाम् ॥४१॥
कदाचित्तत्र वसतोर्दम्पत्योर्मुदितोर्गिरौ। गुहाया मुनिशार्दूल आजग्मुर्मुनयोऽमला ॥४२॥
वसिष्ठवामदेवाद्या ये चान्ये च महर्षयः। भ्रमन्तः पुण्यतीर्थानि प्राप्नुवंस्तस्य तां गुहाम् ॥४३॥
आगतांस्तानृषीञ्ज्ञात्वा गौतमः सह भार्यया। सत्कारमकरोत्तेषां जहसुस्तं च केचन ॥४४॥
ये बाला यौवनोन्मत्ता वयसा ये च मध्यमा। वृद्धां च गौतमं प्रेक्ष्य जहसुस्तत्र केचन ॥४५॥

ऋषय ऊचुः

पुत्रोऽयं तव पौत्रो वा वृद्धे को गौतमोऽभवत्। सत्यं वदस्व कल्याणि इत्येवं जहसुर्द्विजाः ॥४६॥

शुभे! पहले तुम मुझको रूपवान् और विद्यावान् बनाओ, पश्चात् मैं योग्य होकर तुम्हारी बातों का पालन करूँगा। यह सुनकर वृद्धा ने ब्राह्मण से कहा ॥३६-३७॥

वृद्धा ने कहा—द्विज! मैंने अपनी तपस्या से सरस्वती देवी को प्रसन्न कर लिया है, इसी प्रकार रूपवान् जलदेव (वरुण) और रूपदाता अग्नि को भी। इसलिए वह वागीश्वरी देवी तुम्हें विद्या और रूपवान् अग्नि तुमको रूप प्रदान करेंगे ॥३८-३९॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार उस गौतम से कहकर वृद्धा ने सूर्यदेव से प्रार्थना की और उनको प्रार्थना से प्रसन्न कर उस कुरूप मुनि को रूपवान् और विद्वान् बना दिया ॥४०॥ इस प्रकार रूपवान् बनने के बाद उस सुरूप विद्वान् और भाग्यशाली ब्राह्मण ने उस वृद्धा को अपनी पत्नी बना लिया और उस गुहा में उस सुन्दरी के साथ बहुत वर्षों तक आनन्दपूर्वक विहार किया ॥४१॥ मुनिशार्दूल! उस गिरि पर सानन्द विहार करने वाले दम्पति के पास किसी समय पवित्र मुनि लोग आये। वसिष्ठ, वामदेव आदि महर्षि जो अन्य महर्षियों के साथ पवित्र तीर्थों का भ्रमण कर रहे थे गौतम की उस गुहा में पहुँचे ॥४२-४३॥ उन महर्षियों को अपना अतिथि जान कर भार्या सहित गौतम ने उनका आतिथ्य सत्कार किया। उनमें जो बाल यौवन की उमंग से भरे और आयु में मध्य श्रेणी के थे वे उस वृद्धा गौतम को देखकर हँस पड़े ॥४४-४५॥

ऋषियों ने कहा—वृद्धे! यह गौतम तुम्हारा पुत्र है या पौत्र? कल्याणी! सत्य बताओ, यह तुम्हारा कौन है, यह कहकर वे द्विज हँसने लगे। अहा! वृद्ध के लिये युवती विष तुल्य और वृद्धा के लिये युवक

विष वृद्धस्य युवती वृद्धाया अमृत युवा। इष्टानिष्टसमायोगो दृष्टोऽस्माभिरहो चिरात् ॥४७॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवमूचिरे केचिदृषयो शृण्वतोस्तदा। एवमुक्त्वा कृतातिथ्या ययु सर्वे महर्षय ॥४८॥
ऋषीणां वचन श्रुत्वा उभावपि सुदु खितौ। लज्जितौ च महाप्राज्ञौ गौतमो भार्यया सह॥
पप्रच्छ मुनिशार्दूलमगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥४९॥

गौतम उवाच

को देश किमु तीर्थं वा यत्र श्रेय समाप्यते। शीघ्रमेव महाप्राज्ञ भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥५०॥

अगस्त्य उवाच

वदद्भिर्मुनिभिर्ब्रह्मन्मया श्रुतमिद वच । सर्वे कामास्तत्र पूर्णा गौतम्यो नात्र सशय ॥५१॥
तस्माद्गच्छ महाबुद्धे गौतमीं पापनाशिनीम्। अह त्वामनुयास्यामि यथेच्छसि तथा कुरु॥५२॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वाऽगस्त्यवाक्य वृद्धया गौतमोऽभ्यगात्। तत्र तेपे तपस्तीव्र पत्न्या स भगवानृषि ॥५३॥
स्तुतिं चकार देवस्य शंभोर्विष्णोस्तथैव च। गङ्गा च तोषयामास भार्यार्थे भगवानृषि ॥५४॥

अमृत तुल्य है इस प्रकार इष्ट (अच्छे) और अनिष्ट (बुरे) का सयोग हम लोगा ने बहुतसमय के बाद देखा है ॥४६ ४७॥

ब्रह्मा बोले—कुछ मुनियो ने इस प्रकार की हास्यजनक बात उन दम्पतियो के सामने कहा एसी हास्यजनक बातें कहकर वे सब महर्षि आतिथ्य सत्कार ग्रहण करने के बाद चले गये। ऋषियो की बातें सुनकर बुद्धिमान वे दोनो ही अत्यन्त दु खी और लज्जित हो गये। भार्या के साथ गौतम ऋषि श्रेष्ठ अगस्त्य ऋषि से पूछा ॥४८ ४९॥

गौतम ने कहा—महाप्राज्ञ! वह कौन सा देश अथवा तीर्थ है जहाँ जाकर कल्याण प्राप्त किया जा सकता है आप शीघ्र ही उस भुक्ति और मुक्ति देने वाले तीर्थ को बतलाइए ॥५०॥

अगस्त्य ने कहा—ब्रह्मन्! श्रेय-पथ बताने वाले मुनियो के मुख से मैंने सुना है कि गौतमी के पास जाने से मनुष्य की सारी इच्छायें पूर्ण हो जाती हैं इसमे सन्देह नहीं। इसलिये महाबुद्धि! तुम पापनाशिनी गौतमी के पास जाओ। मैं तुमको केवल पथ प्रदर्शन कर रहा हूँ तुम जैसा चाहो वैसा करो ॥५१ ५२॥

ब्रह्मा बोले—अगस्त्य की उपर्युक्त बातो को सुनकर वृद्ध पत्नी के साथ गौतम गौतमी के तट पर चला गया। वहाँ पर उस समर्थ ऋषि ने पत्नी के सहित घोर तपस्या की। उस शक्तिसम्पन्न ऋषि ने इस प्रकार पत्नी के लिये शम्भु और भगवान् विष्णु की स्तुति की तथा गगा को प्रसन्न किया ॥५३ ५४॥

गौतम उवाच

खिन्नात्मनामत्र भवे त्वमेव शरण शिव। मरुभूमावध्वगाना विटपीव प्रियायुत ॥५५॥
उच्चावचाना भूताना सर्वथा पापनोदन। सस्याना घनवत्कृष्ण त्वमवग्रहशोषिणाम् ॥५६॥
वैकुण्ठदुर्गनि श्रेणिस्त्व पीयूषतरङ्गिणी। अधोगताना तप्ताना शरण भव गौतमि ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तुष्टाऽवदद्वाक्य गौतम वृद्धया युतम्। शरणागतदीनार्तं शरण्या गौतमी मुदा ॥५८॥

गौतम्युवाच

अभिषिञ्चस्व भार्या त्व मज्जलैर्मन्त्रसयुतं। कलशैरुपचारैश्च तत पत्नी तव प्रिया ॥५९॥
सुरूपा चारुसर्वाङ्गी सुभगा चारुलोचना। सर्वलक्षणसपूर्णा रम्यरूपमवाप्स्यति ॥६०॥
रूपवत्या पुनस्त्व वै भार्यया चाभिषेचित। सर्वलक्षणसपूर्ण कान्त रूपमवाप्स्यसि ॥६१॥

ब्रह्मोवाच

तथेति गाङ्गवचनाद्यथोक्त तौ च चक्रतु। सुरूपतामुभौ प्राप्तौ गौतम्याश्च प्रसादत ॥६२॥
अभिषेकोदक यच्च सा नदी समजायत। तस्या नाम्ना तु विख्याता वृद्धाया मुनिसत्तम ॥६३॥
वृद्धा नदीति विख्याता गौतमोऽपि तथोच्यते। वृद्धगौतम इत्युक्त ऋषिभि समवासिभि ॥
वृद्धा तु गौतमीं प्राह गङ्गा प्रत्यक्षरूपिणीम् ॥६४॥

गौतम ने कहा—इस ससार म आर्तजनो के तप्त मरुभूमि के मध्य यात्रा करने वाले पथिको के रक्षक वृक्ष के समान हे उमा सहित शकर जी! आप ही रक्षक हैं। कृष्ण! अनावृष्टि से सूखते हुए धान के खेतो को जिस प्रकार मेघ हरा बना देता है उसी प्रकार तुम अधम पुरुष के पापो को दूर कर सुखी बना देते हो। भगवति गौतमी! तुम अमृतमय तरगो वाली और स्वर्ग रूपी दुर्ग की सीढी हो, इस समय अधम और आर्त मेरी रक्षा करो ॥५५-५७॥

ब्रह्मा ने कहा—गौतम की प्रार्थना सुनकर भक्तवत्सल गौतमी ने प्रसन्न होकर वृद्ध भार्या के सहित शरण म आये दीन और आर्त गौतम से कहा ॥५८॥

गौतमी ने कहा—तुम मन्त्रोच्चारण कलशस्थापन और अन्यान्य यान्त्रिक उपचारो और कलश मे रखे हुए मेरे जल स अपनी भार्या का अभिषेक करो। ऐसा करने से तुम्हारी प्रिय पत्नी सर्वाङ्गसुन्दरी, सुरूप सौभाग्यवती सुलोचना और सब लक्षणो से युक्त हो मनोहर रूप को प्राप्त कर लेगी। पुन अपनी रूपवती भार्या द्वारा अभिषिक्त होने पर तुम भी सुन्दर रूप प्राप्त कर लोगे ॥५९-६१॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा ही होगा यह कहकर गगा के कथनानुसार उन दोनो ने परस्पर अभिषेक किया, जिसम गौतमी की कृपा से वे दोनो अत्यन्त रूपवान् हो गये। अभिषेक का जो जल था उससे एक नदी उत्पन्न हो गई। मुनिश्रेष्ठ! वह उस वृद्धा क नाम से वृद्धानदी नाम से प्रसिद्ध हो गई। गौतम भी वृद्धा के साथ रहने के कारण सहयोगी ऋषियो के कथनानुसार वृद्ध गौतम नाम से प्रसिद्ध हो गया। उस वृद्धा ने प्रत्यक्ष रूपवाली गौतमी गगा से कहा ॥६२-६४॥

वृद्धोवाच

मन्नाम्नीयं नदी देवि वृद्धा चेत्यभिधीयताम्। त्वया च संगमस्तस्यास्तस्यास्तीर्थमनुत्तमम्॥६५॥
रूपसौभाग्यसंपत्तिपुत्रपौत्रप्रवर्धनम् । आयुरारोग्यकल्याणं जयप्रीतिविवर्धनम् ॥
स्नानदानादिहोमैश्च पितॄणां पावनं परम् ॥६६॥

ब्रह्मोवाच

अस्त्वित्याह च तां गङ्गा सुवृद्धां गौतमप्रियाम्। गौतमस्थापितं लिङ्गं वृद्धानाम्नैव कीर्तितम्॥६७॥
तत्रैव च मुदं प्राप्तो वृद्धया मुनिसत्तमः। तत्र स्नानं च दानं च सर्वाभीष्टप्रदायकम्॥६८॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं वृद्धासंगममुच्यते ॥६९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये वृद्धासंगमाद्युभयतटसप्तदशतीर्थवर्णनं नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः॥१०७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

अथाष्टाधिकशततमोऽध्यायः

इलातीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

इलातीर्थमिति ख्यातं सर्वसिद्धिकरं नृणाम्। ब्रह्महत्यादिपापानां पावनं सर्वकामदम्॥१॥

वृद्धा ने कहा—देवि! यह नदी मेरे नाम पर 'वृद्धा' इस नाम से पुकारी जाय और इसका तुम्हारे साथ संगम हो तथा यह संगम-तीर्थ परमोत्तम हो। यहाँ स्नान, दान और होम करने से यह रूप, सौभाग्य, संपत्ति पुत्र, पौत्र बढाने वाला, आयु, आरोग्य, कल्याण, विजय और प्रेम बढाने वाला, तथा पितरों को पवित्र कर देने वाला हो॥६५-६६॥

ब्रह्मा ने कहा—गंगा ने उस सुरूपवृद्धा, गौतम भार्या से कहा कि ऐसा ही होगा। गौतम द्वारा स्थापित लिङ्ग भी वृद्धा नाम से ही प्रसिद्ध हुआ। वहीं उस वृद्धा के साथ गौतम को अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ था। उस तीर्थ में स्नान और दान करने से सब अभीष्ट पदार्थ प्राप्त होते हैं। तब से वह तीर्थ वृद्धासंगम के नाम से प्रसिद्ध हो गया॥६७-६९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में वृद्धासंगमतीर्थमाहात्म्यवर्णन नामक एक सौ सातवाँ अध्याय समाप्त॥१०७॥

अध्याय १०८

इलातीर्थ का वर्णन

***ब्रह्मा ने कहा**—मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धि देने वाला इलातीर्थ नामक एक विख्यात पवित्र तीर्थ* है, जो ब्रह्महत्या आदि पापों को भी दूर कर मनुष्य की सब प्रकार की इच्छायें पूर्ण करता है। वैवस्वत वंश में इल

वैवस्वतान्वये जात इलो नाम जनेश्वर । महत्या सेनया सार्धं जगाम मृगयावनम् ॥२॥
परिबभ्राम गहन बहुव्यालसमाकुलम् । नानाकारद्विजयुत विटपै परिशोभितम् ॥३॥
वनेचर नृपश्रेष्ठो मृगयागतमानस । तत्रैव मतिमाधत्त इलोऽमात्यानथाब्रवीत् ॥४॥

इल उवाच

गच्छन्तु नगर सर्वे मम पुत्रेण पालितम्। देश कोश बल राज्य पालयन्तु पुनश्च तम् ॥५॥
वसिष्ठोऽपि तथा यातु आदायाग्नीन्पितेव न । पत्नीभि सहितो धीमानरण्येऽह् वसाम्यथ ॥६॥
अरण्यभोगभुग्भिश्च वाजिवारणमानुषै । मृगयाशीलिभि कैश्चिद्यान्तु सर्व इत पुरीम् ॥७॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा ययुस्तेऽपि स्वय प्रायाच्छनैर्गिरिम्। हिमवन्त रत्नमय वसस्तत्र इलो नृप ॥८॥
ददर्श कन्दर तत्र नानारत्नविचित्रितम्। तत्र यक्षेश्वर कश्चित्समन्युरिति विश्रुत ॥९॥
तस्य भार्या समानाम्नी भर्तृव्रतपरायणा। तस्मिन्वसत्यसौ यक्षो रमणीये नगोत्तमे ॥१०॥
मृगरूपेण व्यचरद्भार्यया स महामति । स्वेच्छया स्ववने यक्ष क्रीडते नृत्यगीतकै ॥११॥
इत्थ स यक्षो जानाति मृगरूपधरोऽपि च। इलस्तु त न जानाति कन्दर यक्षपालितम् ॥१२॥

नामक एक नरेश हुआ। एक समय वह बहुत बडी सेना लेकर शिकार खेलने के लिये वन मे गया। वह अनेको सर्पों स भरे विभिन्न आकार वाले पक्षियो स व्याप्त अनेक प्रकार के वृक्षो से सुशोभित उस गहन वन मे घूमने लगा। उस वन म घूमते हुए मृगयाप्रेमी नृपश्रेष्ठ के मन म उसी वन म रहने की भावना उत्पन्न हुई। अत उन्होंने अपने मन्त्रियो से कहा ॥१ ४॥

इल ने कहा—तुम सब मेरे पुत्र द्वारा रक्षित नगर को चले जाओ। वहाँ जाकर देश कोश, सेना राज्य और उस मेरे पुत्र की रक्षा करो। पितृतुल्य गुरु वसिष्ठ भी अग्नि और रानियो को साथ लेकर चले जाय। मैं यहीं जगली पदार्थों को खाकर रह सकने वाले अपने थोडे से अनुचरो आखेटकुशल हाथी घोडे और मनुष्यो के साथ निवास करूँगा। और सब यहाँ स अपनी पुरी (राजधानी) को लौट जायँ ॥५-७॥

ब्रह्मा ने कहा—जैसी आज्ञा यह कहकर वे सभी चले गये। वह राजा इल भी धीरे धीरे रत्नमय हिमालय पहाड की ओर चल पडा। वहाँ जाकर उसने डेरा डाल दिया ॥८॥ उसने एक दिन नाना रत्नो स सुसज्जित कन्दरा देखी। उस कन्दरा म कोई सुमन्यु नाम का यक्षराज रहता था॥९॥ उसकी समा नाम की पतिव्रता भार्या थी। पत्नी सहित वह यक्ष उस परम रम्य हिमगिरि पर रहता था॥१०॥ वह महामति यक्ष इच्छानुरूप मृगरूप धारण कर अपनी भार्या के साथ नृत्य गान करता हुआ स्वच्छया विहार करता था॥११॥ इस प्रकार मृग रूप धारण करने पर भी वह यक्ष अपनी कन्दरा को अच्छी तरह जानता था परन्तु इल यक्ष द्वारा अधिकृत उस कन्दरा के विषय

१-५ ०यन्त प्रजाश्च। २ क ०थ स्वय वसन्निशो।

यक्षस्य गेहं विपुलं नानारत्नविचित्रितम्। तत्रोपविष्टो नृपतिर्महत्या सेनया वृतः ॥१३॥
वासं चक्रे स तत्रैव गेहे यक्षस्य धीमतः। स यक्षोऽधर्मकोपेन भार्यया मृगरूपधृक् ॥१४॥
इलं जेतुं न शक्नोमि याचितो न ददाति च। हृतं गेहं ममानेन किं करोमीत्यचिन्तयत् ॥१५॥
युधि मत्तं कथं हन्या चेति स्थित्वा स यक्षराट्। आत्मीयान्प्रेषयामास यक्षाञ्शूरान्धनुर्धरान् ॥१६॥

यक्ष उवाच

युद्धे जित्वा च राजानमिलमुद्धतदन्तिनम्। गृहाद्यथाऽन्यतो याति मम तत्कर्तुमर्हथ ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

यक्षेश्वरस्य तद्वाक्याद्यक्षास्ते युद्धदुर्मदाः। इलं गत्वाऽब्रुवन्सर्वे निर्गच्छास्माद्गुहालयात् ॥१८॥
न चेद्युद्धात्परिभ्रष्टः पलाय्य क्व गमिष्यसि। तद्यक्षवचनात्कोपाद्युद्धं चक्रे स राजराट् ॥१९॥
जित्वा यक्षान्बहुविधानुवास दश शर्वरीः। यक्षेश्वरो मृगो भूत्वा भार्ययाऽपि वने वसन् ॥२०॥
हृतगेहो वनं प्राप्तो हृतभृत्यः स यक्षिणीम्। प्राह चिंतापरो भूत्वा मृगीरूपधरां प्रियाम् ॥२१॥

यक्ष उवाच

राजाऽयं दुर्मना कान्ते व्यसनासक्तमानसः। कथमायाति विपदं तत्रोपायो विचिन्त्यताम् ॥२२॥
पार्थिवव्यसनान्तानि राज्यान्यखिलभूभुजाम्। प्रापयोमावनं सुभ्रूर्मृगी भूत्वा मनोहरा ॥२३॥

मे अनभिज्ञ-सा था ॥१२॥ यक्ष का वह गृह बहुत बड़ा और नाना रत्नों से सुसज्जित था। अपनी बहुत बड़ी सेना के साथ वह नृपति उस बुद्धिमान् यक्ष के घर में निवास करने लगा। मृगरूप धारी भार्या के सहित वह यक्ष इस अन्याय को देखकर अत्यन्त कुपित हुआ। वह सोचने लगा कि इस इल को मैं युद्ध में जीत नहीं सकता माँगने पर यह दे नहीं रहा है अब क्या करूं। इस उन्मत्त को युद्ध में कैसे हराऊं—यह सोचकर उस यक्षराज ने अपने धनुर्धर शूर यक्ष सैनिकों को लड़ने के लिये भेजा और कहा ॥१३-१६॥

यक्ष ने कहा—सैनिको! राजा इल को—जिसके पास बहुत से मतवाले हाथी हैं—युद्ध में जीत कर जिस किसी प्रकार वह मेरे घर से अन्यत्र चला जाय वही प्रयत्न करना ॥१७॥

ब्रह्मा ने कहा—यक्षाधिपति की बातों को सुनकर वे युद्ध दुर्मद यक्ष उसके पास गये और कहा कि हे राजन्! तुम इस गुहा-गृह से निकल जाओ। नहीं तो युद्ध में हार जाने पर तुम भगकर कहाँ जा सकोगे। यक्षों की *अनिष्ट बातों को सुनकर वह सम्राट इल कुपित हो युद्ध करने लगे। युद्ध में उसने अनेकों यक्षों को हराकर दस रात्रि* तक आनन्दपूर्वक उस गुहा में रहा। इधर वह मृगरूपधारी यक्ष जो अपनी भार्या के साथ वन में निवास कर रहा था गृह विहीन और जन विहीन हो गया। उसने वन में मृगी रूप धारी अपनी यक्षिणी भार्या से अत्यन्त चिंतित होकर कहा ॥१८-२१॥

यक्ष ने कहा—कान्ते! यह दुष्ट राजा किस प्रकार विपत्ति ग्रस्त हो सकता है इसके लिये उपाय सोचना चाहिये। अधिकतर सम्पूर्ण भूमिपालों का शासन इसी प्रकार अन्याय और दुर्व्यसन में कलंकित है। हे सुन्दर भौंवाली! तुम मनोहर मृगी बनकर इस राजा को उमावन में पहुँचा दो। जब यह उस वन में घुसेगा निश्चय ही

प्रविशेत्तत्र राजाऽय स्त्री भविष्यत्यसशयम। करणीय त्वया भद्रे न चैतद्युज्यते मम॥
अह तु पुरुषो येन त्व पुन स्त्री च यक्षिणी ॥२४॥

यक्षिण्युवाच

कथ त्वया न गन्तव्यमुमावनमनुत्तमम्। गतेऽपि त्वयि को दोषस्तन्मे कथय तत्त्वत ॥२५॥

यक्ष उवाच

हिमवत्पर्वतश्रेष्ठ उमया सहित शिव। देवैर्गणैरनुवृतो विचचार यथासुखम्॥
पार्वती शकर प्राह कदाचिद्रहसि स्थितम् ॥२६॥

पार्वत्युवाच

स्त्रीणामेव स्वभावोऽस्ति रत गोपायित भवेत्। तस्मान्मे नियत देशमाज्ञया रक्षित तव॥२७॥
देहि मे त्रिदशेशान उमावनमिति श्रुतम्। विना त्वया गणेशेन कार्तिकेयेन नन्दिना॥२८॥
यस्त्वत्र प्रविशेन्नाथ स्त्रीत्व तस्य भवेदिति ॥२९॥

यक्ष उवाच

इत्याज्ञोमावने दत्ता प्रसन्नेनेन्दुमौलिना। किं करोमि पुमान्कान्ते त्वया प्रणयनार्दित ॥
तस्मान्मया न गन्तव्यमुमाया वनमुत्तमम ॥३०॥

स्त्री हो जायगा। भद्र! यह काय तुम्हारे ही करने योग्य है मुझसे यह नहीं हो सकता। क्योंकि मैं पुरुष हूँ इसलिये वहाँ नहा जा सकता। तुम तो यक्षिणी स्त्री हो ॥२२ २४॥

यक्षिणी न कहा—तुम उस परम मनोहर उमावन म क्यो नही जा सकते? तुम्हारे जाने से क्या अनिष्ट होगा? उसको यथाथ रूप से मुझको कहो ॥२५॥

यक्ष ने कहा—एक समय पवतशिरोमणि हिमालय पर उमा के साथ शकर जी सुख पूवक भ्रमण कर रहे थे उनक पीछ पीछ देवता भी थ। किसी समय पावती न एकान्त म बठ शकर स कहा ॥२६॥

पावती ने कहा—स्त्रियो का यह स्वभाव है कि अत्यन्त गुप्त रूप स उनका पुरुष के साथ सहवास हो। इसलिये देवनाथ! मेरे लिये एक नियत रूप स गुप्त और अपनी आज्ञा स सुरक्षित स्थान दीजिये। वह उमावन नाम स प्रसिद्ध रहे। नाथ! तुमको गणप कार्तिकय और नन्दी को छोडकर जो कोई इतर व्यक्ति यहाँ प्रवेश करे वह अवश्य स्त्रीत्व प्राप्त करे (स्त्री हो जाय) ॥२७ २९॥

यक्ष बोला—शकर ने प्रसन्न होकर इस प्रकार की आज्ञा दे दी। कान्ते! मैं पुरुष हूँ इसलिये विवश हूँ क्या करूँ। तुमने मुझस प्यार स पूछा है इसलिये यह रहस्य बता दिया। इसलिये उस परम रमणीय उमावन म मेरा जाना उचित नही है ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

तद्भर्तृवचनं श्रुत्वा यक्षिणी कामरूपिणी। मृगी भूत्वा विशालाक्षी इलस्य पुरतोऽभवत् ॥३१॥
यक्षस्तु सस्थितस्तत्र ददर्शेलो मृगीं तदा। मृगयासक्तचित्तो वै मृगीं दृष्ट्वा विशेषत ॥३२॥
एक एव हयारूढो निर्ययौ ता मृगीमनु। साऽऽकर्षत शनैस्तं तु राजान मृगयाकुलम् ॥३३॥
शनैर्जगाम सा तत्र यदुमावनमुच्यते। अदृश्या तु मृगी तस्मै दर्शयन्ती क्वचित्क्वचित् ॥३४॥
तिष्ठन्ती चैव गच्छन्ती धावन्ती च बिभीतवत्। हरिणी चपलाक्षी सा तमाकर्षद्‌द्रुमावनम् ॥३५॥
अनुप्राप्तो हयारूढस्तत्प्राप स उमावनम्। उमावन प्रविष्ट त ज्ञात्वा सा यक्षिणी तदा ॥३६॥
मृगीरूपं परित्यज्य यक्षिणी कामरूपिणी। दिव्यरूप समास्थाय चाशोकतरुसंनिधौ ॥३७॥
तच्छाखालम्बितकरा दिव्यगन्धानुलेपना। दिव्यरूपधरा तन्वी कृतकार्या समा तदा ॥३८॥
हसन्ती नृपति प्रेक्ष्य श्रान्तं हयगत तदा। मृगीमालोकयन्त त चपलाक्षमिल तदा ॥३९॥
भर्तृवाक्यमशेषेण स्मरन्ती प्राह भूमिपम् ॥४०॥

समोवाच

हयारूढाऽबला तन्वि क्व एकैव तु गच्छसि। पुरुषस्य च वेदेण इले कमनुयास्यसि ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

इलेति वचन श्रुत्वा राजाऽसौ क्रोधमूर्च्छित । यक्षिणीं भर्त्सयित्वाऽसौ तामपृच्छन्मृगीं पुन ॥४२॥

ब्रह्मा बोले—पति की बातें सुनकर इच्छानुकूल रूप परिवर्तन करनेवाली यक्षिणी दीर्घलोचन मृगी बनकर राजा इल के सामने आई। वहीं बैठे हुए राजा न उस समय मृगी और यक्ष को देखा। उस मृगी को देखकर मृगया प्रेमी राजा विशेष रूप से आकृष्ट हो गया। वह अकेला ही घोड पर सवार होकर उस मृगी के पीछे निकल पडा। उस मृगी से आखेट के लिये उतावले राजा को अपने वश म कर लिया। वह धीरे धीरे उस स्थान पर गई जो उमा वन कहा जाता था। वह कहीं कहीं अपने को प्रकट करती कभी छिपाती कभी, बैठती कभी चलती और कभी डरी हुई सी दौडती थी। इस प्रकार अनेकों हाव भाव दिखाती हुई वह चपल नत्रा वाली मृगी उस राजा को उमा वन तक खींच ल गई। राजा अश्वारूढ हो उसके पीछ पीछे उस उमा वन तक चला गया। उस समय जब उस यक्षिणी ने राजा को उमा वन म फँसा हुआ जान लिया तब वह काम रूपिणी यक्षिणी मृगीरूप छोड दिव्यरूप धारण कर अशोक वृक्ष के निकट शाखा को हाथ म पकड कर खडी हो गई। दिव्य सुगन्धित लेपो को अग म लगाये हुई दिव्य रूप वाली वह तन्वी समा अपने को कृतकृत्य सी समझने लगी। तब वह चपल नत्र वाला थका माँदा अश्वारोही मृगी को इधर उधर देखने लगा। इस प्रकार विस्मित राजा को देखकर वह हँसने लगी और अपने पति (यक्ष) की आज्ञा को पूर्ण-रूप से स्मरण करती हुई राजा से बोली ॥३१-४०॥

समा बोली—कृशाङ्गी ! घोडे पर सवार होकर अबला तुम अकेले कहाँ जा रही हो ? इल ! पुरुष-वेश बनाकर किस प्रेमी के पीछे पागल हो रही हो ? ॥४१॥

ब्रह्मा बोले—यह सुनकर वह राजा क्रोध से पागल हो उठा। पुन यक्षिणी को बुरा भला कहकर उसने

तथाऽपि यक्षिणी प्राह इले किमनुवीक्षसे। इलेति वचनं श्रुत्वा धृतचापो हयस्थितः ॥४३॥
कुपितो दर्शयामास त्रैलोक्यविजयी धनु[१]। पुनः सा प्राह नृपतिं महात्मानमिले स्वयम् ॥४४॥
प्रेक्षस्व पश्चान्मा ब्रूहि असत्या सत्यवादिनीम्। तदा चाऽऽलोकयद्राजा स्तनौ तुङ्गौ भुजान्तरे ॥४५॥
किमिदं मम संजातमित्येव चकितोऽभवत् ॥४६॥

इलोवाच

किमिदं मम सजात जानीते भवती स्फुटम्। वद सर्वं यथातथ्य त्व का वा वद सुव्रते ॥४७॥

यक्षिण्युवाच

हिमवत्कंदरश्रेष्ठे समन्युर्वसते पति। यक्षाणामधिपः श्रीमांस्तद्भार्याऽहं तु यक्षिणी ॥४८॥
यत्कंदरे भवान्राजा तूपविष्टः सुशीतले। यस्य यक्षा हता मोहात्त्वया हि संगरं विना ॥४९॥
ततोऽहं निर्गमार्थं ते मृगी भूत्वा उमावनम्। प्रविष्टा त्वं प्रविष्टोऽसि पुरा प्राह महेश्वरः ॥५०॥
यस्त्वत्र प्रविशेन्मन्दः पुमान्स्त्रीत्वमवाप्स्यति। तस्मात्स्त्रीत्वमवाप्तोऽसि न त्वं दु:खितुमर्हसि ॥
प्रौढोऽपि कोऽत्र जानाति विचित्रभवितव्यताम् ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

यक्षिणीवचन श्रुत्वा हयारूढस्तदाऽपतत्। तमाश्वास्य पुन: सैव यक्षिणी वाक्यमब्रवीत् ॥५२॥

उस मृगी के विषय मे पूछा। पूछने पर यक्षिणी ने कहा—'इले! क्या ढूढ रही हो?' 'इले' ऐसा सबोधन सुनकर अश्व पर बैठे बैठे, राजा ने कुपित होकर अपना त्रैलोक्य-विजयी धनुष दिखलाया। फिर यक्षिणी ने महात्मा इल से कहा 'स्वय अपने को देख लो, पश्चात् मुझे सत्यवादिनी या असत्यवादिनी कहो'। तब राजा ने अपनी भुजाओ के बीच उमडे हुए दो स्तनो को देखा। आह! 'यह क्या हो गया' इस प्रकार वह आश्चर्यचकित हो गया ॥४२-४६॥

इला ने कहा—यह मुझे क्या हो गया, इस बात को तुम अच्छी तरह जानती हो। मुझसे सब ठीक ठीक कहो। सुव्रते! तुम कौन हो यह भी बताओ ॥४७॥

यक्षिणी ने कहा—हिमालय की रमणीय कन्दरा मे मेरा समन्यु नामक पति रहता है जो यक्षो का राजा और अत्यन्त श्रीमान् है। मैं उसी की भार्या यक्षिणी हूँ। जिस अतिशीतल रम्य कन्दरा मे आप राजा बनकर बैठे थे और जिसके यक्षा को आपने प्रमाद वश बिना युद्ध के ही मार डाला। उसके कारण मैं आपको वहाँ से निकालने के लिये मृगी बन कर इस उमावन म प्रविष्ट हुई। मेरे पीछे तुम भी घुस आये। कुछ समय पहले शकर ने पार्वती से कहा था कि जो मूर्ख पुरुष यहाँ प्रवेश करेगा वह स्त्रीरूप प्राप्त करेगा। इस प्रकार तुम स्त्री हो गये हो, तुम्हें इस विषय म दु:खित होने की आवश्यकता नही। इस ससार म कोई अति चतुर व्यक्ति भी विचित्र भवितव्यता को नही जानता है ॥४८-५१॥

ब्रह्मा बोले—यक्षिणी की बात सुनकर वह घोडे पर से गिर पडा। उसे सान्त्वना देकर पुन यक्षिणी उससे कहने लगी ॥५२॥

---

[१] घ ०क्यजयिन भुजम्। पु०।

यक्षिण्युवाच

स्त्रीत्वं जातं जातमेव न पुंस्त्वं कर्तुमर्हसि। गृहाण विद्यां स्त्रीयोग्यां नृत्यं गीतमलंकृतिम्॥
स्त्रीलालित्यं स्त्रीविलासं स्त्रीकृत्यं सर्वमेव तत् ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

इला सर्वमथावाप्य यक्षिणीं वाक्यमब्रवीत् ॥५४॥

इलोवाच

को वा भर्ता किं नु कृत्यं पुनः पुंस्त्वं कथं भवेत्। एतद्वदस्व कल्याणी दुःखार्तायां विशेषतः॥
आर्तानामार्तिशमनाच्छ्रेयो नाभ्यधिकं क्वचित् ॥५५॥

यक्षिण्युवाच

बुधः सोमसुतो नाम वनादस्माच्च पूर्वतः। आश्रमस्तस्य सुभगे पितरं नित्यमेष्यति॥५६॥
अनेनैव पथा सोमं पितरं स बुधो ग्रहः। द्रष्टुं याति ततो नित्यं नमस्कर्तुं तथैव च॥५७॥
यदा याति बुधः शान्तस्तदाऽऽत्मानं च दर्शय[1]। तं दृष्ट्वा त्वं तु सुभगे सर्वकामानवाप्स्यसि॥५८॥

ब्रह्मोवाच

तामाश्वास्य ततः सुभ्रूर्यक्षिण्यन्तरधीयत। यक्षिणी सा समाचष्ट यक्षोऽपि सुखमाप्तवान्॥५९॥

यक्षिणी ने कहा—अब स्त्रीत्व हो गया सो तो रहेगा ही तुम किसी भी प्रकार इसको पुंस्त्व में बदल नहीं सकते हो। अर्थात् अब स्त्री से पुरुष नहीं बन सकते। अब स्त्रीजनोचित नृत्य गीत अलंकार स्त्रियों के हावभाव सौन्दर्य आदि सम्पूर्ण स्त्री योग्य कलाओं को मुझसे सीख लो॥५३॥)

ब्रह्मा ने कहा—इला सब कलाओं को यक्षिणी से सीखकर पुनः यक्षिणी से बोली॥५४॥

इला बोली—मेरा पति कौन होगा मुझे क्या करना होगा पुनः मैं पुरुषत्व कैसे प्राप्त करूँगी। इन बातों को विशेष रूप से मुझ दुःखी को बतलाओ। दुःखियों के दुःख को दूर करने की अपेक्षा अधिक पुण्य इस संसार में कहीं भी नहीं है॥५५॥

यक्षिणी ने कहा—सुभगे! सोमपुत्र बुध का इस वन से पूर्व की ओर आश्रम है। वह प्रतिदिन पिता के पास जाते हैं। वह बुध (ग्रह) इसी मार्ग से पिता को देखने और प्रणाम करने के लिये प्रतिदिन जाते हैं। जब शान्त बुध इस मार्ग से जाने लगें तो तुम अपने को दिखाओ। सुभगे! तुम उनको देखकर (परिचय प्राप्त कर) अवश्य सम्पूर्ण इच्छाओं को प्राप्त कर सकोगे॥५६-५८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार उसको समझा-बुझाकर वह सुन्दर भौं वाली यक्षिणी अन्तर्हित हो गई। उसने अपने पति (यक्ष) से सारी घटना सुना दी। यक्ष ने भी यह सुनकर सुख को प्राप्त किया। जो वहाँ इल की सेना पड़ी

---

१. घ. ०य। तत्प्रसादवशात्सर्वानिले का०।

इलसैन्य च तत्राऽऽसीत्तद्गत च यथासुखम्। उमावनस्थिता चेला गायन्ती नृत्यती पुन ॥६०॥
स्त्रीभावमनुचेष्टन्ती स्मरन्ती कर्मणो गतिम्। कदाचित्क्रियमाणे तु इलया नृत्यकर्मणि॥६१॥
तामपश्यद्बुधो धीमान्पितर गन्तुमुद्यत । इला दृष्ट्वा गति त्यक्त्वा तामागत्याब्रवीद्बुध ॥६२॥

बुध उवाच

भार्या भव मम स्वस्था सर्वाभ्यस्त्व प्रिया भव ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

बुधवाक्यमिला भक्त्या त्वभिनन्द्य तथाऽकरोत्। स्मृत्वा च यक्षिणीवाक्य ततस्तुष्टाऽभवन्मुने॥६४॥
बुधो रेमे तया प्रीत्या नीत्वा स्वस्थानमुत्तमम्। सा चापि सर्वभावेन तोषयामास त पतिम्॥
ततो बहुतिथे काले बुधस्तुष्टोऽवदत्प्रियाम् ॥६५॥

बुध उवाच

कि ते देय मया भद्रे प्रिय यन्मनसि स्थितम् ॥६६॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यसमकाल तु पुत्र देहीत्यभाषत। इला बुध सोमसुत प्रीतिमन्त प्रिय तथा॥६७॥

बुध उवाच

अमोघमेतन्मद्वीर्य तथा प्रीतिसमुद्भवम्। पुत्रस्ते भविता तस्मात्क्षत्रियो लोकविश्रुत ॥६८॥

हुई थी वह अपनी राजधानी को सुखपूर्वक लौट गई। (इधर इला उस उमावन मे रहने लगी। वह कभी गाती नाचती पुन अपने कर्म की गति का स्मरण करती हुई स्त्री-सुलभ कामनाओ की इच्छा करती थी। किसी समय इला नृत्य कर रही थी उसी समय बुद्धिमान् बुध पिता के पास जाने को तैयार थे। उसको देखकर उन्होने अपनी यात्रा स्थगित कर दी और इला के पास आकर कहा ॥५९ ६२॥)

बुध ने कहा—तुम मेरी प्रिय भार्या बन जाओ। तुम सब स्त्रियो से अधिक प्रिय बनो ॥६३॥

ब्रह्मा ने कहा—इला ने बुध की बातो का आदर के साथ समर्थन किया और उसकी भार्या बन गई। मुने ! वह यक्षिणी की बातो का स्मरण कर अत्यन्त प्रसन्न हुई। बुध उसको अपने उत्तम स्थान पर लिवा ले गये और प्रीतिपूर्वक उसके साथ विहार करने लगे। उसने भी प्रत्येक प्रकार से अपने पति को प्रसन्न किया। इस प्रकार बहुत समय बीत जाने पर बुध ने प्रसन्न होकर अपनी प्रिया से कहा ॥६५॥

बुध ने कहा—भद्रे ! तुमको क्या दू ? तुम्हारे मन मे जिस प्रिय वस्तु की इच्छा हो, वही मैं अवश्य प्रदान करूँगा ॥६६॥

ब्रह्मा ने कहा—बुध की बातें अभी समाप्त नही हुई थी कि 'पुत्र दीजिये', ऐसा उसने अपने प्रिय प्रेमी सोमपुत्र बुध से कहा ॥६७॥

बुध ने कहा—मेरा यह तुम्हारे प्रति अत्यन्त प्रेम के कारण निकला हुआ वीर्य अमोघ है। इसलिये तुमको

सोमवंशकरः श्रीमानादित्य इव तेजसा। बुद्ध्या बृहस्पतिसमः क्षमया पृथिवीसमः ॥६९॥
शौर्येणाऽऽजौ हरिरिव कोपेन हुतभुग्यथा ॥७०॥

ब्रह्मोवाच

तस्मिंस्तूत्पद्यमाने तु बुधपुत्रे महात्मनि। जयशब्दश्च सर्वत्र त्वासीच्च सुरवेश्मनि॥७१॥
बुधपुत्रे समुत्पन्ने तत्राऽऽजग्मुः सुरेश्वराः। अहमप्यागमं तत्र मुदा युक्तो महामते॥७२॥
जातमात्रः सुतो रावमकरोत्स पृथुस्वरम्। तेन सर्वेऽप्यवोचन्वै संगता ऋषयः सुराः॥७३॥
यस्मात्पुरूरवोऽस्येति तस्मादेष पुरूरवाः। स्यादित्येव नाम चक्रुः सर्वे संतुष्टमानसाः॥७४॥
बुधोऽप्यध्यापयामास क्षात्रविद्यां सुतं शुभाम्। धनुर्वेदं सप्रयोगं बुधः प्रादात्तदाऽऽत्मजे॥७५॥
स शीघ्रं वृद्धिमगमच्छुक्लपक्षे यथा शशी। स मातरं दुःखयुतां समीक्ष्यैलो महामतिः॥
नमस्याय विनीतात्मा इलामैलोऽब्रवीदिदम् ॥७६॥

ऐल उवाच

बुधो मातर्मम पिता तव भर्ता प्रियस्तथा। अहं च पुत्रः कर्मण्यः कस्मात्ते मानसो ज्वरः॥७७॥

इलोवाच

सत्यं पुत्र बुधो भर्ता त्वं च पुत्रो गुणाकरः। भर्तृपुत्रकृता चिन्ता न ममास्ति कदाचन॥७८॥
तथाऽपि पूर्वजं किंचिद्दुःखं स्मृत्वा पुनः पुनः। चिन्तयेयं महाबुद्धे ततो मातरमब्रवीत्॥७९॥

लोक विख्यात क्षत्रिय पुत्र होगा। वह सोमवंश की नींव डालने वाला बुद्धिमान् तेज में आदित्य के समान बुद्धि में बृहस्पति के समान क्षमा में पृथिवी के समान युद्ध में पराक्रम प्रदर्शन में विष्णु के समान और क्रोध में अग्नि के समान होगा॥६८-७०॥

ब्रह्मा ने कहा—उस महात्मा बुध पुत्र के उत्पन्न होने पर स्वर्ग में सर्वत्र जयध्वनि होने लगी। बुध-पुत्र के उत्पन्न होने पर वहाँ देवेश उपस्थित हो गये। महामति! मैं भी वहाँ प्रसन्न होकर आया। उस बालक ने उत्पन्न होते ही अति ऊँचे स्वर से शब्द किया। इसलिये सब देवताओं और ऋषियों ने मिलकर कहा। यतः इसका रव (ध्वनि) पुरु (गम्भीर) है इसलिये इसका नाम पुररवा रखा जाय। इस प्रकार विचार विमर्श कर प्रसन्नतापूर्वक सबने उसका नाम पुरूरवा रख दिया। बुध ने भी अपने पुत्र को शुभ क्षात्रविद्या पढ़ाई और प्रयोगविधि सहित धनुर्वेद पुत्र को प्रदान किया। वह शीघ्रता से जिस प्रकार शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा दिनों दिन बढ़ता है उसी प्रकार बढ़ने लगा। उस विनीत महामतिमान् ऐल ने माता इला को दुःखी देख कर नमस्कार करके पूछा॥७१-७६॥

ऐल ने कहा—*माता! बुध मेरे पिता और तुम्हारे प्रिय पति हैं। मैं तुम्हारा कर्मकुशल मनस्वी पुत्र हूँ।* तो किस कारण तुमको इतना मानसिक व्यथा है?॥७७॥

इला ने कहा—पुत्र! यह सत्य है कि बुध मेरे पति और अतिगुणवान् तुम मेरे पुत्र हो। मुझे किसी प्रकार की पुत्र और पति सम्बन्धी चिन्ता नहीं है। फिर भी महाबुद्धिमान्! अपने पूर्व काल के दुःख का स्मरण कर बार-बार मुझे चिन्ता हो जाती है। यह सुनकर ऐल ने पुनः माता से कहा॥७८-७९॥

ऐल उवाच

निवेदयस्व मे मातस्तदेव प्रथमं मम ॥८०॥

ब्रह्मोवाच

इला चैनमुवाचेदं रहोवाचं कथं वदे। तथाऽपि पुत्र ते वच्मि पित्रोः पुत्रो यतो गतिः॥
मग्नानां दुःखपाथोऽब्धौ पुत्रः प्रवहणं परम् ॥८१॥

ब्रह्मोवाच

तन्मातृवचनं श्रुत्वा विनीतः प्राह मातरम्। पादयोः पतितश्चापि वद मातर्यथा तथा॥८२॥

ब्रह्मोवाच

सा पुरूरवसं प्राह इक्ष्वाकूणां तथा कुलम्। तत्रोत्पत्तिं स्वस्य नाम राज्यप्राप्तिं प्रियान्सुतान्॥८३॥
पुरोधसं वसिष्ठं च प्रियां भार्यां स्वकं पदम्। वननिर्याणमेवाथ अमात्यानां पुरोधसः॥८४॥
प्रेषणं च नगर्यां ता मृगयासक्तिमेव च। हिमवत्कंदरगतिं यक्षेश्वरगृहे गतिम्॥८५॥
उमावनप्रवेशं च स्त्रीत्वप्राप्तिमशेषतः। महेश्वराज्ञया तत्र चाप्रवेशं नरस्य तु॥८६॥
यक्षिणीवाक्यमप्यस्य वरदानं तथैव च। बुधप्राप्तिं तथा प्रीतिं पुत्रोत्पत्त्याद्यशेषतः॥८७॥
कथयामास तत्सर्वं श्रुत्वा मातरमब्रवीत्। पुरूरवाः किं करोमि किं कृत्वा सुकृतं भवेत्॥८८॥
एतावता ते तृप्तिश्चेदलमेतेन चाम्बिके। यदप्यन्यन्मनोवर्ति तदप्याज्ञापयस्व मे॥८९॥

ऐल ने कहा—मेरी माता! इसलिये मुझे सबसे पहले वही बात बताओ॥८०॥

ब्रह्मा ने कहा—इला ने पुत्र ऐल से कहा 'यह गुप्त भेद है, इसको मैं कैसे कहूँ। फिर भी हे पुत्र! तुमसे मैं कह रही हूँ। क्योंकि माता पिता का एकमात्र आधार पुत्र ही है। दुःखरूपी सागर में डूबे हुए गुरुजनों के लिये पुत्र ही उद्धार करने वाला महान् नौका है॥८१॥

ब्रह्मा ने कहा—माता की बातों को सुनकर वह माता के चरणों पर गिर पड़ा और उसने माता से विनम्र हो कहा कि माता! तुम सत्य सत्य कहो॥८२॥

ब्रह्मा बोले—इला ने अपने पुत्र पुरूरवा से, इक्ष्वाकु का वंशपरम्परागत कुल, उस कुल में अपनी उत्पत्ति, अपना नाम राज्य-प्राप्ति, प्रियपुत्रों की उत्पत्ति, पुरोहित वसिष्ठ, प्रिय भार्या अपनी राज्य-प्रतिष्ठा, मन्त्रियों और पुरोहितों के साथ वन को जाना, पुनः उनको राजधानी को भेजना, मृगया के प्रति आसक्ति, हिमालय की कन्दरा में पास आना, यक्षेश्वर के घर में प्रवेश करना, उमावन में प्रवेश करना, स्त्रीत्व प्राप्ति आदि बातें पूर्णरूप से तथा महेश्वर की आज्ञा से उमावन में पुरुष का प्रवेश-निषेध, यक्षिणी की बातें, बुध-प्राप्ति का वरदान और उनका विशाल प्रेम, पुत्र का उत्पन्न होना आदि सब कुछ बातें सम्पूर्ण रूप से कह दी। उन सब घटनाओं को सुनकर पुरूरवा ने माता से कहा—मैं कौन सा कार्य करूँ क्या करने से कल्याण होगा? माता! यदि इतने से (वर्तमान अवस्था से) तुम्हें सन्तोष है तब तो इस प्रकार की चिन्ता की आवश्यकता नहीं। यदि तुम्हारे मन में कोई दूसरी इच्छा है तो मुझे आज्ञा प्रदान करो॥८३-८९॥

इलोवाच

इच्छेयं पुंस्त्वमुत्कृष्टमिच्छेयं राज्यमुत्तमम्। अभिषेकं च पुत्राणां तव चापि विशेषतः॥९०॥
दानं दातुं च यष्टुं च मुक्तिमार्गस्य वीक्षणम्। सर्वं च कर्तुमिच्छामि तव पुत्र प्रसादतः॥९१॥

पुत्र उवाच

उपायं त्वां तु पृच्छामि येन पुंस्त्वमवाप्स्यसि। तपसो वाऽन्यतो वाऽपि वदस्व मम तत्त्वतः॥९२॥

इलोवाच

बुधं त्वं पितरं पृच्छ गत्वा पुत्र यथार्थवत्। स तु सर्वं तु जानाति उपदेक्ष्यति ते हितम्॥९३॥

ब्रह्मोवाच

तन्मातृवचनादैलो गत्वा पितरमञ्जसा। उवाच प्रणतो भूत्वा मातुः कृत्यं तथाऽऽत्मनः॥९४॥

बुध उवाच

इलं जाने महाप्राज्ञ इला जाता पुनस्तथा। उमावनप्रवेशं च शंभोराज्ञां तथैव च॥९५॥
तस्माच्छंभुप्रसादेन उमायाश्च प्रसादतः। विशापो भविता पुत्र तावाराध्य न चान्यथा॥९६॥

पुरूरवा उवाच

पश्येयं तं कथं देवं कथं वा मातरं शिवाम्। तीर्थाद्वा तपसो वाऽपि तत्प्रियं प्रथमं वद॥९७॥

इला ने कहा—मैं पुनः अपना उत्कृष्ट पुरुषभाव और उत्तम राज्य को चाहती हूँ। अपने पुत्रों का अभिषेक विशेष रूप से तुम्हारा अभिषेक करना चाहती हूँ। पुत्र! तुम्हारे प्रयास से मैं दान देना, यज्ञ करना और मुक्ति मार्ग का अनुसरण आदि सब कुछ चाहती हूँ॥९०-९१॥

पुत्र ने कहा—मैं तुमसे उन उपायों को पूछता हूँ जिनसे पुनः तुम पुंस्त्व प्राप्त कर सकती हो। चाहे वह तपस्या से हो या अन्य किसी प्रकार से, मुझसे तुम यथार्थरूप में कहो॥९२॥

इला ने कहा—पुत्र! तुम पिता बुध के पास जाओ उनसे यथार्थ मार्ग पूछो। वे सब कुछ जानते हैं तुमको हितकर उपाय बतायेंगे॥९३॥

ब्रह्मा ने कहा—माता के कथनानुसार ऐल ने पिता के पास जाकर विनम्र भाव से माता की तथा अपनी सम्पूर्ण कहानी सुना दी॥९४॥

बुध ने कहा—महाप्राज्ञ! मैं इल को तथा फिर उनका इलारूप में परिवर्तन हो जाना, उमावन में प्रवेश करना और शंकर की आज्ञा आदि घटनाओं को जानता हूँ। इसलिये हे पुत्र! शम्भु और उमा की कृपा से ही शाप से उद्धार हो सकेगा। उनकी आराधना से ही यह कार्य होगा अन्यथा नहीं॥९५-९६॥

पुरूरवा ने कहा—उन देव शंकर और माता उमा को कैसे देख सकता हूँ तीर्थयात्रा से या तपस्या से इसको पिताजी! आप पहले बतलाइये॥९७॥

बुध उवाच

गौतमीं गच्छ पुत्र त्व तत्राऽऽस्ते सर्वदा शिव । उमया सहित श्रीमाञ्छापहन्ता वरप्रद ॥९८॥

ब्रह्मोवाच

पुरूरवा पितुर्वाक्य श्रुत्वा तु मुदितोऽभवत। गौतमीं तपसे धीमान्गङ्गा त्रैलोक्यपावनीम् ॥९९॥
पुरुत्वमिच्छंस्तया मातुर्जगाम तपसे त्वरन्। हिमवन्त गिरिं नत्वा मातर पितर गुरुम् ॥१००॥
गच्छन्तमन्वगात्पुत्रमिला सोमसुतस्तथा। ते सर्वे गौतमीं प्राप्ता हिमवत्पर्वतोत्तमात् ॥१०१॥
तत्र स्नात्वा तप किंचित्कृत्वा चक्रु स्तुति पराम्। भवस्य देवदेवस्य स्तुतिक्रममिमम श्रृणु ॥१०२॥
बुधस्तुष्टाव प्रथममिला च तदनन्तरम्। तत पुरूरवा पुत्रो गौरीं देवीं च शकरम् ॥१०३॥

बुध उवाच

यौ कुङ्कुमेन स्वशरीरजेन, स्वभावहेमप्रतिमौ सरूपौ ।
यावर्चितौ स्कन्दगणेश्वराभ्या, तौ मे शरण्यौ शरण भवेताम् ॥१०४॥

इलोवाच

ससारतापत्रयदावदग्धा, शरीरिणो यौ परिचिन्तयन्त ।
सद्य परा निर्वृतिमाप्नुवन्ति, तौ शकरौ मे शरण भवेताम् ॥१०५॥
आर्ता ह्यह पीडितमानसा ते, क्लेशादिगोप्ता न परोऽस्ति कश्चित् ।
देव त्वदीयौ चरणौ सुपुण्यौ, तौ म शरण्यौ शरण भवेताम् ॥१०६॥

बुध ने कहा—पुत्र ! तुम गौतमी के तट पर जाओ। वहाँ सर्वदा उमा सहित श्रीमान् शकर जी निवास करते हैं। वही शाप को नष्ट करने वाले और वरदाता हैं ॥९८॥

ब्रह्मा बोले—पिता के वाक्या को सुनकर पुरूरवा अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह धीमान त्रिभुवनपावनी गौतमी गगा के पास माता इला को पुन पुरुषत्व प्राप्त करा देने की इच्छा से तपस्या करने के लिये माता पिता गुरु और हिमालय को प्रणाम कर शीघ्र ही गया। पुत्र को तपस्या के लिये जाते हुए देखकर सोम सुत बुध और इला उस हिमालय पहाड से उतर कर पुत्र के पीछे पीछे चले और गौतमी तट पर पहुँचे। वहाँ स्नान और कुछ तपस्या कर देवाधिदेव शकर की अति उत्कृष्ट स्तुति की। जिस क्रम से स्तुति हुई इसको सुनो। सबसे पहले बुध ने तदनन्तर इला ने तत्पश्चात पुत्र पुरूरवा ने देवी गौरी और शकर की स्तुति की ॥९९ १०३॥

बुध ने कहा—जो प्रकृत्या सुवर्ण के समान गौर वर्ण सुन्दर रूप वाले और स्कन्द एव गणेश के अग में लगे कुकुम से सर्वदा पूजित रहते हैं ऐसे भक्तवत्सल शकर और पार्वती हमारे रक्षक हों ॥१०४॥

इला ने कहा—ससार के त्रिविध ताप रूपी दावाग्नि से दग्ध व्यक्ति जिस शकर और पार्वती का ध्यान कर अत्यन्त सुख तथा शान्ति प्राप्त करते हैं वे पार्वती शकर हमारे सहायक हों। मैं अत्यन्त आर्त और व्यथितचित्त हूँ। आपको छोड कर और कोई मेरा रक्षक नहीं। देव ! आपके वे शुभ पुनीत शरणागतों की रक्षा करने वाले चरण मेरे रक्षक हों ॥१०५ १०६॥

पुरूरवा उवाच

यया सकाशादिदमभ्युदेति, प्रयाति चान्ते लयमेव सर्वम ।
जगच्छरण्यौ जगदात्मकौ तु, गौरीहरौ मे शरणं भवेताम ॥१०७॥
यौ देववृन्देषु महोत्सवे तु, पादौ गृहाणेश (ति) गिरीशपुत्र्या
प्रोक्त धृतौ प्रीतिवशाच्छिवेन, तौ मे शरण्यौ शरणं भवेताम ॥१०८॥

श्रीदेव्युवाच

किमभीष्टं प्रदास्यामि युष्मभ्यं तद्वदन्तु मे। कृतकृत्या स्थ भद्रं वो देवानामपि दुष्करम ॥१०९॥

पुरूरवा उवाच

इलो राजा तवाज्ञात्वा वनं प्राविशदम्बिके। तत्क्षमस्व सुरेशानि पुंस्त्वं दातुं त्वमर्हसि ॥११०॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युवाच तान्सर्वा भवस्य तु मते स्थिता। ततः स भगवानाह देवीवाक्यरतः सदा ॥१११॥

शिव उवाच

अत्राभिषेकमात्रेण पुंस्त्वं प्राप्नोत्वयं नृप ॥११२॥

ब्रह्मोवाच

स्नातायाः बुधभार्याया शरीराद्वारि सुस्रुव। नृत्यं गीतं च लावण्यं यक्षिण्या यदुपार्जितम ॥११३॥

पुरूरवा ने कहा—जिनके समीप से (जिस प्रकृति पुरुष से) यह सारा ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता और प्रलय काल में जिनमें पुनः लीन हो जाता है ऐसे जगत् के एक मात्र रक्षक व जगन्मिय (संसार रूप) पार्वती-शंकर मेरे रक्षक हों। परमोत्सव के अवसर पर देववृन्द की उपस्थिति में गिरिजपुत्री ने मेरे चरणों को पकड़िये ऐसा कहा। उस समय प्रेमपूर्वक शंकर जी बिना किसी संकोच के पार्वती के जिन चरणों को पकड़ लिया वे शरणागत की रक्षा करने वाले पार्वती के चरण मेरी रक्षा करें ॥१०७ १०८॥

श्री देवी (पार्वती) ने कहा—तुम लोगों की अभीष्ट वस्तु क्या है कहो मैं अवश्य प्रदान करूंगी चाहे वह देवदुर्लभ ही क्यों न हो। तुम लोग अब सफल मनोरथ हो (अपने को सफल समझो) तुम लोगों का कल्याण हो। देवताओं से भी दुर्लभ वर प्राप्त कराओगे यह निश्चित समझो ॥१०९॥

पुरूरवा ने कहा—अम्बिके! राजा इल तुम्हारी महिमा और आज्ञा को न जानकर उमावन में घुस गया। सुरेश्वरी! उस अपराध को क्षमा कर दो तुम कृपा कर उनको पुनः पुंस्त्व (पुरुषभाव) प्रदान कर दो ॥११०॥

ब्रह्मा ने कहा—शंकर की आज्ञा के अनुसार ही कार्य करने वाली पार्वती ने शंकर का अभिप्राय समझ कर ऐसा ही हो यह कह दिया। यह सुनकर सर्वदा देवी उमा में ही लीन रहने वाले शंकर ने कहा ॥१११॥

शिव ने कहा—यहां केवल अभिषेक करने से ही यह राजा पुंस्त्व (पुरुषभाव) प्राप्त कर लेगा ॥११२॥

ब्रह्मा ने कहा—बुध भार्या इला के स्नान करने से जो जल गिरा और नृत्य गीत सौन्दर्य आदि जो कुछ यक्षिणी से सीखे गये थे वे सभी जल-धारा के रूप में परिणत होकर गंगा के जल में मिल गये ॥११३॥ जिससे नृत्या

तत्सर्वं वारिधाराभिर्गङ्गाम्भसि समाविशत्। नृत्या गीता च सौभाग्या इमा नद्यो बभूविरे ॥११४॥
ताश्चापि संगता गङ्गां ते पुण्या. संगमास्त्रय । तेपु स्नानं च दानं च सुरराज्यफलप्रदम् ॥११५॥
इला पुंस्त्वमवाप्याथ गौरीशंभो. प्रसादत.। महाभ्युदयसिद्ध्यर्थं वाजिमेधमथाकरोत् ॥११६॥
पुरोधसं वसिष्ठं च भार्यां पुत्रांस्तथैव च। अमात्यांश्च बल कोशमानीय स नृपोत्तमः ॥११७॥
चतुरङ्गं बल राज्यं दण्डकेऽस्थापयत्तदा। इलस्य नाम्ना विख्यातं तत्र तत्पुरमुच्यते ॥११८॥
पूर्वजातानथो पुत्रान्सूर्यवंशत्रमागते। राज्येऽभिषिच्य पश्चात्तमैलं स्नेहादसिञ्चयत् ॥११९॥
सोमवंशकरः श्रीमानयं राजा भवेदिति। सर्वेभ्यो मतिमानेभ्यो ज्येष्ठः श्रेष्ठोऽभवन्मुने ॥१२०॥
यत्र च क्रतवो वृत्ता इलस्य नृपतेः शुभा । यत्र पुंस्त्वमवाप्याथ यत्र पुत्राः समागताः ॥१२१॥
यक्षिणीदत्तनृत्यादिगीतसौभाग्यमङ्गला.। नद्यो भूत्वा यत्र गङ्गा संगतास्तानि नारद ॥१२२॥
तीर्थानि शुभदान्यासन्सहस्राण्यथ षोडश। उभयोस्तीरयोस्तात तत्र शंभुरिलेश्वर.।
तेपु स्नानं च दान च सर्वक्रतुफलप्रदम् ॥१२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंम्भ्वृषिसंवादे तीर्थमाहात्म्ये बुधेलापुरुरवोवसिष्ठ-नृत्यगीतसौभाग्येलेश्वरादिषोडशसहस्रतीर्थवर्णन नामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०८॥

गौतमीमाहात्म्ये एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्याय. ॥३९॥

गाता और सौभाग्या नाम की नदियाँ उत्पन्न हो गईं। वे सभी नदिया जहाँ गगा से मिली, वे तीना सगम-स्थान अत्यन्त पुण्य देनेवाले सिद्ध हुये। उन तीर्थों म स्नान करने और दान देन से स्वग की प्राप्ति होती हैं ॥११४-११५॥ इसके अनन्तर गौरी और शम्भु की कृपा से पुरुषत्व प्राप्त हा जाने के बाद राजा इल ने परम कल्याण (मोक्ष) की प्राप्ति के लिये अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया ॥११६॥ उस उत्तम नृप ने पुरोहित वसिष्ठ, भार्या, पुत्र, राजकोश, मन्त्रीगण और सेना को लेकर उस दण्डकारण्य म चतुरग सैन्य से युक्त विस्तृत राज्य की स्थापना की। इल के नाम से ही उस राज्य म वह नगर, जो कि राजधानी था, इलपुर नाम से कहा जाने लगा ।११७-११८॥ इसके पश्चात् अपने पहले के उत्पन्न पुत्रों को पैतृक राज्य (वश क्रम से प्राप्त राज्य) पर अभिषिक्त कर दिया। (राज्याधिकारी बना दिया)। तत्पश्चात नवीन राज्य पर ऐल (पुरूरवा) को वह सोच कर कि यह सोम वश का सस्थापक श्रीमान् राजा हो—स्नेह से अभिषिक्त कर दिया ॥११९॥ मुने! वह पुरूरवा शेष अपने भाइयो से बुद्धिमान्, गुणवान् और श्रेष्ठ हुआ ॥१२०॥ राजा इल के जिस स्थल पर शुभ यज्ञ हुये, जहाँ उनको पुरुषत्व की प्राप्ति हुई, जहाँ उनके सब पुत्र आये (और जहा यक्षिणी के दिये हुये नृत्य, गीत और सौभाग्य आदि नदी होकर गगा म मिले, नारद! वे सब शुभदायक तीर्थ वहाँ हुये) साथ ही अन्य सोलह हजार और भी तीर्थ वहाँ उसके दोनों तट पर स्थापित इलेश्वर शकर भी हैं। उन तीर्थों मे स्नान, दान आदि पुण्य कर्म करने से सब यज्ञों का फल ।

तीर्थमाहात्म्यवर्णन नामक एक सौ आठवाँ अध्याय समाप्त ॥१०८॥

अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः

चक्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

चक्रतीर्थमिति ख्यातं ब्रह्महत्यादिनाशनम्। यत्र चक्रेश्वरो देवश्चक्रमाप यतो हरिः ॥१॥
यत्र विष्णुः स्वयं स्थित्वा चक्रार्थं शंकरं प्रभुः। पूजयामास तत्तीर्थं चक्रतीर्थमुदाहृतम् ॥२॥
यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते। दक्षक्रतौ प्रवृत्ते तु देवानां च समागमे ॥३॥
दक्षेण दूषिते देवे शिवे शर्वे महेश्वरे। अनाह्वाने सुरेशस्य दक्षचित्ते मलीमसे ॥४॥
दाक्षायण्या श्रुते वाक्ये अनाह्वानस्य कारणे। अहल्यायां चोक्तवत्या कुपिताऽभूत्सुरेश्वरी ॥५॥
पितरं नाशये पापं क्षमेयं न कथंचन। शृण्वती दोषवाक्यानि पित्रा चोक्तानि भर्तरि ॥६॥
पत्युः शृण्वन्ति या निन्दां तासां पापावधिः कुतः। यादृशस्तादृशो वाऽपि पतिः स्त्रीणां परा गतिः ॥७॥
किं पुनः सकलाधीशो महादेवो जगद्गुरुः। श्रुतं तन्निन्दनं तर्हि धारयामि न देहकम् ॥८॥
तस्मात्त्यक्ष्य इमं देहमित्युक्त्वा सा महासती। कोपेन महताऽऽविष्टा प्रजज्वाल सुरेश्वरी ॥९॥

अध्याय १०९

चक्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—ब्रह्महत्या आदि सभी पापों को नष्ट करने वाला विख्यात चक्रतीर्थ है, जहाँ चक्रेश्वर देव से विष्णु ने चक्र प्राप्त किया था ॥१॥ जिस स्थान पर स्वयं प्रभु विष्णु ने चक्र के लिये शंकर की पूजा की, वह तीर्थ चक्रतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया ॥२॥ जिसके नाम श्रवण मात्र से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥२½॥ एक समय दक्ष ने यज्ञ प्रारम्भ किया। उसमें सब देवता एकत्र हुए। दक्ष के मन में शिव के प्रति कुछ मलिनता हो गई थी, जिससे उन्होंने महेश्वर, शर्व, देव, शिव को दूषित (अग्राह्य) घोषित कर दिया ॥३-४॥ दाक्षायणी ने इन बातों को सुना और निमन्त्रित न होने का कारण समझ लिया। अहल्या के मुख से कुछ अनुचित वाक्यों को सुनकर वह सुरेश्वरी अत्यन्त कुपित हो गईं ॥५॥ उन्होंने अपने पति के प्रति पिता की आक्षेपभरी बातें सुनकर कहा कि मैं अवश्य पापात्मा पिता का नाश करूँगी, किसी प्रकार उसको क्षमा नहीं कर सकती ॥६॥ क्योंकि जो स्त्रियाँ अपने पति की निन्दा सुनती हैं, उनके पापों का अन्त नहीं होता अर्थात् असंख्य पाप होते हैं। पति चाहे कैसा भी हो वह स्त्री के लिये परम गति है ॥७॥ तो फिर सबके स्वामी जगद्गुरु शंकर के विषय में क्या कहा जाय। ऐसे पति की मैंने निन्दा सुनी है, इसलिए अब अपने शरीर को धारण न करूँगी ॥८॥ इस अधम शरीर को छोड़ दूंगी। यह कहकर वह महासती सुरेश्वरी अत्यन्त क्रोध से स्वयं जलने लगी ॥९॥ शिव में ही अपने ध्यान को लगाकर उन्होंने योग द्वारा

---

१ ष वा।

दह बलाद्योगाच्च तत्यजे। महश्वरोऽपि सकल वृत्तमाकार्ण्य नारदात्॥१०॥
कोप पप्रच्छ जया च विजया तथा। ते ऊचतुरुभे देव दक्षक्रतुविनाशनम॥११॥
इति श्रुत्वा मख प्राया महेश्वर। भीमैर्गणै परिवृतो भूतनाथै सम ययौ॥१२॥
त सर्वो देवब्रह्मपुरस्कृत। दक्षेण यजमानेन शुद्धभावेन रक्षित॥१३॥
ररत्युग्रैर्मुनिभि परिवारित। इन्द्रादित्याद्यैर्वसुभि सर्वत परिपालित॥१४॥
मवदैश्च स्वाहा शब्दैरलकृत। श्रद्धा पुष्टिस्तथा तुष्टि शान्तिर्लज्जा सरस्वती॥१५॥
ावरी क्षान्तिरुषा आशा जया मति। एताभिश्च तथाऽन्याभि सवत समलकृत॥१६॥
ात्मना चापि कारितो विश्वकमणा। सुरभिनन्दिनी धनु कामधुक्कामदोहिनी॥१७॥
ामवर्याभि सवकामसमृद्धिमान। कल्पवृक्ष पारिजातो लता कल्पलतादिका॥१८॥
किंचित्तत्र तस्मिन्मखे स्थितम। स्वय मघवता पूष्णा हरिणा परिरक्षित॥१९॥
ातां वाऽपि क्रियतां स्यीपतां सुखम। एतैश्च सर्वतो वाक्यैर्दक्षस्य पूजित मखम्॥२०॥
वीरभद्रोऽसौ भद्रकाल्या युतो ययौ। शोककोपपरीतात्मा पश्चाच्छूलपिनाकधृक॥२१॥
महादवो महाभूतैरलकृत। तानि भूतानि परितो मखे वेष्टच महेश्वरम्॥२२॥
ासयामासुस्तत्र क्षोभो महानभूत। पलायन्त तत कचित्केचिदगत्वा तत शिवम्॥२३॥
न्त देवश केचित्कुप्यन्ति श करम। एव विध्वसित यज्ञ दृष्ट्वा पूषा समभ्यगात्॥२४॥

छोड दिया। नारद के मुख से सारी घटना को सुनकर शकर अत्यन्त कुपित हो गये। उन्होंने जया और [illegible]कर इस विषय म पूछा। उन दोनो ने दाक्षायणी की अग से इति तक की कथा दक्ष के यज्ञ को विनष्ट करने [illegible] कही। यह सुन कर महेश्वर अपने भयङ्कर अनुचरो और भूतनाथो (रुद्रगण) के साथ उस यज्ञ म [illegible]२॥ वहाँ वह दक्ष का यज्ञ शिवगणो से घेर लिया गया जहाँ देव और ब्रह्मा भलीभाँति सम्मानित थ जो [illegible] से शुद्धता पूर्वक अत्यन्त रक्षित था जो वशिष्ठ आदि तेजस्वी मुनियो से घिरा हुआ इन्द्र आदित्य [illegible] मे चारो ओर से रक्षित ऋग यजुस सामवेद की ध्वनि और स्वाहा शब्दो से गुञ्जित श्रद्धा पुष्टि तुष्टि [illegible] सरस्वती भूमि द्यौ शर्वरी शान्ति उषा आशा जया मति आदि तथा अन्य देवियो से सुशोभित महा[illegible] [illegible] से भलीभाँति बनाया हुआ सुरभिनन्दिनी धनु कामधनु कामदोहिनी आदि कामनाओ की वर्षा [illegible] सुरभियो तथा सम्पूर्ण वैभवो से युक्त और कल्पवृक्ष पारिजात कल्पलतिका लता आदि जो कुछ अभीष्ट [illegible] उस यज्ञ म उपस्थित थे। वह स्वय इन्द्र पूषा और विष्णु से परिरक्षित था॥१३ १९॥ दीजिये भाजन [illegible] प्रारम्भ कीजिये यहाँ सुखपूर्वक विराजिये आदि शिष्ट वाक्यो से दक्ष का वह यज्ञमण्डप श्लाघ्य [illegible] वीरभद्र भद्रकाली के साथ वहाँ गया पीछे शूल और पिनाक (धनुष) धारण करने वाले शकर इस प्रकार महादेव शकर आने उद्धत और भयङ्कर अनुचरो महाभूतो से सुशोभित हो वहाँ गये उन भूतो को चारो ओर यथास्थान नियुक्त कर यज्ञ का विनाश कर दिया। इस विनाशलीला को देखकर [illegible] कोलाहल हो गया॥२२॥ कुछ इधर उधर भागने लगे कुछ देवगण शकर के पास जाकर स्तुति करने लगे तो [illegible] कर क्रोध से घूरने लगे। इस प्रकार यज्ञ का ध्वस होते देखकर पूषा शकर के सामने आये॥२३ २४॥

। दन्तानथोत्पाट्य इन्द्रं व्यद्रावयत्क्षणात्। भगस्य चक्षुषी विप्र वीरभद्रो व्यपाटयत्॥२५॥
करं पुनर्दोर्भ्यां परिभ्राम्य समाक्षिपत्। ततः सुरगणाः सर्वे विष्णुं ते शरणं ययुः॥२६॥

देवा ऊचुः

हे त्राहि गदापाणे भूतनाथकृताद्भयात्। महेश्वरगणः कश्चित्प्रमथानां तु नायकः॥
दग्धो मखः सर्वो वैष्णवः पश्यतो हरेः ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

णा चक्रमुत्सृष्टं भूतनाथवधं प्रति। भूतनाथोऽपि तच्चक्रमापतच्च तदाऽग्रसत्॥२८॥
ते चक्रे ततो विष्णोर्लोकपाला भयाद्ययुः। तथा स्थितानवेक्ष्याथ दक्षो यज्ञं सुरानपि॥
ाव शंकरं देवं दक्षो भक्त्या प्रजापतिः ॥२९॥

दक्ष उवाच

य शंकर सोमेश जय सर्वज्ञ शंभवे। जय कल्याणभृच्छंभो जय कालात्मने नमः॥३०॥
ादिकर्तर्नमस्तेऽस्तु नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते। ब्रह्मप्रिय नमस्तेऽस्तु ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते॥३१॥
त्रमूर्तये नमो देव त्रिधाम परमेश्वर। सर्वमूर्ते नमस्तेऽस्तु त्रैलोक्याधार कामद॥३२॥
मो वेदान्तवेद्याय नमस्ते परमात्मने। यज्ञरूप नमस्तेऽस्तु यज्ञधाम नमोऽस्तु ते॥३३॥
ज्ञदान नमस्तेऽस्तु हव्यवाह नमोऽस्तु ते। यज्ञहर्त्रे नमस्तेऽस्तु फलदाय नमोऽस्तु ते॥३४॥

न्तु उन्होंने पूषा के दाँत उखाड़ लिये और इन्द्र को क्षण भर में वहाँ से भगा दिया। विप्र! वीरभद्र ने भग की आँखें निकाल ली॥२५॥ सूर्य को भुजाओं के बीच पकड़ कर घुमा कर फेंक दिया। तदनन्तर सब असरण होकर विष्णु की शरण में गये। ॥२६॥

देवताओं ने कहा—हे गदापाणि! भूतनाथों के इस उपद्रव से रक्षा करो, बचाओ। तुम्हारे देखते देखते उपद्रवियों के सरदार (शंकर के गण) से यह वैष्णव (विष्णु का) यज्ञ जला दिया गया, नष्ट कर दिया गया॥२७॥

ब्रह्मा ने कहा—यह गुहार सुनकर विष्णु ने भूतनाथ को मारने के लिये चक्र चलाया। भूतनाथ ने भी चक्र को अपनी ओर आते देखकर पकड़ लिया। विष्णु के अमोघ चक्र को इस प्रकार व्यर्थ होते देखकर सर्व लोकपाल भयभीत हो इधर उधर भागने लगे। प्रजापति दक्ष ने यज्ञ और देवों की ऐसी स्थिति देखकर विनीत भाव से शंकर की स्तुति की॥२८-२९॥

दक्ष ने कहा—शंकर! सोमेश! आपकी जय हो, हे सर्वज्ञ! शम्भु! जय हो। कल्याण करने वाले! जय हो। शम्भु! जय हो। काल रूप शंकर को नमस्कार है। आदिकर्त्ता! आपको नमस्कार है। नीलकण्ठ! आपको नमस्कार है। ब्रह्मप्रिय! आपको नमस्कार है। ब्रह्मरूप! आपको नमस्कार है। त्रिमूर्ति को नमस्कार है। परमेश्वर! देव! त्रैलोक्यव्यापी! आपको नमस्कार करते हैं। विश्वमूर्ति! त्रिभुवन के आधार! *इष्टफलों को देने वाले! आपको नमस्कार है। वेदान्त (ज्ञान) से जानने योग्य आपको नमस्कार है। परमात्मा को* नमस्कार है। यज्ञरूप! आपको नमस्कार है। यज्ञधाम! आपको नमस्कार है। यज्ञदान! आप को नमस्कार है।

त्राहि त्राहि जगन्नाथ शरणागतवत्सल। भक्तानामप्यभक्तानां त्वमेव शरणं प्रभो ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य प्रसन्नोऽभून्महेश्वरः। किं ददामीति तं प्राह क्रतुः पूर्णोऽस्तु मे प्रभो ॥३६॥
तथेत्युवाच भगवान्देवदेवो महेश्वरः। शंकरः सर्वभूतात्मा करुणावरुणालयः ॥३७॥
क्रतुं कृत्वा ततः पूर्णं तस्य दक्षस्य वै मुने। एवमुक्त्वा स भगवान्भूतैरन्तरधीयत ॥३८॥
यथागतं सुरा जग्मुः स्वमेव सदनं प्रति। ततः कदाचिद्देवानां दैत्यानां विग्रहो महान् ॥३९॥
बभूव तत्र दैत्येभ्यो भीता देवाः श्रियः पतिम्। तुष्टुवुः सर्वभावेन वचोभिस्तं जनार्दनम् ॥४०॥

देवा ऊचुः

शक्रादयोऽपि त्रिदशाः कटाक्षमवेक्ष्य यस्यास्तप आचरन्ति ।
सा चापि यत्पादरता च लक्ष्मीस्तं ब्रह्मभूतं शरणं प्रपद्ये ॥४१॥
यस्मात्त्रिलोक्यां न परः समानो, न चाधिकस्तार्क्ष्यरथान्नृसिंहात् ।
स देवदेवोऽवतु नः समस्तान्महाभयेभ्यः कृपया प्रपन्नान् ॥४२॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नो भगवाञ्शङ्खचक्रगदाधरः। किमर्थमागताः सर्वे तत्कर्ताऽस्मीत्युवाच तान् ॥४३॥

हव्य को ढोने वाले! (अग्ने!) आपको नमस्कार है। यज्ञ को नष्ट करने वाले को नमस्कार है, फल देने वाले को नमस्कार करते हैं। जगन्नाथ! शरण में आये हुए की रक्षा करने वाले! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। प्रभो! तुम्हीं भक्तों और अभक्तों के रक्षक हो ॥३०-३५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार शंकर की स्तुति करने पर महेश्वर प्रसन्न हो गये। उन्होंने दक्ष से कहा कि 'क्या दूं।' दक्ष ने कहा—प्रभो! मेरा यज्ञ पूर्ण हो। भगवान् देवदेवेश्वर शंकर ने 'ऐसा ही हो' यह कहा। मुने! करुणा के सागर, सब प्राणियों में निवास करने वाले भगवान् उस दक्ष के यज्ञ को पूर्ण कर अपने अनुचर भूतों के साथ अन्तर्हित हो गये। आये हुए देवता भी अपने अपने स्थान को चले गये। अनन्तर किसी समय देवों और दानवों में अति भयंकर युद्ध हुआ। उस युद्ध में देवता दानवों से भयभीत हो गये। विवश हो लक्ष्मीपति जनार्दन की शरण में गये। वहां जाकर उन लोगों ने सब भावों से भगवान् को प्रार्थना द्वारा प्रसन्न किया ॥३६-४०॥

देवताओं ने कहा—जिसके केवल कटाक्ष मात्र को देखकर इन्द्र आदि देवता उसकी प्राप्ति के लिए तपस्या करते हैं, वही लक्ष्मी जिस विष्णु की चरण-सेवा में तल्लीन रहती हैं उस ब्रह्मस्वरूप विष्णु की शरण में हम आये हुए हैं। जिस गरुड़ वाहन भगवान् नृसिंह से त्रिलोकी में उत्तम, समान या अधिक दूसरा कोई नहीं है वे देवदेव प्रपन्न (शरण में आये) हम लोगों की समस्त भयंकर विभीषिका से रक्षा करें ॥४१-४२॥

ब्रह्मा ने कहा—देवों की प्रार्थना सुनकर शंख, चक्र और गदाधारी भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हो गये। उन्होंने देवों से कहा कि 'किसलिये तुम लोग यहां आये हो, मैं उन सब इच्छाओं को पूर्ण कर दूंगा' ॥४३॥

देवा ऊचु

भय च तीव्र दैत्येभ्यो देवानां मधुसूदन। ततस्त्राणाय देवाना मति कुरु जनार्दन ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

तानागतान्हरि प्राह ग्रस्त चक्र हरेण मे। किं करोमि गत चक्र भवन्तश्चार्तिमागता ॥४५॥
यातु सर्वे देवगणा रक्षा व क्रियते मया ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

ततो गतेषु देवेषु विष्णुश्चक्रार्थमुद्यत। गोदावरीं ततो गत्वा शभो पूजा प्रचक्रम ॥४७॥
सुवर्णकमलैर्दिव्यै सुगन्धैर्दशभि शतै। भक्तितो नित्यवत्पूजा चक्रे विष्णुरुमापते ॥४८॥
एव सपूज्यमाने तु तयोस्तत्त्वमिद शृणु। कमलाना सहस्रे तु यदेक नैव पूर्यते ॥४९॥
तदाऽसुरारि स्व नेत्रमुत्पाट्याध्यमकल्पयत। अर्घ्यपात्र करे गृह्य सहस्रकमलान्वितम् ॥
ध्यात्वा शभु ददावर्घ्यमनन्यशरणो हरि ॥५०॥

विष्णुरुवाच

त्वमेव देव जानीषे भावमन्तर्गत नृणाम। त्वमेव शरणोऽधीशोऽत्र का भवेद्विचारणा ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

यदन्नुदश्रुनयनो निलिल्येऽसावितीश्वरे। भवानीसहित शभु पुरस्तादभवत्तदा ॥५२॥

देवो ने कहा—मधुसूदन! दैत्यों से हमें दारुण भय होता है। इसलिये आप देवताओं की रक्षा का उपाय कीजिये ॥४४॥

ब्रह्मा ने कहा—उन शरणागत देवों से भगवान विष्णु ने कहा—मेरा चक्र शंकर ने ले लिया है। क्या करूँ? चक्र हाथ से निकल गया और आप लोग इस समय विपत्ति में फँस गये। फिर भी आप लोग इस समय जाइये मैं आप लोगों की रक्षा करूँगा ॥४५-४६॥

ब्रह्मा ने कहा—देवताओं के लौट जाने पर विष्णु चक्र लाने के लिये उद्यत हो गये। इस अभिप्राय से वे गोदावरी के तट पर गये और शंकर की पूजा करने लगे। विष्णु ने प्रतिदिन भक्तिपूर्वक दिव्य सुगंधित हजार सुवर्ण कमलों से उमापति की पूजा करने लगे। इस प्रकार पूजा करते समय उन दोनों देवों में जो रहस्य हुआ उसको सुनो। जब सहस्र कमलों में एक कम हो गया तब असुरारि विष्णु ने अपने कमल नेत्र को ही निकालकर अर्घ्य देने के लिये उस (संख्या) को पूरा किया। इस प्रकार हजार कमलों से पूर्ण कर अर्घ्य पात्र को हाथ में लेकर अनन्य भावना से विष्णु ने शंकर का ध्यान कर अर्घ्य प्रदान किया ॥४७-५०॥

विष्णु ने कहा—देव! तुम्हीं मनुष्यों के मन के भावों को जानते हो स्वामी! तुम्हीं एकमात्र शरण हो। इसमें विचार की क्या आवश्यकता है? ॥५१॥

ब्रह्मा ने कहा—भगवान विष्णु इस प्रकार प्रार्थना करते हुए शंकर में तल्लीन हो गये, उनकी आँखों से अश्रु

गाढमालिङ्गच विविधैर्वरैरापूरयद्धरिम्। तदेव चक्रमभवन्नेत्रं चापि यथा पुरा॥५३॥
ततः सुरगणाः सर्वे तुष्टुवुर्हरिशंकरौ। गङ्गां चापि सरिच्छ्रेष्ठां देवं च वृषभध्वजम्॥५४॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं चक्रतीर्थमिति स्मृतम्। यस्यानुश्रवणेनैव मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥५५॥
तत्र स्नानं च दानं च यः कुर्यात्पितृतर्पणम्। सर्वपापविनिर्मुक्तः पितृभिः स्वर्गभाग्भवेत्॥५६॥
तत्तु चक्राङ्कितं तीर्थमद्यापि परिदृश्यते ॥५७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे चक्रतीर्थवर्णनं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः॥१०९॥
गौतमीमाहात्म्ये चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥४०॥

अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः

पिप्पलतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पिप्पलं तीर्थमाख्यातं [1]चक्रतीर्थादनन्तरम्। यत्र चक्रेश्वरो देवश्चक्रमाप यतो हरिः॥१॥
यत्र विष्णुः स्वयं स्थित्वा चक्रार्थं शंकरं विभुम्। पूजयामास तत्तीर्थं चक्रतीर्थमुदाहृतम्॥२॥

बहने लगे। इसी समय भवानी सहित शंकर प्रकट हुये। उन्होंने उनको प्रेमपूर्वक गले लगाकर विविध वरदानों की वर्षा कर प्रसन्न किया। पुनः वही चक्र विष्णु के समीप चला आया और उनका नेत्र भी पूर्ववत् हो गया। तदनन्तर सब देवताओं ने हरि और शंकर तथा श्रेष्ठ नदी गंगा की स्तुति की। तभी से वह तीर्थ चक्रतीर्थ के नाम से विख्यात हो गया। उसके नामश्रवणमात्र से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है। उस तीर्थ में जो कोई स्नान, दान और *पितृतर्पण आदि शुभ कर्म करता है वह सब पापों से मुक्त होकर अपने पितरों के साथ स्वर्ग प्राप्त करता है। ऐसा वह* तीर्थ आज भी चक्र से चिह्नित देखा जाता है॥५२-५७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में चक्रतीर्थवर्णन नामक एक सौ नवाँ अध्याय समाप्त॥१०९॥

अध्याय ११०

पिप्पलतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—चक्रतीर्थ के बाद पिप्पलतीर्थ परम प्रसिद्ध है, जहाँ चक्रेश्वर देव, जिनसे हरि ने चक्र प्राप्त किया था—रहते हैं॥१॥ जहाँ विष्णु ने चक्र के लिये प्रभु शंकर की पूजा की, वही तीर्थ चक्रतीर्थ के नाम से विख्यात

---

१ घ ०पश्चिमे दक्षिणे। ग०।

यत्र प्रीतोऽभवद्विष्णोः शंभुस्तत्पिप्पलं विदुः। महिमानं यस्य वक्तुं न क्षमोऽप्यहिनायकः ॥३॥
चक्रेश्वरो पिप्पलेशो नामधेयस्य कारणम्। शृणु नारद तद्भक्त्या [1]साक्षाद्वेदोदितं मया ॥४॥
दधीचिरिति विख्यातो मुनिरासीद्गुणान्वितः। तस्य भार्या महाप्राज्ञा कुलीना च पतिव्रता ॥५॥
लोपामुद्रेति या ख्याता स्वसा तस्या गभस्तिनी। इति नाम्ना च विख्याता वडवेति प्रकीर्तिता ॥६॥
दधीचेः सा प्रिया नित्यं तपस्तेपे तया महत्। दधीचिरग्निमाश्रित्यं गृहधर्मपरायणः ॥७॥
भागीरथीं समाश्रित्य देवातिथिपरायणः। स्वकलत्ररतः शान्तः कुम्भयोनिरिवापरः ॥८॥
तस्य प्रभावात्तं देशं नायान्ति दैत्यदानवाः। आजग्मुर्मुनिशार्दूल यत्रागस्त्यस्य चाऽऽश्रमः ॥९॥
तत्र देवाः समाजग्मू रुद्रादित्यास्तथाऽश्विनौ। इन्द्रो विष्णुर्यमोऽग्निश्च जित्वा दैत्यानुपागतान् ॥१०॥
जयेन जातसंहर्षाः स्तुताश्चैव मरुद्गणैः। दधीचिं मुनिशार्दूलं दृष्ट्वा नेमुः सुरेश्वराः ॥११॥
दधीचिर्जातसंहर्षः सुरान्पूज्य पृथक्पृथक्। गृहकृत्य ततश्चक्रे सुरेभ्यो भार्यया सह ॥१२॥
पृष्टाश्च कुशलं तेन कथाश्चक्रुः सुरा अपि। दधीचिमब्रुवन्देवा भार्यया सुखित पुनः ॥१३॥
आसीनं हृष्टमनस ऋषिं नत्वा पुन. पुन. ॥१४॥

देवा ऊचुः

किमद्य दुर्लभं लोके ऋषेऽस्माकं भविष्यति। त्वादृश· सकृपो येषु मुनिर्भूकल्पपादपः ॥१५॥

हुआ ॥२॥ जहाँ भगवान् शम्भु विष्णु पर प्रसन्न हुए वह पिप्पलतीर्थ कहा जाता है, जिसकी महिमा वर्णन करने में शेषनाग भी समर्थ नहीं हैं ॥३॥ नारद! चक्रेश्वर और पिप्लेश नाम पड़ने का कारण भक्तिपूर्वक सुनो। यह आख्यान साक्षात् वेद में भी कहा गया है ॥४॥ दधीचि नाम के एक परमविख्यात, गुणवान् मुनि थे। उनकी परम कुलीन बुद्धिमती और पतिव्रता पत्नी थी ॥५॥ वह प्रसिद्ध लोपामुद्रा की बहिन गभस्तिनी थी, जिसको लोग वडवा भी कहा करते थे ॥६॥ दधीचि की वह प्रिया भी प्रतिदिन महान् तप किया करती थी। स्वयं दधीचि नित्य ही अग्नि स्थापना कर गृहस्थ धर्म का निष्ठापूर्वक पालन करते थे ॥७॥ वे भागीरथी के तट पर निवास कर देव और अतिथियों की एकान्त सेवा में लीन रहते थे। अपनी प्रिया के प्रति अनन्य प्रेम रखने वाले वे शान्त दधीचि दूसरे अगस्त्य के समान थे ॥८॥ मुनिशार्दूल! उनकी तपस्या के प्रभाव से उस प्रदेश में और अगस्त्य ऋषि के आश्रम में कोई भी दैत्य या दैत्यदानव आने का साहस नहीं करते थे ॥९॥ एक दिन आक्रमणकारी उपद्रवी दैत्यों को जीतकर रुद्र, आदित्य, अश्विन, इन्द्र, विष्णु, यम, अग्नि, आदि देवता उनके यहाँ आये जो विजय से अत्यन्त प्रसन्न थे, मरुद्गण उनकी स्तुति कर रहे थे। उन देवेश्वरों ने मुनिपुङ्गव दधीचि को देखकर उनका अभिनन्दन किया ॥१०-११॥ दधीचि अपने देव अतिथियों को देखकर आनन्द के मारे फूले न समाये। भार्या के सहित उन्होंने उन देवों का प्रेमपूर्वक अतिथि-सत्कार किया ॥१२॥ कुशल प्रश्न होने के बाद देवताओं ने अपनी कुशल-वार्ता सुनाई। पुनः देवगण प्रसन्न होकर भार्यासहित बैठे हुये ऋषि दधीचि को बार-बार नमस्कार करके बोले ॥१३-१४॥

देवों ने कहा—ऋषे! जब तुम्हारे समान पृथ्वी के कल्पवृक्ष की कृपा हम लोगों पर है तब भला हम

---

१ घ ०क्षाद्वेदोदि०।

एतदेव फल पुसा जीवता मुनिसत्तम। तीर्थाप्लुतिर्भूतदया दर्शन च भवादृशाम् ॥१६॥
यत्स्नेहादुच्यतेऽस्माभिरवधारय तन्मुने। जित्वा दैत्यानिह प्राप्ता हत्वा राक्षसपुगवान् ॥१७॥
वय च सुखिनो ब्रह्मस्त्वयि दृष्टे विशेषत । नाऽऽयुधं फलमस्माक वोढु नैव क्षमा वयम् ॥१८॥
स्थाप्यदेश न पश्याम आयुधाना मुनीश्वर। स्वर्गे सुरद्विषो ज्ञात्वा स्थापितानि हरन्ति च ॥१९॥
नयेयुरायुधानीति तथैव च रसातले। तस्मात्तवाश्रमे पुण्ये स्थाप्यन्तेऽस्त्राणि मानद ॥२०॥

नैवात्र किंचिद्भयमस्ति विप्र, न दानवेभ्यो राक्षसेभ्यश्च घोरम् ।
त्वदाज्ञया रक्षितपुण्यदेशो, न विद्यते तपसा ते समान ॥२१॥
जितारयो ब्रह्मविदा वरिष्ठ, वय च पूर्व निहता दैत्यसघा ।
अस्त्रैरल भारभूतं कृतार्थं, स्थाप्य स्थान ते समीपे मुनीश ॥२२॥
दिव्यान्भोगा कामिनीभि समेतान्देवोद्याने नन्दने सभजाम ।
ततो याम कृतकार्या सहेन्द्रा, स्व स्व स्थान चाऽऽयुधाना च रक्षा ॥२३॥
त्वया कृता जायता तत्प्रशाधि समर्थस्त्व रक्षणे धारणे च ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यमाकर्ण्य दधीचिरेव, वाक्य जगौ विबुधानेयमस्तु ।
निवार्यमाण प्रियशीलया स्त्रिया, किं देवकार्येण विरुद्धकारिणा ॥२५॥

लोगो को कौन सा पदार्थ दुर्लभ होगा ? मुनिसत्तम ! मनुष्य जीवन का फल तीर्थाटन प्राणियो पर दया आपके समान महापुरुषो का दर्शन है ॥१५ १६॥ मुने ! आज हम लोग विनम्र भाव से प्रेमपूर्वक जो कुछ कह रहे हैं उस पर ध्यान दीजिये। बडे बडे बलशाली दैत्यो को जीतकर हम यहाँ आये हुए हैं। ब्रह्मन ! हम लोग सुखी हैं। आपको देखकर और विशेष रूप से प्रसन्नता हो रही है। ये अस्त्र शस्त्र अब भार से जान पडते हैं थकावट के कारण इन व्यर्थ अस्त्रो को ढोने की शक्ति भी नही रह गई है ॥१७ १८॥ मुनीश्वर ! इन आयुधो को रखने के लिये कोई सुरक्षित स्थान भी नहीं दिखाई दे रहा है। स्वर्ग मे रखने पर राक्षस पता पा जाने पर छीन लेंगे। इसी प्रकार यदि इन अस्त्रो को रसातल ले जाया जाय तो वहाँ भी यही दशा है। इसलिये हे मानद ! (प्रतिष्ठा देने वाले सबकी प्रतिष्ठा करने वाले) आपके आश्रम मे इन अस्त्रो को रखा जा रहा है ॥१९ २०॥ क्योकि हे विप्र ! यहाँ न तो राक्षसो से और न तो दानवो से ही भय है। यह पुण्य स्थान आपकी आज्ञा (तेज) से सुरक्षित है आपके समान तपस्या मे भी कोई नहीं है ॥२१॥ मुनीन्द्र ! ज्ञानियो मे श्रेष्ठ ! हम लोगो ने शत्रुओ को जीत लिया है दैत्यो को पहले ही विनष्ट कर दिया है अब इन भारभूत पूर्णकाम अतएव व्यर्थ अस्त्रो की कोई आवश्यकता नहीं और आपके समीप रखने योग्य स्थान भी है ॥२२॥ अब हम लोग कामिनियो के साथ देवोद्यान नन्दनवन मे दिव्य भोगो का भोग करेंगे इसलिये हम लोग इन्द्र के सहित आपकी दया से कृतकृत्य होकर अपने-अपने स्थान को जा रहे हैं। अब शस्त्रास्त्रो की रक्षा आप के ही द्वारा होगी इसलिये आज्ञा दीजिये आप ही इन शस्त्रो की रक्षा और देख भाल करने मे समर्थ हैं ॥२३ २४॥

ब्रह्मा ने कहा—देवो की ऐसी प्रार्थना सुनकर दधीचि ने देवो से कहा कि एवमस्तु। यह देखकर प्रिय स्वभाव वाली स्त्री ने बार बार मना किया कि इस वैमनस्य पैदा करने वाले देव-कार्य मे हाथ लगाने की क्या आवश्यकता ॥२५॥

ये ज्ञातशास्त्रा परमार्थनिष्ठा, ससारचेष्टासु गतानुरागा ।
तेषा परार्थयसनेन किं मुने, येनात्र वाऽमुत्र सुख न किंचित ॥२६॥
देवद्विषो द्वेषमनुप्रयान्ति, दत्ते स्थाने विप्रवर्य शृणुष्व ।
नष्टे हृते चाऽऽयुधाना मुनीश, कुप्यन्ति देवा रिपवस्ते भवन्ति ॥२७॥
तस्मान्नेद वेदविदा वरिष्ठ, युक्त द्रव्ये परकीये ममत्वम् ।
तावच्च मैत्री द्रव्यभावश्च तावन्नष्टे हृते रिपवस्ते भवन्ति ॥२८॥
चेदस्ति शक्तिर्द्रव्यदाने ततस्ते, दातव्यमेवार्थिने किं विचार्यम् ।
नो चेत्सन्त परकार्याणि कुर्युर्वाग्भिर्मनोभि कृतिभिस्तथैव ॥२९॥
परस्वसधारणमेतदेव, सद्भिनिरस्त त्यज कान्त सद्य ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

एव प्रियाया वचन स विप्रो, निशम्य भार्यामिदमाह सुभ्रूम् ॥३१॥

दधीचिरुवाच

पुरा सुराणामनुमान्य भद्रे, नेतीति वाणी न सुख मर्मेति ॥३२॥

मुने! जो शास्त्र परमार्थ (मोक्षज्ञान) मे निष्ठा रखने वाले और सासारिक व्यापारो से विरक्त हैं उनको एसे दूसरो के व्यय कामो म पडने से क्या लाभ? जिनके करने से न तो कोई लौकिक सुख हो न पारलौकिक ॥२६॥ विप्रवर्य! सुनिये इस प्रकार स्थान देने से राक्षस कुपित हो जायग। मुनीश! शस्त्रास्त्रो के नष्ट हो जाने से या चोरी चले जाने से देवता कुपित होगे और शत्रु बन जायेंगे ॥२७॥ इन कारणो से हे वेदज्ञो म श्रेष्ठ! दूसरे के द्रव्य मे इस प्रकार ममत्व उत्पन्न करना कदापि उचित नहीं। जब तक यह न्यास (धरोहर) रक्षित है तब तक मैत्री है नष्ट हो जाने पर अथवा चोरी चले जाने पर वे ही शत्रु हो जायेंगे ॥२८॥ यदि द्रव्यदान की शक्ति है तो याचको को धन अवश्य देना चाहिये वहाँ आगा-पीछा सोचने की आवश्यकता नहीं यदि दान की शक्ति नहीं है तो सज्जन व्यक्तियो को दूसरो का कार्य वाणी मन तथा रचनाओ से करना चाहिये ॥२९॥ यही कारण है कि दूसरो की सम्पत्ति अपने पास रखने को सज्जनो ने बार बार मना किया है और निन्द्य माना है। इसलिये कान्त! आप अपने इस निश्चय को छोड दीजिये ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—प्रिया की इस प्रकार की बात सुनकर विप्र दधीचि ने अपनी सुन्दर भौं वाली पत्नी से कहा ॥३१॥

दधीचि ने कहा—भद्रे! पहले देवताओ को सम्मान द्वारा सम्मानित कर पुन नहीं कहना मुझको उचित अथवा सुन्दर नहीं जान पडता ॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—प्रिया के प्रति पति की कही हुई बातो को सुनकर वे देवता अपने तेजोमय (चमकने वाले) अस्त्रो को मुनि के आश्रम म रखकर मुनि को प्रणाम कर अपने लोक को चले गये। पत्नी भी मनुष्यो के भाग्य के

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वेरितं पत्युरिति प्रियायां, दैवं विनाऽन्यत्र नृणां समर्थम् ।
तूष्णीं स्थितायां सुरसत्तमास्ते, संस्थाप्य चास्त्राण्यतिदीप्तिमन्ति ॥३३॥
नत्वा मुनीन्द्रं ययुरेव लोकान्दैत्यद्विषो न्यस्तशस्त्राः कृतार्थाः ।
गतेषु देवेषु मुनिप्रवर्यो हृष्टोऽवसद्भार्यया धर्मयुक्तः ॥३४॥
गते च काले ह्यतिविप्रयुक्ते, दैवे वर्षे संख्यया वै सहस्रे ।
न ते सुरा आयुधानां मुनीश, वाचं मनश्चापि तथैव चक्रुः ॥३५॥
दधीचिरप्याह गभस्तिमोजसा, देवारयो मां द्विषतीह भद्रे ।
न ते सुरा नेतुकामा भवन्ति, संस्थापितान्यत्र वदस्व युक्तम् ॥३६॥
सा चाऽऽह कान्तं विनयादुक्तमेव, त्वं जानीषे नाथ यदत्र युक्तम् ।
दैत्या हरिष्यन्ति महाप्रवृद्धास्तपोयुक्ता बलिनः स्वायुधानि ॥३७॥
तदस्त्ररक्षार्थमिदं स चक्रे, मन्त्रैस्तु संक्षाल्य जलैश्च पुण्यैः ।
तद्वारि सर्वास्त्रमयं सुपुण्यं, तेजोयुक्तं तच्च पपौ दधीचिः ॥३८॥
निर्वीर्यरूपाणि तदायुधानि, क्षयं जग्मुः क्रमशः कालयोगात् ।
सुराः समागत्य दधीचिमूचुर्महाभयं ह्यागतं शात्रवं नः ॥३९॥

अतिरिक्त और कोई पदार्थ बलवान् नहीं, यह सोच कर चुप हो गई। इधर देववृन्द मुनि-आश्रम में शस्त्र रखकर अपने को अत्यन्त कृतकृत्य समझने लगे ॥३३½॥

देवताओं के चले जाने पर मुनिवर्य भार्या के साथ धर्म का पालन करते हुए सानन्द जीवन बिताने लगे। मुनीश! देवों के हजार वर्ष व्यतीत हो गये परन्तु देवों ने अपने रखे हुए अस्त्रों के विषय में कोई खोज बीन न की, ले जाने की चर्चा तक न की, मन से भी अस्त्रों के बारे में कुछ नहीं सोचा ॥३४-३५॥ यह देखकर दधीचि ने अपनी प्रिया गभस्तिनी से कहा—भद्रे! सुरशत्रु राक्षस मेरे इस कार्य से द्वेष करते हैं, और अब तक देवता इस रक्षित अस्त्रों को ले जाना नहीं चाहते, इसलिये इस बारे में कोई उचित उपाय बताओ ॥३६॥ उसने अपने पति से विनय पूर्वक कहा 'मैंने तो पहले ही कह दिया था, नाथ! इस विषय में जो कुछ उचित है उसको आप स्वयं जानते हैं। तप से बढ़े और महाशक्तिशाली राक्षस अपने अस्त्रों को छीन ले जायेंगे, यह सोचकर दधीचि ने उन अस्त्रों की रक्षा के लिये मन्त्रों से जल का अभिमन्त्रित कर उससे अस्त्रों को धो दिया। और उस तेजोमय पवित्र, और सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रों की शक्ति से सम्पन्न उस जल को पी गये, इस प्रकार उन्होंने अस्त्रों की रक्षा की ॥३७-३८॥ अधिक समय बीत जाने के कारण वे अस्त्र बेकाम हो गये और धीरे धीरे नष्ट हो गये। अब अवसर देखकर देवताओं ने आकर दधीचि से कहा कि हम लोगों के शिर पर शत्रुओं का भीषण भय आ गया ॥३९॥ इसलिये मुनिप्रवीर! आप उन

---

१ घ जयिनस्ते।

ते चापि देवास्तामदृष्ट्वैव शीघ्रं, तस्या भीता विप्रमूचुः कुरुष्व ।
तत्याज जीवान्दुस्त्यजान्प्रीतियुक्तो यथासुखं देहमिमं जुषध्वम् ॥४७॥
मदस्थिभि प्रीतिमन्तो भवन्तु, सुरा सर्वे किंतु देहेन कार्यम् ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वाऽसौ बद्धपद्मासनस्थो, नासाग्रदत्ताक्षिप्रकाशप्रसन्नः ।
वायु सर्वाह्नि मध्यमोद्घाटयोगान्नीत्वा शनैर्देहराकाशगर्भम् ॥४९॥
यदप्रमेयं परमं पदं यद्यद्ब्रह्मरूपं यदुपासितव्यम् ।
तत्रैव विन्यस्य धियं महात्मा, सायुज्यतां ब्रह्मणोऽसौ जगाम ॥५०॥
निर्जीवतां प्राप्तमभीक्ष्य देवाः, कलेवरं तस्य सुराश्च सम्यक् ।
त्वष्टारमप्यूचुरतित्वरन्तः, कुरुष्व चास्त्राणि बहूनि सद्यः ॥५१॥
स चापि तानाह कथं नु कार्यं, कलेवरं ब्राह्मणस्येह देवाः ।
बिभेमि कर्तुं दारुणं चाक्षमोऽहं, [1]विदारितान्यायुधान्युत्तमानि ॥५२॥
तदस्थिभूतानि करोमि सद्यस्ततो देवा गाः समूचुस्त्वरन्तः ॥५३॥

प्रिय वचन बोलने वाली, अतिथि-सेविका पत्नी वहाँ उपस्थित न थी। वे देव उसको वहाँ उपस्थित न देखकर, उसके भय से भयभीत होकर ब्राह्मण से बोले कि शीघ्रता कीजिये। देवा की बाते सुनकर दधीचि प्रसन्न हो अपने अत्यन्त कष्ट से छोडने योग्य प्राणो को यह कहते हुए कि मेरे इस शरीर का इच्छानुकूल उपयोग कीजिये, सब देवता मेरी हड्डियो से प्रसन्न हो, इस व्यर्थ शरीर का परोपकार के अतिरिक्त और कौन सदुपयोग हो सकता है, इस शरीर से कोई लाभ नहीं, छोड दिया ॥४६-४८॥

ब्रह्मा ने कहा—यह कहकर दधीचि पद्मासन लगाकर बैठ गये, नासाग्र मे अपनी दृष्टि एकाग्र कर दी, योग द्वारा सुषुम्ना को जाग्रत कर शरीर सचारी वायु और अग्नि को दीप्त कर शनैः शनैः हृदय-गह्वर मे पहुँचा दिया ॥४९॥ और जो अप्रमेय (अज्ञेय), परम पद ब्रह्म का स्वरूप है, उसी मे अपनी बुद्धि (भावना) को लगाकर उस महात्मा ब्राह्मण ने परब्रह्म की सायुज्य-मुक्ति प्राप्त कर ली। इस प्रकार उस ब्राह्मण के शरीर को निर्जीव देखकर, देवताओ ने विश्वकर्मा से कहा—'शीघ्र ही इसी क्षण बहुत से अस्त्रो को बना डालो'। विश्वकर्मा ने भी देवताओ से कहा—'देवगण ! यह ब्राह्मण का शरीर है, मैं कैसे यह दारुण कार्य कर सकता हूँ, यह वीभत्स कार्य करने मे मैं असमर्थ हूँ, यदि अस्थियो को कोई फाड कर अलग कर दे तब मैं उनसे उत्तम से उत्तम अस्त्र शीघ्र बना दूगा। यह सुनकर देवताओं ने शीघ्र ही गौओ से कहा ॥५०॥-५३॥

---

[1] ष •दार्यता•।

देवा ऊचुः

वज्रं मुखं च क्रियते हितार्थं, गावो देवैरायुधार्थं क्षणेन ।
दधीचिदेहं तु विदार्य यूयमस्थीनि शुद्धानि प्रयच्छताद्य ॥५४॥

ब्रह्मोवाच

ता देववाक्याच्च तथैव चक्रु, संलिह्य चास्थीनि ददुः सुराणाम् ।
सुरास्त्वरा जग्मुरदीनसत्त्वा, स्वमालयं चापि तथैव गावः ॥५५॥
कृत्वा तथाऽस्त्राणि च देवतानां, त्वष्टा जगामाथ सुरालयं तदा ।
ततश्चिराच्छीलवती सुभद्रा, भर्तुः प्रिया बालगर्भा त्वरन्ती ॥५६॥
करे गृहीत्वा कलशं वारिपूर्णमुमां नत्वा फलपुष्पं समेत्य ।
अग्निं च भर्तारमथाऽऽश्रमं च, सद्रष्टुकामा ह्याजगामाथ शीघ्रम् ॥५७॥
आगच्छन्तीं तां प्रातिथेयीं तदानीं, निवारयामास तदोल्कपातः ।
सा सम्भ्रमादागता चाऽऽश्रमं स्वं, नैवापश्यत्तत्र भर्तारमग्रे ॥५८॥
क्व वा गतश्चेति सविस्मया सा, पप्रच्छ चाग्निं प्रातिथेयी तदानीम् ।
अग्निस्तदोवाच सविस्तरं तां, देवागमं [1]याचनं वै शरीरे ॥५९॥

देवों ने कहा—*गौओ! आज देवों के हित के लिये तुम सबों का मुख वज्र के समान कठोर बना दिया जाता है इसलिए तत्काल ही दधीचि के शरीर को फाड़कर हड्डियों को शुद्ध कर दो जिससे कि देवों के लिये अस्त्रशस्त्र बनाये जायें ॥५४॥*

ब्रह्मा ने कहा—उन गौओं ने देवों के कथनानुसार वैसा ही किया हड्डियों को चाट चाट कर स्वच्छ कर देवताओं को दे दिया। इस प्रकार उत्साही पराक्रमी देवता शीघ्र ही अपने अपने स्थान को चले गये इस प्रकार गौओं ने भी अपना रास्ता पकड़ा ॥५५॥ त्वष्टा (विश्वकर्मा) भी देवताओं के अस्त्र बनाकर उनके आलय को चले गये। इसके बाद विचारशीला सुभद्रा दधीचि की प्रिय पत्नी जो गर्भवती थी बहुत विलम्ब से उमा की पूजा कर हाथ में जल से भरा कलश और फल पुष्प लिये हुए जल्दी-जल्दी वहाँ पहुँची। उसके हृदय में आश्रम, अग्नि और भर्ता के दर्शन की अत्यन्त उत्सुकता थी ॥५६-५७॥ वह अतिथि-सेवा-परायण साध्वी जब आ रही थी उसी समय रास्ते में उल्कापात हुआ जिससे कि उसको अशकुन की पूर्व सूचना मिली। यह देख कर उसके हृदय में और अधिक आकुलता हो गई। वह दौड़ी हुई शीघ्र अपने आश्रम में आई परन्तु आते ही उसने अपने प्राणप्रिय पति को नहीं देखा ॥५८॥ उस अतिथि सेवा-परायणा ने अत्यन्त विस्मित हो उस समय अग्नि से पूछा कि मेरे पति देव कहाँ गये। यह सुनकर *अग्नि ने विस्तारपूर्वक उससे देवों का आश्रम में आना दधीचि से शरीर का माँगना उनका प्राणत्याग हड्डियों का निकालना उससे अस्त्र निर्माण और पुनः देवताओं का चला जाना आदि बातें कह सुनाईं। इन बातों को सुनकर*

---

[1] ग. ०र्न चैव दात्रम्। अ०।

अस्थ्नामुपादानमथ प्रयाणं, श्रुत्वा सर्वं दुःखिता सा बभूव
दुःखोद्वेगात्सा पपाताथ पृथ्व्यां, मन्दं मन्दं वह्निनाऽऽश्वासिता च ॥६०॥

प्रातिथेय्युवाच

शापेऽमराणां तु नाहं समर्था, अग्निं प्राप्स्ये किं नु कार्यं भवेन्मे ॥६१॥

ब्रह्मोवाच

कोपं च दुःखं च नियम्य साध्वी, तदाऽवादीद्धर्मयुक्तं च भर्तुः ॥६२॥

प्रातिथेय्युवाच

उत्पद्यते यत्तु विनाशि सर्वं, न शोच्यमस्तीति मनुष्यलोके ।
गोविप्रदेवार्थमिह त्यजन्ति, प्राणान्प्रियान्पुण्यभाजो मनुष्याः ॥६३॥
संसारचक्रे परिवर्तमाने देहं समर्थं धर्मयुक्तं त्ववाप्य ।
प्रियान्प्राणान्देवविप्रार्थहेतोस्ते वै धन्याः प्राणिनो ये त्यजन्ति ॥६४॥
प्राणाः सर्वस्यापि देहान्वितस्य, यातारो वै नात्र संदेहलेशः ।
एवं ज्ञात्वा विप्रगोदेवदीनाद्यर्थं चैनानुत्सृजन्तीश्वरास्ते ॥६५॥
निवार्यमाणोऽपि मया प्रपन्नया, चकार देवास्त्रपरिग्रहं सः ।
मनोगतं वेत्त्यथवा विधातुः, को मर्त्यलोकातिगचेष्टितस्य ॥६६॥

उसको अत्यन्त दुःख हुआ दुःख के आवेग से मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ी। अग्निदेव ने धीरे धीरे उसको पुनः सभाश्वासन(?) किया ॥५९, ६०॥

प्रातिथेयी ने कहा - देवताओं को शाप देना मेरे लिए उचित नहीं अब अग्नि प्रवेश (सती होना) ही करूँगी इसके अतिरिक्त मेरे लिए रास्ता ही कौन सा है ॥६१॥

ब्रह्मा ने कहा - धीरे-धीरे उस साध्वी ने प्रण द्वारा क्रोध और आन्तरिक व्यथा पर अधिकार किया, तब उसने अपने पति के विषय में धर्मयुक्त (न्यायोचित) बात कहना प्रारम्भ किया ॥६२॥

प्रातिथेयी ने कहा—इस मनुष्य लोक में जो कुछ उत्पन्न होता है वह नश्वर (क्षणभंगुर) है इसलिए इसके विषय में शोक करना व्यर्थ है परन्तु वे मनुष्य अति पुण्यात्मा हैं जो गो विप्र और देवों के लिए अपने प्रिय प्राणों का बलिदान करते हैं। इस परिवर्तनशील संसार (चक्र) में जो समर्थ (कार्यक्षम) धर्मयुक्त (धर्माय सदा तत्पर रहने वाला) मानव शरीर पाकर अपने प्रिय प्राणों को देव और ब्राह्मणों के लिए छोड़ देते हैं वे प्राणी धन्य हैं। इस शरीर में निवास करने वाले प्राण गमनशील (मरणशील) हैं इसमें रत्तीभर भी संदेह नहीं है। यह रहस्य जानकर जो विप्र गौ देव और दीनों के लिये अपने प्राणों को छोड़ देते हैं वे अवश्य ही भाग्यशाली और महान हैं। मैंने बड़े अनुनय-विनय से उनको रोका परन्तु उन्होंने देवताओं के अस्त्रों को रख लिया। अथवा ठीक है, मृत्युलोक में रहने वाले (मनुष्यों) से सर्वथा अपरिचित स्वभाववाले विधाता के मनोगत भावों को कौन जानता है ॥६३-६६॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवमुक्त्वाऽऽपूज्य चाग्नीन्यथावद्भर्तुस्त्वचालोमभिः सा विवेश ।
गर्भस्थितं बालकं प्रातिथेयी, कुक्षिं विदार्याथ करे गृहीत्वा ॥६७॥
नत्वा च गङ्गां भुवमाश्रमं च, वनस्पतीनोषधीराश्रमस्थान् ॥६८॥

प्रातिथेय्युवाच

पित्रा हीनो बन्धुभिर्गोत्रजैश्च, मात्रा हीनो बालकः सर्व एव ।
रक्षन्तु सर्वेऽपि च भूतसंघास्तथौषध्यो बालकं लोकपालाः ॥६९॥
ये बालकं मातृपितृप्रहीणं, सनिर्विशेषं स्वतनुप्ररूढैः ।
पश्यन्ति रक्षन्ति त एव नूनं, ब्रह्मादिकानामपि वन्दनीयाः ॥७०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा चात्यजद्बालं भर्तृचित्तपरायणा। पिप्पलाना समीपे तु न्यस्य बालं नमस्य च ॥७१॥
अग्निं प्रदक्षिणीकृत्य यज्ञपात्रसमन्विता। विवेशाग्निं प्रातिथेयी भर्त्रा सह दिवं ययौ ॥७२॥
ददृशुश्चाऽऽश्रमस्था ये वृक्षाश्च वनवासिनः। पुत्रवत्पोषिता येन ऋषिणा च दधीचिना ॥७३॥
विना तेन न जीवामस्तया मात्रा विना तथा। मृगाश्च पक्षिणः सर्वे वृक्षाः प्रोचुः परस्परम् ॥७४॥

वृक्षा ऊचुः

स्वर्गमासेदुषो पित्रोस्तदपत्येष्वकृत्रिमम्। ये कुर्वन्त्यनिशं स्नेहं त एव कृतिनो नराः ॥७५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहकर उस अतिथि सेविका ने अग्नि की यथाविधि पूजा की। पति के अवशिष्ट त्वचा, रोम आदि को एकत्र किया और अपनी कुक्षि को फाड़कर गर्भस्थ बालक को अपने हाथों पर लिया। अनन्तर आश्रम की, वनस्पतियों, ओषधियों, गङ्गा, पृथ्वी और अपने आश्रम को प्रणाम करती हुई वह अग्नि में प्रवेश करने की कामना से बोली।—॥६७-६८॥

प्रातिथेयी ने कहा—आप सभी प्राणि समूह, ओषधियाँ और लोकपाल पिता, माता, भाई, बन्धु और गोत्रों से रहित इस बालक की रक्षा करें। जो व्यक्ति माता-पिता से हीन (अनाथ) बालक को अपने औरस पुत्र के समान समझ कर पालन करते हैं वे भाग्यशाली हैं और ब्रह्मा आदि देवों के भी वन्दनीय हैं॥६९-७०॥

ब्रह्मा बोले—यह कहकर पति-चरण में लीन रहने वाली उस सुशीला ने बालक को एक पीपल के वृक्ष के नीचे रख दिया। फिर यज्ञपात्र हाथ में लेकर अग्नि की प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करके वह अग्नि में प्रविष्ट हो गई। इस प्रकार अपने पति के साथ वह स्वर्ग को चली गई। यह करुण दृश्य देखकर, आश्रम तथा वन के वृक्ष, पक्षी, मृग आदि, जिनका ऋषि दधीचि ने पुत्र के समान पालन किया था, रो पड़े। वे परस्पर कहने लगे कि उस माता के बिना हम लोग कैसे जी सकेंगे? ॥७१-७४॥

वृक्षों ने कहा—जो व्यक्ति माता पिता से वञ्चित सन्तान पर अपना सहज स्नेह सर्वदा दिखलाते हैं, वे ही वास्तव में भाग्यशाली हैं। पिता दधीचि और माता प्रातिथेयी जिस सहज-स्नेहमयी दृष्टि से हम लोगों को देखते थे,

दधीचिः प्रातियेयी वा वीक्षतेऽस्मान्यथा पुरा। तथा पिता न माता वा धिगस्मान्पापिनो वयम् ॥७६॥
अस्माकमपि सर्वेषामतः प्रभृति निश्चितम्। बालो दधीचिः प्रातियेयी बालो धर्मः सातनः ॥७७॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदौषध्यो वनस्पतिसमन्विताः। सोमं राजानमभ्येत्य ययाचिरेऽमृतमुत्तमम् ॥७८॥
स चापि दत्तवांस्तेभ्यः सोमोऽमृतमनुत्तमम्। ददुर्बालाय ते चापि अमृतं सुरवल्लभम् ॥७९॥
स तेन तृप्तो ववृधे शुक्लपक्षे यथा शशी। पिप्पलैः पालितो यस्मात्पिप्पलादः स बालकः॥
प्रवृद्धः पिप्पलानेवमुवाच त्वतिविस्मितः ॥८०॥

पिप्पलाद उवाच

मानुषेभ्यो मानुषास्तु जायन्ते पक्षिभिः खगाः। बीजेभ्यो वीरुधो लोके वैषम्यं नैव दृश्यते॥
वार्क्षस्त्वहं कथं जातो हस्तपादादिजीववान् ॥८१॥

ब्रह्मोवाच

वृक्षास्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वमूचुर्यथाक्रमम्। दधीचेर्मरणं साध्व्यास्तथा चाग्निप्रवेशनम् ॥८२॥
अस्थ्ना सहरणं देवैरेतत्सर्वं सविस्तरम्। श्रुत्वा दुःखसमाविष्टो निपपात तदा भुवि ॥८३॥
आश्वासितः पुनर्वृक्षैर्वाक्यैर्धर्मार्थसंहितैः। आश्वस्तः स पुन प्राह तदौषधिवनस्पतीन् ॥८४॥

उस प्रकार कोई माता या पिता भी अपनी सन्तान को नहीं देख सकते। ऐसे पिता-माता से हम वियुक्त हो गये। हाय! हम पापियों को धिक्कार है!! अतः आज हम लोग यह दृढ़ प्रतिज्ञा करें कि दधीचि और प्रातियेयी के इस बाल आत्मा का पालन-पोषण हम लोग अवश्य करेंगे। यही सनातन धर्म है ॥७५-७७॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय ऐसी प्रतिज्ञा करके वनस्पतियों सहित वे ओषधियाँ राजा सोम के समीप गईं और अमृत माँगा। उस राजा सोम ने भी उनको वह परमोत्तम अमृत दे दिया। उन्होंने भी देवों को प्रिय लगने वाला अमृत बालक को दे दिया। वह बालक भी अमृत पान से तृप्त होकर शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान दिनोदिन बढ़ने लगा। पीपल के वृक्ष ने उस बालक का पालन किया था, इसलिये उसका नाम 'पिप्पलाद' रखा गया। जब वह बड़ा हुआ, तब अत्यन्त विस्मित होकर पीपल के वृक्ष से कहा ॥७८-८०॥

पिप्पलाद ने कहा—प्रायः लोक में मनुष्यों से मनुष्य, पक्षियों से पक्षी और बीज से वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं, इसमें कभी भी वैषम्य नहीं देखा जाता परन्तु मैं हाथ पैर वाला, प्राणधारी मानव कैसे वृक्ष से उत्पन्न हो गया? ॥८१॥

ब्रह्मा बोले—बालक पिप्पलाद की स्वाभाविक बातों को सुनकर वृक्ष ने आदि से अन्त तक—दधीचि की मृत्यु, साध्वी का पति के साथ अग्नि प्रवेश (सती होना), देवताओं द्वारा अस्थि के लिये कपट उपाय आदि—सारी घटनायें विस्तारपूर्वक सुना दीं। यह सुनकर उसको अत्यन्त व्यथा हुई। वह मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। बालक को इस प्रकार मूर्च्छित देखकर वृक्ष ने धर्मार्थ-संगत वाक्य कहकर ढाढ़स बँधाया। वृक्ष के आश्वासन से अपने को सँभाल कर उसने पुनः ओषधियों और वनस्पतियों से कहा ॥८२-८४॥

पिप्पलाद उवाच

पितृहन्तॄन्हनिष्येऽहं नान्यथा जीवितुं क्षम.। पितुर्मित्राणि शत्रूंश्च तथा पुत्रोऽनुवर्तते ॥८५॥
स एव पुत्रो योऽन्यस्तु पुत्ररूपो रिपुः स्मृतः। वदन्ति पितृमित्राणि तारयन्त्यहितानपि ॥८६॥

ब्रह्मोवाच

वृक्षास्तं बालमादाय सोमान्तिकमथाऽऽययुः। बालवाक्यं तु ते वृक्षाः सोमायाथ न्यवेदयन् ॥८७॥
श्रुत्वा सोमोऽपि तं बालं पिप्पलादमभाषत

सोम उवाच

गृहाण विद्यां विधिवत्समग्रां, तप.समृद्धिं च शुभां च वाचम् ।
शौर्यं च रूपं च बलं च बुद्धिं, संप्राप्स्यसे पुत्र मदाज्ञया त्वम् ॥८८॥

ब्रह्मोवाच

पिप्पलादस्तमप्याह ओषधीशं विनीतवत् ॥८९॥

पिप्पलाद उवाच

सर्वमेतद्वृथा मन्ये पितृहन्तृविनिष्कृतिम्। न करोम्यत्र यावच्च तस्मात्तत्प्रथमं वद ॥९०॥
यस्मिन्देशे यत्र काले यस्मिन्देवे च मन्त्रके। यत्र तीर्थे च सिध्येत मत्संकल्पः सुरोत्तम ॥९१॥

पिप्पलाद ने कहा—मैं अपने पिता के हत्यारो का अवश्य वध करूँगा। बिना ऐसा किये मैं जी नही सकता। यह नीति वचन है कि पिता के शत्रु और मित्रो के प्रति पुत्र को भी वैसा ही व्यवहार करना चाहिये। वही पुत्र है जिसने उपर्युक्त सवचन को सत्य सिद्ध किया, नही तो वह पुत्र नही प्रत्युत पुत्र रूप मे पिता का शत्रु है। ऐसे ही पुत्र पितरो के उद्धारकर्ता होते हैं जो पिता के मित्रो और शत्रुओ के प्रति यथायोग्य व्यवहार करते हैं, ऐसा नीतिज्ञो ने कहा है ॥८५ ८६॥

ब्रह्मा ने कहा—बालक की यह दृढ प्रतिज्ञा सुनकर वृक्ष उसको साथ लेकर सोम के समीप गये और उनसे बालक की कही हुई बातें कह सुनाईं। सोम ने यह सुनकर बालक पिप्पलाद से कहा ॥८७॥

सोम ने कहा—बेटा! तुम विधिपूर्वक सब विद्यायें बहुत बडी तपस्यायें, कल्याणमयी वाणी, वीरता, रूप, बल तथा बुद्धि प्राप्त करो। मेरी आज्ञा से तुम्हें सब चीजें मिल जाएँगी ॥८८॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर पिप्पलाद ने पुन राजा सोम से नम्रतापूर्वक कहा ॥८९॥

पिप्पलाद बोले—पिता के हत्यारो से बदला लेने म कुछ भी सहायता न देने वाले इस वरदान को व्यर्थ समझता हूँ। जितना आप कह गये हैं उनमे से किसी को भी मैं स्वीकार नही करता। इसलिये हे देववर! पहले आप यह बतलाइये कि किस देश मे किस समय किस देवता के पास किस मन्त्र का जप करने से या किस तीर्थ मे जाने से मेरा सकल्प सिद्ध होगा? ॥९०-९१॥

ब्रह्मोवाच

चन्द्रः प्राह चिरं ध्यात्वा भुक्तिर्वा मुक्तिरेव वा। सर्वं महेश्वराद्देवाज्जायते नात्र संशयः ॥९२॥
स सोमं पुनरप्याह कथं द्रक्ष्ये महेश्वरम्। बालोऽहं बालबुद्धिश्च न सामर्थ्यं तपस्तथा ॥९३॥

चन्द्र उवाच

गौतमीं गच्छ भद्र त्वं स्तुहि चक्रेश्वरं हरम्। प्रसन्नस्तु तवेशानो ह्यल्पायासेन वत्सक ॥९४॥
प्रीतो भवेन्महादेवः साक्षात्कारुणिकः शिवः। आस्ते साक्षात्कृतः शंभुर्विष्णुना प्रभविष्णुना ॥९५॥
वरं च दत्तवान्विष्णोश्चक्रं च त्रिदशार्चितम्। गच्छ तत्र महाबुद्धे दण्डके गौतमीं नदीम् ॥९६॥
चक्रेश्वरं नाम तीर्थं जानन्त्योषधयस्तु तत्। तं गत्वा स्तुहि देवेशं सर्वभावेन शंकरम्॥
स ते प्रीतमनास्तात सर्वान्कामान्प्रदास्यति ॥९७॥

ब्रह्मोवाच

तद्राजवचनाद्ब्रह्मन्पिप्पलादो महामुनिः। आजगाम जगन्नाथो यत्र रुद्रः स चक्रदः ॥९८॥
तं बालं कृपयाऽऽविष्टाः पिप्पलाः स्वाश्रमान्ययुः। गोदावर्यां ततः स्नात्वा नत्वा त्रिभुवनेश्वरम्॥
तुष्टाव सर्वभावेन पिप्पलादः शिवं शुचिः ॥९९॥

ब्रह्मा ने कहा—कुछ देर तक ध्यान करके चन्द्र ने कहा—'भुक्ति या मुक्ति सब कुछ शंकर भगवान् से ही प्राप्त होते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं।' पुनः बालक ने सोमदेव से प्रश्न किया, मैं बालक हूँ, थोड़ी बुद्धि रखता हूँ, कठोर तपस्या करने की शक्ति भी मुझमें नहीं है। तब मैं किस प्रकार महेश्वर का दर्शन प्राप्त कर सकूँगा? ॥९२-९३॥

चन्द्र ने कहा—भद्र! तुम गौतमी के तट पर जाओ, वहाँ चक्रेश्वर शंकर की स्तुति करो! वत्स! तुम्हारे थोड़े प्रयत्न से ही शंकर प्रसन्न हो जायेंगे। महादेव शंकर साक्षात् करुणा के अवतार हैं, वे अवश्य तुम्हारी बाल-उपासना से प्रसन्न होकर दर्शन देंगे। परम सामर्थ्यवान् विष्णु ने शंकर का साक्षात्कार किया है। शंकर ने उनको देवों से पूजित चक्र और अन्यान्य वर दिये हैं। महाबुद्धिमान्! तुम दण्डक वन में गौतमी के तट पर जाओ। ये औषधियाँ भी उस चक्रेश्वर तीर्थ को जानती हैं। वहाँ जाकर अनन्य भाव से भगवान् शंकर की स्तुति करो। तात! वे प्रसन्न होकर अवश्य तुम्हारी सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण करेंगे ॥९४-९७॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा सोम के आदेशानुसार महामुनि पिप्पलाद उस स्थान पर गये, जहाँ चक्र के दाता जगन्नाथ शंकर निवास करते हैं। पीपल वृक्ष भी करुणा से विह्वल होकर उस बालक को वहाँ पहुँचाकर अपने आश्रम को चले गये। इसके उपरान्त पिप्पलाद ने गोदावरी में स्नान किया और पवित्र होकर त्रिभुवनेश्वर शंकर को प्रणाम करके अनन्य भाव से उनकी स्तुति की ॥९८-९९॥

पिप्पलाद उवाच

सर्वाणि कर्माणि विहाय धीरास्त्यक्तैषणा निर्जितचित्तवाताः ।
यं यान्ति मुक्त्यै शरणं प्रयत्नात्तमादिदेवं प्रणमामि शंभुम् ॥१००॥
यः सर्वसाक्षी सकलान्तरात्मा, सर्वेश्वरः सर्वकलानिधानम् ।
विज्ञाय मच्चित्तगतं समस्तं, स मे स्मरारिः करुणां करोतु ॥१०१॥
दिगीश्वराञ्जित्य सुरार्चितस्य, कैलासमान्दोलयतः पुरारेः ।
अङ्गुष्ठकृत्येव रसातलादधोगतस्य तस्यैव दशाननस्य ॥१०२॥
आलूनकायस्य गिरं निशम्य, विहस्य देव्या सह दत्तमिष्टम् ।
तस्मै प्रसन्नः कुपितोऽपि तद्वदयुक्तदाताऽसि महेश्वर त्वम् ॥१०३॥
सौत्रामणीमृद्धिमधः स चक्रे, योऽर्चां हरौ (रे) नित्यमतीव कृत्वा ।
बाणः प्रशस्यः कृतवानुच्चपूजां, रम्या मनोज्ञां शशिखण्डमौलेः ॥१०४॥
जित्वा रिपून्देवगणान्प्रपूज्य, गुरुं नमस्कर्तुमगाद्विशाखः ।
चुकोप दृष्ट्वा गणनाथमूढमङ्के तमारोप्य जहास सोमः ॥१०५॥
ईशाङ्करूढोऽपि शिशुस्वभावान्न मातुरङ्कं प्रमुमोच बालः ।
क्रुद्धं सुतं बोधितुमप्यशक्तस्ततोऽर्धनारित्वमवाप सोमः ॥१०६॥

पिप्पलाद ने कहा—मैं उस व्यापक शिव को प्रणाम करता हूँ जिसकी शरण मे जाकर मनस्वी जन अपनी सम्पूर्ण सांसारिक इच्छाओं और सब कर्मों का त्याग कर अपने चित्त एवं प्राणवायु को वश मे करके मुक्ति-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं ॥१००॥ वे शंकर सबके साक्षी हैं, सबके अन्तःकरण मे निवास करते हैं, सबके ईश्वर और सम्पूर्ण कला के कोश हैं, वे मदनरिपु मेरे हृदय की समस्त भावनाओं को जानकर मेरे ऊपर करुणा करें ॥१०१॥ हे महेश्वर ! रावण ने दिक्पालों को जीतकर देवताओं से पूजा प्राप्त की और दर्प से आपके कैलाश पर्वत को हिला दिया। उसकी इस धृष्टता से कुपित होकर आपने उसे अंगूठे से दबाकर रसातल भेज दिया, परन्तु उस छिन्न शरीर वाले रावण की प्रार्थना सुनकर कुपित होने पर भी आप पार्वती सहित प्रसन्न हो गए और उसको अभिलषित वरदान दिया। इस प्रकार आप औढरदानी हैं ॥१०१-१०३॥ प्रशंसनीय बाण ने शशिमौलि की उच्च कोटि की रम्य और मनोहर पूजा के द्वारा सौत्रामणि यज्ञ सम्बन्धी सिद्धियों को तुच्छ कर दिया ॥१०४॥ अब कार्तिकेय शत्रुओं को जीतकर और देवताओं की पूजा करके गुरुजनों को प्रणाम करने के लिये आये तब गणनाथ (गणेश) को पहले ही आपकी गोद मे बैठे देखकर कुपित हो गये, फिर आप कार्तिकेय को गोद लेकर मे पार्वती सहित हंस पड़े ॥१०५॥ आपकी गोदी मे बैठे हुए उस बालक ने अपनी बालप्रकृति के कारण माता की गोद नही छोड़ी। तब अपने क्रुद्ध पुत्र को और किसी प्रकार से समझाने में अपने को असमर्थ पाकर पार्वती सहित आपने अर्धनारी का रूप धारण कर लिया ॥१०६॥

ब्रह्मोवाच

ततः स्वयंभूः सुप्रीतः पिप्पलादमभाषत ॥१०७॥

शिव उवाच

वरं वरय भद्रं ते पिप्पलाद यथेप्सितम् ॥१०८॥

पिप्पलाद उवाच

हतो देवैर्महादेव पिता मम महायशाः। अदाम्भिकः सत्यवादी तथा माता पतिव्रता ॥१०९॥
देवेभ्यश्च तयोर्नाशं श्रुत्वा नाथ सविस्तरम्। दुःखकोपसमाविष्टो नाहं जीवितुमुत्सहे ॥११०॥
तस्मान्मे देहि सामर्थ्यं नाशयेयं सुरान्यथा। अवध्यसेव्यस्त्रैलोक्ये त्वमेव शशिशेखर ॥१११॥

ईश्वर उवाच

तृतीयं नयनं द्रष्टुं यदि शक्नोषि मेऽनघ। ततः समर्थो भविता देवांश्छेदयितुं भवान् ॥११२॥

ब्रह्मोवाच

ततो द्रष्टुं मनश्चक्रे तृतीयं लोचनं विभोः। न शशाक तदोवाच न शक्तोऽस्मीति शंकरम् ॥११३॥

ईश्वर उवाच

किंचित्कुरु तपो बाल यदा द्रक्ष्यसि लोचनम्। तृतीयं त्वं तदाऽभीष्टं प्राप्स्यसे नात्र संशयः ॥११४॥

ब्रह्मा ने कहा—पिप्पलाद की प्रार्थना सुनकर स्वयम्भू शंकर जी अत्यन्त प्रसन्न होकर पिप्पलाद से बोले ॥१०७॥

शिव ने कहा—तुम्हारा कल्याण हो, तुम अपना अभीष्ट वर मांगो ॥१०८॥

पिप्पलाद ने कहा—महादेव ! मेरे अतिविनम्र, साधु, सत्यवादी और महाप्रतापी पिता तथा पतिव्रता माता को देवताओं ने मार डाला। नाथ ! देवताओं द्वारा अपने माता पिता का नाश सुनकर दुःख और ताप से अन्धा हो गया हूँ, मुझे जीने की इच्छा नहीं हो रही है। इसलिये मुझे ऐसी शक्ति दीजिए, जिससे मैं देवताओं का नाश कर सकूँ। शशिशेखर ! इस त्रिभुवन में आप ही अवध्य एवं सेव्य हैं ॥१०९-१११॥

ईश्वर ने कहा—हे निष्पाप ! यदि तुम मेरे तीसरे नेत्र को देख सको तो तुम देवताओं को नष्ट करने में समर्थ हो जाओगे ॥११२॥

ब्रह्मा बोले—यह सुनकर व्यापक शंकर के तृतीय लोचन को देखने के लिये उसने प्रयत्न किया, परन्तु देख न सका। तब शंकर से कहा कि मैं देखने में समर्थ नहीं हूँ ॥११३॥

ईश्वर ने कहा— बालक कुछ और तपस्या करो जब तुम तृतीय नेत्र को देखोगे तब निश्चय ही अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लोगे ॥११४॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वेशानवाक्यं तपसे कृतनिश्चयः। दधीचिसूनुर्धर्मात्मा तत्रैव बहुलाः समाः॥११५॥
शिवध्यानैकनिरतो बालोऽपि बलवानिव। प्रत्यहं प्रातरुत्थाय स्नात्वा नत्वा गुरून्क्रमात्॥११६॥
सुखासीनो मनः कृत्वा सुषुम्नायामनन्यधीः। हस्तस्वस्तिकमारोप्य नाभौ विस्मृतसंसृतिः॥११७॥
स्थानात्स्थानान्तरोत्कर्षान्विदध्यौ शांभवं महः। ददर्श चक्षुर्देवस्य तृतीयं 'पिप्पलाशन.॥
॥११८॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विनीत इदमब्रवीत्

पिप्पलाद उवाच

शंभुना देवदेवेन वरो दत्तः पुरा मम। तार्तीयचक्षुषो ज्योतिर्यदा पश्यसि तत्क्षणात्॥११९॥
सर्वं ते प्रार्थितं सिध्येदित्याह त्रिदशेश्वरः। तस्माद्रिपुविनाशाय हेतुभूतां प्रयच्छ मे॥१२०॥
तदैव पिप्पला. प्रोचुर्वडवाऽपि महाद्युते। माता तव प्रातिथेयी वदन्त्येव दिवं गता॥१२१॥
पराभिद्रोहनिरता विस्मृतात्महिता नराः। इतस्ततो भ्रान्तचित्ताः पतन्ति नरकावटे॥१२२॥
तन्मातृवचनं श्रुत्वा कुपितः पिप्पलाशन.। अभिमाने ज्वलत्यन्तः साधुवादो निरर्थक ॥१२३॥

ब्रह्मा ने कहा—शकर जी की इतनी बातें सुनकर धर्मात्मा दधीचि-पुत्र ने तपस्या के लिये दृढ सकल्प कर लिया और वह वही पर एकमात्र शिव के ध्यान म तल्लीन होकर बालक होते हुये भी बलवान् के समान दीर्घकालीन तपस्या करने लगा। प्रतिदिन प्रात काल उठता, स्नानोपरान्त क्रमश गुरुजनो को प्रणाम करता था। पुन आसन पर सुखपूर्वक बैठकर सुषुम्ना मे एकाग्र मन से ध्यान लगाता और नाभिस्थान मे हस्त-स्वस्तिक लगाकर ससार की ओर से एकदम अपना मन हटा लेता था। इस प्रकार अपने ध्यान को एक स्थान से हटाकर दूसरे उत्कृष्ट स्थान मे जमाता हुआ शभु के महातेज का ध्यान करता था। अन्त मे पिप्पलाद ने अपनी उत्कृष्ट योग-साधना द्वारा शकर के तृतीय नेत्र को देख लिया। तब हाथ जोडकर विनीत भाव से शकर जी से कहा॥११५-११८॥

पिप्पलाद ने कहा—पहले देवो के देव शकर ने मुझको वर दिया था कि 'जब तुम मेरे तीसरे नेत्र की ज्योति को देखोगे तब उसी क्षण तुम्हारे सब मनोरथ पूरे हो जायेंगे'॥११९॥ इसलिये शत्रु का विनाश करने के लिये मुझे शक्ति प्रदान कीजिये। उसी समय पीपल के वृक्षो और वडवा ने कहा 'हे महातेजस्वी! तुम्हारी माता प्रातिथेयी इस प्रकार कहती हुई ही स्वर्ग चली गई थी कि दूसरो के अपकार मे निरत रहने वाले, अपने हित को भुला देने वाले और इधर उधर भटकने वाले मानव नरक कुण्ड मे गिरते हैं॥१२०-१२२॥ माता की कही हुई बातो को सुनकर पिप्लाद कुपित हो गया। उसका अन्त करण अभिमान के अग्नि मे जलने लगा। उसने कहा कि यह साधु उपदेश निरर्थक है॥१२३॥ उसी क्षण उसके नेत्र से एक कृत्या निकली और बोलने लगी—'दो दो।' चूकि उस समय

१क. ङ. प्रीतिकारणम्।

देहि देहीति तं प्राह कृत्या नेत्रविनिर्गता। वडवेति स्मरन्विप्रः कृत्याऽपि वडवाकृतिः॥१२४॥
सर्वसत्त्वविनाशाय प्रभूतानलगर्भिणी। गभस्तिनी बालगर्भा या माता पिप्पलाशिनः॥१२५॥
तद्ध्यानयोगात्तु जाता कृत्या साऽनलगर्भिणी। उत्पन्ना सा महारौद्रा मृत्युजिह्वेव भीषणा॥१२६॥
अवोचत्पिप्पलादं तं किं कृत्यं मे वदस्व तत्। पिप्पलादोऽपि तां प्राह देवान्खाद रिपून्मम॥१२७॥
जग्राह सा तथेत्युक्त्वा पिप्पलादं पुरस्थितम्। स प्राह किमिदं कृत्ये सा चाप्याह त्वयोदितम्॥१२८॥
देवैश्च निर्मितं देहं ततो भीतः शिवं ययौ। तुष्टाव देवं स मुनिः कृत्यां प्राह तदा शिवः॥१२९॥

शिव उवाच

योजनान्तः स्थिताञ्जीवान्न गृहाण मदाज्ञया। तस्माद्याहि ततो दूरं कृत्ये कृत्यं ततः कुरु॥१३०॥

ब्रह्मोवाच

तीर्थात्तु पिप्पलात्पूर्वं यावद्योजनसंख्यया। प्रातिष्ठद्वडवारूपा कृत्या सा ऋषिनिर्मिता॥१३१॥
तस्यां जातो महानग्निर्लोकसंहरणक्षमः। तं दृष्ट्वा विबुधाः सर्वे त्रस्ताः शंभुमुपागमन्॥१३२॥
चक्रेश्वरं पिप्पलेशं पिप्पलादेन तोषितम्। स्तुवन्तो भीतमनसः शंभुमूचुर्दिवौकसः॥१३३॥

ब्राह्मण ने वडवा का स्मरण किया था, अतएव कृत्या भी वडवा (घोड़ी) जैसी आकृति में प्रकट हुई। वह सभी प्राणियों को विनष्ट करने के लिए अपने गर्भ में प्रचुर अग्नि धारण किये हुई थी॥१२४½॥ पिप्पलाद की माता बड़ी कान्तिमती तथा बालगर्भा थी, इसलिये उसका ध्यान करने के कारण कृत्या भी अग्निगर्भा हुई। इस प्रकार अत्यन्त क्रूर एवं मृत्यु की जीभ के समान भयंकर वह कृत्या उत्पन्न होकर पिप्पलाद से बोली—'मेरे लिए कौन सा कार्य है, यह बताओ।' पिप्पलाद ने भी उससे कहा कि तुम मेरे शत्रु देवताओं को खा डालो॥१२५-१२७॥ 'अच्छी बात' यह कहकर उसने पहले सामने खड़े हुये पिप्पलाद को ही पकड़ लिया। पिप्पलाद बोला—'कृत्या! यह क्या कर रही है?' वह बोल उठी—'तुमने ही तो कहा है। तुम्हारा शरीर भी तो देवताओं द्वारा ही निर्मित है।' तब पिप्पलाद डरकर शिव की शरण में गया और उनकी स्तुति करने लगा। तब शंकर ने कृत्या से कहा॥१२८-१२९॥

शिव ने कहा—कृत्या! मेरी आज्ञा से योजन-परिमित सीमा के भीतर रहने वाले प्राणियों को मत पकड़ो। इसलिये यहाँ से दूर जाओ और तब अपना कार्य करो॥१३०॥

ब्रह्मा बोले—तदनन्तर वह ऋषि द्वारा उत्पन्न की हुई वडवारूप धारिणी कृत्या पिप्पल तीर्थ से पूर्व एक योजन के क्षेत्र में अवस्थित हो गई। वहाँ उसके शरीर से सम्पूर्ण लोक को भस्म कर देने की क्षमता रखने वाली अग्निज्वाला उत्पन्न हुई। उसको देखकर सब देव भयत्रस्त हो शंकर के समीप गये। वहाँ जाकर भयभीत देवगण पिप्पलाद से सन्तुष्ट किये गये पिप्पलाधिपति चक्रेश्वर शम्भु की स्तुति करते हुए बोले॥१३१-१३३॥

देवा ऊचुः

रक्षस्व शंभो कृत्याऽस्मान्बाधते तद्भवानल । शरणं भव सर्वेश[1] भीतानामभयप्रद ॥१३४॥
सर्वत परिभूतानामार्तानां श्रान्तचेतसाम् । सर्वेषामेव जन्तूनां त्वमेव शरणं शिव ॥१३५॥
ऋषिणाऽभ्यर्थिता कृत्या त्वच्चक्षुर्वह्निनिर्गता । सा जिघांसति लोकास्त्रींस्त्वं नस्त्राता न चेतरः ॥१३६॥

ब्रह्मोवाच

तानब्रवीज्जगन्नाथो योजनान्तर्निवासिन । न बाधते त्वसौ कृत्या तस्माद्यूयमहर्निशम् ॥१३७॥
इहैवाऽऽसध्वममरास्तस्या वो न भयं भवेत् ॥१३८॥

ब्रह्मोवाच

पुनरूचुः सुरेशानं त्वया दत्तं त्रिविष्टपम् । तत्त्यक्त्वाऽत्र कथं नाथ वत्स्यामस्त्रिदशार्चित ॥१३९॥

ब्रह्मोवाच

देवानां वचनं श्रुत्वा शिवो वाक्यमथाब्रवीत् ॥१४०॥

शिव उवाच

देवोऽसौ विश्वतश्चक्षुर्यो देवो विश्वतोमुखः । यो रश्मिभिस्तु धमते नित्यं यो जनको मतः ॥१४१॥
स सूर्य एक एवात्र साक्षाद्रूपेण सर्वदा । स्थितिं करोतु तन्मूर्तौ भविष्यन्त्यखिलाः स्थिताः ॥१४२॥

देवगण बोले—शंभो ! रक्षा कीजिये । कृत्या और उससे निकली हुई ज्वाला हम लोगों को नष्ट कर रही है। हे सबके स्वामी ! डरे हुओं को अभय वरदान देने वाले ! हम लोगों के शरणदाता होइये। हे शिव ! सब ओर से पराजित दुःखी तथा थके हुए चित्त वाले सभी प्राणियों के लिए आप ही शरणदाता हैं। ऋषि से प्रार्थित और आप के नेत्र की ज्वाला से निकली हुई वह कृत्या तीनों लोकों को नष्ट करना चाहती है। आप ही हम लोगों को बचा सकते हैं दूसरा कोई नहीं बचा सकता ॥१३४ १३६॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर जगन्नाथ शंकर ने देवों से कहा—यह कृत्या योजन परिमित सीमा के भीतर रहने वालों की कोई क्षति नहीं पहुँचाती। इसलिये तुम लोग रातदिन यहीं रहो। तुम्हें उसका कोई भय नहीं होगा ॥१३७॥

ब्रह्मा ने कहा—पुनः देवताओं ने शंकर से कहा—आप ने ही तो हम लोगों को स्वर्ग प्रदान किया है तब हे नाथ ! हे देवों के पूज्य ! उस स्वर्ग को छोड़कर यहाँ हम कैसे निवास करेंगे ? देवताओं की बातें सुनकर शिव ने पुनः देवों से कहा ॥१३८ १४०॥

शिव ने कहा—जिसके चारों ओर नेत्र है तथा चारों ओर मुख है और जो नित्य ही अपनी किरणों से प्रकाशमान रहते हैं तथा संसार के प्राणदाता है वे ही सूर्य देवता अकेले यहाँ सर्वदा प्रत्यक्ष रूप से निवास करेंगे और उनकी मूर्ति में सभी देवता अवस्थित होंगे ॥१४१ १४२॥

---

[1] क ०श भक्तानां० ।

ब्रह्मोवाच

तथेति शंभुवचनात्पारिजाततरोस्तदा। देवा दिवाकरं चक्रुस्त्वष्टा भास्करमब्रवीत् ॥१४३॥

त्वष्टोवाच

इहैवाऽऽस्स्व जगत्स्वामिन्रक्षेमान्विबुधान्स्वयम्। स्वांशैश्च वयमप्यत्र तिष्ठाम शंभुसंनिधौ ॥१४४॥
चक्रेश्वरस्य परितो यावद्योजनसंख्यया। गङ्गाया उभयं तीरमासाद्याऽऽसन्सुरोत्तमाः ॥१४५॥
अङ्गुल्यर्धार्धमात्रं तु गङ्गातीरं समाश्रिताः। तिस्रः कोटचस्तथा पञ्च शतानि मुनिसत्तम ॥
तीर्थानां तत्र व्युष्टिं च कः शृणोति ब्रवीति वा ॥१४६॥

ब्रह्मोवाच

ततः सुरगणाः सर्वे विनीताः शिवमब्रुवन् ॥१४७॥

देवा ऊचुः

पिप्पलादं सुरेशान शमं नय जगन्मय ॥१४८॥

ब्रह्मोवाच

ओमित्युक्त्वा जगन्नाथः पिप्पलादमवोचत ॥१४९॥

शिव उवाच

नाशितेष्वपि देवेषु पिता ते नाऽऽगमिष्यति। दत्ता पित्रा तव प्राणा देवानां कार्यसिद्धये ॥१५०॥
दीनार्तकरुणाबन्धुः को हि तादृग्भवे भवेत्। तथा याता दिवं तात तव माता पतिव्रता ॥१५१॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा ही होगा यह कहकर शंकर के आदेशानुसार उस समय देवताओं ने पारिजात वृक्ष के काष्ठ से सूर्य की मूर्ति बनाई। तब विश्वकर्मा ने सूर्य से कहा ॥१४३॥

विश्वकर्मा ने कहा—हे संसार के स्वामी! आप यहीं रहें और स्वयं इन देवों की रक्षा करें। हम लोग भी अपने अपने अंशों से यहाँ शंकर के समीप निवास करेंगे। इस प्रकार चक्रेश्वर के चारों ओर एक योजन के परिमाण में गङ्गा के दोनों तटों पर देव-वर्ग निवास करने लगा। हे मुनिश्रेष्ठ! वे तीन करोड़ पाँच सौ देवता गङ्गा-तट पर आधे आधे अंगुल मात्र स्थान पाकर भी रहने लगे। वहाँ के तीर्थों का फल कौन बता सकता अथवा सुन सकता है ॥१४४-१४६॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर सब देवता विनीत भाव से शंकर से बोले ॥१४७॥

देवगण बोले—हे देवाधिदेव! जगद्व्यापक! पिप्पलाद को अब शान्त कीजिये ॥१४८॥

ब्रह्मा ने कहा—अच्छा! यह कहकर शिव ने पिप्पलाद से कहा ॥१४९॥

शिव ने कहा—देवों के नष्ट हो जाने पर भी तुम्हारे पिता नहीं आवेंगे और तुम्हारे पिता ने तो देवों की कार्य सिद्धि के लिये अपने प्राणों का बलिदान किया है। इस संसार में उनके समान दीन-दुखियों पर करुणा करनेवाला दूसरा कौन होगा? पुत्र! तुम्हारी पतिव्रता माता भी लोकहित के लिये ही स्वर्ग गई है। तुम्हारी माता के समान

समा काऽप्यत्र न तया लोपामुद्राऽप्यरुन्धती। यदस्थिभिः सुराः सर्वे जयिनः सुखिनः सदा ॥१५२॥
तेनावाप्तं यशः स्फीतं तव मात्राऽक्षयं कृतम्। त्वया पुत्रेण सर्वत्र नालं परतरं कृतम् ॥१५३॥
त्वत्प्रतापभयात्स्वर्गाच्च्युतांस्त्वं पातुमर्हसि। कादिशीकांस्तव भयादमरास्त्रातुमर्हसि॥
नाऽऽर्तत्राणादभ्यधिकं सुकृतं क्वापि विद्यते ॥१५४॥

यावद्यशः स्फुरति चारु मनुष्यलोके अहानि तावन्ति दिवं गतस्य ।
दिने दिने वर्षसंख्या (ख्यं) परस्मिंल्लोके वासो जायते निर्विकारः ॥१५५॥
मृतास्त एवात्र यशो न येषामन्धास्त एव श्रुतवर्जिता ये ।
ये दानशीला न नपुंसकास्ते, ये धर्मशीला न त एव शोच्या. ॥१५६॥

ब्रह्मोवाच

भाषितं देवदेवस्य[1] श्रुत्वा शान्तोऽभवन्मुनिः। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा नत्वा नाथमथाब्रवीत् ॥१५७॥

पिप्पलाद उवाच

वाग्भिर्मनोभिः कृतिभिः कदाचिन्ममोपकुर्वन्ति हिते रता ये ।
तेभ्यो हितार्थं त्विह चापरेषां, सोमं नमस्यामि सुरादिपूज्यम् ॥१५८॥
संरक्षितो[2] यैरभिवर्धितश्च, समानगोत्रश्च समानधर्मा ।
तेषामभीष्टानि शिवः करोतु, बालेन्दुमौलिं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥१५९॥

लोपामुद्रा अथवा अरुन्धती कोई भी इस भूतल पर नहीं हैं। उनकी हड्डियों से सम्पूर्ण देवता सर्वदा विजयी और सुखी रहेंगे? इस महात्याग से तुम्हारी माता ने अपने यश को फैलाया और अविनाशी बनाया। परन्तु उनका पुत्र होकर तुमने उनसे अधिक यश अर्जन नहीं किया। तुम्हारे प्रताप के भय से वे देवता स्वर्ग से च्युत हो गए हैं। भागने को उन्हें दिशा नहीं मिल रही है। ऐसे देवों की तुम रक्षा करो। कहीं भी दुःखीजनों की रक्षा से बढ़कर और कोई पुण्य नहीं है। इस मृत्युलोक में मनुष्य का जितने दिनों तक विमल यश रूपी प्रकाश फैलता रहता है वह मनुष्य मरने पर दिनों की संख्या के अनुसार उतने ही वर्षों तक स्वर्ग में सुखपूर्वक निवास करता है। इस संसार में जिनकी ख्याति नहीं है वे ही मृत हैं, जो वेदज्ञानहीन हैं वे ही अन्धे हैं जो दानपरायण नहीं हैं वे नपुंसक हैं और जो धर्मशील नहीं हैं वे ही शोचनीय हैं ॥१५०-१५६॥

ब्रह्मा ने कहा—देवाधिदेव शंकर का वचन सुनकर मुनि शान्त हो गये, और दोनों हाथ जोड़कर भगवान् शंकर को प्रणाम करके बोले—

पिप्पलाद ने कहा—जो मेरे हित का ध्यान रखते और वाणी, मन तथा कार्यों द्वारा मेरा उपकार करते हैं, उनके और अन्यों के हित के लिये मैं देव आदि के पूज्य शंकर को नमस्कार करता हूँ। जिन लोगों ने मेरी रक्षा की,

---

१ घ. ०देवेन श्रु०। २ घ. उत्पादितो।

यैरह वर्धितो नित्य मातृवत्पितृवत्प्रभो। तन्नाम्ना जायता तीर्थं देवदेव जगत्त्रये ॥१६०॥
यशस्तु तेषा भविता तेभ्योऽहमनृणस्तत । यानि क्षेत्राणि देवाना यानि तीर्थानि भूतले ॥१६१॥
तेभ्यो यदिदमधिकमनुमन्यन्तु देवता । तत क्षमेऽह देवानामपराध निरञ्जन ॥१६२॥

ब्रह्मोवाच

तत समक्ष सुरसाक्षरा गिर, सहस्रचक्षु प्रमुखास्तथाऽग्रत ।
उवाच देवा अपि मेनिरे वचो, दधीचिपुत्रोदितमादरेण ॥१६३॥
बालस्य बुद्धि विनय च विद्या, शौर्य बल साहस सत्यवाचम् ।
पित्रोर्भक्ति भावशुद्धि विदित्वा, तदाऽवादीच्छकर पिप्पलादम् ॥१६४॥

शकर उवाच

वत्स यद्वै प्रिय काम यच्चापि सुरवल्लभम्। प्राप्स्यसे वद कल्याण नान्यथा त्व मन कृथा ॥१६५॥

पिप्पलाद उवाच

ये गङ्गायामाप्लुता धर्मनिष्ठा, सपश्यन्ति त्वत्पदाब्ज महेश ।
सर्वान्कामानाप्नुवन्तु प्रसह्य, देहान्ते ते पदमायान्तु शैवम् ॥१६६॥
तात प्राप्तस्त्वत्पद चाम्बिका मे, नाथ प्राप्ता पिप्पलश्चामराश्च ।
सुख प्राप्ता नायनाथ विलोक्य, त्वां पश्येयुस्त्वत्पद ते प्रयान्तु ॥१६७॥

पालन पोषण किया और जो मेरे साथ तथा समान धर्म वाले है उनके मनोरथों को भगवान् शकर पूर्ण करें। मैं द्वितीया के चद्रमा को सिर पर धारण करनेवाले शकर को नित्य प्रणाम करता हूँ। हे प्रभो ! हे देवाधिदेव ! जिन्होने माता और पिता के समान नित्य मेरा पालन करके इतना बडा बनाया है उन्हीं के नाम से यह तीर्थ प्रसिद्ध हो। जब उन लोगो की कीर्ति ससार मे फैलेगी तभी मै उनके ऋण से उऋण हो सकूगा। इस भूतल पर जितने तीर्थ और देवस्थान हैं उन सबमे श्रेष्ठ इस तीर्थ को यदि देवगण स्वीकार करें तो शिव ! मैं देवताओ के अपराध को क्षमा कर सकता हूँ ॥१५७-१६२॥

ब्रह्मा बोले—तदनन्तर इन्द्र आदि देवताओ के समक्ष यह बात कही गई। देवो ने भी दधीचि-पुत्र की कही हुई बातो का आदर के साथ स्वीकार किया। अन्त मे बालक की बुद्धि विद्या विनय शौर्य बल साहस सत्य वचन माता पिता की भक्ति और भाव-शुद्धि को जानकर शकर ने पिप्पलाद से कहा—॥१६३-१६४॥

शकर ने कहा—वत्स ! जो तुम्हारा अभीष्ट है वह देव दुर्लभ ही क्यो न हो उसे बताओ। अवश्य पाओगे। मन मे अन्यथा न समझना ॥१६५॥

पिप्पलाद ने कहा—महेश ! जो धर्मप्रेमी गगा मे स्नान कर आपके चरणकमल का ध्यान करते हैं वे अवश्य ही अपने सब मनोरथो को प्राप्त कर और शरीर-त्याग के बाद शिव-लोक मे विराजें। नाथ ! मेरे पिता और माता ने आपके पावन पद प्राप्त किया पिप्पल और देवताओ ने भी नाथो के नाथ (आप) का दर्शन कर सुख प्राप्त किया। इसी प्रकार जो कोई आपके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त करें वे सभी आपके लोक मे जाये ॥१६६-१६७॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा पिप्पलादं देवदेवो महेश्वरः। अभिनन्द्य च तं देवैः सार्धं वाक्यमथाब्रवीत् ॥१६८॥
देवा अपि मुदा युक्ता [1]निर्भयास्तत्कृताद्भयात्। इदमूचुः सर्व एव दाधीचं शिवसंनिधौ ॥१६९॥

देवा ऊचुः

सुराणां यदभीष्टं च त्वया कृतमसशयम्। पालिता देवदेवस्य आज्ञा त्रैलोक्यमण्डनी ॥१७०॥
याचितं च त्वया पूर्वं परार्थं नाऽऽत्मने द्विज। तस्मादन्यतमं ब्रूहि किंचिद्दास्यामहे वयम् ॥१७१॥

ब्रह्मोवाच

पुनः पुनस्तदेवोचुः सुरसघा द्विजोत्तमम्। कृताञ्जलिपुटः पूर्वं नत्वा शभुसुरानिदम् ॥
उवाच पिप्पलादश्च उमां नत्वा च पिप्पलान् ॥१७२॥

पिप्पलाद उवाच

पितरौ द्रष्टुकामोऽस्मि सदा मे शब्दगोचरौ। ते धन्या प्राणिनो लोके मातापित्रोर्वशे स्थिताः ॥१७३॥
शुश्रूषणपरा नित्य तत्पादाज्ञाप्रतीक्षका। इन्द्रियाणि शरीरं च कुलं शक्ति धियं वपुः ॥१७४॥
परिलभ्य तयो. [2]कृत्ये कृतकृत्यो भवेत्स्वयम्। पशूना पक्षिणां चापि सुलभं मातृदर्शनम् ॥१७५॥

ब्रह्मा ने कहा—देवा के देव शकर ने 'ऐसा ही होगा' यह कहकर पिपलाद की प्रशसा की और पुन देवो के साथ उस बालक से समापण किया। देवगण भी उसके द्वारा उत्पन्न किये गये भय से अपने को मुक्त जानकर अत्यन्त प्रसन्न हुये और निर्भय होकर सब देवो ने भी शिव के समीप ही दधीचि-पुत्र से कहा ॥१६८-१६९॥

देवगण बोले—नि स देह तुमने त्रिभुवन को विभूपित करने वाली शिवाज्ञा का पालन किया है और इस प्रकार देवो का जो अभीष्ट था, वह तुमने पूरा कर दिया। द्विज! परन्तु तुमने अब तक परोपकार के लिये ही याचना की, अपने लिये कुछ नहीं मागा, इसलिये कोई दूसरी चीज अपने लिए मांगो, हम अवश्य प्रदान करेंगे ॥१७०-१७१॥

ब्रह्मा ने कहा—बार बार देवो ने द्विजवर्य पिप्पलाद से वही बातें दुहराई। पिप्पलाद ने भी हाथ जोडकर शभु, देव, उमा और पिप्पली को प्रणाम कर ये वाक्य कहे ॥१७२॥

पिप्पलाद ने कहा—मैं अपने माता-पिता को देखना चाहता हूँ, जिनका नाम मैं सदा सुनता हूँ। ससार मे वे प्राणी धन्य हैं जो माता और पिता के वश मे रहते हैं, उनकी सेवा मे सर्वदा लगे रहते हैं और उनके चरणों की आज्ञा की प्रतीक्षा किया करते हैं। मनुष्य इन्द्रियाँ, शरीर, कुल, पौरुष बुद्धि और शरीर को पाकर यदि उनको माता-पिता के सेवाकार्य मे लगायें तो वह स्वय ही कृत्यकृत्य हो जायें। पशुओ और पक्षियो को भी माता का दर्शन नित्य हुआ

---

१ घ ०र्भया शकराज्ञया। इ०। २ घ ०त्ये नोपयोगि निरर्थकम्।

दुर्लभं मम तच्चापि पृच्छे पापफलं नु किम्। दुर्लभं च तया चेत्स्यात्सर्वेषा यस्य कस्यचित् ॥१७६॥
नोपपद्येत सुलभं मत्तो नान्योऽस्ति पापकृत्। तयोर्दर्शनमात्र च यदि प्राप्स्ये सुरोत्तमा ॥१७७॥
मनोवाक्कायकर्मभ्य फल प्राप्त भविष्यति। पितरौ ये न पश्यन्ति समुत्पन्ना न (स्तु) ससुतौ ॥
तेषां महापातकानां क· संख्या कर्तुमीश्वर. ॥१७८॥

ब्रह्मोवाच

तदृषेर्वचनं श्रुत्वा मिय. समन्त्र्य ते सुरा। विमानवरमारूढौ पितरौ दपती शुभौ ॥१७९॥
तव संदर्शनाकाङ्क्षौ द्रक्ष्यसे वाऽद्य निश्चितम्। विषादं लोभमोहौ च त्यक्त्वा चित्तं शम नय ॥१८०॥
पश्य पश्येति त प्राहुर्दधीच सुरसत्तमा.। विमानवरमारूढौ स्वर्गिणौ स्वर्णभूषणौ ॥१८१॥
तव सदर्शनाकाङ्क्षौ पितरौ दपती शुभौ। वीज्यमानौ सुरस्त्रीभि. स्तूयमानौ च किंनरै. ॥१८२॥
दृष्ट्वा स मातापितरौ 'ननाम शिवसनिधौ। हर्षवाष्पाश्रुनयनौ स कथंचिदुवाच तौ ॥१८३॥

पुत्र उवाच

तारयन्त्येव पितरावन्ये पुत्रा कुलोद्वहा। अह तु मातुरुदरे केवलं भेदकारणम् ॥
एवं भूतोऽपि तौ मोहात्पश्येयमतिदुर्मति ॥१८४॥

करता है, परन्तु मुझ अभागे के लिये वह दुर्लभ हो गया है। मैं पूछता हूँ कि यह मेरे किस पाप का फल है? यदि सबके लिए मातृदर्शन दुर्लभ होता तो जिस किसी एक व्यक्ति को सुलभ न होने पर कोई आपत्ति नहीं होती, परन्तु मेरे विषय मे यह विपरीत है। अत मेरे समान पापी दूसरा कोई नहीं है। हे श्रेष्ठ देवगण! यदि मैं अपने माता पिता का दर्शन मात्र पा जाऊँगा तो मन, वचन और कर्म का फल मिल गया—ऐसा मैं समझूँगा। इस लोक मे जो जन्म लेकर अपने माता-पिता को नहीं देखते हैं उन महापापियों के पापों की गिनती करने मे कौन समर्थ हो सकता है? ॥१७३ १७८॥

ब्रह्मा ने कहा—उस ऋषि की बातों को सुनकर देवों ने परस्पर मन्त्रणा करके कहा कि तुम आज निश्चित रूप से श्रेष्ठ विमान पर आरूढ अपने शुभ मूर्ति माता पिता को जो स्वय तुम्हे दर्शन देने के लिए उत्सुक हैं, दर्शन करोगे। तुम विषाद, लोभ और मोह का परित्याग कर अपने चित्त को शान्त करो। पुन उन सर्वश्रेष्ठ देवों ने उस दधीचि-पुत्र से कहा कि देखो, देखो, उत्तम विमान पर चढे हुए स्वर्ण आभूषणों से सुशोभित तुम्हारा दर्शन देने के लिए लालायित, और पवित्र दम्पति तुम्हारे माता पिता आ रहे हैं। उन्हें देवाङ्गनायें पंखे-झल रही हैं और किन्नरगण स्तुति कर रहे हैं। शिव के समीप अपने माता-पिता का दर्शन पाकर पिप्पलाद ने उन्हे प्रणाम किया। उनके नेत्रो मे आनन्द के आँसू आ गये। फिर किसी प्रकार अपने को सँभाल कर उसने माता पिता से कहा ॥१७९-१८३॥

पुत्र ने कहा—वंश का धारण करने वाले दूसरे पुत्र अपने माता पिता का उद्धार करते हैं, परन्तु मैं अभागा माता के उदर मे आकर केवल उसके दु ख का कारण बना। ऐसा भाग्यहीन होकर भी आज अत्यन्त दुर्मति मैं मोहवश अपने माता पिता को देख रहा हूँ ॥१८४॥

---

१ प ०म सुरसं०।

ब्रह्मोवाच

तावालोक्य ततो दुःखाद्वक्तुं नैव शशाक सः। देवाश्च मातापितरौ पिप्पलादमथाब्रुवन्॥१८५॥

देवा ऊचुः

धन्यस्त्वं पुत्र लोकेषु यस्य कीर्तिर्गता दिवम्। साक्षात्कृतस्त्वया त्र्यक्षो देवाश्चाऽऽश्वासितास्त्वया॥
त्वया पुत्रेण सल्लोका न क्षीयन्ते कदाचन ॥१८६॥

ब्रह्मोवाच

पुष्पवृष्टिस्तदा स्वर्गात्पपात तस्य मूर्धनि। जयशब्दः सुरैरुक्तः प्रादुर्भूतो महामुने॥१८७॥
आशिषं तु सुते दत्त्वा दधीचिः सह भार्यया। शंभुं गङ्गां सुरान्नत्वा पुत्रं वाक्यमथाब्रवीत्॥१८८॥

दधीचिरुवाच

प्राप्य भार्यां शिवे भक्तिं कुरु गङ्गां च सेवय। पुत्रानुत्पाद्य विधिवद्यज्ञानिष्ट्वा सदक्षिणान्॥
कृतकृत्यस्ततो वत्स आक्रमस्व चिरं दिवम् ॥१८९॥

ब्रह्मोवाच

करोम्येवमिति प्राह दधीचिं पिप्पलाशनः। दधीचिः पुत्रमाऽऽश्वास्य भार्यया च पुनः पुनः॥१९०॥
अनुज्ञातः सुरगणैः पुनः स दिवमाक्रमत्। देवा अप्यूचिरे सर्वे पिप्पलादं ससंभ्रमाः॥१९१॥

ब्रह्मा बोले—इसके अनन्तर उनको देखकर वह दुःख के मारे कुछ बोल न सका। तब देवगण तथा मातापिता ने पिप्पलाद से कहा—॥१८५॥

देवगण बोले—पुत्र! तीनों लोक में तुम धन्य हो, तुम्हारी कीर्ति स्वर्ग में भी पहुँच गई। तुमने शिव का साक्षात्कार किया और देवों को भी आश्वासन दिया। तुम्हारे समान पुत्र के उत्पन्न होने से उत्तम लोकों का कभी ह्रास नहीं होता॥१८६॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय उसके शिर पर स्वर्ग से पुष्पवृष्टि हुई। महामुने! देवों ने जयघोष किया। पत्नी समेत दधीचि ने पुत्र को आशीर्वाद दिया और शंकर, गंगा तथा देवों को नमस्कार करके, पुत्र से कहा॥१८७-१८८॥

दधीचि ने कहा—पुत्र! पहले विवाह करो। शिव में अपनी भक्ति करो, गंगा की सेवा करो, शास्त्रानुसार पुत्रों को उत्पन्न करो, फिर यज्ञों का अनुष्ठान करो और उनमें भरपूर दक्षिणा दो। इस प्रकार अपने जीवन को सफल बना चिरकाल तक स्वर्ग में बने रहो॥१८९॥

ब्रह्मा ने कहा—पिप्पलाद ने 'ऐसा ही करूँगा' यह अपने पिता दधीचि से कहा। दधीचि ने भी बार-बार अपने पुत्र को आश्वासन देकर देवताओं से आज्ञा लेकर भार्या सहित स्वर्ग को चले गये। तदनन्तर सब देवताओं ने भी सहसा पिप्पलाद से कहा॥१९०-१९१॥

देवा ऊचु

कृत्या शमय भद्र ते तदुत्पन्न महानलम् ॥१९२॥

ब्रह्मोवाच

पिप्पलादस्तु तानाह न शक्तोऽहं निवारणे। असत्य नैव वक्ताऽहं यूयं कृत्यां तु ब्रूत ताम ॥१९३॥
मां दृष्ट्वा सा महारौद्रा विपरीत करिष्यति। तामेव गत्वा विबुधा प्रोचुस्ते शान्तिकारणम् ॥१९४॥
अनल च यथाप्रीति ते उभे नेत्यवोचताम्। सर्वेषा भक्षणायैव सृष्टा चाहं द्विजन्मना ॥१९५॥
तथा च मत्प्रसूतोऽग्निरन्यथा तत्कथ भवेत। महाभूतानि पञ्चापि स्थावर जङ्गम तथा ॥१९६॥
सर्वमस्मन्मुखे विद्याद्वक्तव्य नावशिष्यते। मया समन्त्र्य ते देवा पुनरूचुरुभावपि ॥१९७॥
भक्षयेतामुभौ सर्वं यथानुक्रमतस्तथा। वडवाऽपि सुरानेवमुवाच शृणु नारद ॥१९८॥

वडवोवाच

भवतामिच्छया सर्वं भक्ष्य मे सुरसत्तमा ॥१९९॥

ब्रह्मोवाच

वडवा सा नदी जाता गङ्गया सगता मुने। तदभवस्तु महानग्निय आसीदतिभीषण ॥
तमाहुरमरा वह्नि भूतानामादितो विदु ॥२००॥

देवगण बोले—कृत्या और उससे उत्पन्न भयंकर अग्नि को शान्त करो। तुम्हारा कल्याण होगा ॥१९२॥

ब्रह्मा ने कहा—पिप्पलाद ने उन देवों से कहा— मैं उनको शान्त करने में असमर्थ हूँ। मैं असत्य नहीं कह रहा हूँ। आप लोग स्वयं उससे कहिए। मुझको देखकर वह महाभयंकर कृत्या उल्टा ही करेगी। तदुपरान्त देवगण उस कृत्या के पास गये और उससे तथा अग्नि से प्रेमपूर्वक शान्त हो जाने को कहा। उन दोनों ने कहा नहीं। सबको भस्म कर देने के लिये ही मेरी तथा मुझसे उत्पन्न इस महान् अग्नि की ब्राह्मण ने सृष्टि की है। तब भला इसके विपरीत कैसे हो सकता है? पाँचों महाभूत स्थावर तथा जंगम सबको हमारे मुख में समझो। अब इस विषय में कुछ कहने को शेष नहीं है। पुन मुझसे मन्त्रणा करके उन देवताओं ने उन दोनों से कहा—तब तुम दोनों क्रमश सबको खा डालो। नारद! सुनो बड़वा ने भी देवताओं से इस प्रकार कहा ॥१९३-१९८॥

बड़वा ने कहा—हे श्रेष्ठ देवो! आप लोगों की इच्छा से सब कुछ मेरा भक्ष्य है। ॥१९९॥

ब्रह्मा ने कहा—मुने! इतना कहते ही बड़वा नदी हो गई। और गंगा में मिल गई। उससे उत्पन्न जो अतिभीषण महान् अनल था उसको देवों ने वह्नि कहा और वह पञ्चमहाभूतों का आदि महाभूत माना जाता है ॥२००॥

सुरा ऊचुः

आपो ज्येष्ठतमा ज्ञेयास्तथैव प्रथम भवान्। तत्राप्यपांपति ज्येष्ठ समुद्र (तिर्ज्येष्ठस्तस्य त्व) मशान कुरु॥
यथैवं[1] तु वय ब्रूमो गच्छ भुङक्ष्व यथासुखम् ॥२०१॥

ब्रह्मोवाच

अनलस्त्वमरानाह आपस्तत्र कथ त्वहम्। अजेय यदि मा तत्र प्रापयन्त्युदक महत्॥२०२॥
भवन्त एव तेऽप्याहु कथ तेऽग्ने गतिर्भवेत्। अग्निरप्याह तान्देवान्कन्या मा गुणशालिनी॥२०३॥
हिरण्यकलशे स्थाप्य नयेद्यत्र गतिर्मम। तस्य तद्वचन श्रुत्वा कन्यामूचु सरस्वतीम्॥२०४॥

देवा ऊचुः

नयैनमनल[2] शीघ्र शिरसा वरुणालयम् ॥२०५॥

ब्रह्मोवाच

सरस्वती सुरानाह नैका शक्ता च धारणे। युक्ता चतसृभि शीघ्र वहेय वरुणालयम्॥२०६॥
सरस्वत्या वच श्रुत्वा गङ्गा च यमुना तथा। नमदा तपती चैव सुरा प्रोचु पृथक्पृथक्॥२०७॥
ताभि समन्वितोवाह[3] हिरण्यकलशेऽनलम्। सस्थाप्य शिरसाऽऽधार्य ता जग्मुर्वरुणालयम्॥२०८॥
सस्थाप्य यत्र देवेश सोमनाथो जगत्पति। अभ्यास्ते विबुधै सार्धं प्रभासे शशिभूषण॥२०९॥

देवो ने कहा—जल सबसे श्रेष्ठ माना गया है उसी प्रकार आप भी है। उसमे भी जलपति समुद्र सबसे ज्येष्ठ है इसलिये उसको ही खाओ। जैसा हम कह रहे हैं उसी के अनुसार जाओ और आनन्दपूर्वक भक्षण करो ॥१०१॥

ब्रह्मा बोले—अनल ने देवो से कहा जहाँ जल है वहाँ मैं कैसे रह सकता हूँ? यदि आप मुझे उस अगाध जल के मध्य पहुँचा देते मैं जा सकता हूँ। यह सुनकर उन्होने कहा —अग्ने! किस प्रकार तुम वहाँ तक जा सकते हो? अग्नि ने भी देवो से कहा कि यदि (ब्रह्मा की) गुणशालिनी कन्या सरस्वती मुझे सुवर्ण कलश मे रख कर वहाँ तक ले जाय तो मुझ मे गति हो सकती है अर्थात वहाँ मैं जा सकता हूँ। उसकी उन बातो को सुनकर देवो ने मेरी कन्या सरस्वती से कहा—॥२०२ २०४॥

देवगण बोले—तुम इस अनल को शीघ्र ही शिर पर रखकर समुद्र मे ले जाओ॥२०५॥

ब्रह्मा बोले—सरस्वती ने देवताओ से कहा मैं अकेले अनल को ले जाने मे असमर्थ हूँ। यदि चार और सहायक मिल जाय तो शीघ्र ही समुद्र मे पहुँचा सकती हूँ।

सरस्वती की बातें सुनकर देवताओ ने गगा यमुना नर्मदा और तपती (ताप्ती) से अलग अलग कहा। अन्त मे सरस्वती ने उन चारो सहयोगी नदियो के साथ सुवर्ण कलश मे अनल को रखा और उस कलश को शिर पर

---

१ क ङ तथैव। २ घ नयत्वम०। ३ घ ०न्विता वाचा हि०

प्रापयामासुरनलं¹ पञ्चनद्यः सरस्वति। अध्यास्ते च महानग्निः पिबन्वारि शनैः शनैः॥२१०॥
तत. सुरगणाः सर्वे शिवमूचुः सुरोत्तमम् ॥२११॥

देवा ऊचुः

अस्मां च पावन ब्रूहि अस्माकं च गवा तथा ॥२१२॥

ब्रह्मोवाच

शिव. प्राह तदा सर्वान्गङ्गामाप्लुत्य यत्नतः। देवाश्च गावस्तत्पापान्मुच्यन्ते नात्र सशय ॥२१३॥
प्रक्षालितानि चास्थीनि ऋषिदेहभवान्यथ। तानि प्रक्षालनादेव तत्र प्राप्तानि पूतताम् ॥२१४॥
यत्र देवा मुक्तपापास्तत्तीर्थं पापनाशनम्। तत्र स्नानं च दानं च ब्रह्महत्याविनाशनम् ॥२१५॥
गवां च पावनं यत्र गोतीर्थं तदुदाहृतम्। तत्र स्नानान्महाबुद्धिर्गोमेधफलमाप्नुयात् ॥२१६॥
यत्र तद्ब्राह्मणास्थीनि आसन्पुण्यानि नारद। पितृतीर्थं तु यं ज्ञेयं पितृणां प्रीतिवर्द्धनम् ॥२१७॥
भस्मास्थिनखरोमाणि प्राणिनो यस्य कस्यचित्। तत्र तीर्थे संभ्रमेरन्यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥२१८॥
स्वर्गे वासो भवेत्तस्य अपि दुष्कृतकर्मणः। तथा चक्रेश्वरात्तीर्थात्त्रीणि तीर्थानि नारद²॥
ततः पूताः सुरगणा गाव. शम्भुमथाब्रुवन् ॥२१९॥

धारण करके समुद्र की ओर ले चली। जहाँ प्रभास क्षेत्र में देवताओं के साथ संसार के पति तथा देवताओं के प्रभु शंकर रहते हैं, वहाँ अनल को रखकर सरस्वती आदि पाँच नदियों ने पुन उसे समुद्र में पहुँचा दिया। वहाँ वह अग्नि जल को धीरे धीरे जलाता रहता है। तदनन्तर सब देवताओं ने सुरश्रेष्ठ शंकर से कहा ॥२०६-२११॥

देवगण बोले—शिव, हम सब और गायें किस प्रकार पवित्र हो सकते हैं इसको आप बतलाइये ॥२१२॥

ब्रह्मा ने कहा—तब शंकर ने उन सब देवताओं से कहा कि श्रद्धापूर्वक गंगा में स्नान करने से सब देव और गायें अपने पाप से छूट जाएँगी, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। ऋषि-शरीर से प्राप्त अस्थियाँ वहाँ केवल प्रक्षालन मात्र कर देने से पवित्र हो जाएँगी। जहाँ देवगण पाप-मुक्त हो गये थे, वह तीर्थ पापों का विनष्ट करने वाला है। वहाँ स्नान करने और दान देने से ब्रह्महत्या आदि पाप भी छूट जाते हैं। जहाँ गायें पवित्र हो गई थीं, वह तीर्थ गोतीर्थ कहा जाता है। बुद्धिमान् व्यक्ति वहाँ स्नान कर गोमेध (यज्ञ) का फल प्राप्त करता है। नारद! जिस स्थान पर ब्राह्मण दधीचि की पवित्र अस्थियाँ रखी गई थीं, वह पितरों को परमानन्द देने वाला पितृतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस पवित्र तीर्थ में जिस किसी प्राणी के शरीर का भस्म अस्थि नख और रोम पहुँच जाते हैं, वह दुष्कर्मी होने पर भी स्वर्ग में तब तक निवास करता है जब तक सूर्य, चन्द्रमा और तारे हैं। नारद! इस भाँति चक्रेश्वर तीर्थ से तीन तीर्थ उत्पन्न हुये। इसके उपरान्त सुरगण और गायें पवित्र हो जाने पर शम्भु से बोले ॥२१३-२१९॥

---

१ ख ०मनलं वाहिन पञ्चनद्या सरस्वती अ०। २ ख सम्भ्रम।

गोसुरा ऊचुः

याम स्व स्वमधिष्ठानमत्र सूर्यः प्रतिष्ठित । अस्मिन्स्थिते दिनकरे सुरा सर्वे प्रतिष्ठिता ॥२२०॥
भवेयुर्जगतामीश तदनुज्ञातुमर्हसि। सूर्यो ह्यात्माऽस्य जगतस्तस्थुषश्च सनातन ॥२२१॥
दिवाकरो देवमयस्तत्रास्माभि प्रतिष्ठित। यत्र गङ्गा जगद्धात्री यत्र वै त्र्यम्बकः स्वयम् ॥
सुरवासः प्रतिष्ठान भवेद्यत्र च त्र्यम्बकम् ॥२२२॥

ब्रह्मोवाच

आपृच्छ्य पिप्पलाद त सुरा स्व सदन ययु। पिप्पला कालपर्याये स्वर्गं जग्मुरथाक्षयम् ॥२२३॥
पादपाना पदं विप्र पिप्पलाद प्रतापवान्। क्षेत्राधिपत्ये सस्थाप्य पूजयामास शकरम् ॥२२४॥
दधीचिसूनुर्मुनिरुग्रतेजा, अवाप्य भार्यां गौतमस्याऽऽत्मजा च ।
पुत्रानथावाप्य श्रिय यशश्च, सुहृज्जनै स्वर्गमवाप धीर ॥२२५॥
तत प्रभृति तत्तीर्थं पिप्पलेश्वरमुच्यते। सर्वक्रतुफल पुण्य स्मरणादघनाशनम् ॥२२६॥
किं पुन [1]स्नानदानाभ्यामादित्यस्य तु दर्शनात्। चक्रेश्वर पिप्पलेशो देवदेवस्य नामनी ॥२२७॥
सरहस्य विदित्वा तु सर्वकामानवाप्नुयात्। सूर्यस्य च प्रतिष्ठानात्सुरवासे प्रतिष्ठिते ॥
प्रतिष्ठान तु तत्क्षेत्र सुराणामपि वल्लभम् ॥२२८॥

गायें और देवगण बोले—हम सब अपने अपने स्थान को जा रहे है। यहाँ सूय प्रतिष्ठित हैं। इनके यहाँ रहने से सब देवता भी रहे हे ससार के ईश। एसा आप आज्ञा प्रदान कीजिये। इस वतमान जगत् का सूय सनातन आत्मा है। हमने सूय को सब देवा के रूप म वहाँ प्रतिष्ठित किया है अत हम सभी वहाँ प्रतिष्ठित से हैं। जहा जगमाता गगा और स्वय त्रिनेत्र शकर विराजमान है वह स्थान सकल देवताओ का मदिर तथा सस्थान है ॥२२१ २२२॥

ब्रह्मा ने कहा—देववृन्द उस पिप्पलाद से पूछ कर अपने लोक को चले गये। वे पीपल के वक्ष भी कालक्रम से अमर लोक को चले गये। इधर प्रतापी विप्र पिप्पलाद ने क्षेत्रा क अधिपति के रूप म वृक्षो का स्थापना करके शकर की पूजा की। पुन अतितेजस्वी मुनि दधीचिपुत्र ने गौतम-कन्या को अपना भाया बनाई और उससे पुत्र उत्पन्न किये। तदनन्तर वह धार पुरुष यश और लक्ष्मी को प्राप्त कर इष्ट मित्रा के साथ स्वग म चला गया। तब से वह तीथ पिप्पलेश्वर तीथ कहा जाता है। वह तीथ सब यज्ञो के फल को देने वाला है और उसके स्मरण से सम्पूण पापा का नाश हो जाता है। उस तीथ म स्नान दान और आदित्य के दशन से जो फल प्राप्त होता है उसका तो कहना ही क्या ? चक्रेश्वर और पिप्पलेश ये दोना देवदेव शकर के नाम हैं। उस तीथ क रहस्य को जानकर मनुष्य अपना सम्पूण कामनाओ को प्राप्त करता है। सूय की वहाँ प्रतिष्ठा होने से और सब देवताओ के निवास करने से वह क्षत्र देवताओ का भी प्रिय हो गया है। यह आख्यान अत्यन्त पुण्यप्रद है, इस पुण्य आख्यान को जो पढता सुनता अथवा स्मरण करता

---

१ घ ०वास प्र०। ङ ०वारा प्र०। २ घ पर। ३ घ ०नाम्या देवदेवस्य द०।

इतीदमाख्यानमतीव पुण्यं, पठेत वा यः शृणुयात्स्मरेद्वा ।
स दीर्घजीवी धनवान्धर्मयुक्तश्चान्ते स्मरञ्शंभुमुपैति नित्यम् ॥२२९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे चक्रेश्वरपिप्पलेश्वरपापप्रणाशनगोतीर्थपितृतीर्थसूर्यप्रतिष्ठानकोटचादितीर्थवर्णनं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११०॥
गौतमीमाहात्म्ये एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४१॥

अथैकादशाधिकशततमोऽध्यायः

नागतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

नागतीर्थमिति ख्यातं सर्वकामप्रदं शुभम्। यत्र नागेश्वरो देवः शृणु तस्यापि विस्तरम् ॥१॥
प्रतिष्ठानपुरे राजा शूरसेन इति श्रुतः। सोमवंशभवः श्रीमान्मतिमान्गुणसागरः ॥२॥
पुत्रार्थं स महायत्नमकरोत्प्रियया सह। तस्य पुत्रश्चिरादासीत्सर्पो वै भीषणाकृतिः ॥३॥
पुत्रं तं गोपयामास शूरसेनो महीपतिः। राज्ञः पुत्रः सर्प इति न कश्चिद्विन्दते जनः ॥४॥
अन्तर्वर्ती परो वापि मातरं पितरं विना। [1]धात्रेय्यपि न जानाति नामात्यो न पुरोहितः ॥५॥

है, वह दीर्घजीवी, धनवान् और धार्मिक होता है तथा अन्तकाल में शम्भु का स्मरण करता हुआ शिव का सान्निध्य प्राप्त करता है ॥२२३-२२९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में पिप्पलेश्वरतीर्थवर्णन नामक एक सौ दसवाँ अध्याय समाप्त ॥११०॥

अध्याय १११

नागतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सब कामनाओं को देने वाला नागतीर्थ नामक एक शुभ तीर्थ है जहाँ नागेश्वर देव निवास करते हैं। उसके विषय में भी विस्तारपूर्वक कह रहा हूँ, सुनो। प्रतिष्ठानपुर में शूरसेन नाम का अत्यन्त गुणवान्, श्रीमान् और बुद्धिमान् सोमवंशी राजा था। पुत्र की कामना से उसने अपनी प्रिया के साथ महान् प्रयत्न किया। चिरकाल के बाद उसके एक भयंकर आकार वाला सर्प पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा शूरसेन ने उसको अत्यन्त गुप्त रखा। ताकि कहीं कोई यह न जान जाय कि राजा का पुत्र सर्प है। माता-पिता के अतिरिक्त कोई भी दूसरा व्यक्ति, चाहे वह अत्यन्त आत्मीय ही क्यों न रहा हो, नहीं जानता था।

---

[1] घ. ०त्रेयी नापि जा०।

तं दृष्ट्वा भीषणं सर्पं सभार्यो नृपसत्तमः। संतापं[1] नित्यमाप्नोति सर्पाद्वरमपुत्रता ॥६॥
एतदस्ति महासर्पो वक्ति नित्यं मनुष्यवत्। स सर्पः पितरं प्राह कुरु 'चूडामपि'[2] क्रियाम् ॥७॥
तथोपनयनं चापि वेदाध्ययनमेव च। यावद्वेदं न चाधीते तावच्छूद्रसमो द्विजः ॥८॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा पुत्रवचः शूरसेनोऽतिदुःखितः। ब्राह्मणं कंचनाऽऽनीय संस्कारादि[3] तदाऽकरोत् ॥
अधीतवेदः सर्पोऽपि पितरं[4] चाब्रवीदिदम् ॥९॥

सर्प उवाच

विवाहं कुरु मे राजन्स्त्रीकामोऽहं नृपोत्तम। [5]अन्यथाऽपि च कृत्यं ते न सिध्येदिति मे मतिः ॥१०॥
जनयित्वाऽऽत्मजान्वेदविधिनाऽखिलसंस्कृतीः। न कुर्याद्यः पिता तस्य नरकान्नास्ति निष्कृतिः ॥११॥

ब्रह्मोवाच

विस्मितः स पिता प्राह[6] सुतं तमुरगाकृतिम् ॥१२॥

शूरसेन उवाच

यस्य शब्दादपि त्रासं यान्ति शूराश्च पूरुषाः। तस्मै कन्यां तु को दद्याद्वद पुत्र करोमि किम् ॥१३॥

यहाँ तक कि मन्त्री, पुरोहित और धाई भी इस रहस्य को नहीं जानती थी। उस भीषण सर्प को देखकर वह श्रेष्ठ राजा भार्या सहित अत्यन्त व्यथित रहता था और सोचता था कि इस सर्प पुत्र की अपेक्षा पुत्र का न होना ही अच्छा था। इधर वह सर्प सर्वदा मनुष्य के समान बोलता था। एक दिन उस सर्प ने पिता से कहा कि मेरा चूडाकरण संस्कार, उपनयन और वेदाध्ययन करा दीजिए। द्विज जब तक वेद का अध्ययन नहीं करता तब तक वह शूद्र के समान रहता है ॥१-८॥

ब्रह्मा बोले—शूरसेन पुत्र की बातें सुनकर अति दुःखित हुआ और विवश हो किसी ब्राह्मण को बुलाकर संस्कार आदि करवा दिया। थोड़े दिनों बाद जब वह वेदों का अध्ययन समाप्त कर चुका तब पुनः पिता से कहा ॥९॥

सर्प ने कहा—राजन्! मेरा विवाह कर दो। नृपोत्तम! मैं इस समय स्त्री का इच्छुक हूँ। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो तुम्हारे कर्तव्य की पूर्णता नहीं सिद्ध होगी, ऐसी मेरी धारणा है। जो पिता पुत्रों को उत्पन्न कर वेद-विधि से उनके सब संस्कार नहीं करता उसे नरक से छुटकारा नहीं मिलता है ॥१०-११॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर आश्चर्य में पड़ा हुआ पिता अपने सर्पशरीरधारी पुत्र से बोला ॥१२॥

शूरसेन ने कहा—जिसके शब्द मात्र से बड़े बड़े वीर भयभीत हो जाते हैं, उसे भला अपनी कन्या कौन देगा? पुत्र! तुम्हीं बताओ मैं क्या करूँ? ॥१३॥

१ङ संतोषं नित्य नाऽऽप्नो०। २घ ०डादिकी क्रि०। ३क ०मपि निक्रिया। त०। ४च ०स्कारादेव तथाऽक०। ५घ ०रं ह्यब्रवीद्वह०। विवाहकर्म हे तात मम त्वं कुरु निर्भय। अ०। ६क ङ ०था पितुः कृत्य मेव। ७घ ०ह त्वं सर्पो ह्यतिभीषण। य०। ८ ङ ०माभवा०।

ब्रह्मोवाच

तत्पितुर्वचनं श्रुत्वा सर्पः प्राह विचक्षणः ॥१४॥

सर्प उवाच

विवाहा बहवो राजन्राज्ञां सन्ति जनेश्वर। प्रसह्याऽऽहरणं चापि शस्त्रैर्वैवाह एव च ॥१५॥
जाते विवाहे पुत्रस्य पिताऽसौ कृतकृद्भवेत्। नो चेदत्रैव गङ्गायां मरिष्ये नात्र संशयः ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

तत्पुत्रनिश्चयं ज्ञात्वा[1] अपुत्रो नृपसत्तम[1]। विवाहार्थममात्यास्तानाहूयेदं वचोऽब्रवीत् ॥१७॥

शूरसेन उवाच

नागेश्वरो मम सुतो युवराजो गुणाकरः। गुणवान्मतिमाञ्शूरो दुर्जयः शत्रुतापनः ॥१८॥
रथे नागे स[2] धनुषि पृथिव्यां नोपमीयते। विवाहस्तस्य कर्तव्यो ह्यहं वृद्धस्तथैव च ॥१९॥
राज्यभार सुते न्यस्य निश्चिन्तोऽहं भवाम्यतः। न दारसंग्रहो यावत्तावत्पुत्रो मम प्रियः ॥२०॥
बालभावं नो जहाति तस्मात्सर्वेऽनुमन्य च। विवाहायाय[3] कुर्वन्तु यत्नं मम हिते रताः ॥२१॥
न मे काचित्तदा चिन्ता कृतोद्वाहो यदाऽऽत्मज.। सुते न्यस्तभरा[4] यान्ति कृतिनस्तपसे वनम् ॥२२॥

ब्रह्मा ने कहा—पिता की यह बात सुनकर पडित सर्प ने कहा ॥१४॥

सर्प ने कहा—राजन्! प्रजाओ के प्रभु! राजाओ के बहुत प्रकार के विवाह होते है, बलात् कन्या-हरण, और युद्ध द्वारा जीतकर विवाह करना भी राजाओ के लिये विधेय है। पुत्र का विवाह हो जाने पर ही पिता कृतकृत्य होता है। यदि आप मेरा विवाह नही करायेंगे, तो मैं इसी गगा मे डूबकर प्राण दे दूगा, इसमे सन्देह नही ॥१५-१६॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा शूरसेन ने उस पुत्र के हठ को जानकर विवाह-परामर्श करने के लिये मन्त्रियो को बुलाकर कहा ॥१७॥

शूरसेन ने कहा—मेरा गुणवान्, शूर, बुद्धिमान, दुर्जय और शत्रुओ को चैन से न रहने देने वाला पुत्र नागेश्वर अब युवराज हो गया है, वह रथ, हाथी और धनुष चलाने मे इस पृथ्वी पर अपनी समता नही रखता। अत अब उसका विवाह कर देना चाहिए। मैं वृद्ध हो चला हूं, इसलिये विवाहोपरान्त पुत्र को राज्यभार सौप कर निश्चिन्त हो जाऊँ, यही मेरी इच्छा है। जब तक पुत्र का विवाह नहीं होता तब तक वह मेरा प्रियपुत्र बालभाव का नही छोड सकता, अत मेरे हितचिन्तक आप लोग इसके विवाह के लिये प्रयत्न कीजये। जब मेरा पुत्र विवाहित हो जायगा तब कदाचित् मुझे किसी प्रकार की चिन्ता न होगी। प्राय विज्ञ जन पुत्र को सारा भार सौंप कर तपस्या के लिये वन मे चले जाते हैं ॥१८-२२॥

---

१. ङ. ०त्वा सपुत्रो नृ०। २ घ ध। ३. ङ० हार्थं प्रकु०। ४. घ न्यस्य भुवो या०।

ब्रह्मोवाच

अमात्या राजवचनं श्रुत्वा सर्वे विनीतवत्। ऊचुः प्राञ्जलयो हर्षाद्राजानं भूरितेजसम्॥२३॥

अमात्या ऊचुः

तव पुत्रो गुणज्येष्ठस्त्वं च सर्वत्र विश्रुतः। विवाहे तव पुत्रस्य किं मन्त्र्यं किंतु चिन्त्यते॥२४॥

ब्रह्मोवाच

अमात्येषु तथोक्तेषु गम्भीरो नृपसत्तमः। पुत्रं[1] सर्पं त्वमात्यानां न चाऽऽख्याति न ते विदुः॥२५॥
राजा पुनस्तानुवाच[2] क्व स्यात्कन्या गुणाधिका। महावंशभवः[3] श्रीमान्को राजा स्याद्गुणाश्रयः[4]॥२६॥
संबन्धयोग्यः शूरश्च यत्संबन्धः प्रशस्यते। तद्राजवचनं श्रुत्वा अमात्यानां महामतिः॥२७॥
कुलीनः साधुरत्यन्तं राजकार्यहिते रतः। राज्ञो मतिं विदित्वा[5] तु इङ्गितज्ञोऽब्रवीदिदम्॥२८॥

अमात्य उवाच

पूर्वदेशे महाराज विजयो नाम भूपतिः। वाजिवारणरत्नानां यस्य संख्या न विद्यते॥२९॥
अष्टौ पुत्रा महेष्वासा महाराजस्य धीमतः। तेषां स्वसा भोगवती साक्षाल्लक्ष्मीरिवापरा॥
तव पुत्रस्य योग्या सा भार्या राजन्मयोदिता[6] ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—सभी मन्त्रियों ने राजा की बातें सुनकर अत्यन्त विनीत भाव से हाथ जोड़कर हर्षपूर्वक अत्यन्त तेजस्वी राजा से कहा॥२३॥

मंत्री बोले—आपके कुमार बड़े गुणवान् हैं और आप भी सर्वत्र प्रसिद्ध हैं, तब आपके पुत्र के विवाह में परामर्श और चिन्ता की क्या आवश्यकता है॥२४॥

ब्रह्मा ने कहा—मन्त्रियों के इस प्रकार कहने पर गम्भीर महाराज ने न तो सर्पपुत्र के विषय में कुछ कहा और न मन्त्रियों ने कुछ जाना। राजा ने पुनः उन मन्त्रियों से कहा कि वह कौन-सी गुणवती कन्या है और वह कौन अत्यन्त कुलीन, गुणवान्, श्रीमान् तथा सम्बन्ध योग्य राजा है, जिसके साथ सम्बन्ध करना श्रेयस्कर और प्रशस्त होगा। राजा की बातें सुनकर मन्त्रियों में अत्यन्त बुद्धिमान्, कुलीन, साधु, चेष्टाओं द्वारा मन की बात जानने वाले और राजा के अत्यन्त हितैषी एक मन्त्री ने राजा का अभिप्राय समझकर कहा॥२५-२८॥

मंत्री बोले—महाराज! पूर्व देश में विजय नाम का एक राजा है, जिसके असंख्य हाथी, घोड़े और रत्नों की गणना नहीं की जा सकती। उस धीमान् राजा के धनुर्विद्या में कुशल आठ पुत्र हैं। उसकी भोगवती नाम की बहिन साक्षात् द्वितीय लक्ष्मी के समान है। राजन्! आपके पुत्र के योग्य वही कन्या है, यही मेरा कथन है॥२९-३०॥

---

१ घ पुत्ररूप त्व०। २ क० च कस्य कन्या। ३ घ ०शवरः श्री०। ४ घ ०णाधिकः। स०। ५. घ ०त्वाऽथ। ६ क ङ०दितम्। वृ०।

ब्रह्मोवाच

वृद्धामात्यवचः श्रुत्वा राजा तं प्रत्यभाषत ॥३१॥

राजोवाच

सुता तस्य कथं मेऽस्य सुतस्य स्याद्वदस्व तत् ॥३२॥

वृद्धामात्य उवाच

लक्षितोऽसि महाराज[1] यत्ते मनसि वर्तते[2]। यच्छूरसेन कृत्यं स्यादनुजानीहि मा ततः ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

वृद्धामात्यवचः श्रुत्वा भूषणाच्छादनोक्तिभिः। संपूज्य प्रेषयामास महत्या सेनया सह[3] ॥३४॥
स पूर्वदेशमागत्य महाराजं समेत्य च। संपूज्य विविधैर्वाक्यैरुपायैर्नीतिसंभवैः ॥३५॥
महाराजसुतायाश्च भोगवत्या महामतिः। शूरसेनस्य नृपतेः सूनोर्नागस्य धीमतः ॥३६॥
विवाहायाकरोत्संधिं मिथ्यामिथ्यावचोक्तिभिः। पूजयामास नृपतिं भूषणाच्छादनादिभिः ॥३७॥
अवाप्य पूजां नृपतिर्ददामीत्यवदत्तदा। तत आगत्य राज्ञेऽसौ वृद्धामात्यो महामतिः ॥३८॥
शूरसेनाय तद्वृत्तं वैवाहिकमवेदयत्। ततो बहुतिथे काले वृद्धामात्यो महामतिः ॥३९॥
पुनर्बलेन महता वस्त्रालंकारभूषितः। जगाम तरसा सर्वैरन्यैश्च सचिवैर्वृतः ॥४०॥

ब्रह्मा ने कहा—वृद्ध मन्त्री की बात सुनकर राजा ने उससे कहा ॥३१॥

राजा ने कहा—उसकी कन्या किस प्रकार मेरे पुत्र की भार्या होगी यह बतलाओ ॥३२॥

बूढ़े मन्त्री ने कहा—महाराज! आपके मन में जो बात है, उसको मैंने समझ लिया। शूरसेन! अब जो करना है, उसके लिए मुझे आज्ञा दीजिये ॥३३॥

ब्रह्मा ने कहा—वृद्धमन्त्री की बात सुनकर राजा ने आभूषण, वस्त्र और आदर की वाणी से उसका सम्मान कर बहुत बड़ी सेना के साथ उसे भेज दिया। वह पूर्व देश में आकर महाराज से मिला, उनकी पूजा करके नीति-सम्मत उपायों और अनेक प्रकार की बातों से उस महाबुद्धिमान मन्त्री ने भूपति शूरसेन के बुद्धिमान् पुत्र नाग के साथ महाराज-कन्या भोगवती के विवाह की सन्धि की। इस कार्य में उसने सत्य, असत्य प्रत्येक प्रकार के उपायों और उक्तियों का सहारा लिया, विविध आभूषणों और वस्त्र आदि भेंट की सामग्रियों से उस राजा की पूजा भी की। पूजा से प्रसन्न होकर राजा ने कन्या-दान की स्वीकृति दे दी। कार्यसिद्धि जानकर उस वृद्धमन्त्री ने लौट कर शूरसेन से सारी वैवाहिक घटना को सुना दिया। इसके उपरान्त कुछ समय बीत जाने पर वह महाबुद्धिमान् वृद्धमन्त्री बहुत बड़ी सेना के साथ वस्त्र और आभूषणों से सुसज्जित होकर अन्य सब मन्त्रियों को भी साथ

---

१ प मया राजन्यत्ते। २ प ०ते। त्रियत तच्छूरसेन चानु०। ३ प ० होगाऽगात्सौ पूर्वदेश म०।

विवाहाय^१ महामात्यो महाराजाय बुद्धिमान्^२। सर्वं प्रोवाच वृद्धोऽसावमात्य सचिवैर्वृत ॥४१॥

वृद्धामात्य उवाच

अत्राऽऽगन्तु न चाऽऽया(चेच्छ)ति शूरसेनस्य भूपते । पुत्रो नाग इति ख्यातो बुद्धिमान्गुणसागर ॥४२॥
क्षत्रियाणा विवाहाश्च भवेयुर्बहुधा नृप । तस्माच्छस्त्रैरलकारैर्विवाह स्यान्महामते ॥४३॥
क्षत्रिया ब्राह्मणाश्चैव सत्या वाच वदन्ति हि । तस्माच्छस्त्रैरल्कारैर्विवाहस्त्वनुमन्यताम् ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

वृद्धामात्यवच श्रुत्वा विजयो राजसत्तम । मेने वाक्य तथा^३ सत्यममात्य भूपति^४ तदा ॥४५॥
विवाहमकरोद्राजा भोगवत्या सविस्तरम् । शस्त्रेण च यथाशास्त्र प्रेषयामास ता पुन ॥४६॥
स्वानमात्यास्तथा गाश्च हिरण्यतुरगादिकम् । बहु दत्त्वाऽस्य विजयो हर्षेण महता युत ॥४७॥
तामादायाश्च सचिवा वृद्धामात्यपुरोगमा । प्रतिष्ठानमथाभ्येत्य शूरसेनाय तां स्नुषाम् ॥४८॥
न्यवेदयस्तयोचुस्ते विजयस्य वचो बहु । भूषणानि विचित्राणि दास्यो वस्त्रादिक च यत ॥४९॥
निवेद्य शूरसेनाय कृतकृत्या बभूविरे । विजयस्य तु येऽमात्या भोगवत्या सहाऽऽगता ॥५०॥
तान्पूजयित्वा राजाऽसौ बहुमानपुर सरम् । विजयाय यथा प्रीतिस्तथा कृत्वा व्यसर्जयत् ॥५१॥
विजयस्य सुता बाला रूपयौवनशालिनी । श्वश्रूश्वशुरयोर्नित्य शुश्रूषन्ती सुमध्यमा ॥५२॥

लेकर दल के साथ राजा विजय के पास गया। और अपने सहायक मन्त्रियो के सहित उस वृद्ध महामन्त्री ने विवाह के लिये महाराज से प्रस्ताव किया ॥३४ ४१॥

वृद्ध मन्त्री ने कहा—राजा शूरसेन का वह गुणसागर बुद्धिमान पुत्र नाग यहाँ आना नहीं चाहता है। नृप! क्षत्रियो के विवाह बहुत प्रकार से होते हैं इसलिये महामते! यह विवाह शस्त्र और आभूषणों द्वारा ही सम्पन्न हो जाय। क्षत्रिय और ब्राह्मण सत्य वचन बोलते हैं। इसलिये शस्त्र और आभूषणो से विवाह विधि सम्पन्न हो ऐसी आज्ञा दीजिये ॥४२ ४४॥

ब्रह्मा ने कहा—वृद्ध मन्त्री की बात सुनकर महाराज विजय ने अमात्य राजा तथा वृद्धमन्त्री की बात को सत्य समझ लिया। राजा ने शास्त्रानुसार शस्त्र के साथ धूमधाम से भोगवती का विवाह कर उसको पतिगृह भेज दिया। इस शुभ कृत्य से प्रफुल्लित होकर राजा विजय ने अपने मन्त्रियो सेवको और ब्राह्मणादिको को गायें सुवर्ण और घोड इत्यादि पुरस्कार और दान में दिये। उधर वृद्ध मन्त्री सहित सचिवो ने प्रतिष्ठान पुर आकर राजा शूरसेन को उनकी पुत्रवधू अर्पित कर दी तथा महाराज विजय के बहुत से बातें सुनायी साथ ही उनके दिये हुए विचित्र प्रकार के वस्त्र आभूषण और दासी आदि अर्पित कर वे लोग कृतकृत्य हो गये। राजा शूरसेन ने भी भोगवती के साथ आये हुए राजा विजय के मन्त्रियो का बहुत आदर-सत्कार करके राजा विजय की

---

१ घ विजयाय। २ ङ ०मान्सगुणाकर। ३ घ तच्च सत्यमत्वा वद्धस्य भूपति। वि०। ४ ङ ०पतिस्तदा।

भोगवत्याश्च यो भर्ता महासर्पोऽतिभीषण । एकान्तदेशे विजने गृहे रत्नसुशोभिते ॥५३॥
सुगन्धकुसुमाकीर्णे तत्राऽऽस्ते सुखशीतले । स सर्पो मातर प्राह पितर च पुन पुन ॥५४॥
मम भार्या राजपुत्री कि मा नैवोपसर्पति । तत्पुत्रवचन श्रुत्वा सर्पमातेदमब्रवीत् ॥५५॥

राजपत्न्युवाच

धात्रिके गच्छ सुभगे शीघ्र भोगवतीं वद । तव भर्ता सर्प इति तत सा किं वदिष्यति ॥५६॥

ब्रह्मोवाच

धात्रिका च तथेत्युक्त्वा गत्वा भोगवतीं तदा । रहोगता उवाचेद विनीतवदपूर्ववत् ॥५७॥

धात्रिकोवाच

जानेऽह सुभगे भद्रे भर्तार तव दैवतम् । न चाऽऽख्येय त्वया क्वापि सर्पो न पुरुषो ध्रुवम ॥५८॥

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचन श्रुत्वा भोगवत्यब्रवीदिदम ॥५९॥

भोगवत्युवाच

मानुषीणा मनुष्यो हि भर्ता सामान्यतो भवेत् । किं पुनर्देवजातिस्तु भर्ता पुण्येन लभ्यत ॥६०॥

प्रसन्नता के अनुरूप उन्हे विदा किया। राजा विजय की वह रूपवती युवती और सुन्दर कटिवाली कन्या सर्वदा अपने सास-ससुर की शुश्रूषा मे लगा रहती थी। भोगवती का जो सर्प पति था वह भी एकान्त जनशून्य रत्ना से सुशोभित और सुगन्धित पुष्पो से सुसज्जित गृह म निवास करता था। एक दिन उस सर्प ने अपनी माता और पिता स अनुरोध पूर्वक बार बार कहा कि मेरी राजकन्या पत्नी मेरे पास क्या नही आती है। पुत्र की बात सुनकर सर्पमाता ने कहा ॥४५ ५५॥

राजपत्नी ने कहा—धाई ! सुन्दरी ! जाओ शीघ्र भोगवती से कहो कि तुम्हारा पति सर्प है इसके उत्तर मे वह क्या कहती है सो मुझे बताना ॥५६॥

ब्रह्मा ने कहा—धाई जैसी आज्ञा यह कहकर भोगवती के पास गई। एकान्त पाकर बडी नम्रता और अपूर्व ढग से बोली ॥५७॥

धाई बोली—सुभगे ! भद्रे ! मैं जानती हूँ कि तुम्हारा पति देवता है। परन्तु तुम निश्चय ही इस बात को कही भी न कहना कि तुम्हारा पति मनुष्य नही बल्कि सर्प है ॥५८॥

ब्रह्मा ने कहा—धाई की बातो को सुनकर भोगवती ने यह कहा ॥५९॥

भोगवती बोली—साधारणतया मानुषी स्त्रियो का पति मनुष्य ही होता है देवकुलोत्पन्न स्वामी तो महान् पुण्य स प्राप्त होता है ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

भोगवत्यास्तु तद्वाक्यं सा च सर्वं न्यवेदयत्। सर्पाय सर्पमात्रे च राज्ञे चैव यथाक्रमम् ॥६१॥
रुरोद राजा तद्वाक्यात्स्मृत्वा तां कर्मणो गतिम्। भोगवत्यपि तां प्राह उक्तपूर्वां पुनः सखीम् ॥६२॥

भोगवत्युवाच

कान्तं दर्शय भद्रं ते वृथा याति वयो मम ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

ततः सा दर्शयामास सर्पं तमतिभीषणम्। सुगन्धकुसुमाकीर्णे शयने सा रहोगता ॥६४॥
तं दृष्ट्वा भीषणं सर्पं भर्तारं रत्नभूषितम्। कृताञ्जलिपुटा [1]वाक्यमवदत्कान्तमञ्जसा ॥६५॥

भोगवत्युवाच

धन्याऽस्म्यनुगृहीताऽस्मि यस्या मे दैवतं पतिः ॥६६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा शयने स्थित्वा तं सर्पं [2]सर्पभावनं[3]। खेलयामास तन्वङ्गी गीतैश्चैवाङ्गसंगमैः ॥६७॥
सुगन्धकुसुमैः पानैस्तोषयामास तं पतिम्। तस्याश्चैव प्रसादेन सर्पस्याभूत्स्मृतिर्मुने ॥
स्मृत्वा सर्वं दैवकृतं रात्रौ सर्पोऽब्रवीत्प्रियाम् ॥६८॥

ब्रह्मा ने कहा—उस धाई ने भोगवती की बातों को सर्प, उसकी माता और राजा को क्रमश विस्तारपूर्वक सुना दिया। राजा उसकी बातों को सुनकर उसके कर्म-विपाक का स्मरण करके रो पडा। इधर भोगवती ने अपनी उस सन्देशवाहक सखी से कहा ॥६१-६२॥

भोगवती ने कहा—मेरे कान्त को दिखलाओ, मेरा जीवन व्यर्थ बीतता जा रहा है, यह कार्य करने से तुम्हारा कल्याण होगा ॥६३॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर उस सेविका ने सुगन्धित फूलों से सजी शय्या पर विराजमान उस भीषणाकृति साँप को दिखा दिया। एकान्त में अवस्थित भोगवती ने रत्नों से अलङ्कृत भयङ्कर सर्पपति को देखकर विनीत भाव से बद्धाञ्जलि होकर पति से तुरत कहा ॥६४-६५॥

भोगवती ने कहा—मैं धन्य हूँ अनुगृहीत हूँ कि मुझे देवता पति-प्राप्त हुआ ॥६६॥

ब्रह्मा ने कहा—यह कह कर स्वयं शय्या पर स्थित हो उस सुकुमारी ने अपने सर्पपति के साथ उसके मनोनुकूल गीत और अंगस्पर्शव्यापारपूर्वक दाम्पत्य क्रीडा की, और सुगन्धित फूलों एवं पेय पदार्थों से अपने पति को प्रसन्न किया। हे मुनि (नारद)! उसी राजकन्या के प्रसाद से सर्प को पूर्व-स्मृति हो गई। भाग्य की सब करतूत स्मरण करके सर्प ने रात्रि में अपनी पत्नी से कहा ॥६७-६८॥

---

१ ङ. ०दद्वाक्यकोविदा। मो०। २ घ. ङ. सर्वमा०। ३ ङ. ०नैः। खेल०।

राजकन्याऽपि मा दृष्टवा न भीताऽसि कथ प्रिये। सोवाच दैवविहित कोऽतिक्रमितुमीश्वर ॥
पतिरेव गति स्त्रीणा सर्वदैव वि षत ॥६९॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वेति हृष्टस्तामाह नाग प्रहसितानन ॥७०॥

सर्प उवाच

तुष्टोऽस्मि तव भक्त्याऽह कि ददामि तवेप्सितम्। तव प्रसादाच्चार्वङ्गि सर्वस्मृतिरभूदियम् ॥७१॥
शप्तोऽह देवदेवेन कुपितेन पिनाकिना। महेश्वरकरे नाग शेषपुत्रो महाबल ॥७२॥
सोऽह पतिस्त्व च भार्या नाम्ना भोगवती पुरा। उमावाक्याज्जहासोच्चै शभु प्रीतो रहोगत ॥७३॥
ममापि चाऽऽगत भद्रे हास्य तद्दैवसनिधौ। ततस्तु कुपित शभु प्रादाच्छाप ममेदृशम ॥७४॥

शिव उवाच

मनुष्ययोनौ त्व सर्पो भविता ज्ञानवानिति ॥७५॥

सर्प उवाच

तत प्रसादित शभुस्त्वया भद्रे मया सह। ततश्चोक्त तेन भद्रे गौतम्या मम पूजनम् ॥७६॥
कुर्वतो ज्ञानमाधास्ये यदा सर्पाकृतेस्तव। तदा विशापो भविता भोगवत्या प्रसादत ॥७७॥

सर्प ने कहा—प्रिये! तुम राजकुमारी होकर भी मुझको देखकर क्या नहीं डरीं? यह सुनकर उसने कहा—भाग्य विधान को उलट देने मे कौन समर्थ हो सकता है? पति ही सदा स्त्रियो की विशेष गति होता है ॥६९॥

ब्रह्मा ने कहा—पत्नी की बातो को सुनकर मुस्कुराते हुए नाग ने हर्ष से कहा ॥७०॥

सर्प बोला—तुम्हारी इस पति भक्ति से मैं प्रसन्न हूँ तुम्हारी कौन-सी कामना मैं पूर्ण करूँ? सुन्दरी! तुम्हारी कृपा से मुझे पूर्व की सारी घटनाओ का अब स्मरण हो आया है। मैं शेषनाग का पुत्र महाबलशाली नाग शभु के हाथ पर रहता था। एक बार देवदेव शिव ने कुपित होकर मुझे शाप दे दिया था। वही मैं तुम्हारा पति हूँ और तुम मेरी पूर्व जन्म की वही भोगवती नाम की भार्या हो। एक बार एकान्त क्रीडा मे उमा के प्रेमवाक्य से शकर जोर से हँस पडे। भद्रे! उस देवता के समीप मुझे भी हँसी आ गई। तब कुपित होकर शकर ने मुझे ऐसा शाप दे दिया ॥७१-७४॥

शिव ने कहा—तुम मनुष्य कुल मे ज्ञानी नाग होगे ॥७५॥

साँप ने कहा—भद्रे! तदनन्तर तुम्हारे साथ मैंने भी बडी विनम्रता से उनको प्रसन्न किया। तब उन्होंने कहा कि गौतमी तट पर जब मेरा पूजन करोगे तब भोगवती की कृपा से तुम्हें सर्प के शरीर से छुटकारा मिलेगा। सुमुखि!

---

१ घ ०हं भद्र त्वया। २ घ ०त तेन हसित दया०। ३ घ चैव। ४ क ङ ह। पुनश्चा०। ५ क ङ कुर्वतो। ६ घ ०वनी सर्वभावेन सद्धर्मस्त्रिपुरान्तरम्। त०। ७क ०मागाघप०। ८ ङ तस्य। ९क ङ ०प। वि०। १०क ०ता वत्स मम०। ङ ०ता वत्स मो०।

तस्मादिदं ममाऽऽपन्नं तव चापि शुभानने। तस्मान्नीत्वा गौतमीं मां पूजां कुरु मया सह ॥७८॥
ततो विशापो भविता आवां यावः शिवं पुन.। सर्वेषां सर्वदाऽऽर्तानां शिव एव परा गतिः ॥७९॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा भर्तृवचनं सा भर्त्रा गौतमीं ययौ। ततः स्नात्वा तु गौतम्यां पूजां चक्रे शिवस्य तु ॥८०॥
ततः प्रसन्नो भगवान्दिव्यरूपं ददौ मुने। आपृच्छ्य पितरौ सर्पो भार्यया गन्तुमुद्यतः॥
शिवलोकं ततो ज्ञात्वा पिता प्राह [1]महामतिः ॥८१॥

पितोवाच

युवराज्यधरो ज्येष्ठ. पुत्र एको भवानिति। तस्माद्राज्यमशेषेण कृत्वोत्पाद्य सुतान्बहून्॥
याते मयि परं धाम ततो याहि शिवं पुरम्[2] ॥८२॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा पितृवचस्तथेत्याह स नागराट्। कामरूपमवाप्याथ भार्यया सह सुव्रत ॥८३॥
पित्रा मात्रा तथा पुत्रै राज्यं कृत्वा सुविस्तरम्। याते पितरि स्वर्लोकं पुत्रान्स्थाप्य स्वके पदे ॥८४॥
भार्यामात्यादिसहितस्तत. शिवपुरं ययौ। ततः प्रभृति तत्तीर्थं नागतीर्थमिति श्रुतम् ॥८५॥

उसी शाप के प्रभाव से मेरे और तुम्हारे ऊपर यह विपत्ति आई। इसलिये मुझको वहाँ ले चलो और मेरे साथ पूजा करो। तब हम दोनो शाप-मुक्त होकर पुन शिव का सामीप्य प्राप्त करेंगे। भगवान् शकर ही सदा सब विपन्न प्राणियो के एकमात्र आधार हैं ॥७६-७९॥

ब्रह्मा ने कहा—पति की बातें सुनकर वह पति (साँप) को लेकर गौतमी के तट पर गई। इसके अनन्तर गौतमी मे स्नान कर उसने शिव की पूजा की। मुने! पूजा से प्रसन्न होकर शकर ने नाग का दिव्य रूप दिया। अपनी माता और पिता से अनुमति लेकर वह साँप भार्या के साथ शिवलोक जाने के लिये उद्यत हुआ। यह जानकर महाबुद्धिमान् पिता ने कहा—॥८० ८१॥

पिता ने कहा—तुम्हीं मेरे एकमात्र युवराज पद का धारण करने वाले पुत्र हो। इसलिये मेरे सम्पूर्ण राज्य का उपभोग कर बहुत से पुत्रो का उत्पन्न करो। फिर जब मैं स्वर्ग को सिधार जाऊँ तब तुम शिवपुरी जाना ॥८२॥

ब्रह्मा ने कहा—पिता की यह बात सुनकर नागराज ने उसे स्वीकार कर लिया। तदनन्तर वह महाव्रती नाग यथेच्छ रूप पाकर पत्नी, पिता, माता तथा पुत्रो के साथ अपने विशाल राज्य का उपभोग करने लगा। पुन पिता के स्वर्ग लोक चले जाने पर अपने पद पर पुत्रो को स्थापित करके स्त्री और आमात्य आदि के सहित वह

---

१ घ ०हामना। त्व मे रा०। २ घ परम्।

[1]यत्र नागेश्वरो देवो भोगवत्या प्रतिष्ठितः। तत्र स्नानं च दानं च [2]सर्वक्रतुफलप्रदम् ॥८६॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये नागतीर्थवर्णनं नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१११॥
गौतमीमाहात्म्ये द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४२॥

अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

मातृतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

मातृतीर्थमिति ख्यातं सर्वसिद्धिकरं नृणाम्। आधिभिर्मुच्यते जन्तुस्तत्तीर्थस्मरणादपि ॥१॥
देवानामसुराणां च संगरोऽभूत्सुदारुणः। नाशक्नुवंस्तदा जेतुं देवा दानवसंगरम् ॥२॥
[3]तदाऽहमगमं देवैस्तिष्ठन्तं शूलपाणिनम्। अस्तवं विविधैर्वाक्यैः कृताञ्जलिपुटः शनैः ॥३॥
संमन्त्र्य देवैरसुरैश्च सर्वैर्यदाऽऽहृतं संमथितुं समुद्रम् ।
यत्कालकूटं समभून्महेश, तत्त्वां विना को ग्रसितुं समर्थः ॥४॥

शिवपुरी को चला गया। तब से वह तीर्थ नागतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। जहाँ भोगवती के द्वारा नागेश्वर देव प्रतिष्ठित हुये हैं, वहाँ स्नान और दान करने से सम्पूर्ण यज्ञों के फल प्राप्त होते हैं ॥८३-८६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में तीर्थ-माहात्म्य वर्णन के प्रसंग में नागतीर्थ वर्णन-नामक एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१११॥

अध्याय ११२

मातृतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाला मातृतीर्थ नाम से प्रसिद्ध एक तीर्थ है उस तीर्थ के स्मरण मात्र से भी मनुष्य मानसिक व्यथाओं से छूट जाता है। एक समय देवों और दानवों में अति घोर युद्ध हुआ। जब देवगण वह दानव-संग्राम जीतने में समर्थ नहीं हुए, तब मैं देवताओं के सहित कैलाश पर्वत पर विराजमान शङ्कर के पास गया और हाथ जोड़कर धीरे धीरे विविध *वाक्यों से उनकी स्तुति करने लगा*— 'महेश! जब सब देवता और दानव आपस में मन्त्रणा कर समुद्र का मथन करने लगे, उस समय जो कालकूट विष उत्पन्न हुआ, उसको निगलने में आपके बिना दूसरा कौन समर्थ हो सकता था? जो कामदेव पुष्प-बाण के

---

१ क. घ. तत्र। २ घ. ०र्वकामफ०। ३ घ. ०दाऽहं दैवतैं सार्धमगम शू०।

पुष्पप्रहारेण[1] जगत्त्रयं य:, स्वाधीनमापादयितुं समर्थः ।
मारो हरेऽप्यन्यसुरादिवन्द्यो, वितायमानो विलयं प्रयातः ॥५॥
विमथ्य वारीशमनङ्गशत्रो, यदुत्तमं तत्तु दिवौकसेभ्यः ।
दत्त्वा विषं संहरन्नीलकण्ठ, को वा धर्तुं त्वामृते वै समर्थः ॥६॥
ततश्च तुष्टो भगवानादिकर्ता त्रिलोचनः ॥७॥

शिव उवाच

दास्येऽहं यदभीष्टं वो ब्रुवन्तु सुरसत्तमाः ॥८॥

देवा ऊचुः

दानवेभ्यो भयं घोरं तत्रेहि वृषभध्वज। जहि शत्रून्सुरान्पाहि नाथवन्तस्त्वया प्रभो ॥९॥
निष्कारणं सुहृच्छंभो नाभविष्यद्भवान्यदि। तदाऽकरिष्यन्किमिव दुःखार्ता सर्वदेहिनः ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तस्तत्क्षणात्प्रायाद्यत्र ते देवशत्रवः। तत्र तद्युद्धमभवच्छंकरेण सुरद्विषाम् ॥११॥
ततस्त्रिलोचनः[2] श्रान्तस्तमोरूपधरः शिवः। [3]ललाटाद्व्यपतंस्तस्य युध्यतः स्वेदबिन्दवः ॥१२॥
स संहरन्दैत्यगणांस्तामसीं मूर्तिमाश्रितः। तां मूर्तिमसुरा दृष्ट्वा मेरुपृष्ठाद्भुवं ययुः ॥१३॥
स [4]संहरन्सर्वदैत्यास्तदाऽगच्छद्भुवं हरः। इतश्चेतश्च भीतास्तेऽधावन्सर्वां महीमिमाम् ॥१४॥

प्रहार से तीनों लोकों को अपने वशीभूत करने में समर्थ हुआ, तथा अन्य सब देवताओं द्वारा वन्दित हुआ, वही मदन जब आप पर अपनी शक्ति का प्रयोग (प्रदर्शन) करने लगा तब स्वयं विनष्ट हो गया। मदन-रिपु! समुद्र को मथने से जो उत्तम चीजें निकलीं उनको तो देवताओं ने ले लिया, परन्तु नीलकण्ठ! विनाशकारी विष आपको दिया गया। सत्य है कि आपको छोड़कर उस महाविष को धारण करने में कौन समर्थ था? इस स्तुति से आदिकर्ता शंकर प्रसन्न हो गये ॥१-७॥

शिव ने कहा—हे देवश्रेष्ठो! आप लोग अपना अभीष्ट बताइए, मैं अवश्य दूंगा ॥८॥

देवों ने कहा—हे वृषवाहन! दानवों से हम देवों को दारुण भय हो गया है, आप वहाँ चलिये और राक्षसों को मारकर देवों की रक्षा कीजिये। प्रभो! तुम से ही हम सनाथ हैं। शम्भो! यदि आप आज अकारण बन्धु (रक्षक) नहीं होंगे तो दुःखों से आर्त सब प्राणी क्या कर सकेंगे? ॥९-१०॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार निवेदन किये जाने पर शंकर जी तुरन्त वहाँ गये जहाँ राक्षस लोग थे। वहाँ उनके साथ राक्षसों का भयंकर युद्ध हुआ। इसके अनन्तर तामस रूप धारण करने वाले त्रिनेत्र शिव थक-से गये। युद्ध करते समय उनके ललाट से पसीने की बूंदें गिरने लगीं। तब वे रौद्र मूर्ति धारण कर दैत्यों का संहार करने लगे। उनकी उस भयंकर संहारकारिणी मूर्ति को देखकर वे दानव मेरुपृष्ठ से भाग कर पृथ्वी पर चले आये। यह देखकर शंकर जी

१.ड०प्रणोदेन ज०। २क ०न स्विन्नस्त०। ३क. ०टाद्व्यगमस्त०। ड०टाद्व्यगमस्त०। ४घ ड०दैत्यानथाग०।

तथैव कोपाद्द्रोऽपि शत्रूस्ताननुधावति। तथैव युध्यतः शंभोः पतिताः स्वेदबिन्दवः॥१५॥
यत्र यत्र भुवं प्राप्तो बिन्दुर्महेश्वरो मुने। तत्र तत्र शिवाकारा मातरो जज्ञिरे ततः॥१६॥
प्रोचुर्महेश्वरं सर्वाः खादामस्त्वसुरानिति। ततः प्रोवाच भगवान्सर्वैः सुरगणैर्वृतः॥१७॥

शिव उवाच

स्वर्गाद्भुवमनुप्राप्ता राक्षसास्ते रसातलम्। अनुप्राप्तास्ततः सर्वाः श्रृण्वन्तु मम भाषितम्॥१८॥
यत्र यत्र द्विषो यान्ति तत्र गच्छन्तु मातरः। रसातलमनुप्राप्ता इदानीं मद्भयाद्द्विषः॥
भवत्योऽप्यनुगच्छन्तु रसातलमनु द्विषः ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

ताश्च जग्मुर्भुवं भित्त्वा यत्र ते दैत्यदानवाः। तान्हत्वा मातरः [1]सर्वान्देवारीनतिभीषणान्॥२०॥
पुनर्देवानुपाजग्मुः पथा तेनैव मातरः। गताश्च मातरो यावद्यावच्च पुनरागताः॥२१॥
तावद्देवाः स्थिता आसन्गौतमीतीरमाश्रिताः। प्रस्थानात्तत्र मातृणा सुराणां च प्रतिष्ठितेः॥२२॥
प्रतिष्ठानं तु तत्क्षेत्रं पुण्यं विजयवर्धनम्। मातृणां यत्र चोत्पत्तिर्मातृतीर्थं पृथक्पृथक्॥२३॥
तत्र तत्र बिलान्यासन्रसातलगतानि च। सुरास्ताभ्यो [2]वरान्प्रोचुर्लोके पूजां यथा शिवः॥२४॥

सब दानवों का संहार करते हुये पृथ्वी पर चले आये। वहाँ भी शंकर को देखकर राक्षस भयभीत हो सम्पूर्ण पृथ्वी पर इधर उधर भागने लगे। शंकर भी क्रुद्ध होकर उनके पीछे-पीछे दौडने लगे। जैसे जैसे वे दौडते थे वैसे वैसे उनके शरीर से पसीने की बूँदें गिरने लगी। मुनि! जहाँ जहाँ शिव के शरीर से निकलकर बूँदें पृथ्वी पर गिरी वहाँ वहाँ शिव के आकार की मातायें उत्पन्न हो गईं। उन माताओं ने शंकर से कहा कि 'हम असुरों को खायेंगी।' यह सुनकर भगवान् ने सब देववृन्दों के सामने ही कहा॥११-१७॥

शिव ने कहा—वे सब राक्षस स्वर्ग से भागकर पृथ्वी पर आए, फिर वहाँ से रसातल को चले गये। इसलिये आप सब मेरा कहना सुनिये। जहाँ जहाँ शत्रु जायें, वहाँ वहाँ मातायें भी जायें। इस समय मेरे भय से शत्रु रसातल को चले गये हैं। इसलिये आप सब भी शत्रुओं का पीछा करती हुई रसातल को जाइये॥१८-१९॥

ब्रह्मा ने कहा—वे मातायें पृथ्वी को भेदकर वहाँ गईं, जहाँ दैत्य-दानव थे। वहाँ जाकर सभी महाभयंकर राक्षसों को मार डाला। पुनः वे उसी मार्ग से जिस मार्ग से इधर से गई थी—देवताओं के पास चली आईं। जिस समय मातायें रसातल को गईं और जब तक पुनः वहाँ से नहीं लौटी तब तक देवगण गौतमी के तट पर स्थित रहे। वहाँ माताओं के प्रस्थान करने और देवताओं के प्रतिष्ठित होने से वह क्षेत्र पवित्र और विजय देनेवाला क्षेत्र माना गया। जहाँ माताओं की उत्पत्ति हुई और जहाँ रसातल को जाने वाले बिल थे वे पृथक् पृथक् एक-एक मातृतीर्थ कहलाये।

---

[1] घ ०र्वा ननृतुस्ततस्तावना। उपागमस्ततो देवास्पथा तेनैव मातृका। हत्वा दैत्यान्गणे या०। [2] ङ. ०रान्दत्त्वा लोके।

प्राप्नोति तद्वन्मातृभ्य पूजा भवतु सर्वदा। इत्युक्त्वाऽन्तर्दधुर्देवा आसस्तत्रैव मातर ॥२५॥
यत्र यत्र स्थिता देव्यो मातृतीर्थं ततो विदु । सुराणामपि सेव्यानि किं पुनर्मनुषादिभि ॥२६॥
तेषु स्नानमथो दान पितृणा चैव तर्पणम्। सर्वं तदक्षय ज्ञेय शिवस्य वचन यथा[1] ॥२७॥
यस्त्विद शृणुयान्नित्य स्मरेदपि पठेत्तथा[2]। आख्यान मातृतीर्थानामायुष्मान्स सुखी भवेत ॥२८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयभुऋषिसवादे देवतीर्थमातृतीर्थप्रतिष्ठानवर्णन नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्याय ॥११२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्याय ॥४३॥

अथ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्याय.

ब्रह्मतीर्थवर्णनम

ब्रह्मोवाच

इदमप्यपर तीर्थं देवानामपि दुर्लभम। ब्रह्मतीर्थमिति ख्यात भुक्तिमुक्तिप्रद नृणाम् ॥१॥

देवा ने माताओ का वर दिया कि जिस प्रकार लोक म शिव क पूजा होता है उसी प्रकार सवदा माताओ को भ पूजा प्राप्त होगी। यह कहकर देवता अन्तर्हित हो गये परन्तु माताय वही रही। जहाँ जहाँ माताय स्थित रहा वहाँ वहाँ मातृत थ स्थापित हुय। वे त थ देवा के लिये भ सेव्य माने गये हैं फिर मनुष्या क लिये तो कहना ही क्या ? उन त र्थों म किये गये स्नान दान और पित तरण आदि कम उस प्रकार अक्षय होते हैं जिस प्रकार शिव के वरदान वाक्य। जो मनुष्य मातृ-तीय का कथा को सुनता स्मरण करता और पढता है वह दाघ ज वा और सुख होता है ॥२० २८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म देव ताथ मातृताथ प्रतिष्ठान-वणन नामक एक सौ बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥११२॥

अध्याय ११३

ब्रह्मतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—यह एक दूसरा मनुष्या को भुक्ति और मुक्ति देने वाला ब्रह्मताथ नाम से प्रसिद्ध तीर्थ है जो देवा के लिये भी दुलभ माना गया है ॥१॥ मुनिश्रेष्ठ ! जब राक्षस रस तल म घुस गये तब उनके पीछ पीछ

१घ ०र्थं पृथक्पृथक। मु०। २घ तथा। ३क घ ०ठतवा। आ०।

स्थितेषु देवसैन्येषु प्रविष्टेषु रसातलम्। दैत्येषु च मुनिश्रेष्ठ तथा मातृषु तानन्॥२॥
मदीयं पञ्चमं वक्त्रं गर्दभाकृति भीषणम्। तद्वक्त्रं देवसैन्येषु मयि तिष्ठत्युवाच ह॥३॥
'हे दैत्याः किं पलायन्ते न भयं वोऽस्तु सत्वरम्। 'आगच्छन्तु सुरान्सर्वान्भक्षयिष्ये क्षणादिति'॥४॥
निवारयन्तं मामेवं भक्षणायोद्यतं तथा। तं दृष्ट्वा विबुधा सर्वे वित्रस्ता विष्णुमब्रुवन्॥५॥
त्राहि विष्णो जगन्नाथ ब्रह्मणोऽस्य मुखं लुन। चक्रधृग्विबुधानाह च्छेद्मि चक्रेण' वै शिरः॥६॥
किं तु तच्छिन्नमेवेदं संहरेत्सचराचरम्। मन्त्रं ब्रूमोऽत्र विबुधाः श्रूयतां सर्वमेव' हि॥७॥
त्रिनेत्रः कशिरश्छेत्ता स च धत्ते न संशय.। मया च' शंभु सर्वैश्च स्तुत प्रोक्तस्तथैव च॥८॥

याग' क्षणी दृष्टफलेऽसमर्थः, स नैव कर्तुः फलतीति मत्वा ॥
फलस्य दाने प्रतिभूर्जटीति, निश्चित्य लोकः प्रतिकर्म यातः ॥९॥

तत. सुरेशः संतुष्टो देवानां कार्यसिद्धये। लोकानामुपकारार्थं तथेत्याह सुरान्प्रति॥१०॥
तद्वक्त्रं पापरूपं यद्भीषणं लोमहर्षणम्। निकृत्य नखशस्त्रैश्च क्व स्थाप्यं चेत्यथाब्रवीत्॥११॥
तत्रेला विबुधानाह नाहं वोढुं शिरः क्षमा। रसातलमथो यास्ये उदधिश्चाप्यथाब्रवीत्॥१२॥

मातायें भी गईं और देव सेनायें वहीं रह गईं, उस समय मेरा पाँचवाँ गदहे की आकृति का भयङ्कर मुख देवताओं और सैनिकों के बीच मुझको बैठा देख कर बोल उठा॥२-३॥ हे दैत्यो! तुम लोग क्या भाग रहे हो? तुम लोग भयभीत मत होओ, आओ, मैं एक ही क्षण में सब देवों को खा जाऊँगा॥४॥ मैं उस मुख को जो इस प्रकार देवों को खाने के लिए उद्यत हो रहा था, रोकने लगा। यह देखकर सब देव भयभीत हो भगवान् विष्णु से बोले॥५॥ विष्णो! रक्षा कीजिये। ब्रह्मा के इस मुख को शीघ्र काट डालिये। विष्णु ने देवताओं से कहा 'मैं चक्र से शिरश्छेद तो अवश्य कर सकता हूँ, किन्तु वह शिर कट जाने पर भी चराचर सहित जगत् का संहार कर सकता है। इसलिये देवगण! मैं इस विषय में एक उचित परामर्श देता हूँ, सावधान होकर सुनिए। भगवान् त्रिलोचन इस दुष्ट शिर का छेदन कर, इसको धारण कर सकते हैं इसमें सन्देह नहीं।' यह सुनकर मैंने और सब देवताओं ने मिलकर शङ्कर की स्तुति की और कहा॥६-८॥ 'यज्ञ क्षणभर में सम्पन्न होने वाला, प्रत्यक्ष फल देने में असमर्थ तथा कर्ता को फल नहीं देता है, इस सिद्धान्त को मानकर, फल देने में शङ्कर को ही साक्षी माना जाता है और तब प्रत्येक काम में संसार प्रवृत्त होता है॥९॥ तदनन्तर सन्तुष्ट हुए शङ्कर ने देवकार्य की सिद्धि तथा लोककल्याण के लिये देवताओं से कहा कि मैं ऐसा ही करूँगा॥१०॥ परन्तु इस कुत्सित रूप वाले, भीषण और रोंगटे खड़े कर देने वाले मस्तक को नखरूपी अस्त्र से काट कर कहाँ स्थापित करूँ। यह बताइए॥११॥ यह सुनकर पृथ्वी ने देवों से कहा कि मैं इस शरीर को ढोने

---

१ क हा। २ घ ०च्छन्तु०। ३ घ ०दिव। नि०। ४ क ०त गिर। तद्दृष्ट्वा। घ ०त शिर। ता। ५ घ ०रा हर। मुरारिरवि०। ६ घ ०ण कस्य कम्। कि। ७ क घ ०वं एव। ८ क स च्छेत्स्यति न। ९ घ घ सर्वैर्देवैस्त्व।

शोष यास्ये क्षणादेव पुनश्चोचु शिव सुरा । त्वयैवैतद्ब्रह्मशिरो धार्यं लोकानुकम्पया ॥१३॥
अच्छेदे जगता नाशश्छेदे दोषश्च तादृश । एव विमृश्य सोमेशो दधार कशिरस्तदा ॥१४॥
तद्दृष्ट्वा दुष्कर कर्म गौतमीं प्राप्य पावनीम्। अस्तुवञ्जगतामीश प्रणयाद्भक्तित सुरा ॥१५॥
देवव्वमित्र कशिरोऽतिभीम, तान्भक्षणायोपगत निकृत्य
नखाग्रसूच्या शकलेन्दुमौलिस्त्यागेऽपि दोषात्कृपयाऽभ्युधत्ते ॥१६॥
तत्र ते विबुधा सर्वे स्थिता ये ब्रह्मणोऽन्तिके। तुष्टुवुर्विबुधेशान कर्म दृष्ट्वाऽतिदैवतम् ॥१७॥
तत प्रभृति तत्तीर्थं ब्रह्मतीर्थमिति श्रुतम्। अद्यापि ब्रह्मणो रूप चतुर्मुखमवस्थितम् ॥१८॥
शिरोमात्र तु य पश्येत्स गच्छेद्ब्रह्मण पदम्। यत्र स्थित्वा स्वय रुद्रो लूनवान्ब्रह्मण शिर ॥१९॥
रुद्रतीर्थं तदेव स्यात्तत्र साक्षाद्दिवाकर । देवाना च स्वरूपेण स्थितो यस्मात्तदुत्तमम् ॥२०॥
सौर्यं तीर्थं तदाख्यात सर्वक्रतुफलप्रदम्। तत्र स्नात्वा रविं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥२१॥
महादेवेन यच्छिन्न ब्रह्मण पञ्चम शिर । क्षेत्रेऽविमुक्ते सस्थाप्य देवताना हित कृतम् ॥२२॥

मे असमथ हूँ यदि एसा करूँ तो इसके भार से मैं ही रसातिल चली जाऊँगी। समुद्र ने कहा यदि मैं इसको धारण करूँ तो क्षण भर मे ही सूख जाऊँगा। निदान विवश हो देवो ने पुन शकर से कहा कि लोक पर दया करके आप ही इस शिर को धारण कीजिये ॥१२ १३॥ शकर जी ने इस शिर को न काटने से ससार का नाश हो जायगा और काट देने पर भी वैसा ही दोष होगा यह विचार कर उस समय उस गदभाकृति शिर को धारण कर लिया ॥१४॥ इस दुष्कर काय को देखकर सब देवता पावन गौतमी के तट पर जाकर प्रेम से भक्तिपूवक जगत्पति शकर की स्तुति करने लगे ॥१५॥ देवो के मध्य शत्रु बनकर रहने वाले ब्रह्मा के पाचवे मुख को जो कि सब देवताओं को खा जाने के लिये उद्यत था—द्वितीया के चन्द्र को शिर पर धारण करने वाले आपने नखाग्र रूपी सूची अस्त्र से काट कर दोषो के कारण त्यागने योग्य उस शिर को भी कृपापूवक धारण कर लिया ॥१६॥ वहा ब्रह्मा के समीप जितने देवता थे उन्होने शकर के इस देवातीत काय को देखकर उनकी अत्यन्त स्तुति की ॥१७॥ तब से वह तीथ ब्रह्मतीर्थ के नाम से विख्यात हुआ। आज भी ब्रह्मा का चतुमु ख रूप वहा स्थित है ॥१८॥ जो मनुष्य उनके शिरोभाग का दशन कर लेता है वह अवश्य ब्रह्मपद को प्राप्त करता है। जहा स्थित होकर स्वय शकर ने ब्रह्मा का शिर काटा था वहा रुद्रतीथ कहलाता है। वहाँ साक्षात् सूय देवताओ के स्वरूप से स्थित हैं। वह अत्युत्तम सौरतीथ माना जाता है और सब यज्ञो का फल देने वाला है। उस तीथ मे स्नानकर सूय बिम्ब का दशन करने से मनुष्य आवागमन के बन्धन से छूट जाते है ॥१९ २१॥ महादेव ने ब्रह्मा के जिस पाँचवे शिर का छेदन किया और अविमुक्त क्षेत्र मे जिसकी स्थापना कर देवताओ का हित साधन किया गोमती तटवर्ती ब्रह्मतीथ मे उस शिर

---

१ ङ ०तमीतीरमाश्रितम्। २घ तीथमिति ख्या०।

ब्रह्मतीर्थे शिरोमात्र यो दृष्ट्वा गौतमी तटे। क्षेत्रेऽविमुक्ते तस्यैव स्थापितं योऽनुपश्यति॥
कपाल ब्रह्मण. पुण्य ब्रह्महा पूतता व्रजेत् ॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ब्रह्मतीर्थब्रह्मशिरोलिङ्गशिवतीर्थसूर्य-तीर्थादिषडशीतितीर्थवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४४॥

अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

अविघ्नतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अविघ्नं तीर्थमाख्यातं सर्वविघ्नविनाशनम्। तत्रापि वृत्तमाख्यास्ये शृणु नारद भक्तितः॥१॥
देवसत्रे प्रवृत्ते तु गौतम्याश्चोत्तरे तटे। समाप्तिर्नैव सत्रस्य संजाता विघ्नदोषतः॥२॥
तत. सुरगणाः सर्वे मामवोचन्हरिं तदा। ततो ध्यानगतोऽहं तानवोचं[१] वीक्ष्य कारणम्॥३॥

मात्र का दर्शन करके जो व्यक्ति अविमुक्त क्षेत्र में ब्रह्मकपाल का दर्शन करता है, वह यदि ब्रह्मघाती भी हो तो भी पवित्र हो जाता है॥२२-२३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मतीर्थ, शिरोलिंग, शिवतीर्थ, सूर्यतीर्थ, आदि छियासी तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त॥११३॥

अध्याय ११४

अविघ्नतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सब विघ्नों को नष्ट करने वाला अविघ्ननामक विख्यात एक तीर्थ है। उसका भी वृत्तान्त बतलाता हूँ। नारद! तुम श्रद्धा से सुनो। एक समय गौतमी के उत्तर तीर पर देवयज्ञ प्रारम्भ हुआ, परन्तु विघ्नों और त्रुटियों के कारण उस यज्ञ की समाप्ति नहीं हो सकी। तदनन्तर सब देवताओं ने मुझसे और विष्णु से निवेदन किया। मैंने ध्यानावस्थित होकर योग-दृष्टि से कारण जान लिया और कहा कि यह यज्ञ गणेशरहित विघ्नों के

१क. ०च कारणान्तरे। वि०।

विनायककृतैर्विघ्नैर्न तत्सत्रं समाप्यते। तस्मात्स्तुवन्तु ते सर्वे आदिदेवं विनायकम्॥४॥
तथेत्युक्त्वा सुरगणाः स्नात्वा ते गौतमीतटे। अस्तुवन्भक्तितो देवा आदिदेवं गणेश्वरम्॥५॥

देवा ऊचुः

यः सर्वकार्येषु सदा सुराणामपीशविष्णवम्बुजसंभवानाम् ।
पूज्यो नमस्यः परिचिन्तनीयस्तं विघ्नराजं शरणं व्रजामः ॥६॥
न विघ्नराजेन समोऽस्ति कश्चिद्देवो मनोवाञ्छितसंप्रदाता ।
निश्चित्य चैतत्त्रिपुरान्तकोऽपि, तं पूजयामास वधे पुराणाम् ॥७॥
करोतु सोऽस्माकमविघ्नमस्मिन्महाक्रतौ सत्वरमाम्बिकेयः ।
ध्यातेन येनाखिलदेहभाजां, पूर्णा भविष्यन्ति मनोभिलाषाः ॥८॥
महोत्सवोऽभूदखिलस्य देव्या, जातः सुतश्चिन्तितमात्र एव ।
अतोऽवदन्सुरसंघाः कृतार्थाः, सद्योजातं विघ्नराजं नमन्तः ॥९॥
यो मातुरुत्सङ्गगतोऽथ मात्रा, निवार्यमाणोऽपि बलाच्च चन्द्रम् ।
संगोपयामास पितुर्जटासु, गणाधिनाथस्य विनोद एषः ॥१०॥
पपौ स्तनं मातुरथापि तृप्तो, यो भ्रातृमात्सर्यकषायबुद्धिः
लम्बोदरस्त्वं भव विघ्नराजो, लम्बोदरं नाम चकार शंभुः ॥११॥
संवेष्टितो देवगणैर्महेशः, प्रवर्ततां नृत्यमितीत्युवाच ।
सतोषितो नूपुररावमात्राद्गणेश्वरत्वेऽभिषिषेच पुत्रम् ॥१२॥

कारण समाप्त नहीं हो पा रहा है। अतः आप लोग आदिदेव विनायक की स्तुति करें। देवताओं ने इसे स्वीकार किया और गौतमी में स्नान कर भक्तिपूर्वक आदिदेव गणेश की स्तुति की ॥ १—५ ॥

देवगण बोले—जो सब कार्यों में सर्वदा देवता, शंकर, विष्णु और कमलयोनि ब्रह्मा आदि के भी पूज्य, नमस्करणीय और ध्यान करने योग्य है उस विघ्नराज की शरण में हम आये हैं ॥६॥ मनोरथ पूर्ण करने में विघ्नराज के समान कोई भी दूसरा देवता नहीं है, यही निश्चय कर त्रिपुरारि शंकर ने भी त्रिपुरासुर के वध के समय उस गणेश की पूजा की ॥७॥ वे अम्बिका सुत—जिनके ध्यान करने से सम्पूर्ण प्राणियों के मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं—हमारे इस महायज्ञ में मङ्गल करें ॥८॥ देवी शिवा को पुत्र उत्पन्न हुआ, इसका मात्र ध्यान करने से सम्पूर्ण संसार को महान् आनन्द हुआ, इसलिये देवगणों ने कृतार्थ होकर उस सद्योजात बालक को नमस्कार करते हुये विघ्नराज कहा ॥९॥ वे गणेश माता की गोद में बैठे हुए थे, परन्तु माता के बार-बार मना करने पर भी उन्होंने हठात् चन्द्र को पिता की जटा में छिपा दिया। यह गणनायक का विनोद रहा ॥१०॥ वे माता के स्तनपान से तृप्त थे, फिर भी स्कन्द के प्रति ईर्ष्या से उनकी बुद्धि कलुषित हो जाती थी। इसलिये शंकर ने उनसे कहा कि विघ्नराज ! तुम लम्बोदर (पेटू) हो, यह कहकर शिव ने उनका नाम लम्बोदर रख दिया ॥११॥ देवों से घिरे हुए महेश ने आपसे कहा—'अपना नृत्य दिखाओ।' आपने भी अपने नूपुर के संचालन मात्र से पिता को प्रसन्न कर दिया। यह देखकर पिता ने भी पुत्र गणेश को गणनायक की पदवी से विभूषित कर दिया ॥१२॥ जो एक हाथ में विघ्नपाश धारण करते और दूसरे हाथ से कन्धे पर

यो विघ्नपाशं च करेण बिभ्रत्स्कंधे कुठारं च तथा परेण　　।
अपूजितो विघ्नमथोऽपि मातुः, करोति को विघ्नपतेः समोऽन्यः　　॥१३॥
धर्मार्थकामादिषु पूर्वपूज्यो, देवासुरैः पूज्यत एव नित्यम्　　।
यस्यार्चनं¹ नैव विनाशमस्ति,² तं पूर्वपूज्यं प्रथमं नमामि　　॥१४॥
यस्यार्चनात्प्रार्थनयाऽनुरूपां, दृष्ट्वा तु सर्वस्य फलस्य सिद्धिम्　　।
स्वतन्त्रसामर्थ्यकृतातिगर्वं, भ्रातृप्रियं त्वाखुरथं तमीडे　　॥१५॥
यो मातरं सरसैर्नृत्यगीतैस्तथाऽभिलाषैरखिलैर्विनोदैः
संतोषयामास तदाऽतितुष्टं, त श्रीगणेशं शरणं प्रपद्ये　　॥१६॥
'सुरोपकारैरसुरैश्च युद्धैः,' स्तोत्रैर्नमस्कारपरैश्च' मन्त्रैः'　　।
पितृप्रसादेन सदा समृद्ध, तं श्रीगणेशं शरणं प्रपद्ये　　॥१७॥
जये पुराणामकरोत्प्रतीपं, पित्राऽपि हर्षात्प्रतिपूजितो यः　　।
निर्विघ्नतां चापि पुनश्चकार, तस्मै गणेशाय नमस्करोमि　　॥१८॥

ब्रह्मोवाच

इति स्तुतः सुरगणैर्विघ्नेशः प्राह तान्पुनः　　॥१९॥

गणेश उवाच

इतो निर्विघ्नता सत्रे मत्तः स्यादसुरारिणः　　॥२०॥

कुठार लिये रहते हैं, और पूजा न पाने पर माता के कार्य में भी विघ्न उत्पन्न कर देते हैं, ऐसे विघ्नराज के समान दूसरा कौन देवता है ॥१३॥ धर्म, अर्थ और काम सम्बन्धी कार्यों में देव और असुरों द्वारा आप सर्वदा पूर्वपूज्य के रूप में पूजे जाते हैं। जिसका पूजन करने से कार्य निश्चित रूप से पूर्ण हो जाते हैं, ऐसे पूर्वपूज्य (प्रथम पूजा पाने योग्य) देव को प्रथम नमस्कार है ॥१४॥ जिसकी पूजा और प्रार्थना के अनुरूप ही सब फलों की सिद्धि देखी जाती है ऐसे अपनी स्वतन्त्र शक्ति पर गर्व करने वाले, स्कन्दप्रिय, और चूहे पर सवारी करने वाले देव को नमस्कार है ॥१५॥ जो अपनी माता को सरस नृत्य, गीत और बालक्रीडाओं से प्रसन्न करके स्वयं अतिप्रसन्न हो जाते थे। ऐसे श्री गणेश जी के हम शरणागत हैं ॥१६॥ जिन्होंने देवों के उपकार, असुरों से युद्ध में स्तोत्रपाठ और नमस्कार-परक मन्त्रों के द्वारा पिता की कृपा से समृद्धि प्राप्त की, ऐसे श्रीगणेश की शरण में हम लोग आये हैं ॥१७॥ त्रिपुरों की विजय के समय जिन्होंने कुछ विघ्न कर दिया, जिससे पिता (शंकर) ने भी प्रसन्नता से जिनकी पूजा की, तद-नन्तर जिन्होंने निर्विघ्न रूप से कार्य होने दिया, ऐसे गणेश को हम नमस्कार करते हैं ॥१८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार देवताओं द्वारा प्रार्थना की जाने पर विघ्नराज ने पुनः कहा ॥१९॥

गणेश ने कहा—असुरारि ! आज से आप लोगों के यज्ञ में मेरी ओर से किसी प्रकार का विघ्न नहीं होगा ॥२०॥

१घ ०र्चने नै०। २घ ङ विमानम०। ३ङ. सुराप०। ४घ सर्वे०। ङ युद्धे। ५घ ०पदैश्च। ६ङ. ०न्त्रे। तृप्त प्र०।

ब्रह्मोवाच

देवसत्रे निवृत्ते तु गणेशः प्राह तान्सुरान् ॥२१॥

गणेश उवाच

स्तोत्रेणानेन ये भक्त्या मां स्तोष्यन्ति यतव्रताः। तेषां दारिद्र्यदुःखानि न भवेयुः कदाचन ॥२२॥
अत्र ये भक्तितः स्नानं दानं कुर्युरतन्द्रिताः। तेषां सर्वाणि कार्याणि भवेयुरिति मन्यताम् ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यसमकालं तु तथेत्यूचुः सुरा अपि। निवृत्ते तु मखे तस्मिन्सुरा जग्मुः स्वमालयम् ॥२४॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थमविघ्नमिति गद्यते। सर्वकामप्रदं पुंसां सर्वविघ्नविनाशनम् ॥२५॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽविघ्नतीर्थवर्णनं नाम चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः॥११४॥
गौतमीमाहात्म्ये पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥४५॥

अथ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

शेषतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शेषतीर्थमिति ख्यातं सर्वकामप्रदायकम्। तस्य रूपं प्रवक्ष्यामि यन्मया परिभाषितम् ॥१॥
शेषो नाम महानागो रसातलपतिः प्रभुः। सर्वनागैः परिवृतो रसातलमथाभ्यगात् ॥२॥

ब्रह्मा ने कहा—देव-यज्ञ के पूर्ण हो जाने पर गणेश ने उन देवों से कहा ॥२१॥

गणेश ने कहा—*जो संयमी व्यक्ति इस स्तोत्र से भक्तिपूर्वक मेरी स्तुति करेंगे उन्हें कभी भी दरिद्रता से* कष्ट नहीं होगा। इस स्थान पर जो उत्साही व्यक्ति स्नान और दान करेंगे उनके सब कार्य पूर्ण होंगे, इस पर आप विश्वास करें ॥२२-२३॥

ब्रह्मा ने कहा—*गणेश जी के इस प्रकार के आशीर्वाद-कथन के साथ ही देवों ने भी 'ऐसा ही हो' यह कहा।* इस प्रकार उस यज्ञ के समाप्त हो जाने पर सब देवता अपने स्थान को चले गये। तब से वह तीर्थ मनुष्यों के सब मनोरथ पूर्ण करने वाला और विघ्नविनाशक अविघ्नतीर्थ कहा जाता है ॥२४-२५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में अविघ्नतीर्थ वर्णन नामक एक सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥११४॥

अध्याय ११५

शेषतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सब कामनाओं को देने वाला शेषतीर्थ नाम से विख्यात एक तीर्थ है। उसका परिचय जिसे मैं पहले कभी बता चुका हूँ—दे रहा हूँ। रसातल का स्वामी महान् शेषनाग अपने अनुचर नागों के सहित रसातल-

---

१घ. ०मफलप्रदम्।

राक्षसा दैत्यदनुजाः प्रविष्टा ये रसातलम्। तैर्निरस्तो भोगिपतिर्मामुवाचाथ विह्वलः॥३॥

शेष उवाच

रसातलं त्वया दत्तं राक्षसानां ममापि च। ते मे स्थानं न दास्यन्ति तस्मात्त्वां शरणं गतः॥४॥
ततोऽहमब्रवं नागं गौतमीं याहि पन्नग। तत्र स्तुत्वा महादेवं लप्स्यसे त्वं मनोरथम्॥५॥
नान्योऽस्ति लोकत्रितये मनोरथसमर्पकः। मद्वाक्यप्रेरितो नागो गङ्गामाप्लुत्य यत्नतः॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तुष्टाव त्रिदशेश्वरम् ॥६॥

शेष उवाच

नमस्त्रैलोक्यनाथाय दक्षयज्ञविभेदिने। आदिकर्त्रे नमस्तुभ्यं नमस्त्रैलोक्यरूपिणे॥७॥
नमः सहस्रशिरसे नमः संहारकारिणे। सोमसूर्याग्निरूपाय जलरूपाय ते नमः॥८॥
सर्वदा सर्वरूपाय कालरूपाय ते नमः। पाहि शंकर सर्वेश पाहि सोमेश सर्वग।
जगन्नाथ नमस्तुभ्यं देहि मे मनसेप्सितम् ॥९॥

ब्रह्मोवाच

ततो महेश्वरः प्रीतः प्रादान्नागेप्सितान्वरान्। विनाशाय सुरारीणां दैत्यदानवरक्षसाम्॥१०॥
शेषाय प्रददौ शूलं जह्यनेनारिपुंगवान्। ततः प्रोक्तः शिवेनासौ शेषः शूलेन भोगिभिः॥११॥
रसातलमथो गत्वा निजघान रिपून्रणे। निहत्य नागः शूलेन दैत्यदानवराक्षसान्॥१२॥

लोक में गया। किन्तु राक्षस, दैत्य और दानवों ने पहले ही रसातल में घुस गये थे—सर्पपति को वहाँसे निकाल दिया। तब वह व्याकुल होकर मुझसे बोला—॥१-३॥

शेष ने कहा—आपने राक्षसों को और मुझको रसातल तो दिया, परन्तु वे मुझको वहाँ रहने नहीं देते, इसीलिये आपकी शरण में आया हुआ हूँ। तब मैंने नाग से कहा कि सर्प ! गौतमी के तट पर जाओ, वहाँ महादेव की स्तुति कर अपना मनोरथ अवश्य प्राप्त करोगे। इस त्रैलोक्य में शंकर के समान मनोरथ पूर्ण करने वाला और कोई नहीं। मेरे कथन से प्रेरित होकर वह नाग प्रेमपूर्वक गंगा में स्नान कर हाथ जोड़ कर देवेश की स्तुति करने लगा॥४-६॥

शेष ने कहा—त्रैलोक्य के स्वामी, दक्ष-यज्ञ को नष्ट करने वाले शिव को नमस्कार है, आदिकर्ता ! तुमको नमस्कार है, त्रिलोकी के रूप में रहने वाले को नमस्कार करते हैं। हजार शिर वाले को नमस्कार है, संहार करने वाले प्रभु को नमस्कार है, सोम, सूर्य, अग्नि और जल वाले आपको नमस्कार है। सर्वदा सब रूप में रहने वाले कालरूप आपको नमस्कार है, शंकर ! रक्षा कीजिये, सर्वेश। सोमेश ! सर्वव्यापी ! रक्षा कीजिये। जगन्नाथ ! आपको नमस्कार है। आप मेरे अभिमत को प्रदान कीजिये ॥७-९॥

ब्रह्मा ने कहा—प्रार्थना सुनकर महादेव प्रसन्न हो गये, उन्होंने नागराज को अभीष्ट वर प्रदान किया। सुर-शत्रु राक्षसों और दैत्यदानवों के नाश के लिये शंकर ने अपना शूल दिया और कहा कि इससे अपने प्रबल शत्रुओं को नष्ट कर दो। शूल प्राप्ति के बाद शंकर का इस प्रकार आशीर्वाद प्राप्त कर नागराज अनुचरों को साथ लेकर रसातल को

न्यवर्तत पुनर्देवो यत्र शेषेश्वरो हरः। पथा येन समायातो देवं द्रष्टुं स नागराट् ॥१३॥
रसातलाद्यत्र देवो बिलं तत्र व्यजायत। तस्माद्बिलतलाद्यातं गाङ्गं वार्यतिपुण्यदम् ॥१४॥
तद्वारि गङ्गामगमद्गङ्गायाः[1] संगमस्ततः। देवस्य पुरतश्चापि कुण्डं तत्र सुविस्तरम् ॥१५॥
नागस्तत्राकरोद्धोमं यत्र चाग्निः सदा स्थितः। सोष्णं तदभवद्वारि गङ्गायास्तत्र संगमः ॥१६॥
देवदेवं समाराध्य नागः प्रीतो महायशाः। रसातलं ततोऽभीष्टं शिवात्प्राप्य तलं ययौ ॥१७॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं नागतीर्थमुदाहृतम्। सर्वकामप्रदं पुण्यं रोगदारिद्र्यनाशनम् ॥१८॥
आयुर्लक्ष्मीकरं पुण्यं स्नानदानाच्च मुक्तिदम्। शृणुयाद्वा पठेद्भक्त्या यो वाऽपि स्मरते तु तत् ॥१९॥
तीर्थं शेषेश्वरो यत्र यत्र शक्तिप्रदः शिवः। एकविंशतितीर्थानामुभयोस्तत्र तीरयोः ॥
शतानि मुनिशार्दूल सर्वसंपत्प्रदायिनाम् ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये उभयतीरगतशेषतीर्थशेषेश्वरशूलेश्वराग्नि-
कुण्डरसातलगङ्गासंगमोष्णतीर्थाद्येकविंशतिशततीर्थवर्णनं नाम
पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥

गया और युद्ध में शत्रुओं का संहार करने लगा। इस प्रकार शूल से दैत्य, दानव और राक्षसों को विनष्ट कर पुनः जहाँ शेषेश्वर शंकर थे वहाँ नागेन्द्र लौट आया। जिस मार्ग से वह नागराज शंकर का दर्शन करने के लिये रसातल से शिव-स्थान तक आया था वह मार्ग बिल के रूप में हो गया। उस बिल से होकर गौतमी गंगा का अति पुनीत जल बहने लगा और वह गंगा के जल से मिल गया, जिससे वहाँ शंकर के सामने ही दो गंगाओं का पुनीत संगम एवं दीर्घाकार कुण्ड के रूप में बन गया। उस कुण्ड में नाग ने हवन किया। वहाँ अग्निदेव सर्वदा स्थित रहते हैं, इसलिये गंगा के संगम का जल सर्वदा के लिये उष्ण हो गया। महायशस्वी नाग देवाधिदेव शंकर की आराधना कर प्रसन्न हो शंकर से अपना अभीष्ट पाकर रसातल को चला गया। तब से सब कामनाओं को प्रदान करने वाला रोग और दरिद्रता को दूर करने वाला वह तीर्थ नागतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। जो व्यक्ति इस तीर्थकथा को भक्तिपूर्वक सुनता, पढ़ता या स्मरण करता है उसको वह पावन तीर्थ आयु और लक्ष्मी प्रदान करता है। वहाँ स्नान और दान करने से मुक्ति प्राप्त होती है। जहाँ शक्ति-दाता शंकर रहते हैं वहाँ शेषेश्वर तीर्थ है। मुनिश्रेष्ठ! गौतमी के दोनों तटों पर सब प्रकार की सम्पत्ति प्रदान करने वाले इक्कीस सौ तीर्थ विराजमान हैं ॥१०-२०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में शेषतीर्थ-वर्णन नामक एक सौ पन्द्रहवां अध्याय समाप्त ॥११५॥

१घ. ०द्गङ्गमयो स०। २ग. ङ. ०त्तीर्थमुष्णती०।

अथ षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

वडवादिसहस्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

महानलमिति ख्यातं वडवानलमुच्यते। महानलो यत्र देवो वडवा यत्र सा नदी ॥१॥
तत्तीर्थं यत्र वक्ष्यामि मृत्युदोषजरापहम्। पुराऽऽसन्नैमिषारण्ये ऋषयः सत्रकारिणः ॥२॥
शमितारं च ऋषयो मृत्युं चक्रुस्तपस्विनः। वर्तमाने सत्रयागे मृत्यौ शमितरि स्थिते ॥३॥
न ममार तदा कश्चिदुभयं स्थास्नु जङ्गमम्। विना पशून्मुनिश्रेष्ठ मर्त्यं चामर्त्यतां गतम् ॥४॥
ततस्त्रिविष्टपे शून्ये मर्त्ये चैवातिसंभृते। मृत्युनोपेक्षिते देवा राक्षसानूचिरे तदा ॥५॥

देवा ऊचुः

गच्छध्वमृषिसत्रं तन्नाशयध्वं महाध्वरम् ।

ब्रह्मोवाच

इति देववचः श्रुत्वा प्रोचुस्ते राक्षसाः सुरान् ॥६॥

असुरा ऊचुः

विध्वंसयामस्तं यज्ञमस्माकं किं फलं ततः। प्रवर्तते विना हेतुं न कोऽपि क्वापि जातुचित् ॥७॥

अध्याय ११६

वडवा आदि सहस्र तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा – महानल— जिसको दूसरा नाम वडवानल भी कहा जाता है—एक प्रसिद्ध तीर्थ है। जहाँ महानल देवता हैं और वडवा नदी है उस [illegible] तीर्थ का वर्णन मैं करूँगा। पहले पवित्र नैमिषारण्य में ऋषि लोग सत्र कर रहे थे। [illegible] उन तपस्वी ऋषियों ने मृत्यु को शमिता बनाया। इस प्रकार सत्रयाग में मृत्यु के शमिता के पद पर [illegible] स्थावर या जङ्गम दोनों में से कोई भी मरता नहीं था। मुनि श्रेष्ठ! केवल पशुओं के [illegible] मर्त्य [illegible] हो गये। स्वर्ग [illegible] शून्य हो गया परन्तु मर्त्युलोक जनों से भर गया। इस प्रकार मृत्यु की उपेक्षा को देखकर देवों ने राक्षसों से कहा ॥१-५॥

देवगण बोले – [illegible] ऋषि सत्र में जाओ और उस महायज्ञ को नष्ट कर दो।

ब्रह्मा ने कहा—देवों के [illegible] वचन को सुनकर उन राक्षसों ने देवों से कहा— ॥६॥

असुरों ने कहा —हम लोग उस यज्ञ को तो नष्ट कर दें परन्तु हम लोगों को इस विनाश से क्या लाभ होगा? इस लोक में कोई भी बिना प्रयोजन के कार्य में प्रवृत्त नहीं होता है ॥७॥

ब्रह्मोवाच

देवा अप्यसुरानूचुर्यज्ञार्धं भवतामपि। भवेदेव ततो यातु ऋषीणा सत्रमुत्तमम् ॥८॥
ते श्रुत्वा त्वरिता सर्वे यत्र यज्ञ प्रवर्तते। जग्मुस्तत्र विनाशाय देववाक्याद्विशेषत ॥९॥
तज्ज्ञात्वा ऋषयो मृत्युमाहु किं कुमहे वयम्। आगता देववचनाद्राक्षसा यज्ञनाशिन ॥१०॥
मृत्युना सह समन्त्र्य नैमिषारण्यवासिन । सर्वे त्यक्त्वा स्वाश्रम त शमित्रा सह नारद ॥११॥
अग्निमात्रमुपादाय त्यक्त्वा पात्रादिक तु यत्[1]। क्रतुनिष्पत्तये[2] जग्मुर्गौतमीं प्रति सत्वरा ॥१२॥
तत्र स्नात्वा महद्दान रक्षणायोपतस्थिरे। कृताञ्जलिपुटास्ते तु तुष्टुवुस्त्रिदशेश्वरम ॥१३॥

ऋषय ऊचु

यो लीलया विश्वमिद चकार, धाता विधाता भुवनत्रयस्य।
यो विश्वरूप सदसत्परो य, सोमेश्वर त शरण व्रजाम ॥१४॥

मृत्युरुवाच

इच्छामात्रेण य सर्वं हन्ति पाति करोति च। तमह त्रिदशेशान शरण यामि शकरम ॥१५॥
महानल[3] महाकाय महानागविभूषणम। महामूर्तिधर देव शरण यामि शकरम् ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—देवा ने यह सुनकर असुरो से कहा तो तुम लोगो को भी यज्ञ मे आधा भाग मिलेगा। अब तो श घ्र ऋषियो क उस यज्ञ म जाओ। यह सुनकर वे राक्षस न घ्र यज्ञ का विनाश करने के लिये यज्ञस्थल देवा का विशेष प्रेरणा से वहा गये जहाँ यज्ञ हो रहा था। यह जानकर ऋषियो ने मृत्यु से कहा—अब हम लोग क्या क र देवो का प्रेरणा स यज्ञ का नष्ट करने के लिये राक्षस आ गये हैं। नारद ! मृत्यु से परामर्श करने के उपरान्त वे नैमिषारण्य निवासी ऋषिगण अपने आश्रम तथा पात्र आदि को भी छोड़कर शमित्रा के साथ अग्निमात्र लेकर यज्ञ पूर्ण करने के लिये गौतमी के तट पर जल्दी से पहुचे। उसम स्नान कर के वे यज्ञ रक्षा के लिये शकर के निकट गए और बद्धाञ्जलि होकर देवेश्वर की स्तुति करने लगे ॥८ १३॥

ऋषिगण बोले—जिसने सहज ही म विश्व का निर्माण कर दिया जो तीनो लोका का पालक और स्रष्टा है जो विश्वमूर्ति है और जो सत एव असत से परे है उस सोमेश्वर शकर की शरण मे हम आये हुये हैं ॥१४॥

मृत्यु ने कहा—जो केवल इच्छामात्र से विश्व का सहार पालन और निर्माण करता है उस देवेश शकर की शरण म हम उपस्थित हैं। महान अग्निरूप महान शरीर वाले महान नागो के आभूषण वाले और महान मूर्ति धारण करने वाले शकर देव की शरण म हम आये हैं ॥१५ १६॥

१क तत्। २घ ङ ०निष्पत्तये। ३ङ ०हाबल।

ब्रह्मोवाच

ततः प्रोवाच भगवान्मृत्यो का प्रीतिरस्तु ते ॥१७॥

मृत्युरुवाच

राक्षसेभ्यो भयं घोरमापन्नं त्रिदशेश्वर। यज्ञमस्माञ्च रक्षस्व यावत्सत्रं समाप्यते ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

तथा चकार भगवांस्त्रिनेत्रो वृषभध्वजः। शमित्रा मृत्युना सत्रमृषीणां पूर्णतां ययौ ॥१९॥
हविषां भागधेयाय आजग्मुरमरा क्रमात्। तानवोचन्मुनिगणाः सक्षुब्धा मृत्युना सह ॥२०॥

ऋषय ऊचुः

अस्मन्मखविनाशाय राक्षसाः प्रेषिता यतः। तस्माद्भवद्भ्यः पापिष्ठा राक्षसाः सन्तु शत्रवः ॥२१॥
ततः प्रभृति देवानां राक्षसा वैरिणोऽभवन्। कृत्या च वडवा तत्र देवाश्च ऋषयोऽमलाः ॥२२॥
मृत्योर्भार्या भव त्वं तामित्युक्त्वा तेऽभ्यषेचयन्। अभिषेकोदकं यत्तु सा नदी वडवाऽभवत् ॥२३॥
मृत्युना स्थापितं लिङ्गं महानलमिति श्रुतम्। ततः प्रभृति तत्तीर्थं वडवासंगमं विदुः ॥२४॥
महानलो यत्र देवस्तत्तीर्थं भुक्तिमुक्तिदम्। सहस्रं तत्र तीर्थानां सर्वाभीष्टप्रदायिनाम् ॥

ब्रह्मा ने कहा—तब भगवान शिव ने कहा हे मृत्यु! मैं तुम्हारा कौन सा प्रिय कार्य सम्पादन करूँ? ॥१७॥

मृत्यु ने कहा—देव त्रिपति! राक्षसों ने भय का संकट खड़ा कर दिया है अब तक यज्ञ समाप्त न हो जाय तब तक आप यज्ञ की और हमारी भी रक्षा करें ॥१८॥

ब्रह्मा ने कहा—वृषवाहन भगवान त्रिलोचन ने वैसा ही किया जिससे मृत्यु शमिता की सहायता से ऋषियों का वह यज्ञ पूर्ण हो गया। यज्ञ पूर्ण होने पर देववृन्द भी क्रम से अपना यज्ञ भाग लेने के लिये आये। यह देखकर मृत्यु के साथ क्षुब्ध मुनियों ने देवों से कहा ॥१९ २०॥

ऋषियों ने कहा—जिस लिए आप लोगों ने हमारे यज्ञ को नष्ट करने के लिये राक्षसों को भेजा इसलिये वे पापी राक्षस आपके शत्रु हो जायें ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय से राक्षस देवताओं के वैरी हो गये। इसके साथ ही वहाँ निर्मल ऋषियों और देवताओं ने तुम मृत्यु की भार्या बनो, यह कहकर वडवा रूपिणी कृत्या का अभिषेक किया। जो अभिषेक जल था वही वडवा नदी बन गया। मृत्यु द्वारा स्थापित लिङ्ग महानल नाम से प्रसिद्ध हुआ। तब से वह स्थान वडवा संगम नाम से कहा जाने लगा। जहाँ महानल महादेव हैं वह भुक्ति और मुक्ति देने वाला तीर्थ है। इसके अतिरिक्त

उभयोस्तीरयोस्तत्र स्मरणादघघातिनाम् ॥२५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये वडवादिसहस्रतीर्थवर्णनं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

अथ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

आत्मतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

आत्मतीर्थमिति ख्यातं भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम्। तस्य प्रभावं वक्ष्यामि यत्र ज्ञानेश्वरः शिवः ॥१॥
दत्त इत्यपि विख्यातः सोऽत्रिपुत्रो हरप्रियः[1]। दुर्वाससः प्रियो भ्राता सर्वज्ञानविशारदः ॥
स गत्वा पितरं प्राह विनयेन प्रणम्य च ॥२॥

दत्त उवाच

ब्रह्मज्ञानं कथं मे स्यात्कं पृच्छामि क्व यामि च ॥३॥

वहाँ गौतमी के दोनों तटों पर सब प्रकार के अभीष्ट देने वाले तथा केवल स्मरण मात्र से पापों को नष्ट करने वाले सहस्रों तीर्थ हैं ॥२२-२५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वडवा आदि सहस्रतीर्थवर्णन नामक एक सौ सोलहवां अध्याय समाप्त ॥११६॥

अध्याय ११७

आत्मतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्यों को भोग और मोक्ष प्रदान करने वाला एक आत्मतीर्थ नाम से विख्यात तीर्थ है, जहाँ ज्ञानेश्वर शिव निवास करते हैं। उसके प्रभाव का वर्णन मैं कर रहा हूँ, सुनो। अत्रि का पुत्र शंकर का प्रिय और दुर्वासा का भाई दत्त नाम से विख्यात था। वह सब प्रकार के ज्ञान में निपुण था ॥१-२॥ एक दिन वह अपने पिता के पास जाकर विनयपूर्वक प्रणाम करके बोला ॥१-२॥

दत्त ने कहा—*ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति मुझे कैसे होगी? मैं किससे पूछूँ? और कहाँ जाऊँ?* ॥३॥

---

1. क. हरिप्रि०।

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वाऽत्रि पुत्रवाक्यं ध्यात्वा वचनमब्रवीत ॥४॥

अत्रिरुवाच

गौतमीं पुत्र गच्छ त्वं तत्र स्तुहि महेश्वरम्। स तु प्रीतो यदैव स्यात्तदा ज्ञानमवाप्स्यसि ॥५॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा तदाऽऽत्रेयो गङ्गां गत्वा शुचिर्यत । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा[1] भक्त्या तुष्टाव शंकरम् ॥६॥

दत्त उवाच

संसारकूपे[2] पतितोऽस्मि दैवान्मोहेन गुप्तो भवदुःखपङ्के ।
अज्ञाननाम्ना तमसाऽऽवृतोऽहं, परं न विन्दामि सुराधिनाथ ॥७॥
भिन्नस्त्रिशूलेन बलीयसाऽहं, पापेन चिन्ताक्षुरपाटितश्च ।
तप्तोऽस्मि[3] पञ्चेन्द्रियतीव्रतापैः, श्रान्तोऽस्मि संतारय सोमनाथ ॥८॥
बद्धोऽस्मि[4] दारिद्र्यमयैश्च बन्धैर्हतोऽस्मि रोगानलतीव्रतापैः ।
क्रान्तोऽस्म्यहं मृत्युभुजंगमेन, भीतो भृशं किं करवाणि शंभो[5] ॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—अत्रि-पुत्र की बातों को सुनकर थोड़ी देर तक विचार मग्न रहे फिर बोले ॥४॥

अत्रि ने कहा—पुत्र! तुम गौतमी के पास जाओ। वहाँ महेश्वर की स्तुति करो। वे जब प्रसन्न हो जायेंगे तब तुम्हें ज्ञान की प्राप्ति होगी ॥५॥

ब्रह्मा ने कहा—अत्रिपुत्र दत्त ऐसा ही करूँगा कहकर गंगा के समीप गया और स्नान कर पवित्र हो गया। भाव से हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक शंकर की स्तुति करने लगा ॥६॥

दत्त ने कहा—दैवयोग से संसार रूपी कुएँ में गिर पड़ा हूँ। मोह ने मुझे संसार के दुःख रूपी कीचड़ में छिपा दिया है। अज्ञानांधकार में घिर गया हूँ। सुरों के स्वामी! आपको नहीं पा रहा हूँ ॥७॥ बलवान् पापरूपी त्रिशूल से मैं छिन्न भिन्न हो गया हूँ तथा चिन्ता के अस्तुरे से फाड़ दिया गया हूँ। पाँचों इन्द्रियों के तीव्र ताप से जल गया हूँ। सोमनाथ! मैं थक गया हूँ। किसी प्रकार पार लगाइये ॥८॥ दरिद्रता के बंधन में मैं बँध गया हूँ। रोग रूपी अग्नि के तीव्र दाह से मार डाला गया हूँ। मृत्यु रूपी सर्प ने मुझे डस लिया है। शंभो! मैं अत्यंत भयभीत हो गया हूँ। क्या करूँ? समझ में नहीं आता ॥९॥ जन्म और अजन्म की पीड़ा क्षुधा तृष्णा रजोगुण और तमोगुण

१प० ह० ०त्वा शिव तुष्टाव भक्तितः। द०। २ह० ०रपङ्क प०। ३प० ०स्मि रोगा-वह्निती०। ४प० ०दच पार्दैर्दुःष्टो स्मि। ५प० ०भो। मायाम०।

भवाभवाभ्यामतिपीडितोऽहं, तृष्णाक्षुधाभ्यां च रजस्तमोभ्याम् ।
ईदृक्षया[1] जरया[2] चाभिभूतः[3], पश्यावस्थां कृपया मेऽद्य नाथ ॥१०॥
कामेन कोपेन च मत्सरेण, दम्भेन दर्पादिभिरप्यनेकैः ।
एकैकशः[4] कष्टगतोऽस्मि विद्धस्त्वं[5] नाथवद्वारय नाथ शत्रून् ॥११॥
कस्यापि कश्चित्पतितस्य पुंसो, दुःखप्रणोदी भवतीति सत्यम् ।
विना भवन्त मम सोमनाथ, कुत्रापि कारुण्यवचोऽपि नास्ति ॥१२॥
तावत्स कोपो भयमोहदुःखान्यज्ञानदारिद्र्यरुजस्तथैव ।
कामादयो मृत्युरपीह यावन्नमः शिवायेति न वच्मि वाक्यम् ॥१३॥
न मेऽस्ति धर्मो न च मेऽस्ति भक्तिर्नाहं विवेकी करुणा कुतो मे ।
दाताऽसि तेनाऽऽशु शरण्य चित्ते, निधेहि सोमेति पदं मदीये ॥१४॥
याचे न चाहं सुरभूपतित्वं, हृत्पद्ममध्ये मम सोमनाथ ।
श्रीसोमपादाम्बुजसंनिधानं, याचे विचार्यैव च तत्कुरुष्व ॥१५॥
यथा त्वयाहं विदितोऽस्मि पापस्तथाऽपि विज्ञापनमाशृणुष्व ।
संश्रूयते यत्र वचः शिवेति, तत्र स्थितिः स्यान्मम सोमनाथ ॥१६॥
गौरीपते शंकर सोमनाथ, विश्वेश कारुण्यनिधेऽखिलात्मन् ।
संस्तूयते यत्र सदेति तत्र, केषामपि स्यात्कृतिना निवासः ॥१७॥

से मैं पीडित हूँ। ऐसी वृद्धावस्था से आक्रान्त हूँ। नाथ ! आज मेरी इस अवस्था को कृपापूर्वक देखिये ॥१०॥ काम, क्रोध, डाह दम्भ अभिमान आदि अनेक शत्रु एक-एक करके मुझे कष्ट दे रहे हैं, बेध रहे हैं। प्रभो ! आप मेरे रक्षक बन कर शत्रुओं को दूर भगाइये ॥११॥ किसी पतित प्राणी का कोई मनुष्य दुःख दूर करने वाला होता है यह सत्य है, किन्तु सोमनाथ ! आपके अतिरिक्त किसी के सम्मुख मैं अपनी करुण कहानी भी तो नहीं कह सकता ॥१२॥ क्रोध, भय, मोह, दुःख, अज्ञान, दरिद्रता, रोग, काम आदि तथा मृत्यु-भय तभी तक है जब तक 'नमः शिवाय' मन्त्र मेरे मुख से नहीं निकलता है ॥१३॥ मेरे पास न तो धर्म है, न भक्ति है, न मैं ज्ञानी ही हूँ। फिर करुणा मुझमें कहाँ से आएगी ? परन्तु हे शरण देने वाले ! आप दाता हैं इसलिये मेरे हृदय में शीघ्र 'सोम' इस पद को स्थापित कर दीजिये ॥१४॥ मैं इन्द्र-पदवी की याचना नहीं करता। सोमनाथ ! मेरे हृदय-कमल के मध्य में श्रीसोमनाथ के चरण-कमल की स्थापना हो यही प्रार्थना है। पहले विचार कर लीजिये तब उसको स्वीकार कीजिए ॥१५॥ जैसे आपने मुझ को पापी समझ लिया है उसी प्रकार मेरी भी आप से एक प्रार्थना है उसको भलीभाँति सुनिए। सोमनाथ ! जहाँ 'शिव' ऐसा शब्द सुना जाता है वहाँ मेरा निवास हो ॥१६॥ (क्योंकि) जहाँ सर्वदा गौरीपते ! शंकर ! सोमनाथ ! विश्वेश ! कारुण्यनिधे ! अखिलात्मन् !' आदि शब्दों द्वारा स्तुति की जाती है, वहाँ किन्हीं पुण्यात्माओं का निवास होता है ॥१७॥

१घ दुःशील्या। २ ङ ०या वा पि भूय प०। ३घ चापि भूय। ४घ ङ० शः कृपण०। ५ङ. ०द्धस्त्वनाथ०।

ब्रह्मोवाच

इत्यात्रेयस्तुतिं श्रुत्वा तुतोष भगवान्हरः। वरदोऽस्मीति तं प्राह योगिनं विश्वकृद्भवः॥१८॥

आत्रेय उवाच

आत्मज्ञानं च मुक्तिं च भुक्तिं[1] च विपुलां त्वयि। तीर्थस्यापि च माहात्म्यं वरोऽयं त्रिदशार्चित॥१९॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति तं शंभुरुक्त्वा चान्तरधीयत। ततः प्रभृति तत्तीर्थमात्मतीर्थं [2]विदुर्बुधाः॥
तत्र स्नानेन दानेन मुक्तिः स्यादिह[3] नारद ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्य आत्मतीर्थवर्णनं नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः॥११७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥४८॥

अथाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

अश्वत्थादितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

[4]अश्वत्थतीर्थमाख्यातं पिप्पलं च ततः परम्। उत्तरे मन्दतीर्थं तु[5] तत्र व्युष्टिमितः शृणु॥१॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार अत्रि-पुत्र की स्तुति सुनकर भगवान् शंकर प्रसन्न हो गये। उस विश्व-स्रष्टा शंकर ने उस योगी से कहा मैं 'वर देना चाहता हूँ, माँगो॥१८॥

आत्रेय ने कहा—हे देववन्द्य! आत्मज्ञान, मुक्ति, आपमें प्रचुर भक्ति और तीर्थ का माहात्म्य मुझे प्राप्त हो, यह वर दीजिये॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—'ऐसा ही हो' यह कहकर शंभु अन्तर्हित हो गये। उस समय से उस तीर्थ को विद्वान् लोग आत्मतीर्थ कहने लगे। नारद! उस तीर्थ में स्नान और दान करने से मुक्ति अवश्य मिलती है॥२०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में आत्मतीर्थवर्णन नामक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त॥११७॥

अध्याय ११८

अश्वत्थ आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—अश्वत्थतीर्थ और पिप्पलतीर्थ दोनों प्रसिद्ध तीर्थ हैं, उत्तर दिशा में मन्दतीर्थ भी है। इन तीर्थों

१ङ. भक्ति। २घ तदुच्यते। ३घ. स्यान्निश्चितं फलम्। ४०४क. घ. ङ ०श्वतीर्थमिति ख्यातमश्वत्थ च। ५घ. च।

पुरा त्वगस्त्यो भगवान्दक्षिणाशापतिः प्रभुः। देवैस्तु प्रेरितः पूर्वं विन्ध्यस्य प्रार्थनं प्रति ॥२॥
स शनैर्विन्ध्यमभ्यागात्सहस्रमुनिभिर्वृतः। तमागत्य नगश्रेष्ठं बहुवृक्षसमाकुलम् ॥३॥
स्पर्धिनं मेरुभानुभ्यां विन्ध्यं शृङ्गशतैर्वृतं। अत्युन्नतं नगं धीरो लोपामुद्रापतिर्मुनिः ॥४॥
कृतातिथ्यो द्विजैः सार्धं प्रशस्य च नगं पुनः। इदमाह मुनिश्रेष्ठो देवकार्यार्थसिद्धये ॥५॥

अगस्त्य उवाच

अहं यामि नगश्रेष्ठ मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः। तीर्थयात्रां करोमीति दक्षिणाशां प्रजाम्यहम् ॥६॥
देहि मार्गं नगपते आतिथ्यं देहि याचते। यावदागमनं मे स्यात्स्थातव्यं तावदेव हि ॥७॥
नान्यथा भवितव्यं ते तथेत्याह नगोत्तमः। आक्रामन्दक्षिणामाशां तैर्वृतो मुनिभिर्मुनिः ॥८॥
शनैः स गौतमीमागात्सत्रयागाय दीक्षितः[1]। यावत्संवत्सरं सत्रमकरोदृषिभिर्वृतः ॥९॥
कैटभस्य सुतौ पापौ राक्षसौ धर्मकण्टकौ। अश्वत्थः पिप्पलश्चेति विख्यातौ त्रिदशालये ॥१०॥
अश्वत्थोऽश्वत्थरूपेण पिप्पलो ब्राह्मरूपधृक्। तावुभावन्तरं प्रेप्सू यज्ञविध्वसनाय तु ॥११॥
कुरुतां काङ्क्षितं रूपं दानवौ पापचेतसौ। अश्वत्थो वृक्षरूपेण पिप्पलो ब्राह्मणाकृतिः ॥१२॥
उभौ तौ ब्राह्मणान्नित्यं पीडयेतां तपोधन। आलभन्ते च येऽश्वत्थं तांस्तानश्नात्यसौ तरुः ॥१३॥

का परिचय तथा फल अब सुनो। बहुत पहले दक्षिण दिशा के स्वामी, भगवान् अगस्त्य से देवताओं ने विन्ध्य के विषय में प्रार्थना की। देवताओं से प्रेरित होने पर अगस्त्य ऋषि सहस्र मुनियों को साथ ले धीरे से विन्ध्य के निकट आये। बहुत से वृक्षों से भरे, मेरु और भानुपर्वत से स्पर्धा करने वाले, सैकड़ों शिखरों से युक्त, अत्यन्त ऊँचे विन्ध्य पर्वत के पास जाकर लोपामुद्रा के स्वामी, धीर मुनि अगस्त्य ने विन्ध्य का आतिथ्य ग्रहण किया। पुनः विन्ध्याचल की प्रशंसा करते हुए देवकार्य की सिद्धि करने के लिये मुनिश्रेष्ठ ने कहा ॥१-५॥

अगस्त्य बोले—हे पर्वतश्रेष्ठ ! मैं तत्त्वदर्शी मुनियों के साथ तीर्थयात्रा के उद्देश्य से दक्षिण दिशा को जा रहा हूँ ॥६॥ नगपते ! मुझे मार्ग दो यही आतिथ्य के रूप में माँग रहा हूँ। जब तक मैं इधर से न लौटूं तब तक तुम इसी प्रकार विनम्र रहो, इसके प्रतिकूल कोई कार्य न हो। विन्ध्याचल ने इसे स्वीकार कर लिया। उन मुनियों के साथ अगस्त्य मुनि ने दक्षिण दिशा को प्रस्थान किया। शनैः शनैः वे गौतमी के तट पर आये और सत्रयाग के लिए दीक्षा लेकर एक वर्ष ऋषियों के साथ यज्ञ करते रहे ॥७-९॥ स्वर्ग में कैटभ के दो पापी, धर्म के मार्ग में बाधा पहुँचाने वाले, अश्वत्थ और पिप्पल नाम से विख्यात राक्षस पुत्र थे ॥१०॥ अश्वत्थ पीपल का और पिप्पल ब्राह्मण का रूप धारण कर यज्ञ नष्ट करने के लिये जाते थे। दोनों इस गुप्त रूप को यज्ञ का भेद जानने के लिये धारण किया करते थे। हे तपस्वी ! इस प्रकार वे दोनों पापात्मा राक्षस इच्छानुसार अश्वत्थ वृक्ष और ब्राह्मण की आकृति धारण कर ब्राह्मणों को नित्य प्रति पीड़ा पहुँचाते थे ॥११-१२½॥ जो समिधा के लिये वृक्ष की टहनियाँ तोड़ने आता था उसको वह अश्वत्थ खा जाता था और राक्षस पिप्पल साम-गायक बनकर अपने शिष्यों को

---

[1] घ ङ० ०तः। सावत्सरं तथा स०।

पिप्पल सामगो भूत्वा शिष्यानश्नाति राक्षस । तस्मादद्यापि विप्रेषु सामगोऽस्तीव निष्कृप ॥१४॥
क्षीयमाणान्द्विजान्दृष्ट्वा मुनयो राक्षसाविमौ । इति बुद्ध्वा महाप्राज्ञा दक्षिण तीरमाश्रितम ॥१५॥
सौरि शनैश्चर मन्द तपस्यन्त धृतव्रतम् । गत्वा मुनिगणा सर्वे रक्ष कर्म न्यवेदयन् ॥१६॥
सौरिर्मुनिगणानाह पूर्णे तपसि मे द्विजा । राक्षसौ हन्म्यपूर्णे तु[1] तपस्यक्षम एव हि ॥१७॥
पुन प्रोचुर्मुनिगणा नस्त्यामस्त तपो महत । इत्युक्तो ब्राह्मणं सौरि कृतमित्याह तानपि ॥१८॥
सौरिर्ब्राह्मणवेषेण प्रायादश्वत्थरूपिणम् । राक्षस ब्राह्मणो भूत्वा प्रदक्षिणमथाकरोत् ॥१९॥
प्रदक्षिण तु कुर्वाण मेने ब्राह्मणमेव तम् । नित्यवद्राक्षस पापो भक्षयामास मायया ॥२०॥
तस्य काय समाविश्य चक्षुषाऽन्त्राण्यपश्यत । दृष्ट स राक्षस पापो मन्देन रविसूनुना ॥२१॥
भस्मीभूत क्षणेनैव गिरिवज्रहतो यथा । अश्वत्थ भस्मसात्कृत्वा अन्य ब्राह्मणरूपिणम् ॥२२॥
राक्षस पापनिलयमेक एव तमभ्यगात । अधीयानो विप्र इव शिष्यरूपो विनीतवत् ॥२३॥
पिप्पल पूर्ववच्चापि भक्षयामास भानुजम् । स भक्षित पूर्ववच्च कुक्षावन्त्राण्यवैक्षत ॥२४॥
तेनाऽऽलोकितमात्रोऽसौ राक्षसो भस्मसादभूत् । उभौ हत्वा भानुसुत किं कृत्य मे वदत्वथ ॥२५॥
मुनयो जातसहर्षा सर्व एव तपस्विन । तत प्रसन्ना ह्यभवन्नृषयोऽगस्त्यपूर्वका ॥२६॥

खा जाता था। यही कारण है कि अब भी ब्राह्मणो में सामगायक अत्यन्त करुणाहीन माना जाता है॥१३ १४॥ बुद्धिमान मुनिवृन्द इस प्रकार ब्राह्मणो की संख्या कम होते देखकर ये दोनो राक्षस हैं यह जानकर दक्षिण तीर पर तपस्या करने वाले व्रतपरायण सूर्यसुत शनि के पास गये और प्रणाम कर राक्षसो के इस घृणित कर्म को उनसे निवेदन किया। यह सुनकर सूर्यसुत ने मुनियो से कहा तपस्या पूर्ण हो जाने पर ही मैं राक्षसो का वध कर सकता हूँ तपस्या के अपूर्ण रहने पर तो मैं सर्वथा अक्षम हूँ॥१५ १७॥ पुन मुनियो ने कहा आपको हम सब अपनी महती तपस्या दे रहे हैं। यह सुनकर शनि ने ब्राह्मणो से कहा कि तब कार्य हो गया ऐसा समझिये॥१८॥ शनि ब्राह्मण का वेष बनाकर अश्वत्थ रूप वाले राक्षस के पास गये और प्रदक्षिणा करने लगे॥१९॥ राक्षस इस प्रकार उनको प्रदक्षिणा करते देखकर सामान्य ब्राह्मण समझ कर नित्य की तरह अपनी माया से उनको निगल गया॥२०॥ शनि ने उसके शरीर में घुसकर उसकी आँतो को देखा। देखते ही वह पापी राक्षस शनि के द्वारा क्षणभर में उसी प्रकार भस्म कर दिया गया जिस प्रकार वज्र से पर्वत विनष्ट कर दिया गया था॥२१ २२॥ अश्वत्थ को भस्म कर शनि दूसरे ब्राह्मणवेषधारी पापी राक्षस के पास गये। उसके ब्राह्मण के समान शिष्यरूप से विनीत होकर पढ़ने लगे॥२३॥ पहले की भाँति पिप्पल ने इस भानुपुत्र को भी खा लिया। खाये जाने पर शनि ने भी पहले की भाँति उदर में आँतो को देखा॥२४॥ उसके इस प्रकार देखने मात्र से वह राक्षस भस्मीभूत हो गया। दोनो को इस प्रकार नष्ट कर भानुपुत्र ने कहा कि अब आप लोगो का कौन सा प्रिय कार्य करूँ बतलाइये॥२५॥ सब तपस्वी मुनि आनन्द-विभोर हो गये॥२६॥ तदनन्तर अगस्त्य आदि महर्षियो ने प्रसन्न होकर इच्छानुसार मन्द

---

१ ङ ०र्णेन तपसा ज्ञा०। २घ मे। ३ङ ०पसि नैव सिध्यति। पु०।

वरान्ददुर्यथाकाम सौरये मन्दगामिने। स प्रीतो ब्राह्मणानाह शनि सूर्यसुतो बली ॥२७॥

सौरिरुवाच

मदद्वारे नियता ये' च कुर्वन्त्यश्वत्थलम्भनम। तेषा सर्वाणि कार्याणि स्यु पीडा मद्भवा न च ॥२८॥
तीर्थे चाश्वत्थसज्ञे वै स्नान कुर्वन्ति य नरा । तषा सर्वाणि कार्याणि भवेयुरपरो वर ॥२९॥
मन्दवारे तु येऽश्वत्थ प्रातरुत्थाय मानवा । आभलन्ते च तषा वै ग्रहपीडा व्यपोहतु ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

तत प्रभृति तत्तीर्थमश्वत्थ पिप्पल विदु । तीर्थं शनैश्चर तत्र तत्रागस्त्य च सात्रिकम ॥३१॥
याज्ञिक चापि तत्तीर्थं सामग तीर्थमेव च। इत्याद्यष्टोत्तराण्यासन्सहस्राण्यथ षोडश ॥
तेषु स्नान च दान च 'सत्रयागफलप्रदम ॥३२॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे गौतमीमाहात्म्यऽश्वत्थाद्यष्टोत्तरषोडशसहस्र
तीर्थवर्णन नामाष्टाधिकशततमोऽध्याय ॥११८॥
गौतमीमाहात्म्य ऊनपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥४९॥

गति से चलने वाले शनि को यथेच्छ वर प्रदान किये। बलवान सूर्यपुत्र शनि ने प्रसन्न होकर ब्राह्मणो से कहा ॥२७॥

शनि ने कहा—मेरे दिन अर्थात शनिवार को जो मनुष्य नियमित रूप से अश्वत्थ वृक्ष का स्पर्श करेगे उनके सब कार्य सिद्ध होगे तथा मुझसे उनको कोई पीडा नही होग ॥२८॥ जो व्यक्ति इस अश्वत्थ तीर्थ मे स्नान करेगे उनके सब मनोरथ पूर्ण हो यह दूसरा वरदान है ॥२९॥ जो शनिवार को प्रात काल उठकर अश्वत्थ का स्पर्श करेगे उन्हे ग्रहजन्य पीडा नही होगी ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय से हो वह तीर्थ अश्वत्थ तीर्थ और पिप्पल तीर्थ कहा जाने लगा। वहाँ पर शनैश्चर तीर्थ अगस्त्य और सात्रिक तीर्थ तथा याज्ञिक सामग आदि सोलह हजार तीर्थ प्रतिष्ठित है। उन तीर्थों मे स्नान और दान करने से मनुष्य सत्रयाग का फल प्राप्त करता है ॥३१ ३२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे अश्वत्थतीर्थ पिप्पलतीर्थ और मन्दतीर्थ वर्णन
नामक एक सौ अठारहवा अध्याय समाप्त ॥११८॥

१घ येऽत्र कु०। २क सात्त्विक०। ३क ङ सत्रया०।

अथैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सोमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सोमतीर्थमिति ख्यातं तदप्युक्तं 'महात्मभिः। तत्र स्नानेन दानेन सोमपानफलं लभेत्॥१॥
जगतां मातरः पूर्वमोषध्यो जीवसंमताः। ममापि मातरो देव्यः 'पूर्वासां पूर्ववत्तराः॥२॥
आसु प्रतिष्ठितो धर्मः स्वाध्यायो यज्ञकर्म च। आभिरेव धृतं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥३॥
अशेषरोगोपशमो भवत्याभिरसंशयम्। अन्नमेताभिरेव स्यादशेषप्राणरक्षणम्' ॥
अत्रौषध्यो जगद्वन्द्या मामूचुरनहंकृताः ॥४॥

ओषध्य ऊचुः

अस्माकं त्वं पतिं देहि राजानं सुरसत्तम ॥५॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं 'तासां मयोक्ता ओषधीरिदम्। पतिं प्राप्स्यथ सर्वाश्च राजानं प्रीतिवर्धनम्॥६॥
राजानमिति तच्छ्रुत्वा मामूचुः पुनर्मुने। गन्तव्यं क्व पुनश्चोक्ता गौतमीं यातु मातरः॥७॥
तुष्टायामथ तस्यां वो राजा स्याल्लोकपूजितः। ताश्च गत्वा मुनिश्रेष्ठ तुष्टुवुर्गौतमीं नदीम्॥८॥

अध्याय ११९

सोमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद महात्माओं द्वारा वर्णित सोमतीर्थ नाम का एक प्रसिद्ध तीर्थ है। उस तीर्थ में स्नान करने और दान देने से मनुष्य सोमपान का फल प्राप्त करता है। पहले ओषधियाँ प्राणिमात्र से मान्य और संसार की माता कहलाती थीं। पूर्व उत्पन्न ओषधियों से भी पूर्व काल की ओषधियाँ मेरी भी माता थीं। इन्हीं ओषधियों से धर्म स्वाध्याय और यज्ञकर्म प्रतिष्ठित हैं इन्होंने ही सम्पूर्ण चराचरात्मक त्रैलोक्य को धारण किया है। इनसे ही सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं इसमें सन्देह नहीं। सब प्राणियों की प्राणरक्षा करने वाले अन्न इनसे ही उत्पन्न होते हैं। एक बार जगद्वन्द्य इन ओषधियों ने विनीत भाव से मुझसे कहा॥१-४॥

ओषधियाँ बोलीं—हे देवश्रेष्ठ! हम लोगों को आप राजा पति दीजिए॥५॥

ब्रह्मा ने कहा—उनकी बातों को सुनकर मैंने ओषधियों से कहा कि तुम सब प्रेम बढ़ाने वाले राजा पति को प्राप्त करोगी। मुने! 'राजा' ऐसा शब्द सुनकर उन्होंने मुझसे पुनः पूछा—इसके लिए कहाँ जाना होगा। मैंने कहा—मातृवृन्द! गौतमी के तट पर जाओ! उसकी प्रसन्नता पर अवश्य ही लोकपूजित राजा तुम लोगों का पति बनेगा। वे सब ओषधियाँ पास जाकर गौतमी नदी की स्तुति करने लगीं॥६-८॥

१घ महापत्म्। २क पूर्वेषा। ३घ ०म। तत्रौ०। ४क ह ताभ्यो।

ओषध्य ऊचु

किं वाऽकरिष्यन्भववर्तिनो जना, नानाघसघाभिभवाच्च दुःखिता ।
न चाऽऽगमिष्यदभवती भुवं चेत्पुण्योदके गौतमि शंभुकान्ते ॥९॥
को वेत्ति भाग्यं नरदेहभाजां, महीगतानां सरितामधीशे ।
एषां महापातकसंघहन्त्री, त्वमम्ब गङ्गे सुलभा सदैव ॥१०॥
न ते विभूतिं ननु वत्ति कोऽपि, त्रैलोक्यवन्द्ये जगदम्ब गङ्गे ।
गौरीसमालिङ्गितविग्रहोऽपि, धत्ते स्मरारिः शिरसाऽपि यत्त्वाम् ॥११॥
नमोऽस्तु ते मातरभीष्टदायिनि, नमोऽस्तु ते ब्रह्ममयेऽघनाशिनि ।
नमोऽस्तु ते विष्णुपदाब्जनिःसृते, नमोऽस्तु ते शंभुजटाविनिःसृते ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं स्तुवतामीशा किं 'ददामीत्यवोचत ॥१३॥

ओषध्य ऊचु

पतिं देहि जगन्माता[२] राजानमतितेजसम् ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तदोवाच नदी गङ्गा ओषधीस्ता इदं वच ॥१५॥

ओषधियाँ बोलीं—गौतमि ! शंभुकान्ते ! ये अनेक पापसमूहों से अभिभूत दुःखी संसारी जन क्या कर सकते थे (अर्थात् इनका उद्धार कैसे होता)? यदि पुण्योदके ! आप इस भूतल पर न आती। नदियों की अधीश्वरी ! मनुष्य-देह धारण करने वालों का अहोभाग्य कौन जानता था? हे अम्ब ! गंगे ! आज इन पापियों के पापसमूहों को नष्ट करने वाली तुम इनको सदा के लिये सुलभ हो गई हो। जगद्वन्द्ये ! जगदम्ब ! गंगे ! तुम्हारी विभूति को कोई भी व्यक्ति नहीं जानता है। क्योंकि पार्वती से आलिंगित शरीर वाले मन्मथ मन्थन शंकर भी तुमको अपने सिर पर उठाये रहते हैं। माता ! मनोरथ-दायिनि ! तुमको नमस्कार है ब्रह्मस्वरूपिणि ! पापविनाशिनि ! तुमको नमस्कार है। विष्णु के चरण कमल से निकलने वाली ! तुमको नमस्कार है शंभु की जटा से निकलने वाली ! तुमको बार बार नमस्कार है॥९-१२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार ओषधियों की स्तुति से प्रसन्न हो गौतमी ने कहा क्या दूँ? ॥१३॥

ओषधियाँ बोलीं—जगन्माता ! हम अत्यन्त तेजस्वी राजा पति दे दिजिये॥१४॥

ब्रह्मा ने कहा—ओषधियों की प्रार्थना सुनकर गौतमी गंगा ने उन ओषधियों से यह बात कही॥१५॥

१घ. ॰मीति चाब्रवीत्। प॰। २घ. ॰मातरस्माकमुचितं शिवे। ङ॰।

गङ्गोवाच

अहं चामृतरूपाऽस्मि ओषध्यो मातरोऽमृता। तादृशं चामृतात्मानं पतिं सोमं ददामि व ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

देवाश्च ऋषयो वाक्यं मेनिरे सोम एव च। ओषध्यश्चापि तद्वाक्यं ततो जग्मुः स्वमालयम् ॥१७॥
यत्र चाऽऽपुर्महौषध्यो राजानममृतात्मकम्। सोमं समस्तसंतापपापसंघनिवारकम् ॥१८॥
सोमतीर्थं तु तत्ख्यातं सोमपानफलप्रदम्। तत्र स्नानेन दानेन पितरः स्वर्गमाप्नुयुः ॥१९॥
य इदं शृणुयान्नित्यं पठेद्वा भक्तितः स्मरेत्। दीर्घमायुरवाप्नोति स पुत्री [१]धनवान्भवेत् ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सोमतीर्थवर्णनं नामोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥११९॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

अथ विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

धान्यतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

धान्यतीर्थमिति ख्यातं सर्वकामप्रदं नृणाम्। सुभिक्षं क्षेमदं पुंसां सर्वापद्विनिवारणम् ॥१॥

गंगा ने कहा—मैं अमृत स्वरूप हूँ और आप ओषधि मातायें भी अमृत रूप ही हैं अतः वैसे ही अमृतात्मा सोम को आप लोगों को पति के रूप में दे रही हूँ ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—देवों, ऋषियों और सोम ने भी इस वाक्य का समर्थन किया। ओषधियों ने भी यह स्वीकार कर लिया और प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थान को चली गईं। जिस स्थान पर उन महौषधियों ने सब संताप और पाप समूह को दूर करने वाले अमृतस्वरूप सोम को प्राप्त किया वह स्थान सोमपान के फल को देने वाला सोमतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया। उस तीर्थ में स्नान करने और दान देने से पितरगण स्वर्ग प्राप्त करते हैं। जो व्यक्ति इस आख्यान का नित्य भक्तिपूर्वक श्रवण पाठ या स्मरण करता है वह दीर्घायु प्राप्त करता है और धनवान् तथा पुत्रवान् होता है ॥१७-२०॥

॥ श्री ब्रह्ममहापुराण में सोमतीर्थवर्णन नामक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥११९॥

अध्याय १२०

धान्यतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्यों की सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला, सब आपदाओं का निवारक और सुभिक्ष

---

[१] घ. धनधान्यवान्।

ओषध्य सोमराजान पति प्राप्य मुदाऽन्विता । ऊचु सर्वस्य लोकस्य गङ्गायाश्चेप्सित वच ॥२॥

ओषध्य ऊचु

वैदिकी पुण्यगाथाऽस्ति या वै वेदविदो विदु । भूमि सस्यवतीं कश्चिन्मातर मातृसमिताम् ॥३॥
गङ्गासमीपे यो दद्यात्सर्वकामानवाप्नुयात् । भूमि सस्यवतीं गाश्च ओषधीश्च मुदाऽन्वित ॥४॥
विष्णुब्रह्मेशरूपाय यो दद्यादभक्तिमान्नर । सर्वं तदक्षय विद्यात्सर्वकामानवाप्नुयात ॥५॥
ओषध्य सोमराजन्या सोमश्चाप्योषधीपति । इति ज्ञात्वा ब्रह्मविद ओषधीर्य प्रदास्यति ॥६॥
सर्वान्कामानवाप्नोति ब्रह्मलोके महीयते । ता एव सोमराजन्या प्रीता प्रोचु पुन पुन ॥७॥

ओषध्य ऊचु

योऽस्मान्ददाति गङ्गाया त राजन्पारयामसि । त्वमुत्तमश्चौषधीश त्वदधीन चराचरम् ॥८॥
ओषधय सवदन्ते सोमेन सह राजा । योऽस्मान्ददाति[1] विप्रेभ्यस्त राजन्पारयामसि ॥९॥
वय च ब्रह्मरूपिण्य प्राणरूपिण्य एव च । योऽस्मान्ददाति विप्रभ्यस्त राजन्पारयामसि ॥१०॥
अस्मान्ददाति यो नित्य[2] ब्राह्मणेभ्यो जितव्रत । उपास्तिरस्ति साऽस्माक त राजन्पारयामसि ॥११॥

एव कल्याण प्रदान करने वाला घार्षणीय नामक एक तीर्थ है। राजा सोम को अपना पति पाकर अत्यन्त हर्षित हुई ओषधियो ने सब लोक तथा गगा को प्रिय लगने वाले वचन कहे ॥१ २॥

ओषधियाँ बोलीं—यह एक वदिक पवित्र गाथा है जिसे वेदज्ञ महापुरुष जानते है कि जो कोई व्यक्ति गगा के समीप मातृतुल्य एव सस्य सम्पन्न माता भूमि का दान करता है उसकी सारी कामनाय पूर्ण होती हैं। जो भक्त मनुष्य प्रसन्न होकर सस्यसम्पन्न भूमि गायें तथा ओषधियाँ विष्णु ब्रह्मा और ईशरूप (ब्राह्मण या मन्दिर) को दान म देता है वह अपने सब अभिलषित पदार्थों को प्राप्त करता है और उसकी दान की हुई वस्तु अक्षय हो जाती है। ओषधियाँ सोमराजा की रानियाँ है और सोम ओषधियो के राजा हैं यह समझ कर जो ओषधियो का दान करता है वह अपने सब मनोरथो को प्राप्त करता है और स्वर्गलोक म उसकी पूजा होती है। इस दान कथा को उन ओषधियो ने ही प्रसन्नचित्त होकर बार बार कहा था ॥३ ७॥

ओषधियाँ बोलीं—राजन्! जो गगा म हमको दे देता है उसको हम इस ससाररसागर स पार लगा देती हैं। ओषधियो के स्वामी! तुम श्रेष्ठ हो तुम्हारे ही अधीन यह चराचर है। ओषधियाँ राजा सोम के साथ वार्तालाप करती हैं कि जो हमको ब्राह्मणो को दान करता है राजन्! उसका हम उद्धार करती हैं। हम ब्रह्मरूप हैं प्राण रूप हैं हम जो विप्रो को प्रदान करता है उसको हम ससार स पार कर देती हैं। जो सयम व्रतपरायण व्यक्ति नित्य हमको ब्राह्मणो को दान म देता है वह हम सब का प्रिय होता है उसको हम भवसागर स पार कर देती हैं। राजन्! स्थावर और जगम जो कुछ जगत् है सब हमसे व्याप्त हैं। ऐसी हमको जो ब्राह्मणो के लिय दान कर देता है उसको हम ससार स पार कर देती हैं। हव्य (देवो के लिए देयान्न) कव्य (पितरो को दिया जाने वाला अन्न)

---

१ प ०ति घार्षिण्य० । २ घ ०त्य दद्यात्स्येभ्य एव च । ज०।

स्थावरं जङ्गमं किंचिदस्माभिर्व्यापृतं जगत। योऽस्मान्ददाति' विप्रेभ्यस्तं राजापारयामसि ॥१२॥
हव्यं कव्यं यदमृतं यत्किंचिदुपभुज्यते। यदगरीयश्च यो दद्यात्तं राजपारयामसि ॥१३॥
इत्येता वैदिकीं गाथा य शृणोति स्मरत वा। पठते भक्तिमापन्नस्तं राजपारयामसि ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

यत्रैषा पठिता गाथा सोमेन सह राज्ञा। गङ्गातीरं चौषधीभिर्धान्यतीर्थं तदुच्यते ॥१५॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थमौषध्यं सौम्यमेव च। अमृतं वेदगाथं च मातृतीर्थं तथैव च ॥१६॥
एषु स्नानं जपो होमो दानं च पितृतर्पणम्। अन्नदानं तु यः कुर्यात्तदानन्त्याय कल्पते ॥१७॥
षट्शताधिकसाहस्रं तीर्थानां तीरयोर्द्वयोः। सर्वपापनिहन्तॄणां सर्वसंपद्विवर्धनम् ॥१८॥

इति महापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये धान्यतीर्थादिषट्शताधिकसहस्रतीर्थवर्णनं नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२०॥

गौतमीमाहात्म्ये एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

अथैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

विदर्भासंगमरेवतीसंगमादितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विदर्भासंगमं पुण्यं रेवतीसंगमं तथा। तत्र यद्वृत्तमाख्यास्ये यत्पुराणविदो विदुः ॥१॥

रूप जो अमृत पदार्थ है जो कुछ उपभोग किया जाता है और जो सर्वोत्तम पदार्थ है उसका जो दान करता है उसका हम उद्धार करते हैं। हे राजन् ! इस वैदिक गाथा को जो भक्तिपूर्वक सुनता, स्मरण करता या पढ़ता है उसका हे राजन ! हम उद्धार कर देते हैं॥८-१४॥

ब्रह्मा ने कहा—गंगातटवर्ती जिस स्थान पर ओषधियों ने राजा सोम के साथ इस गाथा को पढ़ा वह धान्यतीर्थ कहा जाता है। तब से वह तीर्थ ओषधिन, सौम्य, अमृत, वेदगाथतीर्थ, मातृतीर्थ आदि नामों से प्रसिद्ध है। इन तीर्थों में जो मनुष्य स्नान, जप, होम, दान, पितृतर्पण और अन्नदान करते हैं वे अनन्तफल के अधिकारी होते हैं। उस गौतमी के दोनों तटों पर एक हजार छह सौ तीर्थ हैं जो सब पापों को दूर करनेवाले तथा सब प्रकार की सम्पत्ति देनेवाले हैं॥१५-१८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में धान्यतीर्थवर्णन नामक एक सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त॥१२०॥

अध्याय १२१

विदर्भा-संगम और रेवती संगम आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसके उपरान्त पवित्र विदर्भा-संगम तथा रेवती-संगम का, कथा का वर्णन मैं करूँगा जिसको

---

१ घ. ०ति सर्वेभ्य०।

भरद्वाज इति ख्यात ऋषिरासीत्तपोऽधिक । तस्य स्वसा रेवतीति कुरूपा विकृतस्वरा ॥२॥
ता दृष्ट्वा विकृता भ्राता भरद्वाज प्रतापवान् । चिन्तया परया युक्तो गङ्गाया दक्षिणे तटे ॥३॥
कस्मै दद्यामिमा कन्या स्वसार भीषणाकृतिम् । न कश्चित्प्रतिगृह्णाति दातव्या च स्वसा तथा ॥४॥
अहो भूयान्न कस्यापि कन्या दु खैककारणम् । मरण जीवतोऽप्यस्य प्राणिनस्तु पदे पदे ॥५॥
एव विमृशतस्तस्य स्वाश्रमे चातिशोभने । द्रष्टु मुनिवर प्रायाद्भरद्वाज यतव्रतम् ॥६॥
द्व्यष्टवर्ष शुभवपु शान्तो दान्तो गुणाकर । नाम्ना कठ इति ख्यातो भरद्वाज ननाम स ॥७॥
विधिवत्पूज्य त विप्र भरद्वाज कठ तदा । तस्याऽऽगमनकार्य च पप्रच्छ पुरत स्थित ॥८॥
कठोऽप्याह भरद्वाज विद्यार्थ्यहमुपागत । तथा च दर्शनाकाङ्क्षी यद्युक्त तद्विधीयताम् ॥९॥
भरद्वाज कठ प्राह अधीष्व यदभीप्सितम् । पुराण स्मृतयो वेदा धर्मस्थानान्यनेकश ॥१०॥
सर्वं वेद्मि महाप्राज्ञ रुचिर वद मा चिरम् । कुलीनो धर्मनिरतो गुरुशुश्रूषणे रत ॥
अभिमानी श्रुतधर शिष्य पुण्यैरवाप्यते ॥११॥

कठ उवाच

अध्यापयस्व भो ब्रह्मञ्शिष्य मा वीतकल्मषम् । शुश्रूषणरत भक्त कुलीन सत्यवादिनम् ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा भरद्वाज प्रादाद्विद्यामशेषत । प्राप्तविद्य कठ प्रीतो भरद्वाजमथाब्रवीत् ॥१३॥

पुराणवेत्ता लोग भली भाँति जानते हैं। भरद्वाज नामक एक अत्यन्त तपस्वी ऋषि थे। उनकी एक बहिन थी जो अति कुरूप और अस्पष्ट स्वर से बोलने वाली था। प्रतापी भाई भारद्वाज उस कुरूप कन्या को देखकर एक दिन गगा के दक्षिण तट पर बैठ चिन्तामग्न हो विचार करने लगे कि इस भयङ्कर आकार वाली कन्या (बहिन) को किसके हाथ सौंपूं। कोई इसको ग्रहण भी तो नहा करेगा परन्तु इस बहिन को किसी विप्र का देना अनिवार्य है। हाय ! दुख का एकमात्र कारण कन्या किसी को उत्पन्न न हो। ऐसे कन्या वाले प्राणी (पिता) को जीवन म क्षण क्षण मे मृत्यु का स्वाद मिलता है। इस प्रकार वे विचार कर हा रहे थे कि उनके उस रम्य आश्रम म कोई मुनिवर सयमी भारद्वाज ऋषि को देखने आये। उस षोडशवर्षीय शुभमूर्ति शान्त उदार और गुणी आगन्तुक का नाम कठ था। उसने भरद्वाज को नमस्कार किया। मुनि ने उसका सत्कार किया। और स्वय उसके सामने स्थित हो उसके आने का कारण पूछा। कठ ने भी भरद्वाज मुनि से कहा कि 'मैं विद्या प्राप्त करने के लिए यहाँ उपस्थित हुआ हूँ उसी बहाने दर्शन की भी अभिलाषा था अब जो कुछ उपयुक्त आज्ञा हो प्रदान कीजिये। यह सुनकर भरद्वाज ने कठ से कहा 'जो कुछ पढने की इच्छा हो पढो। पुराण स्मृतियाँ वेद आदि अनेक धर्मग्रन्थ हैं। महाबुद्धिमान मैं सब कुछ जानता हूँ इच्छानुसार कहो। विलम्ब करने की आवश्यकता नहीं है। कुलीन कर्त्तव्यप्रेमी गुरुसेवा म लीन रहने वाला स्वाभिमानी और प्रतिभाशाली शिष्य बडे भाग्य से गुरु को प्राप्त होता है॥१ ११॥

कठ ने कहा—ब्रह्मन् ! मुझ निष्पाप शुश्रूषापरायण भक्त कुलीन और सत्यवादी शिष्य को पढाइय ॥१२॥

ब्रह्मा ने कहा—एसा ही हो यह कहकर भरद्वाज ने उसको सब विद्यायें पूर्णरूप से पढा दीं। विद्या प्राप्त कर लेने के बाद कठ ने प्रसन्न होकर भरद्वाज से कहा ॥१३॥

कठ उवाच

इच्छेयं दक्षिणां दातुं गुरो तव मनःप्रियाम्। वदस्व दुर्लभं वाऽपि गुरो तुभ्यं नमोऽस्तु ते ॥१४॥
विद्यां प्राप्यापि ये मोहात्स्वगुरोः पारितोषिकम्। न प्रयच्छन्ति निरयं ते यान्त्याचन्द्रतारकम् ॥१५॥

भरद्वाज उवाच

गृहाण कन्यां विधिवद्भार्यां कुरु मम स्वसाम्। अस्यां प्रीत्या वर्तितव्यं याचेयं दक्षिणामिमाम् ॥१६॥

कठ उवाच

भ्रातृवत्पुत्रवच्चापि शिष्यः स्यात्तु गुरोः सदा। गुरुश्च पितृवच्च स्यात्संबन्धोऽत्र कथं भवेत् ॥१७॥

भरद्वाज उवाच

मद्वाक्यं कुरु सत्यं त्वं ममाऽऽज्ञा तव दक्षिणा। सर्वं स्मृत्वा कठाद्य त्वं रेवतीं भर तन्मनाः ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा गुरोर्वाक्यात्कठो जग्राह पाणिना। रेवतीं विधिवद्दत्तां तां समीक्ष्य कठस्त्वयं ॥१९॥
[1]तत्रैव पूजयामास देवेशं शंकरं तदा[2]। रेवत्या रूपसंपत्त्यै शिवप्रीत्यै च रेवती ॥२०॥
सुरूपा चारुसर्वाङ्गी न रूपेणोपमीयते। अभिषेकोदके तत्र रेवत्या यद्विनिःसृतम् ॥२१॥

कठ ने कहा—गुरो! मैं आपको मन-पसंद दक्षिणा देना चाहता हूँ। गुरो! चाहे आपकी इच्छा दुर्लभ वस्तु के लिए ही क्यों न हो आप कहिये। आपको नमस्कार है। जो विद्या प्राप्त कर अज्ञानवश गुरु को दक्षिणा नहीं देते हैं वे जब तक आकाश में चन्द्र और नक्षत्र रहते हैं तब तक के लिये नरक को जाते हैं ॥१४-१५॥

भरद्वाज ने कहा—मेरी इस कुमारी बहिन को शास्त्रानुसार अपनी भार्या बना लो। इससे प्रेमपूर्वक व्यवहार करना इसी दक्षिणा की याचना करता हूँ ॥१६॥

कठ ने कहा—शिष्य गुरु के लिए भाई के समान या पुत्र के समान सर्वदा माना जाता है। गुरु शिष्य के पिता के तुल्य होता है। ऐसी स्थिति में (आपके यहाँ मेरा) वैवाहिक सम्बन्ध कैसे होगा? ॥१७॥

भरद्वाज ने कहा—मेरे शब्दों को तुम सत्य सिद्ध करो यह मेरी आज्ञा और तुम्हारी दक्षिणा है। कठ! आज सब कुछ स्मरण कर भी रेवती का प्रेमपूर्वक पाणिग्रहण करो ॥१८॥

ब्रह्मा ने कहा—जो आज्ञा कहकर कठ ने अपने गुरु के कथनानुसार विधिपूर्वक दी हुई रेवती का पाणि ग्रहण कर लिया। कठ ने रेवती को देखकर उसको रूपवती बनाने के अभिप्राय से भगवान् शंकर को प्रसन्न करने के लिये वहीं देवेश शंकर की पूजा की। पूजा के प्रभाव से वह कुरूपा रेवती सुरूप सर्वाङ्गसुन्दरी बन गई। उसके रूप का सादृश्य किसी अन्य से करना कठिन हो गया। उसके अभिषेक से जो जल बहा वह उसी के नाम पर रूप और सौभाग्य देने वाली रेवती नाम की नदी बन गई जो कि गंगा में जाकर मिल गई। पुनः कठ ने पवित्र रूप को

---

१ घ. तथैव। २ घ. मुदा।

साऽभवत्तत्र गङ्गाया तस्मात्तन्नामतो नदी। रेवतीति समाख्याता रूपसौभाग्यदायिनी ॥२२॥
पुनर्दर्भैश्च विविधैरभिषेकं चकार स। पुण्यरूपत्वसंसिद्ध्यै विदर्भा तदभून्नदी ॥२३॥
श्रद्धया संगमे स्नात्वा रेवतीगङ्गयोर्नरः। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥२४॥
तथा विदर्भागौतम्यो संगमे श्रद्धया मुने। स्नानं करोत्यसौ याति भुक्तिं मुक्तिं च तत्क्षणात् ॥२५॥
उभयोस्तीरयोस्तत्र तीर्थानां शतमुत्तमम्। सर्वपापक्षयकरं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥२६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये विदर्भासंगमरेवतीसंगमादितीर्थवर्णनं नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

अथ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

पूर्णादितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पूर्णतीर्थमिति ख्यातं गङ्गाया उत्तरे तटे। तत्र स्नात्वा नरोऽज्ञानात्तथाऽपि शुभमाप्नुयात् ॥१॥

प्राप्ति के लिये अनेक कुशों से उसका अभिषेक किया। उस अभिषेक के जलसे विदर्भा नाम की नदी बनी। मनुष्य रेवती और गंगा के संगम में स्नान कर सब पापों से छूट जाता और विष्णुलोक में पूजित होता है। मुने! इसी प्रकार विदर्भा और गौतमी के संगम में स्नान करने से भी मनुष्य तत्क्षण भुक्ति और मुक्ति को प्राप्त करता है। वहाँ नदी के दोनों तटों पर सब पापों को नष्ट करने वाले और सब प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करने वाले सौ तीर्थ भी हैं॥१९-२६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में विदर्भा-संगम, रेवती-संगम आदि तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२१॥

अध्याय १२२

पूर्ण आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद गंगा के उत्तर तट पर पूर्ण तीर्थ नामक एक तीर्थ है। उसमें यदि मनुष्य भूलकर भी स्नान करे तो भी शुभ फल प्राप्त करेगा॥१॥ जहाँ स्वयं चक्रधर विष्णु और पिनाकी शिव निवास करते हैं,

पूर्णतीर्थस्य माहात्म्य वर्ण्यते केन जन्तुना'। स्वय सस्थीयते यत्र चक्रिणा च पिनाकिना ॥२॥
पुरा धन्वन्तरिर्नाम कल्पादावायुष सुत । इष्ट्वा बहुविधैर्यज्ञैरश्वमेधपुर सरै ॥३॥
दत्त्वा दानान्यनेकानि भुक्त्वा भोगाश्च पुष्कलान। विज्ञाय भोगवैषम्य पर वैराग्यमाश्रित ॥४॥
गिरिशृङ्गेऽम्बुधे पारे तथा गङ्गानदीतटे। शिवविष्ण्वोर्गृहे वापि विशेषात्पुण्यसगमे ॥५॥
तप्त हुत च जप्त च सवमक्षयता व्रजेत। धन्वन्तरिरिति ज्ञात्वा तत्र तेप तपो महत् ॥६॥
ज्ञानवैराग्यसपन्नो भीमेशचरणाश्रय । तपश्चकार विपुल गङ्गासागरसगमे ॥७॥
पुरा च निकृतो राज्ञा रण हित्वा महासुर । सहस्रमेक वर्षाणि समुद्र प्राविशद्भयात् ॥८॥
धन्वतरौ वन प्राप्ते राज्य प्राप्ते तु तत्सुते। विराग च गते राज्ञि तत प्रायादथार्णवात ॥९॥
तपस्य त तमो नाम बलवानसुरो मुने । गङ्गातीर समाश्रित्य राजा धन्वन्तरियत ॥१०॥
जपहोमरतो नित्य ब्रह्मज्ञानपरायण । त रिपु' नाशयामीति तम प्रायादथार्णवात् ॥११॥
नाशितो बहुशोऽनन राज्ञा बलवता त्वहम्। त रिपु' नाशयामीति तम प्रायादथार्णवात् ॥१२॥
'मायया प्रमदारूप कृत्वा राजानमभ्यगात्। नृत्यगीतवती सुभ्रूर्हसन्ती चारुदशना ॥१३॥

उस पूण त॰थ का माहात्म्य वणन भला कौन कर सकता है ? ॥२॥ बहुत पहले कल्प के आदि मे आयु का धन्वन्तरि नामक पुत्र था। उसने अश्वमेध आदि विविध यज्ञ किये अनेक प्रकार के दान दिये और अनन्त भोगो का भोग किया। अन्त म भोगो का विषम-परिणाम जानकर वह परम विरक्त हो गया ॥३ ४॥ उसने यह जानकर कि पव -िखर समुद्रतट गगा-ट अथवा -िव विष्णु क म दिर म और वि-ाप रू स पवित्र सगम-स्थान म जप तप आर हवन करन स अक्षय पुण्य प्राप्त हो-ा है—यह जानकर ध वन्तरि महान् तप करन -गा ॥५ ६॥ उसने गगा और सागर क सगम पर -ान एव वैराग्य स युक्-हो कर शकर क चरणो म दृढ निष्ठा रखकर महान त-स्या की ॥७॥ पहले राजा (धन्वत रि) क -ासन काल म राजा म रण म हारकर एक महाराक्षस उसके भय स एक हजार वष तक समुद्र म रहा ॥८॥ उस तम नामक राक्षस ने जब यह सुना कि राजा को विराग हो गया है वह वन म तपस्या के लिए चला गया है आर राज्य पुत्र क हाथ म चला आया है तब वह समुद्र से निकला ॥९॥ मुने ! वह बलवान् असुर समुद्र म निकलकर यह सोचन लगा कि इसलिए राजा धन्व-रि गगा-तटपर आश्रम बनाकर तपस्या कर रहा है और सतत ज- -ाम म त-पर होकर ब्रह्मज्ञानपरायण हो गया है अत उस -त्रु को नष्ट कर दूगा। इस बलवान् राजा ने मुझ अनेक बार नष्ट किया है। इसलिए मैं इस -त्रु को नष्ट करूगा। यह सोचकर वह समुद्र से निकला ॥१०-१२॥ (अनन्तर माया स नृत्यगान-कुशल सुन्दरगुन्दरी सुन्दर भौहो वाली और हास्ययुक्त रमणी का रूप धारण कर

१प देहिना। २प नृप। ३ नृप। ४प तमस्तु।

ता दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं बहुकाल नयान्विताम । शान्तामनुव्रता भवता कृपया चाब्रवीन्नृप ॥१४॥

नृप उवाच

काऽसि त्व कस्य हेतोर्वा वतस गहने वने। क दृष्ट्वा हृषसीव त्व वद कल्याणि पृच्छत ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

प्रमदा चापि तद्वाक्य श्रुत्वा राजानमब्रवीत ॥१६॥

प्रमदोवाच

त्वयि तिष्ठति को लोक हेतुर्हृषस्य म भवत । अहमिन्द्रस्य या लक्ष्मीस्त्वा दृष्ट्वा कामसम्भृतम ॥१७॥
हर्षाच्चरामि पुरतो राजस्तव पुन पुन । अगण्यपुण्यविरहादह सवस्य दुलभा ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

एतद्वचो निशम्याऽऽशु तपस्त्यक्त्वा सुदुष्करम । तामव मनसा ध्यायस्तन्निष्ठस्तत्परायण ॥१९॥
तदकशरणो राजा बभूव स यदा तम । अन्तर्धान गतो ब्रह्मन्नाशयित्वा तपो बृहत ॥२०॥
एतस्मिन्नन्तरऽह य वरान्दातु समभ्यगाम । त दृष्ट्वा विह वलीभूत तपोभ्रष्ट ययामृतम ॥२१॥

वह राजा के पास गया। राजा ने उस सर्वाङ्गसुन्दर विनयशील नारी को और अनुपरायण महिला को बहुत बार देखा। अन्त म स्वय कृपा और प्रेम से आद्र हो उस मायारूपिणी से पूछा ॥१३ १४॥)

राजा बोला—तुम कौन हो! किसलिए इस गहन वन म घूम रही हो? कल्याणि किसको देखकर इतनी प्रसन्न-सी हो रही हो? तुम बतलाओ मैं पूछ रहा हू ॥१५॥

ब्रह्मा न कहा—वह रमणी भी राजा क वाक्य को सुनकर उससे बोली ॥१६॥

रमणी बोली—तुम्हारे रहते दूसरा कौन मेरे आनन्द का कारण हो सकता है? राजन! म इन्द्र क दरबार की शोभा हूँ आज तुम को काममोहित देखकर आनन्द स बार-बार तुम्हारे सामन घूम रही हूँ। परन्तु यह समझ लो म अगणित पुण्य से रहित व्यक्ति क लिए दुर्लभ हूँ ॥१७ १८।

ब्रह्मा न कहा—यह सुनकर राजा शीघ्र अपने अति दुष्कर तपको छोड़कर उसका ध्यान करने लगा। उसी म उसकी एकमात्र निष्ठा हो गई और उसके पीछे वह पागल-सा हो गया। ब्रह्मन जब लक्ष्मी ने देखा कि राजा एकमात्र मुझ पर अनुरक्त हो गया है तब वह उसके महान तप को अपनी माया से नष्ट कर स्वय अन्तर्हित हो गया। नारद! इसी बीच म उसको वर देन के लिए उसके पास गया। उस तपोभ्रष्ट व्याकुल और मृततुल्य महाराज को देखकर मने विविध युक्तियों और उदाहरणों से उसको सान्त्वना दी कि देखो वह तम नाटक तुम्हारा शत्रु था जा

१घ ०न्विन ।ना०। २घ ०नुपमामकया बृ०। ३क ङ ०बोन्दिम्। नृ०। ४घ ङ ०दस्त्यजम। ५घ ०त्सारोऽभवत्। अनात्मायत्तपस्तस्य तम केनापि हेतुना। त०। ६घ च। ७घ ङ महत्।

तमाश्वास्याय विविधैर्हेतुभिर्नृपसत्तमम्। तव शत्रुस्तमो नाम कृत्वा तां तपसश्च्युतिम्॥२२॥
चरितार्थो गतो राजन्न त्वं शोचितुमर्हसि। आनन्दयन्ति प्रमदास्तापयन्ति च मानवम्॥२३॥
सर्वा एव विशेषेण किमु मायामयी तु सा। तत कृताञ्जली राजा मामाह विगतभ्रमः॥२४॥

राजोवाच

किं करोमि कथं ब्रह्मंस्तपसः पारमाप्नुयाम् ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तस्योत्तरं प्रादां देवदेवं जनार्दनम्। स्तुहि सर्वप्रयत्नेन ततः सिद्धिमवाप्स्यसि॥२६॥
स ह्यशेषजगत्स्रष्टा वेदवेद्यः पुरातनः। सर्वार्थसिद्धिदः पुंसां नान्योऽस्ति भुवनत्रये॥२७॥
स जगाम नगश्रेष्ठं हिमवन्तं नृपोत्तमः। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विष्णुं तुष्टाव भक्तितः॥२८॥

धन्वन्तरिरुवाच

जय विष्णो जयाचिन्त्य जय जिष्णो जयाच्युत[1]। जय गोपाल लक्ष्मीश जय कृष्ण जगन्मय॥२९॥
जय भूतपते नाथ जय पन्नगशायिने। जय सर्वग गोविन्द जय विश्वकृते नमः॥३०॥

इस प्रकार तुमको तपस्या से च्युत कर सफलमनोरथ होकर चला गया। राजन्! तुम चिन्तित मत हो। सब रमणियाँ विशेष रूप से मानव को आनन्दित करती और क्लेश पहुँचाती है। वह तो मायाविनी थी, फिर उसके विषय में कहना ही क्या? तदनन्तर मेरी बातों को सुनकर उसका भ्रम दूर हो गया, उसने हाथ जोड़कर मुझसे कहा॥१९-२४॥

राजा ने कहा—ब्रह्मन्! तो अब मैं क्या करूँ? किस प्रकार तप सिद्धि को प्राप्त करूँ!॥२५॥

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त मैंने उसको उत्तर दिया कि तुम देवाधिदेव जनार्दन की स्तुति करो। उससे सिद्धि प्राप्त करोगे। वे सम्पूर्ण जगत् के रचयिता, वेदों से जानने योग्य पुरातन और मनुष्यों को सब प्रकार की मनोरथ-सिद्धि प्रदान करने वाले हैं। उनके समान इस त्रिभुवन में और कोई नहीं है। मेरे आदेश को मानकर वह नृपोत्तम पर्वतराज हिमालय पर गया और वहाँ अञ्जलि बाँधकर भक्तिपूर्वक विष्णु की स्तुति करने लगा॥२६-२८॥

धन्वन्तरि ने कहा—विष्णो! आपकी जय हो, अचिन्त्य! जय हो, जयशील! जय हो, अच्युत! जय हो। गोपाल! जय हो, लक्ष्मीपते! जय हो, जगन्मय! कृष्ण! जय हो॥२९॥ भूतपते! जय हो। नाथ! सर्प पर सोने वाले! जय हो। व्यापक! जय हो। गोविन्द! जय हो। संसार के बनाने वाले! आपको नमस्कार है॥३०॥ विश्व के भोक्ता! देव! आपकी जय हो, विश्व के धारण करने वाले को नमस्कार है। ईश! जय

---

[1] घ. ०याव्यय। ज०।

जय विश्वभुजे[1] देव जय विश्वधृते[2] नम। जयेश[3] सदसत्त्व वै जय माधव धर्मिणे॥३१॥
जय कामद काम त्व जय राम गुणार्णव। जय पुष्टिद पुष्टीश जय कल्याणदायिने॥३२॥
जय भूतप भूतेश जय [4]मानविधायिने। जय कर्मद कर्म त्व जय पीताम्बरच्छद॥३३॥
जय सर्वेश सर्वस्त्व जय मङ्गलरूपिणे। जय [5]सत्त्वाधिनाथाय जय वेदविदे नम॥३४॥
जय जन्मद जन्मिस्थ[6] परमात्मन्नमोऽस्तु ते। जय मुक्तिद मुक्तिस्त्व[7] जय भुक्तिद केशव॥३५॥
जय लोकद लोकेश जय पापविनाशन। जय वत्सल भक्तानां जय चक्रधृते[8] नम॥३६॥
जय मानद मानस्त्व जय लोकनमस्कृत। जय धर्मद धर्मस्त्व जय ससारपारग॥३७॥
जय अन्नद [9]अन्न त्व जय वाचस्पते नम। जय शक्तिद [10]शक्तिस्त्व जय जैत्रवरप्रद॥३८॥
जय यज्ञद यज्ञस्त्व[11] जय पद्मदलेक्षण। जय दानद दान त्व जय कैटभसूदन॥३९॥

हो। आप सत और असत् रूप हैं। माधव! धर्मात्मन्! जय हो॥३१॥ काम के देने वाले! कामरूप! जय हो गुण के सागर! राम! आपकी जय हो। पुष्टि के देने वाले! जय हो पुष्टि के ईश! जय हो। कल्याण दाता की जय हो॥३२॥ समस्त प्राणियो के पालन करने वाले! भूतेश! जय हो। सम्मान देने वाले की जय हो। कम के देने वाले! कमरूप! जय हो। पीताम्बरधारी! आप की जय हो॥३३॥ सर्वेश! सव! आपकी जय हो। मगल रूप की जय हो। जीवो के अधिपति की जय हो। वेदो के ज्ञाता की जय हो। आपको नमस्कार है॥३४॥ जन्मदाता! जन्म देने वालो के हृदय मे रहने वाले! परमात्मन्! आपको नमस्कार है। मुक्तिदाता! जय हो। आप मुक्ति रूप भी हैं। केशव! मुक्तिदाता! जय हो॥३५॥लोक के मनोरथ दाता! लोकेश! पापविनाशक! जय हो भक्तवत्सल! जय हो चक्रधारी को नमस्कार है। ॥३६॥ मान देने वाले! आप मानस्वरूप हैं। ससार से पूजित! जय हो! धम के देने वाले! और धमस्वरूप! आपकी जय हो। ससार के पार जाने वाले! जय हो॥३७॥ अन्नदाता! आप अन्नस्वरूप हैं। आपकी जय हो। वाणीपति को नमस्कार है। शक्ति के दाता! जय हो। आप शक्तिस्वरूप हैं। विजयी जनो को वर देने वाले! जय हो॥३८॥ यज्ञफल देने वाले! आप यज्ञस्वरूप हैं। आपकी जय हो। पद्म की पखुडियो के समान नेत्रवाले! जय हो। दानदाता! आप दानस्वरूप हैं। आपकी जय हो। कैटभ नामक असुर के शत्रु! जय हो॥३९॥ कीर्तिदाता! आप कीर्तिस्वरूप हैं। आप की जय हो।

१च विश्वविदे। २घ च पाशभृते। ३घ ड जय सत्यद सत्य त्व ज०। ४घ मायावि०। ५घ च सत्त्वद सत्त्वस्थ ज०। ६ङ जन्म त्व प०। ७च मुक्तीश जय सवद माधव। ८घ च ०त्रभृते। ९घ च अन्नात्म न्जय। १०घ च शक्त्यात्मञ्जय ज्ञानव०। ११घ च यज्ञात्मञ्जय।

जय कीर्तिद कीर्तिस्त्व जय मूर्तिद मूर्तिधृक्। जय सौख्यद सौख्यात्मञ्जय पावनपावन ॥४०॥
जय शान्तिद शान्तिस्त्व जय शकरसभव। जय पानद पानस्त्व जय ज्योति स्वरूपिणे ॥४१॥
जय वामन वित्तेश जय धूमपताकिने। जय सर्वस्य जगतो दातृमूर्ते नमोऽस्तु ते ॥४२॥
त्वमेव लोकत्रयवर्तिजीवनिकायसक्लेशविनाशदक्ष ।
श्रीपुण्डरीकाक्ष कृपानिधे त्व, निधेहि पाणि मम मूर्ध्नि विष्णो ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

एवं स्तुवन्त भगवाञ्शङ्खचक्रगदाधरः। वरेण च्छन्दयामास सर्वकामसमृद्धिद ॥४४॥
धन्वन्तरि प्रीतमना वरदानेन चक्रिण। वरदानाय देवेश गोविन्दं संस्थितं पुरः ॥४५॥
तमाह नृपति प्रह्व सुरराज्य ममेप्सितम्। तच्च दत्तं त्वया विष्णो प्राप्तोऽस्मि कृतकृत्यताम् ॥४६॥
स्तुत सपूजितो विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत। तथैव त्रिदशेशत्वमवाप नृपतिः क्रमात् ॥४७॥
प्रार्गजितानेककर्मपरिपाकवशात्तत। त्रि कृत्वो नाशमगमत्सहस्राक्षः स्वकात्पदात् ॥४८॥
नहुषद्वृत्रहत्याया सिन्धुसेनवधात्तत। अहल्यायां च गमनाद्येन केन च हेतुना ॥४९॥
स्मार स्मार तत्तदिन्द्रश्चिन्तासतापदुर्मनाः। तत सुरपतिः प्राह वाचस्पतिमिद वचः ॥५०॥

मूर्ति देने वाले! मूर्ति धारण करने वाले! जय हो। सौख्य प्रदान करने वाले! सौख्यरूप! जय हो। पवित्र को भी पवित्र करने वाले! जय हो। ॥४०॥ शान्ति प्रदान करने वाले! आप शान्तिरूप हैं। आपकी जय हो। शकर के उद्गम! जय हो! पेय प्रदान करने वाले! आप पेयरूप हैं! आपकी जय हो, ज्योति स्वरूप की जय हो ॥४१॥ वामन! जय हो। धनेश! जय हो। अग्निरूप की जय हो। सम्पूर्ण ससार के दातास्वरूप आपको नमस्कार है ॥४२॥ आप ही त्रिभुवन मे रहने वाले प्राणि समूह के महान् क्लेशो को विनष्ट करने मे दक्ष हैं। श्रीकमलनयन! कृपानिधान! विष्णो! आप मेरे शिर पर अपना (वरद) हस्त रखिये ॥४३॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार स्तुति करने वाले धन्वन्तरि को सब प्रकार की कामनाओ और समृद्धियो को देने वाले तथा शख चक्र एव गदा धारण करने वाले भगवान् विष्णु ने वर प्रदान किया। चक्री के वरदान से धन्वन्तरि प्रसन्न हो गया। उसने बडी विनम्रता से वर देने के लिये सामने खडे भगवान् से कहा—'विष्णो! आपने मेरी अभीप्सित कामना देवराज्य को प्रदान कर दिया। इससे मैं कृतकृत्य हो गया हूँ।' भगवान् विष्णु भी राजा की स्तुति और पूजा से प्रसन्न हो अन्तर्धान हो गये। राजा ने भी क्रम से देवेन्द्र की पदवी प्राप्त की। तदनन्तर पूर्वजन्म के अनेक कर्मों के परिपाक से वह सहस्राक्ष (इन्द्र) अपने पद से तीन बार च्युत हुए। पहली बार वृत्र-हत्या के कारण नहुष द्वारा पदच्युत किये गये, दूसरी बार सिन्धुसेन-वध के कारण, इसके बाद तीसरी बार अहिल्या के पास अनुचित रूप से जाने के कारण वे पदच्युत हुए। इस प्रकार जिस किसी कारण से पदभ्रष्ट होने पर इन्द्र अपने उन-उन पतन की घटनाओ अथवा कारणो को सोचकर चिन्ता की अग्नि से जलने से लगे। तब अत्यन्त व्याकुल हो देवेन्द्र ने बृहस्पति से यह प्रश्न किया ॥४४-५०॥

इन्द्र उवाच

हेतुना केन वागीश भ्रष्टराज्यो भवाम्यहम्। मध्ये मध्ये पदभ्रंशाद्वरं निःश्रीकता नृणाम् ॥५१॥
गहनां कर्मणां जीवगतिं को वेत्ति तत्त्वतः। रहस्यं सर्वभावानां ज्ञातुं नान्यः प्रगल्भते ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

बृहस्पतिर्हरिं प्राह ब्रह्माणं पृच्छ गच्छ तम्। स तु जानाति यद्भूतं भविष्यच्चापि वर्तनम् ॥५३॥
स तु वक्ष्यति येनेदं जातं[1] तच्च महामते। तावागत्य महाप्राज्ञौ नमस्कृत्य ममान्तिकम् ॥
कृताञ्जलिपुटौ भूत्वा मामूचतुरिदं वचः ॥५४॥

इन्द्रबृहस्पती ऊचतुः

भगवन्केन दोषेण शचीभर्ता उदारधीः। राज्यात्प्रभ्रश्यते नाथ संशयं छेत्तुमर्हसि ॥५५॥

ब्रह्मोवाच

तदाऽहमब्रवं ब्रह्मंश्चिरं ध्यात्वा बृहस्पतिम्। खण्डधर्माख्यदोषेण तेन राज्यपदाच्च्युतः ॥५६॥
देशकालादिदोषेण श्रद्धामन्त्रविपर्ययात्। यथावद्दक्षिणादानादसद्द्रव्यप्रदानतः ॥५७॥
देवभूदेवतावज्ञापातकाच्च विशेषतः। यत्खण्डत्वं स्वधर्मस्य देहिनामुपजायते ॥५८॥

इन्द्र ने कहा—वागीश ! किस कारण मैं सिंहासन-च्युत हो जाता हूँ। मनुष्यों के बीच-बीच में पद-भ्रंश से तो जीवनभर श्री-हीन होना ही उत्तम है। दुर्ज्ञेय कर्मों के अनुसार कठिन जीवगति को कौन व्यक्ति यथार्थतः जान पाता है ? सब भावों (व्यापारों) के रहस्यों को जानने की क्षमता अन्य किसी में नहीं है।।५१-५२।।

ब्रह्मा ने कहा—बृहस्पति ने इन्द्र से कहा कि तुम ब्रह्मा के पास जाओ और उनसे ही पूछो। वे भूत भविष्य और वर्तमान को जानते हैं। महामते ! वही जिस कारण ऐसा हुआ है उसको बतायेंगे। ऐसा परामर्श करके वे दोनों महामतिमान् मेरे समीप आये और नमस्कार कर बद्धाञ्जलि हो मुझसे बोले।।५३-५४।।

इन्द्र और बृहस्पति ने कहा—भगवन् ! किस दोष से उदार बुद्धि वाले देवराज अपने राज्य से च्युत होते हैं। नाथ ! इस संशय को आप ही दूर कर सकते हैं।।५५।।

ब्रह्मा ने कहा—ब्रह्मन् ! तब मैंने बहुत देर तक सोच विचार कर बृहस्पति से कहा कि ये खण्ड धर्म नामक दोष के कारण राज्यपद से च्युत हो गये हैं। क्योंकि देशकाल आदि के दोष से श्रद्धा और मन्त्र के विपर्यय से यथोचित दक्षिणा के न देने से, असद् द्रव्य के दान देने से और विशेष रूप से देवता एवं ब्राह्मण के अपमानजन्य पाप से मनुष्यों का जो धर्म खण्डित होता है, उससे अत्यन्त मानसिक सताप होता है और अवश्यमेव पदहानि होती है। क्षुब्धचित्त होकर धर्म करने से भी अनिष्ट ही होता है। वह धर्म कार्य सिद्धि के लिये नहीं होता, है, अतएव मनुष्य को स्थिरचित्त

---

[1] घ. च. ०तं वक्ष्यति निष्कृतिम्। ता०।

तेनातिमानसस्ताप पदहानिश्च दुस्त्यजा। कृतोऽपि धर्मोऽनिष्टाय जायते क्षुब्धचेतसा ॥५९॥
कायस्य न भवत्सिद्ध्यै तस्मादव्याकुलाय च। असपूर्णे स्वधर्मे हि किमनिष्टं न जायते ॥६०॥
ताभ्यां यत्पूर्ववृत्तान्त तदप्युक्त मयाऽनघ। आयुषस्तु सुत श्रीमान्धन्वन्तरिरुदारधी ॥६१॥
तमसा च कृत विघ्न विष्णुना तच्च नाशितम। पूर्वजन्मसु वृत्तान्तमित्यादि परिकीर्तितम् ॥६२॥
तच्छ्रुत्वा विस्मितौ चोभौ मामेव पुनरूचतु ॥६३॥

इन्द्रबृहस्पती ऊचतु

तद्दोषप्रतिबन्धस्तु केन स्यात्सुरसत्तम ॥६४॥

ब्रह्मोवाच

पुनर्ध्यात्वा ताववद श्रूयतां दोषका (हा)रकम। कारण सर्वसिद्धीना दु खससारतारणम् ॥६५॥
कारण तप्तचित्ताना निर्वाण जीवतामपि। गत्वा तु गौतमीं देवौं स्तुयेतां हरिशंकरौ ॥६६॥
नोपायोऽन्योऽस्ति सशुद्ध्यै तौ ता हित्वा जगत्त्रये। तदैव जग्मतुरुभौ गौतमीं मुनिसत्तम ॥
स्नातौ [1]कृतक्षणौ चोभौ देवौ तुष्टुवतुर्मुदा ॥६७॥

इन्द्र उवाच

नमो मत्स्याय कूर्माय वराहाय नमो नम । नरसिंहाय देवाय वामनाय नमो नम ॥६८॥

होकर धर्मकार्य करना चाहिये। अपने धर्म के अपूर्ण रहने पर कौन सा अनिष्ट नहीं होता है? निष्पाप! मैंने उन दोनों से जो कुछ पूर्व जन्म का वृत्तान्त था उसको भी कह दिया। उदारबुद्धि आयु-पुत्र धन्वन्तरि का होना तम राक्षस द्वारा उनकी तपस्या में विघ्न डालना और विष्णु के द्वारा पुन उन विघ्नों का नाश आदि जो कुछ पूर्व जन्म के वृत्तान्त थे सब बता दिये। इस प्रकार की बातें सुनकर वे दोनों विस्मित हो गये। पुन उन दोनों ने मुझसे कहा ॥५९ ६३॥

इन्द्र और बृहस्पति ने कहा—हे देवश्रेष्ठ! इस दोष का निराकरण किससे होगा? ॥६४॥

ब्रह्मा ने कहा—पुन मैंने विचारकर उन दोनों से कहा कि सुनो सब प्रकार की सिद्धियों के आश्रय संसार के दुःखों से पार लगाने वाले दुःख-दग्ध जीवों के एकमात्र आधार और जीवन में ही निर्वाण सुख देने वाले उपाय को सुनो। गौतमी गंगा के तट पर जाकर हरि और शंकर की स्तुति करो। दोष-शुद्धि के लिए हरि और शंकर की स्तुति को छोड़कर इन तीनों लोकों में अन्य कोई उपाय नहीं है। मुनिश्रेष्ठ! यह सुनकर वे दोनों उसी समय गौतमी के किनारे गये और स्नान कर समय पाकर दोनों देवों की स्तुति करने लगे ॥६५ ६७॥

इन्द्र ने कहा—भगवान् मत्स्य को नमस्कार है कूर्म को नमस्कार है वराह को बार बार नमस्कार है नरसिंह देव और वामन को नमस्कार है नमस्कार है। अन्तरंग भगवान को नमस्कार है। तीन डग से सम्पूर्ण भुवनमण्डल

---

[1] च कृतेन०।

नमोऽस्तु हयरूपाय त्रिविक्रम नमोऽस्तु ते। नमोऽस्तु[1] बुद्धरूपाय रामरूपाय कल्किने॥६९॥
अनन्तायाच्युतायेश जामदग्न्याय ते नमः। वरुणेन्द्रस्वरूपाय यमरूपाय ते नमः॥७०॥
परमेशाय देवाय नमस्त्रैलोक्यरूपिणे। बिभ्रत्सरस्वतीं वक्त्रे सर्वज्ञोऽसि नमोऽस्तु ते॥७१॥
लक्ष्मीवानस्यतो लक्ष्मीं बिभ्रद्वक्षसि चानघ। बहूबाहूरुपादस्त्वं बहुकर्णाक्षिशीर्षकः॥
त्वामेव सुखिनं प्राप्य बहवः सुखिनोऽभवन् ॥७२॥
तावन्निःश्रीकता पुंसां मालिन्यं दैन्यमेव वा। यावन्न यान्ति शरणं हरे त्वां करुणार्णवम्॥७३॥

बृहस्पतिरुवाच

सूक्ष्मं परं जो(ज्यो)तिरनन्तरूपमोंकारमात्रं प्रकृतेः परं यत्।
चिद्रूपमानन्दमयं समस्तमेवं वदन्तीश मुमुक्षवस्त्वाम्॥७४॥
आराधयन्त्यत्र भवन्तमीशं, महामखैः पञ्चभिरप्यकामाः।
संसारसिन्धोः परमाप्तकामा, विशन्ति दिव्यं भुवनं वपुस्ते॥७५॥
सर्वेषु सत्त्वेषु समत्वबुद्ध्या, संवीक्ष्य षट्सूर्मिषु शान्तभावाः।
ज्ञानेन ते कर्मफलानि हित्वा, ध्यानेन ते त्वां प्रविशन्ति शंभो॥७६॥

को नापने वाले (त्रिविक्रम)! आपको नमस्कार है! बुद्धरूप, रामरूप और कल्की रूप में अवतीर्ण होने वाले भगवान् को नमस्कार है। ईश! अनन्त अच्युत और परशुराम रूप आपको नमस्कार है। वरुण इन्द्र और यम रूप आपको नमस्कार है। परमेश देव और त्रैलोक्यरूपधारी को नमस्कार है। अपने मुख में सरस्वती को धारण करने वाले आप सर्वज्ञ हैं, आपको नमस्कार है। निष्कलष! आप लक्ष्मीवान् हैं इसलिए लक्ष्मी को वक्षःस्थल पर धारण करते हैं। आप अनन्त बाहु, ऊरु (जंघा), चरण कान, आँख और शिर वाले हैं। सुखमूर्ति आपको पाकर ही बहुत-से मनुष्य सुखी हो गये। हरे! मनुष्यों के पास दरिद्रता, मलिनता और दीनता तभी तक रहती है जब तक वे करुणा-सागर आपकी शरण में नहीं जाते हैं॥६८-७३॥

बृहस्पति ने कहा—ईश! मुमुक्षु लोग आपको सूक्ष्म पर, ज्योतिः स्वरूप अनन्तरूप ओंकार मात्र प्रकृति से परे, चिद्रूप, आनन्दमय और सम्पूर्ण (विश्वरूप) ऐसा कहते हैं॥७४॥ निष्काम साधक पाँच महायज्ञों द्वारा आप प्रभु की ही आराधना करते हैं। संसार-सागर से पार जाने की इच्छा करने वाले लोग आप ही के दिव्य भुवन रूपी शरीर में प्रवेश करते हैं॥७५॥ शम्भो! सब प्राणियों में समान बुद्धि से देखकर छह प्रकार के क्लेशों—भूख प्यास, शोक, मोह, सर्दी और गर्मी में शान्त भाव से रहने वाले मुमुक्षुजन तुम्हारे ज्ञान से कर्म-फलों को छोड़कर ध्यान के द्वारा तुम में ही प्रवेश करते हैं॥७६॥ मुझमें न तो जाति-धर्म है न वेद-शास्त्र का ज्ञान है न ध्यान-योग

---

१ घ. च. ०स्तु रामरामाय बौद्धरूपाय क०।

न जातिधर्माणि न वेदशास्त्र, न ध्यानयोगो न [1]समाधिधर्म　।
रुद्र शिव शकर शान्तचित्त, भक्त्या देव सोममह नमस्ये　॥७७॥
मूर्खोऽपि शभो तव पादभक्त्या, समाप्नुयान्मुक्तिमयीं तनु ते　।
ज्ञानेषु यज्ञषु तप सु चैव, ध्यानेषु होमेषु महाफलेषु　॥७८॥
सपन्नमेतत्फलमुत्तम यत्सोमेश्वरे भक्तिरहर्निश यत्　।
स्वर्गस्य जीवस्य सदा प्रियस्य, फलस्य दृष्टस्य तथा श्रुतस्य　॥७९॥
स्वर्गस्य मोक्षस्य जगन्निवास, सोपानपङ्क्तिस्तव भक्तिरेषा　।
त्वत्पादसप्राप्तिफलाप्तये तु, सोपानपङ्क्ति न वदन्ति धीरा　॥८०॥
तस्माद्दयालो मम भक्तिरस्तु, नैवास्त्युपायस्तव रूपसेवा　।
आत्मीयमालोक्य महत्त्वमीश, पापेषु चास्मासु कुरु प्रसादम्　॥८१॥
स्थूल च सूक्ष्म त्वमनादि नित्य, पिता च माता यदसच्च सच्च　।
एव स्तुतो य श्रुतिभि पुराणैर्नमामि सोमेश्वरमीशितारम्　॥८२॥

ब्रह्मोवाच

तत प्रीतौ हरिहरावूचतुस्त्रिदशेश्वरौ　॥८३॥

हरिहरावूचतु

व्रियता य मनोभीष्ट यद्वर चातिदुर्लभम्　॥८४॥

का बल है और न समाधि धर्म ही है। मैं केवल भक्तिपूर्वक शान्तचित्त रुद्र शिव शकर और सोमदेव को नमस्कार करता हूँ॥७७॥ शभो! मूर्ख भी तुम्हारे चरणो की भक्ति से आपके मुक्तिमय शरीर को प्राप्त कर लेता है। ज्ञान यज्ञ तपस्या ध्यान होम महान् फल वाले कार्यों का उत्तम फल यही है कि भगवान् सोमेश्वर के चरणो मे सर्वदा अचल भक्ति हो ॥७८॥ जगन्निवास! आपकी यह भक्ति स्वर्ग के फल तथा जीवो को प्रिय लगने वाले दृष्ट एव श्रुत फल और स्वर्ग तथा मोक्ष (प्राप्त करने) की सीढियो की परम्परा है॥७९॥ परन्तु धीर पुरुष तुम्हारे चरणो तक पहुँचा देने के लिये इस सीढियो के सिलसिले को नही बताते हैं॥८०॥ इसलिये हे दयालो! तुममे मेरी भक्ति हो तुम्हारी रूप सेवा (भक्ति) के अतिरिक्त मेरे लिये और कोई उपाय नही है। ईश! अपनी महत्ता का ध्यान कर हम पापात्माओ के ऊपर आप प्रसन्न होइए॥८१॥ श्रुतियो और पुराणो ने स्थूल सूक्ष्म अनादि नित्य पिता माता असत् और सत् कहकर जिसकी स्तुति की है उस प्रभु सोमेश्वर को नमस्कार करता हूँ॥८२॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर देवेश हरि और हर प्रसन्न होकर बोले॥८३॥

हरिहर ने कहा—तुम लोगो को जो अभीष्ट हो और जो अतिदुर्लभ वर हो वह माँगो॥८४॥

---

[1] घ च ०धिर्मम। ह०।

ब्रह्मोवाच

इन्द्र प्राह सुरेशान मद्राज्य तु पुन पुन । जायते नश्यते चैव तत्पापमुपशाम्यताम ॥८५॥
यथा स्थिरोऽह राज्ये स्या सर्व स्यान्निश्चल मम। सुप्रीतौ यदि देवेशौ सर्व स्यान्निश्चल सदा ॥८६॥
तथेति हरिवाक्य तावभिनन्द्येदमूचतु । पर प्रसादमापन्नौ तावालोक्य स्मिताननौ ॥८७॥
निरपायनिराधारनिर्विकारस्वरूपिणौ। शरण्यौ सर्वलोकानां भुक्तिमुक्तिप्रदावुभौ ॥८८॥

हरिहरावूचतु

त्रिदैवत्य महातीर्थं गौतमी वाञ्छितप्रदा। तस्यामनेन मन्त्रेण कुरुता स्नानमादरात् ॥८९॥
अभिषेक महेन्द्रस्य मङ्गलाय बृहस्पति । करोतु सस्मरन्नावा सपदा स्थैर्यसिद्धये ॥९०॥
इह जन्मनि पूर्वस्मिन्यत्किंचित्सुकृत कृतम् । तत्सर्वं पूर्णतामेतु गोदावरि नमोऽस्तु ते ॥९१॥
एव स्मृत्वा तु य कश्चिद्गौतम्यां स्नानमाचरेत । आवायो तु प्रसादेन धर्म सपूर्णतामियात ॥
पूर्वजन्मकृताद्दोषात्स मुक्त पुण्यवान्भवेत ॥९२॥

ब्रह्मोवाच

तथेति चक्रतु प्रीतौ सुरेन्द्रधिषणौ तत । महाभिषेकमिन्द्रस्य चकार सुमना गुरु ॥९३॥
तेनाभूद्या नदी पुण्या मङ्गलेत्युदिता तु सा । तया च सगम पुण्यो गङ्गाया शुभदस्त्वसौ ॥९४॥
इन्द्रेण सस्तुतो विष्णु प्रत्यक्षोऽभूज्जगन्मय । त्रिलोकसमिता शक्रो भूमि लेभे जगत्पते ॥९५॥

ब्रह्मा ने कहा—इन्द्र ने शकर से कहा—जिस पाप से बार बार मेरा राज्य होता है और नष्ट हो जाता है उस पाप को शान्त कीजिये। यदि आप दोनो देवेश परम प्रसन्न हैं तो मैं जिस प्रकार अपने राज्य पर स्थिर हो जाऊँ और सब पर मेरा अधिकार अचल हो जाय वैसा कीजिये। विष्णु न ऐसा ही हो यह कहा। इस स्वीकारात्मक वाणी को सुनकर उन दोनो ने अभिनन्दन किया और पुन कहा—अविनाशी निराधार निर्विकारस्वरूप समस्त लोकों के रक्षक और भोग-मोक्ष देने वाले आप दोनो को प्रसन्नमुख देखकर हम दोनो अत्यन्त आनन्दित हो गए ॥८५ ८८॥

हरिहर ने कहा—यह त्रिदैवत्य (तीन देवताओ वाला) महातीर्थ है और यह गौतमी वाञ्छित फल को देने वाली है। उसमे इस (निम्नलिखित) मन्त्र से भक्तिपूर्वक स्नान करो। बृहस्पति इन्द्र के कल्याण तथा सम्पत्ति की स्थिरता के लिए हम दोनो का स्मरण करते हुए देवराज का अभिषेक करें। (स्नान-मन्त्र) इस जन्म मे तथा पूर्व जन्म म जो कुछ मैंने शुभ कर्म किये हैं वे सब (कर्म) पूर्ण हो जाय। हे गोदावरी! आपको नमस्कार है! इस प्रकार स्मरण कर जो कोई गौतमी म स्नान करता है उसका खण्डित धर्म हम लोगो की कृपा से पूर्ण हो जाता है और वह पूर्व जन्म के किये दोषो से मुक्त हो पुण्यवान् हो जाता है ॥८९ ९२॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके उपरान्त महेन्द्र और वाचस्पति ने 'ऐसा ही करेंगे' यह कहकर प्रसन्न हो कार्य प्रारम्भ किया। देव-गुरु ने इन्द्र का महाभिषेक किया। उस अभिषेक-जल से जो नदी उत्पन्न हुई वह पवित्र मगला नाम से प्रसिद्ध हुई। गङ्गा के साथ उसका सगम पवित्र और शुभप्रद हुआ। इन्द्र की स्तुति से जगन्मूर्ति विष्णु वहाँ प्रत्यक्ष हुये। उस जगत्पति की कृपा से इन्द्र ने त्रिलोक-पूजित (भूमि) प्राप्त की। इसलिये वहाँ 'गोविन्द' इस नाम से

तन्नाम्ना चापि विख्यातो गोविन्द इति तत्र च । त्रिलोकसंमिता लब्धा तेन गौर्वज्रधारिणा ॥९६॥
दत्ता च हरिणा तत्र गोविन्दस्तदभूद्धरिः । त्रैलोक्यराज्यं 'यत्प्राप्तं हरिणा च हरेर्मुने ॥९७॥
निश्चलं येन (तच्च)[2] संजातं देवदेवान्महेश्वरात् । बृहस्पतिर्देवगुरुर्यत्रास्तौषीन्महेश्वरम्[3] ॥९८॥
राज्यस्य स्थिरभावाय[4] देवेन्द्रस्य महात्मनः । सिद्धेश्वरस्तत्र देवो लिङ्गं तु त्रिदशार्चितम् ॥९९॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं गोविन्दमिति विश्रुतम् । [5]मङ्गलासंगमं चैव पूर्णतीर्थं ततः परम् ॥१००॥
इन्द्रतीर्थमिति ख्यातं बार्हस्पत्यं च विश्रुतम् । यत्र[6] सिद्धेश्वरो देवो विष्णुर्गोविन्द एव च ॥१०१॥
तेषु[7] स्नानं च दानं च यत्किंचित्सुकृतार्जनम्[8] । सर्वं तदक्षयं विद्यात्पितॄणामतिवल्लभम् ॥१०२॥
शृणोति यश्चापि पठेद्यश्च स्मरति नित्यशः । तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं भ्रष्टराज्यप्रदायकम् ॥१०३॥
सप्तत्रिंशत्सहस्राणि तीर्थानां तीरयोर्द्वयोः । उभयोर्मुनिशार्दूल सर्वसिद्धिप्रदायिनाम् ॥१०४॥
न पूर्णतीर्थसदृशं तीर्थमस्ति महाफलम् । निष्फलं तस्य जन्मादि यो न सेवेत तन्नरः ॥१०५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्य उभयोस्तीरयोः पूर्णतीर्थमङ्गलासंगम-
गोविन्दसिद्धेश्वरादिसप्तत्रिंशत्सहस्रतीर्थवर्णनं नाम द्वाविंशत्यधिक-
शततमोऽध्यायः ॥१२२॥
गौतमीमाहात्म्ये त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

विख्यात हुये, क्योंकि उस वज्रधारी इन्द्र ने वहाँ त्रैलोक्यपूजित गौ (भूमि) प्राप्त की। विष्णु ने वहाँ इन्द्र को गौ दी थी, इसलिए हरि गोविन्द हो गये। मुने! विष्णु से इन्द्र ने जो त्रैलोक्य राज्य प्राप्त किया वह राज्य देवाधिदेव महेश्वर की कृपा से अचल हो गया। देव-गुरु बृहस्पति ने जहाँ महात्मा देवेन्द्र के राज्य की स्थिरता के लिये महेश्वर की स्तुति की, वहाँ सिद्धेश्वर देव और देवपूजित लिंग की स्थापना की गई। उस समय से वह तीर्थ गोविन्द नाम से प्रसिद्ध हो गया। इसके पश्चात् मगला-सगम, पूर्णतीर्थ, इन्द्रतीर्थ और बृहस्पति तीर्थ विख्यात तीर्थ हुये। जहाँ सिद्धेश्वर देव विष्णु और गोविन्द (इन्द्र) स्थित हैं, उन तीर्थों में स्नान करने और दान देने से जो कुछ पुण्य प्राप्त होते हैं, वे सब अक्षय होते हैं और उनसे पितरो को अत्यन्त प्रसन्नता मिलती है। उस तीर्थ के माहात्म्य को जो कोई नित्य पढता है, या स्मरण करता है उसका गया हुआ राज्य और नष्ट वैभव पुन प्राप्त हो जाते हैं। मुनिवर! उस पुण्य सलिला नदी के दोनो तटो पर सब प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करने वाले सैंतीस हजार तीर्थ हैं। पूर्ण तीर्थ के समान उत्तम फल देने वाला कोई भी तीर्थ इस भूमण्डल पर नही है। उस मनुष्य के जन्म आदि निष्फल हैं जो इस पूर्णतीर्थ का सेवन नहीं करता है ॥९३ १०५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में पूर्णतीर्थ, मङ्गला तीर्थ आदि सैंतीस हजार तीर्थों का
माहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२२॥

---

१ घ च तत्प्राप्त। २ क ०त तद्दं देवा०। ३ घ च ०दस्तोष नीत्वा महे०। ङ ०दस्तत्र स्थाप्य महे०। ४ घ च ०रतां प्रायाद्देवे०। ङ ०रतां प्राप देवे०। ५ घ च ०म चेति तत्र स्नात्वा शुचिर्भवेत्। ङ०। ६ ङ. च तत्र। ७ ङ. तत्र। ८ घ ङ च ०म्। यत्र सिद्धेश्वरो देवो गोविन्दो जनवल्लभः। स०।

अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

रामतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तीर्थमिति ख्यात[1] भ्रूणहत्याविनाशनम् । तस्य[2] श्रवणमात्रेण सर्वपापै प्रमुच्यते ॥१॥
ाकुवशप्रभव[3] क्षत्रियो लोकविश्रुत । बलवान्मतिमाञ्शूरो यथा शक्र पुरदर ॥२॥
पैतामह राज्य कुर्वन्नास्ते यथा बलि । तस्य तिस्रो महिष्य स्यू राज्ञो दशरथस्य हि ॥३॥
ल्या च सुमित्रा च कैकेयी च महामते । एता कुलीना सुभगा रूपलक्षणसयुता ॥४॥
मन्नाजनि राज्ये तु स्थितेऽयोध्यापतौ मुने । वसिष्ठे ब्रह्मविच्छ्रेष्ठे पुरोधसि विशेषत ॥५॥
व व्याधिर्न दुर्भिक्ष न चावृष्टिर्न चाऽऽधय । ब्रह्मक्षत्रविशा नित्य शूद्राणा च विशेषत ॥६॥
माणा तु सर्वेषामानन्दोऽभूत्पृथक्पृथक् । तस्मिञ्शासति राजेन्द्र इक्ष्वाकूणा कुलोद्वहे[4] ॥७॥
ना दानवानां तु राज्यार्थे विग्रहोऽभवत् । क्वापि तत्र जय प्रापुर्देवा क्वापि तथेतरे ॥८॥
प्रवर्तमाने तु त्रैलोक्यमतिपीडितम् । अभून्नारद तत्राहमवद दैत्यदानवान् ॥९॥

अध्याय १२३

रामतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—गर्भहत्या के पाप को दूर करने वाला रामतीर्थ नामक एक तीर्थ है। उसके नामश्रवण
ा से मनुष्य सब पापो से छूट जाता है ॥१॥ इक्ष्वाकुवशी विश्व प्रसिद्ध बलवान् क्षत्रिय राजा दशरथ इन्द्र के
ान शूर और बुद्धिमान् थे ॥२॥ वे बलि के समान अपने पिता पितामह के राज्य का पालन करते थे। उस राजा
रथ की तीन रानियां थी ॥३॥ महामते ! उनके नाम कौशल्या कैकेयी और सुमित्रा थे। वे कुलीन भाग्यशालिनी
र रूप-लक्षण-सपन्ना थी ॥४॥ मुने ! उस अयोध्यापति राजा दशरथ के शासन काल मे विशेषकर महाब्रह्म
ी वशिष्ठ के पुरोहित रहते ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और विशेषतया शूद्र को कभी भी मानसिक पीडा व्याधि
क्ष अथवा अवृष्टि (सूखा) इत्यादि से कष्ट नही होता था ॥५ ६॥ इक्ष्वाकु-कुल की मर्यादा बढाने वाले उस राजेन्द्र
शासन मे सब आश्रमो को पृथक्-पृथक इच्छानुकूल आनन्द प्राप्त था ॥७॥ इसी समय देवताओ और दानवा मे
य के लिये युद्ध हो गया कही पर राक्षसो की विजय तो किसी मोर्चे पर देवो की विजय हुई ॥८॥ इस प्रकार युद्ध
 जाने पर त्रि भुवन दु ख से काप उठा। नारद ! यह देखकर मैंने दैत्य दानवो और विशेषकर देवताओ को
झाया परन्तु उन रण-दुमदो ने मेरा कहना नही सुना ॥९॥ प्रत्युत पुन उनमे परस्पर अति भयकर युद्ध छिड

१ङ च ०त ब्रह्मह०। २ङ ०स्य स्मरण०। ३घ ङ च ०प्रवर क्ष०। ४ङ च ०हे। एतस्मिन्नन्तरे महत्कार्यमुपस्थितम्। दे०।

देवांश्चापि विशेषेण न कृतं तैर्मदीरितम्। पुनश्च संगरस्तेषां बभूव सुमहान्मिथः॥१०॥
विष्णुं गत्वा सुराः प्रोचुस्तथेशानं जगन्मयम्। तावूचतुरुभौ देवानसुरान्दैत्यदानवान् ॥११॥
तपसा बलिनो यान्तु पुनः कुर्वन्तु संगरम्। तथेत्याहुर्ययुः सर्वे तपसे नियतव्रताः॥१२॥
ययुस्तु राक्षसान्देवाः पुनस्ते मत्सरान्विताः। देवानां दानवानां च संगरोऽभूत्सुदारुणः॥१३॥
न तत्र देवा जेतारो नैव दैत्याश्च दानवाः। संयुगे वर्तमाने तु वागुवाचाशरीरिणी॥१४॥

आकाशवागुवाच

येषां दशरथो राजा ते जेतारो न चेतरे ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा जयायोभौ जग्मतुर्देवदानवौ। तत्र वायुस्त्वरन्प्राप्तो राजानमवदत्तदा ॥१६॥

वायुरुवाच

आगन्तव्यं त्वया राजन्देवदानवसंगरे। यत्र राजा दशरथो जयस्तत्रेति विश्रुतम्॥१७॥
तस्मात्त्वं देवपक्षे स्या भवेयुर्जयिनः सुराः ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

तद्वायुवचनं श्रुत्वा राजा दशरथो नृपः। आगम्यते मया सत्यं गच्छ वायो यथासुखम्॥१९॥
गते वायौ तदा[1] दैत्या आजग्मुर्भूपतिं प्रति। तेऽप्यूचुर्भगवन्नस्मत्साहाय्यं कर्तुमर्हसि॥२०॥

गया। देवताओं ने विष्णु और जगद्गुरु शंकर से सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उन दोनों देवताओं ने देव, असुर, दैत्य और दानव सबको एकत्र कर कहा कि पहले तपस्या से बल प्राप्त करो, फिर युद्ध करना। दोनों पक्ष वालों ने इस आदेश को स्वीकार किया और उभयपक्ष दृढ़व्रत होकर तपस्या के लिये चले गये। यद्यपि वे दोनों (राक्षस और देवता) गये तो परन्तु पुनः वे ईर्ष्या करने लगे, जिसके परिणामस्वरूप पुनः अति कठिन युद्ध छिड़ गया। परन्तु उस युद्ध में न तो देवता ही विजयी हुये और न दानव ही। इसी बीच युद्ध के अवसर पर आकाशवाणी हुई॥१०-१४॥

आकाशवाणी ने कहा—*जिनके पक्ष में राजा दशरथ रहेंगे वे ही जीतेंगे, दूसरे नहीं॥१५॥*

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर दोनों देव और दानव विजय की इच्छा से राजा दशरथ के पास पहुँचने लगे। (उनमें से देव-पक्ष के दूत) वायु शीघ्र राजा के पास पहुँच गये और राजा से बोले॥१६॥

वायु ने कहा—राजन्! देव-दानवों के युद्ध में आपको आना चाहिये, क्योंकि जिस ओर आप रहेंगे वही पक्ष विजयी होगा यह बात प्रसिद्ध है। इसलिये आप देव-पक्ष में रहें, जिससे देव विजयी हो जायँ॥१७-१८॥

ब्रह्मा ने कहा—वायु की बात सुनकर राजा दशरथ ने कहा कि आप सुखपूर्वक जाइये, मैं अवश्य आपके पक्ष में आऊँगा। जब वायु चले गये तब दैत्य भी राजा के समीप आये। उन लोगों ने भी कहा—'भगवन्! हम लोगों

[1] घ. ङ. तथा।

राजन्दशरथ श्रीमन्विजयस्त्वयि संस्थित । तस्मात्त्वं वै दैत्यपते साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥२१॥
तत प्रोवाच नृपतिर्वायुना प्रार्थित पुरा । प्रतिज्ञात मया तच्च यान्तु दैत्याश्च दानवा ॥२२॥
स तु राजा तथा चक्रे गत्वा चैव त्रिविष्टपम् । युद्ध चक्रे तथा दैत्यैर्दानवैं सह राक्षसै ॥२३॥
पश्यत्सु देवसघेषु नमुचेर्भ्रातरस्तदा । विविधुर्निशितैर्बाणैरथाक्ष नृपतेस्तथा ॥२४॥
भिन्नाक्ष त रथ राजा न जानाति स सभ्रमात् । राजान्तिके स्थिता सुभ्रू कैकेय्याज्ञायि नारद ॥२५॥
न ज्ञापित तया राज्ञे स्वयमालोक्य सुव्रता । भग्नमक्ष समालक्ष्य चक्रे हस्त तदा स्वकम ॥२६॥
अक्षवन्मुनिशार्दूल तदेतन्महदद्भुतम । रथेन रथिनां श्रेष्ठस्तया दत्तकरेण च ॥२७॥
जितवान्दैत्यदनुजान्देवै प्राप्य वरान्बहून् । ततो देवैरनुज्ञातस्त्वयोध्या पुनरभ्यगात् ॥२८॥
स तु मध्ये महाराजो मार्गे वीक्ष्य तदा प्रियाम् । कैकेय्या कर्म तद्दृष्ट्वा विस्मय परम गत ॥२९॥
ततस्तस्यै वरान्प्रादात्त्रींस्तु नारद सा अपि । अनुमान्य नृपप्रोक्त कैकेयी वाक्यमब्रवीत् ॥३०॥

कैकेय्युवाच

त्वयि तिष्ठन्तु राजेन्द्र त्वया दत्ता वरा अमी ॥३१॥

की सहायता कीजिये। श्रीमन्! राजन्! दशरथ! विजय आप ही के हाथ म है। इसलिये आप अवश्य दैत्यपति की सहायता कीजिये। यह सुनकर राजा ने कहा—वायु ने पहले ही आकर प्रार्थना की है मैंने भी उस प्रार्थना के अनुसार जाने की प्रतिज्ञा कर ली है अत (आप) दैत्य दानव चले जाय। उस राजा ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार स्वर्ग जाकर दैत्य दानव तथा राक्षसो के साथ युद्ध किया। उस समय देवताओ के देखते देखते नमुचि के भाइयो ने राजा के रथ की धुरी को तीखे बाणो से तोड डाला। वह राजा युद्धरत होने के कारण इस घटना को न जान सका परन्तु नारद! उसके समीप बैठी हुई सुन्दर भौ वाली कैकेयी ने जान लिया। उस सुव्रता ने स्वय देखकर भी राजा को नही बताया अपितु अपना हाथ धुरी की जगह लगा दिया। मनिवर! उसने यह बडा अदभुत काय किया। रथियो मे श्रेष्ठ राजा दशरथ ने उसी रथ पर बैठ कर दैत्य दानवो को जीता और देवताओ से अनेको वर प्राप्त किये। तदनन्तर देवताओ से सादर बिदा हो पुन अयोध्या पुरी को लौट आये। उस समय मार्ग म राजा अपनी प्रिया को देखकर और कैकेयी के उस अति अदभुत कम को जानकर अत्यन्त आश्चयचकित हो गया। नारद! तब (उसके इस कम से कृतज्ञ हो) राजा ने रानी को तीन वर दिये। कैकेयी ने भी राजा के दिये तीन वरो को स्वीकार कर राजा से कहा—॥१९ ३०॥

कैकेयी ने कहा—राजेन्द्र! तुम्हारे दिये ये तीन वर तब तक तुम्हारे ही पास धरोहर के रूप मे रहे ॥३१॥

१ङ ०न्देवाप्राप्य। २घ ङ च स तदा तु महा०।

ब्रह्मोवाच

विभूषणानि राजेन्द्रो दत्त्वा स प्रियया सह । रथेन विजयी राजा ययौ स्वनगरं सुखी ॥३२॥
योषिता किमदेयं हि प्रियाणामुचितागमे । स कदाचिद्दशरथो मृगयाशीलिभिर्वृतः ॥३३॥
अटन्नरण्ये शर्वर्यां वारिबन्धमथाकरोत् । सप्तव्यसनहीनेन भवितव्यं तु भूभुजा ॥३४॥
इति जानन्नपि च तच्चकार तु विधेर्वशात् । गर्ते प्रविश्य पानार्थमागतान्निशितैः शरैः ॥३५॥
मृगान्हन्ति महाबाहुः शृणु कालविपर्ययम्[1] । गर्ते प्रविष्टे नृपतौ तस्मिन्नेव नगोत्तमे ॥३६॥
वृद्धो वैश्रवणो नाम न शृणोति न पश्यति । तस्य भार्या तथाभूता तावब्रूतां तदा सुतम् ॥३७॥

मातापितरावूचतुः

आवां तृषार्तौ[2] रात्रिश्च कृष्णा चापि प्रवर्तते । वृद्धानां जीवितं [3]कृत्स्नं बालस्त्वमसि पुत्रक ॥३८॥
अन्धानां बधिराणां च[3] वृद्धानां धिक्च जीवितम् । जराजर्जरदेहानां धिग्धिक्पुत्रक जीवितम् ॥३९॥
तावत्पुम्भिर्जीवितव्यं यावल्लक्ष्मीर्दृढं वपुः । यावदाज्ञाऽप्रतिहता तीर्थादावन्यथा मृतिः ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा वृद्धयोर्गुरुवत्सलः । पुत्रः प्रोवाच तद्दुःखं गिरा मधुरया हरन् ॥४१॥

ब्रह्मा ने कहा—वह विजयी राजा अपनी प्रिया को विविध आभूषण देकर प्रिया के साथ रथ से सुखपूर्वक अपने नगर को गया। सच कहा है कि उचित समय आने पर प्रिय स्त्रियों के लिये कौन सी वस्तु न देने योग्य है ?

किसी समय वह राजा शिकार के प्रेमी अनुचरों के साथ वन में इधर उधर घूमने लगा। रात्रि में उसने पानी को बाँधों से रोकवा दिया। 'राजा को सात प्रकार के व्यसनों से (जिनमें एक शिकार भी है) पृथक् रहना चाहिये' यह जानकर भी विधि प्रेरणा से उसने एक अनर्थ किया। वह महापराक्रमी राजा स्वयं गड्ढे में छिपकर पानी पीने के लिये आए हुए वन्य पशुओं को अपने तीखे बाणों से मारने लगा। अब समय की कुटिलता की कहानी सुनो—उसी ऊँचे पर्वत पर —जहाँ कि राजा गड्ढे में घुसकर आखेट कर रहा था —एक वृद्ध रहता था जो न सुनता था न देखता था। उसकी स्त्री भी उसी के समान थी। उन दोनों वृद्ध दम्पति ने अपने पुत्र से कहा ॥३२-३७॥

माता पिता ने कहा—*हम दोनों प्यास से व्याकुल हैं और इस समय रात अँधेरी है। वत्स ! तुम्हीं हम* वृद्धों के एकमात्र जीवन हो। अन्धे, बहरे और वृद्धों के जीवन को धिक्कार है। बेटा ! वृद्धावस्था से जीर्ण शरीर वालों के जीवन को धिक्कार है ! धिक्कार है !! मनुष्यों को तब तक ही जीना चाहिये जब तक उनके पास लक्ष्मी हो तथा शरीर दृढ़ हो और उनकी आज्ञा का बरोक-टोक पालन होता हो नहीं तो उन्हें तीर्थों में शरीर त्याग देना चाहिए ॥३८-४०॥

ब्रह्मा ने कहा—वृद्ध माँ-बाप की इन बातों को सुनकर अपनी मधुर वाणी से उनके दुःख को हरता हुआ वह गुरुभक्त पुत्र बोला ॥४१॥

---

१ प. ङ. च. ०म् । एतस्मिन्नन्तरे वृद्धस्तस्मि० । २ प. कष्टं । ३ प. च. दैवाद्धतकर्मणाम् । ज० ।

पुत्र उवाच

मयि जीवति किं नाम युवयोर्दुःखमीदृशम् । न हरत्यात्मजः पित्रोर्यश्चरित्रैर्मनोरुजम् ॥४२॥
तेन किं तनुजेनेह कुलोद्वेगविधायिना ॥ ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा पितरौ नत्वा तावाश्वास्य महामना । तत्स्कन्धे समारोप्य वृद्धौ च पितरौ तदा ॥४४॥
हस्ते गृहीत्वा कलशं जगाम ऋषिपुत्रकः । स ऋषिर्नतु राजानं जानाति नृपतिर्द्विजम् ॥४५॥
उभौ सरभसौ तत्र द्विजो वारि समाविशत् । सत्वरं कलशे न्युब्जे वारि गृह्णन्तमाशुगैः ॥४६॥
द्विजं राजा द्विपं मत्वा विव्याध निशितैः शरैः । वनद्विपोऽपि भूपानामवध्यस्तद्विदन्नपि ॥४७॥
विव्याध तं नृपः कुर्यान्न किं किं विधिवञ्चितः । स विद्धो मर्मदेशे तु दुःखितो वाक्यमब्रवीत् ॥४८॥

द्विज उवाच

केनेदं दुःखदं कर्म कृतं सद्ब्राह्मणस्य मे । मैत्रो ब्राह्मण इत्युक्तो नापराधोऽस्ति कश्चन ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

तदेतद्वचनं श्रुत्वा मुनेरार्तस्य भूपतिः । निश्चेष्टश्च निरुत्साहो शनैस्तं देशमभ्यगात् ॥५०॥
तं तु दृष्ट्वा द्विजवरं ज्वलन्तमिव तेजसा । असावप्यभवत्तत्र सशल्य इव मूर्च्छितः ॥५१॥

पुत्र ने कहा—मेरे जीते जी आप लोगों को इस प्रकार दुःखी होने की क्या आवश्यकता ? जो पुत्र अपने आचरण से माता-पिता की मानसिक व्यथा को दूर नहीं करता उस कुलांगार पुत्र से क्या लाभ ? ॥४२-४३॥

ब्रह्मा ने कहा—यह कहकर उस महामना ने अपने माता-पिता को आश्वासन दिया, पुनः प्रणाम कर उनको वृक्ष के स्कन्ध पर बैठा दिया और स्वयं अपने हाथ में कलश लेकर वह ऋषि-कुमार जल लेने के लिए चल पड़ा। उस समय न तो वह ऋषिपुत्र मृगयासक्त राजा के विषय में जानता था और न राजा ही उस द्विज को जानता था। दोनों अपने-अपने व्यापार में आवश्यकता से अधिक शीघ्रता कर रहे थे। उस गड्ढे में पानी के लिए वह द्विज उतरा, शीघ्र ही कलश को झुकाकर पानी भरने लगा। उसी समय राजा ने उसको जंगली हाथी जानकर अपने तीखे और शीघ्रगामी बाणों से बेध डाला। 'राजा जंगली हाथी को भी अवध्य समझे' यह जानते हुए भी राजा ने उसको मार ही डाला। भाग्य से प्रतारित होने पर मनुष्य क्या-क्या नहीं कर डालता है ? मर्म-स्थल में बाण लगने से वह ऋषि-कुमार अत्यन्त पीड़ित हो बोला—॥४४-४८॥

ब्राह्मण ने कहा—आह ! मुझ निरपराध सद्ब्राह्मण के प्रति किसने यह पीड़ाकारक कार्य किया ? ब्राह्मण सबका मित्र कहा जाता है, फिर मैंने तो कोई अपराध भी नहीं किया है ॥४९॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा आर्त मुनि की इन बातों को सुनकर किंकर्तव्यविमूढ हो गया। उसका सारा उत्साह

आत्मानमात्मना कृत्वा स्थिरं राजाऽब्रवीदिदम् ॥५२॥

राजोवाच

को भवान्द्विजशार्दूल किमर्थमिह चाऽऽगत. । वद पापकृते मह्यं वद मे निष्कृतिं पराम् ॥५३॥
ब्रह्महा वर्णिभिः किंतु श्वपचैरपि जातुचित् । न स्प्रष्टव्यो महाबुद्धे द्रष्टव्यो न कदाचन ॥५४॥

ब्रह्मोवाच

तद्राजवचनं श्रुत्वा मुनिपुत्रोऽब्रवीद्वचः ॥५५॥

मुनिपुत्र उवाच

उत्क्रमिष्यन्ति मे प्राणा अतो वक्ष्यामि किंचन । स्वच्छन्दवृत्तिताज्ञाने विद्धि पाक च कर्मणाम् ॥५६॥
आत्मार्थं तु न शोचामि वृद्धौ तु पितरौ मम । तयोः शुश्रूषक कः स्यादन्धयोरेकपुत्रयोः ॥५७॥
विना मया महारण्ये कथं तौ जीवयिष्यत । ममाभाग्यमहो कीदृक्पितृशुश्रूषणे क्षतिः ॥५८॥
जाता मेऽद्य विना प्राणैर्हा विधे किं कृतं त्वया । तथाऽपि गच्छ तत्र त्वं गृहीतकलशस्त्वरन् ॥५९॥
ताभ्या देहचुदपानं त्वं यथा तौ न मरिष्यतः ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य गताः प्राणा महावने । विसृज्य सशरं चापमादाय कलशं नृपः ॥६१॥
तत्रागात्स तु वेगेन यत्र वृद्धौ महावने । वृद्धौ चापि तदा रात्रौ तावन्योन्यं समूचतुः ॥६२॥

जाता रहा। वह धीरे धीरे उस स्थान पर आया। वह तेज से जलते हुए उस ब्राह्मणकुमार को देखकर स्वयं बाण-विद्ध-सा मूर्च्छित हो गया। धीरे-धीरे उस राजा ने अपने को सम्हालकर कहा—॥५०-५३॥

राजा ने कहा—द्विजश्रेष्ठ! आप कौन हैं? यहाँ किसलिए आये? आप इस पापी से कहिये, साथ ही इस महापाप का क्या प्रतिकार है, इसको भी बतलाइये। महाबुद्धिमान्! ब्रह्मघाती मनुष्य किसी वर्ण के मनुष्यों म तो कौन कहे चाण्डालो से भी छूने योग्य नही होता। उसकी ओर देखना भी नही चाहिए ॥५३-५४॥

ब्रह्मा ने कहा—उस राजा की बातो को सुनकर मुनिपुत्र ने कहा ॥५५॥

मुनिपुत्र ने कहा—मेरे प्राण अभी निकल जायेंगे इसलिये कुछ कह रहा हूँ सुनो, स्वयं हो जाने वाले व्यवहारो का कारण पूर्वजन्म के कर्मों का फल समझो। मैं स्वयं अपने लिये शोक नहीं कर रहा हूँ, परन्तु मेरे वृद्ध माँ-बाप हैं, उन इकलौते पुत्र वाले अन्धे वृद्धो की सेवा करने वाला अब कौन होगा? मेरे विना अब इस घनघोर जगल म वे कैसे जीवित रहेंगे? आह! मेरा यह कैसा दुर्भाग्य है कि मेरी मृत्यु से माता पिता की सेवा मे बाधा पड गई। हा! अकरुण विधाता! तुमने यह क्या किया? तथापि तुम कलश ले लो और शीघ्र वहाँ जाओ। उनको पानी पीने के लिये दो, जिससे कि वे दोनो मरने न पायें ॥५६-६०॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार वह कह ही रहा था कि उसके प्राण उस महावन म निकल गये। राजा यह देखकर बाण सहित धनुष को फेंक दिया तथा स्वयं जल-कलश लेकर बडी शीघ्रता से वहाँ गया, जहाँ दोनों वृद्ध थे। वे दोनो बूढ़े भी कुछ अधिक विलम्ब होने के कारण उस समय रात्रि मे एक दूसरे से कह रहे थे ॥६१-६२॥

वृद्धावूचतुः

उद्विग्न. कुपितो वा स्यादथवा भक्षितः कथम् । न प्राप्तश्चाऽऽवयोर्यष्टिः किं कुर्मः का गतिर्भवेत् ॥६३॥
न कोऽपि तादृशः पुत्रो विद्यते सचराचरे । यः पित्रोरन्यथा वाक्यं न करोत्यपि निन्दितः ॥६४॥
वज्रादपि कठोरं वा जीवितं तमपश्यतोः । शीघ्रं न यान्ति यत्प्राणास्तदेकायत्तजीवयो ॥६५॥

ब्रह्मोवाच

एवं बहुविधा वाचो वृद्धयोर्वदतोर्वने । तदा दशरथो राजा शनैस्तं देशमभ्यगात् ॥६६॥
पादसंचारशब्देन मेनाते सुतमागतम् ॥६७॥

वृद्धावूचतुः

सुतो वत्स चिरात्प्राप्तस्त्वं दृष्टिस्त्वं परायणम् । न ब्रूषे किंतु रुष्टोऽसि वृद्धयोरन्धयोः सुतः ॥६८॥

ब्रह्मोवाच

सशल्य इव दुःखार्तः शोचन्दुष्कृतमात्मनः । स भीत इव राजेन्द्रस्तावुवाचाथ नारद ॥६९॥
उदपानं च कुरुतां तच्छ्रुत्वा नृपभाषितम् । नायं वक्ता सुतोऽस्माकं को भवांस्तत्पुरा वद ॥७०॥
पश्चात्पिबावः पानीयं ततो राजाऽब्रवीच्च तौ ॥७१॥

राजोवाच

तत्र तिष्ठति वा पुत्रो यत्र वारिसमाश्रय ॥७२॥

वृद्धों ने कहा—क्या वह ऊब गया या कुपित हो गया ? अथवा जंगली जानवर ने उसको खा डाला ? आह ! वह हम लोगों के हाथ की लकड़ी (सहारा) नहीं आया। क्या करें ? हम लोगों की उसके बिना क्या गति होगी ? अखिल चराचरात्मक जगत् में उसके समान कोई भी पुत्र नहीं, जो डाँटने-फटकारने पर भी माता के कहने के विरुद्ध काम नहीं करता । हम लोगों का जीवन वज्र से भी अधिक कठोर है जो उसको न देखकर उसी के सहारे जीनेवाले हमारे प्राण शीघ्र नहीं निकलते ॥६३-६५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार की बहुत सी बातें वे दोनों वृद्ध उस वन में कह रहे थे कि इतने में राजा दशरथ धीरे से उस स्थान पर पहुँचा। उसके पैर की आहट पाकर दोनों ने समझा कि उनका प्रिय-पुत्र आ गया ॥६६-६७॥

वृद्धों ने कहा—वत्स ! क्यों इतने विलम्ब में आये ? तुम हमारे नेत्र हो, एकमात्र आधार हो, बोलते नहीं हो, क्या इन बूढ़े अन्धे के पुत्र तुम रुष्ट हो गये हो ? ॥६८॥

ब्रह्मा ने कहा—इन शब्दों को सुनकर वह राजा मानों बाणों से आहत-सा हो गया। दुःख से उसको तीव्र वेदना हुई। नारद ! पाप का स्मरण करते हुए उस राजेन्द्र ने डरते-डरते उन दोनों वृद्धों से कहा—'यह जल पीजिये।' राजा की उस बोली को सुनकर उन दोनों ने कहा—'यह वक्ता मेरा पुत्र नहीं जान पड़ता। अतः आप पहले यह बतलाइये कि आप कौन हैं, पीछे हम जल ग्रहण करेंगे।' यह सुनकर राजा ने उनसे कहा ॥६९-७१॥

राजा ने कहा—इस समय आपका पुत्र जलाशय के तट पर पड़ा हुआ है ॥७२॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वोचतुरार्तौ तौ सत्यं ब्रूहि न चान्यथा । आचचक्षे ततो राजा सर्वमेव यथातथम् ॥७३॥
ततस्तु पतितौ वृद्धौ तत्राऽऽवां नय मा स्पृश । ब्रह्मघ्नस्पर्शनं पापं न कदाचिद्विनश्यति ॥७४॥
निन्ये स श्रवणं वृद्धं सभार्यं नृपसत्तमः । यत्रासौ पतितः पुत्रस्तं स्पृष्ट्वा तौ विलेपतुः ॥७५॥

वृद्धावूचतुः

यथा पुत्रवियोगेन मृत्युर्नो विहितस्तथा । त्वं चापि पाप पुत्रस्य वियोगान्मृत्युमाप्स्यसि ॥७६॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु[1] जल्पतोर्ब्रह्मन्गताः प्राणास्ततो नृपः । अग्निना योजयामास वृद्धौ च ऋषिपुत्रकम् ॥७७॥
ततो जगाम नगरं दुःखितो नृपतिर्मुने । वसिष्ठाय च तत्सर्वं न्यवेदयदशेषतः ॥७८॥
नृपाणां सूर्यवंश्यानां वसिष्ठो हि परा गतिः । वसिष्ठोऽपि द्विजश्रेष्ठैः संमन्त्र्याऽऽह च निष्कृतिम् ॥७९॥

वसिष्ठ उवाच

गालवं वामदेवं च जाबालिमथ कश्यपम् । एतानन्यान्समाहूय हयमेधाय यत्नतः ॥८०॥
यजस्व हयमेधैश्च बहुभिर्बहुदक्षिणैः ॥८१॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर उन दुःखी वृद्धों ने कहा—'सच्ची बात कहो झूठी मत बोलो।' तदनन्तर राजा ने सत्य सत्य आदि से अन्त तक सब कुछ कह सुनाया। यह सुनकर वे दोनों वृद्ध मूर्च्छित हो नीचे गिर पड़े। पुनः कुछ अपने को सम्हाल कर उन्होंने कहा कि हम दोनों को वहाँ ले चलो, परन्तु शरीर-स्पर्श मत करो, क्योंकि ब्रह्महत्या करने वाले के स्पर्श से जो पाप होता है वह कभी भी दूर नहीं होता है। अन्त में वह राजर्षि वृद्ध श्रवण को स्त्रीसहित वहाँ लिवा ले गया जहाँ उनका वह प्यारा पुत्र मरा पड़ा हुआ था। उसका स्पर्श कर वे दोनों विलाप करने लगे ॥७३-७५॥

वृद्ध ने कहा—जिस प्रकार पुत्र-वियोग से हम दोनों की मृत्यु हो रही है उसी प्रकार ऐ पापी! तू भी अपने पुत्र के वियोग से मरेगा ॥७६॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहते हुए उन दोनों ने प्राण-त्याग कर दिया। इसके बाद राजा ने अग्नि से उन दोनों वृद्धों और ऋषि-कुमार की दाह क्रिया की। मुने! तब वह राजा अति दुःखी हो नगर की ओर लौटा। नगर जाकर उसने गुरु वसिष्ठ से सारा वृत्तान्त पूर्णरूप से कह सुनाया। गुरु वसिष्ठ ही सूर्यवंशी राजाओं के एकमात्र गति (आधार) थे। उन्होंने भी अनेक श्रेष्ठ ब्राह्मणों से परामर्श कर इस पाप की निष्कृति (उद्धार) बताई ॥७७-७९॥

वसिष्ठ ने कहा—गालव वामदेव जाबालि और कश्यप इनको तथा अन्य ऋषियों को हयमेध यज्ञ के लिये विधिपूर्वक निमन्त्रण देकर बुलाओ। फिर अनेकों उत्तम दक्षिणावाले अश्वमेध यज्ञ करो ॥८०-८१॥

---

१ क. तु बुवतो०।

ब्रह्मोवाच

अकरोद्धयमेधाश्च राजा दशरथो द्विजैः। एतस्मिन्नन्तरे तत्र वागुवाचाशरीरिणी॥८२॥

आकाशवाण्युवाच

पूतं शरीरमभवद्राज्ञो दशरथस्य हि। व्यवहार्यश्च भविता भविष्यन्ति तथा सुताः॥
ज्येष्ठपुत्रप्रसादेन राजाऽपापो भविष्यति ॥८३॥

ब्रह्मोवाच

ततो बहुतिथे काले ऋष्यभृङ्गान्मुनीश्वरात्। देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं सुता आसन्सुरोपमाः॥८४॥
कौशल्यायां तथा रामः सुमित्रायां च लक्ष्मणः। शत्रुघ्नश्चापि कैकेय्यां भरतो मतिमत्तरः॥८५॥
ते सर्वे मतिमन्तश्च प्रिया राज्ञो वशे स्थिताः। तं राजानमृषिः प्राप्य विश्वामित्रः प्रजापतिः॥८६॥
रामं च लक्ष्मणं चापि अयाचत महामते। यज्ञसंरक्षणार्थाय ज्ञाततन्महिमा मुनिः॥८७॥
चिरप्राप्तसुतो वृद्धो राजा नैवेत्यभाषत ॥८८॥

राजोवाच

महता दैवयोगेन कथंचिद्वार्धके मुने। जातावानन्ददसदोहृदायकौ मम बालकौ ॥८९॥
सशरीरमिदं राज्यं दास्ये नैव सुताविमौ ॥९०॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा दशरथ ने गुरु के आदेशानुसार अनेकों अश्वमेध यज्ञ किये। इसी बीच वहाँ आकाशवाणी हुई॥८२॥

आकाशवाणी ने कहा—अब राजा दशरथ का शरीर पवित्र हो गया। अब इनके साथ (सामाजिक) व्यवहार किया जाना चाहिये। उनके पुत्र उत्पन्न होंगे। और अपने जेठे पुत्र के पुण्यप्रभाव से ये राजा निष्पाप हो जायेंगे॥८३॥

ब्रह्मा ने कहा—कुछ समय बीत जाने के बाद मुनीश्वर ऋष्य भृग के प्रभाव से देवों की कार्य सिद्धि के लिये राजा के देव तुल्य चार पुत्र उत्पन्न हुए। कौशल्या से राम सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न तथा कैकेयी से भरत नाम के महाबुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न हुए। वे सभी बुद्धिमान बालक राजा के प्रिय और वशवर्ती थे। महाबुद्धिमान्! एक बार प्रजापति ऋषि विश्वामित्र उस राजा के पास आये और यज्ञ की रक्षा के लिये राम और लक्ष्मण को माँगने लगे। क्योंकि तत्त्वदर्शी मुनि उन दोनों पराक्रमी बालकों की महिमा को जानते थे। परन्तु वृद्ध राजा दशरथ ने चिरकाल के बाद प्राप्त इन दोनों पुत्रों को देने में आनाकानी की और कहा॥८४-८८॥

राजा ने कहा—मुने! बहुत बड़ी दैव-कृपा से किसी प्रकार इस वृद्धावस्था में अपार आनन्द देने वाले ये दोनों पुत्र मुझे प्राप्त हुए हैं। अतः मैं शरीर के सहित अपना सारा राज्य दे सकता हूँ परन्तु ये दोनों पुत्र नहीं दूँगा॥८९-९०॥

ब्रह्मोवाच

वसिष्ठेन तदा प्रोक्तो राजा दशरथस्त्विति ॥९१॥

वसिष्ठ उवाच

रघव प्रार्थनाभङ्ग न राजन्क्वापि शिक्षिता ॥९२॥

ब्रह्मोवाच

राम च लक्ष्मण चैव कथचिदवदन्नृप ॥९३॥

राजोवाच

विश्वामित्रस्य श्रह्मर्थे कुरुता (त) यज्ञरक्षणम् ॥९४॥

ब्रह्मोवाच

वदन्निति सुतौ सोष्ण निश्वसन्म्लपिताधर । पुत्रौ समर्पयामास विश्वामित्रस्य शास्त्रकृत् ॥९५॥
तथेत्युक्त्वा दशरथ नमस्य च पुन पुन । जग्मतू रक्षणार्थाय विश्वामित्रेण तौ मुदा ॥९६॥
तत प्रहृष्ट¹स मुनिर्मुदा प्रादात्तदोभयो । माहेश्वरीं महाविद्या धनुर्विद्यापुर सराम् ॥९७॥
शास्त्रीमास्त्रीं लौकिकीं च रथविद्या गजोद्भवाम् । अश्वविद्या गदाविद्या मन्त्राह्वानविसर्जने ॥९८॥
सर्वविद्यामथावाप्य उभौ तौ रामलक्ष्मणौ । वनौकसा हितार्थाय जघ्नतुस्ताटका वने ॥९९॥
अहल्या शापनिर्मुक्ता पादस्पर्शाच्च चक्रतु । यज्ञविध्वसनायाताञ्जघ्नतुस्तत्र राक्षसान् ॥१००॥

ब्रह्मा ने कहा—तब वशिष्ठ ने राजा से इस प्रकार कहा ॥९१॥

वसिष्ठ ने कहा—रघुवंशियो ने प्रार्थना को अस्वीकार कर देना कही भी नही सीखा है ॥९२॥

ब्रह्मा ने कहा—यह गुरुवाक्य सुनकर राजा ने किसी प्रकार राम और लक्ष्मण से कहा ॥९३॥

राजा ने कहा—विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करो ॥९४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार पुत्रो को आज्ञा देते समय राजा ने गरम सांस ली उसके ओठ सूख गये, फिर भी शास्त्रज्ञ राजा ने दोनो पुत्रो को विश्वामित्र के हाथ मे सौंप दिया ॥९५॥ पुत्रो ने भी जैसी आज्ञा कहकर बार-बार पिता को प्रणाम किया और प्रसन्नचित्त हो यज्ञ की रक्षा के लिये विश्वामित्र के साथ चल दिये ॥९६॥ तदनन्तर प्रसन्न मुनि ने आनन्दपूर्वक उन दोनो बालको को धनुर्विद्या आदि महेश्वर सबधी महाविद्या एव आह्वान और विसर्जन के मत्रो सहित शस्त्रविद्या अस्त्रविद्या लौकिक विद्या रथ विद्या हस्ति विद्या अश्व विद्या और गदा विद्या प्रदान की ॥९७ ९८॥ इस प्रकार गुरु विश्वामित्र से सब विद्याये प्राप्त कर उन दोनो राम और लक्ष्मण ने वनवासी ऋषि-मुनियो के हित के लिये वन मे ताडका को मार डाला ॥९९॥ अपने पावन चरण के स्पर्श से अहल्या को शाप मुक्त किया और यज्ञ विध्वस के लिये आये हुए अधम राक्षसो का वध किया ॥१००॥ उन दोनो विद्या-कुशल

१ङ घ ०रन्द्रुर । २घ ङ. घ ०हृष्टो गाधयो मुदा ।

कृतविद्यौ धनुष्पाणी चक्रतुर्यज्ञरक्षणम् । ततो महामखे वृत्ते विश्वामित्रो मुनीश्वरः ॥१०१॥
पुत्राभ्यां सहितो राज्ञो जनकं द्रष्टुमभ्यगात् । चित्रामदर्शयत्तत्र राजमध्ये नृपात्मजः ॥१०२॥
रामः सौमित्रिसहितो धनुर्विद्यां गुरोर्मताम् । तत्प्रीतो जनकः प्रादात्सीतां लक्ष्मीमयोनिजाम् ॥१०३॥
तथैव लक्ष्मणस्यापि भरतस्यानुजस्य च । शत्रुघ्नभरतादीनां वसिष्ठादिमते स्थितः ॥१०४॥
राजा दशरथः श्रीमान्विवाहमकरोन्मुने । ततो बहुतिथे काले राज्यं तस्य प्रयच्छति ॥१०५॥
नृपतौ सर्वलोकानामनुमत्या गुरोरपि । मन्थरात्मकदुर्दैवप्रेरिता मत्सराकुला ॥१०६॥
कैकेयी विघ्नमातस्थे वनप्रव्राजनं तथा । भरतस्य च तद्राज्यं राजा नैव च दत्तवान् ॥१०७॥
पितरं सत्यवाक्यं तं कुर्वन्रामो महावनम्[1] । विवेश सीतया सार्धं तथा सौमित्रिणा सह ॥१०८॥
सतां च मानसं शुद्धं स विवेश स्वकैर्गुणैः । तस्मिन्विनिर्गते रामे वनवासाय दीक्षिते ॥१०९॥
समं लक्ष्मणसीताभ्यां राज्यतृष्णाविवर्जिते । तं रामं चापि सौमित्रिं सीतां च गुणशालिनीम् ॥११०॥
दुःखेन महताऽऽविष्टो ब्रह्मशापं च संस्मरन् । तदा दशरथो राजा प्राणांस्तत्याज दुःखितः ॥१११॥
कृतकर्मविपाकेन राजा नीतो यमानुगैः । तस्मै[2] राज्ञे महाप्राज्ञ यावत्स्थावरजङ्गमे[3] ॥११२॥
यमसद्मन्यनेकानि तामिस्रादीनि नारद । नरकाण्यथ घोराणि भीषणानि बहूनि च ॥११३॥

धनुर्धारी कुमारों ने इस प्रकार यज्ञ की रक्षा की। तदनन्तर महायज्ञ के विधिपूर्वक सम्पन्न हो जाने के बाद महामुनीश्वर विश्वामित्र उन कुमारों के साथ राजा जनक को देखने के लिये जनकपुर गये ॥१०१½॥ वहाँ नृप-कुमार राम ने लक्ष्मण के सहित उस राज-सभा में गुरु द्वारा प्राप्त और अभिमत अद्भुत धनुर्विद्या का प्रदर्शन किया। उनकी कला से प्रसन्न होकर राजा जनक ने अपनी कन्या-लक्ष्मी अयोनिजा सीता राम को दे दी ॥१०२-१०३॥ उसी प्रकार वसिष्ठ आदि गुरुजनों के कथनानुसार श्रीमान् राजा दशरथ ने भरतानुज लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न आदि भाइयों का भी विवाह कर दिया ॥१०४॥

बहुत दिन बीत जाने पर राजा ने प्रजा और गुरु की अनुमति से राम को राज्य देने का विचार किया परन्तु मन्थरा के रूप में आये दुर्दैव की प्रेरणा से कैकेयी ईर्ष्या से उन्मत्त हो गई ॥१०५-१०६॥ उसने इस कार्य में विघ्न उपस्थित किया और राम को वन भेजने और भरत को राज्य देने का वर माँगा। किन्तु राजा ने (पुत्र-स्नेह वश) नहीं दिया ॥१०७॥ पितृभक्त राम अपने पिता के वचन को सत्य सिद्ध करने के लिये सीता और सुमित्रा-पुत्र लक्ष्मण के साथ महावन में प्रविष्ट हुए, और साथ ही अपने (उच्च) गुणों के कारण सज्जनों के शुद्ध मन में भी प्रविष्ट हो गये ॥१०७-१०८½॥ इधर वनवास के लिये दीक्षित (दृढ़ प्रतिज्ञ) तथा राज्य-लोभ से रहित राम के सीता और लक्ष्मण के सहित चले जाने पर राम लक्ष्मण और गुणवती सीता के वियोग की महान् व्यथा से व्यथित होकर ब्रह्मशाप का स्मरण करते हुए दुःखी राजा ने अपने प्राणों को छोड़ दिया ॥१०९-१११॥ किये हुए कर्मों के परिणामस्वरूप राजा को यम के अनुचर ले गये। महाप्राज्ञ नारद! स्थावर-जंगम रूप यमालय में जितने भयंकर और तामिस्र आदि नरक हैं, उनमें राजा (दशरथ) पृथक्-पृथक् रूप से डाले गये ॥११२-११३½॥ उनको अग्नि में जलाया

---

१ घ. ङ. च. कृतात्मा तो घ०। २ च. तस्मिन्राज्ञि महाप्राज्ञे या०। ३ घ. ङ. च. ०ङ्गमम्। य०।

तत्र क्षिप्तस्तदा राजा नरकेषु पृथक्पृथक् । पच्यते छिद्यते राजा पिष्यते[1] चूर्ण्यते तथा ॥११४॥
शोष्यते दश्यते भूयो दह्यते च निमज्ज्यते । एवमादिषु घोरेषु नरकेषु च पच्यते ॥११५॥
रामोऽपि गच्छन्नध्वानं चित्रकूटमथागमत्[2] । तत्रैव त्रीणि वर्षाणि व्यतीतानि महामते ॥११६॥
पुनः स दक्षिणामाशामाक्रामद्दण्डकं वनम् । विख्यातं त्रिषु लोकेषु देशानां तद्धि पुण्यदम् ॥११७॥
प्राविशत्तन्महारण्यं भीषणं दैत्यसेवितम् । तद्भयादृषिभिस्त्यक्तं हत्वा दैत्यांस्तु राक्षसान् ॥११८॥
विचरन्दण्डकारण्ये ऋषिसेव्यमथाकरोत् । तत्रेदं वृत्तमाख्यास्ये शृणु नारद यत्नतः ॥११९॥
तावच्छनैस्त्वगाद्रामो यावद्योजनपञ्चकम् । गौतमीं समनुप्राप्तो राजाऽपि नरके स्थितः ॥१२०॥
यमः स्वकिंकरानाह रामो दशरथात्मजः । गौतमीमभितो याति पितरं तस्य धीमतः ॥१२१॥
आकर्षन्त्वथ राजानं नरकान्नात्र संशयः । उत्तीर्य गौतमीं याति यावद्योजनपञ्चकम् ॥१२२॥
रामस्तावत्तस्य पिता नरके नैव पच्यताम् । यदेतन्मद्वचः पुण्यं न कुर्युर्यदि दूतकाः ॥१२३॥
ततश्च नरके घोरे यूयं सर्वे निमज्जथ । या काप्युक्ता परा शक्तिः शिवस्य समवायिनी ॥१२४॥
तामेव गौतमीं सन्तो वदन्त्यम्भःस्वरूपिणीम् । हरिब्रह्ममहेशानां मान्या वन्द्या च सैव यत् ॥१२५॥
निस्तीर्यते न केनापि तदतिक्रमजं त्वघम् । पापिनोऽप्यात्मजः कश्चिद्यदच (स्य) गङ्गामनुस्मरेत् ॥१२६॥

गया, चक्की में पीसा गया, सुखाया गया, दाँतो से काटा गया, पुन जलाया गया, फिर डुबाया गया, इस प्रकार विभिन्न घोर नरको में उन्हे यत्रणा दी गई ॥११४-११५॥

इधर राम भी वन-मार्ग पर चलते-चलते चित्रकूट आये। महामते! उसी स्थान पर उन्होंने तीन वर्ष व्यतीत किये ॥११६॥ पुन वे दक्षिण दिशा की ओर चले और तीनो लोक में विख्यात, परम पुण्यप्रद उस दण्डक वन म प्रविष्ट हुये, जो दैत्यो के रहने के कारण अत्यन्त भयङ्कर था। दैत्यों के भय से ऋषियो ने भी उस वन को छोड दिया था। उन्होंने उस दण्डकारण्य में घूम-घूम कर उन दैत्यो का वध किया तथा वन को ऋषियों के निवास-योग्य बनाया ॥११७-११८½॥ नारद! अब आगे जो घटना हुई उसको कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनो। राम भी तब तक धीरे-धीरे गौतमी की ओर बढे और केवल पाँच योजन दूर रह गये थे, उस समय तक राजा नरक म ही थे ॥११९-१२०॥ यह देखकर यमराज ने अपने अनुचरो स कहा कि दशरथ-पुत्र राम गौतमी के सन्निकट जा रहे हैं अत उस बुद्धिमान् क पिता राजा दशरथ को नरक से निकाल दो इसमें सशय करने की आवश्यकता नहीं है। ॥१२१½॥ जब तक राम गौतमी को पार कर पाँच योजन दूर नहीं चले जाते, तब तक उनके पिता को नरक में मत पकाओ ॥१२२½॥ यदि मेरे इस पवित्र वचन की उपेक्षा करोगे तो ऐ दूतो! तुम लोग अवश्य घोर नरक में डूबोगे ॥१२३½॥ शिव की जो सर्वी-मूल पराशक्ति है उसी के जलमय रूप को सन्त लोग गौतमी कहते हैं ॥१२४½॥ इसलिए वही गौतमी हरि, ब्रह्मा और महेश की मान्य और पूज्य हैं, अत उसके अपमान करने से उत्पन्न पापों से किसी का उद्धार नहीं हो सकता ॥१२५½॥ पापी पिता का भी कोई पुत्र यदि गंगा का स्मरण करता है तो उसका पिता भी घोर नरकों से निकल कर मुक्ति प्राप्त करता है ॥१२६½॥ फिर जिस पिता का राम के समान पुत्र गौतमी

---

१ क पच्यन्। २ क ख ०थागात।

सोऽनेकदुर्गनिरयान्निर्गतो मुक्ततां व्रजेत्। किं पुनस्तादृशः पुत्रो गौतमीनिकटे स्थितः॥१२७॥
यस्यासौ नरके पक्तुं न कैरपि हि शक्यते। दक्षिणाशापतेर्वाक्यं निशम्य यमकिंकरा.॥१२८॥
नरके पच्यमानं तमयोध्याधिपतिं नृपम्। उत्तार्य घोरनरकाद्वचनं चेदमब्रुवन् ॥१२९॥

यमकिंकरा ऊचुः

धन्योऽसि नृपशार्दूल यस्य पुत्रः स तादृश.। इह चामुत्र विश्रान्तिः सुपुत्रः केन लभ्यते॥१३०॥

ब्रह्मोवाच

स विश्रान्तः शनै राजा किंकरान्वाक्यमब्रवीत् ॥१३१॥

राजोवाच

नरकेष्वथ घोरेषु पच्यमानः पुनः पुनः। कथं त्वाकर्षितः शीघ्रं तन्मे वक्तुमिहार्हथ॥१३२॥

ब्रह्मोवाच

तत्र कश्चिच्छान्तमना राजानमिदमब्रवीत् ॥१३३॥

यमदूत उवाच

वेदशास्त्रपुराणादावेतद्गोप्यं प्रयत्नतः। प्रकाश्यते तदपि ते सामर्थ्यं पुत्रतीर्थयो.॥१३४॥
रामस्तव सुत श्रीमान्गौतमीतीरमागतः। तस्मात्त्वं नरकाद्घोरादाकृष्टोऽसि नरोत्तम॥१३५॥
यदि स्वा तत्र गौतम्या स्मरेद्रामः सलक्ष्मण.। स्नानं कृत्वाऽथ पिण्डादि ते दद्यात्स नृपोत्तम॥
ततस्त्वं सर्वपापेभ्यो मुक्तो यासि त्रिविष्टपम् ॥१३६॥

के निकट अवस्थित हो, उसके विषय मे तो कहना ही क्या है? अतएव इस समय दशरथ को नरक मे कोई भी नही पीडित कर सकता है। दक्षिण दिशा के स्वामी यम की बातो को सुनकर यम-दूतो ने नरक मे पडे उस अयोध्या-पति राजा को उस घोर नरक से निकाला और कहा॥१२७-१२९॥

यमदूत बोले—नृपश्रेष्ठ! तुम धन्य हो, जिसका वैसा (राम के समान) पुत्र है। (क्योंकि) इहलोक और परलोक मे शान्ति प्रदान करने वाला सुपुत्र किसको मिलता है? (अर्थात् बडे भाग्यशाली को ही मिलता है)॥१३०॥

ब्रह्मा ने कहा—धीरे-धीरे (उस नरक-यातना से) विश्राम मिलने पर राजा ने यमदूतो से कहा॥१३१॥

राजा ने कहा—बार-बार घोर नरक म यातना सहने वाले मुझको तुम लोगो ने क्यो निकाला? यह शीघ्र ही मुझसे बतलाओ॥१३२॥

ब्रह्मा ने कहा—उन दूतो मे से किसी शान्त दूत ने राजा से कहा॥१३३॥

यमदूत ने कहा—वेद-शास्त्र और पुराण आदि मे यह बात यत्नपूर्वक गुप्त रूप मे कही गई है, परन्तु आज मैं तुमको पुत्र और तीर्थ का सामर्थ्य बता रहा हूँ। तुम्हारे पुत्र श्रीमान् राम गौतमी-तट पर आये हुये हैं, नरोत्तम! इसीलिये तुम इस घोर नरक से निकाले गये हो। यदि लक्ष्मण के सहित वह राम उस गौतमी मे तुम्हारा स्मरण करेंगे और हे नृपोत्तम! यदि स्नान कर तुम्हे पिण्ड आदि देंगे, तो तुम सब पापो से मुक्त होकर स्वर्ग चले जाओगे।॥१३४-१३६॥

राजोवाच

तत्र गत्वा भवद्वाक्यमाख्यास्ये स्वसुतौ प्रति । भवन्त एव शरणमनुज्ञां दातुमर्हथ ॥१३७॥

ब्रह्मोवाच

तद्राजवचनं श्रुत्वा कृपया यमकिंकराः । आज्ञां च प्रददुस्तस्मै राजा प्रागात्सुतौ प्रति ॥१३८॥
भीषणं यातनादेहमापन्नो निःश्वसन्मुहुः । निरीक्ष्य[1] स्वयं लज्जमानः कृतं कर्म च संस्मरन् ॥१३९॥
स्वेच्छया विहरन्गङ्गामाससाद च राघवः । गौतम्यास्तटमाश्रित्य रामो लक्ष्मण एव च ॥१४०॥
सीतया सह वैदेह्या सस्नौ चैव यथाविधि । नैव तत्राभवद्भोज्यं भक्ष्यं वा गौतमीतटे ॥१४१॥
तद्दिने तत्र वसतां गौतमीतीरवासिनाम् । तद्दृष्ट्वा दुःखितो भ्राता लक्ष्मणो राममब्रवीत् ॥१४२॥

लक्ष्मण उवाच

पुत्रौ[2] दशरथस्याऽऽवां तवापि बलमीदृशम् । नास्ति भोज्यमथास्माकं गङ्गातीरनिवासिनाम् ॥१४३॥

राम उवाच

भ्रातर्यद्विहितं कर्म नैव तच्चान्यथा भवेत् । पृथिव्यामन्नपूर्णायां वयमन्नाभिलाषिणः ॥१४४॥
सौमित्रे नूनमस्माभिर्न ब्राह्मणमुखे हुतम् । अवज्ञया महीदेवास्तर्पयन्त्यर्चयन्ति न[3] ॥१४५॥
ते च लक्ष्मण जायन्ते सर्वदैव बुभुक्षिताः । स्नात्वा देवानथाभ्यर्च्य होतव्यश्च हुताशनः ॥
ततः स्वसमये[4] देवो विधास्यत्यशनं तु नौ ॥१४६॥

राजा ने कहा—वहाँ जाकर अपने पुत्रों से आपकी बात कहूँगा। अब आप ही मेरे एकमात्र शरण हैं आज्ञा दीजिये ॥१३७॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा की प्रार्थना सुनकर यमदूतों ने कृपाकर उस राजा को आज्ञा दे दी। राजा भी अपने पुत्रों के समीप चल पड़ा। उसका यातना-शरीर (मृत्यु के बाद पाप भोग के लिए जीव को एक शरीर दिया जाता है वही यातना-शरीर कहलाता है) भयङ्कर था। वह बार-बार लम्बी साँस ले रहा था और अपने पूर्व के किये कर्मों का स्मरण कर तथा अपनी वर्तमान दशा को देखकर लज्जित हो रहा था। राघव भी स्वेच्छया घूमते हुये गङ्गा तट पर आये। गौतमी-तट पर आश्रय पाकर लक्ष्मण और विदेहतनया सीता के साथ उन्होंने यथा विधि स्नान किया परन्तु उस दिन गौतमी-तट पर निवास करनेवाले उन तीनों को कोई भी भोज्य या भक्ष्य पदार्थ प्राप्त नहीं हुआ। यह देखकर लक्ष्मण अत्यन्त दुःखी हुये। उन्होंने राम से कहा ॥१३८-१४२॥

लक्ष्मण ने कहा—हम दोनों दशरथ के पुत्र हैं और आपको ऐसी अद्भुत शक्ति भी प्राप्त है। फिर भी आज गङ्गा-तट पर निवास करते हुए हम लोगों को भोज्य सामग्री नहीं मिल रही है ॥१४३॥

राम ने कहा—भ्राता! जो किये हुये कर्म हैं वे अन्यथा नहीं हो सकते। इस शस्य-सम्पन्न पृथ्वी पर हम अन्न के लिए चिन्तित हैं तो सौमित्र अवश्य ही हम लोगों ने ब्राह्मण के मुख में कोई पदार्थ नहीं दिया है अर्थात् किसी ब्राह्मण को नहीं खिलाया है। जो ब्राह्मणों को अवज्ञा से तृप्त करते हैं उनकी पूजा नहीं करते हैं वे (उनके अपमान के कारण) सर्वदा भूखे रहते हैं। अतः स्नान कर देवताओं की पूजा करनी चाहिए और तदनन्तर अग्नि में हवन करना चाहिए। इससे देवता अपने समय पर हम लोगों के लिए भोजन की व्यवस्था कर देंगे ॥१४४-१४६॥

---

१ घ ङ निरीक्ष्य स्व॰। २ घ ङ च पुत्रौ दशरथस्य त्व त॰। ३ घ च॰। ४ ङ च स्वयमपो।

ब्रह्मोवाच

भ्रात्रोः संजल्पतोरेवं पश्यतोः कर्मणो गतिम्। शनैर्दशरथो राजा तं देशमुपजग्मिवान्॥१४७॥
तं दृष्ट्वा लक्ष्मणः शीघ्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्। धनुराकृष्य कोपेन रक्षस्त्वं दानवोऽथवा॥१४८॥
आसन्नं च पुनर्दृष्ट्वा याहि यात्य (ह्य)त्र पुण्यभाक्। रामो दशरथो राजा धर्मभाक्पश्य वर्तते॥१४९॥
गुरुभक्तः सत्यसंधो देवब्राह्मणसेवकः। त्रैलोक्यरक्षादक्षोऽसौ वर्तते यत्र राघवः॥१५०॥
न तत्र त्वादृशामस्ति प्रवेशः पापकर्मणाम्। यदि प्रविशसे पाप ततो वधमवाप्स्यसि॥१५१॥
तत्पुनर्वचनं श्रुत्वा शनैराहूय वाचया। उवाचाधोमुखो भूत्वा स्नुषां पुत्रौ कृताञ्जलिः॥
मुहुरन्तर्विनिध्यायन्गतिं दुष्कृतकर्मणः　　　　॥१५२॥

राजोवाच

अहं दशरथो राजा पुत्रौ मे शृणुतं वचः। तिसृभिर्ब्रह्महत्याभिर्वृतोऽहं दुःखभागतः॥
छिन्नं पश्यत मे देहं नरकेषु च पातितम्[1]　　　　॥१५३॥

ब्रह्मोवाच

ततः कृताञ्जली रामः सीतया लक्ष्मणेन च। भूमौ[2] प्रणेमुस्ते सर्वे वचनं चैतदब्रुवन्॥१५४॥

सीतारामलक्ष्मणा ऊचुः

कस्येदं कर्मणस्तात फलं नृपतिसत्तम　　　　॥१५५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार दोनों भाई परस्पर वार्तालाप कर रहे थे और कर्म की गति का अनुभव कर रहे थे कि राजा दशरथ धीरे से उस स्थान पर पहुँचे। उनको देखकर लक्ष्मण ने अपना धनुष खींच लिया और क्रोधपूर्वक कहा—रुक जाओ, रुक जाओ। तुम दानव हो या राक्षस? पुनः उस भयङ्कर प्रतिमा को समीप आते देखकर उन्होंने कहा—जाओ जाओ देखो, यहाँ पुण्यशाली धर्मात्मा राजा राम हैं। जहाँ गुरु-भक्त सत्यप्रतिज्ञ देव-ब्राह्मण-सेवक और त्रैलोक्य की रक्षा में कुशल राम रहते हैं वहाँ तुम्हारे समान पापीजनों का प्रवेश नहीं होता। पापी! यदि तुम प्रवेश करोगे तो तुम्हारा वध अवश्य कर दिया जायगा। पुत्र की उन बातों को सुन कर उन्होंने धीरे से पुकारकर नीचे सिर किये हुए हाथ जोड़कर अपनी पुत्र-वधू और पुत्रों से बार-बार अपने दुष्कर्मों के फल का ध्यान करते हुए कहा॥१४७-१५२॥

राजा ने कहा—मैं राजा दशरथ हूँ। पुत्रो! मेरी बातें सुनो! मैं तीन ब्रह्महत्याओं के पाप से अत्यन्त दुःख पा रहा हूँ। नरकों में गिराये हुए मेरे कटे शरीर को देखो॥१५३॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर सीता और लक्ष्मण के साथ राम ने हाथ जोड़कर साष्टाङ्ग प्रणाम किया तथा उन सब ने यह वचन कहा॥१५४॥

सीता राम और लक्ष्मण ने कहा—महाराज! यह आपके किस कर्म का फल है?॥१५५॥

---

१. च. पातित०। २ घ ङ. च भूमि।

ब्रह्मोवाच

स च प्राह यथावृत्तं ब्रह्महत्यात्रयं तथा ॥१५६॥

राजोवाच

निष्कृतिर्ब्रह्महन्तॄणां पुत्रो क्वापि न विद्यते ॥१५७॥

ब्रह्मोवाच

ततो दुःखेन महताऽऽवृताः सर्वे भुवं गताः। राजानं वनवासं च मातरं पितरं तथा ॥१५८॥
दुःखागमं कर्मगतिं नरके पातनं तथा। एवमाद्यं संस्मृत्य मुमोह नृपतेः सुतः॥
विसंज्ञं नृपतिं दृष्ट्वा सीता वाक्यमथाब्रवीत् ॥१५९॥

सीतोवाच

न शोचन्ति महात्मानस्त्वादृशा व्यसनागमे। चिन्तयन्ति प्रतीकारं दैव्यमप्यथ मानुषम् ॥१६०॥
शोचद्भिर्युगसाहस्रं विपत्तिर्नैव तीर्यते। व्यामोहमाप्नुवन्तीह न कदाचिद्विचक्षणाः ॥१६१॥
किमनेनात्र दुःखेन निष्फलेन जनेश्वर। देहि हत्यां प्रथमतो या जाता ह्यतिभीषणा ॥१६२॥
पितृभक्तः पुण्यशीलो वेदवेदाङ्गपारगः। अनागा यो हतो विप्रस्तत्पापस्यात्र निष्कृतिम् ॥१६३॥
आचरामि यथाशास्त्रं मा शोकं कुरुतं युवाम्। द्वितीयां लक्ष्मणो हत्यां गृह्णातु त्वपरां भवान् ॥१६४॥

ब्रह्मा ने कहा—उन्होंने, जिस प्रकार तीन ब्रह्म-हत्यायें हुई थीं उनको उसी प्रकार कह दिया ॥१५६॥

राजा ने कहा—पुत्रो! ब्रह्म-हत्या करनेवालों के पाप का प्रतीकार कहीं भी नहीं है ॥१५७॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर सभी अत्यन्त दुःखी हो गये और दुःखावेग से मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। नृपति-पुत्र राम राजा की अवस्था, वनवास, माता पिता, दुःखों की प्राप्ति, कर्म-गति और पिता का नरक में गिराया जाना आदि बातों का स्मरण करके संज्ञा-हीन से हो गये। इस प्रकार राम को संज्ञा-शून्य देखकर सीता ने कहा—॥१५८-१५९॥

सीता ने कहा—आपके समान महात्मा लोग आपत्तियों के आ जाने पर शोक नहीं करते, प्रत्युत उसके प्रतीकार को सोचते हैं, चाहे वह प्रतीकार मानवीय हो या दैवी। सहस्र-युगों तक शोक करते रहने पर भी विपत्तियों से पार नहीं पाया जा सकता। अतएव विद्वान् व्यक्ति कभी भी इस लोक में मोह को नहीं प्राप्त होते हैं। जनेश्वर! इस निष्फल दुःख करने से क्या लाभ? पहली अति भीषण हत्या हो गई है। उसका फल मुझे दे दीजिये। पितृ-भक्त पुण्यशील, वेदवेदाङ्गों के पारदर्शी विद्वान् और निष्पाप ब्राह्मण की जो हत्या हुई है, उस पाप का प्रतीकार मैं शास्त्र-सम्मत उपाय से करूँगी। आप दोनों शोक मत कीजिये। दूसरी हत्या को लक्ष्मण और अवशिष्ट को आप ग्रहण कर लीजिये ॥१६०-१६४॥

ब्रह्मोवाच

एतद्धर्मयुत वाक्य सीतया भाषित दृढम् । तथेति चाऽऽहतुरुभौ ततो दशरथोऽब्रवीत् ॥१६५॥

दशरथ उवाच

त्व हि ब्रह्मविद कन्या जनकस्य त्वयोनिजा । भार्या रामस्य किं चित्र यद्युक्तमनुभाषसे ॥१६६॥
न कोऽपि भवता किंतु श्रम स्वल्पोऽपि विद्यते । गौतम्या स्नानदानेन पिण्डनिवपणेन च ॥१६७॥
तिसृभिर्ब्रह्महत्याभिर्मुक्ता यामि त्रिविष्टपम् । त्वया जनकसभूते स्वकुलोचितमीरितम् ॥१६८॥
प्रापयन्ति पर पार भवाब्धे कुलयोषित । गोदावर्या प्रसादेन कि नामास्त्यत्र दुर्लभम् ॥१६९॥

ब्रह्मोवाच

तथेति क्रियमाणे तु पिण्डदानाय शत्रुहा । नैवापश्यद्भक्ष्यभोज्य ततो लक्ष्मणब्रवीत् ॥१७०॥
लक्ष्मण प्राह विनयादिङ्गुद्याश्च फलानि च । सन्ति तेषा च पिण्याकमानीत तत्क्षणादिव ॥१७१॥
पिण्याकेनाथ गङ्गाया पिण्ड दातु तथा पितु । मन कुर्वंस्ततो रामो मन्दोऽभूदद्दु खितस्तदा ॥१७२॥
दैवी वागभवत्तत्र दु ख त्यज नृपात्मज । राज्यभ्रष्टो वन प्राप्त कि वै निष्किंचनो भवान ॥१७३॥
अशठो धर्मनिरतो न शोचितुमिहार्हसि । वित्तशाठ्येन यो धर्मं करोति स तु पातकी ॥१७४॥

ब्रह्मा ने कहा—सीता की इस धर्म-सम्मत और दृढ वाक्यो को सुनकर उन दोनो भाइयो ने भी स्वीकार कर लिया। इसके बाद स्वय दशरथ ने अपने मनोभाव व्यक्त किये ॥१६५॥

दशरथ ने कहा—तुम ब्रह्म-ज्ञानी जनक की अयोनिजा कन्या हो राम की भार्या हो तुम यदि ऐसी युक्ति पूर्ण बातें कहती हो तो कोई आश्चर्य नही। किन्तु तुम लोगो को कोई भी श्रम करने की आवश्यकता नही है। इसके लिये एक लघु उपाय है। गौतमी मे स्नान-दान करने और पिण्ड-दान मात्र मे मैं तीनो ब्रह्म-हत्याओ से मुक्त होकर स्वर्ग चला जाऊँगा। जनकात्मजे ! तुमने अपने कुल के अनुरूप ही उपाय बतलाया है। सत्य है कुलीन स्त्रियाँ मनुष्य को भवसागर से पार करा देती हैं। गोदावरी की कृपा से इस ससार मे कौन-सा पदार्थ रह जाता है ॥१६६ १६९॥

ब्रह्मा ने कहा—शत्रुहन्ता (राम) ने पिता के आदेशानुसार वैसे ही पिण्डदान करने को प्रस्तुत हुये परन्तु पिण्ड के उपयुक्त कोई भक्ष्य या भोज्य पदार्थ नही देखा तब लक्ष्मण से कहा। लक्ष्मण ने विनयपूर्वक कहा—इङ्गुदी के फल हैं। अत उन्होने तत्क्षण उन फलो का चूर्ण (आटा) ला दिया। जब राम उस इगुदी के चूर्ण का पिण्ड पिता को देने के लिये प्रस्तुत हुये तब उनको कुछ दु ख हुआ। उसी समय आकाश वाणी हुई कि हे नृप-पुत्र ! तुम शोक छोडो तुम इस समय राज्यच्युत हो और सर्वथा द्रव्यहीन हो ! तुम उदार हो और धर्म मे लीन रहने वाले व्यक्ति हो इसलिये शोक करने की आवश्यकता नही है। जो धन रहते कृपण बनकर धर्म कार्य करता है वह पातकी होता है। राम ! जो धर्मशास्त्रो मे सुना गया है उसको सावधान होकर सुनो। राजन् ! जो अन्न पुरुष खाता है या प्राप्त करता है उसके देवता भी उसी अन्न के प्रेमी या अधिकारी होते हैं। तब राम ने पिण्ड को पृथ्वी पर

श्रूयते सर्वशास्त्रेषु यन्नाम शृणु यत्नतः। यदत्र पुरुषो राजंस्तदन्नास्तस्य देवता ॥१७५॥
पिण्डे निपतिते भूमौ नापश्यत्पितरं तदा। शवं च पतितं यत्र शवतीर्थमनुत्तमम् ॥१७६॥
महापातकसंघातविघातकृदनुस्मृति। तत्राऽऽजग्मुश्छल्लोकपाला रुद्रादित्यास्तथाऽश्विनौ ॥१७७॥
स्वं स्वं विमानमारूढास्तेषां मध्येऽतिदीप्तिमान्। विमानवरमारूढः स्तूयमानश्च किंनरैः ॥१७८॥
आदित्यसदृशाकारस्तेषां मध्ये बभौ पिता। तमदृष्ट्वा स्वपितरं देवान्दृष्ट्वा विमानिनः ॥१७९॥
कृताञ्जलिपुटो रामः पिता मे क्वेत्यभाषत। इति (ततो) दिव्याऽभवद्वाणी राम संबोध्य सीतया ॥१८०॥
तिसृभिर्ब्रह्महत्याभिर्मुक्तो दशरथो नृपः। वृतं पश्य सुरैस्तात देवा अप्यूचिरे च तम् ॥१८१॥

देवा ऊचुः

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि राम स्वर्गं गतः पिता। नानानिरयसंघातात्पूर्वजानुद्धरेत्तु यः ॥१८२॥
स धन्योऽलंकृतं तेन कृतिना भुवनत्रयम्। एनं पश्य महाबाहो मुक्तपापं रविप्रभम् ॥१८३॥
सर्वसंपत्तियुक्तोऽपि पापी दग्धद्रुमोपमः। निष्किंचनोऽपि सुकृती दृश्यते चन्द्रमौलिवत् ॥१८४॥

ब्रह्मोवाच

दृष्ट्वाऽब्रवीत्सुतं राजा आशीर्भिरभिनन्द्य च ॥१८५॥

राजोवाच

कृतकृत्योऽसि भद्रं ते तारितोऽहं त्वयाऽनघ। धन्यः स पुत्रो लोकेऽस्मिन्पितॄणां यस्तु तारकः ॥१८६॥

गिराया। किन्तु उन्होंने अपने पिता को नहीं देखा केवल शव वहाँ पड़ा हुआ दिखाई दिया। जहाँ वह शव गिरा वह परमोत्तम शवतीर्थ बन गया। जिसके स्मरणमात्र से महापापों का समूह सहज ही में नष्ट हो जाता है। इसके बाद वहाँ लोकपाल रुद्र आदित्य तथा अश्विनीकुमार अपने-अपने विमानों पर आरूढ़ होकर आये। उनके मध्य में एक उत्तम विमान पर आरूढ़ अत्यन्त कान्तिमान रूप में राम के पिता शोभित थे। वे सूर्य के समान चमक रहे थे और किन्नरगण उनकी स्तुति कर रहे थे। उस समय राम ने अपने पिता को नहीं देखा केवल देवता विमानों पर दिखाई दिये। तब हाथ जोड़कर वे बोले कि मेरे पिता कहाँ हैं। उसी समय सीता सहित राम को संबोधित कर आकाशवाणी हुई कि तात! तीनों ब्रह्म-हत्याओं से राजा दशरथ मुक्त हो गये। इनको देवों से घिरा हुआ देखो। पुनः देवों ने उनसे कहा ॥१७०-१८१॥

देवगण बोले—राम! तुम धन्य हो। तुम्हारा जीवन सफल है। देखो तुम्हारे पिता स्वर्ग को चले गये। जो अपने पिता को अनेक नरकों से उबारता है वह धन्य है। उसने अपनी कृति से त्रिभुवन को सुशोभित कर लिया। महाबाहु! इस मुक्त-पाप एवं सूर्य के समान तेजस्वी पिता को देखो। सब प्रकार की सम्पत्तियों से परिपूर्ण रहने पर भी पापी व्यक्ति जले वृक्ष के समान हैं इसके विपरीत अकिंचन पुण्यात्मा व्यक्ति शिव के समान पूज्य भाव से देखा जाता है ॥१८२-१८४॥

ब्रह्मा ने कहा—अपने पुत्र को राजा ने आशीर्वाद दिया और उसकी प्रशंसा करते हुए कहा ॥१८५॥

राजा ने कहा—तुम कृत्य-कृत्य हो गये हो तुम्हारा कल्याण हो। निष्पाप! तुमने मुझको तार दिया। इस लोक में वह पुत्र धन्य है जो अपने पिता का उद्धार करता है ॥१८६॥

ब्रह्मोवाच

तत सुरगणा प्रोचुर्देवाना कार्यसिद्धये। राम च पुरुषश्रेष्ठ गच्छ तात यथासुखम्[1] ॥
ततस्तद्वचन श्रुत्वा रामस्तानब्रवीत्सुरान् ॥१८७॥

राम उवाच

गुरौ पितरि म देवा कि कृत्यमवशिष्यते ॥१८८॥

देवा ऊचु

नदी न गङ्गया तुल्या न त्वया सदृश सुत । न शिवेन समो देवो न तारेण समो मनु ॥१८९॥
त्वया राम गुरूणा च काय सवमनुष्ठितम्। तारिता पितरो राम त्वया पुत्रेण मानद ॥
गच्छन्तु सर्वे स्वस्थान त्व च गच्छ यथासुखम् ॥१९०॥

ब्रह्मोवाच

तद्देवत्रचनाद्धृष्ट सीतया लक्ष्मणाग्रज । तद्दृष्ट्वा गङ्गामाहात्म्य विस्मितो वाक्यमब्रवीत ॥१९१॥

राम उवाच

अहो गङ्गाप्रभावोऽय त्रैलोक्ये नोपमीयते। वय धन्या यतो गङ्गा दृष्टाऽस्माभिस्त्रिपावनी ॥१९२॥

ब्रह्मोवाच

हर्षेण महता युक्तो देव स्थाप्य महेश्वरम्। त षोडशभिरीशानमुपचारै प्रयत्नत ॥१९३॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद देवताओ ने देव-काय की सिद्धि के लिये पुरुषोत्तम राम से कहा —तात ! अब सुखपूवक जाओ। देवो की बातें सुनकर राम ने उन देवताओ से पूछा ॥१८७॥

राम ने कहा—देवगण ! आदरणीय पिता के विषय मे कौन सा कृत्य शेष रह गया है ? ॥१८८॥

देवगण बोले—गगा के समान कोई नदी नही है तुम्हारे समान कोई पुत्र नही है शिव के समान कोई देवता नही है और ओकार के समान कोई मन्त्र नही है। राम ! तुमने अपने गुरु के समस्त कार्यों को पूरा कर दिया। राम ! पुत्र होकर तुमने अपने पितरो का उद्धार कर दिया। अब सब अपने-अपने स्थान को जाय तुम भी अपने स्थान को सुखपूवक जाओ ॥१८९ १९०॥

ब्रह्मा ने कहा—देवो की उपयक्त बातो को सुनकर सीता सहित लक्ष्मणाग्रज राम अत्यन्त प्रसन्न हुए और गगा के उस अद्भुत माहात्म्य को देखकर आश्चय के साथ बोले ॥१९१॥

राम ने कहा—अहो ! गगा के इस प्रभाव की उपमा त्रैलोक्य म किसी से नही दी जा सकती। हम धन्य हैं कि आज इस त्रिभुवन-पावनी गगा का दशन हम प्राप्त हुआ ॥१९२॥

ब्रह्मा ने कहा—अत्यन्त आनन्द से युक्त होकर उन्होंने महेश्वर देव की स्थापना की। बड यत्न से उनका

---

१ च सुराणां।

संपूज्याऽऽवरणैर्युक्तं षट्त्रिंशत्कलमीश्वरम् । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा रामस्तुष्टाव शंकरम् ॥१९४॥

राम उवाच

नमामि शंभुं पुरुषं पुराणं, नमामि सर्वज्ञमपारभावम् ।
नमामि रुद्रं प्रभुमक्षयं तं, नमामि शर्वं शिरसा नमामि ॥१९५॥
नमामि देवं परमव्ययं तमुमापतिं लोकगुरुं नमामि ।
नमामि दारिद्र्यविदारणं तं, नमामि रोगापहरं नमामि ॥१९६॥
नमामि कल्याणमचिन्त्यरूपं, नमामि विश्वोद्भवबीजरूपम् ।
नमामि विश्वस्थितिकारणं तं, नमामि संहारकरं नमामि ॥१९७॥
नमामि गौरीप्रियमव्ययं तं, नमामि नित्यं क्षरमक्षरं तम् ।
नमामि चिद्रूपममेयभावं, त्रिलोचनं तं शिरसा नमामि ॥१९८॥
नमामि कारुण्यकरं भवस्य, भयंकरं वाऽपि सदा नमामि ।
नमामि दातारमभीप्सितानां, नमामि सोमेशमुमेशमादौ ॥१९९॥
नमामि[1] वेदत्रयलोचनं तं नमामि मूर्तित्रयवर्जितं तम् ।
नमामि पुण्यं सदसद्व्यतीतं, नमामि तं पापहरं नमामि ॥२००॥

षोडशोपचार पूजन किया। अंगो सहित छत्तीस कला वाले महेश्वर की अर्चना करके राम हाथ जोड़कर शंकर की स्तुति करने लगे ॥१९३-१९४॥

राम ने कहा—पुराण-पुरुष शंभु को नमस्कार करता हूँ। सर्वज्ञ तथा अनन्त रूप वाले को नमस्कार करता हूँ। अक्षय (नित्य) प्रभु रुद्र को नमस्कार करता हूँ। उस शर्व को शिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥१९५॥ उस परम अव्यय देव को नमस्कार करता हूँ। उमापति, लोकगुरु का नमस्कार करता हूँ। दरिद्रता को नष्ट करने वाले को नमस्कार करता हूँ। रोगों को दूर करने वाले उस शंकर को नमस्कार करता हूँ ॥१९६॥ कल्याणमय, अचिन्त्यरूप को नमस्कार करता हूँ। विश्व-निर्माण के आदि कारण को नमस्कार करता हूँ। विश्व की स्थिति के कारण को नमस्कार करता हूँ। संहार करने वाले विभु को नमस्कार करता हूँ ॥१९७॥ उस गौरी प्रिय शंकर को नमस्कार करता हूँ। उस नित्य क्षर और अक्षर रूप को नमस्कार करता हूँ। ज्ञानरूप एवं अमित प्रभाव वाले को नमस्कार करता हूँ। उस त्रिनेत्र को शिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥१९८॥ संसार पर करुणा करने वाले को नमस्कार करता हूँ भय प्रदान करने वाले को सदा नमस्कार करता हूँ। मनोरथ प्रदान करने वाले को नमस्कार करता हूँ। सर्वप्रथम सोमेश और उमेश को नमस्कार करता हूँ ॥१९९॥ तीन वेदरूपी नेत्र वाले को नमस्कार करता हूँ। त्रिमूर्ति वर्जित उस शंकर को नमस्कार करता हूँ। सत् और असत् से परे उस पुण्यस्वरूप को नमस्कार करता हूँ। उस पापहर को नमस्कार करता हूँ ॥२००॥ विश्व के हित में लीन रहने वाले को नमस्कार करता हूँ। लोक हित के विविध रूप

---

१ ङ च ०मि देवत्र०।

नमामि विश्वस्य हिते रतं तं, नमामि रूपाणि बहूनि धत्ते ।
यो विश्वगोप्ता सदसत्प्रणेता, नमामि तं विश्वपतिं नमामि ॥२०१॥
यज्ञेश्वरं संप्रति हव्यकव्यं, तथा गतिं लोकसदाशिवो यः ।
आराधितो यश्च ददाति सर्वं, नमामि दानप्रियमिष्टदेवम् ॥२०२॥
नमामि सोमेश्वरमस्वतन्त्रमुमापतिं तं विजयं नमामि ।
नमामि विघ्नेश्वरनन्दिनाथं, पुत्रप्रियं तं शिरसा नमामि ॥२०३॥
नमामि देवं भवदुःखशोकविनाशनं चन्द्रधरं नमामि ।
नमामि गङ्गाधरमीशमीड्यमुमाधवं देववरं नमामि ॥२०४॥
नमाम्यजादीशपुरंदरादिसुरासुरैरर्चितपादपद्मम्[1] ।
नमामि देवीमुखवादनानामीक्षार्थमक्षित्रितयं य ऐच्छत् ॥२०५॥
पञ्चामृतैर्गन्धसुधूपदीपैर्विचित्रपुष्पैर्विविधैश्च मन्त्रैः ।
अन्नप्रकारैः सकलोपचारैः, संपूजितं सोममहं नमामि ॥२०६॥

ब्रह्मोवाच

ततः स भगवानाह रामं शंभुः सलक्ष्मणम् । वरान्वृणीष्व भद्रं ते राम प्राह वृषध्वजम् ॥२०७॥

धारण करने वाले को नमस्कार करता हूँ। जो विश्व का रक्षक तथा सत् और असत का रचयिता है, उसको नमस्कार करता हूँ। उस विश्वपति को नमस्कार करता हूँ ॥२०१॥ जो सम्प्रति यज्ञेश्वर, हव्य और कव्य है, जो सर्वदा लोक को मंगल दान करने वाला एवं गति है, जो आराधना करने पर सेवक को सब कुछ प्रदान करता है उस दान-पटु इष्टदेव को नमस्कार करता हूँ ॥२०२॥ सोमेश्वर तथा अस्वतन्त्र (भक्त के अधीन) उमापति को नमस्कार करता हूँ, उस विजय को नमस्कार करता हूँ। विघ्नेश्वर नन्दि-नाथ को नमस्कार करता हूँ। पुत्र प्रेमी को शिर नवा कर नमस्कार करता हूँ ॥२०३॥ संसार के दुःख और शोक को नष्ट करने वाले देव को नमस्कार करता हूँ। चन्द्रमा को धारण करने वाले को नमस्कार करता हूँ। पूज्य गंगाधर-महादेव को नमस्कार करता हूँ। देवश्रेष्ठ उमापति को नमस्कार करता हूँ ॥२०४॥ जिनके चरण कमल की अर्चना ब्रह्मा आदि तथा प्रभु इन्द्र आदि देवता एवं राक्षस करते हैं, उनको नमस्कार करता हूँ जिन्होंने देवी के मुख-वादन के विशेषावलोकन की इच्छा से तीन नेत्रों की इच्छा की, उनको नमस्कार करता हूँ ॥२०५॥ पञ्चामृत गन्ध सुगन्धित धूप दीप, विचित्र-पुष्प एवं विविधमन्त्रों तथा अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थ में जिसकी षोडशोपचार पूजा होती है उस सोम को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२०६॥

ब्रह्मा ने कहा—राम की प्रार्थना से प्रसन्न होकर भगवान् शम्भु ने लक्ष्मण सहित राम से कहा—'वर माँगो, तुम्हारा कल्याण हो। यह सुनकर राम ने शंकर से कहा ॥२०७॥

---

१ प छ च ०द्युग्मम्।

राम उवाच

स्तोत्रेणानेन ये भक्त्या तोष्यन्ति त्वां सुरोत्तम। तेषां सर्वाणि कार्याणि[1] सिद्धिं यान्तु महेश्वर ॥२०८॥
येषां च पितरः शंभो पतिता नरकार्णवे। तेषां[2] पिण्डादिदानेन पूता यान्तु त्रिविष्टिपम् ॥२०९॥
जन्मप्रभृति पापानि(यच्चापि)मनोवाक्कायिकं[3] त्वघम्। अत्र तु स्नानमात्रेण तत्सद्यो[4]नाशमाप्नुयात्॥२१०॥
अत्र ये भक्तितः शंभो ददत्यर्थिभ्य अण्वपि। सर्वं तदक्षयं शंभो दातृणां[5] फलकृद्भवेत् ॥२११॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति तं राम शंकरो हृषितोऽब्रवीत्। गते[6] तस्मिन्सुरश्रेष्ठे रामोऽप्यनुचरैः[7] सह ॥२१२॥
गौतमी यत्र चोत्पन्ना शनैस्तं देशमभ्यगात्। तत प्रभृति तत्तीर्थं रामतीर्थमुदाहृतम् ॥२१३॥
दयालोरपतत (द्य) त्र लक्ष्मणस्य कराच्छरः। तद्बाणतीर्थमभवत्सर्वापद्विनिवारणम् ॥२१४॥
यत्र सौमित्रिणा स्नानं शंकरस्यार्चनं कृतम्। तत्तीर्थं लक्ष्मणं जातं तथा सीतासमुद्भवम् ॥२१५॥
नानाविधाशेषपापसंघनिर्मूलनक्षमम्। यदङ्घ्रिसङ्गादभवद्गङ्गा त्रैलोक्यपावनी ॥२१६॥
स यत्र स्नानमकरोत्तद्वैशिष्ट्यं किमुच्यते। तद्रामतीर्थसदृशं तीर्थं क्वापि न विद्यते ॥२१७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये रामतीर्थादितीर्थवर्णनं नाम त्रयोविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

राम ने कहा—सुरोत्तम! इस स्तोत्र से जो तुम्हारी स्तुति करें महेश्वर! उनके सब मनोरथ सिद्ध हो जायें। शम्भु! जिनके पितर नरक में गिरे हों, उनको यहाँ पिण्ड-दान देने से वे स्वर्ग को चले जायें। यहाँ केवल स्नान करने से ही मनुष्यों के जन्म से लेकर सभी कायिक, वाचिक और मानसिक पाप नष्ट हो जायें। शम्भो! यहाँ जो याचकों को भक्ति-पूर्वक अणुमात्र भी प्रदान करें, वह उन दाताओं के लिए अक्षय फल प्रदान करने वाला हो ॥२०८-२११॥

ब्रह्मा ने कहा—शंकर ने प्रसन्न होकर उस राम से 'एवमस्तु' कहा। उस देवेश के चले जाने पर राम भी अपने अनुयायियों के साथ धीरे धीरे उस स्थान पर गये, जहाँ से गौतमी नदी निकलती है। तब से वह स्थान राम-तीर्थ कहा जाता है। दयालु लक्ष्मण के हाथ से जहाँ बाण गिरा वह लक्ष्मण-तीर्थ हो गया। इसी प्रकार वहीं अनेक प्रकार के अखिल पाप-समूह को नष्ट कर देने वाला सीतातीर्थ भी प्रसिद्ध है। जिनके चरण-स्पर्श से गंगा त्रिभुवन-पावनी हो गई, उन्हीं राम ने जहाँ स्नान किया उस स्थान की विशेषता का वर्णन कैसे किया जा सकता है? उस राम-तीर्थ के समान कहीं भी दूसरा तीर्थ नहीं है ॥२१२-२१७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में रामतीर्थवर्णन नामक एक सौ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२३॥

---

१ घ ङ च ०णि सन्सिद्धिं यान्तु शंकर। २ घ ङ च तेभ्य। ३ग ०णिपापानि च। अ०। ४घ ङ च तदपा। ५घ ङ च दातृभ्यः। ६घ ङ च याते। ७ घ ङ च ०नुगतैः स०।

अथ चतुर्विंशाधिकशततमोऽध्याय

पुत्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पुत्रतीर्थमिति ख्यातं [1]पुण्यतीर्थं तदुच्यते। सर्वान्कामानवाप्नोति यन्महिम्नः श्रुतेरपि ॥१॥
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद। दितेः पुत्राश्च दनुजाः परिक्षीणा यदाऽभवन् ।
अदितेस्तु सुता ज्येष्ठा. सर्वभावेन नारद ॥२॥
तदा दिति. पुत्रवियोगदुःखात्संस्पर्धमाना दनुमाजगाम ॥३॥

दितिरुवाच

क्षीणा. सुता आवयोरेव भद्रे, किं कुर्महे कर्म लोके गरीय. ।
पश्यादितेर्वंशमभिन्नमुत्तम, सौराज्ययुक्त यशसा जयश्रिया ॥४॥
जितारिमभ्युन्नतकीर्तिधर्मं, मच्चित्तसंहर्षविनाशदक्षम् ।
समानभर्तृत्वसमानधर्मे, समानगोत्रेऽपि समानरूपे ॥५॥

अध्याय १२४

पुत्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—एक प्रसिद्ध पुत्रतीर्थ है। उसको पुण्यतीर्थ भी कहा जाता है। उसकी महिमा के सुनने से भी मनुष्य सब मनोरथों को प्राप्त कर लेता है। उसके स्वरूप का वर्णन मैं करता हूँ। नारद! तुम ध्यान से सुनो। जब दैत्य और दानव बहुत क्षीण हो गए तथा देवगण सब प्रकार से श्रेष्ठ हो गए तब नारद! दिति पुत्र-वियोग से कातर और सौत की विभूति की प्रति-स्पर्धा से दुःखी होकर दनु के पास आई॥१ ३॥

दिति ने कहा—भद्रे! हम दोनों ही के पुत्र नष्ट हो गये। क्या करें? संसार में कर्म सबसे बलवान् होता है। देखो, अदिति का वंश किस प्रकार जय-लक्ष्मी, कीर्ति और उत्तम राज-सुख का निरन्तर उपभोग कर रहा है, अपने शत्रुओं को जीत कर धर्म की वंशी बजा रहा है, कीर्ति और धर्म की पताका फहरा कर मेरे हृदय को सर्वथा नष्ट कर रहा है। यद्यपि अदिति भी मेरे ही पति की पत्नी है और गोत्र और धर्म तथा रूप में भी समान है, तथापि उसके पुत्रों की श्री एवं उन्नति देखकर मैं दुर्बल हो गई हूँ। अब जीने की सम्भावना भी नहीं है। अदिति की उत्कृष्ट

---

[1] १ प ङ च सम्यत्तीर्थं।

न जीवयेयं श्रियमुन्नतिं च, जीर्णाऽस्मि दृष्ट्वा त्वदितिप्रसूतान् ।
कामप्यवस्थामनुयामि दुःस्थाऽदितेर्विलोक्याथ परां समृद्धिम् ॥
दावप्रवेशोऽपि सुखाय नूनं, स्वप्नेऽप्यवेक्ष्या न सपत्नलक्ष्मी ॥६॥

ब्रह्मोवाच

एवं ब्रुवाणामतिदीनवक्त्रां, विनिश्वसन्तीं परमेष्ठिपुत्रः ।
कृताभिपूजो विगतश्रमस्तां, स सान्त्वयन्नाह मनोभिरामाम् ॥७॥

परमेष्ठिपुत्र उवाच

खेदो न कार्यं समभीप्सितं यत्तत्प्राप्यते पुण्यत एव भद्रे ।
तत्साधनं वेत्ति महानुभावः, प्रजापतिस्ते स तु वक्ष्यतीति ॥८॥
साध्व्येतत्सर्वभावेन प्रश्रयावनता सती ॥९॥

ब्रह्मोवाच

एवं ब्रुवाणां च दितिं दनुः प्रोवाच नारद ॥१०॥

दनुरुवाच

भर्तारं कश्यपं भद्रे तोषयस्व निजैर्गुणैः । तुष्टो यदि भवेद्भर्ता ततः कामानवाप्स्यसि ॥११॥

समृद्धि को देखकर अस्वस्थ हो गई हूँ और किसी दूसरी ही दशा को प्राप्त करने जा रही हूँ क्योंकि स्वप्न में भी सौत का वैभव देखने की अपेक्षा अग्नि में जल कर मर जाना कहीं अधिक सुखकर है ॥४-६॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहकर दिति आह भरने लगी, दीर्घोच्छ्वास छोड़ने लगी और उसके मुख पर दीनता के भाव दिखाई देने लगे। यह देखकर परमेष्ठि-पुत्र (कश्यप) ने उसका सम्मान किया और स्वयं शान्त होकर उस मनोहारिणी दिति को आश्वासन देते हुये कहा ॥७॥

परमेष्ठि-पुत्र ने कहा—भद्रे ! इस प्रकार दुःख करने की आवश्यकता नहीं है। मनोरथ पुण्य द्वारा ही प्राप्त होते हैं। महानुभाव प्रजापति तुम्हारे मनोरथ को पूर्ण करने का उपाय जानते हैं। वे अवश्य तुम्हें उपयुक्त साधन बतायेंगे। इस पर विनयावनत पतिव्रता दिति ने कहा—यह सब तरह से अच्छा है ॥८-९॥

ब्रह्मा ने कहा—नारद ! इस प्रकार कहने वाली दिति से दनु ने कहा ॥१०॥

दनु ने कहा—भद्रे ! अपने पति कश्यप को अपने गुणों से प्रसन्न करो। यदि तुम्हारे पति प्रसन्न हो जायेंगे तो तुम अपनी मनःकामना अवश्य प्राप्त करोगी ॥११॥

ब्रह्मोवाच

तथत्युक्त्वा सर्वभावैस्तोषयामास कश्यपम्। दितिं प्रोवाच भगवान्कश्यपोऽथ प्रजापतिः ॥१२॥

कश्यप उवाच

किं ददामि यदाभीष्टं दिते वरय सुव्रते ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

दितिरप्याह भर्तारं पुत्रं बहुगुणान्वितम्। जेतारं सर्वलोकानां सर्वलोकनमस्कृतम् ॥१४॥
येन जातेन लोकेऽस्मिन्भवेयं वीरपुत्रिणी। तं वरेयं सुरपतिरित्याह विनयान्विता ॥१५॥

कश्यप उवाच

उपदेक्ष्ये व्रतं श्रेष्ठं द्वादशाब्दफलप्रदम्। तत आगत्य ते गर्भमाधास्ये यन्मनोगतम् ॥
निष्पापतायां जातायां सिध्यन्ति हि मनोरथाः ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

भर्तुर्वाक्याद्दितिः प्रीता तं नमस्याऽऽयतक्षणा। उपदिष्टं व्रतं चक्रे भर्त्राऽऽदिष्टं यथाविधि ॥१७॥
तीर्थसेवापात्रदानव्रतचर्यादिवर्जिताः। कथमासादयिष्यन्ति प्राणिनोऽत्र मनोरथान् ॥१८॥
ततश्चीर्णे व्रते तस्या दित्या गर्भमधारयत्। पुनः कान्तामथोवाच कश्यपस्तां दितिं रहः ॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—दिति ने इसको स्वीकार किया और अपने प्रत्येक प्रयत्न से कश्यप को प्रसन्न किया। अनन्तर भगवान् प्रजापति कश्यप ने दिति से कहा ॥१२॥

कश्यप ने कहा—दिति! तुमको क्या दूँ? तुम अपनी इच्छा व्यक्त करो। सुव्रते! वर मांगो ॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—दिति ने भी अपने भर्ता से विनयपूर्वक कहा मैं अत्यन्त गुणशाली सब लोकों को जीतने वाला और सब लोगों से पूजित पुत्र चाहती हूँ। हे देवों के पिता! जिसके उत्पन्न होने से मैं इस संसार में वीर पुत्र की माता कहलाऊं उसको मैं चाहती हूँ ॥१४-१५॥

कश्यप ने कहा—बारह वर्षों में फल देने वाले श्रेष्ठ व्रत को बता रहा हूँ। इस व्रत के पालन के बाद तुम्हारी इच्छा के अनुसार गर्भाधान करूँगा क्योंकि पापशून्य होने पर ही मनोरथ पूर्ण होते हैं ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—पति की बातों से दिति प्रसन्न हो गई। तत्पश्चात् उस विशालनेत्रा ने पति को प्रणाम कर उनके द्वारा कहे हुए व्रत का विधिपूर्वक पालन किया। तीर्थ-सेवा उपयुक्त पात्र को दान देना व्रत-पालन आदि पुण्यानुष्ठान के बिना प्राणी कैसे इस लोक में अपने मनोरथ को प्राप्त कर सकते हैं? ऐसे कठोर व्रत-पालन के बाद कश्यप ने उस दिति में गर्भाधान किया। एक दिन एकान्त में कश्यप ने उस प्रिय दिति से कहा ॥१७-१९॥

---

१ घ. ङ. च. सर्वसैन्यानां। २ क. पुनः ब्रह्मान्नित्या०। ङ. सुरपतिमित्या०।

कश्यप उवाच

न प्राप्नुवन्ति यत्कामा मुनयोऽपि तपस्थिता । यथाविहितकर्माज्ञावज्ञया तच्छुचिस्मित ॥२०॥
निन्दित च न कतव्य सध्ययोरुभयोरपि । न स्वप्तव्य न गन्तव्य मुक्तकेशी च नो भव ॥२१॥
भोक्तव्य सुभग नव क्षुत वा जम्भण तथा । सध्याकाल न कतव्य भूतसघसमाकुल ॥२२॥
सान्तर्धान सदा कार्यं हसित तु विशेषत । गृहान्तदश सध्यासु न स्थातव्य कदाचन ॥२३॥
मुशलोलूखलादीनि शूर्पपीठपिधानकम । नैवातिक्रमणीयानि दिवा रात्रौ सदा प्रिय ॥२४॥
उदक्शीर्ष तु शयन न सध्यासु विशेषत । वक्तव्य नानृत किंचिन्नायगृहाटन तथा ॥२५॥
कान्तादन्यो न वीक्ष्यस्तु प्रयत्नेन नर क्वचित । इत्यादिनियमैर्युक्ता यदि त्वमनुवतसे ॥
ततस्त भविता पुत्रस्त्रलोक्यैश्वयभाजनम ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

तथेति प्रतिजज्ञे सा भर्तार लोकपूजितम । गतश्च कश्यपो ब्रह्मन्नितश्चेत सुरान्प्रति ॥२७॥
दितिगर्भोऽपि ववृध बलवान्पुण्यसभव । एतत्सव मयो दैत्यो मायया वेत्ति तत्त्वत ॥२८॥
इन्द्रस्य सख्यमभवन्मयस्य प्रीतिपूर्वकम । मयो गत्वा रह प्राह इन्द्र स विनयान्वित ॥२९॥

कश्यप ने कहा—पवित्र हास्य वाली ! तपस्या म लीन मनिगण भी जो अपने मनोरथ को प्राप्त करने म असफल होते हैं उसका मख्य कारण शास्त्र-सम्मत नियमो की उपेक्षा है। (अत उन नियमो को सुनो) दोनो सध्या काल म कोई निन्दित कम नहो करना चाहिए। न सोना चाहिये न (बाहर) जाना चाहिये और न उस समय केशो को खिरी अवस्था म रखना चाहिए। सुदरी सध्याकाल म विशेषत अनेक प्राणियो स भरे स्थान म भोजन नही करना चाहिए। न छीकना चाहिए और न जम्भाई लेनी चाहिये। हसने क समय तो अवश्य कोई आवरण लगा लेना चाहिए। सध्याकाल म घर की ओखली म कभी नहो रहना चाहिये। प्रिये दिन या रात्रि म सवदा मूसल ओखल। सूप पीढा आदि को कभी भी नही लाँघना चाहिये उत्तर की ओर सिर करके नही सोना चाहिये विशेषत सध्या समय। थोडा भी असत्य भाषण नहो करना चाहिये दूसरे क घर नहो जाना चाहिये। प्रयत्नपूवक पति क अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष को नही देखना चाहिये इस प्रकार यदि तुम उपयुक्त नियमो का पालन करोगी तो त्रिभुवन क ऐश्वय को प्राप्त करने वाला तुम्हारा पुत्र होगा ।२०-२६।

ब्रह्मा ने कहा—दिति ने लोकपूजित पति के सामने ऐसा ही करूगी ऐसी प्रतिज्ञा की। ब्रह्मन् ! कश्यप भी इधर उधर देवताओ क निवास स्थान की ओर चल गये पश्चात दिति का गर्भ और पुण्य द्वारा प्राप्त दिति का गभ भी बढ़ने लगा। इन सब बातो को मय नामक दैत्य अपनी माया क द्वारा यथार्थरूप स जानता था। मय की इन्द्र क साथ पहले ही स अति प्रीतिकर मित्रता थी। मय ने इन्द्र क पास जाकर विनम्र भाव स एकान्त म दिति और इन्द्र का अभि

---

१ क ख ०ये सु प्रा०।

दितेर्दनोरभिप्रायं व्रतं गर्भस्य वर्धनम्। तस्य वीर्यं च विविधं प्रीत्येन्द्राय न्यवेदयत्॥३०॥
विश्वासैकगृहं मित्रमपायत्रासवर्जितम्। अर्जितं सुकृतं नानाविध चेत्तदवाप्यते॥३१॥

नारद उवाच

नमुचेश्च प्रियो भ्राता मयो दैत्यो महाबलः। भ्रातृहन्त्रा कथं मैत्र्य मयस्याऽसीत्सुरेश्वर॥३२॥

ब्रह्मोवाच

दैत्यानामधिपश्चाऽऽसीद्बलवान्नमुचिः पुरा। इन्द्रेण वैरमभवद्भीषण लोमहर्षणम्॥३३॥
युद्धं हित्वा कदाचिद्भो गच्छन्तं तु शतक्रतुम्। दृष्ट्वा दैत्यपतिः शूरो नमुचि पृष्ठतोऽन्वगात्॥३४॥
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य शचीभर्ता भयातुरः। ऐरावतं गजं त्यक्त्वा इन्द्रः फेनमथाऽऽविशत्॥३५॥
स वज्रपाणिस्तरसा फेनेनैवाहनद्रिपुम्। नमुचिर्नाशमगमत्तस्य भ्राता मयोऽनुजः॥३६॥
भ्रातृहन्तृविनाशाय तपस्तेपे मयो महत्। माया च विविधामाप देवानामतिभीषणाम्॥३७॥
वराश्चावाप्य तपसा विष्णोर्लोकपरायणात्। दानशौण्डः प्रियालापी तदाऽभवदसौ मयः॥३८॥
अग्नींश्च ब्राह्मणान्पूज्य जेतुमिन्द्रं कृतक्षणः। दातार च तदार्थिभ्यः स्तूयमानं च बन्दिभिः॥३९॥
विदित्वा मघवा वायोर्मयं मायाविनं रिपुम्। उपशान्त सुयुद्धाय विप्रो भूत्वा तमभ्यगात्॥
शचीभर्ता मयं दैत्य प्रोवाचेदं पुनः पुनः॥४०॥

प्राय, व्रत-पालन, गर्भ का दिना दिन बढ़ना तथा उस भावी पुत्र का पराक्रम आदि विविध बातें बड़े प्रेम से कही। कहा भी है कि एकमात्र विश्वास-पात्र और मैत्री विच्छेद के भय से रहित मित्र मनुष्य को अनेको अर्जित सत्कर्मों के प्रभाव से प्राप्त होता है॥२७ ३१॥

नारद ने पूछा—सुरेश्वर! महाबलवान् मय नमुचि का प्रिय भ्राता था। उस मय की भ्रातृ-हन्ता इन्द्र के साथ कैसे मित्रता हो गई?॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—प्राचीन काल म बलवान् नमुचि दैत्यो का स्वामी था। उसकी इन्द्र से भीषण एव रोमाञ्चकारी शत्रुता हो गई। किसी समय युद्धभूमि को छोडकर भागते हुए इन्द्र को देखकर दैत्यराज शूर नमुचि उनका पीछा करने लगा। उसको अपना पीछा करते देख शचीपति इन्द्र भय से विह्वल हो ऐरावत हाथी से उतरकर फेन म घुस गये। उन्होंने उस फेन से ही उस शत्रु को शीघ्रता से मारा। नमुचि उस प्रहार से मर गया। मय उसी नमुचि का छोटा भाई था। उसने भाई के हत्याकारी को नष्ट करने के लिय तपस्या की। उसने तपोबल से देवो को डरा देने वाली भीषण माया प्राप्त की और तप के द्वारा लोकपालक विष्णु मे वर पाकर वह मय अति दान-कुशल तथा मधुरभाषी वन गया। अग्नि और ब्राह्मणो की पूजा कर वह इन्द्र को जीतने का मौका ढूढने लगा। वदी और याचक लोग उसकी स्तुति किया करते थे। वह इन्द्र से युद्ध के लिए तैयार हो रहा था। ऐसे मायावी शत्रु को वायु के द्वारा जानकर शचीपति इन्द्र ब्राह्मण के वेश मे उस मय दैत्य के पास गये और वार-वार उससे यह कहने लगे॥३३-४०॥

इन्द्र उवाच

देहि दैत्यपते मह्यमर्थिनेऽपेक्षितं वरम् । त्वां श्रुत्वा दातृतिलकमागतोऽहं द्विजोत्तमः ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

मयोऽपि ब्राह्मणं मत्वाऽवदद्दत्तं मया तव । विचारयन्ति कृतिनो बह्वल्पं वा पुरोऽर्थिनि ॥४२॥
इत्युक्ते तु हरिः प्राह सख्यमिच्छे ह्यहं त्वया । इन्द्र मयः पुनः प्राह किमनेन द्विजोत्तम ॥४३॥
न त्वया मम वैरं भोः स्वस्तीत्याह हरिर्मयम् । तत्त्वं वदेति स हरिर्दैत्येनोक्तः स्वकं वपुः ॥४४॥
दर्शयामास दैत्याय सहस्राक्षं यदुच्यते । ततः सविस्मयो दैत्यो मयो हरिमुवाच ह ॥४५॥

मय उवाच

किमिदं वज्रपाणिस्त्वं तवायोग्या कृतिः सखे ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

परिष्वज्य विहस्याथ वृत्तमित्यब्रवीद्धरिः । केनापि साधयन्त्यत्र पण्डिताश्च समीहितम् ॥४७॥
ततः प्रभृति शक्रस्य मयेन महती ह्यभूत् । सुप्रीतिर्मुनिशार्दूल मयो हरिहितः सदा ॥४८॥
इन्द्रस्य भवनं गत्वा तस्मै सर्वं न्यवेदयत् । किं मे कृत्यमिति प्राह मयं मायाविनं हरिः ॥४९॥
हरये च मयो मायां प्रादात्प्रीत्या तथा हरिः । प्राप्तः संप्रीतिमानाह किं कृत्यं मय तद्वद ॥५०॥

इन्द्र ने कहा—दैत्यपति ! मुझ याचक को मेरा अभीष्ट वर दो। दाताओं में सर्वश्रेष्ठ तुम्हें सुनकर मैं उत्तम ब्राह्मण तुम्हारे पास आया हूँ॥४१॥

ब्रह्मा बोले—मय ने भी उसको ब्राह्मण जानकर कहा—'तुम जो चाहो, वह मैं देने के लिए तैयार हूँ। क्या दानशील व्यक्ति याचक के आ जाने पर उसके सामने दान की छोटाई या बड़ाई पर विचार करते हैं ?' इतना कहने पर इन्द्र ने कहा 'मैं तुम्हारे साथ मित्रता चाहता हूँ।' मय ने पुनः इन्द्र से कहा 'द्विजवर! इसका क्या अर्थ ? ओ ! तुम्हारे साथ तो मेरी कोई शत्रुता नहीं।' इन्द्र ने मय से "स्वस्ति" यह कहा। यह सुन दैत्य ने उस ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र से कहा कि इसका रहस्य बतलाओ। तब इन्द्र ने दैत्य को अपना सहस्र नेत्र वाला शरीर दिखलाया। इन्द्र की इस कपट माया को देखकर विस्मित हो दैत्य ने इन्द्र से कहा॥४२-४५॥

मय ने कहा—यह क्या, तुम तो वज्रपाणि इन्द्र हो। सखे ! यह कपट तुम्हारे समान देवता के लिये उचित नहीं है॥४६॥

ब्रह्मा बोले—इन्द्र ने हँसकर मय को गले लगाया और कहा कि जो होना था हो गया। इस लोक में बुद्धिमान् व्यक्ति जिस किसी प्रकार से अपने इष्ट का साधन करते हैं। मुनिशार्दूल ! तभी से मय के साथ इन्द्र की अति घनिष्ठ मैत्री हो गई। मय भी सर्वदा के लिये इन्द्र का हितेच्छु बन गया। इन्द्र के भवन में जाकर मय ने सारा रहस्य कह दिया। यह सुन कर हरि ने मायावी मय से कहा कि 'मुझे क्या करना चाहिये।' मय ने प्रेमपूर्वक अपनी माया (विद्या) हरि को दे दी। हरि ने माया विद्या पाकर अति प्रसन्न हो कहा कि 'मय ! मुझे क्या करना होगा वह बताओ'॥४७-५०॥

मय उवाच

अगस्त्यस्याऽऽश्रमं गच्छ तत्राऽऽस्ते गर्भिणी दितिः। तस्याः शुश्रूषणं कुर्वंश्चास्स्व तत्र कियन्ति च ॥५१॥
अहानि मघवंस्तस्या गर्भमाविश्य वज्रधृक्। वर्धमानं च तं छिन्धि यावद्वश्योऽथवा मृतिम् ॥
प्राप्नोति तावद्वज्रेण ततो न भविता रिपुः ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा मयं पूज्य मघवानेक एव हि। विनीतवत्तदा प्रायाद्दितिं मातरमञ्जसा ॥५३॥
शुश्रूषमाणस्तां देवीं शक्रो दैतेयमातरम्। सा न जानाति तच्चित्तं[1] शक्रस्य द्विषतो दितिः ॥५४॥
गर्भे स्थितं तु यद्भूतं देवेन्द्रस्य विचेष्टितम्। अमोघं तन्मुनेस्तेजः कश्यपस्य दुरासदम् ॥५५॥
ततः प्रगृह्य कुलिशं सहस्राक्षः पुरंदरः[2]। अन्तःप्रवेशकामोऽसौ बहुकालं समावसन् ॥५६॥
संध्योदक्शीर्षनिद्रां तामवेक्ष्य कुलिशायुधः। इदमन्तरमित्युक्त्वा दित्याः कुक्षिं समाविशत् ॥५७॥
अन्तर्वर्ति च यद्भूतमिन्द्रं दृष्ट्वा धृतायुधम्। हन्तुकामं तदोवाच पुनः पुनरभीतवत् ॥५८॥

गर्भस्थ उवाच

किं मां न रक्षसे वज्रिन्भ्रातरं त्वं जिघांससि। नारणे मारणादन्यत्पातकं विद्यते महत् ॥५९॥

मय ने कहा—अगस्त्य के आश्रम म जाओ, वहाँ गर्भिणी दिति रहती है। उस आश्रम मे कुछ दिनो तक उसकी शुश्रूषा करते हुए रहो। वज्रहस्त ! समय पाकर उसके गर्भ मे घुसकर उस बढ़ते हुए गर्भ को जब तक वह वश्यता न स्वीकार करे अथवा मर न जाय तब तक वज्र से काटो। ऐसा करने से वह तुम्हारा शत्रु नही होगा ॥५१-५२॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा ही होगा, यह कहकर मय की पूजा कर वह इन्द्र अकेले विनीत भाव से शीघ्र ही माता दिति के पास गया। वहाँ जाकर वह उस दैत्य-माता देवी की सेवा करने लगा। परन्तु वह दिति ईर्ष्यालु इन्द्र के मनोगत भावो को नही जानती थी। उस मुनि कश्यप के अमोघ और दुर्लभ तेज के गर्भस्थ होने पर इन्द्र के मन मे कैसे विचार हुये होगे इस बात को भी दिति नही जानती थी। इधर सहस्राक्ष इन्द्र वज्र हाथ मे लिये गर्भ मे प्रवेश करने की इच्छा से बहुत समय तक वहाँ प्रतीक्षा करते हुये रह गये। निदान एक दिन दिति को सध्या समय उत्तर की ओर शिर रखकर सोते हुये देखकर 'यह अच्छा अवसर है' यह कहकर इन्द्र दिति के उदर म घुस गये। वज्र हाथ म लिये हुये और मारने के लिये उद्यत इन्द्र को देखकर गर्भस्थ जीव निर्भीक होकर बार-बार कहने लगा ॥५३-५८॥

गर्भस्थ शिशु ने कहा—वज्रिन् ! तुम क्यो मेरी रक्षा नही करते ? क्या अपने भाई का ही वध करना चाहते हो ? युद्ध से अन्यत्र किसी को मारने से जो महापाप होता है, उससे बढकर और कोई पाप नही है। पराक्रमी इन्द्र ! बाहर निकलने पर मुझसे युद्ध करो ! इसलिये इस प्रकार का यह दुष्कर्म तुम्हारे लिये उचित नही होगा।

१ङ्. च ॰च्चित्रमिन्द्रस्य। २ घ. ॰रः। गर्भवैशसका॰।

ऋते युद्धान्महाबाहो शक्र युध्यस्व निर्गते। मयि तस्मान्नैतदेव तव युक्तं भविष्यति ॥६०॥
शतक्रतुः सहस्राक्षः शचीभर्ता पुरंदरः। वज्रपाणिः सुरेन्द्रस्त्वं[1] ते न युक्तं भवेत्प्रभो ॥६१॥
अथवा युद्धकामस्त्वं मम निष्क्रमण यथा। तथा कुरु महाबाहो मार्गादस्मादपासर ॥६२॥
कुमार्गे न प्रवर्तन्ते महान्तोऽपि विपद्‌गताः। अविद्यश्चाप्यशस्त्रश्च नैव चाऽऽयुधसंग्रहः ॥६३॥
त्वं विद्यावान्वज्रपाणे मा निघ्नन्कि न लज्जसे। कुर्वन्ति गर्हितं कर्म न कुलीनाः कदाचन ॥६४॥
हत्वा वा[2] किं तु जायेत यशो वा पुण्यमेव वा। वध्यन्ते भ्रातरः कामाद्‌गर्भस्थाः किं न पौरुषम् ॥६५॥
यदि वा युद्धभवितस्ते मयि भ्रातरसंशयम्। ततो मुष्टिं पुरस्कृत्य वज्रिणेऽसौ व्यवस्थितः ॥६६॥
बालघाती[3] ब्रह्मघाती तथा विश्वासघातकः। एवंभूतं फलं शक्र कस्मान्मां हन्तुमुद्यतः ॥६७॥
यस्याऽऽज्ञया सर्वमिदं वर्तते सचराचरम्। स हन्ता बालकं मां वै किं यशः किन्तु पौरुषम् ॥६८॥

ब्रह्मोवाच

एवं ब्रुवन्तं तं गर्भं चिच्छेद कुलिशेन सः। क्रोधान्धानां लोभिनां च न घृणा क्वापि विद्यते ॥६९॥
न ममार ततो दुःखादाहुस्ते भ्रातरो वयम्। पुनश्चिच्छेद तान्खण्डान्मा वधीरिति चाब्रुवन् ॥७०॥
विश्वस्तान्मातृगर्भस्थान्निजभ्रातॄन्शतक्रतो। द्वेषविध्वस्तबुद्धीनां न चित्ते करुणाकणः ॥७१॥

प्रभो! तुम शतक्रतु (सौ यज्ञ करने वाले) सहस्राक्ष, शची के भर्ता, वज्र-पाणि, पुरन्दर और सुरेन्द्र हो, अतः यह कार्य तुम्हारे लिये युक्त नही होगा। अथवा यदि तुम युद्ध करना चाहते हो तो जिस प्रकार मैं यहाँ से निकलूं वैसा करो। परन्तु महाबाहु! इस कुमार्ग से अपने को हटाओ। महान् व्यक्ति आपत्ति मे पडने पर भी कुमार्ग की ओर नही जाते। तुम तो विद्या विमुख और शस्त्र-हीन भी नही हो। वज्रपाणे! तुम तो आयुधवान् हो, विद्यावान् हो। तो क्या मुझको मारने मे तुम लज्जित नही होते? कुलीन व्यक्ति कभी भी निन्दित कर्म नही करते। सोचो तो, मुझको मारने से तुमको क्या मिलेगा यश या पुण्य? लोभवश गर्भस्थ भ्राता को मारकर तुम कौन-सा पौरुष करोगे? अथवा भाई! यदि तुम्हारी मुझसे निश्चित ही युद्ध करने की इच्छा है (यदि तुम मुझे मारना चाहते हो) (तो उसने अपनी बधी मुट्ठी इन्द्र को दिखाते हुये कहा) तो तुम बालघाती, ब्रह्मघाती और विश्वास-घातक हो। शक्र! तुमको इस पापकर्म से क्या फल मिलेगा? किस लिये तुम मुझे मारने के लिये तैयार हो? जिसकी आज्ञा से यह सम्पूर्ण स्थावर-जगम रूप जगत् सचालित होता है क्या वह मेरे समान बालक का हत्यारा बने? इसमे तुम्हें क्या यश मिलेगा? और क्या पुरुषार्थ होगा? ॥५९-६८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार बातचीत करते हुए उस गर्भ को इन्द्र ने वज्र से काट डाला। सत्य है, क्रोध और लोभी जनों को किसी काम मे घृणा नही होती। कटने पर भी वह गर्भस्थ जीव मरा नही। किन्तु दुःख से गर्भ के टुकडो ने कहा—'हम लोग भाई हैं। फिर इन्द्र ने उन खण्डो को भी काटा। इस पर खण्डो ने कहा—'शतक्रतो! विश्वासपात्र एवं माता के गर्भ मे स्थित अपने भाइयों को मत मारो।' परन्तु द्वेष से जिन प्राणियो की बुद्धि नष्ट

---

१ घ ङ ०स्त्व नैतद्युक्त। २ ङ च मां। ३ ङ ०नी मातृघा०।

एवं तु खण्डितं खण्डं हस्तपादादिजीववत् । निर्विकारं ततो दृष्ट्वा सप्तसप्त सुविस्मितः ॥७२॥
[1]एकवद्बहुरूपाणि गर्भस्थानि शुभानि च । रुदन्ति बहुरूपाणि मा रुतेत्यब्रवीद्धरिः ॥७३॥
ततस्ते मरुतो जाता बलवन्तो महौजसः । गर्भस्था एव तेऽन्योन्यमूचुः शक्रं गतभ्रमाः ॥७४॥
अगस्त्य मुनिशार्दूलं माता यस्याऽऽश्रमे स्थिता । अस्मत्पिता तव भ्राता सख्यं ते बहु मन्यते ॥७५॥
अस्मानुपरि सस्नेहं मनस्ते विद्महे मुने । न यत्करोति श्वपचः प्रवृत्तस्तत्र वज्रधृक् ॥७६॥
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा अगस्त्योऽगात्ससंभ्रमः । दितिं संबोधयामास व्यथितां गर्भवेदनात् ॥
तत्रागस्त्यः शचीकान्तमशपत्कुपितो भृशम् ॥७७॥

अगस्त्य उवाच

सङ्ग्रामे रिपवः पृष्ठं पश्येयुस्ते सदा हरे । जीवतामेव मरणमेतदेव हि मानिनाम् ॥
पृष्ठं पलायमानानां यत्पश्यन्त्यहिता रणे ॥७८॥

ब्रह्मोवाच

साऽपि तं गर्भसंस्थं च शशापेन्द्रं रुषा दितिः ॥७९॥

दितिरुवाच

न पौरुषं कृतं तस्माच्छापोऽयं भविता तव । स्त्रीभिः परिभवं प्राप्य राज्यात्प्रभ्रश्यसे हरे ॥८०॥

हो गई है, उनके हृदय म थोडी सी भी करुणा के लिये स्थान कहाँ? इस प्रकार इन्द्र ने प्रत्येक खण्ड को खण्डित करके भी हाथ पैर वाले जीव के समान उनचासा भागो को निर्विकार देखा। यह देखकर वे अतिविस्मित हो गये। उन एक प्रकार के बहुत से रूपवाले पवित्र गर्भस्थ जीवो को विभिन्न प्रकार से रोते हुये देखकर इन्द्र ने कहा—'मा रुत (मत रोओ)। इतना कहने से व जीव महातेजस्वी एव बलवान् 'मारुत' हो गये। गर्भमे रहकर ही उन जीवा ने मुनिवर अगस्त्य से जिनके आश्रम मे उनकी माता रहती थी, इन्द्र के बारे म परस्पर बातचीत की फिर निःशङ्क होकर कहा 'मुने!' हमारे पिता तुम्हारे भाई है और तुम्हारी मित्रता पर अधिक विश्वास करते हैं। मुने! हम लोगों पर तुम्हारे मन मे स्नेह है, यह हम जानते हैं, परन्तु इतना होने पर जिस काम को एक चाण्डाल भी नही कर सकता, उस कार्य मे वज्रधारी इन्द्र प्रवृत्त हुये हैं। यह सुनकर अगस्त्य शीघ्र वहाँ पहुँचे और गर्भपीडा से व्यथित दिति को सबोधित करने लगे। वहाँ अगस्त्य ने अत्यन्त कुपित होकर इन्द्र को शाप दिया ॥६९-७७॥

अगस्त्य ने कहा—हरे! सर्वदा शत्रु सग्राम मे तुम्हारी पीठ देखें। मान प्रिय व्यक्तियो के लिये यही जीते हुये भी मृत्यु के समान कष्ट भोगना है कि रण मे उनके शत्रु भागते हुये उन मनस्वियो की पीठ देखें ॥७८॥

ब्रह्मा ने कहा—उस दिति ने भी क्रोध से उस इन्द्र को शाप दिया, जो कि अभी गर्भ मे ही था ॥७९॥

दिति ने कहा—तुमने पुरुषार्थ नहीं किया है (अर्थात् तुमने यह कायरता की है)। अतः तुमको यह शाप है कि ऐ इन्द्र! तुम स्त्रियो से अनादर पाकर राज्य से च्युत होगे ॥८०॥

---

१ क० ०वस्य बहु०।

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र कश्यपो वै प्रजापतिः । प्रायाच्च व्यथितोऽगस्त्याच्छ्रुत्वा शक्रविचेष्टितम् ॥
गर्भान्तरगतः शक्रः पितरं प्राह भीतवत् ॥८१॥

शक्र उवाच

अगस्त्याच्च दितेश्चैव बिभेमि क्रमितुं बहिः ॥८२॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्य कश्यपोऽपि प्रजापतिः । पुत्रकर्म च तद्दृष्ट्वा गर्भान्तः स्थितिमेव च ॥
दितिशापमगस्त्यस्य श्रुत्वाऽसौ दुःखितोऽभवत् ॥८३॥

कश्यप उवाच

निर्गच्छ शक्र पुत्रैतत्पापं किं कृतवानसि । न निर्मलकुलोत्पन्ना मनः कुर्वन्ति पातके ॥८४॥

ब्रह्मोवाच

स निर्गतो वज्रपाणिः सव्रीडोऽधोमुखोऽब्रवीत् । तन्मूर्तिरेव वदति सदसच्चेष्टितं नृणाम् ॥८५॥

शक्र उवाच

यदुक्तमत्र श्रेयः स्यात्तत्कर्ताऽहमसंशयम् ॥८६॥

ब्रह्मोवाच

ततो ममान्तिकं प्रायाल्लोकपालैः स कश्यपः । सर्वं वृत्तमथोवाच पुनः पप्रच्छ मां सुरैः ॥८७॥
दितिगर्भस्य वै शान्तिं सहस्राक्षविशापताम् । गर्भस्थानां च सर्वेषामिन्द्रेण सह मित्रताम् ॥८८॥

ब्रह्मा ने कहा—इसी बीच प्रजापति कश्यप भी वहाँ आ गए। वे अगस्त्य के मुँह से इन्द्र के दुष्कर्म को सुनकर अत्यन्त व्यथित हुये। इन्द्र भयभीत होकर गर्भ के भीतर से ही पिता से बोले ॥८१॥

इन्द्र ने कहा—अगस्त्य और दिति के भय से मैं बाहर आने से डर रहा हूँ ॥८२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस समय प्रजापति कश्यप भी पुत्र के उस कर्म को और गर्भ के भीतर उसको घुसा देखकर एवं दिति तथा अगस्त्य के शाप को सुनकर अत्यन्त दुःखी हुए ॥८३॥

कश्यप ने कहा—शक्र! निकलो। पुत्र! तुमने यह पाप कार्य क्या किया है? उच्च कुल में उत्पन्न व्यक्ति कभी भी पाप की ओर अपना मन नहीं लगाते ॥८४॥

ब्रह्मा ने कहा—वह वज्रपाणि इन्द्र लज्जा से मुँह नीचे किये हुए निकला और बोला। सत्य है मनुष्य की आकृति ही उसके सत् और असत् कर्मों को बता देती है ॥८५॥

इन्द्र ने कहा—जिस कार्य के करने में कल्याण होगा, वह मैं अवश्य करूँगा। आप कृपापूर्वक बतलाइये ॥८६॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर लोकपालों के साथ कश्यप मेरे पास आये। सारी घटना कह सुनाई। पुनः देवताओं ने मुझसे पूछा—'किस प्रकार दिति की गर्भ-शान्ति, इन्द्र का शाप से उद्धार, गर्भस्थ सब जीवों की इन्द्र के साथ मैत्री

तेषामारोग्यता चापि शचीभर्तुरदोषताम्। अगस्त्यदत्तशापस्य विशापत्वमपि क्रमात्॥८९॥
ततोऽहमब्रवं वाक्यं कश्यपं विनयान्वितम्। प्रजापते कश्यप त्वं वसुभिर्लोकपालकैः॥९०॥
इन्द्रेण सहितं शीघ्रं गौतमीं याहि मानद। तत्र स्नात्वा महेशानं स्तुहि सर्वैः समन्वितः॥९१॥
ततः शिवप्रसादेन सर्वं श्रेयो भवेदिति। तथेत्युक्त्वा जगामासौ कश्यपो गौतमीं तदा॥९२॥
स्नात्वा तुष्टाव देवेशमेभिरेव पदक्रमैः। सर्वदुःखापनोदाय द्वयमेव प्रकीर्तितम् ।
गौतमी वा पुण्यनदी शिवो वा करुणाकरः ॥९३॥

कश्यप उवाच।

पाहि शंकर देवेश पाहि लोकनमस्कृत। पाहि पावन वागीश पाहि पन्नगभूषण॥९४॥
पाहि धर्म वृषारूढ पाहि वेदत्रयेक्षण। पाहि गोधरलक्ष्मीश पाहि शर्व गजाम्बर॥९५॥
पाहि त्रिपुरहन्नाथ पाहि सोमार्धभूषण। पाहि यज्ञेश सोमेश पाह्यभीष्टप्रदायक ॥८६॥
पाहि कारुण्यनिलय पाहि मङ्गलदायक। पाहि प्रभव सर्वस्य पाहि पालक वासव॥९७॥
पाहि भास्कर वित्तेश पाहि ब्रह्मनमस्कृत। पाहि विश्वेश सिद्धेश पाहि पूर्ण नमोऽस्तु ते॥९८॥
घोरसंसारकान्तारसंचारोद्विग्नचेतसाम्। शरीरिणां कृपासिन्धो त्वमेव शरणं शिव॥९९॥

और उन जीवों का उत्तम स्वास्थ्य शचीपति के दोषों का निराकरण एवं अगस्त्य के दिये हुए शाप से इन्द्र का उद्धार होगा? तब मैंने विनयावनत कश्यप से कहा—प्रजापते! कश्यप! मानद! तुम शीघ्र वसुओं लोकपालों और इन्द्र के सहित गौतमी के पास जाओ। उसमें स्नान कर सबके साथ महेशान (शंकर) की स्तुति करो। शिव की कृपा से सब प्रकार से कल्याण होगा। कश्यप ने इसको स्वीकार किया और गौतमी के तट पर गये। उसमें स्नानकर इन आप के कहे गये छन्दों से शंकर की स्तुति की। इस लोक में सब प्रकार के दुःखों को दूर करने के लिए दो देवता ही समर्थ माने गये हैं—एक पुण्य-नदी गौतमी और दूसरे करुणा के सागर भगवान शंकर॥८७-८३॥

कश्यप ने कहा—देवताओं के प्रभु शंकर! रक्षा करो! लोकपूजित! रक्षा करो। परम पावन! वाणी के स्वामी! रक्षा करो! सर्प के आभूषण वाले! रक्षा करो। धर्म! नन्दी पर (अथवा धर्मरूप वृषरूप) आरूढ़ होने वाले! रक्षा करो। तीन वेदरूपी तीन नेत्रवाले! रक्षा करो। कैलाश की लक्ष्मी (शोभा) के ईश! रक्षा करो। शर्व! गजचर्मधारिन्! रक्षा करो। त्रिपुर को नष्ट करने वाले नाथ! रक्षा करो। अर्द्ध चन्द्रमा को शिराभूषण बनाने वाले! रक्षा करो! यज्ञेश! रक्षा करो। सोमेश! मनोरथ देने वाले! रक्षा करो। करुणामूर्ति! रक्षा करो। मङ्गलदायक! रक्षा करो! सबको उत्पन्न करने वाले! रक्षा करो। वासव! पालक! रक्षा करो। भास्कर! धनेश! रक्षा करो ब्रह्मा से भी पूजित! रक्षा करो। विश्वेश! रक्षा करो। सिद्धेश! रक्षा करो! पूर्ण! आपको नमस्कार है। शिव! कृपासिंधो! संसार रूपी भयंकर वन में संचार करने से उद्विग्न हुए चित्त वाले प्राणियों के लिये तुम्हीं एकमात्र शरण हो॥९४-९९॥

१ङ. ०क्त्वा तैर्जगाम क०।

ब्रह्मोवाच

एव सस्तुवतस्तस्य पुरतोऽभूद्वृषध्वज । वरेण च्छन्दयामास कश्यप त प्रजापतिम् ॥१००॥
कश्यपोऽपि शिव प्राह विनीतवदिद वच । स प्राह विस्तरेणाथ इन्द्रस्य तु विचेष्टितम् ॥१०१॥
शाप नाश च पुत्राणा परस्परममित्रताम् । पापप्राप्ति तु शक्रस्य शापप्राप्ति तथैव च ॥
ततो वृषाकपि प्राह दिति चागस्त्यमेव च ॥१०२॥

शिव उवाच

मरुतो ये भवत्पुत्रा पञ्चाशच्चैकवर्जिता । सर्वे भवेयु सुभगा भवेयुर्यज्ञभागिन ॥१०३॥
इन्द्रेण सहिता नित्य वर्तयेयुर्मुदाऽन्विता ॥१०४॥
इन्द्रस्य तु हविर्भागो यत्र यत्र मखे भवेत । आदौ तु मरुतस्तत्र भवेयुर्नात्र सशय ॥१०५॥
मरुद्भि सहित शक्र न जयेयु कदाचन । जेता भवेत्सर्वदैव सुख तिष्ठ प्रजापते ॥१०६॥
अद्यप्रभृति ये कुर्यु रनयाद्भ्रातृघातनम् । वशच्छेदो विपत्तिश्च नित्य तेषा भविष्यति ॥१०७॥

ब्रह्मोवाच

अगस्त्यमृषिशार्दूल शभुरप्याह यत्नत ॥१०८॥

शभुरुवाच

म कुर्यास्त्व च कोप च शचीभर्तरि वै मुन । शम व्रज महाप्राज्ञ मरुतस्त्वमरा 'भवन् ॥१०९॥

ब्रह्मोवाच

दिति चापि शिव प्राह प्रसन्नो वृषभध्वज ॥११०॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार स्तुति करने पर कश्यप के सामने शकर ने प्रकट होकर उस प्रजापति कश्यप को वर प्रदान किया। कश्यप ने भी विनीत भाव से इन्द्र के किए कर्म—शाप पुत्रो का नाश परस्पर की ईर्ष्या इन्द्र की पाप तथा शाप की प्राप्ति आदि—विस्तार के साथ बता दिय। यह सुनकर शिव ने अगस्त्य और दिति से कहा ॥१०० १०२॥

शिव ने कहा—जो मरुत नाम के तुम्हारे उनचास पुत्र हैं। वे सब भाग्यशाली और यज्ञाश पाने वाले होंगे। वे इन्द्र के साथ आनन्दपूवक रहग। जिन यज्ञो म इन्द्र को यज्ञ भाग प्राप्त होगा वहाँ इन्द्र के पहले मरुत ही यज्ञ भाग पायेंगे यह निश्चित समझो। मरुतो के सहित इन्द्र को कभी कोई जीत न सकेगा। प्रजापते ! आप सुखपूवक निश्चिन्त रहिये। यह आपका पुत्र सवदा ही विजयी होगा। आज स जो कोई अन्याय-पूवक भाइयो का वध करेंगे उनका वश-नाश होगा। और वे सवदा विपत्ति-ग्रस्त रहग ॥१०३ १०७॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके उपरान्त शभु ने बड प्रम से ऋषिवर अगस्त्य स कहा ॥१०८॥

शभु ने कहा—मुने ! शचीपति के उपर आप क्रोध न करें। महाप्राज्ञ ! आप शान्त हो जाइय। मरुद्गण तो अब अमर हो गय हैं ॥१०९॥

ब्रह्मा ने कहा—परम प्रसन्न वृषभ ध्वज शकर ने दिति स भी कहा ॥११०॥

---

१ अडभाव आर्षं

शिव उवाच

एको भूयान्मम सुतस्त्रैलोक्यैश्वर्यमण्डित । इत्येव चिन्तयन्ती त्व तपसे नियताऽभव ॥१११॥
तदेतत्सफल तेऽद्य पुत्रा बहुगुणा शुभा । अभवन्बलिन शूरास्तस्माज्जहि मनोरुजम ॥
अन्यानपि वरान्सुभ्रूर्याचस्व गतसभ्रमा ॥११२॥

ब्रह्मोवाच

तदेतद्वचन श्रुत्वा देवदेवस्य सा दिति । कृताञ्जलिपुटा नत्वा शभु वाक्यमथाब्रवीन् ॥११३॥

दितिरुवाच

लोके यदेतत्परम यत्पित्रो पुत्रदर्शननम् । विशेषेण तन्मातु प्रिय स्यात्सुरपूजित ॥११४॥
तत्रापि रूपसपत्तिशौर्यविक्रमवान्भवेत् । एकोऽपि तनय किंतु बहवश्चेत्किमुच्यते ॥११५॥
मत्पुत्रास्ते प्रभावाच्च जेतारो बलिनो ध्रुवम् । इन्द्रस्य भ्रातर सत्य पुत्राश्चैव प्रजापते ॥११६॥
अगस्त्यस्य प्रमादाच्च गङ्गायाश्च प्रसादत । यत्र देव प्रसादस्ते तच्छुभ कोऽत्र सशय ॥११७॥
कृतार्थाऽह तथाऽपि त्वा भक्त्या विज्ञापयाम्यहम् । शृणुष्व देव वचन कुरुष्व च जगद्धितम् ॥११८॥

ब्रह्मोवाच

तदेत्युक्ता जगद्धात्रा दितिर्नम्राऽब्रवीदिदम् ॥११९॥

दितिरुवाच

सन्ततिप्रापण लोके दुर्लभ सुरवन्दित । विशेषेण प्रिय मातु पुत्रश्चेत्कि नु वर्ण्यते ॥१२०॥

शकर ने कहा—मुझ त्रलोक्य के एश्वय का अधिकारी एक पुत्र हो इस विचार स तुमने कठिन तपस्या की है। सो आज तुम्हारी कामना सफल हो गइ। तुम्हारे पुत्र बहुगुणशाली शुभमूर्ति बली और शूर हो गय हैं। अब मानसिक सन्ताप छोड दो। सुन्दर भौं वाली ! तुम अब निश्चिन्त हो, अन्य वरो को मागो ॥१११ ११२॥

ब्रह्मा ने कहा—देवाधिदेव शकर की इन बातो को सुनकर वह दिति हाथ जोडकर शभु को प्रणाम करके बोली ॥११३॥

दिति ने कहा—सुरपूजित ! इस ससार म यह परम सौभाग्य का विषय है कि माता पिता पुत्र का मुख देखें। माता के लिय तो यह और भी अधिक प्रिय विषय है। तिस पर भी यदि एक भी पुत्र रूप सम्पत्ति शूरता और पराक्रम वाला हो जाता है तो महान् आनन्द होता है फिर एस बहुत स पुत्रो क हो जान पर तो कहना ही क्या है। आपके प्रभाव म तथा अगस्त्य और गगा की कृपा स मरे सभी पुत्र बलवान् विजयी इन्द्र क भाई और प्रजापति क पुत्र हैं, यह सत्य है। जहा आपकी कृपा होगी वहाँ तो शुभ होगा ही, इसम सन्देह की गुजायश नही है। अब मैं कृताथ हो गई तिस पर भी आज मैं भक्तिपूवक आपस प्राथना करती हूँ। देव ! इस प्रायना को सुनिये और जगत का कल्याण कीजिय ॥११४ ११८॥

ब्रह्मा ने कहा—जगद्धाता ने कहा कहो। तब दिति नम्रता के साथ बोली ॥११९॥

दिति ने कहा—सुरवन्दित ! इस लोक म सन्तान प्राप्ति दुर्लभ है विशषकर माता को सतान बहुत प्रिय

स चापि गुणवाञ्श्रीमानायुष्मान्यदि जायते। किंतु स्वर्गेण देवेश' पारमेष्ठ्यपदेन वा॥१२१॥
सर्वेषामपि भूतानामिहामुत्र फलैषिणाम्। गुणवत्पुत्रसंप्राप्तिरभीष्टा सर्वदैव हि
तस्मादाप्लवनादत्र क्रियतां समनुग्रह ॥१२२॥

शंकर उवाच

महापापफल चेद यदेतदनपत्यता। स्त्रिया वा पुरुषस्यापि वन्ध्यत्व यदि जायते॥१२३॥
तदत्र स्नानमात्रेण तद्दोषो नाशमाप्नुयात्। स्नात्वा तत्र फल दद्यात्स्तोत्रमेतच्च य पठेत्॥१२४॥
स तु पुत्रमवाप्नोति' त्रिमासस्नानदानत। अपुत्रिणी स्त्वत्र स्नान कृत्वा पुत्रमवाप्नुयात्॥१२५॥
ऋतुस्नाता तु या काचित्तत्र स्नाता सुताँल्लभेत्। त्रिमासाभ्यन्तर या तु गुर्विणी भक्तितस्त्विह॥१२६॥
फलै' स्नात्वा तु मा पश्येत्स्तोत्रेण स्तौति मा तथा। तस्या शक्रसम पुत्रो जायते नात्र सशय॥१२७॥
पितृदोषैश्च ये पुत्र न लभन्ते दिते शृणु। धनापहारदोषैश्च तत्रैषा निष्कृति परा॥१२८॥
तत्रैषा पिण्डदानेन पितॄणा प्रीणनेन च। किंचित्सुवर्णदानेन तत पुत्रो भवेद्ध्रुवम्॥१२९॥
ये न्यासाद्यपहर्तारो रत्नापह्नवकारका'। श्राद्धकर्मविहीनाश्च तेषा वशो न वर्धते॥१३०॥
दोषिणा तु परेताना गतिरेषा भवेदिति। सततिर्जायता श्लाघ्या जीवता तीर्थसेवनात्॥१३१॥

होती है उस पर भी पुत्र हो तो फिर कहना ही क्या है? देवेश! यदि वह पुत्र गुणवान्, श्रीमान् और दीर्घजीवी हो जाय तब तो उसके सामने स्वर्ग या ब्रह्मपद का भी कोई महत्त्व नहीं होता। लौकिक एव पारलौकिक फलो की इच्छा करने वाले सभी प्राणियो को गुणी पुत्र पाने की सवदा इच्छा बनी रहती है। इसलिये आप इस विषय मे कल्प-पयन्त के लिये अनुग्रह कीजिये॥१२०-१२२॥

शकर ने कहा—जो यह अनपत्यता (सतान-हीनता) है वह महापाप का परिणाम है। अत यदि स्त्री या पुरुष किसी को वन्ध्यापन दोष हो जाय तो यहाँ स्नान करने से ही वह दोष नष्ट हो जायगा। जो इस तीर्थ म स्नान कर किसी को फल का दान करेगा और इस स्तोत्र का पाठ करेगा उसे तीन मास क स्नान-दान से पुत्र की प्राप्ति होगी। अपुत्रिणी स्त्री यहाँ स्नान करने स पुत्रवती होगी। जो कोई ऋतु-स्नाता स्त्री यहाँ स्नान करेगा वह पुत्रो को प्राप्त करेगी। जो गर्भिणी स्त्री यहाँ तीन महीने तक स्नान कर फल हाथ म लेकर मेरा दर्शन करेगी और मेरे स्तोत्र से स्तुति करेगी उसको इन्द्र के समान तेजस्वी पुत्र होगा इसम सन्देह नही। दिति! जो अपने पिता के दोष तथा धन अपहरण करन के दोष क कारण पुत्र नहीं प्राप्त करत उनके लिये उत्तम उपाय बता रहा हूँ सुनो। ऐसे व्यक्ति यदि उस तीर्थ म पिण्डदान कर और पितरो को प्रसन्न कर तथा कुछ सोना दान द तो वे अवश्य पुत्रवान् होंगे। जो किसी की धरोहर को हड़प लेन अथवा रत्नो को चुराते या बन्द लते हैं और जो श्राद्ध आदि कम नहीं करत हैं उनकी वश वृद्धि नहीं होती है। एस दुष्ट व्यक्तियो के मरन पर यही गति (वश विच्छेद) होती है। अत जीवित व्यक्तियो को इस तीर्थ क सेवन म उत्तम सन्तति की प्राप्ति होती है। जो दिति और गगा के सगम म स्नान कर प्रभु सिद्धेश्वर

---

१ घ ङ च मानग। २क ०ति मासान स्ना०। ३ क तिते। ४ङ च ०पहारका०।

सगमे दितिगङ्गाया स्नात्वा सिद्धेश्वर प्रभुम्। 'अनाद्यपारमजर चित्सदानन्दविग्रहम् ॥१३२॥
देवर्षिसिद्धगन्धर्वयोगीश्वरनिषेवितम्। लिङ्गात्मक महादेव ज्योतिर्मयमनामयम् ॥१३३॥
पूजयित्वोपचारैश्च नित्य भक्त्या यतव्रत। स्तोत्रेणानेन य स्तौति चतुर्दश्यष्टमीषु च ॥१३४॥
यथाशक्त्या (क्ति) स्वर्णदान ब्राह्मणाना च भोजनम्। य करोत्यत्र गङ्गाया स' पुत्रशतमाप्नुयात् ॥१३५॥
सप्राप्य सकलान्कामानन्ते शिवपुर व्रजेत। स्तोत्रेणानेन य कश्चिद्यत्र क्वापि स्तवीति माम् ॥
षण्मासात्पुत्रमाप्नोति अपि 'वन्ध्याप्यशङ्कितम् ॥१३६॥

ब्रह्मोवाच

तत प्रभृति तत्तीर्थं 'पुत्रतीर्थमुदाहृतम्। तत्र तु स्नानदानाद्यैः सर्वकामानवाप्नुयात् ॥१३७॥
मरुद्भि सह मैत्र्येण मित्रतीर्थं तदुच्यते। निष्पापत्वेन चन्द्रस्य शक्रतीर्थं तदुच्यते ॥१३८॥
ऐन्द्रीं श्रिय यत्र लेभे तत्तीर्थं कमलाभिधम्। एतानि सर्वतीर्थानि सर्वाभीष्टप्रदानि हि ॥१३९॥
सर्वं भविष्यतीत्युक्त्वा शिवश्चान्तरधीयत। कृतकृत्याश्च ते जग्मु सर्व एव यथागतम् ॥
तीर्थाना पुण्यद तत्र लक्षमेक प्रकीर्तितम ॥१४०॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे स्वयम्भूऋषिसवादे तीर्थमाहात्म्ये पुत्रतीर्थादिलक्ष-
तीर्थवर्णन नाम चतुर्विंशाधिकशततमोऽध्याय ॥१२४॥
गौतमीमाहात्म्ये पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥५५॥

अनादि अपार अजर सत चित् एव आनन्दमय शरीरवाले देव ऋषि सिद्ध गन्धर्व और योगीश्वरो से सर्वदा सेवित लिङ्गात्मक ज्योतिर्मय तथा निर्विकार महादेव की सयम और भक्तिपूर्वक नित्य षोडशोपचार स पूजा करते हैं और चतुर्दशी अष्टमी आदि तिथियो मे इस स्तोत्र से स्तुति करते यथाशक्ति ब्राह्मणो को भोजन कराते और उस गगा म साना दान देते हैं वे सौ पुत्र पाते है। वे अपने जीवन की सम्पूर्ण कामनाओ का उपभोग कर अन्त मे शिव लोक को जाते हैं। जो कोई जहाँ कही भी इस स्तोत्र से मेरी स्तुति करता है वह चाहे बाँझ ही क्यो न हो छह महीने के भीतर ही निश्चित रूप से पुत्रवान् हो जाता है ॥१२३ १३६॥

ब्रह्मा ने कहा—तब से वह तीर्थ पुत्र-तीर्थ कहा जाने लगा। उसमे स्नान दान आदि करने से सब कामनाय प्राप्त होती हैं। मरुत के साथ इन्द्र की मैत्री होने से वह मित्र-तीर्थ भी कहा जाता है। इन्द्र का वहा पाप दूर हो गया अतएव उसको शक्र-तीर्थ भी कहा जाता है। जहाँ इन्द्र ने अपनी श्री प्राप्त की वहाँ कमला-तीर्थ बन गया है। ये सब तीर्थ सब प्रकार की मन कामनाओ को देने वाले हैं। तदनन्तर सब कुछ प्राप्त होगा यह कहकर शिव अन्तर्हित हो गये। वे सभी इन्द्र आदि कृतकृत्य होकर अपने गन्तव्य स्थान को चले गये। वहाँ एक लाख पवित्र तीर्थ निवास करते हैं एसा कहा जाता है ॥१३७ १४०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे पुत्र-तीर्थ वर्णन नामक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२४॥

---

१ घ ङ च ०रसद्रूज चि०। २घ ङ च स तु पुत्रमवाप्नु०। ३क ०ध्या ह्यशीतिका। त०। ४ घ ङ च ०यमिति श्रुतम्।

अथ पञ्चविंशाधिकशततमोऽध्यायः

यमतीर्थवर्णनम

ब्रह्मोवाच

यमतीर्थमिति ख्यातं पितृणां प्रीतिवर्धनम्। दृष्टादृष्टेष्टदं सर्वदेवर्षिगणसेवितम् ॥१॥
तस्य प्रभावं वक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम्। अनुह्लाद इति ख्यातः कपोतो बलवानभूत् ॥२॥
तस्य भार्या हेतिनाम्नी पक्षिणी कामरूपिणी। मृत्योः पौत्रो ह्यनुह्लादो दौहित्री हेतिरेव च ॥३॥
कालेनाथ तयोः पुत्राः पौत्राश्चैव बभूविरे। तस्य शत्रुश्च बलवानुलूको नाम पक्षिराट् ॥४॥
तस्य पुत्राश्च पौत्राश्च आग्नेयास्ते बलोत्कटाः। तयोश्च वैरमभवद्बहुकालं द्विजन्मनोः ॥५॥
गङ्गाया उत्तरे तीरे कपोतस्याऽऽश्रमोऽभवत्। तस्याश्च दक्षिणे कूल उलूको नाम पक्षिराट् ॥६॥
वासं चक्रे तत्र पुत्रैः पौत्रैश्च द्विजसत्तम। तयोश्च युद्धमभवद्बहुकालं विरुद्धयोः ॥७॥
पुत्रैः पौत्रैश्च वृतयोर्बलिनोर्बलिभिः सह। उलूको वा कपोतो वा नैवाऽऽप्नोति जयाजयौ ॥८॥
कपोतो यममाराध्य मृत्युं पैतामहं तथा। याम्यमस्त्रमवाप्याथ सर्वेभ्योऽप्यधिकोऽभवत् ॥९॥
तथोलूकोऽग्निमाराध्य बलवानभवद्भृशम्। वरैरुन्मत्तयोर्युद्धमभवच्चातिभीषणम् ॥१०॥
तत्राऽऽग्नेयमुलूकोऽपि कपोतायास्त्रमाक्षिपत्। कपोतोऽप्यथ पाशान्वै याम्यानाक्षिप्य शत्रवे ॥११॥

अध्याय १२५

यमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) पितरों के आनन्द को बढ़ाने वाला दृष्ट अदृष्ट और इष्ट फल को देने वाला और सब देवों एवं ऋषियों से सेवित यम-तीर्थ नाम का एक प्रसिद्ध तीर्थ है। सब प्रकार के पापों को नष्ट करने वाले उस तीर्थ के प्रभाव को बतला रहा हूँ। एक अनुह्लाद नाम का बलवान् कबूतर था। उसकी हेति नाम की भार्या थी, जो अत्यन्त सुन्दर पक्षिणी थी। अनुह्लाद मृत्यु का पौत्र और हेति उसकी नतिनी (कन्या की कन्या) थी। समय आने पर उनके पुत्र और पौत्र हुए। उसका एक उल्लू नामक बलवान पक्षिराज शत्रु था। उसके भी अत्यन्त विकट अग्निवंशी पुत्र और पौत्र हुए। उन दोनों पक्षिकुलों में दीर्घकालीन वैर हो गया। गंगा के उत्तर तीर पर कबूतर का घोंसला था और उसके दक्षिणी तट पर पक्षिराज उल्लू निवास करता था। द्विजवर! पुत्रों और पौत्रों से युक्त दोनों बलशाली पक्षीदलों का बहुत काल तक युद्ध चलता रहा परन्तु कपोत या उल्लू दोनों में से किसी की हार-जीत नहीं हुई। कपोत ने पितामह मृत्यु (यम) की आराधना कर याम्य अस्त्र प्राप्त कर लिया जिससे वह सबसे अधिक शक्तिशाली हो गया। इसी प्रकार उल्लू भी अग्नि की आराधना से अत्यन्त बलवान् हो गया। इस प्रकार देव-वर पाने से उन्मत्त उन दोनों पक्षियों में घोर संग्राम हुआ। उस युद्ध में उल्लू ने कपोत पर आग्नेयास्त्र और कपोत ने

१क पुत्रो। २घ ङ गङ्गायाः।

उलूकायाथ दण्ड च मृत्युपाशानवासृजत् । पुनस्तदभवद्युद्ध पुराऽऽडीबकयोर्यथा ॥१२॥
हेति कपोतकी दृष्ट्वा ज्वलन प्राप्तमन्तिके । पतिव्रता महायुद्धे भर्तु सा दु खविह्वला ॥१३॥
अग्निना वेष्ट्यमानाश्च पुत्रान्दृष्ट्वा विशेषत । सा गत्वा ज्वलन हेतिस्तुष्टाव विविधोक्तिभि ॥१४॥

हेतिरुवाच

रूप न दान न परोक्षमस्ति, यस्याऽऽत्मभूत च पदार्थजातम् ।
अश्नन्ति हव्यानि च येन देवा, स्वाहापति यज्ञभुज नमस्ये ॥१५॥

मुखभूत च देवाना देवाना हव्यवाहनम । होतार चापि देवाना देवाना दूतमेव च ॥१६॥
त देव शरण यामि आदिदेव विभावसुम् । अन्त स्थित प्राणरूपो बहिश्चान्नप्रदो हि य ॥
यो यज्ञसाधन यामि शरण त धनजयम् ॥१७॥

अग्निरुवाच

अमोघमेतदस्त्र मे न्यस्त युद्धे कपोतकि । यत्र विश्रमयेदस्त्र तन्मे ब्रूहि पतिव्रते ॥१८॥

कपोत्युवाच

मयि विश्रम्यतामस्त्र न पुत्रे न च भर्तरि । सत्यवाग्भव हव्येश जातवेदो नमोऽस्तु त ॥१९॥

जातवेदा उवाच

तुष्टोऽस्मि तव वाक्येन भर्तृभक्त्या पतिव्रते । तवापि भर्तृपुत्राणा हेति क्षेम ददाम्यहम् ॥२०॥
आग्नेयमेतदस्त्र मे न भर्तार सुतानपि । न त्वा दहेत्ततो याहि सुखेन त्व कपोतकि ॥२१॥

शत्रु उलूक पर याम्य पाश को छोडा। इस प्रकार प्राचीन काल के आडी और वक पक्षियो के समान वह युद्ध होने लगा। पतिव्रता कपोतकी हेति ने देखा कि उसके पति के पास अग्नि की लपट पहुच गई है और पुत्रो को अग्नि ने घेर लिया है इससे वह बहुत घबराई। तब अग्नि के पास जाकर वह विविध वाक्यो से स्तुति करने लगी ॥१ १४॥

हेति ने कहा—जिनका स्वरूप और दान किसी से छिपा नही है जो सभी पदार्थों को आत्मसात कर लेते हैं, जिनकी सहायता से देवता हव्य ग्रहण करते हैं ऐसे स्वाहा के पति यज्ञभक्ष अग्नि को नमस्कार करती हू। जो अग्निदेव देवताओ के मुख के समान हैं जो देवो के हव्य ढोने वाले है जो देवताओ के होता और दूत है उस अग्निदेव विभावसु (अग्नि) की शरण मैं ग्रहण करती हू। जो प्राणरूप होकर समस्त प्राणियो के अन्तस म स्थित हैं जो बाहर (जगत म) रहकर सबके अन्न दाता है जो यज्ञ के एकमात्र साधन हैं ऐसे धनजय अग्नि की शरण मैं ग्रहण करती हूँ॥१५ १७॥

अग्नि ने कहा—कपोतकि ! मेरा यह अस्त्र अमोघ है जिसका इस युद्ध म प्रयोग हो गया है। इसलिये पतिव्रते ! जहाँ यह विश्राम ले (अर्थात जिसको मार कर यह शान्त हो जाय) वह मुझे बताओ ॥१८॥

कपोती ने कहा—मुझ पर यह विश्राम करे। मेरे पुत्र और पति पर इसका प्रभाव न पडे। हव्येश ! आप अपनी बात सत्य कीजिये जातवेदा ! आपको नमस्कार है॥१९॥

अग्नि ने कहा—पतिव्रते ! तुम्हारे पति प्रेम और इन वाक्यो से मैं प्रसन्न हूँ हेति ! तुम्हारे भर्त्ता पुत्र और स्वय तुमको भी कल्याण का वरदान देता हूँ। यह मेरा आग्नेयास्त्र न तो तुमको ही जलायेगा न तुम्हारे पति या पुत्रों को ही। कपोतकि ! तुम सुखपूर्वक जाओ ॥२० २१॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र उलूकी ददृशे पतिम्। वेष्ट्यमानं याम्यपाशैर्यमदण्डेन ताडितम् ॥
उलूकी दुःखिता भूत्वा यम प्रायाद्भयातुरा ॥२२॥

उलूक्युवाच

त्वद्भीता अनुद्रवन्ते जनास्त्वद्भीता ब्रह्मचर्यं चरन्ति ।
त्वद्भीता साधु चरन्ति धीरास्त्वद्भीता कर्मनिष्ठा भवन्ति ॥२३॥
त्वद्भीता अनाशकमाचरन्ति, ग्रामादरण्यमभि यच्चरन्ति ।
त्वद्भीता सौम्यतामाश्रयन्ते, त्वद्भीताः सोमपानं भजन्ते ॥
त्वद्भीताश्चान्नगोदाननिष्ठास्त्वद्भीता ब्रह्मवादं वदन्ति ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

एवं [1]ब्रुवत्यां तस्या तामाह दक्षिणदिक्पतिः ॥२५॥

यम उवाच

वरं वरय भद्रं ते दास्येऽहं मनसः प्रियम् ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

यमस्येति वचः श्रुत्वा सा तमाह पतिव्रता ॥२७॥

ब्रह्मा ने कहा—इसी बीच उलूकी ने भी अपने पति को युद्ध में मृत्युपाश से बँधा और यमदण्ड से पिटते देखा। यह देखकर उलूकी दुःखी और भयातुर होकर यम के समीप गई ॥२२॥

उलूकी ने कहा—देव! तुमसे भयभीत होकर सभी प्राणी भाग जाते हैं। तुमसे डरकर ही प्राणी ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते हैं। धीर पुरुष तुम्हारे भय से ही साधु आचरण करते हैं और तुम्हारे भय से ही सभी अपने कर्तव्य में आस्था रखते हैं। तुम्हारे ही भय से अविध्वस्त कार्य किये जाते हैं और लोग गाँव से जंगल को जाते हैं। तुम्हारे भय से मनुष्य अपनी बर्बरता छोड़कर विनीत बन जाते हैं। तुम्हारे डर से सोम-पान किया जाता है। तुम्हारे डर से मनुष्य अन्नदान, गोदान आदि में निष्ठा रखते हैं और तुम्हारे भय से मनुष्य ब्रह्मवाद (आस्तिकवाद) का प्रवचन करते हैं। ॥२३-२४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार की स्तुति सुनकर दक्षिण दिशा के स्वामी यम ने उस उलूकी से कहा ॥२५॥

यम ने कहा—भद्रे! वर माँगो! मैं तुम्हारी मनःकामना पूर्ण करूँगा ॥२६॥

ब्रह्मा ने कहा—यम की बातें सुनकर उस पतिव्रता ने यम से कहा ॥२७॥

---

[1] ख. च. स्तुवत्यां।

उलूक्युवाच

भर्ता मे वेष्टितः पाशैर्दण्डेनाभिहतस्तव । तस्माद्रक्ष सुरश्रेष्ठ पुत्रान्भर्तारमेव च ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यात्कृपया युक्तो यमः प्राह पुनः पुनः ॥२९॥

यम उवाच

पाशानां चापि दण्डस्य स्थानं वद शुभानने ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

सा प्रोवाच यमं देवं मयि पाशास्त्वयेरिताः । आविशन्तु जगन्नाथ दण्डो मय्येव संविशेत् ॥

ततः प्रोवाच भगवान्यमस्तां कृपया पुनः ॥३१॥

यम उवाच

तव भर्ता च पुत्राश्च सर्वे जीवन्तु विज्वराः ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

न्यवारयद्यमः पाशानाग्नेयास्त्रं तु हव्यवाट् । कपोतोलूकयोश्चापि प्रीतिं वै चक्रतुः सुरौ ॥

आहतुश्च द्विजन्मानौ व्रियतां वर इप्सितः ॥३३॥

पक्षिणावूचतु[1]

भवतोर्दर्शनं लब्धं वैरव्याजेन दुष्करम् । वयं च पक्षिणः पापाः किं वरेण सुरोत्तमौ ॥३४॥

उलूकी ने कहा—सुरश्रेष्ठ ! मेरा पति तुम्हारे पाश से बँधा हुआ है। तुम्हारे दण्ड से पीडित है। इसलिये मेरे पुत्र और पति की रक्षा करो ॥२८॥

ब्रह्मा ने कहा—उलूकी की वाता को सुनकर यम ने दयार्द्र होकर बार-बार कहा ॥२९॥

यम ने कहा—हे शुभानने ! मेरे पाश और दण्ड के लिये स्थान बतलाओ ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—उसने यम देवता से कहा—तुमने अपने पाशों को मेरे ऊपर ही फेंका है। अतः जगन्नाथ ! ये पाश और दण्ड मझमें ही लीन हो जायें। इसके बाद भगवान यम ने कृपापूर्वक उससे कहा ॥३१॥

यम ने कहा—तुम्हारे पुत्र और पति सब निष्कण्टक होकर जीयें ॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार यम ने उलूकी को वर देकर अपने पाशों (बन्धन) को और अग्नि ने अपने आग्नेयास्त्र को हटा दिया। कपोत और उलूक पर भी उन दोनों देवों ने अपनी प्रसन्नता व्यक्त की और उन दोनों पक्षियों से कहा कि अपने अभीष्ट वर मांगो ॥३३॥

दोनों पक्षी बोले—सुरोत्तम ! आज अपने परस्पर के वैर के बहाने ही आप लोगों का यह दुर्लभ दर्शन प्राप्त हुआ। हम तो पापकर्मा पक्षी हैं हम लोगों को वर की क्या आवश्यकता ? यदि आप देवता हम लोगों को वर देना

---

[1] क ०वयाततया।

अथ देयो वरोऽस्माक भवद्भ्या प्रीतिपूर्वकम् । नाऽऽत्मार्थमनुयाचावो दीयमान वर शुभम् ॥३५॥
आत्मार्थं यस्तु याचेत स शोच्यो हि सुरेश्वरौ । जीवित सफल तस्य य परार्थोद्यत सदा ॥३६॥
अग्निरापो रवि पृथ्वी धान्यानि विविधानि च । परार्थं वर्तन तेषा सता चापि विशेषत ॥३७॥
ब्रह्मादयोऽपि हि यतो युज्यन्ते मृत्युना सह । एव ज्ञात्वा तु देवेशौ वृथा स्वार्थपरिश्रम ॥३८॥
जन्मना सह यत्पुसा विहित परमेष्ठिना । कदाचिन्नान्यथा तद्वै वृथा क्लिश्यन्ति जन्तव ॥३९॥
तस्माद्याचावहे किंचिद्धिताय जगता शुभम् । गुणदायि तु सर्वेषा तद्युवा (युवाभ्या) मनुमन्यताम् ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

तावाहतुरुभौ देवौ पक्षिणौ लोकविश्रुतौ । धर्मस्य यशसोऽवाप्त्यै लोकाना हितकाम्यया ॥४१॥

पक्षिणावूचतु

आवाभ्यामाश्रमौ तीर्थे गङ्गाया उभये तटे । भवेता जगता नाथावेष एव परो वर ॥४२॥
स्नान दान जपो होम पितृणा चापि पूजनम् । सुकृती दुष्कृती वाऽपि य करोति यथा तथा ॥
सर्वं तदक्षय पुण्य स्यादित्येष परो वर ॥४३॥

देवावूचतु

एवमस्तु तथाचान्यत्सुप्रीतौ तु ब्रुवावहे ॥४४॥

ही चाहते हैं तो हम भी आप लोगो का यह दिया हुआ शुभ वर अपने स्वार्थ के लिये नहीं चाहते हैं क्योंकि हे सुरेश्वर गण ! जो व्यक्ति अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिये याचना करता है उसका जीवन प्रशसनीय नही होता। उसी व्यक्ति का जीवन सफल कहा जाता है जो सवदा परोपकार के लिये उद्यत रहता है। अग्नि, जल सूर्य पृथ्वी विविध प्रकार के धान्य आदि परोपकार के लिए ही अपना अस्तित्व बनाये हुये हैं और प्राय सज्जन व्यक्ति विशेष रूप से परोपकार के लिए जीते हैं। जब ब्रह्मा आदि देव भी मृत्यु की पाश में बधे है तो यह जानकर हे देवेश ! स्वार्थ के लिए परिश्रम करना व्यर्थ है। परमेष्ठी (ब्रह्मा) ने प्राणियों के जन्म के साथ जो कुछ निर्दिष्ट कर दिया है, वह किसी प्रकार से बदला नहीं जा सकता। तब जीवो को अपने स्वार्थ के लिए कष्ट उठाना व्यर्थ है। इसलिये लोक-कल्याण के लिये कुछ शुभ और गुण प्रद वरदान माँग रहे हैं उसको आप दोनो स्वीकार करें॥३५-४०॥

ब्रह्मा ने कहा—उन दोनो लोक प्रसिद्ध देवताओ से उन दोनो पक्षियो ने धर्म और यश की प्राप्ति के लिये साथ ही लोक हित की कामना से कहा॥४१॥

दोनों पक्षियो ने कहा—जगत् के स्वामी ! गगा के दोनो तटो पर हम लोगो के आश्रम हैं। वे दोनो आश्रम तीर्थ बन जायें यही हमारे लिए उत्तम वर है। सुकृती या दुष्कृती कोई भी हो और वह यहाँ स्नान दान जप होम और पितरो की पूजा आदि कर्म चाहे जिस किसी प्रकार कर परन्तु उसको उसका अक्षय-पुण्य प्राप्त हो यही हमारा अभीष्ट वर है॥४२-४३॥

दोनो देवो ने कहा—हम दोनो प्रसन्न होकर कहते है कि ऐसा ही होगा तथा दूसरी बातें भी होगी॥४४॥

यम उवाच

उत्तरे गौतमीतीरे यमस्तोत्रं पठन्ति ये। तेषां सप्तसु वंशेषु नाकाले मृत्युमाप्नुयात् ॥४५॥
पुरुषो भाजनं च स्यात्सर्वदा सर्वसंपदाम्। यस्त्विदं पठते नित्यं मृत्युस्तोत्रं जितात्मवान् ॥४६॥
अष्टाशीतिसहस्रैश्च व्याधिभिर्न स बाध्यते। अस्मिंस्तीर्थे द्विजश्रेष्ठो त्रिमासाद्गुर्विणी सती[1] ॥४७॥
अर्वाग्वन्ध्या च षण्मासात्सप्ताहं स्नानमाचरेत्। वीरसूः सा भवेन्नारी शतायुः स सुतो भवेत्॥
लक्ष्मीवान्मतिमाञ्शूरः पुत्रपौत्रविवर्धनः। तत्र पिण्डादिदानेन पितरो मुक्तिमाप्नुयुः ॥४८॥
मनोवाक्कायजात्पापात्स्नान्मुक्तो भवेन्नरः ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

यमवाक्यादनु तथा हव्यवाडाह पक्षिणो ॥५०॥

अग्निरुवाच

मत्स्तोत्रं दक्षिणे तीरे ये पठन्ति यतव्रताः। तेषामारोग्यमैश्वर्यं लक्ष्मीं रूपं ददाम्यहम् ॥५१॥
इदं स्तोत्रं तु यः कश्चिद्यत्र क्वापि पठेन्नरः। नैवाग्नितो भयं तस्य लिखितेऽपि गृहे स्थिते ॥५२॥
स्नानं दानं च यः कुर्यादग्नितीर्थे शुचिर्नरः। अग्निष्टोमफलं तस्य भवेदेव न संशयः ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रभृति तत्तीर्थं याम्यमाग्नेयमेव च। कपोतं च तथोलूकं हेत्युलूकं विदुर्बुधाः ॥५४॥

यम ने कहा—जो गौतमी के उत्तर तीर पर यम का स्तोत्र पढेंगे उनकी सात पीढी म किसी की अकाल-मृत्यु नही होगी। जो सयमी व्यक्ति उस मृत्यु-स्तोत्र का सर्वदा पाठ करेगा वह सब प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त करेगा और अट्ठासी हजार व्याधियो से कभी भी पीडित नही होगा। पक्षिश्रेष्ठ ! इस तीर्थ मे गर्भिणी स्त्री यदि तीन महीने तक और वन्ध्या छ महीने से कम (या) सात दिन भी स्नान कर ले तो वह नारी वीर-पुत्र की जननी होगी और वह पुत्र शतायु, लक्ष्मीवान्, मतिमान् शूर और पुत्र-पौत्र को बढाने वाला होगा। उस तीर्थ मे पिण्डदान करने से पितर मुक्ति प्राप्त करते हैं। मनुष्य उसमे स्नान करने से मानसिक कायिक और वाचिक पापो से छूट जाता है ॥४५-४९॥

ब्रह्मा ने कहा—यम के कहने के बाद अग्नि ने पक्षियो से कहा ॥५०॥

अग्नि ने कहा—जो व्रती मेरे स्तोत्र को दक्षिण तीर पर पढ़ेंगे उनको मैं आरोग्य ऐश्वर्य, लक्ष्मी और सुन्दर रूप प्रदान करूँगा। जो कोई व्यक्ति इस स्तोत्र को जहाँ-कहीं भी पढता है अथवा लिखकर अपने घर म रखता है उसको अग्नि से भय नही होता। जो मनुष्य पुनीत भाव से इस अग्नि-तीर्थ मे स्नान करता है और दान देता है, उसको अग्निष्टोम यज्ञ के समान फल मिलता है, इसमे कुछ भी सन्देह नहीं ॥५१-५३॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय से उस तीर्थ को याम्य, आग्नेय, कपोत, उलूक तथा हेति-उलूक तीर्थ के नामसे

---

[1] ड. भवेत्।

तत्र त्रीणि सहस्राणि तावन्त्येव शतानि च। पुनर्नवतितीर्थानि प्रत्येकं मुक्तिभाजनम् ॥५५॥
तेषु स्नानेन दानेन प्रेतीभूताश्च ये नराः। पूतास्ते पुत्रवित्ताढ्या आक्रमेयुर्दिवं शुभाः ॥५६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये यमाग्न्यादिनवत्युत्तरत्रिशताधिक-
त्रिसहस्रतीर्थवर्णनं नाम पञ्चविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२५॥
गौतमीमाहात्म्ये षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

अथ षड्विंशाधिकशततमोऽध्यायः

तपस्तीर्थवर्णनम्

तपस्तीर्थमिति ख्यातं तपोवृद्धिकरं महत्। सर्वकामप्रदं पुण्यं पितॄणां प्रीतिवर्धनम् ॥१॥
तस्मिंस्तीर्थे तु यद्वृत्तं शृणु पापप्रणाशनम्। अपामग्नेश्च संवादमृषीणां च परस्परम् ॥२॥
अपो ज्येष्ठतमाः केचिन्मेनिरेऽग्निं तथाऽपरे। एवं ब्रुवन्तो मुनयः संवादं चाग्निवारिणोः ॥३॥
विनाऽग्निं जीवनं क्व स्याज्जीवभूतो यतोऽनलः। आत्मभूतो हव्यभूतश्चाग्निना जायतेऽखिलम् ॥४॥
अग्निना ध्रियते लोको ह्यग्निर्ज्योतिर्मयं जगत्। तस्मादग्नेः परं नास्ति पावनं दैवतं महत् ॥५॥
अन्तर्ज्योतिः स एवोक्तः परं ज्योतिः स एव हि। विनाऽग्निना किंचिदस्ति यस्य धाम जगत्त्रयम् ॥६॥

विद्वान् लोग कहने लगे। वहाँ इसके अतिरिक्त तीन हजार तीन सौ नब्बे तीर्थ भी हैं जिनमें से प्रत्येक ही मुक्ति देने वाले हैं। उनमें स्नान करने और दान देने से मनुष्य पवित्र हो जाता तथा पुत्र और पौत्र से परिपूर्ण होकर मृत्यु के बाद स्वर्ग को प्राप्त करता है ॥५४-५६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में यमादि तीर्थ-वर्णन नामक एक सौ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२५॥

अध्याय १२६

तपस्तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद तपस्या की वृद्धि करने वाला तपस्तीर्थ नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है जो पवित्र सब कामनाओं को देने वाला और पितरों का आनन्द बढ़ाने वाला है। उस तीर्थ में जो पाप को दूर करने वाली घटना हुई उसको सुनो। एक बार ऋषियों में जल और अग्नि को लेकर परस्पर संवाद हुआ। कुछ ऋषि जल को ज्येष्ठ मानते थे तो कुछ अग्नि को। इस प्रकार अग्नि और जल की श्रेष्ठता को लेकर बातचीत होने लगी और धीरे धीरे वह विवाद के रूप में बदल गई। कुछ मुनि कहते थे कि बिना अग्नि के जीवन दुर्गम है क्योंकि अग्नि ही प्राणरूप है अग्नि ही आत्मा स्वरूप और हव्य रूप भी है अग्नि से ही सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति होती है अग्नि से ही यह लोक टिका हुआ है और अग्नि से ही संसार ज्योतिर्मय होता है। इसलिये अग्नि से बढ़कर कोई पवित्र देवता नहीं है। वही अन्तर्ज्योति है, वही पर ज्योति भी है, जिसका स्थान तीनों लोक में है उस अग्नि के बिना इस जगत् में अन्य किसी पदार्थ का अस्तित्व नहीं है। इसलिये सम्पूर्ण भूतों में अग्नि के अतिरिक्त और कोई श्रेष्ठ कहलाने के योग्य नहीं है।

तस्मादग्नेः परं नास्ति भूतानां[1] ज्यैष्ठ्यभाजनम् । योषित्क्षेत्रेऽर्पितं बीजं पुरुषेण यथा तथा ॥७॥
तस्य देहादिका शक्तिः[2] कृशानोरेव नान्यया । देवानां हि मुखं वह्निस्तस्माज्ज्ञातः परं विदुः ॥८॥
अपरे तु ह्यपां ज्यैष्ठ्यं मेनिरे वेदवादिनः । अद्भिः संपत्स्यते ह्यन्नं शुचिरद्भिः प्रजायते ॥९॥
अद्भिरेव धृतं सर्वमापो वै मातरः स्मृताः । त्रैलोक्यजीवनं वारि वदन्तीति[3] पुराविदः ॥१०॥
उत्पन्नममृतं ह्यद्भ्यस्ताभ्यश्चौषधिसंभवः । अग्निर्ज्येष्ठ इति प्राहुरापो ज्येष्ठतमाः परे ॥११॥
एवं मीमांसमानास्ते ऋषयो वेदवादिनः । विरुद्धवादिनो मां च समभ्येत्येदमब्रुवन् ॥१२॥

ऋषय ऊचुः

अग्नेरपां वद ज्यैष्ठ्यं त्रैलोक्यस्य भवान्प्रभुः ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

अहमप्यब्रवं प्राप्तानृषीन्सर्वान्यतव्रतान् । उभौ पूज्यतमौ लोक उभाभ्यां जायते जगत् ॥१४॥
उभाभ्यां जायते हव्यं कव्यं चामृतमेव च । उभाभ्यां जीवनं लोके शरीरस्य च धारणम् ॥१५॥
नानयोश्च विशेषोऽस्ति ततो ज्यैष्ठ्यं समं मतम् । ततो मद्वचनाज्ज्यैष्ठ्यमुभयोर्नैव कस्यचित् ॥१६॥
ज्यैष्ठ्यमन्यतरस्येति मेनिरे ऋषिसत्तमाः । न तृप्ता[4] मम वाक्येन जग्मुर्वायुं तपस्विनः ॥१७॥

जिस किसी प्रकार पुरुष द्वारा स्त्री-क्षेत्र मे डाले गये बीज का देहात्मक भाग अग्नि का ही है दूसरे का नही। देवताओ का मुख भी अग्नि ही है। अत अग्नि नि सन्देह सबसे बडा है। अपर पक्ष जो कि वेदवादी था वह जल की ही श्रेष्ठता स्वीकार करता था। उनका कहना था कि जल से ही अग्नि की उत्पत्ति होती है, जल से ही सब पदार्थ शुद्ध होते हैं, जल ने सम्पूर्ण लोक को धारण किया है, आप (जल) को ही माता कहा जाता है, प्राचीन मर्मज्ञ जन जल को ही त्रैलोक्य का जीवन कहते हैं, जल से ही अमृत उत्पन्न हुआ है और जल से ही ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार कुछ ऋषि अग्नि को ज्येष्ठ कहते थे और अपर जल को उससे भी श्रेष्ठ कहते थे। इस प्रकार की मीमासा करते हुए वे वेदवादी तथा विरुद्ध पक्ष वाले मेरे पास आये और कहा ॥१-१२॥

ऋषिगण बोले—आप त्रिलोकी के प्रभु हैं, अत आप ही निर्णय करें कि अग्नि और जल मे कौन श्रेष्ठ है ॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—मैंने भी आये हुए उन व्रती ऋषियो से कहा कि दोनो ही इस लोक मे पूज्य हैं, क्योकि दोनो से जगत् की उत्पत्ति होती है। दोनो से हव्य कव्य और अमृत उत्पन्न होते हैं, दोनो ही ससार के जीवन हैं और दोनो से लोक मे शरीर का धारण किया जाता है। इन दोनो मे कोई बढकर नही है, इसलिये दोनो की श्रेष्ठता समान है, यही मेरा मत है। तदनन्तर मेरे कहने से किसी की भी श्रेष्ठता सिद्ध नही हुई। परन्तु उन मुनिवरो को किसी एक की श्रेष्ठता अभीष्ट थी, इसलिये मेरे निर्णय से वे तृप्त नही हुये और तपस्वी वायु के पास गये ॥१४-१७॥

---

१. घ. ङ. ०ना ज्येष्ठमा०। २ घ. च. व्यक्ति। ३ क. ङ. ०न्तीह पु०। ४ क. तुष्टा।

मुनय ऊचु

कस्य ज्यैष्ठ्य भवान्प्राणो वायो सत्य त्वयि स्थितम् ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

वायुराहानलो ज्येष्ठ सर्वमग्नौ प्रतिष्ठितम्। नेत्युक्त्वाऽन्योन्यमृषयो जग्मुस्तेऽपि वसुधराम्॥१९॥

मुनय ऊचु

सत्य भूमे वद ज्यैष्ठ्यमाधाराऽसि चराचरे ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

भूमिरप्यराह विनयादागतास्तानृषीनिदम् ॥२१॥

भूमिरुवाच

ममाप्याधारभूता स्युरापो देव्य सनातना। अद्भ्यस्तु जायते सर्वं ज्यैष्ठ्यमप्सु प्रतिष्ठितम्॥२२॥

ब्रह्मोवाच

नेत्युक्त्वाऽन्योन्यमृषयो जग्मु क्षीरोदशायिनम्। तुष्टुवुर्विविधै स्तोत्रै शङ्खचक्रगदाधरम्॥२३॥

ऋषय ऊचु

यो वेद सर्वं भुवन भविष्यद्यज्जायमान च गुहानिविष्टम्
लोकत्रय चित्रविचित्ररूपमन्ते समस्ते च यमाविवेश ॥२४॥
यदक्षर शाश्वतमप्रमेय, य वेदवेद्यमृषयो वदन्ति

मुनियों ने कहा—वायु ! आप जगत के प्राण हैं। किसकी श्रेष्ठता आप स्वीकार करते हैं ? आप में सत्य की स्थापना है। ॥१८॥

ब्रह्मा ने कहा—वायु ने कहा कि अग्नि श्रेष्ठ है क्योंकि अग्नि में सब कुछ प्रतिष्ठित है। परन्तु वे ऋषि यह उचित निर्णय नहीं है इस प्रकार परस्पर विवाद करते हुए वसुन्धरा के पास गये॥१९॥

मुनिगण ने कहा—पृथ्वी ! तुम सत्य बताओ कि कौन श्रेष्ठ है क्योंकि तुम चर-अचर सबकी आधार हो ॥२०॥

ब्रह्मा ने कहा—पृथ्वी ने भी उन आये हुए मुनियों से नम्रतापूर्वक कहा॥२१॥

भूमि ने कहा—मेरा आधार भी सनातन (जल) है। जल से ही सम्पूर्ण पदार्थ उत्पन्न होते हैं। अत श्रेष्ठता जल में प्रतिष्ठित है॥२२॥

ब्रह्मा ने कहा—एक पक्ष ने इसको भी स्वीकार नहीं किया इस प्रकार इस निर्णय पर भी विश्वास न कर वे मुनि क्षीरसागरशायी विष्णु के पास गये और शङ्ख चक्र-गदाधारी विष्णु की विविध स्तोत्रों से स्तुति करने लगे॥२३॥

ऋषियों ने कहा—जो सब भुवन तथा भूत भविष्य और वर्तमान को जानते हैं जिनमें अन्तकाल में यह चित्र-विचित्रमय त्रैलोक्य समा जाता है जो अक्षर नित्य तथा अप्रमेय हैं जिनको ऋषिगण वेदों से वेद्य (जानने

यमाश्रिताः स्वेप्सितमाप्नुवन्ति, तद्वस्तु सत्यं शरणं व्रजामः ॥२५॥
भूतं महाभूतजगत्प्रधानं, न विन्दते योगिनो विष्णुरूपम् ।
तद्वक्तुमेते ऋषयोऽत्र याताः, सत्यं वदस्वेह जगन्निवास ॥२६॥
त्वमन्तरात्माऽखिलदेहभाजां, त्वमेव सर्वं त्वयि सर्वमीश ।
तथाऽपि जानन्ति न केऽपि कुत्राप्यहो भवन्तं प्रकृतिप्रभावात् ॥
अन्तर्बहिः सर्वत एव सन्तं, विश्वात्मना संपरिवर्तमानम् ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्राह जगद्धात्री दैवी वागशरीरिणी ॥२८॥

दैवी वागुवाच

उभावाराध्य तपसा भक्त्या च नियमेन च । यस्य स्यात्प्रथमं सिद्धिस्तद्भूतं ज्येष्ठमुच्यते ॥२९॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा ययुः सर्वे ऋषयो लोकपूजिताः । श्रान्ताः खिन्नान्तरात्मानः परं वैराग्यमाश्रिताः ॥३०॥
सर्वलोकैकजननीं भुवनत्रयपावनीम् । गौतमीमगमन्सर्वे तपस्तप्तुं यतव्रताः ॥३१॥
अब्दैवत तथाऽग्निं च पूजनायोद्यतास्तदा । अग्नेश्च पूजका ये च अपां वै पूजने स्थिताः ॥
तत्र वागब्रवीद्दैवी वेदमाता सरस्वती ॥३२॥

योग्य) बताते हैं और जिनके आश्रितजन अपने मनोरथ को प्राप्त करते हैं, ऐसे सत्य वस्तु ब्रह्म की शरण में हम आये हुए हैं। योगी जन भी महाभूतात्मक जगत् में प्रधानतया व्याप्त एवं सत्य विष्णुरूप को नहीं जान पाते हैं, अतः जगन्निवास ! इतने ऋषि आपके समीप आये हुये हैं। आप कृपा कर स्वयं इस सत्य को व्यक्त कीजिये। ईश ! देहधारी सम्पूर्ण जीवों के आप ही अन्तरात्मा हैं, आप ही सब कुछ हैं और आप में ही सब कुछ है। परन्तु प्रकृति के प्रभाव से कोई भी कहीं भी आपको जान नहीं पाते हैं यद्यपि आप भीतर, बाहर, चारों ओर विश्वात्मा के रूप में परिवर्तमान (घुले-मिले) हैं ॥२४-२७॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके उपरान्त जगत् का धारण करने वाली आकाशवाणी ने कहा ॥२८॥

आकाशवाणी ने कहा—तपस्या, भक्ति और संयम से दोनों की आराधना करो, जिसको या जिसमें पहले सिद्धि प्राप्त होगी वही श्रेष्ठ माना जायगा ॥२९॥

ब्रह्मा ने कहा—इसको स्वीकार कर वे सब लोक-वन्दित, श्रान्त, अपने अन्तःकरण में कुछ मुँझलाये हुये से और अत्यन्त वैराग्यभाव से भरे ऋषि लौट गये और तीनों लोकों को पवित्र करने वाली, सब लोकों की एकमात्र जननी गौतमी के तट पर संयमपूर्वक तपस्या करने के लिये बैठ गये। उस समय वहाँ जो जल देवता के भक्त थे वे जल की पूजा करने के लिए और जो अग्निभक्त थे वे अग्नि की पूजा करने के लिये प्रस्तुत हुए। उसी समय वेद-माता सरस्वती रूप दैवी वाणी ने कहा ॥३०-३२॥

दैवी वागुवाच

अग्नेरापस्तथा योनिरद्भिः शौचमवाप्यते । अग्नेश्च पूजका ये च विनाऽद्भिः पूजनं कथम् ॥३३॥
अप्सु जातासु सर्वत्र कर्मण्यधिकृतो भवेत् । तावत्कर्मण्यनर्होऽयमशुचिर्मलिनो नरः[1] ॥३४॥
न मग्नः श्रद्धया यावदप्सु शीतासु वेदवित् । तस्मादापो वरिष्ठा स्युर्मातृभूता[2] यतः स्मृता ॥
तस्माज्ज्यैष्ठ्यमपामेव जनन्योऽग्नेर्विशेषतः ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

एतद्वचः शुश्रुवुस्ते ऋषयो वेदवादिनः । निश्चयं च ततश्चक्रुर्भवेज्ज्यैष्ठ्यमपामिति ॥३६॥
यत्र तीर्थे वृत्तमिदमृषिसत्रे च नारद । तपस्तीर्थं तु तत्प्रोक्तं सत्रतीर्थं तदुच्यते ॥३७॥
अग्नितीर्थं च तत्प्रोक्तं तथा सारस्वतं विदुः । तेषु स्नानं च दानं च सर्वकामप्रदं शुभम् ॥३८॥
चतुर्दश शतान्यत्र तीर्थानां पुण्यदायिनाम् । तेषु स्नानं च दानं च स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ॥३९॥
कृतं संदेहहरणमृषीणां यत्र भाषया । सरस्वत्यभवत्तत्र गङ्गया संगता नदी ॥
माहात्म्यं तस्य को वक्तुं संगमस्य क्षमो नरः ॥४०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये तपस्तीर्थादिचतुर्दशशततीर्थवर्णनं नाम षड्विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

दैवी वाणी ने कहा—जल अग्नि का उत्पादक है, जल से ही पवित्रता प्राप्त होती है। जो अग्नि के पूजक हैं वे बिना जल के पूजन कैसे करेंगे ? जल में स्नान करने के बाद ही सब कर्मों के करने का अधिकार प्राप्त होता है। तब तक वह मनुष्य किसी अनुष्ठान के अयोग्य समझा जायगा, चाहे वह वेदज्ञ ही क्या न हो जब तक कि वह शीतल जल में स्नान नहीं करेगा। इसलिये जल ही सर्वश्रेष्ठ है। अतः जल मातृभूत है, इसलिये जल की ही श्रेष्ठता सर्वमान्य है, विशेष रूप से इसलिये कि वह अग्नि की भी जननी है ॥३३-३५॥

ब्रह्मा ने कहा—इन बातों को उन वेद-वादी ऋषियों ने सुना। तदनन्तर यह निश्चय हुआ कि जल की ही श्रेष्ठता स्वीकार हो। नारद ! जिस तीर्थ या ऋषि-सत्र (यज्ञ) में यह सब कुछ हुआ, उसकी तपस्तीर्थ या सत्रतीर्थ नाम से प्रसिद्धि हुई। वही अग्नि-तीर्थ या सारस्वततीर्थ भी माना जाता है। उसमें स्नान और दान अत्यन्त शुभ और सब अभीष्टों के दाता माने जाते हैं। जहाँ वाणी द्वारा ऋषियों का सन्देह दूर किया गया वहाँ सरस्वती नाम की एक नदी हो गई जो कि गंगा में जाकर मिली। उस संगम की महत्ता वर्णन करने में कौन मनुष्य समर्थ हो सकता है ? ॥३६-४०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में तपस्तीर्थ-वर्णन नामक एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२६॥

---

१ च. मतः। २ क. ०भूताः सनातना। स०।

अथ सप्तविंशाधिकशततमोऽध्यायः

देवतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

देवतीर्थमिति ख्यातं गङ्गाया उत्तरे तटे। तस्य प्रभावं वक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् ॥१॥
आर्ष्टिषेण इति ख्यातो राजा सर्वगुणान्वितः। तस्य भार्या जया नाम साक्षाल्लक्ष्मीरिवापरा ॥२॥
तस्य पुत्रो भरो नाम मतिमान्पितृवत्सलः। धनुर्वेदे च वेदे च निष्णातो दक्ष एव च ॥३॥
तस्य भार्या रूपवती सुप्रभेत्यभिश्रुता। आर्ष्टिषेणस्ततो राजा पुत्रे राज्यं निवेश्य सः ॥४॥
पुरोधसा च मुख्येन दीक्षां चक्रे नरेश्वरः[1]। सरस्वत्यास्ततस्तीरे हयमेधाय यत्नवान् ॥५॥
ऋत्विग्भिर्ऋषिमुख्यैश्च वेदशास्त्रपरायणैः। दीक्षितं तं नृपश्रेष्ठं ब्राह्मणाग्निसमीपतः ॥६॥
मिथुर्दानवराट्शूरः पापबुद्धिः प्रतापवान्। मखं विध्वस्य नृपतिं सभार्यं सपुरोहितम् ॥७॥
आदाय वेगात्स प्रागाद्रसातलतलं मुने। नीते तस्मिन्नृपवरे यज्ञे नष्टे ततोऽमराः ॥८॥
ऋत्विजश्च ययुः सर्वे स्वं स्वं स्थानं मखात्ततः। पुरोहितसुतो राज्ञो देवापिरिति विश्रुतः ॥९॥

अध्याय १२७

देवतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद गंगा के उत्तर तीर पर देवतीर्थ नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है। उसके सब प्रकार के पापों को नष्ट करने वाले प्रभाव को कह रहा हूँ। आर्ष्टिषेण नाम से प्रसिद्ध एक सर्वगुणी राजा था। उसकी जया नाम की भार्या थी, जो (रूप और गुण में) दूसरी साक्षात् लक्ष्मी के समान थी। उसका भर नामक पुत्र था जो बुद्धिमान् और पितृ भक्त था। वह धनुर्वेद और वेद में अत्यन्त निपुण और पारदर्शी विद्वान् था। उसकी सुप्रभा नाम की अतिरूपवती भार्या थी। अपने पुत्र को योग्य और वयस्क जानकर राजा ने सारा राज्य-भार पुत्र को सौंपकर अपने प्रधान पुरोहित से यज्ञ-दीक्षा ले ली। तदनन्तर वह सरस्वती के तीर पर अश्व-मेध यज्ञ करने के लिये तैयारी करने लगे। परन्तु यज्ञ में वेदशास्त्रों के पारदर्शी प्रधान ऋषियों के रहते हुए भी एक पापात्मा, प्रतापी और वीर दानवराज मिथु यज्ञ को नष्ट-भ्रष्ट कर पुरोहित और स्त्री के सहित उस यज्ञ-दीक्षित राजा को लेकर ब्राह्मण और अग्नि के समीप से उठाकर बड़े वेग से पाताल चला गया। यह देखकर सब देवता और ऋत्विज यज्ञ भूमि को छोड़कर अपने-अपने आश्रम को चले गये। राजा के पुरोहित का देवापि नामक एक पुत्र था। उस बालक ने अपनी माता को तो देखा, परन्तु पिता को नहीं देखा। यह देखकर उसको अत्यन्त आश्चर्य हुआ वह पितृ वियोग से कातर हो उठा।

---

[1] घ. ङ. घ. जनेश्वर।

'बालस्तां मातरं दृष्ट्वा आत्मनः पित्रं न,च । दृष्ट्वा सविस्मयो भूत्वा दुःखितोऽतीव चाभवत् ॥१०॥
स मातरंतु पप्रच्छ पिता मे क्व गतोऽम्बिके । पितृहीनो न जीवेयं मातः सत्यं वदस्व मे ॥११॥
धिग्धिक्पितृविहीनानां जीवितं पापकर्मणाम् । न वक्षि यदि मे मातर्जलमग्निमथाऽऽविशे ॥१२॥
पुत्र प्रोवाच सा माता राज्ञो भार्या पुरोधसः । दानवेन तलं नीतो राज्ञा सह पिता तव ॥१३॥

देवापिरुवाच

क्व नीतः केन वा नीतः कथं नीतः क्व कर्मणि । केषु पश्यत्सु किं स्थानं दानवस्य वदस्व मे ॥१४॥

मातोवाच

दीक्षितं यज्ञसदसि सभार्यं सपुरोधसम् । राजानं तं मिथुर्दैत्यो नीतवान्स रसातलम् ॥
पश्यत्सु देवसघेषु वह्निब्राह्मणसंनिधौ ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

तन्मातृवचनं श्रुत्वा देवापिः कृत्यमस्मरत् । देवान्पश्येऽथवाग्निं वा ऋत्विजो वाऽसुरांस्तथा ॥१६॥
एतेऽवेव पिताऽन्वेष्यो नान्यत्रेति मतिर्मम । इति निश्चित्य देवापिर्भरं प्राह नृपात्मजम् ॥१७॥

देवापिरुवाच

तपसा ब्रह्मचर्येण व्रतेन नियमेन च । आनेतव्या मया सर्वे नीता ये च रसातलम् ॥१८॥

उसने अपनी माता से पूछा—'माँ ! मेरे पिता जी कहाँ चले गये ? माता ! मैं पितृ-हीन होकर जीना नहीं चाहता। तुम मुझसे सत्य कहो। पापी, पितृ-हीनों के जीवन को धिक्कार-धिक्कार है, माता ! यदि तुम नहीं बतलाओगी तो मैं या तो जल में डूब मरूँगा या अग्नि में जल जाऊँगा।' पुत्र की इस प्रकार की कातरता देखकर राजपुरोहित की उस भार्या ने अपने पुत्र से कहा—'राजा के सहित तुम्हारे पिता को लेकर दानव रसातल चला गया ॥१-१३॥

देवापि ने कहा—कहाँ ले गया ? कौन ले गया ? किस कार्य के लिए और क्यों ले गया ? किनके देखते-देखते यह दुष्कार्य हुआ ? दानव का कहाँ स्थान है ? इन सब बातों को बताओ ॥१४॥

माता ने कहा—यज्ञ-मण्डप में दीक्षित राजा को उनकी भार्या और पुरोहित के सहित, वह मिथु नामक दैत्य अग्नि और ब्राह्मण के समीप से देवों के देखते-देखते लेकर चला गया ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—माता की बातों को सुनकर देवापि सोचने लगा कि क्या करूँ, देवों के पास जाऊँ या अग्नि अथवा ऋत्विज के समीप अथवा सीधे असुरों को ही देखूँ। इन्हीं स्थानों में पिता जी को खोजना चाहिये, अन्यत्र नहीं। यही मेरा निश्चय है।' इस प्रकार निश्चयकर देवापि ने राज-पुत्र भर से कहा ॥१६-१७॥

देवापि ने कहा—मैं तपस्या, ब्रह्मचर्य व्रत तथा अनुष्ठान के बल से उन लोगों को, जिन्हें दानव रसातल ले गया है, ले आना चाहता हूँ। जो नराधम कठोरतापूर्वक अपमानित होने पर भी बदला नहीं लेता उसके जीवन से

१क. बालानां पितरं।

जाते पराभवे घोरे यो न कुर्यात्प्रतिक्रियाम् । नराधमेन किं तेन जीवता वा मृतेन वा ॥१९॥
त्वं प्रशाधि महीं कृत्स्नामार्ष्टिषेण पिता यथा । माता मम त्वया पाल्या राजन्यावन्ममाऽऽगति ॥
भवेच्च कृतकार्यस्य अनुजानीहि मा भर ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

भरेणोक्त स देवापि सर्वं निश्चित्य यत्नत ॥२१॥

भर उवाच

सिद्धिं कुरु सुखं याहि मा चिन्तामल्पिकां भज ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

ततो देवापिरमरराजाङ्घ्रिध्यानतत्पर । ऋत्विजोऽन्वेष्य यत्नेन नत्वा तानृत्विज पृथक् ॥
कृताञ्जलिपुटो बालो देवापिर्वाक्यमब्रवीत् ॥२३॥

देवापिरुवाच

भवद्भिश्च मखो रक्ष्यो यजमानश्च दीक्षित । पुरोधाश्च तथा रक्ष्य पत्नी या दीक्षितस्य तु ॥२४॥
भवत्सु तत्र पश्यत्सु यज्ञ विध्वस्य दैत्यराट् (ऋत्विज)। राजादयस्तेन नीतास्तन्न युक्ततम भवेत् ॥२५॥
अथाप्येतदह मन्ये भवन्तस्तानरोगिण' । दातुमर्हन्ति तान्स (वं स)र्वानन्यथा शापमर्हथ ॥२६॥

ऋत्विज ऊचुः

मखेऽग्नि प्रथमं पूज्यो ह्यग्निरेवात्र दैवतम् । तस्माद्वय न जानीमो ह्यग्नीना परिचारका ॥२७॥

क्या लाभ ? या मृत्यु से क्या हानि ? तुम इस पृथिवी का शासन अपने पिता आर्ष्टिषेण के समान करो। राजन् ! जब तक मैं लौटकर नही आता तब तक मेरी माता की देखरेख या पालन तुमको करना होगा। भर ! मैं अपने कार्य में कृत-कृत्य (सफल) हो जाऊँ ऐसा तुम मुझे आदेश दो ॥१८ २०॥

ब्रह्मा ने कहा—सब कुछ विचारपूर्वक निश्चित कर भर ने देवापि से कहा ॥२१॥

भर ने कहा—तुम अपने कार्य मे सफलता प्राप्त करो, सुखपूर्वक जाओ, किसी विषय की थोडी-सी भी चिन्ता न करो ॥२१-२२॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद देवापि ने देवराज के चरणो का ध्यान करता हुआ बडे परिश्रम से ऋत्विजो का पता लगाया, उनको प्रणाम कर एकान्त मे उनसे अलग अलग हाथ जोडकर कहा ॥२३॥

देवापि ने कहा—आप लोगो को यज्ञ-दीक्षित यजमान पुरोहित और यजमान की पत्नी की रक्षा करनी चाहिये, परन्तु आप लोगो के सामने से ही दैत्यराट् यज्ञ को नष्ट भ्रष्ट कर राजा आदि को लेकर चला गया यह अच्छा नही हुआ। फिर भी मैं आप लोगो से कहूँगा कि उन सबको आप शीघ्र स्वस्थरूप मे ले आएँ। अन्यथा आप लोग शाप के भागी होंगे ॥२४-२६॥

ऋत्विज गण ने कहा—यज्ञ मे अग्नि की पहले पूजा होती है, अत अग्नि ही इसका देवता है इसलिये इस

स एव दाता भोक्ता च हर्ता कर्ता च हव्यवाट् ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

ऋत्विज पृष्ठत कृत्वा देवापिर्जातवेदसम् । पूजयित्वा यथान्यायमग्नये तन्न्यवेदयत् ॥२९॥

अग्निरुवाच

यथर्त्विजस्तथा चाह देवाना परिचारक । हव्य वहामि देवाना भोक्तारो रक्षकाश्च त ॥३०॥

देवापिरुवाच

देवानाहूय यत्नेन हविर्भागान्पृथक्पृथक् । दास्येऽहमेष दोषो मे तस्माद्याहि सुरान्प्रति ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

देवापि स सुरान्प्राप्य नत्वा तेभ्य पृथक्पृथक् । ऋत्विग्वाक्य चाग्निवाक्य शाप चापि न्यवेदयत् ॥३२॥

देवा ऊचु

आहूता वैदिकैर्मन्त्रैरृत्विग्भिश्च यथाक्रमम् । भोक्ष्यामहे हविर्भागाश्च स्वतन्त्रा द्विजोत्तम ॥३३॥

तस्माद्वेदानुगा नित्य वय वेदेन चोदिता । परतन्त्रास्ततो विप्र वेदेभ्यस्तन्निवेदय ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

स देवापि शुचिर्भूत्वा वेदानाहूय यत्नत । ध्यानेन तपसा युक्तो वेदाश्चापि पुरोऽभवन् ॥३५॥

वेदानुवाच देवापिर्नमस्य तु पुन पुन । ऋत्विग्वाक्य चाग्निवाक्य देववाक्य न्यवेदयत् ॥३६॥

विषय मे हम कुछ नही जानते क्योकि हम लोग तो केवल अग्नि के सेवक हैं। वे ही दाता भोक्ता हर्ता, कर्ता और हव्य को ढोने वाले हैं ॥२७ २८॥

ब्रह्मा ने कहा—ऋत्विजो को पीछे करके देवापि ने अग्नि की शास्त्रोक्त विधि से पूजा की और यह निवेदन किया ॥२९॥

अग्नि ने कहा—जिस प्रकार ऋत्विज देवा के सेवक हैं उसी प्रकार मैं भी। मैं तो केवल देवो के लिये यत्नपूर्वक हव्य पहुँचा दिया करता हूँ, यज्ञ के रक्षक या भोक्ता वे ही हैं ॥३०॥

देवापि ने कहा—मैं देवताओ को यत्नपूर्वक बुलाकर पृथक्-पृथक् हविर्भाग दे देता हूँ। यही मेरा दोष है। अत तुम देवताओ के पास जाओ[1] ॥३१॥

ब्रह्मा ने कहा—वह देवापि देवताओ के पास गया और प्रणाम कर एक-एक से ऋत्विजो का वचन अग्नि की बातें और शाप की कथा कही ॥३२॥

देवगण बोले—द्विजवर! हम सबको ऋत्विज वदिक मन्त्रो से क्रमश बुलाते हैं इस प्रकार हम अपने हविष्यान्न को खाते हैं। हम भी स्वतन्त्र नही हैं। इस कारण हम नित्य वेदो के अनुयायी हैं और वेदो की प्रेरणा से प्रेरित होते रहते हैं। अतएव हम परतन्त्र हैं। विप्र! तुम उन वेदो से अपना अभिप्राय कहो ॥३३ ३४॥

ब्रह्मा ने कहा—उस देवापि ने पवित्र होकर अपनी तपस्या एव ध्यान के द्वारा वेदो का आह्वान किया। वेद भी उसके सामने प्रकट हुए। देवापि ने भी बार-बार प्रणाम कर वेदो से ऋत्विजो, अग्नि और देवताओ की बात यह सुनायी ॥३५ ३६॥

---

1 श्लोक ३१ म अग्नि का ही वचन प्रतीत होता है। यहाँ 'देवापिरुवाच' भ्रामक है।

वेदा ऊचुः

परतन्त्रा वयं तात ईश्वरस्य वशानुगाः। अशेषजगदाधारो निराधारो निरञ्जनः ॥३७॥
सर्वशक्त्येकसदनं निधानं सर्वसंपदाम्। स तु कर्ता महादेवः संहर्ता स महेश्वरः ॥३८॥
वयं शब्दमया ब्रह्मन्वदामो विद्म एव च। अस्माकमेतत्कृत्यं स्याद्वदामो यत्तु पृच्छसि ॥३९॥
केन नीतास्तस्य नाम तत्पुरं तद्बलं तथा। भक्षिता किंतु नो[1] नष्टा[2] एतज्जानीमहे वयम् ॥४०॥
यथा च तव सामर्थ्यं यमाराध्य च यत्र च। स्यादित्येतच्च जानीमो यथा प्राप्स्यसि तान्पुरः ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वाऽवदद्वेदान्विचार्य सुचिरं हृदि ॥४२॥

देवापिरुवाच

वेदा वदन्त्वेतदेव सर्वमेव यथार्थतः। सर्वान्प्राप्स्ये तलं नीतानलं तेभ्यो नमोऽस्तु वः ॥४३॥

वेदा ऊचुः

गौतमीं गच्छ देवापे तत्र स्तुहि महेश्वरम्। सुप्रसन्नस्तवाभीष्टं दास्यत्येव कृपाकरः ॥४४॥
भवेद्देवः शिवः प्रीतः स्तुतः सत्यं महामते। आर्ष्टिषेणश्च नृपतिस्तस्य जाया जया सती ॥४५॥

देवों ने कहा—तात! हम परतन्त्र हैं, ईश्वर के संकेत के अनुसार चलने वाले हैं। सम्पूर्ण विश्व के आधार, निराधार, निर्विकार सर्वशक्तिसम्पन्न, और समस्त विभूतियों के पुंज वे महादेव ही सब के निर्माता और वे महेश्वर ही सबके संहार करने वाले हैं। ब्रह्मन्! हम तो शब्द-स्वरूप हैं सब कुछ जानते हैं और उसको बता देते हैं। हम लोग यही कार्य कर सकते हैं कि जो कुछ तुम पूछोगे बता देंगे। कौन ले गया, उसका नाम उसका नगर, उसकी सन्य-शक्ति और वे खा लिये गये किन्तु नष्ट नहीं हुए (या वह उन व्यक्तियों को खा गया या वे नष्ट हो गये), यह सारे रहस्य हम जानते हैं। इसके अतिरिक्त तुम्हारी शक्ति, जहाँ जिसकी आराधना से कार्यसिद्धि होगी और जिस प्रकार तुम उन लोगों को सामने पाओगे आदि बातों को भी हम जानते हैं ॥३७-४१॥

ब्रह्मा ने कहा—वेदों की ये बातें सुनकर अपने हृदय में भलीभाँति सोच विचार कर उसने वेदों से कहा ॥४२॥

देवापि ने कहा—वेदगण! आपको नमस्कार है! कृपाकर आप इन्हीं सब बातों को यथार्थ रूप से बता दीजिये कि कैसे मैं रसातल में पहुँचाये हुए उन लोगों को प्राप्त करूँगा, और कुछ अधिक नहीं जानना चाहता ॥४३॥

वेदगण ने कहा—देवापे! गौतमी के तट पर जाओ। वहाँ महेश्वर की स्तुति करो। वे करुणा के सागर अवश्य प्रसन्न होकर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगे। महामति! स्तुति करने पर महादेव

१घ. च ते। २घ ०ष्टा नंत०।

पिता तवाप्युपमन्युस्तले तिष्ठन्त्यरोगिणः। वरदानान्महेशस्य मिथुं हत्वा च राक्षसम् ॥
यशः प्राप्स्यसि धर्मं च एतच्छक्यं न चेतरम् ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

तद्वेदवचनाद्बालो देवापिर्गौतमीं गतः । स्नात्वा कृतक्षणो विप्रस्तुष्टाव च महेश्वरम् ॥४७॥

देवापिरुवाच

बालोऽहं देवदेवेश गुरूणां त्वं गुरुर्मम[1]। न मे शक्तिस्त्वत्स्तवने तुभ्यं शंभो नमोऽस्तु ते ॥४८॥
न त्वां जानन्ति निगमा न देवा मुनयो न च। न ब्रह्मा नापि वैकुण्ठो योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते ॥४९॥
येऽनाथा ये च कृपणा ये दरिद्राश्च रोगिणः। पापात्मानो ये च लोके तास्त्वं पासि महेश्वर ॥५०॥
तपसा नियमैर्मन्त्रैः पूजितास्त्रिदिवौकसः। त्वया दत्तं फलं तेभ्यो दास्यन्ति जगतां पते ॥५१॥
याचितारश्च दातारस्तेभ्यो यद्यन्मनीषितम्। भवतीति न चित्रं स्यात्त्वं विपर्ययकारक ॥५२॥
येऽज्ञानिनो ये च पापा ये मग्ना नरकार्णवे। शिवेति वचनान्नाथ तान्पासि त्वं जगद्गुरो ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य पुरः प्राह त्रिलोचनः ॥ ॥५४॥

शंकर अवश्य प्रसन्न होंगे। राजा आर्ष्टिषेण उनकी पतिव्रता स्त्री जया, तुम्हारे पिता उपमन्यु सभी रसातल में कुशलपूर्वक हैं। तुम शंकर की कृपा से वरदान प्राप्त कर मिथु राक्षस को मारकर कीर्ति और धर्म प्राप्त करोगे। यही कार्य तुमसे हो सकता है, इसके अतिरिक्त नहीं ॥४४-४६॥

ब्रह्मा ने कहा—उन वेदों की आज्ञा के अनुसार बालक देवापि गौतमीतट पर गया। उसमें स्नान कर बड़ी तपस्या से वह विप्र शंकर की स्तुति करने लगा ॥४७॥

देवापि ने कहा—देवदेवेश ! मैं बालक हूँ। तुम मेरे गुरुओं के भी गुरु हो। तुम्हारी स्तुति करने की मुझमें शक्ति नहीं है। शंभो ! तुमको नमस्कार है। तुमको न तो वेद जानते हैं न देवता और न मुनि। ब्रह्मा और वैकुण्ठपति विष्णु भी तुमको नहीं जानते। तुम जो हो वही हो। तुमको नमस्कार है। इस संसार में जो अनाथ हैं, कृपण हैं, दरिद्र हैं, रोगी हैं और पापी हैं उनकी हे महेश्वर ! तुम्हीं रक्षा करते हो। जगत् के स्वामी ! जो व्यक्ति तपस्या नियम और मन्त्रों से देवताओं की पूजा करते हैं उनको भी देवतागण तुमसे पाये हुये फल को ही प्रदान करते हैं। उन व्यक्तियों के मनोरथों को स्वयं याचक बनकर ही वे देकर दान करते हैं इसमें कुछ आश्चर्य नहीं। क्योंकि तुम विपरीत कार्य करने में समर्थ हो। हे नाथ ! जगद्गुरो ! जो अज्ञानी, पापी और नरक के सागर में गिरे हुए हैं, उनके 'शिव' इस शब्द के कहने पर ही तुम उनकी रक्षा करते हो ॥४८-५३॥

ब्रह्मा ने कहा—उस बालक की ऐसी स्तुति सुनकर त्रिनेत्र शंकर स्वयं उसके सामने प्रकट होकर बोले ॥५४॥

---

१ घ ०र्मत। न।

शिव उवाच

वर ब्रूहयथ देवापे अल दैन्येन बालक ॥५५॥

देवापिरुवाच

राजान राजपत्नीं च पितर च गुरु मम । प्राप्तुमिच्छे जगन्नाथ निधन च रिपोर्मम ॥५६॥

ब्रह्मोवाच

देवापिवचन श्रुत्वा तथेत्याहाखिलेश्वर । देवापे सर्वमभवदाज्ञया शकरस्य तत ॥५७॥
पुनरप्याह त (आहूय स्वगण) शभुर्देवापिकरुणाकर । नन्दिन प्रेषयामास शभु (तत) शूलेन नारद ॥५८॥
रसातल मियु नन्दी हत्वा चासुरपुगवान । तत्पित्रादीन्समानीय तस्मै तान्स न्यवेदयत् ॥५९॥
हयमेधश्च तत्राऽऽसीदार्ष्टिषेणस्य धीमत । अग्निश्च ऋत्विजो देवा वेदाश्च ऋषयोऽब्रुवन् ॥६०॥

अग्न्यादय ऊचु

यत्र साक्षादभूच्छभुर्देवापे भक्तवत्सल । देवदेवो जगन्नाथो देवतीर्थमभूच्च तत् ॥६१॥
सर्वपापक्षयकर सर्वसिद्धिप्रद नृणाम । पुण्यद तीर्थमेतत्स्यात्तव कीर्तिश्च शाश्वती ॥६२॥

ब्रह्मोवाच

अश्वमेधे निवृत्ते तु सुरास्तेभ्यो वरा ददु । स्नात्वा कृतार्था गङ्गायां ततस्त दिवमाक्रमन ॥६३॥

शिव ने कहा—देवापे ! वर मागो । बालक ! अब दीन की भावना छोडो ॥५५॥

देवापि न कहा—जगन्नाथ ! राजा राजपत्नी और अपने गुरु पिता को प्राप्त करना चाहता हू साथ ही मेरे शत्रु का नाश भी हो यही मेरा वर है ॥५६॥

ब्रह्मा न कहा—देवापि की बातो को सुनकर अखिल जगत के ईश्वर ने एसा ही हो यह कहा । शकर की आज्ञा से देवापि की सभी कामनाय पूण हो गईं । नारद ! पुन देवापि पर करुणा करने वाले शभु ने अपने गण नन्दी को बुलाकर सब बातें कही और त्रिशूल देकर उसको रसातल भेज दिया । नन्दी ने रसातल मे जाकर मियु एवं बड बड़े असुरों का वध किया और उस बालक के पिता आदि को लाकर उसको दे दिया । इसके बाद पुन धीमान् आर्ष्टिषण ने वहाँ अश्व-मेध यज्ञ किया । उस यज्ञ मे अग्नि ऋत्विज देवता वेदो और ऋषियो ने कहा ॥५७-६०॥

अग्नि आदि ने कहा—देवापे ! जिस स्थान पर भक्तव सल देवो के देव तथा जगन्नाथ शकर का साक्षात्कार हुआ था वह स्थान देवतीर्थ हो गया है । वह सब पापों को नष्ट करने वाला मनुष्यो को सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाला और पुण्य देने वाला तीथ तुम्हारी शाश्वत कीर्ति का स्मारक है ॥६१ ६२॥

ब्रह्मा ने कहा—अश्वमेध सम्पन्न हो जाने पर देवो ने उन सबको वर दिया । वे भी गगा में स्नान कर स्वर्ग

ततः प्रभृति तत्राऽऽसंस्तीर्थानि दश पञ्च च। सहस्राणि शतान्यष्टावुभयोरपि तीरयोः॥
तेषु स्नानं च दानं च ह्यतीव फलदं विदुः ॥६४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये आर्ष्टिषेणाद्यष्टोत्तरशताधिक-
पञ्चदशसहस्रतीर्थवर्णनं नाम सप्तविंशाधिकशततमोऽध्यायः॥१२७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५८॥

अथाष्टाविंशाधिकशततमोऽध्यायः

तपोवनादितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तपोवनमिति ख्यातं नन्दिनीसंगमं तथा। सिद्धेश्वरं तत्र तीर्थं गौतम्या दक्षिणे तटे॥१॥
शार्दूलं चेति विख्यातं तेषां वृत्तमिदं शृणु। यस्याऽऽकर्णनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२॥
अग्निर्होता पुरा त्वासीद्देवानां हव्यवाहनः। भार्या प्राप्तो दक्षसुतां स्वाहानाम्नीं सुरूपिणीम्॥३॥
साऽनपत्या पुरा चाऽऽसीत्पुत्रार्थं तप आविशत्। तपश्चरन्तीं विपुलं तोषयन्तीं हुताशनम्॥
स भर्ता हुतभुक्प्राह भार्यां स्वाहामनिन्दिताम् ॥४॥

कृतकृत्य हो गये और अन्त में स्वर्ग को प्राप्त किया। तब से वहाँ उस गंगा के दोनों तट पर पन्द्रह हजार एक सौ आठ तीर्थ प्रतिष्ठित हो गये। उनमें स्नान और दान करना अधिक फलदायक माना गया है॥६३-६४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में आर्ष्टिषेण आदि पन्द्रह हजार एक सौ आठ तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ
सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त॥१२७॥

अध्याय १२८

तपोवन आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद गौतमी के दक्षिणी किनारे पर तपोवन तथा नन्दिनीसंगम नामक विख्यात तीर्थ हैं, वहीं सिद्धेश्वर और शार्दूल नामक दो और भी प्रसिद्ध तीर्थ हैं। उनका इतिहास सुनो, जिसके सुनने से ही सब पाप छूट जाते हैं।

बहुत पहले देवों को हव्य पहुँचाने वाले अग्नि होते थे। उनका दक्ष की परम सुन्दरी स्वाहा नाम की कन्या से विवाह हुआ। पहले वह सन्तानहीन रही। तब पुत्र के लिये तपस्या करने लगी। उसने अपनी कठोर तपस्या से हुताशन को प्रसन्न करने की चेष्टा की। यह देखकर उसके पति अग्नि ने अपनी अनिन्द्य सुन्दरी भार्या से कहा॥१-४॥

अग्निरुवाच

अपत्यानि भविष्यन्ति मा तप कुरु शोभने ॥५॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा भर्तुर्वाक्य निवृत्ता तपसोऽभवत् । स्त्रीणामभीष्टद नान्यदभर्तुर्वाक्य विना क्वचित् ॥६॥
तत कतिपये काले तारकादभय आगते । अनुत्पन्ने कार्तिकेये चिरकालरहोगते ॥७॥
महेश्वरे भवान्या च त्रस्ता देवा समागता । देवाना कार्यसिद्ध्यर्थमग्नि प्रोचुर्दिवौकस ॥८॥

देवा ऊचु

देव गच्छ महाभाग शभु त्रैलोक्यपूजितम् । तारकाद्भयमुत्पन्न शभवे त्व निवेदय ॥९॥

अग्निरुवाच

न गन्तव्य तत्र देश दपत्यो स्थितयो रह । सामान्यमात्रतो न्याय किं पुन शूलपाणिनि ॥१०॥
एकान्तस्थितयो स्वैर जल्पतोर्य सरागयो । दपत्या शृणुयाद्वाक्य निरयात्तस्य नोद्धृति ॥११॥
स स्वाम्यखिललोकाना महाकालस्त्रिशूलवान । निरीक्षणीय कन स्यादभवान्या रहसि स्थित ॥१२॥

देवा ऊचु

महाभय चानुगते न्याय कोऽन्वत्र वण्यत । तारकाद्भय आपन्न गच्छ त्व तारको भवान ॥१३॥

अग्नि न कहा—सुन्दरी ! तपस्या मत करो तुम्हें सन्तान होगी ॥५॥

ब्रह्मा न कहा—भर्ता की बातो को सुनकर उसने तपस्या छोड दी। क्योकि बिना पति के वचन के स्त्रियो के अभीष्ट को सिद्ध करने वाली दूसरी कोई बात नही होती। कुछ समय बीत जाने पर देवताओ को तारक का भय उत्पन्न हुआ। चिरकाल तक महेश्वर और भवानी के एकान्त विलास के बाद भी कार्तिकेय की उत्पत्ति नही हुई। यह देखकर देवता भयत्रस्त हो गये। वे देव अपने काय की सिद्धि के लिए एकत्र हुये और अग्नि से कहा ॥६ ८॥

देवो न कहा—महाभाग ! देव ! तुम त्रैलोक्य से वन्दित शकर के पास जाओ। वहाँ जाकर शभु से कहो कि तारक के कारण देवो के सामने महान सकट आ गया है ॥९॥

अग्नि ने कहा—उस स्थान पर जहाँ पति-पत्नी एकान्तवास करते हो नही जाना चाहिये यह एक सव साधारण के लिए नियम है फिर शूलपाणि शकर के विषय मे तो कुछ कहना ही नही। जो एकान्त मे स्थित प्रम पूवक स्वेच्छया बातचीत करने वाले पति-पत्नी की बातो को सुनता है उसका नरक से कभी भी उद्धार नही होता। वे तो अखिल लोक के स्वामी हैं महाकाल हैं और त्रिशूलधारी हैं। एकान्त मे भवानी के साथ स्थित उनको कौन देख सकता है ? ॥१० १३॥

देवों ने कहा—महान् सकट आ जाने पर कौन सा काय उचित है इसको कौन कह सकता है ? इस समय तारक के भय से रक्षा करने वाले आप ही हैं अत आप अवश्य जायें। क्योकि महासकट के समुद्र से उबारने के

महाभयाब्धौ साधूना यत्परार्थाय जीवितम् । रूपेणान्येन वा गच्छ वाच वद यथा तथा ॥१४॥
विश्राव्य देववचन शभुमागच्छ सत्वर । ततो दास्यामह पूजामुभयोर्लोकयो कवे ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

शुको भूत्वा जगामाऽऽशु देववाक्याद्धुताशन । यत्राऽऽसीज्जगता नाथो रममाणस्तदोमया ॥१६॥
स भीतवदथ प्रायाच्छुको भूत्वा तदाऽनल । नाशकवद्द्वारदेशे तु प्रवेष्टु हव्यवाहन ॥१७॥
ततो गवाक्षदेशे तु तस्थौ धुन्वन्नधोमुख । त दृष्ट्वा प्रहसञ्शंभुरुमा प्राह रहोगत ॥१८॥

शभुरुवाच

पश्य देवि शक प्राप्त देववाक्याद्धुताशनम् ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

लज्जिता चावदद्देवमल देवेति पावती । पुरश्चरन्त देवेशो हुर्ताग्नि त द्विजरूपिणम् ॥२०॥
आहूय बहुशश्चापि ज्ञातोऽस्यग्नेऽत्र मा वद । विदारयस्व स्वमुख गृहाणेद नयस्व तत ॥२१॥
इत्युक्त्वा तस्य चाऽऽस्येऽग्ने रेत स प्राक्षिपद्बहु । रेतोगर्भस्तदा चग्निर्गन्तु नैव[१] च शक्तवान् ॥२२॥
सुरनद्यास्ततस्तीर श्रान्तोऽग्निरुपतस्थिवान । कृत्तिकासु च तद्रेत प्रक्षेपात्कार्तिकोऽभवत ॥२३॥

लिये साधुओ का जीवन ही परोपकार की भावना से आगे बढता है। इसलिये अपने इसी रूप म या किसी अन्य वेश म आप जाइये और जिस किसी प्रकार से उनसे कहिये। इस प्रकार शकर से देवताओ का सकट सुनाकर शीघ्र ही आइये। कवे ! तदनन्तर हम लोग दोनों लोकों की श्रेष्ठ पूजा आपको अर्पित करेंगे ॥१३ १५॥

ब्रह्मा ने कहा—देवों के कहने के अनुसार अग्नि शुक का रूप धरकर वहाँ गये जहाँ कि ससार के स्वामी उमा के साथ विलास कर रहे थे। अग्नि शुक के रूप म डरते डरते वहाँ गये परन्तु वे मुख्य द्वार की ओर से घुसने मे समर्थ न हो सके। अत खिडकी पर मुह नीचे लटकाये और कुछ काँपते हुए बैठ गये। उनको खिडकी पर बैठा देखकर एकान्त म विलास करने वाले शमु हँसकर पावती से बोले ॥१६ १८॥

शभु ने कहा—देवि ! देखो देवों के कहने से अग्नि शुक के रूप म यहाँ आया है ॥१९॥

ब्रह्मा न कहा—लज्जित होकर पावती ने शकर से कहा—'देव ! अब बस कीजिये। देवेश ने सामने घूमते हुए पक्षीरूपधारी अग्नि को बुलाकर कहा— अग्ने ! अपने विषय मे कुछ मत कहो। तुम किसलिये आये हो यह मैं पूणरूप से जान गया हूँ। अपना मुख फैलाओ यह लो और लेकर जाओ। यह कहकर उस अग्नि के मुख म बहुत-सा वीर्य उडल दिया। अग्नि उस शिववीर्य को मुख म रखकर ले जाने म असमर्थ हो गये। अत थक कर गगा नदी के तट पर बैठ गये। कृत्तिकाओ में उस वीय को डाल देने से कार्तिक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। अग्नि की देह म बचा हुआ शमु का जो कुछ वीर्य था उसी को अग्नि ने अपनी विशेष रूप से पुत्र की इच्छा रखने वाली प्रिय भार्या

---

[१] घ च नैवाशकद्दिवम् । मु० ।

अवशिष्टं च यत्किंचिदग्नेर्देहे च शाम्भवम् । तदेव रेतो वह्निस्तु स्वभार्याया द्विधाऽक्षिपत ॥२४॥
स्वाहाया प्रियभूताया पुत्रार्थिन्या विशेषत । पुरा साऽऽश्वासिता तेन सततिस्ते भविष्यति ॥२५॥
तद्वह्निनाऽथ सस्मृत्य तत्क्षिप्त शाम्भव मह । तदग्ने रेतसस्तस्या जज्ञे मिथुनमुत्तमम ॥२६॥
सुवर्णश्च सुवर्णा च रूपेणाप्रतिम भुवि । अग्ने प्रीतिकर नित्य लोकानां प्रीतिवर्धनम ॥२७॥
अग्नि प्रीत्या सुवर्णां ता प्रादाद्धर्माय धीमते । सुवर्णस्याथ पुत्रस्य सकल्पामकरोत्प्रियाम् ॥
एव पुत्रस्य पुत्र्याश्च विवाहमकरोत्कवि ॥२८॥

अन्योन्यरेतोव्यतिषङ्गदोषादग्नेरपत्यमुभय तथैव ।
पुत्र सुवर्णो बहुरूपरूपी, रूपाणि कृत्वा सुरसत्तमानाम् ॥२९॥
इन्द्रस्य वायोधनदस्य भार्या, जलेश्वरस्यापि मुनीश्वराणाम् ।
भार्यास्तु गच्छत्यनिश सुवर्णो, यस्या प्रिय यच्च वपु स कृत्वा ॥३०॥
याति क्वचिच्चाप कवस्तनूजस्तद्भर्तृरूप च पतिव्रतासु ।
कृत्वाऽनिश ताभिरुदारभाव, कुर्वन्कृतार्थं मदन स रेमे ॥३१॥
कृत्वा गता क्वापि चैव सुवर्णा, धर्मस्य भार्याऽपि सुवर्णनाम्नी ।
स्वाहासुता स्वैरिणी सा बभूव, यस्यापि यस्यापि मनोगता या ॥३२॥
भार्यास्वरूपा सैव भूत्वा सुवर्णा, रेमे पतीन्मानुषानासुराश्च ।
देवानृषीन्पितृरूपास्तथाऽन्यान्रूपौदार्यस्थैर्यगाम्भीर्ययुक्तान् ॥३३॥

स्वाहा मे दो भागो म बाँट कर छोड दिया क्योकि पहले उन्होने उसको आश्वासन दिया था कि तुमको सतान अवश्य होगी। इसी प्रतिज्ञा का स्मरण कर अग्नि ने उस शभु तेज को स्वाहा के गर्भ म छोड दिया। अग्नि के उसी दिये हुए रेतस (वीय) से युगल (जुडवा) सन्तान सुवण और सुवर्णा उत्पन्न हुई। वह सतति सुदरता मे भूमण्डल पर बेजोड थी। उससे अग्नि को तो अधिक आनन्द मिलता ही था परन्तु उसके साथ-साथ लोक को भी विशेष आनन्द प्राप्त होता था। अग्नि ने अपनी उस कन्या सुवर्णा को प्रज्ञावान् धम को प्रम-पूर्वक दे दिया। इसके उपरान्त पुत्र सुवर्णा का विवाह सकल्पा के साथ कर दिया। इस प्रकार अग्नि ने पुत्र और पुत्री का विवाह कर दिया ॥२० २८॥ एक दूसरे के वीय सम्मिश्रण-दोष के कारण अग्नि की दोनो सन्तान उसी के अनुसार अतप्तामिलाषी हो गइ। अनेको कपट-वेश धारण-पटु पुत्र सुवर्ण देवा के वेश मे इन्द्र वायु कुबेर वरुण और मुनीश्वरो की स्त्रियो के साथ उनकी इच्छा के अनुसार मनोहर शरीर धारण कर प्रतिदिन एकान्त विलास करता था ॥२९ ३०॥ वही पर अग्नि पुत्र पतिव्रता स्त्रियो के यहाँ उनके पति का रूप धारण कर प्रतिदिन जाता था और स्वेच्छया अपनी कामेच्छा की पूर्ति करता हुआ रमण करता था ॥३१॥ इसी प्रकार धम की रूपवती भार्या सुवर्णा भी मायारूप धारण कर वही भी चली जाती थी। वह स्वाहा पुत्री इतनी स्वच्छाचारिणी हो गई कि जिन जिन पुरुषो को जो जो स्त्रियाँ प्रिय लगती थी उन्ही उन्ही के रूप धारण कर उन मानव अथवा असुर पतियो क साथ या देव ऋषि पितर या अन्य रूप उदारता गम्भीरता आदि से युक्त पतियो के साथ विहार करती थी। जिस देवता को जो स्त्री प्रिय थी उसी का

याऽभिप्रेता यस्य देवस्य भार्या, तद्रूपा सा रमते तेन सार्धम्
नानाभेदैः करणैश्चाप्यनेकैराकर्षन्ती तन्मनःकामसिद्धिम् ॥३४॥
एवं सुवर्णस्य निरीक्ष्य चेष्टामग्नेः सूनोः पुत्रिकायास्तथाऽग्नेः ॥
सर्वे च शेपुः कुपितास्तदाऽग्नेः, पुत्रं च पुत्रीं च सुरासुरास्ते ॥३५॥

सुरासुरा ऊचुः

कृतं यदेतद्व्यभिचाररूपं यच्छद्मना वर्तनं पापरूपम् ।
तस्मात्सुतस्ते व्यभिचारवांश्च, सर्वत्र गामी जायतां हव्यवाह ॥३६॥
तथा सुवर्णाऽपि न चैकनिष्ठा, भूयादग्ने नैकतृप्ता बहूंश्च ।
नानाजातीन्निन्दितान्देहभाजो, भजित्री स्यादेव दोषश्च पुत्र्याः ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

इत्येतच्छापवचनं श्रुत्वाऽग्निरतिभीतवत् । मामभ्येत्य तदोवाच निष्कृतिं वद पुत्रयोः ॥३८॥
तदाऽहमब्रवं वह्ने गौतमीं गच्छ शंकरम् । स्तुत्वा तत्र महाबाहो निवेदय जगत्पते ॥३९॥
माहेश्वरेण वीर्येण तव देहस्थितेन च । एवंविधं त्वपत्यं ते जातं वह्ने ततो भवान् ॥४०॥
निवेदयस्व (तु) देवाय देवानां शापमीदृशम् । स्वापत्यरक्षणायासौ शंभुः श्रेयः करिष्यति ॥४१॥
स्तुहि देवं च देवीं च भक्त्या प्रीतो भवेच्छिवः । ततस्त्वपत्यविषये प्रियान्कामानवाप्स्यसि ॥४२॥

रूप धारण कर वह नाना प्रकार के स्त्री-सुलभ हाव-भावों और अङ्ग-सञ्चालन के द्वारा उनके मन में काम-भावना जागरित कर उनको अपनी ओर आकृष्ट करके उनके साथ रमण करती थी ॥३२-३४॥ इस प्रकार अग्नि के पुत्र और पुत्री की क्रिया को देखकर देवों तथा असुरों ने कुपित होकर शाप दे दिया ॥३५॥

सुर और असुरों ने कहा—अग्ने ! कपटरूप से तुम्हारे पुत्र ने जो यह व्यभिचाररूप पापकर्म किया है, इसके फलस्वरूप वह व्यभिचारी और सर्वत्रगामी हो जाय ! और तुम्हारी कन्या सुवर्णा भी कभी भी एक पति से प्रेम करने वाली तथा एक से तृप्त होने वाली न हो। नाना जातियों तथा निन्दित देहधारियों के साथ विलास-शील हो ऐसी तुम्हारी पुत्री की दूषितप्रकृति हो जाय ॥३६-३७॥

ब्रह्मा ने कहा—शाप की इस भाषा को सुनकर अग्नि अत्यन्त भय-भीत से हो गये। मेरे पास आकर उन्होंने कहा— मेरी सन्तानों के उद्धार का मार्ग बताइये।' तब मैंने कहा—'अग्ने ! गौतमी के तट पर जाओ, वहाँ शंकर की स्तुति कर हे महाबाहु ! जगत्पति से निवेदन करो कि किस प्रकार तुम्हारे मुख में रखे गये शम्भु के वीर्य से इस प्रकार की तुम्हारी संतति उत्पन्न हुई। तत्पश्चात् अग्ने ! तुम शंकर से देवताओं के इस शाप का वर्णन करो। अपने अपत्य की रक्षा के लिये भगवान् शंकर अवश्य कोई न कोई कल्याणकर प्रबन्ध करेंगे। शीघ्र जाकर तुम शंकर और देवी गौतमी की भक्तिपूर्वक स्तुति करो। तब शंकर जी प्रसन्न होंगे और तदनन्तर तुम अपनी

ततो मद्वचनादग्निर्गङ्गां गत्वा महेश्वरम् । तुष्टाव नियतो वाक्यैः स्तुतिभिर्वेदसंमितैः ॥४३॥

अग्निरुवाच

विश्वस्य जगतो धाता विश्वमूर्तिर्निरञ्जनः । आदिकर्ता स्वयंभूश्च तं नमामि जगत्पतिम् ॥४४॥
योऽग्निर्भूत्वा संहरति स्रष्टा वै जलरूपतः । सूर्यरूपेण यः पाति तं नमामि च त्र्यम्बकम् ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नो भगवाननन्तः शंभुरव्ययः । वरेण च्छन्दयामास पावकं सुरपूजितम् ॥४६॥
स विनीतः शिवं प्राह तव वीर्यं मयि स्थितम् । तेन जातः सुतो रम्यः सुवर्णो लोकविश्रुतः ॥४७॥
तथा सुवर्णा पुत्री च तस्मादेव जगत्प्रभो । अन्योन्यवीर्यसङ्गाच्च तद्दोषादुभयं त्विदम् ॥४८॥
व्यभिचारात्सदोषं च अपत्यमभवच्छिव । शापं ददुः सुराः सर्वे तयोः शान्तिं कुरु प्रभो ॥४९॥
तदग्निवचनाच्छम्भुः प्रोवाचेदं शुभोदयम् ॥५०॥

शंभुरुवाच

मद्वीर्यादभवस्त्वत्तः सुवर्णो भूरिविक्रमः । समग्रा ऋद्धयः सर्वाः सुवर्णेऽस्मिन्समाहिताः ॥५१॥
भविष्यन्ति न संदेहो वह्ने शृणु वचो मम । त्रयाणामपि लोकानां पावनः स भविष्यति ॥५२॥
स एव चामृतं लोके स एव सुरवल्लभः । स एव भुक्तिमुक्ती च स एव मखदक्षिणा ॥५३॥

सन्तान के विषय में अपने मनोरथ को प्राप्त करोगे।' इसके बाद मेरे कहने के अनुसार अग्नि गंगा के समीप गये और संयत भाव से भगवान् आशुतोष की वेदसम्मत स्तुति वचनों से स्तुति करने लगे ॥३८-४३॥

अग्नि ने कहा—तुम गतिशील विश्व के पालक, विश्वरूप, निर्विकार, आदिकर्ता और स्वयम् हो, ऐसे जगत्पति शंकर को प्रणाम करता हूँ। जो अग्नि रूप से विश्व का संहार करता है, जलरूप से सृष्टि करता और सूर्यरूप से संसार की रक्षा करता है, उस त्रिनेत्र शंकर को नमस्कार है ॥४४-४५॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद भगवान् अनन्त, अव्यय शम्भु ने प्रसन्न होकर देव-पूजित अग्नि को वरदान दिया। विनीत अग्नि ने शंकर से कहा कि मेरे मुख में रखे हुए तुम्हारे वीर्य से लोक प्रसिद्ध सुवर्ण नामक एक मनोहर पुत्र उत्पन्न हुआ। प्रभो! उसी (वीर्य) से पुत्री सुवर्णा की भी उत्पत्ति हुई। परस्पर के वीर्य-संयोग से और उसके दोष से ये दोनों अपत्य व्यभिचारदोष से दूषित हो गये। प्रभो! सब देवताओं ने उस दोष के कारण शाप भी दे दिया। उनके पापों की शान्ति कीजिये। अग्नि की इन बातों को सुनकर शम्भु ने यह मंगल-जनक वाणी कही ॥४६-५०॥

शंभु ने कहा—मेरे वीर्य से तुम्हारे द्वारा यह परम विक्रमशाली सुवर्ण हुआ है। इस सुवर्ण में सम्पूर्ण ऋद्धियाँ समाहित (एकत्र) होंगी! अग्नि! इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। और सुनो, वह सुवर्ण तीनों लोकों में पवित्र होगा। संसार में वही अमृत है, वही देवों को भी प्रिय है, वही भुक्ति-मुक्ति है वही यज्ञ की दक्षिणा भी है। वही सबका रूप और गुरुओं का भी गुरु है। उसको परम श्रेष्ठ वीर्य समझो। मुझसे उत्पन्न जो उत्तम वीर्य था,

स एव रूपं सर्वस्य गुरूणामप्यसौ गुरुः । वीर्यं श्रेष्ठतमं विद्याद्वीर्यं मत्तो यदुत्तमम् ॥५४॥
विशेषतस्त्वयि क्षिप्त तस्य का स्याद्विचारणा । हीनं तेन विना सर्वं संपूर्णास्तेन सपदः ॥५५॥
जीवन्तोऽपि मृताः सर्वे सुवर्णेन विना नराः । निर्गुणोऽपि धनी मान्यः सगुणोऽप्यधनो नहि ॥५६॥
तस्मान्नात. परं किंचित्सुवर्णाद्धि भविष्यति । तथा चैषा सुवर्णाऽपि स्यादुत्कृष्टाऽपि चञ्चला ॥५७॥
अनया वीक्षितं सर्वं न्यूनं पूर्णं भविष्यति । तपसा जपहोमैश्च येयं प्राप्या जगत्त्रये ॥५८॥
तस्या प्रभाव प्राशस्त्यमग्ने किंचिच्च कीर्त्यते । सर्वत्र या तु सतिष्ठेदायातु विचरिष्यति ॥५९॥
सुवर्णा कमला साक्षात्पवित्रा च भविष्यति । अद्य प्रभृत्यात्मजयोस्तया स्वैरं विचेष्टतोः ॥६०॥
तथाऽपि चैतयोः पुण्य न भूतं न भविष्यति ॥६१॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तत शंभुः साक्षात्तत्राभवच्छिवः । लिङ्गरूपेण सर्वेषां लोकानां हितकाम्यया ॥६२॥
वरान्प्राप्य सुताभ्यां च अग्निस्तुष्टोऽभवत्ततः । स्वभर्त्रा च सुवर्णा सा धर्मेणाग्निसुता मुदा ॥६३॥
वर्तयामास पुत्रोऽपि वह्नेः संकल्पया मुदा । एतस्मिन्नन्तरे स्वर्णामग्नेर्दुहितरं मुने ॥६४॥
परिभूय च धर्मं तं शार्दूलो दानवेश्वरः । अहरद्भाग्यसौभाग्यविलासवसतिं छलात् ॥६५॥

जो विशेष रूप से तुम (अग्नि) म प्रक्षिप्त होने के कारण और अधिक निखर सा गया, उसकी उत्तमता के विषय मे अधिक क्या विचार किया जाय। उसके बिना सारा ससार तुच्छ है। उससे सब प्रकार की सम्पत्ति को पूर्ण समझो। सुवर्ण के बिना जीवित मनुष्य को भी मृत समझो। ससार मे गुण-हीन धनी व्यक्ति आदर का पात्र है और गुण भी धनाभाव के कारण उपेक्ष्य होता है। इसलिए इस सुवर्ण से उत्कृष्ट कोई भी पदार्थ नही होगा। और यह सुवर्णा भी परम उत्कृष्ट परन्तु चचला होगी। इसकी दृष्टि विशेष मात्र से सारे अभाव भाव मे परिणत हो जायेंगे। इन तीनो लोको म तपस्या जप और होम द्वारा प्राप्त करने योग्य जो यह सुवर्णा है अग्ने! इसके प्रभाव और महत्त्व का थोडा-सा वर्णन किया गया है। जो सुवर्णा सर्वत्र रहती है, वह सर्वत्र रहे और घूमे पुनरपि यह साक्षात् लक्ष्मी और पवित्र मानी जायगी। आज से इस प्रकार का स्वेच्छाचार करते हुये भी तुम्हारी ये सन्तति पवित्र हैं। इनके समान पवित्र पदार्थ न हुये न होंगे ॥५१-६१॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहकर शम्भु सब लोको के हित की कामना से लिङ्ग रूप मे वहाँ प्रकट हुए ॥६२॥ वे अग्नि भी शकर से अपने पुत्रो के लिये वरदान पाकर प्रसन्न हो गये। इसके अनन्तर अग्नि-तनया वह सुवर्णा प्रीतिपूर्वक अपने पति धर्म के साथ रहने लगी। अग्नि-पुत्र सुवर्ण भी आनन्दपूर्वक सरला के साथ काल बिताने लगा ॥६३½॥ मुने! इस बीच दानवराज शार्दूल धर्म को हराकर भाग्य सौभाग्य और विलास की केन्द्रभूमि विश्व विश्रुत सुवर्णा का छल म अपहरण करके रसातल में ले गया। यह देखकर अग्नि के जामाता धर्म

---

१ क. नेयं।

नीता रसातलं तेन सुवर्णा लोकविश्रुता । जामाताऽग्ने स धर्मश्च अग्निश्चैव स हव्यवाट् ॥६६॥
विष्णवे लोकनाथाय स्तुत्वा चैव पुनः पुनः । कार्यविज्ञापनं चोभौ चक्रतुः प्रभविष्णवे ॥६७॥
ततश्चक्रेण चिच्छेद शार्दूलस्य शिरो हरिः । साऽऽनीता विष्णुना देवी सुवर्णा लोकसुन्दरी ॥६८॥
महेश्वरसुता चैव अग्नेश्चैव तथा प्रिया । महेश्वराय तां विष्णुर्दर्शयामास नारद ॥६९॥
प्रीतोऽभवन्महेशोऽपि सस्वजे तां पुनः पुनः । चक्रं प्रक्षालितं यत्र शार्दूलच्छेदि दीप्तिमत् ॥७०॥
चक्रतीर्थं तु विख्यातं शार्दूलं चेति तद्विदुः । यत्र नीता सुवर्णा सा विष्णुना शंकरान्तिकम् ॥७१॥
तत्तीर्थं शांकरं ज्ञेयं वैष्णवं सिद्धमेव तु । यत्राऽऽनन्दमनुप्राप्तो हव्यनिधर्मश्च शाश्वतः ॥७२॥
आनन्दाश्रूणि न्यपतन्यत्राग्नेर्मुनिसत्तम । आनन्देति नदी[1] जाता तथा वै नन्दिनीति च ॥७३॥
तस्याश्च संगमः पुण्यो गङ्गाया तत्र वै शिवः । तत्रैव संगमे साक्षात्सुवर्णाऽद्यापि संस्थिता ॥७४॥
दाक्षायणी सैव शिवा आग्नेयी चेति विश्रुता । अम्बिका जगदाधारा शिवा कात्यायनीश्वरी ॥७५॥
भक्ताभीष्टप्रदा नित्यमलंकृत्योभयं तटम् । तपस्तेपे यत्र चाग्निस्तत्तीर्थं तु तपोवनम् ॥७६॥
एवमादीनि तीर्थानि तीरयोरुभयोर्मुने । तेषु स्नानं च दानं च सर्वकामप्रदं शुभम् ॥७७॥
उत्तरे चैव पारे च सहस्राणि चतुर्दश । दक्षिणे च तथा पारे सहस्राण्यथ षोडश ॥७८॥

और स्वयं हव्य-वाट अग्नि ने लोक-पति महामहिम विष्णु की बार-बार स्तुति करके उनको इस अन्याय-कार्य की सूचना दी ॥६४-६७॥ हरि ने उन दोनों की प्रार्थना सुनकर चक्र से शार्दूल का शिर काट डाला और लोक सुन्दरी महेश्वर और अग्नि की प्रिय पुत्री उस अपहृत सुवर्णा देवी को ला दिया। नारद! विष्णु ने लाकर उसको शंकर को दिखलाया ॥६८-६९॥ उसको देखकर वे प्रसन्न हो गये और बार-बार उसको छाती से लगाया। जहाँ पर उन्होंने शार्दूल के सिर को काटने वाले चक्र को जल से धोया वह चक्र-तीर्थ नाम से प्रसिद्ध हुआ। शार्दूल तीर्थ भी लोग उसी को कहते हैं ॥७०॥ जहाँ वह सुवर्णा विष्णु के द्वारा शंकर के पास लाई गई उसको शांकर वैष्णव और सिद्ध-तीर्थ कहा गया ॥७१॥ मुनिश्रेष्ठ! जहाँ अग्नि और धर्म को अतिशय आनन्द प्राप्त हुआ और अग्नि के नेत्रों से आनन्द के अश्रु बिन्दु गिरे वहाँ आनन्दा नाम की नदी—जिसको नन्दिनी भी कहते हैं—उत्पन्न हो गई ॥७२-७३॥ उसके गंगा में मिलने से जो संगम बना वह अत्यन्त पवित्र तीर्थ हो गया। वहाँ शिव और साक्षात् सुवर्णा आज तक प्रतिष्ठित हैं ॥७४॥ उसी को दाक्षायणी शिवा आग्नेयी आदि नामों से प्रसिद्धि है। उस नदी के दोनों तटों पर भक्तों को अभीष्ट प्रदान करने वाली जगदाधार अम्बिका शिवा और ईश्वरी कात्यायनी नित्य निवास कर उन तटों की शोभा बढ़ाती हैं। जहाँ अग्नि ने तपस्या की वह तीर्थ तपोवन के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥७५-७६॥ मुने! इस प्रकार के तीर्थ उसके दोनों तटों पर स्थित हैं जहाँ स्नान और दान करना शुभ एवं सब प्रकार की कामनाओं को देने वाला है ॥७७॥ इसके उत्तर तट पर चौदह हजार और दक्षिण तीर पर सोलह-हजार तीर्थ हैं। ये सब तीर्थ विशेष घटनाओं के स्मारक हैं। इनके नाम अलग-अलग हैं। मैंने तो संक्षेपरूप में कुछ के नाम गिनाये हैं

---

[1] घ. च. ०ता नन्दा वै।

तत्र तत्र च[1] तीर्थानि साभिज्ञानानि सन्ति वै। नामानि च पृथक् सन्ति संक्षेपात्तन्मयोच्यते ॥७९॥
एतानि यश्च शृणुयाद्यश्च वा पठति स्मरेत्। सर्वेषु तत्र काम्येषु[2] परिपूर्णो भवेन्नर ॥८०॥
एतद्वृत्त तु यो ज्ञात्वा तत्र स्नानादिक चरेत्। लक्ष्मीवाञ्जायते नित्य धर्मवाश्च विशेषत ॥८१॥
अब्जकात्पश्चिमे तीर्थं तच्छार्दूलमुदाहृतम्। वाराणस्यादितीर्थेभ्य सर्वेभ्यो ह्यधिक भवेत् ॥८२॥
तत्र स्नात्वा पितॄन्देवान्वन्दते तर्पयत्यपि। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥८३॥
तपोवनाच्च शार्दूलान्मध्ये तीर्थान्यशेषत । तस्यैकैकस्य माहात्म्य न केनाप्यत्र वर्ण्यते ॥८४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये तपोवननन्दिनीसगमेश्वरदेवीदाक्षायणीसिद्धेश्वरवैष्णवशार्दूलाग्निचक्रतीर्थादित्रिंशत्सहस्रतीर्थवर्णन नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१२८॥
गौतमीमाहात्म्य एकोनषष्टितमोऽध्याय ॥५९॥

अथैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

इन्द्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

इन्द्रतीर्थमिति ख्यात तत्रैव च वृषाकपम्। फेनाया सगमो यत्र हनूमत तथैव च ॥१॥

॥७८ ७९॥ जो इन तीर्थों का नाम श्रवण करता है पढ़ता है अथवा स्मरण करता है वह मनुष्य अपने सम्पूर्ण अभिलषित फलों को प्राप्त करता है ॥८०॥ इन तीर्थों के इतिहास को जानकर जो व्यक्ति इनमे स्नान आदि करता है वह नित्य प्रति लक्ष्मीवान् और विशेषरूप से धार्मिक होता जाता है ॥८१॥ अब्जक से पश्चिम ओर जो तीर्थ है वह शार्दूलतीर्थ कहलाता है। वह वाराणसी आदि सब तीर्थों से अधिक पवित्र है ॥८५॥ जो व्यक्ति उसमे स्नानकर पितर और देवो की वन्दना करता है या तर्पण करता है वह सब पापो से छूटकर विष्णुलोक मे स्थान पाता है ॥८३॥ तपोवन से लेकर शार्दूलतीर्थ के बीच के सम्पूर्ण तीर्थों की महिमा पृथक्-पृथक् रूप से इस लोक मे कोई भी वर्णन नही कर सकता है। ॥८४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे तपोवन, नन्दिनी-सगम आदि तीस हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२८॥

अध्याय १२९

इन्द्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—यहाँ इन्द्रतीर्थ तथा वृषाकपितीर्थ प्रसिद्ध हैं। यहाँ फेना का सगम हनुमत तीर्थ एव अब्जक

---

१ ख. च तीर्थेषु। २क कार्येषु।

अब्जकं चापि यत्प्रोक्तं यत्र देवस्त्रिविक्रमः। तत्र स्नानं च दानं च पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥२॥
तत्र वृत्तान्ययाऽऽख्यास्ये गङ्गाया दक्षिणे तटे। इन्द्रेश्वरं चोत्तरे च शृणु भक्त्या यतव्रतः॥३॥
नमुचिर्बलवानासीदिन्द्रशत्रुर्मदोत्कटः। तस्येन्द्रेणाभवद्युद्धं फेनेनेन्द्रोऽहरच्छिरः ॥४॥
अपां च नमुचे. शत्रोस्तत्फेनवज्ररूपधृक्। शिरश्छित्वा तच्च फेनं गङ्गाया दक्षिणे तटे॥५॥
न्यपतद्भूमिं भित्वा तु रसातलमथाऽऽविशत्। रसातलभवं गाङ्गं वारि यद्विश्वपावनम्॥६॥
वज्रादिष्टेन मार्गेण व्यगमद्भूमिमण्डलम्। तज्जलं फेननाम्ना तु नदी फेनेति गद्यते॥७॥
तस्यास्तु संगमः पुण्यो गङ्गया लोकविश्रुतः। सर्वपापक्षयकरो गङ्गायमुनयोरिव ॥८॥
हनूमदुपमाता वै यत्राऽऽप्लवनमात्रतः। मार्जारत्वादभून्मुक्ता विष्णुगङ्गाप्रसादतः॥९॥
मार्जारं चेति तत्तीर्थं पुरा प्रोक्त मया तव। हनूमतं च तत्प्रोक्त तत्राऽऽख्यान पुरोदितम्॥१०॥
वृषाकपं चाब्जकं च तत्रेदं प्रयत. शृणु। हिरण्य इति विख्यातो, दैत्यानां पूर्वजो बली॥११॥
तपस्तप्त्वा सुरैः सर्वैरजेयोऽभूत्सुदारुण.। तस्यापि बलवान्पुत्रो देवानां दुर्जय. सदा॥१२॥
महाशनिरिति ख्यातस्तस्य भार्या पराजिता। तेनेन्द्रस्याभवद्युद्धं बहुकालं निरन्तरम्॥१३॥
महाशनिर्महावीर्य. सतत रणमूर्धनि। जित्वा नागेन सहितं शक्रं पित्रे न्यवेदयत् ॥१४॥

तीर्थ है जहाँ स्वय विष्णु निवास करते हैं॥१॥ वहाँ स्नान और दान करन से पुन जन्म लेना दुर्लभ हो जाता है॥२॥ अब वहाँ का इतिहास बताता हूँ—गगा के दक्षिण तट पर जैसी घटना हुई और उत्तर तीर पर जिस प्रकार इन्द्रेश्वर तीर्थ की स्थापना हुई, उसका वर्णन हे नारद ! भक्तिपूर्वक एकान्तभाव से सुनो॥३॥ नमुचि इन्द्र का अति मदोन्मत और बलवान् शत्रु था। उसका इन्द्र के साथ सग्राम हुआ। युद्ध म इन्द्र ने फेन से उसका शिर उतार लिया॥४॥ वह फेन वज्ररूप होकर शत्रु नमुचि के शिर को काटकर गगा के दक्षिण तट पर गिर पडा और पृथिवी को फोडकर रसातल म घुस गया। विश्व को पवित्र कर देन वाला पाताल गगा का जो जल वज्र के प्रवेश से बन हुये छिद्र-मार्ग से निकलकर पृथ्वी तल पर आया, उस जल की फेन नाम स प्रसिद्धि हुई। अत उससे निकली नदी भी फेना कहलाने लगी॥५-७॥ उसका गगा के साथ पावन और प्रसिद्ध सगम गगा-यमुना के सगम के समान सब पापा को नष्ट करने वाला हुआ॥८॥ हनूमान् की उपमाता जहाँ स्नान करने से ही विष्णु और गगा की कृपा स बिल्ली की आकृति को छोडकर परम सुन्दरी बन गई॥९॥ उसका मार्जार-तीर्थ नाम से परिचय पहले ही तुमसे कह चुका हूँ। हनुमत तीर्थ भी उसी को कहा गया है। इसकी कथा भी पहले ही कह दी गई है॥१०॥ अब वृषाकप और अब्जक तीर्थ कैसे बने, इसको सावधान होकर सुनो। बली हिरण्य दैत्या का पूर्वज था॥११॥ वह अति भयानक दैत्य अपनी कठोर तपस्या के कारण देवा से न जीतने-योग्य (अजेय) हो गया॥१२॥ उसका बलवान् पुत्र भी जिसका नाम महाशनि था—सदा देवताओं के लिए दुर्जय ही रहा। उसकी पराजिता नाम की स्त्री थी। उस महाशनि का इन्द्र के साथ निरन्तर युद्ध होता रहा॥१३॥ सदा के पराक्रमी उस दैत्य न उस भयङ्कर युद्ध मे ऐरावत के सहित इन्द्र को जीत कर पिता के हाथ सौंप दिया॥१४॥ जिस समय हाथी के सहित इन्द्र को बाँधकर ले आया, उस

---

१८. च. वार्षाकप।

बद्ध्वा हस्तिसमायुक्त स्वसार वीक्ष्य ता तदा। विहाय क्रूरता दैत्यो हिरण्याय न्यवेदयत ॥१५॥
महाशनिपिता दैत्य पूर्वेषा पूर्ववत्तर। शचीकान्त तले स्थाप्य तस्य रक्षामथाकरोत् ॥१६॥
महाशनिर्हरिं जित्वा जेतु वरुणमभ्यगात। वरुणोऽपि महाबुद्धि प्रादात्कन्या महाशने ॥१७॥
उर्दाय स्वाल्य प्रादाद्वरुणस्तु महाशने। तयोश्च सख्यमभवद्वरुणस्य महाशने ॥१८॥
वारुणी चापि या कन्या सा प्रियाऽभून्महाशने। वीर्येण यशसा चापि[1] शौर्येण च बलेन च ॥१९॥
महाशनिर्महादैत्यस्त्रैलोक्ये नोपमीयते। निरिन्द्रत्व गते लोक देवा सर्वे न्यमन्त्रयन ॥२०॥

देवा ऊचु

विष्णुरेवन्द्रदाता स्याद्दैत्यहन्ता स एव च। मन्त्रदृग्वा स एव स्यादिन्द्र चान्य करिष्यति ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

एव समन्त्र्य ते देवा विष्णोर्मन्त्र न्यवेदयन्। ममावध्यो महादैत्यो महाशनिरिति ब्रुवन् ॥२२॥
प्रायाद्वारीश्वर विष्णु श्वशुर वरुण तदा। केशवो वरुण गत्वा प्राहेन्द्रस्य पराभवम् ॥२३॥
तथा स्वर्यतत्कर्तव्य यथाऽऽयाति पुरदर। तद्विष्णुवचनाच्छीघ्र ययौ जलपतिर्मुन ॥२४॥
सुतापति हिरण्यसुत विक्रान्त त महाशनिम्। अतिसमानितस्तेन जामात्रा वरुण प्रभु ॥२५॥
पप्रच्छाऽऽगमन दैत्यो विनयाच्छ्वशुर तदा। वरुण प्राह त दैत्य यदागमनकारणम् ॥२६॥

समय अपनी बहिन इन्द्राणी को देखकर उसने अपनी क्रूरता का त्यागकर ... को पिता हिरण्य के हाथो सौप दिया ॥१५॥ महाशनि का वह दैत्य पिता जो पूर्व के सभी दैत्यो से अधिक बली और दीर्घजीवी था शचीपति को पाताल मे बन्दी बना कर रख दिया और उनकी रक्षा का प्रबन्ध कर दिया ॥१६॥ इधर महाशनि ने इन्द्र को जीतकर वरुण को जीतने के लिये अभियान किया। महाबुद्धि वरुण ने इस आगत सकट को टालने के लिये महाशनि को अपनी कन्या वारुणी और अपना वास-स्थान समुद्र दे दिया। फलस्वरूप उन दोनो (वरुण और महाशनि) मे मित्रता हो गई ॥१७ १८॥ वरुण की जो कन्या वारुणी थी वह भी महाशनि की प्राणप्रिया बन गई। वह दैत्येन्द्र अपने पराक्रम कीर्ति शौर्य और बल मे त्रैलोक्य मे बेजोड हो गया। तब स्वर्गलोक को इन्द्र से शून्य देखकर देवताओ ने मन्त्रणा की ॥१९ २०॥

देवो ने कहा—विष्णु ही इन्द्र के दाता होगे। वही दैत्यो के हन्ता भी हैं। वही मन्त्रद्रष्टा हैं और वही दूसरा इन्द्र बनायेगे ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—देवताओ ने इस प्रकार परस्पर मन्त्रणा की और विष्णु से कहा कि हम लोगो से यह महाशनि नाम का महादैत्य अवध्य है। यह सुनकर विष्णु अपने श्वशुर जलेश्वर वरुण के पास गये। वहाँ जाकर केशव ने इन्द्र की पराजय की कथा वरुण से कही और बतलाया कि तुमको कैसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे इन्द्र यहाँ आ जायें। पुन विष्णु की बातो को सुनकर वरुण शीघ्र ही अपने पराक्रमी जामाता हिरण्य-पुत्र महाशनि के पास गये। उस जामाता ने अपने श्वशुर वरुण का अत्यन्त सम्मान किया और बडी नम्रता से उनके आने का कारण पूछा। वरुण ने अपने आने का जो कारण था वह बता दिया ॥२२ २६॥

---

१ घ ०पि तपसा तथा। म०।

वरुण उवाच

इन्द्र देहि महाबाहो यस्त्वया निर्जित पुरा। बद्ध रसातलस्थ त देवानामधिप सखे ॥२७॥
अस्माक सर्वदा मान्य देहि त्व मम शत्रुहन्। बद्ध्वा विमोक्षण शत्रोर्महते यशस सताम्॥२८॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा कथचित्स दैत्येशो वरुणाय तम्। प्रादादिद्र शचीकान्त वारणन समन्वितम॥२९॥

स दैत्यमध्येऽतिविराजमानो, हरि तदोवाच जलेशसनिधौ ।
सपूज्य चैवाथ महोपचारैर्महाशनिर्मघवन्त बभाषे ॥३०॥

महाशनिरुवाच[1]

केन त्वमिन्द्रोऽद्य कृतोऽसि केन, वीर्य तवेदृग्बहु भाषसे च ।
त्व[2] सगरे 'शत्रुभिर्बाध्यसे'[3] च, तथाऽपि चेन्द्रो भवसीति चित्रम् ॥३१॥
अथापि बद्धा पुरुषण काचित्तस्या पतिस्ता मोचयतीति युक्तम् ।
स्त्रियोऽस्वतन्त्रा पुरुषप्रधानास्त्व, वै पुमान्भविता शक्र साधो ॥३२॥
बद्धो मया सगरे वाहनेन,[4] क्वाप्यस्त्र ते वज्रमुद्दामदाप्ति ।
चिन्तारत्न नन्दन योषितस्ता, यशो बल देवराजोपभोग्यम ॥
सर्व हित्वा (त्व) किंतु मुक्तो जलेशादाकाङ्क्षसे जीवित धिक्तवेदम् ॥३३॥

वरुण ने कहा—सखे! तुमने जिस इन्द्र को युद्ध मे जीत लिया है और बन्दी बना कर रसातल म रख छोड़ा है उस देव-स्वामी को ह महाबाहो! दे दो। शत्रुनाशक! वे हम लोगो के सदा मान्य हैं इसलिये उनको मुक्त दे दो। शत्रु को बन्दी बना कर पुन छोड़ देने स विजता की महान् कीर्ति होती है॥२७-२८॥

ब्रह्मा ने कहा—अच्छी बात है यह कहकर उस दैत्येश ने किसी प्रकार उस शची-पति इन्द्र को एरावत के सहित वरुण के हवाले कर दिया। अपने दैत्य-समाज म अतिशोभाशाली उस दैत्येन्द्र न वरुण के सामने ही इन्द्र की बहुमूल्य पूजा सामग्रिया स पूजा की और पुन इन्द्र स कहा॥२९ ३०॥

महाशनि न कहा—आज किसके द्वारा इन्द्र बनाये गय हो? किसके द्वारा पुन तुम शक्तिसम्पन्न हुये? और किस कारण तुम बढ़ चढ़कर बातें कर रहे हो? तुम एक बार युद्ध म शत्रुओ द्वारा बन्दी बनाये गये थे फिर भी तुम आज इन्द्र हो रहे हो यह एक विचित्र घटना है। किसी पुरुष के द्वारा बन्दी बनाई गई स्त्री को उसका पति ही छुड़ाता है यह बात सही और उचित है क्योकि स्त्रियाँ परवश और पुरुषो के ही सहारे रहनेवाली होती हैं। शक्र! साधो! अब आज से तुम मुक्त हो आज तक तो तुम बन्दी बनकर स्त्री के समान हो बने रहे। अब पुन पुरुष होगे तुम अपने वाहन एरावत सहित युद्ध म मेरे द्वारा बन्दी बनाये गये थे। तुम्हारा वह अद्भुत प्रभाव

१प च ०च—दत्त पद त बद बन दाक त्व या मृष्ट बन जम्मागुरार। ब०। २प ० च य। ३प च ०भिर्बध्यनऽसो त। ४० ०ध्यतेऽसो त०। ५च ०माऽस्त्राक लोरवर्धार। ब०। ६क ड ०न पुत्रो रण शतपर्वेण ण्क। मनोज्ञ देवराज्योपभोग्य सव हित्वा किंतु मुक्तो जलेशात्॥३३॥ तत्रो०।

तज्जीवनं यत्तु यशोनिधानं, स एव मृत्युर्यशसो यद्विरोधि ।
एवं जानञ्शक्र कथं जलेशान्मुक्तिं प्राप्तो नैव लज्जां भजेथाः[1] ॥३४॥
त्रिविष्टपस्थः परवेष्टितः सन्सर्वैः सुरैः कान्तया वीज्यमानः ।
संस्तूयमानश्च तथाऽप्सरोभिर्नूनं लज्जा ते बिभेतीति मन्ये ॥३५॥
त्वं वृत्रहा नमुचेश्चापि हन्ता, पुरां भेत्ता गोत्रभिद्वज्रबाहुः ।
एवं सुरास्त्वां परिपूजयन्तीत्यतो जिष्णो सर्वमेतत्त्यजस्व[2] ॥३६॥
विकारमाप्याप्यहितोद्भवं ये, जीवन्ति लोकाननुसविशन्ति ।
भवादृशां दुश्च्यवनाब्जजन्मा, कथं न हृद्भेदमवाप कर्ता ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु दैत्येशो वरुणाय महात्मने। प्रादादिन्द्रं पुनश्चेदं वचनं तदभाषत ॥३८॥

महाशनिरुवाच

अद्य प्रभृत्यसौ शिष्य इन्द्रः स्याद्वरुणो गुरुः। श्वशुरो मम येन त्वं मुक्तिमाप्तोऽसि वासव ॥३९॥
तया त्वं भृत्यभावेन वर्तेथा वरुण प्रति। नो चेद्बद्ध्वा पुनस्त्वां वै क्षेप्स्ये चैव रसातलम् ॥४०॥

और शक्ति रखने वाला अस्त्र वज्र तो कहीं का भी नहीं रहा। तुम्हारे पास चिन्ता दूर करनेवाली चिंतामणि, नन्दनवन, मनोमोहिनी स्त्रियां (अप्सरायें) कीर्ति, बल (सैन्यशक्ति) आदि देवराज के उपभोग योग्य सब सामग्रियाँ हैं, परन्तु आज तुम वरुण द्वारा छुड़ाये जा रहे हो। फिर भी जीना चाहते हो। धिक्कार है तुम्हारी इस जीवनाकाक्षा को। जीवन वही है जो यश का भाण्डार हो। कीर्ति-विरोधी जीवन ही मृत्यु है। इन्द्र! ऐसा जानते हुए भी तुम वरुण की कृपा से मुक्ति प्राप्त कर रहे हो। क्या इससे तुमको कुछ भी लज्जा नहीं हो रही है? मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि जब तुम सब देवताओं के बीच में स्वर्गासन पर विराजमान होते हो, शची पखा झलने लगती है और अप्सरायें स्तवन गान करने लगती हैं तब लज्जा तुमसे डर जाती है। तुमको वृत्रहा (वृत्रको मारने वाले) नमुचि को मारने वाले, पुरंदर पर्वतों के पक्ष-छेदन करने वाले वज्रबाहु आदि कहकर देवगण तुम्हारी पूजा करते हैं परन्तु आज से हे जयशील! अपनी इन सब उपाधियों को छोड़ दो। आपके समान अपकीर्ति-जन्य निन्दा (लोकापवाद) को पाकर भी जो जीते हैं और इस लोक में मुंह दिखाते हैं, उन्हें देखकर अच्युत कमलयोनि, ब्रह्मा का हृदय फट क्यों नहीं जाता? ॥३१-३७॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहकर दैत्येन्द्र ने महात्मा वरुण के हाथ इन्द्र को सौंप दिया और पुनः उनसे यह वचन कहा ॥३८॥

महाशनि ने कहा—आज से यह इन्द्र शिष्य और मेरे ससुर वरुण गुरु होंगे। क्योंकि इन्द्र! तुमको इन्हीं के कारण मुक्ति प्राप्त हुई है। साथ ही तुम सर्वदा वरुण के प्रति दास-भाव से रहना। यदि ऐसा नहीं करोगे तो पुनः तुमको बाँधकर पाताल की कारा में डाल दूंगा ॥३९-४०॥

१घ भजेस्त्वम्। २घ ०यन्ति कुतो जिष्णो सर्वमेतत्त्यजेस्त्वम्। वि०।

ब्रह्मोवाच

एवं निर्भर्त्स्य तं शक्रं हसंश्चापि पुनः पुनः। अब्रवीद्गच्छ गच्छेति वरुणं चानुमन्यतु[1]॥४१॥
स तु प्राप्तः स्वनिलयं लज्जया कलुषीकृतः। पौलोम्यां[2] प्राह तत्सर्वं यत्तच्छत्रुपराभवम् ॥४२॥

इन्द्र उवाच

एवमुक्तः कृतश्चैव शत्रुणाऽहं वरानने। निर्वापयामि येन[3] स्वमात्मानं सुभगे वद॥४३॥

इन्द्राण्युवाच

दानवानामथोद्भूतिं शक्र मायां पराभवम्। वरदानं तथा मृत्युं जानेऽहं बलसूदन॥४४॥
तस्माद्यस्मात्तस्य मृत्युरथवापि पराभवः। जायेत शृणु तत्सर्वं वक्ष्येऽहं प्रीतये तव॥४५॥
हिरण्यस्य सुतो वीरः पितृव्यस्य सुतो बली। तस्मान्मम स्यात्स भ्राता वरदानाच्च दर्पितः॥४६॥
ब्रह्माणं तोषयामास तपसा नियमेन च। ईदृशं बलमापन्नं तपसा किं न सिध्यति ॥४७
तस्मात्त्वया[4] चित्तरागो विस्मयो वा कथंचन। न कार्यः शृणु तत्रेदं कार्यं यत्तु क्रमागतम्॥४८॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु पौलोमी प्राहेन्द्रं विनयान्विता ॥४९॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार उस इन्द्र को फटकार सुनाकर और बार-बार हँसते हुये उस दैत्य ने कहा—'जाओ जाओ, वरुण की सेवा स्वीकार करो। इन्द्र इस प्रकार की अपमानजनक बातों को सुनकर लज्जा से उदास होकर अपने भवन आय और पौलोमी से शत्रु के द्वारा किये गये अपमान को कहा॥४१ ४२॥

इन्द्र ने कहा—सुन्दर मुख वाली! मैं इस प्रकार शत्रु द्वारा अपमानित किया गया हूँ, और कटु वचन सुन चुका हूँ। सुभगे! जिस प्रकार इस अपमान का बदला ले सकू, ऐसी युक्ति बताओ, जिससे कि अपने को शान्त कर सकू॥४३॥

इन्द्राणी ने कहा—शक्र! बलसूदन! दानवों की उत्पत्ति, उनकी माया, उनका पराभव वरदान तथा उनकी मृत्यु के कारण आदि बातो को मैं जानती हूँ। अत जिससे उसकी मृत्यु अथवा पराजय होगी उसको मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिये कह रही हूँ सुनो। वह मेरे पितृव्य (चाचा) हिरण्य का बलवान् पुत्र है इसलिये वह मेरा भाई हुआ। वह इस समय वरदान से उन्मत्त हो गया है। उसने तपस्या और सयम के द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न किया था। इसी कारण उसको इस प्रकार बल प्राप्त हुआ है। सच है, तपस्या के द्वारा क्या नही प्राप्त होता है? इसलिये तुमको अपने मन मे किसी प्रकार का क्षोभ या विस्मय नही करना चाहिये। इस विषय मे जो कुछ करना है, वह सुनो॥४४-४८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहकर विनीत पौलोमी ने पुन इन्द्र से कहा॥४९॥

---

१ घ. च. ०न्य च॥४१॥ स। २क. ०लोम्या प्रा०। ३ङ. येनाऽऽशु चाऽऽत्मा०। ४ घ दर्पित।
५ घ. ०या न चिन्ताऽत्र कार्या शक्र कदाचन। एकाग्र शृणु तत्रेद कार्यं।

इन्द्राण्युवाच

नासाध्यमस्ति तपसो नासाध्यं यज्ञकर्मणः। नासाध्यं लोकनाथस्य विष्णोर्भक्त्या हरस्य च ॥५०॥
पुनश्चेदं मया कान्त श्रुतमस्त्यतिशोभनम्। स्त्रीणां स्वभावं जानन्ति स्त्रिय एव सुराधिप ॥५१॥
तस्माद्भूमेस्तथा चापां नासाध्यं विद्यते प्रभो। तपो वा यज्ञकर्मादि ताभ्यामेव यतो भवेत् ॥५२॥
तत्रापि तीर्थभूता तु या भूमिस्तां व्रजेद् भवान्। तत्र विष्णु शिवं पूज्य सर्वान्कामानवाप्स्यसि ॥५३॥
श्रुतमस्ति पुनश्चेदं स्त्रियो याश्च पतिव्रता। ता एव सर्वं जानन्ति धृतं ताभिश्चराचरम् ॥५४॥
पृथिव्यां सारभूतं स्यात्तन्मध्ये दण्डकं वनम्। तत्र गङ्गा जगद्धात्री तत्रेशं पूजय प्रभो ॥५५॥
विष्णुं वा जगतामीशं दीनार्तार्तिहरं विभुम्। अनाथानामिह नृणां मज्जतां दु:खसागरे ॥५६॥
हरो हरिर्वा गङ्गा वा क्वाप्यन्यच्छरणं नहि। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तोषयैतान्समाहितः ॥५७॥
भक्त्या स्तोत्रैश्च तपसा कुरु चैव मया सह। ततः प्राप्स्यसि कल्याणमीशविष्णुप्रसादजम् ॥५८॥
अज्ञात्वैकगुणं कर्म फलं दास्यति कर्मिणः। ज्ञात्वा शतगुणं तत्स्याद्भार्यया च तदक्षयम् ॥५९॥
पुंसः सर्वेषु कार्येषु भार्यैवेह सहायिनी। स्वल्पानामपि कार्याणां नहि सिद्धिस्तया विना ॥६०॥
एकेन यत्कृतं कर्म तस्मादर्धफलं भवेत्। जायया तु कृतं नाथ पुष्कलं पुरुषो लभेत् ॥६१॥

इन्द्राणी ने कहा—तपस्या के द्वारा कुछ भी असाध्य नहीं, यज्ञ के द्वारा सब कुछ साध्य है और लोकपति विष्णु तथा शंकर की भक्ति से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त हे कान्त! एक और अति-उपयुक्त बात सुनी है। सुराधिप! स्त्रियों की प्रकृति को स्त्रियाँ ही जानती हैं ॥५०-५१॥ प्रभो! इसलिये भूमि और जल के लिये कुछ भी असाध्य नहीं है, क्योंकि तपस्या अथवा यज्ञ आदि इन्हीं दो पदार्थों से निष्पन्न होते हैं ॥५२॥ इनमें भी जो तीर्थभूमि है वहाँ आज आप जाइये। वहाँ विष्णु और शिव की पूजा कर आप अपने सब मनोरथों को प्राप्त कीजिए ॥५३॥ और यह भी सुना जाता है कि जो पतिव्रता स्त्रियाँ होती हैं वे सब कुछ जानती हैं। इन्हीं के द्वारा यह चराचरात्मक जगत् टिका हुआ है ॥५४॥ पृथ्वी का जो मुख्य प्रदेश है उसी के मध्य में दण्डक वन है। उसमें जगज्जननी गौतमी बहती है। प्रभो! वहीं चलकर ईश विष्णु अथवा दीनार्तजनों के कष्ट को दूर करने वाले जगत्पति शंकर की पूजा करो ॥५५॥ इस विपत्ति-सागर में डूबते हुए अनाथ मनुष्यों के लिये शंकर, विष्णु और गौतमी को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी शरण नहीं है। इसलिये तन्मय होकर अपने प्रत्येक प्रयत्नों से इन देवों को प्रसन्न करो। तुम मेरे साथ भक्तिपूर्वक स्तोत्र-पाठ और तपस्या से उनकी उपासना करो। तद-नन्तर शंकर और विष्णु की कृपा से कल्याण प्राप्त करोगे ॥५६-५८॥ बिना जाने कर्म करने से कर्म करने वाले को एक गुना फल मिलता है, जानकर करने पर वह फल सौ गुना हो जाता है सस्त्रीक करने से वह फल अनन्त हो जाता है ॥५९॥ इस संसार में पुरुष के प्रत्येक कार्य में स्त्री ही सहायक है। छोटे-छोटे कार्यों में भी उसके बिना सफलता नहीं प्राप्त होती ॥६०॥ अकेले जो कार्य किया जाता है, उससे आधा फल मिलता है। नाथ! स्त्री के साथ करने से पुरुष प्रचुर फल प्राप्त करता है ॥६१॥ इसीलिये वेदों में भी 'जाया अर्द्धभाग है' ऐसा कहा गया है।

तस्मादेतत्सुविदितमर्धो' जाया इति श्रुतेः। श्रूयते दण्डकारण्ये सरिच्छ्रेष्ठाऽस्ति गौतमी॥६२॥
अशेषाघप्रशमनी सर्वाभीष्टप्रदायिनी। तस्मादागच्छ मया तत्र कुरु पुण्यं महाफलम्॥६३॥
ततः शत्रून्निहत्याऽऽजौ महत्सुखमवाप्स्यसि ॥६४॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा स गुरुणा भार्यया च शतक्रतुः। ययौ गङ्गां जगद्धात्रीं गौतमीं चेति विश्रुताम्॥६५॥
दण्डकारण्यमध्यस्थां ययौ स (दृष्ट्वा ता) प्रीतिमान्हरिः। तपः कर्तुं मनश्चक्रे देवदेवाय शंभवे॥६६॥
गङ्गां नत्वा तु प्रथमं स्नात्वा च स कृताञ्जलिः। शिवैकशरणो भूत्वा स्तोत्रं चेदं ततोऽब्रवीत्॥६७॥

इन्द्र उवाच

स्वमायया यो ह्यखिलं चराचरं, सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽस्मिन् ।
एकः स्वतन्त्रोऽद्वयचित्सुखात्मकः, स नः प्रसन्नोऽस्तु पिनाकपाणिः ॥६८॥
न यस्य तत्त्वं सनकादयोऽपि, जानन्ति वेदान्तरहस्यविज्ञाः ।
स पार्वतीशः सकलाभिलाषदाता प्रसन्नोऽस्तु ममान्धकारिः ॥६९॥
सृष्ट्वा स्वयंभूर्भगवान्विरिञ्चि, भयंकरं चास्य शिरोऽन्वपश्यत ।
छित्त्वा नखाग्रैर्नखसक्तमेतच्चिक्षेप तस्मादभवत्त्रिवर्गः ॥७०॥

सुना जाता है कि दण्डकारण्य में गौतमी नाम की अशेष पापों को नष्ट करने वाली एक अतिपवित्र नदी है। इसलिये मेरे साथ वहाँ चलो और महाफलदाता पुण्य (तप) करो। तदनन्तर शत्रु को समर में मारकर महान् आनन्द प्राप्त करोगे॥६२-६४॥

ब्रह्मा ने कहा—'ऐसा ही हो', यह कहकर व इन्द्र गुरु और भार्या के साथ प्रसिद्ध जगज्जननी दण्डकारण्य के मध्य में सुशोभित गौतमी के तट पर गये। उसको देखते ही इन्द्र प्रसन्न हो गये और देवदेव शम्भु की आराधना करने के लिये प्रस्तुत हो गये। पहले तो गंगा में स्नान किया, पुन हाथ जोड़कर शिव में ही अपनी एकान्त भावना स्थिर करके यह (अग्रिम) स्तोत्र पढ़ने लगे॥६५-६७॥

इन्द्र ने कहा—जो अपनी माया में अखिल चराचर की सृष्टि करते, रक्षा करते और पुन संहार करते हैं, फिर भी अनासक्त ही रहते हैं, एव जो एक स्वतन्त्र अद्वैत, चित्, सुख-स्वरूप हैं, ऐसे पिनाकपाणि (शंकर) हम पर प्रसन्न हों॥६८॥ जिनके तत्त्व को वेदान्त के रहस्य जानने वाले सनकादि ऋषि भी नहीं जानते हैं, वे पार्वतीपति, सब अभिलाषों को पूर्ण करनेवाले, अन्धक रिपु शिव मुझ पर प्रसन्न हों॥६८॥ स्वयम्भू भगवान् शंकर ने पहले ब्रह्मा को उत्पन्न किया, परन्तु जब उन्होंने उनके भयंकर सिर को देखा तब नखाग्र से उसको काट डाला। किन्तु वह नख में ही चिपका रहा। पुन उसको फेंक दिया। उससे त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की उत्पत्ति हुई॥७०॥ उसी त्रिवर्ग से पाप दरिद्रता लोभ, याचना, मोह, विपत्ति और अनन्त प्रभावशाली सांसारिक दुःख उत्पन्न हुये,

---

१क. मर्धं आ०।

पाप दरिद्र त्वय लोभयाज्ञे मोहो विपच्चेति ततोऽप्यनन्तम् ।
जातप्रभाव भवद् स्वरूप, बभूव तैर्व्याप्तमिद समस्तम् ॥७१॥
अवेक्ष्य सर्व चकित सुरेशो, देवीमवोचज्जगदस्तमेति ।
त्व पाहि लोकेश्वरि लोकमातरुमे शरण्ये सुभगे सुभद्रे ॥७२॥
जगत्प्रतिष्ठे वरदे जय त्व, भुक्ति समाधि परमा च मुक्ति ।
स्वाहा स्वधा स्वस्तिरनादिसिद्धिर्गीर्बुद्धिरासीरजरामरे त्वम् ॥७३॥
विद्यादिरूपेण जगत्त्रये त्व, रक्षा करोष्येव [1]मदाज्ञया च ।
त्वयैव सृष्ट भुवनत्रय स्याद्यत प्रकृत्यैव तथैव चित्रम् ॥७४॥
इत्येवमुक्ता दयिता हरेण, सश्लेषसलापपरा बभूव ।
श्रान्ता भवस्यार्धतनौ सुलग्ना, चिक्षेप च स्वेदजल कराग्रै ॥७५॥
तस्माद्बभूव प्रथम स धर्मो, लक्ष्मीरथो दानमथो सुवृष्टि ।
सत्त्व सुसपन्नधर सरासि, धान्यानि पुष्पाणि फलानि चैव ॥७६॥
सौभाग्यवस्तूनि वपु सुवेष, शृङ्गारभाजीनि महौषधानि ।
नृत्यानि गीतान्यमृत पुराण, श्रुतिस्मृती नीतिरथान्नपाने ॥७७॥
शस्त्राणि शास्त्राणि गृहोपयोग्यान्यस्त्राणि तीर्थानि च काननानि ।
इष्टानि पूर्तानि च मङ्गलानि, यानानि शुभ्राभरणासनानि ॥७८॥

जिनसे यह सारा लोक भर-सा गया ॥७१॥ सुरेश ने जब यह सब देखा तो चकित हो गये और देवी से कहा कि सारा जगत् विनाश की ओर जा रहा है। लोकेश्वरी ! जगज्जननी ! उमे ! सुभगे ! सुभद्रे ! शरणदायिनी ! तुम रक्षा करो। वरदायिनी ! जगत् को नाश से बचाने वाली ! तुम्हारी जय हो। तुम मुक्ति परम समाधि (शान्ति) और मुक्ति हो। तुम स्वाहा स्वधा स्वस्ति अनादि सिद्धि वाणी बुद्धि और अजर अमर हो ॥७२ ७३॥ तीनो लोको म तुम विद्या आदि रूप से रक्षा करती हो। मेरी आज्ञा से यत प्रकृतिरूपा तुमने ही त्रिभुवन की सृष्टि की है अत यह त्रिभुवन आश्चर्यमय है। इस प्रकार शकर ने अपनी प्रिया से कहा। तब उमा उनका आलिंगन कर प्रमालाप मे तल्लीन हो गई। इस प्रकार शकर के पाश्व म चिपकी हुई उमा ने श्रान्त होकर अपनी अगुलियो से श्रम-स्वेद (पसीने) को गिराया ॥७४ ७५॥ उसी पसीने की बूदो से पहले धर्म तब लक्ष्मी दान सुवृष्टि, पृथ्वी को समृद्ध बनाने वाले प्राणी सरोवर धान्य पुष्प, फल, सौभाग्य-पदार्थ, शरीर को सुन्दर बनाने वाले पदार्थ शृगारोपयोगी वस्तुयें महौषधियाँ नृत्य गीत अमृत पुराण, श्रुति-स्मृति, नीति, अन्न, पेयपदार्थ शस्त्र शास्त्र गृहोपयोगी अस्त्र तीर्थ कानन, इष्टकर्म पूतकर्म (तालाब खोदवाना आदि), मगल, सवारियाँ स्वच्छ आभूषण आसन आदि पदार्थ उत्पन्न हुये ॥७६-७८॥ देवि ! इसी प्रकार तुम्हारे और शकर के अङ्ग-सयोग एकान्तवास व सुखद हास और सलापजन्य

---

[1] छ. सदाज्ञया।

भयाङ्गसंसर्गसुसंप्रहाससुस्वेदसंलापरहःप्रकारैः ।
तथैव जातं सचराचरं च, अपापकं देवि ततश्च जातम् ॥७९॥
सुखं प्रभूतं च शुभं च नित्यं, विराजि चैतत्तव देवि भावात् ।
तस्मात्तु मां रक्ष जगज्जननि, भीतं भयेभ्यो जगतां प्रधाने ॥८०॥
एके तर्के विमुह्यन्ति लीयन्ते तत्र चापरे। शिवशक्त्योस्तदाऽद्वैतं सुन्दरं नौमि विग्रहम् ॥८१॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य पुरस्तादभवच्छिवः । ॥८२॥

शिव उवाच

किमभीष्टं वरयसे हरे वद परायणम् ॥८३॥

इन्द्र उवाच

बलवान्मे रिपुश्चाऽसौ[1] दर्शनेश्च[2] शनिर्यथा। तेन बद्धस्तलं नीतः परिभूतस्त्वनेकधा ॥८४॥
वाक्सायकस्तया विद्धस्तद्वधाय त्विय कृति । तदर्थं जगतामीश येन जेष्ये रिपुं प्रभो॥८५॥
तवैव देहि वीर्यं मे यच्चान्यद्रिपुनाशनम् । जात पराभवो यस्मात्तद्विनाशे कृते सति ॥
पुनर्जातमहं मन्ये यतः कीर्तिर्जयश्रियो. ॥८६॥

स्वेद (पसीने) से चराचरात्मक संसार (पापरहित) उत्पन्न हुए। देवि! इस लोक में जो प्रचुर सुख और नित्य शुभ फैला हुआ है यह सब तुम्हारा ही प्रसाद है। इसलिए हे जगज्जननी! लोक-प्रधाने! तुम भयभीत एवं विपत्ति में पड़े हुए मेरी रक्षा करो। कुछ मनीषी अपने तर्कों के जाल में पड़कर मोह में पड़ जाते हैं और दूसरे उसमें लीन हो जाते हैं। ऐसे शिव और शक्ति अद्वैत (अभिन्न) एवं सुंदर विग्रह (शरीर) को मैं नमस्कार करता हूँ॥७९-८१॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार स्तुति करते हुए इन्द्र के सम्मुख शंकर प्रकट हुए॥८२॥

शिव ने कहा—इन्द्र! किस उत्तम अभीष्ट को चाहते हो, कहो॥८३॥

इन्द्र ने कहा—मेरा बलवान् रिपु, जो कि दर्शन में साक्षात् शनि-सा जान पड़ता था मुझको बाँधकर रसातल ले गया और वहाँ अनेकों प्रकार से उसने मुझे अपमानित किया और वाग्बाणों से मेरा हृदय छलनी बना दिया। उसी के वध के लिये यह मेरा प्रयत्न है। जगत् के स्वामी! इसलिए जिस प्रकार मैं उसको जीत सकूँ, वैसी ही मुझे शक्ति दीजिए। ताकि मैं अन्य शत्रुओं का भी नाश कर सकूँ। जिससे मैं पराभूत हुआ हूँ, उसको विनष्ट कर देने पर अपना पुनर्जन्म समझूँगा। क्योंकि कीर्ति विजय और लक्ष्मी से श्रेष्ठ होती है॥८४-८६॥

---

१ घ. च. ॰सौदर्शनिरथात्॰। २ झ. ॰नैरथात्॰।

ब्रह्मोवाच

स शिव. शक्रमाहेदं न मयैकेन ते रिपु. । वधमाप्नोति तस्मात्वं विष्णुमप्यव्ययं हरिम् ॥८७॥
आराधयस्व पौलोम्या सह देवं जनार्दनम् । लोकत्रयैकशरण नारायणमनन्यधी. ॥८८॥
तत. प्राप्स्यसि तस्माच्च मत्तश्चापि प्रियं हरे । पुनश्चोवाच भगवानादिकर्ता महेश्वरः ॥८९॥
मन्त्राभ्यासस्तपो वापि योगाभ्यसनमेव च । संगमे यत्र कुत्रापि सिद्धिदं मुनयो विदुः ॥९०॥
कि पुनः संगमे विप्र गौतमीसिन्धुफेनयो. । गिरीणा गह्वरे यद्वा सरितामथ संगमे ॥९१॥
विप्रो धियैव भवति मुकुन्दाङ्घ्रिनिविष्टया । गङ्गाया दक्षिणे तीर आपस्तम्बो मुनीश्वरः ॥९२॥
आस्ते तस्याप्यहं तोषमगमं बलसूदन । तेन त्वं भार्यया चैव तोषयस्व गदाधरम् ॥९३॥

ब्रह्मोवाच

आपस्तम्बेन सहितो गङ्गाया दक्षिणे तटे । तुष्टाव देव प्रयतः स्नात्वा पुण्येऽथ संगमे ॥९४॥
फेनायाश्चैव गङ्गायास्तत्र देवं जनार्दनम् । वैदिकैर्विविधैर्मन्त्रैस्तपसाऽतोषयत्तदा ॥९५॥
ततस्तुष्टोऽभवद्विष्णुः किं देयं चेत्यभाषत । देहि मे शत्रुहन्तारमित्याह भगवान्हरिः ॥९६॥
दत्तमित्येव जानीहि तमुवाच जनार्दनः । तत्राभवच्छिवस्यैव गङ्गाविष्णवोः प्रसादतः ॥९७॥
अम्भसा पुरुषो जातः शिवविष्णुस्वरूपधृक् । चक्रपाणिः शूलधरः स गत्वा तु रसातलम् ॥९८॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर शिव ने इन्द्र से कहा 'अकेले मुझसे तुम्हारा शत्रु मारा नहीं जायगा। इसलिये तुम अव्यय, हरि, विष्णु तीनो लोको के एकमात्र आधार, नारायण और जनार्दन देव की इन्द्राणी के साथ अनन्य भाव से आराधना करो। हरे! इसके बाद तुम मुझसे और उनसे अपने प्रिय मनोरथ को प्राप्त करोगे।' आदिकर्ता महेश्वर ने पुन कहा—'मुनियो ने मन्त्राभ्यास, तपस्या, तथा योगाभ्यास को जिस किसी सगम पर करने से सिद्धि प्रद कहा है। विप्र! तब जहाँ गगा, सिन्धु और फेना का सगम हो, गिरि-गुहा हो या अनेक नदियो का सगम हो उनके विषय मे तो कुछ कहना ही नही है। गगा के दक्षिणी तट पर विप्र मुनीश्वर आपस्तम्ब मुकुन्द के चरणकमल मे अपनी बुद्धि को लगाये हुए रह रहे हैं। बलसूदन! उनको भी मैंने इसी प्रकार सन्तुष्ट किया है। अत तुम अपनी भार्या के साथ गदाधर विष्णु को प्रसन्न करो' ॥८७ ९३॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद गगा और फेना के पवित्र सगम मे स्नान कर गगा के दक्षिण तट पर आपस्तम्ब के साथ इन्द्र एकाग्र मन से विष्णु की स्तुति करने लगे। विविध वैदिक मन्त्रो और तपस्या से इन्द्र ने जनार्दन देव की स्तुति की। तदनन्तर विष्णु प्रसन्न हुए। उन्होने कहा कि तुमको क्या दू। 'मुझे शत्रु का नाश करने वाला साधन प्रदान कीजिये' ऐसा इन्द्र ने कहा। यह सुनकर जनार्दन ने इन्द्र से कहा—'दे दिया गया ऐसा समझो। उसी समय वहाँ शिव, गगा और विष्णु की कृपा से जल के बीच से शिव और विष्णु दोनो के मिले जुले आकार का हाथ मे चक्र और शूल लिये हुए एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उसने रसातल जाकर इन्द्र के शत्रु उस दैत्य महाशनि को मार डाला। फलत वह अम्बक, वृषाकपि इन्द्र का मित्र बन गया। इन्द्र स्वर्ग मे रहते हुए भी सर्वदा उस वृषाकपि का अनुसरण

निजघान तदा दैत्यमिन्द्रशत्रुं महाशनिम्। सखाऽभवत्स चेन्द्रस्य अब्जकः स वृषाकपिः॥९९॥
दिविस्थोऽपि सदा चेन्द्रस्तमन्वेति वृषाकपिम्। कुपिता प्रणयेनाभूदन्यासक्तं विलोक्य तम्॥
शची तां सान्त्वयन्नाह शतमन्युर्हसन्निदम् ॥१००॥

इन्द्र उवाच

नाहमिन्द्राणि शरणमृते सख्युर्वृषाकपेः। वारि वाऽपि हविर्यस्य अग्नेः प्रियकरं सदा॥१०१॥
नाहमन्यत्र गन्ताऽस्मि प्रिये चाङ्गेन ते शपे। तस्मान्नार्हसि मां वक्तुं शङ्कयाऽन्यत्र भामिनि॥१०२॥
पतिव्रता प्रिया मे त्वं धर्मे मन्त्रे सहायिनी। सापत्या च कुलीना च त्वत्तोऽन्या का प्रिया मम॥१०३॥
तस्मात्तवोपदेशेन गङ्गां प्राप्य महानदीम्। प्रसादाद्देवदेवस्य विष्णोर्वै चक्रपाणिनः॥१०४॥
तथा शिवस्य देवस्य प्रसादाच्च वृषाकपेः। जलोद्भवाच्च मे मित्रादब्जकाल्लोकविश्रुतात्॥१०५॥
उत्तीर्णदुःखः सुभगे इत इन्द्रोऽहमच्युतः। किं न साध्यं यत्र भार्या भर्तृचित्तानुगामिनी॥१०६॥
दुष्करा तत्र नो मुक्तिः किंत्वर्थादित्रय शुभे। जायैव परमं मित्रं लोकद्वयहितैषिणी॥१०७॥

सा चेत्कुलीना प्रियभाषिणी च, पतिव्रता रूपवती गुणाढ्या ।
संपत्सु चाऽऽपत्सु समानरूपा, तया ह्यसाध्यं किमिह त्रिलोक्याम् ॥१०८॥

तस्मात्तव धिया कान्ते ममेदं शुभमागतम्। इतस्तवोदितं चैव कर्तव्यं नान्यदस्ति मे॥१०९॥

करने लगे। इस प्रकार अपने सखा मे इन्द्र की प्रेममय आसक्ति देखकर शची कुपित हो गई। उसका कोप देखकर इन्द्र हँसने लगे और उसको समझाते हुए बोले॥९४-१००॥

इन्द्र ने कहा—इन्द्राणि! मैं सखा वृषाकपि को छोडकर और किसी के वश मे नही हूँ। प्रिये! मैं तुम्हारे अग की शपथ खाकर कहता हूँ कि जिस वृषाकपि अग्नि को हवि और वारि (जल) सदा प्रिय हैं उसको छोडकर अन्यत्र कही नही जाता। इसलिए हे भामिनी! मुझसे शका की दृष्टि से मत बोलो॥१०१ १०२॥ तुम धर्म और सलाह मे सदा सहायता करने वाली मेरी पतिव्रता प्रिया हो। ऐसी सन्तानवती, कुलीन तुमको छोडकर और कौन मेरी प्रिया हो सकती है?॥१०३॥ तुम्हारे ही उपदेश से मैंने महानदी गगा को प्राप्त किया। देवाधिदेव चक्रपाणि विष्णु, देव शकर की कृपा और जल से उत्पन्न, लोक-प्रसिद्ध अब्जक और वृषाकपि नामक मित्र की सहायता से अपने दुखो से पार पाया है। सुभगे! तुम्हारे ही प्रयत्नो से मैं अच्युत इन्द्र हुआ। जिसकी भार्या पति के अनुकूल आचरण करने वाली है, उसके लिये ससार मे कौन ऐसा काम है जो न हो सके। शुभे! उसके लिये मुक्ति भी दुर्लभ नही है, अर्थ, धर्म और काम की तो बात ही क्या। पुरुष के लिये लोक-परलोक दोनो का हित चाहने वाली स्त्री ही परम मित्र है॥१०४-१०७॥ वह स्त्री यदि कुलीन है, प्रिय बोलने वाली है, पतिव्रता, रूपा, गुणवती, और सपत्ति तथा विपत्ति मे समान रूप से रहने वाली है तब तो उसके लिये त्रिभुवन मे कुछ भी असाध्य नही है॥१०८॥ कान्ते! इसीलिये तुम्हारी बुद्धि के प्रभाव से ही मेरा शुभोदय हुआ है, आज से मेरे लिये तुम्हारा सकेत ही एकमात्र कर्त्तव्यप्रदर्शक है, दूसरा नही ॥१०९॥ सत्पुत्र के समान परलोक और धर्म का सहायक

परलोके च धर्मे च सत्पुत्रसदृशं न च। आर्तस्य पुरुषस्येह भार्यावद्भेषजं न हि॥११०
निःश्रेयसपदप्राप्त्यै तथा पापस्य मुक्तये। गङ्गया सदृशं नास्ति शृणु चान्यद्वरानने॥१११
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्तये पापमुक्तये। शिवविष्ण्वोरनन्यत्वज्ञानान्नास्त्यत्र मुक्तये॥११२
तस्मात्तव धिया साध्वि सर्वमेतन्मनोगतम्। अवाप्तं च शिवाद्विष्णोर्गङ्गायाश्च प्रसादतः॥११३
इन्द्रत्वं मे स्थिरं चेतो मन्ये मित्रबलात्पुनः। वृषाकपिर्मम सखा यो जातस्त्वप्सु भामिनि॥११४
त्वं च प्रियसखी नित्यं नान्यत्प्रियतरं मम। तीर्थानां गौतमी गङ्गा देवानां हरिशंकरौ॥११५
तस्मादेभ्यः प्रसादेन सर्वं चेप्सितमाप्तवान्। मम प्रीतिकरं चेदं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥११६
तस्मादेतद्धि याचिष्ये देवान्सर्वाननुक्रमात्। अनुमन्यन्तु ऋषयो गङ्गा च हरिशंकरौ॥११७
इन्द्रेश्वरे चाब्जके च उभयोस्तीरयोः सुराः। एकत्र शंकरो देवो ह्यपरत्र जनार्दनः॥११८
पावयन्दण्डकारण्यं साक्षाद्विष्णुस्त्रिविक्रमः। अन्तरे यानि तीर्थानि सर्वपुण्यप्रदानि च॥११९
अत्र तु स्नानमात्रेण सर्वे ते मुक्तिमाप्नुयुः। पापिष्ठाः पापतो मुक्तिमाप्नुयुर्ये च धर्मिणः॥१२०
तेषां तु परमा मुक्तिः पितृभिः पञ्चपञ्चभिः। अत्र किंचिच्च ये दद्युरर्थिभ्यस्तिलमात्रकम्॥१२१
दातृभ्यो ह्यक्षयं तत्स्यात्कामदं मोक्षदं तथा। धन्यं यशस्यमायुष्यमारोग्यं पुण्यवर्धनम्॥१२२
आख्यानं विष्णुशंभ्वोश्च ज्ञात्वा स्नानाच्च मुक्तिदम्। अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं ये शृण्वन्ति पठन्ति च॥१२३

दूसरा नही और दुखी पुरुष के लिए भार्या के समान कोई ओषधि नही॥११०॥ सुन्दर मुख वाली! पाप से छूटने के लिये एव मोक्ष-पद पाने के लिए गगा के समान और कोई साधन नही॥१११॥ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-प्राप्ति के लिए तथा पाप-मुक्त होने के लिये शिव-विष्णु के ऐक्य-ज्ञान के अतिरिक्त और कोई साधन नही॥११२॥ पतिव्रते! तुम्हारी बुद्धि के प्रभाव से ही मेरी समस्त मनोगत कामनायें शिव, विष्णु और गगा के प्रसाद से पूर्ण हुई हैं॥११३॥ इसके अतिरिक्त मेरा इन्द्रत्व भी मेरे मित्र की सहायता से ही पुन स्थिर हुआ है, ऐसा मैं मानता हूँ। भामिनि! मेरा मित्र भी दूसरा कोई नही अपितु वही वृषाकपि है, जो जल से उत्पन्न हुआ॥११४॥ तुम मेरी सर्वदा की प्रिय सखी हो। तुमसे बढकर मेरा कोई प्रियपात्र नही। तीर्थों मे गौतमी गगा तथा देवो मे विष्णु और शकर ही मेरे मान्य हैं॥११५॥ इनकी कृपा से ही मेरे सब मनोरथ पूर्ण हुये हैं। यह त्रैलोक्य प्रसिद्ध तीर्थ मुझे बहुत प्रिय है॥११६॥ इसलिये मैं क्रमश सब देवताओ से यही याचना करता हूँ और ऋषिगण, गगा, हरि और शकर से भी मेरा यही अनुरोध है कि गगा के दोनो तटो पर इन्द्रेश्वर और अब्जक नामक तीर्थों मे सब देवता क्रमानुसार निवास करें। एक स्थान पर शकर और दूसरे पर स्वय जनार्दन निवास करे तथा इस दण्डकारण्य को साक्षाद् विष्णु पवित्र करें। इसके मध्य मे जितने तीर्थ हैं वे सभी सब पुण्यो के देने वाले हो॥११७-११९॥ यहाँ स्नान करने से ही सबको मुक्ति मिले। पापी इस तीर्थ के प्रभाव से पापमुक्त हो जाय। जो धार्मिक व्यक्ति स्नान करें, वे परम मुक्ति प्राप्त करें और उनकी पाँच आगे की तथा पाँच पीछे की पीढी मुक्त हो जाय॥१२०½॥ यहाँ जो कोई याचको को तिलमात्र भी दान करे तो वह दाता के लिये अक्षय हो जाय। उस क्षुद्रदान से वह मोक्ष और अपने मनोरथ को प्राप्त करे॥१२१½॥ जो इस धन्य, कीर्तिप्रद, आयु, आरोग्य और पुण्य प्रद विष्णु और शम्भु के आख्यान और स्नान से मुक्ति देने वाले इस तीर्थ के माहात्म्य का श्रवण या पाठ करते हैं वे पुण्यात्मा हो जाते हैं और उनको इसी लोक

पुण्यभाजो भवेयुस्ते तेभ्योऽत्रैव स्मृतिर्भवेत। शिवविष्णुवीरशेषाघसघविच्छेदकारिणी॥
यां प्रार्थयन्ति मुनयो विजितेन्द्रियमानसाः ॥१२४॥

ब्रह्मोवाच

भविष्यत्यवमेवेति त देवा ऋषयोऽब्रुवन। गौतम्या उत्तरे पारे तीर्थाना मोक्षदायिनाम्॥१२५॥
देवर्षिसिद्धसेव्याना सहस्राण्यथ सप्त वै। तथैव दक्षिणे तीरे तीर्थान्येकादशैव तु॥१२६॥
अब्जक हृदय प्रोक्त गोदावर्या मुनीश्वरै। विश्रामस्थानमीशस्य विष्णोर्ब्रह्मण एव च॥१२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये गौतम्युत्तरकूलस्थेन्द्रेश्वरादिसप्तसहस्र तीर्थदक्षिणकूलस्थापस्तम्बसोमेश्वरफेनासगमवृषाकपाब्जकवैष्णवहनूमत्तीर्थमार्जा रेत्याद्येकादशतीर्थवणन नामैकोननिशदधिकशततमोऽध्याय ॥१२९॥
गौतमीमाहात्म्ये षष्टितमोऽध्याय ॥६०॥

अथ त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय

आपस्तम्बतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

आपस्तम्बमिति ख्यात तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। स्मरणादप्यशेषाघसघविध्वसनक्षमम् ॥१॥

म सब पापो को नष्ट करने देने वाली शिव और विष्णु की स्मृति हो जाती है जिस स्मृति के लिये इन्द्रिय और मन पर सयम रखने वाले मुनि प्रार्थना किया करते हैं॥१२२ १२४॥

ब्रह्मा न कहा—इन्द्र की बात सुनकर देवताओ और ऋषियो ने कहा कि आपका कहा हुआ सब सत्य होगा। गौतमी क उत्तर तट पर देव ऋषि और सिद्धजनो के रहने योग्य सात हजार मोक्षदायक तीर्थ हैं। इसी प्रकार दक्षिणी तीर पर ग्यारह तीर्थ हैं। मुनिश्वरो ने ईश विष्णु और ब्रह्मा के निवास-स्थान अब्जक को गोदावरी का हृदय स्वीकार किया है॥१२५ १२७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म गौतमी के उत्तर तट पर स्थित इन्द्रेश्वर आदि सात हजार तीर्थों एव दक्षिण तटवर्ती आपस्तम्ब सोमेश्वर अब्जक आदि ग्यारह तीर्थों का वणन नामक एक सौ उनतीसवाँ अध्याय समाप्त॥१२९॥

अध्याय १३०

आपस्तम्बतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) तीनो लोक म प्रसिद्ध आपस्तम्ब नामक एक तीर्थ है जिसके स्मरण मात्र

आपस्तम्बो महाप्राज्ञो मुनिरासीन्महायशा । तस्य भार्याऽक्षसूत्रेति पतिधर्मपरायणा ॥२॥
तस्य पुत्रो महाप्राज्ञ कर्किनामाऽय तत्त्ववित् । तस्याऽऽश्रममनुप्राप्तो ह्यगस्त्यो मुनिसत्तम ॥३॥
तमगस्त्य पूजयित्वा आपस्तम्बो मुनीश्वर । शिष्यैरनुगतो धीमास्त प्रष्टुमुपचक्रमे ॥४॥

आपस्तम्ब उवाच

त्रयाणा को नु पूज्य स्याद्देवाना मुनिसत्तम । भुक्तिर्मुक्तिश्च कस्माद्वा स्यादनादिश्च को भवेत ॥५॥
अनन्तश्चापि को विप्र देवानामपि दैवतम् । यज्ञै क इज्यते देव को वेदेष्वनुगीयते ॥
एव मे सशय छेत्तु वदागस्त्य महामुने ॥६॥

अगस्त्य उवाच

धर्मार्थकाममोक्षाणा प्रमाण शब्द उच्यते । तत्रापि वैदिक शब्द प्रमाण परम मत ॥७॥
वदेन गीयते यस्तु पुरुष स परात्पर । मूर्तोऽपर स विज्ञेयो ह्यमूर्त पर उच्यते ॥८॥
योऽमूत स परो ज्ञेयो ह्यपरो मूर्त उच्यते । गुणाभिव्याप्तिभेदेन मूर्तोऽसौ त्रिविधो भवेत ॥९॥
ब्रह्मा विष्णु शिवश्चेति एक एव त्रिधोच्यते । त्रयाणामपि देवाना वेद्यमेक पर हि तत ॥१०॥
एकस्य बहुधा व्याप्तिर्गुणकर्मविभेदत । लोकानामुपकारार्थमाकृतित्रितय भवेत ॥११॥
यस्तत्त्व वेत्ति परम स च विद्वान्न चेतर । तत्र यो भेदमाचष्टे लिङ्गभेदी स उच्यते ॥१२॥

से समस्त पापो का विध्वस हो जाता है। महायशस्वी एव महाबुद्धिमान् आपस्तम्ब नामक एक ऋषि थ । उनकी अक्षसूत्रा नाम की पतिव्रता भार्या थी। उनके तत्त्वज्ञ तथा महामेधावी कर्कि नामक पुत्र था। एक दिन मुनि-पुङ्गव अगस्त्य उनके आश्रम मे आये। मुनीश्वर आपस्तम्ब ने उनकी पूजा की। पुन अपने समस्त शिष्यो के साथ बुद्धिमान मुनि ने मान्य अतिथि से पूछा ॥१ ४॥

आपस्तम्ब ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! तीनो देवो मे कौन पूज्य है ? किसके द्वारा भुक्ति और मुक्ति प्राप्त होती है ? कौन अनादि है ? विप्र ! कौन अनन्त और देवो का भी पूज्य देव है ? यज्ञो से किसकी पूजा की जाती है ? किसकी वेदों मे स्तुति की गई है ? यही मेरा सदेह है जिसका निराकरण चाहता हूँ। महामुनि अगस्त्य ! कृपाकर कहिये ॥५ ६॥

अगस्त्य न कहा—धम अथ काम और मोक्ष के शब्द ही प्रमाण कहे जाते हैं। उनमे भी वैदिक शब्द परम प्रमाण माने जाते हैं। वेद जिस पुरुष का गान करते हैं वह परात्पर कहा जाता है। पर अमूत है और अपर मत है। जो अमूत (अप्रत्यक्ष) है वह पर और जो मूत (प्रत्यक्ष) है वह अपर कहा जाता है। वह मूत गुणो की अभि व्याप्ति (उत्कर्षापकर्ष) भेद से तीन प्रकार का हो जाता है। ब्रह्मा विष्णु और शिव एक के ही तीन रूप हैं इन तीनो देवो से भी जो एक ही वेद्य है वही पर है। एक की ही गुण-कर्म के भेद से बहुत रूपो मे व्याप्ति होती है। लोको के उपकार के लिए ही ये तीन रूप होते हैं। जो परमतत्त्व को जानता है वही विद्वान् है दूसरा नहीं। उनमे जो भेद

प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति यश्चैषां व्याहरेद्भिदम् । त्रयाणामपि देवानां मूर्तिभेदः पृथक्पृथक् ॥१३॥
वेदाः प्रमाणं सर्वत्र साकारेषु पृथक्पृथक् । निराकारं च यत्त्वेकं तत्तेभ्यः परमं मतम् ॥१४॥

आपस्तम्ब उवाच

नानेन निर्णयः कश्चिन्मयाऽत्र विदितो भवेत् । तत्राप्यत्र [1]रहस्यं यत्तद्विमृश्याऽऽशु कीर्त्यताम् ॥
नि.सशयं निर्विकल्पं भाजनं सर्वसंपदाम् ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

एतदाकर्ण्य भगवानगस्त्यो वाक्यमब्रवीत् ॥१६॥

अगस्त्य उवाच

यद्यप्येषां न भेदोऽस्ति देवानां तु परस्परम् । तथापि सर्वसिद्धिः स्याच्छिवादेव सुखात्मनः ॥१७॥
प्रपञ्चस्य निमित्तं यत्तज्ज्योतिश्च परं शिवः । तमेव साधय हरं भक्त्या परमया मुने ॥
गौतम्यां सकलाघौघसंहर्ता दण्डके वने ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा मुनेर्वाक्यं परां प्रीतिमुपागतः । भुक्तिदो मुक्तिदः पुंसां साकारोऽथ निराकृति ॥१९॥
'सृष्ट्याकारस्ततः [2]शक्तः पालनाकार एव च । दाता [3]च हन्ति सर्वं यो यस्मादेतत्समाप्यते ॥२०॥

बुद्धि रखता है, वह लिंग-भेदी कहा जाता है। जो इन तीनो मे भेद बतलाते हैं, उनके लिये कोई भी प्रायश्चित्त नही। इन तीनो मे केवल पृथक्-पृथक् स्वरूप का ही भेद है। सर्वत्र साकार पदार्थों मे वेद ही पृथक्-पृथक् प्रमाण माने जाते हैं। जो एक निराकार तत्त्व है, वह उन तीनो से पर माना गया है ॥७-१४॥

आपस्तम्ब ने कहा—इस कथन से कोई भी निर्णय मुझे ज्ञात नही हुआ। इसमे भी जो कुछ रहस्य है, उसको भली भाँति विचार कर कहिये, क्योकि नि.सशय और निर्विकल्प (ननु नच रहित) ज्ञान ही सब प्रकार की समृद्धियो का एकमात्र स्थान है ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर भगवान् अगस्त्य ने कहा ॥१६॥

अगस्त्य ने कहा—यद्यपि इन देवो मे परस्पर भेद नही है तो भी आनन्दात्मा शिव से ही सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इस प्रपञ्च का जो निमित्त कारण है, वह पर ज्योति शिव है। मुने ! अपनी उत्कृष्ट भक्ति से उसी शकर की साधना करो। दण्डक वन मे गौतमी के तट पर सब पाप-समूह को नष्ट करने वाले शकर रहते हैं, वही जाओ ॥१७-१८॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनि की इन बातो को सुनकर आपस्तम्ब परम प्रसन्न हुये। मनुष्यो को भुक्ति और मुक्ति देने वाला ब्रह्म साकार है और निराकार भी। वही सृष्टि करने वाला, पालन करने वाला, देने वाला और सबका सहार करने वाला भी है। उसी मे सब कुछ समाप्त हो जाता है ॥१९-२०॥

---

१ घ च स्त्यित्याकारस्तत्र । २. ङ प्रोक्त । ३घ ०तास्याहन्त्रुर्यक्तिर्वा य० । च ०तास्याई त्रिशक्तिर्वा य० ।

अगस्त्य उवाच

ब्रह्माकृति कर्तृरूपा वैष्णवी पालनी तथा। रुद्राकृतिर्निहन्त्री सा सर्ववेदेषु पठ्यते॥२१॥

ब्रह्मोवाच

आपस्तम्बस्तदा गङ्गा गत्वा स्नात्वा यतव्रत। तुष्टाव शकर देव स्तोत्रेणानेन नारद॥२२॥

आपस्तम्ब उवाच

काष्ठेषु वह्नि कुसुमेषु गन्धो, बीजेषु वृक्षादि दृपत्सु हेम। ।
भूतेषु सर्वेषु तथाऽस्ति यो वै, त सोमनाथ शरण व्रजामि[1] ॥२३॥
यो लीलया विश्वमिद चकार, धाता विधाता भुवनत्रयस्य ।
यो विश्वरूप सदसत्परो य, सोमेश्वर त शरण व्रजामि ॥२४॥
य स्मृत्य दारिद्र्यमहाभिशापरोगादिभिर्न स्पृश्यते, शरीरी ।
यमाश्रिताश्चेप्सितमाप्नुवन्ति, सोमेश्वर त शरण व्रजामि ॥२५॥
येन त्रयीधर्ममवेक्ष्य पूर्वं, ब्रह्मादयस्तत्र समीहिताश्च[2] ।
एव द्विधा येन कृत शरीर, सोमेश्वर त शरण व्रजामि ॥२६॥
यस्मै नमो गच्छति मन्त्रपूत, हुत हविर्या च कृता च पूजा ।
दत्त हविर्येन सुरा भजन्ते, सोमेश्वर त शरण व्रजामि ॥२७॥

अगस्त्य ने कहा—ब्रह्मा की आकृति कर्त्तारूप है विष्णु की आकृति पालन करने वाली और रुद्र की आकृति नाश करने वाली है। यह सब वेदो के द्वारा समर्थित है॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—नारद! तदनन्तर आपस्तम्ब गगा-तट पर गये और उसमे स्नानकर सयत भाव से इस आगे कहे स्तोत्र से शकर की स्तुति करने लगे॥२२॥

आपस्तम्ब ने कहा—जिस प्रकार शमी काष्ठ मे अग्नि फूलो मे सुगन्ध बीजो मे वृक्ष और पत्थरो मे सुवर्ण रहता है उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतो मे जो छिपा हुआ है उस सोमनाथ की शरण मे आया हूँ। जिसने अनायास इस विश्व की रचना कर दी जो त्रिभुवन का धाता और विधाता है जो विश्वरूप सत् और असत् से परे है मैं उस सोमेश्वर की शरण मे जाता हूँ। जिसके स्मरण करने से प्राणी दरिद्रता महाभिशाप एव रोगादि से सर्वथा पृथक् हो जाता है और जिसकी शरण मे आये हुये व्यक्ति अपने मन चाहे फल को प्राप्त करते हैं उस सोमेश्वर की शरण मे मैं जाता हूँ। आदि काल मे ब्रह्मा आदि जिसके द्वारा वेद-ज्ञान प्राप्त कर पुन उसी के ध्यान मे समाधिस्थ हो गये तथा जिसने अपने शरीर को दो भागो (प्रकृति पुरुष के रूप) मे बाट दिया उस सोमेश्वर की शरण मे जाता हूँ। जिसके पास सबके नमस्कार जाते हैं जिसको मन्त्र से पवित्र की हुई आहुतियाँ और हवि प्राप्त होती हैं जिसके निकट की हुई पूजा चली जाती है और जिसकी दी हुई हवि सब देवता ग्रहण करते हैं उस सोमेश्वर की शरण मे जाता हूँ। जिससे

१ध च प्रपद्ये। २च समर्पिताश्च।

यस्मात्परं नान्यदस्ति प्रशस्तं, यस्मात्परं नैव सुसूक्ष्ममन्यत् ।
यस्मात्परं नो महतां महच्च, सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामि ॥२८॥
यस्याऽऽज्ञया विश्वमिदं विचित्रमचिन्त्यरूपं विविधं महच्च ।
एकक्रियं यद्वदनुप्रयाति सोमेश्वरं त शरणं व्रजामि ॥२९॥
यस्मिन्विभूतिः सकलाधिपत्यं, कर्तृत्वदातृत्वमहत्त्वमेव ।
प्रीतिर्यशः सौख्यमनादिधर्मः, सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामि ॥३०॥
नित्यं शरण्यः सकलस्य पूज्यो, नित्यं प्रियो य. शरणागतस्य ।
नित्यं शिवो[1] यः सकलस्य रूपं, सोमेश्वरं त शरण व्रजामि ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नो भगवानाह नारद तं मुनि(न्वर वृणिवति चाऽऽह त) म् । ।
आत्मार्थं च परार्थं च आपस्तम्बोऽब्रवीच्छिवम् ॥३२॥
सर्वान्कामानाप्नुयुस्ते ये स्नात्वा देवमीश्वरम् । पश्येयुर्जगतामीशमस्त्वित्याह शिवो मुनिम् ॥३३॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थमापस्तम्बमुदाहृतम् । अनाद्यविद्यातिमिरव्रातनिर्मूलनक्षमम् ॥३४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये दक्षिणकूलस्थापस्तम्बसोमेश्वरतीर्थवर्णन नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३०॥

गौतमीमाहात्म्ये एकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

बढकर उत्तम कोई पदार्थ नही है जिससे बढकर कोई अति सूक्ष्म वस्तु नही है और जिस महान् से बढकर कोई महान् पदार्थ नही, उस सोमेश्वर की शरण मे जाता हूँ। जिसकी आज्ञा से यह विचित्र, विविध, महान् और अचिन्त्य रूप वाला विश्व एकक्रिय (सहकर्मी) के समान पीछे-पीछे चलता है, उस सोमेश्वर की शरण मे जाता हूँ। जिसमे सम्पूर्ण विश्व की विभूतियाँ, सबका स्वामित्व, कर्त्तृत्व, दानशीलता, महत्त्व, प्रीति, यश, सौख्य और अनादि धर्म समाहित हैं, उस सोमेश्वर की शरण मे जाता हूँ। जो नित्य है, शरण देने वाला है सबका पूज्य है जो शरण म आये हुये से नित्य प्रेम करने वाला है, जो नित्य शिव (मगल) है, जो सब का रूप है उस सोमेश्वर देव की शरण मे जाता हूँ ॥२३-३१॥

ब्रह्मा ने कहा—नारद ! मुनि की उपर्युक्त स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने उस मुनिवर से वर माँगने के लिए कहा। आपस्तम्ब ने भी आत्मकल्याण तथा लोककल्याण की दृष्टि से कहा कि जो यहाँ स्नान करके जगत् के स्वामी ईश (शकर) का दर्शन करें वे अपने सम्पूर्ण मनोरथो को प्राप्त करें। यह सुनकर शिव ने कहा 'ऐसा ही हो'। तब से वह तीर्थ आपस्तम्ब कहा जाता है, जो अनादि अविद्या रूपी अधकार के समूह को नष्ट कर देने मे समर्थ है ॥३२ ३४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे आपस्तम्बतीर्थवर्णन नामक एक सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३०॥

---

१ घ च ०वो नित्यमशेषरू० ।

अथैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

यमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यमतीर्थमिति ख्यातं पितृणां प्रीतिवर्धनम्। अशेषपापशमनं तत्र वृत्तमिदं शृणु ॥१॥
तत्राऽऽख्यानमिदं त्वासीदितिहासं पुरातनम्। सरमेति प्रसिद्धाऽस्ति नाम्ना देवशुनी मुने॥२॥
तस्याः पुत्रौ महाश्रेष्ठौ श्वानौ नित्यं जनाननु। गामिनौ पवनाहारौ चतुरक्षौ यमप्रियौ ॥३॥
गा रक्षति स्म देवानां यज्ञार्थं कल्पितान्पशून्। रक्षन्तीमनुजग्मुस्ते राक्षसा दैत्यदानवाः ॥४॥
रक्षन्तीं तां महाप्राज्ञाः श्वानयोर्मातरं शुनीम्। प्रलोभयित्वा विविधैर्वाक्यैर्दानैश्च यत्नत ॥५॥
हृता गा राक्षसैः पापैः पश्वर्थे कल्पिताः शुभाः। तत आगत्य सा देवानिदमाह क्रमाच्छुनी॥६॥

सरमोवाच

मां बद्ध्वा राक्षसैः पाशैस्ताडयित्वा प्रहारकैः। नीता गा यज्ञसिद्ध्यर्थं कल्पिता पशवः सुरा॥७॥

ब्रह्मोवाच

तस्या वाच निशम्याऽऽशु सुरान्प्राह बृहस्पतिः ॥८॥

अध्याय १३१

यमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) पितरो की प्रीति बढाने वाला तथा समस्त पापो को दूर करने वाला एक यम-तीर्थ है, उसतीर्थ मे जो घटना हुई उसको सुनो। उसके विषय मे यह एक पुराना इतिहास सुना जाता है। मुने! सरमा नाम की एक प्रसिद्ध देवशुनी (देवो की कुतिया) थी। उसके दो बहुत अच्छे पुत्र (कुत्ते) थे, जो वायु पीकर रहने वाले, सर्वदा प्यार से देवो के पीछे चलने वाले, चतुरक्ष (चार नेत्र वाले) और यम के प्रिय थे। वह देव-शुनी यज्ञ के लिए पालित-पशुओ और गायो की रक्षा करती थी। एक बार राक्षस और दैत्य उस रक्षा करने वाली कुतिया के पास गये। और उसको चतुराई से विविध प्रकार के खाद्य-पदार्थों के लोभ मे फँसाकर और चटुल वचनो के द्वारा उसको धोखा देकर वे पापी राक्षस सब गायो और पशुओ को चुरा ले गये। उन पशुओ को अपने यज्ञ का शुभ पशु भी बना लिया। तब वह कुतिया देवो के पास आकर बोली ॥१-६॥

सरमा ने कहा—देवगण! राक्षसो ने मुझे रस्सी से बांधकर डडो से खूब पीटा है और यज्ञ के लिये रक्षित सब गायो को ले जाकर अपने पशु बना लिये हैं ॥७॥

ब्रह्मा ने कहा—उसकी बातो को सुनकर बृहस्पति ने देवो से कहा ॥८॥

बृहस्पतिरुवाच [१]

इय विकृतरूपाऽऽस्ते अस्या पाप च लक्षये । अस्या मतन ता गावो नीता नान्येन हेतुना ॥
पापेय सुकृतीवेति लक्ष्यते देहचेष्टितं ॥९॥

ब्रह्मोवाच

तद्गुरोर्वचनाच्छक्र पदा ता प्राहरच्छुनीम् । पदाघातात्तदा तस्या मुखात्क्षीर प्रसुस्रुवे ॥१०॥
पुन प्राह शचीभर्ता क्षीर पीत त्वया शुनि । राक्षसैश्च तदा दत्त तस्मान्नीतास्तु गा मम ॥११॥

सरमोवाच

नापराधोऽस्ति मे नाथ न चान्यस्यापि कस्यचित् । नापराधो न चोपेक्षा ममास्ति त्रिदशेश्वर ॥
तस्माद्रुष्टोऽसि कि नाथ रिपवो बलिनस्तु ते ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

ततो ध्यात्वा देवगुरुर्ज्ञात्वा तस्या विचेष्टितम् । सत्य शक्र त्विय दुष्टा रिपूणा पक्षकारिणी ॥१३॥
तत शशाप ता शक्र पापिष्ठे त्व शुनी भव । मर्त्यलोके पापभूता अज्ञानात्पापकारिणी ॥१४॥
तदेन्द्रस्य तु शापेन मानुषे सा व्यजायत । यथा शप्ता मघवता पापात्सा ह्यतिभीषणा ॥१५॥

बृहस्पति ने कहा—यह इस समय विकृत रूप दिखाई देती है जिसमे इसका पाप स्पष्ट लक्षित हो रहा है। इसी की राय से गौयें चुराई गई हैं और कोई कारण नही। यह पापिष्ठा अपनी शारीरिक चेष्टाओ से निर्दोष-सी दिखाई दे रही है ॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—अपने गुरु की बाता को सुनकर इन्द्र ने उस कुतिया को पैर से मारा। उस समय पैर की चोट से उसके मुह से दूध निकल आया । पुन इन्द्र ने कहा—शुनी ! तुमने राक्षसो का दिया हुआ दूध पिया है इस प्रकार तुम्हारे कारण ही वे मेरी गायो को ले गये हैं ॥१० ११॥

सरमा ने कहा—*नाथ ! इसमे मेरा अपराध नही है किसी दूसरे का भी नही है। देवेश ! न तो मेरा अप*राध है और न इस विषय मे मेरी उदासीनता ही है। नाथ ! वे शत्रु ! (राक्षस) बली हैं। आप क्या रुष्ट हो रहे हैं ? ॥१२॥

ब्रह्मा ने कहा—तब देवगुरु ने ध्यान लगाकर उसकी कपट चेष्टाओ को जान लिया और कहा शक्र ! सचमुच यह दुष्टा शत्रुओ का पक्ष करने वाली है ॥१३॥ तब इन्द्र ने उसको शाप दिया पापिष्ठे ! तुम मर्त्यलोक मे अज्ञानवश पाप करने वाली पापकारिणी कुतिया हो जाओ ॥१४॥ तब इन्द्र के शाप से वह मृत्युलोक मे जैसा कि इन्द्र ने शाप दिया था अपने पापो के कारण भयङ्कर कुतिया हुई ॥१५॥ इधर देवेन्द्र उन राक्षसो द्वारा चुराई हुई गौओ को ले

---

१ घ न चापेन।

गावो या राक्षसैर्नीतास्तामामानयनाय च। यत्नं कुर्वन्सुरपतिर्विष्णवे तन्न्यवेदयत् ॥१६॥
विष्णुर्दैत्यांश्च दनुजान्गोहर्तृश्चैव राक्षसान्। हन्तुं प्रयत्नमकरोज्जगृहे च ह्यद्धनुः ॥१७॥
शार्ङ्गं यल्लोकविख्यातं दैत्यनाशनमेव च। जितारिः पूजितो देवैः स्वयं स्थित्वा जनार्दनः ॥१८॥
यत्र वै दण्डकारण्ये शार्ङ्गपाणिर्जगत्प्रभुः। तत्रस्थान्दैत्यदनुजान्राक्षसांश्च बलीयसः ॥१९॥
पुनर्जघ्ने स वै विष्णुर्गा यैर्नीताश्च राक्षसैः। तत्र वै दण्डकारण्ये शार्ङ्गपाणिरिति श्रुतः ॥२०॥
युध्यमानस्ततो विष्णुर्दितिजै राक्षसैः सह। ते जग्मुर्दक्षिणामाशां विष्णोस्त्रासान्महामुने ॥२१॥
अन्वगच्छत्ततो विष्णुस्तानेव परमेश्वरः। गरुत्मता तानवाप्य शार्ङ्गमुक्तैर्मनोजवैः ॥२२॥
बाणैस्तान्व्याहनद्विष्णुर्गङ्गाया उत्तरे तटे। देवारयः क्षयं नीता विष्णुना प्रभविष्णुना ॥२३॥
शार्ङ्गमुक्तैर्महावेगैः सुस्वनैश्च सुमन्त्रितैः। क्षयं प्राप्ता विष्णुबाणैस्ततस्ते देवशत्रवः ॥२४॥
गावो लब्धा यत्र देवैर्बाणतीर्थं तदुच्यते। वैष्णवं लोकविदितं गोतीर्थं चेति विश्रुतम् ॥२५॥
पशवर्ये कल्पिता] गावो गङ्गाया दक्षिणे तटे। [1]प्रद्रुतास्ते सुराः सर्वे गङ्गायां संन्यवेशयन् ॥२६॥
तन्मध्ये कारयामासुर्द्वीपं चैवाऽऽश्रयं गवाम्। तैर्गोभिस्तत्र गङ्गायां सुरयज्ञो व्यजायत ॥२७॥
यज्ञतीर्थं तु तत्प्रोक्तं गोद्वीपं गाङ्गमध्यतः। देवानां यजनं तच्च सर्वकामप्रदं शुभम् ॥२८॥

आने के लिये प्रयत्न करने लगे और यह सारी कथा विष्णु से कह सुनायी ॥१६॥ विष्णु यह सुनकर उन गौओ के चुराने वाले राक्षसो, दनुजो और दैत्यो को मारने के लिये उद्यत हो गए। उन्होने दैत्यो को नष्ट करने वाले लोक-विख्यात महान् शाङर्ग (धनुष) को हाथ मे लिया ॥१७॥ शत्रुविजयी, देवो से पूजित तथा ससार के स्वामी विष्णु हाथ मे धनुष लेकर उस दण्डकारण्य मे गये और वहाँ के बलवान् दैत्य, दनुज और राक्षसो को मारने लगे। पुन शाङर्ग पाणि नाम से प्रसिद्ध विष्णुदेव ने उन गायो के चुराने वाले राक्षसो को भी मार डाला। इसके अनन्तर विष्णु अन्य दैत्यो और राक्षसो से युद्ध करने लगे। महामुने! विष्णु के भय से वे राक्षस दक्षिण-दिशा की ओर भाग गये ॥१८-२१॥ तब परमेश्वर विष्णु ने गरुड पर सवार होकर उनका पीछा करने लगे और उनको पाकर मन के समान वेग-वाले अपने धनुष से छोडे हुए बाणो से गगा के उत्तर तट पर उन्हें मार गिराया। इस प्रकार पराक्रमी विष्णु ने राक्षसो का सहार कर डाला ॥२२-२३॥ तदनन्तर वे सभी देव-शत्रु धनुप से फेके गये सुमन्त्रित (मन्त्रो द्वारा प्रयुक्त) गम्भीर शब्द करने वाले और महावेग वाले विष्णु के बाणो से नष्ट कर दिये गये ॥२४॥ जहाँ देवताओ ने गौओ को पाया उसको बाणतीर्थ कहा जाता है। लोक-विदित वैष्णव तीर्थ एव गोतीर्थ नाम से उसकी प्रसिद्धि हुई ॥२५॥ गगा के दक्षिण तट पर वे गाये यज्ञ-पशु बनाई गई थी। वे देवता यह देख दौडकर गगा मे घुस गये ॥२६॥ उसके मध्य मे उन्होंने गौओ के रहने के योग्य एक उत्तम द्वीप बनाया। वहाँ उन गौओ के द्वारा देव-यज्ञ सम्पन्न हुआ ॥२७॥ गगा के मध्य मे जहाँ वह सब मनोरथो को पूर्ण करने वाला देवो का शुभ-यज्ञ हुआ, वह गोतीर्थ और यज्ञ-तीर्थ कहलाया ॥२८॥ महाकान्तिमान्! इस असार और अपार ससार रूपी सागर से पार लगाने मे नौका के समान, विश्वेश्वरी,

---

१क. घ ङ प्रद्रुत्ते।

स्वयं मूर्तिमती भूत्वा गङ्गाशक्तिर्महाद्युते। असारापारसंसारसागरोत्तरणे तरिः॥२९॥
विश्वेश्वरी योगमाया सद्भक्ताभयदायिनी। गोरक्षं तु ततस्तीर्थं गङ्गाया दक्षिणे तटे॥३०॥
तौ श्वानौ सरमापुत्रौ चतुरक्षौ यमप्रियौ। मातुः शापं चापराधं सर्वं चापि सविस्तरम्॥३१॥
निवेद्य तु यथान्यायं कार्यं चापि सुखप्रदम्। विशापकरणं चापि पप्रच्छतुरुभौ यमम्॥३२॥
स ताभ्यां सहितः सौरिः पित्रे सूर्याय चाब्रवीत्। श्रुत्वा सूर्यः सुतं प्राह गङ्गायां सुरसत्तम॥३३॥
लोकत्रयैकपावन्यां गौतम्यां दण्डके वने। श्रद्धया परया वत्स सुस्नातः सुसमाहितः ॥३४॥
ब्रह्माणं चैव विष्णुं च मामीशं च यथाक्रमम्। स्तुहि त्वं सर्वभावेन भृत्यौ प्रीतिमवाप्स्यतः॥३५॥
तत्पितुर्वचनं श्रुत्वा यमः प्रीतमनास्तदा। तयोश्च प्रीतये प्रायाद्देवतर्पणयोर्यम. ॥३६॥
गौतम्यामघहारिण्यां सुसमाहितमानसः। तत्रैव तोषयामास गङ्गायां सुरसत्तमान्॥३७॥
श्वभ्यां च सहितः श्रीमान्दक्षिणाशापतिः प्रभुः। ब्रह्माणं तोषयामास भानुं वै दक्षिणे तटे॥३८॥
ईशानमुत्तरे विष्णुं स्वयं धर्मः प्रतापवान्। दत्तवन्तो वरं श्रेष्ठं सरमाया विशापकम् ॥
वरानयाचत बहूल्लोकानामुपकारकान् ॥३९॥

यम उवाच

एषु स्नानं तु ये कुर्युर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। आत्मार्थं च परार्थं च ते कामानाप्नुयुः शुभान्॥४०॥
बाणतीर्थे तु ये स्नात्वा शार्ङ्गपाणिं स्मरन्ति वै। तेभ्यो दारिद्र्यदुःखानि न भवेयुर्युगे युगे॥४१॥

योगमाया और अच्छे भक्तों को अभय प्रदान करने वाली गगा-शक्ति मूर्ति धारण करके उस यज्ञ में उपस्थित थी। इसके बाद गगा के दक्षिण तट पर गोरक्ष नामक तीर्थ बना॥२९-३०॥

इधर सरमा के पुत्र उन दोनो यम के प्रिय-पात्र चार आँखो वाले श्वानों ने माता के अपराध और शाप को यथावत् विस्तारपूर्वक यम से कह सुनाया और माता के शापमोचन का उपाय तथा उसको सुख पहुँचाने वाले कार्य के विषय में भी पूछा॥३१-३२॥ सूर्य-तनय यम ने अपने प्रिय श्वानो के साथ सूर्य के पास जाकर सारी कथा कह सुनाई। यह सुनकर सूर्य ने अपने पुत्र से कहा—'सुरश्रेष्ठ! वत्स! तुम दण्डक वन में त्रैलोक्य को पवित्र करने वाली गगा में अति श्रद्धा के साथ स्नान करो और एकाग्र मन से ब्रह्मा, विष्णु मेरी (सूर्य की) और शकर की क्रमश स्तुति करो। ऐसा करने से तुम्हारे ये भृत्य सब प्रकार का सुख प्राप्त करेंगे॥३३-३५॥ पिता की बातों को सुनकर यम अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपने सेवकों को सुखी बनाने की इच्छा से देवों को तृप्त करने के लिये पापहारिणी गगा के पास गये। अपने कुत्तो के सहित दक्षिण दिशा के स्वामी प्रभु यम ने एकाग्र-मन से गगा में स्नान कर श्रेष्ठ देवताओ को प्रसन्न किया। पहले गगा के दक्षिण तट पर ब्रह्मा और सूर्य को तथा उत्तर तट पर ईशान और विष्णु को स्वय प्रतापी यम ने प्रसन्न किया। देवो ने प्रसन्न होकर सरमा को शाप-रहित करने के लिये वर प्रदान किया। फिर स्वय यम ने बहुत-से लोककल्याणकारी वरों को भी माँगा॥३६-३९॥

यम ने कहा—हे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर! जो कोई इन तीर्थों में आत्मार्थ या परार्थ स्नान करेंगे उन्हें अवश्य अपने शुभ मनोरथों की प्राप्ति होगी। बाण तीर्थ में स्नान कर जो शार्ङ्ग-पाणि विष्णु का स्मरण करेंगे, उनको

गोतीर्थे ब्रह्मतीर्थे वा यस्तु स्नात्वा यतव्रत । ब्रह्माण त नमस्याय द्वीपस्यापि प्रदक्षिणम् ॥४२॥
य कुर्यात्तेन पृथिवी सप्तद्वीपा वसुधरा । प्रदक्षिणीकृता तत्र किंचिद्दत्वा वसु द्विजम ॥४३॥
तद्देवयजन प्राप्य किंचिदधुत्वा हुताशने । अश्वमेधादियज्ञाना फल प्राप्नोति पुष्कलम ॥४४॥
य सकृत्तत्र पठति गायत्रीं वेदमातरम् । अधीतास्तेन वेदा वै निष्कामो मुक्तिभाजनम ॥४५॥
स्नात्वा तु दक्षिणे कूले शक्ति देवीं तु भक्तित । पूजयित्वा यथान्याय सर्वान्कामानवाप्नुयात ॥४६॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाना शक्तिर्माता त्रयीमयी । सर्वान्कामानवाप्नोति (स्नात्वाऽत्र पूजयेच्चरता) ॥
पुत्रवान्धनवान्भवेत ॥४७॥
आदित्य भक्तितो यस्तु दक्षिणे नियतो नर । स्नात्वा पश्येत तेनेष्टा यज्ञा विविधदक्षिणा[1] ॥४८॥
कूले यश्चोत्तर चैव गङ्गाया दैत्यसूदनम् । स्नात्वा[2]पश्येत्त नत्वा तस्य विष्णो पर पदम ॥४९॥
यत्पर तनो यस्तु यमतीर्थे तु पूजितम । स्नात पश्यति युक्तात्मा स करोत्यचिरेण हि ॥५०॥
पितृणामक्षय पुण्य फलद कीर्तिवर्धनम् । तत्र स्नानेन दानेन जपेन स्तवनेन च ॥
अपि दुष्कृतकर्माण पितरो मोक्षमाप्नुयु ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

इत्याद्यष्ट सहस्राणि तीर्थानि त्रीणि नारद । तेषु स्नान च दान च सर्वमक्षयपुण्यदम ॥५२॥

युग-युग तक दरिद्रता के कष्ट नही होंगे। जो सयमी व्यक्ति गोतीथ और ब्रह्मतीर्थ मे स्नान कर उस ब्रह्मा को नमस्कार करता है और द्वीप की प्रदक्षिणा करता है उसे सात द्वीप वाली वसुमती पृथिवी की प्रदक्षिणा करने का फल मिलता है। वहा यदि कुछ धन ब्राह्मणो को दे देता और उस देव-यजन के पास जाकर अग्नि मे हवन कर देता है तब तो अश्वमेध यज्ञ का अपरिमित फल उसको प्राप्त हो जाता है। जो वहाँ निष्काम होकर एक बार भी वेद माता गायत्री का पाठ करता है वह सब वेदो का पाठ करने का फल प्राप्त करता है एव मुक्ति का अधिकारी हो जाता है। जो दक्षिण तट पर स्नान कर शक्ति देवी की भक्तिपूवक यथा विधि पूजा करता है वह अपने सारे मनोरथो को प जाता है। जो ब्रह्मा विष्णु और महेश की शक्ति वेदमयी माता की पूजा करता है वह अपने सब मनोरथो को प्राप्त कर पुत्रवान् और धनवान् होता है। जो मनुष्य नियम-पूवक दक्षिण तट पर स्नान कर भगवान् सूय का दशन करता है वह विविध दक्षिणा वाले यज्ञो के अनुष्ठान का फल प्राप्त करता है। जो गगा के उत्तर तट पर स्नान कर दैत्य नाशक विष्णु को नमस्कार करता है उसको विष्णु का परम पद प्राप्त हो जाता है। इसके बाद जो यम तीथ मे स्नान कर एकाग्र मन से यमेश्वर का दशन और पूजन करता है वह शीघ्र ही पितरो को अक्षय पुण्य तथा तथा यश विस्तारक फल का अधिकारी बना देता है। उस तीथ मे स्नान दान जप और स्तुति करने से अति दुष्कर्म करने वाले पितर भी मोक्ष के अधिकारी हो जाते हैं।४० ५१॥

ब्रह्मा ने कहा—नारद ! इस प्रकार आठ हजार तीन तीथ वहाँ प्रतिष्ठित हैं। उनमे स्नान और दान करने

---

१ घ ङ च ०णा । मवेयुश्चो० । २ क च ०द्यथ स० ।

एतेषां स्मरणं पुण्यं नानाजन्माघनाशनम्। श्रवणात्पितृभिः सार्धं पठनात्स्वकुलैः सह ॥५३॥
तेषामप्यतिपापानि नाशं यान्ति ममाऽऽज्ञया। तत्र स्नानादि यः कृत्वा किंचिद्दत्त्वा यतात्मवान् ॥५४॥
पितॄणां पिण्डदानादि कृत्वा नत्वा सुरानिमान्। धनं धान्यं यशो वीर्यमायुरारोग्यसंपदः ॥५५॥
पुत्रान्पौत्रान्प्रियां भार्यां लब्ध्वा चान्यन्मनोषितम्। अवियुक्तः प्रीतमना बन्धुभिश्चातिमानितः ॥५६॥
नरकस्थानपि पितॄंस्तारयित्वा कुलानि च। पावयित्वा प्रियैर्युक्तो ह्यन्ते विष्णुं शिवं स्मरेत्॥
ततो मुक्तिपदं गच्छेद्देवानां वचनं यथा ॥५७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये बाणतीर्थशार्ङ्गपाणीयगोह्रीपदेव-
यजनब्रह्मतीर्थशक्तितयमादित्यसुपर्णदैत्यसूदनयमेश्वरपितृतीर्थादि[१]न्यधिकाष्ट-
सहस्रतीर्थवर्णनं नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३१॥
गौतमीमाहात्म्ये द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥

से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है। इन तीर्थों का स्मरण भी पुण्यकारक और अनेक जन्मों के पापों को दूर करने वाला है। इन तीर्थों के माहात्म्य सुनने और पढ़ने से उस व्यक्ति के पितरों तथा कुलों के अत्यन्त पाप भी मेरी आज्ञा से नष्ट हो जाते हैं। जो संयमी उनमें स्नान कर विप्रों को कुछ दान देता एवं पितरों को पिण्डदान देकर इन देवों को नमस्कार करता है वह धन धान्य यश पराक्रम आयु आरोग्य सम्पत्ति पुत्र पौत्र प्रिय भार्या एवं अपने अन्य मनोरथों को प्राप्त कर सर्वदा प्रसन्नतापूर्वक अपने परिवार के साथ बन्धुजनों से सम्मानित होकर निवास करता है। वह अपने नरकगामी पितरों का उद्धार कर और कुलों को पवित्र कर प्रियजनों के सहित अन्तकाल में विष्णु और शिव का स्मरण करता है। तदनन्तर देवों के कथनानुसार वह मुक्ति प्राप्त करता है ॥५२-५७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में यमतीर्थवर्णन नामक एक सौ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३१॥

---

१ क. च. ०दिसहस्रत्रयव०।

अथ द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्याय

यक्षिणीसगममाहात्म्यकथनम्

ब्रह्मोवाच

यक्षिणीसंगमं नाम तीर्थं सर्वफलप्रदम्। तत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥१॥
यत्र यक्षेश्वरो देवो दर्शनाद्भुक्तिमुक्तिदः। तत्र च स्नानमात्रेण [1]सत्रयागफलं लभेत्॥२॥
विश्वावसोः स्वसा नाम्ना पिप्पला गुरुहासिनी। ऋषीणां सत्रमगमद्गौतमीतीरवर्तिनाम्॥३॥
दृष्ट्वा तत्र ऋषीन्क्षामान्सा जहासातिगर्विता। या गत्वाऽऽश्रावय वौषडस्तु श्रौषडिति स्थिरम्॥४॥
विस्वरेण ब्रुवती तां ते शेपुः स्राविणी भव। ततो नद्यभवत्तत्र यक्षिणीति सुविश्रुता ॥५॥
ततो विश्वावसुः पूज्य ऋषीन्देवं त्रिलोचनम्। संगम्य चैव गौतम्यां तां विशापामथाकरोत्॥६॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं यक्षिणीसंगमं स्मृतम्। तत्र स्नानादिदानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥७॥
विश्वावसोः प्रसन्नोऽभूद्यत्र शंभुः शिवान्वितः। शैवं तत्परमं तीर्थं दुर्गातीर्थं च विश्रुतम्॥८॥
सर्वपापौघहरणं सर्वदुर्गतिनाशनम्। सर्वेषां तीर्थमुख्यानां तद्धि सारं महामुने ॥
तीर्थं मुनिवरैः ख्यातं सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम् ॥९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये यक्षिणीसंगमदुर्गादितीर्थवर्णनं नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३२॥
गौतमीमाहात्म्ये त्रिषष्टितमोऽध्यायः॥६३॥

अध्याय १३२

यक्षिणी-सगम का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) सब फलों को देनेवाला यक्षिणी-सगम नामक एक तीर्थ है उसमे स्नान एव दान करने से मनुष्य अपने सब मनोरथों को प्राप्त करता है। जहाँ केवल दर्शनमात्र से भुक्ति और मुक्ति के देने वाले यक्षेश्वर देव हैं, उस तीर्थ में स्नान मात्र से यज्ञफल मिल जाते हैं। विश्वावसु की खूब ठहाका मारकर हँसने वाली पिप्पला नाम की एक बहिन थी। वह एक दिन गौतमी-तीर पर रहने वाले ऋषियों के यज्ञ में गई। वहाँ दुबले-पतले ऋषियों को देखकर घमड में हँस पडी और यज्ञ के निकट जाकर 'वौषट, श्रौषट्', इन शब्दों का भद्दे और अशुद्ध स्वर में पाठ कर उनको चिढाने लगी। यह देखकर ऋषियों ने उस पिप्पला को शाप दिया कि 'तुम नदी हो जाओ'। शाप सुनते ही वह यक्षिणी नाम की प्रसिद्ध नदी हो गई। तब विश्वावसु ने ऋषियों और त्रिनेत्र शकर की पूजा की तथा यक्षिणी को गौतमी से मिलाकर उसको शाप मुक्त किया। उस समय से वह स्थान यक्षिणी-सगम नामक तीर्थ हो गया। उस तीर्थ में स्नान और दान करने से मनुष्य अपने सारे मनोरथों को प्राप्त करता है। जहाँ शिवा सहित शिव विश्वावसु पर प्रसन्न हुए वह सब पाप-समूहों एव कठिन पीडाओं को दूर करनेवाला अति उत्तम शैव और दुर्ग-तीर्थ के नाम से विख्यात हुआ। महामुनि नारद! उस तीर्थ को ऋषिवरों ने मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाला और सब प्रसिद्ध तीर्थों का सारभूत तीर्थ घोषित किया है॥१-९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में यक्षिणी-सगम वर्णन नामक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥१३२॥

[1] क. ख. सर्वयज्ञफ०।

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

शुक्लतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शुक्लतीर्थमिति ख्यातं सर्वसिद्धिकरं नृणाम्। यस्य स्मरणमात्रेण सर्वकामानवाप्नुयात् ॥१॥
भरद्वाज इति ख्यातो मुनिः परमधार्मिकः। तस्य पैठीनसी नाम भार्या सुकुलभूषणा ॥२॥
गौतमीतीरमध्यास्ते पतिव्रतपरायणा। अग्नीषोमीयमैन्द्राग्नं पुरोडाशमकल्पयत् ॥३॥
पुरोडाशे श्रप्यमाणे धूमात्कश्चिदजायत। पुरोडाशं भक्षयित्वा[1] लोकत्रितयभीषणः ॥४॥
यज्ञं मे ह्यत्र को हसि कोऽयात्त्वमिति तं मुनिः। प्रोवाच सत्वरं क्रुद्धो भरद्वाजो द्विजोत्तमः ॥५॥
तद्वचवचनं श्रुत्वा राक्षसः प्रत्युवाच तम् ॥

राक्षस उवाच

हव्यघ्न इति विख्यातं भरद्वाज निबोध माम्। संध्यासुतोऽहं ज्येष्ठश्च पुनः प्राचीनबर्हिषः ॥६॥
ब्रह्मणा मे वरो दत्तो यज्ञान्खाद यथासुखम्। ममानुजः कश्चिच्चापि बलवानतिभीषणः ॥७॥
अहं कृष्णः पिता कृष्णो माता कृष्णा तथाऽनुजः। अहं मखं हनिष्यामि यूपं छेत्स्ये कृतान्तकः ॥८॥

अध्याय १३३

शुक्लतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करने वाला शुक्ल-तीर्थ नामक एक विख्यात तीर्थ है जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य अपनी मन कामनाओं को अनायास प्राप्त कर लेता है। (इसकी कथा इस प्रकार है)—

भरद्वाज नाम के एक परम धार्मिक विख्यात मुनि थे। उनकी पैठीनसी नाम की अत्यन्त गुणवती भार्या थी। वह पति-परायणा गौतमी-तीर पर रहती थी। एक बार वह अग्नि-सोम देवता तथा इन्द्र-अग्नि देवता के लिए चरु बना रही थी। जब वह चरु पकने लगा तब धुयें से एक त्रैलोक्य भयङ्कर जीव निकला जो चरु को चट कर गया। यह देख द्विजवर मुनि भरद्वाज ने क्रोध से तुरत उसको डाँटकर कहा— तुम कौन हो जो मेरे यज्ञ को नष्ट कर रहे हो? ऋषि की बात सुनकर राक्षस ने मुनि से कहा ॥१-५॥

राक्षस ने कहा—भरद्वाज! मुझ को प्राचीनबर्हि का संध्या से उत्पन्न यज्ञघ्न नामक प्रसिद्ध ज्येष्ठ पुत्र जानो। ब्रह्मा ने मुझे वरदान दिया है कि तुम इच्छानुसार यज्ञों को खाया करो। मेरा बलवान् अतिभीषण अनुज भी इसी ढंग का है। मैं काला मेरे पिता काले माता काली और भाई भी काला है। मैं यम होकर यज्ञ को नष्ट करूँगा और यूपों को तोड़ डालूँगा ॥६-८॥

---

[1] क. ङ. भेदयित्वा।

भरद्वाज उवाच

रक्ष्यतां मे त्वया यज्ञ. प्रियो धर्म. सनातनः । जाने त्वां यज्ञहन्तारं सद्द्विज रक्ष मे क्रतुम् ॥९॥

यज्ञघ्न उवाच

भरद्वाजं निबोधेदं वाक्यं मम समासत. । ब्रह्मणाऽहं पुरा शप्तो देवदानवसंनिधौ ॥१०॥
ततः प्रसादितो देवो मया लोकपितामहः । अमृतं प्रोक्षयिष्यन्ति यदा त्वा मुनिसत्तमाः ॥११॥
तदा विशापो भविता हव्यघ्न त्वं न चान्यथा । एवं करिष्यसि यदा तत. सर्व भविष्यति ॥
यद्यदाकाङक्षितं ब्रह्मन्नैतन्मिथ्या कदाचन ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

भरद्वाजः पुन· प्राह सखा मेऽसि महामते । मखसंरक्षणं येन स्यान्मे वद करोमि तत् ॥१३॥
सभूय देवा दैतेया ममन्थुः क्षीरसागरम् । अलभन्तामृतं कष्टात्तदस्मत्सुलभं कथम् ॥१४॥
प्रीत्या यदि प्रसन्नोऽसि सुलभं यद्वदस्व तत् । तद्यैर्वचनं श्रुत्वा रक्ष· प्राह तदा मुदा ॥१५॥
अमृतं गौतमीवारि अमृतं स्वर्णमुच्यते । अमृत गोभवं चाऽऽज्यममृतं सोम एव च ॥१६॥
एतैर्मामभिषिञ्चस्व अथ [1]वैतैस्तथा त्रिभि । गङ्गाया वारिणाऽऽज्येन हिरण्येन तथैव च ॥
सर्वेभ्योऽप्यधिकं दिव्यममृतं गौतमीजलम् ॥१७॥

भरद्वाज ने कहा—देखो, मैं यज्ञ विध्वसक तुमको जानता हू तुम एक अच्छे ब्राह्मण हो, तुम मेरे यज्ञ और प्रिय सनातन धर्म की रक्षा करो ॥९॥

यज्ञघ्न ने कहा—भरद्वाज ! मेरी बाता को सक्षेप म सुनो । देव-दानवो के सामने ब्रह्मा ने मुझे शाप दिया । तब मैंने वडे अनुनय विनय से लोक-पितामह को प्रसन्न किया । उन्होने कहा कि जब मुनिवर्यगण अमृत से तुम्हारा अभिषेक करेंगे, तब हे हव्यघ्न ! तुम शाप-मुक्त होओगे अन्यथा नही । यदि तुम ऐसा करोगे तब हे ब्रह्मन् ! जो जो तुम चाहोग वह सब हो जायगा, यह बात कभी भी मिथ्या नही हो सकती ॥१०-१२॥

ब्रह्मा ने कहा—भरद्वाज ने पुन कहा 'महामते ! तुम मर सखा हो । जिस प्रकार मेरे यज्ञ की रक्षा हो, वही मैं अवश्य करूँगा । एक बात है कि देवो और दैत्यो ने मिलकर क्षीर-सागर को मँथा । तब बडे कष्ट से अमृत को प्राप्त किया । ऐसा दुर्गम अमृत हम लोगो को कैस सुगम हो सकता है ? यदि तुम हृदय से मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो बताओ कि वह कैसे सुलभ होगा । ऋषि की बात को सुनकर राक्षस ने प्रसन्न होकर कहा ॥१३-१५॥

राक्षस ने कहा—गौतमी का जल अमृत है । सोने को भी अमृत कहते हैं । गौ के घृत और सोम को भी अमृत माना जाता है । इनसे मेरा अभिषेक कीजिये अथवा गगा-जल घृत और सुवर्ण इन तीनो से ही अभिषेक हो । या सबसे अधिक दिव्य अमृत गौतमी का जल ही है ॥१६ १७॥

---

१ ङ. वैक तथा ।

ब्रह्मोवाच

एतदाकर्ण्य स ऋषिः परं संतोषमागतः। पाणावादाय गङ्गायाः सलिलामृतमादरात् ॥१८॥
तेनाकरोदृषी रक्षो ह्यभिषिक्तं तदा मखे। पुनश्च यूपे च पशावृत्विक्षु मखमण्डले ॥१९॥
सर्वमेवाभवच्छुक्लमभिषेकान्महात्मनः। तद्रक्षोऽपि तदा शुक्लो भूत्वोत्पन्नो महाबलः ॥२०॥
यः पुरा कृष्णरूपोऽभूत्स तु शुक्लोऽभवत्क्षणात्। यज्ञं सर्वं समाप्याथ भरद्वाजः प्रतापवान् ॥२१॥
ऋत्विजोऽपि विसृज्याथ यूपं गङ्गोदकेऽक्षिपत्। गङ्गामध्ये तद्धि यूपमद्याप्यास्ते महामते ॥२२॥
अभिषिक्तं चामृतेन अभिज्ञानं तु तन्महत्। तत्र तीर्थे पुना रक्षो भरद्वाजमुवाच ह ॥२३॥

रक्ष उवाच

अहं यामि भरद्वाज कृतः शुक्लस्त्वया पुनः। तस्मात्त्वत्र तीर्थे ये स्नानदानादिपूजनम् ॥२४॥
कुर्युस्तेषामभीष्टानि भवेयुर्यत्फलं मखे। स्मरणादपि पापानि नाशं यान्तु सदा मुने ॥२५॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं शुक्लतीर्थमिति स्मृतम्। गौतम्यां दण्डकारण्ये स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥२६॥
उभयोस्तीरयो सप्त सहस्राण्यपराणि च। तीर्थानां मुनिशार्दूल सर्वसिद्धिप्रदायिनाम् ॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये शुक्लतीर्थाद्युभयतीरस्थसप्तसहस्रतीर्थवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस सुलभ उपाय को सुनकर ऋषि अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये। उन्होंने बड़े आदर से हाथ में गंगाजल ले लिया। उससे उस यज्ञ में ही उस राक्षस का अभिषेक किया। पुनः उसी जल को यूप, यज्ञ-पशु और ऋत्विजों पर भी छिड़का। उस महात्मा के अभिषेक में सब कुछ शुक्ल-वर्ण का हो गया। वह महाबली राक्षस भी शुक्ल होकर प्रकट हुआ। जो पहले अति कृष्ण था वह क्षण भर में ही शुक्लवर्ण का हो गया। प्रतापी भरद्वाज ने अपने यज्ञ की समस्त क्रियायें समाप्त की। सब ऋत्विजों को विदा कर दिया और उस यूप को गंगा के मध्य में फेंक दिया। महामते! वह फेंका हुआ यूप आज भी गंगा के बीच में वर्तमान है। गौतमी के अमृत-जल से अभिषिक्त होने पर उस राक्षस को पूर्व की बातों का स्मरण हो आया। तब उसने पुनः उस तीर्थ में भरद्वाज से कहा ॥१८-२३॥

राक्षस ने कहा—भरद्वाज! मुझको तुमने पुनः शुक्ल कर दिया। अतः इस तीर्थ में जो स्नान-दान और देवपूजन करेंगे उनके सब अभिमत पूरे होंगे और उनको यज्ञ करने का फल प्राप्त होगा। मुने! इसके स्मरणमात्र से सब पाप नष्ट हो जायेंगे। उस समय से वह तीर्थ शुक्ल-तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। यह दण्डक वन में गौतमी-तट पर स्वर्ग का एक खुला द्वार है। मुनिशार्दूल! वहाँ गौतमी के दोनों तटों पर सब प्रकार की सिद्धि प्रदान करने वाले और भी सात हजार तीर्थ हैं ॥२४-२७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में शुक्ल-तीर्थ आदि सात हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३३॥

अथ चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

चक्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

चक्रतीर्थमिति ख्यातं स्मरणात्पापनाशनम्। तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद ॥१॥
ऋषयः[1] सप्त विख्याता वसिष्ठप्रमुखा मुने। गौतम्यास्तीरमाश्रित्य सत्रयज्ञमुपासते ॥२॥
तत्र विघ्न उपक्रान्ते रक्षोभिरतिभीषणे। मामभ्येत्याथ मुनयो रक्षःकृत्यं न्यवेदयन् ॥३॥
तदाऽहं प्रमदारूपं माययाऽऽसृज्य नारद। यस्याश्च दर्शनादेव नाशं यान्त्यथ राक्षसाः ॥४॥
एवमुक्त्वा तु तां प्रादामृषिभ्यः प्रमदा मुने। मद्वाक्यादृषयो मायामादाय पुनरागमन् ॥५॥
अजेका या समाख्याता कृष्णलोहितरूपिणी। मुक्तकेशीत्यभिधया साऽऽस्तेऽद्यापि स्वरूपिणी ॥६॥
लोकत्रितयसंमोहदायिनी कामरूपिणी। तद्बलात्स्वस्थमनसः सर्वे च मुनिपुंगवाः ॥७॥
गौतमीं सरितां श्रेष्ठां पुनर्यज्ञाय दीक्षिताः। पुनस्तन्मखनाशाय राक्षसाः समुपागमन् ॥८॥
यज्ञवाटान्तिके मायां दृष्ट्वा राक्षसपुंगवाः। ततो नृत्यन्ति गायन्ति हसन्तिच रुदन्ति च ॥९॥
माहेश्वरी महामाया प्रभावेणातिदर्पिता। तेषां मध्ये दैत्यपतिः शम्बरो नाम वीर्यवान् ॥१०॥

अध्याय १३४

चक्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) चक्रतीर्थ नामक तीर्थ है, जिसके स्मरणमात्र से पाप नष्ट हो जाते हैं। नारद! उसके प्रभाव का वर्णन कर रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो। मुने! वशिष्ठ आदि सात प्रसिद्ध मुनि गौतमी के तीर पर कुटी बनाकर सत्र-यज्ञ कर रहे थे। जब अतिभीषण राक्षसों ने यज्ञ में विघ्न डालना प्रारम्भ किया तब मुनियों ने मेरे पास आकर राक्षसों का वह उपद्रव बताया। नारद! तब मैंने अपनी माया से एक ऐसी स्त्री उत्पन्न की, जिसके देखने से ही सम्पूर्ण राक्षस नष्ट हो जायें। मुने! मैंने मुनियों से इस प्रकार कह सुनकर उस स्त्री को ऋषियों के साथ कर दिया। मेरे समझाने से वे ऋषि उस माया-स्त्री को लेकर चले गये। वह कृष्ण और ईषद् रक्तवर्ण की मुक्तकेशी नाम की अजा माया आज भी अपने स्वरूप में वर्तमान है, जो मायारूपिणी है और त्रिभुवन को मोह में डाल देने वाली है। वे मुनिश्रेष्ठ उसकी शक्ति से स्वस्थचित्त होकर उस श्रेष्ठ गौतमी के तट पर पुनः यज्ञ के लिये दीक्षित हो गये। राक्षस यह देखकर फिर यज्ञ को नष्ट करने के लिये उपस्थित हुए ॥१-८॥ (वे बड़े-बड़े राक्षस यज्ञ-मण्डप में उस मोहिनी माया को देखकर माहेश्वरी महामाया के प्रभाव से अभिगर्वित होकर नाचने, गाने, हँसने और रोने लगे।) उनमें एक अतिपराक्रमी शम्बर नामक दैत्यराज था। नारद! उसने उस माया रूप प्रमदा को खा लिया। उसका यह कार्य उसके मायाबल को देखने वालों के

---

[1] घ ०पयस्ते च वि०।

मायारूपां तु प्रमदां भक्षयामास नारद। तदद्भुतमतीवाऽऽसीत्तन्मायाबलदर्शिनाम् ॥११॥
मखे विध्वंस्यमाने तु ते विष्णुं शरणं ययुः। प्रादाद्विष्णुश्चक्रमयो मुनीनां रक्षणाय तु॥१२॥
चक्रं तद्राक्षसानाजौ दैत्यांश्च दनुजांस्तथा। चिच्छेद तद्भयादेव मृता राक्षसपुंगवाः॥१३॥
ऋषिभिस्तन्महासत्रं संपूर्णमभवत्तदा। विष्णोः प्रक्षालितं चक्रं गङ्गाम्भोभिः सुदर्शनम्॥१४॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं चक्रतीर्थमुदाहृतम्। तत्र स्नानेन दानेन सत्रयागफलं लभेत्॥१५॥
तत्र पञ्च शतान्यासंस्तीर्थानां पापहारिणाम्। तेषु स्नानं तथा दानं प्रत्येकं मुक्तिदायकम्॥१६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये चक्रतीर्थादिपञ्चशततीर्थवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३४॥
गौतमीमाहात्म्ये पञ्चपष्टितमोऽध्यायः॥५५॥

अथ पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

वाणीसंगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

[1]वाणीसंगममाख्यातं यत्र वागीश्वरो हरः। तत्तीर्थं सर्वपापानां मोचनं सर्वकामदम्॥१॥

लिये अतिविस्मयजनक था। वे ऋषि पुन: अपने यज्ञ को नष्ट होते देख विष्णु की शरण में गये। विष्णु ने मुनियों की रक्षा के लिये अपना चक्र भेजा। उस चक्र ने युद्ध में उन राक्षसों, दैत्यों और दनुजों का शिर काट डाला। कितने राक्षस तो उसके भय से ही मर गये। तब ऋषियों का वह महा-यज्ञ पूर्ण हुआ। विष्णु का वह सुदर्शन चक्र जहाँ गंगा-जल से धोया गया वह स्थान तब से चक्रतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। उसमें स्नान और दान करने से सत्र-यज्ञ का फल प्राप्त होता है। यहाँ पाप-समूह को दूर करने वाले पाँच सौ और भी तीर्थ हैं जिनमें स्नान और दान करने से मुक्ति प्राप्त होती है॥९-१६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में चक्रतीर्थ आदि पाँच सौ तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥१३४॥

अध्याय १३५

वाणीसंगमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) वाणीसंगम नामक तीर्थ है, जहाँ वागीश्वर शंकर विद्यमान हैं। वह तीर्थ सब पापों को दूर करने वाला और सब कामनाओं को देने वाला है। उस तीर्थ में स्नान और दान करने से ब्रह्म-हत्या जनित

---

१ घ च बाणसंगममिति स्या०।

तत्र स्नानेन दानेन ब्रह्महत्यादिनाशनम् । ब्रह्मविष्ण्वोश्च संवादे महत्त्वे च परस्परम् ॥२॥
तयोर्मध्ये महादेवो ज्योतिर्मूर्तिरभूत्किल । तत्रैव वागुवाचेदं दैवी पुत्र तयोः शुभा ॥३॥
अहमस्मि महांस्तत्र अहमस्मीति वै मिथः । दैवी वाक्तावुभौ प्राह यस्त्वस्यान्तं तु पश्यति ॥४॥
स तु ज्येष्ठो भवेत्तस्मान्मा वाद कर्तुमर्हथः । तद्वाक्याद्विष्णुरगमदधोऽहं चोर्ध्वमेव च ॥५॥
ततो विष्णुः शीघ्रमेत्य ज्योतिःपार्श्वं उपाविशत् । अप्राप्यान्तमहं प्रायां दूराद्दूरतरं मुने ॥६॥
ततः श्रान्तो निवृत्तोऽहं द्रष्टुमीशं तु तं प्रभुम् । तदैवं मम धीरासीद्दृष्टश्चान्तो मया भृशम् ॥७॥
अस्य देवस्य तद्विष्णोर्मम ज्यैष्ठ्यं स्फुटं भवेत् । पुनश्चापि मम त्वेवं मतिरासीन्महामते ॥८॥
सत्यैर्वक्त्रैः कथं वक्ष्ये पीडितोऽप्यनृतं वचः । नानाविधेषु पापेषु नानृतात्पातकं परम् ॥९॥
सत्यैर्वक्त्रैरसत्यां वा वाचं वक्ष्ये कथं त्विति । ततोऽहं पञ्चमं वक्त्रं गर्दभाकृतिभीषणम् ॥१०॥
कृत्वा तेनानृतं वक्ष्य इति ध्यात्वा चिरं तदा । अब्रवं तं हरिं तत्र आसीनं जगतां प्रभुम् ॥११॥
अस्य चान्तो मया दृष्टस्तेन ज्यैष्ठ्यं जनार्दन । ममेति वदतः पार्श्वे उभौ तौ हरिशंकरौ ॥१२॥
एकत्वमापन्नौ सूर्याचन्द्रमसाविव । तौ दृष्ट्वा विस्मितो भीतश्चास्तवं तावुभावपि ॥
ततः क्रुद्धौ जगन्नाथौ वाचं तामिदमूचतुः ? ॥१३॥

हरिहरावूचतुः

दुष्टे त्वं निम्नगा भूया नानृतादस्ति पातकम् ॥१४॥

दोष भी मिट जाते हैं। एक बार ब्रह्मा और विष्णु मे 'मैं बडा हूँ तो मैं बडा हूँ' इस विषय पर आपस मे वाद-विवाद होने लगा। उस समय उन दोनो के मध्य महादेव की ज्योतिर्मयी मूर्ति प्रकट हुई और शुभ आकाशवाणी हुई। उसने दोनो से कहा कि पुत्र! *जो इस ज्योतिर्मयमूर्ति का अन्त देख लेगा वही श्रेष्ठ माना जायगा, अतः व्यर्थ का विवाद* मत करो। उसके कथनानुसार विष्णु नीचे की ओर और मैं ऊपर की ओर गया। तदनन्तर विष्णु शीघ्र ही नीचे से लौटकर चले आये और उस मूर्ति के समीप बैठ गये। मुने! मैं तो उसका अन्त न पाकर बहुत दूर चला गया। अन्त मे थक कर उस प्रभु ईश को देखने के लिये लौटा। उस समय मेरे मन मे ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई कि यदि मैं जोर देकर यह कह दूं कि मैंने अन्त देख लिया है तब तो उस विष्णु से मेरा श्रेष्ठत्व स्वय सिद्ध हो जायगा, परन्तु फिर ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई कि पीडित होने पर भी सत्य वचन कहने वाले इन मुखो से किस प्रकार असत्य बोलूंगा। नाना प्रकार के पापों म असत्य से बढ़कर दूसरा पाप नही। अतः सत्यवादी मुखो से कैसे असत्य बोलूं, यह सोचकर गदहे की आकृति का अतिभीषण पाँचवाँ मुख बना कर उसी से असत्य बोलूंगा। इस प्रकार व्यवस्था कर चिरकाल तक *ध्यानमग्न होकर वहाँ बैठे हुए* जगत्प्रभु विष्णु से कहा कि जनार्दन! इसका अन्त मैंने देख लिया है अत मेरी श्रेष्ठता स्वत सिद्ध है। इस प्रकार कहते ही मेरे बगल मे दोनों हरि और शंकर सूर्य-चन्द्र की ज्योति के समान एकाकार हो गये। इस प्रकार उन दोनो को देखकर मैं तो हैरान हो गया। डर कर दोनो की स्तुति करने लगा परन्तु उन दोनों जगत्पतियो ने क्रुद्ध होकर उस वाणी से कहा ॥१-१३॥

हरिहर ने कहा—दुष्टे! तुम नदी बन जाओ। असत्य से बढ़कर दूसरा पाप नही है ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

ततः सा विह्वला भूत्वा नदीभावमुपागता। तद्दृष्ट्वा विस्मितो भीतस्तामब्रवमहं तदा॥१५॥
यस्मादसत्यमुक्तासि ब्रह्मवाचि स्थिता सती। तस्माददृश्या त्वं भूयाः पापरूपाऽस्यसंशयम्॥१६॥
एतच्छापं विदित्वा तु तौ देवौ प्रणता तदा। विशापत्वं प्रार्थयन्ती तुष्टाव च पुनः पुनः॥१७॥
ततस्तुष्टौ देवदेवौ प्रार्थितौ त्रिदशार्चितौ। प्रीत्या हरिहरावेवं वाचं वाचमथोचतुः॥१८॥

हरिहरावूचतुः

गङ्गया संगता भद्रे यदा त्वं लोकपावनी। तदा पुनर्वपुस्ते स्यात्पवित्रं हि सुशोभने॥१९॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा साऽपि देवी गङ्गया संगताऽभवत्। भागीरथ्यां गौतम्यां च ततश्चापि स्वकं वपुः॥२०॥
देवी सा व्यगमद्ब्रह्मन्देवानामपि दुर्लभम्। गौतम्यां सैव विख्याता नाम्ना वाणीति पुण्यदा॥२१॥
भागीरथ्यां सैव देवी सरस्वत्यभिधीयते। उभयत्रापि विख्यातः संगमो लोकपूजितः॥२२॥
सरस्वतीसंगमश्च वाणीसंगम एव च। गौतम्यां संगता देवी वाणी वाचा सरस्वती॥२३॥
सर्वत्र पूजितं तीर्थं तत्र वाणी शिवं प्रभुम्। देवेश्वरं पूजयित्वा विशापत्वमगमद्यतः॥२४॥
ब्रह्मा त्रिपूर वाग्दोषं स्वं च धामागमत्पुनः। तस्मात्तत्र शुचिर्भूत्वा स्नात्वा तत्र च संगमे॥२५॥
वाणीश्वरं ततो दृष्ट्वा तारना मुक्तिमाप्नुयात्। दानहोमादिकं किंचिदुपवासादिकां क्रियाम्॥२६॥

ब्रह्मा ने कहा—तब व्याकुल होकर वह मेरी असत्य वाणी नदी के रूप में परिणत हो गई। यह देखकर मैं विस्मित हो गया। उस समय डरते डरते मैंने उस वाणी से कहा—जिसलिये तुमने ब्रह्मवाणी में रहकर भी असत्य कहा है, अतः तुम निःसन्देह पापी हो, तुम अदृश्य हो जाओ। इस शाप को सुनकर वह उन दोनों देवों के चरणों पर गिर पड़ी। और बार बार प्रार्थना करती हुई अपने शाप-मोचन का उपाय पूछने लगी। इस प्रकार प्रार्थना करने पर देवपूजित वे दोनों देव प्रसन्न हो गये और उस वाणी से इस प्रकार बोले॥१५-१८॥

हरिहर ने कहा—भद्रे! लोकपावनी तुम जब गंगा से मिलोगी तब पुनः शुभानने! तुम पवित्र शरीर प्राप्त करोगी॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—'ऐसा ही हो' यह कहकर वह देवी भागीरथी गंगा और गौतमी में मिल गई। तदनन्तर ब्रह्मन्! उसने देव-दुर्लभ अपना शरीर प्राप्त कर लिया। गौतमी में मिलने वाली वह देवी वाणी नाम से प्रसिद्ध हुई और भागीरथी गंगा में सरस्वती नाम से। दोनों स्थानों पर ये संगम लोक-विख्यात और लोकपूजित हैं। इस प्रकार दोनों गंगा (गौतमी, भागीरथी) में मिलने पर वही वाणी वाणी और सरस्वती नाम से प्रसिद्ध हुई और उसका संगम सरस्वती-संगम और वाणी-संगम कहलाने लगा। यतः वहाँ वाणी देवेश्वर शिव की पूजा कर शाप मुक्त हुई, अतः वह तीर्थ सब तीर्थों से उत्तम और श्रेष्ठ समझा जाता है। स्वयं ब्रह्मा वहाँ अपनी वाणी के दुष्प्रयोग-जन्य पापों को धोकर पुनः अपने लोक को चले गये। इसलिये जो कोई वहाँ पवित्र होकर संगम में स्नान करता और

य कुर्यात्सगमे पुण्ये ससारे न भवेत्पुन । 'एकोनविंशतिशत तीर्थाना तीरयोर्द्वयो· ॥
नानाजन्मार्जिताशेषपापक्षयविधायिनाम ॥२७॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये 'वाणीसगमवागीश्वराद्युभयतटस्थैकोनविंशतिशततीर्थवर्णन नाम पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥१३५॥
गौतमीमाहात्म्ये षट्षष्टितमोऽध्याय ॥६६॥

अथ षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय

विष्णुतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विष्णुतीर्थमिति ख्यात तत्र वृत्तमिद शृणु । मौदगल्य इति विख्यातो मुद्गलस्य सुतो ऋषि ॥१॥
तस्य भार्या तु जाबाला नाम्ना ख्याता सुपुत्रिणी । पिता ऋषिस्तथा वृद्धो मुदगलो लोकविश्रुत ॥२॥
तस्य भार्या तथा ख्याता नाम्ना भागीरथी शुभा । स मौदगल्य· प्रातरेव गङ्गा स्नाति यतव्रत ॥३॥
नित्यमव त्विद कर्म तस्याऽऽसीन्मुनिसत्तम । गङ्गातीरे कुशैर्मृद्भि· 'शमीपुष्पैरहर्निशम ॥४॥

वागीश्वर का दर्शन करता है वह इतने से ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है। जो उस पुण्य सगम पर दान होम और उपवास आदि अनुष्ठानो को करता है उसका पुन ससार मे जन्म नही होता है। इसके अतिरिक्त वहाँ दोनो तटो पर अनेक जन्मो के उपार्जित पाप को नष्ट करने वाले उन्नीस सौ तीर्थ हैं॥२०-२७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे वाणीसगम आदि के दोनो तटो पर स्थित उन्नीस सौ तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥१३५॥

अध्याय १३६

विष्णुतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) विष्णुतीर्थ नामक एक तीर्थ है। वहाँ जो घटना हुई उसको सुनो। मुद्गल ऋषि के मौद्गल्य नामक प्रसिद्ध पुत्र था। उसकी सुपुत्रवती जाबाला नाम की पत्नी थी। उसके पिता वृद्ध मुद्गल भी लोक प्रसिद्ध ऋषि थे। उसी प्रकार उनकी भागीरथी नाम की भार्या भी मगलमयी थी। वह व्रती मौद्गल प्रात काल ही नियमत गगा मे स्नान करता था। मुनिश्रेष्ठ! उसका यह नित्य का कर्म था। गगा-तीर पर प्रतिदिन वह मौद्गलि कुशा मृत्तिका और शमीपुष्प आदि से मत्रियो से पित द्वारा बताई विधि के अनुसार अपने मानस रूपी

१च ०तिरत्र ती०। २घ च ०तिती०। ३घ ०मीपत्रैर०।

गुरूदितेन मार्गेण स्वमानससरोरुहे। आवाहनं नित्यमेव विष्णोश्चक्रे स मौद्गलिः॥५॥
तेनाऽऽहूतस्त्वरन्नेति लक्ष्मीभर्ता जगत्पतिः। वैनतेयमथाऽऽरुह्य शङ्खचक्रगदाधरः ॥६॥
पूजितस्तेन ऋषिणा स मौद्गल्येन यत्नतः। प्रब्रूते च कथाश्चित्रा मौद्गल्याय जगत्प्रभुः॥७॥
ततोऽपराह्णसमये विष्णुः प्राह स मौद्गलिम्। याहि वत्स स्वभवनं श्रान्तोऽसीति पुनः पुनः॥८॥
एवमुक्तः स देवेन विष्णुना याति स द्विजः। जगत्प्रभुस्ततो याति देवैर्युक्तः स्वमन्दिरम्॥९॥
मौद्गल्योऽपि तथाऽभ्येत्य किंचिदादाय नित्यशः। स्वमेव भवनं विद्वान्भार्यायै स्वार्जितं धनम्॥१०॥
ददाति स महाविष्णुचरणाब्जपरायणः। मौद्गल्यस्य प्रिया साऽपि पतिव्रतपरायणा ॥११॥
शाकं मूलं फलं वाऽपि भर्त्राऽऽनीतं तु यत्नतः। सुसंस्कृत्याप्यतिथीनां बालानां भर्तुरेव च॥१२॥
दत्त्वा तु भोजनं तेभ्यः पश्चाद्भुङ्क्ते यतव्रता। भुक्तवत्स्वथ सर्वेषु रात्रौ नित्यं स मौद्गलिः॥१३॥
विष्णोः श्रुताः कथाश्चित्रास्तेभ्यो वक्त्यथ हर्षितः। एवं बहुतिथे काले व्यतीते चातिविस्मिता॥
मौद्गल्यस्य रहो भार्या भर्तारं वाक्यमब्रवीत् ॥१४॥

जाबालोवाच

यदि ते विष्णुरभ्येति समीपं त्रिदशार्चितः। तथाऽपि कष्टमस्माकं कस्मादिति जगत्प्रभुम्॥१५॥
तत्पृच्छ त्वं महाप्राज्ञ यदाऽसौ विष्णुरेति च। यस्मिंश्च स्मृतमात्रे तु जराजन्मरुजो मृतिः॥
नाशं यान्ति कुतो दृष्टे तस्मात्पृच्छ जगत्पतिम् ॥१६॥

कमल मे विष्णु का नित्य आवाहन करता था। उसके आह्वान को सुनकर जगत्पति और लक्ष्मी के पति शंख-चक्र-गदा-धारी विष्णु गरुड पर सवार होकर शीघ्र चले आते थे। ऋषि मौद्गल्य उनकी भक्तिपूर्वक भलीभाँति पूजा करता था। पूजा से प्रसन्न होकर भगवान् जगन्नाथ उससे तरह तरह की कथायें कहा करते थे। तदनन्तर अपराह्ण काल में विष्णु मौद्गलि से कहते 'वत्स! तुम अब अधिक थक गये हो, अपने भवन को जाओ' ॥१-८॥ इस प्रकार विष्णु के कहने पर वह ब्राह्मण घर जाता था। तब स्वयं भगवान् भी देवों के साथ अपने मन्दिर को जाते थे। वह विष्णु के चरण-कमलों में अनन्य निष्ठा रखने वाला विद्वान् मौद्गल्य प्रतिदिन इस प्रकार भगवान् का सुखद दर्शन पाता था। बाद में थोड़ा सा धन भी कमा लेता था और उस धन को घर ले जाकर अपनी भार्या को दे देता था। उसकी वह प्रिया भार्या भी अति पतिव्रता थी। पति के द्वारा लाये हुए शाक, मूल और फल को यत्नपूर्वक स्वच्छ करके रखती थी। बड़े प्रेम से अतिथि, बालक और पति को भोजन करा कर पीछे वह व्रतिनी स्वयं भोजन करती थी। सबके भोजन कर लेने के बाद रात्रि में वह मौद्गलि विष्णु से सुनी हुई अनुपम कथा को बड़ी प्रसन्नता से अपने उन बाल-बच्चों को सुनाया करता था। इस प्रकार बहुत समय बीत गया। एक दिन पत्नी अत्यन्त विस्मित होकर अपने पति से एकान्त में बोली ॥९-१४॥

जाबाला ने कहा—जब कि स्वयं देव-पूज्य विष्णु तुम्हारे पास आते हैं तब हम लोगों को इतना कष्ट क्यों सहन करना पड़ता है? इस बात को जब जगत्प्रभु तुम्हारे पास आयें तब हे महामति! तुम (उनसे) पूछना। जिनके स्मरण मात्र से जरा, जन्म और मृत्यु सम्बन्धी व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं उनके दर्शन पाने पर हमारी विपत्तियाँ क्यों नहीं नष्ट होती। इसलिये इस रहस्य को जगत् के स्वामी से पूछो॥१५-१६॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा प्रियावाक्यान्मौद्गल्यो नित्यवद्धरिम् । पूजयित्वा विनीतश्च पप्रच्छ स कृताञ्जलिः ॥१७॥

मौद्गल्य उवाच

त्वयि स्मृते जगन्नाथ शोकदारिद्र्यदुष्कृतम् । नाशं याति विपत्तिर्मे त्वयि दृष्टे कथं स्थिता ॥१८॥

श्रीविष्णुरुवाच

स्वकृतं भुज्यते भूतैः सर्वैः सर्वत्र सर्वदा । न कोऽपि कस्यचित्किंचित्करोत्यत्र हिताहिते ॥१९॥
यादृशं चोप्यते बीजं फलं भवति तादृशम् । रसालः स्यान्न निम्बस्य बीजाज्जात्वपि कुत्रचित् ॥२०॥
न कृता गौतमीसेवा नार्चितौ हरिशंकरौ । न दत्तं यैश्च विप्रेभ्यस्ते कथं भाजनं श्रियः ॥२१॥
त्वया न दत्तं किंचिच्च ब्राह्मणेभ्यो ममापि च । यद्दीयते तदेवेह परस्मिंश्चोपतिष्ठति ॥२२॥
मृद्भिर्वार्भिः कुशैर्मन्त्रैः शुचिकर्म सदैव यत् । करोति तस्मात्पूतात्मा शरीरस्य च शोषणात् ॥२३॥
विना दानेन न क्वापि भोगावाप्तिर्नृणां भवेत् । सत्कर्माचरणाच्छुद्धो विरक्तः स्यात्ततो नरः ॥२४॥
ततोऽप्रतिहतज्ञानो जीवन्मुक्तस्ततो भवेत् । सर्वेषां सुलभा मुक्तिर्मद्भक्त्या चेह पूर्ततः ॥२५॥
भुक्तिर्दानादिना सर्वभूतदुःखनिबर्हणात् । अथवा लप्स्यसे मुक्तिं भक्त्या भुक्तिं न लप्स्यसे ॥२६॥

ब्रह्मा ने कहा—'ऐसा ही करूँगा' यह कहकर प्रिया के कथनानुसार उस ऋषि ने नित्य की भाँति हरि की पूजाकर विनीत भाव से हाथ जोडकर पूछा ॥१७॥

मौद्गल्य ने कहा—जगन्नाथ! तुम्हारे स्मरण मात्र से मनुष्यों के शोक, दरिद्रता और पापकर्म नष्ट हो जाते हैं। तब आपके दर्शन करने पर भी क्या मेरी विपत्तियाँ ज्यों की त्यों बनी हुई हैं? ॥१८॥

श्री विष्णु ने कहा—सब सर्वदा अपने किये कर्मों का फल भोगते हैं। कोई भी किसी का इस संसार में हित या अहित नहीं करता। जैसा बीज बोया जाता है, वैसा ही फल भी मिलता है। कहीं पर भी नीम के बीज से आम का पौधा नहीं उगता। जिन्होंने कभी गौतमी की सेवा नहीं की, हरि शंकर की अर्चना नहीं की, ब्राह्मणों को भोजन-दान नहीं दिया वे किस प्रकार लक्ष्मी के अधिकारी हो सकते हैं। तुमने आजतक किसी ब्राह्मण को अथवा मुझको कुछ नहीं दिया। जो कुछ दूसरों को दिया जाता है, वही इस लोक और परलोक में प्राप्त होता है। तुम जो सदैव मिट्टी, जल कुश और मन्त्रों से शुचिकर्म करते हो, इसलिये शरीर से कष्ट सहते हुए भी पुनीत आत्मा वाले हो। बिना दान के कहीं भी मनुष्य को भोग-सुख की प्राप्ति नहीं होती। सत्कर्म के आचरण से मनुष्य शुद्ध हो जाता है। बाद में वह विरक्त हो जाता है। इसके बाद वह अबाधित ज्ञान प्राप्त करता है। तत्पश्चात् वह जीवन्मुक्त हो जाता है। मेरी भक्ति और पूर्त कर्मों (तालाब आदि खोदवाने और मंदिर बनवाने) से सब मनुष्यों के लिये इस लोक में मुक्ति सुलभ है। दान आदि देने और सब प्राणियों के दुःख दूर करने से भुक्ति या मुक्ति अवश्य प्राप्त होती है, किन्तु केवल भक्ति से भुक्ति नहीं मिलती ॥१९-२६॥

मौद्गल्य उवाच

भक्त्या मुक्ति कथ भूयाद्भुक्तेर्मुक्ति सुदुर्लभा । जाता चेद्देहिना मुक्ति किमन्येन प्रयोजनम् ॥२७॥
भक्त्या मुक्ति सर्वपूज्या तामिच्छेय जगन्मय ॥२८॥

विष्णुरुवाच

एतदेवान्तर ब्रह्मन्दीयते मामनुस्मरन् । ब्राह्मणायाथवार्थिभ्यस्तदेवाक्षयता व्रजेत्[1] ॥२९॥
मामध्यात्वाऽथ यद्द्यात्तत्तन्मात्रफलप्रदम् । तत्पुनर्दत्तमेवेह न भोगायात्र कल्पते ॥३०॥
तस्माद्देहि महाबुद्धे भोज्य किंचिन्मम ध्रुवम् । अथवा विप्रमुख्याय गौतमीतीरमाश्रित ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

मौद्गल्य प्राह त विष्णु देय मम न विद्यते । नान्यत्किंचन देहादि यत्तत्त्वयि समर्पितम् ॥३२॥
ततो विष्णुर्गरुत्मन्त प्राह शीघ्र जगत्पति । इहाऽऽनयस्व कणिश ममाय चार्पयिष्यति ॥३३॥
ततो योग्यानय भोगान्प्राप्स्यते मनस प्रियान् । आकर्ण्य स्वामिनाऽऽदिष्ट तथा चक्रे स पक्षिराट् ॥३४॥
विष्णुहस्ते कणान्प्रादात्स मौद्गल्यो यतव्रत । एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्विश्वकर्माणमब्रवीत् ॥३५॥

मौदगल्य ने कहा—भुक्ति से मुक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है भुक्ति से तो मुक्ति अत्यन्त दुलभ है ? यदि मुक्ति से ही मुक्ति मिल जाय तो मनुष्य को अन्य वस्तु की आवश्यकता ही नही ? जगन्मय ! यदि भुक्ति से मिली मुक्ति सवमान्य है तो मैं उसी को चाहता हूँ ॥२७ २८॥

विष्णु ने कहा—दान देने के भी कई माग हैं। ब्रह्मन् ! उनम अन्तर यह है कि जो दान ब्राह्मणो या याचको को मेरा स्मरण करते हुए दिया जाता है वह अक्षय हो जाता है। और जो मेरे स्मरण के विना दिया जाता है उससे केवल उतने परिमाण म ही फल मिलता है। वह दिया हुआ दान तो केवल दान-मात्र है वह इस जीवन मे भोग-सुख का कारण नही बनता। अतएव महाबुद्ध ! मुझको कुछ अवश्य दो अथवा इस गौतमी के तीर पर श्रेष्ठ ब्राह्मण को दो ॥२९ ३१॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर मौद्गल्य ने भगवान विष्णु से कहा कि परन्तु मेरे पास इस समय कुछ भी देने योग्य नही है। देह को छोड कर और कुछ नही है। वह भी आपको अर्पित हो चुकी है। तदनन्तर जगत्पति विष्णु ने गरुड से शीघ्र कहा तुम यहाँ कुछ अन्न के दाने ले आओ जिसको यह मेरा भक्त मुझको देकर उचित मनो वाञ्छित भोगो को प्राप्त कर सके। स्वामी की आज्ञा को सुनकर पक्षिराज ने शीघ्र उसका पालन किया। तब व्रती मौद्गल्य ने विष्णु के हाथ मे अन्न-कणो को रख दिया। इसी बीच विष्णु ने विश्वकर्मा से कहा ॥३२ ३५॥

---

[1] घ ङ च ०त। न मा ध्यत्वा० २ घ ङ च ०द्यात्तावन्मा०।

विष्णुरुवाच

यावच्चास्य कुले सप्त पुरुषास्तावदेव तु। भवितारो महाबुद्धे तावत्कामा मनीषिताः ॥
गावो हिरण्यं धान्यानि वस्त्राण्याभरणानि च ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

यच्च किंचिन्मन प्रीत्यै लोके भवति भूषणम्[1]। तत्सर्वमाप मौद्गल्यो विष्णुगङ्गाप्रभावत[2] ॥३७॥
गृहं गच्छेति मौद्गल्यो विष्णुनोक्तस्ततो ययौ। आश्रमे स्वस्य सर्वर्धिं दृष्ट्वा ऋषिरभाषत ॥३८॥

ऋषिरुवाच

अहो दानप्रभावोऽयमहो विष्णोरनुस्मृति[3]। अहो गङ्गाप्रभावश्च कोविचार्यो महानयम् ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

मौद्गल्यो भार्यया सार्धं [4]पुत्रैः पौत्रैश्च बन्धुभिः। पितृभ्यां बुभुजे भोगान्भुक्तिं मुक्तिमवाप च ॥४०॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं मौद्गल्यं वैष्णवं तथा। तत्र स्नानं च दानं च भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥४१॥
तत्र श्रुतिः स्मृतिर्वाऽपि तीर्थस्य स्यात्कथंचन। तस्य विष्णुर्भवेत्प्रीतः पापैर्मुक्तः सुखी भवेत् ॥४२॥
एकादश सहस्राणि तीर्थानां तीरयोर्द्वयोः। सर्वार्थदायिनां तत्र स्नानदानजपादिभिः ॥४३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये मौद्गल्यविष्णुतीर्थाद्येकादशसहस्र-
तीर्थवर्णनं नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३६॥
गौतमीमाहात्म्ये सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

विष्णु ने कहा—महाबुद्धि! जब तक इसके कुल में सात पुरुष (सात पीढ़ियों तक के पुरुष) हों तब तक के लिये मनचाही इच्छायें अर्थात् गौ, सोना, अन्न, वस्त्र और आभूषण आदि इसके घर में हो जायें। ॥३६॥

ब्रह्मा ने कहा—इस संसार में मन को प्रिय लगने वाले जो कुछ आभूषण या पदार्थ हो सकते हैं, वे सब सामग्रियाँ विष्णु और गंगा के प्रभाव से मौद्गल्य को प्राप्त हो गईं। तब विष्णु ने मौद्गल्य को घर जाने की आज्ञा दी। वह अपने घर गया। अपने आश्रम को सब प्रकार के ऐश्वर्यों से परिपूर्ण देखकर ऋषि ने कहा ॥३७-३८॥

ऋषि ने कहा—अहा! यह दान का प्रभाव है! यह विष्णु की उपासना का प्रभाव है। अहा! यह गंगा का प्रभाव है। कौन इस महान् प्रभाव को जान सकता है ॥३९॥

ब्रह्मा ने कहा—भार्या, पुत्र, पौत्र भाई, बन्धु और माता पिता के सहित मौद्गल्य ने विविध भोगों को भोगकर मुक्ति और मुक्ति दोनों को प्राप्त किया। उस समय से वह तीर्थ मौद्गल्य और वैष्णव तीर्थ कहा जाता है। उसमें स्नान-दान करने से मुक्ति एवं मुक्ति की प्राप्ति होती है। यदि किसी प्रकार किसी को उस तीर्थ का नाम-श्रवण हो जाय तो उस व्यक्ति पर विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं और वह सब पापों से मुक्त होकर सुखी हो जाता है। उसके दोनों तीरों पर स्नान, दान और जप से सब प्रकार के मनोरथ सिद्ध करने वाले ग्यारह हजार तीर्थ हैं ॥४०-४३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में मौद्गल्य विष्णुतीर्थ आदि ग्यारह हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३६॥

---

१ घ ङ च शोभनम्। २ च ०ष्णुसद्मप्र०। ३ प घ ०स्मृते। अ०। ४ घ. ङ. च पुत्रैरिष्टैश्च।

अथ सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

लक्ष्मीतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

लक्ष्मीतीर्थमिति ख्यातं साक्षाल्लक्ष्मीविवर्धनम् । अलक्ष्मीनाशनं पुण्यमाख्यानं शृणु नारद ॥१॥
सवादश्च पुरा त्वासील्लक्ष्म्याः पुत्र दरिद्रया । परस्परविरोधिन्यावुभे विश्वं समीयतुः ॥२॥
ताभ्यामव्याप्तं वस्तु तन्नास्ति भुवनत्रये । मम ज्येष्ठ्यं मम ज्येष्ठ्यमित्यूचतुरुभे मिथः ॥
अहं पूर्वं समुद्भूता इत्याह श्रियमोजसा ॥३॥

श्रीलक्ष्मीरुवाच

कुलं शीलं जीवितं वा देहिनामहमेव तु । मया विना देहभाजो जीवन्तोऽपि मृता इव ॥४॥

ब्रह्मोवाच

दरिद्रया च सा प्रोक्ता सर्वेभ्यो ह्यधिका ह्यहम् । मुक्तिर्मदाश्रिता नित्य दरिद्रैवं वचोऽब्रवीत् ॥५॥
कामः क्रोधश्च लोभश्च मदो मात्सर्यमेव च । यत्राहमस्मि तत्रैते न तिष्ठन्ति कदाचन ॥६॥
न भयोद्भूतिरुन्माद ईर्ष्या उद्धतवृत्तिता । यत्राहमस्मि तत्रैते न तिष्ठन्ति कदाचन ॥७॥
दरिद्राया वचः श्रुत्वा लक्ष्मीस्तां प्रत्यभाषत ॥८॥

अध्याय १३७

लक्ष्मातीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) साक्षात् लक्ष्मी को बढ़ाने वाला लक्ष्मी-तीर्थ नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है। नारद ! उसकी दरिद्रतानाशक पवित्र कथा को सुनो। पुत्र ! आज से बहुत पहले लक्ष्मी का दरिद्रा के साथ सवाद हुआ। परस्पर विवाद करती हुई वे दोनो ससार मे आईं। तीनो भुवन मे कोई भी ऐसा पदार्थ नही जो उनसे अछूता बचा हो। दोनो परस्पर मैं बडी हूँ, मैं बडी हूँ, कहने लगी। दरिद्रता ने बडे तपाक से लक्ष्मी से कहा कि मैं पहले उत्पन्न हुई हूँ। यह सुन कर लक्ष्मी ने कहा ॥१-३॥

श्रीलक्ष्मी ने कहा—प्राणियो का कुल, शील और जीवन मैं ही हूँ। मेरे बिना प्राणी जीते हुए भी मरे के समान हैं ॥४॥

ब्रह्मा बोले—दरिद्रा ने लक्ष्मी से कहा—'सबसे श्रेष्ठ मैं हूँ। मुक्ति सर्वदा मेरे ही अधीन है।' फिर दरिद्रा ने ऐसा कहा कि जहाँ मैं रहती हूँ वहाँ काम क्रोध, लोभ मद और मात्सर्य कभी भी टिकने नहीं पाते। जहाँ मैं रहती हूँ वहाँ भय, उन्माद, ईर्ष्या और उद्दण्ड-व्यवहार कभी भी नहीं रहते हैं। दरिद्रा की बातो को सुनकर लक्ष्मी ने प्रत्युत्तर दिया ॥५-८॥

लक्ष्मीरुवाच

अलकृतो मया जन्तु सर्वो भवति पूजित । निर्धन शिवतुल्योऽपि सर्वैरप्यभिभूयते ॥९॥
देहीति वचनद्वारा देहस्था पञ्च देवता । सद्यो निर्गत्य गच्छन्ति[1] धीश्रीह्रीशान्तिकीर्तय ॥१०॥
तावद्गुणा गुरुत्व च यावन्नार्थयते परम् । अर्थी चेत्पुरुषो जात क्व गुणा क्व च गौरवम् ॥११॥
तावत्सर्वोत्तमो जन्तुस्तावत्सर्वगुणालय । नमस्य सर्वलोकाना यावन्नार्थयते परम् ॥१२॥
कष्टमेतन्महापाप निर्धनत्व शरीरिणाम् । न मानयति नो वक्ति न स्पृशत्यधन जन ॥१३॥
अहमेव तत श्रेष्ठा दरिद्रे शृणु मे वच ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तल्लक्ष्मीवचन श्रुत्वा दरिद्रा वाक्यमब्रवीत् ॥१५॥

दरिद्रोवाच

वक्तु न लक्ष्मीर्ज्येष्ठाऽहमिति वै लज्जसे मुहु । पापेषु रमसे नित्य विहाय पुरुषोत्तमम् ॥१६॥
विश्वस्तवञ्चका नित्य भवती श्लाघसे कथम् । सुख न तादृक्त्वत्प्राप्तौ पश्चात्तापो यथा गुरु ॥१७॥
न तथा जायते पुसा सुरया दारुणो मद । त्वत्संनिधानमात्रेण यथा वै विदुषामपि ॥१८॥

लक्ष्मी ने कहा—मुझसे अलङ्कृत साधारण मनुष्य भी सम्मान पाता है। निर्धन मनुष्य चाहे शिव के तुल्य ही क्यो न हो वह सबसे अपमानित होता है। 'दो' इस शब्द को सुनते ही देह म रहने वाले धी श्री ह्री शान्ति और कीर्ति य पाँच देवता तुरत देह स निकल कर चले जाते हैं। मनुष्य मे तब तक ही सारे गुण और महत्ता रहती है जब तक कि वह दूसरो से याचना नहा करता। यदि पुरुष याचक बन गया तब तो कहाँ वे गुण और कहाँ वे गौरव! मनुष्य तब तक ही सर्वश्रेष्ठ सब गुणा का घर और सब लोगा का पूज्य होता है जब तक वह दूसरो से याचना नहीं करता। मनुष्या के लिए निधनता महापाप है बहुत बडा कष्ट है। मनुष्य निधन व्यक्ति का न तो मान करता है न उमसे बोलता है यहाँ तक कि उसका स्पश भी नही करता है। दरिद्रे! मरी बात सुनो। इसलिए मैं ही तुमसे श्रेष्ठ हूँ ॥९ १४॥

ब्रह्मा ने कहा—लक्ष्मी की बडी-चढी बाता को सुनकर दरिद्रा ने कहा ॥१५॥

दरिद्रा ने कहा—लक्ष्मी! मैं जेठी हूँ यह कहते क्या तुमको फिर लज्जा नहीं हो रही है? तुमको पता नहीं कि तुम *पुरुषोत्तम (भगवान् और सत्पुरुष) को छोडकर पापियो के साथ रहा करती है। विश्वास पात्रो के* साथ नित्य प्रवचना करने वाली तुम क्या बढ-चढकर बातें बना रही हो? तुमको पाने से मनुष्य इतना अधिक सुख नहीं पाता जितना अधिक पश्चात्ताप। मनुष्यो को सुरा-पान स भी उतना नशा नहीं होता जितना तुम्हारे साथ रहने

---

[1] प धीह्रीश्रीशान्ति० ।

सदैव रमसे लक्ष्मी प्रायस्त्व पापकारिषु । अह वसामि योग्येषु धर्मशीलेषु सर्वदा ॥१९॥
शिवविष्ण्वनुरक्तेषु कृतज्ञेषु महत्सु च । सदाचारेषु शान्तेषु गुरुसेवोद्यतेषु च ॥२०॥
सत्सु विद्वत्सु शूरेषु कृतबुद्धिषु साधुषु । निवसामि सदा लक्ष्मीस्तस्माज्ज्यैष्ठ्य मयि स्थितम् ॥२१॥
ब्राह्मणेषु शुचिष्मत्सु व्रतचारिषु भिक्षुषु । निर्भयेषु वसिष्यामि लक्ष्मीस्त्व शृणु ते स्थितिम् ॥२२॥
राजवर्तिषु पापेषु निष्ठुरेषु खलेषु च । पिशुनेषु च लुब्धेषु विकृतेषु शठेषु च ॥२३॥
अनार्येषु कृतघ्नेषु धर्मघातिषु सर्वदा । मित्रद्रोहिष्वनिष्टेषु भग्नचित्तेषु वतसे ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

एव विवदमाने ते जग्मतुर्मामुभे अपि । तयोर्वाक्यमुपश्रुत्य मयोक्ते ते उभे अपि ॥२५॥
मत्त पूर्वतरा पृथ्वी आप पूर्वतरास्तत । स्त्रीणा विवाद ता एव स्त्रियो जानन्ति नेतरे ॥२६॥
विशेषत पुनस्ताम्य[1] कमण्डलुभवाश्च या । तत्रापि गौतमी देवी निश्चय कथयिष्यति ॥२७॥
सैव सर्वार्तिसहर्त्री सैव सदेहकर्तरी । ते मद्वाक्याद्भुव गत्वा भूम्या च सहिते अपि ॥२८॥
अद्भिश्च सहिता सर्वा गौतमीं ययुरापगाम् । भूमिरापस्तयोर्वाक्य गौतम्यै क्रमश स्फुटम् ॥२९॥
सर्व निवेदयामासुर्यथावृत्त प्रणम्य ताम् । दरिद्रायाश्च लक्ष्म्याश्च वाक्य मध्यस्थवत्तदा ॥३०॥

से चाहे वे विद्वान ही क्यो न हो। लक्ष्मी ! प्राय तुम सवदा पाप कम करने वालो के साथ ही रमा करती हो। इसके विपरीत मैं सवदा योग्य धम प्रमी व्यक्तियो के समीप रहती हूँ। लक्ष्मी ! मैं सवदा सज्जन विद्वान शूर बुद्धिमान् साधु शिव और विष्णु के भक्त महान कृतज्ञ सदाचार-परायण शान्त और गुरु-सेवा मे तत्परता दिखाने वाले जनो के समीप रहा करती हू इसलिए श्रष्ठता मुझमे है। लक्ष्मी ! (मेरे अन्य वास-स्थानो को भी सुन लो) मैं शुद्ध ब्राह्मण पवित्रात्मा व्रत प्रमी त्यागी भिक्षु और निर्भीक जनो के समीप ही निवास करती हू। तुम तो राजा के चापलूस या सेवक पापी निर्दयी दुष्ट चुगलखोर हत्यारे शठ विकृत (चचल) अनाय कृतघ्न धम द्रोही मित्र-द्रोही अनिष्ट करने वाले और रूखे लागो से ही सवदा प्रम करती हो ॥१६ २४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार परस्पर विवाद करती हुई वे दोनो मेरे पास आइ। उनकी वाता को सुनकर मैंने उन दोनो से कहा मुझसे पूव पृथ्वी हुई उससे भी पूव अप् (जल)। स्त्रियो के विवाद का निपटारा वे स्त्रियाँ ही जानती हैं दूसरे नही। उनम भी विशेष रूप स जो मरे कमण्डलु से उत्पन्न नदियाँ हैं वे पूण रहस्यन हैं। उनम भी गौतमी देवी ही निश्चय ही निणय कर देगी। वही सब दुखो को नष्ट करने वाली है सदेहो का काटने वाली छुरी भी वही है। वे दोनो मेरे कथनानुसार पृथ्वी के पास गइ। भूमि के सहित वे दोनो जल के समीप गइ। वहाँ से वे सब गौतमी नदी के पास गइ। गौतमी को प्रणाम कर भूमि और जल ने उन दोनो के कथन को क्रमश स्पष्ट रूप से जसा कि दोनो कहती थीं कह सुनाया। नारद ! तब दरिद्रा और लक्ष्मी के वाक्यो को सुनकर वह गौतमी गगा

१क घ ध मे। २क ङ ०स्ताम्या क०।

शृण्वत्सु लोकपालेषु शृण्वत्यां भुवि नारद । शृण्वतीष्वप्सु सा गङ्गा दरिद्रां वाक्यमब्रवीत् ॥
सप्रशस्य तथा लक्ष्मीं गौतमीं वाक्यमब्रवीत् ॥३१॥

गौतम्युवाच

ब्रह्मश्रीश्च तपःश्रीश्च यज्ञश्री· कीर्तिसंज्ञिता । धनश्रीश्च यशःश्रीश्च विद्या प्रज्ञा सरस्वती ॥३२॥
भुक्तिश्रीश्चाथ मुक्तिश्च स्मृतिर्लज्जा धृति॰ क्षमा । सिद्धिस्तुष्टिस्तथा पुष्टिः शान्तिरापस्तथा मही ॥३३॥
अहशक्तिरथौषध्य श्रुति शुद्धिर्विभावरी । द्यौर्ज्योत्स्ना आशिषः स्वस्तिर्व्याप्तिर्माया उषा शिवा ॥३४॥
यत्किंचिद्विद्यते लोके लक्ष्म्या व्याप्तं चराचरम् । ब्राह्मणेष्वथ धीरेषु क्षमावत्स्वथ साधुषु ॥३५॥
विद्यायुक्तेषु चान्येषु भुक्तिमुक्त्यनुसारिषु । यद्यद्रम्यं सुन्दरं वा तत्तल्लक्ष्मीविजृम्भितम् ॥३६॥
किमत्र बहुनोक्तेन सर्वं लक्ष्मीमयं जगत् । यस्मिन्कस्मिश्च यत्किंचिदुत्कृष्टं परिदृश्यते ॥३७॥
लक्ष्मीमयं तु तत्सर्वं तया हीनं न किंचन । अत्रेमां सुन्दरीं देवीं स्पर्धयन्ती न लज्जसे ॥३८॥
गच्छ गच्छेति तां गङ्गा दरिद्रां वाक्यमब्रवीत् । ततः प्रभृति गङ्गाम्भो दरिद्रावैरकार्यभूत् ॥३९॥
तावद्दरिद्राभिभवो गङ्गा यावन्न सेव्यते । ततः प्रभृति तत्तीर्थमलक्ष्मीनाशनं शुभम् ॥४०॥
तत्र स्नानेन दानेन लक्ष्मीवान्पुण्यवान्भवेत् । तीर्थाना षट्सहस्राणि तस्मिंस्तीर्थे महामते ॥
देवर्षिमुनिजुष्टाना सर्वसिद्धिप्रदायिनाम् ॥४१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये लक्ष्मीतीर्थादिषट्सहस्रतीर्थवर्णनं नाम सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३७॥
गौतमीमाहात्म्येऽष्टषष्टितमोऽध्याय· ॥६८॥

मध्यस्थ के समान लोक पालो, पृथ्वी और जल को सुनाती हुई लक्ष्मी की प्रशसा करके दरिद्रा से बोली ॥२५-३१॥

गौतमी ने कहा—ब्रह्मश्री, तप श्री, यज्ञश्री, कीर्ति नामक श्री, धनश्री, यश श्री, विद्या, प्रज्ञा, सरस्वती, भुक्तिश्री मुक्ति, स्मृति, लज्जा, धृति, क्षमा, सिद्धि, पुष्टि, शान्ति, जल और पृथिवी, एव आत्मशक्ति इसके बाद ओषधियाँ श्रुति, शुद्धि उजेली रात, आकाश, ज्योत्स्ना (चाँदनी) आशीर्वाद, स्वस्ति, व्याप्ति, माया, उषा, शिवा अथवा जो कुछ इस लोक मे है—यह सारा चराचर लक्ष्मी से व्याप्त है। इसके अनन्तर ब्राह्मणो, धीरो, क्षमावानो, साधुओ, विद्वानो अथवा अन्य भुक्ति मुक्ति के अनुरागियो मे जो कुछ रमणीयता या सुन्दरता दिखाई देती है वह सब कुछ लक्ष्मी का ही प्रसार है। और अधिक क्या कहा जाय, सारा जगत् लक्ष्मीमय है। जिस किसी मे जो कुछ उत्कृष्टता दिखाई देती है वह सब कुछ लक्ष्मीमय है, उससे रहित कोई भी वस्तु नही। तुम इस विषय मे लक्ष्मी से प्रतिस्पर्धा करने मे लजाती नही ? गगा ने उस दरिद्रा से कहा। यहाँ से चली जाओ ! जाओ ! तब से गगाजल दरिद्रा का शत्रु बन गया। दरिद्रा से दु ख तभी तक होता है जब तक कि गगा की सेवा नही की जाती। उस समय से वह तीर्थ पवित्र और दरिद्रता को भगाने वाला हो गया। वहाँ स्नान और दान करने से मनुष्य धनवान् और पुण्यवान् होता है। महामति ! उस तीर्थ मे सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाले छह हजार तीर्थ हैं, जिनमे स्नान और वास करने के लिये देवता, ऋषि और मुनि भी लालायित रहते हैं ॥३२-४१॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे लक्ष्मी-तीर्थ आदि छह हजार तीर्थों का वर्णन नामक एकसो सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३७॥

अथाष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भान्वादित्रिसहस्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भानुतीर्थमिति ख्यातं सर्वसिद्धिकरं नृणाम् । तत्रेदं वृत्तमाख्यास्ये महापातकनाशनम् ॥१॥
शार्यातिरिति विख्यातो राजा परमधार्मिकः । तस्य भार्या 'स्यविष्ठेति रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥२॥
मधुच्छन्दा इति ख्यातो वैश्वामित्रो द्विजोत्तमः । पुरोधास्तस्य नृपतेर्ब्रह्मर्षिः शमिनां प्रभुः ॥३॥
दिशो विजेतुं स जगाम राजा, पुरोधसा तेन नृपप्रवीरः ।
पुरोधसं प्राह महानुभाव, जित्वा दिशश्चाध्वनि संनिविष्टः ॥४॥
पप्रच्छेदं केन खेदं गतोऽसि, हेतुं वदस्वेति महानुभाव ।
त्वमेव राज्ये मम सर्वमान्यः, समस्तविद्यानिरवद्यबोधः ॥५॥
विधूतपापः परितापशून्यः, किमन्यचेता इव लक्ष्यसे त्वम् ।
जितेयमुर्वी विजिता नरेन्द्रा, हर्षस्य हेतौ महतीह जाते ॥६॥
किं त्वं कृशो मे वद सत्यमेव, द्विजातिवर्यातिमहानुभाव ।
संबोध्य शार्यातिमुवाच विप्रश्छन्दोमधुः प्रेममयीं प्रियोक्तिम् ॥७॥

अध्याय १३८

भानु आदि तीन सहस्र तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्यों को सब सिद्धियाँ देने वाला भानुतीर्थ नामक प्रसिद्ध तीर्थ है। वहाँ जो महापापों को दूर करने वाली घटना घटी उसको अब कह रहा हूँ सुनो।

शर्याति नामक एक प्रसिद्ध परम धार्मिक राजा था। उसकी स्थविष्ठा नाम की भार्या थी जो लोक में अनुपम सुन्दरी थी। उस नरेन्द्र के मधुच्छन्दा नामक विश्वामित्र-कुलोत्पन्न उत्तम ब्राह्मण पुरोहित थे जो विद्वानों में सर्वश्रेष्ठ और ब्रह्मर्षि थे। वह नृपश्रेष्ठ राजा अपने उस पुरोहित के साथ दिग्विजय करने चला। सम्पूर्ण दिशाओं को जीत कर जब लौटने लगा तब रास्ते में महानुभावी पुरोहित से पूछा—'महानुभाव! आप क्यों इतने खिन्न हैं कृपा कर कारण बतलाइये। आप ही मेरे राज्य में सर्वमान्य हैं समस्त विद्याओं के प्रशंसनीय ज्ञाता हैं निष्पाप हैं और सन्ताप-शून्य हैं फिर क्या आज आप अन्यमनस्क-से दिखाई देते हैं। सारी महती वसुन्धरा जीत ली गई नरेन्द्र वश में हो गये इस प्रकार महान् आनन्द की सामग्री पा जाने पर भी आप क्यों दुर्बल होते जा रहे हैं? हे महानुभाव! द्विजश्रेष्ठ! सत्य सत्य कहिए। विप्र मधुच्छन्दा शर्याति को सबोधित करते हुए इस प्रकार प्रेममय मधुर वाणी बोले—॥१-७॥

१ख प्रतिष्ठेति। घ छविरचति।

मधुच्छन्दा उवाच

शृणु भूपाल मद्वाक्य भार्यया यदुदीरितम्। स्थिते यामे वय यामो यामिनी चार्धगामिनी॥८॥
स्वामिनी चास्य देहस्य कामिनी मा प्रतीक्षते। स्मृत्वा तत्कामिनीवाक्य शोष याति कलेवरम्॥
विकारे स्मरसजाते जीवातुर्नलिनानना ॥९॥

ब्रह्मोवाच

विहस्य चाब्रवीद्राजा पुरोधसमरिंदम ॥१०॥

राजोवाच

त्व गुरुर्मम मित्र च किमात्मान विडम्बसे। किमनेन महाप्राज्ञ मम वाक्यन मानद॥
क्षणविध्वसिनि सुखे का नामाऽऽस्या महात्मनाम् ॥११॥

ब्रह्मोवाच

एतदाकर्ण्य मतिमान्मधुच्छन्दा वचोऽब्रवीत् ॥१२॥

मधुच्छन्दा उवाच

यत्राऽऽनुकूल्य दपत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वर्धते। न चेद दूषण राजभूषण चातिमन्यताम्॥१३॥

ब्रह्मोवाच

आजगाम स्वक देश महत्या सेनया वृत। परीक्षार्थं च तत्प्रेम पुर्यां वार्तामदीदिशत्॥१४॥

मधुच्छन्दा बोले—भूपाल ! भार्या ने जो कुछ मुझसे कहा है उसको सुनो। प्रहर बीत जाने पर हम लोग घर जायगे और आज अद्ध रात्रि बीत जाने पर मेरे इस शरीर की स्वामिनी मेरे जीवन की सजीवनी कमलमुखी मेरी स्त्री शुद्ध होकर काम भावना से मेरी प्रतीक्षा करती रहेगी। उस कामिनी प्रिया के वाक्यो का स्मरण कर मेरा शरीर सूखता जा रहा है॥८ ९॥

ब्रह्मा बोले—पुरोहित की बात सुनकर शत्रुविजेता राजा ने हँस कर कहा॥१०॥

राजा ने कहा—आप मेरे गुरु हैं मित्र हैं। क्यो इस प्रकार अपने को विडम्बना मे डाल रहे हैं। मेरे मानद ! महाप्राज्ञ ! इस वाक्य से क्या प्रयोजन। इस क्षणभगुर सुख के पीछ महापुरुषो को इतनी निष्ठा रखने से क्या लाभ ? ॥११॥

ब्रह्मा ने कहा—इस बात को सुनकर मतिमान मधुच्छदा ने कहा॥१२॥

मधुछन्दा ने कहा—जहा पति-पत्नी मे हृदय की इस प्रकार एकता रहती है वहाँ त्रिवर्ग (धर्म अर्थ काम) की बढती होती है, राजन् ! इसको जीवन का अभिशाप नहीं वरदान मानना चाहिए॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा अपनी महती सेना के साथ अपने देश मे आया। पुरोहित-दम्पती की प्रेम-परीक्षा के लिये उन्होने राजधानी मे ढिंढोरा पिटवा दिया कि दिग्विजय के लिए प्रस्थित राजा शर्याति को पुरोहित के सहित

दिशो विजेतु शर्यातौ याते राक्षसपुगव । हत्वा रसातल यातो राजान सपुरोधसम् ॥१५॥
राज्ञो भार्या निश्चयाय प्रवृत्ता मुनिसत्तम । वार्ता श्रुत्वा दूतमुखान्मधुच्छन्द प्रिया पुन ॥१६॥
तदैवाभूद्गतप्राणा तद्विचित्रमिवाभवत् । 'तस्या वृत्त तु ते दृष्ट्वा दूता राज्ञे न्यवेदयन् ॥१७॥
यत्कृत राजपत्नीभि प्रियया च पुरोधस । विस्मितो दु खितो राजा पुनर्दूतानभाषत ॥१८॥

राजोवाच

शीघ्र गच्छन्तु हे दूता ब्राह्मण्या यत्कलेवरम् । रक्षन्तु वार्ता कुरुत राजाऽऽगन्ता पुरोधसा ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

इति 'चिन्तातुरे राज्ञि वागुवाचाशरीरिणी ॥२०॥

'आकाशवागुवाच

विधास्यत्यखिल गङ्गा राजस्तव समीहितम् । सर्वाभिषङ्गशमनी पावनी भुवि गौतमी ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा स शर्यातिर्गौतमीतटमाश्रित । ब्राह्मणेभ्यो धन दत्त्वा तर्पयित्वा पितृन्द्विजान् ॥२२॥

किसी बली राक्षस ने मार डाला और स्वय रसातल चला गया। दूतो के मुख से ऐसी बातें सुनकर हे मुनिश्रेष्ठ ! राजा की स्त्री इसकी सच्चाई की जाच करने लगी परन्तु मधुच्छन्दा की स्त्री उसी समय निष्प्राण हो गई। इस प्रकार खिलवाड मे ही एक विचित्र सी घटना हो गई। दूतो ने उसकी इस अवस्था को देखकर राजा से जाकर राज-पत्नियो ने और पुरोहित की स्त्री ने जो कुछ किया वह कह सुनाया। यह सुनकर अत्यन्त विस्मित और दु खित हुए राजा ने पुन दूतो से कहा—॥१४ १८॥

राजा ने कहा—दूतो ! शीघ्र जाओ ब्राह्मणी का जो शरीर है उसकी रक्षा करो और ऐसा घोषित कर दो कि राजा पुरोहित के साथ आ रहे हैं॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा के इस प्रकार चिन्तातुर होने पर आकाशवाणी हुई॥२०॥

आकाशवाणी ने कहा—राजन् ! तुम्हारी सब कामनाओ को सब आपत्तियो को शान्त करने वाली पृथ्वी की पुनीत नदी गौतमी पूर्ण कर देंगी॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर शर्याति ने गौतमीतट पर स्थित होकर ब्राह्मणो को धन दिया तथा पितरो और द्विजो को तृप्त किया और उस द्विजश्रेष्ठ पुरोहित को बहुत-सा धन देकर विदा किया। इसके अनन्तर स्वय दूसरे तीर्थों

१ग ङ च पुर्या। २घ च चिन्तापरे। ङ चिन्तायुते।

'पुरोहितं द्विजश्रेष्ठं प्रेषयित्वा धनान्वितम्। अन्यत्र तीर्थे सार्येषु दानं देहि (ददौ) प्रयत्नतः ॥२३॥
एतत्सर्वं न जानाति राज्ञः कृत्य पुरोहित.। गते तस्मिन्गुरौ राजा वैश्वामित्रे महात्मनि ॥२४॥
सर्वं बलं प्रेषयित्वा गङ्गातीरेऽग्निमाविशत्। इत्युक्त्वा स तु राजेन्द्रो गङ्गां भानुं सुरानपि ॥२५॥
यदि दत्तं यदि हुतं यदि त्राता प्रजा मया। तेन सत्येन सा साध्वी ममाऽऽयुर्शेषेण जीवतु ॥२६॥
इत्युक्त्वाऽग्नौ प्रविष्टे तु शर्यातौ नृपसत्तमे। तदैव जीविता' भार्या राज्ञस्तस्य पुरोधसः ॥२७॥
अग्निप्रविष्टं राजानं श्रुत्वा विस्मयकारणम्। पतिव्रतां तथा भार्यां मृता जीवान्विता पुनः ॥२८॥
तदर्थं चापि राजानं 'त्यक्तात्मानं विशेषतः। आत्मनश्च पुनः कृत्यमस्मरन्नृपतेर्गुरुः ॥२९॥
अहमप्यग्निमावेक्ष्य उत यास्ये प्रियान्तिकम्। अथवेह तपस्तप्स्ये ततो निश्चयवान्द्विजः ॥३०॥
एतदेवाऽऽत्मनः कृत्यं मन्ये सुकृतमेव च। जीवयामि च राजानं ततो यामि प्रियां पुनः ॥३१॥
एतदेव शुभं मे स्यात्ततस्तुष्टाव भास्करम्। न ह्यन्यः कोऽपि देवोऽस्ति सर्वाभीष्टप्रदो रवेः ॥३२॥

मधुच्छन्दा उवाच

नमोऽस्तु तस्मै सूर्याय मुक्तयेऽमिततेजसे। छन्दोमयाय देवाय ओंकारार्थाय ते नमः ॥३३॥
विरूपाय सुरूपाय त्रिगुणाय त्रिमूर्तये। स्थित्युत्पत्तिविनाशाना हेतवे प्रभविष्णवे ॥३४॥

मे अनुचरो के सहित जाकर बडे चाव से दान दिया। पुरोहित राजा के इन कार्यों के रहस्य को नही जानता था। इस महात्मा विश्वामित्रकुलोत्पन्न गुरु के चले जाने पर राजा ने सब सेनाओ को राजधानी भेज दिया, और स्वय वह गगा-तट पर अग्नि मे गया, सूर्य और देवताओ से यह प्रार्थना करता हुआ कि यदि मैंने कुछ दान दिया है, हवन किया है और प्रजाओ की रक्षा की है तो मेरे उन पुण्यो के प्रभाव से तथा मेरे शेष आयु से वह साध्वी ब्राह्मणी जीवित हो जाय, घुस गया। राजा शर्याति के अग्नि मे प्रवेश करते ही उस राज-पुरोहित की भार्या शीघ्र ही जीवित हो गई। नृपति-गुरु ने जब राजा का इस प्रकार का विस्मयजनक अग्नि प्रवेश और अपनी पतिव्रता भार्या का मर कर पुन जीवित होना सुना और विशेष रूप से यह सुना कि राजा ने अपने को उसके लिये अग्नि मे जला दिया है, तब वह अपना कर्त्तव्य सोचने लगा। उसने सोचा कि क्या मैं भी अग्नि-प्रवेश करूँ, या प्रिया के पास जाऊँ अथवा यही तपस्या करूँ। अनन्तर उसने निश्चय किया कि यही मेरा पुण्य कर्त्तव्य है कि पहले राजा को जीवित करूँ तब फिर प्रिया के पास जाऊँ। यही मेरे लिए कल्याणप्रद है। ऐसा सोचकर वह भगवान् भास्कर की स्तुति करने लगा और बोला कि सूर्य को छोड दूसरा कोई भी सब प्रकार के अभीष्ट को पूरा करने वाला नहीं है ॥२२-३२॥

मधुच्छन्दा बोले—उस अमित तेजस्वी, मुक्तिस्वरूप सूर्य को नमस्कार है, ओंकार के अर्थ स्वरूप वेदमय देव को नमस्कार है। विरूप, सुरूप, त्रिगुणात्मक, त्रिमूर्ति, स्थिति, सृष्टि और विनाश के आदि कारण एव महा-महिमशाली सूर्य को नमस्कार है ॥३३-३४॥

१घ ङ पुरोधस। २घ च चोत्थिता। ३घ च. त्यक्तजीव।

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नः सूर्योऽभूद्वरयस्वेत्यभाषत ॥३५॥

मधुच्छन्दा उवाच

राजानं देहि देवेश भार्यां च प्रियवादिनीम्। आत्मनश्च शुभान्पुत्रान्राज्ञश्चैव शुभान्वरान् ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रादाज्जगन्नाथः शर्यातिं रत्नभूषितम्[1]। तां च भार्यां वरानन्यान्सर्वं क्षेममयं तथा ॥३७॥
ततो यातः प्रियाविष्टः प्रीतेन च पुरोधसा। ययौ सुखी स्वकं देशं तत्तु तीर्थं शुभं स्मृतम् ॥३८॥
तत्र त्रीणि सहस्राणि तीर्थानि गुणवन्ति च। ततः प्रभृति तत्तीर्थं भानुतीर्थमुदाहृतम् ॥३९॥
मृतसंजीवनं चैव शार्यातं चेति विश्रुतम्। माधुच्छन्दसमाख्यातं स्मरणात्पापनुन्मुने[2] ॥४०॥
तेषु स्नानं च दानं च सर्वक्रतुफलप्रदम्। मृतसंजीवनं तत्स्यादायुरारोग्यवर्धनम्[3] ॥४१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भान्वादित्रिसहस्रतीर्थवर्णनं नामाष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३८॥

गौतमीमाहात्म्ये एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर सूर्य प्रसन्न हो गये और कहा कि 'वर माँगो' ॥३५॥

मधुच्छन्दा बोला—देवेश ! राजा और मेरी प्रिय भाषिणी भार्या को जीवित कर दो, साथ ही मुझे उत्तम पुत्र और राजा को भी उत्तम वरदान दो ॥३६॥

ब्रह्मा ने कहा—तब प्रसन्न होकर जगन्नाथ ने रत्न-भूषित शर्याति, (तथा) भार्या (विप्रपत्नी को जीवनदान), अन्य वरदान और प्रत्येक प्रकार के कल्याणमय आशीर्वाद दिये। इस प्रकार वरदान पाकर वह विप्र अपनी प्रिया के साथ आनन्द और सुखपूर्वक अपने देश को चला गया। वह तीर्थ भी इसीलिये शुभ-तीर्थ माना गया। वहाँ फल देने वाले और भी तीन हजार तीर्थ हैं। उस समय से वह तीर्थ भानुतीर्थ कहा जाने लगा। मुने ! मृतसंजीवन और शर्याति तीर्थ नाम से भी वह विख्यात हुआ। माधुच्छन्द तीर्थ भी उसे ही कहा जाता है जिसके स्मरण मात्र से पापों का नाश हो जाता है। उन तीर्थों में स्नान करने और दान देने से सब यज्ञों का फल मिलता है। जो मृतसंजीवन तीर्थ है वह तो आयु और आरोग्य दोनों को बढ़ाने वाला है ॥३७-४१॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में भानु आदि तीन हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३८॥

---

[1] घ. ङ. च. ०ति स्वर्णभू०। [2] घ. ०पनाशनम्। ते०। [3] ख. घ. ०पदं स्मृतम्। ते०।

अथैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

खड्गतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

खड्गतीर्थमिति ख्यातं गौतम्या उत्तरे तटे। तत्र स्नानेन दानेन मुक्तिभागी' भवेन्नरः ॥१॥
तत्र वृत्तं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद यत्नतः। पैलूष इति विख्यातः कवषस्य सुतो द्विजः ॥२॥
कुटुम्बभारात्परितो ह्यर्थार्थी परिधावति। न किमप्याससादासौ ततो वैराग्यमास्थितः ॥३॥
अत्यन्तविमुखे दैवे व्यर्थीभूते तु पौरुषे। न वैराग्यादन्यदस्ति' पण्डितस्यावलम्बनम् ॥४॥
इति संचिन्तयामास तदाऽसौ निःश्वसन्मुहुः। क्रमागतं धनं नास्ति पोष्याश्च बहवो मम ॥५॥
मानी चाऽक्षमो न कष्टार्हो हा धिग्दुर्दैवचेष्टितम्। स कदाचिद्वृत्तियुतो वृत्तिभिः परिवर्तयन् ॥६॥
न लेभे तद्धनं वृत्तेर्विरागमगमत्तदा। सेवा निषिद्धा या काचिद्गहना दुष्करं तपः ॥७॥
बलादाकर्षयतीयं मां तृष्णा सर्वत्र दुष्कृते। त्वयाऽपकृतमज्ञानात्तस्मात्तृष्णे नमोऽस्तु ते ॥८॥
एवं विचिन्त्य मेधावी' तृष्णाछेदाय किं भवेत्। इत्यालोच्य स पैलूषः पितरं वाक्यमब्रवीत् ॥९॥

पैलूष उवाच

ज्ञानासिना क्रोधलोभौ संसृतिं चातिदुस्तराम्। छेद्मीमां केन हे तात तमुपायं वद प्रभो ॥१०॥

कवष उवाच

ईश्वराज्ज्ञानमन्विच्छेदित्येषा वैदिकी श्रुतिः। तस्मादाराधयेशानं ततो ज्ञानमवाप्स्यसि ॥११॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा स पैलूषो ज्ञानायेश्वरमार्चयत्। ततस्तुष्टो महेशानो ज्ञानं प्रादाद्द्विजातये॥
प्राप्तज्ञानो महाबुद्धिर्गाथाः प्रोवाच मुक्तिदाः ॥१२॥

पैलूष उवाच

क्रोधस्तु प्रथम शत्रुर्निष्फलो देहनाशनः। ज्ञानखड्गेन त छित्त्वा परमं सुखमाप्नुयात् ॥१३॥
तृष्णा बहुविधा माया बन्धनी पापकारिणी। छित्त्वैतां ज्ञानखड्गेन सुखं तिष्ठति मानवः ॥१४॥
सङ्गस्तु 'परमोऽधर्मो देवादीनामिति श्रुतिः'। असङ्गस्याऽऽत्मनोऽप्यस्य सङ्गोऽयं परमो रिपुः ॥१५॥
छित्त्वैनं ज्ञानखड्गेन शिवैकत्वमवाप्नुयात्। संशयः परमो नाशो धर्मार्थिना विनाशकृत् ॥१६॥

पैलूष बोला—हे तात! ज्ञानरूपी खड्ग से इस क्रोध, लोभ और अतिदुस्तर सासारिक माया को कैसे काटूँ, वह उपाय बतलाइये ॥१०॥

कवष ने कहा—ईश्वर (शंकर) से ही ज्ञान को प्राप्त करना चाहिए, ऐसी वैदिकी श्रुति है। इसलिये शिव की आराधना करो। तब तुम ज्ञान प्राप्त कर सकोगे ॥११॥

ब्रह्मा ने कहा—'ऐसा ही करूँगा' यह कहकर वह पैलूष ज्ञान के लिये ईश्वर की पूजा करने लगा। उसकी आराधना से प्रसन्न होकर महेश ने उस द्विज को ज्ञान प्रदान किया। ज्ञान पा जाने पर उस महाबुद्धिमान् ने ऐसी मुक्तिदायिनी गाथा गाई ॥१२॥

पैलूष बोला—इस देह को नष्ट करने वाला निष्फल क्रोध पहला शत्रु है। ज्ञान की तलवार स उसको काटने से परम सुख प्राप्त होता है। यह भिन्न-भिन्न प्रकार की तृष्णा पाप कराने वाली तथा बन्धन मे डाल देने वाली माया है। इसको ज्ञान-खड्ग से काटकर मनुष्य सुखी होता है। 'आसक्ति' बहुत बडा पाप है, ऐसा देवताओ आदि का कथन है। इस अनासक्त (मुक्त) आत्मा के लिये यह आसक्ति परम शत्रु है। इसको ज्ञान के खड्ग से काटकर शिव से अद्वैतता प्राप्त करनी चाहिये। संशय परम शत्रु है। यह धम, अर्थ काम, क्रोधादिको का विनाश करने वाला है। इस संशय को दूर कर ही जीव अपने परम मनोरथ को प्राप्त कर सकता है। आशा पिशाची के

१घ ०मो बन्धो दे०। २घ. ०नो ह्यस्य सयोग स कथ भवेत्। छि०।

छित्त्वैन सशय जतु परमप्सितमाप्नुयात। पिशाचीव विशत्याशा निर्दहत्यखिल सुखम॥
पूर्णाहुतासिना छित्वा जीवन्मुक्तिमवाप्नुयात् ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

ततो ज्ञानमवाप्यासौ गङ्गातीर समाश्रित । ज्ञानखडगन निर्मोहस्ततो मुक्तिमवाप स ॥१८॥
तत प्रभृति तत्तीथ खडगतीर्थमिति स्मृतम। ज्ञानतीथ च कवच पल्लष सवकामदम॥१९॥
इत्यादिषटसहस्राणि तीर्थान्याहुर्महर्षय । अशषपापतापौघहराणीष्टप्रदानि च॥२०॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्म तीथमाहात्म्य खडगतीथवणन नामकोनचत्वारिंश
दधिकशततमोऽध्याय ॥१३९॥
गौतमीमाहात्म्य सप्ततितमोऽध्याय ॥७०॥

अथ चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय

अन्विन्द्रात्रयादितीथवणनम्

ब्रह्मोवाच

आत्रयमिति विख्यातमन्विद्र तीथमुत्तमम। तस्य प्रभाव वक्ष्यामि भ्रष्टराज्यप्रदायकम्॥१॥

समान मानव-देह म घुसकर सब सुखो को नष्ट कर देती है मनुष्य इसको उसी ज्ञानखडग से भली भाँति नष्ट कर जीवन काल म ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥१ १७॥

ब्रह्मा न कहा—इसके बाद वह ज्ञान प्राप्त कर गगा तीर पर रहने लगा और ज्ञानखडग से मोह का छेदन करके उसने मुक्ति प्राप्त कर ली। उस समय से वह त थ खडगतीथ नाम से प्रसिद्ध हो गया। उसी को सब काम नाओ को देन वाला ज्ञानतीथ कवच और पल्लव नामो स भी पुकारा जाता है। इसके अतिरिक्त महर्षिगण समस्त पाप-ताप के समूह को नष्ट करने वाले और इष्ट प्रद छ हजार तीर्थों की स्थिति भी वर्णन बतलाते हैं। १८ २०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म तीथ माहात्म्य प्रकरण म खडगतीथ वणन नामक एक सौ उनतालीसवाँ
अध्याय समाप्त। १३९॥

अध्याय १४०

अन्विन्द्र आत्रय आदि तीर्थों का वणन

ब्रह्मा ने कहा—आत्रय नाम स विख्यात अन्विन्द्र नामक उत्तम तीर्थ है। उसके भ्रष्ट राज्य को दिलाने वाले प्रभाव का वणन कर रहा हूँ। गौतमी के उत्तरतीर पर भगवान् ऋषि आत्रय ने ऋत्विजों और मुनियों के

गौतम्या उत्तरे तीरे आत्रेयो भगवानृषिः। अन्वारेभेऽथ सत्राणि ऋत्विग्भिर्मुनिभिर्वृतः ॥२॥
तस्य होताऽभवत्त्वग्निर्हव्यवाहन एव च। एवं सत्रे तु संपूर्ण इष्टिं माहेश्वरीं पुनः ॥३॥
कृत्वैश्वर्यमगाद्विप्रः सर्वत्र गतिमेव च। इन्द्रस्य भवनं रम्यं स्वर्गलोकं रसातलम् ॥४॥
स्वेच्छया याति विप्रेन्द्रः प्रभावात्तपसः शुभात्। स कदाचिद्दिवं गत्वा इन्द्रलोकमगात्पुनः ॥५॥
तत्रापश्यत्सहस्राक्षं सुरैः परिवृतं शुभैः। स्तूयमानं सिद्धसाध्यैः प्रेक्षन्तं नृत्यमुत्तमम् ॥
शृण्वानं मधुरं गीतमप्सरोभिश्च वीजितम् ॥६॥

उपोपविष्टैः सुरनायकैस्तैः, संपूज्यमानं महदासनस्थम् ।
जयन्तमङ्के विनिधाय सूनुं, शच्या युतं प्राप्तरतिं महिष्ठम् ॥७॥
सतां शरण्यं वरदं महेन्द्रं, समीक्ष्य विप्राधिपतिर्महात्मा ।
विमोहितोऽसौ मुनिरिन्द्रलक्ष्म्या, समीहयामास तदिन्द्रराज्यम् ॥८॥
संपूजितो देवगणैर्यथावत्स्वमाश्रमं वै पुनराजगाम ।
समीक्ष्य तां शक्रपुरीं सुरम्यां, रत्नैर्युतां पुण्यगुणैः सुपूर्णाम् ॥९॥
स्वमाश्रमं निष्प्रभहेमवर्ज्यं, समीक्ष्य विप्रो विरसं जगाम ।
समीहमानः सुरराज्यमाशु, प्रिया तदोवाच महात्रिपुत्रम् ॥१०॥

सहित यज्ञ प्रारम्भ किया। उस यज्ञ के होता हव्यवाहन अग्नि स्वयं थे। इस प्रकार यज्ञ के पूर्ण हो जाने पर पुनः उन्होंने माहेश्वरी इष्टि का अनुष्ठान कर महान् ऐश्वर्य एवं सर्वत्र गमन करने की शक्ति प्राप्त कर ली। वे विप्रेन्द्र इन्द्र के रम्य भवन स्वर्गलोक और रसातल में अपनी तपस्या के शुभ प्रभाव से स्वेच्छापूर्वक जाते थे। वे किसी समय स्वर्ग में गये फिर घूमते हुए इन्द्रलोक में पहुँचे। वहाँ मंगलमय देवताओं के मध्य में बैठे हुये इन्द्र को देखा जिनकी स्तुति सिद्ध और साध्यगण कर रहे थे (जो स्वयं उत्तम नृत्य को देख रहे थे गन्धर्वों के मधुर गान को सुन रहे थे अप्सरायें जिनको पंखा झल रही थीं।) उन महेन्द्र को जो उच्च आसन पर बैठे हुये थे समीप बैठे हुए सुरनायक जिनकी पूजा कर रहे थे जो अपने पुत्र जयन्त को गोद में बैठाकर शची के साथ प्रेमालाप कर रहे थे जो महान् सज्जनों के एक मात्र आश्रय और वर देने वाले थे देखकर विप्रेन्द्र महात्मा मुनि इन्द्र की लक्ष्मी से मोहित हो गये। मन ही मन उन्होंने उस इन्द्र राज्य की इच्छा की। पुनः वहाँ देवताओं से भलीभाँति सम्मानित होकर अपने आश्रम में चले आये। उस इन्द्रपुरी को अतिमनोहर विविध रत्नों से सुसज्जित ऐश्वर्यों और उत्तम पदार्थों से भरी-पूरी देख कर और इसके विपरीत अपने आश्रम को ऐश्वर्य एवं श्री से हीन देखकर वह विप्र उदास हो गया। उस ऐश्वर्य-कामी अत्रि-पुत्र के मन में शीघ्र इन्द्र-पद पाने की इच्छा हो गई। तब उन्होंने अपनी स्त्री से कहा ॥१-१०॥

१घ च चन्द्रस्य।

आत्रेय उवाच

भोक्तुं न शक्तोऽस्मि फलानि मूलान्यनुत्तमान्यप्यतिसंस्कृतानि ।
स्मृत्वाऽमृतं पुण्यतमं च तत्र, भक्ष्यं च भोज्यं च वरासनानि ॥
स्तुतिं च दानं च सभां शुभा च, अस्त्रं च वासांसि पुरीं वनानि ॥११॥

ब्रह्मोवाच

ततो महात्मा तपसः प्रभावात्त्वष्टारमाहूय वचो बभाषे ॥१२॥

आत्रेय उवाच

इच्छेयमिन्द्रत्वमहं महात्मन्कुरुष्व शीघ्रं पदमैन्द्रमत्र ।
ब्रूषेऽन्यथा चेन्मदुदीरितं त्वं, भस्मी करोम्येव न संशयोऽत्र ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

तदत्रिवाक्यात्त्वरितः प्रजानां, स्रष्टा विभुर्विश्वकर्मा तदैव ।
चकार मेरुं च पुरीं सुराणा, कल्पद्रुमान्कल्पलतां च धेनुम् ॥१४॥
चकार वज्रादिविभूषितानि, गृहाणि शुभ्राण्यतिचित्रितानि ।
चकार सर्वावयवानवद्यां, शचीं स्मरस्येव विहारशालाम् ॥१५॥
सभां सुधर्माणमहो क्षणेन, तथा चकाराप्सरसो मनोज्ञाः ।
चकार चोच्चैःश्रवसं गजं च, वज्रादि चास्त्राणि सुरानशेषान् ॥१६॥

अत्रिपुत्र ने कहा—इन परिष्कृत एव अत्युत्तम फल-मूलों को खाने में मैं असमर्थ हूँ। स्वर्ग के उन अमृतमय, पवित्रतम भक्ष्य और भोज्य पदार्थों, उत्तम आसनों स्तुति दान, उत्तम सभा, अस्त्र, वस्त्र, पुरी और वनों को देखकर इन फलमूलों से अरुचि हो गई है॥११॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद महात्मा आत्रेय ने अपनी तपस्या के प्रभाव से त्वष्टा को बुलाकर कहा॥१२॥

आत्रेय ने कहा—महात्मन्! मैं इन्द्रत्व को प्राप्त करना चाहता हूँ। शीघ्र ही यहाँ ऐन्द्र पद के उपयुक्त व्यवस्था कर दो। यदि मेरे कहने के विरुद्ध एक भी शब्द निकाला तो इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि मैं तुमको जलाकर भस्म कर दूंगा॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—उस आत्रेय की आज्ञा से शीघ्र ही प्रजाओं के स्रष्टा, व्यापक विश्वकर्मा ने मेरुपर्वत, देवपुरी, कल्पद्रुम, कल्पलता धेनु आदि की सृष्टि कर दी। अति विचित्र वज्र (मणि) आदि से जटित सौधशालायें बना दी गईं। सर्वाङ्गसुन्दरी, कामदेव की विहारशाला के समान शची तुरत प्रस्तुत कर दी गई। मनोहर देवसभा, और अप्सरायें क्षण भर में ही बना दी गईं। उच्चैःश्रवा, ऐरावत, वज्रादि अस्त्र और सम्पूर्ण देवता वहाँ प्रस्तुत कर दिये गये। त्रिया के बार-बार मना करने पर भी उस शची रूपिणी शची को ऋषि ने अपनी पत्नी बना लिया। तब उसके बाद

निवार्यमाणः प्रियपाऽत्रिपुत्रः, शचीसमामात्मवधूं चकार ।
तदाऽत्रिपुत्रोऽत्रिमुखैः समेतो, वज्रादिरूपं च चकार चास्त्रम् ॥१७॥
नृत्यादि गीतादि च सर्वमेव, चकार शक्रस्य पुरे च दृष्टम् ।
तत्सर्वमासाद्य तदा मुनीन्द्रः, प्रहृष्टचेताः सुतरां बभूव ॥१८॥
आपातरम्येष्वपि कस्य नाम, भवत्यपेक्षा न हि गोचरेषु ।
श्रुत्वा च दैत्या दनुजाः समेता, रक्षांसि कोपेन युतानि सद्यः ॥१९॥
स्वर्गं परित्यज्य कुतो हरिर्भुवं, समागतो न्वेष मिथः सुखाय ।
तस्माद्वयं याम इतो नु योद्धु, वृत्रस्य हन्तारमदीर्घसत्रम्[1] ॥२०॥
ततः समागत्य तदाऽत्रिपुत्रं, संवेष्टयामासुरथासुरास्ते ।
संवेष्टयित्वा पुरमत्रिपुत्रकृतं तथा चेन्द्रपुराभिधानम् ॥
तैर्वध्यमानः शस्त्रपातैर्महद्भिस्ततो भीतो[2] वाक्यमिदं जगाद ॥२१॥

आत्रेय उवाच

यो जात एवं प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां, नृम्णस्य मह्ना सजना स इन्द्रः ॥२२॥

अत्रि-पुत्र ने अत्रि प्रमुख ऋषियों के सामने ही वज्रादि अस्त्रों को अपना अस्त्र बना लिया (नृत्य, गीत आदि सब कुछ की व्यवस्था—जैसा कि इन्द्रपुरी में उन्होंने देखा था—कर ली।) उस समय उन सम्पूर्ण सुखद सामग्रियों को पाकर मुनीन्द्र स्वयमेव प्रसन्न चित्त हो गये। सत्य भी है, आपातरम्य (देखने में ऊपर से अतिआकर्षक) विषय के सामने आ जाने पर किसको भोगाकांक्षा नहीं हो जाती है? जब दैत्यों मनुजों और राक्षसों ने यह सुना तब वे कुपित हो गये। सोचने लगे कि किस कारण यह इन्द्र स्वर्ग को छोड़कर यहाँ पृथ्वी पर आ गया है। यह तो हम लोगों के लिये प्रसन्नता की बात है। इसलिये हम वृत्र-हन्ता, दीर्घकालीन यज्ञों से विमुख इस इन्द्र से युद्ध करने के लिये यहाँ (दैत्यलोक) से प्रस्थान करें। इस प्रकार निश्चय करके उन असुरों ने दैत्यलोक से आकर अत्रि पुत्र को घेर लिया। अत्रि-पुत्र से बसाये गये उस इन्द्रपुर नामक नगर को घेरकर महान् भयकर शस्त्रों के प्रहार से उनको मारने लगे। तब अस्त्र प्रहार से भयभीत होकर आत्रेय ने यह कहा॥१४-२१॥

अत्रिपुत्र ने कहा—जो उत्पन्न होते ही सबका मुखिया बन गया जिसने स्वय देव होकर भी अन्य देवों को वशीभूत कर लिया, जिसके शारीरिक बल से स्वर्ग और पृथ्वी काँप उठी हे असुर जनो! वह ऐश्वर्यशाली इन्द्र है (मैं नहीं) ॥२२॥

१घ. च ०र्घसूत्र०। २क ङ ०तो हरिर्वाक्य०।

ब्रह्मोवाच

इत्यादिसूक्तेन रिपूनुवाच, हरिं च तुष्टाव तदाऽत्रिपुत्र ॥२३॥

आत्रेय उवाच

नाहं हरिर्नैव शची मदीया, नेयं पुरी नैव वनं तदैन्द्रम् ।
स एव चेन्द्रो वृत्रहन्ता स वज्री, सहस्राक्षो गोत्रभिद्वज्रबाहु: ॥२४॥
अहं तु विप्रो वेदविद्ब्रह्मवृन्दै, समाविष्टो गौतमीतीरसंस्थ ।
यत्राऽऽपत्या भाव्य वा सौख्यहेतुस्तच्चाकार्यं कर्म दुर्दैवयोगात् ॥२५॥

असुरा ऊचु.

सहस्वेदमात्रेय यदिन्द्रस्य विडम्बनम्। क्षेमस्ते भविता सत्यं नान्यथा मुनिसत्तम॥२६॥

ब्रह्मोवाच

तदाऽऽत्रेयोऽब्रवीद्वाक्यं यथा वक्ष्यन्ति मामिह। करोम्येव महाभागा सत्येनाग्निं समालभे॥२७॥
एमुक्त्वा स दैतेयास्त्वष्टारं पुनरब्रवीत् ॥२८॥

आत्रेय उवाच

यत्कृतं त्वत्र मत्प्रीत्या ऐन्द्रं त्वष्ट पदं त्वया। सहरस्व पुन शीघ्रं रक्ष मां ब्राह्मणं मुनिम्॥२९॥
पुनर्देहि पदं मह्यमाश्रमं मृगपक्षिण:। वृक्षाश्च वारि यत्राऽऽसीन्न मे दिव्यैं प्रयोजनम्॥
सर्वमक्रममायातं न सुखाय मनीषिणाम् ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—तब इस सूक्त से अत्रि-पुत्र ने इन्द्र की महत्ता व्यक्त की और पुन अपने शत्रुओं से कहा॥२३॥

आत्रेय बोले—मैं इन्द्र नहीं हूँ न तो यह शची और नगरी ही मेरी है और न यह नन्दनवन ही मेरा है। वस्तुत स्वर्गस्थ इन्द्र ही इन्द्र है वही वृत्र हन्ता वज्र धारण करने वाला सहस्र नेत्र वाला, पर्वतों के पंखों को काटने वाला वज्रबाहु इन्द्र है। मैं तो वेदों को जानने वाला ब्राह्मण हूँ सर्वदा ब्राह्मणों के सहित इस गौतमी तीर पर रहा करता हूँ। जिसके द्वारा भविष्य अथवा वर्तमान कभी भी सुख का मूल नहीं प्राप्त हो सकता अर्थात् जिस कर्म से कभी सुख नहीं प्राप्त होता उस कर्म को आ.र मैं दुर्दैव की प्रेरणा से आकृष्ट हो गया हूँ॥२४ २५॥

असुरों ने कहा—आत्रेय! तो तुमने जो यह इन्द्र का ढोंग फैला रखा है उसको समेटो। मुनिश्रेष्ठ! यथार्थत तुम्हारा कल्याण इसीमें है दूसरे में नहीं॥२६॥

ब्रह्मा बोले—तब आत्रेय ने कहा—महाभाग! जैसा आप लोग कहते हैं वैसा ही करूँगा। अग्नि की शपथ है सत्य कहता हूँ। इस प्रकार उन दैत्यों से कह कर पुन उन्होंने त्वष्टा से कहा॥२७ २८॥

आत्रेय ने कहा—त्वष्टा! तुमने मेरी प्रसन्नता के लिए जिस ऐन्द्र-पद को यहाँ बनाया है उसको शीघ्र दूर करो। इस प्रकार इस मुनि ब्राह्मण की रक्षा करो। पुन मेरा वह मृग और पक्षियों से सुशोभित आश्रम ही दो जहाँ वृक्ष और जल का मधु स्रोत था अब मुझे इन स्वर्गीय वस्तुओं की कुछ भी आवश्यकता नहीं। मनीषियों के लिये क्रमविरुद्ध (अकस्मात्) प्राप्त पदार्थ सुखद नहीं होते॥२९-३०॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा प्रजानाथस्त्वष्टा संहृतवांस्तदा। दैत्याश्च जग्मुः स्वस्थानं कृत्वा देशमकण्टकम् ॥३१॥
त्वष्टा चापि ययौ स्थानं स्वकं संप्रहसन्निव। आत्रेयोऽपि तदा शिष्यैः संवृतः सह भार्यया ॥३२॥
गौतमीतीरमाश्रित्य तपोनिष्ठोऽखिलैर्वृतः। वर्तमाने महायज्ञे लज्जितो वाक्यमब्रवीत् ॥३३॥

आत्रेय उवाच

अहो मोहस्य महिमा ममापि भ्रान्तचित्तता। किं महेन्द्रपदं लब्धं किं मयाऽत्र पुरा कृतम् ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

एवं वदन्तमात्रेयं लज्जितं प्राब्रुवन्सुराः ॥३५॥

सुरा ऊचुः

लज्जां जहि महाबाहो भविता[1] ख्यातिरुत्तमा। आत्रेयतीर्थे ये स्नानं प्राणिनः कुर्युरञ्जसा ॥३६॥
इन्द्रास्ते भवितारो वै स्मरणात्सुखभागिनः। तत्र पञ्च सहस्राणि तीर्थान्याहुर्मनीषिणः ॥३७॥
अग्निन्द्रात्रेयदैतेयनामभिः कीर्तितानि च। तेषु स्नानं च दानं च सर्वमक्षयपुण्यदम् ॥३८॥

ब्रह्मा बोले—तब ऐसा ही हो यह कहकर प्रजापति त्वष्टा ने सब माया समेट ली। दैत्य भी यह देखकर उस स्थान को निरापद कर अपने स्थान को चले गये। त्वष्टा भी हँसते हुये-से अपने स्थान को लौट गये। अनन्तर आत्रेय भी अपने शिष्यो और भार्या के साथ गौतमी-तट पर तपोनिष्ठ हो रहने लगे। कुछ दिनो बाद पुन महायज्ञ प्रारम्भ हुआ, उसमे सब देवो और ऋषियो के सामने ही लज्जित होकर उन्होने कहा ॥३१-३३॥

आत्रेय ने कहा—अहो ! मोह की महिमा भी क्या है, जिसके कारण मेरे मन म भी भ्रान्ति हो गई। मैंने पहले क्या (तप) किया था और फिर मोह मे आकर किस प्रकार महेन्द्र-पद प्राप्त किया ॥३४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहने वाले लज्जित मुनि से देवो ने कहा ॥३५॥

देवताओ ने कहा—*महाबाहु ! लज्जा को छोडो तुम्हारी उत्तम कीर्ति इस लोक मे फैलेगी।* इस आत्रेय तीर्थ मे जो प्राणी विधिपूर्वक स्नान करेंगे, वे अवश्य इन्द्र होगे और इस तीर्थ के स्मरण मात्र से प्राणी सुखभागी होंगे। वहाँ मनीषियो ने अन्य पाँच हजार अग्निन्द्र, आत्रेय, दैतेय आदि तीर्थों के नाम गिनाये हैं जिनमे स्नान और दान से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है ॥३६-३८॥

---

१. घ. च. भवित्री।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा विबुधा याताः संतुष्टश्चाभवन्मुनिः ॥३९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽन्विन्द्रात्रेयादिपञ्चसहस्रतीर्थवर्णनं नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४०॥

गौतमीमाहात्म्ये एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

अथैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कपिलासंगमाख्यानवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कपिलासंगमं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। तत्र नारद वक्ष्यामि कथां पुण्यामनुत्तमाम्[1] ॥१॥
कपिलो नाम तत्त्वज्ञो मुनिरासीन्महायशाः। क्रूरश्चापि प्रसन्नश्च तपोव्रतपरायणः ॥२॥
तपस्यन्तं मुनिश्रेष्ठं गौतमीतीरमाश्रितम्। तमागत्य महात्मानं वामदेवादयोऽब्रुवन् ॥३॥
हत्वा वेनं ब्रह्मशापैर्नष्टधर्मे त्वराजके। कपिलं सिद्धमाचार्यमूचुर्मुनिगणास्तदा ॥४॥

मुनिगणा ऊचुः

गते वेदे गते धर्मे किं कर्तव्यं मुनीश्वर ॥५॥

ब्रह्मा बोले—यह कहकर देवता चले गये और मुनि भी सन्तुष्ट हो गये ॥३९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में अन्विन्द्र-आत्रेयादि पाँच हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४०॥

अध्याय १४१

कपिला-संगम की कथा का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—त्रिभुवन विख्यात कपिला-संगम नामक एक तीर्थ है। नारद! उस तीर्थ की अत्युत्तम पुण्य कथा को कह रहा हूँ सुनो। महायशस्वी कपिल नामक तत्त्वदर्शी मुनि थे। वे क्रूर एवं प्रसन्न होकर भी तपस्या और व्रत परायण मुनि थे। गौतमी-तीर पर स्थित होकर तपस्या करते हुये उस महात्मा मुनिवर के पास आकर वामदेव आदि ऋषियों ने कहा कि जब वेन को ब्रह्म शाप से मार डाला गया, सारा राजधर्म नष्ट-भ्रष्ट हो गया और देश में अराजकता फैल गई तब मुनियों ने सिद्ध आचार्य कपिल से कहा ॥१-४॥

मुनिगण बोले—मुनीश्वर! वेदों के लुप्त हो जाने पर और धर्म के नष्ट हो जाने पर क्या करना उचित है? ॥५॥

---

१ एतदग्रे ग च पुस्तकयो: 'त्रिषु लोकेषु विख्यातस्तत्रैव संगमो लोकविश्रुतः। स्मरणात्सर्वपापानां नाशनं किमु दर्शनात्' इत्यधिकः श्लोको वर्तते।

ब्रह्मोवाच

ततोऽब्रवीन्मुनिर्ध्यात्वा कपिलस्त्वागतान्मुनीन् ॥६॥

कपिल उवाच

वेनस्योर्विमथ्योऽभूत्ततः कश्चिद्भविष्यति ॥७॥

ब्रह्मोवाच

तथैव चक्रुर्मुनयो वेनस्योरुं विमथ्य वै। तत्रोत्पन्नो महापापः कृष्णो रौद्रपराक्रमः॥८॥
तं दृष्ट्वा मुनयो भीता निषीदस्वेति चाब्रुवन्। निषादः सोऽभवत्तस्मान्निषादाश्चाभवंस्ततः॥९॥
वेनबाहु ममन्थुस्ते दक्षिणं धर्मसंहितम्। ततः पृथुस्वरश्चैव सर्वलक्षणलक्षितः॥१०॥
राजाऽभवत्पृथुः श्रीमान्ब्रह्मसामर्थ्यसंयुतः। तमागत्य सुराः सर्वे अभिनन्द्य वरान्शुभान्॥११॥
तस्मै ददुस्तथाऽस्त्राणि मन्त्राणि गुणवन्ति च। ततोऽब्रुवन्मुनिगणास्तं पृथुं कपिलेन च॥१२॥

मुनय ऊचुः

आहारं देहि जीवेभ्यो भुवा [१]ग्रस्तौषधीरपि ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

ततः स धनुरादाय भुवमाह नृपोत्तमः ॥१४॥

ब्रह्मा ने कहा—तब कपिल मुनि ने सोच-विचार कर आगत मुनियों से कहा॥६॥

कपिल बोले—वेन का ऊरु प्रदेश यदि मथा जाय तो कोई समस्या का हल प्राप्त हो जायगा॥७॥

ब्रह्मा बोले—मुनियों ने मुनि के आदेशानुसार वेन के ऊरु को मथा। उसमें से एक महापापी कृष्णकाय भयंकर बलशाली पुरुष उत्पन्न हुआ। उसको देखकर मुनि लोग डर गये। और 'निषीदस्व' (बैठो) ऐसा कहा। तब वह निषाद बन गया। उससे फिर निषादों की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर उन्होंने धर्मयुक्त वेन की दाहिनी भुजा को मथा। तब उसमें से गम्भीर स्वर वाला, सब राजलक्षणों से युक्त श्रीमान् ब्रह्मशक्ति से युक्त पृथु नामक राजा उत्पन्न हुआ। उसके पास आकर सब देवों ने उसका स्वागत किया और उसको विभिन्न शुभ वरदान, अस्त्र और उपयोगी मन्त्र दिये। तदुपरान्त मुनियों ने कपिल के सहित उस पृथु से कहा॥८-१२॥

मुनिगण बोले—समस्त जीवों को भोजन दो और पृथिवी द्वारा निगली हुई ओषधियाँ भी॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—तब हाथ में धनुष लेकर उस नृपोत्तम ने पृथिवी से कहा—॥१४॥

१घ. च. ०मथ्याऽऽश्च ततः। २घ. च. ग्रस्ता महौषधीः। ढ०।

पृथुरुवाच

ओषधीर्देहि या ग्रस्ता प्रजानां हितकाम्यया ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

तमुवाच मही भीता पृथुं तं पृथुलोचनम ॥१६॥

मह्युवाच

मयि जीर्णा महौषध्य कथं दातुमहं क्षमा ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

ततः सकोपो नृपतिस्तामाह पृथिवीं पुनः ॥१८॥

पृथुरुवाच

नो चेद्दास्यद्य त्वां वै हत्वा दास्ये महौषधीः ॥१९॥

भूमिरुवाच

कथं हंसि स्त्रियं राजञ्ज्ञानी भूत्वा नृपोत्तम। विना मया कथं चेमाः प्रजाः संधारयिष्यसि ॥२०॥

पृथुरुवाच

यत्रोपकारोऽनेकानामेकनाशे भविष्यति। न दोषस्तत्र पृथिवी तपसा धारये प्रजाः ॥२१॥
न दोषमत्र पश्यामि नाऽऽचक्षेऽनर्थकं वचः। यस्मिन्निपातिते सौख्यं बहूनामुपजायते॥
मुनयस्तद्वधं प्राहुरश्वमेधशताधिकम् ॥२२॥

पृथु ने कहा—जिन ओषधियों को तुमने हजम कर लिया है प्रजाओं की भलाई के लिए उनको शीघ्र लाओ ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—भयभीत पृथिवी ने उस दीघनेत्र पृथु से कहा ॥१६॥

पृथ्वी ने कहा—वे महौषधियाँ तो मेरे उदर में जीर्ण हो गई। अब कैसे उनको दे सकती हूँ ?॥१७॥

ब्रह्मा बोले—तब राजा कुपित होकर पुन उस पृथिवी से बोले ॥१८॥

पृथु ने कहा—यदि नहीं दोगी तो आज तुमको मारकर प्रजा को महौषधियाँ दे दूगा ॥१९॥

भूमि ने कहा—राजन्! तुम ज्ञानी होकर कैसे स्त्री को मारने के लिए उद्यत हो? नृपोत्तम! मेरे बिना किस प्रकार इन प्रजाओं की रक्षा या पालन करोगे? ॥२०॥

पृथु बोले—पृथिवी! जहाँ एक के नाश से अनेक का उपकार होता हो उस एक का वध करने में कोई दोष नहीं। प्रजाओं की रक्षा तो अपनी तपस्या के द्वारा कर लूगा। इसमें कुछ भी दोष नहीं देख रहा हूँ यह व्यर्थ की बातें मैं नहीं कर रहा हूँ। जिसके वध से बहुतों को सुख होता हो उसके वध को मुनिगण सौ अश्वमेध से भी अधिक फलप्रद बतलाते हैं॥२१-२२॥

देवाऊचुः

ततो देवाश्च ऋषय सान्त्वयित्वा नृपोत्तमम्। महीं च मातर देवीमूचु सुरगणास्तदा ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

भूमे गोरूपिणी भूत्वा पयोरूपा महौषधी। देहि त्व पृथवे राज्ञे तत प्रीतो भवेन्नृप॥
प्रजासरक्षण च स्यात्तत क्षेम भविष्यति ॥२४॥

देवा ऊचु

ततो गोरूपमास्थाय[1] भूम्यासीत्कपिलान्तिके। दुदोह च महौषध्यो (धी) राजा वेनकरोद्भव ॥२५॥
यत्र देवा सगन्धर्वा ऋषय कपिलो मुनि। महीं गोरूपमापन्ना नर्मदाया महामुने ॥२६॥
सरस्वत्या भागीरथ्यां गोदावर्यां विशेषत। महानदीषु सर्वासु दुदुहेऽसौ पयो महत् ॥२७॥
सा दुह्यमाना[2] पृथुना पुण्यतोयाऽभवन्नदी। गौतम्या सगता चाभूत्तददभुतमिवाभवत् ॥२८॥
तत प्रभृति तत्तीथ कपिलासगम विदु। तत्राष्टाशीति पूज्यानि सहस्राणि महामते ॥२९॥
तीर्थान्याहुर्मुनिगणा स्मरणादपि नारद। पावनानि जगत्यस्मिंस्तानि सर्वाण्यनुक्रमात् ॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयभ्वृषिसवादे तीर्थमाहात्म्ये कपिलासगमाद्यष्टा-
शीतिसहस्रतीर्थवर्णन नामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥१४१॥
गौतमीमाहात्म्ये द्विसप्ततितमोऽध्याय ॥७२॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर देवो और ऋषियो ने उस नृपवय को समझा-बुझा कर शान्त किया। तब देवो ने माता पथिवी देवी से कहा ॥२३॥

देवगण बोले—भमि ! तुम गौ रूप होकर दूध के रूप मे महौषधियाँ राजा पृथु को दे दो। इससे राजा प्रसन्न हो जायेंगे और तब प्रजा की रक्षा भी हो जायगी। इस प्रकार सबका कल्याण होगा ॥२४॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद पृथिवी गौ का रूप धारण कर कपिल के समीप खडी हो गई जहा गधर्वों के सहित देवता ऋषि और कपिलमुनि थे। वहाँ वेन के हाथ से उत्पन्न राजा ने उससे महौषधियो को दूहा। महामनि नारद ! गो रूप धारण करने वाली उस पथिवी के दूध को उस राजा ने नमदा सरस्वती भागीरथी गोदावरी आदि सब विशिष्ट महानदियो मे भली भाति दूहा। पृथु से दूही गई वह कपिला (गौ) पवित्र जल वाली नदी बन गई और वह गौतमी से जाकर मिल गई। इस प्रकार उसका मिलन एक आश्चयजनक घटना हुई। तब से वह तीथ कपिला सगम कहा जाने लगा। महामति ! वहाँ पर मुनिगण और अस्सी हजार पूज्य तीथ बतलाते हैं। नारद ! इस ससार मे वे सब तीथ क्रमश स्मरणमात्र से सबको पुनीत कर देते हैं ॥२५ ३०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे कपिला-सगम-तीथ वणन नामक एक सौ इकतालीसवाँ
अध्याय समाप्त ॥१४१॥

१क घ ङ ०य कपिला कपिलान्ति०। २घ च दोह्यमाना।

अथ द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

देवस्थानाख्यतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

देवस्थानमिति ख्यातं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद ॥१॥
पुरा कृतयुगस्याऽऽदौ देवदानवसंगरे। प्रवृत्ते वा सिंहिकेति विख्याता दैत्यसुन्दरी ॥२॥
तस्याः पुत्रो महादैत्यो राहुर्नाम महाबलः। अमृते तु समुत्पन्ने सैंहिकेये च भेदिते ॥३॥
तस्य पुत्रो महादैत्यो मेघहास इति श्रुत.। पितरं घातितं श्रुत्वा तपस्तेपेऽतिदु:खितः ॥४॥
तपस्यन्तं राहुसुतं गौतमीतीरमाश्रितम्। देवाश्च ऋषय· सर्वे तमूचुरतिभीतवत् ॥५॥

देवर्षय ऊचुः

तपो जहि महाबाहो यत्ते मनसि संस्थितम्। सर्वं भवतु नामेदं शिवगङ्गाप्रसादतः॥
शिवगङ्गाप्रसादेन किं नामास्त्यत्र दुर्लभम् ॥६॥

ब्रह्मोवाच

परिभूत· पिता पूज्यो युष्माभिर्मम दैवतम्। तस्यापि मम चात्यन्तं प्रीतिश्च क्रियते यदि ॥७॥

अध्याय १४२

देवस्थान नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—त्रिभुवन मे प्रसिद्ध देव-स्थान नामक एक तीर्थ है। नारद ! उसके प्रभाव का वर्णन कर रहा हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो।

बहुत पहले कृतयुग के आदि मे देव-दानवो म युद्ध छिडा। उस समय सिंहिका नाम की प्रसिद्ध दैत्य-सुन्दरी थी। उसका राहु नामक महाबलवान् दैत्य पुत्र था। जब अमृत उत्पन्न हुआ, तब राहु अमृत-पान के कारण काट दिया गया। उस राहु का पुत्र मेघहास नामक महादैत्य था। अपने पिता का वध सुनकर दुःखी हो वह अति-भीषण तप करने लगा। गौतमी-तीर पर बैठ कर तपस्या करने वाले उस राहु-पुत्र से देव और ऋषि भयभीत-से होकर बोले ॥१-५॥

देव और ऋषि बोले—महाबाहु ! तपस्या छोड दो। शिव और गगा की कृपा से तुम्हारी जो कोई मनः कामना है वह पूर्ण हो जाएगी। इस ससार मे शिव-गगा की कृपा से कौन-सा पदार्थ दुर्लभ है ? ॥६॥

मेघहास ने कहा—आप लोगो ने मेरे देवतुल्य पूज्य पिता को पराजित किया है। यदि उनका और मेरा अत्यन्त प्रिय करना चाहते हैं तो मैं अपनी इस तपस्या से आपके उस वैर को दूर कर रहा हूँ। पुत्र का यह कर्तव्य

भवद्भिस्तपसोऽस्माच्च अहं वैरान्निवर्तये। वैरनिर्यातनं कार्यं पुत्रेण पितुरादरात्॥
प्रार्थयन्ते भवन्तश्चेत्पूर्णास्तन्मे मनोरथाः ॥८॥

ब्रह्मोवाच

ततः सुरगणाः सर्वे राहुं चक्रुर्ग्रहानुगम्[1]। तं चापि मेघहासं ते चक्रू राक्षसपुंगवम्॥९॥
ततोऽभवद्राहुसुतो नैर्ऋताधिपतिः प्रभुः। पुनश्चाऽऽह सुरान्दैत्यो मम ख्यातिर्यथा भवेत्॥१०॥
तीर्थस्यास्य प्रभावश्च दातव्य इति मे मतिः। तथेत्युक्त्वा ददुर्देवाः सर्वमेव मनोगतम्॥११॥
दैत्येश्वरस्य देवर्षे तन्नाम्ना तीर्थमुच्यते[2]। देवा यतोऽभवन्सर्वे तत्र स्थाने महामते॥१२॥
देवस्थानं तु तत्तीर्थं देवानामपि दुर्लभम्। यत्र देवेश्वरो देवो देवतीर्थं ततः स्मृतम्॥१३॥
तत्राष्टादश तीर्थानि दैत्यपूज्यानि नारद। तेषु स्नानं च दानं च महापातकनाशनम्॥१४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये देवस्थानाद्यष्टादशतीर्थवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥१४२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रिसप्ततितमोऽध्यायः॥७३॥

है कि वह आदरपूर्वक पिता के वैर का बदला चुकाये। यदि आप लोग प्रसन्न हैं तो मैं आप लोगो से प्रार्थना करता हूँ कि मेरे मनोरथ पूर्ण हो जायँ॥७-८॥

ब्रह्मा बोले—तब सब देवताओ ने राहु को ग्रहो की श्रेणी मे परिगणित कर दिया और उस मेघहास को भी श्रेष्ठ राक्षस बना दिया। इसके बाद वह राहु-पुत्र नैर्ऋत दिशा का समर्थ स्वामी हो गया। पुन उस दैत्य ने देवताओं से कहा कि मेरी कीर्ति जिस प्रकार हो वैसे ही इस तीर्थ को प्रभावशाली बनाइए, यही मेरा विचार है। देवताओ ने 'एवमस्तु' कह (उसे) मनोवाछित सब कुछ दे दिया। देवर्षिनारद ! उस दैत्येश्वर के नाम से वह तीर्थ कहा जाता है। महामते ! यत उस स्थान पर सब देवता उपस्थित हुये अत वह तीर्थ देवो के लिए भी दुर्लभ देवस्थान नामक तीर्थ हो गया है। जहाँ देवेश्वर देव हैं वह देवतीर्थ कहा जाता है। नारद ! वहाँ दैत्यो से पूज्य अट्ठारह और तीर्थ हैं, उनमे स्नान और दान करने से महापातक भी नष्ट हो जाते हैं॥९-१४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म देवस्थान आदि अट्ठारह तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त॥१४२॥

१घ. च. ०ग्रंहाधिपम्। २क. ०मुत्तमम्। दे०।

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सिद्धतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सिद्धतीर्थमिति ख्यातं यत्र सिद्धेश्वरो हरः। तस्य प्रभाव वक्ष्यामि सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ॥१॥
पुलस्त्यवंशसंभूतो रावणो लोकरावणः। दिशो विजित्य सर्वाश्च[1] सोमलोकमजोगमत् ॥२॥
सोमेन सह योत्स्यन्त दशास्यमहमब्रवम्। मन्त्रं दास्ये निवर्तस्व सोमयुद्धाद्दशानन ॥३॥
इत्युक्त्वाऽष्टोत्तरं मन्त्र शतनामभिरन्वितम्। शिवस्य राक्षसेन्द्राय प्रादा नारद शान्तये ॥४॥
निःश्रीकाणां विपन्नाना नानाक्लेशजुषा नृणाम्। शरण शिव एवात्र ससारेऽन्यो न कश्चन ॥५॥

तत्तो निवृत्तः स ह मन्त्रियुक्तस्तत्सोमलोकाज्जयमाप्य रक्षः ।
स पुष्पकारूढगतिः [2]सगर्वो, लोकान्पुनः प्राप जवाद्दशास्यः ॥६॥
स प्रेक्षमाणो दिवमन्तरिक्षं, भुवं च नागांश्च गजाश्च विप्रान्[3] ।
आलोकयामास नगं महान्तं, कैलासमावास उमापतेर्यः ॥७॥
दृष्ट्वा स्मयोत्फुल्लदृगद्रिराजं, स मन्त्रिणौ रावण इत्युवाच ॥८॥

अध्याय १४३

सिद्धतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सिद्धतीर्थ नामक एक तीर्थ है, जहाँ सिद्धेश्वर हर निवास करते हैं। मनुष्यों को सब सिद्धियाँ देने वाले उसके प्रभाव को बता रहा हूँ। पुलस्त्यकुलोत्पन्न लोक-भयङ्कर रावण सम्पूर्ण दिशाओं को जीतकर चन्द्र-लोक में पहुँचा। चन्द्रमा के साथ युद्ध-रत उस दशमुख से मैंने कहा—'दशानन! तुमको मन्त्र दूँगा, चन्द्रमा के साथ युद्ध करना बन्द कर दो। नारद! यह कहकर मैंने उसकी शान्ति के लिए उस राक्षसेन्द्र को शिव के एक सौ आठ नामों से युक्त मन्त्र दे दिया। इस संसार में श्रीहीन, तथा विपद्ग्रस्त अनेक कष्टों को भोगने वाले मनुष्यों के शिव ही एकमात्र शरण हैं, दूसरा कोई नहीं। तब वह राक्षस सोमलोक को जीत कर मन्त्रियों के सहित वहाँ से लौटा। वह रावण गर्व के साथ पुष्पकविमान पर आरूढ़ होकर बड़े वेग से पुनः लोकों में गया। वह आकाश, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, नागों, गजों एवं विप्रों को देखने लगा। इतने में उमापति का जो वासस्थान था, उस महापर्वत कैलाश को उसने देखा। पर्वतराज को देखकर उस रावण के नेत्र आनन्द से खिल उठे। उसने अपने दोनों मन्त्रियों से कहा ॥१-८॥

१क. ङ. ०श्च देव लो०। २ ङ. ०र्वो लङ्का पुनः। ३घ. च. भूपान्।

रावण उवाच

को वा गिरावत्र वसेन्महात्मा, गिरिं नयाम्येनमथाधि भूमे ।
लङ्कागतोऽयं गिरिराशु शोभा, लङ्कापि सत्य श्रियमातनोति ॥९॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं वचो राक्षसमन्त्रिणौ तौ, निशम्य रक्षोधिपतेश्च भावम् ।
न युक्तमित्यूचतुरिष्टबुद्ध्या, निशाचरस्तद्वचनं न मेने ॥१०॥
स्थाप्य तत्पुष्पकमाशु रक्ष, पुप्लाव कैलासगिरेश्च मूले ।
हिन्दोलयामास गिरिं दशास्यो, ज्ञात्वा भव कृत्यमिदं चकार ॥११॥
जित्वा दिगीशांश्च सर्गजितस्य, कैलासमान्दोलयत सुरारे[१] ।
अङ्गुष्ठकृत्यैव रसातलाविलोकाश्च यातस्य दशाननस्य ॥१२॥]
आक्रन्दकायस्य गिरं निशम्य, विहस्य देव्या सह दत्तमिष्टम् ।
तस्मै प्रसन्नः कुपितोऽपि शंभुरयुक्तदातेति न संशयोऽत्र ॥१३॥
ततोऽयमासाद्य वरान्सुवीरो, भवप्रसादात्कुसुमं जगाम ।
गच्छन्स लङ्कां भवपूजनाय, गङ्गामगाच्छंभुजटाप्रसूताम् ॥१४॥]
सपूजयित्वा विविधैश्च मन्त्रैर्गङ्गाजलैः शंभुमदीनसत्त्व ।
असि स लेभे शशिखण्डभूषात्सिद्धि च सर्वाश्चमभीप्सिता च ॥१५॥

रावण ने कहा—कौन महात्मा इस पर्वत पर रहते हैं? मैं इस पर्वत को पृथ्वीतल पर ले जाना चाहता हूँ। यह गिरि लङ्का में अत्यन्त शोभा प्राप्त करेगा। इससे लङ्कापुरी की शोभा भी अधिक बढ़ जाएगी॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—वे दोनों राक्षस मन्त्री राक्षसपति की ऐसी वाणी को सुनकर उसके भाव को ताड़ गये। उन्होंने उसके हित की दृष्टि से कहा कि यह उचित नहीं है। किन्तु निशाचर ने उनकी बात न मानी। वह राक्षस अपने पुष्पक विमान को वहीं रखकर कैलासगिरि के मूल देश में कूद पड़ा। वहाँ जाकर वह दशानन उस पर्वत को हिलाने लगा। शङ्कर ने रावण की इस धृष्टता को जानकर ऐसा किया कि सब दिक्पालों को जीतने से गर्वित और कैलास को हिलाने वाले उस सुर शत्रु दशानन को अंगूठे से दबा दिया। जिससे वह रसातललोक में धँसने लगा उसका शरीर क्षत विक्षत हो गया और वह जोरों से चिल्लाने लगा। अन्त में उसकी प्रार्थना को सुनकर देवी के सहित क्रुद्ध होते हुए भी शंकर ने प्रसन्न होकर हँसकर उसको वरदान दे दिया। वास्तव में शंकर अयोग्य को भी दान देने वाले हैं इसमें कोई सन्देह नहीं। शंकर की कृपा से वरों को पाकर वह वीर पुष्पक विमान के पास गया। लङ्का जाते समय वह शंकर की पूजा के लिए शिव की जटा से निकली हुई गंगा के पास गया। गंगा जल और विविध मन्त्रों से उस पुरुषार्थी रावण ने शंभु की पूजाकर उस शशिमौलि से खड्ग सिद्धियाँ और अभी

---

१. ङ. सुरारेः।

मद्दत्तमन्त्रं शशिरक्षणाय, स साधयामास भवं प्रपूज्य ।
सिद्धे तु मन्त्रे पुनरेव लङ्कामयात्स रक्षोधिपतिः स तुष्टः ॥१६॥
ततः प्रभृत्येतदतिप्रभावं, तीर्थं महासिद्धिदमिष्टदं च ।
समस्तपापौघविनाशनं च, सिद्धैरशेषैः परिसेवितं च ॥१७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सिद्धतीर्थाद्यष्टोत्तरशततीर्थवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४३॥
गौतमीमाहात्म्ये चतु सप्ततितमोध्यायः ॥७४॥

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

परुष्णीसंगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

परुष्णीसंगमं चेति तीर्थं[1] त्रैलोक्यविश्रुतम्। तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु पापविनाशनम् ॥१॥
अत्रिराराधयामास ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्। तेषु तुष्टेषु स प्राह पुत्रा यूयं भविष्यथ ॥२॥
तथा चका रूपवती कन्या मम भवेत्सुराः। तथा पुत्रत्वमापुस्ते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥३॥

प्सित सब ऋद्धियाँ प्राप्त की। उसने चन्द्र की रक्षा के लिये शकर की पूजा कर मेरे दिये हुये मन्त्र का अनुष्ठान किया। मन्त्र-सिद्धि होने पर वह राक्षस राज प्रसन्न होकर पुन लका मे चला आया। तब से महासिद्धियो को देने वाला इष्टप्रद, अतिप्रभावशाली और समस्त विघ्नो को नष्ट करने वाला वह तीर्थ समस्त सिद्धो का प्रिय और सेव्य हो गया ॥१०-१७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे सिद्ध-तीर्थ वर्णन नामक एक सौ तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४३॥

अध्याय १४४

परुष्णी-सगम नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—परुष्णी-सगम नामक तीर्थ त्रिलोक प्रसिद्ध तीर्थ है। उसके पाप-विनाशक परिचय का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो। अत्रि ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की आराधना की। उनके प्रसन्न होने पर उन्होंने उनसे कहा कि आप लोग मेरे पुत्र होइये और हे देवगण! मुझे एक रूपवती कन्या भी हो। निदान वे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर उनके पुत्र हुये। कुछ समय बाद अत्रि ने आत्रेयी नाम की एक शुभ कन्या उत्पन्न की और उस महात्मा के दत्त,

---

[1] घ. ङ. च. ०र्थं वेदेषु वि०।

कन्यां च जनयामास शुभाऽऽत्रेयीति नामतः। दत्तः सोमोऽथ दुर्वासाः पुत्रास्तस्य महात्मनः ॥४॥
अग्नेरङ्गिरसो' जातो ह्यङ्गारैरङ्गिरा यतः। तस्मादङ्गिरसे प्रादादात्रेयीमातरोचिषम् ॥५॥
अग्नेः प्रभावात्परुषमात्रेयीं सर्वदाऽवदत्। आत्रेय्यपि च शुश्रूषां कुर्वती सर्वदाऽभवत् ॥६॥
तस्यामाङ्गिरसा जाता महाबलपराक्रमा। अङ्गिराः परुषं वादीदात्रेयीं नित्यमेव च ॥७॥
पुत्रास्त्वाऽङ्गिरसा नित्यं पितरं शमयन्ति ते। सा कदाचिद्भर्तृवाक्यादुद्विग्ना परुषाक्षरात् ॥
कृताञ्जलिपुटा दीना प्राब्रवीच्छ्वशुरं गुरुम् ॥८॥

आत्रेय्युवाच

अत्रिजाऽहं हव्यवाह भार्या तव सुतस्य वै। शुश्रूषणपरा नित्यं पुत्राणां भर्तुरेव च ॥९॥
पतिर्मां परुषं वक्ति वृथैवोद्वीक्षते रुषा। प्रशाधि मां सुरज्येष्ठ भर्तारं मम दैवतम् ॥१०॥

ज्वलन उवाच

अङ्गारेभ्य समुद्भूतो भर्ता ते ह्यङ्गिरा ऋषिः। यथा शान्तो भवेद्भद्रे तथा नीतिर्विधीयताम् ॥११॥
आग्नेयोऽग्निं समायातो तव भर्ता वरानने। तदा त्वं जलरूपेण प्लावयेथा मदाज्ञया ॥१२॥

आत्रेय्युवाच

सहेयं परुषं वाक्यं मा भर्ताऽग्निं समाविशेत्। भर्तरि प्रतिकूलानां योषितां जीवनेन किम् ॥१३॥

सोम और दुर्वासा तीन पुत्र हुये। अग्नि के अङ्गिरस पुत्र थे। जिस लिए अङ्गारों से उसकी उत्पत्ति हुई थी इसलिये उसको अङ्गिरा कहते थे। अत्रि ने अपनी अतितेजस्वी कन्या अङ्गिरा को दे दी। अग्नि के प्रभाव से अङ्गिरा सर्वदा आत्रेयी को जली-कटी सुनाया करते थे परन्तु आत्रेयी सर्वदा पति-शुश्रूषा करती रहती थी। उसस महा बलवान् और पराक्रमी आङ्गिरस उत्पन्न हुआ। अङ्गिरा नित्य प्रति आत्रेयी को कटु बातें सुनाया करता था। वे पुत्र आङ्गिरस नित्य पिता को शान्त किया करते थे। वह किसी दिन पति के कटु शब्दों से उद्विग्न हो गई। उस दिन आत्रेयी ने हाथ जोडकर अपने पूज्य श्वशुर से कहा ॥१-८॥

आत्रेयी ने कहा—हे हव्य को ढोने वाले अग्नि ! मैं अत्रि तनया आपके पुत्र की भार्या हूँ प्रतिदिन पुत्रों और भर्त्ता की शुश्रूषा किया करती हूँ, फिर भी मेरे पति वृथा ही कटु शब्द कहा करते हैं क्रोध से आँखें तरेर कर देखा करते है। सुरज्येष्ठ ! कृपाकर मेरे भर्तृदेव और मुझको भी उचित उपदेश दीजिये ॥९-१०॥

अग्नि ने कहा—तुम्हारे भर्त्ता ऋषि अङ्गिरा अगार से उत्पन्न हुये हैं। तो जिस प्रकार वह शात हो भद्रे ! वैसा ही उपाय करना चाहिए। सुन्दर आनन वाली ! तुम्हारे पति आग्नेय जब अग्नि के पास आये तब तुम जलरूप से उनको मेरी आज्ञा से डुबा दो ॥११-१२॥

आत्रेयी ने कहा—मैं उनके कटु वाक्यों को सह लूगी, परन्तु मेरे भर्त्ता अग्नि मे मत प्रवेश करें। भर्त्ता से

१च. ०ग्नेराङ्गिर०।

ज्वलन उवाच

इच्छेय शान्तिवाक्यानि भर्तारं लभते तथा ॥१४॥
अग्निस्त्वप्सु शरीरेषु स्थावरे जङ्गमे तथा। तव भर्तुरहं धाम नित्यं च जनको मतः ॥१५॥
योऽहं सोऽहमिति ज्ञात्वा न चिन्ता कर्तुमर्हसि। किंचाऽऽपो मातरो देव्यो ह्यग्निः श्वशुर इत्यपि॥
इति बुद्धया विनिश्चित्य मा विषण्णा भव स्नुषे ॥१६॥

स्नुषोवाच

आपो जनन्य इति यदवभाषे, अग्नेरहं तव पुत्रस्य भार्या ।
कथं भूत्वा जननी चापि भार्या, विरुद्धमेतज्जलरूपेण नाथ ॥१७॥

ज्वलन उवाच

आदौ तु पत्नीं भरणात्तु भार्या, जनेस्तु जाया 'स्वगुणै' कलत्रम् ।
इत्यादिरूपाणि बिभर्षि भद्रे, कुरुष्व वाक्यं मदुदीरितं यत् ॥१८॥
योऽस्यां प्रजातः स तु पुत्र एव, सा तस्य मातैव न संशयोऽत्र ।
तस्माद्वदन्ति श्रुतितत्त्वविज्ञा, सा नैव योषित्तनयेऽभिजाते ॥१९॥

प्रतिकूल रहने वाली स्त्रियो के जीवन से क्या लाभ? मैं तो जिस प्रकार भर्ता शान्ति वचन कहने लगें वैसा ही करना चाहती हूँ॥१३ १४॥

अग्नि बोले—अग्नि तो जल शरीर स्थावर और जंगम मे रहता है। मैं तुम्हारे पति को उत्पन्न करने वाला और उनका धाम (आश्रय) हूँ। मैं तो जो हूँ वह हूँ ही या रहूँगा ही ऐसा जानकर तुम कभी भी चिन्ता न करो। *दूसरी बात यह है कि आप् (जल) देवी माता हैं, और अग्नि तुम्हारे ससुर हैं इसका बुद्धि द्वारा निश्चय कर बहू!* तुम उदास मत होओ॥१५ १६॥

स्नुषा बोली— अग्ने! आप (जल) जननी हैं यह आपने जो कहा वह ठीक नहीं क्योंकि मैं तुम्हारे पुत्र की भार्या हूँ। नाथ! भार्या होकर स्त्री किस प्रकार जननी हो सकती है? यह तो जलरूप से (जननी बनना) विरुद्ध जान पड़ता है॥१७॥

अग्नि ने कहा—पहले (विवाह के समय) स्त्री पत्नी रहती है पुन भरणपोषण करने से भार्या बन जाती है पुत्रोत्पत्ति के कारण जाया और अपने गुणो के कारण कलत्र कहलाती है। भद्रे! इस प्रकार स्त्री होने के नाते तुम इन विविध रूपो को धारण करती हो अत मैं जो कह रहा हूँ उसको करो। जो पति इसमे (स्त्री मे) उत्पन्न हुआ वह तो पुत्र ही हुआ और वह उसकी माता हुई इसमे सन्देह नही। इसीलिये वेदमर्मज्ञो ने कहा है कि पुत्र उत्पन्न हो जाने पर स्त्री योषित् नही प्रत्युत जननी हो जाती है॥१८ १९॥

---

१८. सुगुणैः।

ब्रह्मोवाच

श्वशुरस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वाऽऽत्रेयी तदैव तत्। आग्नेयं रूपमापन्नमम्भसाऽप्लावयत्पतिम् ॥२०॥
उभौ तौ दंपती ब्रह्मन्संगतौ गाङ्गवारिणा। शान्तरूपधरौ चोभौ दंपती संबभूवतुः ॥२१॥
लक्ष्म्या युक्तो यथा विष्णुरुमया शंकरो यथा। रोहिण्या च यथा चन्द्रस्तथाऽभून्मिथुनं तदा ॥२२॥
भर्तारं प्लावयन्ती सा दधाराम्बुमयं वपुः। परुष्णी चेति विख्याता गङ्गया संगता नदी ॥२३॥
गोशतार्पणजं पुण्यं परुष्णीस्नानतो भवेत्। तत्र चाऽऽङ्गिरसाश्चक्रुर्यज्ञांश्च बहुदक्षिणान् ॥२४॥
तत्र त्रीणि सहस्राणि तीर्थान्याहुः पुराणगाः[1]। उभयोस्तीरयोस्तात पृथग्यागफलं विदुः ॥२५॥
तेषु स्नानं च दानं च वाजपेयाधिकं मतम्। विशेषतस्तु गङ्गायाः परुष्ण्या सह संगमे ॥२६॥
स्नानदानादिभिः पुण्यं यत्तद्वक्तुं न शक्यते ॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये परुष्णीसंगमादित्रिसहस्रतीर्थवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

ब्रह्मा बोले—ससुर की इन बातो को सुनकर आत्रेयी ने उसी समय उस आग्नेय रूप पाये हुये पति को जल मे डुबो दिया। ब्रह्मन्! वे दोनो दम्पती गङ्गा-जल से मिल जाने पर शान्तस्वरूप वाले दम्पती बन गये। जिस प्रकार लक्ष्मी से युक्त विष्णु, उमा से युक्त शिव और रोहिणी से युक्त चन्द्रमा की शोभा होती है, उसी प्रकार वे दोनो युगल दम्पती सुशोभित हुये। भर्ता को जल से डुबोती हुई उसने जलमय शरीर धारण किया था, अतः वह परुष्णी नाम से विख्यात हुई और वह नदी गगा में जाकर मिली। परुष्णी मे स्नान करने से सौ गोदान का पुण्य प्राप्त होता है। उस सगम तीर्थ म आंगिरसो ने बहुत-सी दक्षिणा वाले अनेक यज्ञ किये। पुराण-गायक लोग वहाँ और तीन हजार तीर्थ बताते हैं। तात! वहाँ दोनो तटो के यज्ञो का फल पृथक्-पृथक् कहा गया है। उनमे स्नान और दान करने से वाजपेय यज्ञ से भी अधिक फल मिलता है, ऐसा कहा जाता है। गगा और परुष्णी के सगम मे स्नान-दान करने से जो विशेष पुण्य मिलता है, उसका वर्णन नही किया जा सकता ॥२०-२७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे परुष्णी-सगम-तीर्थ-वर्णन नामक एकसौ चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४४॥

---

१ घ. पुराविदः।

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेयतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

मार्कण्डेय नाम तीर्थं सर्वपापविमोचनम्। सर्वक्रतुफलं पुण्यमघौघविनिवारणम् ॥१॥
तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु नारद यत्नतः। मार्कण्डेयो भरद्वाजो वसिष्ठोऽत्रिश्च गौतमः ॥२॥
याज्ञवल्क्यश्च जाबालिर्मुनयोऽन्येऽपि नारद। एते शास्त्रप्रणेतारो वेदवेदाङ्गपारगाः ॥३॥
पुराणन्यायमीमांसाकथासु परिनिष्ठिताः। मिथः समूचुर्विद्वांसो मुक्तिं प्रति यथामति ॥४॥
केचिज्ज्ञानं प्रशंसन्ति कर्मचित्कर्म तथोभयम्। एवं विवदमानास्ते मामूचुरुभयं मतम् ॥५॥
मदीयं तु मतं ज्ञात्वा ययुश्चक्रगदाधरम्। तस्य चापि मतं ज्ञात्वा ऋषयस्ते महौजसः ॥६॥
पुनर्विवदमानास्ते शंकरं प्रष्टुमुद्यताः। गङ्गाया च भवं पूज्य तमेवार्थं शशंसिरे ॥७॥
कर्मणस्तु प्रधानत्वमुवाच त्रिपुरान्तकः। क्रियारूपं च तज्ज्ञानं क्रिया सैव तदुच्यते ॥८॥
तस्मात्सर्वाणि भूतानि कर्मणा सिद्धिमाप्नुयुः। कर्मैव विश्वतोव्यापि तदृते नास्ति किंचन ॥९॥
विद्याभ्यासो[3] यज्ञकृतिर्योगाभ्यासः शिवार्चनम्। सर्वं कर्मैव नाकर्मी प्राणी क्वाप्यत्र विद्यते ॥१०॥

अध्याय १४५

मार्कण्डेयतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सब पापों को छुड़ाने वाला सब यज्ञ फलों को देने वाला पवित्र और अघ-समूह को नष्ट करने वाला मार्कण्डेय नामक तीर्थ है। नारद! उसके प्रभाव को कह रहा हूँ तुम ध्यानपूर्वक सुनो। नारद! मार्कण्डेय भारद्वाज वसिष्ठ अत्रि गौतम याज्ञवल्क्य जाबालि आदि मुनियों एवं अन्य शास्त्रकर्ता वेदवेदाङ्ग के पारगत पुराण मीमांसा और न्यायचर्चा में अति निष्ठा रखने वाले विद्वानों ने मुक्ति के विषय में अपनी सूझ के अनुसार परस्पर अपने विचार व्यक्त किये। कोई ज्ञान की प्रशंसा करते थे तो कोई कर्म की तो कोई कर्म और ज्ञान दोनों की। इस प्रकार परस्पर विवाद करते हुए उन लोगों ने मेरे सामने दोनों पक्ष रखे। मेरे मन को जान कर लोग चक्रगदाधारी विष्णु के समीप गये। उनके मत को भी जान कर महातेजस्वी ऋषि पुनः अपने में विवाद करते हुए शंकर से पूछने के लिये तैयार हुए। गंगा में शंकर की पूजा कर उनसे पुनः उसी विवाद के विषय में निवेदन किया। त्रिपुरारि शिव ने कर्म का ही प्राधान्य बतलाते हुए कहा—*वह ज्ञान भी कर्म रूप ही है* और वही कर्म ज्ञान कहा जाता है। इसलिये सब प्राणी कर्म के द्वारा ही सिद्धि प्राप्त करते हैं। कर्म ही विश्वव्यापी है। कर्म के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है। विद्याभ्यास यज्ञकार्य योगाभ्यास शिवपूजा सब कुछ कर्म ही है। कोई प्राणी

---

१ घ ङ कर्म। २क ङ कार्याणि। ३घ वेदाभ्यासे।

कर्मैव कारणं तस्मादन्यदुन्मत्तचेष्टितम्। ऋषीणां यत्र संवादो[1] यत्र देवो महेश्वरः॥११॥
चकार निर्णयं सर्वं कर्मणाऽवाप्यते नृभिः। मार्कण्डं मुख्यतः कृत्वा ततो मार्कण्डमुच्यते॥१२॥
तीर्थमृषिगणाकीर्णं गङ्गाया[1] उत्तरे[1] तटे। पितृणा पावनं पुण्यं स्मरणादपि सर्वदा॥१३॥
तत्राष्टौ नवतिस्तात तीर्थान्याह जगन्मयः। वेदैन[2] चापि तत्प्रोक्तमृषयो मेनिरे च तत्॥१४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये मार्कण्डेयाद्यष्टनवतितीर्थवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४५॥

[गौतमीमाहात्म्ये षट्सप्ततितमोऽध्यायः॥७६॥

अथ षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कालञ्जरतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यायातमपरं तीर्थं यत्र कालजरः शिव.। सर्वपापप्रशमनं तद्वृत्तमुच्यते[3] मया॥१॥

अकर्मा कहीं पर भी नही देखा गया है। इसलिये अन्य उन्मत्त चेष्टाओ (पागलपन के कामा) का भी कर्म ही कारण है।' जहाँ ऋषियो का इस प्रकार का सवाद हुआ और जहाँ महेश्वर ने 'मनुष्य सब कुछ कर्म के द्वारा ही प्राप्त करता है' ऐसा निणय विशेष रूप से मार्कण्डेय को ही लक्षित करके किया, इसलिये उसको मार्कण्डेय तीर्थ कहते हैं। गगा के उत्तर तट पर ऋषियो से व्याप्त तीर्थ पितरो को पवित्र करने वाला और सर्वदा स्मरणमात्र से भी पुण्यदायी है। तात ! जगद्व्यापक ने वहाँ अट्ठानवे तीर्थों को कहा है, वेदो ने भी उसको कहा है और ऋषियो ने भी इसका समर्थन किया है॥१-१४॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म मार्कण्डेय आदि अट्ठानवे तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ पैंतीतालीसवां अध्याय समाप्त॥१४५॥

अध्याय १४६

कालञ्जरतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—यायात नामक एक दूसरा तीर्थ है जहाँ कालजर शिव रहते हैं। उसके सब पापो को शान्त करने वाला इतिहास मैं कह रहा हूँ। नहुष का पुत्र ययाति नामक राजा था, जो साक्षात् दूसरे इन्द्र के समान

---

१ घ. दक्षिणे। २ घ देवेन। ३ घ. ङ च. व्युष्टिस्तत्रोच्यते।

ययातिर्नाहुषो राजा साक्षादिन्द्र इवापरः। तस्य भार्याद्वयं चाऽऽसीत्कुललक्षणभूषितम् ॥२॥
ज्येष्ठा तु देवयानीति नाम्ना शुक्रसुता शुभा। शर्मिष्ठेति द्वितीया सा सुता स्याद्वृषपर्वणः ॥३॥
ब्राह्मण्यपि महाप्राज्ञा देवयानी सुमध्यमा। ययातेरभवद्भार्या सा तु शुक्रप्रसादतः ॥४॥
शर्मिष्ठा चापि तस्यैव भार्या या वृषपर्वजा। देवयानी शुक्रसुता द्वौ पुत्रौ समजीजनत् ॥५॥
यदुं च तुर्वसुं चैव देवपुत्रसमावुभौ। शर्मिष्ठा च नृपाल्लेभे त्रीन्पुत्रान्देवसंनिभान् ॥६॥
द्रुह्युं चानुं च पूरुं च ययातेर्नृपसत्तमात्। देवयान्याः सुतौ ब्रह्मन्सदृशौ शुक्ररूपतः ॥७॥
शर्मिष्ठायास्तु तनयाः शक्राग्निवरुणप्रभाः। देवयानी कदाचित्तु पितरं प्राह दुःखिता ॥८॥

देवयान्युवाच

मम त्वपत्यद्वितयमभाग्याया भृगूद्वह। मम दास्याः सभाग्याया अपत्यत्रितयं पितः ॥९॥
तदेतदनुमृश्यायं दुःखमत्यन्तमागता। मरिष्ये दानवगुरो ययातिकृतविप्रियात् ॥
मानभङ्गाद्वरं तात मरणं हि मनस्विनाम् ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

तदेतत्पुत्रिकावाक्यं श्रुत्वा शुक्रः प्रतापवान्। कुपितोऽभ्याययौ शीघ्रं ययातिमिदमब्रवीत् ॥११॥

था। उसकी कुलीन और सब लक्षणों से सुशोभित दो स्त्रियाँ थीं। जेठी कल्याणमयी शुक्र-कन्या देवयानी नामकी और दूसरी वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा थी। वह सुन्दर कटिवाली, महाबुद्धिमती देवयानी ब्राह्मणी होते हुए भी शुक्र की कृपा से क्षत्रिय ययाति की भार्या हुई। वृषपर्वा-तनया शर्मिष्ठा भी उसी की पत्नी हुई। शुक्र-कन्या देवयानी ने दो पुत्रों को उत्पन्न किया। उन दोनों के नाम यदु और तुर्वसु था। दोनों देव-पुत्रों के समान थे। शर्मिष्ठा ने भी नृपश्रेष्ठ ययाति से देव तुल्य तीन पुत्र—द्रुह्य, अनु और पूरु—प्राप्त किये। ब्रह्मन्! देवयानी के पुत्र रूप में शुक्र के समान थे, और शर्मिष्ठा के पुत्र इन्द्र, अग्नि और वरुण के समान तेजस्वी थे। किसी समय देवयानी ने अत्यंत दुःखी हो कर पिता से कहा ॥१-८॥

देवयानीने कहा—भृगुकुलोत्पन्न पिता जी! मुझ अभागिनी के तो दो ही पुत्र हैं, किन्तु मेरी सौभाग्यवती दासी के तीन पुत्र हैं। इन बातों को सोचकर मुझे दुःख हो रहा है। दानव-गुरु! ययाति के द्वारा किये गये अपमान से मैं मर जाऊँगी। तात! मनस्वी के लिए मानभङ्ग की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा है ॥९-१०॥

ब्रह्मा ने कहा—पुत्री की यह बात सुनकर प्रतापी शुक्र कुपित हो गए और शीघ्र ययाति के पास आकर यह बोले ॥११॥

१ख. ड. ०रतम्। म०।

शुक्र उवाच

यदिदं विप्रियं मे त्वं सुताया कृतवानसि। रूपोन्मत्तेन राजेन्द्र तस्माद्वृद्धो भविष्यसि ॥१२॥
न च भोक्तुं न च त्यक्तुं शक्नोति विषयातुरः। स्पृहयन्मनसैवाऽऽस्ते निःश्वासोच्छ्वासनष्टधीः ॥१३॥
वृद्धत्वमेव मरणं जीवतामपि देहिनाम्। तस्माच्छीघ्रं प्रयाहि त्वं जरां भूपातिदुर्धराम् ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा ययातिस्तु शापं शुक्रस्य धीमतः। कृताञ्जलिपुटो राजा ययातिः शुक्रमब्रवीत् ॥१५॥

ययातिरुवाच

नापराध्ये न सक्रुध्ये नैवाधर्मं प्रवर्तये। अधर्मकारिणः पापाः शास्या एव महात्मनाम् ॥१६॥
धर्ममेव चरन्तं वै कथं मा शप्तवानसि। देवयानी द्विजश्रेष्ठ वृथा मां वक्ति किंचन ॥१७॥
तस्मान्न मम विप्रेन्द्र शापं दातुं त्वमर्हसि[1]। विद्वांसोऽपि हि निर्दोषे यदि कुप्यन्ति मोहिताः ॥
तदा न दोषो मूर्खाणां द्वेषाग्निप्लुष्टचेतसाम् ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

ययातिवाक्याच्छुक्रोऽपि सस्मार सुतया कृतम्। असकृद्विप्रियं तस्य दिवा रात्रौ प्रचण्डया ॥१९॥
गतकोपोऽहमित्युक्त्वा काव्यो राजानमब्रवीत् ॥२०॥

शुक्र बोले—तुमने जो यह रूप के पीछे पागल होकर मेरी पुत्री का अपमान किया है राजेन्द्र! इस पाप से तुम बूढ़ हो जाओगे। विषयातुर होते हुए भी बूढ़ा व्यक्ति न तो विषयों का भोग ही कर सकता है और न त्याग ही। केवल वह मन से इच्छा करता रहता है। अतृप्ति के कारण वह सवदा आहें भरा करता है। उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। शरीरधारियों के लिये बुढ़ापा जीते जी मृत्यु है। इसलिये भूपाल! तुम शीघ्र ही दुःखदायी बुढ़ापे का आलिङ्गन करो ॥१२-१४॥

ब्रह्मा बोले—धीमान् शुक्र के इस शाप को सुनकर राजा ययाति हाथ जोड़कर शुक्र से बोले ॥१५॥

ययाति ने कहा—महात्माओं द्वारा अधर्मी पापी सवदा अनुशासित होते ही हैं किन्तु मैंने न तो कोई अपराध किया है न किसी पर क्रोध किया है और न अधर्म की ओर ही पग बढ़ाया है। सवदा धर्माचरण करने वाले मुझको आपने क्यों शाप दिया है? द्विजश्रेष्ठ! देवयानी व्यर्थ ही मुझ पर दोषारोपण कर रही है। विप्रेन्द्र! इसलिये आपको मुझे शाप नहीं देना चाहिये था। यदि विद्वान् भी मोहित होकर निरपराधों पर इस प्रकार कोप करेंगे तो द्वेषाग्नि से जले हुये चित्त वाले मूर्खों को ऐसा कार्य करने में कोई दोष नहीं होगा ॥१६-१८॥

ब्रह्मा ने कहा—ययाति के कहने से शुक्र को भी अपनी दिन रात बार-बार धृष्टता करने वाली प्रचण्ड कन्या के कृत्यों की याद आ गई। उन्होंने 'मेरा क्रोध अब शान्त हो गया' ऐसा कहकर राजा से कहा ॥१९-२०॥

---

[1] घ. ङ. च. शप्तुमर्हसि।

शुक्र उवाच

ज्ञातं मयाऽनयाऽकारि विप्रियं न वदेऽनृतम्। शापस्येमं करिष्यामि शृणुष्वानुग्रह नृप ॥२१॥
यस्मै पुत्राय सदातुं जरामिच्छसि मानद। तस्य सा यात्विय राजञ्जरा पुत्राय मद्वरात् ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

पुनर्ययाति श्वशुरं शुक्र प्राह विनीतवत् ॥२३॥
यो गृह्णाति मया दत्ता जरा भक्तिसमन्वित। स राजा स्याद्दैत्यगुरो तदेतदनुमन्यताम् ॥२४॥

ययातिरुवाच

यो मद्वाक्यं नाभिनन्देत्सुतो दैत्यगुरो दृढम्। त शपेयमनुज्ञाऽत्र दातव्यैव त्वया गुरो ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति राजानमुवाच भृगुनन्दन। ततो ययाति स्व पुत्रमाहूयेद वचोऽब्रवीत् ॥२६॥

ययातिरुवाच

यदो गृहाण मे शापाज्जरा जातां सुतो भवान्। ज्येष्ठ सर्वार्थवित्प्रौढ पुत्राणां धुरि सस्थित ॥
पुत्री तेनैव जनको यस्तदाज्ञावशे स्थित ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

नेत्युवाच यदुस्तातं ययाति भूरिदक्षिणम्। ययातिश्च यदु शप्त्वा तुर्वसुं काममब्रवीत् ॥२८॥

शुक्र ने कहा—मैंने जान लिया कि उसने अवश्य अपराध किया है परन्तु मैं कभी भी असत्य नहीं बोलता। नृप! इस शाप का यह परिहार कर रहा हूँ। मानद! जिस पुत्र को अपना बुढ़ापा देना चाहते हो राजन्! उसको यह बुढ़ापा मेरे वरदान से मिल जाय और तुम युवा हो जाओ ॥२१-२२॥

ब्रह्मा बोले—पुन ययाति ने अति विनम्र भाव से श्वशुर शुक्र से कहा ॥२३॥

ययाति ने कहा—परन्तु दैत्यगुरो! आप इस बात की अनुमति दीजिए कि जो भक्तिपूर्वक मेरे दिये हुए बुढ़ापे को अपना ले वह राजा हो। दैत्यगुरो! जो मेरे वाक्य का दृढ़ता से अनादर करे उसको शाप भी दे दूँ। गुरो! आप ऐसी भी आज्ञा दीजिये ॥२४-२५॥

ब्रह्मा बोले—भृगुनन्दन ने 'एवमस्तु' ऐसा राजा से कहा। तब राजा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को बुलाकर यह बात कही ॥२६॥

ययाति ने कहा—यदु! शाप से पाई हुई मेरी इस जरा को ले लो क्योंकि तुम मेरे ज्येष्ठ पुत्र, सब बातों को जानने वाले वयस्क और सब पुत्रों के अग्रणी हो। पिता उस पुत्र से पुत्रवान् कहा जाता है जो उसकी आज्ञा के अनुसार कार्य करे ॥२७॥

ब्रह्मा बोले—यदु ने अति दैभवशाली पिता ययाति से 'नहीं' ऐसा कहा। ययाति ने यदु को शाप

नागृह्णात्तुर्वसुश्चापि पित्रा दत्तां जरां तदा। तं शप्त्वा चाब्रवीद्द्रुह्युं गृहाणेमां जरां मम ॥२९॥
द्रुह्युश्च नैच्छत्तां दत्तां जरां रूपविनाशिनीम्। अनुमप्यब्रवीद्राजा गृहाणेमां जरां मम ॥३०॥
अनुर्नेति तदोवाच शप्त्वा तं पूरुमब्रवीत्। अभिनन्द्य तदा पूरुर्जरां तां जगृहे पितुः ॥३१॥
सहस्रमेकं वर्षाणां यावत्प्रीतोऽभवत्पिता। यौवने यानि भोग्यानि वस्तूनि विविधानि च ॥३२॥
पुत्रयौवनसंपुष्टो ययातिर्बुभुजे सुखम्। ततस्तृप्तोऽभवद्राजा सर्वभोगेषु नाहुषः ॥
ततो हर्षात्समाहूय [पूरुं] पुत्रमथाब्रवीत् ॥३३॥

ययातिरुवाच

तृप्तोऽस्मि सर्वभोगेषु यौवनेन तवानघ। गृहाण यौवनं पुत्र जरां मे देहि कश्मलाम् ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

नेत्युवाच तदा पूरुर्जरया क्षीयते मया। विकारास्तात भावानां दुर्निवाराः शरीरिणाम् ॥३५॥
बलात्कालागता सह्या जराऽप्यखिलदेहिभिः। सा चेद्गुरूपकाराय गृहीता त्यज्यते कथम् ॥३६॥
स्वीकृतत्यागपापाद्धि देहिनां मरणं वरम्। अथवा तु जरां राजंस्तपसा नाशयाम्यहम् ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु पितरं ययौ गङ्गामनुत्तमाम्। गौतम्या दक्षिणे पारे तत्रस्तेपे तपो महत् ॥३८॥

देकर तुर्वसु से बड़े प्यार से अपना मनोरथ कहा। उस समय तुर्वसु ने भी पिता के दिये हुए बुढ़ापे को नहीं लिया। राजा ने उसको भी शाप देकर द्रुह्यु से कहा—'मेरा यह बुढ़ापा ले लो'। द्रुह्यु ने भी रूप सौन्दर्य का विनष्ट करने वाली पितृ-दत्त जरा का अस्वीकार कर दिया। राजा ने अनु से भी कहा कि मेरी इस जरा को ले लो। अनु ने कहा 'कभी नहीं।' तब उसको भी शाप देकर राजा ने पूरु से कहा। पूरु ने पिता का सम्मान कर पिता का बुढ़ापा ले लिया। पिता ययाति ने एक सहस्र वर्ष तक प्रसन्न एवं पुत्र की जवानी से परिपुष्ट होकर युवावस्थाचित जितने विविध भोग-पदार्थ और सुख थे, उनका उपभोग किया। इसके बाद जब राजा नहुष पुत्र सब भोगों से तृप्त हो गये तब बड़ी प्रसन्नता से पुत्र पूरु को बुलाकर बोले ॥२८-३३॥

ययाति ने कहा—तुम्हारे इस यौवन से मैंने विविध भोगों का भोग किया। अब मैं तृप्त हो गया हूँ। पुत्र! अब इस यौवन को ले लो और मेरी पापिनी वृद्धावस्था को दे दो ॥३४॥

ब्रह्मा बोले—तब पूरु ने कहा 'नहीं तात! जरा से मेरी दुर्वासनायें नष्ट हो रही हैं। देह धारियोंके भाव-विकार कठिनाई से दूर करने योग्य होते हैं। अतः उन विकारों को दूर करने वाली जरा यदि हठात् समय की प्रेरणा से आ जाय तो भी सब देहधारियों को स्वीकार कर लेना चाहिये। वह यदि गुरु के उपकार के लिये हो तब तो उसको क्यों छोड़ा जाय। स्वीकार की हुई वस्तु के परित्याग जनित-पाप से देही का मर जाना ही अच्छा है। अथवा राजन्! मैं इस जरा को तपस्या के द्वारा नष्ट किये देता हूँ ॥३५-३७॥

ब्रह्मा बोले—पिता से यह कहकर पूरु परमोत्तम गौतमी गंगा के पास गया और उसके दक्षिण तट पर

तत॰ प्रीतोऽभवद्देव कालेन महता शिव । लोकातीतमहोदारगुणस मणिभूषितम ॥
किं ददामीति त प्राह पूरु स सुरसत्तम ॥३९॥

पूरुरुवाच

शापप्राप्ता जरा नाथ पितुर्मम सुराधिप । ता नाशयस्व देवेश पितृशप्ताश्च कोपत ॥
मदभ्रातृञ्शापतो मुक्तान्कुरुष्व सुरपूजित ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

तथत्युक्त्वा जगन्नाथ शापाज्जाता जरा तथा । [1]अनाशयज्जगन्नाथो भ्रातृश्चक्रे विशापिन ॥४१॥
तत प्रभृति तत्तीर्थ जरारोगविनाशनम । अकालजजरादीना स्मरणादपि नाशनम ॥४२॥
तन्नाम्ना चापि विख्यात कालजरमुदाहृतम । यायात नाहुप पौर [2]शौक्र शार्मिष्ठमेव च ॥४३॥
एवमादीनि तीर्थानि तत्राष्टोत्तरमेव च । शत विद्यान्महाबुद्धे सर्वसिद्धिकर तथा ॥४४॥
तषु स्नान च दान च श्रवण पठन तथा । सवपापप्रशमन भुक्तिमुक्तिप्रद भवेत ॥४५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कालजराद्यष्टोत्तरशततीर्थवणन नाम
पटचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥१४६॥
गौतमीमाहात्म्ये सप्तसप्ततितमोऽध्याय ॥७७॥

महान् तपस्या करने लगा। तदनन्तर भगवान् शकर बहुत समय बाद प्रसन्न हुये। उस सुर वर ने लोकातीत महान् उदारता रूपी अच्छ मणि से भूषित उस पूरु से कहा कि क्या दू ॥३८ ३९॥

पुरु न कहा—सुर स्वामिन ! नाथ ! शाप से पाई हुई मेरे पिता की जरा को नष्ट कर दीजिये। देवेश ! देवपूजित ! क्रोध स पिता द्वारा अभिशाप्त मेरे भाइयो को शाप से मुक्त कर दीजिये ॥४०॥

ब्रह्मा ने कहा— ऐसा ही हो यह कहकर जगन्नाथ शकर ने शाप से उत्पन्न जरा को नष्ट कर दिया और उसके भाइयो को भी शाप से मुक्त कर दिया। तब स वह तीर्थ जरा एव रोग का विनाशक और स्मरणमात्र से भी असमय के बुढ़ापे को दूर करने वाला हो गया। उस प्रभाव के कारण उसका नाम भी कालजर हो गया। महाबुद्धे ! यायात नाहुष पौर शौक्र शार्मिष्ठ आदि एक सौ आठ तीर्थ वहाँ विद्यमान हैं जो सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाले हैं। उनम स्नान दान कथा श्रवण पठन आदि क्रम सब पापो को दूर करने वाले और भुक्ति मुक्ति प्रद हैं ॥४१ ४५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म यायात कालजर आदि एक सौ आठ तीर्थों का वर्णन नामक
एकसो छियालीसवाँ अध्याय समाप्त। १४६॥

---

१ घ ङ च अनीनशज्ज॰। २ क पौर।

अथ सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय.

अप्सरोयुगसगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

'अप्सरोयुगमाख्यातमप्सरासगम तत । तीरे च दक्षिणे पुण्य स्मरणात्सुभगो भवेत् ॥१॥
मुक्तो भवत्यसदेह तत्र स्नानादिना नर । स्त्री सती सगमे तस्मिन्नृतुस्नाता च नारद ॥२॥
वन्ध्याऽपि जनयेत्पुत्र त्रिमासात्पतिना सह। स्नानदानेन वर्तन्ती नान्यथा मद्वचो भवेत् ॥३॥
अप्सरोयुगमाख्यात तीर्थं येन च हेतुना। तत्रेद कारण वक्ष्ये शृणु नारद यत्नत ॥४॥
स्पर्धाऽऽसीन्महती ब्रह्मन्विश्वामित्रवसिष्ठयो । तपस्यन्त गाधिसुत ब्राह्मण्यार्थे यतव्रतम् ॥५॥
गङ्गाद्वारे समासीन प्रेरितेन्द्रेण मेनका। त गत्वा तपसो भ्रष्ट कुरु भद्रे ममाऽऽज्ञया ॥६॥
तदोक्तेन्द्रेण सा मेना विश्वामित्र तपश्च्युतम्। कृत्वा कन्या तया दत्त्वा जगामेन्द्रपुर पुन ॥७॥
तस्या गताया सस्मार गाधिपुत्रोऽखिल कृतम्। त तु देश परित्यज्य तीर्थं तु सुरवल्लभम् ॥८॥
जगाम दक्षिणां गङ्गा यत्र कालजरो हर। तपस्यन्त तदोवाच पुनरिन्द्र सहस्रदृक् ॥९॥

अध्याय १४७

अप्सरोयुग या अप्सरा-सगम तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—इसके बाद गौतमी के दक्षिण तीर पर अप्सरो-युग नामक एक पवित्र तीर्थ है जिसको अप्सरासगम भी कहते हैं। उसके स्मरण से भी मनुष्य भाग्यवान् हो जाता है। उस तीर्थ म स्नान आदि स मनुष्य नि सदेह मुक्त हो जाता है। नारद! उस सगम म यदि ऋतुस्नाता पतिव्रता स्त्री तीन महीने तक पति के साथ स्नान, दान आदि का व्रत करे तो वह चाहे वन्ध्या ही क्या न हो अवश्य पुत्र उत्पन्न करती है। नारद! जिस कारण उसका अप्सरा-युग तीर्थ नाम पडा वह बता रहा हू ध्यानपूर्वक सुनो।

ब्रह्मन्! विश्वामित्र और वसिष्ठ म बहुत बडी प्रति-स्पर्धा थी। ब्रह्मर्षि बनने क लिए विश्वामित्र ने व्रत धारण करके हरिद्वार म जाकर महान् तपस्या प्रारम्भ की। तपस्वी विश्वामित्र को तपोभ्रष्ट करने के लिये इद्र न मेनका स कहा भद्रे! मेरी आज्ञा से तुम विश्वामित्र के पास जाओ और उसको तपस्या स च्युत कर दो। इद्र से इस प्रकार की आज्ञा पाकर मेना ने विश्वामित्र को तपोभ्रष्ट कर दिया। वह उनस एक कन्या उत्पन्न कर उनको देकर पुन इद्रपुरी चली गई। उसके चले जाने पर ऋषि को पिछली सारी बातो का स्मरण हुआ। शीघ्र उस प्रान्त और सुर प्रिय तीर्थ को छोड दक्षिण गगा क तट पर आये जहाँ काल्ञ्जर महादेव स्थित है। पुन उन्ह पहले की ही भाँति तपस्या मे लीन देखकर सहस्राक्ष इन्द्र ने उर्वशी मेना रम्भा और तिलोत्तमा

१घ ०प्सरासगम स्या०।

उर्वशीं च ततो मेना रम्भा चापि तिलोत्तमाम्। नैवेत्यूचुर्भयत्रस्ता पुनराह शचीपति ॥१०॥
गम्भीरा चातिगम्भीरामुभे ये गर्विते तदा। ते ऊचतुरुभे देव सहस्राक्ष पुरदरम् ॥११॥

गम्भीरातिगम्भीरे ऊचतु

आवा गत्वा तपस्यन्त गाधिपुत्र महाद्युतिम्। च्यावयावो नृत्यगीत रूपयौवनसपदा[1] ॥१२॥
यासामपाङ्गे हसिते वाचि विभ्रमसपदि। नित्य वसति पञ्चेषुस्ताभि कोऽत्र न जीयते ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

तथत्युक्ते सहस्राक्षे त आगत्य महानदीम्। ददृशाते तपस्यन्त[2] विश्वामित्र महामुनिम् ॥१४॥
मृत्योरपि दुराधर्ष भूमिस्थमिव धूर्जटिम्। सहस्रमेक वर्षाणामीक्षितु न च शक्नुत ॥१५॥
दूरे स्थिते नृत्यगीतचाटुकाररते तदा। विलोक्य मुनिशार्दूलस्तत कोपाकुलोऽभवत् ॥१६॥
प्रतीपाचरण दृष्ट्वा क्रोध कस्य न जायते। निस्पृहोऽपि महाबाहुस्तमिन्द्र प्रसहन्निव ॥१७॥
आभ्या मुक्त सहस्राक्षो ह्यसरोभ्या ब्रुवन्निव। शशाप ते स गाधेयो द्रवरूपे भविष्यथ ॥१८॥
द्रवितु मा समायात यतस्त्विह ततो लघु। तत प्रसादितस्ताभ्या शापमोक्ष चकार स ॥१९॥

आदि से उनको तपोभ्रष्ट करने के लिये कहा। परन्तु भयभीत होकर किसी ने कुछ नहीं कहा। तब पुन शचीपति ने अपने रूप पर अभिमान करने वाली गम्भीरा और अतिगम्भीरा नामक अप्सराओं से कहा। उन दोनों ने सहस्रनेत्र इन्द्र से कहा ॥१११॥

गम्भीरा और अतिगम्भीरा ने कहा—(हम दोनों जाकर अपने सौन्दय और युवावस्था के प्रभाव से एव अपने नृत्य और गीत के आकर्षण से उस तपोनिष्ठ महातेजस्वी गाधि सुत को च्युत कर देंगी।) जिनके कटाक्ष हास, वाणी और विलास मे पञ्चशर मदन सवदा निवास करता है उनसे भला कौन नहीं जीता जा सकता है? ॥१२ १३॥

ब्रह्मा ने कहा—इन्द्र की स्वीकृति मिल जाने पर दोनों अप्सराओं ने महानदी पर आकर तपोरत उस महामुनि को देखा परन्तु मृत्यु से भी अधिक भयकर पृथ्वी पर स्थित भैरव शकर के समान उस मुनि की ओर एक हजार वर्ष तक आँख उठाकर देखने का साहस नहीं हुआ। (तब वे दूर रहकर ही अपने नृत्य गीत और हाव भाव दिखाने मे लग गइ।) उनकी यह लीला देखकर वशी विश्वामित्र क्रोध से व्याकुल हो गये। ठीक है—अनुचित व्यवहार को देखकर किसको क्रोध नहीं होता? नि स्पृह होते हुए भी उस महापराक्रमी गाधि-सुत ने इन्द्र पर हँसते और यह कहते हुए स कि सहस्राक्ष इन्द्र इन अप्सराओं के भार से अब मुक्त हो गये' उन दोनों को शाप दे दिया कि तुम दोनों जल (द्रव) रूप हो जाओ क्योंकि तुम दोनों मुझको यहाँ द्रवित (च्युत) करने के लिये आई थी। थोडी देर म ही उन दोनों ने मुनि को प्रसन्न कर दिया जिससे उस मुनि ने उसे शाप से मुक्त कर दिया और कहा— *जब तुम दोनों गगा से मिलोगी तब उसी क्षण शाप से पाये हुए नदी रूप को छोड दिव्य रूप पा जाओगी।'*

---

१ घ. च ०न भापणे। या०। २ घ ड च ०न्त दिवाकरमिवापरम्।

भवेतां दिव्यरूपे वां गङ्गया संगते यदा। तच्छापात्ते नदीरूपे तत्क्षणात्संबभूवतुः ॥२०॥
अप्सरोयुगमाख्यातं नदीद्वयमतोऽभवत्। ताभ्यां परस्परं चापि ताभ्यां गङ्गासु संगमः ॥२१॥
सर्वलोकेषु विख्यातो भुक्तिमुक्तिप्रदः शिवः। तत्राऽऽस्ते दृष्ट एवासौ सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥२२॥
तत्र स्नात्वा तु तं दृष्ट्वा मुच्यते [1]सर्वबन्धनात् ॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽप्सरोयुगसंगमतीर्थवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

अथाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कोटितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कोटितीर्थमिति ख्यातं गङ्गाया [2]दक्षिणे तटे। यस्यानुस्मरणादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१॥
यत्र कोटीश्वरो देवः सर्वं कोटिगुणं भवेत्। कोटिद्वयं तत्र पूर्णं तीर्थानां शुभदायिनाम् ॥२॥
तत्र व्युष्टिं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद तन्मनाः। कण्वस्य तु सुतो ज्येष्ठो बाह्लीक इति विश्रुतः ॥३॥

इसलिये नदीद्वय के सयोग से वह तीर्थ अप्सरोयुग नाम से प्रसिद्ध हुआ। उनका परस्पर का सगम, पुन उन दोनो का गगा से सगम सब लोक मे प्रसिद्ध हो गया। उस तीर्थ मे भुक्ति-मुक्ति देने वाले एव दर्शनमात्र से सब सिद्धियाँ देने वाले लोक-विख्यात शिव रहते हैं। तीर्थ मे स्नान और उस शिव का दर्शन करने से मनुष्य सब बन्धनो से छूट जाता है ॥१४-२३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे अप्सरोयुग-सगम-तीर्थ-वर्णन नामक एक सौ सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४७॥

अध्याय १४८

कोटितीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—गगा के दक्षिण तट पर कोटि-तीर्थ नामक एक तीर्थ है, जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य सब पापो से छूट जाता है ॥१॥ जहाँ कोटीश्वर देव हैं, वहाँ के प्रत्येक कार्य करोड गुना फल देते हैं। वहाँ पूरे दो करोड पवित्र तीर्थ हैं ॥२॥ नारद! वहाँ के फल का वर्णन कर रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो। कण्व के ज्येष्ठ पुत्र बाह्लीक नाम से प्रसिद्ध थे ॥३॥ और लोग उन्हे कण्व कहते थे। वेदवेदाग के पारगत विद्वान् वेदज्ञ काण्व अपनी भार्या

---

१ घ ङ च. भवबन्धनै.। २ घ. च. उत्तरे।

काण्वश्चेति द्विजैः ख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः। इष्टीः पार्वायणानीर्याः सभार्यो वेदपारगः॥४॥
कुर्वन्नास्ते स गौतम्यास्तीरस्थो लोकपूजितः। प्रातःकाले सभार्योऽसौ जुहुवदग्नौ समाहितः॥५॥
सर्वदाऽऽस्ते कदाचित्तु हवनाय समुद्यतः। एकाहुतिं स हुत्वा तु समिद्धे हव्यवाहने॥६॥
आहुत्यन्तरदानाय हविर्द्रव्यं करेऽग्रहीत्। एतस्मिन्नन्तरे वह्निरुपशान्तोऽभवत्तदा॥७॥
ततश्चिन्तापरः काण्वः कर्तव्यं किं भवेदिति। अन्तर्विचारयामास विषादं परमं गतः॥८॥
आहुत्योश्च द्वयोर्मध्य उपशान्तो हुताशनः। अग्न्यन्तरमुपादेयं वैदिकं लौकिकं तथा॥९॥
क्व होष्यं स्याद्द्वितीयं तु आहुत्यन्तरमेव च। एवं मीमांसमाने तु दैवी वागब्रवीत्तदा॥१०॥
अग्न्यन्तरं नैव तेऽत्र उपादेयं भविष्यति। यानि तत्र भविष्यन्ति शकलानि समीपतः॥११॥
अर्धदग्धेषु काष्ठेषु विप्रराज प्रहूयताम्। नेत्युवाच तदा काण्वः सैव वागब्रवीत्पुनः॥१२॥
अग्नेः पुत्रो हिरण्यस्तु पिता पुत्रः स एव तु। पुत्रे दत्तं प्रियायैव पितुः प्रीत्यै भविष्यति॥१३॥
पित्रे देयं सुते दद्यात्कोटिप्रीतिगुणं भवेत्। दैवी वागब्रवीदेवं ततः सर्वे महर्षयः॥१४॥
निश्चित्य धर्मसर्वस्वं तथा चक्रुर्यथोदितम्। एतज्ज्ञात्वा जगत्यत्र पुत्रे दत्तं पितुर्भवेत्॥१५॥
अपत्याद्युपकारेण पित्रोः प्रीतिर्यथा भवेत्। तथा नान्येन केनापि जगत्येतद्धि विश्रुतम्॥१६॥
सुप्रसिद्धं जगत्येतत्सर्वलोकेषु पूजितम्। तस्मिन्दत्ते भवेत्पुण्यं सर्वं कोटिगुणं सुत॥१७॥

के सहित गौतमी-तट पर पार्वायणानी नामक इष्टियों को करते हुये रहते थे॥४॥ सर्वदा प्रातःकाल सावधानी से *भार्यासहित अग्नि में हवन करते थे॥५॥* एक दिन जब वे हवन के लिये तैयार हुये तब एक आहुति से अग्नि के प्रज्वलित होने पर दूसरी आहुति देने के लिये हवनीय द्रव्य को उन्होंने हाथ में लिया ही था कि इतने में अग्नि एकाएक बुझ गया॥६-७॥ तब काण्व विचार करने लगे कि अब क्या करना चाहिये। हृदय में विचार करने पर उनको अत्यन्त विषाद हुआ॥८॥ दो आहुतियों के बीच में ही अग्नि बुझ गया। वैदिक (वेद-प्रतिष्ठित) *या लौकिक* अग्नि इसके लिए उपादेय (उपयुक्त) होगा कि नहीं अब यह द्वितीय आहुति कहाँ दी जाय, इस प्रकार वे मीमांसा कर ही रहे थे कि इतने में आकाशवाणी हुई कि दूसरा अग्नि यहाँ तुम्हारे लिये उपयुक्त नहीं है॥९-१०½॥ जो यहाँ समीप में अधजले काठ में अग्नि खण्ड हैं, विप्रराज! उन्हीं में आहुति दो। यह सुनकर काण्व ने कहा कि नहीं। पुनः उसी दैवी वाणी ने कहा॥११-१२॥ अग्नि का पुत्र हिरण्य है। पिता ही तो वह पुत्र है, प्रसन्न करने के लिये पुत्र को दिया हुआ द्रव्य पिता की प्रसन्नता का भी कारण बनता है॥१३॥ पिता के देय को यदि पुत्र को दे दिया जाय तो वह पिता को करोड़ गुना आनन्द देता है। जब दैवी वाणी ने इस प्रकार कहा तब सब महर्षियों ने धर्म के रहस्य का निश्चय कर जैसा कि दैवी वाणी ने कहा था वैसा ही किया॥१४॥ (तबसे) इस संसार में यह बात फैल गई कि पुत्र को दिया हुआ पदार्थ पिता को दिया हुआ हो जाता है और पुत्र आदि के उपकार से पिता का जैसा उपकार होता है वैसा दूसरा कार्य करने से नहीं। पुत्र! यह बात भी संसार में प्रसिद्ध हो गई कि यहाँ दान देने से करोड़ गुना फल होता है। इस बात को दैवी वाणी ने फिर कहा कि इस पवित्र काण्व तीर्थ में आत्म-ग्लानि दूर हो जाती तथा महान् सुख की प्राप्ति होती है॥१५-१७½॥ मुनि काण्व के पुण्य के प्रभाव से वह तीनों लोकों के सब तीर्थों

मनोग्लानिनिवृत्तिश्च जायते च महत्सुखम्। पुनरप्याह सा वाणी काण्वेऽस्मिंस्तीर्थ उत्तमे ॥१८॥
अभवत्तन्महत्तीर्थं काण्वपुण्यप्रभावतः[1]। लोकत्रयाश्रयाशेषतीर्थेभ्योऽपि महाफलम् ॥१९॥
स्नानदानादिकं किंचिद्भक्त्या कुर्वन्समाहितः। फलं प्राप्स्यस्यशेषेण सर्वं कोटिगुणं मुने ॥२०॥
यत्किंचित्क्रियते चात्र स्नानदानादिकं नरैः। सर्वं कोटिगुणं विद्यात्कोटितीर्थं ततो विदुः ॥२१॥
यत्रैतद्वृत्तमाग्नेयं काण्वं पौत्रं हिरण्यकम्। वाणीसंज्ञं कोटितीर्थं कोटितीर्थफलं यतः ॥२२॥
कोटितीर्थस्य माहात्म्यमत्र वक्तुं न शक्यते। वाचस्पतिप्रभृतिभिरथ वाऽन्यैः सुरैरपि ॥२३॥
यत्रानुष्ठीयमानं हि सर्वं कर्म यथा तथा। गोदावर्याः प्रसादेन सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥२४॥
कोटितीर्थे द्विजाग्र्याय गामेकां य. प्रयच्छति। तस्य तीर्थस्य माहात्म्याद्गोकोटिफलमश्नुते ॥२५॥
तस्मिंस्तीर्थे शुचिर्भूत्वा भूमिदानं करोति य.। श्रद्धायुक्तेन मनसा स्यात्तत्कोटिगुणोत्तरम् ॥२६॥
सर्वत्र गौतमीतीरे पितॄणां दानमुत्तमम्। विशेषतः कोटितीर्थे तदनन्तफलप्रदम् ॥
अत्रैकन्यूनपञ्चाशत्तीर्थानि मुनयो विदुः ॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे [आदिब्राह्मे] तीर्थमाहात्म्ये काण्वाद्येकोनपञ्चाशत्तीर्थवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४८॥

गौतमीमाहात्म्य ऊनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

से अधिक फल देने वाला महान् तीर्थ हो गया। मुने! इस तीर्थ मे मनुष्य एकाग्र होकर भक्तिपूर्वक स्नान-दान आदि जो कुछ करता है उससे वह पूर्णरूप से करोड गुना फल पाता है ॥१८-२०॥ यहाँ मनुष्य स्नान, दान आदि जो कुछ करते हैं वे सब करोड गुना हो जाते है इसीलिये उसको कोटि-तीर्थ कहा जाता है ॥२१॥ जहाँ यह घटना हुई उसको आग्नेय, काण्व पौत्र, हिरण्यक वाणीतीर्थ और कोटितीर्थ कहा जाता है, क्योकि इससे कोटि तीर्थों का फल मिलता है ॥२२॥ कोटितीर्थ की महिमा का वर्णन बृहस्पति आदि अथवा दूसरे देवता भी नही कर सकते हैं ॥२३॥ उस तीर्थ मे जिस किसी प्रकार किये गये कर्म गोदावरी की कृपा से कोटि-गुण फल देने वाले हो जाते हैं ॥२४॥ जो उस कोटि तीर्थ मे किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को एक गौ देता है, उस तीर्थ की महिमा से वह कोटि गो-दान का फल पाता है ॥२५॥ उस तीर्थ मे पवित्र होकर जो श्रद्धायुत हृदय से भूमिदान करता है वह कोटिगुण अधिक फल पाता है ॥२६॥ सर्वत्र गौतमी-तट पर पितरो के निमित्त दिया हुआ दान उत्तम है, परन्तु कोटि-तीर्थ म दने से वह अनन्त फल देने वाला हो जाता है। मुनि लोग यहाँ के उनचास तीर्थों को भलीभाँति जानते हैं ॥२७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे कोटितीर्थ, काण्व आदि उनचास तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ अडतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४८॥

---

[1] क. ०भ्यतमं ततः।

अथैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

नारसिंहतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

नारसिंहमिति ख्यातं गङ्गाया उत्तरे तटे। तस्यानुभावं वक्ष्यामि सर्वरक्षाविधायकम् ॥१॥
हिरण्यकशिपुः पूर्वमभवद्बलिनां वरः। तपसा विक्रमेणापि देवानामपराजितः ॥२॥
हरिभक्तात्मजद्वेषकलुषीकृतमानसः। आविर्भूय सभास्तम्भाद्विश्वात्मत्वं प्रदर्शयन् ॥३॥
तं हत्वा नरसिंहस्तत्सैन्यमद्रावयत्तदा। सर्वान्हत्वा महादैत्यान्क्रमेणाऽऽजौ महामृगः ॥४॥
रसातलस्थाञ्शत्रूंश्च जित्वा स्वर्लोकमीयिवान्। तत्र जित्वा भुवं गत्वा दैत्यान्हत्वा नगस्थितान् ॥५॥
समुद्रस्थान्नदीसंस्थान्ग्रामस्थान्वनवासिनः। नानारूपधरान्दैत्यान्निजघान मृगाकृतिः ॥६॥
आकाशगान्वायुसंस्थाञ्ज्योतिर्लोकमुपागतान्। वज्रपाताधिकनखः समुद्धूतमहासटः ॥७॥
दैत्यगर्भस्राविगर्जो निर्जिताशेषराक्षसः। महानादैर्वीक्षितैश्च प्रलयानलसंनिभैः ॥८॥
चपेटैरङ्गविक्षेपैरसुरान्पर्यचूर्णयत्। एवं हत्वा बहुविधान्गौतमीमगमद्धरिः ॥९॥

अध्याय १४६

नारसिंह तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—गंगा के उत्तर तट पर नारसिंह नामक तीर्थ है, उसके सर्वरक्षक प्रभाव का वर्णन कर रहा हूँ। पूर्व समय मे हिरण्यकशिपु नामक एक श्रेष्ठ बलवान् राक्षस हुआ। वह अपनी तपस्या और पराक्रम के कारण देवो के लिये अजेय हो गया। अपने हरि-भक्त पुत्र के प्रति द्वेष रखने से उसका मन कलुषित हो गया। तब नृसिंह रूप धारण कर भगवान् ने सभा-भवन के स्तम्भ से अपने विश्व-व्यापक रूप को दिखलाते हुये, प्रकट होकर उस राक्षस को मार डाला। फिर उन्होने उस समय उसके सब सेना का भी सहार कर दिया। नृसिंह समर मे सब महादैत्यो को क्रमश मारकर और रसातल मे रहने वाले सब शत्रुओं को जीतकर स्वर्लोक मे पहुँच गये। वहाँ भी शत्रुओ को पराजित कर मूलोक मे चले आये। यहाँ सब पर्वतीय दैत्यो को मारकर उस सिंह-शरीरधारी ने समुद्र, नदी, ग्राम और वन मे रहने वाले एव नाना माया-रूप धारण करने वाले दैत्यो का वध किया। आकाशचारी, वायु मे विचरण करने वाले एव ज्योतिर्लोक मे गये हुये राक्षसो को वज्रपात से अधिक भयकर नख-प्रहार करने वाले, अपनी ग्रीवा के केसर को ऊपर फहराने वाले अपनी गर्जना से दैत्य-स्त्रियो के गर्भ को गिरा देने वाले और सम्पूर्ण राक्षसो को जीतने वाले नृसिंह ने अपनी भयकर गर्जना, प्रलयाग्नि के समान अपनी भयकर दृष्टि अङ्ग विक्षेप और क्रूर चपेटो से मार डाला। इस प्रकार अनेकों राक्षसो का वध कर हरि अपने पद-नख से उत्पन्न तथा मन और नयन दोनो को तृप्त करने वाली गौतमी के पास आये ॥१-९३॥ वहाँ अम्बर्य नामक दण्डकारण्य का

स्वपदाम्बुजसंभूता मनोनयननन्दिनीम्। 'तत्राम्बर्य इति ख्यातो दण्डकाधिपते' रिपु ॥१०॥
देवाना दुर्जयो योद्धा बलन महताऽऽवृत । तेनाभवन्महारौद्र । भीषण लोमहर्षणम्' ॥११॥
शस्त्रास्त्रवर्षण युद्ध हरिणा दैत्यसूनुना। निजघान हरि श्रीमांस्त रिपु ह्युत्तरे तटे ॥१२॥
गङ्गाया नारसिंह तु तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम। स्नानदानादिक तत्र सर्वपापप्रहादनम ॥१३॥
सर्वरक्षाकर नित्य जरामरणवारणम। यथा सुराणा सर्वेषा न कोऽपि हरिणा सम ॥१४॥
तीर्थानामप्यशेषाणा तथा तत्तीर्थमुत्तमम। तत्र तीर्थे नर स्नात्वा कुर्यान्नृहरिपूजनम ॥१५॥
स्वर्गे मर्त्ये तले वाऽपि तस्य किंचिन्न दुर्लभम। इत्याद्यष्टौ मुने तत्र महातीर्थानि नारद ॥१६॥
पृथक्पृथक्तीर्थकोटिफलमाहुर्मनीषिण । अश्रद्धयाऽपि यन्नाम्नि स्मृते सर्वाघसक्षय ॥१७॥
भवेत्साक्षान्नृसिंहोऽसौ सवदा यत्र सस्थित । तत्तीर्थसेवासजात फल कैरिह वर्ण्यते ॥१८॥
यथा न देवो नृहरेरधिक' क्वापि वर्तते। तथा नृसिंहतीर्थेन सम तीर्थं न कुत्रचित ॥१९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये नारसिंहाद्यष्टतीर्थवर्णन नामैकोन पञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय' ॥१४९॥

गौतमीमाहात्म्येऽशीतितमोऽध्याय ॥८०॥

स्वामी विख्यात शत्रु था। वह देवताओ से दुर्जेय योद्धा बहुत बडी सेना के साथ रहता था। उस दैत्य पुत्रके साथ भगवान् का अति भयकर लोमहर्षक युद्ध हुआ जिसम शस्त्रास्त्रो की भयकर वर्षा हुई अन्त मे श्रीमान हरि ने गौतमी के उत्तर तीर पर उस शत्रु को मार डाला। वह गौतमी तट का नारसिंह तीर्थ त्रिभुवन प्रसिद्ध है। उसम स्नान दान आदि से सब प्रकार के पाप ग्रह दूर होजाते हैं सब प्रकारसे रक्षा होती है तथा जरा-मृत्यु का भय दूर जाता है। जिस प्रकार सब देवो म नृसिंह क समान कोई नही है ऐसा प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों म वह उत्तम तीर्थ है। उस तीर्थ म स्नान कर जो मनुष्य नृसिंह की पूजा करता है उसके लिये स्वर्ग मर्त्य और पाताल म कोई भी वस्तु दुर्लभ नही है। मुने ! नारद ! एस आठ और महातीर्थ हैं। विद्वान कहते हैं कि व आठो पृथक पृथक कोटितीर्थ के बराबर फल देने वाले हैं। उनका अश्रद्धा स भी नाम-स्मरण करने मे सब पापो का क्षय हो जाता है। जहा सवदा व नृसिंह भगवान् साक्षात रूप से स्थित रहते हैं उस तीर्थ की सेवा करने स जो फल मिलता है उसका वर्णन कौन कर सकता है। जिस प्रकार नृसिंह देव स बढकर कोई देवता नहीं है उसी प्रकार नृसिंह तीर्थ के समान कोई तीर्थ भी कहीं नहीं है ॥१० १९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म नारसिंहादि अष्ट महातीर्थों का वर्णन नामक एक सौ उनचासवाँ अध्याय समाप्त ॥१४९॥

---

१ घ ०त्राबय। च ०त्राबज इ०। २ ङ ०पनी रि०। ३ क ०म्। युद्धं परमकं चैव हरेर्दै०।

अथ पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

पैशाचतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पैशाच तीर्थमाख्यातं गङ्गाया उत्तरे तटे। पिशाचत्वात्पुरा विप्रो मुक्तिमाप महामते ॥१॥
सुयवस्याऽऽत्मजो लोकेऽजीगर्तिरिति विश्रुतः। कुटुम्बभारदुःखार्तो दुर्भिक्षेण तु पीडितः ॥२॥
मध्यमं तु शुनःशेपं पुत्रं ब्रह्मविदां वरम्। विक्रीतवान्क्षत्रियाय वधाय बहुलैर्धनैः ॥३॥
किं नामाऽऽपद्गतः पापं नाऽऽचरत्यपि पण्डितः। शमितृत्वे धनं चापि जगृहे बहुलं मुनिः ॥४॥
विदारणार्थं च धनं जगृहे ब्राह्मणाधमः। ततोऽप्रतिसमाधेयमहारोगनिपीडितः ॥५॥
स मृतः कालपर्याये नरकेष्वथ पातितः। भोगादृते न क्षयोऽस्ति प्राक्तनानामिहांहसाम् ॥६॥
किंकरैर्यमवाक्येन बहुयोन्यन्तरं गतः। ततः पिशाचो ह्यभवद्दारुणो दारुणाकृतिः ॥७॥
शुष्ककाष्ठेष्वथारण्ये निर्जले निर्जने तथा। ग्रीष्मे ग्रीष्मदवव्याप्ते क्षिप्यते यमकिंकरैः ॥८॥
कन्यापुत्रमहीवाजिगवां विक्रयकारिणः। नरकान्न निवर्तन्ते यावदाभूतसंप्लवम् ॥९॥

अध्याय १५०

पैशाचतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले--गंगा के उत्तर तट पर पैशाच नामक एक उत्तम तीर्थ है। महामति ! बहुत पहले उस स्थान पर एक विप्र ने पिशाच योनि से मुक्ति पाई थी। सुयव का लोक में अजीगर्ति नाम से प्रसिद्ध पुत्र था। परिवार के भार से दुःखी और दुर्भिक्ष से पीडित होकर उसने अपने ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ मँझले पुत्र शुनःशेप को बहुत धन लेकर क्षत्रिय के हाथ वध करने के लिये बेच दिया था। पंडित भी आपत्ति में पड़ने पर कौन ऐसा पाप है जो नहीं करते हैं। मुनि ने बलि करने के लिये भी बहुत सा धन ले लिया। उस अधम ब्राह्मण ने अपने पुत्र को चीर देने के लिये धन लिया था इसलिये वह एक असाध्य रोग से पीडित हो गया। थोड़े दिनों बाद उसकी मृत्यु हो गई। वह नरक में गिरा दिया गया। यहां के किये हुये पापों का क्षय पापभोग के अतिरिक्त और किसी प्रकार से नहीं होता। यम के आदेशानुसार दूतों ने उसको भिन्न भिन्न योनियों में पहुँचाया। तदनन्तर अन्त में वह भयङ्कर आकृति वाला भयानक पिशाच हुआ॥१-७॥ यमदूत उसको जंगल में सूखे काठों पर निर्जल और निर्जन स्थान में और ग्रीष्मऋतु में ग्रीष्म की गर्मी से जलते हुये स्थानों में ढकेल देते थे। सच है कन्या पुत्र पृथिवी घोड़ा और गाय बेचने वाले व्यक्ति प्रलयकाल तक नरक से उद्धार नहीं पाते हैं। अपने किये हुए पापों के परिणामस्वरूप भया

---

१ च. ॰यवस्या॰।

स्वकृताघविपाकेन दारुणैर्यमकिंकरैः। सघाते पच्यमानोऽसौ दरोदोच्चै कृत स्मरन् ॥१०॥
पथि गच्छन्कदाचित्स जीगर्तेर्मध्यम सुत । शुश्राव रुदतो वाणीं पिशाचस्य मुहुर्मुहु ॥११॥
पुत्रक्रेतुर्ब्रह्महन्तुर्जोगर्तस्तु । पितुस्तदा। पापिन पुत्रविक्रेतुर्ब्रह्महन्तु पितुश्च ताम् ॥१२॥
शुन शेपस्ततोवाच को भवानतिदु खित । जीगर्तिरब्रवीद्दु खाच्छुन शेपपिता ह्यहम् ॥१३॥
पापीयसीं क्रिया कृत्वा योनि प्राप्तोऽस्मि दारुणाम्। नरकेष्वथ पक्वश्च पुन प्राप्तोऽन्तरालकम् ॥
ये ये दुष्कृतकर्माणस्तेषा तेषामिय गति ॥१४॥

जीगर्तिपुत्रस्तमुवाच दु खात्सोऽह सुतस्ते मम दोषेण तात
विक्रीत्वा मा नरकानेवमाप्तस्तत करिष्ये स्वर्गत त्वामिदानीम् ॥१५॥
एव प्रतिज्ञाय स गाधिपुत्रपुत्रत्वमाप्तोऽथ मुनिप्रवीर
गङ्गामभिध्याय पितुश्च लोकाननुत्तमानीहमानो जगाम ॥१६॥
अतोपदु खानलधूपितानां, निमज्जता मोहमहासमुद्रे
शरीरिणा नान्यदहो त्रिलोक्यामालम्बन विष्णुपदीं विहाय ॥१७॥
एव विनिश्चित्य मुनिर्महात्मासमुद्दिधीर्षु पितर स दुर्गते ।
शुचिस्ततो गौतमीमाशु गत्वा, तत्र स्नात्वा सस्मरञ्छम्भुविष्णू ॥१८॥
ददौ जल प्रेतरूपाय पित्रे, पिशाचरूपाय सुदु खिताय ।
तद्दानमात्रेण तदैव पूतोऽजीगर्तिरावाप वपु सुपुण्यम् ॥१९॥

कर यमदूतो की यातना से पीडित वह अपने पूर्व कृत्यो का स्मरण करके चिल्ला कर रोता था। किसी दिन जीगर्ति का मँझला पुत्र रास्ते में जा रहा था। उसने पुत्रविक्रय करने वाले ब्रह्महत्या करने वाले पापी पिता जीगर्ति के—जो पिशाच हो गया था—रोने की ध्वनि सुनी। तब शुन शेप ने पूछा कि आप कौन है जो इतने दु खी हैं। जीगर्ति ने दु खित होकर कहा मैं शुन शेप का पिता हूँ। पापकर्मों के करने से दारुण योनि को प्राप्त हुआ हूँ। नाना नरको मे मैं पीडा पाता रहा अब पुन उनसे छुटकारा पाकर पिशाच बना हू। जो पाप कर्म करने वाले होते हैं उनकी इसी प्रकार दुर्गति होती है ॥८ १४॥

यह सुनकर जीगर्ति के पुत्र ने दु खी होकर कहा— तात ! मैं आपका वही पुत्र हू। मेरे ही दोष से मुझको बेचकर आप इस प्रकार नरक मे गिराये गये। अब मै अभी आपको स्वर्ग पहुचाऊगा ॥१५॥ इस प्रकार प्रतिज्ञा कर विश्वामित्र का दत्तक पुत्र वह मुनिप्रवीर अपने पिता को उत्तम लोक मे पहुचाने की इच्छा से गगा का स्मरण कर (उसी की ओर) चल पड़ा ॥१६॥ अहो ! इस त्रिलोकी मे समस्त दु ख रूपी अग्नि मे जलने वाले तथा महामोह रूपी समुद्र मे डूबने वाले देहधारियो का गगा को छोडकर और कोई सहायक नही है ॥१७॥ इस प्रकार का निश्चय कर वह पवित्र महात्मा मुनि अपने पिता को दुर्गति से छुडाने के लिये शीघ्र ही गौतमी के पास पहुँच गया। उसमे स्नान कर उसने शम्भु और विष्णु का स्मरण किया तथा अतिदु खित, पिशाचरूप अपने प्रेत पिता को जल दिया। जल देते ही उसी समय अजीगर्ति पवित्र हो कर पुण्य शरीर पा गया और दस हजार सूर्य के समान चमकता

विमानयुक्त सुरसघजुष्ट जिष्णो पद प्राप सुतप्रभावात् ।
गङ्गाप्रभावाच्च हरेश्च शभोर्विधातुरर्कायुततुल्यतेजा ॥२०॥
तत प्रभृत्येतदतिप्रसिद्ध पशाचनाश च महागद च ।
महान्ति पापानि च नाशमाशु प्रयान्ति यस्य स्मरणेन पुसाम ॥२१॥
तीर्थस्य चद गदित तवाद्य, माहात्म्यमेतत्त्रिशतानि यत्र
तीर्थान्यथान्यानि भवन्ति भुक्तिमुक्तिप्रदायीनि किमन्यदत्र ॥२२॥
सवसिद्धिदमाख्यातमित्याद्यत्र शतत्रयम्। तीर्थानां मुनिजुष्टाना स्मरणादप्यभीष्टदम ॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पैशाचादिशतत्रयतीर्थवर्णन नाम पञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥१५०॥
गौतमीमाहात्म्य एकाशीतितमोऽध्याय ॥८१॥

अथैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय

निम्नभेदतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

निम्नभेदमिति ख्यात सवपापप्रणाशनम्। गङ्गाया उत्तरे पारे तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम ॥१॥

हुआ वह गगा विष्ण शकर और ब्रह्मा क प्रभाव से अपन पुत्र की कृपा स विमान पर आरूढ होकर देवगणो के साथ सम्मानपूर्वक विष्णलोक को चला गया। तब से यह पिशाचयोनि से मक्त करने वाला तथा महारोगो को छुडाने वाला तीर्थ परम प्रसिद्ध हो गया जिसके स्मरण मात्र से मनष्यो के महान पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। आज इस तीथ के माहात्म्य को--जहा पर भक्ति मक्ति प्रदान करने वाले दूसरे और तीन सौ तीथ हैं--तुमसे कह दिया अब और अधिक क्या कहू। ये सब सिद्धियो को देने वाले तीन सौ तीथ मुनियो के भी अति प्रिय और सेव्य हैं। इनके स्मरण से भी मनोरथ सिद्ध हो जाता है ॥१८ २३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे पशाचतीथ आदि तीन सो तीर्थों का वणन नामक एक सौ पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥१५०।

अध्याय १५१

निम्नभेद तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा न कहा -गगा के उत्तर तट पर सब पापो को नष्ट करने वाला त्रिभवन प्रसिद्ध निम्नभेद नामक

---

१ घ च ०नाशाय म०। २ घ ड च तत्र।

यस्य संस्मरणेनापि सर्वपापक्षयो भवेत्। वेदद्वीपश्च' तत्रैव दर्शनाद्वेदविद्भवेत् ॥२॥
उर्वशीं चकमे राजा ऐलः परमधार्मिकः। को न मोहमुपायाति विलोक्य मदिरेक्षणाम् ॥३॥
सा प्रायाद्यत्र राजाऽसौ घृतं स्तोकं समश्नुते। आनग्नदर्शनात्कृत्वा तस्याः कालावधिं नृपः ॥४॥
तां स्वीचकार ललनां यूनां रम्यां नवां नवाम्। सुप्तायां शयने तस्या समुत्तस्थौ पुरूरवा ॥५॥
विलोक्य तं विवसनं तदैवासौ विनिर्गता। विद्युच्चञ्चलचित्तानां क्व स्थैर्यं ननु योषिताम् ॥६॥
ईक्षांचक्रे स शर्वर्यां विवस्त्रा विस्मितो महान्। एतस्मिन्नन्तरे राजा युद्धायागाद्रिपून्प्रति ॥७॥
ताञ्जित्वा पुनरप्यागाद्देवलोकं सुपूजितम्। स चाऽऽगत्य महाराजो वसिष्ठाच्च पुरोधसः ॥८॥
उर्वश्या गमनं श्रुत्वा ततो दुःखसमन्वितः। न जुहोति न चाश्नाति न शृणोति न पश्यति ॥९॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र मृतावस्थं नृपोत्तमम्। बोधयामास वाक्यैश्च हेतुभूतैः पुरोहितः ॥१०॥

वसिष्ठ उवाच

सा मृताऽद्य महाराज मा व्यथस्व महामते। एवं स्थित तु मा त्वां वै अशिवाः स्पृश्युराशुगाः ॥११॥
न वै स्त्रैणानि जानीषे हृदयानि महामते। शालावृकाणां यादृंशि तस्मात्त्वं भूप मा शुचः ॥१२॥
को नाम लोके राजेन्द्र कामिनीभिर्न वञ्चितः। वञ्चकत्वं नृशंसत्वं चञ्चलत्वं कुशीलता ॥१३॥

एक तीर्थ है, जिसके स्मरण से भी सब पापों का नाश हो जाता है। वहीं पर वेदद्वीप भी है जिसके दर्शनसे मनुष्य वेदज्ञ हो जाता है। एक बार परम धार्मिक राजा पुरूरवा उर्वशी पर आसक्त हो गया। कौन ऐसा है जो मतवाले नेत्र वाली कामिनी को देखकर मोहवश नहीं हो जाता। जहां राजा अल्प परिमाण में घृत का पान कर रहा था वहाँ वह पहुँच गई। उसके साथ नग्न न देखने तक रहने की प्रतिज्ञा (शर्त) कर राजा ने युवकों को रम्य लगने वाली उस युवती ललना को स्वीकार कर लिया। एक दिन पुरूरवा शय्या पर सोई हुई उसके सामने ही उठ गया। राजा को वस्त्ररहित देखकर वह उसी समय चली गई। विद्युत् के समान चंचल चित्त वाली स्त्रियों के जीवन में स्थायित्व कहाँ? उस रात्रि में नग्न पुरूरवा अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर इधर उधर देखने लगा। इसी समय राजा को शत्रुओं से युद्ध करने के लिये जाना पड़ा। उनको पराजित कर वह पुनः अतिपूजित देवलोक में गया। वहाँ से आने पर राजा पुरोहित वसिष्ठ के मुख से उर्वशी का पलायन सुनकर दुःखी हो गया। (अतएव) वह न तो हवन करता था, न खाता था, न कुछ सुनता था और न देखता ही था। इस बीच पुरोहित वसिष्ठ उस मृतक तुल्य राजा को उपयुक्त रहस्यमय वाक्यों से समझाने लगे ॥१-१०॥

वसिष्ठ बोले—महाराज! आज वह मर गई। महाबुद्धिमान्! उसके लिये व्यथा मत करो। इस प्रकार अवस्थित तुमको शीघ्र आने वाले अमंगल स्पर्श न करें (अर्थात् अशुभ भावनायें न व्याप्त हों)। महामति! शालावृक (कुक्कुर) की जैसी मनोवृत्ति वाली स्त्रियों के हृदय के मर्म को तुम नहीं जानते हो। भूप! अतः तुम शोक मत करो। राजेन्द्र! इस लोक में कौन ऐसा व्यक्ति है जो कामिनियों से ठगा नहीं जाता है? जिनकी

---

१. ङ ०पस्य त०।

इति स्वाभाविकं यासां ताः कथं सुखहेतवः। कालेन को न निहतः कोऽर्थी गौरवमागतः ॥१५॥
श्रिया न भ्रामितः को वा योषिद्भिः को न खण्डितः। स्वप्नमायोपमा राजन्मदविप्लुतचेतसः ॥१४॥
सुखाय योषितः कस्य ज्ञात्वैतद्विज्वरो भव। विहाय शंकरं विष्णुं गौतमीं वा महामते ॥
दु:खिनां शरणं नान्यद्विद्यते भुवनत्रये ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा ततो राजा दुःखं संहृत्य यत्नतः। गौतम्या मध्यसस्योऽसावैलः परमधार्मिकः ॥१७॥
तत्र चाऽऽराधयामास शिवं देवं जनार्दनम्। ब्रह्माणं भास्करं गङ्गां देवानन्यांश्च यत्नतः ॥१८॥
यो विपन्नो न तीर्थानि देवताश्च न सेवते। स कालवशगो[1] जन्तुः कां दशामुपयास्यति ॥१९॥
तदीश्वरैकशरणो गौतमीसेवनोत्सुकः। परां श्रद्धामुपगतः संसारास्यापराङमुखः ॥२०॥
ईजे यज्ञांश्च बहुलानृत्विग्भिर्बहुदक्षिणान्। वेदद्वीपोऽभवत्तेन यज्ञद्वीपः स उच्यते ॥२१॥
पौर्णमास्यां तु शर्वर्यां तत्राऽऽयाति सदोर्वशी। तस्य द्वीपस्य यः कुर्यात्प्रदक्षिणमथो नरः ॥२२॥
प्रदक्षिणीकृता तेन पृथिवी सागराम्बरा। वेदानां स्मरणं तत्र यज्ञानां स्मरणं तथा ॥२३॥
सुकृती [१] तत्र यः कुर्याद्वेदयज्ञफलं लभेत्। ऐलतीर्थं तु तज्ज्ञेयं तदेव च पुरूरवम् ॥२४॥
वासिष्ठं चापि तत्तु स्यान्निम्नभेदं तदुच्यते। ऐले राज्ञि न किंचित्स्यान्निम्नं सर्वेषु कर्मसु ॥२५॥

धूर्तता, क्रूरता, चञ्चलता एवं अनुदारता ही प्रकृति है वे किस प्रकार सुख का कारण बन सकती है? काल ने किसको नष्ट नहीं किया? किस याचक ने गौरव प्राप्त किया है? कौन लक्ष्मी के मद में अपने को भूल न गया? स्त्रियों ने किसको धत्ता नहीं बताया? राजन्! मद से भ्रष्ट चित्त वाले किस मनुष्य के लिये स्वप्न माया के समान स्त्रियाँ सुख का कारण बनी हैं? इस बात को समझ कर तुम मोह को छोड दो। महामते! केवल शंकर, विष्णु और गौतमी को छोडकर इस त्रिभुवन में दु:खियों का सहायक कोई नहीं है।।११-१६।।

ब्रह्मा बोले—इन बातों को सुनकर राजा बडी तत्परता से अपने दु:खों को कमाकर गौतमी के तट पर गया। उसके बीच में स्थित होकर परम धार्मिक पुरूरवा ने शिव, भगवान् विष्णु ब्रह्मा सूर्य, गंगा एवं अन्यान्य देवों की भक्ति पूर्वक आराधना की। जो विपत्ति-ग्रस्त मानव तीर्थ अथवा देवताओं की सेवा नहीं करता, वह मृत्यु के समीप आने पर किस अवस्था को प्राप्त करेगा या क्या कर सकेगा। वह राजा एकमात्र ईश्वर का अनन्य भक्त, गौतमी की सेवा के लिये उत्सुक एवं संसार की माया से विमुख होकर अत्यन्त श्रद्धालु बन गया। उसने ऋत्विजों के साथ बहुत से यज्ञों का अनुष्ठान किया, जिनमें अधिक दक्षिणायें दीं। इस कारण वह स्थान वेदद्वीप नाम से प्रसिद्ध हुआ। यज्ञद्वीप भी उसको कहा जाता है। वहाँ सदा पूर्णिमा की रात्रि में उर्वशी आती है। उस द्वीप की जो *व्यक्ति प्रदक्षिणा करता है, उसने मानो समुद्र समेत पृथिवी की प्रदक्षिणा कर ली। जो सुकृती* वहाँ वेदों और यज्ञों का स्मरण करता है, वह वेद-यज्ञ का फल प्राप्त करता है। उसको ऐलतीर्थ कहा जाता है। पुरूरवा और

१घ ङ. च. ०लद्रुतवशगः कां।

यदेतन्निम्नमुर्वश्यां सर्वभावेन वर्तनम्। तच्चापि भेदितं निम्नं वसिष्ठेन च गङ्गया ॥२६॥
निम्नभेदमभूत्तेन दृष्टादृष्टेष्टसिद्धिदम्। तत्र सप्त शतान्याहुस्तीर्थानि गुणवन्ति च ॥२७॥
तेषु स्नानं च दानं च सर्वक्रतुफलप्रदम्। स्नानं कृत्वा निम्नभेदे यः पश्यति सुरानिमान् ॥२८॥
इह चामुत्र वा निम्नं न किंचित्तस्य विद्यते। सर्वोन्नतिमवाप्यासौ मोदते दिवि शक्रवत् ॥२९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये निम्नभेदादिसप्तशततीर्थवर्णनं
नामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५१॥
गौतमीमाहात्म्ये द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥

अथ द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

आनदतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

नन्दीतटमिति ख्यातं तीर्थं वेदविदो विदुः। तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद ॥१॥
अत्रिपुत्रो महातेजाश्चन्द्रमा इति विश्रुतः। सर्वान्वेदांश्च विधिवद्धनुर्वेदं यथाविधि ॥२॥

वासिष्ठ भी वहीं है। निम्नभेद उसको इसलिये कहते हैं कि राजा ऐल के शासन-काल में सब कामों में निम्न भावना नहीं थी। उर्वशी में सब प्रकार से आसक्त हो जाना 'निम्न' था। उस निम्न को भी वसिष्ठ ने गंगा के द्वारा दूर कर दिया। अतः वह तीर्थ निम्न-भेद कहा जाता है, जो दृष्ट, अदृष्ट और इष्ट (मनोरथ) की सिद्धि देने वाला है। वहाँ सात सौ और भी गुणशाली (पुण्यप्रद) तीर्थों का होना कहा गया है। उनमें स्नान और दान से सब यज्ञों का फल मिलता है। जो निम्न भेद तीर्थ में स्नान कर इन (पहले कहे गये) देवों का दर्शन करता है, उसको इस लोक में अथवा परलोक में किसी प्रकार का निम्न (अभाव) नहीं रह जाता है। वह सब प्रकार की उन्नति प्राप्त कर स्वर्ग में इन्द्र के समान आनन्द प्राप्त करता है ॥१७-२९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में निम्नभेद आदि सात सौ तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ इक्यावनवाँ
अध्याय समाप्त ॥१५१॥

अध्याय १५२

आनन्दतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—नन्दीतट नामक तीर्थ को वेदवेत्ता लोग जानते हैं। नारद! मैं उसके प्रभाव का वर्णन कर रहा हूँ, तुम ध्यान से सुनो। महातेजस्वी अत्रि-पुत्र चन्द्रमा नाम से प्रसिद्ध है। महामते! गुरु बृहस्पति से सब वेदों, धनुर्वेद और अन्य विद्याओं का यथाविधि अध्ययन कर उस चन्द्रमा ने बृहस्पति से कहा कि मैं गुरुपूजा

अधीत्य जीवात्सर्वाश्च विद्यास्तास्ता महामते। गुरुपूजां करोमीति जीवमाह स चन्द्रमा ॥
बृहस्पतिस्तदा प्राह चन्द्र शिष्य मुदान्वित ॥३॥

बृहस्पतिरुवाच

मम प्रिया तु जानीते तारा रतिसमप्रभा ॥४॥

ब्रह्मोवाच

प्रष्टुं तां च तदा प्रायादन्तर्वेश्म स चन्द्रमा। तारां तारामुखीं दृष्ट्वा जगृहे तां करेण स ॥५॥
स्ववेश्म प्रति तां लोभाद्‌बलादाकर्षयत्तदा। तावद्धर्मनिधिर्ज्ञानी मतिमान्विजितेन्द्रिय ॥६॥
यावन्न कामिनीनेत्रवागुराभिर्निबध्यते। विशेषतो रह सस्थां कामिनीमायतेक्षणाम् ॥७॥
निरीक्ष्य न मनो याति कस्य कामेवु वश्यताम्। अत एवान्यपुरुषदर्शनं न कदाचन ॥८॥
कुलवध्वा रह कार्यं भीतया शीलविप्लुते। विज्ञाय तत्परिजनात्सहसोत्थाय निर्गत ॥९॥
दृष्ट्वा तद्दुष्कृत कर्म बृहस्पतिरुदारधी। शशाप कोपाच्चाऽऽक्षिप्य वाग्भिर्विप्रियकारिभि ॥१०॥
पराभिभूतामात्मीय कान्तां क सोढुमीश्वर। युयुधे तेन जीवोऽपि देवश्चन्द्रमसा रुषा ॥११॥
न शापैर्हन्यते चन्द्रो नाऽऽयुधं सुरमन्त्रितं। बृहस्पतिप्रणीतैश्च न मन्त्रैर्हन्यते शशी ॥१२॥
तदा चन्द्रस्तु तां तारां नीत्वा सस्थाप्य मन्दिरे। बुभुजे बहुवर्षाणि रोहिणीं चातुलोभय ॥१३॥
न जीयेत तदा देवैर्न कोपै शापमन्त्रकै। न राजभिर्न ऋषिभिर्न साम्ना भेददण्डनै ॥१४॥

करूँगा। तब बृहस्पति प्रसन्न होकर शिष्य चन्द्रमा से बोले ॥१ ३॥

बृहस्पति ने कहा—रति के समान सुन्दरी मेरी पत्नी तारा से इस विषय म पूछ लो वही जानती है ॥४॥

ब्रह्मा बोले—वह चन्द्रमा गुरु पत्नी से पूछने के लिये अत पुर मे गया। उसने तारा के समान मुख वाली तारा को देखकर उसको हाथ से पकड लिया और मोहवश उसको हठात् अपने निवासस्थान की ओर खींच ले गया। मनुष्य तब तक ही धैर्यशील ज्ञानी बुद्धिमान् और जितेन्द्रिय रहता है जब तक वह कामिनी के नयनरूपी पाश से बाँधा नहीं जाता अर्थात कटाक्ष से आकृष्ट नहीं होता। विशेष रूप से एकान्त म स्थित मृगनयनी कामिनी को देखकर किसका मन काम के वशीभूत नहीं हो जाता है ? इसलिये कुल-वधुओ को शील च्युति होने के भय से एकान्त मे कभी भी परपुरुष का दर्शन नहीं करना चाहिये। अपने स्वजनो से इस बात का पता पाकर उदार बुद्धि वाले गुरु सहसा उठकर बाहर गए और उस दुष्कर्म को देखकर अतिकुपित हो अत्यन्त अपमानजनक शब्दो से उन्होने चन्द्रमा को बुरा भला कहकर शाप दे दिया। कौन ऐसा व्यक्ति है जो अपनी स्त्री को दूसरे से अभिभूत (अपमानित) देखकर उसको सहने म समर्थ हो सकता है। इसलिये बृहस्पति भी क्रोध से उस चन्द्रमा के साथ युद्ध करने लगे। चन्द्रमा का शाप से कुछ नही हुआ देवो के आमन्त्रित अस्त्रो से भी उसका कुछ नहा बिगडा और न तो वह चन्द्रमा बृहस्पति द्वारा प्रयुक्त मन्त्रो से ही मारा गया। तब वह अपराजित चन्द्रमा उस तारा को लेकर चला गया। अपने घर मे उसको रखकर रोहिणी के सहित उसका बहुत वर्षो तक उपभोग करता रहा ॥५ १३॥ जब वह चन्द्रमा देवो क्रोधो और शाप मन्त्रो से भी न जीता जा सका और न राजाओ ऋषियो साम भेद दण्ड आदि से ही वश मे आ सका तथा बृहस्पति सब प्रकार के प्रयत्नो से भी अपनी

१घ ङ च जीवेन। २घ च तथा।

यदा भार्यां न लेभेऽसौ गुरुः सर्वप्रयत्नतः। सर्वोपायक्षये जीवस्तदा नीतिमथास्मरत् ॥१५॥
अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठतः। स्वार्थमुद्धरते प्राज्ञः स्वार्थभ्रंशो हि मूर्खता ॥१६॥
साध्यं केनाप्युपायेन जानद्भिः पुरुषैः फलम्। वृथाभिमानिनः शीघ्रं विपद्यन्ते विमोहिताः ॥१७॥
एवं निश्चित्य मेधावी शुक्रं गत्वा न्यवेदयत्। तमागतं कविर्ज्ञात्वा संमानेनाभ्यनन्दयत् ॥१८॥
उपविष्टं सुविश्रान्तं पूजितं च यथाविधि। पर्यपृच्छद्दैत्यगुरुस्तदागमनकारणम् ॥१९॥
गृहागतस्य विमुखा शत्रवोऽप्युत्तमा न हि। तस्मै स विस्तरेणाऽऽह भार्याहरणमादितः ॥२०॥
बृहस्पतेस्तदा वाक्यं श्रुत्वा कोपान्वितः कविः। अपराधं तु चन्द्रस्य मेने शिष्यस्य नारद ॥
अतिक्रममिमं श्रुत्वा कोपात्कविरथाब्रवीत्   ॥२१॥

शुक्र उवाच

तदा भोक्ष्ये तदा पास्ये तदा स्वप्स्ये तदा वदे। यदाऽऽनये प्रियां भ्रातस्तव भार्यां परार्दिताम् ॥२२॥
तामानीय भुवं पूज्य चन्द्रं शप्त्वा गुरुद्रुहम्। पश्चाद्भोक्ष्ये महाबाहो[1] शृणु वाचं ग्रहेश्वर ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा स जीवेन[2] दैत्याचार्यो जगाम ह। शिवमाराध्य यत्नेन परं सामर्थ्यमाप्तवान् ॥२४॥

भार्या को न पा सके और उनके सब उपाय नष्ट से हो गये तब उन्होंने नीति का अनुसरण किया कि बुद्धिमान् मनुष्य अपमान को आगे करके और मान को पीछे करके अपने स्वार्थ को सिद्ध करे। क्योंकि स्वार्थ हानि करना सबसे बड़ी मूर्खता है। ज्ञानी पुरुषों को किसी भी उपाय से अपने फल को प्राप्त करना चाहिये। वृथाभिमान करने वाले मूर्ख मोहवश शीघ्र ही विपत्तियों में फँस जाते हैं। इस प्रकार का निश्चय कर मेधावी गुरु ने शुक्र के पास जाकर निवेदन किया। शुक्र बृहस्पति को अपना अतिथि जानकर उनका सम्मान के साथ अभिनन्दन किया। यथ विधि उनकी पूजा कर सुखासीन गुरु से दैत्य गुरु शुक्र ने उनके आने का कारण पूछा। क्योंकि घर पर आये हुए शत्रु का भी विमुख होकर लौट जाना अच्छा नहीं है। बृहस्पति ने शुक्र से स्त्री-हरण की कथा आदि से अन्त तक कह सुनाई। नारद! उस समय बृहस्पति से ऐसी बातें सुनकर कवि कुपित हो गये और शिष्य चन्द्र का अपराध उन्होंने स्वीकार किया। मर्यादा का यह अतिक्रमण देखकर कवि ने क्रोध से व्याकुल होकर कहा ॥१८ २१॥

शुक्र बोले—भाई! मैं तब खाऊँगा, तब पिऊँगा तब सोऊँगा और तभी कुछ कहूँगा जब कि तुम्हारी अन्यो पहृत प्रिय भार्या को ले आऊँगा। महाबाहु! शंकर की पूजाकर गुरुद्रोही चन्द्र को शाप देकर ही मैं खाऊँगा। ग्रहों के स्वामी! मेरी प्रतिज्ञा सुनो ॥२२ २३॥

ब्रह्मा बोले—दैत्याचार्य शुक्र इस प्रकार बृहस्पति से कहकर चले गये और बड़ी तपस्या से शिव की आराधना कर उन्होंने भक्ति से पूजित शंकर से विविध वरों को पाकर परमात्म सामर्थ्य प्राप्त किया। इस

१घ •र्थमम्युद्धरेत्प्राज्ञ। २घ •ऽपि यामि यत्र महेश्वरः। ए•। ३ड. जीवंत दै•।

वरानवाप्य विविधाञ्छकरादभावपूजितात। शिवप्रसादात्किं नाम देहिनामिह दुर्लभम्॥२५॥
जगाम शुक्रो जीवेन तारया यत्र चन्द्रमा। वतते त शशापोच्चै शृणु त्व चन्द्र मे वच॥२६॥
यस्मात्पापतर कर्म त्वया पाप मदात्कृतम। क्रुष्ठी भूयास्ततश्चन्द्र शशापैव रुषा कवि॥२७॥
कविशापप्रदग्धोऽभूत्तदैव मृगलाञ्छन। प्रापु क्षय न के नाम गुरुस्वामिसखिद्रुह॥२८॥
तत्याज तां स चन्द्रोऽपि ता तारां जगृहे कवि। शुक्रोऽपि देवानाहूय ऋषीन्पितृगणास्तथा॥२९॥
नदीर्नदांश्च विविधानोषधीश्च पतिव्रता। तत सप्रष्टुमारेभे तारावृत्तविनिश्चयम्॥३०॥
तत श्रुति सुरानाह गौतम्या भक्तितस्त्वियम। स्नान करोतु जीवेन तारा पूता भविष्यति॥३१॥
रहस्यमेतत्परम न कथ्य यस्य कस्यचित। सर्वास्वपि दशास्वेह शरण गौतमी नृणाम्॥३२॥
तथाऽकरोच्चैव तारा भर्त्रा स्नान यथाविधि। पुष्पवृष्टिरभूत्तत्र जयशब्दो व्यवर्तत॥३३॥
पुनर्व देवा अददु पुनर्मनुष्या उत। राजान[1] सत्य कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर्ददु॥३४॥
पुनर्दत्वा ब्रह्मजाया कृता देवैरकल्मषाम्। सर्व क्षेममभूत्तत्र तस्मात्तीर्थं महामुने॥३५॥
तदभूत्सकलाघौघध्वसन सर्वकामदम। आनन्द क्षेममभवत्सुराणामसुरारिणाम॥३६॥
बृहस्पतेश्च शुक्रस्य तारायाश्च विशेषत। परमानन्दमापन्नो गुरुर्गङ्गामभाषत॥३७॥

ससार मे शिव की कृपा से देहधारियो के लिये कौन सा पदार्थ दुर्लभ है? शुक्र गुरु के साथ वहाँ गये जहाँ तारा के साथ चन्द्रमा रहता था। उन्होने उसको उच्च स्वर से शाप दिया— चन्द्र! तुम मेरी बात सुनो—जिस मद से तुमने पापकर्म किया है इसके परिणामस्वरूप तुम कोढी हो जाओ। इस प्रकार कवि ने क्रोधपूर्वक चन्द्रमा को शाप दे दिया। मृग चिह्न से युक्त चन्द्र कवि के शाप से उसी समय दग्ध हो गया। सत्य है कि गुरु स्वामी और मित्रो से द्रोह करने वाले कौन ऐसे हैं जो नष्ट नही हो गये? उस चन्द्रमा ने भी उस तारा को छोड दिया। कवि ने उस तारा को ले लिया। शुक्र ने भी सब देवो ऋषियो पितरो नदियो नदो विविध ओषधियो और पतिव्रता स्त्रियो से तारा के कर्मो के प्रतीकार (प्रायश्चित्त) पूछना प्रारम्भ किया। तब श्रुति ने देवो से कहा— यह गौतमी मे गुरु के सहित भक्तिपूर्वक स्नान करे। उससे तारा पवित्र हो जायगी।' यह परम गुप्त रहस्य है। जिस किसीसे इसको नही कहना चाहिए। प्रत्येक अवस्था मे गौतमी मनुष्य मात्र के लिये एकमात्र शरण है तदनुसार तारा ने यथा विधि भर्ता के साथ स्नान किया। इस पर वहा आकाश से पुष्पवष्टि हुई और चारो ओर जय ध्वनि होने लगी। पुन देवो ने उसको शुद्धता का आशीर्वाद दिया। फिर मनुष्यो ने पुन राजाओ ने उस ब्रह्म भार्या को सत्य घोषित करते हुए दे दिया। फिर इस प्रकार देवताओ ने उस ब्राह्मण-पत्नी को निष्पाप बना कर देवगुरु को सौंप दिया। महामुनि! उस स्थान पर सब कल्याण ही हुआ इसलिये वह स्थान सब पापो का ध्वस करने वाला और सब प्रकार के मनोरथ सिद्ध करने वाला तीर्थ हो गया। वहाँ असुर द्रोही देवो बृहस्पति शुक्र और विशेष रूप से तारा को परम आनन्द और क्षेम प्राप्त हुआ। परम आनन्द से युक्त गुरु ने गगा से कहा॥२४ ३७॥

---

[1] क ङ राजान।

गुरुरुवाच

त्वं गौतमि सदा पूज्या सर्वेषामपि मुक्तिदा। विशेषतस्तु सिंहस्थे मयि त्रैलोक्यपावनी ॥३८॥
भविष्यसि सरिच्छ्रेष्ठे सर्वतीर्थैः समन्विता। यानि कानि च तीर्थानि स्वर्गमृत्युरसातले॥
त्वां स्नातुं तानि यास्यन्ति मयि सिंहस्थितेऽम्बिके ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

धन्यं यशस्यमायुष्यमारोग्यश्रीविवर्धनम्। सौभाग्यैश्वर्यजननं तीर्थमानन्दनामकम्॥४०॥
तत्र पञ्च सहस्राणि तीर्थान्याह स गौतम। स्मरणात्पठनाद्वाऽपि इष्टैः संयुज्यते सदा॥४१॥
शिवस्यात्र निविष्टस्य नन्दी गङ्गातटेऽनिशम्। साक्षात्त्चरत्यसौ धर्मस्तस्मान्नन्दीतटं स्मृतम्॥
आनन्दमपि तत्तीर्थं सर्वानन्दविवर्धनात् ॥४२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये आनन्दतीर्थादिपञ्चसहस्रतीर्थवर्णनं
नाम द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५२॥
गौतमीमाहात्म्ये त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥

अथ त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

भावतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भावतीर्थमिति प्रोक्तं यत्र साक्षाद्भवः स्थितः। अशेषजगदन्तस्थो भूतात्मा सच्चिदाकृतिः॥१॥

गुरु ने कहा—गौतमि ! तुम सदा पूज्य हो। सभी को मुक्ति देने वाली हो। विशेष रूप से मेरे सिंहस्थ (सिंह राशि पर) रहने पर हे सरित्शिरोमणि ! तुम सब तीर्थों से युक्त होकर त्रिभुवनपावनी होगी। अम्बिके ! स्वर्ग मृत्यु और रसातल में जितने तीर्थ हैं वे सब मेरे सिंहस्थ होने पर तुम्हारे पास स्नान करने जायेंगे। ॥३८-३९॥

ब्रह्मा बोले—वह तीर्थ धन्य कीर्तिप्रद आयु आरोग्य और श्री को बढ़ाने वाला सौभाग्य और ऐश्वर्य को पैदा करने वाला आनन्द नामक तीर्थ है। उस गौतम ने वहाँ पाँच हजार तीर्थ बतलाये हैं। उनके स्मरण और पठन से मनुष्य के सब प्रकार के मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। यहाँ गंगातट पर ध्यानावस्थित शिव का धर्मरूप नन्दी साक्षात् विचरण करता है इसलिये इसका नाम नन्दीतट पड़ा है। वह सब का आनन्द बढ़ाने वाला है अतः उसको आनन्द भी कहते हैं॥४०-४२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में आनन्दतीर्थ आदि पाँच हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ बावनवाँ अध्याय समाप्त॥१५२॥

अध्याय १५३

भावतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—जहाँ समस्त संसार के अन्तःकरण में रहने वाले, भूतात्मा, सच्चिदानन्द स्वरूप साक्षात्

तत्रेमा शृणु वक्ष्यामि कथा पुण्यतमां शुभाम्। सूर्यवंशकर श्रीमान्क्षत्रियाणा धुरन्धर ॥२॥
प्राचीनबर्हिराख्यात सर्वधर्मेषु पारग । तिस्र कोट्योऽर्धकोटिश्च वर्षाणा राज्य आस्थित ॥३॥
तस्येदृश व्रत चाऽऽसीद्यदह यौवनच्युत । भवेय प्रियया वाऽपि पुत्रैर्वा प्रियवस्तुभि ॥४॥
वियुज्येय ततो राज्य त्यक्ष्येऽह नात्र सशय । विवेकिना कुलीनानामिदमवोचित नृणाम्॥५॥
स्थीयते विजने क्वापि विरक्तैर्विभवक्षये। तस्मिन्प्रशासति महीं न वियोग प्रियं क्वचित्॥६॥
नाऽऽधिव्याधी न दुर्भिक्ष न बन्धुकलहो नृणाम्। तस्मिञ्शासति राज्य तु न च कश्चिद्वियुज्यते॥७।
तत पुत्रार्थमकरोद्यज्ञ राजा महामति । तत प्रसन्नो भगवान्वर प्रादाद्यथेप्सितम्॥८॥
गौतमीतीरसस्थाय राज्ञे देवो महेश्वर । पुत्र देहीति राजा वै भव प्राह स भार्यया॥९॥
भव प्राह नृप प्रीत्या पश्य नेत्र तृतीयकम्। तत पश्यति राजेन्द्रे भवस्याक्षि तु मानद॥१०॥
चक्षुर्दीप्त्याऽभवत्पुत्रो महिमा नाम विश्रुत । येनाकारि स्तुति पुण्या महिम्न (?) 'इति विश्रुता॥११॥
किमलभ्य भगवति प्रसन्ने त्रिपुरान्तके। य नित्यमनुवर्तन्ते हरिब्रह्मादय सुरा ॥१२॥
प्राप्तपुत्रश्च नृपतिस्तीर्थश्रैष्ठ्यमयाचत। महापापमहारोगमहाव्यसनिना नृणाम ॥१३॥
नानाविपद्गणार्तानां सर्वाभिमतलब्धये। प्रादाच्छ्रैष्ठ्यं भवश्चापि भावतीर्थं तदुच्यते॥१४॥

धाकर विराजमान हैं उसको भावतीर्थ कहा गया है। उसकी शुभ एव पुण्यतम कथा कह रहा हूँ सुनो ! सूर्यवंश को बढाने वाला सब धर्मों मे पारङ्गत श्रीमान और क्षत्रिय कुलधुरधर एक प्राचीनबर्हिस नामक राजा था। वह राज सिंहासन पर साढ़ तीन करोड वर्ष तक रहा। उसने ऐसा नियम किया कि यदि मैं यौवन च्युत हो जाऊँगा या प्रिया या अपनी प्रिय वस्तुओ से अलग हो जाऊँगा तो मैं अपना राज्य अवश्य छोड दूगा इसमे कोई भी सन्देह नही। कुलीन और ज्ञानी मनुष्यो के लिए यह उचित है कि वह विभव-हीन होने पर विरक्त हो कहीं एकान्त स्थान मे जीवन व्यतीत करे। उसके शासनकाल म कहीं किसी को प्रिय वियोग नही होता था। मनुष्यो का किसी प्रकार की आधि व्याधि दुर्भिक्ष तथा बन्धुओ से कलह नही होता था। उसके राज्य शासन काल म कोई अपने प्रिय से वियुक्त नही होता था। इसके बाद महाबुद्धिमान राजा ने पुत्र प्राप्ति के लिए यज्ञ किया। तब प्रसन्न होकर भगवान महेश्वर देव न गौतमी तीर पर रहने वाले राजा को इच्छानुकूल वर दिया। भार्या सहित उस राजा ने पुत्र दीजिये यह वर शकर से मागा॥१९॥ शकर ने प्रमपूवक राजा से कहा कि मरे तीसरे नेत्र को देखो ! मानद ! तब उनके तीसरे नेत्र को देखने पर राजेन्द्र को नेत्र की दीप्ति के प्रभाव से महिमा नामक प्रसिद्ध पुत्र हुआ जिसने महिम्नस्तोत्र नामक प्रसिद्ध स्तोत्र को बनाया और उसी से स्तुति की। जिसकी आज्ञा का अनुसरण हरि ब्रह्मा आदि देवता करते हैं उस भगवान् त्रिपुरारि के प्रसन्न होने पर ससार मे क्या अलभ्य है ? पुत्र पा जाने पर राजा ने उस तीर्थ की श्रेष्ठता का भी वर माँगा। भव ने महापापी महारोगी महाव्यसनी और अनेक विपत्तियो से दुखी मनुष्यो की अभीष्ट सिद्धि के लिये उस तीर्थ को अति श्रेष्ठता दे दी। अत वह भावतीर्थ कहा जाता है।

१घ ङ्ग।

तत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात्। भवप्रसादादभवत्सुतः प्राचीनबर्हिषः ॥१५॥
महिमा गौतमीतीरे भावतीर्थं तदुच्यते। तत्र सप्ततितीर्थानि पुण्यान्यखिलदानि च ॥१६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भावतीर्थादिसप्ततितीर्थवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥

अथ चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सहस्रकुण्डाख्यतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सहस्रकुण्डमाख्यातं तीर्थं वेदविदो विदुः। यस्य स्मरणमात्रेण सुखी संपद्यते नरः ॥१॥
पुरा दाशरथी रामः सेतुं बद्ध्वा महार्णवे। लङ्कां दग्ध्वा रिपून्हत्वा रावणादीन्रणे शरैः ॥२॥
वैदेहीं च समासाद्य रामो वचनमब्रवीत्। पश्यत्सु लोकपालेषु तस्याऽऽचार्ये पुरः स्थिते ॥३॥
अग्नौ शुद्धिगतां सीतां रामो लक्ष्मणसंनिधौ॥ एहि वैदेहि शुद्धाऽसि अङ्कमारोढुमर्हसि ॥४॥

उसमें स्नान और दान करने से मनुष्य सब कामनाओं को प्राप्त करता है। भगवान् भव की कृपा से प्राचीनबर्हिस् को गौतमी-तट पर महिमा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, इसलिये उसको भावतीर्थ कहा जाता है। इसके अतिरिक्त वहाँ पवित्र और अखिल मनोरथों को देने वाले सत्तर तीर्थ हैं ॥१०-१६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में भावतीर्थ आदि सत्तर तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ॥१५३॥

अध्याय १५४

सहस्रकुण्ड नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—वेदों के जानने वाले व्यक्ति सहस्रकुण्ड नामक तीर्थ को जानते हैं, जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य सुखी हो जाता है। प्राचीन-काल में दशरथ-पुत्र राम ने महासमुद्र पर पुल बाँध कर लङ्का को जला रण में अपने बाणों से रावण आदि शत्रुओं को मारकर वैदेही को प्राप्त किया। तत्पश्चात् सब लोकपालों और अपने आचार्य के सामने ही राम ने लक्ष्मण के समीप अग्नि में शुद्ध की गई सीता से कहा—'वैदेहि ! तुम पवित्र हो, अब मेरी गोद में आरूढ होने के योग्य हो।' उस समय यह सुनकर श्रीमान् अगद तथा हनुमान् ने इसका निषेध किया और कहा 'वैदेहि ! हम सब अपने सुहृज्जनों के साथ अयोध्या चलेंगे। वहाँ शुद्ध होने पर और साथ ही भ्रातागण,

नेत्युवाच तदा श्रीमानङ्गदो हनुमांस्तथा। अयोध्यायां तु वैदेहि सार्धं यामः सुहृज्जनैः ॥५॥
तत्र शुद्धिमवाप्याथ पुनर्भर्तृषु मातृषु। लौकिकेष्वपि पश्यत्सु ततः शुद्धा नृपात्मजा ॥६॥
अयोध्याया सुपुण्येऽह्नि अङ्कमारोढुमर्हसि। अस्याश्चरित्रविषये सदेहः कस्य जायते ॥७॥
लोकापवादस्तदपि निरस्यः स्वजनेषु हि। तयोर्वाक्यमनादृत्य लक्ष्मणः सविभीषणः ॥८॥
रामश्च जाम्बवांश्चैव तामाह्वयन्नृपात्मजाम्। स्वस्तीत्युक्ता देवताभी राज्ञोऽङ्कं चाऽऽरुरोह सा ॥९॥
मुदितास्ते ययुः शीघ्रं पुष्पकेण विराजता। अयोध्या नगरीं प्राप्य तथा राज्यं स्वकं तु यत् ॥१०॥
मुदितास्तेऽभवन्सर्वे सदा रामानुवर्तिनः। ततः कतिपयाहेषु अनार्येभ्यो विरूपिकाम् ॥११॥
वाचं श्रुत्वा स तत्याज गुर्विणीं तामयोनिजाम्। मिथ्यापवादमपि हि न सहन्ते कुलोन्नताः ॥१२॥
वाल्मीकेर्मुनिमुख्यस्य आश्रमस्य समीपतः। तत्याज लक्ष्मणः सीतामदुष्टा रुदतीं रुदन् ॥१३॥
नोल्लङ्घ्याऽऽज्ञा गुरूणामित्यसौ तदकरोद्धिया। ततः कतिपयाहेषु व्यतीतेषु नृपात्मजः ॥१४॥
रामः सौमित्रिणा सार्धं हयमेधाय दीक्षितः। तत्रैवाऽऽजग्मतुरुभौ रामपुत्रौ यशस्विनौ ॥१५॥
लवः कुशश्च विख्यातौ नारदाविव गायकौ। रामायणं समग्रं तद्गन्धर्वाविव सुस्वरौ ॥१६॥
रामाय चरितं सर्वं गायमानौ समीयतुः। यज्ञवाटे राजसुतौ हेतुभिर्लक्षितौ तदा ॥१७॥
रामपुत्रावुभौ शूरौ वैदेह्यास्तनयाविति। तावानीय ततः पुनावभिषच्य यथाक्रमम् ॥१८॥
अङ्कारूढौ ततः कृत्वा सस्वजे तौ पुनः पुनः। ससारदुःखखिन्नानामगतीनां शरीरिणाम् ॥१९॥

माताये और समस्त प्रजायें जब इस अग्नि-परीक्षा को देख लेगी तब नृप-तनया सीता शुद्ध होगी। इसके अनन्तर पवित्र शुभ दिन मे उसी अयोध्या मे ये आपके अकारूढ होगी। वास्तव मे इनके चरित्र के विषय मे किसको सन्देह होगा? फिर भी स्वजनो मे फैले लोकापवाद को अवश्य दूर करना चाहिये।' उन दोना की इन बातो का अनादर कर विभीषण सहित राम लक्ष्मण और जाम्बवान् ने उस शुद्ध नृप कन्या को बुलाया, देवताओ ने स्वस्ति-पाठ किया और सीता आदरपूर्वक राजा के अक मे आरूढ हुई ॥१-९॥ सभी पुष्पक-विमान पर सवार होकर प्रसन्नतापूर्वक शीघ्र अयोध्या की ओर चले। अयोध्या नगरी और अपने राज्य को पा सदा राम की आज्ञा का पालन करने वाले वे सब लोग अति प्रसन्न हुये। इसके बाद कुछ दिनो मे राजा राम ने अनार्यों के मुख से सीता के सबध मे अनुचित बात सुनकर उस अयोनिजा को गर्भवती अवस्था मे ही छोड दिया, क्योकि कुलीन व्यक्ति मिथ्यापवाद को भी नही सहते हैं। लक्ष्मण ने मुनिशिरोमणि वाल्मीकि के आश्रम के समीप उस रोती हुई पवित्र सीता को स्वय रोते हुए छोड दिया। गुरु की आज्ञा का उल्लघन नही करना चाहिए, इस डर से उन्होने वह क्रूर कर्म किया। इसके बाद कुछ समय बीत जाने पर नृप-पुत्र राम ने लक्ष्मण के सहित अश्वमेघ यज्ञ की दीक्षा ली। उसी यज्ञ मे वे दोनो यशस्वी तथा नारद के समान विख्यात गायक रामपुत्र लव और कुश उस सम्पूर्ण रामचरित्र—रामायण को गन्धर्व के समान मीठे स्वर से गाते हुए पहुँचे। उस समय जब वे दोनो राज-पुत्र यज्ञ-पथ पर आये तब अपने अग-लक्षणो से दोनो सीता से उत्पन्न राम के पुत्र पहचाने गये। राम ने अपने उन दोनो पुत्रो को बुलाकर यथाक्रम उनका अभिषेक किया, पुन गोद मे लेकर बार-बार छाती से लगाया ॥१०-१८½॥ सत्य है कि ससार के दुखो से उद्विग्न एव निरुपाय देहधारियो के लिये इस ससार म पुत्र का आलिगन ही अत्यन्त सुख-शान्ति का कारण है। राम उन दोनो पुत्रो को बार-बार अपनी छाती से लगाते, चूमते और आलिगन करते, कुछ हृदय मे सोचते-से थे,

पुत्रालिङ्गनमेवात्र परं विश्रान्तिकारणम्। मुहुरालिङ्ग्य तौ पुत्रौ मुहुः स्वजति चुम्बति ॥२०॥
किमप्यन्तर्ध्यायति च निःश्वसत्यपि च मुहुः। एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता राक्षसा लङ्कवासिनः ॥२१॥
सुग्रीवो हनुमांश्चैव अङ्गदो जाम्बवांस्तथा। अन्ये च वानराः सर्वे विभीषणपुरः सराः ॥२२॥
ते चाऽऽगत्य नृपं प्राप्ताः सिंहासनमुपस्थितम्। सीतामदृष्ट्वा हनुमानङ्गदः कनकाङ्गदः[1] ॥२३॥
क्व गताऽयोनिजा माता एको रामोऽत्र दृश्यते। रामेण सा परित्यक्ता इत्यूचुर्द्वारपालकाः ॥२४॥
पश्यत्सु लोकपालेषु आर्ये तत्र प्रवादिनि। अग्नौ शुद्धिगतां (ता) सीतां (ता) किंतु राजा निरंकुशः ॥२५॥
उत्पन्नैौ किंकर्वाक्यै रामस्त्यजति तां प्रियाम्। मरिष्याव इति ह्युक्त्वा गौतमीं पुनरीयतुः ॥२६॥
रामस्तौ पृष्ठतोऽभ्येत्य (?) अयोध्यावासिभिः सह। आगत्य गौतमीं तत्राकुर्वंस्ते परमं तपः ॥२७॥
स्मारं स्मारं निश्वसन्तस्तां सीता लोकमातरम्। संसारास्थाविरहिता गौतमीसेवनोत्सुकाः ॥२८॥
लोकत्रयपतिः साक्षाद्रामोऽनुजसमन्वितः। प्राप्तः स्नात्वा च गौतम्यां शिवाराधनतत्परः ॥२९॥
परितापं जहौ सर्वं सहस्रपरिवारितः। यत्र चाऽऽसीत्स[2] वृत्तान्तः सहस्रकुण्डमुच्यते ॥३०॥
दशापराणि तीर्थानि तत्र सर्वार्थदानि च। तत्र स्नानं च दानं च सहस्रफलदायकम् ॥३१॥
यत्र श्रीगौतमीतीरे वसिष्ठादिमुनीश्वरैः। सर्वापत्तारकं होममकारयदघान्तकम् ॥३२॥
सहस्रसंख्यायुक्तेषु कुण्डेषु वसुधारया। सर्वानपेक्षितान्कामानवापासौ महातपाः ॥३३॥

और फिर बार-बार लम्बी आहे भरने लगते थे। इसी बीच लकावासी विभीषण आदि राक्षस, सुग्रीव, हनुमान्, अगद और जाम्बवान् एव अन्य वानर आये। उन सबो ने सिंहासन पर बैठे राम को तो देखा, परन्तु सीता को न देखा। तब कनक और केयूर पहने हुये हनुमान् और अगद ने पूछा कि मेरी अयोनिजा माता सीता कहाँ चली गईं, केवल अकेले राम ही दिखाई पड रहे हैं। द्वारपाल ने कहा कि राम न उनको छोड दिया है। तब सब लोकपालो के देखते-देखते और आर्य राम के रोकते रहने पर भी उन्होंने कहा कि ओह! अग्नि के द्वारा शुद्ध की गई प्रिय सीता को राम ने लोकापवाद के कारण छोड दिया है!! ठीक है राजा अति निरकुश होते हैं। अब हम अवश्य मर जायेंगे। यह कह गौतमी-तट पर चले आये। राम भी उन दोनो के पीछे-पीछे अयोध्यावासियो के साथ उस गौतमी-तट पर आये। ससार से निराश और गौतमी-सेवन के लिये उत्सुक वे सब उस लोकमाता सीता का बार-बार स्मरण कर और दीर्घोच्छ्वास छोडते हुए परमोत्कृष्ट तप करने लगे। तीनो लोक के स्वामी साक्षात् राम अपने अनुज के साथ गौतमी के तट पर आये और उसमे स्नान कर शिवाराधन म लीन हो गये ॥१९-२९॥ इस प्रकार उन्होंने सहस्रजना के साथ दीर्घ तपस्या कर सब दु खो से अपने को मुक्त किया। जहाँ वह घटना हुई उसको सहस्रकुण्ड कहा जाता है। वहाँ और भी सब अभिमत पदार्थों को देने वाले दस तीर्थ हैं। उनमे स्नान और दान करने से सहस्रगुण फल प्राप्त होता है। जहाँ श्री गौतमी के तट पर वसिष्ठादि मुनीश्वरो से युक्त होकर सहस्रकुण्ड मे पाप नष्ट करने वाली और सब आपत्तियों को दूर करने वाली आहुतियों को वसुधारा के साथ दिया और राक्षसो के विध्वसक

---

१ अत्र किञ्चित्त्रुटितम्। २ ध. ङ. ०त्सर्ववृत्तः स०।

गौतम्या सरिदम्बाया प्रसादाद्राक्षसान्तक । सहस्रकुण्डाभिध तदभूत्तीर्थं महाफलम् ॥३४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सहस्रकुण्डादिदशतीर्थवर्णनं नाम चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥१५४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चाशीतितमोऽध्याय ॥८५॥

अथ पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय

कपिलातीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कपिलातीर्थमाख्यात तदेवाऽऽङ्गिरस स्मृतम। तदेवाऽऽदित्यमाख्यात सैंहिकेय तदुच्यते ॥१॥
गौतम्या दक्षिणे पारे आदित्यान्मुनिसत्तम। अयाजयन्नङ्गिरसो दक्षिणा[1] ते भुव ददु ॥२॥
अङ्गिरोभ्यस्तदाऽऽदित्यास्तपसेऽङ्गिरसो ययु । सा भूमि सैंहिकी भूत्वा जनान्सर्वानभक्षयत् ॥३॥

उस महातपस्वी राम ने माता गौतमी नदी की कृपा से सब अभीष्ट मनोरथो को प्राप्त किया, वह महाफल देने वाला सहस्रकुण्ड नामक तीर्थ विख्यात हो गया ॥३० ३४॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे सहस्रकुण्ड आदि दस तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ चौवनवाँ अध्याय समाप्त ॥१५४॥

अध्याय १५५

कपिलातीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—कपिलासंगम नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है। उसी को आंगिरस आदित्य और सैंहिकेय तीर्थ भी कहा जाता है। मुनिश्रेष्ठ ! अङ्गिरसो ने गौतमी के दक्षिण तट पर आदित्यो को यज्ञ कराया। उन आदित्यो ने दक्षिणा मे अङ्गिरसो को पृथिवी दी। अङ्गिरस तपस्या के लिये चले गये। वह भूमि सहिंकी बनकर सब लोगो को खाने लगी। वे सब लोग भयग्रस्त हो गये और उन्होने जाकर अङ्गिरसो से अपनी कष्ट-गाथा सुनाई। अपने अन्त ज्ञान से उस पृथिवी का सहिंका होना जानकर वे भी डर-से गये। इसके बाद वे आदित्यो के पास जाकर बोले— अपनी दी

---

[1] घ ०णिणार्थं मु०।

तत्रसुस्ते जनाः सर्वे अङ्गिरोभ्यो न्यवेदयन्। विभीता ज्ञानतो ज्ञात्वा भुवं तां संहिकीमिति ॥४॥
आदित्याननुगत्वाऽथ वाचमङ्गिरसोऽब्रुवन्। भुवं गृह्णन्तु या दत्ता नेत्यादित्यास्तदाऽब्रुवन् ॥५॥
निवृत्तां दक्षिणां नैव प्रतिगृह्णन्ति सूरयः। स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुंधराम् ॥६॥
षष्टिर्वर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः। भूमेः स्वपरदत्ताया हरणान्नाधिकं क्वचित् ॥७॥
पापमस्ति महारौद्रं न स्वीकुर्मः पुनस्तु ताम्। एवं यदा स्वदत्ताया हरणे किं तदा भवेत् ॥८॥
तथाऽपि क्रयरूपेण गृह्णीमो दक्षिणां भुवम्। तथेत्युक्ते तु ते देवाः कपिला शुभलक्षणाम् ॥९॥
गङ्गाया दक्षिणे पारे भुवः स्थाने तु ता ददुः। भुक्तिमुक्तिप्रदः साक्षाद्विष्णुस्तिष्ठति मूर्तिमान् ॥१०॥
कपिलासंगमं तच्च सर्वाघौघविनाशनम्। तत्राभवद्दानतोयादापगा कपिलाभिधा ॥११॥
सस्यवत्या अपि भुवो दानाद्गोदानमुत्तमम्। लोकरक्षां चकारासौ कृत्वा विनिमयं मुनि. ॥१२॥
यत्र तीर्थे च तद्वृत्तं गोतीर्थं तदुदाहृतम्। पुण्यदं तत्र तीर्थानां शतमुक्तं मनीषिभि· ॥१३॥
तत्र स्नानेन दानेन भूमिदानफलं लभेत्। सगता गङ्गया तच्च कपिलासंगमं विदु· ॥१४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कपिलासगमादिशततीर्थवर्णन नाम पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५५॥

गौतमीमाहात्म्ये षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥

हुई पृथ्वी को ले लीजिये।' तब आदित्यो ने कहा 'नही, ज्ञानी दक्षिणा मे दिये गये पदार्थ को पुन स्वय अपने नही लेते। जो अपनी दी हुई या दूसरे की दी हुई भूमि को छीन लेता है वह साठ हजार वर्ष तक विष्ठा म कीडा बनता है। अपनी अथवा दूसरे की दी हुई भूमि को ले लेने की अपेक्षा कदाचित् और दूसरा महाभयङ्कर पाप नही है। इसलिये पुन उस भूमि को हम नही ग्रहण करेंगे ॥१-७½॥ यद्यपि स्वदत्त पृथ्वी के पुन ग्रहण म पाप होता है तब अब क्या होगा ? तथापि मूल्य देकर क्रय के रूप मे इस दक्षिणा दी हुई पृथिवी को ले लेता हूँ।' 'ऐसा ही हो' ऐसा अङ्गिरसो के कहने पर उन आदित्यो ने शुभ लक्षणो वाली कपिला गौ को पृथ्वी के निष्क्रय के रूप मे गगा के दक्षिण तीर पर दे दिया। उस स्थान पर भुक्ति और मुक्ति देने वाले साक्षात् मूर्तिमान् विष्णु निवास करते हैं। वहाँ वह कपिला-सगम नामक एक तीर्थ बन गया जो सब पापो को दूर करने वाला है। वही दान-जल के गिरने से कपिला नाम की एक नदी बन गई। सस्य-सम्पन्न पृथ्वी के दान से भी गोदान उत्तम दान है। इस प्रकार उस मुनि ने दान का विनिमय कर लोक-रक्षा की। जहाँ वह घटना हुई उसको गोतीर्थ कहा जाता है। मनीषियो ने वहाँ और पुण्यप्रद सौ तीर्थों को कहा है। वहाँ स्नान और दान करने स भूमि-दान का फल प्राप्त होता है। गगा से मिलने पर उस स्थान को कपिला-सगम कहा जाता है ॥८-१४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे कपिला-सगम आदि सौ तीर्थों का वर्णन नामक
एक सौ पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥१५५॥

अथ षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

शङ्खह्रदतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शङ्खह्रद नाम तीर्थं यत्र शङ्खगदाधर । तत्र स्नात्वा च त दृष्ट्वा मुच्यते भवबन्धनात् ॥१॥
तत्रेद वृत्तमाख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । पुरा कृतयुगस्याऽऽदौ ब्रह्मण सामगायिन ॥२॥
ब्रह्माण्डागारसभूता राक्षसा बहुरूपिण । ब्रह्माण खादितु प्राप्ता बलोन्मत्ता धृतायुधा ॥३॥
तदाऽहमब्रव विष्णु रक्षणाय जगद्गुरुम् । स विष्णुस्तानि रक्षासि हन्तु चक्रेण चोद्यत ॥४॥
छित्वा चक्रेण रक्षासि शङ्खमापूरयत्तदा[1] । निष्कण्टक तल[2] कृत्वा स्वर्गं निर्वैरमेव च ॥५॥
ततो हर्षप्रकर्षेण शङ्खमापूरयद्धरि । ततो रक्षासि सर्वाणि हृचनीनशुरशेषत ॥६॥
यत्रैतद्वृत्तमखिल विष्णुशङ्खप्रभावत । शङ्खतीर्थं तु तत्प्रोक्त सर्वक्षेमकर नृणाम् ॥७॥
सर्वाभीष्टप्रद पुण्य स्मरणान्मङ्गलप्रदम् । आयुरारोग्यजनन लक्ष्मीपुत्रप्रवर्धनम् ॥८॥
स्मरणात्पठनाद्वाऽपि सर्वकामानवाप्नुयात् । तीर्थानामयुत तत्र सर्वपापनुद मुने ॥९॥
तीर्थान्ययुतसख्यानि सर्वपापहराणि च । येषा प्रभाव जानाति वक्तु देवो महेश्वर ॥१०॥

अध्याय १५६

शङ्खह्रद नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—शख ह्रद नामक एक तीथ है जहाँ शख और गदा को धारण करने वाले भगवान् रहते है। उस तीथ मे स्नान कर उस भगवान का दशन करने से मनुष्य ससार के बन्धन से छूट जाता है। वहाँ जो यह भुक्ति और मुक्ति देने वाली घटना हुई उसको कह रहा हूँ। बहुत पहले कृत युग के आदि मे साम गान करने वाले ब्राह्मण थे। उस समय ब्रह्माण्ड रूपी गृह मे उत्पन्न भिन्न भिन्न रूप वाले तथा बल से उन्मत्त रहने वाले राक्षस हाथ मे शस्त्र लेकर ब्रह्मा को खाने के लिये आये। तब मैंने जगद्गुरु विष्णु से रक्षा के लिये कहा। वे विष्णु उन राक्षसो को चक्र से मारने के लिये तैयार हो गये। चक्र से राक्षसो को काट कर अपना शख बजाया। भूतल को शत्रु रहित और स्वग को निश्चिन्त कर हरि ने आनन्दातिरेक से अपने शख को बजाया। इस प्रकार सब राक्षसो को पूण रूप से नष्ट कर दिया। जहाँ यह सारी घटना हुई वह विष्णु के शख के प्रभाव के कारण मनुष्यो के सब प्रकार के कल्याण करने वाला शखतीथ हो गया। वह तीथ अत्यन्त पवित्र सब मनोरथो को देने वाला स्मरण मात्र से मगल प्रदान करने वाला और आयु आरोग्य लक्ष्मी तथा पुत्र को बढाने वाला है। मनुष्य उसके स्मरण और पठन से सब कामनाओ को पा जाता है। मुने[1] वहा सब पापो को नष्ट करने वाले दस हजार तीथ हैं।

१घ •दा। राज्य निष्कण्टक कृ०। २च तट।

पापक्षयप्रतिनिधिर्न तेभ्योऽस्त्यपर क्वचित् ॥११॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये शङ्खतीर्थाद्ययुततीर्थवर्णनं नाम
षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥१५६॥
गौतमीमाहात्म्ये सप्ताशीतितमोऽध्याय ॥८७॥

अथ सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

किष्किन्धातीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

किष्किन्धातीर्थमाख्यात सर्वकामप्रद नृणाम्। सर्वपापप्रशमन यत्र संनिहितो भव ॥१॥
तस्य स्वरूप वक्ष्यामि यत्नेन शृणु नारद। पुरा दाशरथी रामो रावण लोकरावणम् ॥२॥
किष्किन्धावासिभि सार्धं जघान रणमूर्धनि। सपुत्र सबल हत्वा सीतामादाय शत्रुहा ॥३॥
भ्रात्रा सौमित्रिणा सार्धं वानरैश्च महाबलै। विभीषणेन बलिना देवै प्रत्यागतो नृप ॥४॥
कृतस्वस्त्ययन श्रीमान्पुष्पकेण विराजित। यदासीद्धनराजस्य कामगेनाऽऽशुगामिना ॥५॥
अयोध्यामगमन्सर्वे गच्छन्गङ्गामपश्यत। रामो विराम शत्रूणा शरण्य शरणार्थिनाम ॥६॥

उन सब पापो को हरने वाले दस हजार तीर्थों के प्रभाव का वर्णन महेश्वर देव ही कर सकते हैं। पापो का नाश करने वाला ऐसा प्रतिनिधि तीर्थ और दूसरा कोई भी इस भूमण्डल पर नही है ॥११॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे शङ्खतीर्थ आदि दस हजार तीर्थो का वर्णन नामक
एक सौ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ॥१५६॥

अध्याय १५७

किष्किन्धा तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्यो की सब प्रकार की कामनाओ को पूर्ण करने वाला तथा सब पापो को दूर करने वाला किष्किन्धातीर्थ नामक एक तीर्थ है जहाँ भगवान् शंकर सदैव निवास करते हैं। नारद! उसके स्वरूप का वर्णन कर रहा हूँ ध्यान से सुनो। बहुत पहले दशरथ-पुत्र राम ने लोक को रुलाने वाले रावण को किष्किन्धा निवासियो के सहयोग से भयङ्कर युद्ध मे मारा। शत्रुनाशक राजा राम पुत्र और सेना सहित रावण को मारकर सीता को लेकर भाई लक्ष्मण महाबलशाली वानरो बली विभीषण और देवो के साथ लौट आये। श्रीमान् राम स्वस्त्ययन आदि मांगलिक कार्यों को समाप्त कर कुबेर के इच्छाचालित शीघ्रगामी विमान पर विराजमान होकर सबके साथ अयोध्या को चले रास्ते मे गंगा का दर्शन हुआ। मुने! शत्रुओ के नाशक एवं शरणागतो के प्रतिपालक

गौतमीं तु 'जगत्पुण्यां सर्वकामप्रदायिनीम्। मनोनयनसंतापनिवारणपरायणाम् ॥७॥
तां दृष्ट्वा नृपतिः श्रीमान्गङ्गातीरमथाऽऽविशत्। तां दृष्ट्वा प्राह नृपतिर्हर्षगद्‌गदया गिरा॥
हरीन्सर्वानथाऽऽमन्त्र्य हनुमत्प्रमुखान्मुने ॥८॥

राम उवाच

अस्याः प्रभावाद्धरयो योऽसौ मम पिता प्रभुः। सर्वपापविनिर्मुक्तस्ततो यातस्त्रिविष्टपम् ॥९॥
इयं जनित्री सकलस्य जन्तोर्भुक्तिप्रदा मुक्तिमथापि दद्यात् ।
पापानि हन्यादपि दारुणानि, काऽन्याऽनयाऽस्त्यत्र नदी समाना ॥१०॥
हतानि शश्वद्दुरितानि चैव, अस्याः प्रभावादरयः सखायः ।
विभीषणो मैत्रमुपैति नित्यं, सीता च लब्धा हनुमांश्च बन्धुः ॥११॥
लङ्का च भग्ना सगणं हि रक्षो, हतं हि यस्याः परिसेवनेन ।
या गौतमो देववरं प्रपूज्य, शिवं शरण्यं सजटामवाप ॥१२॥
सेयं जनित्री सकलेप्सितानाममङ्गलानामपि सन्निहन्त्री
जगत्पवित्रीकरणैकदक्षा, दृष्टाऽद्य साक्षात्सरितां सवित्री ॥१३॥
कायेन वाचा मनसा सदैनां, व्रजामि गङ्गां शरणं शरण्याम् ॥१४॥

राम मन और नेत्र के सताप को निवारण करने मे अतिकुशल, ससार की अति पवित्र और सब मनोरथो को देने वाली उस गौतमी को देखकर गगा-तीर पर उतर पडे। मुनि नारद ! उसको देखकर राजा हर्ष से प्रफुल्लित होकर हनुमान् आदि प्रमुख वानरो को बुलाकर गदगद् वाणी से बोले ॥१-८॥

राम बोले—वानरगण ! इस महानदी के प्रभाव से मेरे प्रभु पिता सब पापो से मुक्त होकर स्वर्ग को चले गये। यह समस्त प्राणियो की माता है और सबको भुक्ति और मुक्ति दोनो देती है और उनके दारुण पापो को भी नष्ट कर देती है। इस भू पर इसके समान कोई अन्य नदी नही है। इसने सब पापो को पुन पुन नष्ट किया, इसके प्रभाव से शत्रु मित्र हो गये, विभीषण नित्य का मित्र हो गया, सीता मिल गई और हनुमान् बन्धु (सहायक) मिल गया। इसकी सेवा से लका नष्ट कर दी गई और राक्षस अपने परिजनो सहित मारे गये। गौतम ऋषि ने देववर शरण रक्षक शिव की पूजा कर जिस गौतमी को जटा सहित प्राप्त किया था, वह यह सकल मनोरथो को प्रदान करने वाली और सब अमगलो को नष्ट करनेवाली ससार को पवित्र करने मे एकमात्र कुशल और सब नदियो को उत्पन्न करने वाली गौतमी आज प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर हुई है। मैं ऐसी शरणवत्सल गगा की शरण मे शरीर, मन और वचन से सदा के लिये आया हूँ ॥९-१४॥

१घ ०गत्पूज्यां स०।

ब्रह्मोवाच

[एतत्समाकर्ण्य वचो नृपस्य, तत्राऽऽप्लवन्हरयः सर्व एव
पूजां चक्रुर्विधिवत्ते पृथक्च, पुष्पैरनेकैः सर्वलोकोपहारैः ॥१५॥
संपूज्य शर्वं नृपतिर्यथावत्स्तुत्वा वाक्यैः सर्वभावोपयुक्तैः ।
ते वानरा मुदिताः सर्व एव, नृत्यं च गीतं च तथैव चक्रुः] ॥१६॥
मखोषितस्तां रजनीं महात्मा, प्रियानुयुक्तः संवृतः प्रेमवद्भिः ।
दुःखं जहौ सर्वममित्रसंभवं, किं नाऽऽप्यते गौतमीसेवनेन [॥१७॥
सविस्मयः पश्यति भृत्यवर्गं, गोदावरीं स्तौति च संप्रहृष्टः] ।
संमानयन्भृत्यगणं समग्रमवाप रामः कमपि प्रमोदम् ॥
पुनः प्रभाते विमले तु सूर्ये, विभीषणो दाशरथिं बभाषे ॥१८॥

विभीषण उवाच

नाद्यापि तृप्तास्तु भवाम तीर्थे, कंचिच्च कालं निवसाम चात्र ।
वत्स्या (त्स्या) म चात्रैव पराश्चतस्रो, रात्रीरथो याम वृतास्त्वयोध्याम् ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

तस्याथ वाक्यं हरयोऽनुमेनिरे, तथैव रात्रीरपराश्चतस्रः ।
संपूज्य देवं सकलेश्वरं तं, भ्रातृप्रियं तीर्थमथो जगाम ॥२०॥

ब्रह्मा बोले—राजा राम की उपर्युक्त बातो को सुनकर वे सब वानर उस पुण्यतोया गगा मे कूद पडे और स्नान कर सब लोको के उपहार स्वरूप भाँति-भाँति के फूलो से विधिवत् पूजा की। राजा ने भी शिव की पूजा कर सब भावो को व्यक्त करने वाले उपर्युक्त वाक्यो से विधिपूर्वक स्तुति की। उन सभी वानरो ने मुदित होकर उसी प्रकार नृत्य-गान किया। महात्मा राम ने प्रिया सीता के सहित अपने प्रेमी अनुचरो के साथ उस रात्रि को वहीं बिता दिया और सब शत्रुओ के कारण पाये हुये दुःख को वे भूल गये। सत्य है, गौतमी की सेवा से मनुष्य क्या नहीं कर पा सकता है ? वे कभी विस्मित हो अपने अनुचरवर्ग को देखते तो कभी प्रसन्न हो गोदावरी की स्तुति करते थे। अपने समस्त अनुचरो को सम्मानित करते हुए राम को कोई अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त हुआ। पुन प्रात काल जब विमल सूर्योदय हुआ तब विभीषण ने राम से कहा ॥१५-१८॥

विभीषण ने कहा—इस तीर्थ मे रहने से अभी हम तृप्त नही हुये हैं, अत यहाँ कुछ समय तक और रहना चाहते हैं। यहीं और चार रात तक रहें, पुन अयोध्या को आनन्दपूर्वक प्रस्थान करें ॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद वानरो ने भी विभीषण की बातो का समर्थन किया और उसी प्रकार आनन्द-पूर्वक अन्य चार रात्रियाँ भी बिताई गईं। इसके बाद सब के प्रभु शकर की पूजाकर सब उस भ्रातृ-प्रिय जगत्प्रसिद्ध

---

१४. ०कैः शक्रलो०।

सिद्धेश्वरं नाम जगत्प्रसिद्धं, यस्य प्रभावात्प्रबलो दशास्यः ।
एवं तु पञ्चाहमयोषिरे ते, स्वं स्वं प्रतिष्ठापितलिङ्गमर्च्य ॥२१॥
शुश्रूषणं तत्र करोति वायो, सुतोऽनुगामी हनुमान्नृपस्य ।
गच्छन्नृपेन्द्रो हनुमन्तमाह, लिङ्गानि सर्वाणि विसर्जयस्व ॥२२॥
मत्स्थापितान्युत्तममन्त्रविद्भिस्तथेतरैः शंकरकिंकरैश्च ।
नोद्वास्य पूजा परशंकरेण, बाहय[1] समायोज्यमहो भवस्य (?) ॥२३॥
[तिष्ठन्ति सुखास्तदनादरेण, ते खड्गपत्रादिषु सभवन्ति] ।
येऽश्रद्दधानाः शिवलिङ्गपूजां, विधाय कृत्यं न समाचरन्ति ॥२४॥
यथोचितं ते यमकिंकरैर्हि, पच्यन्त एवाखिलदुर्गतीषु ।
रामाज्ञया वायुसुतो जगाम, दोर्म्यां न चोत्पाटयितुं शशाक ॥२५॥
[ततः स्वपुच्छेन ग्रहीतुकामः, संवेष्टय लिङ्गं तु विसृष्टकामः] ।
नैवाशकत्तन्महदद्भुतं स्यात्कपीश्वराणां नृपतेस्तथैव ॥२६॥
कश्चालयेल्लब्धमहानुभावं, महेशलिङ्गं पुरुषो मनस्वी ।
तन्निश्चलं प्रेक्ष्य महानुभावो, नृपप्रवीरः सहसा जगाम ॥२७॥
विप्रांस्तथाऽऽमन्त्र्य विधाय पूजां, प्रदक्षिणीकृत्य च रामचन्द्रः ।
शुद्धातिशुद्धेन हृदाऽखिलैस्तैर्लिङ्गानि सर्वाणि ननाम रामः ॥२८॥

सिद्धेश्वर नामक तीर्थ मे गये, जिसके प्रभाव से रावण प्रबल हो गया था। इस प्रकार वे सब पांच दिनो तक वहां रहकर अपने अपने स्थापित किए हुए शिवलिंग की पूजा करते रहे। वहाँ वायु-पुत्र, अनुगामी हनुमान् राजा राम की शुश्रषा करते थे। जाते समय राजशिरोमणि राम ने हनुमान् से कहा कि मेरे द्वारा प्रतिष्ठापित इन सब लिङ्गो का उत्तम मन्त्रज्ञो अथवा इतर शकर-भक्तो के उपदेश से विसजन कर दो ॥२०-२२॥ अहो! शकर के भक्तो को उनकी पूजा का विसजन किये बिना इतर कार्य नही करना चाहिये। भक्त विधिपूवक पूजा करके ही सुखपूर्वक रहते हैं अन्यथा उन (शकर) के अनादर से वे असिपत्र-वन नामक नरक म कष्ट पाते है। जो अश्रद्धालु जन शिव-लिङ्ग की प्रतिष्ठा कर, विहित कार्यों का अनुष्ठान नही करते है वे यमदूतो द्वारा विभिन्न नरको मे यातना पाते हैं। राम की आज्ञा से वायु पुत्र चले, परन्तु अपनी भुजाओ से उस लिङ्ग को उखाड न सके। तब उन्होंने अपनी पूंछ से बाँधकर उस लिङ्ग को उखाडना चाहा, परन्तु वैसा भी न कर सके। यह देख कर कपीश्वरो और राजा राम को महान् विस्मय हुआ। कौन ऐसा मनस्वी पुरुष है जो उस महामहिम शिवलिङ्ग को हटा सकता है? नृपश्रेष्ठ महानुभाव राम उस लिङ्ग को अचल देखकर सहसा वहाँ गये और ब्राह्मणो को बुलाकर उस लिङ्ग की विधिवत् पूजा और प्रदक्षिणा की। फिर अति विशुद्ध हृदय से राम ने अखिल अनुयायी वर्गों के साथ उन लिङ्गो को नमस्कार

---

[1] च. बाह्या।

किष्किन्धवासिप्रवरैरशेषैः, संसेवित तीर्थमतो बभव ।
अत्राऽऽप्लवादेव महान्ति पापान्यपि क्षयं यान्ति न संशयाऽत्र ॥२९॥
पुनश्च गङ्गां प्रणनाम भक्त्या, प्रसीद मातर्मम गौतमीति ।
जल्पन्मुहुर्विस्मितचित्तवृत्तिर्विलोकयन्प्रणमन्गौतमीं ताम् ॥३०॥
ततः प्रभृत्येतदतीव पुण्यं, किष्किन्धतीर्थं विबुधा वदन्ति ।
पठेत्स्मरेद्वाऽपि शृणोति भक्त्या, पापापहं किं पुनः स्नानदानैः ॥३१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये किष्किन्धातीर्थवर्णनं नाम सप्तपञ्चा-
[शदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५७॥]

गौतमीमाहात्म्येऽष्टाशीतितमोऽध्याय. ॥८८॥

अथाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

व्यासतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

व्यासतीर्थमिति ख्यातं प्राचेतसमतः परम्। नात. परतरं किंचित्पावनं सर्वसिद्धिदम् ॥१॥
दश मे मानसा. पुत्रा स्रष्टारो जगतामपि। अन्तं जिज्ञासवस्ते वै पृथिव्या जग्मुरोजसा ॥२॥

किया। किष्किन्धा के रहने वाले सब श्रेष्ठ वानरो से सेवित होने के कारण उसका नाम किष्किन्धतीर्थ पडा। इस तीर्थ मे स्नान करने से ही बडे से बडे पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमे कुछ सन्देह नही ॥२३-२९॥ फिर राम ने 'हे माता गौतमी ! प्रसन्न हो' यह कहकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। इस प्रकार वे सभी आश्चर्यचकित हो बार-बार आपस मे बातचीत करते हुये उस गौतमी की ओर देखते हुए और बार बार प्रणाम करते हुए वहाँ से चल पडे। उस समय से पडित जन उसको अति पवित्र किष्किन्धतीर्थ कहते हैं। जो भक्तिपूर्वक उस तीर्थ का स्मरण, माहात्म्य-श्रवण या पाठ करते हैं उनके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। फिर उसके स्नान और दान की महिमा का वर्णन क्या किया जाय ॥३०-३१॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे किष्किन्धातीर्थ-वर्णन नामक एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥१५७॥

अध्याय १५८

व्यासतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—इसके बाद व्यास-तीर्थ नामक एक विख्यात तीर्थ है, जिसे प्राचेतस तीर्थ भी कहते हैं। इस तीर्थ से बढ़कर पवित्र तथा सब सिद्धियो को देने वाला अन्य कोई तीर्थ नहीं है। ससार की भी सृष्टि करने वाले

पुन. सृष्टाः पुनस्तेऽपि यातास्तान्समवेक्षितुम्। नैव तेऽपि समायाता ये गतास्ते गता गताः ॥३॥
तदोत्पन्ना महाप्राज्ञा दिव्या आङ्गिरसो (सा) मुने। वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥४॥
तेऽनुज्ञाता अङ्गिरसा गुरुं नत्वा तपोधनाः। तपसे निश्चिताः सर्वे नैव पृष्ट्वा तु मातरम् ॥५॥
सर्वेभ्यो ह्यधिका माता गुरुभ्यो गौरवेण हि। तदा नारद कोपेन सा शशाप तदाऽऽत्मजान् ॥६॥

मातोवाच

मामनादृत्य ये पुत्राः प्रवृत्ताश्चरितुं तपः। सर्वैरपि प्रकारैस्तत्र तेषां सिद्धिर्मेष्यति ॥७॥

ब्रह्मोवाच

नानादेशांश्च चिन्वानास्तपः सिद्धिं न यान्ति च। विघ्नमन्वेति तान्सर्वानितश्चेतश्च धावत ॥८॥
क्वापि तद्राक्षसैर्विघ्नं क्वापि तन्मानुषैरभूत्। प्रमदाभिः क्वचिच्चापि क्वापि तद्देहदोषत. ॥९॥
एव तु भ्रममाणास्ते ययु सर्वे तपोनिधिम्। अगस्त्यं तपतां श्रेष्ठं कुम्भयोनिं जगद्गुरुम् ॥१०॥
नमस्कृत्वा ह्याङ्गिरसा ह्यग्निवंशसमुद्भवाः। दक्षिणाशापतिं शान्तं विनीताः प्रष्टुमुद्यताः ॥११॥

आङ्गिरसा ऊचुः

भगवन्केन दोषेण तपोऽस्माकं न सिध्यति। नानाविधैरप्युपायैः कुर्वतां च पुनः पुनः ॥१२॥

मेरे दस मानस पुत्र हुये। वे पृथ्वी का अन्त जानने की इच्छा से बडे साहस के साथ चले गये। फिर मैंने अन्य ही मानस पुत्रो को उत्पन्न किया। वे भी उनको ढूंढने के लिये चले गये। वे भी लौट कर नही आये। जो गये वे चले ही गये। मुने! तदनन्तर महाबुद्धिमान्, वेद-वेदाङगो के तत्त्व को जानने वाले तथा सब शास्त्रो के परिनिष्ठित विद्वान् दिव्य अङ्गिरस उत्पन्न हुए। तपस्वी अङ्गिरसो ने गुरु से आज्ञा लेकर तपस्या के लिये दृढनिश्चय हुये, परन्तु अपनी माता से इस विषय मे राय नही ली। यह देख कर माता को क्रोध हो गया, क्योकि माता गौरव मे सब गुरुओ से बढ़कर है। तब उसने क्रुद्ध होकर अपने पुत्रो को शाप दे दिया ॥१-६॥

माता बोलीं—जो मेरे पुत्र मेरा अनादर कर तपस्या करने के लिये प्रवृत्त हुए हैं, वे सब प्रयत्न करने पर भी तपस्या मे सिद्धि नही प्राप्त कर सकेंगे ॥७॥

ब्रह्मा बोले—वे उपर्युक्त स्थान ढूंढते हुये अनेक देशो मे गये, परन्तु तप सिद्धि प्राप्त नही हुई। इधर-उधर दौडने वाले उन लोगो के पीछे-पीछे विघ्न भी लगे रहते थे। कही तो राक्षस विघ्न उत्पन्न करते तो कही मनुष्य। कही स्त्रियो के कारण विघ्न हो जाता था तो कही उनके निजी दोषो के कारण। इस प्रकार चक्कर काटते हुये वे तपस्वियो मे श्रेष्ठ, ससार के गुरु एव जाज्वल्यमान अगस्त्य के पास गये। अग्निवशीय वे अङ्गिरस दक्षिण दिशा के स्वामी, परम शान्त अगस्त्य को नमस्कार कर विनीत भाव से पूछने लगे ॥८-११॥

आङ्गिरस बोले—भगवन्! बार-बार नाना प्रकार के उपाय करते हुए भी हम लोगो की तपस्या किस दोष के कारण सिद्ध नही हो रही है? क्या करें? इस तपस्या का कौन सा प्रकार (नियम) है? विप्रेन्द्र! कृपाकर उपाय बतलाइये, आप निश्चय ही तपस्या में सर्वश्रेष्ठ हैं। ब्रह्मन्! आप ज्ञानियो में श्रेष्ठ ज्ञाता हैं तथा

किं कुर्मः कः प्रकारोऽत्र तपस्येव भवाम किम्। उपायं ब्रूहि विप्रेन्द्र ज्येष्ठोऽसि तपसा ध्रुवम् ॥१३॥
ज्ञाताऽसि ज्ञानिनां ब्रह्मन्वक्ताऽसि वदतां वरः। शान्तोऽसि यमिनां नित्यं दयावान्प्रियकृत्तथा ॥१४॥
अक्रोधनश्च न द्वेष्टा तस्माद्ब्रूहि विवक्षितम्। साहंकारा दयाहीना गुरुसेवाविवर्जिताः॥
असत्यवादिनः क्रूरा न ते तत्त्वं विजानते ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

अगस्त्यः प्राह तान्सर्वान्क्षणं ध्यात्वा शनैः शनैः ॥१६॥

अगस्त्य उवाच

शान्तात्मानो भवन्तो वै स्रष्टारो ब्रह्मणा कृताः। न पर्याप्तं तपश्चाभूत्स्मरध्वं स्मयकारणम् ॥१७॥
ब्रह्मणा निर्मिताः पूर्वं ये गताः सुखमेधते। ये गताः पुनरन्वेष्टुं ते च त्वाङ्गिरसोऽभवन् ॥१८॥
ते यूयं च पुनः कालेन याता याताः शनैः शनैः। प्रजापतेरप्यधिका भवितारो न संशयः॥१९॥
इतो यान्तु तपस्तप्तुं गङ्गां त्रैलोक्यपावनीम्। नोपायोऽन्योऽस्ति संसारे विना गङ्गां शिवप्रियाम् ॥२०॥
तत्राऽऽश्रमे पुण्यदेशे ज्ञानदं पूजयिष्यथ। स च्छेदयिष्यत्यखिलं संशयं वो महामतिः॥
न सिद्धिः क्वापि केषांचिद्विना सद्गुरुणा यतः ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

ते तमूचुर्मुनिवरं ज्ञानदः कोऽभिधीयते। ब्रह्मा विष्णुर्महेशो वा आदित्यो वाऽपि चन्द्रमाः ॥२२॥

वक्ताओं में श्रेष्ठ वक्ता हैं। आप सयमशीलों में सबसे अधिक शान्त और सयमी हैं। आप सर्वदा दया दिखाने वाले और प्रिय करने वाले हैं। आप क्षमाशील और उदार हैं। इसलिये कृपाकर उपयुक्त उपाय बतलाइये। जो अहकारी, निर्दय गुरु-सेवा-पराङमुख, झूठ बोलने वाले और क्रूर हैं वे तत्त्वो को नही जानते है ॥१२-१५॥

ब्रह्मा बोले—क्षण भर तक विचार कर अगस्त्य ऋषि ने धीरे धीरे उनसे कहा ॥१६॥

अगस्त्य ने कहा—तुम लोग शान्त चित्त वाले, स्रष्टा (प्रजापति) और ब्रह्मा के पुत्र हो, फिर भी पर्याप्त तपस्या नही हुई। इस आश्चर्यजनक असफलता का कारण सोचो। पहले ब्रह्मा ने जिनको उत्पन्न किया और जो सुख की खोज मे गये, वे सुख का अनुभव कर रहे हैं। जो पुन उनको खोजने के लिये गये, वे आङ्गिरस हो गये। वे ही तुम लोग पुन समय पाकर शनै शनै आगे बढते ही गये और अब इसमे सदेह नही कि तुमलोग प्रजापति से भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाओगे। अब त्रिभुवन-पावनी गगा के तट पर तपस्या करने के लिये जाओ। ससार मे शिव प्रिया गगा के विना और कोई कल्याण का उपाय नही। वहाँ पवित्रस्थान म आश्रम बनाकर जब ज्ञानदाता (शकर) की पूजा करोगे तो वे महामति सब सन्देहो को अवश्य मिटा देंगे। क्योकि कही पर किसी को अच्छे गुरु के बिना सिद्धि नही मिलती है ॥१७-२१॥

ब्रह्मा बोले—उन लोगो ने उन मुनिवर से कहा कि कौन ज्ञान-दाता कहा जाता है—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य या चन्द्रमा। मुनिश्रेष्ठ! अग्नि अथवा वरुण कौन ज्ञानदाता हैं? यह सुन ज्ञानदाता अगस्त्य ने कहा—ज्ञान

---

१७. च ०मुच्छ्रणुध्व।

अग्निश्च वरुणः कः स्याज्ज्ञानदो मुनिसत्तम। अगस्त्यः पुनरप्याह ज्ञानदः श्रूयतामयम् ॥२३॥
या आप. सोऽग्निरित्युक्तो योऽग्निः सूर्य. स उच्यते। यश्च सूर्यः स वै विष्णुर्यश्च विष्णुः स भास्करः ॥२४
यश्च ब्रह्मा स वै रुद्रो यो रुद्रः सर्वमेव तत्। यस्य सर्वं तु तज्ज्ञानं ज्ञानदः सोऽत्र कीर्त्यते ॥२५॥
देशिकप्रेरकव्याख्याकृदुपाध्यायदेहदाः। गुरव सन्ति बहवस्तेषा ज्ञानप्रदो महान् ॥२६॥
तदेव ज्ञानमत्रोक्तं येन भेदो विहन्यते। एक एवाद्वय. शम्भुरिन्द्रमित्राग्निनामभिः ॥॥
वदन्ति बहुधा विप्रा भ्रान्तोपकृतिहेतवे ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा मुनेर्वाक्यं गाथा गायन्त एव ते। जग्मु पञ्चोत्तरां गङ्गां पञ्च जग्मुश्च दक्षिणाम् ॥२८॥
अगस्त्येनोदितान्देवान्पूजयन्तो यथाविधि। आसनेषु विशेषेण ह्यासीनास्तत्त्वचिन्तकाः ॥२९॥
तेषा सर्वे सुरगणाः प्रीतिमन्तोऽभवन्मुने। स्रष्टृत्वं तु युगादौ यत्कल्पितं विश्वयोनिना ॥३०॥
अधर्माणां निवृत्त्यर्थं वेदाना स्थापनाय च। लोकानामुपकारार्थं धर्मकामार्थसिद्धये ॥३१॥
पुराणस्मृतिवेदार्थधर्मशास्त्रार्थनिश्चये। स्रष्टृत्वं जगतामिष्टं तादृग्रूपा भविष्यथ ॥३२॥
प्रजापतित्वं तेषां वै भविष्यति शनै क्रमात्। यदा ह्यधर्मो भविता वेदानां च पराभवः ॥३३॥
वेदानां[1] व्यसनं तेभ्यो भाविव्यासास्ततस्तु ते। यदा यदा तु धर्मस्य ग्लानिर्वेदस्य दृश्यते ॥३४॥

देने वाले इन बातो को सुनो। जो जल है वही अग्नि कहा गया है। जो अग्नि है, वही सूर्य, जो सूर्य है, वही विष्णु और जो विष्णु है, वही भास्कर है। जो ब्रह्मा है, वही रुद्र है। और जो रुद्र है, वही सब कुछ है। जिसका सब कुछ है, उसको ज्ञान है और वही ज्ञान का दाता यहाँ कहा जाता है। उपदेशक, प्रेरणा करने वाला, व्याख्याकार, उपाध्याय और पिता आदि बहुत से गुरु है। उनमे ज्ञानाता गुरु महान् है। वही ज्ञान यहाँ कहा गया है जिससे भेद-बुद्धि का नाश होता है। शम्भु एक ही हैं वह अद्वितीय है। बहुधा भ्रान्ति निवारण करने के लिए विप्रगण उन्ही को अग्नि, इन्द्र, मित्र आदि नामो से अभिहित किया करते हैं॥२२-२७॥

ब्रह्मा बोले--मुनि की इन बातो को सुनकर गाथा गाते हुए उनमे से पांच तो गगा के उत्तर तट पर और पाँच गगा के दक्षिण तट पर गये। अगस्त्य के बतलाये हुए देवो की यथाविधि पूजा करते हुये वे तत्वचिन्ता करने-वाले मुनि विशेष रूप से आसनो पर बैठ गये। मुने! उनकी तपस्या से उनके ऊपर सभी देवता प्रसन्न हो गये और कहा 'युग के आदि मे विश्व स्रष्टा ब्रह्मा ने अधर्म की निवृत्ति के लिये वेदो की स्थापना, लोकोपकार, धर्म, काम और अर्थ की सिद्धि तथा पुराण स्मृति, वेद एव धर्मशास्त्रो के अर्थ-निश्चय के लिये जिस रूपरेखा की कल्पना की थी, तुम लोग उसी कल्पना के अनुरूप हो जाओगे। क्रमश शनै शनै प्रजापति का पद अवश्य प्राप्त कर लोगे। इसके अतिरिक्त जब-जब अधर्म का आदर और वेदो का अनादर होगा, तब तब तुम लोगो को वेदो के अध्ययन और अध्यापन का स्वभाव सा हो जायगा और भावी व्यास तुम लोग होगे। जब जब धर्म और वेद का ह्रास दिखाई देगा, तब तब तुम लोग व्यास बनकर जगत् का उपकार करोगे।' मुने! उन लोगो का जो गगा के तट पर उत्तम तपस्या का

---

[1] घ. देवाना।

तदा तदा तु ते व्यासा भविष्यन्त्युपकारिणः। तेषां यत्तपसः स्थानं गङ्गायास्तीरमुत्तमम् ॥३५॥
तत्र तत्र शिवो विष्णुरहमादित्य एव च। अग्निराप सर्वमिति तत्र संनिहितं सदा ॥३६॥
नैतेभ्यः पावनं किंचिन्नैतेभ्यस्त्वधिकं क्वचित्। तत्तदाकारतां प्राप्तं परं ब्रह्मैव केवलम् ॥३७॥
सर्वात्मकः शिवो व्यापी सर्वभावस्वरूपधृक्। विशेषतस्तत्र तीर्थे सर्वप्राण्यनुकम्पया ॥३८॥
सर्वदैवैरनुवृतस्तदनुग्रहकारकः। धर्मव्यासास्तु ते ज्ञेया वेदव्यासास्तथैव च ॥३९॥
तेषां तीर्थं तेन नाम्ना व्यपदिष्टं जगत्त्रये। पापपङ्कक्षालनाम्भो मोहध्वान्तमदापहम् ॥
सर्वसिद्धिप्रदं पुंसां व्यासतीर्थमनुत्तमम् ॥४०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये व्यासतीर्थवर्णनं नामाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५८॥

गौतमीमाहात्म्य एकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

अथैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

वजरासंगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

वंजरासंगमं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। ऋषिभिः सेवितं नित्यं सिद्धैः राजर्षिभिस्तथा ॥१॥

स्थान है, वहाँ शिव, विष्णु और मैं आदित्य, अग्नि, जल आदि सब देवता सर्वदा रहा करते हैं। उन स्थानों से बढ़कर कोई दूसरा पवित्र और श्रेष्ठ स्थान नहीं है। वे तो ब्रह्माकार की प्राप्ति के कारण ब्रह्म रूप हैं। सर्वात्मक, व्यापक, सब की भावनाओं के अनुसार स्वरूप धारण करने वाले शिव विशेष रूप से उस तीर्थ में सब प्राणियों के ऊपर दया और अनुग्रह कर सर्वदा ही निवास करते हैं। वे आङ्गिरस धर्म-व्यास माने जाते हैं। उसी प्रकार वे ही वेदव्यास भी कहे जाते हैं। पापरूपी पङ्क को धोने वाले जल से युक्त तथा मोहरूपी अन्धकार के मद को दूर करने वाला वह पवित्र तीर्थ उन्हीं लोगों के नाम से तीनों लोक में प्रसिद्ध हो गया। वह मनुष्यों को सब सिद्धियाँ देने वाला व्यास-तीर्थ अत्युत्तम तीर्थ है ॥३८-४०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यासतीर्थ-वर्णन नामक एक सौ अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ॥१५८॥

अध्याय १५६

वजरासंगम नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—वजरासंगम नामक तीर्थ तीनों लोक में प्रसिद्ध है। वहाँ सर्वदा ऋषि, सिद्ध, और राजर्षिगण निवास करते हैं। पहले पक्षी गरुड नागों के दास हो गये थे, क्योंकि उनकी माता उस समय नागों की

दासत्वमगमत्पूर्वं नागाना गरुड खग । 'मातृदास्यात्तदा दु खपरिसतप्तमानस ॥१
कदाचिच्चिन्तयामास रह स्थित्वा विनिश्वसन् ॥२॥

गरुड उवाच

त एव धन्या लोकेऽस्मिन्कृतपुण्यास्त एव हि। नान्यसेवा कृता यैस्तु न येषा व्यसनागम ॥३॥
सुख तिष्ठन्ति गायन्ति स्वपन्ति च हसन्ति च। स्वदेहप्रभवो धन्या धिग्धिगन्यवशे स्थितान ॥४॥

ब्रह्मोवाच

इति चिन्तासमाविष्टो जननीमेत्य दु खित । पर्यपृच्छदमेयात्मा वैनतेयोऽथ मातरम् ॥५॥

गरुड उवाच

कस्यापराधान्मातस्त्व पितुर्वा मम वाऽन्यत । दासीत्वमाप्ता वद तत्कारण मम पृच्छत ॥६॥

ब्रह्मोवाच

साऽब्रवीत्पुत्रमात्मीयमरुणस्यानुज प्रियम् [illegible] ॥७॥

विनतोवाच

नैव कस्यापराधोऽस्ति स्वापराधो मयोदित । यस्या वाक्य विपर्येति सा दासी स्यान्मयोदितम् ॥८॥
कद्रूश्चापि तथैवाह सा मया सयुता ययौ। कद्र्वा ममाभवद्वादश्छद्मनाऽह तया जिता ॥९॥

माता की दासी थी। यह देखकर उनका मन दु ख से सतप्त रहता था। किसी समय एकान्त मे बैठकर लम्बी सासें छोडते हुए वे विचार करने लगे ॥१ २॥

गरुड बोले—इस लोक मे वे ही धन्य हैं और वे ही धर्मात्मा हैं जिन्होने दूसरे की दासता नही की और जो आपत्तियो के वशीभत नही हुये। वे अपने तन के राजा धन्य है क्योकि वे सुखपूर्वक रहते हैं गाते है सोते हैं और हसते हैं। जो दूसरो के वश मे हैं उनको धिक्कार है, धिक्कार है ॥३ ४॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार चिन्तित एव दु खी होकर वे माता के पास गये और अपरिमित शक्ति सम्पन्न विनता-पुत्र ने माता से पूछा ॥५॥

गरुड ने कहा—माता ! तुम किसके अपराध से—पिता के या मेरे या अन्य के कारण दासी बनाई गई ? मैं इसको पूछ रहा हूँ बताओ ॥६॥

ब्रह्मा बोले—उसने अपने प्रियपुत्र अरुण के छोटे भाई गरुड से कहा ॥७॥

विनता बोली—किसी का अपराध नही मेरा ही अपराध है। मैंने एक बार कद्रू से कहा कि जिसका कहना झूठा हो जायगा वह दासी होगी। कद्रू ने भी एसा ही कहा। इस प्रकार मै और वह दोनो साथ-साथ गइ। कद्रू के साथ मेरा विवाद हुआ। कद्रू ने धोखे से मुझ हरा दिया। विधि बलवान है। तात ! वह किन

१क ड० ०तथा दु०।

विधिर्हि बलवांस्तात कां कां चेष्टां न चेष्टते। एवं दासीत्वमगमं कद्र्वाः कश्यपनन्दन॥
मदा दासी तु जाताऽहं दासोऽभूस्त्वं द्विजन्मज ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

तूष्णीं तदा बभूवासौ गरुडोऽतीव दुःखितः। न किंचिदूचे जननीं चिन्तयन्भवितव्यताम्[1] ॥११॥
कद्रूः कदाचित्सा प्राह पुत्राणां हितमिच्छती। आत्मनो भूतिमिच्छन्ती विनतां खगमातरम् ॥१२॥

कद्रूरुवाच

पुत्रः सूर्यं नमस्कर्तुं तव यात्यनिवारितः। अहो लोकत्रयेऽप्यस्मिन्धन्याऽसि बत दास्यपि ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

स्वदुःखं गूहमाना सा कद्रूं प्राह सुविस्मिता ॥१४॥

विनतोवाच

तव पुत्रास्तु किमिति रविं द्रष्टुं न यान्ति च ॥१५॥

कद्रूरुवाच

पुत्रान्मदीयान्सुभगे नय नागालयं प्रति। समुद्रस्य समीपे तु तदाऽस्ते शीतलं सरः॥१६॥

ब्रह्मोवाच

सुपर्णस्त्ववहन्नागान्कद्रूं च विनता तथा। ततः प्रोवाच मुदिता वैनतेयस्य मातरम्॥१७॥

किन चेष्टाओं (व्यापारों) को नहीं करता है? कश्यपनन्दन! इस प्रकार मैं दासी हो गई। जब मैं दासी हो गई हूँ, तो हे पक्षि-पुत्र! तुम भी दास हो॥९-१०॥

ब्रह्मा बोले—वे गरुड तब अति दुःखित होकर मौन हो गये, अपनी भवितव्यता की चिन्ता करते हुए अपनी जननी से कुछ नहीं बोले। किसी समय पुत्र-हित और अपने ऐश्वर्य की इच्छा से उस कद्रू ने पक्षि-माता विनता से कहा॥११-१२॥

कद्रू बोली—तुम्हारा पुत्र बिना बाधा के सूर्य को नमस्कार करने जाता है। अहो! तुम दासी होती हुई भी इस त्रिलोकी में भाग्यशालिनी हो॥१३॥

ब्रह्मा बोले—अपने दुःखों को हृदय में छिपाती हुई विनता ने विस्मित होकर कद्रू से कहा॥१४॥

विनता ने कहा—तो तुम्हारे पुत्र क्या नहीं सूर्य को देखने जाते?॥१५॥

कद्रू बोली—सुभगे! मेरे पुत्रों को नागालय ले चलो। वहाँ समुद्र के समीप शीतल जल से पूर्ण एक सरोवर है॥१६॥

ब्रह्मा बोले—गरुड उन नागों, कद्रू और विनता को ढोकर ले गये। तब कद्रू प्रसन्न होकर गरुड की

---

[1] घ ०यन्निव सम्यता।

सुराणा नेतु निलयं गरुडो मत्सुतानिति। पुनः प्राह सर्पमाता गरुडं विनयान्वितम्॥१८॥

सर्पमातोवाच

पुत्रा मे द्रष्टुमिच्छन्ति हंसं त्रिजगतां गुरुम्। नमस्कृत्वा ततः सूर्यमेष्यन्ति निलयं मम॥
हण्डे त्वं नय पुत्रान्मे सूर्यमण्डलमन्वहम् ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

सा वेपमाना विनता दीना कद्रूमभाषत ॥२०॥

विनतोवाच

नाहं क्षमा सर्पमात. पुत्रो मे नेष्यते सुतान्। दृष्ट्वा दिनकरं देवं पुनरेव प्रयान्तु ते॥२१॥

ब्रह्मोवाच

विनता स्वसुत प्राह विहगानामधीश्वरम्। नमस्कर्तुमथेच्छन्ति नागाः स्वामित्वमागताः॥२२॥
भास्वन्तमित्युवाचेयं मा सर्पजननी हठात्। तथेत्युक्त्वा स गरुडो मामारोहन्तु पन्नगा ॥२३॥
तदाऽऽरूढ सर्पसैन्य गरुड विहगाधिपम्। शनै· शनैरुपगमद्यत्र देवो दिवाकरः॥
ते दह्यमानास्तीक्ष्णेन भानुतापेन विव्ययुः ॥२४॥

सर्पा ऊचुः

निवर्तस्व महाप्राज्ञ पतङ्गाय नमो नमः। अलं सूर्यस्य सदनं दग्धा. सूर्यस्य तेजसा॥
यामस्त्वया वा गरुड विहाय त्वामथापि वा ॥२५॥

माता से बोली——गरुड मेरे पुत्रो को देवलोक मे ले चले।' पुन साँपो की माता ने विनयशील गरुड से कहा॥१७-१८॥

सर्पमाता ने कहा—मेरे पुत्र त्रिलोकी के गुरु सूर्य को देखना चाहते हैं। इसके बाद सूर्य को नमस्कार करके पुन मेरे घर चले आयेंगे। दासी! तुम मेरे पुत्रो को प्रतिदिन वहाँ ले जाया करो॥१९॥

ब्रह्मा बोले—काँपती हुई दीन बिचारी विनता ने कद्रू से कहा—॥२०॥

विनता ने कहा—सर्पमाता! मै वहाँ ले जाने मे असमर्थ हूँ। मेरा पुत्र वहाँ ले जायगा। वे देव सूर्य को देखकर पुन चले आयें॥२१॥

ब्रह्मा बोले—विनता ने अपने पुत्र पक्षिराज गरुड से कहा—'इस सर्पमाता ने बलपूर्वक मुझसे कहा है कि ये तुम्हारे स्वामी नाग सूर्य को नमस्कार करना चाहते हैं। गरुड ने कहा कि अच्छी बात है। नाग मेरी पीठ पर चढे। विहगपति गरुड की पीठ पर आरूढ होकर वे सर्प शनै शनै उस ओर चले जहाँ भगवान् दिनकर रहते हैं। वे सूर्य की तीक्ष्ण गर्मी से जलने लगे और अति व्यथित हो गये॥२२-२४॥

सर्पों ने कहा—महाबुद्धिमान्! लौटो, लौटो, भगवान सूर्य को बार बार नमस्कार है। अब सूर्यलोक को जाना नही चाहते। हम लोग सूर्य के तेज से जल गये। गरुड! हम लोग तुम्हारे साथ जायेंगे अथवा तुम्हारे बिना भी चले जायेंगे॥२५॥

ब्रह्मोवाच

एवं नागैरुच्यमान आदित्यं दर्शयामि वः। इत्युक्त्वा गगनं शीघ्रं जगामाऽऽदित्यसंमुखः ॥२६॥
[1]दग्धभोगा निपेतुस्ते द्वीपं तं वीरणं प्रति। बहवः शतसाहस्राः पीडिता दग्धविग्रहाः ॥२७॥
पुत्राणामार्तसंनादं पतितानां महीतले(?)। आश्वासितुं समायाता तान्सा कद्रूः सुविह्वला ॥२८॥
उवाच विनतां कद्रूस्तव पुत्रोऽतिदुष्कृतम्। कृतवानतिदुर्मेधा येषां शान्तिर्न विद्यते ॥२९॥
नाग्यया कर्तुमायाति स्वामिवाक्यं फणीश्वरः। स काश्यपो बृहत्तेजा यद्यत्र स्यादनामयम् ॥३०॥
भवेच्चैवं कथं शान्तिः पुत्राणां मम भामिनि। कद्रूवास्तद्वचनं श्रुत्वा विनता ह्यतिभीतवत् ॥३१॥
पुत्रमाह महात्मानं गरुडं विहगाधिपम् ॥३२॥

विनतोवाच

नेदं युक्ततरं पुत्र भूषणं विनयेन हि। [2]वर्तितुं युक्तमित्युक्तं वैपरीत्यं न युज्यते ॥३३॥
नामित्रेष्वपि कर्तव्यं सद्भिर्जिह्मं कदाचन। श्रोत्रिये चान्त्यजे वाऽपि समं चन्द्रः प्रकाशते ॥३४॥
कुर्वन्त्यनिष्टं कपटैस्त एव मम पुत्रक। प्रसह्य कर्तुं ये साक्षादशक्ताः पुरुषाधमाः ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

विनता च तत प्राह कद्रुं तां सर्पमातरम् ॥३६॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार नागों के कहने पर 'मैं तुम लोगों को अवश्य सूर्यदर्शन कराऊँगा' यह कह कर गरुड बडी शीघ्रता से सूर्य की ओर चले। असह्य गर्मी से उनमें से कितनों की फणायें जल गईं। वीरण द्वीप में, झुलसकर सैकडों और हजारों की संख्या में पीडित होकर वे गिर पडे। पृथ्वीतल पर गिरे हुये पुत्रों के आर्तनाद को सुनकर वह कद्रू अतिविह्वल होकर उनको आश्वासन देने के लिये वहाँ आई। कद्रू ने विनता से कहा कि तुम्हारे अति-दुष्टबुद्धि पुत्र ने महान् दुष्कर्म किया है जिसकी शान्ति के उपाय नहीं है। फणीश्वर (शेषनाग) मेरे स्वामी के आदेश को अन्यथा नहीं कर सकता है। वह अति तेजस्वी कश्यपपुत्र यदि यहाँ होता तो अवश्य रोग शान्ति हो जाती। भामिनि! अब मेरे पुत्रों को शान्ति किस प्रकार मिलेगी? कद्रू की उन बातों को सुनकर विनता डरी हुई-सी अपने पक्षिराज गरुड से बोली ॥२६-३२॥

विनता ने कहा—पुत्र! यह तुमने अच्छा नहीं किया। विनम्र व्यवहार ही जीवन का आभूषण है, ऐसा कहा गया है। इसके विपरीत आचरण करना ठीक नहीं है। सज्जनों को कभी भी अपने शत्रुओं के प्रति भी कपट-व्यवहार नहीं करना चाहिए। देखो वेदपाठी और चाण्डालों पर चन्द्रमा की किरणें समान रूप से प्रकाश-दान करती हैं। मेरे अज्ञानी पुत्र! वे ही कपट से अनिष्ट व्यवहार करते हैं, जो पुरुषाधम साक्षात् बलप्रयोग करने में असमर्थ रहते हैं ॥३३-३५॥

ब्रह्मा बोले—तब विनता ने सर्पमाता कद्रू से कहा ॥३६॥

१घ. ङ. च. ०गास्ततो नागा निपेतुर्धरणी प्र०। २घ ङ. च. वर्तन।

विनतोवाच

किं कृत्वा शान्तिरभ्येति पुत्राणां ते करोमि तत्। जरया तु गृहीतास्ते वद शान्तिं करोमि तत् ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

कद्रूरप्याह विनतां रसातलगतं पयः। तेनाभिषेचितानां मे पुत्राणां शान्तिरेष्यति ॥३८॥
कद्र्वास्तद्वचनं श्रुत्वा रसातलगतं पयः। क्षणेनैव समानीय नागांस्तानभ्यषेचयत् ॥
ततः प्रोवाच गरुडो मघवानं शतक्रतुम् ॥३९॥

गरुड उवाच

मेघाश्चाप्यत्र वर्षन्तु त्रैलोक्यस्योपकारिणः ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

[1]तथा ववर्ष पर्जन्यो नागानामभवच्छिवम्। रसातलभवं गाङ्गं नागसंजीवनं पय ॥४१॥
जराशोकविनाशार्थमानीतं गरुडेन यत्। यत्राभिषेचिता नागास्तन्नागालयमुच्यते ॥४२॥
गरुडेन यतो वारि आनीतं तद्रसातलात्। तद्गाङ्गं वारि सर्वेषां [2]सर्वपापप्रणाशनम् ॥४३॥
जराया वारण यस्मान्नागानामभवच्छिवम्। रसातलभवं गाङ्गं नागसंजीवनं यतः ॥४४॥
जराशोकविनाशार्थं गङ्गाया दक्षिणे तटे। साक्षादमृतसंवाहा यंजरा साऽभवन्नदी ॥४५॥
जरादारिद्र्यसंतापहारिणी क्लेशवारिणी। रसातलभवा गङ्गा मर्त्यलोकभवा तु या ॥४६॥

विनता ने कहा—क्या करने से तुम्हारे पुत्रों को शान्ति मिलेगी ? कहो मैं वैसा ही करूँगी। वे इस समय व्याधि-पीड़ित हैं। कहो, मैं अवश्य शान्ति करूँगी ॥३७॥

ब्रह्मा बोले—कद्रू ने विनता से कहा—'रसातल में जल है। उससे अभिषेक (स्नान) करने पर अवश्य मेरे पुत्रों को शान्ति मिलेगी।' कद्रू की इन बातों को सुनकर गरुड ने क्षणभर में रसातल से जल ले आकर उससे उन नागों को नहला दिया। इसके बाद गरुड ने शतक्रतु इन्द्र से कहा ॥३८-३९॥

गरुड़ ने कहा—त्रिलोकी का उपकार करने वाले मेघ भी यहाँ अवश्य वर्षा करें ॥४०॥

ब्रह्मा बोले—मेघों ने तदनुरूप ही वर्षा की जिससे नागों का कल्याण हुआ। जहाँ गरुड नागों को जीवित कर देने वाले रसातल से उत्पन्न गंगा-जल को जरा-शोक दूर करने के लिये ले आये थे और जहाँ उस जल से नाग नहलाये गये उसको नागालय कहा जाता है। यतः गरुड रसातल से जल ले आया, अतः वह गंगाजल सबके पापों को नष्ट करने वाला हुआ। जिस जल से जरा की निवृत्ति हुई नागों का कल्याण हुआ वह रसातल से उत्पन्न गंगा-जल नागों के लिए संजीवनी जल हुआ। इसलिये जरा-शोक को विनष्ट करने के लिये गंगा के दक्षिण तट पर साक्षात् अमृत वहन करने वाली यंजरा नाम की नदी हो गई। जरा, दारिद्र्य, संताप और क्लेश को दूर करने वाली रसात-

---

१ प तथो। २ प ङ सर्वाघोपविनाश०।

तयोश्च सगमो य स्यात्कि पुनस्तत्र वर्ण्यते। यस्यानुस्मरणादेव नाश यान्त्यघसचया ॥४७॥
तत्र च स्नानदानाना फल को वक्तुमीश्वर । सपाद तत्र तीर्थाना लक्षमाहुर्मनीषिण ॥४८॥
सर्वसपत्तिदातृणा सर्वपापौघहारिणाम्। वजरासगमसम तीर्थं क्वापि न विद्यते॥
यदनुस्मरणेनापि विपद्यन्ते विपत्तय ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये वजरासगमादिसपादलक्षतीर्थवर्णन नामैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय ॥१५९॥

गौतमीमाहात्म्ये नवतितमोऽध्याय ॥९०॥

अथ षष्ट्यधिकशततमोऽध्याय.

देवागमतीर्थवर्णनम

ब्रह्मोवाच

देवागम नाम तीर्थं सर्वकामप्रद शिवम। भुक्तिमुक्तिप्रद नृणां पितृणा तृप्तिकारकम॥१॥
तत्र वृत्त समाख्यास्ये तव यत्नेन नारद। देवानामसुराणा च स्पर्धाऽभूद्धनहेतवे॥२॥
स्वर्ग सुराणामभवदसुराणामिलाऽभवत्। कर्मभूमिमवष्टभ्य असुरा सर्वतोऽभवन॥३॥

लाक्षिन गगा का मर्त्य लोक की गगा के साथ जो सगम हुआ है उसके माहात्म्य का क्या वर्णन किया जाय? जिसके स्मरण से ही अघो के समूह नष्ट हो जाते हैं उसमे स्नान और दान से जो फल मिलते हैं उसको कहने की शक्ति किसमे है? यहाँ पर मनीषीगण और सवा लाख तीर्थों को बतलाते है। जो सब प्रकार की सम्पत्ति देने वाले तथा सब पाप समूहो को नष्ट करने वाले हैं। वजरा-सगम के समान तीर्थ कही पर नहीं हैं जिसके स्मरण से भी विपत्तियाँ स्वय नष्ट हो जाती हैं॥४१ ४९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे वजरा-सगम आदि सवा लाख तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ उनसठवाँ अध्याय समाप्त। १५९॥

अध्याय १६०

देवागम नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—देवागम नामक तीर्थ सब प्रकार के मनोरथो को देने वाला और मगलजनक है मनुष्यो को भुक्ति और मुक्ति देने वाला तथा पितरो को तृप्ति देनेवाला है। नारद! मैं वहाँ की घटना को तुमसे यत्नपूर्वक कह रहा हूँ। एक बार धन के लिए देवो और असुरो मे प्रतिस्पर्धा हुई। देवताओ को स्वर्ग मिला और असुरो को पृथ्वी।

देवानां यज्ञभागांश्च दातॄन्घ्नन्त्यसुरास्ततः। ततः सुरगणाः सर्वे यज्ञभागैर्विना कृताः॥४॥
व्यथिता मामुपाजग्मुः किं कृत्यमिति चाब्रुवन्। मया चोक्ताः सुरगणा युद्धे जित्वाऽसुरान्बलात्॥५॥
भुवं प्राप्स्यथ कर्माणि हवींषि च यशांसि च। तथेत्युक्त्वा गता देवा भूमिं ते समरार्थिनः॥६॥
दैत्याश्च दानवाश्चैव राक्षसा बलदर्पिताः। एकीभूत्वा ययुस्तेऽपि जयिनो युद्धकाङ्क्षिणः॥७॥
अहिर्वृत्रो बलिस्त्वाष्ट्रिर्नमुचि[1] शम्बरो मयः। एते चान्ये च बहवो योद्धारो बलदर्पिताः॥८॥
अग्निरिन्द्रोऽथ वरुणस्त्वष्टा पूषा तथाऽश्विनौ। मरुतो लोकपालाश्च नानायुद्धविशारदाः॥९॥
ते दानवा सर्वे एव याम्यां वै दिशि संगरे। अकुर्वन्त महायत्नं दक्षिणार्णवसंस्थिताः॥१०॥
त्रिकूटः पर्वतश्रेष्ठो राक्षसानां पुराऽभवत्। तद्वनेन ययुः सर्वे तैः सार्धं दक्षिणार्णवम्॥११॥
सर्वेषां मेलनं यत्र पर्वतो मलयस्तु सः। 'मलयस्यापि देशोऽसौ देवारीणामभूत्तदा॥१२॥
देवानां गौतमीतीरे तत्र संनिहितः शिवः। इति तेषां समायोगो देवानामभवत्किल॥१३॥
देवाः स्वरथमारूढास्तत्र तत्र समागमन्। गौतम्याः सरिदम्बायाः पुलिने विमलाशयाः॥१४॥
प्रसन्नाऽभीष्टदा या स्यात् पितॄणामखिलस्य तु। ततो देवगणाः सर्वे स्तुत्वा[2] देवं महेश्वरम्॥
अभयं चिन्तयामासुस्ते सर्वेऽथ परस्परम् ॥१५॥

असुरगण कर्मभूमि (पृथ्वी) को रोककर अर्थात् उस पर अपना अधिकार जमा कर सब जगह फैल गये। तब वे राक्षस देवों के यज्ञ-भाग को बन्द करने और दाताओं को मारने लगे। इस प्रकार उन्होंने देवताओं को यज्ञांश से रहित कर दिया। निदान वे देव व्यथित होकर मेरे पास आये और बोले "अब क्या करना चाहिये?" मैंने उन देवताओं से कहा कि युद्ध में बलपूर्वक शत्रुओं को जीतकर पृथ्वी पर अधिकार करो। तब तुम कर्म, हवि और कीर्ति प्राप्त करोगे। 'ऐसा ही होगा' यह कहकर वे युद्धार्थी पृथ्वी पर गये। इधर जयाभिलाषी दैत्य, दानव तथा बल का घमंड रखने वाले राक्षस संगठित होकर युद्ध करने के लिये आये॥१-७॥ अहि वृत्र, बलि, त्वाष्ट्रि, नमुचि, शम्बर और मय आदि तथा और भी दूसरे बहुत से पराक्रम पर अभिमान करने वाले लड़ाकू राक्षस इकट्ठे हुये। उधर अग्नि इन्द्र, वरुण त्वष्टा पूषा अश्विनीकुमार मरुत्, लोकपाल आदि नाना प्रकार के युद्ध में कुशल देवता युद्धार्थ प्रस्तुत हुये। उन सभी दानवों ने दक्षिण दिशा में दक्षिण-समुद्र के किनारे स्थित होकर (व्यूह-रचना कर) युद्ध में महान् प्रयत्न किया। पहले राक्षसों ने पर्वतश्रेष्ठ त्रिकूट पर अधिकार जमा लिया। तब वे देवतागण वन के रास्ते उन राक्षसों से लड़ने के लिये दक्षिण समुद्र के किनारे पहुँचे। जहाँ सबका संघर्ष हुआ, वह मलय पर्वत हुआ। तदनन्तर वह मलय प्रदेश भी राक्षसों का हो गया। वहाँ गौतमी-तट पर देवों के प्रिय देव शंकर समीप ही थे, यह सुअवसर जानकर वहाँ सब देवता एकत्र हुये। निर्मल हृदय वाले देवता अपने रथों पर आरूढ़ होकर उस माता गौतमी के तट पर आये जो प्रसन्न होने पर सबको अभीष्ट प्रदान करती है और सब पितरों को तृप्त करने वाली है। तब सब देवता महेश्वर देव की स्तुति करने लगे और आपस में निर्भय होने की बात सोचने लगे॥८-१५॥

---

१ ग. ङ. ॰यस्त्वाष्ट्रि। २ ग. च ॰त्वा विष्णुमहेश्वरौ। अभेद चि॰।

देवा ऊचुः

अनाप्युपायः कोऽस्माकं निर्जितानां परैर्हठात्। एकमेवात्र नः श्रेयो विजयो वाऽथवा मृतिः॥
सपत्नैरभिभूतानां जीवितं धिङ्मनस्विनाम् ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे पुत्र वागुवाचाशरीरिणी ॥१७॥

आकाशवागुवाच

क्लेशेनालं सुरगणा गौतमीमाशु गच्छत। भक्त्या हरिहरौ तत्र समाराधयतेश्वरौ॥१८॥
गोदावर्यास्तयोश्चैव प्रसादात्किंतु दुष्करम् ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

प्रसन्नाभ्यां हरीशाभ्यां देवा जयमभीप्सितम्। अवाप्य सर्वतो जग्मुः पालयन्तो दिवौकसः॥२०॥
यत्र देवागमो जातस्तत्तीर्थं[1] तेन विश्रुतम्। देवागमं प्रशंसन्ति मुनयस्तत्त्वदर्शिनः॥२१॥
तत्राशीतिसहस्राणि शिवलिङ्गानि नारद। देवागमः पर्वतोऽसौ प्रिय इत्यपि कथ्यते॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं देवप्रियमतो विदुः ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे, तीर्थमाहात्म्ये देवागमतीर्थवर्णनं नाम षष्ट्यधिक-
शततमोऽध्यायः॥१६०॥

गौतमीमाहात्म्य एकनवतितमोऽध्यायः॥९१॥

देवगण बोले—शत्रुओं से हठात् पराजित किये गये हम लोगों के लिये अब कौन-सा उपाय है? अब श्रेय का एक ही मार्ग है—विजय या मृत्यु। शत्रुओं से पराजित मनस्वीजनों के जीवन को धिक्कार है॥१६॥

ब्रह्मा बोले—पुत्र! इसी बीच *आकाशवाणी हुई॥१७॥*

आकाशवाणी ने कहा—सुरगण! व्यर्थ क्लेश मत करो। गौतमी के पास शीघ्र जाओ। वहाँ भक्तिपूर्वक भगवान् हरि और हर की आराधना करो। गोदावरी और उन दोनों प्रभुओं की कृपा से कौन-सा कार्य दुष्कर है? ॥१८-१९॥

ब्रह्मा बोले—प्रसन्न विष्णु और शंकर से अपना अभीप्सित विजय-वरदान पाकर आकाशवाणी का भली-भाँति अनुसरण करते हुए वे देवता चले गये। जहाँ देवों का आगमन हुआ वह तीर्थ उसी देवागम नाम से प्रसिद्ध हो गया। तत्त्वदर्शी मुनि देवागमतीर्थ की प्रशंसा करते हैं। नारद! वहाँ अस्सी सहस्र शिवलिंग हैं। वह देवागम पर्वत प्रिय इस नाम से भी कहा जाता है। इसलिये तब से वह तीर्थ देव प्रिय प्रख्यात हुआ॥२०-२२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में देवागम-तीर्थ वर्णन नामक एक सौ साठवाँ अध्याय समाप्त॥१६०॥

---

[1] घ. ०थकृच्चापि।

ब्रह्मोवाच

पुनस्तामब्रव देवीं कर्मभू क्व विधीयते। तदा नारद नैवाऽऽसीद्भागीरथ्यथ नर्मदा ॥२१॥
यमुना नैव तापी सा सरस्वत्यथ गौतमी। समुद्रो वा नद कश्चिन्न सर॰ सरितोऽमला ॥
सा शक्ति पुनरप्येव मामुवाच पुन पुन ॥२२॥

दैवी वागुवाच

सुमेरोर्दक्षिणे पार्श्वे तथा हिमवतो गिरे.। दक्षिणे चापि विन्ध्यस्य सह्यस्यैवाथ दक्षिणे ॥
सर्वस्य सर्वकाले तु कर्मभूमि शुभोदया ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

तत्तु वाक्यमथो श्रुत्वा त्यक्त्वा मेरु महागिरिम्। त प्रदेशमथाऽऽगत्य स्थातव्य क्वेत्यचिन्तयम् ॥
ततो मामब्रवीत्सैव विष्णोर्वाण्यशरीरिणी ॥२४॥

आकाशवागुवाच

इतो गच्छ इतस्तिष्ठ तथोपविश चात्र हि। सकल्प कुरु यज्ञस्य स ते यज्ञ समाप्यते ॥२५॥
कृते चैवाथ सकल्पे यज्ञार्थे सुरसत्तम। यद्वदन्त्यखिला वेदा विधे[1] तत्तत्समाचर ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

इतिहासपुराणानि यदन्यच्छब्दगोचरम्। स्वतो [2]मुखे मम प्रायादभूच्च स्मृतिगोचरम् ॥२७॥

ब्रह्मा बोले—फिर मैंने उस देवी से कहा—'कर्मभूमि कहाँ है?' नारद! उस समय भागीरथी नर्मदा यमुना तापी वह सरस्वती और गौतमी नहीं थी। कोई समुद्र, नद, सरोवर या निर्मल जल वाली नदियाँ भी नहीं था। उस शक्ति ने पुन मुझसे इस प्रकार बार-बार कहा ॥२१-२२॥

दैवी वाणी ने कहा—सुमेरु गिरि के दक्षिण और हिमालय विन्ध्य तथा सह्य के दक्षिण की भूमि सबके लिये सर्वदा शुभ देने वाली कर्मभूमि है ॥२३॥

ब्रह्मा बोले—उस आदेश वाक्य को सुनकर उस महागिरि मेरु को छोड़कर मैं उस प्रदेश में आया और सोचने लगा कि कहाँ रहना चाहिये। इसके बाद उसी विष्णु की दैवी वाणी ने मुझसे कहा ॥२४॥

आकाशवाणी ने कहा—इधर चलो यहाँ ठहरो। यहाँ बैठो। यज्ञ का संकल्प करो। वह तुम्हारा यज्ञ अवश्य समाप्त होगा। सुरश्रेष्ठ! यज्ञार्थ संकल्प कर देने पर ब्रह्मन्! अखिल वेद जैसा कहते हैं उसके अनुसार कार्य करो ॥२५-२६॥

ब्रह्मा बोले—इतिहास, पुराण आदि जो अन्य श्रव्य शब्द स्वत मेरे मुख में आये, वे धीरे धीरे स्मृति में आने लगे। तत्पश्चात् मुझे सब वेदार्थ ज्ञात हो गये। तदनन्तर उस लोक विख्यात पुरुषसूक्त का स्मरण किया। तदनुरूप

---

१ प विधिना तत्स०। २ प ध मुखे।

वेदार्थश्च मया सर्वो ज्ञातोऽसौ तत्क्षणेन च। तत्र पुरुषसूक्त तदस्मर लोकविश्रुतम् ॥२८॥
यज्ञोपकरण सर्वं तदुक्त च स्वकल्पयम्। तदुक्तेन प्रकारेण यज्ञपात्राण्यकल्पयम् ॥२९॥
अह स्थित्वा यत्र देशे शुचिर्भूत्वा यतात्मवान्। दीक्षितो विप्रदेशोऽसौ मन्नाम्ना तु प्रकीर्तित ॥३०॥
मद्देवयजन पुण्य नाम्ना ब्रह्मगिरि स्मृत। [1]चतुरशीतिपर्यन्त योजनानि महामुने ॥३१॥
मद्देवयजन पुण्य पूर्वतो ब्रह्मणो गिरे। तत्र मध्ये वेदिका [2]स्याद्गार्हपत्योऽस्य(?) दक्षिणे ॥३२॥
तत्र चाऽऽहवनीयस्य एवमग्नींस्त्वकल्पयम्(?)। विना पत्न्या न सिध्येत यज्ञ श्रुतिनिदर्शनात् ॥३३॥
शरीरमात्मनोऽह वै द्वेधा चाकरव मुने। पूर्वार्धेन तत पत्नी ममाभूद्यज्ञसिद्धये ॥३४॥
उत्तरेण त्वह [3]तद्वदर्धो जाया इति श्रुते। काल वसन्तमुत्कृष्टमाज्यरूपेण नारद ॥३५॥
अकल्पय तथा चेध्म ग्रीष्म चापि शरद्धवि। ऋत च प्रावृष पुत्र तदा बर्हिरकल्पयम् ॥३६॥
छन्दासि सप्त वै तत्र तदा परिधयोऽभवन्। *कलाकाष्ठानिमेषा हि समित्पात्रकुशा स्मृता ॥३७॥*
योऽनादिश्च त्वनन्तश्च स्वय कालोऽभवत्तदा। यूपरूपेण देवर्षे योक्त्र च पशुबन्धनम् ॥३८॥
सत्त्वादित्रिगुणा पाशा नैव तत्राभवत्पशु। ततोऽहमब्रव वाच वैष्णवीमशरीरिणीम् ॥३९॥
विनैव पशुना नाय यज्ञ परिसमाप्यते। ततो मामवदद्देवी सैव नित्याऽशरीरिणी ॥४०॥

आकाशवागुवाच

पौरुषेणाय सूक्तेन स्तुहि त्वं पुरुष परम् ॥४१॥

मैने सब यज्ञ सामग्रियो को इकट्ठा किया। उसी के अनुसार यज्ञ पात्रो को प्रस्तुत किया। विप्र! जिस प्रदेश मे पवित्र और एकाग्रचित्त होकर मैंने आसन लगाया और यज्ञ-दीक्षा ग्रहण की वह देश मेरे ही नाम से प्रसिद्ध हो गया। मेरा पवित्र देवयजन ब्रह्मगिरि के नाम से विख्यात हो गया। महामुनि नारद! ब्रह्मगिरि के पूर्व मे चौरासी योजन तक मेरा पवित्र देव यजन फैला था। उसके मध्य मे एक वेदी बनाई गई। उसके दक्षिण गार्हपत्य अग्नि की स्थापना हुई। वहा आहवनीय अग्नि की भी स्थापना की गई। इस प्रकार यज्ञाग्नि की विधि पूर्ण हुई। बिना स्त्री के यज्ञ की सिद्धि नही होती इस वचना के कारण मुने! मैंने अपने शरीर को दो भागो मे बाँट लिया। तदनन्तर मेरे यज्ञ की सिद्धि के लिये पूर्वार्द्ध भाग से पत्नी उत्पन्न हुई और उत्तरार्द्ध से मै रहा। *वेद भी कहता है कि पत्नी आधा भाग है। नारद! वसन्त ऋतु को उत्कृष्ट घृत ग्रीष्म को इध्म (समिधा) और शरद को हवि बनाया। इसी प्रकार पुत्र! वर्षा ऋतु को कुश बनाया ॥२७-३६॥* इसके बाद सात छन्द परिधि बने। कला काष्ठा और निमेष (समय-परिमाण) समिधा पात्र और कुशा हुये। उस समय जो अनादि और अनन्त स्वय काल है वह हे देवर्षे! यूप रूप से पशु को बाधने के लिए पशुबन्धन काष्ठ हुआ। सत्त्व रज और तम आदि गुण पाश (रस्सी) हुये। परन्तु वहाँ पशु तो था ही नही। तब मैंने उस अप्रत्यक्ष वैष्णवी आकाशवाणी से कहा कि बिना पशु के यह यज्ञ नही समाप्त होगा। यह सुन उस नित्य अप्रत्यक्ष देवी ने मुझसे कहा ॥३७-४०॥

***आकाशवाणी ने कहा**—पुरुष-सूक्त से उस परम पुरुष की स्तुति करो ॥४१॥*

---

१ ङ •तुर्विंशति•। २घ ङ च •पत्यस्य। ३ङ •दध जा•। ४घ च •गुणा चाऽऽसीत्सैव।

अथैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

कुशतर्पणतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कुशतर्पणमाख्यातं प्रणीतासंगमं तथा। तीर्थं सर्वेषु लोकेषु भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥१॥
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु पापहरं शुभम्। विन्ध्यस्य दक्षिणे पार्श्वे सह्यो नाम महागिरिः॥२॥
यदङ्घ्रिभ्योऽभवन्नद्यो गोदाभीमरथीमुखाः। यत्राभवत्तद्विरजमेकवीरा च यत्र सा॥३॥
न तस्य महिमा कैश्चिदपि शक्योऽनुवर्णितुम्। तस्मिन्गिरौ पुण्यदेशे शृणु नारद यत्नतः॥४॥
गुह्याद्गुह्यतरं वक्ष्ये साक्षाद्वेदोदितं शुभम्। यन्न जानन्ति मुनयो देवाश्च पितरोऽसुराः॥५॥
तदहं प्रीतये वक्ष्ये श्रवणात्सर्वकामदम्। परः स पुरुषो ज्ञेयो ह्यव्यक्तोऽक्षर एव तु॥६॥
अपरश्च क्षरस्तस्मात्प्रकृत्यन्वित एव च। निराकारात्सावयवः पुरुषः समजायत॥७॥
तस्मादापः समुद्भूता अद्भ्यश्च पुरुषस्तथा। ताभ्यामब्जं समुद्भूतं तत्राहमभवं मुने॥८॥
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिस्तथैव च। एते मत्तः पूर्वतरा एकदैवाभवन्मुने॥९॥
एतानेव प्रपश्यामि नान्यत्स्थावरजङ्गमम्। नैव वेदास्तदा चाऽऽसन्नाहं द्रष्टाऽस्मि किंचन॥१०॥
यस्मादहं समुद्भूतो न पश्येयं तमप्यथ। तूष्णीं स्थिते मयि तदा अश्रौषं वाचमुत्तमाम्॥११॥

अध्याय १६१

कुशतर्पण नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—कुशतर्पण और प्रणीता-संगम नामक तीर्थ सभी लोकों में प्रख्यात है और भुक्ति-मुक्ति को देने वाला है। उसके पापहर और मङ्गल स्वरूप का वर्णन कर रहा हूँ सुनो।

विन्ध्य के दक्षिण ओर एक सह्य नामक महापर्वत है जिसके चरण (तलहटी) से गोदा और भीमरथी आदि प्रमुख नदियाँ निकलती हैं। जहाँ प्रसिद्ध विरज और एकवीरा नामक नदियाँ हैं उसकी महिमा का वर्णन करने में कोई भी समर्थ नहीं हो सकता। नारद! उस पुण्य पर्वत प्रदेश में जो अति रहस्यमय घटना हुई जिसका साक्षात् वेदों में वर्णन किया गया है जो शुभ है और जिसके श्रवणमात्र से सारी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं जिसको मुनि देव पितर और असुर भी नहीं जानते हैं। उसको मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिये कह रहा हूँ। वह पुरुष पर है अव्यक्त और अक्षर भी वही है। अपर क्षर (नष्ट होने वाला) और प्रकृति समन्वित है। उस (पर पुरुष) निराकार परब्रह्म से सावयव पुरुष (कार्यब्रह्म) उत्पन्न हुआ। उससे जल और जल से पुरुष (विष्णु) की उत्पत्ति हुई। मुने! पुरुष से कमल और कमल से मेरी (ब्रह्मा की) उत्पत्ति हुई। मुने! पृथ्वी वायु आकाश जल और ज्योति (तेज) ये मुझसे पहले एक ही बार उत्पन्न हो गये। मैं इतने पदार्थों को ही देखता था। उस समय न तो वेद ही थे और न तो मैं किसी अन्य पदार्थों को ही देखता था। जिससे मैं उत्पन्न हुआ उसको भी मैं नहीं देखता था। तब मैं अवाक् हो बैठ गया। उस समय मुझे उत्तम वाणी सुनाई दी॥१-११॥

आकाशवागुवाच

ब्रह्मन्कुरु जगत्सृष्टिं स्थावरस्य चरस्य च ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

ततोऽहमब्रवं वाचं 'परुषा तत्र नारद। कथं स्रक्ष्ये क्व वा स्रक्ष्ये केन स्रक्ष्य इदं जगत् ॥१३॥
सैव वागब्रवीद्दैवी प्रकृतिर्याऽभिधीयते। विष्णुना प्रेरिता माता जगदीशा जगन्मयी ॥१४॥

आकाशवागुवाच

यज्ञ कुरु तत. शक्तिस्ते भविन्री न संशयः। यज्ञो वै विष्णुरित्येषा श्रुतिर्ब्रह्मन्सनातनी ॥१५॥
किं यज्वनामसाध्यं स्यादिह लोके परत्र च ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

पुनस्तामब्रवं देवीं क्व वा केनेति तद्वद। यज्ञ. कार्यो महाभागे तत सोवाच मां प्रति ॥१७॥

आकाशवागुवाच

ओंकारभूता या देवी मातृकल्पा जगन्मयी। कर्मभूमौ यजस्वेह यज्ञेशं यज्ञपूरुषम् ॥१८॥
स एव साधनं ते स्यात्तेन तं यज सुव्रत। यज्ञ स्वाहा स्वधा मन्त्रा ब्राह्मणा हविरादिकम् ॥१९॥
हरिरेवाखिलं तेन सर्वं विष्णोरवाप्यते ॥२०॥

आकाशवाणी ने कहा—ब्रह्मन्! तुम स्थावर और चर (जगम) रूप ससार की सृष्टि करो ॥१२॥

ब्रह्मा बोले—नारद! तब मैंने कठोर और उग्र स्वर से कहा—'कैसे सृष्टि करूँ? कहाँ और किस वस्तु से इस जगत् की सृष्टि करूँ? यह सुन कर विष्णु से प्रेरित, ससार की स्वामिनी जगन्मयी माता उस दैवी वाणी ने—जिसको प्रकृति भी कहते है—कहा ॥१३-१४॥

आकाशवाणी ने कहा—यज्ञ करो। तब तुम्हे शक्ति प्राप्त होगी इसमे सन्देह नही है। यज्ञ ही विष्णु है। ब्रह्मन्! यही सनातन वेद कहलाता है। इस लोक और परलोक मे यज्ञ करने वाला के लिये क्या असाध्य है? ॥१५-१६॥

ब्रह्मा बोले—पुन मैंने उस देवी से कहा—'कहाँ और किस साधन स यज्ञ करूँ? महाभागे! इसको बतलाइये।' तब देवी ने मुझसे कहा—॥१७॥

आकाशवाणी ने कहा—मातृ-तुल्य जगन्मयी तथा ओंकाररूपिणी जो देवी है उससे इस कर्मभूमि मे यज्ञपति, यज्ञपुरुष का यजन करो। वही तुम्हारे साधन (सहायक) होंगे। सुव्रत! इसलिए उनका यजन करो। स्वाहा, स्वधा, मन्त्र, ब्राह्मण और हवि आदि सब यज्ञ ही है। सब कुछ विष्णु ही हैं, इसलिये सब कुछ विष्णु से ही प्राप्त किया जाता है ॥१८-२०॥

१च पौरुषीं।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा स्तूयमाने देवदेवे जनार्दने। मम चोत्पादके भक्त्या सूक्तेन पुरुषस्य हि॥४२॥
सा च मामब्रवीद्देवी ब्रह्मन्मां त्वं पशुं कुरु। तदा विज्ञाय पुरुषं जनकं मम चाव्ययम्॥४३॥
कालयूपस्य पार्श्वे तं गुणपाशैर्निवेशितम्। बर्हिस्थितमहं प्रौक्षं पुरुषं जातमग्रतः॥४४॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र तस्मात्सर्वमभूदिदम्। ब्राह्मणास्तु मुखात्तस्याभवन्बाहोश्च क्षत्रियाः॥४५॥
मुखादिन्द्रस्तथाऽग्निश्च श्वसनः प्राणतोऽभवत्। दिशः श्रोत्रात्तथा शीर्ष्णः सर्वः स्वर्गोऽभवत्तदा॥४६॥
मनसश्चन्द्रमा जातः सूर्योऽभूच्चक्षुषस्तथा। अन्तरिक्षं तथा नाभेरूरुभ्यां विश एव च॥४७॥
पद्भ्यां शूद्रश्च सजातस्तथा भूमिरजायत। ऋषयो रोमकूपेभ्य ओषध्यः केशतोऽभवन्॥४८॥
ग्राम्यारण्याश्च 'पशवो नखेभ्यः' सर्वतोऽभवन्। कृमिकीटपतङ्गादि पायूपस्थादजायत॥४९॥
स्थावरं जङ्गमं किंचिद्दृश्यादृश्यं' च किंचन। तस्मात्सर्वमभूद्देवा मत्तश्चाप्यभवन्पुनः॥
एतस्मिन्नन्तरे सैव विष्णोर्वागब्रवीच्च माम् ॥५०॥

आकाशवागुवाच

सर्वं संपूर्णमभवत्सृष्टिर्जाता तयेप्सिता। इदानीं जुहुधि हुचग्नौ पात्राणि च समानि च॥५१॥
विसर्जय तथा यूपं प्रणीतां च कुशांस्तथा। ऋत्विग्रूपं यज्ञरूपमुद्देश्यं ध्येयमेव च॥५२॥
स्रुवं च पुरुषं पाशान्सर्वं ब्रह्मन्विसर्जय ॥५३॥

ब्रह्मा बोले—'ऐसा ही होगा' यह कहकर मैंने भक्तिपूर्वक पुरुषसूक्त से अपने उत्पादक देवदेव जनार्दन की स्तुति की। ब्रह्मन्! इस पर उस देवी ने मुझसे कहा—'मुझको तुम पशु बनाओ।' तब मैंने अपने उत्पादक, नित्य पुरुष को जानकर उनको गुणो के पाश से कालयूप के पार्श्व मे बाँधकर बैठा दिया। पुन मैंने सबसे पहले उत्पन्न बर्हि पर बैठे हुय पुरुष का प्रोक्षण (अभिषेक) किया। इसी बीच वहाँ उस पुरुष से यह दृश्यमान (ब्रह्माण्ड आदि) उत्पन्न हो गया। उनके मुख से ब्राह्मण और बाहु से क्षत्रिय हुये। पुन मुख से इन्द्र और अग्नि, प्राण से वायु कान से दिशाय तथा शिर स सब स्वर्ग उत्पन्न हुये। मन से चन्द्रमा और नेत्र से सूर्य उत्पन्न हुये। नाभि से अन्तरिक्ष ऊरु से वैश्य, चरणो से शूद्र और पृथिवी उत्पन्न हुई। रोमकूपो से ऋषि और केशो से ओषधियाँ उत्पन्न हुई। सब नखो स ग्राम्य (पालतू) और वन्य (जगली) पशु उत्पन्न हुये। पायु (गुदा) और उपस्थ (लिग) से कृमि कीट और पतङ्ग आदि उत्पन्न हुए। उस पुरुष से स्थावर, जगम आदि जो कुछ दृश्य या अदृश्य है वह सब कुछ और सब देवता उत्पन्न हुये। पुन वे मुझसे उत्पन्न हुये। इस बीच उसी विष्णु की वाणी ने पुन मुझसे कहा॥४२-५०॥

आकाशवाणी ने कहा—सब कुछ पूर्णरूप से हो गया, और मनचाही सृष्टि भी हो गई। अब अग्नि मे हवन करो। सब पात्रों यूप प्रणीता-पात्र, कुशा आदि को विसर्जित कर दो। ब्रह्मन्! ऋत्विग्रूप, यज्ञरूप, उद्देश्य और ध्येय तथा स्रुव, पाश, पुरुष आदि सबका विसर्जन कर दो॥५१-५३॥

१क. ०नवरत्नैर्म०। २ग मखेभ्य। ३प. ङ. ०दृश्यादि किं०।

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यसमकालं तु क्रमशो यज्ञयोनिषु। गार्हपत्ये दक्षिणाग्नौ तथा चैव महामुने ॥५४॥
पूर्वस्मिन्नपि चैवाग्नौ क्रमशो जुह्वतस्तदा। तत्र तत्र जगद्योनिमनुसंधाय पूरुषम् ॥५५॥
मन्त्रपूतं शुचिः सम्यग्यज्ञदेवो जगन्मयः। लोकनाथो विश्वकर्ता कुण्डानां तत्र संनिधौ ॥५६॥
शुक्लरूपधरो विष्णुर्भवेदाहवनीयके। श्यामो विष्णुर्दक्षिणाग्नेः पीतो गृहपतेः कवे ॥५७॥
सर्वकालं तेषु विष्णुरतो देशेषु सस्थितः। न तेन रहितं किंचिद्विष्णुना विश्वयोनिना ॥५८॥
प्रणीताया. प्रणयनं मन्त्रैश्चाकरवं तत.। प्रणीतोदकमप्येतत्प्रणीतेति नदी शुभा ॥५९॥
व्यसर्जयं प्रणीता ता मार्जयित्वा कुशैरथ। मार्जने क्रियमाणे तु प्रणीतोदकबिन्दव. ॥६०॥
पतितास्तत्र तीर्थानि जातानि गुणवन्ति च। संजाता मुनिशार्दूल स्नानात्क्रतुफलप्रदा ॥६१॥
याऽलंकृता सर्वकालं देवदेवेन शार्ङ्गिणा। सोपानपङ्क्ति सर्वेषां वैकुण्ठारोहणाय सा ॥६२॥
संमार्जिताः कुशा यत्र पतिता भूतले शुभे। कुशतर्पणमाख्यात बहुपुण्यफलप्रदम् ॥६३॥
कुशैश्च तर्पिताः सर्वे कुशतर्पणमुच्यते। पश्चाच्च संगता तत्र गौतमी कारणान्तरात् ॥६४॥
[1]प्रणीताया महाबुद्धे प्रणीतासगमोऽभवत्। कुशतर्पणदेशे तु तत्तीर्थं कुशतर्पणम् ॥६५॥
तत्रैव कल्पितो [2]यूपो मया विन्ध्यस्य चोत्तरे। विसृष्टो लोकपूज्योऽसौ विष्णोरासीत्समाश्रयः ॥६६॥
अक्षयश्चाभवच्छ्रीमानक्षयोऽसौ वटोऽभवत्। नित्यश्च [3]कालरूपोऽसौ स्मरणात्क्रतुपुण्यदः ॥६७॥

ब्रह्मा बोले—महामुने ! उस आकाशवाणी के समकाल ही मैंने क्रमश यज्ञ-कुण्डो, गार्हपत्य तथा दक्षिणाग्नि मे एव पूर्व के अग्नि मे भी क्रमश उन उन स्थानो मे जगत्स्रष्टा, मन्त्र-पूत पुरुष का ध्यान कर हवन करना प्रारम्भ किया। वहाँ कुण्डो के समीप अतिपवित्र, जगन्मय, यज्ञदेव लोक-स्वामी विश्वकर्त्ता, शुक्लरूपधारी विष्णु आहवनीयक मे हुए। दक्षिण अग्नि से श्याम विष्णु और गार्हपत्याग्नि से पीत विष्णु हुए। सर्वदा उन देशो मे विष्णु रहते हैं। उस विश्व के आदि कारण विष्णु से रहित कुछ भी नही है। तदनन्तर मैंने मन्त्रो से प्रणीता का निर्माण किया। यह प्रणीता-जल ही शुभ प्रणीता नाम की नदी हुई। इसके बाद कुशो से उस प्रणीता का मार्जन कर विसर्जन कया। मार्जन करने से प्रणीता-पात्र से जहाँ-जहाँ जल-बिन्दु गिरे वहाँ-वहाँ गुणशाली तीर्थ हो गये। मुनिवर ! स्नान करने से वहाँ यज्ञफल देने वाली एक नदी हो गई, जो सर्वदा देवाधिदेव विष्णु से सुशोभित रहती है। वह नदी वैकुण्ठ म जाने के लिए सर्वसाधारण की सोपान परम्परा है। जिस शुभ भूतल पर सम्मार्जन कुश गिरे वह बहुत फल देने वाला कुश-तर्पण नामक तीर्थ हो गया ॥५४-६३॥ यत वहाँ कुशो से सबका तर्पण हुआ, अत उसको कुश-तर्पण कहा जाता है। पश्चात् वहाँ गौतमी अन्य कारण से आकर मिल गई। महाबुद्धिमान् ! प्रणीता मे गौतमी के सगम से प्रणीता सगम नामक तीर्थ हो गया। जिस प्रदेश मे कुशो से तर्पण हुआ। वह कुश-तर्पण तीर्थ हो गया। वही विन्ध्य के उत्तर मे उस कल्पित यूप को मैंने छोड दिया जो लोक-पूज्य और विष्णु का एकमात्र निवासस्थान है। वह यूप अति शोभाशाली और अक्षय (नाश-रहित) वटवृक्ष हुआ। अत उसका नाम अक्षयवट पडा। वह नित्य, कालरूप और स्मरण-मात्र से यज्ञ के पुण्य को देने वाला है। मेरा वह देवयजन-प्रदेश दण्डकारण्य कहा जाता है। यज्ञ पूर्ण हो जाने पर मैंने भक्ति

१ च. प्रणीतया। २ क. यज्ञो। ३ ख. घ. ०लयूपो०।

मद्देवयजन चेद दण्डकारण्यमुच्यते। सपूर्णे तु क्रतौ विष्णुर्मया भक्त्या प्रसादित ॥६८॥
यो विराडुच्यते वेदे यस्मान्मूर्तमजायत। यस्माच्च मम चोत्पत्तिर्यस्येद विकृत जगत ॥६९॥
तमह देवदेवशमभिवन्द्य व्यसर्जयम्। योजनानि चतुर्विशन्मद्देवयजन शुभम ॥७०॥
तस्मादद्यापि कुण्डानि सन्ति च त्रीणि नारद। यज्ञेश्वरस्वरूपाणि विष्णोर्वै चक्रपाणिन ॥७१॥
तत प्रभृति चाऽऽख्यात मद्देवयजन च तत। तत्रस्थ कृमिकीटादि सोऽप्यन्ते मुक्तिभाजनम ॥७२॥
धर्मबीज मुक्तिबीज दण्डकारण्यमुच्यते। विशेषाद्गौतमीश्लिष्टो देश पुण्यतमोऽभवत ॥७३॥
प्रणीतासगमे चापि कुशतर्पण एव वा। स्नानदानादि य कुर्यात्स गच्छेत्परम पदम ॥७४॥
स्मरण पठन वाऽपि श्रवण चापि भक्तित। सर्वकामप्रद पुसा भुक्तिमुक्तिप्रद विदु ॥७५॥
उभयोस्तीरयोस्तत्र तीर्थान्याहुर्मनीषिण। षडशीतिसहस्राणि तेषु पुण्य पुरोदितम ॥७६॥
वाराणस्या अपि मुने कुशतर्पणमुत्तमम्। नानेन सदृश तीर्थं विद्यते सचराचरे ॥७७॥
ब्रह्महत्यादिपापाना स्मरणादपि नाशनम्। तीर्थमेतन्मुने प्रोक्त स्वर्गद्वार महीतले ॥७८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये प्रणीतासगमकुशतर्पणादिषडशीति-
सहस्रतीर्थवर्णन नामैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय ॥१६१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्विनवतितमोऽध्याय ॥९२॥

से विष्णु को प्रसन्न किया। जो वेदो मे विराट कहा गया है जिससे यह मूत जगत उत्पन्न हुआ है जिससे मेरी उत्पत्ति हुई जिसका विकार यह जगत् है उस देवो के देव ईश की स्तुति कर विसजन कर दिया। चौबीस योजन पयन्त मेरा शुभ देवयजन प्रदेश है। नारद ! इसीलिए वहाँ आज भी चक्रपाणि विष्णु के यज्ञेश्वर स्वरूप की सूचना देने वाले तीन कुण्ड हैं। उस समय से वह मेरा देव-यजन प्रदेश प्रसिद्ध हो गया। वहाँ के जो कृमि कीट आदि हैं व भी अत म मुक्ति के अधिकारी होते हैं। दण्डकारण्य धर्मबीज एव मुक्तिबीज कहा जाता है। गौतमी के आसपास की भूमि विशेष रूप से पुण्य भूमि मानी जाती है। प्रणीता सगम अथवा कुशतपण तीथ म जो स्नान दान आदि करता है वह परम पद को प्राप्त करता है। उस तीथ का भक्तिपूवक स्मरण पठन और श्रवण भी पुरुषो के लिए सकल्प मनोरथ-दाता तथा भुक्ति और मुक्ति देने वाला (कहा गया) है। विद्वान् लोग वहाँ दोनो तटो पर छियासी हजार तीर्थों का निवास बतलाते हैं। उनका पुण्य पहले बताया जा चुका है। मुने ! कुशतर्पण वाराणसी से भी उत्तम तीर्थ है। इस तीथ क समान इस चराचर जगत् म दूसरा तीथ नही है। मुने ! इसके स्मरण से भी ब्रह्म हत्या आदि पाप नष्ट हो जाते हैं। यह तीर्थ क्या है मानो इस पृथ्वी-तल पर स्वग-द्वार है।।६४ ७८।।

श्री ब्रह्ममहापुराण म कुशतपण प्रणीता-सगम आदि तीर्थों का माहात्म्य-वणन नामक
एक सौ एकसठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६१॥

अथ द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

मन्युतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

मन्युतीर्थमिति ख्यातं सर्वपापप्रणाशनम्। सर्वकामप्रदं नृणां स्मरणादघनाशनम् ॥१॥
तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणुष्वावहितो मुने। देवानां दानवानां च सगरोऽभून्मिथः पुरा ॥२॥
तत्राजयन्नैव सुरा दानवा जयिनोऽभवन्। पराङ्मुखाः सुरगणाः सगराद्गतचेतसः ॥३॥
मामभ्येत्य समूचुस्ते देहि नोऽभयकारणम्। तानहं प्रत्यवोचं वै गङ्गां गच्छत सर्वशः ॥४॥
तत्र वै गौतमीतीरे स्तुत्वा देवं महेश्वरम्। अनपायनिरायाससहजानन्दसुन्दरम् ॥५॥
लप्स्यते सर्वविबुधा जयहतुर्महेश्वरात्। तथेत्युक्त्वा सुरगणाः स्तुवन्ति स्म महेश्वरम् ॥६॥
तपोऽतप्यन्त केचिद्वै ननृतुश्च तथाऽपरे। अस्नापयश्च केचिच्चापूजयश्च तथाऽपरे ॥७॥
ततः प्रसन्नो भगवाञ्छूलपाणिर्महेश्वरः। देवानथाब्रवीत्तुष्टो व्रियतां यदभीप्सितम् ॥८॥
देवा ऊचुः सुरपते विजयाय ददस्व नः। पुरुषं परमश्लाघ्यं रणेषु पुरतः स्थितम् ॥९॥
यद्बाहुबलमाश्रित्य भवाम सुखिनो वयम्। तथेत्युवाच भगवान्देवान्प्रति महेश्वरः ॥१०॥

अध्याय १६२

मन्युतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—मनुष्यों के सब पापों को नष्ट करने वाला सब प्रकार के मनोरथों को पूर्ण करने वाला और स्मरण मात्र से अघों को नष्ट कर देने वाला मन्यु-तीर्थ नामक एक तीर्थ है। मुने ! उसके प्रभाव का वर्णन मैं कर रहा हूँ एकाग्र होकर सुनो। प्राचीन काल में देवों और दानवों में परस्पर युद्ध छिड़ा। उसमें देव विजयी नहीं हुये प्रत्युत विजयश्री दानवों के हाथ लगी। युद्ध से पराङ्मुख देवों की चेतना लुप्त-सी हो गई। वे मेरे पास आकर बोले— हम लोगों को अभय करने वाला उपाय बतलाइये। मैंने उन देवों से कहा— देवगण ! सर्वथा गंगा की शरण में जाओ। वहाँ गौतमी के तट पर नित्य एवं स्वतः सहजानन्द सुन्दर महादेव की स्तुति कर उस महादेव से विजय साधन प्राप्त करो। (ऐसा ही होगा यह कहकर देवगण महेश्वर की आराधना करने लगे। उनमें से कोई तपस्या करते थे कोई प्रमविह्वल हो नाचते थे) कोई स्नान कराते थे तथा कोई उनकी पूजा करते थे। निदान देवनाथ भगवान शंकर महेश्वर प्रसन्न हुये और बोले— जो अभीप्सित वरदान हो मांगो। देवों ने सुरपति (शिव) से कहा— हम लोगों की विजय के लिये रण में आगे रहने वाला परम पराक्रमी पुरुष को दीजिए जिसके बाहुबल

---

१ घ. ड. च पुंसां।

आत्मनस्तेजसा कश्चिन्निर्मितः परमेष्ठिना। मन्युनामानमत्युग्रं देवसैन्यपुरोगमम् ॥११॥
तं नत्वा त्रिदशाः सर्वे शिवं नत्वा स्वमालयम्। मन्युना सह चाभ्येत्य पुनर्युद्धाय तस्थिरे ॥१२॥
युद्धे स्थित्वा तु दनुजैर्दैत्यैश्च महाबलैः। विबुधा जातसन्नद्धा मन्युमूचुः पुरः स्थिताः ॥१३॥

देवा ऊचुः

सामर्थ्यं तव पश्यामः पश्चाद्योत्स्यामहे परैः। तस्माद्दर्शय चाऽऽत्मानं मन्योऽस्माकं युयुत्सताम् ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तद्देववचनं श्रुत्वा मन्युराह स्मयन्निव ॥१५॥

मन्युरुवाच

जनिता मम देवेशः सर्वज्ञः सर्वदृक्प्रभुः। यः सर्वं वेत्ति सर्वेषां धामनाम[1] मनःस्थितम् ॥१६॥
नैव कश्चिच्च तं वेत्ति यः सर्वं वेत्ति सर्वदा। अमूर्तं मूर्तमप्येतद्वेत्ति कर्ता जगन्मयः ॥१७॥
परोऽसौ भगवान्साक्षात्तया दिव्यन्तरिक्षगः। कस्तस्य रूपं यो वेद कस्य कर्ता जगन्मयः ॥१८॥
एवं विधादहं जातो मा कथं वेत्तुमर्हथ। अथवा द्रष्टुकामा वै भवन्तो माऽनुपश्यत ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा दर्शयामास मन्यू रूपं स्वकं महत्। तार्तीयचक्षुषोद्भूतं भवस्य परमेष्ठिनः ॥२०॥

के भरोसे हम सुखी हों।' भगवान् महादेव ने 'ऐसा ही हो' कहा और परमेष्ठी शिव ने अपने तेज से किसी मन्यु नामक अति प्रतापी पुरुष को अग्रणी बना दिया। सब देवता उस मन्यु को प्रणाम कर उसको साथ लेकर अपने घर आये और पुन युद्ध के लिये प्रस्तुत हो गये। महाबलवान् दनुज और दैत्यों के साथ युद्ध की घोषणा कर देवता स्वयं युद्धार्थ प्रस्तुत हो गये और मन्यु के आगे जाकर उससे बोले ॥१-१३॥

देवगण बोले—पहले हम लोग तुम्हारे सामर्थ्य की परीक्षा करना चाहते हैं तब हम शत्रुओं के साथ लड़ेंगे। इसलिये मन्यु! युद्ध के लिये प्रस्तुत हम लोगों को अपना पराक्रम दिखलाओ ॥१४॥

ब्रह्मा बोले—देवों की बातें सुनकर मन्यु ने हँसते हुए कहा—॥१५॥

मन्यु ने कहा—देवों के ईश, सर्वज्ञ, सब ओर देखने वाले प्रभु शंकर मेरे उत्पादक हैं, जो सबके धाम (स्थान), नाम और आन्तरिक बातों को सर्वदा जानते हैं और उनको कोई भी नहीं जानता है। वही जगन्मय कर्ता शिव मूर्त और अमूर्त सब पदार्थों को जानते हैं। वह पर भगवान् स्वयं स्वर्ग और अन्तरिक्ष में अप्रतिहत गति रखते हैं। ऐसा कौन है जो उनके स्वरूप को जानता है? वह जगन्मय सर्वप्रथम जल की सृष्टि करने वाले हैं। ऐसे महाप्रभु के तेज से मैं उत्पन्न हुआ हूँ। मुझको कैसे तुम जान सकते हो? अथवा यदि तुम लोग देखना ही चाहते हो तो मुझको देखो ॥१६-१९॥

ब्रह्मा बोले—मन्यु ने यह कह कर अपने उस महान् तैजस स्वरूप को दिखाया जो परमेष्ठी शंकर के तीसरे

१घ. ०म मनस्थि०। २. ख. ङ. ०म मनस्थितिम्।

तेजसा सभूत रूप यत सर्वं तदुच्यते। पौरुष पुरुषेष्वेव अहकारश्च जन्तुषु ॥२१॥
क्रोध सर्वस्य यो भीम उपसहारकृद्भवेत्। त शकरप्रतिनिधि ज्वलन्त निजतेजसा ॥२२॥
सर्वायुधधर दृष्ट्वा प्रणेमु सर्वदेवता। वित्रेसुर्दैत्यमनुजा कृताञ्जलिपुटा सुरा ॥२३॥
भूत्वा मन्युमथोचुस्ते त्व सेनानी प्रभो भव। त्वया दत्तमिद राज्य मन्यो भोक्ष्यामहे वयम ॥२४॥
तस्मात्सर्वेषु कार्येषु जेता[1] त्व जयवर्धन। त्वमिन्द्रस्त्व च वरुणो लोकपालास्त्वमेव च ॥२५॥
अस्मासु सर्वदेवेषु प्रविश त्व जयाय वै। मन्यु प्रोवाच तान्सर्वान्विना मत्तो न किंचन ॥२६॥
सर्वेष्वन्त प्रविष्टोऽह न मा जानाति कश्चन। स एव भगवा मन्युस्ततो जात पृथक्पृथक् ॥२७॥
स एव रुद्ररूपी स्याद्रुद्रो मन्यु शिवोऽभवत्। स्थावर जङ्गम चैव सर्वं व्याप्त हि मन्युना ॥२८॥
तत्रवाप्य सुरा सर्वे जयमापुश्च सगरे। जयो मन्युश्च शौर्यं च ईशतेज समुद्भवम् ॥२९॥
मन्युना जयमाप्याय कृत्वा दैत्यैश्च सगमम्। यथागत ययु सर्वे मन्युना परिरक्षिता[2] ॥३०॥
यत्र वै गौतमीतीरे शिवमाराध्य ते सुरा। मन्युमापुर्जय चैव मन्युतीर्थं तदुच्यते ॥३१॥
उत्पत्ति च तया मन्योर्यो नर प्रयत स्मरेत्। विजयो जायते तस्य न कंश्चित्परिभूयते ॥३२॥

नेत्र से उत्पन्न हुआ है जो तेज से युक्त है और जिससे सब कुछ उत्पन्न हुआ है ऐसा कहा जाता है। जो पुरुषों में पौरुष जन्तुओं में अहकार तथा सबका क्रोध है और जो भीमरूप होकर सबका सहार करनेवाला है उस अपने तेज से ज्वलन्त सब प्रकार के शस्त्रों को धारण करने वाले शकर के प्रतिनिधि को देखकर सब देवताओं ने प्रणाम किया। दैत्य और दानव उसको देखकर भयग्रस्त हो गये। वे देवगण हाथ जोड़कर मन्यु से बोले— प्रभो! तुम हमारे सेना नायक बनो। मन्यो! तुम्हारे दिये हुए इस स्वर्गराज्य का हम भोग करेंगे। इसलिये सब कार्यों में तुम्ही विजय दिलाने वाले और जय-वृद्धि करने वाले हो। तुम इन्द्र हो तुम वरुण हो तुम्ही लोकपाल भी हो। तुम हम सब देवों में विजय के लिये प्रवेश कर जाओ। मन्यु ने उन देवों से कहा— मेरे बिना किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं। मैं सबके अन्तस् में रहता हूँ। परन्तु मुझको कोई नहीं जानता है। तदनन्तर वही भगवान् मन्यु पृथक्-पृथक् रूपों में व्यक्त हुआ। वही मन्यु रुद्र रूप हुआ और रुद्र शिव हुआ। स्थावर-जगम आदि सब मन्यु से व्याप्त है। उस मन्यु को पाकर देवों ने रण में विजय पाई। जय मन्यु और वीरता की उत्पत्ति शकर के तेज से हुई थी। अतएव दैत्यों से सघर्ष कर देवों ने मन्यु की सहायता से विजय पाई और उसके सरक्षण में वे सब देवता जहाँ से आये थे वहाँ चले गये। जहाँ गौतमी के तीर पर देवों ने शिव की आराधना कर मन्यु और जय को प्राप्त किया वह मन्युतीर्थ कहा जाता है। जो मनुष्य मन्यु की उत्पत्ति का श्रद्धापूर्वक स्मरण करता है उसकी सर्वदा विजय होती है। वे किसी से पराजित नहीं होता। महामुनि! मन्यु के समान कोई पवित्र तीर्थ नहीं है। जहाँ

---

1 घ च नेता। 2 घ च नित्य।

न मन्युतीर्थसदृशं पावनं हि महामुने। यत्र साक्षान्मन्युरूपी सर्वदा शंकरः स्थित.॥
तत्र स्नानं च दानं च स्मरणं सर्वकामदम् ॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये मन्युतीर्थवर्णनं नाम द्विषष्टयधिकशततमोऽध्यायः॥१६२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रिनवतितमोऽध्यायः॥९३॥

अथ त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सारस्वततीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सारस्वतं नाम तीर्थं सर्वकामप्रदं शुभम्। भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां सर्वपापप्रणाशनम्॥१॥
सर्वरोगप्रशमनं सर्वसिद्धिप्रदायकम्। तत्रेमं शृणु वृत्तान्तं विस्तरेणाथ नारद॥२॥
पुष्पोत्कटात्पूर्वभागे पर्वतो[1] लोकविश्रुत.। शुभ्रो नाम गिरिश्रेष्ठो गौतम्या दक्षिणे तटे॥३॥
शाकल्य इति विख्यातो मुनिः परमनैष्ठिकः। तस्मिञ्शुभ्रे पुण्यगिरौ तपस्तेपे ह्यनुत्तमम्॥४॥
तपस्यन्तं द्विजश्रेष्ठं गौतमीतीरमाश्रितम्। सर्वे भूतगणा नित्यं प्रणमन्ति स्तुवन्ति तम्॥५॥
अग्निशुश्रूषणपरं वेदाध्ययनतत्परम्। ऋषिगन्धर्वसुमनःसेविते तत्र पर्वते ॥६॥

साक्षात् मन्यु रूपी शंकर निवास करते हैं, वहाँ स्नान, दान और तीर्थनाम के स्मरण से सब कामनायें प्राप्त हो जाती हैं॥२०-३३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे मन्यु तीर्थ-वर्णन नामक एक सौ बासठवाँ अध्याय समाप्त॥१६२॥

अध्याय १६३

सारस्वततीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सब कामनाओ को देनेवाला, शुभ सारस्वत नामक तीर्थ है जो मनुष्यों को भुक्ति और मुक्ति प्रदान करता है और उनके सब पापो का नाश करता है, सब रोगो को दूर करता है और सब प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करता है। नारद! वहाँ के इस वृत्तान्त को विस्तारपूर्वक कह रहा हूँ सुनो। गौतमी के दक्षिण तट पर पुष्पोत्कट से पूर्व की ओर लोक-विख्यात शुभ्र नामक एक उत्तम पर्वत है। उस स्वच्छ पवित्र पर्वत पर शाकल्य

१ घ च. ०त्र तीर्थं कुत्रापि विद्यते। म०।

तस्मिन्गिरौ महापुण्ये देवद्विजभयंकरः। यज्ञद्वेषी ब्रह्महन्ता परशुर्नाम राक्षसः ॥७॥
कामरूपी विचरति नानारूपधरो वने। क्षणं च ब्रह्मरूपेण कदाचिद्व्याघ्ररूपधृक् ॥८॥
कदाचिद्देवरूपेण कदाचित्पशुरूपधृक्। कदाचित्प्रमदारूपः कदाचिन्मृगरूपतः ॥९॥
कदाचिद्बालरूपेण एवं चरति पापकृत्। यत्राऽऽस्ते ब्राह्मणो विद्वाञ्शाकल्यो मुनिसत्तमः ॥१०॥
तमायाति महापापी परशू राक्षसाधमः। शुचिष्मन्त द्विजश्रेष्ठं परशुर्नित्यमेव च ॥११॥
नेतुं हन्तुं प्रवृत्तोऽपि न शशाक स पापकृत्। स कदाचिद्द्विजश्रेष्ठो देवानभ्यर्च्य यत्नतः ॥१२॥
भोक्तुकामः किलाऽऽयातस्तत्रायात्परशुर्मुने। ब्रह्मरूपधरो भूत्वा शिथिलः पलितोऽबली ॥
कन्यामादाय काचिच्च शाकल्यं वाक्यमब्रवीत् ॥१३॥

परशुरुवाच

भोजनस्यार्थिनं विद्धि मां च कन्यामिमां द्विज। आतिथ्यकाले संप्राप्तं कृतकृत्योऽसि मानद ॥१४॥
त एव धन्या लोकेऽस्मिन्येषामतिथयो गृहात्। पूर्णाभिलाषा निर्यान्ति जीवन्तोऽपि मृताः परे ॥१५॥
भोजने तूपविष्टे तु आत्मार्थं कल्पितं तु यत्। अतिथिभ्यस्तु या दद्याद्दत्ता तेन वसुंधरा ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तु शाकल्यो ददामीत्येवमब्रवीत्। आसने चोपवेश्याथ तानागतं परशुं द्विजम् ॥१७॥
यथान्यायं पूजयित्वा शाकल्यो भोजनं ददौ। आपोशनं करे कृत्वा परशुर्वाक्यमब्रवीत् ॥१८॥

नामक परम नैष्ठिक मुनि अति कठोर तपस्या करते थे। गौतमी-तीर पर अग्नि-सेवा-परायण और वेदाध्ययन में लीन रहने वाले उस द्विजवर्य को सब प्राणी प्रतिदिन प्रणाम करते और स्तुति करते थे। उस ऋषि, गन्धर्व और सज्जनों के निवास योग्य, महापुण्यप्रद पर्वत पर देव और ब्राह्मणों को भय देने वाला, यज्ञविरोधी तथा ब्रह्म-घाती परशु नाम का एक राक्षस रहता था। वह मायावी अनेक रूप धारण कर घूमा करता था। वह क्षणभर में कभी ब्राह्मण का रूप धारण कर लेता था तो कभी बाघ का, कभी देवरूप में घूमता था तो कभी पशुरूप में। किसी समय स्त्रीरूप में किसी समय मृगरूप में और किसी समय बालक के रूप में वह पापकर्मा घूमता था। जहाँ मुनिवर्य विद्वान् ब्राह्मण शाकल्य रहते थे, वहाँ वह महापापी परशु उनके पास आता था। उस पवित्रात्मा द्विजश्रेष्ठ को परशु नित्य मारने के लिये या हर लेने के लिये आता था। परन्तु वह पापी इसमें सफल नहीं हो पाता था। मुने! किसी समय वह द्विजश्रेष्ठ अति श्रद्धापूर्वक देवों की पूजा करने की इच्छा से आये। उसी समय वहाँ वह परशु सितकेश एवं शिथिल ब्राह्मण का वेश धारण कर किसी कन्या को साथ लिये हुए शाकल्य के पास आया और बोला ॥१-१३॥

परशु ने कहा—द्विज! मुझको और इस कन्या को इस आतिथ्योचित काल में आये भोजनार्थी समझो। मानद! तुम कृतकृत्य हो गये। क्योंकि इस लोक में वे धन्य हैं जिनके घर से अतिथि अपनी अभिलाषाओं को पूर्ण करके बाहर जाते हैं। इसके विपरीत जो मनुष्य हैं वे जीते-जी मरे हुये-से हैं। भोजन के लिये बैठे जो व्यक्ति अपने लिये परसा हुआ भोजन अतिथि को दे देता है वह मानो पृथ्वी का दान कर देता है ॥१४-१६॥

ब्रह्मा बोले—यह सुनकर शाकल्य ने कहा—'दूँगा।' इसके बाद वह द्विजरूपधारी परशु को आसन पर बैठाकर श्रद्धा से शाकल्य ने उसकी यथार्थ पूजा कर भोजन दे दिया। परशु ने भोजन को हाथ में लेकर कहा ॥१७-१८॥

परशुरुवाच

दूरादभ्यागतं श्रान्तमनुगच्छन्ति देवताः । तस्मिंस्तृप्ते तु तृप्ताः स्युरतृप्ते तु विपर्ययः ॥१९॥
अतिथिश्चापवादी च द्वावेतौ विश्वबान्धवौ । अपवादी हरेत्पापमतिथिः 'स्वर्गसंक्रमः ॥२०॥
अभ्यागतं पथि श्रान्तं सावज्ञं योऽभिवीक्षते । तत्क्षणादेव नश्यन्ति तस्य धर्मयशःश्रियः ॥२१॥
तस्मादभ्यागतः श्रान्तो याचेऽहं त्वां द्विजोत्तम । दास्यसे यदि मे कामं तद्भोक्ष्येऽहं न चान्यथा ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

दत्तमित्येव शाकल्यो भुङ्क्ष्वेत्येवाऽऽह राक्षसम् । ततः प्रोवाच परशुरहं राक्षससत्तमः ॥२३॥
नाहं द्विजस्तव रिपुर्न वृद्धः पलितः कृशः । बहूनि मे व्यतीतानि वर्षाणि त्वां प्रपश्यतः ॥२४॥
शुष्यन्ति मम गात्राणि ग्रीष्मे स्वल्पोदकं यथा । तस्मान्नेष्ये सानुगं त्वां भक्षयिष्ये द्विजोत्तम ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा परशुवाक्यं तच्छाकल्यो वाक्यमब्रवीत् ॥२६॥

शाकल्य उवाच

ये महाकुलसंभूता विज्ञातसकलागमाः । तत्प्रतिश्रुतमभ्येति न जात्वत्र विपर्ययम्' ॥२७॥
यथोचितं कुरु सखे तथाऽपि शृणु मे वचः । निहन्तुमप्युद्यतेषु वक्तव्यं हितमुत्तमैः ॥२८॥

परशु ने कहा—दूर से आये हुये, थके अतिथि के पीछे पीछे देवता आते हैं। उनके तृप्त होने पर वे तृप्त होते हैं और अतृप्त होने पर अतृप्त। अतिथि और अपवादी दोनो संसार के बन्धु हैं। अपवादी (निन्दक) पाप को हर लेता है। अतिथि मनुष्य को स्वर्ग का अधिकारी बनाने वाला है। जो रास्ते के थके-मांदे अतिथि को तिरस्कार की दृष्टि से देखता है, उसी क्षण उसका धर्म, और श्री नष्ट हो जाती है। इसलिये द्विजोत्तम ! मैं श्रान्त अतिथि तुमसे याचना करता हूँ कि यदि तुम मुझे पर्याप्त भोजन दोगे तब तो खाऊँगा अन्यथा नही ॥१९-२२॥

ब्रह्मा बोले—शाकल्य ने राक्षस से कहा—'इतना ही था, जो दे दिया। अब इसको खाओ।' तब परशु ने कहा—'मैं राक्षसराज हूँ, द्विज नही हूँ, तुम्हारा शत्रु हूँ, वृद्ध, दुर्बल तथा सितकेश नहीं हूँ। तुमको देखते-देखते मेरे बहुत साल बीत गये। ग्रीष्मऋतु में जिस प्रकार थोडा जल सूख जाता है, उसी प्रकार मेरे अंग सूखते जा रहे हैं। इसलिए द्विजोत्तम ! आज तुमको अनुयायियों समेत उठा ले जाऊँगा और खा जाऊँगा ॥२३-२५॥

ब्रह्मा बोले—परशु की बात सुनकर शाकल्य ने कहा ॥२६॥

शाकल्य ने कहा—जो महाकुल में उत्पन्न होते हैं और जो सब शास्त्रों के ज्ञाता होते हैं वे अपनी प्रतिज्ञाओं को पूरा करते हैं इसमें विपर्यय (परिवर्तन) नहीं होता। सखे ! जैसा उचित समझो करो। फिर भी मेरी बात सुनो। सज्जन लोगों का स्वभाव है कि वे हत्या के लिए प्रस्तुत हत्यारों से भी उचित बात कहते हैं। मैं वध के

---

१ क स्वर्गदायकः। २ घ ङ. च ०म्। कुरु वा मा कु०।

ब्राह्मणोऽहं वज्रतनुः सर्वतो रक्षको हरिः । पादौ रक्षतु मे विष्णुः शिरो देवो जनार्दनः ॥२९॥
बाहू रक्षतु वाराहः पृष्ठं रक्षतु कूर्मराट् । हृदयं रक्षतात्कृष्णो ह्यङ्गुली रक्षतान्मृगः[1] ॥३०॥
मुखं रक्षतु वागीशो नेत्रे रक्षतु पक्षिग. । श्रोत्रं रक्षतु वित्तेशः[2] सर्वतो रक्षताद्भवः ॥
नानापत्स्वेकशरणं देवो नारायण. स्वयम् ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु शाकल्यो नय वा भक्ष वा सुखम् । मां राक्षसेन्द्र परशो त्वमिदानीमतन्द्रितः ॥३२॥
राक्षसस्तस्य वचनाद्भक्षणाय समुद्यतः । नास्त्येव हृदये नूनं पापिनां करुणाकणः ॥३३॥
दंष्ट्राकरालवदनो गत्वा तस्यान्तिकं तदा[3] । ब्राह्मणं तं निरीक्ष्यैवं परशुर्वाक्यमब्रवीत् ॥३४॥

परशुरुवाच

शङ्खचक्रगदापाणिं त्वां पश्येऽहं द्विजोत्तम । सहस्रपादशिरसं सहस्राक्षकरं विभुम् ॥३५॥
[4]सर्वभूतैकनिलयं छन्दोरूपं जगन्मयम् । त्वामद्य विप्र पश्यामि नास्ति ते पूर्वकं वपुः ॥३६॥
तस्मात्प्रसादये विप्र त्वमेव शरणं भव । ज्ञानं देहि महाबुद्धे तीर्थं [5]ब्रह्माघनिष्कृतिम् ॥३७॥
महता दर्शनं ब्रह्मञ्जायते नहि निष्फलम् । द्वेषादज्ञानतो वाऽपि प्रसङ्गाद्वा प्रमादत. ॥३८॥
अयसः स्पर्शसंस्पर्शो रुक्मत्वायैव जायते ॥३९॥

समान शरीर वाला ब्राह्मण हूँ। विष्णु मेरी चारो ओर से रक्षा करने वाले हैं। विष्णु मेरे चरणो की रक्षा करें जनार्दन देव शिर की रक्षा करें वाराह मेरी भुजाओं की रक्षा करें कूर्मराज पृष्ठभाग की रक्षा करे कृष्ण हृदय की और नृसिंह अगुलियो की रक्षा करें। वागीश मुख की गरुडवाहन नेत्रो की कुबेर कानो की तथा शकर चारो ओर से मेरी रक्षा करें। स्वय नारायण देव नाना आपत्तियो मे एकमात्र मेरे शरणदाता हो ॥२७-३१॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार कहकर शाकल्य ने राक्षस से कहा—'राक्षसेन्द्र! परशो! मुझको ले चलो या इस समय आलस्यरहित होकर आनन्द पूर्वक मुझको खा जाओ। तब राक्षस मुनि के कथनानुसार (मुनि को) खाने के लिए तैयार हो गया। वास्तव मे पापी मनुष्यो के हृदय म दया का एक कण भी नही होता है। उस भयानक दांत और विकराल मुखवाले परशु ने जब उस ब्राह्मण के समीप जाकर उसे देखा तो इस प्रकार कहा ॥३२ ३४॥

परशु ने कहा—द्विजोत्तम! मै इस समय तुमको शख चक्र और गदाधारी सहस्र चरण और शिर वाला, सहस्र नेत्र और भुजा वाला व्यापक सब प्राणियो का एकमात्र वासस्थान छन्द स्वरूप और जगन्मय के रूप म देख रहा हूँ। विप्र! तुम्हारा वह पहले का शरीर नही है। इसलिये हे विप्र! मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ। तुम्ही मेरे रक्षक बनो। महाबुद्धिमान्! ज्ञान दो मेरे पापो को दूर करने वाले तीर्थ को बताओ। ब्रह्मन्! महान् व्यक्तियो का दर्शन कभी भी निष्फल नही होता है। द्वेषवश, अज्ञान से, प्रसगवश या भूल से किसी भी प्रकार से पारस का स्पर्श लोहे को सोना बना ही देता है ॥३५-३९॥

१क ०न्मृड०। ना०। २घ वितेश। ३घ यनं.। ४घ. च. ०र्वदेवैक०। ५घ. ङ. च. ०ह्यघ नि०।

ब्रह्मोवाच

एतद्वाक्यं समाकर्ण्य राक्षसेन समीरितम् । शाकल्यः कृपया प्राह वरदा सा सरस्वती ॥४०॥
तवाचिराद्दैत्यपते ततः स्तुहि जनार्दनम् । मनोरथफलप्राप्तौ नान्यन्नारायणस्तुतेः ॥४१॥
किंचिदप्यस्ति लोकेऽस्मिन्कारणं शृणु राक्षस । प्रसन्ना तव सा देवी मद्वाक्याच्च भविष्यति ॥४२॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा स परशुर्गङ्गा त्रैलोक्यपावनीम् । स्नात्वा शुचिर्यतमना गङ्गामभिमुखः स्थितः ॥४३॥
तत्रापश्यद्दिव्यरूपां दिव्यगन्धानुलेपनाम् । सरस्वतीं जगद्धात्रीं शाकल्यवचने स्थिताम् ॥४४॥
जगज्जाड्यहरां विश्वजननीं भुवनेश्वरीम् । तामुवाच विनीतात्मा परशुर्गतकल्मषः ॥४५॥

परशुरुवाच

गुरुः शाकल्य इत्याह माकान्तं स्तुहि विध्वजम् । तव प्रसादात्सा शक्तिर्यथा मे स्यात्तथा कुरु ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

तथाऽस्त्विति च सा प्राह परशुं श्रीसरस्वती । सरस्वत्याः प्रसादेन परशुस्तं जनार्दनम् ॥४७॥
तुष्टाव विविधैर्वाक्यैस्ततस्तुष्टोऽभवद्धरिः । वरं प्रादाद्राक्षसाय कृपासिन्धुर्जनार्दनः ॥४८॥

जनार्दन उवाच

यद्यन्मनोगतं रक्षस्तत्तत्सर्वं भविष्यति ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

शाकल्यस्य प्रसादेन गौतम्याश्च प्रसादतः । सरस्वत्याः प्रसादेन नरसिंहप्रसादतः ॥५०॥

ब्रह्मा बोले—राक्षस की कही हुई इन बातो को सुनकर शाकल्य ने कृपापूर्वक कहा—'दैत्यपते ! वह सरस्वती शीघ्र तुमको वर प्रदान करेगी। इसलिए जनार्दन की स्तुति करो। नारायण की स्तुति के अतिरिक्त मनोरथ पूर्ण करने का और कोई सरल साधन इस लोक म नही है। राक्षस ! सुनो, मेरे कहने से सरस्वती देवी तुम्हारे ऊपर अवश्य प्रसन्न होगी ॥४०-४२॥

ब्रह्मा बोले—'ऐसा ही करूँगा' यह कहकर वह परशु त्रिभुवन-पावनी गगा मे स्नान कर पवित्र हो एकाग्र मन से गगा के सम्मुख बैठ गया। उसने दिव्य रूप वाली दिव्य गध और अगराग (लेप) से युक्त तथा ससार का धारण-पोषण करने वाली सरस्वती को, शाकल्य के कथन के अनुसार स्थित देखा, निष्पाप एव विनीत परशु ने जगत् की जडता को दूर करने वाली, विश्व-जननी और भुवनेश्वरी उस सरस्वती से कहा ॥४३-४५॥

परशु ने कहा—गुरु शाकल्य ने मुझसे कहा है कि लक्ष्मीपति गरुडध्वज विष्णु की स्तुति करो। अत आपकी कृपा से जिस प्रकार मुझमे वैसी शक्ति हो, वैसा ही आप करें ॥४६॥

ब्रह्मा बोले—उस श्री सरस्वती ने परशु से कहा कि ऐसा ही हो। सरस्वती की कृपा से परशु उस जनार्दन भगवान् की विविध वाक्योंसे स्तुति करने लगा। तब हरि उसके ऊपर प्रसन्न हो गये और कृपा-सागर जनार्दन ने राक्षस को वरदान दिया ॥४७-४८॥

जनार्दन बोले—राक्षस ! तुम्हारे जो जो मनोरथ हैं, वे सब पूरे हो जाएगे ॥४९-५०॥

ब्रह्मा बोले—शाकल्य, गौतमी, सरस्वती ,तथा नरसिंह की कृपा से उस परम पापी परशु ने भी स्वर्ग

पापिष्ठोऽपि तदा रक्ष परशुर्दिवमेयिवान । सर्वतीर्थाङ्घ्रिपद्मस्य प्रसादाच्छार्ङ्गधन्वन ॥५१॥
तत प्रभृति तत्तीर्थं सारस्वतमिति श्रुतम । तत्र स्नानेन दानेन विष्णुलोके महीयते ॥५२॥
वाग्जवैष्णवशाकल्यपरशुप्रभवाणि हि । बहून्यभूवस्तीर्थानि 'तस्मिन्वै श्वेतपर्वते ॥५३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये श्वेतपर्वतस्थशाकल्यादितीर्थ-
वर्णन नाम त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय ॥१६३॥
गौतमीमाहात्म्ये चतुर्नवतितमोऽध्याय' ॥९४॥

अथ चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय.

चिच्चिकतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच'

चिच्चिका (व) तीर्थमित्युक्त सर्वरोगविनाशनम् । सर्वचिन्ताप्रहरण सर्वशांतिकर नृणाम् ॥१॥
तस्य स्वरूप वक्ष्यामि शुभ्रे तस्मिन्नगोत्तमे । गङ्गाया उत्तरे पारे यत्र देवो गदाधर ॥२॥

को प्राप्त किया और सकल तीर्थों को अपने चरण कमल मे बसाने वाले विष्णु की कृपा से वह तीर्थ सब से सारस्वत तीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया। वहाँ स्नान करने और दान देने से मनुष्य विष्णु लोक म पूजित होता है। उस श्वेतपवत पर सारस्वत वैष्णव शाकल्य और परशु राक्षस के नाम से प्रसिद्ध और भी बहुत से तीर्थ हैं ॥५०-५३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म श्वेतपवत पर अवस्थित शाकल्य आदि तीर्थों का वणन
नामक एकसौ तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६३॥

अध्याय १६४

चिच्चिकतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—मनुष्यों के सब रोगों को नष्ट करने वाला सब चिन्ताओं को दूर करने वाला तथा सब प्रकार की शान्ति देने वाला चिच्चिक तीर्थ नामक एक तीर्थ है। उसके स्वरूप का वणन मैं कर रहा हूँ। गंगा के उत्तर तट पर जहाँ देव गदाधर निवास करते हैं उस उत्तम शुभ्र पवत पर चिच्चिक नामक मांसभोजी पक्षिराज—जिसको

१घ श्रेष्ठानि। ङ च पुण्यानि। २क ०ध—चर्चिका०।

चिञ्चिक[1] पक्षिराट् तत्र भेरुण्डो योऽभिधीयते । सदा वसति 'तत्रैव मांसाशी श्वेतपर्वते ॥३॥
नानापुष्पफलाकीर्णैः सर्वर्तुकुसुमैर्नगैः । सेविते द्विजमुख्यैश्च गौतम्या चोपशोभिते ॥४॥
सिद्धचारणगन्धर्वकिंनरामरसंकुले । तत्समीपे नग कश्चिद्द्विपदा च चतुष्पदाम् ॥५॥
रोगार्तिक्षुत्तृषाचिन्तामरणाना न भाजनम् । एव गुणान्विते शैले नानामुनिगणावृते ॥६॥
पूर्वदेशाधिपः कश्चित्पवमान इति श्रुत । क्षत्रधर्मरतः श्रीमान्देवब्राह्मणपालकः ॥७॥
बलेन महता युक्तः सपुरोधा वन ययौ । रेमे स्त्रीभिर्मनोज्ञाभिर्नृत्यवादित्रजैः सुखैः ॥८॥
स च एवं धनुष्पाणिर्मृगयाशीलिभिर्वृत । एव भ्रमन्कदाचित्स श्रान्तो द्रुममुपागतः ॥९॥
गौतमीतीरसंभूतं नानापक्षिगणैर्वृतम् । आश्रमाणां गृहपति धर्मज्ञमिव सेवितम् ॥१०॥
तमाश्रित्य नगश्रेष्ठं पवमानो नृपोत्तमः । स विश्रान्तो जनवृत ईक्षा चक्रे नगोत्तमम् ॥११॥
तत्रापश्यद्द्विजं स्थूलं द्विमुखं शोभनाकृतिम् । चिन्ताविष्टं तथा श्रान्तं तमपृच्छन्नृपोत्तमः ॥१२॥

राजोवाच

को भवान्द्विमुख पक्षी चिन्तावानिव लक्ष्यसे । नैवात्र कश्चिद्दुःखार्त कस्मात्त्वं दुःखमागतः ॥१३॥

भेरुण्ड भी कहते हैं--सर्वदा निवास करता था। नाना पुष्प और फलो से भरे, सब ऋतु के फूलो और वृक्षो से युक्त एव गौतमी से सुशोभित उस पर्वत पर मुख्य द्विज (ब्राह्मण या पक्षी) सिद्ध, चारण, गन्धर्व, किन्नर और देवता सर्वदा निवास करते थे। उसके समीप ही कोई वृक्ष था जहाँ जाने से किसी मनुष्य या चार पैर वाले (चतुष्पद जन्तु) को रोग, दुःख, भूख, प्यास चिन्ता और मृत्यु का भय नही रहता था। एसे गुणो से युक्त और अनेको मुनियो से सुशोभित उस पर्वत पर वह पक्षी भी रहता था। एक दिन कोई पवमान नामक पूर्व देश का अधिपति, क्षत्रिय-धर्म-परायण, श्रीमान्, देवो और ब्राह्मणो का पालक राजा अपने असख्य सैनिको और पुरोहित के साथ वन मे आया। (वहा मनोहर स्त्रियो के साथ नृत्य वाद्य-जन्य सुखो का अनुभव करता हुआ वह विहार करने लगा।) इस प्रकार एक दिन वह अपने अनुचर शिकारियो के साथ हाथ मे धनुष लिये हुये घूमता हुआ थका सा उस वृक्ष के नीचे आया, जो गौतमी के तट पर अनेक पक्षियो से भरा हुआ था और आश्रमवासियो के लिये धर्मज्ञाता गृहपति के समान (भोजनदाता) था। उस वृक्ष के नीचे आकर उस नृप-श्रेष्ठ पवमान ने अपने अनुचरो के सहित विश्राम किया, और उस पवत की ओर दृष्टि दौडाई। उस पवत पर उसने स्थूल परन्तु सुन्दर आकार और दो मुख वाले पक्षी को देखा, जो थका हुआ-सा चिन्तातुर था। नृपोतम ने उस पक्षी से पूछा ॥१-१२॥

राजा ने कहा--तुम दो मुख वाले पक्षी कौन हो ? क्यो चिन्ताकुल-से दिखाई देते हो ? यहाँ कोई दुःखी नही दिखाई देता। फिर तुम इतने दुःखी क्यो हो ? ॥१३॥

१क. चंचिक। २घ. ङ. च ०व सार्वकामिकप०।

ब्रह्मोवाच

ततः प्रोवाच नृपतिं पवमानः शनैः शनैः । समाश्वस्तमना पक्षी चिच्चिको' निःश्वसन्मुहुः ॥१४॥

चिच्चिक उवाच

मत्तो भयं न चान्येषां मम वाऽन्योपपादितम् । नानापुष्पफलाकीर्णं मुनिभिः परिसेवितम् ॥१५॥
पश्येयं शून्यमेवाद्रिं ततः शोचामि मामहम् । न लभामि सुखं किंचिन्न तृप्यामि कदाचन ॥
निद्रां प्राप्नोमि न क्वापि न विश्रान्तिं न निर्वृतिम् ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

द्विमुखस्य द्विजस्योक्तं श्रुत्वा राजाऽतिविस्मितः ॥१७॥

राजोवाच

को भवान्किं कृतं पापं कस्माच्छून्यश्च पर्वतः । एकेनाऽऽस्येन तृप्यन्ति प्राणिनोऽत्र नगोत्तमे ॥१८॥
किमुताऽऽस्यद्वयेन त्वं न तृप्तिमुपयास्यसि । किंवा ते दुष्कृतं प्राप्तमिह जन्मन्यथो पुरा ॥१९॥
तत्सर्वं शंस मे सत्यं त्रास्ये त्वां महतो भयात् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

राजानं तं द्विजः प्राह निःश्वसन्नथ चिच्चिकः[२] ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद उस चिच्चिक पक्षी ने अपने को सम्हाला और बार-बार लंबी आह भरता हुआ वह राजा पवमान से धीरे धीरे बोला ॥१४॥

चिच्चिक ने कहा—मुझसे किसी दूसरे को भय नहीं और न मुझको ही किसी दूसरे का भय है। परन्तु मुनिजनों से सेवित और रंग बिरंग के फूलों और फलों से सुशोभित यह पर्वत मुझे सूना-सा दिखाई देता है। इसीलिये मुझको अपने ऊपर शोक होता है। यहाँ न तो मुझे सुख मिलता है न कभी आत्म-तृप्ति न नींद और न कहीं विश्राम या शान्ति ही मिलती है ॥१५ १६॥

ब्रह्मा बोले—उस दो मुख वाले पक्षी की कही हुई बातों को सुनकर राजा विस्मित हो गया ॥१७॥

राजा बोला—आप कौन हैं? आपने कौन सा पाप किया है? क्यों आपके लिए पर्वत शून्य है? इस उत्तम पर्वत पर प्राणी अपने एक मुखसे तृप्त हैं। फिर आप दो मुँह रखते हुए भी क्यों नहीं तृप्त हो रहे हैं? अथवा इस जन्म में या पूर्वजन्म में कौन सा पाप किया है? आप सब बातें सत्य रूप से कहिये। मैं आपको सब महान संकटों से बचाऊँगा ॥२०॥

ब्रह्मा बोले—इतना सुनने के बाद पक्षी चिच्चिक ने दीर्घश्वास लेते हुए उस राजा से कहा ॥२१॥

१क चर्चिको। २क चर्चिक।

चिच्चिक उवाच

यक्ष्येऽह त्वां पूर्ववृत्त पवमान शृणुष्व तत । अह द्विजातिप्रवरो वेदवेदाङ्गपारग ॥२२॥
कुलीनो विदितप्राज्ञ कार्यहन्ता परप्रिय । वद पुरस्तथा पृष्ठे अयदन्यच्च जतुषु ॥२३॥
परवृद्ध्या सदा दु खी मायया विश्ववञ्चक । कृतघ्न सत्यरहित परनिन्दाविचक्षण ॥२४॥
मित्रस्वामिगुरुद्रोही दम्भाचारातिनिघृण । मनसा कर्मणा वाचा तापयामि जनान्बहून ॥२५॥
अयमय विनोदो म सदा पर्परहिंसाम् । युग्मभेद गणोच्छेद मर्यादाभदन सदा ॥२६॥
करोमि निर्विचारो ऽह विद्वत्सवापराङ्मुख । न मया सदृश कश्चिपातकी भुवनत्रये ॥२७॥
तनाह द्विमुखो जातस्तापाद्दुखभाग्यहम । तस्माद्दु खन सतप्त शून्योऽय पवतो मम ॥२८॥
अयच्च शृणु भूपाल वाक्य धर्मार्थसहितम । ब्रह्महत्यासम पाप तद्विना तदवाप्यते ॥२९॥
क्षत्रिय सगर गत्वा अयवाऽन्यत्र सगरात । पलायन्त न्यस्तशस्त्र विश्वस्त च पराङ्मुखम ॥३०॥
अविज्ञात चोपविष्ट बिभमीति च वादिनम् । त यदि क्षत्रियो हयात्स तु स्याद्ब्रह्मघातक ॥३१॥
अधीत विस्मरति यस्त्व करोति तयोत्तमम् । अनादर च गुरषु तमाहुर्ब्रह्मघातकम ॥३२॥
प्रत्यक्षे च प्रिय वक्ति परोक्षे परषाणि च । अन्यद्धृदि वचस्यन्यत्करोत्यन्यत्सदैव य ॥३३॥
गुरूणा शपथकर्ता द्वेष्टा ब्राह्मणनिन्दक । मिथ्या विनीत पापात्मा स तु स्याद्ब्रह्मघातक ॥३४॥

चिच्चिक बोला—पवमान ! म तुमस पूव का वृत्तात कहूगा उस सुनो। मै पहले वद-वेदाग का पारदर्शी उत्तम ब्राह्मण था। कुलीन विद्वान् तो था परन्तु दूसरे क कार्यों को बिगाडन वाला तथा झगडालू था। लोगो के मुहपर तो दूसरा बात कहता था परन्तु पीठ पीछे दूसरी। दूसरा की बाता स सदा दु खी रहता था अपनी धूतता स ससार को ठगा करता था और कृतघ्न असत्यवादी परनिन्दा-पडित मित्र स्वामी और गुरु स द्रोह करन वाला दरिद्र अति घृणित काय करने वाला और मन वचन तथा कम से बहुत लोगो को कष्ट पहुचाता था। यही मेरा सवदा का मनवहलाव था कि दूस । का कष्ट दना। म विद्वाना की सवा स पराङ्मुख रहकर बिना विचारे दो जना म फट डालता समाज म भेद उत्पन्न करता और मर्यादा का उल्लघन आदि करता था सारांश यह कि मेरे समान त्रिभुवन म कोई पापी नहा था उसके फलस्वरूप म दो मुख वाला पक्षी हुआ। दूसरो का पीडा पहुचाने से दुखी हू गलिये दुख स सतप्त मेरे लिये यह पवत शून्य है।२२ २८। भूपाल ! अब धर्माथ से युक्त बात सुनो ब्रह्म हत्य के सम न पाप ब्रह्म हत्या न करने से भी होते हैं (जसे) क्षत्रिय युद्ध म जाकर या युद्ध स अन्यत्र भागत हुये शरण म आये हुय विश्वसपात्र रण विमख अपरिचित बठ हुये और म डरता हू एसा कहने वाले का यदि मारे ता वह ब्रह्म घातक कहा जाता है जो अध्ययन किय हुए (शास्त्र) को भूल जाता है श्रेष्ठ व्यक्ति को तुम कहकर पुकारता है और गरुजना का अनादर करता है वह ब्रह्मघातक है। जो सामने प्रिय बोलता है किन्तु पीठ पीछे कटु और जो मन म दूसरी वचन म दूसरी और कायतः सदव दूसरी ही बात करता है और जो गुरु का शपथ लने वाला द्वेष करने वाला ब्राह्मणो की निन्दा करने वाला मिथ्या विनीत तथा पापात्मा हैं वे ब्रह्मघातक होते है जो देवता वेद अध्यात्म ज्ञान धम तथा ब्राह्मण की सगति की द्वेष से निन्दा करता

देवं वेदमथाध्यात्मं धर्मब्राह्मणसंगतिम् । एतान्निन्दति यो द्वेषात्स तु स्याद्ब्रह्मघातकः ॥३५॥
एवं भूतोऽप्यहं राजन्दम्भार्थं लज्जया तथा । सद्वृत्त इव वर्तेऽहं तस्माद्राजन्द्विजोऽभवम् ॥३६॥
एवं भूतोऽपि सत्कर्म किंचित्कर्ताऽस्मि कुत्रचित् । तेनाहं कर्मणा राजन्स्वतः स्मर्ता पुरा कृतम् ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

[१]तच्चिच्चिकवचः श्रुत्वा पवमानः सुविस्मितः । कर्मणा केन ते मुक्तिरित्याह नृपतिर्द्विजम् ॥३८॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा नृपतिं प्राह पक्षिराट् ॥३९॥

चिच्चिक उवाच

अस्मिन्नेव नगश्रेष्ठे गौतम्या उत्तरे तटे । गदाधरं नाम तीर्थं तत्र मां नय सुव्रत ॥४०॥
तद्धि तीर्थं पुण्यतमं सर्वपापप्रणाशनम् । सर्वकामप्रदं चेति महद्भिर्मुनिभिः श्रुतम् ॥४१॥
न गौतम्यास्तथा विष्णोरपरं क्लेशनाशनम् । सर्वभावेन तत्तीर्थं पश्येयमिति मे मतिः ॥४२॥
मत्कृतेन प्रयत्नेन नैतच्छक्यं कदाचन । कथमाकाङ्क्षितप्राप्तिर्भवेद्दुष्कृतकर्मणाम् ॥४३॥
सप्रयत्नोऽप्यहं वीर न पश्ये तत्सुदुष्करम् । तस्मात्तव प्रसादाच्च पश्येयं हि गदाधरम् ॥४४॥
अविज्ञापितदुःखज्ञं करुणावरुणालयम् । यस्मिन्दृष्टे भवक्लेशा न दृश्यन्ते पुनर्नरैः ॥४५॥
दृष्ट्वैव तं दिवं यास्ये प्रसादात्तव सुव्रत ॥४६॥

है, वह ब्रह्मघातक होता है। राजन्! इस प्रकार का होता हुआ भी मैं दम्भ के लिये अथवा लोकलज्जावश सदाचारी की तरह बाह्य व्यवहार करता था। राजन्! इसीलिये मैं पक्षी हुआ। ऐसा होता हुआ भी मैं कहीं-कहीं कभी सत्कर्म कर देता था। उन कर्मों के प्रभाव से ही मुझे पूर्व के किये हुए कर्मों का स्वतः स्मरण है ॥२९-३७॥

ब्रह्मा बोले—चिच्चिक की बात सुन कर राजा पवमान अतिविस्मित हो गया। उसने पक्षी से कहा—'किस कर्म से तुम्हारी मुक्ति हो सकती है?' उसकी बात सुनकर पक्षिराज ने राजा से कहा ॥३८-३९॥

चिच्चिक ने कहा—इसी पर्वत श्रेष्ठ पर गौतमी के उत्तर तट पर गदाधर नामक एक तीर्थ है। सुव्रत! वहाँ मुझको ले चलो। वह तीर्थ अतिपवित्र, सब पापों को दूर करने वाला तथा सब कामनाओं को देने वाला है, ऐसा महामुनियों से हमने सुना है। गौतमी एवं विष्णु से बढ़कर दूसरा कोई पापों का नष्ट करनेवाला नहीं है। इसलिए मेरा विचार है कि उस तीर्थ का बड़ी श्रद्धा से देखूँ। यह मेरे प्रयत्नों से कभी भी नहीं हो सकता। भला, दुष्कर्म करने वालों को कैसे मनोरथ प्राप्त हो सकते हैं? वीर! प्रयत्न करने पर भी मैं उस अत्यन्त कठिन कार्य की सिद्धि नहीं देखता हूँ। अतः मैं तुम्हारी सहायता और कृपा से ही भगवान् गदाधर को देख सकता हूँ, जो स्वयं दूसरों के दुःखों को जानने वाले और करुणा के सागर हैं तथा जिनका दर्शन पा जाने पर मनुष्य पुनः सांसारिक कष्टों के फन्दे में नहीं पड़ते हैं। सुव्रत! तुम्हारी कृपा से उनका दर्शन करते ही मैं स्वर्ग को चला जाऊँगा ॥४०-४६॥

१क. तच्चिक०।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तः स [1]नृपतिश्चिच्चिकेन द्विजन्मना। दर्शयामास तं देवं तां च गङ्गां द्विजन्मने ॥४७॥
ततः स चिच्चिकः[2] स्नात्वा (प्राह) गङ्गां त्रैलोक्यपावनीम् ॥४८॥

चिच्चिक उवाच

गङ्गे गौतमि यावत्त्वां त्रिजगत्पावनीं नरः। न पश्यत्युच्यते तावदिहामुत्रापि पातकी ॥४९॥
तस्मात्सर्वागसमपि मामुद्धर सरिद्वरे। संसारे देहिनामन्या न गतिः काऽपि कुत्रचित् ॥
त्वां विना विष्णुचरणसरोरुहसमुद्भवे ॥५०॥

इति श्रद्धाविशुद्धात्मा गङ्गैकशरणो द्विजः। स्नानं चक्रे स्मरन्नन्तर्गङ्गे त्रायस्व मामिति ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

गदाधरं ततो नत्वा पश्यत्सु नगवासिषु। पवमानाभ्यनुज्ञातस्तदैव दिवमाक्रमत् ॥५२॥
पवमानः स्वनगरं प्रययौ सानुगस्ततः। ततः प्रभृति तत्तीर्थं पावमानं [3]सचिच्चिकम् ॥५३॥
गदाधरं कोटितीर्थमिति वेदविदो विदुः। कोटिकोटिगुणं कर्म कृतं तत्र भवेन्नृणाम् ॥५४॥

इति महापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पावमानचिच्चिकगदाधरकोटितीर्थवर्णनं नाम चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥९५॥

ब्रह्मा बोले—पक्षी चिच्चिक ने उस नृपति से ऐसा कहा और राजा ने उस पक्षी को उस देव गदाधर और गौतमी गंगा का दर्शन करा दिया। तदनन्तर चिच्चिक ने गौतमी मे स्नान कर उस त्रैलोक्य-पावनी गंगा से कहा ॥४७-४८॥

चिच्चिक ने कहा—गंगे! गौतमि! मनुष्य जब तक त्रिभुवन-पावनी तुमको नही देखता है तभी तक उसको इस लोक मे या परलोक मे पापी कहा जाता है। इसलिये श्रेष्ठ नदी! इस प्रकार अपराध करने वाले मेरा भी उद्धार करो। हे विष्णु के चरणकमल से उत्पन्न होने वाली! इस संसार मे तुम्हारे बिना देहधारियो के लिये कही पर और कोई सहारा (गति) नही है ॥४९-५०॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार श्रद्धा से विशुद्ध आत्मा वाले, और एकमात्र गंगा की शरण मे रहने वाले उस ब्राह्मण ने 'गंगे! मेरी रक्षा करो इस प्रकार हृदय मे ध्यान करते हुए गंगा मे स्नान किया। तत्पश्चात् भगवान् गदाधर को नमस्कार कर पर्वतनिवासियो के देखते देखते उसी समय वह पक्षी पवमान से विदा की आज्ञा लेकर स्वर्ग को चला गया। तब पवमान भी अनुचरो के साथ अपने नगर को चला गया। उस समय से वह तीर्थ पवमान चिच्चिक और कोटितीर्थ इन नामो से वेदज्ञो द्वारा पुकारा जाने लगा। वहाँ मनुष्य के किये हुए कर्म कोटि कोटि गुना फल देते है ॥५१-५४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे पवमान चिच्चिक-गदाधर-तीर्थ-वर्णन नामक एक सौ चौसठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६४॥

१क ०तिश्चर्चिके०। २क चर्चिक'। ३क सचर्चिक०।

अथ पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

भद्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भद्रतीर्थमिति प्रोक्तं सर्वानिष्टनिवारणम् । सर्वपापप्रशमनं महाशान्तिप्रदायकम् ॥१॥
आदित्यस्य प्रिया भार्या उषा त्वाष्ट्री पतिव्रता । छायाऽपि भार्या सवितुस्तस्याः पुत्रः शनैश्चरः ॥२॥
तस्य स्वसा विष्टिरिति भीषणा पापरूपिणी । तां कन्यां सविता कस्मै ददामीति मतिं दधे ॥३॥
यस्मै यस्मै दातुकामः सूर्यो लोकगुरुः प्रभुः । तच्छ्रुत्वा भीषणा चेति किं कुर्मो भार्ययाऽनया ॥४॥
एवं तु वर्तमाने सा पितरं प्राह दुःखिता ॥५॥

विष्टिरुवाच

बालामेव पिता यस्तु दद्यात्कन्यां सुरूपिणे । स कृतार्थो भवेल्लोके न चेद्दुष्कृतवान्पिता ॥६॥
चतुर्थाद्वत्सरादूर्ध्वं यावन्न दशमात्ययः । तावद्विवाहः कन्यायाः पित्रा कार्यं प्रयत्नतः ॥७॥
श्रीमते विदुषे यूने कुलीनाय यशस्विने । उदाराय सनाथाय कन्या देया वराय वै ॥८॥
एतच्चेदन्यथा कुर्यात्पिता स निरयी सदा । धर्मस्य साधनं कन्या विदुषामपि भास्कर ॥९॥
नरकस्यैव[1] मूर्खाणां कामोपहतचेतसाम् । एकतः पृथिवी कृत्स्ना सशैलवनकानना ॥१०॥

अध्याय १६५

भद्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सब अनिष्टों को दूर करने वाला, सब पापों को शान्त करने वाला तथा महान शान्ति को देने वाला भद्रतीर्थ नामक एक तीर्थ है। त्वष्टा की पुत्री त्वाष्ट्री सूर्य की प्रिय एवं पतिव्रता भार्या थी। छाया भी उन्हीं की भार्या थी जिसका पुत्र शनैश्चर है। उसकी अति कुरूप और भयंकर आकार वाली विष्टि नाम की बहिन थी। सूर्य 'यह कन्या को किसे दूँ' यह सोचने लगे। लोक गुरु प्रभु सूर्य जिस-जिसको देना चाहते थे सभी सुनकर यही कहते थे कि 'ऐसी भीषण भार्या को लेकर हम क्या करेंगे।' यह दशा देख कर एक दिन विष्टि दुःखी होकर पिता से बोली ॥१-५॥

विष्टि ने कहा—जो पिता अपनी बाला (छोटी अवस्था की) कन्या सुरूप वर को देता है वह लोक में कृतकृत्य हो जाता है, अन्यथा पिता पाप का भागी होता है। चौथे वर्ष के बाद जबतक दसवां न बीत जाय तब तक पिता को कन्या का विवाह यत्नपूर्वक कर देना चाहिए। श्रीमान्, विद्वान्, युवक कुलीन, यशस्वी, उदार और माता-पिता या अभिभावक वाले वर को ही कन्या देनी चाहिये। जो इसके विपरीत कार्य करता है वह सर्वदा नरक भोगता है। भास्कर! विद्वानों के लिये भी कन्या धर्म का साधन है। काम से दग्ध हृदय वाले मूर्खों के लिए कन्या नरक का

[1] घ. च. ०कस्यैव।

स्वलंकृतोपाधिहीना सुकन्या चैकतः स्मृता। विक्रीणीते यश्च कन्यामश्वं वा गां तिलानपि ॥११॥
न तस्य रौरवादिभ्य' कदाचिन्निष्कृतिर्भवेत्। विवाहातिक्रमः कार्यो न कन्यायाः कदाचन ॥१२॥
तस्मिन्कृते यत्पितुः स्यात्पापं तत्केन कथ्यते। यावल्लज्जां न जानाति यावत्क्रीडति पांशुभिः ॥१३॥
तावत्कन्या प्रदातव्या नो चेत्पित्रोरधोगतिः। पितु' स्वरूपं पुत्रः स्याद्यः पिता पुत्र एव सः ॥१४॥
आत्मन' सुखिता लोके को न कुर्यात्करोति च। यत्कन्यायां' पिता कुर्याद्दानं पूजनमीक्षणम् ॥१५॥
यत्कृत तत्कृत विद्यात्तासु दत्त तदक्षयम्। यद्दत्तं तासु कन्यासु 'तदानन्त्याय कल्पते ॥१६॥
पुत्रेषु चैव पौत्रेषु को न कुर्यात्सुखं रवे। करोति यः कन्यकानां स संपद्भाजनं भवेत् ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

एवं तां वादिनीं कन्यां विष्टिं प्रोवाच भास्करः ॥१८॥

सूर्य उवाच

किं करोमि न गृह्णाति त्वा कश्चिद्भीषणाकृतिम्। कुलं रूपं वयो वित्तं विद्यां वृत्तं सुशीलताम् ॥१९॥
मिथः पश्यन्ति सबन्धे विवाहे स्त्रीषु पुंसु च। अस्मासु सर्वमप्यस्ति विना तव गुणैः शुभे ॥
किं करोमि क्व दास्यामि वृथा मा धिक्करोषि किम् ॥२०॥

साधन है। एक ओर शैल, वन तथा उपवन से युक्त सम्पूर्ण पृथिवी है तो दूसरी ओर अलकारो से अलकृत विकारहीन सुकन्या। जो व्यक्ति कन्या, अश्व गौ और तिल को बेचता है, उसका रौरव आदि नरक से कभी भी उद्धार नही होता। साथ ही कन्या के विवाह-वय का अतिक्रमण कभी भी नही होना चाहिये। ऐसा करने से कन्या के पिता को जो पाप होता है, उसको कौन कह सकता है? जब तक कन्या लज्जा करना नही जानती, जब तक वह धूल मिट्टी से खेलती रहती है, तब तक कन्या का दान कर देना चाहिये। यदि ऐसा नही होता तो पिता-माता की अधोगति होती है। पिता का स्वरूप पुत्र है। जो पिता है वही पुत्र है। लोक मे अपने को सुखी बनाना कौन नही चाहेगा या नही चाहता? परन्तु पिता कन्या के लिये जो कुछ दान, पूजन, दर्शन (वर निरीक्षण) आदि करता है वही करना (कार्य) उत्तम समझा जाता है। जो कन्या के लिये दिया जाता है वह अक्षय दान है और वह अनन्त फल प्रदान करता है। रवि! पुत्र और पौत्र के सुख के लिये कौन नही प्रयत्न करता परन्तु जो कन्या के सुख के लिये प्रयत्न करता है वही सम्पत्ति का प्रियपात्र होता है अर्थात् वही धनवान् होता है ॥६-१७॥

ब्रह्मा बोले--इस प्रकार कहने वाली उस कन्या विष्टि से भास्कर ने कहा ॥१८॥

सूर्य ने कहा--क्या करूँ? तुम भयङ्कर आकृति वाली को कोई भी ग्रहण करने के लिये तैयार नही होता। स्त्री और पुरुषों के विवाह मे परस्पर के कुल रूप अवस्था, धन विद्या, व्यवहार और सौजन्य को देखा जाता है। शुभे! हम लोगो मे और सब कुछ है परन्तु केवल तुममे कोई गुण नहीं है। क्या करूँ? कहाँ तुमको दूँ? क्यो वृथा मुझे धिक्कार रही हो? ॥१९-२०॥

१घ. ०न्यायें पि०। ङ. ०न्याया. पि०। २ङ. तद्दानैं कुप्यमुच्यते। च. तद्दान पुण्यमुच्यते।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा पुनस्तां च विष्टिं प्रोवाच भास्करः ॥२१॥

सूर्य उवाच

यस्मै कस्मै च दातव्या त्वं वै यद्यनुमन्यसे। दीयसेऽद्य मया विष्टे अनुजानीहि मा तत ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

पितरं प्राह सा विष्टिर्भर्ता पुत्रा धनं सुखम्। आयू रूपं च सप्रीतिर्जायते प्राक्तनानुगम् ॥२३॥
यत्पुरा विहितं कर्म प्राणिना साध्वसाधु वा। फलं तदनुरोधेन प्राप्यतेऽपि भवान्तरे ॥२४॥
स्वदोष एव तत्पित्रा परिहर्तव्य आदरात्। तादृगेव फलं तु स्याद्यादृगाचरितं पुरा ॥२५॥
तस्मात्तद्दानसंबन्धं स्ववशानुगतं पिता। करोति शेषं दैवेन यद्भाव्यं तद्भविष्यति ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा दुहितुर्वाक्यं त्वष्टुः पुत्राय भीषणाम्। विश्वरूपाय तां प्रादाद्विष्टिं लोकभयंकरीम् ॥२७॥
विश्वरूपोऽपि तद्वच्च भीषणो भीषणाकृतिः। एवं मिथः संचरतोः शीलरूपसमानयोः ॥२८॥
प्रीतिः कदाचिद्वैषम्यं दंपत्योरभवन्मिथः। गण्डो नामाभवत्पुत्रो ह्यतिगण्डस्तथैव च ॥२९॥
[१]रक्ताक्षः क्रोधनश्चैव व्ययो दुर्मुख एव च। तेभ्यः कनीयानभवद्धर्षणो नाम पुण्यभाक् ॥३०॥

ब्रह्मा बोले—ऐसा कहकर पुनः भास्कर ने उस विष्टि से कहा ॥२१॥

सूर्य ने कहा—तुम यदि इस बात के लिये अनुमति दो कि जिस किसी के हाथों तुम्हें दे दिया जाय तो आज ही मैं किसी को दे देता हूँ। विष्टे! केवल मुझे अपनी स्वीकृति दो। ॥२२॥

ब्रह्मा बोले—उस विष्टि ने अपने पिता से कहा— भर्ता पुत्र धन सुख आयु रूप प्रीति सब पहले के किये गये कर्मों के अनुसार ही होते हैं। प्राणी पूर्व जन्म में जो अच्छा या बुरा कर्म करते हैं दूसरे जन्म में भी उसी के अनुसार फल पाते हैं। इसलिये पिता को आदर पूर्वक अपने दोषों का ही परिहार करना चाहिये। फल तो वैसा ही होगा जैसा कि पूर्व जन्म में किया गया है। इसलिये पिता अपने वश के अनुरूप ही कन्या दान-सम्बन्ध करे शेष दैव के अनुसार जो होने वाला होगा वह होगा ही ॥२३-२६॥

ब्रह्मा बोले—पुत्री की बात सुनकर सूर्य ने उस लोक भयङ्करी विष्टि को त्वष्टा पुत्र विश्वरूप के हाथ दे दिया। विश्वरूप भी उसी की तरह भयंकर और भीषण आकार वाला था। इस प्रकार समान स्वभाव और रूप वाले दोनों परस्पर प्रीतिपूर्वक व्यवहार करते थे परन्तु किसी समय उन दोनों दम्पति में वैषम्य (मन मुटाव) हो गया। उनके गण्ड अतिगण्ड रक्ताक्ष क्रोधन व्यय और दुर्मुख नामक पुत्र हुए। सबसे छोटा हर्षण नामक पुत्र पुण्यात्मा था। वह सुशील भाग्यवान शान्त शुद्ध हृदय और पवित्र पुत्र किसी समय यम गुरु को देखने

---

[१] घ. ङ. च. रक्ताक्षो।

सुत सुशील सुभग शान्त शुद्धमति शुचि । स कदाचिद्यमगृह द्रष्टु मातुलमभ्यगात् ॥३१॥
स ददर्श बहूञ्जन्तून्स्वर्गस्थानिव दु खिन । स मातुल तु पप्रच्छ नत्वा धर्मं सनातनम् ॥३२॥

हर्षण उवाच

क इमे सुखिनस्तात पच्यन्ते नरके च के ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

एव पृष्टो धर्मराज सर्वं प्राह यथार्थवत् । तत्कर्मणा गति सर्वामशेषेण न्यवेदयत् ॥३४॥

यम उवाच

विहितस्य न कुर्वन्ति ये कदाचिदतिक्रमम् । न ते पश्यन्ति निरय कदाचिदपि मानवा ॥३५॥
न मानयन्ति ये शास्त्र नाऽऽचार न बहुश्रुतान् । विहितातिक्रम कुर्युर्ये ते नरकगामिन ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

स तु श्रुत्वा धर्मवाक्य हर्षण पुनरब्रवीत् ॥३७॥

हर्षण उवाच

पिता त्वाष्ट्री भीषणश्च माता विष्टिश्च भीषणा । भ्रातरश्च महात्मानो येन ते शान्तबुद्धय ॥३८॥
सुरूपाश्च भविष्यन्ति निर्दोषा मङ्गलप्रदा । तन्मे कर्म वदस्वाद्य तत्कर्ताऽस्मि सुरोत्तम ॥३९॥

के लिये मामा यम के यहा गया। उसने वहाँ बहुत से प्राणियो को स्वग के समान सुख भोगते तथा बहुतो को दु खी देखा। उसने मामा को प्रणाम कर उनसे सनातन धम के विषय मे पूछा ॥२७ ३२॥

हर्षण ने कहा—तात ! ये कौन हैं जो सुखी हैं और ये कौन हैं जो नरक मे यन्त्रणा भोग रहे है ॥३३॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार पूछने पर धमराज यम ने उनके कर्मो की सब गति को ठीक-ठीक पूणरूप से कह दिया ॥३४॥

यम बोले—जो कमी भी विहित (उचित या वेद विहित) कर्मों को नही छोडते हैं वे मनुष्य कमी भी नरक मे नही जाते है। जो शास्त्रो को नही मानते है आचार और बहुश्रुतो (पडितो) का आदर नही करते हैं और विहित कर्मों का उल्लघन करते हैं वे नरकगामी होते हैं ॥३५ ३६॥

ब्रह्मा बोले—उस हषण ने धमराज की बात सुनकर पुन कहा ॥३७॥

हर्षण ने कहा—मेरे अयत भीषण पिता भीषण माता विष्टि तथा भाई जिस उपाय से शान्त-बुद्धि महात्मा, सुरूप निर्दोष और कल्याणदायक हो जाँय उस कम को बतलाइये। सुरोत्तम ! मैं उन कार्यों को आज ही करूँगा। अयथा मैं उनके पास नही जाऊँगा। यह सुनकर धमराज ने उस शुद्धबुद्धि हषण से कहा— तुम वास्तव

अन्यथा तान्न गच्छेयमित्युक्त प्राह धर्मराट। हर्यण शुद्धबुद्धि त हर्यणोऽसि न सशय ॥४०॥
बहव स्यु सुता केचिन्नैव ते कुलतन्तव । एक एव सुत कश्चिद्येन तदधियते कुलम् ॥४१॥
कुलस्याऽऽधारभूतो यो य पित्रो प्रियकारक । य पूर्वजानुद्धरति स पुत्रस्त्वितरो गद ॥४२॥
यस्मात्त्वयाऽनुरूप मे प्रोक्त मातामह प्रियम । तस्मात्त्व गौतमीं गच्छ स्नात्वा नियतमानस ॥४३॥
स्तुहि विष्णु जगद्योनि शान्त प्रीतेन चेतसा। स तु प्रीतो यदि भवेत्सर्वमिष्ट प्रदास्यति ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा धर्मवाक्य हर्यणो गौतमीं ययौ। शुचिस्तुष्टाव देवेश हरि प्रीतोऽभवद्धरि ॥४५॥
हर्यणाय[1] तत प्रादात्कुलभद्र ततस्तु स। सर्वाभद्रप्रशमनपूर्वक भद्रमस्तु त ॥४६॥
तद्भद्रा प्रोच्यते विष्टि पिता भद्रस्तथा सुता। तत प्रभृति तत्तीर्थं भद्रतीर्थं तदुच्यते ॥४७॥
सर्वमङ्गलद पुसा तत्र भद्रपतिर्हरि। तत्तीर्थसेविनां पुसा सर्वसिद्धिप्रदायकम ॥
मङ्गलैकनिधि साक्षाद्देवदेवो जनार्दन ॥४८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भद्रतीर्थवणन नाम
पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय ॥१६५॥

गौतमीमाहात्म्ये षण्णवतितमोऽध्याय ॥९६॥

म हर्यण (आनन्द देन वाल) हो। कुल म बहुत स पुत्र हो जाते हैं परन्तु व कुलतन्तु (कुल की मर्यादा बढाने वाले) नहीं होते। वह कोई एक ही पुत्र होता है जिससे कुल की रक्षा होती है। जो पुत्र कुल का आधारभूत है जो माता पिता का प्रिय करने वाला है और जो पूर्व पुरुषा का उद्धार करता है वही पुत्र है अन्य तो कुल के लिए विपत्ति हैं। जिसलिए तुमने अपने मातामह को प्रिय लगने वाली और अनुरूप बात मुझसे पूछी है इसलिए तुम गौतमी क पास जाओ। उसम स्नान कर एकाग्र होकर प्रसन्न चित्त स जगत् के आदि कारण शान्त विष्णु की स्तुति करो। वे यदि तुम पर प्रसन्न हो जायेंगे तो तुम्हारे सब मनोरथा को पूर्ण कर देंगे ॥३८ ४४।

ब्रह्मा बोले—धर्मराज की इन बातो को सुनकर हर्यण गौतमी क पास गया। पवित्र होकर उसने हरि की स्तुति की। हरि उसकी स्तुति स प्रसन्न हो गये। उन्होंने हर्यण को कुल क मगल का वरदान दिया और कहा कि तुम लोगो क सब अमगल नष्ट हो जाय तथा कल्याण हो। इस कारण वह विष्टि शुभ पिता शुभ और पुत्र भी शुभ हो गये। उस समय से वह तीर्थ भद्रतीर्थ कहा जाता है। वहाँ मनुष्या को सब प्रकार का कल्याण देन वाले मगल क एकमात्र कोश साक्षात् देवाधिदेव जनार्दन विष्णु निवास करते हैं। उस तीर्थ की सेवा करने वाले लोगो को सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ॥४५ ४८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म भद्रतीर्थ वर्णन नामक एक सौ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६५॥

---

१ घ ङ च ०णायगत प्रा०।

अथ षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

पतत्रितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पतत्रितीर्थमाख्यातं रोगघ्नं पापनाशनम्। तस्य श्रवणमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥१॥
बभूवतुः कश्यपस्य सुतावरुणवीश्वरौ। संपातिश्च जटायुश्च संभवेतां तदन्वये ॥२॥
तार्क्ष्यप्रजापतेः पुत्रावरुणो गरुडस्तथा। तदन्वये च संभूतः संपातिः पतगोत्तमः ॥३॥
जटायुरिति विख्यातो ह्यपरः सोदरोऽनुजः। अन्योन्यस्पर्धया युक्तावुन्मत्तौ स्वबलेन तौ ॥४॥
सजग्मतुर्दिनकरं नमस्कर्तुं विहायसि। यावत्सूर्यस्य सामीप्यं प्राप्तौ तौ विहगोत्तमौ ॥५॥
दग्धपक्षावुभौ श्रान्तौ पतितौ गिरिमूर्धनि। बान्धवौ पतितौ दृष्ट्वा निश्चेष्टौ गतचेतसौ ॥६॥
तावद्दुःखाभिभूतोऽसावरुणः प्राह भास्करम्। तौ दृष्ट्वा त्वरुणः सूर्यं प्राहेदं पतितौ भुवि ॥
आश्वासयैतौ तिग्मांशो यावन्नैतौ मरिष्यतः ॥७॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा दिनकरो जीवयामास तौ खगौ। गरुडोऽपि तयोः श्रुत्वा अवस्थां सह विष्णुना ॥८॥
आगत्याऽऽश्वासयामास सुखं चक्रे च नारद। सर्व एव तदा जग्मुर्गङ्गां तापापनुत्तये ॥९॥

अध्याय १६६

पतत्रितीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—रोगों तथा पापों को नष्ट करने वाला पतत्रितीर्थ नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है। उसके (नाम को) सुनने से ही मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। कश्यप के अरुण और ईश्वर दो पुत्र हुये। उन्हीं के कुल में सम्पाति और जटायु भी थे। तार्क्ष्य प्रजापति के पुत्र अरुण और गरुड हुये। उस वंश में पक्षिश्रेष्ठ सपाति भी हुआ। उसका जटायु नाम से विख्यात दूसरा छोटा सगा भाई था। वे अपने बल से उन्मत्त थे और सर्वदा परस्पर प्रतिस्पर्धा (होड़) किया करते थे। वे दोनों आकाश में सूर्यदेव को नमस्कार करने के लिये उड़े। ज्यों ही दोनों पक्षि-श्रेष्ठ सूर्य के समीप गये त्यों ही उनके पंख जल गये और वे थक कर पर्वत की चोटी पर गिर पड़े। अपने बन्धुओं को मूर्च्छित और निश्चेष्ट अवस्था में गिरते देखकर अरुण को अत्यन्त दुःख हुआ। वह अरुण दुःख से कातर हो भूमि पर गिरे उन दोनों की ओर लक्ष्य करके सूर्य से बोला—तीक्ष्ण किरण वाले! इन चारों को बचाइये ताकि ये मरने न पायें ॥१-७॥

ब्रह्मा बोले—दिनकर ने 'ऐसा ही हो' यह कहकर उन दोनों पक्षियों को जिला दिया। नारद! विष्णु सहित गरुड ने भी उन दोनों की शोचनीय अवस्था का पता पाया और आकर उन दोनों को आश्वासन दिया और सुखी बनाया। तब सभी उसी समय ताप की शान्ति के लिये गंगा के पास गये। जटायु, अरुण, सपाति, गरुड,

जटायुश्चारुणश्चैव संपातिर्गरुडस्तथा। सूर्यो विष्णुस्तत्प्रययौ तत्तीर्थं बहुपुण्यदम् ॥१०॥
पतत्रितीर्थमाख्यातं विघ्नघ्नं सर्वकामदम्। स्वयं सूर्यस्तथा विष्णुः सुपर्णेनारुणेन च ॥११॥
आसते गौतमीतीरे तथैव वृषभध्वजः। त्रयाणामपि देवानां स्थितेस्तत्तीर्थमुत्तमम् ॥१२॥
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा नमस्कुर्यात्सुरानिमान्। आधिव्याधिविनिर्मुक्तः स परं सौख्यमाप्नुयात् ॥१३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पतत्रितीर्थवर्णनं नाम षट्षष्ट्यधिक-
शततमोऽध्यायः ॥१६६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥९७॥

अथ सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

विप्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विप्रतीर्थमिति ख्यातं तथा नारायणं विदुः। तस्याऽऽख्यानं प्रवक्ष्यामि शृणु विस्मयकारकम् ॥१॥
अन्तर्वेद्यां द्विजः कश्चिद्ब्राह्मणो वेदपारगः। तस्य पुत्रा महाप्राज्ञा गुणरूपदयान्विताः ॥२॥
तेषां कनीयान्यो भ्राता शान्तो गुणगणैर्वृतः। आसन्दिव इति ख्यातः सर्वज्ञानी महामतिः ॥३॥

सूर्य तथा (स्वयं) विष्णु उस स्थान पर गये। इसलिये अत्यन्त पुण्य देने वाला, विघ्नों को दूर करने वाला और सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला वह तीर्थ पतत्रितीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया। गौतमी के तीर पर उसी तीर्थ में अरुण और गरुड के साथ सूर्य तथा विष्णु एवं वृषभध्वज शंकर रहते हैं। तीनों देवों के रहने के कारण वह तीर्थ अति उत्तम तीर्थ हो गया है। उसमें स्नान कर पवित्र हो जो इन देवों को नमस्कार करता है वह सम्पूर्ण आधियों और व्याधियों से छूट कर महान् सुख को प्राप्त करता है ॥८-१३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में पतत्रितीर्थ-वर्णन नामक एक सौ छाछठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६६॥

अध्याय १६७

विप्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—विप्रतीर्थ नाम से प्रसिद्ध एक तीर्थ है, जिसको नारायणतीर्थ भी कहते हैं। उसका आश्चर्यजनक आख्यान को कहता हूँ, सुनो—ब्रह्मावर्त (गंगा और यमुना के बीच के प्रदेश) में कोई वेदों का पारदर्शी ब्राह्मण रहता था। उसके पुत्र महाबुद्धिमान् गुण, रूप और दया से युक्त थे। उनमें छोटे भाई का नाम आसन्दिव था, जो शान्त, गुणवान्, सर्वज्ञ तथा महाबुद्धिमान् था। पिता आसन्दिव के विवाह के लिये प्रयत्न कर रहे

विवाहाय पिता तस्मा आसन्दिवाय यत्नवान् । एतस्मिन्नन्तरे रात्रौ सुप्त त द्विजपुत्रकम् ॥४॥
अविष्णुस्मरण सौम्यशिरस्कमसमाहितम् । आसन्दिव क्रूररूपा राक्षसी कामरूपिणी ॥५॥
तमादायागमच्छीघ्र गौतम्या दक्षिणे तटे । श्रीगिरेरुत्तरे [1]पारे बहुब्राह्मणसेवितम् ॥६॥
नगर धर्मनिलय लक्ष्म्या निलयमेव च । तत्र राजा बृहत्कीर्ति सर्वक्षत्रगुणान्वित ॥७॥

तस्यामितक्षेमसुभिक्षयुक्त, निशावसाने द्विजपुत्रयुक्ता ।
सा राक्षसी तत्पुरमाससाद, मनोज्ञरूपाणि बिभर्ति नित्यम् ॥८॥
सा कामरूपेण चरत्यशेषा, महीमिमा तेन सम द्विजेन ।
गोदावरीदक्षिणतीरभागे, वृद्धाकृतिस्त द्विजमाह भीमा ॥९॥

राक्षस्युवाच

एषा तु गङ्गा द्विजमुख्य सध्या, उपास्यता विप्रवरै समेत्य ।
यथोचित विप्रवरास्तु काले, नोपासते यत्नत एव सध्याम् ॥१०॥
नीचास्त एवाभिहिता सुरेशैरन्त्यावसायिप्रवरास्त एते ।
अह जनित्री तव चेति वाच्य, नो चेदिदानीं त्वमुपैषि नाशम् ॥११॥
मद्वाक्यकर्ताऽसि यदि द्विजेन्द्र, सुख करिष्ये तव यत्प्रिय च ।
पुनश्च देश निलय गुरूश्च, सप्रापयिष्ये ननु सत्यमेतत् ॥१२॥

थे। इसी बीच एक रात बिना विष्णु का स्मरण किये असावधानीपूर्वक सोये उस सुन्दर सिर वाले ब्राह्मण पुत्र आसन्दिव को एक स्वेच्छा से रूप धारण करने वाली तथा भयकर रूप वाली राक्षसी उठाकर गोदावरी के दक्षिण तट पर ले गई। श्रीगिरि के उत्तर तट पर बहुत ब्राह्मणो से सुसेवित तथा धर्म का केन्द्र रूप एक नगर है जहा मानो लक्ष्मी का ही आवास है। वहा समस्त राज गुणो से सम्पन्न बृहत्कीर्ति नामक राजा है। रात्रि के अन्त मे उसी कल्याणमय तथा धन धान्य सम्पन्न नगर मे नित्य मनोहर रूपो को धारण करने वाली वह राक्षसी ब्राह्मण पुत्र के साथ जा पहुची। अनन्तर वह स्वच्छा से रूप धारण कर उस द्विज के साथ सम्पूर्ण पृथ्वी पर विचरण करती हुई गोदावरी के दक्षिण तट पर आयी। वहा वृद्धा का रूप बनाकर वह भयानक राक्षसी ब्राह्मण से कहने लगी ॥१ ९॥

राक्षसी बोली—द्विजवर्य यह गगा है। ब्राह्मणो को चाहिये कि यहा आकर सन्ध्योपासना करें। जो विप्र वर समय पर सावधानी से सन्ध्या की उपासना नही करते है उनको देवताओ ने नीच तथा चाण्डाल तुल्य बतलाया है। मै तुम्हारी माता हू—यह तुम्हे कहना पडेगा अन्यथा तुम तत्क्षण मृत्यु को प्राप्त करोगे। द्विज श्रेष्ठ। यदि तुम मेरी बात मानोगे तो सुख भोगोगे। मैं तुम्हारी कामनाओं को पूर्ण करूँगी और पुन तुम्हे अपने देश मे पहुचाकर गुरुजनो से मिला दूगी यह सत्य बात है ॥१० १२॥

---

[1] १च पादे।

ब्रह्मोवाच

स प्राह का त्वं द्विजपुंगवोऽपि, सोवाच तं राक्षसी कामरूपा ।
विश्वासयन्ती शपथैरनेकैस्तं भ्रान्तचित्त मुनिराजपुत्रम् ॥१३॥
कङ्कालिनी नाम जगत्प्रसिद्धा, विप्रोऽसि तामाह निवेदितं यत् ।
तदेव कर्ताऽस्मि न संशयोऽत्र, यत्तत्प्रियं वच्मि करोमि चैव ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तद्विप्रवचनं श्रुत्वा राक्षसी कामरूपिणी। वृद्धा तथाऽपि चार्वङ्गी दिव्यालंकारभूषणा ॥१५॥
द्विजमादाय सर्वत्र मत्सुतोऽयं गुणाकरः। एवं वदन्ती सर्वत्र याति वक्ति करोति च ॥१६॥
तं विप्रं रूपसौभाग्यवयोविद्याविभूषितम्। तां च वृद्धां गुणोपेतामस्य मातेति मेनिरे ॥१७॥
तत्र द्विजवरः कश्चित्स्वां कन्यां भूषणान्विताम्। राक्षसीं तां पुरस्कृत्य प्रादात्तस्मै द्विजालये ॥१८॥
सा कन्या त पति प्राप्य कृतार्थाऽस्मीत्यचिन्तयत् ।
स द्विजोऽपि गुणैर्युक्तां पत्नीं दृष्ट्वा सुदुःखितः ॥१९॥

द्विज उवाच

मामियं भक्षयेदेव राक्षसी पापरूपिणी। किं करोमि क्व गच्छामि कस्यैतत्कथयामि वा ॥२०॥
महत्संकटमापन्नं रक्षयिष्यति कोऽत्र माम्। भार्या ममेयं कल्याणी गुणरूपवयोयुता ॥
एनामप्यशुभाऽकस्माद्भक्षयिष्यति राक्षसी ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—उस ब्राह्मण ने भी पूछा—'तुम कौन हो ?' तब वह कामरूपिणी राक्षसी अनेक शपथों से विश्वास दिलाती हुई उस भ्रान्त चित्त वाले मुनिराज पुत्र से कहने लगी—'मैं कङ्कालिनी नाम से संसार मे विख्यात हूँ।' तब ब्राह्मण ने भी उससे निवेदन किया—'तुम सदेह मत करो। जो तुम कहोगी वही मैं करूँगा' ॥१३-१४॥

ब्रह्मा बोले—विप्र के वचन सुनकर स्वेच्छा से रूप बनाने वाली राक्षसी वृद्धा होती हुई भी सुन्दर अगो एव दिव्य अलकारो से विभूषित हो गई। फिर वह ब्राह्मण को लेकर यह मेरा गुणवान् पुत्र है ऐसा कहती हुई सब जगह जाने बोलने और (काय) करने लगी। लोगो ने समझा कि रूप सौभाग्य अवस्था तथा विद्या से सम्पन्न यह ब्राह्मण उसी सर्वगुण सम्पन्ना वृद्धा का पुत्र है। तब एक द्विजवर ने अलकारो से युक्त अपनी कन्या को उसी राक्षसी के आगे उस ब्राह्मण को दे दिया। उस कन्या ने पति को पाकर सोचा कि मै कृतार्थ हो गई, पर वह ब्राह्मण गुणवती पत्नी को देखकर अत्यन्त दुःखी हुआ ॥१५-१९॥

द्विज बोला—यह पापरूपिणी राक्षसी मुझे खा ही लेगी। क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किससे यह बात कहूँ ? महान् सकट उपस्थित हो गया है। कौन मेरी रक्षा करेगा ? यह मेरी भार्या कल्याणमयी तथा गुण, रूप एवम् अवस्था से सम्पन्न है। इसे भी पापिनी राक्षसी अचानक खा डालेगी ॥२०-२१॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र भार्या सा गुणशालिनी। वृद्धाऽप्यतिदुराधर्षा सा गता कुत्रचित्तदा ॥२२॥
प्रश्रयावनता भूत्वा बाला चापि पतिव्रता। भर्तारं दुःखितं ज्ञात्वा पतिं प्राह रहः शनैः ॥२३॥

भार्योवाच

कस्मात्ते दुःखमापन्नं स्वामिस्तत्त्वं वदस्व मे ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

शनैः प्रोवाच तां भार्यां यथावत्पूर्वविस्तरम्। किमकथ्यं प्रिये मित्रे कुलीनायां च योषिति ॥२५॥
भर्तुर्वाक्यं निशम्येदं प्रोवाच वदता वरा ॥२६॥

भार्योवाच

अनात्मन. सर्वतोऽपि भयमस्ति गृहेष्वपि। कुतो भयं ह्यात्मवतां किं पुनर्गौतमीतटे ॥२७॥
वसतां विष्णुभक्तानां विरक्ताना विवेकिनाम्। अत्रस्नात्वा शुचिर्भूत्वा स्तुहि देवमनामयम् ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

एतदाकर्ण्य गङ्गायां स्नात्वा विगतकल्मषः। तुष्टाव गौतमीतीरे द्विजो नारायण तथा ॥२९॥

द्विज उवाच

त्वमन्तरात्मा जगतोऽस्य नाथ, त्वमेव कर्ताऽस्य मुकुन्द हर्ता ।
त्वं पालकः पालयसे न दीनमनाथबन्धो नरसिंह कस्मात्. ॥३०॥

ब्रह्मा बोले—इसी बीच (एक दिन) वह भयकर वृद्धा कही चली गई। वह गुणवती, प्रौढा तथा पतिव्रता पत्नी स्वामी को दु खित जानकर एकान्त मे अत्यन्त नम्रतापूर्वक पति से धीरे-धीरे कहने लगी ॥२२-२३॥

भार्या बोली—स्वामिन्! किससे तुम्हे दु ख हुआ है? मुझे सही सही बताओ ॥२४॥

ब्रह्मा बोले—प्रिये! मित्र तथा कुलीन स्त्री से क्या गोपनीय है? ब्राह्मण ने धीरे-धीरे विस्तारपूर्वक सब बातें बता दी ॥२५-२६॥

भार्या बोली—अज्ञानी के लिए घर पर भी भय है। किन्तु ज्ञानियो के लिये कही भय नही है। उस पर भी गोदावरी के तट पर निवास करने वाले विष्णु-भक्त, विरक्त तथा वेकी पुरुषो को तो भय हो ही नही सकता। तुम इस (गोदावरी) मे स्नान करके पवित्र होकर कल्याणदाता भगवान् की स्तुति करो ॥२७ २८॥

ब्रह्मा बोले—यह सुनकर ब्राह्मण गगा मे स्नान करके निष्पाप होकर गोदावरी के तट पर नारायण की स्तुति करने लगा ॥२९॥

द्विज बोला—नाथ! आप ही ससार के अन्तरात्मा हैं। मुकुन्द! आप ही इसके कर्ता, हर्ता तथा पालयिता हैं। दीनबन्धो! नरसिंह! आप मुझ दीन का पालन क्यो नही करते? उसकी यह प्रार्थना सुनकर ससार

श्रुत्वैतत्प्रार्थनं तस्य 'जगच्छोकनिवारण । नारायणोऽपि ता पापां निजघान स राक्षसीम् ॥३१॥
सुदर्शनेन चक्रेण सहस्रारेण भास्वता। तस्मै प्रादाद्वरानिष्टान्प्रापयच्च' गुरु प्रभु ॥३२॥
तत प्रभृति तत्तीर्थं विप्र नारायण विदु । स्नानदानेन पूजाद्यैर्यत्र सिध्यति वाञ्छितम् ॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये विप्रनारायणतीर्थवर्णन नाम सप्तषष्ट्य-
धिकशततमोऽध्याय ॥१६७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टनवतितमोऽध्याय ॥९८॥

अथाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

भानुतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भानुतीर्थमिति ख्यात त्वाष्ट्र माहेश्वर तथा। ऐन्द्र याम्य तथाऽऽग्नेय सर्वपापप्रणाशनम् ॥१॥
अभिष्टुत इति ख्यातो राजाऽऽसीत्प्रियदर्शन । हयमेधेन पुण्येन यष्टुमारब्धवान्सुरान ॥२॥

के शोक निवारण करने वाले नारायण ने अपने चमकते हुए सहस्रों अरों (दाँतों) वाले सुदर्शन चक्र से उस राक्षसी का काम तमाम कर डाला और ब्राह्मण को वरदान देकर उसे अपने गुरुजनों के पास पहुँचा दिया। तब से लेकर वह तीर्थ विप्र तथा नारायण नाम से प्रसिद्ध हुआ जहाँ स्नान दान पूजा आदि करने से अभीष्ट सिद्धि होती है ॥३०-३३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में तीर्थ माहात्म्य वर्णन प्रसंग में विप्र नारायण-तीर्थ वर्णन नामक
एक सौ सरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६७॥

अध्याय १६८

भानुतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—समस्त पापों के नाश करने वाले त्वाष्ट्र माहेश्वर ऐन्द्र याम्य तथा आग्नेय तीर्थ भानुतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हैं। अभिष्टुत नामक एक सुन्दर राजा था। उसने पवित्र अश्वमेध यज्ञ करना आरम्भ किया। उस

---

१ ङ०गदेकपरायण । घ च ०गदेकपरायणम्। ना०। २घ च ०प्राहिणोच्च।

तत्रर्त्विज. षोडश स्युर्वसिष्ठात्रिपुरोगमाः। क्षत्रिये यजमाने तु यज्ञभूमिः कथं भवेत् ॥३॥
ब्राह्मणे दीक्षिते राजा भुव दास्यति यज्ञियाम्। भूपतौ दीक्षिते दाता को भवेत्को नु याचते ॥४॥
याच्ञेयमखिलाशर्मजननी पापरूपिणी। केनाप्यतो न कार्यैव क्षत्रियेण विशेषतः ॥५॥
एवं मीमांसमानेषु ब्राह्मणेषु परस्परम्। तत्र प्राह महाप्राज्ञो वसिष्ठो धर्मवित्तमः ॥६॥

वसिष्ठ उवाच

राज्ञि दीक्षायमाणे तु सूर्यो याच्यो भुवं प्रति। देहि मे देव सवितर्यजनं देवतोचितम् ॥७॥
दैवं क्षत्रमसि ब्रह्मन्भूतनाथ नमोऽस्तु ते। याचितः सविता राज्ञा देवानां यजनं शुभम् ॥८॥
ददात्येव ततो राजन्प्रार्थयेशं दिवाकरम् ॥९॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वाऽभिष्टुतोऽपि देवदेवं दिवाकरम्। श्रद्धया प्रार्थयामास हरीशाजात्मकं रविम् ॥१०॥

राजोवाच

देवानां यजनं देहि सवितस्ते नमोऽस्तु ते ॥११॥

ब्रह्मोवाच

क्षत्र दैव यत. सूर्यो दत्ता भूर्भूपतेस्ततः। सविता देवदेवेशो ह्यू ददामीत्यभ्यभाषत ॥१२॥
एवं करोति यो यज्ञ तस्य रिष्टिर्न काचन। तथा वाजिमखे सत्रे ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥१३॥

यज्ञ म वसिष्ठ, अत्रि आदि सोलह ऋत्विज हुए। वहाँ ब्राह्मणो म परस्पर यह विचार होने लगा कि क्षत्रिय के यजमान होने पर यज्ञभूमि की व्यवस्था कैसे की जाय, क्योंकि ब्राह्मण के यज्ञ करने पर तो क्षत्रिय यज्ञ भूमि देते हैं पर क्षत्रिय के यज्ञ करने पर कौन भूमि देगा? और कौन माँगेगा? यह याचना अत्यन्त अशुभ करने वाली तथा पापरूपिणी कही गई है। इसलिये विशेष कर किसी क्षत्रिय को यह यज्ञ करना ही नहीं चाहिये। (इस तरह के विवाद उपस्थित होने पर) वहाँ महापण्डित तथा धर्मवेत्ता वसिष्ठ बोले ॥१-६॥

वसिष्ठ ने कहा—राजा के दीक्षित होने पर सूर्य से भूमि की याचना की जा सकती है। जैसे—'देव! सत्कर्मों मे लोगो के प्रेरक! देवतोचित यज्ञ भूमि मुझे प्रदान कीजिये। ब्रह्मन्! आप क्षत्रियो के देवता हैं। भूतनाथ! आपको नमस्कार है। इस प्रकार राजा द्वारा याचना करने पर सूर्य अवश्य देवोचित यज्ञ-भूमि देंगे। राजन्! इसलिये आप दिनकर की प्रार्थना करें ॥७ ९॥

ब्रह्मा बोले—'ऐसा ही हो यह कहकर राजा श्रद्धापूर्वक ब्रह्मा विष्णु तथा महेश रूप देवाधिदेव सूर्य की प्रार्थना करने लगा ॥१०॥

राजा ने कहा—दिनकर! देवताओ के लिय यज्ञभूमि मुझे प्रदान कीजिये! आपको नमस्कार है ॥११॥

ब्रह्मा बोले—जिसलिये सूर्य क्षत्रियो के देवता है अत देवाधिपति सूय ने 'मैं देता हूँ यह कहकर राजा को यज्ञ-भूमि दे दी। इस प्रकार जो यज्ञ करता है उसका किसी प्रकार अशुभ नहीं होता है। वेदपारगत विप्रो द्वारा

प्रारब्धेऽभिष्टुता राज्ञा यनागाद्भूपतिं रविः। देवानां यजनं दातुं भानुतीर्थं तदुच्यते ॥१४॥
त देवक्रतुमुत्कृष्टं हयमेधं सुरैर्युतम्। दैत्याश्च दनुजाश्चैव तथाऽन्ये यज्ञघातकाः ॥१५॥
ब्रह्मवेषधराः सर्वे गायन्तः सामगा इव। तेऽपि तत्र महाप्राज्ञाः प्राविशन्ननिवारिताः ॥१६॥
चमसानि च पात्राणि सोमं चषालमेव च। सोमपानं हविस्त्यागमृत्विजो भूपतिं तथा ॥१७॥
निन्दन्ति निक्षिपन्त्यन्ये हसन्त्यन्ये तथाऽसुराः। तेषां चेष्टां न जानन्ति विश्वरूपं विना मुने ॥१८॥
विश्वरूपोऽपि पितरं प्राह दैत्या इमे इति। तत्पुत्रवचनं श्रुत्वा त्वष्टा प्राह सुरानिदम् ॥१९॥

त्वष्टोवाच

गृहीत्वा वारिदर्भांश्च प्रोक्षयध्वं समन्ततः। ये निन्दन्ति मखं पुण्यं चमसं सोममेव च ॥२०॥
मया त्वपहताः सर्वे इत्युक्त्वा परिषिञ्चत ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

तथा चक्रुः सुरगणास्त्वष्टा चापि तथाऽकरोत्। भस्मीभूतास्ततः सर्वे कांदिशीकास्ततोऽभवन् ॥२२॥
हता मया महापापा इत्युक्त्वा वार्यवाक्षिपत्। ततः क्षीणायुषो दैत्याः प्रातिष्ठन्कुपितास्ततः ॥२३॥
यत्रैतत्प्राक्षिपद्वारि त्वष्टा लोकप्रजापतिः। त्वाष्ट्रं तीर्थं तदाख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥२४॥
त्वष्टुर्वाक्याच्च्युतान्दैत्यान्निजघान यमस्तदा। कालदण्डेन चक्रेण कालपाशेन मन्युना[1] ॥२५॥

राजा अभिष्टुत् से आरम्भ किये गये अश्वमेध यज्ञ मे दिवाकर देवताओ के निमित्त यज्ञ भूमि देने के लिए राजा के निकट पहुँचे थे, इसलिये उस स्थान का नाम भानुतीर्थ पडा। देवताओ से युक्त उस उत्कृष्ट अश्वमेध नामक देवयज्ञ मे विघ्न डालने के लिये दैत्य, दानव तथा दूसरे यज्ञ-विघ्न कर्ता जन्तु ब्राह्मणो का वेश बनाकर साम गान करते हुए-से वहाँ आये। उन्हे प्रवेश करने से किसी ने नही रोका। उनमे से कोई चमस पात्र, सोम चषाल (यज्ञिय पशुको बाँधने के लिए काष्ठ), सोमपान, हविस्त्याग ऋत्विज तथा राजा की निन्दा करने लगा कोई (सामग्रियो को) फेंकने लगा और कोई हँसने लगा। उन राक्षसो के कृत्यो को सिवा विश्वरूप के और किसी ने नही समझा। तब विश्वरूप ने अपने पिता से कहा कि ये दैत्य हैं। पुत्र के वचन सुनकर त्वष्टा ने देवताओ से यह कहा ॥१२-१९॥

त्वष्टा बोले—कुश-जल लेकर सब ओर छिडक दो। 'जो पवित्र यज्ञ, चमस तथा सोम की निन्दा करते हैं, वे सब मेरे द्वारा विनष्ट हो' यह कहकर सर्वत्र जल से सिञ्चन करो ॥२०-२१॥

ब्रह्मा बोले—देववृन्द तथा त्वष्टा ने भी वैसा ही किया। समस्त दैत्य भस्मसात् हो गये। उन्हे इतना भी पता नहीं रहा कि किस दिशा की ओर भागें। 'मैंने पापियों को मार दिया' यह कहकर त्वष्टा ने जल फेंक दिया। तब क्षीणायु दैत्यसमूह कुपित होकर भाग निकले। जिस द्वार पर लोक-प्रजापति त्वष्टा ने जल फेंका, वह अखिल पापनाशन त्वाष्ट्र तीर्थ कहलाया। त्वष्टा के वाक्य से बचे दैत्यो को यम ने क्रुद्ध होकर कालदण्ड, चक्र तथा कालपाश से मार दिया। जहाँ वे दैत्य मारे गये, उस स्थान का नाम याम्यतीर्थ पडा। जहाँ अग्नि म हविष्य

---

[1] ङ. मृत्युना।

यत्र ते निहता दैत्यास्तत्तीर्थं याम्यमुच्यते। यत्राभवत्क्रतु पूर्णो हुत्वाऽग्नौ चामृत बहु ॥२६॥
धाराभि शरमानाभिरखण्डाभिर्महाध्वरे। यत्राभवद्धव्यवाहस्तृप्तस्तस्य ह्यभिष्टुत ॥२७॥
अग्नितीर्थं तदाख्यातमश्वमेधफलप्रदम। इन्द्रो मरुद्भिर्नृपति प्राहेद वचन शुभम् ॥२८॥
त्व सम्राडभविता राजन्नुभयोरपि लोकयो। सखा मम प्रियो नित्य भविता नात्र सशय ॥२९॥
स कृतार्थो मर्त्यलोक इन्द्रतीर्थे च तर्पणम। कुर्यात्पितृणा प्रीत्यर्थं यमतीर्थे विशेषत ॥३०॥
माहेश्वर तु तत्तीर्थं पूजितोऽभिष्टुत शिव। भक्तियुक्तेन विप्रैश्च सर्वकर्मविशारदै ॥३१॥
वैदिकैर्लौकिकैश्चैव मन्त्रै पूज्य महेश्वरम्। नृत्यैर्गीतैस्तथा वाद्यैरमृतै पञ्चसभवै ॥३२॥
उपचारैश्च बहुभिर्दण्डपातप्रदक्षिणै। धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यै पुष्पैर्गन्धै सुगन्धिभि ॥३३॥
पूजयामास देवेश विष्णु शभु धियैकया। तत प्रसन्नौ देवेशौ वरान्ददतुरोजसा ॥३४॥
अभिष्टुत नरेन्द्राय भुक्तिमुक्ती उभे अपि। माहात्म्यमस्य तीर्थस्य तथा ददतुरुत्तमम् ॥३५॥
तत प्रभृति तत्तीर्थं शैव वैष्णवमुच्यते। तत्र स्नान च दान च सर्वकामप्रद विदु ॥३६॥
इमानि सर्वतीर्थानि स्मरेदपि पठेत वा। विमुक्त सर्वपापेभ्य शिवविष्णुपुर व्रजेत ॥३७॥
भानुतीर्थे विशेषेण स्नान सर्वार्थसिद्धिदम्। तत्र तीर्थे महापुण्य तीर्थाना शतमत्र हि ॥३८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भान्वादिशततीर्थवर्णन नामाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय ॥१६९॥
गौतमीमाहात्म्ये नवनवतितमोऽध्याय ॥९९॥

डालकर यज्ञ सम्पन्न किया गया और जहा महायज्ञ मे बाण के समान अखण्ड धाराओ से अभिष्टुत् द्वारा अग्निदेव तृप्त हुए उस स्थान का नाम अग्नितीर्थ पडा जो अश्वमेध के समान फलदायक है। तब इन्द्र ने वायु के द्वारा राजा से यह शुभ वचन कहलाया कि राजन ! तुम दोनो लोक के सम्राट होगे और मेरे प्रियपात्र बनोगे इसमे कोई सशय नही। मृत्युलोक मे वह व्यक्ति कृतकृत्य हो जाता है जो इन्द्रतीर्थ मे और विशेष करके यमतीर्थ मे पितरो की प्रीति के लिये तर्पण करता है ॥२२ ३०॥ माहेश्वर तीर्थ वह कहलाता है जहा अभिष्टुत ने शिव की पूजा की थी। जब अखिल कर्मों मे निपुण विप्रो ने भक्तिपूर्वक वैदिक तथा लौकिक मन्त्रो नृत्य गीत वाद्य पञ्चामृत अनेक उपहार दण्डवत प्रणाम प्रदक्षिणा धूप दीप नवैद्य पुष्प गन्ध तथा सुगन्धित द्रव्यो से देवताओ के स्वामी विष्णु तथा शकर की एक ही भाव से पूजा की तब दोनो देवेशो ने राजा अभिष्टुत् को वरदान के रूप मे भोग और मोक्ष दोनो दिये तथा उस तीर्थ के माहात्म्य को भी बढा दिया। तब से लेकर वह तीर्थ शैव और वैष्णव दोनो नामो से पुकारा जाता है। वहाँ स्नान तथा दान करने से समस्त कामनाओ की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति इन सब तीर्थों का स्मरण या पाठ करेगा वह निखिल पापो से मुक्त होकर शिवलोक तथा विष्णुलोक को जाएगा। विशेष करके भानुतीर्थ का स्नान समस्त कामनाओ को पूर्ण करता है। उस तीर्थ मे स्नान करने से महान पुण्य होता है। उसमे एक सौ तीर्थ वास करते हैं। ॥३१ ३८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे तीर्थ माहात्म्यवर्णन प्रसग मे भानु आदि सौ तीर्थों के वर्णन-नामक एक सौ अरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६८॥

अथैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

भिल्लतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भिल्लतीर्थमिति ख्यातं रोगघ्नं पापनाशनम्। महादेवपदाम्भोजयुगभक्तिप्रदायकम् ॥१॥
तत्राप्येवंविधा पुण्यां कथां शृणु महामते। गङ्गाया दक्षिणे तीरे श्रीगिरेरुत्तरे तटे ॥२॥
आदिकेश इति ख्यात ऋषिभिः परिपूजितः। महादेवो लिङ्गरूपी सदाऽऽस्ते सर्वकामदः ॥३॥
सिन्धुद्वीप इति ख्यातो मुनिः परमधार्मिक'। तस्य भ्राता वेद इति स चापि परमो ऋषिः ॥४॥
तमादिकेशं वै देवं त्रिपुरारिं त्रिलोचनम्। नित्यं पूजयते भक्त्या प्राप्ते मध्यन्दिने रवौ ॥५॥
भिक्षाटनाय वेदोऽपि याति ग्रामं विचक्षणः। याते तस्मिन्द्विजवरे व्याधः परमधार्मिकः ॥६॥
तस्मिन्गिरिवरे पुण्ये मृगयां याति नित्यशः। अटित्वा विविधान्देशान्मृगान्हत्वा यथासुखम् ॥७॥
मुखे गृहीत्वा पानीयमभिषेकाय शूलिन'। न्यस्य मांसं धनुष्कोट्या श्रान्तो व्याधः शिवं प्रभुम् ॥८॥
आदिकेशं समागत्य न्यस्य मासं ततो बहि.। गङ्गां गत्वा मुखे वारि गृहीत्वाऽऽगत्य तं शिवम् ॥९॥
यस्य कस्यापि पत्राणि करेणाऽऽदाय भक्तित'। अपरेण च मांसानि नैवेद्यार्थं च तन्मनाः ॥१०॥
आदिकेशं समागत्य वेदेनार्चितमोजसा। पादेनाऽऽहृत्य तां पूजां मुखानीतेन वारिणा ॥११॥

अध्याय १६९

भिल्लतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—भिल्लतीर्थ रोगनाशक, पापहारी तथा शिव के चरणयुगल मे भक्ति बढाने वाला है। महा-बुद्धिमान्! उसके बारे मे भी इस प्रकार की एक पवित्र कथा सुनो। श्रीगिरि के उत्तर प्रदेश मे गगा के दक्षिण तट पर आदिकेश नाम से प्रसिद्ध, मुनियो से परिपूजित तथा समस्त कामनादायक शिवलिंग सदा विद्यमान रहते है। सिन्धुद्वीप नामक मुनि परम धर्मात्मा था। उसका वेद नामक भाई भी महान् ऋषि था। वह ऋषि त्रिपुर के शत्रु तथा तीन नेत्र वाले आदिकेश नामक शकर देव की प्रतिदिन मध्याह्न काल मे पूजा किया करता था। तत्पश्चात् विद्वान् वेद भिक्षाटन करने के लिये गाँव की ओर चल देता था ॥१-५½॥ उस ब्राह्मण के चले जाने के बाद एक परम धर्मात्मा व्याध उसी पवित्र पर्वत की गुफा में नित्य शिकार करता था। विविध प्रदेशो मे पर्यटन करके मृगो को मारकर शिव को जल चढाने के लिये मुख मे जल लेकर धनुष मे मास को लटका कर वह श्रान्त व्याध आदिकेश नामक सर्वशक्तिमान् शिव के पास आता था। गगा मे जाकर वह मुख मे जल भर कर भक्तिपूर्वक जिस-किसी वृक्ष का पत्र हाथ से तोड लेता था। फिर नैवेद्य के लिये मास लेकर आदिकेश के समीप आता था और वेद द्वारा पूजित शिव को लात मारकर उसकी पूजा को नष्ट करके अपने मुख-जल से शिव को नहलाता था। तब पत्रो से शकर की पूजा करके उन्हें मास चढाता था और कहता था कि शिव! मुझ पर प्रसन्न होइये। वह कल्याण-

स्नापयित्वा शिव देवमर्चयित्वा तु पत्रकै । कल्पयित्वा तु (समर्पयति) तन्मास शिवो मे प्रीयतामिति॥१२॥
नैव किंचित्स जानाति शिवभक्ति विना शुभाम्। ततो याति स्वक स्थान मासेन तु यथागतम् ॥१३॥
करोत्येताद् गागत्याऽऽगत्य प्रत्यहमेव स । तथाऽपीशस्तुतोषास्य विचित्रा हीश्वरस्थिति ॥१४॥
यावन्नायात्यसौ भिल्ल शिवस्तावन्न सौख्यभाक्। भक्तानुकम्पिता शम्भोर्नार्त ता नु वेत्ति क ॥१५॥
सपूजयत्यादिकेशमुमया प्रत्यह शिवम् । एव बहुतिथे काले याते वेदश्चुकोप ह॥१६॥
पूजा मन्त्रवर्ती चित्रां शिवभक्तिसमन्विताम्। को नु विध्वसते पापो मत्त स वधमाप्नुयात॥१७॥
गुरुदेवद्विजस्वामिद्रोहो वध्यो मुनेरपि। सर्वस्यापि वधार्होऽसौ शिवस्य द्रोहकृन्नर॥१८॥
एव निश्चित्य मेधावी वेद सिन्धोस्तथाऽनुज । कस्येय पापचेष्टा स्यात्पापिष्ठस्य दुरात्मन ॥१९॥
पुष्पैर्वन्यभवैर्दिव्यै कन्दैर्मूलफलै शुभै । कृता पूजा स विध्वस्य ह्यन्या पूजा करोति य ॥२०॥
मासेन तरुपत्रैश्च स च वध्यो भवेन्मम। एव सचिन्त्य मेधावी गोपयित्वा तनु तदा॥२१॥
त पश्येयमह पाप पूजाकर्तारमीश्वरे। एतस्मिन्नन्तरे प्रायाद्व्याधो देव यथा पुरा॥२२॥
नित्यवत्पूजयन्त तमादिकेशस्तदाऽब्रवीत ॥२३॥

आदिकेश उवाच

भो भो व्याध महाबुद्धे श्रान्तोऽसीति पुन पुन । चिराय कथमायातस्त्वा विना तात दु खित ॥
न विन्दामि सुख किंचित्समाश्वसिहि पुत्रक ॥२४॥

मयी शिवभक्ति को छोडकर कुछ नही जानता था। तदुपरान्त वह मास लेकर अपने स्थान को चला जाता था। वह प्रतिदिन एसा किया करता था। फिर भी शकर उस पर प्रसन्न हो गये। क्योकि शकर की लीला अपरम्पार है। जब तक वह व्याध नही आता था तब तक शिव को चैन नही पडती थी। भक्त के ऊपर जो शकर की निसीम अनुकम्पा होती है उसे कौन जानता है? ॥६ १५॥ वह प्रतिदिन उमासहित शकर की पूजा करता था। इस प्रकार बहुत दिन बीत जाने पर वेद को कोध हुआ। वह कहने लगा—शिवभक्तियुक्त तथा मन्त्रविहित मेरी अपूर्व पूजा को कौन पापी नष्ट कर देता है? मै उसे अवश्य मारूँगा। गुरु देवता द्विज तथा स्वामी से द्रोह करने वाला मुनि भी वध्य है। शिव का द्रोही मनुष्य सबके लिए वध्य है। सिन्धु के अनुज मेधावी वेद ने एसा ही निश्चय किया। उसने सोचा—कौन एसा पापिष्ठ तथा दुरात्मा है जो वनीय दिव्य पुष्प कन्द मूल तथा पवित्र फलो से की हुई पूजा को विनष्ट करके मास तथा वृक्ष पत्रो से दूसरी पूजा करता है? उस पापी शिव पूजक को मैं देखूगा। एसा सोचकर विद्वान वेद छिपकर वहाँ स्थित हुआ। इसी बीच वह व्याध पहले की तरह वहाँ आ पहुँचा। नित्य की तरह पूजा करते हुए उस व्याध से आदिकेश ने कहा॥१६ २३॥

आदिकेश बोले—महाबुद्धिमान व्याध! तुम बड श्रान्त हो। तुम्हे आने मे देरी क्यो हुई? तुम्हारे बिना मैं दुखी हूँ। मुझ कुछ भी सुख नही मिल रहा है। पुत्र! मुझ आश्वस्त करो॥२४॥

ब्रह्मोवाच

तमेव वादिन देव वेद श्रुत्वा विलोक्य तु। चुकोप विस्मयाविष्टो न च किंचिदुवाच ह ॥२५॥
व्याधश्च नित्यवत्पूजा कृत्वा स्वभवन ययौ। वेदश्च कुपितो भूत्वा आगत्येशमुवाच ह ॥२६॥

वेद उवाच

अय व्याध पापरत क्रियाज्ञानविवर्जित। प्राणिहिंसारत क्रूरो निर्दय सर्वजन्तुषु ॥२७॥
हीनजातिरकिंचिज्ज्ञो गुरुक्रमविवर्जित। सदाऽनुचितकारी चानिर्जिताखिलगोगण ॥२८॥
तस्याऽऽत्मान दर्शितवान्न मा किंचन वक्ष्यसि। पूजा मन्त्रविधानेन करोमीश यतव्रत ॥२९॥
त्वदेकशरणो नित्य भार्यापुत्रविवर्जित। व्याधो मासेन दुष्टेन पूजा तव करोत्यसौ ॥३०॥
तस्य प्रसन्नो भगवान् ममेति महाद्भुतम्। शास्तिमस्य करिष्यामि भिल्लस्य ह्यपकारिण ॥३१॥
मृदो कोऽपि भवेत्प्रीत कोऽपि तद्वद्दुरात्मन। तस्मादह मूर्ध्नि शिल पातयेयमसशयम् ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तवति वै वेदे विहस्येशोऽब्रवीदिदम् ॥३३॥

आदिकेश उवाच

श्व प्रतीक्षस्व पश्चान्मे शिला पातय मूर्धनि ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा स वेदोऽपि शिला सत्यज्य बाहुना। उपसहृत्य त कोप श्व करोमीत्युवाच ह ॥३५॥

ब्रह्मा बोले--इस प्रकार बोलते हुए शकर को देखकर तथा उनके वचन सुनकर वेद आश्चय चकित तथा क्रुद्ध हुआ। पर कुछ भी नही बोला। व्याध भी नित्य की तरह पूजा करके अपना घर चला गया। वेद कुपित होकर शकर से आकर कहने लगा ॥२५ २६॥

वेद बोला--यह व्याध पापी क्रिया ज्ञान शून्य प्राणियो की हिंसा मे निरत क्रूर सब जीवा के प्रति निर्दय नीच जाति का कुछ भी नही जानने वाला गुरु रहित अनुचित काम करने वाला तथा अजितेन्द्रिय है। इसको तो आपने दशन दिया पर मुझे क्यो नही दिया ? बतलाइये। शिव ! मैं पूणव्रती होकर मन्त्रविहित पूजा करता हूँ। नित्य आप ही मेरे रक्षक है। मैं भार्या पुत्र से भी वचित हूँ। यह व्याध दूषित मास से आपकी पूजा करता है। फिर भी इसके ऊपर आप प्रसन्न हुए और मेरे ऊपर नही। यह महान आश्चय की बात है। मैं इस दुष्ट व्याध को दण्ड दूगा। कोई मनुष्य सज्जन का मित्र होता है और कोई दुरात्मा का। इसलिये मैं नि सन्देह आपके मस्तक पर पत्थर पटक दूगा ॥२७ ३२॥

ब्रह्मा बोले--वेद के इतना कहने पर शकर हँसकर यह बोले ॥३३॥

आदिकेश ने कहा—कल तक ठहर जाओ। पश्चात मेरे मस्तक पर पत्थर गिरा देना ॥३४॥

ब्रह्मा बोले— ऐसा ही सही कहकर वेद ने हाथ से शिला-खण्ड को फेंक दिया और क्रोध का परित्याग करके

तत प्रात समागत्य कृत्वा स्नानादिकर्म च। वेदोऽपि नित्यवत्पूजा कुर्वन्पश्यति मस्तके॥३६॥
लिङ्गस्य सव्रणा भीमा धारा च रुधिरप्लुताम्। वेद स विस्मितो भूत्वा किमिद लिङ्गमूर्धनि॥३७॥
महोत्पातो भवेत्कस्य सूचयेदित्यचिन्तयत्। मृद्भिश्च गोमयेनापि कुशैस्त गाङ्गवारिभि॥३८॥
प्रक्षाल्यित्वा ता पूजा कृतवानित्यवत्तदा। एतस्मिन्नन्तरे प्रायाद्व्याधो विगतकल्मष॥३९॥
मूर्धानि व्रणसयुक्त सरक्त लिङ्गमस्तके। शकरस्याऽऽदिकेशस्य ददृशेऽन्तर्गतस्तदा॥४०॥
दृष्ट्वैव किमिद चित्रमित्युक्त्वा निशितै शरै। आत्मान भेदयामास शतधा च सहस्रधा॥४१॥
स्वामिनो वैकृत दृष्ट्वा क क्षमेतोत्तमाशय। मुहुर्निनिन्द चाऽऽत्मान मयि जीवत्यभूदिदम्॥४२॥
कष्टमापतित कीदृग्हो दुर्विधिवशात्[1]। तत्कर्म तस्य सवीक्ष्य महादेवोऽतिविस्मित॥
तत प्रोवाच भगवान्वेद वेदविदा वरम् ॥४३॥

आदिकेश उवाच

पश्य व्याध महाबुद्धे भक्त भावेन सयुतम्। त्व तु मृद्भि कुशैर्वाभिर्मूर्धनि स्पृष्टवानसि॥४४॥
अनेन सहसा ब्रह्मन्ममाऽऽत्माऽपि निवेदित। भक्ति प्रेमाथवा शक्तिर्विचारो यत्र विद्यते॥
तस्मादस्मै वरान्दास्ये पश्चात्तुभ्य द्विजोत्तम ॥४५॥

कहा—'तो कल ही करूँगा। तब प्रातःकाल वहाँ आकर स्नान आदि कर्म से निवृत्त हो वेद ने नित्य की भाँति मस्तक पर पूजा करके देखा कि घाव से युक्त शिवलिङ्ग से भयंकर शोणित की धारा निकल रही है। वेद बड़ा आश्चर्यित हुआ और सोचने लगा कि लिंग के मस्तक पर यह क्या हो गया। इससे तो यह सूचित होता है कि किसी का महान् उत्पात होगा। फिर मृत्तिका, गोबर, कुश तथा गंगाजल से लिंग को पवित्र कर उसने नित्य की भाँति पूजा की। इसी बीच निष्पाप व्याध वहाँ आया। लिंग के मस्तक पर घाव तथा शोणित को देखते ही वह बोल उठा—यह क्या? फिर तीक्ष्ण बाणों से उसने अपने को सैकड़ों तथा सहस्रों भाग में विद्ध कर लिया और कहा—स्वामी की विकृति देखकर कौन उत्तम चित्त वाला मनुष्य इसको सहन करेगा? मेरे आगे ही ऐसा हो गया! हाय! दौर्भाग्यवश संकट सहसा आ गया!' इस तरह उसने अपने को बड़ा धिक्कारा। उसका यह कर्म देख कर महादेव अत्यन्त विस्मित हुए। तब भगवान् शंकर ने वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ वेद से कहा ॥३५-४३॥

आदिकेश बोले—महाबुद्धिमन्! भक्ति भाव से संयुक्त व्याध को देखो! तुमने मृत्तिका या कुशों से मस्तक का स्पर्श किया। पर इसने तो मुझे अपनी आत्मा ही समर्पित कर दी। निःसंदेह इसमें भक्ति प्रेम अथवा शक्ति का विचार है। अतः इसको पहिले ही वर दूँगा पश्चात् तुमको दूँगा ॥४४-४५॥

---

[1] घ. च. ०द्। निरवग्र ख. ग. घ०।

ब्रह्मोवाच

वरेण च्छन्दयामास व्याध देवो महेश्वर । व्याध प्रोवाच देवेश निर्माल्य तव यद्भवेत् ।।४६।।
तदस्माक भवेन्नाथ मन्नाम्ना तीर्थमुच्यताम् । सर्वक्रतुफल तीर्थं स्मरणादेव जायताम् ।।४७।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युवाच देवेशस्ततस्तत्तीर्थमुत्तमम् । भिल्लतीर्थं समस्ताघसघविच्छेदकारणम् ।।४८।।
श्रीमहादेवचरणमहाभक्तिविधायकम् । अभवत्स्नानदानाद्यैर्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।।
वेदस्यापि वरान्प्रादाच्छिवो नानाविधान्वहून् ।।४९।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भिल्लतीर्थमहिमवर्णन नामैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्याय ।।१६९।।

गौतमीमाहात्म्ये शततमोऽध्याय ।।१००।।

अथ सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

चक्षुस्तीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

चक्षुस्तीर्थमिति ख्यात रूपसौभाग्यदायकम् । यत्र योगेश्वरो देवो गौतम्या दक्षिणे तटे ।।१।।
पुर भौवनमाख्यात गिरिमूर्ध्न्यभिधीयते । मन्नासौ भौवनो राजा क्षत्रधर्मपरायण ।।२।।

ब्रह्मा बोले—महेश्वर ने व्याध से वर मागने को कहा। व्याध ने देवेश से कहा— आपका निर्माल्य जो हो वही मेरे नाम से तीथ कहलावे। उस तीथ के स्मरण मात्र से समस्त यज्ञो का फल प्राप्त हो।।४६ ४७।

ब्रह्मा बोले—देवश ने कहा एसा ही होगा। तब से उस उत्तम तीथ का नाम भिल्लतीथ पडा जो समस्त पापसमूह का नाश करने वाला तथा शिव के चरणो म महाभक्ति प्रदान करने वाला है। उसमे स्नान दान आदि करने से भोग मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं। शिव ने वेद को भी अनेक प्रकार के वरदान दिये।।४८ ४९।।

श्रीब्रह्ममहापुराण म तीथ माहात्म्यवणन प्रसग म भिल्लतीथ की महिमा का वणन नामक एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।१६९।।

अध्याय १७०

चक्षुस्तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—गोदावरी के दक्षिण तट पर रूप-सौभाग्य देने वाला प्रसिद्ध चक्षुस्तीथ है जहाँ योगेश्वर भगवान् रहते हैं। पवत के शिखर पर भौवन नामक एक नगर था, जहाँ क्षत्रियधम म निरत भौवन नामक

तस्मिन्पुरवरे कश्चिद्ब्राह्मणो वृद्धकौशिक । तत्पुत्रो गौतम इति ख्यातो वेदविदुत्तम ॥३॥
तस्य मातुर्मनोदोषाद्विपरीतोऽभवद्द्विज । सखा तस्य वणिक्कश्चिन्मणिकुण्डल उच्यते ॥४॥
तेन सख्य द्विजस्यासीद्विषम द्विजवैश्ययो । श्रीमद्दरिद्रयोर्नित्य परस्परहितैषिणो ॥५॥
कदाचिद्गौतमो वैश्य वित्तेश मणिकुण्डलम । प्राहेद वचन प्रीत्या रह स्थित्वा पुन पुन ॥६॥

गौतम उवाच

गच्छामो धनमादातु पर्वतानुदधीनपि । यौवन तद्वृथा ज्ञेय विना [1]सौख्यानुकूल्यत ॥
धन विना तत्कथ स्यादहो धिङ्निर्धन नरम् ॥७॥

ब्रह्मोवाच

कुण्डलो द्विजमाहेद मत्पित्रोपार्जित धनम् । बह्वस्ति किं धनेनाद्य करिष्ये द्विजसत्तम ॥
द्विज पुनरुवाचेद मणिकुण्डलमोजसा ॥८॥

गौतम उवाच

धर्मार्थज्ञानकामाना को नु तृप्त प्रशस्यते । उत्कर्षप्राप्तिरेवैषां[2] सखे श्लाघ्या शरीरिणाम् ॥९॥
स्वेनैव व्यवसायेन धन्या जीवन्ति जन्तव । परदत्तार्थसतुष्टा कष्टजीविन एव ते ॥१०॥
स पुत्र शस्यते लोके पितृभिश्चाभिनन्द्यते । य पैत्र्यमभिलिप्सेत न वाचाऽपि तु कुण्डल ॥११॥

राजा रहता था। उसी उत्तम नगर मे वृद्धकौशिक नामक कोई ब्राह्मण रहता था। उसके वेदवत्ताओ मे श्रेष्ठ गौतम नामक एक पुत्र था। वह अपनी माता के मनोदोष के कारण (पिता से) विपरीत हुआ। मणिकुण्डल नामक कोई बनिया उसका मित्र था। ब्राह्मण और वैश्य की मित्रता विषम थी। चूकि एक था धनिक और दूसरा था गरीब फिर भी परस्पर एक दूसरे का हित चाहता था। किसी समय गौतम ने धनी मणिकुण्डल से एकान्त मे प्रेमपूर्वक यह वचन बार-बार कहा ॥१-६॥

गौतम बोला—धन कमाने के लिए पर्वत पर या समुद्र मे भी हम लोग चले। बिना सुखभोग किये जवानी व्यर्थ है। बिना धन से सुख मिलना भी तो असम्भव है। हाय! निर्धन मनुष्य को धिक्कार है! ॥७॥

ब्रह्मा बोले—कुण्डल ने द्विज से कहा—ब्राह्मणश्रेष्ठ! मेरे पिता का कमाया हुआ बहुत-सा धन है। उस धन से मैं क्या करूँगा?' द्विज ने पुन मणिकुण्डल से कहा ॥८॥

गौतम बोला—धर्म अर्थ ज्ञान और काम से कौन सतुष्ट होता है? मित्र! प्राणियो का उन्नति करते रहना ही अच्छा माना गया है। अपने ही उद्योग से जीने वाले प्राणी का जीवन धन्य है। जो दूसरे के दिये धन से सतुष्ट रहता है वह कष्टजीवी है। कुण्डल! वही पुत्र प्रशसनीय तथा पिता का प्रीतिपात्र होता है जो वाणी

---

१ प ख सौख्य सुख सुखम् ॥ घ०। २ प ख प्रदृश्यते। ३ङ छ ०वैषा स०।

स्वबाहुबलमाश्रित्य योऽर्थानर्जयते सुत । स कृतार्थो भवेल्लोके पैत्र्यं वित्त न तु स्पृशेत ॥१२॥
स्वयमार्ज्य सुतो वित्त पित्रे दास्यति बन्धवे। त तु पुत्र विजानीयादितरो योनिकीटक ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तु तद्वाक्य ब्राह्मणस्याभिलाषिण । तथेति मत्वा तद्वाक्य रत्नान्यादाय सत्वर ॥१४॥
आत्मकीयानि वित्तानि गौतमाय न्यवेदयत्। धनेनैतेन देशाश्च परिभ्रम्य यथासुखम ॥१५॥
धनान्यादाय वित्तानि पुनरेष्यामहे' गृहम। सत्यमेव वणिग्ववित स तु विप्र प्रतारक ॥१६॥
पापात्मा पापचित्त च न बुबोध वणिग्द्विजम। तौ परस्परमामन्त्र्य मातापित्रोरजानतो ॥१७॥
देशाद्देशान्तर यातौ धनार्थं तौ वणिग्द्विजौ। वणिग्घस्तस्थित वित्त ब्राह्मणो हर्तुमिच्छति ॥१८॥

ब्राह्मण उवाच

येन केनाप्युपायन तद्धन हि समाहरे। अहो पृथिव्या 'रम्याणि नगराणि सहस्रश ॥१९॥
इष्टप्रदात्र्य कामस्य देवता इव योषित । मनोहरास्तत्र तत्र सन्ति किं क्रियते मया ॥२०॥
धनमाहृत्य यत्नेन योषिदभ्यो यदि दीयते। भुज्यन्ते तास्ततो नित्य सफल जीवित हि तत ॥२१॥
नृत्यगीतरतो नित्य पण्यस्त्रीभिरलकृत । भोक्ष्य कथ तु तद्वित्त वैश्याग्मद्धस्तमागतम ॥२२॥

स भी पितधन की लिप्सा नही करता है। जो अपने बाहु बल से धन उपाजन करता है और पैतृक सपत्ति को छूता तक भी नही वही लोक मे कृताथ होता है। जो स्वय धन कमाकर पिता तथा बधओ को देता है उसी को पुत्र समझना चाहिये उससे भिन्न तो योनि का कीट है। ॥९ १३॥

ब्रह्मा बोले—अभिलाषा करने वाले ब्राह्मण की यह बात सुनकर तथा उसकी बात को मानकर कुण्डल अपन रत्नो को लाकर गौतम को समर्पित करके कहने लगा— हम लोग इस धन से सुखपूवक देशभ्रमण करके धन कमाकर पुन घर लौट आयेंगे। पापी और ठग ब्राह्मण ने कहा— तुम ठीक कहते हो। वनिये ने पापयक्त चित्त वाले ब्राह्मण को नही समझा। वे दोनो परस्पर सलाह करके माता पिता को बिना जताये ही घर से निकल पड। वनिया और ब्राह्मण दोनो धन की कामना से देश देशान्तर म जाने लगे। पर ब्राह्मण वनिये के हाथ से धन का अपहरण कर लेना चाहता था ॥१४ १८॥

ब्राह्मण ने कहा—जिस किसी उपाय से मुझ धन अपहरण कर लेना चाहिये। अहो ' पथिवी पर हजारो रमणीय नगर है जिनम अभीष्ट सिद्ध करने वाली देवता तुल्य मनोहर कामिनिया रहती हैं। तो मुझ क्या करना चाहिये ? अग्नि प्रयत्न से धन चुराकर स्त्रियो को दू और उनके साथ उपभोग करूँ तो मेरा जीवन सफल हो जाय। (नित्य नृत्य-गीत-परायण तथा वश्याओ से अलकृत होकर मैं रहूगा।) पर कैस वैश्य के हाथ से धन को प्राप्त करूँ ? ॥१९ २२॥

१घ च ०प्यावहे। २घ च रत्नानि रम्याणि च सहस्रश। नगराणि च रम्याणि गुणयुक्तानि सवश। इ०।

ब्रह्मोवाच

एवं चिन्तयमानोऽसौ गौतमः प्रहसन्निव । मणिकुण्डलमाहेदमधर्मादेव जन्तवः ॥२३॥
वृद्धिं सुखमभीष्टानि प्राप्नुवन्ति न संशयः । धर्मिष्ठाः प्राणिनो लोके दृश्यन्ते दुःखभागिनः ॥२४॥
तस्माद्धर्मेण किं तेन दुःखैकफलहेतुना ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

नेत्युवाच ततो वैश्य सुखं धर्मे प्रतिष्ठितम् । पापे दुःखं भयं शोको दारिद्र्यं क्लेश एव च ॥
यतो धर्मस्ततो मुक्तिः स्वधर्मः किं विनश्यति ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

एवं विवदतोस्तत्र संपरायस्तयोरभूत् । यस्य पक्षो भवेज्ज्यायान्स परार्थमवाप्नुयात् ॥२७॥
पृच्छावः कस्य प्राबल्यं धर्मिणो वाऽप्यधर्मिणः । वेदात्तु लौकिकं ज्येष्ठं लोके धर्मात्सुखं भवेत् ॥२८॥
एवं विवदमानौ तावूचतुः सकलाञ्जनान् । धर्मस्य वाऽप्यधर्मस्य प्राबल्यमनयोर्भुवि ॥२९॥
तद्वदन्तु यथावृत्तमेवमूचतुरोजसा । एवं तत्रोचिरे केचिद्ये धर्मेणानुवर्तिनः ॥३०॥
तैर्दुःखमनुभूयते पापिष्ठाः सुखिनो जनाः । संपराये धनं सर्वं जितं विप्रे न्यवेदयत् ॥३१॥
मणिमान्धर्मविच्छ्रेष्ठः पुनर्धर्मं प्रशंसति । मणिमन्तं द्विजः प्राह किं धर्ममनुशंससि ॥

ब्रह्मोवाच

तथेति चेत्याह वैश्यो ब्राह्मणः पुनरब्रवीत् ॥३२॥

ब्रह्मा बोले—यह सोचते हुए गौतम ने हँसकर मणिकुण्डल से कहा—'जीव अधर्म से ही अभीप्सित सुख को प्राप्त करते हैं, इसमें कोई संशय नहीं। लोक में धर्मिष्ठ प्राणी दुःखी देखे जाते हैं। इसलिये जिसका एक दुःख ही फल है, ऐसे धर्म से क्या प्रयोजन ? ॥२३-२५॥

ब्रह्मा बोले—तब वैश्य ने कहा—'नहीं, सुख धर्म में प्रतिष्ठित है। पाप में दुःख, भय, शोक, दरिद्रता तथा क्लेश है। जहाँ धर्म है, वहीं मुक्ति है। स्वधर्म का कहीं विनाश नहीं होता है' ॥२६॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार विवाद करते-करते दोनों ने बाजी लगाई कि जिसका पक्ष उत्तम होगा, वह दूसरे का धन ले लेगा। लोगों से हम दोनों यह पूछें कि धर्मात्मा श्रेष्ठ होता है या अधर्मात्मा। वैदिक कर्म से लौकिक कर्म श्रेष्ठ होता है या लोक में धर्म से सुख होता है। (यहाँ प्रश्न यह है कि वैदिक कर्म श्रेष्ठ होता है या लौकिक कर्म ? धर्म से सुख मिलता है या अधर्म से!) इस प्रकार विवाद करते हुए दोनों ने लोगों से पूछा—'पृथ्वी पर धर्म की प्रबलता है या अधर्म की ? आप लोग यथार्थतः बतलायें।' तब कुछ लोगों ने बतलाया—'जो धर्म के पथ पर हैं, वे दुःख अनुभव करते हैं और जो पापी हैं, वे सुखी हैं।' बाजी में ब्राह्मण ने सब धन जीत लिया। फिर भी मणिकुण्डल धर्म की प्रशंसा करता रहा। तब द्विज ने मणिकुण्डल से कहा—'क्या धर्म की प्रशंसा करते हो ?' ॥२७-३१॥

ब्रह्मा बोले—वैश्य ने कहा—'मैं करूँगा।' ब्राह्मण ने फिर कहा ॥३२॥

ब्राह्मण उवाच

जित मया धन वैश्य निर्लज्ज किंनु भाषसे। मयैव विजितो धर्मो यथेष्टचरणात्मना ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

तद्ब्राह्मणवच श्रुत्वा वैश्य सस्मित ऊचिवान् ॥३४॥

वैश्य उवाच

पुलाका इव धान्येषु पुत्तिका इव पक्षिषु। तथैव तान्सखे मन्ये येषा धर्मो न विद्यते ॥३५॥
चतुर्णां पुरुषार्थाना धर्म प्रथम उच्यते। पश्चादर्थश्च कामश्च स धर्मो मयि तिष्ठति ॥
कथ ब्रूषे द्विजश्रेष्ठ मया विजितमित्यद ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

द्विजो वैश्य पुन प्राह हस्ताभ्या जायता पण । तथेति मन्यते वैश्यस्तौ गत्वा पुनरूचतु ॥३७॥
पूर्ववल्लौकिकान्गत्वा जितमित्यब्रवीद्द्विज । करौ छित्वा तत प्राह कथ धर्मं तु मन्यसे ॥
आक्षिप्तो ब्राह्मणेनैव वैश्यो वचनमब्रवीत् ॥३८॥

वैश्य उवाच

धर्ममेव पर मन्ये प्राणै कण्ठगतैरपि। माता पिता सुहृद्बन्धुर्धर्म एव शरीरिणाम् ॥३९॥

ब्राह्मण बोला—वैश्य ! मैंने धन जीत लिया। अब बोलने मे तुम्हें लाज नही आती ? यथेच्छ आचरण क ो हुए मैंने ही धर्म को जीत लिया ॥३३॥

ब्रह्मा बोले—ब्राह्मण का वचन सुनकर वैश्य आश्चर्यित होकर बोला ॥३४॥

वैश्य बोला—सखे ! मैं उन मनुष्यो को धान्यो म पुलाक (खखरी तुच्छ धान्य) तथा पक्षियो म क्षुद्र मक्खिका की तरह समझता हूँ जो धर्मात्मा नहा है। चारो पुरुषार्थों म पहिले धम ही कहा जाता है पश्चात् अर्थ और काम। वही धम मुझम विद्यमान है। द्विजश्रेष्ठ ! कम तुम कहते हो कि मैंने इस धम को जीत लिया ? ॥३५ ३६॥

ब्रह्मा बोले—द्विज ने पुन वैश्य से कहा— तो इस बार हाथो की बाजी लगाओ। वैश्य ने कहा— अस्तु । तब दोनो व्यक्तियो ने लोगो से जाकर पूछा। लोगो न पहिले की तरह बतलाया। ब्राह्मण ने कहा—मेरी जीत हुई। वैश्य ने अपने हाथ कटवा लिये। तब ब्राह्मण न पूछा— कहो अब भी धम को मानते हो ? ब्राह्मण का व्यग्य वचन सुनकर वैश्य ने कहा ॥३७ ३८॥

वैश्य बोला—जब तक कण्ठ म प्राण रहेगा तब तक मैं धम को मानूगा। शरीरधारियो के लिये धम ही माता पिता मित्र तथा बन्धु है ॥३९॥

---

१ क •मयुच्चय•।

ब्रह्मोवाच

एव विवदमानौ तावर्थवान्ब्राह्मणोऽभवत। विमुक्तो वैश्यकस्तत्र बाहुभ्या च धनेन च ॥४०॥
एव भ्रमन्तौ सप्राप्तौ गङ्गा योगेश्वर हरिम। यदृच्छया मुनिश्रेष्ठ मिथस्तावूचतु पुन ॥४१॥
वैश्यो गङ्गा तु योगेश धर्ममेव प्रशसति। अतिकोपाद्द्विजो वैश्यमाक्षिपन्पुनरब्रवीत ॥४२॥

ब्राह्मण उवाच

गत धन करौ छिन्नाववशिष्टोऽसुभिर्भवान। त्वमन्यथा यदि ब्रूष आहरिष्येऽसिना शिर ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

विहस्य पुनराहद वैश्यो गौतममञ्जसा ॥४४॥

वैश्य उवाच

धर्ममेव पर मन्ये यथेच्छसि तथा कुरु। ब्राह्मणाश्च गुरुन्देवान्वेदान्धर्मं जनार्दनम ॥४५॥
यस्तु निन्दयत पापो नासौ स्पृश्योऽथ पापकृत। उपेक्षणीयो दुर्वृत्त पापात्मा धर्मदूषक ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

तत प्राह स कोपेन धर्मं यद्यनुशससि। आवयो प्राणयोरत्र पण स्यादिति वै मुने ॥४७॥
एवमुक्ते गौतमेन तथत्याह वणिक्तदा। पुनरप्यूचतुस्तौ लोकाँल्लोकास्तथोचिरे ॥४८॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार के विवाद से ब्राह्मण तो धनवान हुआ पर वैश्य धन तथा हाथ दोनो से वचित हो गया। फिर इस तरह भ्रमण करते हुए दोनो गगा के तट पर पहुँचे जहाँ योगेश्वर हरि रहते हैं। मुनिश्रेष्ठ! स्वेच्छा से वहाँ भी उन दोनो ने वही बात छेड दी। वैश्य ने गगा योगेश्वर तथा धर्म की ही प्रशसा की। तब ब्राह्मण ने अत्यत कोप से व्यग करते हुए उससे कहा ॥४० ४२॥

ब्राह्मण बोला—तुम्हारे धन तथा दोनो हाथ तो गये। अब प्राण भी गँवाना चाहते हो? यदि इस तरह बोलोगे तो मैं तलवार से तुम्हारा सिर काट डालूगा ॥४३॥

ब्रह्मा बोले—वैश्य ने हँसकर पुन गौतम से यह शीघ्र कहा ॥४४॥

वैश्य ने कहा—मैं तो धर्म को ही श्रेष्ठ मानूगा। तुम्हे जो इच्छा हो सो करो। जो पापी मनुष्य ब्राह्मण गुरु देवता धर्म वेद तथा भगवान की निन्दा करता है वह पापात्मा अस्पृश्य उपेक्षणीय दुराचारी तथा धर्मदूषक है ॥४५ ४६॥

ब्रह्मा बोले—तब द्विज ने क्रोध से कहा— यदि तुम धर्म की प्रशसा करते हो तो इस बार हम दोनो के प्राणो की बाजी हो। गौतम के इतना कहने पर वणिक ने कहा— ऐसा ही सही। तब दोनो ने लोगो से पूछा। लोगो ने वही उत्तर दिया। तब गोदावरी के दक्षिण तट पर योगेश्वर के सामने वैश्य को पटक कर द्विज ने उसकी एक आँख निकाल ली और कहा ॥४७ ४८॥

योगेश्वरस्य पुरतो गौतम्या दक्षिणे तटे। तं निपात्य विश विप्रश्चक्षुरुत्पाट्य चाब्रवीत ॥४९॥

विप्र उवाच

गतोऽसीमां दशां वैश्य नित्य धर्मप्रशंसया। गतं धनं गतं चक्षुश्छेदितौ करपल्लवौ॥
पृष्टोऽसि मित्र गच्छामि मैवं ब्रूयाः कथान्तरे ॥५०॥

ब्रह्मोवाच

तस्मिन्प्रयाते वैश्योऽसौ चिन्तयामास चेतसि। हा कष्टं मे किमभवद्धर्मैकमनसो हरे॥५१॥
स कुण्डलो वणिक्श्रेष्ठो निर्धनो गतबाहुकः। गतनेत्रः[1] शुचं प्राप्तो धर्ममेवानुसस्मरन्॥५२॥
एवं बहुविधां चिन्तां कुर्वन्नास्ते महीतले। निश्चेष्टोऽथ निरुत्साहः पतितः शोकसागरे॥५३॥
दिनावसाने शर्वर्यामुदिते चन्द्रमण्डले। एकादश्यां शुक्लपक्षे तत्राऽऽयाति विभीषणः॥५४॥
स तु योगेश्वरं देवं पूजयित्वा यथाविधि। स्नात्वा तु गौतमीं गङ्गां सपुत्रो राक्षसैर्वृतः॥५५॥
विभीषणस्य हि सुतो विभीषण इवापरः। वैभीषणिरिति ख्यातस्तमपश्यदुवाच ह॥५६॥
वैश्यस्य वचनं श्रुत्वा यथावृत्तं स धर्मवित्। पित्रे निवेदयामास लङ्केशाय महात्मने॥
स तु लङ्केश्वरः प्राह पुत्रं प्रीत्या गुणाकरम् ॥५७॥

विभीषण उवाच

श्रीमान्रामो मम गुरुस्तस्य[2] मान्यः सखा मम। हनुमानिति विख्यातस्तेनाऽऽनीतो गिरिर्महान्॥५८॥

विप्र बोला—वैश्य! नित्य धर्म की प्रशंसा करते करते तुम इस दशा मे प्राप्त हो गये हो कि तुम्हारा धन गया आँख गयी और हाथ भी कटे। मित्र! अब मैं जा रहा हूँ। किन्तु इतना कहे देता हूँ कि फिर तुम कभी ऐसा न बोलना ॥५०॥

ब्रह्मा बोले—उसके चले जाने पर वैश्य चिन्ता करने लगा—हाय भगवान्! एक धर्म मे ही मन को लगाते हुए मुझे कितना कष्ट हुआ! निर्धन अन्ध तथा हाथों से वञ्चित वणिक्श्रेष्ठ कुण्डल धर्म का ही स्मरण करते करते शोक को प्राप्त हो गया। इस प्रकार अनेक तरह की चिन्ता करते हुए वह निश्चेष्ट तथा निरुत्साह होकर शोक सागर मे डूबते हुए धरती पर गिर पड़ा। शुक्लपक्ष की एकादशी को दिन के अन्त मे तथा रात्रि में चन्द्रोदय होने पर विभीषण पुत्र तथा राक्षसो से युक्त होकर वहाँ आते थे और गोदावरी मे स्नान करके योगेश्वर की विधिपूर्वक पूजा करते थे। विभीषण का पुत्र वैभीषणि जो अपर विभीषण ही था वैश्य की ओर देखने लगा। पश्चात् उस धर्म के वक्ता ने वैश्य का सब समाचार सुनकर अपने पिता महात्मा लङ्केश से निवेदन कर दिया। लङ्कापति ने प्रेमपूर्वक गुणशाली पुत्र से कहा ॥५१-५७॥

विभीषण बोले—मेरे गुरु श्रीमान राम हैं। उन्हीं का प्रियपात्र मेरा मित्र हनुमान् है। वही महान् पर्वत को ले आया था। पूर्व समय वह कार्यवश समस्त ओषधियों के आश्रयभूत पर्वत को ले आया था। पुनः कार्य

---

१ घ. ड. च. ०नेत्रो भुवं प्रा०। २ घ. ड. च. ०स्तस्यामात्यः स०।

पुरा कार्यान्तरे प्राप्ते सर्वौषध्याश्रयोऽचलः। जाते कार्ये तमादाय हिमवन्तमथागमत् ॥५९॥
विशल्यकरणी चेति मृतसंजीवनीति च। तदाऽऽनीय महाबुद्धी रामायाक्लिष्टकर्मणे ॥६०॥
निवेदयित्वा तत्साध्यं¹ तस्मिन्वृत्ते समागतः। पुनर्गिरिं समादाय आगच्छद्देवपर्वतम् ॥६१॥
तामानीयास्य हृदये निवेशय हरिं स्मरन्। ततः प्राप्स्यत्ययं सर्वमपेक्षितमुदारधीः ॥६२॥
गच्छतस्तस्य वेगेन विशल्यकरणी पुनः। अपतद्गौतमीतीरे यत्र योगेश्वरो हरिः ॥६३॥

वैभीषणिरुवाच

तामोषधीं मम पितर्दर्शयाऽऽशु विलम्ब मा। परार्तिशमनादन्यच्छ्रेयो न भुवनत्रये ॥६४॥

ब्रह्मोवाच

विभीषणस्तस्त्वेत्युक्त्वा ता पुत्रस्याप्यदर्शयत्। इषे त्वेत्यस्य वृक्षस्य शाखां चिच्छेद तत्सुतः॥
वैश्यस्य चापि वै प्रीत्या सन्त परहिते रताः ॥६५॥

वैभीषणिरुवाच

यत्रापतन्नगे चास्मिन्स वृक्षस्तु प्रतापवान्। तस्य शाखां समादाय हृदयेऽस्य निवेशय ॥
तत्स्पृष्टमात्र एवासौ स्वकं² रूपमवाप्नुयात् ॥६६॥

सम्पन्न हो जाने पर वह उसे लेकर हिमालय पर चला गया। तब उसी महाबुद्धिमान् ने विशल्यकरणी तथा मृतसंजीवनी नामक ओषधियों को लाकर अथक काम करने वाले राम को समर्पित कर दिया और उन ओषधियों का गुण भी बतला दिया। पुनः कार्य सम्पन्न हो जाने पर हनुमान् उस पर्वत को लेकर देवपर्वत पर चला गया। तुम उसी ओषधि को लाकर हरि का स्मरण करते हुए, वैश्य के हृदय में लगा दो। तब यह उदार बुद्धि वाला व्यक्ति अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त करेगा। जब हनुमान् वेग से जा रहा था तब विशल्यकरणी गोदावरी के तट पर उसी जगह गिर पड़ी थी जहाँ योगेश्वर हरि रहते हैं ॥५८-६३॥

वैभीषणि बोला—पिता जी! शीघ्र वह ओषधि मुझे दिखला दीजिये! दूसरे की पीड़ा को शान्त कर देने से जितना कल्याण होता है, उतना (कल्याण) तीनों लोक में और किसी से नहीं होता है ॥६४॥

ब्रह्मा बोले—विभीषण ने 'ठीक' कहकर पुत्र को वह ओषधि दिखा दी। तब उसके पुत्र ने वैश्य पर स्नेह के कारण 'इषे त्वा' इस मन्त्र से उस वृक्ष की एक शाखा तोड़ ली। क्योंकि सत्पुरुष दूसरे के ही कल्याण में निरत रहते हैं ॥६५॥

विभीषण बोले—इस पर्वत पर जो वह प्रतापी वृक्ष गिरा है, उसकी शाखा लाकर इसके हृदय में लगा दो। उसका स्पर्श होते ही यह अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेगा ॥६६॥

१ख. ग. तत्साध्य। २ङ. स्वीयं।

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा पितुर्वाक्यं वैभीषणिरुदारधीः। तथा चकार वै सम्यक्काष्ठखण्डं न्यवेशयत् ॥६७॥
हृदये स तु वैश्योऽपि सचक्षुः सकरोऽभवत्। मणिमन्त्रौषधीनां हि वीर्यं कोऽपि न बुध्यते ॥६८॥
तदेव काष्ठमादाय धर्ममेवानुसंस्मरन्। स्नात्वा तु गौतमीं गङ्गां तथा योगेश्वरं हरिम् ॥६९॥
नमस्कृत्वा पुनरगात्काष्ठखण्डेन वैश्यकः। परिभ्रमन्नृपपुरं महापुरमिति श्रुतम् ॥७०॥
महाराज इति ख्यातस्तत्र राजा महाबलः। तस्य नास्ति सुतः कश्चित्पुत्रिका[1] नष्टलोचना ॥७१॥
सैव तस्य सुता पुत्रस्तस्यापि व्रतमीदृशम्। देवो वा दानवो वाऽपि ब्राह्मणः क्षत्रियो भवेत् ॥७२॥
वैश्यो वा शूद्रयोनिर्वा सगुणो निर्गुणोऽपि वा। तस्मै देया इयं पुत्री यो नेत्रे आहरिष्यति ॥७३॥
राज्येन सह देयेयमिति राजा ह्यघोषयत्। अहर्निशमसौ वैश्यः श्रुत्वा घोषमथाब्रवीत् ॥७४॥

वैश्य उवाच

अहं नेत्रे आहरिष्ये राजपुत्र्या असंशयम् ॥७५॥

ब्रह्मोवाच

तं वैश्यं तरसाऽऽदाय महाराज्ञे न्यवेदयत्। तत्काष्ठस्पर्शमात्रेण सनेत्राऽभून्नृपात्मजा ॥७६॥
ततः सविस्मयो राजा को भवानिति चाब्रवीत्। वैश्यो राज्ञे यथावृत्तं न्यवेदयदशेषतः ॥७७॥

ब्रह्मा बोले—पिता का यह वचन सुनकर उदार चित्त वाले वैभीषणि ने उस लकडी के टुकडे कर लिये और एक टुकडे को उसके हृदय मे लगा दिया। हृदय मे स्पर्श होते ही वह वैश्य नेत्र तथा हाथो से युक्त हो गया। मणि, मन्त्र तथा ओषधियो के प्रभाव को कौन जान सकता है। उसी काष्ठ-खण्ड को लेकर धर्म का स्मरण करते हुए उसने गोदावरी मे स्नान किया और योगेश्वर हरि को नमस्कार करके पुन काष्ठ-खण्ड धारण कर वहाँ से प्रस्थान कर दिया। इतस्तत भ्रमण करते हुए वह महापुर नाम से प्रसिद्ध एक राजधानी म पहुँचा। उस नगर मे महाराज नाम से प्रसिद्ध एक महाबलवान् राजा रहता था। उसके कोई पुत्र नही था। एक कन्या भी थी तो नेत्रो से वचित। वही कन्या उसके पुत्र के स्थान पर थी। राजा ने नियम किया—जो कोई देवता या दानव या ब्राह्मण या क्षत्रिय या वैश्य या शूद्र या गुणवान् या निर्गुणी व्यक्ति मेरी पुत्री को नेत्र प्रदान करेगा, उसी को मैं राज्य के साथ कन्या दूगा। वह वैश्य दिनरात यह घोषणा सुनकर बोला ॥६७-७४॥

वैश्य ने कहा—मैं राजपुत्री को नेत्र दूगा, इसमे कोई सशय नही ॥७५॥

ब्रह्मा बोले—उस वैश्य को लेकर तुरन्त राजदूत ने महाराज से निवेदन किया। उस काष्ठ का स्पर्श होते ही राजकुमारी नेत्रयुक्त हो गई। तब राजा ने विस्मयपूर्वक उससे पूछा—'आप कौन हैं?' वैश्य ने राजा से सारी घटना निवेदन कर दी ॥७६-७७॥

१क. ड. ०कास्त्यन्धलो०।

वैश्य उवाच

ब्राह्मणाना प्रसादेन धर्मस्य तपसस्तथा। दानप्रभावाद्यज्ञैश्च विविधैर्भूरिदक्षिणै ॥
दिव्यौषधिप्रभावेन मम सामर्थ्यमीदृशम् ॥७८॥

ब्रह्मोवाच

एतद्वैश्यवच श्रुत्वा विस्मितोऽभून्महीपति ॥७९॥

राजोवाच

अहो महानुभावोऽय प्रायो वृन्दारको भवेत्। अन्यथैतादृगन्यस्य सामर्थ्यं दृश्यते कथम् ॥
तस्मादस्मै तु ता कन्या प्रदास्ये राजपूर्विकाम् ॥८०॥

ब्रह्मोवाच

इति सकल्प्य मनसि कन्या राज्य च दत्तवान्। विहारार्थं गत स्वैर पर खेदमुपागत ॥८१॥
न मित्रेण विना राज्य न मित्रेण विना सुखम्। तमेव सतत विप्र चिन्तयन्वैश्यनन्दन ॥८२॥
एतदेव [१]सुजाताना लक्षण भुवि देहिनाम्। कृपार्द्रं यन्मनो नित्य तेषामप्यहितेषु हि ॥८३॥
महानृपो वन प्रायात्स राजा मणिकुण्डल । तस्मिञ्शासति राज्य तु कदाचिद्गौतम द्विजम् ॥८४॥
हृतस्व द्यूतकै पापैरपश्यन्मणिकुण्डल । तमादाय द्विज मित्र पूजयामास धर्मवित् ॥८५॥
धर्माणा तु प्रभाव त तस्मै सर्व न्यवेदयत्। स्नापयामास गङ्गायां त सर्वाघनिवृत्तये ॥८६॥

वैश्य बोला—ब्राह्मणों की कृपा से और धर्म, तपस्या, दान, दिव्य ओषधि तथा विविध दक्षिणा सम्पन्न यज्ञों के प्रभाव से मुझे यह सामर्थ्य प्राप्त हुआ है ॥७८॥

ब्रह्मा बोले—वैश्य का यह वचन सुनकर राजा आश्चर्यचकित हुआ ॥७९॥

राजा बोला—अहो! यह महानुभाव प्रायः देवता होगा। अन्यथा दूसरे में ऐसा सामर्थ्य कहाँ देखा है? इसलिये इसी को राज्यसहित कन्या प्रदान करूँगा ॥८०॥

ब्रह्मा बोले—ऐसा मन में संकल्प करके राजा ने उसे कन्या तथा राज्य दे दिया। जब वह विहार करने के लिये गया तो उसे बड़ा खेद हुआ। वह सोचने लगा—'बिना मित्र के न मुझे राज्य ही सुहाता है न सुख ही।' वैश्यपुत्र उसी ब्राह्मण की सतत चिंता करता था। संसार में कुलीनों का यही लक्षण होता है कि वे शत्रुओं के ऊपर भी सदैव कृपा करते रहते हैं। महाराज वन में चला गया। मणिकुण्डल ही अब राज्य-कार्य सँभालता था। राज्य पर शासन करते किसी समय मणिकुण्डल ने उसी गौतम नामक द्विज को देखा जिसका धन पापी जुआरियों ने हरण कर लिया था। उस ब्राह्मण मित्र को लाकर धर्मवेत्ता वैश्य ने उसकी पूजा की और धर्मों का समस्त प्रभाव उसे बतला दिया। अखिल पाप निवृत्ति के लिए उसने द्विज को गंगा में स्नान करवाया। गौतम,

---

१ क सज्जनानां।

तेन विप्रेण सर्वैस्तैः स्वकीयैर्गोत्रजैर्वृतः। वैश्यैः स्वदेशसंभूतैर्ब्राह्मणस्य तु बान्धवैः ॥८७॥
वृद्धकौशिकमुख्यैश्च तस्मिन्योगेश्वरान्तिके। यज्ञानिष्ट्वा[1] सुरान्पूज्य ततः स्वर्गमुपेयिवान् ॥८८॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं मृतसंजीवनं विदुः। चक्षुस्तीर्थं[2] सयोगेशं स्मरणादपि पुण्यदम् ॥
मनःप्रसादजननं [3]सर्वदुर्भावनाशनम् ॥८९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये चक्षुस्तीर्थादिवर्णनं नाम सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७०॥
गौतमीमाहात्म्ये एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

अथैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

उर्वशीतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

उर्वशीतीर्थमाख्यातमश्वमेधफलप्रदम्। स्नानदानमहादेववासुदेवार्चनादिभिः ॥१॥
[4]महेश्वरो यत्र देवो यत्र[5] शार्ङ्गधरो हरिः। प्रमतिर्नाम राजाऽऽसीत्सार्वभौमः प्रतापवान् ॥२॥

अपने वंशजों स्वदेशोत्पन्न वैश्यों, गौतम के बान्धवों तथा श्रेष्ठ याज्ञिकों के साथ योगेश्वर के समीप यज्ञ तथा देवताओं की पूजा करके मणिकुण्डल ने स्वर्ग प्राप्त किया। तब से लेकर उस तीर्थ का नाम मृतसंजीवनी पड़ा। योगेश्वर सहित चक्षुस्तीर्थ के स्मरण करने से पुण्य, मन की प्रसन्नता तथा समस्त दुर्भावनाओं का नाश होता है ॥७१-८९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में तीर्थ-माहात्म्यकथन-प्रसंग में चक्षुस्तीर्थ आदि का वर्णन नामक एक सौ सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७०॥

अध्याय १७१

उर्वशीतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—उर्वशी नामक तीर्थ में स्नान दान शिव और विष्णु की पूजा करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। वहाँ शंकर तथा शार्ङ्ग नामक धनुष धारण करने वाले हरि रहते हैं। (पूर्व काल में) प्रमति नामक

१घ च. ०ष्ट्वा प्रजा पूज्य। २घ ०र्थं च यो०। ३ड ०र्वदुःखविना०। ४घ च मृगेश्वरो। ड मृडेश्वरो।

रिपूञ्जित्वा जगामाऽऽशु इन्द्रलोकं सुरैर्वृतम्। तत्रापश्यत्सुरपतिं मरुद्भिः सह नारद ॥३॥
जहासेन्द्रं पाशहस्तं प्रमतिः क्षत्रियर्षभः। त हसन्तमथाऽऽलक्ष्य हरिः प्रमतिमब्रवीत् ॥४॥

इन्द्र उवाच

देवालये महाबुद्धे मरुद्भिः क्रीडितैरलम्। दिशो जित्वा दिवं प्राप्तः कुरु क्रीडां मया सह ॥५॥

ब्रह्मोवाच

सकषायं हरिवचो निशम्य प्रमतिर्नृपः। तथेत्युवाच देवेन्द्रं निष्कृतिं कां तु मन्यसे ॥
तच्छ्रुत्वा प्रमतेर्वाक्य सुरराण्नृपमब्रवीत् ॥६॥

इन्द्र उवाच

उर्वश्येव पणोऽस्माकं प्राप्या या निखिलैर्मखैः ॥७॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वेन्द्रवचनं प्रमतिः प्राह गर्वितः। उर्वशीं निष्कृतिं मन्ये त्व राजन्किं नु[1] मन्यसे ॥८॥
यद्ब्रवीषि सुरेशान तन्मन्येऽहं शतक्रतो। [2]प्राहेन्द्रं प्रमतिस्तद्वन्निष्कृत्यै दक्षिण करम्।
सवर्म सशर धर्म्यं देहि[3] (मन्ये) दीव्यामहे[4] वयम् ॥९॥

ब्रह्मोवाच

तावेवं संविदं कृत्वा देवनायोपतस्थतुः। प्रमतिर्जितवास्तत्र उर्वशीं दैवतस्त्रियम् ॥१०॥

एक प्रतापी तथा चक्रवर्ती राजा रहता था। वह एक बार, शत्रुओं को जीतकर देवताओं से घिरे हुए इन्द्रलोक को गया। नारद! वहाँ उसने मरुद्गण के साथ इन्द्र को देखा। हाथ में पासा लिये हुए इन्द्र को देखकर क्षत्रियश्रेष्ठ प्रमति ने हँस दिया। हँसते हुए प्रमति को देखकर इन्द्र ने उससे कहा ॥१-४॥

इन्द्र बोले—महाबुद्धिमान्! देवलोक में मरुतों के साथ मैंने बहुत खेल लिया। आप समस्त दिशाओं को जीत कर स्वर्ग आये हैं। इसलिये अब आप मेरे साथ क्रीडा करें ॥५॥

ब्रह्मा बोले—इन्द्र के सप्रेम वचन को सुनकर राजा प्रमति ने इन्द्र से कहा—'तो इसमें आप बाजी क्या लगाते हैं?' प्रमति की बात सुनकर इन्द्र ने कहा। ॥६॥

इन्द्र बोले—उर्वशी की ही मैं बाजी लगाता हूँ,जो अखिल यज्ञों के करने से मिलती है ॥७॥

ब्रह्मा बोले—इन्द्र की यह बात सुनकर प्रमति गर्व से बोला—'उर्वशी की बाजी मुझे स्वीकार है।' तब इन्द्र ने पूछा—'राजन्! आप क्या बाजी रखते हैं?' उसने कहा—'इन्द्र आप जो कहें मैं वही रखने के लिये तैयार हूँ।' इन्द्र ने कहा—मैं यह चाहता हूँ कि आप कवच, बाण तथा धनुष सहित अपने दाहिने हाथ को रखें ॥८-९॥

ब्रह्मा बोले—वे दोनों इस तरह बाजी रखकर जुआ खेलने लगे, जिसमें प्रमति ने देवाङ्गना उर्वशी को जीत लिया। उसे जीतकर प्रमति ने अभिमानपूर्वक इन्द्र से कहा ॥१०॥

१क. न। २ङ. प्रायच्छप्रम०। ३घ. देव। ४क. ग. घ. तव।

प्रमतिरुवाच

निष्क्रत्यं पुनरन्यन्मे पश्चाद्दीव्ये त्वया विभो ॥११॥

इन्द्र उवाच

देवयोग्यमयो वज्रं जैत्रं रथमुत्तमम्। धीय्येऽहं तेन नृपते करेणाप्यविचारयन् ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

स गृहीत्वा तदा पाशानन्यांश्च मणिभूषितान्। जितमित्यब्रवीच्छक्रं प्रमतिः प्रहसंस्तदा ॥१३॥
एतस्मिन्नन्तरे प्रायादक्षज्ञस्तत्र नारद। विश्वावसुरिति ख्यातो गन्धर्वाणां महेश्वरः ॥१४॥

विश्वावसुरुवाच

गन्धर्वविद्यया राजस्तया दीव्यामहे त्वया। तथेत्युक्त्वा स नृपतिर्जितमित्यब्रवीत्तदा ॥१५॥
तां जित्वा नृपतिर्मौर्ख्याद्देवेन्द्रं प्राह कश्मलम्' ॥१६॥

प्रमतिरुवाच

रणे वा देवने वाऽपि न त्वं जेता कथंचन। महेन्द्र सततं तस्मादस्मदाराधको भव॥
वद केन प्रकारेण जाता देवेन्द्रता तव ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

तथा प्राहोर्वशीं गर्वाद्गच्छ कर्मकरी भव। उर्वशी प्राह देवेषु यथा वर्ते तथा त्वयि॥
वर्तेयं सर्वभावेन न मां धिक्कर्तुमर्हसि ॥१८॥

प्रमति बोला—भगवन्! अब दूसरी बाजी लगाइये ॥११॥

इन्द्र ने कहा—देव के योग्य जयशील वज्र तथा उत्तम रथ को मैं दाँव पर रखता हूँ। राजन्! आपके हाथ को भी इस बार मैं रखवाना नहीं चाहता हूँ ॥१२॥

ब्रह्मा बोले—तब प्रमति ने मणिभूषित दूसरे पासे लेकर फेंके और इन्द्र से हँसकर कहा—'मेरी जीत हुई।' नारद! इसी बीच जुआ खेलने में निपुण गन्धर्वों का स्वामी विश्वावसु वहाँ आ पहुँचा ॥१३-१४॥

विश्वावसु ने कहा—'राजन्! गन्धर्व विद्या की बाजी रखकर मैं आपसे जुआ खेलना चाहता हूँ।' राजा ने स्वीकार कर पासा फेंका और कहा—'मेरी जीत हुई।' प्रमति ने दोनों को जीतकर मूर्खतावश इन्द्र से कहा ॥१५-१६॥

प्रमति बोला—महेन्द्र! न युद्ध में और न जुए में तुम किसी तरह मुझे जीत सके। इसलिये तुम सतत मेरी पूजा किया करो और यह भी बतलाओ कि तुम इन्द्र कैसे बन गये ॥१७॥

ब्रह्मा बोले—उसी तरह उर्वशी से भी उसने गर्व से कहा—'तुम जाओ और मेरी नौकरी करो।' उर्वशी ने उससे कहा—'मैं जैसे देवताओं के साथ व्यवहार करती हूँ, उसी तरह आपके भी साथ करूँगी। आप मुझे फटकारिये मत' ॥१८॥

---

१६. कास्यपम्।

ब्रह्मोवाच

ततस्तां प्रमतिः प्राह त्वादृश्य' सन्ति चारिका'। त्वं किं विलज्जसे भद्रे' गच्छ कर्मकरी भव ॥१९॥
एतच्छ्रुत्वा नृपेणोक्तं गन्धर्वाधिपतिस्तदा। चित्रसेन इति ख्यातः (प्राह) सुतो विश्वावसोर्बली ॥२०॥

चित्रसेन उवाच

दीव्येऽहं वै त्वया राजन्सर्वेणानेन भूपते। राज्येन जीवितेनापि मदीयेन तवापि च ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा पुनरुभौ चित्रसेननृपोत्तमौ। दीव्येतामभिसंरब्धौ चित्रसेनोऽजयत्तदा ॥२२॥
गान्धर्वैस्त महापाशैर्बबन्ध नृपतिं तदा। चित्रसेनोऽजयत्सर्वमुर्वशीमुख्यत. पणैः ॥२३॥
राज्यं कोशं बल चैव यदन्यद्वसु किंचन। चित्रसेनस्य तज्जात यदासीत्प्रमतेर्धनम् ॥२४॥

ता जित्वा प्रमति· प्राह संरम्भात्तं शतक्रतुम् ॥२५॥

प्रमतिपुत्र उवाच

किं मे पित्रा कृत पापं क्व वा बद्धो महामति.। कथमेष्यति स्वं स्थानं कथं पाशैर्विमोक्ष्यते ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

सुमतेर्वचन श्रुत्वा ध्यात्वा स मुनिसत्तम.। मधुच्छन्दा जगादेदं' प्रमतेर्वर्तनं तदा ॥२७॥

ब्रह्मा बोले—तब प्रमति ने उर्वशी से कहा—'भद्रे ! तुम्हारी जैसी मेरी अनेक परिचारिकायें हैं। तुम क्यो लज्जा करती हो ? जाओ, मेरा काम करो।' राजा की यह बात सुनकर गन्धर्वों के स्वामी विश्वावसु के पुत्र बलवान् चित्रसेन ने कहा ॥१९-२०॥

चित्रसेन बोला—राजन् ! मै सब कुछ की बाजी लगाकर आप से जूआ खेलना चाहता हूँ। मैं अपने तथा आपके राज्य एवम् जीवन की बाजी लगाना चाहता हूँ ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—राजा ने कहा—'ऐसा ही सही।' फिर चित्रसेन और राजा ने खेलना आरम्भ कर दिया। चित्रसेन की विजय हुई। तब उसने गान्धर्व पाश मे राजा को बाँध दिया। चित्रसेन ने बाजी मे उर्वशी आदि सबको जीत लिया। प्रमति का राज्य कोश, सेना, धन आदि जो कुछ भी था, सबको चित्रसेन ने जीत लिया। तब प्रमति के पुत्र ने जो बिलकुल बालक ही था, अपने पुरोहित विश्वामित्र के पुत्र महापण्डित मधुच्छन्दा से पूछा ॥२२-२५॥

प्रमति का पुत्र बोला—मेरे महाबुद्धिमान् पिता ने कौनसा पाप किया ? कहाँ बाँधे गये ? कैसे पाश से विमुक्त होकर अपने स्थान पर आयेंगे ? ॥२६॥

ब्रह्मा बोले—सुमति के वचन को सुनकर मुनिश्रेष्ठ मधुच्छन्दा ने ध्यान करके प्रमति के बारे मे कहना आरम्भ किया ॥२७॥

---

१७ ०द्रे त्व तु क०। २७. च ०द सुमति वचन त०।

मधुच्छन्दा उवाच

देवलोके तव पिता बद्ध आस्ते महामते। कैतवैर्बहुदोषैश्च भ्रष्टराज्यो बभूव ह ॥२८॥
यो याति कैतवसभां स चापि क्लेशभाग्भवेत्। द्यूतमद्यामिषादीनि व्यसनानि नृपात्मज ॥२९॥
पापिनामेव जायन्ते सदा पापात्मकानि हि। एकैकमप्यनर्थाय पापाय नरकाय च ॥३०॥
यानासनाभिलापाद्यैः कृतैः कैतववर्तिभिः। कुलीनाः कलुषीभूताः किं पुनः कितवो जनः ॥३१॥
कितवस्य तु या जाया तप्यते नित्यमेव सा। स चापि कितवः पापो योषितं वीक्ष्य तप्यते ॥३२॥
तां दृष्ट्वा विगतानन्दो नित्यं वदति पापकृत्। अहो संसारचक्रेऽस्मिन्मया तुल्यो न पातकी ॥३३॥
न किंचिदपि यस्याऽऽस्ते लोके विषयजं सुखम्। लोकद्वयेऽपि न सुखी कितवः कोऽपि दृश्यते ॥३४॥
बिभाति च तथा नित्यं लज्जया दग्धमानसः। गतधर्मो निरानन्दो ग्रस्तगर्वस्तथाऽटति ॥३५॥
अकैतवी च या वृत्तिः सा प्रशस्ता द्विजन्मनाम्। कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यमपि कुर्यान्न कैतवम् ॥३६॥
यस्तु कैतववृत्त्या हि धनमाहर्तुमिच्छति। धर्मार्थकामाभिजनैः स विमुच्येत पौरुषात् ॥३७॥
वेदेऽपि दूषितं कर्म तव पित्रा तदाऽऽदृतम्। तस्मात्किं कुर्महे वत्स यदुक्तं ते विधीयते ॥३८॥
विधातृविहितं मार्गं को नु वाऽत्येति पण्डितः ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

एतत्पुरोधसो वाक्यं श्रुत्वा सुमतिरब्रवीत् ॥४०॥

मधुच्छन्दा बोले—महाधीमान्! देवलोक में तुम्हारे पिता बाँधे हुए हैं। अनेक दोषों से युक्त द्यूतकर्म (जूआ) करने से वे राज्यच्युत हो गये। जो कोई भी द्यूतसभा में जाता है, वह अवश्य दुःख पाता है। नृपपुत्र! द्यूत, मद्य, मांस आदि पापरूपी व्यसन पापियों के लिये ही हैं। इनमें से एक भी अनर्थ, पाप तथा नरक के लिये पर्याप्त है। जुआरियों के साथ चलने बैठने तथा वार्तालाप करने से कुलीन व्यक्ति भी दूषित हो जाते हैं, और जो जुआरी ही हैं, उसके विषय में तो कहना ही क्या? जुआरी की जो स्त्री होती है वह सदा अनुताप करती है। वह पापी जुआरी भी स्त्री को देखकर पश्चात्ताप करता है। स्त्री को देखकर वह पापी आनन्दशून्य होकर कहने लगता है—'हाय! इस संसार-चक्र में मेरे जैसा पातकी कोई नहीं है।' लोक में ऐसा कोई नहीं है, जिस विषयजन्य सुख नहीं मिलता है। पर जुआरियों के लिए दोनों लोक में भी सुख नहीं है। वह नित्य लज्जा से दग्धचित्त बना रहता है और धर्म तथा आनन्द से शून्य होकर मदमत्त की तरह घूमता है। द्विजातियों के लिये छल-रहित वृत्ति ही प्रशस्त मानी गई है। छल में खेती, गोरक्षा तथा व्यापार भी नहीं करना चाहिये। जो छल-वृत्ति से धन उपार्जन करना चाहता है, वह धर्म अर्थ, काम, कुटुम्ब तथा पुरुषत्व से वञ्चित हो जाता है। वेद में भी जो कर्म दूषित माना गया है, वही तुम्हारे पिता ने किया। वत्स! इसलिये हमलोग क्या करें? तुम जो कहो, वही कर दें। भला, कौन विद्वान् विधाता के मार्ग का उल्लंघन कर सकता है? ॥२८-२९॥

ब्रह्मा बोले—पुरोहित का यह वाक्य सुनकर सुमति बोला ॥४०॥

सुमति उवाच

किं कृत्वा प्रमतिस्तातः पुना राज्यमवाप्नुयात् ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

पुनर्ध्यात्वा मधुच्छन्दाः सुमतिं चेदमब्रवीत ॥४२॥

मधुच्छन्दा उवाच

गौतमीं याहि वत्स त्वं तत्र पूजय शंकरम्। 'अदितिं वरुणं विष्णुं ततः पाशाद्विमोक्ष्यते ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा जगामाऽऽशु गङ्गां नत्वा जनार्दनम्। पूजयायास शंभुं च तपस्तेपे यतव्रतः ॥४४॥

सहस्रमेकं वर्षाणा बद्धं पितरमात्मन.। मोचयामास देवेभ्यः पुना राज्यमवाप स.[2] ॥४५॥

शिवे(हरौ) शाम्यां मुक्तपाशो राज्यं प्राप सुतात्स्वकात्। अवाप्य विद्यां गान्धर्वीं प्रियश्चाऽऽसीच्छ-तक्रतोः ॥४६॥

शांभवं वैष्णवं चैव उर्वशीतीर्थमेव च। ततः प्रभृति तत्तीर्थं कैतवं चेति विश्रुतम् ॥४७॥

शिवविष्णुसरिन्मातुः प्रसादादाप्यते न किम्। तत्र स्नानं च दानं च बहुपुण्यफलप्रदम् ॥

पापपाशविमोक्षं तु सर्वदुर्गतिनाशनम् ॥४८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्य उर्वश्यादितीर्थवर्णनं नामैकसप्त्यधि-कशततमोऽध्यायः ॥१७१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२॥

सुमति ने कहा—क्या करने से पिता प्रमति पुन राज्य प्राप्त करेंगे ? ॥४१॥

ब्रह्मा बोले—फिर ध्यान करके मधुच्छन्दा ने सुमति से कहा ॥४२॥

मधुच्छन्दा बोले—वत्स ! तुम गोदावरी जाओ और वहाँ शकर, अदिति, वरुण तथा विष्णु की पूजा करो। तब तुम्हारे पिता पाश से मुक्त हो जायेंगे ॥४३॥

ब्रह्मा बोले—'अस्तु' कहकर सुमति ने शीघ्र ही गगा के लिये प्रस्थान कर दिया। वहाँ पहुँच कर) वह गगा को प्रणाम कर विष्णु तथा शकर की पूजा करके नियमपूर्वक तप करने लगा। एक हजार वर्षों तक तपस्या करके उसने अपने पिता को देव-बन्धन से मुक्त किया। तब प्रमति ने अपने पुत्र से पुन राज्य तथा शिव एवम् विष्णु की भक्ति प्राप्त की। वह गन्धर्व-विद्या को प्राप्त कर इन्द्र का प्रियपात्र बना। तब से उस तीर्थ का नाम शाम्भव वैष्णव उर्वशीतीर्थ एवम् कैतवतीर्थ भी पडा। शिव विष्णु तथा गगा की कृपा से क्या नही प्राप्त हो सकता है ? वहाँ स्नान तथा दान करने से बहुत पुण्य, पाप तथा बन्धन से मुक्ति और समस्त दुर्गतियो का नाश होता है ॥४४-४८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे तीर्थमाहात्म्य-कथन-प्रसग मे उर्वशी आदि तीर्थ वर्णन नामक एक सौ एकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७१॥

१घ आदित्य। २घ. स'। दिवे।

अथ द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सामुद्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सामुद्र तीर्थमाख्य सर्वतीर्थफलप्रदम्। तस्य स्वरूप वक्ष्यामि शृणु नारद तन्मना ॥१॥
विसृष्टा गौतमेनासौ गङ्गा पापप्रणाशनी। लोकानामुपकारार्थं प्रायात्पूर्वार्णव प्रति ॥२॥
आगच्छन्ती देवनदी कमण्डलुधृता मया। शिरसा च धृता देवी शंभुना परमात्मना ॥३॥
विष्णुपादात्प्रसूता ता ब्राह्मणेन महात्मना। आनीता मर्त्यभवन स्मरणादघनाशनीम् ॥४॥
गुरोर्गुरुतमा सिन्धुर्दृष्ट्वा कृत्यमचिन्तयत। या व द्या जगतामीशा ब्रह्मेशाद्यैर्नमस्कृता ॥५॥
तामह प्रतिगच्छेय नो चेत्स्याद्धर्मदूषणम्। आगच्छ त महात्मान यो मोहान्नोपतिष्ठते ॥६॥
न तस्य कोऽपि त्रातास्ति पापिनो लोकयोर्द्वयो। एव विमृश्य रत्नेशो मूर्तिमान्विनयान्वित ॥
कृताञ्जलिपुटो गङ्गामाहेद सरितापति ॥७॥

सिन्धुरुवाच

[1]रसातलगत वारि पृथिव्या यन्नभस्तले। तन्मामेवात्र विशतु नाह वक्ष्यामि किंचन ॥८॥

अध्याय १७२

सामुद्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सामुद्रतीर्थ समस्त तीर्थों का फलदायक है। उसका स्वरूप-वर्णन मैं करूंगा। नारद! आप ध्यान से सुनिये। गौतम से त्यक्त होकर अखिलपापनाशिनी गंगा लोगों के उपकार के लिए पूर्व समुद्र की ओर चल पड़ी। आती हुई उस देवनदी को मैंने कमण्डलु में धारण कर लिया और परमात्मा शंकर ने उसे अपने सिर पर अवस्थित किया। विष्णु के चरण से निकली हुई उस पापनाशिनी देवी को महात्मा ब्राह्मण मृत्युलोक में ले आये। उस सर्वश्रेष्ठा देवी को देखकर समुद्र अपने कर्तव्य की चिन्ता करने लगा कि जो भगवती संसार की पूजनीया तथा ब्रह्मा शिव आदि देवताओं की प्रणम्या है उससे मुझे संगम करना पड़ेगा। इसमें धर्मलोप तो नहीं है क्योंकि जो मोहवश आते हुए महात्मा का सत्कार नहीं करता है उस पापी का संरक्षक दोनों लोक में कोई नहीं होता है। ऐसा सोचकर मानो नम्रता की मूर्ति धारण कर रत्नाकर ने हाथ जोड़कर गंगा से कहा ॥१-७॥

समुद्र बोला—पाताल में पृथिवी पर तथा आकाश में जो जल है वह मुझमें ही प्रविष्ट हो। (बस इतना ही) और मैं कुछ नहीं कहूँगा। मैं रत्न अमृत पर्वत राक्षस देवता तथा दूसरे जीवों को धारण करता हूँ। मेरे

---

[1] घ. ङ. च. ०ञ्चग वा०।

मयि रत्नानि पीयूषं पर्वता राक्षसासुराः। एतानप्यखिलानन्यान्भीमान्संधारयाम्यहम् ॥९॥
ममान्तः कमलायुक्तो विष्णुः स्वपिति नित्यदा। ममाशक्यं न किमपि विद्यते सचराचरे॥१०॥
महत्यभ्यागते कुर्यात्प्रत्युत्थानं न यो मदात्। स धर्मादिपरिभ्रष्टो निरयं तु समाप्नुयात्॥११॥
न तान्मे बिभ्रतः खेदो विनाऽगस्त्यपराभवात्। किंतु त्वं गौरवेणैषामतिरिक्ता ह्यतःपरम् ॥१२॥
ब्रवीमि देवि गङ्गे मां त्वं साम्यात्संगता भव। नैकरूपामहं शक्तः संगन्तुं बहुधा यदि ॥१३॥
सङ्गमेष्यसि देवि त्वं संगच्छेऽहं न चान्यथा। गङ्गे समेष्यसि यदि बहुधा तद्विचारये[1] ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तमेवंवादिनं सिन्धुमपामीशं तदाऽब्रवीत्। गङ्गा सा गौतमी देवी कुरु चैतद्वचो मम ॥१५॥
सप्तर्षीणां च या भार्या अरुन्धतिपुरोगमाः। भर्तृभिः सहिताः सर्वा आनय त्वं तदा त्वहम् ॥१६॥
अल्पभूता भविष्यामि ततः स्यां तव संगता। तथेत्युक्त्वा सप्तर्षीणां भार्याभिर्ऋ(श्चर्क्ष) षिभिर्वृतः[2] (ताः) ॥१७॥
आनयामास तां (ता) देवी सप्तधा सा व्यभज्यत। सा चेयं गौतमी गङ्गा सप्तधा सागरं गता ॥१८॥
सप्तर्षीणां तु नाम्ना तु सप्त गङ्गास्ततोऽभवन्। तत्र स्नानं च दानं च श्रवणं पठनं तथा ॥१९॥

भीतर लक्ष्मीयुक्त विष्णु सदा शयन करते हैं। ससार मे ऐसा कुछ भी नही है, जो मुझसे असाध्य हो। महान् व्यक्ति के आने पर जो अभिमान से उठता नही है, वह धर्म आदि से भ्रष्ट होकर नरक मे जाता है। उन चीजो को धारण करने से मुझे खेद नहीं होता है, यदि खेद होता है तो केवल एक अगस्त्य द्वारा पराजय से। किन्तु तुम अपनी महत्ता के कारण इनसे अतिरिक्त हो। इसलिये, देवि! गगे!, मैं कहता हूँ कि तुम समान होने के कारण मुझसे सगम करो। तुम जब तक एक रूप मे रहोगी तब तक मैं तुमसे सगम करने मे असमर्थ रहूँगा। पर यदि तुम अनेक रूप धर कर सगम करोगी तो मै सगम कर पाऊँगा, अन्यथा नही। गगे! सोचो, जिससे कि तुम अनेक रूप बनाकर सगम कर सको॥८-१४॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार बोलते हुए जल के स्वामी समुद्र से उस गौतमी देवी गगा ने कहा—'तो मेरी यह बात करो कि सप्तर्षियो की अरुन्धती आदि जो भार्यायें है, उनको पतियो के सहित ले आओ। तब मैं सीमित हो जाऊँगी, जिससे तुम्हारे साथ मेरा सगम हो जायगा।' 'ऐसा ही सही' कहकर समुद्र ऋषि पतियो सहित सप्तर्षियो की भार्याओ को ले आया। तब गगा सात भागो मे विभक्त हो गई। वही यह गौतमी गगा है, जो सात भागो मे बँटकर समुद्र से मिल गई। तब सप्तर्षियो के नाम से सात गगायें हुई। वहाँ, स्नान, दान श्रवण तथा पाठ करने से या स्मरण

१घ. ङ. च. ०रय। त०। २क. ०वृंताम्। आ०। घ. ०वृंतम्। आ०।

स्मरणं चापि यद्भक्त्या सर्वकामप्रदं भवेत्। मास्माद:यत्पर तीर्थं समुद्राद्भुवनत्रये ॥
पापहानौ भुक्तिमुक्तिप्राप्तौ च मनसो मुदे ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सप्तधागोदावरीसमुद्रागमनवर्णनं नाम द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१७२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्र्यधिकशततमोऽध्याय ॥१०३॥

अथ त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

भीमेश्वरतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

ऋषिसत्रमिति ख्यातमृषय सप्त नारद। निषेदुस्तपसे यत्र यत्र भीमेश्वर शिव ॥१॥
तत्रेद वृत्तमाख्यास्ये देवर्षिपितृबृंहितम्। शृणु यत्नेन वक्ष्यामि सर्वकामप्रद शुभम ॥२॥
सप्तधा व्यभजन्गङ्गामृषय सप्त नारद। वासिष्ठी दाक्षिणेयो स्याद्वैश्वामित्री तदुत्तरा ॥३॥
वामदेव्यपरा ज्ञेया गौतमी मध्यत शुभा। भारद्वाजी स्मृता चान्या आत्रेयी चेत्यथापरा ॥४॥
जामदग्नी तया चान्या व्यपदिष्टा तु सप्तधा। तं सर्वैर्ऋषिभिस्तत्र यष्टुमिष्टैर्महात्मभि ॥५॥

करने स भी समस्त कामनायें पूरी होती हैं। पापो को नष्ट करने म और मुक्ति मुक्ति तथा मनकी प्रसन्नता देने मे इस समुद्र से बढकर तीनो लोक म कोई तीर्थ नही है ॥१५ २०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म तीर्थमाहात्म्यकथनप्रसग म सातो गगाओ क समुद्र मिलन वर्णन नामक एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७२॥

अध्याय १७३

भीमेश्वरतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—नारद! उस तीर्थ का नाम ऋषिसत्र है जहाँ तप करने के लिए सातो ऋषि अवस्थित हुए थे और जहाँ भीमेश्वर शिव रहते हैं। वहाँ देवर्षियो और पितरो द्वारा जो वृत्तान्त हुआ था उसे मैं बताऊँगा। उस अभित कामनादायक एवम पवित्र वृत्तान्त को ध्यान स सुनिये। नारद! सप्तर्षियो ने गगा को सात भागो म विभक्त कर दिया। दक्षिण दिशा मे वासिष्ठी हुई और उत्तर म वैश्वामित्री। वामदेवी त सरी हुई और मध्य म पवित्र गौतमी हुई। इनके अतिरिक्त भारद्वाजी आत्रेयी एवम जामदग्नी हुई। इस प्रकार गगा सात भागो मे बँट गई। वहाँ उन महात्मा तथा भविष्यदर्शी सप्तर्षियो ने महासत्र नामक यज्ञ करना आरम्भ किया। इसी बीच देवताओं

निष्पादितं महासत्रमृषिभिः पारदर्शिभिः। एतस्मिन्नन्तरे तत्र देवानां प्रबलो रिपुः॥६॥
विश्वरूप इति ख्यातो मुनीनां सत्रमभ्यगात्। ब्रह्मचर्येण तपसा तानाराध्य यथाविधि॥
विनयेनाथ पप्रच्छ ऋषीन्सर्वाननुक्रमात् ॥७॥

विश्वरूप उवाच

ध्रुवं सर्वे यथाकामं मम स्वास्थ्येन हेतुना। यथा स्याद्बलवान्पुत्रो देवानामपि दुर्धरः॥
यज्ञैर्वा तपसा वाऽपि मुनयो वक्तुमर्हथ ॥८॥

ब्रह्मोवाच

तत्र प्राह महाबुद्धिर्विश्वामित्रो महामना. ॥९॥

विश्वामित्र उवाच

कर्मणा तात लभ्यन्ते फलानि विविधानि च। त्रयाणां कारणानां च कर्म प्रथमकारणम्॥१०॥
ततश्च कारणं कर्ता ततश्चान्यत्प्रकीर्तितम्। उपादानं तथा बीजं न च कर्म विदुर्बुधाः॥११॥
कर्मणां कारणत्वं च कारणे पुष्कले सति। भावाभावौ फले दृष्टौ तस्मात्कर्माश्रितं फलम्॥१२॥
कर्मापि द्विविधं ज्ञेयं क्रियमाणं तथा कृतम्। कर्तव्यं क्रियमाणस्य साधनं यद्यदुच्यते॥१३॥
तद्भावाः कर्मसिद्धौ च उभयत्रापि कारणम्। यद्यद्भावयते जन्तुः कर्म कुर्वन्विचक्षणः॥१४॥
तद्भावनानुरूपेण फलनिष्पत्तिरुच्यते। करोति कर्म विधिवद्विना भावनया यदि॥१५॥
अन्यथा स्यात्फलं सर्वं तस्य भावानुरूपतः। तस्मात्तपो व्रतं दानं जपयज्ञादिकाः क्रियाः॥१६॥

का प्रबल शत्रु विश्वरूप मुनियों के यज्ञस्थल में आ गया। ब्रह्मचर्य तथा तपस्या से विधिपूर्वक मुनियों की क्रमश आराधना करके उसने नम्रता के साथ उनसे प्रश्न किया॥६-७॥

विश्वरूप ने कहा—मेरी स्वस्थता के कारण जिस उपाय से—यज्ञ या तप करने से—बलवान् एवम् देवताओं से भी अजेय पुत्र मुझे उत्पन्न हो, वह आप लोग बतलायें॥८॥

ब्रह्मा बोले—उनमें से महाबुद्धिमान् तथा महामनस्वी विश्वामित्र ने कहा॥९॥

विश्वामित्र बोले—तात! कर्म से अनेक प्रकार के फल प्राप्त होते हैं। तीन कारणों में कर्म ही प्रथम कारण माना जाता है। उसके बाद कारण, कर्ता तथा दूसरी वस्तु कही जाती है। विद्वान् लोग उपादान कारण एवम् बीज को कर्म नहीं मानते हैं। कारण के आधिक्य होने पर ही कर्मों में कारणत्व माना जाता है। कर्म के दो फल होते हैं—एक भाव और दूसरा अभाव। इसलिये कर्म-फल कर्म के अधीन है। कर्म भी दो प्रकार का माना गया है—एक क्रियमाण और दूसरा कृत। कर्तव्य क्रियमाण का साधन कहा जाता है। कर्तव्य की भावना कर्म तथा उसकी सिद्धि में कारण होती है। विद्वान् मनुष्य जिस भावना से कर्म करता है उसी भावना के अनुरूप उसे फल मिलता है। जो बिना भावना के विधिपूर्वक कर्म करता है, उसे अपनी भावना के प्रतिकूल फल मिलता है। इसलिये तप,

कर्मणस्त्वनुरूपेण फलं दास्यन्ति भावतः। तस्माद्भावानुरूपेण कर्म वै दास्यते फलम् ॥१७॥
भावस्तु त्रिविधो ज्ञेयः सात्त्विको राजसस्तथा। तामसस्तु तथा ज्ञेयः फलं कर्मानुसारतः ॥१८॥
भावनानुगुणं चेति विचित्रा कर्मणां स्थितिः। तस्मादिच्छानुसारेण भावं कुर्याद्विचक्षणः ॥१९॥
पश्चात्कर्मापि कर्तव्यं [1]फलदाताऽपि तद्विधम्। फलं ददाति फलिनां [2]फले यदि प्रवर्तते ॥२०॥
कर्मकारो न तत्रास्ति कुर्यात्कर्म स्वभावतः। तदेव चोपदानादि सत्त्वादिगुणभेदतः ॥२१॥
भावात्प्रारभते तद्वद्भावैः फलमवाप्यते। धर्मार्थकाममोक्षाणां कर्म चैव हि कारणम् ॥२२॥
भावस्थितं भवेत्कर्म मुक्तिदं बन्धकारणम्। स्वभावानुगुणं कर्म स्वस्यैवेह परत्र च ॥२३॥
फलानि विविधान्याशु [3]करोति समतानुगम्[4]। एक एव पदार्थोऽसौ भावभेदैः प्रदृश्यते ॥२४॥
क्रियते भुज्यते वाऽपि तस्माद्भावो विशिष्यते। यथाभावं कर्म कुरु यथेप्सितमवाप्स्यसि ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा ऋषेर्वाक्यं विश्वामित्रस्य धीमतः। तपस्तप्त्वा बहुकालं तामसं भावमाश्रितः ॥२६॥
विश्वरूपः कर्म भीमं चकार सुरभीषणम्। पश्यत्सु ऋषिमुख्येषु वार्यमाणोऽपि नित्यशः ॥२७॥
आत्मकोपानुसारेण भीमं कर्म तथाऽकरोत्। भीषणे कुण्डखाते तु भीषणे जातवेदसि ॥२८॥

व्रत, दान, जप, यज्ञ आदि क्रियायें भावना के अनुरूप कर्मफल देती हैं। अतः भावना के अनुसार ही कर्म का फल प्राप्त होता है। भाव तीन प्रकार का होता है—एक सात्त्विक दूसरा राजस और तीसरा तामस। फल कर्म तथा भावना के अनुसार मिलता है। कर्मों की स्थिति विचित्र है। इसलिये विद्वान् मनुष्य इच्छा के अनुसार भाव करे। पश्चात् कर्म भी करना चाहिये। फलदाता भी कर्मकर्ता को भावना के अनुरूप ही फल देते हैं। वस्तुतः कर्मकर्ता अपने स्वभाव के अनुसार ही कर्म करता है। वही कर्म उपादान आदि कारण और सत्त्व आदि गुणों के भेद के कारण भाव से प्रारम्भ होता है। और उसी तरह भाव से फल प्राप्त होता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का कारण कर्म ही है। भावनायुक्त कर्म मोक्ष भी देता है और बन्धन का कारण भी होता है। अपनी भावना के अनुसार किया गया कर्म इस लोक में तथा परलोक में शीघ्र ही विविध फलों को देता है। एक ही पदार्थ भावों के भेद से भिन्न हो जाता है। अर्थात् एक ही पदार्थ बनाया जाता है और खाया भी जाता है। इसलिये भाव विशिष्ट माना गया है। जैसी भावना से कर्म करोगे वैसा फल पाओगे ॥१०-२५॥

ब्रह्मा बोले—धीमान् विश्वामित्र मुनि की यह बात सुनकर विश्वरूप ने तामस भाव का अवलम्बन लेकर चिरकाल तक तप किया और देवताओं को डराने वाला भयानक कर्म किया। ऋषिगण उसका कर्म देखते थे और नित्य उसे मना भी करते थे। फिर भी अपने क्रोध के अनुसार वह भयंकर कर्म करता ही रहा। वह भयानक कुण्ड

---

[1] घ फल तत्रापि। [2] क ङ. फलेच्छैव। च फलेच्छैव। [3] क घ च ०न्याहु क०। [4] ङ. ममतानुगम्।

भीषण रौद्रपुरुष ध्यात्वाऽऽत्मान गुहाशयम्। एव तपन्तमालक्ष्य वागुवाचाशरीरिणी ॥२९॥
जटाजूट विनाऽऽत्मान नच वृत्रो व्यजीयत। वृथाऽऽत्मान विश्वरूपो जुहुयाज्जातवेदसि (?) ॥३०॥
स एवेन्द्र स वरुण स च स्यात्सर्वमेव च। त्यक्त्वाऽऽत्मान' जटामात्र'हुतवान्वृजिनोद्भव ॥३१॥
वृत्र इत्युच्यते वेदे स चापि' वृजिनोऽभवत्। भीमस्य महिमान को जानाति जगदीशितु ॥३२॥
सृजयशेषमपि यो न च सङ्गेन लिप्यते। विररामेति सकीर्त्य सा वाण्येन मुनीश्वरा ॥३३॥
भीमेश्वर नमस्कृत्य जग्मु स्व स्वमयाऽऽश्रमम्। विश्वरूपो महाभीमो भीमकर्मा तयाकृति ॥३४॥
भीमभावो भीमतनु ध्यात्वाऽऽत्मान जुहाव ह। तस्मादभीमेश्वरो देव पुराणे परिपठ्यते
तत्र स्नान च दान च मुक्तिद नात्र सशय ॥३५॥

इति पठति शृणोति यश्च भक्त्या, विबुधपति शिवमत्र भीमरूपम् ।
जगति विदितमशेषपापहारिस्मृतिपदशरणेन' मुक्तिदश्च (?) ॥३६॥
गोदावरी तावदशेषपापसमूहहन्त्री परमार्थदात्री
सदैव सर्वत्र विशेषतस्तु, यत्राम्बुराशि समनुप्रविष्टा ।३७॥
स्नात्वा तु तस्मिन्सुकृती शरीरी, गोदावरीवारिधिसगमे य ।
उद्धृत्य तीव्रान्निरयादशेषात्स पूर्वजान्याति' पुर पुरारे ॥३८॥

मे भयकर अग्नि मे हवन करता था और हृदयस्थित आत्मा का दारुण पुरुष के रूप मे ध्यान करता था। इस प्रकार तप करते हुए विश्वरूप को देखकर आकाशवाणी ने कहा— शिव के बिना वृत्र ने आत्मा को नही जीता। विश्वरूप व्यर्थ ही अग्नि मे आत्मा की आहुति देगा। वही इन्द्र वही वरुण और वही सब कुछ है। वृजिन के पुत्र ने आत्मा को छोडकर जटामात्र की आहुति दी थी। वेद मे जो वृत्र कहा गया है वह वृजिन से इतर नही है। ससार के स्वामी भीम पुरुष की महिमा को कौन जानता है? भयकर भाव वाले विश्वरूप ने भयकर शरीर का ध्यान करके आत्मा की आहुति दी। इसलिये भीमेश्वर देव पुराणो मे पढे जाते हैं॥ वहाँ स्नान तथा दान करने से नि सन्देह मुक्ति मिलती है॥२६ ३५॥ जो मनुष्य देवताओ के स्वामी तथा जगदविदित भीम रूप वाले शिव के इस आख्यान का श्रवण तथा पाठ करेगा उसके समस्त पाप नष्ट हो जायगे और मोक्ष मिलेगा। गोदावरी सब जगह अशेष-पाप-हारिणी तथा मोक्ष देने वाली है। पर उस जगह तो और भी फल देती है जहा वह समुद्र मे प्रविष्ट हुई है। जो धर्मात्मा मनुष्य गगासागरसगम मे स्नान करता है वह भयकर नरक से पितरो का उद्धार करके शिवलोक को जाता है।

१ड ०न तव पुत्रोऽभ्यजायत। तयाऽऽत्मा०। २घ च ०क्त्वाऽऽत्मनो ज०। ३क ०टामौलिं हवनादवृजिनोऽभवत्। ४घ ०त्र हवनादबजितो भवान्। वृ०। च ०त्र हवनादवृजिनोदभव। वृ०। ५क वेदै। ङ देव। ६घ ०पि व्रजिलोऽम०। च ०पि व्रजिनोऽम०। ७क ०रणमुक्तिदश्च पुसाम्। गो०। ८घ ०ति पद मुरा०।

वेदान्तवेद्यं यदुपासितव्यं, तद्ब्रह्म साक्षात्खलु भीमनाथः ।
दृष्टे हि तस्मिन्न पुनर्विशन्ति, शरीरिणः संसृतिमुग्रदुःखाम् ॥३९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ऋषिसत्रभीमेश्वरतीर्थवर्णनं नाम त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥१०५॥

अथ चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

गङ्गासागरसंगमवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सा संगता पूर्वमपांपतिं त, गङ्गा सुराणामपि वन्दनीया ।
देवैश्च सर्वैरनुगम्यमाना, सस्तूयमाना मुनिभिर्मरुद्भिः ॥१॥
वसिष्ठजाबालियाज्ञवल्क्यक्रत्वङ्गिरोदक्षमरीचिवैष्णवाः[1] ।
शातातपः शौनकदेवरातभृग्वग्निवेश्यात्रिमरीचिमुख्याः ॥२॥
सुधूतपापा मनुगौतमाद्याः, सकौशिकास्तुम्बरुपर्वताद्याः ।
अगस्त्यमार्कण्डसपिप्पलाद्याः, सगालवा योगपरायणाश्च ॥३॥

वेदान्त से जानने योग्य एवम् उपासना करने योग्य जो ब्रह्म है वह साक्षात् भीमनाथ है। उसके दर्शन हो जाने पर मनुष्य उग्र दुःख देने वाले इस संसार में पुनः प्रवेश नहीं करते हैं ॥३६-३९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में तीर्थमाहात्म्य-कथन प्रसंग में ऋषिसत्रभीमेश्वरतीर्थ-वर्णन नामक
एक सौ तहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७३॥

अध्याय १७४

गंगा और सागर के संगम का वर्णन

ब्रह्मा बोले—जिसकी देवगण वन्दना करते हैं मुनि तथा मरुद्गण स्तुति करते हैं और समस्त देवता अनुगमन करते हैं, वह गंगा समुद्र में जाकर मिल गई ॥१॥ वसिष्ठ जाबालि याज्ञवल्क्य क्रतु अङ्गिरा दक्ष मरीचि वैष्णव, शातातप, शौनक देवरात भृगु अग्निवेश्य अत्रि निष्पाप मनु गौतम आदि, कौशिक तुम्बरु पर्वत आदि। अगस्त्य, मार्कण्ड पिप्पलाद गालव याज्ञवल्क्य वामदेव अङ्गिरा आदि भार्गव स्मृतियों में प्रवीण वेद-पुराणों

---

1. क. ख. घ. °चिविष्णवः। शा°।

सवामदेवाङ्गिरसोऽय भार्गवा', स्मृतिप्रवीणाः श्रुतिभिर्मनोज्ञाः ।
सर्वे पुराणार्थविदो बहुज्ञास्ते गौतमीं देवनदीं तु गत्वा ॥४॥
स्तोष्यन्ति मन्त्रै. श्रुतिभिः प्रभूतैर्हृद्यैश्च तुष्टैर्मुदितैर्मनोभिः ।
ता सगतां वीक्ष्य शिवो हरिश्च, आत्मानमादर्शयतां मुनिभ्य. ॥५॥
तथाऽमराश्तौ पितृभिश्च दृष्टौ, स्तुवन्ति देवौ सकलार्तिहारिणौ ॥६॥

आदित्या वसवो रुद्रा मरुतो लोकपालका.। कृताञ्जलिपुटा' सर्वे स्तुवन्ति हरिशंकरौ ॥७॥
संगमेषु प्रसिद्धेषु नित्य सप्तसु नारद। समुद्रस्य च गङ्गाया नित्यं देवौ प्रतिष्ठितौ ॥८॥
गौतमेश्वर आख्यातो यत्र देवो महेश्वरः। नित्यं सनिहितस्तत्र माधवो 'रमया सह ॥९॥
ब्रह्मेश्वर इति ख्यातो मयैव स्थापितः शिवः। लोकानामुपकारार्थमारम्नः कारणान्तरे ॥१०॥
चक्रपाणिरिति ख्यातः स्तुतो देवैर्मया सह। तत्र सनिहितो विष्णुर्देवैः सह मरुद्गणैः ॥११॥
ऐन्द्रतीर्थमिति ख्यातं तदेव हयमूर्धकम्। हयमूर्धा तत्र विष्णुस्तन्मूर्धनि सुरा अपि॥
सोमतीर्थमिति ख्यातं यत्र सोमेश्वरः शिवः ॥१२॥
इन्द्रस्य सोमश्रवसो देवैश्च ऋषिभिस्तथा। प्रार्थितः सोम एवाऽऽदाविन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥१३॥

सप्त दिशो नानासूर्या. सप्त होतार ऋत्विजः ।
देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभिरक्ष न इन्द्रायेंदो परिस्रव ॥१४॥

के तत्त्वज्ञाता एवम् बहुज्ञाता मुनिवृन्द देवनदी गोदावरी के निकट जाकर प्रफुल्ल चित्त से वेदमन्त्रो द्वारा उनकी स्तुति करने लगे ।।२-४½।। गगा का सगम देखकर शिव और हरि ने मुनियो को दर्शन दिया। पितर तथा देवगण सकल पीडाओ को हरने वाले उन दोना देवो की स्तुति करने लगे ।।५-६।। आदित्य, वसु रुद्र मरुत् तथा लोकपाल हाथ जोडकर हरि और शकर की स्तुति करने लगे ।।७।। नारद ! समुद्र तथा गगा के सातो प्रसिद्ध सगमो मे नित्य हरि हर वास करते हैं। जहाँ गौतमेश्वर नाम से प्रसिद्ध शिव रहते हैं वहाँ लक्ष्मी सहित विष्णु भी रहते हैं ।।८-९।। लोगो के उपकार के लिये मैने ही ब्रह्मेश्वर नामक शिव की स्थापना की। फिर अपने दूसरे कारण से चक्रपाणि नामक शिव की स्थापना करके मैंने देवताओ के साथ उनकी स्तुति की। वहाँ मरुद्गणो के साथ विष्णु वास करते हैं। ऐन्द्रतीर्थ नाम से प्रसिद्ध एक हयमूर्धक नामक तीर्थ है जहाँ हयमूर्धा नामक विष्णु और देवगण वास करते हैं। सोमतीर्थ नाम स प्रसिद्ध एक तीर्थ है जहाँ सोमेश्वर शिव वास करते हैं ।।१०-१२।। सोमश्रवा नामक इन्द्र के यज्ञ मे देवता तथा ऋषियो ने सोम से प्रार्थना की—'साम ! इन्द्र के लिये आप क्षरण करे। सात दिशाओ अनेक सूर्यो सात होताओ ऋत्विजा देवो एवम् आदित्यो से आप हमारी रक्षा करें और इन्द्र के लिये क्षरण करें। राजन्! सोम ! आपका जो पवित्र हविष् है उससे हमारी रक्षा करें। शत्रु हमारा पार न पाये कुछ बिगाडे नही और आप

१क. घ च मायया।

यत्ते राजञ्छृतं हविस्तेन सोमाभिरक्ष नः ।
अराती वा मा नस्तारीन्मो च नः किंचनामदिन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥१५॥
ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन्गिरः ।
सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञेवीरुधा पतिरिन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥१६॥
कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना ।
नानाधियोवसूयवोऽनु गा इव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥१७॥

एवमुक्त्वा च ऋषिभिः सोमं प्राप्य च वज्रिणे। तेभ्यो दत्त्वा ततो यज्ञ.पूर्णो जातः शतक्रतोः ॥१८॥
तत्सोमतीर्थमाख्यातमाग्नेयं पुरतस्तु तत्[1]। अग्निरिष्ट्वा महायज्ञैर्मामाराध्य मनीषितम् ॥१९॥
संप्राप्तवान्मत्प्रसादादहं तत्रैव नित्यशः। स्थितो लोकोपकारार्थं तत्र विष्णुः शिवस्तथा ॥२०॥
तस्मादाग्नेयमाख्यातमादित्य तदनन्तरम्। यत्राऽऽदित्यो वेदमयो नित्यमेति उपासितुम् ॥२१॥
रूपान्तरेण मध्याह्ने द्रष्टु मा शंकरं हरिम्। नमस्कार्यस्तत्र सदा मध्याह्ने सकलो जनः ॥२२॥
रूपेण केन सविता समायातीत्यनिश्चयात्। तस्मादादित्यमाख्यात बार्हस्पत्यमनन्तरम् ॥२३॥
[2]बृहस्पतिः सुरैः पूजां तस्मात्तीर्थादवाप ह। ईजे च यज्ञान्विविधान्बार्हस्पत्यं ततो विदुः ॥२४॥
तत्तीर्थस्मरणादेव ग्रहशान्तिर्भविष्यति। तस्मादप्यपरं तीर्थमिन्द्रगोपे नगोत्तमे ॥२५॥

इन्द्र के लिये परिक्षरण करें। ऋषे ! कश्यप ! मन्त्रकारो के स्तोमो से वाणी को बढाइये। वृक्षा के पति सोम राजा को नमस्कार है। चन्द्र ! इन्द्र के लिये आप परिक्षरण करें। हम ऋषि, पिता, यज्ञब्रह्मा तथा बालुका मे यवा को कूटने वाली माता हैं। जैसे गायें गोष्ठ मे परिचरण करती है वैसे अनेक कर्म करने वाले तथा धन की इच्छा करने वाले हम लोग विचरण करते हैं। चन्द्र ! आप इन्द्र के लिये क्षरण करे ॥१३-१७॥ ऋषियो ने इस प्रकार प्रार्थना करके इन्द्र के लिये सोम को प्राप्त किया। फिर इन्द्र ने ऋषियो को देखकर यज्ञ सम्पन्न किया। उसी का नाम सोमतीर्थ पडा। उससे आगे आग्नेयतीर्थ है। अग्नि ने महायज्ञो द्वारा विष्णु की आराधना की और मेरी कृपा से उनको प्राप्ति भी की। वहाँ लोगो के उपकार के लिये विष्णु और शिव नित्य वास करते हैं ॥१८ २०॥ इसीलिये उनका नाम आग्नेय पडा। उसके बाद आदित्यतीर्थ है जहाँ वेदमय आदित्य नित्य उपासना करने के लिये आते हैं और मध्याह्न काल मे स्वरूप बदल कर मेरे, शकर और हरि के दर्शन करते है। किस रूप मे सूर्य आते हैं— यह अनिश्चित है। इसलिये वहाँ मध्याह्न काल मे समस्त प्राणियो को नमस्कार करे। इसी कारण उस तीर्थ का नाम आदित्य पडा। उसके आगे बार्हस्पत्यतीर्थ है ॥२१-२३॥ वहाँ बृहस्पति ने देवताओ द्वारा पूजित होकर बहुत से यज्ञ किये। इसलिये वह तीर्थ बार्हस्पत्य कहलाया ॥२४॥ उस तीर्थ के स्मरणमात्र से ग्रहशान्ति हो जाती है। उसके आगे इन्द्रगोपनामक उत्तम पर्वत पर एक दूसरा तीर्थ है। ॥२५॥ किसी कारण वहाँ महालिङ्ग (शकर) की

१क. यत्। १ङ.॰ तिः सूर्यंपू॰।

प्रतिष्ठित महालिङ्ग वरिमिश्चित्कारणान्तरे। हिमाल्येन तत्तीर्थमद्वितीर्थं तदुच्यते ॥२६॥
तत्र स्नान च दान च सर्वकामप्रद शुभम्। एव सा गौतमी गङ्गा ब्रह्माद्रेश्च विनि सृता ॥२७॥
यावत्सागरगा देवी तत्र तीर्थानि कानिचित। सक्षेपेण मयोक्तानि रहस्यानि शुभानि च ॥२८॥

वेदे पुराणे ऋषिभि प्रसिद्धा, या गौतमी लोकनमस्कृता च ।
वक्तु कय तामतिसुप्रभावामशेषतो नारद कस्य शक्ति ॥२९॥
भक्त्या प्रवृत्तस्य यथाकथचिन्नैवापराधोऽस्ति न सशयोऽत्र ।
तस्माच्च दिङ्मात्रमतिप्रयासात्ससूचित लोकहिताय तस्या ॥३०॥

कस्तस्या प्रतितीर्थं तु प्रभाव वक्तुमीश्वर । अपि लक्ष्मीपतिर्विष्णुरल सोमेश्वर शिव ॥३१॥
क्वचित्कस्मिश्च तीर्थानि कालयोगे भवन्ति हि। गुणवन्ति महाप्राज्ञ गौतमी तु सदा नृणाम् ॥३२॥
सर्वत्र सर्वदा पुण्या को न्वस्या गुणकीर्तनम्। वक्तु शक्तस्ततस्तस्यै नम 'इत्येव युज्यते ॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये गङ्गासागरसगमवर्णन नाम चतु सप्तत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१७४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चाधिकशततमोऽध्याय ॥१०५॥

प्रतिष्ठा हुई। हिमालय से सम्बद्ध होने के कारण उसका नाम अद्वितीय पडा। वहाँ स्नान दान करने से समस्त कामनाय सिद्ध होती हैं। इस प्रकार गौतमी गगा ब्रह्मपवत से निकला है और जब तक वह देवी समुद्र से मिलती है इस बाच मे जितने तीथ पड जाते हैं उनका रहस्य सक्षप स मैंने बतला दिया ॥२६ २८॥ नारद ! वेदो और पुराणो मे ऋषियो ने जिस गोदावरी का प्रशसा की है और जो त्रिभुवनप्रणम्या है उस महामहिमामयी देवी का अशेष वणन भला कौन कर सकता है ? ॥२९॥ उसके यथाकथचित वणन करने म मैं भक्ति भाव से प्रवृत्त हुआ हूँ। नि स देह इसमे मेरा कोई अपराध नहा है। इसलिये लोकहित के लिये मैंने उसके दिग्दशनमात्र कराने का प्रयास किया है ॥३०॥ कौन उसके तीर्थो का प्रभाव वणन कर सकता है ? लक्ष्मीपति विष्णु तथा सोमेश्वर शिव भी वणन करने मे असमथ हैं। महापडित ! तीथ किसी स्थान मे किसा अवसर पर गुण सम्पन्न होते हैं। पर गोदावरी तो मनुष्यो के लिये सदा सवत्र गुणसम्पन्ना एवम पुण्यदायिका है। उसके गुणो का वणन कौन कर सकता है ? अत उसे प्रणाम कर लेना ही उचित है ॥३१ ३३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म त थमाहात्म्यक थनप्रसग म गगासागर-वणन नामक एक सौ चौहत्तरवाँ अ याय समाप्त ॥१७४॥

१क ङ ०वमुच्यते।

अथ पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

तीर्थादीना चातुर्विध्यादिनिरूपणम्

नारद उवाच

त्रिदैवत्या सुरेशान गङ्गा ब्रूपे सुरेश्वर। ब्राह्मणेनाऽऽहृता पुण्या जगत पावनी शुभाम् ॥१॥
आदिमध्यावसाने च उभयोस्तीरयोरपि। या व्याप्ता विष्णुनेशेन त्वया च सुरसत्तम॥
पुन सक्षेपतो ब्रूहि न मे तृप्ति प्रजायते ॥२॥

ब्रह्मोवाच

कमण्डलुस्थिता पूर्वं ततो विष्णुपदानुगा। महेश्वरजटाजूटे स्थिता सैव नमस्कृता॥३॥
ब्रह्मतेज प्रभावेण शिवमाराध्य यत्नत। तत प्राप्ता गिरिं पुण्य तत पूर्वार्णव प्रति॥४॥
आगत्य सगता देवी सर्वतीर्थमयी नृणाम। ईप्सिताना तथा दात्री प्रभावोऽस्या विशिष्यते॥५॥
एतस्या नाधिक मन्ये किंचित्तीर्थं जगत्त्रये। अस्याश्चैव प्रभावेण भाव्य यच्च मन स्थितम॥६॥
अद्याप्यस्या हि माहात्म्य वक्तु कंश्चिन्न शक्यते। भक्तितो[1] वक्ष्यते नित्य या ब्रह्म परमार्थत[2]॥७॥
तस्या परतर तीर्थं न स्यादिति मतिर्मम। अन्यतीर्थेन साधर्म्यं न युज्येत कथचन[3]॥८॥

अध्याय १७५

तीर्थ आदि के चार प्रकार के होने का वर्णन

नारद बोले—देवताओ के स्वामी! आपने गगा के बारे मे बतलाया है कि वह त्रिदेवमयी ससारपावनी कल्याणमयी और ब्राह्मण द्वारा लाई गई है और उसके दोना तटो के आदि मध्य तथा अत मे विष्णु व्याप्त हैं। अब फिर उसी के विषय मे सक्षप मे कहिये। मुझ (सुनने से) तृप्ति नही होती है॥१ २॥

ब्रह्मा बोले—पहिले वह कमण्डलु म थी। तब विष्णु के चरणा की अनुगामिनी हुई। तत्पश्चात वही प्रणम्या देवी शकर की जटाओ मे अवस्थित हुई। ब्रह्मतेज के प्रभाव से यत्नपूवक शिव की आराधना करके वह पवित्र पवत पर पहुची। तदुपरान्त पूवसमद्र से मिलकर वह देवी मनुष्या के लिये सवतीथमयी बन गई। वह अभीप्सित फला को देने वाली है। उसका प्रभाव बहुत विशिष्ट है। तीनो लोक मे उससे बढकर कोई तीथ मैं नही मानता। उसी के प्रभाव से जो कुछ मेरे मन मे है वह होगा। आज भी उसका माहात्म्य कोई भी वर्णन नही कर सकता। वह वस्तुत ब्रह्म है। मैं भक्ति के प्रताप से उसके विषय म कुछ कहूँगा। उससे बढकर कोई तीथ नही है—यह मेरा सिद्धान्त है। अन्य तीर्थों से उसकी उपमा नही हो सकती। मुने! तीनो लोक मे गगा के गुणवणन

१घ ङ च वन्यते। २घ ङ च ॰मार्थमि। त॰। ३क कदाचन।

श्रुत्वा मद्वाक्यपीयूषैर्गङ्गाया गुणकीर्तनम्। सर्वेषां न मतिः कस्मात्तत्रैवोपरतिं गता॥
इति भाति विचित्रं मे मुने खलु जगत्त्रये ॥९॥

नारद उवाच

धर्मार्थकाममोक्षाणां त्वं वेत्ता चोपदेशकः। छन्दांसि सरहस्यानि पुराणस्मृतयोऽपि च॥१०॥
धर्मशास्त्राणि यच्चान्यत्तव वाक्ये प्रतिष्ठितम्। तीर्थानामथ दानानां यज्ञानां तपसां तथा॥११॥
देवतामन्त्रसेवानामधिकं किं वद प्रभो। यद्ब्रूषे भगवन्भक्त्या तथा भाव्यं न चान्यथा॥१२॥
एतं मे संशयं ब्रह्मन्वाक्यात्त्वं छेत्तुमर्हसि। इष्टं मनोगतं श्रुत्वा तस्माद्विस्मयमागतः॥१३॥

ब्रह्मोवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं धर्ममुत्तमम्। चतुर्विधानि तीर्थानि तावन्त्येव युगानि च॥१४॥
गुणास्त्रयश्च पुरुषास्त्रयो देवाः सनातनाः। वेदाश्च स्मृतिभिर्युक्ताश्चत्वारस्ते प्रकीर्तिताः॥१५॥
पुरुषार्थाश्च चत्वारो वाणी चापि चतुर्विधा। गुणा ह्यपि तु चत्वारः समत्वेनेति नारद॥१६॥
सर्वत्र धर्मः सामान्यो यतो धर्मः सनातनः। साध्यसाधनभावेन स एव बहुधा मतः॥१७॥
तस्याऽऽश्रयश्च द्विविधो देशः कालश्च सर्वदा। कालाश्रयश्च यो धर्मो हीयते वर्धते सदा॥१८॥
युगानामनुरूपेण पादः पादोऽस्य हीयते। धर्मस्येति[1] महाप्राज्ञ देशापेक्षा[2] तथोभयम्॥१९॥

रूपी मेरे वचनामृत को पीकर सबको सुबुद्धि क्यो नही उत्पन्न हो गई—यह मुझे बडा आश्चर्य मालूम पडता है॥३-९॥

नारद ने कहा—आप धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के ज्ञाता एवम् रहस्य सहित वेद, पुराण, स्मृति तथा धर्म-शास्त्रो के उपदेशक हैं। आपके वाक्य मे सब कुछ प्रतिष्ठित है। प्रभो! अब तीर्थ, दान, यज्ञ, तप तथा देवताओ के मत्रो एवम् उपासनाओ के बारे में ही कहिये। अधिक कहने की आवश्यकता नही है। भगवन्! यह जो आपने कहा है कि भक्ति से यह हो सकता है, अन्यथा नही, इसमे मुझे सशय है। ब्रह्मन्! उसका आप निवारण करें। मैं अपनी अभिलषित बात को सुनकर आश्चर्य-चकित हो गया हूँ॥१०-१३॥

ब्रह्मा बोले—नारद! सुनो, मै रहस्य सहित उत्तम धर्म को बतलाऊँगा। चार तीर्थ है और उतने ही युग है॥१४॥ गुण तीन हैं और सनातन देवपुरुष भी तीन ही हैं। स्मृतियो से युक्त वेद चार माने गये हैं। ॥१५॥ पुरुषार्थ चार हैं और वाणी भी चार प्रकार की है। नारद! समता की दृष्टि से ग्रह भी चार है॥१६॥ धर्म सब जगह सामान्य है, जिसलिये वह सनातन धर्म है। वही धर्म साध्य-साधन भेद से अनेक हो जाता है॥१७॥ उसके आश्रय भी दो हैं—देश और काल। काल का आश्रित जो धर्म है उसका ह्रास और क्षय होता है॥१८॥ युगो के अनुरूप उसका एक-एक पाद क्षीण होता रहता है। महापडित! देशाश्रित धर्म का भी ह्रास और क्षय होता है। कालाश्रित धर्म सदा

१क. ङ ०र्मस्यैव म०। २क ङ देशे नैव त०।

कालेन चाऽऽश्रितो धर्मो देशे नित्यं प्रतिष्ठितः। युगेषु क्षीयमाणेषु न देशेषु[1] स हीयते ॥२०॥
उभयत्र विहीने च धर्मस्य स्यादभावता। तस्माद्देशाश्रितो धर्मश्चतुष्पात्सुप्रतिष्ठतः ॥२१॥
स चापि धर्मो देशेषु तीर्थरूपेण तिष्ठति। कृते देशं च कालं च धर्मोऽवष्टभ्य तिष्ठति ॥२२॥
त्रेतायां पादहीनेन स तु पादः[2] प्रदेशतः। द्वापरे चार्धतः काले धर्मो[3] देशे समास्थितः ॥२३॥
कलौ पादेन चैकेन धर्मश्चलति संकटम्। एवंविधं तु यो धर्मं वेत्ति तस्य न हीयते ॥२४॥
युगानामनुभावेन[4] जातिभेदाश्च[5] सस्थिताः। गुणेभ्यो गुणकर्तृभ्यो विचित्रा धर्मसंस्थितिः ॥२५॥
गुणानामनुभावेन उद्भवाभिभवौ तथा। तीर्थानामपि [6]वर्णानां [7]वेदानां स्वर्गमोक्षयो. ॥२६॥
तादृग्रूपप्रवृत्त्या तु तदेव च विशिष्यते। कालोऽभिव्यञ्जकः प्रोक्तो देशोऽभिव्यङ्ग्य उच्यते ॥२७॥
यदा यदा [8]अभिव्यक्तिं कालो धत्ते[9] तदा तदा। तदेव व्यञ्जनं[10] ब्रह्मंस्तस्मान्नास्त्यत्र[11] संशय.[12] ॥२८॥
युगानुरूपा मूर्तिः स्याद्देवानां वैदिकी तथा। कर्मणामपि तीर्थानां जातीनामाश्रमस्य तु ॥२९॥
त्रिदैवत्यं सत्ययुगे तीर्थं लोकेषु पूज्यते। द्विदैवत्यं[13] युगेऽन्यस्मिन्द्वापरे चैकदैविकम् ॥३०॥
कलौ न किंचिद्विज्ञेयमयान्यदपि तच्छृणु। दैवं कृतयुगे तीर्थं त्रेतायामासुरं विदुः ॥३१॥

देशो मे प्रतिष्ठित रहता है। युगो के क्षय होने पर भी देशो मे उस धर्म का ह्रास नही होता है॥१८-२०॥ दोनों *जगह उसका ह्रास होने पर धर्म का अभाव हो जायगा। इसलिये देशाश्रित धर्म चार चरणो से युक्त तथा सुप्रतिष्ठित* है॥२१॥ वह भी धर्म देशो मे तीर्थरूप से रहता है। सत्ययुग मे देश और काल को व्याप्त कर धर्म स्थित रहता है॥२२॥ त्रेता मे वह एक चरण से हीन हो कर देशो मे विद्यमान रहता है। द्वापर मे दो चरणो से हीन होकर वह देश और काल मे स्थित रहता है॥२३॥ कलियुग मे एक ही पैर से युक्त होकर धर्म सकट से चलता है। इस प्रकार जो धर्म को जानता है, उसका धर्म क्षीण नही होता॥२४॥ युगो के अनुसार गुणो एवम् गुणकर्ताओ से जाति-भेद बनता है। धर्म की स्थिति विचित्र है॥२५॥ गुणो के अनुसार उत्पत्ति और प्रलय भी होता है। तीर्थों, वर्णों, वेदो स्वर्ग और मोक्ष की भी उसी रूप मे प्रवृत्ति होती है। काल प्रकाशक और देश प्रकाश्य माना गया है॥२६-२७॥ ब्रह्मन्! जब-जब काल प्रकाश का धारण करता है तब तब उससे वही प्रकाश होता है, इसमे कोई सशय नही॥२८॥ युगो के अनुरूप ही देव, कर्म, तीर्थ, जाति तथा आश्रम की वैदिकी मूर्ति होती है। सत्ययुग मे त्रिदेवमय तीर्थ की लोको म पूजा होती है, त्रेता मे द्विदेवमय तीर्थ की पूजा होती है, द्वापर मे एकदेवमय तीर्थ की पूजा होती है और कलियुग में किसी की भी नही। अब और भी सुनो॥२९-३०½॥ कृतयुग मे दैवतीर्थ, त्रेता मे आसुर, द्वापर में आर्ष और कलियुग मे मानुषतीर्थ कहलाता है॥३१½॥ नारद! अब और भी कारण बतलाता

१क. ड. ०षु मही०। २क ड. पादप्र०। ३ख ड. ०र्मो हीयेतसमप्रत। क०। ४क. ०न यादि भेदांश्च सस्थितिम्। गु०। ५घ. ०तिवेदासमास्थिति। गु०। ६घ. ०ना दर्शनात्स्वर्गं०। ७ ङ. देवानां। ८क ०भ्यक्ति का०। घ. ङ च. ०र्व्यक्तिका०। ९क ड. धर्मे। घ धर्मस्तदा। १०क ङ. घ. व्यज्यते। ११घ. ०स्मादस्त्य०। १२घ. च. विस्मय। १३ङ. ०त्य त्रेतयुगे द्वाप०।

आर्षं च द्वापरे प्रोक्त कलौ मानुषमुच्यते। अथान्यदपि वक्ष्यामि शृणु नारद कारणम् ॥३२॥
गौतम्या यत्त्वया पृष्ट तत्ते वक्ष्यामि विस्तरात्। यदा चेयं हरशिर प्राप्ता गङ्गा महामुने ॥३३॥
तदा प्रभृति सा गङ्गा शभो प्रियतराऽभवत। तद्देवस्य मत ज्ञात्वा गजवक्त्रमुवाच सा ॥३४॥
उमा लोकत्रयेशाना माता च जगतो हिता। शान्ता श्रुतिरिति ख्याता भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

तन्मातुर्वचन श्रुत्वा गजवक्त्रोऽभ्यभाषत ॥३६॥

गजवक्त्र उवाच

किं कृत्य शाधि मां मातस्तत्कर्ताऽहमसशयम् ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

उमा सुतमुवाचेद महेश्वरजटास्थिता। त्वयाऽवतार्यता गङ्गा सत्यमीशप्रिया सती ॥३८॥
पुनश्चेशस्तत्र चित्रमध्यास्ते[1] सर्वदा सुत। शिवो यत्र सुरास्तत्र तत्र वेदा सनातना ॥३९॥
तत्रैव ऋषय सर्वे मनुष्या पितरस्तथा। तस्मान्निवर्तयेशान देवदेव महेश्वरम् ॥४०॥
तस्या निवर्तिते देवे गङ्गाया सर्व एव हि। निवृत्तास्ते भविष्यन्ति शृणु चेद वचो मम॥
निवर्तय ततस्तस्या सर्वभावेन शकरम् ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

मातुस्तद्वचन श्रुत्वा पुनराह गणेश्वर ॥४२॥

हूँ सुनो। गोदावरी के विषय मे जो तुमने पूछा है उसे मैं विस्तार से बतलाऊँगा। महामुने ! जब से यह गगा शकर के शिर पर पहुँची तब से यह शिव की प्रिया हो गई॥३२ ३३½॥ शिव का आशय समझकर तीनो लोक की ईश्वरी ससार की माता तथा हितैषिणी शान्ता श्रुतिरूपा और भुक्ति मुक्तिदायिनी पार्वती ने गणश से यह बात कह दी॥३४ ३५॥

ब्रह्मा बोले—माता की बात सुनकर गणश ने कहा॥३६॥

गणेश बोले—माता ! आज्ञा करो ! क्या काम है ? मैं नि सन्देह उसे पूरा करूँगा॥३७॥

ब्रह्मा बोले—उमा ने पुत्र से कहा— शकर की जटा मे उनकी प्रिया सती गगा अवस्थित है। उसे तुम हटा दो। क्योंकि शकर सदा उसमे अनुरक्त रहते हैं और जहाँ शिव रहते हैं वहाँ दवता सनातन वेद समस्त ऋषि मनुष्य एवम पितर रहते हैं। इसलिये देवी के देव शिव को उससे अलग करो। उनके अलग हो जाने पर सब अलग हो जायेंगे। इसलिये मेरी बात सुनो और सब प्रकार से शकर को अलग करो॥३८ ४१॥

ब्रह्मा बोले—माता की बात सुनकर पुन गणश ने कहा॥४२॥

---

[1] ङ चित्तम०।

गणेश्वर उवाच

नैव शक्यः शिवो देवो मया तस्या निर्वर्तितुम्। अनिवृत्ते शिवे तस्या देवा अपि निर्वर्तितुम् ॥४३॥
न शक्या जगता मातरथान्यच्चापि कारणम्। गङ्गाऽवतारिता पूर्वं गौतमेन महात्मना ॥४४॥
ऋषिणा लोकपूज्येन त्रैलोक्यहितकारिणा। सामोपायेन तद्वाक्यात्पूज्येन ब्रह्मतेजसा ॥४५॥
आराधयित्वा देवेशं तपोभिः स्तुतिभिर्भवम्। तुष्टेन शंकरेणेदमुक्तोऽसौ गौतमस्तदा ॥४६॥

शंकर उवाच

वरान्वरय पुण्यांश्च प्रियांश्च मनसेप्सितान्। यद्यदिच्छसि तत्सर्वं दाता तेऽद्य महामते ॥४७॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तः शिवेनासौ गौतमो मयि शृण्वति। इदमेव तदोवाच सजटां देहि शंकर ॥
गङ्गां मे याचते पुण्यां किमन्येन वरेण मे ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

पुनः प्रोवाच तं शम्भुः सर्वलोकोपकारकः ॥४९॥

शंभुरुवाच

'उक्त न चाऽऽत्मनः' किंचित्तस्माद्याचस्व दुष्करम् ॥५०॥

ब्रह्मोवाच

गौतमोऽदीनसत्त्वस्तं भवमाह कृताञ्जलिः ॥५१॥

गणेश बोले—मेरे द्वारा शिव उससे अलग नही किये जा सकते हैं और शिव के अलग नही होने पर देवता भी निवृत्त नही हो सकेंगे। जगन्माता ! इसका और भी कारण है कि पूर्व काल में महात्मा गौतम गंगा को लाये थे। लोकपूज्य तथा त्रैलोक्यहितकारी ऋषि ने तपस्या, स्तुति तथा सामगान द्वारा शंकर की आराधना की। संतुष्ट होकर शिव ने गौतम से कहा ॥४३-४६॥

शंकर बोले—महाबुद्धिमन् ! तुम पवित्र प्रिय तथा मनोभिलषित वरदान मांगो। तुम जो-जो चाहोगे, वह सब आज मैं तुम्हे दूंगा ॥४७॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार शिव द्वारा कहे जाने पर मेरे सुनते ही गौतम ने यह कहा—'शंकर ! अपनी जटासहित पवित्र गंगा मुझे दीजिये, दूसरा वरदान मुझे नहीं चाहिये ॥४८॥

ब्रह्मा बोले—समस्त लोकों के उपकारक शिव ने पुन गौतम से कहा ॥४९॥

शंभु बोले—तुमने अपने लिये कुछ नहीं मांगा। इसलिये कठिन वरदान भी मुझसे माग लो ॥५०॥

ब्रह्मा बोले—दीनता-शून्य गौतम ने हाथ जोडकर शिव से कहा ॥५१॥

१छ. •क्त चवाऽऽत्म•।

गौतम उवाच

एतदेव च सर्वेषा दुष्कर तव दर्शनम। मया तदद्य सप्राप्त कृपया तव शकर ॥५२॥
स्मरणादेव ते पद्भ्या कृतकृत्या मनीषिण। भवन्ति किं पुन साक्षात्त्वयि दृष्टे महेश्वरे ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्ते गौतमेन भवो हर्षसमन्वित। त्रयाणामुपकारार्थं लोकाना याचित त्वया ॥५४॥
नचाऽऽत्मनो महाबुद्धे याचेत्याह शिवो द्विजम। एव प्रोक्त पुनर्विप्रो ध्यात्वा प्राह शिव तथा ॥५५॥
विनीतवददीनात्मा शिवभक्तिसमन्वित। सर्वलोकोपकाराय पुनर्याचितवानिदम॥
शृण्वत्सु लोकपालेषु जगादेद स गौतम ॥५६॥

गौतम उवाच

यावत्सागरगा देवी निसृष्टा ब्रह्मणो गिरे। सर्वत्र सर्वदा तस्या स्थातव्य वृषभध्वज ॥५७॥
फलेप्सूना फल दाता त्वमेव जगत प्रभो। तीर्थान्यन्यानि देवेश क्वापि क्वापि शुभानि च ॥५८॥
यत्र त सनिधिर्नित्य तदेव शुभद विदु। यत्र गङ्गा त्वया दत्ता जटामुकुटसस्थिता॥
'सर्वत्र तव सानिध्यात्सर्वतीर्थानि' शकर ॥५९॥

ब्रह्मोवाच

तद्गौतमवच श्रुत्वा पुनर्हर्षाच्छिवोऽब्रवीत ॥६०॥

गौतम बोले—आपका दर्शन ही सबके लिये कठिन है। शकर! आप की कृपा से आज मैंने उसे प्राप्त कर लिया। आपके चरणो के स्मरण से ही विद्वान् लोग कृतकृत्य हो जाते हैं। जिसे आपका साक्षात्कार हो जाता है उसका तो भला कहना ही क्या? ॥५२ ५३॥

ब्रह्मा बोले—गौतम के इतना कहने पर शकर प्रसन्न हो गये और बोले—'तीनो लोको के उपकार के लिये तुमने याचना की। पर महाबुद्धिमन्! अपने लिये तुमने याचना नही की। इस प्रकार कहे जाने पर शिवभक्ति से युक्त दीनता से रहित तथा विनीत गौतम ने शिव से कहा। लोकपालो के सुनते गौतम ने समस्त लोको के उपकार के लिये पुन यह याचना की ॥५४ ५६॥

गौतम बोले—ब्रह्मगिरि से लेकर समुद्र पर्यन्त इस गगा मे सर्वत्र सब काल आप रहे। जगत्प्रभो! फल चाहने वालो को फल आप ही देते है। देवेश! जहाँ-कही भी जो अन्य पवित्र तीर्थ हैं उनमे भी जिस तीर्थ मे आपका सान्निध्य है वही शुभदायक माना गया है। शकर! जहाँ आपने अपने जटा मुकुट मे अवस्थित गगा को प्रदान किया है वहा सब जगह आपके सान्निध्य से समस्त तीर्थ रहेगे ॥५७ ५९॥

ब्रह्मा बोले—गौतम के वचन को सुनकर पुन हर्ष से शिव ने कहा ॥६०॥

१घ च सर्वे च तत्र सा०। २ङ च ०निध्य सर्व०। ३घ च ०तीर्थेऽस्तु श०। ङ ०तीर्थेषु श०।

शिव उवाच

यत्र क्वापि च यत्किंचिद्यो वा भवति भक्तितः (?) यात्रां स्नानमयो दानं पितॄणा वाऽपि तर्पणम् ॥६१॥
श्रवणं पठनं वाऽपि स्मरणं वाऽपि गौतम। यः करोति नरो भक्त्या गोदावर्या यतव्रतः ॥६२॥
सप्तद्वीपवती पृथ्वी सशैलवनकानना। सरत्ना सौषधी रम्या सार्णवा धर्मभूषिता ॥६३॥
दत्त्वा भवति यो धर्मः स भवेद्गौतमीस्मृतेः। एवं विधा इला विप्र गोदानाख्याऽभिधीयते ॥६४॥
चन्द्रसूर्यग्रहे काले मत्सांनिध्ये यतव्रतः। भूभृते विष्णवे भक्त्या सर्वकालं कृता सुधीः ॥६५॥
गाः सुन्दराः सवत्साश्च संगमे लोकविश्रुते। यो ददाति द्विजश्रेष्ठ तत्र यत्पुण्यमाप्नुयात् ॥६६॥
तस्माद्वरं पुण्यमेति स्नानदानादिना नरः। गौतम्यां विश्ववन्द्यायां महानद्या तु भक्तितः ॥६७॥
तस्माद्गोदावरी गङ्गा त्वया नीता भविष्यति। सर्वपापक्षयकरी सर्वाभीष्टप्रदायिनी ॥६८॥

गणेश्वर उवाच

एतच्छ्रुत मया मातर्वदतो गौतम शिवात्। एतस्मात्कारणाच्छंभुर्गङ्गाया नियतः स्थितः ॥६९॥
को निवर्तयितु शक्तस्तमम्ब करुणोदधिम्। अथापि मातरेतत्स्यान्मानुषा विघ्नपाशकैः ॥७०॥
विनिबद्धा न गच्छन्ति गोदामप्यन्तिकस्थिताम्। न नमन्ति शिवं देवं न स्मरन्ति स्तुवन्ति न ॥७१॥
तथा मातः करिष्यामि तव सतोषहेतवे। सनिरोद्धुमयो'[1] क्लेशस्तव वाक्य क्षमस्व मे ॥७२॥

शिव बोले—गौतम ! जो मनुष्य नियमपूर्वक गोदावरी मे जहां-कही भी जो कुछ भी भक्ति से करता है अर्थात् यात्रा, स्नान, दान पितृ-तर्पण श्रवण, पठन या स्मरण—करता है, उसे उतना ही धर्म होता है जितना सातो द्वीप, पर्वत, वन,रत्न, ओषधि तथा समुद्र सहित एवम् धर्मभूषिता पृथ्वी के दान करने से होता है। विप्र ! इस प्रकार की पृथ्वी दान करन से जो धर्म होता है उतना धर्म चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण काल मे गोदावरी मे गोदान करने से होता है। द्विजवर ! उसे भी उतना धर्म होता है, जो लोक-प्रसिद्ध गगा-सागर के सगम पर भुवन के धारण करने वाले विष्णु की प्रीति के लिये बछडे सहित सुन्दर गौ दान करता है। इसलिये मनुष्य विश्ववन्द्या तथा महानदी गादावरी मे भक्तिपूर्वक स्नान-दान करने से अत्यन्त पुण्य प्राप्त करता है। अत समस्त पापो को नष्ट करने वाली तथा अखिल कामनाओ को देने वाली गोदावरी गगा को तुम ले जाओ ॥६१ ६८॥

गणेश्वर बोले—माता ! मैंने गौतम तथा शिव का इतना सवाद सुना है। इसी कारण शकर नियमपूर्वक गगा मे रहते हैं। अम्ब ! उस करुणासागर को कौन निवारण कर सकता है ? माता ! इतना तो मैं तुम्हारे सतोष के लिये करूँगा कि विघ्न-जाल में फँसकर मनुष्य समीप रहने पर भी गगा म स्नान करने नही जायगा और शिव को प्रणाम, स्मरण तथा स्तुति नही करेगा। पर उनका निवारण तो असम्भव है। इसलिये मुझे क्षमा करो ॥६९-७२॥

---

[1] क. ङ. च. ०धोऽशक्तस्तव वाक्यात्क्षम०।

ब्रह्मोवाच

ततः प्रभृति विघ्नेशो मानुषान्प्रति किंचन। विघ्नमाचरते यस्तु तमुपास्य प्रवर्तते ॥७३॥
अथो विघ्नमनादृत्य गौतमीं याति भक्तितः। स कृतार्थो भवेल्लोके न कृत्य मवशिष्यते ॥७४॥
विघ्नान्यनेकानि भवन्ति गेहान्निर्गन्तुकामस्य नराधमस्य ।
निधाय तन्मूर्ध्नि पद प्रयाति, गङ्गा न किं तेन फल प्रलब्धम् ॥७५॥
अस्याः प्रभाव को ब्रूयादपि साक्षात्सदाशिवः। सक्षेपेण मया प्रोक्तमितिहासपदानुगम् ॥७६॥
धर्मार्थकाममोक्षाणा साधनं यच्चराचरे। तदत्र विद्यते सर्वमितिहासे सविस्तरं ॥७७॥
वेदोदितं श्रुतिसकलरहस्यमुक्तं, सत्कारणं समभिधानमिदं सदैव ।
सम्यक्च दृष्टं जगतां हिताय, प्रोक्तं पुराण बहुधर्मयुक्तम् ॥७८॥
अस्य श्लोकं पदं वाऽपि भक्तितः शृणुयात्पठेत्। गङ्गा गङ्गेति वा वाक्यं स तु पुण्यमवाप्नुयात् ॥७९॥
कलिकलङ्कविनाशनदक्षमिदं, सकलसिद्धिकरं शुभदं शिवम् ।
जगति पूज्यमभीष्टफलप्रदं, गाङ्गमेतदुदीरितमुत्तमम् ॥८०॥
साधु गौतम भद्रं ते कोऽन्योऽस्ति सदृशस्त्वया। य एनां गौतमीं गङ्गा दण्डकारण्यमाप्नुयात् ॥८१॥
गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनाना शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥८२॥
तिस्रः कोटयोऽर्धकोटी च तीर्थानि भुवनत्रये। तानि स्नातु समायान्ति गङ्गायां सिंहगे गुरौ ॥८३॥

ब्रह्मा बोले—तब से गणेश मनुष्यो को विघ्न करते हैं। जो उनकी उपासना करता है, उसे छोड देते हैं। जो मनुष्य गणेश की वन्दना कर भक्ति से गोदावरी को जाते हैं, वे लोक मे कृतार्थ हो जाते हैं और उन्हे कुछ करना शेष नही रहता। घर से बाहर जाने वाले नराधम को अनेक विघ्न होते है। जो मस्तक पर गगा के चरणो को रखकर (अर्थात् उनका ध्यान करते हुए) प्रयाण करता है, उसे कौन-सा फल नही मिलता है? (अर्थात् सब मिलते है) ॥७३-७५॥ गगा का प्रभाव कौन बतला सकता है? साक्षात् सदाशिव भी भरसक बतला सकते हैं। सक्षेप मे मैंने इस इतिहास को बतलाया है ॥७६॥ ससार मे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के जितने साधन होते हैं, वे सब इस विस्तृत इतिहास मे विद्यमान हैं ॥७७॥ ससार के कल्याण के लिये मैंने अनेक धर्मों से युक्त पुराण सुना दिया, जो वेद प्रतिपादित सम्पूर्ण रहस्यो का सार, सत्कारणस्वरूप, सदुक्तिस्वरूप तथा सम्यक् दर्शनरूप है ॥७८॥ इस पुराण का एक श्लोक या एक पद जो मनुष्य भक्ति से सुनेगा या पढेगा या 'गगा-गगा' यह उच्चारण ही करेगा, उसे पुण्य लाभ होगा ॥७९॥ 'गगा इस पवित्र नाम का उच्चारण कलियुग के कलको को नष्ट करने मे दक्ष, सकल सिद्धियो को देने वाला कल्याणकारक सुन्दर जगत्पूज्य तथा अभीष्टफलदायक है ॥८०॥ गौतम! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे सदृश कौन दूसरा है जो इस गौतमी गगा को दण्डकारण्य मे प्राप्त करे ॥८१॥ जो व्यक्ति सैंकडो योजन दूर से भी 'गगा-गगा' यह उच्चारण करता है वह समस्त पापो से मुक्त होकर विष्णुलोक को जाता है ॥८२॥ तीनो लोको मे साढे तीस करोड जो तीर्थ है, वे सिंह राशि पर बृहस्पति के जाने पर गगा मे स्नान करने आते हैं ॥८३॥ बृहस्पति के सिंह राशि पर अवस्थित होने पर गोदावरी मे एक बार स्नान करने से उतना ही फल

षष्टिवर्षसहस्राणि भागीरथ्यवगाहनम्। सकृद्गोदावरीस्नानं सिंहयुक्ते बृहस्पतौ ॥८४॥
इयं तु गौतमी पुत्र यत्र क्वापि ममाऽऽज्ञया। सर्वेषां सर्वदा नृणां स्नानान्मुक्तिं प्रदास्यति ॥८५॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च। कृत्वा यत्फलमाप्नोति तदस्य श्रवणाद्भवेत् ॥८६॥
यस्यैतत्तिष्ठति गृहे पुराणं ब्रह्मणोदितम्। न भयं विद्यते तस्य कलिकालस्य नारद ॥८७॥
यस्य कस्यापि नाऽऽख्येयं पुराणमिदमुत्तमम्। श्रद्दधानाय शान्ताय वैष्णवाय महात्मने ॥८८॥
इदं कीर्त्यं भुक्तिमुक्तिदायकं पापनाशकम्। एतच्छ्रवणमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥८९॥
लिखित्वा पुस्तकमिदं ब्राह्मणाय प्रयच्छति। सर्वपापविनिर्मुक्तः पुनर्गर्भं न संविशेत् ॥९०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसंवादे गङ्गामाहात्म्यश्रवणादिफलवर्णनं नाम पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७५॥

गौतमीमाहात्म्ये षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

समाप्तं गौतमीमाहात्म्यम्

अथ षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अनन्तवासुदेवमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

न हि नस्तृप्तिरस्तीह शृण्वतां भगवत्कथाम्। पुनरेव परं गुह्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥१॥

होता है, जितना साठ हजार वर्षों तक गंगा में स्नान करने से होता है ॥८४॥ पुत्र! यह गौतमी गंगा (अपने में) जहाँ-कहीं भी स्नान करने से मनुष्यों को मेरी आज्ञा से मुक्ति दे देती है ॥८५॥ सहस्रों अश्वमेध यज्ञ तथा सैकड़ों वाजपेय यज्ञ करने से जो फल प्राप्त होता है, वह इसके श्रवणमात्र से होता है ॥८६॥ नारद! जिसके घर में यह ब्रह्मपुराण रहता है, उसके लिए कलिकाल का कोई डर नहीं है ॥८७॥ जिस किसी को यह पुराण नहीं सुनाना चाहिए। श्रद्धालु, शान्त, विष्णुभक्त तथा महात्मा को यह पापनाशन तथा भुक्ति-मुक्ति-दायक पुराण सुनाना चाहिये ॥८८॥ इसके श्रवणमात्र से मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। जो इस पुस्तक को लिखकर ब्राह्मण को समर्पित करता है, वह सब पापों से निर्मुक्त होकर पुनः गर्भ में नहीं आता है ॥८९-९०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में तीर्थमाहात्म्य में ब्रह्मा और नारद के संवाद में गंगामाहात्म्यश्रवण आदि का फल-वर्णन नामक एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७५॥

अध्याय १७६

अनन्त वासुदेव का माहात्म्य-निरूपण

मुनियों ने कहा—भगवत्कथा सुनते-सुनते हम तृप्ति नहीं होती है। आप पुनः संपूर्ण रहस्य को बतलायें।

अनन्तवासुदेवस्य न सम्यग्वर्णितं त्वया। श्रोतुमिच्छामहे देव विस्तरेण वदस्व नः ॥२॥

ब्रह्मोवाच

प्रवक्ष्यामि मुनिश्रेष्ठा सारात्सारतरं परम्। अनन्तवासुदेवस्य माहात्म्यं भुवि दुर्लभम् ॥३॥
आदिकल्पे पुरा विप्रास्त्वहमव्यक्तजन्मवान्। विश्वकर्माणमाहूय वचनं प्रोक्तवानिदम् ॥४॥
वरिष्ठं देवशिल्पीन्द्रं विश्वकर्माप्रकर्मिणम्[1]। प्रतिमा वासुदेवस्य कुरु शैलमयीं भुवि ॥५॥
यां प्रेक्ष्य विधिवद्भक्ताः सेन्द्रा वै मानुषादयः। येन दानवरक्षोभ्यो विज्ञाय सुमहद्भयम् ॥६॥
त्रिदिवं[2] समनुप्राप्य सुमेरुशिखरे चिरम्[3]। वासुदेवं समाराध्य निरातङ्का वसन्ति ते ॥७॥
मम तद्वचनं श्रुत्वा विश्वकर्मा तु तत्क्षणात्। चकार प्रतिमां शुद्धां[4] शङ्खचक्रगदाधराम् ॥८॥
सर्वलक्षणसंयुक्तां पुण्डरीकायतेक्षणाम्। श्रीवत्सलक्ष्मसंयुक्तामत्युग्रां प्रतिमोत्तमाम् ॥९॥
वनमालावृतोरस्कां मुकुटाङ्गदधारिणीम्। पीतवस्त्रां सुपीनांसां कुण्डलाभ्यामलंकृताम् ॥१०॥
एवं सा प्रतिमा दिव्या गुह्यमन्त्रैस्तदा स्वयम्। प्रतिष्ठाकालमासाद्य मयाऽसौ निर्मिता पुरा ॥११॥
तस्मिन्काले तदा शक्रो देवराट्खेचरैः[5] सह। जगाम ब्रह्मसदनमारुह्य गजमुत्तमम् ॥१२॥
प्रसाद्य प्रतिमां शक्रः स्नानदानैः पुनः पुनः। प्रतिमां तां समाराध्य (दाय) स्वपुरं पुनरागमत् ॥१३॥
तां समाराध्य सुचिरं यतवाक्कायमानसः। वृत्राद्यानसुरान्क्रूरान्नमुचिप्रमुखान्स च ॥१४॥

अनन्त वासुदेव का आपने सम्यक् वर्णन नहीं किया। देव! (वही) हम सुनना चाहते हैं। विस्तारपूर्वक कहिये ॥१-२॥

ब्रह्मा बोले—मुनिश्रेष्ठो! अनन्त वासुदेव का जगद्दुर्लभ तथा सारतम माहात्म्य मैं बतलाऊँगा ॥३॥ विप्रवृन्द! पहले आदिकल्प में अव्यक्तजन्मा मैंने अत्यन्त बलवान्, देवताओं के कारीगर और बढ़ई के काम में अग्रणी विश्वकर्मा को बुलाकर कहा—पृथ्वी पर वासुदेव की एक ऐसी पत्थर की मूर्ति बनाओ, जिसे विधि पूर्वक देखकर भक्त, इन्द्र तथा मनुष्य आदि, दानव-राक्षसों के महान् भय से स्वर्ग में आकर अर्थात् सुमेरु पर्वत के शिखर पर चिर-काल तक वासुदेव की आराधना करते हुए सुख से वास करें ॥४-७॥ मेरे वचन को सुनकर तत्काल विश्वकर्मा ने शुद्ध, शंख, चक्र, तथा गदा धारण करने वाली, सर्वलक्षणसम्पन्न, कमल के समान दीर्घ नेत्रों वाली, श्रीवत्स चिह्न से युक्त, अत्यन्त उग्र, वनमाला से आवृत वक्षःस्थल वाली, मुकुट तथा अंगद धारण करने वाली, पीतवस्त्रा, स्थूल स्कन्धों वाली तथा कुण्डलों से अलंकृत प्रतिमा को बना डाला ॥८-१०॥ इस प्रकार बनी दिव्य प्रतिमा में मैं स्वयं गुह्य मन्त्रों द्वारा प्राणप्रतिष्ठा करने लगा। उस समय देववृन्दों के साथ इन्द्र उत्तम हाथी पर चढ़कर ब्रह्मलोक में आये। इन्द्र बार-बार स्नान-दानों से प्रतिमा की आराधना करके अपने नगर को चले गये ॥११-१३॥ चिरकाल तक कायिक, वाचिक तथा मानसिक संयम के साथ उस प्रतिमा की आराधना करके इन्द्र ने वृत्र, नमुचि आदि क्रूर राक्षसों को मारकर तीनों लोकों का उपभोग किया ॥१४३॥ द्वितीय युग प्राप्त होने पर अर्थात् त्रेता आने पर राक्षसराज, प्रतापी

१ख कर्मन्सुकर्मकृत्। प्र०। २ख. ०दिवेशमनुप्रा०। ३ख. गिरे। ४ख. ग सुभ्रां। ५क ख ०षट्-संघैः। ज०।

निहत्य दानवान्भीमान्भुक्तवान्भुवनत्रयम्। द्वितीये च युगे प्राप्ते त्रेताया राक्षसाधिप ॥१५॥
बभूव सुमहावीर्यो दशग्रीव प्रतापवान्। दश वर्षसहस्राणि निराहारो जितेन्द्रिय ॥१६॥
चचार व्रतमत्युग्र तप परमदुश्चरम्[1]। तपसा तेन तुष्टोऽह वर तस्मै प्रदत्तवान् ॥१७॥
अवध्य सर्वदेवाना स दैत्योरगयक्षसाम्। शापप्रहरणैरुग्रैरवध्यो यमकिकरै ॥१८॥
वर प्राप्य तदा रक्षो यक्षान्सर्वाञ्जिगायिमान्। धनाध्यक्ष विनिर्जित्य शक्र जेतु समुद्यत ॥१९॥
सग्राम सुमहाघोर कृत्वा देवै स राक्षस। देवराज विनिर्जित्य तदा इन्द्रजितेति वै ॥२०॥
[2]राक्षसस्तत्सुतो नाम मेघनाद प्रलब्धवान्। अमरावतीं तत प्राप्य देवराजगृहे शुभे ॥२१॥
[3]ददर्शाञ्जनसकाशा रावणस्तु बलान्वित। प्रतिमा वासुदेवस्य सर्वलक्षणसयुताम् ॥२२॥
श्रीवत्सलक्ष्मसयुक्ता पद्मपत्रायतेक्षणाम्। वनमालावृतोरस्का मुकुटाङ्गदभूषिताम् ॥२३॥
शङ्खचक्रगदाहस्ता पीतवस्त्रा चतुर्भुजाम्। सर्वाभरणसयुक्ता सर्वकामफलप्रदाम् ॥२४॥
विहाय रत्नसङ्घाश्च प्रतिमा शुभलक्षणाम्। पुष्पकेण विमानेन लङ्का प्रास्थापयद्द्रुतम् ॥२५॥
पुराध्यक्ष स्थित श्रीमान्धर्मात्मा स विभीषण। रावणस्यानुजो मन्त्री नारायणपरायण ॥२६॥
दृष्ट्वा ता प्रतिमा दिव्या देवेन्द्रभवनच्युताम्[4]। रोमाञ्चिततनुर्भूत्वा विस्मय समपद्यत ॥२७॥
प्रणम्य शिरसा देव प्रहृष्टेनान्तरात्मना। अद्य मे सफल जन्म अद्य मे सफल तप ॥२८॥
इत्युक्त्वा स तु धर्मात्मा प्रणिपत्य मुहुर्मुहु। ज्येष्ठ भ्रातरमासाद्य कृताञ्जलिरभाषत ॥२९॥

तथा महाशक्तिशाली रावण ने दस हजार वर्षों तक निराहार तथा जितेन्द्रिय होकर अत्यन्त उग्र तप किया ॥१५ १६½॥ उसकी तपस्या से सतुष्ट होकर मैंने उसे वरदान दिया कि तुम समस्त देवता दैत्य सर्प राक्षस शापप्रहार तथा यम दूतो स अवध्य होगे। तदुपरान्त वर प्राप्त कर वह राक्षस यक्षगण सहित कुबेर को जीतकर इन्द्र को जीतने के लिये उद्यत हुआ ॥१७ १९॥ देवताओ के साथ घोर सग्राम करके उसने देवराज पर विजय प्राप्त की। तब से उसका पुत्र मेघनाद इन्द्रजित् कहलाने लगा ॥२०½॥ बलवान् रावण ने अमरावती मे घुसकर इन्द्र के पवित्र गृह से अञ्जन तुल्य सवलक्षणसम्पन्न श्रीवत्स चिह्न से युक्त कमलपत्र के समान दीर्घ नेत्रो वाली वनमाला से आवृत वक्ष स्थल वाली मुकुट तथा अगदो से विभूषित हाथो मे शख चक्र-गदा धारण करने वाली पीतवस्त्रा चतुर्भुजा समस्त आभूषणो से युक्त शुभलक्षणो से सम्पन्न तथा समस्त कामनाओ के फल को देने वाली वासुदेव की प्रतिमा को लेकर रत्नसमूह को बिना छूए ही पुष्पक विमान से लका के लिये शीघ्र प्रस्थान कर दिया ॥२१ २५॥ नगर का अध्यक्ष श्रीमान् धर्मात्मा वासुदेव भक्त मत्री तथा रावण का छोटा भाई विभीषण था ॥२६॥ वह इन्द्र भवन से लाई हुई दिव्य प्रतिमा को देखकर आश्चर्य चकित हो गया ॥२७॥ उसे रोमाञ्च हो आया। हृदय से गदगद होकर उसने सिर झुका कर वासुदेव को प्रणाम किया और कहा— आज मेरा जन्म सफल हुआ आज मेरा तप सफल हुआ, ॥२८॥ यह कहकर उस धर्मात्मा ने बार-बार प्रणाम किया और हाथ जोडकर अपने ज्येष्ठ भाई से कहा— राजन्! यह प्रतिमा

१ख ०दुष्कर०। २ख ग ०सस्तु ततो। ३ख ०र्शाद्भुतस०। ४ख ०वनागता०।

राजन्प्रतिमया त्व मे प्रसाद कर्तुमर्हसि। यामाराध्य जगन्नाथ निस्तरेय भवार्णवम ॥३०॥
भ्रातुर्वचनमाकर्ण्य 'रावणस्त तदाऽब्रवीत। गृहाण प्रतिमा वीर त्वनया किं करोम्यहम ॥३१॥
स्वयभुव समाराध्य त्रैलोक्य विजय त्वहम। नानाश्चर्यमय देव सर्वभूतभवोद्भवम् ॥३२॥
विभीषणो महाबुद्धिस्तदा ता (रासाद्य) प्रतिमा शुभाम। शतमष्टोत्तर चाब्द समाराध्य जनार्दनम ॥३३
अजरामरण प्राप्तमणिमादिगुणर्युतम। राज्य लङ्काधिपत्य च भोगा भुङ्क्ते यथेप्सितान ॥३४॥

मुनय ऊचु

अहो नो विस्मयो जात श्रुत्वेद परमामृतम। अनन्तवासुदेवस्य सभव भुवि दुर्लभम ॥३५॥
श्रोतुमिच्छामहे देव विस्तरेण यथातथम। तस्य देवस्य माहात्म्य वक्तुमर्हस्यशेषत ॥३६।

ब्रह्मोवाच

तदा स राक्षस क्रूरो देवगन्धर्वकिन्नरान् । लोकपालान्समनुजा मुनिसिद्धाश्च पापकृत ॥३७॥
विजित्य समरे सर्वानाजहार तदङ्गना । सस्थाप्य नगरीं लङ्का पुन सीतार्थे'(ता च) मोहित ॥३८॥
'शङ्कितो मृगरूपेण सौवर्णेन च 'रावण । तत क्रुद्धेन रामेण रणे सौमित्रिणा सह ॥३९॥

मुझे दे देने की कृपा करो। जगत के स्वामी ! इसकी आराधना करके मैं ससार समद्र से पार उतर जाऊँगा। भाई का वचन सुनकर रावण ने कहा—वीर ! प्रतिमा ले लो मुझ इससे क्या करना है ? मैंने सवभूतमय ससार को उत्पन्न करने वाले तथा अनेक आश्चयजनक वस्तुओ से युक्त ब्रह्मा की उपासना करके तीनो लोक को जीत लिया है। तब महाबुद्धिमान् विभीषण ने प्रतिमा को लेकर एकसौ आठ वर्षों तक जनार्दन की आराधना करके अजरत्व अमरत्व अणिमा आदि सिद्धियाँ तथा लका का आधिपत्य प्राप्त किया और अनेक अभिलषित भोगो का उपभोग किया ॥२९ ३४॥

मुनियो ने कहा—अहो ! अनन्तवासुदेव का यह ससार-दुर्लभ वत्तान्त सुनकर हम मानो अमृत मिल गया है तथा आश्चय हो रहा है। हे देव हम विस्तारपूवक यथाथ वणन सुनना चाहते हैं। उस देव का अखिल माहात्म्य आप बतलाइये ॥३५ ३६॥

ब्रह्मा बोले—तब उस क्रूर तथा पापी राक्षस ने देव गन्धव किन्नर लोकपाल मनुष्य मुनि तथा सिद्धो को समर म जीतकर देवागनाओ का अपहरण कर लिया ॥३७॥ उनको लका म रखकर पुन उसन सीता के लिये मोहित होकर सोने के मृग का रूप धारण किया। तदनन्तर राम ने लक्ष्मण क साथ रण म रावण के वध के निमित्त

१ख ०नस्तु त०। २क ग ०पमुपत्य। ३क चकितो। ग चरित्वा। ४ग रावणम्।

रावणस्य वधार्याय हत्वा वालिं मनोजवम्[१]। अभिषिक्तश्च सुग्रीवो युवराजोऽङ्गदस्तथा ॥४०॥
हनुमान्नलनीलश्च [२]जाम्बवान्पनसस्तथा। [३]गवयश्च गवाक्षश्च पाठीनः परमौजसः ॥४१॥
एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्वानरैः समहाबलैः। समावृतो [४]महाघोरं रामो राजीवलोचनः[५] ॥४२॥
गिरीणां सर्वसंघातैः सेतुं बद्ध्वा महोदधौ। बलेन महता रामः समुत्तीर्य महोदधिम् ॥४३॥
संग्राममतुलं चक्रे रक्षोगणसमन्वितः। [६]प्रमहस्तं प्रहस्तं च निकुम्भं कुम्भमेव च ॥४४॥
नरान्तकं महावीर्यं तथा चैव यमान्तकम्। [७]मालाढ्यं मालिकाढ्यं च हत्वा रामस्तु वीर्यवान् ॥४५॥
पुनरिन्द्रजितं हत्वा कुम्भकर्णं सरावणम्। वैदेहीं चाग्निनाऽऽशोध्य दत्त्वा राज्यं विभीषणे ॥४६॥
वासुदेवं समादाय यानं पुष्पकमारुहत्। लीलया समनुप्राप्य योध्यां पूर्वपालिताम् ॥४७॥
कनिष्ठं भरतं स्नेहाच्छत्रुघ्नं भक्तवत्सलः[८]। अभिषिच्य तदा रामः सर्वराज्येऽधिराजवत् ॥४८॥
पुरातनीं स्वमूर्तिं च समाराध्य ततो हरिः। दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ॥४९॥
भुक्त्वा सागरपर्यन्तां मेदिनीं स तु राघवः। [९]राज्यमासाद्य सुगतिं वैष्णवं पदमाविशत् ॥५०॥
तां चापि प्रतिमां रामः[९] समुद्रेशाय दत्तवान्। धन्यो रक्षयितासि त्वं तोयरत्नसमन्वितः ॥५१॥
द्वापरं युगमासाद्य यदा देवो जगत्पतिः। धरण्याश्चानुरोधेन भावशैथिल्यकारणात् ॥५२॥
अवतीर्णः स भगवान्वसुदेवकुले प्रभुः। कंसादीनां वधार्याय संकर्षणसहायवान् ॥५३॥

मन के तुल्य वेग वाले वालि को मारकर सुग्रीव को अभिषिक्त किया एवम् अगद को युवराज बनाया ॥३८-४०॥ हनुमान नल, नील जाम्बवान् पनस गवय, गवाक्ष पाठीन आदि ओजस्वी वन्दरों तथा दूसरे भी बहुत से बलवान् तथा महाभयंकर बन्दरों से युक्त होकर कमलनयन राम ने पर्वतों के समूहों से समुद्र में पुल बाँध कर विशाल सेना के साथ समुद्र पार करके राक्षसों के साथ अतुल संग्राम किया। फिर यमहस्त, प्रहस्त, निकुम्भ कुम्भ महाशक्तिशाली नरान्तक, यमान्तक, मालाढ्य मालिकाढ्य मेघनाद कुम्भकर्ण तथा रावण को मार कर शक्तिसम्पन्न राम ने जानकी को अग्नि से शुद्धकर विभीषण को राज्य दे वासुदेव की प्रतिमा को लेकर पुष्पक विमान से प्रस्थान कर दिया। क्षण में ही पूर्वपालित अयोध्या पहुँचकर भक्तवत्सल राम ने स्नेह से छोटे भाई भरत तथा शत्रुघ्न को सम्पूर्ण राज्य में राजा की तरह अभिषिक्त कर अपनी पुरातनी प्रतिमा की आराधना करते हुए ग्यारह हजार वर्षों तक समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का भोग किया। राज्य-काल के बाद तुम जल तथा रत्नों से सम्पन्न हो धन्य हो, इसकी रक्षा करो यह कहकर समुद्र के अधिष्ठित देवता को वह प्रतिमा देकर राम ने विष्णुलोक में प्रवेश किया ॥४१-५१॥ विप्रवृन्द ! द्वापर युग में जब धर्म के नाश होने के कारण तथा पृथ्वी के अनुरोध से जगत्पति भगवान् कंस आदि के वध के निमित्त बलराम सहित वसुदेव के कुल में अवतीर्ण हुए थे तब किसी कारण समस्त कामनाओं के फल का देने वाली

१क प्लवगममम्। २म० न्पवनस्त०। ३ख ०यश्चैव मैन्दश्च वानरेशा महौज०। ४ख ०हा०ऽसौ रा०। ५ग ०न ।५२। ततश्च शाल्वस०। ६क महोदर। ७क मालिनं माल्यवन्तं च। ८ग ०मादाय सु०। ९ख राज्ञे।

तदा[1] तां प्रतिमां विप्राः सर्ववाञ्छाफलप्रदाम्। सर्वलोकहितार्थाय कस्यचित्कारणान्तरे ॥५४॥
तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये दुर्लभे पुरुषोत्तमे। उज्जहार स्वयं तोयात्समुद्रः सरितां पतिः ॥५५॥
तदा प्रभृति तत्रैव क्षेत्रे मुक्तिप्रदे द्विजाः। आस्ते स देवो देवाना[2] सर्वकामफलप्रदः ॥५६॥
ये संश्रयन्ति चानन्तं भक्त्या सर्वेश्वरं प्रभुम्। वाङ्मनः कर्मभिर्नित्यं ते यान्ति परमं पदम् ॥५७॥
दृष्ट्वाऽनन्तं सकृद्भक्त्या संपूज्य प्रणिपत्य च। राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं दशगुणं लभेत् ॥५८॥
सर्वकामसमृद्धेन कामगेन सुवर्चसा। विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना ॥५९॥
त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य दिव्यस्त्रीगणसेवितः। उपगीयमानो गन्धर्वैर्नरो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥६०॥
तत्र भुक्त्वा वरान्भोगाञ्जरामरणवर्जितः। दिव्यरूपधरः श्रीमान्यावदाभूतसंप्लवम् ॥६१॥
पुण्यक्षयादिहाऽऽयातश्चतुर्वेदी द्विजोत्तम। वैष्णवं योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥६२॥
एवं मया त्वनन्तोऽसौ कीर्तितो मुनिसत्तमाः। कः शक्नोति गुणान्वक्तुं तस्य वर्षशतैरपि ॥६३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंम्भुऋषिसंवादेऽनन्तवासुदेवमाहात्म्यनिरूपणं नाम
षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७६॥

उस प्रतिमा को अखिल लोकों के हित के लिये उस पवित्र, उत्तम तथा दुर्लभ पुरुषोत्तम नामक क्षेत्र में सरिताओं के स्वामी समुद्र ने जल से बाहर कर दिया। द्विजगण ! तब से लेकर उसी मुक्तिदायक क्षेत्र में देवों के देव तथा अखिल कामनाओं के दाता भगवान् रहते हैं। जो मनुष्य मनसा, वाचा, कर्मणा भक्तिपूर्वक सब के ईश्वर, सर्वशक्तिमान्, अनन्त वासुदेव की शरण में जाते हैं, वे परम पद को प्राप्त होते हैं। एक बार अनन्त भगवान् के दर्शन, पूजन तथा प्रणाम करने से मनुष्य राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञों से दस गुने अधिक फल प्राप्त करते हैं। देहान्त के बाद वे निखिल कामनाओं से सम्पन्न, स्वेच्छाचारी, सूर्य सदृश वर्ण वाले तथा क्षुद्र घण्टिकाओं से युक्त विमान पर चढकर अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करके दिव्य वनिताओं से सुसेवित तथा गन्धर्वों से स्तुत होते हुए विष्णुपुर को जाते हैं। ॥५२-६०॥ वहाँ वृद्धत्व तथा मृत्यु से रहित होकर दिव्य रूप धारण कर कल्पान्त तक उत्तम भोगों को भोगते हैं। फिर पुण्यक्षय होने पर इस लोक में आते हैं और चारों वेदों के ज्ञाता द्विजवर होते हैं। तदनन्तर वैष्णव योग में स्थित होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। मुनिश्रेष्ठो ! इस प्रकार मैंने अनन्त भगवान् का गुण-कीर्तन किया है। यों तो सैकड़ों वर्षों से भी उनके गुणों का वर्णन नहीं किया जा सकता है ॥६१-६३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषिसंवाद प्रकरण में अनन्तवासुदेवमाहात्म्यनिरूपण
नामक एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७६॥

---

[1] ग. तदृता प्र०। [2] ख •वानामाविष्टा सर्वकामदः।

अथ सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एवं वोऽनन्तमाहात्म्यं क्षेत्रं च पुरुषोत्तमम्। भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां मया प्रोक्तं सुदुर्लभम् ॥१॥
यत्राऽऽस्ते पुण्डरीकाक्षः शङ्खचक्रगदाधरः। पीताम्बरधरः कृष्णः कंसकेशिनिषूदनः ॥२॥
ये तत्र कृष्णं पश्यन्ति सुरासुरनमस्कृतम्। सकर्षणं सुभद्रां च धन्यास्ते नात्र संशयः ॥३॥
त्रैलोक्याधिपतिं देवं सर्वकामफलप्रदम्। ये ध्यायन्ति सदा [1]कृष्णं मुक्तास्ते नात्र संशयः ॥४॥
कृष्णे रताः कृष्णमनुस्मरन्ति, रात्रौ च कृष्णं पुनरुत्थिता ये ।
ते भिन्नदेहाः प्रविशन्ति कृष्णं हविर्यथा मन्त्रहुतं हुताशनम् ॥५॥
तस्मात्सदा मुनिश्रेष्ठा कृष्णं कमललोचनम्। तस्मिन्क्षेत्रे प्रयत्नेन द्रष्टव्यो मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥६॥
[3]शयनोत्थापने कृष्णं ये पश्यन्ति मनीषिणः। हलायुधं सुभद्रां च [4]हरेः स्थानं व्रजन्ति ते ॥७॥
सर्वकालेऽपि ये भक्त्या पश्यन्ति पुरुषोत्तमम्। रौहिणेयं सुभद्रां च [2]विष्णुलोकं [5]व्रजन्ति ते ॥८॥

अध्याय १७७

पुरुषोत्तम क्षेत्र का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार अनन्त का माहात्म्य तथा मनुष्यों के लिये भोग मोक्ष-दायक एवम् अत्यन्त दुर्लभ पुरुषोत्तम क्षेत्र मैंने बता दिया ॥१॥ उस क्षेत्र में कमललोचन शंख चक्र-गदाधारी पीताम्बर तथा कंस और केशी के संहर्ता कृष्ण वास करते हैं ॥२॥ वहाँ जो मनुष्य देव राक्षसों से वन्दनीय कृष्ण बलराम तथा सुभद्रा के दर्शन करते हैं वे निःसन्देह धन्यवादार्ह हैं ॥३॥ जो त्रिलोकी के स्वामी तथा समस्त कामनाओं के फलदाता कृष्ण का ध्यान करते हैं वे मुक्त हो जाते हैं इसमें कोई संशय नहीं ॥४॥ जो कृष्ण में निरत होकर सतत कृष्ण का स्मरण करते हैं अर्थात् रात्रि में तथा उठने पर भी कृष्ण का ध्यान करते हैं वे शरीर छूटने पर उसी तरह कृष्ण में प्रवेश करते हैं जैसे मन्त्रपूर्वक छोड़े गये हवि अग्नि में ॥५॥ मुनिवर! इसलिये मोक्षाभिलाषियों को यत्नपूर्वक उस क्षेत्र में जाकर कमललोचन कृष्ण का दर्शन करना चाहिये ॥६॥ जो सोने-उठने समय कृष्ण बलराम तथा सुभद्रा का दर्शन करते हैं वे विष्णुलोक को जाते हैं ॥७॥ जो सब काल में कृष्ण बलराम तथा सुभद्रा का दर्शन करते हैं वे विष्णु लोक को जाते हैं ॥८॥ जो वर्ष में चार मास पुरुषोत्तम क्षेत्र में रहते हैं वे पृथ्वी पर समस्त तीर्थयात्राओं

१क ०ष्णं धन्यास्ते। २क विष्णु। ३ख ०यने बोधने। ४क स हरिस्था०। ५क ०कं च यान्ति।

आस्ते यश्चतुरो मासान्वार्षिकान्पुरुषोत्तमे । पृथिव्यास्तीर्थयात्राया फल प्राप्नोति चाधिकम ॥९॥
ये सर्वकाल तत्रैव निवसन्ति मनीषिण । जितेन्द्रिया जितक्रोधा लभन्ते तपस फलम ॥१०॥
तपस्तप्त्वाऽन्यतीर्थेषु वर्षाणामयुत नर । यदाप्नोति तदाप्नोति मासेन पुरुषोत्तमे ॥११॥
तपसा ब्रह्मचर्येण सङ्गत्यागेन यत्फलम् । तत्फल सतत[1] तत्र प्राप्नुवन्ति मनीषिण ॥१२॥
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्य स्नानदानेन कीर्तितम् । तत्फल सतत तत्र प्राप्नुवन्ति मनीषिण ॥१३॥
[2]सम्यक्तीर्थेन यत्प्रोक्त व्रतेन नियमेन च । तत्फल लभते तत्र प्रत्यह प्रयत शुचि ॥१४॥
यस्तु नानाविधैर्यज्ञैर्यत्फल लभते नर[3] । तत्फल लभते तत्र[4] प्रत्यह सयतेन्द्रिय ॥१५॥
देह त्यजन्ति पुरुषास्तत्र ये पुरुषोत्तमे । कल्पवृक्ष समासाद्य मुक्तास्ते नात्र सशय ॥१६॥
वटसागरयोर्मध्ये ये त्यजन्ति कलेवरम् । ते दुर्लभ पर मोक्ष प्राप्नुवन्ति न सशय ॥१७॥
अनिच्छन्नपि यस्तत्र प्राणास्त्यजति मानव । सोऽपि दु खविनिर्मुक्तो मुक्ति प्राप्नोति दुर्लभाम् ॥१८॥
कृमिकीटपतङ्गाद्यास्तिर्यग्योनिगताश्च ये । तत्र देह परित्यज्य ते यान्ति परमा गतिम् ॥१९॥
भ्रान्ति लोकस्य पश्यध्वमन्यतीर्थ प्रति द्विजा । पुरुषाख्येन यत्प्राप्तमन्यतीर्थफलादिकम् ॥२०॥
सकृत्पश्यति यो मर्त्य श्रद्धया पुरुषोत्तमम् । पुरुषाणा सहस्रेषु स भवेदुत्तम पुमान् ॥२१॥
प्रकृते स परो यस्मात्पुरुषादपि चोत्तम । तस्माद्वेदे पुराणे च लोकेऽस्मिन्पुरुषोत्तम ॥२२॥

के फल से अधिक फल प्राप्त करते हैं ॥९॥ जो विद्वान् क्रोध तथा इन्द्रियो को जीतकर सब समय वही वास करते हैं वे तपस्या का फल प्राप्त करते हैं ॥१०॥ अन्य तीर्थो मे दस हजार वर्षो तक तप करने से जितना फल प्राप्त होता है उतना फल पुरुषोत्तम मे एक मास तक तप करने से होता है ॥११॥ तपस्या ब्रह्मचर्य तथा आसक्ति त्याग से जो फल मिलता है वह फल उस क्षेत्र मे विद्वानो को सतत प्राप्त होता है ॥१२॥ सब तीर्थो मे स्नान-दान करने से जो पुण्य होता है वह फल वहाँ सतत विद्वानो को प्राप्त होता रहता है ॥१३॥ तीर्थ व्रत तथा नियम करने से जो फल मिलता है वह फल प्रतिदिन पवित्रतापूर्वक वहाँ रहने से प्राप्त होता है ॥१४॥ अनेक यज्ञ करने से मनुष्य जो फल प्राप्त करता है वह फल वहाँ प्रतिदिन इन्द्रिय सयम करने से मिलता है ॥१५॥ जो मनुष्य पुरुषोत्तम क्षेत्र मे कल्पवृक्ष के समीप देहत्याग करते हैं वे नि सन्देह मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥१६॥ वटवृक्ष तथा सागर के मध्य जो शरीरत्याग करते हैं वे दुर्लभ मोक्ष को प्राप्त करते हैं इसमे सशय नही ॥१७॥ न चाहते हुए भी जो मनुष्य वहाँ प्राणत्याग करता है वह भी दुख से रहित होकर दुर्लभ मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥१८॥ कृमि कीट पतग आदि तिर्यग् योनि वाले जीव भी वहाँ देहत्याग करने से परम गति को प्राप्त करते हैं ॥१९॥ द्विजगण ! दूसरे तीर्थो के प्रति जो लोगो मे श्रद्धा है उसे भ्रान्ति समझिए । क्योकि अन्य समस्त तीर्थो का फल तो एक पुरुषोत्तम से प्राप्त हो जाता है ॥२०॥ जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक एक बार भी पुरुषोत्तम का दर्शन कर लेता है वह हजारो पुरुषो मे उत्तम पुरुष होकर जन्म लेता है ॥२१॥ जिसलिये प्रकृति तथा पुरुष से भी वह उत्तम है इसलिये इस लोक मे वेद और पुराण मे वह उत्तम माना गया है ॥२२॥ जो पुराण तथा वेदान्त मे परमात्मा नाम से पुकारा जाता है

१क ग विना । २ग विना । ३ख ०म्यग्विधो च य० । ४ग विना ।

योऽसौ पुराणे वेदान्ते परमात्मेत्युदाहृतः। 'आस्ते विश्वोपकाराय तेनासौ' पुरुषोत्तमः ॥२३॥
पथि श्मशाने गृहमण्डपे वा, रथ्याप्रदेशेष्वपि यत्र कुत्र ।
इच्छन्ननिच्छन्नपि तत्र देहं, संत्यज्य मोक्षं लभते मनुष्यः ॥२४॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तस्मिन्क्षेत्रे द्विजोत्तमाः। देहत्यागो नरैः कार्यः सम्यङमोक्षाभिकाङक्षिभिः ॥२५॥
पुरुषाख्यस्य माहात्म्यं न भूतं न भविष्यति। त्यक्त्वा यत्र नरो देहं मुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभाम् ॥२६॥
गुणानामेकदेशोऽयं मया क्षेत्रस्य कीर्तितः। कः समस्तान्गुणान्वक्तुं शक्तो वर्षशतैरपि ॥२७॥
यदि यूयं मुनिश्रेष्ठा मोक्षमिच्छथ शाश्वतम्। तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये निवसध्वमतन्द्रिताः ॥२८॥

व्यास उवाच

ते तस्य वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। निवासं चक्रिरे तत्र अवापुः परमं पदम् ॥२९॥
तस्माद्यूयं प्रयत्नेन निवसध्वं द्विजोत्तमाः। पुरुषाख्ये वरे क्षेत्रे यदि मुक्तिमभीप्सथ ॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे ब्रह्मऋषिसंवादे क्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७७॥

विश्व के उपकार के लिये पुरुषोत्तम कहलाता है ॥२३॥ पुरुषोत्तम क्षेत्र मे मार्ग, श्मशान गृहमण्डप तथा गलियो मे या जहाँ-कही भी चाहते हुए या बिना चाहते हुए भी जो मनुष्य देहत्याग करता है वह मोक्ष प्राप्त करता है ॥२४॥ द्विजश्रेष्ठो ! इसलिय मोक्ष के इच्छुक को अखिल प्रयत्न करके उस क्षेत्र म शरीरत्याग करना चाहिये ॥२५॥ पुरुषोत्तम के माहात्म्य की समता करन वाला न कोई तीर्थ हुआ है न होगा। वहाँ देहत्याग करने से मानव दुर्लभ मुक्ति को प्राप्त करता है ॥२६॥ यह तो उस क्षेत्र के गुणा का एकदेशी वर्णन ही मैंने किया है। क्योकि उसके निखिल गुणो का वर्णन तो कोई सैकडो वर्षो मे भी नही कर सकता ॥२७॥ मुनिवर ! यदि आप लोग शाश्वत मोक्ष चाहते हैं तो आलस्य से रहित होकर उस पवित्र तथा उत्तम क्षेत्र मे वास कीजिये ॥२८॥

व्यास ने कहा—अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के वचनो को सुनकर मुनिवृन्द ने वहाँ निवास करके परमपद को *प्राप्त किया। द्विजश्रेष्ठो ! इसलिये यदि आप लोग भी मोक्ष चाहते हो तो प्रयत्नपूर्वक पुरुषोत्तम नामक श्रेष्ठ* क्षेत्र म निवास कीजिए ॥२९-३०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म ब्रह्मा और ऋषियो के सवादप्रकरण मे क्षेत्रमाहात्म्यवर्णन नामक एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७७॥

१क. ख. ०स्ते तत्रोप०। २क. ख. प्रदेशे।

अथाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

कण्डुचरित्रवर्णनम्

व्यास उवाच

तस्मिन्क्षेत्रे मुनिश्रेष्ठाः सर्वसत्त्वसुखावहे । धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदे पुरुषोत्तमे ॥१॥
कण्डुर्नाम महातेजा ऋषिः परमधार्मिकः[1]। सत्यवादी शुचिर्दान्तः सर्वभूतहिते रतः ॥२॥
जितेन्द्रियो जितक्रोधो वेदवेदाङ्गपारगः। अवाप परमां सिद्धिमाराध्य[1] पुरुषोत्तमम् ॥३॥
अन्येऽपि तत्र संसिद्धा मुनयः संशितव्रताः[2]। सर्वभूतहिता दान्ता जितक्रोधा विमत्सराः ॥४॥

मुनय ऊचुः

कोऽसौ कण्डुः कथं तत्र जगाम[3] परमां गतिम्। श्रोतुमिच्छामहे तस्य चरितं ब्रूहि सत्तम ॥५॥

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः कथां तस्य मनोहराम्। प्रवक्ष्यामि समासेन मुनेस्तस्य विचेष्टितम् ॥६॥
[4]पवित्रे गौतमीतीरे विजने सुमनोहरे। कन्दमूलफलैः[5] पूर्णे [6]समित्पुष्पकुशान्वितेः ॥७॥
नानाद्रुमलताकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते। नानापक्षिरुते रम्ये नानामृगगणान्विते ॥८॥

अध्याय १७८

कण्डुऋषि के चरित्र का वर्णन

व्यास ने कहा—मुनिवर! समस्त जीवों के लिये सुखदायक तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के फल देने वाले उस पुरुषोत्तम नामक क्षेत्र में महातेजस्वी, परमधर्मात्मा, सत्यवादी, पवित्र, दान्त, अखिल प्राणियों के हित में निरत, जितेन्द्रिय, जितक्रोध तथा वेद-वेदांग-पारगत कण्डु नामक ऋषि ने पुरुषोत्तम विष्णु की आराधना करके सिद्धि प्राप्त की। फिर पूर्णव्रती, अशेष भूतों के हित में निरत, इन्द्रियों का दमन करने वाले, क्रोध को जीतने वाले तथा डाह से रहित दूसरे मुनिवृन्द भी वहाँ सिद्धि को प्राप्त हुए ॥१-४॥

मुनियों ने कहा—मुनिश्रेष्ठ! कण्डु कौन थे? कैसे उन्होंने परम गति प्राप्त की? उनका चरित्र वर्णन कीजिए, हम सुनना चाहते हैं ॥५॥

व्यास बोले—मुनिवर! उनकी मनोहर कथा को सुनिये। मैं संक्षेप में उनकी क्रिया का वर्णन करूँगा। मुनिश्रेष्ठो! पवित्र, विजन, मनोहर, कन्द-मूल फलों से परिपूर्ण, लकड़ी, पुष्प, तथा कुशों से युक्त, अनेक वृक्ष-लताओं से प्रपूर्ण, नाना पुष्पों से सुशोभित विविध पक्षियों से शब्दायमान, रमणीय तथा नाना मृगगणों से युक्त गोदा-

---

१क. स ०द्धिमवाप्य पु०। २क. ख. सयतेन्द्रियाः। ३ख. ०म यदिमां। ४क. प्रसिद्धे। ५क. ग. ०फलैर्मेध्यैः स०। ६ख. ०प्पजलैः कुशै। ना०।

तत्राऽऽश्रमपदं कण्डोर्बभूव मुनिसत्तमाः। सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं कदलीखण्डमण्डितम् ॥९॥
तपस्तेपे मुनिस्तत्र सुमहत्परमाद्भुतम्। व्रतोपवासैर्नियमैः स्नानमौनसुसंयमैः ॥१०॥
ग्रीष्मे पञ्चतपा भूत्वा वर्षासु स्थण्डिलेशयः। आर्द्रवासास्तु हेमन्ते स तेपे सुमहत्तपः ॥११॥
दृष्ट्वा तु तपसो वीर्यं मुनेस्तस्य सुविस्मिताः। बभूवुर्देवगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरास्तथा ॥१२॥
भूमिं तथाऽन्तरिक्षं च दिवं च मुनिसत्तमाः। कण्डुः सतापयामास त्रैलोक्यं तपसो बलात् ॥१३॥
अहोऽस्य परमं धैर्यमहोऽस्य परमं तपः। इत्यब्रुवंस्तदा दृष्ट्वा देवास्तं तपसि स्थितम् ॥१४॥
मन्त्रयामासुरव्यग्राः शक्रेण सहितास्तदा। भयात्तस्य समुद्विग्नास्तपोविघ्नमभीप्सवः ॥१५॥
ज्ञात्वा तेषामभिप्रायं शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः। प्रम्लोचाख्यां वरारोहां रूपयौवनगर्विताम् ॥१६॥
सुमध्यां चारुजङ्घां तां पीनश्रोणिपयोधराम्। सर्वलक्षणसंपन्नां प्रोवाच फलसूदनः ॥१७॥

शक्र उवाच

प्रम्लोचे गच्छ शीघ्रं त्वं यदाऽसौ तप्यते मुनिः। विघ्नार्थं तस्य तपसः क्षोभयस्वा(स्वाऽऽ)शु सुप्रभे ॥१८॥

प्रम्लोचोवाच

तव वाक्यं सुरश्रेष्ठ करोमि सततं प्रभो। किंतु शङ्का ममैवात्र जीवितस्य च संशयः ॥१९॥
बिभेमि तं मुनिवरं ब्रह्मचर्यव्रते स्थितम्। अत्युग्रं दीप्ततपसं ज्वलनार्कसमप्रभम् ॥२०॥
ज्ञात्वा मां स मुनिः क्रोधाद्विघ्नार्थं समुपागताम्। कण्डुः परमतेजस्वी शापं दास्यति दुःसहम् ॥२१॥

नदी के तट पर कण्डु का आश्रम था, जो सब ऋतुओं में होने वाले फल-पुष्पों से सुसम्पन्न एवम् कदली वृक्षों से शोभित था। उस आश्रम में मुनि व्रत, उपवास, नियम, स्नान मौन तथा संयम के द्वारा परम अद्भुत तप करते थे। ग्रीष्म-ऋतु में पञ्चाग्नि-सेवन, वर्षा में भूमिशयन और हेमन्त में गीले वस्त्रों का धारण करके वे महान् तप करते थे। मुनि की तपःशक्ति को देखकर देव, गन्धर्व, सिद्ध तथा विद्याधर अत्यन्त विस्मित हुए। मुनिश्रेष्ठो ! कण्डु ने तप के बल से भूमि, आकाश, स्वर्ग—तीनों लोक—को तपा डाला। तपस्या में निरत मुनि को देखकर देवताओं ने कहा—'अहा ! इसका महान् धैर्य तथा महान् तप आश्चर्यजनक है।' तब मुनि के भय से उद्विग्न होकर तप में विघ्न डालने की इच्छा से इन्द्र सहित देवगण परस्पर मन्त्रणा करने लगे। देवता के अभिप्राय को समझ कर तीनों भुवन के ईश्वर तथा फल देने वाले इन्द्र ने वनिताओं में श्रेष्ठ, रूप तथा यौवन से गर्वित, सुन्दर कटि वाली, सुन्दर जघा वाली, स्थूल नितम्ब तथा स्तन वाली और सर्वलक्षण सम्पन्न प्रम्लोचा नामक अप्सरा से कहा ॥९-१७॥

इन्द्र बोले—प्रम्लोचा ! तुम शीघ्र जाओ ! सुन्दर कान्ति वाली ! ये जो मुनि तपस्या कर रहे हैं, उनके तप में विघ्न डालकर उन्हें शीघ्र विचलित करो ॥१८॥

प्रम्लोचा बोली—सुरश्रेष्ठ ! मैं आप के वचन को सतत पूरा करती हूँ। किन्तु इस बार निश्चित रूप से मेरे जीवन में सन्देह है। ब्रह्मचर्यव्रत में स्थित, अत्यन्त उग्र, प्रदीप्त तप से युक्त तथा जाज्वल्यमान सूर्य के समान कान्ति वाले उन मुनिवर से मैं डरती हूँ। परम तेजस्वी कण्डु मुनि मुझे विघ्न डालने के लिये आयी हुई समझकर

उर्वशी मेनका रम्भा घृताची पुञ्जिकस्थला। विश्वाची सहजन्या च पूर्वचित्तिस्तिलोत्तमा ॥२२॥
अलम्बुषा मिश्रकेशी शशिलेखा च वामना। अन्याश्चाप्सरसः सन्ति रूपयौवनगर्विताः ॥२३॥
सुमध्याश्चारुवदनाः पीनोन्नतपयोधराः। कामप्रधानकुशलास्तास्तत्र सनियोजय ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्राह शचीपतिः। तिष्ठन्तु नाम चान्यास्तास्त्वं चात्र कुशला शुभे ॥२५॥
कामं वसन्त वायु च सहायार्थे ददामि ते। तैः सार्धं गच्छ सुश्रोणि यत्राऽऽस्ते स महामुनिः ॥२६॥
शक्रस्य वचन श्रुत्वा तदा सा चारुलोचना। जगामाऽऽकाशमार्गेण तैः सार्धं चाऽऽश्रमं मुनेः ॥२७॥
गत्वा सा तत्र रुचिरं ददर्श वनमुत्तमम्। मुनिं च दीप्ततपसमाश्रमस्थमकल्मषम् ॥२८॥
अपश्यत्सा वन रम्य तैः सार्धं नन्दनोपमम्। सर्वर्तुवरपुष्पाढ्यं शाखामृगगणाकुलम् ॥२९॥
पुण्यं पद्मबलोपेतं सपल्लवमहाबलम्। श्रोत्ररम्यान्सुमधुराञ्शब्दान्खगमुखेरितान् ॥३०॥
सर्वर्तुफलभाराढ्यान्सर्वर्तुकुसुमज्ज्वलान्। अपश्यत्पादपाश्चैव विहङ्गैरनुनादितान् ॥३१॥
आम्रानाम्रातकान्भव्यान्नारिकेरान्सतिन्दुकान्। अथ बिल्वास्तथाजीवान्दाडिमान्बीजपूरकान् ॥३२॥
पनसांल्लकुचान्नीपाञ्शिरीषान्सुमनोहरान्। पारावतास्तथा कोलानरिमेदाम्लवेतसान्। ॥३३॥
भल्लातकानामलकाञ्शतपर्णांश्च किंशुकान्। इङ्गुदान्करवीरांश्च हरीतकीविभीतकान् ॥३४॥

दु सह शाप देंगे। उर्वशी, मेनका, रम्भा, घृताची, पुञ्जिकस्थला, विश्वाची, सहजन्या, पूर्वचित्ति, तिलोत्तमा, अलम्बुषा, मिश्रकेशी, शशिलेखा, वामना तथा दूसरी भी रूप-यौवन-गर्वित, सुन्दर कटि वाली, सुन्दर मुख वाली, स्थूल एवम् उन्नत स्तन वाली और कामशास्त्र म निपुण अप्सरायें हैं। उन्ही को इस कार्य के लिये नियुक्त करें ॥१९-२४॥

ब्रह्मा बोले—उसके वचन को सुनकर पुन इन्द्र ने कहा—'दूसरी अप्सरायें नही जाएंगी। कामिनी! तुम्ही *इस काम मे कुशल हो। कामदेव वसन्त तथा वायु को तुम्हारी सहायता के लिये देता हूँ। सुन्दर कटि वाली!* उनके साथ तुम उस महामुनि के पास जाओ।' शक्र की बात सुनकर वह मनोहर नेत्र वाली अप्सरा उनके साथ आकाशमार्ग से मुनि के आश्रम के लिये चल पडी। वहाँ जाकर उसने उत्तम वन तथा आश्रमवासी निष्पाप एवम् अत्यन्त तपस्वी मुनि को देखा ॥२५-२८॥ उसने नन्दनवन तुल्य रमणीय वन को देखा, जो सब ऋतुओ में होने वाले उत्तम पुष्पो मे सम्पन्न शाखाओ तथा मृगगणों से परिपूर्ण, पवित्र और कमलों तथा पल्लवो से युक्त था। वहाँ खगवृन्द *श्रवणसुखद तथा अत्यन्त मधुर शब्द कर रहे थे। उस वन म ऐसे वृक्ष शोभायमान थे, जो सब ऋतुओ मे फलते-*फूलते थ और जिन पर पक्षियो का समूह मधुरालाप करता रहता था। आम आमला, सुन्दर नारियल, तिन्दुक (तेंदू), बिल्व जीव, (वरायन), दाडिम, बीजपूरक, कटहल, बडहर, कदम्ब सिरीष, मनोहर पारावत, कोल (बेर), अरिमेद (खैर), अम्लवेतस (अमलबेंत), भल्लातक (भिलावाँ), छतिवन, पलाश, इगुद (हिंगोट), करवीर, हर्र, बहेडा—इन वृक्षो को तथा अन्य वृक्षो को भी उस विशालाक्षी अप्सरा ने वहाँ देखा ॥२९-३४½॥ उसी तरह अशोक

एतानन्यांश्च सा वृक्षान्ददर्श पृथुलोचना। तथैवाशोकपुन्नागकेतकीबकुलानथ ॥३५॥
पारिजातान्कोविदारान्मन्दारेन्दीवरांस्तथा। पाटलाः पुष्पिता रम्या देवदारुद्रुमास्तथा ॥३६॥
शालांस्तालांस्तमालाश्च निचुलाँल्लोमकांस्तथा। अन्यांश्च पादपश्रेष्ठानपश्यत्फलपुष्पितान् ॥३७॥
चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैस्तथा शुकैः। कोकिलैः कलविङ्कैश्च हारीतैर्जीवजीवकैः ॥३८॥
प्रियपुत्रैश्चातकैश्च तथाऽन्यैर्विविधैः खगैः। श्रोत्ररम्यं सुमधुरं कूजद्भिश्चाप्यधिष्ठितम् ॥३९॥
सरांसि च मनोज्ञानि प्रसन्नसलिलानि च। कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शुभैः ॥४०॥
कह्लारैः कमलैश्चैव आचितानि समन्ततः। कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः ॥४१॥
कारण्डवैर्बकैर्हंसैः कूर्मैर्मद्गुभिरेव च। एतैश्चान्यैश्च कीर्णानि समन्ताज्जलचारिभिः ॥४२॥
क्रमेणैव तथा सा तु वनं बभ्राम तैः सह। एवं दृष्ट्वा वनं रम्यं तैः सार्धं परमाद्भुतम् ॥४३॥
विस्मयोत्फुल्लनयना सा बभूव वराङ्गना। प्रोवाच वायुं कामं च वसन्तं च द्विजोत्तमाः ॥४४॥

प्रम्लोचोवाच

कुरुध्वं मम साहाय्यं यूयं सर्वे पृथक्पृथक् ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदा सा तु तथेत्युक्ता सुरैर्द्विजा। प्रत्युवाचाद्य यास्यामि यत्रासौ संस्थितो मुनि ॥४६॥
अद्य त देहयन्तारं[1] प्रयुक्तेन्द्रियवाजिनम्। स्मरशस्त्रगलद्रश्मिं करिष्यामि कुसारथिम् ॥४७॥
ब्रह्मा जनार्दनो वाऽपि यदि वा नीललोहितः। तथाऽप्यद्य करिष्यामि कामबाणक्षतान्तरम् ॥४८॥

पुन्नाग, केतकी, मौलसिरी, पारिजात, कचनार मन्दार, नीलकमल, पाटला देवदारु, शाल ताल तमाल निचुल (बेंत), लोमक तथा दूसरे भी फल-पुष्पों से युक्त वृक्षों को उसने देखा। चकोर, मयूर भृङ्गराज तोते, कोयल गौरेये हारीत, जीवजीवक, प्रियपुत्र चातक तथा अन्य विविध पक्षीगण मनोरम एवम् सुमधुर शब्द वहाँ कर रहे थे ॥३५-३९॥ वहाँ मनोहर तथा स्वच्छ जल से युक्त अनेक सरोवर थे, जो कुमुद, कमल, नील कमल, रक्तकमल, कल्हस, चक्रवाक जलकुक्कुट, कारण्डव बक, हंस, कछुए, मद्गु तथा अन्य जलजन्तुओं से व्याप्त थे। काम आदि के साथ प्रम्लोचा ने क्रमशः वन में भ्रमण किया। इस प्रकार परम आश्चर्यजनक मनोरम वन को देखकर उस वरांगना के नेत्र विस्मय से प्रफुल्लित हो गये। द्विजश्रेष्ठो! तब उसने वायु काम तथा वसन्त से कहा ॥४०-४४॥

प्रम्लोचा बोली—तुम सब अलग अलग मेरी सहायता करो ॥४५॥

ब्रह्मा बोले—द्विजगण! उन्होंने उसका वचन स्वीकार किया। तब उसने कहा—'आज मैं मुनि के पास जाऊँगी। देह का संयमन करने वाले इन्द्रिय रूपी घोड़ों को जीतने वाले तथा कुसारथि से युक्त मुनि के घोड़ों की डोरी को आज मैं कन्दर्प रूपी शस्त्र से काट डालूँगी। ब्रह्मा या विष्णु या महेश ही क्यों न हों, उन्हें भी आज मैं काम-

---

[1] ग. देवय०।

इत्युक्त्वा प्रययौ[1] साऽथ यत्रासौ तिष्ठते मुनिः। मुनेस्तप:प्रभावेण प्रशान्तश्वापदाश्रमम् ॥४९॥
सा पुंस्कोकिलमाधुर्ये नदीतीरे व्यवस्थिता। [2]स्तोकमात्र स्थिता तस्मादगायत वराऽप्सराः ॥५०॥
ततो वसन्तः सहसा[3] बलं समकरोत्तदा। कोकिलारावमधुरमकालिकमनोहरम् ॥५१॥
ववौ गन्धवहश्चैव मलयाद्रिनिकेतनः। पुष्पानुच्चावचान्मेध्यान्पातयश्च शनैः शनैः ॥५२॥
पुष्पबाणधरश्चैव गत्वा तस्य समीपतः। मुनेश्च क्षोभयामास कामस्तस्यापि मानसम् ॥५३॥
ततो गीतध्वनिं श्रुत्वा मुनिर्विस्मितमानसः। [4]जगाम यत्र सा सुभ्रूः कामबाणप्रपीडितः ॥५४॥
दृष्ट्वा तामाह संहृष्टो विस्मयोत्फुल्ललोचनः[5]। भ्रष्टोत्तरीयो विकलः पुलकाञ्चितविग्रहः ॥५५॥

ऋषिरुवाच

काऽसि कस्यासि सुश्रोणि सुभगे चारुहासिनि। मनो हरसि मे सुभ्रु ब्रूहि सत्यं सुमध्यमे ॥५६॥

प्रम्लोचोवाच

तव कर्मकरा चाहं पुष्पार्थमहमागता। आदेशं देहि मे क्षिप्रं किं करोमि तवाऽऽज्ञया ॥५७॥

व्यास उवाच

श्रुत्वैवं वचनं तस्यास्त्यक्त्वा धैर्यं विमोहितः। आदाय हस्ते तां बालां प्रविवेश स्वमाश्रमम् ॥५८॥

बाण से क्षत विक्षत कर दूँगी, इतना कहकर वह वहाँ के लिए चल पड़ी, जहाँ मुनि रहते थे। मुनि के तप प्रभाव से आश्रमस्थ हिंसक जीव भी शान्त हो गये थे। नर कोयलों के मधुरालाप से युक्त नदी तट पर वह रुक गई। मुनि से थोड़ी ही दूर पर स्थित होकर वह वरांगना गाने लगी। तब सहसा वसन्त ने आकर असमय में ही कोकिलों के आलाप को मनोहर तथा मधुर बना दिया। मलयाचल स्थित सुगन्धित वायु भी धीरे-धीरे बहते हुए छोटे-बड़े सुललित पुष्पों को गिराने लगे। स्वयं कन्दर्प पुष्पों का बाण लेकर मुनि के समीप जाकर उनके मन को विचलित करने लगा। गीतध्वनि सुनकर मुनि आश्चर्यान्वित हो गये और काम-बाण से पीड़ित होकर उसी सुन्दर भौंह वाली अप्सरा के पास पहुँचे। उसे देखकर विस्मय से मुनि के नेत्र उत्फुल्ल हो गये, उत्तरीय वस्त्र नीचे गिर पड़ा और शरीर में रोमाञ्च हो आया ॥४९-५५॥

ऋषि बोले—सुन्दर नितम्ब वाली! मनोहर हास्य करने वाली! सुन्दरि! तुम कौन हो! किसकी हो? सुन्दर कटि वाली! सुन्दर भौं वाली! सच-सच बतलाओ। तुम मेरे मन का हरण कर रही हो ॥५६॥

प्रम्लोचा बोली—मैं आपकी अनुचरी हूँ। फूलों के लिए मैं यहाँ आई हूँ। शीघ्र आप आदेश करें। मैं आपकी आज्ञा से सब कुछ कर सकती हूँ ॥५७॥

व्यास ने कहा—उसकी बातों को सुनकर मुग्ध मुनि ने धैर्य का परित्याग कर उस कामिनी का हाथ पकड़कर अपने आश्रम में प्रवेश किया ॥५८॥ द्विजश्रेष्ठो! तदनन्तर काम, वायु तथा वसन्त ने कृतकृत्य होकर स्वर्ग

१क. ख. प्रजगामाथ म०। २क. स्तोमधन्यासिता। ३ग. ०सा वसन्तम०। ४घ. ०म तत्र धैर्यात्च्यु०। ५ख. पुष्पकामाद्द०।

ततः कामश्च वायुश्च वसन्तश्च द्विजोत्तमाः। जग्मुर्यथागतं सर्वे कृतकृत्यास्त्रिविष्टपम् ॥५९॥
शशंसुश्च हरिं गत्वा तस्यास्तस्य च चेष्टितम्। श्रुत्वा शक्रस्तदा देवाः प्रीताः सुमनसोऽभवन् ॥६०॥
स च कण्डुस्तया सार्धं प्रविशन्नेव चाऽऽश्रमम्। आत्मनः परमं रूपं चकार मदनाकृति[1] ॥६१॥
रूपयौवनसंपन्नमतीव सुमनोहरम्। दिव्यालंकारसंयुक्तं [ ] [ ] षोडशवत्सराकृति ॥६२॥
दिव्यवस्त्रधरं कान्तं दिव्यस्रग्गन्धभूषितम्। सर्वोपभोगसंपन्नं सहसा तपसो बलात् ॥६३॥
दृष्ट्वा सा तस्य तद्वीर्यं परं विस्मयमागता। अहोऽस्य तपसो वीर्यमित्युक्त्वा मुदिताऽभवत् ॥६४॥
स्नानं संध्यां जपं होमं स्वाध्यायं देवतार्चनम्। व्रतोपवासनियमं ध्यानं च मुनिसत्तमाः ॥६५॥
त्यक्त्वा स रेमे मुदितस्तया सार्धमहर्निशम्। मन्मथाविष्टहृदयो न बुबोध तपःक्षयम् ॥६६॥
संध्यारात्रिदिवापक्षमासर्त्वयनहायनम्। न बुबोध गतं कालं विषयासक्तमानसः ॥६७॥
सा च तं कामजैर्भावैर्विदग्धा रहसि द्विजाः। वरयामास सुश्रोणिः [2]प्रलापकुशला तदा ॥६८॥
एवं कण्डुस्तया सार्धं वर्षाणामधिकं शतम्। अतिष्ठन्मन्दरद्रोण्या ग्राम्यधर्मरतो मुनिः ॥६९॥
सा तं प्राह महाभाग गन्तुमिच्छाम्यहं दिवम्। प्रसादसुमुखो ब्रह्मन्ननुज्ञातुं त्वमर्हसि ॥७०॥
तयैवमुक्तः स मुनिस्तस्यामासक्तमानसः। दिनानि कतिचिद्भद्रे स्थीयतामित्यभाषत ॥७१॥

जाकर इन्द्र से अप्सरा तथा मुनि की चेष्टाओं का वर्णन कर दिया। यह सुनकर इन्द्र तथा देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥५९-६०॥ उस कण्डु ने अप्सरा के साथ आश्रम में प्रवेश करते ही अपना रूप कामदेव जैसा बना लिया। मुनि तपस्या के बल से एकाएक सोलह वर्ष का युवक रूप-यौवन से सम्पन्न, अत्यन्त सुन्दर दिव्य आभूषणों से विभूषित, दिव्यवस्त्रधारी, कमनीय दिव्य माला तथा सुगंध से युक्त और सब प्रकार के उपभोग से सम्पन्न हो गया। अप्सरा उसकी वह विभूति देखकर परम आश्चर्यित हुई और यह कहकर प्रसन्न हुई कि अहा! कैसा इसके तप का प्रभाव है। मुनिवर! तत्पश्चात् वह मुनि स्नान, सन्ध्या, जप, होम, स्वाध्याय, देवपूजन, व्रत उपवास, नियम तथा ध्यान छोड़कर दिनरात अप्सरा के साथ आनन्दपूर्वक रमण करने लगा। काम से व्यथित हृदय वाले मुनि ने तपस्या के क्षय को नहीं समझा। विषय में आसक्त चित्त वाले मुनि ने सन्ध्या, रात, दिन, पक्ष मास, ऋतु, अयन तथा वर्ष तक को भी नहीं समझा। द्विजगण! तदनन्तर बातचीत करने में चतुर एवम् हाव-भाव दिखाने में प्रवीण उस वरांगना ने मुनि का वरण कर लिया। इस प्रकार सौ वर्षों से अधिक काल तक कण्डु मुनि ग्राम्यधर्म में निरत होकर उसके साथ मन्दराचल की झील में पड़ा रहा ॥६१-६९॥ (एक दिन) अप्सरा ने महाभाग्यशाली मुनि से कहा— मैं स्वर्ग जाना चाहती हूँ। ब्रह्मन्! आप प्रसन्न पूर्वक मुझे आज्ञा दीजिये। उसके इतना कहने पर उसमें आसक्त मन वाले मुनि ने कहा—'भद्रे! कुछ दिन और ठहरो।' तदनन्तर पुनः सौ वर्ष से अधिक समय तक अप्सरा ने उस महात्मा

---

[1] ख. मन्मथाकृ०। [2] ग. प्रचारकु०।

एवमुक्ता ततस्तेन साग्रं वर्षशतं पुनः। बुभुजे विषयांस्तन्वी तेन साधं महात्मना ॥७२॥
अनुज्ञां देहि भगवन्व्रजामि त्रिदशालयम्। उक्तस्तयेति स पुनः स्थीयतामित्यभाषत ॥७३॥
पुनर्गते वर्षशते साधिके सा शुभानना। याम्यहं त्रिदिवं ब्रह्मन्प्रणयस्मितशोभनम् ॥७४॥
उक्तस्तयैवं स मुनिः पुनराहाऽऽयतेक्षणाम्। इहाऽऽस्यता मया सुभ्रु चिरं कालं गमिष्यसि ॥७५॥
तच्छापभीता सुश्रोणी सह तेनर्षिणा पुनः। शतद्वयं किंचिदूनं वर्षाणा समतिष्ठत ॥७६॥
गमनाय महाभागो देवराजनिवेशनम्। प्रोक्तः प्रोक्तस्तया तन्व्या स्थीयतामित्यभाषत ॥७७॥
तस्य शापभयाद्भीरुर्दाक्षिण्येन च दक्षिणा। प्रोक्ता प्रणयभङ्गार्तिवेदिनी न जहौ मुनिम् ॥७८॥
तया च[1] रमतस्तस्य परमर्षेरहर्निशम्। नवं नवमभूत्प्रेम मन्मथासक्तचेतसः ॥७९॥
एकदा तु त्वरायुक्तो निश्चक्रामोटजान्मुनिः। निष्क्रामन्तं च कुत्रेति गम्यते प्राह सा शुभा ॥८०॥
इत्युक्त स तया प्राह परिवृत्तमहः शुभे। संध्योपास्ति करिष्यामि क्रियालोपोऽन्यथा भवेत् ॥८१॥
ततः प्रहस्य मुदिता सा त प्राह महामुनिम्। किमद्य सर्वधर्मज्ञ परिवृत्तमहस्तव ॥
गतमेतन्न कुरुते विस्मयं कस्य कथ्यते ॥८२॥

मुनिरुवाच

प्रातस्त्वमागता भद्रे नदीतीरमिदं शुभम्। मया दृष्टाऽसि सुश्रोणि प्रविष्टा च ममाऽऽश्रमम् ॥८३॥

के साथ विषय का उपभोग किया ॥७०-७२॥ तब उसने मुनि से कहा—'भगवन्! आज्ञा दीजिये। मैं स्वर्ग जाऊँगी।' उसके कहने पर फिर मुनि ने कहा—'नहीं, अभी ठहरो।' पुनः सौ वर्ष से अधिक समय तक ठहर कर अप्सरा प्रेम से मुस्कराते हुए कहा—'ब्रह्मन्! मैं स्वर्ग जाऊँगी।' तब मुनि ने दीर्घ नेत्र वाली उस अप्सरा से कहा—'सुन्दर भौं वाली! चिरकाल तक मेरे साथ और रहो तब जाना।' मुनि के शाप के डर से वह दो सौ वर्षों से कुछ कम काल तक मुनि के साथ फिर ठहर गई। तत्पश्चात् उसने इन्द्रपुरी जाने के लिये मुनि से आज्ञा मांगी। पुनः मुनि ने कहा—'अभी ठहरो।' मुनि के शाप के डर से प्रणयभंगजन्य पीड़ा को समझने वाली उस चतुर अप्सरा ने मुनि का त्याग नहीं किया। उसके साथ रातदिन रमण करते हुए विषयलोलुप मुनि के हृदय में नवीन-नवीन प्रेम का सचार होने लगा। एक दिन आश्रम से शीघ्रतापूर्वक निकलते हुए मुनि से अप्सरा पूछ बैठी—'कहाँ जा रहे हैं?' मुनि ने उत्तर दिया—'कल्याणि! दिनान्त हो रहा है मैं सन्ध्यापासन करूँगा, अन्यथा क्रिया का लोप हो जायगा।' तब हँसकर अप्सरा ने महामुनि से कहा—'अखिल धर्मों के ज्ञाता! क्या आज ही दिनान्त हो रहा है? इतने दिन बीत गये। आप क्या करते थे?' ॥७३-८२॥

मुनि बोले—भद्रे! प्रातःकाल तुम पवित्र नदी-तट पर आई। सुन्दर नितम्ब वाली! मैंने तुम्हें देखा

---

[1] ग. च वसत०।

'इयं च वर्तते संध्या परिणाममहो गतम्। अवहासः किमर्थोऽयं सद्भावः कथ्यतां मम ॥८४॥

प्रम्लोचोवाच

प्रत्युषस्यागता ब्रह्मन्सत्यमेतन्न मे मृषा। किं त्वद्य तस्य कालस्य गतान्यब्दशतानि ते ॥८५॥
ततः ससाध्वसो विप्रस्तां पप्रच्छाऽऽयतेक्षणाम्। कथ्यतां भीरु कः कालस्त्वया मे रमतः सदा ॥८६॥

प्रम्लोचोवाच

'सप्तोत्तराण्यतीतानि नववर्षशतानि च। 'मासाश्च षट्तथैवान्यत्समतीतं दिनत्रयम् ॥८७॥

ऋषिरुवाच

सत्यं भीरु वदस्येतत्परिहासोऽथवा शुभे। दिनमेकमहं मन्ये त्वया सार्धमिहोषितम् ॥८८॥

प्रम्लोचोवाच

वदिष्याम्यनृतं ब्रह्मन्कथमत्र तवान्तिके। विशेषादद्य भवता पृष्टा मार्गानुगामिना ॥८९॥

व्यास उवाच

निशम्य तद्वचस्तस्याः स मुनिर्द्विजसत्तमाः'। धिग्धिङ्मामित्यनाचारं विनिन्द्याऽऽत्मानमात्मना ॥९०॥

और तुम मेरे आश्रम में प्रविष्ट हुई। यह सन्ध्याकाल है। दिन का अवसान हो गया है। क्यों तुम उपहास कर रही हो? सच्ची बात बतलाओ ॥८३-८४॥

प्रम्लोचा बोली—ब्रह्मन्! प्रातःकाल में आई—यह कहना आपका ठीक है। किन्तु उस प्रातःकाल को बीते आज सैकड़ों वर्ष हो गये हैं। तब भययुक्त मुनि ने लम्बी आँखों वाली प्रम्लोचा से पूछा—"कहो, तुमसे रमण करते मुझे कितने समय हो गये?" ॥८५-८६॥

प्रम्लोचा बोली—नौ सौ वर्ष, छः मास, तीन दिन व्यतीत हुए ॥८७॥

ऋषि बोले—कल्याणि! क्या यह सत्य कह रही हो या उपहास करती हो? मैं तो समझ रहा हूँ कि तुम्हारे साथ एक ही दिन बीता है ॥८८॥

प्रम्लोचा बोली—ब्रह्मन्! विशेष करके जब आपने अन्वेषण की दृष्टि से पूछा है तब मैं आपके समीप असत्य क्यों बोलूँ? ॥८९॥

व्यास बोले—द्विजश्रेष्ठो! उसका वचन सुनकर मुनि आचारशून्य अपने आपको धिक्कारने लगे तथा निन्दा करने लगे ॥९०॥

१ख सप्तम्यूनान्यती०। २ख. ०श्च षोडशैवात्र सम०। ३क ०मा'। विदित्वा इत्य०।

मुनिरुवाच

तपांसि मम नष्टानि हृतं ब्रह्मविदां धनम्। हृतो विवेकः केनापि[1] योषिन्मोहाय निर्मिता ॥९१॥
ऊर्मिषट्कातिगं ब्रह्म ज्ञेयमात्मजयेन मे। गतिरेषा कृता येन धिक्तं काममहाग्रहम् ॥९२॥
व्रतानि[2] सर्ववेदाश्च कारणान्यखिलानि च। नरकग्राममार्गेण कामेनाद्य[3] हृतानि मे ॥९३॥
[4]विनिन्द्येत्थं स धर्मज्ञः स्वयमात्मानमात्मना। तामप्सरसमासीनामिदं वचनमब्रवीत् ॥९४॥

ऋषिरुवाच

गच्छ पापे यथाकामं यत्कार्यं तत्त्वया कृतम्। देवराजस्य[5] यत्क्षोभं कुर्वन्त्या भावचेष्टितैः ॥९५॥
न त्वां करोम्यहं भस्म क्रोधतीव्रेण वह्निना। सतां [6]साप्तपदं [7]मैत्र्यमुषितोऽहं त्वया सह ॥९६॥
अथवा तव दोषः कः किंवा [8]कुर्यामहं तव। ममैव दोषो नितरां येनाहमजितेन्द्रियः ॥९७॥
यया शक्रप्रियार्थिन्या कृतो मत्तपसो व्ययः। त्वया दृष्टिमहामोहमनुनाऽहं जुगुप्सितः ॥९८॥

व्यास उवाच

यावदित्थं स विप्रर्षिस्तां ब्रवीति सुमध्यमाम्। तावत्स्खलत्स्वेदजला सा बभूवातिवेपथुः ॥९९॥
प्रवेपमानां स च तां स्विन्नगात्रलतां सतीम्। गच्छ गच्छेति सक्रोधमुवाच मुनिसत्तमः ॥१००॥

मुनि बोले—मेरे तप नष्ट हो गये, ब्रह्मवेत्ताओं का धन नष्ट हो गया, किसी ने विवेक का अपहरण कर लिया। अहो! मोह में डालने के लिये ही स्त्रियों की रचना हुई है। कहाँ तो मैं इन्द्रियों को जीतकर ब्रह्म को प्राप्त करने वाला था और कहाँ मेरी यह दशा? उस महाग्रह रूपी काम को धिक्कार है जिसने मेरी यह दशा की है। नरकसमूह में पहुँचाने वाले काम ने आज मेरे व्रत समस्त वेद तथा अखिल कारणों को नष्ट कर दिया। इस प्रकार धर्मज्ञ मुनि ने अपने से अपनी निन्दा करके बैठी हुई उस अप्सरा से कहा ॥९१-९४॥

ऋषि बोले—पापिनी! तुम स्वेच्छा से चली जाओ। इन्द्र का जो काम तुम्हें करना था वह तुमने हाव-भाव दिखलाकर कर दिया। तीव्र क्रोध रूपी अग्नि से मैं तुम्हें जलाऊँगा नहीं। सज्जनों की जो सप्तपदी मित्रता होती है वह तुमसे हो गई, क्योंकि सात सौ वर्षों से ऊपर मैं तुम्हारे साथ रह चुका हूँ। अथवा तुम्हारा दोष ही क्या है या मैं ही तुम्हारा क्या कर लूंगा? यह मेरा ही दोष है कि मैं इन्द्रियों को न जीत सका। इन्द्र के कल्याण करने की इच्छा से तुमने मेरे तप का नाश किया। तुम्हारी दृष्टि पड़ते ही मैं महामोह में फँसकर निन्दा का पात्र बन गया ॥९५-९८॥

व्यास बोले—इस प्रकार जब वे ब्राह्मण अप्सरा से कह रहे थे तब वह पसीने से तर-बतर होकर काँप रही थी। उसी अवस्था में मुनि ने क्रोधपूर्वक उससे कहा—'जाओ जाओ।' फटकार खाकर उस अप्सरा ने आश्रम में

१क ०पि या मे मोहा०। २ग ०नि च समस्तानि का०। ३ग ०नाशहृता०। ४ख. ०निन्द्यात्यन्त ध०। ५क ०स्य तु सम कु०। ६ख साप्तपदी। ७ख मैत्री ह्युषि०। ग कुर्यामहं।

सा तु निर्भर्त्सिता तेन विनिष्क्रम्य तदाश्रमात्। आकाशगामिनी स्वेदं ममार्ज तरुपल्लवैः ॥१०१॥
वृक्षाद्वृक्षं ययौ बाला उदग्रारुणपल्लवैः। निर्ममार्ज च गात्राणि गलत्स्वेदजलानि वै ॥१०२॥
ऋषिणा यस्तदा गर्भस्तस्या देहे समाहितः। निर्जगाम सरोमाञ्चस्वेदरूपी तदङ्गतः ॥१०३॥
तं वृक्षा जगृहुर्गर्भमेकं चक्रे च मारुतः। सोमेनाऽऽप्यायितो गोभिः स तदा ववृधे शनैः ॥१०४॥
मारिषा नाम कन्याऽभूद्वृक्षाणां चारुलोचना। प्राचेतसानां सा भार्या दक्षस्य जननी द्विजाः ॥१०५॥
स चापि भगवान्कण्डुः क्षीणे तपसि सत्तमः। पुरुषोत्तमाख्यं भो विप्रा विष्णोरायतनं ययौ ॥१०६॥
ददर्श परमं क्षेत्रं मुक्तिदं भुवि दुर्लभम्। दक्षिणस्योदधेस्तीरे सर्वकामफलप्रदम् ॥१०७॥
सुरम्यं वालुकाकीर्णं केतकीवनशोभितम्। नानाद्रुमलताकीर्णं नानापक्षिरुतं शिवम् ॥१०८॥
सर्वत्र सुखसंचारं सर्वर्तुकुसुमान्वितम्। सर्वसौख्यप्रदं नृणां धन्यं सर्वगुणाकरम् ॥१०९॥
भृग्वाद्यैः सेवितं पूर्वं मुनिसिद्धवरैस्तथा। गन्धर्वैः किंनरैर्यक्षैस्तथाऽन्यैर्मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥११०॥
ददर्श च हरिं तत्र देवैः सर्वैरलंकृतम्। ब्राह्मणाद्यैस्तथा वर्णैराश्रमस्थैर्निषेवितम् ॥१११॥
दृष्ट्वैव स तदा[1] क्षेत्रं देवं च पुरुषोत्तमम्। कृतकृत्यमिवाऽऽत्मानं मेने स मुनिसत्तमः ॥११२॥
तत्रैकाग्रमना[2] भूत्वा चकाराऽऽराधनं हरेः। ब्रह्मपारमयं कुर्वञ्जपमेकाग्रमानसः ॥
ऊर्ध्वबाहुर्महायोगी स्थित्वाऽसौ मुनिसत्तमः ॥११३॥

निकल कर आकाश-मार्ग से गमन करती हुई तरु पल्लवों से पसीने को पोंछ डाला। एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर होती हुई वह जाती थी और घर्मजल को वृक्ष पल्लवों से पोंछ देती थी। ऋषि ने उसके शरीर में जो गर्भाधान किया था वह गर्भ पसीना बन कर उसके अंगों से निकल गया। वृक्षों ने उस गर्भ को ग्रहण कर लिया और वायु ने उसे एकत्रित कर दिया। चन्द्रमा अपनी किरणों द्वारा उसे पालने लगे। तब वह धीरे-धीरे बढ़ने लगा। उसी गर्भ से वृक्षों की चारुनेत्रा मारिषा नामक कन्या उत्पन्न हुई, जो प्रचेताओं की पत्नी तथा दक्ष की माता बनी। भगवान् कण्डु भी तप के क्षय हो जाने पर पुरुषोत्तम नामक विष्णु-क्षेत्र को चले गये॥९९-१०६॥ दक्षिण समुद्र के तट पर उन्होंने मोक्षदायक, पृथ्वी पर दुर्लभ, अखिल कामनाओं के फल को देने वाले, मनोहर, बालुका से परिपूर्ण केतकीवन से सुशोभित, अनेक वृक्ष-लताओं से व्याप्त, नाना पक्षियों से शब्दित तथा कल्याणकारी क्षेत्र को देखा। वहाँ सर्वत्र सुख का साम्राज्य था। सब ऋतुओं में होने वाले पुष्प खिले हुए थे। मनुष्यों को समस्त सुख प्राप्त थे। वह क्षेत्र माना निखिल गुणों की निधि था। पहले भृगु आदि मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष तथा अन्य मोक्षाभिलाषियों ने उस क्षेत्र की सेवा की थी। वहाँ पर कण्डु ने देवगणों से अलंकृत तथा ब्राह्मण आदि वर्णों एवं आश्रमवासियों से सुसेवित हरि को देखा। पुरुषोत्तम देव तथा क्षेत्र को देखते ही वे अपने को कृत-कृत्य मानने लगे। वहाँ एकाग्रचित्त होकर हरि की आराधना करने लगे। उन्होंने भुजाओं को उठाकर एकाग्र मन से ब्रह्मपार मन्त्र का जप करते हुए योगाभ्यास करना आरम्भ कर दिया॥१०७-११३॥

१ख. ०दा देव क्षेत्रे वै पुरुषोत्तमे। कृ०। २क ख. ०मतिर्भूत्वा।

मुनय ऊचुः

ब्रह्मपारं [1]मुने श्रोतुमिच्छामः परमं [2]शुभम्। जपता कण्डुना देवो येनाऽराध्यत केशवः॥११४॥

व्यास उवाच

पारं परं विष्णुरपारपारः, परः परेभ्यः [3]परमात्मरूपः।
स ब्रह्मपारः परपारभूतः, परः पराणामपि पारपारः॥११५॥
स कारणं [4]कारणसंश्रितोऽपि, तस्यापि हेतुः [5]परहेतुहेतुः।
[6]कार्योऽपि चैव सह कर्मकर्तृ . . . . [7]रूपैरनेकैरवतीह [8]सर्वम्॥११६॥
ब्रह्म प्रभुर्ब्रह्म स सर्वभूतो, ब्रह्म प्रजानां पतिरच्युतोऽसौ।
ब्रह्माव्ययं नित्यमजं स विष्णुरपक्षयाद्यैरखिलैरसङ्गः॥११७॥
ब्रह्माक्षरमजं नित्यं यथाऽसौ पुरुषोत्तमः। तथा रागादयो दोषाः प्रयान्तु प्रशमं मम॥११८॥

व्यास उवाच

श्रुत्वा तस्य [9]मुनेर्जाप्यं ब्रह्मपारं द्विजोत्तमाः। भक्तिं च परमां ज्ञात्वा सुदृढां पुरुषोत्तमः॥११९॥
प्रीत्या स परया देवस्तदाऽसौ भक्तवत्सलः। गत्वा तस्य [10]समीपं तु प्रोवाच मधुसूदनः॥१२०॥
मेघगम्भीरया वाचा दिशः संनादयन्निव। आरुह्य गरुडं विप्रा विनताकुलनन्दनम्॥१२१॥

मुनियों ने कहा—मुने! हम परम पवित्र ब्रह्मपार मन्त्र के विषय मे सुनना चाहते हैं, जिसका जप करते हुए कण्डु ने केशव की आराधना की थी॥११४॥

व्यास बोले—विष्णु पारपर, अपारपार, परो से भी परे तथा परमात्मा स्वरूप हैं। वे ब्रह्मपार, परपारभूत, परा से भी परे तथा पारपार हैं॥११५॥ वे कारण, कारणो के आश्रय, कारणो के कारण तथा दूसरो के कारणो के कारण हैं। वे कार्य, कर्म, कर्ता होते हुए भी अनेक रूपो से सब की रक्षा करते हैं। वे ब्रह्म, प्रभु, सर्वभूतमय तथा प्रजाओ के स्वामी हैं। वे अविनाशी, नित्य, अजन्मा, विष्णु तथा क्षय आदि से रहित हैं। जैसे पुरुषोत्तम भगवान् ब्रह्म, अविनाशी, अजन्मा तथा नित्य हैं वैसे मेरे राग आदि दोष शान्त हो जायें॥११६-११८॥

व्यास बोले—द्विजवर! मुनि के ब्रह्मपार मन्त्र का जप सुनकर तथा अत्यन्त दृढ भक्ति जानकर भक्तवत्सल भगवान् परम प्रसन्न हो गये। तब विनता के वंश को बढ़ाने वाले गरुड पर चढ़कर मधुसूदन मुनि के समीप जाकर मेघ के समान गम्भीर वाणी से दिशाओ को शब्दित करते हुए कहने लगे॥११९-१२१॥

---

१ मुने। २क स स्तवम्। ३ग परमार्थरूपी। ४क. ०णतरततो०। ५स ०रपारहे०। ६क ग कार्येषु चैव स०। ७क. स ०रशेषैर०। ८क विष्णु। ९क. ०नेर्वाक्यं ब्र०। स ०नेर्जप्य। १०ग समीपे।

श्रीभगवानुवाच

मुने ब्रूहि परं कार्यं यत्ते मनसि वर्तते। वरदोऽहमनुप्राप्तो वरं वरय सुव्रत ॥१२२॥
श्रुत्वैवं वचनं तस्य देवदेवस्य चक्रिणः। चक्षुरुन्मील्य सहसा ददर्श पुरतो हरिम् ॥१२३॥
अतसीपुष्पसंकाशं पद्मपत्रायतेक्षणम्। शङ्खचक्रगदापाणिं मुकुटाङ्गदधारिणम् ॥१२४॥
चतुर्बाहुमुदाराङ्गं पीतवस्त्रधरं शुभम्। श्रीवत्सलक्ष्मसंयुक्तं वनमालाविभूषितम् ॥१२५॥
सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वरत्नविभूषितम्। दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गं दिव्यमाल्यविभूषितम् ॥१२६॥
ततः स विस्मयाविष्टो रोमाञ्चिततनूरुहः। दण्डवत्प्रणिपत्योर्व्यां प्रणाममकरोत्तदा ॥१२७॥
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः। इत्युक्त्वा [1]मुनिशार्दूलास्तं स्तोतुमुपचक्रमे ॥१२८॥

कण्डुरुवाच

नारायण हरे कृष्ण श्रीवत्साङ्क जगत्पते। [2]जगद्बीज जगद्धाम जगत्साक्षिन्नमोऽस्तु ते ॥१२९॥
अव्यक्त जिष्णो[3] प्रभव प्रधानपुरुषोत्तम। पुण्डरीकाक्ष गोविन्द[4] लोकनाथ नमोऽस्तु ते ॥१३०॥
हिरण्यगर्भ श्रीनाथ पद्मनाथ सनातन। भूगर्भ ध्रुव ईशान हृषीकेश नमोऽस्तु ते ॥१३१॥
अनाद्यन्तामृताजेय जय त्वं जयतां वर। अजिताखण्ड श्रीकृष्ण श्रीनिवास नमोऽस्तु ते ॥१३२॥
पर्जन्यधर्मकर्ता च दुष्पार दुरधिष्ठित। दुःखार्तिनाशन हरे जलशायिन्नमोऽस्तु ते ॥१३३॥

श्री भगवान् बोले—मुने! तुम्हारे मन मे जो हो सो बोलो। मैं तुम्हे वर देने आया हूँ। सुव्रत! वर मागो। देवो के देव तथा चक्रधारी विष्णु के वचन को सुनकर मुनि ने जब आँखें खोली तो सामने अलसी-पुष्प के समान वर्ण वाले, कमलपत्र के समान दीर्घ नेत्र वाले, हाथो मे शख चक्र तथा गदा धारण करने वाले मुकुट तथा अगद पहिनने वाले, चार भुजा वाले, सुडौल अग वाले, पीतवस्त्रधारी, पवित्र, श्रीवत्स चिह्न से युक्त, वनमाला से विभूषित, सर्वलक्षणसम्पन्न, समस्त रत्नो से आभूषित दिव्य चन्दन से लिप्ताग और दिव्य माला से सुशोभित हरि को देखा। भूमि पर दण्ड की तरह गिर कर मुनि ने केशव को प्रणाम किया और 'आज मेरा जन्म सफल हुआ आज मेरा तप सफल हुआ' यह कहकर उनकी स्तुति प्रारम्भ की ॥१२२-१२८॥

कण्डु बोले—नारायण! हरे! श्रीवत्सचिह्न से युक्त! जगत्पते! जगद्बीज! जगद्धाम! जगत्साक्षिन्! आपको नमस्कार है ॥१२९॥ अव्यक्त! जयशील! आदिकारण! प्रधान! पुरुषोत्तम! कमललोचन! गोविन्द! लोकनाथ! आपको नमस्कार है ॥१३०॥ हिरण्यगर्भ! लक्ष्मीनाथ! पद्मनाथ! सनातन! भूगर्भ! ध्रुव! ईशान! हृषीकेश! आपको नमस्कार है ॥१३१॥ अनादि! अनन्त! अमर! अजेय! विजेताओ मे श्रेष्ठ! आपकी जय हो। अजित! अखण्ड! श्रीकृष्ण! श्रीनिवास! आपको नमस्कार है ॥१३२॥ मेघ के धर्मों के कर्ता! दुष्पार! दुराश्रय! दुःख तथा आर्ति के नाशक! हरे! जलशायिन्! आपको नमस्कार

१क. ख. ०ला स्तो०। २ख ०गद्धातर्जग०। ३क. विष्णो। ४क. ०न्द जगन्नाथ जगत्पते।

भूतपाव्यक्त भूतेश भूततत्त्वैरनाकुल। भूताधिवास भूतात्मन्भूतगर्भ नमोऽस्तु ते ॥१३४॥
यज्ञयज्वन्यज्ञधर यज्ञधाताऽभयप्रद। यज्ञगर्भ हिरण्याङ्ग [1]पृश्निगर्भ नमोऽस्तु ते ॥१३५॥
क्षेत्रज्ञ क्षेत्रभृत्क्षेत्री क्षेत्रहा क्षेत्रकृद्वशी। क्षेत्रात्मन्क्षेत्ररहित क्षेत्रस्रष्टे नमोऽस्तु ते ॥१३६॥
गुणालय गुणावास गुणाश्रय गुणावह। गुणभोक्तृ गुणाराम गुणत्यागिन्नमोऽस्तु ते ॥१३७॥
त्व विष्णुस्त्वं हरिश्चक्री त्व जिष्णुस्त्व जनार्दन.। त्वं भूतस्त्वं वषट्कारस्त्वं भव्यस्त्व भवत्प्रभुः ॥१३८॥
त्व भूतकृत्त्वमव्यक्तस्त्व भवो भूतभृद्भवान्। त्वं भूतभावनो देवस्त्वामाहुरजमीश्वरम् ॥१३९॥
त्वमनन्त. कृतज्ञस्त्व प्रकृतिस्त्व वृषाकपि'। त्वं रुद्रस्त्वं दुराधर्षस्त्वममोघस्त्वमीश्वरः ॥१४०॥
त्व विश्वकर्मा [2]जिष्णुस्त्व त्व शभुस्त्व वृषाकृतिः। त्व शकरस्त्वमुशना त्वं सत्यं त्वं तपो जनः ॥१४१॥
त्व विश्वजेता[3] त्व शर्म त्व शरण्यस्त्वमक्षरम्। त्वं शंभुस्त्वं स्वयंभूश्च त्वं ज्येष्ठस्त्वं परायणः ॥१४२॥
[4]त्वमादित्यस्त्वमोकारस्त्व प्राणस्त्वं तमिस्रहा। त्वं पर्जन्यस्त्वं प्रथितस्त्वं वेधास्त्वं सुरेश्वरः ॥१४३॥
त्वमृग्यजु. साम चैव त्वमात्मा समतो भवान्। त्वमग्निस्त्वं च पवनस्त्वमापो वसुधा भवान् ॥१४४॥
त्व स्रष्टा त्व तथा भोक्ता होता त्व च हविः क्रतुः। त्वं प्रभुस्त्वं विभुः श्रेष्ठस्त्व लोकपतिरच्युतः ॥१४५॥
त्व सर्वदर्शन श्रीमांस्त्व सर्वदमनोऽरिहा। त्वमहस्त्व तथा रात्रिस्त्वामाहुर्वत्सरं [5]बुधाः ॥१४६॥
त्व कालस्त्व कला काष्ठा त्वं मुहूर्तः क्षणा लवाः। त्व बालस्त्वं तथा वृद्धस्त्वं पुमान्स्त्री नपुंसकः ॥१४७॥
त्व विश्वयोनिस्त्व चक्षुस्त्व वेदाङ्ग[6]स्त्वमव्ययः। त्वं वेदवेदस्त्वं धाता विधाता त्व समाहित. ॥१४८॥

है ॥१३३॥ भूतरक्षक। अव्यक्त। भूतेश। पचमहाभूतो के तत्वो से अव्यग्र। भूताधिवास। भूतात्मन्। भूतगर्भ। आपको नमस्कार है ॥१३४॥ यज्ञवर्ता। यज्ञधर। यज्ञधाता। अभयदाता। यज्ञगर्भ। हिरण्याग। पृश्निगर्भ। आपको नमस्कार है ॥१३५॥ क्षेत्रज्ञ। क्षेत्रभर्ता। क्षेत्री। क्षेत्रत्यागी। क्षेत्रकर्ता। वशी। क्षेत्रात्मा। क्षेत्ररहित। क्षत्रस्रष्टा। आपको नमस्कार है ॥१३६॥ गुणालय। गुणावास। गुणाश्रय। गुणावह। गुणभोक्ता। गुणाराम। गुणत्यागी। आपको नमस्कार है ॥१३७॥ आप विष्णु है। आप हरि हैं। आप चक्रधारी है। आप जयशील है। आप जनार्दन हैं। आप भूत, वषट्कार, भव्य, प्रभु, भूतकर्ता, अव्यक्त, भव, भूतभर्ता तथा भूतो के कारण हैं। आपको अजन्मा तथा ईश्वर कहा गया है ॥१३८-१३९॥ आप अनन्त, कृतज्ञ, प्रकृति, वृषाकपि, रुद्र, अत्युग्र, अमोघ, विश्वकर्मा, शकर, शुक्र, सत्य, तप, जन, विश्वजेता, कल्याण, शरण्य, अक्षर, स्वयम्भू, ज्येष्ठ परायण, आदित्य, ओकार प्राण, सूर्य, मेघ, प्रथित, वेधा, सुरेश्वर, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, आत्मा, सम्मत, अग्नि, वायु, जल पृथ्वी, स्रष्टा भोक्ता, होता, हवि, यज्ञ, प्रभु, विभु, श्रेष्ठ, लोकपति, अच्युत, सर्वदर्शन, श्रीमान्, सर्वदमन, शत्रुनाशन, दिन तथा रात्रि हैं। पण्डितो ने आपको वर्ष कहा है ॥१४०-१४६॥ आप काल, कला, काष्ठा, मुहूर्त, क्षण, लव बालक वृद्ध, पुरुष, स्त्री, नपुसक, विश्वयोनि, नेत्र, स्थाणु, शुचिश्रवा, शाश्वत, अजित, इन्द्र, उत्तम, विश्व

१ख पृथ्वीग०। २क ०ष्णुस्त्वमश्विनौ त्व जनार्दन। त्व। ३क ख ०श्वरेतास्त्व श०। ४ख त्वमाकाशस्त्व। ५ख द्विजा। ६ग ०दान्तस्त्वम०।

त्व जलनिधिरामूल त्व धाता त्व पुनर्वसु । त्व वैद्यस्त्व धृतात्मा च त्वमतीन्द्रियगोचर ॥१४९॥
त्वमग्रणीर्ग्रामणीस्त्व त्व सुपर्णस्त्वमादिमान। त्व सग्रहस्त्व सुमहत्त्व धृतात्मा त्वमच्युत ॥१५०॥
त्व यमस्त्व च नियमस्त्व[1] प्राशुस्त्व चतुर्भुज । त्वमेवान्नान्तरात्मा त्व परमात्मा त्वमुच्यते ॥१५१॥
त्व गुरुस्त्व गुरुतमस्त्व[2] वामस्त्व प्रदक्षिण । त्व पिप्पलस्त्वमगमस्त्व व्यक्तस्त्व प्रजापति ॥१५२॥
हिरण्यनाभस्त्व देवस्त्व शशी त्व प्रजापति । अनिर्देश्यवपुस्त्व वै त्व यमस्त्व सुरारिहा ॥१५३॥
त्व च सकर्पणो देवस्त्व कर्ता त्व सनातन । त्व वासुदेवोऽमेयात्मा त्वमेव गुणवर्जित ॥१५४॥
त्व ज्येष्ठस्त्व वरिष्ठस्त्व त्व सहिष्णुश्च माधव । सहस्रशीर्षा त्व देवस्त्वमव्यक्त सहस्रदृक ॥१५५॥
सहस्रपादस्त्व देवस्त्व विराटत्व सुरप्रभु । त्वमेव तिष्ठसे भूयो देवदेव दशाङ्गुल ॥१५६॥
यदभूत तत्त्वमवोक्त पुरुष शक्र उत्तम । यदभाव्य तत्त्वमीशानस्त्वमृतस्त्व तथाऽमृत ॥१५७॥
त्वत्तो रोहत्यय लोको महीयास्त्वमनुत्तम । त्व ज्यायान्पुरुषस्त्व च त्व दव दशधा स्थित ॥१५८॥
विश्वभूतश्चतुर्भागो नवभागोऽमृतो दिवि । [3]नवभागोऽन्तरिक्षस्थ[4] पौरुषेय[5] सनातन[6] ॥१५९॥
भागद्वय च भूसस्थ चतुर्भागोऽप्यभूदिह । त्वत्तो यज्ञा सभवन्ति जगतो[7] वृष्टिकारणम ॥१६०॥
त्वत्तो विराटसमुत्पन्नो जगतो हृदि य पुमान । सोऽतिरिच्यत भूतेभ्यस्तजसा यशसा श्रिया ॥१६१॥
त्वत्त सुराणामाहार पृषदाज्यमजायत । ग्राम्यारण्याश्चौषधयस्त्वत्त पशुमृगादय ॥१६२॥
ध्येयध्यानपरस्त्व च कृतवानसि चौषधी । त्व देवदेव सप्तास्य कालाख्या दीप्तविग्रह ॥१६३॥

को सुख देने वाले बेदाग अव्यय वेदो के वेद धाता विधाता समाहित समुद्र पुनवसु नक्षत्र वद्य धृतात्मा इद्रियो से परे अग्रनेता ग्रामनेता सुपण आदिमान् सग्रह अतिमहान यम नियम पाशु चतुभुज अन्न अन्तरात्मा परमात्मा गुरु गुरुतम वाम प्रदक्षिण पिप्पल अगम व्यक्त प्रजापति हिरण्यनाभ देव चद्रमा अनिर्दिष्ट शरीर वाले राक्षस नाशन बलराम कर्ता सनातन वासुदेव अमितात्मा गुणवर्जित ज्येष्ठ वरिष्ठ सहिष्णु माधव सहस्र सिर वाले सहस्र नेत्र वाले सहस्र पर वाले विराट तथा देवो के प्रभु हैं। देवदेव ! दशागुल परिमित देव भी आप ही है ॥१४७ १५७॥ भूत आप ही हैं। पुरुषोत्तम शक्र आप ही को कहा गया है। भविष्य ईशान तथा अमृत भी आप ही हैं। आप से इस लोक की उत्पत्ति होती है। आप अत्यन्त महान तथा सबसे उत्तम हैं। हे देव ! आप ज्येष्ठ पुरुष तथा दस प्रकार से स्थित हैं॥१५८ १५९॥ आप विश्व मे चार भागो से स्वर्ग मे नौ भागो से आकाश मे भी नौ भागो से और पृथ्वी पर दो एवम चार भागो से भी अवस्थित है। आप सनातन पुरुष हैं। ससार मे वृष्टि के कारण यज्ञ आप से उत्पन्न होते हैं। आप से ही विराट उत्पन्न हुए हैं, जो ससार के हृदय मे पुरुष रूप से विद्यमान हैं। वे तेज यश तथा शोभा मे भूतो से बढकर हैं। आपसे देवताओ का आहार—दधिसिक्त घृत—उत्पन्न हुआ। ग्रामीण एवम् ओषधियाँ तथा पशु मृग आदि आपसे उत्पन्न हुए। आप ध्येय तथा ध्यानपरायण हैं। ओषधियो का निर्माण आपने

१ख ०स्त्व पशु०। २क ख ०स्त्व बालस्त्व। ३क ०भागान्त०। ४क ग ०क्षस्था पौ०। ५क ग ०पया स०। ६क ग ०तना। भा०। ७ख ०तो वृष्टि०।

जङ्गमाजङ्गम सर्वं जगदेतच्चराचरम्। त्वत्त सर्वमिद जात त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१६४॥
अनिरुद्धस्त्व माधवस्त्व प्रद्युम्न सुरारिहा। देव सर्वसुरश्रेष्ठ सर्वलोकपरायण ॥१६५॥
त्राहि मामरविन्दाक्ष नारायण नमोऽस्तु ते। नमस्ते भगवन्विष्णो नमस्ते पुरुषोत्तम ॥१६६॥
नमस्ते सर्वलोकेश नमस्ते कमलालय। गुणालय नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु गुणाकर ॥१६७॥
वासुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु सुरोत्तम। जनार्दन नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु सनातन ॥१६८॥
नमस्ते योगिना गम्य योगावास नमोऽस्तु ते। गोपते श्रीपते विष्णो नमस्तेऽस्तु मरुत्पते ॥१६९॥
जगत्पते जगत्सूते नमस्ते ज्ञानिना पते। दिवस्पते नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु महीपते ॥१७०॥
नमस्ते मधुहन्त्रे च नमस्ते पुष्करेक्षण[1]। कैटभघ्न नमस्तेऽस्तु सुब्रह्मण्य नमोऽस्तु ते ॥१७१॥
नमोऽस्तु ते महामीन श्रुतिपृष्ठधराच्युत। समुद्रसलिलक्षोभ पद्मजाह्लादकारिणे ॥१७२॥
अश्वशीर्ष महाघोण महापुरुषविग्रह। मधुकैटभहन्त्रे च नमस्ते तुरगानन ॥१७३॥
महाकमठभोगाय पृथिव्युद्धरणाय च। विधृताद्रिस्वरूपाय महाकूर्माय ते नम ॥१७४॥
नमो महावराहाय पृथिव्युद्धारकारिणे। नमश्चाऽऽदिवराहाय विश्वरूपाय वेधसे[2] ॥१७५॥
नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय मुख्याय च वराय च। परमाणुस्वरूपाय योगिगम्याय ते नम ॥१७६॥

ही किया। देवो के देव! आप देदीप्यमान शरीरधारी काल पुरुष है। स्थावर जगम या चराचर रूप यह सम्पूर्ण जगत आपसे उत्पन्न हुआ है तथा आप मे प्रतिष्ठित है। आप अनिरुद्ध माधव प्रद्युम्न तथा राक्षसनाशन हैं॥१६०-१६५½॥ देव! सकल देवो मे श्रेष्ठ! समस्त-लोक परायण! मेरी रक्षा करें! कमलाक्ष! नारायण! आपको नमस्कार है। भगवन्! विष्णो! पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। समस्त लोको के ईश्वर! आपको नमस्कार है। कमलालय! आपको नमस्कार है। गुणालय! आपको नमस्कार है। गुणाकर! आपको नमस्कार है॥१६६-१६८॥ वासुदेव! आपको नमस्कार है। सुरोत्तम! आपको नमस्कार है। जनार्दन! आपको नमस्कार है। सनातन! आपको नमस्कार है॥१६९॥ योगियो के प्राप्य! आपको नमस्कार है! योगावास! आपको नमस्कार है। इन्द्रियपते! लक्ष्मीपते! विष्णो! आपको नमस्कार है। मरुत्पते! जगत्पते! जगदुत्पादक! आपको नमस्कार है। ज्ञानियो के स्वामी! स्वर्ग के स्वामी! आपको नमस्कार है। पृथ्वीपते! आपको नमस्कार है ॥१७० १७१॥ मधुनाशन! आपको नमस्कार है। कमललोचन! आपको नमस्कार है। कैटभ के मारने वाले! आपको नमस्कार है। सुब्रह्मण्य! आपको नमस्कार है॥१७२॥ महामत्स्य! आपको नमस्कार है। वेदो को पीठ पर धारण करने वाले! आपको नमस्कार है। समुद्र के जल को सक्षुब्ध करने वाले! ब्रह्मा को प्रसन्न करने वाले! आपको नमस्कार है। अश्व के समान शिर वाले! महानासिका वाले! महापुरुष का शरीर धारण करने वाले! मधु-कैटम-नाशन! आपको नमस्कार है। अश्व के समान मुख वाले! महाकच्छप का रूप धारण करने वाले! पृथिवी के उद्धारक! पर्वतस्वरूप! महाकूर्मस्वरूप! आपको नमस्कार है। महावराहस्वरूप! आपको नमस्कार है। आदिवराहरूप! विश्वरूप! ब्रह्मन्! आपको नमस्कार है। अनन्त! सूक्ष्म! मुख्य! श्रेष्ठ!

---

[1] क तुरगानन। [2] ख ०से। जगन्नाथाय सू०।

तस्मै नमः कारणकारणाय, योगीन्द्रवृत्तनिलयाय सुदुर्विदाय ।
क्षीरार्णवाश्रितमहाहिसुतल्पगाय, तुभ्यं नमः कनकरत्नसुकुण्डलाय ॥१७७॥

व्यास उवाच

इत्थं स्तुतस्तदा तेन प्रीतः प्रोवाच माधवः। क्षिप्रं ब्रूहि मुनिश्रेष्ठ मत्तो यदभिवाञ्छसि ॥१७८॥

कण्डुरुवाच

संसारेऽस्मिञ्जगन्नाथ दुस्तरे लोमहर्षणे। अनित्ये दुःखबहुले कदलीदलसंनिभे ॥१७९॥
निराश्रये निरालम्बे जलबुद्बुदचञ्चले[1]। सर्वोपद्रवसंयुक्ते दुस्तरे चातिभैरवे ॥१८०॥
भ्रमामि सुचिरं कालं मायया मोहितस्तव। न[2] चान्तमभिगच्छामि विषयासक्तमानसः ॥१८१॥
त्वामहं चाद्य देवेश संसारभयपीडितः। गतोऽस्मि शरणं कृष्ण मामुद्धर भवार्णवात् ॥१८२॥
गन्तुमिच्छामि परमं पदं यत्ते सनातनम्। प्रसादात्तव देवेश पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१८३॥

श्रीभगवानुवाच

भक्तोऽसि मे मुनिश्रेष्ठ मामाराधय नित्यशः। मत्प्रसादाद्ध्रुवं मोक्षं प्राप्स्यसि त्वं समीहितम् ॥१८४॥
मद्भक्ताः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातिजाः। प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं किं पुनस्त्वं द्विजोत्तम ॥१८५॥
श्वपाकोऽपि च मद्भक्तः सम्यक्श्रद्धासमन्वितः। प्राप्नोत्यभिमतां सिद्धिमन्येषां[3] तत्र का कथा ॥१८६॥

परमाणुस्वरूप! योगिगम्य! आपको नमस्कार है॥१७३-१७७॥ कारणों के कारण! योगीन्द्रों की वृत्ति के आश्रय! अत्यन्त दुर्ज्ञेय! क्षीरसमुद्रस्थित महासर्परूपी शय्या पर सोने वाले! सुवर्ण एवम् रत्न के कुण्डल पहिनने वाले! आपको नमस्कार है॥१७८॥

व्यास बोले—इस प्रकार स्तुति करने पर माधव प्रसन्न होकर कहने लगे—'मुनिश्रेष्ठ! तुम जो चाहते हो, वह शीघ्र मुझसे मांगो'॥१७९॥

कण्डु बोले—जगन्नाथ! दुष्पार, रोमाञ्चकारी, अनित्य, विविध दुःखों से युक्त, केले के पत्तों के समान स्थित, निराश्रय, निरालम्ब, पानी के बुलबुले के समान चञ्चल, अखिल उपद्रवों से युक्त तथा अति भयंकर इस संसार में आपकी माया से मोहित होकर मैं चिरकाल से चक्कर काट रहा हूँ। मन के विषय में आसक्त होने के कारण मैं इसका अन्त नहीं पा रहा हूँ। देवेश! संसार के भय से पीड़ित होकर आज मैं आपकी शरण में प्राप्त हूँ। कृष्ण! संसाररूपी समुद्र से मेरा उद्धार कीजिये। देवों के स्वामी! आपकी कृपा से मैं आपके सनातन परम पद को प्राप्त करना चाहता हूँ, जहाँ से फिर लौटना न पड़े॥१८०-१८४॥

श्रीभगवान् बोले—मुनिवर! तुम मेरे भक्त हो। नित्य मेरी आराधना करो। मेरी कृपा से तुम निश्चय अभिलषित मोक्ष को प्राप्त करोगे। मेरे भक्त क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र तथा चाण्डाल तक भी परा सिद्धि को प्राप्त करते

1क. ०दसनिभे। ख०। 2क. न शान्तिम०। 3ग. ०न्येषामत्र।

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा तु त विप्रा स देवो भक्तवत्सल । दुर्विज्ञयगतिर्विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥१८७॥
गत तस्मिन्मुनिश्रेष्ठा कण्डु सहृष्टमानस । सर्वान्कामान्परित्यज्य स्वस्थचित्तोऽभवत्पुन ॥१८८॥
सर्वेंद्रियाणि सयम्य निर्ममो निरहकृति । एकाग्रमानस सम्यग्ध्यात्वा त पुरुषोत्तमम ॥१८९॥
निर्लेप निर्गुण शान्त सत्तामात्रव्यवस्थितम । अवाप परम मोक्ष सुराणामपि दुर्लभम ॥१९०॥
य पठच्छृणुयाद्वाऽपि कथा कण्डोर्महात्मन । विमुक्त सर्वपापभ्य स्वर्गलोक स गच्छति ॥१९१॥
एव मया मुनिश्रेष्ठा कर्मभूमिरुदाहृता । मोक्षक्षेत्र च परम देव च पुरुषोत्तमम् ॥१९२॥

य पश्यन्ति विभु स्तुवन्ति वरद ध्यायन्ति मुक्तिप्रद ।
भक्त्या श्रीपुरुषोत्तमाख्यमजर ससारदु खापहम ॥१९३॥
ते भुक्त्वा मनुजेन्द्रभोगममला स्वर्गे च दिव्य सुख ।
पश्चाद्यान्ति समस्तदोषरहिता स्थान हरेरव्ययम् ॥१९४॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्म स्वयभुऋषिसवादे कण्डोरुपाख्याननिरूपण नामाष्ट सप्तत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१७८॥

है। तुम तो फिर ब्राह्मण हो। पूर्ण श्रद्धालु भक्त चाण्डाल भी अभिमत सिद्धि को प्राप्त करता है औरो की तो क्या ही क्या? ॥१८५ १८७॥

व्यास बोले—विप्रवृन्द! भक्तवत्सल तथा दुर्विज्ञय विष्णु इतना कहकर वहीं अन्तर्धान हो गए। उनके चले जाने पर अत्यन्त प्रसन्न चित्त वाले कण्डु समस्त कामो को छोडकर पुन स्वस्थचित्त हो गए। निखिल इन्द्रियो का सयमन कर निर्मम निरहकार तथा एकाग्रचित्त होकर निर्लेप निर्गुण शान्त तथा सत्तामात्र से अवस्थित पुरुषोत्तम का सम्यक ध्यान करके उन्होने देवदुर्लभ मोक्ष को प्राप्त किया। महात्मा कण्डु की कथा को जो पढ़ेगा या सुनेगा वह समस्त पापो से मुक्त होकर स्वर्ग जायगा। मुनिवर! इस प्रकार मैंने कर्मभूमि मोक्षक्षेत्र तथा पुरुषोत्तम देव का वर्णन कर दिया। जो सर्वव्यापक वरदायक मोक्षदायक अजर तथा ससार-दु खनाशन श्री पुरुषोत्तम के भक्तिपूर्वक ध्यान स्नान तथा स्तुति करते है व मनुजेन्द्र निर्मल तथा समस्त दोषो से रहित होकर स्वर्ग में दिव्य सुख का उपभोग करके पश्चात् हरि के अविनाशी स्थान को प्राप्त करते है ॥१८८ १९४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे ब्रह्मा और ऋषियो के सवाद-प्रकरण मे कण्डु का उपाख्यान-निरूपण नामक एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७८॥

१ग •सा विशद्रिय। स०। २क स •ध्यानात्मा। ३क गुणैरे।

अथोनाशीत्यधिकशततमोऽध्याय

वादरायण प्रति श्रीकृष्णावतारविपयका मुनीना प्रश्न

लोमहर्षण उवाच

व्यासस्य वचन श्रुत्वा मुनय 'सयतेन्द्रिया । प्रीता बभूवु सहृष्टा विस्मिताश्च पुन पुन ॥१॥

मुनय ऊचु

अहो भारतवर्षस्य त्वया सकीर्तिता गुणा । तद्वच्छ्रीपुरुषाख्यस्य क्षेत्रस्य पुरुषोत्तम ॥२॥
'विस्मयो हि न चैकस्य श्रुत्वा माहात्म्यमुत्तमम । पुरुषाख्यस्य क्षेत्रस्य प्रीतिश्च वदता वर ॥३॥
चिरात्प्रभृति चास्माक सशयो हृदि वतते । त्वदृते सशयस्यास्य छेत्ता नान्योऽस्ति भूतले ॥४॥
उत्पत्ति बलदेवस्य कृष्णस्य च महीतले । भद्रायाश्चैव कात्स्न्र्येन पृच्छामस्त्वा महामुने ॥५॥
किमर्थ तौ समुत्पन्नौ कृष्णसकर्षणावुभौ । वसुदेवसुतौ वीरौ' स्थितौ नन्दगृहे मुने ॥६॥
नि सारे मृत्युलोकेऽस्मिन् 'दु खप्रायेऽतिचञ्चले । जलबुद्बुदसकाशे भैरवे लोमहर्षणे ॥७॥
विण्मूत्रपिच्छल कष्ट सकट दु खदायकम । कथ घोरतर तेषा गर्भवासमरोचत ॥८॥

अध्याय १७९

श्रीकृष्णावतार के सबध मे व्यास जी से मुनियो का प्रश्न

सूत बोले—व्यास के वचन को सुनकर जितेंद्रिय मुनिगण परम हर्षित तथा आश्चय चकित हुए ॥१॥

मुनियो ने कहा—पुरुपपुगव ! अहो ! भारतवष का और उसी तरह श्रीपुरुष नामक क्षत्र का गुण वणन आपने कर दिया ॥२॥ पर वक्ताओ मे श्रेष्ठ एक पुरुपक्षत्र के ही उत्तम माहात्म्य को सुनकर हमे सतोष तथा विस्मय नही हो रहा है ॥३॥ क्योकि चिरकाल से हमारे हृदय मे अनेक सशय हो रहे हैं जिनका निराकरण बिना आपके पृथ्वी पर कोई नही कर सकता है ॥४॥ महामुने ! बलदेव कृष्ण तथा सुभद्रा की उत्पत्ति के विषय मे हम विस्तार पूवक सुनना चाहते हैं ॥५॥ किसलिये कृष्ण तथा बलराम उत्पन्न हुए और क्यों दोनो वीर वसुदेव के पुत्र होकर नन्द के घर मे पाले-पोसे गये ? ॥५॥ साररहित दु खयुक्त अत्यन्त चञ्चल पानी के बुल्बुले के समान अस्थिर भयकर तथा रोमाञ्चकारी इस मृत्युलोक म गभवास विष्ठा तथा मूत्र से युक्त सकटमय दु खदायक और महा भयंकर माना गया है। तब फिर यह कृष्ण को कैसे अच्छा लगा ? वक्ताओ मे श्रेष्ठ ! उन्होने पृथ्वी पर जन्म लेकर कौन से कम किये ? उन कर्मों को विस्तारपूवक हमे बतलाइये ॥६ ८॥ उनके अदभुत तथा लोकोत्तर सम्पूण

१ग सजिते० । २ग विस्मये । ३क ०रौ सा च न० । ख ०रौ स च तत्र गृ० । ४ख ०दु खे पायेऽति० ।

यानि कर्माणि चक्रुस्ते समुत्पन्ना महीतले। विस्तरेण मुने तानि ब्रूहि नो[1] वदतां वर ॥९॥
समग्रं चरितं तेषामद्भुतं चातिमानुषम्। कथं स भगवान्देवः सुरेशः सुरसत्तमः ॥१०॥
वसुदेवकुले धीमान्वासुदेवत्वमागत। अमरैश्चाऽऽवृतं पुण्यं पुण्यकृद्भिरलंकृतम् ॥११॥
देवलोकं किमुत्सृज्य मर्त्यलोक इहाऽऽगत। देवमानुषयोर्नेता द्योर्भुवः प्रभवोऽव्ययः ॥१२॥
किमर्थं दिव्यमात्मानं मानुषेषु न्ययोजयत्। यश्चक्रं वर्तयत्येको मानुषाणामनामयम् ॥१३॥
स मानुष्ये कथं बुद्धिं चक्रे चक्रगदाधरः। गोपायन य कुरुते जगतः सार्वभौतिकम् ॥१४॥
स कथं गां गतो विष्णुर्गोपत्वमकरोत्प्रभुः। महाभूतानि भूतात्मा यो दधार चकार च ॥१५॥
श्रीगर्भः स कथं गर्भे स्त्रिया भूचरया धृत। येन लोकान्क्रमैर्जित्वा त्रिभिर्वै त्रिदशेप्सया ॥१६॥
स्थापिता जगतो मार्गास्त्रिवर्गाश्चाभवंस्त्रयः। योऽन्तकाले जगत्पीत्वा कृत्वा तोयमयं वपुः ॥१७॥
लोकमेकार्णवं चक्रे दृश्यादृश्येन[2] चाऽऽत्मना। यः पुराणः पुराणात्मा वाराहं रूपमास्थितः ॥१८॥
विषाणाग्रेण वसुधामुज्जहारारिसूदन। यः पुरा पुरुहूतार्थे त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥१९॥
ददौ जित्वा वसुमतीं सुराणां सुरसत्तम[3]। येन सैंहवपुः कृत्वा द्विधा कृत्वा च तत्पुन ॥२०॥
पूर्वदैत्यो महावीर्यो हिरण्यकशिपुर्हतः। यः पुरा ह्यनलो भूत्वा और्वः संवर्तको विभुः ॥२१॥
पातालस्थोऽर्णवरसं पपौ तोयमयं हरिः। सहस्रचरणं ब्रह्म सहस्रांशुसहस्रदम् ॥२२॥

चरित्र को सुनाइये। देवताओ मे श्रेष्ठ, धीमान् तथा देवो के स्वामी भगवान् ने वसुदेव के कुल मे वासुदेवत्व को कैसे प्राप्त किया अर्थात् जन्म लिया ? देवताओ से आवृत, पवित्र तथा धर्मात्माओ से अलकृत देवलोक को छोडकर क्यो वे मृत्युलोक मे आये ? देवता तथा मनुष्यो के नायक, स्वर्ग, मर्त्य के आदिकारण तथा अविनाशी होकर किसलिये उन्होंने दिव्य आत्मा को मनुष्य-शरीर मे स्थापित किया ? जो चक्र-गदा-धारी भगवान् अकेले मनुष्यमात्र के चक्र को चलाते है, उन्हे मनुष्य-योनि मे आने की इच्छा कैसे हुई ? जो प्रभु विष्णु सम्पूर्ण जगत् का पालन करते हैं, वे पृथ्वी पर आकर गोपाल कैसे बने ? ॥९-१४½॥ जो अखिलात्मा पञ्चमहाभूतो का धारण करते हैं, उनको भूमि पर चलने वाली एव सामान्य स्त्री ने कैसे गर्भ मे धारण किया ? देवताओ की इच्छा से उन्होने तीन डगो मे तीनो लोको को जीत कर ससार के मार्गों को सुव्यवस्थित कर दिया। तब त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और काम भी व्यवस्थित हुए। वे अन्तकाल मे जगत् को पीकर जलमय शरीर धारण कर दृश्य तथा अदृश्य आत्मा से लोक को एकार्णव अर्थात् जलप्लावित कर देते हैं ॥१५-१७½॥ पुराण, पुराणात्मा तथा वाराहरूप धारण कर उन्होने दंष्ट्रा के अग्रभाग से पृथ्वी का उद्धार किया। पूर्वकाल मे इन्द्र के लिये तीनो लोक को जीतकर देवश्रेष्ठ विष्णु ने देवताओ को पृथ्वी दे दी। उन्होने सिंह का शरीर धारण कर पुन. उसके दो भाग करके महाबली हिरण्यकशिपु को निहत किया ॥१८-२०½॥ प्राचीन समय मे उन्होने और्व तथा सवर्तक नामक अग्नि होकर पाताल मे रहकर समुद्र के जलमय रस को पी लिया। उनके सहस्र चरण तथा सहस्र किरण हैं। वे ब्रह्म हैं तथा सहस्रो के दाता हैं ॥२१-२२॥ प्रतियुग मे वे सहस्र शिर धारण करते हैं। उनकी नाभि से कमल की उत्पत्ति हुई, जो ब्रह्मा

१क त्व। २ख सुवर०। ३ग ०न वर्त्मना।

सहस्रशिरसं देवं यमाहुर्वे युगे युगे। नाम्ना पद्मं समुद्भूतं यस्य पैतामहं गृहम् ॥२३॥
एकार्णवे नागलोके सद्धिरण्मयपङ्कजम्। येन ते निहता दैत्याः संग्रामे तारकामये ॥२४॥
येन देवमयं कृत्वा सर्वायुधधरं वपुः। गुहासंस्थेन चोत्सिक्तः कालनेमिर्निपातितः ॥२५॥
उत्तरान्ते समुद्रस्य क्षीरोदस्यामृतोदधौ। यः शेते शाश्वतं योगमास्थाय तिमिरं महत् ॥२६॥

सुरारणी[1] गर्भमस्त दिव्यं तपः[2] प्रकर्षाददितिः [3]पुराणम्
शक्रं च यो दैत्यगणावरुद्धं,[4] गर्भावधानेन कृतं चकार ॥२७॥
पदानि यो योगमयानि कृत्वा, चकार दैत्यान्सलिलेशयस्थान् ।
कृत्वा स देवास्त्रिदशेश्वरांस्तु, चक्रे सुरेशं पुरुहूतमेव ॥२८॥

गार्हपत्येन विधिना अन्वाहार्येण कर्मणा। अग्निमावहनीयं च वेद दीक्षा समिद्ध्रुवम् ॥२९॥
प्रोक्षणीयं स्रुवं चैव आवभृथ्यं तथैव च। अवाक्पाणिस्तु यश्चक्रे हव्यभागभुजस्तथा ॥३०॥
हव्यादांश्च सुरांश्चक्रे कव्यादांश्च पितॄनथ। भोगार्थे यज्ञविधिनाऽयोजयद्यज्ञकर्मणि ॥३१॥
पात्राणि दक्षिणां दीक्षां चरूंश्चोलूखलानि च। यूपं समित्स्रुवं सोमं पवित्रान्परिधीनपि ॥३२॥
यज्ञियानि च द्रव्याणि चमसांश्च तथाऽपरान्। सदस्यान्यजमानांश्च मेधादींश्च क्रतूत्तमान् ॥३३॥
विबभाज पुरा यस्तु पारमेष्ठ्येन कर्मणा। युगानुरूपं यः कृत्वा लोकाननुपराक्रमात् ॥३४॥
क्षणा निमेषाः काष्ठाश्च कलास्त्रैकाल्यमेव च। मुहूर्तास्तिथयो मासा दिनं संवत्सरस्तथा ॥३५॥
ऋतवः कालयोगाश्च प्रमाणं[5] त्रिविधं त्रिषु। आयुः क्षेत्राण्युपचयो लक्षणं रूपसौष्ठवम् ॥३६॥

का घर कहा गया है। वह कमल एकार्णव रूप नागलोक मे सुन्दर सुवर्णमय कहा जाता है। उन्होने तारकामय नामक संग्राम मे दैत्यो को निहत किया। उन्होने देवमय तथा समस्त आयुधो से युक्त शरीर धारण कर गुफा मे स्थित होकर कालनेमि का संहार किया। वे क्षीरसमुद्ररूपी अमृतसमुद्र के उत्तरी भाग मे महान् अन्धकार रूपी शाश्वत योग मे स्थित होकर शयन करते हैं ॥२३-२६॥ जब तप की प्रकर्षता से देवमाता अदिति ने इन्द्र को गर्भ मे धारण किया तब उन्होने ही दैत्यगणो से गर्भ को बचाया ॥२७॥ उन्होंने यौगिक चरणो की रचना कर दैत्यो को जल मे सुला दिया और देवताओंको स्वर्ग लौटाकर इन्द्र को ही स्वर्ग का अधिनायक बनाया ॥२८॥ विना वाणी और हाथ के हैं। उन्होने गार्हपत्य (गृहस्थोचित) विधान से अन्वाहार्य कर्म के द्वारा अग्नि, आहवनीय, वेद, दीक्षा, समिधा, ध्रुव, प्रोक्षणीपात्र, स्रुव, आवभृथ्य तथा हव्य-भाग भोक्ताओ का निर्माण किया। यज्ञकर्म मे यज्ञविधि से भाग के लिये देवताओ को हव्यभोक्ता और पितरो को काव्यभोक्ता बनाया। पात्रो, दक्षिणा, दीक्षा, चरु, ओखली, यूप, समिधा, स्रुव सोम पवित्री, परिधि, यज्ञिय द्रव्य, चमस, सदस्य, यजमान तथा यज्ञो मे उत्तम मेधा आदि का निर्माण करके उन्होने ब्रह्मा आदि के कर्मों का भी विभाग किया। युग के अनुरूप ही उन्होने लोको को बनाया ॥२९-३४॥ उन्होंने अनन्त कर्मों द्वारा क्षण, निमेष, काष्ठा, कला, तीनो काल, मुहूर्त, तिथि, मास, दिन, वर्ष, ऋतु, कालयोग तथा तीनो प्रकार के प्रमाण बनाये। आयु, क्षेत्र, वृद्धि, लक्षण, रूप-सौन्दर्य, तीनो लोक, तीनो देव, तीनो विद्या, तीनो अग्नि, तीनो काल,

१क चोद्रिक्त। २ग सुरावली। ३ग ०प्रहर्षा०। ४क सुराणाम्। ५क. ०ववुद्धो ग०। ६क. विविध।

त्रयो लोकास्त्रयो देवास्त्रैविद्य पावकास्त्रय । त्रैकाल्य त्रीणि कर्माणि त्रयो वर्णास्त्रयोगुणा ॥३७॥
सृष्टा लोका पुरा सर्वे येनानन्तेन कर्मणा। सर्वभूतगत स्रष्टा सर्वभूतगुणात्मक ॥३८॥
नृणामिन्द्रियपूर्वेण योगेन रमते च य । गतागताभ्या योगेन[1] य एव विधिरीश्वर ॥३९॥
या गतिर्धर्मयुक्तानामगति पापकर्मणाम्। चातुर्वर्ण्यस्य प्रभवश्चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता ॥४०॥
चातुर्विद्यस्य यो वेत्ता चातुराश्रम्यसश्रय । दिगन्तर नमो भूमिर्वायुर्वाऽपि विभावसु ॥४१॥
चन्द्रसूर्यमय ज्योतिर्युगश क्षणदाचर । य पर श्रूयते ज्योतिर्य पर श्रूयते तप ॥४२॥
य पर प्राहुरपर य पर परमात्मवान्। आदित्यानां तु यो देवो यश्च दैत्यान्तको विभु ॥४३॥
युगान्तेष्वन्तको यश्च यश्च लोकान्तकान्तक । सेतुर्यो लोकसेतूना मेध्यो यो मेध्यकर्मणाम ॥४४॥
वेद्यो यो वदविदुषा प्रभुय प्रभवात्मनाम्। सोमभूतश्च सौम्यानामग्निर्भूतोऽग्निवर्चसाम ॥४५॥
य शक्राणामीशभूतस्तपोभूतस्तपस्विनाम । विनयो नयवृत्तीना तेजस्तजस्विनामपि ॥४६॥
विग्रहो विग्रहार्हाणा गतिर्गतिमतामपि। आकाशप्रभवो वायुर्वायो [2]प्राणादधुताशन ॥४७॥
दिवो हुताशन प्राण प्राणोऽग्निर्मधुसूदन । रसाच्छोणितसभूति शोणितान्मासमुच्यते ॥४८॥
मासात्तु मदसो जन्म मेदसोऽस्थि निरुच्यते। अस्थ्नो मज्जा समभवन्मज्जात शुक्रसम्भव ॥४९॥
शुक्राद्गर्भ समभवद्रसमूलेन कमणा। [3]तत्रापा प्रथमो [4]भाग स सौम्यो राशिरुच्यते ॥५०॥
गर्भोष्मसभवो ज्ञयो द्वितीयो राशिरुच्यते। शुक्र सोमात्मक विद्यादार्तव पावकात्मकम् ॥५१॥

त ना कम त ना वण तथा त ना गुण का निर्माण किया। वे समस्त प्राणियो म व्याप्त स्रष्टा तथा अखिल भूतो के गुण रूप हैं ॥३५ ३८॥ वे मनुष्यो के इन्द्रियपूवक योग से रमण करते हैं। वे विधाता तथा ईश्वर हैं। वे धर्मात्माओं के आश्रय तथा पापियो के निराश्रय हैं। व चारो वर्णों के आदिकारण तथा चारो वर्णों के रक्षक हैं ॥३९ ४०॥ वे चारो विद्याओ के ज्ञाता तथा चारो आश्रमो के आश्रय हैं। व दिशा आकाश भूमि वायु अग्नि सूय चन्द्र प्रकाश युगो के स्वामी तथा नक्षत्र हैं। व महाप्रकाश महातप पर अपर तथा परमात्मा कहलाते हैं ॥४१ ४२॥ वे आदित्यो के देव दैत्यो के नाशक विभु युगान्तो म भी कालरूप तथा लोको के काल के भी काल हैं ॥४३॥ वे लोक मर्यादाओ मे मर्यादारूप पवित्र कर्मों म पवित्र वेदवेत्ताओ के वेद्य प्रभु तथा भूतात्मा हैं। सौम्यो के सोमभूत अग्नि तेजो के अग्निभूत तथा इन्द्रो के ईशभूत है। वे तपस्वियो के तप विनम्रो के विनय तेजस्वियो के तेज शरीरधारियो के शरीर तथा गतिमानो की गति हैं ॥४४ ४६॥ आकाश से वायु और प्राणरूपी वायु स अग्नि की उत्पत्ति हुई। आकाश अग्नि तथा प्राण भी विष्णु ही हैं। रस से शोणित शोणित म मास मास स मेद मेद स हड्डी हड्डी से मज्जा मज्जा स वीर्य और वीर्य स रसनिर्माण क्रिया द्वारा गर्भ बनता है ॥४७ ४९॥ उसम पहिला भाग जल का है जिस सौम्य राशि कहते हैं। गम की गर्मी स द्वितीय राशि की उत्पत्ति होती है। वीर्य चन्द्रमस्वरूपी तथा रज अग्नि सम्बन्ध कहलाता है। भाव रस के अनुसार होते हैं और वीर्य म अग्नि तथा चन्द्रमा हैं। कफवग म वीर्य होता है

---

[1] ख यो नेता स ए०। [2] ग ग प्राणो हुता०। [3] ख तत्र य प्र०। [4] ग गम ।

¹भावा रसानुगाश्चैषा बीजे च शशिपावकौ। कफवर्गे भवेच्छुक्रं पित्तवर्गे च शोणितम् ॥५२॥
कफस्य हृदयं स्थानं नाभ्यां पित्तं प्रतिष्ठितम्। देहस्य मध्ये हृदयं स्थानं तन्मनसः स्मृतम् ॥५३॥
नाभिकोष्ठान्तरं यत्तु तत्र देवो हुताशनः। मनः प्रजापतिर्ज्ञेयः कफः सोमो विभाव्यते ॥५४॥
पित्तमग्निः स्मृतं त्वेतमग्निसोमात्मकं जगत्। एवं प्रवर्तिते गर्भे वर्धितेऽर्बुदसंनिभे ॥५५॥
वायुः प्रवेशं सचक्रे संगतः परमात्मना। स पञ्चधा शरीरस्थो भिद्यते ²वर्तते पुनः ॥५६॥
प्राणापानौ समानश्च उदानो व्यान एव च। प्राणोऽस्य परमात्मानं वर्धयन्परिवर्तते ॥५७॥
अपानः पश्चिमं कायमुदानोर्ध्वं शरीरिणः। व्यानस्तु व्याप्यते येन समानः संनिवर्तते ॥५८॥
भूतावाप्तिस्ततस्तस्य जायतेन्द्रियगोचरा। पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥५९॥
तस्येन्द्रियनिविष्टानि स्वं स्वं ³भागं प्रचक्रिरे। पार्थिवं ⁴देहमाहुस्तु प्राणात्मानं च मारुतम् ॥६०॥
छिद्राण्याकाशयोनीनि जलात्स्रावः प्रवर्तते। ज्योतिश्चक्षूंषि तेजश्च आत्मा तेषां मनः स्मृतम् ॥६१॥
ग्रामाश्च विषयाश्चैव यस्य वीर्यात्प्रवर्तिताः। इत्येतान्पुरुषः सर्वान्सृजंल्लोकान्सनातनः ⁵॥६२॥
नैधनेऽस्मिन्कथं लोके नरत्वं विष्णुरागतः। एष नः संशयो ब्रह्मन्नेष नो विस्मयो महान् ॥६३॥
कथं गतिर्गतिमतामापन्नो मानुषीं तनुम्। आश्चर्यं परमं विष्णुर्देवैर्दैत्यैश्च कथ्यते ॥६४॥
विष्णोरुत्पत्तिमाश्चर्यं कथयस्व महामुने। प्रख्यातबलवीर्यस्य विष्णोरमिततेजसः ॥६५॥

और पित्तवर्ग में शोणित ॥५०-५२॥ कफ का स्थान हृदय है और पित्त का नाभि। देह के मध्य में हृदय रहता है और उसमें मन। नाभिकोष्ठ के बीच अग्नि का स्थान है। मन प्रजापति कहलाता है और कफ चन्द्रमा। पित्त अग्नि कहलाता है और अग्नि तथा चन्द्रमा रूप ही जगत् माना जाता है। इस प्रकार मांसपिण्ड के आकार में गर्भ उत्पन्न होने पर परमात्मा से मिलकर वायु प्रवेश करता है। शरीर में वायु पाँच प्रकार से विभक्त हो जाता है। जैसे—प्राण अपान समान उदान और व्यान। प्राण परमात्मा को बढ़ाता है अपान शरीर के पिछले भाग को और उदान आधे शरीर को। व्यान सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है और समान लौट जाता है ॥५३-५८॥ तब भूतों की प्राप्ति उसकी इन्द्रियगोचर होती है। वहाँ पृथिवी वायु आकाश जल तथा अग्नि अपने-अपने भागों की रचना करते हैं। शरीर पृथिवी का भाग है और प्राणात्मा वायु का। शरीर के समस्त छिद्र आकाशमूलक हैं और शोणित आदि का प्रस्रवण जल से होता है। नेत्र तेज तथा अन्तरात्मा अग्नि का भाग माना गया है। विषयसमूह भी उन्हीं विष्णु के वीर्य से उत्पन्न हुए हैं। इन लोकों का सर्जन करते हुए सनातन पुरुष मर्त्यलोक में मनुष्यत्व को कैसे प्राप्त हुए? ब्रह्मन्! यही हमारा संशय है और यह महान् आश्चर्य है ॥५९-६३॥ गतिमानों की गति कहे जाने वाले विष्णु मानव-शरीर में कैसे आये? देव और दैत्य विष्णु को परम आश्चर्य की वस्तु बतलाते हैं। महामुने! विष्णु की आश्चर्यजनक उत्पत्ति के बारे में कहिये। प्रसिद्ध विक्रमशाली अत्यन्त तेजस्वी तथा आश्चर्यजनक कर्म

१ख भावो। २ख ०नुगो नयो बीय च ना०। ३ख वघते। ४ख योग। ५ग दवमा०। ६ग यन्ता। ७ग ०तनान्। नै०।

कर्मणाऽऽश्चर्यभूतस्य विष्णोस्तत्त्वमिहोच्यताम्। कथं स देवो देवानामार्तिहा पुरुषोत्तमः ॥६६॥
सर्वव्यापी जगन्नाथः सर्वलोकमहेश्वरः। सर्गस्थित्यन्तकृद्देवः सर्वलोकसुखावहः ॥६७॥
अक्षयः शाश्वतोऽनन्तः क्षयवृद्धिविवर्जितः। निर्लेपो निर्गुणः सूक्ष्मो निर्विकारो निरञ्जनः ॥६८॥
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तः सत्तामात्रव्यवस्थितः। अविकारी विभुर्नित्यः परमात्मा सनातनः ॥६९॥
अचलो निर्मलो व्यापी नित्यतृप्तो निराश्रयः। [1]विशुद्धं श्रूयते यस्य हरित्वं च कृते युगे ॥७०॥
वैकुण्ठत्वं च देवेषु कृष्णत्वं मानुषेषु च। ईश्वरस्य हि तस्येमां गहनां कर्मणो गतिम् ॥७१॥
समतीतां भविष्यं च श्रोतुमिच्छा प्रवर्तते। अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्थो य एष भगवान्प्रभुः ॥७२॥
नारायणो ह्यनन्तात्मा प्रभवोऽव्यय एव च। एष नारायणो भूत्वा हरीरासीत्सनातनः ॥७३॥
ब्रह्मा शक्रश्च रुद्रश्च धर्मः शुक्रो बृहस्पतिः। प्रधानात्मा पुरा ह्येष ब्रह्माणमसृजत्प्रभुः ॥७४॥
सोऽसृजत्पूर्वपुरुषः पुरा कल्पे प्रजापतीन्। एवं स भगवान्विष्णुः सर्वलोकमहेश्वरः ॥
किमर्थं मर्त्यलोकेऽस्मिन्यातो यदुकुले हरिः ॥७५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुऋषिसंवादे ऋषिप्रश्ननिरूपणं नामोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७९॥

करने वाले विष्णु के तत्त्व को बतलाइये। देवों के दुःख निवारण करने वाले, पुरुषों मे उत्तम, सर्वव्यापक, जगन्नाथ, समस्त लोकों के महान् ईश्वर, उत्पत्ति-स्थिति प्रलय करने वाले अखिल लोकों के सुखदायक, अविनाशी, नित्य, अनन्त, ह्रास तथा वृद्धि से रहित, निर्लेप, निर्गुण, सूक्ष्म, निर्विकार, निरञ्जन, निखिल उपाधियों से रहित, सत्तामात्र से अवस्थित, विकारशून्य, विभु परमात्मा, सनातन, अचल, निर्मल, व्यापक, नित्यतृप्त, निराश्रय देव ने कैसे मृत्युलोक मे जन्म लिया ॥६४-७०॥ देवों मे वैकुण्ठत्व तथा मनुष्यों मे कृष्णत्व उनका प्रसिद्ध है। ऐसे ईश्वर के बीते हुए तथा होने वाले कर्मों की गहन गति को हम सुनना चाहते हैं। वे अव्यक्त, व्यक्त चिह्नों मे स्थित, नारायण, अनन्तात्मा, आदिकारण तथा अव्यय हैं। वे नारायण होकर सनातन हरि हैं। ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, धर्म, शुक्र तथा बृहस्पति भी वे ही हैं। पहिले प्रधानात्मा प्रभु ने ब्रह्मा की सृष्टि की। उस पूर्वपुरुष ब्रह्मा ने प्रजापतियों की रचना की। इस प्रकार भगवान् विष्णु सकल लोकों के महेश्वर हैं। वे किसलिये मृत्युलोक तथा यदुकुल मे उत्पन्न हुए? ॥७१-७५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे ब्रह्मा और ऋषियों के संवाद-प्रकरण मे ऋषिप्रश्ननिरूपण नामक एक सौ उन्नासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१७९॥

१ख. विष्णुत्व।

अथाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णचरितारम्भ.

व्यास उवाच

नमस्कृत्वा सुरेशाय विष्णवे प्रभविष्णवे। पुरुषाय पुराणाय शाश्वतायाव्ययाय च ॥१॥
चतुर्व्यूहात्मने तस्मै निर्गुणाय गुणाय च। वरिष्ठाय गरिष्ठाय वरेण्यायामिताय[1] च ॥२॥
यज्ञाङ्गायाखिलाङ्गाय देवाद्यैरीप्सिताय च। यस्मादणुतरं नास्ति यस्मान्नास्ति बृहत्तरम् ॥३॥
येन विश्वमिदं व्याप्तमजेन सचराचरम्। आविर्भावतिरोभावदृष्टादृष्टविलक्षणम् ॥४॥
वदन्ति यत्सृष्टमिति तथैवाप्युपसंहृतम्। ब्रह्मणे चाऽऽदिदेवाय नमस्कृत्य समाधिना ॥५॥
अधिकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने। सदैकरूपरूपाय जिष्णवे विष्णवे नमः ॥६॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च। वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे[2] ॥७॥
एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः। अव्यक्तव्यक्तभूताय विष्णवे मुक्तिहेतवे ॥८॥
सर्गस्थितिविनाशानां जगतो यो जगन्मयः। मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने ॥९॥
आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयांसमणीयसाम्। प्रणम्य सर्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम् ॥१०॥

अध्याय १८०

श्रीकृष्ण-चरित्र का आरभ

व्यास ने कहा—सुरेश, विष्णु, प्रभविष्णु, पुरुष, पुराण, शाश्वत, अव्यय, चतुर्व्यूहरूप, निर्गुण, सगुण, वरिष्ठ, गरिष्ठ, वरेण्य, अप्रमेय, यज्ञाग, अखिलाग तथा देवता आदि से अभीप्सित विष्णु को नमस्कार है। जिनसे कोई छोटा या बडा नही है (उन्हे नमस्कार है), जिन अजन्मा हरि ने चराचर विश्व की सृष्टि की, (उन्हें नमस्कार है), आविर्भाव, तिरोभाव तथा दृष्ट, अदृष्टरूपक जगत् की जिन्होने सृष्टि की तथा सहार किया (उन्हें नमस्कार है), जो ब्रह्मा, आदिदेव, विकारशून्य, शुद्ध, नित्य, परमात्मा, सदा एकरूप, जयशील तथा विष्णु हैं उन्हें नमस्कार है ॥१-६॥ हिरण्यगर्भ, हरि, शकर, वासुदेव, तारने वाले, सृष्टि-स्थिति प्रलय करने वाले, एक तथा अनेक स्वरूप वाले, स्थूल तथा सूक्ष्म रूप वाले, अव्यक्त एवम् व्यक्त रूप वाले तथा मोक्ष के कारण विष्णु को नमस्कार है। ससार की उत्पत्ति, स्थिति तथा विनाश के कारण, जगन्मय, परमात्मा विष्णु को नमस्कार है। विश्व के आधार, अणु से भी अणु, सर्वभूतस्थित, पुरुषोत्तम विष्णु को नमस्कार है। ज्ञान के स्वरूप, तत्त्वत अत्यन्त निर्मल तथा पदार्थ-

---

१क. ०यामृता०। २ख. ०न्तकर्मणे।

'ज्ञानस्वरूपमत्यन्तं निर्मलं परमार्थतः। तमेवार्थस्वरूपेण भ्रान्तिदर्शनतः स्थितम् ॥११॥
विष्णु ग्रसिष्णु विश्वस्य स्थितिसर्गे तथा प्रभुम्। अनादि जगतामीशमजमक्षयमव्ययम् ॥१२॥
कथयामि यथा पूर्वं यक्षाद्यैर्मुनिसत्तमैः। पृष्टः प्रोवाच भगवानब्जयोनिः पितामहः ॥१३॥
ऋक्सामान्युद्गिरन्वक्त्रैर्यः पुनाति जगत्त्रयम्। प्रणिपत्य तथेशानमेकार्णवविनिर्गतम् ॥१४॥
यस्यासुरगणा यज्ञान्विलुम्पन्ति न याजिनाम्। प्रवक्ष्यामि मतं कृत्स्नं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥१५॥
येन सृष्टिं समुद्दिश्य धर्माद्याः प्रकटीकृताः। आपो नारा इति 'प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥१६॥
अयनं तस्य ता. पूर्वं तेन नारायणः स्मृत'। स देवो भगवान्सर्वं व्याप्य नारायणो विभुः ॥१७॥
चतुर्धा सस्थितो ब्रह्मा सगुणो निर्गुणस्तथा। एका मूर्तिरनुद्देश्या शुक्ला पश्यन्ति ता बुधाः ॥१८॥
'ज्वालामालावनद्धाङ्गी निष्ठा सा योगिना परा। दूरस्था चान्तिकस्था च विज्ञेया सा गुणातिगा' ॥१९॥
वासुदेवाभिधानाऽसौ' निर्ममत्वेन दृश्यते। रूपवर्णादयस्तस्या न भावाः 'कल्पनामयाः ॥२०॥
आस्ते च सा सदा शुद्धा सुप्रतिष्ठैकरूपिणी। द्वितीया पृथिवीं मूर्ध्ना शेषाख्या धारयत्यधः ॥२१॥
तामसी सा समाख्याता तिर्यक्त्वं समुपागता। तृतीया कर्म कुरुते प्रजापालनतत्परा ॥२२॥
सत्त्वोद्रिक्ता तु सा ज्ञेया धर्मसंस्थानकारिणी। चतुर्थी जलमध्यस्था शेते पन्नगतल्पगा' ॥२३॥

रूप से भासित विष्णु को नमस्कार है। ससार को ग्रसने वाले, जगत् की उत्पत्ति-स्थिति करने मे समर्थ, अनादि, ससार के स्वामी, अजन्मा, अक्षय तथा अव्यय विष्णु को नमस्कार है ॥७-१२॥ पूर्वकाल मे यक्ष आदि मुनियो द्वारा पूछे जाने पर कमलयोनि ब्रह्मा ने जैसे बतलाया था वैसे मैं कहूँगा। जो ऋग्वेद तथा सामवेद के उच्चारण करके तीनो लोको को पवित्र करते हैं तथा एकार्णव से नि सृत हैं, उन ईश्वर को प्रणाम है। जिनके याजको के यज्ञो को राक्षस-गण नष्ट नही कर पाते हैं, उनको प्रणाम करके अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के सम्पूर्ण मत का मैं वर्णन करूँगा। विष्णु ने सृष्टि के उद्देश्य से धर्म आदि को प्रकट किया। तत्त्वदर्शी मुनियो ने जल का नाम 'नार' बतलाया है। पहिले विष्णु का अयन (घर) जल था। इसलिए उनका नाम नारायण पडा। वे विभु नारायण भगवान् सबको व्याप्त करके चार प्रकार से अवस्थित ब्रह्मा कहलाते हैं। वे सगुण तथा निर्गुण भी हैं। उनकी एक अनुद्देश्य शुक्ल मूर्ति है, जिसे विद्वान् लोग देखते हैं ॥१३-१८॥ वह योगियो की, ज्वाला-माला से बद्ध अग वाली परा निष्ठा है। वह दूरस्थ, समीपस्थ तथा त्रिगुणातीत है। उसी की ममतारहित वसुदेव सज्ञा कही गई है। उसके कल्पनामय रूप, वर्ण, भाव आदि नही होते। वह सदा शुद्ध, सुप्रतिष्ठित एवम् एकरूपिणी है। शेष नामक दूसरी मूर्ति नीचे पृथ्वी को धारण करती है। वह तामसी कहलाती है। और वक्र बनी रहती है। तीसरी मूर्ति प्रजापालन मे निरत होकर कर्म करती है। उसमें सत्त्वगुण की प्रधानता है। वह धर्म की स्थापना करती है। चौथी मूर्ति जल के बीच सर्पशय्या पर सोती है। उसका

१ख ज्ञानाद्यरू०। २ख ख्याता। ३ख ०लाज्वलद्देहा नि०। ४क. ०णानुगा। ५ख ०ना सा नि०। ६क. ख कल्पिता मया। आ०। ७क ख. ०गमध्यगा।

रजस्तस्या गुणः सर्गं सा करोति सदैव हि। या तृतीया हरेर्मूर्तिः प्रजापालनतत्परा ॥२४॥
सा तु धर्मव्यवस्थानं करोति नियतं भुवि। प्रोद्धतानसुरान्हन्ति धर्मव्युच्छित्तिकारिणः ॥२५॥
पाति[1] देवान्सगन्धर्वान्धर्मरक्षापरायणान्। यदा यदा च धर्मस्य ग्लानिः समुपजायते ॥२६॥
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजत्यसौ। भूत्वा पुरा वराहेण तुण्डेनापो निरस्य च ॥२७॥
एकया दंष्ट्रयोत्खाता नलीनीव वसुंधरा। कृत्वा नृसिंहरूपं च हिरण्यकशिपुर्हतः ॥२८॥
विप्रचित्तिमुखाश्चान्ये दानवा विनिपातिताः। वामनं रूपमास्थाय बलिं संयम्य[2] मायया ॥२९॥
त्रैलोक्यं[3] क्रान्तवानेष विनिर्जित्य दितेः सुतान्[4]। भृगोर्वंशे समुत्पन्नो जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥३०॥
जघान क्षत्रियान्रामः पितुर्वधमनुस्मरन्। तथाऽत्रितनयो भूत्वा दत्तात्रेयः प्रतापवान् ॥३१॥
योगमष्टाङ्गमाचख्यावलर्काय महात्मने। रामो दाशरथिर्भूत्वा स तु देवः प्रतापवान् ॥३२॥
जघान रावणं संख्ये त्रैलोक्यस्य भयंकरम्। यदा चैकार्णवे सुप्तो देवदेवो जगत्पतिः ॥३३॥
सहस्रयुगपर्यन्तं नागपर्यङ्कगो विभुः। योगनिद्रां समास्थाय स्वे महिम्नि व्यवस्थितः ॥३४॥
त्रैलोक्यमुदरे कृत्वा जगत्स्थावरजङ्गमम्। जनलोकगतैः[5] सिद्धैः स्तूयमानो महर्षिभिः ॥३५॥
तस्य नाभौ समुत्पन्नं पद्मं [6]दिक्पत्रमण्डितम्[7]। मरुत्किञ्जल्कसंयुक्तं गृहं पैतामहं वरम्[8] ॥३६॥
यत्र ब्रह्मा समुत्पन्नो देवदेवश्चतुर्मुखः। तदा कर्णमलोद्भूतौ दानवौ मधुकैटभौ ॥३७॥

गुण रज है। वह सदा ही सृष्टि करती रहती है। हरि की जो तीसरी प्रजापालन मे निरत रहने वाली मूर्ति है वह पृथ्वी पर धर्म की व्यवस्था करती है, धर्मसहारक उद्धत असुरो को मारती है और धर्म-रक्षा-परायण देव गन्धर्वों का पालन करती है। जब-जब धर्म का ह्रास होता है और अधम की वृद्धि होती है तब-तब वह अपनी सृष्टि करती है ॥१९-२६½॥ पूर्वकाल मे उसने वराह का रूप धारण कर थूथनी से पानी को हटाकर एक ही दाँत से कमलिनी की तरह पृथ्वी को उखाड डाला। नृसिह रूप धर कर उसने हिरण्यकशिपु को निहत किया और विप्रचित्ति आदि दानवो का सहार किया। वामन रूप धारणकर उसने माया से बलि को बाधा और दैत्यो को जीतकर तीनो लोक का नाप लिया। भृगुवश मे उत्पन्न होकर प्रतापी परशुराम ने पिता के वैर का स्मरण करके क्षत्रियो का सहार किया ॥२७-३०½॥ उसी तरह अत्रि-पुत्र तेजस्वी दत्तात्रेय होकर उसने महात्मा अलर्क को अष्टाग योग का उपदेश दिया। दशरथ पुत्र ओजस्वी राम होकर उसने युद्ध मे त्रैलोक्य भयकर रावण का सहार किया। जब एकार्णव मे देवदेव जगत्पति अपनी महिमा मे व्यवस्थित तथा योगनिद्रा में अवस्थित होकर हजारो युगो तक तीनो लोक (चराचर जगत्) को अपने पेट मे रखकर सर्पशय्या पर सो रहे थे तब जनलोकवासी महर्षियो एवम् सिद्धो ने उनकी स्तुति की ॥३१-३५॥ तदनन्तर उनकी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ, जो दिशा रूपी पत्रो से अलकृत तथा वायुरूपी किञ्जल्क (कमल-पराग) से युक्त था। वह ब्रह्मा का उत्तम गृह हुआ। उसी से चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उस समय भगवान् के कर्णमल से मधु और कैटभ नामक दो महाबली तथा महापराक्रमी दानव उत्पन्न होकर ब्रह्मा को मारने के लिए

१ख ०न्सतश्चान्यान्य०। २क सयाच्य। ३व ०क्य क्रमता तेन निर्जिताश्च दि०। ४क सुता। ५ख ०गणं सि०। ६क. दिव्यमलपिड०। ७घ ०म्। ज्वलनार्कप्रतीकाश शैल्केशरमण्डितम्। मेरुकिञ्ज०। ८क. शुभम्।

महाबलौ महावीर्यौ ब्रह्माण हन्तुमुद्यतौ। जघान तौ दुराधर्षौ उत्थाय' शयनोदधे ॥३८॥
एवमादींस्तथवा यानसख्यातुमिहोत्सह। अवतारो ह्यजस्यह माथुर साप्रतस्त्वयम ॥३९॥
इति सा सात्त्विकी मूर्तिरवतार करोति च। प्रद्युम्नति समाख्याता रक्षाकमण्यवस्थिता ॥४०॥
दवत्वऽथ मनुष्यत्व तिर्यग्योनौ च सस्थिता। गृह्णाति तत्स्वभावश्च वासुदवच्छया सदा ॥४१॥
ददात्यभिमता कामा पूजिता सा द्विजोत्तमा। एव मया समाख्यात कृतकृत्योऽपि य प्रभु ॥
मानुषत्व गतो विष्णु शृणुध्व चोत्तर पुन ॥४२॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्म व्यासऋषिसवाद चतुर्व्यूहवणन
नामाशीत्यधिककशततमोऽध्याय ॥१८०॥

अथैकाशीत्यधिकशततमोऽध्याय

अवतारप्रयोजनवणनम

व्यास उवाच

शृणुध्व मुनिशार्दूला प्रवक्ष्यामि समासत। अवतार हरश्चात्र भारावतरणच्छया ॥१॥
यदा यदा त्वधमस्य वृद्धिभवति भो द्विजा। धमश्च ह्रासमभ्यति तदा दवो जनादन ॥२॥

तयार हो गये। तब शयन-समुद्र से उठकर विष्णु ने दोनो प्रचण्ड दानवो को मार डाला। इस प्रकार भगवान् के जितने अवतार हो गये हैं उनकी सख्या मैं नही बता सकता। पर अजन्मा के इस अवतार का नाम माथर है ॥३६
३९ भगवान् की प्रद्युम्न नामक सात्त्विक मूर्ति जो रक्षाकम म लगा रहता है अवतार लेता है। वासुदेव म इच्छा से वह देवयानि मनुष्ययानि तथा तियग योनि मे भी अवतीर्ण होकर उस उस यानि का स्वभाव ग्रहण करती है। द्विजश्रेष्ठो पूजित होने पर वह अभीप्सित कामनाओ का प्रदान करता है। इस प्रकार कृतकृत्य होते हुए भी विष्णु मनुष्य-योनि म जैसे अवतीर्ण हुए वह मैंने बतला दिया। अब इससे आगे सुनिये। ।।४० ४२।

श्री ब्रह्ममहापुराण मे व्यास और ऋषियो के सवाद प्रकरण म चतुर्व्यूहवणन
नामक अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ॥८०॥

अध्याय १८१

अवतार का प्रयोजन वणन

व्यास बोले—मुनिवर! भार उतारने की इच्छा स हरि ने जो अवतार लिया उसके विषय म मैं सक्षेप म बतलाऊँगा सुनिये। द्विजगण! जब-जब अधम की वृद्धि और धम का ह्रास होता है तब-तब जनादन साधुओ की

१ख ०यस महोदधौ। ए०। २क ख ०।

अवतारं करोत्यत्र द्विधा कृत्वाऽऽत्मनस्तनुम्। साधूनां रक्षणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥३॥
दुष्टानां निग्रहार्थाय अन्येषां च सुरद्विषाम्। प्रजानां रक्षणार्थाय जायतेऽसौ युगे युगे ॥४॥
पुरा किल मही विप्रा भूरिभारावपीडिता। जगाम धरणी मेरौ समाजे त्रिदिवौकसाम् ॥५॥
सब्रह्मकान्सुरान्सर्वान्प्रणिपत्याथ मेदिनी। कथयामास तत्सर्वं[1] खेदात्करुणभाषिणी ॥६॥

धरण्युवाच

अग्निः सुवर्णस्य गुरुर्गवां सूर्योऽपरो गुरुः। ममाप्यखिललोकानां वन्द्यो नारायणो गुरुः ॥७॥
तत्साम्प्रतमिमे दैत्याः कालनेमिपुरोगमाः। मर्त्यलोकं समागम्य[2] बाधन्तेऽहर्निशं प्रजाः ॥८॥
कालनेमिर्हतो योऽसौ विष्णुना प्रभविष्णुना। उग्रसेनसुतः कंसः संभूतः सुमहासुरः ॥९॥
अरिष्टो धेनुकः केशी प्रलम्बो नरकस्तथा। सुन्दोऽसुरस्तथाऽत्युग्रो बाणश्चापि बलेः सुतः ॥१०॥
तथाऽन्ये च महावीर्या नृपाणां भवनेषु ये। समुत्पन्ना दुरात्मानस्तान्न संख्यातुमुत्सहे ॥११॥
अक्षौहिण्यो हि बहुला दिव्यमूर्तिधृताः सुराः। महाबलानां दृप्तानां दैत्येन्द्राणां ममोपरि ॥१२॥
तद्भूरिभारपीडार्ता न शक्नोम्यमरेश्वराः। बिभर्तुमात्मानमहमिति विज्ञापयामि वः ॥१३॥
क्रियतां तन्महाभागा मम भारावतारणम्। यथा रसातलं नाहं गच्छेयमतिविह्वला ॥१४॥

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य धरावाक्यमशेषैस्त्रिदशैस्ततः। भुवो भारावतारार्थं ब्रह्मा प्राह च चोदितः ॥१५॥

रक्षा धर्म की स्थापना सुरद्रोही दुष्टों के दण्ड और प्रजा के रक्षण के लिये युग-युग में अपने शरीर को द्विधा विभक्त करके अवतार लेते हैं। प्राचीन काल में अत्यन्त भार से पीडित होकर पृथ्वी सुमेरुपर्वत पर देवताओं के समाज में गई। ब्रह्मा सहित अखिल देवों को प्रणाम करके खेद से करुणभाषिणी धरणी अपना वृत्तान्त कहने लगी ॥१-६॥

पृथ्वी बोली—सुवर्ण के गुरु अग्नि हैं, गौओं के गुरु सूर्य हैं और मेरे गुरु अखिल लोकवन्द्य नारायण हैं। इस समय कालनेमि आदि दैत्य मृत्युलोक में आकर रातदिन प्रजा को उत्पीडन करते हैं। जिस कालनेमि को विष्णु ने मारा था वही उग्रसेन का पुत्र महाराक्षस कंस हुआ है। अरिष्ट, धेनुक, केशी, प्रलम्ब, नरक, सुन्द, बलि-पुत्र अत्यन्त भयंकर बाण तथा अन्य जो दुरात्मा एवम् महाशक्तिशाली राजगण हैं उनकी तो मैं संख्या ही नहीं बतला सकता। सुरगण! मद से चूर महाबली दैत्येन्द्रों की दिव्य मूर्तिधारी अक्षौहिणी सेना भी काफी तादाद में मेरे ऊपर भार लाद रही है। अमरवृन्द! इस महाभार से पीडित होकर मैं अपने को नहीं संभाल सकती। यही निवेदन करने के लिये मैं आई हूँ। महाभागो! इसलिये मेरे भार उतारने का कोई प्रयत्न कीजिये ताकि मैं अत्यन्त विह्वल होकर पाताल न चली जाऊँ ॥७-१४॥

व्यास बोले—धरती की यह बात सुनकर समस्त देवों ने ब्रह्मा से निवेदन किया। तब पृथ्वी के भार उतारने के निमित्त ब्रह्मा ने कहा ॥१५॥

१क. ०र्वं तस्य करु०। २क. ०म्य लुम्पन्तेऽ०।

महाबलौ महावीर्यौ ब्रह्माणं हन्तुमुद्यतौ। जघान तौ दुराधर्षौ उत्थाय' शयनोदधेः ॥३८॥
एवमादीन्यथैवान्यानसंख्यातुमिहोत्सहे। अवतारो ह्यजस्येह माथुरः सांप्रतस्त्वयम् ॥३९॥
इति सा सात्त्विकी मूर्तिरवतार करोति च'। प्रद्युम्नेति समाख्याता रक्षाकर्मण्यवस्थिता ॥४०॥
देवत्वेऽथ मनुष्यत्वे तिर्यग्योनौ च संस्थिता। गृह्णाति तत्स्वभावश्च वासुदेवेच्छया सदा ॥४१॥
ददात्यभिमतान्कामान्पूजिता सा द्विजोत्तमा.। एवं मया समाख्यात' कृतकृत्योऽपि यः प्रभुः॥
मानुषत्व गतो विष्णु. शृणुध्वं चोत्तरं पुन. ॥४२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासऋषिसंवादे चतुर्व्यूहवर्णनं
नामाशीत्यधिककशततमोऽध्यायः ॥१८०॥

अथैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अवतारप्रयोजनवर्णनम्

व्यास उवाच

शृणुध्व मुनिशार्दूला' प्रवक्ष्यामि समासतः। अवतार हरेश्चात्र भारावतरणेच्छया ॥१॥
यदा यदा त्वधर्मस्य वृद्धिर्भवति भो द्विजा.। धर्मश्च ह्रासमभ्येति तदा देवो जनार्दनः ॥२॥

तैयार हो गये। तब शयन-समुद्र से उठकर विष्णु ने दोनो प्रचण्ड दानवो को मार डाला। इस प्रकार भगवान् के जितने अवतार हो गये हैं, उनकी सख्या मैं नही बता सकता। पर अजन्मा के इस अवतार का नाम माथुर है ॥३६-३९॥ भगवान् की प्रद्युम्न नामक सात्त्विकी मूर्ति, जो रक्षाकर्म मे लगी रहती है, अवतार लेती है। वासुदेव की इच्छा से वह देवयानि, मनुष्ययानि तथा तिर्यग् यानि म भी अवतीर्ण होकर उस उस योनि का स्वभाव ग्रहण करती है। द्विजश्रेष्ठो! पूजित हाने पर वह अभीप्सित कामनाओ को प्रदान करती है। इस प्रकार कृतकृत्य होते हुए भी विष्णु मनुष्य-योनि मे जैसे अवतीर्ण हुए, वह मैंने बतला दिया। अब इससे आगे सुनिये। ॥४०-४२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे व्यास और ऋषियो के सवाद प्रकरण मे चतुर्व्यूहवर्णन
नामक अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ॥८०॥

अध्याय १८१

अवतार का प्रयोजन-वर्णन

व्यास बोले—मुनिवर! भार उतारने की इच्छा से हरि ने जो अवतार लिया, उसके विषय मे मैं सक्षेप से बतलाऊँगा, सुनिये। द्विजगण! जब-जब अधर्म की वृद्धि और धर्म का ह्रास होता है तब-तब जनार्दन सात्त्वा की

१ख. ०य स महादयो। ए०। २क स वै।

अवतार करोत्यत्र द्विधा कृत्वाऽऽत्मनस्तनुम्। साधूनां रक्षणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥३॥
दुष्टानां निग्रहार्थाय अन्येषां च सुरद्विषाम्। प्रजानां रक्षणार्थाय जायतेऽसौ युगे युगे ॥४॥
पुरा किल मही विप्रा भूरिभारावपीडिता। जगाम धरणी मेरौ समाजे त्रिदिवौकसाम् ॥५॥
सब्रह्मकान्सुरान्सर्वान्प्रणिपत्याथ मेदिनी। कथयामास तत्सर्वं खेदात्करुणभाषिणी ॥६॥

धरण्युवाच

अग्निः सुवर्णस्य गुरुर्गवां सूर्योऽपरो गुरुः। ममाप्यखिललोकानां वन्द्यो नारायणो गुरुः ॥७॥
तत्साप्रतमिमे दैत्याः कालनेमिपुरोगमाः। मर्त्यलोकं समागम्य[1] बाधन्तेऽहर्निशं प्रजाः ॥८॥
कालनेमिर्हतो योऽसौ विष्णुना प्रभविष्णुना। उग्रसेनसुतः कंसः संभूतः सुमहासुरः ॥९॥
अरिष्टो धेनुकः केशी प्रलम्बो नरकस्तथा। सुन्दोऽसुरस्तथाऽत्युग्रो बाणश्चापि बलेः सुतः ॥१०॥
तथाऽन्ये च महावीर्या नृपाणां भवनेषु ये। समुत्पन्ना दुरात्मानस्तान्न संख्यातुमुत्सहे ॥११॥
अक्षौहिण्यो हि बहुला दिव्यमूर्तिधृताः सुराः। महाबलानां दृप्तानां दैत्येन्द्राणां ममोपरि ॥१२॥
तद्भूरिभारपीडार्ता न शक्नोम्यमरेश्वराः। बिभर्तुमात्मानमहमिति विज्ञापयामि वः ॥१३॥
क्रियतां तन्महाभागा मम भारावतारणम्। यथा रसातलं नाहं गच्छेयमतिविह्वला ॥१४॥

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य धरावाक्यमशेषैस्त्रिदशैस्ततः। भुवो भारावतारार्थं ब्रह्मा प्राह च चोदितः ॥१५॥

रक्षा धर्म की स्थापना सुरद्रोही दुष्टों के दण्ड और प्रजा के रक्षण के लिये युग-युग में अपने शरीर को द्विधा विभक्त करके अवतार लेते हैं। प्राचीन काल में अत्यन्त भार से पीडित होकर पृथ्वी सुमेरुपर्वत पर देवताओं के समक्ष में गई। ब्रह्मा सहित अखिल देवों को प्रणाम करके खेद से करुणभाषिणी धरणी अपना वृत्तान्त कहने लगी ॥१-६॥

पृथ्वी बोली—सुवर्ण के गुरु अग्नि है गौओं के गुरु सूर्य हैं और मेरे गुरु अखिल लोकवन्द्य नारायण है। इस समय कालनेमि आदि दैत्य मृत्युलोक में आकर रातदिन प्रजा का उत्पीडन करते हैं। जिस कालनेमि को विष्णु ने मारा था वही उग्रसेन का पुत्र महाराक्षस कंस हुआ है। अरिष्ट धनुक केशी प्रलम्ब नरक सुन्द बलि-पुत्र अत्यन्त भयकर बाण तथा अन्य जो दुरात्मा एवम् महाशक्तिशाली राजगण है उनकी तो मैं सख्या ही नहीं बता सकती। सुरगण! मद से चूर महाबली दैत्येन्द्रों की दिव्य मूर्तिधारी अक्षौहिणी सेना भी काफी तादाद में मेरे ऊपर भार लाद रही है। अमरवृन्द! इस महाभार से पीडित होकर मैं अपने को नहीं सभाल सकती। यही निवेदन करने के लिये मैं आई हू। महाभागो! इसलिये मेरे भार उतारने का कोई प्रयत्न कीजिये ताकि मैं अत्यन्त विह्वल होकर पाताल में चली जाऊँ॥७-१४॥

व्यास बोले—धरती की यह बात सुनकर समस्त देवों ने ब्रह्मा से निवेदन किया। तब पृथ्वी के भार उतारने के निमित्त ब्रह्मा ने कहा॥१५॥

---

[1] क. ०र्वं तेभ्य कह०। २ क. ०म्य लुम्पन्ते०।

ब्रह्मोवाच

यदाह वसुधा सर्वं सत्यमेतद्दिवौकसः। अहं भवो भवन्तश्च सर्वं नारायणात्मकम् ॥१६॥
विभूतयस्तु यास्तस्य तासामेव परस्परम्। आधिक्यं न्यूनता बाध्यबाधकत्वेन वर्तते ॥१७॥
तदागच्छत गच्छामः क्षीराब्धेस्तटमुत्तमम्। तत्राऽऽराध्य हरिं तस्मै सर्वं विज्ञापयाम वै ॥१८॥
सर्वदैव जगत्यर्थे स सर्वात्मा जगन्मयः। स्वल्पांशेनावतीर्योर्व्यां धर्मस्य कुरुते स्थितिम् ॥१९॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा प्रययौ तत्र सह देवैः पितामहः। समाहितमना[1] भूत्वा तुष्टाव गरुडध्वजम् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रमूर्ते, सहस्रबाहो बहुवक्त्रपाद ।
नमो नमस्ते जगतः प्रवृत्तिविनाशसंस्थानपराप्रमेय ॥२१॥
सूक्ष्मातिसूक्ष्मं च बृहत्प्रमाण गरीयसामप्यतिगौरवात्मन् ।
प्रधानबुद्धीन्द्रियवाक्प्रधानमूलापरात्मन्भगवन्प्रसीद ॥२२॥
एषा मही देव महीप्रसूतैर्महासुरैः पीडितशैलबन्धा ।
परायणं त्वां जगतामुपैति, भारावतारार्थमपारपारम् ॥२३॥

ब्रह्मा बोले—देववृन्द! पृथ्वी ने जो कहा, सब ठीक है। मैं, शिव तथा आप लोग सब नारायण के अंश है। उनकी जो विभूतियाँ हैं, उन्हीं मे परस्पर बाध्यबाधक भाव से कमी-बेसी होती है। इसलिये आइय हम लोग क्षीरसमुद्र के तट पर चलें। वहाँ हरि की आराधना करके उनसे सब निवेदन करेंगे। जगत् के लिए वे अखिलात्मा तथा जगन्मय प्रभु पृथ्वी पर अवतार लेकर सदा धर्म की स्थापना करते हैं ॥१६-१९॥

व्यास बोले—इतना कहकर देववृन्द सहित ब्रह्मा वहाँ जाकर एकाग्र चित्त से भगवान् की स्तुति करने लगे ॥२०॥

ब्रह्मा बोले—सहस्र रूप वाले! सहस्र भुजा वाले! बहुत मुख तथा चरण वाले! आपको नमस्कार है। जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करने वाले! अप्रमेय! आपको नमस्कार है। सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म! महान् से भी अत्यन्त महान्! बुद्धि, इन्द्रिय, वाणी तथा प्रकृति रूप! परात्मन्! भगवन्! प्रसन्न होइये। यह पृथ्वी, अपने पर उत्पन्न हुए महाराक्षसों द्वारा पीडित होकर भार उतरवाने के लिये आपकी शरण में आई है। आप संसार के रक्षक हैं। आपका कोई पार नहीं पा सकता। सुरनाथ! हम सब—इन्द्र, अश्विनी कुमार, वरुण,

---

[1] ख ०मतिश्चैव तु०।

एते वयं वृत्ररिपुस्तथाऽयं, नासत्यदस्रौ वरुणस्तथैषः ।
इमे च रुद्रा वसवः ससूर्याः, समीरणाग्निप्रमुखास्तथाऽन्ये ॥२४॥
सुराः समस्ताः सुरनाथ कार्यमेभिर्मया यच्च तदीश सर्वम् ।
आज्ञापयाऽऽज्ञां प्रतिपालयन्तस्तवैव तिष्ठाम सदाऽस्तदोषा. ॥२५॥

व्यास उवाच

एवं संस्तूयमानस्तु भगवान्परमेश्वर'। उज्जहाराऽऽत्मनः केशौ सितकृष्णौ द्विजोत्तमाः ॥२६॥
उवाच च सुरानेतौ मत्केशौ वसुधातले। अवतीर्य भुवो भारक्लेशहानिं करिष्यत. ॥२७॥
सुराश्च सकला' स्वांशैरवतीर्य महीतले। कुर्वन्तु युद्धमुन्मत्तैः पूर्वोत्पन्नैर्महासुरैः ॥२८॥
ततः क्षयमशेषास्ते दैतेया धरणीतले। प्रयास्यन्ति न संदेहो' नानायुधविचूर्णिता ॥२९॥
वसुदेवस्य या पत्नी देवकी देवतोपमा। तस्या गर्भोऽष्टमोऽस्य तु मत्केशो भविता सुरा ॥३०॥
अवतीर्य च तत्राय कंस घातयिता भुवि। कालनेमिसमुद्भूतमित्युक्त्वाऽन्तर्दधे हरि' ॥३१॥
अदृश्याय ततस्तेऽपि प्रणिपत्य महात्मने। मेरुपृष्ठं सुरा जग्मुरवतेरुश्च' भूतले ॥३२॥
कंसाय चाष्टमो गर्भो देवक्या धरणीतले'। भविष्यतीत्याचचक्षे भगवान्नारदो मुनि ॥३३॥
कंसोऽपि तदुपश्रुत्य नारदात्कुपितस्ततः। देवकीं वसुदेवं च गृहे गुप्तावधारयत् ॥३४॥
जातं जातं च कंसाय तेनैवोक्तं यथा पुरा। तथैव वसुदेवोऽपि पुत्रमर्पितवान्द्विजा' ॥३५॥

रुद्र, वसु सूर्य, वायु, अग्नि आदि देवगण—सदा दोषो से रहित होकर आपही के आज्ञापालन मे निरत रहते है। इसलिये, ईश! हमे आज्ञा कीजिये ॥२१-२५॥

व्यास बोले—द्विजश्रेष्ठो! इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् परमेश्वर ने अपने दो सफेद तथा काले केशो को उखाड कर देवताओ से कहा—'मेरे दोनो केश पृथ्वी पर अवतार लेकर धरती के भारजन्य क्लेशो को दूर करेंगे। सकल देवगण भी अपने अशो से भूतल पर अवतीर्ण होकर पूर्वोत्पन्न मदमत्त महाराक्षसो से युद्ध करे। तत्पश्चात् अनेक अस्त्र शस्त्रो से चूर-चूर होकर अशेष दैत्य विनष्ट हो जायेंगे, इसमे संदेह नही। देवगण! वसुदेव की देवतुल्य देवकी नामक पत्नी के आठवें गर्भ से मेरा केश अवतीर्ण होकर अपर कालनेमि कंस को मारेगा।' इतना कहकर हरि अन्तर्हित हो गये। तदनन्तर अदृश्य भगवान् को प्रणाम कर समस्त देवगण सुमेरु पर्वत पर चल गये और पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए। (इधर) नारद मुनि ने कंस से आकर कह दिया—पृथ्वी पर 'देवकी का आठवाँ गर्भ तुम्हारे लिए घातक होगा।' नारद की बात सुनकर कंस कुपित हो गया। उसने देवकी तथा वसुदेव को जेल मे भेज दिया। द्विजगण! वसुदेव भी अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार जैसे-जैसे पुत्र उत्पन्न होता वैसे-वैसे लाकर कंस को समर्पित कर देते थे। हिरण्यकशिपु के छ गर्भावस्थित पुत्रो को विष्णु की भेजी हुई योगनिद्रा क्रमश देवकी के गर्भ मे

१ग. ०हो मद्दृक्पातविवर्णि०। २क ख ०रुर्महीत०। ३क. ग धरणीधरे।

हिरण्यकशिपो पुत्रा षड्गर्भा इति विश्रुता । विष्णुप्रयुक्ता तान्निद्रा क्रमाद्गर्भे न्ययोजयत ॥३६
योगनिद्रा महामाया वैष्णवी मोहित यया। अविद्यया जगत्सर्वं तामाह भगवान्हरि ॥३७॥

विष्णुरुवाच

गच्छ निद्रे ममाऽऽदेशात्पातालतलसश्रयान् । एकैकश्येन षड्गर्भान्देवकीजठरे नय ॥३८॥
हतेषु तषु कसेन शेषाख्यो'ऽशस्ततोऽनघ । अशाशेनोदरे तस्या सप्तम सभविष्यति ॥३९॥
गोकुले वसुदेवस्य भार्या वै रोहिणी स्थिता। तस्या प्रसूतिसमये गर्भो नेयस्त्वयोदरम ॥४०॥
सप्तमो भोजराजस्य भयाद्रोधोपरोधत । देवक्या पतितो गर्भ इति लोको वदिष्यति ॥४१॥
गर्भसकर्षणात्सोऽथ लोके सकर्षणेति वै। सज्ञामवाप्स्यते वीर श्वेताद्रिशिखरोपम ॥४२॥
ततोऽह सभविष्यामि देवकीजठरे शुभे। गर्भं त्वया यशोदाया गन्तव्यमविलम्बितम ॥४३॥
प्रावृट्काले च नभसि कृष्णाष्टम्यामह' निशि । उत्पत्स्यामि नवम्या च प्रसूति त्वमवाप्स्यसि ॥४४॥
यशोदाशयने मा तु देवक्यास्त्वामनिन्दिते। मच्छक्तिप्रेरितमतिर्वसुदेवो नयिष्यति ॥४५॥
कसश्च त्वामुपादाय दवि शैलशिलातल। प्रक्षेप्स्यत्यन्तरिक्षे च त्व स्थान समवाप्स्यसि ॥४६॥
ततस्त्वा शतधा' शक्र प्रणम्य मम गौरवात् । प्रणिपातानतशिरा भगिनीत्वे ग्रहीष्यति ॥४७॥
तत शुम्भनिशुम्भादीन्हत्वा दैत्यान्सहस्रश । स्थानैरनेकै पृथिवीमशेषा मण्डयिष्यसि ॥४८॥

ला-लाकर रख छोडती थी। विष्णु ने अपनी महाविद्या योगनिद्रा से जो अविद्या से ससार को मोहित करती है कहा ॥३६ ३७॥

विष्णु बोले—निद्र ! तुम जाओ और मेरी आज्ञा से पातालस्थित छहो गर्भों को एक एक करके देवकी के पेट मे रख छोडो। कस द्वारा उनके निहत हो जाने पर मेरा शेष सनक अश अशो के अश से देवकी के पेट मे सातवाँ गर्भ होकर अवस्थित होगा। वसुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी गोकुल मे रहती है। प्रसव समय उस गर्भ को लेकर तुम रोहिणी के पेट मे रख छोडना। तब कस के भय से या कैद के कारण देवकी का सातवा गर्भ गिर पडा—इस तरह लोक मे जनश्रुति फैल जायगी। गर्भ से खिच जाने के कारण लोक मे उस श्वेतपर्वततुल्य वीर की सज्ञा सकर्षण हो जायगी। तदुपरान्त मै देवकी के पवित्र उदर से उत्पन्न हूँगा। तुम शीघ्र यशोदा के गर्भ मे चली जाओ। वर्षाऋतु मे भाद्रपद की कृष्णाष्टमी की रात्रि मे मैं जन्म लूगा और नवमी मे तुम्हारी उत्पत्ति होगी ॥३८ ४४॥ मेरी शक्ति से प्रेरणा पाकर वसुदेव जा मुझ ले जाकर यशोदा की पवित्र शय्या पर छोड आएँगे और तुम्हें लाकर देवकी के बिछौने पर रख देगे। तब कस तुम्हें उठाकर पर्वत के शिलातल पर पटक देगा पर तुम वहाँ से उडकर आकाश मे अपना स्थान प्राप्त कर लोगी। वहाँ इन्द्र मेरी प्रतिष्ठा के कारण तुम्हे माथा टेक कर सैकडो बार प्रणाम करके अपनी बहन बनायगे। तदनन्तर तुम अनेक स्थानो पर शुम्भ निशुम्भ आदि सहस्रो दैत्यो को मारकर

१ग ०स्ततो मम। अ०। २ख ०ष्टम्या महानि०। ३ख ०तद्वक्त्र।

त्वं भूतिः संनतिः कीर्तिः कान्तिर्वै पृथिवी धृतिः । लज्जापुष्टिरुषा या च काचिदन्या त्वमेव सा ॥४९॥
ये त्वामार्येति दुर्गेति वेदगर्भेऽम्बिकेति च । भद्रेति भद्रकालीति क्षेम्या क्षेमकरीति च ॥५०॥
प्रातश्चैवापराह्णे च स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः । तेषां हि वाञ्छितं सर्वं मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥५१॥
सुरामांसोपहारैस्तु भक्ष्यभोज्यैश्च पूजिता । नृणामशेषकामास्त्वं प्रसन्ना या प्रदास्यसि ॥५२॥
ते सर्वे सर्वदा भद्रा मत्प्रसादादसंशयम् । असंदिग्धं भविष्यन्ति गच्छ देवि यथोदितम् ॥५३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे हरेरंशावतारनिरूपण
नामैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८१॥

अथ द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णोत्पत्तिकथानिरूपणम्

व्यास उवाच

यथोक्तं सा जगद्धात्री देवदेवेन वै पुरा। षड्गर्भगर्भविन्यासं चक्रे चान्यस्य कर्षणम् ॥१॥
सप्तमे रोहिणीं प्राप्ते गर्भे गर्भे ततो हरिः । लोकत्रयोपकाराय देवक्याः प्रविवेश वै ॥२॥

सम्पूर्ण पृथ्वी को भूषित करोगी। भूति, सनति, कीर्ति कान्ति, पृथिवी, धृति, लज्जा, पुष्टि, उषा और जो कोई दूसरी हैं, सब तुम ही हो। जो प्रात काल तथा सायकाल मस्तक झुकाकर आर्या, दुर्गा, वेदगर्भा, अम्बिका, भद्रा, भद्रकाली, क्षेम्या तथा क्षेमकरी आदि नामो से तुम्हारी स्तुति करेंगे, उनकी समस्त अभिलाषायें मेरी कृपा से पूरी होगी। जो मनुष्य मद्य, मास, भक्ष्य, भोज्य तथा उपहारो से तुम्हारी पूजा करेंगे, उन्हे तुम प्रसन्न होकर अशेष कामनाएँ प्रदान करोगी। वे सब मेरी कृपा से निःसन्देह कल्याण प्राप्त करेंगे। देवी ! अब तुम मेरे कथनानुसार जाओ ॥४५-५३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे विष्णु का अवतारनिरूपण नामक
एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८१॥

अध्याय १८२

श्रीकृष्ण की उत्पत्ति-कथा का निरूपण

व्यास बोले—विष्णु के कथनानुसार जगद्धात्री ने छहो गर्भों का वैसा ही विन्यास किया और सातवें गर्भ को रोहिणी के उदर मे स्थित कर दिया। तब तीनो लोक के उपकार के लिये भगवान् ने देवकी के उदर मे प्रवेश

१ख क्षेमा। २क ख. प्रार्थित ३ग ०रा। चक्रे प०। ४ग ०र्भवि०।

योगनिद्रा यशोदायास्तस्मिन्नेव ततो दिने। सभूता जठरे तद्वद्यथोक्त परमष्ठिना ॥३॥
ततो ग्रहगण सम्यक्प्रचचार दिवि द्विजा । विष्णोरशे मही याते ऋतवोऽप्यभवञ्शुभा ॥४॥
नोत्सहे देवकीं द्रष्टु कश्चिदप्यतितजसा। जाज्वल्यमाना ता दृष्ट्वा मनासि क्षोभमाययु ॥५॥
अदृष्टा पुरुषै स्त्रीभिर्देवकीं देवतागणा । बिभ्राणा वपुषा विष्णु तुष्टुवुस्तामहर्निशम् ॥६॥

देवा ऊचु॰

त्व स्वाहा त्व स्वधा विद्या सुधा त्व ज्योतिरेव च। त्व सर्वलोकरक्षार्थमवतीर्णा महीतले ॥७॥
प्रसीद देवि सर्वस्य जगतस्त्व शुभ कुरु। प्रीत्यर्थं धारयेशान धृत येनाखिल जगत् ॥८॥

व्यास उवाच

एव सस्तूयमाना सा देवैर्देवमधारयत। गर्भेण पुण्डरीकाक्ष जगता नाणकारणम् ॥९॥
ततोऽखिलजगत्पद्मबोधायाच्युतभानुना। देवक्या पूर्वसध्यायामाविर्भूत महात्मना ॥१०॥
मध्यरात्रेऽखिलाधारे जायमाने जनार्दने। मन्द जगर्जुर्जलदा पुष्पवृष्टिमुच सुरा ॥११॥
फुल्लेन्दीवरपत्राभ चतुर्बाहुमुदीक्ष्य तम। श्रीवत्सवक्षस जात तुष्टावाऽऽनकदुन्दुभि ॥१२॥
अभिष्टूय च त वाग्भि प्रसन्नाभिमहामति[१]। विज्ञापयामास[५] तदा कसाद्भीतो द्विजोत्तमा ॥१३॥

ब्रह्मा के कथनानुसार योगनिद्रा भी उसी दिन यशोदा के उदर मे प्रविष्ट हुई। द्विजगण! पृथ्वी पर विष्णु के अश के जाने पर ग्रहगण सुचारु रूप से विचरण करने लगे। ऋतुएँ भी सुखदायिनी हो गइ। अत्यन्त तेज के कारण देवकी को देखने का किसी को साहस नही होता था। तेज से देदीप्यमान देवकी को देखकर लोग अत्यन्त क्षुब्ध हो जाते थे। (अतएव) देवकी पुरुष तथा स्त्रियो से अदृश्य रहती थी। देवगण शरीर मे विष्णु को धारण किये हुई देवकी की रातदिन स्तुति किया करते थे ॥१ ६॥

देवो ने कहा—तुम स्वाहा स्वधा विद्या सुधा तथा ज्योति हो। अखिल लोको की रक्षा के निमित्त तुम पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई हो। देवि! तुम प्रसन्न होओ और ससार का कल्याण करो। अपनी प्रीति के लिये तुम उस ईश्वर को धारण करो जिसने सम्पूर्ण जगत् का धारण किया है ॥७ ८॥

व्यास बोले—देवो द्वारा इस प्रकार स्तुति की जाने पर देवकी ने ससार की रक्षा के कारण कमललोचन भगवान को गर्भ मे धारण किया। तदनन्तर सम्पूर्ण जगत्रूपी कमल को खिलाने के लिये सूर्यरूपी महात्मा हरि रात्रि के प्रथम प्रहर मे देवकी से प्रादुर्भूत हुए। सबके आधारभूत जनार्दन के अवतीर्ण हो जाने पर मध्यरात्रि मे मेघ मन्द-मन्द गरजने लगे और सुरवृन्द पुष्प-वृष्टि करने लगे। विकसित कमलपत्र के समान कान्ति वाले चतुर्भुज तथा वक्ष पर श्रीवत्स नामक चिह्न धारण करने वाले भगवान को देखकर वसुदेव स्तुति करने लगे। द्विजश्रेष्ठो! सुन्दर वाणी से उनकी स्तुति करके कस से डरे महाबुद्धिमान वसुदेव ने निवेदन किया ॥९ १३॥

१क ॰णा। चित्राभि स्तुतिभिर्विष्णु। २ख देवदेव॰। ३क ख ॰गद्रक्षणका॰। ४ख ॰ति। चिन्तया॰। ५ख ॰स कसाय तदा भीतो द्वि॰।

वसुदेव उवाच

[1]ज्ञातोऽसि देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर। दिव्य रूपमिद देव प्रसादेनोपसहर ॥१४॥
अद्यैव देव कंसोऽयं कुरुते मम यातनाम। अवतीर्णमिति ज्ञात्वा त्वामस्मिन्मन्दिरे मम ॥१५॥

देवक्युवाच

योऽनन्तरूपोऽखिलविश्वरूपो, गर्भेऽपि लोकान्वपुषा बिभर्ति ।
प्रसीदतामेष स देवदेव, स्वमायया[2]ऽऽविष्कृतबालरूप ॥१६॥
उपसहर सर्वात्मन् रूपमेतच्चतुर्भुजम् । जानातु मा[3]ऽवतार ते कंसोऽय दितिजान्तक ॥१७॥

श्रीभगवानुवाच

स्तुतोऽह यत्त्वया पूर्वं पुत्रार्थिन्या तदद्य ते। सफल देवि सजात जातोऽह यत्तवोदरात् ॥१८॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा भगवास्तूर्णी बभूव मुनिसत्तमा । वसुदेवोऽपि त रात्रावादाय प्रययौ बहि ॥१९॥
मोहिताश्चाभवस्तत्र रक्षिणो योगनिद्रया। मथुराद्वारपालाश्च व्रजत्यानकदुन्दुभौ ॥२०॥
वर्षता जलदाना च तत्तोयमुल्बण निशि। सछाद्य त ययौ शेष फणैरानकदुन्दुभिम ॥२१॥
यमुना चातिगम्भीरा नानावर्तशताकुलाम्। वसुदेवो वहन्विष्णु जानुमात्रवहा ययौ ॥२२॥

वसुदेव बोले—देवो के देव ! शख चक्र-गदा धारी ! मैं आपको पहचान गया। देव ! कृपा करके इस दिव्य रूप को बदल दीजिये। मेरे घर मे आप अवतीर्ण हुए हैं—यह जानकर कस आज ही मुझे महाकष्ट देगा ॥१४ १५॥

देवकी बोलीं—जो अनन्तरूप तथा अखिल विश्वरूप होते हुए गर्भ मे भी लोको का धारण करते है और जो अपनी माया से बाल रूप में प्रकट हुए है वे देवो के स्वामी प्रसन्न हों। सर्वात्मन् ! इस चतुर्भुज रूप को हटाइये, ताकि महादैत्य कस आपका अवतार न समझ पाए ॥१६ १७॥

श्रीभगवान् बोले—देवि ! पहिले जो तुमने पुत्र की अभिलाषा से मेरी स्तुति की थी वह प्रार्थना आज तुम्हारी सफल हुई। मैं तुम्हारे उदर से उत्पन्न हुआ ॥१८॥

व्यास बोले—मुनिवर ! इतना कहकर भगवान् चुप हो गए। वसुदेव भी रात्रि मे ही उन्हे लेकर बाहर निकल गये। वसुदेव के जाते समय वहाँ के रक्षकगण तथा मथुरा के द्वारपाल योगनिद्रा से मोहित हो गये। रात म बरसते हुए बादलो के जल से बचाने के लिये शेषनाग ने वसुदेव को अपनी फणाओ से पूर्णतया ढक दिया। अत्यन्त गम्भीर तथा अनेक आवर्तों (भँवर) से व्याप्त यमुना विष्णु को ढोते हुए वसुदेव की जघा बराबर

१ख जातोऽसि। २क ०गमायया। ३ग ०या। मायुरा ०।

कसस्य परमादाय तत्रैगा गतास्तटे। नन्दादीगोपवृद्धाश्च यमुनाया ददर्श स ॥२३॥
तस्मिकाले यशोदाऽपि मोहिता योगनिद्रया। तामव कन्या मुनय प्रासूत मोहिते जन ॥२४॥
वसुदवोऽपि विचस्य दाराग्राय दारिकाम। यशोदाशयन तूणमाजगामामितद्युति ॥२५॥
ददर्श च विबुदध्वा सा यशोदा जातमात्मजम। नीलोत्पलदलश्याम ततोऽत्यर्थं मुद ययौ ॥२६॥
आदाय वसुदवोऽपि दारिका निजमन्दिरम। दवकीशयन न्यस्य यथापूवमतिष्ठत ॥२७॥
ततो बालध्वनि श्रुत्वा रक्षिण सहसोत्थिता। कसमावदयामासुर्देवकीप्रसव द्विजा ॥२८॥
कसस्तूणमुपत्यना ततो जग्राह बालिकाम। मुञ्च मुञ्चति दवक्याऽऽसन्नकण्ठ निवारित ॥२९॥
चिक्षप च शिलापृष्ठ सा क्षिप्ता वियति स्थितिम। अवाप रूप च महत्सायुधाष्टमहाभुजम ॥
प्रजहास तथैवोच्च कस च रुषिताऽब्रवीत ॥३०॥

योगमायोवाच

किं मयाऽऽक्षिप्तया कस जातो यस्त्वा हनिष्यति। सवस्वभूतो दवानामासीन्मृत्यु पुरा स त ॥
तदतत्सप्रधार्याऽऽशु क्रियता हितमात्मन ॥३१॥

बहने लगी। कस क बच्चे चकाने के लिये आये नन्द आदि वृद्ध गोपो को वसुदेव ने वही यमना के तट पर देखा। उस समय यशोदा भी योगनिद्रा से मोहित हो गई थी। मनिवृन्द! मोहित व्यक्तियो के सामने यशोदा ने उसी कन्या को प्रसव किया था। अपरिमित कान्ति वाले वसुदेव भी बालक को यशोदा की शय्या पर सुला कर और कन्या को लेकर शीघ्रता से चल पडे। जगने पर यशोदा ने नील कमल के समान श्यामवण पुत्र को देखकर आनन्द विभोर हो गई। वसुदेव भी अपने घर मे बालिका को देवकी की शय्या पर रखकर पहिले की तरह अवस्थित हो गये। द्विजगण! तदनन्तर बाल ध्वनि सुनकर रक्षकगण सहसा उठ पडे और जाकर कस से देवकी के प्रसव का समाचार सुनाने लगे। तब कस ने शीघ्र देवकी के पास जाकर कन्या को पकड लिया। देवकी छोड दो छोड दो कहती ही रह गई पर उसने बालिका को शिलापृष्ठ पर पटक दिया। हाथ से छूटते ही वह आकाश मे उड गई और महान अस्त्र शस्त्रो से सुसज्जित अष्टभुजाधारिणी बन गई। अट्टहास करके उसने क्रोधपूवक कस से कहा। १९ ३०॥

योगमाया बोली—कस! मझे पटक कर तुम्हे क्या मिला? जो देवो के सवस्वभूत देव तुम्हे मौत के घाट उतारेगे वे तो पहिले ही जन्म ले चके। यह जानकर तुम शीघ्र अपने कल्याण के लिये उपाय करो॥३१॥

१ख दारिकाम। २क ख स्थिता। ३क ०रा तव। त०।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा प्रययौ देवो दिव्यस्रग्गन्धभूषणा। पश्यतो भोजराजस्य स्तुता सिद्धैर्विहायसा ॥३२॥

इति श्रीमहापुराणे आदि ब्राह्मे श्रीकृष्णोत्पत्तिकथानिरूपण नाम
द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१८२॥

अथ त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्याय

कसविचारकथनम्

व्यास उवाच

कसस्त्वथोद्विग्नमना प्राह सर्वान्महासुरान्। प्रलम्बकेशिप्रमुखानाहूयासुरपुगवान्॥१॥

कस उवाच

हे प्रलम्ब महाबाहो केशिधेनुक पूतन। अरिष्टाद्यैस्तथा चान्यै श्रूयता वचन मम ॥२॥
मा हन्तुममरैर्यत्न कृत किल दुरात्मभि। मद्वीर्यतापितान्वीरान्न त्वेतान्गणयाम्यहम ॥३॥

व्यास बोले—इतना कह कर दिव्य माला गन्ध तथा आभूषणों से युक्त एवम सिद्धगणो से स्तुत भगवती कस के देखते हु देखते आकाश म विलीन हो गई॥३२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म श्रीकृष्णोत्पत्तिकथानिरूपण नामक
एक सौ बयासवा अध्याय समाप्त॥१८२॥

अध्याय १८३

कस का अपना विचार कहना

व्यास न कहा—एतदुपरान्त कस उद्विग्न मन से प्रलम्ब केशी आदि महासुरो को बुला कर कहने लगा। १॥

कस बोला—महाशक्तिशाली प्रलम्ब! केशी! धनुक! पूतने! तुम लोग तथा अरिष्ट आदि दूसरे सब भी मेरे वचन को सुन। दुष्ट दवताओ ने मेरे मारने का उपाय किया है परन्तु मेरे प्रताप से सतप्त इन देवगणो का मैं परवाह नही करता। दैत्यश्रेष्ठो! कन्या की बात से मुझ आश्चर्य होता है और उन यत्नशील देव

१ख ०म। धराबाक्येन देवैश्च प्रहितो वासवानुज। म०। २ख ०पितैर्वीरा नन्वेतान्मूदया०। ३ग ०म्। अमरेषु ममावना बा०।

आश्चर्यं कन्यया चोक्तं जायते दैत्यपुंगवाः। हास्यं मे जायते वीरास्तेषु यत्नपरेष्वपि ॥४॥
तथाऽपि खलु दुष्टानां [1]तेषामप्यधिकं [2]मया। अपकाराय दैत्येन्द्रा यतनीयं दुरात्मनाम् ॥५॥
उत्पन्नश्चापि मृत्युर्मे [3]भूतभव्यभवत्प्रभुः। इत्येतद्बालिका प्राह देवकीगर्भसंभवा ॥६॥
तस्माद्बालेषु परमो यत्नः कार्यो महीतले। यत्रोद्रिक्तं बलं बाले स हन्तव्यः प्रयत्नतः ॥७॥

व्यास उवाच

इत्याज्ञाप्यासुरान्कंस प्रविश्याऽऽत्मगृहं [4]ततः। उवाच वसुदेवं च देवकीमविरोधतः ॥८॥

कंस उवाच

युवयोर्घातिता गर्भा वृथैवैते मयाऽधुना। कोऽप्यन्य एव नाशाय बालो मम [5]समुद्गतः ॥९॥
तदलं परितापेन नूनं यद्भाविनो हि ते। अर्भका युवयोः को वा आयुषोऽन्ते न हन्यते ॥१०॥

व्यास उवाच

इत्याश्वास्य विमुच्यैव कंसस्तौ परितोष्य च। अन्तर्गृहं द्विजश्रेष्ठाः प्रविवेश पुनः स्वकम् ॥११॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णबालचरिते कंसविचारकथनं नाम
त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८३॥

ताओं के प्रति हँसी भी आती है। तो भी उन दुरात्मा देवों का अब अधिक अपकार हमें करना है। दैत्यपुंगवो! इसके लिये कटिबद्ध हो जाओ। देवकी के गर्भ से उत्पन्न कुमारिका ने बतलाया है कि भूत, भविष्य तथा वर्तमान के अधीश्वर ने तुम्हें मारने के लिये जन्म ले लिया है। इसलिये पृथ्वी-तल के बालकों पर हमें खास करके ध्यान रखना है। जिस बालक में बल का आधिक्य दीख पड़े, उसे यत्नपूर्वक मार दिया जाय ॥२-७॥

व्यास ने कहा—असुरों को इस प्रकार आज्ञा देकर कंस अपने घर में प्रविष्ट हुआ और बिना विरोध के वसुदेव तथा देवकी से कहने लगा ॥८॥

कंस बोला—तुम दोनों के बालकों को मैंने व्यर्थ ही मार डाला। मेरे नाश के लिये कोई दूसरा ही बालक उत्पन्न हुआ है। इसलिये अब तुम सोच मत करो। जो तुम्हारे भाग्य में था, वह होकर रहा। आयु के अन्त हो जाने पर कौन नहीं मरता है? ॥९-१०॥

व्यास बोले—द्विजवर! इस प्रकार उन दोनों को सान्त्वना दे बन्धन से मुक्त करके कंस ने पुनः अपने अन्तर्गृह में प्रवेश किया ॥११॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में श्रीकृष्ण के बाल-चरित्र वर्णन प्रसंग में कंस विचार-कथन नामक एक सौ
तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८३॥

१ख ०मप्यधि०। २ख थिया। ३ख. ग ०त्पूर्वश्च वै किल। ह०। ४ख. तदा। ५ख समुद्यत.।

अथ चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णबालचरितवर्णनम्

व्यास उवाच

विमुक्तो वसुदेवोऽपि नन्दस्य शकटं गतः। प्रहृष्टं दृष्टवान्नन्दं पुत्रो जातो ममेति वै ॥१॥
वसुदेवोऽपि तं प्राह दिष्ट्या दिष्ट्येति सादरम्। वार्धकेऽपि समुत्पन्नस्तनयोऽयं तवाधुना ॥२॥
दत्तो हि वार्षिकः सर्वो भवद्भिर्नृपतेः करः। यदर्थमागतस्तस्मान्नात्र स्थेयं महात्मना ॥३॥
यदर्थमागतः कार्यं तन्निष्पन्नं किमास्यते। भवद्भिर्गम्यतां नन्द तच्छीघ्रं निजगोकुलम् ॥४॥
ममापि बालकस्तत्र रोहिणीप्रसवो हि यः। स रक्षणीयो भवता यथाऽयं तनयो निजः ॥५॥

व्यास उवाच

इत्युक्ताः प्रययुर्गोपा नन्दगोपपुरोगमाः। शकटारोपितैर्भाण्डैः करं दत्त्वा महाबलाः ॥६॥
वसतां गोकुले तेषां पूतना बालघातिनी। सुप्तं कृष्णमुपादाय रात्रौ च प्रददौ स्तनम् ॥७॥
यस्मै यस्मै स्तनं रात्रौ पूतना संप्रयच्छति। तस्य तस्य क्षणेनाङ्गं बालकस्योपहन्यते ॥८॥
कृष्णस्तस्याः स्तनं गाढं कराभ्यामतिपीडितम्। गृहीत्वा प्राणसहितं पपौ क्रोधसमन्वितः ॥९॥

अध्याय १८४

श्रीकृष्ण का बाल-चरित्र वर्णन

व्यास बोले—विमुक्त होने पर वसुदेव भी नन्द की गाड़ी के पास पहुँचे। उन्होंने पुत्रोत्सव से नन्द को प्रसन्न देखकर आदरपूर्वक कहा—आनन्द की बात है कि बुढ़ापे में भी आपको अब पुत्र हो गया। आप लोगों ने राजा को वार्षिक कर अदा कर दिया। जिसके लिये आप लोग यहाँ आये थे वह कार्य सम्पन्न हो गया। नन्द! अब आप यहाँ न ठहरें। शीघ्र अपने गोकुल चले जायँ। मेरा भी बालक जो रोहिणी से उत्पन्न हुआ है वहीं पर है। उसकी भी आप अपने पुत्र की तरह रक्षा करेंगे ॥१-५॥

व्यास बोले—यह कहे जाने पर नन्द आदि महाबलवान् गोप कर देकर बर्तनों को गाड़ियों पर लाद कर प्रस्थित हो गये। गोकुल में उन लोगों के रहते ही रात्रि में बालघातिनी पूतना ने सोये कृष्ण को उठाकर उनके मुख में अपना स्तन दे दिया। रात्रि में जिस जिस बालक के मुख में पूतना अपना स्तन डालती थी उस उस बालक की तत्काल मृत्यु हो जाती थी। कृष्ण ने क्रोध से उसके स्तन को दोनों हाथों से कसकर दबा दिया और प्राण सहित

१क ०या ते त०।

सा विमुक्तमहारावा विच्छिन्नस्नायुबन्धना। पपात पूतना भूमौ म्रियमाणाऽतिभीषणा ॥१०॥
तन्नादश्रुतिसत्रासाद्विबुद्धास्ते व्रजौकस । ददृशु पूतनोत्सङ्गे कृष्ण ता च निपातिताम ॥११॥
आदाय कृष्ण सत्रस्ता यशोदा च ततो द्विजा । गोपुच्छभ्रामणाद्यैश्च बालदोषमपाकरोत् ॥१२॥
गोपुरीषमुपादाय नन्दगोपोऽपि मस्तके। कृष्णस्य प्रददौ रक्षा कुर्वन्निदमुदैरयत् ॥१३॥

'नन्दगोप उवाच

रक्षतु त्वामशेषाणा भूताना प्रभवो हरि । यस्य नाभिसमुद्भूतात्पङ्कजादभवज्जगत् ॥१४॥
येन दष्ट्राग्रविधृता धारयत्यवनी जगत्। वराहरूपधृग्देव स त्वा रक्षतु केशव ॥१५॥
गुह्य स जठर विष्णुर्जङ्घा पादौ जनार्दन । वामनो रक्षतु सदा भवन्त य क्षणादभूत् ॥१६॥
त्रिविक्रमक्रमाक्रान्तत्रैलोक्यस्फुरदायुध । शिरस्ते पातु गोविन्द कण्ठ रक्षतु केशव ॥१७॥
मुखबाहू प्रबाहू च मन सर्वेन्द्रियाणि च। रक्षत्वव्याहतैश्वर्यस्तव नारायणोऽव्यय ॥१८॥
त्वा दिक्षु पातु वैकुण्ठो विदिक्षु मधुसूदन । हृषीकेशोऽम्बरे भूमौ रक्षतु त्वा महीधर ॥१९॥

व्यास उवाच

एव कृतस्वस्त्ययनो नन्दगोपेन बालक । शायित शकटस्याधो बालपर्यङ्किकातले ॥२०॥
ते च गोपा महद्दृष्ट्वा पूतनाया कलेवरम्। मृतायाः परम त्रास विस्मय च तदा ययु ॥२१॥

स्तन को पी लिया। स्तन को छोड देने पर अतिभयकरी पूतना के समस्त स्नायु-बन्धन छिन्न भिन्न हो गये और वह महाशब्द करती हुई निष्प्राण होकर पृथ्वी पर गिर पडी। उसके शब्द से समस्त व्रजवासी जाग पड और बड भयभीत हुए। उन्होने गिरी हुई पूतना तथा उसकी गोद मे कृष्ण को देखा। द्विजगण! तब अत्यन्त त्रस्त यशोदा ने कृष्ण को उठाकर उनके ऊपर गो-पुच्छ घुमाने आदि के द्वारा बाल-दोष का निराकरण किया। नन्दगोप ने भी कृष्ण के मस्तक पर गोबर रखकर यह कहते हुए रक्षा की ॥६ १३॥

नन्द गोप बोले—समस्त भूतो के आदिकारण हरि तुम्हारी रक्षा करें। जिनकी नाभि से उत्पन्न कमल से जगत् की सृष्टि हुई और जिन्होने वराह रूप बनाकर दष्ट्रा के अग्रभाग से पृथ्वी का उद्धार कर ससार को धारण किया वे केशव तुम्हारी रक्षा कर। केशव तुम्हारे गुह्य स्थान की विष्णु जघाओ की और जनार्दन पैरो की रक्षा करें। वे वामन तुम्हारी सदा रक्षा करें जो एक ही क्षण मे तीन पगो म तीनो लोक को आक्रान्त कर चमकते हुए अस्त्र शस्त्रो से सुसज्जित हो गये थे। गोविन्द तुम्हारे शिर की केशव कण्ठ की और अप्रतिहत शक्ति वाले अविनाशी नारायण मुख बाहु मन तथा समस्त इन्द्रियो की रक्षा करें। दिशाओ मे वैकुण्ठ तथा विदिशाओ मे मधुसूदन तुम्हारी रक्षा करें। आकाश मे हृषीकेश और भूमि पर महीधर तुम्हारी रक्षा करें॥१४ १९॥

व्यास बोले—इस प्रकार रक्षा करके नन्दगोप ने बालक को गाडी के नीचे बच्चो के पलग पर सुला दिया। मृतक पूतना के महाकाय को देखकर गोपगण परम त्रस्त तथा विस्मित हुए। किसी समय शकट के नीचे सोये मधु

१क ख ०न्द उ०।

कदाचिच्छकटस्याध शयानो मधुसूदन । चिक्षेप चरणावूर्ध्वं स्तनार्थी प्ररुरोद च[१] ॥२२॥
तस्य पादप्रहारेण शकट परिवर्तितम् । विध्वस्तभाण्डकुम्भ तद्विपरीत पपात वै ॥२३॥
ततो हाहाकृत सर्वो गोपगोपीजनो द्विजा । [२]आजगाम तदा ज्ञात्वा बालमुत्तानशायिनम् ॥२४॥
गोपा केनेति जगदु शकट परिवर्तितम् । तत्रैव बालका प्रोचुर्बालेनानेन पातितम् ॥२५॥
रुदता दृष्टमस्माभि पादविक्षेपताडितम् । शकट परिवृत्त वै नैतदन्यस्य चेष्टितम् ॥२६॥
तत पुनरतीवाऽऽसन्गोपा विस्मितचेतस । नन्दगोपोऽपि जग्राह बालमत्यन्तविस्मित ॥२७॥
यशोदा विस्मयारूढा भग्नभाण्डकपालकम् । शकट[३] चार्चयामास दधिपुष्पफलाक्षतै ॥२८॥
गर्गश्च गोकुले तत्र वसुदेवप्रचोदित[४]। प्रच्छन्न[५] एव गोपाना सस्कारमकरोत्तयो ॥२९॥
ज्येष्ठ च राममित्याह कृष्ण चैव तथाऽपरम् । गर्गो मतिमता श्रेष्ठो नाम कुर्वन्महामति ॥३०॥
अल्पेनैव हि कालेन विज्ञातौ तौ महाबलौ । घृष्टजानुकरौ विप्रा बभूवतुरुभावपि ॥३१॥
करीषभस्मदिग्धाङ्गौ भ्रममाणावितस्तत । न निवारयितु शक्ता[६] यशोदा तौ न रोहिणी ॥३२॥
गोवाटमध्ये क्रीडन्तौ वत्सवाटगतौ पुन । तदहर्जातगोवत्सपुच्छाकर्षणतत्परौ ॥३३॥
यदा यशोदा तौ बालावेकस्थानचरावुभौ । शशाक नो वारयितु क्रीडन्तावतिचञ्चलौ ॥३४॥
दाम्ना बद्ध्वा तदा मध्ये निबबन्ध उलूखले । कृष्णमक्लिष्टकर्माणमाह[७] चेदममर्षिता ॥३५॥

सूदन ने अपने पैरो को ऊपर फेंका और स्तन पीने के लिये रोना आरम्भ किया। उनके चरण प्रहार से गाडी उलट गई और समीपस्थ घडो को फोडती हुई विपरीत दिशा मे गिर पडी। द्विजगण! तब समस्त गोप-गोपियाँ हाय हाय करती हुई वहाँ दौड आयी। उत्तान सोते हुए बालक को देखकर गोपो ने पूछा—किसने गाडी को उलटाया? वहाँ जो लडके थे उन्होने बतलाया—इसी शिशु ने गाडी को गिराया। हमने देखा कि इसने रोते हुए अपने पैरो से गाडी म ठोकर मारी जिससे गाडी उलट गई। यह दूसरे का काम नही है। यह सुनकर पुन गोपगण अत्यन्त आश्चय-चकित हुए। नन्दगोप ने अति विस्मित होकर बालक को उठा लिया। यशोदा आश्चय मे पडकर दही फूल फल तथा अक्षतो से फूटे घडे के कपाल को तथा गाडी को पूजने लगी। वसुदेव की प्ररणा से गग ने गोकुल मे गोपो से छिप कर ही दोनो बालको का सस्कार किया। विद्वानो मे श्रेष्ठ गर्ग ने बड का नाम राम और छोटे का कृष्ण रखा॥२०-२९॥ विप्रवृन्द! थोड ही दिनो मे दोनो महाबली कुमार घुटने तथा हाथों के बल चलने लगे। कडी के भस्म से लिप्ताग होकर भ्रमण करते हुए दोनो बालको को यशोदा और रोहिणी निवारण नही कर पाती थी। वे दोनो गौओ के स्थान से क्रीडा करते-करते बछडो के स्थान पर चले जाते और नवप्रसूत गायो के बछडो की पूछ पकड कर खीचने लगते थे। जब यशोदा साथ साथ खेलते हुए दोनो अत्यन्त चञ्चल बालको का निवारण नही कर सकी तब उन्होंने सहज ही मे कर्मों को सम्पन्न करने वाले कृष्ण को ओखली के बीच से लगाकर रस्सी से बाँध दिया और क्रोध से कहा॥३०-३५॥

१क ह। २ग ०गामाथ ददृशे बा०। ३क ०ट प्रार्थयामास तदा सा वेपती मुहु। ग०। ख ०ट बन्धयामास दृढ सन्सि दारुणि। ग०। ४क ०प्रणोदि०। ५क ०न्नरूपो मुनय स०। ६ग सेहे। ७ख ०ह चैव प्रहर्षि०।

यशोदोवाच

यदि शक्तोऽसि गच्छ त्वमतिचञ्चलचेष्टित ॥३६॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा च निजकर्म सा चकार[1] कुटुम्बिनी। व्यग्रायामथ तस्यां स कर्षमाण उलूखलम् ॥३७॥
यमलार्जुनयोर्मध्ये जगाम कमलेक्षण। कर्षता वृक्षयोर्मध्ये तिर्यगेवमुलूखलम् ॥३८॥
भग्नावुत्तुङ्गशाखाग्रौ तेन तौ यमलार्जुनौ। तत[2] कटकटाशब्दसमाकर्णनकातर ॥३९॥
आजगाम व्रजजनो ददृशे च महाद्रुमौ। भग्नस्कन्धौ निपतितौ भग्नशाखौ महीतले ॥४०॥
ददर्श चाल्पदन्तास्य स्मितहास च बालकम्। तयोर्मध्यगत बद्ध दाम्ना गाढ तथोदरे ॥४१॥
ततश्च दामोदरता स ययौ दामबन्धनात्। [3]गोपवृद्धास्तत सर्वे नन्दगोपपुरोगमा ॥४२॥
मन्त्रयामासुरुद्विग्ना महोत्पातातिभीरव[4]। स्थानेनेह न न कार्यं व्रजामोऽन्यन्महावनम् ॥४३॥
उत्पाता बहवो ह्यत्र दृश्यन्ते नाशहेतव। पूतनाया विनाशश्च शकटस्य विपर्यय ॥४४॥
विना वातादिदोषेण द्रुमयो पतन तथा। वृन्दावनमित स्थानात्तस्माद्गच्छाम मा चिरम् ॥४५॥
यावद्भौममहोत्पातदोषो[5] नाभिभवेद्व्रजम्। इति कृत्वा मति सर्वे गमने ते व्रजौकस ॥४६॥
ऊचु स्व स्व कुल शीघ्र गम्यता मा विलम्ब्यताम्। तत क्षणेन प्रययु शकटैर्गोधनैस्तथा ॥४७॥

यशोदा बोली—नटखट ! अब यदि तुझमे शक्ति है तो जा।॥३६॥

व्यास बोले—इतना कहकर कुटुम्ब वाली यशोदा अपने काम मे लग गई। जब वह काय मे व्यस्त हो गई तब ओखली को खीचते हुए कमललोचन कृष्ण यमलार्जुन (नाम से प्रसिद्ध दो वृक्षो) के मध्य मे चले गये और वृक्षो के बीच ही ओखली को तिरछी करके खीचने लगे। इससे उत्तुग शाखा वाले दोनो यमलार्जुन टूट कर गिर पड। तदनन्तर उनकी धडाके की आवाज से सत्रस्त व्रजवासी वहाँ आये। उन्होने देखा कि टूटे स्कन्ध तथा टूटी शाखा वाले दोनो वृक्ष भूमि पर गिरे पड हैं और अल्प दातो से युक्त मुख वाला बालक मुसकरा रहा है जो उन्ही वृक्षो के बीच मे खडा है और जिसके पेट मे रस्सी से ओखली बँधी हुई है। उसी दिन से रस्सी से बँध जाने के कारण भगवान दामोदर कहलाने लगे॥३७-४१½॥ नन्दगोप आदि वृद्ध गोप महान उत्पात के डर से उद्विग्न होकर परस्पर परामर्श करने लगे— इस स्थान मे अब हमे नहीं रहना चाहिये। दूसरे महावन मे चलना चाहिए। क्योकि बहुत-से नाश के कारण रूप उपद्रव यहाँ देखे जाते हैं। पूतना का विनाश गाडी का उल्टना बिना आधी-तूफान के ही वृक्षो का गिरना आदि उपद्रव हो रहे हैं। इसलिये जब तक बड-बड भौतिक उत्पात व्रज पर आक्रमण न कर उससे पहिले शीघ्र ही हम लोग इस स्थान से वृन्दावन को चल दें। इस प्रकार समस्त व्रजवासी जाने के लिए एकमत करके अपने अपने परिवार से कहने लगे—'शीघ्र तैयार हो जाओ विलम्ब मत करो। तत्पश्चात क्षण मे ही व्रजवासी शकट

१ख नितम्बिनी। २ख तयो। ३क ०पमुख्यास्त०। ४ख ०तिताडिकता। स्या०। ५ख धो भगवचोदभव। इ०।

यूथशो वत्सपालीश्च कालयन्तो व्रजौकस[1]। सर्वावयवनिर्धूत क्षणमात्रेण तत्तदा ॥४८॥
काककाकीसमाकीर्णं व्रजस्थानमभूद् द्विजा। वृन्दावन भगवता कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ॥४९॥
शुभेन मनसा ध्यात[2] गवा वृद्धिमभीप्सता। ततस्तत्रातिरुक्षेऽपि घर्मकाले द्विजोत्तमा ॥५०॥
प्रावृट्काल इवाभृच्च नवशष्प समन्तत। स समावासित सर्वो व्रजो वृन्दावने तत ॥५१॥
शकटीवाटपर्यन्तचन्द्रार्धाकारसस्थिति । वत्सबालौ च सवृत्तौ रामदामोदरौ तत ॥५२॥
तत्र[3] स्थितौ तौ गोष्ठे चेरतुर्बाललीलया। बर्हिपत्रकृतापीडौ [4]वन्यपुष्पावतसकौ ॥५३॥
[5]गोपवेणुकृतातोद्यपत्रवाद्यकृतस्वनौ । काकपक्षधरौ बालौ कुमाराविव पावकौ ॥५४॥
हसन्तौ च रमन्तौ च चेरतुस्तन्महद्वनम्। क्वचिद्धसन्तावन्योन्य क्रीडमानौ तथा परं ॥५५॥
गोपपुत्रं सम वत्साश्चारयन्तौ विचेरतु। कालेन गच्छता तौ तु सप्तवर्षा बभूवतु ॥५६॥
सर्वस्य जगत पालौ वत्सपालौ महाव्रजे। प्रावृट्कालस्ततोऽतीव मेघौघस्थगिताम्बर ॥५७॥
बभूव वारिधाराभिरैक्य कुर्वन्दिशामिव। [6]प्ररूढनवपुष्पाढ्या[7] शक्रगोपवृता मही ॥५८॥
यथा मारकते वाऽऽसीत्पदमरागविभूषिता। ऊहुरुन्मार्गगामीनि निम्नगाम्भांसि सर्वत ॥५९॥

गोघन बछड आदि अपनी समस्त चीजो को लेकर विदा हो गये। द्विजगण[1] क्षणमात्र मे व्रज मनुष्यविहीन हो गया। वहा कौए चारो ओर छा गये। महाक्रमशाली भगवान् कृष्ण ने गौओ की वृद्धि करने का इच्छा से शुभ मन से वृदावन का ध्यान किया। द्विजश्रेष्ठो[1] तदनतर अत्यत रूक्ष ग्रीष्म ऋतु मे भी वहाँ वर्षा ऋतु का तरह नयी घास-पौध चारो तरफ उग गई। समस्त व्रजवासी वृदावन मे सुखपूर्वक निवास करने लगे ॥४२ ५१॥ गाडी के भाग पयन्त उन लोगो का आवास अर्धचद्राकार-सा प्रतीत होता था। राम और कृष्ण बछडो को चराने जाते थे। गोष्ठ मे रहकर वे दोना बाल-लीला करते थे। वे मयूर-पख के शिरोभूषण तथा वन्य पुष्पो के कर्णभूषण बनात बाँसुरी बजाते चरवाहे की लाठी रखते और बालो का सिंगार करते थे। इस प्रकार दोनो अग्नि के समान तेजस्वी कुमार हँसते खेलते और महावन मे विचरण करते थे। कही परस्पर हँसते कही दूसरो के साथ हँसते और कही गोप पुत्रो के साथ बछडो को चराते हुए विचरण करते थे। इस तरह समय बीतते हुए उन्हें सात वर्ष हो गये। जो समस्त ससार के पालक हैं वे महाव्रज मे बछडो के पालक बने। तदनन्तर वर्षा ऋतु का आगमन हुआ। आकाश मे बादल छा गये। माना वे जलधारा से दिशाओ को एक करने लगे हो। नवीन पुष्पो तथा इन्द्रगोपो से आच्छादित होकर पृथ्वी इस तरह सुशोभित हो रही थी मानो वह मरकतमणि तथा पद्मरागमणि से विभूषित हो गई हो। नदी का जल इस प्रकार उत्पथ होकर बहने लगा जैसे दुष्ट जनो का मन नया धन पाकर (उत्पथगामी हो जाता है।) तब

१क ख ०स'। द्रव्याव०। २क ख व्याप्त। ३ग ०त्र स्थानाप्लुतौ। ४क गुञ्जाहारविभूषितौ। ५क ०ताभ्यासौ नानावाद्यविशारदौ। का०। ६क प्रभूतन०। ७क ख ०वशष्पाढ्या।

मनासि दुर्विनीताना प्राप्य लक्ष्मीं नवामिव। विकाले च यथाकाम व्रजमेत्य महाबली ॥
गोपैं समानैं सहितौ चिक्रीडातेऽमराविव ॥६०॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे बालचरिते वृन्दावनप्रवेशवर्णन नाम
चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१८४॥

अथ पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

कालीयदमनाख्यानम्

व्यास उवाच

एकदा तु विना राम कृष्णो वृन्दावन ययौ। विचचार वृतो गोपैर्वन्यपुष्पस्रगुज्ज्वल ॥१॥
स जगामाथ कालिन्दीं लोलकल्लोलशालिनीम। तीरसलग्नफनौघैर्हसन्तीमिव सर्वत ॥२॥
तस्या चातिमहाभीम विषाग्निकणदूषितम। ह्रद कालीयनागस्य ददर्शातिविभीषिणम ॥३॥
विषाग्निना विसरता दग्धतीरमहातरुम। वाताहताम्बुविक्षेपस्पर्शदग्धविहङ्गमम ॥४॥

दोनो महाबली बालक स्वेच्छा से असमय मे ही व्रज मे आकर समवयस्क गोपो के साथ देवो की तरह खेलने लग॥५२ ६०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म बाल चरित्र-वणन प्रसग मे वृ दावनप्रवेश निरूपण
नामक एक सौ चौरास वां अध्याय समाप्त॥१८४॥

अध्याय १८५

कालीय दमन का आख्यान

व्यास बोले—एक समय विना राम के ही कृष्ण वृ दावन चले गये और वन्य पुष्पो की उ ज्वल माला पहन कर गोपो के साथ विचरण करने लगे। वे चञ्चल तरगो से व्याप्त यमुना नदी के तट पर गये जो मानो तीर सलग्न फन-समूहो से हास्य करती-सी दीखती थी। उस मे उन्होने अ यन्त भयकर तथा विषाग्नि के कणो से दूषित कालीय नाग का ह्रद (कुण्ड) देखा जो विषाग्नि से तट पर के वक्षो को जला रहा था। उसके ऊपर से उडने

१क ०लमालि०।

तमतीव महारौद्रं मृत्युवक्त्रमिवापरम् । विलोक्य चिन्तयामास भगवान्मधुसूदनः ॥५॥
अस्मिन्वसति दुष्टात्मा कालीयोऽसौ विषायुधः । यो मया निर्जितस्त्यक्त्वा दुष्टो नष्टः पयोनिधौ ॥६॥
तेनेयं दूषिता सर्वा यमुना [1]सागरगमा । न नरैर्गोधनैर्वापि तृषार्तैरुपभुज्यते ॥७॥
तदस्य नागराजस्य[2] कर्तव्यो निग्रहो मया । [3]नित्यत्रस्ताः सुखं येन चरेयुर्व्रजवासिनः ॥८॥
एतदर्थं नृलोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृतः । यदेषामुत्पथस्थानां कार्या [4]शास्तिर्दुरात्मनाम् ॥९॥
तदेतन्नातिदूरस्थं कदम्बमुरुशाखिनम् । अधिरुह्य पतिष्यामि ह्रदेऽस्मिञ्जीवनाशिनः ॥१०॥

व्यास उवाच

इत्थं विचिन्त्य बद्ध्वा च[5] गाढं परिकरं ततः । निपपात ह्रदे तत्र सर्पराजस्य वेगतः ॥११॥
तेनापि पतता तत्र क्षोभितः स महाह्रदः । अत्यर्थंदूरजाताश्च ताश्चासिञ्चन्महीरुहान् ॥१२॥
तेऽहिदुष्टविषज्वालातप्ताम्बुतपनोक्षिताः । जज्वलुः पादपाः सद्यो ज्वालाव्याप्तदिगन्तराः ॥१३॥
आस्फोटयामास तदा कृष्णो नागह्रदं[6] भुजं । तच्छब्दश्रवणाच्चाथ नागराजोऽभ्युपागमत् ॥१४॥
आताम्रनयनः कोपाद्विषज्वालाकुलैः फणैः । वृतो महाविषैश्चान्यैररुणैरनिलाशनैः ॥१५॥
नागपत्न्यश्च शतशो हारिहारोपशोभिताः[7]। [8]प्रकम्पिततनूत्क्षेपचलत्कुण्डलकान्तयः[9] ॥१६॥

वाले पक्षियों को कहीं वायु के झोंके से जल के छींटे पड़ जाते तो उनकी मृत्यु हो जाती। उस महाभयानक तथा मृत्यु-मुख के समान ह्रद को देखकर भगवान् मधुसूदन सोचने लगे— इसमें वह दुष्टात्मा तथा विषरूप अस्त्र वाला कालीय नाग रहता है जो दुष्ट मेरे द्वारा जीतकर छोड दिया जाने पर समुद्र में भाग गया था। उसने समुद्रगामिनी यमुना को दूषित कर दिया है। मनुष्य या गोधन प्यासे होने पर भी इसका जल नहीं पीते हैं। इसलिये मुझे इस नाग राज को दण्ड देना चाहिये ताकि नित्य डरने वाले व्रजवासी सुखपूर्वक विचरण कर सकें। इसीलिये तो मैंने मृत्यु लोक में अवतार भी लिया है ताकि उत्पथगामी दुरात्माओं को दण्ड दे सकूं। विपुल शाखाओं से युक्त यह कदम्ब वृक्ष भी कोई दूर नहीं है। इसी पर चढ़कर जीवनाशी कालीय के ह्रद में कूद पडूंगा ॥१-१०॥

व्यास बोले—ऐसा विचार कर वे दृढता से काछ बाँधकर सर्पराज के ह्रद में वेग से कूद पड़े। उनके गिरने से ह्रद में अत्यन्त क्षोभ पैदा हुआ जिससे अत्यन्त दूरस्थ वृक्षों के ऊपर भी जल के छींटे पड़ गये। दुष्ट विष रूपी ज्वाला से सतप्त जल के पड़ने से वृक्षों में सद्य इतनी ज्वाला धधक उठी कि चारों ओर ज्वाला ही ज्वाला दीखने लगी। तब कृष्ण ने अपनी भुजाओं से नाग ह्रद में ताल ठोका या आघात किया। वह शब्द सुनते ही नागराज दौड़ पड़ा। क्रोध से आँख लाल कर विष की ज्वाला से व्याप्त फणाओं से कालीय ने कृष्ण को आच्छादित कर दिया। लाल रंग वाले तथा महाविष वाले दूसरे सर्पों ने भी कृष्ण को घेर लिया। वहाँ सैकड़ों मनोहर हारों से सुशोभित नाग-पत्नियाँ थीं जिनके शरीर-कम्पन होने से चञ्चल कुण्डलों की छटा देखते ही बनती थी। तब फणाओं

---

[1] ख सागराङ्गना। [2] क सर्पराजस्य। [3] ग नित्यात्रस्था मु०। [4] ग शान्तिदु०। [5] ख स। [6] ग ०ह्रदे भुजम्। त०। [7] ख ०ता। यमु प्र०। [8] ख ०म्पितास्तत्र च०। [9] ख ०ल्जातयः।

ततः प्रवेष्टितः सर्पैः स कृष्णो भोगबन्धनैः। ददंशुश्चापि ते कृष्णं विषज्वालाविलैर्मुखैः ॥१७॥
त तत्र पतितं दृष्ट्वा नागभोगनिपीडितम्। गोपा व्रजमुपागत्य चुक्रुशुः शोकलालसाः ॥१८॥

गोपा ऊचुः

एष कृष्णो गतो मोहमग्नो[1] वै कालिये ह्रदे। भक्ष्यते सर्पराजेन तदागच्छत मा चिरम् ॥१९॥

व्यास उवाच

एतच्छ्रुत्वा ततो गोपा वज्रपातोपमं वचः। गोप्यश्च त्वरिता जग्मुर्यशोदाप्रमुखा[2] ह्रदम् ॥२०॥
हा हा क्वासाविति जनो गोपीनामतिविह्वलः। यशोदया समं भ्रान्तो द्रुतः प्रस्खलितो ययौ ॥२१॥
नन्दगोपश्च गोपाश्च रामश्चाद्भुतविक्रमः। त्वरितं यमुना जग्मुः कृष्णदर्शनलालसाः ॥२२॥
ददृशुश्चापि ते तत्र सर्पराजवशंगतम्। निष्प्रयत्नं कृतं कृष्णं सर्पभोगेन वेष्टितम् ॥२३॥
नन्दगोपश्च निश्चेष्टः पश्यन्पुत्रमुखं भृशम्[3]। यशोदा च महाभागा बभूव मुनिसत्तमाः ॥२४॥
गोप्यस्त्वन्या रुदत्यश्च ददृशुः शोककातराः। प्रोचुश्च केशवं प्रीत्या भयकातरगद्गदम् ॥२५॥
सर्वा यशोदया सार्धं विशामोऽत्र महाह्रदे। नागराजस्य नो गन्तुमस्माकं युज्यते व्रजे ॥२६॥
दिवसः को विना सूर्यं विना चन्द्रेण का निशा। विना दुग्धेन[4] का गावो विना कृष्णेन को व्रजः ॥
विना कृता न यास्यामः कृष्णेनानेन गोकुलम् ॥२७॥

से कृष्ण को वेष्टित कर सर्पगण विष की ज्वाला से व्याप्त मुखो से उन्हे काटने भी लगे। नाग की फणाओ से पीडित कृष्ण को देखकर गोप शोकविह्वल हो व्रज आकर आक्रोश करने लगे ॥११-१८॥

गोप बोले—कालीय नाग के ह्रद मे कृष्ण मोहवश चले गये। सर्पराज उन्हे खा रहा है। इसलिये जल्दी आओ ॥१९॥

व्यास बोले—तदुपरान्त वज्रपात के सदृश वचन सुनकर गोप तथा यशोदा आदि गोपियाँ दौडते हीं वहाँ गईं। गोपियाँ अत्यन्त शोकातुर होकर रोने लगीं— हाय ! हाय, कहाँ कृष्ण पडे है !'' नन्दगोप यशोदा के साथ गिरते-पडते जल्दी जल्दी वहाँ पहुँचे। अन्य गोप तथा अद्भुत पराक्रमी राम भी कृष्ण-दर्शन की लालसा, से शीघ्र ही यमुना के किनारे पहुँच गए। उन लोगो ने देखा—'कृष्ण सर्पराज के वश मे आ गये हैं। अपनी फणाओ से वेष्टित करके उसने कृष्ण को निश्चेष्ट बना दिया है।' पुत्र के मुख को देखते ही नन्दगोप भी अत्यन्त निश्चेष्ट हो गये। मुनिश्रेष्ठो ! यशोदा की भी वही दशा हुई। अन्य गोपियाँ शोक से कातर हो रोने लगीं और भय से विह्वल होकर कृष्ण से प्रेमपूर्वक कहने लगीं—'यशोदा सहित हम सब नागराज के महाह्रद मे प्रवेश करते है। यो व्रज मे जाना हम लोगो के लिये उचित नही। जैसे बिना सूर्य के दिन, बिना चन्द्रमा के रात और बिना दूध के गाय कुत्सित है, उसी तरह बिना कृष्ण के व्रज निन्द्य है। बिना कृष्ण के हम गोकुल नही जायेंगे ॥२०-२७॥

१ख ०ह्मुग्रे वै। २क द्रुतम्। ३क तदा। ४ग. वृषेण।

व्यास उवाच

इति गोपीवचः श्रुत्वा रौहिणेयो महाबलः । उवाच गोपान्विधुरान्विलोक्य स्तिमितेक्षणः[1] ॥२८॥
नन्द च दीनमत्यर्थं न्यस्तदृष्टि सुताानने । मूर्च्छाकुलां यशोदां च कृष्णमाहात्म्यसंज्ञया ॥२९॥

बलराम उवाच

किमयं देवदेवेश भावोऽयं मानुषस्त्वया । व्यज्यते स्वं तमात्मानं किमन्यं त्व न वेत्सि यत् ॥३०॥
त्वमस्य जगतो[2] नाभिः सुराणामेव चाऽऽश्रयः । कर्ताऽपहर्ता पाता च त्रैलोक्य[3] त्वं त्रयीमय. ॥३१॥
अत्रावतीर्णयोः कृष्ण गोपा एव हि बान्धवाः । गोप्यश्च सीदतः कस्मात्त्वं बन्धून्समुपेक्षसे ॥३२॥
दर्शितो मानुषो भावो दर्शित बालचेष्टितम् । तदयं दम्यता कृष्ण दुरात्मा दशनायुध· ॥३३॥

व्यास उवाच

इति संस्मारितः कृष्णः स्मितभिन्नौष्ठसंपुटः । [4]आस्फाल्य मोचयामास स्वं देह भोगबन्धनात् ॥३४॥
आनाम्य चापि हस्ताभ्यामुभाभ्या मध्यमं फणम् । आरुह्य[5] भुग्नशिरसः प्रननर्तोरुविक्रम. ॥३५॥
व्रणाः फणेऽभवस्तस्य कृष्णस्याङ्घ्रिविकुट्टनैः । यत्रोन्नतिं च कुरुते ननामास्य तत· शिरः ॥३६॥
मूर्च्छामुपाययौ भ्रान्त्या नाग. कृष्णस्य [6]कुट्टनैः । दण्डपातनिपातेन ववाम रुधिर बहु ॥३७॥
तं निर्भुग्नशिरोग्रीवमास्यप्रस्रुतशोणितम् । विलोक्य शरण जग्मुस्तत्पत्न्यो मधुसूदनम् ॥३८॥

व्यास बोले—गोपियों का वचन सुनकर महाबलशाली तथा निर्निमेष नेत्रों से देखने वाले राम ने दुखी गोपों को, पुत्र के मुख पर दृष्टि गडाये अत्यन्त दीन नन्द को तथा मूर्च्छा से आकुल यशोदा को देखकर कृष्ण के माहात्म्य की ओर संकेत करके कहा ॥२८-२९॥

बलराम बोले—देवदेवेश ! क्या आप यह मनुष्य-भाव प्रकट कर रहे हैं ? क्या आप अपनी उस दूसरी आत्मा को नहीं जानते हैं। आप त्रैलोक्य के कर्ता, हर्ता तथा रक्षक हैं। आप वेदमय हैं। कृष्ण ! यहाँ अवतीर्ण हुए हम दोनो के गोप-गोपियाँ ही बन्धु हैं। सीदित होते हुए बन्धुओं की क्यों आप उपेक्षा कर रहे हैं ? आपने मनुष्य-भाव दिखला दिया। बाल चेष्टायें भी दिखला दी। कृष्ण ! अब इस दुरात्मा सर्प का दमन कीजिए ॥३०-३३॥

व्यास बोले—इस प्रकार स्मरण दिलाने पर मुस्कराते हुए कृष्ण ने फणाओं को तोडकर तद्रूप बन्धन से अपने शरीर को मुक्त कर दिया। (दोनों हाथों से बीच की फणाओं को झुका कर टूटे हुए शिर पर चढकर महापराक्रमी कृष्ण नाचने लगे।) कृष्ण के चरणप्रहार से सर्प की फणा में घाव हो गये। जहाँ वह शिर उठाता वहीं पर भगवान कुचल देते। कृष्ण के कुचलने से नाग अत्यन्त मूर्च्छित हो गया। दण्डप्रहार से वह शोणित वमन करने लगा। भग्न-शिर तथा ग्रीवा से युक्त और शोणित से लथ-पथ कालीय को देखकर नाग-पत्नियाँ मधुसूदन की शरण में गई ॥३४-३८॥

१ख ०क्षणान्। न०। २क ०तो योनिश्चराणामपि सश्र०। ३क. त्रैलोक्ये। ४ख ग आस्फोट्य। ५ख ग ०ह्य मग्न०। ६ग रेचकैं।

नागपत्न्य ऊचुः

ज्ञातोऽसि देवदेवेश सर्वेशस्त्वमनुत्तम। पर ज्योतिरचिन्त्य यत्तदंश' परमेश्वरः ॥३९॥
न समर्था. सुर स्तोतु यमनन्यभव प्रभुम्। स्वरूपवर्णनं तस्य कथ योषित्करिष्यति ॥४०॥
यस्याखिलमहीव्योमजलाग्निपवनात्मकम्। ब्रह्माण्डमल्पकांशांशः स्तोष्यामस्तं कथं वयम् ॥४१॥
तत. कुरु' जगत्स्वामिन्' प्रसादमवसीदत'। प्राणांस्त्यजति नागोऽयं भर्तृभिक्षा प्रदीयताम् ॥४२॥

व्यास उवाच

इत्युक्ते' ताभिराश्वास्य क्लान्तदेहोऽपि पन्नगः। प्रसीद देवदेवेति प्राह वाक्यं शनैः शनैः ॥४३॥

कालीय उवाच

तवाष्टगुणमैश्वर्यं नाथ स्वाभाविक परम्। निरस्तातिशयं यस्य तस्य स्तोष्यामि किन्वहम् ॥४४॥
त्व परस्त्व परस्याऽऽद्यः पर त्व तत्परात्मकम्। परस्मात्परमो' यस्त्वं तस्य स्तोष्यामि किन्वहम् ॥४५॥
यथाऽह भवता सृष्टो जात्या रूपेण चेश्वरः। स्वभावेन च संयुक्तस्तथेदं चेष्टितं मया ॥४६॥
यद्यन्यथा प्रवर्तेय देवदेव ततो मयि। न्याय्यो दण्डनिपातस्ते तवैव वचनं यथा ॥४७॥
तथाऽपि य जगत्स्वामी दण्डं पातितवान्मयि। स सोढोऽयं वरो दण्डस्त्वत्तो नान्योऽस्तु मे वरः ॥४८॥
हतवीर्यो हतविषो दमितोऽहं त्वयाऽच्युत। जीवितं दीयतामेकमाज्ञापय करोमि किम् ॥४९॥

नाग-पत्नियाँ बोलीं—देवदेवेश ! हमने आपको पहिचान लिया। आप सबके स्वामी तथा सबसे उत्तम है। परम ज्योति तथा अचिन्त्य रूप जो है, वे भी आप ही के अंश हैं। आप परमेश्वर हैं। जिन स्वत उत्पन्न होने वाले प्रभु की स्तुति करने मे देवता भी समर्थ नही होते हैं, उनका स्वरूप-वर्णन भला स्त्री कैसे करेगी ? पृथ्वी, आकाश, जल अग्नि तथा वायु रूप अखिल ब्रह्माण्ड जिनके अल्प अंश का अंश है, उनकी स्तुति हम कैसे करेंगी ? इसलिये, जगन्नाथ ! हम दुखियो पर कृपा कीजिये। नाग प्राणत्याग कर रहा है। स्वामि भिक्षा हमे दीजिये ॥३९-४२॥

व्यास बोले—स्तुति के बाद यद्यपि सर्प का शरीर खिन्न था, तो भी उसने धीरे-धीरे कहा—'देवाधिदेव ! प्रसन्न होइये।' ॥४३॥

कालीय बोला—नाथ ! आठ प्रकार के ऐश्वर्य आपके स्वाभाविक गुण है। आप अनिर्वचनीय हैं। आपकी मैं क्या स्तुति करूँगा ? आपने जैसी जाति, जैसा रूप और जैसा स्वभाव देकर मेरी सृष्टि की वैसा ही मैने व्यवहार किया। देवदेव ! यदि मै बुरा व्यवहार करूँ तो आप मुझे उचित दण्ड दें। यह तो आपका वचन ही है। जगत्स्वामी ने मुझे जो दण्ड दिया, उसका मैंने सहन किया। मेरे लिये आपसे बढ़कर दूसरा कौन श्रेष्ठ है ? अच्युत ! आपने मेरा दमन किया। मै हतवीर्य तथा हतविष हो गया। आप मुझे केवल जीवन प्रदान करें। आज्ञा दीजिये कि मै क्या करूँ ॥४४-४९॥

१क ०रु कृपां नाथ प्रसा०। २क ०त्प्रमोद न मत। प्रा०। ३ग ०क्ते कान्त्या तस्य। ४ग ०माश्वास्य।

श्रीभगवानुवाच

नात्र स्थेयं त्वया सर्प कदाचिद्यमुनाजले। [1]सभृत्यपरिवारस्त्वं समुद्रसलिलं व्रज ॥५०॥
मत्पदानि च ते सर्प दृष्ट्वा मूर्धनि [2]सागरे। गरुडः पन्नगरिपुस्त्वयि न प्रहरिष्यति ॥५१॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा सर्पराजानं मुमोच भगवान्हरिः। प्रणम्य सोऽपि कृष्णाय जगाम पयसांनिधिम् ॥५२॥
पश्यतां सर्वभूतानां सभृत्यापत्यबान्धवः। समस्तभार्यासहितः परित्यज्य स्वकं ह्रदम् ॥५३॥
गते सर्पे परिष्वज्य मृतं पुनरिवाऽऽगतम्। गोपा मूर्धनि गोविन्दं सिषिचुर्नेत्रजैर्जलैः ॥५४॥
कृष्णमक्लिष्टकर्माणमन्ये विस्मितचेतसः। तुष्टुवुर्मुदिता गोपा दृष्ट्वा [3]शिवजलां नदीम् ॥५५॥
गीयमानोऽथ गोपीभिश्चरितैश्चारुचेष्टितैः। संस्तूयमानो गोपालैः [4]कृष्णो व्रजमुपागमत् ॥५६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते कालीयदमननिरूपणं नाम
पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८५॥

श्री भगवान् बोले—सर्प! तुम यहाँ यमुना जल में कभी भी मत ठहरो। अपने नौकर तथा परिवार सहित तुम समुद्र के जल में चले जाओ। सर्प! समुद्र में तुम्हारे मस्तक पर मेरे पदचिह्नों को देखकर गरुड तुम्हारे ऊपर प्रहार नहीं करेगा ॥५०-५१॥

व्यास बोले—सर्पराज से इतना कहकर भगवान् हरि ने उसे छोड़ दिया। वह भी कृष्ण को प्रणाम कर समस्त भूतों के देखते ही देखते अपने नौकर, बच्चे, बन्धु तथा अखिल पत्नियों समेत अपने ह्रद को छोड़कर समुद्र में चला गया। सर्प के चले जाने पर गोपों ने मरकर पुनः लौट आये की तरह कृष्ण का आलिंगन कर नेत्रजल से उनके मस्तक को भिगो दिया। दूसरे गोप नदी के जल को निर्दुष्ट देखकर आश्चर्यचकित हो हर्ष से महापराक्रमी कृष्ण की स्तुति करने लगे। गोपियाँ उनके सुन्दर चरित्रों का गान करने लगीं और गोपाल उनकी प्रशंसा करने लगे। इस प्रकार कृष्ण व्रज में आये ॥५२-५६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में बालचरित्रवर्णन प्रसंग में कालीयदमन निरूपण नामक
एक सौ पचासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८५॥

१ख. सपुत्रप०। २ख. नागहा। ३ख. क्षुब्धजला। ४क. ख. हृष्टो।

अथ षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

धेनुकवधाख्यानम्

व्यास उवाच

गाः पालयन्तौ च पुनः सहितौ[1] रामकेशवौ। भ्रममाणौ वने तत्र रम्यं तालवनं गतौ ॥१॥
तच्च तालवनं नित्यं धेनुको नाम दानवः। नृगोमांसकृताहारः सदाऽध्यास्ते खराकृतिः ॥२॥
तत्र तालवनं रम्यं फलसम्पत्समन्वितम्। दृष्ट्वा स्पृहान्विता गोपाः फलदानेऽब्रुवन्वचः ॥३॥

गोपा ऊचुः

हे राम हे कृष्ण सदा धेनुकेनैव रक्ष्यते। भूप्रदेशो [2]यतस्तस्मात्त्यक्तानीमानि सन्ति वै ॥४॥
फलानि पश्य तालानां गन्धमोदयुतानि वै। वयमेतान्यभीप्सामः पात्यन्तां यदि रोचते ॥५॥
इति गोपकुमाराणा श्रुत्वा संकर्षणो वचः। कृष्णश्च पातयामास भुवि तालफलानि वै ॥६॥
तालानां पतता शब्दमाकर्ण्यासुरराट्ततः। आजगाम स दुष्टात्मा कोपाद्दैतेयगर्दभः ॥७॥
पद्भ्यामुभाभ्यां स तदा पश्चिमाभ्यां च तं बली। जघानोरसि ताभ्यां च स च तेनाप्यगृह्यत ॥८॥
गृहीत्वा भ्रामणेनैव चाम्बरे गतजीवितम्। तस्मिन्नेव प्रचिक्षेप वेगेन तृणराजनि ॥९॥

अध्याय १८६

धेनुक नामक असुर का वध

व्यास बोले—पुन राम और कृष्ण एक साथ वन मे गौओ को चराते हुए इधर-उधर घूमते हुए एव रमणीय तालवन मे प्रविष्ट हो गए। उस तालवन का रक्षक धेनुक नामक दानव था। जो मनुष्यो तथा गौओं के मांस का भोजन करता था। फलस्वरूप उस रमणीय तालवम को देखकर गोपो को फल लेने की इच्छा हुई। तब उन्होंने यह वचन कहा ॥१-३॥

गोप बोले—हे राम! हे कृष्ण! इस भूमि-प्रदेश की रक्षा धेनुक करता है। इसलिये ये फल लोगो से परित्यक्त हैं। तुम इन सुगंधित तालफलो को देखो। हमे ये चाहिए। यदि तुम्हे पसन्द आए तो इन्हे तोड दो। गोप-बालको का यह वचन सुनकर बलराम तथा कृष्ण ने भूमि पर तालफलो को गिरा दिया। गिरते हुए फलो का शब्द सुनकर गर्दभरूपधारी दुष्टात्मा दैत्य क्रोध से वहाँ आ पहुँचा। उस बलवान् ने अपने पिछले दोनों पैरो से राम की छाती पर मारा, पर उन्होंने उसकी टांगें पकड कर घुमाते घुमाते आकाश मे ही उसे निष्प्राण कर दिया और उसी क्षण वेग स तालवृक्ष के उपर फेंक दिया। ताल के ऊपर से गिरते हुए उस गधे ने अनेको फलो

---

[1] क. स ०तौ बलो०। [2] क. ग ०स्मात्त्यक्तानी०।

ततः फलान्यनेकानि तालाग्रान्निपतन्खरः। पृथिव्यां पातयामास महावातोऽम्बुदानिव ॥१०॥
अन्यानप्यस्य वै ज्ञातीनागतान्दैत्यगर्दभान्। कृष्णश्चिक्षेप तालाग्रे बलभद्रश्च लीलया ॥११॥
क्षणेनालंकृता पृथ्वी पक्वैस्तालफलैस्तदा। दैत्यगर्दभदेहैश्च मुनयः शुशुभेऽधिकम् ॥१२॥
ततो गावो निराबाधास्तस्मिंस्तालवने द्विजाः। [1]नवशष्पं सुखं चेरुर्यत्र भुक्तमभूत्पुरा ॥१३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते धेनुकवधवर्णनं नाम
षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८६॥

अथ सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

रामकृष्णकृतबहुविधलीलावर्णनम्

व्यास उवाच

तस्मिन्रासभदैतेये सानुजे विनिपातिते। सर्वगोपालगोपीनां रम्यं तालवनं बभौ ॥१॥
ततस्तौ जातहर्षौ तु वसुदेवसुतावुभौ। शुशुभाते महात्मानौ बालशृङ्गाविवर्षभौ ॥२॥

को उसी तरह पृथ्वी पर गिरा दिया, जैसे आँधी बादलो को छिन्न-भिन्न कर देती है। वहाँ आये हुए गर्दभरूपधारी अन्य दैत्यो को भी, जो धेनुक के भाई-बन्धु थे, कृष्ण तथा बलभद्र ने सहज ही मे तालवृक्ष के ऊपर फेंक दिया। मुनिगण! क्षण भर मे पृथ्वी पक्व तालफलो से अलङ्कृत हो गई तथा गर्दभरूपधारी दैत्यो की देहो से वह विशेष रूप से शोभित हुई। द्विजवृन्द! तब से उस तालवन मे गायें निर्बाधपूर्वक नवीन घासो को सुख से चरने लगी, जहाँ वे पहले खाती थी ॥४-१३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे बालचरित्र-कथन प्रसग मे धेनुक-वर्णन नामक
एक सौ छियासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८६॥

अध्याय १८७

राम और कृष्ण की अनेक लीलाओ का वर्णन

व्यास बोले—बन्धुवर्गसहित उस राक्षस के विनष्ट हो जाने पर समस्त गोप-गोपियो के लिये तालवन रमणीय स्थान बन गया। तदनन्तर वसुदेव के दोनो महात्मा पुत्र हर्ष से उसी तरह सुशोभित हुए, जैसे नये सींग

---

[1] ख. ०वसस्य मु०।

चारयन्तौ च गा दूरे व्याहरन्तौ च नामभिः। नियोगपाशस्कन्धौ तौ वनमालाविभूषितौ ॥३॥
सुवर्णाञ्जनचूर्णाभ्यां तदा तौ भूषिताम्बरौ। महेन्द्रायुधसंकाशौ श्वेतकृष्णाविवाम्बुदौ ॥४॥
चेरतुर्लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिरितरेतरम्। समस्तलोकनाथानां नाथभूतौ भुवं गतौ ॥५॥
मनुष्यधर्माभिरतौ मानयन्तौ मनुष्यताम्[1]। तज्जातिगुणयुक्ताभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वनम् ॥६॥
ततस्त्वान्दोलिकाभिश्च नियुद्धैश्च महाबलौ। व्यायामं चक्रतुस्तत्र क्षेपणीयैस्तथाऽश्मभिः ॥७॥
तल्लिप्सुरसुरस्तत्र उभयो रममाणयोः। आजगाम प्रलम्बाख्यो[2] गोपवेषतिरोहितः ॥८॥
सोऽवगाहत निःशङ्कं तेषां [3]मध्यममानुषः। मानुषं रूपमास्थाय प्रलम्बो दानवोत्तमः ॥९॥
तयोश्छिद्रान्तरप्रेप्सुरतिशीघ्रममन्यत। कृष्णं ततो रौहिणेयं हन्तुं चक्रे मनोरथम् ॥१०॥
हरिणा क्रीडनं नाम बालक्रीडनकं ततः। प्रक्रीडितास्तु ते सर्वे द्वौ द्वौ युगपदुत्पतन् ॥११॥
श्रीदाम्ना सह गोविन्दः प्रलम्बेन तथा बलः। गोपालैरपरैश्चान्ये गोपालाः सह पुप्लुवुः ॥१२॥
श्रीदामानं ततः कृष्णः प्रलम्बं रोहिणीसुतः। जितवान्कृष्णपक्षीयैर्गोपैरन्यैः पराजिताः ॥१३॥
ते वाहयन्तस्त्वन्योन्यं भाण्डीरस्कन्धमेत्य वै। पुनर्निवृत्तास्ते सर्वे ये ये तत्र पराजिताः ॥१४॥
संकर्षणं तु स्कन्धेन शीघ्रमुत्क्षिप्य दानवः। न तस्थौ प्रजगामैव सचन्द्र इव वारिदः ॥१५॥
अशक्तो वहने तस्य संरम्भाद्दानवोत्तमः। ववृधे सुमहाकायः प्रावृषीव बलाहकः ॥१६॥

वाले बछडे। वनमाला से विभूषित तथा कंधे पर हांकने की रस्सी रखे हुए कृष्ण एवम् राम गौओं को दूर ले जाकर चराते थे तथा उनके नामों से पुकारते थे। सुवर्ण तथा अञ्जनचूर्ण से भूषित वस्त्रधारी, (अर्थात् पीताम्बर और नीलाम्बर), इन्द्रधनुष के तुल्य और बादल की तरह श्वेत एवम् कृष्ण दोनों भाई परस्पर लोक-प्रसिद्ध क्रीडाओं से खेल करते थे। समस्त लोकनाथों के नाथ तथा महाबली कृष्ण-राम पृथ्वी पर आकर मनुष्य-धर्म-निरत होकर मनुष्यत्व का परिचय देते हुए मनुष्य जाति के अनुरूप ही वन में क्रीडा करते थे। वे हिंडोले पर झूलते, युद्ध करते और फेंकने योग्य पत्थर के टुकडों से व्यायाम करते थे। (एक दिन) खेल करते हुए कृष्ण और राम से बदला लेने की इच्छा से प्रलम्ब नामक असुर गोप-वेश में अपने को छिपाकर वहाँ उपस्थित हुआ। वह उन दोनों का छिद्रान्वेषण करने लगा। अत्यन्त शीघ्र ही उसे अवसर भी मालूम हो गया। तब वह कृष्ण और बलभद्र को मार देने की कामना करने लगा ॥१-१०॥ हरि ने बालक्रीडनक नामक खेल आरम्भ किया। उसमें दो-दो बालक एक ही बार दौडने थे। श्रीदामा के साथ गोविन्द, प्रलम्ब के साथ बलराम और अन्य गोपालों के साथ दूसरे गोपाल दौडने लगे। कृष्ण ने श्रीदामा को और बलभद्र ने प्रलम्ब को जीत लिया। कृष्ण के पक्ष के गोपालों ने अन्य गोपालों को जीत लिया। पराजित पक्ष वाले विजयी पक्ष वालों को कन्धे पर ढोकर नियत वटवृक्ष तक ले जाते थे और पुनः लौट आते थे। उस समय दैत्य बलराम को फुर्ती से कन्धे पर उठाकर उसी तरह भागने लगा जैसे चन्द्रमा के साथ बादल। बलभद्र के भार के कारण जब वह वहन करने में असमर्थ हुआ तब उसने वर्षाऋतु में बादल की तरह अपने शरीर को बहुत विस्तृत कर दिया। जले पर्वत

1स ०म्। तौ जाति०। 2ग ०ख्यो नरवे०। 3ग ०ध्यगतो दया। मा०। ४क. न।

सकर्षणस्तु त दृष्ट्वा दग्धशैलोपमाकृतिम्। स्रग्दामलम्बाभरण मुकुटाटोपमस्तकम् ॥१७॥
रौद्र शकटचक्राक्ष 'पादन्यासचलत्क्षितिम्। ह्रियमाणस्तत कृष्णमिद वचनमब्रवीत ॥१८॥

बलराम उवाच

कृष्ण कृष्ण ह्रिये त्वेष पर्वतोदग्रमूर्तिना। केनापि पश्य दैत्येन गोपालच्छद्मरूपिणा ॥१९॥
यदत्र साप्रत कार्यं मया मधुनिषूदन। तत्कथ्यता प्रयात्येष दुरात्माऽतित्वरान्वित ॥२०॥

व्यास उवाच

तमाह राम गोविन्द स्मितभिन्नौष्ठसपुट। महात्मा रौहिणेयस्य बलवीर्यप्रमाणवित् ॥२१॥

कृष्ण उवाच

किमय मानुषो भावो व्यक्तमेवावलम्ब्यते। सर्वात्मन्सर्वगुह्याना गुह्याद्गुह्यात्मना त्वया ॥२२॥
स्मराशेषजगदीश कारण कारणाग्रज। आत्मानमेक तद्वच्च जगत्येकार्णवे च य ॥२३॥
भवानह च विश्वात्मन्नेकमेव हि कारणम्। जगतोऽस्य जगत्यर्थे भेदेनाऽऽवा व्यवस्थितौ ॥२४॥
तत्स्मर्यताममेयात्मस्त्वयाऽऽत्मा जहि दानवम्। मानुष्यमेवमालम्ब्य बन्धूना क्रियता हितम ॥२५॥

व्यास उवाच

इति सस्मारितो विप्रा कृष्णेन सुमहात्मना। विहस्य पीडयामास प्रलम्ब बलवान्बल ॥२६॥
मुष्टिना चाहनन्मूर्ध्नि कोपसरक्तलोचन। तेन चास्य प्रहारेण बहिर्याते विलोचने ॥२७॥

के समान आकृति वाले पुष्पमा ा तथा आभूषणो से युक्त मस्तक पर मुकुट धारण किये भयकर गाडी के चक्र के समान नेत्र वाले और पाद प्रक्षेप से पृथ्वी को कँपाने वाले उस दानव को देखकर अपहृत किये जाते हुए बलराम ने कृष्ण से कहा ॥१७ १८॥

बलराम बोले—कृष्ण! कृष्ण! गोपालवेशधारी किसी पर्वताकार दानव के द्वारा मैं अपहृत किया जा रहा हूँ। मधुसूदन! इस समय मुझे क्या करना चाहिये? कहिये। यह दुरा मा तेजी से भाग रहा है ॥१९ २०॥

व्यास बोले—बलभद्र के पराक्रम की इयत्ता को जानने वाले महात्मा गोवि द ने मुस्करा कर उनसे कहा ॥२१॥

कृष्ण बोले—अखिला मन्! गुप्त से भी गुप्त को समझने वाले! आप क्या इस स्पष्ट मनुष्य भाव का अवलम्बन कर रहे हैं? सम्पूर्ण जगत् के स्वामी! एक आ मा का स्मरण कीजिये। किसी निमित्त से अग्रज होने वाले कारण का स्मरण कीजिये। विश्वात्मन्! जगत् के एकार्णव होने मे भी हम और आप एक ही कारण हैं। ससार के लिये ही हम दोनो भिन्नतया अवस्थित होते हैं। अप्रमेया मन्! इसलिये आ मा का स्मरण कीजिये। दानव का नाश कीजिये। इस प्रकार मनुष्य व का अवलम्बन कर ब धुओ का हित कीजिये ॥२२ २५॥

व्यास बोले—विप्रवृ द! महात्मा कृष्ण के इस प्रकार स्मरण दिलाने पर बलवान् बलराम हँसकर प्रलम्ब को पीडा देने लगे। क्रोध से आखें लाल कर उन्होने मुटठी से उसके मस्तक पर दे मारा। इस प्रहार से उसकी आँखें

१क ०सहृतक्षि०।

स निष्कासितमस्तिष्को मुखाच्छोणितमुद्वमन्। निपपात महीपृष्ठे दैत्यवर्योममार च ॥२८॥
प्रलम्ब निहतं दृष्ट्वा बलेनाद्भुतकर्मणा। प्रहृष्टास्तुष्टुवुर्गोपा साधु साध्विति चाब्रुवन् ॥२९॥
सस्तूयमानो 'रामस्तु गोपैर्दैत्ये निपातिते। प्रलम्बे सह कृष्णेन पुनर्गोकुलमाययौ ॥३०॥

व्यास उवाच

तयोर्विहरतोरेव रामकेशवयोर्व्रजे। प्रावृड्व्यतीता विकसत्सरोजा चाभवच्छरत् ॥३१॥
विमलाम्बरनक्षत्रे काले चाभ्यागते व्रजम्। 'ददर्शेन्द्रोत्सवारम्भप्रवृत्तान्व्रजवासिन ॥३२॥
कृष्णस्तानुत्सुकान्दृष्ट्वा गोपानुत्सवलालसान्। कौतूहलादिदं वाक्यं प्राह वृद्धान्महामति. ॥३३॥

कृष्ण उवाच

कोऽय शक्रमहो नाम येन वो हर्ष आगत'। प्राह तं नन्दगोपश्च पृच्छन्तमतिसादरम् ॥३४॥

नन्द उवाच

मेघाना 'पयसामीशो देवराज शतक्रतु.। येन संचोदिता मेघा वर्षन्त्यम्बुमयं रसम् ॥३५॥
तद्वृष्टिजनित सस्य वयमन्ये च देहिन। वर्तयामोपभुञ्जानास्तर्पयामश्च देवताः ॥३६॥
क्षीरवत्य इमा गावो वत्सवत्यश्च निर्वृता'। तेन संवर्धितैः सस्यै 'पुष्टास्तुष्टा भवन्ति वै ॥३७॥
नासस्या नातृणा भूमिर्न बुभुक्षार्दितो जन। दृश्यते यत्र दृश्यन्ते वृष्टिमन्तो बलाहका' ॥३८॥

निकल गई शिर टूट गया और मुख से शोणित बहने लगा। इस प्रकार वह दानव श्रेष्ठ पृथ्वी पर गिर कर मर गया। अद्भुत-कर्म-कारी बलभद्र द्वारा प्रलम्ब के मारे जाने पर गोपगण 'ठीक ठीक' कहते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे। प्रलम्ब के गिर जाने पर गोपो द्वारा स्तुत होते हुए बलराम कृष्ण के साथ पुन गोकुल आ गये ॥२६-३०॥

व्यास बोले—व्रज मे राम और केशव के इस प्रकार विहार करते हुए वर्षा ऋतु बीत गई और शरद् का प्रारम्भ हुआ निर्मल आकाश मे तारे सुशोभित होने लगे। व्रजवासी इन्द्रपूजा की तैयारी म लग गये। उत्सव मनाने की लालसा से दौड़-धूप करते हुए गोपो को देखकर महाबुद्धिमान् कृष्ण ने उत्सुकतापूर्वक वृद्धो से पूछा ॥३१-३३॥

कृष्ण बोले—इन्द्र कौन है जिससे आप लोगो को इतना हर्ष हो रहा है। इस प्रकार पूछते हुए कृष्ण से नन्दगोप अत्यन्त आदरपूर्वक कहने लगे ॥३४॥

नन्द बोले—देवराज इन्द्र मेघो के स्वामी हैं। उन्ही की प्रेरणा से मेघ जलमय रस वृष्टि करते हैं। उसी वृष्टि से अन्न पैदा होता है, जिसे खाकर हम तथा दूसरे प्राणी जीते हैं और देवताओ को तृप्त करते हैं। उसी अन्न से गायें हृष्ट-पुष्ट होकर दूध तथा बछडे देती हैं। जहाँ मेघ बरसते हैं, वहाँ भूमि सस्यसम्पन्न होती है, तृण नही लेने पडते और प्राणी भूखा नहीं मरते हैं। बादल पृथ्वी पर के जल को सूर्य की किरणो द्वारा खींच लेते हैं और

१क रामोऽय। २ग ०र्शेन्द्रमहारम्भायोद्यतान्व्र०। ३क ०पसां स्वामी दे०। ४ग सस्यैर्हृष्टपुष्टा म०।

भौममेतत्पयो गोभिर्धत्ते सूर्यस्य वारिदः। पर्जन्यः सर्वलोकस्य भवाय भुवि वर्षति ॥३९॥
तस्मात्प्रावृषि राजानः शक्रं सर्वे मुदान्विताः। महे सुरेशमर्चन्ति वयमन्ये च देहिनः ॥४०॥

व्यास उवाच

नन्दगोपस्य वचनं श्रुत्वेत्थं शक्रपूजने। कोपाय त्रिदशेन्द्रस्य प्राह दामोदरस्तदा ॥४१॥

कृष्ण उवाच

न वयं कृषिकर्तारो वणिज्याजीविनो न च। गावोऽस्मद्दैवतं तात वयं वनचरा यतः ॥४२॥
आन्वीक्षिकी त्रयी ।वार्ता दण्डनीतिस्तथाऽपरा। विद्याचतुष्टयं त्वेतद्वार्तामत्र शृणुष्व मे ॥४३॥
कृषिर्वणिज्या तद्वच्च तृतीयं पशुपालनम्। विद्या ह्येता(या) महाभागा वार्ता वृत्तित्रयाश्रया ॥४४॥
कर्षकाणां कृषिर्वृत्तिः पण्यं तु पणजीविनाम्। अस्माक गाः परा वृत्तिर्वार्ता भेदैरियं त्रिभिः ॥४५॥
विद्यया यो यया युक्तस्तस्य सा दैवतं महत्। सैव पूज्यार्चनीया च सैव तस्योपकारिका ॥४६॥
योऽन्यस्याः फलमश्नन्वै पूजयत्यपरा नरः। इह च प्रेत्य चैवासौ तात नाऽऽप्नोति शोभनम् ॥४७॥
पूज्यन्ता प्रथिताः सीमाः[1] सीमान्तं च पुनर्वनम्। वनान्ता गिरय. सर्वे सा चास्माकं परा गतिः ॥४८॥
गिरियज्ञस्त्वयं तस्माद्गोयज्ञश्च प्रवर्त्यताम्। किमस्माकं महेन्द्रेण गावः शैलाश्च देवताः ॥४९॥
मन्त्रयज्ञपरा विप्राः सीरयज्ञाश्च कर्षकाः। गिरिगोयज्ञशीलाश्च वयमद्रिवनाश्रयाः[2] ॥५०॥

समस्त लोक के हित के लिये पुन भूमि पर बरस देते हैं। इसलिये वर्षाऋतु मे (?) समस्त नृपगण, हम तथा दूसरे लोग भी हर्षपूर्वक इन्द्र की पूजा करते हैं। ॥३५-४०॥

व्यास बोले—शक्रपूजन के बारे मे नन्द का यह वचन सुनकर इन्द्र को कुपित करने के लिये दामोदर ने कहा ॥४१॥

कृष्ण बोले—तात! हम न तो कृषक हैं न व्यापारी ही। हम लोग वनवासी हैं। इसलिए गौएँ हमारी देवता हैं। चार प्रकार की विद्यायें होती हैं—आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति। इनमे वार्ता के विषय मे मुझसे सुनिये। कृषि, व्यापार और पशुपालन—इन्ही तीन वृत्तियो के आश्रित वार्ता मानी जाती है। किसानो की वृत्ति खेती, बनियो की व्यापार और हमारी पशुपालन वृत्ति ही कही गई है। वार्ता के यही तीन भेद हैं। जो जिस विद्या से युक्त है, उसका वही देवता है। उसी की पूजा करनी चाहिए। वही उसका उपकार करता है। तात! जो मनुष्य फल प्राप्त करता है किसी देवता से और पूजा करता है किसी और की, उसका इस लोक मे तथा परलोक मे कल्याण नही होता है। हम लोग विस्तृत सीमाओ की पूजा करें, फिर सीमान्त वन की और वनान्त पर्वतो की पूजा करें। समस्त पर्वत ही हमारे रक्षक हैं। इसलिये पर्वतयज्ञ और गोयज्ञ हम लोग आरम्भ करें। हमे इन्द्र से क्या प्रयोजन? हमारे देवता तो गायें तथा पर्वत है। ब्राह्मणो को मन्त्रयज्ञ, किसानो को हलयज्ञ और हम वनवासियो को पर्वतो तथा

---

[1] क ०सीमा गिरयो धेनुकान्तथा। येनास्माक हि गिरयो धेनुश्च परमा ग०। [2] ग. ०द्रिबलाश्र०।

तस्माद्गोवर्धनः शैलो भवद्भिर्विविधार्हणैः। अर्च्यतां पूज्यतां मेध्यं पशुं हत्वा विधानतः ॥५१॥
सर्वघोषस्य संदोहा गृह्यन्तां मा विचार्यताम्। भोज्यन्तां तेन वै विप्रास्तथाऽन्ये चापि वाञ्छकाः ॥५२॥
तमर्चितं कृते होमे भोजितेषु द्विजातिषु। शरत्पुष्पकृतापीडाः परिगच्छन्तु गोगणाः ॥५३॥
एतन्मम मतं गोपाः संप्रीत्या क्रियते यदि। ततः कृता भवेत्प्रीतिर्गवामद्रेस्तथा मम ॥५४॥

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा नन्दाद्यास्ते व्रजौकसः। प्रीत्युत्फुल्लमुखा विप्राः साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ॥५५॥
शोभनं ते मत वत्स तदेतद्भवतोदितम्। तत्करिष्यामहे सर्वं गिरियज्ञः प्रवर्त्यताम् ॥५६॥
तथा च कृतवन्तस्ते गिरियज्ञं व्रजौकस.। दधिपायसमांसाद्यैर्ददु. शैलबलिं तत.॥५७॥
द्विजाश्च भोजयामासुः शतशोऽथ सहस्रशः। गाव· शैलं ततश्चक्रुरर्चितास्तं प्रदक्षिणम् ॥५८॥
वृषभाश्चाभिनर्दन्तः सतोया जलदा इव। गिरिमूर्धनि गोविन्दः शैलोऽहमिति मूर्तिमान् ॥५९॥
बुभुजेऽन्नं बहुविधं गोपवर्याहृतं द्विजाः। कृष्णस्तेनैव रूपेण गोपैः सह गिरेः शिरः ॥६०॥
अधिरुह्यार्चयामास द्वितीयामात्मनस्तनुम्। अन्तर्धानं कृते तस्मिन्गोपा लब्ध्वा ततो वरान् ॥
कृत्वा गिरिमह गोष्ठं निजमभ्याययुः पुनः ॥६१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते गोवर्धनगिरियज्ञप्रवर्तनं नाम सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८७॥

गौओं का यज्ञ करना चाहिए। इसलिये आप लोग विधानपूर्वक पवित्र पशु की बलि देकर गोवर्धन पर्वत की विविध पूजा कीजिये। सब गाँव वालों को सूचना दे दीजिये। अब इसमें सोचिये नहीं। ब्राह्मणों को तथा अपेक्षितों को भोजन कराइये। गोवर्धन की पूजा, हवन तथा ब्राह्मण भोजन कराने के उपरान्त गो-समूह को शरद् ऋतु में होने वाले पुष्पों से सुसज्जित कीजिये। यह मेरा विचार है। यदि गोपगण प्रसन्नतापूर्वक ऐसा करेंगे तो गौओं तथा पर्वत को और मुझे भी परितोष होगा॥४२-४५॥

व्यास बोले—विप्रवृन्द! कृष्ण के वचन सुनकर, नन्द आदि व्रजवासी प्रेम से गद्गद होकर कहने लगे—'ठीक-ठीक! वत्स! तुमने जो कहा, सब अच्छा है। हम वैसा ही करेंगे। अब हम पर्वतयज्ञ आरम्भ करें।' तदनन्तर समस्त व्रजवासियों ने पर्वत-यज्ञ किया। पर्वत को दही, खीर, मांस, आदि की बलि दी गई। सैकड़ों-हजारों ब्राह्मण खिलाये गये। सुसज्जित गायों तथा जलपूर्ण बादल की तरह शब्द करते हुए बैलों ने पर्वत की प्रदक्षिणा की। द्विजवृन्द! पर्वत के शिखर पर प्रतिमा की आकृति में अपने को पर्वत बतलाते हुए गोविन्द ने गोपों के चढ़ाये हुए अनेक प्रकार के अन्नों को खाया। कृष्ण ने उसी रूप से गोपों के साथ पर्वत के शिखर पर चढ़कर अपने दूसरे शरीर की पूजा की। मूर्ति के अन्तर्ध्यान हो जाने पर गोपगण उत्तम वरदान प्राप्त कर तथा पर्वतोत्सव सम्पन्न कर पुन गोकुल आ गये॥५५-६१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में बालचरित्र-कथन-प्रसंग में गोवर्धनगिरि-यज्ञ-प्रवर्तन नामक एक सौ सत्तासीवाँ अध्याय समाप्त॥१८७॥

अथाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

गोवर्धनाख्यानवर्णनम्

व्यास उवाच[1]

महे प्रतिहते शक्रो भृशं कोपसमन्वितः। संवर्तकं नाम गणं तोयदानामथाब्रवीत् ॥१॥

इन्द्र उवाच

भो भो मेघा निशम्यैतद्वदतो वचनं मम। [2]आज्ञानन्तरमेवाऽशु क्रियतामविचारितम् ॥२॥
नन्दगोपः सुदुर्बुद्धिर्गोपैरन्यैः सहायवान्। [3]कृष्णाश्रयबलाध्मातो महभङ्गमचीकरत् ॥३॥
आजीवो यः परं तेषां गोपत्वस्य च कारणम्। ता गावो वृष्टिपातेन पीड्यन्तां वचनान्मम ॥४॥
अहमप्यद्रिशृङ्गाभं तुङ्गमारुह्य वारणम्। साहाय्यं वः करिष्यामि [4]वायूनां संगमेन च ॥५॥

व्यास उवाच

इत्याज्ञप्ताः सुरेन्द्रेण मुमुचुस्ते बलाहकाः। वातवर्षं महाभीममभावाय गवां द्विजाः ॥६॥
ततः क्षणेन धरणी ककुभोऽम्बरमेव च। एक धारामहासारपूरणेनाभवद्द्विजाः ॥७॥
गावस्तु तेन पतता वर्षवातेन वेगिना। धुताः प्राणाञ्जहुः सर्वास्तिर्यङ्मुखशिरोधराः ॥८॥

अध्याय १८८

गोवर्धन का आख्यान

व्यास बोले—उत्सव नष्ट हो जाने पर (अर्थात् इन्द्र की पूजा रुक जाने पर) इन्द्र को बहुत क्रोध हुआ। तब बादलों में से संवर्तक नामक गण को बुला कर उन्होंने कहा ॥१॥

इन्द्र बोले—बादलो! मेरी बात सुनो और आज्ञा के बाद बिना विचारे शीघ्र ही उस कार्यरूप में परिणत कर डालो। दुष्टबुद्धि नन्दगोप ने अन्य गोपों की सहायता से तथा कृष्ण के बल से मेरे उत्सव का भंग किया। जो गौएँ उनकी जीविका हैं तथा गोपत्व का कारण हैं, उन्हें ही तुम मेरे वचनानुसार वृष्टिपात से पीडित करो। मैं भी पर्वतशिखर के तुल्य उत्तुंग हस्ती पर चढ़कर वायु के साथ तुम्हारी सहायता करूँगा ॥२-५॥

व्यास बोले—द्विजवर! इन्द्र की आज्ञा पाकर बादल गौओं के नाश के लिये मूसलधार वृष्टि करने लगे। तदनन्तर क्षण में ही पृथ्वी, दिशायें तथा आकाश अनन्त धाराओं से भरकर एक-से बन गये। उस भीषण वृष्टिपात से समस्त गौएँ मुख और ग्रीवा को तिरछा करके प्राणत्याग करने लगीं। द्विजश्रेष्ठो! कितनी गौएँ बछडों को क्रोड-

---

१ग ०च—यज्ञे च प्रह०। २क ०ज्ञा पर ममैवाऽऽ०। ३ख. ०बलोन्मत्तो म०। ४ग वायुमुत्सर्गयोजितम्। व्या०।

क्रोडेन वत्सानाक्रम्य तस्थुरन्या द्विजोत्तमा । गावो विवत्साश्च कृता वारिपूरेण चापरा ॥९॥
वत्साश्च दीनवदना [1] पवनाकम्पिकधरा । त्राहि त्राहीत्यल्पशब्दा कृष्णमूचुरिवाऽऽतका ॥१०॥
ततस्तद्गोकुल सर्व [2]गोगोपीगोपसकुलम । अतीवाऽऽर्त हरिदृष्ट्वा त्राणायाचिन्तयत्तदा ॥११॥
एतत्कृत महेन्द्रेण महभङ्गविरोधिना । तदतदखिल गोष्ठ त्रातव्यमधुना मया ॥१२॥
इममद्रिमह वीर्यादुत्पाट्योरुशिलातलम । धारयिष्यामि गोष्ठस्य पृथुच्छत्रमिवोपरि ॥१३॥

व्यास उवाच

इति कृत्वा मति कृष्णो गोवर्धनमहीधरम । उत्पाट्यैककरेणैव धारयामास लीलया ॥१४॥
गोपाश्चाऽऽह जगन्नाथ समुत्पाटितभूधर । विशध्वमत्र सहिता कृत वर्षनिवारणम् ॥१५॥
सुनिर्वातेषु देशेषु यथायोग्यमिहाऽऽस्यताम । प्रविश्य नात्र भेतव्य गिरिपातस्य निर्भयै ॥१६॥
इत्युक्तास्तेन ते गोपा विविशुर्गोधनै सह । शकटारोपितैर्भाण्डैर्गोप्यश्चाऽऽसारपीडिता ॥१७॥
कृष्णोऽपि त दधारैव शैलमत्यन्तनिश्चलम् । व्रजैकौवासिभिर्हर्षविस्मिताक्षैर्निरीक्षित ॥१८॥
गोपगोपीजनैहृष्टै प्रीतिविस्तारितेक्षणै । सस्तूयमानचरित कृष्ण शैलमधारयत ॥१९॥
सप्तरात्र महामेघा ववर्षुर्नन्दगोकुले । इन्द्रेण चोदिता मेघा गोपाना नाशकारिणा ॥२०॥
ततो धृते महाशैल परित्राते च गोकुले । मिथ्याप्रतिज्ञो वज्रभिद्वारयामास तान्घनान ॥२१॥

प्रदेश म छिपाकर खडा हो गइ और कितनी गौओ को तो जलधारा ने वत्सरहित ही कर दिया। वायु स थरथराते हुए कध वाले दीन मुख वाले एवम् भयपीडित बछड कृष्ण से 'रक्षा करो रक्षा करो' की तरह कुछ अल्प शब्दो मे कहने लगे। तब गोप-गोपी समेत समस्त गोकुल को अत्यन्त पीडित देखकर कृष्ण रक्षा का उपाय सोचने लगे—उत्सव क भग हो जाने स इन्द्र ने ऐसा किया है। इसलिये सम्पूर्ण गोकुल की रक्षा इस समय मुझ करनी चाहिये। मैं अपनी शक्ति से इस विस्तृत शिलामय पर्वत को उखाड कर गोकुल के ऊपर विशाल छत्र की तरह उसका धारण करूगा ॥९ १३॥

व्यास बोले—ऐसा निश्चय करके सहज ही म गोवर्धन पर्वत को उखाडकर कृष्ण न एक ही हाथ से उसका धारण कर लिया। पर्वत को उखाडकर जगन्नाथ ने गोपो से कहा—इसके अन्दर सब चल आओ वर्षा से बच जाओगे। यहाँ वायु भी नहीं है सुख पूर्वक रहो। निर्भय होकर यहाँ प्रवश करो पर्वत क गिरने की कोई शका न करो। कृष्ण के कहने पर व गोप गाडियो पर माण्डो को लाद कर गोधन सहित उसम प्रविष्ट हो गये। जलधारा स पीडित गोपियाँ भी वहाँ गइ। कृष्ण न अत्यन्त निश्चलता से पर्वत का धारण किया। व्रजवासी आनन्द स विस्मित नेत्रो स उनकी ओर देखने लगे। गोप-गोपियाँ प्रेम से आँख फाड-फाड कर उनकी ओर ताकत और प्रसन्नतापूर्वक उनके चरित्रो की प्रशसा करने लगे। गोपो का नाश करने क लिये इन्द्र स प्रेरित महामेघ सात रातो तक नन्द क गोकुल म वृष्टि करते रहे। कृष्ण द्वारा महापर्वत के धारण किये जाने पर और गोकुल की रक्षा हो जाने पर इन्द्र की

---

[1] क ०दना यमुकुरणपीडिता । ग्रा० । [2] क ०गोपगोपीसमाकु० ।

व्यभ्रे नभसि देवेन्द्रे वितथे शक्रमन्त्रिते। निष्क्रम्य गोकुलं हृष्टः स्वस्थानं पुनरागमत् ॥२२॥
मुमोच कृष्णोऽपि तदा गोवर्धनमहागिरिम्। स्वस्थाने विस्मितमुखैर्दृष्टस्तैर्व्रजवासिभिः ॥२३॥

व्यास उवाच

धृते गोवर्धने शैले परित्राते च गोकुले। रोचयामास कृष्णस्य दर्शनं पाकशासनः ॥२४॥
सोऽधिरुह्य महानागमैरावतममित्रजित्। गोवर्धनगिरौ कृष्णं ददर्श त्रिदशाधिपः ॥२५॥
चारयन्तं महावीर्यं गाश्च[1] गोपवपुर्धरम्। कृत्स्नस्य जगतो गोपं वृतं गोपकुमारकैः ॥२६॥
गरुडं च ददर्शोच्चैरन्तर्धानगतं द्विजाः। कृतच्छायं हरेर्मूर्ध्नि पक्षाभ्यां पक्षिपुङ्गवम् ॥२७॥
अवरुह्य स नागेन्द्रादेकान्ते मधुसूदनम्। शक्रः सस्मितमाहेदं प्रीतिविस्फारितेक्षणः[2] ॥२८॥

इन्द्र उवाच

कृष्ण कृष्ण शृणुष्वेदं यदर्थमहमागतः। त्वत्समीपं महाबाहो नैतच्चिन्त्यं[3] त्वयाऽन्यथा ॥२९॥
भारावतरणार्थाय पृथिव्याः पृथिवीतलम्। अवतीर्णोऽखिलाधारस्त्वमेव परमेश्वर ॥३०॥
मखभङ्गविरुद्धेन मया गोकुलनाशकाः। समादिष्टा महामेघास्तैश्चैतत्कदनं कृतम् ॥३१॥
त्रातास्तापात्त्वया गाव समुत्पाट्य महागिरिम्। तेनाहं तोषितो वीर[4] कर्मणाऽत्यद्भुतेन ते ॥३२॥

प्रतिज्ञा असत्य हुई। तब उन्होंने मेघों को रोक दिया। इन्द्र के विचार निष्फल हो जाने पर वे गोकुल को छोड़कर पुनः अपने स्थान पर चले गये। आकाश स्वच्छ हो गया। तब कृष्ण ने भी गोवर्धन पर्वत को यथास्थान रख दिया। व्रजवासियों ने विस्मित मुखों से कृष्ण का अवलोकन किया ॥१४-२३॥

व्यास बोले—गोवर्धनपर्वत के धारण तथा गोकुल की रक्षा करने के कारण इन्द्र को कृष्ण-दर्शन की लालसा हुई। तब देवों के अधीश इन्द्र ने ऐरावत नामक महाहस्ती पर आरूढ़ होकर गोवर्धन गिरि पर कृष्ण का दर्शन किया। उस समय अखिल जगत् के रक्षक महाबलशाली कृष्ण गोप-शरीर धारण कर गोपकुमारों के साथ गायें चरा रहे थे और ऊपर से छिपे-छिपे पक्षिश्रेष्ठ गरुड़ अपने पंखों से भगवान् के मस्तक पर छाया कर रहे थे। तब एकान्त में हाथी पर से उतर कर इन्द्र प्रेम से आँखें फाड़-फाड़ कर कृष्ण की ओर ताकते हुए मुस्कराकर उनसे कहने लगे ॥२४-२८॥

इन्द्र बोले—कृष्ण! कृष्ण! मैं जिसलिए आप के समीप आया हूँ, वह सुनिये। महाबाहो! उसे आप अन्यथा न समझेंगे। पृथ्वी के भार उतारने के लिए आप भूतल पर अवतीर्ण हुए हैं। आप सबके आधार हैं। आप ही परमेश्वर है। उत्सव के भंग होने के कारण मैंने गोकुल को नष्ट करने के लिये महामेघों को आदेश दिया था। यह मैंने अपराध किया। आपने महापर्वत को उखाड़कर गौओं को कष्ट से बचा लिया। वीर! आपके अत्यन्त आश्चर्य-

---

१क. ०गा गोपैं सहित तदा। कु०। २क ०क्षणम्। ३०१ ३क ०च्चित्र विभो त्वयि। मा०। ४ख. देव।

साधित कृष्ण देवानामद्य मन्ये प्रयोजनम्। त्वयाऽयमद्रिप्रवर करेणैकेन चोद्धृत ॥३३॥
गोभिश्च नोदित कृष्ण त्वत्समीपमिहाऽऽगत । त्वया त्रातभिरत्यर्थं युष्मत्कारणवारणात् ॥३४॥
स त्वा कृष्णाभिषेक्ष्यामि गवा वाक्यप्रचोदित । उपेन्द्रत्वे गवामिन्द्रो गोविन्दस्त्व भविष्यसि ॥३५॥
अथोपवाह्यादादाय घण्टामैरावतादगजात। अभिषेक तया चक्रे पवित्रजलपूर्णया ॥३६॥
क्रियमाणेऽभिषेके तु गाव कृष्णस्य तत्क्षणात। प्रस्नवोदभूतदुग्धार्द्रा सद्यश्चक्रुर्वसुधराम् ॥३७॥
अभिषिच्य गवा वाक्याद्देवेन्द्रो वै जनार्दनम। प्रीत्या सप्रश्रय कृष्ण पुनराह शचीपति ॥३८॥

इन्द्र उवाच

गवामेतत्कृत वाक्यात्तथाऽन्यदपि मे शृणु। यदब्रवीमि महाभाग भारावतरणेच्छया ॥३९॥
ममाश पुरुषव्याघ्र पृथिव्या पृथिवीधर। अवतीर्णोऽर्जुनो नाम स रक्ष्यो भवता सदा ॥४०॥
भारावतरणे सख्य स ते वीर करिष्यति। स रक्षणीयो भवता यथाऽऽत्मा मधुसूदन ॥४१॥

श्रीभगवानुवाच

जानामि भारते वशे जात पार्थं तवाशत । तमह पालयिष्यामि यावदस्मि महीतले ॥४२॥
याव महीतले शक्र स्थास्याम्यहमरिंदम। न तावदर्जुन कश्चिद्देवेन्द्र युधि जेष्यति ॥४३॥
कसो नाम महाबाहुर्दैत्योऽरिष्टस्तया पर । केशी कुवलयापीडो नरकाद्यास्तथाऽपरे ॥४४॥

जनक वम से मैं प्रसन्न हूँ। कृष्ण ! आज मैं मानता हूँ कि आपने देवताओ का काय सिद्ध कर दिया। आपने एक ही हाथ से इस पवतश्रेष्ठ का धारण किया। कृष्ण ! आपसे अभिरक्षित गौओ द्वारा प्रेरित होकर मैं आपके ही के कारण आप के पास आया हूँ। मैं गौओ की वाता से प्ररित होकर आपको उपेद्र व के पद पर अभिषिक्त करूँगा। आप गोवि द तथा गौओ के स्वामी कहलाएँगे। इसक बाद एरावत हाथी से घण्टा उतारकर इन्द्र ने पवित्र जल से कृष्ण का अभिषक किया। कृष्ण के अभिषक के समय गौआ ने दूध से पृथ्वी को सद्य आप्लुत कर दिया। गौओ के वचन से जनार्दन का अभिषक करके शचीपति ने पुन कृष्ण से प्रम तथा विनयपूवक कहा ॥२९–३८॥

इन्द्र बोले—महाभाग ! गौआ के वचन से जैसे आपने यह किया वैसे और भी जो मैं कहता हूँ वह सुनिये। पृथ्वीधर ! भार उतारने की इच्छा से मरा अश पुरुषपुगव होकर अवतीण हुआ है जिसका नाम अजुन है। उसकी आप सदा रक्षा करेंगे। भार उतारने म वह वीर आपकी सहायता करेगा। मधुसूदन ! आत्मा की तरह आप उसकी रक्षा करेंगे ॥३९ ४१॥

श्री भगवान् बोले—मैं जानता हूँ भारतवश में आपके अश से पाथ उत्पन्न हुआ है। मैं जब तक पृथ्वी पर रहूँगा तब तक उसका पालन करूँगा। शक्र ! शत्रु का दमन करने वाले ! मैं जब तक भूतल पर रहूँगा तब तक युद्ध म अजुन को कोई नहीं पराजित कर सकगा। कस नामक एक महाशक्तिशाली दैत्य है। उसी तरह अरिष्ट केशी कुवलयापीड नरक आदि भी हैं। देवेन्द्र ! उनके निहत होने के बाद महासग्राम होगा जिसस पृथ्वी

१क पुर्त्र।

हतेषु तेषु देवेन्द्र भविष्यति महाहवः[1]। तत्र विद्धि सहस्राक्ष भारावतरणं कृतम् ॥४५॥
स त्वं गच्छ न संतापं पुत्रार्थे कर्तुमर्हसि। नार्जुनस्य रिपुः[2] कश्चिन्ममाग्रे प्रभविष्यति ॥४६॥
अर्जुनार्थे[3] त्वहं सर्वान्युधिष्ठिरपुरोगमान्। निवृत्ते भारते युद्धे कुन्त्यै दास्यामि विक्षतान् ॥४७॥

व्यास उवाच

इत्युक्तः सपरिष्वज्य देवराजो जनार्दनम्। आरुह्यैरावतं नागं[4] पुनरेव दिवं ययौ ॥४८॥
कृष्णोऽपि सहितो गोभिर्गोपालैश्च पुनर्व्रजम्। आजगामाथ गोपीनां दृष्टपूतेन वर्त्मना ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते गोविन्दाभिषेकवर्णनं नामाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८८॥

अथोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अरिष्टवधनिरूपणम्

व्यास उवाच

गते शक्रे तु गोपाला कृष्णमक्लिष्टकारिणम्। ऊचुः प्रीत्या धृतं दृष्ट्वा तेन गोवर्धनाचलम् ॥१॥

का मार उतर जायगा। सहस्राक्ष! इसलिये आप जाइये। पुत्र के लिए सोच न कीजिये। मेरे सामने अर्जुन का कोई शत्रु नहीं होगा। अर्जुन के कारण मैं युधिष्ठिर आदि सबको बिना क्षत हुए ही महाभारत युद्ध के अन्त में कुन्ती को समर्पित कर दूंगा ॥४२-४७॥

व्यास बोले—एतदुपरान्त देवराज जनार्दन का आलिंगन करके ऐरावत हाथी पर चढ़कर पुनः स्वर्ग चले गये। कृष्ण भी गौओं तथा गोपालों के साथ गोपियों के दृष्टिपात से पवित्र हुए मार्ग से पुनः व्रज में आ गये ॥४८-४९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में बालचरित्र कथन-प्रसंग में गोविन्दाभिषेक वर्णन नामक एक सौ अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८८॥

अध्याय १८९

अरिष्ट नामक असुर का वध

व्यास बोले—इन्द्र के चले जाने के उपरान्त गोवर्धनपर्वत का धारण करने वाले एवं बिना क्लेश के कर्म करने वाले कृष्ण से गोपालों ने प्रेमपूर्वक कहा ॥१॥

१क. ०व। भविष्यति स०। २ख. ०श्चित्समग्रे सम०। ३ख. ०नार्थे त्व०। ४ग. त्वरित स।

गोपा ऊचुः

वयमस्मान्महाभाग भवता महतो भयात्। गावश्च भवता त्राता गिरिधारणकर्मणा ॥२॥
बालक्रीडेयमतुला गोपालत्वं जुगुप्सितम्। दिव्यं च कर्म भवतः किमेतत्तात कथ्यताम् ॥३॥
कालियो दमितस्तोये प्रलम्बो विनिपातितः। धृतो गोवर्धनश्चायं शङ्कितानि मनांसि नः ॥४॥
सत्यं सत्यं हरेः पादौ श्रयामोऽमितविक्रम। यथा त्वद्वीर्यमालोक्य न त्वां मन्यामहे नरम् ॥५॥
देवो वा दानवो वा त्वं यक्षो गन्धर्व एव वा। किं चास्माकं विचारेण बान्धवोऽसि नमोऽस्तु ते ॥६॥
प्रीतिः सस्त्रीकुमारस्य व्रजस्य तव केशव। कर्म चेदमशक्यं यत्समस्तैस्त्रिदशैरपि ॥७॥
बालत्वं चातिवीर्यं च जन्म चास्मास्वशोभनम्। चिन्त्यमानममेयात्मञ्शङ्कां कृष्ण प्रयच्छति ॥८॥

व्यास उवाच

क्षणं भूत्वा त्वसौ तूष्णीं किंचित्प्रणयकोपवान्। इत्येवमुक्तस्तैर्गोपैराह कृष्णो द्विजोत्तमाः ॥९॥

श्रीकृष्ण उवाच

मत्संबन्धेन वो गोपा यदि लज्जा न जायते। श्लाघ्यो वाऽहं ततः किं वो विचारेण प्रयोजनम् ॥१०॥
यदि वोऽस्ति मयि प्रीतिः श्लाघ्योऽहं भवतां यदि। तदर्था बन्धुसदृशी बान्धवाः क्रियतां मयि ॥११॥
नाहं देवो न गन्धर्वो न यक्षो न च दानवः। अहं वो बान्धवो जातो नातश्चिन्त्यमतोऽन्यथा ॥१२॥

गोप बोले—महाभाग! तुमने पर्वत धारण कर इस महाभय से हमे तथा गौओ को बचाया। यह बाल-क्रीडा तो अनुपमेय है। तुम्हारा कर्म दिव्य है पर गोपालत्व तो निन्दित है। तात! यह कैसी बात है, बतलाओ। जल मे तुमने कालिय का दमन किया, प्रलम्बासुर को मारा और गोवर्धन का धारण किया। इससे हमारे मन मे शंका हो रही है। अमितपराक्रमी! हम सत्य कह रहे हैं, हमारा आश्रय हरिचरण ही है। तुम्हारी शक्ति देखकर हम तुम्हे मनुष्य नही मान रहे हैं। हमारे विचार से तुम देव या दानव, या यक्ष या गन्धर्व हो। फिर भी हमारे बन्धु हो। तुम्हे नमस्कार है। केशव! व्रज के स्त्री बच्चे सब तुमसे प्रेम करते हैं। तुमने जो काम किया है, उसे अखिल देव भी नही कर सकते। कहाँ बचपन और कहाँ अतिपराक्रम! हम लोगो के बीच तुम्हारा जन्म ठीक नही हुआ। अमेयात्मन्! यह सोच विचार कर हमे शंका होती है ॥२-८॥

व्यास बोले—द्विजश्रेष्ठो! गोपो से इस प्रकार कहे जाने पर कृष्ण क्षण भर चुप रहे, फिर कुछ प्रणय-कोप दिखाते हुए बोले ॥९॥

श्रीकृष्ण ने कहा—गोपवृन्द! यदि मेरे सम्बन्ध से तुम्हे लज्जा न मालूम पडे तो मुझसे स्नेह करो। तुम्हें विचार से क्या प्रयोजन? बान्धवो! यदि तुम्हें मुझसे स्नेह है और तुम मेरी प्रशंसा करते हो तो मुझसे बन्धुसदृश व्यवहार करो। मैं न देव न गन्धर्व न यक्ष न दानव ही हूँ। मैं तुम्हारा बन्धु हूँ। इससे दूसरा कुछ मेरे विषय में मत सोचो ॥१०-१२॥

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं बद्धमौनास्ततो बलम्। ययुर्गोपा महाभागास्तस्मिन्प्रणयकोपिनि ॥१३॥
कृष्णस्तु विमलव्योमशरच्चन्द्रस्य चन्द्रिकाम्। तथा कुमुदिनीं फुल्लामामोदितदिगन्तराम् ॥१४॥
वनराजीं तथा कूजद्भृङ्गमालामनोरमाम्। विलोक्य सह गोपीभिर्मनश्चक्रे रतिं प्रति ॥१५॥
सह रामेण मधुरमतीव वनिताप्रियम्। जगौ [1]कमलपादोऽसौ नाम तत्र [2]कृतव्रतः ॥१६॥
रम्यं गीतध्वनिं श्रुत्वा संत्यज्यावसथांस्तदा। आजग्मुस्त्वरिता गोप्यो यत्राऽऽस्ते मधुसूदनः ॥१७॥
शनैः शनैर्जगौ गोपी काचित्तस्य पदानुगा। दत्तावधाना काचिच्च तमेव मनसाऽस्मरत् ॥१८॥
काचित्कृष्णेति कृष्णेति चोक्त्वा लज्जामुपाययौ। ययौ च काचित्प्रेमान्धा [3]तत्पार्श्वमविलज्जिता ॥१९॥
काचिदावसथस्यान्तः स्थित्वा दृष्ट्वा बहिर्गुरुम्। तन्मयत्वेन गोविन्दं दध्यौ मीलितलोचना ॥२०॥
गोपीपरिवृतो रात्रिं शरच्चन्द्रमनोरमाम्। मानयामास गोविन्दो रासारम्भरसोत्सुकः ॥२१॥
गोप्यश्च वृन्दशः कृष्णचेष्टाभ्यायत्तमूर्तयः। [4]अन्यदेशगते कृष्णे चेरुर्वृन्दावनान्तरम् ॥२२॥
बभ्रमुस्तास्ततो गोप्यः कृष्णदर्शनलालसाः। कृष्णस्य चरणं रात्रौ दृष्ट्वा वृन्दावने द्विजाः ॥२३॥
एवं नानाप्रकारासु कृष्णचेष्टासु तासु च। गोप्यो व्यग्राः समं चेरू रम्यं वृन्दावनं वनम् ॥२४॥
निवृत्तास्तास्ततो गोप्यो निराशाः कृष्णदर्शने। यमुनातीरमागम्य जगुस्तच्चरितं द्विजाः ॥२५॥

व्यास बोले—महाभागो! हरि के वचन सुनकर गोप चुप हो गये और उनका प्रणय-कोप देखकर वहाँ से चले गये। तब कृष्ण ने स्वच्छ, आकाश, शरच्चन्द्र की चन्द्रिका, विकसित तथा दिशाओं को आमोदित करती हुई कुमुदिनी, वनपंक्ति और मनोरम शब्द करती हुई भ्रमरावलि को देखकर गोपियों के साथ रमण करना चाहा। बाद में व्रतधारी तथा कमलचरण कृष्ण राम के साथ वनिताओं को मोहने वाली सुमधुर तान छेड़ने लगे। मनोरम गीत-ध्वनि सुनकर गोपियाँ गृहों को छोड़कर शीघ्र मधुसूदन के पास आ गईं॥१३-१७॥ कोई गोपी उन्हीं के पदों का अनुसरण करती हुई मन्द-मन्द गाने लगी, कोई सावधानतापूर्वक मन से उन्हीं का स्मरण करने लगी कोई कृष्ण-कृष्ण कह कर लज्जा करने लगी, कोई प्रेमान्ध होकर निर्लज्जतापूर्वक उनके पास जाने लगी, कोई घर के बाहर गुरुजन को देखकर उसके अन्दर ही आँखें मूँद कर तन्मयता से गोविन्द का ध्यान करने लगी। रास आरम्भ करने के इच्छुक गोविन्द ने गोपियों से वेष्टित होकर मनोरम शरच्चन्द्रयुक्त रात्रि को ही इसके लिये उपयुक्त समझा। कृष्ण की लीलाओं से वशीभूत होकर गोपियाँ अपने को भूल गईं। कृष्ण के छिप जाने पर वे वृन्दावन के बाहर भी उनको इधर-उधर ढूढने लगीं। द्विजवृन्द! कृष्ण के दर्शन की लालसा करने वाली भ्रमणशील गोपियों ने वृन्दावन में ही रात्रि में कृष्ण के चरण को देखा। इस प्रकार कृष्ण की अनेक चेष्टाओं में आसक्त होकर गोपियों ने रमणीय वृन्दावन में विचरण किया। ॥१८-२४॥ द्विजगण! कृष्ण के दर्शन से निराश होकर गोपियाँ यमुनातट पर आकर उनके चरित्रों का गान करने लगीं। तदनन्तर गोपियों ने विकसित कमल के समान मुख वाले, त्रैलोक्यरक्षक तथा

१ग. कलपद शौरिर्नाम। २ग. कृत वजे। र०। ३क. तत्पार्श्वनविल०। ४घ. अन्यास्त्ववशगताः कृ०।

ततो ददृशुरायान्तं विकाशि मुखपङ्कजम्[1]। गोप्यस्त्रैलोक्यगोप्तारं[2] कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥२६॥
काचिदालोक्य गोविन्दमायान्तमतिहर्षिता। कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति प्राहोत्फुल्लविलोचना ॥२७॥
काचिद्भ्रूभङ्गुरं कृत्वा ललाटफलकं हरिम्। विलोक्य नेत्रभृङ्गाभ्यां पपौ तन्मुखपङ्कजम् ॥२८॥
काचिदालोक्य गोविन्दं निमीलितविलोचना। तस्यैव रूपं ध्यायन्ती योगारूढेव सा बभौ ॥२९॥
ततः[3] काचित्प्रियालापैः[4] काचिद्भ्रूभङ्गवीक्षितैः[5]। निन्येऽनुनयमन्याश्च करस्पर्शेन माधवः ॥३०॥
ताभिः प्रसन्नचित्ताभिर्गोपीभिः सह सादरम्। रराम रासगोष्ठीभिरुदारचरितो हरिः ॥३१॥
रासमण्डलबद्धोऽपि कृष्णपार्श्वमनूद्गता। गोपीजनो न चैवाभूदेकस्थानस्थिरात्मना ॥३२॥
हस्ते प्रगृह्य चैकैकां गोपिकां रासमण्डलम्। चकार च करस्पर्शनिमीलितदृशं हरिः ॥३३॥
ततः प्रववृते[6] रम्या चलद्वलयनिस्वनैः। [7]अनुयातशरत्काव्यगेयगीतिरनुक्रमात् ॥३४॥
कृष्णः[8] शरच्चन्द्रमसं[9] कौमुदीकुमुदाकरम्।[10] जगौ गोपीजनस्त्वेकं[11] कृष्णनाम पुनः पुनः ॥३५॥
परिवृत्ता[12] [13]श्रमेणैका चलद्वलयतापिनी। ददौ बाहुलतां स्कन्धे गोपी [14]मधुविघातिनः ॥३६॥
काचित्प्रविलसद्बाहुः परिरभ्य चुचुम्ब तम्। गोपी गीतस्तुतिव्याजनिपुणा मधुसूदनम् ॥३७॥
गोपीकपोलसंश्लेषमभिपद्य हरेर्भुजौ। पुलकोद्गमशस्याय स्वेदाम्बुघनतां गतौ ॥३८॥

अद्भुत कार्यकर्ता कृष्ण को आते देखा। गोविन्द को आते देखकर कोई गोपी अत्यन्त आनन्दित होकर 'कृष्ण, कृष्ण' कहने लगी, हर्ष से उसके नेत्र प्रफुल्लित हो गये। कोई भ्रू-भंगी से हरि की ओर देखती हुई अपने नेत्र रूपी भौंरों द्वारा उनके मुख-कमल का पान करने लगी। कोई गोविन्द को देखकर आँखें मूँद कर योगी की तरह उन्हीं के रूप का ध्यान करने लगी ॥२५-२९॥ तब किसी को प्रिय वचनों से, किसी को भ्रू-भंगिमापूर्वक देखने से तथा किसी को करस्पर्श से माधव ने मना लिया। रास-लीला में उपस्थित उन प्रसन्नचित्त गोपियों के साथ उदार चरित्र वाले हरि रमण करने लगे। रास-लीला में मंडली बनाकर कृष्ण की बगल में स्थित गोपियाँ एक स्थान में स्थिर नहीं रहती थीं। एक-एक गोपी का हाथ पकड़ कर हरि रास करते थे। भगवान् के कर-स्पर्श होते ही गोपियाँ आत्मविभोर हो आँखें मूँद लेती थीं। रास करते समय गोपियों के चंचल कंकणों के शब्द बहुत ही मनोहारी होते थे। वे क्रमशः शरत्कालीन काव्य तथा गीत गाती थीं। कृष्ण शरद्-ऋतु के चन्द्रमा एवम् उसकी ज्योत्स्ना का वर्णन करते थे और गोपियाँ एक कृष्ण-नाम का ही बार-बार गाती थीं। किसी गोपी ने चञ्चल कंकणों से पीड़ा तथा परिश्रम से थकावट का अनुभव कर कृष्ण के कन्धे पर अपनी बाहुलता डाल दी और गान तथा स्तुति करने में निपुण किसी दूसरी गोपी ने मधुसूदन को बाहुपाश में जकड़कर चूम लिया ॥३०-३७॥ गोपी के कपोलस्पर्श से हरि की भुजाओं में रोमाञ्च हो आया तथा पसीना टपकने लगा। कृष्ण राग में गीतों को गाते थे। जब गोपियाँ 'वाह कृष्ण, वाह कृष्ण' कहकर

१क ०ङ्कजा। गो०। २क ०क्यमर्तारं। ३क ०त काचि०। ४ग ०पै काचि०। ५क. ०तैः। त्रियामां गमयामास रसस्पर्शेन मानिनी। ता०। ६क प्रसन्नचित्ताभिरचल०। ७क ०नुयातनिराशाप्य गायन्ती-भिर०। ८क कृष्ण। ९क शरच्चन्द्रनिभ। १०क ०कुमुमाक०। ११क ०स्तवैव राम कृष्ण पु०। १२ग ०रिवीर्य०। १३क ०णैव काचि०। १४क ०पुनिघाति०।

[1]रासगेयं जगौ कृष्णो यावत्तारतरध्वनिः। साधु कृष्णेति कृष्णेति तावत्ता द्विगुणं जगुः ॥३९॥
गतेऽनुगमनं [2]चक्रुर्वलने संमुखं ययुः। [2]प्रतिलोमानुलोमेन भेजुर्गोपाङ्गना हरिम् ॥४०॥
स तदा सह गोपीभी रराम मधुसूदनः। स वर्षकोटिप्रतिमः क्षणस्तेन विनाऽभवत् ॥४१॥
ता वार्यमाणाः पितृभिः पतिभिर्भातृभिस्तथा। कृष्णं गोपाङ्गना रात्रौ रमयन्ति रतिप्रियाः ॥४२॥
सोऽपि कैशोरकवया मानयन्मधुसूदनः। रेमे ताभिरमेयात्मा क्षपासु क्षपिताहितः ॥४३॥
तद्भर्तृषु तथा तासु सर्वभूतेषु चेश्वरः। आत्मस्वरूपरूपोऽसौ व्याप्य[3] सर्वमवस्थितः ॥४४॥
यथा समस्तभूतेषु नभोऽग्निः पृथिवी जलम्। वायुश्चाऽऽत्मा तथैवासौ व्याप्य सर्वमवस्थितः ॥४५॥

व्यास उवाच[4]

प्रदोषार्धे कदाचित्तु रासासक्ते जनार्दने। त्रासयन्समदो गोष्ठानरिष्टः समुपागतः ॥४६॥
सतोयतोयदाकारस्तीक्ष्णशृङ्गोऽर्कलोचनः। खुराग्रपातैरत्यर्थं दारयन्धरणीतलम् ॥४७॥
लेलिहानः सनिष्पेषं[5] जिह्वयोष्ठौ पुनः पुनः। संरम्भाक्षिप्तलाङ्गूलः [6]कठिनस्कन्धबन्धनः[7] ॥४८॥
उदग्रककुदाभोगः प्रमाणाद्दुरतिक्रमः। विण्मूत्रालिप्तपृष्ठाङ्गो गवामुद्वेगकारकः ॥४९॥
प्रलम्बकण्ठोऽ[8]भिमुखस्तरुघाताङ्किताननः[9]। पातयन्स गवां गर्भान्दैत्यो वृषभरूपधृक् ॥५०॥

तालियाँ बजाती तब कृष्ण और द्विगुण मात्रा मे गाने लगते। कृष्ण चलते तो वे भी उनके पीछे चल देती, कृष्ण मुँह घुमाते तो वे उनके सामने आ जाती। इस प्रकार प्रतिलोम-अनुलोम भाव से गोपागनायें कृष्ण के साथ केलि करती थी। मधुसूदन गोपियो के साथ रमण करते थे। बिना कृष्ण के गोपियो के लिये एक क्षण भी करोडो वर्ष के समान मालूम पडता था। पिता, पति तथा भाइयो के रोकने पर भी रतिप्रिय गोपियाँ रात मे कृष्ण से रमण कराती थी। किशोर मधुसूदन भी, जिनकी शक्ति अप्रमेय थी, उनका आदर करते हुए रात मे उनसे रमण करते थे। क्योकि उनके पतियो मे उनमे तथा समस्त भूतो मे आत्मस्वरूप से व्याप्त होकर कृष्ण ही तो अवस्थित थे। जैसे सकल भूतो मे आकाश, अग्नि, जल, पृथिवी तथा वायु अवस्थित हैं उसी तरह परमात्मा कृष्ण भी सबको व्याप्त करके स्थित हैं॥३८-४५॥)

व्यास बोले—किसी समय अर्ध प्रदोषकाल मे जब कृष्ण रास मे आसक्त थे तब एक (वृषभरूपधारी) मदमत्त राक्षस गौओ को त्रास दिखाते हुए व्रज मे आया। उसकी आकृति जलपूर्ण बादल की-सी थी, सीग तीक्ष्ण थे, आँखें सूर्य के समान चमकती थीं। वह अपने खुरो के अग्रभाग से धरती को विदीर्ण कर रहा था, जिह्वा से होठो को बार-बार सघर्षपूर्वक चाट रहा था, पुच्छ को बडे वेग से इधर-उधर फेंकता था। उसके कन्धे का बन्धन बडा कठोर था। उसके ककुद का विस्तार असाधारण था। उसका पृष्ठभाग विष्ठा-मूत्र से लिप्त था। वह गौओ को

१क. ग ०नुश्चल०। २ख ०लोमेन मार्गेण ययुर्गो०। ३ख ०प्य चाऽऽत्मन्यवस्थि०। ४ख ०च। परेऽह्नि च क०। ५क सनिष्कम्पो। ६क कपिलस्क०। ७क. ख ०बन्धुरः। उ०। ८क ०ऽपाता०। ९क. ०न। घात०।

सूदयस्तरसा सर्वान्विनाशयति य सदा। ततस्तमतिघोराक्षमवेक्ष्यातिभयातुरा ॥५१॥
गोपा गोपस्त्रियश्चैव कृष्णकृष्णेति चुक्रुशु । सिहनाद ततश्चक्रे¹ तलशब्द च केशव ॥५२॥
तच्छब्दश्रवणाच्चासौ दामोदरमुख ययौ। अग्रन्यस्तविषाणाग्र कृष्णकुक्षिकृतेक्षण ॥५३॥
अभ्यधावत दुष्टात्मा दैत्यो वृषभरूपधृक। आयान्त दैत्यवृषभ दृष्ट्वा कृष्णो महाबलम् ॥५४॥
न चचाल तत स्थानादवज्ञास्मितलीलया। आसन्न चैव जग्राह ग्राहवन्मधुसूदन² ॥५५॥
जघान जानुना कुक्षौ विषाणग्रहणाचलम्। तस्य दर्पबल हत्वा गृहीतस्य विषाणयो ॥५६॥
आपीडयदरिष्टस्य कण्ठ³ क्लिन्नमिवाम्बरम्। उत्पाटच शृङ्गमेक च तेनैवाताडयत्तत ॥५७॥
ममार स महादैत्यो मुखाच्छोणितमुद्वमन। तुष्टुवुर्निहते तस्मिन्गोपा दैत्ये जनार्दनम्॥
जम्भे हते सहस्राक्ष पुरा देवगणा यथा ॥५८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरितेऽरिष्टवधनिरूपण
नामोननवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१८९॥

उद्विग्न कर रहा था। उसका कण्ठ बहुत लम्बा था। उसके मुख पर वृक्षो के आघात करने का चिह्न था। वह वृषभरूपधारी दत्य गाया के गर्भों को गिरा रहा था। वेग से वनो को नष्ट भ्रष्ट करता हुआ वह घूम रहा था। उस अत्यन्त भयानक आँख वाल वृषभ को देखकर गोप गोपियाँ भयातुर होकर 'कृष्ण-कृष्ण' चिल्लाने लगे। तब केशव ने सिहनाद करते हुए ताल ठोका ॥४६ ५२॥ उनके शब्द सुनते ही दत्य सीगो के अग्रभाग को सामने करके कृष्ण की कुक्षि की ओर घूरते हुए दामोदर के सम्मुख जाने लगा। वृषभरूपधारी दुष्टात्मा दैत्य जोर स दौड रहा था। महाबली दत्यरूपी वृषभ का आते देखकर कृष्ण तिरस्कारपूर्वक मुस्कराते हुए अपने स्थान से विचलित न हुए। मधुसूदन ने समीप आने पर उस ग्राह की तरह पकड लिया। सीगो को पकड कर घुटने से उसकी कुक्षि म मार दिया। सीगो को पकडते हु दत्य के गव तथा बल को चूर चूर कर उसके गल को गीले कपड की तरह निचोड दिया। फिर एक सीग को उखाड कर उसी स उसको मारन लगे। वह महादैत्य मुख से शोणित वमन करते हुए मर गया। उस दैत्य क मर जाने पर गोपा ने कृष्ण की उसी तरह स्तुति की जिस तरह जम्भासुर के मरने पर देवगणो ने इन्द्र की स्तुति की थी ॥५३ ५८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म बालचरित्र-वर्णन प्रसग म अरिष्ट-वध निरूपण
नामक एक सौ नवासीवाँ अध्याय समाप्त॥१८९॥

१ग ०के ताल०। २क ०न्त तमपो दैत्य द०। ३क ०ण्ठे क्लिन्न०।

अथ नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

केशिवधनिरूपणम्

व्यास उवाच

ककुद्मिनि हतेऽरिष्टे धेनुके च निपातिते। प्रलम्बे निधनं नीते धृते गोवर्धनाचले ॥१॥
दमिते कालिये नागे भग्ने तुङ्गद्रुमद्वये। हतायां पूतनायां च शकटे परिवर्तिते ॥२॥
कंसाय नारदः प्राह यथावृत्तमनुक्रमात्। यशोदादेवकीगर्भपरिवर्ताद्यशेषतः ॥३॥
श्रुत्वा तत्सकलं कंसो नारदाद्देवदर्शनात्। वसुदेवं प्रति तदा कोपं चक्रे स दुर्मतिः ॥४॥
सोऽतिकोपादुपालभ्य सर्वयादवसंसदि। जगर्हे यादवांश्चापि कार्यं चैतदचिन्तयत् ॥५॥
यावन्न बलमारूढौ बलकृष्णौ सुबालकौ। तावदेव मया वध्यावसाध्यौ रूढयौवनौ ॥६॥
चाणूरोऽत्र महावीर्यो मुष्टिकश्च महाबलः। एताभ्यां मल्लयुद्धे तौ घातयिष्यामि दुर्मदौ ॥७॥
धनुर्महमहायागव्याजेनाऽऽनीय तौ व्रजात्। तथा तथा करिष्यामि यास्येते संक्षयं यथा ॥८॥

व्यास उवाच

इत्यालोच्य स दुष्टात्मा कंसो रामजनार्दनौ। हन्तुं कृतमतिर्वीरमक्रूरं वाक्यमब्रवीत् ॥९॥

अध्याय १९०

केशी नामक असुर का वध

व्यास बोले—वृषभासुर धनुक तथा प्रलम्ब के मारने पर गोवर्धनपर्वत के धारण करने पर कालिय के दमन करने पर दोनों अत्युच्च वृक्षों के तोड़ने पर पूतना के निहत करने पर और शकट के उलटाने पर नारद ने कंस से आकर क्रमशः सम्पूर्ण वृत्तान्त कह दिया। यशोदा तथा देवकी के गर्भ-परिवर्तन का भी अखिल वर्णन कर दिया। देवर्षि नारद से सकल वृत्तान्त सुनकर दुर्मति कंस वसुदेव के प्रति कोप करने लगा। वह अत्यन्त क्रोध में आकर समस्त यादवों की सभा में यादवों की भी निन्दा करने लगा। उसने सोचा— यावत् बलभद्र तथा कृष्ण सबल नहीं होते हैं उससे पहले ही उनको समाप्त कर देना चाहिये अन्यथा पूर्ण यौवन प्राप्त करने पर तो ये दोनों असाध्य हो जायेंगे। चाणूर और मुष्टिक महाबलवान् हैं। मल्लयुद्ध में इन्हीं के द्वारा उन दोनों अभिमानियों को मरवाऊंगा। धनुष-उत्सव रूपी महायज्ञ के ब्याज से उनको यहां मँगवाकर मैं वैसा ही उपाय करूँगा जिससे वे विनष्ट हो जायेंगे ॥१-८॥

व्यास बोले—यह सोचकर राम तथा कृष्ण को मारने की इच्छा से दुष्टात्मा कंस ने अक्रूर से यह वचन कहा ॥९॥

१क ०रिवृत्तिमद्ये०। २क ०क्रे सुदु०। ३ख ०र्मखम०।

कंस उवाच

भो भो दानपते वाक्यं क्रियतां प्रीतये मम। इतःस्यन्दनमारुह्य गम्यतां[1] नन्दगोकुलम् ॥१०॥
वसुदेवसुतौ तत्र विष्णोरंशसमुद्भवौ। नाशाय किल संभूतौ मम दुष्टौ प्रवर्धतः ॥११॥
[2]धनुर्महमहायागश्चतुर्दश्या[3] भविष्यति। आनेयौ भवता तौ तु मल्लयुद्धाय तत्र वै ॥१२॥
चाणूरमुष्टिकौ मल्लौ नियुद्धकुशलौ मम। ताभ्यां सहानयोर्युद्धं सर्वलोकोऽत्र पश्यतु ॥१३॥
नागः कुवलयापीडो महामात्रप्रचोदितः। स तौ निहंस्यते पापौ वसुदेवात्मजौ शिशू ॥१४॥
तौ हत्वा वसुदेवं च नन्दगोपं च दुर्मतिम्। हनिष्ये पितरं चैव उग्रसेनं च दुर्मतिम् ॥१५॥
तत. समस्तगोपाना गोधनान्यखिलान्यहम्। वित्तं चापहरिष्यामि दुष्टानां मद्वधैषिणाम् ॥१६॥
त्वामृते [4]यादवाश्चेमे दुष्टा दानपते मम। एतेषा च वधायाहं प्रयतिष्याम्यनुक्रमात् ॥१७॥
ततो निष्कण्टक सर्वं राज्यमेतदयादवम्। प्रसाधिष्ये त्वया तस्मान्मत्प्रीत्या वीर गम्यताम् ॥१८॥
यथा च माहिषं सर्पिर्दधि चाप्युपहार्य वै। गोपाः समानयन्त्याशु त्वया वाच्यास्तथा तथा ॥१९॥

व्यास उवाच

इत्याज्ञप्तस्तदाऽक्रूरो महाभागवतो द्विजाः। प्रीतिमानभवत्कृष्णं श्वो द्रक्ष्यामीति सत्वरः ॥२०॥
तथेत्युक्त्वा तु राजानं रथमारुह्य सत्वरः[5]। निश्चक्राम तदा पुर्या मथुराया मधुप्रियः ॥२१॥

कंस बोला—दानवेश्वर! मेरे परितोष के लिये मेरी बात मानो। यहाँसे रथ पर चढकर नन्द के गोकुल मे जाओ। विष्णु के अश से समुत्पन्न वसुदेव के दो दुष्ट पुत्र मेरे नाश के लिये ही बढ़ रहे है। धनुष-महायज्ञ चतुर्दशी को होगा। उसमे मल्लयुद्ध के लिये उन दोनो को तुम ले आना। मेरे दो पहलवान चाणूर और मुष्टिक युद्ध-प्रवीण हैं। उन्ही के साथ उन दोनो का युद्ध होगा, सब लोग देखेंगे। कुवलयापीड नामक हाथी महावत की प्रेरणा से वसुदेव के दोना पापी बालकों को मारेगा। उनको मारकर वसुदेव, दुष्टबुद्धि नन्दगोप तथा दुर्मति पिता उग्रसेन को मैं मारूँगा। तब मेरे वध के इच्छुर समस्त गोपो के अखिल गोधन का मैं अपहरण करूँगा। दानवपते! केवल तुम्हे छोडकर इन दुष्ट यादवा के भी क्रमश वध करने के लिये मैं यत्न करूँगा। तदनन्तर यादवरहित सम्पूर्ण निष्कण्टक राज्य का मैं उपभोग करूँगा। इसलिये वीर! तुम मेरी सतुष्टि के लिये जाओ। तुम उस ढग से बातचीत करोगे, जिससे कि गोपगण दही घी भी लेते आयेंगे ॥१०-१९॥

व्यास बोले—द्विजवृन्द इस प्रकार आज्ञा पाकर महाभगवद्भक्त अक्रूर 'कल कृष्ण का दर्शन होगा' यह सोचकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और राजा से 'एवमस्तु' कहकर तुरन्त रथ पर आरूढ होकर मथुरापुरी से बाहर निकल गया ॥२०-२१॥

१ख ग ०ता गोपगो०। २ग ०मंहो ममाप्यत्र चतु०। ३क ०गस्त्रयोदश्यां। ४क. इवा. सर्वे दु०। ५क तत्क्षणम्।

व्यास उवाच

केशी चापि बलोदग्रः कंसदूतः प्रचोदितः। कृष्णस्य निधनाकाङ्क्षी वृन्दावनमुपागमत् ॥२२॥
सखुरक्षतभूपृष्ठः सटाक्षेपधुताम्बुदः। पुर्नविक्रान्तचन्द्रार्कमार्गो गोपान्तमागमत् ॥२३॥
तस्य ह्रेषितशब्देन गोपाला दैत्यवाजिनः। गोप्यश्च भयसंविग्ना गोविन्दं शरणं ययुः ॥२४॥
त्राहि त्राहीति गोविन्दस्तेषां श्रुत्वा तु तद्वचः। सतोयजलदध्वानगम्भीरमिदमुक्तवान् ॥२५॥

गोविन्द उवाच

अलं त्रासेन गोपालाः केशिनः किं भयातुरैः। भवद्भिर्गोपजातीयैर्वीरवीर्यं विलोप्यते ॥२६॥
किमनेनाल्पसारेण ह्रेषितारोपकारिणा। दैतेयबलवाह्येन[१] वलगता दुष्टवाजिना ॥२७॥
एह्येहि दुष्ट कृष्णोऽहं पूष्णस्त्विव पिनाकधृक्। पातयिष्यामि दशनान्वदनादखिलांस्तव ॥२८॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा स तु गोविन्दः केशिनः संमुखं ययौ। विवृतास्यश्च सोऽप्येनं दैतेयश्च उपाद्रवत् ॥२९॥
बाहुमाभोगिनं कृत्वा मुखे तस्य जनार्दनः। प्रवेशयामास तदा केशिनो दुष्टवाजिनः ॥३०॥
केशिनो वदनं तेन विशता कृष्णबाहुना। शातिता दशनास्तस्य सिताभ्रावयवा इव ॥३१॥
कृष्णस्य ववृधे बाहुः केशिदेहगतो द्विजाः। विनाशाय यथा व्याधिराप्तभूतैरुपेक्षितः ॥३२॥

व्यास बोले—कंस का दूत बलोन्मत्त केशी भी प्रेरित होकर कृष्ण को मारने की इच्छा से वृन्दावन पहुँचा। वह अश्व का रूप बना कर अपने खुरों से भूपृष्ठ को क्षत-विक्षत करते हुए, सटा (गर्दन पर के बाल) के प्रक्षेप से बादल को कँपाते हुए और सूर्य-चन्द्रमा के मार्ग को अवरुद्ध करते हुए गोपों के पास आया। दैत्य रूपी अश्व के हिन-हिनाने से गोप-गोपियाँ भय से उद्विग्न होकर गोविन्द की शरण में गये। उनके 'बचाओ बचाओ' यह वचन सुनकर जलपूर्ण मेघ की तरह गम्भीर वाणी से भगवान् ने कहा ॥२२-२५॥

गोविन्द बोले—गोपालो! क्यों भयातुर हो रहे हो? केशी से क्या डरना है? तुम लोग गोप जाति के होकर वीर-शक्ति को भूल जाते हो? इस दुष्ट दैत्य रूपी अश्व के सारहीन हिनहिनाने से क्यों डरते हो? दुष्ट! आओ। जैसे शिव ने पूषा के दाँतों को तोड़ा था उसी तरह मैं भी तुम्हारे वदन से अखिल दाँता को गिरा देता हूँ ॥२६-२८॥

व्यास बोले—इतना कहकर गोविन्द केशी के सामने गये। दैत्य भी मुँह खोलकर इन पर टूट पड़ा। तब भुजा को फैला कर कृष्ण ने केशी नामक उस दुष्ट अश्व के मुख में घुसेड दिया। केशी के मुख में कृष्ण की भुजा के प्रवेश होते ही उसके दाँत स्वच्छ बादल के अवयव की तरह उखड़ने लगे। द्विजगण! केशी के देह में प्रविष्ट होने पर कृष्ण की बाँह उसको विनष्ट करने के लिए उसी तरह बढ़ने लगी जैसे रोगियों से उपेक्षित होने पर व्याधि।

---

१६. ०वाह्येन वल्गमा ढु०।

विपाटितौष्ठो बहुलं सफेनं रुधिरं वमन्। सृक्कणी विवृते चक्रे विश्लिष्टे मुक्तबन्धने ॥३३॥
जगाम धरणीं पादैः शकृन्मूत्रं समुत्सृजन्। स्वेदार्द्रगात्रः श्रान्तश्च [1]निर्यत्नः सोऽभवत्ततः ॥३४॥
व्यादितास्यो महारौद्रः सोऽसुरः कृष्णबाहुना। निपपात द्विधाभूतो वैद्युतेन यथा द्रुमः ॥३५॥
द्विपादपृष्ठपुच्छार्धश्रवणैकाक्षनासिके। केशिनस्ते द्विधा भूते शकले च विरेजतुः ॥३६॥
हत्वा तु केशिनं कृष्णो[2] मुदितैर्गोपकैर्वृतः। अनायस्ततनुः स्वस्थो हसंस्तत्रैव [3]संस्थितः ॥३७॥
ततो गोपाश्च गोप्यश्च हते केशिनि विस्मिताः। तुष्टुवुः पुण्डरीकाक्षमनुरागमनोरमम् [4] ॥३८॥
आययौ त्वरितो विप्रो नारदो जलदस्थित[5]। केशिनं निहतं दृष्ट्वा हर्षनिर्भरमानसः ॥३९॥

नारद उवाच

साधु साधु जगन्नाथ लीलयैव यदच्युत। निहतोऽयं त्वया केशी क्लेशदस्त्रिदिवौकसाम् ॥४०॥
सुकर्माण्यवतारे तु कृतानि मधुसूदन। यानि वै विस्मित चेतस्तोषमेतेन मे गतम् ॥४१॥
तुरगस्यास्य शक्रोऽपि कृष्ण देवाश्च बिभ्यति। धुतकेसरजालस्य ह्रेषतोऽभ्रावलोकिनः ॥४२॥
यस्मात्त्वयैव दुष्टात्मा हतः केशी जनार्दन। तस्मात्केशवनाम्ना त्वं लोके गेयो भविष्यसि ॥४३॥
स्वस्त्यस्तु ते गमिष्यामि कंसयुद्धेऽधुना पुनः। परश्वोऽहं समेष्यामि त्वया केशिनिषूदन ॥४४॥
उग्रसेनसुते कंसे सानुगे विनिपातिते। भारावतारकर्ता त्वं पृथिव्या धरणीधर ॥४५॥

उसके होंठ फाड दिये गये, मुख से फेन सहित रुधिर प्रचुर मात्रा मे बहने लगा, गलफड चीर दिये गये, नसें छोड दी गईं। तब वह मल-मूत्र त्याग करता हुआ पैरो से धरती को खुरचने लगा। उसके अगो से पसीना टपकने लगा। वह श्रान्त होकर निश्चेष्ट हो गया। कृष्ण की भुजा ने उस महाभयकर राक्षस के मुख को विदीर्ण कर दिया। तब वह विद्युत् से आहत वृक्ष की तरह दो टुकडे होकर गिर पडा। उसके पैर, पीठ, पुच्छ, कान, आँख, नाक सब के दो-दो टुकडे हो गय। इस प्रकार केशी के अगो के दो-दो टुकडे विराजमान हुए। केशी को मारकर प्रमुदित गोपो के साथ कृष्ण हँसते हुए वही अवस्थित हुए। उनके शरीर मे कोई आयास नही हुआ। वे स्वस्थ थे। तत्पश्चात् केशी की मृत्यु से विस्मित गोप-गोपियाँ मनोहर कृष्ण की स्तुति करने लगे। केशी को निहत देखकर मेघ-स्थित विप्र नारद अत्यन्त प्रसन्न हुए और तुरन्त वहाँ आये ॥२९-३९॥

नारद बोले—जगन्नाथ! आपने समुचित ही किया जो कि देवो को क्लेश देने वाले केशी को सहज ही मे मार डाला। मधुसूदन! इस अवतार म आपने जो-जो आश्चर्यजनक सुकर्म किये, उनसे मुझे बडा सतोष हुआ। केसरजाल (अयाल) को हिलाने वाले तथा हिनहिनाने स बादल की तरह प्रतीत होने वाले इस अश्व से देवगण तथा इन्द्र भी डरते थ। जनार्दन! जिसलिये आपने इस दुष्टात्मा केशी को मारा इसलिये केशव नाम से आप लोक मे पुकारे जायेंगे। आपका कल्याण हो। इस समय मैं जाता हूँ। केशिनाशन! फिर परसो कस के युद्ध मे मैं आपसे

१क निपण्ण। २क ०ष्णो गोपालैर्बहुभिर्वृ०। ३स तस्थिवान्। ४क ग ०म्। अथाऽऽह त्व०। ५ग लदेऽरिप०।

तत्रानेकप्रकारेण युद्धानि पृथिवीक्षिताम। द्रष्टव्यानि मया युष्मत्प्रणीतानि जनार्दन ॥४६॥
सोऽहं यास्यामि गोविन्द देवकार्यं महत्कृतम। त्वया सभाजितश्चाहं स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम ॥४७॥

व्यास उवाच

नारदे तु गते कृष्ण सह गोपैरविस्मित। विवेश गोकुल गोपीनेत्रपानैकभाजनम ॥४८॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे कृष्णबालचरिते केशिवधनिरूपण नाम
नवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१९०॥

अथैकनवत्यधिकशततमोऽध्याय

अक्रूरगमनवर्णनम्

व्यास उवाच

अक्रूरोऽपि विनिष्क्रम्य स्यन्दनेनाऽऽशुगामिना। कृष्णसंदर्शनासक्त प्रययौ नन्दगोकुले ॥१॥
चिन्तयामास चाक्रूरो नास्ति धन्यतरो मया। योऽहमंशावतीर्णस्य मुख द्रक्ष्यामि चक्रिण ॥२॥
अद्य मे सफल जन्म सुप्रभाता च[1] मे निशा। यदुन्निद्राब्जपत्राक्ष विष्णोर्द्रक्ष्याम्यह मुखम् ॥३॥

मिलूगा। धरणीधर! उग्रसेन के पुत्र कसको बन्धुवर्ग सहित नष्ट कर देने पर आप पृथ्वी का भार हल्का करेंगे। जनार्दन! तब आपके रचाये हुए राजाओं के अनेक प्रकार के युद्धों को मैं देखूंगा। गोविन्द! अब मैं जाऊंगा। *आपने देवताओं का महान कार्य किया। आपका कल्याण हो मैं चलता हूं॥४०-४७॥*

व्यास बोले—नारद के चले जाने पर गोपियों के नयनों के पीने के एकमात्र पात्र कृष्ण गोपों के साथ बिना किसी आश्चर्य के गोकुल में प्रविष्ट हुए॥४८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में कृष्ण के बालचरित-कथन प्रसंग में केशिवधनिरूपण नामक एक सौ
नब्बेवां अध्याय समाप्त॥१९०॥

अध्याय १९१

अक्रूर के जाने का वर्णन

व्यास बोले—कृष्ण-दर्शन के लिए लालायित अक्रूर भी शीघ्रगामी रथ से नन्द-गोकुल के लिये प्रस्थित हुए। अक्रूर सोचने लगे—'मुझसे बढ़कर कोई धन्य नहीं है क्योंकि अंशावतार विष्णु का मैं मुख-दर्शन करूंगा। आज मेरा *जन्म सफल हुआ आज मेरी रात सुप्रभात हुई जो मैं विकसित कमल-पत्र के सदृश नेत्र वाले विष्णु का मुखावलोकन*

---

[1] क च शर्वरी। ग०।

पापं हरति यत्पुंसां स्मृतं संकल्पनामयम्। तत्पुण्डरीकनयनं विष्णोर्द्रक्ष्याम्यहं मुखम् ॥४॥
निर्जग्मुश्च यतो वेदा वेदाङ्गान्यखिलानि च। द्रक्ष्यामि यत्परं धाम देवानां भगवन्मुखम् ॥५॥
यज्ञेषु यज्ञपुरुषः पुरुषैः पुरुषोत्तमः। इज्यते योऽखिलाधारस्तं द्रक्ष्यामि जगत्पतिम् ॥६॥
इष्ट्वा यमिन्द्रो यज्ञानां शतेनामरराजताम्। अवाप तमनन्तादिमहं द्रक्ष्यामि केशवम् ॥७॥
न ब्रह्मा नेन्द्ररुद्राश्विवस्वादित्यमरुद्गणाः। यस्य स्वरूपं जानन्ति स्पृशत्यद्य स मे हरिः ॥८॥
सर्वात्मा सर्वग. सर्व· सर्वभूतेषु संस्थितः। यो भवत्यव्ययो व्यापी स वीक्ष्यते मयाद्य ह ॥९॥
मत्स्यकूर्मवराहाद्यैः सिंहरूपादिभिः स्थितम्। चकार योगतो योगं स मामालापयिष्यति ॥१०॥
सांप्रतं च जगत्स्वामी कार्यजाते व्रजे स्थितिम्। कर्तुं मनुष्यतां प्राप्तः स्वेच्छादेहधृगव्ययः ॥११॥
योऽनन्त· पृथिवीं धत्ते शिखरस्थितिसंस्थिताम्। सोऽवतीर्णो जगत्यर्थे मामक्रूरेति वक्ष्यति ॥१२॥
पितृबन्धुसुहृद्भ्रातृमातृबन्धुमयीमिमाम्। यन्मायां नालमुद्धर्तुं जगत्तस्मै नमो नमः ॥१३॥
तरन्त्यविद्यां विततां हृदि यस्मिन्निवेशिते। योगमायामिमां मर्त्यास्तस्मै विद्यात्मने नमः ॥१४॥
यज्वभिर्यज्ञपुरुषो वासुदेवश्च शाश्वतैः। वेदान्तवेदिभिर्विष्णुः प्रोच्यते यो नतोऽस्मि तम् ॥१५॥
तथा यत्र जगद्धाम्नि धार्यते च प्रतिष्ठितम्। सदसत्त्वं स सत्त्वेन मय्यसौ यातु सौम्यताम् ॥१६॥
स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते। पुरुषप्रवरं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम् ॥१७॥

करूँगा। स्मरण तथा चिन्तन करने से जो मनुष्यों के पापों का नष्ट करते हैं, उस पुण्डरीकाक्ष विष्णु के मुख को मैं देखूगा। जिस मुख से वेद तथा वेदों के अखिल अंग निःसृत हुए और जो देवों का परम धाम है, उस भगवन्मुख का मैं दर्शन करूँगा। जो यज्ञों मे यज्ञपुरुष, पुरुषों म उत्तम तथा सब के आधार हैं, उन जगत्पति का मैं दर्शन करूँगा। सौ यज्ञों से जिनकी आराधना करके इन्द्र ने देवराजत्व का प्राप्त किया, उन्हीं आदि-अन्त-रहित केशव का मैं दर्शन करूँगा ॥१-७॥ ब्रह्मा इन्द्र, रुद्र, अश्विनीकुमार, वसु, आदित्य तथा मरुद्गण जिनके स्वरूप को नहीं जानते हैं, उन्हीं हरि का आज मैं स्पर्श करूँगा ॥८॥ जो सर्वात्मा, सर्वत्रगामी, सब, समस्त भूतों मे अवस्थित, अव्यय तथा व्यापक हैं, उन्हीं को आज मैं देखूगा ॥९॥ जिन्होंने मत्स्य, कूर्म, वराह, सिंह आदि का रूप धारण किया और योग का मार्ग दिखलाया वे मुझसे सभाषण करेंगे ॥१०॥ इस समय कार्य उपस्थित होने पर जगत्स्वामी, अव्यय तथा स्वेच्छा से रूप धारण करने वाले भगवान् मनुष्य शरीर धारण कर व्रज मे अवस्थित हैं। जो अनन्त भगवान् पर्वतादिविशिष्ट पृथिवी का धारण करते हैं वे ही जगत्‌के निमित्त अवतीर्ण हुए हैं। वे मुझे 'अक्रूर' कहेंगे जिनके पिता, बन्धु मित्र, भाई तथा माता रूपी माया का पार संसार नहीं पाता है, उनको नमस्कार है। हृदय मे जिनके प्रविष्ट होने से मनुष्य विस्तृत अविद्यारूपी योगमाया को पार कर जाते हैं उन विद्यात्मा को नमस्कार है। जिनको यज्ञकर्ता यज्ञपुरुष कहकर तथा वेदान्तवेत्ता विष्णु कहकर पुकारते हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ। जो संसार का धारण करते हैं अर्थात् जिनके तेज मे सत् असत् रूप जगत् प्रतिष्ठित होता है, वे मेरे प्रति सौम्य हों। जिनके स्मरण करने से सब प्रकार का कल्याण होता है, उन्हीं पुरुषप्रवर हरि की शरण म मैं जा रहा हूँ ॥११-१७॥

व्यास उवाच

इत्थं स चिन्तयन्विष्णुं भक्तिनम्रात्ममानसः। अक्रूरो गोकुलं प्राप्तः[1] किंचित्सूर्ये विराजति ॥१८॥
स ददर्श तदा तत्र[2] कृष्णमादोहने गवाम्। वत्समध्यगतं फुल्लनीलोत्पलदलच्छविम् ॥१९॥
[3]प्रफुल्लपद्मपत्राक्षं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्। प्रलम्बबाहुमायामतुङ्गोरस्थलमुन्नसम् ॥२०॥
सविलासस्मिताधारं बिभ्राणं मुखपङ्कजम्। तुङ्गरक्तनखं पद्भ्यां धरण्यां सुप्रतिष्ठितम् ॥२१॥
बिभ्राणं वाससी पीते वन्यपुष्पविभूषितम्। सान्द्रनीललताहस्तं सिताम्भोजावतंसकम् ॥२२॥
हंसेन्दुकुन्दधवलं नीलाम्बरधरं द्विजाः। तस्यानु बलभद्रं च ददर्श यदुनन्दनम् ॥२३॥
प्रांशुमुत्तुङ्गबाहुं च विकाशिमुखपङ्कजम्। मेघमालापरिवृतं कैलासाद्रिमिवापरम् ॥२४॥
तौ दृष्ट्वा विकसद्वक्त्रसरोजः स महामतिः।[4]पुलकाञ्चितसर्वाङ्गस्तदाऽक्रूरोऽभवद्द्विजाः[5] ॥२५॥
य एतत्परमं धाम एतत्तत्परमं पदम्। अभवद्वसुदेवोऽसौ द्विधा योऽयं व्यवस्थितः ॥२६॥

साफल्यमक्षणोर्युगपन्ममास्तु, दृष्टे जगद्धातरि हासमुच्चैः (?)।
अप्यङ्गमेतद्भगवत्प्रसादाद्दत्ताङ्गसङ्गे फलवत्मं तत्स्यात् ॥२७॥
अद्यैव स्पृष्ट्वा मम हस्तपद्मं, करिष्यति श्रीमदनन्तमूर्तिः।
यस्याङ्गुलिस्पर्शहताखिलाघैरवाप्यते सिद्धिरनुत्तमा नरैः ॥२८॥

व्यास बोले—इस प्रकार विष्णु का ध्यान करते हुए भक्ति से विनम्र चित्त वाले अक्रूर गोधूलिवेला मे गोकुल पहुँच गये ॥१८॥ वहाँ उन्होने गायो के दोहन-काल मे बछडो के बीच अवस्थित कृष्ण को देखा। कृष्ण की छवि प्रफुल्लित नील कमल के पत्र जैसी थी, उनकी आँखें विकसित कमल-दल के समान थी, हृदय पर श्रीवत्स नामक चिह्न था, बाँहें लम्बी थी, छाती चौडी थी नासिका उन्नत थी, मुखकमल सुन्दर हास्य से युक्त था, नख उत्तुग तथा लाल थे, पैर पृथ्वी पर सुप्रतिष्ठित थे। वे पीतवस्त्र पहने हुए थे और वनमाला से विभूषित थे। सघननीललता के समान उनके हाथ थे और उज्ज्वल कमल के आभूषण थे। उनके बाद अक्रूर ने हस, चन्द्रमा तथा कुन्दपुष्प के समान शुभ्र, नीलवस्त्रधारी, आजानबाहु, विकसित कमल के समान मुख वाले, मेघमाला से परिवृत तथा कैलासपर्वत के तुल्य धवल यदुनन्दन बलभद्र को देखा। द्विजवृन्द! उनको देखते ही महाबुद्धिमान् अक्रूर के सर्वांग शरीर मे (आनन्द के मारे) रोमाञ्च हो आया और मुखकमल खिल उठा। उन्होने कहा—'ये ही परमधाम तथा ये ही परमपद हैं। ये अपने को दो करके वासुदेवरूप से व्यवस्थित है ॥१९-२६॥ जगद्धाता के दर्शन करके मेरे दोनो नेत्र एक ही काल मे सफल हो। मेरे अग भी भगवान् की कृपा से उनके अग-स्पर्श करके सफल हो। आज ही मेरे हस्तकमल का स्पर्श करके अनन्तमूर्ति भगवान् मुझे कृतार्थ करेंगे। जिन मनुष्यो को उनकी अगुलि का स्पर्श होता है, वे निष्पाप हो जाते हैं, उत्तम सिद्धि को प्राप्त करते हैं और अश्विन् रुद्र, इन्द्र तथा वसु आदि देवता प्रसन्न होकर उन्हें वर देते हैं।

१क ०प्त कियत्सू०। २क. ख दश। ३ग. प्रसप्पप०। ४क ०काङ्कितगात्रोऽसौ तदाऽ०। ५ख. ०तरोमाऽसौ तदाऽ०।

तथाऽश्विरुद्रेन्द्रवसुप्रणीता, देवाः प्रयच्छन्ति वरं प्रहृष्टाः।
चक्रं घ्नता दैत्यपतेर्हृतानि, दैत्याङ्गनानां नयनान्तराणि ॥२९॥

यत्रा (तोऽ)म्बु विन्यस्य बलिर्मनोज्ञाम (ज्ञान) वाप भोगान्वसुधातलस्थः।
तथाऽमरेशस्त्रिदशाधिपत्यं, मन्वन्तरं पूर्णमवाप शक्रः ॥३०॥

अथेश (थापि) मां कंसपरिग्रहेण, दोषास्पदीभूतमदोषयुक्तम्।
कर्ता न मानोपहितं धिगस्तु, यस्मान्मनः साधुबहिष्कृतो यः (?) ॥३१॥

ज्ञानात्मकस्याखिलसत्त्वराशेर्व्यावृत्तदोषस्य सदाऽस्फुटस्य।
किं वा जगत्यत्र समस्तपुंसामज्ञातमस्यास्ति हृदि स्थितस्य ॥३२॥

तस्मादहं भक्तिविनम्रगात्रो, व्रजामि विश्वेश्वरमीश्वराणाम्।
अंशावतारं पुरुषोत्तमस्य, अनादिमध्यान्तमजस्य विष्णोः ॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे कृष्णक्रीडायामक्रूरागमनवर्णनं नामैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९१॥

दैत्यराज की सेना को विनष्ट करते हुए उन्होने दैत्य वनिताओ के नयनो को अपनी ओर खींच लिया था। उनको दान देकर बलि ने पाताल मे रहकर भी सकल भोगो को प्राप्त किया। उनकी कृपा से इन्द्र ने पूरे मन्वन्तर तक देवताओ का आधिपत्य प्राप्त किया। ऐसे भगवान् को मैं कंस की आज्ञा से लेने आया हूँ। अतएव मैं निर्दोष होता हुआ भी दोषी हूँ। ऐसे मानविगर्हित मुझे धिक्कार है, क्योंकि मैं मन से साधु-समाज से बहिष्कृत हो गया हूँ। वे भगवान् ज्ञानस्वरूप, अखिल सात्त्विक वृत्तियो के पुञ्ज, दोषो से रहित, सदा अस्फुट तथा सबके हृदय में वास करने वाले हैं। संसार मे समस्त पुरुषो की ऐसी कौन सी बात है, जो उन्हे अविदित हो? इसलिये मैं भक्ति से नत शरीर होकर पुरुषोत्तम, आदि, मध्य तथा अन्त से रहित एवम् अजन्मा विष्णु के अंश से अवतीर्ण विश्वेश्वर के समीप जाता हूँ। ॥२७-३३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे कृष्ण-क्रीडा-वर्णन प्रसग में अक्रूरागमन-वर्णन नामक एक सौ इक्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९१॥

अथ द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अक्रूरप्रत्यागमनवर्णनम्

व्यास उवाच

चिन्तयन्निति गोविन्दमुपगम्य स यादव । अक्रूरोऽस्मीति [1]चरणौ ननाम शिरसा हरे ॥१॥
सोऽप्येनं ध्वजवज्राब्जकृतचिह्नेन पाणिना । सस्पृश्याऽऽकृष्य च प्रीत्या सुगाढ परिषस्वजे ॥२॥
[2]कृतसंवदनौ तेन यथावद्बलकेशवौ । तत' प्रविष्टौ सहसा तमादायाऽऽत्ममन्दिरम् ॥३॥
सह ताभ्या तदाऽक्रूर कृतसंवन्दनादिक । भुक्तभोज्यो यथान्यायमाचचक्षे ततस्तयो' ॥४॥
यथानिर्भर्त्सितस्तेन कंसेनाऽऽनकदुन्दुभि । यथा च देवकी देवी दानवेन दुरात्मना ॥५॥
उग्रसेने यथा कस स दुरात्मा च वर्तते । य चैवार्थं समुद्दिश्य कसेन स विसर्जित. ॥६॥
तत्सर्वं विस्तराच्छ्रुत्वा भगवान्केशिसूदन । [3]उवाचाखिलमेतत्तु ज्ञात दानपते ! मया ॥७॥
करिष्ये च महाभाग यदत्रौपयिक मतम् । विचिन्त्यं नान्यथैतत्ते विद्धि कस हत मया ॥८॥
अह रामश्च मथुरा श्वो यास्याव सम त्वया । गोपवृद्धाश्च यास्यन्ति आदायोपायनं बहु ॥९॥
निशेय नीयता वीर न चिन्ता कर्तुमर्हसि । त्रिरात्राभ्यन्तरे कस हनिष्यामि सहानुगम् ॥१०॥

अध्याय १९२

अक्रूर के लौटने का वर्णन

व्यास बोले—इस तरह सोचते हुए वह यदुवंशी अक्रूर गोविन्द के पास जाकर उनके चरणों पर शिर झुकाकर प्रणाम करने लगे। कृष्ण ने भी ध्वजा, वज्र तथा कमल के चिह्नों से युक्त हस्त से उनका स्पर्श करते हुए अपनी ओर खींच कर प्रेम से गाढ आलिंगन किया। बलभद्र तथा कृष्ण व्यवहारपूर्वक अक्रूर से मिलकर उन्हें पकड़े हुए अपने घर ले गये। उन्होंने अक्रूर को विधिपूर्वक भोजन कराया। तब अक्रूर ने उन दोनों से जैसे दुरात्मा दानव कंस वसुदेव देवकी तथा उग्रसेन को सताता था और जिस उद्देश्य से उसने अक्रूर को गोकुल भेजा था वह सब समाचार कह सुनाया। विस्तारपूर्वक अखिल वृत्तान्त सुनकर केशिनाशन भगवान ने कहा—'दानपते ! यह सब तो मुझे मालूम ही था। महाभाग ! जो उपाय मैंने सोच रखा है वह तो करूँगा ही, वह अन्यथा नहीं हो सकता। तुम कंस को मेरे द्वारा निहत ही समझो। कल मैं और राम तुम्हारे साथ मथुरा जायेंगे। गोपवृद्ध भी बहुत-से उपहार लेकर जायेंगे। वीर ! इस रात को बीतने दो। चिन्ता मत करो। तीन रात के अन्दर ही अनुयायियों सहित कंस को मैं मार दूंगा' ॥१-१०॥

१ख सहसा। २ख ०वन्दनौ। ३क ०लमप्येतज्ज्ञात।

व्यास उवाच

समादिश्य ततो गोपानक्रूरोऽपि सकेशव । सुष्वाप बलभद्रश्च नन्दगोपगृहे गत ॥११॥
तत प्रभाते विमले रामकृष्णौ महाबलौ। अक्रूरेण सम गन्तुमुद्यतौ मथुरा पुरीम् ॥१२॥
दृष्ट्वा गोपीजन सास्र श्लथद्वलयबाहुक । निश्वसश्चातिदु खार्त प्राह चेद परस्परम् ॥१३॥
मथुरां प्राप्य गोविन्द कथ गोकुलमेष्यति। नागरस्त्रीकलालापमधु श्रोत्रेण पास्यति ॥१४॥
विलासिवाक्यजातेषु' नागरीणा कृतास्पदम्। चित्तमस्य 'कथ ग्राम्यगोपगोपीषु यास्यति ॥१५॥
सार समस्तगोष्ठस्य विधिना हरता हरिम्। प्रहृत गोपयोषित्सु निर्घृणेन दुरात्मना ॥१६॥
भावगर्भस्मित वाक्य विलासललिता गति । नागरीणामतीवैतत्कटाक्षेक्षितमेव तु ॥१७॥
ग्राम्यो हरिरय तासा विलासनिगडैर्यत । भवतीना पुन पार्श्व कया युक्त्या समेष्यति ॥१८॥
एषो हि रथमारुह्य मथुरा याति केशव । अक्रूरक्रूरकेणापि 'हताशेन प्रतारित ॥१९॥
कि न वेत्ति नृशसोऽयमनुरागपर जनम्'। येनेममक्ष्णराह्लाद नयत्यन्यत्र नो हरिम् ॥२०॥
एष रामेण सहित प्रयात्यत्यन्तनिर्घृण । रथमारुह्य गोविन्दस्त्वर्यतामस्य वारणे ॥२१॥
गुरूणामग्रतो वक्तु किं ब्रवीषि न न क्षमम्। गुरव किं करिष्यन्ति दग्धाना विरहाग्निना' ॥२२॥
नन्दगोपमुखा गोपा गन्तुमेते समुद्यता । नोद्यम कुरुते कश्चिद्गोविन्दविनिवर्तने ॥२३॥

व्यास बोले—तदुपरान्त गोपो को आदेश करके अक्रूर भी केशव और बलभद्र के साथ नन्दगोप के घर मे जाकर सोये ॥११॥ सुप्रभात होने पर महाबली राम और कृष्ण अक्रूर के साथ मथुरापुरी जाने के लिये तैयारी करने लगे ॥१२॥ यह देखकर गोपियो के आँसू बहने लगे और बाँहे ढीली पड गईं जिनसे कगन निकलने लगे। उन्होंने शोकातुर होकर लम्बी साँस ली और परस्पर कहा—मथुरा जाने पर कृष्ण गोकुल क्या आयेगे ? वहाँ नगर की वनिताओ का मधुरालाप सुनेंगे। नगर-नारियो के विलासयुक्त वचनो मे चित्त बैठ जाने पर ग्राम्य गोप-गोपियो की बातो को सुनने के लिये भला कौन आएगा ? हरि को ले जाते हुए विधाता ने समस्त व्रज का सार हर लिया। गोपांगनाओ का तो उस निष्ठुर दुरात्मा ने सर्वस्व ही छीन लिया। नगर की महिलाओ का वचन सारगर्भित एवम् हास्ययुक्त होता है गति सविलास एवम् सुललित होती है और अवलोकन अत्यन्त कटाक्षपूर्ण होता है ॥१३-१७॥ ये हरि गाँव के हैं। उन लोगो के विलास रूपी पाश मे फँसकर ये फिर तुम लोगो के पास कैसे आयेंगे ? यह देखो रथ पर चढकर केशव मथुरा जा रहे हैं। निगोडा एवम् क्रूर अक्रूर इन्हें ठग कर ले जा रहा है। क्या यह हत्यारा इनकी प्रेमियो को नहीं जानता है जो नित्य आह्लाद देने वाले हमारे हरि को लिये जा रहा है ? यह अत्यन्त निर्दय अक्रूर रथ पर चढकर कृष्ण राम को लिये जा रहा है जल्दी करो इनको रोक दें ॥१८-२१॥ क्या कहती हो कि गुरुजनो के सामने हम ऐसा करने मे असमर्थ हैं। अरे ! विरहाग्नि से जल को गुरुजन क्या करेंगे ? नन्दगोप प्रमृति गोप तो जा ही रहे हैं भला गोविन्द का निवारण कौन करे ? आज मथुरा की रमणियो के लिये सुप्रभात हुआ जो

१क ०क्यपानेषु। २क ०थ मूयो ग्राम्यगोपी०। ३ख ग निराशेन। ४क ०म्। योऽयं याति दर्शनैवमुक्त्वा सर्वं सखीजनम्। ५ख मदनाग्निना।

सुप्रभाताद्य रजनी मथुरावासियोषिताम्। यासामच्युतवक्त्राब्जे याति नेत्रालिभोग्यताम् ॥२४॥
धन्यास्ते पथि ये कृष्णमितो यान्तमवारिताः। उद्वहिष्यन्ति पश्यन्तः स्वदेहं पुलकाञ्चितम् ॥२५॥
मथुरानगरीपौरनयनानां महोत्सवः। गोविन्दवदनालोकादतीवाद्य भविष्यति ॥२६॥
को नु स्वप्नः सभाग्याभिर्दृष्टस्ताभिरधोक्षजम्। विस्तारिकान्तनयना या द्रक्ष्यन्त्यनिवारितम् ॥२७॥
अहो गोपीजनस्यास्य दर्शयित्वा महानिधिम्। उद्धृतान्यद्य नेत्राणि विधात्राऽकरुणात्मना ॥२८॥
अनुरागेण शैथिल्यमस्मासु व्रजतो हरेः। शैथिल्यमुपयान्त्याशु करेषु वलयान्यपि ॥२९॥
अक्रूरः क्रूरहृदयः शीघ्रं प्रेरयते हयान्। एवमार्तासु योषित्सु घृणा कस्य न जायते ॥३०॥
हे हे कृष्ण रथस्योच्चैश्चक्ररेणुर्निरीक्ष्यताम्। दूरीकृतो हरिर्येन सोऽपि रेणुर्न लक्ष्यते ॥३१॥
इत्येवमतिहार्देन गोपीजननिरीक्षितः। तत्याज व्रजभूभागं सह रामेण केशवः ॥३२॥
गच्छन्तो जवनाश्वेन रथेन यमुनातटम्। प्राप्ता मध्याह्नसमये रामाक्रूरजनार्दनाः ॥३३॥
अथाऽऽह कृष्णमक्रूरो भवद्भ्यां तावदास्यताम्। यावत्करोमि कालिन्द्यामाह्निकार्हणमम्भसि ॥३४॥
तथेत्युक्ते ततः स्नातः स्वाचान्तः स महामतिः। दध्यौ ब्रह्म परं विप्राः प्रविश्य यमुनाजले ॥३५॥
फणासहस्रमालाढ्यं बलभद्रं ददर्श सः। कुन्दामलाङ्गमुन्निद्रपद्मपत्रायतेक्षणम् ॥३६॥
वृतं [1]वासुकिडिम्भौघैर्महद्भि[2]पवनाशिभिः। संस्तूयमानसद्गन्धिवनमालाविभूषितम् ॥३७॥

उनके नेत्र रूपी भौंरे कृष्ण के मुख रूपी कमल का रसास्वादन करेंगे। वे व्यक्ति धन्य हैं, जो मार्ग में कृष्ण का दर्शन करके आनन्द से शरीर को रोमाञ्चित करेंगे ॥२२-२५॥ आज गोविन्द के मुखावलोकन से मथुरावासियों को अपार हर्ष होगा। उन लोगों ने कौन सा सुस्वप्न देखा था जो आज प्रफुल्लित नेत्रों से कृष्ण का सदर्शन करेंगे। हाय! गोपीजनों को महानिधि दिखाकर आज निर्दय विधाता ने उनके नेत्रों को निकाल लिया!! हम लोगों में अपने अनुराग को शिथिल करके हरि के चले जाने पर हमारे हाथों के कंगन भी शिथिल हो रहे हैं। इस प्रकार आर्त अबलाओं के प्रति किसे दया उत्पन्न नहीं होगी? किन्तु यह क्रूरहृदय अक्रूर तेजी से घोड़ों को हाँक रहा है। हा कृष्ण! हा कृष्ण! यह बहुत ऊपर रथ के चक्र की धूलि देखो। अब तो जिस धूलि ने कृष्ण को अलक्षित कर दिया, वह भी दिखाई नहीं देती ॥२३-३१॥ इस प्रकार अत्यन्त अनुराग से गोपियाँ ताकती ही रहीं कि राम सहित कृष्ण व्रज के भू-भाग को पार कर गये। शीघ्रगामी अश्वयुक्त रथ से दोपहर के समय राम, अक्रूर और कृष्ण यमुना-तट पर पहुँचे। तब अक्रूर ने कृष्ण-राम से कहा—'तबतक आप दोनों आराम करें जब तक मैं यमुना-जल में नित्यकर्म (सन्ध्या-वन्दन आदि) सम्पन्न करता हूँ। विप्रवृन्द! उनकी स्वीकृति मिल जाने पर महाबुद्धिमान् अक्रूर यमुना-जल में स्नान कर आचमन करके परब्रह्म का ध्यान करने लगे ॥३२-३५॥ उन्होंने जल के भीतर सहस्र फणाओं से युक्त, कुन्दपुष्प के सदृश श्वेतांग, विकसित कमलपत्र के समान दीर्घ नेत्र वाले, वासुकि के बच्चों से आवृत, महान् सर्पों से स्तूयमान, वनमाला से विभूषित, नीलवस्त्रधारी, मनोहर आभूषणों से युक्त, चारु कुण्डलों से सुशोभित और मद से झूमते हुए

---

[1] ख ०किरम्भार्दर्भ०। [2] क. ख ०मान बहुनिर्घं०।

दधानमसिते वस्त्रे चारुरूपावतंसकम्। चारुकुण्डलिनं मग्नमन्तर्जलतले स्थितम् ॥३८॥
तस्योत्सङ्गे घनश्याममाताम्रायतलोचनम्। चतुर्बाहुमुदाराङ्गं चक्राद्यायुधभूषणम् ॥३९॥
पीते वसानं वसने चित्रमाल्यविभूषितम्। चक्रचापतडिन्मालाविचित्रमिव तोयदम् ॥४०॥
श्रीवत्सवक्षसं चारुकेयूरमुकुटोज्ज्वलम्। ददर्श कृष्णमक्लिष्टं पुण्डरीकावतंसकम् ॥४१॥
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिः सिद्धयोगैरकल्मषैः। [1]सञ्चिन्त्यमानं [2]मनसा नासाग्रन्यस्तलोचनं ॥४२॥
बलकृष्णौ तदाऽक्रूरः प्रत्यभिज्ञाय विस्मितः। अचिन्तयदथो शीघ्रं कथमत्रागताविति ॥४३॥
विवक्षोः स्तम्भयामास वाचं तस्य[3] जनार्दनः। ततो निष्क्रम्य सलिलाद्रथमभ्यागतः पुनः ॥४४॥
ददर्श तत्र चैवोभौ रथस्योपरि सस्थितौ। रामकृष्णौ यथा पूर्वं मनुष्यवपुषाऽन्वितौ ॥४५॥
निमग्नश्च पुनस्तोये ददृशे स तथैव तौ। सस्तूयमानौ गन्धर्वैर्मुनिसिद्धमहोरगैः ॥४६॥
ततो विज्ञातसद्भावः स तु दानपतिस्तदा। तुष्टाव सर्वविज्ञानमयमच्युतमीश्वरम् ॥४७॥

अक्रूर उवाच

तन्मात्ररूपिणेऽचिन्त्यमहिम्ने परमात्मने। व्यापिने नैकरूपैकस्वरूपाय नमो नमः ॥४८॥
शब्दरूपाय तेऽचिन्त्यहविर्भूताय ते नमः। नमो विज्ञानरूपाय पराय प्रकृतेः प्रभो ॥४९॥
भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च प्रधानात्मा तथा भवान्। आत्मा च परमात्मा च त्वमेकः पञ्चधा स्थितः ॥५०॥

बलभद्र को देखा। उनके क्रोड प्रदेश में मेघ के समान श्यामवर्ण वाले, लाल तथा दीर्घ नेत्र वाले, चतुर्भुज, सुन्दर अवयवों से युक्त, चक्र आदि आयुधों से विभूषित पीताम्बर, विचित्र मालाओं से सुशोभित, इन्द्रधनुष, विद्युत् तथा मेघ के सदृश दीखने वाले, श्रीवत्स नामक चिह्न से युक्त, सुन्दर केयूर तथा उज्ज्वल मुकुट से आभूषित, कमलपुष्प के आभूषण धारण करने वाले, प्रसन्न और नासिका के अग्रभाग में दृष्टि स्थिर करके निष्पाप एवम् सिद्ध सनन्दन आदि मुनियों द्वारा ध्यान किये जाते हुए कृष्ण को भी देखा ॥३६-४२॥ तब अक्रूर 'ये ही बलभद्र और कृष्ण हैं' यह जानकर आश्चर्यान्वित हुए और सोचने लगे—'इतनी जल्दी यहाँ कैसे आ गये। वे बोलना ही चाहते थे कि कृष्ण ने उनका वाक्स्तम्भन कर दिया। तब वे जल से बाहर निकल कर पुनः रथ के पास आये। वहाँ भी पहिले की तरह मनुष्य-शरीरधारी राम-कृष्ण को रथ पर बैठे देखा। पुनः वे जल में डूबे तो उनको उसी रूप में देखा कि गन्धर्व, मुनि, सिद्ध तथा महासर्प उनकी स्तुति कर रहे हैं। तब यथार्थभाव को समझकर अक्रूर ने सर्वविज्ञानमय ईश्वर कृष्ण की स्तुति प्रारम्भ की ॥४३-४७॥

अक्रूर बोले—पञ्चतन्मात्रारूप, अचिन्त्य महिमा से युक्त, व्यापक और एक तथा अनेक रूपों से परे परमात्मा को नमस्कार है। शब्दरूप तथा अचिन्त्यहविर्भूत आपको नमस्कार है। प्रभो! विज्ञानरूप तथा प्रकृति से परे आपको नमस्कार है। आप भूतात्मा इन्द्रियात्मा प्रधानात्मा, आत्मा तथा परमात्मा हैं। आप एक होते हुए भी उपर्युक्त पाँचों प्रकार से स्थित हैं ॥४८-५०॥ सर्वधर्मात्मन्! क्षराक्षर! महेश्वर! प्रसन्न होइये। ब्रह्मा,

---

१ग ०न सञ्चर्यमानो०। २क मनउ। ३ग तत्र।

प्रसीद सर्वधर्मात्मन्क्षराक्षर[1] महेश्वर। ब्रह्मविष्णुशिवाद्याभिः कल्पनाभिरुदीरितः[2] ॥५१॥
अनाख्येयस्वरूपात्मन्ननाख्येयप्रयोजन। अनाख्येयाभिधान त्वां नतोऽस्मि परमेश्वरम् ॥५२॥
न यत्र नाथ विद्यन्ते नामजात्यादिकल्पनाः। तद्ब्रह्म परमं नित्यमविकारि भवानजः ॥५३॥
न कल्पनामृतेऽर्थस्य सर्वस्याधिगमो यतः। ततः कृष्णाच्युतानन्त विष्णुसंज्ञाभिरीड्यसे ॥५४॥

सर्वात्मंस्त्वमज विकल्पनाभिरेतैर्देवास्त्वं जगदखिलं त्वमेव विश्वम्।
विश्वात्मंस्त्वमतिविकारभेदहीनः, सर्वस्मिन्न हि भवतोऽस्ति किंचिदन्यत् ॥५५॥
त्वं ब्रह्मा पशुपतिरर्यमा विधाता, त्वं धाता त्रिदशपतिः समीरणोऽग्निः।
तोयेशो धनपतिरन्तकस्त्वमेको, भिन्नात्मा जगदपि पासि शक्तिभेदैः ॥५६॥
विश्वं भवान्सृजति हन्ति गभस्तिरूपो, विश्वं च ते गुणमयाऽयमज प्रपञ्चः।
रूपं परं सदितियाचकमक्षरं यज्ज्ञानात्मने सदसते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥५७॥

ओं नमो वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च। प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्यमनिरुद्धाय ते नमः ॥५८॥

व्यास उवाच

एवमन्तर्जले कृष्णमभिष्टूय स यादवः। अर्घयामास सर्वेशं धूपपुष्पैर्मनोमयैः ॥५९॥
परित्यज्यान्यविषयं मनस्तत्र निवेश्य सः। ब्रह्मभूते[3] चिरं स्थित्वा विरराम समाधितः ॥६०॥
कृतकृत्यमिवाऽऽत्मानं मन्यमानो द्विजोत्तमाः। आजगाम रथं भूयो निर्गम्य[4] यमुनाम्भसः ॥६१॥

विष्णु, शिव आदि नामों से आप ही पुकारे जाते हैं। आपके स्वरूप, प्रयोजन तथा संज्ञा भी अनिर्वचनीय हैं। परमेश्वर! आपको नमस्कार है। नाथ! जहाँ नाम, जाति आदि की कल्पना नहीं होती है, वह नित्य, अविकारी, अजन्मा परब्रह्म आप ही हैं। जिसलिये बिना कल्पना (संज्ञा) के अर्थ (वस्तु) का अवबोध नहीं होता है इसलिये कृष्ण, अच्युत, अनन्त, विष्णु आदि संज्ञाओं से आपकी स्तुति की जाती है॥५१-५४॥ अखिलात्मन्! अज! इन विकल्पनाओं से युक्त आप ही हैं, देव, सम्पूर्ण जगत् तथा विश्व भी आप ही हैं। विश्वात्मन्! आप विकार तथा भेद से अत्यन्त रहित हैं। आप सब में हैं। आपके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। आप ब्रह्मा, शिव, अर्यमा, विधाता, धाता, इन्द्र, वायु, अग्नि, वरुण, कुबेर तथा यम हैं। आप एक होते हुए भी भिन्नात्मा हैं। आप शक्तिभेदों से संसार का पालन करते हैं॥५५-५६॥ गभस्ति (सूर्य?) रूप से आप विश्व का सृजन तथा नाश करते हैं। विश्व आपका गुणमय है। यह आप ही का प्रपञ्च है। 'सत्' यह आकार, परम रूप तथा ज्ञानात्मा है। आपके उन सत्-असत् रूप को प्रणाम है। वासुदेव को नमस्कार है। संकर्षण को नमस्कार है, प्रद्युम्न को नमस्कार है तथा अनिरुद्ध को नमस्कार है॥५७-५८॥

व्यास बोले—इस प्रकार जल के भीतर कृष्ण की स्तुति करके यादव ने मनोमय धूप-पुष्पों से सर्वेश्वर को अर्घ दिया। अन्य विषयों का परित्याग कर ब्रह्मभूत कृष्ण में मन को लगाकर चिरकाल तक वे वहीं समाधि में डूबे

१ग. ०रमपेश्वर०। २ख ०रुदाहृत०। ३क. ०भूतश्चिर। ४ख. निष्क्रम्य।

रामकृष्णौ ददर्शाथ यथापूर्वमवस्थितौ। विस्मिताक्ष तदाऽक्रूर त च कृष्णोऽभ्यभाषत॥६२॥

श्रीकृष्ण उवाच

किं त्वया दृष्टमाश्चर्यमक्रूर यमुनाजले। विस्मयोत्फुल्लनयनो भवान्सलक्ष्यते यत ॥६३॥

अक्रूर उवाच

अन्तर्जले यदाश्चर्यं दृष्ट तत्र मयाऽच्युत। तदत्रैव हि पश्यामि मूर्तिमत्पुरत स्थितम्॥६४॥
जगदेत महाश्चर्यरूप यस्य महात्मन। तेनाऽऽश्चर्यपरेणाह भवता कृष्ण सगत ॥६५॥
तत्किमेतेन मथुरा प्रयामो मधुसूदन। बिभेमि 'कंसाद्धिग्जन्म परपिण्डोपजीविन[2]॥६६॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा चोदयामास तान्हयान्वाततरहस। सप्राप्तश्चापि सायाह्ने सोऽक्रूरो मथुरा पुरीम्॥।
विलोक्य मथुरा कृष्ण राम चाऽऽह स यादव ॥६७॥

अक्रूर उवाच

पद्भ्यां यात महावीर्यौ रथेनैको[3] विशाम्यहम्। गन्तव्य वसुदेवस्य नो भवद्भ्यां तथा गृहे॥
युवयोर्हि कृते वृद्ध[4] कंसेन स निरस्यते ॥६८॥

रहे। द्विजश्रेष्ठो! अपने को कृतकृत्य समझते हुए वे यमुना जल से निकल कर पुन रथ पर आये। वहाँ राम-कृष्ण को यथापूर्व अवस्थित देखकर उन्होंने विस्मय से आँखें मूद ली। तब कृष्ण ने उनसे कहा।।५९ ६२॥

श्रीकृष्ण बोले—अक्रूर! यमुना-जल मे तुमने क्या आश्चर्य देखा है जोकि तुम्हारे नेत्र विस्मय से प्रफुल्लित हो रहे हैं? ॥६३॥

अक्रूर बोले—अच्युत! जल के भीतर जो मैंने आश्चर्य देखा वह यहीं पर मेरे सामने मूर्तरूप मे अवस्थित है। कृष्ण! जिन महात्मा का यह निखिल ससार ही आश्चर्यरूप है उन्ही आश्चर्यों से भी पर वे साथ मैं हूँ। मधुसूदन! तो क्यों हम लोग मथुरा जायें? कस से मुझ डर लगता है। दूसरे का पिण्ड खाकर जीने वाले के जन्म को धिक्कार है॥६४-६६॥

व्यास बोले—इतना कहकर वायु के समान तीव्र चलने वाले घोडो को हाँक कर सायकाल अक्रूर मथुरा पुरी पहुँचे। मथुरा को देखकर यादव ने कृष्ण तथा राम से कहा॥६७॥

अक्रूर बोले—महापराक्रमी! आप दोनो पैदल चल और मैं अकेला ही रथ से वसुदेव जी के घर जाता हूँ। आप लोग वहाँ अभी न जायें। ऐसा करने से कस वसुदेव जी को निकाल बाहर कर देगा॥६८॥

१ग ०ष्टाद्विग्न प०। २ग ०जीवन। ३क ०को प्रजाम्य०। ४क गृद्ध।

व्यास उवाच

पुक्त्वा प्रविवेशासावक्रूरो मथुरां पुरीम्। प्रविष्टौ रामकृष्णौ च राजमार्गमुपागतौ ॥६९॥
ोभिर्नरैश्च सानन्दलोचनैरभिवीक्षितौ। जग्मतुर्लीलया वीरौ प्राप्तौ बालगजाविव ॥७०॥
ममाणौ तु तौ दृष्ट्वा रजकं रङ्गकारकम्। अयाचेतां[1] स्वरूपाणि वासांसि रुचिराणि तौ ॥७१॥
स्य रजकः सोऽथ प्रसादारूढविस्मय.। बहून्याक्षेपवाक्यानि प्राहोच्चै रामकेशवौ ॥७२॥
स्तलप्रहारेण कृष्णस्तस्य दुरात्मनः। पातयामास कोपेन रजकस्य शिरो भुवि ॥७३॥
वाऽऽदाय च वस्त्राणि पीतनीलाम्बरौ ततः। कृष्णरामौ मुदायुक्तौ मालाकारगृहं गतौ ॥७४॥
कासिनेत्रयुगलो[3] मालाकारोऽतिविस्मितः। एतौ कस्य कुतो यातौ मनसाऽचिन्तयत्तत ॥७५॥
तनीलाम्बरधरौ दृष्ट्वाऽतिसुमनोहरौ। स तर्कयामास तदा भुवं देवावुपागतौ ॥७६॥
काशिमुखपद्माभ्यां ताभ्यां पुष्पाणि याचितः। भुवं विष्टभ्य हस्ताभ्यां पस्पर्श शिरसा महीम् ॥७७॥
सादसुमुखौ नाथौ मम गेहमुपागतौ। धन्योऽहमर्चयिष्यामीत्याह तौ माल्यजीविकः[4] ॥७८॥
तः [5]प्रहृष्टवदनस्तयोः पुष्पाणि कामतः। चारूण्येतानि [6]चैतानि प्रददौ स विलोभयन् ॥७९॥
नः पुनः प्रणम्यासौ मालाकारोत्तमो ददौ। पुष्पाणि ताभ्यां चारूणि गन्धवन्त्यमलानि च ॥८०॥

व्यास बोले—*इतना कहकर अक्रूर मथुरापुरी मे प्रविष्ट हुए और राम-कृष्ण भी राजमार्ग पर चलने लगे।* र-नारियाँ आनन्दित नेत्रों से उनको देखने लगी। वे दोनो वीर बालगज की तरह लीला करते हुए चलते थे। मण करते हुए उन्होने एक रंगरेज धोबी को देखा। उससे अपने अनुरूप सुन्दर वस्त्रो की याचना की। वह स का धोबी था। इसलिये विस्मित होकर उसने राम-केशव से उच्चस्वर मे बहुत व्यंग्ययुक्त वचन कहे। तब ृष्ण ने क्रोध से उस दुरात्मा धोबी के शिर को हस्त प्रहार से भूमि पर गिरा दिया। उसे मारकर पीले तथा नीले स्त्रो को लेकर हर्षित कृष्ण तथा राम माली के घर की ओर बढे। माली पीत-नीलाम्बरधारी दोनो भाइयो को देखकर त्यन्त आश्चर्यान्वित हुआ और प्रफुल्लित नेत्रो से उनकी ओर ताकते हुए मन मे सोचने लगा—'ये दोनो किसके ? कहाँ जा रहे हैं ?' ॥६९-७५॥ उसने अनुमान किया कि ये देव हैं। अपने मुखकमल को खोलकर दोनो ने उससे पुष्पो की याचना की। माली ने पृथ्वी पर दोनो हाथो को रखकर शिर से भूमि का स्पर्श किया और कहा—नाथ ! प्रसन्न मुख वाले ! आप दोनो मेरे घर आये, इसी से मैं अपने को धन्य समझता हूँ। मैं आप दोनो की पूजा रूँगा।' इतना कहकर वह प्रसन्नतापूर्वक सुन्दर-सुन्दर फूलो से उन दोनो को लुभाते हुए पुष्प समर्पित करने गा। पुन पुन प्रणाम करके मालाकार ने उन्हे मनोहर, सुगन्धित तथा स्वच्छ पुष्प दिये। कृष्ण ने भी प्रसन्न होकर माली को वरदान दिया—'भद्र ! मेरी आश्रित लक्ष्मी तुम्हे कभी भी न छोडेगी। सौम्य ! जब तक पृथ्वी

१क ०णौ ततो द०। २ख सुरूपाणि। ३. ख. ग. ०गलो मा०। ४क ख जीवन। त०। ५ख. ०दन स्वय पु०। ६क. हृष्टात्मा।

मालाकाराय कृष्णोऽपि प्रसन्नः प्रददौ वरम्। श्रीस्त्वांमत्संश्रया भद्र न कदाचित्त्यजिष्यति ॥८१॥
बलहानिर्न ते सौम्य धनहानिरथापि वा। यावद्धरणिसूर्यौ च संततिः पुत्रपौत्रिकी ॥८२॥
भुक्त्वा च विपुलान्भोगांस्त्वमन्ते मत्प्रसादतः। ममानुस्मरणं प्राप्य दिव्यलोकमवाप्स्यसि ॥८३॥
धर्मे मनश्च ते भद्र सर्वकालं भविष्यति। युष्मत्संततिजातानां दीर्घमायुर्भविष्यति ॥८४॥
नोपसर्गादिकं दोषं युष्मत्संततिसंभवः। अवाप्स्यति महाभाग यावत्सूर्यो भविष्यति ॥८५॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा तद्गृहात्कृष्णो बलदेवसहायवान्। निर्जगाम मुनिश्रेष्ठा मालाकारेण पूजितः ॥८६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मेऽक्रूरप्रत्यागमनं नाम द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९२॥

अथ त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

कुब्जोद्धारवर्णनम्

व्यास उवाच

राजमार्गे ततः कृष्णः सानुलेपनभाजनाम्। ददर्श कुब्जामायान्तीं नवयौवनगोचराम् ॥१॥
तामाह ललितं कृष्णः कस्येदमनुलेपनम्। भवत्या नीयते सत्यं वदेन्दीवरलोचने ॥२॥

तथा सूर्य रहेंगे तब तक तुम्हारी बलहानि, तथा धनहानि नहीं होगी। पुत्र-पौत्र आदि सन्तानें होंगी। विपुल भोगों को भोगकर अन्त में तुम मेरी कृपा से मेरे स्मरण करते हुए दिव्यलोक को जाओगे। भद्र! धर्म में तुम्हारा मन सदा लगेगा। तुम्हारी सन्तानों की लंबी आयु होगी। महाभाग! जब तक सूर्य रहेंगे तब तक तुम्हें किसी प्रकार के उत्पात आदि दोष नहीं होंगे ॥७६-८५॥

व्यास बोले—मुनिश्रेष्ठो! इतना कहकर मालाकार द्वारा पूजित कृष्ण बलराम के साथ उसके घर से बाहर निकल गए ॥८६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में अक्रूर-प्रत्यागमन नामक एक सौ बानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९२॥

अध्याय १९३

कुब्जा का उद्धार-वर्णन

व्यास बोले—तदुपरान्त कृष्ण ने राजमार्ग पर अनुलेप (चन्दन, केसर आदि) के पात्र को लिये आती हुई नवयौवना कुब्जा को देखा। उसको देखकर कृष्ण ने कहा—'कमललोचने! किसके लिये तुम यह सुललित

१ख. मतिश्च। २क. ०नां महावीर्यं भवि०। ख. ०नां बाहुवीर्यं भवि०।

सकामेनैव सा प्रोक्ता सानुरागा हरिं प्रति। प्राह सा ललितं कुब्जा दर्शं च बलात्तत ॥३॥

कुब्जोवाच

कान्त कस्मान्न जानासि कंसेनापि नियोजिता। नैकवक्रेति विख्यातामनुलेपनकर्मणि ॥४॥
नान्यपिष्टं हि कंसस्य प्रीतये ह्यनुलेपनम्। भवत्यहमतीवास्य प्रसादधनभाजनम् ॥५॥

श्रीकृष्ण उवाच

सुगन्धमेतद्राजार्हं रुचिरं रुचिरानने। आवयोर्गात्रसदृशं दीयतामनुलेपनम् ॥६॥

व्यास उवाच

श्रुत्वा तमाह सा कृष्णं गृह्यतामिति सादरम्। अनुलेपं च प्रददौ गात्रयोग्यमथोभयोः ॥७॥
भक्तिच्छेदानुलिप्ताङ्गौ ततस्तौ पुरुषर्षभौ। सेन्द्रचापौ विराजन्तौ सितकृष्णाविवाम्बुदौ ॥८॥
ततस्तां चिबुके [1]शौरिरुल्लापनविधानवित्। उल्लाप्य तोलयामास [2]द्व्यङ्गुलेनाग्रपाणिना ॥९॥
चकर्ष पद्भ्यां च तदा ऋजुत्वं केशवोऽनयत्। ततः सा ऋजुतां प्राप्ता योषितामभवद्वरा ॥१०॥
विलासललितं प्राह प्रेमगर्भभरालसम्। वस्त्रे प्रगृह्य गोविन्दं व्रज गेहं ममेति वै ॥११॥
आयास्ये भवतीगेहमिति तां प्राह केशवः। विससर्ज जहासोच्चै रामस्यालोक्य चाननम् ॥१२॥

अनुलेपन लिये जा रही हो? सच बोलो। कुब्जा भी सकाम भाव से कृष्ण की ओर देखकर सुन्दर वचन बोली ॥१ ३॥

कुब्जा ने कहा—कान्त! क्यों नहीं आप जानते कि कुब्जा कंस के अनुलेपन कर्म के लिये रखी गई है। दूसरे का घिसा हुआ चन्दन कंस को नहीं सुहाता है। मैं उसकी अत्यन्त कृपापात्र हूं ॥४ ५॥

श्रीकृष्ण बोले—सुमुखि! राजा के योग्य यह सुगंधित अनुलेप हम दोनों के अंगों में लगाने योग्य है। यह हम दे दो ॥६॥

व्यास बोले—यह सुनकर कुब्जा ने कृष्ण से आदरपूर्वक कहा—लीजिये। बाद में उसने उन दोनों के शरीर के योग्य अनुलेप दे दिया। चित्रकारीपूर्वक अनुलेप के लगाने पर दोनों नरपुंगव इन्द्रधनुष तथा शुक्ल-कृष्ण बादल की तरह सुशोभित हुए। तदनन्तर उठाने के विधान को जानने वाले कृष्ण ने अपनी हाथ की दो अंगुलियां को कुब्जा की ठुड्डी में लगाकर ऊपर को उठा दिया और पैरों से खींचा (अर्थात् अपने पैरों से उसके पैरों को दबाकर चिबुक को उठा लिया।) इस प्रकार कृष्ण ने उसको सीधा कर लिया। सीधी होने पर वह श्रेष्ठ रमणी बन गई। तब गोविन्द के वस्त्र पकड़कर उसने प्रेम से लज्जालय भरी होने के कारण अलसायी हुई तथा हाव भाव से सुन्दर बात कृष्ण से कही कि मेरे घर चलिये। 'मैं आऊंगा' ऐसा कृष्ण ने भी उससे कह दिया। राम का मुख देखकर जोर से

१क घोटि प्रणयेन वि०। २स ०रा प्राङ्गु०।

भक्तिच्छेदानुलिप्ताङ्गौ नीलपीताम्बरावुभौ। धनु शाला ततो यातौ चित्रमाल्योपशोभितौ ॥१३॥
अध्यास्य च धनूरत्न ताभ्या पृष्टस्तु रक्षिभि । आरयात सहसा कृष्णो गृहीत्वाऽपूरयद्धनु ॥१४॥
तत पूरयता तेन भज्यमान बलाद्धनु । चकारातिमहाशब्द मथुरा तन पूरिता ॥१५॥
अनुयुक्तौ ततस्तौ च भग्ने धनुषि रक्षिभि । रक्षिसन्य निकृत्योभौ निष्कान्तौ कार्मुकालयात ॥१६॥
अक्रूरागमवृत्तान्तमुपलभ्य तथा धनु । भग्न श्रुत्वाऽथ कसोऽपि प्राह चाणूरमुष्टिकौ ॥१७॥

कस उवाच

गोपालदारकौ प्राप्तौ भवद्भ्या तौ ममाग्रत । मल्लयुद्धेन हन्तव्यौ मम प्राणहरौ हि तौ ॥१८॥
नियुद्धे तद्विनाशन भवदभ्या तोषितो ह्यहम। दास्याम्यभिमता कामान्ना यथैतन्महाबलौ ॥१९॥
न्यायतोऽन्यायतो वाऽपि भवदभ्या तौ ममाहितौ। हन्तव्यौ तद्वधाद्राज्य सामा य वो भविष्यति ॥२०॥

व्यास उवाच

इत्यादिश्य स तौ मल्लौ ततश्चाहूय हस्तिपम। प्रोवाचोच्चैस्त्वया मत्त समाजद्वारि कुञ्जर ॥२१॥
स्थाप्य कुवलयापीडस्तेन तौ गोपदारकौ। घातनीयौ नियुद्धाय रङ्गद्वारमुपागतौ ॥२२॥
तमाज्ञाप्याथ दृष्ट्वा च मञ्चान्सर्वानुपाहृतान। आसन्नमरण कस सूर्योदयमुदैक्षत ॥२३॥

हँसते हुए कृष्ण ने उसको विदा किया। तदुपरान्त भक्तिपूर्वक समर्पित अनुलेप से लिप्ताग नील-पीत-वस्त्रधारी तथा विचित्र मालाओ से सुशोभित राम और कृष्ण धनुष-शाला की ओर प्रस्थित हुए। वहा रक्षका से धनुष के बारे मे पूछा। उनके बतलाने पर कृष्ण ने सहसा धनुष को उठाकर खींचा। बलपूर्वक खींचने से धनुष टूट गया। उसके महाशब्द स मथुरापुरी गूज उठी। धनुष के टूट जाने पर रक्षको ने उनके ऊपर आक्रमण किया। पर रक्षक-सैनिको को मार-पीट कर दोना वीर धनुपालय स निकल गये। अक्रूर के आगमन का वृत्तान्त एवम धनुष भग का समाचार सुनकर कस ने चाणूर और मुष्टिक से कहा ॥७ १७॥

कस बोला—दोनो गोपाल-कुमार मेरे पास आ गये हैं। वे मेरे प्राणा के ग्राहक हैं। तुम उनको मल्लयुद्ध म मार दो। युद्ध म उनके मार दन स मैं प्रसन्न हूगा और तुम दोना महाबलवाना को मुह माग मुराद दूगा। इसे अन्यथा न समझो। न्याय स या अन्याय से उन दोनो मेरे शत्रुओ को अवश्य मारना। उनके वध करने से राज्य पर तुम्हारा समानाधिकार होगा ॥१८ २०॥

व्यास बोले—उन पहलवाना को ऐसा आदेश देकर कस महावत को बुलाकर जोर से कहने लगा—कुवलयापीड नामक मतवाले हाथी को तुम द्वार पर रखना। युद्ध के लिये वे दोना गोपबालक ज्योही सभा-द्वार पर आय त्योही हाथी से उन्हे मरवा डालना। उसको आज्ञा देकर समस्त रग-मचा को देखकर मुमूर्षु कस ने सूर्योदय को देखा।

१क ०माल्यानुलेपनौ। ख०। २क स ०न महद०। स ०माशाय यथैत०। ४ग मल्लास०।

तत समस्तमञ्चेषु नागर स तदा जन । राजमञ्चेषु चाऽऽरुढा सह भृत्यैर्महीभृत ॥२४॥
मल्लप्राश्निकवर्गश्च रङ्गमध्ये समीपग । कृत कसेन कसोऽपि तुङ्गमञ्चे व्यवस्थित ॥२५॥
* अन्त पुराणा मञ्चाश्च यथाऽन्ये परिकल्पिता । अन्ये च वारमुख्यानामन्ये नगरयोषिताम ॥२६॥
नन्दगोपादयो गोपा मञ्चेष्वन्येष्ववस्थिता । अक्रूरवसुदेवौ च मञ्चप्रान्ते व्यवस्थितौ ॥२७॥
नगरीयोषिता मध्ये देवकी पुत्रगर्धिनी। 'अन्तकालेऽपि पुत्रस्य द्रक्ष्यामीति मुख स्थिता ॥२८॥
वाद्यमानेषु तूर्येषु चाणूरे चातिवल्गति। हाहाकारपरे लोक आस्फोटयति मुष्टिके ॥२९॥
हत्वा कुवलयापीड हस्त्यारोहप्रचोदितम्। मदासृगनुलिप्ताङ्गौ गजदन्तवरायुधौ ॥३०॥
मृगमध्ये यथा सिंहौ गर्वलीलावलोकिनौ। प्रविष्टौ सुमहारङ्ग बलदेवजनार्दनौ ॥३१॥
हाहाकारो महाञ्जज्ञे सर्वरङ्गेष्वनन्तरम्। कृष्णोऽय बलभद्रोऽयमिति लोकस्य विस्मयात ॥३२॥
सोऽय येन हता घोरा पूतना सा निशाचरी'। प्रक्षिप्त शकट येन भग्नौ च यमलार्जुनौ ॥३३॥
सोऽय य कालिय नाग ननर्ताऽऽरुह्य बालक । धृतो गोवर्धनो येन सप्तरात्र महागिरि ॥३४॥
अरिष्टो धेनुव केशी लीलयैव महात्मना। हतो येन च दुर्वृत्तो दृश्यते सोऽयमच्युत ॥३५॥
अय चास्य महाबाहुर्बलदेवोऽग्रजोऽग्रत । प्रयाति लीलया योषिन्मनोनयननन्दन ³॥३६॥
अय स⁴ कथ्यते प्राज्ञै पुराणार्थावलोकिभि । गोपालो यादव वश मग्नमभ्युद्धरिष्यति ॥३७॥

तब समस्त मचो पर नागरिक लोग बैठ गये। राज मचो पर अनुचरो समेत राजगण भी बैठ गये। पहलवानो का समुदाय रगमच के समीप ही अवस्थित हुआ। कस अत्युच्च मच पर विराजमान था। अन्त पुरवासिनी स्त्रिनाओ के वाराओ के तथा नागरिक महिलाओ के मच पृथक-पृथक बनाये गये थे। नन्दगोप आदि गोप भी अन्य मञ्चो पर बैठे थे। अक्रूर तथा वसुदेव भी मञ्चप्रान्त मे अवस्थित हुए। अन्तकाल मे भी पुत्र का मुख देखूगी इस लालसा से देवकी नगर-नारियो के बीच जा बैठी। नगाड बजने लगे। चाणूर अत्यन्त वागाडम्बर कर रहा था। मष्टिक ताल ठोक रहा था। लोगो म हाहाकार मच रहा था ॥२१ २९॥ महावत द्वारा प्रेरित कुवल्यापीड को मारकर उसके दाँतो को अस्त्र रूप म धारण कर तथा गव से तमाशा देखने वाले मद एवम शोणित से लिप्त अग वाले बलदेव और कृष्ण रगभूमि म उसी तरह प्रविष्ट हुए जैसे सिंह मृगो के मध्य म। समस्त रगभूमि म महान् कोलाहल मच गया। यह कृष्ण है यह बलराम है' इस प्रकार कहते हुए लोग आश्चय के साथ एक दूसरे से पूछने लगे— य वही हैं जिन्होंने पूतना नामक भयकर राक्षसी को मारा शकट को फका यमलाजुन को तोडा कालिय नाग के ऊपर चढकर नृत्य किया सात रात्रि तक गोवधन पवत का धारण किया और दुराचारी अरिष्ट धनुक तथा केशी को सहज ही म मार डाला। य अच्युत आज हमारे सामने हैं। ये महाशक्तिशाली बलदेव इनके ज्येष्ठ भाई हैं। य सहज ही म वनिताओ के चित्त तथा नयनो को तृप्त कर देते हैं। इनके विषय म पुराणो के तत्त्ववेत्ता विद्वान् कहते हैं कि ये

१ग ०नेच पु०। २क बालघातिनि। ३क ०नमन्दिर। ब०। ४ख सत्यम्य०।

अथ स सर्वभूतस्य विष्णोरखिलजन्मन । अवतीर्णो[1] महीमशो नून भारहरो भुव ॥३८॥
इत्येव वर्णिते पौरै रामे कृष्णे च तत्क्षणात् । उरस्तताप देवक्या स्नेहस्नुतपयोधरम् ॥३९॥
महोत्सवमिवालोक्य[2] पुत्रावेव विलोकयन ।[3] युवेव[4] वसुदेवोऽभूद्विहायाभ्यागतां जराम् ॥४०॥
विस्तारिताक्षियुगला राजान्त पुरयोषित । नागरस्त्रीसमूहश्च द्रष्टु न विरराम तौ ॥४१॥

स्त्रिय ऊचु

सख्य पश्यत कृष्णस्य मुखमप्यम्बुजेक्षणम् । गजयुद्धकृतायासस्वेदाम्बुकणिकाञ्चितम् ॥४२॥
विकासीव सरोम्भोजमवश्यायजलोक्षितम् । परिभूताक्षर जन्म सफल क्रियता दृश ॥४३॥
श्रीवत्साङ्क जगद्धाम बालस्यैतद्विलोक्यताम् । विपक्षक्षपण वक्षो भुजयुग्म च भामिनि ॥४४॥
वल्गता मुष्टिकेनैव चाणूरेण तथा परै । क्रियते बलभद्रस्य हास्यमीषद्विलोक्यताम् ॥४५॥
सख्य पश्यत चाणूर नियुद्धार्थमय हरि । समुपैति न सन्त्यत्र कि वृद्धा युक्तकारिण ॥४६॥
क्व यौवनोन्मुखीभूत सुकुमारतनुर्हरि । क्व वज्रकठिनाभोगशरीरोऽय महासुर ॥४७॥
इमौ सुललितौ रङ्गे वर्तेते नवयौवनौ । दैतेयमल्लाश्चाणूरप्रमुखास्त्वतिदारुणा ॥४८॥
नियुद्धप्राश्निकानां तु महानेष व्यतिक्रम । यद्बालबलिनोर्युद्ध मध्यस्थै समुपेक्ष्यते ॥४९॥

डूबे हुए यादव वंश का उद्धार करेंगे। ये सबजना तथा सबमूत विष्णु के अंश से पृथ्वी के भार उतारने के लिये धरणी पर अवतीर्ण हुए हैं ॥३० ३८॥ इस प्रकार पुरवासी लोग राम और कृष्ण के वर्णन कर रहे थे और देवकी की छाती सतप्त होकर स्नेह से दूध बहा रही था। वसुदेव महान् उत्सव की तरह दोनों पुत्रों को ही देखते थे। वे मानो आई हुई वृद्धता का त्याग कर युवक हो गये थे। राजा के अन्त पुर की रमणियाँ तथा नगर की ललनाएँ आँख फाड-फाड कर उनकी ओर अविरत गति से देख रही थी ॥३९ ४१॥

स्त्रियों ने कहा—सखियो ! कृष्ण के मुखकमल को देखो। गजयुद्धजन्य प्रस्वेद-जल की बूँदों से व्याप्त इनका मुख कैसे सुशोभित हो रहा है जैसे हिम-जल से सींचा हुआ विकसित कमल। इनका दर्शन करके आज जन्म सफल करो। विलासिनियो ! इनके श्रीवत्स चिह्न शत्रुओं को दलन करने वाली भुजाओं तथा छाती को देखो। वाचाल मुष्टिक तथा चाणूर बलभद्र का उपहास कर रहे हैं जरा देखो तो। सखियो ! चाणूर को देखो यह कृष्ण से लडने जा रहा है। क्या यहाँ न्याय करने वाले वृद्ध लोग नहीं हैं ? कहाँ यौवन को प्राप्त करते हुए ये सुकोमल-तनु कृष्ण और कहाँ यह वज्र के समान कठोर तथा महाकाय महासुर ? रगभूमि में ये दोनों नवयुवक सुकुमार हैं और चाणूर प्रभृति दैत्य पहलवान अत्यन्त दारुण हैं। यह वे परीक्षकों का यह महान् अन्याय है जो ये बालक तथा बलवानों को लडा रहे हैं ॥४२ ४९॥

१क ०र्णोऽयमनेन मुवा भारहरो विमु । इ०। २क ०मिवाऽऽगाद पुत्राननवि०। ३क ०कनम् । यु०। ४क तत्याज। ५०वोऽपि दृष्टादभ्या०।

व्यास उवाच

इत्थं पुरस्त्रीलोकस्य वदतश्चालयन्भुवम्। ववर्ष हर्षोत्कर्षं च जनस्य भगवान्हरिः ॥५०॥
बलभद्रोऽपि चाऽऽस्फोट्य ववल्ग ललितं यदा। पदे पदे तदा भूमिर्न शीर्णा यत्तदद्भुतम् ॥५१॥
चाणूरेण ततः कृष्णो युयुधेऽमितविक्रमः। नियुद्धकुशलो दैत्यो बलदेवेन मुष्टिकः ॥५२॥
संनिपातावधूतैश्च चाणूरेण समं हरिः। क्षेपणैर्मुष्टिभिश्चैव कीलीवज्रनिपातनैः ॥५३॥
पादोद्धूतैः प्रमृष्टाभिस्तयोर्युद्धमभून्महत्। अशस्त्रमतिघोरं तत्तयोर्युद्धं सुदारुणम् ॥५४॥
स्वबलप्राणनिष्पाद्यं समाजोत्सवसंनिधौ। यावद्यावच्च चाणूरो युयुधे हरिणा सह ॥५५॥
प्राणहानिमवापाग्र्यां तावत्तावन्न बान्धवम्। कृष्णोऽपि युयुधे तेन लीलयैव जगन्मयः ॥५६॥
खेदाच्चालयता कोपान्निजशेषकरे करम्। बलक्षयं विवृद्धिं च दृष्ट्वा चाणूरकृष्णयोः ॥५७॥
वारयामास तूर्याणि कंसः कोपपरायणः। मृदङ्गादिषु वाद्येषु प्रतिषिद्धेषु तत्क्षणात् ॥५८॥
खसंगतान्यवाद्यन्त दैवतूर्याण्यनेकशः। जय गोविन्द चाणूरं जहि[1] केशव दानवम् ॥५९॥
इत्यन्तर्धिगता देवास्तुष्टुवुस्ते प्रहर्षिताः। चाणूरेण चिरं कालं क्रीडित्वा मधुसूदनः ॥६०॥
उत्पाट्य भ्रामयामास तद्वधाय कृतोद्यमः। भ्रामयित्वा[2] शतगुणं दैत्यमल्लममित्रजित् ॥६१॥
भूमावास्फोटयामास गगने गतजीवितम्। भूमावास्फोटितस्तेन चाणूरः शतधा भवन् ॥६२॥

व्यास बोले—इस प्रकार नगर-नारियाँ पृथ्वी को कँपाती हुई बोल रही थी और भगवान् हरि लोगो को प्रमुदित कर रहे थे। जब बलभद्र भी ताल ठोक कर ललकारने लगे तब पग-पग पर पृथ्वी जो नहीं फटी, वह महान् आश्चर्य समझिये। तब चाणूर के साथ अमितपराक्रमी कृष्ण और युद्धकुशल मुष्टिक के साथ बलदेव लड़ने लगे। चाणूर के साथ कृष्ण टकराकर आक्रमण कर फेंककर वज्र के समान कठोर मुक्के मारकर और पैर चलाकर महान् युद्ध करने लगे। चाणूर और कृष्ण का युद्ध बिना अस्त्र-शस्त्र के भी महाभयकर था ॥५०-५४॥ समाजोत्सव में अपने बल तथा प्राणो की आहुति देनी थी। जब-जब चाणूर हरि से भिड़ता था तब-तब उसे प्राणहानि मालूम पड़ती थी। कोई बाधक नही दीखता था। जगन्मय कृष्ण भी लीलापूर्वक उससे लड़ते थे और कभी खेद से तो कभी क्रोध से उसके हाथ को अपने हाथ में पकड़ लेते थे। चाणूर के बलक्षय और कृष्ण की बलवृद्धि को देखकर कोपपरायण कंस ने तत्क्षण तुरही, मृदंग आदि बाजा का बोलना रोकवा दिया। परन्तु आकाश में देवताओ की अनेक तुरहियाँ बोलने लगीं—'गोविन्द की जय हो। केशव! दानव को मारिये।' इस प्रकार अन्तर्हित हुए देवगण हर्षपूर्वक कृष्ण की स्तुति करने लगे। चाणूर के साथ चिरकाल तक क्रीड़ा करके मधुसूदन उसके वध के निमित्त उसे उठाकर घुमाने लगे। शत्रुविजयी कृष्ण ने दैत्य पहलवान को सौ बार घुमाकर आकाश में ही उसे निष्प्राण कर भूमि पर गिरा दिया। धरती पर गिरते ही चाणूर के सौ टुकड़े हो गये ॥५५-६२॥ तब उछलते, रक्त-स्रवण से पृथ्वी पर कीचड़ सी, कीचड़ कर दिया।। उस समय महाबली बलदेव भी

१क. ख. जय माधव केशव। इ०। २. ०त्वा दशगु०।

रक्तस्रावमहापङ्का चकार स तदा भुवम। बलदेवस्तु तत्काल मुष्टिकेन महाबल ॥६३॥
युयुधे दैत्यमल्लेन चाणूरेण यथा हरि । सोऽप्यन मुष्टिना मूर्ध्नि वक्षस्याहत्य जानुना ॥६४॥
पातयित्वा धरापृष्ठे निष्पिपेष गतायुषम। कृष्णस्तोशलक भूयो मल्लराज महाबलम ॥६५॥
वाममुष्टिप्रहारेण पातयामास भूतल। चाणूरे निहत मल्ल मुष्टिके च निपातिते ॥६६॥
नीत क्षय तोशलक सर्वे मल्ला प्रदुद्रुवु । ववल्गतुस्तदा रङ्ग कृष्णसकर्षणावुभौ ॥६७॥
समानवयसो गोपा बलादाकृष्य हर्षितौ। कसोऽपि कोपरक्ताक्ष 'प्राहोच्चैर्व्यायितान्नरान' ॥६८॥
'गोपावेतौ 'समाजौघान्निष्क्रम्यता बलादित । नन्दोऽपि गृह्यता पापो निगडैराशु बध्यताम ॥६९॥
अवृद्धार्हेण दण्डन वसुदेवोऽपि 'वध्यताम। वल्गन्ति गोपा कृष्णेन ये चमे सहिता पुन ' ॥७०॥
गावो ह्रियन्तामपा च यच्चास्ति वसु किंचन। एवमाज्ञापयन्त त प्रहस्य मधुसूदन ॥७१॥
उत्पत्याऽऽरुह्य तन्मञ्च कस जग्राह 'वेगित । केशेष्वाकृष्य विगलत्किरीटमवनौ तले ॥७२॥
स कस पातयामास तस्योपरि पपात च । नि शेषजगदाधारगुरुणा पततोपरि ॥७३॥
कृष्णन त्याजित प्राण न्द्रसेनात्मजो नृप । मृतस्य केशेषु तदा गृहीत्वा मधुसूदन ॥७४॥

मुष्टिक के साथ वैसे ही लड रहे थे जैसे दैत्य-मल्ल चाणूर के साथ हरि। उन्होंने भी उसके मस्तक पर मुष्टिप्रहार कर घुटने से उसकी छाती पर मारा। इस प्रकार गतजीवित कर धराशायी करके उसे पीस दिया। कृष्ण ने दूसरी बार तोशलक नामक महाबली मल्लराज को वाम मुष्टिप्रहार से धराशायी किया। पहलवान चाणूर मुष्टिक तथा तोशलक के निहत हो जाने पर सब मल्ल भाग गये। तब अखाडे में कृष्ण और राम हर्ष से अपने समवयस्क गोपों को हठपूर्वक खींच कर उनके साथ लपटने लगे। कंस क्रोध से आग-बबूला होकर अपने अनुचरों से कहने लगा— इन दोनों गोपों को बलात् समाज से निकाल दो पापी नन्द को भी कैद कर लो और वृद्धों को न देने योग्य दण्ड से वसुदेव का वध करो। कृष्ण के साथ जो गोप लपट रहे हैं उनको पकड लो और उनके धन तथा गायों का अपहरण कर लो ॥६३-७०॥ इस प्रकार उसकी आज्ञा सुनकर मधुसूदन हँसने लगे और तत्क्षण छलांग मार कर मञ्च पर चढ़ गये। वहाँ उन्होंने कंस के बालों को पकड लिया। उसके मुकुट धरती पर गिर पड़े। तत्पश्चात् उसे धरती पर गिरा कर भगवान् भी उसके ऊपर गिर पड़े। अखिल जगत् के आधार कृष्ण के गिरने से उग्रसेन का पुत्र निर्जीव हो गया। तब मृतक कंस के केशों को पकड कर महाबली कृष्ण घसीटते हुए उसे रंगमंच के मध्य में ले आये। यद्यपि कंस का शरीर बहुत भारी था तो भी महात्मा कृष्ण वेग से उसे घसीट ले गए। कृष्ण द्वारा कंस के पकडे जाने पर उसका भाई

१क स ०न्दोऽपि त०। २ग ०यसौ गो०। ३ग ०र्व्यावृतान्न०। ४ग ०तान्नरा०। ५ग ०पाविमौ द्रुत रङ्गान्निष्क्रामयताम्०। ६ग ०णौ दुस्तर निगडैरायासर्द्धि०। अवधार्हे। ७ग वध्यताम् । ८ग पुन०। ९क वगत। स वेगा।

चकर्ष देह कसस्य रङ्गमध्ये महाबल । गौरवेणातिमहता परिपातेन' कृष्यता ॥७५॥
कृता कसस्य देहेन वेगितेन महात्मना। कसे गृहीते कृष्णेन तद्भ्राताऽभ्यागतो रुषा ॥७६॥
सुनामा बलभद्रेण लीलयेव निपातित । ततो हाहाकृत सर्वमासीत्तद्रङ्गमण्डलम् ॥७७॥
अवज्ञया' हत दृष्ट्वा कृष्णेन मथुरेश्वरम्। कृष्णोऽपि वसुदेवस्य पादौ जग्राह सत्वरम् ॥७८॥
देवक्याश्च महाबाहुर्बलदेवसहायवान्। उत्थाप्य वसुदेवस्तु देवकी च जनार्दनम् ॥
स्मृतजन्मोक्तवचनौ तावेव प्रणतौ स्थितौ ॥७९॥

वसुदेव उवाच

प्रसीद देवदेवेश देवाना प्रवर प्रभो। तथाऽऽवयो प्रसादेन कृताभ्युद्धार केशव ॥८०॥
आराधितो' यद्भगवानवतीर्णो गृहे मम। दुर्वृत्तनिधनार्थाय तेन न पावित कुलम् ॥८१॥
त्वमन्त सर्वभूताना सर्वभूतेष्ववस्थित । वर्तते च समस्तात्मस्त्वत्तो भूतभविष्यती ॥८२॥
यज्ञे त्वमिज्यसेऽचिन्त्य सर्वदेवमयाच्युत। त्वमेव यज्ञो' यज्वा' च यज्ञाना परमेश्वर ॥८३॥
सापह्नव मम मनो यदेतत्त्वयि जायते। देवक्याश्चाऽऽत्मजप्रीत्या तदत्यन्तविडम्बना ॥८४॥
त्व कर्ता सर्वभूतानामनादिनिधनो भवान्। क्व च मे मानुषस्यैषा जिह्वा पुत्रेति वक्ष्यति ॥८५॥
जगदेतज्जगन्नाथ सभूतमखिल यत '। कया युक्त्या विना मायां सोऽस्मत्त सभविष्यति ॥८६॥

सुनामा क्रोध करते हुए वहाँ आया किन्तु बलभद्र ने सहज ही म उसे मार डाला। तब सम्पूर्ण रंग भूमि म हाहाकार मच गया। तिरस्कारपूर्वक कस को मारकर महाबली बलदेव सहित कृष्ण शीघ्र ही जाकर वसुदेव तथा देवकी के चरणों पर गिरे। देवकी तथा वसुदेव जनार्दन को उठाकर जन्मकालीन वचनों का स्मरण कर उन्हें को प्रणाम करते हुए खड़े हुए ॥७१ ७९॥

वसुदेव बोले—देवदेवेश ! देवों म श्रेष्ठ ! प्रभो ! प्रसन्न होइये। केशव ! आपने कृपा करके हम दोनों का उद्धार कर दिया। मेरी आराधना करने पर दुराचारियों के वध के निमित्त जो आपने मेरे घर म अवतार लिया उससे हमारा कुल पवित्र हो गया। आप समस्त भूतों के अन्तःकरण म वास करते हैं। आप अखिल भूतों म अवस्थित हैं। अखिलात्मन् ! आप ही से भूत भविष्य वर्तमान उत्पन्न हुए हैं। अचिन्त्य ! निखिलदेवमय ! अच्युत ! यज्ञ म आप ही की उपासना की जाती है। परमेश्वर ! आप ही यज्ञ तथा यज्ञकर्ता हैं। मेरा और देवकी का मन जो पुत्र-स्नेह-युक्त आप म लगता है वह विडम्बनामात्र है। आप समस्त भूतों के कर्ता तथा जन्म मरण से रहित हैं। मैं मनुष्य हूँ। मेरी जिह्वा पुत्र कैसे कहेगी ? जगन्नाथ ! यह सम्पूर्ण जगत् जिनसे उत्पन्न हुआ है वे बिना माया के किस प्रकार हमसे उत्पन्न होंगे ? जिनमें स्थावर-जंगम रूप निखिल विश्व प्रतिष्ठित है वे कैसे मनुष्य से उत्पन्न

१क परित्रासन। ख परिवानेन। २ग ०वनयाऽद्धु०। ३क ख ०नाऽपि मग०। ४ग यज्ञो। ५ग ख यष्टा। ६क भवेत्। ७क ०र्या सादृश्य स०।

यस्मिन्प्रतिष्ठितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्। स कोष्ठोत्सङ्गशयनो मनुष्याज्जायते कथम् ॥८७॥
स त्वं प्रसीद परमेश्वर पाहि विश्वमंशावतारकरणैर्न ममासि पुत्र ।
आब्रह्मपादपमयं जगदीश सर्वं, चित्ते विमोहयसि किं परमेश्वरात्मन् ॥८८॥
मायाविमोहितदृशा तनयो ममेति, कंसाद्भयं कृतवता तु मयाऽतितीव्रम् ।
नीतोऽसि गोकुलमरातिभयाकुलस्य, वृद्धिं गतोऽसि मम चैव गवामधीश ॥८९॥
कर्माणि रुद्रमरुदश्विशतक्रतूना, साध्यानि यानि न भवन्ति निरीक्षितानि ।
त्वं विष्णुरीशजगतामुपकारहेतो[1], प्राप्तोऽसि न परिगतः परमो विमोहः ॥९०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते कंसवधकथनं नाम
त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९३॥

अथ चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

देवकीवसुदेवाभ्यां सह कृष्णसंवादः

व्यास उवाच

तौ समुत्पन्नविज्ञानौ भगवत्कर्मदर्शनात्। देवकीवसुदेवौ तु दृष्ट्वा मायां पुनर्हरिः ॥१॥

होकर गोद में सोयेंगे ? ॥८०-८७॥ परमेश्वर ! वह आप प्रसन्न होइये, विश्व की रक्षा कीजिये। आप अंश से अवतीर्ण हुए हैं, मेरे पुत्र नहीं हैं। जगदीश ! ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त सब आप ही हैं। परमेश्वरात्मन् ! क्यों चित्त को मोह में डाल रहे हैं ? माया-मोहित चक्षु से मैंने आपको पुत्र रूप में देखा। फिर कंस के अत्यन्त भय से मैंने आपको गोकुल पहुँचाया। गवेन्द्र ! शत्रु-भय से मैं व्याकुल था। आपने मेरा उद्धार किया। जो कार्य रुद्र, मरुत्, अश्विन् तथा इन्द्र के साध्य नहीं हैं, जिन्हें वे देख भी नहीं सकते, उन्हीं कार्यों को आपने संसार के कल्याण के लिये किया। ईश ! आप विष्णु हैं। हम महामोह में प्राप्त हैं ॥८८-९०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में बालचरित्र-कथन प्रसंग में कंसवध-कथन नामक
एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९३॥

अध्याय १९४

देवकी और वसुदेव के साथ कृष्ण का संवाद

व्यास बोले—भगवान् की क्रिया देखने से देवकी तथा वसुदेव को ज्ञान उत्पन्न हो गया। यह देखकर यादवों को मोह में डालने के लिये हरि ने पुनः अपनी वैष्णवी माया को फैला दिया और कहा—तात ! अम्ब ! कंस से

[1] ख॰ ॰हेतुः प्रा॰।

मोहाय [1]यदुचक्रस्य वितताान स वैष्णवीम्। उवाच चाम्ब भोस्तात चिरादुत्कण्ठितेन तु[2] ॥२॥
भवन्तौ[3] कंसभीतेन[4] दृष्टौ संकर्षणेन च। कुर्वतां याति यः कालो मातापित्रोरपूजनम् ॥३॥
स[5] वृथा क्लेशकारी वै साधूनामुपजायते। गुरुदेवद्विजातीनां मातापित्रोश्च पूजनम् ॥४॥
कुर्वतः सफलं जन्म देहिनस्तात जायते। तत्क्षन्तव्यमिदं सर्वमतिक्रमकृतं पितः॥
[6]कंसवीर्यप्रतापाभ्यामावयोः परवश्ययोः ॥५॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वाऽथ प्रणम्योभौ यदुवृद्धाननुक्रमात्। पादानतिभिः सस्नेहं चक्रतुः पौरमानसम् ॥६॥
कंसपत्न्यस्ततः कंसं परिवार्य हतं भुवि। विलेपुर्मातरश्चास्य शोकदुःखपरिप्लुताः ॥७॥
बहुप्रकारमस्वस्थाः पश्चात्तापातुरा हरिः। ताः समाश्वासयामास स्वयमस्रावलेक्षणः ॥८॥
उग्रसेनं ततो बन्धान्मुमोच मधुसूदनः। अभ्यषिञ्चत्तथैवैनं निजराज्ये हतात्मजम् ॥९॥
राज्येऽभिषिक्तः कृष्णेन यदुसिंहः सुतस्य सः। चकार प्रेतकार्याणि ये चान्ये तत्र घातिताः ॥१०॥
कृतौर्ध्वदैहिकं चैनं सिंहासनगतं हरिः। उवाचाऽऽज्ञापय विभो यत्कार्यमविशङ्कया ॥११॥
ययातिशापाद्वंशोऽयमराज्यार्होऽपि सांप्रतम्। मयि भृत्ये स्थिते देवानाज्ञापयतु किं नृपैः ॥१२॥
इत्युक्त्वा चोग्रसेनं तु वायुं प्रति जगाद ह। नृवाचा चैव भगवान्केशवः कार्यमानुषः ॥१३॥

डरे हुए बलराम का तथा मुझे चिरकाल से आपके दर्शन करने की उत्कण्ठा थी। सो आज पूरी हुई। जिसका समय माता-पिता के पूजन किये विना ही कटता है, वह व्यर्थ है, केवल साधुओं को क्लेश देने के लिये वह उत्पन्न होता है। *तात! गुरु, देवता, ब्राह्मण तथा माता-पिता की पूजा करने वाले मनुष्य का जन्म सफल है। पिता जी! अत आप* क्षमा करेंगे। कंस के पराक्रम तथा प्रताप से पराधीन होकर हम दोनों ने इन सब का अतिक्रमण किया ॥१-५॥

व्यास बोले—इतना कहकर दोनों ने क्रमशः यदुवंशी वृद्धों के चरण छूकर प्रणाम किया। पुरवासियों के मन में उनके प्रति अत्यन्त स्नेह हो गया। भूमि पर निहत कंस को देखकर कंस की पत्नियाँ तथा मातायें शोकातुर होकर विलाप करने लगीं। पश्चात्ताप करती हुई उन अस्वस्थ अबलाओं को स्वयम् आँखों से आँसू बहाते हुए कृष्ण ने बहुत प्रकार से आश्वासन दिया। तब मधुसूदन ने उग्रसेन को बन्धन से उन्मुक्त किया और पुत्र के मर जाने पर अपने राज्य में उन्हीं को अभिषिक्त किया। कृष्ण द्वारा राज्य में अभिषिक्त होकर उग्रसेन ने पुत्र के तथा वहाँ जितने मारे गये थे, उन सबके श्राद्ध किये। और्ध्वदैहिक क्रिया करने के बाद उग्रसेन के सिंहासनासीन होने पर कृष्ण ने उनसे कहा—'प्रभो! आप निःसंकोच मुझे आज्ञा दीजिये। ययाति के शाप के कारण यदुवंशी तो राजा हो नहीं सकते। *फिर भी मेरे जैसे भृत्य के रहते आप देवताओं को भी आज्ञा दीजिये। राजाओं की तो बात ही क्या!'* उग्रसेन से इतना कहकर कार्यार्थ मनुष्यशरीरधारी भगवान् केशव ने वायु से मनुष्यवाणी में ही कहा ॥६-१३॥

१ख वसुदेवस्य। २क. ग मे। ३ख भवतो। ४ख ०न न कृत सेवन मया। कु०। ५ख स तु दुरत्ययो-ऽत्ययं सा०। ६ख. ०वीर्यात्प्रवसतोराव०।

श्रीकृष्ण उवाच

गच्छेन्द्रं ब्रूहि वायो त्वमलं गर्वेण वासव। दीयतामुग्रसेनाय सुधर्मा भवता सभा ॥१४॥
कृष्णो ब्रवीति राजार्हमेतद्रत्नमनुत्तमम्। सुधर्माख्या सभा युक्तमस्यां यदुभिरासितुम् ॥१५॥

व्यास उवाच

इत्युक्तः पवनो गत्वा सर्वमाह शचीपतिम्। ददौ सोऽपि सुधर्माख्यां सभां वायोः पुरंदरः ॥१६॥
वायुना चाऽऽहृता[1] दिव्या ते[2] सभा यदुपुंगवाः। बुभुजुः सर्वरत्नाढ्यां गोविन्दभुजसंश्रयाः[3] ॥१७॥
विदिताखिलविज्ञानौ सर्वज्ञानमयावपि। [4]शिष्याचार्यक्रमं वीरौ ख्यापयन्तौ यदूत्तमौ ॥१८॥
ततः सादीपनिं काश्यमवन्तिपुरवासिनम्। [5]अस्त्रार्थं जग्मतुर्वीरौ बलदेवजनार्दनौ ॥१९॥
तस्य शिष्यत्वमभ्येत्य गुरुवृत्तिपरौ हि तौ। दर्शयाचक्रतुर्वीरावाचारमखिले जने ॥२०॥
सरहस्यं धनुर्वेदं ससंग्रहमधीयताम्। अहोरात्रैश्चतु:षष्टचा तदद्भुतमभूद्द्विजाः ॥२१॥
सांदीपनिरसंभाव्य तयोः कर्मातिमानुषम्। विचिन्त्य तौ तदा मेने प्राप्तौ चन्द्रदिवाकरौ ॥२२॥
अस्त्रग्राममशेषं च प्रोक्तमात्रवाप्य तौ। ऊचतुर्व्रियतां या ते दातव्या गुरुदक्षिणा[6] ॥२३॥
सोऽप्यतीन्द्रियमालोक्य तयोः कर्म महामतिः। अयाचत मृतं पुत्रं प्रभासे लवणार्णवे ॥२४॥

श्रीकृष्ण बोले—जाओ और इन्द्र से गर्वपूर्वक कहो—'आप उग्रसेन को सुधर्मा नामक देवसभा दे दीजिये। कृष्ण कहते हैं कि यह उत्तम रत्न राजा के योग्य है। सुधर्मा नामक सभा मे यादवो का बैठना उचित है ॥१४-१५॥

व्यास बोले—एतदुपरान्त पवन ने इन्द्र से जाकर सब समाचार कह दिये। उन्होने भी वायु को सुधर्मा नामक सभा दे दी। वायु देवसभा को ले आये। गोविन्द के भुजबल से यदुपुगव अखिल रत्नो से सुसम्पन्न देवसभा का उपभोग करने लगे। निखिल विज्ञान को जानने वाले, सर्वज्ञानमय तथा वीर यादवश्रेष्ठ कृष्ण और बलराम शिष्य तथा आचार्य के क्रम को विख्यात करने के निमित्त अवन्तिपुरवासी सादीपनि से अस्त्र विद्या सीखने के लिये गये। उनके शिष्यत्व को स्वीकार कर के गुरुसेवापरायण होकर दोनो वीर लोगो को आचार दिखलाने लगे। द्विजगण ! यह आश्चर्य की बात है कि चौंसठ अहोरात्र मे ही उन्होने संग्रह तथा रहस्य सहित धनुर्वेद को सीख लिया ॥१६-२१॥ सादीपनि ने उन दोनो के असभव तथा लोकोत्तर कर्म को देखकर उन्हें सूर्य तथा चन्द्रमा समझा। अस्त्र समूह का प्रयोग तो बताते ही उन्होने सीख लिया। तब उन्होने गुरु से कहा—'आप दक्षिणा के लिये हमे आदेश करें।' महाबुद्धिमान् सादीपनि ने भी उनके अतीन्द्रिय कर्म को देखकर प्रभास नामक क्षार समुद्र मे मरे हुए अपने पुत्र के लिये याचना की। तब अस्त्र लेकर वे दोनो ल्वण समुद्र को गये और समुद्र से कहा—'गुरु-पुत्र को दे दो। द्विजश्रेष्ठो !

१ख वाहिता। २क ख ता। ३क यदुनन्दना। ४क शिष्टाचारक्रमाचार्यौ ख्या०।
५क शस्त्रार्थं। ख शिक्षार्थं। ६ख ०णा। असाधारणमा०।

गृहीतास्त्रौ ततस्तौ तु' गत्वा त लवणोदधिम्। ऊचतुश्च गुरो पुत्रो दीयतामिति सागरम् ॥२५॥
कृताञ्जलिपुटश्चाब्धिस्तावथ द्विजसत्तमा। उवाच न मया पुत्रो हृत सादीपनेरिति ॥२६॥
दैत्य पञ्चजनो नाम शङ्खरूप' स बालकम्। जग्राह सोऽस्ति सलिले ममैवासुरसूदन ॥२७॥
इत्युक्तोऽन्तर्जल गत्वा हत्वा पञ्चजन' तथा। कृष्णो जग्राह तस्यास्थिप्रभव' शङ्खमुत्तमम् ॥२८॥
यस्य नादेन दैत्याना बलहानि प्रजायते। देवाना वर्धते तेजो यात्यधर्मश्च सक्षयम् ॥२९॥
त पाञ्चजन्यमापूर्य गत्वा यमपुरीं हरि। बलदेवश्च बलवाञ्जित्वा वैवस्वत यमम् ॥३०॥
त बाल यातनासस्थ यथापूर्वशरीरिणम्। पित्रे प्रदत्तवान्कृष्णो बलश्च बलिना वर ॥३१॥
मथुरा च पुन प्राप्तावुग्रसेनेन पालिताम्। प्रहृष्टपुरुषस्त्रीकावुभौ रामजनार्दनौ ॥३२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१९४॥

अथ पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

जरासधेन सह रामजनार्दनयुद्धवर्णनम्

व्यास उवाच

जरासन्धसुते कस उपयेमे महाबल। अस्ति प्राप्तिश्च भो विप्रास्तयोर्भर्तृहण हरिम् ॥१॥

समुद्र ने हाथ जोडकर कहा—असुरसूदन! सादीपनि के पुत्र का अपहरण मैंने नही किया है बल्कि शख का रूप धारण कर पञ्चजन नामक राक्षस मेरे जल म रहता है। उसी ने बालक को पकड रखा है। यह सुनकर कृष्ण ने जल के भीतर घुसकर पञ्चजन को मारकर उसकी हड्डियो के बने उत्तम शख को ले लिया जिसके शब्द से दैत्यो की बलहानि देवो की तेजोवृद्धि तथा अधम का क्षय होता है। उस पाचजन्य नामक शख को बजाते हुए कृष्ण और बलदेव यमपुरी को गय। कृष्ण तथा बलवान् बलराम ने वहाँ वैवस्वत यम को जीत कर यातना भोगते हुए उस बालक को यथापूर्व शरीर म प्राप्त करके पिता (सादीपनि) को दे दिया। पुन राम और जनादन उग्रसेन द्वारा प्रतिपालित मथुरा पुरी म आकर नर-नारियो को प्रमुदित करने लगे। ॥२२ ३२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे बालचरित्र-कथन प्रसग म एक सौ चौरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९४॥

अध्याय १९५

जरासघ के साथ राम-कृष्ण का युद्ध-वर्णन

व्यास बोले—जरासघ की अस्ति और प्राप्ति नामक दो कन्याओ के साथ कस का विवाह हुआ था।

१घ तु ऊचतुश्च महोदधिम्। उवाच न मया पुत्रो हृत सादीपनेरिति। दं०। २ख बहुरूपी। ३क ०न च तम्। क्०। ४ख ०स्याऽऽगम०।

महाबलपरीवारो मागधाधिपतिर्बली। हन्तुमभ्याययौ कोपाज्जरासंधः सयादवम् ॥२॥
उपेत्य मथुरां सोऽथ रुरोध मगधेश्वरः। अक्षौहिणीभिः सैन्यस्य त्रयोविंशतिभिर्वृत ॥३॥
निष्क्रम्याल्पपरीवारावुभौ रामजनार्दनौ। युयुधाते समं तस्य बलिनौ बलिसैनिकैः ॥४॥
ततो बलश्च कृष्णश्च मतिं चक्रे महाबलः। आयुधानां पुराणानामादाने मुनिसत्तमाः ॥५॥
अनन्तरं चक्रशार्ङ्गे तूणौ चाप्यक्षयौ शरैः। आकाशादागतौ वीरौ तदा कौमोदकी गदा ॥६॥
हलं च बलभद्रस्य गगनादागमत्करम्। बलस्याभिमतं विप्राः सुनन्दं मुशलं तथा ॥७॥
ततो युद्धे पराजित्य स्वसैन्यं मगधाधिपम्। पुरीं विविशतुर्वीरावुभौ रामजनार्दनौ ॥८॥
जिते तस्मिन्सुदुर्वृत्ते जरासंधे द्विजोत्तमाः। जीवमाने गते तत्र कृष्णो मेने न तं जितम् ॥९॥
पुनरप्याजगामाथ जरासंधो बलान्वितः। जितश्च रामकृष्णाभ्यामपकृत्य द्विजोत्तमाः ॥१०॥
दश चाष्टौ च संग्रामानेवमत्यन्तदुर्मदः। यदुभिर्मागधो राजा चक्रे कृष्णपुरोगमैः ॥११॥
सर्वेष्वेव च युद्धेषु यदुभिः स पराजितः। अपक्रान्तो जरासंधः स्वल्पसैन्यैर्बलाधिकः ॥१२॥
तद्बलं यादवानां वै रक्षितं यदनेकशः। तत्तु सन्निधिमाहात्म्यं विष्णोरंशस्य चक्रिणः ॥१३॥
मनुष्यधर्मशीलस्य लीला सा जगतः पतेः। अस्त्राण्यनेकरूपाणि यदरातिषु मुञ्चति ॥१४॥
मनसैव जगत्सृष्टिसंहारं तु करोति यः। तस्यारिपक्षक्षपणे कियानुद्यमविस्तरः ॥१५॥

कृष्ण द्वारा कंस के निहत हो जाने पर बली मगधेश्वर जरासन्ध क्रोध से विशाल सेना को लेकर यादव सहित कृष्ण को मारने के लिये आया। मथुरा पहुँच कर मगधपति ने तेईस अक्षौहिणी सेनाओं से उसको घेर लिया। थोड़ी-सी सेना लेकर बलशाली राम-जनार्दन निकल आये और जरासन्ध के सैनिकों के साथ जूझ पड़े। मुनिश्रेष्ठो ! पहिले तो महाबली बलराम तथा कृष्ण ने प्राचीन आयुधों का ग्रहण किया, फिर बाद में आकाश से समागत चक्र, शार्ङ्ग नामक धनुष बाणों से परिपूर्ण अक्षय तरकस तथा कौमोदकी नामक गदा को ग्रहण किया। बलभद्र का हल भी आकाश से हाथ में आ गया। विप्रगण ! बलराम का प्रिय सुनन्द नामक मुशल भी उनके पास आ गया। तब युद्ध में सेना सहित मगधेश्वर को जीतकर दोनों वीर राम और कृष्ण नगर में प्रविष्ट हुए। विप्रवर ! दुराचारी जरासन्ध के जीत लिये जाने पर तथा उसके जीवित रह जाने पर कृष्ण ने उसको पराजित न माना। पुन: वही जरासन्ध आया और बलराम तथा कृष्ण के द्वारा अपकार करके जीता गया ॥१-१०॥ द्विजश्रेष्ठो ! इस प्रकार अत्यन्त दुर्मद राजा जरासन्ध ने अट्ठारह बार कृष्ण आदि यादवों से युद्ध किया। प्रत्येक युद्ध में यदुओं से पराजित होकर अल्प सेनाओं के साथ वह भाग जाता था। यादवों की अनेक सेनाओं की जो रक्षा हो जाती थी, वह तो विष्णु के अंशभूत कृष्ण के सामीप्य का माहात्म्य था। मनुष्यधर्मावलम्बी जगत्पति ने जो शत्रुओं के ऊपर अनेक प्रकार के अस्त्रों का प्रयोग किया, वह तो उनकी लीला थी। जो केवल मन से संसार की सृष्टि का संहार कर देते हैं, उन्हें शत्रुओं के नाश करने में

१ख युद्धाय परावृत्त समैन्यो मगधाधिप। पु०। २क ०ते कृष्णस्तममन्यत नो जि०। ३ग ०पकातो द्वि०। ४ग ०ल्पादृद्ध। त०।

तथाऽपि च मनुष्याणां धर्मस्तदनुवर्तनम्। कुर्वन्बलवतां संधिं हीनैर्युद्धं करोत्यसौ ॥१६॥
साम चोपप्रदानं च तथा भेदं च दर्शयन्। करोति दण्डपातं च क्वचिदेव पलायनम् ॥१७॥
मनुष्यदेहिनां चेष्टामित्येवमनुवर्तते। लीला जगत्पतेस्तस्य च्छन्दतः संप्रवर्तते ॥१८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९५॥

अथ षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः

कालयवनोपाख्यानम्

व्यास उवाच[1]

गार्ग्यं गोष्ठे द्विजो [ज] श्यालः षण्ढ [ण्ड] इत्युक्तवान्द्विजाः। यदूनां संनिधौ सर्वे जहसुर्यादवास्तदा[2] ॥१॥
ततः कोपसमाविष्टो दक्षिणापथमेत्य सः। सुतमिच्छंस्तपस्तेपे यदुचक्रभयावहम्[3] ॥२॥
[4]आराधयन्महादेवं [5]सोऽयश्चूर्णमभक्षयत्। ददौ वरं च तुष्टोऽसौ वर्षे द्वादशके हरः ॥३॥
[6]संभावयामास स तं यवनेशो[7] ह्यनात्मजम्। [8]तद्योषित्संगमाच्चास्य पुत्रोऽभूदलिसप्रभः[9] ॥४॥

कितना उद्यम करना पड़ता ? तो भी मनुष्य-धर्म का अवलम्बन करते हुए उन्होंने जरासन्ध के साथ युद्ध किये। वे साम, दान, भेद, दण्ड तथा कहीं पलायन भी करते थे। मनुष्यों जैसी चेष्टा करते हुए जगत्पति की लीला स्वच्छन्द तया प्रवृत्त होती है ॥११-१८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे श्रीकृष्णचरित्र-वर्णन प्रसग मे एक सौ पचानवेवां अध्याय समाप्त ॥१९५॥

अध्याय १९६

कालयवन का उपाख्यान

व्यास बोले—द्विजगण ! (एक बार) सभा मे यादवो ने द्विज गार्ग्य को साले, नपुसक आदि कहकर गालियाँ दी। तब वे अत्यन्त क्रुद्ध होकर दक्षिणापथ में आकर यदुवंशियो के लिए भयावह पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा से तप करने लगे। उन्होंने शिव की आराधना करते हुए लोहे का चूर्ण भक्षण किया। बारहवें वर्ष मे शकर ने प्रसन्न होकर उन्हे वरदान दिया। तब वे पुत्र विहीन यवनेश (म्लेच्छों के राजा) से आकर मिले। यवनेश ने उनका सम्मान किया। अनन्तर उन्होंने उसकी स्त्री से सगम करके भौंरे के समान कान्ति वाले पुत्र को उत्पन्न किया। उसका नाम कालयवन

१क. ०च। शालोऽस्य द्विजशार्दूलं षण्ढमित्यु०। २ख ०देवा स्थिता। त०। ३ग ०न्मुखाव०। ४ख ०देवमोजस्तीक्ष्णममूत्तदा। द०। ५क. सोऽस्य प्रत्यक्षतां गतः। द०। ६ग समोजया०। ७ग ०शो जना०। ८ख ०मातस्य। ९ख ०दसमञ्जसः। त।

त कालयवन नाम' राज्ये स्वे यवनेश्वर । अभिषिच्य वन यातो वज्राग्रकठिनोरसम्'॥५॥
स तु वीर्यमदोन्मत्त पृथिव्या बलिनो नृपान। पप्रच्छ नारदश्चास्मै कथयामास यादवान॥६॥
म्लेच्छकोटिसहस्राणा सहस्रै ' सोऽपि सवृत । गजाश्वरथसपन्नैश्चकार परमोद्यमम॥७॥
प्रययौ चाऽऽतव(प)च्छिन्नै प्रयाणे स दिने दिने। यादवान्प्रति सामर्षो मुनयो मथुरा पुरीम॥८॥
कृष्णोऽपि चिन्तयामास क्षपित यादव 'बलम्'। यवनेन समालोक्य मागध ' सप्रयास्यति॥९॥
मागधस्य बल क्षीण स कालयवनो बली। हन्ता' तदिदमायात' यदूना व्यसन द्विधा॥१०॥
तस्मादुर्गं करिष्यामि यदूनामतिदुर्जयम्। स्त्रियोऽपि यत्र युध्येयु किं पुनर्वृष्णियादवा॥११॥
मयि मत्ते प्रमत्ते वा सुप्ते प्रवसितऽपि वा। यादवाभिभव दुष्टा मा कुर्वन्वै(र्युवै) रिणोऽधिकम॥१२॥
इति सचिन्त्य गोविन्दो योजनानि महोदधिम्। ययाचे द्वादश पुरीं द्वारका तत्र निर्ममे॥१३॥
महोद्याना' महावप्रा तडागशतशोभिताम। प्रकारशतसबाधामि द्रस्येवामरावतीम॥१४॥
मथुरावासिन लोक तत्राऽऽनीय जनार्दन । आसन्ने कालयवने ' मथुरा च स्वय ययौ॥१५॥
बहिरावासित सैन्ये मथुराया निरायुध । निर्जगाम स गोविन्दो ददृश यवनश्च तम॥१६॥
स ज्ञात्वा वासुदेव त बाहुप्रहरणो नृप । अनुयातो महायोगिचेतोभि प्राप्यते न य॥१७॥
तेनानुयात कृष्णोऽपि प्रविवेश महागुहाम। यत्र शेते महावीर्यो मुचुकुन्दो नरेश्वर॥१८॥

पडा। वज्र के अग्रभाग के समान कठोर छाती वाले कालयवन को राज्य मे अभिषिक्त करके यवनेश्वर वन को चले गये॥१ ५॥ बल के मद से उन्मत्त कालयवन बली राजाओ के बारे मे पूछ-ताछ करने लगा। नारद ने उससे यादवो का नाम बता दिया। तब वह हाथी घोडो से सुसपन्न हजारो करोड सेनाओ से युक्त होकर यादवो के प्रति कोप करते हुए मथुरा के लिये प्रस्थित हुआ। प्रयाण करती हुई उसकी सेनाओ के चरण रज से सूय आच्छादित हो गये। कृष्ण भी सोचने लगे— यवन द्वारा यादवो के बल का क्षय होते देखकर जरासन्ध टूट पडेगा। मगधश की क्षीण सेना तथा बली कालयवन दोनो लडेगे। तब तो यादवो के लिये दो सकट उपस्थित हो जायेंगे। इसलिये यदुवशियो के निमित्त मैं अजेय दुग की रचना करूगा जहाँ से स्त्रिया भी युद्ध कर सकेंगी। वृष्णि और यादवो की तो बात ही क्या? ॥६ ११॥ ऐसा सोचकर गोविन्द ने समुद्र से कोसो लबे-चौडे स्थान की य चना की और वहाँ द्वारका पुरी का निर्माण किया। उसमे बडे-बड उद्यान तथा मिट्टी के टीले थे सैंकडो तालाब थे और सकडो चहारदीवारियो से आवृत होकर वह नगरी इन्द्रावती की शोभा प्राप्त कर रही थी। जनादन ने मथुरावासियो को लाकर वहाँ रख दिया। कालयवन के मथुरा पहुचने पर वे स्वय वहा चले गये॥१२ १५॥ मथुरा के बाहर ही सेनाओ को रखकर गोविन्द निशस्त्र होकर जाने लगे। यवन ने उनको देख लिया। तब कृष्ण को पहचान कर भुजाओ से प्रहार करने वाले राजा ने उनका पीछा किया *जिन्हे महायोगियो के चित्त भी नही प्राप्त करते हैं। कृष्ण आगे आगे भागते हुए महागुहा मे प्रविष्ट* होकर वहा पहुँच गये जहाँ महापराक्रमी राजा मुचुकुन्द शयन कर रहे थे। दुमति यवन ने भी गुफा मे पैठ कर

१ख ०म चक्र स य०। २ख वज्रवत्कठि०। ३क ख ०हस्रश्चापि। ४ग कुलम्। ५क ०म। पवते नगरे रम्ये मागधस्य भविष्यति। ६ग ०गधस्य भविष्यति। न मा०। ७ख न्ताज्ञ० सुसमा०। ८ख बहूना। ९ख महोन्नता। १०ख क द्वारकामानयद्धरि.। उन्मत्त का०। ११ख ०वनो मथुराया स्व०।

सोऽपि प्रविष्टो यवनो दृष्ट्वा शय्यागत नरम्। पादेन ताडयामास[1] कृष्ण मत्वा स दुर्मति ॥१९॥
दृष्टमात्रश्च तेनासौ जज्वाल यवनोऽग्निना। तत्क्रोधजेन मुनयो भस्मीभूतश्च तत्क्षणात् ॥२०॥
स हि देवासुरे युद्धे गत्वा जित्वा महासुरान्। निद्रार्त सुमहाकाल निद्रा वव्रे वर सुरान् ॥२१॥
प्रोक्तश्च देवै ससुप्त यस्त्वामुत्थापयिष्यति। देहजेनाग्निना सद्य स तु भस्मीभविष्यति ॥२२॥
एव दग्ध्वा स त पाप दृष्ट्वा च मधुसुदनम्। कस्त्वमित्याह सोऽप्याह जातोऽह शशिन कुले ॥२३॥
वसुदेवस्य तनयो यदुवशसमुद्भव। मुचुकुन्दोऽपि तच्छ्रुत्वा [2]वृद्धगार्ग्यवच स्मरन् ॥२४॥
सस्मृत्य प्रणिपत्यैन सर्व सर्वेश्वर हरिम्। प्राह ज्ञातो भवान्विष्णोरशस्त्व परमेश्वर ॥२५॥
पुरा गार्ग्येण[3] कथितमष्टाविंशतिमे युगे। द्वापरान्ते हरेर्जन्म यदुवशे भविष्यति ॥२६॥
स त्व प्राप्तो न सदेहो[4] मर्त्यानामुपकारकृत्। तथा हि सुमहत्तेजो नाल सोढुमह तव ॥२७॥
तथा हि सुमहाम्भोदध्वनिधीरतर तत। वाक्य तमिति होवाच युष्मत्पादसुलालितम् ॥२८॥
देवासुरे महायुद्धे दैत्याश्च सुमहाभटा। न शेकुस्ते महत्तेजस्तत्तेजो न सहाम्यहम् ॥२९॥
ससारपतितस्यैको जन्तोस्त्व शरण परम्। सप्रसीद प्रपन्नार्तिहर्ता हर [5]ममाशुभम् ॥३०॥
त्व पयोनिधय शैला सरितश्च वनानि च। मेदिनी गगन[6] वायुरापोऽग्निस्त्व तथा पुमान्[7] ॥३१॥

सोये हुए मनुष्य को देखकर उसे कृष्ण समझ कर पैर से मार दिया। मुनिवृन्द! मुचुकुन्द की दृष्टि पडते ही उनके क्रोध जन्य अग्नि से यवन तत्क्षण जलकर भस्मसात् हो गया ॥१९ २०॥ मुचुकुन्द देवासुर सग्राम म गये थे। वहाँ उन्होंने असुरो को जीतकर निद्रा से पीडित होकर देवताओ से यही वरदान मागा था कि मैं चिरकाल तक सोया रहूँ। देवो ने उनसे कहा था कि जो व्यक्ति सोये हुए तुमको उठावेगा वह देहोत्पन्न अग्नि से सद्य भस्म हो जायगा। इस प्रकार उस पापी को जलाकर मधुसूदन को देखकर उन्होंने पूछा—तुम कौन हो? कृष्ण ने उत्तर दिया। 'मेरी उत्पत्ति चन्द्रकुल म हुई है। मै वसुदेव का पुत्र हूँ। यदुओ के वश म मैं उत्पन्न हुआ हूँ। यह सुनकर मुचुकुन्द मे गार्ग्य के वचन का स्मरण करके सर्वेश्वर हरि को प्रणाम करते हुए कहने लगे—मैंने आपको जान लिया। आप विष्णु के अश से अवतीर्ण परमेश्वर हैं। पहिले गार्ग्य ने कहा था कि अट्ठाईसवे युग म द्वापर के अन्त म यदुवश मे हरि का जन्म होगा। मनुष्यो के उपकार करने वाले वे आप ही पधारे हैं मुझे इसमे तनिक भी सदेह नही है। मैं आपके तेज को सहन करने म समर्थ नही हूँ। आपके महासमुद्र के समान धीर वचन भी मुझे असह्य हो रहा है। देवासुर सग्राम म महावीर दैत्यगण भी आपके तेज को नही सह सके थे वही महान् तेज मुझे सह्य नही हो रहा है ॥२१ २९॥ ससार म पतित जीव के लिये आप ही एक शरण हैं। शरणागत की आर्ति हरण करने वाले! प्रसन्न होइये। मेरे अशुभ का नाश कीजिये। आप समुद्र पर्वत नदी वन पृथ्वी आकाश वायु जल अग्नि तथा पुरुष हैं। आप पुरुष

१ख घातयामास। २क ०द्धवाक्यमनुस्म०। ३ख गर्गेण। ४ग ०हो यादवानुप०। ५ख ०कुमम पत्ते०। ६ख वायु पयोऽग्निश्च त०। ७ख ०न्। त्वयाऽपि युगपत्सर्व व्याप्त ज०।

पुंसः परतरं सर्वं व्याप्य जन्म विकल्पवत्।[1] शब्दादिहीनमजरं[2] वृद्धिक्षयविवर्जितम्॥३२॥
त्वत्तोऽमरास्तु पितरो यक्षगन्धर्वराक्षसाः[3]। सिद्धाश्चाप्सरसस्त्वत्तो मनुष्याः पशवः खगाः॥३३॥
सरीसृपा मृगाः सर्वे त्वत्तश्चैव महीरुहाः। यच्च भूतं भविष्यद्वा किंचिदत्र चराचरे॥३४॥
अमूर्तं मूर्तमयवा स्थूलं सूक्ष्मतरं तथा। तत्सर्वं त्वं जगत्कर्तर्नास्ति किंचित्त्वया विना॥३५॥
मया संसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमता भगवन्सदा। तापत्रयाभिभूतेन न प्राप्ता निर्वृतिः क्वचित्॥३६॥
दुःखान्येव सुखानीति मृगतृष्णा जलाशयः। मया नाथ गृहीतानि तानि[4] तापाय मेऽभवन्॥३७॥
राज्यमुर्वी बलं कोशो मित्रपक्षस्तथाऽऽत्मजाः। भार्या भृत्यजना ये च शब्दाद्या विषयाः प्रभो॥३८॥
सुखबुद्ध्या मया सर्वं गृहीतमिदमव्ययं। परिणामे च देवेश तापात्मकमभून्मम॥३९॥
देवलोकगतिं प्राप्तो नाथ देवगणोऽपि हि। मत्तः साहाय्यकामोऽभूच्छाश्वती कुत्र निर्वृतिः॥४०॥
त्वामनाराध्य जगतां सर्वेषां प्रभवास्पदम्। शाश्वती प्राप्यते केन परमेश्वर निर्वृतिः॥४१॥
त्वन्मायामूढमनसो जन्ममृत्युजरादिकान्[5]। अवाप्य पापान्पश्यन्ति प्रेतराजानमन्तरा[6]॥४२॥
ततः पाशशतैर्बद्धा नरकेष्वतिदारुणम्। प्राप्नुवन्ति महद्दुःखं[7] विश्वरूपमिदं तव॥४३॥
अहमत्यन्तविषयी मोहितस्तव मायया। ममत्वागाधगर्तान्ते भ्रमामि परमेश्वर॥४४॥

से भी परे है। सब मे व्याप्त होकर आप स्थित हैं। आपका जन्म वैकल्पिक, शब्दादि से हीन, अजर तथा ह्रास और क्षय से विवर्जित है। आप ही से देव, पितर, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, सिद्ध, अप्सरा, मनुष्य, पशु, पक्षी, सर्प, मृग तथा वृक्ष उत्पन्न हुए हैं। इस चराचर जगत् मे जो कुछ भी भूत, भविष्य, अमूर्त, मूर्त, स्थूल तथा सूक्ष्म हैं, वह सब आप ही हैं। जगत्कर्ता! बिना आपके कुछ भी नही है। भगवन्! इस ससारचक्र मे भ्रमण करते हुए मैंने तापत्रय से अभिभूत होकर कही शान्ति नही पायी॥३०-३६॥ नाथ! मृगतृष्णा मे पडकर मैंने दुख ही को सुख समझा। पर उससे मुझे सताप ही मिला। प्रभो! राज्य, पृथ्वी, सेना, कोष, मित्रसमूह, पुत्र, स्त्री, भृत्य तथा शब्द आदि जितने विषय हैं, उन सबको मैंने सुख समझकर ग्रहण किया। परन्तु परिणाम मे मुझे ताप ही हुआ। देवेश! मैं देवलोक को गया। वहाँ देवगण ने मुझसे सहायता मागी, फिर नित्य सुख कहाँ है? परमेश्वर! ससार के आदि-कारण रूप आपकी आराधना किए बिना शाश्वत सुख कहाँ से मिल सकता है? आपकी माया से मुग्ध होकर प्राणी जन्म, मृत्यु, जरा आदि को प्राप्त कर बिना यमराज के ही और पापियो को देखते हैं। तब सैकडो पाशो मे बद्ध होकर नरको मे अत्यन्त भयकर दुख पाते है। यह आपका विश्वरूप है। परमेश्वर! मैं अत्यन्त विषयी हूँ। आपकी माया से मोहित होकर ममतारूपी अगाध गर्त मे भ्रमण कर रहा हूँ। वही मैं ईश तथा स्तुत्य प्रभु की शरण मे प्राप्त

१ख. ०त्। सृष्ट्यादि०। २ख ०र जन्मक्ष०। ३ख. ०वैकिनरा। सि०। ४ख. तापत्रययुतेन मो०। रा०। ५ख ०दिकं। शस्त्रवाप्या प्रपश्य०। ६ख ०नन तदा। त०। ७ख. ०स स्वरूप निन्दतस्तव।

सोऽहं त्वां शरणमपारमीशमीड्यं, संप्राप्तः परमपदं यतो न किंचित् ।
संसारश्रमपरितापतप्तचेता निर्विण्णे परिणतधाम्नि साभिलाषः ॥४५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे कालयवनवधे मुचुकुन्दस्तुतिनिरूपणं
नाम षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९६॥

अथ सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

गोकुले बलप्रत्यागमनवर्णनम्

व्यास उवाच[1]

इत्थं स्तुतस्तदा तेन मुचुकुन्देन धीमता। प्राहेशः सर्वभूतानामनादिनिधनो हरिः ॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

यथाऽभिवाञ्छितांल्लोकान्दिव्यान्गच्छ नरेश्वर। अव्याहतपरैश्वर्यो मत्प्रसादोपबृंहितः ॥२॥
भुक्त्वा दिव्यान्महाभोगान्भविष्यसि महाकुले। जातिस्मरो मत्प्रसादात्ततो मोक्षमवाप्स्यसि ॥३॥

हूँ। आपके अतिरिक्त कोई परमपद नही है। सासारिक ताप से परितप्त होकर मैं विरक्त एवं रूपान्तर को प्राप्त धाम वाले आपकी अभिलाषा करता हूँ। ॥३७-४५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में कालयवन वध कथन प्रसंग में मुचुकुन्द स्तुति निरूपण
नामक एक सौ छानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९६॥

अध्याय १९७

गोकुल में बलराम का लौटना

व्यास बोले—इस प्रकार धीमान् मुचुकुन्द द्वारा प्रस्तुत होने पर समस्त प्राणियों के ईश तथा जन्म मरण से रहित कृष्ण ने कहा ॥१॥

श्रीकृष्ण बोले—राजन्! तुम मेरे कृपापात्र होकर अभिवाञ्छित दिव्य लोकों को जाओ। वहाँ समस्त ऐश्वर्यों से सम्पन्न होकर दिव्य महाभोगों को भोग कर महान कुल में उत्पन्न होगे। मेरी कृपा से तुम्हें पूर्व जन्मों का स्मरण रहेगा। इसके बाद तुम मोक्ष पाओगे ॥२-३॥

१ख ब्रह्मोवाच। २क ०तबलरथ०। ख ०तवरै०।

व्यास उवाच

इत्युक्तः प्रणिपत्येशं 'जगतामच्युतं नृप'। गुहामुखाद्विनिष्क्रान्तो ददृशे सोऽल्पकान्नरान् ॥४॥
ततः कलियुगं ज्ञात्वा प्राप्तं तप्तु ततो नृप। नरनारायणस्थानं प्रययौ गन्धमादनम् ॥५॥
कृष्णोऽपि घातयित्वाऽरिमुपायेन हि तद्बलम्। जग्राह मथुरामेत्य हस्त्यश्वस्यन्दनोज्ज्वलम्' ॥६॥
आनीय चोग्रसेनाय द्वारवत्या न्यवेदयत्। पराभिभवनिःशङ्कं बभूव च' यदोः कुलम् ॥७॥
बलदेवोऽपि विप्रेन्द्राः' प्रशान्ताखिलविग्रहः। ज्ञातिदर्शनसोत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥८॥
ततो गोपाश्च गोप्यश्च यथापूर्वममित्रजित्। तथैवाभ्यवदत्प्रेम्णा बहुमानपुरःसरम् ॥९॥
कैश्चापि संपरिष्वक्तः कांश्चित्स परिषस्वजे। हासं चक्रे समं कैश्चिद्गोपगोपीजनैस्तथा ॥१०॥
'प्रियाण्यनेकान्यवदन्गोपास्तत्र 'हलायुधम्। गोप्यश्च प्रेममुदिताः प्रोचुः सेर्ष्यमथापराः ॥११॥
गोप्यः पप्रच्छुरपरा नागरीजनवल्लभः। कच्चिदास्ते सुखं कृष्णश्चलत्प्रेमरसाकुलः ॥१२॥
अस्मच्चेष्टोपहसनं न कच्चित्पुरयोषिताम्। सौभाग्यमानमधिकं करोति क्षणसौहृदः ॥१३॥
कच्चित्स्मरति नः कृष्णो गीतानुगमनं कृतम्'। अप्यसौ मातरं द्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति ॥१४॥

व्यास बोले—यह कहे जाने पर राजा जगत्पति कृष्ण को प्रणाम करके गुफा से बाहर हो गये। उन्होंने थोड़े ही मनुष्यों को देखा। तब कलियुग जानकर वे तप करने के लिये निमित्त गन्धमादनपर्वत पर नरनारायण के स्थान के लिये प्रस्थित हो गये। कृष्ण ने युक्ति से शत्रु को मरवा कर मथुरा आकर उसकी सेना को विनष्ट किया, फिर उसके हाथी, घोड़े तथा उज्ज्वल रथ को लेकर द्वारका में उग्रसेन को दे दिया। तब यदुवंशी पराजय की आशंका से रहित हो गये। द्विजश्रेष्ठो! अखिल युद्धों के शान्त हो जाने पर बन्धुओं के दर्शन करने की उत्कंठा से बलदेव नन्द के गोकुल गये ॥४-८॥ वहाँ शत्रुजित् बलराम ने गोप-गोपियों साथ अत्यन्त सम्मानपूर्वक प्रेम से वार्तालाप किया। किसी ने उनका आलिंगन किया और किसी का आलिंगन उन्होंने ही किया। किन्हीं गोप-गोपियों के साथ उन्होंने हास्य किया। गोपों ने बलराम से अनेक प्रिय बातें कहीं। गोपियों ने प्रेम से विभोर होकर ईर्ष्यायुक्त वचन कहा। कुछ गोपियों ने पूछा —नगर नारियों के प्रिय तथा प्रेमलम्पट कृष्ण कुशल से तो हैं? क्षणिक स्नेह करने वाले हरि नागरिक रमणियों के सौभाग्य तथा मान को खूब बढ़ाते होंगे और हम लोगों का उपहास करते होंगे। कभी कृष्ण हम लोगों के गीतों का स्मरण करते हैं? क्या वे एक बार भी माता के दर्शन करने के लिये आयेंगे? अथवा उनके बारे में बातचीत करने से क्या लाभ? दूसरी कथा कीजिये, जो हमसे और उनसे कोई सम्बन्ध नहीं

१क ०तामीश्वर नृ०। २ग ०ज्ज्वला म्। ३क ख यदोर्बलम्। ४क मुनय। ख मुनिभि। ५क ०दद्गोपास्त०। ६क ०युध। गो०। ७क कलम्।

अथवा किं तदालापैः क्रियन्तामपरा कथा । यदस्माभिर्विना तेन (तस्य) विनाऽस्माकं भविष्यति ॥१५॥
पिता माता तथा भ्राता भर्ता बन्धुजनश्च कः । न त्यक्तस्तत्कृतेऽस्माभिरकृतज्ञस्ततो हि सः ॥१६॥
तथाऽपि कच्चिदात्मीयमिहाऽऽगमनसंश्रयम् । करोति कृष्णो वक्तव्यं भवता वचनामृतम् ॥१७॥
दामोदरोऽसौ गोविन्दः पुरस्त्रीसक्तमानसः । अपेतप्रीतिरस्मासु दुर्दर्शः प्रतिभाति नः ॥१८॥

व्यास उवाच

आमन्त्रितः स कृष्णेति पुनर्दामोदरेति च । जहसुः सुस्वरं गोप्यो हरिणाकृष्टचेतसः ॥१९॥
संदेशैः सौम्यमधुरैः प्रेमगर्भैरगर्वितैः । रामेणाऽऽश्वासिता गोप्यः कृष्णस्यातिमधुस्वरैः ॥२०॥
गोपैश्च पूर्ववद्रामः परिहासमनोहराः । कथाश्चकार प्रेम्णा च सह तर्व्रजभूमिषु ॥२१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे गोकुले बलप्रत्यागमनवर्णनं नाम सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९७॥

अथाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

हलिक्रीडावर्णनम्

व्यास उवाच

वने विहरतस्तस्य सह गोपैर्महात्मनः । मानुषच्छद्मरूपस्य शेषस्य धरणीभृतः ॥१॥

रखती हो। उनके निमित्त हमने पिता माता भाई स्वामी बन्धुजन तथा किसका परित्याग नहीं किया? इसलिये वे अकृतज्ञ है। तो भी आप बतलाइए कि क्या वे कभी यहाँ आने के लिये आत्मीयता दिखलायेंगे? नागरिक रम णियो में आसक्त मन वाले तथा हम लोगो की प्रीति की उपेक्षा करने वाले दामोदर गोविन्द का दर्शन तो हम लोगों के लिये असम्भव हो है॥९-१८॥

व्यास बोले—कृष्ण द्वारा आकृष्ट चित्त वाली गोपियाँ 'कृष्ण' 'दामोदर' इस प्रकार सम्बोधन करती हुई मधुर स्वर मे हँसने लगी। तब राम ने अत्यन्त मधुर स्वर से कृष्ण के सौम्य मधुर प्रेमगर्भित और निरभिमान संदेशो को सुनाकर गोपियो को आश्वासन दिया। व्रज मे गोपो ने राम के साथ पहले की तरह प्रेम से मनोहर परिहास तथा वार्तालाप किये॥२१॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे गोकुल मे बलराम के प्रत्यागमन वर्णन नामक एक सौ सत्तानवेवाँ अध्याय समाप्त॥१९७॥

अध्याय १९८

बलराम की क्रीडा का वर्णन

व्यास बोले—गोपो के साथ वन मे विहार करते हुए शेषधरणी का धारण करने वाले महान् कार्यों को

१क ग किम्। २क ख ०दालापमि०। ३क ०ता कृष्ण हृद्गत०। ख ०ता कृष्णपूर्वज। दा०।
४क ०दर्शो मन्दभागिनाम्। ध्या०। ५घ ०र्शं सामम०। ६ ख विचर०। ७ख ०र्मभि। मा०।

निष्पादितोरुकार्यस्य कार्येणैवावतारिण । उपभोगार्थमत्यर्थं वरुण प्राह वारुणीम् ॥२॥

वरुण उवाच

अभीष्टा सर्वदा ह्यस्य मदिरे त्व महौजस । अनन्तस्योपभोगाय तस्य गच्छ मुदे शुभे ॥३॥

व्यास उवाच

इत्युक्ता वारुणी तेन सन्निधानमथाकरोत् । वृन्दावनतटोत्पन्नकदम्बतरुकोटरे ॥४॥
विचरन्बलदेवोऽपि[१] मदिरागन्धमुद्धतम् । आघ्राय[२] मदिराहर्षमवाप स पुरातनम् ॥५॥
तत कदम्बात्सहसा मद्यधारा स लाङ्गली । पतन्तीं वीक्ष्य मुनय प्रययौ परमा मुदम् ॥६॥
पपौ च गोपगोपीभि समवेतो मुदाऽन्वित । उपगीयमानो ललित गीतवाद्यविशारदै[३] ॥७॥
श्रमतोऽत्यन्तघर्माम्भ कणिकामौक्तिकोज्ज्वल । आगच्छ यमुने स्नातुमिच्छामीत्याह विह्वल ॥८॥
तस्य वाच नदी सा तु मत्तोक्तामवमन्य वै । नाऽऽजगाम तत क्रुद्धो हल जग्राह लाङ्गली ॥९॥
गृहीत्वा तां तटेनैव चकर्ष मदविह्वल । पापे नाऽऽयासि नाऽऽयासि गम्यतामिच्छयाऽन्यत ॥१०॥
सा कृष्टा तेन सहसा मार्ग सत्यज्य निम्नगा । यत्राऽऽस्ते बलदेवोऽसौ प्लावयामास तद्वनम् ॥११॥
शरीरिणी तयोपेत्य त्रासविह्वललोचना । प्रसीदेत्यब्रवीद्राम मुञ्च मा मुशलायुध ॥१२॥
सोऽब्रवीदवजानासि मम शौर्यबल यदि । सोऽह त्वा हलपातेन नयिष्यामि सहस्रधा ॥१३॥

सम्पन्न करने वाले कार्यवश अवतीर्ण होने वाले तथा मनुष्यशरीरधारी महात्मा बलराम के अत्यन्त उपभोग के लि वरुण ने वारुणी मदिरा से कहा ॥१ २॥

वरुण बोले—कल्याणि ! मदिरे ! महातजस्वी बलभद्र के उपभोग के लिये तुम जाओ ॥३॥

व्यास बोले—इसके बाद वृन्दावन मे यमुनातट पर उत्पन्न कदम्बवृक्ष के कोटर मे बलभद्र को वारुणी मदि प्राप्त हुई। विचरण करते हुए बल्देव ने मदिरा की अत्युत्कट गन्ध को सूंघ कर अपने पुरातन मदिराजन्य हर्ष व प्राप्त किया। मुनिवृन्द ! तदनन्तर सहसा कदम्ब से गिरती हुई मद्यधारा को देखकर बलभद्र परम हर्षित हुए बाद मे उन्होंने गोप-गोपियों के साथ आनन्दपूर्वक मदिरा का पान किया। गाने-बजाने में प्रवीण व्यक्तियों ने उनक स्वागत किया। क्रीडाजन्य श्रम से उनके धवल शरीर पर पसीने की बूंदें मोतियो की तरह सुशोभित होने लगी तब उन्होंने विह्वल होकर कहा— यमुने ! आओ मैं स्नान करना चाहता हूँ। उनकी वाणी को प्रमत्त की उक्ति समझकर यमुना नही आई। तब क्रुद्ध होकर उन्होंने हल उठाया और तट पर से ही नदी को खींचते हु कहा—पापे ! नहीं आती हो तो मत आओ। इच्छापूर्वक दूसरी तरफ चली जाओ। खिंची जाने पर यमुना अपने मार्ग को त्याग कर जहाँ बलदेव थे वहाँ के वन को आप्लावित कर दिया। शरीरधारण करके भय से कातरनयन यमुना राम से आकर कहने लगी—मुशलायुध ! प्रसन्न होइये मुझे छोड दीजिये। बलभद्र ने कहा—यदि तुम मे शौर्यबल का अपमान करती हो तो हल के प्रहार से मैं तुम्हारे सहस्र टुकडे कर दूगा ॥४ १३॥

१क विचिन्वन्व। २ख घ्रस्मार। ३ख ०रावघ०। ४क ०दै। स मत्तोऽत्य०।

व्यास उवाच

इत्युक्तयाऽतिसंत्रस्तया नद्या प्रसादित । भूभागे प्लाविते तत्र मुमोच यमुना बल ॥१४॥
तत स्नातस्य[1] वै कान्तिराजगाम महावने। अवतसोत्पल चारु गृहीत्वैक च कुण्डलम॥१५॥
वरुणप्रहितां चास्मै मालामम्लानपङ्कजाम। समुद्राहे[2] तथा वस्त्रे नीले लक्ष्मीरयच्छत॥१६॥
कृतावतस स तदा चारुकुण्डलभूषित । नीलाम्बरधर स्रग्वी शुशुभे कान्तिसयुत ॥१७॥
इत्थ विभूषितो रेमे तत्र रामस्तदा व्रजे। मासद्वयेन यातश्च पुन स मथुरा पुरीम॥१८॥
रेवतीं चैव तनया रैवतस्य महीपते । उपयेमे बलस्तस्या जज्ञाते निशठोल्मुकौ॥१९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे हलिक्रीडावर्णन नामाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१९८॥

अथ नवनवत्यधिकशततमोऽध्याय.

रुक्मिणीविवाहवर्णनम्

व्यास उवाच

भीष्मक कुण्डिने राजा विदर्भविषयेऽभवत। रुक्मिणी तस्य दुहिता रुक्मी चैव सुतो द्विजा ॥१॥
रुक्मिणीं चकमे कृष्ण सा च त चारुहासिनी। न ददौ याचते चैना रुक्मी द्वेषेण चक्रिण॥२॥

व्यास बोले—इतना कहने पर यमुना अत्यन्त डर कर उनको मनाने लगी अन्त म वहाँ के भू प्रदेश के जलप्लावित हो जाने पर बलराम न नदी को मुक्त कर दिया। तब महावन म स्नान करने पर बलभद्र की कान्ति बढ गई। उन्होंने आभूषण के लिए सुन्दर कमल तथा एक कुण्डल ग्रहण किया। वरुण ने उनको म्लान न होने वाले कमलो की माला दी। लक्ष्मी ने समुद्र के योग्य दो नील वस्त्र उन्हे प्रदान किये। तब भूषणो से युक्त मनोहर कुण्डल से विभूषित नीलवस्त्रधारी मालाधारी तथा कान्ति से युक्त होकर बलदेव सुशोभित हुए। इस प्रकार विभूषित होकर राम व्रज मे दो महीना तक रमण करते रहे। पुन वे मथुरा आये। रैवत नामक राजा की रेवती नामक कन्या से बलभद्र ने विवाह किया और उससे निशठ तथा उल्मुक नामक दो पुत्र उत्पन्न किये॥१४ १९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म हलिक्रीडा वर्णन नामक एक सौ अट्ठानवेवाँ अध्याय समाप्त॥१९८॥

अध्याय १९९

रुक्मिणी के विवाह का वर्णन

व्यास ने कहा—द्विजवर! विदर्भ राज्य के कुण्डिन नगर मे भीष्मक नामक राजा हुए। उनके रुक्मी नामक पुत्र और रुक्मिणी नामक कन्या थी। कृष्ण रुक्मिणी को चाहते थे और मनोहर हास्य करने वाली रुक्मिणी

[1] कान्तस्य। २क ०मुद्रस्तु त०।

ददौ स शिशुपालाय जरासंधप्रचोदितः। भीष्मको रुक्मिणा सार्धं रुक्मिणीमुरुविक्रमः॥३॥
विवाहार्थं ततः सर्वे जरासंधमुखा नृपाः। भीष्मकस्य पुरं जग्मुः शिशुपालश्च कुण्डिनम्॥४॥
कृष्णोऽपि बलभद्राद्यैर्यदुभिः परिवारितः। प्रययौ कुण्डिनं द्रष्टुं विवाहं चैद्यभूपतेः॥५॥
श्वोभाविनि विवाहे तु तां कन्या हृतवान्हरिः। विपक्षभावमासाद्य रामाद्येष्वेव बन्धुषु॥६॥
ततश्च पौण्ड्रकः श्रीमान्दन्तवक्त्रो विदूरथः। शिशुपालो जरासंधः शाल्वाद्याश्च महीभृतः॥७॥
कुपितास्ते हरिं हन्तुं चक्रुरुद्योगमुत्तमम्। निर्जिताश्च समागम्य रामाद्यैर्यदुपुंगवैः॥८॥
कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि अहत्वा युधि केशवम्। कृत्वा प्रतिज्ञां रुक्मी च हन्तुं कृष्णमभिद्रुतः॥९॥
हत्वा बलं स नागाश्वपत्तिस्यन्दनसंकुलम्। निर्जितः पातितश्चोर्व्यां लीलयैव स चक्रिणा॥१०॥
निर्जित्य रुक्मिणं सम्यगुपयेमे स रुक्मिणीम्। राक्षसेन विधानेन संप्राप्तो मधुसूदनः॥११॥
तस्यां जज्ञे च प्रद्युम्नो मदनांशः स वीर्यवान्। जहार शम्बरो यं वै यो जघान च शम्बरम्॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९९॥

उनको चाहती थीं। ईर्ष्यावश रुक्मी ने याचना करते हुए कृष्ण को रुक्मिणी नहीं दी। जरासंध के कहने से पराक्रमी भीष्मक ने रुक्मी के साथ रुक्मिणी को शिशुपाल को दे दिया। तब विवाह के निमित्त जरासंध आदि राजा तथा शिशुपाल भी भीष्मक के कुण्डिन नगर में पहुँचे। कृष्ण भी बलभद्र आदि यादवों सहित शिशुपाल का विवाह देखने के लिये कुण्डिन में पधारे। विवाह कल होता किन्तु आज ही हरि ने उस कन्या का अपहरण कर लिया। राम आदि बन्धुओं में ही शत्रु-भाव को देखकर पौण्ड्रक, श्रीमान्, दन्तवक्त्र, विदूरथ, शिशुपाल, जरासंध तथा शाल्व आदि नृपगण कुपित होकर हरि को मारने के लिये महान् प्रयत्न करने लगे। पर राम आदि यदुपुंगवों द्वारा वे पराजित हो गये। तब युद्ध में बिना केशव को मारे मैं कुण्डिन में प्रवेश नहीं करूँगा, इस तरह प्रतिज्ञा करके रुक्मी कृष्ण को मारने के लिए दौड़ पड़ा। पर कृष्ण ने सहज ही में हाथी, घोड़े, पैदल सिपाही तथा रथों से युक्त सेना को मारकर रुक्मी को जीत कर पृथ्वी पर गिरा दिया। रुक्मी को जीतकर मधुसूदन ने राक्षस विधि से रुक्मिणी के साथ भली भाँति विवाह किया। उससे कन्दर्प के अंशभूत शक्तिशाली प्रद्युम्न की उत्पत्ति हुई, जिसका शम्बर ने अपहरण किया और जिसने शम्बर को मार दिया॥१-१२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में श्रीकृष्ण-चरित्र वर्णन-प्रसंग में एक सौ निन्यानबेवाँ अध्याय समाप्त॥१९९॥

१क ख ०ण कृष्णो रुक्मिणी वरकन्यकाम्। रा०। २क ख विवाहेन। ३ख ०दनश्चातिवी। ४ग सम्बरम्।

अथ द्विशततमोऽध्यायः

प्रद्युम्नाख्यानवर्णनम्

मुनय ऊचुः

शम्बरेण[1] हृतो वीरः प्रद्युम्नः स कथं पुनः[2]। शम्बरश्च महावीर्यः प्रद्युम्नेन कथं हतः ॥१॥

व्यास उवाच

षष्ठेऽह्नि जातमात्रं तु प्रद्युम्नं सूतिकागृहात्। ममैष हन्तेति द्विजा हृतवान्कालशम्बरः[3] ॥२॥
नीत्वा चिक्षेप[4] चैवैनं ग्राहोग्रे लवणार्णवे। कल्लोलजनितावर्ते सुघोरे मकरालये ॥३॥
पतितं चैव तत्रैको मत्स्यो जग्राह बालकम्। न ममार च तस्यापि जठरानलदीपितः[5] ॥४॥
मत्स्यबन्धैश्च मत्स्योऽसौ मत्स्यैरन्यैः सह द्विजाः। घातितोऽसुरवर्याय शम्बराय निवेदितः ॥५॥
तस्य मायावती नाम पत्नी सर्वगृहेश्वरी। कारयामास सूदानामाधिपत्यमनिन्दिता ॥६॥
दारिते मत्स्यजठरे ददृशे साऽतिशोभनम्। कुमारं मन्मथतरोर्दग्धस्य प्रथमाङ्कुरम् ॥७॥
कोऽयं कथमयं मत्स्यजठरे समुपागतः। इत्येवं कौतुकाविष्टा तां तन्वीं प्राह नारदः ॥८॥

अध्याय २००

प्रद्युम्न का आख्यान-वर्णन

मुनियों ने कहा—कैसे शम्बर ने वीर प्रद्युम्न का अपहरण किया और कैसे फिर प्रद्युम्न ने महाशक्तिशाली शम्बर को मारा? ॥१॥

व्यास बोले—विप्रवर! उत्पत्ति के छठे दिन 'मुझे यह मारेगा' यह सोचकर सूतिकागृह से ही कालशम्बर ने प्रद्युम्न का अपहरण कर लिया और उसे ले जाकर लवणसमुद्र में फेंक दिया। अत्यंत भयंकर तथा हिल्कोरों द्वारा उत्पन्न आवर्तों से युक्त समुद्र में पतित बालक को एक मत्स्य निगल गया। वहाँ भी वह जठराग्नि से दग्ध होकर नहीं मरा। द्विजगण! मछुओं ने अन्य मत्स्यों के साथ उस मत्स्य को भी मारकर असुरवर शम्बर से निवेदन कर दिया। शम्बर की मायावती नामक पत्नी गृहस्वामिनी थी। वही अनिन्द्य रमणी रसोई घर का देख-भाल किया करती थी। मत्स्य के पेट फाड़ने पर उसने दग्ध मन्मथ रूपी वृक्ष के प्रथम अंकुर रूप अतिसुंदर कुमार को देखकर कहने लगी—'यह कौन है? कैसे मत्स्य के पेट में आ गया?' इस प्रकार कुतूहल करती हुई उस वनिता से नारद ने कहा ॥२-८॥

१ग शम्बरेण। २ग ०नः। सम्ब०। ३ग ०लसम्ब०। ४क ०प जलधौ मत्स्योऽग्रे। ५ग ०ठरेऽन०। ६ग ०पिते। म०।

नारद उवाच

अथ समस्तजगता सृष्टिसहारकारिणा। शम्बरेण हृत कृष्णतनय सूतिकागृहात ॥९॥
क्षिप्त समुद्रे मत्स्येन निगीणस्त वश गत। नररत्नमिद सुभ्रु विश्रब्धा परिपालय ॥१०॥

व्यास उवाच

नारदेनव मुक्ता सा पालयामास त शिशुम। बाल्यादशतिरागेण रूपातिशयमोहिता ॥११॥
स यदा यौवनाभोगभूषितोऽभूद्द्विजोत्तमा। साभिलाषा तदा सा तु बभूव गजगामिनी ॥१२॥
मायावती ददौ चास्म माया सर्वा महात्मने। प्रद्युम्नायाऽऽत्मभूताय तन्यस्तहृदयेक्षणा॥
प्रसज्जन्तीं तु तामाह स कार्ष्णि कमललोचन ॥१३॥

प्रद्युम्न उवाच

मातृभाव विहायैव किमर्थ वर्तसेऽन्यथा ॥१४॥

व्यास उवाच

सा चास्मै कथयामास न पुत्रस्त्व ममेति व। तनय त्वामय विष्णोर्हृतवा कालशम्बर ॥१५॥
क्षिप्त समुद्रे मत्स्यस्य सप्राप्तो जठरान्मया। सा तु रोदिति ते माता कान्ताऽद्याप्यतिवत्सला ॥१६॥

व्यास उवाच

इत्युक्त शम्बर युद्धे प्रद्युम्न स समाह्वयत। क्रोधाकुलीकृतमना युयुधे च महाबल ॥१७॥

नारद बोले—सम्पूर्ण जगत् के सहार करने वाले शम्बर ने सूतिकागृह से कृष्ण के पुत्र का अपहरण करके समुद्र मे फक दिया। उसे एक मत्स्य निगल गया। वह बालक तुम्हे प्राप्त हुआ है। सुन्दर भौ वाली! इस नररत्न को विश्वासपूवक तुम पालो ॥९ १०॥

व्यास बोले—नारद के इस प्रकार कहने पर वह बालक के अतिशय रूप पर मोहित होकर अत्यत अनुराग से उसका पालन करने लगी। द्विजश्रेष्ठो! बालक जब युवावस्था से परिपूर्ण हुआ तब वह गजगामिनी उसके प्रति अभिलाषा करने लगी। आत्मा की तरह प्रिय बने हुए प्रद्युम्न मे मन तथा नेत्रो को लगाकर मायावती ने उसका समस्त माया दे दी (अर्थात उससे हाव भाव करने लगी)। इस प्रकार व्यवहार करती हुई मायावती से कमललोचन प्रद्युम्न ने कहा ॥११ १३॥

प्रद्युम्न बोले—तुम मातृ भाव को छोडकर और तरह से क्यो बरतती हो? ॥१४॥

व्यास बोले—उसने उससे कहा—तुम मेरे पुत्र नही हो। तुम विष्णु के पुत्र हो। कालशम्बर ने तुम्हे अपहृत करके समुद्र मे फेंक दिया था। तब मत्स्य के उदर से मैंने तुम्हे प्राप्त किया। तुम्हारी अतिवत्सला माता तो आज भी रो रही है ॥१५ १६॥

व्यास बोले—यह कहे जाने पर क्रोध से व्याकुल चित्त वाले महाबल प्रद्युम्न ने शम्बर को युद्ध के लिये

१ग सम्बरेण। २घ ०मलेक्षणाम। मा०। ३ग ०लसम्ब०। ४ग सम्बर। ५क ०धऽय म०।

हत्वा सैन्यमशेषं तु तस्य दैत्यस्य माधवि । सप्त माया व्यतिक्रम्य माया संयुयुजेऽष्टमीम् ॥१८॥
तया जघान तं दैत्यं मायया 'कालशम्बरम्'। उत्पत्य च तया सार्धमाजगाम पितुः पुरम् ॥१९॥
अन्तःपुरे च पतितं मायावत्या समन्वितम्। तं दृष्ट्वा' हृष्टसंकल्पा बभूवुः कृष्णयोषितः ॥ ॥२०॥
रुक्मिणी चाब्रवीत्प्रेम्णाऽऽसक्तदृष्टिरनिन्दिता

रुक्मिण्युवाच

धन्यायाः खल्वयं पुत्रो वर्तते नवयौवने। अस्मिन्वयसि पुत्रो मे प्रद्युम्नो यदि जीवति ॥२१॥
सभाग्या जननी वत्स त्वया काऽपि विभूषिता। अथवा मादृशः स्नेहो मम यादृग्वपुश्च ते ॥ ॥२२॥
हरेरपत्यं सुव्यक्तं भवान्वत्स भविष्यति

व्यास उवाच

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः सह कृष्णेन नारदः। अन्तःपुरवरां देवीं रुक्मिणीं प्राह हर्षितः ॥२३॥

श्रीकृष्ण उवाच

एष ते तनयः सुभ्रु हत्वा शम्बरमागतः। हृतो येनाभवत्पूर्वं पुनस्ते सूतिकागृहात् ॥२४॥
इयं मायावती भार्या तनयस्यास्य ते सती। शम्बरस्य न भार्येयं श्रूयतामत्र कारणम् ॥२५॥

आह्वान किया। संग्राम में दैत्य की समस्त सेनाओं का नाश करके प्रद्युम्न ने सात मायाओं का अतिक्रमण करके आठवीं माया (मायावती) से संयोग किया। उस माया के द्वारा कालशम्बर को मारकर उसी के साथ उड़कर वह पिता के नगर में आया। अन्तःपुर में मायावती समेत प्रद्युम्न को गिरे हुए देखकर कृष्ण की स्त्रियाँ प्रमुदित हुईं। अनिन्दित रुक्मिणी उसकी ओर टकटकी लगाकर देखती हुई प्रेम से बोली ॥१७-२०॥

रुक्मिणी बोली—किसी भाग्यशालिनी का यह पुत्र नवयौवन में संप्राप्त है। वत्स ! यदि इस अवस्था में मेरा पुत्र प्रद्युम्न जीवित होता। वत्स ! तुमने किस भाग्यवती माता को विभूषित किया है ? अथवा मेरा जैसा स्नेह है और तुम्हारा जैसा शरीर है, इससे तुम स्पष्ट ही हरि के पुत्र होगे ॥२१-२२॥

व्यास बोले—इसी बीच कृष्ण के साथ नारद वहाँ आ पहुँचे। कृष्ण ने अन्तःपुर में श्रेष्ठ रमणी रुक्मिणी से कहा ॥२३॥

श्रीकृष्ण बोले—सुन्दर भौंहों वाली ! यह तुम्हारा पुत्र उसी शम्बर को मारकर आया है जिसके द्वारा तुम्हारा पुत्र सूतिका-गृह से अपहृत हुआ था। यह मायावती तुम्हारे पुत्र की सती भार्या है। यह शम्बर की पत्नी नहीं है

१ग ०त्युग्म०। २ख ०म्। तथा ऽन्यात्र त०। ३ग ०रे निप०। ४ग ०ष्ट्वा हृष्ट०।

मन्मथे तु गते नाशं तदुद्भवपरायणा। शम्बरं मोहयामास मायारूपेण रुक्मिणि॥२६॥
विवाहाद्युपभोगेषु रूपं मायामयं शुभम्। दर्शयामास दैत्यस्य तस्येयं मदिरेक्षणा॥२७॥
कामोऽवतीर्णः पुत्रस्ते तस्येयं दयिता रतिः। विशङ्का नात्र कर्तव्या स्नुषेयं तव शोभना॥२८॥

व्यास उवाच

ततो हर्षसमाविष्टौ रुक्मिणीकेशवौ तदा। नगरी च समस्ता सा साधु साध्वित्यभाषत॥२९॥
चिरं नष्टेन पुत्रेण सगतं प्रेक्ष्य रुक्मिणीम्। अवाप विस्मयं सर्वो द्वारवत्यां जनस्तदा॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे शम्बरहृतप्रद्युम्नागमनवर्णनं नाम द्विशततमोऽध्यायः॥२००॥

अथैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अनिरुद्धविवाहे रुक्मिवधनिरूपणम्

व्यास उवाच

चारुदेष्णं सुदेष्णं च चारुदेहं च शोभनम्। सुषेणं (विचारुं) चारुगुप्तं च भद्रचारुं तथाऽपरम्॥१॥
चारुविन्दं (चन्द्रं) सुचारुं च चारुं च बलिनां वरम्। रुक्मिण्यजनयत्पुत्रान्कन्यां चारुमतीं तथा॥२॥

इसका कारण सुनो। रुक्मिणी! मन्मथ के विनष्ट हो जाने पर उसकी उत्पत्ति के लिए प्रयत्नशील रति ने माया रूप से शम्बर को मोह लिया। इस सुनयना ने विवाह आदि उपभोगों में दैत्य को मायामय सुन्दर रूप दिखला दिया। काम तुम्हारा पुत्र होकर अवतीर्ण हुआ। उसी की पत्नी रति यह है। इसमें शङ्का मत करो। यह तुम्हारी पवित्र पुत्र वधू है॥२४-२८॥

व्यास बोले—तदुपरान्त रुक्मिणी और केशव हर्षित हुए। नगर के सभी लोग वाह वाह कहने लगे। चिरकाल से नष्ट पुत्र के साथ रुक्मिणी को देखकर अखिल द्वारकावासी आश्चर्य करने लगे॥२९ ३०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में शम्बर द्वारा अपहृत प्रद्युम्न के आगमन वर्णन नामक दो सौवाँ अध्याय समाप्त॥२००॥

अध्याय २०१

अनिरुद्ध के विवाह में रुक्मी का वध

व्यास ने कहा—रुक्मिणी ने—चारुदेष्ण, सुदेष्ण सुन्दर चारुदेह सुषेण चारुगुप्त भद्रचारु चारुविन्द सुचारु और बलिष्ठ चारु—इन पुत्रों का तथा चारुमती नामक कन्या को उत्पन्न किया। कृष्ण की दूसरी भी सात

१ग सम्बर। २ग. रुपिणी। ३ ख मायावद्दि। ४क शोभने। ५ख पुरा।

अन्याश्च भार्याः कृष्णस्य बभूवुः सप्त शोभनाः। कालिन्दी मित्रविन्दा च सत्या नाग्नजिती तथा ॥३॥
देवी जाम्बवती चापि सदा तुष्टा तु रोहिणी[1]। मद्रराजसुता[2] चान्या सुशीला शीलमण्डला ॥४॥
सत्राजिती सत्यभामा लक्ष्मणा चारुहासिनी[3]। षोडशात्र सहस्राणि स्त्रीणामन्यानि चक्रिणः ॥५॥
प्रद्युम्नोऽपि महावीर्यो रुक्मिणस्तनयां शुभाम्। स्वयंवरस्थां जग्राह साऽपि तं तनयं हरेः ॥६॥
तस्यामस्याभवत्पुत्रो महाबलपराक्रमः। अनिरुद्धो रणे रुद्धो वीर्योदधिररिंदमः ॥७॥
तस्यापि रुक्मिणः पौत्रीं वरयामास केशवः। दौहित्राय ददौ रुक्मी स्पर्धयन्नपि शौरिणा ॥८॥
तस्या विवाहे रामाद्या यादवा हरिणा सह। रुक्मिणो नगरं जग्मुर्नाम्ना भोजकटं द्विजाः ॥९॥
विवाहे तत्र निर्वृत्ते प्राद्युम्नेः सुमहात्मनः। कलिङ्गराजप्रमुखा रुक्मिणं वाक्यमब्रुवन् ॥१०॥

कलिङ्गादय ऊचुः

अनक्षज्ञो हली द्यूते तथाऽस्य व्यसनं महत्। तन्न (ज्ज) यामो बलं तस्माद्द्यूतेनैव महाद्युते ॥११॥

व्यास उवाच

तथेति तानाह नृपान्रुक्मी बलसमन्वितः। सभायां सह रामेण चक्रे द्यूतं च वै तदा ॥१२॥
सहस्रमेकं निष्काणां रुक्मिणा विजितो बलः। द्वितीये[4] दिवसे चान्यत्सहस्रं रुक्मिणा जितः ॥१३॥

सुन्दरी भार्यायें थीं—कालिन्द की पुत्री मित्रविन्दा नग्नजित की पुत्री सत्या, देवी जाम्बवती, सदा प्रसन्न रहने वाली रोहिणी मद्रराज की कन्या सुन्दर स्वभाव वाली शीलमण्डला, सत्राजित् की पुत्री सत्यभामा और मनोरम हास्य करने वाली लक्ष्मणा। चक्रधारी (कृष्ण) की अन्य सोलह हजार स्त्रियाँ थीं। महापराक्रमी प्रद्युम्न ने रुक्मी की पवित्र कन्या को स्वयंवर से ग्रहण किया। कन्या ने भी कृष्ण के पुत्र को स्वीकार किया। प्रद्युम्न के महाबलशाली, युद्ध करने में समर्थ, शक्ति का समुद्र और शत्रु का दमन करने वाला अनिरुद्ध नामक पुत्र हुआ। रुक्मी की पौत्री का उसका वरण किया। रुक्मी यद्यपि कृष्ण से स्पर्धा करता था, तो भी दौहित्र को उसने पौत्री ब्याह दी। द्विजगण! उसके विवाह में बलराम आदि यादव कृष्ण के साथ रुक्मी के भोजकट नामक नगर में गये। महात्मा अनिरुद्ध का विवाह सम्पन्न होने पर कलिंग नरेश आदि (राजाओं) ने रुक्मी से यह वाक्य कहा ॥१-१०॥

कलिंग आदि ने कहा—महाकान्तिमन्! बलभद्र पासा चलाना नहीं जानता फिर भी जुए में इसका बड़ा व्यसन है। इसलिए जुए में ही इसे पराजित किया जाय ॥११॥

व्यास ने कहा—बली रुक्मी ने उन राजाओं से कहा—'ऐसा ही हो' और सभा में बलराम के साथ जुआ खेलना प्रारम्भ भी कर दिया। (पहले दिन) रुक्मी ने बलभद्र से एक हजार निष्क (सोने का एक प्राचीन

१क ख ०पि रो०। २क ख ०णी कामरूपिणी। म०। ३ख मन्त्रराजसुता। ग मद्रराजसुता। ४क ०नी। तथा षोडश ख। ५ग ०येऽपि पण चा०।

ततो दश सहस्राणि निष्काणा[1] पणमाददे। बलभद्रप्रपन्नानि रुक्मी द्यूतविदा वर ॥१४॥
ततो ज्हासाथ बल कलिङ्गाधिपतिर्द्विजा। दन्तान्विदर्शयन्मूढो रुक्मी चाऽऽह मदोद्धत ॥१५॥

रुक्म्युवाच

अविद्योऽय महाद्यूत बलभद्र पराजित। मृषैवाक्षावलिप्तत्वाद्योऽय मेनेऽक्षकोविदम ॥१६॥
दृष्ट्वा कलिङ्गराज तु प्रकाशदशनाननम। रुक्मिण चापि दुर्वाक्य कोप चक्र हलायुध ॥१७॥

व्यास उवाच

तत कोपपरीतात्मा निष्ककोटि हलायुध। ग्लह जग्राह रुक्मी च ततस्त्वक्षानपातयत ॥१८॥
अजयद्बलदेवोऽथ प्राहोच्चैस्त जित मया। ममेति रुक्मी प्राहोच्चैरलीकोक्तैरल बलम ॥१९॥
त्वयोक्तोऽय ग्लह सत्य न ममैषोऽनुमोदित। एव त्वया चेद्विजित न मया विजित कथम ॥२०॥
ततोऽन्तरिक्षे वागुच्च प्राह गम्भीरनादिनी। बलदेवस्य त कोप वर्धयन्ती महात्मन ॥२१॥

आकाशवागुवाच

जित तु बलदेवन रुक्मिणा भाषित मृषा। अनुक्त्वा[2] वचन किंचित्कृत भवति कमणा ॥२२॥

व्यास उवाच

ततो बल समुत्थाय क्रोधसरक्तलोचन। जघानाष्टापदनैव रुक्मिण स महाबल ॥२३॥

सिक्का जो प्राय १६ माशे का होता था) जीते। दूसरे दिन भी रुक्मी ने एक सहस्र निष्क जीते। तदनन्तर जुआ खेलने में चतुर रुक्मी ने बलभद्र से दस हजार की बाजी जीती। द्विजगण! तब कलिंगराज बलभद्र की हँसी उड़ाने लगा। मद से उद्धत मूर्ख रुक्मी भी दाँत दिखाते हुए बोलने लगा ॥१२-१५॥

रुक्मी ने कहा—जुए में यह महान् बलभद्र पराजित हुआ है। व्यर्थ ही पासे के अभिमान से इसने अपने को जुए का विशेषज्ञ मान बैठा है। हँसते हुए कलिंगराज तथा दुर्वाक्य बोलते हुए रुक्मी को देखकर बलभद्र को क्रोध आ गया ॥१६-१७॥

व्यास ने कहा—तब क्रोध से आग-बबूले होकर बलभद्र ने एक करोड़ निष्कों की बाजी लगाई। रुक्मी ने भी स्वीकार किया। पासा फेंका गया पर विजय बलदेव की हुई। बलदेव ने उच्च स्वर से कहा—मेरी विजय हुई। रुक्मी ने भी जोर से कहा—मेरी विजय हुई। तुम मिथ्या बोलते हो। तुमने जो शर्त ठीक की पर मैंने उसका समर्थन नहीं किया। अगर इस तरह तुमने जीता तो मैंने क्यों नहीं जीता? ॥१८-२१॥

आकाशवाणी ने कहा—बलदेव की विजय हुई। रुक्मी असत्य बोला। बिना कुछ बोले काम करना भी समर्थन करना है ॥२२॥

व्यास ने कहा—तदनन्तर क्रोध से आँखें लाल किये महाबलवान् बलभद्र ने उठकर आठ लातों (के प्रहार) से ही रुक्मी को मार दिया। चमकते हुए कलिंगराज को भी पकड़कर क्रुद्ध बलभद्र ने उसके उन दाँतों को तोड़ दिया

१क ०णा ग्लहमा०। २ख ०क्त्वापि वच० कि०।

कलिङ्गराज चाऽऽदाय विस्फुरन्त बलादबल । बभञ्ज दन्ता कुपितो यं प्रकाश जहास स ॥२४॥
आकृष्य च महास्तम्भ जातरूपमय बल । जघान ये तत्पक्षास्तान्भूभृत कुपितो बल ॥२५॥
ततो हाहाकृत सर्वं पलायनपर द्विजा । तद्राजमण्डल सर्वं बभूव कुपित बल ॥२६॥
बलेन निहत श्रुत्वा रुक्मिण मधुसूदन । नोवाच वचन किंचिद्रुक्मिणीबलयोर्भयात ॥२७॥
ततोऽनिरुद्धमादाय कृतोद्वाह द्विजोत्तमा । द्वारकामाजगामाथ यदुचक्र सकेशवम ॥२८॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मेऽनिरुद्धविवाह रुक्मिवधनिरूपण
नामैकाधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२०१॥

अथ द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरकवधवर्णनम्

व्यास उवाच

द्वारवत्या तत शौरि शक्रस्त्रिभुवनश्वर । आजगामाथ मुनयो [1]मत्तरावतपृष्ठग ॥१॥
प्रविश्य द्वारका सोऽथ समीपे च हरेस्तदा । कथयामास दैत्यस्य नरकस्य विचेष्टितम ॥२॥

जिन्हें निकाल कर वह हँस रहा था। स्वर्णमय महास्तम्भ को उखाड कर कुपित बलराम ने रुक्म के पक्ष मे और जो राजा थे उन्हे भ मार दिया। द्विजगण ! तदनन्तर कुपित बलराम को देखकर रुक्म के पक्ष का राज मडल हाहाकार करते हुए नौ दो ग्यारह होने लगे। बलराम द्वारा निहत रुक्मी के विषय मे सुनकर रुक्मिणी और बलराम के भय से कृष्ण कुछ भी नही बोले। द्विजवर ! तदनन्तर विवाहित अनिरुद्ध को लेकर कृष्ण सहित समस्त यादव गण द्वारका चले गये॥२३ २८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे अनिरुद्ध विवाह प्रसग मे रुक्मी का वध निरूपण
नामक दो सौ एक अध्याय समाप्त॥२०१॥

अध्याय २०२

नरकासुर के वध का वर्णन

व्यास ने कहा—मुनिवर ! तदुपरान्त त्रिभुवन के स्वामी इन्द्र मत्त एरावत की पीठ पर चढकर कृष्ण से मिलने के लिए द्वारका आये। द्वारका मे प्रवेश कर हरि के समीप इन्द्र ने नरक नामक दैत्य के क्रियाओ का वर्णन किया॥१ २॥

---

[1] क ०वणपृ०।

इन्द्र उवाच

त्वया नाथेन देवाना मनुष्यत्वेऽपि तिष्ठता। प्रशम सर्वदु खानि नीतानि मधुसूदन ॥३॥
तपस्विजनरक्षार्थं सोऽरिष्टो धेनुकस्तया। प्रलम्बाद्यास्तया केशी ते सर्वे निहतास्त्वया ॥४॥
कस कुवलयापीड पूतना बालघातिनी। नाश नीतास्त्वया सर्वे येऽन्ये जगदुपद्रवा ॥५॥
युष्मद्दोर्दण्डसबुद्धिपरित्राते जगत्त्रये। यज्ञे यज्ञहवि प्राश्य तृप्ति यान्ति दिवौकस ॥६॥
सोऽह साप्रतमायातो यन्निमित्त जनार्दन। तच्छ्रुत्वा तत्प्रतीकारप्रयत्न कर्तुमर्हसि ॥७॥
भौमोऽय नरको नाम प्राग्ज्योतिषपुरेश्वर। करोति सर्वभूतानामपघातमरिंदम ॥८॥
देवसिद्धसुरादीना नृपाणा च जनार्दन। हत्वा तु सोऽसुर कन्या रुरोध निजमदिरे ॥९॥
छत्र यत्सलिलस्रावि तज्जहार प्रचेतस। मन्दरस्य तथा शृङ्ग हृतवान्मणिपर्वतम ॥१०॥
अमृतस्राविणी दिव्ये मातुर्मेऽमृतकुण्डले। जहार सोऽसुरोऽदित्या वाञ्छत्यैरावत द्विपम ॥११॥
दुर्नीतमेतद्गोविन्द मया तस्य तवोदितम्। यदत्र प्रतिकर्तव्य तत्स्वय परिमृश्यताम् ॥१२॥

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा स्मित कृत्वा भगवान्देवकीसुत। गृहीत्वा वासव हस्ते समुत्तस्थौ वरासनात् ॥१३॥
सचिन्तितमुपारुह्य गरुड गगनेचरम्। सत्यभामां समारोप्य ययौ प्राग्ज्योतिष पुरम् ॥१४॥

इन्द्र ने कहा—नाथ ! मधुसूदन ! मनुष्यो के बीच रहते हुए भी आपने देवताओं के समस्त कष्टों का निवारण कर दिया। तपस्वियों की रक्षा के निमित्त अरिष्ट धेनुक केशी तथा प्रलम्ब आदि सब को आपने निहत किया। कंस कुवलयापीड बालघातिनी पूतना आदि जितने संसार के उपद्रव, जो थे उन सबका आपने नाश किया। आपके बाहु-बल तथा बुद्धिबल से तीनों लोकों की रक्षा होने पर ही देवता लोग यज्ञ में हविष्य भोजन कर तृप्त होते हैं। जनार्दन ! इस समय मैं जिसलिए आया हूँ वह सुनकर आप उसका प्रतीकार करें। हे शत्रु के दमन करने वाले ! प्राग्ज्योतिषपुर का राजा नरक नामक दैत्य समस्त प्राणियों का अपघात करता है। भगवन् ! उसने देव सिद्ध सुर आदि का तथा राजाओं को मारकर उनकी कन्याओं को अपने घर में रोक रखा है। वरुण का जो जल बहाने वाला छाता था उसे अपहृत कर लिया है। मन्दराचल के मणिमय शिखर का अपहरण कर लिया है। मेरी माता के अमृत टपकाने वाले दिव्य अमृतकुण्डलों का तथा ऐरावत हाथी को भी हरण करके वह राक्षस ले गया। गोविन्द उसकी यह दुर्नीति मैंने आपसे वर्णन की। अब इसका जो प्रतीकार हो वह आप स्वयं सोच लें ॥३-१२॥

व्यास ने कहा—यह सुनकर मुस्कराते हुए भगवान कृष्ण इन्द्र का हाथ पकड़ कर अपने उत्तम आसन पर से

१ख ग ०ननाराय सोऽ०। २क ०नामुपद्रवम०। ३ख दुवसम०। ४ग ०निराक्रय। ५ख ०ह च सागरं०।

आरुह्यैरावतं नागं शक्रोऽपि त्रिदशालयम्। ततो जगाम सुमना पश्यतां द्वारकौकसाम् ॥१५॥
प्राग्ज्योतिषपुरस्यास्य समन्ताच्छतयोजनम्। आचितं भैरवैः[1] पाशैः परसैन्यनिवारणे ॥१६॥
तांश्चिच्छेद हरिः पाशान्क्षिप्त्वा चक्रं सुदर्शनम्। ततो मुरः समुत्तस्थौ तं जघान च केशवः ॥१७॥
मुरोस्तु (रस्य) तनयान्सप्त सहस्रास्तां (सा तां) स्ततो हरिः। चक्रधाराग्निनिर्दग्धांश्चकार[2] शलभानिव ॥१८॥

हत्वा मुरं हयग्रीवं तथा पञ्चजनं द्विजाः। प्राग्ज्योतिषपुरं धीमांस्त्वरावान्समुपाद्रवत् ॥१९॥
नरकेनास्य तत्राभून्महासैन्येन संयुगः। कृष्णस्य यत्र गोविन्दो जघ्ने दैत्यान्सहस्रशः ॥२०॥
शस्त्रास्त्रवर्षं मुञ्चन्तं स भौमं नरकं बली। क्षिप्त्वा चक्रं द्विधा चक्रे चक्री दैतेयचक्रहा ॥२१॥
हते तु नरके भूमिर्गृहीत्वाऽदितिकुण्डले। उपतस्थे जगन्नाथं वाक्यं चेदमथाब्रवीत् ॥२२॥

धरण्युवाच

यदाऽहमुद्धृता नाथ त्वया शूकरमूर्तिना। त्वत्संस्पर्शभवः पुत्रस्तदाऽयं मय्यजायत ॥२३॥
सोऽयं त्वयैव दत्तो मे त्वयैव विनिपातितः। गृहाण कुण्डले चेमे पालयास्य च संततिम् ॥२४॥
भारावतरणार्थाय ममैव भगवानिमम्। अंशेन लोकमायातः प्रसादसुमुख प्रभो ॥२५॥

उठ गये और ध्यान मात्र से उपस्थित आकाशविहारी गरुड पर सत्यभामा सहित स्वयं चढकर प्राग्ज्योतिषपुर के लिए प्रस्थित हो गये। तब इन्द्र भी प्रसन्न मन से ऐरावत हस्ती पर आरूढ होकर द्वारकावासियों के देखते हुए देवलोक को चले गये। प्राग्ज्योतिषपुर का चारों तरफ सात योजन तक शत्रु सेना के निवारणार्थ भयंकर जाल बिछे हुए थे। उन जालों को सुदर्शन चक्र से कृष्ण ने काट डाला। तदनन्तर मुर नामक राक्षस उठ खडा हुआ। उसे कृष्ण ने मार डाला। मुर के सात हजार पुत्र थे। उनको हरि ने अपने चक्र के धाराग्नि से पतंगों की तरह जला डाला। द्विजगण! मुर हयग्रीव तथा पञ्चजन को मार कर बुद्धिमान् कृष्ण ने शीघ्रता से प्राग्ज्योतिषपुर पर आक्रमण कर दिया। वहाँ बडी सेना से युक्त नरक के साथ कृष्ण का संग्राम छिड गया। गोविन्द ने हजारों दैत्यों को विनष्ट किया। दैत्यों के चक्रसमूह को नष्ट करने वाले चक्रधारी बली कृष्ण ने अपना चक्र चला कर शस्त्र-अस्त्रों की वर्षा करते हुए नरक के दो टुकड़े कर दिये। नरक के मर जाने पर पृथ्वी अदिति के कुण्डलों को लेकर भगवान् के पास जाकर यह बात कहने लगी ॥१३-२२॥

पृथ्वी ने कहा—नाथ! जब वराह रूप धारण कर आपने मेरा उद्धार किया था तभी आपके स्पर्श से यह पुत्र मुझमें उत्पन्न हुआ था। सो आपने ही इसको दिया था और आपने ही इसे नष्ट भी किया। अब ये कुण्डल लीजिये और इसकी सन्तानों का पालन कीजिये। मेरे ही भार उतारने के लिए आप एक अंश से इस लोक में आये

१ग मौरवैः। २क ०र ब तु लीलया। ह०।

त्वं कर्ता च विकर्ता च संहर्ता प्रभवोऽव्ययः। जगत्स्वरूपो यश्च त्वं स्तूयसेऽच्युत किं मया ॥२६॥
व्यापी व्याप्यः क्रिया कर्ता कार्यं च भगवान्सदा। सर्वभूतात्मभूतात्मा स्तूयसेऽच्युत किं मया ॥२७॥
परमात्मा त्वमात्मा च भूतात्मा चाव्ययो भवान्। यदा तदा स्तुतिर्नास्ति किमर्थं ते प्रवर्तताम् ॥२८॥
प्रसीद सर्वभूतात्मन्नरकेन कृतं च यत्[1]। तत्क्षम्यतामदोषाय[2] मत्सुतः स निपातितः ॥२९॥

व्यास उवाच

तथेति चोक्त्वा धरणीं भगवान्भूतभावनः। रत्नानि[3] नरकावासाज्जग्राह[4] मुनिसत्तमा ॥३०॥
कन्यापुरे स कन्याना षोडशातुलविक्रमः। शताधिकानि ददृशे सहस्राणि द्विजोत्तमाः[5] ॥३१॥
चतुर्दंष्ट्रान्गजांश्चोग्रान्षट्सहस्राणि दृष्टवान्। काम्बोजानां तथाऽश्वानां नियुतान्येकविंशतिम् ॥३२॥
कन्यास्ताश्च तथा नागास्तानश्वान्द्वारकां पुरीम्। प्रापयामास गोविन्दः सद्यो नरककिंकरैः ॥३३॥
ददृशे वारुणं छत्रं तथैव मणिपर्वतम्। आरोपयामास हरिर्गरुडे पतगेश्वरे ॥३४॥
आरुह्य च स्वयं कृष्णः सत्यभामासहायवान्। अदित्याः कुण्डले दातुं जगाम त्रिदशालयम् ॥३५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे कृष्णचरिते नरकवधो नाम
द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०२॥

हुए हैं। प्रभो! सुन्दर मुख वाले! प्रसन्न होइये। आप कर्ता, विशिष्टकर्ता, संहर्ता, प्रभु, अव्यय तथा जगत्स्वरूप हैं। अच्युत! मैं क्या आपकी स्तुति करूँ? आप जब परमात्मा, आत्मा, भूतात्मा तथा अविनाशी हैं, तब तो आपकी स्तुति ही नहीं हो सकती, फिर कैसे की जाय। हे समस्त प्राणियों के आत्मा! कृपा कीजिये। नरक ने जो अपराध किया, उसे दोष हटाने की दृष्टि से क्षमा कर दीजिये। वह मेरा पुत्र था, जिसे आपने मारा ॥२६-२९॥

व्यास ने कहा—मुनिवर! (पृथ्वी से) ऐसा ही होगा, इतना कहकर प्राणियों के उत्पादक भगवान् ने नरक के घर से रत्नों को ले लिया। द्विजश्रेष्ठो! अतुल पराक्रमी कृष्ण ने कन्यापुर (रनिवास) में सोलह हजार एक सौ कन्याओं को देखा। चार दाँत वाले छह हजार भयंकर हाथियों को तथा इक्कीस लाख कम्बोजी (अफगान) घोड़ों को भी देखा। गोविन्द ने तुरन्त उन कन्याओं, हाथियों एवम् घोड़ों को नरक के नौकरों द्वारा द्वारका पहुँचवा दिया। भगवान् कृष्ण वरुण के छत्र तथा मणिपर्वत को पक्षि-राज गरुड के ऊपर रखकर सत्यभामा के साथ स्वयं चढ़कर अदिति को कुण्डल देने के लिए देवलोक गये ॥३०-३५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण के कृष्ण-चरित्र-वर्णनोपक्रम में नरकवध नामक
दो सौ दूसरा अध्याय समाप्त ॥२०२॥

१क ०त्। सम्प०। २क ०म्यतां स च मे दोष स त्वया विनि०। ३ख. ०नि नाटकीयाणि प्रया०। ४ग ०ज्जहार मु०। ५क. ख. महामति।

अथ त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अदितिकृता भगवत्स्तुति

व्यास उवाच

गरुडो वारुण छत्रं तथैव मणिपर्वतम्। सभार्यं च हृषीकेशं लीलयैव वहन्ययौ ॥१॥
तत शङ्खमुपाध्माय स्वर्गद्वारं गतो हरि। उपतस्थुस्ततो देवा सार्घपात्रा जनार्दनम् ॥२॥
स देवैरर्चित कृष्णो देवमातुर्निवेशनम्[1]। सिताभ्रशिखराकार प्रविश्य ददृशेऽदितिम् ॥३॥
स ता प्रणम्य शक्रेण सहित कुण्डलोत्तमे। ददौ नरकनाश च शशंसास्यै जनार्दन ॥४॥
तत प्रीता[2] जगन्माता धातार जगता हरिम्। तुष्टावादितिरव्यग्रं कृत्वा तत्प्रवण मन ॥५॥

अदितिरुवाच

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष भक्तानामभयकर। सनातनात्मन्भूतात्मन्सर्वात्मन्भूतभावन ॥६॥
प्रणेतर्मनसो बुद्धेरिन्द्रियाणा गुणात्मक[3]। सितदीर्घादिनि शेषकल्पनापरिवर्जित ॥७॥
जन्मादिभिरसस्पृष्ट स्वप्नादिपरिवर्जित। सध्या रात्रिरहर्भूमिर्गगन वायुरम्बु च ॥८॥
हुताशनो मनो बुद्धिर्भूतादिस्त्व तथाऽच्युत। सृष्टिस्थितिविनाशाना कर्ता कर्तृपतिर्भवान् ॥९॥

अध्याय २०३

अदिति द्वारा भगवान् की स्तुति

व्यास ने कहा—गरुड वरुण के छत्र, मणि-पर्वत तथा पत्नी सहित कृष्ण को बडी आसानी से ढोता हुआ जा रहा था। स्वर्ग-द्वार पर पहुँचने पर माधव ने शख-ध्वनि की। अर्घपात्र लिए समस्त देवगण जनार्दन के पास उपस्थित हुए। देवताओ से पूजित होने पर कृष्ण ने देवमाता के स्वच्छ मेघो से आवृत पर्वत-शिखरतुल्य भवन मे प्रवेश कर अदिति को देखा। इन्द्र-सहित उपेन्द्र ने उनको प्रणाम कर उत्तम कुण्डल दे दिये और नरक का नाश भी उन्हे कह सुनाया। तत्पश्चात् जगन्माता प्रसन्न होकर चित्त को व्यग्रता से रहित करके जगद्धाता हरि मे ही मन को लगा कर उनकी स्तुति करने लगी ॥१-५॥

अदिति ने कहा—कमललोचन! भक्तो को निर्भय करने वाले! आपको नमस्कार है। सनातनात्मन्! भूतात्मन्! सर्वात्मन्! भूतोत्पादक! मन बुद्धि और इन्द्रियो के निर्माता! त्रिगुणात्मक! शुक्ल, दीर्घ आदि सकल कल्पनाओ से रहित! आप जन्म आदि से असृष्ट तथा स्वप्न आदि से वर्जित हैं। आप सध्या, रात्रि, दिन, पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि, मन, बुद्धि तथा प्राणियो के आदि हैं। आप सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय के कर्ता, कर्ता

१क ०म्। शैलाग्रयि०। २क प्राह। ३क ०क। घवदीर्घादि०।

¹ब्रह्मविष्णुशिवाख्याभिरात्ममूर्तिभिरीश्वर। मायाभिरेतद्व्याप्तं ते जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥१०॥
अनात्मन्यात्मविज्ञान सा ते माया जनार्दन। अहं ममेति भावोऽत्र यया समुपजायते ॥११॥
ससारमध्ये मायायास्तवैतन्नाथ चेष्टितम्। यै स्वधर्मपरैर्नाथ नरैराराधितो भवान् ॥१२॥
ते तरन्त्यखिलामेता मायामात्मविमुक्तये। ब्रह्माद्या सकला देवा मनुष्या पशवस्तथा ॥१३॥
विष्णुमायामहावर्ते मोहान्धतमसाऽऽवृता। आराध्य त्वामभीप्सन्ते ²कामानात्मभवक्षये ॥१४॥
पदे ते पुरुषा बद्धा मायया भगवस्तव। मया त्व पुत्रकामिन्या वैरिपक्षक्षयाय च ॥१५॥
आराधितो न मोक्षाय मायाविलसित हि तत्। कौपीनाच्छादनप्राया वाञ्छा कल्पद्रुमादपि ॥१६॥
जायते यदपुण्याना सोऽपराध स्वदोषज। तत्प्रसीदाखिलजगन्मायामोहकराव्यय ॥१७॥
अज्ञान ज्ञानसद्भाव भूतभूतेश नाशय। नमस्ते चक्रहस्ताय³ शार्ङ्गहस्ताय ते नम ॥१८॥
गदाहस्ताय ते विष्णो शङ्खहस्ताय⁴ ते नम। एतत्पश्यामि ते रूप स्थूलचिह्नोपशोभितम ॥
न जानामि पर ⁵यत्ते प्रसीद परमेश्वर ॥१९॥

व्यास उवाच

अदित्यैव स्तुतो विष्णु ⁶प्रहस्याऽऽह सुरारणिम् ॥२०॥

के पति और ब्रह्मा विष्णु तथा शिव सज्ञक अपनी मूर्तियों से ईश्वर कहलाते हैं। आपकी माया से यह स्थावर जगम रूप जगत व्याप्त है। जनार्दन! अनात्मा मे आत्मा का ज्ञान ही माया है जिससे मैं और मेरा यह भाव उत्पन्न होता है। नाथ! ससार मे आपकी माया की यह चेष्टा है। जिन धर्मपरायण मनुष्यो ने आपकी आराधना की वे आत्ममुक्ति के लिए इस अखिल माया को पार कर गये। ब्रह्मा आदि सकल देवता मनुष्य तथा पशु विष्णु माया रूपी महान् भँवर मे मोहरूपी तिमिर से आवृत हो आपकी उपासना कर अपने तथा ससार के नाश के लिये अभिलाषायें करते हैं ॥९-१४॥ भगवन्! पुरुष आपकी माया से आपके चरणों मे बद्ध हैं। मैंने पुत्र की कामना से तथा शत्रु-पक्ष के नाश की इच्छा से आपकी आराधना की परन्तु मोक्ष के लिए नही की। यह भी माया का (ही) खेल है। पापियों को जो कल्पद्रुम से भी केवल कौपीन तथा आच्छादन-वस्त्र की इच्छा होती है यह उनका निज दोषजन्य अपराध है। इसलिए अखिल जगत् को माया-मोह मे डालने वाले! अव्यय! प्राणियों के अधीश! ज्ञानपूर्ण! आप प्रसन्न होइये और मेरे अज्ञान का नाश कीजिये। चक्र धनुष गदा तथा शख हाथो मे धारण करने वाले! आपको नमस्कार है। स्थूल चिह्नो से सुशोभित आपके इस रूप को मैं देख रही हूँ पर इससे भी परे जो आप का रूप है उसे नही देख पा रही हूँ। परमेश्वर! कृपा कीजिए ॥१५-१९॥

व्यास ने कहा—अदिति द्वारा इस प्रकार स्तुति करने पर विष्णु हँसकर देवमाता से कहने लगे ॥२०॥

१क ०धारामि। २ख ०ये मन्ते। ३क ख ०य शार्ङ्गह०। ४ग घ पद्महस्ताय। ५ग तत्त्व। ६ग प्रणम्याऽऽह।

श्रीकृष्ण उवाच

माता देवि त्वमस्माकं प्रसीद वरदा भव ॥२१॥

अदितिरुवाच

एवमस्तु यथेच्छा ते त्वमशेषसुरासुरैः। अजेयः पुरुषव्याघ्र मर्त्यलोके भविष्यसि ॥२२॥

व्यास उवाच

ततोऽनन्तरमशेषैः शक्राणीसहिता दितिम्। सत्यभामा प्रणम्याऽऽह प्रसीदेति पुनः पुनः ॥२३॥

अदितिरुवाच

मत्प्रसादान्न ते सुभ्रु जरा वैरूप्यमेव च। भविष्यत्यनवद्याङ्गि सर्वकामा भविष्यसि ॥२४॥

व्यास उवाच

अदित्या तु कृतानुज्ञो देवराजो जनार्दनम्। यथावत्पूजयामास बहुमानपुरःसरम् ॥२५॥
ततो ददर्श कृष्णोऽपि सत्यभामासहायवान्। देवोद्यानानि सर्वाणि नन्दनादीनि सत्तमाः ॥२६॥
ददर्श च सुगन्धाढ्यं मञ्जरीपुञ्जधारिणम्। शत्याह्लादकरं दिव्यं ताम्रपल्लवशोभितम् ॥२७॥
मथ्यमाने ऽमृते जातं जातरूपसमप्रभम्। पारिजातं जगन्नाथः केशवः केशिसूदनः।
तं दृष्ट्वा प्राह गोविन्दं सत्यभामा द्विजोत्तमाः ॥२८॥

श्रीकृष्ण बोले—देवी! तुम हमारी माता हो कृपा करो वर दो ॥२१॥

अदिति ने कहा—एवमस्तु! तुम्हारी जैसी इच्छा। पुरुषश्रेष्ठ! मर्त्यलोक में तुम अशेष देव-दैत्य से अजेय होगे २२

व्यास ने कहा—तदनन्तर इन्द्राणी सहित सत्यभामा दिति को बार बार प्रणाम कर कहने लगी—प्रसन्न होइये ॥३३।

अदिति ने कहा—सुन्दर भौं वाली! अनिन्द्य अंगो वाली! मेरी कृपा से तुम्हें बुढापा तथा कुरूपता नहीं व्यापेगी तुम्हारी सारी कामनाएं पूरी होगी २४।

व्यास ने कहा—अदिति की आज्ञा पाकर इन्द्र ने बहुत आदर से जनार्दन का विधिपूर्वक पूजा की। तब सत्यभामा सहित कृष्ण देवताओं के नन्दन आदि समस्त उद्यानों को देखने लगे। केशी नामक राक्षस के मारने वाले जगन्नाथ केशव ने सुगन्धि से परिपूर्ण मञ्जरियों से सुशोभित शीतलता तथा आह्लादकता से सम्पन्न दिव्य ताम्रवर्ण वाले पल्लवों से विभूषित स्वर्णतुल्य कान्तिमान् और अमृत-मथन से उत्पन्न कल्पवृक्ष को देखा। द्विजवर! उसे देखकर सत्यभामा ने गोविन्द से कहा ॥२५ २८॥

१ख ०व सौख्यं गमिष्य०। २०मप्रीति म०। ३क ख ०व्यं बालप०।

सत्यभामोवाच

कस्मान्न द्वारकामेष नीयते कृष्ण पादपः[1]। यदि ते तद्वचः सत्यं सत्याऽत्यर्थं प्रियेति मे ॥२९॥
मद्गृहे निष्कुटार्थाय तदयं नीयतां तरुः। न मे जाम्बवती तादृगभीष्टा न च रुक्मिणी ॥३०॥
सत्ये यथा त्वमित्युक्तं त्वया कृष्णासकृत्प्रियम्। सत्यं तद्यदि गोविन्द नोपचारकृतं वचः[2] ॥३१॥
तदस्तु पारिजातोऽयं मम गेहविभूषणम्। बिभ्रती पारिजातस्य केशपाशेन मञ्जरीम् ॥
सपत्नीनामहं मध्ये शोभेयमिति कामये ॥३२॥

व्यास उवाच

इत्युक्त' स प्रहस्यैनं पारिजातं गरुत्मति। आरोपयामास हरिस्तमूचुर्वनरक्षिणः[3] ॥३३॥

वनपाला ऊचुः

भोः [4]शची देवराजस्य महिषी तत्परिग्रहम्। पारिजातं न गोविन्द हर्तुमर्हसि पादपम् ॥३४॥
चीविभूषणार्थाय देवैरमृतमन्थने। उत्पादितोऽयं न क्षेमी गृहीत्वैनं गमिष्यसि[5] ॥३५॥
मौढ्यात्प्रार्थयसे क्षेमी गृहीत्वैनं च को व्रजेत्[7]। अवश्यमस्य देवेन्द्रो विकृतिं[8] कृष्ण यास्यति ॥३६॥
ज्रोद्यतकर शक्रमनुयास्यन्ति चामराः। तदलं सकलैर्देवैर्विग्रहेण तवाच्युत ॥
पाककटु यत्कर्म न तच्छंसन्ति पण्डिताः ॥३७॥

सत्यभामा बोली—कृष्ण! यदि आपका यह वचन—सत्या! तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो—सत्य है तो
ह वृक्ष को द्वारका क्यो नही ले चलते हैं? अन्तःपुर मे रखने के लिए इसे मेरे घर ले चलिये। कृष्ण! आपने
ई प्रिय वचन अनेक बार कहा था, कि सत्या! तुम मुझे जितनी प्रिय हो उतनी न जाम्बवती न रुक्मिणी ही मुझे
भीष्ट है। गोविन्द! यदि आपका यह वचन सत्य है, केवल मुखसुखार्थं नही कहा गया था, तो यह कल्पवृक्ष
रे घर का भूषण बने। कल्पवृक्ष की मजरी को मैं अपने बालो पर धारण कर सपत्नियो के बीच शोभा प्राप्त
रूँगी॥२९-३२॥

व्यास ने कहा—इतना कहने पर हरि ने हँस कर कल्पवृक्ष को गरुड के ऊपर रख दिया। तब वन-रक्षको
उनसे कहा॥३३॥

वनरक्षकों ने कहा—हे गोविन्द! इन्द्र की महारानी इन्द्राणी का यह कल्पवृक्ष है। इसका आप हरण न
रें। अमृतमन्थन के समय शची के भूषण के निमित्त देवताओ ने इसे उत्पन्न किया था। आप इसे ले जाने मे
र्य नही हो पायेंगे। कृष्ण! आप मूर्खतावश प्रार्थना कर रहे हैं। कौन सामर्थ्यवान् पुरुष इसे ले जायेगा?
ले जाने से इन्द्र बहुत क्रुद्ध होगे। जब इन्द्र हाथ मे वज्र धारण कर तैयार हो जायेंगे तब समस्त देवगण उनका
नुगमन करेंगे। अच्युत! सबल देववृन्दा से आपका कलह करना व्यर्थ है। जिस काम का परिणाम, कड़ुवा हो,
पडित लोग अच्छा नहीं कहते हैं॥३४-३७॥

१ख मूरुह। २ग तव। ३क ०चुस्तरुर०। ४ख. कृण। ५क ०सि। मोहात्प्रा०"। ख. ०सि।
वा प्रार्थ०। ६ख. ग. ०यते क्षे०। ७ख. ०त्। यवणेनास्य। ८क. ख. निष्कृतिं।

व्यास उवाच

इत्युक्ते तैरुवाचैतान्सत्यभामाऽतिकोपिनी ॥३८॥

सत्यभामोवाच

का शची पारिजातस्य को वा शक्रः सुराधिपः । सामान्यः सर्वलोकानां यद्येषोऽमृतमन्थने ॥३९॥
समुत्पन्नः पुरा कस्मादेको गृह्णाति वासवः । यथा सुरा यथा चेन्दुर्यथा श्रीर्वनरक्षिणः ॥४०॥
सामान्यः सर्वलोकस्य पारिजातस्तथा द्रुमः । भर्तृबाहुमहागर्वाद्रुणद्‌ध्येनमथो शची ॥४१॥
तत्कथ्यतां द्रुतं गत्वा पौलोम्या वचनं मम । सत्यभामा वदत्येवं भर्तृगर्वोद्धताक्षरम् ॥४२॥
यदि त्वं दयिता भर्तुर्यदि तस्य प्रिया ह्यसि । मद्भर्तुर्हरतो वृक्षं तत्कारय निवारणम् ॥४३॥
जानामि ते पतिं शक्रं जानामि त्रिदशेश्वरम् । पारिजातं तथाऽप्येनं मानुषी हारयामि ते ॥४४॥

व्यास उवाच

इत्युक्ता रक्षिणो गत्वा[1] प्रोच्चैः प्रोचुर्यथोदितम् । शची चोत्साहयामास त्रिदशाधिपतिं पतिम् ॥४५॥
ततः समस्तदेवानां सैन्यैः परिवृतो हरिम् । प्रययौ पारिजातार्थमिन्द्रो योधयितुं द्विजाः ॥४६॥
ततः परिघनिस्त्रिंशगदाशूलधरायुधाः । बभूवुस्त्रिदशाः सज्जाः शक्रे वज्रकरे स्थिते ॥४७॥
ततो निरीक्ष्य गोविन्दो नागराजोपरि स्थितम् । शक्रं देवपरीवारं युद्धाय समुपस्थितम् ॥४८॥

व्यास ने कहा—यह सुन कर क्रोध से तमतमाती हुई सत्यभामा उनसे कहने लगी ॥३८॥

सत्यभामा बोली—कल्पवृक्ष का इन्द्राणी कौन होती है या देवस्वामी इन्द्र ही कौन होता है ? यह तो सब लोगों के लिये समान है। यदि यह अमृतमन्थन के समय उत्पन्न हुआ तो अकेले इन्द्र ने क्या इसे ग्रहण किया ? वन रक्षको ! सब लोगों के लिये जैसे सुरा (अमृत) चन्द्रमा तथा लक्ष्मी सामान्य है वैसे कल्पवृक्ष भी है। यदि अपने स्वामी के बाहुबल के गर्व से शची इसे रोकता है तो शीघ्र जाकर उससे मेरी बात कहो— स्वामी के गर्व से उद्धत सत्यभामा इस प्रकार कहती है कि यदि तुम अपने पति की प्रेयसी हो तो कल्पवृक्ष का हरण करते हुए मेरे स्वामी का निवारण कराओ। मैं तुम्हारे पति इन्द्र को जानती हूँ देवताओं के ईश्वर को भी जानती हूँ तो मैं मानुषी होकर कल्पवृक्ष का हरण करवाती हूँ ॥३९-४४॥

व्यास ने कहा—इतना कहने पर रक्षकगण शची के पास जाकर जोर-जोर से सब वृत्तान्त कहने लगे। शची ने देवताओं के पति इन्द्र को उत्साहित किया। द्विजगण ! तदुपरान्त अखिल देवों की सेना से युक्त इन्द्र कल्पवृक्ष के लिये कृष्ण से युद्ध करने को तैयार हो गये। इन्द्र ने हाथ में वज्र लिया और अतिरिक्त देवगण ने मुद्गर तलवार, गदा, शूल आदि अस्त्र-शस्त्रों को धारण किया। तब गोविन्द ने युद्ध के लिये उपस्थित तथा हस्तिराज पर स्थित

---

[1] क. °ोऽप्य ग०। [2] क. °त्वा सत्यमोदितमञ्जसा। ग०।

चकार शङ्खनिर्घोषं दिशः शब्देन पूरयन्। 'मुमोच च शरव्रातं सहस्रायुतसंमितम् ॥४९॥
ततो दिशो नभश्चैव दृष्ट्वा शरशताचितम्। मुमुचुस्त्रिदशाः सर्वे शस्त्राण्यस्त्राण्यनेकशः ॥५०॥
एकैकमस्त्रं शस्त्रं च देवैर्मुक्तं सहस्रधा। चिच्छेद लीलयैवेशो जगतां मधुसूदनः ॥५१॥
पाशं सलिलराजस्य समाकृष्योरगाशनः। चचाल खण्डशः कृत्वा बालपन्नगदेहवत् ॥५२॥
यमेन प्रहितं दण्डं गदाप्रक्षेपखण्डितम्। पृथिव्यां पातयामास भगवान्देवकीसुतः ॥५३॥
शिबिकां च धनेशस्य चक्रेण तिलशो विभुः[२]। चकार शौरिरर्केन्दू दृष्टिपातहतौजसौ ॥५४॥
नीतोऽग्निः शतशो बाणैर्द्राविता वसवो दिशः। चक्रविच्छिन्नशूलाग्रा रुद्रा भुवि निपातिताः ॥५५॥
साध्या विश्वे च मरुतो गन्धर्वाश्चैव सायकैः। शार्ङ्गिणा प्रेरिता. सर्वे व्योम्नि शाल्मलितूलवत् ॥५६॥
'गरुडश्चापि वक्त्रेण पक्षाभ्यां च नखाङ्कुरैः। भक्षयन्प्रहनद्देवान्दानवांश्च सदा खग ॥५७॥
तत. शरसहस्रेण देवेन्द्रमधुसूदनौ। परस्परं ववर्षाते धाराभिरिव तोयदौ ॥५८॥
ऐरावतेन गरुडो युयुधे तत्र संकुले। देवैः समेतैर्युयुधे शक्रेण च जनार्दनः ॥५९॥
छिन्नेषु शीर्यमाणेषु शस्त्रेष्वस्त्रेषु सत्वरम्। जग्राह वासवो वज्रं कृष्णश्चक्रं सुदर्शनम् ॥६०॥
ततो हाहाकृतं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्। वज्रचक्रधरौ दृष्ट्वा देवराजजनार्दनौ ॥६१॥
क्षिप्तं वज्रमथेन्द्रेण जग्राह भगवान्हरिः। न मुमोच तदा चक्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥६२॥

इन्द्र को देव-परिवारो के साथ देखा। उन्होने शखध्वनि की। चारो दिशाय शब्द से गूज उठी। एक लाख की सख्या म वाण छोडे गए। दिशा एवम् आकाश सैकडो वाणो से भर गये। तव देवताओ ने भी अनेको अस्त्र-शस्त्रो का प्रयोग किया। जगत्स्वामी मधुसूदन ने लीला से ही देवताओ द्वारा छाडे गए एक-एक अस्त्र-शस्त्र के हजार टुकडे कर दिये। गरुड ने वाल सर्पों की देह के समान वरुण के पाश को खीच कर उसके खण्ड खण्ड कर दिये ॥४५-५२॥ भगवान् देवकी-पुत्र ने यम के द्वारा प्रक्षिप्त गदा को तोड कर पृथ्वी पर गिरा दिया। कुबेर की पालकी को चक्र से तिल के बरावर काट-काट कर रख दिया, सूर्य-चन्द्रमा को दृष्टिपात से ही तेजोहीन वना दिया। अग्नि को सैकडा बाणो से विद्ध कर दिया। वसुगण चारो दिशाओ मे भाग गये। चक्र से कटे त्रिशूल के अग्रभाग वाले रुद्रगण पृथ्वी पर गिर पडे। शार्ङ्ग नामक धनुष धारण करने वाले कृष्ण के बाणो से आहत साध्य, विश्वेदेव, मरुत् तथा गन्धर्वगण सेमल की रुई की तरह आकाश मे दीखने लगे। गरुड भी मुह, पख तथा नखो से देव दानवो को मारने तथा खाने लगे। तव देवेन्द्र और मधुसूदन परस्पर वादल की तरह हजारो वाणो की वृष्टि करने लगे। उस युद्ध मे ऐरावत के साथ गरुड और देवो तथा इन्द्र के साथ जनार्दन युद्ध करते थे ॥५३-५९॥ शीघ्र ही सव अस्त्र-शस्त्रो के छिन्न-भिन्न हो जाने पर इन्द्र ने वज्र तथा कृष्ण ने सुदर्शन चक्र धारण किये। वज्र-चक्रधारी इन्द्र-जनार्दन को देखकर चराचर सहित तीनो लोक हाहाकार करने लगे। भगवान् हरि ने इन्द्र द्वारा प्रक्षिप्त वज्र को पकड लिया, पर अपना चक्र नही छाडा।

१ख. ०च सुदारांस्तीव्रान्सह०। २क भुवि। ३क ख ०रत्मानरि।

प्रनष्टवज्रं देवेन्द्रं गरुडक्षतवाहनम्। 'सत्यभामाऽब्रवीद्वाक्यं पलायनपरायणम् ॥६३॥

सत्यभामोवाच

त्रैलोक्येश्वर नो युक्तं शचीभर्तु[1] पलायनम्। पारिजातस्रगाभोगास्त्वामुपस्थास्यते शची ॥६४॥
कीदृशं देव राज्यं ते पारिजातस्रगुज्ज्वलाम्। अपश्यतो यथापूर्वं प्रणयाभ्यागतां शचीम् ॥६५॥
अलं शक्र 'प्रयासेन न व्रीडां यातुमर्हसि। नीयतां पारिजातोऽयं देवा सन्तु गतव्यथा ॥६६॥
पतिगर्वावलेपेन बहुमानपुरःसरम्। न ददर्श गृहायातामुपचारेण मां शची ॥६७॥
स्त्रीत्वादगुरुचित्ताऽहं स्वभर्तु• श्लाघनापरा। ततः कृतवती शक्र भवता सह विग्रहम् ॥६८॥
तदलं पारिजातेन परस्वेन हृतेन वा। 'रूपेण यशसा चैव भवेत्स्त्री का न गर्विता ॥६९॥

व्यास उवाच

इत्युक्ते वै निववृते 'देवराजस्तया द्विजा। प्राह चैनामलं चण्डि सखि' खेदातिविस्तरैः ॥७०॥
न चापि सर्गसंहारस्थितिकर्ताऽखिलस्य यः। जितस्य तेन मे व्रीडा जायते विश्वरूपिणा ॥७१॥

यस्मिञ्जगत्सकलमेतदनादिमध्ये, यस्माद्यतश्च न भविष्यति सर्वभूतात् ।
तेनोद्भवप्रलयपालनकारणेन•, व्रीडा कथं भवति देवि निराकृतस्य ॥७२॥

वज्र नष्ट होने के साथ ही ऐरावत भी गरुड द्वारा क्षत विक्षत हो गया। इन्द्र भागने लगे। हरि ने कहा — ठहरो ठहरो।' तब सत्यभामा इन्द्र से कहने लगीं ॥६०-६३॥

सत्यभामा बोलीं—तीनों लोकों के ईश्वर तथा शची के स्वामी होकर आपको भागना नहीं चाहिये। कल्पवृक्ष के पुष्पों की माला पहनकर शची आपके पास जायगी। पहले की तरह कल्पवृक्ष की उज्ज्वल माला धारण कर प्रेम से आयी हुई शची के बिना देखे आपका राज्य कैसा? इन्द्र! आप व्यर्थ प्रयास कर रहे हैं। आपको लज्जा नहीं करनी चाहिये। आप कल्पवृक्ष ले जाइये। देवगण व्यथारहित हो जाँय। पति के गर्व से शची ने गृह में आयी हुई मुझे बहुत आदर के साथ नहीं देखा। स्त्री होने के कारण मेरा हृदय विशाल नहीं है। अतः अपने पति से हठ करके मैंने आपसे विग्रह किया। अब मुझे कल्पवृक्ष की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं दूसरे का धन हरण नहीं करना चाहती। रूप तथा यश (मिलने) से किस स्त्री को गर्व नहीं होता ॥६४-६९॥

व्यास ने कहा—द्विजगण! इतना कहकर चुप हो जाने पर देवराज ने उससे कहा— चण्डिके! सखि! खेद का अतिविस्तार करना व्यर्थ है। सृष्टि स्थिति प्रलयकर्ता विश्वात्मा से पराजित होने पर मुझे लज्जा क्यों होगी? देवि! जिस आदि-मध्य-रहित (परमात्मा) में सम्पूर्ण जगत लीन हो जाता है तथा जिससे उत्पन्न होता है उस उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय के कारण (ब्रह्म) से हारने पर लज्जा कैसी? जिस अखिल जगत् रूप मूर्ति वाले (परमात्मा) की मूर्ति अल्प एवम् अति सूक्ष्म है और जिसे समस्त वेदों के ज्ञाता ही जानते हैं दूसरे नहीं उस अजन्मा,

---

१क ग॰ ०वीद्वीर प०। २क ख ०भर्तं प०। ३क ख प्रतापेन। ४ग ०ण गर्विता सा तु भर्त्रा स्त्री कालग०। ५क ०जस्त्वपायुत। प्रा०। ६क ०खि वैरेण केवलम्। न। ७क ०कारिणा मे व्री०।

सकलभुवनमूर्तेर्मूर्तिरल्पा सुसूक्ष्मा, विदितसकलवेदैर्ज्ञायते यस्य नान्यैः ।
तमजमकृतमीशं शाश्वतं स्वेच्छयैनं, जगदुपकृतिमाद्यं को विजेतुं समर्थः ॥७३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे पारिजातहरणे शक्रस्तवनिरूपणं
नाम त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०३॥

अथ चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः

इन्द्रकृष्णसंवादवर्णनम्

व्यास उवाच

संस्तुतो भगवानित्थं देवराजेन केशवः। प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचेदं[1] द्विजोत्तमाः ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

देवराजो भवानिन्द्रो वयं मर्त्या जगत्पते। क्षन्तव्यं भवतैवैतदपराधकृतं मम ॥२॥
पारिजाततरुश्चायं नीयतामुचितास्पदम्। गृहीतोऽयं मया शक्र सत्यावचनकारणात् ॥३॥
वज्रं चेदं गृहाण त्वं यष्टव्यं[2] प्रहितं त्वया। तवैवैतत्प्रहरणं शक्रवैरिविदारणम् ॥४॥

अक्षय, ईश, नित्य, आद्य तथा ससार के उपकारी को कौन व्यक्ति स्वेच्छा से जीतने मे समर्थ (हो सकता) है? ॥७०-७३॥'

श्रीब्रह्ममहापुराण मे कल्पवृक्ष के हरण-प्रसग मे इन्द्रस्तुति निरूपण
नामक दो सौ तीसरा अध्याय समाप्त ॥२०३॥

अध्याय २०४

इन्द्र और कृष्ण के सवाद का वर्णन

व्यास ने कहा—द्विजवर! इन्द्र से इस प्रकार स्तुत होने के उपरान्त केशव ने हँसकर सारगर्भित वाक्य कहा ॥१॥

श्रीभगवान् ने कहा—जगत्स्वामी! आप देवताओं के राजा इन्द्र हैं और मैं मनुष्य हूँ। इसलिए आप ही मेरे अपराध को क्षमा करें। इस कल्पवृक्ष को उचित स्थान पर रख दें। शक्र! मैंने तो केवल सत्या के वचन के कारण इसे ग्रहण किया। इस वज्र को भी आप ले लीजिए। आपसे छोड़ा गया यह पूजनीय है। शत्रुओं का विदारण करने वाला यह वज्र आप ही का है ॥२-४॥

---

[1] क ०चेन्द्र द्वि०। [2] ख यदैतत्प्रहि०।

शक्र उवाच

विमोहयसि मामीश मर्त्योऽहमिति किं वदन्। जानीमस्त्वां भगवतोऽनन्तसौख्यविदो वयम् ॥५॥
योऽसि सोऽसि जगन्नाथ प्रवृत्तो नाथ संस्थितः। जगतः शल्यनिष्कर्षं करोष्यसुरसूदन ॥६॥
नीयतां पारिजातोऽयं कृष्ण द्वारवतीं पुरीम्। मर्त्यलोके त्वया मुक्ते नायं संस्थास्यते भुवि ॥७॥

व्यास उवाच

तथेत्युक्त्वा तु देवेन्द्रमाजगाम भुवं हरिः। प्रयुक्तः सिद्धगन्धर्वैः स्तूयमानस्त्वथर्षिभिः ॥८॥
जगाम कृष्णः सहसा गृहीत्वा पादपोत्तमम्। ततः शङ्खमुपाध्माय द्वारकोपरि संस्थितः ॥९॥
हर्षमुत्पादयामास द्वारकावासिनां द्विजाः। अवतीर्याथ गरुडात्सत्यभामासहायवान् ॥१०॥
निष्कुटे स्थापयामास पारिजातं महातरुम्। यमभ्येत्य जनः सर्वो जातिं स्मरति पौर्विकीम् ॥११॥
वास्यते यस्य पुष्पाणां गन्धेनोर्वी त्रियोजनम्। ततस्ते यादवाः सर्वे देवगन्धानमानुषान्¹ ॥१२॥
ददृशुः पादपे तस्मिन्कुर्वन्तो²मुखदर्शनम्। किंकरैः समुपानीतं हस्त्यश्वादि ततो धनम् ॥१३॥
स्त्रियश्च कृष्णो जग्राह नरकस्य परिग्रहात्³। ततः काले शुभे प्राप्ते उपयेमे जनार्दनः ॥१४॥
ताः कन्या नरकावासात्सर्वतो याः समाहृताः⁴। एकस्मिन्नेव गोविन्दः कालेनाऽऽसां द्विजोत्तमाः⁵ ॥१५॥
जग्राह विधिवत्पाणीन्पृथग्देहे स्वधर्मतः⁶। षोडश स्त्रीसहस्राणि शतमेकं तथाऽधिकम् ॥१६॥

शक्र ने कहा—ईश! 'मैं मनुष्य हूँ' ऐसा कहकर क्यों आप मुझे मोह में डाल रहे हैं? मैं आपको जानता हूँ। आप ही से हम सब अनन्त सुखों को प्राप्त करते हैं। जगन्नाथ! राक्षसों के संहारक! आप जो हैं सो हैं, पर आप पृथ्वी पर स्थित होकर संसार का संकट दूर करते हैं। कृष्ण! इस कल्पवृक्ष को आप द्वारका ले जाँय। आपके मर्त्यलोक छोड़ देने पर यह पृथ्वी पर नहीं ठहरेगा ॥५-७॥

व्यास ने कहा—इन्द्र से 'एवमस्तु' कहकर भगवान् कृष्ण उत्तम वृक्ष को लेकर सिद्ध, गन्धर्व तथा ऋषियों द्वारा स्तुत होते हुए शीघ्र मृत्युलोक आ गये। विप्रवृन्द! द्वारका पहुँचकर उन्होंने शंखध्वनि से द्वारकावासियों को आनन्दित किया और गरुड पर से सत्यभामा सहित उतरकर अन्तःपुर में महातरु कल्पवृक्ष को स्थापित कर दिया। उसको देखकर मनुष्य को पूर्व जाति का स्मरण हो आता था और उसकी सुगंध से पृथ्वी तीन योजन तक सुवासित रहती थी। यादवगण उस अलौकिक गन्ध को सूँघते थे, उस वृक्ष में अपना मुखदर्शन करते थे। सेवकगण उससे हाथी-घोड़े आदि धन प्राप्त करते थे। नरक नामक राक्षस के बन्धन से उन्मुक्त स्त्रियों को कृष्ण ने स्वीकार किया। शुभकाल प्राप्त होने पर जनार्दन ने उन सब कन्याओं से विवाह कर लिया, जो नरक के गृह से लाई गई थीं। विप्रवर! गोविन्द ने पृथक्-पृथक् शरीर धारण कर एक ही समय सब कन्याओं से विधिपूर्वक विवाह किया। सोलह हजार एक सौ स्त्रियाँ थीं। भगवान् मधुसूदन ने उतने ही रूप बनाये। उन कन्याओं ने मधुसूदन को

१ग. ०तो मनुसूक्ष्मवि०। २क. देहवन्त्यान्युपानयन्। ३क. ०र्वन्तो मु०। ४क. ख. ०खबन्धन०। ५ग. ग्रहा। त०। ६क. ख. ०र्वेणाऽऽन्सर्व०।

तावन्ति चक्रे रूपाणि भगवान्मधुसूदनः। एकैकशश्च ताः कन्या मेनिरे मधुसूदनम् ॥१७॥
ममैव पाणिग्रहणं गोविन्द. कृतवानिति। निशासु जगतः स्रष्टा तासां गेहेषु केशव. ॥
उवास विप्राः सर्वासां विश्वरूपधरो हरिः ॥१८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०४॥

अथ पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अनिरुद्धचरित्रवर्णनम्

व्यास उवाच

प्रद्युम्नाद्या हरेः पुत्रा रुक्मिण्या [1]कथिता द्विजाः। भान्वादिकांश्च वै पुत्रान्सत्यभामा व्यजायत ॥१॥
दीप्तिमन्तः प्रपक्षाद्या रोहिण्यास्तनया हरेः। बभूवुर्जाम्बवत्याश्च [2]साम्बाद्या बाहुशालिनः ॥२॥
तनया भद्रविन्दाद्या नाग्नजित्यां महाबलाः। संग्रामजित्प्रधानास्तु शैब्यायां चाभवन्सुताः ॥३॥
वृकाद्यास्तु सुता [3]माद्री गात्रवत्प्रमुखान्सुतान्। अवाप लक्ष्मणा पुत्रान्कालिन्द्याश्च श्रुतादयः ॥४॥
अन्यासां चैव भार्याणां समुत्पन्नानि चक्रिणः। अष्टायुतानि पुत्राणां सहस्राणि शतं तथा ॥५॥

एक-एक करके माना और समझा कि गोविन्द ने मुझसे ही पाणिग्रहण किया है। द्विजगण ! रात्रि में जगत्स्रष्टा केशव विश्वरूप धारण कर उन सबके घरों में वास करते थे ॥८–१८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में श्रीकृष्ण-चरित्र-वर्णन-प्रसंग में दो सौ चौथा अध्याय समाप्त ॥२०४॥

अध्याय २०५

अनिरुद्ध का चरित्र-वर्णन

व्यास ने कहा—द्विजवृन्द ! हरि के रुक्मिणी से उत्पन्न प्रद्युम्न आदि पुत्रों के बारे में मैंने कहा। (अब और सुनिये) भानु आदि पुत्र सत्यभामा से उत्पन्न हुए। हरि के रोहिणी से प्रपक्ष आदि दीप्तिमान् पुत्र हुए। जाम्बवती के साम्ब आदि प्रतापी पुत्र हुए। नाग्नजिती के भद्रविन्द आदि महाबलवान् पुत्र हुए। संग्रामजित् आदि पुत्र शैब्या के हुए। माद्री के वृक आदि पुत्र हुए। लक्ष्मणा ने गात्रवान् आदि पुत्रों को प्राप्त किया। कालिन्दी के श्रुत आदि पुत्र हुए। कृष्ण की दूसरी स्त्रियों में आठ करोड़ एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें रुक्मिणी का पुत्र प्रद्युम्न

१क ०ता हि व। मा०। २ख ग. ०द्या महा०। ३क. ०द्री सुगात्रप्रमु०।

प्रद्युम्नः प्रमुखस्तेषां रुक्मिण्यास्तु सुतस्ततः। प्रद्युम्नानिरुद्धोऽभूद्वज्रस्तस्मादजायत ॥६॥
अनिरुद्धो रणे रुद्धो बलेः पौत्रीं महाबलः। बाणस्य तनयामु(मु)षामुपयेमे द्विजोत्तमाः ॥७॥
यत्र युद्धमभूद्घोरं हरिशंकरयोर्महत्। छिन्नं सहस्रं बाहूना यत्र बाणस्य चक्रिणा ॥८॥

मुनय ऊचुः

कथं युद्धमभूद्ब्रह्मन्नुपार्थे हरकृष्णयोः। कथं क्षयं च बाणस्य बाहूनां कृतवान्हरिः ॥९॥
एतत्सर्वं महाभाग[1] वक्तुमर्हसि नोऽखिलम्। महत्कौतूहलं जातं श्रोतुमेतां कथां शुभाम् ॥१०॥

व्यास उवाच

उषा बाणसुता विप्राः पार्वतीं शंभुना सह। क्रीडन्तीमुपलक्ष्योच्चैः स्पृहां चक्रे तदा[2] स्वयम् ॥
ततः सकलचित्तज्ञा गौरी तामाह भामिनीम् ॥११॥

गौर्युवाच

अलमित्यनुतापेन भर्त्रा त्वमपि रस्यसे ॥१२॥

व्यास उवाच

इत्युक्ता सा तदा चक्रे कदेति मतिमात्मनः। को वा भर्ता ममेत्येनां पुनरप्याह पार्वती ॥१३॥

प्रधान था। प्रद्युम्न से अनिरुद्ध की उत्पत्ति हुई। द्विजश्रेष्ठो! रणदुर्मद महाबली अनिरुद्ध ने बलि की पौत्री तथा बाण की पुत्री उषा से विवाह किया। उस विवाह मे हरि और शंकर के बीच महायुद्ध हुआ। कृष्ण ने बाण की हजारो भुजाओं का काट डाला ॥१-८॥

मुनियों ने कहा—ब्रह्मन्! उषा के लिये क्यों शिव तथा कृष्ण मे युद्ध हुआ? क्यो हरि ने बाण की बाँह काट डाली? महाभाग! यह सब सविस्तार हमे बतलाइये। इस शुभ कथा को सुनने के लिये हम बड़ी उत्कण्ठा हो रही है ॥९-१०॥

व्यास ने कहा—विप्रवृन्द! बाण की कन्या उषा ने शंकर के साथ क्रीडा करती हुई पार्वती को देखकर इच्छा की, कि काश! मैं भी ऐसा करती। तब सबके चित्त को जानने वाली गौरी ने उससे कहा ॥११॥

गौरी बोलीं—तुम व्यर्थ ही अनुताप कर रही हो, पति के साथ तुम भी रमण करोगी ॥१२॥

व्यास ने कहा—पार्वती के इतना कहने पर उषा मन मे सोचने लगी, कि कब कौन मेरा स्वामी होगा। फिर पार्वती ने उससे कहा ॥१३॥

१क. ख प्रथमस्ते०। २क. ख ०न समाख्यातु त्वमर्हसि। म०। ३ख. ग. •दाश्रयाम्।

पार्वत्युवाच

वैशाख शुक्लद्वादश्या स्वप्ने योऽभिभव तव। करिष्यति स ते भर्ता राजपुत्रि भविष्यति ॥१४॥

व्यास उवाच

तस्या तिथौ पुमान्स्वप्ने यथा देव्या उदीरित। तथैवाभिभव चक्रे राग चक्रे च तत्र सा॥
'तत प्रबुद्धा पुरुषमपश्यन्ती तमुत्सुका ॥१५॥

उषोवाच

क्व गतोऽसीति निर्लज्जा द्विजाश्चोक्तवती सखीम। बाणस्य मन्त्री कुम्भाण्डश्चित्रलेखा तु तत्सुता ॥१६॥
तस्या सख्यभवत्सा च प्राह कोऽय त्वयोच्यते। यदा लज्जाकुला नास्य कथयामास सा सखी ॥१७॥
तदा विश्वासमानीय सवमेवान्ववेदयत। विदिताया तु तामाह पुनरुषा यथोदितम्॥
देव्या तथैव तत्प्राप्तौ योऽभ्युपाय कुरुष्व तम ॥१८॥

व्यास उवाच

तत पटे सुरान्दैत्यान्गन्धर्वांश्च प्रधानत। मनुष्याश्चाभिलिख्यासौ चित्रलेखाऽप्यदर्शयत ॥१९॥
अपास्य सा तु गन्धर्वांस्तथोरगसुरासुरान। मनुष्येषु ददौ दृष्टि तेष्वप्यन्धकवृष्णिषु ॥२०॥

पार्वती ने कहा—राजकुमारी! वैशाख शुक्ल द्वादशी तिथि मे जो व्यक्ति स्वप्न मे तुमसे प्रसग करेगा वही तुम्हारा पति होगा ॥१४॥

व्यास ने कहा—पार्वती के कथनानुसार उसी तिथि को एक पुरुष ने स्वप्न मे उषा से रमण किया और उषा को उसके साथ प्रेम भी हो गया। तब जागने पर उस पुरुष को न देखती हुई उषा (उसके लिए) उत्कण्ठित हो गई ॥१५॥

उषा बोली—द्विजगण! कहाँ गये हो यह बात उषा निलज्ज होकर अपनी सखी से पूछ बैठी। बाण के मत्री कुम्भाण्ड के चित्रलेखा नामक कन्या थी। वह उषा की सखी होने के नाते बोली—किसके बारे मे तुम कह रही हो? जब उषा ने लज्जा के मारे कुछ नही कहा तब चित्रलेखा उस विश्वास दिलाने के लिये सब वृत्तान्त निवेदन करने लगी। यह सब समझ गयी ऐसा जानकर उषा ने उससे कहा—उसकी प्राप्ति के लिए गौरी ने जो उपाय बतलाया है वह करो ॥१६ १८॥

व्यास ने कहा—तदनन्तर चित्रलेखा ने चित्र-पट पर देव राक्षस गन्धर्व और मुख्य मुख्य मनुष्यो को चित्रित कर दिखलाया। उषा ने गन्धर्व सर्प राक्षस तथा देवो को छोडकर मनुष्यो के ऊपर दृष्टि दौडायी उनमे भी अन्धक और वृष्णि वशवालो के ऊपर खास तौर से दृष्टिपात किया। सुन्दर भौवाली उषा कृष्ण राम को देखकर

१क उषा।

कृष्णरामौ विलोक्याऽऽसीत्सुभ्रूर्लज्जायतेक्षणा। प्रद्युम्नदर्शने व्रीडादृष्टिं निम्ने ततो द्विजा ॥२१॥
दृष्ट्वाऽनिरुद्धं च ततो लज्जा क्वापि निराकृता। सोऽयं सोऽयं ममेत्युक्ते तया सा योगगामिनी॥
ययौ द्वारवतीम् (मु)षा समाश्वास्य तत सखी ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बाणयुद्धे पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०५॥

अथ षडधिकद्विशततमोऽध्यायः

बाणयुद्धवर्णनम

व्यास उवाच

बाणोऽपि प्रणिपत्याग्रे ततश्चाऽऽह त्रिलोचनम् ॥१॥

बाण उवाच

देव बाहुसहस्रेण निर्विण्णोऽहं विनाऽऽहवम। कच्चिन्ममैषां बाहूनां साफल्यकरणो रण॥
भविष्यति विना युद्धं भाराय मम किं भुजैः ॥२॥

शंकर उवाच[1]

मयूरध्वजभङ्गस्ते यदा बाण भविष्यति। पिशिताशिजनानन्दं प्राप्स्यसि त्वं तदा रणम॥३॥

लाज्जित हो गई। द्विजवृन्द! उसने प्रद्युम्न ऊपर लज्जापूर्ण दृष्टि डाली। अनिरुद्ध को देखकर वह योग मार्ग से चलने वाली उषा लज्जा दूर करके बोल उठी— यही है मेरा यही है। तब उषा को सान्त्वना देकर सखी द्वारका गयी॥१९-२२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में बाण-युद्ध प्रसंग में दो सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त॥२०५॥

अध्याय २०६

बाण के युद्ध का वर्णन

व्यास ने कहा—बाण भी शिव के सामने माथा टेक कर कहने लगा॥१॥

बाण ने कहा—देव! मैं हजार भुजाओं से युक्त होकर बिना युद्ध के दुःखी हो रहा हूँ। यदि कोई ऐसा युद्ध हो जो मेरी बाँहों को चरितार्थ कर सके तो ठीक है अन्यथा बिना युद्ध के भुजायें भारमात्र हैं॥२॥

शंकर ने कहा—बाण! जब तुम्हारी मयूर-पताका भग्न होगी तब मांसाहारी जीवों को आनन्द देने वाला रण तुम्हें प्राप्त होगा॥३॥

1ग. ०च। मायू०।

व्यास उवाच

तत. प्रणम्य मुदित शंभुमभ्यागतो गृहात्। भग्न ध्वजमथाऽऽलोक्य हृष्टो हर्ष पर ययौ ॥४॥
एतस्मिन्नेव काले तु योगविद्याबलेन तम्। अनिरुद्धमथाऽऽनिन्ये चित्रलेखा वरा सखी ॥५॥
कन्यान्त पुरमध्ये त रममाण सहोषया। विज्ञाय रक्षिणो गत्वा शशंसुर्दैत्यभूपते ॥६॥
व्यादिष्ट किंकराणा तु सैन्य तेन महात्मना। जघान परिघ लौहमादाय परवीरहा ॥७॥
हतेषु तेषु बाणोऽपि रथस्थस्तद्वधोद्यत । युध्यमानो यथाशक्ति यदा वीरेण निर्जित ॥८॥
मायया युयुधे तेन स तदा मन्त्रचोदित । ततश्च पन्नगास्त्रेण बबन्ध यदुनन्दनम् ॥९॥
द्वारवत्या क्व यातोऽसावनिरुद्धेति जल्पताम्। यदूनामाचचक्षे त बद्ध बाणेन नारद ॥१०॥
त शोणितपुरे श्रुत्वा नीत विद्याविदग्धया। योषिता प्रत्यय जग्मुर्यादवा नाम[1] वैरिति (णि) ॥११॥
ततो गरुडमारुह्य स्मृतमात्रा[2] गत हरि । बलप्रद्युम्नसहितो बाणस्य प्रययौ पुरम् ॥१२॥
पुरीप्रवेशे प्रमथैर्युद्धमासीन्महाबले । ययौ बाणपुराभ्याश नीत्वा तान्क्षय हरि ॥१३॥
ततस्त्रिपादस्त्रिशिरा ज्वरो माहेश्वरो महान्। बाणरक्षार्थमत्यर्थं युयुधे शार्ङ्गधन्वना ॥१४॥
'तद्भस्मस्पर्शसभूतताप[4] कृष्णाङ्गसगमात्। 'अवाप बलदेवोऽपि[6] सम समीलितेक्षण ॥१५॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त शकर को प्रणाम कर बाण घर से बाहर निकला और पताके को भग्न देखकर बडा आनन्दित हुआ ॥४॥ इसी समय योगविद्या के बल से उत्तमा सखी चित्रलेखा अनिरुद्ध को ले आई ॥५॥ कन्यापुर मे उषा के साथ रमण करते हुए अनिरुद्ध का पता पाकर रक्षको ने दैत्यराज से जाकर निवेदन कर दिया ॥६॥ उस महात्मा ने अनिरुद्ध को मार देने के लिए सेवको को आज्ञा दे दी। पर वीर शत्रुओ के नाशकर्ता अनिरुद्ध ने लोहे का मुदगर लेकर सैनिको को नष्ट कर दिया। सेनाओ के निहत हो जाने पर अनिरुद्ध का वध करने के लिए उद्यत बाण भी रथारूढ होकर शक्तिभर युद्ध करने लगा। पर अनिरुद्ध ने उसे हरा दिया। तब मत्रसिद्ध बाण माया से युद्ध करने लगा और अतत सर्पास्त्र से यदुकुमार को बाध दिया ॥७-९॥ (अनिरुद्ध के चले आने पर) द्वारका मे यादवगण बोलने लगे—अनिरुद्ध कहाँ गये ?' (उसी समय) नारद ने (कही से आकर) बाण द्वारा बाधे गये अनिरुद्ध का समाचार सुना दिया ॥१०॥ विद्या मे निपुण स्त्री, अनिरुद्ध को शोणितपुर ले गई' यह सुनकर यादवो को विश्वास हो गया ॥११॥ तदनन्तर गरुड पर चढकर कृष्ण बलभद्र और प्रद्युम्न को साथ लेकर शोणितपुर के लिए तुरन्त प्रस्थित हो गये। नगर मे प्रवेश करने से पूर्व महाबलशाली प्रमथगणो के साथ उनका युद्ध छिड गया। हरि उनका नाश करके बाण-पुर के समीप पहुँचे। तब शकर का तीन पैर तथा तीन शिर वाला महाज्वर बाण की रक्षा के निमित्त कृष्ण से युद्ध करने लगा ॥१२-१४॥ कृष्ण के अग से स्पर्श हो जाने के कारण बलदेव को भी महाज्वर के भस्म-स्पर्श से उत्पन्न ताप लग गया। उन्होने आखें मूद ली। तब वैष्णव ज्वर ने कृष्ण के साथ युद्ध करते

१ख ०म वैरि०। २ग ०मात्रं ग०। ३क तद्वच्च कृष्णस०। ४ग ०तस्ताप० कृ०। ५ अत्यजद्बल०। ६ग. ०पि श्रममु मीलि०।

ततः संयुध्यमानस्तु सह देवेन शार्ङ्गिणा। वैष्णवेन ज्वरेणाऽऽशु कृष्णदेहान्निराकृतः॥१६॥
नारायणभुजाघातपरिपीडनविह्वलम्। तं वीक्ष्य क्षम्यतामस्येत्याह देवः पितामहः॥१७॥
ततश्च क्षान्तमेवेति प्रोच्य तं वैष्णवं ज्वरम्। आत्मन्येव लयं निन्ये भगवान्मधुसूदनः॥१८॥
मम त्वया समं युद्धं ये स्मरिष्यन्ति मानवाः। विज्वरास्ते भविष्यन्तीत्युक्त्वा चैनं ययौ हरिः[1]॥१९॥
ततोऽग्नीन्भगवान्पञ्च जित्वा नीत्वा क्षयं तथा। दानवानां बलं विष्णुश्चूर्णयामास लीलया॥२०॥
ततः समस्तसैन्येन दैतेयानां बलेः सुतः। युयुधे शंकरश्चैव कार्तिकेयश्च शौरिणा॥२१॥
हरिशंकरयोर्युद्धमतीवाऽऽसीत्सुदारुणम्। चुक्षुभुः सकला लोकाः शस्त्रास्त्रैर्बहुधार्दिताः॥२२॥
प्रलयोऽयमशेषस्य जगतो नूनमागतः। मेनिरे त्रिदशा यत्र वर्तमाने महाहवे[2]॥२३॥
जृम्भणास्त्रेण गोविन्दो जृम्भयामास शंकरम्। ततः प्रणेशुर्दैतेयाः प्रमथाश्च समन्ततः॥२४॥
जृम्भाभिभूतश्च हरो रथोपस्थमुपाविशत्। न शशाक तदा योद्धुं कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा॥२५॥
गरुडक्षतबाहुश्च प्रद्युम्नास्त्रेण पीडितः। कृष्णहुंकारनिर्धूतशक्तिश्चापययौ गुहः॥२६॥
जृम्भिते शंकरे नष्टे दैत्यसैन्ये गुहे जिते। नीते प्रमथसैन्ये च संक्षयं शार्ङ्गधन्वना॥२७॥
नन्दीशसंगृहीताश्वमधिरूढो महारथम्। बाणस्तत्राऽऽययौ योद्धुं कृष्णकार्ष्णिबलैः सह॥२८॥
बलभद्रो महावीर्यो बाणसैन्यमनेकधा। विव्याध बाणैः प्रद्युम्नो धर्मतश्चापलायतः॥२९॥

हुए माहेश्वर ज्वर को कृष्ण की देह से निकाल दिया॥१५-१६॥ हरि की भुजाओं के आघात से परिपीडित माहेश्वर ज्वर को देखकर ब्रह्मा ने विष्णु से कहा—'क्षमा कर दीजिये'। विष्णु ने कहा—'क्षमा ही है।' तब भगवान् मधुसूदन ने वैष्णव ज्वर को अपने में लीन कर लिया और माहेश्वर ज्वर से कहा—'जो मनुष्य तुम्हारे इस युद्ध का स्मरण करेंगे, वे विज्वर हो जायेंगे।' इतना कहकर हरि आगे बढ़े॥१७-१९॥ तब भगवान् ने पाँच अग्नियों को जीतकर दानवों की सेना को आसानी से चूर-चूर कर दिया। तब समस्त सैनिकों से युक्त बाण, शंकर और कार्तिकेय कृष्ण से युद्ध करने लगे। हरि और शिव में बड़ा भयंकर युद्ध छिड़ गया। अनेक बार अस्त्र शस्त्रों से पीडित सकल लोक काँपने लगे। उस युद्ध की विद्यमानता में देवगण सोचने लगे कि निश्चय ही अब संपूर्ण जगत् में प्रलय मच जायगा। गोविन्द ने जृम्भणास्त्र का प्रयोग किया, जिससे शंकर को जँभाई आने लगी। तब चारों ओर दैत्य और प्रमथगण नष्ट होने लगे॥२०-२४॥ जँभाई से अभिभूत शिव, महापराक्रमी कृष्ण के साथ युद्ध करने में असमर्थ होकर रथ पर बैठ गये। गरुड ने कार्तिकेय की बाहुओं को क्षत-विक्षत कर दिया। प्रद्युम्न ने अस्त्र से उसे पीडित किया। कृष्ण ने हुंकार से उसकी शक्ति नष्ट कर दी। फिर वह टिक नहीं सका। जब शंकर जृम्भास्त्र के वशीभूत हो गये, दानव सेनायें नष्ट हो गईं, कार्तिकेय पराजित हो गये और प्रमथ-सेना को भी कृष्ण क्षीण कर चुके तब सारथि के रूप में शिव को लेकर रथारूढ बाण कृष्ण तथा उनकी सेना से युद्ध करने के लिए वहाँ आ पहुँचा॥२५-२८॥ महापराक्रमी बलभद्र तथा धर्मतः न भागने वाले प्रद्युम्न ने बाणों से बाण की सेना को कई बार आहत किया। बलराम ने हल के अग्रभाग तथा मुसल

1ग. ज्वरः०। 2क. महारणे।

व्यास उवाच

तत प्रणम्य मुदित शंभुमभ्यागतो गृहात्। भग्न ध्वजमथाऽऽलोक्य हृष्टो हर्ष पर ययौ ॥४॥
एतस्मिन्नेव काले तु योगविद्याबलेन तम्। अनिरुद्धमथाऽऽनिन्ये चित्रलेखा वरा सखी ॥५॥
कन्यान्त पुरमध्ये त रममाण सहोषया। विज्ञाय रक्षिणो गत्वा शशसुर्दैत्यभूपते ॥६॥
व्यादिष्ट किंकराणा तु सैन्य तेन महात्मना। जघान परिघ लौहमादाय परवीरहा ॥७॥
हतेषु तेषु बाणोऽपि रथस्थस्तद्वधोद्यत । युध्यमानो यथाशक्ति यदा वीरेण निर्जित ॥८॥
मायया युयुधे तेन स तदा मन्त्रचोदित । ततश्च पन्नगास्त्रेण बबन्ध यदुनन्दनम् ॥९॥
द्वारवत्या क्व यातोऽसावनिरुद्धेति जल्पताम्। यदूनामाचचक्षे त बद्ध बाणेन नारद ॥१०॥
त शोणितपुरे श्रुत्वा नीत विद्याविदग्धया। योषिता प्रत्यय जग्मुर्यादवा नाम' वैरिति (णि) ॥११॥
ततो गरुडमारुह्य स्मृतमात्रा' गत हरि । बलप्रद्युम्नसहितो बाणस्य प्रययौ पुरम् ॥१२॥
पुरीप्रवेशे प्रमथैर्युद्धमासीन्महाबले । ययौ बाणपुराभ्याश नीत्वा तान्सक्षय हरि ॥१३॥
ततस्त्रिपादस्त्रिशिरा ज्वरो माहेश्वरो महान्। बाणरक्षार्थमत्यर्थ युयुधे शार्ङ्गधन्वना ॥१४॥
'तद्भस्मस्पर्शसभूततापः' कृष्णाङ्गसगमात्। 'अवाप बलदेवोऽपि' सम समीलितेक्षण ॥१५॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त शकर को प्रणाम कर बाण घर से बाहर निकला और पताके का भग्न देखकर बड़ा आनन्दित हुआ ॥४॥ इसी समय योगविद्या के बल से उत्तमा सखी चित्रलेखा अनिरुद्ध को ले आई ॥५॥ कन्या पुर मे उषा के साथ रमण करते हुए अनिरुद्ध का पता पाकर रक्षको ने दैत्यराज से जाकर निवेदन कर दिया ॥६॥ उस महात्मा ने अनिरुद्ध को मार देने के लिए सेवको को आज्ञा दे दी। पर वीर शत्रुओ के नाशकर्ता अनिरुद्ध ने लोहे का मुदगर लेकर सैनिको को नष्ट कर दिया। सेनाओ के निहत हो जाने पर अनिरुद्ध का वध करने के लिए उद्यत बाण भी रथारूढ होकर शक्तिभर युद्ध करने लगा। पर अनिरुद्ध ने उसे हरा दिया। तब मत्रसिद्ध बाण माया से युद्ध करने लगा और अन्तत सर्पास्त्र से यदुकुमार को बाध दिया ॥७-९॥ (अनिरुद्ध के चले आने पर) द्वारका मे यादवगण बोलने लगे—'अनिरुद्ध कहाँ गये ?' (उसी समय) नारद ने (कही से आकर) बाण द्वारा बाध गये अनिरुद्ध का समाचार सुना दिया ॥१०॥ विद्या मे निपुण स्त्री, अनिरुद्ध को शोणितपुर ले गई' यह सुनकर यादवो को विश्वास हो गया ॥११॥ तदनन्तर गरुड पर चढकर कृष्ण बलभद्र और प्रद्युम्न को साथ लेकर शोणितपुर के लिए तुरन्त प्रस्थित हो गये। नगर मे प्रवेश करने से पूर्व महाबलशाली प्रमथगणो के साथ उनका युद्ध छिड गया। हरि उनका नाश करके बाण-पुर के समीप पहुँचे। तब शकर का तीन पैर तथा तीन शिर वाला महाज्वर बाण की रक्षा के निमित्त कृष्ण से युद्ध करने लगा ॥१२-१४॥ कृष्ण के अग से स्पर्श हो जाने के कारण बलदेव को भी महा ज्वर के भस्म-स्पश से उत्पन्न ताप लग गया। उन्होने आखें मूद ली। तब वैष्णव ज्वर ने कृष्ण के साथ युद्ध करते

१ख ०म तैरि०। २ग ०मात्र ग०। ३क तद्वच्च कृष्णस०। ४ग ०तस्ताप० कृ०। ५ अत्यजद्वल०। ६ग. ०पि श्रममुन्मीलि०।

तत सयुध्यमानस्तु सह देवेन शार्ङ्गिणा। वैष्णवेन ज्वरेणाऽऽशु कृष्णदेहान्निराकृत ॥१६॥
नारायणभुजाघातपरिपीडनविह्वलम्। त वीक्ष्य क्षम्यतामस्येत्याह देव पितामह[१] ॥१७॥
ततश्च क्षान्तमेवेति प्रोच्य त वैष्णव ज्वरम्। आत्मन्येव लय निन्ये भगवान्मधुसूदन ॥१८॥
मम त्वया सम युद्ध ये स्मरिष्यन्ति मानवा। विज्वरास्ते भविष्यन्तीत्युक्त्वा चैन ययौ हरि ॥१९॥
ततोऽग्नीन्भगवान्पञ्च जित्वा नीत्वा क्षय तथा। दानवानां बल विष्णुश्चूर्णयामास लीलया ॥२०॥
तत समस्तसैन्येन दैतेयाना बले सुत। युयुधे शकरश्चैव कार्तिकेयश्च शौरिणा ॥२१॥
हरिशकरयोर्युद्धमतीवाऽऽसीत्सुदारुणम्। चुक्षुभु सकला लोका शस्त्रास्त्रैर्बहुधार्दिता ॥२२॥
प्रलयोऽयमशेषस्य जगतो नूनमागत। मेनिरे त्रिदशा यत्र वर्तमाने महाहवे[२] ॥२३॥
जृम्भणास्त्रेण गोविन्दो जृम्भयामास शकरम्। तत प्रणेशुर्दैतेया प्रमथाश्च समन्तत ॥२४॥
जृम्भाभिभूतश्च हरो रथोपस्थमुपाविशत। न शशाक तदा योद्धु कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ॥२५॥
गरुडक्षतवाहुश्च प्रद्युम्नास्त्रेण पीडित। कृष्णहुकारनिर्धूतशक्तिश्चापययौ गुह ॥२६॥
जृम्भिते शकरे नष्टे दैत्यसैन्ये गुहे जिते। नीते प्रमथसैन्ये च सक्षय शार्ङ्गधन्वना ॥२७॥
नन्दीशसगृहीताश्वमधिरूढा महारथम्। बाणस्तत्राऽऽययौ योद्धु कृष्णकार्ष्णिबलै सह ॥२८॥
बलभद्रो महावीर्यो बाणसैन्यमनेकधा। विव्याध बाणै प्रद्युम्नो धर्मतश्चापलायत ॥२९॥

हुए माहेश्वर ज्वर को कृष्ण की देह से निकाल दिया ॥१५ १६॥ हरि की भुजाओ के आघात से परिपीडित माहेश्वर ज्वर को देखकर ब्रह्मा ने विष्णु से कहा—क्षमा कर दीजिये। विष्णु ने कहा—क्षमा हो है। तब भगवान् मधुसूदन ने वैष्णव ज्वर को अपने मे लीन कर लिया और माहेश्वर ज्वर से कहा—जो मनुष्य तुम्हारे इस युद्ध का स्मरण करेंगे वे विज्वर हो जायेंगे। इतना कहकर हरि आगे बढे ॥१७ १९॥ तब भगवान ने पाच अग्नियो को जीतकर दानवो की सेना को आसानी से चूर-चूर कर दिया। तब समस्त सैनिको से युक्त बाण शकर और कार्तिकेय कृष्ण से युद्ध करने लगे। हरि और शिव मे बडा भयकर युद्ध छिड गया। अनेक बार अस्त्र शस्त्रो से पीडित सकल लोक कापने लगे। उस युद्ध की विद्यमानता मे देवगण सोचने लगे कि निश्चय ही अब सपूर्ण जगत मे प्रलय मच जायगा। गोविन्द ने जृम्भणास्त्र का प्रयोग किया जिससे शकर को जँभाई आने लगी। तब चारो ओर दैत्य और प्रमथगण नष्ट होने लगे ॥२० २४॥ जँभाई से अभिभूत शिव महापराक्रमी कृष्ण के साथ युद्ध करने मे असमर्थ होकर रथ पर बैठ गये। गरुड ने कार्तिकेय की बाहुओ को क्षत विक्षत कर दिया। प्रद्युम्न ने अस्त्र से उसे पीडित किया। कृष्ण ने हुकार से उसका शक्ति नष्ट कर दी। फिर वह टिक नही सका। जब शकर जृम्भास्त्र के वशीभूत हो गये दानव सेनाय नष्ट हो गई कार्तिकेय पराजित हो गये और प्रमथ-सेना को भी कृष्ण क्षीण कर चुके तब सारथि के रूप मे शिव को लेकर रथारूढ बाण कृष्ण तथा उनकी सेना से युद्ध करने के लिए वहाँ आ पहुँचा ॥ २५ २८॥ महापराक्रमी बलभद्र तथा धर्मत न भागने वाले प्रद्युम्न ने बाणो से बाण की सेना को कई बार आहत किया। बलराम ने हल के अग्रभाग तथा मुशल

१ग ज्वर:०। २क महारण।

आकृष्य लाङ्गलाग्रेण मुशलेन च पोथितम्। बलं बलेन ददृशे बाणो बाणैश्च चक्रिणः ॥३०॥
ततः कृष्णस्य बाणेन युद्धमासीत्समासतः। परस्परं तु संदीप्तान्कायत्राणविभेदिनः ॥३१॥
कृष्णश्चिच्छेद बाणांस्तान्बाणेन प्रहिताञ्शरैः। बिभेद केशवं बाणो बाणं विव्याध चक्रधृक् ॥३२॥
मुमुचाते तथाऽस्त्राणि बाणकृष्णौ जिगीषया। परस्परक्षतिपरौ परिघांश्च ततो द्विजा ॥३३॥
छिद्यमानेष्वशेषेषु शस्त्रेष्वस्त्रे च सीदति। प्राचुर्येण हरिर्बाणं हन्तुं चक्रे ततो मनः ॥३४॥
ततोऽर्कशतसंभूततेजसा सदृशद्युति। जग्राह दैत्यचक्रारिर्हरिश्चक्रं सुदर्शनम् ॥३५॥
मुञ्चतो बाणनाशाय तच्चक्रं मधुविद्विषः। नग्ना दैतेयविद्याऽभूत्कोटरी पुरतो हरेः ॥३६॥
तामग्रतो हरिर्दृष्ट्वा मीलिताक्षः सुदर्शनम्। मुमोच बाणमुद्दिश्य छेत्तुं बाहुवनं रिपोः ॥३७॥
क्रमेणास्य तु बाहूनां बाणस्याच्युतचोदितम्। छेदं चक्रेऽसुरस्याऽऽशु शस्त्रास्त्रक्षेपणाद्द्रुतम् ॥३८॥
छिन्ने बाहुवने तत्तु करस्थं मधुसूदनः। मुमुक्षुर्बाणनाशाय विज्ञातस्त्रिपुरद्विषा ॥३९॥
स उत्पत्याऽऽह गोविन्दं सामपूर्वमुमापतिः। विलोक्य बाणं दोर्दण्डच्छेदासृक्स्रावर्षिणम् ॥४०॥

रुद्र उवाच

कृष्ण कृष्ण जगन्नाथ जाने त्वा पुरुषोत्तमम्। परेशं परमात्मानमनादिनिधनं परम् ॥४१॥
देवतिर्यङ्मनुष्येषु शरीरग्रहणात्मिका। लीलेयं तव चेष्टा हि दैत्यानां वधलक्षणा ॥४२॥
तत्प्रसीदाभयं दत्तं बाणस्यास्य मया प्रभो। तत्त्वया नानृतं कार्यं यन्मया व्याहृतं वचः ॥४३॥

से और कृष्ण ने बाणो से शत्रु की सेना को तहस-नहस कर दिया। तब कृष्ण और बाण मे घोर युद्ध होने लगा। बाण के द्वारा प्रक्षिप्त कवचभेदी बाणो को कृष्ण अपने शरो से काट देते थे। बाण केशव को वेध करता था और केशव बाण को। वे दोनो विजय की इच्छा से अस्त्रो को छोडते थे। तब परस्पर क्षति पहुँचाने मे व्याकुल दोनो व्यक्ति मुसलो का प्रयोग करने लगे। समस्त अस्त्र-शस्त्रो के छिन्न-भिन्न हो जाने पर हरि ने बाण को मार देने का विचार किया। अनन्तर दैत्य-समूह नाशन हरि ने सैकडो सूर्य के समान प्रकाशमान सुदर्शन चक्र को उठा लिया। ॥२९-३५॥ बाण के नाश के लिये चक्र छोडते हुए मधुसूदन के आगे कोटरी नामक राक्षसी विद्या नग्न होकर खडी हो गई। उसे सामने देखकर हरि ने नेत्र को बद कर लिया और शत्रु की भुजा रूपी वन को काटने के लिए बाण को उद्देश्य करके सुदर्शन छोड दिया। कृष्ण के छोडे हुए चक्र ने क्रमश बाण की सारी भुजाओ को शस्त्रास्त्र फेंकने से भी पहले द्रुत गति से काट डाला। बाहु समूह के विच्छिन्न हो जाने पर शकर-द्रोह-ज्ञाता मधुसूदन ने बाण-नाश के लिए छोडे हुए चक्र को अपने हाथ मे ले लिया। बाँहो के कट जाने से शोणित-वर्षा करते हुए बाण को देखकर महादेव गोविन्द के पास जाकर प्रार्थना करने लगे ॥३६-४०॥

रुद्र ने कहा—कृष्ण, कृष्ण ! जगन्नाथ ! मैं जानता हूँ कि आप पुरुषोत्तम, परमात्मा, ईश्वर तथा जन्म-मरण से रहित हैं। दैत्यो का वध करने के लिए देव, पक्षी तथा मनुष्य का शरीर जो आप धारण करते हैं, यह तो आपकी लीला है। प्रभो ! प्रसन्न होइये। मैंने बाण को अभयदान दिया है। मेरे वचन को मिथ्या मत कीजिए।

अस्मत्संश्रयवृद्धोऽयं नापराधस्तवाव्यय। मया दत्तवरो दैत्यस्ततस्त्वा क्षमयाम्यहम् ॥४४॥

व्यास उवाच

इत्युक्त प्राह गोविन्द शूलपाणिमुमापतिम्। प्रसन्नवदनो भूत्वा गतामर्षोऽसुर प्रति ॥४५॥

श्रीभगवानुवाच

युष्मद्दत्तवरो बाणो जीवतादेष शंकर। त्वद्वाक्यगौरवादेतन्मया चक्र निवर्तितम ॥४६॥
त्वया यद्भय दत्त तद्दत्तमभय मया। मत्तोऽविभिन्नमात्मान द्रष्टुमर्हसि शंकर ॥४७॥
योऽहं स त्व जगच्चेद सदेवासुरमानुषम्। अविद्यामोहितात्मान पुरुषा भिन्नदर्शिन[1] ॥४८॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा प्रययौ कृष्ण प्राद्युम्निर्यत्र तिष्ठति। तद्‌बन्धफणिनो नेशुर्गरुडानिलशोषिता ॥४९॥
ततोऽनिरुद्धमारोप्य सपत्नीक गरुत्मति। आजग्मुर्द्वारका रामकार्ष्णिदामोदरा पुरीम् ॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बाणयुद्धे षडधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२०६॥

यह मेरे आश्रय मे रहकर समृद्ध हुआ है। आपका कोई अपराध नही है। मैंने इस दैत्य को वरदान दिया था। इस लिए क्षमा करव रहा हूँ ॥४१-४४॥

व्यास ने कहा—इतना कहने पर गोविन्द राक्षस के प्रति क्रोध त्याग कर प्रसन्नमुख हो शूलप णि उमापति से कहने लगे ॥४५॥

श्री भगवान् ने कहा—शकर! आपने जब इसे वरदान दिया है तब यह जीवित रहे। आपके वचन की प्रतिष्ठा के कारण मैंने चक्र को निवृत्त कर लिया है। आपने जो अभय दान दिया वह (मानो) मैंने अभय दान दिया। आप मुझ अपने से अलग न समझें। शिव! जो मैं हूँ वही आप तथा देव राक्षस मनुष्य सहित यह सपूर्ण जगत है। अविद्या से मोहित चित्त वाले पुरुष भिन्नदर्शी होते हैं ॥४६ ४८॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर कृष्ण वहाँ गये जहाँ अनिरुद्ध था। अनिरुद्ध को बाँधे हुए सर्पगण गरुड के वायु से शोषित होकर नष्ट हो गये। तदनन्तर पत्नी सहित अनिरुद्ध को गरुड पर चढाकर कृष्ण राम अपनी द्वारिकापुरी आ गये ॥४९ ५०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे बाण-युद्ध प्रसग मे दो सौ छठा अध्याय समाप्त ॥२०६॥

---

[1] ख ०दर्शनाः। इ०।

अथ सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः

पौण्ड्रकवधवर्णनम्

मुनय ऊचु

चक्रे कर्ममहच्छौरिर्बिभ्रद्यो मानुषीं तनुम्। जिगाय शक्रं शर्वं च सर्वदेवांश्च लीलया॥१॥
यच्चान्यदकरोत्कर्म [1]दिव्यचेष्टाविघातकृत्। कथ्यतां तन्मुनिश्रेष्ठ परं कौतूहलं हि नः॥२॥

व्यास उवाच

गदतो मे मुनिश्रेष्ठा श्रूयतामिदमादरात्। नरावतारे कृष्णेन दग्धा वाराणसी यथा॥३॥
पौण्ड्रको वासुदेवश्च वासुदेवोऽभवद्भुवि। अवतीर्णस्त्वमित्युक्तो जनैरज्ञानमोहितैः॥४॥
स मेने वासुदेवोऽहमवतीर्णो महीतले। नष्टस्मृतिस्ततः सर्वं विष्णुचिह्नमचीकरत्॥
दूतं च प्रेषयामास[2] स कृष्णाय[3] द्विजोत्तमाः॥५॥

दूत उवाच

त्यक्त्वा चक्रादिकं चिह्नं मदीयं नाम माऽऽत्मनः। वासुदेवात्मकं मूढ मुक्त्वा सर्वमशेषतः॥६॥
आत्मनो जीवितार्थं च तथा मे प्रणतिं व्रज॥७॥

अध्याय २०७

पौण्ड्रक-वध-वर्णन

मुनियों ने कहा—कृष्ण ने मनुष्य-शरीर धारण कर महान् कार्य किया जो कि इन्द्र, शिव तथा अखिल देवों को सहज ही में जीत लिया। मुनिश्रेष्ठ! दिव्यचेष्टानाशन कृष्ण ने और जो कार्य किया वह हमें बतलाइये हमें बड़ा उत्कण्ठा है॥१-२॥

व्यास ने कहा—मुनिवर! आदरपूर्वक सुनिये मैं कहता हूँ। नरावतार में कृष्ण ने काशीपुरी को जलाया। पौण्ड्रक और वासुदेव—दो कृष्ण पृथ्वी पर हो गये। अर्थात् अज्ञानमोहित व्यक्तियों ने पौण्ड्रक से कहा—तुम अवतारी पुरुष हो। उसने स्वयं भी अपने को समझा कि मैं वासुदेव हूँ पृथ्वी पर अवतीर्ण हूँ। द्विजश्रेष्ठ! पश्चात् उसने सब कुछ भूलकर अपने शरीर में विष्णु के चिह्नों का धारण किया और कृष्ण के पास एक दूत भेजा॥३-५॥

दूत ने कहा—मूर्ख! तू मेरे चक्र आदि चिह्नों को तथा वासुदेव नाम को त्याग दे और यदि जीने की इच्छा है तो मुझे आकर प्रणाम कर॥६-७॥

---

[1] क. ख. ॰ऽप्यमित्रा॰। [2] क. ख. ॰स कृ॰। [3] क. ख. ॰य सुमहात्मने। स्य॰।

व्यास उवाच

इत्युक्त स प्रहस्यैव दूत प्राह जनार्दन ॥८॥

श्रीभगवानुवाच

निजचिह्नमह चक्र समुत्स्रक्ष्ये त्वयीति वै। वाच्यश्च पौण्ड्को गत्वा त्वया दूत वचो मम ॥९॥
ज्ञातस्त्वद्वाक्यसदभावो यत्कार्यं तद्विधीयता। गृहीतचिह्न एवाहमागमिष्यामि ते पुरम् ॥१०॥
उत्स्रक्ष्यामि च ते चक्र निजचिह्नमसशयम्। आज्ञापूर्वं च यदिदमागच्छेति त्वयोदितम् ॥११॥
सपादयिष्ये श्वस्तुभ्य तदप्येषोऽविलम्बितम्। शरण ते समभ्येत्य कर्तास्मि नृपते तथा ॥
यथा त्वत्तो भय भूयो नैव किंचिद्भविष्यति ॥१२॥

व्यास उवाच

इत्युक्तेऽपगते दूते सस्मृत्याभ्यागत हरि। गरुत्मन्त समारुह्य त्वरित तत्पुर ययौ ॥१३॥
तस्यापि केशवोद्योग श्रुत्वा काशिपतिस्तदा। सर्वसैन्यपरीवारपार्ष्णिग्राहमुपाययौ ॥१४॥
ततो बलेन महता काशिराजबलेन च। पौण्ड्को वासुदेवोऽसौ केशवाभिमुख ययौ ॥१५॥
त ददर्श हरिर्दूरादुदारस्यन्दने स्थितम्। चक्रशाङ्र्गगदापाणि पाणिना विधृताम्बुजम् ॥१६॥
स्रग्धर धृतशार्ङ्ग च सुपर्णरचनाध्वजम्। वक्ष स्थलकृत, चास्य श्रीवत्स ददृशे हरि[१] ॥१७॥
किरीटकुण्डलधर पीतवाससमन्वितम्। दृष्ट्वा त भावगम्भीर जहास 'मधुसूदन' ॥१८॥

व्यास ने कहा—इतना कहने पर जनार्दन हँसकर दूत से कहने लगे ॥८॥

श्रीभगवान् ने कहा—दूत ! तुम जाकर पौण्ड्रक से कहना कि मैं उनके सामने अपने चिह्न-चक्र का परित्याग कर दूगा। उनके वाक्य का आशय मैं समझता हूँ। वे अपना काय करें। मैं चिह्न सहित उनके नगर मे आऊँगा। यदि तुम्हारे कहने पर वे मुझ आने के लिए आज्ञा देंगे तो नि सदेह मैं अपने चिह्न चक्र को छाड दूगा। उनका कल्याण हो। मैं शीघ्र ही यह कार्य करूँगा। उनकी शरण मे जाकर मैं सब कुछ करूँगा जिससे फिर मुझ उनसे कोई भय न रहे॥९ १२॥

व्यास ने कहा—यह सुनकर दूत चला गया। हरि आगन्तुक का स्मरण कर तुरन्त गरुड पर चढकर पौण्ड्रक के नगर के लिए प्रस्थित हो गये। कृष्ण के प्रयत्न के बारे म सुनकर काशीनरेश समस्त सैनिका से युक्त होकर शत्रु से सघर्ष करने के लिए चल पडा। तब अपनी बडी सेना तथा काशीपति की सेना के साथ वासुदेव रूपधारी पौण्ड्रक भी केशव के सामने गया। हरि ने विशाल रथ पर स्थित मालाधारी धनुषधारी गरुडचिह्नित पताका स युक्त, वक्ष स्थल पर श्रीवत्सचिह्न से विभूषित मुकुट-कुण्डलधारी पीतवस्त्रसमन्वित तथा हाथो मे शख, चक्र, गदा पद्म लिये पौण्ड्रक को दूर से ही देखा। भावगम्भीर पौण्ड्रक को देखकर मधुसूदन हँसने लगे। द्विजगण !

१क गरुडध्वज.।

युयुधे च बलेनास्य हस्त्यश्वबलिना द्विजाः। निस्त्रिंशर्ष्टिगदाशूलशक्तिकार्मुकशालिना ॥१९॥
क्षणेन शार्ङ्गनिर्मुक्तैः शरैरग्निविदारणैः। गदाचक्रातिपातैश्च सूदयामास तद्बलम् ॥२०॥
काशिराजबलं चैव क्षयं नीत्वा जनार्दनः। उवाच पौण्ड्रकं मूढमात्मचिह्नोपलक्षणम् ॥२१॥

श्रीभगवानुवाच

पौण्ड्रकोक्तं त्वया यत्तद्दूतवक्त्रेण मा प्रति। समुत्सृजेति चिह्नानि तत्ते संपादयाम्यहम् ॥२२॥
चक्रमेतत्समुत्सृष्टं गदेयं ते विसर्जिता। गरुत्मानेष निर्दिष्टः समारोहतु ते ध्वजम् ॥२३॥
इत्युच्चार्य विमुक्तेन चक्रेणासौ विदारितः। 'पोथितो गदया भग्नो गरुत्मांश्च गरुत्मता ॥२४॥
ततो हाहाकृते लोके 'काशीनामधिपस्तदा। युयुधे वासुदेवेन मित्रस्यापचितौ स्थितः ॥२५॥
ततः शार्ङ्गविनिर्मुक्तैश्छित्त्वा तस्य शरैः शिरः। काशिपुर्यां स चिक्षेप कुर्वँल्लोकस्य विस्मयम् ॥२६॥
हत्वा तु पौण्ड्रकं शौरिः काशिराजं च सानुगम्। रेमे द्वारवतीं प्राप्तोऽमरः स्वर्गगतो यथा ॥२७॥
तच्छिरः पतितं तत्र दृष्ट्वा काशिपतेः पुरे। जनः किमेतदित्याह केनेत्यत्यन्तविस्मितः ॥२८॥
ज्ञात्वा तं वासुदेवेन हतं तस्य सुतस्ततः। पुरोहितेन सहितस्तोषयामास शंकरम् ॥२९॥
अविमुक्ते महाक्षेत्रे तोषितस्तेन शंकरः। वरं वृणीष्वेति तदा तं प्रोवाच नृपात्मजम् ॥३०॥
स वव्रे भगवन्कृत्या पितुर्हन्तुर्वधाय मे। समुत्तिष्ठतु कृष्णस्य त्वत्प्रसादान्महेश्वरः ॥३१॥

तलवार, गदा, शूल, शक्ति, धनुष तथा हाथी-घोड़ो से युक्त सैनिको से कृष्ण युद्ध करने लगे। क्षण मे ही जनार्दन ने अपने अग्निवर्षी बाणो से तथा गदा-चक्र से उसकी सेना को विनष्ट कर दिया। काशीपति की सेना का भी संहार करके कृष्ण ने निजचिह्न से युक्त मूर्ख पौण्ड्रक से कहा ॥१९-२१॥

श्रीभगवान् ने कहा—पौण्ड्रक! तुमने दूत के मुख से जो मुझे चिह्न त्याग देने को कहलाया था, उस काम को मैं कर रहा हूँ। इस चक्र को मैंने छोड दिया। तुम्हारे लिए इस गदा को भी छोड दिया, यह गरुड तुम्हारी पताका धारण करे। इतना कहकर कृष्ण ने चक्र छोड दिया। चक्र ने पौण्ड्रक को फाड डाला, गदा ने उसे चूर-चूर कर डाला, गरुड ने उसकी ध्वजा का नाश कर दिया। तब लोगो मे हाहाकार मच गया। मित्र-क्षय होने पर काशीपति वासुदेव से युद्ध करने लगा। तब लोगो को आश्चर्यित करते हुए कृष्ण ने अपने बाणो से उसका शिर काट कर काशीपुरी मे फेंक दिया। वासुदेव काशिराज सहित पौण्ड्रक को मार कर द्वारका मे उसी प्रकार रमण करने लगे, जैसे स्वर्ग मे देवता। काशीपुरी मे गिरे हुए उसके शिर को देखकर लोग 'यह क्या' कहकर अत्यन्त विस्मित हुए। 'वासुदेव ने मारा' यह जानकर काशीपति का पुत्र पुरोहित सहित शंकर को सतुष्ट करने लगा। अविमुक्त नामक महाक्षेत्र मे राज पुत्र से प्रसन्न होकर शंकर ने उससे वर मागने को कहा। उसने वर मागा—'महेश्वर! आपकी कृपा से मेरे पिता के वधकर्ता कृष्ण को मारने के लिए कृत्या उत्पन्न हो ॥२२-३१॥

१ग. पावितो। २ग. ०म रिपुर्बली। यु०।

व्यास उवाच

एवं भविष्यतीत्युक्ते दक्षिणाग्नेरनन्तरम्। महाकृत्या समुत्तस्थौ तस्यैवाग्निनिवेशनात् ॥३२॥
ततो ज्वालाकरालास्या ज्वलत्केशकलापिका¹। कृष्ण कृष्णेति कुपिता ²कृत्वा द्वारवतीं ययौ ॥३३॥
तामवेक्ष्य जनः सर्वो रौद्रां विकृतलोचनाम्। ययौ शरण्यं जगतां शरणं मधुसूदनम् ॥३४॥

जना ऊचुः

काशिराजसुतेनेयमाराध्य वृषभध्वजम्। उत्पादिता महाकृत्या वधाय तव चक्रिणः ॥
जहि कृत्यामिमामुग्रां वह्निज्वालाजटाकुलाम् ॥३५॥

व्यास उवाच

चक्रमुत्सृष्टमक्षेषु क्रीडासक्तेन लीलया। तदग्निमालाजटिलं ज्वालोद्गारातिभीषणम् ॥३६॥
कृत्यामनुजगामाऽऽशु विष्णुचक्रं सुदर्शनम्। ततः सा चक्रविध्वस्ता कृत्या माहेश्वरी तदा ॥३७॥
जगाम वेगिनी वेगात्तदप्यनुजगाम ताम्। कृत्या वाराणसीमेव प्रविवेश त्वरान्विता ॥३८॥
विष्णुचक्रप्रतिहतप्रभावा मुनिसत्तमाः। ततः काशिबलं भूरि प्रमथानां तथा बलम् ॥३९॥
समस्तशस्त्रास्त्रयुतं चक्रस्याभिमुखं ययौ। शस्त्रास्त्रमोक्षबहुलं दग्ध्वा तद्बलमोजसा ॥४०॥
कृत्वाऽक्षेमामशेषां तां पुरीं वाराणसीं ययौ। प्रभूतभृत्यपौरां तां साश्वमातङ्गमानवाम् ॥४१॥

व्यास ने कहा—शिवने कहा—'ऐसा ही होगा।' पश्चात् अग्निकुण्ड से महाकृत्या उत्पन्न हुई, जिसके मुँह और केश ज्वालाओं से भयंकर हो रहे थे। वह क्रोध से 'कृष्ण-कृष्ण' बोलती हुई द्वारका पहुँची। रुद्र की उस विकृत नेत्र वाली कृत्या को देखकर लोग अखिललोकरक्षक मधुसूदन की शरण में गये ॥३२-३४॥

लोगों ने कहा—काशिराज के पुत्र ने शंकर की आराधना करके आपके वध के निमित्त महाकृत्या को उत्पन्न कराया है। अग्निज्वाला से व्याप्त जटा वाली इस भीषण कृत्या को आप मारिये ॥३५॥

व्यास ने कहा—द्यूत-क्रीडा में आसक्त कृष्ण ने लीला करने के लिए अपना चक्र छोड़ दिया। अग्नि-पुञ्ज से व्याप्त तथा ज्वालाओं से अतिभयानक सुदर्शन चक्र शीघ्रता से कृत्या का पीछा करने लगा। चक्र की चोट खाकर शिव की कृत्या वेग से गमन करने लगी। चक्र ने भी वेग से उसका अनुसरण किया। विष्णु चक्र ने उसकी शक्ति को नष्ट कर दिया। वह शीघ्रता से वाराणसी में प्रविष्ट हुई। मुनिवर[1] तब काशीपति की सेना और प्रमथगण समस्त शस्त्र-अस्त्रों से युक्त होकर चक्र के सामने आये। चक्र ने शस्त्र-अस्त्र छोड़ने में व्यस्त सारी सेना को दग्ध कर संपूर्ण वाराणसी पुरी को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। प्रचुर सेवकों तथा पुरवासियों से युक्त-

---

१क ख ०पिनी। कृ०। २ख कृत्या।

अशेषदुर्गकोष्ठां ता दुर्निरीक्ष्यां सुरैरपि। ज्वालापरिवृताशेषगृहप्राकारतोरणाम् ॥४२॥
ददाह[1] ता पुरीं चक्र सकलामेव सत्वरम्[2]। अक्षीणामर्षमत्यल्पसाध्यसाधननिस्पृहम्[3] ॥४३॥
तच्चक्र प्रस्फुरद्दीप्ति विष्णोरभ्याययौ करम् ॥४४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते पौण्ड्रकवासुदेववधे काशीदाहवर्णनं नाम सप्ताधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२०७॥

अथाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः

बलदेवमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे भूयो बलभद्रस्य धीमत । मुने पराक्रम शौर्यं तन्नो व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥
यमुनाकर्षणादीनि श्रुतान्यस्माभिरत्र वै। तत्कथ्यता महाभाग यदन्यत्कृतवान्बल ॥२॥

व्यास उवाच

शृणुध्व मुनय कर्म यद्रामेणाभवत्कृतम्। अनन्तेनाप्रमेयेन शेषेण धरणीभृता ॥३॥
दुर्योधनस्य तनया स्वयवरकृतेक्षणाम्। बलादादत्तवान्वीर साम्बो जाम्बवतीसुत ॥४॥

परकोटे तथा तोरणा से युक्त उस समग्र पुरी को शीघ्र ही चक्र ने जला दिया। अनन्तर साधनो से नि स्पृह अक्षीण क्रोध वाला वह कान्तिमान् चक्र विष्णु के हाथ मे आ गया ॥३६ ४३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे श्रीकृष्णचरित्रोपक्रम मे पौण्ड्रक वासुदेव के वध प्रसग मे काशीदाह-वर्णन नामक दो सौ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥२०७॥

अध्याय २०८

बलदेव का माहात्म्य-वर्णन

मुनियो ने कहा—मुने ! पुन हम धीमान बलभद्र की वीरता तथा पराक्रम के बारे मे सुनना चाहते हैं आप वर्णन करें ॥१ २॥

व्यास ने कहा—मुनिवृन्द ! अनन्त अप्रमेय शेष तथा धरणीधर राम ने जो किया वह आप सुनिये। जाम्बवतीपुत्र वीर साम्ब ने दुर्योधन की पुत्री को स्वयवर मे बलात् पकड लिया। तब क्रुद्ध बलशाली कर्ण दुर्योधन

१ग ०ह तद्धरेश्चक्र। २ख ०म्। सुक्षीणसारा कृत्वेमा सा०। ३ख० ०नकारकम्।

ततः क्रुद्धा महावीर्याः कर्णदुर्योधनादयः। भीष्मद्रोणादयश्चैव[1] बबन्धुर्युधि निर्जितम् ॥५॥
तच्छ्रुत्वा यादवाः सर्वे क्रोधं दुर्योधनादिषु। मुनयः प्रतिचक्रुश्च तान्विहन्तुं महोद्यमम् ॥६॥
तान्निवार्य बलः प्राह मदलोलाकुलाक्षरम्। मोक्ष्यन्ति ते मद्वचनाद्यास्याम्येको हि कौरवान् ॥७॥
बलदेवस्ततो गत्वा नगरं नागसाह्वयम्। बाह्योपवनमध्येऽभून्न[2] विवेश च तत्पुरम्[3] ॥८॥
बलमागतमाज्ञाय तदा दुर्योधनादयः। गामर्घमुदकं चैव रामाय प्रत्यवेदयन् ॥
गृहीत्वा विधिवत्सर्वं ततस्तानाह कौरवान् ॥९॥

बलदेव उवाच

आज्ञापयत्युग्रसेनः साम्बमाशु विमुञ्चत ॥१०॥

व्यास उवाच

ततस्तद्वचनं श्रुत्वा भीष्मद्रोणादयो द्विजाः। कर्णदुर्योधनाद्याश्च चुक्रुधुर्द्विजसत्तमाः ॥११॥
ऊचुश्च कुपिताः सर्वे बाह्लिकाद्याश्च भूमिपाः। अराजार्हं यदोर्वंशमवेक्ष्य मुशलायुधम् ॥१२॥

कौरवा ऊचुः

भो भोः किमेतद्भवता बलभद्रेरितं वचः। आज्ञां कुरुकुलोत्थानां यादवः कः प्रदास्यति ॥१३॥
उग्रसेनोऽपि यद्याज्ञां कौरवाणां प्रदास्यति। तदलं पाण्डुरैश्छत्रैर्नृपयोग्यैरलंकृतैः ॥१४॥
तद्गच्छ बलभद्र त्वं साम्बमन्यायचेष्टितम्। विमोक्ष्यामो न भवतो नोग्रसेनस्य शासनात् ॥१५॥

भीष्म, द्रोण आदि ने युद्ध मे पराजित साम्ब को बाँध दिया। मुनिगण ! यह सुनकर यादवो को दुर्योधन आदि के ऊपर क्रोध हुआ। वे उनको मारने के लिए तैयारी करने लगे। पर बलभद्र ने उन्हे रोक कर अभिमानपूर्ण वाक्य कहा—'मेरे कहने से वे लोग छोड देंगे। मैं अकेला ही कौरवो के पास जाऊँगा।' तत्पश्चात् बलदेव हस्तिनापुर पहुँच कर नगर के उपवन मे ही ठहरे, पुरी मे प्रविष्ट नहीं हुए। बलराम के आगमन को जानकर दुर्योधन प्रभृति ने राम को अर्घ्य-जल-पाद्य समर्पित किये। राम ने विधिपूर्वक सब कुछ ग्रहण कर कौरवो से कहा ॥३-९॥

बलदेव बोले—उग्रसेन की आज्ञा है कि तुम लोग शीघ्र साम्ब को छोड दो ॥१०॥

व्यास ने कहा—द्विजगण ! राम के वचन को सुनकर भीष्म, द्रोण, कर्ण, दुर्योधन आदि क्रुद्ध हो गये। बाह्लिक आदि समस्त नृपगण 'यदुवश राजवश नहीं है' यह सोचकर बलदेव की ओर लक्ष्य करके बोले ॥११-१२॥

कौरवो ने कहा—बलभद्र जी ! यह आपने क्या कह दिया। कौरवो को आज्ञा देने वाला यादव कौन होता है? यदि उग्रसेन भी कौरवो को आज्ञा दे तो नृपयोग्य अलकृत श्वेतच्छत्र धारण करने से क्या लाभ? बलभद्र ! इसलिये आप चले जायें। न आपके कहने से न उग्रसेन की आज्ञा से हम इस अन्यायी साम्ब को छोडेंगे।

---

[1] क. ख. ०श्चैव ब०। [2] ख ०भूद्विवे०। [3] ख. तत पुरम्। ब०।

प्रणतिर्या कृतास्माकं मान्यानां कुकुरान्धकैः। न नाम सा कृता केयमाज्ञा स्वामिनि भृत्यत ॥१६॥
गर्वमारोपिता यूयं समानासनभोजनैः। को दोषो भवतां नीतिर्यत्प्रीणात्यनपेक्षिता ॥१७॥
अस्माभिरर्घ्यो भवता योऽयं बल निवेदितः। प्रेम्णैव न तदस्माकं कुलाद्युष्मत्कुलोचितम् ॥१८॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा कुरवः सर्वे नामुञ्चन्त हरेः सुतम्। कृतैकनिश्चयाः सर्वे विविशुर्गजसाह्वयम् ॥१९॥
मत्तः कोपेन चाऽऽघूर्णं ततोऽधिक्षेपजन्मना। उत्थाय पार्ष्ण्या वसुधां जघान स हलायुधः ॥२०॥
ततो विदारिता पृथ्वी पार्ष्णिघातान्महात्मनः। आस्फोटयामास तदा दिशः शब्देन पूरयन्
उवाच चातिताम्राक्षो भ्रुकुटीकुटिलाननः ॥२१॥

बलदेव उवाच

अहो महावलेपोऽयमसाराणां दुरात्मनाम्। कौरवाणामाधिपत्यमस्माकं किल कालजम् ॥२२॥
उग्रसेनस्य ये नाऽऽज्ञां मन्यन्ते चाप्यलङ्घनाम्। आज्ञां प्रतीच्छेद्धर्मेण सह देवैः शचीपतिः ॥२३॥
सदाऽध्यास्ते सुधर्मां तामुग्रसेनः शचीपतेः। धिङ्मनुष्यशतोच्छिष्टे तुष्टिरेषां नृपासने ॥२४॥
पारिजाततरोः पुष्पमञ्जरीर्वनिताजनः। बिभर्ति यस्य भृत्यानां सोऽप्येषां न महीपतिः ॥२५॥
समस्तभूभुजां नाथ उग्रसेनः स तिष्ठतु। अद्य निष्कौरवामुर्वीं कृत्वा यास्यामि तां पुरीम् ॥२६॥
कर्णं दुर्योधनं द्रोणमद्य भीष्मं सबाह्लिकम्। दुःशासनादीन्भूरिं च भूरिश्रवसमेव च ॥२७॥
सोमदत्तं शलं भीममर्जुनं सयुधिष्ठिरम्। यमजौ कौरवांश्चान्यान्हत्वा साश्वरथद्विपान् ॥२८॥

जिन कुकुर-अन्धक वंश वालों ने हमें प्रणाम किया, वे हमें आज्ञा दें! सेवक स्वामी पर शासन करे! हमने आप लोगों को समान आसन-भोजन देकर अभिमानी बना दिया। आपका दोष ही क्या है? यह तो नीति है। बल! हम जो आपकी पूजा करते हैं, वह केवल प्रेम के कारण। हमारे कुल का यह धर्म नहीं है कि हम आपके कुल की प्रतिष्ठा करें ॥१३-१८॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर कौरवों ने साम्ब को नहीं छोड़ा। सब एक निश्चय करके हस्तिनापुर में प्रविष्ट हुए। आक्षेपजन्य क्रोध से मत्त होकर बलदेव ने उठकर एँडी से पृथ्वी पर ठोकर मारी। महात्मा की एँडी के प्रहार से विदारित पृथ्वी दिशाओं को शब्द-पूर्ण करती हुई फटने लगी। आँखें लाल कर तथा मुँह-भौंह को कुटिल कर (अर्थात् त्योरी चढ़ाकर) बलदेव बोले ॥१९-२१॥

बलदेव ने कहा—अहो! तुच्छ दुरात्माओं को महान् गर्व हो गया है! हमारे ऊपर कौरवों का आधिपत्य हो गया है!! उग्रसेन की अलंघनीय आज्ञा को कौरव नहीं मानेंगे!! देवगण सहित इन्द्र धर्मपूर्वक उग्रसेन की आज्ञा चाहते हैं। उग्रसेन इन्द्र की देवसभा के अध्यक्ष हैं। सैकड़ों मनुष्यों के उच्छिष्ट राजसिंहासन से सतोष करने वाले इन (कौरवों) को धिक्कार है। जिन (उग्रसेन) के दासों की स्त्रियाँ कल्पवृक्ष के पुष्पों तथा मंजरियाँ धारण करती हैं, वे इनके शासक नहीं हैं? उग्रसेन समस्त राजाओं के अधिपति हों। आज ही मैं पृथ्वी को कौरव विहीन करके उस पुरी में जाऊँगा। आज ही हाथी, घोड़े तथा रथ सहित कर्ण, दुर्योधन, द्रोण,

वीरमादाय त साम्ब सपत्नीक तत पुरीम । द्वारकामुग्रसेनादीन्गत्वा द्रक्ष्यामि बान्धवान् ॥२९॥
अथवा कौरवादीना समस्त कुरुभि सह। भारावतरणे शीघ्र देवराजेन चोदित ॥३०॥
भागीरथ्या क्षिपाम्याशु नगर नागसाह्वयम ॥३१॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा 'क्रोधरक्ताक्षस्तालाङ्कोऽधोमुख हलम'। प्राकारवप्रे विन्यस्य चकर्ष मुशलायुध ॥३२॥
आघूर्णित तत्सहसा ततो वै हस्तिनापुरम। दृष्ट्वा सक्षुब्धहृदयाश्चुक्रुशु सर्वकौरवा ॥३३॥

कौरवा ऊचु

राम राम महाबाहो क्षम्यता क्षम्यता त्वया। उपसह्रियता कोप प्रसीद मुशलायुध ॥३४॥
एष साम्ब सपत्नीकस्तव निर्यातितो बल। अविज्ञातप्रभावाणा क्षम्यतामपराधिनाम ॥३५॥

व्यास उवाच

ततो निर्यातयामासु साम्ब पत्न्या समन्वितम। निष्क्रम्य स्वपुरीं तूर्णं कौरवा मुनिसत्तमा ॥३६॥
भीष्मद्रोणकृपादीना प्रणम्य वदता प्रियम। क्षान्तमेव मयेत्याह बलो बलवता वर ॥३७॥
अद्याप्याघूर्णिताकार लक्ष्यते तत्पुर द्विजा । एष प्रभावो रामस्य बलशौर्यवतो द्विजा ॥३८॥

भीष्म बाह्लिक दुशासन भूरि भूरिश्रवा सोमदत्त शल भीम अर्जुन युधिष्ठिर नकुल सहदेव तथा अन्य कौरवो को मैं मार दूगा। फिर पत्नी सहित वीर साम्ब को लेकर द्वारका जाऊँगा और भाई-बन्धुओ से मिलूगा। अथवा इन्द्र की प्रेरणा से पृथ्वी का भार उतारने के लिये समस्त कौरवों सहित हस्तिनापुर को गगा मे डुबो दूगा ॥२२ ३१॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर क्रोध से आख लाल किये मुशलधारी बलदेव ने हल को अधोमुख करके प्राचीर और स्तूप का विन्यास करके हल को खींचा। जिससे सम्पूर्ण हस्तिनापुर एकाएक घूमने लगा। यह देखकर समस्त कौरव व्यथितहृदय होकर चिल्लाने लगे ॥३२ ३३॥

कौरवो ने कहा—महाबाहो! राम! राम! क्षमा कीजिये क्षमा कीजिये। मुशलायुध! कृपा कीजिये क्रोध को हटाइये! बल! पत्नी सहित साम्ब प्रस्थान कर चुके। हमने आपके प्रभाव को नहीं जाना। हम अपराधियो को क्षमा कीजिये ॥३४ ३५॥

व्यास ने कहा—मुनिवर! कौरवो ने शीघ्रतापूर्वक अपनी नगरी से निकल कर पत्नी सहित साम्ब को विदा किया। बलवानो मे श्रेष्ठ बलदेव ने भीष्म द्रोण कृप आदि को प्रणाम करके कहा—क्षमा ही है। द्विजगण! आज भी हस्तिनापुर घूमा हुआ सा प्रतीत होता है। बल-वीरताशाली बलराम का यह प्रभाव

१ख ग ०क्त्वा मदर०। २ख ०क्ताक्ष मुखवप्रो०। ३ख ०म्। सप्रा०। ४ख ०कारा च नगरी च०।

ततस्तु कौरवा साम्ब सपूज्य हलिना सह। प्रेषयामासुरुद्वाहधनभार्यासमन्वितम् ॥३९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते बलदेवमाहात्म्यनिरूपण नामाष्टाधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२०८॥

अथ नवाधिकद्विशततमोऽध्याय.

द्विविदवानरवधवर्णनम्

व्यास उवाच

शृणुध्व मुनय सर्वे बलस्य बलशालिन। कृत यदन्यदेवाभूत्तदपि श्रूयता द्विजा ॥१॥
नरकस्यासुरेन्द्रस्य देवपक्षविरोधिन। सखाऽभवन्महावीर्यो द्विविदो नाम वानर ॥२॥
वैरानुबन्ध बलवान्स चकार सुरान्प्रति ॥३॥

द्विविद उवाच

नरक हतवा कृष्णो बलदर्पसमन्वितम्[१]। करिष्ये सर्वदेवाना तस्मादेव प्रतिक्रियाम ॥४॥

है। तदुपरान्त कौरवो ने बलराम सहित साम्ब की पूजा कर दान-दहेज देकर भार्या सहित साम्ब को बिदा किया ॥३६ ३९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे श्रीकृष्णचरित्र प्रसग मे बलदेव-माहात्म्य निरूपण नामक दो सौ आठवाँ अध्याय समाप्त ॥२०८॥

अध्याय २०९

द्विविद नामक वानर का वध-वर्णन

व्यास ने कहा—मुनिवृन्द! शक्तिशाली बलदेव ने और भी जो कार्य किये वे भी आप लोग सुन लीजिये। देवताओ के विरोधी राक्षसराज नरक का मित्र द्विविद नामक बन्दर था। बली द्विविद अपने मित्र के कारण देवताओं से वैर करने लगा ॥१ ३॥

द्विविद बोला—कृष्ण ने बल तथा गर्व से युक्त नरक को मार दिया है। इसलिए मैं समस्त देवो से इसका बदला लूगा ॥४॥

१क ०द्वामायो द्वि०। २क ०न्विता। क०।

व्यास उवाच

यज्ञविध्वंसनं कुर्वन्मर्त्यलोकक्षयं तथा। ततो विध्वंसयामास यज्ञानज्ञानमोहितः ॥५॥
बिभेद साधुमर्यादां क्षयं चक्रे च देहिनाम्। ददाह चपलो[1] देशं पुरग्रामान्तराणि च ॥६॥
क्वचिच्च पर्वतक्षेपाद्ग्रामादीन्समचूर्णयत्। शैलानुत्पाट्य तोयेषु मुमोचाम्बुनिधौ तथा ॥७॥
पुनश्चार्णवमध्यस्थः क्षोभयामास सागरम्। तेनातिक्षोभितश्चाब्धिरुद्वेलो जायते द्विजाः ॥८॥
[2]प्लावयन्नीरजान्ग्रामान्पुरादीनतिवेगवान्। कामरूपं महारूपं कृत्वा सस्यान्यनेकशः ॥९॥
लुठन्भ्रमणसंमर्दैः संचूर्णयति वानरः। तेन विप्रकृतं सर्वं जगदेतद्दुरात्मना ॥१०॥
निःस्वाध्यायवषट्कारं द्विजाश्चाऽऽसीत्सुदुःखितम्[3]। कदाचिद्रैवतोद्याने[4] पपौ पानं हलायुधः ॥११॥
रेवती च महाभागा तथैवान्या वरस्त्रियः। उद्गीयमानो विलसल्ललनामौलिमध्यगः ॥१२॥
रमे यदुवरश्रेष्ठः कुबेर इव मन्दरे[5]। ततः स वानरोऽभ्येत्य गृहीत्वा सीरिणो हलम् ॥१३॥
मुशलं च चकारास्य संमुखं स विडम्बनाम्। तथैव योषितां तासां जहासाभिमुखं कपिः ॥१४॥
पानपूर्णांश्च करकांश्चिक्षेपाऽऽहत्य वै तदा। ततः कोपपरीतात्मा भर्त्सयामास तं बलम् ॥१५॥
तथाऽपि तमवज्ञाय चक्रे किलकिलाध्वनिम्। ततः समुत्थाय बलो जगृहे मुशलं रुषा ॥१६॥
सोऽपि शैलशिलां भीमां जग्राह प्लवगोत्तमः। चिक्षेप च स तां क्षिप्तां मुशलेन सहस्रधा ॥१७॥

व्यास ने कहा—अज्ञानमोहित द्विविद यज्ञो का विध्वंस तथा लोगो का नाश करने लगा। वह साधु-मर्यादा का भंग करता प्राणियो का विनाश करता गाँवो तथा देशो को जला डालता कही पहाडो को फेंककर ग्राम आदि को चूर-चूर कर देता पहाडो को उखाड कर जल मे तथा समुद्र मे फेंक देता और पुन सागर के बीच मे पैठकर समुद्र को संक्षुब्ध कर डालता था। द्विजगण! उससे अति क्षुब्ध समुद्र चचल हो उठता और अत्यन्त वेग से तट पर के गावो तथा नगरो को बहा डालता। वह बन्दर मनमाना रूप तथा विशालकाय धारण करके सस्यो पर लोट जाता और भ्रमण-समर्दन से उन्हें कुचल डालता। उस दुष्ट ने सम्पूर्ण संसार मे उपद्रव मचा रखा ॥५ १०॥ ब्राह्मण लोग स्वाध्याय तथा यज्ञ आदि से वंचित होकर बडे दुःखी हो गए। किसी समय रैवत के उद्यान मे बलराम (सुरा) पान कर रहे थे। महाभागा रेवती तथा दूसरी स्त्रियाँ भी थीं। ललनाओ के बीच मे यदुवर बलदेव गाने-बजाने के साथ उसी तरह विलास कर रहे थे जैसे मन्दराचल पर कुबेर। तब वह बन्दर समीप आकर बलदेव के हल और मुशल लेकर उनके सामने ही खेल कूद करने लगा। वह स्त्रियो के सामने हँसता और पान-पात्रो को ककडो से भर देता। फिर अत्यन्त क्रोध से उसने बलराम की भर्त्सना की और उनकी अवहेलना करते हुए किलकिला शब्द किया। तदनन्तर बलदेव ने क्रोध से उठकर मुशल ग्रहण किया ॥११ १६॥ उस श्रेष्ठ बन्दर ने भी भयंकर पर्वत-शिला को उठाकर फेंका। यादव-श्रेष्ठ बल ने मुशल से उसके हजार टुकडे कर दिये। शिला छिन्न भिन्न होकर

१क च पुरोद्देश। २क तदा। ३क ०जान्वृक्षान्तरा०। ४क ०म्। एकदा रैव०। ५क ०द्यान ययौ श्रीमान्हला०। ६ मन्दिरे।

बिभेद यादवश्रेष्ठः सा पपात महीतले। अपतन्मुशलं चासौ समुल्लङ्घ्य प्लवंगमः।।१८।।
वेगेनाऽऽगम्य रोषेण बलेनोरस्यताडयत्। ततो बलेन कोपेन मुष्टिना मूर्ध्नि ताडितः।।१९।।
पपात रुधिरोद्गारी द्विविदः क्षीणजीवितः। पतता तच्छरीरेण गिरेः शृङ्गमशीर्यत।।२०।।
मुनयः शतधा वज्रिवज्रेणेव हि ताडितम्। पुष्पवृष्टिं ततो देवा रामस्योपरि चिक्षिपुः।।२१।।
प्रशशंसुस्तदाऽभ्येत्य साध्वेतत्ते महत्कृतम्। अनेन दुष्टकपिना दैत्यपक्षोपकारिणा।।
जगन्निराकृतं वीर दिष्ट्या स क्षयमागतः।।२२।।

व्यास उवाच

एवंविधान्यनेकानि बलदेवस्य धीमतः। कर्माण्यपरिमेयानि शेषस्य धरणीभृतः।।२३।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बलदेवमाहात्म्ये द्विविदवानरवधवर्णनं नाम
नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२०९।।

पृथ्वी पर गिर पड़ी और मुसल भी गिर गया। बन्दर ने वेग से छलांग मार कर जोर से बलराम की छाती पर मारा। तब बल ने क्रोध से मुट्ठी बाँधकर बन्दर के सिर पर मारा। द्विविद निष्प्राण होकर रुधिर वमन करते हुए गिर पड़ा। मुनिवृन्द! गिरते हुए उसके शरीर से पर्वत का शिखर उसी तरह सैकड़ों खण्डों में परिणत हो गया जैसे इन्द्र के वज्र से आहत होने पर हुआ था। तब देवताओं ने बलराम के ऊपर पुष्प-वृष्टि की और समीप आकर (इस प्रकार) प्रशंसा की—'यह आपने महान् कार्य किया, बहुत ही अच्छा किया। वीर! दैत्यों का उपकार करने वाले इस दुष्ट बंदर ने संसार का अनिष्ट किया था। भाग्य से, यह नष्ट हो गया है।।१७-२२।।

व्यास ने कहा—धीमान्, धरणीधर तथा शेषावतार बलराम के ऐसे अनेक कर्म हैं, जो अनुमान से परे हैं।।२३।।

श्रीब्रह्ममहापुराण में बलदेव-माहात्म्य-कथन प्रसंग में द्विविद-वानर-वध-वर्णन नामक
दो सौ नवाँ अध्याय समाप्त।।२०९।।

अथ दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

भूमिभारावतरणकथनम्

व्यास उवाच

एवं दैत्यवधं कृष्णो बलदेवसहायवान्। चक्रे दुष्टक्षितीशानां तथैव जगतः कृते ॥१॥
क्षितेश्च भारं [1]भगवान्फाल्गुनेन समं विभुः। अवतारयामास हरिः समस्ताक्षौहिणीवधात् ॥२॥
कृत्वा भारावतरणं भुवो हत्वाऽखिलान्नृपान्। शापव्याजेन विप्राणामुपसंहृतवान्कुलम् ॥३॥
उत्सृज्य द्वारकां कृष्णस्त्यक्त्वा मानुष्यमात्मभूः। स्वांशो विष्णुमयं स्थानं प्रविवेश पुनर्निजम् ॥४॥

मुनय ऊचुः

स विप्रशापव्याजेन संजह्रे स्वकुलं कथम्। कथं च मानुषं देहमुत्ससर्ज जनार्दनः ॥५॥

व्यास उवाच

विश्वामित्रस्तथा कण्वो नारदश्च महामुनिः। पिण्डारके महातीर्थे दृष्टा यदुकुमारकैः ॥६॥
ततस्ते यौवनोन्मत्ता भाविकार्यप्रचोदिता[1]। साम्बं जाम्बवतीपुत्रं भूषयित्वा[2] स्त्रियं यथा ॥
प्रसृतास्तान्मुनीनूचुः प्रणिपातपुरः सरम् ॥७॥

अध्याय २१०

पृथ्वी के भार उतारने का वर्णन

व्यास ने कहा—इस प्रकार बलदेव की सहायता से कृष्ण ने संसार के लिए दुष्ट राजाओं का वध किया। अर्जुन के साथ सर्वशक्तिमान् हरि ने समस्त अक्षौहिणी सेनाओं का वध करके पृथ्वी का भार उतारा। अखिल राजाओं को मारकर पृथ्वी का भार उतार कर भगवान् ने ब्राह्मणों के शाप के बहाने कुल का संहार किया। द्वारका को छोड़कर मनुष्य-शरीर त्याग कर कृष्ण अपने अंश से पुनः अपने विष्णुमय स्थान पर चले गये ॥१-४॥

मुनियों ने कहा—जनार्दन ने विप्र-शाप के व्याज से कैसे अपने कुल का संहार किया? कैसे उन्होंने मनुष्य-शरीर को त्यागा? ॥५॥

व्यास ने कहा—पिण्डारक नामक महातीर्थ में यदुवंशी कुमारों ने विश्वामित्र, कण्व तथा महामुनि नारद को देखा। तदनन्तर यौवन से उन्मत्त तथा भावी घटना से प्रेरित कुमारों ने जाम्बवती-पुत्र साम्ब को स्त्री की तरह सज-धज कर मुनियों को प्रणाम करके कहा ॥६-७॥

---

१. ०वान्स बलेन। १क ०प्रणोदि०। २क ०त्वा स्वयं तदा। प्र०।

कुमारा ऊचु

इय स्त्री पुनकामा तु प्रभो किं जनयिष्यति ॥८॥

व्यास उवाच

दिव्यज्ञानोपपन्नास्त विप्रलब्धा कुमारकं । शाप ददुस्तदा विप्रास्तया नाशाय सुव्रता ॥९॥
मुनय कुपिता प्रोचुमुशल जनयिष्यति। यनाखिलकुलोत्सादो यादवाना भविष्यति ॥१०॥
इत्युक्तास्त कुमारास्त आचचक्षुयथातथम। उग्रसनाय मुशल जज्ञ साम्बस्य चोदरात ॥११॥
तदुग्रसनो मुशलमयश्चूर्णमकारयत। जज्ञ तच्चरका, चूर्ण प्रक्षिप्त व महोदधौ ॥१२॥
मुसलस्याथ लौहस्य चूर्णितस्या धर्कद्विजा । खण्ड चूर्णयितु शकुनव त तोमराकृति ॥१३॥
तदप्यम्बुनिधौ क्षिप्त मत्स्यो जग्राह जालिभि । घातितस्योदरात्तस्य लुब्धो जग्राह तज्जरा ॥१४॥
विज्ञातपरमार्थोऽपि भगवा मधुसूदन । नैच्छत्तद यथा कतु विधिना यत्समाहृतम ॥१५॥
देवैश्च प्रहितो दूत प्रणिपत्याऽऽह कशवम। रहस्यवमह दूत प्रहितो भगव सुर ॥१६॥
वस्वश्विमरुदादित्यरुद्रसाध्यादिभि सह। विज्ञापयति व शक्रस्तदिद श्रूयता प्रभो ॥१७॥

देवा ऊचु

भारावतरणार्थाय वर्षाणामधिक शतम्। भगवानवतीर्णोऽत्र त्रिदश सम्प्रसादित ॥१८॥
दुर्वृत्ता निहता दत्या भुवो भारोऽवतारित । त्वया सनाथास्त्रिदशा व्रज तु त्रिदिवस्ताम ॥१९॥

कुमार बोल—यह स्त्री पुत्राभिलाषिणी है। बतलाइय यह क्या जनगी ? ॥८॥

व्यास न कहा—कुमारो ने दिव्यज्ञानी मुनियो स छल किया। अत सुव्रती विप्रो ने उनके नाश के लिए शाप दे दिया। क्रुद्ध मुनियो ने कहा— यह मुशल पदा करेगी जिससे यादवो का सपूण वश नष्ट हो जायगा। तदुपरान्त कुमारो न उग्रसेन से वह घटना निवेदन की। साम्ब के पेट से मुशल उत्पन्न हुआ। उग्रसेन ने उस लौह मय मुशल का चूर चर करवा दिया। समुद्र म फका जाने पर वह चूर्ण एरका (तृण विशेष) होकर उत्पन्न हुआ। द्विजगण ! उस चूर्णित मुशल के तोमर (रायबाँग) के समान खण्ड को अधिक का वाले चूर चूर नही कर सके। समुद्र में फका जाने पर एक मछली ने उसे खा लिया। मल्लाहो द्वारा मारी गई उस मछली के पेट से मुशल-चूण निकला जिसे एक जरा नामक व्याध न ले लिया। वस्तुस्थिति का जानते हुए भी मधुसूदन ने विधि विधान का अन्यथा करना नहा चाहा। देवताओ का भेजा हुआ दूत एकान्त म केशव को प्रणाम करके बोला— भगवन् ! मैं देवो का भेजा हुआ दूत हू। प्रभो ! वसु अश्विनीकुमार मरुत् आदित्य साध्य आदि देवगण सहित इन्द्र ने आपस जो निवेदन किया है वह आप सुन ॥९ १७॥

देवताओ न कहा—पृथ्वी का भार उतारने के लिये देवताओ से स्तुत होकर आपने भूलोक म अवतार लिया। सौ वर्षों से अधिक हो गया। दुराचारी दैत्य गण मार गये। पृथ्वी का भार भी आपन उतार दिया। आपने

१ग ०कामस्य बधा कि। २क ०लोच्छ्रदो। ३स ०भि ।घातित चाद०। ४क ०पि सवद्यास्त्रिदश हृदि। न०। ५ग ०मावृत । दे०। ६घ विप्रो।

तदतीत जगन्नाथ वर्षाणामधिक शतम। इदानीं गम्यता स्वर्गो भवते यदि रोचते ॥२०॥
देवैर्विज्ञापितो देवोऽप्ययात्रैव रतिस्तव। तत्स्थीयता यथाकालमाख्येयमनुजीविभि ॥२१॥

श्रीभगवानुवाच

यत्त्वमात्थाखिल दूत वेदमि चैतदह पुन । प्रारब्ध एव हि मया यादवानामपि क्षय ॥२२॥
भुवो [१]नामातिभारोऽय [२]यादवैरनिर्वहितै[३]। अवतार करोम्यस्य सप्तरात्रेण सत्वर ॥२३॥
यथागृहीत चाम्भोधौ हृत्वाऽह द्वारकां[४] पुन । यादवानुपसहृत्य यास्यामि त्रिदशालयम् ॥२४॥
मनुष्यदेहमुत्सृज्य सकर्षणसहायवान्। प्राप्त एवास्मि मन्तव्यो देवेन्द्रेण तथा सुरै ॥२५॥
जरासधादयो येऽन्ये निहता भारहेतव । क्षितेस्तेभ्य[५] स भारो हि [६]यदूना[७] समधीयत ॥२६॥
तदेतत्सुमहाभारमवतार्य क्षितेरहम्। यास्याम्यमरलोकस्य पालनाय ब्रवीहि तान् ॥२७॥

व्यास उवाच

इत्युक्तो वासुदेवेन देवदूत प्रणम्य तम्। द्विजा स दिव्यया गत्या देवराजान्तिक ययौ ॥२८॥
भगवानप्यथोत्पातान्दिव्यान्भौमान्तरिक्षगान्। ददर्श द्वारकापुर्यां विनाशाय दिवानिशम् ॥२९॥
तान्दृष्ट्वा यादवानाह पश्यध्वमतिदारुणान। महोत्पाताञ्शमायैषा प्रभास याम मा चिरम ॥३०॥

साथ-साथ देवता लोग स्वर्ग पधारें। जगन्नाथ! सौ वर्षों से अधिक हो चुका है। अब यदि आपकी इच्छा हो तो स्वर्ग को प्रस्थान करें। देवताओ का निवेदन सुनकर यदि श्रीमान् को अच्छा लगता हो तो अपने अनुचरो समेत यथाकाल यहीं रहें। इतना ही हमे कहना है ॥१८ २१॥

श्रीभगवान् ने कहा—दूत! जो तुमने कहा है वह सब मुझे मालूम है। मैंने यादवो का क्षय करना भी आरम्भ कर दिया है। *असख्य यादवो से पृथ्वी का भार बहुत बढ गया है। मैं शीघ्र ही सात रात के अन्दर इसको* दूर कर दूगा। द्वारका को समुद्र म स्थापित कर यादवो का सहार करके मैं स्वग चला आऊंगा। मनुष्य-शरीर का त्याग कर बलराम के साथ मैं इन्द्र तथा देवताओ के पास पहुँचा ही हूँ—यही समझो। भार के कारण जो जरा सध आदि मारे गये हैं उनसे बढकर यदुओ का भार पृथ्वी पर हो गया है। इसलिये इस महाभार को पृथ्वी पर से उतार कर मैं अमरलोक का पालन करने के लिये जाऊँगा। तुम उनसे कह देना ॥२२ २७॥

व्यास ने कहा—द्विजगण! वासुदेव के इतना कहने पर देवदूत उन्हे प्रणाम कर दिव्यगति से इन्द्र के पास चला गया। भगवान् भी रातदिन द्वारकापुरी मे विनाश-सूचक अलौकिक उत्पातों को पृथ्वी तथा आकाश के बीच देखने लगे। उन्हें देखकर भगवान ने यादवो से कहा—'इन महाभयकर उत्पातों को देखो। इनकी शान्ति करने के लिए हम शीघ्र ही प्रभास (तीर्थस्थान) को जाना है ॥२८ ३०॥

१ख ग नायापि भा०। २क ०रतिब०। ३ग ०निर्वाहितै। ४घ ०रकामुवम्। ०या०। ५ग ०भ्य कुमारोऽपि य०। ६ख ०दूनामवधी०। ७ग ०नां भारचीयते। स०।

व्यास उवाच

महाभागवतः प्राह प्रणिपत्योद्धवो हरिम् ॥३१॥

उद्धव उवाच

'भगवन्यन्मया कार्यं तदाज्ञापय सांप्रतम्। मन्ये कुलमिदं सर्वं भगवान्संहरिष्यति॥
नाशायास्य निमित्तानि कुलस्याच्युत लक्षये ॥३२॥

श्रीभगवानुवाच

गच्छ त्वं दिव्यया गत्या मत्प्रसादसमुत्थया। बदरीमाश्रमं पुण्यं गन्धमादनपर्वते॥३३॥
नरनारायणस्थाने पवित्रितमहीतले। मन्मना मत्प्रसादेन तत्र सिद्धिमवाप्स्यसि॥३४॥
अहं स्वर्गं गमिष्यामि उपसंहृत्य वै कुलम्। द्वारकां च मया त्यक्तां समुद्रः प्लावयिष्यति॥३५॥

व्यास उवाच

इत्युक्तः प्रणिपत्यैनं जगाम स तदोद्धवः। नरनारायणस्थानं केशवेनानुमोदितः ॥३६॥
ततस्ते यादवाः सर्वे रथनारुह्य शीघ्रगान्। प्रभासं प्रययुः सार्धं कृष्णरामादिभिर्द्विजाः॥३७॥
प्राप्य प्रभासं प्रयता प्रीतास्ते कुक्कुरान्धकाः। चक्रुस्तत्र सुरापानं वासुदेवानुमोदिताः॥३८॥
पिबतां तत्र वै तेषां सघर्षेण परस्परम्। यादवानां ततो जज्ञे कलहाग्निः क्षयावहः॥३९॥
जघ्नुः परस्परं ते तु शस्त्रैर्दैवबलात्कृताः। क्षीणशस्त्रास्तु जगृहुः प्रत्यासन्नामथैरकाम्॥४०॥

व्यास ने कहा—महाभक्त उद्धव ने प्रणाम करके हरि से कहा॥३१॥

उद्धव ने कहा—भगवन्! मुझे जो इस समय करना है, वह आप आज्ञा दें। मैं समझता हूँ कि भगवान् समस्त कुल का संहार करेंगे। अच्युत! कुल के विनाश के कारणों को मैं देख रहा हूँ॥३२॥

श्रीभगवान् ने कहा—मेरी कृपा से प्राप्त दिव्यगति से तुम गन्धमादन पर्वत पर स्थित पवित्र बदरिकाश्रम में चले जाओ। उस पवित्र भूमि पर नर नारायण के स्थान में मेरी कृपा से मुझमें मन लगाकर सिद्धि प्राप्त करोगे। मैं कुल का नाश करके स्वर्ग चला जाऊँगा। मुझसे परित्यक्त द्वारका को समुद्र डुबो देगा॥३३-३५॥

व्यास ने कहा—इतना कहने पर उद्धव केशव से आज्ञा लेकर उन्हें प्रणाम करके नरनारायण के स्थान पर चले गये। द्विजगण! तदनन्तर समस्त यादवों ने कृष्ण, राम आदि के साथ शीघ्रगामी रथों पर चढ़ कर प्रभास के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर कुक्कुर और अन्धक वंश वाले बड़े प्रसन्न हुए। वासुदेव की आज्ञा पाकर वे लोग मदिरापान करने लगे। पीते ही पीते उन लोगों में परस्पर संघर्ष हो गया। यादवों के बीच संहारकारी कलहाग्नि उत्पन्न हो गया। दौर्भाग्य से वे एक दूसरे को मारने लगे। शस्त्र क्षीण हो जाने पर उन्होंने समीपवर्ती एरका (तृण विशेष) को ले लिया। एरका वज्र के समान दीखता था। उससे वे लोग परस्पर भयंकर प्रहार

१क ०वन्किमया। २ख ०वेन तु चोदि०। ३क. ०र्वे रथाना०। ४ख. ग. ०त्र मुदा पा०।

एरका तु गृहीता तैर्वज्रभूतेव लक्ष्यते। तया परस्परं जघ्नुः संप्रहारैः सुदारुणैः॥४१॥
प्रद्युम्नसाम्बप्रमुखाः कृतवर्माऽथ सात्यकिः। अनिरुद्धादयश्चान्ये पृथुर्विपृथुरेव च॥४२॥
चारुवर्मा[1] सुचारुश्च[2] तथाऽक्रूरादयो द्विजाः। एरकारूपिभिर्वज्रैस्ते निजघ्नुः परस्परम्॥४३॥
निवारयामास हरिर्यादवास्ते च केशवम्। सहायं मेनिरे प्राप्तं ते निजघ्नुः परस्परम्॥४४॥
कृष्णोऽपि कुपितस्तेषामेरकामुष्टिमाददे। वधाय[3] तेषां मुशलं मुष्टिलोहमभूत्तदा॥४५॥
जघान तेन[4] निःशेषानाततायी स यादवान्। जघ्नुश्च सहसाऽभ्येत्य तथाऽन्ये तु परस्परम्॥४६॥
ततश्चार्णवमध्येन जैत्रोऽसौ चक्रिणो रथः। पश्यतो दारुकस्याऽऽशु[5] हृतोऽश्वैर्द्विजसत्तमाः॥४७॥
चक्रं गदा तथा शार्ङ्गं तूणौ शङ्खोऽसिरेव च। प्रदक्षिणं ततः कृत्वा जग्मुरादित्यवर्त्मना॥४८॥
क्षणमात्रेण वै तत्र यादवानामभूत्क्षयः। ऋते कृष्णं महाबाहुं दारुकं च द्विजोत्तमाः॥४९॥
चङ्क्रम्यमाणौ तौ रामं वृक्षमूलकृतासनम्। ददृशाते मुखाच्चास्य निष्क्रामन्तं महोरगम्॥५०॥
निष्क्रम्य स मुखात्तस्य महाभोगो भुजंगमः। प्रयातश्चार्णवं सिद्धैः[6] पूज्यमानस्तथोरगैः॥५१॥
तमर्घ्यमादाय तदा जलधिः संमुखं ययौ। प्रविवेश च तत्तोयं पूजितः पन्नगोत्तमैः॥५२॥
दृष्ट्वा बलस्य निर्याणं दारुकं प्राह केशवः

करने लगे ॥३६-४१॥ प्रद्युम्न, साम्ब, कृतवर्मा, सात्यकि, अनिरुद्ध, पृथु, विपृथु, चारुवर्मा, सुचारु तथा अक्रूर आदि एरका रूपी वज्रो से एक दूसरे को मारने लगे। कृष्ण उनका निवारण करना चाहते थे। पर उन्होंने कृष्ण को अपना सहायक समझ लिया। वे मार-पीट करने मे डटे ही रहे। तब कृष्ण ने कुपित होकर एक मुट्ठी एरका ले लिया। यादवों के विनाश के निमित्त एरका मुशलरूप मे परिणत हो गया। उससे कृष्ण ने आततायी बनकर अशेष यादवों का सहार कर दिया। दूसरे भी सहसा आकर परस्पर वध करने लगे। विप्रवर! तब कृष्ण का जयशील रथ दारुक (कृष्ण के सारथि) के देखते ही देखते समुद्र के बीच से अश्वो के द्वारा अपहृत हो गया। चक्र, गदा, धनुष, तरकश, शख तथा खड्ग कृष्ण की प्रदक्षिणा करके सूर्य-मार्ग से चले गये। द्विजश्रेष्ठो! महाशक्तिशाली कृष्ण तथा दारुक को छोडकर समस्त यादवो का क्षण भर मे क्षय हो गया। फुर्ती से चलते हुए कृष्ण तथा दारुक ने देखा कि एक वृक्ष की जड मे आसन जमाए हुए बलराम के मुख से एक महासर्प निकल रहा है। महती फण। वाला वह सर्प उनके मुख से निकल कर समुद्र की ओर चल पडा। सिद्ध तथा सर्प-समूह उसकी पूजा करने लगे। अर्घ लेकर समुद्र उसके सम्मुख आया। उत्तम सर्पों से पूजित होकर वह समुद्रजल मे प्रविष्ट हो गया। बलराम का महाप्रयाण देखकर केशव ने दारुक से कहा॥४२-५२॥

१ग ०रुधर्मा। २ग. चारुश्च। ३ख ०य सा तु मु०। ग ०य सोऽपि। ४क ०षान्ज्ञातिवर्गान्स या०। ५ख. ०शु तत स्वर्गं द्विजोत्त०। ६ख ०मानो महोर०।

श्रीभगवानुवाच

इद सर्वं त्वमाचक्ष्व वसुदेवोग्रसनयो । निर्याण वलदेवस्य यादवानां तथा क्षयम ॥५३॥
योग स्थित्वाऽहमप्येतत्परित्यज्य कलवरम । वाच्यश्च द्वारकावासी जन सवस्तथाऽऽहुक ॥५४॥
यथमां नगरीं सर्वां समुद्र प्लावयिष्यति । तस्माद्रथ सुसज्जस्तु प्रतीक्ष्यो ह्यर्जुनागम ॥५५॥
न स्थय द्वारकामध्य निष्क्रान्ते तत्र पाण्डव । तनव सह गन्तव्य यत्र याति स कौरव ॥५६॥
गत्वा च ब्रूहि कौन्तयमजुन वचन मम । पालनीयस्त्वया शक्त्या जनोऽय मत्परिग्रह ॥५७॥
इत्यजुनन सहितो द्वारवत्या 'भवाञ्जनम । गृहीत्वा यातु 'वज्रश्च यदुराजो भविष्यति ॥५८॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्म श्रीकृष्णचरित श्रीकृष्णनिजधामगमननिरूपण नाम दशाधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२१०॥

अथैकादशाधिकद्विशततमोऽध्याय

कृष्णमानुपोत्सर्गकथनम्

व्यास उवाच

इत्युक्तो दारुक कृष्ण प्रणिपत्य पुन पुन । प्रदक्षिण च बहुश कृत्वा प्रायाद्यथोदितम् ॥१॥
स च गत्वा तथा चक्रे द्वारकाया तथाऽऽजुनम् । आनिनाय महाबद्धि वज्र चक्र तथा नृपम ॥२॥

श्रीभगवान न कहा—ये सब बातें—बलदेव का प्रयाण तथा यादवो का क्षय—तुम वसुदेव तथा उग्रसेन से निवेदन कर देना। योग म स्थित होकर मैं भी इस शरीर का त्याग कर दूगा। तुम समस्त द्वारिकावासियों तथा आहुक से भी कह देना कि सपूर्ण नगरी को समुद्र जलप्लावित कर देगा। इसलिये तुम लोग रथों पर चढकर तैयार हो जाओ और अजुन के आने की प्रतीक्षा करो। अजन के प्रयाण करने पर द्वारका मे कोई न रहना। उसी के साथ चल देना चाहे जहाँ वह जाय। फिर तुम जाकर अजुन से मेरा वचन कहना—तुम्हें यथाशक्ति मेरी पत्नियों का पालन करना चाहिए। अजुन क साथ वज्र द्वारका म भवाञ्जन लेकर जायगा और वहीं यदुओं का राजा होगा ॥५३ ५८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे श्रीकृष्ण चरित्र-वर्णन प्रसग मे श्रीकृष्ण के निज धाम-गमन निरूपण नामक दो सौ दसवाँ अध्याय समाप्त ॥२१०॥

अध्याय २११

कृष्ण का मनुष्य देह-त्याग

व्यास ने कहा—इसके बाद दारुक कृष्ण को बार-बार प्रणाम कर तथा अनेक बार उनकी प्रदक्षिणा कर चला गया। उसने जाकर कृष्ण का वचन सब को सुनाया तथा द्वारका मे अर्जुन को लाकर महाबुद्धिमान् वज्र को

१क मत्पगम्। ग०। २क वज च। ग वभ्रुश्च।

भगवानपि गोविन्दो वासुदेवात्मकं परम्। ब्रह्मात्मनि समारोप्य 'सर्वभूतेष्वधारयत्'॥३॥
स मानयन्द्विजवचो दुर्वासा यदुवाच ह। योगयुक्तोऽभवत्पादं कृत्वा जानुनि सत्तमाः॥४॥
संप्राप्तो वै जरा नाम तदा तत्र स लुब्धकः। मुशलशेषलोहस्य' सायकं' धारयन्परम्॥५॥
स तत्पादं मृगाकारं समवेक्ष्य' व्यवस्थितः। ततो' विव्याध तेनैव तोमरेण द्विजोत्तमाः॥६॥
गतश्च ददृशे तत्र चतुर्बाहुधरं नरम्। प्रणिपत्याऽऽह चैवैनं प्रसीदेति पुनः पुनः॥७॥
अजानता कृतमिदं मया हरिणशङ्कया। क्षम्यतामात्मपापेन दग्धं मा दग्धुमर्हसि॥८॥

व्यास उवाच

ततस्तं भगवानाह नास्ति ते भयमण्वपि। गच्छ त्वं मत्प्रसादेन लुब्ध' स्वर्गंश्वरास्पदम्॥९॥

व्यास उवाच

विमानमागतं सद्यस्तद्वाक्यसमनन्तरम्। आरुह्य प्रययौ स्वर्गं लुब्धकस्तत्प्रसादतः॥१०॥
गते तस्मिन्स भगवान्संयोज्याऽऽत्मानमात्मनि। ब्रह्मभूतेऽव्ययेऽचिन्त्ये वासुदेवमयेऽमले॥११॥
अजन्मन्यजरेऽनाशिन्यप्रमेयेऽखिलात्मनि। त्यक्त्वा स मानुषं देहमवाप त्रिविधां' गतिम्॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे श्रीकृष्णचरिते कृष्णमानुषोत्सर्गकथनं नामैका-दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२११॥

राजा बनाया। भगवान् गोविन्द ने भी अपने में वासुदेव रूप परब्रह्म को अधिष्ठित करके अखिल प्राणियों का धारण किया। दुर्वासा के वचन को सत्य करने के लिये उन्होंने योग युक्त होकर घुटने के ऊपर पैर को रखा। तब उसी मूशल के शेष लाहे से बने धनुष को धारण किये वह जरा नामक व्याध वहाँ आ पहुँचा। उसने भगवान् के पैर को मृग समझ कर उसी तोमर (रायवाँस) से बेध कर दिया। समीप जाने पर उसने चार भुजा वाले मनुष्य को देखा। उसको बार-बार प्रणाम करके कहा—'कृपा कीजिये। मैंने अज्ञानता से हरिण समझ कर ऐसा किया। क्षमा कीजिये। मैं अपने ही पाप से जल रहा हूँ। मुझे मत जलाइये'॥१-८॥

व्यास बोले—तब भगवान् ने कहा—'व्याध! तुम्हें जरा भी भय नहीं है। तुम मेरी कृपा से स्वर्ग चले जाओ॥९॥

व्यास ने कहा—*कृष्ण के वाक्य समाप्त होते ही एक विमान आ गया, जिस पर चढ़कर व्याध उनकी कृपा* से स्वर्ग चला गया। उसके जाने के पश्चात् भगवान् ब्रह्मभूत, अव्यय, अचिन्त्य, वासुदेवमय, निर्मल, जन्म-रहित, अजर, अमर, अखिलात्मा तथा अप्रमेय आत्मा में आत्मा को मिला कर मनुष्य देह का त्याग कर त्रिविध गति (देव-गति) को प्राप्त हुए॥१०-१२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास तथा ऋषियों के संवाद में कृष्ण-चरित्र-वर्णन-प्रसंग में कृष्ण के मनुष्य-शरीर-त्याग निरूपण नामक दो सौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त॥२११॥

१ख ०ज्जकार०। २ख ०त्। चकार भगवान्सर्वं दु०। ३क. ०लोहेन सा०। ग ०लोहैकसा०। ४क ग ०यकन्यन्तोमर०। स। ५ख ०क्ष्य ह्यव०। ६क ग तले। ७ख हरिम्। ८ख. ०ब्ध सर्वमरास्प०। ९क. त्रिदशा। ख. त्रिदिव।

अथ द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

रुक्मिण्यादीना परलोकगमनम्

व्यास उवाच

ोऽपि तदाऽन्विष्य कृष्णरामकलेवरे। सस्कार लम्भयामास तथाऽन्येषामनुक्रमात् ॥१॥
महिष्य कथिता रुक्मिणीप्रमुखास्तु या । उपगृह्य हरेर्देह विविशुस्ता हुताशनम् ॥२॥
चैव रामस्य देहमाश्लिष्य सत्तमा । विवेश ज्वलित वह्नि तत्सङ्गाह्लादशीतलम् ॥३॥
नस्तु तच्छ्रुत्वा तथैवाऽऽनकदुन्दुभि । देवकी रोहिणी चैव विविशुर्जातवेदसम् ॥४॥
र्जुन प्रेतकार्यं कृत्वा तेषां यथाविधि। निश्चक्राम जन सर्वं गृहीत्वा वज्रमेव च ॥५॥
त्या विनिष्क्रान्ता कृष्णपत्न्य सहस्रश । वज्र जन च कौन्तेय पालयञ्शनकैर्ययौ ॥६॥
सुधर्मा कृष्णेन मर्त्यलोके समाहृता। स्वर्गं जगाम भो विप्रा पारिजातश्च पादप ॥७॥
दिने हरिर्यातो दिव सत्यज्य मेदिनीम्। तस्मिन्दिनेऽवतीर्णोऽय कालकाय कलि किल ॥८॥
यामास तां शून्यां द्वारकां च महोदधि । यदुश्रेष्ठगृह त्वेक नाऽऽप्लावयत सागर ॥९॥
क्रामति भो विप्रास्तदद्यापि महोदधि । नित्य सनिहितस्तत्र भगवान्केशवो यत ॥१०॥
व महापुण्य सर्वपातकनाशनम्। विष्णुक्रीडान्वित स्थान दृष्ट्वा पापात्प्रमुच्यते ॥११॥

अध्याय २१२

रुक्मिणी आदि का परलोक-गमन

व्यास ने कहा—अर्जुन ने भी कृष्ण तथा राम के शरीर को ढूढ़कर दाह-संस्कार किया और क्रमश दूसरों ों को भी जलाया। कृष्ण की रुक्मिणी आदि आठ स्त्रियों को मैं बतला चुका हूँ। वे हरि के शरीर को अग्नि में प्रविष्ट हो गईं। सज्जनो! राम के शरीर का आलिंगन करके रेवती ने प्रज्वलित अग्नि म प्रवेश किया। सर्ग-सुख से अग्नि शीतल हो गया। यह सुनकर देवकी, रोहिणी उग्रसेन तथा वसुदेव ने भी अग्नि मे प्रवेश । तदुपरान्त अर्जुन ने सबका श्राद्ध किया और वज्र तथा समस्त द्वारकावासियों को लेकर वहाँ से प्रयाण । कृष्ण की हजारों पत्नियाँ भी द्वारका छोड कर चली गईं। अर्जुन वज्र तथा द्वारकावासियों का पालन हुए धीरे-धीरे प्रस्थान करने लगे। विप्रवृन्द! सुधर्मा नामक देवसभा तथा कल्पवृक्ष को कृष्ण मर्त्यलोक में ये थे। वे दोनों अब स्वर्ग को चले गये ॥१७॥ जिस दिन हरि पृथ्वी को छोड़कर स्वर्ग चले गये उसी दिन लरूप कलियुग अवतीर्ण हुआ। शून्य द्वारका को समुद्र ने प्लावित कर दिया। केवल एक यदुश्रेष्ठ के घर मुद्र ने नहीं डुबाया। द्विजगण! आज भी समुद्र उसका अतिक्रमण नहीं करता, क्योंकि वहाँ भगवान् केशव

पार्थः[1] पञ्चनदे देशे बहुधान्यधनान्विते। चकार वासं सर्वस्य जनस्य मुनिसत्तमाः ॥१२॥
ततो लोभः समभवत्पार्थेनैकेन धन्विना। दृष्ट्वा स्त्रियो नीयमाना दस्यूनां निहतेश्वराः ॥१३॥
ततस्ते पापकर्माणो लोभोपहतचेतसः। आभीरा मन्त्रयामासु समेत्यात्यन्तदुर्मदाः ॥१४॥

आभीरा ऊचुः

अयमेकोऽर्जुनो धन्वी स्त्रीजनं निहतेश्वरम्। नयत्यस्मानतिक्रम्य धिगेतत्क्रियतां बलम् ॥१५॥
हत्वा गर्वसमारूढो भीष्मद्रोणजयद्रथान्। कर्णादींश्च न जानाति बलं ग्रामनिवासिनाम्[2] ॥१६॥
बलश्रेष्ठानरानन्यान्ग्राम्यांश्चैव विशेषतः। सर्वानेवावजानाति किं वो बहुभिरुत्तरैः ॥१७॥

व्यास उवाच

ततो यष्टिप्रहरणा दस्यवो लोष्टहारिणः। सहस्रशोऽभ्यधावन्त तं जनं निहतेश्वरम् ॥
ततो निवृत्तः कौन्तेयः प्राहाऽऽभीरान्हसन्निव ॥१८॥

अर्जुन उवाच

निवर्तध्वमधर्मज्ञा यदीतो न मुमूर्षवः ॥१९॥

व्यास उवाच

अवज्ञाय वचस्तस्य जगृहुस्ते तदा धनम्। स्त्रीजनं चापि कौन्तेयाद्विष्वक्सेनपरिग्रहम् ॥२०॥
ततोऽर्जुनो धनुर्दिव्यं गाण्डीवमजरं युधि। आरोपयितुमारेभे न शशाक स वीर्यवान् ॥२१॥

का नित्य सान्निध्य रहता है। उस महापवित्र, सर्वपापनाशन तथा विष्णु-क्रीडा से युक्त स्थान के दर्शन से पाप दूर हो जाते हैं। मुनिश्रेष्ठो! धन-धान्य-सम्पन्न पञ्चनद देश में पार्थ ने सबको बसा दिया। मृत पति वाली स्त्रियों को ले जाते हुए अकेले धनुषधारी पार्थ को देखकर चोरों को लोभ हुआ। लोभ से नष्ट चित्त वाले पापी अहीर अत्यन्त मदान्ध होकर परस्पर मन्त्रणा करने लगे ॥८-१४॥

अहीरों ने कहा—यह अकेला धनुर्धारी अर्जुन हम लोगों की अवहेलना कर विधवाओं को ले जा रहा है। ऐसे साहस को धिक्कार है। हम बल प्रयोग करें। इस अभिमानी ने भीष्म, द्रोण, जयद्रथ तथा कर्ण आदि को तो मारा। पर इसे ग्रामवासियों की शक्ति का परिचय नहीं है। यह बलशाली मनुष्यों का विशेष कर ग्रामीणों का तथा सबका अपमान करता है। इस सबंध में बहुत उत्तर-प्रत्युत्तर करने से क्या लाभ ॥१५-१७॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त हजारों की संख्या में चोरगण लाठी-ढेले लेकर विधवाओं के पीछे दौड़ने लगे। तब निश्चिन्त कौन्तेय ने हँसकर अहीरों से कहा ॥१८॥

अर्जुन ने कहा—*पापियो! यदि मरना नहीं चाहते हो तो यहाँ से लौट जाओ* ॥१९॥

व्यास ने कहा—अर्जुन की अवहेलना कर अहीरों ने धन ले लिया और कृष्ण की स्त्रियों का भी अपहरण किया। तब अर्जुन ने दिव्य तथा अजर गाण्डीव धनुष को चढ़ाना चाहा, पर वह बली ऐसा न कर

१क पार्थश्च विजनोद्देशे। ख, पार्थश्च गुरुदे। २ख ग ०म्। १६।देहयष्टि महाभासाद्गृहीत्वास्य सुदुर्मतिं ।स०

चकार सज्जं कृच्छ्रात्तु तदभूच्छिथिलं पुनः। न सस्मार तथाऽस्त्राणि चिन्तयन्नपि पाण्डवः ॥२२॥
शरान्मुमोच चैतेषु पार्थः शेषान्स हर्षितः। न भेदं ते परं चक्रुरस्ता गाण्डीवधन्वना ॥२३॥
वह्निना चाक्षया दत्ताः शरास्तेऽपि क्षयं ययुः। युध्यतः सह गोपालैरर्जुनस्याभवत्क्षयः ॥२४॥
अचिन्तयत्तु कौन्तेय कृष्णस्यैव हि तद्बलम्। यन्मया शरसंघातैः सबला भूभृतो जिताः ॥२५॥
मिषतः पाण्डुपुत्रस्य ततस्ताः प्रमदोत्तमाः। अपाकृष्यन्त चाऽऽभीरैः[1] कामाच्चान्याः प्रवव्रजुः ॥२६॥
ततः शरेषु क्षीणेषु धनुष्कोटया धनंजयः। जघान दस्यूंस्ते चास्य प्रहाराञ्जहसुर्द्विजाः ॥२७॥
पश्यतस्त्वेव पार्थस्य वृष्ण्यन्धकवरस्त्रियः। जग्मुरादाय ते म्लेच्छाः [2]समन्तान्मुनिसत्तमाः ॥२८॥
ततः स दुःखितो जिष्णुः कष्टंकष्टमिति ब्रुवन्। अहो भगवता तेन मुक्तोऽस्मीति रुरोद वै[3] ॥२९॥

अर्जुन उवाच

तद्धनुस्तानि चास्त्राणि स रथस्ते च वाजिनः। सर्वमेकपदे नष्टं[4] दानमश्रोत्रिये यथा ॥३०॥
अहो[5] चाति बलं दैवं विना तेन महात्मना। यदसामर्थ्ययुक्तोऽहं[6] नीचैर्नीतः पराभवम् ॥३१॥
तौ बाहू स च मे मुष्टिः[7] स्थानं तत्सोऽस्मि चार्जुनः। पुण्येनेव विना तेन गतं सर्वमसारताम् ॥३२॥
ममार्जुनत्वं भीमस्य भीमत्वं तत्कृतं ध्रुवम्। विना तेन यदाभीरैर्जितोऽहं कथमन्यथा ॥३३॥

सका। कष्ट करने पर धनुष चढा भी तो वह पुन शिथिल हो गया। ध्यान करने पर भी पाण्डव अस्त्रों का स्मरण नही कर पाया। हर्ष से पाण्डव ने अपने अवशिष्ट बाणो को चोरो के ऊपर छोडा। किन्तु गाण्डीव धनुष से छूटे हुए वे बाण अहीरो के कुछ नहीं बिगाड सके। अग्नि ने अर्जुन को अक्षय बाण दिये थे। वे भी नष्ट हो गये। अहीरो के साथ युद्ध करते हुए अर्जुन का क्षय हो गया। पाण्डव ने सोचा—'मैंने जो बाण-समूहो से बली राजाओ को जीता वह कृष्ण का ही प्रताप था।' अहीरो ने पाण्डुपुत्र से बलपूर्वक अबलाओ को छीन लिया। कुछ महिलायें स्वेच्छा से भाग गई। तब बाण क्षीण हो जाने पर धनजय धनुष के अग्रभाग से चोरो को मारने लगे। चोरगण इसके प्रहारो को देखकर हँसने लगे। मुनिश्रेष्ठो! पार्थ के देखते ही देखते म्लेच्छगण चारों ओर से वृष्णि तथा अन्धक वश वालो की स्त्रियो को लेकर भाग गये। तब दु खी अर्जुन 'कष्ट, कष्ट! अहो! भगवान् ने मुझे छोड दिया' यह बोलते हुए रोने लगे ॥२०-२९॥

अर्जुन ने कहा—वही धनुष, वही रथ, वे ही अस्त्र, वे ही घोड़े—सब एक ही पग मे नष्ट हो गये, जैसे अश्रोत्रिय को दिया हुआ दान (नष्ट हो जाता है)। अहो! भाग्य प्रबल है। बिना उस महात्मा के मैं असमर्थ होकर नीचो से पराजित हुआ। वे ही मेरी बाँहें हैं, वही मेरी मुट्ठी है, वही स्थान है, और वही अर्जुन मैं हूँ। किन्तु जैसे बिना पुण्य के क्रियायें निष्फल होती हैं उसी तरह कृष्ण के बिना मेरा सब कुछ निष्फल हो गया। मेरा अर्जुनत्व तथा भीम का भीमत्व निश्चय ही कृष्ण का किया हुआ था। अन्यथा उनके बिना क्यो मैं अहीरो से पराजित हुआ? ॥३०-३३॥

१क ०भीरैस्ते दाराः प्रययु क्षयम्। त०। २क ०मस्ता मुनि०। ३ख. ह। ४क. भ्रष्टं। ५ख. ग. ०होऽतिबलवद्दैव। ६ख. ग. ०युक्तेऽपि नीचवर्गं जयप्रदम्। ७क. ०ष्टिः सोऽस्मि चाहं तथार्जु०।

व्यास उवाच

इत्थ वदन्ययौ जिष्णुरिन्द्रप्रस्थं पुरोत्तमम्। चकार तत्र राजानं वज्रं यादवनन्दनम्॥३४॥
स ददर्श ततो व्यासं फाल्गुनः काननाश्रयम्। तमुपेत्य महाभागं विनयेनाभ्यवादयत्॥३५॥
तं वन्दमानं चरणाववलोक्य मुनिश्चिरम्। उवाच पार्थं विच्छायः कथमत्यन्तमीदृशः॥३६॥
अजारजोऽनुगमनं ब्रह्महत्याऽथवा कृता। जयाशाभङ्गदुःखी वा भ्रष्टच्छायोऽसि साम्प्रतम्॥३७॥
सान्तानिकादयो वा ते याचमाना निराकृताः। अगम्यस्त्रीरतिर्वाऽपि तेनासि विगतप्रभः॥३८॥
भुङ्क्ते प्रदाय विप्रेभ्यो मिष्टमेकमथो भवान्। किं वा कृपणवित्तानि हृतानि भवताऽर्जुन॥३९॥
कच्चिन्न सूर्यवातस्य गोचरत्वं गतोऽर्जुन। दुष्टचक्षुर्हतो वाऽपि निःश्रीकः कथमन्यथा॥४०॥
स्पृष्टो नखाम्भसा वाऽपि घटाम्भःप्रोक्षितोऽपि वा। तेनातीवासि विच्छायो न्यूनैर्वा युधि निर्जितः॥४१॥

व्यास उवाच

ततः पार्थो विनिःश्वस्य श्रूयतां भगवन्निति। प्रोक्तो यथावदाचष्ट विप्रा आत्मपराभवम्॥४२॥

अर्जुन उवाच

यद्बलं यच्च नस्तेजो यद्वीर्यं यत्पराक्रमः। या श्रीश्छाया च नः सोऽस्मान्परित्यज्य हरिर्गतः॥४३॥

व्यास ने कहा—इस प्रकार कहता हुआ अर्जुन इन्द्रप्रस्थ नामक उत्तम नगर में पहुँचा। वहाँ उसने यादव-पुत्र वज्र को राजा बनाया। तदनन्तर अर्जुन वन में व्यास से मिला। उसने विनयपूर्वक महाभाग व्यास का अभिवादन किया। चरणवन्दना करते हुए पार्थ को देखकर व्यास ने पूछा—ऐसे अत्यन्त कान्तिहीन क्यों हो गये हो? क्या तुमने अजारज (मार्ग में बकरे-बकरियों के चलने से जो धूल उड़ती है वह 'अजारज' है। उसके पड़ने से पाप लगता है) का अनुगमन किया है? अथवा ब्रह्महत्या की है? या तुम विजय की आशा के भग्न हो जाने से दुःखी हो? या इस समय तुम निराश्रय हो गये हो? या तुम्हारे पुत्र आदि याचना करते हुए निराश किये गये हैं या तुम अगम्या स्त्री में अनुरक्त हो गये हो जिससे तुम्हारी कान्ति नष्ट हो गई है? क्या तुमने ब्राह्मणों को मिष्टान्न देकर स्वयं खा लिया है? अर्जुन! क्या तुमने कृपणों का वित्त हरण किया है? कहीं तुम सूर्य-वायु के सामने तो नहीं पड़ गये? दूषित दृष्टि तो नहीं लग गई है? अथवा तुम (इतना) हतश्रीक क्यों होते? तुम्हें नख डाले गये जल का स्पर्श हो गया है या (ऐसे) घड़े के जल से तुमने स्नान कर लिया है। या नीचों से तुम युद्ध में हार गये हो। इसलिए तुम अत्यन्त कान्तिहीन मालूम पड़ते हो॥३४-४१॥

व्यास ने कहा—विप्रवृन्द! आह भरकर पार्थ ने कहा—'भगवन्! सुनिये!' तब उसने अपने पराजय का सब समाचार सुनाया॥४२॥

अर्जुन ने कहा—हमारे जो बल, तेज, शक्ति, पराक्रम, धन तथा ऐश्वर्य थे, वे हरि हमें छोड़ कर चले

१ग ०भागो वि०। २ग तं दृष्ट्वा वै मुनिश्रेष्ठा पृष्टवानहमर्जुनम्। अहो विवर्ण वि०। ३घ ०न्तः। ०गुरुजोऽ०। ग ०न्तः। ४ङ राजानु०। ४क स ०यो नीचैर्वा। ५ङ घ. ०प्रमात्मपरा०।

इतरेणेव महता स्मितपूर्वाभिभाषिणा। हीना वय मुने तेन जातास्तृणमया इव ॥४४॥
अस्त्राणा सायकाना च गाण्डीवस्य तथा मम। सारता याऽभवन्मूर्ता स गत पुरुषोत्तम ॥४५॥
यस्यावलोकनादस्माञ्छ्रीर्जय सपदुन्नति । न तत्याज स गोविन्दस्त्यक्त्वाऽस्मान्भगवान्गत ॥४६॥
भीष्मद्रोणाङ्गराजाद्यास्तथा दुर्योधनादय । यत्प्रभावेण निर्दग्धा स कृष्णस्त्यक्तवान्भुवम् ॥४७॥
निर्यौवना हृतश्रीका भ्रष्टच्छायेव मे मही। विभाति तात नैकोऽह विरहे तस्य चक्रिण ॥४८॥
यस्यानुभावाद्भीष्माद्यैर्मय्यग्नौ शलभायितम् । विना तेनाद्य कृष्णेन गोपालैरस्मि निर्जित ॥४९॥
गाण्डीव त्रिपु लोकेषु ख्यात यदनुभावत । मम तेन विनाऽऽभीरैर्लगुडैस्तु तिरस्कृतम् ॥५०॥
स्त्रीसहस्राण्यनेकानि ह्यनाथानि महामुने। यततो मम नीतानि दस्युभिर्लगुडायुधै ॥५१॥
आनीयमानमाभीरै सर्वं कृष्णावरोधनम्। हृत यष्टिप्रहरणै परिभूय बल मम ॥५२॥
नि श्रीकता न मे चित्र यज्जीवामि तदद्भुतम्[१] । नीचावमानपङ्काङ्की निर्लज्जोऽस्मि पितामह ॥५३॥

व्यास उवाच

श्रुत्वाऽह तस्य तद्वाक्यमब्रव द्विजसत्तमा । दु खितस्य च दीनस्य पाण्डवस्य महात्मन ॥५४॥
अल ते व्रीडया पार्थ न त्व शोचितुमर्हसि। अवेहि[२] सर्वभूतेषु कालस्य गतिरीदृशी ॥५५॥

गये। मुने! मुसकराकर बोलने वाले उस महान् महात्मा ने इतर व्यक्ति की तरह हमे छोड दिया। उससे हम तृण के बराबर हो गये। मेरे अस्त्रो बाणो तथा गाण्डीव धनुष का जो मूर्तरूप तत्त्व था वे पुरुषोत्तम चले गये। जिनके दर्शन से लक्ष्मी विजय सपत्ति तथा उन्नति हम नही छोडती थी वे भगवान् गोविन्द हम त्याग कर चले गये। जिनके प्रभाव से भीष्म द्रोण अगराज आदि तथा दुर्योधन आदि दग्ध हुए उन कृष्ण ने पृथ्वी का परित्याग कर दिया। तात! मुझे पृथ्वी यौवनहीन श्रीहीन तथा छायाहीन दीखती है। अकेला मैं ही कृष्ण के विरह मे नही घुलता। जिनके प्रताप से भीष्म आदि मुझ रूपी अग्नि म पतगो की तरह गिर पडे थे, उन कृष्ण के बिना आज मैं ग्वालो से हार गया। जिनके सामर्थ्य से मेरा गाण्डीव धनुष तीनो लोको म प्रख्यात हुआ उन कृष्ण के बिना वही धनुष ग्वालो की लाठियो से तिरस्कृत हुआ। महामुने! मेरे यत्न करने पर भी हजारो अनाथ स्त्रियाँ लट्ठधर चोरो द्वारा अपहृत कर ली गईं। लाठी चलाने वाले अहीरो ने मेरे बल को पराजित कर कृष्ण की सारी दलितया को हर लिया। मुझे अपनी श्रीविहीनता से उतना आश्चर्य नही होता है जितना कि 'मैं जी रहा हूँ' इससे आश्चर्य होता है। पितामह! मैं नीचो के अपमान रूपी कीचड म फँसा हूँ, मैं निर्लज्ज हूँ ॥४३ ५३॥

व्यास ने कहा—द्विजवर! मैं दुखी दीन महात्मा पाण्डव की बात सुनकर कहने लगा—'पार्थ! तुम व्यर्थ लज्जित हो रहे हो। तुम्हे सोच नही करना चाहिये। समस्त प्राणिमात्र म काल की गति ऐसी ही होती है।

१क० मृ। ण्काकी जीवमस्तु नि०। २ग म अवेहि।

कालो भवाय भूतानामभवाय च पाण्डव। कालमूलमिदं ज्ञात्वा कुरु स्थैर्यमतोऽर्जुन ॥५६॥
नद्यः समुद्रा गिरयः[1] सकला च वसुंधरा। देवा मनुष्याः पशवस्तरवश्च सरीसृपाः ॥५७॥
सृष्टाः कालेन कालेन पुनर्यास्यन्ति संक्षयम्। कालात्मकमिदं सर्वं ज्ञात्वा शममवाप्नुहि ॥५८॥
यथाऽऽत्थ कृष्णमाहात्म्यं तत्तथैव धनंजय। भारावतारकार्यार्थमवतीर्णः स मेदिनीम् ॥५९॥
भाराक्रान्ता धरा याता देवानां संनिधौ पुरा। तदर्थमवतीर्णोऽसौ कामरूपी जनार्दनः ॥६०॥
तच्च निष्पादितं कार्यमशेषा भूभृतो हताः। वृष्ण्यन्धककुलं सर्वं तथा पार्थोपसंहृतम् ॥६१॥
न किंचिदन्यत्कर्तव्यमस्य भूमितलेऽर्जुन। ततो गतः स भगवान्कृतकृत्यो यथेच्छया ॥६२॥
सृष्टिं सर्गे करोत्येष देवदेवः स्थितिं स्थितौ। अन्ते[2] ताव(लयं)समर्थोऽयं सांप्रतं वै यथा कृतम् ॥६३॥
तस्मात्पार्थ न संतापस्त्वया कार्यः पराभवात्[3]। भवन्ति भवकालेषु पुरुषाणां पराक्रमाः ॥६४॥
यतस्त्वयैकेन हता भीष्मद्रोणादयो नृपाः। तेषामर्जुन कालोत्थः किं न्यूनाभिभवो न सः ॥६५॥
विष्णोस्तस्यानुभावेन यथा तेषां पराभवः। त्वत्तस्तथैव भवतो दस्युभ्योऽन्ते तदुद्भवः ॥६६॥
स देवोऽन्यशरीराणि समाविश्य जगत्स्थितिम्। करोति सर्वभूतानां नाशं चान्ते जगत्पतिः ॥६७॥
भवोद्भवे च कौन्तेय सहायस्ते जनार्दनः। भवान्ते त्वद्विपक्षास्ते केशवेनावलोकिताः ॥६८॥
क. श्रद्दध्यात्सगाङ्गेयान्हन्यास्त्वं सर्वकौरवान्। आभीरेभ्यश्च भवतः कः श्रद्दध्यात्पराभवम् ॥६९॥

पाण्डव! काल ही प्राणियो की उत्पत्ति तथा विनाश करता है। ससार को कालमूलक जानकर स्वस्थ होओ। काल ने ही नदी, समुद्र, पर्वत, सपूर्ण पृथ्वी, देव मनुष्य, पशु, वृक्ष तथा सर्प की सृष्टि की और ये सब पुन काल ही मे विलीन हो जायेंगे। सपूर्ण जगत् को कालरूप जानकर शान्ति धारण करो ॥५४-५८॥ धनजय! जैसे तुमने कृष्ण का माहात्म्य-वर्णन किया है, वैसे ही वे भार उतारने के लिए पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए थे। पूर्वकाल मे भार से आक्रान्त होकर पृथ्वी देवताओ के पास गई थी। इसी निमित्त कामरूपी जनार्दन ने अवतार लिया। उन्होने कार्य सम्पन्न किया, अशेष राजाओ को मारा और वृष्णि-अन्धक कुल का सहार किया ॥५९-६१॥ अर्जुन! भूतल पर उनका कोई कर्तव्य नही शेष नहीं रहा। भगवान् कृतकृत्य होकर स्वेच्छा से चले गये। देवो के देव समर्थ भगवान् सृष्टिकाल मे सृष्टि, स्थितिकाल मे स्थिति तथा प्रलयकाल मे प्रलय करते हैं, जैसे इस समय उन्होने किया है। पार्थ! इसलिए तुम्हे पराभव से सताप नही करना चाहिये। ससार मे रहने के समय पुरुषो मे पराक्रम होते हैं, जिसलिए तुमने अकेले ही भीष्म, द्रोण आदि राजाओ को निहत किया। क्या यह उनका कालजन्य पराभव कम हुआ? ॥६२-६५॥ उसी विष्णु के प्रताप से जैसे तुमसे उनका पराजय हुआ उसी तरह अन्त मे चोरो से तुम्हारा भी हुआ। वह जगत्पति अन्य शरीरो मे प्रवेश कर ससार की स्थिति करते हैं और अन्त मे समस्त प्राणियो का नाश कर देते हैं। कुन्तीपुत्र! तुम्हारे उद्भव-काल मे जनार्दन सहायक थे और अन्तकाल म केशव ने तुम्हारे शत्रुओ को देखा था। कौन विश्वास करता कि तुम भीष्म सहित अशेष कौरवो को मारोगे और अहीरो से तुम्हारा पराजय होगा? पार्थ!

१क. भुवय.। २क. ०न्ते ता च समाप्याय सां०। ख. ०न्ते च लय०। ३ख. ०भवे। म०।

पार्थेतत्सर्वभूतेषु हरेर्लीलाविचेष्टितम्। त्वया यत्कौरवा ध्वस्ता यदाभीरैर्भवाञ्जितः॥७०॥
गृहीता दस्युभिर्यच्च रक्षिता भवता स्त्रिय.। तदप्यहं यथावृत्तं कथयामि तवार्जुन॥७१॥
अष्टावक्रः पुरा विप्र उदवासरतोऽभवत्। बह्वन्वर्षगणान्पार्थ गृणन्ब्रह्म सनातनम्॥७२॥
जितेष्वसुरसंघेषु मेरुपृष्ठे महोत्सव'। बभूव तत्र गच्छन्त्यो ददृशुस्तं सुरस्त्रियः॥७३॥
रम्भा तिलोत्तमाद्याश्च शतशोऽथ सहस्रशः। तुष्टुवुस्तं महात्मानं प्रशशंसुश्च' पाण्डव॥७४॥
आकण्ठमग्न' सलिले 'जटाभारधरं मुनिम्। विनयावनताश्चैव प्रणेमुः स्तोत्रतत्पराः॥७५॥
यथा यथा प्रसन्नोऽभूत्तुष्टुवुस्तं तथा तथा। सर्वास्ताः कौरवश्रेष्ठ वरिष्ठं तं द्विजन्मनाम्॥७६॥

अष्टावक्र उवाच

प्रसन्नोऽहं महाभागा भवतीनां यदिष्यते। मत्तस्तद्व्रियतां सर्वं प्रदास्याम्यपि दुर्लभम्॥७७॥

व्यास उवाच

रम्भा तिलोत्तमाद्याश्च' दिव्याश्चाप्सरसोऽब्रुवन् [॥७८॥

अप्सरस ऊचुः

प्रसन्ने त्वय्यसंप्राप्तं किमस्माकमिति द्विजाः' ॥७९॥
इतरास्त्वब्रुवन्विप्र प्रसन्नो भगवन्यदि। तदिच्छाम पतिं प्राप्तुं विप्रेन्द्र पुरुषोत्तमम्॥८०॥

प्राणि-मात्र मे यह सब तो हरि की लीला है। अर्जुन ! तुमने जो कौरवो को मारा, अहीरो ने जो तुम्हे जीता और तुमसे रक्षित स्त्रियो का जो चोरो ने हरण किया, वह सब वृत्तान्त मैं तुम्हें सुनाता हूँ॥६६-७१॥ पार्थ ! प्राचीन-काल मे विप्र अष्टावक्र सनातन ब्रह्म की स्तुति करते हुए बहुत वर्षों तक जलवास मे निरत रहे। असुरसमूह के पराजय होने के उपलक्ष्य मे सुमेरुपर्वत पर महान् उत्सव हो रहा था। उसी मे सम्मिलित होने के लिये जाती हुई सैकडों हजारों देवागनायें तथा रम्भा, तिलोत्तमा आदि अप्सरायें महात्मा अष्टावक्र को देखकर उनकी स्तुति तथा प्रशसा करने लगी। पाण्डव ! स्तुति करने मे तत्पर वनितायें जल मे कण्ठ तक निमग्न तथा जटाभारधारी मुनि को विनय से झुक कर प्रणाम करने लगी। कौरवश्रेष्ठ ! जैसे जैसे मुनि प्रसन्न होते जाते थे वैसे-वैसे स्त्रियाँ उनकी स्तुति करती जाती थीं॥७२-७६॥

अष्टावक्र ने कहा—महाभागा ! मैं प्रसन्न हूँ। तुम लागो को जो इच्छा हो, वह सब मुझसे वर माग लो, मैं दुर्लभ वस्तु भी दूँगा॥७७॥

व्यास ने कहा—रम्भा, तिलोत्तमा आदि दिव्य अप्सरायें बोली॥७८॥

अप्सराओ ने कहा—आपके प्रसन्न होने पर हम क्या नही मिला। द्विजगण ! इतर स्त्रियो ने कहा—विप्रेन्द्र ! भगवन् ! यदि आप प्रसन्न हैं तो यह वर दीजिये कि पुरुषोत्तम हमारे पति हों॥७९-८०॥

१ख प्रसन्नमुवाङ्क्जम्। अ०। २क ०कगंम०। ३कं स ०टाचीर०। ४क. ग. ०श्च दैदिव्यो० ऽप्स०। ५ख. ग. द्विज।

व्यास उवाच

एवं भविष्यतीत्युक्त्वा उत्ततार जलान्मुनिः। तमुत्तीर्णं च ददृशुर्विरूपं वक्रमष्टधा ॥८१॥
तं दृष्ट्वा गूहमानानां यासां हासः स्फुटोऽभवत्। ताः शशाप मुनिः कोपमवाप्य कुरुनन्दनः ॥८२॥

अष्टावक्र उवाच

यस्माद्विरूपरूपं मां मत्वा हासावमानना। भवतीभिः कृता तस्मादेष शापं ददामि वः ॥८३॥
मत्प्रसादेन भर्तारं लब्ध्वा तु पुरुषोत्तमम्। मच्छापोपहताः सर्वा दस्युहस्तं गमिष्यथ ॥८४॥

व्यास उवाच

इत्युदीरितमाकर्ण्य मुनिस्ताभिः प्रसादितः। पुनः सुरेन्द्रलोकं वै प्राह भूयो गमिष्यथ ॥८५॥
एवं तस्य मुनेः शापादष्टावक्रस्य केशवम्। भर्तारं प्राप्य ताः प्राप्ता दस्युहस्तं वराङ्गनाः ॥८६॥
तत्त्वया नात्र कर्तव्यः शोकोऽल्पोऽपि हि पाण्डव। [1]तेनैवाखिलनाथेन सर्वं तदुपसंहृतम् ॥८७॥
भवतां चोपसंहारमासन्नं तेन कुर्वता। बलं तेजस्तथा वीर्यं माहात्म्यं चोपसंहृतम् ॥८८॥
जातस्य नियतो मृत्युः पतनं च तथोन्नतेः। विप्रयोगावसानं तु संयोगः [2]संचयः क्ष(यात्क्ष) यः ॥८९॥
विज्ञाय न बुधाः शोकं न हर्षमुपयान्ति ये। तेषामेवेतरे चेष्टां शिक्षन्तः सन्ति तादृशाः ॥९०॥
तस्मात्त्वया नरश्रेष्ठ ज्ञात्वैतद्भ्रातृभिः सह। परित्यज्याखिलं राज्यं गन्तव्यं तपसे वनम् ॥९१॥
तद्गच्छ धर्मराजाय निवेद्यैतद्वचो मम। परश्वो भ्रातृभिः सार्धं गतिं वीर यथा कुरु ॥९२॥

व्यास ने कहा—'ऐसा होगा' यह कहकर मुनि जल से बाहर निकले। स्त्रियों ने देखा कि मुनि कुरूप तथा आठ स्थानों में वक्र हैं। उन्हें देखकर जिन स्त्रियों का हास्य छिपाने पर भी स्फुट हो गया, उनको मुनि ने क्रोध से शाप दे दिया ॥८१-८२॥

अष्टावक्र ने कहा—जिसलिये मुझे कुरूप समझकर मेरा अपमान करती हुई तुम हँसी इसलिए मैं तुम्हें शाप देता हूँ—'मेरी कृपा से पुरुषोत्तम को पतिरूप में प्राप्त करके तुम सब मेरे शाप से चोरों के हाथ में पड़ोगी ॥८३-८४॥

व्यास ने कहा—इतना वचन सुनकर स्त्रियों ने मुनि को प्रसन्न किया। पुनः मुनि ने कहा—'तुम लोग फिर देवलोक जाओगी।' इस प्रकार अष्टावक्र मुनि के शाप से वे स्त्रियाँ केशव को स्वामी के रूप में प्राप्त कर चोरों के हाथों में पड़ीं। पाण्डव! इसलिए तुम्हें जरा भी शोक नहीं करना चाहिये। उसी जगन्नाथ ने सबका उपसंहार किया है। तुम्हारा भी संहार निकटवर्ती है। अतः तुम्हारे बल, तेज, वीर्य तथा माहात्म्य को उन्होंने समेट लिया है। उत्पन्न प्राणी का मरण, पतन, उन्नति, वियोग, समाप्ति, संयोग, संचय तथा क्षय निश्चित है—यह जानकर जो विद्वान् हर्ष-शोक नहीं करते हैं, उन्हीं की चेष्टाओं से इतर व्यक्ति शिक्षा ग्रहण करते हैं। नरश्रेष्ठ! इसलिए यह जानकर तुम अखिल राज्य का परित्याग कर भाइयों के साथ तपस्या करने के लिए वन में चले जाओ। अतः धर्मराज से जाकर मेरा वचन कह देना और परसों भाइयों के साथ प्रस्थान कर देना ॥८५-९२॥

१ख. तेनाखिलनाथेन। २क. संचयः।

व्यास उवाच

इत्युक्तो धर्मराजं तुं समभ्येत्य तथोक्तवान्। दृष्टं चैवानुभूतं वा कथितं तदशेषतः[1]॥९३॥
व्यासवाक्यं च ते सर्वे श्रुत्वार्जुनसमीरितम्। राज्ये परीक्षितं कृत्वा ययुः पाण्डुसुता वनम्॥९४॥
इत्येवं वो मुनिश्रेष्ठा विस्तरेण मयोदितम्। जातस्य च यदोर्वंशे वासुदेवस्य चेष्टितम्॥९५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरितसमाप्तिकथनं नाम
द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१२॥

अथ त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

वराहावतारवर्णनम्

मुनय ऊचुः

अहो कृष्णस्य माहात्म्यमद्भुतं चातिमानुषम्। रामस्य च मुनिश्रेष्ठ त्वयोक्तं भुवि दुर्लभम्॥१॥
न तृप्तिमधिगच्छामः शृण्वन्तो भगवत्कथाम्। तस्माद्ब्रूहि महाभाग भूयो देवस्य चेष्टितम्॥२॥
प्रादुर्भावः पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः। सतां कथयतामेष वराह इति नः श्रुतम्॥३॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त अर्जुन ने युधिष्ठिर के पास जाकर दृष्ट, अनुभूत, कथित—सारी बातें कह सुनायी। अर्जुन द्वारा कथित व्यास-वाक्य को सुनकर वे सब पाण्डु-पुत्र राज्य मे परीक्षित को नियुक्त करके वन मे चले गये। मुनिश्रेष्ठो! इस प्रकार मैंने यदुवश मे उत्पन्न वासुदेव की लीला का वर्णन कर दिया॥९३–९५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे श्रीकृष्णचरित्र-समाप्तिकथन नामक दो सौ
बारहवाँ अध्याय समाप्त॥२१२॥

अध्याय २१३

वाराह-अवतार का वर्णन

मुनियों ने कहा—मुनिश्रेष्ठ! अहो! आपने कृष्ण-राम का अद्भुत, अलौकिक तथा पृथ्वी पर दुर्लभ माहात्म्य सुनाया। पर भगवान् की कथा को सुनते-सुनते तृप्ति नहीं होती। महाभाग! इसलिये फिर भगवान् की लीला सुनायें। सत्पुरुषो के मुँह से हमने सुना है कि पुराणो मे अमित तेजस्वी विष्णु का वराह अवतार माना गया

---

1. ग. ०तः। मम वा०।

न जानीमोऽस्य चरितं न विधिं च च विस्तरम्। न कर्मगुणसद्भावं न हेतुत्वमनीषितम् ॥४॥
किमात्मको वराहोऽसौ का मूर्तिः का च देवता। किमाचारप्रभावो वा किंवा तेन तदा कृतम् ॥५॥
यज्ञार्थे समवेतानां मिषतां च द्विजन्मनाम्। महावराहचरितं सर्वलोकसुखावहम् ॥६॥
यथा नारायणो ब्रह्मन्वाराहं रूपमास्थितः। दंष्ट्रया गां समुद्रस्थामुज्जहारारिमर्दनः ॥७॥
विस्तरेणैव कर्माणि सर्वाणि रिपुघातिनः। श्रोतुं नो वर्तते बुद्धिर्हरेः कृष्णस्य धीमतः ॥८॥
कर्मणामानुपूर्व्या च प्रादुर्भावाश्च ये विभोः। या वाऽस्य प्रकृतिर्ब्रह्मंस्ताश्चाऽऽख्यातुं त्वमर्हसि ॥९॥

व्यास उवाच

प्रश्नभारो महानेष भवद्भिः समुदाहृतः। यथाशक्त्या तु वक्ष्यामि श्रूयतां वैष्णवं यशः ॥१०॥
विष्णोः प्रभावश्रवणे दिष्ट्या वो मतिरुत्थिता। तस्माद्विष्णोः समस्ता वै शृणुध्वं याः प्रवृत्तयः ॥११॥
सहस्रास्यं सहस्राक्षं सहस्रचरणं च यम्। सहस्रशिरसं देवं सहस्रकरमव्ययम् ॥१२॥
सहस्रजिह्वं भास्वन्तं सहस्रमुकुटं प्रभुम्। सहस्रदं सहस्रादिं सहस्रभुजमव्ययम् ॥१३॥
हवनं सवनं चैव होतारं हव्यमेव च। पात्राणि च पवित्राणि वेदिं दीक्षां समित्स्रुवम् ॥१४॥
स्रुक्सोमसूर्यमुशलं प्रोक्षणीं दक्षिणायनम्। अध्वर्युं सामगं विप्रं सदस्यं सदनं सदः ॥१५॥
यूपं चक्रं[1] ध्रुवां दर्वी चरूंश्चोलूखलानि च। प्राग्वंशं यज्ञभूमिं च होतारं च परं च यत् ॥१६॥

है। परन्तु हम लोग न उसका चरित्र, न विस्तृत विधान, न कर्म-गुण और न अन्वेषण-रहित कारण ही जानते हैं। वराह का क्या स्वरूप है? कैसी मूर्ति है? कौनसा देवता है? कैसा आचार तथा प्रभाव है? जिस समय यज्ञ करने के लिए द्विजातिगण एकत्रित हुए थे, उस समय उसने क्या किया? महावराह का चरित्र सब लोगों को सुख देने वाला है। कैसे शत्रुमर्दन नारायण ने वराह का रूप धारण कर दाँतों से समुद्र-स्थित पृथ्वी का उद्धार किया? रिपुनाशन धीमान् कृष्ण के सारे कर्मों को विस्तार से हम सुनना चाहते हैं। ब्रह्मन्! हरि के कर्म, प्रादुर्भाव तथा प्रकृति के बारे में हमें क्रमशः बतलाइये ॥१–९॥

व्यास ने कहा—यह तो आपने महान् प्रश्न कर दिया। मैं यथाशक्ति कहूँगा। विष्णु के यश को सुनिये। भाग्य से विष्णु के प्रताप सुनने की इच्छा आपको हुई है। इसलिए विष्णु की समस्त प्रवृत्तियों को सुन लीजिये। ॥१०-११॥ जो सहस्र मुख वाले, सहस्र चरण वाले, सहस्र नेत्र वाले, सहस्र शिर वाले, सहस्र हाथ वाले अव्यय, सहस्र जिह्वा वाले, प्रकाशमान, सहस्र मुकुट वाले, समर्थ, सहस्रों देने वाले, सहस्रों के आदि, सहस्र भुजा वाले, हवन, सोमपान, होता, देवान्न, पात्र, पवित्री, वेदि, दीक्षा, समिधा, स्रुव, चन्द्रमा, सूर्य, मुशल, प्रोक्षणीपात्र, दक्षिणायन, अध्वर्यु, साम गाने वाले विप्र, सदस्य, सदन, सभा, यूप, चक्र, धुरी, चरु, ओखली, प्राग्वंश (यज्ञशाला में हविर्गृह में पूरब का घर जिसमें यजमान आदि रहते हैं), यज्ञभूमि, सबसे परे, ह्रस्व, अतिदीर्घ, स्थावर, जंगम, प्रायश्चित्त, अर्घ, स्थण्डिल, (समतल वेदी), कुश, मन्त्र तथा यज्ञवाहक अग्नि, भाग, भागवाहक, आगे बैठने वाले, सोमभोक्ता, अग्नि में हवन करने वाले

---

[1] क. ध्रुव।

ह्रस्वाण्यतिप्रमाणानि स्थावराणि चराणि च। प्रायश्चित्तानि वाऽर्घ्यं च स्थण्डिलानि कुशास्तथा ॥१७॥
'मन्त्रयज्ञवहं वह्निं[1] भागं भागवहं च यत्। 'अप्राशिनं सोमभुजं हुताचिषमुदायुधम् ॥१८॥
आहुर्वेदविदो विप्रा यं यज्ञे शाश्वतं प्रभुम्। तस्य विष्णो सुरेशस्य श्रीवत्साङ्कस्य धीमतः ॥१९॥
प्रादुर्भावसहस्राणि समतीतान्यनेकशः। भूयश्चैव भविष्यन्ति ह्येवमाह पितामहः ॥२०॥
यत्पृच्छध्वं महाभागा दिव्यां पुण्यामिमां कथाम्। प्रादुर्भावाश्रितां विष्णोः सर्वपापहरां शिवाम् ॥२१॥
शृणुध्वं तां महाभागास्तद्गतेनान्तरात्मना। प्रवक्ष्याम्यानुपूर्व्येण यत्पृच्छध्वं[3] ममानघाः ॥२२॥
वासुदेवस्य माहात्म्यं चरितं च महामतेः। हितार्थं सुरमर्त्यानां लोकानां प्रभवाय च ॥२३॥
बहुशः सर्वभूतात्मा प्रादुर्भवति वीर्यवान्[4]। प्रादुर्भावांश्च वक्ष्यामि[5] पुण्यान्दिव्यान्गुणान्वितान् ॥२४॥
सुप्तो युगसहस्रं यः प्रादुर्भवति कार्यतः[6]। पूर्णे युगसहस्रेऽस्य देवदेवो जगत्पतिः ॥२५॥
ब्रह्मा च कपिलश्चैव त्र्यम्बकस्त्रिदशास्तथा। देवाः सप्तर्षयश्चैव नागाश्चाप्सरसस्तथा ॥२६॥
सनत्कुमारश्च महानुभावो, मनुर्महात्मा [7]भगवान्प्रजाकरः।
पुराणदेवोऽथ पुराणि चक्रे[8] प्रदीप्तवैश्वानरतुल्यतेजाः ॥२७॥
योऽसौ चार्णवमध्यस्थो नष्टे स्थावरजङ्गमे। नष्टे देवासुरनरे प्रनष्टोरगराक्षसे ॥२८॥
योद्धुकामौ दुराधर्षौ तावुभौ मधुकैटभौ। हतौ[9] भगवता[10] तेन तयोर्दत्त्वाऽमितं[11] वरम् ॥२९॥
पुरा कमलनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि। पुष्करे तत्र[12] संभूता देवाः सर्षिगणास्तथा ॥३०॥

धारण तथा अस्त्र करने वाले है और जिनको वेदवेत्ता ब्राह्मण यज्ञ में 'नित्य' कह कर पुकारते हैं, उन देवेश, श्रीवत्स चिह्न से युक्त, धीमान् विष्णु के हजारों अवतार हो चुके हैं और फिर होंगे—ऐसा ब्रह्मा जी ने कहा है ॥१२-२०॥ महाभाग! जो आप विष्णु की सर्वपापनाशिनी, कल्याणमयी, दिव्य, पवित्र तथा अवतार से सम्बन्ध रखने वाली कथा पूछते हैं, वह ध्यान में मन लगाकर सुनिये। निष्पाप! देव-मनुष्यों के हित के लिए तथा लोकों की उत्पत्ति के लिए मैं महाबुद्धिमान् वासुदेव का माहात्म्य तथा चरित्र अक्षरशः बताऊँगा ॥२१-२३॥ अखिल प्राणियों के आत्मा शक्तिशाली कृष्ण के अनेक अवतार हुए हैं, उन दिव्य गुणों से युक्त तथा पवित्र अवतारों के विषय में मैं कहूँगा ॥२४॥ देवदेव जगत्पति हजार युग तक शयन करते हैं और सहस्रयुग पूर्ण होने पर कार्यवश अवतार लेते हैं ॥२५॥ अनन्तर प्रज्वलित अग्नितुल्य तेजस्वी पुराणदेव ब्रह्मा, कपिल, शिव, देवता, सप्तर्षि, नाग, अप्सरा, महानुभाव सनत्कुमार, महात्मा मनु, भगवान् प्रजापति तथा पुरों की सृष्टि करते हैं ॥२६-२७॥ जो हरि स्थावर, जंगम, देव, असुर, नर, सर्प तथा राक्षस के नष्ट हो जाने पर समुद्र-मध्य में विराजमान थे, उन्होंने अतिपराक्रमी तथा युद्धाभिलाषी मधु-कैटभ को अपरिमित वर देकर निहत किया था ॥२८-२९॥ पूर्व काल में जब कमलनाभ भगवान् समुद्र में शयन कर रहे थे उस समय उस कमल से ऋषिगण सहित देवता उत्पन्न हुए थे ॥३०॥ महात्मा हरि का यह पौष्कर

१क ०यज्ञ बर्हिषंश मा०। २क अप्राशिन। ३क. ०ध्व मुनीश्वरा। पा०। ४ग. कार्यवान्। ५क. ०मि अनघरेयगुणा०। ६क. ख. वीर्यवान्। ७क. ०प्रमाक०। ८क. ०क्रे राष्ट्राणि चै०। ९ग. ०तौ प्रमत्त०। १०ग. ०ताऽनेन। ११क. ०त्वा वरं तत.। पु०। १२ ग. यत्र।

एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मन । पुराण कथ्यते यत्र[1] देवश्रुतिसमाहितम् ॥३१॥
वाराहस्तु[2] श्रुतिमुख प्रादुर्भावो महात्मन । यत्र विष्णु सुरश्रेष्ठो वाराह रूपमास्थित ॥३२॥
वेदपादो यूपदंष्ट्र [3]क्रतुदन्तश्चितीमुख । अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो [4]महातपा ॥३३॥
अहोरात्रेक्षणो दिव्यो वदाङ्ग श्रुतिभूषण । आज्यनास स्रुवतुण्ड सामघोषस्वरो महान ॥३४॥
सत्यधर्ममय श्रीमान्क्रमविक्रमसत्कृत । प्रायश्चित्तनखो[5] घोर [6]पशुजानुर्मुखाकृति ॥३५॥
उद्गातान्त्रो होमलिङ्गो[7] बीजौषधिमहाफल । वाद्यान्तरात्मा [8]मन्त्रस्फिग्विकृत सोमशोणित ॥३६॥
वेदिस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान् । प्राग्वशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिरन्वित ॥३७॥
दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो[9] महान् । [10]उपाकर्माष्टरुचक[11] [12]प्रवर्गावर्तभूषण ॥३८॥
नानाच्छन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासन । छायापत्नीसहायोऽसौ मणिशृङ्ग इवोत्थित ॥३९॥
महीं सागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम । एकार्णवजलभ्रष्टामेकार्णवगत प्रभु ॥४०॥
दंष्ट्रया य समुद्धृत्य लोकाना हितकाम्यया । सहस्रशीर्षो लोकादिश्चकार जगतीं पुन ॥४१॥
एव यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना । उद्धृता पृथिवी देवी सागराम्बुधरा पुरा ॥४२॥

प्रादुर्भाव है जहाँ देवतालोग समाहितचित्त होकर पुराणश्रवण करते हैं ॥३१॥ महात्मा (विष्णु) के वराह अवतार का मुख वेद है जहाँ सुरश्रेष्ठ विष्णु वराह रूप से स्थित हैं ॥३२॥ वेद उनके चरण हैं यूप दंष्ट्रा है यज्ञ दाँत है चिति (अग्नि-सस्कार) मुख है अग्नि जिह्वा है कुश रोम है ब्रह्म शिर है दिन और रात आँखें हैं वेदाग कर्ण-भूषण हैं घी नाक है स्रुव थूथन है और सामगान भारी स्वर है ॥३३-३४॥ वे महातपस्वी सत्यधर्ममय श्रीमान तथा पराक्रम द्वारा सत्कृत हैं। प्रायश्चित्त उनका भयकर नख है और पशु के घुटने उनके मुख की आकृति है ॥३५॥ उद्गाता उनकी अँतडी है। होम उनका लिंग है। महाफलशाली ओषधियाँ बीज हैं। अन्तरात्मा बाजा है मन्त्र विकृत चूतड है सोम शोणित है वेदि कन्धा है हविष्य गन्ध है, हव्य-कव्य अत्यन्त वेग है और प्राग्वश (यज्ञशाला मे हविगृह के पूरब का घर) शरीर है। वे कान्तिमान् तथा नाना दीक्षाओं से युक्त हैं ॥३६ ३७॥ दक्षिणा उनका हृदय है। वे योगी महान् तथा महासत्रमय हैं। उपाकर्म उनके कुण्डल हैं प्रवर्ग (होमाग्नि का भेद) आवर्त-भूषण (चक्करदार आभूषण विशेष) है नाना छन्द मार्ग हैं उपनिषद् आसन है और छाया पत्नी है। वे मणि पर्वत की तरह उठे हुए हैं। ॥३८ ३९॥ जब पर्वत वन तथा कानन सहित समुद्र पर्यन्त पृथिवी एकार्णव हो गई तब लोकों के आदि तथा सहस्र शिर वाले प्रभु ने लोको के हित के निमित्त एकार्णव मे प्राप्त होकर दंष्ट्रा से पृथ्वी का उद्धार कर पुन ससार बसाया ॥४० ४१॥ इस प्रकार प्राचीन काल मे प्राणियो के कल्याण के इच्छुक भगवान् ने यज्ञवराह होकर सागर के जल का धारण करने वाली पृथ्वी देवी का उद्धार किया ॥४२॥ द्विजगण !

१ग यत्र। २क ग ०श्च वेदस्तुति०। २क ०स्तु ततो जात प्रा०। ३ग ०तुहस्ताश्विनीमु०। ४क महामय। ५क ०त्समुखो। ६क ०गुपायुमु०। ७क ०लिङ्ग फलजीवमहौषधि। वा०। ८क मस्तिक्यविक्र०। ९क ०महम०। १०ग उवाक०। ११क ०कर्मोऽस्ट०। १२क ०वर्ग्यावलमू०।

ह एष कथितो नारसिंहस्ततो द्विजाः। यत्र भूत्वा मृगन्द्रेण हिरण्यकशिपुर्हतः ॥४३॥
कृतयुगे नाम[1] सुरारिर्बलदर्पितः। दैत्यानामादिपुरुषश्चकार सुमहत्तपः ॥४४॥
वर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च। 'जपोपवासनिरतस्तस्थौ'[2] मौनव्रतस्थितः ॥४५॥
शमदमाभ्यां च ब्रह्मचर्येण चैव हि। प्रीतोऽभवत्ततस्तस्य तपसा नियमेन च ॥४६॥
वै स्वयंभूर्भगवान्स्वयमागम्य भो द्विजाः। विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता ॥४७॥
दित्यैर्वसुभिः सार्धं मरुद्भिर्दैवतैस्तथा। रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसकिंनरैः ॥४८॥
भिः प्रदिशाभिश्च नदीभिः सागरैस्तथा। नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खेचरैश्च महाग्रहैः ॥४९॥
र्षिभिस्तपोवृद्धैः सिद्धैर्विद्वद्भिरेव च। राजर्षिभिः पुण्यतमैर्गन्धर्वैरप्सरोगणैः ॥५०॥
चरगुरुः श्रीमान्वृतः सर्वैः सुरैस्तथा। ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत् ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

तोऽस्मि तव भक्तस्य तपसाऽनेन सुव्रत। वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि ॥५२॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः। ऋषयो वाऽथ मा शापैः क्रुद्धा लोकपितामह ॥५३॥
युस्तपसा युक्ता शर एष वृतो मया। न शस्त्रेण न वाऽस्त्रेण गिरिणा पादपेन वा ॥५४॥
शुष्केण न चाऽऽर्द्रेण न चैवोर्ध्वं न चाप्यधः। पाणिप्रहारेणैकेन सभृत्यबलवाहनम् ॥५५॥

। वराहअवतार है। इसके बाद नरसिंह अवतार हुआ था, जिसमें सिंह होकर भगवान् ने हिरण्यकशिपु को मारा था ३॥ पहले सत्ययुग मे दैत्यों के आदिपुरुष बलाभिमानी राक्षस (हिरण्यकशिपु) ने महान् तप किया ॥४४॥ ग्यारह र पाँचसौ वर्षों तक वह मौनव्रत मे स्थित होकर जप-उपवास करता रहा ॥४५॥ उसके शम, दम, ब्रह्मचर्य, तपस्या र नियम से भगवान् प्रसन्न हुए ॥४६॥ द्विजवृन्द! हंस से युक्त, दीप्यमान तथा सूर्य के समान वर्ण वाले विमान त्थ ब्रह्माजी आदित्य, वसु, मरुत, देवता, रुद्र, विश्वेदेव, यक्ष, राक्षस, किंनर, दिशा, प्रदिशा, नदी, सागर, नक्षत्र, र्त आकाशचर, महाग्रह, देवर्षि, तपोवृद्ध सिद्ध, विद्वान्, राजर्षि, पुण्यतम, गन्धर्व तथा अप्सरागण से आवृत होकर के समीप आये। चराचर के गुरु तथा ब्रह्मज्ञानियों मे श्रेष्ठ ब्रह्मा ने दैत्य से कहा ॥४७-५१॥

ब्रह्मा बोले—हे सुव्रती! तुम्हारी इस तपस्या से मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो! तुम यथेष्ट वर गा ॥५२॥

हिरण्यकश्यप ने कहा—हे लोकपितामह! मैं यही वर माँगता हूँ कि देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, सर्प, राक्षस ऋषि तपस्या से युक्त होकर क्रोध से मुझे शाप न दें तथा न शस्त्र से, न अस्त्र से न पर्वत से, न वृक्ष से, न सूखे गीले पदार्थ से, न ऊपर और न नीचे ही मेरी मृत्यु हो। जो एक ही हस्त-प्रहार से सेवक, सेना तथा वाहन समेत

---

१ क ख जपोप०। २ ख 'स्थौ वाऽभोजन शुचि। त°।

यो मां नाशयितुं शक्तः स मे मृत्युर्भविष्यति। भवेयमहमेवार्कः सोमो वायुर्हुताशनः ॥५६॥
सलिलं चान्तरिक्षं च आकाशं चैव सर्वशः। अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः ॥
धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षः किंपुरुषाधिपः ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

एते दिव्या वरास्तात मया दत्तास्तवाद्भुताः। सर्वान्कामानिमांस्तात प्राप्स्यसि त्वं न संशयः ॥५८॥

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा तु भगवाञ्जगामाऽऽशु पितामहः। वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥५९॥
ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा मुनयस्तथा। वरप्रदानं श्रुत्वैव पितामहमुपस्थिताः ॥६०॥

देवा ऊचुः

वरेणानेन भगवन्बाधिष्यति स नोऽसुरः। तत्प्रसीदाऽऽशु भगवन्वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम् ॥६१॥
भगवन्सर्वभूतानां स्वयंभूरादिकृत्प्रभुः। स्रष्टा च हव्यकव्यानामव्यक्तं प्रकृतिर्ध्रुवम् ॥६२॥

व्यास उवाच

ततो लोकहितं वाक्यं श्रुत्वा देवः प्रजापतिः। प्रोवाच भगवान्वाक्यं सर्वदेवगणांस्तथा ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

अवश्यं त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम्। तपसोऽन्ते च भगवान्वधं विष्णुः करिष्यति ॥६४॥

मुझे मारने में समर्थ होगा, उसी से मेरी मृत्यु हो। मैं ही सूर्य, चन्द्रमा, वायु अग्नि, जल, अन्तरिक्ष, आकाश, क्रोध, काम, वरुण, इन्द्र, यम, कुबेर और यक्ष होऊँ ॥५३-५७॥

ब्रह्मा ने कहा—तात! ये आश्चर्यकारी दिव्य वर मैं देता हूँ। तुम्हारी समस्त कामनायें पूरी होंगी, इसमें कोई संशय नहीं ॥५८॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर शीघ्र ही भगवान् पितामह ब्रह्मर्षिगणों से सेवित वैराज नामक ब्रह्मसदन में चले गये। तदनन्तर देव, नाग, गन्धर्व और मुनिवृन्द वरदान सुनकर ब्रह्मा के पास उपस्थित हुए ॥५९-६०॥

देवों ने कहा—भगवन्! इस वर से वह राक्षस हम कष्ट देगा। अतः कृपा करके उसके वध का भी उपाय सोचिये। भगवन्! आप अखिल प्राणियों के आदिकर्ता स्वयम्, हव्य-कव्यों के स्रष्टा, अव्यक्त, प्रकृति तथा ध्रुव हैं ॥६१-६२॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त लोका के कल्याणकारी वाक्य को सुनकर भगवान् प्रजापति ने समस्त देवगणों से कहा ॥६३॥

ब्रह्मा ने कहा—देववृन्द! वह तपस्या का फल अवश्य पायेगा। तप के अन्त में भगवान् विष्णु उसका वध करेंगे ॥६४॥

१क श्रुत्वेद।

व्यास उवाच

एतच्छ्रुत्वा सुराः सर्वे वाक्यं पङ्कजजन्मनः। स्वानि स्थानानि दिव्यानि जग्मुस्ते वै मुदान्विताः ॥६५॥
लब्धमात्रे वरे चापि सर्वाः सोऽबाधत प्रजाः। हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वरदानेन दर्पितः ॥६६॥
आश्रमेषु महाभागान्मुनीन्वै संशितव्रतान्। सत्यधर्मरतान्दान्तास्तदा धर्षितवांस्तथा ॥६७॥
त्रिदिवस्थांस्तथा देवान्पराजित्य महाबलः। त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गे वसति सोऽसुरः ॥६८॥
यदा वरमदोन्मत्तो विचरन्दानवो भुवि[1]। यज्ञीयानकरोद्दैत्यानयज्ञीयाश्च देवताः ॥६९॥
आदित्या वसवः साध्या विश्वे च मरुतस्तथा। शरण्यं शरणं विष्णुमुपतस्थुर्महाबलम् ॥७०॥
देवब्रह्ममयं यज्ञं ब्रह्मदेवं सनातनम्। भूतं भव्यं भविष्यं च प्रभुं लोकनमस्कृतम् ॥
नारायणं विभुं देवं शरण्यं शरणं गताः ॥७१॥

देवा ऊचुः

त्रायस्व नोऽद्य देवेश हिरण्यकशिपोर्भयात्। त्वं हि नः परमो देवस्त्वं हि नः परमो गुरुः ॥७२॥
त्वं हि नः परमो धाता ब्रह्मादीनां सुरोत्तम। उत्फुल्लामलपत्राक्ष शत्रुपक्षक्षयंकर ॥
[2]क्षयाय दितिवंशस्य शरणं त्वं भवस्व नः ॥७३॥

वासुदेव उवाच

भयं त्यजध्वममरा अभयं वो ददाम्यहम्। तथैव त्रिदिवं देवाः [3]प्रतिलप्स्यथ मा चिरम् ॥७४॥
एषोऽहं सगणं दैत्यं वरदानेन दर्पितम्। [4]अवध्यममरेन्द्राणां दानवेन्द्रं निहन्मि तम् ॥७५॥

व्यास ने कहा—पितामह का वचन सुनकर देवगण प्रसन्नता से अपने-अपने दिव्य स्थानों पर चले गये। वर प्राप्त करते ही दैत्य हिरण्यकशिपु वरदान के गर्व से प्रजा को पीडित करने लगा। आश्रमों में व्रतनिष्ठ, सत्य-धर्मपरायण, इन्द्रियों के दमन करने वाले महाभाग मुनियों को वह कष्ट देने लगा। स्वर्गस्थ देवों को जीतकर तीनों लोक को वश में लाकर वह महाबली राक्षस स्वर्ग में वास करने लगा। जब वर के मद से उन्मत्त होकर उस दानव ने पृथ्वी पर विचरण करके दैत्यों को यज्ञ-भाग-भोक्ता तथा देवताओं को यज्ञ से वंचित कर दिया तब आदित्य, वसु, साध्य, विश्वेदेव और मरुत्-गण महाबली, शरणदाता, देव-ब्रह्ममय, यज्ञरूप, ब्रह्मदेव, सनातन, भूत, भव्य, भविष्य, प्रभु, लोकों से नमस्कृत, नारायण तथा व्यापक विष्णुदेव के समीप उपस्थित हुए ॥६५-७१॥

देवों ने कहा—देवताओं के स्वामी! हिरण्यकशिपु के भय से बचाइये। सुरोत्तम! आप हमारे परमदेव हैं, परम गुरु हैं और हम ब्रह्मा आदि देवों के परम धाता (धारण करने वाले) हैं। विकसित कमल के समान नेत्र-वाले! शत्रुपक्ष का क्षय करने वाले! दैत्यों के नाश के लिये हम आपकी शरण में आये हैं ॥७२-७३॥

वासुदेव ने कहा—देववृन्द! भय त्यागो। मैं तुम्हें अभय देता हूँ। शीघ्र ही तुम स्वर्ग प्राप्त करोगे। अभी मैं वरदान से गर्वित तथा देवताओं से अवध्य दानवेन्द्र को गणसहित मार डालता हूँ। ॥७४-७५॥

१ग दिवि। २क जयाय। ३ग प्रतिपद्यत। ४घ ०वरयम०।

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा तु भगवान्विसृज्य 'त्रिदशेश्वरान्। हिरण्यकशिपोः स्थानमाजगाम महाबलः ॥७६॥
नरस्यार्धतनुं कृत्वा सिंहस्यार्धतनुं प्रभुः²। नारसिंहेन वपुषा पाणिं संस्पृश्य पाणिना ॥७७॥
घनजीमूतसंकाशो घनजीमूतनिस्वनः। घनजीमूतदीप्तौजा जीमूत इव वेगवान् ॥७८॥
दैत्यं सोऽतिबलं दृष्ट्वा दृप्तशार्दूलविक्रमः। दृप्तैर्दैत्यगणैर्गुप्तं हतवानेकपाणिना ॥७९॥
नृसिंह एष कथितो 'भूयोऽयं वामनः' परः। यत्र वामनमास्थाय रूपं दैत्यविनाशनम् ॥८०॥
बलेर्बलवतो यज्ञे बलिना विष्णुना पुरा। विक्रमैस्त्रिभिरक्षोभ्याः क्षोभितास्ते महासुराः ॥८१॥
विप्रचित्तिः शिवः शङ्कुरय:शङ्कुस्तथैव च। अयः शिरा अश्वशिरा हयग्रीवश्च वीर्यवान् ॥८२॥
वेगवान्केतुमानुग्रः 'सोग्रव्यग्रो महासुरः। पुष्करः पुष्कलश्चैव शा (सा) श्वोऽश्वपतिरेव च ॥८३॥
'प्रह्लादोऽश्वपतिः कुम्भः संह्लादो 'गमनप्रियः। अनुह्लादो हरिहयो' वाराहः' 'संहरोऽनुजः ॥८४॥
शरभः शलभश्चैव कुपथः' क्रोधनः क्रथः। बृहत्कीर्तिर्महाजिह्वः शङ्कुकर्णो महास्वनः ॥८५॥
दीप्तजिह्वोऽर्कनयनो ''मृगपादो ''मृगप्रियः। वायुर्गरिष्ठो नमुचिः ''सम्बरो ''विस्करो महान् ॥८६॥
चन्द्रहन्ता क्रोधहन्ता क्रोधवर्धन एव च। कालकः कालकोपश्च वृत्रः क्रोधो विरोचनः ॥८७॥
गरिष्ठश्च वरिष्ठश्च प्रलम्बनरकावुभौ। इन्द्रतापनवातापी केतुमान्बलदर्पितः ॥८८॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर देवताओं को विदा करके महाबलशाली भगवान् आधा शरीर मनुष्य का और आधा शरीर सिंह का बनाकर हाथ से हाथ को छूते हुए हिरण्यकशिपु के स्थान पर आये ॥७६-७७॥ मेघ के समान वर्ण वाले, मेघतुल्य शब्द वाले, मेघतुल्य कान्ति वाले, मेघतुल्य वेग वाले और सिंह के सदृश पराक्रमी हरि ने अतिबलशाली दैत्य को देखकर अभिमानी दैत्यगणों से रक्षित हिरण्यकशिपु को एक ही हाथ से मार डाला ॥७९॥ यह नृसिंह-अवतार बतला दिया। अब दूसरा वामन-अवतार आता है, जिसमें दैत्यविनाशकारी वामन रूप धर कर बली विष्णु ने बलवान् बलि के यज्ञ में महाराक्षसों को सक्षुब्ध कर दिया था ॥८०-८१॥ (जैसे—) विप्रचित्ति, शिव, शङ्कु, अयःशङ्कु, अय शिरा, अश्वशिरा, हयग्रीव, वीर्यवान् ॥८२॥ वेगवान्, केतुमान्, उग्र, सोग्रव्यग्र, महासुर, पुष्कर, पुष्कल, शा (सा)श्व, अश्वपति ॥८३॥ प्रह्लाद, कुम्भ, सह्लाद, गमनप्रिय, अनुह्लाद, हरिहय वाराह, सहर, अनुज, ॥८४॥ शरभ, शलभ, कुपथ, क्रोधन, क्रथ, बृहत्कीर्ति, महाजिह्व, शङ्कुकर्ण, महास्वन ॥८५॥ दीप्तजिह्व, अर्कनयन, मृगपाद, मृगप्रिय, वायु, गरिष्ठ, नमुचि, सम्बर, विस्कर, महान् ॥८६॥ चन्द्रहन्ता, क्रोधहन्ता, क्रोधवर्धन, कालक, कालकोप, वृत्र, क्रोध, विरोचन ॥८७॥ गरिष्ठ, वरिष्ठ, प्रलम्ब, नरक, इन्द्रतापन, वातापि, केतुमान्, बल-

---

१ख त्रिदिवेश्व०। २क ख हरिं। ३क ०योऽसौ वा०। ४क ०मनस्तत। म०। ५क. सोव्यग्रो हि म०। ६क ०ह्लाद स्वा०। ७क गगन०। ८क ०हरौ वा०। ९ग. वराह। १०ग ०ह्नोरज.। ११क कुजा। १२क मृदुरा०। १३क मृदुप्रि०। १४क ख शम्बरो। १५क ख विक्षरो।

असिलोमा पुलोमा च बाष्कलः प्रमदो मदः। [1]स्वमिश्रः [2]कालवदनः करालः केशिरेव च ॥८९॥
एकाक्षश्चन्द्रमा[3] राहुः संह्लादः[4] सम्बरः[5] [6]स्वनः। शतघ्नीचक्रहस्ताश्च तथा मुशलपाणयः ॥९०॥
अश्वयन्त्रायुधोपेता भिन्दिपालायुधास्तथा। शूलोलूखलहस्ताश्च परश्वधधरास्तथा ॥९१॥
पाशमुद्गरहस्ताश्च तथा परिघपाणयः। महाशिलाप्रहरणाः शूलहस्ताश्च दानवाः ॥९२॥
नानाप्रहरणा घोरा नानावेशा महाबला[7]। कूर्मकुक्कुटवक्त्राश्च शशोलूकमुखास्तथा ॥९३॥
खरोष्ट्रवदनाश्चैव वराहवदनास्तथा। मार्जारशिखिवक्त्राश्च महावक्त्रास्तथा परे ॥९४॥
नक्रमेषाननाः शूरा गोजाविमहिषाननाः गोधाशल्लकिवक्त्राश्च[8] क्रोष्टुवक्त्राश्च दानवाः ॥९५॥
आखुदर्दुरवक्त्राश्च घोरा वृकमुखास्तथा। भीमा मकरवक्त्राश्च क्रौञ्चवक्त्राश्च दानवाः ॥९६॥
[9]अश्वाननाः खरमुखा मयूरवदनास्तथा। गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बराः ॥९७॥
चीरसंवृतगात्राश्च तथा[10] नीलकवाससः। उष्णीषिणो मुकुटिनस्तथा कुण्डलिनोऽसुराः ॥९८॥
किरीटिनो लम्बशिखाः [11]कम्बुग्रीवा सुवर्चसः। नानावेशधरा दैत्या नानामाल्यानुलेपनाः ॥९९॥
स्वान्यायुधानि संगृह्य प्रदीप्तानि[12] च तेजसा। [13]भ्रममाणं [14]हृषीकेशमुपावर्तन्त सर्वशः ॥१००॥

दर्पित ॥८८॥ असिलोमा, पुलोमा, बाष्कल, प्रमद, मद, स्वमिश्र, कालवदन, कराल, केशि ॥८९॥ एकाक्ष, चन्द्रमा, राहु, सह्लाद, सम्बर, स्वन, एवम् शतघ्नी तथा चक्र हाथ मे रखने वाले, मुशल हाथ मे रखने वाले॥९०॥ अश्व, यन्त्र तथा आयुधो से युक्त, भिन्दिपाल, अस्त्र से युक्त, शूल तथा ऊखल हाथ मे रखने वाले, परशुधारी ॥९१॥ पाश तथा मुद्गर धारण करने वाले, परिघ हाथ मे रखने वाले, महाशिला के आयुध वाले, हाथ मे शूल लिये हुए दानव, ॥९२॥ नाना अस्त्रों से युक्त, भयानक, अनेक वेशधारी, महाबली, कछुए तथा मुर्गे के समान मुंह वाले, खरगोश तथा उलूक के समान मुंह वाले ॥९३॥ गधे तथा ऊँट के सदृश मुख वाले, सूअर के समान मुंह वाले, बिलाड तथा मयूर के समान मुंह वाले, महामुख वाले ॥९४॥ घरियाल तथा भेड के समान मुंह वाले, वीर, बैल, बकरे तथा भैंसे के समान मुंह वाले, गोह तथा साही के समान मुंह वाले, सियार के समान मुंह वाले दानव ॥९५॥ चूहे तथा मेढक के समान मुंह वाले, भेडिये के समान मुख वाले, ग्राह के समान मुंह वाले, क्रौंकुल पक्षी के समान मुंह वाले ॥९६॥ घोड़े के समान मुंह वाले गजचर्मधारी, कृष्णमृगचर्मधारी ॥९७॥ वस्त्र से ढके शरीर वाले, नीलवस्त्रधारी, पगडीधारी, मुकुटधारी, कुण्डलधारी राक्षस ॥९८॥ लम्बी चोटी वाले, शख के समान ग्रीवा वाले, अतितेजस्वी, अनेक मालाओं तथा लेप से युक्त राक्षसवृन्द ने अपने चमकते हुए शस्त्र-अस्त्रो को लेकर पैर से पृथ्वी को नापते हुए भगवान् के ऊपर आक्रमण कर दिया ॥९९-१००॥ विभु ने अपने पैर-हाथो के प्रहार से दैत्यसमूह को नष्ट कर महाभयानक रूप बनाकर शीघ्र

१ख स्वश्रिय। ग ससृम। २क कालदमन। ख काल्नाभश्च। ३ग ०न्द्रहा रा०। ४ख ०ह्,रादो ह्राद एव च। श०। ५ग श्रमर। ६ग. स्वम। ७क ख ०रच ओष्ट्र०। ८ग ग गरुडानना। ९ख ख ०धा पल०। १०क. कम्बुवृष्टा। ११क ०प्तानीव ते। १२ख ०माणे हृपी०। १३क ०केश उपा०।

प्रमथ्य सर्वान्दैतेयान्पादहस्ततलैर्विभु । रूप कृत्वा महाभीम 'जहाराऽऽशु स मेदिनीम ॥१०१॥
तस्य विक्रमतो भूमि चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे । नभ प्रक्रममाणस्य नाभ्या किल तथा स्थितौ ॥१०२॥
'परमाक्रममाणस्य जानुदेशे व्यवस्थितौ । विष्णोरमितवीर्यस्य वदन्त्येव द्विजातय ॥१०३॥
हृत्वा स मेदिनीं कृत्स्ना हत्वा चासुरपुगवान् । ददौ शक्राय वसुधा' विष्णुर्बलवता वर ॥१०४॥
एष वो वामनो नाम प्रादुर्भावो महात्मन । वेदविद्भिर्द्विजैरेतत्कथ्यते वैष्णव यश ॥१०५॥
भूयो भूतात्मनो' विष्णो प्रादुर्भावो महात्मन । दत्तात्रेय इति ख्यात क्षमया परया युत ॥१०६॥
तेन नष्टेषु 'वेदेषु प्रक्रियासु' मखेषु च । चातुर्वर्ण्ये च सकीर्णे धर्मे शिथिलता गते ॥१०७॥
'अतिवर्धति चाधर्मे सत्ये नष्टेऽनृते स्थिते । प्रजासु शीयमाणासु धर्मे चाऽऽकुलता गत ॥१०८॥
सयज्ञा सक्रिया वेदा प्रत्यानीता हि तेन वै । चातुर्वर्ण्यमसकीर्णं कृत तेन महात्मना ॥१०९॥
तेन हैहयराजस्य कार्तवीर्यस्य धीमत । वरदेन वरो दत्तो दत्तात्रेयेण धीमता ॥११०॥
एतद्बाहुद्वय यत्ते तत्ते मम कृते' नृप । शतानि दश बाहूना भविष्यन्ति न सशय ॥१११॥
पालयिष्यसि कृत्स्ना च वसुधा वसुधेश्वर । दुर्निरीक्ष्योऽरिवृन्दाना युद्धस्थश्च भविष्यसि ॥११२॥
एष वो वैष्णव श्रीमान्प्रादुर्भावोऽद्भुत शुभ । भूयश्च जामदग्न्योऽय प्रादुर्भावो महात्मन ॥११३॥
यत्र बाहुसहस्रेण द्विषता दुर्जय रणे । रामोऽर्जुनमनीकस्थ जघान नृपति प्रभु ॥११४॥

पृथ्वी का हरण कर लिया ॥१०१॥ विद्वानो का कहना है कि पृथ्वी नापने के समय सूर्यचन्द्रमा आमन शक्तिशाली विष्णु के स्तनो के बीच स्थित हुए आकाश नापने के समय वे उनकी नाभि मे और उससे ऊपर नापने के समय वे उनके जानुदेश मे अवस्थित हुए ॥१०२ १०३॥ सपूर्ण पृथ्वी का हरण कर असुरपुगवो को मारकर बलवानो मे श्रेष्ठ विष्णु ने इन्द्र को पृथ्वी दे दी ॥१०४॥ यह महात्मा विष्णु के वामन अवतार का वर्णन आपसे किया गया है। वेदवेत्ता ब्राह्मण इस विष्णु का यश कहते है ॥१०५॥ पुन अखिलात्मा विष्णु का दत्तात्रेय नाम से प्रख्यात तथा अत्यन्त क्षमा से युक्त अवतार हुआ ॥१०६॥ जिस समय वेद धर्मशास्त्र तथा यज्ञ नष्ट हो रहे थे चारो वर्णो मे साकर्य हो गया था धर्म मे शिथिलता आ गई थी अधर्म बढ रहा था सत्य नष्ट हो रहा था असत्य फैल रहा था प्रजा छिन्न भिन्न हो रही थी और धर्म अस्त-व्यस्त हो गया था उस समय उन्होने यज्ञ तथा धर्मशास्त्र सहित वेदो को पुन स्थापित किया। महात्मा ने चातुर्वर्ण्य को साकर्यरहित किया ॥१०७ १०९॥ वरदायक धीमान् दत्तात्रेय ने हैहयराज कार्तवीर्य को वरदान दिया—नृप ! मेरी कृपा से तुम्हारी दोनो बाँहे एक सहस्र भुजाओ मे परिणत हो जायगी इसमे कोई सशय नही ॥११० १११॥ पृथ्वीपति ! तुम समस्त वसुधा का पालन करोगे और युद्ध मे शत्रु-समूहो से दुर्निरीक्ष्य होगे ॥११२॥ यह वैष्णव अवतार अद्भुत तथा शुभकारक हुआ। पुन महात्मा का परशुराम अवतार हुआ जिसमे शक्तिमान राम ने रण मे सहस्र भुजाओ के कारण शत्रुओ से अजय राजा अर्जुन (कार्तवीर्य) को मार दिया ॥११३ ११४॥ राम ने रथ मे स्थित अर्जुन को पृथ्वी पर गिरा दिया। आक्रोश करते

१क ०रास्य तु मे०। २क स ०रम् क०। ३क ०धा दिव बल०। ४क स ०त्मनो वि०। ५ग देवेषु। ६ख प्रयातपु। ७ख अभिव०। ८क कृता वर। ख०।

रथस्थं पार्थिवं राम. पातयित्वाऽर्जुनं भुवि। धर्षयित्वाऽर्जुनं रामः क्रोशमानं च मेघवत् ॥११५॥
कृत्स्नं बाहुसहस्रं च चिच्छेद भृगुनन्दनः। परश्वधेन दीप्तेन [1]ज्ञातिभिः सहितस्य वै॥११६॥
कीर्णा क्षत्रियकोटीभिर्मेरुमन्दरभूषणा। त्रिः सप्तकृत्वः पृथिवी तेन निःक्षत्रिया[2] कृता॥११७॥
कृत्वा निःक्षत्रियां चैना[3] भार्गवः सुमहायशाः। सर्वपापविनाशाय वाजिमेधेन चेष्टवान् ॥११८॥
यस्मिन्यज्ञे महादाने दक्षिणां भृगुनन्दनः। मारीचाय ददौ प्रीतः कश्यपाय वसुंधराम् ॥११९॥
[4]वारणांस्तुरगाञ्शुभ्रान्रथांश्च रथिनां वरः। हिरण्यमक्षयं धेनुर्गजेन्द्रांश्च [5]महीपतिः॥१२०॥
ददौ तस्मिन्महायज्ञे वाजिमेधे महायशाः। अद्यापि [6]च हितार्थाय लोकानां भृगुनन्दनः॥१२१॥
चरमाणस्तपो घोरं जामदग्न्यः पुनः प्रभुः। आस्ते वै[7] देववच्छ्रीमान्महेन्द्रे पर्वतोत्तमे॥१२२॥
एष विष्णोः सुरेशस्य शाश्वतस्याव्ययस्य च। जामदग्न्य इति ख्यातः प्रादुर्भावो महात्मनः॥१२३॥
चतुर्विंशे युगे वाऽपि विश्वामित्रपुरःसरः। जज्ञे दशरथस्याथ पुत्रः पद्मायतेक्षणः॥१२४॥
कृत्वाऽऽत्मानं महाबाहुश्चतुर्धा प्रभुरीश्वरः। लोके राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपमः॥१२५॥
[8]प्रसादनार्थं लोकस्य रक्षसां निग्रहाय च। धर्मस्य च विवृद्ध्यर्थं[9] जज्ञे तत्र महयशाः॥१२६॥
तमप्याहुर्मनुष्येन्द्रं सर्वभूतहिते रतम्। यः समाः सर्वधर्मज्ञश्चतुर्दश वनेऽवसत्॥१२७॥
लक्ष्मणानुचरो रामः[10] सर्वभूतहिते रतः। चतुर्दश वने तप्त्वा तपो वर्षाणि राघवः॥१२८॥

हुए अर्जुन को मेघ की तरह फटकार कर भृगुपुत्र ने अपने चमकते हुए फरसे से उसकी हजार बाहों को काट दिया और उसके भाई-बन्धुओ को भी विध्वस्त कर दिया॥११५-११६॥ सुमेरु तथा मन्दराचल से भूषित एवम् क्षत्रियो से व्याप्त पृथिवी को राम ने इक्कीस बार निःक्षत्रिय किया॥११७॥ इसको क्षत्रियविहीन बना कर महायशस्वी राम ने सब पापो के विनाश के लिए अश्वमेध यज्ञ किया॥११८॥ जिस यज्ञ मे भृगुनन्दन ने महादान की दक्षिणा मे मरीचिपुत्र कश्यप को पृथ्वी दे दी॥११९॥ उस अश्वमेध नामक महायज्ञ मे महायशस्वी राम ने हाथी, उज्ज्वल घोडे, रथ, अक्षय सुवर्ण, धेनु तथा गजेन्द्र दान किये। आज भी लोकहित के निमित्त जमदग्नि-पुत्र राम महेन्द्र नामक उत्तम पर्वत पर घोर तप करते हुए देवता के समान विद्यमान हैं॥१२०-१२२॥ सुरेश, नित्य, अव्यय तथा महात्मा विष्णु का यह परशुराम-अवतार हुआ। चौबीसवें युग मे भी विश्वामित्र के आगे चलने वाले कमललोचन राम दशरथ के पुत्र हुए॥१२३-१२४॥ अपने को चार रूपों मे विभक्त करके सूर्य के समान तेजस्वी महाशक्तिमान् ईश्वर लोक मे राम नाम से ख्यात हुए॥१२५॥ लोक को प्रसन्न करने, राक्षसों का दलन करने तथा धर्म की वृद्धि करने के लिए महायशस्वी (राम) ने वहाँ अवतार लिया॥१२६॥ लोग उन्हें मनुष्यों के राजा तथा अखिल प्राणियो के हित मे रत कहते हैं, जिन्होंने चौदह वर्षों तक वनवास किया और जिनके अनुचर लक्ष्मण थे। समस्त प्राणियों के कल्याण मे निरत रघुवंशी राम ने चौदह वर्ष वन मे तप किया। उनकी स्त्री लोक मे सीता नाम से प्रख्यात

१ख ०निभिस्त्वादिन०। २ग ०त्रियी कृ०। ३ग चैव। ४ग. वारणा०। ५ग. महामति। ६ख तु। ७ख. वै वेदविच्छ्री०। ८ख ०सादायाथ लो०। ९क.ख.०र्थं जातस्तत्र। १०क. ०मः पितुराज्ञापरो द्विजाः। ख०।

रूपिणी तस्य पार्श्वस्था सीतेति प्रथिता जने। पूर्वोदिता तु या लक्ष्मीर्भर्तारमनुगच्छति ॥१२९॥
जनस्थाने वसन्कार्यं त्रिदशाना चकार स। तस्यापकारिण क्रूर पौलस्त्य मनुजर्षभ ॥१३०॥
सीताया पदमन्विच्छन्निजघान महायशा। देवासुरगणाना च यक्षराक्षसभोगिनाम ॥१३१॥
यत्रावध्य राक्षसेन्द्र रावण युधि दुर्जयम। युक्त राक्षसकोटीभिर्नीलाञ्जनचयोपमम ॥१३२॥
त्रैलोक्यद्रावण क्रूर रावण राक्षसेश्वरम। दुर्जय दुर्धर दृप्त शार्दूलसमविक्रमम ॥१३३॥
दुर्निरीक्ष्य सुरगणैर्वरदानेन दर्पितम। जघान सचिवै सार्धं ससैन्य रावण युधि ॥१३४॥
महाभ्रगणसकाश महाकाय महाबलम। रावण निजघानाऽऽशु रामो भूतपति पुरा ॥१३५॥
सुग्रीवस्य कृते येन वानरेन्द्रो महाबल। वाली विनिहत सख्ये सुग्रीवश्चाभिषेचित ॥१३६॥
मधोश्च तनयो दृप्तो लवणो नाम दानव। हतो मधुवने वीरो वरमत्तो महासुर ॥१३७॥
यज्ञविघ्नकरौ येन मुनीना भावितात्मनाम। मारीचश्च सुबाहुश्च बलेन बलिना वरौ ॥१३८॥
निहतौ च निराशौ च कृतौ तेन महात्मना। समरे युद्धशौण्डेन तथाऽन्ये चापि राक्षसा ॥१३९॥
विराधश्च कबन्धश्च राक्षसौ भीमविक्रमौ। जघान पुरुषव्याघ्रो गन्धर्वौ शापमोहितौ ॥१४०॥

हुताशनार्कांशुतडिद्गुणाभै प्रतप्तजाम्बूनदचित्रपुङ्खै ।
महेन्द्रवज्राशनितुल्यसारै रिपून्स राम समरे निजघ्ने ॥१४१॥

तथा सुन्दरी थी। लक्ष्मी की तरह वह स्वामी का अनुगमन करती थी ॥१२७ १२९॥ जनस्थान म निवास करते हुए उन्होंने देवताओ का काय किया। सीता का अन्वेषण करते हुए महायशस्वी राम ने अपकारी तथा क्रूर रावण का वध किया। युद्ध म लक्ष्मी कान्ति राम ने देव असुर यक्ष राक्षस तथा सर्पों से अवध्य युद्ध मे दुर्जय, त्रैलोक्य के सतापक क्रूर महाभिमान व्याघ्र के समान पराक्रमी देवगणो से दुर्निरीक्ष्य वरदान से दर्पित करोडो राक्षसों से युक्त नील अञ्जन की राशि तुल्य महामेघगण के सदृश महाकाय तथा महाबली रावण को सेना तथा मन्त्रीगण सहित निहत किया ॥१३० १३४॥ सुग्रीव के लिये उन्होंने युद्ध मे वानरों के स्वामी महाबलशाली वाली को मारा और सुग्रीव को अभिषिक्त किया ॥१३५ १३६॥ मधुवन में वीर राम ने मधु के पुत्र लवण नामक महाभिमानी दानव को विनष्ट किया ॥१३७॥ उस महात्मा ने सयतात्मा मुनियो के यज्ञ मे विघ्न करने वाले अत्यन्त बलशाली मारीच और सुबाहु को निराश तथा निहत किया। युद्धदमद राम ने समर में अन्य अनेक राक्षसो को भी विध्वस्त किया ॥१३८ १३९॥ पुरुषपुगव राघव ने भयकर पराक्रमी विराध और कबन्ध नामक राक्षसो को जो शापमोहित गन्धर्व थे मार गिराया ॥१४०॥ रण म राम ने अग्नि सूर्यकिरण तप्त सुवर्ण तथा विद्युत् के समान प्रभा वाले और इन्द्र के वज्र के समान सारयुक्त बाणो से शत्रुओ को निहत किया ॥१४१॥ देवताओं से भी अजेय देवशत्रुओं

१ख गृहिणी। २ख रामस्य। ३ख ग जनै। ४क ०स्य पुरुषपमा। सी०। ५ख ०षमा। सी०। ६क युधि। ७क दमद। ८ ०पविसतौ। ख पवोशितौ। ९ग ०सार। शरै. शरीरेण वियोजितो बलात्। त०।

तस्मै दत्तानि [1]शस्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता। वधार्थं देवशत्रूणां दुर्धर्षाणां सुरैरपि ॥१४२॥
वर्तमाने मखे येन जनकस्य महात्मनः। भग्नं माहेश्वरं चापं क्रीडता लीलया पुरा ॥१४३॥
एतानि कृत्वा कर्माणि रामो धर्मभृतां वरः। दशाश्वमेधाञ्जारूथ्यानाजहार निरर्गलान् ॥१४४॥
नाश्रूयन्ताशुभा वाचो[2] नाऽऽकुलं मारुतो ववौ। न वित्तहरणं चाऽऽसीद्रामे राज्यं प्रशासति ॥१४५॥
परिदेवन्ति विधवा नानर्थाश्च कदाचन। [3]सर्वमासीच्छुभं तत्र रामे राज्यं प्रशासति ॥१४६॥
न प्राणिनां भयं चाऽऽसीज्जलाग्न्यनिलघातजम्। न चापि वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि चक्रिरे ॥१४७॥
[4]ब्रह्मचर्यपरं क्षत्रं [5]विशस्तु क्षत्रिये रताः। शूद्राश्चैव हि वर्णांस्त्रीञ्शुश्रूषन्त्यनहंकृताः ॥१४८॥
नार्यो नात्यचरन्भर्तॄन्भार्या नात्यचरत्पतिः। सर्वमासीज्जगद्दान्त[6] निर्दस्युरभवन्मही ॥१४९॥
राम एकोऽभवद्भर्ता रामः पालयिताऽभवत्। आसन्वर्षसहस्राणि तथा पुत्रसहस्रिण ॥१५०॥
अरोगाः प्राणिनश्चाऽऽसन्रामे राज्यं प्रशासति। देवतानामृषीणां च मनुष्याणां च सर्वशः ॥१५१॥
पृथिव्यां [7]समवायोऽभूद्रामे राज्यं प्रशासति। गाथामप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ॥१५२॥
रामे निबद्धतत्त्वार्था माहात्म्यं तस्य धीमतः। श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्तास्यो मितभाषितः ॥१५३॥
आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कन्धो महाभुजः। दश वर्षसहस्राणि रामो राज्यमकारयत् ॥१५४॥
ऋक्सामयजुषा घोषो ज्याघोषश्च महात्मनः। अव्युच्छिन्नोऽभवद्राष्ट्रे दीयतां भुज्यतामिति ॥१५५॥

के वध के लिए धीमान् विश्वामित्र ने राम को शस्त्र दिये ॥१४२॥ महात्मा जनक के यज्ञ में राम ने खेलते-खेलते सहज ही में शिव के धनुष को तोड डाला ॥१४३॥ इतने कर्मों को करके धर्मात्माओं में श्रेष्ठ राम ने विघ्न-बाधाओं से रहित जारूथ्य नामक दश अश्वमेध यज्ञ किये ॥१४४॥ राम के राज्य-काल में अशुभ वाणी नहीं सुनी जाती थी, व्याकुल करने वाला वायु नहीं बहता था, वित्तों का हरण नहीं होता था, विधवायें अनुताप नहीं करती थीं और अनर्थ कभी नहीं होते थे। राम-राज्य में सब कुछ कल्याणमय होते थे, प्राणियों को जल, अग्नि तथा वायु के आघात-जन्य भय नहीं होता था, वृद्धों को बालकों का श्राद्ध नहीं करना पडता था, क्षत्रिय ब्राह्मणों की वैश्य क्षत्रियों की और शूद्र तीनों वर्णों की सेवा अभिमानरहित भाव से किया करते थे, पत्नियाँ पतियों को और पति पत्नियों को नहीं छोडते थे, सम्पूर्ण जगत् नियन्त्रित एवम् चोररहित था, एक राम ही सबके स्वामी तथा पालन-कर्ता थे, प्राणी नीरोग तथा सहस्रों पुत्रों से युक्त होकर हजारों वर्षों तक जीते थे ॥१४५-१५०½॥ राम के तत्त्व को जानने वाले पुराणवेत्ता लोग बुद्धिमान् राम के माहात्म्य तथा इस विषय में एक गाथा भी गाते हैं कि राम के राज्य-शासन के समय पृथिवी पर देवता, ऋषि तथा मनुष्यों का मिलन होता था। श्यामवर्ण, युवक, लालनेत्र, प्रदीप्तमुख, मितभाषी, आजानबाहु, सुमुख, सिंहस्कन्ध तथा महाबाहु राम ने दश हजार वर्षों तक राज्य किया था ॥१५१-१५४॥ उस महात्मा के राष्ट्र में ऋक्, साम तथा यजुर्वेदों का घोष, धनुष का घोष एवम् 'दान करो और उपभोग करो' का शब्द

---

[1] क शास्त्राणि। [2] क ०चो मरुतो नासुखा ववुः। न। [3] ग ०सीज्जगद्दान्त रा०। [4] क ०र्हां पर्यचरत्क्षत्रं। [5] ग विशः क्षत्रमनुव्रताः। [6] क. ०न्त रामे राज्ये प्रशासति। रा०। [7] क सह वासोऽभू०।

सत्त्ववान्गुणसंपन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा। अतिचन्द्रं च सूर्यं च रामो दाशरथिर्बभौ॥१५६॥
ईजे क्रतुशतं पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः। हित्वाऽयोध्यां दिवं यातो राघवो हि महाबलः॥१५७॥
एवमेव महाबाहुरिक्ष्वाकुकुलनन्दन.। रावणं सगणं हत्वा दिवमाचक्रमे विभुः॥१५८॥
अपरः केशवस्यायं प्रादुर्भावो महात्मनः। विख्यातो माथुरे कल्पे सर्वलोकहिताय वै॥१५९॥
यत्र शाल्वं च चैद्यं च कंसं द्विविदमेव च। अरिष्टं वृषभं केशिं पूतनां दैत्यदारिकाम्॥१६०॥
नागं कुवलयापीडं चाणूरं मुष्टिकं तथा। दैत्यान्मानुषदेहेन[1] सूदयामास वीर्यवान्॥१६१॥
छिन्नं बाहुसहस्रं च बाणस्याद्भुतकर्मणः। नरकश्च हत' संख्ये यवनश्च महाबल'॥१६२॥
हृतानि च महीपाना सर्वरत्नानि तेजसा। 'दुराचाराश्च निहिता' पार्थिवा ये महीतले॥१६३॥
एष लोकहितार्थाय प्रादुर्भावो महात्मनः। कल्की विष्णुयशा नाम[3] शम्भलग्रामसंभव॥१६४॥
सर्वलोकहितार्थाय भूयो देवो महायशाः। एते चान्ये च बहवो दिव्या देवगणैर्वृ त.॥१६५॥
प्रादुर्भाव पुराणेषु गीयन्ते ब्रह्मवादिभि.। यत्र देवा विमुह्यन्ति प्रादुर्भावानुकीर्तने॥१६६॥
पुराणं वर्तते यत्र[4] वेदश्रुतिसमाहितम्। एतदुद्देशमात्रेण प्रादुर्भावानुकीर्तनम्॥१६७॥
कीर्तितं कीर्तनीयस्य सर्वलोकगुरोर्विभोः। प्रीयन्ते पितरस्तस्य प्रादुर्भावानुकीर्तनात्॥१६८॥
विष्णोरमितवीर्यस्य य. शृणोति कृताञ्जलिः ॥१६९॥

निरन्तर होता ही रहता था। सात्त्विक, गुणसपन्न तथा अपने तेज से देदीप्यमान दशरथ-पुत्र राम सूर्य-चन्द्र से भी अधिक सुशोभित थे॥१५५-१५६॥ महाबलशाली राघव ने सैकड़ो पवित्र यज्ञ किये, उत्तम दक्षिणा दी और (अन्त में) अयोध्या छोड़कर स्वर्ग की यात्रा की। इसी प्रकार इक्ष्वाकुकुलभूषण महाबाहु राम गणसहित रावण को मारकर स्वर्ग पधारे थे॥१५७-१५८॥ अखिललोकहित के लिये महात्मा विष्णु का दूसरा (कृष्ण) अवतार माथुर कल्प मे प्रसिद्ध ही है, जिसमे शाल्व, शिशुपाल, कस द्विविद अरिष्ट, वृषभ, केशि, दैत्य-कन्या, पूतना, कुवल्यापीड नामक हाथी, चाणूर, मुष्टिक तथा दैत्यो को मनुष्यशरीर से शक्तिशाली भगवान् ने विनष्ट किया था। उन्होंने अद्भुत कर्म करने वाले बाण की सहस्र भुजाओ को काटा, युद्ध मे नरक तथा महाबली कालयवन को मारा तेज से राजाओ के अखिल रत्नो का अपहरण किया और पृथ्वीतल पर जितने दुराचारी राजा थे, उन सबका निहत किया॥१५९-१६३॥ महात्मा का यह अवतार लोक-कल्याण के निमित्त हुआ था। पुन महायशस्वी (विष्णु) देव निखिल-लोक-हित के निमित्त शम्भलग्राम मे विष्णुयशस् नाम से कल्की अवतार लेंगे॥१६४॥ ये और दूसरे भी बहुत से दिव्य तथा देवताओ से आवृत अवतार पुराणो म ब्रह्मवादियों द्वारा गाये जाते हैं। अवतारो के वर्णन करने मे देवगण मुग्ध हो जाते हैं। वेद और श्रुति से सम्मत पुराण इस विषय मे प्रमाण है। यह अखिल लोको के गुरु परमात्मा के अवतार का वर्णन सक्षेप मे किया गया है। अमित शक्तिशाली विष्णु के अवतारों का वर्णन जो मनुष्य अञ्जलि-बद्ध होकर सुनता है, उसके पितर तृप्त हो जाते हैं। योगेश्वर की इस योगमाया को सुनकर मनुष्य सब पापा से मुक्त

१ग. ०देहस्यान्सूद०। २क ०रापर्थाश्च। ३ग. ०म सम्भ०। ४क. ०त्र देवश्रु०।

एताश्च योगेश्वरयोगमायाः, श्रुत्वा नरो मुच्यति सर्वपापैः।
ऋद्धिं समृद्धिं विपुलांश्च भोगान्प्राप्नोति शीघ्रं भगवत्प्रसादात् ॥१७०॥
एवं मया मुनिश्रेष्ठा विष्णोरमिततेजसः। सर्वपापहराः पुण्याः प्रादुर्भावाः प्रकीर्तिताः॥१७१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे विष्णोः प्रादुर्भावानुकीर्तनं नाम
त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२१३॥

अथ चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरकवर्णनम्

मुनय ऊचुः

न तृप्तिमधिगच्छामः पुण्यधर्मामृतस्य च। मुने त्वन्मुखगीतस्य तथा कौतूहलं हि नः॥१॥
उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानां कर्मणो गतिम्। वेत्सि सर्वं मुने तेन पृच्छामस्त्वां महामतिम् ॥२॥
श्रूयते यमलोकस्य मार्गः [1]परमदुर्गम। दुःखक्लेशकरः शश्वत्सर्वभूतभयावहः॥३॥
कथं तेन नरा यान्ति मार्गेण यमसादनम्। प्रमाणं चैव मार्गस्य ब्रूहि नो वदतां वर॥४॥
मुने पृच्छाम सर्वज्ञ ब्रूहि सर्वमशेषत.। कथं नरकदुःखानि नाऽऽप्नुवन्ति नरान्मुने॥५॥

हो जाता है और शीघ्र ही भगवत्कृपा से ऋद्धि, समृद्धि तथा विपुल भोगो को प्राप्त करता है॥१६५-१७०॥
मुनिवर! इस प्रकार मैंने अतितेजस्वी विष्णु के समस्त पापहारी तथा पवित्र अवतारो का वर्णन किया है॥१७१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे विष्णु का प्रादुर्भाववर्णन नामक दो सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त॥२१३॥

अध्याय २१४

नरको का वर्णन

मुनियों ने कहा—मुने! आपके मुख से निःसृत पवित्र तथा धर्ममय वचनामृत के पान करने से हमे तृप्ति नहीं मिलती, प्रत्युत उत्सुकता बढती ही जा रही है। आप उत्पत्ति, प्रलय तथा प्राणियो के कर्मों की गति को जानते हैं। इसलिये आपसे पूछ रहे हैं। सुनते हैं कि यमलोक का मार्ग परमदुर्गम, कष्टप्रद तथा समस्त प्राणियो के लिये सतत भयावह है। वक्ताओं मे श्रेष्ठ! कैसे उस मार्ग से प्राणी यमलोक जाते हैं? उस मार्ग का कितना प्रमाण है? हमें बतलाइये। सर्वज्ञ! मुने! हम पूछते हैं। आप पूर्णत सब बतलाइये। मुने! किस उपाय, दान, धर्म तथा नियम के करने से नरको के दुःख मनुष्यो को प्राप्त नहीं होते? मनुष्यलोक तथा

---

[1] क ख ०दुस्तरः। दु०।

केनोपायेन दानेन धर्मेण नियमेन च। मानुषस्य च याम्यस्य लोकस्य कियदन्तरम् ॥६॥
कथं च स्वर्गतिं यान्ति नरकं केन कर्मणा। स्वर्गस्थानानि कियन्ति कियन्ति नरकाणि च ॥७॥
कथं सुकृतिनो यान्ति कथं दुष्कृतकारिणः। किं रूपं किं प्रमाणं वा को वर्णस्तूभयोरपि॥
जीवस्य[3] नीयमानस्य यमलोकं ब्रवीहि नः ॥८॥

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूला वदतो मम सुव्रताः। संसारचक्रमजरं स्थितिर्यस्य न विद्यते॥९॥
सोऽहं वदामि वः सर्वं यममार्गस्य निर्णयम्। उत्क्रान्तिकालादारभ्य यथा नान्यो वदिष्यति॥१०॥
स्वरूपं चैव मार्गस्य यन्मां पृच्छथ सत्तमाः। यमलोकस्य चाध्वानमन्तरं मानुषस्य च॥११॥
योजनानां सहस्राणि षडशीतिस्तदन्तरम्। तप्तताम्रमिवाऽऽतप्तं[4] तदध्वानमुदाहृतम्॥१२॥
तदवश्यं हि गन्तव्यं प्राणिभिर्जीवसंज्ञकैः[5]। पुण्यान्पुण्यकृतो यान्ति पापान्पापकृतोऽधमाः[6]॥१३॥
द्वाविंशतिश्च नरका यमस्य विषये स्थिताः। येषु दुष्कृतकर्माणो विपच्यन्ते पृथक्पृथक्॥१४॥
नरको रौरवो रौद्रः शूकरस्ताल एव च। कुम्भीपाको महाघोरः शाल्मलोऽथ विमोहनः॥१५॥
कीटादः कृमिभक्षश्च ना(ला)लाभक्षो भ्रमस्तथा। नद्यः पूयवहाश्चान्या रुधिराम्भस्तथैव च॥१६॥
अग्निज्वाला महाघोरः संदंशः शुनभोजनः। घोरा वैतरणी चैव असिपत्रवनं तथा॥१७॥
न तत्र वृक्षच्छाया वा न तडागाः सरांसि च। न वाप्यो दीर्घिका वाऽपि न कूपो न[7] प्रपा सभा॥१८॥

यमलोक में कितना अन्तर है? कैसे स्वर्ग मिलता है? किस कर्म से नरक प्राप्त होता है? स्वर्गस्थान कितने हैं? नरक कितने हैं? धर्मात्मा कैसे जाते हैं? पापी कैसे जाते हैं? उनका क्या रूप है? क्या प्रमाण है? दोनों का वर्ण कैसा होता है? यमलोक को लिये जाते हुए जीव के बारे में भी हमें बताइए॥१-८॥

व्यास ने कहा—सुव्रतियो! मुनिश्रेष्ठो! मुझसे सुनिये। संसारचक्र अजर है, जिसकी स्थिति नहीं है। इसलिए मैं यममार्ग का निर्णय मरणकाल से लेकर बतलाता हूँ, जैसा कि कोई नहीं कह सकेगा॥९-१०॥ मार्ग का स्वरूप, जो आपने मुझसे पूछा है, बतलाता हूँ। यमलोक तथा मनुष्यलोक में छियासी हजार योजन का अन्तर है। यमलोक का मार्ग तपे ताँबे के समान सतप्त कहा गया है॥११-१२॥ जीव सज्ञक प्राणी वहाँ अवश्य जाते हैं। पुण्यात्मा पवित्र लोक को जाते हैं और पापी पापलोक को। यम के राज्य में बाईस नरक हैं, जिनमें पृथक्-पृथक् दुष्कर्मी जीव सताये जाते हैं॥१३-१४॥ जैसे नरक, रौरव, रौद्र, शूकर, ताल, कुम्भीपाक, महाघोर, शाल्मल, विमोहन, कीटाद, कृमिभक्ष, लालाभक्ष, भ्रम, पीप बहाने वाली नदियाँ, शोणित रूप जल वाली नदियाँ, अग्निज्वाल, महाघोर, सदंश, शुनभोजन, भयङ्कर वैतरणी तथा असिपत्रवन॥१५-१७॥ वहाँ न वृक्षों की छाया, न बावलियाँ, न सरोवर, न तालाब, न कुआँ, न प्याऊ, न सभा, न मण्डप, न घर, न नदियाँ, न पर्वत ही हैं। यम के मार्ग में कोई विश्राम स्थान

१ग. कर्मणा केन नरक स्वर्गं वा मनुजा मुने। स्व०। २ख. ०स्य नियमास्तस्य। ३ख. ०लोके ब्र०। ४क. ०न्त एव मार्ग उदाहृत। त०। ५ग. ०सज्ञये। पु०। ६क. महारौद्राः। ७क. न नदी प्लवाः। न।

एताश्च योगेश्वरयोगमाया, श्रुत्वा नरो मुच्यति सर्वपापैः ।
ऋद्धिं समृद्धिं विपुलाश्च भोगान्प्राप्नोति शीघ्रं भगवत्प्रसादात् ॥१७०॥
एवं मया मुनिश्रेष्ठा विष्णोरमिततेजसः । सर्वपापहरा पुण्या प्रादुर्भावाः प्रकीर्तिताः ॥१७१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे विष्णोः प्रादुर्भावानुकीर्तनं नाम
त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१३॥

अथ चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरकवर्णनम्

मुनय ऊचुः

न तृप्तिमधिगच्छामः पुण्यधर्मामृतस्य च । मुने त्वन्मुखगीतस्य तथा कौतूहलं हि नः ॥१॥
उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानां कर्मणो गतिम् । वेत्सि सर्वं मुने तेन पृच्छामस्त्वां महामतिम् ॥२॥
श्रूयते यमलोकस्य मार्गः 'परमदुर्गमः' । दुःखक्लेशकरः शश्वत्सर्वभूतभयावहः ॥३॥
कथं तेन नरा यान्ति मार्गेण यमसादनम् । प्रमाणं चैव मार्गस्य ब्रूहि नो वदतां वर ॥४॥
मुने पृच्छाम सर्वज्ञ ब्रूहि सर्वमशेषतः । कथं नरकदुःखानि माऽऽप्नुवन्ति नरान्मुने ॥५॥

हो जाता है और शीघ्र ही भगवत्कृपा से ऋद्धि, समृद्धि तथा विपुल भोगों को प्राप्त करता है ॥१६५-१७०॥
मुनिवर ! इस प्रकार मैंने अतितेजस्वी विष्णु के समस्त पापहारी तथा पवित्र अवतारों का वर्णन किया है ॥१७१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में विष्णु का प्रादुर्भावविवरण नामक दो सौ तेरहवां अध्याय समाप्त ॥२१३॥

अध्याय २१४

नरकों का वर्णन

मुनियों ने कहा—मुने ! आपके मुख से निःसृत पवित्र तथा धर्ममय वचनामृत के पान करने से हमें तृप्ति नहीं मिलती, प्रत्युत उत्सुकता बढ़ती ही जा रही है। आप उत्पत्ति, प्रलय तथा प्राणियों के कर्मों की गति को जानते हैं। इसलिये आपसे पूछ रहे हैं। सुनते हैं कि यमलोक का मार्ग परमदुर्गम, कष्टप्रद तथा समस्त प्राणियों के लिये सतत भयावह है। वक्ताओं में श्रेष्ठ ! कैसे उस मार्ग से प्राणी यमलोक जाते हैं ? उस मार्ग का कितना प्रमाण है ? हमें बतलाइये। सर्वज्ञ ! मुने ! हम पूछते हैं। आप पूर्णतः सब बतलाइये। मुने ! किस उपाय, दान, धर्म तथा नियम के करने से नरकों के दुःख मनुष्यों को प्राप्त नहीं होते ? मनुष्यलोक तथा

१क. ख. ०दुस्तरः। दु०।

केनोपायेन दानेन धर्मेण नियमेन च। मानुषस्य च याम्यस्य लोकस्य कियदन्तरम् ॥६॥
कथं च स्वर्गति यान्ति नरकं केन कर्मणा। स्वर्गस्थानानि कियन्ति कियन्ति नरकाणि च ॥७॥
कथं सुकृतिनो यान्ति कथं दुष्कृतकारिणः। किं रूपं किं प्रमाणं वा को वर्णस्तूभयोरपि ॥
जीवस्य[2] नीयमानस्य यमलोकं[3] ब्रवीहि नः ॥८॥

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूला वदतो मम सुव्रताः। संसारचक्रमजरं स्थितिर्यस्य न विद्यते ॥९॥
सोऽहं वदामि वः सर्वं यममार्गस्य निर्णयम्। उत्क्रान्तिकालादारभ्य यथा नान्यो वदिष्यति ॥१०॥
स्वरूपं चैव मार्गस्य यन्मां पृच्छथ सत्तमाः। यमलोकस्य चाध्वानमन्तरं मानुषस्य च ॥११॥
योजनानां सहस्राणि षडशीतिस्तदन्तरम्। तप्तताम्रमिवाऽऽतप्तं[4] तदध्वानमुदाहृतम् ॥१२॥
तत्रवश्यं हि गन्तव्यं प्राणिभिर्जीवसंज्ञकैः[5]। पुण्यात्पुण्यकृतो यान्ति पापात्पापकृतोऽधमाः ॥१३॥
द्वाविंशतिश्च नरका यमस्य विषये स्थिताः। येषु दुष्कृतकर्माणो विपच्यन्ते पृथक्पृथक् ॥१४॥
नरको रौरवो रौद्रः शूकरस्ताल एव च। कुम्भीपाको महाघोरः शाल्मलोऽथ विमोहनः[6] ॥१५॥
कीटादः कृमिभक्षश्च ना(ला)लाभक्षो भ्रमस्तथा। नद्यः पूयवहाश्चान्या रुधिराम्भस्तथैव च ॥१६॥
अग्निज्वाला महाघोरः संदंशः शुनभोजनः। घोरा वैतरणी चैव असिपत्रवनं तथा ॥१७॥
न तत्र वृक्षच्छाया वा न तडागाः सरांसि च। न वाप्यो दीर्घिका वाऽपि न कूपो न[7] प्रपा सभा ॥१८॥

यमलोक मे कितना अन्तर है? कैसे स्वर्ग मिलता है? किस कर्म से नरक प्राप्त होता है? स्वर्गस्थान कितने हैं? नरक कितने हैं? धर्मात्मा कैसे जाते हैं? पापी कैसे जाते हैं? उनका क्या रूप है? क्या प्रमाण है? दोनों का वर्ण कैसा होता है? यमलोक को लिये जाते हुए जीव के बारे मे भी हमे बताइए ॥१-८॥

व्यास ने कहा—सुव्रतियो! मुनिश्रेष्ठो! मुझसे सुनिये। संसारचक्र अजर है, जिसकी स्थिति नही है। इसलिए मैं यममार्ग का निर्णय मरणकाल से लेकर बतलाता हूँ, जैसा कि कोई नही कह सकेगा ॥९-१०॥ मार्ग का स्वरूप, जो आपने मुझसे पूछा है, बतलाता हूँ। यमलोक तथा मनुष्यलोक मे छियासी हजार योजन का अन्तर है। यमलोक का मार्ग तपे ताँबे के समान सतप्त कहा गया है ॥११-१२॥ जीव सज्ञक प्राणी वहाँ अवश्य जाते हैं। पुण्यात्मा पवित्र लोक को जाते है और पापी पापलोक को। यम के राज्य मे बाईस नरक हैं, जिनमे पृथक्-पृथक् दुष्कर्मी जीव सताये जाते है ॥१३-१४॥ जैसे नरक, रौरव, रौद्र, शूकर, ताल, कुम्भीपाक, महाघोर, शाल्मल, विमोहन, कीटाद, कृमिभक्ष, लालाभक्ष, भ्रम, पीप बहाने वाली नदियाँ, शोणित रूप जल वाली नदियाँ, अग्निज्वाल, महाघोर, सदश, शुनभोजन, भयकर वैतरणी तथा असिपत्रवन ॥१५-१७॥ वहाँ न वृक्षो की छाया, न बावलियाँ, न सरोवर, न तालाब, न कुआँ, न प्याऊ, न सभा, न मण्डप, न घर, न नदियाँ न पर्वत ही हैं। यम के मार्ग मे कोई विश्राम-स्थान

१ग कर्मणा केन नरक स्वर्गं वा मनुजा मुने। स्व०। २ख ०स्य नियमास्तस्य। ३ख ०लोके ब्र०। ४क ०न न एतन्माग उदाहृत। त०। ५ग. ०सक्षये। पु०। ६क. महारौद्र। ७क न नदी प्लवा। न।

न मण्डपो नाऽऽयतनं 'न नद्यो न च पर्वताः। न किंचिदाश्रमस्थानं विद्यते तत्र वर्त्मनि ॥१९॥
यत्र विश्रमते श्रान्तः 'पुरुषोऽतीवकर्षितः। अवश्यमेव गन्तव्यः स सर्वैस्तु महापथः ॥२०॥
प्राप्ते काले तु संत्यज्य सुहृद्बन्धुधनादिकम्। जरायुजाण्डजाश्चैव स्वेदजाश्चोद्भिजास्तथा ॥२१॥
जङ्गमाजङ्गमाश्चैव गमिष्यन्ति महापथम्। देवासुरमनुष्यैश्च वैवस्वतवशानुगैः ॥२२॥
स्त्रीपुंनपुंसकैश्चैव पृथिव्यां जीवसंज्ञितैः। पूर्वाह्णे चापराह्णे वा मध्याह्ने वा तथा पुनः ॥२३॥
संध्याकालेऽर्धरात्रे वा प्रत्यूषे वाऽप्युपस्थिते। वृद्धैर्वा मध्यमैर्वाऽपि यौवनस्थैस्तथैव च ॥२४॥
गर्भवासेऽथ बाल्ये वा गन्तव्यः स महापथः'। प्रवासस्थैर्गृहस्थैर्वा पर्वतस्थैः स्थलेऽपि वा ॥२५॥
क्षेत्रस्थैर्वा जलस्थैर्वा गृहमध्यगतैस्तथा। आसीनैश्चास्थितैर्वाऽपि शयनीयगतैस्तथा ॥२६॥
जाग्रद्भिर्वा प्रसुप्तैर्वा गन्तव्यः स महापथः। इहानुभूय निर्दिष्टमायुर्जन्तुः स्वयं तदा ॥२७॥
तस्यान्ते च स्वयं प्राणैरनिच्छन्नपि मुच्यते। जलमग्निर्विषं शस्त्रं क्षुद्व्याधिः पतनं गिरेः ॥२८॥
निमित्तं किंचिदासाद्य देही प्राणैर्विमुच्यते। विहाय सुमहत्कृत्स्नं शरीरं पाञ्चभौतिकम् ॥२९॥
अन्यच्छरीरमादत्ते यातनीयं 'स्वकर्मजम्। दृढं शरीरमाप्नोति 'सुखदु:खोपभुक्तये ॥३०॥
तेन भुङ्क्ते स कृच्छ्राणि पापकर्ता नरो भृशम्। सुखानि धार्मिको हृष्ट इह नीतो' यमक्षये ॥३१॥
ऊष्मा प्रकुपितः काये 'तीव्रवायुसमीरितः। भिनत्ति मर्मस्थानानि दीप्यमानो निरन्धनः ॥३२॥
उदानो नाम पवनस्ततश्चोर्ध्वं प्रवर्तते। भुज्यता (क्ताना) मम्बुभक्ष्याणामधोगतिनिरोधकृत् ॥३३॥

नहीं है, जहाँ अत्यन्त चलने से श्रान्त जीव आराम करे। उस महापथ से सबको प्रयाण करना ही पड़ता है ॥१८-२०॥ काल पहुँचने पर मित्र, बन्धु, धन आदि को छोड़कर जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज, स्थावर, जंगम—सभी महापथ से जाते हैं ॥२१½॥ वैवस्वत (मनु) के अनुगामी देव, राक्षस, मनुष्य, स्त्री, पुरुष, नपुंसक तथा पृथ्वी पर जितने जीव-संज्ञक प्राणी हैं, वृद्ध या मध्यवयस्क या युवक या गर्भवासी या बालक होकर वे सब पूर्वाह्ण में या अपराह्ण में या मध्याह्न में या सन्ध्याकाल या आधी रात को या प्रातःकाल उस महापथ पर जाते हैं। प्रवास में, गृह में, पर्वत पर, स्थल में, क्षेत्र में, जल में तथा गृह-मध्य में रहते, बैठते, खड़े होते, शय्या पर जाते, जागते तथा सोते हुए प्राणी उस महापथ पर जाते हैं ॥२२-२६½॥ यहाँ निर्धारित आयु तक भोग करके स्वयं न चाहता हुआ भी प्राणी प्राणों से मुक्त हो जाता है। जल, अग्नि, विष, शस्त्र, भूख, व्याधि, पर्वत-पतन—इनमें से किसी निमित्त को प्राप्त कर जीव प्राणों से मुक्त हो जाता है और अति महान् पाञ्चभौतिक शरीर को त्याग कर अपने कर्मों से उत्पन्न अन्य यातना-शरीर को प्राप्त करता है। सुख-दुःख के उपभोग के लिए दृढ शरीर प्राप्त होता है ॥२७-३०॥ उसी से पापी मनुष्य यमालय में लाया जाने पर अत्यन्त कष्ट भोगता है और धर्मात्मा मनुष्य प्रसन्न होकर सुख भोगता है ॥३१॥ शरीर में तीव्र वायु द्वारा प्रेरित गर्मी बढ़ जाती है और जलते हुए अग्नि की तरह मर्मस्थानों को पकाने लगती ॥३२॥ तब खाये-पिये हुए भक्ष्य तथा जल की अधोगति को रोककर उदान नामक वायु ऊपर की ओर बढ़ता जाता

१क न चोद्यान न प०। २ख ०षो वातक०। ३क ०थ। वानप्रस्थैं०। ४क ०म्। तन्मात्रगुणसंयुक्तमात्मदेहप्रमाणतः। इष्ट ग०। ५क. ०दुःखानुभूतये। ६क यमालये। ७क ०वातस०।

ततो येनाम्बुदानानि कृतान्यन्नरसास्तथा। दत्ताः स तस्यामाह्लादमापदि प्रतिपद्यते॥३४॥
अन्नानि येन दत्तानि श्रद्धापूतेन चेतसा। सोऽपि तृप्तिमवाप्नोति विनाऽप्यन्नेन वै तदा॥३५॥
येनानृतानि नोक्तानि प्रीतिभेदः कृतो न च। आस्तिकः श्रद्दधानश्च सुखमृत्युं स[1] गच्छति॥३६॥
देवब्राह्मणपूजायां निरताश्चानसूयकाः। शुक्ला वदान्या ह्रीमन्तस्ते नराः सुखमृत्यवः॥३७॥
यः कामान्नापि संरम्भान्न द्वेषाद्धर्ममुत्सृजेत्। यथोक्तकारी सौम्यश्च स सुखं मृत्युमृच्छति॥३८॥
वारिदास्तृषितानां ये क्षुधितान्नप्रदायिनः। प्राप्नुवन्ति नराः काले मृत्युं सुखसमन्वितम्॥३९॥
शीतं जयन्ति धनदास्तापं[2]चन्दनदायिनः। प्राणघ्नीं[3] वेदनां कष्टां ये चान्योद्वेगधारिणः[4]॥४०॥
मोहं ज्ञानप्रदातारस्तथा दीपप्रदास्तमः। कूटसाक्षी मृषावादी यो[5] गुरुर्नानुशास्ति वै॥४१॥
ते मोहमृत्यवः सर्वे तथा ये वेदनिन्दकाः। विभीषिणाः पूतिगन्धाः कूटमुद्गरपाणयः॥४२॥
आगच्छन्ति[6] दुरात्मानो यमस्य पुरुषास्तथा[7]। प्राप्तेषु दृक्पथं तेषु जायते तस्य वेपथुः॥४३॥
क्रन्दत्यविरतः सोऽथ भ्रातृमातपितृस्तथा। सा तु वागस्फुटा विप्रा एकवर्णा विभाव्यते॥४४॥
दृष्टिर्विभ्राम्यते[8] त्रासात्कासावृष्टचत्य (विष्टम) थाऽऽननम्[9]। ततः स वेदनाविष्टं तच्छरीरं विमुञ्चति॥४५॥

है। जो मनुष्य अन्नदान तथा जलदान किये रहता है, उसे वह दत्त वस्तु उस विपत्ति मे आनन्द देता है। जिसने पवित्र चित्त से श्रद्धापूर्वक अन्नदान किया है, उसे बिना अन्न के भी उस समय तृप्ति मिलती है॥३३-३५॥ जो असत्य नही बोलता, प्रीतिभेद नही करता तथा आस्तिक एवम् श्रद्धालु है, वह सुख से मृत्यु प्राप्त करता है॥३६॥ जो मनुष्य देव-ब्राह्मणो की पूजा मे निरत रहता है, किसी से डाह नही करता तथा स्वच्छ, दानी एवम् लज्जाशील है उसकी मृत्यु सुखपूर्वक होती है॥३७॥ जो न इच्छा से, न कठिनाई से, न द्वेष से ही धर्म का परित्याग करता है और शास्त्रविहित कर्म करता है तथा सौम्य है, वह सुख से मरता है॥३८॥ जो नर प्यासे को जल तथा भूखे को अन्न देता है, वह समय आने पर सुखपूर्वक मृत्यु प्राप्त करता है॥३९॥ धन देने वाले सर्दी को जीतते हैं, चन्दन देने वाले गर्मी को जीतते हैं और दूसरे के उद्वेग को दूर करने वाले जन प्राणनाशिनी वेदना को पार कर लेते हैं।॥४०॥ ज्ञानदाता मोह को तथा दीपदाता अंधकार को पार करता है। मिथ्या गवाही देने वाले, असत्यवादी तथा वेदनिन्दक व्यक्ति मोह से मृत्यु प्राप्त करते हैं। भयकर, दुर्गन्ध तथा मुद्गर हाथो मे लिये यम के दुरात्मा पुरुष उनके पास आते हैं, जिन्हे देखते ही वे काँपने लगते हैं॥४१-४३॥ तब वे भाई, माता, पिता आदि के नाम लेकर चिल्लाने लगते हैं। विप्रवृन्द! उनकी वह अस्फुट वाणी एकाक्षर-सी प्रतीत होती है॥४४॥ डर से आँखें घूमने लगती हैं और मुँह लारो की वृष्टि करने लगता है, तब वे वेदनायुक्त शरीर को छोड देते है और वायु से प्रेरित होकर दूसरे शरीर को प्राप्त करते हैं। वह शरीर माता-पिता से उत्पन्न नही होता। वह केवल कर्म-भोग के लिये

१ग समृच्छ०। २क ०प पवन०। ३क प्राणितो। ख प्राणिनो। ४क चान्येऽद्रोहकारि० ५ग ०गकारि०। ६क योऽधर्ममनु०। ७ग ०च्छन्तो दु०। ८क. ०स्तदा। प्रा०। ९क ०भ्रान्तनेत्रा सा कासोच्छ्वासेन वेपितम्। १०क ०म्। अन्तश्च वै।

वाय्वग्रसारी तद्रूपदेहमन्यत्प्रपद्यते। तत्कर्मयातनार्थं च न मातृपितृसंभवम् ॥४६॥
'तत्प्रमाणवयोवस्थासंस्थानैः[1] प्राप्यते व्यथा। ततो दूतो यमस्याथ पाशैर्बध्नाति दारुणैः ॥४७॥
जन्तोः संप्राप्तकालस्य वेदनार्तस्य[2] वै भृशम्। भूतैः संत्यक्तदेहस्य कण्ठप्राप्तानिलस्य च ॥४८॥
'शरीराच्च्यावितो जीवो रोरवीति तथोल्बणम्। निर्गतो वायुभूतस्तु[3] षाट्कौशिककलेवरे ॥४९॥
मातृभिः पितृभिश्चैव भ्रातृभिर्मातुलैस्तथा[4]। दारैः पुत्रैर्वयस्यैश्च[5] गुरुभिस्त्यज्यते भुवि ॥५०॥
दृश्यमानश्च तैर्दीनैरश्रुपूर्णेक्षणैर्भृशम्। स्वशरीरं समुत्सृज्य वायुभूतस्तु गच्छति ॥५१॥
अन्धकारमपारं च[6] महाघोरं तमोवृतम्। सुखदु:खप्रदातारं दुर्गमं पापकर्मणाम् ॥५२॥
दुःसह च दुरन्त[7] च दुर्निरीक्षं दुरासदम्। दुरापमतिदुर्गं च पापिष्ठानां सदाऽहितम् ॥५३॥
कृष्यमाणाश्च[8] तैर्भूतैर्याम्यैः पाशैस्तु संयताः। मुद्गरैस्ताड्यमानाश्च नीयन्ते[9] तं महापथम् ॥५४॥
क्षीणायुषं समालोक्य प्राणिनं चाऽऽयुषक्षये। निनीषवः समायान्ति यमदूता भयङ्करा ॥५५॥
आरूढा यानकाले तु ऋक्षव्याघ्रखरेषु च। उष्ट्रेषु वानरेष्वन्ये वृश्चिकेषु वृकेषु च ॥५६॥
उलूकसर्पमार्जारं तथाऽन्ये गृध्रवाहनाः। श्येनशृगालमारूढाः[12] सरघाकङ्कवाहनाः ॥५७॥
वराहपशुवेतालमहिषास्यास्तथा परे। नानारूपधरा घोराः सर्वप्राणिभयंकरा ॥५८॥

मिलता है ॥४५-४६॥ उस शरीर मे भी कर्मानुसार अवस्था प्राप्त कर जीव कष्ट भोगते हैं। तब समय पूर्ण होने पर वेदना से पीडित जीव के शरीर को पञ्चभूत छोड देते हैं और प्राणवायु कण्ठगत हो जाता है। उसी समय यमदूत उसे भयकर जाल मे बांध देता है। शरीर से मुक्त जीव बहुत जोर से रोने लगता है। छह कोशा से युक्त शरीर से वायुभूत जीव के निकल जाने पर माता, पिता, भाई, मामा, स्त्री, पुत्र, मित्र तथा गुरु उसको पृथ्वी पर छोड देते हैं ॥४७-५०॥ वे लोग दीन होकर अश्रुपूर्ण नेत्रो से देखते ही रहते हैं, पर वह वायुभूत जीव अपने शरीर को छोडकर चल पडता है ॥५१॥ तिमिराच्छादित, पाररहित, महाघोर, सुखदुखदाता, पापियो के लिए दुगम, दु सह, दुष्पार, दुर्निरीक्ष्य, भीषण, अतिदुर्ग तथा पापिष्ठो के लिये सदा अहितकर उस महापथ पर यमदूत जीव को जाल मे दृढता से बांध कर मुद्गर से पीटते हुए ले जाता है। आयु के क्षय होने पर क्षीणायु प्राणी को देखकर उसे ले जाने की इच्छा से भयकर यमदूत आते है ॥५२-५५॥ रीछ, बाघ, गधा, ऊँट, बिच्छू भेडिया उल्लू, साँप, बिलाड, गीध, बाज, सियार, मधुमक्खी, सफेद चील आदि वाहनो पर चढकर समस्त प्राणियो के लिये भयानक, नानारूप-धारी, सूअर पशु वेताल तथा महिष के समान मुख वाले, लबे अडकोश वाले, विकराल मुंह वाले, टेढी नाक वाले, तीन नेत्र वाले, महान् ठुड्डी, कपोल तथा मुख वाले, लबे दांत वाले, अकुर के सदृश निकले तथा विकृत आकार के

१क ०माणा व०। २क ०स्याशरीरैः प्रा०। ३क ख ०नास्तस्य। ४ग ख. ०रादपनीतोऽसौ जीवो रौति त०। ५ग ०ट्कौषिक०। ६क ख ०तुलादिभि। दा०। ७क. ०श्च र्दद्भिस्त्य० ८ग त। ९क. ख. सुदूर। १०ख तैर्हृष्टैर्या०। ११क. ०न्ते यमसादनम्। १२ग. ०ढाः खञ्जरीक०।

दीर्घमुष्काः करालास्या वक्रनासास्त्रिलोचनाः। 'महाहनुकपोलास्याः प्रलम्बदशनच्छदाः ॥५९॥
निर्गतैर्विकृताकारैर्दशनैरङ्कुरोपमैः। मांसशोणितदिग्धाङ्गा दंष्ट्राभिर्भृशमुल्बणै- ॥६०॥
मुखैः पातालसदृशैर्ज्वलज्जिह्वैर्भयंकरैः। नेत्रैः सुविकृताकारैर्ज्वलत्पिङ्गलचञ्चलैः ॥६१॥
'मार्जारोलूकखद्योतशक्रगोपवदुद्धतैः। केकरैः संकुलैस्तब्धैर्लोचनैः पावकोपमैः ॥६२॥
भृशमाभरणैर्भीमैराबद्धैर्भुजगोपमैः। शोणासरलगात्रैश्च मुण्डमालाविभूषितैः ॥६३॥
कण्ठस्थकृष्णसर्पैश्च फूत्काररवभीषणैः। वह्निज्वालोपमैः केशैस्तब्धरूक्षैर्भयंकरैः ॥६४॥
बभ्रुपिङ्गललोलैश्च कद्रुश्मश्रुभिरावृताः। भुजदण्डैर्महाघोरैः प्रलम्बैः परिघोपमैः ॥६५॥
केचिद् द्विबाहवस्तत्र तथाऽन्ये च चतुर्भुजाः। द्विरष्टबाहवश्चान्ये दशविंशभुजास्तथा ॥६६॥
असंख्यातभुजाश्चान्ये केचिद्बाहुसहस्रिणः। आयुधैर्विकृताकारैः प्रज्वलद्भिर्भयानकैः ॥६७॥
शक्तितोमरचक्राद्यैः सुदीप्तैर्विविधायुधैः। पाशशृंखलदण्डैश्च भीषयन्तो महाबलाः ॥६८॥
आगच्छन्ति महारौद्रा मर्त्यानामायुषः क्षये। 'ग्रहीतुं प्राणिनः सर्वं यमस्याऽऽज्ञाकरास्तथा ॥६९॥
यत्तच्छरीरमादत्ते यातनीयं स्वकर्मजम्। 'तदस्य नीयते जन्तोर्यमस्य सदनं प्रति ॥७०॥
बद्ध्वा तत्कालपाशैश्च निगडैर्वज्रशृङ्खलैः। ताडयित्वा भृशं क्रुद्धैर्नीयते यमकिंकरैः ॥७१॥
प्रस्खलन्तं रुदन्तं च आक्रोशन्तं मुहुर्मुहुः। हा तात मात पुत्रेति वदन्तं कर्मदूषितम् ॥७२॥

दाँतो वाले, मास तथा शोणित से वढे अगो वाले, अत्यन्त तीक्ष्ण दष्ट्रा वाले, पाताल सदृश मुख वाले, जलती हुई जिह्वा
वाले, चञ्चल, पीत तथा विकृताकार नेत्र वाले, विलाड, उल्लू, जुगनू, तथा वीर वहूटी के समान उद्धत आँखो वाले,
अग्नि के समान चमकीले, ऐंचे, सकीर्ण तथा निर्निमेष नेत्रो वाले सर्प के समान भीषण भूषणो से आवद्ध, लाल तथा
कर्कश शरीर वाले, मुण्ड-मालाओ से विभूषित, भयकर 'फूत्कार' शब्द करने वाले, कृष्ण सर्पों को गले मे धारण
करने वाले, अग्निज्वाला तुल्य, रुक्ष, भयकर तथा अचल केश वाले, चचल तथा भूरे एवम् पीत रग की दाढी मूछो से
आवृत और महाभयकर तथा भाले के समान लम्बी भुजा वाले यमदूत आते हैं॥५६-६५॥ उनमे कोई दो बाँहे
वाले, कोई चार भुजा वाले, कोई सोलह भुजा वाले, कोई तीस (या दो सौ) भुजा वाले, कोई हजार भुजा वाले और
कोई असख्य भुजा वाले होते हैं॥६६॥ जाज्वल्यमान, भयानक तथा विचित्र आकार के अस्त्र-शस्त्रो से, देदीप्य-
मान शक्ति, तोमर, चक्र आदि विविध आयुधो से पाश, साँकल तथा दण्डो से डराते हुए महादारुण यमदूत
मृत्युलोकवासियो के आयु क्षय होने पर प्राणियो को पकडन के लिये आते हैं॥६७-६९॥ जीव अपने कर्मों से उत्पन्न
यातना-शरीर को प्राप्त करता है और वह यमालय ले जाया जाता है॥७०॥ साँकलो तथा काल-पाशो से बाँध
कर अत्यन्त कुपित यमकिंकर पीटते हुए उसे ले जाते हैं॥७१॥ गिरते, रोते, बार-बार चिल्लाते और 'हा पिता,
माता, पुत्र' बोलते हुए दुष्कर्मी जीव को तीक्ष्ण, शूल, मुद्गर, अत्यन्त तेज तल्वार तथा शक्ति के प्रहारो से एवम्

१क. ०कपाला०। २क ख ०त्रचापैरिवोद्गतैः। ३क ०भूपणै। क०। ४क ख चापहस्ता। ५क ख गृहीत्वा। ६क ख तदाऽस्य। ७क ०रैः। कृत्वा वज्रमय कायमात्रो०। ८क सुदुर्मदैः। ९ग ०त पुत्र मातेति। हा कलत्रेति चासकृत्। आ०।

आहत्य निशितैः शूलैर्मुद्गरैर्निशितैर्घनैः। खड्गशक्तिप्रहारैश्च वज्रदण्डैः सुदारुणैः॥७३॥
भर्त्स्यमानो महारावैर्वज्रशक्तिसमन्वितैः। एकैकशो भृशं क्रुद्धैस्ताडयद्भिः समन्ततः॥७४॥
स मुह्यमानो दुःखार्तः प्रतपंश्च इतस्ततः। आकृष्य नीयते जन्तुरध्वानं सुभयंकरैः॥७५॥
कुशकण्टकवल्मीकशङ्कुपाषाणशर्करे। तथा प्रदीप्तज्वलने [1]क्षारवज्रशतोत्कटे॥७६॥
प्रदीप्तादित्यतप्तेन दह्यमानस्तदंशुभिः। कृष्यते यमदूतैश्च शिवासनादभीषणैः॥७७॥
विकृष्यमाणस्तैर्घोरैर्भक्ष्यमाणः शिवाशतैः। प्रयाति दारुणे मार्गे पापकर्मा यमालयम्॥७८॥
क्वचिद्भीतैः क्वचित्त्रस्तैः प्रस्खलद्भिः क्वचित्क्वचित्। दुःखेनाऽऽक्रन्दमानैश्च[2] गन्तव्यः स महापथः॥७९॥
निर्भर्त्स्यमानैरुद्विग्नैर्विद्रुतैर्भयविह्वलैः। कम्पमानशरीरैस्तु गन्तव्यं जीवसंज्ञकैः॥८०॥
कण्टकाकीर्णमार्गेण संतप्तसिकतेन च। दह्यमानैस्तु गन्तव्यं नरैर्दानविवर्जितैः॥८१॥
मेदःशोणितदुर्गन्धैर्बस्तगात्रैश्च[3] पूगशः। [4]दग्धस्फुटत्वचाऽऽकीर्णैर्गन्तव्यं जीवघातकैः॥८२॥
कूजद्भिः क्रन्दमानैश्च विक्रोशद्भिश्च विस्वरम्। वेदनार्तैश्च सद्भिश्च गन्तव्यं जीवघातकैः॥८३॥
शक्तिभिर्भिन्दिपालैश्च खड्गतोमरसायकैः। भिद्यद्भिस्तीक्ष्णशूलाग्रैर्गन्तव्यं जीवघातकैः[5]॥८४॥
श्वानैर्व्याघ्रैर्वृकैः कङ्कैर्भक्ष्यमाणैश्च पापिभिः ॥८५॥
कृन्तद्भिः क्रकचाघातैर्गन्तव्यं मांसखादिभिः। महिषर्षभशृङ्गाग्रैर्भिद्यमानैः समन्ततः॥८६॥

कठोर वज्र-दण्डो से पीटते हुए यमदूत ले जाते हैं। ग्लानि करते हुए इधर-उधर तड़पते हुए दुःख पीड़ित जीव को वज्र-शक्ति समन्वित महाशब्दो से धिक्कारते हुए महाभयानक तथा अत्यन्त कुपित यमदूत मार्ग पर ले जाते हैं॥७२-७५॥ कुश, कण्टक, वल्मीक, शंकु, पत्थर तथा बालू-कण से युक्त, जाज्वल्यमान, सैकड़ो कठोर वज्र के समान उत्कट एवं प्रदीप्त सूर्य-किरणो से जलते हुए मार्ग पर शृगालों के समान भीषण नाद करने वाले यमदूत जीव को ले जाते हैं॥७६-७७॥ यमलोक के लिये दारुण मार्ग से प्रयाण करते हुए पापकर्मी जीव को सैकड़ो भयानक शृगालियाँ खाती हैं और यमदूत खींचातानी करते हैं॥७८॥ कहीं डरते हुए, कहीं त्रस्त होते हुए, कहीं गिरते हुए और कहीं आक्रोश करते हुए उस महापथ पर चलना पड़ता है॥७९॥ उद्विग्न तथा भयविह्वल होकर फटकार खाते हुए तथा भागते हुए जीव काँपते हुए शरीरो से उस महापथ पर जाते हैं॥८०॥ दानरहित मनुष्य को संतप्त बालूमय तथा कण्टकाकीर्ण मार्ग से जाना पड़ता है। जीवहत्या करने वाले मनुष्यो को चरबी, शोणित तथा दुर्गन्ध से युक्त एवम् जल कर फटी हुई त्वचा वाले शरीर धारण कर जाना पड़ता है॥८१-८२॥ जीवघाती को अव्यक्त शब्द करते, रोते, जोर से चिल्लाते तथा वेदना से पीड़ित होते हुए जाना पड़ता है। जीवघातक को शक्ति, भिन्दिपाल, तलवार, तोमर, बाण तथा तीक्ष्ण शूल के अग्रभाग से विद्ध होकर जाना पड़ता है। महापथ पर जाते हुए पापियो को कुत्ते, बाघ, भेड़िये तथा सफेद चील खाते हैं॥८३-८५॥ मांसाहारी जीवो को आरे से चिरवा कर जाना होता है। वहाँ जाते हुए मांसभक्षी जीवो को चारो ओर से महिष तथा बैल सींगो से छिन्न-भिन्न करते

१ग ०रदंश०। २क ग्रस्यमानैश्च। ३क ०र्व्विष्टामूत्रानुलेपनैः। द०। ४ख. ग ०टद्जाकी०। ५क ०कैः। श्वोभेर्व्या०।

'उल्लिखद्भिः शूकरैश्च गन्तव्यं मांसखादकैः। सूचीमुखमरकाकोलमक्षिकाभिश्च' संघशः ॥८७॥
भुज्यमानैश्च गन्तव्यं पापिष्ठैर्मधुघातकैः'। विश्वस्तं स्वामिनं मित्रं स्त्रियं वा यस्तु घातयेत् ॥८८॥
शस्त्रैर्निकृत्यमानैश्च गन्तव्यं चातुरैर्नरैः। घातयन्ति च ये जन्तूंस्ताडयन्ति निरागसः ॥८९॥
राक्षसैर्भक्ष्यमाणास्ते यान्ति याम्यपथं नराः। ये हरन्ति' परस्त्रीणां वरप्रावरणानि च ॥९०॥
ते यान्ति विद्रुता नग्नाः' प्रेतीभूता यमालयम्। वासो' धान्य हिरण्यं वा गृहक्षेत्रमथापि वा ॥९१॥
ये हरन्ति दुरात्मानः पापिष्ठाः पापकर्मिणः। पाषाणैर्लगुडैर्दण्डैस्ताड्यमानैस्तु जर्जरैः ॥९२॥
ःहृद्भिः शोणितं भूरि गन्तव्यं तु यमालयम्'। ब्रह्मस्वं ये हरन्तीह' नरा नरकनिर्भयाः ॥९३॥
ताडन्ति तथा विप्रानाक्रोशन्ति नराधमाः। शुष्ककाष्ठनिबद्धास्ते छिन्नकर्णाक्षिनासिकाः ॥९४॥
पूयशोणितदिग्धास्ते कालगृध्रैश्च जम्बुकैः। किंकरैर्भीषणैश्चण्डैस्ताड्यमानाश्च दारुणैः ॥९५॥
विक्रोशमाना ' गच्छन्ति पापिनस्ते यमालयम्। एवं परमदुर्धर्षमध्वानं ज्वलनप्रभम् ॥९६॥
रौरवं दुर्गविषमं निर्दिष्टं मानुषस्य च। प्रतप्तताम्रवर्णाभं वह्निज्वालास्फुलिङ्गवत् ॥९७॥
कुरण्टकण्टकाकीर्णं' 'पृथुविकटताडनैः। शक्तिवज्रैश्च संकीर्णमुज्ज्वलं तीव्रकण्टकम् ॥९८॥
अङ्गारवालुकामिश्रं वह्निकीटकदुर्गमम्। ज्वालामालाकुलं रौद्रं' सूर्यरश्मिप्रतापितम् ॥९९॥

हैं तथा सूअर चीरते हैं ॥८६½॥ मधुघाती (मधुमक्खियों को मारने वाले) पापिष्ठ जीवों को, सूई, भौंरे, कौए तथा मक्खियों से आहत होकर जाना पड़ता है ॥८७½॥ विश्वस्त स्वामी, मित्र तथा स्त्री को जो मारता है, उसे शस्त्रों से आहत होकर जाना पड़ता है ॥८८½॥ जो मनुष्य निरपराध जीवों को मारता है, उसे यमपथ पर राक्षस खाते हैं ॥८९½॥ जो मनुष्य परस्त्रियों की आढ़नी चुरा लेता है। वह मरने पर नग्न होकर यमलोक जाता है ॥९०½॥ जो दुरात्मा पापिष्ठ कपड़े, धान्य, सोने तथा वासस्थान का अपहरण करता है, वह पत्थर, लाठी तथा डंडों से जर्जरगात्र होकर प्रचुर शोणित बहाते हुए यमालय जाता है ॥९१-९२½॥ जो नर नरक से निर्भय होकर ब्राह्मणों का धन हरण करता है और विप्रों को पीटता है, वह नराधम सूखी लकड़ी में बाँध दिया जाता है, उसकी आँख, कान, नाक काट दी जाती हैं, पीब तथा शोणित से उसका सर्वांग शरीर लिप्त हो जाता है, गीध तथा सियार उसे खाते हैं, प्रचण्ड तथा भयंकर यमदूत उसे पीटते हैं, तब वह पापी आक्रोश करता हुआ यमसदन जाता है ॥९३-९५½॥ इस प्रकार वह महापथ मनुष्य के लिए परम कठिन, अग्नितुल्य प्रभा वाला, विषम, भयंकर तथा रौरव नरक तुल्य बतलाया जाता है। तपे ताँबे के तुल्य, अग्नि ज्वालाओं के कण के सदृश कुरण्ट वृक्ष के काँटों से व्याप्त विशाल तथा विकट ताड़नों (चाबुकों), शक्तियों तथा वज्रों से भरे हुए, उज्ज्वल, तीखे काँटों से युक्त, अंगार सदृश, बालू से मिश्रित, अग्निमय कीड़ों के कारण दुर्गम, ज्वालाओं से परिपूर्ण, भयानक तथा सूर्य किरणों से सतप्त मार्ग पर प्राणी अत्यन्त निष्ठुर यमदूतों द्वारा घसीटता हुआ ले जाया जाता है ॥९६-९९½॥ जर्जर, दुःखपीडित जीव कहीं गिर कर रोने लगता है

१क ख उत्तिष्ठद्भि। २क ख ०कामि सहस्रशः। ३ग ०र्मधुपा०। ४क ०न्ति धन स्त्री०। ५क मग्ना०। ६ग गावो। ७क ०म्। देवद्रव्य हृ०। ८क ख ०ह गुरुभूमि तथैव च। ता०। ९क ०र्णं वृथा वि०। ग ०र्णं वृथावि०। १०ख ०टरडकुरं। श०। ग ०टमङ्कुर। श०। ११क ख ०द्र दीप्तसूर्य प्र०।

अध्वान नीयते देही कृष्यमाण सुनिष्ठुरं । यदेव क्रन्दते जन्तुर्दु खार्त पतित[1] क्वचित् ॥१००॥
तदेवाऽऽहन्यते सर्वैरायुधैर्यमकिंकरैः । एव सताडचमानश्च लुब्ध पापेषु योऽनय ॥१०१॥
अवशो नीयते जन्तुर्दुर्धरैर्यमकिंकरैः । सर्वैरेव हि गन्तव्यमध्वान तत्सुदुर्गमम् ॥१०२॥
नीयते विविधैर्घोरैर्यमदूतैरवज्ञया । नीत्वा सुदारुण मार्ग प्राणिन यमकिंकरैः ॥१०३॥
प्रवेश्यते पुरीं घोरा ताम्रायसमयीं द्विजा । सा पुरी विपुलाकारा[2] लक्षयोजनमायता ॥१०४॥
[3]चतुरस्रा विनिर्दिष्टा चतुर्द्वारवती शुभा । प्राकारा काञ्चनास्तस्या योजनायुतमुच्छ्रिता ॥१०५॥
इन्द्रनीलमहानीलपद्मरागोपशोभिता । सा पुरी विविधै सर्पैर्घोरा घोरै समाकुला ॥१०६॥
देवदानगन्धर्वयक्षराक्षसपन्नगैः । पूर्वद्वार शुभ तस्या पताकाशतशोभितम् ॥१०७॥
वज्रेन्द्रनीलवैदूर्यमुक्ताफलविभूषितम् । गीतनृत्यै समाकीर्णं गन्धर्वाप्सरसां गणै ॥१०८॥
प्रवेशस्तेन देवानामृषीणा योगिना तथा । ग धर्वसिद्धयक्षाणां विद्याधरविसर्पिणाम् ॥१०९॥
[4]उत्तर नगरद्वार घण्टाचामरभूषितम् । छत्रचामरविन्यास नानारत्नैरलंकृतम् ॥११०॥
वीणावेणुरवै रम्यैर्गीतमङ्गलनादितैः । [5]ऋग्यजु सामनिर्घोषैर्मुनिवृन्दसमाकुलम् ॥१११॥
विशन्ति येन धर्मज्ञा सत्यव्रतपरायणा । ग्रीष्मे वारिप्रदा ये च शीते चाग्निप्रदा नरा ॥११२॥
श्रान्तसवाहका ये च प्रियवादरताश्च ये । ये च दानरता शूरा [6]मातापितृपराश्च ये ॥११३॥

तब यमदूत विविध आयुधों से उसे आहत कर देते हैं ॥१००½॥ इस प्रकार पापी और अनैतिक जन को ताडते हुए यमकिंकर ले जाते हैं। उस अत्यन्त दुर्गम मार्ग पर सबको जाना पडता है। द्विजगण! अनेक भयकर यमदूत प्राणी को दारुण मार्ग पर तिरस्कारपूर्वक ले जाते हैं और अनन्तर उसे ताम्र-लौहमय पुरी मे प्रवेश कराते हैं ॥१०१ १०३॥ वह पुरी विस्तृत आकार वाली एक लाख योजन लम्बी चौकोर चार द्वार वाली तथा सुन्दर है। उसकी सुवर्णमय चहारदीवारी दस हजार योजन विस्तृत है ॥१०४ १०५॥ वह पुरी इन्द्रपुरी महानील तथा पद्मराग मणि से सुशोभित विविध सर्पों से भयकर और देव दानव गन्धर्व यक्ष राक्षस तथा सर्पों से परिपूर्ण है। उसका पूर्वद्वार पवित्र सैकडो पताकाओ से शोभित वज्र इन्द्र नील वैदूर्य आदि मणियों तथा मोतियों से विभूषित नृत्यगीतों तथा गन्धर्व और अप्सराओ के गणो से प्रपूर्ण है ॥१०६ १०८॥ उस द्वार से देव ऋषि योगी गन्धर्व सिद्ध, यक्ष तथा विद्याधरो का प्रवेश होता है ॥१०९॥ नगर का उत्तरद्वार घण्टा तथा चामरों से भूषित छत्र तथा नाना रत्नो से अलकृत वीणा बाँसुरी के शब्दो तथा गीत-मङ्गलो से रम्य ऋग्वेद यजुर्वेद तथा सामवेद के निर्घोष एवम् मुनिवृन्द से परिव्याप्त है ॥११० १११॥ उस मार्ग से धर्मज्ञ तथा सत्यव्रतपरायण व्यक्ति प्रवेश करते हैं। जो मनुष्य ग्रीष्म-काल मे जलदान और शीतकाल मे अग्निदान करते हैं वे उस मार्ग से जाते हैं ॥११२॥ जो थके मांदे की सेवा करते हैं जो प्रियवक्ता हैं जो दानी हैं जो वीर हैं जो मातृ पितृ भक्त हैं जो विप्रसेवा मे निरत हैं और जो अतिथिपूजक हैं वे उस मार्ग से जाते हैं ॥११३½॥ नगरी का पश्चिमद्वार रत्नों से विभूषित विचित्र मणिमय

१क ग पतने। २ग विविधाका०। ३ग ०तुष्पयवि०। ४क ग ०रं तु वर०। ५ग ०तैं। यजु०। ६ग ०मात्मावरयोरे०। ७ग मत्पूर्नसितारायणा। द्वि०।

द्विजशुश्रूपणे युक्ता नित्यं येऽतिथिपूजकाः। पश्चिमं तु महाद्वारं पुर्या रत्नैर्विभूषितम् ॥११४॥
विचित्रमणिसोपानं तोमरैः समलंकृतम्। भेरीमृदङ्गसंनादैः शङ्खकाहलनादितम् ॥११५॥
सिद्धवृन्दैः सदा हृष्टैर्मङ्गलैः प्रणिनादितम्। प्रवेशस्तेन हृष्टाना शिवभक्तिमतां नृणाम् ॥११६॥
सर्वतीर्थप्लुता ये च पञ्चाग्नेर्ये च सेवकाः। प्रस्थाने ये मृता वीरा मृताः कालंजरे गिरौ ॥११७॥
अग्नौ विपन्ना ये वीराः साधितं वैरनाशकम्। ये स्वामिमित्रलोकार्थे गोग्रहे संकुले हताः ॥११८॥
ते विशन्ति नराः शूराः पश्चिमेन तपोधनाः। पूर्यां तस्या महाघोरं सर्वसत्त्वभयंकरम् ॥११९॥
हाहाकारसमाकृष्टं दक्षिणं द्वारमीदृशम्। अन्धकारसमायुक्तं तीक्ष्णशृङ्गैः समन्वितम् ॥१२०॥
कण्टकैर्वृश्चिकैः सर्पैर्वज्रकीटैः सुदुर्गमैः। विलुम्पद्भिर्वृकैर्व्याघ्रैर्ऋक्षैः सिंहैः सजम्बुकैः ॥१२१॥
श्वानमार्जारगृध्रैश्च सज्वालकवलैर्मुखैः। प्रवेशस्तेन वै नित्य सर्वेषामपकारिणाम् ॥१२२॥
ये घातयन्ति विप्रान्गा बालं वृद्धं तथाऽऽतुरम्। शरणागतं विश्वस्तं स्त्रियं मित्रं निरायुधम् ॥१२३॥
येऽगम्यागामिनो मूढाः परद्रव्यापहारिणः। निक्षेपस्यापहर्तारो विषवह्निप्रदाश्च ये ॥१२४॥
परभूमिं गृहं शय्यां वस्त्रालंकारहारिणः। परच्छिद्रेषु ये क्रूरा ये सदाऽनृतवादिनः ॥१२५॥
ग्रामराष्ट्रपुरस्थाने महादुःखप्रदा हि ये। कूटसाक्षिप्रदादातारः कन्याविक्रयकारकाः ॥१२६॥
अभक्ष्यभक्षणरता ये गच्छन्ति सुतां स्नुषाम्। मातरं पितरं चैव ये वदन्ति च पौरुषम् ॥१२७॥

सीढ़ियों से युक्त, तोमरों से अलङ्कृत, ढोल, मृदंग, शंख तथा डमरू से शब्दित और सदा प्रसन्न रहने वाले सिद्धवृन्दों से सुसेवित है। उस द्वार से आनन्दयुक्त शिवभक्त मनुष्यों का प्रवेश होता है ॥११४-११५॥ जो समस्त तीर्थ-स्नायी हैं, जो पञ्चाग्नि के उपासक हैं, जो वीर युद्धयात्रा में मरते हैं जो कालञ्जर पर्वत पर मरते हैं, जो अग्नि में पड़े हुए को बचाते है, जो स्वामी, मित्र, गो तथा दूसरों के लिये प्राण देते हैं वे तपस्वी तथा वीर मनुष्य पश्चिम-द्वार से जाते हैं ॥११८½॥ उस पुरी का दक्षिणद्वार महाघोर, अखिल जीवों के लिए भयकर, हाहाकार शब्दों से व्याप्त, तिमिरावृत, तीक्ष्ण शृगों से समन्वित, काँटे, बिच्छू साँप, वज्र तथा कीड़ों से अतिदुर्गम, मुह फैलाये उपद्रवी भेड़िये, बाघ, रीछ, सिंह, सियार, कुत्ते, बिल्डाव तथा गीधो से युक्त है। उस द्वार से नित्य पापियों का प्रवेश होता है ॥११९-१२२॥ जो ब्राह्मण, गौ, बालक, वृद्ध, आतुर, शरणागत विश्वस्त, स्त्री, मित्र तथा निःशस्त्र व्यक्ति को मारते हैं, जो अगम्यागामी, मूढ़, दूसरे के धन हरण करने वाले, धरोहर के अपहर्ता, विष तथा अग्नि डालने वाले हैं जो दूसरे की भूमि, गृह, शय्या वस्त्र तथा आभूषणों का हरण करते हैं, जो दूसरे के छिद्रान्वेषी, सदा मिथ्या-वादी, ग्राम, राष्ट्र तथा नगरों में उपद्रव मचाने वाले, मिथ्या गवाही देने वाले, कन्या बेचने वाले तथा अभक्ष्यभक्षण

१ख ०पानमम०। २ग ०दै शङ्खकाहलना०। ३क ख मृता ये पतने गि०। ४ख जले। ५क ग ०वार निरालोक तीo। ६क ख ०र्वेषां पापना०। ७ख ग्रामे पुरे नित्रसता। म०। ८क ०रत्रासम०। ९क ०प्रवर्धका। कू०। १०क ग ०न्यावादे च येऽनृता। अ०। ११ग ०र दुहित०। १२ग ये गच्छन्ति स्वसामपि। अ०।

अध्वानं नीयते देही कृष्यमाणः सुनिष्ठुरैः। यदैव क्रन्दते जन्तुर्दुःखार्तः पतितः[1] क्वचित् ॥१००॥
तदैवाऽऽहन्यते सर्वैरायुधैर्यमकिंकरैः। एवं संताड्यमानश्च लुब्धः पापेषु योऽनघः ॥१०१॥
अवशो नीयते जन्तुर्दुर्धरैर्यमकिंकरैः। सर्वैरेव हि गन्तव्यमध्वानं तत्सुदुर्गमम् ॥१०२॥
नीयते विविधैर्घोरैर्यमदूतैरवज्ञया। नीत्वा सुदारुणं मार्गं प्राणिनं यमकिंकरैः ॥१०३॥
प्रवेश्यते पुरीं घोरां ताम्रायसमयीं द्विजाः। सा पुरी विपुलाकारा[2] लक्षयोजनमायता ॥१०४॥
[3]चतुरस्रा विनिर्दिष्टा चतुर्द्वारवती शुभा। प्राकाराः काञ्चनास्तस्या योजनायुतमुच्छ्रिताः ॥१०५॥
इन्द्रनीलमहानीलपद्मरागोपशोभिता। सा पुरी विविधैः सर्पैर्घोरा घोरैः समाकुला ॥१०६॥
देवदानवगन्धर्वैर्यक्षराक्षसपन्नगैः। पूर्वद्वारं शुभं तस्याः पताकाशतशोभितम् ॥१०७॥
वज्रेन्द्रनीलवैदूर्यमुक्ताफलविभूषितम्। गीतनृत्यैः समाकीर्णं गन्धर्वाप्सरसां गणैः ॥१०८॥
प्रवेशस्तेन देवानामृषीणां योगिनां तथा। गन्धर्वसिद्धयक्षाणां विद्याधरविसर्पिणाम् ॥१०९॥
[4]उत्तरं नगरद्वारं घण्टाचामरभूषितम्। छत्रचामरविन्यासं नानारत्नैरलंकृतम् ॥११०॥
वीणावेणुरवैं रम्यैर्गीतमङ्गलनादितैः[5]। [6]ऋग्यजुःसामनिर्घोषैर्मुनिवृन्दसमाकुलम् ॥१११॥
विशन्ति येन धर्मज्ञाः सत्यव्रतपरायणाः। ग्रीष्मे वारिप्रदा ये च शीते चाग्निप्रदा नराः ॥११२॥
श्रान्तसंवाहका ये च प्रियवादरताश्च ये। ये च दानरताः शूरा [7]मातापितृपराश्च ये ॥११३॥

तभी यमदूत विविध आयुधों से उसे आहत कर देते हैं ॥१००३॥ इस प्रकार पापी और अनैतिक जीव को ताड़ते हुए यमकिंकर ले जाते हैं। उस अत्यन्त दुर्गम मार्ग पर सबको जाना पड़ता है। द्विजगण ! अनेक भयंकर यमदूत प्राणी को दारुण मार्ग पर तिरस्कारपूर्वक ले जाते हैं और अनन्तर उसे ताम्र-लौहमयी पुरी में प्रवेश कराते हैं ॥१०१-१०३॥ वह पुरी विस्तृत आकार वाली, एक लाख योजन लम्बी, चौकोर, चार द्वार वाली तथा सुन्दर है। उसकी सुवर्णमयी चहारदीवारी दस हजार योजन विस्तृत है ॥१०४-१०५॥ वह पुरी इन्द्रपुरी, महानील तथा पद्मराग मणि से सुशोभित, विविध सर्पों से भयंकर और देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस तथा सर्पों से परिपूर्ण है। उसका पूर्वद्वार पवित्र, सैकड़ों पताकाओं से शोभित, वज्र, इन्द्र, नील, वैदूर्य आदि मणियों तथा मोतियों से विभूषित, नृत्य-गीतों तथा गन्धर्व और अप्सराओं के गणों से प्रपूर्ण है ॥१०६-१०८॥ उस द्वार से देव, ऋषि, योगी, गन्धर्व, सिद्ध, यक्ष तथा विद्याधरों का प्रवेश होता है ॥१०९॥ नगर का उत्तरद्वार घण्टा तथा चामरों से भूषित, छत्र तथा नाना रत्नों से अलंकृत, वीणा, बाँसुरी के शब्दों तथा गीत-मंगलों से रम्य, ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद के निर्घोष एवम् मुनिवृन्द से परिव्याप्त है ॥११०-१११॥ उस मार्ग से धर्मज्ञ तथा सत्यव्रतपरायण व्यक्ति प्रवेश करते हैं। जो मनुष्य ग्रीष्म-काल में जलदान और शीतकाल में अग्निदान करते हैं, वे उस मार्ग से जाते हैं ॥११२॥ जो थके-माँदे की सेवा करते हैं, जो प्रियवक्ता हैं, जो दानी हैं, जो वीर हैं, जो मातृ-पितृ-भक्त हैं, जो द्विजसेवा में निरत हैं और जो अतिथिपूजक हैं, वे उस मार्ग से जाते हैं ॥११३३॥ नगरी का पश्चिमद्वार रत्नों से विभूषित, विचित्र मणिमय

१ग पतने। २ग विविधाका०। ३ग ०तुरस्रवि०। ४ग ग. ०र तु कर०। ५ग ०तैः। पद्म०। ६ग ०नामादर्शतो०। ७ग मातृपितृपरायणाः। द्वि०।

द्विजशुश्रूषणे युक्ता [1]नित्यं येऽतिथिपूजकाः। पश्चिमं तु महाद्वारं पुर्या रत्नैर्विभूषितम् ॥११४॥
विचित्रमणिसोपानं[1] तोमरैः समलंकृतम्। भेरीमृदङ्गसंनादैः[2] शङ्खकाहलनादितम् ॥११५॥
सिद्धवृन्दैः सदा हृष्टैर्मङ्गलैः प्रणिनादितम्। प्रवेशस्तेन हृष्टानां शिवभक्तिमतां नृणाम् ॥११६॥
सर्वतीर्थप्लुता ये च पञ्चाग्नेर्ये च सेवकाः। प्रस्थाने ये मृता वीरा [3]मृताः कालंजरे गिरौ ॥११७॥
अग्नौ[4] विपन्ना ये वीराः साधितं वैरनाशकम्। ये स्वामिमित्रलोकार्थे गोग्रहे संकुले हताः ॥११८॥
ते विशन्ति नराः शूराः पश्चिमेन तपोधनाः। पूर्यां तस्या महाघोरं सर्वसत्त्वभयंकरम् ॥११९॥
हाहाकारसमाक्रुष्टं दक्षिणं द्वारमीदृशम्। [5]अन्धकारसमायुक्तं तीक्ष्णशृङ्गैः समन्वितम् ॥१२०॥
कण्टकैर्वृश्चिकैः सर्पैर्वज्रकीटैः सुदुर्गमैः। विलुम्पद्भिर्वृकैर्व्याघ्रैर्ऋक्षैः सिंहैः सजम्बुकैः ॥१२१॥
श्वानमार्जारगृध्रैश्च सज्वालकवलैर्मुखैः। प्रवेशस्तेन वै नित्यं [6]सर्वेषामपकारिणाम् ॥१२२॥
ये घातयन्ति विप्रान्गा बालं वृद्धं तथाऽऽतुरम्। शरणागतं विश्वस्तं स्त्रियं मित्रं निरायुधम् ॥१२३॥
येऽगम्यागामिनो मूढाः परद्रव्यापहारिणः। निक्षेपस्यापहर्तारो विषवह्निप्रदाश्च ये ॥१२४॥
परभूमिं गृहं शय्यां वस्त्रालंकारहारिणः। पररन्ध्रेषु ये क्रूरा ये सदाऽनृतवादिनः ॥१२५॥
[7]ग्रामराष्ट्रपुरस्थाने[8] महादुःखप्रदा[9] हि ये। कूटसाक्षिप्रदादातारः [10]कन्याविक्रयकारकाः ॥१२६॥
अभक्ष्यभक्षणरता ये गच्छन्ति सुतां स्नुषाम्। मातरं[11] पितरं चैव ये[12] दहन्ति च पौरुषम् ॥१२७॥

सीढ़ियों से युक्त, तोमरों से अलङ्कृत, ढोल, मृदंग शंख तथा डमरू से शब्दित और सदा प्रसन्न रहने वाले सिद्धवृन्दों से सुसेवित है। उस द्वार से आनन्दयुक्त शिवभक्त मनुष्यों का प्रवेश होता है ॥११४-११५॥ जो समस्त तीर्थ-स्नायी हैं, जो पञ्चाग्नि के उपासक हैं, जो वीर युद्ध-यात्रा में मरते हैं जो कालञ्जर पर्वत पर मरते हैं, जो अग्नि में पड़े हुए को बचाते हैं, जो स्वामी, मित्र, गौ तथा दूसरों के लिये प्राण देते हैं वे तपस्वी तथा वीर मनुष्य पश्चिम-द्वार से जाते हैं ॥११८३॥ उस पुरी का दक्षिणद्वार महाघोर, अखिल जीवों के लिए भयंकर, हाहाकार शब्दों से व्याप्त, तिमिरावृत, तीक्ष्ण श्रृंगों से समन्वित, काँटे बिच्छू, साँप वज्र तथा कीड़ों से अतिदुर्गम मुंह फैलाये उपद्रवी भेड़िये, बाघ, रीछ, सिंह, सियार, कुत्ते, बिलाड़ तथा गीधों से युक्त है। उस द्वार से नित्य पापियों का प्रवेश होता है ॥११९-१२२॥ जो ब्राह्मण गौ, बालक वृद्ध, आतुर, शरणागत विश्वस्त, स्त्री मित्र तथा निःशस्त्र व्यक्ति को मारते हैं, जो अगम्यागामी, मूढ दूसरे के धन हरण करने वाले, धरोहर के अपहर्ता, विष तथा अग्नि डालने वाले हैं, जो दूसरे की भूमि, गृह शय्या, वस्त्र तथा आभूषणों का हरण करते हैं, जो दूसरे के छिद्रान्वेषी, सदा मिथ्या-वादी, ग्राम, राष्ट्र तथा नगरों में उपद्रव मचाने वाले, मिथ्या गवाही देने वाले, कन्या बेचने वाले तथा अभक्ष्यभक्षण

१ख ०पानमम०। २ग ०दै शङ्खकाहल्ना०। ३क ख मृता ये पतने गि०। ४ख जले। ५क ग ०कार निरालोक ती०। ६क ख ०र्वेषा पापका०। ७ख ग्रामे पुरे निवसता। म०। ८क ०रभासम०। ९क ०प्रदर्थका। कू०। १०क ग ०न्यावादे च येऽनृता। अ०। ११ग ०र दुहित०। १२ग ये गच्छन्ति स्वसामपि। अ०।

अन्ये ये चैव निर्दिष्टा महापातककारिण । दक्षिणन तु ते सर्वे द्वारण प्रविशन्ति वै ॥१२८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसवादे यमलोकस्य मार्गस्वरूपाख्याननिरूपण नाम चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२१४॥

अथ पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्याय

दक्षिणमार्गवर्णनम्

मुनय ऊचु

कथ दक्षिणमार्गेण विशन्ति पापिन पुरम। श्रोतुमिच्छाम तदब्रूहि विस्तरेण तपोधन ॥१॥

व्यास उवाच

सुघोर तन्महाघोर द्वार वक्ष्यामि भीषणम। नानाश्वापदसकीर्ण शिवाशतनिनादितम ॥२॥
फेत्काररवसयुक्तमगम्य लोमहर्षणम। भूतप्रेतपिशाचैश्च वृत चान्यैश्च राक्षसैं ॥३॥
एव दृष्ट्वा सुदूरान्त द्वार दुष्कृतकारिण । मोह गच्छन्ति सहसा[१] त्रासाद्विप्रलपन्ति च ॥४॥
ततस्ताञ्शृङ्खल पाशैर्बद्ध्वा कर्षन्ति निर्भया । ताडयन्ति च दण्डैश्च भर्त्सयन्ति पुन पुन ॥५॥

करने वाले हैं जो पुत्रा तथा पुत्रवधू से गमन करते हैं जो माता पिता को कटु वचन कहते हैं और जो महापातक कारी हैं वे निश्चय ह दक्षिण द्वार से प्रवेश करते हैं ॥१२३ १२८॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे व्यास और ऋषियों के सवाद प्रकरण मे यमलोक के मार्गस्वरूप व्याख्यान नामक दो सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१४॥

अध्याय २१५

दक्षिण मार्ग का वर्णन

मुनियों ने कहा—तपोधन ! पापी जन दक्षिण मार्ग से कैसे पुर मे प्रवेश करते हैं ? हमे यह सुनने की इच्छा है, विस्तारपूर्वक बतलाइये ॥१॥

व्यास ने कहा—मैं उस महाघोर तथा भीषण द्वार के बारे मे कहूँगा। अनेक हिंसक जानवरों से परिपूर्ण सकड़ो सियारिनों से निनादित फेत्कार शब्दों से सयुक्त अगम्य रोमाचकारी भूत प्रेत पिशाच तथा राक्षसों से आवृत दक्षिणद्वार को दूर ही से देखकर दुष्कर्मी जन सहसा घबरा जाते हैं और डर से विलाप करने लगते हैं ॥२ ४॥ तब भयरहित यमदूत साकलों तथा पाशों से उन्हें बाधकर डंडों से पीटते हैं और बार-बार गाली देते हैं ॥५॥

१क दक्षिण। २क ख ०सा दु खाद्वि०।

लब्धसंज्ञास्ततस्ते वै रुधिरेण परिप्लुताः। व्रजन्ति दक्षिणं द्वारं प्रस्खलन्तः पदे पदे ॥६॥
तीव्रकण्टकयुक्तेन शर्करानिचितेन च। क्षुरधारानिभैस्तीक्ष्णैः पाषाणैर्निचितेन च ॥७॥
क्वचित्पङ्केन निचिता निरुत्तारैश्च खातकैः। लोहसूचीनिभैर्दन्तैः संछन्नेन क्वचित्क्वचित् ॥८॥
तटप्रपातविषमैः पर्वतैर्वृक्षसंकुलैः[1]। प्रतप्ताङ्गारयुक्तेन यान्ति मार्गेण दुःखिताः ॥९॥
क्वचिद्विषमगर्ताभिः क्वचिल्लोष्टैः सुपिच्छलैः। सुतप्तवालुकाभिश्च तथा तीक्ष्णैश्च शङ्कुभिः ॥१०॥
अयःशृङ्गाटकैस्तप्तैः क्वचिद्दावाग्निना पुनः। क्वचित्तप्तशिलाभिश्च क्वचिद्व्याप्तं हिमेन च ॥११॥
क्वचिद्वालुकया व्याप्तमाकण्ठान्तःप्रवेशया। क्वचिद्दुष्टाम्बुना व्याप्तं क्वचित्कर्षाग्निना पुनः ॥१२॥
क्वचित्सिंहैर्वृकैर्व्याघ्रैर्दंशकीटैश्च दारुणैः। क्वचिन्महाजलौकाभिः क्वचिदजगरैः पुनः ॥१३॥
मक्षिकाभिश्च रौद्राभिः क्वचित्सर्पैर्विषोल्बणैः। [2]क्वचिद्दुष्टगजैश्चैव बलोन्मत्तैः [3]प्रमाथिभिः[4] ॥१४॥
पन्थानमुल्लिखद्भिश्च तीक्ष्णशृङ्गैर्महावृषैः। महाशृङ्गैश्च [5]महिषैरुष्ट्रैर्मत्तैश्च खादनैः ॥१५॥
डाकिनीभिश्च रौद्राभिर्विकरालैश्च राक्षसैः। व्याधिभिश्च महारौद्रैः पीड्यमाना व्रजन्ति ते ॥१६॥
महाधूलिविमिश्रेण महाचण्डेन वायुना। महापाषाणवर्षेण हन्यमाना निराश्रयाः ॥१७॥
क्वचिद्विद्युन्निपातेन दीर्यमाणा व्रजन्ति ते। महता बाणवर्षेण भिद्यमानाश्च सर्वशः ॥१८॥
[6]पतद्भिर्वज्रनिर्घातैरुल्कापातैः सुदारुणैः। प्रदीप्ताङ्गारवर्षेण दह्यमाना विशन्ति च ॥१९॥

चेतना आने पर वे जीव रक्त से लथपथ होकर पग-पग पर गिरते हुए दक्षिणद्वार को जाते हैं ॥६॥ तीव्र काँटों से युक्त, कंकडों से व्याप्त, अस्तुरे की धार के समान तीक्ष्ण पत्थरों से समन्वित, कहीं कीचडों से युक्त कहीं खाइयों से युक्त, कहीं-कहीं लोहे की सूई के समान दाँतों से युक्त, तट-प्रदेश में विषम पर्वतों तथा वृक्षों से संकुल और जाज्वल्यमान अंगारों से युक्त मार्ग से दुःखी होकर जीव जाते हैं ॥७-९॥ कहीं विषम गड्ढों से, कहीं फिसलने वाले पत्थरों से, तप्त बालुओं से, तीक्ष्ण खूँटियों से, लोहे की तप्त कीलों से कहीं दावाग्नियों से, कहीं तप्त शिलाओं से कहीं पाले से, कहीं कण्ठ के भीतर घुसने वाली बालुओं से, कहीं दूषित जल से कहीं अग्नि से, कहीं दारुण सिंह, भेडिये, बाघ तथा डसने वाले कीडों से, कहीं बडे-बडे जोंकों से, कहीं अजगरों से, कहीं भयंकर मक्खियों से कहीं विष वमन करने वाले सर्पों से, कहीं दुष्ट, बलोन्मत्त तथा कुचलने वाले हाथियों से, तीखे सींगों से मार्ग को उखाडने वाले साँडों से, विशाल सींग वाले महिषों से, खा जाने वाले मतवाले ऊँटों से, भयंकर डाकिनियों से विकराल राक्षसों से और महा-भयंकर व्याधियों से पीडित होते हुए जीव जाते हैं ॥१०-१६॥ बहुत धूलि मिश्रित प्रचण्ड वायु से तथा भयंकर पत्थरों की वृष्टि से आहत, निराश्रय और कहीं बिजली के गिरने से विदीर्ण होते हुए जीव जाते हैं ॥१७½॥ महान् बाणों की वृष्टि से छिन्न-भिन्न दारुण उल्कापात तथा वज्रप्रहारों से आहत और जाज्वल्यमान अंगारों की वृष्टि से दग्ध होते हुए जीव प्रवेश करते हैं ॥१८-१९॥ महान् धूलि-वृष्टि से भर कर जीव रोते हैं और भयंकर मेघ-गर्जन

१ख ०र्वृक्स०। २ग महागजेन्द्रधृष्टैश्च। ३क प्रहारिभि। ४क ०भि। आकाशमु०। ५ख ०रुन्मत्तैश्चैव सादिभि। डा०। ६क ०ज्रसंघातैर्यदाघातै।

महता पांशुवर्षेण पूर्यमाणा रुदन्ति[1] च। मेघारवैः सुघोरैश्च वित्रास्यन्ते मुहुर्मुहुः ॥२०॥
निःशेषाः शरवर्षेण चूर्ण्यमानाश्च सर्वतः। महाक्षाराम्बुधाराभिः सिच्यमाना व्रजन्ति च ॥२१॥
महाशीतेन मरुता रूक्षेण परुषेण च। समन्ताद्दीर्यमाणाश्च शुष्यन्ते संकुचन्ति च ॥२२॥
इत्थं मार्गेण पुरुषा[2] पाथेयरहितेन च। निरालम्बेन दुर्गेण निर्जलेन समन्ततः ॥२३॥
अतिश्रमेण महता [3]निर्गतेनाऽऽश्रमाय वै। नीयन्ते देहिनः सर्वे ये मूढाः पापकर्मिणः ॥२४॥
यमदूतैर्महाघोरैस्तदाज्ञाकारिभिर्बलात्। एकाकिनः पराधीना मित्रबन्धुविवर्जिताः ॥२५॥
शोचन्तः स्वानि कर्माणि रुदन्ति च मुहुर्मुहुः। प्रेतीभूता निषिद्धास्ते शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः ॥२६॥
कृशाङ्गा भीतभीताश्च दह्यमानाः क्षुधाग्निना। बद्धाः शृङ्खलया[4] [5]केचित्केचिदुत्तानपादयोः ॥२७॥
आकृष्यन्ते शुष्यमाणा यमदूतैर्बलोत्कटैः। नरा अधोमुखाश्चान्ये कृष्यमाणाः सुदुःखिताः ॥२८॥
अन्नपानीयरहिता याचमाना पुनः पुनः। देहि देहीति भाषन्तः साश्रुगद्गदया गिरा ॥२९॥
कृताञ्जलिपुटा दीनाः क्षुत्तृष्णापरिपीडिताः। भक्ष्यानुच्चावचान्दृष्ट्वा[6]भोज्यान्पेयांश्च पुष्कलान् ॥३०॥
सुगन्धद्रव्यसंयुक्तान्याचमाना पुनः पुनः। [7]दधिक्षीरघृतोन्मिश्रं दृष्ट्वा शाल्योदनं तथा ॥३१॥
पानानि च सुगन्धीनि शीतलान्युदकानि च। तान्याचमानास्ते याम्या[8] भर्त्सयन्तस्तदाऽब्रुवन् ॥
वचोभिः परुषैर्भीमाः क्रोधरक्तान्तलोचनाः ॥३२॥

से बार-बार त्रस्त होते हैं ॥२०॥ बाणों की वर्षा से निःशेषतया चूर-चूर होते हुए तथा अत्यन्त खारे जल की धाराओं से भीगते हुए जीव जाते हैं ॥२१॥ बहुत ठंडी, रूखी तथा कठोर वायु से प्राणी फट जाते हैं, सूख जाते हैं तथा सकुचित हो जाते हैं ॥२२॥ इस प्रकार पाथेयरहित, निरालम्ब, निर्जल तथा दुर्गम मार्ग से पापकर्मी मूर्ख जीव अत्यन्त कष्ट से महाभयंकर यमदूतों द्वारा बलपूर्वक यमाश्रम को ले जाये जाते हैं ॥२३-२४½॥ अकेले, पराधीन तथा मित्र-बन्धुओं से रहित जीव अपने कर्मों को सोचते हुए बार-बार रोते हैं। प्रेत होने पर जीव दूषित हो जाते हैं; उनके कण्ठ, होंठ तथा तालु सूख जाते हैं शरीर क्षीण हो जाते हैं। बलोन्मत्त यमदूत क्षुधाग्नि से दग्ध, भयों से त्रस्त, साँकलों से बद्ध तथा शुष्क जीवों को उत्तानपाद करके खींचते हैं, कितने जीवों को अधोमुख करके अत्यन्त दुःख देते हुए खींचते हैं ॥२५-२८॥ अन्न-जल से रहित जीव 'दो दो' कहते हुए अश्रुपूर्ण स्वर से बार-बार याचना करते हैं ॥२९॥ भूख प्यास से परिपीडित तथा दीन जीव प्रचुर मात्रा में सुगन्धित द्रव्य मिश्रित भोज्य तथा पेय पदार्थों को देखकर अञ्जलिबद्ध होकर बार-बार याचना करते हैं। दही, दूध, घी, चावल, भात, सुगन्धित पान पदार्थ, तथा शीतल जल—इन चीजों को देखकर जब जीव मांगते हैं तब भयंकर यमदूत आँखें लाल कर कटुवचन कहते हुए फटकारते हैं ॥३०-३२॥

---

१ क विंशन्ति। २ग दुर्गेण। ३ख ०र्गता ये यमालयम्। नी०। ४ ०लर्के के०। ५क ०चिदुत्ताना पादचारिण। आ०। ६ख भोज्यरसांश्च पु०। ७क ख ०धिखण्डघृ०। ८ख ०म्या निषेधन्त०।

याम्या ऊचुः

न भवद्भिर्हुतं काले न दत्तं ब्राह्मणेषु च। प्रसभं दीयमानं च वारितं च द्विजातिषु ॥३३॥
तस्य पापस्य च फलं भवतां समुपागतम्। नाग्नौ दग्धं जले नष्टं न हृतं नृपतस्करैः ॥३४॥
कुतो वा सांप्रतं विप्रे[1] यन्न दत्तं पुराऽधमाः। यैर्दत्तानि तु दानानि साधुभिः सात्त्विकानि तु ॥३५॥
तेषामेते प्रदृश्यन्ते कल्पिता ह्यन्नपर्वताः। भक्ष्यभोज्याश्च पेयाश्च लेह्याश्चोष्याश्च संवृताः ॥३६॥
न यूयमभिलष्यध्वे न दत्तं च कथंचन। यैस्तु दत्तं हुतं चेष्टं ब्राह्मणाश्चैव पूजिताः ॥३७॥
तेषामन्नं[2] समानीय इह निक्षिप्यते सदा। परस्वं कथमस्माभिर्दातुं शक्यते नारकाः ॥३८॥

व्यास उवाच

किंकराणां वचः श्रुत्वा निःस्पृहाः क्षुत्तृषार्दिताः। ततस्ते दारुणैश्चास्त्रैः पीड्यन्ते यमकिंकरैः ॥३९॥
मुद्गरैर्लोहदण्डैश्च शक्तितोमरपट्टिशैः। परिघैर्भिन्दिपालैश्च गदापरशुभिः शरैः ॥४०॥
पृष्ठतो हन्यमानाश्च यमदूतैः सुनिर्दयैः। अग्रतः सिंहव्याघ्राद्यैर्भक्ष्यन्ते पापकारिणः ॥४१॥
न प्रवेष्टुं न निर्गन्तुं लभन्ते दुःखिता भृशम्। स्वकर्मोपहताः पापाः क्रन्दमानाः सुदारुणाः ॥४२॥
तत्र संपीड्य सुभृशं प्रवेशं यमकिंकरैः। नीयन्ते पापिनस्तत्र यत्र तिष्ठेत्स्वयं यमः ॥४३॥
धर्मात्मा धर्मकृद्देवः सर्वसंयमनो यमः। एवं यथाऽतिकष्टेन प्राप्ताः प्रेतपुरं नराः ॥४४॥

यमकिंकर बोले—समय पर न तुमने हवन किया न ब्राह्मणो को दान दिया, प्रत्युत विप्रों को दिये जाने वाले दान को तुमने हठात् रोक दिया। उसी पाप का फल तुम्हें मिला है। नीचो! तुम्हारा धन अग्नि मे नही जला था, जल मे नष्ट नहीं हुआ था और राजा तथा चोरो ने भी नहीं लिया था, फिर भी तुमने ब्राह्मणो को नहीं दिया। इसलिए अभी कहाँ से मिलेगा? जिन साधुओं ने सात्त्विक दान दिये थे, उनके लिये ये अन्नपर्वत, भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य (चाटने योग्य) तथा चोष्य (चूसने योग्य) पदार्थ तैयार हैं। तुमने कभी दान नही किया। इसलिये पाने की इच्छा मत करो। जिन्होंने दान दिया, हवन किया, यज्ञ किया तथा ब्राह्मणों की पूजा की, उनके लिए अन्न लाकर यहाँ रखा जाता है। नरक मे जाने वालो! हम दूसरे का धन तुम्हे कैसे देंगे? ॥३३-३८॥

व्यास ने कहा—यमदूतों के वचन सुनकर जीव भूख-प्यास से व्याकुल तथा इच्छारहित हो जाते हैं। तब यमकिंकर दारुण अस्त्रों से उन्हें कष्ट देते हैं॥३९॥ मुगरे, लोहे के डंडे, शक्ति, तोमर, पट्टिश, परिघ, भिन्दिपाल, गदा, फरसे, तथा बाणों से निर्दय यमदूत जीवों को पीछे से मारते हैं॥४०½॥ पापकारी जीवों को अग्रभाग से सिंह, बाघ आदि खाते हैं। अभागे दुःखी अतिभयंकर तथा पापी जीव न प्रवेश कर पाते हैं न निकल ही पाते हैं। वहाँ यमदूत पापियों को अत्यन्त कष्ट देकर वहाँ ले जाते है, जहाँ धर्मात्मा, धर्मकर्ता तथा सर्वनियामक यम स्वयं रहते हैं। इस प्रकार अति कष्टदायक मार्ग से मनुष्य प्रेतपुर जाते हैं॥४१-४४॥

१ग ०ले सांप्रत प्रतिमोऽस्यथ। ना०। २ख विप्रा।

प्रज्ञापितास्तदा दूर्तैनिवेश्यन्ते यमाग्रत । ततस्ते पापकर्माणस्त पश्यन्ति भयानकम्'॥४५॥
पापाविद्धनयना' विपरीतात्मबुद्धय । दष्ट्राकरालवदन भ्रुकुटीकुटिलेक्षणम्॥४६॥
ऊर्ध्वकेश महाश्मश्रु प्रस्फुरदधरोत्तरम्। अष्टादशभुज क्रुद्ध नीलाञ्जनचयोपमम्॥४७॥
सर्वायुधोद्यतकर तीव्रदण्डेन सयुतम्। महामहिषमारूढ दीप्ताग्निसमलोचनम्॥४८॥
रक्तमाल्याम्बरधर महामेघमिवोच्छ्रितम। प्रलयाम्बुदनिर्घोष पिबन्निव महोदधिम्॥४९॥
ग्रसन्तमिव त्रलोक्यमुदगिरन्तमिवानलम। मृत्यु च तत्समीपस्थ कालानलसमप्रभम्॥५०॥
प्रलयानलसकाश कृतात च भयानकम। मारीचोग्रा महामारी कालरात्री च दारुणा॥५१॥
विविधा व्याधय कष्टा नानारूपा भयावहा। शक्तिशूलाङ्कुशधरा पाशचक्रासिधारिण॥५२॥
वज्रदण्डधरा रौद्रा क्षुरतूणधनुर्धरा। असख्याता महावीर्या क्रूराश्चाञ्जनसप्रभा॥५३॥
सर्वायुधोद्यतकरा यमदूता भयानका। अनेन परिवारेण महाघोरेण सवृतम्॥५४॥
यम पश्यन्ति पापिष्ठाश्चित्रगुप्त विभीषणम्। निभर्त्सयति चात्यर्थं यमस्तान्पापकारिण॥५५॥
चित्रगुप्तस्तु भगवान्धर्मवाक्यै प्रबोधयन् ॥५६॥

चित्रगुप्त उवाच

भो भो दुष्कृतकर्माण परद्रव्यापहारिण। गर्विता रूपवीर्येण परदारविमर्दका॥५७॥
यत्स्वय क्रियते कर्म तत्स्वय भुज्यते पुन। 'तत्किमात्मोपघातार्थं भवद्भिर्दुष्कृत कृतम्॥५८॥

तब यमदूत उन्हे यम क सामने उपस्थित करते हैं। पापा स अ ध आ मा क विपर त प्रकार से समझने वाले पापकर्मी ज ० भयानक दष्ट्राओ से विकराल मुख वाले भौ टेढ करक देखन वाले ऊपर उठ केश वाले लम्ब दाढ मछ वाले फडकते होठ वाले अठारह भजा वाले क्रुद्ध न ल अञ्जन का राशि के तुल्य समस्त अस्त्र-शस्त्रो से सुसज्जित हस्त वाले त व्र दण्डधार विशाल महिष पर आरूढ प्रज्वालत अग्नि के समान नत्र वाले लाल माला तथा वस्त्र धारण किये हुए महामेघ के समान उच्च और प्रलयकाल न बादल के समान शब्द करने वाले यम क देखते है। यम देखने मे एसा लगता ह मान। समद्र क। प रहा ह और अग्नि क। उगल रहा हा॥४५ ४९॥ उनके समप वालाग्नि के समान का ति-वाल तथा प्रलयाग्नि तुल्य महाभयानक मृ यु रहत ह मार चा उग्र महामार काल्रात्र दारुणा तथा विविध प्रकार क। व्याधिया रहता हैं। नानारूपधारी भयानक शक्ति शूल अकुश पाश चक्र तलवार वज्र दण्ड छुरे तरकस तथा धनुष धारण करने वाले अञ्जन के समान कान्ति वाले महापराक्रमा तथा समस्त अस्त्र शस्त्रो से सुसज्जित हस्त वाले यमदूत रहते हैं। एसे महाभयानक परिवार से युक्त यमराज तथा म षण चित्रगुप्त को पापी लोग देखते हैं। उन पापियो को यमराज बहुत फटकारते है और भगवान चित्रगुप्त धमवाक्यो से समझाते हैं॥५० ५६॥

चित्रगुप्त ने कहा—दुष्कर्मियो! दूसरे का धन हरण करने वालो! रूप तथा शक्ति का अभिमान करने वालो! दूसरे का स्त्री का सतात्व लूटने वालो! जा जैसा कर्म करता है वह वैसा फल मागता है। तुम लोगा ने

१ख भयकरम्। २क ०पातिवद्धहृदया वि०। ३ग ०पकारार्थं।

इदानीं किं नु शोचध्वं पीडयमानाः स्वकर्मभिः। भुञ्जध्वं स्वानि दुःखानि न हि दोषोऽस्ति कस्यचित् ॥५९॥
य एते पृथिवीपालाः संप्राप्ता मत्समीपतः। स्वकीयैः कर्मभिर्घोरैर्दुष्प्रज्ञा बलगर्विताः ॥६०॥
भो भो नृपा दुराचाराः प्रजाविध्वंसकारिण। अल्पकालस्य राज्यस्य कृते किं दुष्कृतं कृतम् ॥६१॥
राज्यलोभेन मोहेन बलादन्यायतः प्रजाः। [1]यद्दण्डिताः फलं तस्य भुञ्जध्वमधुना नृपाः ॥६२॥
कुतो राज्यं कलत्रं च यदर्थमशुभं कृतम्। तत्सर्वं संपरित्यज्य यूयमेकाकिनः स्थिताः ॥६३॥
[2]पश्यामो न बलं सर्वं येन विध्वंसिताः प्रजाः। यमदूतैः पाट्यमाना अधुना कीदृशं फलम् ॥६४॥

व्यास उवाच

एवं बहुविधैर्वाक्यैरुपालब्धा यमेन ते। शोचन्तः स्वानि कर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति पार्थिवा ॥६५॥
इति कर्म समादिश्य नृपाणां [3]धर्मराट्स्वयम्। तत्पातकविशुद्ध्यर्थमिदं वचनमब्रवीत् ॥६६॥

यम उवाच

भो भोश्चण्ड महाचण्ड गृहीत्वा नृपतीनिमान्। विशोधयध्वं पापेभ्यः क्रमेण नरकाग्निषु ॥६७॥

व्यास उवाच

ततः शीघ्रं समुत्थाय नृपान्संगृह्य पादयोः। भ्रामयित्वा तु वेगेन क्षिप्त्वा चोर्ध्वं प्रगृह्य च[4] ॥६८॥

आत्महनन के लिये क्यों दुष्कर्म किया? अब तुम अपने कर्मों से पीडित होकर क्या सोच रहे हो? अपने दुःखों को भोगो, इसमें किसी का दोष नहीं है। जो ये मूर्ख बलाभिमानी राजा लोग मेरे पास आये हैं, ये अपने भयंकर कर्मों के कारण आये हैं। प्रजा का नाश करने वाले दुराचारी राजाओ! थोड़े समय के लिये राज्य पाकर क्यों तुमने दुष्कर्म किया? राज्यलाभ से तथा मोह से जो तुमने अन्याय किया तथा बलपूर्वक प्रजा को दण्ड दिया, उसका फल अभी भोगो। जिसके लिये तुमने पाप किया, वह राज्य तथा स्त्री कहाँ है? क्यों उन सब का परित्याग कर तुम अकेले यहाँ हो? हम तुम्हारे उस बल को नहीं देख रहे हैं, जिससे तुमने प्रजा का विध्वंस किया था। यमदूतों से पीटे जाने पर अब तुम्हें कैसा फल मिल रहा है? ॥५७-६४॥

व्यास ने कहा—इस प्रकार यम द्वारा अनेक वाक्यों में उलाहना सुनकर राजा लोग अपने कर्मों को सोचते हुए चुप रहते हैं। स्वयं धर्मराज, राजाओं के लिये कर्मों का आदेश देकर उनके पापों की शुद्धि के लिये ये वचन कहते हैं ॥६५-६६॥

यम कहते हैं—चण्ड! महाचण्ड! इन राजाओं को पकड़ कर क्रमशः नरकाग्नियों में डालकर पापों का प्रायश्चित्त कराओ ॥६७॥

व्यास ने कहा—तदनन्तर यमदूत शीघ्र उठकर राजाओं के दोनों पैरों को पकड़कर वेग से घुमाने लगते हैं और ऊपर फेंक कर फिर पकड़ लेते हैं। पश्चात् शिला-खण्ड पर इस प्रकार पटकते हैं मानो वज्र से आहत महावृक्ष

१ख. मत्पीडिता। २क पश्यत। ३क ख ०म्। सर्वपापवि०। ४क ग च। सर्वपापेन महता सुप्रतप्ते शि०।

ततत्पापप्रमाणेन यमदूता - शिलातले। 'आस्फोटयन्ति तरसा वज्रेणेव महाद्रुमम् ॥६९॥
ततस्तु रक्त स्रोतोभि स्रवते जर्जरीकृत । नि सज्ञ ' स तदा देही निश्चेष्टश्च प्रजायते ॥७०॥
तत स वायुना स्पृष्ट शनैरुज्जीवते पुन । तत पापविशुद्धयर्थ क्षिपन्ति नरकार्णवे ॥७१॥
अन्याश्च ते तदा दूता पापकर्मरतान्नरान्। निवेदयन्ति विप्रेन्द्रा यमाय भृशदु खितान् ॥७२॥

यमदूता ऊचु:

एप देव तवाऽऽदेशादस्माभिर्मोहितो भृशम्। आनीतो धर्मविमुख सदा पापरत पर ॥७३॥
एप लुब्धो दुराचारो महापातकसयुत । उपपातककर्ता च सदा हिंसारत ' शुचि ॥७४॥
'अगम्यागामी दुष्टात्मा परद्रव्यापहारक । कन्याक्रयी कूटसाक्षी कृतघ्नो मित्रवञ्चक ॥७५॥
अनेन मदमत्तेन सदा धर्मो विनिन्दित '। पापमाचरित वर्म मर्त्यलोके दुरात्मना ॥७६॥
'इदानीमस्य देवेश निग्रहानुग्रहौ वद'। प्रभुरस्य क्रियायोगे वय वा परिपन्थिन ॥७७॥

व्यास उवाच

इति विज्ञाप्य देवेश न्यस्याग्रे पापकारिणम। नरकाणा सहस्रेपु' लक्षकोटिशतेपु'' च ॥७८॥
किंकरास्ते ततो यान्ति'' ग्रहीतुमपरान्नरान्। प्रतिपन्ने कृते दोषे यमो वै पापकरिणाम् ॥७९॥
समादिशति तान्घोरान्निग्रहाय स्वकिंकरान्। यथा यस्य विनिर्दिष्टो वसिष्ठाद्यैर्विनिग्रह ॥८०॥

गिरा हो। उनका शरीर जजर हो जाता है रक्त क धारायें फूट निकलती हैं। वे सज्ञाहीन तथा निश्चेष्ट हो जाते हैं। वायु का स्पश होने से पुन प्राण सचार होता है। तब पाप-शुद्धि कराने के लिये यमदूत उन्हें नरक समुद्र मे फेंक देते हैं। विप्रवर ! तब तब अन्य दूत दूसरे अत्यन्त दु खी तथा पापकर्मों म निरत मनुष्यो को यम राज के सामने उपस्थित कर निवेदन करते हैं ॥६८ ७२॥

यमदूत कहते हैं—देव ! आपकी आज्ञा से मैं अत्यन्त मोहित धमविमुख तथा सदा पापा मे रत इस मनुष्य को ले आया हूँ। यह लोभ दुराचारी महापापि उपपापि सदा हिंसा मे निरत अपवित्र अगम्यागामी दुष्टात्मा दूसरे का धनहर्ता तथा निन्दक है। इस दुरात्मा ने मर्त्यलोक म पापाचरण किया है। देवेश ! अब इस पर आप जा दण्ड या कृपा करें वह बतलाइये। इसके अध्यक्ष आप हैं हम तो केवल आज्ञाकारी हैं ॥७३ ७७॥

व्यास ने कहा—यमराज से इतना निवेदन कर यमदूत उनके सामने पापी का छोड देते हैं और सैंकडो हजारो लाखो और करोडो नरको से दूसरे मनुष्यो को पकडने के लिये चल पडते हैं ॥७८॥ पापियो के दोप प्रमाणित हो जाने पर धर्मराज उन्हे पकडने के लिये अपने भयकर अनुचरों को आज्ञा देते हैं। वसिष्ठ आदि मुनियो ने

१क आस्कालयन्ति। ख आपीयन्ति। २ग नि सङग। ३ख ०सापरो‌ऽनु०। ४क ग ०गम्यगा०। ५क ग कन्यानृती। ६ख विनाशित। ७क ख ०दानी तस्य। ८ख ग तव। ९क ०स्रण ल०। १०क ०तेन च। ११क ०न्ति गृहीत्वा चाप०।

पापस्य[1] तद्भ् (तं भ्) शं क्रुद्धाः कुर्वन्ति यमकिंकराः। अङ्कुशैर्मुद्गरैर्दण्डैः क्रकचैः शक्तितोमरैः ॥८१॥
खड्गशूलनिपातैश्च भिद्यन्ते पापकारिणः। नरकाणां सहस्रेषु लक्षकोटिशतेषु च ॥८२॥
स्वकर्मोपार्जितैर्दोषैः पीड्यन्ते यमकिंकरैः। शृणुध्वं नरकाणां च स्वरूपं च भयंकरम् ॥८३॥
नामानि च प्रमाणं च येन यान्ति नराश्च तान्। महावाचीति विख्यातं नरकं शोणितप्लुतम्[2] ॥८४॥
वज्रकण्टकसंमिश्रं योजनायुतविस्तृतम्। तत्र संपीड्यते मग्नो भिद्यते वज्रकण्टकैः[3] ॥८५॥
वर्षलक्षं महाघोरं गोघाती नरके नरः। योजनानां शतं लक्षं कुम्भीपाकं सुदारुणम् ॥८६॥
ताम्रकुम्भवती दीप्ता वालुकाङ्गारसंवृता। ब्रह्महा [6]भूमिहर्ता च निक्षेपस्यापहारकः ॥८७॥
दहयन्ते तत्र संक्षिप्ता यावदाभूतसंप्लवम्। रौरवो वज्रनाराचैः प्रज्वलद्भिः समावृतः ॥८८॥
योजनानां सहस्राणि षष्टिरायामविस्तरैः। भिद्यन्ते तत्र नाराचैः सज्वालैर्नरके नराः ॥८९॥
इक्षुवत्तत्र पीड्यन्ते ये नराः कूटसाक्षिणः[4]। अयोमयं प्रज्वलितं मञ्जूषं नरकं स्मृतम्[5] ॥९०॥
निक्षिप्तास्तत्र दह्यन्ते वन्दिग्राहकृताश्च ये। अप्रतिष्ठेति नरकं पूयमूत्रपुरीषकम् ॥९१॥
अधोमुखः पतेत्तत्र ब्राह्मणस्योपपीडकः। लाक्षाप्रज्वलितं घोरं नरकं तु विलेपकम् ॥९२॥

जिस पाप का जो दण्ड बतलाया है, क्रुद्ध यमदूत वही दण्ड देते हैं। अंकुश, मुगरे, डंडे, आरे, शक्ति, तोमर, तल्वार तथा शूल—इनके प्रहारो से पापी लोग सताये जाते हैं। सैंकडो, हजारो, लाखो और करोडो नरको मे अपने-कर्म जन्य दोषो से जीव यमदूतो द्वारा पीडित किये जाते हैं ॥७८-८२½॥ नरको के भयंकर स्वरूप, नाम तथा प्रमाण सुनिये, जिससे मनुष्य वहाँ जाते हैं। महावाची नाम से विख्यात नरक शोणित से परिपूर्ण, वज्र तुल्य काँटो से मिश्रित एवम् दश हजार योजन विस्तृत है। उसमे डूब कर जीव काँटो से छिन्न भिन्न होकर व्यथित होता है ॥८३-८५॥ कुम्भीपाक नामक नरक अत्यन्त दारुण तथा सौ लाख योजन विस्तृत है। गोहत्या करने वाला मनुष्य उस नरक मे एक लाख वर्षों तक कष्ट भोगता है ॥८६॥ ताम्रकुम्भवती नामक नरक संतप्त बालुआ से प्रपूर्ण है। ब्रह्महत्या करने वाला, भूमिहरण करने वाला तथा धरोहर का अपहरण करने वाला मनुष्य उसी नरक में कल्पान्त तक दग्ध होता है। रौरव नामक नरक जलते हुए लोहे के बाणो से आवृत है ॥८७-८८॥ वह साठ हजार योजन लम्बा-चौड़ा है। उस नरक मे ज्वलित लोहे के बाणो से मनुष्यों को वेध किया जाता है। जो मनुष्य मिथ्या गवाही देते हैं, वे उसी नरक में गन्ने की तरह पेडे जाते हैं ॥८९½॥ मञ्जूष नामक नरक प्रज्वलित लोहमय है। निरपराध व्यक्ति को बन्दी बनाने वाले मनुष्य उसी नरक मे पडकर दग्ध होते हैं। अप्रतिष्ठ नामक नरक पीप मूत्र तथा विष्ठा से भरा है। ब्राह्मण को पीडा देने वाले मनुष्य उसी नरक मे नीचे मुह करके गिरते हैं ॥९०-९१½॥ विलेपक नामक नरक भयंकर तथा प्रज्वलित लाहो से प्रपूर्ण है। द्विजश्रेष्ठो! मद्यपान म निरत मनुष्य उस नरक में दग्ध होते हैं ॥९२½॥ महाप्रभ नामक नरक प्रदीप्त शूलो से युक्त तथा बहुत ऊँचा है। पति-पत्नी मे भेद करान

---

१ ग. ०स्य सशय भृ०। २ क० लप्रपा०। ३ के० तप्लवम्। क०। ४ क ० ष्टकं ५ ख स्मृत। ६क. ०मिहारो च।

निमग्नास्तत्र दह्यन्ते मद्यपाने द्विजोत्तमाः। महाप्रभेति नरकं दीप्तशूलमहोच्छ्रयम् ॥९३॥
तत्र शूलेन भिद्यन्ते पतिभार्योपभेदिनः। नरकं च महाघोरं जयन्ती चाऽऽयसी शिला ॥९४॥
तया चाऽऽदम्यते पापः परदारोपसेवकः। नरकं शाल्मलाख्यं तु प्रदीप्तदृढकण्टकम् ॥९५॥
तया (दा) लिङ्गति दुःखार्ता नारी बहुनरंगमा। ये वदन्ति सदाऽसत्यं परमर्मावकर्तनम् ॥९६॥
जिह्वा चोच्छिद्य (च्छिद्य) ते तेषां सदस्यैर्यमकिंकरैः। ये तु रागैः कटाक्षैश्च वीक्षन्ते परयोषितम् ॥९७॥
तेषां चक्षूंषि नाराचैर्विध्यन्ते यमकिंकरैः। मातरं येऽपि गच्छन्ति भगिनीं दुहितरं स्नुषाम् ॥९८॥
स्त्रीबालवृद्धहन्तारो यावदिन्द्राश्चतुर्दश। ज्वालामालाकुलं रौद्रं महारौरवसंज्ञितम् ॥९९॥
नरकं योजनानां च सहस्राणि चतुर्दश। पुरं क्षेत्रं गृहं ग्रामं यो दीपयति वह्निना ॥१००॥
स तत्र दह्यते मूढो यावत्कल्पस्थितिर्नरः। तामिस्रमिति विख्यातं लक्षयोजनविस्तृतम् ॥१०१॥
निपतद्भिः सदा रौद्रैः खड्गपट्टिशमुद्गरैः। तत्र चौरा नराः क्षिप्तास्ताड्यन्ते यमकिंकरैः ॥१०२॥
शूलशक्तिगदाखड्गैर्यावत्कल्पशतत्रयम्। तामिस्राद्द्विगुणं प्रोक्तं महातामिस्रसंज्ञितम् ॥१०३॥
जलौकासर्पसंपूर्णं निरालोकं सुदुःखदम्। मातृहा पितृहा चैव मित्रविस्रम्भघातकः ॥१०४॥
तिष्ठन्ति तक्ष्यमाणाश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी। असिपत्रवनं नाम नरकं भूरिदुःखदम् ॥१०५॥
योजनायुतविस्तारं ज्वलत्खड्गैः समाकुलम्। पातितस्तत्र तैः खड्गैः शतधा तु समाहतः ॥१०६॥

वाले मनुष्य वहाँ शूलों से विद्ध होते हैं। जयन्ती नामक महाभयंकर नरक लोहमिश्रित पत्थर का है ॥९३-९४॥ दूसरे की स्त्री से सम्भोग करने वाले पापी मनुष्य उसी नरक में पड़ते हैं। शाल्मल नामक नरक जलते हुए दृढ कटकों से युक्त है। बहुत पुरुषों के साथ उपभोग करने वाली नारी उस नरक में पड़ती है। जो मनुष्य दूसरे के मर्मों को कतरने वाले वचन बोलते हैं, उनकी जीभ को यमदूत काट देते हैं। जो अनुराग भरी चितवन से दूसरे की स्त्री को देखते हैं, उनकी आँखों को यमकिंकर लोहे के बाणों से फाड़ डालते हैं ॥९५-९७½॥ जो मनुष्य माता, बहिन, पुत्री तथा पुत्र-वधू से समागम करते हैं और जो स्त्री, बालक तथा वृद्ध की हत्या करते हैं, वे चौदह इन्द्र जब तक रहते हैं तब तक, ज्वालाओं के समूह से व्याप्त, चौदह हजार योजन विस्तृत तथा भयंकर महारौरव नामक नरक में पड़ते हैं। नगर, क्षेत्र घर तथा ग्राम में जो आग लगाता है, वह मूर्ख उस नरक में कल्पान्त तक दग्ध होता रहता है। तामिस्र नामक नरक एक लाख योजन विस्तृत है जहाँ तलवार पट्टिश (पटा) तथा मुद्गरों का सदा प्रहार होता रहता है। चोर मनुष्य वहाँ फेंके जाते हैं और यमदूतों द्वारा पीडित होते है ॥९८-१०२॥ तीन सौ कल्पों तक उनके ऊपर शूल, शक्ति, गदा तथा तलवारों का प्रहार होता रहता है। महातामिश्र नामक नरक तामिस्र से दूना है, जो जोंक तथा सांपों से परिपूर्ण, प्रकाशरहित तथा अत्यन्त दुःखदायी है ॥१०३½॥ मातृहत्या करने वाले, पितृहत्या करने वाले तथा मित्र के साथ विश्वासघात करने वाले मनुष्य उस नरक में छीले जाते हुए तब तक रहते हैं जब तक पृथ्वी रहती है ॥१०४½॥ अति दुःखदायी असिपत्रवन नामक नरक दश हजार योजन विस्तृत तथा जलते हुए तलवारों से प्रपूर्ण है। मित्रहत्या करने वाला मनुष्य उस नरक में तलवारों से सैकड़ों जगह आहत होते हुए कल्पान्त तक

१ग. ०लाघूमाकु०। २ग. त्र सप्तति। पु०। ३ग. ०न्ते वाऽऽयुधैर्मुंशम्। शू०। ४ग. ०न्ति मक्ष्य०।

मित्रघ्नः क्रियते तावद्यावदाभूतसंप्लवम् । करम्भवालुका नाम नरकं योजनायुतम् ॥१०७॥
कूपाकारं वृतं दीप्तैर्वालुकाङ्गारकण्टकैः । 'दह्यते भिद्यते वर्षलक्षायुतशतत्रयम्' ॥१०८॥
यैन दग्धो जनो नित्यं मिथ्योपायैः सुदारुणैः । काकोलं नाम नरकं कृमिपूयपरिप्लुतम्' ॥१०९॥
क्षिप्यते तत्र दुष्टात्मा एकाकी मिष्टभुङ्नरः । कुड्मलं नाम नरकं पूर्णं विण्मूत्रशोणितैः ॥११०॥
पञ्चयज्ञक्रियाहीना क्षिप्यन्ते तत्र वै नराः । सुदुर्गन्धं महाभीमं मांसशोणितसंकुलम्' ॥१११॥
'अभक्ष्यान्ने रतास्तत्र निपतन्ति नराधमाः । कृमिकीटसमाकीर्णं शवपूर्णं महावटम् ॥११२॥
अधोमुखाः पतन्तेन कन्याविक्रयकृन्नरः । नाम्ना वै तिलपाकेति नरकं दारुणं स्मृतम् ॥११३॥
तिलवत्तत्र पीड्यन्ते परपीडारतास्च ये । नरकं तैलपाकेति ज्वलत्तैलमहोल्वणम् ॥११४॥
पच्यते तत्र मित्रघ्नो हन्ता च शरणागतम् । नाम्ना वज्रकपाटेति वज्रशृङ्खलयाऽन्वितम् ॥११५॥
पीड्यन्ते निर्दयं तत्र ये कृतं क्षीरविक्रयम् । निरुच्छ्वासमिति प्रोक्तं तमोऽन्धं वातवर्जितम् ॥११६॥
निष्पटं क्षिप्यते तत्र विप्रदाननिरोधकृत् । अङ्गारोपचयं नाम दीप्ताङ्गारसमुज्ज्वलम् ॥११७॥
दह्यते तत्र यनोक्तं दानं विप्राय नार्पितम् । 'महापायीति नरकं लक्षयोजनमायतम्' ॥११८॥

रहता है ॥१०५-१०६½॥ करम्भवालुका नामक नरक दस हजार योजन विस्तृत प्रज्वलित बालू रूपी अंगार तथा कण्टकों से व्याप्त और कुएँ के आकार का है। जो भयंकर मिथ्या प्रपञ्च करके नित्य लोगों को जलाते हैं वे एक लाख दस हजार तीन सौ वर्षों तक उस नरक में जलाये जाते हैं तथा काटे जाते हैं ॥१०७-१०८½॥ काकोल नामक नरक कीड़े तथा पीब से आप्लुत है। अकेले मीठा खाने वाला दुष्टात्मा मनुष्य वहाँ फेंका जाता है ॥१०९½॥ *कुड्मल नामक नरक विष्ठा मूत्र तथा शोणित से परिपूर्ण है। पञ्चयज्ञक्रिया से हीन मनुष्य उस नरक में फेंके जाते* हैं ॥११०½॥ एक नरक अत्यन्त दुर्गन्ध महाभयंकर तथा मांस-शोणित से प्रपूर्ण है। अभक्ष्य अन्न खाने में निरत मनुष्य उस नरक में गिरते हैं ॥१११½॥ महावट नामक नरक कीड़े फतिंगे तथा शवों से आक्रान्त है। कन्या बेचने वाले मनुष्य अधोमुख होकर उस नरक में गिरते हैं ॥११२½॥ तिलपाक नामक नरक भयंकर है। दूसरे को उत्पीड़न करने वाले मनुष्य वहाँ तिल की तरह पेरे जाते हैं ॥११३½॥ तैलपाक नामक नरक जलते हुए तेल से प्रपूर्ण है। मित्रहत्या करने वाले तथा शरणागत को मारने वाले मनुष्य वहाँ पकाये जाते हैं ॥११४½॥ वज्रकपाट नामक नरक वज्र की तरह दृढ सांकलों से युक्त है। दूध विक्रेता मनुष्य वहाँ निर्दयतापूर्वक पीडित किये जाते हैं ॥११५½॥ *निरुच्छ्वास नामक नरक अन्धकारावृत तथा वायुरहित है। ब्राह्मणों को दान रोकने वाला मनुष्य वहाँ निःसन्देह करके* फेंके जाते हैं ॥११६॥ अंगारपचय नामक नरक जाज्वल्यमान अंगारों से पूर्ण है। जो ब्राह्मणों को कह कर दान नहीं देता है वह वहाँ दग्ध किया जाता है ॥११७½॥ महापायी नामक नरक एक लाख योजन लम्बा है। जो मनुष्य सदा मिथ्या भाषण करते हैं वे अधोमुख करके वहाँ गिराये जाते हैं ॥११८½॥ महाज्वाल नामक नरक

१क ०त तत्र वर्षायुतत्रयं पुनः । ये० । २ख ०तत्रयं पुनः । य० । ३क ०मित्रीटप० । ४क ख ०त-दमम । ५क ख ०मभ्यनिर० । ६ख ०पानीनि । ग ०पानेनि । ७क ०म् । यान्ति तेऽधा० ।

[1]पात्यन्तेऽधोमुखास्तत्र ये जल्पन्ति सदाऽनृतम्। महाज्वालेति नरकं ज्वालाभास्वरभीषणम् ॥११९॥
दह्यते तत्र सुचिरं यः पापे बुद्धिकृन्नरः। नरकं क्रकचाख्यातं पीड्यन्ते तत्र वै नराः ॥१२०॥
क्रकचैर्वज्रधारोग्रैरगम्यागमने रताः। नरकं गुडपाकेति ज्वलद्गुडह्रदैर्वृतम् ॥१२१॥
निक्षिप्तो दह्यते तस्मिन्वर्णसंकरकृन्नरः। क्षुरधारेति नरकं तीक्ष्णक्षुरसमावृतम्[2] ॥१२२॥
छिद्यन्ते तत्र कल्पान्तं विप्रभूमिहरा नराः। नरकं [3]चाम्बरीषाख्यं प्रलयानलदीपितम् ॥१२३॥
कल्पकोटिशतं तत्र दह्यते स्वर्णहारकः। नाम्ना वज्रकुठारेति नरकं वज्रसंकुलम् ॥१२४॥
छिद्यन्ते तत्र छेत्तारो द्रुमाणां पापकारिणः। नरकं[4] परितापाख्यं प्रलयानलदीपितम् ॥१२५॥
गरदो मधुहर्ता च पच्यते तत्र पापकृत्। नरकं कालसूत्रं च वज्रसूत्रविनिर्मितम् ॥१२६॥
भ्रमन्तस्तत्र च्छिद्यन्ते [5]परसस्योपलुण्ठकाः। नरकं कश्मलं नाम श्लेष्मशिङ्घाणकावृतम् ॥१२७॥
तत्र संक्षिप्यते [6]कल्पं सदा मांसरुचिर्नरः। नरकं चोग्रगन्धेति लालामूत्रपुरीषवत् ॥१२८॥
क्षिप्यन्ते तत्र नरके पितृपिण्डाप्रयच्छकाः। नरकं दुर्धरं नाम जलौकावृश्चिकाकुलम् ॥१२९॥
[7]उत्कोचभक्षकस्तत्र तिष्ठते वर्षकायुतम्। यच्च वज्रमहापीडा नरकं वज्रनिर्मितम् ॥१३०॥
तत्र प्रक्षिप्य दह्यन्ते पीड्यन्ते यमकिंकरैः। धनं धान्यं हिरण्यं वा परकीयं हरन्ति ये ॥१३१॥

भीषण ज्वालाओ से व्याप्त है। जो मनुष्य पाप में बुद्धि लगाते हैं, वे वहाँ चिरकाल तक जलाये जाते हैं ॥११९½॥ क्रकच नामक नरक म अगम्यागमन करने वाले मनुष्य वज्र के समान उग्र धार वाले आरे से चीरे जाते हैं। ॥१२०½॥ गुडपाक नामक नरक जलते हुए गुडों की झीलों से युक्त है। वर्णसंकर उत्पन्न करने वाले मनुष्य वहाँ दग्ध किये जाते हैं ॥१२१½॥ क्षुरधार नामक नरक तीखे अस्तुरों से आवृत है। ब्राह्मण की भूमि हरण करने वाले मनुष्य वहाँ कल्पान्त तक काटे जाते हैं ॥१२२½॥ अम्बरीष नामक नरक प्रलयाग्नि के समान प्रज्वलित है। सोना चुराने वाले मनुष्य वहाँ करोडा कल्पो तक जलाये जाते हैं ॥१२३½॥ वज्रकुठार नामक नरक वज्रो से व्याप्त है। वृक्षों के काटने वाले पापी मनुष्य वहाँ काटे जाते हैं। ॥१२४½॥ परिताप नामक नरक प्रलयाग्नि के समान प्रदीप्त है। विष देने वाले तथा मधु हरण करने वाले पापी मनुष्य वहाँ पकाये जाते हैं ॥१२५½॥ कालसूत्र नामक नरक वज्र तुल्य सूत्रो से निर्मित है। दूसरे की फसलो को लूटने वाले मनुष्य वहाँ भ्रमण करते हुए काटे जाते हैं ॥१२६½॥ कश्मल नामक नरक कफ तथा नासिकामल (नकटी) से आवृत है। सदा मास की अभिलाषा रखने वाला मनुष्य एक कल्प तक वहाँ फेंका जाता है ॥१२७½॥ उग्र गन्ध नामक नरक लार, मूत्र तथा विष्ठा से युक्त है। पितरो को पिण्ड देने वाले मनुष्य वहाँ फेंके जाते है ॥१२८½॥ दुर्धर नामक नरक जोको तथा बिच्छुओं से व्याप्त है। घुस लेने वाला व्यक्ति वहाँ दश हजार वर्षों तक रहता है ॥१२९½॥ वज्रमहापीडा नामक नरक वज्रो का बनाया हुआ है। जो दूसरे के धन धान्य तथा सुवर्ण का अपहरण करते हैं, वे वहाँ यमदूता द्वारा जलाये जाते हैं और उत्पीडित होते हैं ॥१३०-१३१½॥ जो मूर्ख प्राणियो को मारकर कौए तथा गीध की तरह खाते है, उन्हे कल्पान्त तक यमदूत अपना

१ग पाट्यन्तेऽ०। २ग वज्रसूचिसमावृतम्। ३ख ०रो ख्यात प्र०। ४क ०क चातिता०। ५क ०रस्वस्यो०। ६ख ०ल्प मद्यमा०। ७क ०क्षणस्त०।

¹यमदूतैश्च चौरास्ते छिद्यन्ते लवशः क्षुरैः। ये हत्वा प्राणिनं मूढाः खादन्ते काकगृध्रवत् ॥१३२॥
भोज्यन्ते च स्वमांसं ते कल्पान्तं यमकिंकरैः। आसनं शयनं वस्त्रं परकीयं हरन्ति ये ॥१३३॥
यमदूतैश्च ते मूढा भिद्यन्ते शक्तितोमरैः। फलं पत्रं नृणां वाऽपि हृतं यैस्तु कुबुद्धिभिः ॥१३४॥
यमदूतैश्च ते क्रुद्धैर्दह्यन्ते तृणवह्निभिः। परद्रव्ये कलत्रे च यः सदा दुष्टधीर्नरः ॥१३५॥
यमदूतैर्ज्वलत्तस्य हृदि शूलं निखन्यते। कर्मणा मनसा वाचा ये धर्मविमुखा नराः ॥१३६॥
यमलोके तु ते घोरा लभन्ते परियातनाः। एवं शतसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च ॥१३७॥
नरकाणि नरैस्तत्र ²भुज्यन्ते पापकारिभिः। इह कृत्वा स्वल्पमपि नरः कर्माशुभात्मकम् ॥१३८॥
प्राप्नोति नरके घोरे यमलोकेषु यातनाम्। न शृण्वन्ति नरा मूढा धर्मोक्तं साधु भाषितम् ॥१३९॥
दृष्टं केनेति प्रत्यक्षं ³प्रत्युक्त्यैवं वदन्ति ते। दिवा रात्रौ प्रयत्नेन पापं कुर्वन्ति ये नराः ॥१४०॥
नाऽऽचरन्ति हि ते धर्मं प्रमादेनापि मोहिताः। इहैव फलभोक्तारः परत्र विमुखाश्च ये ॥१४१॥
ते पतन्ति सुघोरेषु नरकेषु नराधमा। दारुणो नरके वासः स्वर्गवासः सुखप्रदः॥
नरैः संप्राप्यते तत्र कर्म कृत्वा शुभाशुभम् ॥१४२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे नरकगतपृथग्यातनाकीर्तनं नाम
पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१५॥

मांस खिलाते हैं ॥१३२॥ जो दूसरे के आसन, शय्या तथा वस्त्र का अपहरण करते हैं उन मूर्खों को यम दूत शक्ति और तोमर से काटते हैं ॥१३३॥ जो मनुष्यों के फल तथा पत्र का भी कुबुद्धिपूर्वक अपहरण करते हैं उन्हें क्रुद्ध यमदूत तृणवह्नि से जलाते हैं ॥१३४॥ जो नर दूसरे के द्रव्य तथा स्त्री के प्रति कुभाव रखते हैं यमदूत उसके हृदय में जलता हुआ शूल गाड़ते हैं ॥१३५॥ जो मानव कर्म, मन तथा वाणी से धर्मविमुख हैं, उन्हें यमलोक में घोर यातनायें मिलती हैं ॥१३६॥ इस प्रकार पापकारी मनुष्य सैकड़ों, हजारों, लाखों तथा करोड़ों नरकों का भोग भोगते हैं ॥१३७॥ इस लोक में थोड़ा भी पाप करने वाला मनुष्य यमलोक में घोर नरक की यातना प्राप्त करता है ॥१३८॥ मूर्ख मनुष्य धर्मशास्त्र-प्रतिपादित सुन्दर वचन को नहीं सुनते हैं, बल्कि प्रतिवाद करते हुए कहते हैं—'प्रत्यक्ष किसने देखा है ?' जो मनुष्य दिन रात यत्नपूर्वक पाप करते हैं, वे मोहित होकर भूल से भी धर्माचरण नहीं करते हैं। जो परलोक को नहीं मानते हैं और 'यहीं फल का भोग होता है' ऐसा मानते हैं, वे नराधम घोर नरक में गिरते हैं। नरक का वास भयंकर है और स्वर्गवास सुखप्रद है। मनुष्य शुभ-अशुभ कर्म करके स्वर्ग-नरक प्राप्त करते हैं ॥१३९-१४२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद-प्रकरण में नरकों में पृथक्-पृथक् यातना-वर्णन
नामक दो सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१५॥

१ख ०रस्ते मूढा। २क ख सेव्यन्ते। ३क ख प्रत्यक्षेण।

अथ षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरकगतदुःखनिवारणाय धर्माचरणवर्णनम्

मुनय ऊचुः

अहोऽतिदुःखं घोरं च यममार्गं त्वयोदितम्। नरकाणि च घोराणि द्वारं याम्यं च सत्तम ॥१॥
अस्त्युपायो न वा ब्रह्मन्यममार्गेऽतिभीषणे। ब्रूहि येन नरा यान्ति सुखेन यमसादनम् ॥२॥

व्यास उवाच

इह ये धर्मसंयुक्तास्त्वहिंसानिरता नरा[1]। गुरुशुश्रूषणे युक्ता देवब्राह्मणपूजकाः ॥३॥
यस्मिन्मनुष्यलोकास्ते सभार्याः ससुतास्तथा। तमध्वानं च गच्छन्ति यथा तत्कथयामि वः ॥४॥
विमानैर्विविधैर्दिव्यैः काञ्चनध्वजशोभितैः। धर्मराजपुरं यान्ति सेव्यमानाप्सरोगणैः ॥५॥
ब्राह्मणेभ्यस्तु दानानि नानारूपाणि भक्तितः। ये प्रयच्छन्ति ते यान्ति सुखेनैव महापथे ॥६॥
अन्नं ये तु प्रयच्छन्ति ब्राह्मणेभ्यः सुसंस्कृतम्। श्रोत्रियेभ्यो विशेषेण भक्त्या परमया युतः ॥७॥
तरुणीभिर्वरस्त्रीभिः सेव्यमानाः प्रयत्नतः। धर्मराजपुरं यान्ति विमानैरम्यलंकृतैः ॥८॥
ये च सत्यं प्रभाषन्ते बहिरन्तश्च निर्मलाः। तेऽपि यान्त्यमरप्रख्या विमानैर्यममन्दिरम् ॥९॥

अध्याय २१६

नारकीय दुःख निवारण करने वाले धर्माचरण का वर्णन

मुनियो ने कहा—हे सज्जनो मे श्रेष्ठ! आपने यममार्ग का महान् कष्ट, भयंकर नरक तथा यम-द्वार भी बतलाये। ब्रह्मन्! अतिभीषण यममार्ग के बारे मे ऐसा कोई उपाय है, जिससे मनुष्य सुखपूर्वक यमलोक जा सकें? ॥१-२॥

व्यास ने कहा—इस लोक मे जो मनुष्य धार्मिक, अहिंसानिरत, गुरु सेवा मे रत, देव-ब्राह्मणों के पूजक तथा मनुष्यलोकधारी हैं, वे पत्नी-पुत्र समेत यममार्ग मे जैसे जाते है, वह मैं आप लोगो को बतलाता हूँ। ॥३-४॥ सुवर्ण पताकाओ से शोभित विविध दिव्य विमानों से वे यमपुरी जाते हैं, जहाँ अप्सरायें उनको सेवा किया करती हैं॥५॥ जो भक्ति-पूर्वक ब्राह्मणो को अनेक प्रकार के दान देते हैं, वे सुख से ही महापथ पर जाते हैं॥६॥ जो ब्राह्मणो को विशेष करके श्रोत्रियो को परम भक्तिपूर्वक पवित्र अन्न देते हैं, वे उत्तम युवती स्त्रियो से सेवित तथा अलंकृत होकर विमानो से यमपुरी जाते हैं॥७-८॥ जो सत्यभाषण करते हैं तथा बाहर भीतर से निर्मल हैं, वे भी देवतुल्य होकर विमानो से यममन्दिर जाते हैं॥९॥ जो धर्मज्ञ मनुष्य कृशकाय, तपस्वी साधुओ को विष्णु के उद्देश्य से पवित्र

१क धर्मयुक्ताश्च।

गोदानानि पवित्राणि विष्णुमुद्दिश्य साधुषु। ये प्रयच्छन्ति धर्मज्ञाः कृशेषु कृशवृत्तिषु ॥१०॥
ते यान्ति दिव्यवर्णाभैर्विमानैर्मणिचित्रितैः। धर्मराजपुरं श्रीमान्सेव्य(व) मानाप्सरोगणैः ॥११॥
उपानद्युगलं छत्रं शय्यासनमथापि वा। ये प्रयच्छन्ति वस्त्राणि तथैवाऽऽभरणानि च ॥१२॥
ते यान्त्यश्वै रथैश्चैव कुञ्जरैश्चाप्यलंकृताः। धर्मराजपुरं दिव्यं छत्रैः सौवर्णराजतैः ॥१३॥
ये च भक्त्या प्रयच्छन्ति गुडपानकर्माचितम्। [1]ओदनं च द्विजाग्र्येभ्यो विशुद्धेनान्तरात्मना ॥१४॥
ते यान्ति [2]काञ्चनैर्यानैर्विविधैस्तु यमालयम्। वरस्त्रीभिर्यथाकामं सेव्यमानाः पुनः पुनः ॥१५॥
ये च क्षीरं प्रयच्छन्ति घृतं दधि गुडं[3] मधु। ब्राह्मणेभ्यः [4]प्रयत्नेन [5]शुद्धयोपेतं सुसंस्कृतम् ॥१६॥
चक्रवाकप्रयुक्तैश्च विमानैस्तु हिरण्मयैः। यान्ति गन्धर्ववादित्रैः सेव्यमाना यमालयम् ॥१७॥
ये फलानि प्रयच्छन्ति पुष्पाणि सुरभीणि च। हंसयुक्तैर्विमानैस्तु यान्ति [6]धर्मपुरं नराः ॥१८॥
ये तिलांस्तिलधेनुं च घृतधेनुमथापि वा। श्रोत्रियेभ्यः प्रयच्छन्ति विप्रेभ्यः श्रद्धयाऽन्विताः ॥१९॥
सोममण्डलसंकाशैर्यानैस्ते यान्ति निर्मलैः[7]। गन्धर्वैरुपगीयन्ते पुरे वैवस्वतस्य ते ॥२०॥
येषां वाप्यश्च कूपाश्च तडागानि सरांसि च। दीर्घिकाः पुष्करिण्यश्च शीतलाश्च जलाशयाः ॥२१॥
यानैस्ते हेमचन्द्राभैर्दिव्यघण्टानिनादितैः। व्यजनैस्तालवृन्तैश्च वीज्यमाना महाप्रभाः ॥२२॥
[8]येषां देवकुलान्यत्र चित्राण्यायतनानि च। रत्नैः प्रस्फुरमाणानि मनोज्ञानि शुभानि च ॥२३॥

गायें देते हैं, वे अप्सराओं से सेवित होकर मणिखचित दिव्य वर्ण वाले विमानों से यमपुरी जाते हैं ॥१०-११॥ जो जोड़ा जूता, छत्ता, शय्या, आसन, वस्त्र तथा भूषण दान करते हैं, वे घोड़े, हाथी, रथ तथा सोने-चांदी के दिव्य छत्रों से अलकृत होकर यमालय जाते हैं ॥१२-१३॥ जो पवित्र हृदय से भक्तिपूर्वक गुड़, पान तथा भात ब्राह्मणों को देते हैं, वे सुवर्णमय विमानों से यम-भवन जाते हैं और दिव्याङ्गनायें उनकी पूर्ण सेवा करती हैं ॥१४-१५॥ जो पवित्र तथा सुसस्कृत दूध, घी, दही, गुड़ और मधु यत्नपूर्वक ब्राह्मणों को देते हैं, वे चक्रवाकयुक्त सोने के विमानों से यमालय जाते हैं और गन्धर्वगण सगीत द्वारा उनकी सेवा करते हैं ॥१६-१७॥ जो सुगन्धित पुष्प तथा फल दान करते हैं, वे नर हसयुक्त विमानों से धर्मपुर जाते हैं ॥१८॥ जो तिल, तिलधेनु (तिलों की बनी गाय) तथा घृत धेनु (घी की बनी गाय) श्रद्धापूर्वक श्रोत्रियों को देते हैं, वे चन्द्रमण्डल के समान निर्मल विमानों से यमालय जाते हैं और यमपुरी में गन्धर्वगण उनकी सेवा करते हैं ॥१९-२०॥ जो बावली, कुआँ, पोखरा सरोवर, दीर्घिका, पुष्करिणी तथा तालाब दान करते हैं, वे महातेजस्वी होकर दिव्य घण्टा-नादों से युक्त, सुवर्ण तथा चन्द्रमा के समान कान्ति वाले विमानों से यमालय जाते हैं और उनके ऊपर पखे झले जाते हैं ॥२१-२२॥ इस लोक में जिन्होंने चित्र विचित्र रत्नजटित, मनोहर तथा पवित्र देवालय बनवाये हैं, वे लोकपालों के साथ पवनतुल्य वेगवाले विमानों से नाना

१ख दक्षिणा। ख अयने। २ख ०विमानैर्याम्यमा०। ३क ख तथा। ४ख पुण्यदिने। ५ख श्रद्धोपेन। ख शुद्ध मन्त्रसु०। ६क धर्मपुरी। ७क ख निर्मला। ८ख ये च कुर्वन्ति भूलोके दिव्यान्याय०।

ते यान्ति लोकपालैस्तु विमानैर्वरतरंहसैः। धर्मराजपुरं [1]दिव्यं नानाजनसमाकुलम् ॥२४॥
पानीयं ये प्रयच्छन्ति सर्वप्राण्युपजोवितम्[2]। ते[3] वितृष्णाः सुखं यान्ति विमानैस्तं महापथम् ॥२५॥
काष्ठपादुकयानानि पीठकान्यासनानि च। यैर्दत्तानि द्विजातिभ्यस्तेऽध्वानं यान्ति वै सुखम् ॥२६॥
सौवर्णमणिपीठेषु पादौ कृत्वोत्तमेषु च। ते प्रयान्ति विमानैस्तु अप्सरोगणमण्डितैः ॥२७॥
आरामाणि विचित्राणि पुष्पाढ्यानीह मानवाः। रोपयन्ति फलाढ्यानि नराणामुपकारिणः ॥२८॥
वृक्षच्छायासु रम्यासु शीतलासु स्वलंकृताः। वरस्त्रीगीतवाद्यैश्च सेव्यमाना व्रजन्ति ते ॥२९॥
सुवर्णं रजतं वाऽपि विद्रुमं मौक्तिकं तथा। ये प्रयच्छन्ति ते यान्ति विमानैः कनकोज्ज्वलैः ॥३०॥
भूमिदा दीप्यमानाश्च सर्वकामैस्तु तर्पिताः। उदितादित्यसंकाशैर्विमानैर्भूषनादितैः[4] ॥३१॥
कन्यां तु ये प्रयच्छन्ति ब्रह्मदेयामलंकृताम्। दिव्यकन्यावृता यान्ति विमानैस्ते यमालयम् ॥३२॥
सुगन्धागुरुकर्पूरान्पुष्पधूपान्द्विजोत्तमाः। प्रयच्छन्ति द्विजातिभ्यो भक्त्या परमयाऽन्विताः ॥३३॥
ते सुगन्धा सुवेशाश्च सुप्रभाः सुविभूषिताः। यान्ति धर्मपुरं यानैर्विचित्रैरम्यलंकृताः ॥३४॥
दीपदा यान्ति यानैश्च दीपयन्तो दिशो दश। आदित्यसदृशैर्यानैर्दीप्यमाना यथाऽग्नयः ॥३५॥
गृहावसथदातारो गृहैः काञ्चनमण्डितैः। व्रजन्ति बालार्कनिभैर्धर्मराजगृहं नराः ॥३६॥
जलभाजनदातारः कुण्डिकाकरकप्रदाः। पूज्यमानाप्सरोभिश्च यान्ति दृप्ता महागजैः ॥३७॥

प्राणियो से परिपूर्ण दिव्य यमपुरी को जाते हैं ॥२३-२४॥ जो समस्त प्राणियों के जीवन स्वरूप जल दान करते हैं, वे प्यास रहित होकर विमानो से उस महापथ पर जाते हैं ॥२५॥ जो लकड़ी की सवारी, पीढा तथा आसन ब्राह्मणो को देते हैं, वे सुखपूर्वक उस मार्ग मे जाते हैं ॥२६॥ वे सुवर्ण तथा मणि के उत्तम आसनो पर पैर रखकर अप्सराओं से मण्डित होकर विमानो से प्रयाण करते हैं ॥२७॥ जो लोगो के उपकार के लिये मनोहर तथा फल-पुष्पों से सम्पन्न उपवन लगाते हैं, वे सुरम्य तथा शीतल वृक्षों की छाया मे अलकृत एवम् उत्तम वनिता, गीत तथा वाद्यो से सुसेवित होकर जाते है ॥२८-२९॥ जो सोना, चादी, मूगा तथा मोती दान करते है, वे सुवर्ण के समान उज्ज्वल विमानो से जाते हैं ॥३०॥ भूमिदान करने वाले मनुष्य कान्तिमान् तथा समस्त कामनाओ से तृप्त होकर महानादो से युक्त तथा उदयकालीन सूर्य के समान विमानों से जाते हैं ॥३१॥ जो अलकृता कन्या ब्राह्मणो को देते है, वे दिव्य कन्याओ से आवृत होकर विमानो से यमालय जाते है ॥३२॥ द्विजश्रेष्ठो ! जो परम भक्ति से सुगन्धित द्रव्य, अगर, कर्पूर, पुष्प तथा धूप ब्राह्मणो को देते हैं, वे अत्यन्त कान्तिमान्, सुविभूषित तथा सुन्दर गन्धो एवम् वेशो से युक्त होकर विचित्र विमानो से यमलोक जाते हैं ॥३३-३४॥ दीप दान करने वाले मनुष्य दशा दिशाओ को आलोकित करते हुए तथा सूर्य सदृश विमानो से अग्नि की तरह प्रदीप्त होते हुए धर्मपुर जाते हैं ॥३५॥ जो मनुष्य गृहदान करते हैं, वे बालसूर्य के समान सुवर्णमण्डित गृहो से युक्त होकर यमभवन जाते हैं ॥३६॥ जलपात्र देने वाले तथा कमण्डलु देने वाले मनुष्य अप्सराओ से पूजित होते हुए गजराज पर चढ कर जाते हैं ॥३७॥ जो पैर तथा शिर का उबटन

---

[1] क ख रम्य। [2] क ०प्राणिपु जीवनम्। [3] ग तेऽपि तृप्ता सु०। [4] ग ०नैर्वृषयोजितैः।

पादाभ्यङ्गं शिरोभ्यङ्गं स्नानपानोदकं तथा। ये प्रयच्छन्ति विप्रेभ्यस्ते यान्त्यश्वैर्यमालयम् ॥३८॥
विश्रामयन्ति ये विप्राञ्श्रान्तानध्वनि कर्शितान्[1]। चक्रवाकप्रयुक्तेन यान्ति यानेन ते सुखम्[2] ॥३९॥
स्वागतेन च यो विप्रं पूजयेदासनेन च[3]। स गच्छन्ति तमध्वानं सुखं परमनिर्वृतः ॥४०॥
नमो ब्रह्मण्यदेवेति यो हरिं चाभिवादयेत्[4]। गां च पापहरेत्युक्त्वा सुखं यान्ति च तत्पथम्[5] ॥४१॥
अनन्तराशिनो ये च दम्भानृतविवर्जिताः। तेऽपि[6] सारसयुक्तैस्तु[7] यान्ति यानैश्च तत्पथम्[8] ॥४२॥
वर्तन्ते ह्येकभक्तेन शाठ्यदम्भविवर्जिताः[9]। हंसयुक्तैर्विमानैस्तु सुखं यान्ति यमालयम् ॥४३॥
चतुर्थेनैकभक्तेन वर्तन्ते ये जितेन्द्रियाः। ते यान्ति धर्मनगरं यानैर्बर्हिणयोजितैः ॥४४॥
तृतीये दिवसे ये तु भुञ्जते नियतव्रताः। तेऽपि हस्तिरथैर्दिव्यैर्यान्ति यानैश्च तत्पदम् ॥४५॥
षष्ठेऽन्नभक्षको यस्तु शौचनित्यो जितेन्द्रियः। स याति कुञ्जरस्थस्तु शचीपतिरिव स्वयम् ॥४६॥
धर्मराजपुरं दिव्यं नानामणिविभूषितम्। नानास्वरसमायुक्तं जयशब्दरवैर्युतम् ॥४७॥
पक्षोपवासिनो यान्ति यानैः शार्दूलयोजितैः। पुरं तद्धर्मराजस्य सेव्यमानाः[10] सुरासुरैः ॥४८॥
ये च मासोपवासं तु कुर्वते संयतेन्द्रियाः[11]। तेऽपि सूर्यप्रदीप्तैस्तु यान्ति यानैर्यमालयम् ॥४९॥
[12]महाप्रस्थानमेकाग्रो यः प्रयाति दृढव्रतः। सेव्यमानस्तु गन्धर्वैर्याति यानैर्यमालयम् ॥५०॥

और नहाने तथा पीने के लिये जल ब्राह्मणों को देते हैं, वे घोड़ों पर चढ़कर यमालय जाते हैं ॥३८॥ जो रास्ते में थके हुए तथा दुःखी विप्रों को विश्राम देते हैं, वे चक्रवाक युक्त विमान से सुखपूर्वक यमपुरी जाते हैं ॥३९॥ जो स्वागत तथा आसन से द्विज की पूजा करते हैं, वह परम सुख से उस मार्ग में जाते हैं ॥४०॥ जो 'नमो ब्रह्मण्यदेव' कहकर विष्णु को तथा 'पापहरे' कहकर गाय की वन्दना करते हैं, वे उस मार्ग में सुख से जाते हैं ॥४१॥ जो दूसरों (को खिलाने) के बाद भोजन करते हैं और दम्भ-मिथ्या से रहित हैं, वे सारस पक्षी से युक्त रथों से उस मार्ग में जाते हैं ॥४२॥ जो एक ईश्वर के भक्त हैं, तथा दम्भ मिथ्या से शून्य हैं, वे हंस युक्त विमानों से यमालय जाते हैं ॥४३॥ जो ईश्वरभक्त तथा जितेन्द्रिय हैं, वे मयूरयुक्त रथों से धर्मनगर जाते हैं ॥४४॥ जो नियमपूर्वक व्रत करते हुए तीसरे दिन भोजन करते हैं, वे भी दिव्य गजयुक्त रथों से यमालय जाते हैं ॥४५॥ जो जितेन्द्रिय तथा नित्य शुचि होकर छठे दिन भोजन करते हैं, वे साक्षात् इन्द्र की तरह हाथी पर चढ़ कर नाना मणियों से विभूषित, अनेक स्वरों से युक्त तथा जयशब्दों से समन्वित धर्मराजपुरी को जाते हैं ॥४६-४७॥ जो पाक्षिक उपवास करते हैं वे शार्दूलों (पक्षी या बाघ) से युक्त रथों से यमपुरी जाते हैं और देवता तथा असुर उनकी सेवा करते हैं ॥४८॥ जो इन्द्रिय संयम पूर्वक मासिक उपवास करते हैं, वे भी सूर्य के समान प्रदीप्त रथों से यमालय जाते हैं ॥४९॥ जो दृढ़व्रती होकर एकाग्रचित्त से शरीर त्याग करते हैं वे गन्धर्वों से सेवित होते हुए विमानों से यमालय जाते

१क ०म्। ये तोषयन्ति पथिकानासनैः स्वागतेन। २क च। ते गच्छन्ति महाध्वा०। ३क ०र्वृता। परत्र०। ४ग ०त्। गाव सर्वे सहेत्यु०। ५क तत्पुरम्। ६क ०पि हंससमायु०। ७क ०र्यानैर्विमानैर्यान्ति तं०। ८क ख ०त्पदम्। ९क शाठ्यमत्सरवि०। १०क ०मान सु०। ११क ख सुमनाहिता। १२ख ०नसमये हरिं स्मरति मानव। से०।

'शरीरं साधयेद्यस्तु वैष्णवेनान्तरात्मना। स रथेनाग्निवर्णेन यातीह त्रिदशालयम् ॥५१॥
अग्निप्रवेशं यः कुर्यान्नारायणपरायणः। स यात्यग्निप्रकाशेन विमानेन यमालयम् ॥५२॥
प्राणांस्त्यजति यो मर्त्यः स्मरन्विष्णुं सनातनम्। यानेनार्कप्रकाशेन याति धर्मपुरं नरः ॥५३॥
प्रविष्टोऽन्तर्जलं यस्तु प्राणांस्त्यजति मानव'। सोममण्डलकल्पेन याति यानेन वै 'सुखम् ॥५४॥
स्वशरीरं हि गृध्रेभ्यो वैष्णवो यः प्रयच्छति। स याति रथमुख्येन काञ्चनेन यमालयम् ॥५५॥
स्त्रीग्रहे गोग्रहे वाऽपि युद्धे मृत्युमुपैति यः। स यात्यमरकन्याभिः सेव्यमानो रविप्रभः ॥५६॥
वैष्णवा ये च कुर्वन्ति तीर्थयात्रां जितेन्द्रियाः। तत्पथं यान्ति ते घोरं सुखयानैरलंकृताः ॥५७॥
ये यजन्ति द्विजश्रेष्ठा' क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः। तप्तहाटकसंकाशैर्विमानैर्यान्ति ते सुखम् ॥५८॥
परपीडामकुर्वन्तो भृत्यानां भरणादिकम्। कुर्वन्ति ते सुखं यान्ति विमानैः कनकोज्ज्वलैः ॥५९॥
ये क्षान्ताः सर्वभूतेषु प्राणिनामभयप्रदाः। क्रोधमोहविनिर्मुक्ता निर्मदा[3] संयतेन्द्रियाः ॥६०॥
पूर्णचन्द्रप्रकाशेन विमानेन महाप्रभाः। यान्ति वैवस्वतपुरं देवगन्धर्वसेविताः ॥६१॥
एकभावेन ये विष्णुं ब्रह्माणं त्र्यम्बकं रविम्[4]। पूजयन्ति हि ते यान्ति विमानैर्भास्करप्रभैः ॥६२॥
ये च मासं न खादन्ति सत्यशौचसमन्विताः। तेऽपि यान्ति सुखेनैव धर्मराजपुरं नराः ॥६३॥

हैं ॥५०॥ जो विष्णु मे चित्त लगाकर शरीर की साधना करते हैं, वे अग्नि के समान वर्ण वाले रथो से यमालय जाते हैं ॥५१॥ जो नारायणपरायण होकर अग्नि-प्रवेश करते है, वे अग्नि तुल्य प्रकाश वाले विमानो से यमालय जाते हैं ॥५२॥ जो मनुष्य सनातन विष्णु का स्मरण करते हुए प्राणत्याग करता है, वह सूर्य के समान प्रकाश वाले रथ से धर्मपुर जाता है ॥५३॥ जो मानव जल के अन्दर प्रवेश कर प्राणत्याग करता है, वह चन्द्रमण्डल तुल्य रथ से सुखपूर्वक यमलोक जाता है ॥५४॥ जो विष्णु-भक्त गीधो को अपना शरीर दे देता है, वह सुवर्ण के उत्तम रथ से यमालय जाता है ॥५५॥ जो स्त्री के लिये या गाय के लिये युद्ध मे मरता है, वह रवि तुल्य कान्तिमान् होकर देवकन्याओ से सेवित होते हुए धर्मपुर जाता है ॥५६॥ जो वैष्णव जितेन्द्रिय होकर तीर्थयात्रा करते हैं, वे अलकृत होकर विमानो से सुखपूर्वक उस मार्ग पर जाते हैं ॥५७॥ द्विजश्रेष्ठो ! जो बहुत दक्षिणाओ से यज्ञ करते हैं वे सुवर्ण सदृश विमानों से सुखपूर्वक यमालय जाते है ॥५८॥ जो दूसरे को कष्ट नहीं देते तथा नौकरो को उचित पारिश्रमिक देते हैं, वे कनक समान उज्ज्वल विमानो से सुखपूर्वक जाते हैं ॥५९॥ जो जितेन्द्रिय, क्षमाशील, क्रोध मोह तथा अभिमान से रहित और प्राणीमात्र को अभयदान देने वाले हैं, वे देव-गन्धर्वो से सेवित तथा अति-कान्तियुक्त होकर पूर्णचन्द्र के समान प्रकाश वाले विमानो से यमपुर जाते हैं ॥६०-६१॥ जो एकभाव से विष्णु, ब्रह्मा, शिव तथा दिनकर की पूजा करते हैं, वे सूर्यतुल्य प्रभा वाले विमानो से जाते है ॥६२॥ जो नर सत्य-शौच से युक्त हैं तथा मासभक्षण नही करते हैं, वे भी सुख से यमपुर जाते हैं ॥६३॥ भक्ष्य तथा भोज्य पदार्थों मे मास से बढकर

१क ०र शोव०। २क ०म्। मिष्टान्नभोजनं यस्तु वैष्णवेभ्य' प्र०। ३क निर्मला'। ४ख गुरुम्।

मांसान्मिष्टतरं नास्ति भक्ष्यभोज्यादिकेषु च। तस्मान्मांसं न भुञ्जीत नास्ति मिष्टं सुखोदयः ॥६४॥
गोसहस्रं तु यो दद्याद्यस्तुमांसं न भक्षयेत्। समावेतौ पुरा प्राह ब्रह्मा वेदविदां वरः ॥६५॥
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम्। अमांसभक्षणे विप्रास्तच्च तच्च च तत्समम् ॥६६॥
एवं सुखेन ते यान्ति यमलोकं च धार्मिकाः। दानव्रतपरा यान्यैर्यत्र देवो रवेः सुतः ॥६७॥
दृष्ट्वा तान्धार्मिकान्देवः स्वयं संमानयेद्यमः। स्वागतासनदानेन पाद्यार्घ्येण प्रियेण तु ॥६८॥
धन्या यूयं महात्मान आत्मनो हितकारिणः। येन दिव्यसुखार्थाय भवद्भिः सुकृतं कृतम् ॥६९॥
इदं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीभोगभूषिताः। स्वर्गं गच्छध्वमतुलं सर्वकामसमन्वितम् ॥७०॥
तत्र भुक्त्वा महाभोगानन्ते पुण्यपरिक्षयात्। यत्किंचिदल्पमशुभं फलं तदिह भोक्ष्यथ ॥७१॥
ये तु तं धर्मराजानं नराः पुण्यानुभावतः। पश्यन्ति सौम्यमनसं पितृभूतमिवाऽऽत्मनः ॥७२॥
[1]तस्माद्धर्मः सेवितव्यः सदा मुक्तिफलप्रदः। धर्मादर्थस्तथा कामो मोक्षश्च परिकीर्त्यते ॥७३॥
धर्मो माता पिता भ्राता धर्मो नाथः सुहृत्तथा। धर्मः स्वामी सखा गोप्ता[2] तथा धाता च पोषकः ॥७४॥
धर्मादर्थोऽर्थतः कामः कामाद्भोगः सुखानि च। धर्मादैश्वर्यमेकाग्र्यं धर्मात्स्वर्गगतिः परा ॥७५॥
धर्मस्तु सेवितो विप्रास्त्रायते महतो भयात्। देवत्वं च द्विजत्वं च धर्मात्प्राप्नोत्यसंशयम् ॥७६॥
यदा च क्षीयते पापं नराणां पूर्वसंचितम्। तदैषां भजते बुद्धिर्धर्मं चात्र द्विजोत्तमाः ॥७७॥

मीठा कोई नहीं है। इसलिये मांस नहीं खाना चाहिये, क्योंकि मधुरों से सुख नहीं होता है ॥६४॥ जो हजार गायें दान करेगा और जो मांस नहीं खायेगा, वे दोनों समान हैं—ऐसा वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ ब्रह्मा ने पहले ही कहा है ॥६५॥ विप्रवृन्द! समस्त तीर्थों (के सेवन) और अखिल यज्ञों (के अनुष्ठान) से जो पुण्य फल मिलता है, वह फल मांस का भक्षण न करने से प्राप्त होता है ॥६६॥ इस प्रकार धार्मिक तथा दान व्रतपरायण मनुष्य सुख से यमलोक जाते हैं, जहाँ सूर्यपुत्र यम स्वयं रहते हैं ॥६७॥ उन धार्मिकों को देखकर स्वयं यम आसन, पाद्य तथा अर्घ्य से स्वागत करते हैं और प्रियवचन कहते हैं (कि)—'हे महात्माओ! अपना कल्याण करने वालो! आप धन्य हैं! जिसलिये आपने दिव्यसुख के निमित्त पुण्य किया, अतः इस विमान पर चढ़कर दिव्य-स्त्री-भोगों से भूषित तथा अशेष कामनाओं से परिपूर्ण होकर स्वर्ग जाइये। वहाँ विपुल भोगों को भोगकर अन्त में पुण्य क्षय होने पर जो कुछ थोड़ा-सा अशुभ कर्म आपका किया हुआ है, उसका फल यहाँ भोगेंगे ॥६८-७१॥ पुण्य के प्रताप से मनुष्य धर्मराज को अपने कल्याणमय पिता के रूप में देखते हैं ॥७२॥ इसलिये मोक्ष-फल-दायक धर्म की उपासना सदा करनी चाहिये। धर्म से अर्थ, काम, और मोक्ष (का मिलना) भी कहा गया है। ॥७३॥ धर्म ही माता, पिता, भाई, स्वामी, मित्र, बन्धु, रक्षक, धाता तथा पोषक है। धर्म से अर्थ, अर्थ से काम और काम से भोग तथा सुख होता है। धर्म से ऐश्वर्य, मन की एकाग्रता और स्वर्ग मिलता है ॥७४-७५॥ विप्रवृन्द! सुरक्षित धर्म महान् भय से बचाता है। धर्म से देवत्व तथा ब्राह्मणत्व निःसन्देह प्राप्त होता है ॥७६॥ द्विजश्रेष्ठो! जब मनुष्यों के पूर्वसंचित पापों का क्षय हो जाता है तब उन्हें धर्म करने की बुद्धि होती है ॥७७॥ हजारों जन्म के बाद दुर्लभ मनुष्य-जन्म

१ख ०द्धर्मश्चिन्तनीयः स०। २क ख ०प्ता भ्राता धा०।

जन्मान्तरसहस्रेषु मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्। यो हि नाऽऽचरते धर्मं भवेत्स खलु वञ्चितः ॥७८॥
कुत्सिता ये दरिद्राश्च विरूपा व्याधितास्तथा[1]। परप्रेष्याश्च मूर्खाश्च ज्ञेया धर्मविवर्जिताः ॥७९॥
ये हि दीर्घायुषः शूरा पण्डिता[2] भोगिनोऽर्थिनः। अरोगा रूपवन्तश्च तैस्तु धर्मः पुरा कृतः ॥८०॥
एवं धर्मरता विप्रा गच्छन्ति गतिमुत्तमाम्। अधर्मं सेवमानास्तु तिर्यग्योनिं व्रजन्ति ते ॥८१॥
ये नरा नरकध्वंसिवासुदेवमनुव्रता। ते स्वप्नेऽपि न पश्यन्ति यमं वा नरकाणि वा ॥८२॥
अनादिनिधनं देवं दैत्यदानवदारणम्। ये नमन्ति नरा नित्यं नहि पश्यन्ति ते यमम् ॥८३॥
कर्मणा मनसा वाचा येऽच्युतं शरणं गताः। न समर्थो यमस्तेषां ते मुक्तिफलभागिनः ॥८४॥
ये जना जगतां नाथं नित्यं नारायणं द्विजाः। नमन्ति नहि ते विष्णोः स्थानादन्यत्र गामिनः ॥८५॥
न ते दूतान्न तन्मार्गं न यमं न च तां पुरीम्। प्रणम्य विष्णुं पश्यन्ति नरकाणि [3]कथंचन ॥८६॥
कृत्वाऽपि बहुशः पापं नरा मोहसमन्विताः। न यान्ति नरकं नत्वा सर्वपापहरं हरिम्[4] ॥८७॥
शाठ्येनापि नरा नित्यं ये स्मरन्ति जनार्दनम्। तेऽपि यान्ति[5] तनुं त्यक्त्वा विष्णुलोकमनामयम् ॥८८॥
अत्यन्तक्रोधसक्तोऽपि कदाचित्कीर्तयेद्धरिम्। सोऽपि दोषक्षयान्मुक्तिं [6]लभेच्चेदिपतिर्यथा ॥८९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे धार्मिकाणां सुगतिनिरूपणं नाम षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१६॥

पाकर जो व्यक्ति धर्माचरण नहीं करता है, वह (परम लाभ से) वञ्चित ही रहता है ॥७८॥ जो निन्दित, दरिद्र, कुरूप, रोगी, दूत तथा मूर्ख हैं, उन्हें धर्मविवर्जित समझना चाहिये ॥७९॥ जो दीर्घायु, वीर, पण्डित, भोगी, धनवान्, नीरोग तथा रूपवान् हैं, उन्होंने पहले धर्म किया है (ऐसा समझना चाहिए) ॥८०॥ विप्रवृन्द! इस प्रकार धर्म-परायण मनुष्य उत्तम जाति को प्राप्त करते हैं और अधर्मसेवी नर पशु-पक्षी योनि में जाते हैं ॥८१॥ जो मनुष्य नरकनाशन कृष्ण के भक्त हैं, वे स्वप्न में भी यम या नरकों का नहीं देखते हैं ॥८२॥ जो मनुष्य दैत्य-दानवों का दलन करने वाले आदिअन्तरहित भगवान् को नित्य प्रणाम किया करते हैं, वे यम को नहीं देखते हैं ॥८३॥ जो मन, कर्म तथा वाणी से भगवान् के शरणागत हो चुके हैं, उन्हें पकड़ने के लिये यमदूत समर्थ नहीं होते और वे मोक्षफल-भागी हो जाते हैं ॥८४॥ द्विजवृन्द! जो मनुष्य नित्य जगत्पति नारायण को प्रणाम करते हैं, वे वैकुण्ठ छोड़ दूसरी जगह नहीं जाते ॥८५॥ विष्णु को प्रणाम करने वाले मनुष्य न यमदूतों को, न यममार्ग को, न यम को, न यमपुरी को, न नरकों को कभी देखते हैं ॥८६॥ अखिलपापहारी हरि को प्रणाम कर मोहयुक्त मनुष्य अनेक पाप करके भी नरक नहीं जाते ॥८७॥ जो नर शठता से भी नित्य जनार्दन का स्मरण करते हैं, वे भी शरीर त्यागने के बाद सुखमय विष्णुलोक को प्राप्त करते हैं ॥८८॥ यदि अत्यन्त क्रोधी मनुष्य भी कभी हरि का कीर्तन करता है तो वह भी दोषों के क्षय हो जाने से मोक्ष प्राप्त करता है, जैसे शिशुपाल ने किया था ॥८९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद-प्रकरण में धर्मात्माओं के गतिनिरूपण नामक दो सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१६॥

१ग ०धिनस्त०। २ख ०ता भागि०। ३ख कदाचन। ४क ०म्। सुखेना०। ५ख यम। ६क. ०भेदिति मतिर्मम॥

अथ सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

धर्मश्रेष्ठ्यवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

श्रुत्वैवं यममार्गं ते नरकेषु च यातनाम्[1]। पप्रच्छुश्च पुनर्व्यासं संशयं मुनिसत्तमाः ॥१॥

मुनय ऊचुः

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद। मर्त्यस्य कः सहायो वै पिता माता सुतो गुरुः ॥२॥
ज्ञातिसंबन्धिवर्गश्च मित्रवर्गस्तथैव च। [2]गृहं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं जनः ॥
गच्छन्त्यमुत्र लोके वै कश्चताननुगच्छति ॥३॥

व्यास उवाच

एकः प्रसूयते विप्रा एक एव हि नश्यति। एकस्तरति दुर्गाणि गच्छत्येकस्तु दुर्गतिम्[3] ॥४॥
असहायः पिता माता तथा भ्राता सुतो गुरुः[4]। ज्ञातिसंबन्धिवर्गश्च मित्रवर्गस्तथैव च ॥५॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं जनाः। मुहूर्तमिव रोदित्वा ततो यान्ति पराङ्मुखाः ॥६॥
तैस्तच्छरीरमुत्सृष्टं धर्म [5]एकोऽनुगच्छति। तस्माद्धर्मः सहायश्च सेवितव्यः सदा नृभिः ॥७॥

अध्याय २१७

धर्म की श्रेष्ठता का वर्णन

लोमहर्षण ने कहा—मुनिवर! इस प्रकार यममार्ग तथा नरकों की यातना के बारे में सुनकर मुनियों ने फिर व्यास से अपना संशय पूछा ॥१॥

मुनियों ने कहा—भगवन्! अशेष धर्मों के ज्ञाता! सकलशास्त्रविशारद! मनुष्य का कौन सहायक होता है—पिता या माता या पुत्र या गुरु या बन्धुवर्ग या मित्रवर्ग? मनुष्य लकड़ी तथा ढेले के समान घर एवम् शरीर को छोड़कर चले जाते हैं। मरने पर कौन उनका अनुगमन करता है? ॥२ ३॥

व्यास ने कहा—विप्रवृन्द! मनुष्य अकेला जन्म लेता है अकेला मरता है अकेला कठिनाइयों को पार करता है और अकेला दुर्गति प्राप्त करता है। पिता माता, भाई पुत्र गुरु बन्धुवर्ग तथा मित्रवर्ग—कोई उसका साथ नहीं देता है। लोग लकड़ी-ढले के समान उसके मृत शरीर को त्याग कर दो घड़ी रो धोकर निवृत्त हो जाते हैं। उन लोगों से परित्यक्त शरीर का अनुगमन एक धर्म ही करता है। इसलिए मनुष्यों का अपने सहायक धर्म की सदा

१ख पातनम्। २ग मृतं। ३क स्वर्गतिम्। ४ख ०तमपि रो०। ५क ख एवानु०।

प्राणी धर्मसमायुक्तो गच्छेत्स्वर्गगतिं पराम् । तथैवाधर्मसंयुक्तो नरकं चोपपद्यते ॥८॥
'तस्मात्पापागतैरर्थे र्नानुरज्येत' पण्डितः' । धर्म एको' मनुष्याणा सहायः परिकीर्तितः ॥९॥
लोभान्मोहादनुक्रोशाद्भयाद्वाऽथ' बहुश्रुत' । नरः करोत्यकार्याणि परार्थे लोभमोहितः ॥१०॥
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रितय जीवतः' फलम् । 'एतत्त्रयमवाप्तव्यमधर्मपरिवर्जितम् ॥११॥

मुनय ऊचुः

श्रुतं भगवतो वाक्यं धर्मयुक्त पर हितम् । शरीरनिचय ज्ञातु बुद्धिर्नोऽत्र प्रजायते ॥१२॥
मृत शरीरं हि नृणा सूक्ष्ममव्यक्तता गतम् । 'अचक्षुर्विपय प्राप्तं क्थ धर्मोऽनुगच्छति ॥१३॥

व्यास उवाच

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिर्मनोन्तरम् । बुद्धिरात्मा च सहिता धर्मं पश्यन्ति नित्यदा' ॥१४॥
प्राणिनामिह सर्वेषां 'साक्षिभूता दिवानिशम् । एतैश्च सह धर्मो हि त जीवमनुगच्छति ॥१५॥
त्वगस्थि मास शुत्रं च शोणित च द्विजोत्तमा । "शरीर "वर्जयन्त्येते जीवितेन" विवर्जितम् ॥१६॥
ततो धर्मसमायुक्त' स जीव' सुखमेधते । इह लोके परे चैव किं भूयः कथयामि व ॥१७॥

मुनय ऊचुः

तद्दर्शितं भगवता यथा धर्मोऽनुगच्छति । एतत्तु ज्ञातुमिच्छामः कथं रेतः प्रवर्तते ॥१८॥

सेवा करनी चाहिये। धर्मात्मा प्राणी उत्कृष्ट स्वर्ग को प्राप्त करता है और पापी नरक मे जाता है। अत पण्डित-जन को चाहिये कि वे अधर्मों से प्राप्त धन मे अनुरक्त न हों। मनुष्यो का एक धर्म ही सहायक माना गया है। बहुश्रुत मनुष्य भी लोभ से, मोह से, दया से या भय से अकार्य कर बैठते हैं। धर्म, अर्थ और काम—ये तीन ही जीवन के फल हैं। इन तीनो की प्राप्ति अधर्म पूर्वक नही करनी चाहिए ॥४-११॥

मुनियो ने कहा—आपका धर्मयुक्त तथा परमकल्याणकारी वाक्य हमने सुना। अब शरीर के विषय में हम सुनना चाहते हैं। मनुष्यो का मृत शरीर सूक्ष्म तथा अव्यक्त कहा गया है। वह दृष्टिगोचर नही होता है। फिर धर्म कैसे उसका अनुगमन करता है ? ॥१२-१३॥

व्यास ने कहा—पृथिवी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, मन, बुद्धि और आत्मा—ये सब नित्य धर्म को देखते है। ये दिनरात समस्त प्राणियो के साक्षी बने रहते हैं। इन्ही के साथ धर्म जीव का अनुगमन करता है। द्विजवर ! प्राणों के छोड देने पर त्वचा, हड्डी, मास, वीर्य और शोणित रूप शरीर को ये भी छोड देते हैं। तदनन्तर धर्मयुक्त जीव इस लोक मे तथा परलोक मे सुख प्राप्त करता है। अब फिर आप लोगों से क्या कहूँ ? ॥१४-१७॥

मुनियो ने कहा—यह तो आपने बतलाया कि धर्म कैसे अनुगमन करता है। अब हम यह जानना चाहते हैं कि वीर्य कैसे बनता है ॥१८॥

१ख ०स्मात्याग०। २ख ०र्थैर्धर्मं सेव्यस्तु प०। ३ख । पण्डितै' ४ख एष। ५ग ०द्वाऽप्यब०। ६क ग जीविते। ख जीविन। ७क ०तत्तु धर्मवाक्य मे अघ०। ८ख अतिनिर्वि०। ९क ख ०दा। सर्वथात्विह। १०ग ०तानि चानि०। ११ख ०रीरे वर्तते सर्व जी०। १२क वर्तय०। १३ख. ०तेनाऽऽवृते पुन' । त०।

व्यास उवाच

अन्नमश्नन्ति ये देवा शरीरस्था द्विजोत्तमाः । पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिर्मनस्तथा ॥१९॥
ततस्तृप्तेषु भो विप्रास्तेषु भूतेषु पञ्चसु । मनःषष्ठेषु शुद्धात्मा रेतः संपद्यते महत् ॥२०॥
ततो गर्भः संभवति श्लेष्मा स्त्रीपुंसयोर्द्विजाः । एतद्वः सर्वमाख्यातं किं भूयः श्रोतुमिच्छथ ॥२१॥

मुनय ऊचुः

आख्यातं नो भगवता गर्भः संजायते यथा । यथा जातस्तु पुरुषः प्रपद्येत तदुच्यताम् ॥२२॥

व्यास उवाच

'आसन्नमात्रपुरुषस्तैर्भूतैरभिभूयते' । विप्रयुक्तस्तु' तैर्भूतैः पुनर्यात्यपरां गतिम् ॥२३॥
'स च भूतसमायुक्तः प्राप्नोति जीवमेव हि । ततोऽस्य कर्म पश्यन्ति शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥
देवताः 'पञ्चभूतस्थाः किं भूयः 'श्रोतुमिच्छथ ॥२४॥

मुनय ऊचुः

त्वगस्थि मांसमुत्सृज्य तैस्तु भूतैर्विवर्जितः । जीवः स भगवन्क्वस्थः सुखदुःखे समश्नुते ॥२५॥

व्यास उवाच

जीवः कर्मसमायुक्तः शीघ्रं रेतः 'समागतः । स्त्रीणां पुष्पं समासाद्य ततः कालेन भो द्विजाः ॥२६॥

व्यास ने कहा—विप्रवर ! शरीरस्थ देव जो अन्नभक्षण करते हैं उससे पृथिवी वायु आकाश जल अग्नि और मन तृप्त होते हैं। पाँच महाभूतों तथा छठे मन के तृप्त हो जाने पर शुद्ध आत्मा है महान् वीर्य बन जाता है। तब स्त्री-पुरुषों का रज-वीर्य गर्भ रूप में परिणत होता है। यह सब मैंने आपसे बतला दिया। अब क्या सुनना चाहते हैं ? ॥१९-२१॥

मुनियों ने कहा—*गर्भ जैसे उत्पन्न होता है वह तो आपने बतला दिया। अब पुरुष कैसे उत्पन्न होता है—यह कहिये ॥२२॥*

व्यास ने कहा—*पुरुष उत्पन्न होते ही पञ्चमहाभूत से आक्रान्त हो जाता है। पुनः उन भूतों से वियुक्त होने पर वह दूसरी गति को प्राप्त करता है। भूतों से युक्त होने पर वह जीवभाव को ही प्राप्त करता है। तदुपरान्त पञ्चभूतों में रहने वाले देवता उसके शुभ-अशुभ कर्मों को देखते हैं। फिर आप क्या सुनना चाहते हैं ॥२३-२४॥*

मुनियों ने कहा—भगवन् ! भूतों से परित्यक्त जीव जब त्वचा हड्डी तथा मांस को छोड़ देता है तब वह कहाँ रहकर सुख-दुःखों का भोग करता है ? ॥२५॥

व्यास ने कहा—द्विजवृन्द ! कर्मों से युक्त जीव शीघ्र वीर्य को प्राप्त करता है। तब समय पाकर स्त्रियों के रज में समाविष्ट होता है ॥२६॥ मनुष्य संसारचक्र में पड़कर दुःख क्लेश यमदूतों द्वारा क्लेश तथा

---

१ क. ०सन्नमात्तु पु० । २ क. ख. ०ग्य स्वगर्भैस्तुमू० । ३ क. ख. ०स्तु ते सर्वे पु० । ४ क. ख. सवमू० । ५ क. ख. ०भ्य वि० । ६ क. ख. भूयो मुनयः श्रो० । ७ क. ख. ०त प्रवर्तते । स्त्री० ।

यमस्य पुरुषैः क्लेशो यमस्य पुरुषैर्वधः । दुःखं संसारचक्रं च नरः क्लेशं च विन्दति ॥२७॥
इह लोके स तु प्राणी जन्मप्रभृति भो द्विजाः । सुकृतं कर्म वै भुङ्क्ते धर्मस्य फलमाश्रितः[1] ॥२८॥
यदि धर्मं समायुज्य जन्मप्रभृति सेवते । ततः स पुरुषो भूत्वा सेवते नित्यदा सुखम् ॥२९॥
अथान्तरान्तरं धर्ममधर्ममुपसेवते । सुखस्यानन्तरं दुःखं स जीवोऽप्यधिगच्छति ॥३०॥
अधर्मेण समायुक्तो यमस्य विषयं गतः । महादुःखं समासाद्य तिर्यग्योनौ प्रजायते ॥३१॥
कर्मणा येन येनेह यस्या योनौ प्रजायते । जीवो मोहसमायुक्तस्तन्मे शृणुत सांप्रतम् ॥३२॥
यदेतदुच्यते शास्त्रे सेतिहासेश्च छन्दसि । यमस्य विषयं घोरं [2]मर्त्यलोकं प्रवर्तते ॥३३॥
इह स्थानानि पुण्यानि देवतुल्यानि भो द्विजाः । तिर्यग्योन्यतिरिक्तानि गतिमन्ति च सर्वशः ॥३४॥
यमस्य भवने दिव्ये ब्रह्मलोकसमे गुणैः । [3]कर्मभिर्नियतैर्बद्धो जन्तुर्दुःखान्युपाश्नुते ॥३५॥
येन येन हि भावेन येन वै कर्मणा गतिम् । प्रयाति पुरुषो घोरां तथा वक्ष्याम्यतः परम् ॥३६॥
अधीत्य चतुरो वेदान्द्विजो मोहसमन्वितः । [4]पतितात्प्रतिगृह्याथ खरयोनौ प्रजायते ॥३७॥
खरो जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भो द्विजाः । खरो मृतो बलीवर्दः सप्त वर्षाणि जीवति ॥३८॥
बलीवर्दो मृतश्चापि जायते ब्रह्मराक्षसः[5] । [6]ब्रह्मरक्षस्तु मासांस्त्रींस्ततो जायेत [7]ब्राह्मणः ॥३९॥
पतितं याजयित्वा तु कृमियोनौ प्रजायते । तत्र जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भो द्विजाः ॥४०॥

यमदूतों द्वारा वध को प्राप्त करता है ॥२७॥ विप्रगण ! इस लोक में वह प्राणी जन्म से लेकर पुण्य करता है और धर्म का फल भोगता है ॥२८॥ यदि वह जन्म से लेकर धर्म की सेवा करता है तो वह पुरुष होकर नित्य सुख प्राप्त करता है ॥२९॥ बीच बीच में वह धर्म-अधर्म दोनों करता है। वह जीव सुख के बाद दुःख भी प्राप्त करता है ॥३०॥ अधर्म करने पर वह यमलोक जाता है। फिर घोर दुःख पाकर पशुयोनि में जाता है ॥३१॥ जिस-जिस कर्म के करने से मोह-बद्ध जीव जिस योनि में उत्पन्न होता है, वह अभी मुझसे सुनिये ॥३२॥ वेद, शास्त्र तथा इतिहास बतलाते हैं कि जीव यम के भयकर राज्य को छोड़कर मर्त्यलोक में आता है ॥३३॥ यहाँ अनेकों देवतुल्य पवित्र स्थान हैं, जहाँ पशु-पक्षी योनि के अतिरिक्त योनियाँ जाती हैं ॥३४॥ यमराज के ब्रह्मलोक के समान गुणों वाले दिव्य भवन में जीव अपने कर्मों से बद्ध होकर दुःख भोगता है ॥३५॥ जिस भाव से या जिस कर्म से मनुष्य घोर गति को प्राप्त करता है, वह मैं इसके बाद बतलाऊँगा ॥३६॥ जो ब्राह्मण चारों वेदों को पढ़कर मोहवश पतितों से दान लेता है, वह मरने पर गधा होता है ॥३७॥ द्विजगण ! गधा होकर वह पन्द्रह वर्ष जीता है। फिर मरने पर वह बैल होकर सात वर्ष जीता है ॥३८॥ बैल की देह त्यागने पर वह ब्रह्मराक्षस होता है। तीन महीनों तक ब्रह्मराक्षस रह कर बाद में ब्राह्मण हो जाता है ॥३९॥ पतितों के याग कराने से कीड़े की योनि में जाना पड़ता है। वहाँ पन्द्रह वर्ष रहने पर कीटयोनि से मुक्ति मिल जाती है। तब गधे की योनि में जाना पड़ता है। वहाँ भी

१ख ०मास्थितः । २ग मर्त्यो लोकः प्रजायते । ३ख. ०र्भिर्मियते बद्धो० । ४ग ०तात्प्रति० । ५ख ०सः । राक्षसत्व समासाद्य ततो । ६क. ०ह्मराक्षसमासाशी ततो । ७क. ख राक्षसः ।

त्रिमिभावाद्विनिर्मुक्तस्ततो जायेत गर्दभः। गर्दभः पञ्च वर्षाणि पञ्च वर्षाणि शूकरः ॥४१॥
कुक्कुटः पञ्च वर्षाणि पञ्च वर्षाणि जम्बुकः। श्वा वर्षमेकं भवति ततो जायेत मानवः ॥४२॥
उपाध्यायस्य य. पापं शिष्यः कुर्यादबुद्धिमान्। स जन्मानीह संसारे त्रीनाप्नोति न संशय. ॥४३॥
प्राक्श्वा भवति भो विप्रास्ततः क्रव्यात्ततः खरः। प्रेत्य च परिक्लिष्टेषु पश्चाज्जायेत ब्राह्मणः ॥४४॥
मनसाऽपि गुरोर्भार्यां यः शिष्यो याति पापकृत्। उदग्रान्प्रैति संसारानधर्मेणेह चेतसा ॥४५॥
श्वयोनौ तु स संभूतस्त्रीणि वर्षाणि जीवति। तत्रापि निधनं प्राप्तः क्रिमियोनौ प्रजायते ॥४६॥
कृमिभावमनुप्राप्तो वर्षमेकं तु जीवति। ततस्तु निधनं प्राप्य ब्रह्मयोनौ प्रजायते ॥४७॥
यदि पुत्रसमं शिष्यं गुरुर्हन्यादकारणम्। आत्मनः कामकारेण सोऽपि हिंस्रः प्रजायते ॥४८॥
पितरं मातरं चैव यस्तु पुत्रोऽवमन्यते। सोऽपि विप्रा मृतो जन्तु: पूर्वं जायेत गर्दभः ॥४९॥
गर्दभत्वं तु संप्राप्य दश वर्षाणि जीवति। संवत्सरं तु कुम्भीरस्ततो जायेत मानवः ॥५०॥
पुत्रस्य मातापितरौ यस्य रुष्टावुभावपि। गुर्वपध्यानतः सोऽपि मृतो जायेत गर्दभः ॥५१॥
खरो जीवति मासांश्च दश चापि चतुर्दश। बिडालः सप्त मासांस्तु ततो जायेत मानवः ॥५२॥
मातापितरावाक्रुश्य सारीक. सम्प्रजायते। ताडयित्वा तु तावेव जायते कच्छपो द्विजाः ॥५३॥
कच्छपो दश वर्षाणि त्रीणि वर्षाणि शल्यकः। व्यालो भूत्वा तु षण्मासांस्ततो जायेत मानुषः ॥५४॥
भर्तृपिण्डमुपाश्नीनो (दत्ते) राजद्विष्टानि सेवते। सोऽपि मोहसमापन्नो मृतो जायेत वानरः ॥५५॥

पाँच वर्षों तक रहकर जीव सूअर होकर जन्म लेता है ॥४०-४१॥ फिर पाँच वर्षों तक मुर्गा और पाँच वर्षों तक सियार होना पड़ता है। फिर एक वर्ष तक कुत्ते की योनि मे रहकर जीव मनुष्य-शरीर प्राप्त करता है ॥४२॥ जो मूर्ख शिष्य अपने अध्यापक के प्रति पापाचरण करता है, वह इस ससार मे निःसन्देह तीन योनियो मे जाता है। पहले वह कुत्ता होता है तदनन्तर राक्षस और तदनन्तर गधा। फिर मरने पर अनेकविध कष्टो को सहकर पश्चात् वह ब्राह्मण होता है ॥४३-४४॥ जो शिष्य मन से भी गुरु-पत्नी के प्रति पापाचरण करता है, वह अधर्मयुक्त चित्त लेकर ससार मे जन्म लेता है, और कुत्ते की योनि मे तीन वर्षों तक जीकर मर जाता है। फिर कीड़े की योनि मे उत्पन्न होता है ॥४५-४६॥ वहाँ भी एक वर्ष जीता है। तदनन्तर ब्राह्मण-योनि मे उत्पन्न होता है ॥४७॥ यदि पुत्र तुल्य शिष्य को गुरु अकारण ही या अपने स्वार्थवश मार देता है तो वह भी हिंसक योनि में उत्पन्न होता है ॥४८॥ विप्रवृन्द! जो पुत्र माता-पिता की अवहेलना करता है, वह भी मरने पर गधा होता है ॥४९॥ गर्दभ-योनि मे वह दश वर्षों तक रहता है। तब एक वर्ष तक मगर होकर रहता है। तदनन्तर मनुष्य योनि म उत्पन्न होता है ॥५०॥ जिस पुत्र के ऊपर माता, पिता तथा गुरु रुष्ट रहते हैं, वह मरने पर गधा होता है ॥५१॥ तदनन्तर चौबीस मास तक गधा और सात मास तक बिलाड होकर फिर मनुष्य होता है ॥५२॥ माता-पिता की निन्दा करने वाला मनुष्य सारीक (पक्षी विशेष) होता है और उनकी ताड़ना करने वाला कछुआ होता है ॥५३॥ कच्छपयोनि मे दश वर्षों तक रहकर साही होता है। फिर छह महीनो तक साँप होकर बाद मे मनुष्य होता है ॥५४॥ स्वामी के अन्न का खाकर उसके शत्रुओं की सेवा करने वाला मोहयुक्त मनुष्य मरने पर बन्दर होता है ॥५५॥ दश वर्षों तक बन्दर, सात वर्षों तक चूहा और छह मासो तक कुत्ता रह कर वह मनुष्य होता है।

वानरो दश वर्षाणि सप्त वर्षाणि मूषकः । श्वा च भूत्वा तु षण्मासांस्ततो जायेत मानवः ॥५६॥
न्यासापहर्ता तु नरो यमस्य विषयं गतः । संसाराणां शतं गत्वा कृमियोनौ प्रजायते ॥५७॥
तत्र जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भो द्विजाः । दुष्कृतस्य क्षयं कृत्वा ततो जायेत मानुषः[1] ॥५८॥
असूयको नरश्चापि मृतो जायेत शार्ङ्गकः । [2]विश्वासहर्ता च नरो मीनो जायेत दुर्मतिः ॥५९॥
भूत्वा मीनोऽष्टवर्षाणि मृगो जायेत भो द्विजाः । मृगस्तु चतुरो मासांस्ततश्छागः प्रजायते ॥६०॥
छागस्तु निधनं प्राप्य पूर्णे सवत्सरे ततः । कीटः सजायते जन्तुस्ततो जायेत मानुषः ॥६१॥
धान्यान्यवांस्तिलान्माषान्कुलित्थान्सर्षपाश्चणान् । कलायानथ मुद्गाश्च गोधूमानतसीस्तथा ॥६२॥
सस्यान्यन्यानि हर्ता च मर्त्यो मोहादचेतनः । सजायते मुनिश्रेष्ठा मूषिको निरपत्रपः ॥६३॥
ततः प्रेत्य मुनिश्रेष्ठा मृतो जायेत शूकरः । शूकरो जातमात्रस्तु रोगेण म्रियते पुनः ॥६४॥
श्वा ततो जायते मूकः कर्मणा तेन मानवः । भूत्वा श्वा पञ्च वर्षाणि ततो जायेत मानव ॥६५॥
परदाराभिमर्शं तु कृत्वा जायेत वै वृक. । श्वा शृगालस्ततो गृध्रो व्यालः कङ्को बकस्तथा ॥६६॥
भ्रातुर्भार्यां तु पापात्मा यो धर्षयति मोहितः । पुस्कोकिलत्वमाप्नोति सोऽपि सवत्सरं द्विजाः ॥६७॥
[3]सखिभार्यां गुरोर्भार्यां राजभार्यां तथैव च । प्रधर्षयित्वा कामात्मा मृतो जायेत शूकरः ॥६८॥
शूकरः पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि वै बकः । पिपीलिकस्तु मासांस्त्रीन्कीटः स्यान्मासमेव च ॥६९॥

॥५६॥ धरोहर का अपहरण करने वाला मनुष्य यम के राज्य मे पहुँचता है। सौ बार जन्म-मरण पाकर (या नरको का भोगकर) कृमि-योनि मे उत्पन्न होता है ॥५७॥ वहाँ पन्द्रह वर्षों तक रहकर पापो का क्षय करके मनुष्य-योनि मे आता है ॥५८॥ निन्दक मनुष्य मरने पर शार्ङ्गक (सींग वाला जीव) होता है। विश्वासघाती दुष्टबुद्धि मनुष्य मछली होता है ॥५९॥ आठ वर्षों तक मछली रह कर हरिण होता है चार महीनो तक हरिण रहकर बकरा होता है ॥६०॥ एक वर्ष तक उस योनि मे रहकर कीडा होता है। तदनन्तर मनुष्य होता है ॥६१॥ मुनिश्रेष्ठो! धान, यव, तिल, उडद, कुलथी, सरसो, चने, मूग, गेहूँ, तीसी तथा दूसरे अन्न को चुराने वाला मूर्ख मनुष्य निर्लज्ज चूहा होता है ॥६२-६३॥ फिर मरने पर सूअर होता है। शूकरयोनिमे वह उत्पन्न होते ही रोग से मर जाता है ॥६४॥ तब वह गूगा कुत्ता होता है। पाँच वर्षों तक उस योनि मे रहकर मनुष्य होता है ॥६५॥ दूसरे की पत्नी के साथ समोग करने वाला मनुष्य भेडिया होता है। तदनन्तर वह कुत्ता, सियार, गीध, साँप, सफेद चील और बगला होता है ॥६६॥ जो मूर्ख मनुष्य भ्रातृ-पत्नी के साथ गमन करता है, वह भी एक वर्ष तक पुस्कोकिल (कोयल का नर) होता है ॥६७॥ मित्र-पत्नी, गुरु-पत्नी तथा राज-पत्नी के पास जाने वाला कामी मनुष्य सूअर होता है ॥६८॥ पाँच वर्षों तक सूअर, दस वर्षों तक बगला, तीन महीनो तक चींटी और एक मास तक वह कीडा होता है ॥६९॥ इतनी योनियों मे

१क. ख मानव । २ख, ०सघाती च । ३क. ०र्यां पुत्रभार्यां गुरुभार्यां त० ।

एतानासाद्य ससारान्क्रमियोनौ प्रजायते। तत्र जीवति मासांस्तु क्रमियोनौ चतुर्दश[1] ॥७०॥
नरोऽधमक्षय कृत्वा ततो जायत मानुष। पूर्वं दत्त्वा तु य कन्या द्वितीये दातुमिच्छति॥७१॥
सोऽपि विप्रा मृतो जन्तु क्रिमियोनौ प्रजायते। तत्र जीवति वर्षाणि त्रयोदश द्विजोत्तमा॥७२॥
अधमसक्षये मुक्तस्ततो जायत मानुष। देवकार्यमकृत्वा तु पितकार्यमथापि वा॥७३॥
अनिर्वाप्य पितृदेवा मृतो जायत वायस। वायस शतवर्षाणि ततो जायेत कुक्कुट॥७४॥
जायत व्यालकश्चापि मास तस्मात्तु मानुष। ज्येष्ठ पितृसम चापि भ्रातर योऽवमन्यत॥७५॥
सोऽपि मृत्युमुपागम्य क्रौञ्चयोनौ प्रजायत। क्रौञ्चो जीवति वर्षाणि दश[3] जायेत जीवक[4]॥७६॥
ततो निधनमाप्नोति मानुषत्वमवाप्नुयात। वृषलो ब्राह्मणीं गत्वा क्रमियोनौ प्रजायते॥७७॥
तत सम्प्राप्य निधन जायत शूकर पुन। शूकरो जातमात्रस्तु रोगण म्रियत द्विजा॥७८॥
श्वा च वै जायते मूढ कर्मणा तन भो द्विजा। श्वा भूत्वा कृतकर्माऽसौ जायते मानुषस्तत॥७९॥
तत्रापत्य समुत्पाद्य मृतो जायत मूषिक। कृतघ्नस्तु मृतो विप्रा यमस्य विषय गत॥८०॥
यमस्य विषय क्रूरबद्ध प्राप्नोति वेदनाम। दण्डक मुद्गर शूलमग्निदण्ड च दारुणम्॥८१॥
असिपत्रवन घोर वालुका कटशाल्मलीम। एताश्चान्याश्च बहवो यमस्य विषय गता॥८२॥
यातना प्राप्य घोरास्तु ततो याति च भो द्विजा। ससारचक्रमासाद्य क्रिमियोनौ प्रजायते॥८३॥

जाकर फिर क्रमि-योनि मे उत्पन्न होता है। क्रमि योनि में वह चौदह मास तक जीवित रहता है॥७०॥ वहाँ जीव पाप-क्षय करके तब मनुष्य होता है। जो व्यक्ति पहले एक को कन्या देकर फिर दूसरे को देना चाहता है वह भी मरने पर क्रमि-योनि मे उत्पन्न होता है॥७१½॥ वहाँ तेरह वर्षों तक वह जीता है और पाप-क्षय हो जाने पर फिर मनुष्य हो जाता है॥७२½॥ जो मनुष्य देवकर्म पितृकर्म या देव पितरों का तर्पण बिना किये ही मर जाता है वह कौआ होता है। सौ वर्षों तक कौआ होकर फिर मुर्गा होता है॥७३ ७४॥ तदनन्तर साँप होकर फिर मनुष्य होता है। जो पिता के समान ज्येष्ठ भाई का अपमान करता है वह भी मरने पर क्राँकुल पक्षी होता है। दश वर्षों तक क्राँकुल होकर फिर चकोर होता है। तदनन्तर मनुष्य-योनि मे आता है॥७५ ७६॥ ब्राह्मणा के पास जाने वाला शूद्र क्रमि-योनि में उत्पन्न होता है। वहाँ से मरने पर फिर सूअर होता है। शूकर-योनि मे उत्पन्न होते ही वह रोग से मर जाता है॥७७ ७८॥ उस कर्म से वह मूर्ख कुत्ता होता है। उस योनि म अपना कर्म समाप्त कर वह मनुष्य होता है। वहाँ भी सन्तान उत्पन्न कर मरने के बाद चूहा होता है॥७९½॥ कृतघ्न व्यक्ति मरने पर यमलोक जाता है। वहाँ वह क्रूर यमदूता द्वारा बद्ध होकर कष्ट पाता है। दण्डक मुद्गर शूल भयकर अग्निदण्ड भयकर असिपत्रवन वालुका तथा कूटशाल्मली नामक नरकों की यातनायें तथा दूसर भी बहुत-स भयानक यातनायें पाकर वह फिर ससारचक्र को प्राप्त कर क्रमि योनि में उत्पन्न होता है॥८० ८३॥ पन्द्रह वर्षों तक उस योनि मे रहकर फिर गर्भ मे जाते ही वहीं मर जाता है।

---

[2]ख ०न। तत पापक्ष०। [3]ग ततो। [4]ग वारिक।

क्रिमिर्भवति वर्षाणि दश पञ्च च भो द्विजाः। ततो गर्भं समासाद्य तत्रैव म्रियते नरः[1] ॥८४॥
ततो गर्भशतैर्जन्तुर्बहुशः संप्रपद्यते। संसारान्सुबहून्गत्वा ततस्तिर्यक्प्रजायते ॥८५॥
ततो दुःखमनुप्राप्य बहुवर्षगणानि वै। स पुनर्भवसंयुक्तस्ततः कूर्मः प्रजायते ॥८६॥
दधि हृत्वा बकश्चापि[2] प्लवो मत्स्यानसंस्कृतान्। चोरयित्वा [3]तु दुर्बुद्धिर्मधुदंशः प्रजायते ॥८७॥
फलं वा मूलकं हृत्वा पूपं वाऽपि पिपीलिकः। चोरयित्वा तु निष्पावं जायते फलमूषकः[4] ॥८८॥
पायसं चोरयित्वा तु तित्तिरत्वमवाप्नुयात्। [5]हृत्वा पिष्टमयं[6] पूपं कुम्भोलूकः प्रजायते ॥८९॥
अपो हृत्वा तु दुर्बुद्धिर्वायसो जायते नरः। कांस्यं हृत्वा तु [7]दुर्बुद्धिर्हारीतो जायते नरः ॥९०॥
राजतं भाजनं हृत्वा कपोतः सम्प्रजायते। हृत्वा तु काञ्चनं भाण्डं कृमियोनौ प्रजायते ॥९१॥[8]
पत्रोर्णं चोरयित्वा तु [9]कुररत्वं नियच्छति। [10]कोशकारं ततो हृत्वा नरो जायेत नर्तकः[11] ॥९२॥
अंशुकं चोरयित्वा तु शुको जायेत मानवः। चोरयित्वा दुकूलं तु मृतो हंसः प्रजायते ॥९३॥
क्रौञ्चः कार्पासिकं हृत्वा मृतो जायेत मानवः। चोरयित्वा नरः पट्टं त्वाविकं चैव भो द्विजाः ॥९४॥
क्षौमं च वस्त्रमाहृत्य [12]शशो जन्तुः प्रजायते। [13]चूर्णं तु हृत्वा पुरुषो मृतो जायेत बर्हिणः ॥९५॥
हृत्वा रक्तानि वस्त्राणि जायते जीवजीवकः। वर्णकादींस्तथा गन्धांश्चोरयित्वेह मानवः ॥९६॥
छुच्छुन्दरित्वमाप्नोति विप्रो लोभपरायणः। तत्र जीवति वर्षाणि ततो दश च पञ्च च ॥९७॥
अधर्मस्य क्षयं कृत्वा ततो जायेत मानवः। चोरयित्वा पयश्चापि बलाका संप्रजायते ॥९८॥

तदनन्तर सैकड़ों गर्भों में वह इसी प्रकार जाता है। अनेकों बार जन्म लेकर वह पक्षीयोनि में उत्पन्न होता है। वहाँ बहुत वर्षों तक दुःख भोगकर फिर कछुआ होता है ॥८४-८६॥ दही चुराने वाला मनुष्य बगला होता है। असंस्कृत मछलियाँ चुराने वाला दुर्बुद्धि मनुष्य मधुमक्खी होता है ॥८७॥ फल-मूल या पूआ चुराने वाला चींटी होता है। सेम चुराने वाला गिलहरी होता है ॥८८॥ खीर चुराने वाला तीतर होता है। मालपूआ चुराने-वाला उल्लू होता है ॥८९॥ जल चुराने वाला मूर्ख मनुष्य कौआ होता है। काँसा चुराने वाला मूर्ख मनुष्य हारीत पक्षी होता है ॥९०॥ चाँदी का पात्र चुराने वाला कबूतर होता है। सुवर्णपात्र चुराने वाला कृमियोनि में उत्पन्न होता है ॥९१॥ रेशमी वस्त्र चुराने वाला कुरर पक्षी होता है। (रेशम का कीड़ा चुराने वाला नर्तक होता है) ॥९२॥ महीन वस्त्र चुराने वाला मनुष्य तोता होता है। दुकूल (चिकना और महीन वस्त्र) चुराने वाला व्यक्ति मरने पर हंस होता है ॥९३॥ सूतीवस्त्र चुराने वाला मनुष्य मरने पर क्रौंञ्च पक्षी होता है। ऊर्नी वस्त्र तथा रेशमीवस्त्र चुराने वाला खरगोश होता है। चूर्ण हरण करने वाला पुरुष मरने पर मयूर होता है ॥९४-९५॥ लाल-वस्त्र चुराने वाला मनुष्य चकोर होता है। गन्ध, चन्दन आदि चुराने वाला लोभी मनुष्य छछूंदर होता है। वहाँ पन्द्रह वर्षों तक रहकर अधर्मक्षय करके मनुष्य होता है ॥९६-९७½॥ दूध चुराने वाला बगली होता है ॥९८॥ जा

[1] ग शिशु। [2] क ०ते। आडिर्भूत्वा ब०। ख ०ते। अहिर्भूत्वा ब०। [3] ख ०पि ततो जायेत मानवः। चो०। [4] क तु वै मत्स्याञ्शुष्यदन्त प्र०। [5] क फलपोषकः। ग हल्गोलकः। [6] ख० त्वा पुष्प च पत्र घ कु०। [7] ख पुष्पमय। [8] क ०द्विकं- योनौ प्रजायते। रा०। [9] क ख कुक्कुटत्व। [10] ग कोशिका०। [11] ख मर्कटः। [12] क कोशो। ख हसो। [13] ग. वृक्ष।

यस्तु चोरयते तैलं नरो मोहसमन्वितः। सोऽपि विप्रा मृतो जन्तुस्तैलपायी प्रजायते ॥९९॥
अशस्त्रं पुरुषं हत्वा सशस्त्रः पुरुषाधमः। अर्थार्थं यदि वा वैरी मृतो जायेत वै खरः ॥१००॥
खरो जीवति वर्षे द्वे ततः शस्त्रेण वध्यते। स मृतो मृगयोनौ तु नित्योद्विग्नोऽभिजायते ॥१०१॥
मृगो विध्येत शस्त्रेण गते संवत्सरे ततः। हतो मृगस्ततो मीनः सोऽपि जालेन बध्यते ॥१०२॥
मासे चतुर्थे संप्राप्ते श्वापदः संप्रजायते। श्वापदो दश वर्षाणि द्वीपी वर्षाणि पञ्च च ॥१०३॥
ततस्तु निधनं प्राप्तः कालपर्यायचोदितः। अधर्मस्य क्षयं कृत्वा मानुषत्वमवाप्नुयात् ॥१०४॥
वाद्यं हृत्वा तु पुरुषो लोमशः संप्रजायते। तथा पिण्याकसंमिश्रमन्नं[1] यश्चोरयेन्नरः ॥१०५॥
स जायते बभ्रुसटो[2] दारुणो मूषिको नरः[3]। दशन्वै मानुषान्नित्यं पापात्मा स द्विजोत्तमाः ॥१०६॥
घृतं हृत्वा तु दुर्बुद्धिः काको मद्गुः प्रजायते। मत्स्यमांसमयो हृत्वा काको जायेत मानवः ॥१०७॥
लवणं चोरयित्वा तु चिरिकाकः प्रजायते। विश्वासेन तु निक्षिप्तं योऽपनिह्नोति मानवः ॥१०८॥
स गतायुर्नरस्तेन मत्स्ययोनौ प्रजायते। मत्स्ययोनिमनुप्राप्य मृतो जायेत मानुषः ॥१०९॥
मानुषत्वमनुप्राप्य [4]क्षीणायुरुपजायते। [5]पापानि तु [6]नरः कृत्वा तिर्यग्जायेत भो द्विजाः ॥११०॥
न चाऽऽत्मनः प्रमाणं तु धर्मं जानाति किंचन। ये पापानि नराः कृत्वा निरस्यन्ति व्रतैः[7] सदा ॥१११॥

मनुष्य मोहवश तेल चुराता है, वह भी तेल पीने वाला जीव होता है ॥९९॥ धन की इच्छा से या शत्रुता से जो नीच मनुष्य शस्त्र लेकर शस्त्रविहीन पुरुष को मारता है, वह मरने पर गधा होता है ॥१००॥ दो वर्षों तक गधा होकर शस्त्र द्वारा मारा जाता है और मरने के बाद मृगयोनि में जन्म लेकर नित्य उद्विग्न बना रहता है ॥१०१॥ एक वर्ष बीतने पर वह शस्त्र से मारा जाता है। तदनन्तर मछली होकर जाल में फँसता है ॥१०२॥ चार मास व्यतीत होने पर कुत्ता होता है। दस वर्षों तक कुत्ता होकर पाँच वर्षों तक बाघ होता है ॥१०३॥ तब काल की प्रेरणा से मृत्यु प्राप्त कर पापों का क्षय कर मनुष्य होता है ॥१०४॥ बाजा चुराने वाला बहुत रोएँ वाला जीव होता है। हींग मिश्रित अन्न चुराने वाला मनुष्य भूरे रंग के रोंगटों से युक्त भयंकर चूहा होता है। वह पापी मनुष्यों को नित्य काटता रहता है ॥१०५-१०६॥ घी चुराने वाला कौआ तथा मांगुर मछली होता है। मत्स्य-मांस चुराने वाला भी कौआ होता है। नमक चुराने वाला चिरकाल तक कौआ होता है। जो मनुष्य विश्वासपूर्वक रखे गये धरोहर को छिपा लेता है वह गतायु होकर मत्स्ययोनि में जन्म लेता है। मत्स्ययोनि के बाद मनुष्य होता है ॥१०७-१०९॥ मनुष्यत्व प्राप्त कर क्षीणायु होता है। पाप करने वाला मनुष्य पशु-योनि में जाता है और आत्मा के प्रमाण किसी धर्म को नहीं जानता है। जो नर पाप करता है तथा व्रतों से विमुख रहता है, वह सुख-दुःख का भोग करते हुए रोगी होता है। लोभ-मोह से युक्त तथा पापाचरण करने वाले

---

[1]ग. मज्जन चोर०। [2]ग. ०समो दा०। [3]क. ०र। दशको मशको नित्य। [4]क. क्षीणद्रव्य प्रजा०। [5]क. पानीय तु। [6]क. नरो हृत्वा। [7]ग. ०त्वा निजतापाय भो।

सुखदु खसमायुक्ता व्याधिमन्तो भवन्त्युत[1] । 'असवीता[2] प्रजायन्ते[3] इम्लेच्छाश्चापि न सशय ॥११२॥
नरा पापसमाचारा लोभमोहसमन्विता । वजयन्ति हि पापानि जन्मप्रभृति ये नरा ॥११३॥
अरोगा रूपवन्तश्च धनिनस्ते भवन्त्युत । स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन कृत्वा पापमवाप्नुयु ॥११४॥
एतेषामेव पापाना[4] भार्यात्वमुपयान्ति ता । प्रायण हरणे दोषा सव एव प्रकीर्तिता ॥११५॥
एतद्वै लेशमात्रेण कथित वो द्विजषभा । अपरस्मिन्कथायोग भूय श्रोष्यथ भो द्विजा ॥११६॥
एतन्मया महाभागा ब्रह्मणो वदत पुरा । सुरर्षीणा श्रुत मध्ये पृष्ट चापि यथा तथा ॥११७॥
मयाऽपि तुभ्य कार्त्स्न्येन यथावदनुवर्णितम । एतच्छ्रुत्वा मुनिश्रेष्ठा धर्मे कुरुत मानसम ॥११८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसवादे ससारचक्रनिरूपण नाम सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२१७॥

अथाष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अन्नदानप्रशसावर्णनम्

मुनय ऊचु

अधर्मस्य गतिर्ब्रह्मन्कथिता नस्त्वयाऽनघ । धर्मस्य च गति श्रोतुमिच्छामो वदता वर ॥१॥

मनुष्य मर्यादा के उल्लघन करने वाले म्लेच्छ होते हैं ॥११० ११२॥ जो मनुष्य जन्म से लेकर पाप नही करते हैं वे नारोग सुन्दर तथा धनी होते हैं। स्त्रिया भी इस प्रकार करके पापभागी बनती हैं ॥११३ ११४॥ प्राय इन्ही पापियो की स्त्री वे बनती हैं। प्राय करके ये दोषहरण के प्रकरण मे बतलाये गये हैं ॥११५॥ द्विजश्रेष्ठो ! यह तो दिग्दर्शनमात्र करा दिया गया है। दूसरे कथा प्रकरण म फिर आप सुनेंगे। महाभागो ! देवर्षियो के बीच ब्रह्मा के मुख से मैंने यह कथा सुनी थी। मैंने भी उसी प्रकार आप लोगो से निश्शेषतया वर्णन कर दी। मुनिश्रेष्ठो ! इसे सुनकर आप लोग धर्म मे मन को लगायें ॥११६ ११८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे व्यास और ऋषियो के सवाद प्रकरण म ससारचक्रनिरूपण नामक दो सौ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१७॥

अध्याय २१८

अन्नदान की प्रशसा का वर्णन

मुनियों न कहा— ब्रह्मन् ! निष्पाप ! आपने पाप की गति हम बतला दी। अब हे वक्ताओ मे श्रेष्ठ !

१ग ०त। स्वयत्राज्ञा प्र०। २ख असवासा। ३क ०न्ते स्वेच्छावातरधर्मिण। न०। ४क जन्तूनां।

कृत्वा पापानि कर्माणि कथं यान्त्यशुभां गतिम् । कर्मणा च कृतेनेह केन यान्ति शुभां गतिम् ॥२॥

व्यास उवाच

कृत्वा पापानि कर्माणि त्वधर्मवशमागतः । मनसा विपरीतेन निरयं प्रतिपद्यते ॥३॥
मोहादधर्मं यः कृत्वा पुनः समनुतप्यते । मन.समाधिसंयुक्तो न स सेवेत दुष्कृतम् ॥४॥
यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हते । तथा तथा शरीरं तु तेनाधर्मेण मुच्यते ॥५॥
यदि विप्राः कथयते विप्राणां धर्मवादिनाम् । ततोऽधर्मकृतात्क्षिप्रमपराधात्प्रमुच्यते ॥६॥
यथा यथा नरः सम्यगधर्ममनुभाषते । समाहितेन मनसा विमुञ्चति तथा तथा ॥७॥
भुजंग इव निर्मोकात्पूर्वभुक्तान्जहाति तान् । दत्त्वा विप्रस्य दानानि विविधानि समाहितः ॥८॥
मन समाधिसंयुक्तः स्वर्गति प्रतिपद्यते । दानानि तु प्रवक्ष्यामि यानि दत्त्वा द्विजोत्तमाः ॥९॥
नरः कृत्वाऽप्यकार्याणि ततो धर्मेण युज्यते । सर्वेषामेव दानानामन्नं श्रेष्ठमुदाहृतम् ॥१०॥
सर्वमन्नं प्रदातव्यमृजुना धर्ममिच्छता । प्राणा ह्यन्नं मनुष्याणां तस्माज्जन्तुः प्रजायते ॥११॥
अन्ने प्रतिष्ठिता लोकास्तस्मादन्नं प्रशस्यते । अन्नमेव प्रशंसन्ति देवर्षिपितृमानवाः ॥१२॥
अन्नस्य हि प्रदानेन स्वर्गमाप्नोति मानव. । न्यायलब्धं प्रदातव्य द्विजातिभ्योऽन्नमुत्तमम् ॥१३॥

धर्म की गति हम सुनना चाहते है। किन पापकर्मों के करने से जीव को अशुभ गति मिलती है और किस कर्म के करने से शुभ गति प्राप्त होती है ? ॥१-२॥

व्यास ने कहा—उलटे मन से पाप कर्मों को करके अधर्म के वश होकर मनुष्य नरक जाता है ॥३॥ जो मोहवश पाप करके मन की एकाग्रतापूर्वक पश्चात्ताप करता है, वह पापमार्गी नहीं होता ॥४॥ जैसे-जैसे उसका मन पाप की निन्दा करता है, वैसे-वैसे उसका शरीर अधर्म से मुक्त होता है ॥५॥ विप्रवृन्द ! यदि वह धर्मवादी ब्राह्मणों से अपना पाप बतला देता है तो अधर्मकृत अपराधों से वह शीघ्र मुक्त हो जाता है ॥६॥ जैसे-जैसे मनुष्य एकाग्र मन से ठीक-ठीक अपना अधर्म बतलाता है वैसे-वैसे पाप छूट जाता है ॥७॥ जैसे साँप केंचुली को छोड़ता है वैसे वह पापों को छोड़ देता है। ब्राह्मण को अनेक दान देकर मन की समाधि लगाकर वह स्वर्ग जाता है। द्विजश्रेष्ठो ! मैं उन दानों को बतलाऊँगा, जिन्हें देकर मनुष्य कुकर्म करने पर भी धर्मात्मा हो जाता है ॥८-९½॥ सब दानों में अन्नदान श्रेष्ठ कहा गया है। धर्म के इच्छुक व्यक्ति को निष्कपट भाव से अन्नदान करना चाहिये। अन्न ही मनुष्यों का प्राण है। उसी से जीव की उत्पत्ति होती है ॥१०-११॥ अन्न में समस्त लोक प्रतिष्ठित हैं। इसलिये अन्न प्रशस्त माना गया है। देव, ऋषि पितर तथा मनुष्य अन्न की ही प्रशंसा करते हैं ॥१२॥ अन्नदान करने से मानव स्वर्ग प्राप्त करता है। वेदपाठी ब्राह्मणों को प्रसन्न चित्त से न्याय-प्राप्त उत्तम अन्न देना चाहिये ॥१३॥ हर्षित मन से जो दस ब्राह्मणों को एक बार भी खिलाता है, वह पशुयोनि में

१ग ०णि स्वकर्म०। २ग ०दि वाक्य चरेद्विप्रा विप्राणा। ३क ख ०म्यगमुष०। ४क ख सुगतिं। ५क ख ०ते। प्रधानानि प्रव०। ६क ख ०प्यकर्माणि। ७क ०णि नहि पापेन यु०। ८ख अन्न चैव। ९क ख ०व। यावल्लभ्य प्र०।

स्वाध्यायसमुपेतेभ्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना । यस्य स्वन्नमुपाश्नन्ति 'ब्राह्मणाश्च सकृद्दश ॥१४॥
हृष्टेन मनसा' दत्त न स तिर्यग्गतिर्भवेत् । ब्राह्मणाना सहस्राणि दशाऽऽभोज्य द्विजोत्तमा ॥१५॥
नरोऽधर्मात्प्रमुच्येत पापेष्वभिरत सदा । भैक्षेणान्न' समाहृत्य विप्रो वेदपुरस्कृत ॥१६॥
'स्वाध्यायनिरते विप्रे दत्त्वेह सुखमेधते । 'अहिसन्ब्राह्मणस्वानि न्यायेन परिपाल्य च ॥१७॥
क्षत्रियस्तरसा प्राप्तमन्न यो वै प्रयच्छति । द्विजेभ्यो वेदमुख्येभ्य प्रयत सुसमाहित ॥१८॥
तेनापोहति धर्मात्मा दुष्कृत कर्म भो द्विजा । षड्भागपरिशुद्ध च कृषेर्भागमुपार्जितम् ॥१९॥
वैश्यो ददद्द्विजातिभ्य पापेभ्य परिमुच्यते । अवाप्य प्राणसदेह' 'कार्कश्येन 'समार्जितम् ॥२०॥
अन्न दत्त्वा द्विजातिभ्य शूद्र 'पापात्प्रमुच्यते । औरसेन बलेनान्नमर्जयित्वा विहिसक ॥२१॥
य प्रयच्छति विप्रेभ्यो न स दुर्गाणि सेवते । न्यायेनावाप्तमन्न तु नरो हर्षसमन्वित ॥२२॥
द्विजेभ्यो वेदवृद्धेभ्यो दत्त्वा पापात्प्रमुच्यते । अन्नमर्जस्कर लोके दत्त्वोर्जस्वी भवेन्नर ॥२३॥
सता पन्थानमावृत्य सर्वपापै प्रमुच्यते । दानविद्भि ''कृत पन्था येन यान्ति मनीषिण ॥२४॥
तेष्वप्यन्नस्य दातारस्तेभ्यो धर्म सनातन । सर्वावस्थ मनुष्येण न्यायेनान्नमुपार्जितम् ॥२५॥
कार्यो न्यायागत नित्यमन्न हि परमा गति । अन्नस्य हि प्रदानेन ''नरो याति परा गतिम् ॥२६॥

नही जाता है ॥१४½॥ द्विजश्रेष्ठो ! दश हजार ब्राह्मणो को खिलाकर मनुष्य सदा पापो मे निरत रहने पर भी अधर्म से मुक्त हो जाता है ॥१५½॥ वेदवेत्ता विप्र भिक्षावृत्ति से अन्न लाकर वेदाध्ययन मे रत ब्राह्मण को समर्पित कर सुख प्राप्त करता है ॥१६½॥ द्विजवृन्द ! जो क्षत्रिय ब्राह्मण के धन का अपहरण नही करता, बल्कि न्यायपूर्वक उसकी रक्षा करता है और पवित्र तथा सावधान होकर वेदवेत्ता ब्राह्मणो को अन्नदान देता है वह पापो का त्याग कर धर्मात्मा हो जाता है ॥१७ १८½॥ जो वैश्य खेती का छठा पवित्र भाग ब्राह्मणो को दे देता है वह पापो से मुक्त हो जाता है ॥१९½॥ जो शूद्र प्राणो तक लगाकर कठिनाई से अन्न उपार्जित कर ब्राह्मणो को दे देता है वह पापो से मुक्ति पा जाता है ॥२०½॥ जो हिंसक व्यक्ति अपनी छाती के बल से अन्न कमा कर विप्रो को देता है वह कष्टो को नही भोगता है ॥२१½॥ जो मनुष्य न्याय से प्राप्त अन्न वेदवेत्ता ब्राह्मणो को हर्षपूर्वक देता है उसे पाप से मुक्ति मिल जाती है ॥२२½॥ लोक मे बलवर्धक अन्न दान कर मनुष्य ओजस्वी होता है ॥२३॥ सत्पुरुषो के मार्ग का अनुसरण करने से मनुष्य अखिल पापो से मुक्त होता है। दानवेत्ताओं ने वह मार्ग बना दिया है जिस पर विद्वान् लोग चलते हैं ॥२४॥ अन्नदान करने वाले भी उन्ही मे से हैं। उनसे सनातन धर्म की रक्षा होती है। मनुष्य को किसी दशा मे न्याय से ही अन्न कमाना चाहिये। नित्य न्याय से प्राप्त अन्न ही परम गति है। अन्न प्रदान करने से नर परम गति को प्राप्त करता है ॥२५ २६॥ उसकी सब अभिलाषायें पूरी होती हैं।

१क ग ०णाना शत दश। २ख ०सा तस्य पवित्र च कुरु भरे०। ३ग भैक्षादन्न। स भैक्ष्यान्न घ स०। ४ग ०रता वि०। ५ख ०हिंसाया ब्राह्मणस्योप्याग दद्याच्च ब्राह्मण। ब०। ६क ह यदन्न सामुपार्जि०। ७ग कायक्लेश स०। ८ग समाहित०। ९क ०त। तनाान्न विशाप्मा स स्वर्गलोके महीयते। यान्न य०। १०ग कृत पुण्य यथायोग्य भवयुत। स सदा नप्रा०। ११क ०रोऽपधर्मान्न सेवन। स०।

सर्वकाममसमायुक्तः प्रेत्य चाप्यश्नुते सुखम्। एवं पुण्यसमायुक्तो नरः पापैः प्रमुच्यते॥२७॥
तस्मादन्नं प्रदातव्यमन्यायपरिवर्जितम्। यस्तु[1] प्राणाहूतीपूर्वमन्नं भुङ्क्ते गृही सदा॥२८॥
अवन्ध्यं दिवसं कुर्यादन्नदानेन मानवः। भोजयित्वा शतं नित्यं नरो वेदविदां वरम्॥२९॥
न्यायविद्धर्मविदुषामितिहासविदां तथा। न याति नरकं घोरं संसारं न च सेवते॥३०॥
सर्वकामसमायुक्तः प्रेत्य चाप्यश्नुते सुखम्। एवं[1] कर्मसमायुक्तो रमते विगतज्वरः॥३१॥
रूपवान्कीर्तिमांश्चैव धनवांश्चोपजायते[2]। एतद्वः सर्वमाख्यातमन्नदानफलं महत्॥
मूलमेतत्तु धर्माणां प्रदानानां च भो द्विजाः॥३२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे संसारचक्रेऽन्नदानप्रशंसावर्णनं नामाष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२१८॥

अथैकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

श्राद्धविधिवर्णनम्

मुनय ऊचुः

परलोकगतानां तु स्वकर्मस्थानवासिनाम्। तेषां श्राद्धं कथं ज्ञे (दे) यं पुत्रैश्चान्यैश्च बन्धुभिः॥१॥

मरने पर भी सुख मिलता है। इस प्रकार धर्म से युक्त मनुष्य पापों से मुक्त होता है॥२७॥ इसलिये अन्याय से रहित अन्न दान करना चाहिये। गृहस्थ को अग्नि में आहुति डाल कर अन्न खाना चाहिये॥२८॥ मनुष्य अन्नदान से दिन को अवन्ध्य (सफल) बनायें। जो मानव वेदवेत्ता, न्यायवेत्ता, धर्मवेत्ता तथा इतिहास-वेत्ताओं में श्रेष्ठ सौ मनुष्यों को नित्य भोजन कराता है, वह न तो घोर नरक में जाता है न जन्म ही लेता है॥२९-३०॥ उसकी समस्त कामनायें पूरी होती है। वह मरने के बाद भी सुख प्राप्त करता है। इस प्रकार कर्मयोगी मनुष्य व्यथारहित होकर रमण करता है और रूपवान्, कीर्तिमान् तथा धनवान् होता है। अन्नदान का यह महाफल मैंने वर्णन कर दिया। द्विजगण! यह धर्मों तथा दानों का मूल है॥३१-३२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के संवादप्रकरण में संसारचक्र में अन्नदान-प्रशंसा वर्णन नामक दो सौ अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त॥२१८॥

अध्याय २१९

श्राद्धविधि का वर्णन

मुनियों ने कहा—मृत्यु के उपरान्त अपने कर्मों से प्राप्त स्थानों में वास करने वाले जीवों का श्राद्ध उनके पुत्र तथा बन्धुवर्ग कैसे करें?॥१॥

१क. ख. ०न्यायेन विव०। २ग. ०स्तु ब्राह्मणपूर्वं हि भोक्तुमन्नं गृ०। ३क. ०व नर स०। ग. ०व खलु स०। ४ग. ०पपद्यते।

व्यास उवाच

नमस्कृत्य जगन्नाथं वाराहं लोकभावनम्। शृणुध्वं सम्प्रवक्ष्यामि श्राद्धकल्पं यथोदितम्॥२॥
पुरा कोकाजले 'मग्नान्पितॄनुद्धृतवान्विभुः। श्राद्धं कृत्वा तदा देवो यथा तत्र द्विजोत्तमाः॥३॥

पितर ऊचुः

किमर्थं ते तु कोकायां निमग्नाः पितरोऽम्भसि। कथं तेनोद्धृतास्ते वै वाराहेण द्विजोत्तम॥४॥
तस्मिन्कोकामुखे तीर्थे भुक्तिमुक्तिफलप्रदे। श्रोतुमिच्छामहे ब्रूहि परं कौतूहलं हि नः॥५॥

व्यास उवाच

त्रेताद्वापरयोः संधौ पितरो दिव्यमानुषाः। पुरा मेरुगिरेः पृष्ठे विश्वैर्देवैः सह स्थिताः॥६॥
तेषां समुपविष्टानां पितॄणां सोमसंभवा। कन्या कान्तिमती दिव्या पुरतः प्राञ्जलिः स्थिता॥
तामचुः पितरो दिव्या' ये तत्राऽऽसन्समागताः ॥७॥

पितर ऊचुः

काऽसि भद्रे प्रभुः को वा भवत्या वक्तुमर्हसि ॥८॥

व्यास उवाच

सा प्रोवाच पितॄन्देवान्कला' चान्द्रमसीति ह। प्रभुत्वे भवतामेव वरयामि यदीच्छथ॥९॥

व्यास ने कहा—लोकस्रष्टा जगत्पति तथा वराह (सूअर) रूप धारण करने वाले भगवान् को नमस्कार कर सुनिये। मैं यथाकथित-श्राद्धकल्प बतलाता हूँ। द्विजश्रेष्ठो ! प्राचीन काल में कोका नामक तीर्थ के जल में निमग्न पितरों का श्राद्ध कर भगवान् ने उनका उद्धार किया था॥२ ३॥

मुनियों ने कहा—द्विजश्रेष्ठ ! क्यों पितरलोग कोका के जल में निमग्न हुए ? कैसे वाराह रूप धारण कर भगवान् ने उस भुक्ति मुक्ति फलदायक कोकातीर्थ से पितरों का उद्धार किया ? हम सुनना चाहते हैं। कहिये हमें बड़ी उत्कण्ठा हो रही है॥४ ५॥

व्यास ने कहा—पहले त्रेता और द्वापर युग के संधिकाल में दिव्य मानव पितर सुमेरुपर्वत के पृष्ठ पर विश्वेदेवों के साथ बैठे हुए थे। उन बैठे हुए पितरों के समक्ष चन्द्रमा की कान्तिमती नामक कन्या अञ्जलि बाँध कर खड़ी हो गई। वहाँ जो पितर आये हुए थे उन्होंने उससे पूछा॥६ ७॥

पितरों ने कहा—भद्रे ! तुम कौन हो ? कौन तुम्हारा स्वामी है ? कहो॥८॥

व्यास ने कहा—कन्या कहने लगी—मैं चन्द्रमा की कन्या हूँ। स्वामी के विषय में यदि आप लोग चाहें तो मैं आप ही लोगों का वरण करूँ॥९॥ मेरा पहला नाम ऊर्जा है दूसरा स्वधा और कोका नाम तो

१ग. ०द्धान्पूर्वान्। श्राद्धान्यत्र ददौ दे०। २ग. देवा। ३क. ०वान्कन्ये चा०।

ऊर्जा 'नामास्ति प्रथमं स्वधा च तदनन्तरम् । भवद्भिश्चाद्यैव कृतं नाम कोकेति भाषितम् ॥१०॥
ते हि तस्या वचः श्रुत्वा पितरो दिव्यमानुषाः । तस्या मुखं निरीक्षन्तो न तृप्तिमधिजग्मिरे ॥११॥
विश्वेदेवाश्च ताञ्ज्ञात्वा कन्यामुखनिरीक्षकान्² । योगच्युतान्निरीक्ष्यैव विहाय त्रिदिवं³ गताः ॥१२॥
भगवानपि शीतांशुरूर्जां नापश्यदात्मजाम् । समाकुलमना दध्यौ क्व गतेति महायशाः ॥१३॥
स विवेद तदा सोमः प्राप्ता पितॄंश्च कामतः । तैश्चावलोकिता हार्दात्स्वीकृता च तपोबलात् ॥१४॥
ततः क्रोधपरीतात्मा पितॄञ्छशधरो द्विजाः । शशाप निपतिष्यध्वं योगभ्रष्टा विचेतसः ॥१५॥
यस्माददत्तां मत्कन्यां कामयध्व सुबालिशाः । यस्माद्वृतवती चेयं पतीन्पितृमती सती ॥१६॥
स्वतन्त्रा धर्ममुत्सृज्य तस्माद् भवतु निम्नगा । कोकेति प्रथिता लोके शिशिराद्रिसमाश्रिता ॥१७॥
इत्थं शप्ताश्चन्द्रमसा पितरो दिव्यमानुषाः । योगभ्रष्टा निपतिता हिमवत्पादभूतले ॥१८॥
ऊर्जा तत्रैव पतिता गिरिराजस्य विस्तृते⁴ । प्रस्थे तीर्थं समासाद्य सप्तसामुद्रमुत्तमम् ॥१९॥
कोका नाम ततो वेगान्नदी तीर्थशताकुला । प्लावयन्ती गिरेः शृङ्गं सर्पणात्तु सरित्स्मृता ॥२०॥
अथ ते पितरो विप्रा योगहीना महानदीम् । ददृशुः शीतसलिलां न विदुस्तां सुलोचनाम् ॥२१॥
ततस्तु गिरिराड्दृष्ट्वा पितॄंस्तांस्तु क्षुधार्दितान् । बदरीमादिदेशाथ धेनुं चैकां मधुस्रवाम् ॥२२॥

आज ही आप लोगों ने रख दिया है ॥१०॥ वे दिव्यमनुष्यशरीरधारी पितर उसका वचन सुनकर उसके मुखकी ओर ताकने लगे, पर तृप्त नहीं हुए ॥११॥ विश्वेदेव कन्या-मुख निरीक्षण करते हुए पितरों को योगभ्रष्ट समझकर उन्हें छोड़ कर स्वर्ग चले गये ॥१२॥ भगवान् चन्द्रमा भी अपनी पुत्री ऊर्जा को न देखकर चिन्तित हो गये और सोचने लगे, कि वह कहाँ चली गई ॥१३॥ तब चन्द्रमा ने जान लिया, कि वह कामवश पितरों के पास गई है। पितरों ने उसे प्रेम की दृष्टि से देखा है और तपोबल से स्वीकार भी कर लिया है ॥१४॥ तब क्रोध से आग-बबूला होकर चन्द्रमा ने पितरों को शाप दिया—'मूर्खो ! जिस लिये तुम मेरी असमर्पित कन्या की कामना करते हो इसलिये तुम योगभ्रष्ट तथा हृदयहीन होकर गिर पड़ोगे ॥१५॥ जिस लिये इस सती कन्या ने पिता वाली होती हुई भी स्वतन्त्र होकर धर्म का उल्लंघन करके पतियों का वरण किया इसलिये यह नदी हो जाय। हिमालय की आश्रित होकर यह लोक में कोका नाम से प्रख्यात हो' ॥१६-१७॥ इस प्रकार चन्द्रमा से अभिशप्त दिव्य मानव-पितर योग-भ्रष्ट होकर हिमालय की तराई में आ गिरे ॥१८॥ वहीं पर ऊर्जा भी गिरी। गिरिराज के विस्तृत प्रस्थान्त में वह सातों समुद्रों से जल लेकर उत्तम तीर्थ के रूप में परिणत हो गई। कोका नामक यह नदी सैकड़ों तीर्थों से युक्त तथा वेगवती हुई। पर्वत के शिखरों को प्लावित करते हुए बहने के कारण वह सरित् कहलायी ॥१९-२०॥ तदनन्तर उन योगभ्रष्ट पितरों ने शीतल जल वाली महानदी को देखा पर सुलोचना चन्द्रपुत्री को पहचाना नहीं। ॥२१॥ तब हिमालय ने भूख से पीड़ित उन पितरों को देखकर बेर के फल तथा मधु समान दूध देने वाली एक गाय उन्हें दी ॥२२॥ गिरिराज ने उनके पारण के निमित्त दिव्य मधुरूप दूध, कोका का जल तथा

१क ग ०मास्मि प्र०। २ख ०न्। अयोग्यां तां निरी०। ३क मागतां निरी०। ४ग. विस्तृते।

क्षीरं मधु च तद्दिव्यं कोकाम्भो बदरीफलम् । इदं गिरिवरेणैषां पोषणाय निरूपितम् ॥२३॥
तया वृत्त्या तु वसतां पितृणा मुनिसत्तमाः । दश वर्षसहस्राणि ययुरेकमहो यथा ॥२४॥
एवं लोके विपितरि तथैव विगतस्वधे । दैत्या बभूवुर्बलिनो यातुधानाश्च राक्षसाः ॥२५॥
ते तान्पितृगणान्दैत्या यातुधानाश्च वेगिताः । विश्वैर्देवैर्विरहितान्सर्वतः समुपाद्रवन् ॥२६॥
दैतेयान्यातुधानांश्च दृष्ट्वैवाऽऽपततो द्विजा । कोकातटस्थामुत्तुङ्गां शिलां ते जगृहू रुषा ॥२७॥
गृहीतायां शिलायां तु कोका वेगवती पितृन् । छादयामास तोयेन प्लावयन्ती हिमाचलम् ॥२८॥
पितृनन्तर्हितान्दृष्ट्वा दैतेया राक्षसास्तथा । बिभीतकं समारुह्य निराहारास्तिरोहिता ॥२९॥
सलिलेन विषीदन्त पितर क्षुद्भ्रमातुरा । विषीदमानमात्मानं समीक्ष्य सलिलाशयाः ॥
'जगुर्जनार्दनं देवं पितरः शरणं हरिम् ॥३०॥

मुनय ऊचुः

जयस्व गोविन्द जगन्निवास जयोऽस्तु नः[1] केशव[2] ते प्रसादात् ।
जनार्दनास्मान्सलिलान्तरस्थानुद्धर्तुमर्हस्यनघप्रताप[3] ॥३१॥
निशाचरैर्दारुणदर्शनैः प्रभो वरेण्य वैकुण्ठ वराह विष्णो ।
नारायणाशेषमहेश्वरेश[4] प्रयाहि भीतान्जय पद्मनाभ ॥३२॥

बदरीफल का प्रबन्ध कर दिया ॥२३॥ मुनिश्रेष्ठो! उस वृत्ति से निर्वाह करते हुए पितरो के दस हजार वर्ष एक दिन के समान बीत गए ॥२४॥ इस प्रकार लोक मे पितरों तथा स्वधा के न रहने से दैत्य तथा राक्षस बलवान् हो गये ॥२५॥ बली राक्षसो ने विश्वेदेवो से रहित पितरो के ऊपर सब ओर से आक्रमण कर दिया ॥२६॥ राक्षसो को देखते ही पितर गिर पडे। कोका के तट पर स्थित एक उत्तुग शिला को उन्होंने क्रोध से पकड लिया ॥२७॥ शिला को पकड लेने पर हिमालय को प्लावित करती हुई वेगवती कोका ने जल से पितरों को ढक दिया॥२८॥ पितरों को विलीन जानकर राक्षसवृन्द एव बहेडे के पेड के ऊपर चढ गये और बिना भोजन के छिप कर रहने लगे। जल मे भूख से आतुर तथा सीदित होते हुए जलाधार पितर अपने को कष्ट मे देखकर भगवान् जनार्दन की शरण मे गये और उनकी स्तुति करने लगे ॥२९-३०॥

पितरो ने कहा—गोविन्द! ससार मे निवास करने वाले! आपकी जय हो! केशव! आपकी कृपा से हमारी भी जय हो! जनार्दन! निष्कलक प्रताप वाले! जल के भीतर से हमारा उद्धार करें। भयकर दीखने वाले राक्षसों से हमे बचायें। प्रभो! श्रेष्ठ! वैकुण्ठ! वराह! विष्णो! नारायण! सबके प्रभु! महेश्वर!

१क ग जग्मुर्ज०। २ख ते। ३ख ०व सप्रसीद। ज०। ४ग ०प्रभाव। नि०। ५क ख प्रजाहितार्थं चय।

उपेन्द्र योगिन्मधुकैटभघ्न विष्णो अनन्ताच्युत वासुदेव ।
श्रीशाङ्गचक्राम्बुजशङ्खपाणे रक्षस्व देवेश्वर राक्षसेभ्यः ॥३३॥
त्वं पिता[1] जगतः शंभो नान्यः शक्तः प्रबाधितुम् । निशाचरगणं भीममतस्त्वां शरणं गताः ॥३४॥
त्वन्नामसंकीर्तनतो निशाचरा द्रवन्ति भूतान्यपयान्ति[2] चारयः ।
नाशं तथा संप्रति यान्ति विष्णो धर्मादि सत्य[3] भवतीह मुख्यम् ॥३५॥

व्यास उवाच

इयं स्तुतः स पितृभिर्धरणीधरस्तु तुष्टस्तदाऽऽविष्कृतदिव्यमूर्तिः ।
कोकामुखे पितृगणं सलिले निमग्नं देवो ददर्श शिरसाऽथ शिलां वहन्तम् ॥३६॥
तं दृष्ट्वा सलिले मग्नं क्रोडरूपी जनार्दनः । भीतं पितृगणं विष्णुरुद्धर्तुं[4] मतिरादधे ॥३७॥
दंष्ट्राग्रेण समाहत्य शिलां चिक्षेप शूकरः । पितॄनादाय च विभुरुज्जहार[5] शिलातलात् ॥३८॥
[6]वराहदंष्ट्रासंलग्ना. पितरः कनकोज्ज्वला. । कोकामुखे गतभयाः [7]कृता देवेन विष्णुना ॥३९॥
उद्धृत्य च पितृन्देवो विष्णुतीर्थे[8] तु शूकरः । ददौ समाहितस्तेभ्यो[9] विष्णुर्लोहार्गले[10] जलम् ॥४०॥

प्रयाण कीजिये तथा डरे हुए (राक्षसो) को जीतिये। नाभि मे कमल धारण करने वाले! इन्द्र के छोटे भाई! योगी! मधु-कैटम नामक राक्षसो को मारने वाले! विष्णु! अनन्त! अच्युत! वासुदेव! धनुष, चक्र, कमल तथा शख हाथो मे धारण करने वाले! देवो के ईश्वर! राक्षसो से हमारी रक्षा करें! कल्याण करने वाले! आप ससार के पिता हैं। बिना आपके कोई नही भयानक राक्षस-समूह को मार सकता है। अत हम लाग आपकी शरण मे आये हैं। आपके नाम लेने से ही दैत्यगण भाग जाते हैं, (दुष्ट) प्राणी अलग हो जाते हैं तथा शत्रुसमूह विनष्ट हो जाते हैं। विष्णो! यहाँ धर्म आदि सत्य ही मख्य हैं ॥३१-३५॥

व्यास ने कहा—इस प्रकार पितरो द्वारा स्तुत होने पर धरणीधर भगवान् सतुष्ट हो गये और दिव्यमूर्ति धारण कर कोका के जल मे डूबे हुए तथा शिर पर शिला को ढोते हुए पितरो की ओर देखने लगे ॥३६॥ वराह-रूपी जनार्दन भगवान् पितरो को जल मे निमग्न देखकर उन्हे उसमे से निकालने के लिए सोचने लगे ॥३७॥ शूकर रूपी भगवान् ने अपने दाँतो के अग्रभाग से शिला को तोडकर शिलातल से पितरो को निकाला ॥३८॥ वराह के दाँतो मे सलग्न एव सुवर्ण के समान चमकने वाले पितरो को भगवान् विष्णु ने कोकातीर्थ मे भयरहित कर दिया ॥३९॥ शूकर रूपधारी विष्णु ने पितरों का उद्धार कर विष्णुतीर्थ मे सावधान होकर लोहे के अर्गल मे उन्हें जल दिया ॥४०॥ तब अपने रोओ से उत्पन्न कुशों को लेकर केशव ने अपने पसीनो से तिल उत्पन्न किया,

---

१ग धाता। २ क ख. ०न्यपि या०। ३ग सर्वं भ०। ४ग ०द्धर्तुमुपचक्रमे। द। ५ख ग ०र रसात०। ६ग. ०हृदेहस०। ७ग. हृता। ८ग ०र्थेन शू०। ९ख ०स्तेभ्यस्तिल्लोमागते ज०। १०ग ०हातुल ज०।

तत स्वरोमसभूतान्कुशानादाय केशव । स्वेदोद्भवास्तिलाश्चैव चक्रे' चोल्मुकमुत्तमम ।।४१।।
ज्योति सूर्यप्रभ कृत्वा पात्र तीर्थं च कामिकम् । स्थित 'कोटिवटस्याधो धारि गङ्गाधर शुचि' ।।४२।।
तुङ्गकूटात्समादाय यज्ञीयानोषधीरसान् । मधुक्षीररसान्गन्धान्पुष्पधपानुलेपनान् ।।४३।।
आदाय धेनु सरसो रत्नान्यादाय चार्णवात् । दष्ट्रयोल्लिख्य धरणीमभ्युक्ष्य सलिलेन च ।।४४।।
धर्मोद्भवेनोपलिप्य कुशैरुल्लिख्य ता पुन । 'परिणीयोल्मुकेनैनामभ्युक्ष्य च पुन पुन ।।४५।।
कुशानादाय प्रागग्राल्लोमकूपान्तरस्थितान् । ऋषीनाहूय पप्रच्छ करिष्ये पितृतर्पणम ।।४६।।
तैरप्युक्ते कुरुष्वेति विश्वान्देवास्ततो विभु । आहूय मन्त्रतस्तेषा विष्टराणि ददौ प्रभु ।।४७।।
आहूय मन्त्रतस्तेषां वेदोक्तविधिना हरि । अक्षतैर्देवतारक्षा चक्रे चक्रगदाधर ।।४८।।
अक्षतास्तु' यवौषध्य सर्वदेवांशसभवा' । रक्षन्ति सर्वत्र' दिशो रक्षाय निर्मिता हि ते ।।४९।।
देवदानवदैत्येषु यक्षरक्ष सु चैव हि । नहि कश्चित्क्षय तेषा कर्तु शक्तश्चराचरे ।।५०।।
'न केनचित्कृत (क्षता) यस्मात्तस्मात्ते ह्यक्षता कृता । देवाना ते हि रक्षार्थं नियुक्ता विष्णुना पुरा ।।५१।।
'कुशगन्धयवैं पुष्पैरर्घ्यं कृत्वा च शूकर । विश्वेभ्यो देवेभ्य इति ततस्तान्पर्यपृच्छत ।।५२।।

एक उत्तम अगार को सूर्य के समान प्रभा से युक्त किया इच्छानुसार तीर्थ को पात्र बनाया और कोटि वट वृक्ष के नीचे स्थित होकर गगा को धारण करने वाला पवित्र जल उत्पन्न किया। फिर वे पर्वत के शिखरो पर से यज्ञीय ओषधियाँ मधु दूध गन्ध पुष्प, धूप तथा चन्दन ले आए।।४१ ४३।। सरोवर से धेनु तथा समुद्र से रत्न ले आए। दाँतो से पृथ्वी पर रेखा खीच कर जल से उसे अभिषिक्त किया फिर उसे लीपकर कुशों से रेखा खींच कर पसीने से उत्पन्न प्रणीता-पात्र के जल से उसे बार-बार अभिषिक्त किया।।४४ ४५।। अपने लोम-कूप के भीतर स्थित कुशो के अग्रभाग को पूर्वाभिमुख कर ऋषियो को बुलाकर उनसे कहा कि मैं पितृतर्पण करूगा।।४६।। उन्होंने भी कहा कि कीजिए। तब विश्वेदेवो को बुलाकर विभु ने मन्त्र पढकर उन्हे आसन दिया।।४७।। वेदोक्त विधि से मन्त्रोच्चारण पूर्वक उन्हे बुलाकर चक्र-गदा धारी हरि ने अक्षतो से देवताओ की रक्षा की ।।४८।। यव तथा ओषधियाँ अक्षत हैं। निखिल देवो के अश से इनकी उत्पत्ति हुई है।।४९।। सब जगह दिशाओं की रक्षा निमित्त इनका निर्माण हुआ है।।४९।। देव दानव दैत्य यक्ष राक्षस तथा चराचरो मे इनका नाश कोई नहीं कर सकता।।५०।। किसी ने इनका नाश नही किया इसलिये इनका नाम अक्षत पडा। पहले देवताओ की रक्षा के लिए विष्णु ने इन्हे नियुक्त किया था।।५१।। शूकर रूपधारी विष्णु ने कुश गन्ध यव पुष्प तथा अर्घ लेकर विश्वेदेवो से कहा कि मैं जितने दिव्य देह धारी तथा मनुष्य-शरीर धारी पितर हैं उन सबको बुलाऊँगा? उन्होंने

१ख ०क श्लोक०। २क ०टितट०। ३ख ख ०चि। उग्रकूटे समा०। ४क ०नैव तानभ्यु०। ५क ०तास्त्वथ चौष०। ६क ०देवास्थिस०। ७ख सव त्रिदशा र०। ८क नतेन चाक्षित। ख० न तेन चाक्षत। ९ग ०धमयं पु०।

पितॄनावाहयिष्यामि ये दिव्या ये च मानुषाः। आवाहयस्वेति च तैरुक्तस्त्वावाहये(य) च्छुचिः[1] ॥५३॥
श्लिष्टमूलाग्रदर्भास्तु 'सतिलान्वेद वेदवित्। जानावारोप्य हस्तं तु 'ददौ सव्येन चाऽऽसनम् ॥५४॥
तथैव जानुसंस्थेन करेणैकेन तान्पितॄन्'। 'वाराहः पितृविप्राणामायान्तु' न इतीरयन्' ॥५५॥
अपहतेत्युवाचैव रक्षणं चापसव्यतः। कृत्वा चाऽऽवाहनं चक्रे पितॄणां नामगोत्रतः ॥५६॥
तत्पितरो(पितरोऽत्र) मनोजराना) चा आ(गच्छत इतीरयन्(?)। संवत्सरैरित्युदीर्य ततोऽर्घ्यं तेषु विन्यसेत् ॥५७॥
यास्तिष्ठन्त्यमृता वाचो' यन्मेति' च पितुः पितु.। यन्मे ''पितामहेत्येवं ददावर्घ्यं पितामहे'' ॥५८॥
यन्मे प्रपितामहेति'' ददौ च प्रपितामहे''। कुशगन्धतिलोन्मिश्रं सपुष्पमपसव्यतः ॥५९॥
तद्वन्मातामहेभ्यस्तु विधिं चक्रे जनार्दनः। तानर्च्य भूयो गन्धाद्यैर्धूपं दत्त्वा तु ''भक्तितः ॥६०॥
आदित्या वसवो रुद्रा इत्युच्चार्य जगत्प्रभुः। ततश्चान्नं समादाय ''सर्पिस्तिलकुशाकुलम् ॥६१॥
विधाय'' पात्रे'' तच्चैव पर्यपृच्छत्ततो मुनीन्। अग्नौ करिष्य इति तैः कुरुष्वेति च चोदितः ॥६२॥
''आहुतित्रितयं ''दद्यात्सोमायाग्नेर्यमाय च। ये मामकेति च जपेद्यजुः सप्तकमच्युतम् ॥६३॥

कहा—'बुलाओ'। तब वेदवेत्ता हरि ने पवित्र होकर घुटने पर हाथ रखकर तिलयुक्त कुशों के मोटक (मोड़े) पितरों को आसन रूप मे दिये। घुटने पर एक हाथ रखे ही वाराह ने 'आयान्तु न.' यह मन्त्र पढ़कर 'अपहता' यह मन्त्र भी जनेऊ को दाहिने कंधे पर रख कर पढ़ा। तब पितरो के नाम-गोत्र उच्चारण कर 'तत्पितरो मनोजरा-नागच्छत, सवत्सरै.' यह पढकर आवाहन किया। 'यास्तिष्ठन्त्यमृता वाचो यन्मेति च पितु' इस मन्त्र से पिता को अर्घ दिया। 'यन्मे पितामह' इस मन्त्र से पितामह को अर्घ दिया ॥५२-५८॥ 'यन्मे प्रपितामह' इस मन्त्र से प्रपितामह को दिया। अपसव्य होकर (जनेऊ दाहिने कंधे पर रखकर) कुश, गन्ध, तिल तथा पुष्प दिये ॥५९॥ इसी प्रकार मातामह आदि को भी जनार्दन ने सब कुछ दिया। पुन गन्ध आदि से उनकी पूजा कर भक्तिपूर्वक धूप देकर जगत्स्वामी विष्णु ने 'आदित्या वसवो रुद्राः' इस मन्त्र का उच्चारण किया। तब एक पात्र मे अन्न, घी, तिल तथा कुश रखकर मुनियों से निवेदन किया कि मैं अग्नि में आहुति दूगा। उन्होने कहा—दीजिये' ॥६०-६२॥ तब वाराह ने चन्द्रमा, अग्नि तथा यम के लिये तीन आहुतियाँ डाली। 'ये मामक' इस मन्त्र का जप किया। हवन

१क. ०चि। शिष्ट०। २क. ०सलिलाद्वेदवाचिन। जा० ख सलिलाद्येन वेनचित्। ३क ०दौ चाऽऽवाहनास०। ख ०दौ चव्य सनातन०। ४क. ख ०न्। आप्याययन्तु पितर सयवास्तिलवर्हिषा। वा। ५ग ०राहोऽपि त्रिवि०। ६क. ख ०माप्याययन्त्विती०। ७क. ०न्। सवत्सरेति दत्त्वार्घं ततोऽर्घं चा०। ख न्। सवत्सरे ततो दीर्घं तेपु तेपु च स०। ८ ०न्मे पितुस्तत्पितुश्च तत्। तन्मे। ९ग ०ति पितृतत्पितु। १०ग ०महीत्ये०। ११क. ०हेऽप्येव दद्यादर्घ्यं समाहित। कु०। १२ग ०महीति। १३ख ०महम्। कु०। १४क. ख. दाक्तित। १५क. ०शान्वितम्। १६ग विधाय। १७ख ग ०त्रेणान्येन प०। १८ख ०तिमिश्चच द०। १९ख. ०मायेति मया०।

हुतावशिष्ट च ददौ नामगोत्रसमन्वितम् । त्रिराहुतिकमेकैकं पितरं तु प्रति द्विजा ॥६४॥
अतोऽवशिष्टमन्नाद्य पिण्डपात्रे[1] तु निक्षिपेत् । ततोऽन्न सरस स्वादु ददौ पायसपूर्वकम् ॥६५॥
प्रत्यग्रमेकदा[2] स्विन्नमपर्युषितमुत्तमम् । अल्पशाक बहुफल षड्रसममृतोपमम् ॥६६॥
यद्ब्राह्मणेषु प्रददौ पिण्डपात्रे पितॄंस्तथा। वेद (देव) पूर्वं पितृस्व (ष्व) न्नमाज्यप्लुत मधूक्षितम्॥६७॥
मन्त्रित पृथिवीत्येव [3]मधुवातातृच जगौ । भुञ्जानेषु तु विप्रेषु जपन्वै मन्त्रपञ्चकम् ॥६८॥
[4]यत्ते प्रकारमारभ्य [5]नाधिक' ते ततो जगौ । त्रिमधु त्रिसुपर्णं च बृहदारण्यक तथा ॥६९॥
जजाप वैधा जाप्य तु सूक्त सौर सपौरुषम् । भुक्तवत्सु च विप्रेषु पृष्ट्वा तृप्ता स्थ [6]इत्युत ॥७०॥
तृप्ता स्मेति [7]सकृत्तोय ददौ मौनविमोचनम् । पिण्डपात्र [8]समादाय च्छायायै प्रददौ तत ॥७१॥
[9]सा तदन्न द्विधा कृत्वा त्रिधैकैकमथाकरोत् । वाराहो भूमयोल्लिख्य समाच्छाद्य[10] कुशैरपि ॥७२॥
दक्षिणाग्रान्कुशान्कृत्वा[11] तेषामुपरि चाऽऽसनम् । सतिलेषु समूलेषु कुशेष्वेव तु सश्रय ॥७३॥
गन्धपुष्पादिक कृत्वा तत पिण्ड तु भक्तित । पृथिवी [12]दधीरित्युक्त्वा तत पिण्ड (पित्रे) प्रदत्तवान् ॥७४॥

पितामहा [13]प्रपितामहास्तथेति (?) चान्तरिक्षत । मातामहानामप्येव ददौ पिण्डान्स शूकर ॥७५॥

वे अवशिष्ट पदार्थ भी पितरो के नाम गोत्र उच्चारण करके दे दिये। एक एक पितर के प्रति तीन-तीन आहुतियाँ दी। तब अवशिष्ट अन्न आदि को पिण्डपात्र मे रख कर सरस तथा सुस्वादु खीर एवम् अन्न दिये ॥६३-६५॥ नया, ताजा तथा उत्तम शाक, अनेक फल, अमृत के समान छहो प्रकार के रस ब्राह्मणों को खिलाये तथा पिण्डपात्र मे पितरों को प्रदान किये। अन्न को घी तथा मधु से सिक्त एवम् 'पृथिवी' इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कर दिया। 'मधुवाता' इस ऋचा का भी पाठ किया ॥६६-६७½ ॥ ब्राह्मणो को भोजन कराते समय 'यत्ते प्रकारम्, नाधिकम्' त्रिमधु, त्रिसुपर्णम् बृहदारण्यकम्' इन पाँच मन्त्रों का जप किया ॥६८ ६९॥ फिर 'सहस्र शीर्षा इत्यादि पुरुष सूक्त का पाठ किया। ब्राह्मणों के भोजन कर लेने पर उनसे पूछा— आप तृप्त तो हुए ?' 'हम तृप्त हैं'—ऐसा ब्राह्मणो के कहने पर उन्हें जल दिया और पिण्डपात्र उठाकर छाया को दे दिया ॥७०-७१॥ छाया ने उस अन्न के दो भाग किये और फिर एक-एक के तीन भाग किये। वाराह ने भूमि पर रेखा खीचकर कुशा से उसे आच्छादित कर दिया ॥७२॥ कुशा के अग्र भागो को दक्षिण की ओर करके उनके ऊपर आसन दिया। मूल तथा तिल से युक्त कुशो के ऊपर गन्ध, पुष्प आदि रखकर भक्ति से पिण्ड दिया। 'पृथिवी दधी' यह पढ़ कर पिता को पिण्ड दिया ॥७३-७४॥ पितामह तथा प्रपितामह को भी उसी प्रकार पिण्ड दिया। वाराह ने मातामह आदि को भी उसी प्रकार पिण्ड दिया ॥७५॥ पिण्ड के उच्छिष्ट अन्न को लेप भाग खाने वाले पितरों को दिया।

१क ख ०त्रेपु नि०। २क ०दाऽप्यन्नमासाद्य त मधूक्षि०। ३ग ०वात ततो ज०। ४ग यत। ५ग नाचिकेत त०। ६ख ०धिकान्ते त०। ७ग इत्यत। ८ख ग ०वृद्देवो द०। ९क ०य मधुवाता जगौ त०। १०क ख त। ११ख ग समुत्सृज्य। १२ग ०शादत्त्वा। १३ख दस्युरि० । १४ख ०हास्तुप्येषान्तररक्षित।

पिण्डनिर्वापणोच्छिष्टमन्नं लेपभुजेष्वदात् । एतद्वः पितरित्युक्त्वा ददौ वासांसि भक्तितः ॥७६॥
'द्व्यङ्गुलजानि शुक्लानि धौतान्यभिनवानि' च । गन्धपुष्पादिकं दत्त्वा कृत्वा चैषां प्रदक्षिणाम् ॥७७॥
आचम्याऽऽचमयेद्विप्रान्पैत्रानादौ तत सुरान् । 'ततस्त्वभ्युक्ष्य तां भूमिं दत्त्वाऽपः सुमनोक्षतान् ॥७८॥
सतिलाम्बु पितृष्वादौ दत्त्वा देवेषु साक्षतम्' । अक्षय्यं नस्त्वित्ति पितॄन्प्रीयतामिति' देवताः ॥७९॥
प्रीणयित्वा परावृत्य निर्जपेच्चाघमर्षणम् । ततो निवृत्य तु 'जपेद्यन्मे नाम इतीरयन्' ॥८०॥
गृहान्न' पितरो दत्त धनधान्यप्रपूरितान् । अर्घ्यपात्राणि पिण्डानामन्तरे' स' पवित्रकान्' (?) ॥८१॥
निक्षिप्योर्जं वहन्तीति कोकातोयमयोऽजपत् । हिमक्षीरं मधुतिलान्पितॄणां तर्पणं ददौ ॥८२॥
स्वस्तीत्युक्ते पैतृकैस्तु सोराह्ले ग्नावतर्पयन्(?) । रजतं दक्षिणां दत्त्वा विप्रान्देवो गदाधरः ॥८३॥
सविभाग मनुष्येभ्यो ददौ स्वदिति'' चाब्रुवन् । कश्चि(च्चि)त्संपन्नमि(त्यु)क्त्वा प्रत्युक्तस्तैर्द्विजोत्तमाः ॥८४॥

अभिरम्यतामित्युवाच प्रोचुस्तेऽभिरताः स्म वै । शिष्टमन्नं च पप्रच्छ तैरिष्टं सह चोदितः ॥८५॥
पाणावादाय तान्विप्रान्कुर्यादनुगतस्त''(तं त)दा । वाजे वाजे इति ''पठन्बहिर्वेदि विनिर्गत ॥८६॥
कोटितीर्थजलेनासावपसव्यं समुत्क्षिपन् । ''अलग्नान्विपुलान्वालान्प्रार्थयामास चाशिषम् ॥८७॥
दातारो नोऽभिवर्धन्तां तैस्तथेति समीरित । प्रदक्षिणमुपावृत्य कृत्वा पादाभिवादनम् ॥८८॥

'एतद्व पित' इस मन्त्र से भक्तिपूर्वक दो अंगुल प्रमाण स्वच्छ तथा नवीन वस्त्र दिये। फिर गन्ध, पुष्प आदि देकर प्रदक्षिणा की ॥७६-७७॥ तदनन्तर स्वयं आचमन किया और ब्राह्मणों तथा देवताओं को आचमन कराया। तब भूमि को जल से सिक्त कर पितरों तथा देवताओं को जल पुष्प, अक्षत तथा तिल दिया। फिर 'अक्षय्य न अस्तु' इससे पितरों को और 'प्रीयताम्' इससे देवताओं को जल दिया ॥७८-७९॥ जल देकर तीन बार 'अघमर्षण' मन्त्र का जप किया। तदनन्तर 'यन्मे' इसका पाठ किया ॥८०॥ 'गृहान्न कोकातोयम्' इसका भी जप किया। दूध, मधु तथा तिल से पितरों का तर्पण किया ॥८१-८२॥ गदाधारी हरि ने ब्राह्मणों को दक्षिणा में चाँदी देकर उनसे स्वस्तिवाचन करवाया। 'स्वदत्' यह पढ़कर मनुष्यों को भाग दिया। भाग्य से सम्पन्न हो गया यह कहकर हरि ने ब्राह्मणों से विराम करने को कहा। उन्होंने उत्तर दिया—'हम विराम कर रहे हैं। तब अवशिष्ट अन्न को हाथ में उठाकर ब्राह्मणों को दे दिया। 'वाजे वाजे' यह पढ़ते हुए हरि वेदी के पास से उठकर बाहर आये। करोड़ों तीर्थों के जल में अपने विपुल बालों को फेंक कर अपसव्य होते हुए आशीर्वाद के लिये 'दातारो' इस मन्त्र से पितरों की प्रार्थना की। फिर प्रदक्षिणा करके उनकी चरणवन्दना की ॥८३-८८॥ वाराह ने उन्हें

१क ख द्विगुणेयानि। २ख ०न्यप्यजिनानि। ३क तत मुप्रोक्षितां। ४क ख ०म्। आदिप्तमिति। ५क ख ०तुन्वै प्रीय०। ६क ०पेद्येन मेनामिती०। ७ख ०न्। धारान्नपितरो दत्तधारान्नप्रददौ तत। अ०। ग ०न्। धीराघ। पितरो द्वावीरान्प्रददौ तत। अ०। ८क ०नामितरे। ९ख समविप्रकाम्। राजतं। १०क ०न्। राजतं। ११क. ०दितमीरयन्। १२क ख ०नुमत०। १३ग. ०ठन्नन्तर्वे। १४ग ०लान्धानान्प्रा०।

आसनानि ददौ चैषां छादयामास शूकरः । विश्राम्यतां[1] प्रविश्याथ पिण्डं जग्राह मध्यमम् ॥८९॥
छायामयी मही पत्नी तस्यै पिण्डमदात्प्रभुः । आधत्त पितरो गर्भमित्युक्त्वा साऽपि रूपिणी ॥९०॥
पिण्डं गृहीत्वा विप्राणां चक्रे पादाभिवन्दनम् । विसर्जनं पितॄणां स कर्तुकामश्च शूकरः ॥९१॥
कोका च पितरश्चैव प्रोचुः स्वार्थकरं वचः । शप्ताश्च भगवन्पूर्वं दिवस्था हिमभानुना ॥९२॥
योगभ्रष्टा भविष्यध्वं सर्वं एव दिवश्च्युताः । तदेव भवता त्राताः प्रविशन्तो रसातलम् ॥९३॥
योगभ्रष्टांश्च [2]विश्वेशास्तत्यजुर्योगरक्षिणः । तत्ते भूयोऽभिरक्षन्तु विश्वे देवा हि नः सदा ॥९४॥
स्वर्गं यास्यामश्च विभो प्रसादात्तव शूकर । सो (य)मोऽधिदेवोऽस्माकं च भवत्वच्युत योगधृक् ॥९५॥
योगाधारस्तथा सोमस्त्रायते न कदाचन । दिवि भूमौ [3]सदा वासो भवत्वस्मासु योगतः ॥९६॥
अन्तरिक्षे च [4]केषाचिन्मासं पुष्टिस्तथाऽस्तु नः । ऊर्जा चेयं हि नः पत्नी स्वधानाम्ना तु विश्रुता ।[4]९७॥
भवत्वेषैव योगाढ्या योगमाता च खेचरी । इत्येवमुक्तः पितृभिर्वाराहो भूतभावनः ॥९८॥
प्रोवाचाथ पितॄन्विष्णुस्तां च कोकां महानदीम् । यदुक्तं तु भवद्भिर्मे सर्वमेतद्भविष्यति ॥९९॥
यमोऽधिदेवो भवतां सोमः स्वाध्याय ईरितः । अधियज्ञस्तथैवाग्निर्भवतां कल्पना त्वियम् ॥१००॥
अग्निर्वायुश्च सूर्यश्च स्थानं हि भवतामिति । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च भवतामधिपूरुषाः ॥१०१॥

आसन देकर विश्राम करने को कहा। तदनन्तर प्रभु ने गृह मे प्रवेश कर बीच के पिण्ड को उठा लिया और अपनी स्त्री छायामयी पृथ्वी को दे दिया। सुन्दरी छाया ने भी 'आधत्त पितरो गर्भम्' यह कहकर पिण्ड को ग्रहण किया और ब्राह्मणो की चरणवन्दना की। तब वराह ने पितरो का विसर्जन करना चाहा ॥८९-९१॥ उस समय कोका और पितर स्वार्थयुक्त वचन कहने लगे—'भगवन्! पहले स्वर्ग मे रहने वाले चन्द्रमा ने हम शाप दिया था कि तुम लोग योगभ्रष्ट होकर स्वर्गच्युत हो जाओगे। सो इस प्रकार पाताल म प्रवेश करने से हमे आपने बचा लिया। योगरक्षक विश्वेदेव ने हमे योगभ्रष्ट समझकर छोड दिया था सो अब विश्वेदेव पुन सतत हमारी रक्षा करें ॥९२-९४॥ विभो! आपकी कृपा से फिर हम स्वग जाँय। अच्युत! योगधारण करने वाले चन्द्रमा हमारे अधिनायक हो। योग के आधार चन्द्रमा सतत हमारी रक्षा करें। योगबल से सदा हम पृथ्वी पर तथा स्वर्ग मे वास करें ॥९५-९६॥ कुछ मासो तक आकाश मे हमारा पोषण हो। स्वधा नाम से प्रख्यात यह ऊर्जा हमारी पत्नी है। यही योग से सम्पन्न होकर आकाशचारिणी योगमाता हो' ॥९७॥ पितरो के इतना कहने पर सृष्टिकर्ता वराहरूपधारी विष्णु पितरो तथा महानदी कोका से कहने लगे—'आपने जो कुछ मुझसे कहा है, वह सब होगा ॥९८-९९॥ आप के यम देवता, चन्द्रमा स्वाध्याय और अग्नि यज्ञ होगे। आपकी कल्पना तो यही है न? ॥१००॥ अग्नि, वायु तथा सूर्य आपका स्थान होगे। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आपके पूर्व पुरुष कहलायेंगे ॥१०१॥ सूर्य, वसु तथा रुद्र आपकी मूर्तियाँ कहलायेंगे। आप योगी, योगशरीरधारी, योगाधार तथा सुव्रती

१क. विश्रम्य। २ग. ०जुर्यन र०। ३क. ख. ०दाऽध्यासो। ४क. केनापि सा सा पु०।

आदित्या वसवो रुद्रा भवतां मूर्तयस्त्विमाः । योगिनो योगदेहाश्च योगधाराश्च सुव्रताः ॥१०२॥
कामतो विचरिष्यध्वं फलदाः सर्वजन्तुषु । स्वर्गस्थान्नरकस्थांश्च भूमिस्थांश्च चराचरान् ॥१०३॥
निजयोगबलेनैवाऽऽप्याययिष्वध्वमुत्तमाः । इयमूर्जा शशिसुता कीलालमधुविग्रहा ॥१०४॥
भविष्यति महाभागा दक्षस्य दुहिता स्वधा[1] । तत्रेयं[2] भवतां पत्नी भविष्यति वरानना ॥१०५॥
[3]कोकानदीति विख्याता गिरिराजसमाश्रिता । [4]तीर्थकोटिमहापुण्या मद्रूपपरिपालिता ॥१०६॥
अस्यामद्य प्रभृति वै निवत्स्याम्यघनाशकृत् । वराहदर्शनं पुण्यं पूजनं[5] भुक्तिमुक्तिदम् ॥१०७॥
कोकासलिलपानं च महापातकनाशनम् । [6]तीर्थेष्वाप्लवनं पुण्यमुपवासश्च स्वर्गदः ॥१०८॥
दानमक्षय्यमुदितं जन्ममृत्युजरापहम् । माघे मास्यसिते[7] पक्षे भवद्भिरुडुपक्षये ॥१०९॥
कोकामुखमुपागम्य स्थातव्यं दिनपञ्चकम् । तस्मिन्काले तु[8] यः श्राद्धं पितॄणां निर्वपिष्यति ॥११०॥
प्रागुक्तफलभागी स भविष्यति न संशयः । एकादशीं द्वादशीं च स्थेयमत्र मया सदा ॥१११॥
यस्तत्रोपवसेद्धीमान्स प्रागुक्तफलं लभेत् । तद्व्रजध्वं महाभागाः स्थानमिष्टं यथेष्टतः ॥११२॥
अहमप्यत्र वत्स्यामीत्युक्त्वा सोऽन्तरधीयत । गते वराहे पितरः कोकामामन्त्र्य ते ययुः ॥११३॥

होकर स्वेच्छा से विचरण करेंगे और समस्त जीवों को फल देंगे ॥१०२३॥ आप स्वर्ग में, पृथ्वी पर तथा नरक में रहने वाले समस्त चराचरों को अपने योगबल से समृद्ध करेंगे। यह चन्द्रमा की पुत्री ऊर्जा, जिसका शरीर जल तथा मधु का है, दक्ष की महाभाग्यवती तथा स्वधा नाम से प्रख्यात कन्या होगी। वहीं पर यह सुमुखी आपकी पत्नी होगी ॥१०३-१०५॥ *यह हिमालय के अधीन होकर कोकानदी नाम से विख्यात होगी और करोड़ो तीर्थ के* समान पुण्यदायक एवम् मेरे रूप से सुरक्षित होगी ॥१०६॥ आज से लेकर मैं इसमें निवास करूँगा और लोगों के पापों का नाश करूँगा। वराह के दर्शन तथा पूजन पुण्यकारक तथा भोग-मोक्ष-दायक हैं ॥१०७॥ कोका का जल पान करने से महापापों का नाश होता है। तीर्थों में स्नान पुण्यकारक एवम् उपवास स्वर्गदायक माना जाता है। ॥१०८॥ *कभी नष्ट न होने* वाला दान तो अक्षय्य तथा जन्म, मृत्यु एवम् बुढ़ापे का नाश करने वाला होता है। माघ मास के कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा के क्षय होने पर आप लोग कोका तीर्थ में आकर पाँच दिन ठहरेंगे ॥१०९३॥ उन दिनों जो यहाँ पितरों का श्राद्ध करेगा, वह निःसन्देह पूर्वकथित फल का भागी होगा ॥११०३॥ एकादशी और द्वादशी तिथि को मैं यहाँ सदा रहूँगा। जो बुद्धिमान् मनुष्य उन तिथियों में यहाँ उपवास करेगा, वह पूर्वकथित फल प्राप्त करेगा ॥१११३॥ महाभागो ! इस लिये आप लोग स्वेच्छा से अपने वाछित स्थान को जाइये। मैं भी यहाँ निवास करूँगा।' इतना कहकर भगवान् अन्तर्हित हो गये ॥११२३॥ वराह के विलीन हो जाने पर पितर लोग कोका से विदाई लेकर चले गये। कोका भी तीर्थों के साथ हिमालय पर रहने लगी। पृथ्वीमयी छाया ने, जिसने शूकरी का

१ख ०धा। आत्रेयदुहिता प०। २ख दुहिता। ३ख ०का नाम्ना च वि०। ४क ०टिवहा। ५ख. पूजया। ख. पूजाया तु विमु०। ६क ०र्थेष्वल्प तथा दानमु० । ७क मासेऽसि०। ख मासि सि० ८क ख. नरोत्तम. ए०।

कोकाऽपि तीर्थसहिता सस्थिता गिरिराजनि। छाया महीमयी क्रोडो पिण्डप्राशनबृहिता ॥११४॥
'गर्भमादाय सश्रद्धा वाराहस्यैव सुन्दरी। ततोऽस्या' प्राभवत्पुत्रो भौमस्तु नरकासुर ॥'
प्राग्ज्योतिष च नगरमस्य दत्त च विष्णुना ॥११५॥

एव मयोक्त वरदस्य विष्णो कोकामुखे दिव्यवराहरूपम।
श्रुत्वा नरस्त्यक्तमलो विपाप्मा दशाश्वमेधेष्टिफल लभेत ॥११६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासऋषिसवादे श्राद्धविधिनिरूपण
नामैकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२१९॥

अथ विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्याय.

श्राद्धकल्पवर्णनम्

मुनय ऊचु

भूय प्रब्रूहि भगवञ्श्राद्धकल्प सुविस्तरात। कथ क्व च कदा केषु [4]कैस्तदब्रूहि तपोधन ॥१॥

व्यास उवाच

श्रृणुध्व मुनिशार्दूला श्राद्धकल्प सुविस्तरात। यथा यत्र यदा [5]येषु यद्र[5]यैस्तद्वदाम्यहम ॥२॥

रूप बनाकर पिण्ड का भक्षण किया था श्रद्धापूर्वक वाराह ही का गर्भ धारण किया। तदनन्तर छाया के नरकासुर भौम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। विष्णु ने उसे प्राग्ज्योतिष नामक नगर (आधुनिक गोहाटी) दिया। इस प्रकार मैंने वरदायक विष्णु के कोकातीर्थ मे दिव्यवराह रूप धारण करने का कारण बतला दिया। जो इस आख्यान को सुनेगा वह निमल तथा पापरहित होकर दस अश्वमेघ यज्ञो का फल प्राप्त करेगा ॥११३ ११६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे व्यास और ऋषियो के सवाद प्रकरण मे श्राद्धविधिनिरूपण नामक दो सौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२१९॥

अध्याय २२०

श्राद्धकल्प का वर्णन

मुनियों ने कहा—भगवन ! पुन श्राद्धकल्प को विस्तार से बतलाइये। तपोधन ! कैसे कहाँ किस समय किन स्थानो म तथा किन द्रव्यों से श्राद्ध करना चाहिये वह बताइए ॥१॥

व्यास ने कहा—मुनिश्रेष्ठो ! आप लोग श्राद्धकल्प को विस्तारपूर्वक सुनिये। जिस प्रकार जहाँ जब जिन स्थानो म तथा जिन द्रव्यो से श्राद्ध करना चाहिये वह मैं बतलाता हूँ ॥२॥ कुरुधर्मों को मानने वाले ब्राह्मण

१ग ०य सस्पर्शाद्विरा०। २ख ०स्यामम०। ३ग ०रकोऽसु०। ४क कैस्तु ब्रूहि। ५क येन।

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः [1]श्राद्धं स्ववरणोदितम् । [2]कुलधर्ममनुतिष्ठद्भिर्दातव्यं मन्त्रपूर्वकम् ॥३॥
स्त्रीभिर्वर्णावरैः [3]शूद्रैर्विप्राणामनुशासनात्[4] । अमन्त्रकं विधिपूर्वं [5]वह्नियागविवर्जितम् ॥४॥
पुष्करादिषु तीर्थेषु पुण्येष्वायतनेषु च[6] । शिखरेषु गिरीन्द्राणां पुण्यदेशेषु भो द्विजाः ॥५॥
सरित्सु पुण्यतोयासु नदेषु च सरःसु च । संगमेषु नदीनां च समुद्रेषु च सप्तसु[7] ॥६॥
स्वनुलिप्तेषु गेहेषु स्वेष्वनुज्ञापितेषु च । दिव्यपादपमूलेषु यज्ञियेषु ह्रदेषु च ॥७॥
श्राद्धमेतेषु दातव्यं वर्ज्यमेतेषु चोच्यते । किरातेषु कलिङ्गेषु कोङ्कणेषु[8] कृमिष्वपि ॥८॥
दशार्णेषु कुमार्येषु तङ्गणेषु क्रथेष्वपि[9] । सिन्धोरुत्तरकूलेषु नर्मदायाश्च दक्षिणे ॥९॥
पूर्वेषु करतोयाया[10] न देयं श्राद्धमुच्यते । श्राद्धं देयमुशन्तीह मासि[11] मास्युडुपक्षये ॥१०॥
पौर्णमासेषु (?) श्राद्धं च [12]कर्तव्यमृक्षगोचरे । नित्यश्राद्धमदैवं च [13]मनुष्यैः सह गीयते ॥११॥
नैमित्तिकं सुरैः सार्धं नित्यं नैमित्तिकं तथा । [14]काम्यान्यन्यानि श्राद्धानि प्रतिसंवत्सरं द्विजे ॥१२॥
वृद्धिश्राद्धं च कर्तव्यं जातकर्मादिकेषु [15]च । तत्र [16]युग्मान्द्विजानाहुर्मन्त्रपूर्वं तु वै द्विजाः ॥१३॥
कन्यां गते सवितरि दिनानि दश पञ्च च[17] । पूर्वेणैवेह विधिना श्राद्धं तत्र विधीयते ॥१४॥

क्षत्रिय तथा वैश्य अपने वर्णधर्मानुसार मन्त्रपूर्वक श्राद्ध करें ॥३॥ स्त्री तथा वर्णों में नीच शूद्र ब्राह्मणों की आज्ञा से बिना मन्त्र के अग्नि तथा यज्ञ से रहित विधिपूर्वक श्राद्ध करे ॥४॥ द्विजवृन्द ! पुष्कर आदि तीर्थों में, पवित्र भवनों में, पर्वतों के शिखरों पर, पवित्र देशों में, पवित्र जलवाली नदियों, नदों, सरोवरों, नदियों के संगमों, सातों समुद्रों के किनारे, अच्छी तरह लीपे-पोते हुए अपने घरों में या आज्ञा लेकर दूसरे के घरों में, दिव्य वृक्षों के मूलों में, यज्ञिय स्थानों में तथा झीलों के पास श्राद्ध करना चाहिये। अब कहाँ नहीं करना चाहिये, वह बतलाता हूँ ॥५-७½॥ किरातदेश, कलिंगदेश, कोंकणदेश, कृमिदेश, दशार्णदेश, कुमार्यदेश, तंगणदेश, क्रथदेश, सिन्धु नदी से उत्तर, नर्मदा से दक्षिण तथा करतोया से पूर्व देशों में श्राद्ध नहीं देना चाहिये ॥८-९½॥ प्रत्येक मास में चन्द्रक्षय होने पर श्राद्ध देना चाहिये। पूर्णिमा को नक्षत्रगोचर होने पर श्राद्ध करना चाहिये। मनुष्यों के साथ जो किया जाता है। वह नित्यश्राद्ध तथा अदैव श्राद्ध कहलाता है ॥१०-११॥ देवताओं के साथ होने वाला श्राद्ध नैमित्तिक कहलाता है। अन्य जो प्रतिवर्ष श्राद्ध किये जाते हैं, वे काम्य कहलाते हैं। द्विजों को जातकर्म आदि संस्कारों में वृद्धिश्राद्ध अर्थात् नान्दीश्राद्ध करना चाहिये। वहाँ दो-दो ब्राह्मणों को बुलाना चाहिये ॥१२-१३॥ कन्याराशि में सूर्य के प्रवेश करने पर पन्द्रह दिनों तक पूर्वकथित विधान से ही श्राद्ध करना चाहिये ॥१४॥ प्रतिपदा में श्राद्ध करने से धन

१क ०द्धं कार्यं यथोदि०। २ग ०धर्माण (य) मनुजैर्दा०। ३क ग ०द्रैर्देयं विप्रानु०। ४क ०त्। समन्त्रकविधिं वाऽपि क०। ग. ०त्। वह्निवर्जं तु पूर्ववद्वह्नि०। ५क ग ०ह्निपात्रवि०। ६ग वा। ७ग. ०सु। अनु०। ८ख. ०षु क्रमिष्व०। ९ग कुदेष्वपि। १०क. ख. ०याया न। ११क ख मासे मासे च पक्षयो। पौ०। प०। १२ख. ०र्तव्य चक्षुगो०। १३ख ०नुना पारिगी०। १४ग. ०म्यान्येतानि। १५क. ख वै। १६ख ०हुर्मातृपू०। १७ग. च पावणेनेह।

प्रतिपद्धनलाभाय द्वितीया द्विपदप्रदा। पुत्रार्थिनी तृतीया तु चतुर्थी शत्रुनाशिनी ॥१५॥
श्रियं[1] प्राप्नोति पञ्चम्यां षष्ठ्यां पूज्यो[2] भवेन्नरः। गणाधिपत्यं सप्तम्यामष्टम्यां बुद्धिमुत्तमाम्[3] ॥१६॥
स्त्रियो नवम्यां[4] प्राप्नोति दशम्यां पूर्णकामताम्। वेदांस्तथाऽऽप्नुयात्सर्वानेकादश्यां क्रियापरः ॥१७॥
द्वादश्यां [5]जयलाभं च प्राप्नोति पितृपूजकः। प्रजावृद्धिं पशुं मेधां स्वातन्त्र्यं पुष्टिमुत्तमाम् ॥१८॥
दीर्घायुरथवैश्वर्यं कुर्वाणस्तु त्रयोदशीम्। अवाप्नोति न संदेहः श्राद्धं[6] [7]श्रद्धासमन्वितः ॥१९॥
यथासंभविनाऽन्नेन श्राद्धं श्रद्धासमन्वितः। युवानः पितरो यस्य मृताः शस्त्रेण वा हताः ॥२०॥
तेन कार्यं चतुर्दश्यां तेषां तृप्तिमभीप्सता। श्राद्धं कुर्वन्नमावास्यां यत्नेन पुरुषः शुचिः ॥२१॥
सर्वान्कामानवाप्नोति स्वर्गं चानन्तमश्नुते। अतःपरं मुनिश्रेष्ठाः शृणुध्वं वदतो मम ॥२२॥
पितॄणां प्रीतये यत्र[8] यद्देयं प्रीतिकारिणा[9]। मासं तृप्तिः पितॄणां तु हविष्यान्नेन जायते ॥२३॥
मासद्वयं मत्स्यमांसैस्तृप्तिं यान्ति पितामहाः। त्रीन्मासान्हारिणं मांसं विज्ञेयं पितृतृप्तये ॥२४॥
पुष्णाति चतुरो मासाञ्शशस्य पिशितं पितॄन्। शाकुनं[10] पञ्च वै मासान्षण्मासाञ्शूकरामिषम् ॥२५॥
छागलं सप्त वै मासानैणेयं चाष्टमासकान्। करोति तृप्तिं नव वै रुरुमांसं न संशयः ॥२६॥

लाभ होता है, द्वितीया में सन्तान, तृतीया मे पुत्र, चतुर्थी में शत्रुनाश, पञ्चमी मे लक्ष्मी-प्राप्ति, षष्ठी मे सम्मान, सप्तमी मे गणो का आधिपत्य, अष्टमी मे उत्तम बुद्धि, नवमी मे स्त्री और दशमी मे मनोरथ पूर्ण होता है। एकादशी को श्राद्धक्रिया मे तत्पर व्यक्ति समस्त वेदो का ज्ञान प्राप्त करता है ॥१५-१७॥ द्वादशी मे श्राद्ध करने वाला व्यक्ति विजय प्राप्त करता है। त्रयोदशी मे श्रद्धा से श्राद्ध करने वाला व्यक्ति निःसंदेह प्रजा, पशु, बुद्धि, स्वतन्त्रता, उत्तम पुष्टि, दीर्घायु तथा ऐश्वर्य प्राप्त करता है ॥१८-१९॥ जिसका पितर युवावस्था मे ही मर गया हो या शस्त्रो से आहत होकर मर गया हो, वह यदि पितर की तृप्ति चाहे तो यथासभव अन्न से चतुर्दशी मे श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करे ॥२०½॥ अमावास्या मे पवित्र होकर यत्नपूर्वक श्राद्ध करने से मनुष्य की समस्त अभिलाषायें पूरी होती हैं और वह अनन्त काल तक स्वर्ग में सुख करता है। मुनिश्रेष्ठो! अब इसके बाद प्रीतिपूर्वक श्राद्ध करने वाले मनुष्य को पितरो की तृप्ति के लिये क्या देना चाहिये, वह मुझसे सुनिये ॥२१-२२½॥ हविष्यान्न से पितरो को एक मास तक तृप्ति मिलती है। मत्स्य-मांसो से दो मासो तक तृप्ति मिलती है। हिरण के मास से पितरो को तीन मास तक तृप्ति मिलती है। खरगोश के मास से पितरो को चार मास तक तृप्ति मिलती है ॥२३-२४॥ पक्षी के मांस से पाँच मास तक और शूकर के मांस से छह मास तक तृप्ति मिलती है ॥२५॥ बकरे के मास से सात मास तक और हरिण के मांस से आठ मास तक तृप्ति मिलती है। कृष्णमृग का मास निःसन्देह नौ मास तक तृप्ति देता है

१ख. स्त्रियः। २क श्रेष्ठो। ३ख ०म्। सप्तम्यां श्रियमाप्नोति वार्यंप्रदाऽष्टमी मता। स्त्रि०। ४ख ०म्यां पशुमाप्नो०। ५ख. पुत्रलाभ। ६क. ख. श्राद्धे। ७क. ख. ०द्वापरो नरः। घ०। ८क. ग. यच्च प्रदेयं। ९ग ०कारणम्। मा०। १०क. शाकुन्त।

'गव्यं 'मांसं पितृतृप्तिं करोति दशमासिकीम्। तथैकादश मासांस्तु औरभ्रं पितृतृप्तिदम्॥२७॥
संवत्सरं तथा गव्यं पयः पायसमेव च। वार्ध्रीनसा(र्घीणसा) मिषं लोहं कालशाकं तथा मधु'॥२८॥
रोहितामिषमन्नं च दत्तान्यात्मकुलोद्भवैः। अनन्तं वै प्रयच्छन्ति तृप्तियोगं सुतांस्तथा॥२९॥
पितॄणां नात्र संदेहो गयाश्राद्धं च भो द्विजाः। यो ददाति गुडोन्मिश्रांस्तिलान्वा श्राद्धकर्मणि॥३०॥
मधु वा मधुमिश्रं वा अक्षयं सर्वमेव तत्'। अपि नः' स कुले' भूयाद्यो नो 'दद्याज्जलाञ्जलिम्॥३१॥
पायसं मधुसंयुक्तं वर्षासु च मघासु च। एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्॥३२॥
गौरीं वाऽप्युद्वहेत्कन्यां' नीलं वा वृषमुत्सृजेत्। कृत्तिकासु पितॄनर्च्य स्वर्गमाप्नोति मानवः॥३३॥
अपत्यकामो रोहिण्यां सौम्ये तेजस्वितां लभेत्। शौर्यमार्द्रासु चाऽऽप्नोति क्षेत्राणि च पुनर्वसौ॥३४॥
पुष्ये' तु धनमक्षय्यमाश्लेषे'' चाऽऽयुरुत्तमम्। मघासु च प्रजां पुष्टिं सौभाग्यं फाल्गुनीषु च॥३५॥
प्रधानशीलो भवति सापत्यश्चोत्तरासु च। प्रयाति श्रेष्ठतां शास्त्रे हस्ते श्राद्धप्रदो नरः॥३६॥
रूपं तेजश्च चित्रासु तथाऽपत्यमवाप्नुयात्। वाणिज्यलाभदा स्वाती'' विशाखा पुत्रकामदा॥३७॥

पुत्रता चानुराधासु ता दद्युश्चक्रवर्तिताम । आधिपत्य च ज्येष्ठासु मूले चाऽऽरोग्यमुत्तमम् ॥३८॥
आषाढासु यश प्राप्तिरुत्तरासु विशोकता[1] । श्रवणेन शुभाँल्लोकान्धनिष्ठासु धन[2] महत ॥३९॥
वदवित्त्वमभिजिति भिषग्सिद्धि च वारुणे । अजाविक प्रौष्ठपद्या [3]वि ददगावस्त (श्च त) थोत्तरे ॥४०॥
रवतीषु तथा कुप्यमश्विनीषु तुरङ्गमान । श्राद्ध कुर्वंस्तथाऽऽप्नोति भरणीष्वायुरुत्तमम ॥४१॥
एव फलमवाप्नोति ऋक्षष्वतषु तत्त्ववित् । तस्मात्काम्यानि [4]श्राद्धानि देयानि विधिवद्द्विजा ॥४२॥
कन्याराशिगत भूर्ये फलमत्यन्तमिच्छता । या यान्कामानभिध्याय कन्याराशिगत रवौ ॥४३॥
श्राद्ध कुर्वन्ति मनुजास्तास्ता कामाँल्लभन्ति ते । नान्दीमुखाना कतव्य कन्याराशिगते रवौ ॥४४॥
पौणमास्यां तु कतव्य वाराहवचन यथा । दिव्यभौमान्तरिक्षाणि स्थावराणि चराणि च ॥४५॥
पिण्डमिच्छन्ति पितर कन्याराशिगते रवौ । कन्या गते सवितरि यान्यहानि तु षोडश ॥४६॥
ऋतुभिस्तानि तुल्यानि दवो नारायणोऽब्रवीत । राजसूयाश्वमेधाभ्या य इच्छेद्दुलभ फलम ॥४७॥
अप्यम्बुशाकमलाद्य पितॄन्कन्यागतऽर्चयेत । उत्तराहस्तनक्षत्रगत तीक्ष्णांशुमालिनि ॥४८॥
[5]योऽर्चयत्स्वपितॄन्भक्त्या तस्य वासस्त्रिविष्टपे । हस्तक्षग दिनकर पितृराजानुशासनात ॥४९॥

मे स्वामित्व तथा मूल मे उत्तम आरोग्य की प्राप्ति होती है। पूर्वाषाढ में यश की प्राप्ति तथा उत्तराषाढ में शोकनाश होता है। श्रवण म शुभलोक तथा धनिष्ठा मे बहुत धन मिलता है ॥३८ ३९॥ अभिजित् मे श्राद्ध करने से मनुष्य वेदवेत्ता होता है। शतभिषा मे वैद्यक की सिद्धि होत है। पूर्वभाद्रपद मे भेडे तथा बकरे का लाभ होता है। उत्तरभाद्रपद मे गौ का लाभ होता है। रेवती मे वस्ते (धातु) की प्राप्ति होती है। अश्विनी म घोडा की प्राप्ति होता है। भरणी मे श्राद्ध करनेवाला व्यक्ति उत्तम आयु प्राप्त करता है ॥४० ४१॥ इन नक्षत्रो मे श्राद्ध करनेवाला तत्त्ववेत्ता मनुष्य इस प्रकार फल प्राप्त करता है। द्विजवृन्द! इसलिये काम्य श्राद्ध करना चाहिये ॥४२॥ अत्यन्त फल के इच्छुक मनुष्य सूय के कन्याराशि म प्रवेश करने पर श्राद्ध करे। कन्या राशि म सूय के जाने पर मनुष्य (मन म) जो जो कामनाय रखकर श्राद्ध करता है वह सब कामनायें उसकी पूरी होती हैं ॥४३½॥ सूय के कन्याराशि मे जाने पर पौणमासी को नान्दीमुख श्राद्ध करना चाहिये जैसा कि वाराह ने कहा है ॥४४½॥ सूय के कन्याराशिगत हाने पर स्वग मे पृथ्वी पर स्थावर जगम—जिस किसी भी रूप मे रहते हुए पितर पिण्ड चाहते हैं। नारायण भगवान् का कहना है कि सूय के कन्याराशिगत होने पर जो सोलह दिन होते हैं वे यज्ञ तुल्य हैं। जो राजसूय तथा अश्वमेध के दुलभ फल की इच्छा करता है वह सूय के कन्याराशिगत होने पर जल शाक मूल आदि से पितरो की पूजा करे ॥४५ ४७½॥ उत्तराषाढ तथा हस्त मे सूर्य के प्रवेश करने पर जो भक्ति से पितरों की पूजा करता है उसका वास स्वग मे होता है ॥४८½॥ हस्त नक्षत्र मे सूर्य के प्रवेश करने पर यमराज की आज्ञा से पितरों का नगर तब तक शून्य रहता है जब तक वृश्चिक राशि का दर्शन नहीं

१ख विशोषत । २क ख ०मान्कामाश्च० । ३क विद्विपस्तु तथो । ख विद्वपस्तु तथो० । ४क ख ०नि कन्यानि द्विजोत्तमा । क० । ५ख ०येच्च पि० ।

तावत्पितृपुरी शून्या यावद्वृश्चिकदर्शनम् । वृश्चिके समतिक्रान्ते पितरो दैवतं सह ॥५०॥
'निःश्वस्य प्रतिगच्छन्ति शापं दत्त्वा सुदुःसहम्' । अष्टकासु च कर्तव्यं श्राद्धं मन्वन्तरासु वै ॥५१॥
अन्वष्टकासु क्रमशो मातृपूर्वं तदिष्यते । ग्रहणे च व्यतीपाते 'रविचन्द्रसमागमे ॥५२॥
जन्मर्क्षे ग्रहपीडायां श्राद्धं पार्वणमुच्यते । अयनद्वितये श्राद्धं विषुवद्वितये तथा ॥५३॥
संक्रान्तिषु च कर्तव्यं श्राद्धं विधिवदुत्तमम् । एषु कार्यं द्विजाः श्राद्धं पिण्डनिर्वपणावृतं ॥५४॥
वैशाखस्य तृतीयायां" नवम्यां कार्तिकस्य च । श्राद्धं कार्यं तु शुक्लायां सक्रान्तिविधिना नरैः ॥५५॥
त्रयोदश्यां भाद्रपदे माघे' चन्द्रक्षयेऽहनि । श्राद्धं कार्यं' पायसेन" दक्षिणायनवच्च' तत् ॥५६॥
यदा च श्रोत्रियोऽभ्येति गेहं वेदविदग्निमान् । तेनैकेन च कर्तव्यं श्राद्धं विधिवदुत्तमम् ॥५७॥
श्राद्धीयद्रव्यसम्प्राप्तिर्यदा" स्यात्साधुसमना । पार्वणेन विधानेन श्राद्धं कार्यं तथा द्विजैः ॥५८॥
प्रतिसंवत्सरं कार्यं "मातापित्रोर्मृतेऽहनि । पितृव्यस्याप्यपुत्रस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य चैव हि ॥५९॥
पार्वणं देवपूर्वं स्यादेकोद्दिष्टं सुरैर्विना । द्वौ दैवे "पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ॥६०॥
मातामहानामप्येवं' सर्वमूहेन कीर्तितम् । प्रेतीभूतस्य सततं भुवि पिण्डं जलं तथा ॥६१॥

सतिलं सकुशं दद्याद्बहिर्जलसमीपतः। तृतीयेऽह्नि च कर्तव्यं प्रेतास्थिचयनं द्विजैः ॥६२॥
दशाहे ब्राह्मणः शुद्धो द्वादशाहेन क्षत्रियः[1]। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ॥६३॥
'सूतकान्ते गृहे श्राद्धमेकोद्दिष्टं प्रचक्षते[2]'। 'द्वादशेऽहनि मासे च त्रिपक्षे च ततः परम् ॥६४॥
मासि मासि च कर्तव्यं यावत्संवत्सरं द्विजाः। ततः परतरं कार्यं सपिण्डीकरणं क्रमात्[3] ॥६५॥
कृते सपिण्डीकरणे पार्वणं[4] प्रोच्यते पुनः। ततः प्रभृति निर्मुक्ताः प्रेतत्वात्पितृतां गताः ॥६६॥
अमूर्ता मूर्तिमन्तश्च पितरो द्विविधाः स्मृताः। नान्दीमुखास्त्वमूर्ताः स्युर्मूर्तिमन्तोऽथ पार्वणाः[5]॥
एकोद्दिष्टाशिनः प्रेताः[6] पितॄणां निर्णयस्त्रिधा ॥६७॥

मुनय ऊचुः

कथं सपिण्डीकरणं कर्तव्यं द्विजसत्तम। प्रेतीभूतस्य विधिवद्ब्रूहि नो वदतां वर ॥६८॥

व्यास उवाच

सपिण्डीकरणं विप्राः शृणुध्वं वदतो मम। तच्चापि देवरहितमेकार्घैकपवित्रकम् ॥६९॥
नैवाग्नौकरणं तत्र तच्चाऽऽवाहनवर्जितम्। अपसव्यं च तत्रापि भोजयेदयुजो द्विजान् ॥७०॥
विशेषस्तत्र चान्योऽस्ति प्रतिमासक्रियादिकः। तं कथ्यमानमेकाग्राः शृणुध्वं मे द्विजोत्तमाः ॥७१॥

बाहर मे देना चाहिए। द्विजातियो को तीसरे दिन प्रेत का अस्थिसचय करना चाहिये ॥६१-६२॥ दस दिन पर ब्राह्मण, बारह दिन पर क्षत्रिय, पन्द्रह दिन, पर वैश्य और एक मास मे शूद्र शुद्ध होता है ॥६३॥ अशौच का अन्त होने पर घर मे एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये। बारहवें दिन एक मास मे, तीन पक्ष मे और उसके बाद प्रत्येक मास मे एक वर्ष तक श्राद्ध करना चाहिये। उसके बाद क्रम से सपिण्डीकरण करना चाहिये ॥६४-६५॥ सपिण्डीकरण के हो जाने पर पार्वण हो जाता है। तब से जीव प्रेतत्व से मुक्ति पाकर पितर हो जाता है ॥६६॥ पितर-दो प्रकार के होते हैं—एक स्वरूपवान् और दूसरे स्वरूपरहित। उनमे नान्दीमुख श्राद्ध वाले पितर स्वरूप-रहित कहलाते हैं और पार्वण श्राद्ध वाले स्वरूपवान् कहलाते हैं। एकोद्दिष्ट श्राद्ध के पिण्ड खाने वाले प्रेत कहलाते हैं—यह तीन प्रकार का निर्णय पितरो के विषय मे किया गया है ॥६७॥

मुनियो ने कहा—द्विजवर! प्रेत का सपिण्डीकरण कैसे करना चाहिये, वह हमे विस्तार से बतलाइये ॥६८॥

व्यास ने कहा—विप्रवृन्द! सपिण्डीकरण के बारे मे मुझसे सुनिये। वह एक अर्घ से तथा एक पवित्री से देवरहित करना चाहिये ॥६९॥ वहाँ हवन न हो तथा आवाहन किया जाये। वहाँ भी अपसव्य करना चाहिये और अयुग्म (जोड़े नही) ब्राह्मणो को खिलाना चाहिये ॥७०॥ द्विजश्रेष्ठो! उसमे प्रतिमास कर्म आदि करने की दूसरी विशेषता है। उस कही जाने वाली विशेषता को आप लोग एकाग्र मन से सुनें ॥७१॥ वहाँ तिल-गन्धों से

१क ख्य प्रत्यगावाहन। ख ख्य प्रत्यगाहवनी द्वि०। २क. भूमिप। ३ग ०न्ते मृतश्रा०। ४क. प्रशस्यते। ५क. ख. ०षे चैव मा०। ख. ०रो चैकमा०। ६क. ख तदा। ७क. ख. ०ण प्रारभेत्पुनः। ८ग. पार्वणे। ९ख. ०ता: प्रेतत्वात्पितृतां गताः। क०।

'तिलगन्धोदकैर्युक्तं' तत्र पात्रचतुष्टयम्[१]। कुर्यात्पितृणां त्रितयमेकं प्रेतस्य च द्विजाः ॥७२॥
पात्रत्रये प्रेतपात्रादर्घं चैव प्रसेचयेत्। ये समाना इति जपन्पूर्ववच्छेषमाचरेत् ॥७३॥
स्त्रीणामप्येवमेव स्यादेकोद्दिष्टमुदाहृतम्। सपिण्डीकरणं तासां पुत्राभावे न विद्यते ॥७४॥
प्रीतसंवत्सरं कार्यमेकोद्दिष्टं नरैः स्त्रियाः। मृताहनि च तत्कार्यं पितृणां विधिचोदितम् ॥७५॥
पुत्राभावे सपिण्डास्तु तदभावे सहोदराः। कुर्युरेतं विधिं सम्यक्पुत्रस्य च सुताः सुताः ॥७६॥
कुर्यान्मातामहानां तु पुत्रिकातनयस्तथा[५]। ह्यामुष्यायणसंज्ञास्तु मातामहपितामहान् ॥७७॥
पूजयेयुर्यथान्यायं श्राद्धैर्नैमित्तिकैरपि। सर्वाभावे स्त्रियः कुर्युः स्वभर्तॄणाममन्त्रकम् ॥७८॥
तदभावे च नृपतिः कारयेत्स्वकुटुम्बिनाम्। तज्जातीयैर्नरैः सम्यग्दाहाद्याः[७] सकलाः क्रियाः ॥७९॥
सर्वेषामेव वर्णानां बान्धवो नृपतिर्यतः। एता वः कथिता विप्रा नित्या नैमित्तिकास्तथा ॥८०॥
वक्ष्ये श्राद्धाश्रयामन्यां नित्यनैमित्तिकां क्रियाम्। दर्शस्त (र्शं त) त्र निमित्तं तु विद्यादिन्दुक्षयान्वित[८] (तम्) ॥८१॥
नित्यस्तु नियतः कालस्तस्मिन्कुर्याद्यथोदितम्। सपिण्डीकरणादूर्ध्वं पितुर्यः प्रपितामहः ॥८२॥
स तु लेपभुजं याति प्रलुप्तः पितृपिण्डतः। तेषां हि यश्चतुर्थोऽन्यः स तु लेपभुजो भवेत् ॥८३॥

युक्त चार पात्र होने चाहिये, जिनमे तीन तो पितरो के लिये और एक प्रेत के लिये होना चाहिये ॥७२॥ 'ये समाना' इसका जप करते हुए तीनो पात्रो मे प्रेतपात्र से जल छोडना चाहिये और अवशिष्ट विधान पूर्ववत् करना चाहिये। स्त्रियो का भी एकोद्दिष्ट श्राद्ध इसी प्रकार होगा। पर पुत्र के अभाव मे उनका सपिण्डीकरण नही हो सकता ॥७३-७४॥ मनुष्य स्त्री का एकोद्दिष्ट प्रतिवर्ष किया करे। पितरो का एकोद्दिष्ट उनकी मृत्यु-तिथि पर विधिपूर्वक करना चाहिए ॥७५॥ पुत्र के अभाव मे सपिण्ड (पिंड देने के अधिकारी) और उनके अभाव मे सहोदर भाई एकोद्दिष्ट करें। पुत्र के पुत्र और उनके भी पुत्र विधान पूर्वक कर सकते हैं ॥७६॥ मातामह का श्राद्ध दौहित्र कर सकता है। दोनो की सन्तान कहलाने वाले मनुष्य मातामह तथा पितामह दोनो के नैमित्तिक श्राद्ध न्याय-पूर्वक करें। सब के अभाव मे पत्नी पति का श्राद्ध बिना मन्त्र के ही करे ॥७७-७८॥ स्त्री के अभाव मे कुटुम्ब-शून्य व्यक्ति का श्राद्ध राजा कराये। उसकी जाति-बिरादरी के लोगो द्वारा उसकी सारी क्रियायें राजा द्वारा सम्पन्न की जानी चाहिये, जिसलिये कि राजा समस्त वर्णो का बन्धु कहलाता है ॥७९३॥ विप्रवृन्द! ये नित्य-नैमित्तिक श्राद्ध मैंने बतला दिये। अब श्राद्ध सम्बन्धी नित्य-नैमित्तिक क्रिया को भी मैं बतलाऊँगा ॥८०३॥ उसमे चन्द्रक्षय-युक्त अमावस्या ही कारण है। नित्य तो निश्चित समय का नाम है। उसमे जैसे बताये गये हैं वैसा करना चाहिये। सपिण्डीकरण से आगे पिता का जो प्रपितामह है, वह लेपभुज मे पहुँच जाता है। अतएव पितरो का पिण्ड उसे नहीं पडता है। मातामह के पक्ष मे भी जो चौथा पडता है, वह भी लेपभुज है। इसलिये वह भी सम्बन्ध से हीन

१क. ॰ल्दर्भोद॰। २क. ॰क्त कुर्यादप्रव॰। ३क. ॰म्। पितृणां तत्र॰ त्रि॰। ४ग यै स्त्रीणा तद्विधि॰। ५क. ॰था। आमु॰। ६क. ॰येच्च कु॰। ७ग. ॰म्यग्दायाद्याः। ८क. सप्राप्ते।

सोऽपि संबन्धतो हीनमुपभोगं प्रपद्यते। पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥८४॥
पिण्डसबन्धिनो ह्येते विज्ञेयाः पुरुषास्त्रयः। लेपसंबन्धिनश्चान्ये पितामहपितामहात् ॥८५॥
प्रभृत्युक्तास्त्रयस्तेषां यजमानश्च सप्तमः। इत्येष मुनिभिः प्रोक्तः संबन्धः साप्तपौरुषः ॥८६॥
यजमानात्प्रभृत्यूर्ध्वमनुलेपभुजस्तथा[1]। ततोऽन्ये पूर्वजाः[2] सर्वे ये चान्ये नरकौकसः ॥८७॥
येऽपि तिर्यक्त्वमापन्ना ये च भूतादिसंस्थिताः[3]। तान्सर्वान्यजमानो वै श्राद्धं कुर्वन्यथाविधि ॥८८॥
स समाप्याययते विप्रा येन येन वदामि तत्। अन्नप्रकिरणं यत्तु मनुष्यैः क्रियते भुवि ॥८९॥
तेन तृप्तिमुपायान्ति ये पिशाचत्वमागताः। यदम्बु स्नानवस्त्रोत्थं भूमौ पतति भो द्विजाः ॥९०॥
तेन ये तरुतां प्राप्तास्तेषां तृप्तिः प्रजायते। यास्तु गन्धाम्बुकणिकाः पतन्ति धरणीतले ॥९१॥
ताभिराप्यायनं तेषां देवत्वं ये कुले गताः। उद्धृतेष्वथ पिण्डेषु याश्चाम्बुकणिका भुवि ॥९२॥
ताभिराप्यायनं तेषां ये तिर्यक्त्वं कुले गताः। ये चादन्ताः कुले बालाः क्रियायोगाद्बहिष्कृताः[3] ॥९३॥
विपन्नास्त्वनधिकाराः समार्जितजलाशिनः[4]। भुक्त्वा चाऽऽचामतां यच्च यज्जलं चाङ्घ्रिशौचजम् ॥९४॥
ब्राह्मणानां[5] तथैवान्यत्तेन तृप्तिं प्रयान्ति वै। एवं यो यजमानस्य यश्च तेषां द्विजन्मनाम् ॥९५॥
[6]कश्चिज्जलान्नविक्षेपः शुचिरुच्छिष्ट एव वा। तेनान्नेन[7] कुले तत्र ये च योन्यन्तरं गताः ॥९६॥

होने के कारण पिण्ड नहीं पाता है। पिता, पितामह, प्रपितामह—ये ही तीन पुरुष पिण्डसम्बन्धी कहलाते हैं। पितामह के पितामह से लेकर तीन पुरुष तक लेप सम्बन्धी कहलाते हैं और सातवाँ यजमान कहलाता है। यही सात पुरुषों का सम्बन्ध मुनियों ने बतलाया है ॥८१-८६॥ यजमान से लेकर ऊपर अनुलेप-भुज कहलाते हैं और उनके अतिरिक्त सब पूर्वज कहलाते हैं। जो नरक में रहते हैं, जो पक्षी-योनि में प्राप्त हैं तथा जो भूत आदि की योनि में स्थित हैं, उन सबका श्राद्ध यजमान विधान पूर्वक करे ॥८७-८८॥ विप्रवृन्द! अब जो-जो करने से जीव को तृप्ति मिलती है, वह मैं कहता हूँ। भूमि पर जो अन्न बिखेरा जाता है, उससे पिशाच-योनि में प्राप्त पितर की तृप्ति मिलती है ॥८९½॥ स्नान वस्त्र से जो जल पृथ्वी पर गिराया जाता है, उससे वृक्षयोनि में प्राप्त पितरों को तृप्ति मिलती है ॥९०½॥ जो सुगन्धित जल के फुहारे भूतल पर गिराये जाते हैं, उनसे देवकुल में प्राप्त पितरों को तृप्ति मिलती है ॥९१½॥ पिण्डों के उठा लेने पर पृथ्वी पर जो जल-बिन्दु गिरता है, उससे पक्षीयोनि में प्राप्त पितरों को तृप्ति मिलती है ॥९२½॥ ब्राह्मणों को जो जल पिलाया जाता है उससे उन लोगों को (मृत्यु के बाद) तृप्ति मिलती है, जो निर्दन्त बालक क्रियायोग से कुलच्युत कर दिये गए हों, जो विपत्ति-ग्रस्त होकर अधिकार-वंचित कर दिये गये हों, जिन्होंने मर्जीय जल पी लिया हो और जिन्होंने खाकर चरण धोने के बाद बचे जल से आचमन किया हो। इस प्रकार (श्राद्धस्थल में) जो यजमान और उन ब्राह्मणों का पवित्र या जूठा जल और अन्न गिरता है, उससे उस (यजमान के) कुल में मरकर अन्य योनियों में गये हुए जीव तृप्ति को प्राप्त करते हैं। ९३-९६॥ द्विजगण! लोग भली भाँति श्राद्धक्रिया से सम्पन्न व्यक्तियों का अन्यायपूर्वक उपार्जित धन से जो श्राद्ध

१क ०मन्त ले०। २क चान्यथा। ३ग ०योगपथास्थिता। ४क ०मांजनाग्यशाति०। ५ग. ०वान्ये तेन। ६क. ०रिचतिला०। ७क. तेन तेन।

प्रयान्त्याप्यायनं विप्राः सम्यक्श्राद्धक्रियावताम् । अन्यायोपार्जितैरर्थैर्यच्छ्राद्धं क्रियते नरैः ॥९७॥
तृप्यन्ते ते न चाण्डालपुल्कसाद्यासु योनिषु । एवमाप्यायनं विप्रा बहूनामेव बान्धवैः ॥९८॥
श्राद्धं कुर्वद्भिरत्राम्बुविक्षेपैः संप्रजायते । तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्या शाकेनापि यथाविधि ॥९९॥
कुर्वीत कुर्वतः श्राद्धं कुले कश्चिन्न सीदति । श्राद्धं देयं तु विप्रेषु सयतेष्वग्निहोत्रिषु ॥१००॥
अवदातेषु विद्वत्सु श्रोत्रियेषु विशेषत. । त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुस्त्रिसुपर्ण षडङ्गवित् ॥१०१॥
मातापितृपरश्चैव स्वस्रीयः सामवेदवित् । ऋत्विक्पुरोहिताचार्यमुपाध्याय च भोजयेत् ॥१०२॥
मातुल. श्वशुरः श्यालः संबन्धी द्रोणपाठकः । मण्डलब्राह्मणो यस्तु पुराणार्थविशारदः ॥१०३॥
अकल्पः कल्पसंतुष्टः प्रतिग्रहविवर्जितः । एते श्राद्धे नियोक्तव्या ब्राह्मणा. पङ्क्तिपावनाः ॥१०४॥
निमन्त्रयेत पूर्वेद्यु पूर्वोक्तान्द्विजसत्तमान् । दैवे नियोगे पित्र्ये च तास्तथैवोपकल्पयेत् ॥१०५॥
तैश्च संयमिभिर्भाव्यं यस्तु श्राद्धं करिष्यति । श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च मैथुनं योऽधिगच्छति ॥१०६॥
पितरस्तस्य वै मासं तस्मिन्रेतसि शेरते । गत्वा च योषितं श्राद्धे यो भुङ्क्ते यस्तु ग (य)च्छति ॥१०७॥
रेतोमूत्रकृताहारास्तं मास पितरस्तयो. । [1]तस्मात्व(त्तु) प्रथम कार्यं प्राज्ञेनोपनिमन्त्रणम् ॥१०८॥
अप्राप्तौ तद्दिने वाऽपि वर्ज्या योषित्प्रसङ्गिन. । भिक्षार्थमागतांश्चापि कालेन सयतान्यतीन् ॥१०९॥

करते हैं, उस श्राद्ध से चाडाल-व्याधि आदि योनियो मे भी वे व्यक्ति तृप्त नही होते हैं। विप्रवृन्द ! इस प्रकार श्राद्ध करते हुए बन्धुओं द्वारा जो जल दिया जाता है, उससे बहुतो को तृप्ति होती है। इसलिये मनुष्य शाक लेकर भी भक्ति से विधान पूर्वक श्राद्ध करे ॥९७-९९॥ श्राद्ध करने से कुल मे किसी का कष्ट नही होता है। सयमी, अग्निहोत्री, शुद्ध, विद्वान् तथा विशेष करके श्रोत्रिय ब्राह्मणो को श्राद्धीय द्रव्य देना चाहिये ॥१००॥ पञ्चाग्नि सेवन करने वाले, 'मधुवाता' इत्यादि मन्त्रो के ज्ञाता, छहो अगो के ज्ञाता, मातृ पितृ-भक्त, भागिनेय, सामवेदज्ञ, ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य तथा उपाध्याय का भोजन कराना चाहिए ॥१०१-१०२॥ मामा श्वशुर, साला, सम्बन्धी, पुराणार्थ विशारद, मण्डलब्राह्मण, द्रोणपाठक, सशयरहित, सतुष्ट, प्रतिग्रह-रहित—ये पंक्ति-पवित्र करने वाले ब्राह्मण श्राद्ध में नियुक्त होने चाहिये ॥१०३-१०४॥ श्राद्ध से पहले ही दिन पूर्वोक्त उत्तम ब्राह्मणो को निमन्त्रण दे देना चाहिये। देवकर्म तथा पितृकर्म दोनो मे उसी प्रकार से करना चाहिये ॥१०५॥ जो श्राद्ध करे उसे सयमी होना चाहिये। श्राद्ध करके तथा श्रद्धान्न खाकर जो मैथुन करता है, उनके पितर को उसी वीर्य मे एक मास तक सोना पड़ता है ॥१०६॥ स्त्री के पास जाकर जो श्राद्ध मे भोजन करता है और जो भोजन करके स्त्री के पास जाता है, उन दोनो के पितरो को एक मास तक वीर्य तथा मूत्र खाना पडता है। इसलिये बुद्धिमान् को चाहिये कि वह पहले ही निमन्त्रण दे दे ॥१०७-१०८॥ पता लग जाने पर उस दिन भी स्त्री-प्रसग करने वालों को छोड देना चाहिये। समय से भिक्षा के लिए आये हुए सयमी सन्यासियो को अनुनय-विनय पूर्वक यत्न से भोजन कराये।

१क ०नामपि बा० । २ ०स्मात्र प्र० । ख ०स्मात्तु प्र० ।

भोजयेत्प्रणिपाताद्यैः प्रसाद्य यतमानसः। योगिनश्च तदा श्राद्धे भोजनीया विपश्चिता ॥११०॥
योगाधारा हि पितरस्तस्मात्तान्पूजयेत्सदा। ब्राह्मणानां सहस्राणि एको योगी [1]भवेद्यदि ॥१११॥
यजमानं च भोक्तृंश्च नौरिवाम्भसि तारयेत्। पितृगाथा तथैवात्र गीयते ब्रह्मवादिभिः ॥११२॥
या गीता पितृभिः[2] पूर्वमैलस्याऽऽसीन्महीपतेः[3]। कदा नः संततावग्र्यः कस्यचिद्भविता सुतः ॥११३॥
यो योगिभुक्तशेषान्नो भुवि पिण्डान्प्रदास्यति। गयायामथवा पिण्डं खड्गमांसं तथा हविः ॥११४॥
कालशाकं तिलाज्यं च तृप्तये कृसरं च नः। वैश्वदेवं च सौम्यं च खड्गमांसं परं हविः ॥११५॥
[4]विषाणवर्जं शिरस आ पादादाशिपामहे। दद्याच्छ्राद्धं त्रयोदश्यां मघासु च यथाविधि ॥११६॥
मधुसर्पिः समायुक्तं पायसं दक्षिणायने। तस्मात्संपूजयेद्भक्त्या स्वपितॄन्विधिवन्नरः ॥११७॥
कामानभीप्सन्सकलान्पापादात्मविमोचनम्[5]। वसून्रुद्रांस्तथाऽऽदित्यान्नक्षत्रग्रहतारकाः ॥११८॥
प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितरः श्राद्धतर्पिताः। आयुः प्रजा धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ॥११९॥
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं पितरः श्राद्धतर्पिताः। तथाऽपराह्णः पूर्वाह्णात्पितॄणामतिरिच्यते ॥१२०॥
संपूज्य स्वागतेनैतान्सदनेऽभ्यागतान्द्विजान्। पवित्रपाणिराचान्तानासनेषूपवेशयेत् ॥१२१॥
श्राद्धं कृत्वा विधानेन संभोज्य च द्विजोत्तमान्। विसर्जयेत्प्रियाण्युक्त्वा प्रणिपत्य च भक्तितः ॥१२२॥

विद्वान् व्यक्ति योगियो को श्राद्ध मे भोजन कराये। जिस लिए पितर योग के आधार माने जाते हैं इसलिए सदा योगियों का सम्मान करे ॥१०९-११०½॥ हजारो ब्राह्मणों मे यदि एक भी योगी हो तो वह यजमान तथा भोजन करने वालो को जल मे नाव की तरह तार देते हैं ॥१११½॥ इस विषय मे ब्रह्मवादियो ने एक पितृ-गाथा गायी है कि राजा ऐल के पितरो ने कहा था—'हमारी सन्तानो मे किसको पहले पुत्र होगा, जो योगियो के खाने से बचे अन्न के पिण्ड पृथ्वी पर देगा अथवा गया मे पिण्ड देगा और हमारी तृप्ति के लिये गैंडे का मास, घी, कालशाक, तिलमिश्रित घी तथा खिचडी देगा। सीग को छोडकर सिर से पैर तक गैंडे का मास विश्वेदेव तथा सोम को प्रिय है, उसे हम चाहते हैं ॥११२-११५½॥ त्रयोदशी, मघा नक्षत्र तथा दक्षिणायन मे मधु तथा घी से युक्त खीर श्राद्ध मे देना चाहिये। इसलिये मनुष्य भक्ति से विधिपूर्वक अपने पितरो की पूजा करे। श्राद्ध मे तृप्त किये गये पितर मनुष्यो की समस्त कामनाओ को पूर्ण करते हैं, उन्हे पाप से मुक्त करते हैं और उनके प्रति वसुओ, रुद्रो, आदित्यो नक्षत्रो, ग्रहो और तारों को अनुकल बना देते हैं। श्राद्ध से सन्तुष्ट पितर आयु, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग मोक्ष, राज्य तथा सुख प्रदान करते हैं। पितरो का समय पूर्वाह्ण की अपेक्षा अपराह्ण उत्तम माना जाता है। गृह मे आये हुए द्विजो का स्वागत करके पवित्र हाथो से उन्हे जल दे और आचमन कराकर आसनो पर बैठाये ॥११६-१२१॥ विधानपूर्वक श्राद्ध करके और उत्तम ब्राह्मणों का भोजन कराकर उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम करे और प्रिय-बातो से उन्हें विदाई दे ॥१२२॥ द्वार तक उनके पीछे-पीछे चलकर पुन उनकी आज्ञा से

१ख ०दि। योगी च भोजितश्चेत्स्यान्नौरि०। २क. ख ०भि' सार्धं पू०। ३क. ख. ०लस्य भूप०। ४ग ०वर्ज्या गह्याश्च आमदानाशशानृते। द०। ५क. ०लान्वै दिव्या ये च मानुषा। व०।

आद्वारमनुगच्छेच्च आगच्छेदनुमोदितः । ततो नित्यक्रियां कुर्याद्भोजयेच्च तथाऽतिथीन् ॥१२३॥
नित्यक्रिया पितृणां च केचिदिच्छन्ति सत्तमाः । न पितृणां तथैवान्ये शेषं पूर्ववदाचरेत् ॥१२४॥
पृथक्त्वेन वदन्त्यन्ये केचित्पूर्वं च पूर्ववत् । ततस्तदन्नं भुञ्जीत सह भृत्यादिभिर्नरः ॥१२५॥
एवं कुर्वीत धर्मज्ञः श्राद्धं पित्र्यं समाहितः । यथा च विप्रमुख्यानां परितोषोऽभिजायते ॥१२६॥
इदानीं संप्रवक्ष्यामि वर्जनीयान्द्विजाधमान् । मित्रध्रुक्कुनखी क्लीबः क्षयी शुक्ली वणिक्पथः ॥१२७॥
श्यावदन्तोऽथ खल्वाटः काणोऽन्धो बधिरो जडः । मूकः पङ्गुः कुणिः षण्ढो दुश्चर्मा व्यङ्गकेकरौ ॥१२८॥
कुष्ठी रक्तेक्षणः कुब्जो वामनो विकटोऽलसः । मित्रशत्रुर्दुष्कुलीनः पशुपालो निराकृतिः ॥१२९॥
परिवित्तिः परिवेत्ता परिवेदनिकासुतः । वृषलीपतिस्तत्सुतश्च न भवेच्छ्राद्धभुग्द्विजः ॥१३०॥
वृषलीपुत्रसंस्कर्ता अनूढो दिधिषूपतिः । भृतकाध्यापको यस्तु भृतकाध्यापितश्च यः ॥१३१॥
सूतकान्नोपजीवी च मृगयुः सोमविक्रयी । अभिशस्तस्तथा स्तेनः पतितो वार्धुषिः शठः ॥१३२॥
पिशुनो वेदसंत्यागी दानाग्नित्यागनिष्ठुरः । राज्ञः पुरोहितो भृत्यो विद्याहीनोऽथ मत्सरी ॥१३३॥
वृद्धद्विड्दुर्धरः क्रूरो मूढो देवलकस्तथा । नक्षत्रसूचकश्चैव पर्वकारश्च गर्हितः ॥१३४॥

लौट जाये। तब नित्यक्रिया करके अतिथियों को भोजन कराये ॥१२३॥ मुनिवृन्द ! कोई तो पितरों की नित्यक्रिया करते हैं और कोई नहीं भी करते हैं। शेष क्रिया तो पहले ही की तरह करनी चाहिये ॥१२४॥ कोई कहते हैं, पितरों की पृथक्-पृथक् क्रिया होनी चाहिये, कोई कहते हैं नहीं, पहले की तरह ही सब कर्म करने चाहिये। श्राद्ध का अन्न सेवक आदि के साथ खाना चाहिये ॥१२५॥ धर्मज्ञ मनुष्य सावधान होकर पितरों का इस प्रकार श्राद्ध करें जिससे ब्राह्मणों को सन्तोष हो जाय ॥१२६॥ अब मैं श्राद्ध में निषिद्ध ब्राह्मणों के बारे में बतलाऊँगा। मित्र के साथ शत्रुता करने वाला, खराब नखवाला, नपुंसक, क्षय रोग वाला, श्वेत कुष्ठ वाला, व्यापार करने वाला, मद्य पीने वाला, गंजे शिर वाला, काना, अन्धा, बहरा, जड, गूंगा, लंगडा, विकृत चर्म वाला, ऐंचाताना, कुष्ठरोगी, लाल नेत्र वाला, बौना, दन्तुल, आलसी, दुष्कुलीन, पशु पालने वाला, परिवित्ति, (जिसका छोटा भाई उससे पहले विवाह करले), परिवेत्ता, (जो बड़े भाई से पहले विवाह कर ले) परिवेदनिका (जिन स्त्री से विवाह करने पर परिवेदन दोष लगे) का पुत्र, शूद्रा का पति और उसका पुत्र ब्राह्मण श्राद्ध में वर्जनीय है ॥१२६-१३०॥ शूद्रा के पुत्र का संस्कार करने वाला, अविवाहित, दूसरा विवाह करने वाली स्त्री का पति, वेतन लेकर पढाने वाला, वेतन देकर पढ़ने वाला, सूतक के अन्न से जीने वाला, शिकार खेलने वाला, मद्यविक्रेता, कलंकी चोर, पतित, सूदखोर, दुष्ट, चुगलखोर वेदत्यागी, दान तथा अग्नि का त्याग करने वाला निष्ठुर, राजा का पुरोहित, भृत्य, विद्याहीन, डाह रखने वाला, वृद्धों से द्वेष करने वाला, उद्धत, क्रूर, मूर्ख, पुजारी, ग्रह बताने वाला, पर्वकार, निन्दित और यज्ञ के अनधिकारी को यज्ञ कराने वाला,

१क ख ०णां प्राक्केचि०। २ग ०न च नित्यत्वे के०। ३ग श्विम्नी। ४क पण्ढ कुकर्मा। ५क कुणिकुष्ठी रक्तदृष्टिर्वातनो। ख कुणिकुष्ठी रक्त दृष्टिर्वाम०। ६क ०र्दुर्दुरसशील प०। ७ग ०स्ततसुतश्च तथा तच्छ्रा०। ८क ०र्ताऽनृतवादिधि०। ९ख सूतिकानिष्टकर्ता च। १०क ०णी होताऽग्नि०।
१ख ०द्विण्मिथुनश्चैव पतितस्यैव पोषकः। न०।

अयाज्ययाजकः षण्डो गर्हिता ये च येऽधमाः । न ते श्राद्धे नियोक्तव्या दृष्ट्वाऽमी पङ्क्तिदूषकाः॥१३५॥
असतां प्रग्रहो यत्र सतां चैवावमानना । दण्डो[1] दैवकृतस्तत्र सद्यः पतति दारुणः ॥१३६॥
हित्वाऽऽगमं सुविहितं बालिशं यस्तु भोजयेत् । आदिधर्मं समुत्सृज्य दाता तत्र विनश्यति ॥१३७॥
यस्त्वाश्रितं द्विजं त्यक्त्वा अन्यमानीय भोजयेत् । तन्निःश्वासाग्निनिर्दग्धस्तत्र दाता विनश्यति ॥१३८॥
वस्त्राभावे क्रिया [2]नास्ति यज्ञा वेदास्तपांसि च । तस्माद्वासांसि देयानि श्राद्धकाले विशेषतः ॥१३९॥
कौशेयं क्षौमकार्पासं दुकूलमहतं तथा । श्राद्धे त्वेतानि यो दद्यात्कामानाप्नोति चोत्तमान् ॥१४०॥
यथा गोषु प्रभूतासु वत्सो विन्दति मातरम् । [3]तथाऽन्नं[4] तत्र विप्राणां जन्तुर्यत्रावतिष्ठते ॥१४१॥
नामगोत्रं च मन्त्राश्च दत्तमन्नं नयन्ति तं । अपि ये निधनं प्राप्तास्तृप्तिस्तानुपतिष्ठते ॥१४२॥
देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । [6]नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव[7] भवन्त्विति[8] ॥१४३॥
आद्यावसाने श्राद्धस्य त्रिरावृत्त्या जपेत्तदा । पिण्डनिर्वपणे [9]चाऽपि जपेदेवं समाहितः ॥१४४॥
क्षिप्रमायान्ति पितरो राक्षसाः[5] प्रद्रवन्ति च । [10]प्रीयन्ते त्रिषु लोकेषु मन्त्रोऽयं[11]तारयत्युत ॥१४५॥
क्षौमसूत्रं नवं दद्याच्छा(च्छो)णं कार्पासिकं तथा । [12]पत्रोर्णं पट्टसूत्रं च कौशेयं च विवर्जयेत् ॥१४६॥

नपुंसक तथा अधम—ये ब्राह्मण श्राद्ध मे त्याज्य हैं। ये पंक्ति को दूषित करने वाले हैं ॥१३१-१३५॥ जहाँ असत् पुरुष का सम्मान और सत् पुरुष का अपमान होता है वहाँ शीघ्र ही भयंकर दैविक दण्ड मिलता है ॥१३६॥ जो परम्परागत धर्म का उल्लंघन कर शास्त्रविहित ब्राह्मण का छोड़कर मूर्ख को खिलाता है, उसका नाश हो जाता है ॥१३७॥ जो आश्रित द्विज का परित्याग कर दूसरे को लाकर खिलाता है, वह उसके श्वास रूपी अग्नि से दग्ध होकर नष्ट हो जाता है ॥१३८॥ वस्त्र के अभाव मे क्रिया, यज्ञ, वेद तथा तपस्या नहीं होती है। इसलिये श्राद्धकाल मे विशेष करके वस्त्र देना चाहिये ॥१३९॥ जो रेशमी वस्त्र, पट्ट-वस्त्र, सूती वस्त्र तथा महीन वस्त्र श्राद्ध मे देता है वह उत्तम कामनाओं को प्राप्त करता है ॥१४०॥ जैसे अनेक गायों के बीच बछड़ा अपनी माँ के पास पहुँच जाता है उसी तरह ब्राह्मणो को खिलाया अन्न जीव के पास पहुँच जाता है ॥१४१॥ नाम गोत्र उच्चारण करके मन्त्रपूर्वक जो अन्न दिया जाता है वह मृत्यु के बाद भी जीव को प्राप्त होता है ॥१४२॥ श्राद्ध के आदि तथा अन्त में देवताभ्य ... इस मन्त्र का जप तीन बार करे। पिण्डदान के समय भी सावधान होकर इसका जप करे। इससे पितर शीघ्र आ जाते हैं और राक्षस भाग जाते हैं। इस मन्त्र से तीनो लोक मे पितर प्रसन्न होते हैं। यह सब का तारण करने वाला है ॥१४३-१४५॥ नवीन रेशमी सूत्र देना चाहिये, पर कपास, ऊन, पट्ट तथा कौशेय वस्त्र का सूत्र नहीं देना चाहिये ॥१४६॥ यदि वस्त्र पूरा हो किन्तु उसमे किनारी न हो तो वह

१ख ०ण्डो दैव। ग ०ण्डा दैत्यकृ०। २क ०स्ति जपके०। ३क ०थाऽन्नमेति तत्रैव ज०। ४ग ०म नयते विप्रो ज०। ५ख यान्ति। ६ग ०मः स्वधायै स्वाहायै नि०। ७ख ०व नमो नमः। आ०। ८क ०वन्तु न। आ०। ९क चापि। १०ख प्रयन्ते। ११म ०न्त्रास्तांस्तार०। १२क पितॄणां।

'वर्जयेच्चादर्शं प्राज्ञो . यद्यप्यध्याहृतं भवेत् । न प्रीणयन्त्यथैतानि दातुश्चाप्यनयो भवेत् ॥१४७॥
न निवेद्यो भवेत्पिण्डः पितृणां यस्तु जीवति । इष्टेनान्नेन भक्ष्येण भोजयेत्तं यथाविधि ॥१४८॥
पिण्डमग्नौ सदा दद्याद्भोगार्थी सतत नर. । पत्न्यै दद्यात्प्रजार्थी च मध्यमं मन्त्रपूर्वकम् ॥१४९॥
'उत्तमा द्युतिमन्विच्छन्पिण्ड गोषु 'प्रयच्छति । प्रज्ञां चैव यशः कीर्तिमप्सु' चैव' निवेदयेत् ॥१५०॥
प्रार्थयन्दीर्घमायुश्च वायसेभ्यः प्रयच्छति । कुमारशालामन्विच्छन्कुक्कुटेभ्यः प्रयच्छति ॥१५१॥
एके विप्राः पुनः प्राहुः पिण्डोद्धरणमग्रत' । अनुज्ञातस्तु विप्रैस्तैः काममुद्ध्रियतामिति ॥१५२॥
तस्माच्छ्राद्ध तथा'कार्यं यथोक्तमृषिभि. पुरा । अन्यथा तु भवेद्दोष. पितृणां नोपतिष्ठति ॥१५३॥
यवैर्व्रीहितिलैर्माषैर्गोधूमैश्चणकैस्तथा । संतर्पयेत्पितॄन्मुद्गैः श्यामाकैः सर्षपद्रवैः ॥१५४॥
नीवारैर्हस्तिश्यामाकै. प्रियङ्गुभिस्तथाऽर्चयेत् । प्रसातिकां (असतिकाः) सतूलिकां द (तीलकान्द) द्याच्छ्राद्धे विचक्षणः ॥१५५॥
आम्रमाम्रातक बिल्वं दाडिमं बीजपूरकम् । प्राचीनामलकं 'क्षीरं नारिकेलं परूषकम् ॥१५६॥
नारङ्ग च सखर्जूरं द्राक्षानीलकपित्थकम् । पटोल च प्रियालं च कर्कन्धूबदराणि च ॥१५७॥
'विकङ्कतं वत्सक च'कस्त्वारु(र्काह)र्वारकानपि । एतानि फलजातानि श्राद्धे देयानि यत्नतः ॥१५८॥
गुडशर्करमत्स्यण्डी देयं फाणितमूर्मुरम्' । गव्यं पयो दधि घृतं तैलं च तिलसंभवम् ॥१५९॥

नहीं देना चाहिये। ये वर्जनीय चीजें पितरो को तृप्ति नही देतीं। दाता के लिये भी ये हानिकारक हैं ॥१४७॥ पितरों मे जो जीवित हैं, उसे पिण्ड नहीं देना चाहिये, बल्कि विधानपूर्वक उसे सुन्दर भोजन कराना चाहिये। ॥१४८॥ भोगार्थी मनुष्य सदा अग्नि मे पिण्ड चढाये। प्रजा का इच्छुक मनुष्य मन्त्रपूर्वक पत्नी को पिण्ड दे ॥१४९॥ उत्तम कान्ति का इच्छुक व्यक्ति गौ को पिण्ड दे। बुद्धि यश तथा प्रतिष्ठा चाहने वाला मनुष्य जल में पिण्ड दे ॥१५०॥ दीर्घायु चाहने वाला व्यक्ति कौओ को पिण्ड दे। कुमार-शाला चाहने वाला मुर्गों को दे ॥१५१॥ कुछ विद्वानो का कहना है कि अग्रभाग से पिण्ड को उठाना चाहिए। वैसे विप्रो की आज्ञा लेकर जैसे चाहें वैसे उठा सकते हैं ॥१५२॥ इसलिये जिस प्रकार ऋषियो ने बतलाया है उसी प्रकार श्राद्ध करना चाहिये। अन्यथा दोष होता है और पितरो को भी तृप्ति नही मिलती है ॥१५३॥ यव, व्रीहि, तिल, उड़द, गेहूँ तथा चने से पितरों का तर्पण करना चाहिए। मूग श्यामाक, (साई), सरसो, नीवार, हस्तिश्यामक (सामा) तथा प्रियगु (कगनी) से पितरो को अर्घ देना चाहिय। विद्वान् मनुष्य श्राद्ध मे सावरण शय्या दान करें ॥१५४-१५५॥ आम, आमला, बेल, दाड़िम, बिजौरा नींबू, पानीयामलक नारियल, नारगी, खजूर, दाख, कठबेल, पटोल, प्रियाल (पियासाल), बेर, विकक्त, वत्सक, कस्त्वारु ?, वारक ?—ये फल श्राद्ध मे देने चाहिये ॥१५६-१५८॥ गुड, शक्कर, खाँड, राव, गौ का दूध, दही, घी, तिल का तेल, सैन्धव नमक, पवित्र गन्ध, चन्दन, अगर, कुकुम, कालशाक, तन्दुलीय, वास्तुक,

---

१क ख ०येदौदुम। २क ०मां गति०। ३क ०ति। आप्नोति च य०। ४ ०कीर्ति यस्तु नित्य नि०। ५ख नित्य। ६ग सदा। ७ख तीक्ष्ण। ८ख ०त बीजपूर वैकामपि च पूरकम्। ए०। ९क घ सर्वाघरवत्का०। १०ख ०तमूर्मु०।

मैन्धवं सागरोत्थं च लवणं सारसं तथा। निवेदयेच्छुचीन्गन्धांश्चन्दनागुरुकुङकुमान्[1] ॥१६०॥
कालशाक तन्दुलीय[2] वास्तुक मूलकं तथा। शाकमारण्यक चापि दद्यात्पुष्पाण्यमूनि च ॥१६१॥
जातिचम्पकलोध्राश्च मल्लिकाबाणबर्बरी। वृन्ताशोकाटरूयं च तुलसी तिलक तथा ॥१६२॥
[3]पावन्ती[3] शतपत्रा च गन्धशेफालिकामपि। कुब्जक तगरं चैव मृगमारण्यकेतकीम् ॥१६३॥
यूथिकामतिमुक्त च श्राद्धयोग्यानि भो द्विजा। कमल कुमुदं पद्म पुण्डरीक च यत्नतः ॥१६४॥
इन्दीवर कोकनदं कह्लारं च नियोजयेत्। कुष्ठ मासी बालकं च कुक्कुटी जातिपत्रकम् ॥१६५॥
नलिकोशीरमुस्तं च ग्रन्थिपर्णी च सुन्दरी[3]। पुनरप्येवमादीनि गन्धयोग्यानि[4] चक्षते ॥१६६॥
गुग्गुलु चन्दनं चैव श्रीवासमगुरु तथा। धूपानि पितृयोग्यानि[4] ऋपिगुग्गुलमेव च ॥१६७॥
राजमापाश्च[5] चणकान्मसूरान्कोरदूपकान्। विप्रुषान्मर्कटांश्चैव[6] कोद्रवांश्चैव वर्जयेत् ॥१६८॥
माहिषं चामर मार्गमाविकैकशफोद्भवम्। [7]स्त्रैणमौष्ट्रमाविक च दधि क्षीर घृतं त्यजेत् ॥१६९॥
ताल वरुणकाकोली बहुपत्रार्जुनीफलम्। जम्बीर रक्तबिल्व च शालस्यापि फल त्यजेत् ॥१७०॥
मत्स्यसूकरकूर्माश्च गावो वर्ज्या विशेषत। पूतिक मृगनाभि च रोचनां पद्मचन्दनम् ॥१७१॥
कालेयकं तूग्रगन्धं तुरुष्कं[8] चापि वर्जयेत्। पालङक च कुमारीं च किरात[9] पिण्डमूलकम् ॥१७२॥
गृञ्जन चुम्रिका [10]चुञ्चं वरुमा चनपत्रिकाम्। [10]जीवं च [11]शतपुष्पां च नालिकां गन्धशकरम्[12] ॥१७३॥

(वथुई) मूली तथा वन्य शाक देना चाहिये और ये फूल भी देने चाहिए—॥१५९-१६१॥ मालती, चम्पा, लोध मल्लिका बाण बर्बरी, वृन्त, अशोक, अटरूप, तुलसी, तिलक, शतपत्रा गन्धशेफालिका कुब्जक त.र, मृग जगली केतकी, जूही तथा अतिमुक्त—ये पुष्प श्राद्ध के योग्य हैं ॥१६२-१६३½॥ कमल, कुमुद श्वेतकमल, नीलकमल तथा कह्लार श्राद्ध मे देना चाहिए। कुष्ठ जटामासी बालक, कुक्कुटी जातिपत्र नलिक, उशीर (खस) मुस्त ग्रन्थिपर्णी—ये पितरों के लिये गन्धोपयोगी बतलाये जाते हैं ॥१६४-१६६॥ गुग्गुल, चन्दन, श्रीवास अगर ऋपिगुग्गुल—ये पितरों के धूपयोग्य माने गये हैं। राजमाप, चणक, मसूर, कोरदूपक, विप्रुप, मर्कट, कोदो—ये श्राद्ध मे त्याज्य हैं ॥१६७-१६८॥ भैंस, चमरी गाय हरिणी, भेंड एक खुर वाले जानवर, स्त्री, ऊँट—इनका दही दूध और घी त्याज्य हैं ॥१६९॥ ताल, वरुण काकोली, बहुपत्र अर्जुनीफल, जम्बीर, लालबिल्व तथा शाल का भी फल त्याज्य है ॥१७०॥ मछली, सूअर, कछुआ तथा विशेष करके गायें त्याज्य हैं। पूतिक, कस्तूरी, गोरोचन, पद्मचन्दन, कालेयक तथा तीक्ष्ण गध वाले लोबान का भी परित्याग करे ॥१७१½॥ पालक, कुमारी, किरात, पिण्डमूल, गाजर, चुम्रिका, चुक वरुमा, चनपत्रिका जीव, शतपुष्पा, नालिका, गन्धशूकर, हल्मूत्य, सरसो, प्याज तथा लहसुन का परित्याग करे ॥१७२-

---

१ग नियोजये०। २क पार्रंध। स पारत्री। ३स सुसता। ४क गन्धयोग्यानि। स श्राद्धयोग्यानि। ५स ०माप पन चैव मसू०। ग ०मापानलूश्चैव मसू०। ६क ०टांश्चोप्रान्कोद्र०। ७क ०ष्टमजावीक द०। स ०ष्ट्रमजोद्भूतं द०। ८क करम्भ। ग करण्ड। ९ग ०क दुदुकावरपोतिका०। १०ग जीवक श०। ११ग ०तपर्वां च। १२क गन्धसूतकीम्। स गन्धसूचकम्।

हलभृत्यं सर्षपं च पलाण्डुं लशुनं त्यजेत् । मानकन्दं¹ विषकन्दं² वज्रकन्दं³ गदास्थिकम् ॥१७४॥
⁴पुरुपाल्व सपिण्डालु श्राद्धकर्मणि वर्जयेत् । अलाबुं⁵ तिक्तपर्णां च कूष्माण्डं कटुकत्रयम्⁶ ॥१७५॥
वार्ताकं शिवजातं च लोमशानि वटानि च । ⁷कालीयं रक्तवाणां च बलाकां लकुचं तथा ॥१७६॥
श्राद्धकर्मणि वर्ज्यानि विभीतकफलं तथा । आरनालं च शुक्तं च शीर्णं पर्युषितं तथा ॥१७७॥
नोग्रगन्धं च दातव्यं ⁸कोविदारकशिग्रुकौ । अत्यम्लं पिच्छिलं सूक्ष्मं यातयामं च सत्तमाः ॥१७८॥
न च देयं गतरसं मद्यगन्धं च यद्भवेत् । ⁹हिङ्गूग्रगन्धं फणिशं भूनिम्बं निम्बराजिके ॥१७९॥
कुस्तुम्बुरु कलिङ्गोत्थं वर्जयेदम्लवेतसम् । दाडिमं मागधीं चैव नागरार्द्रकतित्तिडीः ॥१८०॥
आम्रातकं जीवकं च तुम्बुरुं च नियोजयेत् । पायसं शाल्मलीमुद्गान्मोदकादींश्च भक्तितः ॥१८१॥
पानकं च रसालं च गोक्षीरं च निवेदयेत् । यानि चाभ्यवहार्याणि स्वादुस्निग्धानि भो द्विजा ॥१८२॥
ईषदम्लकटून्येव देयानि श्राद्धकर्मणि । अत्यम्लं ¹⁰चातिलवणमतिरिक्तकटूनि च ॥१८३॥
आसुराणीह भोज्यानि तान्यतो दूरतस्त्यजेत् । मृष्टस्निग्धानि यानि स्युरीषत्कट्वम्लकानि च ॥१८४॥
स्वादूनि देवभोज्यानि तानि श्राद्धे नियोजयेत् । ¹¹छागमांसं वार्तिकं च तैत्तिरं शशकामिषम् ॥१८५॥

१७३½॥ मानकन्द, विषकन्द, वज्रकन्द, गदास्थिक, पुरुपाल्व तथा पिण्डालु को भी श्राद्धकर्म में छोड दे। अलाबू (लौकी), तिक्तपर्णा (करैला) कुम्हडा, त्रिकटुक, (सोंठ, पीपर और मिर्च) बैंगन शिवजात, लोमश, वट, कालीय, रक्तवाण, बलाका, बडहर—ये श्राद्धकर्म में वर्जनीय हैं। बहेडा आरनाल शुक्त फटा हुआ बासी तथा तीक्ष्ण गन्ध वाला फल नहीं देना चाहिये। अत्यन्त खट्टा फिसलने वाला सूक्ष्म बहुत देर का, रसहीन तथा मद्य समान गन्ध वाला फल नहीं देना चाहिये ॥१७४-१७८½॥ हींग के समान तीक्ष्ण गन्ध वाला फल फणिश भूनिम्ब, निम्बराजिक, कलिंग देश का कुस्तुम्बुरु तथा अमलतास को छोड दे ॥१७९½॥ दाडिम मागधी नागर, अदरक, इमली, आँवला, जीवक, तुम्बुरु—ये देने चाहिये। खीर, शाल्मली मूग, मोदक पानक, आम तथा गौ का दूध भक्तिपूर्वक देना चाहिये ॥१८०-१८१½॥ जो भोज्य सुस्वादु, स्निग्ध तथा किंचित् खट्टा एवम् कडवा पदार्थ हो, वह श्राद्ध कर्म में देना चाहिये ॥१८२½॥ अत्यन्त खट्टा, अधिक नमकीन और अधिक कडवा भोज्य पदार्थ राक्षसी भोज्य कहलाता है, उसे दूर ही त्याग दे ॥१८३½॥ जो मधुर स्निग्ध तथा थोडा कडवा एवम् खट्टा हो वह देव भोज्य कहलाता है, उसे रखे ॥१८४½॥ बकरे का मांस, बटेर पक्षी का मांस, तीतर का मांस, खरहे का मांस, और शिवा, लावक तथा सर्जीव का मांस श्राद्ध मे देना चाहिए ॥१८५½॥ वाध्रीणस, (गैंडा) रक्तशिव, त्वचा से युक्त, लोह (?), सिंहतुण्ड

१ख ०नस्कन्द। २ख कृपस्कन्द। ३क वककन्द। ४क पुरपाल। ख परपालु। ५क तिक्तकण। ख स्पक्तकर्णं। ६ ग कटुपत्रिकाम्। ७क कालिङ्ग रक्तवाणु च वीणाकारिं कुवालुकम्। श्वा०। ग कालिन्द रक्तदारु च वीणाका वृत्तवारकम्। श्वा०। ८क ०कविशुको। ख ०कपित्थको। ९ग हिङ्गुगन्धो फाणिश च मू०। १०क ०तितिक्त०। ११क ०स च वार्ताक तै०।

शिवालावकराजीवमास श्राद्धे नियोजयेत । 'वाध्रीणस रक्तशिव लोह शल्कसर्मा वतम ॥१८६॥
'सिहतुण्ड' च खडग च श्राद्धे योज्य तथोच्यते । 'यदप्युक्त हि मनुना रोहित प्रतियोजयत ॥१८७॥
योक्तव्य 'हव्यकव्येषु तया न विप्रयोजयेत । एवमुक्त मया' विप्रा वाराहणावलोकितम" ॥१८८॥
मया निषिद्ध भुञ्जानो रौरव नरक व्रजेत् । 'एतानि च निषिद्धानि वाराहण तपोधना ॥१८९॥
अभक्ष्याणि द्विजातीना न देयानि पितृष्वपि । रोहित शूकर कूर्म गोधाहस' च ' वजयत ॥१९०॥
चक्रवाक च मदगु च शल्कहीनाश्च मत्स्यकान । कुरर च निरस्थि च वासहात च (?) कुक्कुटान ॥१९१॥
कलविङ्कमयूरांश्च भारद्वाजांश्च शाङ्गकान । 'नकुलोलूकमार्जाराल्लोपान या सुदुग्रहान ॥१९२॥
''टिटिटभा सार्धजम्बूका व्याघ्रऋक्षतरक्षुकान । एतान याश्च ''सदष्टा यो भक्षयति दुर्मति ॥१९३॥
स महापापकारी तु रौरव नरक व्रजत । पितृष्वतास्तु यो दद्यात्पापात्मा गर्हितामिषान ॥१९४॥
स स्वगस्थानपि पितृन्नरक पातयिष्यति । कुसुम्भशाक जम्बीर सिग्रुक कोविदारकम ॥१९५॥
पिण्याक विप्रुष'' चैव मसूर'' गृञ्जन शणम । कोद्रव कोकिलाक्ष च चक्र कम्बुकपद्मकम'' ॥१९६॥
चकोरश्यनमास च बर्तुलालाबुतालिनीम् । फल तालतरुणा च भुक्त्वा नरकमृच्छति ॥१९७॥

तथा खड्ग का मास श्राद्ध मे देना चाहिए ॥१८६½॥ मनु के कथनानुसार रेहू मछल भी देना चाहिए। हव्य-कव्यो की तयारी मे इन पदार्थों का उपयोग करना चाहिए पर इनका दुरुपयोग न होने पाए। विप्रवृन्द! वाराह द्वारा निर्दिष्ट माग को मैंने आप लोगो से बतला दिया ॥१८७ १८८॥ मैंने जिनका निषध बतलाया है उनका व्यवहार करने वाला मनुष्य रौरव नरक मे जाता है। तपस्वियो! इनका निषध तो वाराह ने किया है ॥१८९॥ पितृ कम मे भी अमक्ष्य वस्तु ब्राह्मणो को नहीं देनी चाहिये। रोहू मछली सूअर कछआ गोह तथा हस श्राद्ध मे निषिद्ध है ॥१९०॥ चक्रवाक मद्गु (पनिडुब्बी) त्वचाहीन मत्स्य कुररपक्षी अस्थिविहीन वासहात ? मुर्गा गौरया मयूर भारद्वाज शाङ्ग नेवला उल्लू बिलाड टिटिहरी सिया बाघ रीछ ऊकडबग्घा—इन दुष्ट जावो को जो दुर्मति मनुष्य खाता है वह महापाप का भागी होकर रौरव नरक मे जाता है ॥१९१॥ जो पापी मनुष्य पितरों को यह निन्दित मास खिलाता है उसके पितर स्वगच्युत हो जाते हैं। कुसुम्भशाक जम्बीर सिग्रुक कोविदारक पिण्याक विप्रुष मसूर गाजर शण कोदो कोकिलाक्ष चुक्र कम्बक पद्मक चकोर तथा बाज का मास गोल लौकी और ताल वृक्ष का फल जो खाता है वह नरक मे जाता है ॥१९७॥ पितरो को ये चीजें देकर मनुष्य उनके साथ पीप से भरे नरक मे जाता है। इसलिये सुधीजन यत्न करके इन चीजो को न चढाये। वराह भगवान् ने पितरो के सम्मान के लिये स्वय इन चीजो का निषध कर दिया है। मुनिवृन्द! मनुष्य अपना मास भक्षण करे यह उचित

१क वाधिनस्त्रिशिलालोहमाणा०। २ग सिंह तु०। ३क ०तुण्डिकस०। ४ख ०यद्यदुक्त। ग यद्यप्युक्त। ५ग ०षु कापिल न नियो०। ६ख प्रिय। ग पुरा। ७ग ०विना। म०। ८ग श्राद्धानि। ९ख ०थामास। १०क ब घट्टदम्। ११ग जॉर नीपकार्याश्चिवतवान्। १२क मान्वघ। १३क ०मगोपुच्छमर्कटान्। १४ क सदूष्यान्यो। १५क ख गुञ्जन। १६क ०र वितुष मतम्। १७ग कञ्चुक०।

दत्त्वा पितृषु तैः सार्धं व्रजेत्पूयवहं नरः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नाऽऽहरेत्तु विचक्षणः॥१९८॥
निषिद्धानि वराहेण स्वयं पित्रर्थमादरात्। वरमेवाऽऽत्ममांसस्य भक्षणं मुनयः कृतम्॥१९९॥
न त्वेव हि निषिद्धानामादानं पुंभिरादरात्। अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा सकृदेतानि च द्विजाः॥२००॥
भक्षितानि निषिद्धानि प्रायश्चित्तं ततश्चरेत्। फलमूलदधिक्षीरतक्रगोमूत्रयावकैः ॥२०१॥
'भोज्यान्नभोज्यसंभुक्तै' प्रत्येकं दिनसप्तकम्। एवं निषिद्धाचरणे कृते सकृदपि द्विजैः॥२०२॥
शुद्धिं नेयं शरीरं तु विष्णुभक्तैर्विशेषतः। निषिद्धं वर्जयेद्द्रव्यं यथोक्तं च द्विजोत्तमाः॥२०३॥
समाहृत्य ततः श्राद्धं कर्तव्यं निजशक्तितः। एवं विधानतः श्राद्धं कृत्वा स्वविभवोचितम्॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत्प्रीणाति मानव. ॥२०४॥

मुनय ऊचुः

पिता जीवति यस्याथ मृतौ द्वौ पितरौ पितुः। कथं श्राद्धं हि कर्तव्यमेतद्विस्तरशो वद॥२०५॥

व्यास उवाच

यस्मै दद्यात्पिता श्राद्धं तस्मै दद्यात्सुतः स्वयम्। एवं न हीयते धर्मो लौकिको वैदिकस्तथा॥२०६॥

मुनय ऊचुः

मृतः पिता जीवति च यस्य ब्रह्मन्पितामहः। स हि श्राद्धं कथं कुर्यादेतत्त्वं वक्तुमर्हसि॥२०७॥

है किन्तु निषिद्ध वस्तुओं का सेवन न करे॥१९८-१९९॥ मनुष्य अज्ञान से या असावधानी से एक बार भी निषिद्ध वस्तुओं का भक्षण कर ले तो सात दिनों तक प्रत्येक दिन भोज्य अन्न के साथ फल, मूल, दही, दूध, तक्र, गोमूत्र तथा यावकों (कुलथी) से प्रायश्चित्त करे॥२००-२०१॥ ब्राह्मणवर्ग यदि एक बार भी इस प्रकार का निषिद्ध आचरण कर लें तो उन्हें शरीर-शुद्धि करनी चाहिये। विष्णुभक्तों को विशेष करके प्रायश्चित्त करना चाहिये। निषिद्ध द्रव्यों का त्याग कर अपनी शक्ति के अनुसार सामग्री जुटाकर श्राद्ध करना चाहिये। इस तरह विधानपूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार श्राद्ध करने से मनुष्य ब्रह्मा से लेकर तृण तक संपूर्ण जगत् को तृप्त करता है॥२०२-२०४॥

मुनियों ने कहा—जिसका पिता जीवित है और पिता के माँ-बाप मर चुके हैं, वह कैसे श्राद्ध करे, यह हमें विस्तार से बतलाइये॥२०५॥

व्यास ने कहा—पिता जिसका श्राद्ध करे पुत्र भी उसी का श्राद्ध करे। ऐसा करने से लौकिक तथा वैदिक धर्म की हानि नहीं होती है॥२०६॥

मुनियों ने कहा—ब्रह्मन्! जिसका पिता मर चुका है और पितामह जीवित है, वह कैसे श्राद्ध करे, यह बतलाइये॥२०७॥

१क. ख ०ज्यान्न भो०। २क ०संयुक्ते प्र०। ख ०संयुक्त प्र०।

व्यास उवाच

पितुः पिण्डं प्रदद्याच्च भोजयेच्च पितामहम् । प्रपितामहस्य पिण्डं वै'ह्ययं शास्त्रेषु निर्णयः ॥२०८॥
मृतेषु पिण्डं दातव्यं जीवन्तं चापि भोजयेत् । सपिण्डीकरणं नास्ति न च पार्वणमिष्यते ॥२०९॥
'आचारमाचरेद्यस्तु पितृमेधाश्रितं नरः । आयुषा धनपुत्रैश्च वर्धत्याशु न संशयः ॥२१०॥
'पितृमेधाध्यायमिमं श्राद्धकालेषु यः पठेत् । तदन्नमस्य पितरोऽश्नन्ति च त्रियुगं द्विजा ॥२११॥
एवं मयोक्तः पितृमेधकल्पः, पापापहः पुण्यविवर्धनश्च ।
श्रोतव्य एष प्रयत्नैर्नरैश्च, श्राद्धेषु चैवाप्यनुकीर्तयेत ॥२१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे श्राद्धकल्पनिरूपणं नाम
विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२०॥

अथैकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सदाचारवर्णनम्

व्यास उवाच

एवं सम्यग्गृहस्थेन देवताः पितरस्तथा । संपूज्या हव्यकव्याभ्यामन्नेनातिथिबान्धवाः ॥१॥

व्यास ने कहा—वह पिता और प्रपितामह को पिण्ड दे तथा पितामह को भोजन कराये—यही शास्त्रों का निर्णय है। वह मरे हुए को पिण्ड दे और जीवित को भोजन दे। उसे सपिण्डीकरण तथा पार्वण नहीं करना चाहिये। जो मनुष्य अपने पूर्वजों के अनुसार आचरण करता है, वह शीघ्र ही आयु, धन तथा पुत्रों से सम्पन्न होता है, इसमें कोई संशय नहीं। द्विजगण! जो श्राद्धकाल में पितरों के इस अध्याय का पाठ करता है, उसका अन्न पितर तीन युगों तक खाते हैं। पापों को दूर करने वाले तथा पुण्य बढ़ाने वाले इस पितृमेधकल्प का वर्णन मैंने कर दिया। मनुष्य को यत्नपूर्वक इसका श्रवण करना चाहिये। श्राद्धों में भी इसका पाठ होना चाहिये ॥२०८-२१२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के संवाद प्रकरण में श्राद्धकल्प-निरूपण
नामक दो सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२०॥

अध्याय २२१

सदाचार का वर्णन

व्यास ने कहा—इस प्रकार गृहस्थ लोग हव्य-कव्यों से देवता और पितरों की पूजा करें और अन्न से अतिथि

१ग. घ. श्राद्धेषु निर्णय कृत । मु०। २ख. ०स्तास्तु पुत्र स्यात्पितृन्प्रीणाति श्राद्धत । आ०। ३क. ०धामृत पुण्य प्रात का०।

भूतानि भृत्या सकलाः पशुपक्षिपिपीलिकाः। भिक्षवो याचमानाश्च ये चान्ये पान्थका गृहे॥२॥
सदाचाररता विप्राः साधुना गृहमेधिना। पापं भुङ्क्ते समुल्लङ्घ्य नित्यनैमित्तिकीः क्रिया॥३॥

मुनय ऊचुः

कथितं भवता विप्र नित्यनैमित्तिकं च यत्। नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं कर्म पौरुषम्॥४॥
सदाचारं मुने श्रोतुमिच्छामो वदतस्तव। यं कुर्वन्सुखमाप्नोति परत्रेह च मानव॥५॥

व्यास उवाच

गृहस्थेन सदा कार्यमाचारपरिरक्षणम्[1]। न ह्याचारविहीनस्य भद्रमत्र परत्र वा॥६॥
यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य न भूतये। भवन्ति य. सदाचारं समुल्लङ्घ्य प्रवर्तते[2]॥७॥
दुराचारो हि पुरुषो[3] नेहाऽऽयुर्विन्दते महत्। कार्यो धर्म. सदाचार [4]आचारस्यैव लक्षणम्॥८॥
[5]तस्य [6]स्वरूपं वक्ष्यामि सदाचारस्य[7] भो द्विजाः। आत्मनैकमना भूत्वा[8] तथैव परिपालयेत्॥९॥
त्रिवर्गसाधने यत्न कर्तव्यो गृहमेधिना। तत्संसिद्धौ गृहस्थस्य सिद्धिरत्र परत्र च॥१०॥
पादेनाप्यस्य [9]पारत्र्यं कुर्याच्छ्रेयः स्वमात्मवान्। अर्धेन चाऽऽत्मभरणं नित्यनैमित्तिकानि च॥११॥

तथा भाई-बन्धुओं को सतुष्ट करें। सद्गृहस्थ को चाहिये कि वह घर पर आये हुए समस्त प्राणी, सेवक, पशु, पक्षी, चीटी, भिक्षुक, पथिक तथा दूसरे भी याचकों का सत्कार करे। जो नित्य तथा नैमित्तिक क्रिया का उल्लघन करता है, वह मानो पाप खाता है॥१-३॥

मुनियों ने कहा—विप्र! आपने नित्य-नैमित्तिक कर्म बतला दिये। पुरुष के तीन प्रकार के कर्म होते हैं—नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य। मुने! अब हम सदाचार के बारे मे सुनना चाहते हैं, जिसके करने से मनुष्य इस लोक मे तथा परलोक मे सुख प्राप्त करता है॥४-५॥

व्यास ने कहा—गृहस्थ को सदा आचार की रक्षा करनी चाहिये। आचारहीन मनुष्य का कल्याण न यहाँ होता है, न परलोक मे॥६॥ जो सदाचार का उल्लघन करता है, उसके यज्ञ, दान और तप ऐश्वर्यवर्धक नही होते हैं॥७॥ दुराचारी पुरुष की आयु बडी नही होती है। सदाचारयुक्त धर्म करना चाहिये। द्विजगण! सदाचार का स्वरूप मैं बतलाऊँगा, जिसका पालन मनुष्य एकचित्त होकर करे। गृहस्थ को धर्म, काम और अर्थ के साधन मे यत्नशील रहना चाहिये। उनकी सिद्धि होने पर यहाँ और परलोक मे भी सिद्धि मिलती है॥८-१०॥ विचारवान् व्यक्ति उनके चतुर्थांश साधन करने से भी पारलौकिक श्रेय प्राप्त करता है और अर्ध साधन करने से अपना भरण-पोषण तथा नित्य-नैमित्तिक कर्म कर लेता है॥११॥ फिर भी चतुर्थांश साधन

१क ख ०रिपालनम्। २ख ०ते। सदाचार स पु०। ३ख ०षो ब्रह्मेद विन्द०। ४क ग ०चारो ह्यलल०। ५क तथा च व प्रव०। ख तथा। ६ख स्वपक्ष। ७क ०चार तु भो। ८ख ०त्वा त थैव। ९ख. पाविम्य।

पादेनैव तथाऽप्यस्य मूलभूतं विवर्धयेत् । एवमाचरतो विप्रा अर्थः साफल्यमृच्छति ॥१२॥
तद्वत्पापनिषेधार्थं धर्मः कार्यो विपश्चिता । परत्रार्थस्तथैवान्यः [1]कार्योऽत्रैव फलप्रदः ॥१३॥
प्रत्यवायभयात्कामस्तथाऽन्यश्चाविरोधवान् । द्विधा कामोऽपि रचितस्त्रिवर्गायाविरोधकृत् ॥१४॥
[2]परस्परानुबन्धांश्च सर्वानेतान्विचिन्तयेत् । विपरीतानुबन्धांश्च बुध्यध्वं तान्द्विजोत्तमाः ॥१५॥
धर्मो धर्मानुबन्धार्थो धर्मो[4] नाऽऽत्मार्थपीडकः । उभाभ्यां च द्विधा कामं तेन तौ च द्विधा पुनः ॥१६॥
ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थावनुचिन्तयेत् । समुत्थाय तथाऽऽचम्य [5]प्रस्नातो नियतः शुचिः ॥१७॥
पूर्वां संध्यां सनक्षत्रां पश्चिमां सदिवाकराम् । उपासीत यथान्यायं नैनां जह्यादनापदि ॥१८॥
[6]असत्प्रलापमनृतं वाक्पारुष्यं च वर्जयेत् । असच्छास्त्रमसद्वादमसत्सेवां च वै द्विजाः ॥१९॥
सायंप्रातस्तथा होमं कुर्वीत नियतात्मवान् । नोदयास्तमने चैवमुदीक्षेत विवस्वतः ॥२०॥
केशप्रसाधनादर्शदन्तधावनमञ्जनम् । पूर्वाह्ण एव कार्याणि देवतानां च तर्पणम्[7] ॥२१॥
[8]ग्रामावसथतीर्थानां क्षेत्राणां चैव वर्त्मनि । न विण्मूत्रमनुष्ठेयं न च कृष्टे न गोव्रजे ॥२२॥

करते हुए ही उनकी जड को दृढ बनाना चाहिये। विप्रवृन्द ! इस प्रकार आचरण करने से धन सफल होता है ॥१२॥ उसी प्रकार पाप मिटाने के लिये विद्वान् को धर्म करना चाहिये। परलोक के लिये तथा इहलोक के लिये धर्म करना चाहिए, जो यही फलदायक होता है ॥१३॥ धर्म, काम और अर्थ का अविरोधी काम भी दो प्रकार का माना गया है—एक पाप से डरने वाला और दूसरा सबका अविरोधी। द्विजश्रेष्ठो ! ये तीनो परस्पर सम्बद्ध हैं, पर तीनो एक दूसरे के विपरीत है। धर्म का सहायक अर्थ भी धर्म ही है और आत्मा तथा धन का नाश करने वाला धर्म भी धर्म नही है। धर्म और अर्थ के भेद से काम दो प्रकार का होता है और काम-भेद से धर्म-अर्थ भी दो-दो प्रकार के होते हैं ॥१४-१६॥ ब्राह्म मुहूर्त मे उठकर धर्म-अर्थ का चिन्तन करना चाहिये। उसी प्रकार उठने के बाद शौचादि से निवृत्त हो स्नान करके पवित्रतापूर्वक आचमन कर प्रात कालीन सन्ध्या तारो के रहते हुए ही कर लेनी चाहिये, और सायकाल की सध्या सूर्य के रहते करनी चाहिये। ठीक समय पर इसकी उपासना अवश्य करनी चाहिये। आपत्तिकाल मे भी इसका परित्याग न करे ॥१७-१८॥ असत्य भाषण तथा वाणी की कठोरता को त्यागना चाहिये। असत् शास्त्र, असत् विवाद तथा असत् सेवा का त्याग कर देना चाहिए। सायकाल तथा प्रात काल हवन करे। उदय एवम् अस्त होने के समय सूर्य को न देखे ॥१९-२०॥ बालो का परिष्कार, दन्तधावन तथा अजन करे। पूर्वाह्ण मे ही देवताओं का तर्पण करे ॥२१॥ गाँव, घर, तीर्थ, खेत, मार्ग, जोती हुई भूमि तथा गोष्ठ मे मल-मूत्र का त्याग न करे ॥२२॥ नग्न स्त्री तथा अपनी विष्ठा को न देखे। रजस्वला स्त्री के दर्शन, स्पर्श एवम् सभाषण न करे। जल मे मल-मूत्र-त्याग तथा मैथुन न करे। मल, मूत्र, केश, भस्म, कपाल, भूसी, कोयला, रस्सी

१क ग काम्योऽत्रै०। २क ख ०रस्य चातु०। ३क ०बन्धार्थं स०। ग ०बन्धाच्च स०। ४क. ०र्मो दार्थ्यार्थपादक। ५ग प्राङमुखे। ६क ख ०मत्यर्थं वा०। ७क पूजनम्। ८क. ०मावासे च ती०। ९ख. ०नि। विष्ठामूत्र न कर्तव्य न०।

नग्नां परस्त्रियं नेक्षेन्न पश्येदात्मनः शकृत्। 'उदक्यादर्शनस्पर्शमेवं संभाषणं तथा ॥२३॥
नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा मैथुनं वा समाचरेत्। नाधितिष्ठेच्छकृन्मूत्रे केशभस्मसपालिकाः ॥२४॥
तुषाङ्गारविशीर्णानि रज्जुवस्त्रादिकानि च। नाधितिष्ठेत्तथा प्राज्ञः पथि[२] वस्त्राणि[३] वा भुवि ॥२५॥
पितृदेवमनुष्याणां भूताना च तथाऽर्चनम्। कृत्वा विभवतः पश्चाद्गृहस्थो भोक्तुमर्हति ॥२६॥
प्राङमुखोदङ मुखो [४]वाऽपि स्वाचान्तो वाग्यतः शुचिः। भुञ्जीत चाऽन्नं तच्चित्तो ह्यन्तर्जानुः सदा नरः ॥२७॥
[५]उपघातमृते दोषान्नान्नस्योदीरयेद्बुधः[६]। प्रत्यक्षलवणं [७]वर्ज्यमन्नमुच्छिष्टमेव च ॥२८॥
न गच्छन्न च तिष्ठन्वै विण्मूत्रोत्सर्गमात्मवान्। कुर्वीत [८]चैवमुच्छिष्टं न किंचिदपि भक्षयेत् ॥२९॥
उच्छिष्टो [९]नालपेत्किंचित्स्वाध्यायं न विवर्जयेत्। न पश्येच्च रविं चेन्दुं नक्षत्राणि च कामतः ॥३०॥
भिन्नासनं च शय्या च भाजनं च विवर्जयेत्। गुरूणामासनं [१०]देयमभ्युत्थानादिसत्कृतम् ॥३१॥
अनुकूलं तथाऽऽलापमभिकुर्वीत बुद्धिमान्। तत्रानुगमनं कुर्यात्प्रतिकूलं न संचरेत् ॥३२॥
नैकवस्त्रश्च भुञ्जीत न कुर्याद्देवतार्चनम्। नाऽऽवाहयेद्द्विजानग्नौ होमं कुर्वीत बुद्धिमान् ॥३३॥
न स्नायीत नरो नग्नो न शयीत कदाचन। न पाणिभ्यामुभाभ्यां तु कण्डूयेत शिरस्तथा ॥३४॥
न चाभीक्ष्णं शिरःस्नानं कार्यं निष्कारणं बुधैः। शिरःस्नातश्च तैलेन नाङ्गं किंचिदुपस्पृशेत् ॥३५॥

तथा (केवल) वस्त्र आदि पर न बैठे। विद्वान् मनुष्य मार्ग में भूमि पर वस्त्र बिछा कर न बैठे ॥२३-२५॥ पितर देवता, मनुष्य तथा पञ्चभूतों की पूजा करने के उपरान्त गृहस्थ भोजन करे ॥२६॥ पूर्व या उत्तर मुँह बैठकर आचमन करके पवित्र हो मौन होकर भोजन करे। मनुष्य अन्न खाते समय उसी में मन लगाये और जघे को नीचे करके अर्थात् पद्मासन लगा कर बैठे ॥२७॥ विद्वान् व्यक्ति उपघात या क्षति के बिना भोजन की निन्दा न करे। जिस भोजन में अविद नमक हो, उसको त्याग दे ॥२८॥ चलते हुए तथा खड़ा होकर मल-मूत्र त्याग नहीं करना चाहिये। जूठा कुछ भी नहीं खाना चाहिए। जूठे मुँह से कुछ भी न बोले, स्वाध्याय न करे, सूर्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्रों को भी स्वेच्छा से न देखे। फटा आसन, फटी शय्या तथा फूटा बरतन नहीं रखना चाहिये। गुरु को उठकर सत्कारपूर्वक आसन देना चाहिये ॥२९-३१॥ बुद्धिमान् मनुष्य गुरु के अनुकूल समापण करे उनका अनुगमन करे और उनके प्रतिकूल कुछ भी न करे ॥३५॥ बुद्धिमान् व्यक्ति एक वस्त्र धारण कर भोजन, देवपूजन ब्राह्मणों का आह्वान तथा अग्नि में हवन न करे ॥३३॥ नग्न होकर मनुष्य कभी भी स्नान तथा शयन न करे। दोनों हाथों से शिर को न खुजलाये ॥३४॥ विद्वान् बार-बार तथा निष्कारण सिर से स्नान न करे। सिर से स्नान करके अंगों में तेल न लगाये ॥३५॥ अनध्यायों में वेदाध्ययन न करे। कभी भी ब्राह्मण, अग्नि, गाय तथा सूर्य का

१क. ०स्पर्शं सहस०। २क परयन्त्राणि। ३ख पत्राणि। ४ख ०पि कुर्याद्वाध्यं च वा०। ५ख उच्चारयेत्सदा दो०। ६ख. ०न्नस्य भोजने बुध'। ७ख ०मशुद्धं तत्प्रकीर्तितम्। न। ८ग चैवाऽऽचमनं न। ९क. ख. ०लभेत्किं०। १०क. ०मत्युच्च चातिस०।

अनध्यायेषु सर्वेषु स्वाध्यायं च विवर्जयेत्[1]। ब्राह्मणानलगोसूर्यान्नावमन्येत्कदाचन ॥३६॥
उदङमुखो दिवा रात्रावुत्सर्गं दक्षिणामुखः। आबाधासु यथाकामं कुर्यान्मूत्रपुरीषयोः ॥३७॥
दुष्कृतं न गुरोर्ब्रूयात्क्रुद्धं चैनं प्रसादयेत्। परिवादं न शृणुयादन्येषामपि कुर्वताम् ॥३८॥
पन्था देयो ब्राह्मणानां राज्ञो दुःखातुरस्य[2] च। विद्याधिकस्य गर्भिण्या रोगार्तस्य महीयसः ॥३९॥
मूकान्धबधिराणां च मत्तस्योन्मत्तकस्य च। देवालयं चैत्यतरुं तथैव च चतुष्पथम् ॥४०॥
विद्याधिकं गुरुं चैव बुधः कुर्यात्प्रदक्षिणम्। उपानद्वस्त्रमाल्यादि[3] धृतमन्यैर्न धारयेत् ॥४१॥
चतुर्दश्यां तथाऽष्टम्यां पञ्चदश्यां च पर्वसु। तैलाभ्यङ्गं तथा भोगं योषितश्च विवर्जयेत् ॥४२॥
नोत्क्षिप्तबाहुजङ्घश्च प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन[4]। न चापि विक्षिपेत्पादौ पादं पादेन नाऽऽक्रमेत् ॥४३॥
पुंश्चल्यां कृतकार्यस्य बालस्य पतितस्य च। मर्माभिघातमाक्रोशं पैशुन्यं च विवर्ज्येत् ॥४४॥
दम्भाभिमानं तैक्ष्ण्यं च न कुर्वीत विचक्षणः। मूर्खोन्मत्तव्यसनिनो विरूपानपि वा तथा ॥४५॥
[5]न्यूनाङ्गांश्चाधिकांश्चैव नोपहासेन दूषयेत्। परस्य दण्डं [6]नोद्यच्छेच्छिक्षार्थं शिष्यपुत्रयोः ॥४६॥
तद्वन्नोपविशेत्प्राज्ञः पादेनाऽऽकृष्य चाऽऽसनम्। संयावं कृशरं मांसं नाऽऽत्मार्थमुपसाधयेत् ॥४७॥
सायं प्रातश्च भोक्तव्यं कृत्वा चातिथिपूजनम्। प्राङ्मुखोदङ्मुखो वाऽपि वाग्यतो दन्तधावनम्[7] ॥४८॥

अपमान न करे ॥३६॥ दिन मे उत्तर मुह तथा रात मे दक्षिण मुंह बैठकर मल मूत्र त्याग करे। सकट काल मे किसी भी मुह होकर त्याग कर सकता है ॥३७॥ गुरु को कटुवचन न कहे। कुपित होने पर उन्हें प्रसन्न करे। गुरु की निन्दा दूसरे के मुह से भी न सुने ॥३८॥ ब्राह्मणो को राजाओं को दुःखातुरों को अधिक विद्या वालों को गर्भिणियों को महान् राशियो को गूगो को बहरो को अन्धो को तथा पागलो को रास्ता दे देना चाहिये। पण्डित लोग देवालय गाँव की सीमा पर के वृक्ष चौराहे अधिक विद्या वाले तथा गुरु का प्रदक्षिणा करे। दूसरे के धारण किये हुए जूते वस्त्र, माला आदि न पहने ॥३९ ४१॥ चतुर्दशी अष्टमी, अमावास्या तथा त्यौहारो मे तैल तथा स्त्री-सम्भोग का परित्याग करे ॥४२॥ बाँहो तथा जाघो को ऊपर उठा कर अवस्थित नही होना चाहिये। पैरों को झटकारना नही चाहिये। एक पैर को दूसरे पैर से मलना नही चाहिए ॥४३॥ पुंश्चली स्त्री अपना कार्य किये हुए बालक तथा पतित व्यक्ति के प्रति ममवेधी आक्रोश तथा पिशुनता का व्यवहार नही करना चाहिये। विद्वान् मनुष्य दम्भ अभिमान तथा तीक्ष्णता को छोड दे ॥४४½॥ मूख पागल दुर्व्यसनी कुरूप तथा कम-अधिक अग वाले व्यक्ति का उपहास न करे। शिष्य तथा पुत्र की शिक्षा के निमित्त दूसरे के डड को न उठाये ॥४५ ४६॥ पैर से आसन खीच कर न बैठे। (केवल) अपने लिए हलुआ तिल का लड्डू तथा मास नही बनाना चाहिए। सायकाल और प्रात काल (अर्थात् दिन और रात्रि में) अतिथि-सत्कार करके भोजन करना चाहिए। पूर्व या उत्तर मुह बैठकर मौन

१ख ०त। भिक्षाटनं सदा कुर्याद्ब्राह्मणानां च स सु। उ०। २क दुःखादितस्य। ३क ०माल्यं तु धृ०। ४क ०न। नापि सक्षिपयेत्पा०। ५क ०दचाधिकाङ्गाश्च नो०। ६ग ०द्यच्छेदन्यत्र मित्रपुत्रयो। ७ख ०म्। धयन स०।

कुर्वीत सततं विप्रा वर्जयेद्वर्ज्यवीरुधम्[1]। नोदक्शिराः स्वपेज्जातु न च प्रत्यक्शिरा नरः ॥४९॥
शिरस्त्वागस्त्यामाधाय शयीताथ पुरंदरीम्। न तु गन्धवतीष्वप्सु शयीत न तथोपसि ॥५०॥
उपरागे परं स्नानमृते दिनमुदाहृतम्। अपमृज्यान्न वस्त्रान्तैर्गात्राण्यम्बरपाणिभिः ॥५१॥
न चावधूनयेत्केशान्वाससी न च निर्धुनेत्। अनुलेपनमादद्यान्नास्नातः कर्हिचिद्बुधः ॥५२॥
न चापि रक्तवासाः स्याच्चित्रासितधरोऽपि वा। न च कुर्याद्विपर्यासं वाससोर्नापि भूषयोः ॥५३॥
वर्ज्यं च विदशं वस्त्रमत्यन्तोपहतं च यत्। कीटकेशावपन्नं च तथा श्वभिरवेक्षितम् ॥५४॥
अवलीढं शुना चैव सारोद्धरणदूषितम्। पृष्ठमांसं वृथामांसं वर्ज्यमांसं च वर्जयेत् ॥५५॥
न भक्षयेच्च सततं प्रत्यक्षं लवणं नरः। वर्ज्यं चिरोषितं विप्राः शुष्कं पर्युषितं च यत् ॥५६॥
पिष्टशाकेक्षुपयसां विकारा द्विजसत्तमाः। तथा[2] मांसविकाराश्च नैव वर्ज्याश्चिरोषिताः ॥५७॥
उदयास्तमने भानोः शयनं च विवर्जयेत्। नास्नातो नैव संविष्टो न चैवान्यमना नरः ॥५८॥
न चैव शयने नोर्व्यामुपविष्टो न शब्दकृत्[3]। प्रेष्याणामप्रदायाथ न भुञ्जीत कदाचन ॥५९॥
भुञ्जीत पुरुषः स्नातः सायंप्रातर्यथाविधि। परदारा न गन्तव्याः पुरुषेण विपश्चिता ॥६०॥
इष्टापूर्तायुषां हन्त्री परदारगतिर्नृणाम्। न हीदृशमनायुष्यं लोके किंचन विद्यते ॥६१॥

होकर सदा दन्तधावन करना चाहिये। विप्रवृन्द! त्याज्य वृक्षों का दन्तधावन कभी नहीं करना चाहिये। उत्तर और पश्चिम की ओर शिर करके कभी नहीं सोना चाहिए। पूर्व या दक्षिण दिशा में सिर रख कर सोना चाहिये। भूमि पर जल में तथा प्रात काल नहीं सोना चाहिये ॥४७-५०॥ ग्रहण में, बाद में स्नान करना चाहिए दिन को छोड़कर अर्थात् रात्रि में ग्रहणोपरान्त स्नान करना चाहिए और दिन में ग्रहण-काल में स्नान कर सकते हैं। हाथ में वस्त्र रखकर उस के छोरों से अंगों को नहीं मलना चाहिए। केशों को नहीं हिलाना चाहिये और जोड़े वस्त्र को (एक साथ) नहीं पछाड़ना चाहिए। बिना स्नान किये कभी भी लेप न लगाये। लाल वस्त्र नहीं पहनना चाहिये। धब्बेदार तथा काले वस्त्र को भी धारण न करे। दो वस्त्रों तथा दो आभूषणों का हेर-फेर नहीं करना चाहिये ॥५१-५३॥ किनारे से रहित तथा अत्यन्त फटा हुआ वस्त्र धारण न करे। कीड़ा तथा केशों से युक्त, कुत्तों से दृष्ट तथा आस्वादित, साररहित तथा दूषित मांस का वर्जन करे। पीठ का मांस, व्यर्थ मांस तथा त्याज्य मांस का वर्जन करे ॥५४-५५॥ मनुष्य सदा अधिक नमक न खाये। चिरकालीन, शुष्क तथा बासी चीज न खाये ॥५६॥ द्विजश्रेष्ठो! पिसे हुए अन्न, शाक, ईख, दूध तथा मांस का विकार अर्थात् इनकी बनी हुई चीजें बासी नहीं होती हैं। सूर्य के उदय तथा अस्तकाल में सोना नहीं चाहिये ॥५७॥ बिना स्नान किये नहीं रहना चाहिये। अन्यमनस्क होकर के भी नहीं रहना चाहिये ॥५८॥ बिना पैर धोये शय्या पर नहीं जाना चाहिये (?)। धरती पर नहीं बैठना चाहिये। चिल्लाना नहीं चाहिये। सेवकों को बिना दिये कभी भी नहीं खाना चाहिये ॥५९॥ पुरुष विधानपूर्वक स्नान करके सायं प्रात (अर्थात् दिन और रात्रि में) भोजन करे। विद्वान् पुरुष दूसरे की स्त्री से कभी भी रति न करे ॥६०॥ दूसरे की स्त्री से संभोग करना मानो मनुष्यों को यज्ञादि तथा आयु से हाथ धोना

---

[1] ख. ॰येद्वृक्षवी॰। [2] ख. ॰था मात्स्यवि॰। [3] ग ॰त्। न चैववस्त्रो न रुदन्प्रेक्षतामपदाय च। म॰।

यादृश पुरुषस्येह 'परदाराभिमर्शनम । देवाग्निपितृकार्याणि तथा गुर्वभिवादनम् ॥६२॥
कुर्वीत सम्यगाचम्य तद्वदन्नभुजिक्रियाम । अफेनशब्दगन्धाभिरद्भिरच्छाभिरादरात ॥६३॥
'आचामच्चैव तद्वच्च प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा । अन्तर्जलादावसथाद्वल्मीकान्मूषिकास्थलात ॥६४॥
कृतशौचावशिष्टाश्च वर्जयेत्पञ्च वै मृद । प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च समभ्युक्ष्य समाहित ॥६५॥
अन्तर्जानुस्तथाऽऽचामेत्त्रिश्चतुर्वाऽपि' वै नर । परिमृज्य द्विरावर्त्य खानि मर्धानमेव च ॥६६॥
सम्यगाचम्य तोयेन क्रियां कुर्वीत वै शुचि । क्षुतऽवलीढे 'वाते च तथा निष्ठीवनादिषु ॥६७॥
कुर्यादाचमन स्पर्शो वाऽस्पृष्टम्याकदर्शनम् । कुर्वीताऽऽलम्भन चापि दक्षिणश्रवणस्य च ॥६८॥
यथाविभवतो ह्येतत्पूर्वाभावे तत परम । न विद्यमाने पूर्वोक्त उत्तरप्राप्तिरिष्यते ॥६९॥
न कुर्याद्दन्तसघर्षं नाऽऽत्मनो देहताडनम' । स्वापोऽध्वनि तथा भुञ्जन्स्वाध्याय च विवर्जयत ॥७०॥
सध्याया मैथुन चापि तथा प्रस्थानमेव च । तथाऽपराह्ण कुर्वीत श्रद्धया पितृतर्पणम ॥७१॥
शिर स्नान च कुर्वीत दैव पित्र्यमथापि च । प्राङ्मुखोदङ्मुखो वाऽपि श्मश्रुकर्म च कारयत ॥७२॥
व्यङ्गिनीं वर्जयेत्कन्यां 'कुलजां' वाऽप्यरोगिणीम । उद्वहेत्पितृमात्रोश्च सप्तमीं पञ्चमीं तथा ॥७३॥
रक्षद्दारास्त्यजदीर्ष्या तथाऽह्नि स्वप्नमैथुने । परोपतापक कर्म जन्तुपीडां च सर्वदा ॥७४॥

है। लोक मे परस्त्री प्रसग से बढ़कर आयुक्षय करने वाली कोई चीज नही है॥६१॥ देव अग्नि तथा पितरो के कर्म और गुरु की वन्दना करके अन्न खाना चाहिए। फेन शब्द तथा गन्धो से रहित एवम् स्वच्छ जल से पूर्व या उत्तर मुह होकर के आचमन करे। जल के भीतर की तथा गृह वल्मीक एव चूहों के स्थान की और शौच की अवशिष्ट मत्तिका—इन पाँचो मत्तिकाओं का त्याग करे। मनुष्य हाथ-पर धोकर जल शरीर पर छिड़के॥६२ ६५॥ फिर सावधान होकर पद्मासन लगाकर तीन या चार बार आचमन करे। माजन करके आख कान नाक मुह तथा मस्तक का स्पर्श करे॥६६॥ अच्छी तरह् जल से आचमन कर पवित्र होकर क्रिया करे। छींकने पर थूकने पर तथा वायु त्याग आदि करने पर आचमन करे या सूर्य का दर्शन करे और दाहिने कान को उमेठ। इनमे शक्ति के अनुसार सब करे अथवा पूर्व-पूर्व के अभाव मे उत्तर-उत्तर क्रिया करे। अर्थात पहला यदि विद्यमान न हो तब पिछला विधान करे। ६७ ६९। दाँतो को न कटकटाये शरीर को न ठोंके सोकर रास्ते मे चलते हुए तथा खाते हुए नही पढना चाहिये॥७०॥ सन्ध्याकाल मे मैथुन तथा प्रस्थान नही करना चाहिये। अपराह्ण मे श्रद्धा से पितरो का तर्पण करना चाहिये॥७१॥ पूर्व या उत्तर मुह होकर शिर से स्नान देव पितरो का कर्म तथा दाढी मूछ कटाना चाहिये॥७२॥ कम-अधिक अग वाली कन्या कुलीन तथा नीरोग होने पर भी त्याज्य है। जो कन्या अपने पिता-माता की सातवी या पाचवी सन्तान हो उससे विवाह न करे? स्त्री की रक्षा करे। ईर्ष्या का त्याग करे। दिन मे शयन तथा मथन करना छोड दे। दूसरे को सताप देने वाला तथा जीवो को पीडा देने वाला कर्म न करे॥७३

१क ०दारोपसेवन०। २ख ०वमद्भिश्च प्रा। ३क ०तुर्वा पिबेन्नर। ग ०तुर्वापि वेदप। प०। ४क वान्ते। ५ग ०म्। स्वप्नाध्ययनभोज्यानि स्वाध्या०। ६क ०लटा चास्तिरो०। ७ग ०जा चातिरो०। ८क ०प्तमी प०। ९ ०ञ्चमी तु या। र०।

उदक्या सर्ववर्णानां वर्ज्या रात्रिचतुष्टयम्। स्त्रीजन्मपरिहारार्थं पञ्चमीं चापि वर्जयेत् ॥७५॥
ततः षष्ठ्यां व्रजेद्रात्रौ ज्येष्ठयुग्मासु[1] रात्रिषु। युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ॥७६॥
विधर्मिणो वै [2]पर्वादौ संध्याकालेषु [3]षण्ढकाः[4]। क्षुरकर्मणि रिक्तां वै वर्जयीत विचक्षणः ॥७७॥
श्रुवनामविनीतानां न [5]श्रोतव्यं कदाचन। न चोत्कृष्टासनं देयमनुत्कृष्टस्य चाऽऽदरात् ॥७८॥
क्षुरकर्मणि चा (वा) न्ते च स्त्रीसंभोगे च भो द्विजाः। स्नायीत चैलवान्प्राज्ञः कूटभूमिमुपेत्य च ॥७९॥
देववेदद्विजातीनां साधुसत्यमहात्मनाम्। गुरोः पतिव्रतानां च [6]ब्रह्मयज्ञतपस्विनाम् ॥८०॥
परिवादं न कुर्वीत परिहासं च भो द्विजाः। धवलाम्बरसंवीतः सितपुष्पविभूषितः ॥८१॥
सदा माङ्गल्यवेषः स्यान्न चाऽमाङ्गल्यवान्भवेत्। नोद्धतोन्मत्तमूढैश्च[7] नाविनीतैश्च पण्डितः ॥८२॥
[8]गच्छेन्मैत्रीमशीलैन न वयोजातिदूषितैः। न चातिव्ययशीलैश्च पुरुषैर्नैव वैरिभिः ॥८३॥
कार्याक्षमैर्निन्दितैर्न न चैव[9] विटसङ्गिभिः[10]। निस्वैर्न वादैक्परैर्नरैश्चार्यैस्तथाऽधमैः ॥८४॥
सुहृद्दीक्षितभूपालस्नातकश्वशुरैः सह। उत्तिष्ठेद्विभवाच्चैनानर्चयेद्गृहमागतान् ॥८५॥

७४॥ चार रात तक सब वर्णों को रजस्वला स्त्री के पास नहीं जाना चाहिए। कन्या का जन्म अभिप्रेत न हो तो पांचवीं रात में स्त्री-प्रसंग नहीं करना चाहिये। छठीं रात में स्त्री-प्रसंग करे। युग्म रातों में स्त्री-प्रसंग करने से पुत्र होता है और अयुग्म में कन्या ॥७५-७६॥ चतुर्दशी आदि पर्वकाल में स्त्री-प्रसंग करने से विधर्मी पुत्र होता है और सध्याकाल में करने से नपुंसक। चतुर्थी, चतुर्दशी तथा नवमी तिथि में क्षौरकर्म नहीं करना चाहिये ॥७७॥ अविनीत व्यक्ति की बात कभी न सुने। नीच मनुष्य को आदर से उच्चासन न दे। क्षौरकर्म तथा स्त्री-समागम के बाद तेल लगाकर स्नान करना चाहिये। अपवित्र जगह पर जाने से भी सचैल स्नान करना चाहिये ॥७८-७९॥ द्विजवृन्द! देवता, वेद, ब्राह्मण, साधु, सत्यमहात्मा, गुरु, पतिव्रता, यज्ञ तथा तपस्वियों की निन्दा तथा परिहास नहीं करना चाहिए। स्वच्छ वस्त्र पहने। शुक्ल पुष्पों से विभूषित हो ॥८०-८१॥ सदा मंगलमय वेश धारण करे। अमंगलकारी वेश कदापि धारण न करे। उजड्ड, पागल, मूर्ख, अविनयी, शीलहीन, अवस्था तथा जाति से दूषित, अपव्ययी तथा शत्रुता करने वाले पुरुषों के साथ मित्रता कभी नहीं करनी चाहिये। कार्य करने में असमर्थ, निन्दित, वेश्यागामी, दरिद्र, निन्दक तथा दूसरे भी अधम व्यक्तियों के साथ मित्रता न करे ॥८२-८४॥ घर पर आये हुए मित्र, दीक्षित व्यक्ति, राजा, स्नातक तथा श्वशुर को देखकर उठ जाय और यथाशक्ति उनकी पूजा करे। विप्रवृन्द! संपत्ति के अनुसार, प्रतिवर्ष आये हुए इन लोगों की अच्छी तरह पूजा करे।

१ख ज्येष्ठायु०। २क ख पूर्वादौ। ३क षण्टका। ०ग खण्डका। ४ख ०का। अपवादो[illegible] ग. ०का। स्थान चैवानि०। ५ख ०तव्य क०। ६क ०ह्मचारित०। ७क ०द्धतैर्न च नीचैर्न [illegible] मूढैश्च प०। ८ख. ०न्मैत्री न शीलूर्नैर्न च वा जा०। ९ग ०व सर्वस०। १०क ख ०मि। [illegible] समुद्विग्नैर्न च देवपरै सह। मु०।

यथाविभवतो विप्रा प्रतिसंवत्सरोपितान् । सम्यग्गृहेऽर्चनं कृत्वा यथास्थानमनुक्रमात् ॥८६॥
सपूजयेत्तथा वह्नौ प्रदद्याच्चाऽऽहुती क्रमात् । प्रथमां ब्रह्मणे दद्यात्प्रजाना पतये तत ॥८७॥
तृतीयां चैव गृह्येभ्य[1] कश्यपाय तथाऽपराम् । ततोऽनुमतये दद्याद्दद्याद्बहु (द्गृह) बलिं तत ॥८८॥
पूर्वं ख्याता मया या तु नित्यकर्मविधौ क्रिया । वैश्वदेवं तत [2]कुर्याद्वदत शृणुत द्विजा ॥८९॥
यथास्थानविभाग तु देवानुद्दिश्य वै पृथक् । [3]पर्जन्यापोधरित्रीणा [4]दद्यात्तु [5]मणिके त्रयम् ॥९०॥
[6]वायवे च प्रतिदिश दिग्भ्य प्राच्यादिषु क्रमात् । ब्रह्मणे चान्तरिक्षाय सूर्याय च यथाक्रमात् ॥९१॥
विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो विश्वभूतेभ्य एव च । [7]उषसे भूतपतये दद्याद्वोत्तरत शुचि ॥९२॥
स्वधा च नम इत्युक्त्वा पितृभ्यश्चैव दक्षिणे । कृत्वाऽपसव्य वायव्या [8]यक्ष्मैतत्तेति सवदन् ॥९३॥
अन्नावशेषमिश्र वै तोय दद्याद्यथाविधि । देवाना च तत कुर्याद्ब्राह्मणाना नमस्क्रियाम् ॥९४॥
[9]अङ्गुष्ठोत्तरतो रेखा पाणेर्या दक्षिणस्य च । एतद्ब्राह्ममिति ख्यात तीर्थमाचमनाय वै ॥९५॥
तर्जन्यङ्गुष्ठयोरन्त पित्र्य तीर्थमुदाहृतम् । पितृणा तेन तोयानि दद्यान्नान्दीमुखादृते ॥९६॥
अङ्गुल्यग्रे तथा दैव तेन दिव्यक्रियाविधि । तीर्थं कनिष्ठिकामूले काय तत्र [10]प्रजापते ॥९७॥
एवमेभि सदा [11]तीर्थै विधान पितृभि सह । सदा कार्याणि कुर्वीत नान्यतीर्थैं कदाचन ॥९८॥

पूजा करके अग्नि मे क्रमश आहुतियाँ दे ॥८५ ८६½॥ पहिली आहुति ब्रह्मा का दूसरा प्रजापति क। तदनंतर गृह वालों को और चौथी कश्यप को देना चाहिए। तब बहुत-सी बलियाँ चढाये ॥८७-८८॥ पहले नित्यकर्म के विधान मे जो क्रिया मैंने बतलायी थी उसके अनुसार विश्वेदेव का कर्म करना चाहिए। द्विजगण! अब मुझसे सुनिये ॥८९॥ देवताओ को उद्देश्य करके पथक-पथक स्थान की रचना करे। मेघ जल तथा पृथ्वी को बलि दे। प्रत्येक दिशा मे वायु को बलि दे। पूर्व आदि दिशाओ को भी क्रमश बलि दे। ब्रह्मा आकाश तथा सूर्य को क्रमश बलि चढाय ॥९० ९१॥ विश्वेदेव तथा विश्वभूत का भी बलि दे। भूतपति उषा को उत्तर दिशा म पवित्रता पूर्वक बलि दे ॥९२॥ 'स्वधा च नम' यह पढकर दक्षिण दिशा मे पितरो का बलि दे। अपसव्य होकर 'यक्ष्मैतत्त' यह पढते हुए वायव्य कोण मे अवशिष्ट अन्नमिश्रित जल पितर को समर्पित करे तब देवताओ और ब्राह्मणो को नमस्कार करे ॥९३ ९४॥ दाहिने हाथ मे अगुष्ठ से उत्तर की रेखा ब्राह्मतीर्थ कहलाती है। इससे आचमन करना चाहिये। तर्जनी तथा अगुष्ठ के बीच पित्र्यतीर्थ माना गया है। उससे पितरों को जल दे केवल नान्दी मुख श्राद्ध मे नही दे ॥९५ ९६॥ अगुलियो के अग्रभाग मे दैवतीर्थ माना जाता है। उससे देवकर्म करे। कनिष्ठिका के मूल मे प्रजापति का कायतीर्थ माना जाता है ॥९७॥ पितृकर्म मे इन्हा तीर्थों का विधान है। इन्ही तीर्थों से सदा काय करे। अन्यतीर्थों से कभी भी न करे ॥९८॥ ब्राह्मतीर्थ से आचमन प्रशस्त है। पित्र्यतीर्थ से पितृकर्म

१ग गुह्येभ्य । २ख ग ०र्योदबलय गृ०। ३ख ०न्यायोध०। ग ०न्याय ध०। ४क कुर्यात्तु। ५क दिनके। ६ग दीयते। ७ग तपसे। ८ख यमे त ते विभोजनात्। अ०। ग यस्मैतत्तऽभिभोजयेत्। अ० ९ख ०ष्ठोन्तर०। १०क ख प्रजायते। ११क ०तीर्थैं कुर्यात्कर्म यथोचितम। ना०।

ब्राह्मेणाऽऽचमनं शस्तं पैत्र्यं पित्र्येण सर्वदा। देवतीर्थेन देवानां प्राजापत्य जिते (त्यजले) न च॥९९॥
नान्दीमुखाना कुर्वीत प्राज्ञः पिण्डोदकक्रियाम्। प्राजापत्येन तीर्थेन यच्च किंचित्प्रजापते.॥१००॥
युगपज्जलमग्निं च बिभृयान्न विचक्षणः। 'गुरुदेवपितृन्विप्रान्न च पादौ प्रसारयेत्॥१०१॥
'नाऽऽचक्षीत धयन्तीं गा जलं नाञ्जलिना पिबेत्। शौचकालेषु सर्वेषु गुरुष्वल्पेषु वा पुनः॥
न विलम्बेत' मेधावी न मुखेनानलं धमेन्॥१०२॥
तत्र विप्रा न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम्। ऋणप्रदाता वैद्यश्च श्रोत्रियः सजला' नदी॥१०३॥
जितभृत्यो नृपो यत्र बलवान्धर्मतत्परः। तत्र नित्यं वसेत्प्राज्ञः कुतः कुनृपतौ सुखम्॥१०४॥
पौरा सुसंहता यत्र सततं न्यायवर्तिनः। शान्तामत्सरिणो लोकास्तत्र वासः सुखोदयः॥१०५॥
यस्मिन्कृषीवला राष्ट्रे प्रायशो नातिमानिनः। यत्रौषधान्यशेषाणि वसेत्तत्र विचक्षण.॥१०६॥
तत्र विप्रा न वस्तव्यं यत्रैतत्त्रितयं सदा। जिगीषु. पूर्ववैरश्च जनश्च सततोत्सवः॥१०७॥
वसेन्नित्यं सुशीलेषु सहचारिषु पण्डित.। यत्राप्रधृष्यो नृपतिर्यत्र सस्यप्रदा मही॥१०८॥
इत्येतत्कथित विप्रा मया वो हितकाम्यया। अत पर प्रवक्ष्यामि भक्ष्यभोज्यविधिक्रियाम्॥१०९॥
भोज्यमन्नं पर्युषितं स्नेहाक्त चिरसभृतम्'। अस्नेहा अपि गोधूमयवगोरसविक्रिया॥११०॥

सदा करना चाहिये। देवतीर्थ से देवताओ का और कायतीर्थ से प्रजापति का कर्म करना चाहिये॥९९॥ विद्वान् मनुष्य नान्दीमुख श्राद्ध मे पिण्डदान तथा जल क्रिया करे। प्राजापत्य तीर्थ से प्रजापति का कर्म करे। पण्डितजन एक समय जल तथा अग्नि का धारण न करे। गुरुदेव पितर तथा ब्राह्मणो के ऊपर पैर न उठाये। बच्चे को पिलाती हुई या स्वय जल पीती हुई गाय को न कहे (अर्थात् दूसरे का बताकर गाय के जल पीने मे बाधा न डाले)। अजलि से जल न पिये। छोटे बडे सभी प्रकार के शौच के कार्यों मे विलम्ब न लगाये। मेधावी व्यक्ति मुँह से आग को न फूके॥१००-१०२॥ विप्रवृन्द! वहाँ नही वास करना चाहिये, जहाँ ऋणदाता वैद्य, श्रोत्रिय, जलवाली नदी—ये चार चीजें न हों॥१०३॥ सेवकों को वश मे रखने वाला बलवान तथा धर्मपरायण राजा जहाँ (के राज्य मे) रहता है, वही विद्वान् व्यक्ति नित्य वास करे। निच राजा के राज्य मे सुख कहाँ? जहाँ पुरवासी आपस मे मिल-जुल कर रहते हो तथा सदा न्यायानुगामी, शान्त एवम् ईर्ष्याशून्य हो वहाँ का निवास सुखदायी होता है॥१०४-१०५॥ जिस राष्ट्र मे किसान अभिमानी न हों और ओषधियाँ पर्याप्त मिलती हो वहाँ विद्वान् व्यक्ति वास करे॥१०६॥ विप्रवृन्द! वहाँ वास नही करना चाहिये जहाँ लोग विजय के इच्छुक, वैर करने वाले एवम् सदा उत्सवकारी हों। पण्डित व्यक्ति सदा सुशील सहवासियो के साथ रहे। जहाँ राजा धृष्ट न हो और पृथ्वी सस्यसम्पन्ना हो वहाँ वास करना चाहिये। विप्रगण! आप लोगो के हित के निमित्त मैंने इतना कहा। अब भक्ष्य भोज्य के विधान को बतलाऊँगा॥१०७-१०९॥ स्निग्ध भोज्य अन्न बासी हो, चिरकालीन हो, फिर भी ग्राह्य है। स्नेह से रहित गेहूँ, यव तथा गोरस के विकार—घी, मट्ठा आदि—ग्राह्य हैं॥११०॥ खरगोश, कछुआ, गोह साही; तथा मत्स्य

१क ०तृनग्रे न च। २ख ०तवयो जन्तोर्जलं। ३ग ०लङ्घेत वात च न। ४ ग सज्जला। ५ख ०श्च तथा न स०। ६ग ०हवासिषु। ७क ०सचित०।

शशकः कच्छपो गोधा श्वाविन्मत्स्योऽथ शल्यकः । भक्ष्याश्चैते तथा वर्ज्यो ग्रामशूकरकुक्कुटौ ॥१११॥
पितृदेवादिशेषं च [1]श्राद्धे [2]ब्राह्मणकाम्यया । प्रोक्षितं [3]चौषधार्थं च खादन्मांसं न दुष्यति ॥११२॥
शङ्खाश्मस्वर्णरूप्याणां [4]रज्जूनामथ वाससाम् । शाकमूलफलानां च तथा विदलचर्मणाम् ॥११३॥
मणिवस्त्रप्रवालानां तथा मुक्ताफलस्य च । [5]पात्राणां चमसानां च अम्बुना शौचमिष्यते ॥११४॥
तथाऽश्मकानां तोयेन अश्मसंघर्षणेन च । सस्नेहानां च पात्राणां शुद्धिरुष्णेन वारिणा ॥११५॥
शूर्पाणामजिनानां च मुशलोलूखलस्य च । संहतानां च वस्त्राणां प्रोक्षणात्संचयस्य[6] च[7] ॥११६॥
[8]वल्कलानामशेषाणामम्बुमृच्छौचमिष्यते । आविकानां समस्तानां केशानां[9] चैवमिष्यते ॥११७॥
सिद्धार्थकानां कल्केन तिलकल्केन वा पुनः । [10]शोधनं चैव भवति उपघातवतां सदा ॥११८॥
तथा कार्पासिकानां च शुद्धिः स्याज्जलभस्मना । दारुदन्तास्थिशृङ्गाणां तक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥११९॥
पुनः पाकेन भाण्डानां पार्थिवानाममेध्यता । शुद्धं भैक्ष्यं [11]कारुहस्तः [12]पण्यं योषिन्मुखं [13]तथा ॥१२०॥
[14]रथ्यागमनविज्ञातं [15]दासवर्गेण [16]संस्कृतम् । प्राक्प्रशस्तं चिरातीतमनेकान्तरितं लघु ॥१२१॥
अन्तः प्रभूतं बालं च [17]वृद्धान्तरविचेष्टितम् । कर्मान्तागारशालाश्च स्तनन्धय शुचि स्त्रियाः ॥१२२॥

भक्ष्य हैं। गाँव के सूअर तथा मुर्गे अभक्ष्य हैं ॥१११॥ श्राद्ध मे पितृ-देव कर्म के अवशिष्ट मांस तथा ब्राह्मण और औषध के निमित्त लाये गये मांस को संस्कृत करके खाने मे कोई दोष नहीं ॥११२॥ शंख, पत्थर, सोना तथा चाँदी के पात्रों एवं चमचों को जल से धो देने पर उनकी शुद्धि हो जाती है। रस्सी, वस्त्र, शाक, कन्द, फल, बाँस का पात्र, मृग आदि का चर्म, मणि, मूगा तथा मोती जल से धो देने पर शुद्ध हो जाते हैं। पत्थर जल से या पत्थरों की रगड़ से शुद्ध होता है। स्नेह (तेल आदि) से युक्त पात्र गरम जल से शुद्ध होता है। सूप चर्म-वस्त्र, मुशल, ओखली, सिला हुआ वस्त्र तथा वल्कल (छाल) जल से शुद्ध होता है। भेड का बाल भी जल से शुद्ध हो जाता है ॥११३-११७॥ सरसो या तिल की खली से चोटिलो या घाव वालो की शुद्धि होती है ॥११८॥ कपास का वस्त्र जल तथा भस्म से शुद्ध होता है। लकडी, दाँत, हड्डी तथा सींगों की शुद्धि छीलने से होती है। मिट्टी का बरतन पुनः पाक करने से अपवित्र हो जाता है। भिक्षा, दुकानदार का हाथ, दुकान मे रखी चीजे तथा स्त्री का मुख शुद्ध होता है ॥११९-१२०॥ सेवको द्वारा साफ सुथरा किया गया राजमार्ग शुद्ध होता है। पहले जिसकी प्रशंसा की गई हो, ऐसी वस्तु बहुत दिनो के बाद भी शुद्ध रहती है। अनेक वस्तुओ से ढकी हुई छोटी चीज शुद्ध होती है। शरीर मे संलग्न केश और वृद्ध की चेष्टा शुद्ध होती है (?)। जहाँ सत्कर्म किये गये हो ऐसी शालायें तथा स्त्रियो के दोनो स्तन शुद्ध होते हैं ॥१२१-१२२॥ गन्धरहित बहता जल शुद्ध होता है। भूमि जलाने, झाडू देने, गोष्ठ बनाने

१क ग श्राद्ध। २क देवतानां। ३ख रञ्जितानां च वा०। ४ख. ०णां च फलानां। ग ०णां वसनानां। ५क ०संहृतस्य। ६ख च। कल्कानामप्यशे०। ७ख ०म्बुमच्छौ०। ८ग ०नां चाप्यमेध्यता। सि०। ९क ख साधूनां। १०ख ०हस्तात्पण्य। ११ख पण्ययो०। १२ख ०था गतमविज्ञात दा०। १३ग ०गतम-विज्ञात दा०। १४ग ०वर्गोऽथ तत्कृत०। १५क ०म्। बाह्यश०। १६ग ०द्धातुर०।

शुचयश्च तथैवाऽऽपः स्रवन्त्यो [1]गन्धवर्जिताः । भूमिर्विशुद्धते कालाद्दाहमार्जनगोकुलैः[2] ॥१२३॥
लेपादुल्लेखनात्सेकाद्वेश्म[3] संमार्जनादिना । केशकीटावपन्ने च गोघ्राते [4]मक्षिकान्विते ॥१२४॥
मृदम्बु भस्म चाप्यन्ने प्रक्षेप्तव्यं विशुद्धये[5] । औदुम्बराणामम्लेन वारिणा [6]त्रपुसीसयोः ॥१२५॥
भस्माम्बुभिश्च कांस्यानां शुद्धिः प्लावो द्रवस्य च । अमेध्याक्तस्य [7]मृत्तोयैर्गन्धापहरणेन च ॥१२६॥
अन्येषां चैव द्रव्याणां वर्णगन्धांश्च हारयेत् । शुचि मांसं तु चाण्डालक्रव्यादैर्विनिपातितम् ॥१२७॥
रथ्यागतं च तैलादि शुचि गोतृप्तिदं [8]पयः । रजोऽग्निरश्वगोछायारश्मयः [9] पवनो मही ॥१२८॥
विप्रुषो मक्षिकाद्याश्च दुष्टसङ्गाददोषिणः । अजाश्वं मुखतो मेध्यं न गोर्वत्सस्य चाऽऽननम् ॥१२९॥
मातुः प्रस्रवणे (णं) मेध्यं शकुनिः फलपातने । आसनं शयनं यानं[10] तटौ नद्यास्तृणानि च ॥१३०॥
[11]सोमसूर्यांशुपवनैः [12]शुध्यन्ते तानि पण्यवत् । रथ्यापसर्पणे स्नाने [13]क्षुत्पानाना च वर्मसु ॥१३१॥
आचामेत यथान्यायं वाससः [14]परिधापने । स्पृष्टानामथ [15]संस्पर्शैर्द्विरथ्याकर्दमाम्भसि[16] ॥१३२॥
पक्वेष्टकचितानां च मेध्यता वायुसंश्रयात् । प्रभूतोपहतादन्नादग्रमुद्धृत्य संत्यजेत् ॥१३३॥

लीपने, कुरेदने, तथा सिक्त करने से शुद्ध होती है। घर झाडू-बहाडू आदि करने से शुद्ध होता है। अन्न में केश तथा कीडे पड जाँय, गाय सूघ ले या मक्खी बैठ जाय, तो उसे मिट्टी या जल या भस्म से शुद्ध करना चाहिए। ताँबा, राँगा तथा सीसा खटाईयुक्त जल से शुद्ध होता है। काँसा भस्म तथा जल से शुद्ध होता है। अपवित्र वस्तु से युक्त द्रव्य मिट्टी या जल तथा गन्ध को मिटा देने से शुद्ध होता है॥१२३-१२६॥ दूसरे भी द्रव्य वर्ण गन्धो को मिटा देने से शुद्ध हो जाते हैं। चाण्डाल तथा हिंसक जीवो द्वारा गिराया हुआ मास शुद्ध होता है। राजमार्ग पर गिरे हुए तेल आदि शुद्ध होते हैं। गाय को तृप्ति देने वाला दूध शुद्ध होता है। बालू, अग्नि, घोडी, गाय, छाँह, किरण, पवन और पृथ्वी शुद्ध होती है॥१२७-१२८॥ बिन्दु तथा मक्खी आदि चीजे दुष्टसंग से दूषित नहीं होती। बकरी तथा घोडे का मुख शुद्ध होता है। गाय तथा बछडे का मुख शुद्ध नहीं होता है। माता के स्तन से निकलता हुआ दूध शुद्ध होता है। फल गिराने के समय पक्षी शुद्ध होता है॥१२९॥ आसन, शय्या, सवारी और नदी-तट का तृण सूर्य चन्द्रमा की किरणो से तथा वायु से शुद्ध हो जाता है जैसे दुकान में रखी हुई चीजे॥१३०॥ गली में चलने पर, स्नानकाल में खाने-पीने के समय तथा वस्त्र पहनने के समय विधि के अनुसार आचमन करना चाहिए॥१३१॥ बुरे रास्ते और कीचड सने हुए जल का स्पर्श हो जाने पर वायु लगने से शुद्धि होती है। पक्की ईंटो से बनी हुई वस्तुओं की शुद्धि भी वायु से होती है। बहुत नष्ट हुए अन्न के आगे से निकाल कर फेंक दे और

---

१ ०न्ववुद्वुदा। २ग ०गोत्रमैः। ले०। ३ख ०काद्भस्मना मा०। ४क ०ते। भस्म चात्र तु विद्धिद्भि प्र०। ५क ०ये। उद्०। ६क ०यो। तस्मात्तु माक्षकान्नाना शु०। ७क ०त्तोयैः शुद्धिर्गं०। ८क. ०पर्वणांतुं। अ०। ९क ख ०य। राजाग्निरश्वगो०। १०ख पान। ११ग ०सूर्याम्बुप०। १२क ध्यन्त्यन्नानि। १३ क क्षुत्वा वाताद्दिक०। १४ग ०ने। घृष्टा०। १५ख ०स्पर्शो द्विर०। १६ग. म्भसाम्। प०।

शेषस्य प्रोक्षणं कुर्यादाचम्याद्भिस्तथा मृदा। उपवासस्त्रिरात्रं तु दुष्टभक्ताशिनो भवेत्॥१३४॥
अज्ञाने ज्ञानपूर्वे तु तद्दोषोपशमे न तु। [1]उदक्यां वावलग्नां च सूतिकान्त्यावसायिनः॥१३५॥
स्पृष्ट्वा स्नायीत शौचार्थं तथैव मृतहारिणः। नारं स्पृष्ट्वाऽस्थि सस्नेहं स्नात्वा विप्रो विशुध्यति॥१३६॥
आचम्यैव तु निःस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य वा। न लङ्घयेत्तथैवाथ ष्ठीवनोद्वर्तनानि च॥१३७॥
गृहादुच्छिष्टविण्मूत्र पादाम्भस्तत्क्षिपेद्बहिः। पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात्परवारिणि॥१३८॥
स्नायीत देवखातेषु गङ्गाह्रदसरित्सु च। [3]नोद्यानादौ विकालेषु [4]प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन॥१३९॥
नाऽऽलपेज्जनविद्विष्टान्वीरहीनास्तथा स्त्रियः। देवतापितृसच्छास्त्रयज्वसंन्यासिनिन्दकैः॥१४०॥
कृत्वा तु स्पर्शनालाप शुध्यत्यर्कावलोकनात्। अवलोक्य तथोदक्यां संन्यस्तं पतितं शवम्॥१४१॥
[5]विधर्मिसूतिकाषण्ढविवस्त्रान्त्यावसायिनः। [6]मृतनिर्यातकाश्चैव परदाररताश्च ये॥१४२॥
एतदेव हि कर्तव्यं प्राज्ञैः शोधनमात्मनः। अभोज्यभिक्षुपाखण्डमार्जारखरकुक्कुटान्॥१४३॥
पतितापविद्धचाण्डालमृताहारांश्च धर्मवित्। संस्पृश्य शुध्यते स्नानादुदक्याग्रामशूकरौ॥१४४॥
तद्वच्च [7]सूतिकाशौचदूषितौ पुरुषावपि। यस्य चानुदिनं हानिर्गृहे नित्यस्य कर्मणः॥१४५॥

बचे को जल से सिक्त करे। जानकर या बिना जाने दूषित भात खाने से दोषशान्ति के लिये तीन रात उपवास करे॥१३२-१३४॥ रजस्वला तथा नवप्रसूता स्त्री का स्पर्श हो जाने पर पवित्रता के लिये स्नान करे। शव-वाहक व्यक्तियों का स्पर्श होने पर भी स्नान करे। मनुष्य की हड्डी छू जाने पर ब्राह्मण तेल लगाकर स्नान करने से शुद्ध होता है॥१३५-१३६॥ अथवा बिना सचैल स्नान किये ही गाय को छू लेने से, सूर्य को देख लेने से तथा आचमन कर लेने से वह पवित्र हो जाता है। थूक, उबटन, उच्छिष्ट, विष्ठा, मूत्र तथा चरण धोने से बचे जल को नही लांघना चाहिये। दूसरे के जल मे बिना पांच पिण्ड मिट्टी निकाले स्नान नही करना चाहिये॥१३७-१३८॥ जलाशय, गंगा, झील तथा सरोवरो मे स्नान करना चाहिये। विद्वान् व्यक्ति कुसमय मे बगीचे आदि मे न रहे॥१३९॥ मनुष्यों से द्रोह करने वाले व्यक्ति से तथा कुलटा स्त्री से सभापण नही करना चाहिये। देवता, पितर, सत् शास्त्र, यज्ञ-कर्ता तथा सन्यासियो के निन्दक से स्पर्श तथा सभाषण करके मनुष्य सूर्य के दर्शन से शुद्ध होता है॥१४०½॥ रजस्वला, त्यक्त, पतित, शव, विधर्मी नवप्रसूता नपुसक, वस्त्रहीन स्त्री, चाण्डाल, शव-वाहक तथा परस्त्रीगामी को देखकर विद्वान् मनुष्य यही प्रायश्चित्त करे (अर्थात् सूर्य का दर्शन कर ले)॥१४१-१४२½॥ अभोज्य वस्तु,भिक्षुक, पाखण्डी, बिलाड, गधे, मुर्गे, पतित, चाण्डाल तथा शव ढोने वालो का स्पर्श कर धर्मवेत्ता मनुष्य स्नान से शुद्ध होता है। रजस्वला, गाव के सूअर तथा नवप्रसूता के अशौच से दूषित पुरुषो का स्पर्श करने पर मनुष्य स्नान करे। जो प्रतिदिन नित्यकर्म से वंचित रहता है, जो ब्राह्मणो से परित्यक्त है और जो पापाशी (बिना भग-

---

१क ०दक्यास्नानमप्याम्बु सू०। २ख ०क्या स्वामनग्ना। ३क नोद्वाहादौ। ख नोत्खातादौ। ४क. प्राज्ञो गच्छेत्क०। ५ग. ०काखण्डवि०। ६क ०र्यासका०। ७क ०धित पापकर्मभि। य०।

यश्च ब्राह्मणसंत्यक्तः किल्बिषाशी नराधमः। नित्यस्य कर्मणो हानिं न कुर्वीत कदाचन ॥१४६॥
तस्य त्वकरणं वक्ष्ये केवलं मृतजन्मसु। दशाहं ब्राह्मणस्तिष्ठेद्दानहोमविवर्जितः ॥१४७॥
क्षत्रियो द्वादशाहं च वैश्यो मासार्धमेव च। शूद्रश्च मासमासीत निजकर्मविवर्जितः ॥१४८॥
ततः परं निजं कर्म कुर्युः सर्वे यथोचितम्। प्रेताय सलिलं देयं बहिर्गत्वा तु गोत्रकैः ॥१४९॥
प्रथमेऽह्नि चतुर्थे च सप्तमे नवमे तथा। तस्यास्थिसंचयः कार्यश्चतुर्थेऽहनि गोत्रकैः ॥१५०॥
ऊर्ध्वं संचयनात्तेषामङ्गस्पर्शो विधीयते¹। गोत्रकैस्तु क्रियाः सर्वाः कार्याः संचयनात्परम् ॥१५१॥
²स्पर्श एव सपिण्डानां मृताहनि तयोभयोः। ³अन्वर्थमिच्छया ⁴शस्त्ररज्जुबन्धनवह्निषु ॥१५२॥
विषप्रतापादिमृते⁵ प्रायानाशकयोरपि। बाले देशान्तरस्थे च तथा प्रव्रजिते मृते ॥१५३॥
सद्यः शौचं ⁶मनुष्याणां त्र्यहमुक्तमशौचकम्। सपिण्डानां सपिण्डस्तु मृतेऽन्यस्मिन्मृतो यदि ॥१५४॥
पूर्वशौचं समाख्यानं कार्यास्तत्र दिनक्रियाः। एष एव विधिर्दृष्टो जन्मन्यपि हि सूतके ॥१५५॥
सपिण्डानां सपिण्डेषु यथावत्सोदकेषु च। पुत्रे जाते पितुः स्नानं सचैलस्य विधीयते ॥१५६॥
तत्रापि यदि वाऽन्यस्मिन्ननुयातस्ततः⁷ परम्। तत्रापि शुद्धिरुदिता पूर्वजन्मवतो दिनैः ॥१५७॥

वान् को समर्पित किये भोजन करने वाला) है, उनसे स्पर्श करने पर भी स्नान करे। नित्यकर्म को कभी नहीं छोड़ना चाहिये ॥१४३-१४६॥ सगोत्र में किसी के मरने पर तथा जन्म लेने पर नित्यकर्म छोड़ दे। अर्थात् अशौच में ब्राह्मण दस दिनों तक दान-होम छोड़ दे ॥१४७॥ क्षत्रिय बारह दिनों तक, वैश्य पन्द्रह दिनों तक और शूद्र एक मास तक अपने-अपने नित्यकर्मों से वंचित रहे ॥१४८॥ इसके बाद सब अपने-अपने यथोचित कर्म करें। सगोत्र के लोग बाहर जाकर पहले दिन, चौथे दिन, सातवें दिन तथा नवें दिन प्रेत को जल दें और चौथे दिन उसका अस्थि-संचय करें। अस्थि-संचय के बाद अंगस्पर्श का विधान है। गोत्र वाले अस्थि-संचय के बाद सारी क्रियायें करें ॥१४९-१५१॥ मृत्यु के दिन सपिण्डों द्वारा स्पर्श करना ही विहित है भले ही वह व्यक्ति स्वेच्छा से मरा हो या शस्त्र से या फाँसी से या अग्नि से या विष से या अनशन के द्वारा मरा हो। विदेश में बालक के मर जाने तथा संन्यासी के मर जाने पर मनुष्यों को तीन दिनों का सद्य अशौच लगता है ॥१५२-१५३½॥ सगोत्र वालों में एक के मर जाने के बाद दूसरे दिन दूसरा भी कोई मर जाय तो पहिले के अनुसार ही अशौच माना जाता है। उसमें केवल दैनिक क्रियायें करनी चाहिए। यही विधान जन्माशौच में भी लागू होता है ॥१५४-१५५॥ किन्तु यह नियम सपिण्डों के प्रति तथा जिनके मरने पर जल दिया जाय उनके सम्बन्ध में है। पुत्र के उत्पन्न होने पर पिता सचैल स्नान करे। वहाँ भी यदि दूसरे दिन दूसरा (बालक) जन्म ले ले तो पहले जो उत्पन्न हुआ हो, उसी के दिनों के अनुसार शुद्धि होगी। समस्त वर्ण दश, बारह, पन्द्रह तथा एक मास के हिसाब से विधिपूर्वक

१ख. ०ते। सोदरैस्तु। ग. ०ते। सोदकै०। २ग सर्वे। ३क अन्विच्छमि०। ४ग ०स्त्रनेणोद्वर्तन०। ५क. ख. ०पयप्रयतासूते। ६ख. ०नुष्यस्य त्र्य०। ग ०नुष्यंश्च त्र्य०। ७ग ०स्मिञ्जाते जायेदथाप०।

दशाद्वादशमासार्धमासमस्थैर्विनिर्गमे । स्वा स्वा कर्मक्रिया कुर्युः सर्वे वर्णा यथाविधि ॥१५८॥
प्रेतमुद्दिश्य कर्तव्यमेकोद्दिष्टमत परम् । दानानि चैव देयानि ब्राह्मणेभ्यो मनीषिभि ॥१५९॥
यद्यदिष्टतम लोके यच्चास्य दयित गृहे । तत्तद्गुणवते देय तदेवाक्षयमिच्छता ॥१६०॥
पूर्णे तु दिवसे स्पृष्ट्वा सलिल वाहनायुधं । दत्तप्रेतोदपिण्डाश्च सर्वे वर्णा कृतक्रिया ॥१६१॥
कुर्यु समग्रा शुचिन परत्रेह च भतये । अध्येतव्या त्रयी नित्य भवितव्य विपश्चिता ॥१६२॥
धर्मतो धनमाहार्यं यष्टव्य चापि यत्नत । येन प्रकुपितो नाऽऽत्मा जुगुप्सामेति भो द्विजा ॥१६३॥
तत्कर्तव्यमशङ्केन यन्न गोप्य महाजने । एवमाचरतो विप्रा पुरुषस्य गृहे सत ॥१६४॥
धर्मार्थकाम सप्राप्य परत्रेह च शोभनम । इद रहस्यमायुष्य धन्य बुद्धिविवर्धनम् ॥१६५॥
सर्वपापहर पुण्य श्रीपुष्ट्यारोग्यद शिवम् । यशःकीर्तिप्रद नृणा तेजोबलविवर्धनम् ॥१६६॥
अनुष्ठेय सदा पुंभि स्वर्गसाधनमुत्तमम् । ब्राह्मणै क्षत्रियैर्वैश्यै शूद्रैश्च मुनिसत्तमा ॥१६७॥
ज्ञातव्य सुप्रयत्नेन सम्यक्श्रेयोभिकाङ्क्षिभि । ज्ञात्वैव य सदा चालमनुष्ठान करोति वै ॥१६८॥
सर्वपापविनिर्मुक्त स्वर्गलोके महीयते । सारात्सारतर चेदमाख्यात द्विजसत्तमा ॥१६९॥

अपनी-अपनी कम क्रिया करें ॥१५६-१५८॥ इसके बाद प्रत को उद्देश्य करके एकोद्दिष्ट करना चाहिए। विद्वान् व्यक्ति ब्राह्मणो को दान भी दें ॥१५९॥ लोक म जो सबसे प्रिय हो और अपने गृह म सुदर हो उसे चाज को अक्षय बनाने के इच्छा से गुणवान् को देना चाहिए ॥१६०॥ दिन पूरे होने पर वाहन तथा शस्त्र-अस्त्र से युक्त होकर समस्त वण जल का स्पर्श करें और प्रत को जल तथा पिण्ड देकर क्रिया सम्पन्न करें ॥१६१॥ इस लोक मे तथा परलोक मे कल्याण क लिय मनुष्य पवित्र होकर क्रिया सम्पन्न करें। विद्वान् व्यक्ति नित्य वेदो का अध्ययन करें ॥१६२॥ धमपूवक धन कमाना चाहिये और यत्नपूवक यज्ञ करना चाहिय। द्विजगण ! जिससे आत्मा कुपित न हो तथा निंदित न बने, वह निःशक होकर करना चाहिय ॥१६३॥ जो महान् व्यक्तियो से गोपनीय न हो, वह भी करना चाहिये। इस प्रकार आचरण करते हुए गृहस्थ मनुष्य धम अर्थ और काम की प्राप्ति कर इस लोक म तथा परलोक म सुखी होते हैं। यह रहस्य धन आयु तथा बुद्धि बढ़ाने वाला, समस्त पापो का नाश करने वाला पुण्य, लक्ष्मी पुष्टि तथा आरोग्य देने वाला, कल्याणकारक, यश प्रतिष्ठा दायक और तेजोबलविवर्धक है ॥१६४-१६६॥ पुरुषो को स्वग क इस उत्तम साधन का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये। मुनिश्रेष्ठो ! कल्याण चाहने वाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्रो को यत्नपूवक इसे जानना चाहिये ॥१६७३॥ इसे जानकर जो सवदा इसका अनुष्ठान करता है वह सब पापो से मुक्त होकर स्वर्ग म पूजित होता है। द्विजश्रेष्ठो ! सार से भी सार (सब से

१क ख द्विजातय । २ख ०ष्ट्वा सलिल वाहन बुधै । कृतोच्चदण्डौ ख०। ३ग हृत्सायुधम्। प्रातोद-दण्डो च ख०। ४ख सद्भि ।

श्रुतिस्मृत्युदित धर्मं न देयं यस्य कस्यचित् । न नास्तिकाय दातव्य न दुष्टमतये द्विजाः ॥
न दाम्भिकाय मूर्खाय न कुतर्कप्रलापिने ॥१७०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे सदाचारनिरूपणं
नामैकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२२१॥

अथ द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

वर्णाश्रमधर्मवर्णनम्

मुनय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्वर्णधर्मान्विशेषत[१] । चतुराश्रमधर्मांश्च द्विजवर्य ब्रवीहि तान् ॥१॥

व्यास उवाच

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च यथाक्रमम् । शृणुध्व संयता[१] भूत्वा वर्णधर्मान्मयोदितान् ॥२॥
[२]दानदयातपोदेवयज्ञस्वाध्यायतत्परं[२] । नित्योदकी भवेद्विप्र. कुर्याच्चाग्निपरिग्रहम्[३] ॥३॥
वृत्त्यर्थं[४] याजयेरच्चान्द्विजानध्यापयेत्तथा । कुर्यात्प्रतिग्रहादान[५] यज्ञार्थं ज्ञानतो द्विजा. ॥४॥
सर्वलोकहितं कुर्यान्नाहितं कस्यचिद्द्विजा. । मैत्री समस्तसत्त्वेषु ब्राह्मणस्योत्तम धनम् ॥५॥

उत्तम) यह रहस्य मैंने बतला दिया। श्रुति-स्मृति-प्रतिपादित यह धर्म जिस किसी को नहीं देना चाहिए। नास्तिक, दुष्टबुद्धि, दाम्भिक, मूर्ख तथा असंगत बोलने वाले को यह नहीं देना चाहिए ॥१६८-१७०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में सदाचार निरूपण नामक दो सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२१॥

अध्याय २२२

वर्णाश्रमधर्म का वर्णन

मुनियों ने कहा—ब्रह्मन्! द्विजवर्य! हम चारो आश्रमों के धर्मों को तथा विशेष कर वर्ण-धर्मों को सुनना चाहते हैं, आप बतलाएँ ॥१॥

व्यास बोले—क्रमश ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों के वर्णधर्मों को आप लोग ध्यान से सुनिये, मैं कहता हूँ ॥२॥ ब्राह्मण दान, दया, तप देवयज्ञ तथा स्वाध्याय में तत्पर होकर नित्य जलकर्म और अग्निहोत्र किया करे ॥३॥ जीविका के लिये अन्य द्विजों को पढ़ाये एवम् यज्ञ कराये। जान-बूझ कर यज्ञ के लिये प्रतिग्रह न स्वीकार करे॥४॥ सब का कल्याण करे, अहित किसी का न करे। समस्त प्राणियों से मित्रता ही ब्राह्मण का उत्तम

१क प्रयता। २ग दान दयायजेद्देवान्यज्ञ०। ३ख ०र्याच्च प्रयत गृह०। ४ख ०र्थं सेवयेत्व०। ५ग ०ग्रह दान शुक्लार्थं न्यायतो। ख ग्रह दान सत्यर्थं न्यायतो।

गवि रत्ने च पारक्ये समबुद्धिर्भवेद्द्विजा । ऋतावभिगम पत्न्या शस्यते वाऽस्य भो द्विजा ॥६॥
दानानि दद्यादिच्छातो द्विजेभ्य क्षत्रियोऽपि हि । यजेच्च विविधैर्यज्ञैरधीयीत च भो द्विजा ॥७॥
शस्त्राजीवो महीरक्षा प्रवरा तस्य जीविका । तस्यापि प्रथमे 'कल्पे पृथिवीपरिपालनम् ॥८॥
धरित्रीपालनेनैव कृतकृत्या नराधिपा । भवन्ति 'नृपते रक्षा यतो यज्ञादिकर्मणाम् ॥९॥
दुष्टाना शासनाद्राजा शिष्टाना परिपालनात् । प्राप्नोत्यभिमताल्लोकान्वर्णसस्थापको नृप ॥१०॥
पाशुपाल्य वणिज्या च कृषि च मुनिसत्तमा । वैश्याय जीविका ब्रह्मा ददौ लोकपितामह ॥११॥
तस्याप्यध्ययन यज्ञो दान धर्मश्च शस्यते । नित्यनैमित्तिकादीनामनुष्ठान च कर्मणाम् ॥१२॥
द्विजातिसश्रय कर्म 'तदर्थं तेन पोषणम् । क्रयविक्रयजैर्वाऽपि धनै कारुभवैस्तु वा ॥१३॥
दान दद्याच्च शूद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेत च । पित्र्यादिक च वै सर्वं शूद्र कुर्वीत तेन वै ॥१४॥
भृत्यादिभरणार्थाय सर्वेषा च परिग्रहा । ऋतुकालाभिगमन स्वदारेषु द्विजोत्तमा ॥१५॥
दया समस्तभूतेषु तितिक्षा नाभिमानिता । सत्य शौचमनायासो मङ्गल प्रियवादिता ॥१६॥
मैत्री चैवास्पृहा तद्वदकार्पण्य द्विजोत्तमा । अनसूया च सामान्या वर्णाना कथिता गुणा ॥१७॥
आश्रमाणा च सर्वेषामेते सामान्यलक्षणा । गुणास्तथोपधर्मश्च विप्रादीनामिमे द्विजा '॥१८॥
क्षात्र कर्म द्विजस्योक्त वैश्यकर्म तथाऽऽपदि । राजन्यस्य च वैश्योक्त शूद्रकर्माणि चैतयो ॥१९॥

धन है ॥५॥ गो, रत्न तथा परलोक के निमित्त कर्मो मे समबुद्धि रखे । ब्राह्मणो के लिये ऋतुकाल म भार्यागमन करना प्रशस्त है ॥६॥ क्षत्रिय इच्छापूर्वक ब्राह्मणो को दान दे, विविध यज्ञ करे तथा अध्ययन करे ॥७॥ शस्त्र धारण करना और पृथ्वी की रक्षा करना उसकी उत्तम जीविका है। प्रथम कल्प मे पृथिवी का परिपालन ही क्षत्रिय का धर्म बतलाया गया है ॥८॥ धरित्रीपालन से ही क्षत्रिय कृतकृत्य हो जाते हैं, जिसलिये कि इससे यज्ञ आदि कर्मों की रक्षा होती है ॥९॥ दुष्टो को दण्ड देने से सज्जनो का परिपालन करने से वर्ण सस्थापक राजा वाञ्छित लोक म जाते हैं ॥१०॥ मुनिवर ! लोकपितामह ब्रह्मा ने वैश्यो को पशुपालन, खेती तथा व्यापार जीविका मे दिये हैं ॥११॥ वैश्य भी अध्ययन यज्ञ दान, धर्म और नित्य, नैमित्तिक आदि कर्मों का अनुष्ठान करे ॥१२॥ द्विजातियो के कर्म से या खरीद बिक्री आदि व्यापार से वह अपना पोषण करे ॥१३॥ शूद्र भी दान दे और पाक-यज्ञ करे। वह पितृ-कर्म आदि सब कुछ करे ॥१४॥ द्विजश्रेष्ठो ! नौकर आदि के भरण के लिये सबका दान लेना, ऋतुकाल मे स्त्रीप्रसग करना, समस्त प्राणियो पर दया करना, सहनशीलता अभिमान न करना सत्य, शौच अनायास, मगल, प्रियवादिता मैत्री अस्पृहा, अकार्पण्य, अनसूया—ये गुण सब वर्णों के लिये सामान्य हैं ॥१५-१७॥ सबस्त आश्रमों के लिये ये गुण सामान्य लक्षण हैं। द्विजगण ! ब्राह्मण आदि के लिये ये उपधर्म हैं। आपत्तिकाल म ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य का कर्म कर सकता है और क्षत्रिय वैश्य एवम् शूद्र का कर्म कर सकता है ॥१८-१९॥ सामर्थ्य

१ख काले। ७क ०तेस्तस्य दानयज्ञादिसिद्धय । ०द्र । १ग दातव्य। २क ख ०जा। एतदेव च कर्तव्य।

स(अ)सामर्थ्ये सति त्याज्यमुभाभ्यामपि च द्विजाः । तदेवाऽऽपदि कर्तव्यं न कुर्यात्कर्मसंकरम् ॥२०॥
इत्येते कथिता विप्रा वर्णधर्मा मयाऽद्य वै । धर्ममाश्रमिणां सम्यग्ब्रुवतोऽपि निबोधत ॥२१॥
बालः कृतोपनयनो वेदाहरणतत्परः । गुरोर्गेहे वसन्विप्रा ब्रह्मचारी समाहितः ॥२२॥
शौचाचाररतस्तत्र कार्यं शुश्रूषणं गुरोः । व्रतानि चरता 'ग्राह्यो वेदश्च' कृतबुद्धिना ॥२३॥
उभे संध्ये रविं विप्रास्तथैवाग्निं समाहित । उपतिष्ठेत्तया कुर्याद्गुरोरप्यभिवादनम् ॥२४॥
स्थिते तिष्ठेद्व्रजेद्याति नीचैरासीत चाऽऽसिते । शिष्यो गुरौ द्विजश्रेष्ठाः प्रतिकूलं च संत्यजेत् ॥२५॥
तेनैवोक्तं पठेद्वेदं नान्यचित्तः पुरस्थितः । अनुज्ञातं च भिक्षान्नमश्नीयाद्गुरुणा ततः ॥२६॥
अवगाहेदपः पूर्वमाचार्येणावगाहिताः । समिज्जलादिकं चास्य कल्पकल्पमुपानयेत् ॥२७॥
'गृहीतग्राह्यवेदश्च ततोऽनुज्ञामवाप्य वै । गार्हस्थ्यमावसेत्प्राज्ञो निष्पन्नगुरुनिष्कृतिः ॥२८॥
विधिनाऽऽप्तदारस्तु धनं प्राप्य स्वकर्मणा । गृहस्थकार्यमखिलं 'कुर्याद्विप्राः स्वशक्तितः ॥२९॥
निर्वापेण पितॄनर्च्य यज्ञैर्देवास्तथाऽतिथीन् । अन्नैर्मुनींश्च स्वाध्यायैरपत्येन प्रजापतिम् ॥३०॥
बलिकर्मणा भूतानि वाक्सत्येनाखिलं जगत् । प्राप्नोति 'लोकान्पुरुषो निजकर्मसमार्जितान् ॥३१॥
भिक्षाभुजश्च ये केचित्परिव्राड्ब्रह्मचारिणः । तेऽप्यत्र' प्रतितिष्ठन्ति गार्हस्थ्यं तेन वै परम् ॥३२॥
वेदाहरणकार्येण तीर्थस्नानाय च द्विजा । अटन्ति वसुधां विप्राः पृथिवीदर्शनाय च ॥३३॥

रहने पर उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिये, परन्तु आपत्तिकाल में करने से कोई दोष नहीं। दूसरे का कर्म दूसरा न करे॥२०॥ विप्रवृन्द! आपको वर्णधर्म मैंने बतला दिये। अब आश्रमों के धर्म भी आप मुझसे सुन लें॥२१॥ द्विजगण! बालक का उपनयन हो जाने के बाद वह वेदाध्ययन करने के लिये गुरु के गृह में वास करे। ब्रह्मचर्य, सावधानी, शौच तथा आचार रखते हुए वह गुरु-शुश्रूषा में निरत रहे, व्रत करे, ध्यानपूर्वक वेदाध्ययन करे, दोनों सन्ध्या समाहित होकर सूर्य का उपस्थान, अग्निहोत्र एवम् गुरु का अभिवादन करे। ॥२२-२४॥ द्विजश्रेष्ठो! शिष्य गुरु के खड़ा होने पर खड़ा हो जाय, चलने पर चले, बैठने पर नीचे बैठे और उनके प्रतिकूल कभी न हो॥२५॥ गुरु के वचनानुसार अनन्यचित्त से वेदाध्ययन करे। उनकी आज्ञा लेकर भिक्षान्न भोजन करे॥२६॥ आचार्य को स्नान करा कर तब स्वयम् स्नान करे। नित्य प्रातःकाल गुरु के लिये समिधा, जल आदि का प्रबन्ध करके रख दे॥२७॥ वेदाध्ययन करने के उपरान्त गुरु का दक्षिणा देकर उनकी आज्ञा से बुद्धिमान् व्यक्ति गृहस्थाश्रम में वास करे॥२८॥ विधिपूर्वक विवाह कर अपने कर्म से धन प्राप्त कर शक्त्यनुसार गृहस्थाश्रम के अखिल कार्यों का सम्पादन करे॥२९॥ श्राद्ध आदि से पितरों को, यज्ञों से देवों को अन्नों से अतिथियों को, स्वाध्यायों से मुनियों को, सन्तान से प्रजापति को, बलिकर्म से भूतों को तथा सत्यवाणी से अखिल जगत् को सन्तुष्ट करके मनुष्य अपने कर्मों द्वारा उपार्जित लोकों को प्राप्त करते हैं॥३०-३१॥ भिक्षाजीवी सन्यासी तथा ब्रह्मचारी भी गृहस्थाश्रम पर ही निर्भर करते हैं। इसलिये गार्हस्थ्य सबसे श्रेष्ठ है॥३२॥ द्विजगण! वेदाध्ययन के लिये, तीर्थस्नान के

१क ख ग्राह्या। २क ख ०दबुद्धि सनातनी उ। ३ख ०वद च त०। ४ख ०द्विप्र स्व०। ५ग ०न्पुरुष नि०। ६ग ०प्यत्रैवावतिष्ठन्ते गा०।

अनिकेता ह्यनाहारा[1] ये तु साय गृहास्तु ते । तेषा गृहस्थ[2] सतत प्रतिष्ठा योनिरुच्यते ॥३४॥
तेषा स्वागतदानानि वक्तव्य मधुर सदा । गृहागताना दद्याच्च शयनासनभोजनम् ॥३५॥
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते । स दत्त्वा दुष्कृत तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ॥३६॥
अवज्ञानमहङ्कारो दम्भश्चापि गृहे सत । परिवादोपघातौ च पारुष्य च न शस्यते ॥३७॥
यश्च सम्यक्करोत्येव गृहस्थ परम विधिम् । सर्वबन्धविनिर्मुक्तो लोकानाप्नोति चोत्तमान् ॥३८॥
[3]वय परिणतौ विप्रा कृतकृत्यो गृहाश्रमी । पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वन गच्छेत्सहैव वा[4] ॥३९॥
पर्णमूलफलाहार केशश्मश्रुजटाधर । भूमिशायी भवेत्तत्र मुनि सर्वातिथिर्द्विजा ॥४०॥
चर्मकाशकुशै कुर्यात्परिधानोत्तरीयके । तद्वत्त्रिषवण स्नान शस्तमस्य द्विजोत्तमा ॥४१॥
देवताभ्यर्चन होम सर्वाभ्यागतपूजनम् । भिक्षा बलिप्रदान तु शस्तमस्य प्रशस्यते ॥४२॥
वन्यस्नेहेन गात्राणामभ्यङ्गश्चापि शस्यते । [5]तपस्या तस्य विप्रेन्द्रा शीतोष्णादिसहिष्णुता ॥४३॥
यस्त्वेता[6] नियतश्चर्या वानप्रस्थश्चरेन्मुनि । स दहत्यग्निवद्दोषाञ्जयेल्लोकाश्च शाश्वतान् ॥४४॥
चतुर्थश्चाऽऽश्रमो भिक्षो प्रोच्यते यो मनीषिभि । तस्य स्वरूप गदतो बुध्यध्व मम सत्तमा ॥४५॥
पुत्रद्रव्यकलत्रेषु त्यजेत्स्नेह द्विजोत्तमा । [7]चतुर्थमाश्रमस्थान गच्छेन्निर्धूतमत्सर ॥४६॥

लिये तथा पृथिवी-दर्शन के लिये जो बिना घर तथा भोजन के पृथ्वी पर पर्यटन करते है, उनका आश्रम गृहस्थ ही है ॥३३-३४॥ मधुर वाणी से सदा उनका स्वागत करना चाहिये। गृह पर आने पर उन्हे शय्या, आसन तथा भोजन देना चाहिये ॥३५॥ अतिथि निराश होकर जिसके घर से लौट जाते हैं, उसे वे पाप देकर तथा (उसका) पुण्य लेकर चले जाते हैं। गृहस्थ के लिये तिरस्कार अभिमान, दम्भ, निन्दा घात तथा कठोरता प्रशस्त नही है ॥३६-३७॥ जो गृहस्थ सम्यक् प्रकार से गार्हस्थ्य-जीवन बिताता है वह समस्त बन्धनो से निर्मुक्त होकर उत्तम लोको को प्राप्त करता है ॥३८॥ विप्रवृन्द! परिपक्व अवस्था होने पर कृतकृत्य हो पुत्रो के ऊपर पत्नी का भार सौंप कर गृहाश्रमी अकेले वन जाय या भार्या के साथ जाय ॥३९॥ वहाँ पर पत्र, मूल, फल का आहार करे भूमि पर सोये, मनन करे, सबका आतिथ्य स्वीकार करे, चर्म, काश तथा कुशा के परिधान (पहिनने के वस्त्र) तथा उत्तरीय (चादर) धारण करे त्रिकाल स्नान करे, शान्ति रखे, देवपूजन, हवन, अभ्यागतो का सत्कार, भिक्षा तथा बलिप्रदान करे। वह वनीय स्निग्ध पदार्थों का उबटन शरीर मे लगा सकता है। सर्दी गर्मी आदि का सहना उसके लिये तपस्या है ॥४०-४३॥ जो वानप्रस्थ मुनि इस प्रकार नित्यचर्या करते हैं वे अग्नि की तरह दोषो को जलाकर शाश्वत लोको को प्राप्त करते हैं ॥४४॥ मुनिवृन्द! मनीषियो ने भिक्षुक के जिस चतुर्थ आश्रम का निर्देश किया है, उसका भी स्वरूप मुझसे सुन लीजिये ॥४५॥ मनुष्य पुत्र, स्त्री तथा द्रव्य की ममता छोडकर डाह से रहित होकर चतुर्थ आश्रम मे प्रवेश करे ॥४६॥ वह तीनो वर्णों के समस्त कर्मों का त्याग करे, मित्र आदि अमित्र

१क निराहारा। ग ह्यनाचारा। २ग गृह गता। त्रिधा गृ०। ३क समये। ४क गतो वि०। ५ग था। वन्द मु। ६ग ०परतस्य च वि०। क ०परयतश्च वि०। ७रा य एव नि०। ८रा ०यचारो वा०। ९रा स ०नुयाश्रमसस्था०।

त्रैवर्णिकाश्च्यजेत्सर्वानारम्भान्द्विजसत्तमा. । मित्रादिषु समो मैत्रः समस्तेष्वेव जन्तुषु ॥४७॥
जरायुजाण्डजादीनां वाङ्मन.कर्मभिः क्वचित् । युक्तः कुर्वीत न [1]द्रोहं सर्वसङ्गांश्च वर्जयेत् ॥४८॥
एकरात्रस्थितिर्ग्रामे पञ्चरात्रस्थितिः पुरे । [2]तथा प्रीतिर्न तिर्यक्षु[3] द्वेषो वा नास्य जायते ॥४९॥
प्राणयात्रानिमित्तं च व्यङ्गारेऽभुक्तवज्जने । काले [4]प्रशस्तवर्णानां भिक्षार्थी पर्यटेद्गृहान् ॥५०॥
अलाभे न विषादी स्याल्लाभे नैव च हर्षयेत् । प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासङ्गाद्विनिर्गतः ॥५१॥
अतिपूजितलाभांस्तु जुगुप्सेच्चै(त्सेच्चै) व सर्वत. । अतिपूजितलाभैस्तु [5]यतिर्मुक्तोऽपि बध्यते ॥५२॥
काम. क्रोधस्तथा दर्पो लोभमोहादयश्च ये । तांस्तु दोषान्परित्यज्य [6]परिव्राण्निर्ममो भवेत् ॥५३॥
अभयं सर्वसत्त्वेभ्यो दत्त्वा यश्चरते महीम् । तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयं नोत्पद्यते क्वचित् ॥५४॥

कृत्वाऽग्निहोत्रं[7] स्वशरीरसस्थं, शरीरमग्निं स्वमुखे जुहोति ।
विप्रस्तु भिक्षोपगतैर्हविर्भिश्चिताग्निना स व्रजति स्म लोकान् ॥५५॥
मोक्षाश्रमं यश्चरते [8]यथोक्तं, शुचिश्च संकल्पितबुद्धियुक्त ।
अनिन्धनं ज्योतिरिव प्रशान्तं, स ब्रह्मलोकं व्रजति द्विजाति. ॥५६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे वर्णाश्रमधर्मवर्णनं नाम
द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्याय. ॥२२२॥

प्राणियों में समान भाव से व्यवहार करे, मन, वाणी, तथा कर्म से जरायुज अण्डज आदि का द्रोह न करे, सर्वसंग का परित्याग करे, एक रात गाँव में वास करे तो पाँच रात नगर में रहे। इस तरह सन्यासी किसी से प्रीति तथा द्वेष न करे ॥४७-४९॥ केवल प्राणरक्षा के निमित्त वह प्रशस्त वर्णों के घर में भिक्षाटन करे, नहीं मिलने पर दुःख न करे और मिलने पर हर्षित न हो। आसक्ति से रहित होकर वह केवल प्राणयात्रा के लिये कर्म करे, अत्यन्त सम्मान तथा लाभ से बचा रहे। क्योंकि अतिमान तथा लाभ से मुक्त यति भी बद्ध हो जाता है ॥५०-५२॥ सन्यासी काम, क्रोध, दर्प, लोभ, मोह आदि दोषों का त्याग कर निर्मम हो जाय। जो निखिल प्राणियों को अभय-दान देकर धरित्री पर विचरण करता है, वह शरीर से मुक्त हो जाता है, उसे कहीं भय नहीं होता है ॥५३-५४॥ जो विप्र इस तरह अग्निहोत्र करता है, जिसमें कि अपने शरीरस्थ अग्नि को अपने मुख में डालता है अर्थात् उस अग्नि में भिक्षा से प्राप्त घृत से हवन करता है और चिताग्नि से शरीर को जलाता है, वह (उत्तम) लोकों को प्राप्त करता है। जो द्विजाति सङ्कल्पित बुद्धि से युक्त होकर पवित्रतापूर्वक मोक्षाश्रम में जीवन व्यतीत करता है, वह इन्धनहीन अग्नि की तरह प्रशान्त ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है ॥५५-५६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वर्णाश्रमधर्मवर्णन नामक दो सौ बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२२॥

१ख ह दुष्टसङ्गं च व०। २ग ०था तिष्ठेत्तथा प्री०। ३ग ०तिर्द्वेषो। ४ख ०स्तग्रामषु भि०। ५क. ०तिर्मुक्तोऽ०। ६ख परब्रह्ममना भ०। ७क ०होत्रं. स्व०। ८क स्वशक्त्या।

अथ त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

संकरजातिलक्षणवर्णनम्

मुनय ऊचुः

सर्वज्ञस्त्वं महाभाग सर्वभूतहिते रतः। भूतं भव्यं भविष्यं च न तेऽस्त्यविदितं मुने ॥१॥
कर्मणा केन वर्णानामधमा जायते गतिः। उत्तमा च भवेत्केन ब्रूहि तेषां महामते ॥२॥
शूद्रस्तु कर्मणा केन ब्राह्मणत्वं च गच्छति। श्रोतुमिच्छामहे केन ब्राह्मणः शूद्रतामियात् ॥३॥

व्यास उवाच

हिमवच्छिखरे[1] रम्ये नानाधातुविभूषिते[2]। नानाद्रुमलताकीर्णे [3]नानाश्चर्यसमन्विते ॥४॥
तत्र स्थितं महादेवं त्रिपुरघ्नं त्रिलोचनम्। शैलराजसुता देवी प्रणिपत्य सुरेश्वरम् ॥५॥
इमं प्रश्नं पुरा विप्रा अपृच्छच्चारुलोचना। तदहं संप्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मम सत्तमाः ॥६॥

उमोवाच

भगवन्भगनेत्रघ्न पूष्णो दन्तविनाशन। दक्षक्रतुहर त्र्यक्ष संशयो मे महानयम् ॥७॥
चातुर्वर्ण्यं भगवता पूर्वं सृष्टं स्वयंभुवा। केन कर्मविपाकेन वैश्यो गच्छति शूद्रताम् ॥८॥

अध्याय २२३

संकरजाति का लक्षण-वर्णन

मुनियों ने कहा—महाभाग! आप सर्वज्ञ तथा प्राणीमात्र के कल्याण में निरत हैं। मुने! आप भूत, भविष्य, वर्तमान जानते हैं। आपसे कुछ अविदित नहीं है। महाबुद्धिमान्! किस कर्म से वर्णों की नीच गति होती है और किस कर्म से उत्तम—यह हमें बतलाइये। शूद्र किस कर्म से ब्राह्मणत्व को प्राप्त करता है और ब्राह्मण किससे शूद्रत्व को—यह हम सुनना चाहते हैं ॥१-३॥

व्यास ने कहा—विप्रवृन्द! पहले हिमालय के मनोरम, नाना प्रकार की धातुओं से विभूषित, अनेक वृक्ष-लताओं से व्याप्त तथा आश्चर्यजनक वस्तुओं से युक्त शिखर पर स्थित, देवों के ईश्वर, त्रिपुर नामक राक्षस को मारने वाले तथा तीन नेत्र वाले शंकर को प्रणाम कर सुन्दर नयन वाली गिरिपुत्री उमा ने उनसे यह प्रश्न पूछा था। मुनिवृन्द! उसे मैं बतलाऊँगा, आप लोग सुनें ॥४-६॥

उमा ने कहा—भगवन्! भग नामक देवता के नेत्र फोड़ने वाले! पूषा के दाँत तोड़ने वाले! दक्ष के यज्ञ का विनाश करने वाले! तीन नेत्र वाले! यह मुझे महान् सन्देह है कि भगवान् ब्रह्मा ने पहले चारों वर्णों

---

१ क. प.। २ क. हिमाऽऽपगिरौ० र०। ३ क. ०विविचित्रे। ४ क. ०नागस्वरा०।

वैश्यो वा क्षत्रियः केन द्विजो वा क्षत्रियो भवेत् । प्रतिलोमे कथं देव[1] शक्यो धर्मो निवर्तितुम् ॥९॥
केन वा कर्मणा विप्रः शूद्रयोनौ प्रजायते । क्षत्रियः शूद्रतामेति केन वा कर्मणा विभो ॥१०॥
एतं मे संशयं देव वद भूतपतेऽनघ । त्रयो वर्णाः प्रकृत्येह कथं ब्राह्मण्यमाप्नुयुः ॥११॥

शिव उवाच

ब्राह्मण्यं देवि दुष्प्राप निसर्गाद्ब्राह्मणः [2]शुभे । क्षत्रियो वैश्यशूद्रो वा निसर्गादिति मे मतिः ॥१२॥
कर्मणा दुष्कृतेनेह स्थानाद्भ्रश्यति स द्विजः । श्रेष्ठं[3] वर्णमनुप्राप्य तस्मादाक्षिप्यते पुनः ॥१३॥
स्थितो ब्राह्मणधर्मेण ब्राह्मण्यमुपजीवति । क्षत्रियो वाऽथ वैश्यो[4] वा [5]ब्रह्मभूयं स गच्छति ॥१४॥
यश्च विप्रत्वमुत्सृज्य[6] क्षत्रधर्मान्निषेवते[7] । ब्राह्मण्यात्स परिभ्रष्टः क्षत्रयोनौ प्रजायते ॥१५॥
वैश्यकर्म च यो विप्रो लोभमोहव्यपाश्रयः । ब्राह्मण्यं दुर्लभं प्राप्य करोत्यल्पमतिः सदा ॥१६॥
स द्विजो वैश्यतामेति वैश्यो वा शूद्रतामियात् । स्वधर्मात्प्रच्युतो विप्रस्ततः शूद्रत्वमाप्नुयात् ॥१७॥
तत्रासौ निरयं प्राप्तो [8]वर्णभ्रष्टो बहिष्कृतः । ब्रह्मलोकात्परिभ्रष्टः शूद्रयोनौ[9] प्रजायते ॥१८॥
क्षत्रियो वा महाभागे वैश्यो वा धर्मचारिणि । स्वानि कर्माण्यपाकृत्य शूद्रकर्म निषेवते ॥१९॥

की सृष्टि की। फिर किस कर्म के फल से वैश्य शूद्रत्व को प्राप्त करता है? अथवा वैश्य किस कर्म से क्षत्रिय हो जाता है *या ब्राह्मण किस कर्म से क्षत्रिय हो जाता है?* देव! विपरीत होने पर धर्म कैसे निवृत्त हो जाता है? किस कर्म से ब्राह्मण शूद्रयोनि मे उत्पन्न होता है? विभो! क्षत्रिय किस कर्म से शूद्रत्व को प्राप्त करता है? भूतपते! निष्पाप! देव! इस लोक मे तीनो वर्ण स्वभाव से कैसे ब्राह्मणत्व को प्राप्त करेंगे? मेरे इस संदेह का निराकरण कीजिए ॥७-११॥

शिव ने कहा—देवी! कल्याणमयी! ब्राह्मणत्व पाना बहुत कठिन है। मेरा तो यह विचार है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र स्वभावसिद्ध हैं। ॥१२॥ दुष्कर्म करने से ब्राह्मण स्थानच्युत होता है। फिर सुकर्म करने से वह श्रेष्ठ वर्ण मे आ जाता है ॥१३॥ ब्राह्मणधर्म मे स्थित क्षत्रिय या वैश्य ब्रह्मणत्व को प्राप्त करता है ॥१४॥ जो *विप्रत्व को त्याग कर क्षात्रधर्म को ग्रहण करता है, वह ब्राह्मणत्व से च्युत होकर क्षत्रिय-योनि मे* जन्म लेता है ॥१५॥ जो क्षुद्रबुद्धि ब्राह्मण दुर्लभ ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लोभ-मोह मे पडकर वैश्य का कर्म करता है, वह वैश्य बन जाता है। वैश्य शूद्र का कर्म करने से शूद्र बन जाता है। स्वधर्मच्युत ब्राह्मण शूद्रत्व को प्राप्त करता है ॥१६-१७॥ वह जाति-बहिष्कृत तथा वर्णभ्रष्ट होकर नरक मे गिरता है, ब्रह्मलोक से परिभ्रष्ट होकर शूद्रयोनि मे जन्म लेता है ॥१८॥ महाभागे! धर्माचरण करने वाली! जो क्षत्रिय या वैश्य अपने कर्मों का परित्याग कर शूद्र का कर्म करता है, वह अपने स्थान से भ्रष्ट होकर वर्णसंकर हो जाता है। इस तरह करने वाले

१क. ०व वर्णधर्मविवर्जिते। के०। २ख शुभ। ३ग ज्येष्ठ। ४ग शूद्रो। ५क. ०भूत स। ६क. ख ०ज्य क्षात्र धर्म निषे०। ७क. ख. ०ते। तस्य क्षत्रत्वमापन्न क्षवयो प्र०। ८क वर्णाचारव०। ९ख. ग. ०द्रत्वमुपजा०।

स्वस्थानात्स परिभ्रष्टो वर्णसंकरतां गतः । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रत्वं याति तादृशः ॥२०॥
यस्तु [1]शूद्रः स्वधर्मेण ज्ञानविज्ञानवाञ्शुचिः । धर्मज्ञो धर्मनिरतः[2] स धर्मफलमश्नुते ॥२१॥
इदं चैवापरं देवि ब्रह्मणा[3] समुदाहृतम् । अध्यात्मं नैष्ठिकी[4] सिद्धिर्धर्मकामैर्निषेव्यते ॥२२॥
उग्रान्नं गर्हितं देवि गणान्नं श्राद्धसूतकम् । [5]घुष्टान्नं नैव भोक्तव्यं शूद्रान्नं नैव वा क्वचित् ॥२३॥
शूद्रान्नं गर्हितं देवि [6]सदा देवैर्महात्मभिः । पितामहमुखोत्सृष्टं प्रमाणमिति मे मतिः ॥२४॥
शूद्रान्नेनावशेषेण जठरे म्रियते द्विजः । आहिताग्निस्तथा [7]यज्वा स शूद्रगतिभाग्भवेत् ॥२५॥
तेन शूद्रान्नशेषेण [8]ब्रह्मस्थानादपाकृतः । ब्राह्मणः शूद्रतामेति नास्ति तत्र विचारणा ॥२६॥
यस्यान्नेनावशेषेण जठरे म्रियते द्विजः । तां तां योनिं व्रजेद्विप्रो यस्यान्नमुपजीवति ॥२७॥
ब्राह्मणत्वं सुखं प्राप्य दुर्लभं योऽवमन्यते । अभोज्यान्नानि वाऽश्नाति स द्विजत्वात्पतेत वै ॥२८॥
[9]सुरापो ब्रह्महा स्तेयी चौरो[10] भग्नव्रतोऽशुचिः । स्वाध्यायवर्जितः पापो लुब्धो नैकृतिकः शठः ॥२९॥
अव्रती वृषलीभर्ता[11] कुण्डाशी सोमविक्रयी[12] । विहीनसेवी विप्रो हि पतते ब्रह्मयोनितः ॥३०॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य शूद्र हो जाते हैं ॥१९-२०॥ जो शूद्र स्वधर्मपूर्वक ज्ञान-विज्ञान प्राप्त करता है तथा पवित्र, धर्मज्ञ और धर्मनिरत है, वह धर्मफल का भोग करता है ॥२१॥ देवी ! यह तथा दूसरा भी अध्यात्म-विषय ब्रह्मा द्वारा वर्णित है। धर्माभिलाषियों को परा सिद्धि प्राप्त करनी चाहिये ॥२२॥ देवि ! उग्रजाति का अन्न, गणों का अन्न, श्राद्ध तथा सूतक का अन्न, निन्दित अन्न और शूद्रान्न नहीं खाना चाहिये ॥२३॥ देवी ! देव-महात्माओं ने सदा शूद्रान्न को निन्दित बतलाया है। ब्रह्मा के मुख से निकला हुआ वचन प्रमाण है—यह मेरा विचार है ॥२४॥ जो अग्न्याधान तथा यज्ञ करने वाला ब्राह्मण पेट में शूद्रान्न का अवशेष रखकर मरता है, वह शूद्र की गति को प्राप्त करता है ॥२५॥ उस शूद्रान्न के शेष रहने के कारण ब्रह्मस्थान से च्युत ब्राह्मण शूद्रत्व को प्राप्त करता है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं ॥२६॥ जिसके अन्न का अवशेष पेट में रखकर ब्राह्मण मरता है, उसकी योनि में वह ब्राह्मण जन्म लेता है। जो दुर्लभ ब्राह्मणत्व को सुखपूर्वक प्राप्त कर इसका अपमान करता है तथा अभोज्य अन्न भक्षण करता है, वह द्विजत्व से गिर जाता है ॥२७-२८॥ मद्य पीने वाला, ब्रह्महत्या करने वाला, चोर, व्रतभंग करने वाला, अपवित्र, स्वाध्याय से रहित, पापी, लोभी, दाम्भिक, दुष्ट, अव्रती, शूद्रापति, जार-पुत्र के साथ खाने वाला, मद्यविक्रेता, तथा नीच की सेवा करने वाला ब्राह्मण ब्रह्मयोनि से गिर जाता है ॥२९-३०॥ गुरु-पत्नीगामी, गुरु से द्वेष करने वाला, गुरु की निन्दा करने वाला तथा ब्राह्मणों से द्रोह करने वाला ब्राह्मण ब्रह्म-

---

१ग वृद्ध । २ख ०तः स्वध० । ३ग ब्राह्मण्य । ४क ०ष्ठिकी बुद्धि धर्मकामे निबोध मे । उ० । ५क. घृष्टान्न । म पिष्टान्न । ६०क ०दा प्रोक्तं मनीषिभिः । ख ०दा प्रोक्तं महा० । ७क. ०ज्वा शूद्रयोनौ प्रजायते । ते० । ८ग ०पाहृत । ९ ०पो ब्राह्मणः स्ते० । १०क चौरस्त्यक्तव्र० । ११क. शूद्राणी । १२. क. ०यी । हीनाचारो ह्यशुचिर्नित्यं प० ।

गुरुतल्पी गुरुद्वेषी गुरुकुत्सारतिश्च[1] यः। ब्रह्मद्विड्वाऽपि पतति ब्राह्मणो ब्रह्मयोनितः ॥३१॥
एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा। शूद्रो ब्राह्मणतां गच्छेद्वैश्यः क्षत्रियतां व्रजेत् ॥३२॥
शूद्रः कर्माणि सर्वाणि यथान्यायं यथाविधि। सर्वातिथ्यमुपातिष्ठञ्शेषान्नकृतभोजनः ॥३३॥
शुश्रूषां परिचर्यां यो ज्येष्ठवर्णे प्रयत्नतः। कुर्यादविमनाः श्रेष्ठः सततं सत्पथे स्थितः ॥३४॥
देवद्विजातिसत्कर्ता सर्वातिथ्यकृतव्रतः। ऋतुकालाभिगामी च नियतो नियताशनः ॥३५॥
दक्षः शिष्टजनान्वेषी शेषान्नकृतभोजनः। वृथा मांसं न भुञ्जीत शूद्रो वैश्यत्वमृच्छति[2] ॥३६॥
ऋतवागनहंवादी निर्द्वंद्वः[3] सामकोविदः। यजते नित्ययज्ञैश्च स्वाध्यायपरमः शुचिः ॥३७॥
दान्तो[4] ब्राह्मणसत्कर्ता सर्ववर्णानसूयकः[5]। गृहस्थव्रतमातिष्ठन्द्विकालकृतभोजनः ॥३८॥
शेषाशी विजिताहारो निष्कामो निरहंवदः। अग्निहोत्रमुपासीनो जुह्वानश्च यथाविधि ॥३९॥
सर्वातिथ्यमुपातिष्ठञ्शेषान्नकृतभोजनः। [7]त्रेताग्निमात्रविहितं वैश्यो भवति च द्विजः ॥४०॥
स वैश्य क्षत्रियकुले शुचिर्महति जायते। स वैश्यः क्षत्रियो जातो जन्मप्रभृति संस्कृतः ॥४१॥
उपनीतो व्रतपरो द्विजो भवति संस्कृतः। [8]ददाति यजते यज्ञैः समृद्धैराप्तदक्षिणैः ॥४२॥
अधीत्य स्वर्गमन्विच्छंस्त्रेताग्निशरणः सदा। [9]आब्रंहस्तप्रदो नित्यं प्रजा धर्मेण पालयन् ॥४३॥

योनि से च्युत हो जाता है ॥३१॥ देवी! इन (ब्राह्मण-) कर्मों से तथा शुभ आचरणो से शूद्र ब्राह्मण हो जाता है और वैश्य क्षत्रिय हो जाता है ॥३२॥ न्यायपूर्वक तथा विधानपुरस्सर समस्त कर्मों को करने वाला, सब का स्वागत करने वाला, अवशिष्ट अन्न खाने वाला, यत्न से श्रेष्ठ वर्णों की सेवा करने वाला, मनोमालिन्य को हटा कर सदा सत्पथ पर दृढ रहने वाला, देव-ब्राह्मणो का सत्कार करने वाला, सबका आतिथ्य करने वाला, ऋतुकाल मे स्त्री-प्रसग करने वाला, नियमपूर्वक भोजन करने वाला, प्रवीण, सभ्य मनुष्यो का अनुगमन करने वाला और व्यर्थ मास न खाने वाला शूद्र वैश्यत्व को प्राप्त करता है ॥३३-३६॥ सत्यवादी, अभिमानशून्य, द्वन्द्वरहित, सामवेद का पण्डित, नित्य यज्ञकर्ता, स्वाध्याय मे निरत, पवित्र, इन्द्रियों का दमन करने वाला, ब्राह्मणो का सत्कार करने वाला, किसी वर्ण की निन्दा न करने वाला, गृहस्थो का व्रत धारण करने वाला, दो समय भोजन करने वाला, अवशिष्ट अन्न खाने वाला, भोजन पर नियन्त्रण रखने वाला, कामनारहित, अग्निहोत्री, विधानपूर्वक हवन करने वाला, सब का आतिथ्य करने वाला और गार्हपत्य आदि तीनो अग्नियो की उपासना करने वाला वैश्य ब्राह्मण हो जाता है ॥३७—४०॥ वह वैश्य महान् क्षत्रिय-कुल मे जन्म लेता है। वह वैश्य जन्मप्रभृति सस्कारो से युक्त क्षत्रिय होता है ॥४१॥ वह उपनयन सस्कार से युक्त व्रतपरायण ब्राह्मण होता है और पूर्ण दक्षिणा देकर यज्ञ करता है ॥४२॥ वेदाध्ययन करके स्वर्ग की कामना से तीनो अग्नियो की उपासना करता है। सदा दानशील होकर धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करता है। सत्यव्यवहार करते हुए पवित्र विचार रखता है। धर्म, काम और अर्थ का साधन करते हुए धर्म-

---

१ख. ०रतश्च। २ख ०ति। सुभावरचान०। ३ग ०द्वः दाम०। ४ख दीनो। ५ख ग ०वर्णानुसूयक। ६क. ०तमन्विच्छन्द्वि०। ७क. ०ग्निमन्त्रवि०। ग ०ग्निमत्रावि०। ८क. तदाऽपि। ९ख. आनंह०।

सत्य सत्यानि कुरुते नित्य य शुद्धिदर्शन । धर्मदण्डेन निर्दग्धो धर्मकामार्थसाधक ॥४४॥
यन्त्रित कार्यकरणै षडभागकृतलक्षण । ग्राम्यधर्मान्न सेवेत स्वच्छन्देनार्थकोविद ॥४५॥
ऋतुकाले तु धर्मात्मा पत्नीमुपाश्रयेत्सदा । सदोपवासी नियत स्वाध्यायनिरत शुचि ॥४६॥
वहिस्कान्तरिते (?) नित्य शयानोऽस्ति सदा गृहे । सर्वातिथ्य त्रिवर्गस्य कुर्वाण सुमना सदा ॥४७॥
शूद्राणा चान्नकामाना नित्य सिद्धमिति ब्रुवन । स्वार्थाद्वा यदि वा कामान्न किंचिदुपलक्षयेत् ॥४८॥
पितृदेवातिथिकृते साधन कुरुते च यत । स्ववेश्मनि यथान्यायमुपास्ते भैक्ष्यमेव च ॥४९॥
द्विकालमग्निहोत्र च जुह्वानो वै यथाविधि । गोब्राह्मणहितार्थाय रणे चाभिमुखो हत ॥५०॥
त्रेताग्निमन्त्रपूतेन समाविश्य द्विजो भवेत । ज्ञानविज्ञानसपन्न सस्कृतो वेदपारग ॥५१॥
वैश्यो भवति धर्मात्मा क्षत्रिय स्वेन कर्मणा । एतै कर्मफलैर्देवि न्यूनजातिकुलोदभव ॥५२॥
शूद्रोऽप्यागमसपन्नो द्विजो भवति सस्कृत । ब्राह्मणो वाप्यसद्वृत्त सर्वसकरभोजन ॥५३॥
स ब्राह्मण्य समुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृश । कर्मभि शुचिभिर्देवि शुद्धात्मा विजितेंद्रिय ॥५४॥
शूद्रोऽपि द्विजवत्सेव्य इति ब्रह्माऽब्रवीत्स्वयम् । स्वभावकर्मणा चैव यत्र (इच) शूद्रोऽधितिष्ठति ॥५५॥
विशुद्ध स द्विजातिभ्यो विज्ञेय इति मे मति । न योनिर्नापि सस्कारो न श्रुतिर्न च सतति ॥५६॥

दण्ड धारण करता है। कार्यों के अनुसार दण्ड (राजनीति) को (सधि विग्रह) आदि छह भागो मे विभक्त कर देता है। अर्थशास्त्र का ज्ञाता मनुष्य स्वतत्रता से ग्राम्य-धर्मों की सेवा न करे॥४२ ४५॥ धर्मात्मा व्यक्ति सदा ऋतुकाल म पत्नीगमन करे। नियमपूर्वक उपवास करने वाला स्वाध्याय मे निरत पवित्र सदा दोष रहित (?) घर मे शयन करने वाला सब का आतिथ्य करने वाला सदा प्रसन्न मन से धर्म अर्थ और काम का साधन करने वाला अन्नाभिलाषी शूद्रा से नित्य सिद्ध ही है' यह कहने वाला स्वार्थ से या काम से किसी की हानि नही करने वाला पितर देव तथा अतिथियो का पूजन अपने घर मे न्यायपूर्वक भिक्षावृत्ति से रहने वाला दोनो समय विधान पूर्वक अग्निहोत्र करने वाला गो-ब्राह्मण क निमित्त युद्ध म मरने वाला तीनो अग्नियो की उपासना से पवित्र ज्ञान विज्ञान से सम्पन्न सस्कारयुक्त और वेदपारगत धर्मात्मा वैश्य अपने कर्म से क्षत्रिय हो जाता है॥४६ ५१॥ देवी! इन कर्मों के फल से नीच कुल म उत्पन्न शूद्र भी वेदसम्पन्न सस्कृत ब्राह्मण हो जाता है। असद्वृत्ती तथा सबके साथ भोजन करने वाला ब्राह्मण भी ब्रह्मणत्व को त्याग कर वैसा शूद्र बन जाता है। पवित्र कर्मों से युक्त शुद्धात्मा तथा जितेंद्रिय शूद्र भी ब्राह्मण की तरह पूज्य है—यह साक्षात् ब्रह्मा ने कहा है। स्वभावसिद्ध कर्मों से युक्त शूद्र द्विजातियो से पवित्र है—यह मेरा मत है॥५२ ५५॥ ब्राह्मणत्व का कारण न योनि है न सस्कार है, न श्रुति है और न सन्तान ही है। वृत्त (आचरण) ही इसका कारण है। लोक म आचरण स ब्राह्मण माना

१ग ०कार्यानुसार०। २ख ०छन्दचाय। ३ग वायका०। ४ख ग सिद्धिमि०। ५ग वा लोभाम्। ६ग ०लक्षयेत्। पि०। ७ग ०भावं कर्म च शुभ य०। ८ग ०ञ्च द्वि पि०। ९ग सन्तति।

कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम् । सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते ॥५७॥
वृत्ते स्थितश्च शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं च [1]गच्छति । ब्रह्मस्वभावः सुश्रोणि समः सर्वत्र मे मतः ॥५८॥
निर्गुणं निर्मलं ब्रह्म यत्र तिष्ठति स द्विजः । एते ये विमला देवि [2]स्थानाभावनिदर्शकाः ॥५९॥
स्वयं च वरदेनोक्ता ब्रह्मणा सृजता प्रजा.[3] । ब्रह्मणो हि महत्क्षेत्रं लोके चरति पादवत्[4] ॥६०॥
यत्तत्र बीजं पतति सा कृषिः प्रेत्य भाविनी । संतुष्टेन सदा भाव्यं सत्पथालम्बिना सदा ॥६१॥
ब्राह्मं हि मार्गमाश्रम्य वर्तितव्यं बुभूषता[5] । संहिताध्यायिना भाव्यं गृहे वै गृहमेधिना ॥६२॥
नित्यं स्वाध्याययुक्तेन न चाध्ययनजीविना । एवंभूतो हि यो विप्रः सततं सत्पथे स्थितः ॥६३॥
आहिताग्निरधीयानो ब्रह्मभूयाय कल्पते । ब्राह्मण्यं देवि संप्राप्य रक्षितव्यं यतात्मना ॥६४॥
[6]योनिप्रतिग्रहादानैः कर्मभिश्च शुचिस्मिते । एतत्ते गुह्यमाख्यातं यथा शूद्रो भवेद्द्विजः ॥
ब्राह्मणो वा च्युतो धर्माद्यथा शूद्रत्वमाप्नुयात् ॥६५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे उमामहेश्वरसंवादे संकरजातिलक्षणवर्णनं नाम
त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२३॥

जाता है ॥५६-५७॥ वृत्त मे स्थित शूद्र भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त करता है। सुन्दर कटि वाली! ब्राह्मण का स्वभाव सब जगह समान है—यह मेरा मत है ॥५८॥ निर्गुण, निर्मल ब्रह्म जिसमे वास करता है, वह ब्राह्मण है। देवी! प्रजा की सृष्टि करने वाले स्वयं वरदायक ब्रह्मा ने कहा है कि स्थानाभाव के उदाहरणस्वरूप निर्मलचित्त वाले जो हैं वे ब्राह्मण हैं। लोक मे ब्रह्म का महान् क्षेत्र पैर की तरह चलता है ॥५९-६०॥ उसमे जो बीज डाला जाता है, वही कृषि के रूप मे उत्पन्न होता है। मनुष्य को सदा सन्तुष्ट एवम् सत्पथावलम्बी होना चाहिये ॥६१॥ होनहार मनुष्य को ब्राह्म मार्ग से चलना चाहिये। गृहस्थ को गृह मे सहिताओं का अध्ययन करना चाहिये ॥७२॥ जो ब्राह्मण नित्य स्वाध्याय से युक्त, अध्ययन द्वारा जीविका न कमाने वाला सदा सत्पथ पर स्थित, वेदाध्ययन करने वाला और अग्न्याधान करने वाला है, वह ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है ॥६३½॥ देवी! ब्राह्मणत्व प्राप्त कर यत्नपूर्वक उसकी रक्षा करनी चाहिये। पवित्र हास्य करने वाली! योनि के आदान-प्रदान (परिवर्तन) से तथा कर्मों से जैसे शूद्र ब्राह्मण हो जाता है या ब्राह्मण धर्मच्युत होकर शूद्रत्व को प्राप्त कर लेता है, वह रहस्य तुमसे बतला दिया ॥६४-६५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे सकरजातिलक्षणवर्णन नामक
दो सौ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२३॥

१क ख ०ति। ब्राह्मणश्च भवेच्छूद्रोऽप्येववृत्तश्च मे। २ख. ०माया निरथका। ३क पुरा। ४क दावकृत्। ५ख. बुभूपुणा। ६ख. योनि प्र०।

अथ चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

उमामहेश्वरसंवादे मानवानामुत्तमगतिप्राप्तिवर्णनम्

उमोवाच

भगवन्सर्वभूतेश सुरासुरनमस्कृत । 'धर्माधर्मे नृणां देव ब्रूहि मे संशयं विभो ॥१॥
कर्मणा मनसा वाचा त्रिविधैर्हि सदा । बध्यन्ते बन्धनैः कैर्वा मुच्यन्ते वा कथं वद ॥२॥
केन शीलेन वै देव कर्मणा कीदृशेन वा । समाचारैर्गुणैः कैर्वा स्वर्गं यान्तीह मानवाः ॥३॥

शिव उवाच

देवि धर्मार्थतत्त्वज्ञे धर्मनित्ये उमे सदा । सर्वप्राणहितः प्रश्नः श्रूयतां ²बुद्धिवर्धनः ॥४॥
सत्यधर्मरताः शान्ताः सर्वलिङ्गविवर्जिताः । नाधर्मेण न धर्मेण ³बध्यन्ते छिन्नसंशयाः ॥५॥
प्रलयोत्पत्तितत्त्वज्ञाः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः । वीतरागा विमुच्यन्ते पुरुषाः कर्मबन्धनैः ॥६॥
कर्मणा मनसा वाचा ये न हिंसन्ति किंचन । ये न ⁴मज्जन्ति कस्मिंश्चित्ते न ⁵बध्नन्ति कर्मभिः ॥७॥
⁶प्राणातिपाताद्विरता⁷ शीलवन्तो दयान्विताः । तुल्यद्वेष्यप्रिया दान्ता मुच्यन्ते कर्मबन्धनैः ॥८॥

अध्याय २२४

मनुष्यों को उत्तम गति मिलने का वर्णन

उमा बोलीं—भगवन्! अखिल प्राणियों के ईश्वर! देवराक्षसों से नमस्कृत! देव! सर्वशक्तिमान्! मनुष्यों के धर्म-अधर्म के विषय में मुझे संदेह है उसे दूर कीजिये। कायिक, वाचिक, मानसिक—इन तीन प्रकार के कर्मों मे किस कर्म के द्वारा प्राणी सदा बद्ध होता है और किस कर्म के द्वारा उसकी मुक्ति होती है—यह मुझे बतलाइये। देव! किस स्वभाव से या किस कर्म से या किस तरह के आचरण से या किन गुणों से मनुष्य स्वर्ग जाते हैं? ॥१-३॥

शिव बोले—देवी! धर्म-अर्थ के तत्त्व को जानने वाली! सदा धर्म में निरत रहने वाली! तुम्हारा प्रश्न समस्त प्राणियों का कल्याणकारक तथा बुद्धिवर्धक है ॥४॥ सुनो। सत्य और धर्म में रत, शान्त, सब प्रकार के लाञ्छनों से रहित तथा संदेहशून्य पुरुष धर्म या अधर्म से बद्ध नहीं होते हैं ॥५॥ उत्पत्ति तथा प्रलय के तत्त्व को जानने वाले सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा रागशून्य पुरुष कर्म-बन्धनों में नहीं पड़ते हैं ॥६॥ जो कर्म से मन से तथा वाणी से किसी की हिंसा नहीं करते हैं और जो किसी में आसक्त नहीं होते हैं, वे कर्मों से बद्ध नहीं होते हैं ॥७॥ जो जीव हिंसा से परे शीलवान् दयावान शत्रु मित्र में सम बुद्धि वाले तथा इन्द्रियों का दमन करने वाले हैं वे कर्मबन्धनों से मुक्त हो जाते हैं ॥८॥ जो अखिल प्राणियों पर दया करने वाले, समस्त जीवों के विश्वासपात्र

१ग ०धर्मो नृ०। २क बुद्धिवर्धिनि। ३क स वनन्त। ४क स सन्ति। ५क स बध्यन्ति। ६ग प्राणनिप्रद्दुष्टा । ७ग ०णामिषा०।

सर्वभूतदयावन्तो विश्वास्याः सर्वजन्तुषु । [1]त्यक्तहिंस्रसमाचारास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥९॥
परस्वनिर्ममा नित्यं परदारविवर्जिताः । धर्मलब्धार्थभोक्तारस्ते नरा स्वर्गगामिनः ॥१०॥
मातृवत्स्वसृवच्चैव नित्यं दुहितृवच्च ये । परदारेषु वर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥११॥
स्वदारनिरता ये च ऋतुकालाभिगामिनः । अग्राम्यसुखभोगाच्च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥१२॥
स्तैन्यान्निवृत्ताः सततं संतुष्टाः स्वधनेन च । स्वभाग्यान्युपजीवन्ति ते नरा स्वर्गगामिनः ॥१३॥
परदारेषु ये नित्यं चारित्रावृतलोचनाः । जितेन्द्रियाः[2] शीलपरास्ते नरा स्वर्गगामिनः ॥१४॥
एष दैवकृतो मार्गः सेवितव्यः सदा [3]नरैः । अकषायकृतश्चैव मार्गः सेव्यः सदा बुधैः ॥१५॥
अवृथापकृतश्चैव मार्गः सेव्यः सदा बुधैः । दानकर्मतपोयुक्तः शीलशौचदयात्मकः ॥
स्वर्गमार्गमभीप्सद्भिर्न सेव्यस्त्वत उत्तरः ॥१६॥

उमोवाच[4]

वाचा तु [5]बध्यते येन[6] मुच्यते ह्यथवा पुनः । तानि कर्माणि मे देव वद भूतपतेऽनघ ॥१७॥

शिव उवाच

आत्महेतोः परार्थे वा[7] अधर्माश्रितमेव च । ये मृषा न वदन्तीह ते नराः स्वर्गगामिनः ॥१८॥

तथा हिंसावृत्ति से निवृत्त हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥९॥ दूसरे के धन में ममता न करने वाले, परस्त्री-प्रसंग से रहित तथा धर्मपूर्वक प्राप्त धन के भोक्ता मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं ॥१०॥ जो मनुष्य दूसरे की स्त्री को माता, बहन तथा बेटी की तरह देखते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥११॥ जो मनुष्य अपनी स्त्री में निरत, ऋतुकाल में स्त्री-प्रसंग करने वाले तथा ग्राम्य-सुख-भोग से रहित हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥१२॥ जो चोरी से रहित सदा अपने धन से संतुष्ट और और अपने भाग्य के भरोसे जीते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥१३॥ जो मनुष्य दूसरे की स्त्री को देखकर चरित्ररक्षा के लिये आँखें मूंद लेते हैं और जितेन्द्रिय एवम् शीलवान् हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥१४॥ मनुष्य इस देवमार्ग का सदा अनुसरण करे। विद्वान् मनुष्य शिष्टसम्मत मार्ग का सदा सेवन करे। पण्डित जन सदा निर्दुष्ट मार्ग का अवलम्बन करें ॥१५॥ दान, कर्म, तपस्या, शील, शौच तथा दया से युक्त एवम् स्वर्ग की कामना करने वाले मनुष्य इससे भिन्न मार्ग को कभी न अपनायें ॥१६॥

उमा बोलीं—भूतपते ! निष्पाप ! जिन वाचिक कर्मों से मनुष्य बद्ध होता है अथवा मुक्त होता है, वे मुझे बतलाइये ॥१७॥

शिव बोले—जो मनुष्य अपने लिये या दूसरे के लिये असत्य नहीं बोलते, वे स्वर्ग जाते हैं। जो मनुष्य

१क ख ०हिंसास०। २ख ०या शौचप०। ३ग बुधैः। ४स्त ०च । कर्मभिर्यैश्च बध्यते यैर्वा मुच्यत पूरुष। ता०। ५क वदते। ६क ये तु मुह्यते। ७ग वा माहात्म्यश्रवणात्तथा। घ।

वृत्त्यर्थं धर्महेतोर्वा कामकारात्तथैव च । अनृतं ये न भाषन्ते ते[1] नराः स्वर्गगामिनः ॥१९॥
श्लक्ष्णां वाणीं [2]स्वच्छवर्णां मधुरां पापवर्जिताम् । स्वगतेनाभिभाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२०॥
परुषं ये न भाषन्ते कटुकं निष्ठुरं तथा । न पैशुन्यरताः सन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२१॥
पिशुनं न प्रभाषन्ते मित्रभेदकरं[3] तथा । परपीडाकरं चैव ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२२॥
ये वर्जयन्ति परुषं परद्रोहं च मानवाः । सर्वभूतसमा[4] दान्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२३॥
शठप्रलापाद्विरता विरुद्धपरिवर्जकाः । सौम्यप्रलापिनो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२४॥
न कोपाद् व्याहरन्ते ये वाचं हृदयदारिणीम् । शान्तिं विन्दति ये क्रुद्धास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२५॥
एष वाणीकृतो देवि धर्मः सेव्यः सदा नरैः । शुभसत्यगुणैर्नित्यं वर्जनीया मृषा बुधैः ॥२६॥

उमोवाच

मनसा [5]बध्यते येन कर्मणा पुरुषः सदा । तन्मे ब्रूहि महाभाग देवदेव पिनाकधृक् ॥२७॥

महेश्वर उवाच

मानसेनेह धर्मेण संयुक्ताः पुरुषाः सदा । स्वर्गं गच्छन्ति कल्याणि तन्मे कीर्तयतः शृणु ॥२८॥
दुष्प्रणीतेन मनसा दुष्प्रणीतान्तराकृतिः । नरो बध्येत येनेह शृणु वा तं शुभानने ॥२९॥
अरण्ये विजने न्यस्तं परस्वं दृश्यते यदा । मनसाऽपि न गृह्णन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३०॥

जीविका के लिये या धर्म के निमित्त या स्वेच्छा से असत्य भाषण नहीं करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो मनुष्य कोमल, स्फीत, मधुर तथा पाप-रहित वाणी बोलते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो मनुष्य कठोर तथा कटु वचन नहीं बोलते हैं तथा चुगली नहीं करते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। जो मनुष्य मित्रों में फूट नहीं डालते हैं और दूसरे को पीडा नहीं देते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। जो मनुष्य दूसरे से द्रोह नहीं करते हैं, समस्त प्राणियों में समान भाव रखते हैं और इन्द्रियों का दमन करते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। जो मनुष्य दुष्टभाषण से रहित, विरोध-शून्य तथा मधुरभाषी हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। जो मनुष्य क्रोध से हृदयविदारक वचन नहीं बोलते हैं और क्रुद्ध होने पर भी तुरन्त शान्त हो जाते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। देवी! मनुष्य सदा इस वाचिक धर्म का पालन करे। विद्वान् मनुष्य शुभ तथा सत्यगुणों से युक्त होकर असत्य का परित्याग करे ॥१८-२६॥

उमा बोलीं—महाभाग! धनुषधारी! देवों के देव! जिस मानसिक कर्म से मनुष्य बद्ध होता है, वह मुझे बतलाइये ॥२७॥

महेश्वर ने कहा—कल्याणमयी! मानसिक धर्म से युक्त पुरुष स्वर्ग जाते हैं—इसके बारे में मुझसे सुनो। पवित्र मुख वाली! जिस मनुष्य का मन तथा अन्तरात्मा दूषित है, वह बद्ध होता है। जो वन में तथा एकान्त स्थान में दूसरे के पड़े हुए धन को देखकर मनसे भी उसे ग्रहण नहीं करता है, वह स्वर्ग जाता है। जो मनुष्य एकान्त में दूसरे की स्त्री को देखकर मन से भी उसके साथ पापाचरण नहीं करता है, वह स्वर्ग जाता है। जो

१क निरालम्ब्या। ग निराधारा। २स ०करीं गिरम्। ङ्गन मिथ्येन्नु भाषन्ते ते। ३ग सतत। ४ग स ०गमा शान्ता०। ५ग बाध्यते।

तथैव परदारान्ये कामवृत्ता रहोगताः। मनसाऽपि न हिंसन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः[1] ॥३१॥
शत्रुं मित्रं च ये नित्यं तुल्येन मनसा नराः। भजन्ति [2]मैत्र्यं संगम्य ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३२॥
श्रुतवन्तो दयावन्तः शुचयः सत्यसंगराः। स्वैरर्थैः परिसंतुष्टास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३३॥
अवैरा ये त्वनायासा मैत्रचित्तरताः[3] सदा। सर्वभूतदयावन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः[4] ॥३४॥
ज्ञातवन्तः क्रियावन्तः क्षमावन्तः सुहृत्प्रियाः। धर्माधर्मविदो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३५॥
शुभानामशुभानां च कर्मणा [5]फलसंचये। निराकाङ्क्षाश्च ये देवि ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३६॥
[6]पापोपेतान्वर्जयन्ति देवद्विजपरा[7] सदा। [8]समुत्थानमनुप्राप्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३७॥
शुभैः कर्मफलैर्देवि मयैते परिकीर्तिताः। स्वर्गमार्गपरा भूयः किं त्वं श्रोतुमिहेच्छसि ॥३८॥

उमोवाच

महान्मे संशयः [8]कश्चिन्मर्त्यान्प्रति महेश्वर। तस्मात्त्वं निपुणेनाद्य मम व्याख्यातुमर्हसि ॥३९॥
केनाऽऽयुर्लभते दीर्घं कर्मणा पुरुषः प्रभो[9]। तपसा वापि देवेश केनाऽऽयुर्लभते महत् ॥४०॥
क्षीणायुः केन भवति कर्मणा भुवि मानवः। विपाकं कर्मणां देव [10]वक्तुमर्हस्यनिन्दित ॥४१॥
अपरे च महाभाग्या मन्दभाग्यास्तथा परे। अकुलीनाः कुलीनाश्च संभवन्ति तथा परे ॥४२॥

मनुष्य शत्रु तथा मित्र के साथ समान भाव से व्यवहार करता है, वह स्वर्ग जाता है। जो मनुष्य वेदो के ज्ञाता, दयावान्, पवित्र, सत्यात्मा तथा अपने धन से सतुष्ट हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। जो शत्रुता से रहित, अनायास ही सदा सबसे मैत्री करने वाला तथा प्राणी मात्र पर दया करने वाला है, वह नर स्वर्ग जाता है। जो ज्ञानी, क्रियाशील, क्षमावान्, बन्धुओ का प्रिय तथा धर्म-अधर्म का ज्ञाता है, वह स्वर्ग जाता है। देवी! जो मनुष्य शुभ-अशुभ कर्मों का फल नही चाहता है, वह स्वर्ग जाता है। जो पापियो से अलग रहता है, देव-ब्राह्मणो की सेवा करता है और अपने धर्म मे निरत रहता है, वह स्वर्ग जाता है। देवी! शुभ कर्मों के द्वारा जैसे लोग स्वर्ग जाते हैं, वह मैंने बतला दिया। अब फिर क्या सुनना चाहते हो? ॥२८-३८॥

उमा ने कहा—महेश्वर! मनुष्यो के बारे मे मुझे एक सदेह है। दक्षतापूर्वक आप उसका निराकरण कीजिए। प्रभो! किस कर्म से मनुष्य दीर्घायु लाभ करता है? देवेश! किस तप से मनुष्य की आयु बढ जाती है? पृथ्वी पर मनुष्य किस कर्म से क्षीणायु होता है? देव! निन्दा से रहित! कर्मों का परिणाम आप बतलायें। कोई मनुष्य महाभाग्यवान् होते हैं तो कोई भाग्यहीन होते हैं। कोई कुलीन होते हैं तो कोई अकुलीन होते हैं।

१क ०न। श्रद्धावन्तो न ये। ख न। श्रद्धावन्तश्च ये। २क मैत्री। ३ख मैत्रीचिन्तार०। ४ग ०न। श्रद्धावन्तो दयावन्त सौख्या सौख्यजनप्रिया। ५ख ग ०चयम्। विपाकज्ञाश्च। ६क ख पापादपेता ये देवि दे०। ७ख ०नपरा ये वै ते न०। ८क ०श्चित्सत्त्वान्प्र०। ९क ०भो। गतायुरपि। १०क ०स्यशेषतः। अ०।

दुर्दर्शा[1] केचिदाभान्ति[1] नराः काष्ठमया इव । प्रियदर्शास्तथा चान्ये दर्शनादेव मानवाः ॥४३॥
दुष्प्रज्ञाः केचिदाभान्ति केचिदाभान्ति पण्डिताः । महाप्रज्ञास्तथा चान्ये ज्ञानविज्ञानभाविनः ॥४४॥
अल्पवाचास्तथा[2] केचिन्महावाचास्तथा परे । दृश्यन्ते पुरुषा देव तत्तो व्याख्यातुमर्हसि ॥४५॥

शिव उवाच

हन्त तेऽहं प्रवक्ष्यामि देवि कर्मफलोदयम् । मर्त्यलोके नरः सर्वो येन स्वं फलमश्नुते ॥४६॥
प्राणातिपाती योगीन्द्रो दण्डहस्तो नरः सदा । नित्यमुद्यतशस्त्रश्च[3] हन्ति भूतगणान्नरः ॥४७॥
निर्दयः सर्वभूतेभ्यो नित्यमुद्वेगकारकः । अपि [4]कीटपतङ्गानामशरण्यः सुनिर्घृणः ॥४८॥
एवंभूतो नरो देवि निरयं प्रतिपद्यते । विपरीतस्तु धर्मात्मा स्वरूपेणाभिजायते ॥४९॥
निरयं याति हिंसात्मा याति स्वर्गमहिंसकः । यातनां निरये रौद्रां [5]सकृच्छ्रां लभते नरः ॥५०॥
यः कश्चिन्निरयात्तस्मात्समुत्तरति कर्हिचित् । मनुष्यं लभते वाऽपि हीनायुस्तत्र [6]जायते ॥५१॥
पापेन कर्मणा देवि युक्तो हिंसाविभिर्यतः । अहितः सर्वभूतानां हीनायुरुपजायते ॥५२॥
शुभेन कर्मणा देवि प्राणिघातविवर्जितः । निक्षिप्तशस्त्रो निर्दण्डो[7] न हिंसति कदाचन ॥५३॥
न घातयति नो हन्ति घ्नन्तं नैवानुमोदते । सर्वभूतेषु सस्नेहो यथाऽऽत्मनि तथा परे ॥५४॥

कोई लकड़ी की तरह देखने में कठोर मालूम पड़ते हैं तो कोई देखने में प्रिय (कोमल) मालूम पड़ते हैं। कोई मूर्ख हैं तो कोई पण्डित हैं। कोई ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न महापण्डित हैं। कोई मितभाषी हैं तो कोई बहुभाषी। देव! ऐसे पुरुष देखे जाते हैं। इसका कारण आप बतलायें ॥३९-४५॥

शिव ने कहा—देवी! अच्छा, तो मैं कर्मफल बतलाऊँगा। मृत्युलोक में मनुष्य कर्मों के फल भोगते हैं। प्राण देने वाला योगीन्द्र, दण्ड धारण करने वाला, सदा अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित रहने वाला मनुष्य भूतगणों को मारता है। प्राणीमात्र पर दया न करने वाला, सब को उद्विग्न करने वाला, कीटपतंग पर्यन्त किसी को भी शरण न देने वाला तथा अत्यन्त घृणा करने वाला मनुष्य नरक जाता है। इसके विपरीत धर्मात्मा मनुष्य स्वर्ग जाता है। हिंसक मनुष्य नरक जाता है और अहिंसक स्वर्ग जाता है। नरक में मनुष्य भयंकर यातना प्राप्त करता है। जो कोई कभी उस नरक से निकल आता है, वह अल्पायु होकर मनुष्ययोनि में जन्म लेता है। देवी! जिसलिये मनुष्य हिंसा आदि पापकर्म करता है और समस्त प्राणियों का अहित करता है, इसलिये वह अल्पायु होता है। देवी! जो शुभ कर्मों से युक्त, जीव-हिंसा से रहित तथा शस्त्र एवम् दण्ड से शून्य होकर न किसी को मारता है, न मारने वाले का अनुमोदन करता है और अपने आत्मा की तरह अखिल प्राणियों से प्रेम करता है, वह देवत्व को

१क ०न्ति कष्टमेयास्तथाऽपरे। प्रि०। २क ख ०ल्पवाचास्त०। ३ख. ०मुल्लङ्घ्य शास्त्रं च हृ०। ४क ख ०टपिपीलानाम०। ५क सुकृच्छ्रां। ६ग ०ते। यन्नु शुभकर्माभिजानीय प्राणघातविवर्जितं। निक्षि०। ७ग निर्दम्भा।

ईदृशः पुरुषो नित्यं देवि देवत्वमश्नुते । उपपन्नान्सुखान्भोगान्सदाऽश्नाति मुदा युतः ॥५५॥
अथ चेन्मानुषे लोके कदाचिदुपपद्यते । एष दीर्घायुषां मार्गः सुवृत्तानां सुकर्मणाम् ॥
प्राणिहिंसाविमोक्षेण ब्रह्मणा समुदीरितः ॥५६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे उमामहेश्वरसंवादे धर्मनिरूपणं नाम
चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२४॥

अथ पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

उमामहेश्वरसंवादे देवलोकप्राप्तिकारणकथनम्

उमोवाच

किंशीलः किंसमाचारः पुरुषः कैश्च कर्मभिः । स्वर्गं समभिपद्येत संप्रदानेन केन वा ॥१॥

महेश्वर उवाच

दाता ब्राह्मणसत्कर्ता दीनार्तकृपणादिषु[1] । भक्षभोज्यान्नपानानां वाससां च महामतिः ॥२॥
प्रतिश्रयान्सभा कुर्यात्प्रपाः पुष्करिणीस्तथा । नित्यकादीनि कर्माणि करोति प्रयतः शुचिः ॥३॥
आसनं शयनं यानं गृहं रत्नं धनं तथा । सस्यजातानि सर्वाणि सक्षेत्राण्यथ योषितः ॥४॥

प्राप्त करता है। यदि कदाचित् वह मनुष्यलोक में उत्पन्न होता है तो हर्ष से समस्त सुखों का भोग करता है। सुकर्मी, सदाचारी तथा जीवहिंसारहित दीर्घायु मनुष्यों का यह मार्ग ब्रह्मा द्वारा निर्दिष्ट है ॥४६-५६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में धर्मनिरूपण नामक दो सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२४॥

अध्याय २२५

शिव-पार्वती के संवाद में देवलोक की प्राप्ति का कारण बताना

पार्वती बोलीं—कैसे स्वभाव तथा आचरण वाला पुरुष किन कर्मों से या किस दान से स्वर्ग-प्राप्ति करता है? ॥१॥

शिव बोले—देवी! जो मनुष्य ब्राह्मणों का आदर करता है, दीन-दुखियों को भक्ष्य-भोज्य आदि अन्न, पान तथा वस्त्र देता है, लोगों को आश्रय देता है, प्याऊ, पोखरा आदि खुदवाता है, पवित्रतापूर्वक नित्यकर्म आदि करता है और शान्त चित्त से लोगों को आसन, शय्या, सवारी, घर, रत्न, धन, धान्यसम्पन्न खेत तथा स्त्रियाँ

१क. ०नान्धकृ०। २ख ०णि सुक्षे०।

सुप्रशान्तमना नित्यं यः प्रयच्छति मानवः। एवंभूतो नरो देवि देवलोकेऽभिजायते॥५॥
'तत्रोष्य सुचिरं कालं भुक्त्वा भोगाननुत्तमान्। सहाप्सरोभिर्मुदितो रमित्वा नन्दनादिषु॥६॥
तस्माच्च्युतो महेशानि मानुषेषूपजायते। महाभागकुले देवि 'धनधान्यसमाचिते॥७॥
तत्र कामगुणैः सर्वैः समुपेतो मुदाऽन्वितः। 'महाकार्यो महाभागो धनी भवति मानवः॥८॥
एते देवि महाभागाः प्राणिनो दानशालिनः'। ब्रह्मणा वै पुरा प्रोक्ताः सर्वस्य प्रियदर्शनाः॥९॥
अपरे मानवा देवि प्रदानकृपणा द्विजाः। येऽन्नानि न प्रयच्छन्ति विद्यमानेऽप्यबुद्धयः॥१०॥
दीनान्धकृपणान्दृष्ट्वा भिक्षुकानतिथीनपि। याच्यमाना निवर्तन्ते जिह्वालोभसमन्विताः॥११॥
न धनानि न वासांसि न भोगान्न च काञ्चनम्। न गाश्च नान्नविकृतिं प्रयच्छन्ति कदाचन॥१२॥
अप्रलुब्धाश्च' ये लुब्धा नास्तिका दानवर्जिताः। एवंभूता नरा देवि निरयं यान्त्यबुद्धयः॥१३॥
ते वै मनुष्यतां यान्ति यदा कालस्य पर्ययात्। धनरिक्ते कुले जन्म लभन्ते स्वल्पबुद्धयः॥१४॥
क्षुत्पिपासापरीताश्च सर्वलोकबहिष्कृताः। निराशाः सर्वभोगेभ्यो जीवन्त्यधर्मजीविकाः॥१५॥
अल्पभोगकुले जाता अल्पभोगरता नराः। अनेन कर्मणा देवि भवन्त्यधनिनो नराः॥१६॥
अपरे दम्भिनो नित्यं मानिनः परतो रताः। आसनार्हस्य ये पीठं न यच्छन्त्यल्पचेतसः॥१७॥
मार्गार्हस्य च ये मार्गं न प्रयच्छन्त्यबुद्धयः। अर्घार्हांश्च संस्कारैरर्चयन्ति यथाविधि॥१८॥

देता है, वह देवलोक में जन्म लेता है॥३-५॥ प्रिये! वह देवलोक में चिरकाल तक उत्तम भोगों को भोगकर नन्दन वन आदि स्थानों में अप्सराओं के साथ रमण कर स्वर्गच्युत होने पर मनुष्ययोनि में आता है॥६½॥ देवी! यहाँ भी वह किसी धनधान्यसम्पन्न महाभाग्यवान् के कुल में जन्म लेकर समस्त गुणों से युक्त, महाकार्यशील, महायोगी तथा धनी मनुष्य होता है॥७-८॥ देवी! ब्रह्मा ने कहा है कि वे दानशील महाभाग्यवान् प्राणी सब के प्रिय होते हैं॥९॥ जो मनुष्य दान करने में कृपण हैं, जो दुर्बुद्धि मनुष्य अन्न रहने पर भी दान नहीं करते हैं, जो दीन, अन्धे, दु खी, भिक्षुक तथा अतिथियों के माँगने पर भी उनकी रसनेन्द्रिय को तृप्त नहीं करते हैं, जो धन, वस्त्र, भोग-पदार्थ, सुवर्ण, गाय तथा अन्न नहीं देते हैं, जो लोभी, नास्तिक तथा दानवर्जित हैं, वे सब बुद्धिहीन मनुष्य नरक जाते हैं॥१०-१३॥ वे जब काल की गति से मनुष्य-योनि में आते हैं तब उन अल्पबुद्धियों का जन्म दरिद्रकुल में होता है। वहाँ वे भूख-प्यास से व्याकुल, लोगों से बहिष्कृत, समस्त भोगों से वंचित तथा अधर्मपूर्वक जीवन बिताने वाले होते हैं॥१४-१५॥ देवी! ऐसे कर्मों के द्वारा मनुष्य अल्पभोग भोगने वाले कुल में जन्म लेकर दरिद्रता से जीवन बिताते हैं॥१६॥ जो मनुष्य दम्भ तथा अभिमान करते हैं, जो दुर्बुद्धि आसन देने योग्य पुरुष को आसन नहीं देते हैं, जो बुद्धिहीन मार्ग देने योग्य व्यक्ति को मार्ग नहीं देते हैं, जो अर्घ चढ़ाये जाने योग्य व्यक्ति को पाद्य-आचमनीय नहीं देते हैं तथा उनकी पूजा नहीं करते हैं, जो प्रेम से गुरु की वन्दना नहीं करते हैं, जो लोभ

१ख. तत्रान्ते मु०। २क ख ०समन्वित। ग०। ३०कार्यो म०। ४ग देवशालिन। ५ग ०प्रलम्पाश्च।

पाद्यमाचमनीयं वा प्रयच्छन्त्यभिवुद्धयः । शुभं चाभिमतं प्रेम्णा गुरुं नाभिवदन्ति ये ॥१९॥
अभिमानप्रवृद्धेन लोभेन[1] सममास्थिताः । संमान्यांश्चावमन्यन्ते[2] वृद्धान्परिभवन्ति च ॥२०॥
एवंविधा नरा देवि सर्वे निरयगामिनः । ते चेद्यदि नरास्तस्मान्निरयादुत्तरन्ति च ॥२१॥
[3]वर्षपूगैस्ततो जन्म लभन्ते कुत्सिते कुले । श्वपाकपुल्कसादीनां कुत्सितानामचेतसाम् ॥२२॥
कुलेषु तेऽभिजायन्ते गुरुवृद्धोपतापिनः । न दम्भी[4] न च मानी यो देवतातिथिपूजकः ॥२३॥
लोकपूज्यो नमस्कर्ता प्रसूतो मधुरं वचः । सर्वकर्मप्रियकरः सर्वभूतप्रिय सदा ॥२४॥
अद्वेषो सुमुखः श्लक्ष्णः स्निग्धवाणीप्रदः सदा । स्वागतेनैव सर्वेषां भूतानामविहिंसकः ॥२५॥
यथार्हं सत्क्रियापूर्वमर्चयन्नवतिष्ठते । मार्गार्हाय ददन्मार्गं गुरुमभ्यर्चयन्सदा ॥२६॥
अतिथिप्रग्रहरतस्तथाऽभ्यागतपूजकः । एवंभूतो नरो देवि स्वर्गतिं प्रतिपद्यते ॥२७॥
ततो [5]मानुष्यमासाद्य विशिष्टकुलजो भवेत् । तत्रासौ विपुलैर्भोगैः सर्वरत्नसमायुतः ॥२८॥
यथार्हदाता[6] चार्हेषु धर्मचर्यापरो भवेत् । संमतः सर्वभूतानां सर्वलोकनमस्कृतः ॥२९॥
स्वकर्मफलमाप्नोति स्वयमेव नरः सदा । एष धर्मो मया प्रोक्तो विधात्रा[7] स्वयमीरितः ॥३०॥
यस्तु रौद्रसमाचारः सर्वसत्त्वभयंकरः । हस्ताभ्यां यदि वा पद्भ्यां रज्ज्वा दण्डेन वा पुनः ॥३१॥
लोष्टैः स्तम्भैरुपायैर्वा जन्तून्बाधेत शोभने । हिंसार्थं निष्कृतिप्रज्ञः प्रोद्वेजयति चैव हि ॥३२॥

तथा अभिमान से युक्त होकर माननीय व्यक्तियों का अपमान करते हैं और वृद्धों की निन्दा करते हैं, वे सब नरक जाते हैं ॥१७-२०½॥ देवी ! वे मनुष्य जब नरकों से निकलते हैं तब निन्दित कुल में जन्म लेते हैं। गुरु तथा वृद्ध को सताने वाले मनुष्य निन्दित चित्त वाले चाण्डाल, म्लेच्छ आदि योनियों में जन्म लेते हैं ॥२१-२२½॥ जो मनुष्य न दम्भ करते हैं, न अभिमान करते हैं, देवता अतिथियों की पूजा करते हैं, लोगों को नमस्कार करते हैं, मधुर वचन बोलते हैं, समस्त शुभ कर्मों को करते हैं, सदा सब प्राणियों का हित करते हैं, किसी से द्वेष नहीं करते हैं, प्रसन्न रहते हैं स्नेह-युक्त कोमल वाणी बोलते हैं, किसी की हिंसा नहीं करते हैं, सबका स्वागत करते हैं, सत्क्रिया करते हैं, मार्ग देने योग्य व्यक्ति को मार्ग देते हैं, गुरु की पूजा करते हैं और अतिथि-अभ्यागतों की सेवा करते हैं, वे मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करते हैं ॥२३-२७॥ तदनन्तर वे मनुष्ययोनि में विशिष्ट कुल में जन्म लेते हैं। वहाँ समस्त रत्नों से युक्त होकर विपुल भोगों को भोगते हैं और धर्मचर्या में निरत रहते हुए योग्य व्यक्तियों को समुचित दान देते हैं। लोग उनका सम्मान करते हैं ॥२८-२९॥ मनुष्य स्वयं अपने किये कर्मों का फल भोगता है। स्वयं ब्रह्मा का बतलाया हुआ यह धर्म मैंने तुमसे कह दिया ॥३०॥ सुन्दरी ! जो भयंकर कर्म करता है, हाथों से, पैरों से, रस्सी से, लाठी से, ढेलों से, खम्भों से तथा अन्य उपायों से जीवों को कष्ट देता है, मन में हिंसा की भावना रखता है, लोगों को

१क ०न सुसमन्विता । २ख ०न्ते विभ्रान्प्र० । ३क. ०पूगास्त० । ४क ख स्तम्भी । ५क ख ०मासाद्य वि० । ६क ०थार्हं सर्ववर्णेषु ब्रह्मचर्यप० । ७ख ०त्रा च यमादिभि । य० ।

उपक्रामति जन्तूश्च उद्वेगजनन[1] सदा। एवं शीलसमाचारो निरयं प्रतिपद्यते॥३३॥
स चेन्मनुष्यतां [2]गच्छेद्यदि कालस्य पर्ययात्। बह्वाबाधापरिक्लिष्टे कुले जायति सोऽधमे॥३४॥
[3]लोकद्विष्टोऽधमः पुंसां स्वयं कर्मकृतैः फलैः। एष देवि मनुष्येषु बोद्धव्यो ज्ञातिबन्धुषु॥३५॥
अपरः सर्वभूतानि दयावाननुपश्यति। मैत्रो दृष्टिः पितृसमो निर्वैरो नियतेन्द्रियः[4]॥३६॥
नोद्वेजयति भूतानि न[5] च हन्ति दयापरः। हस्तपादैश्च नियतैर्विश्वास्यः सर्वजन्तुषु॥३७॥
न रज्ज्वा न च दण्डेन न लोष्टैर्नायुधेन च। उद्वेजयति भूतानि शुभकर्मा दयापरः॥३८॥
एवं शीलसमाचारः स्वर्गे समुपजायते। तत्रासौ भवने दिव्ये मुदा वसति देववत्॥३९॥
स [6]चेत्स्वर्गक्षयान्मर्त्यो मनुष्येषूपजायते। अल्पाबाधो निरातङ्कः स जातः सुखमेधते॥४०॥
सुखभागी निरायासो निरुद्वेगः सदा नरः। एष देवि सतां मार्गो [7]बाधा यत्र न विद्यते॥४१॥

उमोवाच

इमे मनुष्या [8]दृश्यन्ते ऊहापोहविशारदाः। ज्ञानविज्ञानसंपन्नाः प्रज्ञावन्तोऽर्थकोविदाः॥४२॥
दुष्प्रज्ञाश्चापरे देव ज्ञानविज्ञानवर्जिताः। केन कर्मविपाकेन प्रज्ञावान्पुरुषो भवेत्॥४३॥
अल्पप्रज्ञो विरूपाक्ष कथं भवति मानव। एवं त्वं संशयं छिन्धि सर्वधर्मभृतां वर॥४४॥

उद्विग्न करता है तथा जन्तुओं का दमन करता है, वह स्वभाव तथा आचरण से दूषित व्यक्ति नरक जाता है॥३१-३३॥ यदि कालक्रम से वह मनुष्ययोनि में आता है तो अनेक बाधाओं से परिपीडित नीच कुल में जन्म लेता है। लोग उससे द्वेष करते हैं। इस प्रकार वह अधम मनुष्य अपने कर्मों का फल पाता है। देवी! मनुष्यों को सबके साथ भाई-बन्धुओं की तरह व्यवहार करना चाहिये॥३४-३५॥ जो समस्त प्राणियों पर दया करता है, पिता के समान भाव रखता है, सबको मित्रता की दृष्टि से देखता है, किसी से वैर नहीं करता है, इन्द्रियों को वश में रखता है। प्राणियों को उद्विग्न नहीं करता है, हाथ-पैरों से किसी को कष्ट नहीं देता है, सबका विश्वासपात्र बनकर रहता है, रस्सी, लाठी, ढेले तथा हथियारों से किसी को हानि नहीं पहुँचाता है और दयायुक्त होकर शुभ कर्म करता है, वह सुन्दर स्वभाव तथा आचरण वाला व्यक्ति स्वर्ग जाता है॥३६-३८½॥ वहाँ वह दिव्य भवन में देवता की तरह हर्ष से रहता है। यदि वह मनुष्य स्वर्गच्युत होने पर मनुष्ययोनि में आता है तो बिना कष्ट-परिश्रम से सुखपूर्वक जीवन बिताता है॥३९-४०॥ उसे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होती, परिश्रम नहीं करना पड़ता, बल्कि सुख ही सुख मिलता रहता है। देवी! यही सज्जनों का मार्ग है, जहाँ कोई बाधा नहीं होती॥४१॥

उमा बोलीं—देव! कोई मनुष्य तो तर्क-वितर्क करने में विशारद, ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न, बुद्धिमान् तथा तत्त्व के ज्ञाता होते हैं और कोई ज्ञान-विज्ञान से रहित मूर्ख होते हैं। तीन नेत्र वाले! (अब कहिये) किस कर्म के परिणाम से पुरुष विद्वान् होता है और किस कर्म के फल से मूर्ख होता है? समस्त धर्मधारियों में श्रेष्ठ!

१क ०द्वेजनपर स०। २क ०ञ्छेत्तदाचित्तालात०। ३क ०द्वेष्योऽध०। ४क विजितेन्द्रिय। ५ग न वै हेठयते सदा। ह०। ६ख चेच्छया मर्त्यलोके मर्त्यो। ७ग क्वचो। ८क ०न्ते महोत्साहा महाबला। ड०।

जात्यन्धाश्चापरे देव रोगार्ताश्चापरे तथा। नराः क्लीबाश्च दृश्यन्ते कारणं ब्रूहि तत्र वै ॥४५॥

महेश्वर उवाच

ब्राह्मणान्वेदविदुषः सिद्धान्धर्मविदस्तथा। परिपृच्छन्त्यहरहः कुशलाकुशलं सदा ॥४६॥
वर्जयन्तोऽशुभं कर्म सेवमानाः शुभं तथा। लभन्ते स्वर्गतिं नित्यमिह लोके यथासुखम् ॥४७॥
स चेन्मनुष्यतां याति मेधावी तत्र जायते। श्रुतं 'यज्ञानुगं[1] यस्य कल्याणमुपजायते ॥४८॥
परदारेषु ये चापि चक्षुर्दुष्टं[2] प्रयुञ्जते। तेन दुष्टस्वभावेन जात्यन्धास्ते भवन्ति हि ॥४९॥
मनसाऽपि प्रदुष्टेन नग्ना पश्यन्ति ये स्त्रियम्। रोगार्तास्ते भवन्तीह[3] नरा दुष्कृतकारिणः ॥५०॥
ये तु मूढा दुराचारा वियोनौ मैथुने रताः। पुरुषेषु सुदुष्प्रज्ञाः क्लीबत्वमुपयान्ति ते ॥५१॥
पशूंश्च ये वै बध्नन्ति ये चैव गुरुतल्पगाः। प्रकीर्णमैथुना ये च क्लीबा जायन्ति वै नराः ॥५२॥

उमोवाच

अवद्यं किं तु वै कर्म निरवद्यं तथैव च। श्रेयः कुर्वन्नवाप्नोति मानवो देवसत्तम ॥५३॥

महेश्वर उवाच

श्रेयांसं मार्गमन्विच्छन्सदा यः पृच्छति द्विजान्। धर्मान्वेषी गुणाकाङ्क्षी स स्वर्गं समुपाश्नुते ॥५४॥

इस सदाय को आप दूर कीजिये। कोई मनुष्य तो जन्मान्ध होते हैं और कोई रोगी तथा नपुंसक होते हैं। इसका क्या कारण है? मुझे बतलाइये ॥४२-४५॥

महेश्वर बोले—जो मनुष्य वेदवेत्ता ब्राह्मणों, सिद्धों तथा धर्मज्ञों से प्रतिदिन कुशल-समाचार पूछते हैं और अशुभ कर्मों का त्याग कर शुभ कर्म करते हैं, वे स्वर्ग प्राप्त करते हैं और इस लोक में सुख भोगते हैं। वे यदि मनुष्य-योनि में जन्म लेते हैं तो मेधावी, यज्ञकर्ता तथा श्रुतिवेत्ता होते हैं। उन्हें सुख सौभाग्य प्राप्त होता है। जो परस्त्रियों पर कुदृष्टि डालते हैं, वे दुष्टस्वभाव के कारण जन्मान्ध होते हैं। जो मनुष्य दूषित मन से भी नग्न स्त्रियों को देखते हैं, वे पापी तथा रोगी होते है। जो मूर्ख तथा दुराचारी मनुष्य मनुष्येतर योनि में मैथुन करते हैं, वे नपुंसक होते हैं। जो मनुष्य पशुओं को बाँधते हैं, जो गुरुपत्नीगमन करते हैं, जो अत्यधिक मैथुन करते हैं, वे नपुंसक होते हैं ॥४६-५२॥

उमा बोलीं—देवों में श्रेष्ठ! कौन ऐसा अनिन्द्य तथा उत्तम कर्म है, जिसके करने से मनुष्य का कल्याण होता है? ॥५३॥

महेश्वर ने कहा—जो धर्मान्वेषी तथा गुणाकांक्षी मनुष्य सदा ब्राह्मणों से कल्याण का मार्ग पूछते रहते हैं,

---

१ग प्रश्नानुग। २ग ०क्षुर्दुष्टं प्र०। ३ख ०वन्त्येव परदारप्रदर्शनात्। ये०।

यदि मानुष्यतां देवि कदाचित्संनियच्छति । मेधावी धारणायुक्तः प्राज्ञस्तत्रापि जायते ॥५५॥
एष देवि सतां धर्मो गन्तव्यो भूतिकारकः । नृणां हितार्थाय सदा मया चैवमुदाहृतः ॥५६॥

उमोवाच

अपरे स्वल्पविज्ञाना धर्मविद्वेषिणो नराः । ब्राह्मणान्वेदविदुषो नेच्छन्ति परिसर्पितुम् ॥५७॥
व्रतवन्तो नराः केचिच्छ्रद्धादमपरायणाः । अव्रता भ्रष्टनियमास्तथाऽन्ये राक्षसोपमाः ॥५८॥
यज्वानश्च तथैवान्ये निर्मोहाश्च तथा परे । केन कर्मविपाकेन भवन्तीह वदस्व मे ॥५९॥

महेश्वर उवाच

आगमाल्लोकधर्माणां मर्यादाः पूर्वनिर्मिताः । प्रमाणेनानुवर्तन्ते दृश्यन्ते हि दृढव्रताः ॥६०॥
अधर्मं धर्ममित्याहुर्ये च मोहवशं गताः । अव्रता नष्टमर्यादास्ते नरा ब्रह्मराक्षसाः ॥६१॥
ये वै कालकृतोद्योगात्संभवन्तीह मानवाः । निर्होमा निर्वषट्कारास्ते भवन्ति नराधमाः ॥६२॥
एष देवि मया सर्वसंशयच्छेदनाय ते । कुशलाकुशलो नृणां व्याख्यातो धर्मसागरः ॥६३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे उमामहेश्वरसंवादे धर्मनिरूपणं नाम
पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२५॥

वे स्वर्ग का भोग करते हैं। देवी! यदि कदाचित् वह मनुष्य-योनि में जन्म लेता है तो धारणायुक्त विद्वान् होता है। देवी! यही सज्जनों का कल्याणकारक धर्म है। मनुष्यों के हित के लिये मैंने यह बतला दिया ॥५४-५६॥

उमा बोलीं—कोई मनुष्य अल्पज्ञानी, धर्मविद्वेषी तथा वेदवेत्ता ब्राह्मणों के अपमान करने वाले होते हैं। कोई मनुष्य व्रती, श्रद्धालु तथा इन्द्रियों का दमन करने वाले होते हैं। कोई व्रत तथा नियमों से च्युत होकर राक्षस के समान होते हैं। कोई यज्ञकर्ता तथा निर्मोही होते हैं। किस कर्म के परिणाम से ये ऐसे होते हैं? मुझे बतलाइये। ॥५७-५९॥

महेश्वर बोले—वेद, शास्त्र एवं धर्मों की मर्यादा पहिले से ही निर्मित है। दृढव्रती मनुष्य इसी के अनुसार बरतते हैं। जो मनुष्य मोह में पड़कर अधर्म को धर्म मानता है और व्रत तथा मर्यादा को भंग करता है, वह ब्रह्मराक्षस होता है। जो मनुष्य काल की प्रेरणा से निर्मोही तथा वषट्कार (यज्ञ) से शून्य होते हैं, वे नराधम होते हैं। देवी! तुम्हारा संशय मिटाने के लिये मनुष्यों के कल्याण-अकल्याण रूपी धर्म-समुद्र का वर्णन किया गया ॥६०-६३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में धर्मनिरूपण नामक दो सौ पचीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२५॥

अथ षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मुनिमहेश्वरसंवादे वासुदेवमहिमवर्णनम्

व्यास उवाच

श्रुत्वैवं सा जगन्माता भर्तुर्वचनमादितः। हृष्टा बभूव सुप्रीता विस्मिता च तदा द्विजः ॥१॥
ये तत्राऽऽसन्मुनिवरास्त्रिपुरारेः समीपतः। तीर्थयात्राप्रसङ्गेन गतास्तस्मिन्गिरौ द्विजाः ॥२॥
तेऽपि संपूज्य तं देवं शूलपाणिं प्रणम्य च। पप्रच्छुः संशयं चैव लोकानां हितकाम्यया ॥३॥

मुनय ऊचुः

त्रिलोचन नमस्तेऽस्तु दक्षक्रतुविनाशन। पृच्छामस्त्वां जगन्नाथ संशयं हृदि संस्थितम् ॥४॥
संसारेऽस्मिन्महाघोरे भैरवे लोमहर्षणे। भ्रमन्ति सुचिरं कालं पुरुषाश्चाल्पमेधसः ॥५॥
येनोपायेन मुच्यन्ते[1] जन्मसंसारबन्धनात्। ब्रूहि तच्छ्रोतुमिच्छामः परं कौतूहलं हि नः ॥६॥

महेश्वर उवाच

कर्मपाशनिबद्धानां नराणां दुःखभागिनाम्। नान्योपायं प्रपश्यामि वासुदेवात्परं द्विजाः ॥७॥
ये पूजयन्ति तं देवं शङ्खचक्रगदाधरम्। वाङ्मनःकर्मभिः सम्यक्ते यान्ति परमां[2] गतिम् ॥८॥
किं तेषां जीवितेनेह पशुवच्चेष्टितेन च। येषां न प्रवणं चित्तं वासुदेवे जगन्मये ॥९॥

अध्याय २२६

शिव और मुनियो के सवाद मे वासुदेव की महिमा का वर्णन

व्यास ने कहा—द्विजगण ! स्वामी के वचन को आदि से सुनकर जगन्माता पार्वती अत्यन्त प्रसन्न तथा विस्मित हुई। उस समय शिव के पास बैठे हुए मुनिवृन्द, जो तीर्थ-यात्रा की कामना से उस पर्वत पर गये हुए थे, त्रिशूलधारी शकर को प्रणाम करके लोगो के कल्याण के निमित्त उनसे सदेह पूछने लगे ॥१-३॥

मुनियो ने कहा—तीन नेत्र वाले ! दक्षयज्ञविनाशन ! आपको नमस्कार है। जगन्नाथ ! हम अपने हृदय का सदेह आपसे पूछते हैं। महाभयकर तथा रोमाञ्चकारी इस दारुण ससार मे अल्प बुद्धि वाले पुरुष चिर काल तक भ्रमण करते हैं। वे किस उपाय से जन्मरूपी ससारबन्धन से मुक्त होगे, वह बतलाइये। उसे सुनने के लिये हमे बडी उत्कण्ठा हो रही है ॥४-६॥

महेश्वर ने कहा—द्विजवृन्द ! कर्म-जाल मे फँसे दुःखी मनुष्यो के लिये वासुदेव से बढकर दूसरा उपाय तो मुझे नही दीखता है। जो मनुष्य मनसा, वाचा, कर्मणा उस शख-चक्र-गदाधारी देव की पूजा करते हैं, वे परम गति को पाते हैं। जिस मनुष्य का चित्त ससार रूप वासुदेव मे नही लगता है, उसका जीवन व्यर्थ है, उसकी सारी क्रियायें पशु की तरह होती हैं ॥७-९॥

१क ०न्ते तत स०। २क ०रम पदम्।

ऋषय ऊचु

पिनाकिन्भगनेत्रघ्न सर्वलोनमस्कृत । माहात्म्य वासुदेवस्य श्रोतुमिच्छाम शंकर ॥१०॥

महेश्वर उवच

पितामहादपि वर शाश्वत पुरुषो हरि । कृष्णो जाम्बूनदाभासो व्यभ्रे सूर्य इवोदित ॥११॥
दशबाहुर्महातेजा देवतारिनिषूदन । श्रीवत्साङ्को हृषीकेश सर्वदैवतपूजित ॥१२॥
ब्रह्मा तस्योदरभवस्तस्याह च शिरोभव । शिरोरुहेभ्यो ज्योतींषि रोमभ्यश्च सुरासुरा ॥१३॥
ऋषयो देहसभूतास्तस्य लोकाश्च शाश्वता । पितामहगृह साक्षात्सर्वदेवगृह च स ॥१४॥
सोऽस्या पृथिव्या कृत्स्नाया स्रष्टा त्रिभुवनेश्वर । सहर्ता चैव भूताना स्थावरस्य चरस्य च ॥१५॥
स हि देवदेव साक्षाद्देवनाथ परतप । सर्वज्ञ सर्वसस्रष्टा सर्वग सर्वतोमुख ॥१६॥
न तस्मात्परम भूत त्रिषु लोकेषु किंचन । सनातनो महाभागो गोविन्द इति विश्रुत ॥१७॥
स सर्वान्पार्थिवान्सख्ये घातयिष्यति मानद । सुरकार्यार्थमुत्पन्नो मानुष्य वपुरास्थित ॥१८॥
न हि देवगणा शक्तास्त्रिविक्रमविनाकृता । भुवने देवकार्याणि कर्तु नायकवर्जित ॥१९॥
नायक सर्वभूताना सर्वभूतनमस्कृत । एतस्य देवनायस्य कार्यस्य च परस्य च ॥२०॥
ब्रह्मभूतस्य सतत ब्रह्मर्षिशरणस्य च । ब्रह्मा वसति नाभिस्थ शरीरेऽह च सस्थित ॥२१॥

ऋषियों ने कहा—पिनाक नामक धनुष धारी ! भग देवता के नेत्र फोडने वाले ! सब लोगो के वन्दनीय ! शकर ! वासुदेव का माहात्म्य हम सुनना चाहते हैं ॥१०॥

महेश्वर ने कहा—नित्य पुरुष वह हरि ब्रह्मा से भी श्रेष्ठ हैं। सुवर्ण के समान कान्ति वाले कृष्ण उदयकालीन सूर्य के समान सुशोभित होते हैं ॥११॥ उनकी दस भुजायें हैं। वे महातेजस्वी तथा देवताओ के शत्रुओं के नाशक हैं। उनके वक्ष स्थल पर श्रीवत्स चिह्न सुशोभित है। इन्द्रियो पर उनका अधिकार है। वे समस्त देवो के अधिनायक हैं ॥१२॥ ब्रह्मा उनके पेट से उत्पन्न हुए है। मैं उनके शिर से उत्पन्न हुआ हूँ। उनके शिर के बालों से नक्षत्रगण तथा रोओ से सुर-असुर उत्पन्न हुए हैं ॥१३॥ उनकी देह से ऋषि-समूह की उत्पत्ति हुई है। उनके लोक नित्य हैं। वे ब्रह्मा तथा समस्त देवो के आश्रय हैं ॥१४॥ वे तीनो भुवन के ईश्वर हैं तथा सकल पृथ्वी के सृष्टिकर्ता हैं। स्थावर-जगम के नाशकर्ता भी वे ही हैं ॥१५॥ वे देवो के देव, देव-नाथ शत्रुओ के तपाने वाले, सर्वज्ञ, सब के स्रष्टा, सर्वगामी और सब ओर मुख वाले हैं ॥१६॥ तीनो लोक मे उनसे बढ़कर कोई या कुछ नही है। वे सनातन, महाभाग तथा गोविन्द नाम से प्रख्यात हैं ॥१७॥ वे सम्मान-दाता पुरुष देव-कार्य के लिये मनुष्य-शरीर धारण कर युद्ध मे राजाओं को मारते हैं ॥१८॥ बिना उनके देवगण कुछ नहीं कर पाते हैं देवताओ के कार्य के निमित्त उन्हें किसी नायक की आवश्यकता नहीं पड़ती है ॥१९॥ वे समस्त प्राणियो के नायक तथा सबपूज्य हैं। वे देवताओं के स्वामी ब्रह्मभूत तथा ब्रह्मर्षियो के रक्षक हैं। उनकी नाभि म ब्रह्मा तथा शरीर म मैं वास करता हूँ। उनके शरीर मे समस्त देवगण सुखपूर्वक निवास करते हैं ॥२०-२१३॥ वे देव कमललोचन श्रीगर्भ, लक्ष्मीरमण, चक्र-धनुष-खड्ग-

---

१क देवानामरिसूद०। २ग० ०तपूजक । ग्र । ३क देव पर सोऽपि देवाना च प०।

सर्वाः सुखं संस्थिताश्च शरीरे तस्य देवताः । स देवः पुण्डरीकाक्षः श्रीगर्भः श्रीसहोषितः ॥२२॥
शार्ङ्गचक्रायुधः खड्गी सर्वनागरिपुध्वजः । उत्तमेन सुशीलेन शौचेन च दमेन च ॥२३॥
पराक्रमेण वीर्येण वपुषा दर्शनेन च । आरोहणप्रमाणेन वीर्येणार्जवसंपदा ॥२४॥
[1]आनृशंस्येन रूपेण बलेन च समन्वितः । अस्त्रैः समुदितः सर्वैर्दिव्यैरद्भुतदर्शनैः ॥२५॥
योगमायासहस्राक्षो विरूपाक्षो महामनाः[2] । वाचा मित्रजनश्लाघी ज्ञातिबन्धुजनप्रियः ॥२६॥
क्षमावांश्चानहंवादी स देवो ब्रह्मदायकः[3] । भयहर्ता भयार्तानां [4]मित्रानन्दविवर्धनः ॥२७॥
शरण्यः सर्वभूतानां दीनानां पालने रतः । श्रुतवानथ संपन्नः सर्वभूतनमस्कृतः ॥२८॥
समाश्रितानामुपकृच्छत्रूणां[5] भयकृत्तथा । नीतिज्ञो नीतिसंपन्नो ब्रह्मवादी जितेन्द्रियः ॥२९॥
[6]भवार्थमेव देवानां बुद्ध्या परमया युतः । प्राजापत्ये शुभे मार्गे मानवे धर्मसंस्कृते ॥३०॥
समुत्पत्स्यति गोविन्दो मनोर्वंशे महात्मनः । [7]अंशो नाम मनोः पुत्रो ह्यन्तर्धामा ततः परम् ॥३१॥
अन्तर्धाम्नो हविर्धामा प्रजापतिरनिन्दितः । प्राचीनबर्हिर्भविता हविर्धाम्नः सुतो द्विजा ॥३२॥
तस्य प्रचेतःप्रमुखा भविष्यन्ति दशाऽऽत्मजाः[8] । प्राचेतसस्तथा दक्षो भवितेह प्रजापतिः ॥३३॥
दाक्षायण्यस्तथाऽऽदित्यो मनुरादित्यतस्ततः । मनोश्च वंशज इला सुद्युम्नश्च भविष्यति ॥३४॥
बुधात्पुरूरवाश्चापि तस्मादायुर्भविष्यति । नहुषो भविता तस्माद्ययातिस्तस्य चाऽऽत्मजः ॥३५॥
यदुस्तस्मान्महासत्त्वः क्रोष्टा तस्माद्भविष्यति । [9]क्रोष्टुश्चैव महान्पुत्रो वृजिनीवान्भविष्यति ॥३६॥

धारी और गरुडध्वज कहलाते हैं। वे उत्तम शील, शौच, दम, पराक्रम, शक्ति, दर्शनीय शरीर, अपरिमित वीर्य, ऋजुता, (सीधापन) सौम्य रूप तथा बल से युक्त हैं। उन्हें सब प्रकार के आश्चर्यजनक दिव्य अस्त्र प्राप्त हैं। योगमाया के वे आश्रय हैं। वे महामना सहस्रनेत्रधारी तथा विरूपाक्ष कहलाते हैं। वाणी से वे मित्रों के श्लाघनीय हैं तथा भाई-बन्धुओं के प्रिय हैं। वे देव क्षमावान्, अभिमानशून्य, ज्ञानदाता, भयपीडितों के भयहर्ता, मित्रों का आनन्द बढाने वाले, सबके रक्षक, दीनों के पालन में निरत, वेदवेत्ता, सपन्न, समस्त प्राणियों से नमस्कृत, आश्रितों के उपकारी, शत्रुओं के लिए भयकारी, नीतिज्ञ, नीतिसपन्न, ब्रह्मवादी तथा जितेन्द्रिय हैं ॥२२-२९॥ देव-कार्य के लिये परम बुद्धि से युक्त होकर गोविन्द मनु सम्बन्धी प्रजापति के धर्मयुत शुभ मार्ग का अनुगमन करते हुए महात्मा मनु के वंश में उत्पन्न होंगे। मनु के अंश नामक पुत्र होगा। अंश के अन्तर्धाम और अन्तर्धाम के अनिन्द्य प्रजापति हविर्धाम उत्पन्न होगा। हविर्धाम का पुत्र प्राचीनबर्हिस् होगा ॥३०-३२॥ उसके प्रचेता आदि दस पुत्र होंगे। प्रचेता का पुत्र दक्ष प्रजापति होगा। दक्ष के आदित्य और आदित्य के मनु नामक पुत्र होगा। मनु के वंशज इला और सुद्युम्न होंगे। बुध से पुरूरवा और उससे आयु की उत्पत्ति होगी। आयु से नहुष और उससे ययाति की उत्पत्ति होगी ॥३३-३५॥ उससे महापराक्रमी यदु और यदु से क्रोष्टा उत्पन्न होगा। क्रोष्टा का महापुत्र वृजिनीवान् होगा ॥३६॥

१ग अनृशसेन। २क ०ना। वचो मि०। ३ख ग ०ह्मनाय०। ४ख ०श्राणा तद्विनाशन। ५क. ०त्रूणामपि धर्मवित्। नी०। ६ख सवत्सरकरः श्रीमान्बुद्ध्या। ७ख अयुर्नाम। ग अङ्गो। ८क ०जा। प्रचे०। ९क ख क्रोष्टोश्चै०।

वृजिनीवतश्च भविता 'उपङ्गुरपराजितः'। 'उपङ्गोर्भविता पुत्रः शूरश्चित्ररथस्तथा ॥३७॥
तस्य त्ववरजः पुत्रः शूरो नाम भविष्यति। तेषां विख्यातवीर्याणां चारित्रगुणशालिनाम् ॥३८॥
यज्विनां च विशुद्धानां वंशे ब्राह्मणसत्तमाः। स शूरः क्षत्रियश्रेष्ठो महावीर्यो महायशाः ॥३९॥
स्ववंशविस्तारकरं जनयिष्यति मानदम्। वसुदेवमिति ख्यातं पुत्रमानकदुन्दुभिम् ॥४०॥
तस्य पुत्रश्चतुर्बाहुर्वासुदेवो भविष्यति। 'दाता ब्राह्मणसत्कर्ता ब्रह्मभूतो द्विजप्रियः ॥४१॥
राज्ञो बद्धान्स सर्वांश्च मोक्षयिष्यति यादवः। जरासंधं तु राजानं निर्जित्य गिरिगह्वरे ॥४२॥
सर्वपार्थिवरत्नाढ्यो भविष्यति स वीर्यवान्। पृथिव्यामप्रतिहतो वीर्येणापि भविष्यति ॥४३॥
विक्रमेण च संपन्नः सर्वपार्थिवपार्थिवः। 'शूरः 'संहननो 'भूतो द्वारकायां वसन्प्रभुः ॥४४॥
पालयिष्यति गां देवीं विनिर्जित्य दुराशयान्। तं भवन्तः समासाद्य ब्राह्मणैरर्हणैर्वरैः ॥४५॥
अर्चयन्तु यथान्यायं ब्रह्माणमिव शाश्वतम्। यो हि मां द्रष्टुमिच्छेत ब्रह्माणं च पितामहम् ॥४६॥
द्रष्टव्यस्तेन भगवान्वासुदेवः प्रतापवान्। दृष्टे तस्मिन्नहं दृष्टो न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥४७॥
पितामहो वासुदेव इति वित्त तपोधनाः। स यस्य पुण्डरीकाक्षः प्रीतियुक्तो भविष्यति ॥४८॥
तस्य देवगणः प्रीतो ब्रह्मपूर्वो भविष्यति। यस्तु तं मानवो लोके संश्रयिष्यति केशवम् ॥४९॥
तस्य कीर्तिर्यशश्चैव स्वर्गश्चैव भविष्यति। धर्माणां 'देशिकः साक्षाद्भविष्यति स ''धर्मवान् ॥५०॥
धर्मविद्भिः स देवेशो नमस्कार्यः सदाऽच्युतः। धर्म एव सदा हि स्यादस्मिन्नभ्यर्चिते विभौ ॥५१॥

वृजिनीवान् के उपगु नामक विजयी पुत्र होगा। उपगु के चित्ररथ नामक वीर पुत्र होगा ॥३७॥ चित्ररथ का कनिष्ठ शूर नाम से विख्यात होगा। द्विजश्रेष्ठो! प्रसिद्ध पराक्रमी, सच्चरित्रगुणशाली, यज्ञकर्ता तथा पवित्र राजाओं के वंश में महापराक्रमी तथा महायशस्वी क्षत्रियश्रेष्ठ शूर अपने वंश को बढ़ाने वाले तथा प्रतिष्ठा वाले वसुदेव एवम् आनकदुन्दुभि नाम से ख्यात पुत्र को उत्पन्न करेगा। उसके पुत्र चतुर्भुज वासुदेव होंगे। वासुदेव ब्राह्मणों के सम्मान करने वाले, ब्रह्मभूत तथा द्विजप्रिय होंगे ॥३८-४१॥ वे समस्त बद्ध राजाओं को उन्मुक्त करेंगे। पर्वत की गुफा में राजा जरासन्ध को जीतकर शक्तिशाली कृष्ण समस्त पृथ्वी के रत्नों से सम्पन्न होंगे। वे पृथ्वी पर अजेय होंगे ॥४२-४३॥ वे पराक्रमों से सम्पन्न तथा सब राजाओं के राजा होंगे। द्वारका में वास करते हुए सर्वशक्तिमान् कृष्ण दुष्ट चित्त वाले राजाओं को जीतकर पृथ्वी का पालन करेंगे। उत्तम ब्राह्मणों के साथ आप लोग उनके समीप जाकर नित्य ब्रह्मा की तरह उनकी उचित सेवा करेंगे ॥४४-४५½॥ जो मुझे तथा पितामह ब्रह्मा को देखना चाहता है, उसे प्रतापी भगवान् वासुदेव को देखना चाहिये। उनके देख लेने पर मैं भी दृष्ट (देखा हुआ) हो जाता हूँ, इसमें सोचने की आवश्यकता नहीं है ॥४६-४७॥ जिस पर कमललोचन भगवान् प्रसन्न होते हैं, वहाँ तपस्वी सब कुछ वासुदेवमय है, ऐसा समझता है। जो मनुष्य भगवान् केशव का आश्रय लेता है, उस पर ब्रह्मा सहित देवगण प्रसन्न होते हैं। उसका यश बढ़ता है। उसे स्वर्ग प्राप्त होता है। वह धर्मात्मा साक्षात् धर्म का रूप हो जाता है। धर्मवेत्ताओं को सदा अच्युत भगवान् को नमस्कार करना चाहिये। कृष्ण की पूजा से सदा धर्म ही धर्म होता है ॥४८-५१॥ उन महा-

---

१क ०ता ऋप०। २ग ०पदगुर०। ३क ०त। ऋप०। ४ग ०पदगोर्भ०। ५ग घाता। ६ग धूरस०। ७ख सनहनो। ८क भूयान्द्वार०। ९ख पोषक। १०ग. धर्ममात्।

स हि देवो महातेजाः प्रजाहितचिकीर्षया। धर्मार्थं पुरुषव्याघ्र ऋषिकोटीः ससर्ज च ॥५२॥
ताः सृष्टास्तेन विधिना पर्वते गन्धमादने। सनत्कुमारप्रमुखास्तिष्ठन्ति तपसाऽन्विताः ॥५३॥
तस्मात्स वाग्मी धर्मज्ञो नमस्यो द्विजपुंगवाः। वन्दितो हि स वन्देत मानितो मानयीत च ॥५४॥
दृष्टः पश्येदहरहः संश्रितः प्रतिसंश्रयेत्। अर्चितश्चार्चयेन्नित्यं स देवो द्विजसत्तमाः ॥५५॥
एवं तस्यानवद्यस्य विष्णोर्वै परमं तपः। आदिदेवस्य महतः सज्जनाचरितं सदा ॥५६॥
भुवनेऽभ्यर्चितो नित्यं देवैरपि सनातनः। अभयेनानुरूपेण प्रपद्य तमनुव्रताः ॥५७॥
कर्मणा मनसा वाचा स नमस्यो द्विजैः सदा। यत्नवद्भिरुपस्थाय द्रष्टव्यो देवकीसुतः ॥५८॥
एष वै विहितो मार्गो मया वै मुनिसत्तमाः। तं दृष्ट्वा सर्वदेवेश दृष्टाः स्युः सुरसत्तमाः ॥५९॥
महावराहं तं देवं सर्वलोकपितामहम्। अहं चैव नमस्यामि नित्यमेव जगत्पतिम् ॥६०॥
तत्र च त्रितयं दृष्टं भविष्यति न संशयः। समस्ता हि वयं देवास्तस्य देहे वसामहे ॥६१॥
तस्यैव चाग्रजो भ्राता सिताद्रिनिचयप्रभः[1]। हली बल इति ख्यातो भविष्यति धराधरः[2] ॥६२॥
त्रिशिरास्तस्य देवस्य दृष्टोऽनन्त इति प्रभो। सुपर्णो यस्य वीर्येण कश्यपस्याऽऽत्मजो बली ॥६३॥
अन्तं नैवाशकद्द्रष्टुं देवस्य परमात्मनः। स च शेषो विचरते परया वै मुदा युतः ॥६४॥
अन्तर्वसति भोगेन परिरभ्य वसुंधराम्। य एष विष्णुः सोऽनन्तो भगवान्वसुधाधरः ॥६५॥

तेजस्वी पुरुषपुगव ने प्रजा की हित-कामना से करोड़ो ऋषियों की सृष्टि की। पर्वत पर भगवान् ने जिनकी सृष्टि की, वे सनत्कुमार आदि मुनि गन्धमादन पर्वत पर तपस्या कर रहे हैं ॥५२-५३॥ द्विजश्रेष्ठो! इसलिये वे वाग्मी तथा धर्मज्ञ कृष्ण प्रणम्य हैं। वे देव वन्दित होने पर वन्दना करते हैं सम्मानित होने पर सम्मान करते हैं, दृष्टि-गोचर होने पर देखते हैं सेवित होने पर सेवा करते हैं और पूजित होने पर नित्य पूजा करते हैं ॥५४-५५॥ इस प्रकार अनिन्द्य एवं महान् आदिदेव विष्णु का परम तप तथा सर्वदा सज्जना के अनुकूल आचरण है ॥५६॥ अपने लोक मे देवगण भी सनातन कृष्ण की पूजा करते हैं। भगवान् सबको उपासना के अनुरूप अभय-दान देते हैं। ब्राह्मणो को कर्म मन तथा वाणी से कृष्ण को नमस्कार करना चाहिये। यत्नपूर्वक उपासना करके कृष्ण का दर्शन करना चाहिये ॥५७-५८॥ मुनिवर! इसी मार्ग को मैंने अपनाया है। उन अखिल देवों के स्वामी के दर्शन हो जाने पर समस्त देवों के दर्शन हो जाते हैं ॥५९॥ मैं भी महावराहरूप, समस्त लोकों के उत्पादक तथा संसार के स्वामी कृष्ण को नित्य नमस्कार करता हूँ ॥६०॥ उनमे तीनों देवों का दर्शन निःसन्देह होता है। हम सब देवगण उनकी देह मे वास करते हैं ॥६१॥ उन्हीं के ज्येष्ठ भ्राता धरणीधर बलराम हैं, जो हल धारण करने वाले तथा स्वच्छ पर्वतराशि की तरह कान्ति वाले हैं। बलराम का नाम अनन्त है। कश्यप-पुत्र गरुड शक्ति से जिन परमात्मा बलदेव के अन्त को नहीं देख सके, वे शेषावतार बलभद्र परम हर्ष से विचरण करते हैं ॥६२-६४॥ वे अपनी फणाओं से वसुधरा को वेष्टित कर पृथ्वी के भीतर वास करते हैं। जो विष्णु हैं, वे ही धरणीधर अनन्त हैं ॥६५॥ जो बलराम हैं, वे ही सकल पृथ्वीधर अच्युत भगवान् हैं। मनोहर, दिव्य-

---

[1] क ०भः। बलभद्र इ०। [2] क धरातले।

यो राम स हृषीकेशोऽच्युत सर्वधराधरः । तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ दिव्यौ दिव्यपराक्रमौ ॥६६॥
द्रष्टव्यौ माननीयौ च चक्रलाङ्गलधारिणौ । एष वोऽनुग्रह प्रोक्तो मया पुण्यस्तपोधना ॥
तद्भवन्तो यदुश्रेष्ठ पूजयेयु प्रयत्नत ॥६७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे ऋषिमहेश्वरसवादे
षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२२६॥

अथ सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मुनिव्याससवादे विष्णुपूजाकथनम्

मुनय ऊचुः

अहो कृष्णस्य माहात्म्य श्रुतमस्माभिरद्भुतम् । सर्वपापहर पुण्य धन्य ससारनाशनम् ॥१॥
सपूज्य विधिवद्भक्त्या वासुदेव' महामुने । का गति यान्ति मनुजा वासुदेवार्चने रता ॥२॥
किं प्राप्नुवन्ति ते मोक्ष किंवा स्वर्गं महामुने । अथवा किं मुनिश्रेष्ठ प्राप्नुवन्त्युभय फलम् ॥३॥
छेत्तुमर्हसि सर्वज्ञ सशय नो हृदि स्थितम् । छेत्ता नान्योऽस्ति लोकेऽस्मिंस्त्वदृते मुनिसत्तम ॥४॥

व्यास उवाच

साधु साधु मुनिश्रेष्ठा भवद्भिर्यदुदाहृतम् । शृणुध्वमानुपूर्व्येण वैष्णवानां सुखावहम् ॥५॥

पराक्रमी, तथा चक्र हलधारी वे दोनों श्रेष्ठ पुरुष दर्शनीय एव माननीय हैं। मुनिवृन्द ! यह भगवान् का अनुग्रह समझिये जो आपने इस रहस्य को मुझसे प्राप्त किया। इसलिये आपलोग यत्नपूर्वक कृष्ण की पूजा करें॥६६-६७॥

श्रीब्रह्म महापुराण मे मुनि-महेश्वर के सवाद मे दो सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त॥२२६॥

अध्याय २२७

मुनियो और व्यास के सवाद मे वासुदेव-पूजन का वर्णन

मुनियों ने कहा—अहो ! हमने कृष्ण का अद्भुत, सर्वपापहारी, पवित्र, धन्यवादार्ह तथा ससारनाशक माहात्म्य सुन लिया। महामुने ! भक्ति से विधिपूर्वक कृष्ण की पूजा करके वासुदेव की उपासना मे निरत मनुष्य किस गति को प्राप्त होते हैं ? उन्हें क्या मिलता है ? स्वर्ग या मोक्ष या दोनो ? सर्वज्ञ ! मेरे हृदय के सदेह को आप मिटा सकते हैं। मुनिश्रेष्ठ ! आपके अतिरिक्त इस लोक म कोई भी सशय का उच्छेद करने वाला नही है॥१-४॥

व्यास ने कहा—मुनिवर ! आपने जो कहा सब ठीक है। अब आप लोग विष्णु-भक्तो को सुख देने वाला उत्तर सुनें। कृष्ण की दीक्षामात्र लेने से मनुष्य मोक्ष प्राप्त करते हैं। मुनिश्रेष्ठ ! जो सदा भक्तिपूर्वक

१ग ०व सदा मु०।

दीक्षामात्रेण कृष्णस्य नरा मोक्षं व्रजन्ति वै। किं पुनर्ये सदा भक्त्या पूजयन्त्यच्युतं द्विजाः ॥६॥
न तेषां दुर्लभः स्वर्गो मोक्षश्च मुनिसत्तमाः। लभन्ते वैष्णवाः कामान्यान्यान्वाञ्छन्ति [1]दुर्लभान् ॥७॥
रत्नपर्वतमारुह्य नरो रत्नं यथाऽऽददेत्। स्वेच्छया मुनिशार्दूलास्तथा कृष्णान्मनोरथान् ॥८॥
कल्पवृक्षं समासाद्य फलानि स्वेच्छया यथा। गृह्णाति पुरुषो विप्रास्तथा कृष्णान्मनोरथान् ॥९॥
श्रद्धया विधिवत्पूज्य वासुदेवं जगद्गुरुम्। धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्नुवन्ति नराः फलम् ॥१०॥
आराध्य तं जगन्नाथं विशुद्धेनान्तरात्मना। प्राप्नुवन्ति नराः कामान्सुराणामपि दुर्लभान् ॥११॥
येऽर्चयन्ति सदा भक्त्या वासुदेवाख्यमव्ययम्। न तेषां दुर्लभं किंचिद्विद्यते भुवनत्रये ॥१२॥
धन्यास्ते पुरुषा लोके येऽर्चयन्ति सदा हरिम्। सर्वपापहरं देवं सर्वकामफलप्रदम् ॥१३॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः [2]शूद्रान्त्यजातयः। संपूज्य तं सुरवरं प्राप्नुवन्ति परां गतिम् ॥१४॥
तस्माच्छृणुध्वं मुनयो यत्पृच्छत ममानघाः। प्रवक्ष्यामि समासेन गतिं तेषां महात्मनाम् ॥१५॥
त्यक्त्वा मानुष्यकं देहं रोगायतनमध्रुवम्। जरामरणसंयुक्तं जलबुद्बुदसंनिभम् ॥१६॥
मांसशोणितदुर्गन्धं विण्मूत्रादिभिर्युतम्। अस्थिस्थूणममेध्यं च स्नायुचर्मशिरान्वितम् ॥१७॥
कामगेन विमानेन दिव्यगन्धर्वनादिना। तरुणादित्यवर्णेन किङ्किणीजालमालिना ॥१८॥
उपगीयमाना गन्धर्वैरप्सरोभिरलंकृताः। व्रजन्ति लोकपालानां भवनं तु पृथक्पृथक् ॥१९॥

कृष्ण की पूजा करते हैं, उनके लिये स्वर्ग तथा मोक्ष दुर्लभ नहीं हैं॥५-६॥ विष्णु-भक्त मनुष्य की दुर्लभ कामनायें भी पूरी होती हैं। मुनिश्रेष्ठो! रत्न के पर्वत पर चढकर जैसे मनुष्य स्वेच्छा से रत्न लेता है उसी तरह विष्णु-भक्त कृष्ण से अपने मनोरथों को प्राप्त करते हैं॥७-८॥ जैसे मनुष्य कल्पवृक्ष को प्राप्त कर स्वेच्छापूर्वक फलग्रहण करते हैं, वैसे विष्णुभक्त कृष्ण से अपने मनोरथों को प्राप्त करते हैं।.९॥ मनुष्य श्रद्धापूर्वक जगद्गुरु वासुदेव की पूजा करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का फल प्राप्त करते हैं॥१०॥ शुद्ध चित्त से जगन्नाथ की आराधना कर मनुष्य देवदुर्लभ कामनाओं को प्राप्त करते हैं॥११॥ जो सदा भक्तिपूर्वक अविनाशी कृष्ण की पूजा करते हैं, उनके लिये तीनों लोक में कुछ भी दुर्लभ नही है॥१२॥ वे मानव धन्य हैं, जो सदा सर्वपापहारी तथा समस्त कामनाओं के फलदाता हरि की उपासना करते हैं॥१३॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री तथा चाण्डाल भी वासुदेव की पूजा करके उत्तम गति को प्राप्त करते हैं॥१४॥ निष्पाप मुनिवृन्द! इसलिये उन महात्मा की गति के विषय मे आप जो पूछते हैं, उसे मैं सक्षेपपूर्वक बतलाऊँगा॥१५॥ रोगो के मन्दिर, अनित्य, वृद्धता तथा मृत्यु से युक्त, जल के बुलबुले के समान, मास, शोणित, दुर्गन्ध, विष्ठा, मूत्र आदि से युक्त, अस्थिरूपी खूटों पर स्थित, अपवित्र और स्नायु, चर्म तथा शिरा से युक्त मनुष्य शरीर को छोडकर विष्णुभक्त कामचारी विमानों से लोकपालो के पृथक-पृथक् भवन मे जाते हैं। उनके विमान मध्याह्नकालीन सूर्य के समान वर्ण वाले तथा क्षुद्र घण्टिकाओ से युक्त होते हैं, जिन पर दिव्यगन्धर्वों का सगीत होता रहता है। गन्धर्व और अप्सरायें उन विष्णुभक्तो को वस्त्र भूषण आदि से सुसज्जित करती हैं॥१६-१९॥ तब वे विष्णुभक्त सबको

---

[1] ख चेतसा। [2] क ०द्रास्तथाऽन्त्यजा। स०।

मन्वन्तरप्रमाणं तु भुक्त्वा कालं पृथक्पृथक् । [1]भुवनानि पृथक्तेषां सर्वभोगैरलंकृताः ॥२०॥
ततोऽन्तरिक्षं लोकं ते यान्ति सर्वसुखप्रदम् । तत्र भुक्त्वा[2] वरान्भोगान्दशमन्वन्तरं द्विजाः ॥२१॥
तस्माद्गन्धर्वलोकं तु यान्ति वै वैष्णवा द्विजाः । विंशन्मन्वन्तरं कालं तत्र भुक्त्वा मनोरमान् ॥२२॥
भोगानादित्यलोकं तु तस्माद्यान्ति सुपूजिताः । त्रिंशन्मन्वन्तरं तत्र भोगान्भुक्त्वाऽतिदैवतान् ॥२३॥
तस्माद्व्रजन्ति ते विप्राश्चन्द्रलोक सुखप्रदम् । मन्वन्तराणां ते तत्र चत्वारिंशद्गुणान्वितम् ॥२४॥
कालं भुक्त्वा शुभान्भोगाञ्जरामरणवर्जिताः । तस्मान्नक्षत्रलोकं तु विमानैः समलंकृतम् ॥२५॥
व्रजन्ति ते मुनिश्रेष्ठा गुणैः सर्वैरलंकृता । मन्वन्तराणां पञ्चाशद्भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥२६॥
तस्माद्व्रजन्ति ते[3] विप्रा देवलोकं सुदुर्लभम् । षष्टिमन्वन्तरं यावत्तत्र भुक्त्वा सुदुर्लभान् ॥२७॥
भोगान्नानाविधान्विप्रा ऋग्द्व्यष्टकसमन्वितान् । शक्रलोकं[4] पुनस्तस्माद्गच्छन्ति[5] सुरपूजिताः ॥२८॥
मन्वन्तराणां तत्रैव भुक्त्वा कालं च सप्ततिम् । भोगानुच्चावचान्दिव्यान्मनसः प्रीतिवर्धनान् ॥२९॥
तस्माद्व्रजन्ति ते लोकं प्राजापत्यमनुत्तमम् । भुक्त्वा तत्रेप्सितान्भोगान्सर्वकामगुणान्वितान् ॥३०॥
मन्वन्तरमशीतिं च कालं सर्वसुखप्रदम् । तस्मात्पैतामहं लोकं यान्ति ते वैष्णवा द्विजाः ॥३१॥
मन्वन्तराणां नवतिं क्रीडित्वा तत्र वै सुखम् । इहाऽऽगत्य[6] पुनस्तस्माद्विप्राणां प्रवरे कुले ॥३२॥
जायन्ते योगिनो विप्रा वेदशास्त्रार्थपारगाः । एवं सर्वेषु लोकेषु भुक्त्वा [7]भोगान्यथेप्सितान् ॥३३॥
इहाऽऽगत्य पुनर्यान्ति उपर्युपरि च क्रमात् । संभवे संभवे ते तु [8]शतवर्षं द्विजोत्तमाः ॥३४॥

सुख देने वाले अन्तरिक्ष-लोक को जाते हैं। वहाँ दश मन्वन्तर बीतने तक उत्तम भोगों को भोगकर गन्धर्वलोक में जाते हैं। वहाँ बीस मन्वन्तरों तक मनोरम भोगों को भोगकर बहुत सम्मान के साथ आदित्यलोक में जाते हैं। ॥२०-२२½॥ वहाँ तीस मन्वन्तरों तक देवदुर्लभ भोगों को भोगकर सुखदायक चन्द्रलोक में जाते हैं। वहाँ चालीस मन्वन्तरों तक जरा-मरण से रहित होकर उत्तम भोगों को भोगकर विमानों से सुखपूर्वक नक्षत्रलोक में जाते हैं। ॥२३-२५॥ मुनिश्रेष्ठो ! वहाँ वे समस्त गुणों से युक्त होकर पचास मन्वन्तरों तक यथेच्छ भोगों को भोगकर दुर्लभ देवलोक में जाते हैं॥२६॥ वहाँ साठ मन्वन्तरों तक नाना प्रकार के अत्यन्त दुर्लभ भोगों को भोगकर देवताओं से पूजित होकर इन्द्रलोक में जाते हैं॥२७-२८॥ वहाँ सत्तर मन्वन्तरों तक मन को हरने वाले समस्त दिव्य भोगों को भोगकर उत्तम प्रजापतिलोक में जाते हैं। वहाँ अस्सी मन्वन्तरों तक समस्त गुणों से युक्त अभिलषित भोगों को भोगकर पितामहलोक में जाते हैं॥२९-३१॥ वहाँ नब्बे मन्वन्तरों तक सुख भोगकर इस लोक में ब्राह्मणों के उत्तम कुल में जन्म लेते हैं और वेद-शास्त्र-पारगत योगी होते हैं॥३२½॥ इस प्रकार समस्त लोकों में यथेष्ट भोगों को भोगकर यहाँ आते हैं और पुनः क्रमशः ऊपर-ऊपर के लोकों में जाते हैं ॥३३½॥ द्विजगण ! प्रत्येक जन्म में सौ-सौ वर्षों तक यथेष्ट भोगों को भोगकर दूसरे लोक में जाते हैं। इस प्रकार जब उनके दस जन्म

१ख भवनानि। २ख ग ०क्त्वा शुभान्भो०। ३ग ते वीरास्त०। ४ख ग ०क गुणयुक्तास्त०। ५ख ग ०न्ति पू०। ६ख ०गता पु०। ७ख ग ०न्यथासतम्। इ०। ८ग पञ्चिवर्षं।

भुक्त्वा यथेप्सितान्भोगान्यान्ति लोकान्तर ततः। दशजन्म यदा तेषां क्रमेणैवं प्रपूर्यते॥३५॥
तदा लोकं हरेर्दिव्यं ब्रह्मलोकाद्व्रजन्ति ते। गत्वा तत्राक्षयान्भोगान्भुक्त्वा सर्वगुणान्वितान्॥३६॥
मन्वन्तरशत यावज्जन्ममृत्युविवर्जिताः। गच्छन्ति भुवनं पश्चाद्वाराहस्य द्विजोत्तमाः॥३७॥
दिव्यदेहाः कुण्डलिनो महाकाया महाबलाः। क्रीडन्ति तत्र विप्रेन्द्राः कृत्वा रूपं चतुर्भुजम्॥३८॥
दश कोटिसहस्राणि वर्षाणां द्विजसत्तमाः। तिष्ठन्ति शाश्वते भावे 'सर्वदेवैर्नमस्कृताः॥३९॥
[ततो यान्ति तु ते धीरा नरसिंहगृह द्विजाः। क्रीडन्ते तत्र मुदिता वर्षकोट्ययुतानि च॥४०॥
तदन्ते वैष्णव यान्ति पुर सिद्धनिषेवितम्। क्रीडन्ते तत्र सौख्येन वर्षाणामयुतानि च॥४१॥
ब्रह्मलोके पुनर्विप्रा गच्छन्ति साधकोत्तमाः। तत्र स्थित्वा चिरं कालं वर्षकोटिशतान्बहून्॥४२॥
नारायणपुरं यान्ति ततस्ते साधकेश्वरा[२]। भुक्त्वा भोगांश्च विविधान्वर्षकोट्यर्बुदानि च॥४३॥
अनिरुद्धपुर पश्चाद्दिव्यरूपा महाबलाः। गच्छन्ति साधकवराः स्तूयमानाः सुरासुरैः॥४४॥
तत्र कोटिसहस्राणि वर्षाणा च चतुर्दश। तिष्ठन्ति वैष्णवास्तत्र जरामरणवर्जिताः ॥४५॥
'प्रद्युम्नस्य पुरं पश्चाद्गच्छन्ति विगतज्वराः। तत्र तिष्ठन्ति[४] ते विप्रा लक्षकोटिशतत्रयम्[५]॥४६॥
स्वच्छन्दगामिनो हृष्टा[६] बलशक्तिसमन्विताः। गच्छन्ति योगिन पश्चाद्यत्र सकर्षणः प्रभुः॥४७॥
तत्रोषित्वा चिरं कालं भुक्त्वा भोगान्सहस्रश.। विशन्ति वासुदेवेति विरूपाख्ये निरञ्जने॥४८॥

पूरे हो जाते हैं तब वे ब्रह्मलोक से विष्णुलोक मे जाते हैं। वहाँ जन्म-मरण से रहित होकर सौ मन्वन्तरो तक सर्वगुण-सम्पन्न अक्षय भोगो को भोगकर पश्चात् वाराहलोक मे जाते हैं। विप्रवर! वहाँ कुण्डलयुक्त दिव्य देह धारण कर महाकाय, महाबलवान् तथा चतुर्भुज होकर दश सहस्र कोटि वर्ष पर्यन्त क्रीडा करते हैं और ब्रह्मभूत होकर सब देवा से नमस्कृत होते हैं॥३४-३९॥ तदनन्तर वे धीर पुरुष नरसिंहलोक मे जाते हैं। वहाँ भी दश सहस्र कोटि वर्ष पर्यन्त हर्षपूर्वक क्रीडा कर अन्त मे सिद्धगणो से सुसेवित विष्णुलोक मे जाते हैं। वहाँ दश हजार वर्ष पर्यन्त सुख से क्रीडा कर उत्तम साधक पुन ब्रह्मलोक मे जाते हैं। वहाँ करोडो वर्ष तक रहकर श्रेष्ठ साधक नारायणपुर जाते हैं। वहाँ करोडा अरब वर्ष पर्यन्त विविध भोगो को भोगकर श्रेष्ठ साधक पश्चात् अनिरुद्धपुर जाते हैं। वहाँ वे जन्म-मरण स रहित, दिव्यकाय तथा महाबलवान् होकर सुर-असुरों से स्तुत होते हुए चौदह सहस्र कोटि वर्ष पर्यन्त रहते हैं। तदनन्तर वे सुखपूर्वक प्रद्युम्नपुर जाते हैं। वहाँ स्वेच्छाचारी, हृष्ट तथा बल-शक्ति-समन्वित होकर करोडा वर्ष पर्यन्त रहते हैं॥४०-४६॥ पश्चात् वे योगी पुरुष बलभद्रलोक मे जाते हैं। वहाँ चिरकाल तक हजारो भोगो को भोगकर रूपरहित निरञ्जन वासुदेव मे प्रवेश करते हैं। फिर

१क सर्वलोकनम०। २क ०धकोत्तमा। मु०। ३क ख प्राद्युम्नेय। ४क ०न्ति वर्षाणि ल०। ५क ख ०तद्वय०। ६क विप्रा।

विनिर्मुक्ता परे तत्त्वे जरामरणवर्जिते । तत्र गत्वा विमुक्तास्ते भवेयुर्नात्र सशय ॥४९॥
एव क्रमेण भुक्ति ते प्राप्नुवन्ति मनीषिण । मुक्ति च मुनिशार्दूला वासुदेवार्चने रता ॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वैष्णवाना गतिख्यापन नाम
सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२२७॥

अथ अष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यासमुनिसवादे विष्णुपूजाकथनम्

व्यास उवाच

एकादश्यामुभे पक्षे निराहार[1] समाहित । स्नात्वा सम्यग्विधानेन धौतवासा जितेन्द्रिय ॥१॥
सपूज्य विधिवद्विष्णु श्रद्धया सुसमाहित । पुष्पैर्गन्धैस्तथा दीपैर्धूपैर्नैवद्यकैस्तथा ॥२॥
उपहारैर्बहुविधैर्जप्यैर्होमप्रदक्षिणै । स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैर्गीतवाद्यैर्मनोहरै ॥३॥
दण्डवत्प्रणिपातैश्च जयशब्दैस्तथोत्तमै । एव सपूज्य विधिवद्रात्रौ कृत्वा प्रजागरम् ॥४॥
कथा वा गीतिका विष्णोर्गायन्विष्णुपरायण । याति विष्णो पर स्थान नरो नास्त्यत्र सशय ॥५॥

तो जरा-मरण-वर्जित परम तत्त्व को प्राप्त कर वे नि सन्देह मुक्त हो जाते हैं। मुनिश्रेष्ठो ! वासुदेव की उपासना मे निरत विद्वान् लोग इस प्रकार क्रमश भुक्ति तथा मुक्ति प्राप्त करते हैं॥४७ ५०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म विष्णु भक्तो की गति निरूपण नामक दो सौ सत्ताईसवाँ
अध्याय समाप्त॥ २२७॥

अध्याय २२८

व्यास और मुनियो के सवाद मे विष्णु-पूजा आदि का वर्णन

व्यास ने कहा—(विष्णु भक्त मनुष्य) दोनो पक्षो की एकादशी मे निराहार तथा सावधान होकर रहे। विधानपूर्वक स्नान करके पवित्र वस्त्र पहन और इन्द्रियो को वश म रखे। पुष्प, गन्ध, दीप, धूप, नैवेद्य, अनेक उपहार, जप होम प्रदक्षिणा विविध दिव्य स्तोत्र मनोहर, गीत-वाद्य, दण्डवत्प्रणाम तथा उत्तम जयशब्दो से अत्यन्त श्रद्धापूर्वक विष्णु की पूजा करे। इस प्रकार विधिपूर्वक पूजा करके रात्रि म जागरण करे और विष्णु की कथा या गीत गाये। ऐसा करने से विष्णुपरायण मनुष्य नि सन्देह विष्णुलोक मे जाता है॥१-५॥

---

१ व ०हारसमन्वित ।

मुनय ऊचुः

प्रजागरे गीतिकाया.[1] फलं विष्णोर्महामुने । ब्रूहि तच्छ्रोतुमिच्छामः परं कौतूहलं हि नः ॥६॥

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः । गीतिकायाः फलं विष्णोर्जागरे यदुदाहृतम् ॥७॥
अवन्ती नाम नगरी बभूव भुवि विश्रुता । तत्राऽऽस्ते भगवान्विष्णुः शङ्खचक्रगदाधरः ॥८॥
तस्या नगर्याः पर्यन्ते चाण्डालो गीतिकोविदः[2] । सद्वृत्त्योत्पादितधनो भृत्यानां भरणे रत ॥९॥
विष्णुभक्तः स चाण्डालो मासि मासि दृढव्रत. । एकादश्यां समागम्य सोपवासोऽथ[3] गायति ॥१०॥
गीतिका विष्णुनामाङ्काः प्रादुर्भावसमाश्रिता । गान्धारषड्जनैषादस्वरपञ्चमधैवतै ॥११॥
रात्रिजागरणे विष्णुं गाथाभिरुपगायति । प्रभाते च प्रणम्येशं द्वादश्यां गृहमेत्य च ॥१२॥
जामातृभागिनेयाश्च भोजयित्वा सकन्यकाः[4] । ततः सपरिवारस्तु पश्चाद्भुङ्क्ते द्विजोत्तमाः ॥१३॥
एवं तस्याऽऽसतस्तत्र कुर्वतो विष्णुप्रीणनम् । गीतिकाभिर्विचित्राभिर्वय. प्रतिगतं बहु ॥१४॥
एकदा चैत्रमासे तु कृष्णैकादशिगोचरे[5] । विष्णुशुश्रूषणार्थाय ययौ वनमनुत्तमम् ॥१५॥
वनजातानि पुष्पाणि ग्रहीतुं भक्तितत्परः । क्षिप्रातटे महारण्ये विभीतकतरोरध. ॥१६॥
दृष्टः स राक्षसेनाथ गृहीतश्चापि भक्षितुम् । चाण्डालस्तमथोवाच नाद्य भक्ष्यस्त्वया ह्यहम् ॥१७॥

मुनियों ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! जागरण मे विष्णु के गीत गाने से क्या फल मिलता है ? हम सुनना चाहते हैं। हमें बडी उत्कण्ठा हो रही है॥६॥

व्यास ने कहा—मुनिवर ! सुनिये, जागरण मे विष्णु-गीत गाने से जो फल मिलता है, उसे मैं अक्षरश बतलाऊँगा। भू-मण्डल मे प्रसिद्ध अवन्ती नामक नगरी थी। वहाँ शख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णु रहते थे। ॥७-८॥ उसी नगरी के अन्त मे एक सगीत-कुशल चाण्डाल रहता था। वह सद्वृत्ति स धन कमाता था और नौकर-चाकरों का भरण-पोषण करता था। वह चाण्डाल दृढव्रती तथा विष्णु का भक्त था। वह प्रतिमास एकादशी तिथि मे उपवास करके रात्रि मे जागरण करता था और विष्णु के अवतार सम्बन्धी गीतों को गान्धार षड्ज, नैषध, धैवत तथा पञ्चमस्वर मे गाता था॥९-११½॥ प्रात काल द्वादशी मे भगवान् को प्रणाम कर घर आता था और जामाता, भागिनेय तथा कन्याओं को खिलाकर पश्चात् वह सपरिवार भोजन करता था। इस प्रकार विचित्र-विचित्र गीतों से विष्णु को सन्तुष्ट करते हुए उसकी बहुत अवस्था बीत गई॥१२-१४॥ एक समय चैत्र-कृष्ण-एकादशी को विष्णु की पूजा करने के लिये उसने वन की ओर प्रस्थान किया। भक्तितत्पर होकर वह वन्य पुष्पों को लाने के लिये क्षिप्रा नदी के तट पर महावन मे पहुँचा। एक बहेडे के वृक्ष के नीचे एक राक्षस ने उसे देखकर खाने के लिये पकड लिया। तब चाण्डाल ने राक्षस से कहा—'भगवन् ! आज तुम मुझे मत खाओ, कल सवेरे खा लेना।

१ख ०काया फ०।२क ख गीतको०। ३ख सदा सोऽपि मा०। ४ग स्ववन्यका।५क ०चरे। वि०।

प्रातर्भोक्ष्यसि कल्याण सत्यमेष्याम्यहं पुनः। अद्य कार्यं मम महत्तस्मान्मुञ्चस्व राक्षस ॥१८॥
श्वः सत्येन समेष्यामि ततः खादसि मामिति। विष्णुशुश्रूषणार्थाय रात्रिजागरणं मया॥
कार्यं न व्रतविघ्नं मे कर्तुमर्हसि राक्षस ॥१९॥

व्यास उवाच

तं राक्षसः प्रत्युवाच दशरात्रमभोजनम्। ममाभूदद्य च भवान्मया लब्धो मतङ्गज ॥२०॥
न मोक्ष्ये भक्षयिष्यामि क्षुधया पीडितो भृशम्। निशाचरवचः श्रुत्वा मातङ्गस्तमुवाच ह॥
सान्त्वयञ्श्लक्ष्णया वाचा स सत्यवचनैर्दृढैः ॥२१॥

मातङ्ग उवाच

'सत्यमूलं जगत्सर्वं ब्रह्मराक्षस तच्छृणु। सत्येनाहं शपिष्यामि पुनरागमनाय च ॥२२॥
आदित्यश्चन्द्रमा वह्निर्वायुर्भूर्द्यौर्जलं मनः। अहोरात्रं यमः संध्ये द्वे विदुर्नरचेष्टितम् ॥२३॥
परदारेषु यत्पापं यत्परद्रव्यहारिषु। यच्च ब्रह्महनः पापं सुरापे गुरुतल्पगे ॥२४॥
'बन्ध्यापतेश्च यत्पापं यत्पापं वृषलीपतेः। यच्च देवलके पापं मत्स्यमांसाशिनश्च यत् ॥२५॥
क्रोडमांसाशिनो यच्च' कूर्ममांसाशिनश्च यत्'। वृथा मांसाशिनो यच्च पृष्ठमांसाशिनश्च यत् ॥२६॥
कृतघ्ने मित्रघातके यत्पापं दिधिषूपतौ। 'सूतकस्य च यत्पापं यत्पापं क्रूरकर्मणः ॥२७॥

मैं सत्य कहता हूँ। फिर मैं आऊँगा। राक्षस! आज मुझे बडा कार्य है, इसलिये छोड दो। कल मैं अवश्य आऊँगा, तब खा लेना। विष्णु की परिचर्या के लिये मुझे रात मे जागना है। तुम्हे मेरे व्रत मे विघ्न नहीं डालना चाहिये।' ॥१८-१९॥

व्यास ने कहा—राक्षस ने उसको उत्तर दिया—'चाण्डाल! मैं दश रात से भूखा हूँ। आज तुमको पाया हूँ। मैं नही छोडूँगा। क्षुधा से पीडित हूँ। अत अवश्य खाऊँगा।' राक्षस की बात सुनकर चाण्डाल कोमल वाणी से उसे सान्त्वना देते हुए दृढ तथा सत्य वचन बोलने लगा॥२०-२१॥

चाण्डाल ने कहा—ब्रह्मराक्षस! सुनो, सत्यमूलक ही सम्पूर्ण जगत् है। उसी सत्य को लेकर मैं पुन आने के लिये शपथ करता हूँ॥२२॥ सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, पृथ्वी, आकाश, जल, मन, दिन, रात, यम तथा दोनो सन्ध्यायें मनुष्यो की क्रियायो को जानती हैं। पर-स्त्री-गमन मे जो पाप होता है, दूसरे के धन चुराने मे जो पाप होता है, ब्रह्महत्या मे जो पाप होता है, मदिरापन तथा गुरु-पत्नी-गमन मे जो पाप होता है॥२३-२४॥ बन्ध्यापति तथा शूद्रापति होने से जो पाप होता है, पुजारी होने मे जो पाप होता है। मत्स्य-मास खाने मे जो पाप होता है शूकर का मास खाने मे जो पाप होता है॥२५॥ कछुए का मास, व्यर्थ मास तथा पीठ का मांस खाने मे जो पाप होता है, कृतघ्नता तथा मित्र के साथ विश्वासघात करने मे जो पाप होता है, पुनर्विवाहिता स्त्री के पति बनने मे जो पाप होता है, सूतक, क्रूरकर्मी तथा कृपण होने मे जो पाप होता है, बन्ध्या स्त्री के अतिथि होने मे जो पाप होता है,

---

१क सत्याधार। २ग सध्यापाताच्च। ३क ०च्च वृषमा०। ४क ०तु। ५ख सूलिकस्य।

कृपणस्य च यत्पापं यच्च[१] सन्ध्यातिथेरपि । अमावास्याऽष्टमी षष्ठी कृष्णशुक्लचतुर्दशी[२] ॥२८॥
[३]तासु[४]यद्गमनात्पापं [५]यद्विप्रो व्रजति स्त्रियम् । रजस्वलां तथा पश्चाच्छ्राद्धं कृत्वा स्त्रियं व्रजेत् ॥२९॥
[६]सर्वस्वस्नातभोज्यानां यत्पापं [७]मलभोजने । मित्रभार्यां गच्छतां च यत्पापं पिशुनस्य च ॥३०॥
दम्भमायानुरक्ते च यत्पापं [८]मधुघातिनः । ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्य यत्पापं तदयच्छतः ॥३१॥
यच्च कन्यानृते पापं यच्च गोऽश्वतरानृते[९] । स्त्रीबालहन्तुर्यत्पापं यच्च मिथ्याभिभाषिणः ॥३२॥
[१०]देववेदद्विजनृपपुत्रमित्रसतीस्त्रियः । यच्च निन्दयतां पापं[११] [१२]गुरुमिथ्यापचारतः ॥३३॥
अग्नित्यागिषु यत्पापमग्निदायिषु यद्वने[१३] । गृहेष्ट्या पातके यच्च यद्गोघ्ने यद्द्विजाधमे ॥३४॥
यत्पापं परिवित्ते च यत्पापं परिवेदिनः । तयोर्दातृप्रहीत्रोश्च यत्पापं भ्रूणघातिनः ॥३५॥
किं चात्र बहुभिः प्रोक्तैः शपथैस्तव राक्षस । श्रूयतां शपथं भीमं दुर्वाच्यमपि कथ्यते ॥३६॥
स्वकन्याजीविनः पापं [१४]गूढसत्येन साक्षिणः । अयाज्ययाजके षण्ढे यत्पापं [१५]श्रवणेऽधमे ॥३७॥

अमावास्या, अष्टमी, षष्ठी तथा उभय पक्ष की चतुर्दशी मे स्त्रीगमन करने से जो पाप होता है, रजस्वला स्त्री से समोग करने से जो पाप होता है, श्राद्ध करने के बाद स्त्री प्रसग करने से जो पाप होता है ॥२६-२९॥ बिना स्नान किये भोजन करने से जो पाप होता है, मल-भोजन करने से जो पाप होता है, मित्रपत्नी-गमन मे जो पाप होता है, पिशुनता, दम्भ तथा छल करने से जो पाप होता है, मधु मक्खियो के मारने मे जो पाप होता है, ब्राह्मण के साथ प्रतिज्ञा करके फिर न देने मे जो पाप होता है ॥३०-३१॥ असत्यता से कन्या, गाय एवम् अश्व लाभ करने मे जो पाप होता है, स्त्री तथा बालक की हत्या करने मे जो पाप होता है मिथ्याभाषण करने मे जो पाप होता है, देवता, वेद, ब्राह्मण, राजा, वाहन, मित्र तथा सती स्त्री की निन्दा करने मे जो पाप होता है, गुरु के साथ मिथ्या व्यवहार करने से जो पाप होता है, अग्निहोत्र त्यागने से वन मे अग्नि लगाने से तथा गृह मे याग करने से जो पाप होता है, गोहत्या करने से जो पाप होता है, अधम ब्राह्मण को जो पाप होता है परिवित्ता (वह बडा भाई जिसके छोटे भाई ने उससे पहले ही विवाह कर लिया है) परिवेदी, (वह छोटा भाई जिसने अपने बडे भाई से पहले ही विवाह कर लिया है) तथा उनको (दान) देने वाले एवम् (उनसे दान की वस्तु) ग्रहण करने वाले को जो पाप होता है, गर्भघात करने वाले को जो पाप होता है, वे सब पाप मुझे हों यदि मैं तुम्हारे पास न आऊँ ॥३२-३५॥ राक्षस! तुम से अधिक शपथ मैं क्या करूँ? सुनो, भयङ्कर तथा दुर्वाच्य शपथ भी मैं तुमसे करता हूँ। अपनी कन्या बेचकर जीविका चलाने वाले को जो पाप होता है, सत्य पर पर्दा डालकर गवाही देने वाले को जो पाप होता है, यज्ञ के अनधिकारी के यज्ञ कराने वाले को तथा नपुसक को जो पाप

१क यत्पाप ग्रामयाजके । अ० । २ग ०क्लत्रयोदशी।३क तेपु। ४ख यच्छरणात्पा०। ५क ०द्विप्रा ध्यायत स्त्रि०। ६ख ०स्वप्रान्तर्भोज्या०। ७क शल्यमोजिनाम्। ८क ०धुगन्विन। ९ख ग ०श्वनरा०। १०क ०पयज्ञसधिस०। ११ग ०ष सुरा मिथ्यापचर्यत। १२ ख ०मिथ्योपरेतत। १३ख ०ने। गूढचेष्टेषु यत्पाप यच्च गोघ्ने द्विजा।१४ग कूटसत्येन। १५ख ०वणाघ०।

प्रव्रज्यावसिते यच्च ब्रह्मचारिणि कामुके। एतैस्तु पापैर्लिप्येऽहं यदि नैष्यामि तेऽन्तिकम् ॥३८॥

व्यास उवाच

मातङगवचनं श्रुत्वा विस्मितो ब्रह्मराक्षसः। प्राह गच्छस्व सत्येन समयं चैव पालय ॥३९॥
इत्युक्तः कुणपाशेन श्वपाकः कुसुमानि तु। समादायागमच्चैव विष्णोः स निलयं गतः ॥४०॥
तानि प्रादाद्ब्राह्मणाय सोऽपि प्रक्षाल्य चाम्भसा। विष्णुमभ्यर्च्य निलयं जगाम स तपोधनः ॥४१॥
सोऽपि मातङ्गदायादः सोपवासस्तु तां निशाम्। गायन्हि बाह्यभूमिष्ठः प्रजागरमुपाकरोत् ॥४२॥
प्रभातायां तु शर्वर्यां स्नात्वा देवं नमस्य च। सत्यं स समयं कर्तुं प्रतस्थे यत्र 'राक्षसः ॥४३॥
तं व्रजन्तं पथि नरः प्राह भद्र क्व गच्छसि'। स तथाऽकथयत्सर्वं सोऽप्येनं पुनरब्रवीत् ॥४४॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं' यतः। महता तु प्रयत्नेन शरीरं पालयेद्बुधः ॥४५॥

जीवधर्मार्थसुखं नरस्तथाऽऽप्नोति मोक्षगतिमग्र्याम् ।
जीवन्कीर्तिमुपैति च भवति मृतस्य का कथा लोके ॥४६॥

मातङ्गस्तद्वचः श्रुत्वा प्रत्युवाचाथ हेतुमत् ॥४७॥

मातङ्ग उवाच

भद्र सत्यं पुरस्कृत्य गच्छामि शपथाः कृताः ॥४८॥

होता है, निन्द्य बात श्रवण करने मे जो पाप होता है, सन्यास लेकर गृहस्थी करने वाले को तथा कामी ब्रह्मचारी को जो पाप होता है, वे सब पाप मुझे हो, यदि मैं तुम्हारे पास न आऊँ ॥३६-३८॥

व्यास ने कहा—चाण्डाल की बात सुनकर ब्रह्मराक्षस विस्मित हुआ और बोला—'जाओ, सत्य की शपथ का ध्यान रखना।' राक्षस के कहने के बाद चाण्डाल ने फूल लेकर विष्णु-मन्दिर मे जाकर ब्राह्मण को दे दिया। ब्राह्मण भी फूल को जल से धोकर विष्णु की पूजा कर अपना घर चला गया ॥३९-४१॥ चाण्डाल उस दिन उपवास करके रात मे विष्णु प्रीत्यर्थ गीतो को गाते हुए बाहरी भूमि मे रह कर जागरण करने लगा। प्रभात होने पर स्नान करके देवता को नमस्कार करके वचन पूरा करने के लिये राक्षस के पास चल पड़ा। रास्ते मे एक व्यक्ति ने उससे पूछा—'भद्र! कहाँ जा रहे हो?' उसने सब वृत्तान्त कह सुनाया। उस व्यक्ति ने फिर कहा— धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का साधन शरीर ही है॥४२-४५॥ इसलिये विद्वान् मनुष्य महान् प्रयत्न करके इसका पालन करते हैं॥४२ ४५॥ जीवित मनुष्य धर्म, धन, सुख तथा अन्तिम मोक्षगति को प्राप्त करते हैं। जीवन रहने पर ही यश भी मिलता है। मृतक की तो इस लोक मे बात ही क्या है?' चाण्डाल उसका वचन सुनकर सारगर्भित वाक्य बोला॥४६-४७॥

चाण्डाल ने कहा—भद्र! मैंने सत्य को आगे करके शपथ की है।

१क ०स। तत्र यान्तं तु पथिक प्रा०। २क यास्यसि। ३क ख ०नं तु यत्। म०।

व्यास उवाच

तं भूयः 'प्रत्युवाचाय किमेवं मूढधीर्भवान् । किं न श्रुतं त्वया साधो मनुना [2]यदुदीरितम् ॥४९॥
गोस्त्रीद्विजानां परिरक्षणार्थं, विवाहकाले [3]सुरतप्रसङ्गे । ।
प्राणात्यये [4]सर्वधनापहारे, पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥५०॥
धर्मवाक्यं न च स्त्रीषु न विवाहे तथा रिपौ । वञ्चने चार्थहानौ च स्वनाशेऽनृतके तथा ॥
॥५१॥
एवं तद्वाक्यमाकर्ण्य मातङ्गः प्रत्युवाच ह

मातङ्ग उवाच

मैवं वदस्व भद्रं ते सत्यं लोकेषु पूज्यते । सत्येनावाप्यते सौख्यं यत्किंचिज्जगतीगतम् ॥५२॥
सत्येनार्कः प्रतपति सत्येनाऽऽपो रसात्मिकाः । ज्वलत्यग्निश्च सत्येन वाति सत्येन मारुत ॥५३॥
धर्मार्थकामसंप्राप्तिर्मोक्षप्राप्तिश्च दुर्लभा । सत्येन जायते पुंसां तस्मात्सत्य न संत्यजेत् ॥५४॥
सत्यं ब्रह्म परं लोके सत्य यज्ञेषु चोत्तमम् । सत्यं स्वर्गसमायातं तस्मात्सत्यं न सत्यजेत् ॥५५॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा सोऽथ मातङ्गस्तं प्रक्षिप्य नरोत्तमम् । जगाम तत्र यत्राऽऽस्ते प्राणिहा ब्रह्मराक्षस ॥५६॥
तमागतं समीक्ष्यासौ चाण्डाल ब्रह्मराक्षसः । विस्मयोत्फुल्लनयन शिर कम्पं तमब्रवीत् ॥५७॥

व्यास ने कहा—उस व्यक्ति ने फिर चाण्डाल से कहा—'तुम मूर्ख हो। क्या तुमने मनु का वचन नही सुना है? उनका कहना है—'गाय, स्त्री तथा ब्राह्मण की रक्षा के निमित्त, विवाहकाल मे, रतिप्रसग मे, प्राण-सकट मे और सर्वस्व अपहरण मे मिथ्या बोलने से पाप नही लगता है। स्त्रियों के साथ वार्तालाप करने मे, विवाह म, शत्रु को ठगने मे, और धननाश तथा प्राणनाश के समय धर्मवाक्य नही माना जाता है।' उसका वचन सुनकर चाण्डाल ने उत्तर दिया ॥४८-५१॥

चाण्डाल ने कहा—तुम्हारा कल्याण हो। ऐसा मत कहो। तीनो लोक मे सत्य की पूजा होती है। ससार म जो कुछ भी सुख है, वह सत्य से प्राप्त होता है। सत्य से सूर्य प्रकाशित होता है, सत्य से जल रसरूप होता है, सत्य से अग्नि प्रज्वलित होता है, सत्य से वायु बहता है। पुरुषो को धम, अर्थ काम और मोक्ष की दुर्लभ प्राप्ति सत्य से ही होती है। इसलिये सत्य का परित्याग नही करना चाहिये। लोक मे सत्य परब्रह्म है, सत्य यज्ञो मे सबसे उत्तम है, सत्य से स्वर्ग-प्राप्ति होती है। इसलिये सत्य को नही छोडना चाहिए ॥५२-५५॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर उस मनुष्य को छोडकर वह चाण्डाल वहाँ के लिये चल पडा, जहाँ वह जीवहिंसक ब्रह्मराक्षस रहता था। आये हुए चाण्डाल को देखकर ब्रह्मराक्षस परमविस्मित होकर शिर कँपाते हुए बोला ॥५६-५७॥

१क ख ०चासौ कि०। २क ख ०दुदाहृत०। ३ख सुखदे च धर्मे। प्रा०। ग सुहृदा च धर्मे। प्रा०। ४ग ०र्वंजनोप०। ५ग ०शे कृतक भवेत्। ए०। ६ख ०समस्तात त०।

ब्रह्मराक्षस उवाच

साधु साधु महाभाग सत्यवाक्यानुपालक। न मातङ्गमहं मन्ये भवन्तं सत्यलक्षणम् ॥५८॥
कर्मणाऽनेन[1] मन्ये त्वां ब्राह्मणं शुचिमव्ययम्[2]। यत्किंचित्त्वां भद्रमुख प्रवक्ष्ये धर्मसंश्रयम्॥
किं तत्र भवता रात्रौ कृतं विष्णुगृहे वद ॥५९॥

व्यास उवाच

तमभ्युवाच मातङ्गः शृणु विष्णुगृहे मया। यत्कृतं रजनीभागे यथातथ्यं वदामि ते॥६०॥
विष्णोर्देवकुलस्याधः स्थितेनाऽऽनम्रमूर्तिना। प्रजागरः कृतो रात्रौ गायता विष्णुगीतिकाम्॥६१॥
तंब्रह्मराक्षसः प्राह कियत्तं कालमुच्यताम्। प्रजागरो विष्णुगृहे कृत (तो) भवितमता वद॥६२॥
तमभ्युवाच प्रहसन्विंशत्यब्दानि राक्षस। एकादश्यां मासि मासि कृतस्तत्र प्रजागरः ॥

ब्रह्मराक्षस उवाच

मातङ्गवचनं श्रुत्वा प्रोवाच ब्रह्मराक्षसः ॥६३॥
यदद्य त्वां प्रवक्ष्यामि तद्भवान्वक्तुमर्हति। एकरात्रिकृतं साधो मम देहि प्रजागरम् ॥६४॥
एवं त्वां मोक्षयिष्यामि मोक्षयिष्यामि नान्यथा। त्रिः सत्येन महाभाग इत्युक्त्वा विरराम ह॥६५॥

व्यास उवाच

मातङ्गस्तमुवाचाथ मयाऽऽत्मा ते निशाचर। निवेदितः किमुक्तेन खादस्व स्वेच्छयाऽपि माम्॥६६॥

ब्रह्मराक्षस बोला—महाभाग! सत्य वचन के पालन-कर्ता! ठीक ठीक!! तुम इतने सत्यात्मा हो कि मैं कभी नहीं मान सकता कि तुम चाण्डाल हो। इस कर्म से मैं तुम्हें पवित्र तथा नाशरहित ब्राह्मण मानता हूँ। तुम अतीव धर्मात्मा हो कल्याणमय हो। मैं जो कुछ पूछता हूँ वह बतलाओ। गत रात्रि में तुमने विष्णु मन्दिर में क्या सब किया? ॥५८-५९॥

व्यास ने कहा—चाण्डाल ने उससे कहा—सुनो रात में मैंने विष्णु मन्दिर में जो किया वह यथावत बतला देता हूँ। विष्णु के नीचे नतमस्तक होकर मैं रात भर विष्णु-गीत गाते हुए जागता रहा। (इस पर) ब्रह्मराक्षस ने उससे पूछा—कितने दिनों से तुम विष्णु मन्दिर में जागरण करते हो? कहो। चाण्डाल ने हँसते हुए कहा—राक्षस! बीस वर्ष से मैं प्रत्येक मास की एकादशी को जागरण करता हूँ। चाण्डाल की बात सुनकर ब्रह्मराक्षस बोला॥६०-६३॥

ब्रह्मराक्षस बोला—आज जो मैं तुमसे पूछूँ वह बतलाओ। साधो! तुम अपना एक रात्रि के जागरण का फल मुझे दे दो। ऐसा करने से मैं तुम्हें छोड़ दूँगा अन्यथा नहीं छोड़ूँगा। महाभाग! मैं तीन बार सत्य का साक्षी करके कहता हूँ। इतना कहकर राक्षस चुप हो गया॥६४-६५॥

व्यास ने कहा—तदनन्तर चाण्डाल ने कहा—राक्षस! मैंने अपने को समर्पित कर दिया। तुम स्वेच्छा से खा डालो। फिर राक्षस ने कहा—अच्छा तो दो घड़ी भर के संगीत के फल देने की कृपा करो।

१क. ०नेन पुण्येन। २क. ०चिम

तमाह राक्षसो भूयो यामद्वयप्रजागरम् । सगीतं मे प्रयच्छस्व कृपां कर्तुं त्वमर्हसि ॥६७॥
मातङ्गो राक्षसं प्राह किमसंबद्धमुच्यते । खादस्व स्वेच्छया मां त्वं न प्रदास्ये प्रजागरम् ॥
॥६८॥
मातङ्गवचनं श्रुत्वा प्राह तं ब्रह्मराक्षसः

ब्रह्मराक्षस उवाच

को हि दुष्टमतिर्मन्दो भवन्तं द्रष्टुमुत्सहेत् । धर्षयितुं पीडयितुं रक्षितं धर्मकर्मणा ॥६९॥
दीनस्य पापग्रस्तस्य विषयैर्मोहितस्य च । नरकार्तस्य मूढस्य साधवः स्युर्दयान्विताः ॥७०॥
तन्मम त्वं महाभाग कृपां कृत्वा प्रजागरम् । यामस्यैकस्य मे देहि गच्छ वा निलयं स्वकम् ॥७१॥

व्यास उवाच

तं पुनः प्राह चाण्डालो न यास्यामि निजं गृहम् । न चापि तव दास्यामि कथं चिद्यामजागरम् ॥
॥७२॥
तं प्रहस्याथ चाण्डालं प्रोवाच ब्रह्मराक्षसः

ब्रह्मराक्षस उवाच

रात्र्यवसाने या गीता गीतिका कौतुकाश्रया । तस्याः फलं प्रयच्छस्व त्राहि पापात्समुद्धर ॥७३॥

व्यास उवाच

एवमुच्चारिते तेन मातङ्गस्तमुवाच ह ॥७४॥

चाण्डाल बोला—'क्यो व्यर्थ की बात करते हो ? तुम यथेच्छ खाओ। मैं जागरण का फल नहीं दूंगा।' चाण्डाल की बात सुनकर ब्रह्मराक्षस ने कहा ॥६६-६८॥

ब्रह्मराक्षस बोला—कौन ऐसा दुष्टमति होगा, जो तुम्हें फटकारने या पीडा देने के लिये तुम्हारी ओर दृष्टिपात करेगा ? तुम अपने शुभ कर्मों के द्वारा सुरक्षित हो। दीन, पापग्रस्त, विषयान्ध, नरक-पीड़ित तथा मूर्ख पर साधु लोग दया करते हैं। महाभाग ! इसलिये कृपा करके तुम एक घडी का जागरण मुझे दे दो अथवा अपने घर चले जाओ ॥६९-७१॥

व्यास ने कहा—चाण्डाल ने फिर उससे कहा—'मैं अपने घर नही जाऊँगा और तुम्हे एक घडी का जागरण भी नही दूंगा।' तब ब्रह्मराक्षस ने हँसकर उससे कहा ॥७२॥

ब्रह्मराक्षस ने कहा—अच्छा तो रात के अन्त मे जो तुमने गीत गाया, उसी का फल देकर मुझे पाप से बचाओ ॥७३॥

व्यास ने कहा—इतना कहने पर चाण्डाल ने उससे कहा ॥७४॥

मातङ्ग उवाच

किं पूर्वं भवता कर्म विकृतं कृतमञ्जसा । येन त्वं दोषजातेन सभूतो ब्रह्मराक्षसः ॥७५॥

व्यास उवाच

तस्य तद्वाक्यमाकर्ण्य मातङ्गं ब्रह्मराक्षसः । प्रोवाच दुःखसतप्तः संस्मृत्य स्वकृतं कृतम् ॥७६॥

ब्रह्मराक्षस उवाच

'श्रूयतां योऽहमासं वै पूर्वं यच्च मया कृतम् । यस्मिन्कृते पापयोनिं गतवानस्मि राक्षसीम् ॥७७॥
सोमशर्म इति ख्यातः पूर्वमासमहं द्विज । पुत्रोऽध्ययनशीलस्य देवशर्मस्य यज्वनः ॥७८॥
कस्यचिद्यजमानस्य' सूत्रमन्त्रबहिष्कृतः । नृपस्य 'कर्मसक्तेन' यूपकर्मसुनिष्ठितः' ॥७९॥
आग्नीध्रं चाकरोद्यज्ञे लोभमोहप्रपीडितः । तस्मिन्परिसमाप्ते तु मौर्ख्याद्दम्भमनुष्ठितः ॥८०॥
यष्टुमारब्धवानस्मि द्वादशाहं महाक्रतुम् । प्रवर्तमाने तस्मिंस्तु कुक्षिशूलोऽभवन्मम ॥८१॥
''सपूर्णे दशरात्रे तु न समाप्ते तथा क्रतौ । विरूपाक्षस्य दीयन्त्यामाहुत्या राक्षसे क्षणे ॥८२॥
मृतोऽहं तेन दोषेण सभूतो ब्रह्मराक्षसः । ''मूर्खेण मन्त्रहीनेन सूत्रस्वरविवर्जितम् ॥८३॥
अजानता यज्ञविद्यां यदिष्टं याजितं च यत् । तेन कर्मविपाकेन सभूतो ब्रह्मराक्षसः ॥८४॥
तस्मात् पापमहाम्भोधौ निमग्नं त्वं समुद्धर । प्रजागरे गीतिकैका पश्चिमां दातुमर्हसि ॥८५॥

चाण्डाल बोला—तुमने पहले कौन सा कुकर्म किया था, जिसके दोष से तुम ब्रह्मराक्षस हो गये ? ॥७५॥

व्यास ने कहा—उसकी बात सुनकर अत्यन्त दुःखी ब्रह्मराक्षस ने अपने कर्मों का स्मरण कर चाण्डाल से कहा ॥७६॥

ब्रह्मराक्षस बोला—पहले जो मैं था जो कर्म किया और जिसके करने से इस पापी राक्षस-योनि में आ गया हूँ वह सब तुम सुनो ॥७७॥ पहले मैं सोमशर्मा नामक ब्राह्मण था। अध्ययनशील तथा यज्ञकर्ता देवशर्मा का मैं पुत्र था। मैं सूत्र-मन्त्र कुछ नहीं जानता था। फिर भी एक यजमान के यज्ञकर्म में मैंने भाग ले लिया। लोभ मोह में फँसकर मैंने होता का कार्यभार ग्रहण किया। यज्ञ समाप्त होने पर मूर्खता तथा दम्भ के कारण मैंने १२ दिनों में सम्पन्न होने वाला महायज्ञ पूरा कर दिया। यज्ञारम्भ में ही मेरे पेट में पीड़ा होने लगी। दश रात बीत जाने पर जब मैं शिव को आहुति दे रहा था तभी मेरा देहान्त हो गया। उसी दोष से मैं ब्रह्मराक्षस हुआ। मूर्ख मन्त्रहीन तथा सूत्र-स्वर से रहित होकर यज्ञविद्या को न जानते हुए भी जो मैंने यज्ञ किया तथा कराया उसी कर्म के दोष से मैं ब्रह्मराक्षस हुआ। इसलिये मैं पापसमुद्र में निमग्न हूँ मेरा उद्धार करो। जागरण काल के पिछले एक गीत का भी फल मुझे दे दो ॥७८-८५॥

१क प्राप्तो। २क राक्षसयोनिताम्। ३क ०ता हि महाबुद्ध पू०। ४क न। किंचिच्च यज०। ग ०न। किंचित्तो यज०। ५क ०स्य शूद्रमन्त्रबहि०। ख ०स्य शूद्रस्यान्नब०। ६ख कर्मशक्तेन। ग सूयशाक्तस्तु। ७ख ०न पूर्वक०। ८क ख ०मस्त्वनुष्ठि०। ९ग कर्माणि। १०ख ग अपूर्णे। ११ख मुखेन।

व्यास उवाच

तमुवाचाथ चाण्डालो यदि प्राणिवधाद्भवान् । निवृत्तिं कुरुते दद्यां ततः पश्चिमगीतिकाम् ॥८६॥
बाढमित्यवदत्सोऽपि मातङ्गोऽपि ददौ तदा । गीतिकाफलमामन्त्र्य मुहूर्तार्धप्रजागरम् ॥८७॥
तस्मिन्गीतिफले दत्ते मातङ्गं ब्रह्मराक्षसः । प्रणम्य प्रययौ हृष्टस्तीर्थवर्यं पृथूदकम् ॥८८॥
तत्रानशनसंकल्पं कृत्वा प्राणाञ्जहौ द्विजाः । राक्षसत्वाद्विनिर्मुक्तो गीतिकाफलबृंहितः ॥८९॥
पृथूदकप्रभावाच्च ब्रह्मलोकं च दुर्लभम् । दश वर्षसहस्राणि निरातङ्कोऽवसत्ततः ॥९०॥
तस्यान्ते ब्राह्मणो जातो बभूव स्मृतिमान्वशी । तस्याहं चरितं भूयः कथयिष्यामि भो द्विजाः ॥९१॥
मातङ्गस्य कथाशेषं शृणुध्वं गदतो मम । राक्षसे तु गते धीमान्गृहमेत्य यतात्मवान् ॥९२॥
तद्विप्रचरितं स्मृत्वा निर्विण्णः शुचिरप्यसौ । पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य ददौ भूम्याः प्रदक्षिणाम् ॥९३॥
कोकामुखात्समारभ्य यावद्वै स्कन्ददर्शनम् । दृष्ट्वा स्कन्दं ययौ [1]धाराचक्रे चापि प्रदक्षिणम् ॥९४॥
ततोऽद्रिवरमागम्य विन्ध्यमुच्चशिलोच्चयम् । पापप्रमोचनं तीर्थमाससाद स तु द्विजाः ॥९५॥
[2]स्नानं पापहरं चक्रे स तु चाण्डालवंशजः । विमुक्तपापः सस्मार पूर्वजातीरनेकशः ॥९६॥
स पूर्वजन्मन्यभवद्भिक्षुः संयतवाङ्मनाः । यतकायश्च[3] मतिमान्वेदवेदाङ्गपारगः ॥९७॥
एकदा गोषु नगराद्ध्रियमाणासु तस्करैः । भिक्षाऽवधूता[4] रजसा मुक्ता[5] तेनाथ भिक्षुणा ॥९८॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त चाण्डाल ने उससे कहा—यदि तुम प्राणियों का मारना बन्द कर दो तो मैं पिछले गीत का फल दे दूँ। उसने कहा—हाँ निश्चय। तब चाण्डाल ने आधी घड़ी के जागरण तथा गीत का फल उसे दे दिया। गीत-फल दे देने पर ब्रह्मराक्षस चाण्डाल को प्रणाम करके पृथूदक नामक तीर्थ में चला गया ॥८६-८८॥ द्विजगण! वहाँ उसने अनशन का संकल्प करके प्राणत्याग कर दिया। गीत-फल ले लेने के कारण वह राक्षसयोनि से मुक्त हो गया। पृथूदक तीर्थ के प्रभाव से वह दुर्लभ ब्रह्मलोक में गया। वहाँ दस हजार वर्ष तक वह सुखपूर्वक वास करता रहा ॥८९-९०॥ अन्त में वह धर्मशास्त्रज्ञ तथा जितेन्द्रिय होकर उत्पन्न हुआ। द्विजवृन्द! उसका चरित्र-वर्णन मैं फिर करूँगा। अभी चाण्डाल का कथाशेष आप लोग सुनें ॥९१॥ राक्षस के चले जाने पर वह संयमी तथा बुद्धिमान चाण्डाल घर आया। उस ब्राह्मण के चरित्र का स्मरण करके वह दुःखी हुआ। तब पुत्रों पर स्त्री का भार सौंप कर उसने पृथ्वी की प्रदक्षिणा की। कोकामुख नामक तीर्थ से लेकर स्कन्द तीर्थ तक यात्रा की। धाराचक्र की भी प्रदक्षिणा की ॥९२-९४॥ तब विन्ध्याचल पर्वतपर चढ़कर वह पाप प्रमोचन नामक तीर्थ में पहुँचा। उसमें स्नान करके वह पापमुक्त होकर अपने पूर्व जन्मों का स्मरण करने लगा ॥९५-९६॥ वह पूर्व जन्म में संयमी वाग्मी बुद्धिमान तथा वेदवेदाङ्गपारगत भिक्षुक था ॥९७॥ एक समय बहुत से चोर नगर से गायों को ले जा रहे थे। भिक्षार्थ पर्यटन करते हुए उस भिक्षुक ने देखकर भी गायों को नहीं छुड़ाया। उसी पाप के दोष से वह चाण्डाल-योनि में उत्पन्न हुआ। पापप्रमोचन में स्नान करके वह नर्मदा नदी

१क. ग. ०धारा च०। २ग. स्नान। ३क. जितकायश्च। ४ग. ०वभूता। ५ख. मुक्ता।

स तेनाधर्मदोषेण चाण्डालीं योनिमागतः। पापप्रमोचने स्नातः स मृतो नर्मदातटे ॥९९॥
मूर्खोऽभूद्ब्राह्मणवरो वाराणस्यां च भो द्विजाः। तत्रास्य वसतोऽब्देषु त्रिंशद्भिः सिद्धपुरुषः ॥१००॥
विरूपरूपी बभ्राम योगमायाबलान्वितः। तं दृष्ट्वा सोपहासार्थमभिवाद्याभ्युवाच ह ॥१०१॥
कुशलं सिद्धपुरुष कुतस्त्वागम्यते त्वया ॥१०२॥

व्यास उवाच

एवं संभाषितस्तेन ज्ञातोऽहमिति चिन्त्य तु। प्रत्युवाचाथ वन्द्यस्त्वं स्वर्गलोकादुपागतः ॥१०३॥
तं सिद्धं प्राह मूर्खोऽसौ किं त्वं वेत्सि त्रिविष्टपे। नारायणोरुप्रभवामुर्वशीमप्सरोवराम् ॥१०४॥
सिद्धस्तमाह तां वेद्मि शक्रचामरधारिणीम्। स्वर्गस्याऽऽभरणं मुख्यमुर्वशीं साधुसंभवाम् ॥१०५॥
विप्रः सिद्धमुवाचाथ ऋजुमार्गविवर्जितः। तन्मित्र मत्कृते वार्तामुर्वश्या भवताऽऽदरात् ॥१०६॥
कथनीया यच्च सा ते ब्रूयादाख्यास्यते भवान्। बाढमित्यब्रवीत्सिद्धः सोऽपि विप्रो मुदाऽन्वितः ॥१०७॥
बभूव सिद्धोऽपि ययौ मेरुपृष्ठं सुरालयम्। समेत्य चोर्वशीं प्राह यदुक्तोऽसौ द्विजेन तु ॥१०८॥
सा प्राह तं सिद्धवरं नाहं काशिपतिं द्विजम्। जानामि सत्यमुक्तं ते न चेतसि मम स्थितम् ॥१०९॥
इत्युक्तः प्रययौ सोऽपि कालेन बहुना पुनः। वाराणसीं ययौ सिद्धो दृष्टो मूर्खेण वै पुनः ॥११०॥

के तट पर जाकर मर गया ॥९८-९९॥ तदनन्तर उसने वाराणसी में महामूर्ख होकर जन्म लिया। वहाँ तीस वर्ष के बाद एक दिन कोई सिद्ध योगी उसे मिले। उन्हें देखकर उपहास करने के लिये उसने प्रणाम करके उनसे पूछा—'कहिये, कुशल है? कहाँ से आ रहे हैं?' ॥१००-१०२॥

व्यास ने कहा—इस प्रकार पूछे जाने पर योगी ने समझा कि इसने मुझे पहचान लिया। इसलिये उन्होंने कहा कि मैं स्वर्गलोक से आ रहा हूँ। तब मूर्ख ने फिर उनसे प्रश्न किया—'स्वर्ग में भगवान् की जघा से उत्पन्न उर्वशी नामक श्रेष्ठ अप्सरा को आप जानते है?' ॥१०३-१०४॥ सिद्ध ने उत्तर दिया—'हाँ, इन्द्र को चामर डुलाने वाली, स्वर्ग-भूषण तथा महात्मा से उत्पन्न उर्वशी को मैं जानता हूँ ॥१०५॥' ब्राह्मण ने सरल मार्ग को छोड़ कर सिद्ध से कहा—'मित्र! मेरी बात आप उर्वशी से आदरपूर्वक कह देंगे। तब वह जो कहे सो मुझे भी बतला देंगे।' सिद्ध ने कहा—'अच्छा'। ब्राह्मण प्रसन्न हो गया ॥१०६-१०७॥ सिद्ध सुमेरुपर्वत पर चले गये। वहाँ उन्होंने उर्वशी से ब्राह्मण का निवेदन कह सुनाया। उर्वशी ने सिद्ध से कहा—'मैं काशी के ब्राह्मण को नहीं जानती हूँ। मैं सत्य कहती हूँ। मेरा उससे कोई परिचय नहीं है।' इसके बाद बहुत दिन बीत जाने पर सिद्ध पुन. वाराणसी गये। फिर उस मूर्ख ने उन्हें देख लिया। देखते ही पूछा—'उर्वशी ने क्या कहा?' सिद्ध ने उत्तर

१क तेन ब्रह्मदो०। ख तेन ममदो०। २ग मूढो। ३क ०टे। मुख्योऽमू०। ख० ०टे। मुक्तोऽमू०। ४क ख विशद्मि। ५०क ख बलवान्योग०। ६क ०रुप कु०। ७ख ग चिरात्। ८ख. वन्द्य त स्व०। ९ग. ०र्गप्रधर्षितम्। त०।

दृष्ट पृष्टः किल भूय किमाहोरुभवा तव । सिद्धोऽब्रवीन्न जानामि मामुवाचोर्वशी स्वयम् ॥१११॥
सिद्धवाक्य तत श्रुत्वा स्मितभिन्नोष्ठसपुट. । पुन प्राह कथं वेत्सीत्येवं वाच्या त्वयोर्वशी ॥११२॥
बाढमेवं करिष्यामीत्युक्त्वा सिद्धो दिव गत । ददर्श शक्रभवनान्निष्क्रामन्तीमयोर्वशीम्¹ ॥११३॥
प्रोवाच ता सिद्धवर सा च तं सिद्धमब्रवीत् । नियम कश्चिदपि हि करोतु द्विजसत्तम ॥११४॥
येनाहं कर्मणा सिद्ध त जानामि न चान्यथा । तदुर्वशीवचोऽभ्येत्य तस्मै मूर्खद्विजाय तु ॥११५॥
कथयामास सिद्धस्तु सोऽपीमं नियमं जगौ । तवाग्रे सिद्धपुरुष नियमोऽयं कृतो मया ॥११६॥
न भोक्ष्येऽद्यप्रभृति वै ²शकटं सत्यमीरितम् । इत्युक्त प्रययौ सिद्ध स्वर्गं दृष्ट्वोर्वशीमथ ॥११७॥
प्राहासौ ³शकटं भोक्ष्ये नाद्यप्रभृति कर्हिचित् । त सिद्धमुर्वशी प्राह ज्ञातोऽसौ साम्प्रतं मया ॥११८॥
नियमग्रहणादेव ⁴मूर्खो मा (ऽय) मुपहासक । इत्युक्त्वा प्रययौ शीघ्र वासं नारायणात्मजा ॥११९॥
सिद्धोऽपि विचचारासौ कामचारी महीतलम् । उर्वश्यपि वरारोहा गत्वा वाराणसीं पुरीम् ॥१२०॥
मत्स्योदरीजले स्नानं चक्रे दिव्यवपुर्धरा । अथासावपि मूर्खस्तु नदीं मत्स्योदरीं मुने ॥१२१॥
जगामाथ ददर्शासौ स्नायमानामथोर्वशीम् । ता दृष्ट्वा ववृधेऽस्य मन्मथ क्षोभकृद्दृढम् ॥१२२॥
चकार मूर्खश्चेष्टाश्च तं विवेदोर्वशी स्वयम् । तं मूर्खं सिद्धगदित ज्ञात्वा सस्मितमाह तम् ॥१२३॥

दिया—'उर्वशी ने कहा—'मैं उसे नहीं जानती हूँ ॥१०८-१११॥ सिद्ध के वाक्य को सुनकर मुस्कराते हुए ब्राह्मण ने कहा—'अब की आप उर्वशी से कहिएगा—'तुम कैसे जान सकती हो'॥११२॥ ?' 'अच्छा' कहकर सिद्ध स्वर्ग चले गये। चन्द्रभवन से निकलती हुई उर्वशी को देखकर सिद्ध ने ब्राह्मण का कथन सुना दिया। उर्वशी ने सिद्ध से कहा—'यदि वह ब्राह्मण मुझसे कोई प्रतिज्ञा करे तो मैं उसे जान जाऊँगी अन्यथा तो जान ही नहीं सकती।' उर्वशी की बात सिद्ध ने आकर मूर्ख ब्राह्मण से कह दी। ब्राह्मण बोला— सिद्धपुरुष ! आपके सामने मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज से मैं शकट (तिनिश या धव वृक्ष का फल या गाडी) नहीं खाऊँगा।' ॥११३-११६½॥ इसके बाद सिद्ध ने स्वर्ग में जाकर उर्वशी से कहा—'उसने प्रतिज्ञा की है कि आज से लेकर मैं कभी शकट नहीं खाऊँगा।' तब उर्वशी ने कहा—'हाँ, अब मैं जान गयी। प्रतिज्ञा करने से ही मैं समझ गयी कि यह मूर्ख मेरा उपहास करने वाला है।' इतना कहकर वह शीघ्र ही अपने वासस्थान पर चली गयीं॥११७-११९॥ स्वेच्छाचारी सिद्ध भी पृथ्वी पर विचरण करने लगे। तब सुन्दरी उर्वशी वाराणसी जाकर दिव्य शरीर धारण कर मत्स्योदरी नामक नदी के जल में स्नान करने लगी। वह मूर्ख ब्राह्मण भी स्नान करती हुई उर्वशी को देखने के लिये मत्स्योदरी के तट पर पहुँचा। उर्वशी को देखते ही उसका कामवेग बढ गया। वह अपनी चेष्टा भी प्रकट करने लगा। उर्वशी उस मूर्ख के बारे में सिद्ध के मुख से सुन चुकी थी। इसलिये स्वय उसे पहचान कर मुस्कराती हुई बोली॥१२०-१२३॥

१ख ०न्नाद्विनिष्क्रान्तीम०। २ख सक्ट। ३ख सकट। ४ख मूख साधुप्रहारक। ५क शुभम्।

उर्वश्युवाच

किमिच्छसि महाभाग मत्त शीघ्रमिहोच्यताम । करिष्यामि वचस्तुभ्य त्व विश्रब्ध करिष्यसि ॥१२४॥

मूर्खब्राह्मण उवाच

आत्मप्रदानेन मम प्राणान्रक्ष शुचिस्मिते ॥१२५॥

व्यास उवाच

त प्राहायोर्वशी विप्र नियमस्याऽस्मि साप्रतम् । त्व तिष्ठस्व क्षणमय प्रतीक्षस्वाऽऽगत मम ॥१२६॥
स्थितोऽस्मीत्यब्रवीद्विप्र सार्ऽपि स्वर्गं जगाम ह । मासमात्रेण साऽऽयाता ददर्श त कृश द्विजम ॥१२७॥
स्थित मास नदीतीरे निराहार सुराङ्गना । त दृष्ट्वा निश्चययुत भूत्वा वृद्धवपुस्तत[1] ॥१२८॥
सा चकार नदीतीरे शकट शर्करावृतम । घृतेन मधुना चैव नदीं मत्स्योदरीं गता ॥१२९॥
स्नात्वाऽथ भूमौ वसतो शकट च यथार्थत । त ब्राह्मण समाहूय वाक्यमाह सुलोचना ॥१३०॥

उर्वश्युवाच

मया तीव्र व्रत विप्र चीर्ण सौभाग्यकारणात । व्रतान्ते निष्कृति दद्या प्रतिगृह्णीष्व भो द्विज ॥१३१॥

व्यास उवाच

स प्राह किमिद लोके दीयते शर्करावृतम[2] । क्षुत्क्षामकण्ठ पृच्छामि साधु भद्रे समीरय ॥१३२॥

उर्वशी बोली—महाभाग ! मुझसे क्या चाहते हो ? शीघ्र बतलाओ। तुम विश्वास करो। मैं तुम्हारी बात मानूगी ॥१२४॥

मूर्ख ब्राह्मण ने कहा—पवित्र हास्य करने वाली ! तुम आत्मदान देकर मेरे प्राणो की रक्षा करो ॥१२५॥

व्यास ने कहा—तब उर्वशी ने उससे कहा— इस समय मैं नियम-पालन कर रही हू। तुम क्षण भर मेरे आगमन की प्रतीक्षा करो। ब्राह्मण ने कहा—मैं ठहरता हूँ। उर्वशी स्वर्ग चली गई। एक महीने के बाद लौटी। तब तक वह ब्राह्मण नदी तट पर निराहार रहकर कृशकाय हो गया था। उसका दृढ निश्चय देखकर उर्वशी शकट मे शक्कर घी और मधु मिलाकर मत्स्योदरी मे स्नान करके तट पर उस ब्राह्मण को बुलाकर कहने लगी ॥१२६-१३०॥

उर्वशी ने कहा—विप्र ! मैंने सौभाग्य मे उग्र व्रत को सम्पन्न किया। अब मैं तुम्हें बदला दूगी। इसे स्वीकार करो ॥१३१॥

व्यास ने कहा—ब्राह्मण ने पूछा—भद्र ! यह गुडमिश्रित कौन सी चीज तुम दे रही हो ? मैं भूखा-प्यासा हूँ। सब बतलाओ ॥१३२॥ उर्वशी ने कहा—विप्र ! यह गुडमिश्रित शकट है। इसे शीघ्र खाकर तुम आत्म

१ग ०त । व्रताते। पिष्टककृत श०। २क ०रायुत०।

सा प्राह शकटो विप्र शर्करापिष्टसंयुतः । इमं त्वं समुपादाय प्राणं तर्पय मा चिरम् ॥१३३॥
स तच्छ्रुत्वाऽस्य संस्मृत्य क्षुधया पीडितोऽपि सन् । प्राह भद्रे न गृह्णामि[1] नियमो हि कृतो मया ॥१३४॥
पुरतः सिद्धवर्गस्य न भोक्ष्ये शकटं त्विति । परिज्ञानार्थमुर्वश्या ददस्वान्यस्य कस्यचित् ॥१३५॥
साऽब्रवीन्नियमो भद्र कृतः काष्ठमये त्वया । नासौ काष्ठमयो भुङक्ष्व क्षुधया चातिपीडितः ॥१३६॥
तां ब्राह्मणः प्रत्युवाच न मया तद्विशेषणम् । कृतं भद्रेऽस्य नियमः सामान्येनैव मे कृतः ॥१३७॥
तं भूय प्राह सा तन्वी न चेद्भोक्ष्यसि ब्राह्मण । गृहं गृहीत्वा गच्छस्व कुटुम्बं तव भोक्ष्यति ॥१३८॥
स तामुवाच सुदति न तावद्यामि मन्दिरम् । इहाऽऽयाता वरारोहा त्रैलोक्येऽप्यधिका गुणैः ॥१३९॥
सा मया मदनार्तेन प्रार्थिताऽऽश्वासितस्तया । स्थीयतां क्षणमित्येवं स्थास्यामीति मयोदितम् ॥१४०॥
मासमात्रं गतायास्तु तस्या भद्रे स्थितस्य च । मम सत्यानुरक्तस्य संगमाय धृतव्रते ॥१४१॥
तस्य सा वचनं श्रुत्वा कृत्वा स्वं रूपमुत्तमम् । विहस्य भावगम्भीरमुर्वशी प्राह तं द्विजम् ॥१४२॥

उर्वश्युवाच

साधु सत्यं त्वया विप्र व्रतं निष्ठितचेतसा । निष्पादितं हठादेव मम दर्शनमिच्छता ॥१४३॥
अहमेवोर्वशी विप्र[2] त्वां [3]जिज्ञासार्थमागता । परीक्षितो निश्चितवान्भवान्सत्यतपा ऋषि[4] ॥१४४॥
गच्छ[5] शूकरवोद्देशं रूपतीर्थेति विश्रुतम् । सिद्धिं यास्यसि विप्रेन्द्र ततस्त्वं मामवाप्स्यसि ॥१४५॥

तृप्ति करो।' यह सुनते ही उसे स्मरण हो आया। तब क्षुधा से पीडित होते हुए भी उसने कहा—'भद्रे! मैंने सिद्धपुरुष के सामने प्रतिज्ञा की है कि मैं शकट नहीं खाऊँगा। इसलिये तुम दूसरे किसी को दे दो ॥१३३-१३५॥ उर्वशी ने कहा—'भद्र! तुमने लकडी के शकट के बारे में प्रतिज्ञा की है। यह तो लकडी का नहीं है। तुम अत्यन्त भूखे हो। इसलिये खा लो ॥१३६॥ ब्राह्मण ने कहा—'भद्रे! मैंने सामान्यतया प्रतिज्ञा की थी, विशेष करके नहीं।' उर्वशी ने कहा—ब्राह्मण! यदि खाओगे नहीं तो इसे घर ले जाओ, तुम्हारे कुटुम्ब खा लेंगे ॥१३७-१३८॥ ब्राह्मण ने कहा—'मनोहर दाँत वाली! मैं घर नहीं जाऊँगा। तीनों लोक में सबसे अधिक गुणवती कामिनी यहाँ आई है—यह जानकर मैं तुम्हारे पास आया और कामपीडित होकर मैंने तुमसे प्रार्थना की। तुमने भी आश्वासन दिया कि क्षण भर ठहरो। मैंने उत्तर दिया कि ठहरता हूं ॥१३९-१४०॥ भद्रे! तुम एक मास तक गई हो रही। मैं तब से यहीं हूँ। मुझे तुमसे सच्चा प्रेम है।' उसके वचन सुनकर उर्वशी उत्तम स्वरूप बनाकर हँसती हुई गम्भीरतापूर्वक उससे कहने लगी ॥१४१-१४२॥

उर्वशी बोली—विप्र! तुमने सत्य कहा। मेरे दर्शन की इच्छा से तुमने श्रद्धायुक्त चित्त से हठपूर्वक व्रत सम्पन्न किया। मैं ही उर्वशी हूँ। तुम्हारी जिज्ञासा करने के लिये आई हूँ। मैंने परीक्षा की। तुम निश्चयी तथा सत्य तपस्वी ऋषि हो। विप्रेन्द्र! तुम तोते के शब्द के अनुसार रूपतीर्थ में जाओ। वहाँ सिद्धि प्राप्त करने के बाद तुम मुझे पा जाओगे ॥१४३-१४५॥

१क ख गृहीष्ये। २क ०प्र जि०। ख ०प्र त्वज्जिज्ञा०। ३क ०र्थमुपाग०। ४क ०च्छ त्व शू०। ५क ०करोद्दे०।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा दिवमुत्पत्य सा जगामोर्वशी द्विजा । स च सत्यतपा विप्रो रूपतीर्थं जगाम ह ॥१४६॥
तत्र[1] शान्तिपरो भूत्वा नियमव्रतधृक्शुचि । देहोत्सर्गे जगामासौ गान्धर्वं लोकमुत्तमम ॥१४७॥
तत्र मन्वन्तरशत भोगान्भुक्त्वा यथार्थत । बभूव सुकुले राजा प्रजारञ्जनतत्पर ॥१४८॥
स यज्वा विविधैर्यज्ञै समाप्तवरदक्षिणै । पुत्रेषु राज्य निक्षिप्य ययौ [2]शौकरव पुन ॥१४९॥
रूपतीर्थे मृतो भूय शक्रलोकमुपागत । तत्र मन्वन्तरशत भोगान्भुक्त्वा ततश्च्युत ॥१५०॥
प्रतिष्ठाने पुरवरे[3] बुधपुत्र पुरूरवा । बभूव तत्र चोर्वश्या सगमाय तपोधना ॥१५१॥
एव पुरा सत्यतपा द्विजातिस्तीर्थे प्रसिद्धे स हि रूपसज्ञे ।
आराध्य जन्मन्यथ चाच्युं विष्णुमवाप्य भोगानथ मुक्तिमेति ॥१५२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसवादे प्रजागरे गीतिकाया प्रशसानिरूपण नाम अष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२२८॥

व्यास ने कहा—द्विजगण ! इतना कहकर उवशी आकाश मे उड गई। वह सत्यतपस्वा ब्राह्मण रूपतीर्थ के लिये प्रस्थित हुआ। ॥१४६॥ वहा शान्ति नियम तथा व्रत धारण कर पवित्रतापूवक उसने देहत्याग किया। मृत्यु के पश्चात् वह गन्धवलोक मे गया। वहाँ सौ मन्वन्तरो तक उत्तम भोगो को भोग कर सद्वश मे राजा होकर उत्पन्न हुआ। उसने प्रजापालन मे निरत रहकर उत्तम दक्षिणा देकर अनेक यज्ञ किये। पश्चात पुत्रो को राज्य सौंप कर रूपतीथ के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पर शरीर त्यागकर वह इन्द्रलोक पहुँचा। वहाँ सौ मन्वन्तरो तक भोगो को भोगकर वहाँ से च्युत होने पर प्रतिष्ठान नामक श्रेष्ठ पुरी मे बुध का पुत्र पुरूरवा होकर उत्पन्न हुआ। मुनिवृन्द ! वहा उवशी के साथ उसका सगम हुआ। इस प्रकार पूवकाल मे सत्यतपा नामक ब्राह्मण ने प्रसिद्ध रूपतीथ मे विष्णु की आराधना कर जन्म के पश्चात अनेक भोगो को भोगकर मोक्ष प्राप्त किया ॥१४७ १५२।

श्रीब्रह्ममहापुराण मे व्यास और ऋषियो के सवाद प्रकरण मे जागरण-गीत प्रशसा निरूपण नामक दो सौ अठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२८॥

१ग ०त्र क्षान्ति०। २क शूकरक। ३ख ०वर इलापु०।

अथैकोनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यासमुनिसंवादे विष्णुभक्तिहेतुकथनम्

मुनय ऊचुः

श्रुतं फलं गीतिकाया अस्माभिः सुप्रजागरे। कृष्णस्य येन चाण्डालो गतोऽसौ परमां गतिम् ॥१॥
यथा विष्णौ भवेद्भक्तिस्तन्नो ब्रूहि महामते। तपसा कर्मणा येन श्रोतुमिच्छाम सांप्रतम् ॥२॥

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः। यथा कृष्णे भवेद्भक्तिः पुरुषस्य महाफला ॥३॥
संसारेऽस्मिन्महाघोरे सर्वभूतभयावहे। [1]महामोहकरे नृणां नानादुःखशताकुले [2] ॥४॥
तिर्यग्योनिसहस्रेषु जायमानः पुनः पुनः। कथंचिल्लभते जन्म देही मानुष्यकं द्विजाः ॥५॥
मानुषत्वेऽपि विप्रत्वं विप्रत्वेऽपि विवेकिता। विवेकाद्धर्मबुद्धिस्तु बुद्ध्या तु श्रेयसां ग्रहः ॥६॥
यावत्पापक्षयः पुंसां न भवेज्जन्मसंचितम्। तावन्न जायते भक्तिर्वासुदेवे जगन्मये ॥७॥
तस्माद्वक्ष्यामि भो विप्रा भक्तिः कृष्णे यथा भवेत्। अन्यदेवेषु या भक्तिः पुरुषस्येह जायते ॥८॥

अध्याय २२९

व्यास और मुनियों के संवाद में विष्णुभक्ति का कारण-वर्णन

मुनियों ने कहा—महाबुद्धिमान! हमने जागरण-कालीन कृष्ण गान के फल तथा चाण्डाल के परम गति प्राप्त करने के विषय में सुना। अब विष्णु में जिस प्रकार भक्ति हो वह बतलाइये। जिस तप या कर्म से विष्णु भक्ति होती है वह हम सुनना चाहते हैं ॥१ २॥

व्यास ने कहा—मुनिवर्य! जिस प्रकार पुरुष को कृष्ण में महाफलदायिनी भक्ति होगी वह मैं अक्षरशः बतलाऊँगा ॥३॥ द्विजगण! महाभयंकर समस्त प्राणियों के लिये भयावह महामोहकारी तथा अनेक प्रकार के दुःखों से परिपूर्ण इस संसार में प्राणी हजारों नीचयोनियों में बार-बार उत्पन्न होकर कभी मनुष्य-शरीर प्राप्त करता है ॥४ ५॥ मनुष्ययोनि में भी ब्राह्मण होना और ब्राह्मणत्व प्राप्त होने पर भी विवेक होना परम दुर्लभ है। विवेक से धर्मबुद्धि होती है और उससे कल्याण होता है ॥६॥ पुरुषों का पूर्वजन्मार्जित पाप जब तक नष्ट नहीं होता है तब तक विश्वात्मा वासुदेव में भक्ति नहीं होती है ॥७॥ विप्रवृन्द! इसलिये जिस उपाय से कृष्ण तथा अन्य देवों में पुरुष को भक्ति होगी वह मैं बतलाऊँगा ॥८॥ मुनिश्रेष्ठो! कर्म मन, वाणी से उसी देव में

१ख ०हाभयक०। २क ख ०ले। नि यग्योनि०।

कर्मणा मनसा वाचा तद्गतेनान्तरात्मना। तेन तस्य भवेद्भक्तिर्यजने मुनिसत्तमाः ॥९॥
स करोति ततो विप्रा भक्तिं [1]चाग्नेः समाहितः। तुष्टे हुताशने तस्य भक्तिर्भवति भास्करे ॥१०॥
पूजां करोति सततमादित्यस्य ततो द्विजाः। प्रसन्ने भास्करे तस्य भक्तिर्भवति शंकरे ॥११॥
पूजां करोति विधिवत्स तु शंभोः प्रयत्नतः। तुष्टे त्रिलोचने तस्य भक्तिर्भवति केशवे ॥१२॥
संपूज्य तं जगन्नाथं वासुदेवाख्यमव्ययम्। ततो भुक्तिं च मुक्तिं च स प्राप्नोति द्विजोत्तमाः ॥१३॥

मुनय ऊचुः

अवैष्णवा नरा ये तु दृश्यन्ते च महामुने। किं ते विष्णुं नार्चयन्ति ब्रूहि तत्कारणं द्विज ॥१४॥

व्यास उवाच

द्वौ भूतसर्गौ विख्यातौ लोकेऽस्मिन्मुनिसत्तमाः। आसुरश्च तथा दैवः पुरा सृष्टः स्वयंभुवा ॥१५॥
दैवीं प्रकृतिमासाद्य पूजयन्ति ततोऽच्युतम्। आसुरीं योनिमापन्ना दूषयन्ति नरा हरिम् ॥१६॥
मायया हृतविज्ञाना विष्णोस्ते तु नराधमाः। अप्राप्य तं हरिं विप्रास्ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥१७॥
[2]तस्य या गह्वरी माया दुर्विज्ञेया सुरासुरैः। महामोहकरी नृणां दुस्तरा चाकृतात्मभिः ॥१८॥

मुनय ऊचुः

इच्छामस्तां महामायां ज्ञातुं विष्णोः सुदुस्तराम्। वक्तुमर्हसि धर्मज्ञ परं कौतूहलं हि नः ॥१९॥

चित्त लगाकर यज्ञ करने से भक्ति होती है। सावधान होकर अग्नि की भक्ति करनी चाहिये। अग्नि के संतुष्ट होने पर सूर्य में भक्ति होती है ॥९-१०॥ सतत सूर्य की पूजा करने से उनके प्रसन्न होने पर शंकर में भक्ति होती है। यत्न करके विधिपूर्वक शंकर की पूजा करने से उनके प्रसन्न होने पर कृष्ण में भक्ति होती है। वासुदेव संज्ञक अविनाशी जगन्नाथ की पूजा करने से भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति होती है ॥११-१३॥

मुनियों ने कहा—महामुने! जो मनुष्य अवैष्णव देखे जाते हैं, क्या वे विष्णु की पूजा नहीं करते हैं? विप्र! इसका कारण बतलाइये ॥१४॥

व्यास ने कहा—मुनिवर! इस लोक में ब्रह्मा ने प्राणियों की दो प्रकार की सृष्टि की है—एक आसुरी सृष्टि और दूसरी दैवी। दैवी प्रकृति के मनुष्य वासुदेव की पूजा करते हैं और आसुरी योनि वाले मनुष्य हरि की निन्दा करते हैं। वे नराधम विष्णु की माया से हतबुद्धि होकर हरि को न पाने से अधम गति को प्राप्त करते हैं। विष्णु की जो कठिन माया है, उसे देवता तथा राक्षस नहीं जानते हैं। वह मनुष्यों को महामोह में डालती है। वह अजितेन्द्रिय व्यक्तियों से दुर्जेय है ॥१५-१८॥

मुनियों ने कहा—हम विष्णु की दुर्जेय माया को जानना चाहते हैं। धर्मज्ञ! बतलाइये! हमें बड़ी उत्कण्ठा हो रही है ॥१९॥

१ख चाग्नौ। २क तस्यैषा महामा०।

व्यास उवाच

स्वप्नेन्द्रजालसकाशा माया सा लोककर्षणी। क शक्नोति हरेर्माया ज्ञातु ता केशवादृते ॥२०॥
या वृत्ता[1]ब्राह्मणस्याऽऽसीन्मायार्थे[2] नारदस्य च। विडम्बना तु ता विप्रा शृणुध्व गदतो मम ॥२१॥
प्रागासीन्नृपति श्रीमानाग्नीध्र इति विश्रुत। नगरे कामदमनस्तस्याय तनय शुचि ॥२२॥
धर्माराम क्षमाशील पितृशुश्रूषणे रत। प्रजानुरञ्जको दक्ष श्रुतिशास्त्रकृतश्रम ॥२३॥
पिताऽस्य स्वकरोद्यत्न विवाहाय न चैच्छत। त पिता प्राह किमिति नेच्छसे दारसग्रहम् ॥२४॥
सर्वमेतत्सुखार्थं हि वाञ्छन्ति मनुजा किल। सुखमूला हि दाराश्च तस्मात्त त्व समाचर ॥२५॥
स पितुर्वचन श्रुत्वा तूष्णीमास्ते च गौरवात्। मुहुर्मुहुरत च पिता चोदयामास भो द्विजा ॥२६॥
अथासौ पितर प्राह तात मामानुरूपता[3]। मया समाश्रिता व्यक्ता[4] वैष्णवी परिपालिनी ॥२७॥
त पिता प्राह[5] सगम्य नैव धर्मोऽस्ति पुत्रक। न [6]विधार्यितव्या स्यात्पुरुषेण विपश्चिता ॥२८॥
कुरु मद्वचन पुत्र प्रभुरस्मि पिता तव। मा निमज्ज कुल मह्य नरके सततिक्षयात्[7] ॥२९॥
स हि त पितुरादेश श्रुत्वा[8] प्राह सुतो वशी। प्रीत सस्मृत्य पौराणीं ससारस्य विचित्रताम् ॥३०॥

पुत्र उवाच

शृणु तात वचो मह्य तत्त्ववाक्य सहेतुकम्। मामानुरूप वर्तव्य सत्य भवति पार्थिव ॥३१॥

व्यास ने कहा—लोगों को मोहित करने वाली वह माया स्वप्न तथा इन्द्रजाल के समान है। बिना भगवान के उसे कौन जान सकता है? विप्रवृन्द! उस माया के कारण विप्र नारद की जो दशा हुई उसे मुझसे सुन लीजिये ॥२०-२१॥ प्राचीन समय में आग्नीध्र नामक राजा था। उसका पुत्र कामदमन पवित्र धर्मात्मा क्षमाशील, प्रजाप्रेमी निपुण तथा वेदशास्त्रवेत्ता था। पिता ने पुत्र के विवाह के लिये यत्न किया पर पुत्र ने अस्वीकार कर दिया। तब पिता ने पुत्र से पूछा— क्या तुम विवाह नहीं करना चाहते हो? मनुष्य सब कुछ सुख ही के लिये चाहते हैं। स्त्री सुख की जड है। इसलिये तुम विवाह कर लो' ॥२२-२५॥ पुत्र पिता का वचन सुनकर चुप हो गया। पिता ने बार-बार उससे पूछा ॥२६॥ तब उसने पिता से कहा— तात! मैंने विष्णु के मामानुरूप उनकी लोकपालिनी माया का आश्रय लिया है। पिता ने फिर उससे कहा— पुत्र! यह धर्म नहीं है। विद्वान् पुरुष को विष्णु माया का धारण नहीं करना चाहिये। पुत्र! मेरी बात मानो। मैं तुम्हारा अध्यक्ष तथा पिता हूँ। सन्तान-क्षय करके कुल को नरक में मत डालो ॥२७-२९॥ पिता की आज्ञा सुनकर वश्यात्मा पुत्र ससार की पुरातनी विचित्रता का स्मरण करके प्रसन्न हुआ ॥३०॥

पुत्र ने कहा—तात! मेरे हेतुपूर्ण तत्त्ववचन को आप सुनें। राजन्! विष्णु की माया के अनुरूप काय

१क ०णश्रेष्ठा माया०। २ख ०स्यार्थं माया०। ३ग ०पत। म०। ४ग व्यक्त त्वदाज्ञाप०। ५ग ०ह प्रहस्य ग्राम्य नाम च पू०। ६ग विचारयितव्य। ७क ०त्। पितुरादेशन शु०। ८ग कृत्वा।

मया जन्मसहस्राणि जरामृत्युशतानि च। प्राप्तानि दारसंयोगवियोगानि च सर्वशः ॥३२॥
तृणगुल्मलतावल्लीसरीसृपमृगद्विजाः। पशुस्त्रीपुरुषाद्यानि प्राप्तानि शतशो मया ॥३३॥
गणकिंनरगन्धर्वविद्याधरमहोरगाः। यक्षगुह्यकरक्षांसि दानवाप्सरसः सुराः ॥३४॥
नदीश्वरसहस्रं च प्राप्तं तात पुनः पुनः। सृष्टस्तु बहुशः सृष्टौ संहारे चापि संहृतः ॥३५॥
दारसंयोगयुक्तस्य तातेदृङमे विडम्बना। इतस्तृतीये यद्वृत्तं मम जन्मनि तच्छृणु ॥
कथयामि समासेन तीर्थमाहात्म्यसंभवम् ॥३६॥

अतीत्य जन्मानि बहूनि तात, नृदेवगन्धर्वमहोरगाणाम्।
विद्याधराणां खगकिंनराणां, जातो हि वंशे सुतपा महर्षिः ॥३७॥
ततो महाभूदचला हि भक्तिर्जनार्दने लोकपतौ मधुघ्ने।
व्रतोपवासैर्विविधैश्च भक्त्या, संतोषतश्चक्रगदास्त्रधारी ॥३८॥
तुष्टोऽभ्यगात्पक्षिपतिं महात्मा, विष्णुः समारुह्य वरप्रदो मे।
प्राहोच्चशब्दं व्रियतां द्विजाते, वरो हि यं वाञ्छसि तं प्रदास्ये ॥३९॥
ततोऽहमूचे हरिमीशितारं, तुष्टोऽसि चेत्केशव तद्वृणोमि।
या सा त्वदीया परमा हि माया, तां वेत्तुमिच्छामि जनार्दनोऽहम् ॥४०॥
अथाब्रवीन्मे मधुकैटभारिः, किं ते तया ब्रह्मन्मायया वै।
धर्मार्थकामानि ददानि तुभ्यं, पुत्राणि मुख्यानि निरामयत्वम् ॥४१॥

ही सत्य है। मैंने हजारो जन्म, सैंकडो वृद्धत्व तथा मरण प्राप्त किये। स्त्रियो से सयोग तथा वियोग भी प्राप्त किये। सैंकड़ो तृण, गुल्म, लता, मृग आदि प्राप्त किये। पशु, स्त्री, पुरुष, गण, किन्नर, गन्धर्व, विद्याधर, महासर्प, यक्ष, गुह्यक, राक्षस, दानव, अप्सरा, देवता तथा सहस्रो नदियाँ प्राप्त की। अनेको बार मेरा सर्जन तथा सहार हुआ। तात ! इसलिये मेरी समझ से स्त्री-संयोग करना विडम्बनामात्र है। इससे पिछले तीसरे जन्म मे तीर्थ के माहात्म्य से उत्पन्न जो मेरा वृत्तान्त हुआ वह सक्षेप मे कहता हूँ ॥३१-३६॥ तात ! मनुष्य, देवता, गन्धर्व, महासर्प, विद्याधर, पक्षी, किन्नर आदि अनेक जन्मो के बाद मैं सुतपा नामक महर्षि हुआ ॥३७॥ उस समय मधु नामक राक्षस के मारने वाले लोकपति जनार्दन मे मेरी अचल भक्ति हुई। विविध व्रत, उपवास तथा भक्ति से मैंने चक्र, गदा तथा अस्त्र धारण करने वाले विष्णु को सतुष्ट किया ॥३८॥ प्रसन्न होने पर महात्मा विष्णु गरुड़ पर चढ़कर मुझे वरदान देने के लिये आये। उच्च स्वर मे विष्णु ने कहा—'विप्र ! वर मांगो। तुम्हे जो अभीष्ट हो, वह मैं दूंगा' ॥३९॥ तब मैंने सर्वशक्तिमान् हरि से कहा—'केशव ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मैं वर मांगता हूँ। जनार्दन ! आपकी जो परमा माया है, उसे मैं जानना चाहता हूँ' ॥४०॥ तब मधु-कैटभ के शत्रु भगवान् ने मुझसे कहा—'ब्रह्मन् ! माया से तुम्हें क्या करना है ? मैं तुम्हें धर्म, अर्थ, काम, पुत्र तथा आरोग्य प्रदान करता हूँ' ॥४१॥ तब फिर मैंने मुर नामक राक्षस के शत्रु भगवान् से कहा—'अर्थ, धर्म, काम को जीतने वाली जो

ततो मुरारिं पुनरुक्तवानहं, भूयोऽर्थधर्मार्थजिगीषितेव यत् ।
माया तवेमामिह वेत्तुमिच्छे, ममाद्य तां दर्शय पुष्कराक्ष ॥४२॥
ततोऽभ्युवाचाथ नृसिंहमुख्यः, श्रीशः प्रभुर्विष्णुरिदं वचो मे ॥

विष्णुरुवाच

मायां मदीयां न हि वेत्ति कश्चिन्न चापि वा वेत्स्यति कश्चिदेव ॥४३॥
पूर्वं सुरर्षिर्द्विज नारदाख्यो, ब्रह्मात्मजोऽभून्मम भक्तियुक्तः ।
तेनापि पूर्वं भवता यथैव, संतोषितो भक्तिमता हि तद्वत् ॥४४॥
वरं च दत्तं (दातुं) गतवानहं च, स चापि वव्रे वरमेतदेव ।
निवारितो मामतिमूढभावाद्भवान्यथैवं वृतवान्वरं च ॥४५॥
ततो मयोक्तोऽम्भसि नारद त्वं, मायां हि मे वेत्स्यसि संनिमग्नः ।
ततो निमग्नोऽम्भसि नारदोऽसौ, कन्या बभौ काशिपतेः सुशीला ॥४६॥
तां यौवनाढ्यामथ चारुधर्मिणे, विदर्भराजस्तनयाय वै ददौ ।
स्व (सु) धर्मणे सोऽपि तया समेतः, सिषेव कामानतुलान्महर्षिः ॥४७॥
स्वर्गं गतेऽसौ पितरि प्रतापवान्राज्यं क्रमायातमवाप्य हृष्टः ।
विदर्भराष्ट्रं परिपालयान., पुत्रैः सपौत्रैर्बहुभिर्वृतोऽभूत् ॥४८॥
अथाभवद्भूमिपतेः सुधर्मणः, काशीश्वरेणाथ समं सुयुद्धम् ।
तत्र क्षयं प्राप्य (प) सपुत्रपौत्रं, विदर्भराट्काशिपतिश्च युद्धे ॥४९॥

आपकी माया है, उसी को मैं जानना चाहता हूँ। कमलाक्ष ! आज मुझे उसका दर्शन कराइये। तदनन्तर नृसिंह, लक्ष्मीपति, प्रभु, विष्णु आदि नाम वाले भगवान् ने मुझसे यह वचन कहा ॥४२½॥

विष्णु बोले—मेरी माया को न कोई जानता है न जानेगा। द्विज ! पहले ब्रह्मा के पुत्र भक्तिमान् देवर्षि नारद ने तुम्हारी ही तरह अपनी भक्ति से मुझे सन्तुष्ट किया। जब मैं वर देने के लिये गया तो उसने भी यही वर मांगा। मेरे मना करने पर भी उसने अत्यन्त मूर्खता से तुम्हारी ही तरह हठ किया ॥४३-४५॥ तब मैंने कहा—'नारद ! जल में डूबकर तुम मेरी माया को जानोगे।' तदनन्तर वह नारद जल में निमग्न होने पर काशी-नरेश की सुशीला नामक बालिका बन गया ॥४६॥ उस पूर्ण युवती कन्या को काशीपति ने चारुधर्मा नामक विदर्भपति के पुत्र को ब्याह दिया। सुधर्मा ने उसके साथ अतुलनीय कामों का उपभोग किया ॥४७॥ पिता की मृत्यु हो जाने पर प्रतापी सुधर्मा क्रमागत राज्य को प्राप्त कर तुष्ट हुआ। विदर्भ राज्य का परिपालन करते हुए सुधर्मा के अनेकों पुत्र-पौत्र हुए ॥४८॥ तत्पश्चात् पृथ्वीपति सुधर्मा की काशीपति से युद्ध हुआ। उस युद्ध में विदर्भराज तथा काशीनरेश दोनों के सब पुत्र-पौत्र मारे गये ॥४९॥ तब सुशीला पुत्र-पौत्र सहित अपने

तत सुशीला पितर सपुत्र, ज्ञात्वा पति चापि सपुत्रपौत्रम् ।
पुराद्विनि सृत्य रणावनि गता, दृष्ट्वा सुशीला कदन महान्तम ॥५०॥
भर्तुर्बले तत्र पितुर्बले च, दु खान्विता सा सुचिर विलप्य ।
जगाम सा मातरमार्तरूपा, भ्रातृन्सुतान्भ्रातृसुतान्सपौत्रान ॥५१॥
भर्तारमेषा पितर च गृह्य, महाश्मशाने च महाचितिं सा ।
कृत्वा हुताश प्रददौ स्वय च, यदा समिद्धो हुतभुग्बभूव ॥५२॥
तदा सुशीला प्रविवश वेगाद्धा पुत्र हा पुत्र इति ब्रुवाणा ।
तदा पुन सा मुनिर्नारदोऽभून, स चापि वह्नि स्फटिकामलाभ ॥५३॥
पूर्णं सरोऽभूदय चोत्ततार, तस्याग्रतो देववरस्तु केशव ।
प्रहस्य देवर्षिमुवाच नारदम् ॥५४॥
कस्ते तु पुत्रो वद मे महर्षे मृत च क शोचसि नष्टबुद्धि ।
व्रीडान्वितोऽभूदथ नारदोऽसौ, ततोऽहमेन पुनरेव चाऽऽह ॥५५॥
इतीदृशा नारद कष्टरूपा, माया मदीया कमलासनाद्यैं ।
शक्या न वेत्तु समहेन्द्ररुद्रै, क्थ भवान्वेत्स्यति दुर्विभाव्याम ॥५६॥
स वाक्यमाकर्ण्य महामहर्षिरुवाच भक्ति मम देहि विष्णो ।
प्राप्तेऽथ काले स्मरण तथैव, सदा च सदर्शनमीश तेऽस्तु ॥५७॥
यत्राहमार्तश्चितिमद्य रूढस्तत्तीर्थमस्त्वच्युतपापहन्त्रा ।
अधिष्ठित केशव नित्यमेव त्वया सहाऽऽस (हेद) कमलोद्भवेन ॥५८॥

पिता तथा पति की मृत्यु का समाचार पाकर नगर से बाहर निकल कर युद्धक्षेत्र मे चली गई। पति सेना तथा पितृ सेना दोनो तरफ महान दु ख देखकर वह बडी शोकातुर हुई और चिर काल तक विलाप करके अपनी माता के पास लौट आई। फिर उसने महाश्मशान म जाकर भाई पुत्र पौत्र पति पिता सबके लिये चिता बनाकर अग्नि प्रदान किया। जब अग्नि प्रज्वलित हुआ तब सुशीला हा पुत्र हा पुत्र बोलती हुई वेग से अग्नि मे प्रविष्ट हो गई। प्रवेश करते ही वह मुनि नारद के रूप म परिणत हो गई। अग्नि भी स्फटिक के समान स्वच्छ जल से परिपूर्ण सरोवर के रूप म परिणत हो गया। तदनन्तर देवश्रेष्ठ केशव नारद के सामने आकर हँसते हुए कहने लगे ॥५०-५४॥ महर्षे! तुम्हारा कौन पुत्र था? कहो। मन्दबुद्धि की तरह किस मृतक के लिये शोच कर रहे हो? यह सुनकर नारद बहुत लज्जित हुआ। तब फिर मैंने उससे कहा— नारद! मेरी माया ऐसी ही कष्टरूपा है। ब्रह्मा इन्द्र महेश आदि देवता भी इसे नही जान सकते हैं। तब तुम कैसे इस अचिन्त्य माया को जानोगे ॥५५-५६॥ यह बात सुनकर महामहर्षि नारद ने कहा— विष्णो! अब मुझे अपनी भक्ति दीजिये। और समय पर आपका स्मरण तथा दर्शन होते रहें ॥५७॥ अच्युत! आज जहाँ पर मैंने चिता बनाई है वहाँ पापहरी तीर्थ हो जाय। ब्रह्मा सहित आप भी वहाँ रहा करें ॥५८॥ तब मैंने कहा—द्विज नारद! आपकी रची हुई चिता स्वच्छजलपूर्ण

ततो मयोक्तो द्विज नारदोऽसौ, तीर्थं सितोदे (द) हि चितिस्तवास्तु ।
स्यास्याम्यह चात्र सदैव विष्णुर्महेश्वर स्यास्यति चोत्तरेण ॥५९॥
नदा विरञ्चेर्वदन त्रिनेत्र स च्छेत्स्यतेयं च मम् (त्वथ चो) प्रवाचम् ।
तदा कपालस्य तु मोचनाय, समेष्यते तीर्थमिद त्वदीयम् ॥६०॥
स्नातस्य तीर्थे त्रिपुरान्तकस्य, पतिष्यते भूमितले कपालम् ।
ततस्तु तीर्थेति कपालमोचन, रयात पृथिव्या च भविष्यते तत् ॥६१॥
तदा प्रभृत्यम्बुदवाहनोऽसौ, न मोक्ष्यते तीर्थवर सुपुण्यम् ।
न चैव तस्मिन्द्विज सप्रचक्षते, तत्क्षेत्रमुग्र त्वथ ब्रह्मवध्या ॥६२॥
यदा न मोक्ष्यमरारिहन्ता, तत्क्षेत्रमुल्य महदाप्तपुण्यम ।
तदा विमुक्तेति सुरं रहस्य, तीर्थं स्तुत पुण्यदमव्ययाख्यम् ॥६३॥
कृत्वा तु पापानि नरो महान्ति, तस्मिन्प्रविष्ट शुचिरप्रमादी ।
यदा तु मा चिन्तयते स शुद्ध, प्रयाति मोक्ष भगवत्प्रसादात् ॥६४॥
भूत्वा तस्मिन्नुद्रपिशाचसज्ञो योन्यन्तरे दु खमुपाश्नुतेऽसौ ।
विमुक्तपापो बहुवर्षपूगैरुत्पत्तिमायास्याति विप्रगेहे ॥६५॥
शुचिर्यतात्माऽस्य ततोऽन्तकाले, रुद्रो हिल तारकमस्य कीर्तयेत् ।
इत्येवमुक्त्वा द्विजवर्य नारद, गतोऽस्मि दुग्धार्णवमात्मगेहम् ॥६६॥
स चापि विप्रस्त्रिदिव चचार, गन्धर्वराजेन समर्च्यमान ।
एतत्तवोक्त ननु बोधनाय माया मदीया नहि शक्यते सा ॥६७॥

तीर्थ हो जायगी। मैं यहां सदा वास करूंगा। बाद मे शकर भी रहगे। जब शकर ब्रह्मा के मुख को काटेंगे तब खोपडी को निकाल्ने के लिये वे इस तीथ मे आयेंगे। शकर जब इसमे स्नान करेंगे तब कपाल पृथ्वी पर गिर पडगा। तब से यह तीथ कपालमोचन नाम से पृथिवी पर प्रसिद्ध होगा ॥५९ ६१॥ तब से लेकर इन्द्र इस पवित्र तीर्थ का कभी नही छोडेंगे। द्विज! इस उग्र क्षत्र मे ब्रह्महत्या भी नही रह पाएगी (अर्थात इस तीथ के सेवन से ब्रह्म हत्या का पाप नष्ट हो जायगा।) जब इन्द्र इस परम पवित्र तीथ को न छोडेंगे तब देवता लोग विमुक्त नाम रख कर इस पुण्यदायक तथा अविनाशी तीथ की स्तुति करेंगे। जो मनुष्य महान् पाप करके भी पवित्रता तथा सावधानतापूवक इसमे प्रवेश कर मेरा ध्यान करेगा वह मेरी कृपा से शुद्ध होकर मोक्ष प्राप्त करेगा ॥६२ ६४॥ जो भयकर पिशाच है या किसी योनि मे क्लेश पाता है वह भी इसम स्नान करके पापमुक्त होकर ब्राह्मण के घर म ज म लेगा ॥६५॥ वह पवित्र तथा सयमी होगा। अन्तकाल म शकर उस तारक मन्त्र सुना देंगे। द्विजवय! नारद से इतना कहकर मैं अपना घर क्षारसमुद्र चला गया ॥६६॥ वह ब्राह्मण भी गन्धवराज से सम्मानित होते हुए स्वग मे विचरण करने लगा। इतना मैंने तुम्हें बोध कराने के लिये कह दिया। मेरी माया को नही जान सकते हो ॥६७॥ यदि तुम जानना ही चाहते हो तो जल म प्रवेश करो जिससे जान पाओगे।' इस प्रकार

ज्ञातु भवानिच्छति चेत्ततोऽद्य, एव विशस्वाप्सु च वेत्सि येन ।
एव द्विजातिर्हरिणा प्रबोधितो, भाव्यर्थयोगान्निममज्ज तोये ॥६८॥
कोकामुखे तात ततो हि कन्या, चाण्डालवेश्मन्यभवद्द्विज स ।
रूपान्विता शीलगुणोपपन्ना, अवाप सा यौवनमाससाद ॥६९॥
चाण्डालपुत्रेण सुबाहुनाऽपि, विवाहिता रूपविवर्जितेन ।
पतिर्न तस्या हि मतो बभूव सा तस्य चैवाभिमता बभूव ॥७०॥
पुत्रद्वय नेत्रहीन बभूव, कन्या च पश्चादवधिरा तथाऽन्या ।
पतिर्दरिद्रस्त्वथ साऽपि मुग्धा, नदीगता[1] रोदिति तत्र नित्यम् ॥७१॥
गता कदाचित्कलश गृहीत्वा, साऽन्तर्जल स्नातुमथ प्रविष्टा ।
यावदद्द्विजोऽसौ पुनरेव तावज्जात त्रियायोगरत सुशील· ॥७२॥
तस्या स भर्ताऽथ चिरगतेति, द्रष्टु जगामाथ नदीं सुपुण्याम् ।
ददर्श कुम्भ न च ता तटस्था, ततोऽतिदु खात्प्ररुरोद नादयन ॥७३॥
ततोऽन्धयुग्म बधिरा च कन्या, दु खान्वितास्सौ समुपाजगाम ।
ते वै रुदन्त पितर च दृष्ट्वा, दु खान्विता वै रुरुदुर्भृशार्ता ॥७४॥
तत स पप्रच्छ नदीतटस्थान्द्विजा भवदभिर्यदि योषिदेका ।
दृष्टा तु तोयार्थमुपाद्रवन्ती आख्यात ते प्रोचुरिमा प्रविष्टा ॥७५॥
नदीं न भूयस्तु समुत्ततार, एतावदेवेह समीहित म ।

भगवान द्वारा समझाया जाने पर भी वह ब्राह्मण भावीवश कोकामुख नामक तीर्थ के जल मे डूब गया ॥६८॥ तात ! तब वह द्विज चाण्डाल के घर मे कन्या होकर उत्पन्न हुआ। वह कन्या रूपवती शील गुण सम्पन्ना तथा युवती हुई ॥६९॥ सुबाहु नामक एक कुरूप चाण्डाल-पुत्र से उसका विवाह हुआ। पति उसके मन के अनुरूप नही हुआ पर वह पति की इच्छानकूल हुई ॥७०॥ उसके दो अन्ध पुत्र हुए और एक बहरी कन्या हुई। पति दरिद्र था। और वह मूर्खा प्रतिदिन नदीतट पर जाकर रोती थी ॥७१॥ किसी समय घडा लेकर वह भीतर जल मे स्नान करने के लिये प्रविष्ट हुई। प्रवेश करते ही वह योग क्रिया निरत सुशील ब्राह्मण बन गई। उसका पति बहुत देरी हुई यह सोच कर पवित्र नदी तट पर देखने को गया। उसने तट पर घडे को देखा पर पत्नी को नही देखा। तब वह जोर से रोने लगा। पश्चात अन्ध पुत्र तथा बहरी कन्या उसके पास आई। वे सब रोते हुए पिता को देखकर अत्यन्त शोकविह्वल होकर रोने लगे ॥७२ ७४॥ तब चाण्डालपुत्र ने समीपस्थ ब्राह्मणो से पूछा—'जल भरने के लिए आई हुई एक स्त्री को आपने देखा हो तो बतलाय। द्विजो ने कहा—एक स्त्री इस नदी मे प्रविष्ट हुई

---

[1] ग ०गतो रो०।

स तद्वचो घोरतरं निशम्य, रुरोद शोकाश्रुपरिप्लुताक्षः ॥७६॥
तं वै रुदन्तं ससुतं सकन्यं, दृष्ट्वाऽहमार्तं सुतरां बभूव ।
आर्तिश्च मेऽभूदथ सस्मृतिश्च, चाण्डालयोषाऽहमिति क्षितीश ॥७७॥
ततोऽब्रवं तं नृपते मतङ्गं, किमर्थमार्तेन हि रुद्यते त्वया ।
तस्या न लाभो भविताऽतिमौर्ख्यादानन्दितनेह वृथा हि किं ते ॥७८॥
स मामुवाचाऽऽत्मजयुग्ममन्धं, कन्या चैका बधिरेयं तथैव ।
कथं द्विजाते अधुनाऽऽत्मतमाश्वासयिष्येऽप्यथ पोषयिष्ये ॥७९॥
इत्येवमुक्त्वा स सुतैश्च सार्धं, फूत्कृत्य फूत्कृत्य च रोदिति स्म ।
यथा यथा रोदिति स श्वपाकस्तथा तथा[1] मे ह्यभवत्कृताऽपि ॥८०॥
ततोऽहमार्तं तु निवार्य तं वै, स्ववंशवृत्तान्तमथाऽऽचचक्षे ।
ततः स दुःखात्सह पुत्रकैः सविवेश कोकामुखमार्तरूपः[2] ॥८१॥
प्रविष्टमात्रे सलिले मतङ्गस्तीर्थप्रभावाच्च विमुक्तपापः ।
विमानमारुह्य शशिप्रकाशं, ययौ दिवं तात ममोपपश्यतः ॥८२॥
तस्मिन्प्रविष्टे सलिले मृते च, ममार्तिरासीदतिमोहकर्त्री ।
ततोऽतिपुण्ये नृपवर्य कोकाजले प्रविष्टस्त्रिदिवं गतश्च ॥८३॥

पर फिर निकली नहीं। बस इतना ही हम जानते हैं। ब्राह्मणों का वचन सुनकर सुबाहु रोने लगा। उसकी आँखें शोकाश्रु से परिप्लुत हो गई। कन्या-पुत्र सहित उसे रोते हुए देखकर मैं भी दुःखी हो गया। राजन्! मुझे दुःख हुआ और *यह स्मरण भी हुआ कि मैं ही इस चाण्डाल की स्त्री हूँ ॥७५-७७॥ पृथ्वीनाथ! तब मैंने चाण्डाल* से कहा— क्यों दुःख से रो रहे हो? वह नहीं मिलेगा। अब रोना अत्यन्त मूर्खता है। तब उसने मुझसे कहा— 'विप्र! मेरे दो पुत्र अन्धे हैं तथा एक कन्या बहरी है। उन्हें मैं कैसे आश्वासन दूँ? कैसे उनका पालन करूँ? इतना कहकर वह पुत्रों के साथ सिसक सिसक कर रोने लगा। जैसे-जैसे वह चाण्डाल रोता था वैसे वैसे मुझे उस पर दया आती थी ॥७८-८०॥ तब मैंने उसे रोक कर अपने वंश का वृत्तान्त सुना दिया। पश्चात् उसने पुत्रों समेत कोकामुख तीर्थ में प्रवेश किया। जल में प्रवेश करते ही चाण्डाल तीर्थ के प्रभाव से पापमुक्त हो गया। तब वह चन्द्रतुल्य प्रकाशमान विमान पर चढ़कर मेरे देखते ही स्वर्ग चला गया ॥८१-८२॥ उसके जल में प्रवेश करने पर तथा मर जाने पर मुझे अत्यन्त मोहकारक दुःख हुआ। नृपवर्य! तब मैं भी कोकाजल में प्रवेश कर स्वर्ग को चला गया ॥८३॥ पुनः मेरी उत्पत्ति वैश्यकुल में हुई। वहाँ मैं परम दुःखी था। पर तीर्थराज की

---

१ ग. ०था मूर्तिरया बभूव। त०। २ ग. ०मार्तरू०।

भूयोऽभवं वैश्यकुले व्यथार्तो, [1]जातिस्मरस्तीर्थवरप्रसादात् ।
ततो[2]ऽतिनिर्विण्णमना गतोऽहं, कोकामुखं संयतवाक्यचित्तः ॥८४॥
व्रतं समास्थाय कलेवरं स्वं, संशोषयित्वा दिवमारुरोह ।
तस्माच्च्युतस्त्वद्भवने च जातो, जातिस्मरस्तात हरिप्रसादात् ॥८५॥
सोऽहं समाराध्य [3]मुरारिदेवं, कोकामुखे त्यक्तशुभाशुभेच्छः ।
इत्येवमुक्त्वा पितरं प्रणम्य, गत्वा च कोकामुखमग्रतीर्थम्[4] ।
विष्णुं समाराध्य वराहरूपमवाप सिद्धिं मनुजर्षभोऽसौ ॥८६॥
इत्थं स कामदमनः [5]सहपुत्रपौत्रः, कोकामुखे तीर्थवरे सुपुण्ये ।
त्यक्त्वा तनुं दोषमयीं ततस्तु, गतो दिवं सूर्यसमैर्विमानैः ॥८७॥
एवं मयोक्ता परमेश्वरस्य, माया सुराणामपि दुर्विचिन्त्या ।
स्वप्नेन्द्रजालप्रतिमा मुरारेर्यया जगन्मोहमुपैति विप्राः ॥८८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे विष्णुधर्मानुकीर्तने मायाप्रादुर्भावनिरूपणं नामैकोनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२२९॥

कृपा से मुझे पूर्वजन्मों का स्मरण था। तब मैं अत्यन्त खिन्न मन से कोकामुख तीर्थ में गया। वहाँ वाक्संयम तथा चित्तसंयम करके शरीर त्याग कर स्वर्ग पहुँचा। वहाँ से च्युत होने पर आपके घर में मेरा जन्म हुआ है। तात! हरि की कृपा से मुझे पूर्व जन्मों का स्मरण है। इसलिये शुभ-अशुभ कामनाओं का परित्याग कर मैं कोकामुख में विष्णु की आराधना करूँगा।' इतना कहकर पिता को प्रणाम करके राजपुत्र तीर्थराज कोकामुख को चला गया। वहाँ वराहरूपी विष्णु की उपासना करके नरपुङ्गव राजपुत्र ने सिद्धि प्राप्त की ॥८४-८६॥ इस प्रकार पुत्र-पौत्र सहित कामदमन अत्यन्त पवित्र कोकामुखतीर्थ में दोषमय शरीर का त्याग कर सूर्यतुल्य विमानों से स्वर्ग चला गया ॥८७॥ विप्रवृन्द! देवताओं से भी अचिन्त्य इस परमेश्वर की माया के बारे में मैंने बतला दिया। यह स्वप्न तथा इन्द्रजाल के समान है। इसी से संसार मोह में पड़ता है ॥८८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में विष्णु धर्म-कीर्तन-प्रसंग में मायाप्रादुर्भाव निरूपण नामक दो सौ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२९॥

१क. जातस्त्वत्तीर्थप्रव०। २ग. ग ०तो हि नि०। ३क. ०स तीर्थवरं विचिन्त्य। ग०। ४ख. वराहदेव। ५क. ०मग्र्यतीर्थ०। ६क. गतः स पुत्र।

अथ त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यास-मुनिसंवादे महाप्रलयवर्णनम्

मुनय ऊचुः

अस्माभिस्तु श्रुतं व्यास यत्त्वया समुदाहृतम् । प्रादुर्भावाश्रितं पुण्यं माया विष्णोश्च दुर्विदा[1] ॥१॥
श्रोतुमिच्छामहे त्वत्तो यथावदुपसंहृतिम् । महाप्रलयसंज्ञां च कल्पान्ते च महामुने ॥२॥

व्यास उवाच

श्रूयतां भो मुनिश्रेष्ठा यथावदनुसंहृतिः । कल्पान्ते प्राकृते चैव प्रलये जायते यथा ॥३॥
अहोरात्रं पितॄणां तु मासोऽब्दं त्रिदिवौकसाम् । चतुर्युगसहस्रे तु ब्रह्मणोऽहर्द्विजोत्तमाः ॥४॥
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् । देवैर्वर्षसहस्रैस्तु तद्द्वादशभिरुच्यते ॥५॥
चतुर्युगाण्यशेषाणि सदृशानि स्वरूपतः । आद्यं कृतयुगं प्रोक्तं मुनयोऽन्त्यं तथा कलिम् ॥६॥
आद्ये कृतयुगे सर्गो ब्रह्मणा क्रियते यतः । क्रियते चोपसंहारस्तथाऽन्तेऽपि कलौ युगे ॥७॥

मुनय ऊचुः

कलेः स्वरूपं भगवन्विस्तराद्वक्तुमर्हसि । धर्मश्चतुष्पाद्भगवान्यस्मिन्वैकल्यमृच्छति ॥८॥

---

२३० अध्याय

व्यास और मुनियों के सवाद में महाप्रलय का वर्णन

मुनियों ने कहा—हे व्यास जी ! विष्णु के अवतार तथा दुर्ज्ञेय माया के बारे मे आपने जो कहा, उसे हम सुन चुके। महामुनि ! अब कल्पान्त मे जो महाप्रलय नामक उपसहार होता है, उसके विषय मे हम सुनना चाहते हैं ॥१-२॥

व्यास ने कहा—मुनिवर ! कल्पान्त मे तथा प्राकृतिक प्रलय मे जैसा (जगत् का) सहार होता है, उसे आप यथार्थतः सुन लीजिए। पितरो के अहोरात्रो का जो एक वर्ष होता है वही देवताओ का एक मास हुआ करता है। द्विज-श्रेष्ठो ! जब चारो युग एक सहस्र बार बीत जाता है तब ब्रह्मा का एक दिन होता है। कृत, त्रेता, द्वापर और कलि—ये चार युग हैं। देवताओ के बारह हजार वर्षों के ये युग होते हैं। समस्त युग स्वरूपत समान हैं। मुनिवृन्द ! पहला कृतयुग है और अन्तिम कलियुग है। क्योंकि आद्य कृतयुग मे ब्रह्मा सृष्टि करते हैं और अन्त्य कलियुग मे सहार करते हैं ॥३-७॥

मुनियों ने कहा—भगवन् ! कलियुग के स्वरूप का वर्णन विस्तार से कीजिये, जिसमे चार चरण वाले भगवान् धर्म की हानि होती है ॥८॥

---

[1] क. दुर्मदा। २क ०श्च यस्मादृ०।

व्यास उवाच।

कलिस्वरूप भो विप्रा यत्पृच्छध्व ममानघा । निबोधध्व, समासेन वर्तते यन्महत्तरम् ॥९॥
वर्णाश्रमाचारवती प्रवृत्तिन कलौ नृणाम् । न सामऋग्यजुर्वेदविनिष्पादनहेतुकी[1] ॥१०॥
विवाहा न कलौ धर्मा न शिष्या गुरुसस्थिता । [2]न पुत्रा धार्मिकाश्चैव न च वह्निक्रियाक्रम ॥११॥
यत्र तत्र कुले जातो बली सर्वेश्वर कलौ । सर्वेभ्य एव वर्णेभ्यो[3] नर कन्योपजीविन ॥१२॥
येन तेनैव योगेन द्विजातिर्दीक्षित कलौ । यैव सैव च विप्रेन्द्रा प्रायश्चित्तक्रिया कलौ ॥१३॥
सर्वमेव कलौ शास्त्र यस्य यद्वचन द्विजा । देवताश्च कलौ सर्वा सर्व सर्वस्य चाऽऽश्रम ॥१४॥
[4]उपवासस्तथाऽऽयासो वित्तोत्सर्गस्तथा कलौ । धर्मो यथाभिरुचितैरनुष्ठानैरनुष्ठित ॥१५॥
वित्तेन भविता पुसा स्वल्पेनैव[5] मद कलौ । स्त्रीणा रूपमदश्चैव केशैरेव भविष्यति ॥१६॥
सुवर्णमणिरत्नादौ वस्त्र चापक्षय गते[6] । कलौ स्त्रियो भविष्यन्ति तदा केशैरलकृता ॥१७॥
परित्यक्ष्यन्ति भर्तार वित्तहीन तथा स्त्रिय । भर्ता भविष्यति कलौ [7]वित्तवानेव योषिताम् ॥१८॥
यो यो ददाति बहुल स स स्वामी तदा[8] नृणाम् । स्वामित्वहेतुसबन्धो भविताऽभिजनस्तदा ॥१९॥
गृहान्ता द्रव्यसघाता द्रव्यान्ता च तथा मति । अर्थाश्चायोपभोगान्ता भविष्यन्ति तदा कलौ ॥२०॥

व्यास ने कहा—निष्पाप विप्रवृन्द! कलि का जो स्वरूप आप पूछ रहे हैं वह बहुत विस्तृत है। उसे सक्षेप मे सुन लीजिए ॥९॥ कलियुग मे मनुष्यो की प्रवृत्ति वर्णाश्रम के आचार की ओर नही होगी। साम, ऋक् तथा यजुर्वेद का स्वाध्याय नही होगा ॥१०॥ कलि मे धार्मिक विवाह नही होगा। शिष्यो मे गुरु भक्ति नही होगी। धार्मिक पुत्र नही होगे। अग्निहोत्र आदि क्रिया का भी कोई क्रम नही होगा ॥११॥ जिस किसी कुल मे उत्पन्न हुआ मनुष्य बलवान् होने पर सब का नायक बन जाएगा। सभी वर्णों के मनुष्य कन्या से जीविका उपार्जन करेगे ॥१२॥ कलि मे द्विजाति जिस किसी योग से दीक्षित होगा। विप्रवर! कलि मे प्रायश्चित्त का कोई ठिकाना नही रहेगा। कलि मे जिस किसी का वचन ही शास्त्र माना जायगा। कलि मे सब देवता माने जायेंगे। सब के लिए सब आश्रम होगे ॥१३ १४॥ उपवास परिश्रम तथा धन का त्याग करना पडेगा। धर्म का अनुष्ठान मनमाना होगा। थोडे ही धन मे पुरुषो को अभिमान हो जायगा। स्त्रियो को केवल बालो से ही रूप का अभिमान होगा। सुवर्ण मणि रत्न वस्त्र आदि के क्षय हो जाने पर कलि मे स्त्रियाँ केवल केशो से ही अलङ्कृत होगी ॥१५ १६॥ धनहीन पति को स्त्रियाँ छोड देंगी। धनवान् व्यक्ति ही कलि मे स्त्रियो का पति होगा ॥१७-१८॥ जो बहुत देगा वही मनुष्यो का स्वामी होगा। स्वामित्व तथा बन्धुत्व केवल स्वार्थसिद्धि के लिये होगा। द्रव्य घर भरने के लिये बुद्धि द्रव्य कमाने के लिये और धन केवल उपभोग करने के लिये होगा ॥१९ २०॥ कलि

१ग ०न हेतु०। २ग न दासयत्नमेणव। ३ख ०भ्यो ज्येष्ठ कन्यापरोपणी। ये०। ४क ०था यत्नो वि०। ५क ग ०ल्पेनाऽद्भुयम०। ६ख ०ते। कार्श्यचारिस्त्रयो। ७क चिन्तितश्चैव। ८क सदा।

स्त्रियः कलौ भविष्यन्ति स्वैरिण्यो ललितस्पृहाः। अन्यायावाप्तवित्तेषु पुरुषेषु स्पृहालवः॥२१॥
अभ्यर्थितोऽपि सुहृदा स्वार्थहानिं तु मानवः। पणस्यार्धार्धमात्रेऽपि करिष्यति तदा द्विजाः॥२२॥
सदा सपौरुषं चेतो भावि विप्र तदा कलौ। क्षीरप्रदानसंबन्धि भाति गोषु च गौरवम्॥२३॥
अनावृष्टिभयात्प्रायः प्रजाः क्षुद्भयकातराः। भविष्यन्ति तदा सर्वा गगनासक्तदृष्टयः॥२४॥
मूलपर्णफलाहारास्तापसा इव मानवाः। आत्मानं घातयिष्यन्ति तदाऽवृष्ट्याऽभिदुःखिताः॥२५॥
दुर्भिक्षमेव सततं सदा क्लेशमनीश्वराः। प्राप्स्यन्ति व्याहतसुखं प्रमादान्मानवाः कलौ॥२६॥
अस्नातभोजिनो नाग्निदेवतातिथिपूजनम्। करिष्यन्ति कलौ प्राप्ते न च पिण्डोदकक्रियाम्॥२७॥
लोलुपा ह्रस्वदेहाश्च बह्वन्नादनतत्पराः। बहुप्रजाल्पभाग्याश्च भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः॥२८॥
उभाभ्यामथ पाणिभ्यां शिरःकण्डूयनं स्त्रियः। कुर्वन्त्यो गुरुभर्तृणामाज्ञां भेत्स्यन्त्यनावृताः॥२९॥
स्वपोषणपराः क्रुद्धा देहसंस्कारवर्जिताः। परुषानृतभाषिण्यो भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः॥३०॥
दुःशीला दुष्टशीलेषु कुर्वन्त्यः सततं स्पृहाम्। असद्वृत्ता भविष्यन्ति पुरुषेषु कुलाङ्गनाः॥३१॥
वेदादानं करिष्यन्ति वडवाश्च तथाऽव्रताः। गृहस्थाश्च न होष्यन्ति न दास्यन्त्युचितान्यपि॥३२॥
भवेयुर्वनवासा वै ग्राम्याहारपरिग्रहाः। भिक्षवश्चापि "पुत्रा हि स्नेहसंबन्धयन्त्रकाः"॥३३॥

में स्त्रियाँ स्वेच्छा से विहार करने वाली तथा ललित कला की इच्छुक होंगी। पुरुष अन्याय से उपार्जित धन के इच्छुक होंगे? बन्धुओ की प्रार्थना करने पर भी मनुष्य एक पैसे के आधे की प्राप्ति होने पर भी उनकी स्वार्थ-हानि करेगा॥२१-२२॥ चित्त मे सदा कठोरता विद्यमान रहेगी। दूध देने तक ही गायो का आदर होगा॥२३॥ प्राय. अनावृष्टि का भय होगा। प्रजा भूख-भय से कातर होगी। सब आकाश की ओर दृष्टि लगाये रहेंगे। मनुष्य मूल, पत्र, फल खाकर तपस्वी की तरह रहेगे। अनावृष्टि से अत्यन्त दुःखी होकर मनुष्य आत्महत्या करेंगे॥२४-२५॥ सतत अकाल ही होगा। मनुष्य अनाथ होकर सदा क्लेश ही पाते रहेगे। कलि मे मनुष्यों को प्रमाद से बाधित सुख मिलेगा॥२६॥ (प्राय) बिना स्नान किये ही लोग भोजन करेंगे। अग्नि, देवता तथा अतिथियो का पूजन नही होगा। कलि में मनुष्य पिण्डदान नहीं करेंगे॥२७॥ मनुष्य लोभी, ह्रस्वकाय तथा अधिक अन्न खाने वाले होंगे। कलि मे स्त्रियाँ बहुत सन्तान वाली तथा अल्पभाग्य वाली होगी॥२८॥ दोनो हाथो से शिर को खुजलाती हुई स्त्रियाँ गुरु तथा स्वामी की आज्ञा का उल्लघन करेंगी। कलियुग की स्त्रियाँ अपने पोषण मे निरत, क्रुद्ध, देह-सस्कार से रहित और कठोर तथा मिथ्या भाषण करने वाली होंगी। कुलागनायें स्वभाव से दुष्ट, सदा लालसा से युक्त तथा पुरुषो के प्रति असत् आचरण करने वाली होगी॥२९-३१॥ व्रतशून्य ब्राह्मणवृन्द वेद नही पढायेंगे। गृहस्थ लोग हवन नही करेंगे तथा उचित दान भी नही देंगे॥३२॥ वनवासी तपस्वी भी ग्राम्य भोजन तथा भोग-सामग्री ग्रहण करेंगे। सन्यासियो को पुत्र आदि से स्नेह रहेगा। राजा अरक्षक तथा कर के

१ख ०जा। न सदा पौ०। २ग भावि। ३क ०भया प्राय। ४क ख ०लकन्दफ०। ५क ख ०न पात०। ६क ०न्ति अमक्षाच्चापि दु०। ७क तदा। ८ग प्रमोदा मान०। ९क ०लौ केचिन्न च प्रेतोद०। १०ग ०पि। वनवासिनो भविष्यन्ति ग्रा०। ११ग भिक्षा। १२क ०न्धपाणय। अ०।

अरक्षितारो हर्तारः शुल्कव्याजेन पार्थिवाः । हारिणो जनवित्तानां संप्राप्ते च कलौ युगे ॥३४॥
यो योऽश्वरथनागाढ्यः स स राजा भविष्यति । यश्च यश्चावलः सर्वः स स भृत्यः कलौ युगे ॥३५॥
वैश्याः कृषिवणिज्यादि संत्यज्य निजकर्म यत् । शूद्रवृत्त्या भविष्यन्ति[1] कारकर्मोपजीविनः ॥३६॥
भैक्ष्यव्रतास्तथा शूद्राः प्रव्रज्यालिङ्गिनोऽधमाः । पाखण्डसंश्रयां वृत्तिमाश्रयिष्यन्त्यसंस्कृताः ॥३७॥
दुर्भिक्षकरपीडाभिरतीवापद्रुता जनाः । गोधूमान्नयवान्नाढ्यान्देशान्यास्यन्ति दुःखिताः ॥३८॥
वेदमार्गे प्रलीने च पाखण्डाढ्ये[2] ततो जने । अधर्मवृद्ध्या लोकानामल्पमायुर्भविष्यति ॥३९॥
अशास्त्रविहितं घोरं तप्यमानेषु वै तपः । नरेषु नृपदोषेण बालमृत्युर्भविष्यति ॥४०॥
भवित्री योषितां सूतिः [3]पञ्चषट्सप्तवार्षिकी । नवाष्टदशवर्षाणां मनुष्याणां तथा कलौ ॥४१॥
पलितोद्गमश्च भविता तदा द्वादशवार्षिकः[4] । न[5] जीविष्यति वै कश्चित्कलौ वर्षाणि विंशतिम् ॥४२॥
अल्पप्रज्ञा[6] वृथालिङ्गा दुष्टान्तःकरणाः कलौ । यतस्ततो विनश्यन्ति कालेनाल्पेन मानवाः ॥४३॥
यदा यदा हि पाखण्डवृत्तिरत्रोपलक्ष्यते । तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः ॥४४॥
यदा यदा सतां हानिर्वेदमार्गानुसारिणाम् । तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः ॥४५॥
प्रारम्भाश्चावसीदन्ति यदा धर्मकृतां नृणाम् । तदाऽनुमेयं प्राधान्यं कलेर्विप्रा विचक्षणैः ॥४६॥
यदा यदा न यज्ञानामीश्वरः पुरुषोत्तमः । इज्यते पुरुषैर्यज्ञैस्तदा ज्ञेयं कलेर्बलम् ॥४७॥

वहाने मनुष्यों के धन अपहरण करने वाले होंगे। जिसके पास घोड़े-हाथी होंगे, वह राजा माना जायगा। जो अबल होगा, वही भृत्य (परिचर्या करनेवाला) होगा ॥३३-३५॥ वैश्य अपने कर्म खेती और व्यापार को छोड़कर शिल्प आदि, शूद्रों का कर्म करेंगे। अधम शूद्र भिक्षावृत्ति तथा सन्यास धारण करेंगे। वे असंस्कृत होते हुए पाखण्डी वृत्ति ग्रहण करेंगे ॥३६-३७॥ मनुष्य दुर्भिक्ष, कर तथा अनेक पीडाओं से दुःखी होंगे। मनुष्य दुःखी होकर उन देशों में जायेंगे, जहाँ गेहूँ, यव आदि अन्न होंगे। वेदमार्ग के लुप्त हो जाने पर और लोगों में धूर्तता के आ जाने पर अधर्म की वृद्धि होगी और मनुष्य अल्पायु होंगे ॥३८-३९॥ लोग शास्त्रविहित मार्ग को छोड़कर घोर तप करने लगेंगे तब राजा के दोष से बालमृत्यु होने लगेगी। पुरुषों के नौ, आठ तथा दश वर्ष के होने पर तथा स्त्रियों के पाँच, छ तथा सात वर्ष की होने पर ही सन्तानोत्पत्ति होने लगेगी। बारह वर्षों में ही बुढ़ापा आ जायगा। कलि में कोई बीस वर्ष तक जीवित नहीं रहेगा ॥४०-४२॥ मनुष्य अल्पज्ञ, व्यर्थ चिह्न धारण करने वाले तथा दुष्ट अन्तःकरण वाले होंगे। अल्पकाल में ही वे नष्ट हो जायेंगे ॥४३॥ जब-जब पाखण्डवृत्ति का प्रचार हो तब-तब विद्वान् लोग कलि की वृद्धि का अनुमान करें ॥४४॥ जब-जब वेदमार्ग का अनुसरण करने वाले सत्पुरुषों की हानि हो तब-तब विद्वान् लोग कलिवृद्धि का अनुमान करें ॥४५॥ जब धर्मात्मा मनुष्यों के कार्य में विघ्न पड़े तब विद्वान् लोग कलि की प्रधानता का अनुमान करें ॥४६॥ यज्ञ करने वाले पुरुष जब यज्ञों के स्वामी विष्णु की पूजा न करें तब पण्डित लोग कलि की प्रबलता का अनुमान करें ॥४७॥ जब वेदों में विरति तथा पाखण्डों में रति

१ग प्रवत्स्यन्ति। २क ०खण्डोद्योतिते ज०। ३ख. ०पष्ठाप्तवा०। ४ग ०कः। नातजीवति। ५ख. न तु जीवति। ६क ख ०प्रजा वृ०।

न प्रीतिर्वेदवादेषु पाखण्डेषु यदा रतिः। कलेर्वृद्धिस्तदा प्राज्ञैरनुमेया[1] द्विजोत्तमाः ॥४८॥
कलौ जगत्पतिं विष्णुं सर्वस्रष्टारमीश्वरम्। नार्चयिष्यन्ति भो विप्राः पाखण्डोपहता नराः ॥४९॥
किं देवैः किं द्विजैर्वेदैः किं शौचेनाम्बुजल्प(न्म)ना। इत्येवं प्रलपिष्यन्ति पाखण्डोपहता नराः ॥५०॥
अल्पवृष्टिश्च पर्जन्यः स्वल्पं सस्यफलं तथा। फलं तथाऽल्पसारं च विप्राः प्राप्ते कलौ युगे ॥५१॥
जानुप्रायाणि वस्त्राणि शमीप्राया महीरुहाः। शूद्रप्रायास्तथा वर्णा भविष्यन्ति कलौ युगे ॥५२॥
अणुप्रायाणि धान्यानि[2] आजप्रायं तथा पयः। भविष्यति कलौ प्राप्त औशीरं चानुलेपनम् ॥५३॥
श्वश्रूश्वशुरभूयिष्ठा गुरवश्च नृणां कलौ[3]। शालाद्याहारिभार्याश्च सुहृदो मुनिसत्तमाः ॥५४॥
कस्य माता पिता कस्य यदा कर्मात्मकः पुमान्। इति चोदाहरिष्यन्ति[4] श्वशुरानुगता नराः ॥५५॥
वाङ्मनः[5]कायजैर्दोषैरभिभूताः पुनः पुनः। नराः पापान्यनुदिनं करिष्यन्त्यल्पमेधसः ॥५६॥
[6]निःसत्यानामशौचानां निर्ह्रीकाणां तथा द्विजाः। यद्यद्दुःखाय तत्सर्वं कलिकाले भविष्यति ॥५७॥
निःस्वाध्यायवषट्कारे[7] स्वधास्वाहाविवर्जिते[8]। [9]तदा प्रविरलो विप्रः कश्चिल्लोके भविष्यति ॥५८॥
तत्राल्पेनैव[10] कालेन पुण्यस्कन्धमनुत्तमम्। करोति यः कृतयुगे[11] क्रियते तपसा हि[12] यः ॥५९॥

ही तब विद्वान् लोग कलिवृद्धि का अनुमान करें ॥४८॥ विप्रवृन्द! कलि में पाखण्डी लोग सब का सर्जन करने वाले तथा संसार के स्वामी विष्णु की पूजा नहीं करेंगे ॥४९॥ (कलि में) पाखण्डी मनुष्य कहा करेंगे कि देवता, ब्राह्मण, वेद तथा शुद्धि से हमें क्या प्रयोजन? कलि में मेघ कम बरसेगा, उपज कम होगी और फल भी अल्प सार से युक्त होगा। लोग जघे तक वस्त्र पहनेंगे। वृक्षों में शमी वृक्ष तथा वर्णों में शूद्र वर्ण ही रह जायगा। ॥५०-५२॥ अन्नों में (चना, श्यामा आदि) क्षुद्र अन्न ही होंगे। अधिकतर बकरियों का दूध मिलेगा। लेपों में खस ही रह जायगी। कलि में मनुष्यों के गुरुवर्ग वे ही होंगे जिनमें सास-ससुर की प्रधानता होगी। मुनिश्रेष्ठ! शाला (गृह) आदि का हरण करने वाली भार्या एवं मित्र हुआ करेंगे। ससुर का अनुगमन करने वाले मनुष्य कहेंगे कि जब मनुष्य कर्मों से बँधा हुआ है (अर्थात् कर्मानुसार ही जन्म होना है) तब कौन किसकी माता है और कौन किसका पिता है? (अर्थात् माता-पिता कुछ नहीं है।) अल्प बुद्धिवाले मनुष्य शरीर, वाणी तथा मन के दोषों से व्याप्त होकर प्रतिदिन पाप किया करेंगे। कलिकाल में सत्य तथा शौच से विहीन एवं निर्लज्ज मनुष्यों को सब प्रकार के दुःख होंगे। मनुष्य स्वाध्याय वषट्कार तथा स्वधा-स्वाहा से विवर्जित होंगे। लोक में विरला ही कोई ब्राह्मण होगा। सत्ययुग में तपस्या से जो फल होता है, वह फल कलियुग में अल्प पुण्य करने से भी हो जाएगा ॥५३-५९॥

१ख विचक्षणै। २क ख ०नि अज०। ३ग ०लौ। शीला०। ४क ०हरन्तीह येऽसुरा०। ५ख ग ०कायिकैर्दो०। ६क ०सत्वाना०। ७क ०ट्कार स्व०। ८क ०जित। तथा चापरपरो यस्तु विष्णोर्लोके। ९ख तथा पापवृत्तिश्च क्वचिल्लोको भ०। १०क ख तदाल्पेन च यत्नेन ११ क क्रियते। १२क ख स।

मुनय ऊचु

कस्मिन्कालेऽल्पको धर्मो ददाति [1]सुमहाफलम्। वक्तुमर्हस्यशेषेण श्रोतु वाञ्छा प्रवर्तते ॥६०॥

व्यास उवाच

धन्ये कलौ भवेद्विप्रास्त्वल्पक्लेशैर्महत्फलम्। तथा भवेतां स्त्रीशूद्रौ धन्यौ चान्यन्निबोधत ॥६१॥
यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तत्। द्वापरे तच्च मासेन अहोरात्रेण तत्कलौ ॥६२॥
तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्च फल द्विजा। प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलौ[2] साध्विति [3]भाषितुम् ॥६३॥
ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्। यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सकीर्त्य केशवम् ॥६४॥
धर्मोत्कर्षमतीवात्र प्राप्नोति पुरुष कलौ। स्वल्पायासेन धर्मज्ञास्तेन तुष्टोऽस्म्यहं कलौ ॥६५॥
व्रतचर्यापरैर्ग्राह्या वेदा पूर्वं द्विजातिभि। ततस्तु धर्मसप्राप्तैर्यष्टव्य विधिवद्धनै[4] ॥६६॥
वृथा कथा वृथा भोज्य वृथा स्व च द्विजन्मनाम्। पतनाय तथा भाव्य तैस्तु [5]सयतिभि सह ॥६७॥
असम्यक्करणे दोषास्तेषा सर्वेषु वस्तुषु। भोज्यपेयादिक चैषा नेच्छाप्राप्तिकर द्विजा ॥६८॥
पारतन्त्र्यात्समस्तेषु तेषा कार्येषु वै तत[6]। लोकान्क्लेशेन महता[7] यजन्ति विनयान्विता ॥६९॥
द्विजशुश्रूषणेनैव पाकयज्ञाधिकारवान्। निज जयति वै लोक शूद्रो धन्यतरस्तत ॥७०॥

मुनियों ने कहा—किस समय अल्प धर्म करने से भी महान फल होता है उसे हम विस्तार से सुनना चाहते हैं। बतलाइये ॥६०॥

व्यास ने कहा—विप्रवृन्द ! इस दृष्टि से यह कलियुग धन्य है कि इसमे थोड़े ही क्लेशो को सहन करने से बड़ा भारी फल प्राप्त हो जाता है। इसमे स्त्री और शूद्र भी धन्य हो जाते हैं इसके सिवा और भी सुनो ॥६१॥ जो फल सत्ययुग मे दस वर्षों मे त्रेता मे एक वर्ष मे और द्वापर म एक मास म मिलता है वह कलियुग मे एक अहोरात्र मे मिल जाता है ॥६२॥ द्विजगण ! इसी हिसाब से कलियुग म मनुष्य तप ब्रह्मचर्य तथा जप आदि का फल प्राप्त करता है। ॥६३॥ कृतयुग मे भगवान् के ध्यान से त्रेता मे यज्ञो से और द्वापर मे उपासना म जो फल प्राप्त होता है वह फल कलि म केवल भगवत्कीर्तन से मिल जाता है ॥६४॥ धर्मज्ञो ! कलि मे मनुष्य अल्प आयास से ही महान धर्म प्राप्त कर लेता है। इसलिये मैं कलि से सतुष्ट हूँ। ब्राह्मणलोग पहले व्रत धारण कर वेदो का स्वाध्याय करते हैं। तब न्याय से प्राप्त धन से विधिपूर्वक यज्ञ करते हैं ॥६५ ६६॥ दूषित कथा दूषित भोज्य तथा दूषित धन ब्राह्मणो के पतन के लिये होता है। ब्राह्मणो को सयमी होना चाहिये। समस्त वस्तुओ को विपरीत प्रकार से ग्रहण करने से उन्हें दोष लगता है। भोज्य पेय आदि पदार्थ उन्हे इच्छा के अनुसार प्राप्त नही होते हैं (अर्थात खान-पान मे उन्हे सयम बरतना पड़ता है)। आसकल कार्यो म उन्हे परतन्त्रता का अनुभव होता है। वे विनयी होकर महान क्लेश से यजन करते हैं। (किन्तु) पाकयज्ञ का अधिकारी शूद्र केवल द्विजाति की सेवा करने से ही अपने लोक को जीत लेता है। अतएव अन्य द्विजातियो की अपेक्षा यह शूद्र अधिक धन्य है ॥६७ ७०॥ मुनिश्रेष्ठो ! भक्ष्या और अभ क्ष्या म जिन्हे पाप लगने की आशा नहीं की जाती है और न कोई

१क ख ०महत्फल०। २क ख काल। ग कलि। ३क मापणात्। ४ग ०वधनै। ५ख सयतिभि। ६क सन्। ७ग ०त। यजन्ति वै द्विजा लो०। ८ ०ता द्विजा द्वि०।

भक्ष्याभक्ष्येषु नाशा (त्रा)स्ति येवा पापेषु वा यतः। नियमो मुनिशार्दूलास्तेनासौ साध्विती रितम् ॥७१॥
स्वधर्मस्याविरोधेन नरैर्लभ्यं धनं सदा। प्रतिपादनीयं पात्रेषु यष्टव्यं च यथाविधि ॥७२॥
तस्यार्जने महान्क्लेशः पालनेन द्विजोत्तमाः। तथा सद्विनियोगाय विज्ञेय गहनं नृणाम् ॥७३॥
एभिरन्यैस्तथा क्लेशैः पुरुषा द्विजसत्तमाः। निजाञ्जयन्ति वै लोकान्प्राजापत्यादिकान्क्रमात् ॥७४॥
योषिच्छुश्रूषणाद्भर्तुः कर्मणा मनसा गिरा। एतद्विषयमाप्नोति तत्सालोक्यं यतो द्विजाः ॥७५॥
नातिक्लेशेन महता तानेव पुरुषो यथा। तृतीय व्याहृत तेन मया साध्विति योषितः ॥७६॥
एतद्वः कथित विप्रा यन्निमित्तमिहाऽऽगताः। तत्पृच्छध्वं यथाकाममहं वक्ष्यामि वः स्फुटम् ॥७७॥
अल्पेनैव प्रयत्नेन धर्मः सिध्यति वै कलौ। नरैरात्मगुणाम्भोभिः क्षालिताखिलकिल्बिषैः ॥७८॥
शूद्रैश्च द्विजशुश्रूषातत्परैर्मुनिसत्तमाः। तथा स्त्रीभिरनायासात्पतिशुश्रूषयैव हि ॥७९॥
ततस्त्रितयमप्येतन्मम धन्यतमं मतम्। धर्मसंराधने क्लेशो द्विजातीनां कृतादिषु ॥८०॥
तथा स्वल्पेन तपसा सिद्धिं यास्यन्ति मानवाः। धन्या धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते मुनिसत्तमाः ॥८१॥

नियम ही करना पडता है ऐसे शूद्रो को इसी कारण अच्छा कहा गया है। पुरुषों को सदा अपने धर्म के अविरोध से धन का उपार्जन करना, पात्रो को दान देना और विधानपूर्वक यज्ञ करना पडता है ॥७१-७२॥ फिर न्याय से धन कमाने मे तथा उसके पालन करने मे महान् क्लेश होता है। द्विजश्रेष्ठो! उस धन का सदुपयोग करना तो और भी कठिन है ॥७३॥ द्विजवर! इन कष्टो से तथा दूसरे प्रकार के कष्टो से पुरुष अपने लोक को तथा क्रमश ब्रह्मलोक आदि को जीत लेता है। किन्तु मन, कर्म तथा वाणी से पति की शुश्रूषा करने मात्र से स्त्री इस विषय को अर्थात् पुरुष के समान लोकों को प्राप्त कर लेती है, पुरुष जिन लोको को महान् क्लेश से भी नही प्राप्त कर पाता है, उनको स्त्री पतिसेवा से ही प्राप्त कर लेती है, इसीलिए स्त्री को यह तीसरा साधुवाद मैंने दिया है। विप्रवृन्द! आप लोग जिस निमित्त यहाँ आये हैं, वह तो मैंने बतला दिया। अब पूछिये, क्या पूछना चाहते हैं? मैं स्पष्ट बतलाऊँगा ॥७४-७७॥ कलि मे अल्प प्रयास से ही धर्म सिद्ध हो जाता है। आत्मगुण रूपी जल से अखिल पाप रूपी कीचड को धो डालने से मनुष्य सिद्ध हो जाते हैं। द्विज सेवा मे निरत शूद्र और पति-सेवा मे तत्पर स्त्री अनायास ही सिद्ध हो जाती है। इसलिये स्त्री, शूद्र और द्विज तीनो इस युग मे धन्य हैं—ऐसा मेरा मत है। सत्ययुग आदि मे धर्म की आराधना करने मे महान् क्लेश होता है, पर कलियुग मे मनुष्य अल्प तप से ही सिद्ध हो जाते हैं। इस युग मे जो धर्माचरण

१ग नास्यास्ति ये पापे येषु। २ग तच्चास०। ३ग ०तद्धि समवाप्नोति भर्तृलोक ततो। ४ग योषिताम्। ५क ०म्। कर्म०।

भवदभिर्यदभिप्रेत तदेतत्कथित मया। अपृष्टेनापि धर्मज्ञा किमन्यत्क्रियता द्विजा ॥८२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसवादे भविष्यकथन
नाम त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२३०॥

अथैकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यास मुनिसवादे द्वापरयुगान्तकथनम्

मुनय ऊचु

आसन्न विप्रकृष्ट वा यदि काल न विदमहे। ततो द्वापरविध्वस युगान्त स्पृहयामहे ॥१॥
प्राप्ता वय हि तत्कालमनया धमतृष्णया। आदद्याम[1] पर धर्म[2] सुखमल्पेन कमणा ॥२॥
सत्रासोद्वेगजनन युगात समुपस्थितम। प्रनष्टधर्म[3] धमज्ञ [4]निमित्तैर्वक्तुमर्हसि। ३॥

व्यास उवाच

अरक्षितारो हर्तारो बलिभागस्य पार्थिवा। युगान्ते प्रभविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणा ॥४॥

करते हैं वे धन्य हैं। मुनिश्रेष्ठो ! आप लोगो का जो अभिप्राय था वह बिना पूछे भी मैंने बतला दिया। धमज्ञो ! कहिये अब (मैं आप लोगो के लिये) और क्या करूँ ? ॥७८ ८२।

श्रीब्रह्ममहापुराण मे व्यास और मुनियो के सवाद प्रकरण मे भविष्यकथन नामक
दो सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३०॥

२३१ अध्याय

व्यास और मुनियो के सवाद में द्वापर युग के अन्त का वर्णन

मुनियों न कहा—हम लोग समीप तथा दूर के काल को नही जानते हैं। इसलिये द्वापर का विध्वस करने वाले कलियुग की इच्छा करते हैं। (इसमे) थोड ही कर्मों के करने से हम बहुत धम तथा सुख प्राप्त करेंगे—इसी धमतृष्णा से हम इस समय तक आ पहुचे हैं। भय तथा उद्वेगकारी कलियुग उपस्थित है जिसम धर्मों का नाश होता है। धमज्ञ ! अब आप इस युग के अन्त को लक्षणों द्वारा बतलायें ॥१ ३॥

व्यास न कहा—इस युग के अन्त मे अपनी रक्षा म निरत राजा लोग अरक्षक तथा बलिभाग के अप हरण करने वाले होगे ॥४॥ क्षत्रियेतर राजा होगे ब्राह्मणो की जीविका शूद्रो मे प्राप्त होगी। युगान्त मे शूद्र

---

१ क ०द्याद्य०। २ क सग। ३ ग ०धमध०। ४ ग ०मित्त वक्तु०।

'अक्षत्रियाश्च राजानो विप्राः शूद्रोपजीविनः। शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा भविष्यन्ति युगक्षये ॥५॥
श्रोत्रियाः 'काण्डपृष्ठाश्च निष्कर्माणि हवींषि च। एकपङ्क्त्यामशिष्यन्ति युगान्ते मुनिसत्तमाः' ॥६॥
अशिष्टवन्तोऽर्थपरा नरा मद्यामिषप्रियाः। मित्रभार्यां 'भजिष्यन्ति युगान्ते पुरुषाधमाः ॥७॥
राजवृत्तिस्थिताश्चौरा 'राजानश्चौरशीलिनः। भृत्या ह्यनिर्दिष्टभुजो भविष्यन्ति युगक्षये' ॥८॥
धनानि श्लाघनीयानि सतां वृत्तमपूजितम्। अकुत्सना च पतिते भविष्यति युगक्षये ॥९॥
प्रनष्टनासाः[5] पुरुषा मुक्तकेशा विरूपिणः। ऊनषोडशवर्षाश्च प्रसोष्यन्ति तथा स्त्रियः ॥१०॥
अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः। प्रमदाः केशशूलाश्च[6] भविष्यन्ति युगक्षये ॥११॥
सर्वे ब्रह्म वदिष्यन्ति द्विजा वाजसनेयिकाः। शूद्राभा वादिनश्चैव 'ब्राह्मणाश्चान्त्यवासिनः ॥१२॥
शुक्लदन्ता[10] जिताक्षाश्च मुण्डाः काषायवाससः। शूद्रा[11] धर्मं वदिष्यन्ति शाठ्यबुद्ध्योपजीविनः[12] ॥१३॥
श्वापदप्रचुरत्वं च गवां चैव परिक्षयः। साधूनां [13]परिवृत्तिश्च विद्यादन्तगते युगे ॥१४॥
अन्त्या मध्ये निवत्स्यन्ति मध्याश्चान्त्यनिवासिनः। निर्ह्रीकाश्च प्रजाः सर्वा नष्टास्तत्र युगक्षये ॥१५॥
तपोयज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजोत्तमाः। ऋतवो विपरीताश्च भविष्यन्ति युगक्षये ॥१६॥

ब्राह्मणों का आचरण करेंगे ॥५॥ कहीं कर्म क्रिया तथा हवन आदि नहीं होंगे। मुनिश्रेष्ठो! श्रोत्रिय तथा शस्त्रजीवी (म्लेच्छ आदि) एक ही पंक्ति में भोजन करेंगे ॥६॥ मनुष्य अशिष्ट, धन कमाने में व्यस्त तथा मद्य-मांससेवी होंगे। युगान्त में नीच मनुष्य मित्रभार्यागामी होंगे ॥७॥ चोर राजाओं की वृत्ति में रहेंगे और राजा चोरों का आचरण करेंगे। युगक्षय होने पर भृत्यगण अनधिकृत वस्तुओं का उपभोग करेंगे। केवल धन का महत्त्व होगा। सज्जनों का सम्मान नहीं होगा। पतितों की निन्दा नहीं होगी ॥८-९॥ पुरुष नासिका विहीन, कुरूप तथा कटे केश वाले होंगे। सोलहवें वर्ष से पहले ही स्त्रियाँ सन्तान उत्पन्न करेंगी। देशों में अन्न का विक्रय होगा। चौराहों पर अर्थात् यत्र तत्र वेदों का विक्रय होगा। स्त्रियाँ भग विक्रय करेंगी ॥१०-११॥ सब यजुर्वेदी ब्राह्मण ब्रह्मवादी होंगे। ब्राह्मण शूद्र के समान तेजोहीन तथा विवादी होंगे॥ १२॥ चाण्डाल स्वच्छ दाँत वाले, माला धारी, मुण्डी तथा काषायवस्त्रधारी होंगे। शठबुद्धि से जीविका उपार्जन करने वाले शूद्र धर्म का व्याख्यान करेंगे ॥१३॥ हिंसक जन्तुओं की अधिकता तथा गायों का क्षय होगा। युगान्त में साधुओं की निन्दा होगी ॥१४॥ अन्तिम वर्ण वाले (शूद्र) मध्य वर्ण (क्षत्रिय आदि) हो जायेंगे और मध्य वर्ण वाले अन्तिम वर्ण के हो जायेंगे। युगक्षय में समस्त प्रजा निर्लज्ज तथा विनाशशील होगी ॥१५॥ ब्राह्मण लोग तपस्या तथा यज्ञों का फल विक्रय करेंगे। ऋतुयें विपरीत होंगी ॥१६॥

१ख कृतपापाश्च। २ख ०ण्डस्पृहाश्च। ग ०ण्डस्पृष्टाश्च। ३ख ०मा। सदा साधुद्रोहप०। ४क ख हरिष्यन्ति। ५ क ०रूपिण। मु०। ६क कलौ युगे। ७ग ०ष्टचेतना पुंसो मु०। ८क ०शूलिन्यो म०। ९ख ०णाश्चैत्यवा०। १०ख ०क्लदीक्षाञ्जितीष्याश्च। ११क ०न्तादिनासा च मु०। १२क ०ठ्यधर्मोप०। १३ग विनिवृत्तिश्च।

तथा द्विहायना 'दम्या कलौ लाङ्गलधारिण'। चित्रवर्षी च पर्जन्यो युगे क्षीणे भविष्यति॥१७॥
सर्वे शूरकुले जाता क्षमानाथा भवन्ति हि। यथा निम्ना प्रजा सर्वा भविष्यन्ति युगक्षये॥१८॥
पितृदेयानि वत्तानि भविष्यन्ति तथा सुता। न च धर्मं चरिष्यन्ति मानवा निर्गते युगे॥१९॥
ऊषरा बहुला भूमि पन्यानस्तस्करावृता। सर्वे वाणिकाश्चैव भविष्यन्ति युगक्षये॥२०॥
पितृदायान्यदत्तानि 'विभजन्ति तथा सुता। हरणे' यत्नवन्तोऽपि लोभादिभिर्विरोधिन'॥२१॥
सौकुमार्ये तथा रूपे रत्ने चोपक्षय गते। भविष्यन्ति युगस्यान्ते नार्य केशैरलकृता॥२२॥
निर्वीर्यस्य रतिस्तत्र गृहस्थस्य भविष्यति। युगान्ते समनुप्राप्ते नान्या भार्यासमा रति॥२३॥
कुशीलानार्यभूयिष्ठा वृथारूपसमन्विता। पुरुषाल्प बहुस्त्रीक तद्युगान्तस्य लक्षणम्॥२४॥
बहुयाचनको लोको न दास्यति परस्परम्। राजचौराग्निदण्डादिक्षीण' क्षयमुपैष्यति॥२५॥
अफलानि च सस्यानि तरुणा वृद्धशीलिन। अशीला सुखिनो लोके भविष्यन्ति युगक्षये॥२६॥
वर्षासु परुषा वाता नीचा शर्करवर्षिण। सदिग्ध परलोकश्च भविष्यति युगक्षये॥२७॥
वैश्या इव च राजन्या धनधान्योपजीविन। युगापक्रमणे पूर्वं भविष्यन्ति न बान्धवा॥२८॥
अप्रवृत्ता प्रपश्यन्ति'' समया शपथास्तथा। ऋण सविनयभ्रंश युगे क्षीणे भविष्यति॥२९॥
भविष्यत्यफलो हर्ष क्रोधश्च सफलो नृणाम्। अजाश्चापि निरोत्स्यन्ति पयसोऽर्थे युगक्षये॥३०॥

कलि मे दो वष के बछड हल मे जोते जायगे। युगान्त मे मेघ विचित्र ढग से बरसेगा। वीर के कुल मे उत्पन्न पुरुष क्षमायाचक होंगे। युगक्षय मे सारी प्रजायें बडी अधम होगी। पुत्र पिता को जो कुछ देंगे उसे दान समझेंगे और युगान्त मे मनुष्य धर्माचरण नही करेंगे॥१७ १९॥ अधिकतर भूमि ऊसर होगी। माग चोरो से आवृत होगे। सब मनुष्य वणिग्वृत्ति करेंगे॥२०॥ पुत्र पिता के बिना दिये हुए धन का बँटवारा करेंगे। उसे हरण करने मे यत्नशील होते हुए भी लोभ आदि के कारण वे परस्पर विरोधी बने रहेंगे। सुकुमारता, रूप तथा रत्न के क्षय हो जाने पर स्त्रियाँ केशो से ही अलकृत होगी॥२१-२२॥ शक्तिविहीन गृहस्थ को स्त्रियो मे अनुराग होगा। युगान्त होने पर स्त्री के समान दूसरी रति नही होगी (अर्थात लोग स्त्री प्रेम से बढ़कर कुछ नही मानेंगे)। लोग दुशील अनार्यप्राय तथा व्यथ के रूप मे युक्त होगे। पुरुषो की सख्या कम और स्त्रियो की अधिक होगी। यही युगान्त का लक्षण है। मागने वाले बहुत होंगे। लोग परस्पर दान आदान नही करेंगे। राजा, चोर, अग्नि दण्ड आदि से लोक क्षय होगा। सस्य फलहीन होगा। युवक वृद्धस्वभाव के होंगे। दुशील लोग सुखी होंगे॥२३ २६॥ वर्षाऋतु मे तीक्ष्ण वायु बहेगी और बालुकाकण या कंकड की वृष्टि होगी। युगक्षय मे परलोक सदेहास्पद हो जायगा॥२७॥ वैश्यो की तरह क्षत्रिय भी धन धान्य से जीविका उपार्जन करेंगे। युगान्त मे बन्धुता किसी से नहीं होगी॥२८॥ नियम-शपथ का पालन कोई नही करेगा। ऋण बहुत अविनयपूर्वक मिलेगा॥२९॥ मनुष्यो का हर्ष अफल होगा और क्रोध सफल होगा। युग के अवसान में दूध के लिए बकरियाँ भी

१क वत्सा। २ग ०लरपका। चि०। ३ख ग ०र्वे चौर०। ४ख ता स्वल्पेनाथा म०। ५क हि। जना यथाचारयुता म०। ६ख ग भजिष्यन्ति। ७ख ग ०रणाय भजिष्यति लो०। ८ख ग ०धिता। सौ०। ९क ०ण्डाना तैक्ष्ण्यात्क्षय०। १०ख नीरा। ११ग प्रविरस्यति।

अशास्त्रविहितो यज्ञ एवमेव भविष्यति। अप्रमाणं करिष्यन्ति नराः पण्डितमानिनः ॥३१॥
शास्त्रोक्तस्याप्रवक्तारो भविष्यन्ति न संशयः। सर्वं [1]सर्वं विजानाति [2]वृद्धाननुपसेव्य वै ॥३२॥
न कश्चिदकविर्नाम युगान्ते समुपस्थिते। नक्षत्राणि वियोगानि न कर्मस्था द्विजातयः ॥३३॥
चौरप्रायाश्च[3] राजानो युगान्ते समुपस्थिते। कुण्डीवृषा नैकृतिकाः सुरापा ब्रह्मवादिनः ॥३४॥
अश्वमेधेन यक्ष्यन्ते युगान्ते द्विजसत्तमाः। याजयिष्यन्त्ययाज्यांस्तु [4]तथाऽभक्ष्यस्य भक्षिणः ॥३५॥
ब्राह्मणा[5] धनतृष्णार्ता युगान्ते समुपस्थिते। भो शब्दमभिधास्यन्ति न च कश्चित्पठिष्यति ॥३६॥
एकशङ्खास्तथा नार्यो गवेधुकपिनद्धकाः (?)। नक्षत्राणि विवर्णानि विपरीता दिशो दश ॥३७॥
सन्ध्यारागो विदग्धाङ्गो[6] भविष्यति युगक्षये। प्रेषयन्ति पितॄन्पुत्रा वधूः श्वश्रूः स्वकर्मसु ॥३८॥
युगेष्वेव[7] निवत्स्यन्ति प्रमदाश्च नरास्तथा। [8]अकृत्वाऽग्राणि भोक्ष्यन्ति द्विजाश्चैवाहुताग्नयः ॥३९॥
भिक्षां बलिमदत्त्वा च भोक्ष्यन्ति पुरुषाः स्वयम्। वञ्चयित्वा पतीन्सुप्तान्गमिष्यन्ति स्त्रियोऽन्यतः ॥४०॥
न व्याधितान्नाप्यरूपान्नोद्यतान्नाप्यसूयकान्। कृते न प्रतिकर्ता च युगे क्षीणे भविष्यति ॥४१॥

मुनय ऊचुः

एवं विलम्बिते धर्मे मानुषाः [9]करपीडिताः। कुत्र देशे निवत्स्यन्ति किमाहारविहारिणः ॥४२॥

सौंपी जायेंगी। अशास्त्रविहित यज्ञ होगा। अपने को पण्डित मानने वाले व्यक्ति बिना प्रमाण के सब कुछ करेंगे ॥३०-३१॥ शास्त्रीय वचनों के वक्ता नहीं मिलेंगे इसमें संशय की बात नहीं है। बिना विद्वानों की सेवा किये ही सब अपने को सर्वज्ञ समझेंगे। कोई भी अपने को अविद्वान नहीं मानेगा। नक्षत्र आदि का ज्ञाता कोई न होगा। द्विजातिगण कर्मठ नहीं होंगे। युगान्त उपस्थित होने पर राजा करीब-करीब चोर ही होंगे। द्विजश्रेष्ठो! युगान्त में जारज क्रूर कर्म करने वाले तथा मद्यपायी लोग ब्रह्मवादी होंगे और अश्वमेध यज्ञ करेंगे। वे अनधिकारियों को यज्ञ करायेंगे तथा अभक्ष्य भक्षण करेंगे ॥३२-३५॥ युगावसान में धन की तृष्णा से पीड़ित ब्राह्मण 'भो' शब्द का उच्चारण करेंगे (अर्थात् अनधिकारियों से यज्ञ करायेंगे) पर पढ़ेगा कोई नहीं (अर्थात् ब्राह्मण लोग मूर्ख होंगे)। स्त्रियाँ एक शंख वाली तथा तृण धान्य रखने वाली होंगी। नक्षत्र विवर्ण मालूम पड़ेंगे। दसों दिशायें विपरीत दीखेंगी। सन्ध्या समय का रंग विचित्र सा दीखेगा। पुत्र पिता को तथा बहू सास को अपने कार्यों के लिये भेजेगी। इस प्रकार युगावसान में स्त्री-पुरुष रहा करेंगे। द्विजगण बिना अग्नि में आहुतियाँ डाले ही भोजन करेंगे। पुरुष स्वयम् बिना भिक्षा तथा भूत-बलि दिये ही खायेंगे। सोये पतियों को ठगकर स्त्रियाँ अन्यत्र चली जायेंगी। युग के क्षय-काल में रोगी, कुरूप, उपद्रवी तथा निन्दकों का कोई प्रतीकार करने वाला नहीं होगा ॥३६-४१॥

मुनियों ने कहा—इस प्रकार धर्म के नाश होने पर कर के भार से दबे हुए मनुष्य किस देश में निवास करेंगे? उनका आहार विहार कैसा होगा? वे क्या कर्म करेंगे? क्या चाहेंगे? उनकी लंबाई-चौड़ाई

१क ०वं न जा०। २क ०नन्न प्रसे०। ३ग ०रप्रिया०। ४ग तन्नाभ०। ५ग ०णा ग्रणन्तु०।
६ग ०न्नाङ्गहो। ७घ ०गष्वेव। ८स ग ०कृत्वाग्रा०। ९क करपी०।

किंकर्माणः किमीहन्तः किंप्रमाणाः किमायुषः। कां च काष्ठां समासाद्य प्रपत्स्यन्ति[1] कृतं युगम् ॥४३॥

व्यास उवाच

अत ऊर्ध्वं च्युते धर्मे गुणहीनाः प्रजास्तथा। शीलव्यसनमासाद्य प्राप्स्यन्ति ह्रासमायुषः ॥४४॥
आयुर्हान्यावलग्लानिर्वलग्लान्या विवर्णता। वैवर्ण्याद्व्याधिसंपीडा निर्वेदो व्याधिपीडनात् ॥४५॥
निर्वेदादात्मसंबोधः संबोधाद्धर्मशीलता। एवं गत्वा परां काष्ठां प्रपत्स्यन्ति कृतं युगम् ॥४६॥
उद्देशतो[2] धर्मशीलाः केचिन्मध्यस्थतां गताः। [3]किं धर्मशीलाः [4]केचित्तु केचिदत्र कुतूहलाः ॥४७॥
प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणमिति निश्चिताः[5]। अप्रमाणं[6] करिष्यन्ति सर्वमित्यपरे[7] जनाः ॥४८॥
नास्तिक्यपरताश्चापि केचिद्धर्मविलोपकाः[8]। भविष्यन्ति नरा मूढा द्विजाः पण्डितमानिनः ॥४९॥
तदात्वमात्रश्रद्धेया शास्त्रज्ञानबहिष्कृताः। दाम्भिकास्ते भविष्यन्ति नरा ज्ञानविलोपिताः ॥५०॥
तया[9] विलुलिते धर्मे जनाः श्रेष्ठपुरस्कृताः। शुभान्समाचरिष्यन्ति दानशीलपरायणाः ॥५१॥
सर्वभक्षाः स्वयंगुप्ता निर्घृणा निरपत्रपाः। भविष्यन्ति तदा लोके तत्कषायस्य लक्षणम् ॥५२॥
कषायोपप्लवे काले [10]ज्ञाननिष्ठाप्रणाशने। सिद्धिमल्पेन कालेन प्राप्स्यन्ति निरुपस्कृताः ॥५३॥
विप्राणां शाश्वतीं वृत्तिं यदा वर्णावरे जनाः[1]। ''संश्रयिष्यन्ति भो विप्रास्तत्कषायस्य[1] लक्षणम् ॥५४॥

का कितन प्रमाण होगा उनकी आयु कितनी होगी ? कितने समय के वाद पुन वे किस सीमा तक पहुँचकर सत्ययुग मे प्रवेश करेंगे ? ॥४२-४३॥

व्यास ने कहा—धर्म का ह्रास होने पर प्रजा गुणविहीन होगी और दुर्व्यसन के कारण उसकी आयु अल्प होगी ॥४४॥ आयु की हानि होने से वल की हानि होगी। बलहानि से नीचता होगी और नीचता से व्याधियाँ होगी। व्याधियो से अत्यन्त खेद और उससे आत्मबोध होगा। आत्म-जागृति के बाद धर्मशीलता होगी। इस प्रकार पराकाष्ठा (अन्तिम सीमा) पर पहुँचकर प्रजा सत्ययुग मे पहुँचेगी ॥४५-४६॥ कोई मनुष्य कार्यवश धर्मात्मा बनेगा, कोई न धार्मिक न अधार्मिक अर्थात् मध्य कोटि मे रहेगा, कोई क्षुद्र धर्म को अपनायेगा; कोई धर्म के सम्बन्ध मे उत्सुकता प्रकट करेगा। प्रत्यक्ष और अनुमान दो ही प्रमाण माने जायेंगे। कोई तो प्रमाण को बिल्कुल ही नही मानेगा ॥४७-४८॥ कोई महानास्तिक होगा तो कोई धर्मों का सहारक होगा। द्विजगण ! मूर्ख मनुष्य भी अपने को पण्डित समझेंगे ॥४९॥ वे वर्तमान समय मे होने वाले पदार्थों मे श्रद्धा रखने वाले और शास्त्रज्ञान से शून्य हो जायेंगे। मनुष्य ज्ञानशून्य तथा दंभी होगे। इस प्रकार धर्म के छिन्न-भिन्न हो जाने पर श्रेष्ठ व्यक्तियो से पुरस्कृत लोग दान के स्वभाव मे परायण होकर शुभ कर्मों का समाचरण करेंगे। कलियुग मे मनुष्य सर्वभक्षी, चोर, घृणा करने वाले तथा निर्लज्ज होंगे। यही कलि का लक्षण समझिये ॥५०-५२॥ कलि के उपद्रवकाल मे मनुष्यों की ज्ञाननिष्ठा नष्ट हो जायेगी। पर कर्मों की सिद्धि अल्पकाल की ज्ञाननिष्ठा मे ही हो जायेगी। ब्राह्मणो की वृत्ति नीच वर्ण के लोग करेंगे। यही कलि का लक्षण समझिये ॥५३-५४॥ कलियुग

१ख ०परयन्ति। २क उद्देशिनो। ३कि मर्म०। ४क ०चित्तत्र। स ०वित्कौतू० ५क ०ण धरि०। ६ख ०परा प्रजा। मा०। ७क ०याऽसिले गते ध०। ८क स ०नविद्याप्र०। ९ग ०ना। निखिलेन प्रदीप्य०। १०ग ०न्ति तत्र०। ११क स ०स्तदा निष्टाकले स्मृता। म०।

महायुद्धं महावर्षं महावातं महातपः। भविष्यति युगे क्षीणे तत्कषायस्य लक्षणम् ॥५५॥
विप्ररूपेण यक्षांसि राजानः कर्णवेदिनः[1]। पृथिवीमुपभोक्ष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते ॥५६॥
निःस्वाध्यायवषट्काराः 'कुनेतारोऽभिमानिनः। क्रव्यादा ब्रह्मरूपेण सर्वभक्ष्या वृथाव्रताः ॥५७॥
'मूर्खाश्चार्थपरा लुब्धाः क्षुद्राः क्षुद्रपरिच्छदाः'। व्यवहारोपवृत्ताश्च च्युता धर्माश्च शाश्वतात् ॥५८॥
हर्तारः पररत्नानां[5] परदारप्रधर्षकाः। कामात्मानो दुरात्मानः सोपधाः प्रियसाहसाः ॥५९॥
तेषु प्रभवमाणेषु जनेष्वपि च सर्वशः। अभाविनो[6] भविष्यन्ति मुनयो बहुरूपिणः ॥६०॥
कलौ[7] युगे समुत्पन्नाः प्रधानपुरुषाश्च ये। कथायोगेन तान्सर्वान्पूजयिष्यन्ति मानवा. ॥६१॥
सस्यचौरा भविष्यन्ति तथा चैलापहारिणः। भोक्ष्यभोज्यहराश्चैव करण्डाना च हारिणः ॥६२॥
चौराश्चौरस्य हर्तारो हन्ता हन्तुर्भविष्यति। चौरैश्चौरक्षये चापि कृते क्षेमं भविष्यति ॥६३॥
नि.सारे क्षुभिते काले[8] निष्क्रिये संव्यवस्थिते। नरा वनं श्रयिष्यन्ति करभारप्रपीडिताः ॥६४॥
यज्ञकर्मण्युपरते रक्षांसि श्वापदानि च। कीटमूषिकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान् ॥६५॥
क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं सामग्र्यं चैव बन्धुषु। उद्देशेषु नरा:[9] श्रेष्ठा भविष्यन्ति युगक्षये ॥६६॥

के अवसान म महायुद्ध होगा, अत्यन्त वृष्टि होगी, वायु बहुत जोर से बहेगी और धूप अत्यन्त तीक्ष्ण होगी। यही कलि का लक्षण समझिए ॥५५॥ युगान्त उपस्थित होने पर यक्षगण ब्राह्मण का रूप धारण कर और राजा लोग कणवेदी होकर (अर्थात् केवल सुनी हुई बातो पर चलने वाले) पृथिवी का उपभोग करेंगे ॥५६॥ वे स्वाध्याय तथा वषट्कार से रहित, अभिमानी, कुमार्ग पर लोगा को ले जाने वाले, सर्वभक्षी, मिथ्याव्रती, मूर्ख, धनलोलुप, लोभी, क्षुद्र, तुच्छ साधनो मे युक्त, लोकव्यवहार को बिगाडने वाले, धर्मभ्रष्ट, दूसरे के रत्नो के अपहर्ता, परस्त्री-गामी, कामी, दुरात्मा, छली तथा दु साहसी होगे। उनके आधिक्य हो जाने पर धूर्त मनुष्य अनेक रूप बनाकर मुनि कहलायेगे ॥५७-६०॥ कलियुग म जो प्रधान पुरुष उत्पन्न होगे, उन सबकी मनुष्य कथा के योग से (अर्थात् कथा रचकर) पूजा किया करेंगे ॥६१॥ कलि मे मनुष्य सस्य-हर्ता, तेल हर्ता, भक्ष्य-भोज्य-हर्ता करण्ड (डाली) के अपहर्ता, चोरा के चार तथा हत्यारा के हत्यारे हागे। चोरो के द्वारा चोरो का क्षय कर दिये जाने पर सत्ययुग मे जाकर मनुष्या का कल्याण होगा ॥६२ ६३॥ सारहीन, क्रियाशून्य तथा उद्वेगकारी काल उपस्थित होने पर मनुष्य कर के भार से पीडित होकर वन का आश्रय लेंगे ॥६४॥ यज्ञा के नष्ट हो जाने पर राक्षस, हिंसक पशु कीडे, चूहे तथा साँप मनुष्या का काट खायेंगे ॥६५॥ युग समाप्त हो जाने पर फिर से कल्याण, सुभिक्ष, आरोग्य तथा सकल साधन मनुष्या का प्राप्त होंग ॥६६॥ कलियुग मे मनुष्य स्वय रक्षक, स्वय चोर

१ख कर्मवादि०। २क कुनरा लोभमा०। ३क ख मूर्खा स्वाय०। ४ख ०रिग्रहा। व्य०। ५क ०रयान्याना। ६ख अभिमानिनो। ७क कृते। ८ख लोके। ९क ख नरश्रे०।

स्वयंपालाः स्वयं [1]चौराः [2]प्लवसंभारसंभृताः। मण्डलैः संभविष्यन्ति देशे देशे पृथक्पृथक् ॥६७॥
स्वदेशेभ्यः परिभ्रष्टा निःसाराः सह बन्धुभिः। नराः सर्वे भविष्यन्ति तदा कालपरिक्षयात् ॥६८॥
ततः सर्वे समादाय कुमारान्प्रद्रुता भयात्। कौशिकीं [3]संतरिष्यन्ति नराः क्षुद्भयपीडिताः ॥६९॥
[4]अङ्गान्वङ्गान्कलिङ्गांश्च काश्मीरानथ [5]कोशलान्। ऋषिकान्तगिरिद्रोणीः [6]संश्रयिष्यन्ति मानवाः ॥७०॥
कृत्स्नं च हिमवत्पार्श्वं कूलं च लवणाम्भसः। विविधं जीर्णपत्रं च वल्कलान्यजिनानि च ॥७१॥
स्वयं कृत्वा निवत्स्यन्ति तस्मिन्भूते युगक्षये। अरण्येषु च वत्स्यन्ति नरा [7]म्लेच्छगणैः सह ॥७२॥
नैव शून्या [8]नवारण्या भविष्यति वसुंधरा। अगोप्तारश्च गोप्तारो भविष्यन्ति [9]नराधिपाः ॥७३॥
मृगैर्मत्स्यैर्विहङ्गैश्च श्वापदैः सर्पकीटकैः। मधुशाकफलैर्मूलैर्वर्तयिष्यन्ति मानवाः ॥७४॥
शीर्णपर्णफलाहारा वल्कलान्यजिनानि च। स्वयं कृत्वा निवत्स्यन्ति यथा मुनिजनस्तथा ॥७५॥
[10]बीजानामकृतस्नेहा[11] आहताः [12]काष्ठशङ्कुभिः। अजैडकं[13] खरोष्ट्रं च पालयिष्यन्ति नित्यशः ॥७६॥
नदीस्रोतांसि रोत्स्यन्ति तोयार्थं कूलमाश्रिताः। पक्वान्नव्यवहारेण विपणन्तः परस्परम् ॥७७॥
[14]तनूरुहैर्यथाजातैः [15]समलान्तरसंभृतैः। बह्वपत्याः प्रजाहीनाः कुलशीलविवर्जिताः ॥७८॥
एवं भविष्यन्ति तदा नराश्चाधर्मजीविनः। हीना[16] हीनं तथा धर्मं प्रजा समनुवत्स्यति ॥७९॥

तथा उपद्रवों से कातर होकर देश-देश में पृथक्-पृथक् अपना-अपना संघ बनायेंगे। युग के क्षय होने पर भाई-बन्धुओं सहित समस्त मनुष्य सारहीन तथा स्वदेश-भ्रष्ट हो जायेंगे। तब सब लोग भय के मारे अपने बाल-बच्चों को लेकर कौशिकी नदी के पार करके भाग जायेंगे ॥६७-६९॥ क्षुधा और भय से पीडित मनुष्य अंग, वंग, कलिंग, कश्मीर तथा कोशल देश में जाकर वास करेंगे। हिमालय की तराई में तथा क्षारसमुद्र के तटप्रांत में मनुष्य अनेक प्रकार की जीर्ण पत्तियाँ खाकर वृक्ष के छाल तथा चर्म पहन कर किसी तरह दिन काटेंगे। वनों में म्लेच्छों के साथ मनुष्य निवास करेंगे ॥७०-७२॥ पृथ्वी पर नये-नये वन होंगे। यह लोगों से शून्य नहीं होगी। रक्षक राजा लोग ही भक्षक हो जायेंगे ॥७३॥ मृग, मत्स्य, पक्षी, हिंसक जीव, साँप तथा कीडों के साथ मनुष्य मधु, शाक, फल तथा कन्द खाकर रहेंगे। सडे-गले पत्र तथा फल खाकर वल्कल तथा चर्म पहन कर मनुष्य मुनि की तरह रहेंगे। मनुष्य बीज नहीं बोयेंगे, बल्कि बकरे, भेंडे, गधे तथा ऊँट पालेंगे। वे जल के लिये बाँध बाँधकर नदियों की धाराओं को रोकेंगे, बाजारों में बने-बनाये भोजन का क्रय विक्रय करेंगे। उनके शरीर बडे-बडे रोओं से तथा मल से आच्छादित रहेंगे वे बहुत सन्तान वाले, सन्तानहीन तथा कुलमर्यादा से शून्य होंगे ॥७४-७८॥ उस समय ऐसे अधमजीवी मनुष्य होंगे। दीन प्रजा तुच्छ धर्म को अपनायेगी। मनुष्यों की आयु की अवधि

१ख चौरा युगस०। २क ०सयुता। ३ग सश्रयिष्य०। ४क ०श्च तथा मगधमेकला०। ५ख मेक-लान्। ६क ऋषीक ते गि०। ख ऋषीसत्वा गि०। ७क भिक्षुगणैः। ८क न चार०। ९घ ०रा वृता। मू०। १०ख बीजना०। ११ख ०कृतिस्नेहा हन्तु का०। १२क ०ष्ठजन्तुभि। १३क अजाण्डजान्सरो०। १४क ०थायातममलान्तर०। १५ग समूलोत्तर०। १६ख ०नाधीन।

आयुस्तत्र च मर्त्यानां परं त्रिंशद्भविष्यति। दुर्बला विषयग्लाना 'जराशोकैरभिप्लुताः ॥८०॥
भविष्यन्ति तदा तेषां रोगैरिन्द्रियसंक्षयः। आयुःप्रत्ययसंरोधाद्विषयादु (यैरु) परंस्यते ॥८१॥
शुश्रूषवो भविष्यन्ति साधूनां दर्शने रताः। सत्यं च प्रतिपत्स्यन्ति' व्यवहारोपसंक्षयात् ॥८२॥
भविष्यन्ति च कामानामलाभाद्धर्मशीलिनः। करिष्यन्ति च' संस्कारं' स्वयं' च क्षयपीडिताः ॥८३॥
एवं शुश्रूषवो दाने 'सत्ये 'प्राण्यभिरक्षणे'। ततः पादप्रवृत्ते तु धर्मे श्रेयो 'निपत्स्यते ॥८४॥
तेषां लब्धानुमानानां गुणेषु परिवर्तताम्। स्वादु किंचिति विज्ञाय धर्म एव च दृश्यते ॥८५॥
यथा हानिक्रमं प्राप्तास्तथा ऋद्धिक्रमं गताः। प्रगृहीते ततो धर्मे प्रपश्यन्ति' कृत युगम् ॥८६॥
साधुवृत्तिः कृतयुगे कषाये हानिरुच्यते। एक ''एव तु कालोऽयं हीनवर्णो यथा शशी ॥८७॥
छन्नश्च तमसा सोमो यथा कलियुगं तथा। मुक्तश्च तमसा सोम एवं कृतयुगं च तत् ॥८८॥
अर्थवादः परं ब्रह्म वेदार्थ इति त विदुः। ''अविविक्तमविज्ञातं ''दायाद्यमिह'' धार्यते ॥८९॥
इष्टवादस्तपो नाम तपो हि स्यविरीकृतः। गुणैः कर्माभिनिर्वृत्तिर्गुणाः'' शुध्यन्ति कर्मणा ॥९०॥
आशीस्तु पुरुषं दृष्ट्वा देशकालानुवर्तिनी। युगे युगे यथा कालमृषिभिः समुदाहृता'' ॥९१॥

तीस तक होगी। वे दुर्बल, विषयलोलुप तथा बुढापा और शोक से आक्रान्त होंगे ॥७९-८०॥ रोगो से उनकी इन्द्रियाँ क्षीण हो जायेंगी। आयु-क्षय होने के कारण वे विषय से विरत हो जायेंगे। तथा साधुओ की शुश्रूषा एव दर्शन मे निरत होगे। व्यवहार का क्षय होने पर उनमे सत्यता का उदय होगा। कामो की अप्राप्ति से उनमे धर्म-जागरूकता होगी। तब वे अभाव से पीडित होकर स्वय अपना सस्कार करेंगे ॥८१-८३॥ इस प्रकार सेवा, दान, सत्य तथा जीवरक्षा मे उनकी रुचि होगी। तब चारो चरण लेकर धर्म के प्रादुर्भूत होने पर उनका कल्याण होगा ॥८४॥ उनके गुणो मे भी परिवर्तन होगा। तब वे अनुमान करेंगे कि धर्म ही ठीक है। पश्चात् जैसे उनकी हानि हुई थी वैसे फिर समृद्धि होगी। धर्म को ग्रहण कर लेने पर वे सत्ययुग का दर्शन करते है ॥८५-८६॥ सत्ययुग मे मनुष्यो की साधु-वृत्ति होती है और कलियुग मे हानि होती है। यही एक काल है, जो चन्द्रमा की तरह मन्दवर्ण है ॥८७॥ जैसे चन्द्रमा अधकार से आच्छन्न होता है उसी तरह कलियुग भी पापो से आवृत होता है। अन्धकार से मुक्त होने पर चन्द्रमा की तरह कलियुग भी पापो से मुक्त होकर सुशोभित होता है। अर्थवाद परब्रह्म है और वेदार्थ भी उसी को जानना चाहिये। वह अपने से अपृथक् तथा अविज्ञेय सृष्टि का धारण करता है। इष्टवाद तप का नाम है और तप को इसी ने सवर्धित किया है। गुणो से कर्मों की निष्पत्ति होती है और गुण कर्मों से शुद्ध होते हैं ॥८८-९०॥ युग-युग मे समय-समय पर मनुष्यो को देखकर ऋषि लोग देश-काल के अनुसार उन्हें आशीर्वाद देते हैं। प्रति युग मे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा देवताओ की प्रतिक्रिया होती है और

१क ०राक्लेशैर०। २ख पश्यन्ति। ३ग न। ४ग सकोच। ५क स्वपक्षमय०। ख स्वपक्षक्ष०। ६क सत्यप्रा०। ७क ०रक्षिण। त०। ८ग ०णे। चतुष्पदे प्र०। ९क विपत्स्यति। १०ख ०पत्स्यन्ति। ११क ख ०व चतुष्कालो ही०। १२ख ख ०विमुक्त०। १३ग ०यादमि०। १४ख ०मिवधा० १५ग ०र्गुणैस्तथ्येन क०। १६ग ०हृतम्।

धर्मार्थकाममोक्षाणां देवानां[1] च प्रतिक्रिया। आशिषश्च शिवाः पुण्यास्तथैवाऽऽयुर्युगे युगे ॥९२॥
तथा युगानां परिवर्तनानि,[2] चिरप्रवृत्तानि विधिस्वभावात्
क्षणं न सतिष्ठति जीवलोकः, क्षयोदयाभ्यां परिवर्तमानः ॥९३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे भविष्यकथनं नाम
एक त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

अथ द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यास-मुनिसवादे प्राकृतप्रतिसचरकथनम्

व्यास उवाच

सर्वेषामेव भूताना[3] त्रिविधः प्रतिसंचरः। नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवाऽऽत्यन्तिको मतः ॥१॥
ब्राह्मो नैमित्तिकस्तेषां कल्पान्ते प्रतिसंचरः। आत्यन्तिको वै मोक्षश्च प्राकृतो द्विपरार्धिकः ॥२॥

मुनय ऊचुः

[4]परार्धसंख्यां भगवंस्त्वमाचक्ष्व यथोदिताम्। द्विगुणीकृतयज्ज्ञेयः प्राकृतः प्रतिसंचरः ॥३॥

कल्याणमय एवम् पवित्र आशीर्वाद दिये जाते हैं। विधिवशात् युगो का परिवर्तन होता रहता है। उत्पत्ति तथा प्रलय से युक्त जीवलोक क्षण भर भी एक रूप मे नही रहता है ॥९१-९३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे व्यास और ऋषियो के सवाद-प्रकरण मे भविष्यकथन नामक
दो सौ एकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३१॥

अध्याय २३२

प्राकृत प्रलय का वर्णन

व्यास ने कहा—समस्त प्राणियो का प्रलय तीन प्रकार का माना गया है। एक नैमित्तिक दूसरा प्राकृतिक और तीसरा आत्यन्तिक। (कल्प के अन्त में होने वाला) ब्राह्म प्रलय नैमित्तिक कहलाता है और मोक्ष को आत्यन्तिक कहते हैं। दो परार्ध सख्या बीत जाने पर होने वाला प्रलय प्राकृतिक कहलाता है ॥१-२॥

मुनियों ने कहा—भगवन्! परार्ध सख्या हमे बतलाइये, जिसके द्विगुण कर देने से प्राकृत प्रलय का बोध होता है ॥३॥

१ग वेदाना। २क ०नि यथा यथा वै प्रकृतिस्व०। ३क ख वर्णानां। ४ग ०सख्या म०।

व्यास उवाच

स्थानात्स्थानं 'दशगुणमेकैकं गण्यते द्विजा' । ततोऽष्टादशमे भागे परार्धमभिधीयते ॥४॥
परार्धं द्विगुणं यत्तु प्राकृतः स लयो द्विजाः । तदाऽव्यक्तेऽखिलं व्यक्तं सहेतौ लयमेति वै ॥५॥
निमेषो मानुषो योऽयं मात्रामात्रप्रमाणतः । तैः पञ्चदशभिः काष्ठा त्रिंशत्काष्ठास्तथा कला ॥६॥
नाडिका तु प्रमाणेन कला च(श्च)दश पञ्च च' । उन्मानेनाम्भसः सा तु पलान्यर्धत्रयोदश ॥७॥
हेममाषैः कृतच्छिद्रा' चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः । मागधेन प्रमाणेन जलप्रस्थस्तु स स्मृतः ॥८॥
नाडिकाभ्यामथ द्वाभ्यां मुहूर्तो द्विजसत्तमाः । अहोरात्रं मुहूर्तास्तु त्रिंशन्मासो दिनैस्तथा ॥९॥
मासैर्द्वादशभिर्वर्षमहोरात्रं' तु तद्दिवि । त्रिभिर्वर्षशतैर्वर्षं षष्ट्या चैवासुरद्विषाम् ॥१०॥
तैस्तु द्वादशसाहस्रैश्चतुर्युगमुदाहृतम् । चतुर्युगसहस्रं तु कथ्यते ब्रह्मणो दिनम् ॥११॥
स कल्पस्तत्र मनवश्चतुर्दश द्विजोत्तमाः । तदन्ते चैव भो विप्रा ब्रह्मनैमित्तिको लयः ॥१२॥
तस्य स्वरूपमत्युग्रं द्विजेन्द्रा गदतो मम । शृणुध्वं प्राकृतं भूयस्ततो वक्ष्याम्यहं लयम् ॥१३॥
चतुर्युगसहस्रान्ते क्षीणप्राये महीतले । अनावृष्टिरतीवोग्रा जायते' शतवार्षिकी ॥१४॥

(व्यास ने कहा—द्विजगण ! एक स्थान से दूसरे एक-एक स्थान को दश गुना करके गिनिये, उसके बाद अठारहवें स्थान तक गिनने पर जो अंतिम संख्या होती है, उसका नाम परार्ध है। द्विगुण परार्ध (का काल) प्राकृत लय कहलाता है। उस समय अव्यक्त ब्रह्म में व्यक्त जगत् का लय हो जाता है। मनुष्य का निमेष (पलक गिरने का काल) मात्रा कहलाता है, क्योंकि एक मात्रा वाले अक्षर के उच्चारण में जितना समय लगता है, उतना निमेष में भी लगता है। पन्द्रह निमेषों की एक काष्ठा और तीस काष्ठाओं की एक कला होती है। १५ कला एक नाडी का प्रमाण है ॥१२॥ पल तांबे के बने हुए जल के पात्र से नाडी का ज्ञान होता है। उस पात्र में ४ अंगुल लंबी, ४ माशे की सुवर्णमयी शलाका से छिद्र किया जाता है उस छिद्र को ऊपर करके जल में डुबो देने पर जितनी देर में वह पात्र भर जाय, वही एक नाडी का समय है। मगधदेशीय माप से वह पात्र जलप्रस्थ कहलाता है॥४-८॥ द्विजश्रेष्ठो ! दो नाडियों (१२ क्षणों) का एक मुहूर्त होता है। तीस मुहूर्तों का एक अहोरात्र (दिन और रात) होता है और तीस अहोरात्रों का एक मास होता है॥९॥ बारह मासों का एक वर्ष होता है। यही एक वर्ष देवताओं का एक अहोरात्र होता है। तीन सौ साठ वर्षों का देवताओं का एक वर्ष होता है। देवताओं के बारह हजार वर्ष चार युग माने गये हैं। सहस्र बार चारों युगों के बीत जाने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है॥१०-११॥ वही कल्प कहलाता है। उसमें चौदह मनु हो जाते हैं।)विप्रवृन्द ! उसके अन्त में ब्रह्मा का नैमित्तिक लय होता है॥१२॥ द्विजश्रेष्ठो ! उस लय का स्वरूप अत्यन्त उग्र है। उसे पहले सुन लीजिये। बाद में प्राकृत लय का वर्णन करूँगा॥१३॥ नैमित्तिक लय में पृथ्वी क्षीण हो जाती है सौ वर्षों तक भयंकर अतिवृष्टि होती

१ग ०मेकमस्माद्गण्य०। २ग च। तन्मा०। ३क ०छिद्रश्चतु०। ४क ०वर्षं तन्मानपरिकीर्तितम्। शतैस्तैस्तु चतुःषष्ट्या वर्षं वै त्रिदिवौकसाम्। तै०। ५क ०ते दशवा०। ख ०ते वार्षिकी तदा। त०।

ततो यान्यल्पसाराणि तानि[1] सत्त्वान्यनेकशः[2]। क्षयं यान्ति मुनिश्रेष्ठाः[3] पार्थिवान्यतिपीडनात् ॥१५॥
ततः स भगवान्कृष्णो [4]रुद्ररूपी तथाऽव्ययः। क्षयाय यतते कर्तुमात्मस्थाः सकलाः प्रजाः ॥१६॥
ततः स [5]भगवान्विष्णुर्भानोः सप्तसु रश्मिषु। स्थितः पिबत्यशेषाणि जलानि मुनिसत्तमाः ॥१७॥
पीत्वाऽम्भांसि समस्तानि [6]प्राणिभूतगतानि वै। शोषं नयति भो विप्राः समस्तं पृथिवीतलम् ॥१८॥
समुद्रान्सरितः शैलाञ्शैलप्रस्रवणानि च। पातालेषु च यत्तोयं तत्सर्वं नयति क्षयम् ॥१९॥
[7]ततस्तस्याप्यभावेन[8] तोयाहारोपबृंहितः। सहस्ररश्मयः सप्त जायन्ते तत्र भास्कराः ॥२०॥
अधश्चोर्ध्वं च ते दीप्तास्ततः सप्त दिवाकराः[9]। दहन्त्यशेषं त्रैलोक्यं सपातालतलं द्विजाः ॥२१॥
दह्यमानं तु तैर्दीप्तैस्त्रैलोक्यं दीप्तभास्करैः। साद्रिनगार्णवाभोगं निःस्नेहमभिजायते ॥२२॥
ततो निर्दग्धवृक्षाम्बु त्रैलोक्यमखिलं द्विजाः। भवत्येषा च वसुधा कूर्मपृष्ठोपमाकृतिः ॥२३॥
ततः कालाग्निरुद्रोऽसौ भूतसर्गहरो हरः। शेषाहिश्वाससंतापात्पातालानि दहत्यधः ॥२४॥
पातालानि समस्तानि स दग्ध्वा ज्वलतो महान्। भूमिमभ्येत्य सकलं दग्ध्वा तु वसुधातलम् ॥२५॥
भुवो लोकं ततः सर्वं स्वर्गलोकं च दारुणः। ज्वालामालामहावर्तस्तत्रैव परिवर्तते ॥२६॥
अम्बरीषमिवाऽऽभाति त्रैलोक्यमखिलं तदा। ज्वालावर्तपरीवारमुपक्षीणबलास्ततः ॥२७॥
ततस्तापपरीतास्तु लोकद्वयनिवासिनः। हृतावकाशा गच्छन्ति महर्लोकं द्विजास्तदा ॥२८॥

रहती है ॥१४॥ उससे जितने अल्प सार वाले जीव हैं, नष्ट हो जाते हैं। मुनिश्रेष्ठो! पृथिवी के जितने पदार्थ हैं, उनका नाश हो जाता है ॥१५॥ तब रुद्र रूपी अविनाशी भगवान् कृष्ण समस्त प्रजा को विनष्ट करने के लिये यत्न करते हैं ॥१६॥ तब भगवान् विष्णु सूर्य की सातों रश्मियों में स्थित होकर अशेष जल को सोख लेते हैं ॥१७॥ प्राणियों में व्याप्त समस्त जल को पीकर भगवान् सम्पूर्ण पृथ्वी को सुखा देते हैं। समुद्र, नदियों, पर्वतों, झरनों तथा पातालों में जो जल रहता है, उस सम्पूर्ण जल को सोख लेते है। सर्वत्र जल के अभाव हो जाने पर जल पीकर परिपुष्ट हुए सूर्य सात हो जाते हैं। तब ऊपर-नीचे सर्वत्र सूर्य तपाने लगते हैं, पाताल सहित तीनों लोक को जला डालते हैं ॥१८-२१॥ पर्वत और समुद्र भी निर्दग्ध हो जाते हैं। वृक्ष, जल आदि वस्तुओं के जल जाने पर पृथ्वी की आकृति कछुए की पीठ के समान हो जाती है ॥२२-२३॥ तब प्राणियों की सृष्टि के संहर्ता रुद्र कालाग्नि का रूप धारण करते है। शेषनाग के श्वास की उष्णता से पाताल जल जाता है। समस्त पातालों को जलाकर वह भयंकर लपटें सम्पूर्ण पृथ्वीतल को जला डालती हैं ॥ २४-२५॥ तब वह दारुण ज्वाला समूह भूलोक और स्वर्गलोक को निर्दग्ध कर देता है। तीनों लोक भ्राष्ट्र (भाड) की तरह मालूम पड़ते हैं। दोनों लोकों (भूलोक और स्वर्गलोक) के निवासी प्राणी ज्वालाओं से संतप्त होकर महर्लोक को जाते हैं ॥२६-२८॥ वहाँ से भी अत्यन्त संतप्त होकर जनलोक को जाते हैं। तब रुद्ररूपी विष्णु सम्पूर्ण जगत् को जला कर

१ग सर्गाण्यने०। २क ०शः। क्षीयन्ते मुनयः श्रे०। ३क ०श्रेष्ठा अन्नाभावे तु जन्तवः। तः०। ४क स ०रूपधरोऽव्य०। ५क ०वान्कृष्णो भानो। ६क ग ०गणानि। ७ख ०स्तस्य तु बीजेन। ८ग ०स्यानुभा०। ९ग हरिः।

तस्मादपि महातापतप्ता लोकास्ततः परम्। गच्छन्ति जनलोकं ते दशावृत्या परैषिणः ॥२९॥
ततो दग्ध्वा जगत्सर्वं रुद्ररूपी जनार्दनः। मुखनिःश्वासजान्मेघान्करोति मुनिसत्तमाः ॥३०॥
ततो गजकुलप्रख्यास्तडिद्वन्तो निनादिनः। उत्तिष्ठन्ति तदा व्योम्नि घोराः संवर्तका घना ॥३१॥
केचिदञ्जनसंकाशाः केचित्कुमुदसंनिभाः। धूमवर्णा घनाः केचित्केचित्पीताः पयोधराः ॥३२॥
केचिद्धरिद्रावर्णाभा लाक्षारसनिभास्तथा। केचिद्वैदूर्यसंकाशा इन्द्रनीलनिभास्तथा ॥३३॥
शङ्खकुन्दनिभाश्चान्ये जातीकुन्दनिभास्तथा। इन्द्रगोपनिभाः केचिन्मनःशिलनिभास्तथा ॥३४॥
पद्मपत्रनिभाः केचिदुत्तिष्ठन्ति घना घनाः। केचित्पुरवराकाराः केचित्पर्वतसनिभाः ॥३५॥
कूटागारनिभाश्चान्ये केचित्स्थलनिभा घनाः। महाकाया महारावा पूरयन्ति नभस्तलम् ॥३६॥
वर्षन्तस्ते महासारास्तमग्निमतिभैरवम्। शमयन्त्यखिलं विप्रास्त्रैलोक्यान्तरविस्तृतम् ॥३७॥
नष्टे चाग्नौ शतं तेऽपि वर्षाणामधिकं घनाः। प्लावयन्तो जगत्सर्वं वर्षन्ति मुनिसत्तमाः ॥३८॥
धाराभिरक्षमात्राभिःप्लावयित्वाऽखिला भुवम्। भुवो लोकं तथैवोर्ध्वं प्लावयन्ति दिवं द्विजाः ॥३९॥
अन्धकारीकृते लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे। वर्षन्ति ते महामेघा वर्षाणामधिकं शतम् ॥४०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे संहारलक्षणकथनं नाम
द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३२॥

अपने मुख के निःश्वास से मेघों को उत्पन्न करते हैं ॥२९-३०॥ फिर हाथी के समान नाद करने वाले भयंकर प्रलयकालीन मेघ अनेक विद्युल्लताओं से युक्त होकर आकाश में उठते हैं ॥३१॥ उनमें से किसी मेघ का वर्ण अंजन के समान होता है, किसी का कुमुद के समान होता है, किसी का धूम्र वर्ण होता है, किसी का पीत वर्ण होता है, किसी का वर्ण हल्दी के समान होता है, किसी का लाह के समान होता है किसी का वैदूर्य मणि के समान होता है, किसी का इन्द्रनील मणि के समान होता है किसी का शख के समान होता है, किसी का कुन्द पुष्प के समान होता है, किसी का जाती पुष्प के समान होता है, किसी का इन्द्रगोप के समान होता है, किसी का मन शिला के समान होता है और किसी का पद्मपत्र के समान होता है। किसी मेघ की आकृति महानगर के समान होती है, किसी की पर्वत के समान होती है, किसी की क्रीडागृह के समान होती है, और किसी की पृथ्वी के समान होती है। वे महाशरीर वाले तथा महाशब्द करने वाले मेघ आकाश को भर देते हैं ॥३२-३६॥ अत्यन्त भीषण वृष्टि करते हैं, जिससे त्रैलोक्य में फैला हुआ अग्नि शान्त हो जाता है ॥३७॥ मुनिश्रेष्ठो! अग्नि के नष्ट हो जाने पर भी सौ वर्ष तक मेघ सम्पूर्ण जगत् को प्लावित करते हुए बरसते रहते हैं ॥३८॥ रुद्राक्ष के समान बूंदों से अखिल पृथ्वी को प्लावित करके भूर्लोक तथा ऊर्ध्वलोक को प्लावित कर देते हैं ॥३९॥ सम्पूर्ण लोक के तिमिरावृत हो जाने पर और स्थावर-जंगम के नष्ट हो जाने पर सौ वर्षों से अधिक काल तक महामेघ बरसते रहते हैं ॥४०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के संवाद-प्रकरण में संहारलक्षण कथन नामक दो सौ
बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३२॥

१क. ते देशा मृत्या। २ग ०न। अयनि०। ३ख कूपागा०। ४ख पूरयन्तो। ५ग. ०ह्मामागा व०।

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

प्राकृतलयनिरूपणम्

व्यास उवाच

सप्तर्षिस्थानमाक्रम्य स्थितेऽम्भसि द्विजोत्तमा । एकार्णवं भवत्येतत्त्रैलोक्यमखिलं ततः[१] ॥१॥
अथ निःश्वासजो विष्णोर्वायुस्ताञ्जलदास्ततः । नाशं नयति भो विप्रा वर्षाणामधिकं शतम् ॥२॥
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यो भगवान्भूतभावनः । अनादिरादिर्विश्वस्य पीत्वा वायुमशेषतः ॥३॥
एकार्णवे[२] ततस्तस्मिञ्शेषशय्यास्थितः प्रभुः । ब्रह्मरूपधरः[३] शेते भगवानादिकृद्धरिः ॥४॥
जनलोकगतैः सिद्धैः सनकाद्यैरभिष्टुतः । ब्रह्मलोकगतैश्चैव चिन्त्यमानो मुमुक्षुभिः ॥५॥
आत्ममायामयीं दिव्यां योगनिद्रां समास्थितः । आत्मानं वासुदेवाख्यं चिन्तयन्परमेश्वरः ॥६॥
एष नैमित्तिको नाम विप्रेन्द्राः प्रतिसंचरः । निमित्तं तत्र यच्छेते ब्रह्मरूपधरो[४] हरिः ॥७॥
यदा जागर्ति सर्वात्मा स तदा चेष्टते जगत् । निमीलत्येतदखिलं मायाशय्याशयेऽच्युते ॥८॥
पद्मयोनेर्दिनं यत्तु [५]चतुर्युगसहस्रवत् । एकार्णवकृते लोके तावती रात्रिरुच्यते ॥९॥
ततः प्रबुद्धो रात्र्यन्ते पुनः सृष्टिं करोत्यजः । ब्रह्मस्वरूपधृग्विष्णुर्यथा ते कथितं पुरा ॥१०॥

अध्याय २३३

प्राकृत लय का निरूपण

व्यास ने कहा—द्विजवर ! सप्तर्षियों के स्थान से लेकर अखिल जगत् एकार्णव अर्थात् जलमय हो जाता है ॥१॥ तदनन्तर विष्णु का श्वासवायु मेघों को नष्ट कर देता है और सौ वर्षों से अधिक काल तक बहता रहता है ॥२॥ तब सर्वजीवमय अचिन्त्य प्राणियों के उत्पादक अनादि तथा विश्व के आदि भगवान् अशेष वायु को पीकर उसी एकार्णव में शेषशय्या पर स्थित होते हैं ॥३॥ जब ब्रह्मरूपधारी आदिकर्ता भगवान् हरि शयन में रहते हैं तब जनलोक निवासी सनक आदि सिद्धवृन्द उनकी स्तुति करते हैं। ब्रह्मलोकवासी मुमुक्षु जन भी उनका ध्यान करते हैं। परमेश्वर भगवान् आत्ममायामयी दिव्य योगनिद्रा में स्थित होकर वासुदेव रूप अपने आत्मा की चिन्तना करते हैं। विप्रश्रेष्ठो ! इसी का नाम नैमित्तिक लय है जिसमें ब्रह्मरूपधारी हरि ही निमित्त हैं। जब अखिलात्मा भगवान् जागते हैं तब संसार में क्रियाशीलता आती है। माया रूपी शय्या पर जब वही जनार्दन सो जाते हैं तब जगत् भी निष्क्रिय हो जाता है। एक सहस्र चतुर्युग के बराबर जो ब्रह्मा का दिन होता है उसी दिन के अनुसार उनकी रात होती है जिसमें अखिल लोक एकार्णव के रूप में परिवर्तित हो जाता है ॥४-९॥ तब रात्रि के अन्त में प्रबुद्ध ब्रह्मा पुनः सृष्टि करते हैं। यह तो पहले ही कहा गया है कि ब्रह्मा के रूप में विष्णु ही होते हैं ॥१०॥ द्विजगण !

१क ०तः । मुखनि० । २ग ०सतोवि० । ३क ख ०वे पुनस्त० । ४क शान्तो । ५क पद्मयोह । । ६ ०यनम् । ए० ।

इत्येष[1] कल्पसंहारो अन्तरप्रलयो द्विजाः। नैमित्तिको वः[2] कथितः शृणुध्वं प्राकृतं परम् ॥११॥
अवृष्टयग्न्यादिभिः सम्यक्कृते शय्यालये[3] द्विजाः। समस्तेष्वेव लोकेषु पातालेष्वखिलेषु च ॥१२॥
महदादेर्विकारस्य विशेषात्तत्र[4] संक्षये[5]। कृष्णेच्छाकारिते तस्मिन्प्रवृत्ते[6] प्रतिसंचरे ॥१३॥
आपो ग्रसन्ति वै पूर्वं [7]भूमेर्गन्धादिकं गुणम्। [8]आत्तगन्धा ततो भूमिः प्रलयाय[9] प्रकल्पते ॥१४॥
प्रनष्टे गन्धतन्मात्रे भवत्युर्वी जलात्मिका। आपस्तदा प्रवृत्तास्तु वेगवत्यो महास्वनाः ॥१५॥
सर्वमापूरयन्तीदं तिष्ठन्ति[10] विचरन्ति च। सलिलेनैवोर्मिमता लोकालोकः समन्ततः ॥१६॥
अपामपि गुणो यस्तु ज्योतिषा[11] पीयते तु सः। नश्यन्त्यापः सुतप्ताश्च रसतन्मात्रसंक्षयात् ॥१७॥
ततश्चाऽऽपोऽमृतरसा[12] ज्योतिष्ट्वं प्राप्नुवन्ति वै। अग्न्यवस्थे तु सलिले तेजसा सर्वतो वृते ॥१८॥
स चाग्निः सर्वतो व्याप्य आदत्ते तज्जलं तदा। सर्वमापूर्यतो चाभि(रयत्यग्नि)स्तदा जगदिद शनैः ॥१९॥
अर्चिभिः संतते तस्मिंस्तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा। ज्योतिषोऽपि परं रूपं वायुरत्ति प्रभाकरम् ॥२०॥
प्रलीने च ततस्तस्मिन्वायुभूतेऽखिलात्मके। प्रनष्टे रूपतन्मात्रे कृतरूपो विभावसुः ॥२१॥
प्रशाम्यति तदा ज्योतिर्वायुर्दोधूयते महान्। निरालोके तदा लोके वायुसंस्थे च तेजसि ॥२२॥
ततः[13] प्रलयमासाद्य [14]वायुसंभवमात्मनः। [15]ऊर्ध्वं च वायुस्तिर्यक्च दोधवीति दिशो दश ॥२३॥

इसी का नाम अन्तरप्रलय, कल्पसहार तथा नैमित्तिक लय है। अब आप लोग प्राकृत लय के बारे में सुनिये ॥११॥ विप्रवृन्द! अवृष्टि तथा अग्नि आदि से समुद्र, समस्त लोक तथा अखिल पातालो के नष्ट हो जाने पर महत् आदि विकारो का भी क्षय हो जाता है ॥१२½॥ तब कृष्ण की इच्छा से प्राकृत लय होने लगता है जिसमे जल भूमि के गन्ध आदि गुणो को विनष्ट कर देता है ॥१३½॥ तब गन्धशून्य पृथिवी प्रलय मचाने लगती है। गन्ध के नष्ट हो जाने पर पृथ्वी जल रूप मे परिणत हो जाती है। जल बहुत वेग से महाशब्द करते हुए बहने लगता है, जिससे सम्पूर्ण जगत् भर जाता है। तीनो लोको मे तरगयुक्त जल ही जल दीखता है। जल के गुण को भी अग्नि पी जाता है। रस के नष्ट हो जाने पर अत्यन्त तप्त जल भी विनष्ट हो जाता है ॥१४-१७॥ तब अमृत रूप रस वाला जल ज्योति रूप मे परिवर्तित हो जाता है। जब जल अग्निरूप म परिणत हो जाता है और सब ओर तेज से ढक जाता है तब वह अग्नि सब ओर फैलकर उस जल को ग्रहण कर लेता है। तब वह सम्पूर्ण जगत् धीरे धीरे भर जाता है। तिरछे, ऊपर और नीचे ज्वालाओ के फैल जाने पर वायु अग्नि के परम भास्वर रूप को भी निगल जाता है ॥१८-२०॥ जब अग्नि वायुरूप मे परिवर्तित हो जाता है और उसका रूप नष्ट हो जाता है तब प्रकाश बुझ जाता है और 'हू हू' करके बडे जोर से वायु बहने लगता है। अग्नि के वायु रूप मे परिणत हो जाने पर समस्त लोक प्रकाशहीन हो जाते हैं। तब वायु प्रलय मचाते हुए दशो दिशाओ को ऊपर, नीचे तथा तिरछे बडे जोर से कँपाने लगता है ॥२१-२३॥ वायु के भी स्पर्श गुण का आकाश ग्रस

१क ०त्येव क०। २ख ०त्तिकश्च क०। ३ग य। ४ग सस्कानले। ५ग ०त्तस्य स०। ६ख सवुले। ७क ०प्रकृते प्र०। ८ग ०न्धात्मक रसम्। ९ग शान्तगन्धा। १०क ग लयत्वाय क०। ११ग ०न्ति च रमन्ति। १२क. ०तिपि लीय०। १३ग ०पो हृत०। १४ग वायु स०। १५क ग ०र्ध्वं चाधश्च तिर्य०।

वायोस्त्वपि गुणं स्पर्शमाकाशं ग्रसते ततः। प्रशाम्यति तदा वायुः खं तु तिष्ठत्यनावृतम् ॥२४॥
अरूपमरसस्पर्शमगन्धवदमूर्तिमत् । सर्वमापूरयच्चैव सुमहत्तत्प्रकाशते। ॥२५॥
[1]परिमण्डलतस्तत्तु आकाशं शब्दलक्षणम्। शब्दमात्रं तथाऽऽकाशं सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥२६॥
ततः शब्दगुण तस्य भूतादिर्ग्रसते पुनः। भूतेन्द्रियेषु युगपद्भूतादौ संस्थितेषु वै ॥२७॥
अभिमानात्मको ह्येष भूतादिस्तामसः स्मृतः। भूतादिं ग्रसते चापि [2]महाबुद्धिर्विचक्षणा ॥२८॥
उर्वी महाश्च जगत प्रान्तेऽन्तर्बाह्यतस्तथा। [3]एवं सप्तमहाबुद्धिः(?) क्रमात्प्रकृतयस्तथा ॥२९॥
प्रत्याहारैस्तु ताः सर्वाः प्रविशन्ति परस्परम्। येनेदमावृतं सर्वमण्डमप्सु प्रलीयते ॥३०॥
सप्तद्वीपसमुद्रान्त सप्तलोकं सपर्वतम्। उदकावरणं ह्यत्र ज्योतिषा पीयते तु तत् ॥३१॥
ज्योतिर्वायौ लयं याति यात्याकाशे समीरणः। आकाशं चैव भूतादिर्ग्रसते तं तथा महान् ॥३२॥
महान्तमेभि. सहितं प्रकृतिर्ग्रसते द्विजा.[4]। [5]गुणसाम्यमनुद्रिक्तमन्यूनं च द्विजोत्तमाः ॥३३॥
प्रोच्यते प्रकृतिर्हेतु. प्रधानं कारणं परम्। इत्येषा प्रकृतिः सर्वा व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ॥३४॥
व्यक्तस्वरूपमव्यक्ते तस्यां विप्राः प्रलीयते। एकः शुद्धोऽक्षरो[6] नित्यः सर्वव्यापी तथा पुनः ॥३५॥
सोऽप्यंशः सर्वभूतस्य द्विजेन्द्राः परमात्मनः। नश्यन्ति सर्वा यत्रापि नामजात्यादिकल्पनाः ॥३६॥
सत्तामात्रात्मके ज्ञेये ज्ञानात्मन्यात्मनः परे। स[7] ब्रह्म[8] तत्परं धाम परमात्मा[9] परेश्वरः ॥३७॥

लेता है। तब वायु आकाशरूप मे परिणत हो जाता है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा मूर्ति से रहित वह महान् आकाश ही सर्वत्र प्रकाशित होता है। आकाशमण्डल मे केवल शब्द ही होता है। शब्दमात्र करने वाला वह आकाश सबको आवृत कर स्थित होता है। तब आकाश के शब्द गुण को भी अहकार ग्रस लेता है।।२४-२६॥ यह अहकार सभी प्राणियो मे अभिमान रूप से रहता है और यह तामस है। इस अहकार को भी विचक्षण महाबुद्धि खा डालती है। महाबुद्धि, उर्वी, महान्, जगत् का आभ्यन्तर भाग, बाह्य भाग तथा प्रान्त और प्रकृतियाँ ये सात महाबुद्धि हैं। प्रलय के समय वे परस्पर एक-दूसरे मे प्रविष्ट हो जाती हैं, जिससे यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जल मे प्रलीन हो जाता है (??)। जल के आधार समुद्र पर्यन्त सातो द्वीप तथा पर्वत सहित सातो लोक को अग्नि पी जाता है॥२७-३१॥ अग्नि का लय वायु म और वायु का आकाश मे हो जाता है। आकाश को भूतादि और उसको महान् ग्रस लेता है॥३२॥ भूतादि सहित महान् को प्रकृति ग्रस लेती है। द्विजश्रेष्ठो! गुणो की साम्यावस्था—न कम न अधिक—को प्रकृति कहते हैं। इसी के नाम हेतु, प्रधान, कारण तथा पर हैं। यह प्रकृति व्यक्त तथा अव्यक्त स्वरूप वाली है॥३३-३४॥ विप्रवृन्द! इसका व्यक्त रूप अव्यक्त रूप मे लीन हो जाता है। जो एक, शुद्ध, अक्षर, नित्य, तथा सर्वव्यापी है, वह भी सर्वभूतस्वरूप परमात्मा का अश है। आत्मा के पर रूप म, जो ज्ञेय तथा सत्तामात्र है नाम, जाति आदि की समस्त कल्पनायें लीन हो जाती हैं॥३५-३६॥ वही ब्रह्म, परम धाम, परमात्मा, परेश्वर तथा विष्णु है, जिसमे विलीन होकर यह ससार पुन लौटता नही है। जो मैंने

१ग ०ण्डल तच्छुपिरमात्रा०। २ग ०क्षण। उ। ३स ०वं मुप्ते महायुद्धे क्र०। ४क ०जा। स्वगुणं सा०। ५क ०म्यमुद्रि०। ६ख ०क्षयो नि०। ७क ०ह्मण परोवास प०। ८ख ०र वारा प०। ९क स ०रमा स चे श्व०।

(

स विष्णु सवमेवेद यतो नाऽऽवर्तते पुन [1]। प्रकृतिर्या मयाऽऽख्याता व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ॥३८॥
पुरुषश्चाप्युभावेतौ लीयेते परमात्मनि। परमात्मा च सर्वेषामाधार परमेश्वर ॥३९॥
विष्णुनाम्ना स वेदेषु वेदान्तेषु[2] च गीयते। 'प्रवृत्त च निवृत्त च द्विविध कर्म वैदिकम् ॥४०॥
ताभ्यामुभाभ्या पुरुषैर्यज्ञमूर्ति स इज्यते। ऋग्यजु सामभिर्मार्गै प्रवृत्तैरिज्यते ह्यसौ ॥४१॥
यज्ञेश्वरो 'यज्ञपुमा पुरुषै पुरुषोत्तम। ज्ञानात्मा ज्ञानयोगेन ज्ञानमूर्ति स इज्यते ॥४२॥
निवृत्तैर्योगमार्गैश्च[3] विष्णुर्मुक्तिफलप्रद। ह्रस्वदीर्घप्लुतैर्यत्तु किंचिद्वस्त्वभिधीयते ॥४३॥
यच्च वाचामविषयस्तत्सर्वं विष्णुरव्यय। व्यक्त स एवमव्यक्त स एव पुरुषोऽव्यय ॥४४॥
परमात्मा च विश्वात्मा विश्वरूपधरो हरि। व्यक्ताव्यक्तात्मिका तस्मिन्प्रकृति सा विलीयते ॥४५॥
पुरुषश्चापि भो विप्रा यस्तदव्याकृतात्मनि। द्विपरार्धात्मक काल कथितो यो मया द्विजा ॥४६॥
तदहस्तस्य विप्रेन्द्रा विष्णोरीशस्य कथ्यते। व्यक्त तु प्रकृतौ लीने प्रकृत्या पुरुषे तथा ॥४७॥
[6]तत्राऽऽस्थित निशा तस्य तत्प्रमाणा तपोधना[7]। नैवाहस्तस्य च निशा नित्यस्य परमात्मन ॥४८॥
उपचारात्तथाऽप्यतत्तस्येशस्य तु कथ्यते। इत्येष मुनिशार्दूला कथित प्राकृतो लय ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे प्राकृतलयनिरूपण नाम
त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२३३॥

व्यक्त-अव्यक्त स्वरूपा प्रकृति बतलायी है वह और पुरुष दोनों परमात्मा मे लीन हो जाते हैं। परमात्मा सबके आधार और परमेश्वर है। वेद वेदान्तो मे वे विष्णु नाम से गाये जाते हैं। वैदिक कर्म दो प्रकार के होते हैं—एक प्रवृत्ति (कर्मयोग) और दूसरा निवृत्ति (सांख्य योग) ॥३७ ४०॥ उन दोनों कर्मों से मनुष्य यज्ञमूर्ति परमात्मा की उपासना करते है। ऋग यजुस तथा साम का मार्ग प्रवृत्त कहलाता है। इस मार्ग से मनुष्य पुरुषोत्तम यज्ञपुरुष तथा यज्ञपति भगवान की आराधना करते हैं। ज्ञानी पुरुष ज्ञानयोग से ज्ञानमूर्ति भगवान की पूजा करते है। योगमार्ग निवृत्त कहलाता है इससे उपासना करने पर विष्णु मोक्षफल देते हैं। ह्रस्व दीर्घ तथा प्लुत से जिनका उच्चारण होता है और जो वाणी से अगोचर है वे अविनाशी विष्णु हैं। वे ही व्यक्त अव्यक्त पुरुष अव्यय परमात्मा विश्वात्मा तथा विश्वरूपधारी हरि हैं। व्यक्त अव्यक्त स्वरूपा प्रकृति उन्ही मे लीन होती है ॥४१ ४५॥ विप्र वृन्द! पुरुष भी उसी परमात्मा मे लीन हो जाता है। द्विजगण! दो परार्ध का काल जो मैंने बतलाया है वह भगवान्शक्तिमान विष्णु का एक दिन माना गया है। व्यक्त के प्रकृति मे और प्रकृति के पुरुष मे लीन हो जाने पर विष्णु की अपने दिन के बराबर रात भी होती है। नित्य परमात्मा का न तो दिन होता है न रात होती है। परन्तु उपचार (उपलक्षण) से यह कहा जाता है। मुनिवर यह प्राकृतिक लय का वर्णन हुआ ॥४६ ४९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म प्राकृत लय निरूपण नामक दो सौ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३३॥

१ग यति। २क ०न्तारम्भेषु गी०। ३ग प्रवृत्ति। ४ख ०मान्यज्ञभुवपु०। ५क ०वत्त यो०। ६क ०माग तु वि०। ७क ख तत स्थि०। ८क द्विजोत्तमा।

अथ चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

आत्यन्तिकलयनिरूपणम्

व्यास उवाच

आध्यात्मिकादि भो विप्रा ज्ञात्वा तापत्रयं बुध । उत्पन्नज्ञानवैराग्य प्राप्नोत्यात्यन्तिकं लयम् ॥१॥
आध्यात्मिकोऽपि द्विविधः शारीरो मानसस्तथा । शारीरो बहुभिर्भेदैर्भिद्यते श्रूयतां च सः ॥२॥
शिरोरोगप्रतिश्यायज्वरशूलभगंदरैः[1] । गुल्मार्शःश्वयथुश्वासच्छर्द्यादिभिरनेकधा ॥३॥
तथाऽक्षिरोगातीसारकुष्ठाङ्गामयसंज्ञकैः[2] । भिद्यते देहजस्तापो मानसं श्रोतुमर्हथ ॥४॥
कामक्रोधभयद्वेषलोभमोहविषादजः । शोकासूयावमानेर्ष्यामात्सर्याभिभवस्तथा ॥५॥
मानसोऽपि द्विजश्रेष्ठास्तापो भवति नैकधा । इत्येवमादिभिर्भेदैस्तापो ह्याध्यात्मिकः स्मृतः ॥६॥
मृगपक्षिमनुष्याद्यैः[3] पिशाचोरगराक्षसैः । सरीसृपाद्यैश्च नृणां जन्यते चाऽऽधिभौतिकः ॥७॥
शीतोष्णवातवर्षाम्बुवैद्युतादिसमुद्भवः । तापो द्विजवरश्रेष्ठाः कथ्यते चाऽऽधिदैविकः ॥८॥
गर्भजन्मजराज्ञानमृत्युनारकजं तथा । दुःखं सहस्रशो भेदैर्भिद्यते मुनिसत्तमाः ॥९॥
सुकुमारतनुर्गर्भे जन्तुर्बहुमलावृते[4] । उल्बसंवेष्टितो[5] भग्नपृष्ठग्रीवास्थिसंहतिः[6] ॥१०॥

अध्याय २३४

आत्यन्तिक लय का निरूपण

व्यास ने कहा—विप्रवृन्द! विद्वान लोग को आध्यात्मिक आदि तीन प्रकार के तापों के जानने से ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न होता है जिससे वे आत्यन्तिक लय को प्राप्त करते हैं ॥१॥ आध्यात्मिक ताप के भी दो भेद हैं—एक शारीरिक और दूसरा मानसिक। शारीरिक ताप के भी बहुत से भेद हैं सुनिये ॥२॥ शिरोव्यथा सर्दी ज्वर शूल भगन्दर प्लीहा मृगीरोग हाथीपाँव खाँसी नेत्ररोग अतीसार कुष्ठ आदि अनेक भेद शारीरिक ताप के होते हैं ॥३॥ अब मानस ताप के भेद सुनिये। काम क्रोध भय द्वेष लोभ मोह विषाद शोक असूया अपमान ईर्ष्या मात्सर्य तथा पराभव—इन भेदों से मानस ताप भी अनेक प्रकार के होते हैं। द्विजश्रेष्ठो! इस प्रकार आध्यात्मिक ताप अनेक भेदों से युक्त हैं ॥४-६॥ मनुष्यों को मृग पक्षी मनुष्य पिशाच साँप राक्षस तथा रेंगने वाले जीवों से जो ताप होता है उसका नाम आधिभौतिक है। ॥७॥ विप्रवर! सर्दी गर्मी वायु वर्षा जल बिजली आदि से जो ताप होता है उसका नाम आधिदैविक है ॥८॥ गर्भ जन्म जरा अज्ञानता मृत्यु तथा नरक से जो दुःख होता है उसके हजारों भेद हैं। अनेक प्रकार के मलों से युक्त गर्भ में कोमल शरीर वाला जीव उल्बचर्म से वेष्टित रहता है जिसकी पीठ ग्रीवा तथा हड्डियाँ मुड़ी रहती हैं ॥९-१०॥ माता जो अत्यन्त

---

१ ग. °को वै द्वि°। २ क. °ररोगम°। ३ क. °रक्तद्युम°। ४ क. °नुष्याद्यैः पि°। ५ ख. °न। वसने व°। ६ क. °ता भुग्न°। ७ क. °वास्यसं°।

अत्यम्लकटुतीक्ष्णोष्णलवणैर्मातृभोजनैः। अतितापिभिरत्यर्थं बाध्यमानोऽतिवेदनः॥११॥
प्रसारणाकुञ्चनादौ नाग्ना (ङ्गा) नां प्रभुरात्मनः। शकृन्मूत्रमहापङ्कशायी सर्वत्र पीडितः॥१२॥
निरुच्छ्वासः सचैतन्यः स्मरञ्जन्मशतान्यथ। आस्ते गर्भेऽतिदुःखेन निजकर्मनिबन्धनः॥१३॥
जायमानः पुरीषासृङ्मूत्रशुक्राविलाननः। प्राजापत्येन वातेन पीड्यमानास्थिबन्धनः॥१४॥
अधोमुखस्तैः क्रियते प्रबलैः सूतिमारुतैः। क्लेशैर्निष्क्रान्तिमाप्नोति जठरान्मातुरातुरः॥१५॥
मूर्छामवाप्य महतीं संस्पृष्टो बाह्यवायुना। विज्ञानभ्रंशमाप्नोति जातस्तु मुनिसत्तमाः॥१६॥
कण्टकैरिव तुन्नाङ्गः क्रकचैरिव दारितः। पूतिव्रणान्निपतितो धरण्यां क्रिमिको यथा॥१७॥
कण्डूयनेऽपि चाशक्तः परिवर्तेऽप्यनीश्वरः। स्तनपानादिकाहारमवाप्नोति परेच्छया॥१८॥
अशुचिस्स्तरे सुप्तः कीटदंशादिभिस्तथा। भक्ष्यमाणोऽपि नैवैषां समर्थो विनिवारणे॥१९॥
जन्मदुःखान्यनेकानि [1]जन्मनोऽनन्तराणि च। बालभावे यदाप्नोति आधिभूतादिकानि च॥२०॥
अज्ञानतमसा छन्नो मूढान्तःकरणो नरः। न जानाति कुतः कोऽहं कुत्र गन्ता किमात्मकः॥२१॥
केन बन्धेन बद्धोऽहं कारणं किमकारणम्। किं कार्यं किमकार्यं वा किं वाच्यं किं न चोच्यते॥२२॥

अम्ल, कटु, तीक्ष्ण, उष्ण तथा लवण मिश्रित भोजन करती है, उससे गर्भस्थ जीव को अतिपीड़ा होती है॥११॥ जीव अपने अंगो के फैलाने तथा समेटने में भी असमर्थ रहता है। उसे विष्ठा तथा मूत्र के महापंक मे सोना पड़ता है। सर्वत्र उसे पीड़ा ही पीड़ा होती रहती है॥१२॥ श्वास-रहित पर सचेतन रहते हुए जीव को सैकड़ो जन्मों का स्मरण होता है। इस प्रकार कर्मबन्धन मे पड़कर जीव गर्भ में अत्यन्त दुःख भोगता है॥१३॥ उत्पत्ति के समय जीव का मुख विष्ठा, मूत्र, शोणित तथा वीर्य से लिपटा रहता है प्राजापत्य नामक वायु उसकी हड्डियों की जोड़ में पीड़ा पहुँचाता है, सूति नामक प्रबलवायु उसे अधोमुख कर देता है। इस प्रकार अत्यन्त क्लेश से आतुर होकर जीव माता के पेट से निकलता है॥१४-१५॥ बाहरी वायु के लगते ही उसे अत्यन्त मूर्च्छा आ जाती है। तभी उसका ज्ञान नष्ट हो जाता है॥१६॥ उस समय उसकी ऐसी दशा होती है कि मानो उसके अंगो मे काँटे चुभाये जा रहे हो और वह आरे से विदीर्ण किया जा रहा हो। भयकर घाव से भूमि पर गिरे कीड़े की तरह उसकी स्थिति होती है॥१७॥ वह अंगो को खुजलाने मे तथा करवट बदलने मे भी असमर्थ रहता है। स्तन पान आदि आहार भी उसे दूसरे की इच्छा मे मिलता है॥१८॥ अपवित्र बिस्तरे पर सोता है। कीड़े-मकोड़े के काटने पर भी वह उसका निवारण नही कर सकता है॥१९॥ उसे जन्म-दुःख तो अनेक होते ही हैं, जन्म के बाद भी अनेक प्रकार के दुःख होते हैं॥२०॥ बचपन मे उसे अनेक आधिभौतिक दुःख होते हैं। अज्ञानरूपी अन्धकार से आवृत चित्त वाला मूर्ख मनुष्य यह नही जानता है कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाऊँगा, किस बन्धन मे पड़ा हूँ, कौन कारण है कौन नही कारण है, कौन कार्य है, कौन अकार्य है, क्या बोलना चाहिये, क्या नहीं बोलना चाहिये, कौन धर्म है, कौन नही धर्म है, किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, क्या करना

---

[1] क. ०नोऽप्यन्त०।

को धर्मः कश्च वाऽधर्मः कस्मिन्वर्तेत वै कथम्। किं कर्तव्यमकर्तव्यं किं वा किं गुणदोषवत् ॥२३॥
एवं पशुसमैर्मूढैरज्ञानप्रभवं महत्। अवाप्यते नरैर्दुःखं शिश्नोदरपरायणैः ॥२४॥
अज्ञानं तामसो भावः कार्यारम्भप्रवृत्तयः। अज्ञानिना प्रवर्तन्ते कर्मलोपस्ततो द्विजाः ॥२५॥
नरकं कर्मणां लोपात्फलमाहुर्महर्षयः। तस्मादज्ञानिनां दुःखमिह चामुत्र चोत्तमम्[1] ॥२६॥
जराजर्जरदेहश्च शिथिलावयवः पुमान्। [2]विचलच्छीर्णदशनो वलिस्नायुशिरावृतः ॥२७॥
दूरप्रनष्टनयनो व्योमान्तर्गततारकः। नासाविवरनिर्यातिरोमपुञ्जश्चलद्वपुः ॥२८॥
प्रकटीभूतसर्वास्थिर्नतपृष्ठास्थिसंहतिः। उत्सन्नजठराग्नित्वादल्पाहारोऽल्पचेष्टितः ॥२९॥
कृच्छ्रचंक्रमणोत्थानशयनासनचेष्टितः। मन्दीभवच्छ्रोत्रनेत्रगलल्लालाविलाननः ॥३०॥
अनायत्तैः समस्तैश्च करणैर्मरणोन्मुखः। तत्क्षणेऽप्यनुभूतानामस्मर्ताऽखिलवस्तुनाम् ॥३१॥
सकृदुच्चारिते वाक्ये [3]समुद्भूतमहाश्रमः। [4]श्वासकासामयायाससमुद्भूतप्रजागरः ॥३२॥
अन्येनोत्थाप्यतेऽन्येन तथा संवेश्यते जरी। [5]भृत्यात्मपुत्रदाराणामपमानपराकृतः[6] ॥३३॥
प्रक्षीणाखिलशौचश्च विहाराहारसंस्पृहः। हास्यः परिजनस्यापि निर्विण्णाशेषबान्धवः ॥३४॥
अनुभूतमिवान्यस्मिञ्जन्मन्यात्मविचेष्टितम्। संस्मरन्यौवने दीर्घं निःश्वसित्यतितापितः ॥३५॥

चाहिये, क्या नही करना चाहिय, कौन गुणयुक्त है तथा कौन दोषयुक्त है ॥२१-२३॥ इस प्रकार इन्द्रिय तथा उदर की पूर्ति म निरत पशुतुल्य मूर्ख मनुष्य अज्ञानता से उत्पन्न दुःख को भोगता है। द्विजगण! अज्ञानियो को अज्ञानता रूप तामस भाव कार्यारम्भ-काल मे हो जाता है, जिससे वे कर्मों को नही कर पाते। महर्षियो ने कर्मों के लोप हो जाने का फल नरक बतलाया है। इसलिये अज्ञानियो का इस लोक मे तथा परलोक मे दुःख ही दुःख होता है ॥२४-२६॥ वृद्धावस्था मे मनुष्य के सब अग जर्जर तथा शिथिल हो जाते है, दाँत भग्न हो जाते हैं, स्नायु तथा शिरा उग जाती है, आँखो की शक्ति कम हो जाती है, आँखो की पुतली धँस जाती है, नाक के रन्ध्र मे रोम-पुञ्ज दीखने लगता है, शरीर काँपने लगता है, हड्डियाँ झलकने लगती हैं, पीठ की हड्डी झुक जाती है, जठराग्नि मन्द पड जाती है, भोजन तथा शारीरिक चेष्टा कम हो जाती है, उठने, सोने तथा बैठने तक मे भी बहुत कष्ट का अनुभव होता है, कानो तथा नेत्रो की शक्ति क्षीण हो जाती है, लार टपकने से मुख मलिन हो जाता है। समस्त इन्द्रियाँ वश के बाहर हो जाती हैं। तब वह मरणोन्मुख हो जाता है। उस समय अनुभूत वस्तुओ का भी स्मरण नही होता है। एक बार बोलने मे भी महान् आयास करना पडता है ॥२७-३१॥ खाँसी तथा श्वास-वायु की तीव्रता से नीद खुल जाती है। दूसरे ही लोग उस वृद्ध को उठाते-बैठाते हैं। नौकर, पुत्र तथा स्त्री भी उसकी अव-हेलना करती है। शरीर की शुद्धियाँ भी वह नही कर पाता है। विहार तथा आहार की इच्छा भी नष्ट हो जाती है। परिजनो का भी वह हास्यास्पद बन जाता है। उसके समस्त बान्धव उससे तग आ जाते हैं ॥३२-३४॥ वह युवावस्था का स्मरण करके अत्यन्त सन्ताप से लम्बी साँस लेता है जैसे कि मानो वह दूसरे जन्मो की

१क चोध्यते। २क ०धानस्त्वचास्ना०। ३क ०मुद्गत०। ४ग ०कामसहाया०। ५ग ख ०मवमा०। ६क. परिभूत। ख परिप्लुत।

एवमादीनि दुःखानि जरायामनुभूय च। मरणे यानि दुःखानि प्राप्नोति शृणु तान्यपि ॥३६॥
श्लथग्रीवाङ्घ्रिहस्तोऽथ [1]प्राप्तो वेपथुना नरः। मुहुर्ग्लानिपरश्चासौ मुहुर्ज्ञानबलान्वितः ॥३७॥
[2]हिरण्यधान्यतनयभार्याभृत्यगृहादिषु। एते कथं भविष्यन्तीत्यतीवममताकुलः ॥३८॥
मर्मविद्भिर्महारोगैः क्रकचैरिव दारुणैः। शरैरिवान्तकस्योग्रैश्छिद्यमानास्थिबन्धनः ॥३९॥
परिवर्तमानताराक्षिहस्तपादं मुहुः क्षिपन्। संशुष्यमाणताल्वोष्ठकण्ठो घुरघुरायते ॥४०॥
निरुद्धकण्ठदेशोऽपि उदानश्वासपीडितः। तापेन महता व्याप्तस्तृषा व्याप्तस्तथा क्षुधा ॥४१॥
क्लेशादुत्क्रान्तिमाप्नोति याम्यकिंकरपीडितः। ततश्च यातनादेहं क्लेशेन प्रतिपद्यते ॥४२॥
एतान्यन्यानि चोग्राणि दुःखानि मरणे नृणाम्। शृणुध्वं नरके यानि प्राप्यन्ते पुरुषैर्मृतैः ॥४३॥
याम्यकिंकरपाशादिग्रहणं दण्डताडनम्। यमस्य दर्शनं चोग्रमुग्रमार्गविलोकनम् ॥४४॥
करम्भवालुकावह्नियन्त्रशस्त्रादिभीषणे[3]। प्रत्येकं यातनायाश्च[4] यातनादि द्विजोत्तमाः ॥४५॥
क्रकचैःपीड्यमानानां मू(मू)षायां चापि ध्माप्यताम्। कुठारैः पाट्यमानानां भूमौ चापि निखन्यताम् ॥४६॥
शूलेष्वारोप्यमाणानां व्याघ्रवक्त्रे प्रवेश्यताम्। गृध्रैः संभक्ष्यमाणानां द्वीपिभिश्चोपभुज्यताम् ॥४७॥
क्वथ्यतां तैलमध्ये च क्लिद्यतां क्षारकर्दमे। उच्चान्निपात्यमानानां क्षिप्यतां क्षेपयन्त्रकैः ॥४८॥

अपनी क्रियाओं का अनुभव कर रहा हो।'३५॥ इस प्रकार मनुष्य वृद्धावस्था में दुःखों का अनुभव करके मरण के समय जिन दुःखों का अनुभव करता है, वह सुनिये ॥३६॥ उस समय उसकी ग्रीवा, पैर तथा हाथ शिथिल पड़ जाते हैं तथा काँपने लगते हैं। बारम्बार ग्लानि होती है और चेतना भी होती है॥३७॥ सोना, अन्न, पुत्र, स्त्री, नौकर तथा घर की क्या स्थिति होगी—यह सोचकर वह ममता से व्याकुल हो जाता है॥३८॥ आरे के समान भयकर तथा मर्मवेधी महान् रोगों से उसकी हड्डियों का बन्धन टूटने लगता है जैसे कि मानो यमदूतों के बाणों से काटा जा रहा हो ॥३९॥ आँखों की पुतली उलटने लगती है। हाथ-पैर अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। तालु, ओष्ठ और कण्ठ सूख कर घुरघुराने लगता है॥४०॥ कण्ठप्रदेश अवरुद्ध हो जाता है। उदान वायु पीड़ा देने लगती है। गर्मी अत्यन्त बढ़ जाती है। भूख-प्यास सताने लगती है॥४१॥ यमदूतों के द्वारा अत्यन्त पीड़ित होकर वह कष्टपूर्वक प्राण त्याग करता है। तब उसे यातना-शरीर प्राप्त होता है॥४२॥ मृत्यु-समय ये तथा अन्य भी तीव्र कष्ट मनुष्यों को होते हैं। अब सुनिये कि नरक में मृतात्मा को कौन कौन सा कष्ट होता है॥४३॥ यमदूत उसे जाल में बाँध देता है और लाठी से पीटता है। एक तो यमदर्शन ही भयकर दूसरा यममार्ग तो और भी भयकर है॥४४॥ तप्त बालुका, अग्नि, यन्त्र, शस्त्र आदि से यममार्ग में कष्ट दिया जाता है॥४५॥ जीवों को यमदूत आरे से चीरते हैं, कड़ाह में भूनते हैं, कुल्हाड़ी से काटते हैं, भूमि में गाड़ते हैं शूलों पर चढ़ाते हैं, बाघ के मुँह में डालते हैं, गीधों से नोचवाते हैं, सतप्त तेल में डाल कर काढ़ा बनाते हैं, कीचड़ में डुबो देते हैं, ऊपर ले जाकर नीचे गिरा देते हैं, प्रक्षेपणयन्त्रों द्वारा फेंक देते हैं॥४६-४८॥ विप्रवृन्द! पापी मनुष्य नरक में जो पापजन्य

१ख प्राप्नोति यातना तत। मु०। २ख ०यतातम्०। ३क ०षणे। प्र०। ख. ०षणम्। प्र०। ४ग श्च यातानां हि द्वि०। ५क. ०म्। यन्त्रेष्वा०।

नरके यानि दुःखानि पापहेतूद्भवानि वै। प्राप्यन्ते नारकैर्विप्रास्तेषां सख्या न विद्यते ॥४९॥
न केवलं द्विजश्रेष्ठा नरके दुःखपद्धतिः। स्वर्गेऽपि पातभीतस्य क्षयिष्णोर्नास्ति निर्वृतिः ॥५०॥
पुनश्च गर्भो भवति जायते च पुनर्नरः। गर्भे विलीयते भूयो जायमानोऽस्तमेति च ॥५१॥
जातमात्रश्च म्रियते बालभावे च यौवने। यद्यत्प्रीतिकरं पुंसां वस्तु विप्राः प्रजायते ॥५२॥
तदेव दुःखवृक्षस्य बीजत्वमुपगच्छति। [1]कलत्रपुत्रमित्रादिगृहक्षेत्रधनादिकैः ॥५३॥
क्रियते न तथा भूरि सुखं पुंसां यथाऽसुखम्। इति ससारदुःखार्कतापतापितचेतसाम् ॥५४॥
विमुक्तिपादपच्छायामृते कुत्र सुखं नृणाम्। तदस्य त्रिविधस्यापि दुःखजातस्य पण्डितैः ॥५५॥
गर्भजन्मजराद्येषु स्थानेषु प्रभविष्यतः। [2]निरस्तातिशयाह्लादं[3] सुखभावैकलक्षणम् ॥५६॥
भेषजं भगवत्प्राप्तिरेका चाऽऽत्यन्तिकी मता। तस्मात्तत्प्राप्तये यत्नः कर्तव्यः पण्डितैर्नरैः ॥५७॥
तत्प्राप्तिहेतुर्ज्ञानं च कर्म चोक्तं द्विजोत्तमाः। आगमोत्थं विवेकाच्च[4] द्विधा ज्ञानं तथोच्यते ॥५८॥
शब्दब्रह्माऽऽगममयं परं ब्रह्म विवेकजम्। अन्धं तम इवाज्ञानं दीपवच्चेन्द्रियोद्भवम् ॥५९॥
यथा सूर्यस्तथा ज्ञानं यद्वै विप्रा विवेकजम्। मनुरप्याह वेदार्थं स्मृत्वा यन्मुनिसत्तमाः ॥६०॥
तदेतच्छ्रूयतामत्र संबन्धे गदतो मम। द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् ॥६१॥
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति। द्वे विद्ये वै वेदितव्ये इति चाऽऽथर्वणी श्रुतिः ॥६२॥

दुःख पाते हैं, उन दुःखो की सख्या नही हो सकती ॥४९॥ द्विजश्रेष्ठो! पापियों के लिये केवल नरक मे ही दुःखो का बाहुल्य नही है। अपितु स्वर्ग मे भी उन्हे शान्ति नही मिलती है। ॥५०॥ जीव पुन गर्भ मे वास करता है और पुन जन्म लेता है। वह फिर गर्भ मे विलीन होता है और फिर जन्म लेकर समाप्त होता है ॥५१॥ कभी तो जन्म लेते ही मर जाता है और कभी बचपन मे या युवावस्था मे पञ्चत्व को प्राप्त करता है। विप्रवृन्द! मनुष्यों की जो प्रिय वस्तु होती है वही दुःख रूपी वृक्ष का बीज बन जाती है। फिर तो स्त्री, पुत्र, मित्र, गृह, क्षेत्र तथा धन आदि उतना अधिक सुख नही देते हैं जितना कि दुःख देने लगते हैं। इसलिये ससार रूपी सूर्य के ताप से सन्तापित चित्त वाले मनुष्यो के लिये मोक्ष रूपी वृक्षच्छाया को छोड कर सुख कहां है? ॥५२-५४½॥ इस कारण विद्वानो ने बतलाया है कि गर्भ जन्म, वृद्धता आदि स्थानो मे होने वाले त्रिविध तापो को मिटाने के लिये अतिशय आह्लादजनक तथा आनन्दरूप भगवत्प्राप्ति ही एक औषध है। इसलिये ज्ञानी मानव भगवत्प्राप्ति के लिये यत्न करें ॥५५-५७॥ द्विजश्रेष्ठो! भगवत्प्राप्ति का कारण ज्ञान तथा कर्म माना गया है। ज्ञान दो प्रकार का माना गया है—एक शास्त्रजन्य और दूसरा विवेकजन्य। शब्दब्रह्म का ज्ञान शास्त्रजन्य है और परब्रह्म का विवेकजन्य। अज्ञान अन्धकार के समान है और ज्ञान दीप के समान है ॥५८-५९॥ विप्रगण! विवेकजन्य ज्ञान सूर्य के समान है। इस सम्बन्ध मे वेदार्थ का स्मरण करके मनु ने जो कहा है, उसे आप सुनिये। दो ब्रह्म जानने योग्य हैं—एक शब्दब्रह्म और दूसरा परब्रह्म ॥६०-६१॥ शब्दब्रह्म मे निष्णात व्यक्ति परब्रह्म को प्राप्त करता है। *अथर्ववेद का भी कहना है कि दो विद्याओ को जानना चाहिये ॥६२॥ परा विद्या से ब्रह्म की प्राप्ति होती*

१ख ग ०नार्थंगु०। २क ०स्तातपपारादिसु०। ३ख ०ह्लादिमु०। ४ख विवेकोत्थ। ५ख संभ्रमो।

'परया हृयक्षरप्राप्तिर्ऋग्वेदादिमयाऽपरा। ¹यत्तदव्यक्तमजरमचिन्त्यमजमव्ययम् ॥६३॥
अनिर्देश्यमरूपं च पाणिपादाद्यसंयुतम्। वित्तं सर्वगतं नित्य भूतयोनिमकारणम् ॥६४॥
व्याप्य व्याप्तं यतः सर्वं तद्वै पश्यन्ति सूरयः। तद्ब्रह्म परमं धाम तद्ध्येयं मोक्षकाङक्षिभिः ॥६५॥
²श्रुतिवाक्योदितं सूक्ष्मं तद्विष्णोः परमं पदम्। ³उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामगति गतिम् ॥६६॥
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति। ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजास्यशेषतः ॥६७॥
भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः। सर्वाणि तत्र ⁴भूतानि निवसन्ति ⁵परमात्मनि ॥६८॥
भूतेषु च स सर्वात्मा वासुदेवस्ततः स्मृतः। उवाचेदं महर्षिभ्यः पुरा पृष्टः प्रजापतिः ॥६९॥
नामव्याख्यामनन्तस्य वासुदेवस्य तत्त्वतः। भूतेषु वसते योऽन्तर्वसन्त्यत्र च तानि यत् ॥
॥७०॥
धाता विधाता जगतां वासुदेवस्ततः प्रभुः

⁶ससर्वभूतप्रकृतिर्गुणाश्च,⁷ दोषाश्च⁸ सर्वान्स (न) गुणो हृयतीत. ।
अतीतसर्वावरणोऽखिलात्मा, तेनाऽऽवृतं यद्भवनान्तरालम्⁹ ॥७१॥
समस्तकल्याणगुणात्मको हि, स्वशक्तिलेशादृतभूतसर्ग. ।
इच्छागृहीताभिमतोरुदेह., संसाधिताशेषजगद्धितोऽसौ ॥७२॥

है और अपरा विद्या ऋग्वेदादि स्वरूप है। जो अव्यक्त, अजर, अचिन्त्य, जन्म-मरण-रहित, अनिर्देश्य, अरूप, हाथ पैर आदि से रहित, सर्वत्र प्राप्त, नित्य, भूतयोनि तथा अकारण है, जिससे व्याप्य वस्तु व्याप्त है, उसे ही विवेकी लोग देखते हैं। वही ब्रह्म तथा परम धाम है। मोक्षाभिलाषी व्यक्ति उसी का ध्यान करें।।६३-६५।। वह वेद वाक्या से प्रतिपादित, सूक्ष्म तथा विष्णु का परमपद है। वह पचभूतो की उत्पत्ति, प्रलय, अगति तथा गति को जानता है।।६६।। वह विद्या तथा अविद्या को भी जानता है। उसी का नाम भगवान् है। त्याज्य गुण आदि को छोडकर जितने ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य तथा तेज हैं, उन सब को भगवद् रूप ही समझना चाहिए। परात्मा मे समस्त भूत निवास करते हैं और भूतो में वह वासुदेव सज्ञक अखिलात्मा वास करता है। पूर्व काल मे पूछे जाने पर ब्रह्मा ने यही रहस्य महर्षियो को बतलाया था। उन्होने तत्त्वत अनन्त वासुदेव के नामा की व्याख्या की थी। वह वासुदेव प्राणियो मे वास करता है और प्राणी उसम वास करते हैं। वही प्रभु वासुदेव ससार का धाता और विधाता है।।६७-७०।। वह समस्त भूतो की प्रकृति है। वह त्रिगुणातीत होते हुए भी सब के गुण-दोषो को जानता है। वह समस्त आवरणों से परे तथा अखिलात्मा है। उसी से ससार व्याप्त है।।७१।। वह निखिल कल्याण रूप तथा गुणरूप है। वह अपनी शक्ति के लेश मात्र से भूतो की सृष्टि करता है। वह स्वेच्छा से देह धारण करता है तथा सपूर्ण जगत् का कल्याण करता है।।७२।। वह तेज, बल तथा ऐश्वर्य का महासमुद्र है। वह वीर्य,

---

१ग ०या दुष्कर०। २क ०तिबाह्योचित। ३क ०त्ति च विपत्ति च भू०। ४क ०निव०। ५क परमात्म०। ६ग क्रतेर्विकार गुणा०। ७ख ०तिर्विकारान्गुणा०। ८ख ०श्च स गुणेष्वती०। ९ग स वस्त्यत्रे तत.। १० ख यन्नव०।

तेजोबलैश्वर्यमहावरोधः, स्ववीर्यशक्त्यादिगुणैकराशिः ।
'परः पराणां सकला न यत्र, क्लेशादयः सन्ति परापरेशे' ॥७३॥
स ईश्वरो 'व्यष्टिसमष्टिरूपो'ऽव्यक्तस्वरूपः प्रकटस्वरूपः ।
सर्वेश्वरः 'सर्वदृक्सर्ववेत्ता, समस्तशक्तिः परमेश्वराख्यः ॥७४॥
संज्ञायते येन तदस्तदोषं शुद्धं परं निर्मलमेकरूपम् ।
संदृश्यते वाऽप्यथ गम्यते वा, तज्ज्ञानमज्ञानमतोऽन्यदुक्तम् ॥७५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवाद आत्यन्तिकलयनिरूपणं नाम चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३४॥

अथ पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

योगाभ्यासनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

इदानीं ब्रूहि योगं च दुःखसंयोगभेषजम् । यं विदित्वाऽव्ययं तत्र युञ्जामः पुरुषोत्तमम् ॥१॥
श्रुत्वा स वचनं तेषां कृष्णद्वैपायनस्तदा । 'अब्रवीत्परमप्रीतो योगी॰ योगविदां वरः ॥२॥

शक्ति आदि गुणों की राशि है। वह परे से भी परे है। उस परात्पर को क्लेश आदि नहीं होते हैं॥७३॥ वह ईश्वर, व्यष्टि-समष्टि रूप, अव्यक्त रूप तथा व्यक्त रूप है। वह सर्वेश्वर, सर्वद्रष्टा, सर्ववेत्ता, सर्वशक्तिमान्, तथा परमेश्वर है॥७४॥ जिसके द्वारा दोषरहित, शुद्ध, पर, निर्मल तथा एकरूप परमात्मा का दर्शन तथा प्राप्ति होती है, उसी का नाम ज्ञान है। उसके अतिरिक्त अज्ञान माना जाता है॥७५॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के संवाद-प्रकरण में आत्यन्तिक लय निरूपण नामक दो सौ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥२३४॥

अध्याय २३५

योगाभ्यास का निरूपण

मुनियों ने कहा—अब दुःखों के संयोग के मिटाने में औषधिरूप योग का वर्णन आप करें, जिसे जानकर हम अविनाशी पुरुषोत्तम को प्राप्त कर सकते हैं। उनका वचन सुनकर योगवेत्ताओं में श्रेष्ठ योगी व्यास परम हर्ष से कहने लगे॥१-२॥

१क. ख. परावरा॰। २ख. ॰रावरे॰। ३क. व्यस्तस॰। ४क. ॰मस्तरू॰। ५ख. ॰वर्जनप्रद्रष्टा स॰। ६ख. ॰प्रीतस्तदा योगवि॰। ७ग. योगं।

व्यास उवाच

योग वक्ष्यामि भो विप्रा श्रृणुध्व भवनाशनम्। यमभ्यस्याऽऽनुयाद्योगी मोक्ष परमदुर्लभम् ॥३॥
श्रुत्वाऽऽदौ योगशास्त्राणि गुरुमाराध्य भक्तित । इतिहास पुराण च वेदाश्चैव विचक्षण ॥४॥
आहार योगदोषाश्च देशकाल च बुद्धिमान्। ज्ञात्वा [१]समभ्यसेद्योग निर्द्वंद्वो निष्परिग्रह [२]॥५॥
भुञ्जन्सक्तु यवागू च[३] तक्रमूलफल पय । यावक कणपिण्याकमाहार योगसाधनम् ॥६॥
न मनोविकले ध्माते न श्रान्ते क्षुधिते तथा। न द्वद्वे नच शीते च न चोष्णे नानिलात्मके ॥७॥
सशब्दे न जलाभ्यासे जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे। सरीसृपे श्मशाने च न नद्यन्तेऽग्निसनिधौ ॥८॥
न चैत्ये न च वल्मीके सभये कूपसनिधौ। न शुष्कपर्णनिचये योग युञ्जीत कर्हिचित् ॥९॥
देशानेताननादृत्य मूढत्वाद्यो युनक्ति वै। प्रवक्ष्ये तस्य ये दोषा जायन्ते विघ्नकारका ॥१०॥
बाधिर्य जडता लोप स्मृतेर्मूकत्वमन्धता। ज्वरश्च जायते [४]सद्यस्तद्वदज्ञानसभव ॥११॥
तस्मात्सर्वात्मना कार्या रक्षा योगविदा सदा। धर्मार्थकाममोक्षाणा शरीर साधन यत ॥१२॥
आश्रमे विजने गुह्ये नि शब्दे निर्भये नगे। शून्यागारे शुचौ रम्ये चैकान्त देवतालये ॥१३॥
रजन्या पश्चिमे [५]यामे पूर्वे च सुसमाहित । पूर्वाह्णे मध्यमे चाह्नि[६] युक्ताहारो जितेन्द्रिय ॥१४॥

व्यास बोले—विप्रवृन्द ! सुनिये। मैं ससारनाशन योग का वर्णन करूँगा जिसका अभ्यास कर योगी पुरुष परम दुर्लभ मोक्ष को प्राप्त करता है ॥३॥ पहले भक्तिपूर्वक गुरु की आराधना करके विद्वान पुरुष योगशास्त्र इतिहास पुराण तथा वेदो का श्रवण करे ॥४॥ पश्चात आहार योग के दोष तथा देश-काल को जान कर द्वन्द्व (सुख दुख आदि) तथा परिग्रह (दान या सुख साधन) से रहित होकर योग का अभ्यास करे ॥५॥ सत्तू यवागू (लपसी) तक्र मूल, फल दूध यावक (जौ की बनी वस्तु या साठी चावल) चावल का कण (खुद्दी) पिण्याक (कसर)—इनका आहार करे ॥६॥ मन की विकलता की अवस्था मे योगाभ्यास न करे। श्रान्त तथा क्षुधित होने पर भी योगाभ्यास न करे। द्वन्द्वावस्था मे योगाभ्यास न करे। सर्दी गर्मी तथा वायु की तीव्रावस्था मे योगाभ्यास न करे। शब्दायमान स्थान मे जल के समीप पुराने गोष्ठ मे चौराहे पर साँप पर श्मशान मे तथा नदी और अग्नि के सान्निध्य मे योगाभ्यास न करे। जन सभा मे वल्मीक पर भयावह स्थान मे कूप के समीप तथा शुष्क पत्रो के ढेर पर कभी भी योगाभ्यास न करे ॥७-९॥ इन स्थानो मे जो मूर्खतावश योगाभ्यास करता है उसके विघ्नकारक दोषो को बतलाता हूँ ॥१०॥ ऐसे व्यक्ति का बहरापन जडता स्मृतिशून्यता अन्धापन ज्वर तथा ज्ञानशून्यता हो जाती है ॥११॥ इसलिये योगी व्यक्ति को सदा शरीर की रक्षा करनी चाहिये। क्योकि धर्म अर्थ काम और मोक्ष का साधन शरीर ही है ॥१२॥ एकान्त आश्रम मे गुप्त तथा नि शब्द स्थान मे भयशून्य पर्वत पर शून्य भवन मे पवित्र तथा रमणीय स्थान मे और एकान्त देवालय मे रात्रि के प्रथम प्रहर मे तथा अन्तिम प्रहर मे अत्यन्त सावधान हो योगाभ्यास करना चाहिए। जितेन्द्रिय तथा समुचिताहारी होकर पूर्वाह्ण मे तथा मध्याह्न मे भी रम्य

१ग ०योगी नि०। २ख ०ह। भैक्ष सक्तु। ३क च पत्र मू०। ४ग ०यु शुद्धविज्ञानयोगिन। त०। ५क ख मागे। ६क ख वाह्नि।

आसीन 'प्राङमुखो' रम्य आसने सुखनिश्चले। नातिनीचे न चोच्छ्रिते निस्पृह सत्यवाक्शुचि ॥१५॥
'युक्तनिद्रो जितक्रोध सर्वभूतहिते रत। सर्वद्वद्वसहो धीर समकायाङघ्रिमस्तक ॥१६॥
नाभौ निधाय हस्तौ द्वौ शान्त पदमासने स्थित। सस्थाप्य दृष्टि नासाग्रे प्राणानायम्य वाग्यत ॥१७॥
समाहृत्येंद्रियग्राम मनसा हृदये मुनि। प्रणव दीर्घमुद्यम्य सवृतास्य' सुनिश्चल' ॥१८॥
रजसा तमसो वृत्ति सत्त्वेन रजसस्तथा। सछाद्य निर्मले शान्ते स्थित सवृतलोचन ॥१९॥
हृत्पदमकोटरे लीन सर्वव्यापि निरञ्जनम। युञ्जीत सतत योगी मुक्तिद पुरुषोत्तमम् ॥२०॥
करणेन्द्रियभूतानि क्षेत्रज्ञे प्रथम न्यसेत्। क्षेत्रज्ञश्च परे योज्यस्ततो युञ्जति योगवित् ॥२१॥
मनो यस्यान्तमभ्येति परमात्मनि चञ्चलम'। सत्यज्य विषयास्तस्य योगसिद्धि प्रकाशिता ॥२२॥
यदा निर्विषय चित्त परे ब्रह्मणि लीयते। समाधौ योगयुक्तस्य तदाऽभ्यति पर पदम् ॥२३॥
'अससक्त यदा चित्त योगिन सर्वकर्मसु। 'भवत्यानन्दमासाद्य तदा निर्वाणमृच्छति ॥२४॥
शुद्ध धामत्रयातीत तुर्याख्य पुरुषोत्तमम। प्राप्य योगबलाद्योगी मुच्यते नात्र सशय' ॥२५॥

निश्चल तथा न अधिक उच्च न अधिक नाच आसन पर पूरब मुह बैठकर निस्पृह सत्यवादी एव पवित्र होकर योगा भ्यास करे॥१३ १५॥ योग व्यक्ति को उचित मात्रा म सोना चाहिये। उसे अक्रोधी समस्त प्राणिया के हित म निरत सुख दु खो का सहन करने वाला तथा धीर बनना चाहिये। वह शरीर चरण और मस्तक को समान स्थिति मे रखे॥१६॥ वह नाभि प्रदेश मे दोनो हाथो को रखकर शात होकर पद्मासन लगाये। नासिका के अग्रभाग म दृष्टि को स्थिर कर वाक्सयम पूवक प्राणायाम करे॥१७॥ मन से इद्रिय समूह का निरोध करके हृदय म प्रणव (ओ)का ध्यान करे। उस समय वह अपना मुख बन्द कर ले और निश्चल रहे॥१८॥ राजस वृत्ति से तामस वृत्ति का और सात्त्विक वृत्ति से राजस वृत्ति को आच्छादित कर नेत्रो को बन्द करके निमल तथा शान्त हृदय कमल की कर्णिका म लीन सवव्यापी निरञ्जन तथा मुक्तिदाता पुरुषोतम का योगी सदा ध्यान करे॥१९ २०॥ योगवेत्ता पुरुष पहले अन्त करण सहित इद्रियों और पञ्चभूता को क्षेत्रज्ञ म स्थापित करे और क्षेत्रज्ञ को परमात्मा मे नियुक्त करके योगा भ्यास करे। जिसका चञ्चल मन विषया का परित्याग करके परमात्मा मे लग जाता है उसकी योगसिद्धि हो जाती है॥२१ २२॥ जब योग का चित्त निर्विषय होकर समाधि अवस्था मे ब्रह्म मे लीन हो जाता है तब वह परम पद को प्राप्त करता है॥२३॥ जब योग का चित्त अखिल कर्मों मे अनासक्त हो जाता है तब वह आनन्दरूप परमात्मा को प्राप्त करके मुक्त हो जाता है॥२४॥ शुद्ध त्रिगुणातीत तुरीय कहलाने वाले तथा पुरुषोतम विष्णु को योगबल स प्राप्त करके योग नि स देह मुक्त हो जाता है॥२५॥ समस्त कामनाओ से नि स्पृह सब का प्रिय एवम सवत्र

१क ०ङमुख देश आ०। २ ग ०खादका आ०। ३ग मुक्तनिद्रो। ४ख सयतास्य। ५ग ०ल। सोमपा योगयुक्तस्य युञ्जन्त परम पदम। बाह्यात्मा सपरित्यज्य यो ऽन्तर्ध्यानरत सदा। अन्त सुखोऽन्तराराम स मोक्ष लभत ध्रुवम। जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त च त्यक्त्वा स्थानत्रय बुध। तुरीय पदमासाद्य न शोचति न काङ्क्षति। मनो। ६ख केवलम। ७क ख असगाय। ८ख भगवत्पादमा०। ९क ख ०द्ध सूक्ष्म गुणातीत सत्वाख्य। १०क ०प। वदप०।

निःस्पृहः सर्वकामेभ्यः सर्वत्र प्रियदर्शनः । सर्वत्रानित्यबुद्धिस्तु योगी मुच्येत नान्यथा ॥२६॥
इन्द्रियाणि न सेवेत वैराग्येण च योगवित । सदा चाभ्यासयोगेन मुच्यते नात्र संशयः ॥२७॥
न च 'पद्मासनाद्योगो न नासाग्रनिरीक्षणात । मनसश्चेन्द्रियाणां च संयोगो योग उच्यते ॥२८॥
एवं मया मुनिश्रेष्ठा योगः प्रोक्तो विमुक्तिदः । संसारमोक्षहेतुश्च किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥२९॥

लोमहर्षण उवाच

श्रुत्वा ते वचनं तस्य साधु साध्विति चाब्रुवन । 'व्यासं प्रशस्य संपूज्य' पुनः प्रष्टुं समुद्यताः ॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे योगाभ्यासनिरूपणं नाम
पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३५॥

अथ षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

सांख्ययोगनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

तव वक्त्राब्धिसंभूतममृतं वाङ्मयं मुने । पिबतां नो द्विजश्रेष्ठ न तृप्तिरिह दृश्यते ॥१॥
तस्माद्योगं मुने ब्रूहि विस्तरेण विमुक्तिदम । सांख्यं च द्विपदां श्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥२॥

अनित्य बुद्धि रखने वाला योगी निःसंदेह मुक्त होता है। इन्द्रियों की सेवा से विरत तथा सदा वैराग्य एवं योगाभ्यास में निरत योगी निःसंदेह मोक्ष प्राप्त करता है। पद्मासन लगाना तथा नासिकाग्रभाग का निरीक्षण करना योग नहीं कहलाता है प्रत्युत मन तथा इन्द्रियों का संयोग (एकाग्रता) ही योग कहलाता है। मुनिश्रेष्ठो ! इस प्रकार संसार से मोक्ष पाने का कारण तथा मुक्तिदायक योग मैंने बतला दिया। अब क्या सुनना चाहते हैं ? ॥२६-२९॥

लोमहर्षण ने कहा—व्यास के वचन सुनकर श्रोतागणों ने साधु साधु कहकर उनकी प्रशंसा की और पुनः उनसे प्रश्न किया ॥३०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के संवाद प्रकरण में योगाभ्यासनिरूपण
नामक दो सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३५॥

अध्याय २३६

सांख्ययोग का निरूपण

मुनियों ने कहा—मुने ! द्विजश्रेष्ठ ! आपके मुखरूपी समुद्र से उत्पन्न वाङ्मयरूपी अमृत का पान करते-करते हमें तृप्ति नहीं हो रही है। इसलिये मुक्तिदायक योग का विस्तृत वर्णन कीजिये। हम मनुष्यों के

१क. ॰सनो योगी स्वना॰। क. २ ख. ॰सं स॰। ३क. ख. ॰ज्य मुनयः पु॰।

'प्रज्ञावाञ्श्रोत्रियो यज्वा 'ख्यात प्राज्ञोऽनसूयक'। सत्यधर्ममतिर्ब्रह्म कथ ब्रह्माधिगच्छति ॥३॥
तपसा ब्रह्मचर्येण सर्वत्यागेन मेधया। साख्ये वा यदि वा योग एतत्पृष्टो वदस्व न ॥४॥
मनसश्चेन्द्रियाणा च यथैकाग्र्यमवाप्यते। यनोपायेन पुरुषस्तत्व व्याख्यातुमर्हसि ॥५॥

व्यास उवाच

नान्यत्र ज्ञानतपसोर्नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात। नान्यत्र सर्वसत्यागात्सिद्धि विन्दति कश्चन ॥६॥
महाभूतानि सर्वाणि पूर्वसृष्टि स्वयभुव। भूयिष्ठ प्राणभृद्ग्रामे निविष्टानि शरीरिषु ॥७॥
भूमर्देहो जलात्स्नेहो ज्योतिषश्चक्षुषी स्मृते। प्राणापानाश्रयो 'वायु कोष्ठाकाश शरीरिणाम ॥८॥
क्रा तौ विष्णुबले 'शक्र कोष्ठेऽग्निर्भोक्तुमिच्छति। कर्णयो प्रदिश श्रोत्र जिह्वाया वाक्सरस्वती ॥९॥
कर्णौ त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी। दश तानीन्द्रियोक्तानि द्वाराण्याहारसिद्धये ॥१०॥
शब्दस्पर्शौ तथा रूप रस गन्ध च पञ्चमम। इन्द्रियार्थान्पृथग्विद्यादिन्द्रियेभ्यस्तु नित्यदा ॥११॥
इन्द्रियाणि मनो युङ्क्ते अवश्या(शा)निव राजिन (न)। मनश्चापि सदा युङ्क्ते भूतात्मा हृदयाश्रित ॥१२॥
इन्द्रियाणा तथैवैषा सर्वेषामीश्वर मन। नियमे च विसर्गे च भूतात्मा मनसस्तथा ॥१३॥
'इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च स्वभावश्चेतना' मन। प्राणापानौ च जीवश्च नित्य देहेषु देहिनाम ॥१४॥

साख्य-दशन के बारे मे भी सुनना चाहते हैं। प्रज्ञावान श्रोत्रिय यज्ञकर्ता मेधावी अनि दक तथा स य धम निष्ठ मनुष्य कैसे ब्रह्म का प्राप्त करता है? तपस्या से या ब्रह्मचय से या सव याग से या मेधा से या साख्य से या याग से या जैसे ब्रह्म की प्राप्ति हो वह हमे बतलाइये। जिस उपाय से मन की एकाग्रता प्राप्त हा वह भी बतलाइये ॥१ ५॥

व्यास बोले—बिना ज्ञान तपस्या इ द्रियनिग्रह तया सवत्याग क कोई सिद्धि नही प्राप्त कर सकता है ॥६॥ ब्रह्मा ने पहले महाभूतो की सृष्टि की। फिर उनका प्राणियो के शरीरो म विनिविष्ट किया ॥७॥ भूमि से शरीर जल से स्निग्धता अग्नि से नेत्र वायु से प्राण-अपान तथा आकाश से क ष्ठ (न व कान आ दि क छ) उत्पन्न हुए ॥८॥ शरीर की क्रियाओ का देवता विष्णु बल का इन्द्र काष्ठ का अग्नि कण का दिशायें तथा जिह्वा का वाक्सरस्वती है। कण त्वचा नेत्र जिह्वा य पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ आहार सिद्धि के द्वार मानी जाती हैं। शब्द स्पश रूप रस ग ध—ये पाँच इन्द्रियो क विषय कहलाते हैं जिन्हे इन्द्रियो से अलग समझना चाहिये। चञ्चल घोडो की तरह इन्द्रियो को मन युक्त करता है और मन को भी हृदयाश्रित भूतात्मा युक्त करता है ॥९१२॥ नियम तथा उत्सग म समस्त इन्द्रियो का ईश्वर मन है। उसी तरह मन का ईश्वर भूतात्मा है ॥१३॥ देहधारियो क देह म इन्द्रियाँ इन्द्रियो क विषय स्वभाव चेतना मन प्राण अपान तथा जीव नित्य रहते हैं ॥१४॥ सत्त्व का न

१क प्रजावा०। २ग ख्यातप्रज्ञो०। ३स ०क। अभ्यासेन सदा ब्रह्म०। ग ०क। अनागतमनिर० ४ख वायुश्चेष्टाकाश श०। ५क शक्त। ख शक्त्या। ६क ०र्याप स्व०। ७क ०नाश्रय। प्रा०।

आश्रयो नास्ति सत्त्वस्य गुणशब्दो न चेतनाः। सत्त्वं हि तेजः सृजति न गुणान्वै कथंचन ॥१५॥
एव सप्तदशं देहं 'वृतं षोडशभिर्गुणैः। मनीषी मनसा विप्राः पश्यत्यात्मानमात्मनि' ॥१६॥
न ह्ययं चक्षुषा दृश्यो न च सर्वैरपीन्द्रियैः। मनसा तु प्रदीप्तेन महानात्मा प्रकाशते ॥१७॥
अशब्दस्पर्शरूपं तच्च (च्चा) रसागन्धमव्ययम्। अशरीरं 'शरीरे स्वे निरीक्षेत निरिन्द्रियम् ॥१८॥
अव्यक्त सर्वदेहेषु मर्त्येषु परमार्चितम्। योऽनुपश्यति स' प्रेत्य कल्पते ब्रह्मभूयत' ॥१९॥
'विद्याविनयसंपन्नब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥२०॥
स हि सर्वेषु भूतेषु जङ्गमेषु ध्रुवेषु च। वसत्येको महानात्मा येन सर्वमिदं ततम् ॥२१॥
सर्वभूतेषु चाऽऽत्मानं सर्वभूतानि चाऽऽत्मनि'। यदा पश्यति भूतात्मा' ब्रह्म संपद्यते तदा ॥२२॥
यावानात्मनि वेदाऽऽत्मा तावानात्मा परात्मनि। य एवं सततं वेद सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥२३॥
सर्वभूतात्मभूतस्य 'सर्वभूतहितस्य च। देवापि मार्गे मुह्यन्ति अपदस्य पदैषिण. ॥२४॥
शकुन्तानामिवाऽऽकाशे मत्स्यानामिव चोदके। यथा 'गतिर्न दृश्येत तथा ''ज्ञानविदां गति. ॥२५॥
कालः पचति भूतानि सर्वाण्येवाऽऽत्मनाऽऽत्मनि। यस्मिंस्तु पच्यते कालस्तन्न वेदेह कश्चन'' ॥२६॥

आश्रय है, न गुण है, न शब्द है और न चेतना है। सत्व तेज का सर्जन करता है, पर गुणो का कभी नही ॥१५॥ इस प्रकार सत्रहवां शरीर सोल्हो गुणो से युक्त है। विप्रवृन्द! विद्वान् पुरुष मन से आत्मा को आत्मा मे देखता है ॥१६॥ आत्मा को नेत्र से तथा इन्द्रियो से नही देखा जा सकता है। मन रूपी दीप से यह महान् आत्मा प्रकाशित होता है ॥१७॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध से रहित, अविनाशी एवम् अशरीरी आत्मा को अपने शरीर मे देखना चाहिए ॥१८॥ जो समस्त देहो मे उस परम पूज्य आत्मा को देखता है, वह मृत्यु के बाद ब्रह्म मे लीन हो जाता है ॥१९॥ पण्डित लोग विद्या-विनय-सपन्न ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते तथा चाण्डाल को समान भाव से देखते हैं ॥२०॥ वही एक महान् आत्मा समस्त भूतो मे तथा स्थावर-जगमा मे वास करता है जिससे सपूर्ण जगत् का निर्माण हुआ है ॥२१॥ जब मनुष्य समस्त भूतो मे अपने को तथा अपने मे समस्त भूतो को देखने लग जाता है तब उसे ब्रह्म की प्राप्ति होती है ॥२२॥ अपने शरीर के भीतर जैसा आत्मा है वैसे ही दूसरो के शरीर मे भी है, जो ऐसा निरन्तर समझता है, उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥२३॥ समस्त प्राणियो को अपना आत्मा समझने वाला, समस्त प्राणियो के हित मे निरत तथा अपद (परमात्मा) के पद का इच्छुक जो व्यक्ति है उसके मार्ग मे देवता भी मोहित हो जाते हैं ॥२४॥ (सुदूर) आकाश म पक्षियो की और (अगाध) जल म मत्स्यो की गति जैसे नही दिखाई पडती, वैसे ज्ञानियो की गति भी समझ म नही आती है ॥२५॥ काल समस्त भूतो को अपने से अपने मे पचाता है। पर काल जिसमे पकाया जाता है, उसे यहाँ कोई नही जानता है। उसके ऊपर, नीचे, तिरछे तथा मध्य मे कोई कुछ नही ग्रहण कर सकता है। ये समस्त लोक उसी

१क. वृत। २क ०त्मना। न। ३क ख ०रेषु नि०। ४क सर्वेम्य कल्पान्ते न तु भूयते। वि०। ५ग ०द्याभिजनस०। ६क ०नि। एव च स०। ७ग सर्वात्मा। ८ख ०तस्य देहिन। दे०। ९स. ०र्तिविनश्ये०। १०ख ०नस्य चोदय। का०। ११क. ०न। नैवोर्ध्वं न।

न तदूर्ध्वं न तिर्यक्च¹ नाधो न च पुनः पुनः। न ²मध्ये प्रतिगृह्णीते³ नैव किंचिन्न कश्चन ॥२७॥
सर्वे तत्स्था इमे लोका बाह्यमेषां न किंचन। यद्यप्यग्रे समागच्छेद्यथा बाणो गुणच्युतः ॥२८॥
नैवान्तं कारणस्येयाद्यद्यपि स्यान्मनोजवः। तस्मात्सूक्ष्मतरं नास्ति नास्ति स्थूलतरं तथा ॥२९॥
सर्वत.पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥३०॥
तदेवाणोरणुतर तन्महद्भ्यो महत्तरम्। तदन्त⁴ सर्वभूतानां ध्रुवं तिष्ठन्न दृश्यते ॥३१॥
अक्षर च क्षरं चैव द्वेधा भावोऽयमात्मनः। क्षर. सर्वेषु भूतेषु दिव्य त्वमृतमक्षरम् ॥३२॥
नवद्वारं पुरं ⁵कृत्वा हंसो हि नियतो वशी। ईदृशः सर्वभूतस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥३३॥
हानेनाभिविकल्पानां नराणां संचयेन च। ⁶शरीराणामजस्याऽऽहुर्हंसत्व पारदर्शिनः ॥३४॥
हंसोक्त च क्षरं चैव कूटस्थं यत्तदक्षरम्। तद्विद्वानक्षरं प्राप्य जहाति प्राणजन्मनी ॥३५॥

व्यास उवाच

भवतां पृच्छतां विप्रा यथावदिह तत्त्वतः। सांख्यं ज्ञानेन संयुक्तं तदेतत्कीर्तितं मया ॥३६॥
योगकृत्यं तु भो विप्राः⁷ कीर्तयिष्याम्यतः परम्। एकत्वं बुद्धिमनसोरिन्द्रियाणां च सर्वशः ॥३७॥
आत्मनो व्यापिनो ज्ञानं ज्ञानमेतदनुत्तमम्। तदेतदुपशान्तेन दान्तेनाध्यात्मशीलिना ॥३८॥

मे वास करते हैं। उससे बाहर कुछ भी नहीं है। यह उसी भांति आगे की ओर जाया करता है जैसे धनुष की डोरी से च्युत हुआ बाण जाया करता है। यद्यपि इसका मन के समान ही वेग होता है तो भी यह कारण के अंत तक प्राप्त नहीं हो पाता है। क्योंकि उससे कुछ भी अधिक सूक्ष्म तथा स्थूल वस्तु नहीं है। उसके सब ओर हाथ-पैर, आँख-सिर तथा मुख-कान हैं। वह सब को आवृत करके स्थित है ॥२६-३०॥ वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान् से भी महान् है। समस्त भूतो के भीतर वह स्थित होते हुए भी अदृश्य है ॥३१॥ आत्मा के दो भाव हैं—अक्षर और क्षर। समस्त भूतो मे रहने वाला क्षर कहलाता है और दिव्य तथा अमृत स्वरूप चेतन आत्मा अक्षर है ॥३२॥ नियत तथा वशी हंस (आत्मा) नव द्वारयुक्त शरीर रूपी गृह मे वास करता है। इसी प्रकार वह समस्त स्थावर-जंगमो मे वास करता है ॥३३॥ पारदर्शी लोग विकल्पो की हानि तथा मनुष्यो के संचय से ब्रह्म के शरीरों को ही हंस कहते हैं ॥३४॥ हंस को क्षर कहा जाता है और कूटस्थ अक्षर कहलाता है। ज्ञानी पुरुष उसी अक्षर को प्राप्त करके प्राण और जन्म का परित्याग करते हैं ॥३५॥

व्यास ने कहा—विप्रवृन्द! आपने जो ज्ञानयुक्त सांख्य के बारे मे पूछा, उसका वर्णन तत्त्वत मैंने कर दिया ॥३६॥ अब योग-क्रिया का वर्णन मैं करूँगा। बुद्धि, मन तथा इन्द्रियों की एकाग्रता का नाम ही एकता है ॥३७॥ व्यापक आत्मा का ज्ञान ही सर्वोत्तम ज्ञान है। यही ज्ञान शम, दम, अध्यात्म-परिशीलन तथा

१क ०र्यगधो न च माति पु०। २ग मन्ये। ३ग ०हृणीतो नै०। ४क ०त्वा सोऽत्र वै नियत वसेत्। ई०। ५क च। हीनेनागतक०। ६क ०रीर हि नरस्येह नि सर्वं पा०। ७ख ग ०प्रा वर्ते०।

[1]आत्मारामेण बुद्धेन बोद्धव्यं शुचिकर्मणा। योगदोषान्समुच्छिद्य पञ्च[2] यान्कवयो विदुः ॥३९॥
कामं क्रोधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पञ्चमम्। क्रोध शमेन जयति कामं संकल्पवर्जनात् ॥४०॥
सत्त्वसंसेवनाद्धीरो निद्रामुच्छेत्तुमर्हति। धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत्पाणिपादं च चक्षुषा ॥४१॥
चक्षुः श्रोत्रं च मनसा मनो वाचं च कर्मणा। अप्रमादाद्भयं जह्याद्दम्भं प्राज्ञोपसेवनात् ॥४२॥
एवमेतान्योगदोषाञ्जयेन्नित्यमतन्द्रितः। अग्नींश्च ब्राह्मणांश्चाथ देवताः प्रणमेत्सदा ॥४३॥
[3]वर्जयेदुद्धतां वाचं हिंसायुक्तां [4]मनोनुगाम्[5]। ब्रह्मतेजोमयं [6]शुक्रं यस्य सर्वमिदं जगत्[7] ॥४४॥
एतस्य भूतभूतस्य दृष्टं स्थावरजङ्गमम्। ध्यानमध्ययनं दानं [8]सत्य ह्रीरार्जवं क्षमा ॥४५॥
शौचं चैवाऽऽत्मनः शुद्धिरिन्द्रियाणां च निग्रह.। एतैर्विवर्धते तेज. पाप्मानं चापकर्षति ॥४६॥
[9]समः सर्वेषु भूतेषु [10]लभ्यालभ्येन वर्तयन्। धूतपाप्मा तु तेजस्वी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ॥४७॥
कामक्रोधौ वशे कृत्वा निषेवेद्ब्रह्मणः पदम्। मनसश्चेन्द्रियाणां च[11] कृत्वैकाग्र्यं समाहितः ॥४८॥
पूर्वरात्रे परार्धे च धारयेन्मन आत्मन.। जन्तो. पञ्चेन्द्रियस्यास्य यद्येकं क्लिन्नमिन्द्रियम् ॥४९॥
ततोऽस्य [12]स्रवति प्रज्ञा गिरेः पादादिवोदकम्। मनस.[13] पूर्वमादद्यात्कूर्माणामिव[14] मत्स्यहा ॥५०॥

पवित्र कर्मों के द्वारा आत्मा मे रमण करने वाले बुद्धिमान् मनुष्य को प्राप्त होता है। विद्वान् व्यक्ति योग के पाँच दोषों—काम, क्रोध, लोभ, भय तथा पञ्चम स्वप्न रूप दोषों को, जिन्हे विद्वानो ने बताया है, छोड दे। शम से क्रोध को तथा सकल्प-त्याग से काम को जीते। धीर पुरुष सात्त्विक वृत्ति के सेवन से निद्रा का जीत लेते है। धैर्य से इन्द्रिय तथा उदर की रक्षा करे, नेत्र से हाथ-पैर की रक्षा करे, मन से नेत्र तथा कर्ण की रक्षा करे और कर्म से मन तथा वाणी की रक्षा करे। सावधानी से भय का त्याग करे विद्वान् की सेवा से दम्भ को छोडे ॥३८-४२॥ इस प्रकार इन योग-दोषो को निरालस्य पूर्वक त्याग दें। सदा अग्नि, ब्राह्मण और देवताओ को प्रणाम करे ॥४३॥ मन की अनुगामी उद्धत, तथा हिंसायुक्त वाणी को त्याग दे। ब्रह्म तथा तेजोमय वीर्य का धारण करे, जिससे स्थावर-जगमात्मक सपूर्ण जगत् की उत्पत्ति होती है ॥४४½॥ ध्यान, अध्ययन, दान, सत्य, लज्जा, कोमलता, क्षमा, शौच तथा इन्द्रियो का निग्रह करे। इन सब साधनो से तेज बढता है और पाप नष्ट होता है ॥४५-४६॥ समस्त प्राणियो मे समान भाव रखे और जो कुछ मिल जाय उसी से निर्वाह करे। पापरहित तेजस्वी, अल्प भोजन करने वाला तथा जितेन्द्रिय होकर काम-क्रोध को वश मे करके ब्रह्मपद का सेवन करे ॥४७½॥ सावधानी से मन और इन्द्रियो की एकाग्रता करके पूर्वरात्र म तथा अपररात्रि मे मन स आत्मा का धारण करे। मनुष्यो की पाँच इन्द्रियो मे स एक भी यदि अवश हो जाय तो उसकी प्रज्ञा पर्वत पर से जल की तरह प्रस्रवित हो जाती है ॥४८-४९½॥ मछुआ पहले कछुआ को पकडता है उसी तरह योगी पहले मन को वश मे

१ग ०रागेण। २क ख ०ञ्च तान्क०। ३ख ०येद्दुस्सदा वा०। ग ०येत्कुश्रिता वा०। ४क ०नोजवाम्। ५ख ०म्। ब्राह्मं ते०। ६क शक्ल। ७ग रस। ८क ०त्य ह्रीडाऽऽर्ज०। ९ग सम्यक्सर्वे०। १०ख ग लब्ध्वा लब्धेन। ११ख च तत्त्वैका०। १२ख क्षरति। १३क ख मनसा। १४क ०द्यात्कर्मणा।

तन श्रोत्र ततश्चक्षुर्जिह्वा घ्राण च योगवित्। तत एतानि सयम्य मनसि स्थापयेद्यदि ॥५१॥
तथैवापोह्य सकल्पान्मनो ह्यात्मनि धारयेत। पञ्चेन्द्रियाणि मनसि हृदि सस्थापयेद्यदि ॥५२॥
यदैतान्यवतिष्ठन्ते मन षष्ठानि चाऽऽत्मनि। प्रसीदन्ति च [1]सस्थाया तदा ब्रह्म प्रकाशते ॥५३॥
विधूम इव [2]दीप्तार्चिरादित्य इव दीप्तिमान। वैद्युतोऽग्निरिवाऽऽकाशे[3] पश्यन्त्यात्मानमात्मनि ॥५४॥
[4]सर्वं तत्र तु सर्वत्र व्यापकत्वाच्च दृश्यते। त पश्यन्ति महात्मानो ब्राह्मणा ये मनीषिण ॥५५॥
धृतिमन्तो महाप्राज्ञा सर्वभूतहिते रता। एव परिमित कालमाचरन्सशितव्रत ॥५६॥
आसीनो हि रहस्येको गच्छेदक्षरसाम्यताम्। प्रमोहो भ्रम आवर्तो घ्राण श्रवणदर्शने ॥५७॥
अद्भुतानि रस स्पर्श शीतोष्णमारुताकृति। प्रतिभानुपसर्गाश्च प्रतिसगृह्य योगत ॥५८॥
तास्तत्त्वविदनादृत्य साम्येनैव निवर्तयेत्। कुर्यात्परिचय योगे त्रैलोक्ये नियतो मुनि ॥५९॥
गिरिशृङ्गे तथा चैत्ये वृक्षमूलेषु योजयेत। सनियम्येन्द्रियग्राम [5]कोष्ठे [6]भाण्डमना इव ॥६०॥
[7]एकाग्र चिन्तयेन्नित्य [8]योगान्नोद्विजते मन। येनोपयेन शक्येत नियन्तु चञ्चल मन[9] ॥६१॥
तत्र युक्तो निषेवेत न चैव विचलेत्तत। शून्यागाराणि चैकाग्रो निवासार्थमुपक्रमेत ॥६२॥
नातिव्रजेत्पर वाचा कर्मणा [10]मनसाऽपि वा। उपेक्षको [11]यताहारो [12]लब्धालब्धसमो भवेत ॥६३॥

करे। इसके अनन्तर कान आंख जिह्वा और नासिका का सयम करके मन मे इनकी स्थापना करे॥५० ५१॥ उसी तरह सकल्प से मन को हटाकर आत्मा मे धारण करे। पांचो इन्द्रिया को मन मे स्थापित करे॥५२॥ जब मन सहित पांचा इन्द्रियां आत्मा मे स्थित हो जाती हैं तब ब्रह्म का प्रकाश प्राप्त होता है॥५३॥ आकाश मे दीप्तिमान् सूर्य की तरह तथा विद्युत् अग्नि की तरह मन म आत्मा का दर्शन होता है। व्यापक होन के कारण आत्मा मे अखिल वस्तुएं तथा अखिल वस्तुआ मे आत्मा दीखता है। उस आत्मा को महात्मा धीर महापण्डित तथा समस्त भूतो के हित मे निरत मनीषी ब्राह्मण देख पाते हैं॥५४ ५५॥ दृढव्रती मनुष्य अकेले एकान्त म बैठकर थोड समय तक ही इस प्रकार आचरण करते हुए ब्रह्म समानता को प्राप्त कर लेते है। महामोह भ्रम तथा चक्कर ही नाक कान तथा आंख है। स्पश सर्दी गर्मी तथा वायु अद्भुत रस हैं। प्रतिभा तथा बाधाओ का योग द्वारा रोककर तत्त्ववेत्ता व्यक्ति समता स ही उनको अनादरपूर्वक निवृत्त करे। इस प्रकार वशेन्द्रिय तीना लाक म योग का परिचय प्राप्त करे। पवत शिखर पर देवालय म तथा वृक्षमूला म इन्द्रिय समूह का सयम करके योगाभ्यास करे। नित्य मन को एकाग्र करे। योग स मन को उद्विग्न न होन दे। जिस उपाय से चचल मन को वशीभूत कर सके उसी का अवलम्बन करके योगाभ्यास करना चाहिए। उसस विचलित नही होना चाहिय॥५६ ६१॥ निवास क लिये शून्य भवन ढूढ़ और एकाग्र होकर रहे। मन वचन और कम से कभी भी आसक्त न हो। उपेक्षा करने वाले नियमित भोजन करने वाले तथा हानि लाभ म समान भाव रखने वाल व्यक्ति योगाभ्यास करे॥६२ ६३॥ अपने निन्दक तथा प्रशसक दोनों क प्रति समान व्यवहार करे।

१क सच्छाया। २ख ०प्ताग्निरा०। ३घ ०न दृश्य०। ४ख सवतन्त्र च स०। ५ग काष्ठे। ६क तादृङ्मना। ७ख एकान्ते। ८क ०गात्मा चिन्तयन्नर। स०। ९ख स ०न। सं घ पु०। १०क नाभिप्वज्येत बाल वा क०। ११ख ०सा गिरा। उ०। १२ख जिताहारो। १३ख ल्भ्यालभ्यस०।

यश्चैनमभिनन्देत यश्चैनमभिवादयेत्। समस्तयोश्चाप्युभयोर्नाभिध्यायेच्छुभाशुभम् ॥६४॥
न प्रहृष्येत लाभेषु नालाभेषु च चिन्तयेत्। समः सर्वेषु भूतेषु [1]सधर्मा मातरिश्वन ॥६५॥
एवं स्वस्थात्मनः साधोः सर्वत्र समदर्शिनः। षण्मासान्नित्ययुक्तस्य शब्दब्रह्माभिवर्तते ॥६६॥
[2]वेदनार्तान्परान्दृष्ट्वा समलोष्टाश्मकाञ्चनः। एवं तु निरतो मार्गं विरमेन्न विमोहितः ॥६७॥
अपि वर्णावकृष्टस्तु नारी वा धर्मकाङ्क्षिणी। तावप्येतेन मार्गेण गच्छेतां परमां गतिम् ॥६८॥
अज पुराणमजरं सनातनं, यमिन्द्रियातिगमगोचरं द्विजाः ।
अवेक्ष्य चेमां परमेष्ठिसाम्यतां, [3]प्रयान्त्यनावृत्तिगतिं मनीषिणः ॥६९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे साख्ययोगनिरूपणं नाम
पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३६॥

अथ सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

ज्ञानिनां मोक्षप्राप्तिनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

[4]यद्येवं वेदवचनं कुरु कर्म त्यजेति च। कां [5]दिशं विद्यया यान्ति कां च गच्छन्ति कर्मणा ॥१॥

शुभ अशुभ का ध्यान न करे ॥६४॥ लाभ होने पर प्रसन्न न हो और हानि होने पर चिन्ता न करे। वायु के समान समस्त प्राणियों से तुल्य व्यवहार करे ॥६५॥ इस प्रकार स्वस्थात्मा और सर्वत्र समदर्शी होकर छह मास तक नित्य योगाभ्यास करने वाले को शब्द-ब्रह्म की प्राप्ति होती है ॥६६॥ जिसका चित्त वेदनाओं से पीडित व्यक्तियों को देखकर भी उद्विग्न नहीं होता है तथा जो ढेले, पत्थर एवम् सोने में समान भाव रखता है, वही योगयुक्त कहलाता है। इस प्रकार योगमार्ग पर आरूढ होना चाहिये, मोहवश उससे भ्रष्ट नहीं होना चाहिये। चाहे नीच वर्ण का व्यक्ति हो अथवा धर्म चाहने वाली स्त्री हो, वे दोनों ही इस मार्ग से चलने पर परम गति को प्राप्त करते हैं ॥६७ ६८॥ द्विजगण! अज, पुराण, अजर, सनातन, इन्द्रियों से परे तथा अगोचर परमात्मा का दर्शन करके विद्वान् लोग ब्रह्म-समानता रूप अपरिवर्तनशील गति को प्राप्त करते हैं ॥६९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के संवाद प्रकरण में साङ्ख्ययोग-निरूपण
नामक दो सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३६॥

अध्याय २३७

ज्ञानियों की मोक्षप्राप्ति का निरूपण

मुनियों ने कहा—यदि ऐसा वेद का वचन है कि कर्म करो और त्याग भी करो तो मनुष्य ज्ञान के द्वारा

---

[1] ख ०र्मात्मा मुनीश्वर। ए०। [2] ग ०नार्ता प्रजा ह०। [3] ग ०त्तिपथ म०। [4] ख ग यदिदं वे०।
[5] क गतिं।

एतद्वै श्रोतुमिच्छामस्तद्भवान्प्रब्रवीतु नः । एतदन्योन्यवैरूप्यं वर्तते प्रतिकूलतः ॥२॥

व्यास उवाच

श्रृणुध्वं मुनिशार्दूला यत्पृच्छध्वं समासतः । 'कर्मविद्यामयौ चोभौ व्याख्यास्यामि 'क्षराक्षरौ ॥३॥
या दिशं विद्यया यान्ति या गच्छन्ति च कर्मणा । श्रृणुध्वं साम्प्रतं विप्रा गहनं ह्येतदुत्तरम् ॥४॥
अस्ति धर्म इति युक्तं नास्ति तत्रैव यो वदेत् । यक्षस्य सादृश्यमिदं यक्षस्येदं भवेदथ ॥५॥
द्वाविमावथ पन्थानौ यत्र वेदाः प्रतिष्ठिताः । प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो निवृत्तो वा विभाषितः ॥६॥
कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते । तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः ॥७॥
कर्मणा जायते प्रेत्य मूर्तिमान्षोडशात्मकः । विद्यया जायते नित्यमव्यक्तं ह्यक्षरात्मकम् ॥८॥
कर्म त्वेके प्रशंसन्ति स्वल्पबुद्धिरता नराः । तेन ते देहजालेन' रमयन्त उपासते ॥९॥
ये तु बुद्धिं परां प्राप्ता धर्मनैपुण्यदर्शिनः' । न ते कर्म प्रशंसन्ति कूपं नद्यां पिबन्निव ॥१०॥
कर्मणा फलमाप्नोति सुखदुःखे भवाभवौ । विद्यया तदवाप्नोति यत्र गत्वा न शोचति ॥११॥
न म्रियते यत्र गत्वा यत्र गत्वा न जायते । न जीर्यते यत्र गत्वा यत्र गत्वा न वर्धते ॥१२॥
यत्र तद्ब्रह्म परममव्यक्तमचलं ध्रुवम् । अव्याकृतमनायाममममृतं 'चाधियोगवित् ॥१३॥

(कर्म त्याग देने से) किस गति को प्राप्त होते हैं और कर्म से किस गति को प्राप्त होते हैं ? यह हम सुनना चाहते हैं आप बतलाइये। यह परस्पर वैरूप्य प्रतिकूल भाव रखता है॥१-२॥

व्यास बोले—मुनिवर ! जो आप पूछते हैं उसे संक्षेप से सुनिये। मैं कर्म तथा ज्ञानमय दोनों क्षर और अक्षर का वर्णन करूँगा। विप्रवृन्द ! ज्ञान से मनुष्य जिस गति को प्राप्त करते हैं और कर्म से जिसको प्राप्त करते हैं इसका उत्तर देना बहुत कठिन है। फिर भी अब सुनिये। धर्म है और धर्म नहीं है—यह कहना वैसा ही होगा जैसे यह एक यक्ष का सादृश्य है और यह यक्ष का सादृश्य नहीं है यह कथन। ये दो मार्ग हैं जिनमें वेद प्रतिष्ठित हैं। एक प्रवृत्तिलक्षण धर्म है और दूसरा निवृत्तिलक्षण धर्म है॥३-६॥ कर्म से जीव बद्ध होता है और ज्ञान से मुक्त होता है। इसलिये पारदर्शी संन्यासी लोग कर्म नहीं करते हैं॥७॥ कर्म से जीव देहान्त के बाद सोलह विकार से युक्त मूर्तिमान होता है अर्थात् जन्म लेता है और ज्ञान से अक्षरात्मक नित्य अव्यक्त हो जाता है॥८॥ स्वल्प बुद्धि वाले मनुष्य कर्म की प्रशंसा करते हैं। इसलिये वे देहजाल से रमण करते हुए कर्म की उपासना करते हैं॥९॥ जो परा बुद्धि को प्राप्त हैं तथा धर्म की निपुणता को देखते हैं वे कर्म की प्रशंसा उसी तरह नहीं करते हैं जैसे नदी के जल पीने वाले कुएँ की॥१०॥ कर्मों के फल उत्पत्ति मरण रूप सुख-दुःख होते हैं। ज्ञान से जीव वहाँ जाता है जहाँ जाने पर सोच नहीं होता है मृत्यु नहीं होती उत्पत्ति नहीं होती हानि तथा वृद्धि नहीं होती जहाँ परम अव्यक्त अचल ध्रुव नामरूप से रहित अनामय अमृत तथा योगवेत्ता ब्रह्म की प्राप्ति होती है और जहाँ मानसिक कर्म तथा (शीत उष्ण आदि) द्वन्द्व

१क ०द्यावनौ व्या०। २ग चराचरौ। ३ख जालानि र०। ग ०जातानि र०। ४क ०मज्ञा पुण्य०।
५क बाधयोगत। ख बाधियोगिना।

द्वंद्वैर्न यत्र बाध्यन्ते मानसेन च कर्मणा। समाः सर्वत्र मैत्राश्च सर्वभूतहिते रताः ॥१४॥
विद्यामयोऽन्यः पुरुषो द्विजाः कर्ममयोऽपरः। 'विप्राश्चन्द्रसमस्पर्शः' सूक्ष्मया कलया स्थितः' ॥१५॥
तदेतदृषिणा प्रोक्तं विस्तरेणानुगीयते। 'न वक्तुं शक्यते द्रष्टुं 'चक्रतन्तुमिवाम्बरे ॥१६॥
एकादशविकारात्मा कलासंभारसंभृतः। मूर्तिमानिति. तं विद्याद्विप्राः कर्मगुणात्मकम् ॥१७॥
देवो यः संश्रितस्तस्मिन्बुद्धीन्दुरिव' पुष्करे। क्षेत्रज्ञं तं विजानीयान्नित्यं योगजितात्मकम् ॥१८॥
तमो रजश्च सत्त्वं च ज्ञेयं 'जीवगुणात्मकम्। जीवमात्मगुणं विद्यादात्मानं परमात्मनः ॥१९॥
सचेतनं जीवगुणं वदन्ति, स' चेष्टते 'जीवगुणं च सर्वम् ।
ततः परं क्षेत्रविदो वदन्ति'', प्रकल्पयन्तो भुवनानि सप्त ॥२०॥

व्यास उवाच

प्रकृत्यास्तु विकारा ये ''क्षेत्रज्ञास्ते'' परिश्रुताः। ते चैनं न प्रजानन्ति न जानाति स तानपि ॥२१॥
तैश्चैव कुरुते कार्यं ''मनः षष्ठैरिहेन्द्रियैः। सुदान्तैरिव संयन्ता दृढः'' परमवाजिभिः ॥२२॥
इन्द्रियेभ्यः'' परा ह्यर्था अर्थेभ्यः परमं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ॥२३॥

बाधा नहीं डालते हैं ॥११-१३½॥ वहाँ जीव समभाव में स्थित, सर्वत्र मित्रतायुक्त एवम् समस्त भूतों के हित में निरत रहते हैं ॥१४॥ द्विजगण! कोई पुरुष ज्ञानमय होता है तो कोई कर्ममय। विप्रवृन्द! कोई चन्द्रमा के समान शीतल स्पर्श वाला तथा सूक्ष्म कला (गुण) से युक्त होता है। यह रहस्य ऋषि ने बतलाया है। उसका विस्तार से मैं वर्णन कर रहा हूँ। वह आकाश में चक्रतन्तु के समान देखा जा सकता है, किन्तु बतलाया नहीं जा सकता है। विप्रगण! कर्म-गुण वाले को ग्यारह विकारों से युक्त तथा कलाओं से सम्पन्न मूर्तिमान् समझिये ॥१५-१७॥ तालाब में चन्द्र-प्रतिबिंब की तरह शरीर में जो देव अवस्थित हैं, उसे क्षेत्रज्ञ, नित्य तथा योग-जितात्मा समझिये। तम, सत्त्व तथा रज को जीव का गुण समझिये, जीव को आत्मा का गुण और आत्मा को परमात्मा का गुण मानिये। जीव का गुण सचेतन है, वह समस्त जीव के गुण की चेष्टा किया करता है और सातों भुवनों की कल्पना करते हुए क्षेत्रवेत्ता उससे परे को बतलाते हैं ॥१८-२०॥

व्यास बोले—प्रकृति के जो विकार हैं, वे क्षेत्रज्ञ कहलाते हैं। वे पुरुष को नहीं जानते हैं और पुरुष उनको नहीं जानता है। जैसे सुशासित अश्वों से दृढ सारथि कार्य लेता है उसी तरह मन सहित छहों इन्द्रियों से पुरुष कार्य लेता है ॥२१-२२॥ इन्द्रियों से परे उनके विषय हैं, विषयों से परे मन है, मन से परे बुद्धि है और बुद्धि से परे महान् आत्मा है ॥२३॥ महान् से परे अव्यक्त है, अव्यक्त से परे अमृत है और अमृत से परे कुछ भी नहीं

१ख विप्रश्च०। २ख ०न्द्रमस स्पर्शात्स सूक्ष्मो लोकसंस्थि०। ग ०न्द्रमस स्प०। ३क स्थितम्। ४ग न चक्र शशिन दृष्ट्वा चक्रत०। ५क चक्रन्तरमिवापरे। ६क ०स्मिन्नप्यीन्दु। ७ख जीवात्मकगुणम्। ८ग स तिष्ठते चेतयते तु स०। ९ क ० ते चिन्तयन्तीह स०। १०ग ०न्ति प्राक्कल्पयन्तो मु०। ११क ०ज्ञो से प०। १२ख ०शाश्च प०। १३ग मनसश्चेन्द्रियै सह। मु०। १४ख दृढै। १५क स. अनर्थेभ्य।

महत परमव्यक्तमव्यक्तात्परतोऽमृतम्। अमृतान्न' परं किंचित्सा काष्ठा परमा गति ॥२४॥
एव सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते। दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभि ॥२५॥
अन्तरात्मनि संलीय मन षष्ठानि मेधया। इन्द्रियैरिन्द्रियार्थांश्च बहुचित्तमचिन्तयन् ॥२६॥
ध्यानेऽपि परम कृत्वा विद्यासंपादित मन। अनीश्वर प्रशान्तात्मा ततो गच्छेत्परं पदम् ॥२७॥
इन्द्रियाणां तु सर्वेषां वश्यात्मा चलितस्मृति। आत्मन संप्रदानेन मर्त्यो मृत्युमुपाश्नुते ॥२८॥
विहत्य सर्वसंकल्पान्सत्त्वे चित्त निवेशयेत्। सत्त्वे चित्त समावेश्य तत कालजरो भवेत् ॥२९॥
चित्तप्रसादेन यतिर्जहातीह शुभाशुभम्। प्रसन्नात्माऽऽत्मनि स्थित्वा सुखमत्यन्तमश्नुते ॥३०॥
लक्षण तु प्रसादस्य यथा स्वप्ने सुख भवेत्। निर्वाते वा यथा दीपो दीप्यमानो न कम्पते ॥३१॥
एव पूर्वापरे रात्रे युञ्जन्नात्मानमात्मना। लघ्वाहारो विशुद्धात्मा पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥३२॥
रहस्य सर्ववेदानामनैतिह्यमनागमम्। आत्मप्रत्यायक शास्त्रमिद पुत्रानुशासनम् ॥३३॥
धर्माख्यानेषु सर्वेषु सत्याख्यानेषु यद्वसु। दशवर्षसहस्राणि निर्मथ्यामृतमुद्धृतम् ॥३४॥
नवनीत यथा दध्न काष्ठादग्निर्यथैव च। तथैव विदुषा ज्ञान मुक्तिहेतो समुद्धृतम् ॥३५॥

है। वह पराकाष्ठा तथा परमगति है॥२४॥ इस प्रकार समस्त भूतों में प्रच्छन्न आत्मा प्रकाशित नहीं होता है। किन्तु सूक्ष्मदर्शी व्यक्ति श्रेष्ठ एव सूक्ष्म बुद्धि से उसको देख लेते है॥२५॥ बुद्धि से मन सहित छहों इन्द्रियों को अन्तरात्मा में विलीन करके इन्द्रियों से इन्द्रियों के विषयों का ध्यान न करते हुए तथा ध्यान हो जाने पर भी मन को विद्या से सुसयत करके अनीश्वर तथा प्रशान्तात्मा व्यक्ति परम पद को प्राप्त करता है ॥२६ २७॥ समस्त इन्द्रियों के वश में रहने वाला तथा विचलित ध्यान वाला मनुष्य आत्मा का हनन करके मृत्यु को प्राप्त करता है॥२८॥ जो समस्त सकल्पों को विनष्ट करके सत्त्व में चित्त को निविष्ट करता है वह काल को जीत लेता है॥२९॥ चित्त की प्रसन्नता से सन्यासी शुभाशुभ कर्मों का त्याग करके आत्मस्थित होकर अत्यन्त सुख को प्राप्त करते हैं॥३०॥ प्रसन्नता का लक्षण यह है कि जैसे स्वप्न मे सुख होता है और निर्वात स्थान मे प्रज्वलित दीप कम्पित नहीं होता है उसी तरह पूर्व रात्रि में तथा अपर रात्रि मे आत्मा से मन का सयोग (ध्यान) करे और अल्पभोजन करते हुए विशुद्धात्मा होकर आत्मा में आत्मा को देखे ॥३१ ३२॥ यह शास्त्र अखिल वेदों का रहस्य है इतिहास तथा आगम से भिन्न है आत्मा का ज्ञान कराने वाला है और पुत्रानुशासन है अर्थात् जैसे पिता पुत्र के ऊपर अनुशासन करता है वैसे यह भी साधक के ऊपर शासन करता है॥३३॥ धर्म के आख्यानों में तथा सत्य के आख्यानों में जो सार है, वही यह है। दस सहस्र वर्षों तक वेदों का मथन करके यह अमृत निकाला गया है। जैसे दही से नवनीत और काष्ठ से अग्नि निकलता है उसी प्रकार मोक्ष के कारण से विद्वानों का ज्ञान निसृत हुआ है। यह पुत्रानुशासन शास्त्र शिष्यों को बतलाना चाहिये।

१क ख ०तान्न प०। २क ०नेनोप०। ३ख ०स्मृत। आ०। ४ग ०लजरो। ५ग स्वयम्। ६ख ०त्। दानैर्वाति य०। ७ख ०मनौपम्यमनायमयम्। ८क यद्वनु। ख वस्तुपु। ९ग ०मु। दशं दशस०। १०क ०था दुग्धात्काष्ठा०। ११ख ०हेतो स०।

स्नातकानामिदं शास्त्रं वाच्यं पुत्रानुशासनम्। तदिदं नाप्रशान्ताय नादान्ताय तपस्विने[१] ॥३६॥
नावेदविदुषे वाच्यं तथा नानुगताय च। नासूयकायानृजवे न चानिर्दिष्टकारिणे ॥३७॥
न तर्कशास्त्रदग्धाय तथैव पिशुनाय च। श्लाघिने श्लाघनीयाय प्रशान्ताय [२]तपस्विने ॥३८॥
इदं प्रियाय पुत्राय शिष्यायानुगताय तु। रहस्यधर्मं वक्तव्य नान्यस्मै तु कथचन ॥३९॥
यद्यप्यस्य महीं दद्याद्रत्नपूर्णामिमां नर.। इदमेव तत[३] श्रेय इति[४] मन्येत तत्त्ववित् ॥४०॥
[५]अतो गुह्यतरार्थं तदध्यात्ममतिमानुषम्। [६]यत्तन्महर्षिभिर्दृष्टं वेदान्तेषु च गीयते ॥४१॥
तद्युष्मभ्यं [७]प्रयच्छामि यन्मां पृच्छत सत्तमाः। यन्मे मनसि वर्तेत यस्तु वो हृदि सशय. ॥
श्रुतं भवद्भिस्तत्सर्वं किमन्यत्कथयामि च[८] ॥४२॥

मुनय ऊचुः

अध्यात्मं विस्तरेणेह पुनरेव वदस्व न.। यदध्यात्म यथा विद्मो[९] भगवन्नृषिसत्तम ॥४३॥

व्यास उवाच

अध्यात्मं यदिदं विप्रा. पुरुषस्येह [१०]पठ्यते। युष्मभ्यं कथयिष्यामि तस्य[११] व्याख्याऽवधार्यताम् ॥४४॥
भूमिरापस्तथा ज्योतिर्वायुराकाशमेव च। [१२]महाभूतानि यश्चैव सर्वभूतेषु भूतकृत् ॥४५॥

अशान्त और अदान्त तपस्वी को नहीं बतलाना चाहिये ॥३४-३६॥ जो वेदा को नहीं जानता है, उसे भी नहीं बतलाना चाहिये। जो अनुगमन न करे, उसे नहीं बतलाना चाहिये। निन्दक, कुटिल, बिना निर्देश किये कार्य करने वाले, तर्कशास्त्र से दग्ध तथा पिशुन को नहीं बतलाना चाहिये। प्रशसक, प्रशसनीय, प्रशान्त तथा तपस्वी को यह बतलाना चाहिये। यह रहस्यधर्म प्रिय पुत्र को तथा अनुगमन करने वाले शिष्य को बतलाया जा सकता है और अन्य को तो कभी भी नहीं ॥३७-३९॥ यदि मनुष्य रत्नपरिपूर्ण सकल पृथ्वी को दे ता भी तत्त्ववेत्ता जन इसी को उससे श्रेष्ठ समझे। अत अत्यन्त गोप्य तथा लोकोत्तर जो अध्यात्म विद्या है उस महर्षियो न प्राप्त किया। उसी की चर्चा वेदान्तो मे की जाती है। मुनिगण! आप लोगा ने जो मुझस पूछा वह मैंने बतला दिया और जा मेरे मन म था तथा जो आपके हृदय मे सन्देह था वह भी आप सुन चुके हैं। अब और क्या कहूँ? ॥४०-४२॥

मुनियों ने कहा—भगवन्! मुनिवर! पुन अध्यात्म को विस्तार स बतलाइये, ताकि अध्यात्म को हम समझ जायँ ॥४३॥

व्यास बोले—विप्रवृन्द! पुरुष का जो अध्यात्म कहा जाता है, वह मैं आपस बतलाऊँगा। उसकी व्याख्या सुनिये। भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश—ये पाँचो महाभूत सभी प्राणियो मे स्थित हैं ॥४४-४५॥

१ग ०ने। इद प्रियाय पुत्राय शिष्यायानु०। २ग ०ने। र०। ३ग इद। ४क ख ततो। ५क यत्र गूढ समुद्दिष्ट। ६क ख प्रवक्ष्यामि। ७क ख विप्र। ८ख इष्यते। ९ग तच्छृणुध्वमतन्द्रिता। मू०। १०ख ग ०नि पञ्चैव।

मुनय ऊचु

आकार तु भवेद्यस्य यस्मिन्देह न पश्यति। आकाशाद्य शरीरेषु कथ तदुपवर्णयेत ॥
'इन्द्रियाणां' गुणा कचित्कथ तानुपलक्षयेत ॥४६॥

व्यास उवाच

एतद्वो वर्णयिष्यामि यथावदनुदर्शनम। शृणुध्व तदिहैकाग्र्या यथातत्त्व यथा च तत ॥४७॥
शब्द श्रोत्र तथा खानि त्रयमाकाशलक्षणम। प्राणश्चेष्टा तथा स्पर्श एते वायुगुणास्त्रय ॥४८॥
रूप चक्षुर्विपाकश्च त्रिधा ज्योतिर्विधीयते। रसोऽथ रसन स्वेदो गुणास्त्वेते त्रयोऽम्भसाम ॥४९॥
घ्रेय घ्राण शरीर च भूमरेत गुणास्त्रय। एतावानिन्द्रियग्रामो व्याख्यात पाञ्चभौतिक ॥५०॥
वायो स्पर्शो रसोऽदभ्यश्च ज्योतिषो रूपमुच्यते। आकाशप्रभव शब्दो गन्धो भूमिगुण स्मृत ॥५१॥
मनो बुद्धि स्वभावश्च गुणा एते स्वयोनिजा। ते गुणानतिवर्तन्ते गुणेभ्य परमा मता ॥५२॥
यथा कूर्म इवाङ्गानि प्रसार्य सनियच्छति। एवमेवेन्द्रियग्राम बुद्धिश्रेष्ठो नियच्छति॥५३॥
यदूर्ध्वं पादतलयोरवार्कोर्ध्वं च (गधश्च) पश्यति। एतस्मिन्नेव कृत्ये सा वर्तते बुद्धिरुत्तमा ॥५४॥

मुनियों ने कहा—जिसका आकार तो होता होगा किन्तु जिसमे कोई देह को नही देखता है वह आकाश आदि शरीर मे कैसे विद्यमान रहते हैं इसका वर्णन कीजिए। कुछ इन्द्रियों के गुण होते हैं वे कैसे होते हैं उन्हें भी बतलाइए॥४६॥

व्यास बोले—शास्त्रानुसार मैं ठीक-ठीक इसका वर्णन करूगा। आप लोग एकाग्रचित्त होकर तत्वत सुनिये॥४७॥ शब्द श्रवणेन्द्रिय तथा शून्य प्रदेश—ये तीन आकाश के लक्षण हैं। प्राण चेष्टा तथा स्पर्श—ये तीन वायु के गुण हैं॥४८॥ रूप नेत्र तथा परिणाम—ये तीन अग्नि के गुण हैं। रस जिह्वा तथा स्वेद—ये तीन जल के गुण हैं॥४९॥ सूघने योग्य वस्तु, नाक और शरीर—ये तीन गुण पृथ्वी के हैं। पाँच भूतो के विकार इन्द्रिय समूह का वर्णन कर दिया। वायु से स्पर्श जल से रस अग्नि से रूप आकाश से शब्द तथा पृथ्वी से गन्ध उत्पन्न होता है। मन बुद्धि तथा स्वभाव—ये स्वयोनिज गुण हैं। ये इतर गुणों का अतिक्रमण करते हैं। अतएव दूसरे गुणो से ये श्रेष्ठ माने जाते हैं॥५०-५२॥ जैसे कच्छप अगों को फैलाकर फिर समेट लेता है उसी तरह ज्ञानी पुरुष इन्द्रियों का नियमन कर लेता है। जो या तो ऊपर आकाश की ओर या नीचे चरणतल की ओर देखे उसकी बुद्धि उत्तम है (कारण बीच मे इधर-उधर देखने से बुद्धि भ्रान्त होती है अतएव योगी पुरुष को ऊपर नीचे ही देखना चाहिए)॥५३-५४॥ गुण बुद्धि का वहन करते हैं और बुद्धि छठे मन सहित पाँचों इन्द्रियों का

१ग ०काराततात वै यस्य। ख ०काशस्तु म०। २क ०णनम्। इ०। ३ग इन्द्रियाणि। ४क ख ०णां विचरतां कथ। ५क ख ०वस्तदुपासन०। ६क ०सो द्रवस्तथा स्वे०। ७क ०जा। एते त्रयोऽमिव०। ८ख न। ९ख ०ति। नतूर्ध्वं।

[1]गुणैस्तु नीयते बुद्धिर्बुद्धिरेवेन्द्रियाण्यपि। मन षष्ठानि सर्वाणि [2]बुद्ध्या [3]भावात्कुतो गुणाः ॥५५॥
इन्द्रियाणि नरैः पञ्च षष्ठं तन्मन उच्यते। सप्तमीं बुद्धिमेवाऽऽहुः क्षेत्रज्ञं विद्धि चाष्टमम् ॥५६॥
[4]चक्षुरालोकनायैव संशयं कुरुते मनः। बुद्धिरध्यवसानाय साक्षी क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥५७॥
रजस्तमश्च सत्त्वं च त्रय एते स्वयोनिजाः। [5]समाः सर्वेषु भूतेषु तान्गुणानुपलक्षयेत् ॥५८॥
तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किंचिदात्मनि लक्षयेत्। प्रशान्तमिव संयुक्तं सत्त्वं तदुपधारयेत् ॥५९॥
यत्तु संतापसंयुक्तं काये मनसि वा भवेत्। प्रवृत्तं रज इत्येवं तत्र चाप्युपलक्षयेत् ॥६०॥
यत्तु[6] संमोहसंयुक्तमव्यक्तं[7] विषमं भवेत्। अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ॥६१॥
प्रहर्षः प्रीतिरानन्दं स्वाम्यं स्वस्थात्मचित्तता।[8] अकस्माद्यदि वा कस्माद्वदन्ति सात्त्विकान्गुणान्॥६२॥
[9]अभिमानो मृषावादो लोभो मोहस्तथा क्षमा। लिङ्गानि रजसस्तानि [10]वर्तन्ते हेतुतत्त्वतः ॥६३॥
तथा मोहः प्रमादश्च तन्द्रो निन्द्राऽप्रबोधिता। कथंचिदभिवर्तन्ते विज्ञेयास्तामसा गुणा ॥६४॥
मनः प्रसृजते भावं बुद्धिरध्यवसायिनी[11]। हृदयं प्रियमेवेह त्रिविधा कर्मचोदना ॥६५॥
इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा परः[12] स्मृत ॥६६॥
बुद्धिरात्मा मनुष्यस्य बुद्धिरेवाऽऽत्मनायिका। यदा विकुरुते भावं[13] तदा भवति सा मन ॥६७॥

वहन करती है। बुद्धि के अभाव में गुण क्या कर सकते हैं(?)। पाँच इन्द्रियाँ तथा छठा मन कहलाता है। सातवीं बुद्धि को और आठवीं आत्मा को समझिये॥५५-५६॥ नेत्र अवलोकन के लिये हैं। मन सशय करता है। बुद्धि निश्चय करती है॥५७॥ क्षेत्रज्ञ (आत्मा) साक्षी कहलाता है। रज, तम, सत्त्व—ये तीनों स्वयोनिज गुण समस्त भूतो मे समान हैं। इन गुणो का परिदर्शन करें। वहाँ प्रीति-सयुक्त जो कुछ भी आत्मा मे दीख पड़े, उस सत्त्व का शान्तिपूर्वक धारण करे॥५८-५९॥ शरीर में या मन मे सतापयुक्त जो कुछ मालूम पड़े, उसे रजोगुण समझना चाहिए॥६०॥ जो मोहसयुक्त, अव्यक्त, विषम, अप्रतर्क्य तथा अविज्ञेय है, उसे तमोगुण समझना चाहिये॥६१॥ महान् हर्ष, प्रीति, आनन्द, स्वाम्य तथा स्वस्थचित्तता यदि अकस्मात् मालूम पड़े तो उन्हें सात्त्विक गुण समझिये॥६२॥ अभिमान, मिथ्यावाद, लोभ, मोह, क्षमा—ये रजोगुण के चिह्न हैं। मन भाव का सर्जन करता है, बुद्धि निश्चय करती है और हृदय प्रिय ही करता है। यह तीन प्रकार की कर्म-प्रेरणायें हैं॥६३-६५॥ इन्द्रियो से परे उनके विषय हैं, विषयों से परे मन है। मन से परे बुद्धि है और बुद्धि से परे आत्मा है। बुद्धि मनुष्य का आत्मा है, बुद्धि ही आत्मा की नेत्री है। बुद्धि जब भाव को अभिव्यक्त करती है तब वह मन कहलाती है॥६६-६७॥ इन्द्रियो के पृथक्-पृथक् व्यापार को बुद्धि ही करती है। श्रवण करती हुई वह कर्ण

१क गुणान्ते नी०। ख गुणागुणाय०। २क बुद्धिमाज कृता गु०। ३ग भावे ततो। ४ग ०लोचना०। ५क ख सम। ६ख ०तु व्यामो०। ७ग ०व्यक्तविषय म०। ८क अस्माक यदि। ९ख ०नो विवादो वा लो०। १०ग ०न्ते देहत०। ११ग ०नी। कृत्य प्रियाप्रिये चैव त्रि०। १२ख परो मत। १३ख वाच।

इन्द्रियाणां पृथग्भावाद्बुद्धिर्विकुरुते ह्यनु। शृण्वती भवति श्रोत्रं स्पृशती स्पर्श उच्यते ॥६८॥
पश्यन्ती च भवेद्दृष्टी रसन्ती रसना भवेत्। जिघ्रन्ती भवति घ्राणं बुद्धिर्विकुरुते पृथक् ॥६९॥
इन्द्रियाणि तु तान्याहुस्तेषां वृत्त्या वितिष्ठति। तिष्ठति पुरुषे बुद्धिर्बुद्धिभावव्यवस्थिता ॥७०॥
कदाचिल्लभते प्रीतिं कदाचिदपि शोचति। न सुखेन न दुःखेन कदाचिदिह मुह्यते ॥७१॥
स्वयं भावात्मिका भावांस्त्रीनेतानतिवर्तते। सरितां सागरो भर्ता महावेलामिवोर्मिमान् ॥७२॥
यदा प्रार्थयते किंचित्तदा भवति सा मनः। अधिष्ठाने च वै बुद्ध्या पृथगेतानि संस्मरेत् ॥७३॥
इन्द्रियाणि च मध्यानि विचेतव्यानि कृत्स्नशः। सर्वाण्येवानुपूर्वेण यद्यदा च विधीयते ॥७४॥
अविभागगना बुद्धिर्भावो मनसि वर्तते। प्रवर्तमानस्तु रजः सत्त्वमप्यतिवर्तते ॥७५॥
ये वै भावेन वर्तन्ते सर्वेष्वेतेषु ते त्रिषु। अन्वर्थाः सम्प्रवर्तन्ते रथनेमिमरा इव ॥७६॥
"प्रदीपार्थं मनः कुर्यादिन्द्रियैर्बुद्धिसत्तमैः। निश्चरद्भिर्यथायोगमुदासीनैर्यदृच्छया ॥७७॥
एवं स्वभावमेवेदमिति बुद्ध्वा" न मुह्यति। अशोचन्सम्प्रहृष्यंश्च नित्यं विगतमत्सरः ॥७८॥
न ह्यात्मा शक्यते द्रष्टुमिन्द्रियैः कामगोचरैः। प्रवर्तमानैरनेकैर्दुर्धरैरकृतात्मभिः ॥७९॥

कहलाती है, स्पर्श करती हुई त्वचा कहलाती है, देखती हुई नेत्र कहलाती है, रसास्वाद करती हुई जिह्वा कहलाती है और सूँघती हुई नासिका कहलाती है। इस प्रकार बुद्धि ही सब इन्द्रियों के पृथक् पृथक् कार्य को करती है॥६८-६९॥ बुद्धि को इन्द्रियाँ समझिए। उनकी वृत्ति से वह अवस्थित होती है। पुरुष में बुद्धि अवस्थित है और बुद्धि में भाव अवस्थित है॥७०॥ बुद्धि कभी प्रीति लाभ करती है और कभी शोक। यह सुख तथा दुःख से कभी भी मुग्ध नहीं होती है॥७१॥ जैसे नदियों का स्वामी समुद्र तट का उल्लंघन करता है उसी तरह भावात्मिका बुद्धि तीनों भावों का अतिक्रमण करती है॥७२॥जब किसी चीज के लिये प्रार्थना की जाती है तब बुद्धि मन कहलाती है। स्थान विशेष में बुद्धि द्वारा इन्द्रियों का पृथक्-पृथक् स्मरण किया जाता है। सकल इन्द्रियों को क्रमशः पवित्र बनाना चाहिये और सावधानी से उनका व्यवहार करना चाहिए। बुद्धि मन से अतिरिक्त नहीं है। भाव मन में रहता है। उदीयमान भाव रज तथा सत्त्व का भी अतिक्रमण करता है॥७३-७५॥ जो इन तीन गुणों में भाव से विद्यमान रहते हैं (अर्थात् इनकी भावना करते रहते हैं) वे विषयों से उसी तरह चिपक जाते हैं जैसे रथ के पहिये के आरे नेमि से चिपके रहते हैं॥७६॥ प्रकाश पाने के लिये निश्चल तथा उदासीन इन्द्रियों द्वारा मन को वश में करे। शोक, हर्ष तथा ईर्ष्या से शून्य मनुष्य मन का ऐसा ही स्वभाव है यह जान कर मोह में नहीं पड़ता है। कामचारी उद्धत तथा अदान्त इन्द्रियों द्वारा इस आत्मा का दर्शन नहीं हो सकता है।

१क मन २ख ०स्तेषु दृश्यो वति०। ग ०स्तेष दृश्ये च ति०। ३क ०द्धि सन्ना मा०। ४ख ग० नमिव०। ५क सागर। विष्ट विनिश्चयै मर्त्रा पृ०। ख सागर। अविष्ट मिव यै बुद्ध्या पृ०। ६क ०न। भूतान्येवा०। ७क यथावदमिधी०। ८ख ०मतो बु०। ९क ०मानोरुर०। ख ०मानं तु र०। १०ग ०ते। यैरेव भावा वर्तन्ते भावा सर्वेषु तेषु च। अ०। ११क प्रदीप्यर्थं। १२क निश्चरद्भिं०। १३ख ग बुद्ध्या।

तेषां तु मनसा रश्मीन्यदा सम्यङ्नियच्छति। तदा प्रकाशतेऽस्याऽऽत्मा दीपदीप्ता यथाऽऽकृतिः ॥८०॥
सर्वेषामेव भूतानां तमस्युपगते यथा। प्रकाशं भवते सर्वं तथैवमुपधार्यताम् ॥८१॥
यथा वारिचरः पक्षी न लिप्यति जले चरन्। विमुक्तात्मा तथा योगी गुणदोषैर्न लिप्यते ॥८२॥
एवमेव कृतप्रज्ञो न दोषैर्विषयाश्चरन्। असज्जमानः सर्वेषु न कथंचित्प्रलिप्यते ॥८३॥
त्यक्त्वा पूर्वकृतं कर्म रतिर्यस्य सदाऽऽत्मनि। सर्वभूतात्मभूतस्य गुणसङ्गेन सज्जतः ॥८४॥
स्वयमात्मा प्रसवति गुणेष्वपि कदाचन। न गुणा विदुरात्मानं गुणान्वेद स सर्वदा ॥८५॥
परिदध्याद्गुणानां स द्रष्टा चैव यथातथम्। सत्त्वक्षेत्रज्ञयोरेदमन्तरं लक्षयेन्नरः ॥८६॥
सृजते तु गुणानेक एको न सृजते गुणान्। पृथग्भूतौ प्रकृत्येतौ संप्रयुक्तौ च सर्वदा ॥८७॥
यथाऽश्मना हिरण्यस्य संप्रयुक्तौ तथैव तौ। मशकौदुम्बरौ वाऽपि संप्रयुक्तौ यथा सह ॥८८॥
इषिका वा यथा मुञ्जे पृथक्च सह चैव ह। तथैव सहितावेतौ अन्योन्यस्मिन्प्रतिष्ठितौ ॥८९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे
सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३७॥

मन द्वारा जब इन्द्रियों का सम्यक् प्रकार से नियमन होता है तब आत्मा उसी तरह प्रकाशित होता है जैसे दीप द्वारा रूप। ॥७७-८०॥ अन्धकार के नष्ट होने पर जैसे समस्त भूतों का साक्षात्कार होता है वैसे आत्मा का भी समझ लीजिये। जैसे जलचर पक्षी जल में विचरण करते हुए भी लिप्त नहीं होता है उसी प्रकार मुक्तात्मा योगी गुण-दोषों से लिप्त नहीं होता है ॥८१-८२॥ इसी प्रकार प्रज्ञावान् व्यक्ति विषयों का उपभोग करते हुए भी समस्त विषयों में अनासक्त रहने के कारण लिप्त नहीं होता है ॥८३॥ जो पूर्वकृत कर्म का त्याग करके सदा आत्मा में निरत रहता है और सबके आत्मा को अपना आत्मा समझता है वह गुण-दोषों से रहित हो जाता है। कदाचित् गुणों में भी स्वयम् आत्मा उत्पत्ति करता है। गुण आत्मा को नहीं जानते हैं पर आत्मा गुणों को सदा जानता है ॥८४-८५॥ द्रष्टा आत्मा गुणों का धारण करता है। मनुष्य प्रकृति और आत्मा में यही अन्तर समझे कि एक (प्रकृति) गुणों का सर्जन करती है और दूसरा (आत्मा) नहीं करता है। ये दोनों स्वभाव से पृथक् होते हुए भी सदा सत्य रहते हैं। जैसे पत्थर से सुवर्ण का संयोग कीड़ों से उदुम्बर (गूलर) का संयोग और इषिका (सींक) से मूंज का संयोग होता है उसी तरह ये दोनों प्रकृति पुरुष परस्पर प्रतिष्ठित (अर्थात् एक दूसरे से संयुक्त रहते) हैं ॥८६-८९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के संवाद-प्रकरण में
दो सौ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३७॥

१ख ०पा सुम०। ग२ ०त। मूर्तिमा०। ३ग प्रसरति। ४ग गुणानपि। ५क ख कथचन। ६क ख तद्वच्च।

अथाष्टात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

गुणसर्जनकथनम्

व्यास उवाच

सृजते तु गुणान्सत्त्वं क्षेत्रज्ञस्त्वधितिष्ठति । गुणान्विक्रियतः[1] सर्वानुदासीनवदीश्वरः ॥१॥
स्वभावयुक्तं तत्सर्वं [2]यदिमान्सृजते गुणान् । ऊर्णनाभिर्यथा सूत्रं सृजते तद्गुणांस्तथा ॥२॥
[3]प्रवृत्ता न निवर्तन्ते प्रवृत्तिर्नोपलभ्यते । [4]एवमेके व्यवस्यन्ति निवृत्तिमिति चापरे ॥३॥
उभयं संप्रधार्यैतदध्यवस्येद्यथामति । अनेनैव विधानेन भवेद्वै संशयो महान् ॥४॥
अनादिनिधनो ह्यात्मा तं बुद्ध्वा [5]विहरेन्नरः । अक्रुध्यन्नप्रहृष्यंश्च नित्यं विगतमत्सरः ॥५॥
इत्येवं हृदये सर्वो [6]बुद्धिचिन्तामयं[7] दृढम् । अनित्यं सुखमासीनमशोच्यं[8] छिन्नसंशयः ॥६॥
तरयेत्प्रच्युता पृथ्वीं यथा पूर्णां नदीं नराः । अवगाह्य च विद्वांसो विप्रा लोकमिमं तथा[9] ॥७॥
न तु तप्यति वै विद्वान्स्थले चरति तत्त्ववित् । एवं विचिन्त्य चाऽऽत्मानं केवलं ज्ञानमात्मनः ॥८॥
तां(त) तु बुद्ध्वा नरः सर्गं भूतानामागतिं गतिम् । समचेष्टश्च वै सम्यग्लभते शममुत्तमम् ॥९॥
एतद्द्विजन्मसामग्र्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः । आत्मज्ञानसमस्नेहपर्याप्तं तत्परायणम्[10] ॥१०॥

अध्याय २४८

गुणो की सृष्टि का प्रतिपादन

व्यास बोले—प्रकृति गुणो का सर्जन करती है और आत्मा उनका उपभोग करता है। ईश्वर या परमात्मा विकृत होते हुए सभी गुणो को उदासीन की तरह देखता रहता है। प्रकृति जो गुणो की सृष्टि करती है, वह स्वभावयुक्त है। जैसे मकडा सूत्र का सर्जन करता है वैसे प्रकृति गुणो का सर्जन करती है ॥१-२॥ किन्ही का मत है कि तत्त्वज्ञान से जब गुणो का नाश कर दिया जाता है, तब वे फिर उत्पन्न नही होते, उनका सर्वथा बाध हो जाता है। इस प्रकार वे भ्रम या अविद्या के निवारण को ही मुक्ति मानते है। दूसरो के मत मे त्रिविध दुःखो की आत्यन्तिक निवृत्ति ही मोक्ष है ॥३॥ दोनो (मतो) को समझकर अपनी बुद्धि के अनुसार निश्चय करना चाहिये। अन्यथा इसी विधान से महान् सशय उत्पन्न हो जाएगा ॥४॥ आत्मा को अनादि और अजर-अमर जानकर मनुष्य क्रोध, हर्ष तथा ईर्ष्या से शून्य होकर विहार करे। इस प्रकार हृदय मे बुद्धिपूर्वक दृढता रखकर अनित्य सुख, शोक तथा सशय का त्याग करे ॥५-६॥ जैसे मनुष्य तैर कर नदी को पार करता है उसी तरह ज्ञानी मनुष्य ससार का सतरण करे। तत्त्ववेत्ता जन ससार मे विचरण करते हुए भी सतप्त नही होते हैं। ऐसा सोचकर मनुष्य को आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिये। ज्ञानी जन सृष्टि के रहस्य तथा भूतो की गति और अगति सब कुछ समझ कर उत्तम शान्ति को प्राप्त करते हैं ॥७-९॥ आत्मज्ञान प्राप्त करना द्विजातियों का कार्य है, विशेष करके ब्राह्मण का। तत्त्व को जानकर मनुष्य बुद्ध हो

१ख ०यते स०। २क यदात्मा सृज०। ३ग प्रध्वस्ता। ४एकमेव व्य०। ५ ग. विरहेन्न०। ६क. बुद्धिचि०। ७क ०मया दृढाम्। ८क ख ०मसाध्य छि०। ९क ०था। नानुलिप्येत वै। १०क. ख ०म्। एतद्बुद्ध्वा।

त्व बुद्ध्वा भवेद्बुद्धः किमन्यद्बुद्धलक्षणम्[1]। विज्ञायैतद्विमुच्यन्ते कृतकृत्या मनीषिणः ॥११॥

न भवति विदुषां महद्भयं, यदविदुषां सुमहद्भयं परत्र ।
न हि गतिरधिकाऽस्ति कस्यचिद्भवति हि या विदुषः सनातनी ॥१२॥
लोके[2] मातरमसूयते नरस्तत्र[3] देवमनिरीक्ष्य शोचते ।
तत्र चेत्कुशलो न शोचते, ये विदुस्तदुभयं कृताकृतम् ॥१३॥
यत्करोत्यनभिसंधिपूर्वकं, तच्च निन्दयति यत्पुरा कृतम् ।
यत्प्रियं तदुभयं न वाऽप्रियं, तस्य तज्जनयतीह कुर्वतः ॥१४॥

मुनय ऊचुः

यस्माद्धर्मात्परो धर्मो विद्यते नेह कश्चन। यो विशिष्टश्च भूतेभ्यस्तद्भवान्प्रब्रवीतु नः ॥१५॥

व्यास उवाच

धर्मं च संप्रवक्ष्यामि पुराणमृषिभिः स्तुतम्। विशिष्टं सर्वधर्मेभ्यः शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ॥१६॥
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि बुद्ध्या संयम्य तत्त्वतः। सर्वतः प्रसृतानीह पिता बालानिवाऽऽत्मजान् ॥१७॥
मनसश्चेन्द्रियाणां चाप्यैकाग्र्यं परमं तपः। विज्ञेयः सर्वधर्मेभ्यः स धर्मः पर उच्यते ॥१८॥
तानि सर्वाणि संधाय मनःषष्ठानि मेधया। आत्मतृप्तः स एवाऽऽसीद्बहुचिन्त्यमचिन्तयन् ॥१९॥

जाता है और इसके अतिरिक्त अन्य बुद्ध का क्या लक्षण है—यही जानकर मनीषी लोग कृतकृत्य हो जाते हैं॥१०-११॥ परलोक म अविद्वान् को जो महाभय होता है, वह विद्वान् को नहीं होता है। विद्वान् को जो सनातनी गति प्राप्त होती है, उससे अधिक किसी को नहीं मिलती है। ससार मे मनुष्य माता पिता की भी निन्दा कर बैठता है, किन्तु वहाँ देवता को न देखकर ऐसा सोचता है या करता है। जो कर्त्तव्य और अकर्तव्य दोनों को जानता है, जो निष्कपट होकर कर्म करता है, जो पहले के किये कर्म की निन्दा करता है, जो प्रिय अप्रिय दोनों को उत्पन्न करता है, वह कुशल व्यक्ति शोक मे नहीं पडता है॥१२-१४॥

मुनियों ने कहा—जिस धर्म से बढकर कोई धर्म नहीं है और जो भूतो से विशिष्ट है, उसे आप बतलायें ॥१५॥

व्यास बोले—मुनिवर! प्राचीन, ऋषियो द्वारा स्तुत तथा समस्त धर्मों से विशिष्ट धर्म को मैं बतलाऊँगा, आप लोग सुनिये॥१६॥ जैसे पिता शिशुओं का नियमन करता है उसी तरह मनुष्य बुद्धि से बलवान् इन्द्रियों का सयम करे॥१७॥ मन और इन्द्रियों की एकाग्रता परम तप है, यह समस्त धर्मों से श्रेष्ठ धर्म है॥१८॥ बुद्धि से मन सहित समस्त इन्द्रियों का सयम करके अनेक प्रकार की चिन्ता न करते हुए सदा आत्मतृप्त रहना चाहिये॥१९॥ जब इन्द्रियाँ विषयों से विनिवृत्त होकर आत्मा मे स्थित हो जाती हैं तब नित्य आत्मा का

---

१ ग ०द्बुद्धिल०। २क लोकमा०। ३ग ०स्तत्तमेव च नि०।

गोचरेभ्यो निवृत्तानि यदा स्थास्यन्ति वेश्मनि। तदा चैवाऽऽत्मनाऽऽत्मानं परं द्रक्ष्यथ शाश्वतम् ॥२०॥
सर्वात्मानं महात्मानं विधूममिव पावकम्। प्रपश्यन्ति महात्मानं ब्राह्मणा ये मनीषिणः ॥२१॥
यथा पुष्पफलोपेतो बहुशाखो महाद्रुमः। आत्मनो नाभिजानीते क्व मे पुष्पं क्व मे फलम् ॥२२॥
एवमात्मा न जानीते क्व गमिष्ये कुतोऽन्वहम्। अन्यो ह्यस्यान्तरात्माऽस्ति यः सर्वमनुपश्यति ॥२३॥
ज्ञानदीपेन दीप्तेन पश्यत्यात्मानमात्मना। दृष्ट्वाऽऽत्मानं तथा यूयं विरागा भवत द्विजाः ॥२४॥
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो मुक्तत्वच इवोरगाः। परां बुद्धिमवाप्येहाप्यचिन्ता विगतज्वराः ॥२५॥
सर्वतः स्रोतसं घोरां नदीं लोकप्रवाहिणीम्। पञ्चेन्द्रियग्राहवतीं मनःसंकल्परोधसम् ॥२६॥
लोभमोहतृणच्छन्नां कामक्रोधसरीसृपाम्। सत्यतीर्थानृतक्षोभां क्रोधपङ्कां सरिद्वराम् ॥२७॥
अव्यक्तप्रभवां शीघ्रां कामक्रोधसमाकुलाम्। प्रतरध्वं नदीं बुद्धया[1] दुस्तरामकृतात्मभिः ॥२८॥
संसारसागरगमां योनिपातालदुस्तराम्। आत्मजन्मोदभवां तां तु जिह्वावर्तदुरासदाम् ॥२९॥
यां तरन्ति कृतप्रज्ञा धृतिमन्तो मनीषिणः। तां तीर्णः सर्वतो मुक्तो विधूतात्माऽऽत्मवाञ्शुचिः ॥३०॥
उत्तमां बुद्धिमास्थाय ब्रह्मभूयाय कल्पते। उत्तीर्णः सर्वसंक्लेशान्प्रसन्नात्मा विकल्मषः ॥३१॥
भूयिष्ठानीव [2]भूतानि सर्वस्थानान्निरीक्ष्य च। अक्रुध्यन्नप्रसीदंश्च ननृशंसमतिस्तथा ॥३२॥

दर्शन होता है। विद्वान् ब्राह्मण अपने आत्मा को तथा सब आत्मा को धूमरहित अग्नि की तरह देखते हैं॥२० २१॥ जैसे पुष्प फलों से युक्त बहुत शाखा वाला महावृक्ष अपने को नहीं जानता है कि कहाँ मेरा पुष्प है और कहाँ मेरा फल उसी प्रकार जीव नहीं जानता है कि कहाँ से मैं आया हूँ और कहाँ जाऊँगा। इसके अतिरिक्त अन्तरात्मा है जो सब कुछ देखता है॥२२ २३॥ द्विजगण! ज्ञान रूपी दीप से दीप्त आत्मा द्वारा आत्मा को देखकर आप लोग वैराग्य धारण कीजिए॥२४॥ जैसे सर्प कंचुली से निर्मुक्त होता है उसी तरह आप लोग समस्त पापों से विमुक्त होकर परा बुद्धि को प्राप्त कर चिंता तथा ज्वर से रहित हो जाइये॥२५॥ आप लोग बुद्धि द्वारा सब ओर स्रोत वाली भयंकर लोगों को बहाने वाली पाँचो इन्द्रिय रूपी ग्राह वाली मनःसंकल्प रूपी तट वाली लोभ-मोह रूपी तृणों से आच्छादित काम क्रोध रूपी रेंगने वाले जीवों से युक्त सत्यरूपी तीर्थ वाली मिथ्या रूपी तरंगवाली क्रोधरूपी कीचड वाली अव्यक्त से उत्पन्न होने वाली शीघ्रगामिनी अकृतात्माओं से न पार होने योग्य संसाररूपी सागर से संगम करने वाली योनिरूपी पाताल तक गंभीर अपने जन्म से उत्पन्न होने वाली तथा जिह्वा रूपी भंवरों से कठिन नदी को पार कीजिये। उस नदी को धीर मनीषी जन पार करते हैं। ॥२६ २९॥ उसको पार कर मुक्त निष्पाप तथा तत्त्ववेत्ता मनुष्य परा बुद्धि को प्राप्त कर ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। निष्पाप प्रसन्नात्मा और क्रोध हर्ष तथा क्रूरता से रहित मनुष्य समस्त भूतों में व्यापक आत्मा का दर्शन करके समस्त क्लेशों से उत्तीर्ण हो जाता है। ऐसा करने से आप लोग भूतों की उत्पत्ति तथा प्रलय को भी देखेंगे।

१क बुद्ध्वा। २क स० ०नि पर्वतस्थो नि०।

ततो द्रष्टव्य सर्वेषां भूतानां प्रभवाप्ययात्। एतद्धि सर्वधर्मेभ्यो विशिष्टं मेनिरे बुधाः ॥३३॥
धर्मं धर्मभृतां श्रेष्ठा मुनयः [1]सत्यदर्शिनः। आत्मानो व्यापिनो विप्रा [2]इति पुत्रानुशासनम् ॥३४॥
प्रयताय प्रवक्तव्यं हितायानुगताय च। आत्मज्ञानमिदं गुह्यं सर्वगुह्यतमं महत् ॥३५॥
अब्रवं यदहं विप्रा [3]आत्मसाक्षिकमञ्जसा। नैव स्त्री न पुमानेवं न चैवेदं नपुंसकम् ॥३६॥
अदुःखमसुखं ब्रह्म भूतभव्यभवात्मकम्। नैतज्ज्ञात्वा पुमान्स्त्री वा पुनर्भवमवाप्नुयात् ॥३७॥
यथा [4]मतानि सर्वाणि तथैतानि यथा तथा। कथितानि मया विप्रा भवन्ति न भवन्ति च ॥३८॥

तत्प्रीतियुक्तेन गुणान्वितेन, पुत्रेण सत्पुत्रदयान्वितेन ।
दृष्ट्वा हितं प्रीतमना यदर्थं, ब्रूयात्सुतस्येह यदुक्तमेतत् ॥३९॥

मुनय ऊचुः

मोक्षः पितामहेनोक्त उपायान्नानुपायतः। तमुपायं यथान्यायं श्रोतुमिच्छामहे मुने ॥४०॥

व्यास उवाच

अस्मासु तन्महाप्राज्ञा [5]युक्तं निपुणदर्शनम्। यदुपायेन [6]सर्वार्थान्मृगयध्वं सदाऽनघाः ॥४१॥
घटोपकरणे [7]बुद्धिर्घटोत्पत्तौ न सा मता। एवं धर्माद्युपायार्थे [8]नान्यधर्मेषु कारणम् ॥४२॥
पूर्वे समुद्रे यः पन्था न स गच्छति पश्चिमम्। एकः पन्था हि मोक्षस्य तच्छृणुध्वं ममानघाः ॥४३॥

विद्वानों ने इसी को अखिल धर्मों से विशिष्ट माना है ॥३०-३३॥ विप्रवृन्द! धर्मात्माओं में श्रेष्ठ, सत्यदर्शी तथा महात्मा मुनियों ने इस धर्म को पुत्रानुशासन (पुत्र को उपदेश करने योग्य) बतलाया है ॥३४॥ अत्यन्त गोपनीय यह आत्मज्ञान संयमी, हित तथा अनुगमन करने वाले को देना चाहिये ॥३५॥ द्विजगण! जिस आत्मा के बारे में मैंने कहा है, वह न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है ॥३६॥ वह दुःख-सुख-से परे तथा भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों रूप है। इसको जान लेने से पुरुष या स्त्री का पुनर्जन्म नहीं होता है। विप्रगण! इस प्रकार के जो मत हैं, वे सब मैंने बता दिये। वे होते भी हैं और नहीं भी होते हैं ॥३८॥ इसलिए प्रीतियुक्त, गुणों से युक्त तथा सत्पुत्रोचित दया से युक्त पुत्र को जानकर प्रसन्न मन से पूर्वोक्त आत्मज्ञान देना चाहिये।

मुनियों ने कहा—मुने! ब्रह्मा ने कहा है कि मोक्ष उपाय से मिलता है बिना उपाय के नहीं। उस उपाय को हम लोग अच्छी तरह सुनना चाहते हैं ॥३९-४०॥

व्यास बोले—महापण्डितो! समीचीन दर्शन को ही हम लोग इसका उपाय कह सकते हैं, जिससे समस्त पदार्थों का अन्वेषण किया जा सकता है ॥४१॥ घट की सामग्रियों में जो कारण होता है, वही घटोत्पत्ति में नहीं होता। इसी तरह धर्म के उपाय का जो कारण होता है, वह धर्म का नहीं होता है ॥४२॥ पूर्व समुद्र को जो मार्ग जाता है, वह पश्चिम समुद्र को नहीं जाता है। निष्पापो! मोक्ष का एक ही मार्ग है, वह

१क ख सत्यवादिनः। २ग इदं विप्रानु०। ३क ०त्मशान्तिकर परम्। नै०। ४ग पतानि। ५. मुक्त। ६ग ०र्थान्प्राप्नुवध्व। ७क ०र्घटेत्युक्ते न। ८ख. नानाप०।

क्षमया क्रोधमुच्छिन्द्यात्कामं संकल्पवर्जनात्। सत्त्वसंसेवनाद्धीरो निद्रामुच्छेत्तुमर्हति ॥४४॥
अप्रमादाद्भयं रक्षेद्रक्षेत्क्षेत्रं च संविदम्। इच्छां द्वेषं च कामं च धैर्येण विनिवर्तयेत् ॥४५॥
निद्रां च प्रतिभां चैव ज्ञानाभ्यासेन तत्त्ववित्। उपद्रवांस्तथा योगी हितजीर्णमिताशनात् ॥४६॥
लोभं मोहं च संतोषाद्विषयांस्तत्त्वदर्शनात्। अनुक्रोशादधर्मं च जयेद्धर्ममुपेक्षया ॥४७॥
आयत्या[1] च जयेदाशां[2] सामर्थ्यं सङ्गवर्जनात्। अनित्यत्वेन च स्नेहं क्षुधां योगेन पण्डितः[3] ॥४८॥
कारुण्येनाऽऽत्मनाऽऽत्मानं तृष्णां च परितोषतः[3]। उत्थानेन[4] जयेत्तन्द्रां[5] वितर्कं निश्चयाज्जयेत् ॥४९॥
मौनेन बहुभाषां च शौर्येण च भयं जयेत्। यच्छेद्वाङ्मनसी बुद्ध्या तां यच्छेज्ज्ञानचक्षुषा ॥५०॥
ज्ञानमात्मा महान्यच्छेत्तं यच्छेच्छान्तिरात्मनः। तदेतदुपशान्तेन बोद्धव्यं शुचिकर्मणा ॥५१॥
योगदोषान्समुच्छिद्य पञ्च यान्कवयो विदुः। कामं क्रोधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पञ्चमम् ॥५२॥
परित्यज्य निषेवेत यथावद्योगसाधनात्[6]। ध्यानमध्ययनं दानं सत्यं ह्रीरार्जवं क्षमा ॥५३॥
शौचमाचारतः शुद्धिरिन्द्रियाणां च संयमः। एतैर्विवर्धते तेजः पाप्मानमुपहन्ति च ॥५४॥
सिध्यन्ति चास्य संकल्पा विज्ञानं च प्रवर्तते। धूतपापः स तेजस्वी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ॥५५॥
कामक्रोधौ वशे कृत्वा निर्विशेद्ब्रह्मणः पदम्। अमूढत्वमसङ्गित्वं कामक्रोधविवर्जनम् ॥५६॥

मुझसे सुनिए ॥४३॥ धीर पुरुष क्षमा से क्रोध को नष्ट करे, संकल्प त्याग से काम को नष्ट करे और सत्त्व गुण के संसेवन से निद्रा का उच्छेद करे ॥४४॥ सावधानता से भय को जीते और शरीर तथा बुद्धि की रक्षा करे। धैर्य से इच्छा, द्वेष तथा काम को निवृत्त करे ॥४५॥ तत्त्ववेत्ता व्यक्ति ज्ञान के अभ्यास से निद्रा को जीते और प्रतिभा को बढाये। योगी हितकारक सुपच एवम् अल्प भोजन से उपद्रवों को दूर करे ॥४६॥ संतोष से लोभ-मोह का तथा तत्त्वदर्शन से विषयों का त्याग करे। अधर्म को निन्दा से तथा धर्म को उपेक्षा से जीते ॥४७॥ उत्तरकाल से आशा को तथा संगत्याग से सामर्थ्य को जीते। अनित्यत्व से स्नेह को तथा योग से भूख को जीते ॥४८॥ कारुण्य से आत्मा को तथा संतोष से तृष्णा को जीते। उत्थान से तन्द्रा को तथा निश्चय से वितर्क को जीते ॥४९॥ मौन से बहुत बोलने को तथा वीरता से भय को जीते। बुद्धि से वाणी तथा मन को समझे। ज्ञानचक्षु से बुद्धि को समझे, ज्ञान को महान् आत्मा समझे, उसको आत्मा की शान्ति समझे और उसको शान्त एवं पवित्र कर्म के द्वारा समझना चाहिये ॥५०-५१॥ विद्वानों ने काम, क्रोध, लोभ, भय, स्वप्न रूप जिन पाँच योग-दोषों को बतलाया है, उनका उच्छेद करे ॥५२॥ योगसाधन द्वारा दोषों का परित्याग करके आत्मस्थित होना चाहिये। ध्यान, अध्ययन, दान, सत्य, लज्जा, ऋजुता, क्षमा, शौच, आचार तथा इन्द्रियों का संयम—इनसे तेज बढ़ता है और पाप नष्ट होता है ॥५३-५४॥ योगी के समस्त संकल्प सिद्ध होते हैं और विज्ञान बढ़ता है। निष्पाप, तेजस्वी, लघ्वाहारी तथा जितेन्द्रिय होकर काम-क्रोध को वश में करके ब्रह्म पद को प्राप्त करना

---

१ क० रगा[?]। आ०। २ क आस्त्या। ३ ख द ०दाशासमर्थं सङ्गविव०। ४ ग उत्ताने०। ५ क ०न्द्रां द्वारं धर्मनिर्णयात्। मौ०। ६ ख, साधनम्। ध्या०।

अदैन्यमनुदीर्णत्वमनुद्वेगो ह्यवस्थितिः। एष मार्गो हि मोक्षस्य प्रसन्नो विमलः शुचिः॥
तथा वाक्कायमनसां नियमाः कामतोऽव्ययाः ॥५७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे सांख्ययोगनिरूपणं नाम
अष्टात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३८॥

अथैकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

योगविधिनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

सांख्यं योगस्य नो विप्र विशेषं वक्तुमर्हसि। तव धर्मज्ञ सर्वं हि विदितं मुनिसत्तम ॥१॥

व्यास उवाच

सांख्याः सांख्यं प्रशंसन्ति 'योगान्योगविदुत्तमाः। वदन्ति कारणैः श्रेष्ठैः स्वपक्षोद्भवनाय वै ॥२॥
अनीश्वरः कथं मुच्येदित्येवं मुनिसत्तमा। वदन्ति कारणैः श्रेष्ठं योगं सम्यङ्मनीषिणः ॥३॥
वदन्ति कारणं वेदं सांख्य सम्यग्द्विजातय'। विज्ञायेह गती सर्वा विरक्तो विषयेषु यः ॥४॥

चाहिये। अमूर्खता, असगित्व, काम-क्रोध-त्याग, अदैन्य, अनुद्वेग, वाणी, शरीर तथा मन का सयम—ये मोक्ष के निर्मल मार्ग बतलाये गये हैं॥५५-५७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे सांख्य-योग निरूपण नामक दो सौ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त॥२३८॥

अध्याय २३९

योगविधि का निरूपण

मुनियों ने कहा—विप्र! सांख्य और योग की विशेषता हम बतलाइये। धर्मज्ञ! मुनिश्रेष्ठ! आप सब कुछ जानते हैं॥१॥

व्यास बोले—सांख्यवेत्ता सांख्य की प्रशसा करते हैं और योगवेत्ता योग की। दोनों अपने-अपने पक्ष की पुष्टि के लिये उत्तम प्रमाण भी बतलाते हैं। मुनिश्रेष्ठो! ईश्वर को न मानने वाला व्यक्ति कैसे मुक्त होगा यह कह कर मनीषी लोग योग को श्रेष्ठ बतलाते हैं। परन्तु सांख्यवेत्ता द्विजाति वेद को कारण बतलाकर सांख्य

१ग ०था योग द्विजातय.। वि०। २ख चरित्वा।

ऊर्ध्वं स देहात्सुव्यक्तं विमुच्येदिति नान्यथा। एतदाहुर्महाप्राज्ञाः सांख्यं वै मोक्षदर्शनम् ॥५॥
स्वपक्षे कारणं ग्राह्यं समर्थं वचनं हितम्। शिष्टानां हि मतं ग्राह्यं भवद्भिः शिष्टसंमतैः ॥६॥
[1]प्रत्यक्षं हेतवो योगाः सांख्याः [2]शास्त्रविनिश्चयाः। उभे चैते मते तत्त्वे समवेते द्विजोत्तमाः ॥७॥
उभे चैते मते ज्ञाते मुनीन्द्राः[3] शिष्टसंमते। अनुष्ठिते यथाशास्त्रं नयेतां परमां गतिम् ॥८॥
तुल्यं शौचं तयोर्युक्तं दया[4] भूतेषु चानघाः[5]। व्रतानां धारणं तुल्यं दर्शनं त्वसमं तयोः ॥९॥

मुनय ऊचुः

यदि तुल्यं व्रतं शौचं दया चात्र महामुने। तुल्यं तद्दर्शनं कस्मात्तन्नो ब्रूहि द्विजोत्तम ॥१०॥

व्यास उवाच

रागं मोहं तथा स्नेहं कामं क्रोधं च केवलम्। योगास्थिरोदितान्दोषान्पञ्चैतान्प्राप्नुवन्ति तान् ॥११॥
यथा वाऽनिमिषाः स्थूलं जालं छित्त्वा पुनर्जलम्। प्राप्नुवन्ति तथा योगात्तत्पदं वीतकल्मषाः ॥१२॥
तथैव वागुरां छित्त्वा बलवन्तो यथा मृगाः। प्राप्नुयुर्विमलं मार्गं विमुक्ताः सर्वबन्धनैः ॥१३॥
लोभजानि तथा विप्रा बन्धनानि बलान्विताः। छित्त्वा योगात्परं[6] मार्गं गच्छन्ति विमलं शुभम् ॥१४॥
[7]अबलास्त्ववाविन्ना विप्रा वागुरासु तथाऽपरे। विनश्यन्ति न संदेहस्तद्वद्योगबलादृते ॥१५॥

को ही श्रेष्ठ कहते हैं। समस्त क्रियाओ को जानकर जो मनुष्य विषयो से विरक्त होता है वही मुक्त होता है। महापडिता ने इस साख्य को मोक्षदर्शन बतलाया है। अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिये वेदवचन तथा शिष्टो का मत ग्रहण करना चाहिये। योग का प्रत्यक्ष प्रमाण है और साख्य का शास्त्र प्रमाण है। मुनिश्रेष्ठो! दोनो के शिष्टसमत मत ज्ञात होने पर और शास्त्रानुसार उनके अनुष्ठान करने पर परम गति की प्राप्ति होती है। दोनो मे शौच, दया, तथा व्रतो का धारण तुल्य है, परन्तु दर्शन एक जैसा नही है॥२-९॥

मुनियों ने कहा—महामुने! यदि दोनो मे व्रत, शौच और दया तुल्य है तो दर्शन क्यो नहीं तुल्य है? द्विजश्रेष्ठ! यह हमे बतलाइये॥१०॥

व्यास बोले—मनुष्य योग मे बाधा डालने वाले राग, मोह, स्नेह, काम तथा क्रोध रूपी पाँच दोषों का प्राप्त करता है॥११॥ जैसे मत्स्य स्थूल जाल को छेद कर पुन जल में चला आता है वैसे मनुष्य योग से निष्पाप होकर शाश्वत पद को प्राप्त कर लेते हैं॥१२॥ जैसे बलवान् मृग जाल को तोडकर निकल जाते हैं वैसे पापी समस्त बन्धनो से मुक्त होकर विमल मार्ग को प्राप्त कर लेते हैं॥१३॥ विप्रवृन्द! बलान्वित योगी लोभजन्य बन्धनों को तोडकर निर्मल तथा शुभ मार्ग को प्राप्त करते हैं॥१४॥ योगबल के बिना मनुष्य जाल में अचल तथा व्याकुल होकर विनष्ट हो जाते हैं, इसम सन्देह नही॥१५॥ बलहीन ब्राह्मण जाल में फँसते हैं। परन्तु निष्पाप

१ग ०त्यक्षहेतुका यो०। २क ०श्चये। उ०। ३ख मुनिभि। ४ग यदा। ५ख स मानवा। ६घ योगपर। ७क ख अबला०।

बलहीनाश्च विप्रेन्द्रा यथा जालं गता द्विजाः। बन्धं न गच्छन्त्यनघा योगास्ते तु सुदुर्लभाः ॥१६॥
यथा च शकुनाः सूक्ष्मं प्राप्य जालमरिन्दमाः। तत्राशक्ता विपद्यन्ते मुच्यन्ते तु बलान्विताः ॥१७॥
कर्मजैर्बन्धनैर्बद्धास्तद्वद्योगपरा द्विजाः। अबला न विमुच्यन्ते मुच्यन्ते च बलान्विताः ॥१८॥
अल्पकश्च यथा विप्रा वह्निः शाम्यति [1]दुर्बलः। आक्रान्त इन्धनैः स्थूलैस्तद्वद्योगबलः स्मृतः ॥१९॥
स एव च तदा विप्रा वह्निर्जातबलः पुनः। समीरणगतः कृत्स्नां दहेत्क्षिप्रं महीमिमाम् ॥२०॥
[2]तत्त्वज्ञानबलो योगी दीप्ततेजा महाबलः। अन्तकाल इवाऽऽदित्यः कृत्स्नं संशोषयेज्जगत् ॥२१॥
दुर्बलश्च यथा विप्राः स्रोतसा ह्रियते[3] नरः। बलहीनस्तथा योगी [4]विषयैर्ह्रियते च सः ॥२२॥
तदेव तु यथा स्रोतो विष्कम्भयति वारणः। तद्वद्योगबलं लब्ध्वा न भवेद्विषयैर्हृतः ॥२३॥
विशन्ति वा [5]वशाद्वाऽऽय योगाद्योगबलान्विताः। प्रजापतीन्मनून्सर्वान्महाभूतानि चेश्वराः ॥२४॥
न यमो नान्तकः [6]क्रुद्धो न मृत्युर्भीमविक्रमः[7]। विशन्ते तद्द्विजाः सर्वे योगस्यामिततेजसः ॥२५॥
[8]आत्मनां च सहस्राणि बहूनि द्विजसत्तमाः। योगं कुर्याद्बलं प्राप्य तैश्च सर्वैर्महीं चरेत् ॥२६॥
प्राप्नुयाद्विषयान्कश्चित्पुनश्चोग्रं तपश्चरेत्। संक्षिप्येच्च पुनर्विप्राः सूर्यस्तेजोगुणानिव ॥२७॥
बलस्यस्य हि योगस्य बलार्थं[9] मुनिसत्तमाः। विमोक्षप्रभवं विष्णुमुपपन्नमसंशयम्[10] ॥२८॥
बलानि योगप्रोक्तानि मयैतानि द्विजोत्तमाः। निदर्शनार्थं सूक्ष्माणि वक्ष्यामि च पुनर्द्विजाः ॥२९॥

योगी बन्धन मे नहीं पडते ॥१६॥ जैसे पक्षी सूक्ष्म जाल मे फँसकर अशक्त होने के कारण विपत्ति में पड जाता है वैसे निर्बल मनुष्य भी बद्ध हो जाता है। परन्तु बलवान् व्यक्ति मुक्त हो जाता है ॥१७॥ द्विजगण ! कर्मजन्य बन्धना से बद्ध होकर बलहीन मनुष्य मुक्त नहीं होता है। परन्तु बलवान् व्यक्ति मुक्त हो जाता है। ॥१८॥ विप्रवृन्द ! जैसे अल्प तथा दुर्बल अग्नि स्थूल इन्धनो से आक्रान्त होने पर बुझ जाता है वैसे निर्बल योगी भी नष्ट हो जाता है ॥१९॥ पुन जैसे वही बलप्राप्त अग्नि वायु की सहायता से शीघ्र ही सम्पूर्ण पृथ्वी को जला देने की क्षमता रखता है वैसे तत्त्वज्ञाता, तेजस्वी तथा महाबली योगी प्रलयकालीन सूर्य की तरह निखिल जगत् को सुखा डालने की क्षमता रखते हैं ॥२०-२१॥ जैसे दुर्बल मनुष्य धारा मे बह जाता है वैसे बलहीन योगी विषयों में बह जाता है॥२२॥ जैसे उसी धारा को हाथी सहज मे पार कर जाता है उसी तरह योगबल प्राप्त मनुष्य विषयों को आसानी से पार कर जाता है ॥२३॥ योगबल से मनुष्य ऐश्वर्य प्राप्त कर प्रजापति, मनु तथा महाभूतो मे प्रवेश करते हैं। द्विजगण ! अमित तेजस्वी योगी का क्रुद्ध यम, काल तथा मृत्यु भी कुछ नही बिगाड़ सकते ॥२४-२५॥ द्विजश्रेष्ठो ! सहस्रो जन्मो के बाद योगाभ्यास करके बल प्राप्त कर मनुष्य सम्पूर्ण पृथ्वी पर विचरण करता है ॥२६॥ कोई योगी विषयो मे फँस जाय तो वह पुन तपस्या करके सूर्य की तरह तेज का आधान करे ॥२७॥ मुनिश्रेष्ठो ! योगबल प्राप्त करने के लिये मोक्ष के कारण विष्णु की शरण मे जाना चाहिये ॥२८॥ द्विजश्रेष्ठो ! योग-प्रतिपादित ऐश्वर्यों के बारे मे मैंने इतना कहा, अब योग के सूक्ष्म रहस्य को

१क. ख दुर्लभः। २क. तद्वज्ज्ञान०। ३ग ह्रीयते। ४ग ०यैर्ह्रीय०। ५क ०शा नार्यो यो०। ६क. क्रूरो। ७ख. ०म । ईशतस्तु द्विजा । ८ख. ०त्मना च। ९ग. बन्धने यस्य स०। १०क. ख. ०थ्य.। ब०।

आत्मनश्च समाधाने धारणां प्रति वा द्विजाः । निदर्शनानि सूक्ष्माणि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ॥३०॥
अप्रमत्तो यथा धन्वी लक्ष्यं हन्ति समाहितः । युक्तः सम्यक्तथा योगी मोक्षं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥३१॥
स्नेहपात्रे यथा पूर्णे मन आधाय निश्चलम् । पुरुषो युक्त[1] आरोहेत्सोपानं युक्तमानसः ॥३२॥
मुक्तस्तथाऽयमात्मानं योगं तद्वत्सुनिश्चलम् । करोत्यमलमात्मानं भास्करोपमदर्शने ॥३३॥
यथा च नावं विप्रेन्द्राः कर्णधारः समाहित. । महार्णवगतां शीघ्रं नयेद्विप्रांस्तु पत्तनम् ॥३४॥
तद्वदात्मसमाधानं युक्तो योगेन[2] योगवित् । दुर्गमं स्थानमाप्नोति हित्वा देहमिमं द्विजाः ॥३५॥
सारथिश्च यथा युक्तः सदश्वान्सुसमाहित. । देशमिष्टं नयत्याशु धन्विनं पुरुषर्षभम् ॥३६॥
तथैव च द्विजा योगी धारणासु समाहितः । प्राप्नोत्याशु परं स्थानं लक्ष्यमुक्त इवाऽऽशुगः[3] ॥३७॥
आविश्याऽऽत्मनि चाऽऽत्मानं योऽवतिष्ठति सोऽचलः । पाशं वहत्वं मीनानां पदमाप्नोति सोऽजरम् ॥३८॥
नाभ्यां[4] शीर्षे च कुक्षौ च हृदि वक्षसि पार्श्वयोः । दर्शने श्रवणे वाऽपि घ्राणे[5] चामितविक्रमः ॥३९॥
स्थानेष्वेतेषु यो योगी महाव्रतसमाहित. । आत्मना सूक्ष्ममात्मानं युङ्क्ते सम्यग्द्विजोत्तमाः ॥४०॥
सुशीघ्रमचलप्रख्यं कर्म दग्ध्वा शुभाशुभम् । उत्तमं योगमास्थाय यदीच्छति विमुच्यते ॥४१॥

मुनय ऊचुः

आहारान्कीदृशान्कृत्वा कानि जित्वा च सत्तम । योगी बलमवाप्नोति तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥४२॥

सुनिये ॥२९॥ आत्मा की समाधि तथा धारणा के प्रति सूक्ष्म विचारो को सुनिये ॥३०॥ जैसे सावधान धनुर्धारी अपने लक्ष्य को वेध कर देता है उसी तरह सम्यक् योगाभ्यास करने वाला योगी नि सन्देह मोक्ष को प्राप्त करता है ॥३१॥ जैसे तैलपात्र को लेकर सीढी पर चढते समय मन को निश्चल रखना पडता है उसी तरह मनुष्य मन को सावधान करके योगाभ्यास करे ॥३२॥ इस प्रकार योगाभ्यास से मन को निश्चल करके मुक्त होकर मनुष्य सूर्य की तरह अमल आत्मा का दर्शन करता है ॥३३॥ जैसे सावधान नाविक महासमुद्र मे पडी नाव को शीघ्र नियतस्थान पर ले जाता है। उसी तरह योगी पुरुष आत्म-समाधान करके देहत्याग के बाद दुर्गम स्थान को प्राप्त करते हैं ॥३४-३५॥ जैसे पूर्ण सावधान सारथि अच्छे घोडा को शीघ्र अभिमत स्थान पर ले जाते हैं और उत्तम तीर चलाने वाले के हाथ से मुक्त तीर लक्ष्य पर पहुँच जाता है उसी प्रकार धारणाओं मे समाहित योगी परम पद को प्राप्त करते हैं ॥३६-३७॥ जो आत्मा मे आत्मा को प्रविष्ट करके निश्चल हो जाता है, वह जाल फाडकर मछली की तरह अपने स्थान को प्राप्त कर लेता है ॥३८॥ नाभि, मस्तक, कुक्षि, हृदय, पार्श्व, नेत्र, कान, तथा नाक—इन स्थानो मे महाव्रतधारी, अमिततेजस्वी योगी अच्छी तरह आत्ममन सयोग करके अत्यन्त चञ्चल शुभाशुभ कर्म को दग्ध कर उत्तम योग मे स्थित हो इच्छानुसार विमुक्त हो जाता है ॥३९-४१॥

मुनियो ने कहा—योगी को बलप्राप्ति के लिये किस तरह का भोजन करना चाहिये और किस तरह का नही करना चाहिये, यह हम बतलाइये ॥४२॥

१ग मुक्त। २ख ग युक्तेन। ३क. ०णाया स०। ४क ख ०म। अवेक्ष्याऽऽत्म०। ५ग नाड्या। ६ग प्राणे। ७क योगस्य फलमाप्नो०।

व्यास उवाच

कणाना भक्षणे युक्त पिण्याकस्य च भो द्विजा । स्नेहाना वर्जने युक्तो योगी बलमवाप्नुयात् ॥४३॥
भुञ्जानो यावक रूक्ष दीर्घकाल द्विजोत्तमा । एकाहारी विशुद्धात्मा योगी बलमवाप्नुयात् ॥४४॥
पक्षान्मासानृतूश्चित्रान्संवत्सराश्च गुहास्तथा । अप पीत्वा पयोमिश्रा योगी बलमवाप्नुयात् ॥४५॥
अखण्डमपि वा मास सतत मुनिसत्तमा । उपोष्य सम्यक्शुद्धात्मा योगी बलमवाप्नुयात् ॥४६॥
काम जित्वा तथा क्रोध शीतोष्ण वर्षमेव च । भय शोक तथा स्वाप पौरुषान्विषयास्तथा ॥४७॥
अरति दुर्जया चैव घोरा तृष्णा च भो द्विजा । स्पर्श निद्रा तथा तन्द्रा दुर्जया मुनिसत्तमा ॥४८॥
दीपयन्ति महात्मान सूक्ष्ममात्मानमात्मना । वीतरागा महाप्राज्ञा ध्यानाध्ययनसपदा ॥४९॥
दुर्गस्त्वेष मत पन्था ब्राह्मणाना विपश्चिताम् । य कश्चिद्व्रजति क्षिप्र क्षेमेण मुनिपुगवा ॥५०॥
यथा कश्चिद्वन घोर बहुसर्पसरीसृपम् । श्वभ्रवत्तोयहीन च दुर्गम बहुकण्टकम् ॥५१॥
अभक्तमटवीप्राय दावदग्धमहीरुहम् । पन्थान तस्कराकीर्णं क्षेमेणाभिपतेत्तथा ॥५२॥
योगमार्ग समासाद्य य कश्चिद्व्रजते द्विज । क्षेमेणोपरमेन्मार्गाद्बहुदोषोऽपि समत ॥५३॥

व्यास बोले—पिण्याक (हींग या कसर) तथा कणो (चावल आदि के महीन टुकडा) के भक्षण और स्निग्ध पदार्थों के वर्जन से योगी को बल प्राप्ति होती है॥४३॥ चिरकाल तक रूक्ष यव का भक्षण करने से और एक ही बार भोजन करने से विशुद्धात्मा योगी बल प्राप्त करता है॥४४॥ पक्षों, मासों, ऋतुओं तथा वर्षों तक गुफाओं म वास करने से और दूध मिश्रित जल पीने से योगी बल प्राप्त करता है॥४५॥ मुनिश्रेष्ठो! महीनो तक अखण्ड उपवास करने शुद्धात्मा योगी बल प्राप्त करता है॥४६॥ काम क्रोध सर्दी, गर्मी, भय, शोक, स्वप्न, पुरुष सम्बन्धी विषय, दुर्जय एव भयकर वितृष्णा स्पर्श निद्रा तन्द्रा को जीतकर वीतराग महाज्ञानी पुरुष ध्यान और अध्ययन के बल से सूक्ष्म आत्मा का दर्शन करते हैं॥४७ ४९॥ मुनिपुगवो! विद्वान् ब्राह्मणो का यह मार्ग अत्यन्त कठिन है। जो कोई कुशलता से इस मार्ग को पार कर जाता है, वह धन्य है॥५०॥ जैसे भयकर, अनेक सर्प तथा हिंसक जीवो से व्याप्त, जलहीन, दुर्गम, कण्टकाकीर्ण, दावाग्नि से दग्ध वृक्षो से युक्त तथा चोरो से आक्रान्त वन के मार्ग पर चलना कठिन है उसी तरह योगमार्ग पर भी चलना दुस्तर है। जो कोई द्विज योगमार्ग पर आरूढ होकर चल पडता है, उसे बडी कुशलता से उस मार्ग को तय करना चाहिए, क्योंकि वह मार्ग बहुत दोषो से युक्त होने पर भी कल्याणप्रद है॥५१ ५३॥ *तीक्ष्ण क्षुर धार पर ठहरना जैसे दुःसाध्य है वैसे योग की*

१ख स्वाप। २ख भय। ३क ०न्ति तथाऽऽत्मा०। ४क ख ०संयुता। दु०।५ख ०गाद्बिहदो०। ६क ०द्दुपोष्यो हि स०।

[आस्थेय]क्षुरधारासु निशितासु द्विजोत्तमा । धारणा सा तु योगस्य दुर्गमकृतात्मभि ॥५४॥
विषमा धारणा विप्रा यान्ति वै न शुभां गतिम् । नेतृहीना यथा नाव पुरुषाणा तु वै द्विजा ॥५५॥
यस्तु तिष्ठति 'योगाधौ 'धारणासु यथाविधि । 'मरण जन्मदु खित्व सुखित्व स विशिष्यते ॥५६॥
[']नानाशास्त्रेषु नियत नानामुनिनिषेवितम् । पर योगस्य पन्थान निश्चित' त द्विजातिषु ॥५७॥

। पर हि' तद्ब्रह्ममय मुनीन्द्रा, ब्रह्माणमीश वरद' च विष्णुम् ।
भव च धर्म च महानुभाव', यद्ब्रह्मपुत्रान्सुमहानुभावान् ॥५८॥
तमश्च कष्ट सुमहद्रजश्च, सत्त्व च शुद्ध प्रकृति परा च ।
सिद्धि च देवीं वरुणस्य पत्नीं, तेजश्च कृत्स्न सुमहच्च धैर्यम् ॥५९॥
ताराधिप खे विमल 'सुतार, विश्वांश्च देवानुरगान्पितॄश्च ।
शैलांश्च कृत्स्नानुदधींश्च वाऽचलाश्नदीश्च सर्वा सनगाश्च नागान् ॥६०॥
साध्यास्तथा यक्षगणान्दिशश्च, गन्धर्वसिद्धान्पुरुषान्स्त्रियश्च ।
परस्पर प्राप्य महान्महात्मा विशेत योगी नचिराद्विमुक्त ॥६१॥
कथा च या विप्रवरा प्रसक्ता, दैवे महावीर्यमतौ शुभयम् ।
योगान्स सर्वाननुभूय'' मर्त्या, नारायण त द्रुतमाप्नुवन्ति ॥६२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसवादे योगविधिनिरूपण
नाम एकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२३९॥

धारणा भी अवश्यात्माओं स कठिन है ॥५४॥ विप्रवृन्द ! धारणा म विषमता आने से नाविक विहीन नौका की तरह पुरुषों की शुभ गति नहीं होती है ॥५५॥ जो विधानपूर्वक धारणा मे स्थित होता है वह जन्म-मरण रूप दुःख स मुक्त होकर सुखी हो जाता है ॥५६॥ योग का मार्ग नाना शास्त्रों म निर्णीत अनेक मुनियों द्वारा सुसेवित तथा द्विजातियों के लिए सुनिश्चित है ॥५७॥ मुनिवर ! परब्रह्म, ब्रह्मा, शिव, वरदायक विष्णु धर्म, महानुभाव ब्रह्मपुत्र, तम, कष्ट, रज, सत्त्व, शुद्ध, पराप्रकृति, सिद्धि, वरुण-पत्नी तेज, धैर्य, चन्द्रमा, सूर्य विश्वेदेव, देव, सर्प, पितर, पर्वत, समुद्र, नदी, नाग, साध्य, यक्षगण, दिशा, गन्धर्व, सिद्ध, पुरुष तथा स्त्रियों को परस्पर प्राप्त कर महात्मा योगी शीघ्र मुक्त हो जाते हैं। विप्रश्रेष्ठो ! महाशक्तिशाली दैव के सम्बन्ध म जो कथा प्राप्त है, वह शुभ है। मनुष्य समस्त योगों का अनुभव करके शीघ्र नारायण को प्राप्त करते हैं ॥५८-६२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के सवाद प्रकरण म योगविधिनिरूपण
नामक दो सौ उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३९॥

१क ०गान्वे धा०। २क ०रणा तु म०। ३क ०ण दुश्चिकित्स्य च सु०। ४ख ग ०पु निष्पन्न योगैर्ध्येवेमुदाहृतम्। ५ख ०त तद्द्विजा०। ६ख हित ब्रह्म०। ७क ०द वरिष्ठम्। ८ग महानर। ९क सुभाव। १०ग ०नभिमू०।

अथ चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

सांख्यविधिनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

सम्यक्क्रियेयं विप्रेन्द्र वर्णिता शिष्टसंमता। योगमार्गो यथान्यायं शिष्यायेह हितैषिणा ॥१॥
'सांख्ये त्विदानीं धर्मस्य विधिं प्रब्रूहि तत्त्वतः। त्रिषु लोकेषु यज्ज्ञानं सर्वं तद्विदितं' हि ते ॥२॥

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनयः 'सर्वमाख्यानं विदितात्मनाम्। विहितं 'यतिभिर्वृद्धैः कपिलादिभिरीश्वरैः ॥३॥
यस्मिन्नुविभ्रमाः केचिद्दृश्यन्ते मुनिसत्तमाः। गुणाश्च यस्मिन्बहवो दोषहानिश्च केवला ॥४॥
ज्ञानेन परिसंख्याय सदोषान्विषयान्द्विजाः। मानुषान्दुर्जयान्कृत्स्नान्पैशाचान्विषयांस्तथा ॥५॥
विषयानौरगाञ्ज्ञात्वा गन्धर्वविषयांस्तथा। पितृणां विषयाञ्ज्ञात्वा तिर्यक्त्वं चरतां द्विजाः ॥६॥
सुपर्णविषयाञ्ज्ञात्वा मरुतां विषयांस्तथा। महर्षिविषयांश्चैव राजर्षिविषयांस्तथा ॥७॥
आसुरान्विषयाञ्ज्ञात्वा वैश्वदेवांस्तथैव च। देवर्षिविषयाञ्ज्ञात्वा 'योगानामपि वै परान् ॥८॥
विषयांश्च प्रमाणस्य ब्रह्मणो विषयांस्तथा। आयुषश्च परं कालं लोकैर्विज्ञाय तत्त्वतः ॥९॥

अध्याय २४०

साख्यविधि का निरूपण

मुनियों ने कहा—विप्रेन्द्र ! आपने शिष्ट-समत क्रिया का सम्यक् वर्णन किया। जैसे हितचिन्तक गुरु शिष्य को उपदेश देते हैं उसी तरह आपने हमें योगमार्ग का यथोचित उपदेश दिया। अब सांख्यदर्शन के अनुसार तत्वत धर्म की विधि बतलाइये। तीनो लोक मे जो ज्ञान है, वह सब आपको विदित है ॥१-२॥

व्यास बोले—मुनिवृन्द ! ज्ञानियो के समस्त आख्यान को आप लोग सुनें, जिसका विधान वृद्ध कपिल आदि यतियो ने किया है, जिसमे कितने ही लोग विभ्रान्त हो जाते हैं और जिसमे गुण बहुत-से हैं तथा दोषो की हानि बताई गई है ॥३-४॥ द्विजगण ! ज्ञान के द्वारा दोषयुक्त विषयों को समझना चाहिये। मनुष्य सबन्धी तथा पिशाच सबन्धी सकल दुर्जेय विषयों का ज्ञान करना चाहिये ॥५॥ सर्प के विषय, गन्धर्वों के विषय, पितरों के विषय, तिर्यग्योनि मे प्राप्त जीवों के विषय, गरुडविषय, वायुविषय, महर्षिविषय, राजर्षिविषय, असुर-विषय, विश्वेदेवो के विषय, देवर्षियों के विषय, योगों के विषय, प्रमाण के विषय, ब्रह्म के विषय तथा आयु से परे काल को तत्वतः समझना चाहिये ॥६-९॥ मुनिश्रेष्ठो ! सुख के उत्तरकाल को समझना चाहिये। विषया-

---

१ग साख्य। २ख ०र्वसाख्यानां वि०। ३क ०तिभि· पूर्वै. क०। ४क ग ०पि चेश्वरात्। वि०।

सुखस्य च परं कालं विज्ञाय मुनिसत्तमाः। प्राप्तकाले च यद्दुःखं पततां विषयैषिणाम् ॥१०॥
तिर्यक्त्वे पततां विप्रास्तथैव नरकेषु यत्। स्वर्गस्य च गुणाञ्ज्ञात्वा दोषान्सर्वांश्च भो द्विजाः ॥११॥
वेदवादे च ये दोषा गुणा ये चापि वैदिकाः। ज्ञानयोगे च ये दोषा [1]ज्ञानयोगे च ये गुणाः ॥१२॥
सांख्यज्ञाने च ये दोषांस्तथैव च गुणा द्विजाः। सत्त्वं दशगुणं ज्ञात्वा रजो नवगुणं तथा ॥१३॥
तमश्चाष्टगुणं ज्ञात्वा बुद्धिं सप्तगुणां तथा। षड्गुणं च नभो ज्ञात्वा तमश्च त्रिगुणं महत् ॥१४॥
द्विगुणं च रजो ज्ञात्वा सत्त्वं चैकगुणं पुनः। मार्गं विज्ञाय तत्त्वेन [2]प्रलयप्रेक्षणेन तु ॥१५॥
ज्ञानविज्ञानसंपन्नाः कारणैर्भावितात्मभिः। प्राप्नुवन्ति शुभं मोक्षं सूक्ष्मा इव नभः परम् ॥१६॥
रूपेण दृष्टिं संयुक्तां घ्राणं गन्धगुणेन च। [3]शब्दग्राह्यं तथा श्रोत्रं जिह्वां रसगुणेन च ॥१७॥
त्वचं स्पर्शं तथा शक्यं वायुं चैव तदाश्रितम्। मोहं तमसि संयुक्तं लोभं मोहेषु[4] संश्रितम्[5] ॥१८॥
विष्णुं क्रान्ते बले शक्रं कोष्ठे सक्तं तथाऽनलम्। अप्सु देवीं समायुक्तामापस्तेजसि संश्रिताः ॥१९॥
तेजो वायौ तु संयुक्तं वायुं नभसि चाऽऽश्रितम्। नभो महति [6]संयुक्तं तमो महसि संस्थितम् ॥२०॥
रजः सत्त्वं तथा सक्तं सत्त्वं सक्तं तथाऽऽत्मनि। सक्तमात्मानमीशे च देवे नारायणे तथा ॥२१॥
देवं मोक्षे च संयुक्तं ततो मोक्षं च न क्वचित्। ज्ञात्वा सत्त्वगुणं देहं वृतं षोडशभिर्गुणैः ॥२२॥

मिलापी जीव के वर्तमानकालीन दुःख, तिर्यग्योनि मे प्राप्त होते हुए जीवों के दुःख तथा नरकों के दुःख को समझना चाहिये ॥१०½॥ द्विजगण! स्वर्ग के समस्त गुण तथा दोषो को समझना चाहिये। वैदिक गुण-दोष, ज्ञानयोग के गुण-दोष तथा साख्यज्ञान के गुण-दोषो को समझना चाहिये ॥११½॥ सत्त्व के दस गुण, रज के नौ गुण, तम के आठ गुण, बुद्धि के सात गुण, आकाश के छह गुण, और पुनः तम के तीन गुण रज के दो गुण तथा सत्त्व के एक गुण को समझना चाहिए। प्रलय-दर्शनपूर्वक तत्त्वत मार्ग को जानकर ज्ञान विज्ञान-सम्पन्न मनुष्य अन्तःकरण को पवित्र करने वाले कारणों के द्वारा पवित्र मोक्ष को उसी तरह प्राप्त कर लेते हैं जैसे सूक्ष्म वस्तु आकाश को ॥१२-१६॥ रूप से सयुक्त दृष्टि को, गन्धगुण से युक्त नासिका को, शब्दग्राह्य कर्ण को, रस-गुण से युक्त जिह्वा को, स्पर्शयुक्त त्वचा को, तदाश्रित वायु को, तमोयुक्त मोह को, मोहयुक्त लोभ को, प्रक्रान्त बल मे विष्णु को, कोष्ठ मे इन्द्र तथा अग्नि को, जल मे देवी को, तेज से युक्त जल को, वायु मे सयुक्त तेज को, आकाश के आश्रित वायु को, महत्त्व से जुड़े हुए आकाश को, तेज मे स्थित तम को, रज मे आसक्त सत्त्व को तथा आत्मा में आसक्त सत्त्व को, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव मे आसक्त आत्मा को और मोक्ष से सयुक्त देव को समझना चाहिए। मोक्ष को किसी मे भी आसक्त नहीं समझना चाहिए ॥१७-२१½॥ सोलह गुणों से घिरे हुए सत्त्वगुण-सम्पन्न शरीर को तथा स्वभाव एव देहाश्रित भावना को जानकर मध्यस्थ की तरह आत्मा को समझना

१क गुणयोगे। २ख ०लये प्रेक्षण तथा। शा०। ग ०लये प्रलय तथा। शा०। ३क ख शब्दमाकाशं। ४ग मरेषु। ५क ०म्। मोऽत्र क तथा कान्त बले स०। ६ख. ०क्तं ततो म०। ग. ०क्त तथा म०।

स्वभावं भावनां चैव ज्ञात्वा देहसमाश्रिताम्। मध्यस्थमिव चाऽऽत्मानं पापं यस्मिन्न विद्यते॥२३॥
द्वितीयं कर्म वै ज्ञात्वा विप्रेन्द्रा विषयैषिणाम्। इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च सर्वानात्मनि संश्रितान्[1]॥२४॥
दुर्लभत्वं च मोक्षस्य विज्ञाय श्रुतिपूर्वकम्। प्राणापानौ समानं च व्यानोदानौ च तत्त्वतः॥२५॥
आद्यं चैवानिलं ज्ञात्वा प्रभव चानिलं पुनः। सप्तधा तांस्तथा शेषान्सप्तधा विधिवत्पुनः॥२६॥
प्रजापतीनृषींश्चैव[2] सर्गांश्च सुबहून्वरान्। सप्तर्षींश्च बहूञ्ज्ञात्वा राजर्षींश्च परंतपान्॥२७॥
सुरर्षीन्मरुतश्चान्यान्ब्रह्मर्षीन्सूर्यसंनिभान्। ऐश्वर्याच्च्यावितान्दृष्ट्वा कालेन महता द्विजा॥२८॥
महतां भूतसंघाना श्रुत्वा नाशं च भो द्विजाः। गतिं वाचां शुभां ज्ञात्वा अर्चार्हाः पापकर्मणाम्॥२९॥
वैतरण्यां च यद्दुःखं पतितानां यमक्षये। योनिषु च विचित्रासु संचारानशुभांस्तथा॥३०॥
जठरे चाशुभे वासं शोणितोदकभाजने। श्लेष्ममूत्रपुरीषे च तीव्रगन्धसमन्विते॥३१॥
शुक्रशोणितसंघाते मज्जास्नायुपरिग्रहे। शिराशतसमाकीर्णे नवद्वारे पुरेऽथ वै॥३२॥
विज्ञाय[3] हितमात्मानं योगांश्च विविधान्द्विजाः। तामसानां च जन्तूनां रमणीयानृतात्मनाम्॥३३॥
सात्त्विकानां च जन्तूनां कुत्सितं मुनिसत्तमाः। गर्हितं महतामर्थे सांख्यानां विदितात्मनाम्॥३४॥
उपप्लवांस्तथा घोराञ्शशिनस्तेजसस्तथा। ताराणां पतनं दृष्ट्वा नक्षत्राणां च पर्ययम्॥३५॥

चाहिये, जिसमे पाप नहीं है॥२२-२३॥ द्विजश्रेष्ठो! विषयाभिलाषी व्यक्तियो के द्वितीय कर्म को जानकर इन्द्रिया तथा आत्माश्रित इन्द्रिय-विषयो को समझना चाहिये॥२४॥ वेदानुसार मोक्ष के दुर्लभत्व को जानकर प्राण, अपान, समान, व्यान तथा उदान को तत्त्वत जानना चाहिये॥२५॥ आद्यवायु, कारणवायु और पुन उनचासा वायु को विधिपूर्वक जानकर प्रजापति, ऋषि, सर्ग (सृष्टि), सप्तर्षि, राजर्षि, देवर्षि, मरुत्, सूर्यसदृश ब्रह्मर्षि तथा ऐश्वर्यच्युत व्यक्तियो को समझना चाहिये॥२६-२८॥ द्विजगण! महान् भूतसघो के नाश को सुनकर पापकर्मों की गति तथा शुभ वाणी को जानना चाहिये। पतितो को यममार्ग मे वैतरणी मे जो दुःख होता है, उसे जानना चाहिये तथा विचित्र योनियो मे जो उनके सचरण एव अमगल होते हैं उन्हें जानना चाहिये॥२९-३०॥ रक्त तथा जल के पात्र, कफ, मूत्र तथा विष्ठा से युक्त तीव्रगन्धसमन्वित वीर्य, शोणित, मज्जा तथा स्नायु से सयुक्त, सैकडो शिराओ से समाकीर्ण तथा नवद्वारयुक्त शरीर के अशुभ उदर मे वास को जानना चाहिये॥३२॥ आत्मा, हित, विविध योग, रमणीय एवम् अनृतात्मा तामस जन्तुओ को जानना चाहिये॥३३॥ सात्त्विक जन्तुओ के कुत्सित कर्म को तथा विदितात्मा साख्यो के गर्हित कर्म को जानना चाहिये॥३४॥ घोर उपद्रवो, चन्द्रमा के तेज, तारो के पतन, नक्षत्रो के विपर्यय, सुख-दुःख आदि के विप्रयोग तथा कृपण को जानना चाहिये॥३५३॥

१ख सस्थितान्। २क ख ०व मार्गांश्चैव वसुधराम्। स०। ३क ख ०मां प्राप्ता पापाश्च क०। ४ख ०ज्ञायाहि०।

'द्वद्वाना विप्रयोग च विज्ञाय कृपण द्विजा । 'अन्योन्यभक्षण दृष्ट्वा भूतानामपि चाशुभम् ॥३६॥
बाल्ये मोह च विज्ञाय पक्षदेहस्य चाशुभम् । राग मोह च सप्राप्त क्वचित्सत्त्व समाश्रितम् ॥३७॥
सहस्रेषु नर कश्चिन्मोक्षबुद्धि समाश्रित । दुर्लभत्व च मोक्षस्य विज्ञान श्रुतिपूर्वकम् ॥३८॥
'बहुमानमलब्धेषु लब्धे मध्यस्थता पुन । विषयाणा च दौरात्म्य विज्ञाय च पुनर्द्विजा ॥३९॥
गतासूना च सत्त्वाना देहान्भित्त्वा तथा शुभान् । वास कुलेषु 'जन्तूना मरणाय धृतात्मनाम् ॥४०॥
सात्त्विकाना च जन्तूना दु ख विज्ञाय भो द्विजा । ब्रह्मघ्नाना गति ज्ञात्वा पतिताना सुदारुणाम् ॥४१॥
सुरापाने च सक्ताना ब्राह्मणाना दुरात्मनाम् । गुरुदारप्रसक्ताना गति विज्ञाय चाशुभाम् ॥४२॥
'जननीषु च वर्तन्ते येन सम्यग्द्विजोत्तमा । 'सदेवकेषु लोकेषु येन वर्तन्ति मानवा ॥४३॥
तेन ज्ञानेन विज्ञाय गति चाशुभकर्मणाम् । तिर्यग्योनिगताना च विज्ञाय च गती पृथक ॥४४॥
वेदवादास्तथा॰ चित्रानृतूना॰ पर्ययास्तथा । क्षय सवत्सराणा च मासाना च क्षय तथा ॥४५॥
पक्षक्षय तथा दृष्ट्वा दिवसाना च सक्षयम् । क्षय वृद्धि च चन्द्रस्य दृष्ट्वा प्रत्यक्षतस्तथा ॥४६॥
वृद्धि दृष्ट्वा समुद्राणा क्षय तेषा तथा पुन । क्षय धनाना दृष्ट्वा च पुनर्वृद्धि तथैव च ॥४७॥
सयोगाना तथा दृष्ट्वा युगाना च विशेषत । देहवैक्लव्यता॰ चैव सम्यग्विज्ञाय तत्त्वत ॥४८॥
आत्मदोषाश्च विज्ञाय सर्वानात्मनि सस्थितान् । स्वदेहादुत्थितान्गन्धास्तथा विज्ञाय चाशुभाम ॥४९॥

प्राणियों के परस्पर अशुभ भक्षण, बाल्यावस्था के मोह देह के अकल्याण और जीवसमाश्रित राग-मोह को जानना चाहिये ॥३६-३७॥ हजारो मनुष्य में किसी को मोक्षबुद्धि होती है। श्रुतिपूर्वक विज्ञान तथा मोक्ष के दुर्लभत्व को जानना ॥३८॥ अलब्धो मे बहुमान तथा लब्धो मे मध्यस्थता को देखना चाहिये। विषयो के दौरात्म्य को जानना चाहिये ॥३९॥ गतप्राण शरीरियो के पवित्र देहो को छोडकर मरण के लिए शरीर धारण किये हुए (अन्य) जन्तुओं के कुलों मे निवास का तथा सात्त्विक जन्तुओं के दु ख को जानना चाहिये चाहिये ॥४०½॥ पतित ब्रह्मघातियो की मदिरापान मे आसक्त दुरात्मा ब्राह्मणो की और गुरुपत्नीगामियों की दारुणगति को जानना चाहिये ॥४१ ४२॥ द्विजश्रेष्ठो! मनुष्य जिस ज्ञान से माताओं देवताओं तथा लोगो के साथ व्यवहार करते हैं उस ज्ञान से अशुभ कर्मों की गति को जानना चाहिये ॥४३½॥ तिर्यग्योनियो मे गये जीवो की पृथक्-पृथक गतियों को समझना चाहिये। वेदवादो का, ऋतुविपययो को वर्ष मास पक्ष तथा दिन के क्षय को, चन्द्रमा के प्रत्यक्ष क्षय तथा वृद्धि को, समुद्र के क्षय तथा वृद्धि को और धन के क्षय एवम् पुनर्वृद्धि को जानना चाहिये। युगों के सयोग को विशेष करके जानना चाहिये। शरीर की विवलता को अच्छी तरह जानना चाहिये। आत्मा मे सस्थित दोषों को जानना चाहिये। अपने शरीर से उत्थित अशुभ गन्धो को जानना चाहिये ॥४४ ४९॥

१ख बदानां। २ख ०न्यरक्षणा द०। ३क ०लब्धे तु ल०। ४ख ग ०नां रमणीयानृतात्म०। ५ ख दननीषु। ६क सदेव०। ७ख ०दविद्यास्त०। ८ख ०ना भूताना। ९ख ख बहुवक्तव्यता।

मुनय ऊचुः

कानुत्पातभवान्दोषान्पश्यति ब्रह्मवित्तम। एतं नः संशयं कृत्स्नं वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥५०॥

व्यास उवाच

पञ्च दोषान्द्विजा देहे प्रवदन्ति मनीषिणः[1]। मार्गज्ञाः कापिलाः सांख्याः शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ॥५१॥
कामक्रोधौ भयं निद्रा पञ्चमः श्वास उच्यते[2]। एते दोषाः शरीरेषु दृश्यन्ते सर्वदेहिनाम् ॥५२॥
छिन्दन्ति क्षमया क्रोधं कामं संकल्पवर्जनात्। सत्त्वसंसेवनान्निद्रामप्रमादाद्भयं तथा ॥५३॥
छिन्दन्ति पञ्चमं श्वासमल्पाहारतया द्विजः। गुणान्गुणशतैर्ज्ञात्वा दोषान्दोषशतैरपि ॥५४॥
हेतून्हेतुशतैश्चित्रैश्चित्रान्विज्ञाय तत्त्वतः। अपां फेनोपमं लोकं विष्णोर्मायाशतैः कृतम् ॥५५॥
[3]चित्रभित्तिप्रतीकाशं नलसारमनर्थकम्। तमःसंमितं दृष्ट्वा वर्षबुद्बुदसंनिभम् ॥५६॥
नाशप्रायं [4]सुखाधानं नाशोत्तरमहाभयम्। रजस्तमसि संमग्नं पङ्के द्विपमिवावशम् ॥५७॥
सांख्या[5] विप्रा [6]महाप्राज्ञास्त्यक्त्वा स्नेहं प्रजाकृतम्। ज्ञानज्ञेयेन सांख्येन व्यापिना महता द्विजाः ॥५८॥
राजसानशुभान्गन्धांस्तामसांश्च तथाविधान्। पुण्यांश्च सात्त्विकान्गन्धान्स्पर्शजान्देहसंश्रितान् ॥५९॥
छित्त्वाऽऽत्मज्ञानशस्त्रेण तपोदण्डेन सत्तमाः। ततो दुःखादिकं घोरं चिन्ताशोकमहाह्रदम् ॥६०॥

मुनियों ने कहा—ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! आप किन उत्पातजन्य दोषों को देखते हैं ? हमारे इस संशय का पूर्ण रूप से समाधान कर दीजिये ॥५०॥

व्यास बोले—मुनिवर ! मार्गों के ज्ञाता, कपिलमतानुयायी, सांख्यशास्त्र के विद्वान् शरीर में पाँच प्रकार के दोषों को बतलाते हैं ॥५१॥ काम, क्रोध, भय, निद्रा तथा श्वास—ये पाँच दोष समस्त प्राणियों के शरीरों में देखे जाते हैं ॥५२॥ क्षमा से क्रोध का उच्छेद करे, संकल्पत्याग से काम का, सत्त्वसंसेवन से निद्रा का और अप्रमाद से भय का नाश करे ॥५३॥ द्विजगण ! अल्पाहार से श्वास का उच्छेदन करे। सैंकड़ों गुणों से गुणों को, सैंकड़ों दोषों से दोषों को और सैंकड़ों कारणों से कारणों को तत्त्वतः जानकर विष्णु की सैंकड़ों मायाओं से रचित लोक को जल के फेन सदृश समझे ॥५४-५५॥ दीवार के चित्र तुल्य सारहीन, अनर्थक, तिमिरावृत, वर्षा के बुलबुले के समान, नष्टप्राय, सुखाधान, नाशोत्तर महाभय से युक्त, रज तथा तमोगुण में निमग्न और पंक-मग्न हस्ती की तरह विवश संसार का त्याग करना चाहिये ॥५६-५७॥ विप्रवृन्द ! सांख्यवेत्ता महापण्डित ज्ञान से जानने योग्य सांख्यदर्शन के बल से सन्तान-स्नेह का परित्याग करते हैं ॥५८॥ राजस अशुभा को, तामस गन्धों को, सात्त्विक पुण्यों को तथा स्पर्शजन्य गन्धों को आत्मज्ञान रूपी शस्त्र से तथा तप रूपी दण्ड से उच्छिन्न कर देना चाहिये ॥५९३॥ तदनन्तर महाभय रूपी महासर्प से युक्त, तम रूपी कच्छप से समन्वित और रजरूपी मत्स्य से सवलित,

---

[1] क. ०ते। पञ्च विघ्नसकर्तारो वर्तन्ते। ख ०ते। योगविघ्नसकर्तारो वर्तन्ते। [2] क. व्योमपर। [3] ख. चिन्ताभि०। [4] ख. सुखासीन्। [5] क ख ०स्यान्विप्रा०। [6] क ख ०ज्ञान्स तानाह प्रजापति। अनेन दोषान्सांख्ये०।

व्याधिमृत्युमहाघोरं महाभयमहोरगम्। तत कूर्मं रजोमीनं प्रज्ञया सतरन्त्युत ॥६१॥
स्नेहपङ्कं जरादुर्गं, स्पर्शद्वीप द्विजोत्तमा। कर्मागाध सत्यतीरं स्थित व्रतमनीषिण ॥६२॥
हर्षसघमहावेग नानारससमाकुलम्। नानाप्रीतिमहारत्नं दु खज्वरसमीरितम् ॥६३॥
शोकतृष्णामहावर्तं तीक्ष्णव्याधिमहारुजम्। अस्थिसघातसघट्टं श्लेष्मयोगं द्विजोत्तमा ॥६४॥
दानमुक्ताकरं घोरं शोणितोद्गारविद्रुमम्। हसितोत्कृष्टनिर्घोषं नानाज्ञानसुदुष्करम् ॥६५॥
रोदनाश्रुमलक्षारं सङ्गयोगपरायणम्। प्रलब्ध्वा जन्मलोको य पुत्रबान्धवपत्तनम् ॥६६॥
अहिंसासत्यमर्यादं प्राणयोगमयोर्मिलम्। वृन्दानुगामिनं क्षीरं सर्वभूतपयोदधिम् ॥६७॥
मोक्षदुर्लभविषयं वाडवासुखसागरम्। तरन्ति यतय सिद्धा ज्ञानयोगेन चानघा ॥६८॥
तीर्त्वा च दुस्तरं जन्म विशन्ति विमलं नभ। ततस्तान्सुकृतीञ्ज्ञात्वा सूर्यो वहति रश्मिभि ॥६९॥
पद्मतन्तुवदाविश्य प्रवहन्विषयान्द्विजा। तत्र तान्प्रवहो वायु प्रतिगृह्णाति चानघा ॥७०॥
वीतरागान्यतीन्सिद्धान्वीर्ययुक्तांस्तपोधनान्। सूक्ष्म शीत सुगन्धश्च सुखस्पर्शश्च भो द्विजा ॥७१॥
सप्तानां मरुतां श्रेष्ठो लोकान्गच्छति य शुभान्। स तान्वहति विप्रेन्द्रा नभस परमां गतिम् ॥७२॥

महाघोर, दु ख चिन्ता शोक व्याधि तथा मृत्यु रूपी महाह्रद को ज्ञान से पार करे ॥६०-६१॥ स्नेहरूपी कीचड वाले, वृद्धतारूपी दुर्ग वाले, स्पर्श रूपी द्वीप वाले, कर्म रूपी अतिगम्भीरता से युक्त, सत्यरूपी तट वाले, हर्षसमूह रूपी महावेग से युक्त, नाना रसो से आकुल, प्रीति रूपी महारत्नो से युक्त, दु ख रूपी ज्वार भाटे से युक्त, शोक और तृष्णा रूपी आवर्तों से युक्त, तीक्ष्णव्याधि तथा महारोग वाले, अस्थिसमूह से युक्त, कफ से युक्त, दान रूपी मुक्ताओ के आकर, भयकर, शोणित रूपी मूगो से युक्त, हास्य रूपी शब्दो से युक्त, अनेक प्रकार के अज्ञानो से दुर्लघ्य, रोदन के अश्रुमल से क्षार, सग-योग मे निरत, पुत्र और बन्धु रूप नगर वाले (?) अहिंसा तथा सत्यरूपी मर्यादा (सीमा) से युक्त, प्राण-योगमय तरगो से युक्त समूह के अनुगामी, सबके प्राणी रूप दूध या जल के समुद्र, मोक्षरूपी दुर्लभ पदार्थ से युक्त और सुख रूपी वडवानल से युक्त ससार रूपी सागर को सिद्ध एव निष्पाप सन्यासी ज्ञानयोग से पार करते है ॥६२-६८॥ दुस्तर जन्म का सतरण करके सिद्धपुरुष निर्मल आकाश मे प्रवेश करते है। द्विजगण ! तब सूर्य उन्हे पुण्यात्मा समझ कर अपनी किरणो के द्वारा ऊपर को उठाते है और प्रवहनामक वायु पद्मतन्तु के भीतर प्रविष्ट होकर भोग्यपदार्थों को उनके पास पहुचाता है ॥६९-७०॥ विप्रवृन्द ! वीतराग, तपोधन, शक्तिशाली सिद्ध यतियो को सूक्ष्म शीत तथा सुगन्धित वायु का सुखस्पर्श होता है ॥७१॥ विप्रेन्द्रो ! सात मरुतो मे सबसे श्रेष्ठ वायु, जो पवित्र लोको मे जाता है, उन सिद्धो को आकाश की परम सीमा पर पहुचा देता है ॥७२॥ आकाश उनको रजोगुण की परम सीमा पर पहुँचाता है और रजो-

---

१क ख ०र सत्यव्र०। २ख ख ०म्। पुनर्वा ज०। ३ख सु ०भ्रवधूचयत्लरम्। ४क ०म्। भेदानुपायिनक्षी०। ५ग मृ०। महोक्ष०। ६ग ०विष वडवामुख०। ७ख मित्वा। ८क तम। ख तत।

नभो[1] वहति लोकेशान्रजसः परमां गतिम्। रजो वहति विप्रेन्द्राः सत्त्वस्य परमां गतिम् ॥७३॥
सत्त्वं वहति शुद्धात्मा परं नारायणं प्रभुम्। प्रभुर्वहति शुद्धात्मा परमात्मानमात्मना ॥७४॥
परमात्मानमासाद्य तद्भूता यतयोऽमलाः। अमृतत्वाय कल्पन्ते न निवर्तन्ति च द्विजाः ॥७५॥
परमा सा गतिर्विप्रा निर्द्वन्द्वानां महात्मनाम्। सत्यार्जवरतानां वै सर्वभूतदयावताम् ॥७६॥

मुनय ऊचुः

स्थानमुत्तममासाद्य भगवन्तं स्थिरव्रताः। आजन्ममरणं वा ते[2] रमन्ते तत्र वा न वा ॥७७॥
यदत्र तथ्यं तत्त्वं नो यथावद्वक्तुमर्हसि। त्वदृते मानवं नान्यं प्रष्टुमर्हाम सत्तम ॥७८॥
[3]मोक्षदोषो महानेष प्राप्य सिद्धिं गतानृषीन्। यदि तत्रैव विज्ञाने वर्तन्ते यतयः परे ॥७९॥
प्रवृत्तिलक्षणं धर्मं पश्याम परमं द्विज[4]। मग्नस्य हि परे ज्ञाने किंतु दुःखान्तरं भवेत् ॥८०॥

व्यास उवाच

यथान्यायं मुनिश्रेष्ठाः प्रश्नः पृष्टश्च संकटः। बुधानामपि संमोहः प्रश्नेऽस्मिन्मुनिसत्तमाः ॥८१॥
अत्रापि तत्त्वं परमं शृणुध्वं वचनं मम। बुद्धिश्च परमा यत्र[5] कपिलानां महात्मनाम् ॥८२॥
इन्द्रियाण्यपि बुध्यन्ते स्वदेहं[6] देहिनां द्विजाः। करणान्यात्मनस्तानि सूक्ष्मं[7] पश्यन्ति तैस्तु सः ॥८३॥

गुण सत्त्वगुण की अन्तिम सीमा पर पहुँचा देता है ॥७३॥ शुद्धात्मा सत्त्वगुण उन्हें प्रभु नारायण के पास पहुँचाता है और शुद्धात्मा प्रभु परमात्मा के पास पहुँचा देता है ॥७४॥ परमात्मा को प्राप्त करके निर्मल यति तन्मय हो जाते हैं। द्विजगण! तब वे अमृतत्व को प्राप्त कर वहाँ से निवृत्त नहीं होते हैं ॥७५॥ विप्रवृन्द! निर्द्वन्द्व, सत्य तथा ऋजुता में निरत और समस्त भूतों पर दया करने वाले महात्माओं की वह परमगति है ॥७६॥

मुनियों ने कहा—स्थिरव्रती सन्यासी उत्तम स्थान को प्राप्त कर वहाँ जन्म-मरण तक रमण करते हैं कि नहीं? इसमें जो तथ्य बात है, वह हमें बतलाइये। मुने! आपको छोड़कर हम दूसरे व्यक्ति से नहीं पूछ सकते। यदि यति लोग वहीं पर विज्ञान में निरत रहते हैं तो सिद्ध ऋषियों के लिए यह महान् मोक्षदोष है। द्विज! यह तो प्रवृत्ति-लक्षण धर्म है जो कि परम ज्ञान में निमग्न व्यक्ति के लिए एक दूसरे प्रकार का दुःख है ॥७७-८०॥

व्यास बोले—मुनिश्रेष्ठो! यह तो बड़ा कठिन प्रश्न आपने पूछ दिया। ऐसे प्रश्न से तो विद्वान् लोग भी घबरा जाते हैं ॥८१॥ यहाँ भी परमतत्त्व को आप मुझसे सुन लीजिए, जिसका निश्चय महात्मा कपिल की उत्कृष्ट बुद्धि ने किया है ॥८२॥ द्विजगण! प्राणियों की इन्द्रियाँ भी अपनी देह को जानती हैं। मनुष्य इन्द्रियों द्वारा आत्मा के सूक्ष्म कारणों को देखते हैं ॥८३॥ लकड़ी पर बनाये चित्र जैसे लकड़ी के नष्ट होते ही नष्ट हो

१ख तमो। २ग. ते स्मरन्त्यत्र सदाऽनघा। य०। ३ग. मोक्षलाभो। ४ख. ०ज। यस्य द्विसापरं ज्ञान किं०। ५क. त्र० जायते हि म०। ६क स्वदेहे। ७ख सूक्ष्म।

आत्मना विप्रहीणानि [1]काष्ठकुड्यसमानि तु। विनश्यन्ति न संदेहो वेला इव महार्णवे॥८४॥
इन्द्रियैः सह सुप्तस्य देहिनो[2] द्विजसत्तमाः[3]। सूक्ष्मश्चरति सर्वत्र नभसीव समीरणः॥८५॥
स पश्यति [4]यथान्यायं स्मृत्वा स्पृशति चानघाः। बुध्यमानो यथापूर्वमखिलेनेह भो द्विजाः॥८६॥
इन्द्रियाणि ह सर्वाणि स्वे स्वे स्थाने यथाविधि। अनीशत्वात्प्रलीयन्ते सर्पा विषहता इव॥८७॥
इन्द्रियाणां तु सर्वेषां स्वस्थानेष्वेव सर्वशः। आक्रम्य गतयः सूक्ष्माः (श्च) रत्यात्मा न संशयः॥८८॥
सत्त्वस्य च गुणान्कृत्स्नान्रजसश्च गुणान्पुनः। गुणांश्च तमसः सर्वान्गुणान्बुद्धेश्च सत्तमाः॥८९॥
गुणांश्च मनसश्चापि नभसश्च गुणांस्तथा। गुणान्वायोश्च सर्वज्ञाः स्नेहजांश्च गुणान्पुनः॥९०॥
अपां गुणांस्तथा विप्राः पार्थिवांश्च गुणानपि। सर्वानेव [5]गुणैर्व्याप्य क्षेत्रज्ञेषु द्विजोत्तमाः॥९१॥
आत्मा [6]चरति क्षेत्रज्ञः कर्मणा च [7]शुभाशुभे। शिष्या इव महात्मानमिन्द्रियाणि च तं द्विजाः॥९२॥
प्रकृतिं चाप्यतिक्रम्य शुद्धं सूक्ष्मं परात्परम्। नारायणं महात्मानं निर्विकारं परात्परम्॥९३॥
विमुक्तं सर्वपापेभ्यः प्रविष्टं च ह्यनामयम्। परमात्मानमगुणं निर्वृतं तं च सत्तमाः॥९४॥
श्रेष्ठं तत्र मनो विप्रा इन्द्रियाणि च भो द्विजाः। आगच्छन्ति यथाकालं गुरोः संदेशकारिणः[8]॥९५॥
शक्यं वाऽल्पेन कालेन[9] शान्तिं प्राप्तुं[10] गुणांस्तथा। एवमुक्तेन विप्रेन्द्राः सांख्ययोगेन मोक्षिणीम्[11]॥९६॥

जाते हैं उसी तरह आत्मा से वियुक्त होते ही इन्द्रियाँ समुद्र में तरंग की तरह विनष्ट हो जाती हैं, इसमें संशय नहीं॥८४॥ द्विजश्रेष्ठो! प्राणी की सुषुप्तावस्था में जब इन्द्रियाँ भी सुप्त रहती हैं तब सूक्ष्म वायु जैसे आकाश में सर्वत्र संचरण करता है वैसे उसके शरीर में भी संचरित होता है॥८५॥ प्राणी जागने पर पहले की तरह देखता है स्मरण करता है और स्पर्श करता है। आत्मा के चले जाने पर शासकविहीन होने के कारण इन्द्रियाँ उसी तरह नष्ट हो जाती हैं जैसे विष नष्ट होने पर सर्प॥८६-८७॥ इन्द्रियाँ के अपने अपने स्थानों में ही उनका अतिक्रमण कर आत्मा निःसंदेह सूक्ष्म गति से चल देता है॥८८॥ विप्रवृन्द! सत्त्व के अखिल गुणों को पुनः रज के गुणों को तम के गुणों को बुद्धि के गुणों को मन के गुणों को आकाश के गुणों को वायु के गुणों को स्नेह के गुणों को जल के गुणों को तथा पृथ्वी के सभी गुणों को व्याप्त करके क्षेत्रज्ञ आत्मा शुभ अशुभ कर्मों को करता है। द्विजगण! जैसे शिष्य महात्मा का अनुगमन करते हैं उसी तरह इन्द्रियाँ आत्मा का अनुसरण करती हैं॥८९-९२॥ प्रकृति का भी अतिक्रमण करके शुद्ध सूक्ष्म परात्पर, नारायण महात्मा निर्विकार, समस्त पापों से विमुक्त अनामय निर्गुण शाश्वत परमात्मा में मन तथा इन्द्रियाँ प्रविष्ट होती हैं॥९३॥ गुरु के आज्ञाकारी शिष्य जैसे यथासमय आ जाते हैं वैसे वे भी उपस्थित होती हैं॥९३-९५॥ विप्रवर! सांख्य-योग से अल्पकाल में ही मोक्ष रूप शान्ति प्राप्त हो जाती है। सांख्यवेत्ता महापण्डित परमगति को प्राप्त करते हैं।

१क. ख. पापकर्मकृतानि। २ख. °ना व्याकुलस्य तु। सु°। ३क. °माः। मनो भ्रमति। ४ग. °थः स्पर्शान्स्पृ°। ५ग. गुणान्व्याप्य। ६ग. च याति। ७ग. °भान्गुणान्। शि°। ८ग. स ° देहका°। ९क. °न प्राप्तश्चाऽऽप्तगु°। ख. °न प्राप्तुं प्राप्ता गुणात्मनाम्। ए°। १०ग. प्राप्तिं गुणार्थिना। ए°। ११ग. ख. °म्। शीतोष्णादि परित्यज्य ग°।

सांख्या विप्रा महाप्राज्ञा गच्छन्ति परमां गतिम्। ज्ञानेनानेन विप्रेन्द्रास्तुल्यं ज्ञानं न विद्यते ॥९७॥
अत्र वः संशयो मा भूज्ज्ञानं सांख्यं परं मतम्। अक्षरं ध्रुवमेवोक्तं पूर्वं ब्रह्म सनातनम् ॥९८॥
अनादिमध्यनिधनं निर्द्वंद्वं कर्तृ शाश्वतम्। कूटस्थं चैव नित्यं च यद्वदन्ति शमात्मकाः ॥९९॥
यतः सर्वाः प्रवर्तन्ते सर्गप्रलयविक्रियाः। एवं शंसन्ति शास्त्रेषु प्रवक्तारो महर्षयः ॥१००॥
सर्वे विप्राश्च वेदाश्च तथा सामविदो जनाः। ब्रह्मण्यं परमं देवमनन्तं परमाच्युतम् ॥१०१॥
प्रार्थयन्तश्च तं विप्रा वदन्ति 'गुणबुद्धयः। सम्यग्युक्तास्तथा योगाः[2] 'सांख्याश्चामितदर्शनाः ॥१०२॥
अमूर्तिस्तस्य विप्रेन्द्राः सांख्यं मूर्तिरिति श्रुतिः। अभिज्ञानानि तस्याऽहुर्महान्ति[4] मुनिसत्तमाः ॥१०३॥
द्विविधानि हि भूतानि पृथिव्यां द्विजसत्तमाः। अगम्यगम्यसंज्ञानि गम्यं तत्र विशिष्यते ॥१०४॥

ज्ञानं महद्वै महतश्च विप्रा, वेदेषु सांख्येषु तथैव योगे ।
यच्चापि दृष्टं विधिवत्पुराणे, सांख्यागतं तन्निखिलं मुनीन्द्राः ॥१०५॥
यच्चेतिहासेषु महत्सु दृष्टं, यथार्थशास्त्रेषु विशिष्टदृष्टम् ।
ज्ञानं च लोके यदिहास्ति किंचित्सांख्यागतं तच्च महामुनीन्द्राः ॥१०६॥
समस्तदृष्टं परमं बलं च, ज्ञानं च मोक्षश्च यथावदुक्तम् ।
तपांसि सूक्ष्माणि च यानि चैव, सांख्ये यथावद्विहितानि विप्राः ॥१०७॥
विपर्ययं तस्य हितं सदैव, गच्छन्ति सांख्याः सततं सुखेन ।
तांश्चापि संधार्य ततः कृतार्थाः, पतन्ति [5]विप्रायतनेषु भूयः ॥१०८॥

इस ज्ञान के समान दूसरा ज्ञान नहीं है ॥९६-९७॥ इसमें आप संशय न करें। सांख्य का ज्ञान महान् है। यह अक्षर, ध्रुव, ब्रह्म, सनातन आदि-मध्य तथा अन्त से रहित, निर्द्वन्द्व, कर्ता, शाश्वत, कूटस्थ तथा नित्य है। प्रवक्ता महर्षि शास्त्रों में ऐसा कहते हैं कि इसीसे सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय होते हैं ॥९८-१००॥ समस्त ब्राह्मण, वेद तथा सामवेत्ता जन, ब्रह्मण्य, परमदेव, अनन्त तथा परम अच्युत की प्रार्थना करते हैं। परमात्मा को सगुण समझने वाले लोग ऐसा कहते हैं। योग तथा सांख्य का सम्यक् वर्णन हो गया। विप्रश्रेष्ठो ! सांख्य अमूर्त परमात्मा की मूर्ति है, ऐसा सुना जाता है। उनके अभिज्ञान महान् हैं ॥१०१-१०३॥ पृथिवी पर दो प्रकार के भूत होते हैं—एक अगम्यसंज्ञक और दूसरा गम्यसंज्ञक। उनमें गम्य श्रेष्ठ है ॥१०४॥ मुनीन्द्रो ! महत्तत्व ज्ञान है और महत्तत्व से वेद, सांख्य, योग तथा पुराणों में जो कुछ देखा जाता है, वह सांख्य से प्राप्त है। महान् इतिहासों में जो कुछ देखा जाता है, यथार्थशास्त्रों में जो विशेषता देखी जाती है और लोक में जो कुछ ज्ञान है वह सांख्य से प्राप्त है। विप्रवृन्द ! समस्त दर्शन, परम बल, ज्ञान, मोक्ष, तप और सूक्ष्म पदार्थ—ये सब सांख्य में बतलाये गये हैं। सांख्य का अस्तित्ववाद सदैव हितकर है। सांख्यवेत्ता सतत सुख प्राप्त करते हैं। सांख्य-ज्ञान का धारण करने वाले व्यक्ति कृतार्थ होकर ब्राह्मण-शरीर को प्राप्त करते हैं। फिर उस देहत्याग के बाद योगी तथा सांख्यक

१क ०य। धमयुक्ता०। २क योगे। ३क. ०ख्याश्च चात०। ४क ख. ०र्मत द्वि मु०। ५ख विप्रेषु वदन्ति। मू०।

हित्वा च देहं प्रविशन्ति मोक्षं, दिवौकसश्चापि च योगसांख्याः ।
अतोऽधिकं तेऽभिरता महार्हे, सांख्ये द्विजा भो इह शिष्टजुष्टे ॥१०९॥
तेषां तु तिर्यग्गमनं हि दृष्टं, नाधो गतिः पापकृतां निवासः ।
न वा प्रधाना अपि ते द्विजातयो, ये ज्ञानमेतन्मुनयो न सक्ता' ॥११०॥
'सांख्यं विशालं परमं पुराणं, महार्णवं विमलमुदारकान्तम् ।
कृत्स्नं हि सांख्या मुनया महात्मनारायणे धारयताप्रमेयम् ॥१११॥
एतन्मयोक्तं परमं हि तत्त्वं, नारायणाद्विश्वमिदं पुराणम् ।
स सर्गकाले च करोति सर्गं, संहारकाले च[2] हरेत् भूयः ॥११२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासऋषिसंवादे सांख्यविधिनिरूपणं नामैकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४०॥

अथैकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वसिष्ठकरालजनकसंवादे क्षराक्षरविचारनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

किं तदक्षरमित्युक्तं यस्मान्नाऽऽवर्तते पुनः । किंस्वित्तत्क्षरमित्युक्त यस्मादावर्तते पुन ॥१॥
अक्षराक्षरयोर्व्यक्तिं पृच्छामस्त्वां महामुने । उपलब्धुं मुनिश्रेष्ठ तत्त्वेन मुनिपुंगव ॥२॥

मोक्ष प्राप्त करते हैं। द्विजगण ! महापूज्य तथा शिष्ट-जन-सेवित साख्य मे जो व्यक्ति रत रहते हैं वे नीच-योनि मे नही जाते, उनकी अधोगति नही होती और पापियों के यहाँ उनका निवास नही होता। मुनिवृन्द ! वे द्विजाति उत्तम नही कहलाते हैं जिन्हें साख्य का ज्ञान नही है। सम्पूर्ण साख्य विशाल, परमपुराण, महार्णव, विमल, उदार तथा सुन्दर है। हे साख्य जानने वाले मुनियो ! महात्मा नारायण मे अप्रमेय ज्ञान का धारण करो। यह परम तत्त्व मैंने बतला दिया। नारायण से इस पुरातन विश्व की उत्पत्ति है। वे ही सृष्टिकाल मे सृष्टि करते हैं और सहार काल मे सहार करते हैं॥१०५-११२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे व्यास और ऋषियो के सवाद प्रकरण मे साख्यविधिनिरूपण नामक दो सौ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४०॥

अध्याय २४१

वसिष्ठ नोर करालजनक के सवाद में क्षर और अक्षर का निरूपण

मुनियो ने कहा—वे अक्षर कौन है, जिसे प्राप्त कर जीव की पुनरावृत्ति नही होती है और वे क्षर कौन है, जिसे प्राप्त कर पुनरावृत्ति होती है ! महामुने ! अक्षर और क्षर की अभिव्यक्ति को तत्त्वत उपलब्ध करने

१ग साख्या। २ग. च तदति मु०।

त्वं हि ज्ञानविदां श्रेष्ठः प्रोच्यसे वेदपारगैः । ऋषिभिश्च महाभागैर्यतिभिश्च महात्मभिः ॥३॥
तदेतच्छ्रोतुमिच्छामस्त्वत्तः सर्वं महामते । न तृप्तिमधिगच्छाम शृण्वन्तोऽमृतमुत्तमम् ॥४॥

व्यास उवाच

अत्र वो वर्णयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् । वसिष्ठस्य च संवादं करालजनकस्य च ॥५॥
वसिष्ठं श्रेष्ठमासीनमृषीणां भास्करद्युतिम् । पप्रच्छ जनको राजा ज्ञानं नैःश्रेयसं परम् ॥६॥
परमात्मनि कुशलमध्यात्मगतिनिश्चयम् । मैत्रावरुणिमासीनमभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥७॥
[1]स्वच्छन्दं [2]सुकृतं चैव मधुरं चाप्यनुल्बणम् । पप्रच्छर्षिवरं राजा करालजनकः पुरा ॥८॥

करालजनक उवाच

भगवञ्श्रोतुमिच्छामि परं ब्रह्म सनातनम् । यस्मिन्न पुनरावृत्तिं प्राप्नुवन्ति मनीषिणः ॥९॥
यच्च तत्क्षरमित्युक्तं यत्रेदं क्षरते जगत् । यच्चाक्षरमिति प्रोक्तं शिवं क्षेममनामयम् ॥१०॥

वसिष्ठ उवाच

श्रूयतां पृथिवीपाल क्षरतीदं यथा जगत् । यत्र क्षरति पूर्वेण यावत्कालेन चाप्यथ ॥११॥
युगं द्वादशसाहस्रं कल्पं विद्धि चतुर्युगम् । दशकल्पशतावर्तमहस्तद्ब्राह्ममुच्यते ॥१२॥
रात्रिश्चैतावती राजन्यस्यान्ते प्रतिबुध्यते । सृजत्यनन्तकर्माणि महान्तं भूतमग्रजम् ॥१३॥

के लिये हम आपसे पूछते हैं। वेदपारगत महाभाग ऋषि और महात्मा यति आपको ज्ञानियों में श्रेष्ठ बतलाते हैं। महामते ! हम लोग इस बात को आपसे तत्त्वपूर्वक समझना चाहते हैं। आपके वचनामृत का पान करते हुए हमें तृप्ति नहीं मिल रही है ॥१-४॥

व्यास बोले—इस विषय में मैं आपको एक पुरातन इतिहास बतलाऊँगा, जिसमें वसिष्ठ तथा करालजनक का संवाद है। ऋषियों में श्रेष्ठ, सूर्य तुल्य कान्ति वाले और आसन पर विराजमान वसिष्ठ से राजा जनक ने मोक्ष संबन्धी ज्ञान के बारे में प्रश्न किया। पूर्वकाल में, परमात्मा में कुशल तथा अध्यात्मज्ञान का निश्चय करने वाले, समासीन वसिष्ठ को प्रणाम कर राजा करालजनक ने अंजलि बाँधकर स्वच्छन्द, पवित्र, मधुर तथा अस्पष्ट तत्त्व के बारे में उनसे पूछा ॥५-८॥

करालजनक बोले—भगवन् ! मैं सनातन परब्रह्म के बारे में सुनना चाहता हूँ, जिसे प्राप्त कर मनीषी लोग फिर नहीं लौटते हैं। क्षर तो उसे कहते हैं, जहाँ यह सम्पूर्ण जगत् विनष्ट हो जाता है और अक्षर वह है, जो शिव, कल्याण तथा अनामय (स्वस्थ) रूप है ॥९-१०॥

वसिष्ठ बोले—पृथिवीपाल ! यह जगत् जैसे, जहाँ और जितने कालमें नष्ट होता है, वह सुनिये ॥११॥ बारह हजार युगों का एक कल्प होता है और दस सौ कल्पों से युक्त चतुर्युग ब्रह्मा का एक दिन होता है। राजन् ! (ब्रह्मा की) रात्रि भी इसी परिमाण से होती है, जिसके अन्त में जागकर ब्रह्मा अनन्त कर्मों का सर्जन करते हैं। निराकार

---

१ घ सुक्षेत्र। २ ग प्रबुद्ध।

मूर्तिमन्तममूर्तात्मा विश्वं शंभुः स्वयंभुवः । यत्रोत्पत्तिं प्रवक्ष्यामि मूलतो नृपसत्तम ॥१४॥
अणिमा लघिमा प्राप्तिरीशानं ज्योतिरव्ययम् । सर्वतःपाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ॥१५॥
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति । हिरण्यगर्भो भगवानेष बुद्धिरिति [1]स्मृतिः ॥१६॥
महानिति च योगेषु [2]विरिञ्चिरिति चाप्यथ । सांख्ये च पठ्यते शास्त्रे नामभिर्बहुधात्मकः ॥१७॥
विचित्ररूपो विश्वात्मा एकाक्षर इति स्मृतः । धृतमेकात्मकं येन कृत्स्नं त्रैलोक्यमात्मना ॥१८॥
तथैव बहुरूपत्वाद्विश्वरूप इति श्रुतः । एष वै [3]विक्रियापन्नः सृजत्यात्मानमात्मना ॥१९॥
प्रधानं तस्य संयोगादुत्पन्नं सुमहत्पुरम् । अहंकारं [4]महातेजाः प्रजापतिनमस्कृतम्[5] ॥२०॥
[6]अव्यक्ताद्व्यक्तिमापन्नं विद्यासर्गं वदन्ति तम् । महान्तं चाप्यहंकारमविद्यासर्ग एव च ॥२१॥
अचरश्च चरश्चैव समुत्पन्नौ तथैकतः[7] । विद्याऽविद्येति विख्याते श्रुतिशास्त्रानुचिन्तकैः ॥२२॥
भूतसर्गमहंकारात्तृतीयं विद्धि पार्थिव । अहंकारेषु नृपते चतुर्थं विद्धि वैकृतम् ॥२३॥
वायुर्ज्योतिरथाऽऽकाशमापोऽथ पृथिवी तथा । शब्दस्पर्शौ च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च ॥२४॥
एवं युगपदुत्पन्नं दशवर्गमसंशयम् । पञ्चमं विद्धि राजेन्द्र भौतिकं सर्गमर्थकृत् ॥२५॥
श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा घ्राणमेव च पञ्चमम् । वाग्घस्तौ चैव पादौ च पायुर्मेढ्रं तथैव च ॥२६॥
बुद्धीन्द्रियाणि चैतानि तथा कर्मेन्द्रियाणि च । संभूतानीह युगपन्मनसा सह पार्थिव ॥२७॥

तथा कल्याणकारी ब्रह्मा ने पहिले पचभूतों की सृष्टि करके साकार विश्व का निर्माण किया। नृपश्रेष्ठ ! उसकी उत्पत्ति मैं आदि से बतलाऊँगा ॥१२-१४॥ हिरण्यगर्भ भगवान् अणिमा, लघिमा तथा प्राप्ति रूप हैं। वे प्रभु, ज्योति तथा अव्यय हैं। उनके सब ओर हाथ, पैर, नेत्र, शिर, मुख तथा कर्ण हैं। वे सबको आवृत कर स्थित हैं। योगों मे वे महान् कहे गये हैं। विरिञ्चि भी उनका नाम है। साख्यशास्त्र मे वे बहुत नामों से पुकारे गये हैं। वे विचित्ररूप विश्वात्मा तथा एकाक्षर (ओं) है ॥१५-१७½॥ जिसलिये उन्होंने अनेक रूपों से एकात्मरूप त्रैलोक्य का धारण किया इसलिये वे विश्वरूप कहलाये ॥१८½॥ वे विकारयुक्त होकर आत्मा से आत्मा का सर्जन करते हैं। उनके सयोग से प्रधान उत्पन्न हुआ। तब महातेजस्वी तथा प्रजापति द्वारा नमस्कृत अहंकार उत्पन्न हुआ। वे अव्यक्त से व्यक्त हुए। इसका नाम विद्यासृष्टि है। महान्, अहकार तथा अविद्यासृष्टि को भी उन्होंने पूरा किया। एक हिरण्यगर्भ से अचर और चर दोनों उत्पन्न हुए। वेद और शास्त्र के चिन्तकों ने विद्यासृष्टि तथा अविद्यासृष्टि दोनों नाम बताये हैं ॥१९-२२॥ राजन् ! भूतसृष्टि को अहकार से तृतीय समझिये। अहंकारों मे चौथा वैकृत-सृष्टि है ॥२३॥ वायु अग्नि, आकाश, जल, पृथिवी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—ये दसों एक ही काल में उत्पन्न हुए। राजेन्द्र ! पञ्चम भौतिकसृष्टि को समझिये ॥२४-२५॥ कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका—ये ज्ञानेन्द्रियाँ और वाणी, हाथ, पैर, गुदा, लिंग—ये कर्मेन्द्रियाँ मन के साथ एक ही काल में उत्पन्न

१क स्मृत । २ग विरञ्च इति । ३ख ०यायतन सृ० । ४ख ०तेजा जातस्तत्र प्रजापति.। क०। ५ग. ०तिमहत्कृत०। ६क. ग. ०क्ताव्यक्तमा०। ७ख ०थैव च। वि०।

एषा तत्त्वचतुर्विंशा 'सर्वाऽऽकृतिः[1] प्रवर्तते। यां ज्ञात्वा नाभिशोचन्ति ब्राह्मणास्तत्त्वदर्शिनः ॥२८॥
एवमेतत्समुत्पन्नं त्रैलोक्यमिदमुत्तमम्। वेदितव्यं नरश्रेष्ठ सदैव [2]नरकार्णवे ॥२९॥
सयक्षभूतगन्धर्वे सकिंनरमहोरगे। सचारणपिशाचे वै सदेवर्षिनिशाचरे ॥३०॥
सदंशकीटमशके सपूतिकृमिमूषके। शुनि [3]श्वपाके चैणेये [4]सचाण्डाले सपुल्कसे ॥३१॥
हस्त्यश्वखरशार्दूले सवृके गवि चैव ह[5]। या च मूर्तिश्च यत्किंचित्सर्वत्रैतन्निदर्शनम् ॥३२॥
जले भुवि तथाऽऽकाशे नान्यत्रेति विनिश्चयः। स्थानं देहवतामासीदित्येवमनुशुश्रुम ॥३३॥
[6]कृत्स्नमेतावतस्तात क्षरते [7]व्यक्तसंज्ञकः। अहन्यहनि भूतात्मा[8] यच्चाक्षर इति स्मृतम्[9] ॥३४॥
ततस्तत्क्षरमित्युक्तं क्षरतीदं यथा जगत्। जगन्मोहात्मकं चाऽऽहुरव्यक्ताद्व्यक्तसंज्ञकम्[10] ॥३५॥
[11]महांश्चैवाक्षरो नित्यमेतत्क्षरविवर्जनम्[12]। कथितं ते महाराज यस्मान्नाऽऽवर्तते पुनः ॥३६॥
[13]पञ्चविंशतिकोऽमूर्तः [14]स नित्यस्तत्त्वसंज्ञकः। सत्त्वसंश्रयणात्तत्त्वं सत्त्वमाहुर्मनीषिणः ॥३७॥
यदमूर्तिः सृजद्व्यक्तं तन्मूर्तिमधितिष्ठति। [15]चतुर्विंशतिमो व्यक्तो ह्यमूर्तिः पञ्चविंशकः ॥३८॥
स एव हृदि सर्वासु मूर्तिष्वातिष्ठताऽऽत्मवान्[16]। चेतयंश्चेतनो नित्यं सर्वमूर्तिरमूर्तिमान् ॥३९॥
सर्गप्रलयधर्मेण स सर्गप्रलयात्मकः। गोचरे वर्तते नित्य निर्गुणो गुणसंज्ञितः ॥४०॥
[17]एवमेष महात्मा च सर्गप्रलयकोटिशः। विकुर्वाणः प्रकृतिमान्नाभिमन्येत बुद्धिमान् ॥४१॥

हुई ॥२६-२७॥ ये चौबीस प्रकार के तत्त्व हैं, जिन्हे जानकर तत्त्वदर्शी ब्राह्मण सोच नही करते हैं। नरश्रेष्ठ ! इस प्रकार ये उत्तम तीनों लोक उत्पन्न हुए, जिनकी स्थिति नरक, समुद्र, यक्ष, भूत, गन्धर्व, किन्नर, महासर्प, चारण, पिशाच, देवर्षि, राक्षस, दंश (डाँस), कीट, मशक, कृमि, मूषक, कुत्ते, श्वपाक, कृष्णमृगचर्म, चाण्डाल, पुल्कस, हाथी, घोड़े, गधे, बाघ, भेड़िये तथा गाय आदि मे है। शरीरधारियो की स्थिति जल, पृथ्वी तथा आकाश मे है अन्यत्र नही—ऐसा निश्चयपूर्वक हमने सुना है। जिसलिए यह जगत् विनष्ट होता है इसलिये इसका नाम क्षर पड़ा। संसार को मोहात्मक बतलाया गया है। अव्यक्त से नि सृत होकर इसने व्यक्त संज्ञा धारण की ॥२८-३५॥ महाराज ! यह तो मैं कह ही चुका हूँ कि अक्षर महान्, नित्य तथा क्षररहित है। इसको प्राप्त कर जीव फिर लौटता नही है ॥३६॥ यह पचीसवाँ निराकार तथा नित्य तत्त्व है। मनीषियो ने सत्त्व के संश्रयण से तत्त्व को सत्त्व कहा है ॥३७॥ निराकार जिस व्यक्त की सृष्टि करता है, वह व्यक्त साकार होता है। वह चौबीसवाँ तत्त्व है और अव्यक्त पचीसवाँ तत्त्व है ॥३८॥ वही आत्मवान्, चेतन, नित्य, सर्वमूर्ति तथा अव्यक्त सब हृदयों मे वास करता है। वह सृष्टि तथा प्रलयरूप है। वह गोचर मे सदा विद्यमान रहता है और वह निर्गुण तथा सगुण भी है ३९-४० प्रकृतिमान् वह महात्मा करोडो सृष्टि-प्रलयों को करते हुए भी अभिमान नहीं करता ॥४१॥

१क ०र्वा प्रवृत्तिर्वर्तं। २ग ०कृतिपु व०। ३ख ०र्णवात्। स०। ४क ०के कृपणे पशुचा०। ५ख ०ण्डालपु०। ६क ह। यच्च मूर्तं च य०। ७क सज्ञितम्। अ०। ८ख ०त्मा तदक्षरमिति। ९ग ०म्। एतदक्षर०। १० ०क्ताव्यक्त०। ११क ग ०वाग्रजो नि०। १२ख ग ०रनिदर्शन०। १३ख ०विमो मू०। १४ग. विष्णो। १५क. ०तिको व्य०। १६ख. ०न्। अचेताश्चे०। १७क एष एव म०।

तम सत्त्वरजोयुक्तस्तासु तास्विह योनिषु। [१]लीयते प्रतिबुद्धत्वादबुद्धजनसेवनात् ॥४२॥
सहवासनिवासत्वाद्बालोऽहमिति मन्यते। योऽहं न सोऽहमित्युक्तो गुणानेवानुवर्तते ॥४३॥
तमसा तामसान्भावान्विविधान्प्रतिपद्यते। रजसा राजसांश्चैव सात्त्विकान्सत्त्वसंश्रयात् ॥४४॥
शुक्ललोहितकृष्णानि रूपाण्येतानि त्रीणि तु। सर्वाण्येतानि रूपाणि जानीहि [२]प्राकृतानि तु ॥४५॥
तामसा निरयं यान्ति राजसा मानुषानथ। सात्त्विका देवलोकाय गच्छन्ति सुखभागिनः ॥४६॥
निष्केवलेन पापेन तिर्यग्योनिमवाप्नुयात्। पुण्यपापेषु मानुष्यं पुण्यमात्रेण देवता ॥४७॥
[३]एवमव्यक्तविषयं मोक्षमाहुर्मनीषिणः। पञ्चविंशतिमो योऽयं ज्ञानादेव प्रवर्तते ॥४८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसंवादे क्षराक्षरविचारनिरूपणं
नाम एकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४१॥

अथ द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वशिष्ठकरालजनकसंवादवर्णनम्

वसिष्ठ उवाच

[४]एवमप्रतिबुद्धत्वादबुद्धमनुवर्तते। देहाद्देहसहस्राणि तथा च न स भिद्यते ॥१॥

अज्ञानी एवं अविद्वान् की सेवा करने से जीव, तम, सत्त्व तथा रज से युक्त होकर तत्तत् योनि में लीन होता है॥४२॥ तत्तत् योनि में उत्पन्न व्यक्तियों के सहवास से जीव अपने को कहता है— मैं बालक हूँ, जो मैं था वह अब नहीं हूँ।' इस प्रकार वह गुणों का ही अनुसरण करता है॥४३॥ तमोगुण से जीव तामस भावों को प्राप्त करता है रजोगुण से राजस भावों को और सत्त्व के संश्रयण से सात्त्विक भावों को प्राप्त करता है॥४४॥ शुक्ल, लोहित, कृष्ण— इन तीन रूपों को तथा समस्त रूपों को प्रकृति से उत्पन्न समझिये॥४५॥ तामस भाव वाले नरक जाते हैं राजस भाव वाले मनुष्य-योनि में जाते हैं और सात्त्विक भाव वाले सुखभागी जीव देवलोक को जाते हैं॥४६॥ केवल पाप रहने से जीव तिर्यग्योनि में जाता है, पुण्य-पाप दोनों रहने से मनुष्य-योनि में जाता है और केवल पुण्य रहने से देवयोनि में जाता है। इस प्रकार विद्वान् लोग अव्यक्त के विषय को मोक्ष कहते हैं जो पचीसवाँ तत्त्व है और ज्ञान से ही प्राप्त होता है॥४७-४८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वसिष्ठ तथा करालजनक के संवाद में क्षर-अक्षर विचार निरूपण
नामक दो सौ इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त॥२४१॥

अध्याय २४२

वसिष्ठ और करालजनक का संवाद-वर्णन

वसिष्ठ बोले—इस प्रकार जीव अज्ञानता से मूढयोनि में ही जाता है। सहस्रों शरीर उसे मिलते हैं

१ग. ०स्वातन्नाह०। स. ०स्वाभान्योऽह०। २ग. प्रकृतानि। ३ग. ०मक्षरमा०।
४ख. ०त्वादबुद्धिरेव प्रव०।

तिर्यग्योनिसहस्रेषु कदाचिद्देवतास्वपि । उत्पद्यति तपोयोगाद्गुणैः सह गुणक्षयात् ॥२॥
मनुष्यत्वाद्दिवं याति देवो मानुष्यमेति च । मानुष्यान्निरयस्थानमालयं प्रतिपद्यते ॥३॥
कोषकारो यथाऽऽत्मानं कीटः समभिरुन्धति । सूत्रतन्तुगुणैर्नित्यं तथाऽयमगुणो गुणैः ॥४॥
द्वंद्वमेति च निर्द्वंद्वस्तासु तास्विह योनिषु । शीर्षरोगेऽक्षिरोगे च दन्तशूले गलग्रहे ॥५॥
जलोदरेऽतिसारे च गण्डमालाविचर्चिके । श्विनकुष्ठेऽग्निदग्धे च सिध्मापस्मारयोरपि ॥६॥
यानि चान्यानि द्वद्वानि प्राकृतानि शरीरिणाम् । उत्पद्यन्ते विचित्राणि तान्येवाऽऽत्माऽभिमन्यते ॥७॥
अभिमानातिमानाना तथैव सुकृतान्यपि । एकवासाश्चतुर्वासा शायी नित्यमधस्तया ॥८॥
मण्डूकशायी च तथा वीरासनगतस्तथा । वीरमासनमाकाशे तथा शयनमेव च ॥९॥
इष्टकाप्रस्तरे चैव चक्रकप्रस्तरे तथा । भस्मप्रस्तरशायी च भूमिशय्यानुलेपनः ॥१०॥
वीरस्थानाम्बुपाके च शयनं फलकेषु च । विविधासु च शय्यासु फलगृहान्वितासु च ॥११॥
उद्याने खललग्ने तु क्षौमकृष्णाजिनान्वितः । मणिवालपरीधानो व्याघ्रचर्मपरिच्छदः ॥१२॥
सिंहचर्मपरीधानः पट्टवासास्तथैव च । फलक(?) परिधानश्च तथा कटकवस्त्रधृक् ॥१३॥
कटंकवसनश्चैव चीरवासास्तथैव च । वस्त्राणि चान्यानि बहून्यभिमत्य च बुद्धिमान् ॥१४॥
भोजनानि विचित्राणि रत्नानि विविधानि च । एकरात्रान्तराशित्वमेककालिकभोजनम् ॥१५॥

पर वह भिन्न नहीं होता है ॥१॥ हजारों नीच योनियों में और कदाचित् देवयोनि में भी वह तपोबल से गुणों के साथ उत्पन्न होता है ॥२॥ गुणों की वृद्धि तथा क्षय से जीव मनुष्यत्व से देवत्व को और देवत्व से मनुष्यत्व को प्राप्त करता है। और मनुष्यत्व से प्रलयकाल तक नरक को भी प्राप्त करता है ॥३॥ जैसे मकरा सूत्र-तन्तु रूप गुणों से अपने को अवरुद्ध कर लेता है वैसे यह निर्गुण जीव गुणों से अपने को फँसा लेता है ॥४॥ यह निर्द्वन्द्व होते हुए भी तत्तत्योनियों में द्वन्द्व को प्राप्त करता है। शिरोरोग, नेत्ररोग, दन्तपीडा, गलव्याधि, जलोदर, अतिसार, कण्ठमाला, चेचक, श्वेतकुष्ठ, ताप, खुजली, मिरगी और जो दूसरे प्राकृत द्वन्द्व हैं, वे शरीरों में उत्पन्न होते हैं, परन्तु जीव उन्हें अपना मान बैठता है ॥५-७॥ जीव द्वन्द्वों की तरह पुण्यों को भी मानता है। मनुष्य सिद्धि की आकांक्षा से विविध कष्टों को भोगता है। वह एक वस्त्र तथा चार वस्त्र को धारण करता है, मेढक की तरह सोता है, वीरासन लगाता है, आकाश में वीरासन लगाकर शयन भी करता है। ईंट व आकार के पत्थर, मडलाकार पत्थर तथा भस्मामूत पत्थर पर सोता है, भूमि शय्या पर अवस्थित होकर लेप लगाता है। वीरों के स्थान में जल पीता है पाक बनाता है और तख्तों पर तथा फलों व गुच्छों से युक्त अनेक प्रकार की शय्याओं पर सोता है। खलिहान से लगे हुए उद्यान में रेशमी वस्त्र तथा कृष्ण मृगचर्म से युक्त होकर मणि तथा पूंछ के बाल धारण करता है। व्याघ्रचर्म, सिंहचर्म, पट्टवस्त्र, फलक (?), स्वर्ण-वस्त्र धारण करता है ॥८-१३॥ (कभी) एकमात्र स्वर्णवस्त्र तो कभी खद्दवस्त्र धारण करता है। कभी अन्य प्रकार के बहुत से वस्त्रों को पहनता है, अनेक प्रकार के भोजन करता है, विविध रत्नों को धारण

१क ०हयुगक्ष०। २ग ०मानुष्य प्र०। ३ख ०भिगच्छति। अ०। ४ख ०श्च दुर्वा०। ५क ०द बुद्धस्य प्र०। ६ग. ०त। छाविवान प०। ७ख० पटवा०। ८ख. तथोदकसुव०।

[1]चतुर्थाष्टमकाल[illegible]च[illegible]षष्ठकालिकमेव [illegible] च । षड्रात्रभोजनश्चैव तथा चाष्टाहभोजन ॥१६॥
मासोपवासो मूलाशी फलाहारस्तथैव च । वायुभक्षश्च[2] पिण्याकदधिगोमयभोजन ॥१७॥
गोमूत्रभोजनश्चैव काशपुष्पाशनस्तथा । शैवालभोजनश्चैव तथा चान्येन वर्तयन् ॥१८॥
वर्तयञ्शीर्णपर्णैश्च प्रकीर्णफलभोजन । विविधानि च कृच्छ्राणि सेवते सिद्धिकाङक्षया ॥१९॥
चान्द्रायणानि विधिवल्लिङ्गानि विविधानि च । [3]चातुराश्रम्ययुक्तानि धर्माधर्माश्रियाण्यपि ॥२०॥
उपाश्रयानप्यपरान्पाखण्डान्विविधानपि । विविक्ताश्च शिलाछायास्तथा प्रस्रवणानि च ॥२१॥
पुलिनानि विविक्तानि विविधानि वनानि च । काननेषु विविक्ताश्च शैलाना महतीर्गुहा ॥२२॥
नियमान्विविधाश्चापि विविधानि तपासि च । यज्ञाश्च विविधाकारान्विद्याश्च विविधास्तथा ॥२३॥
वणिक्पथ द्विजक्षत्रवैश्यशूद्रास्तथैव च । दान च विविधाकार दीनान्धकृपणादिषु ॥२४॥
[4]अभिमन्येत सधातु तथैव विविधान्गुणान् । सत्त्व रजस्तमश्चैव धर्मार्थौ काम एव च[5] ॥२५॥
प्रकृत्याऽऽत्मानमेवाऽऽत्मा एव प्रविभजत्युत[6] । स्वाहाकारवषट्कारौ स्वधाकारनमस्क्रिये ॥२६॥
यजनाध्ययने दान तथैवाऽऽहु प्रतिग्रहम् । याजनाध्यापने चैव तथाऽन्यदपि किंचन ॥२७॥
जन्ममृत्युविधानेन तथा विशसनन च । शुभाशुभमय सर्वमेतदाहु सनातनम्[7] ॥२८॥
प्रकृति कुरुते देवी भय प्रलयमेव च । दिवसान्ते गुणानेतानतीत्यैकोऽवतिष्ठते ॥२९॥

करता है बीच मे एक रात को छोडकर भोजन करता है एक ही समय भोजन करता है चौथे आठव तथा छठ प्रहर मे भोजन करता है महीने मे छह रात भोजन करता है आठ दिन भोजन करता है महीने तक उपवास करता है कन्द-मूल फल खाता है वायुभक्षण करता है तिलकल्क दही तथा गोबर खाता है गोमूत्र तथा काशपुष्प भोजन करता है सिवार भोजन करता है ज ण होकर झडे हुए फल-पत्ते खाता है चान्द्रायण व्रत करता है विविध चिह्नो को धारण करता ह चारो आश्रम व धम अधम को करता ह, अनेक प्रकार के पाखण्डो को करता ह एकान्त स्थान मे शिला-खण्ड पर तथा छाया व नीचे विश्राम करता है पुलिनो पर विविध वनों मे काननो मे पवतो पर तथा गुफाओ मे रहता है विविध नियम तप तथा यज्ञ करता है अनेक विद्याओ को पढता है ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र जातियो मे उत्पन्न होत ह दीन अन्ध तथा कृपणो को दान देता है रज सत्त्व तथा तमोगुण को धारण करता है धम अथ और काम का साधन करता है ॥१४ २५॥ इस प्रकार आत्मा प्रकृति से आत्मा का विभाग करता है। स्वाहाकार वषटकार स्वधाकार नमस्कार, यजन, अध्ययन, दान प्रतिग्रह याजन अध्यापन जन्म मृत्यु, शुभ अशुभ—ये सब आत्मा ही है ॥२६ २८॥ प्रकृतिदेवी भय और प्रलय करती है। दिवसान्त (प्रलय) म इन गुणो का अतिक्रमण करके एक आत्मा ही अवस्थित रहता है। जैस सूय रश्मिजाल को समेट लेता है, वैसे आत्मा काल का नियमन करता ह। इस प्रकार सम्पूण जगत् आत्मा की क्रीडा के लिये माना जाता है। आत्मा विविध गुणो को धारण करक सृष्टि तथा प्रलय करता है। कर्म के माग पर आरूढ होकर त्रिगुणात्मक तथा त्रिगुणाधिप आत्मा कर्म एवम्

१ख ०कालश्च ष० । २ख ०भक्षोऽम्बुपि० । ३क ०नि वणधर्माश्र० । ४क ०मन्य तु स० । घ ०मन्यवस० । ५क च । स कृत्वाऽऽत्मा० । ६क ख ०जत्युन । स्वा० । ७ख ग त्रियापथम् ।

रश्मिजालमिवाऽऽदित्यस्तत्कालं संनियच्छति। एवमेवेंप तत्सर्वं क्रीडार्थमभिमन्यते ॥३०॥
आत्मरूपगुणानेतान्विविधान्हृदयप्रियान् । एवमेतां प्रकुर्वाणः सर्गप्रलयधर्मिणीम् ॥३१॥
क्रियां क्रियापथे रक्तस्त्रिगुणस्त्रिगुणाधिपः। क्रियाक्रियापथोपेतस्तथा तदिति मन्यते ॥३२॥
प्रकृत्या सर्वमेवेदं जगदन्धीकृतं विभो। रजसा तमसा चैव व्याप्तं सर्वमनेकधा ॥३३॥
एवं द्वंद्वान्यतीतानि मम वर्तन्ति नित्यशः। मत्त एतानि जायन्ते प्रलये यान्ति मामपि ॥३४॥
निस्तर्तव्याण्यथैतानि सर्वाणीति नराधिप। मन्यते पक्षबुद्धित्वात्तथैव सुकृतान्यपि ॥३५॥
भोक्तव्यानि ममैतानि देवलोकगतेन वै। इहैव चैनं भोक्ष्यामि[1] शुभाशुभफलोदयम् ॥३६॥
सुखमेवं तु कर्तव्यं सकृत्कृत्वा सुखं मम। यावदेव तु मे सौख्यं जात्यां जात्यां भविष्यति ॥३७॥
भविष्यति न मे दुःखं कृतेनेहाप्यनन्तकम्। [2]सुखदुःखं हि मानुष्यं निरये चापि मज्जनम् ॥३८॥
निरयाच्चापि मानुष्यं कालेनैष्याम्यहं पुनः। मनुष्यत्वाच्च देवत्वं देवत्वात्पौरुषं पुनः ॥३९॥
मनुष्यत्वाच्च [3]निरयं [4]पर्यायेणोपगच्छति। एष एवं द्विजातीनामात्मा वै स गुणैर्वृतः ॥४०॥
तेन देवमनुष्येषु निरयं चोपपद्यते। ममत्वेनाऽऽवृतो नित्यं तत्रैव परिवर्तते ॥४१॥
सर्गकोटिसहस्राणि मरणान्तासु मूर्तिषु। य एवं कुरुते कर्म शुभाशुभफलात्मकम् ॥४२॥
स एव फलमाप्नोति त्रिषु लोकेषु मूर्तिमान्। प्रकृतिः कुरुते कर्म शुभाशुभफलात्मकम् ॥४३॥
प्रकृतिश्च तथाऽऽप्नोति त्रिषु लोकेषु कामगा। तिर्यग्योनिमनुष्यत्वे देवलोके तथैव च ॥४४॥

कर्ममार्ग से युक्त होकर कर्म करता है ॥२९-३२॥ परमात्मा की प्रकृति ने सम्पूर्ण जगत् को अन्धा बना दिया है। रजोगुण तथा तमोगुण से सब कुछ व्याप्त है ॥३३॥ इस प्रकार जीव के द्वन्द्व नित्य वर्तमान रहते हैं। जीव से ही इनकी उत्पत्ति होती है और प्रलय में ये जीव को ही प्राप्त होते है ॥३४॥ राजन्! ये समस्त द्वन्द्व दुष्पार हैं। उसी तरह पुण्यों को भी समझिये। देवलोक जाने पर भी इनका भोग करना पड़ता है। शुभ और अशुभ कर्मों का फल—सुख और दुःख—तब तक भोगना पडता है, जब तक जन्म-मरण होते रहते हैं। जीव को सुख, दुःख, मनुष्यता तथा नरक-भोग भी प्राप्त होता है। समय पाकर जीव पुनः नरक से मनुष्य-योनि मे भी आता है। वह मनुष्यत्व से देवत्व को, देवत्व से मनुष्यत्व को और मनुष्यत्व से नरक को भी कालक्रम से प्राप्त करता है। इस प्रकार द्विजातियो का आत्मा गुणों से आवृत है ॥३५-४०॥ इसलिये जीव देवयोनि मे, मनुष्योनि मे तथा नरक मे भी जाता है। ममता से युक्त होकर जीव सहस्रों करोड सृष्टियों मे सुख-दुःख भोगता रहता है ॥४१३॥ जो इस प्रकार शुभ-अशुभ कर्म करता है, वह शुभ-अशुभ फल पाता है। तीनों लोक मे जाने वाली प्रकृति शुभ-अशुभ कर्म करती है और तदनुरूप फल पाती है। तिर्यग्योनि, मनुष्ययोनि तथा देवयोनि—ये तीन स्थान प्रकृति के माने जाते हैं।

१क. °मि पापपुण्यफ°। २ग. दुःखे हि। ३क.नरकं। ४ग.°ति। य एव वेत्ति नित्यं वै निरारमाऽऽत्मगु°।

त्रीणि स्थानानि चैतानि जानीयात्प्राकृतानि ह। अलिङ्गप्रकृतित्वाच्च लिङ्गैरप्यनुमीयते ॥४५॥
तथैव पौरुषं लिङ्गमनुमानाद्धि मन्यते। स लिङ्गान्तरमासाद्य प्राकृतं लिङ्गमव्रणम् ॥४६॥
व्रणद्वाराण्यधिष्ठाय कर्माण्यात्मनि मन्यते। श्रोत्रादीनि तु सर्वाणि पञ्च कर्मेन्द्रियाण्यथ ॥४७॥
रागादीनि प्रवर्तन्ते गुणेष्विह गुणैः सह। अहमेतानि वै कुर्वन्ममैतानीन्द्रियाणि ह ॥४८॥
निरिन्द्रियो हि मन्येत व्रणवानस्मि निर्व्रणः। अलिङ्गो लिङ्गमात्मानमकालं कालमात्मनः ॥४९॥
असत्त्वं सत्त्वमात्मानममृतं मृतमात्मनः। अमृत्युं मृत्युमात्मानमचरं चरमात्मनः ॥५०॥
अक्षेत्रं क्षेत्रमात्मानमसङ्गं सङ्गमात्मनः। अतत्त्वं तत्त्वमात्मानमभवं भवमात्मनः ॥५१॥
अक्षरं क्षरमात्मानमबुद्धत्वाद्धि मन्यते। एवमप्रतिबुद्धत्वादबुद्धजनसेवनात् ॥५२॥
सर्गकोटिसहस्राणि पतनान्तानि गच्छति। जन्मान्तरसहस्राणि मरणान्तानि गच्छति ॥५३॥
तिर्यग्योनिमनुष्यत्वे देवलोके तथैव च। चन्द्रमा इव कोशानां पुनस्तत्र सहस्रशः ॥५४॥
नीयतेऽप्रतिबुद्धत्वादेवमेव कुबुद्धिमान्। कला पञ्चदशी योनिस्तद्धाम इति पठ्यते ॥५५॥
नित्यमेव विजानीहि सोम वै षोडशांशकैः। "कलया जायतेऽजस्रं पुनः पुनरबुद्धिमान्" ॥५६॥
धीमांश्चायं न भवति नृप एवं हि जायते। षोडशी तु कला सूक्ष्मा स सोम उपधार्यताम् ॥५७॥

जीव अलिंगप्रकृतिक होते हुए भी लिंगों द्वारा समझा जाता है ॥४२-४५॥ उसी तरह पौरुषलिंग अनुमान से माना जाता है। वह अक्षर प्राकृत लिंग को प्राप्त कर व्रणद्वार को अधिष्ठित करके अपने में कर्मों को मानता है ॥४६½॥ श्रोत्र आदि ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ तथा रागआदि, गुणों में गुणों के साथ विद्यमान रहते हैं। जीव इन्द्रिय-रहित होते हुए भी अज्ञानता से समझ बैठता है कि मैं यह कार्य करता हूँ और मेरी ये इन्द्रियाँ हैं ॥४७-४८॥ वह अलिंग (अरूप) को लिंग, असत्व को सत्व अमृत को मृत, अमृत्यु को मृत्यु, अचर को चर, अक्षेत्र को क्षेत्र, असग को सग, अतत्व को तत्त्व अभव को भव और अक्षर को क्षर मान लेता है ॥४९-५१½॥ इस प्रकार अविद्वानों की सेवा से सहस्रकोटि सृष्टि पर्यन्त जीव का अध पतन होता रहता है। सहस्रो बार उसके जन्म-मरण होते हैं ॥५२-५३½॥ तिर्यग्योनि, मनुष्ययोनि तथा देवयोनि में भी वह जाता है। जैसे चन्द्रमा कोशों (लोकों में ?) जाता है वैसे मूर्ख मनुष्य अबोध के कारण तत्तत् योनियों म जाता है ॥५४½॥ चन्द्रमा की पन्द्रहवीं कला योनि कहलाती है। उसका नाम धाम भी है। सोलह अंशों से युक्त चन्द्रमा को नित्य ही समझिये। अबुद्धिमान् मनुष्य बार-बार कला से उत्पन्न होता है। नृप! वह ऐसे ही उत्पन्न होता रहता है, पर बुद्धिमान् नहीं होता। सोलहवीं कला सूक्ष्म है। उसे चन्द्रमा समझिये ॥५५-५७॥

१ख ०म्। प्राणाद्द्वारा०। २क ग कर्मणात्म०। ३ग ०ति। धाम्ना धामस०। ४ख. लोकानां। ५ग कला। ६ख ग इव। ७घ पचते। ८ख ग ०मेवद्विजा०। ९घ ०दृशात्मकम्। क०। ग. ०र्शी कलाम्। ग०। १०क कला पञ्चदशी तेजस्वे पुनरच कुबु०। ११ग.०न्। धाम तस्योपयुञ्जन्ति भूय एव तु जा०।

न तूपयुज्यते देवैर्देवानपि युनक्ति सः। ममत्वं क्षपयित्वा तु जायते नृपसत्तम ॥५८॥
प्रकृतेस्त्रिगुणायास्तु स एव त्रिगुणो² भवेत् ॥५९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसंवादे
द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वसिष्ठं प्रति मोक्षधर्मविषयको जनकप्रश्नः

जनक उवाच

अक्षरक्षरयोरेव द्वयोः संबन्ध इष्यते। ³स्त्रीपुंसयोर्वा सम्बन्धः स वै पुरुष उच्यते ॥१॥
ऋते तु पुरुषं नेह स्त्री गर्भान्धारयत्युत। ऋते स्त्रियं न पुरुषो रूपं निर्वर्तते तथा ॥२॥
अन्योन्यस्याभिसंबन्धादन्योन्यगुणसंश्रयात्। रूपं निर्वर्तयेदेतदेवं सर्वासु योनिषु⁴ ॥३॥
रत्यर्थमतिसंयोगादन्योन्यगुणसंश्रयात्। ऋतौ निर्वर्तते रूपं तद्वक्ष्यामि निदर्शनम् ॥४॥
ये गुणाः पुरुषस्येह ये च मातुर्गुणास्तथा। अस्थि स्नायु च मज्जा च⁵ जानीमः पितृतो द्विज ॥५॥

सोम देवताओं से उपयुक्त नहीं होते, पर वे देवताओं को उपयुक्त करते हैं। वे ममत्व का नाश करके उत्पन्न होते हैं। वे त्रिगुणात्मिका प्रकृति के तीनों गुण हैं॥५८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वसिष्ठ और करालजनक के संवाद-प्रकरण में
दो सौ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त॥२४२॥

अध्याय २४३

मोक्षधर्म के सम्बन्ध में वसिष्ठ से जनक का प्रश्न

जनक बोले—अक्षर और क्षर (पुरुष और प्रकृति) दोनों का सम्बन्ध होता है। स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध पुरुष कहलाता है॥१॥ पुरुष के बिना स्त्री गर्भ-धारण नहीं करती है और स्त्री के बिना पुरुष रूप धारण नहीं करता है॥२॥ परस्पर के सम्बन्ध तथा गुणों के आदान प्रदान से समस्त योनियों में रूप की निष्पत्ति होती है॥३॥ रतिकालिक अत्यन्त संयोग से तथा परस्पर गुणाधान से ऋतुमयी होने के पश्चात् रूप का निष्पादन किया जाता है। यह मैं उदाहरण के लिये बतलाऊँगा॥४॥ कुछ गुण पुरुष के होते हैं और कुछ माता के।

१क न मुयश्चेय्य० २ग द्विगुणो। ३ योर्मेगवन्सवन्धस्तु तदुच्य०। ४क ०प प्रतिनिवर्तते। अ०। ५ख. ०दु। गत्यर्थानिविष०। ६क च यावित न पि०।

त्वङ्मांसशोणितं चेति मातृजान्यनुशुश्रुम। एवमेतद्‌द्विजश्रेष्ठ वेदशास्त्रेषु पठ्यते॥६॥
प्रमाणं यच्च वेदोक्तं शास्त्रोक्तं यच्च पठ्यते। वेदशास्त्रप्रमाणं च प्रमाणं तत्सनातनम्॥७॥
एवमेवाभिसम्बन्धौ नित्यं प्रकृतिपुरुषौ। यच्चापि भगवंस्तस्मान्मोक्षधर्मो[1] न विद्यते॥८॥
[2]अथवाऽनन्तरकृतं किंचिदेव निदर्शनम्। तन्ममाऽऽचक्ष्व तत्त्वेन प्रत्यक्षो ह्यसि सर्वदा॥९॥
मोक्षकामा वयं चापि काङ्क्षामो यदनामयम्। अजेयमजरं नित्यमतीन्द्रियमनीश्वरम्॥१०॥

वसिष्ठ उवाच

यदेतदुक्तं भवता वेदशास्त्रनिदर्शनम्। एवमेतद्यथा[3] वक्ष्ये तत्त्वग्राही यथा भवान्॥११॥
धार्यते हि त्वया ग्रन्थ उभयोर्वेदशास्त्रयोः। न च ग्रन्थस्य तत्त्वज्ञो यथातत्त्व नरेश्वर॥१२॥
यो हि वेदे च शास्त्रे च ग्रन्थधारणतत्परः। न च ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञस्तस्य तद्धारणं वृथा॥१३॥
भारं स वहते तस्य ग्रन्थस्यार्थं न वेत्ति यः। यस्तु ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञो नास्य ग्रन्थागमो वृथा॥१४॥
ग्रन्थस्यार्थं स पृष्टस्तु मादृशो वक्तुमर्हति। यथातत्त्वाभिगमनादर्थं तस्य स विन्दति॥१५॥
न यः समुत्सुकः कश्चिद्‌ग्रन्थार्थं स्थूलबुद्धिमान्। स कथं मन्दविज्ञानो ग्रन्थं वक्ष्यति निर्णयात्॥१६॥
अज्ञात्वा ग्रन्थतत्त्वानि वादं यः कुरुते नरः। लोभाद्वाऽप्यथवा दम्भात्स पापी नरकं व्रजेत्॥१७॥

द्विज! अस्थि, स्नायु तथा मज्जा—ये पिता से प्राप्त होते हैं और त्वचा, मांस तथा शोणित—ये माता से प्राप्त होते हैं। वेद-शास्त्रों में ऐसा ही बतलाया गया है॥५-६॥ वेदों और शास्त्रों में जो प्रमाण पठित है तथा वेद-शास्त्रों का जो प्रमाण है, वह सनातन प्रमाण है॥७॥ प्रकृति-पुरुष का ऐसा ही नित्य सम्बन्ध है। भगवन्! उससे बढ़कर कोई मोक्षधर्म नहीं है। अथवा इसके बाद कोई उदाहरण हो तो वह मुझे बतलाइए। आपने तत्त्व का प्रत्यक्ष किया है॥८-९॥ मैं भी मोक्ष का इच्छुक हूँ। अनामय, अजेय, अजर, नित्य, अतीन्द्रिय तथा ईश्वर से भी परे ब्रह्म को प्राप्त करना चाहता हूँ॥१०॥

वसिष्ठ बोले—आपने वेद-शास्त्रों का उदाहरण देकर कहा है। आप तत्त्वग्राही हैं। मैं उसी प्रकार बतलाऊँगा जैसा आप चाहते हैं।॥११॥ राजन्! आप वेद-शास्त्रों के ग्रन्थों को धारण करते हैं, पर उनके यथार्थ तत्त्व को नहीं जानते हैं॥१२॥ जो व्यक्ति वेद-शास्त्रों के ग्रन्थ-धारण में निरत रहता है, वह ग्रन्थों के तत्त्व को नहीं जानता है, उसका ग्रन्थ-धारण करना व्यर्थ है॥१३॥ जो ग्रन्थ के अर्थ को नहीं जानता है, वह केवल भारवाही है। जो ग्रन्थ के तत्त्व को जानता है, उसका ग्रन्थ-धारण व्यर्थ नहीं है॥१४॥ उससे ग्रन्थ का अर्थ पूछने पर वह मेरी तरह बता सकता है। क्योंकि वह तत्त्व को समझने के कारण उसके अर्थ को प्राप्त कर लेता है॥१५॥ जो स्थूलबुद्धि वाला व्यक्ति ग्रन्थ के अर्थ को जानने के लिये उत्सुक नहीं रहता है, वह अल्पज्ञ जन निर्णयपूर्वक ग्रन्थ को कैसे बतलाएगा॥१६॥ ग्रन्थ के तत्त्व को न जानकर जो व्यक्ति लोभ से अथवा दम्भ से विवाद करता है, वह पापी

१ग ०धर्मात्रि वि०। २क अन्यद्वाऽ न०। ३क ०था तद्धै जन्म गृह्णाति चेतनः। घा० । ग. ०था तद्वै तत्त्व गृह्णाद्यथा। क द्वयर्थं।

निर्णयं चापि च्छिद्रात्मा न तद्वक्ष्यति तत्त्वतः । सोऽपीहास्यार्थतत्त्वज्ञो यस्मान्नैवाऽऽत्मवानपि ॥१८॥
तस्मात्त्वं शृणु राजेन्द्र यथैतदनुदृश्यते[2]। यथा तत्त्वेन साङ्ख्येषु योगेषु च महात्मसु ॥१९॥
यदेव योगाः पश्यन्ति साङ्ख्यैः तदनुगम्यते। एकं साङ्ख्यं च योगं च यः पश्यति स बुद्धिमान् ॥२०॥
त्वङ्मांसं रुधिरं मेदः पित्तं मज्जाऽस्थि स्नायु च। एतदैन्द्रियकं तात यद्भवानित्यमात्थ माम् ॥२१॥
द्रव्याद्द्रव्यस्य निर्वृत्तिरिन्द्रियादिन्द्रियं तथा। देहाद्देहमवाप्नोति बीजाद्बीजं तथैव च ॥२२॥
निरिन्द्रियस्य बीजस्य निर्द्रव्यस्यापि देहिनः । कथं गुणा भविष्यन्ति निर्गुणत्वान्महात्मनः ॥२३॥
गुणा गुणेषु जायन्ते तत्रैव विरमन्ति च। एवं गुणाः प्रकृतिजा जायन्ते[3] न च यान्ति च ॥२४॥
त्वङ्मांसं रुधिरं मेदः पित्तं मज्जाऽस्थि स्नायु च। अष्टौ तान्यथ शुक्रेण जानीहि[4] प्राकृतं वै ॥२५॥
पुमांश्चैवापुमांश्चैव स्त्रीलिङ्गं प्राकृतं स्मृतम्[5]। वायुरेव पुमांश्चैव रसः[6] इत्यभिधीयते ॥२६॥
अलिङ्गा प्रकृतिर्लिङ्गैरुपलभ्यति[7] साऽऽत्मजैः। यथा पुष्पफलैर्नित्यं मूर्तं चामूर्तयस्तथा ॥२७॥
एवमप्यनुमानेन स लिङ्गमुपलभ्यते। पञ्चविंशतिकस्तात लिङ्गेषु [8]नियतात्मकः ॥२८॥
अनादिनिधनोऽनन्तः सर्वदर्शनकेवलः । [9]केवलं त्वभिमानित्वादगुणेषु गुण उच्यते ॥२९॥
गुणा गुणवतः सन्ति निर्गुणस्य [10]कुतो गुणाः । तस्मादेवं विजानन्ति ये जना गुणदर्शिनः ॥३०॥

नरक को जाता है ॥१७॥ छिद्रान्वेषी व्यक्ति तत्त्वतः निर्णय भी नहीं कर पाता है। राजन् ! आप जिसलिए तत्त्व को नहीं जानते हैं इसलिये सुनिये। सांख्य और योग में तत्त्वतः कुछ भी अंतर नहीं है। योग जो बतलाता है सांख्य भी वही बतलाता है। जो सांख्य और योग को एक समझता है वही बुद्धिमान् है ॥१८-२०॥ त्वचा मांस रक्त मेद पित्त मज्जा अस्थि तथा स्नायु—ये इन्द्रियसम्बन्धी हैं। द्रव्य से द्रव्य की इन्द्रिय से इन्द्रिय की देह से देह की और बीज से बीज की निष्पत्ति होती है। निरिन्द्रिय निर्बीज तथा निर्द्रव्य प्राणी से गुणों की उत्पत्ति कैसे होगी ॥२१-२३॥ गुण गुणों से उत्पन्न होते हैं और वहीं विराम करते हैं इस प्रकार प्रकृति से गुण उत्पन्न होते हैं किन्तु वे चले नहीं जाते हैं ॥२४॥ त्वचा मांस रक्त मेद पित्त मज्जा अस्थि स्नायु—ये आठों वीर्य से उत्पन्न होते हैं। पुल्लिंग स्त्रीलिंग तथा नपुंसक—ये तीनों प्राकृतिक हैं यह वायु पुरुष ही है और इसको रस कहते हैं ॥२५-२६॥ *प्रकृति अलिंग है। आत्मजन्य लिंगों से वह उपलब्ध होती है। जैसे पुष्पों और फलों के नित्य मूर्त रूप तथा अमूर्त* रूप की उपलब्धि होती है इसी प्रकार अनुमान से वह लिंग उपलब्ध होता है ॥२७३॥ तात ! पचीसवां तत्त्व जो आदि, अन्त तथा मरण से रहित है और समस्त दर्शनों में एक है वह लिंगों में नियतलिंग है। वह केवल अभिमान से गुणों के बीच गुण कहलाता है ॥२८-२९॥ गुणवान् में गुण होते हैं निर्गुण के गुण कहां से होंगे ? इसलिये जो व्यक्ति गुणदर्शी हैं वे ऐसा जानते हैं ॥३०॥ जब यह गुणवान् आत्मा इन प्राकृतिक गुणों का अभिमान करता है

१क ०ते। यायातथ्येन। २ग साङ्ख्यैस्तदभिकथ्यते। ३क जायन्ते। ४क ख शुभम्। ५क रेत। ६क ०लिङ्ग उप०। ७ग ०ति चात्म०। ८ग ०रमकम। थ०। ९ग ०वलम्। के०। १०क ०ल बलवानीशगुणै०। ११क ०गुणेषु कु०।

यदा त्वेष गुणानेतान्प्राकृतानभिमन्यते। तदा स 'गुणवानेव गुणभेदान्प्रपश्यति ॥३१॥
यत्तदबुद्ध परं प्राहु साख्ययोगं च सर्वश [1]। बुध्यमानं महाप्राज्ञा प्रबुद्धपरिवर्जनात् ॥३२॥
अप्रबुद्ध यथा व्यक्त स्वगुणं प्राहुरीश्वरम। निर्गुण चश्वर नित्यमधिष्ठातारमेव च ॥३३॥
प्रकृतेश्च गुणाना च पञ्चविंशतिक बुधा। साख्ययोगे च कुशला बुध्यन्ते परमैषिण ॥३४॥
यदा प्रबुद्धमव्यक्तमवस्थात(प)ननो(भी)रव। 'बुध्यमान न 'बुध्यन्तेऽवगच्छन्ति सम' तदा ॥३५॥
एतन्निदर्शन 'सम्यङन सम्यगनुदशनम। बुध्यमान प्रबुध्यन्ते द्वाभ्या पृथगरिदम ॥३६॥
परस्परणतदुक्त क्षराक्षरनिदर्शनम। एकत्वमक्षर प्राहुर्नानात्व क्षरमुच्यत ॥३७॥
'पञ्चविंशतिनिष्ठोऽय तदा सम्यक्प्रचक्षते। एकत्वदर्शनं चास्य नानात्व चास्य दशनम् ॥३८॥
'तत्त्ववित्तत्त्वयोरव पृथग्तन्निदशनम्। पञ्चविंशतिभिस्तत्त्व तत्त्वमाहुर्मनीषिण ॥३९॥
निस्तत्त्व पञ्चविंशस्य परमाहुर्मनीषिण। वर्ज्यस्य 'वर्ज्यमाचार' तत्त्व तत्त्वात्सनातनम् ॥४०॥

करालजनक उवाच

नानात्वैकत्वमित्युक्त त्वयैतदद्विजसत्तम। पश्यतस्तद्धि सदिग्धमेतयोर्वै निदर्शनम् ॥४१॥
तथा 'बुद्धप्रबुद्धाभ्या' बुध्यमानस्य चानघ। स्थूलबुद्ध्या न पश्यामि तत्त्वमतन्न सशय ॥४२॥
अक्षरक्षरयोरुक्त त्वया यदपि कारणम्। तदप्यस्थिरबुद्धित्वात्प्रनष्टमिव मेऽनघ ॥४३॥

तब यह गुण भेदो को देखता है। महापडितो ने कहा है कि साख्य और योग बुद्धि से परे होते हुए भी समझे जाते हैं। साख्य और योग म प्रवीण विद्वान अप्रबुद्ध अव्यक्त ईश्वर निगुण नित्य तथा अधिष्ठाता परमात्मा को जो प्रकृति तथा गुणो का पचीसवा तत्त्व है जानते हैं। जब प्रबुद्ध और अव्यक्त आत्मा को अवस्थित करने से भी पुरुष जाने जाते हुए आत्मा को नही जानते हैं तब वे सम भाव को जानत हैं। यह सम्यक् दृष्टान्त है न कि सम्यक् निरीक्षण। हे शत्रुओ का दमन करने वाले! तत्त्ववेत्ता जन इन दोनो स पृथक् बुद्धिमान् आत्मा को जानत हैं ॥३१-३६॥ क्षर और अक्षर का निदान परस्पर बतलाया गया है। एकत्व अक्षर को कहते हैं और नानात्व क्षर को कहते हैं। जीव पचीसवें तत्त्व म प्रविष्ट होन पर एकत्व तथा नानात्व का दर्शन करता है। तत्त्ववेत्ता और तत्त्व के बारे मे ही यह दृष्टान्त बतलाया गया है। मनीषियो ने पचीस तत्त्व बतलाये हैं परन्तु पचीसवें तत्त्व को निस्तत्त्व कहा गया है। वर्जनीय का वर्जनीय आचार तत्त्व स बढकर सनातन तत्त्व है ॥४०॥

करालजनक बोले—द्विजश्रेष्ठ! आपने नानात्व तथा एकत्व के बारे म कहा है। परन्तु दोनो के दृष्टान्त म मुझ सन्देह है। मैं मन्दबुद्धि होने के कारण इस तत्त्व को नही समझ रहा हूँ। निष्पाप! अक्षर और क्षर का कारण जो आपने बतलाया वह भी चञ्चलबुद्धि होने के कारण मैं नही समझ सका। इसलिये नानात्व तथा एकत्व

१ग ०व परमेनाव प। २ग ०श। प्रबुद्धिमा महाप्राज्ञ प्र०। ३ग ०माने म। ४ग ०न्ते न ग०। ५ग मत। ६ग ०म्यग्य पदशनद०। ७ग ०तिविष्णोऽय। ८ग तद्भिस्तत्त्व०। ९ग वमस्य। १०ग वर्ज्यमात्माम व०। ११क बुद्ध प्र०। १२क ०द्धात्मा बु०।

तदेतच्छ्रोतुमिच्छामि नानात्वैकत्वदर्शनम्[1]। द्वंद्वं, चैवानिरुद्धं च बुध्यमानं च तत्त्वतः ॥४४॥
विद्याविद्ये च भगवन्नक्षरं क्षरमेव च। सांख्ययोगं च[2] कृत्स्नेन बुद्धाबुद्धिं पृथक्पृथक् ॥४५॥

वसिष्ठ उवाच

हन्त ते संप्रवक्ष्यामि यदेतदनुपृच्छसि। योगकृत्यं[3] महाराज पृथगेव शृणुष्व मे ॥४६॥
योगकृत्यं तु योगानां ध्यानमेव परं बलम्। तच्चापि[4] द्विविधं ध्यानमाहुर्विद्याविदो जना. ॥४७॥
एकाग्रता च मनसः प्राणायामस्तथैव च। प्राणायामस्तु[5] सगुणो निर्गुणो मानसस्तथा ॥४८॥
मूत्रोत्सर्गे पुरीषे च भोजने च नराधिप(?)। द्विकालं नोपभुञ्जीत शेषं भुञ्जीत तत्परः ॥४९॥
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो निवर्त्य मनसा मुनिः। दशद्वादशभिर्वाऽपि[7] चतुर्विंशात्परं[8] यतः ॥५०॥
स चोदनाभिर्मतिमान्नाऽऽत्मानं चोदयेदथ। तिष्ठन्तमजरं[9] तं तु यत्तदुक्तं मनीषिभि. ॥५१॥
विश्वात्मा सततं ज्ञेय इत्येवमनुशुश्रुम। द्रव्य "हृयहीनमनसो नान्यथेति विनिश्चयः ॥५२॥
विमुक्तः सर्वसङ्गेभ्यो लघ्वाहारो[11] जितेन्द्रियः। पूर्वरात्रे परार्धे च धारयीत[12] मनो हृदि ॥५३॥
स्थिरीकृत्येन्द्रियग्रामं मनसा मिथिलेश्वर। मनो बुद्ध्या स्थिरं कृत्वा पाषाण इव निश्चलः ॥५४॥

का दर्शन मुझे बतलाइये। भगवन्! द्वन्द्व, अनिरुद्ध, बुध्यमान, विद्या, अविद्या, अक्षर, क्षर, सांख्य योग, बुद्धि और अबुद्धि को पृथक्-पृथक् बतलाइये ॥४१-४५॥

वसिष्ठ बोले—अच्छा! जो आपने पूछा है, वह मैं बतलाऊँगा। महाराज! योग-कार्य को अलग ही सुन लीजिए ॥४६॥ योग का ध्यान ही परम बल है। विद्वानों का कहना है कि ध्यान दो प्रकार के होते हैं—एक मन की एकाग्रता और दूसरा प्राणायाम। प्राणायाम सगुण होता है और मानसिक एकतान निर्गुण होता है ॥४७-४८॥ नराधिप! मल-मूत्र त्यागने के समय तथा भोजन-काल में (?) प्राणायाम नहीं करना चाहिये। प्रात-साय-काल में भोजन नहीं करना चाहिये। अन्य काल में सावधान होकर भोजन करे ॥४९॥ मुनि विषयों से इन्द्रियों को मन से रोककर दस, बारह या चौबीस तत्त्वों से परे आत्मा का मनन करे। वह बुद्धिमान् वर्तमान तथा अजर आत्मा को प्रेरणाओं (शास्त्रोपदेशों) से उत्प्रेरित (तर्क-वितर्कशील) न करें ऐसा मनीषियों ने कहा है। (?) विश्वात्मा का ज्ञान सतत रहना चाहिये, ऐसा हमने सुना है ॥५०-५१½॥ यह निश्चित बात है कि मन को वश में करने पर ही आत्मज्ञान होता है। सब प्रकार की आसक्तियों से विमुक्त तथा जितेन्द्रिय होकर अल्प आहार करते हुए पूर्वरात्रि में एवम् अपर रात्रि में हृदय में मन का धारण करे ॥५२-५३॥ मिथिलेश्वर! मन से इन्द्रिय-समूह को स्थिर करके बुद्धि से मन को पाषाण की तरह स्थिर करते हुए निश्चल हो जाय ॥५४॥ स्थाणु की तरह निष्कम्प और दारु के समान अचल होना चाहिये। इस प्रकार बुद्धि से विधि-

---

१ग. ॰म्। बुद्धं जहात्यबुद्ध च बु॰। २क च साख्येन पृथक्त्वेन पृथक्स्थिति। य॰। ३क. ॰त्यं तु योगेन ध्यान॰। ४ख. ॰पि हि द्विधत्वाच्च आहु॰। ५क ॰याम सत्त्वगु॰। ६ख तत्त्वत। ७क ॰पि पञ्चविंशा॰। ८क ॰रतप। सचारादिभि॰। ९ख ॰जरत्व तु। १०क ह्यदीन॰। ११क लघुवागजि॰। १२क वाचयित्वा

[स्थाणुवच्चाप्यकम्प्यः स्याद्गिरुवच्चापि निश्चल । बुद्ध्या विधिविधानज्ञस्ततो युक्तं प्रचक्षते ॥५५॥
न शृणोति न चाऽऽघ्राति न च पश्यति किंचन । न च स्पर्शं विजानाति न च सकल्पते मनः ॥५६॥
न चापि मन्यते किंचिन्न च बुध्येत काष्ठवत् । तदा प्रकृतिमापन्नं युक्तमाहुर्मनीषिण ॥५७॥
न भाति हि यथा दीपो दीप्तिस्तद्वच्च दृश्यते । निलिङ्गश्चाधश्चोर्ध्वं च तिर्यग्गतिमवाप्नुयात् ॥५८॥
तदा तदुपपन्नश्च यस्मिन्दृष्टे च कथ्यते । हृदयस्थोऽन्तरात्मेति ज्ञेयो ज्ञस्तात मद्विधं ॥५९॥
निर्धूम इव सप्तार्चिरादित्य इव रश्मिवान् । वैद्युतोऽग्निरिवाऽऽकाशे पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥६०॥
य पश्यन्ति महात्मानो धृतिमन्तो मनीषिणः । ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्था ह्ययोनिममृतात्मकम् ॥६१॥
तदेवाऽऽहुरणुभ्योऽणु तन्महद्भ्यो महत्तरम् । सर्वत्र सर्वभूतेषु ध्रुव तिष्ठन्न दृश्यते ॥६२॥
बुद्धिद्रव्येण दृश्येन मनोदीपेन लोककृत् । महतस्तमसस्तात पारे तिष्ठन्न तामसः ॥६३॥]
तमसो दूर इत्युक्तस्तत्त्वज्ञैर्वेदपारगै. । विमलो वितमश्चैव निलिङ्गोऽलिङ्गसंज्ञकः ॥६४॥
योग एष हि लोकानां किमन्यद्योगलक्षणम् । एवं पश्यन्प्रपश्येन आत्मानमजरं परम् ॥६५॥
योगदर्शनमेतावदुक्त ते तत्त्वतो मया । साख्यज्ञानं प्रवक्ष्यामि परिसख्यानिदर्शनम् ॥६६॥

विधान को जानने वाला योगाभ्यास करे ॥५५॥ जब योगी न सुनता है न सूंघता है न देखता है न स्पर्श को जानता है न सकल्प करता है न मानता है, और न काष्ठ की तरह कुछ समझता ही है तब वह प्रकृति को प्राप्त कर लेता है ऐसा विद्वानों ने कहा है ॥५७॥ जैसे दीपक यदि बढ़िया नहीं है तो उसका प्रकाश भी अच्छा नहीं होगा। दीप को ऊपर नीचे तथा अधर में कहीं भी रखिए, उसकी लौ की गति सदा टेढ़ी रहेगी। उसी तरह स्वच्छ अन्तःकरण में आत्मा प्रकाशित होता है (?) तात ! ज्ञात रूप जो आत्मा है उसी को हम लोग हृदयस्थित अन्तरात्मा समझे ॥५९ ५९॥ निर्धूम अग्नि के समान, रश्मियुक्त आदित्य के समान और आकाश में विद्युल्लता की अग्नि के समान आत्मा में आत्मा को देखना चाहिए ॥६०॥ धीर मनीषी, ब्रह्मज्ञ तथा महात्मा ब्राह्मण जिस अयोनिज तथा अमृतरूप आत्मा को देखते है वही आत्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान् से भी महान् है। वह समस्त भूतों में निश्चल होकर रहता हुआ भी देखा नहीं जाता है ॥६१-६२॥ बुद्धि रूपी द्रव्य के सहयोग से मन रूपी दीप के द्वारा आत्मा को देखना चाहिये। आत्मा महान् तम से परे रहने के कारण तामस नहीं कहलाता है ॥६३॥ वेदपारगत तत्त्वज्ञों ने आत्मा को तम से दूर, तथा निर्लिप्त कहा है ॥६४॥ लोक में यही योग का लक्षण है। दूसरा क्या हो सकता है ? यह विचार कर अजर तथा पर आत्मा को देखना चाहिये ॥६५॥ इतना योगदर्शन मैंने आपको तत्त्वपूर्वक बतला दिया, अब परिसख्याविधि (जिसमें विहित विधि के अतिरिक्त अन्य वस्तु का निषेध हो जाता है) के प्रमाण से साख्यदर्शन का प्रवचन करूँगा ॥६६॥ नृपश्रेष्ठ ! साख्य में आत्मा को परा प्रकृति को

१क नित्य । २ग न रस्यति न पश्यति । म । ३क धावम० । ४ग बुध्यति । ५ग ०ण: निवाते हि । ६ग दीप्यदीप्तो दीप प्रदृ० । ७क ०दिद्दृश्येत मानादि येन तल्लोकवेद्दतम् । म० । ग ०दिद्दृश्ये० । ८क ०प्रनामय । ० । ९क योगानां । १०क सांख्ययोग ।

अव्यक्तमाहुः [1]प्रख्यानं परां [2]प्रकृतिमात्मनः। तस्मान्महत्समुत्पन्नं द्वितीयं राजसत्तम ॥६७॥
अहंकारस्तु महतस्तृतीय इति नः श्रुतम्। पञ्चभूतान्यहंकारादाहुः [3]सांख्यात्मदर्शिनः ॥६८॥
एताः प्रकृतयस्त्वष्टौ विकाराश्चापि षोडश। पञ्च चैव विशेषाश्च तथा पञ्चेन्द्रियाणि च ॥६९॥
एतावदेव तत्त्वानां सांख्यमाहुर्मनीषिणः। सांख्ये सांख्यविधानज्ञा नित्यं सांख्यपथे स्थिताः ॥७०॥
यस्माद्यदभिजायेत तत्तत्रैव प्रलीयते। लीयन्ते प्रतिलोमानि [4]गृह्यन्ते चान्तरात्मना ॥७१॥
आनुलोम्येन जायन्ते लीयन्ते प्रतिलोमतः। गुणा गुणेषु सततं सागरस्योर्मयो यथा ॥७२॥
सर्गप्रलय एतावान्प्रकृतेर्नृपसत्तम। एकत्वं प्रलये[5] चास्य बहुत्वं च तथा[6] सृजि ॥७३॥
एवमेव च राजेन्द्र विज्ञेयं ज्ञानकोविदैः। अधिष्ठातारमव्यक्तमस्याप्येतन्निदर्शनम् ॥७४॥
एकत्वं च बहुत्वं च प्रकृतेरनुतत्त्ववान्। एकत्वं प्रलये चास्य बहुत्वं च प्रवर्तनात् ॥७५॥
बहुधाऽऽत्मा प्रकुर्वीत प्रकृतिं प्रसवात्मिकाम्। [7]तच्च क्षेत्रं महानात्मा पञ्चविंशोऽधितिष्ठति ॥७६॥
अधिष्ठातेति राजेन्द्र प्रोच्यते यतिसत्तमैः। अधिष्ठानादधिष्ठाता क्षेत्राणामिति नः श्रुतम् ॥७७॥
क्षेत्रं जानाति चाव्यक्तं[8] क्षेत्रज्ञ इति चोच्यते। अव्यक्तिके पुरे शेते पुरुषश्चेति कथ्यते ॥७८॥
अन्यदेव च क्षेत्रं स्यादन्यः क्षेत्रज्ञ उच्यते। क्षेत्रमव्यक्त इत्युक्तं ज्ञातारं पञ्चविंशकम् ॥७९॥

अव्यक्त पुरुष कहा गया है। उससे महत्तत्त्व की उत्पत्ति हुई जो द्वितीय है ॥६७॥ महान् में अहकार उत्पन्न हुआ जो तृतीय है ऐसा हमने सुना है। और अहकार से पचभूतों की सृष्टि हुई, ऐसा साख्यात्मदर्शी का कहना है ॥६८॥ ये आठ प्रकृतियाँ हैं और सोलह विकार हैं। पाँच विशेष (पदार्थभेद) और पाँच इन्द्रियाँ हैं ॥६९॥ मनीषियों ने साख्य म तत्त्वो की इतनी ही सख्या बतायी है। साख्य के विधान को जानने वाले व्यक्ति नित्य साख्य-पथ पर दृढ रहते हैं ॥७०॥ जिससे जिसकी उत्पत्ति होती है वही उसका लय होता है। प्रतिलोम लीन हो जाते हैं और अन्तरात्मा द्वारा उनका ग्रहण किया जाता है ॥७१॥ सागर की लहरों की तरह गुण गुणो मे अनुलोम भाव से उत्पन्न होते हैं और प्रतिलोम भाव से लय को प्राप्त करते हैं ॥७२॥ महाराज ! प्रकृति का यही सर्गप्रलय है। प्रलय मे इसका एकत्व और सृष्टि म बहुत्व जाना गया है ॥७३॥ राजेन्द्र ! इस प्रकार ज्ञानियो को समझना चाहिये कि इसके अधिष्ठाता अव्यक्त का भी यही निदर्शन है ॥७४॥ प्रकृति की एकता और अनेकता होती है। एकता प्रलय मे और अनेकता सृष्टिकाल मे होती है ॥७५॥ बहुधा आत्मा प्रकृति से प्रसव कराता है। उस क्षेत्र को पचीसवाँ तत्त्व—महान् आत्मा—व्याप्त करके स्थित होता है ॥७६॥ नृपेन्द्र ! यतियों ने महान् आत्मा को अधिष्ठाता कहा है। क्षेत्रो का अधिष्ठान करने से यह अधिष्ठाता कहलाता है, ऐसा हमने सुना है ॥७७॥ अव्यक्त क्षेत्र के जानने से इसका नाम क्षेत्रज्ञ पडा। अव्यक्त पुर म सोने से इसका नाम पुरुष है ॥७८॥ क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ म अन्तर है। क्षेत्र अव्यक्त का नाम है और क्षेत्रज्ञ पचीसवाँ तत्त्व कहलाता है ॥७९॥ ज्ञान और ज्ञेय मे भी अन्तर

१ग प्रवृत्ति। २ग ०तिवादिन। ३क सांख्यविशारदा। ए०। ४ग सृज्यन्ते। ५क प्रीतये। ६क. ०थाऽस्य तद्। ए०। ७क तत्त्वधे०। ८क ख ०क्त ज्ञेयो वै पञ्चविशक। ख०।

अन्यदेव च ज्ञान स्यादन्यज्ज्ञेयं तदुच्यते। ज्ञानमव्यक्तमित्युक्त'ज्ञेयो वै पञ्चविंशक ॥८०॥
अव्यक्त क्षेत्रमित्युक्त तथा सत्त्व तयेश्वरम्। अनीश्वरमतत्त्व च तत्त्व' तत्पञ्चविंशकम् ॥८१॥
साख्यदर्शनमेतावत्परिसख्या न विद्यते। सख्या प्रकुरुते चैव प्रकृति च प्रवक्ष्यते' ॥८२॥
चत्वारिंशच्चतुर्विंशत्प्रतिसख्याय तत्त्वत । सख्या सहस्रकृत्या' तु निस्तत्त्व पञ्चविंशक ॥८३॥
पञ्चविंशत्प्रबुद्धात्मा' बुध्यमान इति श्रुत '। यदा बुध्यति आत्मान तदा भवति 'केवल ॥८४॥
सम्यग्दर्शनमेतावद्भाषित तव तत्त्वत । एवमेतद्विजानन्त साम्यता प्रतियान्त्युत ॥८५॥
सम्यङनिदर्शन नाम प्रत्यक्ष प्रकृतेस्तथा। 'गुणवत्त्वाद्यथैतानि निर्गुणेभ्यस्तथा भवेत ॥८६॥
न त्वेव वर्तमानानामावृत्तिर्वर्तते पुन । विद्यते क्षरभावश्च न परस्परमव्ययम् ॥८७॥
'पश्यन्त्यमतयो ये न सम्यक्तेषु च दर्शनम्। ते व्यक्ति प्रतिपद्यन्ते पुन पुनररिंदम ॥८८॥
सर्वमेतद्विजानन्तो' न सर्वस्य प्रबोधनात्। व्यक्तिभूता भविष्यन्ति" व्यक्तस्यैवानुवर्तनात्" ॥८९॥
"सर्वमव्यक्तमित्युक्तमसर्व पञ्चविंशक "। य एवमभिजानन्ति न भय तेषु विद्यते ॥९०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसवादे
त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२४३॥

है। ज्ञान अव्यक्त है और ज्ञेय पचीसवाँ तत्त्व है ॥८०॥ क्षेत्र अव्यक्त कहलाता है और सत्त्व ईश्वर कहलाता है। साख्यदर्शन अनीश्वरवादी और तत्त्व से रहित है। अथवा उसमें पचीस तत्त्व माने गये हैं। अथवा उसकी गिनती नहीं है। अथवा वह गिनती करता ही है और प्रकृति को बतलाता है। अथवा चौवालीस या चौबीस सख्या है। *अथवा तत्त्वत सहस्रों सख्या हैं अथवा निस्तत्त्व पचीस सख्या है (?) ॥८१-८३॥ पचासवाँ प्रबुद्धात्मा* बुध्यमान कहलाता है। जब वह आत्मा को जानता है तब एक ही जाता है॥८४॥ इस दर्शन को तत्त्वपूर्वक आपस बतला दिया। इसको जानने वाले समता को प्राप्त करते हैं ॥८५॥ प्रकृति का प्रत्यक्ष होना अच्छा उदाहरण है। जैसे ये सगुण से होते हैं वैसे निर्गुण से भी। किन्तु इस प्रकार वर्तमान रहने वालों की आवृत्ति पुन नहीं होती है। और उसका परस्पर नाश भी होता है। वे अविनाशी नहीं हैं। (?) ॥८६-८७॥

राजन्! जो प्रज्ञाहीन मनुष्य इस दर्शन को नहीं जानता है वह बार-बार क्षरभाव को प्राप्त करता है ॥८८॥ व्यक्त के जानने वाले व्यक्त भाव को ही प्राप्त करते हैं। 'सकल पदार्थ अव्यक्त हैं केवल पचीसवाँ तत्त्व ही व्यक्त है'—*ऐसा जो जानते हैं उन्हें भय नहीं होता ॥८९ ९०॥*

श्रीब्रह्ममहापुराण में वसिष्ठ और करालजनक के सवाद में
दो सौ तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४३॥

१क ख ०क्त तथा वै। २ख तनूत्वमेकविं०। ३ग प्रचक्षते। ४ख ०सप्रकृत्या नि०। ५ग ०बुद्धया यो बु०। ६ख स्मृत। ७ग केवलम्। ८ग ०णतत्त्वाद्यथै०। ९ग ०न्त्यर्थकम०। १०ख ० तो भवान्सर्वप्र०। ११ख प्रविशन्ति। १२ग ०वात्मदर्शना०। १३ख ०त्युक्त स सर्व प०। १४ख ०कम्। य।

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

विद्याविद्ययो.स्वरूपकथनम्

वसिष्ठ उवाच

सांख्यदर्शनमेतावदुक्तं ते नृपसत्तम। विद्याविद्ये त्विदानीं मे त्वं निबोधानुपूर्वशः ॥१॥
अभेद्यमाहुरव्यक्तं सर्गप्रलयधर्मिणः। सर्गप्रलय इत्युक्त विद्याविद्ये च विंशकः ॥२॥
परस्परस्य[1] विद्या वै तन्निबोधानुपूर्वशः। यथोक्तमृषिभिस्तात [2]सांख्यस्यातिनिदर्शनम् ॥३॥
कर्मेन्द्रियाणां सर्वेषां विद्या बुद्धीन्द्रियं स्मृतम्। बुद्धीन्द्रियाणां च तथा विशया इति नः श्रुतम् ॥४॥
विषयाणां मनस्तेषां विद्यामाहुर्मनीषिणः। मनसः पञ्च भूतानि विद्या इत्यभिचक्षते ॥५॥
अहंकारस्तु भूतानां पञ्चानां नात्र संशयः। अहंकारस्तथा विद्या बुद्धिर्विद्या नरेश्वर ॥६॥
बुद्ध्या प्रकृतिरव्यक्तं तत्त्वाना परमेश्वरः। विद्या ज्ञेया नरश्रेष्ठ विधिश्च परमः स्मृतः ॥७॥
[3]अव्यक्तमपरं प्राहुर्विद्या वै पञ्चविंशक[4]। सर्वस्य सर्वमित्युक्तं ज्ञेयज्ञानस्य पारगः ॥८॥
ज्ञानमव्यक्तमित्युक्तं ज्ञेयं वै पञ्चविंशकम्। तथैव [5]ज्ञानमव्यक्तं विज्ञाता पञ्चविंशकः ॥९॥

अध्याय २४४

विद्या और अविद्या के स्वरूप का वर्णन

वसिष्ठ बोले—नृपवर ! अब तक आपसे जो कुछ कहा गया वह सांख्य दर्शन के विषय में था, अब विद्या और अविद्या के विषय में मैं कह रहा हूँ, इसको आनपूर्वी (अक्रमशः) आप सुनिये ॥१॥ सृष्टि और प्रलय-धर्मी का स्वरूप अभेद्य और अव्यक्त कहा गया है। इसी प्रकार सर्ग प्रलय और विद्या तथा अविद्या बीस प्रकार की कही गई है ॥२॥ तात ! पहले परस्पर की विद्या को आनुपूर्वीरूप से जान लो जैसा कि ऋषियों ने सांख्य को प्रमाण मान कर कहा है ॥३॥ सब कर्मेन्द्रियों के लिये विद्या ज्ञानेन्द्रिय है और ज्ञानेन्द्रियों के लिए वह विशेष वस्तु है, ऐसा हमने सुना है ॥४॥ इसी प्रकार मनीषियों ने उन (इन्द्रियों) के विषयों के लिये मन को विद्या कहा है और मन की विद्या पाँच महाभूतों को माना है ॥५॥ पाँचों महाभूतों की विद्या अहंकार है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। नरेश्वर ! इसी प्रकार अहंकार की विद्या बुद्धि है। बुद्धि की प्रकृति और प्रकृति (अव्यक्त तत्त्वों) की विद्या परमेश्वर है। नरश्रेष्ठ ! विधि को तो परम विद्या कहा गया है ॥ ६-७॥ और पचीस प्रकार के अव्यक्त को भी विद्या कहा गया है। सब के सार, एवं ज्ञेय और ज्ञान के पारगामी (पुरुष) को विद्या कहा गया है ॥८॥ ज्ञान को अव्यक्त कहा गया है, ज्ञेय के पचीस भेद हैं। इसी प्रकार अव्यक्त ज्ञान के एवं विद्या के भी पचीस भेद कहे गये हैं। उपर्युक्त विशेष

1ख. ०स्पर द्विधा चैतस्य निबो०। 2ख ०स्यामितिनिवेदन०। 3ख. ०क्तस्य प०। 4ख. ०शकम्। स। 5 ०मिमेत्युक्त।

विद्याविद्ये[1] तु तत्त्वेन मयोक्ते[2] वै विशेषतः। अक्षरं च क्षरं चैव यदुक्तं तन्निबोध मे ॥१०॥
उभावेतौ क्षरावुक्तौ उभावेतावन(या)क्षरौ। कारणं तु प्रवक्ष्यामि[3] यथाज्ञानं तु ज्ञानत[4] ॥११॥
अनादिनिधनावेतौ उभावेवेश्वरौ मतौ। [5]तत्त्वसंज्ञावुभावेव प्रोच्यते ज्ञानचिन्तकैः[6] ॥१२॥
सर्गप्रलयधर्मित्वादव्यक्तं प्राहुरव्ययम्। तदेतद्गुणसर्गाय[7] विकुर्वाणं पुनः पुनः ॥१३॥
गुणानां महदादीनामुत्पद्यति परस्परम्। अधिष्ठानं[8] क्षेत्रमाहुरेतद्वै पञ्चविंशकम् ॥१४॥
[9]यदन्तर्गुणजालं[10] तु तदव्यक्तात्मनि संक्षिपेत्। तदहं तद्गुणैस्तस्तु पञ्चविंशे विलीयते ॥१५॥
गुणा गुणेषु लीयन्ते तदेका प्रकृतिर्भवेत्। क्षेत्रज्ञोऽपि तदा [11]तावत्क्षेत्रज्ञः[12] संप्रणीयते ॥१६॥
यदाऽक्षरं प्रकृतिर्यं गच्छते गुणसंज्ञिता। निर्गुणत्वं च वै देहे गुणेषु परिवर्तनात् ॥१७॥
एवमेव च क्षेत्रज्ञ क्षेत्रज्ञानपरिक्षयात्। प्रकृत्या निर्गुणस्त्वेष इत्येवमनुशुश्रुम ॥१८॥
क्षरो भवत्येष यदा गुणवती गुणेष्वथ[13]। प्रकृतिं त्वथ जनाति निर्गुणत्वं तथात्मनः ॥१९॥
तथा[14] विशुद्धो भवति प्रकृतेः परिवर्जनात्। अन्योऽहमन्येयमिति यदा बुध्यति बुद्धिमान् ॥२०॥
तदैषोऽन्यतामेति न च मिश्रत्वमाव्रजेत्। प्रकृत्या चैष राजेन्द्र [15]मिश्रोऽन्योऽन्यस्य दृश्यते ॥२१॥

प्रकार से मैंने विद्या और अविद्या के विषय में तत्त्वतः कह दिया। अब जो क्षर और अक्षर के विषय में मैं कह रहा हूँ, उसको सुनो। ये दोनों ज्ञान और ज्ञेय (प्रकृति पुरुष) (विद्या, अविद्या) क्षर और अक्षर दोनों कहे गये हैं, इसका कारण मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कह रहा हूँ। ये दोनों अनादि और निधन (नाश-शील) एवं दोनों ही ईश्वर (समर्थ) माने गये हैं। इसी प्रकार तत्त्वचिंतकों ने दोनों को तत्त्व नाम से कहा है ॥९-१२॥ सर्ग और प्रलय धर्मी होने के कारण अव्यक्त को अव्यय कहा गया है। यह अव्यक्त गुण सृष्टि के लिये बार-बार विकृत (विकार को प्राप्त) होता है ॥१३॥ महदादि गुणों की उत्पत्ति परस्पर के संयोग से होती है। इन पचीस प्रकार के गुणों को ही अधिष्ठान क्षेत्र कहा गया है ॥१४॥ जो अन्तर्गुणों का समूह है वह उस अव्यक्त आत्मा में संक्षिप्त हो जाता है। वह अहं उन गुणों के साथ पचीस तत्त्वों में विलीन हो जाता है ॥१५॥ जब गुण अन्य गुणों में लीन हो जाते हैं तब एक प्रकृति ही हो जाती है। उस समय क्षेत्र भी क्षेत्रज्ञ के रूप में उत्पन्न हो जाता है। जब अक्षर में गुण संज्ञा से प्रसिद्ध प्रकृति लीन हो जाती है तब वही शरीर में गुणों के परिवर्तन होने से निर्गुणत्व को प्राप्त होती है। इसी प्रकार क्षेत्र ज्ञान के क्षय होने से क्षेत्रज्ञ प्रकृति से निर्गुण हो जाता है ऐसा सुना गया है। यह क्षेत्रज्ञ जब गुणवती प्रकृति के गुणों में विलीन होता है तब क्षर हो जाता है, यद्यपि वह प्रकृति और अपने निर्गुणत्व को भली भाँति जानता है। जब बुद्धिमान् पुरुष मैं अन्य हूँ, यह प्रकृति अन्य है' इस बात को जान लेता है तब वह प्रकृति (माया) के परित्याग से शुद्ध हो जाता है ॥१६-२०॥ वह शान्ति का अनुभव करता है और पुनः संसर्ग में नहीं आता है। राजेन्द्र! वह प्रकृति से अन्य-अन्य के साथ मिला हुआ सा दीख पड़ता है ॥२१॥ जब वह उस प्राकृत गुण-समूह से मुँह फेर लेता

१ग ०विद्यार्थत०। २ग ०योक्तान्तवि०। ३ख ०यावि‍ज्ञानशः। ४ग ०शाद्वंभावेन प्रो०। ५ख. ०सद्गाय। ६ग ०ष्ठानात्मेव०। ७ग यदन्त०। ८ग ०ल तदव्यक्ता०। ९ग तावतो क्षेत्र०। १०ख. ०त्रमानं परिक्षयेत्। य०। ११ख ०ऽनिस्त्वथ। १२ख ०यात्मनिगु०। १३ख मिथ्यान्येषु स दृ०।

यदा तु गुणजालं तत्प्राकृतं विजुगुप्सते। पश्यते च परं पश्यस्तदा पश्यन्नु¹ संसृजेत् ॥२२॥
किं मया कृतमेनावद्योऽहं² कालनिमज्जनं। यथा मत्स्यो ह्यभिज्ञानादनुवर्तिततवाञ्जलम् ॥२३॥
अहमेव हि संमोहादन्यमन्यं जनाज्जनम्। मत्स्यो यथोदकज्ञानादनुवर्तिततवानिह ॥२४॥
³मत्स्योऽन्यत्वमथाज्ञानादुदकान्नाभिमन्यते⁴। आत्मानं ⁵तदवज्ञानादन्य⁶ चैव न वेद्म्यहम् ॥२५॥
ममास्तु धिक्कुबुद्धस्य योऽहं मग्न इमं पुनः। अनुवर्तिततवान्मोहादन्यमन्यं जनाज्जनम् ॥२६॥
⁷अयमनुभवेद्बन्धुरनेन सह मे क्षयम्। साम्यमेकत्वतां यातो यादृशस्तादृशस्त्वहम् ॥२७॥
तुल्यतामिह पश्यामि सदृशोऽहमनेन वै। अयं हि विमलो व्यक्तमहमीदृशकस्तदा ॥२८॥
योऽहमज्ञानसंमोहादज्ञया⁸ संप्रवृत्तवान्। ⁹संसर्गादतिसंसर्गात्स्थितः कालमिमं त्वहम् ॥२९॥
सोऽहमेव वशीभूतः कालमेतं न बुद्धवान्¹⁰। उत्तमाधममध्यानां तामहं कथमावसे ॥३०॥
समानमायया चेह सहवासमहं कथम्। गच्छाम्यबुद्धभावत्वादिहेदानीं स्थिरो भव ॥३१॥
सहवासं न यास्यामि कालमेतं विवञ्चनात्। वञ्चितो ह्यनया यद्धि निर्विकारो विकारया ॥३२॥
न तत्तदपराद्धं स्यादपराधो ह्ययं मम। योऽहमत्राभवं सक्तः पराङ्मुखमुपस्थितः ॥३३॥

है तब वह पर-स्वरूप का देखने लगता है और तब वह उस मत्स्य की भांति जो जल को ही केवल जानता है और उसी मे इधर उधर घूमता रहता है सृष्टि भी करने लगता है क्योंकि वह सोचने लगता है कि क्या मैंने समय के वश होकर अब तक इतना ही काय किया है। मैं भी मोहवश मत्स्य की भाँति केवल गतानुगतिक काय करता रहा। जिस प्रकार मछली जल के अतिरिक्त और किसी पदाथ को नही जानती है उसी प्रकार मैंने भी आत्म-अज्ञान के कारण अन्य पदार्थों का ज्ञान नही प्राप्त किया ॥२२ २५॥ मेरे समान कुबुद्धि को धिक्कार है कि अब तक मैं केवल इसी मे मग्न रहा इस (प्रकृति) का अनुगामी बना रहा। अब इस अज्ञान के साथ भी मेरी बन्धुता हो गई, इसके साथ मेरा क्षय भी होगा। इसके साथ मेरा साम्य और एकत्वानुभूति हो गई, जैसा यह है वैसा मैं भी हो गया। मुझ तो अब इसी की समानता दिखाई देती है प्रतीत होता है कि इसके संसग से मैं भी इसी के समान हो गया ॥२६ २८॥ जो मैं अज्ञानवश इस मोहमय प्रकृति के पीछे दौड़ता रहा और इसके घनिष्ठ संसग से उतने समय तक अपने को भुलावे में रखा इसके लिये धिक्कार है। ऐसा अज्ञानी मैं इसके वश होकर माया वाली इस प्रकृति के साथ अब भला किस प्रकार नाता जोड़ सकता हूँ। इस समय मेरा सारा मोह अपनी अज्ञानता के साथ यहीं रहे। अब मैं कभी भी काल की वञ्चना में पड़कर इस प्रकृति का साहचय स्वीकार नही करूंगा। विकार युक्त होकर भी इसने इतने दिनों तक निर्विकार मुझको वञ्चित रखा अतः अब पुनः इस साहचय में नहीं फँसूंगा। यह इसका अपराध नही सारा दोष मेरा है जो कि मैं यह ज्ञान-पराङ्मुख हो आसक्त भाव से समय बिताता रहा ॥३१-३३॥ अब तक अमूर्त मैं बहुत रूप धारण कर इस मोह-परिधि में साक्षात् मूर्ति के रूप में स्थित रहा।

१ख पश्यश्च। २ख ०हंकारनि०। ३ग ०हादन्यमन्यज्जलाज्जलम्। म०। ४क ०यत्वं यथान्यद्वा उदकं नावम०। ५ग ०दकं नाभि०। ६ग ०दभिज्ञा०। ७ख ग ०दन्यत्वं चैव वे०। ८ख ०मत्र मवेदेव दूराननसहस्र०। ९क ग ०ह्रादाज्ञ०। १० ०र्गाहिस्तु निःसङ्गः स्थितः। ११क ०न्। मध्यमोऽहं हीनतरस्तानहं।

ततोऽस्मि-बहुरूपोऽय स्थितो मूर्तिरमूर्तिमान्। अमूर्तिश्चाप्यमूर्तात्मा ममत्वेन प्रधर्षित ॥३४॥
प्रकृत्या च तया तेन तासु तास्विह योनिषु। निर्ममस्य ममत्वेन विकृत तासु तासु च ॥३५॥
योनिषु वतमानेन नष्टसञ्ज्ञेन चेतसा[1]। समता न मया काचिदहकारे[2] कृता मया ॥३६॥
आत्मान बहुधा कृत्वा सोऽय भूयो युनक्ति माम्। इदानीमवबुद्धोऽस्मि निर्ममो निरहकृत[3] ॥३७॥
ममत्व मनसा नित्यमहकारकृतात्मकम्। अपलग्नामिमा हित्वा सश्रयिष्ये निरामयम् ॥३८॥
अनेन साम्य यास्यामि नानयाऽहमचेतसा। क्षम मम सहानेन नैवैकमनया सह ॥३९॥
एव परमसबोधात्पञ्चविंशोऽनुबुद्धवान्। अक्षरत्व निगच्छति त्यक्त्वा क्षरमनामयम् ॥४०॥
अव्यक्त व्यक्तधर्माण सगुण निर्गुण तथा। निर्गुण प्रथम दृष्ट्वा तादृग्भवति मैथिल ॥४१॥
अक्षरक्षरयोरेतदुक्त तव निदर्शनम्। मयेह ज्ञानसपन्न यथा श्रुतिनिदर्शनात् ॥४२॥
नि सदिग्ध च सूक्ष्म च विशुद्ध विमल तथा। प्रवक्ष्यामि तु ते भूयस्तन्निबोध यथाश्रुतम् ॥४३॥
साख्ययोगो मया प्रोक्त शास्त्रद्वयनिदशनात्। यदेव साख्यशास्त्रोक्त योगदशनमेव तत् ॥४४॥
प्रबोधनपर ज्ञान साख्यानामवनीपते। विस्पष्ट प्रोच्यते तत्र शिष्याणा हितकाम्यया ॥४५॥
[4]बृहच्चैवमिद शास्त्रमित्याहुर्विदुषो जना। अस्मिश्च शास्त्रे योगाना पुनर्भवपुर सरम् ॥४६॥

अहो! अमूर्तात्मा अमूर्ति का इस प्रकार ममता द्वारा पराभव? ॥३४॥ उस प्रकृति के साथ उन योनियों म मैं घूमता रहा जिनमे निर्मम मुझको यह ममता घुमाती रही? मैं सज्ञाहीन हो चेतना खोकर अनेक योनियो म भटकता रहा। इस अहकार मे अज्ञान म मेरी कोई समता नही कर सकता ॥३५ ३६॥ देखता हू पुन वही अज्ञान अपने को बहुत रूपों मे बाँट कर मुझको कुपथ की ओर लगाना चाहता है पर तु अब मैं मायातीत हूँ प्रबुद्ध हूँ और अहकार विजेता हूँ ॥३७॥ अब मैं अहकार पर खडी हुई ममता को मन से हटाकर इस अनुचित माया को छोडकर निर्विकार रूप का आश्रय ग्रहण करूँगा ॥३८॥ अब उसी निरामय की समता प्राप्त करूँगा अज्ञानवश इस माया का नही। उस निरामय के साथ ही मेरा एकमात्र कल्याण सबद्ध है इस प्रकृति क साथ नही—इस परमज्ञान के उदबुद्ध होने से पञ्चविंशात्मक अव्यक्त जाग्रत हो जाता है और अपने क्षर भाव को छोडकर अनामय अक्षरत्व को प्राप्त कर लेता है ॥३९ ४०॥ मैथिल! इस प्रकार अव्यक्त व्यक्त धर्मा सगुण और निगुण को देखकर (अनुभव कर) पुन अपने पूवरूप (निर्गुण) को श्रेयस्कर समझ कर वैसा ही (निरामय) हो जाता है ॥४१॥ मैने इस प्रकार तुमको अक्षर और क्षर का स्वरूप ज्ञान कराया जैसा कि श्रुतियों के अध्ययन से ज्ञान प्राप्त किया था ॥४२॥ अब पुन यथाश्रुत ज्ञान के अनुरूप असदिग्ध सूक्ष्म विशुद्ध और विमल ज्ञान को तुमसे कह रहा हूँ उसको सुनो ॥४३॥ दो शास्त्रो के उदाहरणों के द्वारा साख्ययोग का प्रवचन कर दिया जो साख्यशास्त्र म कहा गया है वि वही योग-दर्शन भी है ॥४४॥ भूमिपति! उन दोनो म अब शिष्यों के हित के लिये साख्य व मोक्ष प्रद ज्ञान को स्पष्ट रूप से कह रहा हूँ ॥४५॥ विद्वान् जनो ने इस शास्त्र को अति बृहत् बताया है। नरपाल! इस शास्त्र मे योग का पुनर्भव के साथ साथ पच-

---

१क ०सा। मम। ग ०सा। मम तन्नानया कार्यमह०। २ग ०कारकृ०। ३ख स्वय। ४ग ०व निरालम्बमि०।

पञ्चविंशात्पर तत्त्व पठ्यते च नराधिप। साख्याना तु पर तत्त्व यथावदनुवर्णितम्[1] ॥४७॥
बुद्धमप्रतिबुद्ध[2] च बुध्यमान च तत्त्वत। बुध्यमान च बुद्धत्व प्राहुर्योगनिदर्शनम् ॥४८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसवादे
चतुश्चत्वारिशदधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२४४॥

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

अजस्यापि विक्रियया नानाभवनम्

वसिष्ठ उवाच

अप्रबुद्धमथाव्यक्तमिम[3] गुणनिधि सदा। गुणाना[4] धार्यता तत्त्व सृजत्याक्षिपते तथा ॥१॥
अजो हि[5] क्रीडया भूप विक्रिया प्राप्त इत्युत। आत्मान बहुधा कृत्वा नानेव[6] प्रतिचक्षते[7] ॥२॥
एतदेव विकुर्वाणो बुध्यमानो न बुध्यते। गुणानाचरते ह्येष सृजत्याक्षिपते तथा ॥३॥
अव्यक्तबोधनाच्चैव बुध्यमान वदन्त्यपि[8]। न त्वेव बुध्यतेऽव्यक्त सगुण तात निर्गुणम् ॥४॥

विंशात्मक तत्त्व से उत्कृष्ट तत्त्व भी कहा गया है। साख्य न परतत्त्व को तो यथावद कह चुका हूँ। बुद्ध अप्रतिबुद्ध और बुध्यमान भी तत्त्वरूप से योग मे कहे गये हैं परन्तु बुध्यमान और बद्धत्व ही योग के परमतत्त्व निर्दिष्ट किये गये हैं ॥४६-४८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे वशिष्ठ और करालजनक के सवाद मे
दो सौ चौआलीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४४॥

अध्याय २४५

ब्रह्म भी विकार को प्राप्त कर अनेक हो जाते हे

वसिष्ठ बोले—भूप! अज या ब्रह्म के हृदय मे क्रीडा की इच्छा से विकार उत्पन्न हो जाता है। उस समय वह अपने को बहुत रूपो मे विभक्त कर देता है तब वह नाना रूपो मे विभक्त के समान अपने को समझने लगता है। अप्रबुद्ध (सुप्त) अव्यक्त गुण समूह की और गुणो के उत्पादक तत्त्वो की सृष्टि और विस्तार करने लगता है। उस समय इस प्रकार अनेक रूपो मे विकृत होने पर भी वह अपने इस रूप को (बहुधा विभक्त) जानता नही है यद्यपि बुद्धिपूर्वक ही (जानकर ही) सृष्टि (विकार) गुणो की सृष्टि भोग और आक्षेप करता है।

१ख ०म। शुद्धम०। २ख ०तिबुद्धत्व प्रा०। ३क ०व्यक्त निगुणाना नि०। ४ग ०णानधाय ते ह्येष सृ०। ५ख ग अजस्र द्विजक्रीडार्थं विकुर्वन्ति जनाधिप। आ०। ६क ग तान्येव। ७ग ०चक्ष्यते। ८क ख ०दत्यपि।

कदाचित्त्वेव खल्वेतत्तदाहु प्रतिबुद्धकम्। बुध्यते यदि चाव्यक्तमेतद्वै पञ्चविंशकम् ॥५॥
बुध्यमानो भवत्येष [1]ममात्मक इति श्रुत। अन्योन्यप्रतिबुद्धन वदन्त्यव्यक्तमच्युतम् ॥६॥
अव्यक्तबोधनाच्चैव बुध्यमान वदन्त्युत। पञ्चविंश महात्मान न चासावपि बुध्यते ॥७॥
षड्विंश विमल बुद्धमप्रमेय सनातनम्। सतत पञ्चविंश तु चतुर्विंश[2] विबुध्यते ॥८॥
दृश्यादृश्ये [3]ह्यनुगततत्स्वभावे महाद्युते[4]। अव्यक्त चैव तदब्रह्म बुध्यते[5] तात केवलम् ॥९॥
पञ्चविंश[6] [7]चतुर्विंशमात्मानमनुपश्यति। बुध्यमानो यदाऽऽत्मानमन्योऽहमिति मन्यते ॥१०॥
तदा प्रकृतिमानेष भवत्यव्यक्तलोचन। बुध्यते च परा बुद्धि[8] विशुद्धाममला[9] यदा (दा) ॥११॥
षड्विंश राजशार्दूल तदा बुद्ध[10] कृतो व्रजेत्। ततस्त्यजति सोऽव्यक्तसर्गप्रलयधर्मिणम् ॥१२॥
[11]निर्गुणा प्रकृति वेद गुणयुक्तामचेतनाम। तत केवलधर्माऽसौ भवत्यव्यक्तदर्शनात् ॥१३॥
कवलेन समागम्य विमुक्तात्मानमाप्नुयात्। एतत्तु तत्त्वमित्याहुर्निस्तत्त्वमजरामरम ॥१४॥
तत्त्वसश्रवणादेव तत्त्वज्ञो जायते नृप। पञ्चविंशतितत्त्वानि प्रवदन्ति मनीषिण ॥१५॥
न चैव तत्त्ववास्तात[12] ससारेषु निमज्जति। एषामुपैति [13]तत्त्व हि क्षिप्र बुध्यस्व[14] लक्षणम् ॥१६॥

अव्यक्त ज्ञान क कारण हो उसको पडितजन वध्यमान (जानने योग्य) कहते हैं। तात! इस प्रकार वह अव्यक्त सगुण या निगुण किसा भा रूप मे नही जाना जाता है। कदाचित ही इसे प्रतिबुद्ध कहते हैं। यदि यह अव्यक्त जाना जाता है तो वह पचासवां है॥१५॥ यह बुध्यमान होता है और मेरा आत्मा है—इस प्रकार प्रसिद्ध है। परस्पर ज्ञान होने के कारण इसको अव्यक्त और अच्युत कहते हैं॥६॥ अव्यक्त जानने क कारण ही उसे बुध्यमान कहते हैं। किन्तु वह भा पचीसवें महान आत्मा को नही जानता है॥७॥ निमल बुद्ध अप्रमेय और सनातन चौबीसवें पचीसवें और छब्बीसवें आत्मा को वह सतत जानता है॥८॥ महाकान्तिशाली! दृश्य और अदृश्य सकल पदाथ उसके स्वभाव का अनुगमन करते हैं। तात! कवल अव्यक्त ब्रह्म हा उसको जानता है॥९॥ वह चौबीसवें और पचीसवें आत्मा को देखता है। जीव जब अपने को उसमे अलग मानता है तब यह प्रकृतियुक्त एवम अव्यक्त त्र वाला होता है॥१०½॥ हे नृपवर! जब वह परा, विशुद्ध एव निमल बुद्धि को और छब्बीसवें आत्मा या तत्त्व को जान लेता है तब वह बुद्ध होकर परिव्रजन करता है। तदनन्तर सृष्टि और प्रलय करने वाले अव्यक्त को वह त्याग देता है और निगुण तथा गुणयुक्त अचेतन प्रकृति को जान जाता है॥११ १२॥ तत्पश्चात अव्यक्त के दशन से वह कवल्यधर्मा हो जाता है। फिर केवल (ब्रह्म) क साथ समागम करके वह विमुक्त आत्मा को प्राप्त करता है। इतना ही तत्त्व कहा गया है और तत्त्व स परे ब्रह्म अजर-अमर है॥१३ १४॥ राजन! तत्त्वा क सम्यक् श्रवण से ही मनुष्य तत्त्व ज्ञाता हो जाता है। विद्वान लोग पचास प्रकार क तत्त्व बतलाते हैं॥१५॥ तात! तत्त्वा का जानकार व्यक्ति ससार म बिलकुल नही डूबता है। जो तत्त्व का लक्षण जानत हैं उनके पास तत्त्व शीघ्र पहुँच जाता है॥१६॥

१ग "ममात्मक। २क ०श तु कथ्यते। ३क ख ०तमुमावेव म०। ४क महद्विते। ५क ख ०ते भावके०। ६ग ०विंशच्चतु०। ७ग ०न आत्मना च न प०। ८क ख बुद्धिमनु०। ९क ख ०मलो य०। १०ग बुद्धज्ञो। ११ग निर्गुण। १२ख ०त निरतस्तत्त्वबुद्धिमान्। ए०। ग ०त निरस्तस्तत्त्वबुद्धिमान्। ए०। १३ग बुद्धि। १४क बुधस्य।

'षड्विंशोऽयमिति प्राज्ञो गृह्यमाणोऽजरामरः। केवलेन बलेनैव समतां यात्यसंशयम् ॥१७॥
षड्विंशेन प्रबुद्धेन बुध्यमानोऽप्यबुद्धिमान्। 'एतन्नानात्वमित्युक्तं सांख्यश्रुतिनिदर्शनात् ॥१८॥
चेतनेन समेतस्य पञ्चविंशतिकस्य ह। एकत्वं वै भवेत्तस्य 'यदा 'बुद्ध्याऽनुबुध्यते ॥१९॥
बुध्यमानेन' बुद्धेन समतां याति मैथिल। सङ्गधर्मा भवत्येष निःसङ्गात्मा नराधिप ॥२०॥
निःसङ्गात्मानमासाद्य षड्विंशं कर्मजं विदुः। विभुस्त्यजति 'चाव्यक्तं यदा त्वेतद्विबुध्यते ॥२१॥
चतुर्विंशमगाधं च षड्विंशस्य प्रबोधनात्। एष ह्यप्रतिबुद्धश्च बुध्यमानस्तु तेऽनघ ॥२२॥
उक्तो 'बुद्धश्च तत्त्वेन यथाश्रुतिनिदर्शनात्। मशकोदुम्बरे 'यद्वदन्यत्वं तद्वदेतयोः(कृता) ॥२३॥
मत्स्योदके यथा तद्वदन्यत्वमुपलभ्यते। एवमेव च गन्तव्यं नानात्वैकत्वमेतयोः ॥२४॥
एतावन्मोक्ष इत्युक्तो ज्ञानविज्ञानसंज्ञितः। पञ्चविंशतिकस्याऽऽशु 'योऽयं देहे प्रवर्तते ॥२५॥
एष[10] "मोक्षयितव्येति प्राहुरव्यक्तगोचरात्[12]। सोऽयमेवं विमुच्येत नान्यथेति विनिश्चयः ॥२६॥

यह छब्बीसवाँ है—इस प्रकार समझने वाला विद्वान् अजर-अमर होकर केवल बल से ही समता को प्राप्त करता है, इसमें कोई सन्देह नही ॥१७॥ छब्बीसवें प्रबुद्ध आत्मा के जान लेने से अबुद्धिमान् भी बुध्यमान हो जाता है। सांख्य-दर्शन के उदाहरण से यह नानात्व बताया गया है॥१८॥ जब बुद्धि से समझा जाता है तब चेतन समेत पचीस तत्त्वो मे एकता हो जाती है॥१९॥ मैथिल ! बुध्यमान और बुद्ध के साथ समता हो जाती है, नरेन्द्र ! यह निःसङ्ग आत्मा भी सङ्गी के धर्म को ग्रहण कर लेता है॥२०॥ निःसङ्ग आत्मा (ब्रह्म) को पाकर छब्बीस प्रकार के कर्मजो का ज्ञान हो जाता है। विभु (व्यापक) आत्मा जब इस कर्मज का ज्ञान प्राप्त कर लेता है तब वह अपने अव्यक्त रूप को छोड देता है॥२१॥ निष्पाप ! षड्विंशात्मक स्वरूप के ज्ञान से अगाध (गहन) चतुर्विंशात्मक रूप का ज्ञान हो ही जाता है॥२२॥ इस प्रकार मैंने वेद सम्मत उदाहरणो के द्वारा अप्रतिबुद्ध, बुध्यमान और बुद्ध को तत्त्वतः कह दिया। मशक (कीट) और गूलर, मछली तथा जल मे जिस प्रकार अन्यत्व नही है (अर्थात् दो भिन्न पदार्थ होते हुए भी जिस प्रकार दोनो मे एकता रहती है) उसी प्रकार इन दोनो जीव और ब्रह्म का अन्यत्व समझना चाहिये और इनका नानात्व तथा एकत्व भी समझना चाहिए॥२३-२४॥ यही इस पञ्चविंशति (पचीस) तत्त्वावलिप्त जीव का ज्ञान-विज्ञान नामक मोक्ष कहा गया है, जो कि इस देह का, देहधारी जीव का एकमात्र प्रवर्तक होता है। अर्थात् मोक्ष-कामना से ही शरीरगत व्यापारो द्वारा ज्ञान की ओर जीव झुकता है और उसकी मुक्ति होती है। इस प्रकृति-वशग जीव को ही अव्यक्त (ब्रह्म) के साक्षात्कार द्वारा मोक्ष प्राप्त करना रहता है और उसको ही मुक्ति की आवश्यकता है। वह माया-बद्ध जीव इस प्रकार ब्रह्म-साक्षात्कार के द्वारा ही मुक्ति प्राप्त कर

१क ०शोऽहमि०। २ग एत वासार्थमि०। ३क यथा। ख यद्वा तु ध्यानबुध्यत। बु०। ४ग ०द्ध्या न बु०। ५ग ०मानाप्रबु०। ६क ग वक्तव्य। ७०क बुध्यस्व। ८क ०न्यमन्यत्तयोमयो। ९क ०य वेदेषु व०। १०क एत मो। ११क ०क्षपथ विप्रा प्रा०। १२क ०क्तमादरात्।

परश्च परधर्मा च भवत्येव समेत्य वै। विशुद्धधर्माशुद्धेन नाशुद्धेन च बुद्धिमान् ॥२७॥
विमुक्तधर्मा[1] बुद्धेन समेत्य पुरुषर्षभ। वियोगधर्मिणा चैव 'विमुक्तात्मा भवत्यय ॥२८॥
विमोक्षिणा विमोक्षश्च समेत्येह तथा भवेत्। शुचिकर्मा शुचिश्चैव भवत्यमितबुद्धिमान्[2] ॥२९॥
विमलात्मा च भवति समेत्य विमलात्मना। केवलात्मा तथा चैव केवलेन समेत्य वै ॥
स्वतन्त्रश्च स्वतन्त्रेण स्वतन्त्रत्वमवाप्यते ३०॥

एतावदेतत्कथित मया ते, तथ्य महाराज यथार्थतत्त्वम् ।
अमत्सरस्त्वं[3] प्रतिगृह्य[4] बुद्ध्या, सनातन ब्रह्म विशुद्धमाद्यम्[5] ॥३१॥
तद्वेदनिष्ठस्य जनस्य राजन्, प्रदेयमेतत्परम त्वया भवेत् ।
विधित्समानाय निबोधकारक, प्रबोधहेतो प्रणतस्य शासनम् ॥३२॥
न देयमेतच्च यथाऽनृतात्मने, शठाय क्लीबाय न जिह्मबुद्धये ।
न पण्डितज्ञानपरोपतापिने, देय तथा शिष्यविबोधनाय ॥३३॥
श्रद्धान्वितायाथ गुणान्विताय, परापवादाद्विरताय नित्यम् ।
विशुद्धयोगाय बुधाय चैव, कृपावतेऽथ क्षमिणे हिताय ॥३४॥

सक्ता है अन्यथा नही यह ध्रुव सत्य है। यह विशुद्ध धर्म वाला जीव पर-धम को ग्रहण करने वाला है और अय के सयोग से यह शुद्ध या अशुद्ध हो जाता है अत इसको शुद्ध बनाने के लिये शुद्ध ज्ञान का ही साहचर्य आवश्यक है न कि अशद्ध का। हे पुरुषपम ! विमुक्त धर्मा (मुक्ति-कामी) वियोगधर्मी (मुक्त) का साहचर्य पाकर ही मुक्तात्मा होता है। अमित बुद्धिमान विमक्त ब्रह्म के सान्निध्य से ही मुक्त होता है और शुचि कर्म करने वाला ही अपने शुचि (पवित्र) कर्मों के प्रभाव से पवित्र होता है। विमल आत्मा वाले के साहचर्य से जीव विशुद्धात्मा होता कैवल्य ज्ञान प्राप्त के सत्सग से कैवल्य-ज्ञानी एव स्वतन्त्र की सगति से ही जीव स्वतन्त्र हो स्वतन्त्रत्व को प्राप्त करता है॥२५ ३०॥ महाराज! मैंने निष्पक्ष भाव से सनातन, विशुद्ध आद्यब्रह्म के यथार्थतत्त्व और तत्त्व को इस प्रकार तुमसे कह दिया॥३१॥ राजन् ! इस परमतत्त्व को तुम वेदो म श्रद्धा रखने वाले जनो को ही देना। क्योकि आत्म ज्ञान प्राप्ति के इच्छुक जनो के लिये उपदेश या शासन ज्ञान-वर्द्धक होता है एव विनम्र व्यक्ति के प्रति किया हुआ शासनोपदेश उसके उत्थान का कारण बनता है॥३२॥ यह विमल ज्ञान असत्यवादी शठ नपुसक कुटिल और अपने पाण्डित्य से दूसरे के आत्मा को पीडा पहुँचाने वाले व्यक्ति को नही देना चाहिए किन्तु ऐसे व्यक्ति को देना चाहिये जो जिज्ञासु हो श्रद्धालु गुण प्रेमी, नित्य दूसरे की निन्दा करने या सुनने से दूर रहता हो जो विशुद्धयोग प्रेमी, बुद्धिमान् कृपालु, क्षमाशील और परहित म निरत रहने वाला हो, जो विविक्तसेवी (एकान्त प्रेमी), अनुशासन प्रिय विवाद मे विरक्त रहने वाला,

---

१क ०धमयुक्तेन। २क विशुद्धात्मा। ३ख ०तदीप्तिमा०। ४क ग ०रत्व प्र०। ५क ख चार्पं। ६क ०म्। देवैकनि०।

विविक्तशीलाय विधिप्रियाय, विवादहीनाय बहुश्रुताय ।
विनीतवेशाय नहैतुकात्मने, सदैव गुह्यं त्विदमेव देयम् ॥३५॥
एतैर्गुणैर्हीनतमे न देयमेतत्परं ब्रह्म विशुद्धमाहुः ।
न श्रेयसे योक्ष्यति तादृशे कृतं, धर्मप्रवक्तारमपात्रदानात् ॥३६॥
पृथ्वीमिमां वा यदि रत्नपूर्णां, दद्याददेयं त्विदमव्रताय ।
जितेन्द्रियाय प्रयताय देयं, देयं परं तत्त्वविदे नरेन्द्र ॥३७॥
कराल मा ते भयमस्ति किंचिदेतच्छ्रुतं ब्रह्म परं त्वयाऽद्य ।
यथावदुक्तं परमं पवित्रं, विशोकमत्यन्तमनादिमध्यम् ॥३८॥
अगाधमेतदजरामरं च, निरामयं वीतभयं शिवं च ।
समीक्ष्य [1]मोहं परवादसंज्ञमेतस्य तत्त्वार्थमिमं विदित्वा ॥३९॥
अवाप्तमेतद्धि पुरा सनातनाद्धिरण्यगर्भाद्धि ततो नराधिप ।
प्रसाद्य यत्नेन तमुग्रतेजसं, सनातनं ब्रह्म यथा त्वयैतत् ॥४०॥
पृष्टस्त्वया चाऽस्मि यथा नरेन्द्र, तथा मयेदं त्वयि नोक्तमन्यत् ।
यथाऽवाप्तं ब्रह्मणो मे नरेन्द्र, महाज्ञानं मोक्षविदा परायणम् ॥४१॥

बहुज्ञ, विनीत वेश वाला और जो तर्क करने वाला न हो, ऐसे श्रद्धाप्रिय शिष्य की ज्ञान–वृद्धि के लिये इस रहस्यमय ज्ञान को देना चाहिये ॥३३-३५॥ उपर्युक्त गुणो से शून्य व्यक्ति को यह विशुद्ध ब्रह्म-ज्ञान नहीं देना चाहिये। अपात्र को दान देने से (ज्ञान-दान स) धर्म-प्रवक्ता कभी भी उस कुपात्र को श्रेयस्कर पथ पर नही ला सकता ॥३६॥ यदि कोई अनुपयुक्त व्यक्ति रत्नो से परिपूर्ण इस पृथ्वी को भी दे दे तब भी व्रत-हीन व्यक्ति को यह ज्ञान नही ही देना चाहिये। नरेन्द्र! यह ज्ञान जितेन्द्रिय प्रयत (पवित्र) और तत्त्वज्ञानी को देना चाहिये ॥३७॥ ऋषिवर! तुमको अब कराल काल का कुछ भी भय नही होगा क्योकि आज तुमने पर ब्रह्म (ज्ञान) को सुन लिया है। मैंने उस परम-पवित्र, अगाध शोक को दूर करने वाले, आदिमध्यरहित, अनन्त, अजर, अमर, निर्विकार, वीत-भय और कल्याणमय ज्ञान को यथार्थ रूप से कहा है। नराधिप! मोह की व्यापकता को साथ ही इसके निवारक ज्ञान के तत्त्वार्थ (मर्म) को समझ कर ही इस ज्ञान को उग्र तेजस्वी, सनातन ब्रह्म को यत्नपूर्वक प्रसन्न कर उस सनातन हिरण्यगर्भ से आज से बहुत पहले प्राप्त किया। जिस प्रकार आज तुमने सम्मान और श्रद्धा के साथ मुझसे पूछा है और जिस प्रकार तुमसे आज मैंने कहा है, हे नरेन्द्र! इस प्रकार अन्य किसी से नहीं कहा। नरेन्द्र! जिस प्रकार मैंने मोक्ष-ज्ञ या मुमुक्षुजनो के परमलक्ष्य इस ज्ञान को ब्रह्मा से प्राप्त किया उसी प्रकार तुमसे कह दिया ॥३९-४१॥

---

[1]ख सोऽहं। [2]ग महज्ज्ञान।

व्यास उवाच

एतदुक्त पर ब्रह्म यस्मान्नाऽऽवर्तते पुन । पञ्चविंश मुनिश्रेष्ठा वसिष्ठेन यथा पुरा ॥४२॥
पुनरावृत्तिमाप्नोति परम ज्ञानमव्ययम । नाति बुध्यति तत्त्वेन बुध्यमानोऽजरामरम् ॥४३॥
एतन्नि श्रेयसकर ज्ञान भो परम मया । कथित तत्त्वतो विप्रा श्रुत्वा देवर्षितो द्विजा ॥४४॥
हिरण्यगर्भादृषिणा वसिष्ठेन समाहृतम । वसिष्ठादृषिशार्दूलो नारदोऽवाप्तवानिदम् ॥४५॥
नारदाद्विदित महद्यमेतदुक्त सनातनम् । मा शुचध्व मुनिश्रेष्ठा श्रुत्वैतत्परम पदम ॥४६॥
येन क्षराक्षरे भिन्ने न भय तस्य विद्यते । [1]विद्यते तु भय यस्य यो नैन वेत्ति तत्त्वत ॥४७॥
अविज्ञानाच्च[2] मूढात्मा पुन पुनरुपद्रवान् । प्रेत्य जातिसहस्राणि मरणान्तान्युपाश्नुते ॥४८॥
देवलोक तथा तिर्यङमानुष्यमपि चाश्नुते । [3]यदि वा मुच्यते वाऽपि तस्मादज्ञानसागरात् ॥४९॥
अज्ञानसागरे घोरे ह्यव्यक्तागाध उच्यते । अहन्यहनि मज्जन्ति यत्र भूतानि भो द्विजा ॥५०॥
तस्मादगाधादव्यक्तादुपक्षीणात्सनातनात । तस्माद्यूय विरजस्का वितमस्काश्च भो द्विजा ॥५१॥
एव मया मुनिश्रेष्ठा सारात्सारतर परम् । कथित[4] परम मोक्ष य ज्ञात्वा न निवर्तते ॥५२॥

व्यास बोले—श्रेष्ठ मुनियो ! जिस प्रकार पहले वसिष्ठ ने इस पचविंशात्मक परब्रह्म के विषय मे जिसको पाकर कोई पुन आवागमन के बन्धन मे नही पडता है कहा है उसको मैंने कह दिया। इस प्रकार उस वसिष्ठ द्वारा कहे गये शाश्वत ज्ञान की आज पुनरावृत्ति हो गई। इस शाश्वत अमर ज्ञान को तत्त्वत समझकर कोई भी बुद्धिमान् जगत या माया के पाश मे नही फस सकता है। हे विप्रगण ! हे द्विजवय ! इस परम नि श्रयस्कर ज्ञान को देवर्षि (नारद) के मुख से सुनकर मैंने यथावत कह दिया ॥४४॥ इस ज्ञान को ऋषि वसिष्ठ ने हिरण्यगभ ब्रह्म से प्राप्त किया। ज्ञानी वसिष्ठ से इसको ऋषि शार्दूल नारद ने प्राप्त किया ॥४५॥ नारद से इस सनातन ज्ञान को जान कर मैंने आप लोगों स कहा। मुनिश्रेष्ठो ! अब तो इस परम पद को सुनकर आप लोगो को लेश मात्र भी भय या शोक नही करना चाहिये ॥४६॥ जिसने क्षर और अक्षर का व्यापक ज्ञान प्राप्त कर लिया उसको अब किस बात का भय रह गया भय तो उसको होना चाहिये जिसको इस परम ज्ञान का तत्त्व ज्ञात नही है ॥४७॥ मूढात्मा ही इस विज्ञान के न जानने के कारण बार बार सकटो मे फसकर सहस्रो योनियो मे भटक कर मृत्यु कष्ट का अनुभव करता है ॥४८॥ यदि कथचित् उस अज्ञानसागर से किसी प्रकार मुक्त भी होते हैं तो भी वे कर्मानुसार देवलोक तियग और मनुष्य योनि का भोग करते हैं ॥४९॥ द्विजगण ! जिस घोर अज्ञान सागर म प्राणी रातदिन डूबते रहते हैं जिसको अव्यक्त और अगाध कहा जाता है उस अगाध अव्यक्त सनातन और उपक्ष ण (क्षयशील) अज्ञान से तुम लोग सवथा अछूते हो उसके रजस् एव तमोगुणात्मक स्पश से सवथा परे हो। मुनिवर ! इस प्रकार मैंने तत्त्वों के तत्त्व परम मोक्षज्ञान को कह दिया जिसको जानकर मनुष्य पुनर्जन्म

१क ग पञ्चविंशो। २क ०ते न जरा शोको य एतद्वत्ति। ३क ०च्च मोहाद्वा पु०। ४ख यदा भवति कालेन त०। ५क ०त मोक्षशास्त्र वै यद्गत्वा।

न नास्तिकाय दातव्यं नाभक्ताय कदाचन। न दुष्टमतये विप्रा न श्रद्धाविमुखाय च ॥५३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसंवादसमाप्तिनिरूपणं नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४५॥

अथ षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

अस्य श्रवणपठनकर्तॄणां फलप्राप्तिकथनम्

लोमहर्षण उवाच

एवं पुरा मुनीन्व्यासः पुराणं श्लक्ष्णया गिरा। दशाष्टदोषरहितैर्वाक्यैः सारतरैर्द्विजाः ॥१॥
पूर्णमस्तमलं [1]शुद्धैर्नानाशास्त्र[2]समुच्चयं। जातिशुद्धसमायुक्तं [3]साधुशब्दोपशोभितम् ॥२॥
पूर्वपक्षोक्तिसिद्धान्तपरिनिष्ठासमन्वितम्। [4]श्रावयित्वा यथान्यायं विरराम महामतिः ॥३॥
तेऽपि श्रुत्वा [5]मुनिश्रेष्ठाः पुराणं वेदसंमितम्। आद्यं ब्राह्माभिधानं च सर्ववाञ्छाफलप्रदम् ॥४॥
हृष्टा बभूवुः सुप्रीता विस्मिताश्च पुनः पुनः। प्रशशंसुस्तदा व्यासं कृष्णद्वैपायनं मुनिम् ॥५॥

करण के बन्धन में नहीं फँसता है। विप्रगण! इस परमतत्त्व को किसी नास्तिक, अभक्त, दुष्टमति और श्रद्धा-हीन व्यक्ति को नहीं देना चाहिये ॥५०-५३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वसिष्ठ-कराल जनक-संवाद समाप्ति निरूपण नामक
दो सौ पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४५॥

अध्याय २४६

इस पुराण के सुनने और पढ़ने का फल-वर्णन

लोमहर्षण बोले—द्विजगण! पूर्व काल में महामति व्यास जी ने इस प्रकार मुनियों को अठारहों दोषों से रहित अत्यन्त सारभूत, निर्मल, विशुद्ध, नाना शास्त्रों के तत्त्व से पूर्ण, साधु शब्दों से सुशोभित, सहज शुद्ध और पूर्वपक्षवचन एवं सिद्धान्तवचन के समन्वय से युक्त पुराण को न्यायानुकूल रीति से सुना कर मौन हो गये। वे श्रेष्ठमुनि भी सब मनोरथों को पूर्ण करने वाले तथा वेद-तुल्य आद्य ब्रह्मपुराण को सुनकर विस्मित और आनन्दमग्न हो गये। प्रसन्नता से मुनि कृष्ण द्वैपायन व्यास की बार बार प्रशंसा करने लगे ॥१-५॥

---

१ ख शुभैर्ना०। २ ख ०स्त्र शास्त्रा०। ३ ग ०शुसाध्वो०। ४ क वाचयित्वा। ५ क ख मुनिवराः।

मुनय ऊचुः

अहो त्वया मुनिश्रेष्ठ पुराणं श्रुतिसंमितम्। सर्वाभिप्रेतफलदं सर्वपापहरं परम् ॥६॥
प्रोक्तं श्रुतं तथाऽस्माभिर्विचित्रपदमक्षरम्। न तेऽस्त्यविदितं किंचित्त्रिषु लोकेषु वै प्रभो ॥७॥
सर्वज्ञस्त्वं महाभाग देवेष्विव बृहस्पतिः। नमस्यामो महाप्राज्ञं ब्रह्मिष्ठं त्वां महामुनिम् ॥८॥
येन त्वया तु वेदार्था भारते प्रकटीकृताः। कः शक्नोति गुणान्वक्तुं तव सर्वान्महामुने ॥९॥
अधीत्य चतुरो वेदान्साङ्गान्व्याकरणानि च। कृतवान्भारतं शास्त्रं तस्मै ज्ञानात्मने नमः ॥१०॥
नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे, फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र।
येन त्वया भारततैलपूर्णः, प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः ॥११॥
अज्ञानतिमिरान्धानां भ्रामितानां कुदृष्टिभिः। ज्ञानाञ्जनशलाकेन त्वया चोन्मीलिता दृशः ॥१२॥
एवमुक्त्वा समभ्यर्च्य व्यासं ते चैव पूजिताः। जग्मुर्यथागतं सर्वे कृतकृत्याः स्वमाश्रमम् ॥१३॥
तथा मया मुनिश्रेष्ठा कथितं हि सनातनम्। पुराणं सुमहापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१४॥
यथा भवद्भिः पृष्टोऽहं संप्रश्नं द्विजसत्तमाः। व्यासप्रसादात्तत्सर्वं मया संपरिकीर्तितम् ॥१५॥

मुनियों ने कहा—अहो ! मुनिश्रेष्ठ ! आपने सब प्रकार की अभिप्रेत वस्तुओं को देने वाले, सब पापों को दूर करने वाले, विचित्र पदों वाले और श्रुति तुल्य इस उत्तम पुराण को सुनाया, तथा हम लोगों ने इसे अक्षरशः सुना। प्रभो ! तीनों लोकों में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो आपको विदित न हो। महाभाग ! आप सर्वज्ञ हैं, देवों में बृहस्पति के समान आप का (इस लोक में) स्थान है, आप ऐसे महाविवेकशील, ब्रह्मज्ञानी महामुनि को हम सब नमस्कार करते हैं। आपने इस भारतवर्ष में वेदों के अर्थ प्रकट किये हैं। महामुने ! आपके सब गुणों का वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है ? ॥६-९॥ आपने अंग (षडंग) सहित वेदों और सम्पूर्ण व्याकरण शास्त्रों का अध्ययन कर महाभारत शास्त्र की रचना की है, ऐसे ज्ञानी पुरुष को नमस्कार है ॥१०॥ हे विशाल (व्यापक) बुद्धि वाले, विकसित कमल की पखुडियों के समान आयत नेत्र वाले व्यास ! आपको नमस्कार है, आप जैसे महामानव को नमस्कार है जिन्होंने महाभारत रूपी तेल से परिपूर्ण ज्ञानदीपक को जला दिया है ॥११॥ आपने अज्ञान के गहन अन्धकार में अपनी भ्रान्त दृष्टि के कारण भूले हुये व्यक्तियों की आंखों में ज्ञान की अञ्जन-शलाका को लगाकर उनकी आंखें खोल दी हैं ॥१२॥ इस प्रकार अपनी कृतज्ञता प्रकट कर और महामुनि उस व्यास की पूजाकर वे सब मुनि अपने-अपने आश्रमों को चले गये।'१३॥

लोमहर्षण बोले—द्विजवर ! जिस प्रकार आप लोगों ने मुझसे पूछा, उसी प्रकार मैंने भी व्यास की कृपा से पाये हुये अत्यन्त पुण्यप्रद तथा सब पापों को दूर करने वाले सनातन पुराण को आप लोगों से कह दिया। इस पुराण

१ग शिवम्। २क महामते। ३ग च। रक्षित मार०। ४ख कृत हि मार०। ५ख म येन। ६क योगात्मने। ७क रुने०। ८ग तर्कज्ञान। ९ख पाराशर।

इदं गृहस्थैः श्रोतव्यं 'यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः। 'धनसौख्यप्रदं नृणां पवित्रं पापनाशनम् ॥१६॥
तथा ब्रह्मपरैर्विप्रैर्ब्राह्मणाद्यैः सुसंयतैः। श्रोतव्यं सुप्रयत्नेन सम्यक्श्रेयोभिकाङ्क्षिभिः ॥१७॥
प्राप्नोति ब्राह्मणो विद्यां क्षत्रियो विजयं रणे। वैश्यस्तु धनमक्षय्यं शूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥१८॥
यं यं काममभिध्यायञ्शृणोति पुरुषः 'शुचिः। तं तं काममवाप्नोति नरो नास्त्यत्र संशयः ॥१९॥
पुराणं वैष्णवं 'ह्येतत्सर्वकिल्बिषनाशनम्। विशिष्टं सर्वशास्त्रेभ्यः पुरुषार्थोपपादकम् ॥२०॥
एतद्वो यन्मयाऽऽख्यातं पुराणं वेदसंमितम्। श्रुतेऽस्मिन्सर्वदोषोत्थः पापराशिः प्रणश्यति' ॥२१॥
प्रयागे पुष्करे चैव कुरुक्षेत्रे तथाऽर्बुदे। उपोष्य यदवाप्नोति तदस्य 'श्रवणान्नरः ॥२२॥
यदग्निहोत्रे सुहुते वर्षे नाऽऽप्नोति वै फलम्। महापुण्यमयं विप्रास्तदस्य श्रवणात्सकृत् ॥२३॥
'यज्ज्येष्ठशुक्लद्वादश्यां स्नात्वा वै यमुनाजले। मथुरायां हरिं दृष्ट्वा प्राप्नोति 'पुरुषः फलम्' ॥२४॥
तदाप्नोति' फलं ''सम्यक्समाधानेन कीर्तनात्। पुराणेऽस्य हितो(?) विप्राः केशवार्पितमानसः ॥२५॥
यत्फलं त्रि(श्रि)यमलोक्य पुरुषोऽय लभेन्नरः। तत्फलं समवाप्नोति यः पठेच्छृणुयादपि ॥२६॥
इदं यः श्रद्धया नित्यं पुराणं वेदसंमितम्। यः पठेच्छृणुयान्मर्त्यः स याति भुवनं हरेः ॥२७॥

को गृहस्थ, यति, ब्रह्मचारी सबको सुनना चाहिये यह मनुष्यो का धन एवं सौख्य देने वाला, पवित्र और पापो को नष्ट करने वाला है ॥१४-१६॥ परम श्रेय की आकांक्षा रखने वाले, ब्रह्मज्ञान परायण विप्रो और संयमी ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि को प्रयत्नपूर्वक (यह पुराण) सुनना चाहिये। इस पुराण के श्रवण से ब्राह्मण विद्या और क्षत्रिय युद्ध मे विजय प्राप्त करता है, वैश्य अपरिमित धन और शूद्र अति सुख पाता है। पुरुष पवित्र भावना से जिन जिन मनोरथों की इच्छा करता हुआ इस पुराण को सुनता है, उन उनको वह अवश्य प्राप्त करता है, इसमे कुछ भी सन्देह नही है ॥१७-१९॥ यह वैष्णव पुराण सब पापो को नष्ट करने वाला, सब शास्त्रो से अधिक विशेषता रखने वाला और पुरुषार्थ-चतुष्टय का देने वाला है। यह जो वेद तुल्य पुराण आप लोगो को मैंने सुनाया है, इसके श्रवण से सब प्रकार के दोषो से उत्पन्न पाप-समूह नष्ट हो जाते हैं ॥२०-२१॥ प्रयाग, पुष्कर, कुरुक्षेत्र तथा अर्बुदतीर्थ (आबू) मे उपवास करने से जो फल मिलता है वह इस पुराण के श्रवण करने से मनुष्य को प्राप्त होता है ॥२२॥ वर्ष भर भलीभाँति अग्निहोत्र करने से भी उतना फल नही प्राप्त होता जितना कि इस महापुण्यप्रद पुराण के एक बार श्रवण करने से प्राप्त होता है ॥२३॥ ज्येष्ठ-शुक्ल-द्वादशी के दिन यमुना मे स्नान कर मथुरा मे श्रीकृष्ण-दर्शन से जो फल मिलता है वह इस पुराण के सम्यक् पाठ से प्राप्त होता है ॥२४॥ विप्रगण ! केशव के ध्यान मे मग्न होकर श्री लक्ष्मी के दर्शन से जो फल मनुष्य प्राप्त करता है वह फल इसके पठन या श्रवण से प्राप्त होता है। जो व्यक्ति नित्य प्रति वेद तुल्य इस पुराण का श्रद्धा सहित पाठ या श्रवण करता है वह विष्णु-लोक को जाता

१क ०मिंधर्मचा०। २क धनारोग्यप्र०। ३क सुधी। ४ख ०त्सद्य नि०। ५क प्रनाम्यति। ६ख ०णाद्द्विजा। य०। ७ग यत्माघनु०। ८ख ल। ९क ०म्। यदा०। १०क ०ति कनो स०। ११क ०म्यक्स्मृत्वा तु मधुसूदनम्। पुराणश्रवणादेव कें०।

श्रावयेद्ब्राह्मणो[1] यस्तु सदा पर्वसु संयतः। एकादश्यां द्वादश्या च विष्णुलोकं स गच्छति ॥२८॥
इद यशस्यमायुष्य सुखदं कीर्तिवर्धनम्। बलपुष्टिप्रदं नृणा धन्यं दु.स्वप्ननाशनम् ॥२९॥
त्रिसध्यं यः पठेद्विद्वाञ्श्रद्धया सुसमाहितः। इदं वरिष्ठमाख्यानं स सर्वमोप्सितं लभेत् ॥३०॥
रोगार्तो मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात्। भयाद्विमुच्यते भीत[2] आपदापन्न आपदः ॥३१॥
जातिस्मरत्वं विद्यां च पुत्रान्मेधां[3] पशून्धृतिम्। धर्मं चार्थं च काम च मोक्षं तु लभते नरः ॥३२॥
यान्यान्कामानभिप्रेत्य पठेत्प्रयतमानस.। तांस्तान्सर्वानवाप्नोति पुरुषो नात्र संशय· ॥३३॥

यश्चेदं सततं शृणोति मनुज· स्वर्गापवर्गप्रद,
विष्णु लोकगुरु प्रणम्य वरदं भक्त्येकचित्त.[4] शुचिः।
भुक्त्वा चात्र सुख विमुक्तकलुषः स्वर्गे च दिव्यं सुखं,
पश्चाद्याति हरेः पदं सुविमल मुक्तो गुणैः प्राकृतैः ॥३४॥
तस्माद्विप्रवरैः [5]स्वधर्मनिरतैर्मुक्त्येकमार्गेप्सु भि-
स्तद्वत्क्षत्रियपुगवैस्तु[6] नियतैः श्रेयोर्थिभिः सर्वदा।
वैश्यैश्चानुदिन विशुद्धकुलजैः शूद्रैस्तथा धार्मिकैः
श्रोतव्य[7] त्विदमुत्तम बहुफलं धर्मार्थमोक्षप्रदम् ॥३५॥

है। जो ब्राह्मण सर्वदा पर्वों के दिन तथा एकादशी और द्वादशी के दिन यह पुराण सुनाता है वह विष्णुलोक प्राप्त करता है ॥२५-२८॥ यह पुराण मनुष्यो का यश बढ़ाने वाला, आयु सुख और कीर्ति बढ़ाने वाला, बल-पुष्टि प्रद, धन्य और दु स्वप्न के प्रभाव का दूर करने वाला है ॥२९॥ जो व्यक्ति तीनो काल (प्रात, मध्याह्न एवं सायम्) एकाग्र मन स श्रद्धापूर्वक इस श्रेष्ठ आख्यान (पुराण) को पढ़ता है वह सब मनोरथो को प्राप्त कर लेता है। ॥३०॥ इस पुराण के पाठ से रोगी मनुष्य रोग स और बन्दी कारागार से छूट जाता है। इसी प्रकार भयभीत भय से तथा आपत्तिग्रस्त आपत्तिया स छूट जाता है ॥३१॥ मनुष्य इसके प्रभाव से जातिस्मरत्व (पूर्वजन्म का ज्ञान) विद्या, पुत्र, मेधा पशुधन, धैर्य धर्म, अर्थ काम यहाँ तक कि मोक्ष भी प्राप्त करता है ॥३२॥ जिन जिन इष्ट पदार्थों को मन म लेकर सयतचित से मनुष्य इस पुराण का पाठ करता है उन सबको वह प्राप्त करता है इसम सन्देह नही ॥३३॥ जो मनुष्य लोकगुरु वरदाता विष्णु को प्रणाम कर भक्तिभाव से ध्यानपूर्वक पवित्र हो, इस स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) को देने वाले पुराण का नित्य श्रवण करता है, वह पापमुक्त होकर इस लोक मे सुख और स्वर्ग म दिव्य सुखो को भोगने के बाद अपने प्राकृत गुणो से भी मुक्त होकर विष्णु के विमल और शाश्वत पद को प्राप्त करता है ॥३४॥ इसलिये मुक्ति-प्राप्ति के इच्छुक तथा अपने धर्म म निरत रहने वाले श्रेष्ठ विप्र, सर्वदा अभ्युदय की इच्छा करने वाले एव नियम पालन करने वाले उत्तम क्षत्रिय, विशुद्ध कुल में उत्पन्न वैश्य और धर्मप्रेमी शूद्र प्रतिदिन अधिक फल देने वाले एव धर्म अर्थ और मोक्ष देने वाले उत्तम पुराण का श्रवण करे ॥३५॥ आप पुरुष

१क ह्मणान्यस्तु। २ख ग ०तश्चौराम्मुच्येन्महापन। जा०। ३क ०धां यशो पुरि०। ४ग ०क्येना पु०। ५ग ०र्मकांक्ष०। ६ग ०पगपुर्गैस्तु। ७ग ०व्य तदनुत्त०।

धर्मे मतिर्भवतु' व पुरुषोत्तमाना, स ह्येक एव परलोकगतस्य बन्धुः ।
अर्था स्त्रियश्च निपुणैरपि सेव्यमाना, नैव प्रभावमुपयान्ति न च स्थिरत्वम् ॥३६॥
धर्मेण राज्य लभते मनुष्य, स्वर्गं च धर्मेण नरः प्रयाति ।
आयुश्च कीर्ति च तपश्च धर्मं, धर्मेण' मोक्षं लभते मनुष्य ॥३७॥
धर्मोऽत्र मातापितरौ नरस्य, धर्म. सखा चात्र परे च लोके ।
त्राता च धर्मस्त्विह मोक्षदश्च,' धर्मादृते नास्ति तु किंचिदेव ॥३८॥
इदं रहस्य श्रेष्ठ च पुराण वेदसम्मितम् । न देय 'दुष्टमतये नास्तिकाय विशेषतः ॥३९॥
इदं' मयोक्त प्रवर पुराणं, पापापह धर्मविवर्धनं च ।
श्रुतं भवद्भि. परम रहस्यमाज्ञापयध्व मुनयो व्रजामि ॥ ४०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे रोमहर्षणमुनिसंवादे पुराणप्रशंसनं नाम षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२४६॥

समाप्तमिदमादिब्राह्माभिध महापुराणम्

ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु

श्रेष्ठों की धर्म की ओर सदा अभिरुचि हो क्योंकि वही परलोक में गये हुये जीवों (मृत) का एकमात्र सहायक है। परम कुशल व्यक्ति भी यदि अर्थ और स्त्री की सेवा करे अर्थात् उनका प्रेमी बने तो भी वे न तो कुछ सहायता ही कर सकते और न स्थिर ही रहते हैं ॥३६॥ मनुष्य धर्म से ही राज्य प्राप्त करता, धर्म से ही स्वर्ग प्राप्त करता और धर्म से ही आयु, कीर्ति तप और धर्म यहाँ तक कि मोक्ष को प्राप्त करता है ॥३७॥ इस लोक में धर्म ही मनुष्य की माता और पिता है धर्म ही इस लोक तथा परलोक का सखा है धर्म ही इस लोक का रक्षक और मोक्षदाता है धर्म के अतिरिक्त और कोई सार पदार्थ संसार में नहीं है ॥३८॥ यह श्रेष्ठ पुराण परम गोपनीय तथा वेदतुल्य है। इसको दुष्ट-बुद्धि विशेषकर नास्तिक व्यक्ति को कभी भी नहीं सुनाना चाहिये ॥३९॥ मुनिगण! मैंने यह पाप-नाशक उत्तम तथा परम गोपनीय पुराण कह दिया और आप लोगों ने भी इसे सुन लिया। अब आज्ञा दीजिये, मैं जाता हूँ ॥४०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में रोमहर्षण और मुनियों के संवाद प्रकरण में पुराण प्रशंसा नामक दो सौ छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४६॥

॥ ब्रह्मपुराण समाप्त ॥

(ब्रह्मपुराण के समस्त श्लोकों की संख्या १३७८३)

ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु

१क ०र्थाः वै पु०। २क म ०ण सौम्य समूर्तिं गतम। धमदच मा०। ३ख ०दच ज्ञानप्रदश्चात्र सुखप्रदश्च। ६०। ४ख पापमतये। ५ख एव।

परिशिष्ट

ब्रह्मपुराण में आये व्यक्तिवाची संज्ञा शब्दों की अनुक्रमणी

फ

ब

३७४, ३७६, ३७१, ३७२, ३७४, ३७६, ३७८,
३८१, ३८५, ३८६, ३८८, ३९५, ४०२, ४०४,
४०६, ४०७, ४०९, ४१०, ४११, ४१२, ४१३,
४१४, ४१६, ४१७, ४१८, ४१९, ४२०, ४२२,
४२३, ४२५, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०, ४३१,
४३१, ४३३, ४३५, ४३७, ४३८, ४३९, ४४०,
४४१, ४४२, ४४३, ४४४, ४४५, ४४६, ४५०,
४५१, ४५२, ४५३, ४५५, ४५८, ४६०, ४६१,
४६२, ४६३, ४६५, ४६६, ४६७, ४६८, ४६९,
४७०, ४७१, ४७३, ४७४, ४७५, ४७६, ४७७,
४७८, ४७९, ४८०, ४८२, ४८६, ४८९, ४९०,
४९१, ४९२, ४९२, ४९४, ४९५, ४९६, ४९७,
४९८, ४९९, ५००, ५०१, ५०४, ५०६, ५०७,
५०८, ५०९ ५१०, ५११, ५१२, ५१४, ५१४,
५१५, ५१६ ५१७ ५१८, ५१९, ५२०, ५२१,
५२३, ५२४ ५२५, ५२७, ५२८, ५२९, ५३०,
५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३५, ५३६, ५३८,
५३९, ५४१, ५४२ ५४३, ५४४, ५४५, ५४६,
५४७, ५४८, ५४९ ५५०, ५५१, ५५२, ५५३,
५५४, ५५५, ५५६ ५५८, ५६०, ५६१, ५६२,
५६३, ५६४, ५६५ ५६६, ५६७, ५६९, ५७०,
५७१, ५७२, ५७४ ५७५, ५७६, ५७७, ५७९,
५८१, ५८२, ५८३ ५८४, ५८६, ५८६, ५९०,
५९२, ५९३, ५९४ ५९५, ५९६, ५९८, ५९९,
६००, ६०१, ६०२ ६०३, ६०४, ६०५, ६०६,
६०७, ६०८, ६०९ ६११, ६१२, ६१३, ६१४,
६१५, ६१६ ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२१,
६२२, ६२४, ६२५ ६२७, ६२८, ६२९, ६३०,
६३१, ६३२, ६३४ ६३५, ६३६, ६३६, ६३७,
६३८, ६४०, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७,
६४८, ६४९, ६५०, ६५१, ६५३, ६५४, ६५६,
६५७, ६४८, ६६०, ६६१, ६६१, ६६३, ६६४,
६६६, ६६७, ६६८, ६६९, ६७०, ६७१, ६७२,
६७४, ६७५, ६७५, ६७६, ६७७, ६७८, ६७९,
६८०, ६८१, ६८३, ६८४, ६८५, ६८६, ६८६,
६८७, ६८८, ६८९, ६९०, ६९१, ६९२, ६९३,
६९४, ६९६, ६९७, ६९९, ७००, ७०२, ७०३,
७०४, ७०५, ७०६, ७०७, ७०७, ७०९, ७१०,
७११, ७१२, ७१३, ७१४,१५, ७१६, ७१६,
७१७, ७१८, ७१९, ७२०, ७२२, ७२३, ७२४,
७२६, ७२८, ७२९, ७३०, ७३१, ७३३, ७२५,
७३६, ७३९, ७४०, ७४१, ७४२, ७४३, ७४४,
७४५, ७४७, ७४८, ७५०, ७५१, ७५२, ७५३,
७५४, ६५५, ७५६, ७५७, ७५८, ७६०, ७६१,
७६२, ७६३, ७६४, ७६५, ७६७, ७६८, ७६९,
७७१, ७७२, ७७३, ७७४, ७७६, ७७८, ७७९,
७८०, ७८१, ७८२, ७८३, ७८४, ७८५, ७८६,
७८७, ७८८, ७९१, ७९२, ७९३, ७९४, ७९५,
७९६, ७९७, ७९८, ७९९, ८००, ८०४, ८०६,
८०८, ८०८, ८१०, ८११, ८१५, ८१६, ८१७,
८२०, ८२२, ८२३, ८२५, ८२७, ८२८, ८२९,
८३०, ८३१, ८३२, ८३३, ८३४४ ८३५, ८३६,
८३७, ८३९, ८४०, ८४०, ८४२, ८४४, ८४५,
८४७, ८४७, ८४८, ८५०, ८५१, ८५२, ८५३,
८५४, ८५५, ८५७, ८५९, ८६०, ८६१, ८६२,
८६३, ८६३, ८६४, ८६५, ८६६, ८६७, ८६९,
८७०, ८७१, ८७२, ८७३, ८७५, ८७७, ८७९,
८८०, ८८१, ८८२, ८८३, ८८४, ८८५, ८८६,
८८७, ८८८, ८८९, ८९०, ८९१, ८९२, ८९३,
८९४, ८९५, ८९६, ८९७, ८९८, ८९९, ९०१,
९०५, ९०६, ९०८, ९०९, ९१०, ९१२, ९१४,
९१६, ९१६, ९१९, ९२१, ९२४, ६२५, १०४०,
९४४, ९४४, ९४६, ९४६, ९४७, ९४९, ९५०,
९५४, ९९२, ९९८, १०१०, १०३६,
१०४९, १०८०, १०८०, १०८२, १०८२,
१०८३, १०८४, १११८, ११११, ११४२,
११८७, ११९३, ११९४, ११९५, १२५२, १२६६,
१२९२।

ह